CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

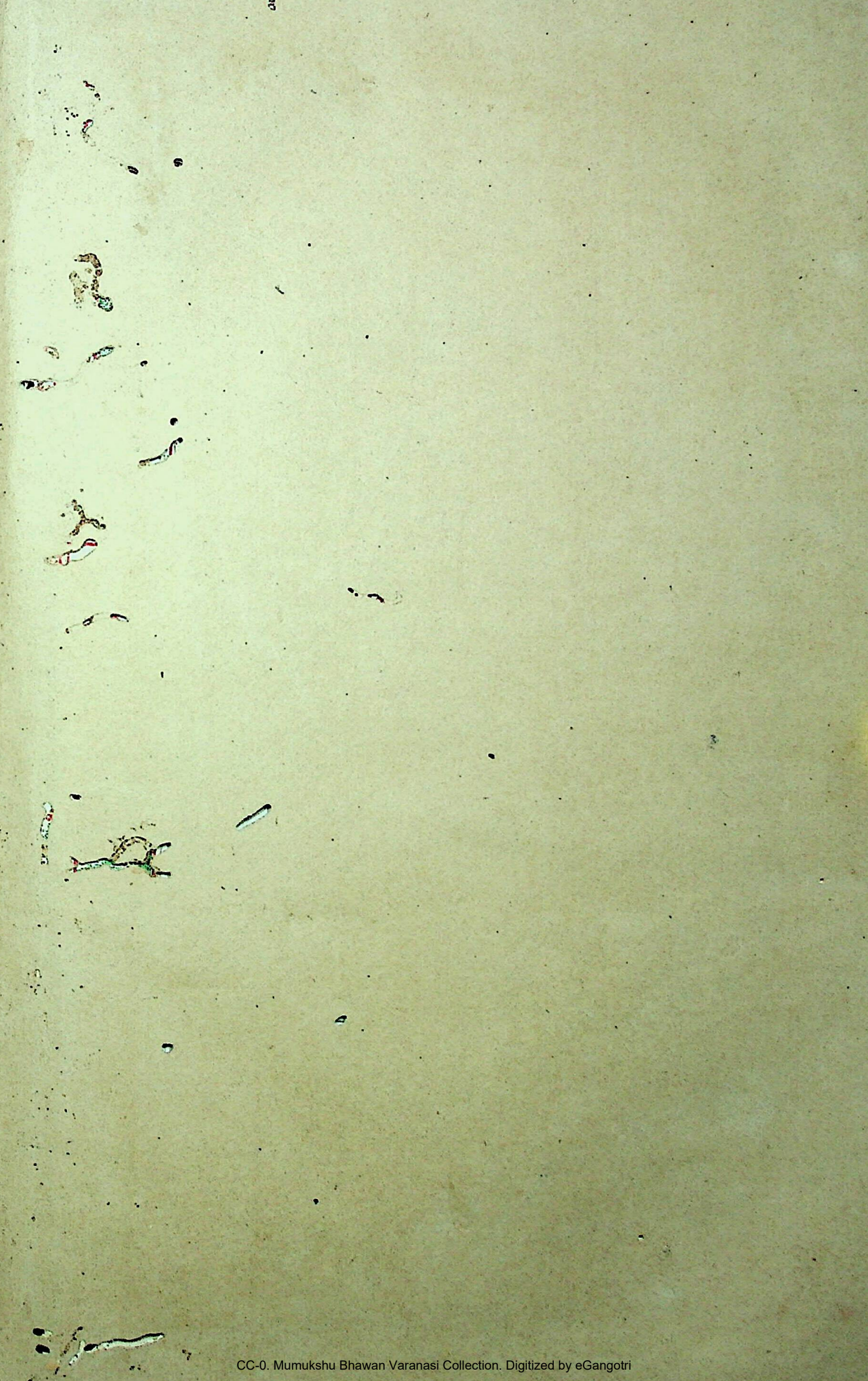

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

भावप्रकाशः।

(वैद्यकग्रंथः)

श्रीमल्लटकनंदनश्रीभावमिश्रविरचितः।

मुरादाबादनिवासिश्रीमदायुर्वेदविद्याविशारदवैद्यराजकविवर-
श्रीलालशालिग्रामवैश्य-विरचितया
भाषाटीकया समलंकृतः।

सोऽयं
क्षेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना
मुम्बय्यां
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितः।

संवत् १९७६, शके १८४१.

यह पुस्तक क्षेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गलीखम्बाटा लैन स्वकीय "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेसमें अपने लिये छापकर प्रकाशित किया.

अस्य ग्रन्थस्य सर्वेऽधिकाराः "श्रीवेङ्कटेश्वर"-
यन्त्रालयाध्यक्षेण स्वाधीनीकृताः सन्ति.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कविवर–लालाशालिग्रामवैश्य.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

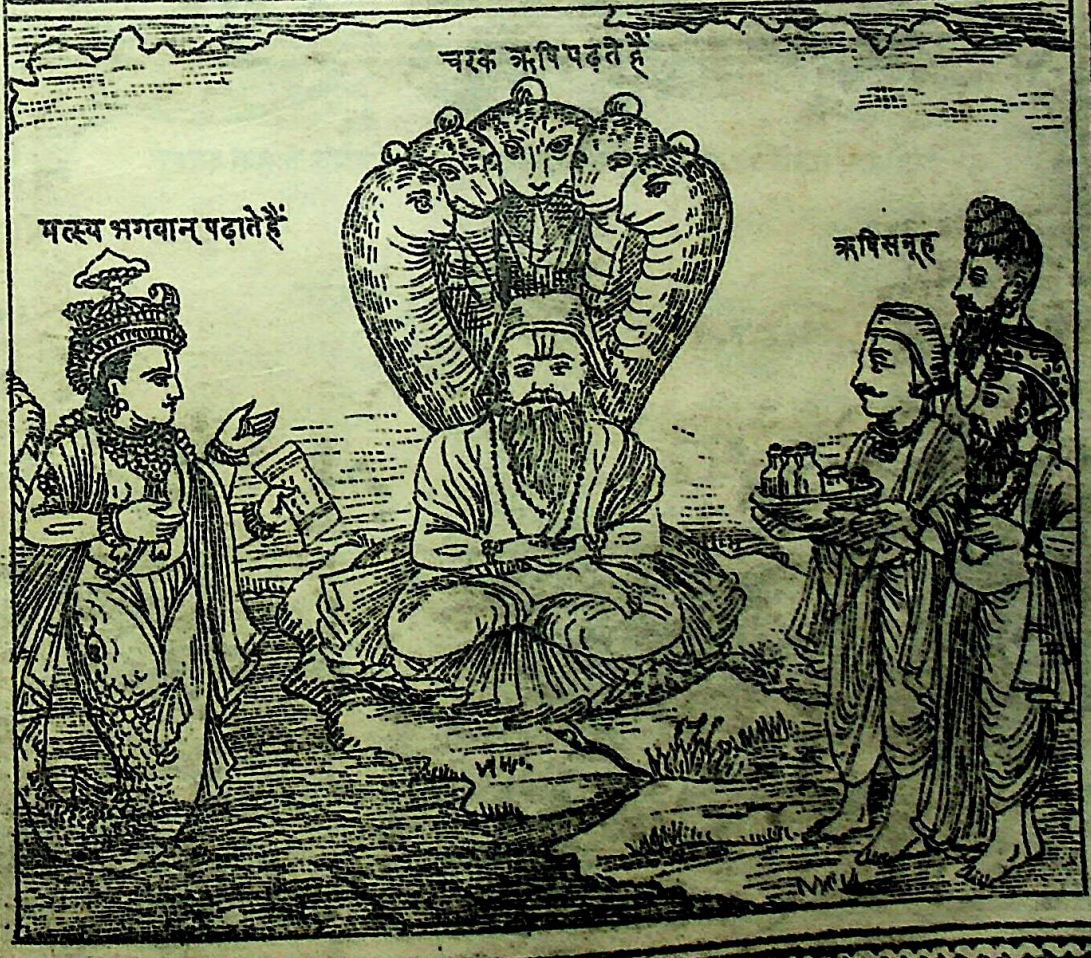

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिवोदास राजर्षिको काशीपुरीमें ब्रह्मदेवका राज्याभिषेक तिलक करना.

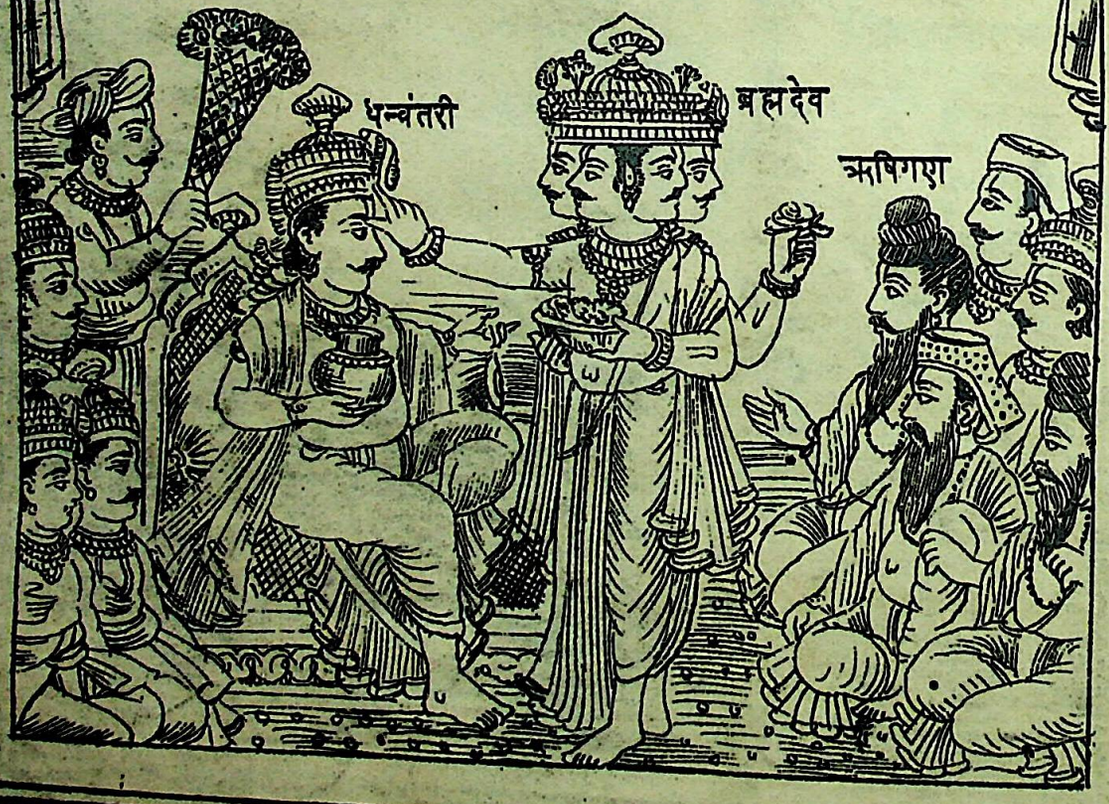

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूमिका।

इस बातको सभी मनुष्य एकस्वर मुक्तकंठसे स्वीकार करते हैं कि, यह हमारी भारत-भूमि साहित्य, गणित, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि सभी विषयोंसे संपन्न होनेके कारण सब देशोंमें शिरमौर समझी जाती थी। इस हमारेही भारतक्षेत्रके ऐश्वर्यका अन्यान्य देशवासी कुछ कुछ अंश संग्रह करके अपने आप ऐश्वर्य और सम्पत्तिका मूलस्वरूप बनकर पृथ्वीमें भूषणके समान दीखते हैं। हिंदु राजाओंके समय भारतवर्षमें प्रायः सभी शास्त्रोंकी चर्चा थी, विद्याकी निर्मल कांति समस्त देशमें व्याप्त थी, उस समय इस पवित्र "आयुर्वेदीय" चिकित्साका अधिक प्रचार होनेसे रोगसंकट अधिकतर उपस्थित नहीं होता था, एक बार रोगसे निवृत्त होनेपर फिर बहुत दिनोंतक भारतसंतानको रोगकी भीषण मूर्ति नहीं देखनी पडतीथी, उस समय यह पृथिवी स्वर्गके समान दिखाई देती थी, प्रत्येक देशमें "आयुर्वेदीय पाठशाला" स्थापित होनेके कारण प्रायः सभी देशी चिकित्साके पूर्ण विद्वान् और क्रियाओंमें कुशल होते थे, इस कारण भारतवर्षके मनुष्य कभी विदेशी चिकित्साका आश्रय नहीं लेते थे, सदैव आयुर्वेदहीकी योगक्रियाओंसे सहजमें सब रोग छूट जाते थे, इस आयुर्वेदीय चिकित्साकी कहांतक प्रशंसा की जाय, हमारे पूर्वज इसी आयुर्वेदीय नियमानुसार चलनेसे धीर, वीर, साहसी, पराक्रमी और सर्वगुण-संपन्न होते थे, इस आयुर्वेदीय चिकित्साके प्रभावसेही भारतवर्षके वैद्योंकी संसारमें बडी प्रशंसा थी, प्रायः यूरोप, फारिस, अरब, रूम आदि अनेक अन्य देशवासी यहां आकर इनसे वैद्यशिक्षा पाते थे, वेही विदेशी चिकित्सक समयके फेरसे आज हमें मूर्ख बतला रहे हैं और इसी भारतभूमिमें समस्त दिव्य औषधियेंभी उत्पन्न होती थीं, यहींसे फारिस, अरबस्तान, रूम, रूस, काबुल, कन्धार, जर्मन, इंग्लैंड, एशिया, आफ्रिका, इटाली, पोर्टुगाल, स्पेडन और फ्रान्स आदि सब देशोंमें औषधियें जाती थीं, और आजतक बराबर जाती हैं। इस देशकी प्रजाके ऊपर इसी देशकी औषधियें अच्छे प्रकार गुण करती हैं, फिर हमको और देशकी औषधियोंसे क्या प्रयोजन? आयुर्वेदकी प्राचीन और उत्कृष्टताके विषयमें हमारे पास बहुतसे यूरोपियन वैद्योंके प्रमाण हैं।

किंतु बडे खेदकी बात है कि, हिंदुओंका राज्य जाते ही समस्त दर्शन, न्याय, ज्योतिष गणित सब आदि शास्त्रोंकी अवनति होगई इतनाही नहीं किंतु साथमेंही हमारी परमप्रिय, प्रयोजनीय आयुर्वेदीय चिकित्साकी भी एक साथ चर्चा उठगई उस समयसे भारतके ऐसे अशुभ दिन आये कि, उसको लिखते हुए लेखनी काँपती है, सबके रंगढंग बिगड गये, मुसलमान लोग यहांतक तंग करने लगे कि, जो वस्तु पाते उठा ले जाते, जिन ग्रन्थोंको विद्वानोंने बडे परिश्रमसे बनाया, यवनोंने उनको आगमें जलाजलाकर यमुनाके जलमें बहादिया, सहस्रों कष्ट सहसहकर दिन पूरे करते थे और जो कुछ औषधियें कंठाग्र थीं उन्हींके बलसे रोगियोंकी चिकित्सा करते थे, दैवयोगसे जब वे वैद्य वैकुंठवासी होगये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो उनकी संतान ठेठ मूर्ख हुई, क्योंकि, ग्रंथ तो प्रथमही जला दिये, लिखना पढना किस प्रकार हो सके ? इस कारण संस्कृत वैद्यक ग्रंथोंका नाम संसारसे उठ गया, केवल वैद्य-मनोत्सव, वैद्यजीवन, वैद्यरत्न, दिल्हण और अद्भुतसागरहीको बडा ग्रंथ समझने लगे, जिसको एक चूर्ण भी स्मरण था वह अपने आपको पूर्ण वैद्य समझता था और ऐसे ऐसे छोटे छोटे ग्रंथोंकाही वैद्योंको बडा अभिमान था, यहांतक प्रमादने घेरा कि, लिखना पढना सब भूलगये, केवल २०-२५ औषधियोंकेही नाम याद रह गये जैसे कि, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, हींग, धनिया इत्यादि और चरक, सुश्रुत, वाग्भटका तो केवल नामही नाम रह गया, वैद्योंको यहभी ध्यान न रहा कि, इनमें क्या क्या विषय हैं और कितने श्लोक हैं ? पठन पाठनका तो कहनाही क्या है ? और औषधियोंको पसारी लोग ऐसे भूलगये मानो कभी जानते ही नहीं थे, कैसे जानें जब कि, औषधियें बर्तनोंमें धरी धरी सडगल जाँय और कोई उनका ग्राहक न हो और जो कुछ पढे लिखे थे वेभी सब भूल गये, इस प्रकार समस्त भारतवर्ष वैद्यकविद्यासे शून्य हो गया। डाक्टर और यूनानी हकीमोंका सन्मान होने लगा, जगह जगह सफाखाने और दवाखाने खुलगये, कोनेन और सोडावाटरका नाम सबके मुखसे निकलने लगा, गुलेबनफशः, गावजबाँ, नीलोफर, अंजबार आदिकीही सराहना करने लगे।

धन्य है उसकी गतिको, कभी तो वह चर्चा और कभी यह बेसुधी, क्या था और क्या हो गया, वैद्योंकी यह बात नहीं रही, आयुर्वेदीय चिकित्साकी ओरसे मनुष्योंकी दृष्टि फिरगई, उसका किसीको किंचिन्मात्रभी विश्वास नहीं रहा, केवल डाक्टरोंका ही धन्वतारिके समान स्थान स्थानपर आदर सत्कार होने लगा, सबको अच्छे प्रकारसे विश्वास हो गया, कि, यूरोपीय चिकित्साकी अपेक्षा आयुर्वेदीय चिकित्सा फलदायक नहीं है, इससे वैद्यलोग जो कुछ औषधि बनानी जानते भी थे उनका बनाना भी छोडदिया, क्योंकि कोई उनका बूझनेवाला तो रहा ही नहीं, उस समय आयुर्वेदीय चिकित्साकी जो दुर्दशा हुई वह लिखनेमें नहीं आ सकती, परंतु सदैव एकसे दिन नहीं रहते, जब भारतवासियोंके दिन फिरे और ईश्वरने अपनी दया की तो हमारी परमप्रिय प्रजापालक गवर्नमेन्टकी पूर्ण अनुकंपासे धीरे धीरे आयुर्वेदीय ग्रंथोंका प्रचार होने लगा, जिधर तिधर औषधालय खुलने लगे, अनेक प्रकारके संस्कृत और टीकायुक्त वैद्यक ग्रंथ प्रकाशित होने लगे, प्रियवर ! अब कुछ हमारा और भी विशेष भाग्य चेता, क्योंकि प्रजामनरंजन भारतहितैषी श्रीमान् सर एंटोनी मेकडालेन साहेबने हमपर प्रसन्न होकर देश देशान्तरोंमें हिंदी दफ्तर कर दिया, विद्याकी ऐसी चर्चा फैली कि, आयुर्वेदके बहुतसे ग्रंथ छपवा दिये। जब बहुत ग्रंथ छपने लगे तो मेरे परममित्र वैश्यवंशावतंस, सर्वगुणालंकृत, गोब्राह्मणहितकारी, सत्यव्रतधारी, पूर्णसुखराशि मुंबईनिवासी श्रेष्ठिवर्य क्षेमराज श्रीकृष्णदासजीने अत्यंत उत्साहके साथ संसारके उपकारके लिये हजारों रुपये खर्च करके अनेक आयुर्वेदीय ग्रंथ मंगाकर भाषानुवाद कराकर अपने "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम यंत्रालयमें छपवाकर प्रकाशित किये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरे ऊपरभी परम अनुग्रह करके उक्त श्रीमान्ने "आयुर्वेदीय" ग्रंथोंके लिखनेकी मुझको आज्ञा दी, उसी समय मैंने आज्ञाको शिरोधार्य करके "निघण्टुभूषण, औषधिकोष, रसरत्नाकर, भैषज्यभास्कर" आदि कई ग्रंथ लिखकर श्रीमान्को समर्पित किये, उन्होंने अपने "श्रीवेंकटेश्वर" यन्त्रालयमें छापकर जगत्में प्रसिद्ध किये। अब श्रीमान्ने "भावप्रकाश" की टीका लिखनेकी आज्ञा दी, सो यह भावप्रकाश वैद्यसंजीवनीटीका-समेत आज आपके सम्मुख है, अनेक इतिहास, कोष, निघंटु तथा विलसन साहेब आदि विद्वानोंके मतसे मालूम होता है कि भावमिश्रको अनुमान तीन सौ वर्षसे अधिक हुए, यह लटकनमिश्रके पुत्र मद्रदेशमें उत्पन्न हुए और काशीमें आयुर्वेदका अध्ययन करके यह अद्वितीय "भावप्रकाश" संग्रह लिखा, जो कि सम्पूर्ण भारतवर्षमें सूर्यके समान प्रकाशित है, इसमें उन्होंने चोपचीनी, फिरंगरोग आदि कई नवीन विषय लिखे हैं। आयुर्वेदीय अर्वाचीन ग्रंथोंमें यह सर्वोत्तम हुआ है।

इसमें प्रमादके वश अथवा मेरी अल्पज्ञताके कारण जो कुछ अशुद्धि रहगई होय उसको पाठकमहाशय सुधार लेवें और मेरे अपराधको क्षमा करें।

संवत् १९६३,
वैशाखकृष्ण अष्टमी.

आपका कृपाकांक्षी—
शालिग्राम वैश्य,
दीनदारपुरा—मुरादाबाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धन्यवादः

भवन्तु परःसहस्रान्ता धन्यवादास्तस्मै चराचरजगदुत्पत्तिस्थितिलयकारिणेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकाय परमेश्वराय । येनेदं जगन्निजेच्छया समुत्पाद्य नानाविधनिजानुशासनसंभारसंभूतश्रुतिशास्त्राणि तदुज्जीवनाय समनुशिष्टानि । येषु श्रुतिशास्त्रेषु तेनैव स्वात्मकल्पानन्तवस्तुजातविषयकं ज्ञानं परिप्लुततयोतप्रोतं प्रदर्शितमाचार्यत्वपुरःसरं ब्रह्मादिशिष्योपदेशपरंपरया ।

वेदेभ्य एव तेभ्यश्चतुर्भ्य उपवेदाश्चत्वारः प्रादुरभूवन् । तत्र—ऋग्वेदाद् आयुर्वेदः, यजुर्वेदाद्धनुर्वेदः, सामवेदाद्गान्धर्वः, अथर्ववेदादर्थशास्त्रमित्येत उपवेदाः । एते चोपवेदाः स्वस्वविषयैर्नानाभेदविभेदसंस्करणैरुपबृंह्यमाणा उन्नतैः परां काष्ठां प्रापद्यन्त भूयसा समतीतेन समयेन ।

तत्रैव चावेदनीयोऽयं विषयो महता समुत्साहेनावेद्यते । आयुर्वेदशास्त्रं हि शरीरसंरक्षणायोपायप्रतिपादकम् । अस्मिञ्छास्त्रेऽद्यावधि विविधैर्ब्रह्मेन्द्रादिभिरनेके स्वानुभूतविषयैरुपनिबद्धाः संहिताग्रन्थाः प्रख्याताः सन्ति । ताश्च संहिताः प्रायो बह्वाचार्यप्रणीतत्वेन परस्परविसंवादिन्य इति मनसि कुर्वद्भिरनेकैः पण्डितैर्महता प्रतिभाप्रभावेण ताः संकलय्याविसंवादिस्वरूपेण संगृह्य सुस्पष्टप्रतिपत्तये नवीनान्वैद्यकशास्त्रग्रन्थान्विरच्य बहूपकृतं भूतलम् ।

तत्रैवायं सांप्रतं प्रस्तूयमानस्तावत्प्रशंसासमयः । अस्मिन्वैद्यकशास्त्रे नानाविधसंहिताग्रन्थानां सारंसारं संगृह्य श्रीमल्लटकनमिश्रतनयश्रीद्भावमिश्रमहापण्डितैर्भावप्रकाशो नाम वैद्यकशास्त्रीयग्रन्थो विरचितोऽस्ति । अस्मिंश्च ग्रन्थे सकलौषधीगुणदोषवर्णनपुरःसरं समस्तरोगनिदानलक्षणचिकित्साप्रकारः समीचीनतया संवर्णितोऽस्ति । मदीयज्ञानमात्रेण सर्वेऽपि वैद्याः सर्वतो निराकुला रोगकुलं व्याकुलयन्तो निर्मलयशोभागिनः समुल्लासयन्ति सर्वतो भूमण्डलम् । अतः सन्तु महामहिमशालिभ्यः श्रीभावमिश्रपण्डितेभ्योऽनन्तकालसुरलोकसुखसम्पादकविमलकीर्तिकरग्रन्थविरचनपरिश्रमाभिनन्दनपुरःसरं परःशतं धन्यवादाः ।

अथ च सांप्रतं प्रबलकलिकालविकरालचरितमलीमसमतिवैभवतया प्रायशः संस्कृतभाषापठनपाठनादिव्यवहारो मन्थरं प्रवृत्तः । तेन च संस्कृतभाषोपनिबद्धानेकशास्त्रीयग्रन्थज्ञानपरिपाटी प्रायोऽपचारधाटीं समाटीकृत इवेति महानयमनर्थो भवितेति निपुणं मनसि कृत्य केवलपरोपकारार्थैकावतारैः श्रीमन्महापण्डितमण्डलीसन्मान्यसत्परिश्रमैः श्रीमदायुर्वेदोद्धारकैः श्रीमन्मुरादाबादनगरनिवासिभिः श्रीमन्माथुरवैश्यवंशावतंसैः श्रीलालाशालिग्रा-

---

१ अत्रार्थे विवदन्ते सूरयः केचन आयुर्वेदो हि—अथर्वणवेदस्योपवेद इति । यथात्रैव—"विधाताथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् । स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम् ॥" इति । परमेतत्कल्पान्तरीयमिति सूरयः समादधते । भवति प्रतिकल्पं [illegible]न्पर्यावर्तः । ततः संभवतीदमपीति समनुसंधेयं सुधीभिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ममहाशयैरस्मदभ्यर्थनां सत्कृत्य श्रीमद्भागवतमहापुराणादिनानाविधसंस्कृतग्रन्थभाषानुवादेन कृतार्थीकृतमिदं भारतभूमीतलम् । अतीव स्तुत्यः खल्वेषां संस्कृतग्रन्थानां शुद्धसरलसुबोधभाषानुवादेन सकलसाधारणभारतीयजनानुज्जिघृक्षयाऽविश्रान्तः परिश्रमः ।

अहो ! किमु वर्ण्यतामेषां धन्यतां । यैः केवलमाषष्टिवर्षं वयो व्यवहारेण गार्हस्थ्योन्नत्यै व्ययीकृत्य तदन्वकस्मात्संजातनिर्वेदैः केवलं परोपकृतये संस्कृतग्रन्थोद्धारार्थं प्रचुरं प्रयत्नमारचय्य केवलमचयावद्दशवर्षाभ्यन्तरेऽतीवोपकारकान् १ शुकसागर (श्रीमद्भागवतभाषानुवाद)–२ मार्कंडेयपुराणभाषाटीका–३ शालिग्रामनिघंटुभूषण–४ शालिग्रामौषधिशब्दसागर–५ राजवल्लभनिघंटुभाषाटीका–६ रावणकृतार्कप्रकाशभाषाटीका–७ राजनिघंटुभाषाटीका–८ धन्वन्तरिनिघंटुभाषाटीका–९ श्रीपदेवशतकभाषानुवाद–१० द्रव्यगुणशतकभाषानुवाद–११ भारतभैषज्यभास्करभाषाटीका–१२ वंगसेनभाषाटीका–१३ वैद्यकौस्तुभभाषाटीका–१४ कल्पलताभाषाटीका–१५ सुदामाचरित्र–१६ मयूरध्वजनाटक–१७ माधवानलकामकन्दलानाटक–१८ लावण्यवतीसुदर्शननाटक–१९ अभिमन्युवधनाटक–२० इश्कचमन–प्रभृति ग्रन्थान्निर्माय सकलसाधारणजनानां संस्कृतज्ञानसौलभ्यरूपो व्यवहारज्ञानरूपश्च महानेवोपकारोऽकारि । तादृशतीव्रतरप्रयत्नत एव तैरयं भावप्रकाशनामा ग्रन्थोऽपि सरलसुबोधभाषाटीकया विभूष्यास्माकं सविधे प्राहीयत । सोऽयं ग्रन्थोऽस्माभिः 'मुम्बय्यां' स्वकीये " श्रीवेंकटेश्वर " (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रसिद्धिमानीयत ।

आवेदनीयं चैतत् । एभिर्महाशयैर्यावानयं स्वल्पीयसि समये भूयांसं प्रयत्नमारभ्य संस्कृतभाषोपनिबद्धग्रन्थोद्धारेण समस्तभारतभूमण्डलोपरि महानेवोपकारः कृतोऽस्ति, अत एषां धन्यतां वक्तुं मादृशस्यैकरसनाश्रितः कथमपि शक्तिर्नास्ति । यैः केवलं व्यासचरितमेवानुचरितं चतुर्लक्षाधिकभाषाग्रन्थविरचनप्रयासेनातिस्वल्पीयसा समयेनेति संभावयेऽगाधचरिता इमे महामहिमशालिनः श्रीलालाशालिग्राममहाशयाः पूर्णप्रशंसाभाजनमिति ब्रवीम्येषामनन्तान्धन्यवादानिति ।

प्रार्थये च समस्तसज्जनान्प्राञ्जलित्वेन–श्रीमन्तः समस्तधराणिमण्डलमण्डनायमानभारतभूमण्डलनिवासिनः सज्जनाः ! एतेषां महाशयानां तीव्रतरप्रयत्नसञ्जायमानभाषानुवादविभूषितग्रन्थसंग्रहणेन सफलयन्त्वविश्रान्तपरिश्रमानिति शम् ।

सकलसज्जनसद्गुणप्रेमाभिलाषी–

खेमराज–श्रीकृष्णदास,

" श्रीवेंकटेश्वर " (स्टीम्) मुद्रणालयाध्यक्षो–मुम्बय्यां–स्थः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीः ।

अथ भावप्रकाशस्थविषयानुक्रमणिका ।

प्रथमखण्डविषयानुक्रमणिका.

विषय. पृष्ठ.

प्रथम प्रकरण १.

मंगलाचरण १
कविकी उक्ति ... ... ,,
आयुर्वेदके लक्षण ... ... ,,
आयुर्वेदपदकी निरुक्ति ... ,,
ब्रह्मदेवका प्रादुर्भाव ... २
दक्षप्रजापतिका प्रादु० ... ,,
अश्विनीकुमारका प्रा० ... ,,
इन्द्रका प्रा० ... ... ,,
आत्रेयका प्रा० ... ... ३
भारद्वाजका प्रा० ... ४
चरकऋषिका प्रा० ... ६
धन्वन्तरिका प्रा० ... ,,
सुश्रुतका प्रा० ... ... ,,

सृष्टिप्रकरण.

ग्रंथारम्भ और भावप्रकाश-ग्रंथका अनेक ग्रंथोंसे निर्माण कथन... ... ९
सृष्टिक्रम ... ... ,,
प्रकृतिके स्वरूप ... ... ,,
प्रकृतिपुरुषका साधर्म्य ... १०
प्रकृतिपुरुषका वैधर्म्य ... ,,
प्रकृतिके नाम ... ... ,,
प्रकृतिके गुण ... ... ,,
सत्वादियुक्त मनके गुणके ल० ,,
रजोगुणयुक्त मनके गुणके ल० ११
तमोगुणयुक्त मनके गुणके ल० ,,
महत्तत्वकी उत्पत्ति ... ,,
विविध अहंकारके कार्य ... १२
इन्द्रियोंके विषय ... ,,

विषय. पृष्ठ.

महाभूतोंके गुण ... १३
अष्टप्रकृति ... ... ,,
सम प्रकृति ... ... ,,
सोलह विकार ... ... ,,
उपसंहार १५

द्वितीय प्रकरण २.

रजस्वलाका स्वरूप ... १५
रजस्वलाके नियम ... १६
रजस्वला स्त्रीको नियम न पालनेमें दोष ... ,,
रजस्वलाके कृत्य ... ,,
भर्ताके कृत्य १७
तीन प्रकारकी नाडियोंका वर्णन ... ... ,,
युग्म और अयुग्म रात्रियोंका फल ... ... ,,
मैथुनके अयोग्य पुरुष ... १८
मैथुनयोग्य स्त्री... ... ,,
मैथुनमें अयोग्य स्त्री ... ,,
त्याज्य स्त्री ... ... ,,
गर्भावतरणका क्रम ... ,,
गर्भाशयका स्वरूप ... १९
वीर्य और आर्तवका संयोग जीवके लक्षण ... ,,
योनिका संकोच विकास ... २०
युगुल उत्पन्न होनेका कारण.. ,,
पुत्र तथा कन्या उत्पन्न होनेके कारण ... ,,
दोषादिका परिणाम ... २१
स्त्रीसेवनके नियम ... ,,
गर्भ रहनेके लक्षण ... ,,
गर्भ रहनेके पीछेके लक्षण ... ,,
पुत्रगर्भवतीके लक्षण ... ,,

विषय. पृष्ठ.

कन्यागर्भवतीके लक्षण ... २२
नपुंसकगर्भवतीके लक्षण ... ,,
आसेक्य नपुंसक ... ,,
सुगंधी नपुंसक ... ... ,,
कुंभिक नपुंसक... ... ,,
ईर्ष्यक नपुंसक ... ... ,,
षंड नपुंसक ... ... ,,
मनुष्यके लक्षणोंवाली कन्या.. ,,
गर्भकी अन्य प्रकृति ... २३
पुत्रका आहार आचार और चेष्टाके भेद... ... ,,
गर्भके लक्षण ... ... ,,
गर्भके अंग और उपांगोंका निरूपण ... ... ,,
देहके समवायि कारण ... २६
दोषोंका स्वरूप... ... ,,
दोषशब्दकी निरुक्ति ... ,,
वायुका स्वरूप २७
वायुके कर्म .... ,,
पित्तका स्वरूप २८
पित्तके कर्म २९
कफका स्वरूप और उसके नाम तथा कर्म ३१
धातुशब्दकी निरुक्ति ३३
धातुओंके कर्म .... ,,
रसशब्दकी निरुक्ति .... ,,
रसका स्वरूप स्थान तथा कर्म ,,
रुधिरका स्वरूप ३४
रुधिर जीवके आधार होनेमें प्रमाण .... ,,
रुधिरके स्थान ... . ,,
मांसका स्वरूप .... ,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
मांसपेशियोंकी संख्या और उनके कर्म	३५
मेदका स्वरूप तथा स्थान	३६
अस्थिका स्वरूप तथा संख्या	३७
मज्जाका स्वरूप तथा स्थान	३८
शुक्रकी उत्पत्ति	,,
कफका स्वरूप	४०
ग्रहणीके लक्षण	,,
आहारका पाचन	४१
आहारके रस	,,
कफकी उत्पत्ति	४३
पित्तकी उत्पत्ति	,,
कर्णमलकी उत्पत्ति	४४
स्वेदकी उत्पत्ति	,,
नखकी उत्पत्ति	,,
नेत्रमलकी उत्पत्ति	४५
शुक्रकी उत्पत्ति	,,
ओजकी उत्पत्ति	,,
ओजके गुण	४६
शुक्रका स्वरूप	४९
शुक्रका स्थान	,,
शुक्रके निकलनेका मार्ग	५०
शुक्रके निकलनेका कारण	,,
आर्त्तवका स्वरूप	,,
गर्भग्रहण योग्य आर्त्तवका ल०	,,
धातुओंके मल	५१
उपधातु	,,
आशय	५२
कलाका स्वरूप	,,
मर्म	,,
सन्धि	५८
शिरा	५९
स्नायु	६२
धमनियोंका वर्णन	६३
कंडरा	६४
रंध्र	६५
स्रोत	,,
जाल	,,

विषय.	पृष्ठ.
कूर्च	६५
रज्जु	६६
सीवन	,,
संघात	,,
सीमंत	,,
त्वचा	,,
लोम और लोमकूप	६७
दोहदका विशेष फल	६८
गर्भका प्रथम अंग	६९
गर्भका जीवन-उपाय	७१
गर्भवृद्धिका कारण	,,
दृष्टि और रोमकूपोंकी अवृद्धि	७२
नख केशोंकी सदा वृद्धि	,,
अचेतन अंग	,,
गर्भके वात मल मूत्र न होनेके कारण	,,
गर्भके न होनेका कारण	,,
गर्भवती कृत्य	,,
प्रसवमास	७३
सूतिकागृहकी आकृति	,,
शीघ्र प्रसव होनेवालीके लक्षण	,,
शीघ्र प्रसव न होनेवालीके उपचार	,,
दाइयोंका वर्णन	७४
दाइयोंका काम	,,

तृतीय प्रकरण ३.

विषय.	पृष्ठ.
बालकके जन्मांतरविधि	७४
प्रसूता स्त्रीके नियम	,,
प्रसूता स्त्रीके नियमोंके समयकी अवधि	,,
दुग्धका स्वरूप	७५
दुग्धका निकलना	,,
दुग्धकी प्रवृत्ति	,,
दुग्धके थोडे होनेका कारण	,,
दुग्धकी वृद्धिका कारण	,,
दुग्धके दुष्ट होनेका कारण	७६
बिगडे हुए दूधका लक्षण	,,
बिगडे हुए दूधको शुद्ध करनेकी विधि	,,
शुद्ध दूधके लक्षण	,,
धायके लक्षण	,,
निषिद्ध धायके लक्षण	७७
बालकके दूध पिलानेकी विधि	,,
अभिमंत्रण	,,
माताके दूध न होनेमें और धायके न मिलनेके उपाय	७८
बालकके अन्नप्राशनका समय	,,
बालककी परिचर्याविधि	,,
बालकको स्वाभाविक हितकारी वस्तु	,,
बालकको ग्रास आदि देनेका समय	,,
बाल्यावस्थाकी अवधि	७९
प्रकृतियोंके लक्षण	,,
वातप्रकृतिके लक्षण	८०
पित्तप्रकृतिके लक्षण	८१
कफप्रकृतिके लक्षण	८२

चतुर्थ प्रकरण ४.

विषय.	पृष्ठ.
देशोंका वर्णन	८३
अनूपदेशके लक्षण	,,
जांगल देशके लक्षण	८४
साधारण देशके लक्षण	,,
दिनपरिचर्या	८५
स्वस्थका लक्षण	,,
दिनचर्या	,,
दन्तधावनविधि	८६
नस्यविधि	८८
अंजन	,,
क्षौरकर्म	,,
कसरतके गुण	८९
अभ्यङ्गके गुण	,,
उबटनके गुण	९०
स्नानविधि	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
वस्त्रधारणगुण	.... ९१
प्रलेपगुण	.... ९२
पुष्पधारण	.... ,,
भोजनविधि	.... ९३
भूख प्यास रोकनेसे हानि	.... ,,
रसादिकोंके पाकका ज्ञान	.... ९४
भोजनका स्थान....	.... ,,
भोजनके पात्र	.... ९५
भोजनके प्रथम लक्षण	.... ,,
दृष्टिदोष दूर करनेके लिये ब्रह्मा आदिका स्मरण	.... ९६
भोजनादिकर्म	.... ,,
स्वादु अन्नके गुण	.... ९७
शुष्कादि अन्नोंके दोष	.... ९८
सत्तूभक्षणविधि	.... ,,
विषम भोजनका लक्षण	.... ,,
अकालमें भोजन करनेके दोष	९९
भोजनप्रमाण	.... ,,
तांबूलभक्षण	.... १०२
तांबूलके गुण	.... ,,
सुपारीके गुण	.... १०३
भोजनके पश्चात् भ्रमण करनेके गुण	.... १०४
पवनसेवनके गुण	.... १०५
दिनमें सोनेका निषेध	.... १०६
अजीर्णके कारण	.... १०७
अध्यशनका लक्षण	.... ,,
दिनमें मैथुनका निषेध	.... ,,
बैठनेका गुण	.... १०८
पगडी धारणके गुण	.... ,,
छत्रधारणके गुण	.... ,,
पालकीकी सवारीके गुण	.... ,,
धूपके गुण	.... १०९
सदाचरणके गुण	.... ,,
सन्ध्याके कर्म....	.... १११
रात्रिचर्या	.... ,,
निद्रा	.... ११२

विषय.	पृष्ठ.
नींदके गुण	.... ११३
उषःपानगुण	.... ,,
ऋतुचर्या	.... ११६
ऋतुओंके गुण और दोष	.... ११७
अकालदोषवृद्धि	.... ११८
दोषलक्षण	.... ,,
वर्षाऋतुके नियम	.... ,,
शरदृतुके नियम	.... ११९
हेमन्तऋतुके नियम	.... ,,
शिशिरऋतुके नियम	.... ,,
वसन्तऋतुके नियम	.... १२०
ग्रीष्मऋतुके नियम	.... ,,

पञ्चम प्रकरण ५.

मिश्रवर्ग	.... १२०
व्याधिलक्षण	.... ,,
व्याधेक भेद	.... १२१
याप्यका लक्षण	.... १२२
उपद्रवका लक्षण	.... ,,
अरिष्टका लक्षण	.... १२३
चिकित्साका लक्षण	.... ,,
चिकित्साविधिका उपदेश	.... ,,
रोगके विना जाने चिकित्सा करनेसे दोष	.... ,,
रोगको जानकरके भी औषधिके न जाननेमें दोष	.... १२४
रोग और औषधि दोनोंके जाननेमें गुण	.... ,,
चिकित्सापद्धति	.... ,,
चिकित्साफल	.... १२५
वैद्योपजीविका	.... १२६
चिकित्साके अंग	.... ,,
रोगीका लक्षण	.... ,,
चिकित्सा करने योग्य रोगीके लक्षण....	.... ,,
चिकित्साके अयोग्य रोगीके लक्षण	.... ,,

विषय.	पृष्ठ.
दूतके लक्षण	.... १२७
दूतके यात्रामें शकुन विचार लक्षण	.... ,,
वैद्यके लक्षण	.... ,,
निषिद्ध वैद्यके लक्षण	.... १२८
वैद्यका कर्म	.... ,,
आयुका विचार	.... १२९
दीर्घ आयुके लक्षण	.... १३०
अल्प आयुके लक्षण	.... ,,
द्रव्यका वर्णन	.... १३१
सेवकका लक्षण	.... ,,
औषधिका लक्षण	.... ,,
औषधि ग्रहण करनेकी परिभाषा	,,
द्रव्योंकी परीक्षा	.... १३५
स्वभावसे हितकारी वस्तु....	१३६
स्वभावसे अहितकारी वस्तु	१३७
संयोगसे अहित करनेवाली वस्तु	.... ,,
औषधिके ग्रहणका संकेत....	,,
एकके बदले दूसरी वस्तु देना	१३८
द्रव्यमें रहनेवाले पांच पदार्थोंके कर्म....	.... १४०
मधुरसके गुण....	.... ,,
मधुर रसके बहुत सेवन करनेके गुण	.... १४१
अम्लरसके गुण	.... ,,
लवणरसके गुण	.... ,,
बहुत सेवन किये हुए लवणरसके अवगुण	.... ,,
कटुरसके गुण....	.... ,,
बहुत सेवन किये हुए कटुरसके अवगुण	.... १४२
तिक्तरसके गुण	.... ,,
बहुत सेवन किये हुए तिक्तरसके अवगुण	.... ,,
कषाय रसके गुण	.... ,,
बहुत सेवन किये हुए कषायरसके अवगुण	.... १४३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
मधुरादि रसोंकी और विशेषता द्रव्य गुण	१४३
गुणोंके वर्णनमें दीपन आदि गुण लक्षण	१४४
वीर्यका वर्णन....	१४८
विपाकका वर्णन	,,
विपाकोंके गुण	,,
प्रभावका वर्णन	१४९

इति मिश्रवर्गः।

हरीतक्यादिवर्ग।

विषय.	पृष्ठ.
हरीतकीके नाम	१५०
सप्तहरीतकी भेद	,,
हरीतकीप्रयोग	१५१
हरडके गुण	१५२
बहेडेके नाम और गुण	१५४
आमलेके नाम और गुण....	,,
त्रिफलाके लक्षण और नाम	१५५
सोंठके नाम और गुण	१५६
अदरकके नाम और गुण....	,,
पीपलके नाम और गुण	१५७
मिरचके नाम और गुण....	१५८
त्रिकुटाके नाम और गुण....	१५९
चतुरूषणके लक्षण और गुण	,,
चव्यके नाम और गुण	,,
गजपीपलके नाम और गुण	१६०
चीतेके नाम और गुण	,,
पंचकोलके लक्षण और गुण	१६१
शडूषणके लक्षण और गुण	,,
अजवायनके नाम और गुण	,,
अजमोदके नाम और गुण	१६२
खुरासानी अजवायनके गुण	,,
सफेद जीरा और काला जीरा	१६३
कलौंजीके नाम और गुण....	,,
धनियाके नाम और गुण	१६४
सौंफके नाम और गुण	१६५
मेथी और वनमेथीके नाम और गुण....	१६६
चंद्रसूरके नाम और गुण	१६७
चारदानेके नाम और गुण	,,
हींगके नाम और गुण	,,
वचके नाम और गुण	१६८
खुरासानी वचके नाम और गुण	१६९
कुलिंजनके नाम और गुण	,,
चोपचीनीके नाम और गुण	,,
दोनों हाऊबेरके नाम और गुण	१७०
विडंगके नाम और गुण	१७१
तुम्बुरुके नाम और गुण	,,
वंशलोचनके नाम और गुण	१७२
समुद्रफेनके नाम और गुण	१७३
अष्टवर्गके लक्षण और गुण	,,
जीवकऋषभककी उत्पत्ति, नाम और गुण	१७४
मेदामहामेदाकी उत्पत्ति, लक्षण, नाम, गुण	१७४
काकोली क्षीरकाकोलीकी उत्पत्ति, लक्षण, नाम, गुण	,,
ऋद्धि वृद्धिकी उत्पत्ति, लक्षण, नाम और गुण	१७५
मुलैठीके नाम और गुण	१७६
कबीलेके नाम और गुण	,,
अमलतासके नाम और गुण	१७७
कुटकीके नाम और गुण....	१७८
चिरायतेके नाम और गुण..	,,
इन्द्रजौके नाम और गुण....	१७९
मैनफलके नाम और गुण....	१८०
रास्नाके नाम और गुण	,,
नाईके नाम और गुण	१८१
माईके नाम और गुण	,,
तेजवतीके नाम और गुण...	१८२
मालकांगनीके नाम और गुण	,,
कुठके नाम और गुण	१८३
पुष्करमूलके नाम और गुण..	,,
चोकके नाम और गुण	,,
काकडाशिंगीके नाम और गुण	१८४
कायफलके नाम और गुण	,,
भारंगीके नाम और गुण....	१८५
पाषाणभेदके नाम और गुण	,,
धायके नाम और गुण	१८६
मंजीठके नाम और गुण....	,,
कसूमके नाम और गुण	१८७
लाहीके नाम और गुण	,,
हल्दीके नाम और गुण	१८८
कपूरहल्दीके नाम और गुण.	,,
वनहल्दीके नाम और गुण.	१८९
दारुहल्दीके नाम और गुण	,,
रसौतके नाम और गुण	,,
बाकुचीके नाम और गुण....	१९०
पवाडके नाम और गुण	१९१
अतीसके नाम और गुण....	,,
लोध और पठानी लोधके नाम और गुण	१९२
लशुनके नाम और गुण	,,
पियाजके नाम और गुण....	१९३
भिलावेके नाम और गुण....	१९४
भांगके नाम और गुण	१९५
पोस्तके नाम और गुण	,,
अफीमके नाम और गुण....	१९६
खसखसके नाम और गुण	,,
सेंधेनोनके नाम और गुण	१९७
सांभरनोनके नाम और गुण	,,
पांगा नोनके नाम और गुण	,,
बिडनोनके नाम और गुण	१९८
कालेनोनके नाम और गुण	,,
कचनोनके नाम और गुण	१९९
चनेके खारके नाम और गुण	,,
जवाखार सज्जीके नाम और गुण	,,
सुहागेके नाम और गुण	२००
क्षारद्वयके नाम और गुण....	,,
क्षाराष्टकके नाम और गुण	२०१
चूकके नाम और गुण	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
कपूरादिवर्ग ।	
कर्पूरके नाम और गुण	२०१
चीनिया कर्पूरके नाम और गुण	२०२
कस्तूरीके नाम और गुण....	,,
लताकस्तूरीके नाम और गुण	२०३
जवादि कस्तूरीके नाम और गुण	,,
श्वेतचंदनके नाम और गुण	,,
पीतचंदनके नाम और गुण	२०४
लालचन्दनके नाम और गुण	,,
पतंगके नाम और गुण	२०५
अगर काली अगरके नाम और गुण	,,
देवदारुके नाम और गुण....	२०६
धूपसरलके नाम और गुण	,,
तगरके नाम और गुण	२०७
बद्धमाखके नाम और गुण	,,
गूगलके नाम और गुण	२०८
गूगलके भेद और लक्षण तथा गुण	,,
गंधाबिरोजाके नाम और गुण	२०९
रालके नाम और गुण	२१०
कुंदुरुके नाम और गुण	,,
शिलारसके नाम और गुण	२११
जायफलके नाम और गुण	,,
जावित्रीके नाम और गुण	२१२
लौंगके नाम और गुण	,,
बड़ी इलायचीके नाम और गुण	२१३
छोटी इलायचीके नाम और गुण	२१३
तजपत्रके नाम और गुण	२१४
दालचीनीके नाम और गुण	,,
तेजपातके नाम तथा गुण....	२१५
नागकेसरके नाम और गुण.	,,
त्रिजात और चतुर्जातके लक्षण तथा गुण	२१६
केशरके नाम और गुण	,,
गोरोचनके नाम और गुण	२१७
नखनखीके नाम और गुण	,,
सुगंधवालाके नाम और गुण	२१८
वीरनके नाम और गुण	,,
खसके नाम और गुण	२१९
जटामांसीके नाम और गुण	,,
भूरछरीलाके नाम और गुण	२२०
नागरमोथेके नाम और गुण	,,
कचूरके नाम और गुण	२२१
मुराके नाम और गुण	,,
कपूरकचरीके नाम और गुण	२२२
प्रियंगू गंधप्रियंगूके नाम और गुण	,,
रेणुकाके नाम और गुण	२२३
गठिवनके नाम और गुण....	,,
थुनेरके नाम और गुण	२२४
भटेउरके नाम और गुण....	,,
तालीसपत्रके नाम और गुण	,,
शीतलचीनीके नाम और गुण.	२२५
गंधकोकिलाके नाम और गुण	,,
लामज्जकके नाम और गुण.	२२६
एलुआके नाम और गुण....	,,
केवटी मोथेके नाम और गुण	,,
असवरगके नाम और गुण	२२७
पर्पटीके नाम और गुण	,,
नलीके नाम और गुण	२२८
पुण्डरियाके नाम और गुण	,,
गुडूच्यादिवर्ग ।	
गिलोयके नाम और गुण....	२२९
पानके नाम और गुण	२३०
बेलके नाम और गुण	,,
कुंभेरके नाम और गुण	२३१
पाढलके नाम और गुण....	२३३
अरनीके नाम और गुण....	,,
सोनापाठाके नाम और गुण	२३३
पंचमूलके लक्षण और गुण..	,,
सरिवनके नाम और गुण....	२३४
पिठवनके नाम और गुण....	२३४
बड़ी कटेरीके नाम और गुण.	,,
कटेरीके नाम और गुण	,,
गोखरूके नाम और गुण....	२३६
लघुपंचमूलके नाम और गुण.	२३७
दशमूलके नाम और गुण....	,,
जीवन्तीके नाम और गुण...	,,
मुगवनके नाम और गुण....	,,
मषवनके नाम और गुण	२३८
जीवनीयगणके लक्षण और गुण.	,,
अरंडके नाम और गुण	२३९
आकके नाम और गुण	२४०
थूहरके नाम और गुण	२४१
शातलाके नाम और गुण....	२४२
कलिहारीके नाम और गुण	,,
कलिहारीके अवगुण	,,
सफेद लाल कनेरके नाम और गुण....	२४३
धतूरेके नाम और गुण	,,
अडूसाके नाम और गुण....	२४४
पित्तपापड़ाके नाम और गुण	,,
नीमके नाम और गुण	२४५
बकायनके नाम और गुण....	२४६
फरहदके नाम और गुण	,,
कचनारके नाम और गुण....	२४७
सेंजिनेके नाम और गुण....	,,
कोयलके नाम और गुण	२४८
सम्हालूके नाम और गुण....	२४९
कूड़ेके नाम और गुण	२५०
करंजके नाम और गुण	२५१
अरारिके नाम और गुण	,,
चौंटलीके नाम और गुण....	२५२
कौंचके नाम और गुण	२५३
मांसरोहिणीके नाम और गुण	,,
चिल्हकके नाम और गुण....	२५४
टंकारीके नाम और गुण	,,
बेतके नाम और गुण	,,
जलबेतके नाम और गुण....	२५५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
हिज्जलके नाम और गुण	२५५
द्रेराके नाम और गुण	,,
खिरैंटीके नाम और गुण....	२५६
लक्ष्मणाके नाम और गुण....	२५७
स्वर्णवल्लीके नाम और गुण...	२५८
कपासके नाम और गुण	,,
बाँसके नाम और गुण	२५९
नलके नाम और गुण	,,
रामसरके नाम और गुण	२६०
काँसके नाम और गुण	,,
पटेराके नाम और गुण	२६१
मोथीतृणके नाम और गुण.	,,
कुशाके नाम और गुण	,,
रोहिससौधियाके नाम और गुण	२६२
शरबाणके नाम और गुण....	,,
हरी दूबके नाम और गुण....	,,
सफेद दूबके नाम और गुण.	२६३
[illegible] दूबके नाम और गुण.	,,
विदारीकंदके नाम और गुण	२६४
मुसलीकंदके नाम और गुण	२६५
शतावरीके नाम और गुण....	,,
अश्वगंधाके नाम और गुण.	२६६
पाढके नाम और गुण	२६७
सफेद निसोतके नाम और गुण	,,
काले निसोतके नाम और गुण	२६८
दन्तीके नाम और गुण	,,
छोटी दंतीके फलके गुण....	२६९
जमालगोटेके नाम और गुण	,,
इन्द्रायणके नाम और गुण.	२७०
नीलके नाम और गुण	२७१
सरफोंकेके नाम और गुण.	,,
जवासेके नाम और गुण....	२७२
धमासेके नाम और गुण....	,,
मुण्डीके नाम और गुण	२७३
चिरचिटेके नाम और गुण.	२७४
लाल चिरचिटेके नाम और गुण	,,
तालमखानेके नाम और गुण	२७५
हड़संहारीके नाम और गुण.	२७५
घीकुवारके नाम और गुण.	२७६
पुनर्नवाके नाम और गुण.	२७७
गन्धप्रसारणीके नाम और गुण	,,
करियाबाँसेके नाम और गुण	२७८
भांगरेके नाम और गुण	२७९
शनके नाम और गुण	,,
त्रायमाणके नाम और गुण.	२८०
चूर्णहारके नाम और गुण.	,,
सकोयके नाम और गुण....	२८१
कौआठोडीके नाम और गुण	,,
मसीके नाम और गुण	२८२
नागपुष्पोंके नाम और गुण.	,,
मढ़ाशिंगीके नाम और गुण.	,,
हंसपदीके नाम और गुण	२८३
सोमलताके नाम और गुण.	,,
अमरवेलके नाम और गुण.	२८४
पातालगरुडीके नाम और गुण	,,
बन्दाके नाम और गुण	२८५
वटपत्रीके नाम और गुण....	,,
हिंगुपत्रीके नाम और गुण...	२८६
वंशपत्रीके नाम और गुण...	,,
मछेछीके नाम और गुण....	,,
सरहटीके नाम और गुण....	२८७
शंखपुष्पीके नाम और गुण..	,,
अर्कपुष्पीके नाम और गुण	,,
लज्जावन्तीके नाम और गुण	२८८
दुद्धीके नाम और गुण	,,
भूआमलेके नाम और गुण	२८९
ब्राह्मीके नाम और गुण	२९०
गूमाके नाम और गुण	,,
हुलहुलके नाम और गुण	२९१
बाँझखखसाके नाम और गुण	२९२
भुईखखसाके नाम और गुण	,,
सोनैयाके नाम और गुण	,,
जलपीपलके नाम और गुण	२९३
गोभीके नाम और गुण	,,
नागदौनके नाम और गुण	२९४
बरवेलके नाम और गुण	२९५
नकछिकनीके नाम और गुण	,,
कुकुरवंदाके नाम और गुण	,,
सुदर्शनके नाम और गुण....	२९६
मूसाकानीके नाम और गुण	,,
मोरशिखाके नाम और गुण	२९७

पुष्पवर्ग ।

विषय.	पृष्ठ.
कमलके नाम और गुण	२९७
कमलिनीके लक्षण नाम और गुण	२९८
कमलकेसरके गुण	२९९
मसीडेके नाम और गुण	,,
स्थलकमलके गुण	,,
कुमुदके नाम और गुण	,,
कुमुदिनीके नाम और गुण	,,
[illegible] नाम और गुण	३००
गुलाबके नाम और गुण	,,
नेवारीके नाम और गुण	३०१
बेलनार्पिकीके नाम और गुण	,,
चमेलीके नाम और गुण	३०२
जुहीके नाम और गुण	,,
चंपाके नाम और गुण	३०३
मौलसिरीके नाम और गुण	,,
बड़ी मौलसिरीके नाम और गुण	३०४
कदंबके नाम और गुण	,,
कुजेके नाम और गुण	३०५
मोतियाके नाम और गुण....	,,
माधवीके नाम और गुण	,,
केवडेके नाम और गुण	३०६
किंकिरातके नाम और गुण	३०७
कनेरके नाम और गुण	,,
अशोकके नाम और गुण....	,,
बाणपुष्पके नाम और गुण	३०८
कटसरैयाके नाम और गुण	,,
कुन्दके नाम और गुण	,,
मुचकुन्दके नाम और गुण	३०[illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
तिलके फूलोंके नाम और गुण	३०९
गोजुनियांके नाम और गुण	,,
गुडहरके नाम और गुण	३१०
सेन्दुरियाके नाम और गुण	,,
हथियाके नाम और गुण	३११
तुलसीके नाम और गुण	,,
मुरबेके नाम और गुण	३१२
दवनाके नाम और गुण	,,
वनतुलसीके नाम और गुण	३१३
वटादिवर्ग ।	
वडके नाम और गुण	३१३
पीपलके नाम और गुण	३१४
पारिसपीपलके नाम और गुण	,,
वेलियापीपलके नाम और गुण	३१५
गूलरके नाम और गुण	,,
कठूमरके नाम और गुण	३१६
पाखके नाम और गुण	,,
लिसके नाम और गुण	३१७
क्षीरवृक्ष और पंचवल्कके लक्षण और गुण	,,
भालके नाम और गुण	,,
साल्हईके नाम और गुण	३१८
सीसमके नाम और गुण	,,
कोहके नाम और गुण	३१९
विजयसारके नाम और गुण	,,
खैरके नाम और गुण	३२०
सफेद खैरके नाम और गुण	,,
दुर्गंधके नाम और गुण	३२१
गोहेके नाम और गुण	,,
वबूरके नाम और गुण	,,
रीठाके नाम और गुण	३२२
जिवापोतेके नाम और गुण	,,
हिंगोटके नाम और गुण	३२३
जिंगनिके नाम और गुण	,,
तमालके नाम और गुण	३२४
धुनके नाम और गुण	,,
जपत्रके नाम और गुण	,,

विषय.	पृष्ठ.
ढाकके नाम और गुण	३२५
सेमरके नाम और गुण	,,
मोचरसके नाम और गुण	३२६
काले सेमरके नाम और गुण	,,
धायके नाम और गुण	३२७
धामिनके नाम और गुण	,,
करीरके नाम और गुण	,,
सिहौराके नाम और गुण	३२८
वरनाके नाम और गुण	,,
कटभीके नाम और गुण	,,
मोखाके नाम और	३२९
ढाढोनके नाम और गुण	,,
कोंकरके नाम और गुण	,,
सतौनाके नाम और गुण	३३०
तिनिशके नाम और गुण	,,
सागौनके नाम और गुण	३३१
आम्रादिफलवर्ग ।	
आमके नाम और गुण	३३१
अमचूरके गुण	३३२
पके आमके गुण	,,
आम बहुत खानेके गुण	३३३
आम्रवृक्षके लक्षण और गुण	,,
आमकी गुठलीके गुण	,,
नवपल्लवके गुण	,,
अम्बाडाके नाम और गुण	३३४
कलमी आमके गुण	,,
कोवामके नाम और गुण	,,
कटहलके नाम और गुण	३३५
बडहलके नाम और गुण	,,
केलेके नाम और गुण	३३६
फूटके नाम और गुण	३३७
नारियलके नाम और गुण	,,
तरबूजके नाम और गुण	३३८
खरबूजके नाम और गुण	३३९
खीरेके नाम और गुण	,,
सुपारीके नाम और गुण	३४०
ताडके नाम और गुण	,,
खेलके नाम और गुण	३४१

विषय.	पृष्ठ.
कैथके नाम और गुण	३४२
नारंगीके नाम और गुण	,,
तेंदुके नाम और गुण	३४३
कुचलेके नाम और गुण	,,
राजजामुनके नाम और गुण	३४४
नदीजामुनके नाम और गुण	,,
बेरके नाम और गुण	,,
पानी आमलेके नाम और गुण	३४५
हरफारेवडीके नाम और गुण	,,
करौंदाके नाम और गुण	३४६
चिरौंजीके नाम और गुण	,,
खिरनीके नाम और गुण	३४७
कटईके नाम और गुण	,,
कमलगट्टेके नाम और	३४८
मखानेके नाम और गुण	,,
सिंघाडेके नाम और गुण	,,
बेरीके नाम और गुण	,,
महूआके नाम और गुण	३४९
फालसेके नाम और गुण	,,
सहतूतके नाम और गुण	३५०
अनारके नाम और गुण	,,
बिजौरेके नाम और गुण	३५१
निर्मलीके नाम और गुण	,,
दाखके नाम और गुण	३५२
खजूरके नाम और गुण	३५३
बादामके नाम और गुण	३५४
सेवके नाम और गुण	,,
अमृतफलके लक्षण और गुण	,,
पीलुके नाम और गुण	३५५
अखरोटके नाम और गुण	,,
बिजौरानींबूके नाम और गुण	३५६
चकोतराके नाम और गुण	,,
जम्भीरीनींबूके नाम और गुण	,,
कागजी नींबूके नाम और गुण	३५७
मीठे नींबूके नाम और गुण	३५८
कमरखके नाम और गुण	,,
इमलीके नाम और गुण	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
अम्लवेतके नाम और गुण.	३५९
विषांबिलके नाम और गुण.	,,
परिभाषा	३६०
धात्वादिवर्ग।	
धातुओंके लक्षण और गुण.	३६०
सोनेकी उत्पत्ति, नाम, लक्षण और गुण	३६१
रूपेकी उत्पत्ति, नाम, लक्षण, गुण	३६२
तांबेकी उत्पत्ति नाम और गुण	३६३
राँगेके नाम, लक्षण, गुण.	,,
जस्तके नाम और गुण	३६४
खपरीकी उत्पत्ति नाम, लक्षण, गुण	,,
लोहेकी उत्पत्ति, नाम, लक्षण, गुण	३६५
सारलोहेके लक्षण गुण	३६६
कान्त लोहेके लक्षण गुण.	,,
उपधातुओंके लक्षण गुण....	,,
सोनामक्खीके नाम और गुण	३६७
रूपामक्खीके नाम और गुण	,,
तूतियाके नाम और गुण.	३६८
कांसीके नाम और गुण	,,
पीतलके नाम और गुण	३६९
सिन्दुरके नाम और गुण.	,,
शिलाजीतके नाम और गुण.	३७०
पारेकी उत्पत्ति, नाम, लक्षण, गुण	,,
उपरसके लक्षण	३७२
हिंगुलके नाम, लक्षण, गुण.	,,
गन्धककी उत्पत्ति, नाम, लक्षण, गुण	३७३
अभ्रककी उत्पत्ति, नाम, लक्षण, गुण	३७४
हरतालके नाम, लक्षण, गुण.	३७५
मैनाशिलके नाम और गुण.	३७६
सुरमेके नाम और गुण	,,
सोहागेके नाम और गुण....	३७७
फटकरीके नाम और गुण....	३७७
रेवटीके गुण	,,
चुम्बकके नाम और गुण....	,,
गेरुके नाम और गुण	,,
खरियाके नाम और गुण	३७८
बालूके नाम और गुण	,,
खपरियाके नाम और गुण	,,
कसीसके नाम और गुण....	३७९
गोपीचन्दनके नाम और गुण	,,
काली मट्टीके नाम और गुण	,,
कीचडके नाम और गुण....	,,
बोलके नाम और गुण	३८०
मुरदासिंगकी उत्पत्ति, नाम, लक्षण और गुण	,,
रत्नविरुक्ति	३८१
रत्नके नाम, स्वरूपनिरूपण	,,
हीरेके नाम, लक्षण और गुण	,,
पन्नाके नाम और गुण	३८२
चुनीके नाम और गुण	,,
पुखराजके नाम और गुण....	३८३
नीलमके और गोमेदके नाम	,,
लसुनियांके नाम	,,
मोतीके नाम, उत्पत्ति, गुण, लक्षण	,,
मूँगेके नाम और गुण	३८४
रत्नोंके गुण	,,
उपरत्ननिरूपण	,,
विषके नाम, लक्षण और गुण	,,
वत्सनाभका स्वरूपनिरूपण	३८५
हरिद्राका स्वरूपनिरूपण	,,
सक्तुकका स्वरूप	,,
प्रदीपनका स्वरूप	,,
सौराष्ट्रिका स्वरूप	,,
शृंगिकका स्वरूप	,,
कालकूटका स्वरूप	,,
हालाहलका स्वरूप	,,
ब्रह्मपुत्रका स्वरूप	३८६
उपविषनिरूपण	,,
धान्यवर्ग।	
धानोंके भेद	३८७
शालिधानके लक्षण	,,
शालिचांवलोंके नाम	,,
शालिधानोंके गुण	,,
धानोंके लक्षण और गुण	,,
सट्ठीके लक्षण और गुण	३८९
शूकधान्य	,,
जौके नाम और गुण	,,
गेहूंके नाम, लक्षण और गुण	३९०
शिंबीधान्यके गुण	३९१
मूंगके नाम, लक्षण और गुण	,,
उडदके नाम और गुण	,,
लोबियाके नाम और गुण....	३९२
मटवाँसुके नाम और गुण....	,,
मोठके नाम और गुण	३९३
मसूरके नाम और गुण	,,
अरहरके नाम और गुण	,,
चनाके नाम और गुण	३९४
मटरके नाम और गुण	,,
कस्तीके नाम और गुण	३९५
कुलथीके नाम और गुण....	,,
तिलके नाम और गुण	,,
अलसीके नाम और गुण....	३९६
तोडिसके नाम और गुण....	,,
सरसोंके नामे और गुण....	,,
राईके नाम और गुण	३९७
क्षुद्रधानके नाम और गुण....	,,
कंगुनीके नाम और गुण	,,
चैनाके नाम और गुण	३९८
समाके नाम और गुण	,,
कोदोंके नाम और गुण	,,
सरबीजके नाम और गुण.	३९९
बाँसके बीजके गुण	,,
करेके नाम और गुण	,,
गरहेडुआके नाम और गुण	,,
तीनीके नाम और गुण	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय,	पृष्ठ.
पूवेराके नाम और गुण	३९९
परिभाषा	४००
शाकवर्ग ।	
शाकनिरूपण	४००
शाकके गुण	,,
वथुएके नाम और गुण	४०१
पाइक नाम और गुण	,,
मरसाके नाम और गुण	४०२
चौलाईके नाम और गुण.	,,
पालकके नाम और गुण....	४०३
पट्टआ शाकके नाम और गुण,,	
नाडीके नाम और गुण	,,
कलमीके नाम और गुण	,,
नोनियाँके नाम और गुण.	४०४
अम्लालोनाके नाम और गुण	,,
चूकेके नाम और गुण	,,
चेनुनाके नाम और गुण	४०५
हुरहुरके नाम और गुण	,,
सिरियारीके नाम और गुण	,,
मूलीके पत्तोंके गुण	४०६
गूमाके गुण	,,
अजवायनके गुण	,,
पमारके गुण	,,
थूहरके गुण	,,
पित्तपापडेके गुण	,,
गोभीके पत्तोंके गुण	,,
पटोलपातके गुण	,,
गिलोयके पत्तोंके गुण	,,
कसौंदीके नाम और गुण....	,,
चनेके शाकके गुण	४०७
सरसोंके शाकके गुण	,,
पुष्पशाक	,,
केलेके फूलके गुण	,,
सहँजनके फूलके गुण	,,
सेमलके फूलके गुण	४०८
फलशाक	,,
बेंडेके नाम और गुण	,,

विषय,	पृष्ठ.
छोटे पेठेके नाम और गुण	४०८
तोंईके नाम और गुण	,,
कडवी तोंवीके नाम और गुण	४०९
ककडीके नाम और गुण....	,,
चिचेंडाके नाम और गुण	,,
करेला (ले) के गुण	४१०
बडी तोरईके नाम और गुण	,,
तोरईके नाम और गुण	,,
परवलके नाम और गुण	४११
कन्दूरीके नाम और गुण....	,,
सेमके नाम और गुण	४१२
सुअरा सेमके नाम और गुण	,,
सहँजनेकी फलीके गुण ...	,,
बैंगनके नाम और गुण ...	,,
ढेंढसके नाम और गुण ...	४१३
पिंडालुके गुण ...	,,
ककोडेके नाम और गुण ...	,,
करेरुआके नाम और गुण	,,
कटेरीके फलके गुण ...	४१४
सरसोंकी गाँडरके गुण ...	,,
जिमीकंदके नाम और गुण	,,
आलूके लक्षण और गुण ...	,,
अरुईके नाम और गुण ...	४१५
मूलीके नाम और गुण ...	,,
गाजरके नाम और गुण ...	,,
कदलीकंदके गुण ...	४१६
मानकंदके नाम और गुण	,,
वाराहीकंदके नाम और गुण	,,
हस्तकर्णके नाम और गुण ...	,,
केमुआके गुण ...	४१७
भसींडेके गुण ...	,,
त्यागने योग्य कंदके गुण...	,,
संस्वेदज शाकके नाम ...	४१८
अथ भावप्रकाश पूर्वखंड द्वितीय भाग ।	
मांसवर्ग	४१९
मांसनाम	,,

विषय,	पृष्ठ.
मांसके भेद	४१९
जांगल मांसके लक्षण और गुण	,,
आनूपमांसके लक्षण और गुण	,,
जंगली पशुओंकी गणना	
विशिष्ट गुण ...	,,
बिलवासी प्राणियोंकी गणना गुण ...	४२०
पचे खानेवाले प्राणियोंकी गणना गुण ...	,,
बिष्किर पक्षियोंकी गणना गुण	४२१
चोंचसे खानेवाले पक्षियोंकी गणना गुण.... ...	,,
दूसरेसे छीनकर खानेवाले पक्षियोंकी गणना और गुण	,,
ग्राम्यपशुओंकी गणना गुण	,,
नदीतीरसंचारी पशुओंकी गणना गुण.... ...	४२२
पंखियोंसे आकाशमें उडनेवाले पक्षियोंकी गणना और गुण	,,
कोशस्थ जीवोंकी गणना और गुण	,,
पाँवोंके प्राणियोंकी गणना और गुण	,,
मत्स्योंके नाम और गुण	,,
जांघवालोंके नाम और गुण	४२३
एणहरिणके गुण ...	,,
कुरंगके गुण	,,
रोझके गुण	,,
चित्तालमृगके गुण	,,
वारहसिंगाके गुण	,,
सांवरके गुण	,,
मृण्डीके गुण	४२४
विलेशय	,,
सेहके गुण	,,
पक्षियोंके नाम और गुण....	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥

अथ भावप्रकाशः।

भाषाटीकासमेतः।

उत्तरखण्डम्।

अथ वाजीकरणाधिकारः।

यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्याद्वाजीव सुरतक्षमम्। तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजांवरैः॥ १॥

जो पदार्थ पुरुषको मैथुन करनेमें घोडेकी समान समर्थ करे उसको वैद्योंमें उत्तम मुनि वाजीकरण कहते हैं ॥ १ ॥

अथ क्लीबस्य लक्षणसंख्यानिदानानि। क्लीबः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते। तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ २ ॥ तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते। ध्वजः पतत्यतो नृणां क्लैब्यं समुपजायते। द्वेष्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ॥ ३ ॥ तैस्तैर्भावैः भयशोककोधादिभिः। अहृद्यैः हृदयाहितैः दुःखकरत्वात्क्षते पीडिते अस्वस्थीकृते इति यावत्। ध्वजः शिश्नः। तथा च-" ध्वजं चिह्ने पताकायां मेहने शौण्डिकेऽपि च " इति विश्वप्रकाशः। पतति न तून्नमति। संप्रयोगो मैथुनम्। कटुकाम्लोष्णलवणैरति मात्रोपसेवितैः। पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात्प्रजायते ॥ ४ ॥ कटुकादिना अतिमात्रेण प्रवृद्धेन पित्तेन शुक्रस्य दग्धत्वात्क्लैब्यं ति पित्तजमिति द्वितीयम्। अतिव्यवायो यो न च वाजीक्रियारतः। ध्वजपोति स शुक्रक्षयहेतुकः ॥ ५ ॥ शुक्रक्षयेण तृतीयम्। महतामेद्रोगेण चतुर्थी क्लीबता भवेत्। वीर्यवाहिशिराच्छेदान्मेहनानुन्नतिर्भवेत् ॥ ६ ॥ बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद्ब्रह्मचर्यतः। षष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तकम् ॥ ७ ॥ बलिनः पुष्टस्य। क्षुब्धमनसः कामात्संचलितमनसः ब्रह्मचर्यममैथुनं तस्मान्निरोधाच्छुक्रस्य क्लैब्यं भवति। जन्मप्रभृति यत्क्लैब्यं सहजं तद्धि सप्तमम् ॥ ८ ॥

जो पुरुष मैथुन करनेमें असमर्थ हो उसको क्लीब कहते हैं और उस क्लीबके धर्मको क्लैब्य कहते हैं। यह क्लीबता सात प्रकारकी है। अब सात प्रकारकी क्लीबताका निदान कहता हूं। मैथुन करनेवाले पुरुषका मन भय, शोक तथा क्रोधादि दुःखदायक विकारोंसे अस्वस्थ होकर अथवा जिसपर अरुचि होय ऐसी स्त्रीके साथ प्रसंग होनेसे शिश्न झुक जाता अर्थात् गिर जाता है इसको मानसिक क्लैब्य कहते हैं। तीखे, खट्टे, गरम और खारी पदार्थोंको अत्यंत सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए पित्तके कारण वीर्यका क्षय होनेसे जो क्लीबता होती है उसको पित्तज क्लैब्य कहते हैं। जो मनुष्य अत्यंत मैथुन करता होय और वाजीकरण पदार्थोंको सेवन नहीं करे उस पुरुषका लिंग ऊपरको नहीं उठता, इसको वीर्यक्षयजन्य क्लीबता कहते हैं। शिश्नमें किसी प्रकारके भयंकर रोगके होनेसे जो क्लीबता होती है उसको रोगजन्य क्लीबता कहते। हैं वीर्यवाहिनी नसोंके छेदनेसे लिंग उठनेको असमर्थ हो जाता है वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिराच्छेदजन्य क्लैब्य कहा जाता है शरीरके पुष्ट होनेपर जिसका मन कामदेवसे क्षोभित होकर वह पुरुष ब्रह्मचर्यको धारण करे और उसकी वीर्यके रुकनेसे जो क्लीवता होती है उसको शुक्रस्तम्भजन्य क्लीवता कहते हैं । जो जन्मसे ही होय वह सहज क्लीब कहा जाता है ॥ २--८ ॥

अथासाध्यक्लैब्यलक्षणम् ।

असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत् ॥ ९ ॥ यन्मर्मच्छेदाद्वीर्यवाहिशिराच्छेदात् ।

इन सात प्रकारके नपुंसकोंमें सहज क्लैब्य तथा शिराच्छेदजन्य क्लैब्य ये असाध्य हैं ॥ ९ ॥

अथ क्लैब्यचिकित्सायां सामान्यविधिः ।

क्लैब्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतुविपर्ययः । मुख्यं चिकित्सितं यस्मान्निदानपरिवर्जनम् ॥ १० ॥

जो क्लैब्य साध्य है उसको दूर करनेके लिये जिन कारणोंसे वह उत्पन्न हुआ हैं उन कारणोंको त्याग देवे, क्योंकि उन कारणोंका त्याग करनाही मुख्य चिकित्सा है ॥ १० ॥

अथ क्लैब्यचिकित्सा ।

नरो वाजीकरान्योगान्सम्यक्छुद्धो निरामयः । सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥ ११ ॥ न च वै षोडषादर्वाक्सप्तत्याः परतो न च । आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ १२ ॥ क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रोगाश्चातीव दुर्जयाः । अकालमरणं च स्याद्भजतः स्त्रियमन्यथा ॥ १३ ॥ विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम् । नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः । स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम् ॥ १४ ॥ योषित्प्रसंगात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम् । हिता वाजीकरा योगाः प्रीणयन्ति बलप्रदाः । एतेऽतिपुष्टनां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥ १

रोगरहित पुरुषको वमन विरेचनादिसे अच्छे प्रकार शुद्ध करके सोलह वर्षकी अवस्थासे सत्तर वर्षपर्यंत वाजिकरणको सेवन करावे, जिसको अपने जीवनकी इच्छा होय वह पुरुष सोलह वर्षकी अवस्था पहिले और सत्तर वर्षकी अवस्थाके पश्चात् स्त्री प्रसंग न करे । अयोग्य प्रकारसे स्त्रीको सेवन करनेवाले पुरुषके क्षय, वृद्धि और उपदंशादि असाध्य रोग उत्पन्न होते हैं और अकाल मृत्यु भी होती है । स्त्रीप्रसंग करनेकी विधि रात्रिचर्याके प्रकरणमें विस्तारसे कही है सो उसमें देख लेना । विलास करनेवाला, धनवान्, रूप और यौवनसम्पन्न और जिनके अनेक स्त्रियें हैं ऐसे पुरुषोंको वाजीकरणविधि हितकारक है । तथा जो पुरुष वृद्ध होनेपर भी रमण करनेकी इच्छा करते हैं, स्त्रियोंके अतिप्रेमकी इच्छावाले स्त्रियोंके प्रसंगसे क्षीण हुए, साध्य नपुंसक और अल्पवीर्यवाले पुरुषोंको वाजीकरणकी विधि हितकारक, बलदायक और पुष्टिकारक है । पुष्ट शरीरवाले मनुष्योंको भी देशकाल आदिपर ध्यान देकर वाजीकरणका सेवन करना चाहिये ॥ ११--१५ ॥

अथ वाजीकरणवस्तूनि ।

भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च । गीतं श्रोत्राभिरामाश्च वाचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ १६ ॥ कामिनी सान्द्रातिलका कामिनी नवयौवना । गीतं श्रोत्रमनोज्ञं च ताम्बूलं मदिरा स्रजः ॥ १७ ॥ गन्धा मनोज्ञा रूपाणि चित्राण्युपवनानि च । मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥ १८ ॥ माक्षीकधातुमधुपारदलोहचूर्णं पथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि लिह्यात् । एकाग्रविंशतिदिनानि रुगर्दितोऽपि साशीतिकोऽपि रमयेत्प्रमदां युवेव ॥ १९ ॥ सर्पं गुडूच्या गगनं सलोममेलासितामागधिकासमेतम् । एतत्समेतं मधुनावलीढं रामां सेवयतीव षण्डः ॥ २० ॥ गवां विरू[illegible]त्सानां सिद्धं पयसि पायसम् । [illegible] चूर्णं च तथा सितामधुघृतान्वितम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
बटेरके गुण	.... ४२४
लवाके गुण	.... ,,
घगेराके गुण	.... ४२५
तीतरके गुण	.... ,,
गगरैयाके गुण	.... ,,
मुरगाके गुण....	.... ,,
हरियलके गुण....	.... ,,
मोरके गुण	.... ४२६
कबूतरके गुण....	.... ,,
बकरेके गुण	.... ,,
मेंढीके गुण	.... ४२७
दुंबाके गुण	.... ,,
बैलके गुण	.... ,,
घोडेके गुण	.... ,,
भैंसके गुण	.... ,,
मेंढकके गुण	.... ४२८
कछुआके गुण	.... ,,
तत्काल मरे हुए जीवोंके मांसके गुण	.... ,,
स्वयं मरे जीवोंके मांसके गुण	,,
वृद्धजीवोंके मांसके गुण	,,
विषमृतके मांसके गुण	.... ,,
जातिभेदसे पशुपक्षियोंके मांसके गुण	.... ,,
रोहके गुण	.... ४२९
सिलन्धके गुण....	.... ,,
भाकुरके गुण....	.... ,,
मोईके गुण	.... ,,
पठिनाके गुण....	.... ,,
सींगेके गुण	.... ,,
दस्साके गुण	.... ४३०
सौरीके गुण	.... ,,
गगंराके गुण	.... ,,
कईके गुण	.... ,,
वर्मीके गुण	.... ,,
दंडारीके गुण....	.... ,,
अरंगीके गुण	.... ,,

विषय.	पृष्ठ.
पपदाके गुण	.... ४३०
गठईके गुण	.... ,,
मुंगुटीके गुण	.... ,,
टेगराके गुण	.... ,,
पुंठीके गुण	.... ,,
छोटी मछलीके गुण	.... ,,
बहुत छोटी मछलीके गुण....	४३१
मछलीके अंडेके गुण	.... ,,
सूखी मछलीके गुण	.... ,,
भूनी हुई मछलीके गुण	.... ,,
कुएँकी मछलीके गुण	.... ,,
ऋतुविशेषसे कुएँकी मछलीके गुण	.... ,,

कृतान्नवर्ग ।

विषय.	पृष्ठ.
परिभाषा	.... ४३२
भातके नाम, साधन और गुण	,,
दालके गुण	.... ,,
खिचरीके गुण	.... ,,
ताहरीके गुण....	.... ४३३
खीरके नाम और गुण	.... ,,
नारियलकी खीरके गुण	.... ,,
सेमईके गुण	.... ,,
मण्डाके गुण	.... ,,
पूरीके गुण	.... ४३४
लप्सीके गुण	.... ,,
रोटीके गुण	.... ,,
बाटीके गुण	.... ,,
जौकी रोटीके गुण	.... ४३५
उडदकी रोटीके गुण	.... ,,
चनेकी रोटीके गुण	.... ,,
पिट्ठीके गुण	.... ,,
पिट्ठीकी रोटीके गुण	.... ,,
पापडके गुण	.... ,,
कचौरीके गुण	.... ४३६
बडेके गुण	.... ,,
कांजीके बडेके गुण	.... ,,
इमलीके बडेके गुण	.... ४३७

विषय.	पृष्ठ.
मूंगके बडेके गुण	.... ४३७
उडदके बडेके गुण	.... ,,
पेठेके बडेके गुण	.... ,,
मूंगकी बरीके गुण	.... ,,
पतोडोंके गुण....	.... ,,
कढीके गुण	.... ४३८
अदरकके बडेके गुण	.... ,,
पकौरीके गुण....	.... ,,
शुद्ध मांसके गुण	.... ४३९
सहबांसुके गुण	.... ,,
अखनीके गुण	.... ,,
आसके गुण	.... ,,
तले हुए मांसके गुण	.... ४४०
कबाबके गुण....	.... ,,
मांसके सिंघाडेके गुण	.... ,,
मांसरसके गुण	.... ,,
शाकपाकविधि	.... ४४१
मठरीके गुण	.... ,,
गुजियाके गुण	.... ,,
कपूरनलिकाके गुण	.... ,,
फेनीके गुण	.... ,,
खस्तापूरीके गुण	.... ४४२
सेवके लड्डूके गुण	.... ,,
बूंदीके लड्डूके गुण	.... ,,
मोतीचूरके लड्डूके गुण	.... ,,
दूधपाकके गुण	.... ४४३
जलेबीके गुण....	.... ,,
रसाला	.... ,,
सरबत	.... ४४४
पन्ना	.... ,,
इमलीका पन्ना	.... ,,
नींबूका पन्ना	.... ४४५
धनियाका पानक कांजी	.... ,,
जालीके गुण	.... ,,
छाछके गुण	.... ,,
दूधके गुण	.... ४४६
जौके सत्तूके गुण	.... ,,
चनेके सत्तूके गुण	.... ,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
शालिके सत्तूके गुण	४४६
सामान्य परिभाषा	,,
नीवारके गुण	,,
कोद्रवके गुण	४४७
चीनेके गुण	,,
कोदोके गुण	,,
उद्दालके गुण	,,
कुरुविन्दके गुण	,,
तिलकुटके गुण	,,
खलके गुण	,,
चावलके गुण	४४८

वारिवर्ग ।

पानीके नाम और गुण	४४८
पानीके भेद	,,
धाराजलके लक्षण और गुण	४४९
धाराजलके भेद	,,
गंगाजल और समुद्रके जलके लक्षण और गुण	,,
अनार्तव जलके गुण	४५०
करकाजलके लक्षण और गुण	,,
तौषारजलके लक्षण और गुण	,,
हैम जलके लक्षण और गुण	,,
भौम जलके भेद	४५१
इन तीनों जलोंके लक्षण और गुण	,,
नादेय जलके लक्षण और गुण	,,
औद्भिद जलके लक्षण और गुण	४५२
निर्झर जलके लक्षण और गुण	,,
सारस जलके लक्षण और गुण	,,
तादाग जलके लक्षण और गुण	,,
वाप्यजलके लक्षण और गुण	,,
कौप जलके लक्षण और गुण	,,
चौज्य जलके लक्षण और गुण	४५३
पात्वल जलके लक्षण और गुण	,,

विषय.	पृष्ठ.
चिकिर जलके लक्षण और गुण	४५३
केदार जलके लक्षण और गुण	,,
वृष्टिजलके लक्षण और गुण	,,
प्रत्येक ऋतुमें जलके गुणोंके भेद	४५४
जलके ग्रहणका समय	,,
पीनेकी विधि	,,
शीतलजलके पान विषय	,,
जलपीनेकी आकश्यकता	४५५
गुणकारी जल	,,
निंदित जल	,,
दूषित जलको निर्दोष करनेकी विधि	४५६
पिये हुए जलकी पाकविधि	,,

दुग्धवर्ग ।

दूधके नाम और गुण	४५६
गायके दूधके गुण	४५७
सद्यः प्रसूता और विना बछडेकी गायके दूधके गुण	,,
बाखरी गायके दूधके गुण	,,
देशविशेषसे गायके दूधके गुण	,,
आहारके विशेषसे गायके दूधके गुण	,,
भैंसके दूधके गुण	,,
बकरीके दूधके गुण	,,
हिरनी आदिके दूधके गुण	४५८
भेडके दूधके गुण	,,
घोडीके दूधके गुण	,,
ऊँटनीके दूधके गुण	,,
हथनीके दूधके गुण	,,
स्त्रीके दूधके गुण	,,
धारोष्ण दूधके गुण	,,
खीर खोवा क्षीर शाल तक्रपिंड तथा मोरटके लक्षण और गुण	४५९

विषय.	पृष्ठ.
मलाईके गुण	४५९
खांडयुक्त दूधके गुण	,,
प्रभात आदि समयका दूध	,,
मथे हुए दूधके गुण	४६०
झागके गुण	,,
निंदित दूध	,,

दधिवर्ग ।

दहीके नाम और गुण	४६१
दहीके भेद	,,
मंदादि दहीके लक्षण और गुण	,,
गौके दहीके गुण	४६२
भैंसके दहीके गुण	,,
बकरीके दहीके गुण	,,
पके दूधके दहीके गुण	,,
निःसार दूधके दहीके गुण	,,
गालित दहीके गुण	,,
शर्करासहित दहीके गुण	,,
रात्रिमें दही खानेका निषेध	,,
ऋतुके विशेषसे विधिनिषेध	४६३

तक्रवर्ग ।

तक्रके नाम, लक्षण और गुण	४६३
भिन्न २ जातिके मट्ठेके गुण	४६४
दोष और व्याधिके विशेषसे तक्रके गुण	,,
कच्चे और पके तक्रके गुण	,,
तक्रसेवनके विषय	,,
तक्रका निषेध	,,
तक्रके विशेष गुण	,,

नवनीतवर्ग ।

नवनीतके नाम और गुण	४६५
भैंसके मक्खनके गुण	४६६
तत्काल निकाले हुए मक्खनके गुण	,,
दूधके मक्खनके गुण	,,
बासी मक्खनके गुण	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
घृतवर्ग।	
घीके नाम और गुण	४६६
गौके घीके गुण	४६७
भैंसके घीके गुण	,,
बकरीके घीके गुण	,,
ऊँटनीके घीके गुण	,,
भेड़के घीके गुण	,,
स्त्रीके घीके गुण	,,
घोड़ीके घीके गुण	,,
दूधसे निकले घीके गुण	,,
एक दिनके दहीसे निकले हुए घीके गुण	,,
पुराने घीके गुण	४६८
नये घीके विशेष गुण	,,
घी नहीं देनेके विषय	,,
मूत्रवर्ग।	
गोमूत्रके गुण	४६८
मनुष्यके मूत्रके गुण	४६९
मूत्रकी सामान्य परिभाषा	,,
तैलवर्ग।	
तेलका स्वरूप	४६९
तिलके तेलके गुण	,,
सरसों तथा राईके तेलके गुण	४७०
तुवरीके तेलके गुण	,,
अलसीके तेलके गुण	,,
कुसुमके तेलके गुण	४७१
खसखसके तेलके गुण	,,
अण्डीके तेलके गुण	,,
रालके तेलके गुण	,,
सम्पूर्ण तेलके गुण	,,
सन्धानवर्ग।	
कांजीके लक्षण और गुण	४७१
तुषोदकके लक्षण और गुण	४७२
सौवीरके लक्षण और गुण	,,
आरनालके लक्षण और गुण	,,
धान्याम्लके लक्षण और गुण	,,
शिण्डाकीके लक्षण और गुण	,,

विषय.	पृष्ठ.
शुक्तके लक्षण और गुण	४७३
आसुतके लक्षण और गुण	,,
मद्यके नाम और गुण	,,
अरिष्टके लक्षण और गुण	,,
सुराके लक्षण और गुण	४७४
वारुणीके लक्षण और गुण	,,
आसवके लक्षण और गुण	,,
नई पुरानी मदिराके गुण	,,
सात्विकादि मनुष्योंकी मद्यसे हुई चेष्टा	४७५
मद्य पीनेके प्रकार	,,
मद्यकी गंध दूर करनेका उपाय	,,
मधुवर्ग।	
मधुके नाम और गुण	४७५
मधुके भेद	४७६
माक्षिकके लक्षण और गुण	,,
भ्रामरके लक्षण और गुण	,,
क्षौद्रके लक्षण और गुण	,,
पौत्तिकके लक्षण और गुण	४७७
छात्रके लक्षण और गुण	,,
आर्घ्यके लक्षण और गुण	,,
औद्दालकके लक्षण और गुण	,,
दालकके लक्षण और गुण	,,
नये और पुराने मधुके गुण	४७८
शीतल और उष्ण मधुके गुणदोष	,,
मोमके नाम और गुण	,,
इक्षुवर्ग।	
ईखके नाम और गुण	४७८
ईखके भेद	४७९
पौण्ड्रक और भीरुक ईखके गुण	,,
कोशक ईखके गुण	,,
कान्तार ईखके गुण	,,
दीर्घपत्रक ईखके गुण	,,
शतपोरक ईखके गुण	,,
तापसेक्षुके गुण	,,
काण्डेक्षुके गुण	,,
सूचीपत्रादि ईखके गुण	,,

विषय.	पृष्ठ.
मनोगुता ईखके गुण	४७९
बालक युवा और वृद्ध ईखके गुण	,,
ईखके अंगभेदसे गुणोंमें भेद	४८०
चूसी हुई ईखके गुण	,,
कोल्हूसे पिले हुए रसके गुण	,,
बासी रसके गुण	,,
पके ईखके गुण	,,
ईखके रससे बने हुए पदार्थोंके गुण	,,
राबके लक्षण और गुण	,,
मत्स्यण्डीके लक्षण और गुण	,,
गुड़के लक्षण और गुण	४८१
पुराने गुड़के गुण	,,
नवीन गुड़के गुण	,,
अनुपानभेदसे गुड़के गुण	,,
खांडके गुण	,,
चीनीके लक्षण और गुण	,,
मिश्रीके नाम और गुण	४८२
मधुकी खांडके गुण	,,
परिभाषा	,,
अनेकार्थनामवर्ग।	
दो अर्थवाले शब्द	४८३
तीन अर्थवाले शब्द	४८५
अनेक अर्थवाले शब्द	४८८
मानपरिभाषा	४८९
मागधमान	,,
कालिंगमान	४९०
औषधियोंका विधान	४९१
स्वरसकी विधि	,,
चाबलोंका स्वरस बनानेकी विधि	४९२
हिम बनानेकी विधि	,,
मंथ बनानेकी विधि	,,
फाण्ट बनानेकी विधि	,,
कल्क बनानेकी विधि	,,
चूर्ण करनेकी विधि	,,
भावना देनेकी विधि	४९३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
पुटपाककी विधि	.... ४९३
उष्णोदककी विधि	.... ,,
क्षीरपाककी विधि	.... ४९४
क्वाथकी विधि	.... ,,
क्वाथ पीनेकी मात्रा	.... ,,
अवलेहकी विधि	.... ४९५
गोली बनानेकी विधि	.... ,,
घृत और तैलकी विधि	.... ४९६
सन्धानकी विधि	.... ४९८
आसव और अरिष्टके लक्षण	,,
सामान्य अरिष्टकी विधि	.... ,,
दो प्रकारकी सीधु	.... ,,
सुरा तथा सुराकी जाति	.... ,,
शुक्तके लक्षण....	.... ,,
नुक्रके लक्षण	.... ४९९
तुषोदक, सौवीर, आरनाल, कांजिक और शिण्डाकीक लक्षण	.... ,,
धातुनामशोधनमारणविधि ।	
मारण योग्य सुवर्णके लक्षण	४९९
सुवर्णकी शोधनविधि	.... ,,
अशुद्ध सुवर्णके दोष	.... ,,
सुवर्णकी मारणविधि	.... ५००
मारित सुवर्णके गुण	.... ५०१
अशुद्ध सुवर्णके दोष	.... ,,
पुटप्रकार ।	
यन्त्रोंकी विधि	.... ५०१
मारण योग्य चांदीके लक्षण	५०३
अयोग्य चांदीके लक्षण	.... ५०४
चांदी शोधनेकी विधि	.... ,,
अशुद्ध चांदीके दोष	.... ,,
चांदीकी मारणविधि	.... ,,
मारित चांदीके गुण	.... ,,
मारण योग्य तांबेके लक्षण	.... ,,
अयोग्य तांबेके लक्षण	.... ५०५
ताम्रशोधनविधि	.... ,,
तांबेकी मारणविधि	.... ,,
मारित तांबेके गुण	.... ५०६

विषय.	पृष्ठ.
वंगका स्वरूप	.... ५०६
अशुद्ध वंगके दोष	.... ,,
वंगकी शोधनविधि	.... ,,
वंगकी मारणविधि	.... ,,
मारित वंगके गुण	.... ५०७
जस्तका स्वरूप और गुण	.... ,,
शीशेका शोधन	.... ,,
शीशेकी मारणविधि	.... ,,
मारित शीशेके गुण	.... ५०८
अशुद्ध लोहेके दोष	.... ,,
लोहेकी शोधनविधि	.... ,,
लोहेकी मारणविधि	.... ,,
मारित लोहेके गुण	.... ५०९
सम्पूर्ण धातुओंके मारनेकी साधारण विधि	.... ,,
उपधातुमारणविधि	.... ,,
अशुद्ध सोनामाखीके दोष	,,
सोनामाखीशोधनविधि	.... ,,
सोनामाखीमारणविधि	.... ५१०
रूपामाखीशोधनविधि	.... ,,
रूपामाखीमारणविधि	.... ,,
सोनामाखी और रूपामाखीके विशेष गुण	.... ,,
तूतियाशोधनविधि	.... ,,
शुद्ध तूतियेके गुण	.... ,,
कांस्य और पीतलकी शोधन-विधि	.... ५११
कांस्य पीतलकी मारणविधि	,,
मारित कांस्य और पीतलके गुण	.... ,,
सिंदूरशोधनविधि	.... ,,
सिंदूरके गुण	.... ,,
शिलाजीत शोधनविधि	.... ,,
शुद्ध शिलाजीतके गुण	.... ५१३
रसशोधन पारेके संस्कार ।	
प्रथम स्वेदन विधि	.... ५१३
मूर्च्छनविधि	.... ५१४
ऊर्ध्वपातनविधि	.... ५१५

विषय.	पृष्ठ.
अधःपातनविधि	.... ५१५
मुख्य दोषहर शोधनविधि	,,
सर्व दोषहर संक्षिप्त शोधन-विधि	.... ,,
पारेकी मारण विधि	.... ५१६
रसकपूर बनानेकी विधि	.... ५१७
सिंदूररसकी विधि	.... ,,
मारे हुए और मूर्च्छित पारेके गुण	.... ५१८
उपरसोंकी शोधनविधि	.... ,,
हिंगुलकी शोधनविधि	.... ,,
शुद्ध हिंगुलके गुण	.... ,,
हिंगुलसे पारा निकालनेकी विधि	.... ,,
अशुद्ध गंधकके दोष	.... ५१९
गंधकको शुद्ध करनेकी विधि	,,
शुद्ध गंधकके गुण	.... ,,
अशुद्ध अभ्रकके दोष	.... ,,
अभ्रकको शुद्ध करनेकी विधि	,,
अभ्रककी मारणविधि	.... ,,
धान्य अभ्रककी विधि	.... ५२०
मारित अभ्रकके गुण	.... ,,
अशुद्ध हरतालके दोष	.... ,,
हरतालशोधनविधि	.... ,,
हरतालमारणविधि	.... ,,
शुद्ध और मरी हुई हरतालके गुण	.... ५२१
अशुद्ध मैनशिलके दोष	.... ,,
मैनशिलशोधनविधि	.... ,,
मैनशिलके गुण	.... ,,
खपरियाशोधनविधि	.... ,,
शुद्ध खपरियाके गुण	.... ,,
सब उपरसोंकी साधारण शोधन-विधि	.... ,,
विशेष शुद्धि	.... ५२२
रत्नोंकी मारणशोधनविधि ।	
अशुद्ध वज्रके दोष	.... ५२२
हीरेकी शोधनविधि	.... ,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
हीरेकी मारणविधि	५२२
मरे हुए हीरेके गुण	५२३
शेष रत्नोंकी शोधनमारण-विधि	,,
विष और उपविषोंकी शोधनविधि।	
वत्सनाभका स्वरूप	५२३
विषकी शोधनविधि ...	,,
विषके गुण	,,
उपविषोंका निरूपण	,,
पदार्थोंमें गुण रहनेकी अवधि	५२४
ग्रंथांतरोंसे गी तेलका विशेष वर्णन	,,
स्नेह पीनेकी विधि	,,
पंच कर्मोंके नाम	५२८
वमनविधि	,,
विरेचनविधि....	५३०
स्नेहवस्तिकीविधि	५३४
निरूह वस्तिकी विधि	५३८
उत्क्लेशन वस्तिकी विधि	५४०
दोषहर वस्तिकी विधि	,,
वमन वस्तिकी विधि	,,
शमन वस्तिकी विधि	,,
लेखन वस्तिकी विधि	,,
बृंहण वस्तिकी विधि	,,
पिच्छिल वस्तिकी विधि ...	,,
निरूह मात्राविधि	,,
मधुतैलक वस्तिकी विधि	५४१
यापन वस्तिकी विधि	,,
युक्तरथ वस्तिकी विधि	,,
शुद्ध वस्तिकी विधि	,,
उत्तर वस्तिकी विधि	,,
फलवर्तिकी विधि	५४३
नस्य ग्रहणकी विधि	,,
रेचन नस्यका विधान	,,
रेचन नस्यकी विधि	,,
नस्यमें औषधिका प्रमाण...	,,
रेचन नस्यके और दो भेद	५४४

विषय.	पृष्ठ.
इन भेदोंके लक्षण ...	५४४
रेचन और स्नेहन नस्यका उपयोग	,,
रेचन नस्यकी औषधि और गुण	,,
प्रथम नस्यकी औषधि	,,
बृंहण अथवा स्नेहन नस्यकी कल्पना	५४५
बृंहण अथवा स्नेहन नस्यकी विधि	,,
नस्यकी अन्य विधि	५४६
प्रतिमर्श नस्यके विषय	५४७
नस्यकी सामान्य विधि	,,
नस्य देनेके पीछे करने न करने योग्य कार्य	,,
नस्यके हीन योग तथा अति-योगमें चिकित्सा	५४८
धूमपानविधि	,,
धुआं पीनेकी नलीका माप	५४९
धुआं पीनेकी विधि	,,
धूमपानमें औषधिका कल्क	५५०
घरमें देनेकी धूनी	,,
धूमपानमें वर्जित कार्य	,,
गंडूष कवल और प्रति-सारणकी विधि।	
गंडूषकी विधि....	५५०
कुल्लेके भेद	,,
कुल्लोंमें औषधिकी मर्यादा	५५१
कुल्ले और कवलमें अवस्थाकी मर्यादा	,,
कवलकी विधि....	,,
प्रतिसारणकी विधि	,,
स्वेद विधि	५५१
तापसस्वेदकी विधि	५५३
उष्म स्वेदकी विधि	,,
उपनाह स्वेदकी विधि	,,
द्रवस्वेदकी विधि	५५४
मूर्धतैलकी विधि	५५५

विषय.	पृष्ठ.
कर्णकी विधि....	५५५
लेपकी विधि....	५५६
फंस्तकी विधि	५५७
नेत्र स्वच्छ करनेकी विधि	५६०
सेकविधि	,,
आश्योतन विधि	५६१
पिण्डी विधि	,,
विडालक विधि	५६२
तर्पण विधि	,,
यथार्थ तर्पण हुएके चिह्न....	५६३
पुटपाकविधि....	,,
अंजनविधि	५६४
लेखन करनेकी बत्ती	५६५
रोपण करनेवाली बत्ती	,,
स्नेहन करनेवाली बत्ती	५६६
लेखन करनेवाली क्रिया	,,
रोपण करनेवाली रसक्रिया.	,,
स्नेहन करनेवाली रसक्रिया.	,,
लेखन चूर्ण	,,
रोपण चूर्ण	,,
स्नेहन चूर्ण	५६७
प्रत्यंजनकी विधि	,,
नयनामृत चूर्ण	,,
दृष्टिको स्वच्छ करनेवाली सलाई	,,
भेषजभक्षणसमय	,,
प्रथम काल	,,
द्वितीय काल	५६८
तीसरा काल	,,
चौथा काल	,,
पंचम काल	,,
निरन्न कोठेमें औषधि सेवनके गुण	,,
अन्नके साथ औषधि सेवनके गुण	,,
औषधि पचने न पचनेके गुण	५६९
चरककी कही हुई औषधि सेवनकी विधि	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय,	पृष्ठ.
षष्ठ प्रकरण ६.	
चिकित्साके लिये रोगीकी शास्त्रोक्त परीक्षा	५६९
नेत्रपरीक्षा	५७०
जिह्वाकी परीक्षा	,,
मूत्रपरीक्षा	,,
नाडीपरीक्षा	,,
रोगोंको जाननेमें कारण	५७१
हेतुका लक्षण	,,
संप्राप्तिके लक्षण	५७२
संप्राप्तिके औपाधिक भेद....	,,
विकल्पका व्याख्यान	,,
प्राधान्यका व्याख्यान	,,
बलका व्याख्यान	,,
कालका व्याख्यान	५७३
पूर्वरूपके लक्षण	,,
लक्षणका लक्षण	,,
लक्षण व्याधिके ज्ञानका हेतु.	५७४
उपशयका लक्षण	,,
वायुका उपशय	,,
पित्तका उपशय	,,
कफका उपशय	,,
रोगोंके निदानका विवेचन.	५७५
वायु कुपित होनेके कारण.	,,
पित्त कुपित होनेके कारण.	५७६
विदाही लक्षण	,,
कफ कुपित होनेके कारण.	,,
एक रोग अन्य रोगोंके निमित्त होनेके कारण	,,
रोगके हेतुसे रोगकी विचित्रता	५७७
अधिक अथवा क्षीण हुए दोष धातु और मलोंकी सुश्रुतोक्त चिकित्सा	,,
स्वस्थके लक्षण	५७८
दोष धातु और मलोंकी वृद्धिका निदान	,,
अधिक बढे हुए दोष धातु और मलोंको हीन करनेकी रीति	५८०

विषय,	पृष्ठ.
दोषधातु और मलोंके क्षयका निदान	५८०
क्षीण हुए दोषादिके लक्षण	,,
ओज क्षयका	५८१
ओज क्षीणके लक्षण	,,
मलक्षीण होनेके लक्षण	,,
मूत्रादि क्षय होनेके लक्षण....	,,
क्षीण धातु आदिकोंको बढानेकी विधि	,,
पदार्थोंके क्षीण होनेसे होनेवाली इच्छा	५८२
सुश्रुतोक्त बलका लक्षण	५८३
बलके क्षयका निदान	,,
बलके क्षयका लक्षण	,,
बलकी वृद्धिका निदान	,,
बलाबलके लक्षण	,,
इति पूर्वखण्ड समाप्त ।	
मध्यखण्ड २.	
ज्वराधिकार	५८४
ज्वरकी उत्पत्ति	,,
ज्वरकी मूर्ति	,,
ज्वरकी संख्यारूप संप्राप्ति....	,,
दूर और समीपके कारणकथनपूर्वक ज्वरकी संप्राप्ति.	५८६
ज्वरके सामान्य और विशेष पूर्वरूप	,,
वंदज ज्वरके पूर्वरूप	५८७
सान्निपातिक ज्वरके पूर्वरूप	,,
ज्वरके सामान्य लक्षण	,,
पसीना न आनेका कारण....	,,
ज्वरकी सामान्य चिकित्सा	,,
ज्वरमें त्याज्यवस्तु	५८८
परिषेकादि सेवन करनेके अवगुण	,,
ज्वरमें लंघन	५८९
दोषोंके पचनेका समय	,,
उपवासरूप लंघनका फल....	५९१
भले प्रकारसे हुए लंघनके लक्षण	,,

विषय,	पृष्ठ.
हीन लंघनके लक्षण	५९२
अत्यंत लंघनके लक्षण	,,
बलकी रक्षा करके लंघन कराना	,,
लंघननिषेध	,,
आमके लक्षण....	५९३
आमवायुके लक्षण	,,
निराम वायुके लक्षण	,,
आमपित्तके लक्षण	,,
निराम पित्तके लक्षण	५९४
साम कफके लक्षण	,,
निराम कफके लक्षण	,,
साम व्याधिके लक्षण	,,
ज्वरमें लंघन होनेपरभी जल पीना चाहिये	,,
नवीन ज्वरमें शीतल जल वर्जित	५९५
जलको औटानेकी विधि	,,
और उसके गुण	,,
कथित जल पीनेकीविधि....	,,
उष्णोदकके लक्षण और गुण	,,
ऋतुके भेदसे जलका पाकभेद	,,
आरोग्यांबुके लक्षण और गुण	५९६
ऋतुभेदसे जल लेना	,,
घृतशीतजलविषय	५९७
औटाये हुए जलको शीतल करनेकी विधि	,,
और उसके गुण	,,
रात्रिमें उष्ण जल पीनेके लक्षण और गुण	,,
शीतल जलके विषय	,,
जलपाककी अवधि	५९८
विशेष रोगोंमें जलके संस्कार	,,
दिनमें निद्राका निषेध	६००
दिनमें सोने योग्य मनुष्य	,,
वातज्वर आदि ज्वरोंके पाककी अवधि	,,
ज्वरकी तरुणता आदि अवस्था	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
ज्वरमें औषधि देनेका समय	६०१
दोषोंके पाकके लक्षण	६०२
तरुणज्वरमें वमननिषेध	६०३
पाचक तथा शमन देनेका समय	६०४
सामान्य ज्वरमें पाचन कषाय	,,
सर्वज्वरोंमें सामान्य संशमन औषधि	६०५
दूधपाककी विधि	,,
गुडूच्यादि क्वाथ	,,
संशोधननिषेध	,,
संशोधन	६०६
सारिवादि कल्क	,,
संशोधन और शमन औषधिका निषेध	,,
सुदर्शन चूर्ण	६०७
निम्बादि चूर्ण	,,
शठ्यादि क्वाथ	६०८
हरीतक्यादि गुटी	,,
लाक्षादि तैल	,,
द्वितीय लाक्षादि तैल	६०९
महालाक्षादि तैल	,,
नवीन ज्वरमें रसप्रयोग	६१०
ज्वरधूमके तुरस	,,
महाज्वरांकुश रस	,,
ज्वरघ्नी वटिका	६११
द्वितीय ज्वरघ्नी वटिका	,,
नवज्वरहरी वटी	,,
सर्वज्वरहरी वटी	,,
सामान्यज्वरमें महाज्वरांकुश रस	६१२
श्वासकुठार	,,
ज्वरांकुश	,,
हुताशन रस	,,
ज्वरघ्नी वटिका	६१३
रविसुंदररस	,,
कज्जली	,,
रसपर्पटी	,,
ज्वररोगीको अन्न देनेका काल	६१४

विषय.	पृष्ठ.
विषम ज्वरमें अन्न देनेका काल	६१६
रोगीको भोजन करनेका स्थान	,,
ज्वरमें उपवेशन	,,
ज्वररोगीको भोजनके समय कवल करना	,,
ज्वररोगीको हितकारी दी पदार्थ देने चाहिये	६१७
ज्वररोगमें हितकारी अन्नादिक	,,
संडके लक्षण	६१८
पेयाकी विधि और गुण	,,
प्रसन्नाकी विधि और गुण	,,
यूषकी विधि और गुण	,,
वृंदटीकासे मुद्गयूषविधि	६१९
मुद्गयूषके गुण	,,
मूंग और आमलेके यूषके गुण	,,
मसूरके यूषके गुण	,,
यवागूकी विधि और गुण	,,
विलेपीकी विधि और गुण	,,
भातकी विधि और गुण	६२०
रसौदनकी विधि	,,
रसौदनके गुण	,,
मंड आदि पदार्थोंकी प्रक्रिया	,,
औषधियोंसे सिद्ध की हुई पेयाके गुण	६२१
किस २ ज्वरमें किस २ औषधिके द्वारा पेया बनाकर देना चाहिये	,,
पंचमुष्टिक यूष	६२२
वर्तिप्रयोग	,,
पेया और यवागूका अपवाद	,,
संतर्पणका स्वरूप	,,
खीलोंके सत्तूके गुण	,,
चरकसे तर्पणका प्रकार	,,
ज्वररोगीके नियम	६२३
ज्वरमुक्तिके पूर्वलक्षण	,,
ज्वरमुक्तिके लक्षण	६२४
ज्वरमुक्तिको पालनेके नियम	,,
वातज्वराधिकार	,,

विषय.	पृष्ठ.
वातज्वरका पूर्वरूप	६२४
वातज्वरके लक्षण	६२५
वातज्वरकी चिकित्सा	,,
दशमूलादि क्वाथ	६२६
बृहत्पंचमूली क्वाथ	,,
किरातादि क्वाथ	,,
कालिंग क्वाथ	,,
शुंठ्यादि क्वाथ	,,
बृहत्पञ्चमूलादि क्वाथ	,,
कणादि क्वाथ	६२७
कल्पतरु रस	,,
त्रिपुरभैरव रस	,,
स्वेदविधिगुण	,,
वालुकास्वेद	६२८
कवल	,,
निद्रानाशका निदान	,,
निद्रानाशकी चिकित्सा	,,
दार्वादिक लेप	६२९
कर्णनादकी चिकित्सा	,,
शुष्ककासचिकित्सा	,,
वातज्वरमें हितकारक पदार्थ	,,
पित्तज्वराधिकार	,,
पित्तज्वरका पूर्वरूप	६३०
पित्तज्वरका लक्षण	,,
पित्तज्वरकी चिकित्सा	,,
तिक्तादि क्वाथ	,,
पर्पटादि क्वाथ	,,
द्राक्षादि क्वाथ	६३१
पटोलादि क्वाथ	,,
गुडूच्यादि क्वाथ	,,
ह्रीबेरादि क्वाथ	,,
भूनिम्बादि क्वाथ	,,
महाद्राक्षादि क्वाथ	,,
धान्याकक्वाथ	,,
वासाहिम तथा अमृताहिम	,,
गुडूच्यादि क्वाथ	६३२
प्रलेप	,,
शीतजलधारा	,,
पथ्यादि अवलेह	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
आर्द्रवस्त्रधारण	६३२
कवल	... ,,
तर्पण ...	... ,,
पित्तज्वरमें उपचार	... ,,
कफज्वराधिकार	... ६३३
कफज्वरके पूर्वरूप	.... ,,
कफज्वरके लक्षण	... ,,
कफज्वरकी चिकित्सा	.... ६३४
पिप्पल्यादि क्वाथ	....
पिप्पल्यवलेह	.... ,,
चतुर्भद्रकावलेह	... ,,
अन्यप्रकार ...	.... ,,
अष्टांग अवलेह	.... ,,
निर्गुण्डी क्वाथ	... ६३५
यवान्यादि क्वाथ	.... ,,
वासादि क्वाथ	.... ,,
मरिच्यादि क्वाथ	.... ,,
कल्पतरुक्वाथ	.... ,,
वातपित्तज्वराधिकार	.... ,,
वातपित्तज्वरका पूर्वरूप	.... ,,
वातपित्तज्वरका लक्षण	.... ,,
वातपित्तज्वरकी चिकित्सा.	,,
किरातादि क्वाथ	.... ६३६
पंचभद्रक्वाथ	.... ,,
त्रिफलादि क्वाथ	.... ,,
मधूकादि हिम	.... ,,
अन्न	.... ,,
वातकफज्वराधिकार	.... ,,
वातकफज्वरका पूर्वरूप	.... ,,
वातकफज्वरका लक्षण	... ,,
वातकफज्वरकी चिकित्सा.	६३७
किरातादि क्वाथ	.... ६३८
पिप्पल्यादि क्वाथ	.... ,,
बृहत्पिप्पल्यादि क्वाथ	.... ,,
दशमूलीक्वाथ	.... ,,
पिप्पलीक्वाथ	.... ,,
सूर्यशेखर रस....	.... ,,
उद्वर्तन	.... ६३९
वालुकास्वेद	.... ,,
कवल	.... ,,

विषय.	पृष्ठ.
वातकफज्वरमें अन्न	.... ६३९
पित्तकफज्वराधिकार	.... ,,
पित्तकफज्वरका पूर्वरूप	.... ,,
पित्तकफज्वरका लक्षण	.... ,,
पित्तकफ ज्वरकी चिकित्सा.	६४०
गुडूच्यादि क्वाथ	.... ,,
अमृताष्टकक्वाथ	.... ,,
कंटकार्यादि क्वाथ	.... ,,
नागरादि क्वाथ	.... ,,
कुटकीकल्क	.... ,,
वासा रस	.... ,,
शृंगबेरादि क्वाथ	.... ६४१
अन्न	.... ,,
सन्निपातज्वराधिकार	.... ,,
सन्निपातका पूर्वरूप	.... ,,
सन्निपातज्वरके लक्षण	.... ,,
सामान्य सन्निपातके तेरह भेद	६४२
अनुक्रमसे उन तेरह सन्निपातोंके भेद	.... ,,
वातोल्वण विस्फारकके लक्षण	.... ,,
पित्तोल्वण आशुकारीके लक्षण	.... ६४३
कफोल्वण कंपन सन्निपातके लक्षण	.... ,,
वातपित्तोल्वण बभ्रुसन्निपातके लक्षण	.... ,,
जातकफोल्वण शीघ्रकारी सन्निपातके लक्षण	.... ,,
पित्तोकफोल्वण भल्ल सन्निपातके लक्षण	.... ,,
वातपित्तकफोल्वण कूटपालकके लक्षण	.... ६४४
अधिक वात मध्य पित्त हीन कफ संमोहक सन्निपातके लक्षण	.... ,,
मध्यवात अधिक पित्त हीन कफ पाकल सन्निपातके लक्षण	.... ६४५

विषय.	पृष्ठ.
हीन वात अधिक पित्त मध्य कफ याप्य सन्निपातके लक्षण	.... ६४५
अधिक वात हीन पित्त मध्य कफ ककच सन्निपातके लक्षण	.... ,,
मध्य वात हीन पित्त अधिक कफ कर्कटक सन्निपातके लक्षण	.... ,,
हीन वात मध्य पित्त अधिक कफ वैदारिक सन्निपातके लक्षण	.... ६४६
शीतांग सन्निपातके लक्षण	६४७
तांद्रिक सन्निपातके लक्षण	,,
प्रलापक सन्निपातके लक्षण	,,
रक्तष्ठीवा सान्निपातक लक्षण	,,
भुग्ननेत्र सन्निपातके लक्षण	,,
अभिन्यास सन्निपातके लक्षण	,,
जिह्वक सन्निपातके लक्षण....	,,
संधिक सन्निपातके लक्षण....	६४८
अंतक सन्निपातके लक्षण	,,
रुग्दाह सन्निपातके लक्षण....	,,
चित्तभ्रम सन्निपातके लक्षण	,,
कर्णिक सन्निपातके लक्षण	,,
कंठकुब्ज सन्निपातके लक्षण	,,
सन्निपात ज्वरमें साध्य और असाध्य लक्षण ...	,,
कुम्भीपाकके लक्षण ...	६४९
प्रोर्णुनाव सन्निपातके लक्षण	,,
प्रलापी सन्निपातके लक्षण....	,,
अंतर्दाह सन्निपातके लक्षण	,,
दण्डपात सन्निपातके लक्षण	,,
अन्तक सन्निपातके लक्षण....	,,
एणीदाह सन्निपातके लक्षण	,,
हारिद्रक सन्निपातके लक्षण	६५०
अजघोष सन्निपातके लक्षण	,,
भूतहास सन्निपातके लक्षण	,,
यंत्रापीड सन्निपातके लक्षण	,,
संन्यास सन्निपातके लक्षण	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
रंशोषी सन्निपातके लक्षण	६५०
सन्निपातज्वरकी भयंकरता	,,
असाध्य सन्निपातज्वरके लक्षण	,,
सन्निपातज्वरकी साध्या-साध्यता	,,
सामान्य सन्निपातज्वरकी चिकित्सा	६५१
सन्निपातज्वरमें लंघन अवधि	,,
मारण और शांत होनेमें कारण	६५२
धातु पकनेके लक्षण	,,
मलपाकके लक्षण	,,
मारण और शांत होनेकी परम अवधि	६५३
सन्निपातज्वरमें प्रथम कर्तव्य	,,
बालुकास्वेद	,,
सैंधवादिनस्य....	,,
मधुकसारादि नस्य	,,
निष्ठीवन	६५४
अष्टांगावलेह	,,
चतुरंगावलेह	६५५
अंजन	,,
लोहचूर्णादि अवलेह	,,
दंडपाणिका कहा हुआ अंजन	,,
लेप	,,
दशमूलक्काथ	,,
द्वादशांगक्काथ	६५६
चतुर्दशांगक्काथ	,,
किरातातिक्तादि क्काथ	,,
अष्टादशांगक्काथ	,,
द्वितीय अष्टादशांगक्काथ	,,
सन्निपातज्वरपर रस	,,
मृतसंजीवनी वटिका	,,
त्रिनेत्ररस	६५७
भस्मेश्वररस	,,
अग्निकुमाररस	,,
पंचवक्त्ररस	६५८
अमृतादिवटी....	,,
शीतज्वरमें रस	,,
शीतज्वरादि रस	,,

विषय.	पृष्ठ.
शीतकेसरी रस	६५८
शीतभंजी रस	,,
कट्फलादि पान	६५९
शीतल जलका निषेध	,,
अन्न	६६०
वातोल्वण सन्निपातज्वरकी चिकित्सा	,,
परूषकादि क्काथ	,,
किरातादि सप्तक	६६१
कफोल्वण सन्निपातज्वरकी चिकित्सा	,,
बृहत्यादि क्काथ	,,
वातपित्तोल्वण सन्निपात ज्वरकी चिकित्सा	,,
चातुर्भद्रक क्काथ	,,
पित्तकफोल्वण सन्निपात ज्वरकी चिकित्सा	,,
योगराजक्काथ	,,
शीतांग आदि तेरह सन्नि-पातोंकी चिकित्सा	६६२
तंद्रिककी चिकित्सा	,,
प्रलापककी चिकित्सा	६६३
रक्तष्ठीवी सन्निपातकी चिकित्सा....	,,
भ्रमनेत्रकी चिकित्सा	,,
अभिन्यासकी चिकित्सा	६६४
शृंग्यादि क्काथ	,,
जीह्वककी चिकित्सा	,,
शालूरपर्ण्यादि अवलेह	,,
संधिककी चिकित्सा	,,
अन्तक ज्वरकी चिकित्सा....	६६५
रुग्दाह ज्वरकी चिकित्सा....	,,
षडंगपानीय	,,
पथ्यावलेह	६६६
लेप	,,
जलधारा	,,
अवगाहन	,,
अवगुंठन	,,
अन्न	,,
दाह नष्ट होनेके अन्य उपाय	,,

विषय.	पृष्ठ.
पित्तभ्रमकी चिकित्सा	६६७
कर्णक सन्निपातकी चिकित्सा	,,
कंठकुब्जकी चिकित्सा	६६८
आगंतुक ज्वरका निदान....	६६९
आगंतुक ज्वरका अन्य निदान	,,
आगंतुक ज्वरमें दोष	,,
आगंतुक ज्वरके लक्षण	६७०
आगंतुक ज्वरोंकी चिकित्सा.	६७१
विषमज्वरकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	६७२
विषमज्वरके सामान्य लक्षण	६७३
विषमज्वरके भेद	,,
संतत ज्वरके लक्षण	,,
सततज्वरके लक्षण	,,
अन्येद्युष्क ज्वरके लक्षण....	६७४
तृतीयज्वर तथा चातुर्थिक ज्वरकी चिकित्सा	,,
सुश्रुतका प्रमाण	,,
चातुर्थिक विपर्यादि अन्य ज्वरोंके विषयोंमें	६७५
दो दोषोल्वण तृतीय ज्वरके लक्षण	६७६
कफोल्वणादि चातुर्थिक ज्वरके लक्षण	,,
चातुर्थिक विपर्यय आदि अन्य विषम ज्वरोंके लक्षण	,,
प्रथम शीत या प्रथम दाह उत्पन्न होनेके कारण	६७७
शीतदाहादि ज्वरकी त्रिदो-षजता	,,
अन्य प्रकारका विषमज्वर.	,,
प्रलेपक विषमज्वरके लक्षण.	,,
विषमज्वरोंकी सामान्य चिकित्सा....	६७८
संततादि ज्वरोंकी चिकित्सा.	६७९
गुडूचीमोदक	,,
विषम ज्वरवाले मनुष्योंके लिये भोजन	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
शीतज्वरपर भूतभैरव चूर्ण.	६८१
कायस्थादि धूप, लेप और तैल	,,
दाहकी चिकित्सा	,,
षड्गुणतक्रतैल	,,
महाषड्गुणतक्रतैल	६८२
पञ्चकादितैल	,,
प्रलेपककी चिकित्सा	,,
देवपूजन और देवस्तुति	,,
रसादिधातुगत ज्वरोंके लक्षण और चिकित्सा	६८३
रसगत ज्वरकी चिकित्सा.	,,
रक्तगत ज्वरके लक्षण	,,
रुधिरगत ज्वरकी चिकित्सा.	,,
मांसगत ज्वरके लक्षण	,,
मांसगत ज्वरकी चिकित्सा.	,,
मेदोगत ज्वरके लक्षण	,,
मेदोगत ज्वरकी चिकित्सा....	६८४
अस्थिगत ज्वरके लक्षण	,,
अस्थिगत ज्वरकी चिकित्सा.	,,
मज्जागत ज्वरके लक्षण	,,
शुक्रगत ज्वरके लक्षण	,,

जीर्णज्वराधिकार ।

बातबलासक जीर्णज्वरके लक्षण	६८४
जीर्णज्वरकी सामान्य चिकित्सा	,,
त्रिकंटकक्काथ	६८५
पिप्पल्यादि क्काथ	,,
अष्टादशांगक्काथ	,,
वर्धमानपिप्पली	,,
दुर्जलजनित ज्वरकी चिकित्सा	६८६
हरीतक्यादि चूर्ण	,,
शुंठीक्काथ	,,
दुर्जलजेता रस	,,
पटोलादि क्काथ	,,
किरातादि चूर्ण	,,
शुंठ्यादि कल्क	,,
आर्द्रकादि कल्क	६८७

विषय.	पृष्ठ.
साध्य ज्वरके लक्षण	६८७
ज्वरके उपद्रव	,,
प्रसंगवश ज्वरके उपद्रवोंकी चिकित्सा	,,
ज्वरमें श्वासकी चिकित्सा	,,
द्वात्रिंशत्क्काथ	,,
पिप्पल्यादि चूर्ण	६८८
ज्वरमें मूर्च्छाकी चिकित्सा,..	,,
ज्वरमें अरुचि चिकित्सा....	,,
ज्वरमें वमनकी चिकित्सा...	,,
ज्वरमें तृषाकी चिकित्सा....	,,
ज्वरमें अतीसारकी चिकित्सा.	,,
ज्वरमें मलबंधकी चिकित्सा.	६८९
ज्वरमें हिचकीकी चिकित्सा.	,,
ज्वरमें खाँसीकी चिकित्सा...	,,
ज्वरमें दाहकी चिकित्सा....	,,
सुखसाध्य ज्वरके लक्षण	,,
कष्टसाध्य ज्वरके लक्षण	६९०
वर्षादिकमें दोषोंकी प्रधानता	,,
असाध्य ज्वरके लक्षण	६९१
अरिष्ट	,,
विषमज्वरका अरिष्ट	६९२

अतिसाराधिकार ।

अतिसाराका निदान	६९२
अतिसरका पूर्वरूप	६९३
अतिसारकी संप्राप्ति	,,
अतिसारकी सामान्य चिकित्सा	६९४
आमातिसारकी चिकित्सा...	,,
आम और पक्वके लक्षण	,,
जल	,,
लंघनके अंतमें भोजन	६९५
पथ्यादि क्काथ	,,
पाठादि चूर्ण	,,
हरीतक्यादि चूर्ण	,,
वत्सकादि क्काथ	,,
शुंठीपुटपाक और कल्क	,,
धान्यादि पंचकक्काथ	,,
धान्यादि चतुष्कक्काथ	,,

विषय.	पृष्ठ.
पक्व अतिसारकी चिकित्सा...	६९६
समंगादि योगचतुष्टय	,,
गंगाधरक्काथ	,,
गंगाधरचूर्ण	,,
द्वितीय गंगाधरचूर्ण	,,
वृद्ध गंगाधरचूर्ण	,,
अंकोलकल्क	६९७
कुटजाष्टकावलेह	,,
आमलेका आलवाल	,,
पाठादि चूर्ण	,,
वातातिसारके लक्षण	,,
वातातिसारकी चिकित्सा	,,
पित्तातिसारके लक्षण	६९८
पित्तातिसारकी चिकित्सा....	,,
बिल्वादि क्काथ	,,
रसांजनादि चूर्ण	,,
रक्तातिसारका पूर्वरूप संप्राप्ति	,,
रक्तातिसारकी चिकित्सा	,,
कुटजदाडिमक्काथ	,,
कुटजादिक्काथ....	,,
तिलकल्क	,,
वत्सकादि घृत....	,,
कृष्णभूदादि कल्क	६९९
गुडबिल्व	,,
जम्ब्वादि स्वरस	,,
कुटजक्षीर	,,
शतावरीकल्क....	,,
नवनीतावलेह....	,,
चंदनकल्क	,,
गुदा पकनेका यत्न	,,
गुदा बाहिर निकल आनेकी चिकित्सा....	७००
कफातिसारके लक्षण.	,,
कफातिसारकी चिकित्सा	,,
चव्यादि क्काथ....	७०१
हिंग्वादि चूर्ण....	,,
वातकफातिसारकी चिकित्सा	,,
पित्तकफातिसारकी चिकित्सा	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
सन्निपातातिसारके लक्षण	७०१
सन्निपातातिसारकी चिकित्सा	,,
पंचमूल्यादिक्वाथ	,,
चतुःसममोदक	,,
कुटजपुटपाक	७०२
कुटजावलेह	,,
अंकोटवटक	,,
आगंतुज शोकातिसारके संप्राप्ति-पूर्वक लक्षण	,,
भयातिसारके लक्षण	७०३
शोकातिसार और भयाति-सारकी चिकित्सा	७०४
आमातिसारके संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	,,
आमातिसारकी चिकित्सा	,,
शोथातिसारकी चिकित्सा....	,,
अर्शातिसारकी चिकित्सा	,,
निःसारकी चिकित्सा	७०५
विष्टाश्रयकी चिकित्सा	,,
बिल्वतैल	,,
अतिदेश	,,
प्रवाहिकाके संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	,,
दोषभेदसे प्रवाहिकाके अलग २ लक्षण	,,
अतिदेश	७०६
प्रवाहिकाकी चिकित्सा	,,
बिल्वाद्यवलेह	,,
धातक्यादि	,,
असाध्य अतिसारके लक्षण	,,
अतिसारसे मुक्त हुए मनुष्यके लक्षण	७०७
अतिसारपर पथ्यापथ्य	,,
शंखपोटली रस	,,
विजयावलेह	१०८
अतिविषावलेह	,,

ज्वरातिसाराधिकार।

ज्वरातिसारका निदान	७०८
ज्वरातिसारकी चिकित्सा	,,

विषय.	पृष्ठ.
उत्पलषष्टक क्वाथ	७०९
कणादि क्वाथ....	,,
नागरादि क्वाथ	,,
वृहद्बृहत्यादि क्वाथ	,,
उत्पलादि क्वाथ	,,
बिल्वादि क्वाथ	,,
नागरादि क्वाथ	७१०
दशमूली क्वाथ	,,

ग्रहणी रोगाधिकार।

ग्रहणीकी संप्राप्ति	७१०
ग्रहणीका स्वरूप	,,
ग्रहणी रोगके संख्यापूर्वक सामान्य लक्षण	,,
वातज ग्रहणीके निदान संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	,,
पित्तज ग्रहणीके निदान संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	७११
कफज ग्रहणीके निदान संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	,,
त्रिदोषज ग्रहणी निदान संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	७१२
ग्रहणीरोगका भेद संग्रहणी रोग	,,
ग्रहणीरोगका भेद घटीयंत्र	,,
सामान्य ग्रहणीरोगकी चिकित्सा	,,
तहां गायके दहीके गुण	७१३
भैंसके दहीके गुण	,,
बकरीके दहीके गुण	,,
तक्रके भेद	,,
तक्रके गुण	,,
घी निकाले हुए तक्रके गुण.	७१४
रोगविशेषमें तक्रविशेष	,,
पक्वापक्व तक्रके गुण	,,
तक्रका निषेध	,,
तक्रकी प्रशंसा	,,
षडयूषण	,,
लाईका चूर्ण	,,
जातिफलादिचूर्ण	७१५
चित्रकादि वटिका	,,
बिल्वकल्क	,,

विषय.	पृष्ठ.
वार्ताकुगुटिका	७१५
मुस्तकादि चूर्ण	,,
सर्जरसचूर्ण	,,
बकरीका दूध....	७१६
कल्याणगुड	,,
महाकल्याणगुड	,,
कूष्माण्डकल्याणगुड	७१७
बिल्वतेल	,,

अर्शोऽधिकार।

अर्शका सन्निकृष्ट निदान...	७१८
वातसंबंधी अर्शका विप्रकृष्ट निदान	,,
पित्तकी बवासीरका विप्रकृष्ट निदान	७१९
कफकी बवासीरका विप्रकृष्ट निदान	,,
त्रिदोषज बवासीरका विप्रकृष्ट निदान	,,
अर्शका पूर्वरूप	७२०
अर्शके संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	,,
वातार्शके लक्षण	,,
पित्तकी बवासीरके लक्षण	७२१
पित्तोत्तर रुधिरकी बवासीरके लक्षण ...	,,
कफोल्वण बवासीरके लक्षण	७२२
द्वंद्वज अर्शके लक्षण ...	७२३
त्रिदोषोल्वण और स्वाभाविक अर्शके लक्षण ...	,,
सुखसाध्य अर्शके लक्षण ...	,,
कष्टसाध्य अर्शके लक्षण	,,
असाध्य बवासीरके लक्षण....	,,
याप्य अर्शके लक्षण ...	७२४
अर्शसंबंधी अरिष्ट	,,
लिंगार्श आदिके लक्षण ...	,,
चर्मकीलके लक्षण	,,
चर्मकीलके पातादि लक्षण	,,
अर्शकी सामान्य चिकित्सा	७२५
करंजादि चूर्ण	,,
रजनीलेप	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
पिप्पल्यादिलेप	७२५
हरिद्रादि लेप	,,
तिललक्षण	७२६
रुधिरस्रावण	,,
बृहत्काशीसाद्य तैल	,,
समशर्करचूर्ण	,,
विजयचूर्ण	,,
लघुसूरण मोदक	७२७
बृहत्सूरण मोदक	,,
श्रीबाहुशाल गुड	७२८
तिलादि मोदक	७२९
सगुडाभया	,,
शंकरलोह	,,
खूनीबवासीरकी चिकित्सा	७३२
समंगादि दूध	७३३
क्षारसूत्र	,,
नासिकादिगत अर्शकी चिकित्सा	,,
पथ्यापथ्य चर्मकीलकी चिकित्सा	,,
जठराग्नि विकाराधिकार ।	
सन्निकृष्ट निदानपूर्वक जठराग्निके	,,
विकार तथा समस्थिति	७३३
मंदाग्निके लक्षण	,,
तीक्ष्णाग्निके लक्षण	,,
विषमाग्निके लक्षण	,,
समाग्निके लक्षण	७३४
भस्मकरोगका निदान	,,
भस्मकके उपद्रव और अरिष्ट	,,
अजीर्णका विप्रकृष्ट निदान	,,
अजीर्णका कारण	७३५
अजीर्णकासामान्य लक्षण	,,
सन्निकृष्ट कारण सहित अजीर्णके भेद	,,
आमाजीर्णके लक्षण	७३६
विदग्धाजीर्णके लक्षण	,,
विष्टब्धाजीर्णके लक्षण	,,
रसशेषाजीर्णके लक्षण	७३६
अजीर्णके उपद्रव	,,
अतिशय अजीर्णमें विषूच्यादि रोग	,,
विषूचिकाका अर्थ	,,
विषूचिकाका निदान	७३७
विषूचिकाके लक्षण	,,
विषूचिकाके उपद्रव	,,
अलसकके लक्षण	,,
विषूचिका और अलसकका अरिष्ट	,,
विलंबिकाके लक्षण	,,
अजीर्ण आहारके लक्षण	७३८
अजीर्णकी चिकित्सा	,,
हिंग्वष्टक	७३९
बृहदग्निमुखचूर्ण	,,
वैश्वानर क्षार	,,
लवणभास्कर	७४०
वडवानल चूर्ण	,,
द्वितीय वडवानल चूर्ण	७४१
समशर्कर चूर्ण	,,
अजीर्णपर क्रव्यादिरस	,,
ज्वालानलरस	७४२
पंचकोल	,,
अग्निकुमाररस	,,
रामबाण रस	,,
शंखवटी	,,
बृहत् शंखवटी	७४३
अजीर्णकंटकरस	,,
विषूचिकाकी चिकित्सा	७४४
उत्क्लेशके लक्षण	,,
दारुषट्क	,,
अलसक और विलंबिकाकी चिकित्सा	७४५
भस्मक रोगकी चिकित्सा	,,
पाचन द्रव्य	,,
कृमिरोगाधिकार ।	
कृमियोंके भेद	७४७
कृमियोंका निदान	,,
बाह्य कृमियोंका रूप	७४७
बाह्य कृमियोंके विकार	,,
भीतरके कृमियोंका विप्रकृष्ट निदान कृमि उत्पन्न हुएके लक्षण	,,
कफसे हुए कृमियोंका विप्रकृष्ट निदान	,,
रक्तसे उत्पन्न हुई कृमि	,,
पुरीषज कृमि	,,
कृमियोंकी चिकित्सा	७४९
कृमिरोगीको पथ्य	,,
पाण्डुरोग कामला हलीमकाधिकार ।	
पांडुरोगका संख्यापूर्वक सन्निकृष्ट निदान	७५०
पांडुरोगकी विप्रकृष्ट निदान पूर्वक संप्राप्ति	,,
पांडुरोगका पूर्वरूप	,,
वायुसे हुए पांडुरोगके लक्षण	,,
पित्तसे हुए पांडुरोगके लक्षण	७५१
कफसे हुए पांडुरोगके लक्षण	,,
सन्निपातसे हुए पांडुरोगके लक्षण	,,
मट्टी भक्षण करनेसे हुए पांडुरोगकी संप्राप्ति	,,
मट्टी खानेसे हुए पांडुरोगके लक्षण	,,
पांडुरोगीके असाध्य लक्षण	,,
पांडुरोगका भेद कामलाकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	७५२
कामलाके लक्षण	,,
कामलाके भेद	,,
कोष्ठाश्रय कामलाका वर्णन	,,
कुंभकामलाके अरिष्ट लक्षण	७५३
दोनों कामलाओंके अरिष्ट	,,
पांडुरोगका भेद	,,
पांडुरोगकी चिकित्सा	,,
पुनर्नवादि मंडूर	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
पिप्पल्यादिलेप	७२५
हरिद्रादि लेप	,,
तिललक्षण	७२६
रुधिरस्रावण	,,
बृहत्काशीसाद्य तैल	,,
समशर्करचूर्ण	,,
विजयचूर्ण	,,
लघुसूरण मोदक	७२७
बृहत्सूरण मोदक	,,
श्रीवाहुशाल गुड	७२८
तिलादि मोदक	७२९
सगुडाभया	,,
शंकरलोह	,,
खूनीबवासीरकी चिकित्सा	७३२
समंगादि दूध	७३३
क्षारसूत्र	,,
नासिकादिगत अर्शकी चिकित्सा	,,
पथ्यापथ्य चर्मकीलकी चिकित्सा	,,

जठराग्नि विकाराधिकार ।

सन्निकृष्ट निदानपूर्वक जठराग्निके	,,
विकार तथा समस्थिति	७३३
मंदाग्निके लक्षण	,,
तीक्ष्णाग्निके लक्षण	,,
विषमाग्निके लक्षण	,,
समाग्निके लक्षण	७३४
भस्मकरोगका निदान	,,
भस्मकके उपद्रव और अरिष्ट	,,
अजीर्णका विप्रकृष्ट निदान	,,
अजीर्णका कारण	७३५
अजीर्णकासामान्य लक्षण	,,
सन्निकृष्ट कारण सहित अजीर्णके भेद	,,
आमाजीर्णके लक्षण	७३६
विदग्धाजीर्णके लक्षण	,,
विष्टब्धाजीर्णके लक्षण	,,

विषय.	पृष्ठ.
रसशेषाजीर्णके लक्षण	७३६
अजीर्णके उपद्रव	,,
अतिशय अजीर्णमें विषूच्यादि रोग	,,
विषूचिकाका अर्थ	,,
विषूचिकाका निदान	७३७
विषूचिकाके लक्षण	,,
विषूचिकाके उपद्रव	,,
अलसकके लक्षण	,,
विषूचिका और अलसकका अरिष्ट	,,
विलंबिकाके लक्षण	,,
अजीर्ण आहारके लक्षण	७३८
अजीर्णकी चिकित्सा	,,
हिंग्वष्टक	७३९
बृहदग्निमुखचूर्ण	,,
वैश्वानर क्षार	,,
लवणभास्कर	७४०
वडवानल चूर्ण	,,
द्वितीय वडवानल चूर्ण	७४१
समशर्कर चूर्ण	,,
अजीर्णपर क्रव्यादिरस	,,
ज्वालानलरस	७४२
पंचकोल	,,
अग्निकुमाररस	,,
रामबाण रस	,,
शंखवटी	,,
बृहत् शंखवटी	७४३
अजीर्णकंटकरस	,,
विषूचिकाकी चिकित्सा	७४४
उत्क्लेशके लक्षण	,,
दारुषट्क	,,
अलसक और विलंबिकाकी चिकित्सा	७४५
भस्मक रोगकी चिकित्सा	,,
पाचन द्रव्य	,,

कृमिरोगाधिकार ।

कृमियोंके भेद	७४७
कृमियोंका निदान	,,

विषय.	पृष्ठ.
बाह्य कृमियोंका रूप	७४७
बाह्य कृमियोंके विकार	,,
भीतरके कृमियोंका विप्रकृष्ट निदान कृमि उत्पन्न हुएके लक्षण	,,
कफसे हुए कृमियोंका विप्रकृष्ट निदान	,,
रक्तसे उत्पन्न हुई कृमि	,,
पुरीषज कृमि	,,
कृमियोंकी चिकित्सा	७४९
कृमिरोगीको पथ्य	,,

पाण्डुरोग कामला हलीमकाधिकार ।

पांडुरोगका संख्यापूर्वक सन्निकृष्ट निदान	७५०
पांडुरोगकी विप्रकृष्ट निदान पूर्वक संप्राप्ति	,,
पांडुरोगका पूर्वरूप	,,
वायुसे हुए पांडुरोगके लक्षण	,,
पित्तसे हुए पांडुरोगके लक्षण	७५१
कफसे हुए पांडुरोगके लक्षण	,,
सन्निपातसे हुए पांडुरोगके लक्षण	,,
मट्टी भक्षण करनेसे हुए पांडुरोगकी संप्राप्ति	,,
मट्टी खानेसे हुए पांडुरोगके लक्षण	,,
पांडुरोगीके असाध्य लक्षण	,,
पांडुरोगका भेद कामलाकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	७५२
कामलाके लक्षण	,,
कामलाके भेद	,,
कोष्ठाश्रय कामलाका वर्णन	,,
कुंभकामलाके अरिष्ट लक्षण	७५३
दोनों कामलाओंके अरिष्ट	,,
पांडुरोगका भेद	,,
पांडुरोगकी चिकित्सा	,,
पुनर्नवादि मंडूर	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
[illegible]यस चूर्ण	.... ७५४
[illegible]लाकी चिकित्सा	.... ,,
[illegible]मककी चिकित्सा	.... ७५५
अमृतलतादि घृत	.... ,,
पांडुकामला और हलीमक रोगकी सामान्य चिकित्सा	,,
त्र्यूषणादि मंडूरवटक	.... ,,
अष्टादशांग लोह	.... ,,

रक्तपित्ताधिकार।

विषय.	पृष्ठ.
रक्तपित्तकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	.... ७५६
रक्तपित्तके सामान्य लक्षण	,,
रक्तपित्त बहनेके मार्ग	.... ,,
रक्तपित्तका पूर्वरूप	.... ,,
कफज वातज रक्तपित्तका रूप	७५७
पित्तज रक्त पित्तका स्वरूप	,,
संसर्ग विशेषसे मार्गभेद	,,
रक्तपित्तके उपद्रव	.... ,,
रक्तपित्तकी साध्यासाध्यता	,,
साध्य रक्तपित्तका विरेचन	,,
असाध्य रक्तपित्त	.... ,,
रक्तपित्तका अरिष्ट	.... ७५८
रक्तपित्तकी चिकित्सा	.... ,,
धान्यकादि हिम	.... ,,
दूर्वाद्य घृत	.... ७५९
खंडकूष्मांडावलेह	.... ७६०
बृहत्कूष्माण्डावलेह	... ७६१
खण्डकूष्मांडक	... ७६२
खण्डवाद्य लेह	.... ,,
शतावरीपाक	.... ७६३

अम्लपित्त तथा श्लेष्मपित्ताधिकार।

विषय.	पृष्ठ.
अम्लपित्तका विप्रकृष्ट निदान	७६४
अम्लपित्तरोगका लक्षण	,,
अम्लपित्तके दो भेद	.... ,,
ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण	,,
अधोगत अम्लपित्तके लक्षण	,,
अम्लपित्तकी विशेष अवस्था	,,
अम्लपित्तमें दोषोंका संसर्ग	७६५
दोषभेदोंसे लक्षण भेद	.... ,,
अम्लपित्तमें साध्यासाध्य विचार	.... ७६५
कफपित्तके लक्षण	.... ,,
अम्लपित्तकी चिकित्सा	.... ,,
खण्डकूष्मांडावलेह	.... ७६६
नारिकेलखण्ड	.... ,,
बृहन्नारिकेल खण्ड	.... ७६७
कफपित्तकी चिकित्सा	.... ,,

कफरोगाधिकार।

विषय.	पृष्ठ.
क्षयरोगका विप्रकृष्ट सन्निकृष्ट निदान	.... ७६८
यक्ष्मादिशब्दोंकी निरुक्ति	.... ,,
क्षयरोगकी संप्राप्ति	.... ,,
रसक्षयका हेतु	.... ७६९
क्षयरोगका पूर्वरूप	.... ,,
क्षयरोगके लक्षण	.... ,,
दोषोंकी उल्वणतासे विशेष क्षणल	.... ७७०
क्षयरोगकी असाध्यता	.... ,,
विशेषता	.... ,,
क्षयरोगका अरिष्ट	.... ,,
क्षयरोगके जीवनकी अवधि	७७१
क्षयरोग चिकित्सा	.... ,,
निदानविशेषोंसे शोष विशेष	,,
व्यवायशोषके लक्षण	.... ,,
शोक शोषके लक्षण	.... ,,
वार्धक्य शोषके लक्षण	.... ७७२
अध्वशोषके लक्षण	.... ,,
व्यायामशोषके लक्षण	.... ,,
व्रणशोष निदान और असाध्य लक्षण, ...	.... ,,
उरःक्षत शोषका निदान	,,
उरःक्षतशोष लक्षण	.... ७७३
निदान विशेषसे उरःक्षतके लक्षण	.... ,,
उरःक्षतके साध्यासाध्य लक्षण	,,
राजयक्ष्मारोगकी चिकित्सा.	,,
षडंगयूष	.... ७७४
सितोपलादि अवलेह	.... ,,
जातीफलादि चूर्ण	.... ७७५
लाक्षादि तैल	.... ७७५
वासावलेह	.... ,,
व्यवायशोषकी चिकित्सा	.... ,,
शोकशोषकी चिकित्सा	.... ,,
व्यायामशोषकी चिकित्सा	.... ,,
अध्वशोषकी चिकित्सा	.... ,,
व्रणशोषकी किकित्सा	.... ७७६
उरःक्षतकी चिकित्सा	.... ,,
बलादि चूर्ण	.... ,,
एलादि गुटिका	.... ,,
द्राक्षादि घृत	.... ,,
अमृत प्राशावलेह	.... ,,
उरःक्षत रोगपर पथ्यापथ्य	७७७
राजयक्ष्मापर रस	.... ,,
राजमृगांकरस	.... ,,
अभ्ररस	.... ७७८

कासरोगाधिकार।

विषय.	पृष्ठ.
खांसीका निदान संप्राप्ति पूर्वक सामान्य लक्षण....	७७८
खांसीकी संख्या	.... ,,
खांसीका पूर्वरूप	.... ,,
वरतकी खांसीके लक्षण	.... ,,
पित्तकी खांसीके लक्षण	.... ७७९
कफकी खांसीके लक्षण	.... ,,
क्षतज खांसीकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	.... ,,
क्षतज खांसीके लक्षण	.... ,,
क्षयज खांसीकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	.... ,,
क्षयज खांसीके लक्षण	.... ,,
खांसीकी साध्यासाध्यता	७८०
खांसीकी उपेक्षा करनेमें दोष	,,

कास चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठ.
वातज खांसीकी चिकित्सा	७८०
पित्तज खांसीकी चिकित्सा	७८१
कफज खांसीकी चिकित्सा	,,
क्षतज खांसीकी चिकित्सा	,,
क्षयज खांसीकी चिकित्सा	,,
कासरोगकी सामान्य चिकित्सा	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
मरिचादि गुटिका	.... ७८२
शुण्ठ्हरीतकी	.... ,,
कटकार्यावलेह	.... ७८३

हिक्कारोगाधिकार ।

हिक्कारोगका विप्रकृष्ट निदान	७८३
हिक्काकी संख्यापूर्वक संप्राप्ति	,,
हिक्काके सामान्य लक्षण	.... ,,
हिक्काका पूर्वरूप	.... ७८४
अन्नजाहिक्काके लक्षण	.... ,,
यमला हिक्काके लक्षण	.... ,,
क्षुद्राके लक्षण	.... ,,
गंभीराके	.... ,,
महतीके लक्षण	.... ,,
हिक्काकी असाध्यता	.... ,,
यमला हिक्काकी असाध्यता	७८५
हिक्काकी चिकित्सा	.... ,,

श्वासरोगाधिकार ।

श्वासका निदान	.... ७८६
श्वासके भेद	.... ,,
श्वासका पूर्वरूप	.... ,,
श्वासकी संप्राप्ति	.... ,,
महाश्वासके लक्षण	.... ,,
ऊर्ध्वश्वासके लक्षण	.... ७८७
छिन्नश्वासके लक्षण	.... ,,
तमक श्वासके लक्षण	.... ,,
प्रतमक श्वासके लक्षण	.... ७८८
अंतर	.... ,,
क्षुद्रश्वासके लक्षण	.... ७८९
श्वासकी साध्यासाध्यता	.... ,,
श्वासकी चिकित्सा	.... ,,
भार्ङ्गी गुड	.... ७९०
महाकट्फलादि	.... ७९१
दशमूल रस	.... ,,
श्वासकुठार रस	.... ,,

स्वरभेदाधिकार ।

स्वरभेदके निदान संप्राप्ति पूर्वक सामान्य लक्षण	.... ७९१
वातज स्वरभेदके लक्षण	.... ,,
पित्तज स्वरभेदके लक्षण	.... ,,
कफज स्वरभेदके लक्षण	.... ७९२
सन्निपातज स्वरके लक्षण	.... ७९२
क्षयज स्वरभेदके लक्षण	.... ,,
भेदजन्य स्वरभेदके लक्षण	,,
स्वरभेदके असाध्य लक्षण	,,
स्वरभेदकी चिकित्सा	.... ,,
निदिग्धिकावलेह	.... ,,
मृगनाभ्यादि अवलेह	.... ७९३
ब्राह्म्यादि अवलेह	.... ,,

अरोचकाधिकार ।

निदानसह अरोचक	.... ७९३
पित्तज अरोचकके लक्षण	.... ,,
कफज अरुचिके लक्षण	.... ,,
आगंतुक अरुचिके लक्षण	,,
वातजादि अरोचकोंके विशेष लक्षण	.... ७९४
विशेष विवेचन	.... ,,
अरोचककी चिकित्सा	.... ,,
अम्लीका पानक	.... ,,
तक्र	.... ,,
शिखरिणी	.... ७९५
दाडिमादि चूर्ण	.... ,,
लवंगादि चूर्ण	.... ,,
यवानी खांड व चूर्ण	.... ,,

छर्द्यधिकार ।

विप्रकृष्ट सन्निकृष्ट छर्दीकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	.... ७९६
वमनके पूर्व लक्षण	.... ,,
वमनके सामान्य लक्षण	.... ,,
वातज छर्दीके लक्षण	.... ,,
पित्तज छर्दीके लक्षण	.... ,,
कफके वमनके लक्षण	.... ७९७
त्रिदोषज वमनके लक्षण	.... ,,
आगंतुक वमनके लक्षण	.... ,,
वमनके उपद्रव	.... ,,
वमनकी साध्यासाध्यता	.... ,,
वमनकी चिकित्सा	.... ,,

तृष्णाधिकार ।

तृषाकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	७९९
तृषाके सामान्य लक्षण	.... ,,
वातज तृषाके लक्षण	.... ८००
पित्तज तृषाके लक्षण	....
कफज तृषाके लक्षण	....
क्षतज तृषाके लक्षण	....
क्षयज तृषाके लक्षण	.... ,,
आमसे उत्पन्न हुई तृषाके लक्षण	.... ,,
भुक्तोद्भव तृषाके लक्षण	.... ८०१
तृषाके उपद्रव	.... ,,
उपद्रवयुक्त तृषाका अरिष्ट	,,
तृषाकी चिकित्सा	.... ,,

मूर्च्छाधिकार ।

मूर्च्छाकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	८०३
मूर्च्छाके सामान्य लक्षण	.... ,,
मूर्च्छाके छः प्रकार	.... ८०४
मूर्च्छाके पूर्व रूप	.... ,,
वातकी मूर्च्छाके लक्षण	.... ,,
पित्तकी मूर्च्छाके लक्षण	.... ,,
कफकी मूर्च्छाके लक्षण	.... ,,
रुधिरसे उत्पन्न हुई मूर्च्छाका निदान	.... ८०५
रुधिरमूर्च्छाका लक्षण	.... ,,
मद्यकी मूर्च्छाके लक्षण	.... ,,
विषकी मूर्च्छाके लक्षण	.... ८०६
मूर्च्छा भ्रम और तंद्रादिकमें परस्पर भेद	.... ,,
तन्द्राके लक्षण	.... ,,
क्लमके लक्षण	.... ,,
निद्राके लक्षण	.... ,,
संन्यासके संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	,,
संन्यास मूर्च्छामें भेद	.... ८०७
मूर्च्छाकी चिकित्सा	.... ,,
रुधिरसे उत्पन्न हुई मूर्च्छादिककी चिकित्सा संन्यासकी चिकित्सा	.... ८०८
मूर्च्छामें उपयोगी रस	.... ,,
भ्रमकी चिकित्सा	.... ,,
तंद्रा और अत्यंत निद्राकी चिकित्सा	.... ८०९

मदात्ययाधिकार ।

मद्यका स्वभाव	.... ८०९
मद्य पीनेकी विधि	.... ,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय।	पृष्ठ।
इतना पीनेका स्थान	८०९
मद्यपीनेकी मात्रा	८१०
स्थान विशेषसे मद्य पीनेके नियम	,,
हितकारी अन्न	,,
मद्यके गुण	८११
सात्विक मदके लक्षण	८१२
राजस मदके लक्षण	,,
तामस मदके लक्षण	,,
मद पीनेवालेके विशेष लक्षण	८१३
मदात्ययका निदान	,,
अविधिसे पिया हुआ मद अन्य विकारोंको भी करता है	,,
मदात्यय आदि विकारोंका अन्य हेतु	८१४
मदसे उत्पन्न होनेवाले विकार	,,
मदात्ययके सामान्य लक्षण	,,
वातज मदात्ययका निदान	,,
वातज मदात्ययके लक्षण	,,
पित्तज मदात्ययका निदान	८१५
पित्तज मदात्ययके लक्षण	,,
कफज मदात्ययका निदान	,,
कफज मदात्ययके लक्षण	,,
सान्निपातिक मदात्ययका निदान और लक्षण	,,
परमदके लक्षण	,,
पानाजीर्णके लक्षण	,,
पान विभ्रमके लक्षण	,,
असाध्य मदात्यय आदिके लक्षण	८१६
मदात्यय आदि विकारोंकी चिकित्सा	,,
प्रसंगवशसेकोदों आदिके मदकी चिकित्सा	८१७

दाहाधिकार।

पित्तकी दाह	८१८
रुधिरकी दाह	,,
रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह	,,
मदकी दाह	,,
तृष्णानिरोधज	८१९
धातुक्षयज	,,
मर्माभिघातज	,,
दाहकी असाध्यता	,,
दाहकी चिकित्सा	,,
चंदनादि क्वाथ	८२०
कांजिक तैल	,,

उन्मादाधिकार।

उन्मादकी निरुक्ति	८२०
अवस्थाभेदसे उन्मादके नामांतर	,,
उन्मादका विप्रकृष्ट निदान	,,
उन्मादका सन्निकृष्ट निदान	,,
उन्मादकी संप्राप्ति	,,
उन्मादके सामान्य लक्षण	८२१
वातज उन्मादकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	,,
वातज उन्मादके लक्षण	,,
पित्तज उन्मादकी संप्राप्ति	,,
पित्तज उन्मादके लक्षण	,,
कफजन्य उन्मादकी निदान पूर्वक संप्राप्ति	८२२
कफजन्य उन्मादके लक्षण	,,
सान्निपातिक उन्मादके निदान-पूर्वक लक्षण	,,
मनोदुःखजन्य उन्मादका विप्रकृष्ट निदान	८२३
मनके दुःखसे उत्पन्न हुए उन्मादके लक्षण	,,
उन्मादका अरिष्ट	,,
देवजुष्टके लक्षण	,,
दैत्यजुष्टके लक्षण	८२४
गन्धर्वाविष्टके लक्षण	,,
यक्षाविष्टके लक्षण	,,
पित्राविष्टके लक्षण	८२४
नागाविष्टके लक्षण	,,
राक्षसाविष्टके लक्षण	,,
ब्रह्मराक्षसाविष्टके लक्षण	८२५
पिशाचाविष्टके लक्षण	,,
हिंसक राक्षसादिक ग्रहसेवितका निदान	,,
हितार्थ ग्रहीतके लक्षण	८२५
देव आदिके आवेश होनेका समय	,,
देवादिग्रह मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करते नहीं दीखते	,,
उन्मादकी चिकित्सा	८२६
सिद्धार्थकादि	,,
त्रास देना भयभीत करना	८२७
त्र्यूषणांजन	,,
सारस्वतचूर्ण	,,
विश्वाद्य चूर्ण	८२८
महाचैतस घृत	,,
देवादिकोंसे उन्मादकी चिकित्सा	,,
कृष्णांजन	८२९
ऋक्षलोमक	,,
ऋक्षलोमक धूप	,,
कल्याण घृत	,,

अपस्माराधिकार।

मृगीकी निदानसहित संप्राप्ति	८२९
अपस्मारकी संख्या	,,
अपस्मारके सामान्य लक्षण	,,
अपस्मारका पूर्वरूप	,,
वातजन्य मृगीका लक्षण	,,
पित्तकी मृगीके लक्षण	८३०
कफकी मृगीके लक्षण	,,
सन्निपातकी मृगीके लक्षण	,,
अपस्मारके अरिष्ट	,,
अपस्मारका प्रकोप समय	,,
अपस्मारकी चिकित्सा	८३१
ब्राह्मीघृत	,,
कूष्मांड घृत	,,
कल्याण चूर्ण	८३१
भूतभैरवरस	८३२

वातव्याध्यधिकार।

वातव्याधियोंके सामान्यतासे दूर करनेवाले कारण	८३२
वर्षाऋतुसे उत्पन्न हुई व्याधियोंके नाम	८३३
वातव्याधिकी सामान्य चिकित्सा	८३४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
शिरोग्रहके लक्षण	८३४
शिरोग्रहकी चिकित्सा	,,
जृंभाके लक्षण	,,
जृंभाकी चिकित्सा	,,
हनुग्रहके निदानसहित लक्षण	८३५
हनुग्रहकी चिकित्सा	,,
प्रसारणी तैल	,,
जिह्वास्तंभके लक्षण	८३६
जिह्वास्तंभकी चिकित्सा	,,
मूकताके लक्षण	,,
मूकताकी चिकित्सा	८३७
सारस्वतघृत	,,
कल्याणकावलेह	,,
प्रलापकके लक्षण	,,
प्रलापककी चिकित्सा	,,
रसाज्ञानके लक्षण	,,
रसाज्ञानकी चिकित्सा	,,
किराततिक्तादि कल्क	,,
बाधिर्य तथा कर्णनाद	८३८
त्वक्शून्यताके लक्षण	,,
त्वक्शून्यताकी चिकित्सा	,,
अर्दितके संप्राप्ति पूर्वक लक्षण	,,
अर्दितके असाध्य लक्षण	८३९
अर्दितकी चिकित्सा	,,
मन्यास्तंभके निदानपूर्वक लक्षण	,,
मन्यास्तंभकी चिकित्सा	८४०
बाहुशोषके लक्षण	,,
बाहुशोषकी चिकित्सा	,,
अपबाहुक शोषके लक्षण	,,
अपबाहुक शोषकी चिकित्सा	८४०
माषतैल	,,
विश्वाचीके लक्षण	८४१
विश्वाचीकी चिकित्सा	,,
माषादि तैल	,,
ऊर्ध्ववातके लक्षण	,,
ऊर्ध्ववातकी चिकित्सा	,,
आध्मानके लक्षण	,,
आध्मानकी चिकित्सा	८४२
नारायण चूर्ण	,,

विषय.	पृष्ठ.
दारुषट्कलेप	८४२
महानाराचरस	,,
प्रत्यध्मानके लक्षण	,,
प्रत्याध्मानकी चिकित्सा	,,
बाताष्ठीलाके लक्षण	८४३
प्रत्यष्ठीलाके लक्षण	,,
बाताष्ठीला तथा प्रत्यष्ठीलाकी चिकित्सा	,,
हिंग्वादि चूर्ण	,,
तूनीके लक्षण	,,
प्रतितूनीके लक्षण	,,
तूनी तथा प्रति तूनीकी चिकित्सा	,,
त्रिकशूलके लक्षण	८४४
त्रिकशूलकी चिकित्सा	,,
त्रयो दशांग गुग्गुलु	,,
बहुमूत्रके तथा मूत्रनिग्रहके निदान पूर्वक लक्षण	,,
बहुमूत्र तथा मूत्रनिग्रहकी चिकित्सा	,,
गृध्रसीके लक्षण	८४५
गृध्रसीकी चिकित्सा	,,
रास्ना गुग्गुलु	८४६
रास्नासप्तक क्वाथ	,,
पथ्यादि गुग्गुलु	,,
खंजता तथा पंगुताके लक्षण	८४७
खंजता तथा पंगुताकी चिकित्सा	,,
कलाय खंजके लक्षण	,,
कलायखंजकी चिकित्सा	८४७
क्रोष्टुक शीर्षके लक्षण	,,
क्रोष्टुक शीर्षकी चिकित्सा	,,
खल्लीकी चिकित्सा	८४८
खल्लीके लक्षण	,,
वातकंटकके लक्षण	,,
वातकंटककी चिकित्सा	,,
पाददाहके लक्षण	,,
पाददाहकी चिकित्सा	,,
पादहर्षके लक्षण	,,
पादहर्षकी चिकित्सा	,,

विषय.	पृष्ठ.
दंडकाक्षेप, वातपित्तकृताक्षेप, दंडापतानकाक्षेप और अभिघातकृताक्षेप इन चार प्रकारके आक्षेपकोंके सामान्य लक्षण	८४९
केवल वातोत्पन्न आक्षेपकके लक्षण	,,
दंडापतानकके लक्षण	,,
चारों प्रकारके आक्षेपकोंकी चिकित्सा	,,
अंतरायामके लक्षण	८५०
बाह्यायामके लक्षण	,,
चिकित्सा	,,
धनुस्तंभके लक्षण	८५१
कुब्जकके लक्षण	,,
धनुर्वात तथा कुब्जककी चिकित्सा	,,
अपतंत्रकके लक्षण	,,
अपतंत्रककी चिकित्सा	,,
मरीच्यादिनस्य	८५२
हरीतक्यादि	,,
अपतानकके लक्षण	,,
अपतानककी चिकित्सा	,,
पक्षाघातके लक्षण	,,
वातके साथ अन्य दोषोंका विवेचन	८५३
पक्षाघातकी साध्यासाध्यता	,,
उपरम साध्यका लक्षण	,,
पक्षाघातकी चिकित्सा	८५३
माषादि क्वाथ	,,
ग्रंथिकादि तैल	,,
माषादि तैल	,,
सर्वांगके लक्षण	,,
सर्वांगवातकी चिकित्सा	८५४
स्थान-नाम-लक्ष्य-लक्षण पूर्वक वातव्याधियोंका वर्णन	,,
उपरोक्त वातव्याधियोंकी चिकित्सा	८५५
दूसरे प्रकारसे वातव्याधियोंकानिरूपण	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
इसुओंके भेदसे वातव्याधिके लक्षण	८५५
स्थानभेदोंसे वातव्याधियोंके भेद	,,
रसादिधातुगत वायुकी चिकित्सा	८५६
स्थान विशेषसे वातव्याधि निर्देश	८५७
कोष्ठके लक्षण	,,
कोष्ठगतकी चिकित्सा	,,
आमाशयगत वायुके लक्षण	,,
आमाशयके लक्षण	,,
आमाशयगत वायुकी चिकित्सा	,,
षड्धरणयोंस	८५८
पक्वाशयगत वायुके लक्षण	,,
पक्वाशयगत वायुकी चिकित्सा	,,
पेटमें रहनेवाली वायुकी चिकित्सा	,,
कोखमें रहनेवाली वायुकी चिकित्सा	,,
गुदागत वायुके लक्षण	,,
गुदागत वायुकी चिकित्सा	,,
हृदयगत वायुकी चिकित्सा	८५९
कान आदि इंद्रियोंमें प्राप्त हुई वायुके लक्षण	,,
कान आदि इंद्रियोंमें रहनेवाली वायुकी चिकित्सा	,,
शिरागत वायुके लक्षण	८५९
शिराओंमें रहनेवाली वायुकी चिकित्सा	,,
स्नायुगत वायुके लक्षण	,,
संधिगत वायुके लक्षण	,,
संधिगत वायुकी चिकित्सा	,,
वातरोगोंमें कष्टसाध्यत्व	८६०
वातव्याधिके उपद्रव तथा वातव्याधिकी याप्य स्थिति	,,
समस्थितिमें रहनेवाले पांच प्रकारके वायुके कार्य	,,
महामाषादि तैल	,,
द्वितीय महामाषादि	८६१
मध्यम नारायण तैल	,,
महानारायण तैल	८६३
महायोगराजगुग्गुल	८६५
रसोनकल्क	८६६
द्वितीय रसोनकल्क	,,
लशुन सेवन करनेकी तीसरी विधि	,,
रसोनाष्टक	,,
बातारिरस	८६७

ऊरुस्तंभाधिकार।

ऊरुस्तंभका विप्रकृष्ट सन्निकृष्ट निदानसंप्राप्तिपूर्वकलक्षण	८६८
ऊरुस्तंभका पूर्वरूप	,,
ऊरुस्तंभका रूप	,,
ऊरुस्तंभका अरिष्ट	८६९
ऊरुस्तंभकी चिकित्सा	,,
कुष्ठाद्य तैल	८७१
अष्टकटूरतैल	,,
द्विपंचमूलाद्य तैल	,,
महासैंधवादि तैल	,,
सैंधवाद्य तैल	८७२

आमवाताधिकार।

आमवातकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	८७२
आमका स्वरूप	,,
आमवातके सामान्य लक्षण	८७३
वाताधिक्य आमवातके लक्षण	८७३
आमवातके विशेष लक्षण	,,
आमवातकी साध्यासाध्यता	,,
आमवातकी चिकित्सा	,,
हिंग्वाद्य चूर्ण	८७५
पिप्पल्यादि चूर्ण	,,
पथ्याद्य चूर्ण	,,
रसोनादि कषाय	,,
रास्नापंचक क्वाथ	,,
पिप्पल्यादि क्वाथ	,,
शठ्यादि कल्क	,,
रास्ना उष्टक क्वाथ	८७६
चित्रकादि चूर्ण	,,
पुनर्नवादि चूर्ण	,,
नागर चूर्ण	,,
पंचकोल चूर्ण	,,
एरण्डतैल	,,
एरण्डतैल हरीतकी	,,
आरग्वधपत्र	,,
कटिग्रहके लक्षण चिकित्सा	,,
अमृताद्य चूर्ण	८७७
अलम्बुषादि चूर्ण	,,
द्वितीय अलम्बुषादि चूर्ण	,,
तृतीय अलम्बुषादि चूर्ण	८७८
वैश्वानर चूर्ण	,,
अशीतक चूर्ण	,,
शुंठी वाल्वक घृत	,,
शुंठी घृत	८७९
द्वितीय शुंठी घृत	,,
कांजिकाद्य घृत	,,
शृंगवेराद्य घृत	,,
अजमोदादि चूर्ण वटक	,,
योगराजगुग्गुल	८८०
प्रसारणी क्षेर	,,
सोंठशुंठी	,,
रसोनपिंड	८८१
प्रसारणी तैल	,,
द्विपंचमूलाद्य घृत	,,
बृहत्सैंधवाद्य तैल	,,
निरूह बस्ति	८८२
पथ्यापथ्य	८८२
भव्यसरास्नादि क्वाथ	,,
महारास्नादि क्वाथ	८८२
रास्नादशमूल क्वाथ	,,

पित्तव्याध्यधिकार।

पित्तव्याधियोंका विप्रकृष्ट निदान	८८३
पित्तके रोग	८८४

श्लेष्मव्याध्यधिकार।

श्लेष्मव्याधियोंका सामान्य रीतिसे विप्रकृष्ट निदान	८८४
कफके रोग	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
वातरक्ताधिकार ।	
वातरक्तका विप्रकृष्ट निदान	८८५
वातरक्तकी संप्राप्ति	,,
वातरक्तका पूर्वरूप	८८६
वाताधिक्य वातरक्तके लक्षण	,,
रक्ताधिक्य वातरक्तके लक्षण	८८७
पित्ताधिक्य वातरक्तके लक्षण	,,
कफद्विदोष और त्रिदोषाधिक्य वातरक्तके लक्षण	,,
वातरक्तके स्थान	८८८
वातरक्तके उपद्रव	,,
वातरक्तकी असाध्यता	,,
वातरक्तकी चिकित्सा	,,
लांगली गुटिका	८९४
बलाघृत	,,
अपर पिंडतैल....	,,
पारूषकघृत	,,
शतावरीघृत	,,
ऋषभघृत	,,
गुडूचीघृत	,,
द्वितीय गुडूची घृत	८९५
तृतीय गुडूची घृत	,,
चतुर्थ गुडूची घृत	,,
अमृताद्यघृत	,,
षष्ठ गुडूची घृत	८९६
महागुडूची घृत	,,
शतावर्यादितैल....	,,
महापिंडतैल	८९६
पिंडतैल	८९७
द्वितीय पिंडतैल	,,
महापद्मकतैल	,,
खड्डाक पद्मकतैल	,,
गुडूचीतैल	,,
द्वितीय गुडूची तैल	८९८
मृणालाद्य मिश्रक	,,
धत्तूराद्यतैल	,,
नागबलातैल	८९९
जीवकाद्यमिश्रक	,,
शतपाकबलातैल	,,
मधुकाद्यतैल	,,

विषय.	पृष्ठ.
शतपाक मधुकतैल	९००
सहस्रपाक बलातैल	,,
पुनर्नवाद्यगुग्गुलु	,,
शर्करासमगुग्गुलु	९०१
अमृताद्यगुग्गुलु...	,,
द्वितीय अमृताद्यगुग्गुलु	९०२
नवीन तथा पुराने गुग्गुलुके लक्षण	,,
चंद्रप्रभा गुटिका	,,
केशोरक गुग्गुलु	९०३
त्रिफलाद्यगुग्गुलु	९०४
सिंहनादगूगल	,,
द्वितीय सिंहनादगूगल	९०५
तृतीय सिंहनादगूगल	९०६
योगासारामृत	९०६
वातरक्तपर पथ्यापथ्य	९०७
मध्यमखंडे तृतीयभाग समाप्त ।	
शूलाधिकार ।	
शूलका सन्निकृष्ट निदान	९०८
वातज शूलके विप्रकृष्टनिदान और संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	,,
हृदयशूलके लक्षण	९०९
यकृत्प्लीहशूलके लक्षण	,,
वस्तिशूलके लक्षण	,,
पित्तज शूलके विप्रकृष्ट निदान संप्राप्ति तथा लक्षण	,,
कफज शूलके विप्रकृष्ट निदान संप्राप्ति तथा लक्षण	९१०
द्विदोषज शूलके लक्षण	,,
त्रिदोषज शूलके लक्षण ...	,,
आमसे हुए शूलके लक्षण	,,
दोषोंके भेदसे आमशूलके स्थानोंके भेद	९११
तंत्रांतरोक्त आमशूलके लक्षण	,,
शूलके उपद्रव ...	,,
शूलकी साध्यासाध्यता	,,
शूलके अरिष्ट	,,
शूलका भेद परिणामशूल	,,
अन्नद्रवनामक शूलके लक्षण	९१२
शूलकी चिकित्सा ...	,,

विषय.	पृष्ठ.
सूतिकास्वेद	,,
कार्पासास्थ्यादि स्वेद	,,
तिलादि गुटिका ...	९१३
वातज शूलकी चिकित्सा	,,
पित्तज शूलकी चिकित्सा	,,
कफज शूलकी चिकित्सा	९१४
आमशूलकी चिकित्सा	,,
कूष्माण्डक्षार	,,
परिणाम शूलकी चिकित्सा	,,
विडंगादिमोदक	९१५
शुंठ्यादि कल्क ...	,,
पथ्यादिलेह	,,
नारिकेलक्षार	,,
अन्नद्रव शूलकी चिकित्सा	,,
गुडमंडूर	९१६
शूलरोगमें अपथ्य	,,
उदावर्ताधिकार ।	
उदावर्तका विप्रकृष्ट निदान	९१७
उदावर्तका सामान्य लक्षण	,,
अधोवायुके रोकनेसे हुए उदावर्तके लक्षण	,,
विण्मारोधसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
मूत्रावरोधसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
जंभाई रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
आंसू रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
छींक रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
डकार रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
वमन रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	९१८
वीर्य रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
भूख रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
प्यास रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
श्वास रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	९१८
निद्राके रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्तके लक्षण	,,
कुपित वातजन्य उदावर्तके लक्षण	,,
उदावर्तके असाध्य लक्षण,...	९१९
आनाहके सामान्य लक्षण...	,,
आमसे हुए आनाहके लक्षण,,,	
मल संचय होनेसे उत्पन्न हुए आनाहके लक्षण ...	,,
उदावर्तकी चिकित्सा	,,
रूक्ष और वायुसे उत्पन्न हुए उदावर्तकी चिकित्सा...	९२०
सदनफलादि फलवर्ति	,,
नाराचचूर्ण	९२१
गुडाष्टक	,,
शुष्कमूलाद्यघृत	,,
आनाहकी चिकित्सा	,,
त्रिकट्वादिवर्ति ...	,,

गुल्माधिकार।

गुल्मके सन्निकृष्टविप्रकृष्ट-कारणपूर्वक लक्षण	९२१
गुल्मके पांच भेद	९२२
आर्तवसे हुआ गुल्म	,,
कोठेमें भी गुल्मके स्थानका नियम	,,
गुल्मके सामान्य लक्षण	,,
गुल्मका पूर्वरूप ...	,,
वातज गुल्मका निदान ...	९२३
वातज गुल्मके लक्षण	,,
पित्तजगुल्मका निदान	,,
पित्तजगुल्मके लक्षण	,,
कफज तथा त्रिदोषज गुल्मके कारण	,,
कफसे हुए गुल्मके लक्षण...	९२४
दो दोषोंसे हुए गुल्मकी कल्पना	,,
त्रिदोषज गुल्मके लक्षण ...	,,

विषय.	पृष्ठ.
आर्तवरूप रुधिरसे उत्पन्न हुए गुल्मके लक्षण	९२४
असाध्य गुल्मके लक्षण	९२५
गुल्मकी चिकित्सा	९२६
हिंग्वादि चूर्ण....	,,
क्षाराष्टकादि	९२७
वज्रक्षार	,,
गुल्मरोगीको त्याज्य पदार्थ.	९२८
रुधिरसे हुए गुल्मकी चिकित्सा....	,,

प्लीहयकृदधिकार।

प्लीहाका स्वरूप	९२८
प्लीहारोगके निदानसंप्राप्ति-पूर्वक लक्षण	९२९
रुधिरसे हुई प्लीहाके लक्षण.	,,
पित्तसे हुई प्लीहाके लक्षण.	,,
कफसे हुई प्लीहाके लक्षण.	,,
वातसे हुई प्लीहाके लक्षण.	,,
प्लीहाके असाध्य लक्षण	,,
शरीरावयवविशेषसे यकृत्का स्वरूप	,,
यकृत् रोग	,,
प्लीहारोगकी चिकित्सा	,,
यकृत्रोगकी चिकित्सा	९३०

हृद्रोगाधिकार।

हृदयरोगका विप्रकृष्ट निदान,	९३०
हृदय रोगके संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	९३१
वायुसंबंधी हृदयरोगके लक्षण,,	
पित्तसंबंधी हृदयरोगके लक्षण.	,,
कफसंबंधी हृदयरोगके लक्षण	,,
त्रिदोषज हृदयरोगके लक्षण.	,,
कृमिज हृदयरोगका निदान तथा संप्राप्ति	,,
कृमिज हृदयरोगके लक्षण.	९३२
हृदयरोगके उपद्रव	,,
हृदयरोगकी चिकित्सा	,,
अर्जुनघृत	,,
बलाद्य घृत	,,

मूत्रकृच्छ्राधिकार।

मूत्रकृच्छ्रका विप्रकृष्ट निदान	९३२
मूत्रकृच्छ्रके संप्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण	९३३
वातज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण....	,,
कफज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण....	,,
सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	,,
शल्यसे हुए मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	,,
विष्ठासे हुए मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	,,
वीर्यसे हुए मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	,,
पथरीसे हुए मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	९३४
शर्कराके उपद्रव	,,
वायुसे हुए मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा,	
पुनर्नवाद्य मिश्र	,,
पित्तसे हुए मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा....	,,
तृणपंचक मूल....	९३५
शतावर्यादि क्वाथ	,,
एर्वारुबीजादि पान	,,
हरीतक्यादि क्वाथ	,,
शतावरीघृत....	,,
त्रिकंटकाद्य घृत	,,
कफज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	,,
त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा....	९३६
अभिघातज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा....	,,
मलसे हुए मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	,,
वीर्यसे हुए मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा....	,,
पथरीसे हुए मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा....	,,
मूत्रकृच्छ्रकी सामान्य चिकित्सा	९३७
सुकुमारकुमारक पुनर्नवाद्यलेह	,,

मूत्राघाताद्यधिकार।

मूत्राघात होनेके कारण	९३८
वातकुंडलिकाके लक्षण	,,
अष्ठीलाके लक्षण	,,
वातबस्तिके लक्षण	९३९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
मूत्रतीतके लक्षण	९३९
मूत्रजठरके लक्षण	,,
मूत्रोत्संगके लक्षण	,,
मूत्रक्षयके लक्षण	,,
मूत्रग्रंथिके लक्षण	,,
मूत्रशुक्रके लक्षण	९४०
उष्ण वातके लक्षण	,,
मूत्रसादके लक्षण	,,
विड्विबंधके लक्षण	,,
बस्तिमुंडलके लक्षण	,,
बस्तिकुंडलकी असाध्यताके लक्षण	९४१
मूत्राघातकी चिकित्सा	,,
शिलोद्भिदादि तैल	९४२
भल्लातकघृत	,,
भल्लातकघृत	,,
विदारीघृत	९४३
क्षौद्रार्धभाग घृत	९४४
वर्ति	,,
अतिदेश	,,

अश्मर्यधिकार ।

पथरीके सन्निकृष्ट निदान	९४४
पथरीकी संप्राप्ति	९४५
पथरीका पूर्वस्वरूप	,,
पथरीके सामान्य लक्षण	,,
वातोल्वणसे हुई पथरीके लक्षण	,,
वातोल्वणतावाली पथरीकी चिकित्सा	,,
शुंठ्यादिकाथ	,,
एलादिकाथ	९४६
वरुणादि क्काथ	,,
पाषाणभेदाद्यघृत	,,
वीरतर्वादि गण	,,
पित्तोल्वणतासे हुई पथरीके लक्षण	,,
पित्ताश्मरीकी चिकित्सा कुशादिघृत	,,
कफोल्वणतासे हुई पथरीके लक्षण	९४७
कफाश्मरीकी चिकित्सा वरुणादि घृत	,,

विषय.	पृष्ठ.
वरुणादि गण	९४७
वीर्यकी पथरीका निदान	९४८
शुक्राश्मरीकी संप्राप्ति	,,
शुक्राश्मरीके लक्षण	,,
वीर्यकी पथरी शर्करारूप किस प्रकार होती है	,,
पथरीके उपद्रव	,,
अश्मरी, शर्करा, सिकताके अरिष्ट	९४९
अश्मरीकी चिकित्सा	,,
तृणपंचकमूलाद्य घृत	,,
वरुणतैल	९५०
कुशाद्य तैल	,,
सर्व प्रकारकी पथरियोंकी चिकित्सा	,,
वरुणाद्य चूर्ण	९५१
वरुणक गुड	,,
कुलत्थाद्य घृत	,,
शराद्य पंचमूलाद्य घृत	९५२
वरुणाद्य घृत	,,
वीरतराद्य तैल	,,
दूसरा वीरतराद्य तैल	,,
पुनर्नवाद्य तैल	९५३
वीरतरादि गणका उपयोग	,,

प्रमेहाधिकार ।

प्रमेहका विप्रकृष्ट निदान	९५३
प्रमेहकी संप्राप्ति तथा सन्निकृष्ट निदान	,,
प्रमेहकी संख्या तथा साध्यत्व	९५४
प्रमेहोंमें दोष तथा दूष्यका ज्ञान	,,
प्रमेहोंका पूर्वरूप	,,
प्रमेहोंके सामान्य लक्षण	,,
कफज १० प्रमेहोंके लक्षण	,,
पित्तज प्रमेहोंके लक्षण	९५५
वातज ४ प्रमेहोंके लक्षण	,,
कफज प्रमेहके उपद्रव	,,
पित्तसंबंधी प्रमेहोंके उपद्रव	,,
वातज प्रमेहके उपद्रव	,,
प्रमेहके अरिष्ट	,,

विषय.	पृष्ठ.
स्त्रियोंके प्रमेह न होनेका कारण	९५५
असाध्य मेहके लक्षण	,,
मधुमेहशब्दकी प्रवृत्तिमें कारण	९५६
दश प्रकारकी पिडिका	,,
दशप्रकारकी पिडिकाके लक्षण	,,
प्रमेहपिडिकाके दोषोंका निर्णय	९५७
विना प्रमेह पिडिकाओंका होना	,,
इन पिडिकाओंकी असाध्यता	,,
पिडिकाओंके उपद्रव	,,
प्रमेहरोगीको हितकारी पदार्थ	,,
प्रमेहरोगीको अहितकारी पदार्थ	,,
प्रमेहकी चिकित्सा	,,
त्रिकटुकाद्य मोदक	९५९
न्यग्रोधाद्य चूर्ण	९६०
लोहार्दिचूर्ण और गुडूचीरस	,,
त्रिकटुगुटिका	,,
दाडिमाद्य घृत	,,
गोक्षुरादिचूर्ण तथा गुटिका	९६१
सिंहामृत घृत	,,
धान्वंतरघृत	,,
अर्जुनाद्य घृत तथा अर्जुनाद्य तैल	९६२
सारलेह	,,
गोक्षुरकाद्यवलेह	,,
असनादियोग	९६३
शिलाजीत सोनामाखी तथा रूपामाखीप्रयोग	,,
प्रमेहसे हुई पिडिकाओंकी चिकित्सा	९६४
प्रमेहसे आरोग्य हुएकी परीक्षा	,,

मेदोऽधिकार ।

मेदोवृद्धिका निदान	९६४
मेदोवृद्धिकी संप्राप्ति	,,
मेदोवृद्धिके लक्षण	,,
मेदोवृद्धिकी चिकित्सा	९६५
अमृतादि गूगल	९६६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
दशांगगूगल ...	.... ९६६
त्र्यूषणादिगूगल	.... ९६७
लोहरसायन	.... ,,
लौहरिष्ट	.... ,,
व्योषाद्यसक्तुप्रयोग	.... ९६८
त्रिफलाद्यतैल	.... ,,
महासुगंधिततैल	.... ९६९
कार्श्याधिकार।	
कृशताका निदान	.... ९७०
कृशके लक्षण	.... ९७१
अत्यंत कृशताके रोग	.... ,,
बलवान् होनेका कारण	.... ,,
बलहीन होनेका कारण	.... ,,
कार्श्यकी चिकित्सा	.... ,,
अश्वगंधातैल ...	.... ,,
अश्वगंधाघृतादि	.... ,,
असाध्य कृशता	.... ,,
उदराधिकार।	
उदररोगोंका निदान	.... ९७२
उदररोगकी संप्राप्ति	.... ,,
उदररोगका सामान्य रूप.	,,
उदररोगकी सन्निकृष्ट निदानपूर्वक संख्या	.... ,,
वातोदरके लक्षण	.... ,,
पित्तोदरके लक्षण	.... ,,
कफोदरके लक्षण	.... ९७३
सन्निपातोदरके लक्षण	.... ,,
प्लीहोदरके लक्षण	.... ९७४
बद्धगुदोदरके लक्षण	.... ,,
क्षतोदरके लक्षण	.... ,,
जलोदरके लक्षण	.... ९७५
उदररोगकी साध्यासाध्यता.	,,
उदररोगकी चिकित्सा	.... ९७६
कुष्ठादिचूर्ण	.... ,,
लशुनतैल	.... ,,
पित्तोदर कफोदरकी चिकित्सा	९७७
नारायण चूर्ण....	.... ,,
नाराच्रचूर्ण	.... ९७८
वज्रकल्क	.... ,,
पुनर्नवादि क्वाथ	.... ,,

विषय.	पृष्ठ.
शोथाधिकार।	
शोथका विप्रकृष्ट निदान....	९७८
शोथके संप्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण	९७९
वायुसंबंधी सूजनके लक्षण.	,,
पित्तसंबंधी सूजनके लक्षण	९८०
कफसंबंधी सूजनके लक्षण	,,
दो दोषोंसे हुए सूजनके लक्षण	,,
सन्निपातसे हुए सूजनके लक्षण	,,
अभिघातसे हुए सूजनके लक्षण	,,
विषसे हुए सूजनके लक्षण	,,
किस स्थानमें स्थित दोष कहां शोथ करे है	.... ९८१
शोथके उपद्रव	.... ,,
शोथकी असाध्यता	.... ,,
शोथकी कष्टसाध्यता.	.... ,,
शोथकी चिकित्सा	.... ९८२
शोथकी सामान्य चिकित्सा	९८३
गुडादि वटिका	.... ,,
मानक घृत	.... ९८४
शुष्क मूलक तैल	.... ,,
वृद्धिविज्ञानाधिकार।	
वृद्धिका निदान और संख्या	९८४
वृद्धिकी संप्राप्ति	.... ,,
वातवृद्धिके लक्षण	.... ,,
पित्तवृद्धिके लक्षण	.... ,,
कफवृद्धिके लक्षण	.... ,,
रुधिरवृद्धिके लक्षण	.... ,,
मेदोवृद्धिके लक्षण	.... ,,
मूत्रकी वृद्धिके लक्षण	.... ,,
अन्त्रवृद्धिके लक्षण	.... ९८५
अन्त्रवृद्धिकी असाध्यता	.... ,,
अंत्रके निदान और लक्षण	,,
वृद्धिरोगकी चिकित्सा	.... ,,
वृद्धिनाशिका वटिका	.... ९८७
वदकी चिकित्सा	.... ,,
गलगण्डगण्डमालाग्रंथ्यर्बुदाधिकार।	
गलगंडके लक्षण	.... ९८७
गलगंडकी संप्राप्ति	... ९८८

विषय.	पृष्ठ.
वातज गलगंडके लक्षण	९८८
कफज गलगंडके लक्षण	,,
मेदसंबंधी गलगंडके लक्षण	,,
असाध्य गलगंडमाला	,,
गलगंडके लक्षण	,,
अपचीके लक्षण	९८९
अपचीकी साध्यासाध्यता....	,,
ग्रंथिके लक्षण....	,,
वातसंबंधी ग्रंथिके लक्षण....	,,
पित्तसंबंधी ग्रंथिके लक्षण....	,,
कफकी ग्रंथिके लक्षण	,,
मेदज ग्रंथिके लक्षण	९९०
शिराजन्य ग्रंथिके लक्षण	,,
ग्रंथिके कष्टसाध्यासाध्यता	,,
अर्बुदके संप्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण	,,
रुधिरजन्य अर्बुदका निदान संप्राप्ति तथा लक्षण	९९१
मांसार्बुदकी संप्राप्ति	,,
मांससे उत्पन्न हुए अर्बुदका निदान	,,
असाध्य अर्बुदके लक्षण	,,
अर्बुदका पाक न होनेका कारण	,,
गलगण्डकी चिकित्सा	९९२
गण्डमालाकी चिकित्सा	,,
कांचनार गुग्गुल	९९३
चक्रमर्द तैल	,,
गुंजादि तैल	,,
अपचीकी चिकित्सा	,,
चंदनादि तैल....	,,
व्योषादि तैल....	,,
ग्रंथि तथा अर्बुदकी चिकित्सा	९९४
श्लीपदाधिकार।	
श्लीपदके सामान्य कारण.	९९४
श्लीपदके सामान्य लक्षण....	,,
तीनों प्रकारके श्लीपदके सामान्य लक्षण	९९५
श्लीपदकी असाध्यता	,,
श्लीपदकी चिकित्सा	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
विद्रध्यधिकार ।	
विद्रधिके संप्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण	९९६
विद्रधिके छः प्रकार	,,
वातज विद्रधिके विशिष्ट लक्षण	,,
पित्तज विद्रधिके लक्षण ...	,,
कफज विद्रधिके लक्षण	,,
सान्निपातिक विद्रधिके लक्षण.	९९७
अभिघातज विद्रधिके संप्राप्तिपूर्वक लक्षण	,,
रुधिरजन्य विद्रधिके लक्षण.	,,
आभ्यंतरिक विद्रधियां	,,
स्थानविशेषसे रूपविशेष....	,,
विद्रधिके स्रवनेके मार्ग	९९८
साध्यासाध्यत्व	,,
बाहरकी विद्रधियोंकी साध्यासाध्यता	९९९
विद्रधिकी चिकित्सा	,,
व्रणशोथका संख्यापूर्वक सामान्य लक्षण	१०००
विशिष्टरूप	,,
अपक्व व्रणशोथके लक्षण....	,,
पकते हुए व्रणशोथके लक्षण.	,,
पक्वव्रणशोथके लक्षण	१००१
सूजनके पकनेमें मतांतर....	,,
गंभीरपाकके लक्षण ...	,,
पके हुए व्रणशोथसे राध न निकलनेमें दोष	१००२
व्रणशोथके पक्व अपक्व जाननेमें वैद्यके गुणदोष...	,,
व्रणशोथकी चिकित्सा	,,
सूजननाशक लेप	,,
सूजनपर काथादिसेचन.	१००३
त्रिम्लापन	१००४
रक्तमोक्षण	,,
पाचन	१००५
भेदन	,,
किसी विषयमें शस्त्रसे भेदन निषेध ...	,,
पीडन	,,

विषय.	पृष्ठ.
शोधन	१००५
रोपण	१००६
सवर्णताकारक लेप ...	१००७
व्रणरोगियोंको भोजन	,,
व्रणमें परिश्रमादिका त्याग.	,,
आगंतुक व्रणकी चिकित्सा.	१००८
जात्यादिघृत	,,
जात्यादि तैल ...	१००९
विपरीतमल्ल तैल ...	,,
अमृतादि गूगल	,,
अग्निदग्धकी चिकित्सा....	,,
सिक्थकादि घृत	१०१०
पटोलादि तैल	,,
व्रणग्रंथिकी चिकित्सा ...	,,
भग्नाधिकार ।	
भग्नके भेद	१०११
संधिभग्नके सामान्य लक्षण.	,,
विवर्तिताके लक्षण	,,
कांडभग्नके द्वादशभेद-निरूपण....	१०१२
कर्कटक आदि कांडभग्नके सामान्य लक्षण	,,
भग्नकी कष्टसाध्यता ...	१०१३
भग्नकी असाध्यता	,,
अस्थिविशेषमें भग्नविशेष	,,
भग्नकी चिकित्सा	१०१४
आभागूगल....	१०१५
लाक्षाद्यगूगल	,,
गंधतैल	,,
अवस्थानुसार भग्नका शांत होना	१०१६
भग्नकी विशेष संभाल	,,
विशेष उपदेश	,,
परहेज	१०१७
भग्न आरोग्यके लक्षण	,,
इति मध्यखण्डे चतुर्थो भागः ।	
नाडीव्रणाधिकार ।	
नाडीव्रणका संप्राप्तिपूर्वक शब्दार्थ....	१०१८
नाडीव्रणकी संख्या	,,

विषय.	पृष्ठ.
वातज नाडीव्रणके लक्षण	१०१८
पित्तज नाडीव्रणके लक्षण	,,
कफज नाडीव्रणके लक्षण	,,
त्रिदोषज नाडीव्रणके लक्षण	१०१९
शल्यसंबंधी नाडीव्रणके लक्षण	,,
नाडीव्रणकी साध्यता और कष्टसाध्यता	,,
नाडीव्रणकी चिकित्सा	,,
स्वर्जिकाद्य तैल ...	१०२०
सैंधवाद्यतैल....	,,
कुम्भीकाद्य तैल	,,
कर्चुरतैल	१०२१
भल्लातकाद्य तैल	,,
स्वर्जिकाद्य तैल	,,
सप्तांग तैल....	,,
भगंदराधिकार ।	
भगंदरका पूर्वरूप और रूप	१०२२
भगंदरका शब्दका अर्थ	,,
वातज शतपोनक भगंदरका लक्षण	,,
पैत्तिक उष्ट्रग्रीव भगंदरके लक्षण	१०२३
श्लैष्मिक परिस्रावि भगंदरके लक्षण	,,
त्रिदोषजन्य शंबूकावर्त...	,,
शल्यसंबंधी उन्मार्गि भगंदरके लक्षण ...	,,
भगंदरकी कष्टसाध्यता तथा साध्यता	,,
भगंदरकी चिकित्सा	,,
निष्यन्दन तैल ...	१०२५
निशाद्य तैल	,,
करवीरादि तैल	,,
नवकार्षिक गूगल ...	,,
भगंदरमें शस्त्रक्रिया कर्तव्य	,,
पथ्यापथ्य	१०२६
उपदंशाधिकार ।	
पांचों प्रकारके उपदंशके भिन्न २ लक्षण ...	१०२६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
उपदंशकी असाध्यता	१०२६
उपदंशकी उपेक्षाका फल	१०२७
उपदंशकी चिकित्सा	,,
वज्रादि गूगल	१०२९
करंजादि घृत	,,
भूनिंबाद्य घृत	,,
क्षतिदेश	,,
अंगारधूमाद्य तैल	,,
गोजिह्वातैल	१०३०
जम्ब्वाद्य तैल	,,
कौशातकीतैल	,,
पथ्य	,,
लिंगार्शके लक्षण	,,
लिंगार्शकी चिकित्सा	,,

शूकदोषाधिकार।

शूकदोषका निदान	१०३१
अश्वगंधादि तैल	,,
शूकदोषके अठारह भेद	,,
सर्षपिकाके लक्षण	,,
अष्ठीलिकाके लक्षण	,,
मथितके लक्षण	१०३२
कुंभिकाके लक्षण	,,
अलजीके लक्षण	,,
मुदितके लक्षण	,,
संमूढपिटकाके लक्षण	,,
अवमंथके लक्षण	,,
पुष्करिकाके लक्षण	,,
स्पर्शहानिके लक्षण	,,
उत्तमाके लक्षण	,,
अलपोनकके लक्षण	,,
त्वक्पाकके लक्षण	१०३३
शोणितार्बुदके लक्षण	,,
मांसार्बुदके लक्षण	,,
मांसपाकके लक्षण	,,
विद्रधिके लक्षण	,,
तिलकालकके लक्षण	,,
शूकदोषके असाध्य लक्षण	,,
शूकदोषकी चिकित्सा	,,
दार्वीतैल	१०३४
रसांजनलेप	,,

विषय.	पृष्ठ.

कुष्ठाधिकार।

कोढका निदान तथा संख्या	१०३४
सात महाकुष्ठोंके नाम	१०३५
ग्यारह क्षुद्र कोढोंके नाम	,,
कोढका पूर्वरूप	१०३६
कौनसे दोषसे कौनसा कोढ होता है	,,
कापालकुष्ठके लक्षण ...	,,
औदुम्बर कुष्ठके लक्षण.	१०३७
मंडल कुष्ठके लक्षण	,,
सिध्म कुष्ठके लक्षण	,,
काकण कुष्ठके लक्षण	,,
पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ...	,,
ऋक्षजिह्वक कुष्ठके लक्षण.	,,
गजचर्म क्षुद्र कुष्ठके लक्षण	१०३८
चर्मदल क्षुद्र कुष्ठके लक्षण	,,
विचर्चिका क्षुद्र कुष्ठके लक्षण	,,
विपादिका क्षुद्र कुष्ठके लक्षण	,,
पामाके लक्षण	,,
कच्छुनामक क्षुद्रकुष्ठके ल०	,,
दद्रु क्षुद्र कुष्ठके लक्षण	,,
विस्फोटक क्षुद्रकुष्ठके लक्षण	१०३९
किटिभ कुष्ठके लक्षण	,,
अलसक क्षुद्र कुष्ठके लक्षण	,,
शतारु कुष्ठके लक्षण	,,
सप्तधातुगत कुष्ठोंके लक्षण	,,
रसगत कुष्ठके लक्षण	,,
रुधिरगत कुष्ठके लक्षण....	,,
मांसगत कुष्ठके लक्षण	,,
मेदोगत कुष्ठके लक्षण	,,
मज्जागत कुष्ठके लक्षण	,,
शुक्रगत कुष्ठके लक्षण	१०४०
कुष्ठमें वातादि दोषोंकी उल्वणताके चिह्न	,,
कुष्ठकी साध्यासाध्यता	,,
कोढका अरिष्ट	१०४१
श्वित्रकुष्ठके लक्षण	,,
दोषभेदसे लक्षणभेद	,,
श्वित्रकी साध्यासाध्यता.	१०४२

विषय.	पृष्ठ.
कुष्ठादि रोगोंकी संसर्गता.	१०४२
कोढकी चिकित्सा	,,
पथ्यादि लेप	,,
सोमराज्युद्वर्तन	,,
पंचनिम्बकावलेह	,,
स्वायंभुवगुग्गुल	१०४३
एकविंशतिक गुग्गुलु	१०४४
कैशोरगूगल	,,
अमृतभल्लातकावलेह	,,
महाभल्लातकावलेह	१०४५
लघुमंजिष्ठादि क्वाथ	१०४६
मध्यमंजिष्ठादि क्वाथ	,,
बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ	१०४७
लघुमरिचादि तैल	,,
महामरिचादि तैल	,,
तालकेश्वररस	१०४८
गलितकुष्ठारि रस	,,
सिध्मकी चिकित्सा	१०४९
चर्मदलकी चिकित्सा	,,
पामाकी चिकित्सा	,,
आदित्यपाक तैल	,,
सैंधवादि तैल	,,
कच्छूकी चिकित्सा	,,
अर्कतैल	,,
कच्छूराक्षस तैल	,,
कृतमालादि कल्क	१०५०
दद्रूकी चिकित्सा	,,
श्वित्रकुष्ठकी चिकित्सा	,,
सोमराजीघृत	१०५१

शीतपित्त उदर्द कोठतथा उत्कोठ आदिका अधिकार।

शीतपित्तादिकी सन्निकृष्ट तथा विप्रकृष्ट निदान और संप्राप्ति ...	१०५१
शीतपित्तके पूर्वरूप	,,
शीतपित्तके लक्षण	,,
उदर्दके लक्षण	१०५२
कोठ उत्कोठके लक्षण ...	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय. पृष्ठ.

शीतपित्तादि रोगोंकी चिकित्सा १०५२
आर्द्रकखण्ड १०५३

विसर्पाधिकार ।

विसर्पका निदान १०५३
विसर्पके सात प्रकार ... ,,
विसर्पके दोष दूष्य .... ,,
वातज विसर्पके लक्षण ... ,,
पित्तज विसर्पके लक्षण १०५४
कफज विसर्पके लक्षण .... ,,
सान्निपातिक विसर्पके लक्षण ,,
त्रिदोषज आग्नेय विसर्पके लक्षण .... ,,
वायु कफ दो दोषोंसे हुए ग्रंथिविसर्पके लक्षण ,,
कफ पित्तसे हुए कर्दमक विसर्पके लक्षण १०५५
सान्निपातिक विसर्पके लक्षण ,,
आठवें विसर्पके लक्षण .... ,,
विसर्पके उपद्रव .... ,,
विसर्पकी साध्यासाध्यता ,,
विसर्पकी चिकित्सा १०५६
करंजतैल .... ,,

स्नायुरोगाधिकार ।

स्नायुका निदान तथा लक्षण १०५७
स्नायुरोगकी चिकित्सा.... ,,

विस्फोटकाधिकार ।

विस्फोटकका विप्रकृष्ट तथा सन्निकृष्ट निदान १०५८
विस्फोटकका सामान्य ल० ,,
वातज विस्फोटकके लक्षण ,,
पित्तज विस्फोटकके लक्षण ,,
कफज विस्फोटकके लक्षण ,,
कफ तथा पित्तसंबंधी विस्फोटकके ल० .... ,,
वात तथा पित्त विस्फोटकके ल० .... १०५९
वात तथा कफ विस्फोटकके ल० .... ,,

विषय. पृष्ठ.

त्रिदोषज विस्फोटकके ल० १०५९
रुधिरजन्य विस्फोटकके ल० ,,
विस्फोटकके भेद .... ,,
विस्फोटकके उपद्रव .... ,,
विस्फोटककी साध्य कष्टसाध्य और असाध्यता ,,
विस्फोटककी चिकित्सा १०६०

फिरंगरोगाधिकार ।

फिरंगशब्दकी निरुक्ति १०६०
फिरंगरोगका विप्रकृष्ट निदान १०६१
फिरंगरोगके पूर्वरूप .... ,,
फिरंग रोगके उपद्रव .... ,,
फिरंगकी साध्य कष्टसाध्य और असाध्यता .... ,,
फिरंगकी चिकित्सा .... ,,
कर्पूररस .... ,,
सप्ताशालिवटी १०६२
धूमप्रयोग .... ,,

मसूरिकाधिकार ।

मसूरिकाके विप्रकृष्ट सन्निकृष्ट निदान संप्राप्ति १०६३
मसूरिकाके पूर्वरूप .... ,,
वातज मसूरिकाके लक्षण.... ,,
पित्तज मसूरिकाके लक्षण.... ,,
रुधिरजन्य मसूरिकाके लक्षण १०६४
कफज मसूरिकाके लक्षण ....,,
त्रिदोषज मसूरिकाके लक्षण ,,
सप्तधातुगत मसूरिकाके लक्षण,,
रसगत मसूरिकाके लक्षण ,,
रक्तज मसूरिकाके लक्षण ,,
मांसगत मसूरिकाके लक्षण ,,
मेदोगत मसूरिकाके लक्षण ,,
अस्थिमज्जागत मसूरिकाके लक्षण .... ,,
शुक्रगत मसूरिकाके लक्षण १०६५
चर्मगत मसूरिकाके लक्षण ,,
रोमगत मसूरिकाके लक्षण ,,
मसूरिकाकी सुखसाध्यता ,,
मसूरिकाकी कष्टसाध्यता ,,

विषय. पृष्ठ.

मसूरिकाकी असाध्यता ... १०६६
मसूरिकाके अरिष्ट ... ,,
मसूरिकाके शोथविशेष.... ,,
मसूरिकाकी चिकित्सा .... ,,

शीतलाधिकार ।

शीतलास्वरूप १०६८
शीतलाका स्तोत्र १०६९
शीतलाका अन्यभेद १०७०
शीतलाका तीसरा भेद.... ,,
शीतलाका चौथा भेद १०७१
शीतलाका पांचवां भेद.... ,,
शीतलाका छठा भेद .... ,,
शीतलाका सातवां भेद .... ,,
शीतलाकी साध्यासाध्यता ,,
सातों प्रकारकी शीतलाकी सामान्य चिकित्सा ,,

क्षुद्ररोगाधिकार ।

पलितरोगका निदान तथा लक्षण १०७१
पलितकी चिकित्सा १०७२
इंद्रलुप्तका निदान संप्राप्ति तथा लक्षण .... ,,
इंद्रलुप्तकी चिकित्सा .... ,,
स्नुहीदुग्धादि तैल १०७३
दारुणकका निदान तथा लक्षण ... . ,,
दारुणकी चिकित्सा .... ,,
गुंजादि तैल .... ,,
अलंषिका निदान तथा ल० ,,
अलंषिकाकी चिकित्सा.... ,,
त्रिफलाद्य तैल .... ,,
इरिवेल्लिकाका निदान तथा लक्षण .... ,,
इरिवेल्लिकाकी चिकित्सा ,,
पनसिकाका निदान तथा लक्षण १०७४
पनसिकाकी चिकित्सा .... ,,
पाषाणगर्दभका निदान तथा ल० .... ,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
पाषाणगर्दभकी चिकित्सा	१०७४
मुखदूषिकाका निदान तथा लक्षण	,,
मुखदूषिकाकी चिकित्सा.	,,
मुखपर लेप करनेकी मात्रा लेपविधि	१०७५
अंगके ल०	,,
नीलिकाके ल०	,,
अंग तथा नीलिकाकी चिकित्सा	,,
कुंकुमाद्य तैल ...	,,
वल्मीकका निदान तथा ल०	१०७६
असाध्य वल्मीकके ल०	,,
वल्मीककी चिकित्सा	,,
मनःशिलाद्य तैल	१०७७
कक्षागंधनामाका निदान तथा ल०	,,
कक्षागंधनामाकी चिकित्सा	,,
अधिरोहिणीका निदान तथा लक्षण	,,
अधिरोहिणीकी चिकित्सा	,,
विदारिकाके लं० तथा निदान	,,
विदारिकाकी चिकित्सा.	१०७८
विप्पका निदान और ल०	,,
कुनखका निदान तथा लं०	,,
विप्प तथा कुनखकी चिकित्सा ...	,,
परिवर्तिकाका ल० तथा निदान	,,
परिवर्तिकाकी चिकित्सा	१०७९
अवपाटिकाका ल० तथा निदान	,,
अवपाटिकाकी चिकित्सा.	,,
निरुद्धप्रकशका निदान तथा ल०	,,
निरुद्धप्रकशकी चिकित्सा	,,
सन्निरुद्ध गुदाका निदान तथा ल०	१०८०
सन्निरुद्ध गुदाकी चिकित्सा	,,
वृषणकच्छूका निदान ल०	१०८०
वृषणकच्छूकी चिकित्सा..	,,
अहिपूतनका निदान लक्षण	,,
अहिपूतनकी चिकित्सा....	१०८१
गुदभ्रंशके लक्षण तथा निदान	,,
गुदभ्रंशकी चिकित्सा	,,
मूषकतैल	,,
शूकरदंष्ट्रके लक्षण	,,
शूकरदंष्ट्रकी चिकित्सा	,,
अनुशयीके लक्षण	१०८२
अनुशयीकी चिकित्सा	,,
अलसके लक्षण	,,
अलसकी चिकित्सा	,,
पाददारीके लक्षण	,,
पाददारीकी चिकित्सा	,,
उन्मत्ततैल....	१०८३
कदरके लक्षण	,,
कदरकी चिकित्सा	,,
तिलकालकके लक्षण	,,
मशकके लक्षण	,,
श्यावपिंडिकके लक्षण	,,
जतुमणिके लक्षण	,,
तिलकालक, मशक, जतुमणिकी चिकित्सा	१०८४
न्यच्छके लक्षण	,,
न्यच्छकी चिकित्सा	,,
पद्मिनीकंटकके लक्षण	,,
पद्मिनीकंटककी चिकित्सा	,,
निम्बादिघृत	,,
अजगल्लिकाके लक्षण	,,
अजगल्लिकाकी चिकित्सा.	,,
यवप्रख्याके लक्षण	१०८५
यंत्रालजीके लक्षण	,,
यंत्रालजी और यवप्रख्याकी चिकित्सा	,,
विवृताके लक्षण	,,
इन्द्रवृद्धाके ल०	,,
गर्दभिकाके लक्षण ...	,,
जालगर्दभके लक्षण	,,
विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्दभिका और जाल गर्दभकी किकित्सा	१०८६
कच्छपिकाके लक्षण	,,
कच्छपिकाकी चिकित्सा....	,,
शर्करार्बुदके ल०	,,
शर्करार्बुदकी चिकित्सा ...	,,
कारण और लक्षणसहित कितने एक विकार	,,

शिरोरोगाधिकार ।

शिरोरोगका निदान तथा संख्या ...	१०८७
वातज शिरोरोगके लक्षण	,,
पित्तज शिरोरोगके ल०....	,,
कफज शिरोरोगके ल०...	,,
सन्निपातज शिरोरोगके ल०	,,
रुधिरजन्य शिरोरोगके ल०	,,
रसादिधातुक्षयजन्य शिरोरोगके लक्षण	१०८८
कृमिज शिरोरोगके ल०	,,
सूर्यावर्तके लक्षण	,,
अनंतवातके लक्षण	,,
शंखकके लक्षण	१०८९
अर्धावभेदकका निदान तथा लक्षण	,,
शिरोरोगकी चिकित्सा	,,
शिरोवस्ति	१०९०
षड्बिंदुतैल	१०९१
कुमारीतैल	,,
पथ्यादि क्वाथ	१०९२
सर्व प्रकारके शिरोरोगकी सामान्य चिकित्सा....	,,

नेत्ररोगाधिकार ।

नेत्रका प्रमाण	१०९३
नेत्रके अंग	,,
नेत्रमंडलमें उत्पन्न होनेवाले ७८ रोग	,,
सुश्रुतके कहे ७६ रोग	,,
सामान्य रीतिसे नेत्ररोगोंके निमकृष्ट तथा सन्निकृष्ट निदान	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
नेत्ररोगकी संप्राप्ति	१०९४
दृष्टिरोगोंके लक्षण	,,
नेत्रमें चार पटल	,,
प्रथम पटलगत दोषोंका स्वभाव	,,
दूसरे पटलके दोष	१०९५
तीसरे पटलके दोष ...	,,
चौथे पटलके दोष	१०९६
दृष्टिरोगोंके नामसंख्या	,,
दूसरे छः रोगोंके नाम	,,
चरकमें कहे २ रोगोंके नाम	,,
वातज लिंगनाशके लक्षण	,,
पित्तज लिंगनाशके ल०	१०९७
कफज लिंगनाशके ल०	,,
सन्निपातजन्य लिंगनाशके ल०	,,
रक्तजन्य लिंगनाशके ल०	,,
परिम्लायी लिंगनाशके ल०	,,
वातादिजन्य नेत्रके वर्णानुसार लिंगनाशके छः प्रकार	,,
वातादि कारणभूतसे उत्पन्न नेत्रमंडलके रूपविशेष	,,
दोषोंमें व्यथा दाह तथा भारीपन आदिका संग्रह	१०९८
पित्तविदग्ध दृष्टिके लक्षण	,,
कफविदग्ध दृष्टिके लक्षण	,,
धूमदर्शीके लक्षण	१०९९
ह्रस्वजात्यके-ल०	,,
नकुलांध्यके ल०	,,
गंभीरिकाके ल०	,,
अनिमित्त लिंगनाशके लक्षण तथा निदान...	,,
अनिमित्त लिंगनाशका निदान स्वरूप तथा लक्षण	,,
कृष्णमंडलगत रोग	११००
सक्षण शुक्रके लक्षण	,,
लक्षणशुक्रकी साध्यासाध्यता	,,
अक्षण शुक्रके लक्षण	,,
अक्षण शुक्रकी कष्टसाध्यता	,,

विषय.	पृष्ठ.
अक्षण शुक्रकी असाध्यता	११००
अक्षणशुक्रकी साध्यासाध्यता	११०१
पाकात्ययके लक्षण	,,
अजकाजातके लक्षण	,,
श्वेतभागमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंके नाम	,,
प्रस्तार्यर्मके लक्षण	,,
शुक्लार्मके लक्षण	,,
रक्तार्मके लक्षण	११०२
अधिमांसार्मके लक्षण	,,
स्नाय्वर्मके लक्षण	,,
शुक्तिके लक्षण	,,
अर्जुनके लक्षण	,,
पिष्टकके लक्षण	,,
शिराजातक लक्षण	,,
शिराज पिडकाके लक्षण	,,
बलासग्रथितके लक्षण	,,
वर्त्मजरोगलक्षण	,,
उत्संगिनीके लक्षण	११०३
कुंभीकाके लक्षण	,,
पोथकीके लक्षण	,,
वर्त्मशर्कराके लक्षण	,,
अर्शोवर्त्मके लक्षण	,,
शुष्कार्शके लक्षण	,,
अंजननामिकाके लक्षण	,,
बहलवर्त्मके लक्षण	११०४
वर्त्मसंध्रकके ल०	,,
क्लिष्टवर्त्मके लक्षण	,,
वर्त्मकर्दमके लक्षण	,,
श्याववर्त्मके लक्षण	,,
प्लक्ष्णवर्त्मके लक्षण	,,
अक्लिन्नवर्त्मके लक्षण	,,
वातहतवर्त्मके लक्षण	,,
वर्त्मार्बुदके लक्षण	,,
निमेषके लक्षण	११०५
शोणितार्शके लक्षण	,,
लगणके ल०	,,
बिसवर्त्मके ल०	,,
कुंचनके ल०	,,

विषय.	पृष्ठ.
पक्ष्मरोग ल०	११०५
पक्ष्मकोपके ल०	,,
पक्ष्मशातके ल०	,,
संधिजरोग	११०६
संधियोंमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंके नाम तथा संख्या	,,
पूयालसके लक्षण	,,
उपनाहके लक्षण	,,
स्रावोंकी संप्राप्ति	,,
पित्तज स्रावके लक्षण	,,
कफज स्रावके लक्षण	,,
सान्निपातज स्रावके लक्षण.	,,
रुधिरजन्य स्रावके लक्षण.	११०७
पर्वणी अलजीके लक्षण....	,,
जंतुग्रंथिके लक्षण	,,
समस्त नेत्रमें होनेवाले रोग	,,
चार अभिष्यंदके नाम	,,
वाताभिष्यंदके लक्षण	,,
पित्ताभिष्यंदके लक्षण	,,
कफाभिष्यंदके लक्षण	११०८
रक्ताभिष्यंदके लक्षण	,,
अधिमंथरोग	,,
अधिमंथके लक्षण	,,
शोथपाक और अशोथपाकके लक्षण	,,
हताधिमंथके ल०	११०९
वातपर्यायके ल०	,,
शुष्काक्षिपाकके ल०	,,
अन्यतोवातके ल०	,,
अम्लाध्युषितके ल०	,,
शिरोत्पातके ल०	१११०
शिराहर्षके ल०	,,
नेत्रकी सामताके ल०	,,
नेत्रकी निरामताके ल०	,,
नेत्ररोगकी चिकित्सा	,,
सेक विधि	१११९
सेकविधि आश्योतन विधि	१११२
पिंडी विधि	,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
विडालक विधि	११११३
तर्पण विधि	.... ,,
पुटपाक विधि	... ११११४
अंजन विधि	... ११११५
अंजनदृष्टिप्रसादनी सलाई	११११६
अंजन आंजनेकी विधि	.... ,,
स्नेहनी वटिका	.... ,,
रोपणी वटी....	.... ,,
लेखनी चंद्रोदयवटिका	,,
पुष्पहरी वर्ति	.... ११११७
स्नेहन रसक्रिया	.... ,,
रोपण रसक्रिया	.... ,,
लेखन रसक्रिया	.... ,,
स्नेहन चूर्ण	.... ,,
रोपण चूर्ण	.... ,,
लेखन चूर्ण	.... ११११८
मुक्तादि महांजन	.... ,,
नयनशोणांजन	.... ,,
चंद्रोदयावटी	.... ११११९
चंद्रप्रभा वटी	.... ,,
कणाप्रयोग मरिचप्रयोग	,,
त्रिफलाद्य घृत	.... ,,
द्वितीय त्रिफलाद्य घृत	.... ११११२०
वासकादि क्वाथ	.... ,,

कर्णरोगाधिकार ।

कर्णशूलके संप्राप्तिपूर्वक ल०	११११२१
कर्णशूलकी असाध्यता	.... ,,
कर्णनादका ल०	.... ,,
बाधिर्यका ल०	.... ,,
बाधिर्यकी असाध्यता	.... ,,
कर्णक्ष्वेडके ल०	.... ,,
कर्णस्रावके ल०	.... ,,
कर्णकंडूके ल०	.... ११११२२
कर्णगूथके ल०	.... ,,
प्रतिनाहके ल०	.... ,,
कृमिकर्णके ल०	.... ,,
पतंग आदि कानमें घुसनेके चिह्न	.... ,,
दो प्रकारकी कर्णविद्रधियोंके ल०	.... ,,

विषय.	पृष्ठ.
कर्णपाकके ल०	.... ११११२२
पूतिकर्णके ल०	.... ११११२३
कानकी सूजन अर्बुद और अर्शके ल०	.... ,,
वातज कर्णरोगके ल०	.... ,,
पित्तज कर्णरोगके ल०	... ,,
कफज कर्णरोगके ल०	.... ,,
सन्निपातिक कर्णरोगके ल०	,,
पारपोटकके निदानसहित ल०	,,
उत्पातके ल०	.... ११११२४
उन्मथके ल०	.... ,,
दुःखवर्धनके ल०	.... ,,
परिलेहीके ल०	... ,,
कानके रोगोंकी चिकित्सा	,,
बिल्वतैल	.... ११११२५
कुष्ठतैल	.... ,,
कानकी पालीके रोगोंकी चिकित्सा	.... ११११२६

नासारोगाधिकार ।

नाकके रोगोंके नाम और संख्या	.... ११११२६
पीनसके लक्षण	.... ११११२७
पूतिनस्यके ल०	.... ,,
नासापाकके ल०	... ,,
पूयशोणितके ल०	.... ,,
क्षवथुके ल०	.... ,,
आगंतुकक्षवथुके ल०	.... ११११२८
भ्रंशथुके ल०	.... ,,
दीप्तिके ल०	.... ,,
प्रतिनाहके ल०	.... ,,
स्रावके ल०	.... ,,
नासाशोषके ल०	.... ,,
प्रतिश्यायका सामान्य निरूपण	.... ,,
प्रतिश्यायका सद्योजनक निदानपूर्वक संप्राप्ति	११११२९
प्रतिश्यायकी चयादिक्रमजनक निदानपूर्वक संप्राप्ति	,,
प्रतिश्यायका पूर्वरूप	.... ,,
वातज प्रतिश्यायका ल०	,,

विषय.	पृष्ठ.
पित्तज प्रतिश्यायका ल०	११११३०
कफज प्रतिश्यायका ल०	.... ११११३०
त्रिदोषज प्रतिश्यायका ल०	,,
दुष्ट प्रतिश्यायका ल०	.... ,,
रुधिरजन्य प्रतिश्यायका ल०	,,
प्रतिश्यायकी असाध्यता	.... ,,
प्रतिश्यायमें कृमि	.... ,,
वृद्धिको प्राप्त हुआ प्रतिश्याय	११११३१
पीनसरोगके ल०	.... ,,
पक्व पीनसके ल०	.... ,,
नाकके रोगोंकी चिकित्सा	,,
पक्व पीनसके ल०	.... ,,
व्योषादि वटी	.... ११११३२
शिग्रुतैल	... ,,

मुखरोगाधिकार ।

मुखका स्वरूप	.... ११११३३
मुखके रोगोंकी संख्या	.... ,,
मुखके रोगोंका निदान	.... ,,
मुख ओंठके रोगोंकी निदानपूर्वक संप्राप्ति	.... ,,
वातज ओंठरोगके ल०	.... ११११३४
कफज ओंठरोगके ल०	.... ,,
पित्तज ओंठरोगके ल०	.... ,,
त्रिदोषज ओंठरोगके ल०	,,
रुधिरजन्य ओंठरोगके ल०	,,
मांसज ओंठरोगके ल०	,,
मेदोज ओंठरोगके ल०	,,
अभिघातज ओंठरोगके ल०	,,
ओंठरोगकी चिकित्सा	.... ,,
प्रतिसारण विधि	.... ११११३५
दांतोंकी जडके रोग	.... ,,
दंतरोगोंके नाम और संख्या	,,
शीतादके ल०	.... ,,
दंतपुप्पुटके ल०	.... ,,
दंतवेष्टकके ल०	.... ११११३६
सौषिरके ल०	.... ,,
महासौषिरके ल०	.... ,,
परिदरके लक्षण	.... ,,
उपकुशके लक्षण	.... ,,
वैदर्भके लक्षण	.... ,,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
खल्लिवर्धनके लक्षण	११३६
अधिमांसके लक्षण	,,
५ प्रकारकी दंतनाडियोंके लक्षण	११३७
दंतविद्रधिके लक्षण	,,
दंतवेष्टरोगोंकी चिकित्सा.	,,
मुस्तादिवटिका	,,
सहचराद्य तैल	,,
जात्यादितैल	११३९
दालनके लक्षण ...	,,
कृमिदंतके ल०	,,
भंजनकके ल०	,,
दंतहर्षके ल०	,,
दंतशर्कराके ल०	,,
कपालिकाके लक्षण ...	११४०
स्यावदंतके लक्षण	,,
करालके लक्षण	,,
दंतरोगकी चिकित्सा	,,
लाक्षाद्यतैल....	,,
जिह्वारोग	११४१
जिह्वारोगोंका निदान तथा नाम संख्या	,,
वातज जिह्वारोगके लक्षण.	,,
पित्तज जिह्वारोगके लक्षण.	,,
कफज जिह्वारोगके लक्षण.	,,
अलासके ल०	,,
उपजिह्वके ल०	११४२
जिह्वारोगोंकी चिकित्सा.	,,
तालुरोगके नाम और संख्या	,,
गलशुंडीके ल०	,,
तुंडीकेरीके ल०	११४३
अधिषके ल०	,,
कच्छपके ल०	,,
तालुबुंदके ल०	,,
मांससंघातके ल०	,,
तालुपुप्पुटके ल०	,,
तालुशोषके ल०	,,
तालुपाकके ल०	,,
तालुरोगोंकी चिकित्सा	,,

विषय.	पृष्ठ.
गलरोगाधिकार ।	
गलरोगोंके नाम	११४४
५ रोहिणियोंकी निदानपूर्वक सामान्य संप्राप्ति	,,
वातज रोहिणीके लक्षण	,,
पित्तज रोहिणीके ल०	,,
कफज रोहिणीके ल०	,,
त्रिदोषज रोहिणीके ल०	११४५
रक्तरोहिणीके ल०	,,
रोहिणीके मारनेकी अवधि	,,
कंठशालूकके ल०	,,
अधिजिह्वकके ल०	,,
वलयके ल०	,,
बलासके ल०	,,
एकवृंदके ल०	,,
वृंदके ल०....	,,
शतघ्नीके ल०	११४६
गिलायुके ल०	,,
कंठविद्रधिके ल०	,,
गलौघके ल०	,,
स्वरघ्नके ल०	,,
मांसतानके ल०	,,
विदारीके ल०	११४७
गलरोगोंकी चिकित्सा ...	,,
गलरोगोंकी सामान्य चिकित्सा	,,
समस्त मुखरोग	,,
वातज मुखरोगके ल०	११४८
पित्तज मुखरोगके ल० ...	,,
कफज मुखरोगक ल०	,,
असाध्य मुखरोगके ल०	,,
संपूर्णमुखरोगकी चिकित्सा	,,
विषाधिकार ।	
स्थावर विषके स्थान	११५०
जंगमविषके सोलह स्थान.	,,
स्थावरविषके सामान्य कार्य	,,
मूलविषके सामान्य कार्य.	,,
पत्रविषके कार्य	,,
फलविषके कार्य	११५१
पुष्पविषके कार्य	,,

विषय.	पृष्ठ.
त्वचा सार और निर्यास-विषके कार्य ...	११५२
क्षीरविषके कार्य	,,
धातुविषके कार्य ...	,,
उपरोक्त नौ विषोंके विशेष कार्य	,,
कंदविषके विशेष कार्य.	,,
विषकी परीक्षा	,,
विषके दश गुण	,,
उक्त दश गुणोंके कार्य.	,,
विषलिप्तशस्त्रहतके लक्षण.	११५३
विष देनेवालेके लक्षण	,,
जंगमविषके सामान्य कार्य	,,
सर्पविष	,,
भोगी आदिके दंशके लक्षण तथा भेद	११५३
देश और कालविशेषसे डसे हुएकी असाध्यता	,,
दर्वीकरजातिके सर्पोंके विष	,,
जिनको विष तत्काल मार देता है उनको कहते हैं	,,
दूषी विष	११५४
दूषी विषके कार्य	,,
दूषी विषके ल० ...	११५५
दूषी विषके प्रकोपका समय	,,
प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूप.	,,
प्रकुपित दूषी विषके रूप.	,,
दूषी विषके भेदोंसे विकार भेद	,,
दूषी विषशब्दकी निरुक्ति	,,
दूषी विष साध्य याप्य असाध्य...	,,
कृत्रिम विषके ल०	११५६
गरके कार्य	,,
लूताकी उत्पत्ति, अर्थ, संख्या	,,
कष्टसाध्य लूताओंके दंशके लक्षण	,,
असाध्य लूताओंके दंशके लक्षण	११५७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
प्राणनाशक सौवर्णिक आदि आठ भेद	११५७
मूषेके विषके लक्षण	,,
प्राणनाशक चूहेके विषके कार्य	,,
कृकलासदंशके ल०	,,
असाध्य वृश्चिकदंशके ल०	,,
कणभविषके ल०	,,
उच्चटिंगविषके ल०	११५८
सविष मंडूकदंशके ल०	,,
सविष मत्स्यके ल०	,,
जलौकाविषके कार्य	,,
गृहगोधिकाके विषके ल०	,,
शतपदीके विषके कार्य	,,
मशकविषके कार्य	,,
असाध्य मशकदंशके ल०	,,
मक्षिकादंशके ल०	,,
व्याघ्रादि विषोंके कार्य	,,
विष उतरे हुए मनुष्यके ल०	,,
विषोंकी चिकित्सा	११५९
जंगमविषकी चिकित्सा	,,
मृत्युपाशच्छेदी घृत	,,

स्त्रीरोगाधिकार ।

प्रदररोगका विप्रकृष्ट निदान और संख्या	११६०
प्रदरके सामान्य लक्षण....	,,
कफज प्रदरके ल० ...	११६१
पित्तज प्रदरके लक्षण	,,
वातज प्रदरके ल०	,,
त्रिदोषजनित प्रदरके ल०	,,
अत्यंत रुधिर बहनेके उपद्रव	,,
असाध्य प्रदररोगवाली स्त्रीकी चिकित्सा त्याज्य	,,
शुद्धार्तवके ल०	,,
प्रदरकी चिकित्सा	११६२
दार्व्यादि काथ	,,

सोमरोगाधिकार ।

सोमरोगका निदान तथा संप्राप्ति	११६३
सोमरोगके ल०	११६३
सोगकी चिकित्सा	,,
सोमरोगमें मूत्रातीसार	११६४

योनिरोगाधिकार ।

योनिरोगोंका निदान	११६४
योनिरोगोंके नाम	,,
उपरोक्त योनिरोगोंके लक्षण	,,
असाध्य योनिरोग	११६५
योनिकंदके निदान	,,
योनिकंदके ल०	११६६
वातादिभेदसे योनिकंदके रूप	,,
योनिरोगोंकी चिकित्सा	,,
वंध्याचिकित्सा ...	,,
गर्भास्थापक योग	११६७
साध्य योनिरोगोंकी सामान्य चिकित्सा	,,
त्रिफलाघृत....	११६८
सर्व प्रकारके योनिरोगोंपर फलघृत	११६९
योनिकंदकी चिकित्सा	,,
गर्भिणीरोगोंकी चिकित्सा	११७०
गर्भस्राव तथा गर्भपातका निदान	,,
गर्भपातका पूर्वरूप	,,
स्रावकी अवधि	,,
गर्भपात होनेसे दृष्टांत	११७१
गर्भस्रावकी चिकित्सा	,,
उत्पलादि गण	,,
गर्भपातके उपद्रव	,,
गर्भ स्थानांतर जानेमें उपद्रव	,,
गर्भपातके उपद्रवोंकी चिकित्सा	,,
गर्भिणीस्त्रीकी महीने २ चिकित्सा ...	११७२
वातशुष्कगर्भकी चिकित्सा	११७३
प्रसवका समय	११७४
प्रसवमासमें प्रसवोपाय...	,,
प्रसवमें विलंब होनेकी चिकित्सा	,,
मूढगर्भका निदान तथा संप्राप्तिपूर्वक ल०	११७४
प्रथम चार प्रकारके मूढगर्भके ल० और नाम	११७५
मूढगर्भके आठ प्रकार	,,
असाध्य मूढगर्भिणी ...	११७६
गर्भके मरणके कारण	,,
गर्भिणीके अन्य असाध्य ल०	,,
मूढगर्भकी चिकित्सा	११७७
गर्भच्छेदन प्रकार	,,
क्षतादिकी चिकित्सा	,,
अम्बरके उपद्रव	११७८
उदरस्थित अंबरकी चिकित्सा	,,
मक्कल्लशूलका निदान तथा संप्राप्ति पूर्वक ल०	,,
मक्कल्लकी चिकित्सा ...	,,
प्रसूताको हितकारी	११७९
सूतिकारोगका निदान	,,
सूतिकारोग	,,
प्रसूताज्वरादिरोगोंका विशेष निदान	,,
सूतिकारोगकी चिकित्सा	,,
देवदार्वादि काथ	११८०
पंचजीरकपाक	,,
सौभाग्यशुंठी	,,
प्रसूतास्त्रीको पथ्य करनेकी अवधि	११८१
स्तनरोगसंप्राप्ति	,,
स्तनरोगके ल०	,,
स्तनरोगकी चिकित्सा	,,

बालरोगाधिकार ।

बालरक्षा करनेमें उपदेश	११८२
बालग्रहोंके नाम	,,
बालग्रहोंकी उत्पत्ति	,,
बालग्रहग्रहणके कारण	११८३
सामान्य बालग्रहग्रस्तके ल०	,,
विशेषग्रहग्रस्तके बालकोंके लक्षण	११८४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय.	पृष्ठ.
सामान्यग्रहजुष्टोंकी चिकित्सा	११८५
अष्टमंगलघृत	,,
विशेष ग्रहग्रस्त बालकोंकी चिकित्सा	,,
स्कंदग्रहजुष्टकी चिकित्सा	,,
स्कंदापस्मारजुष्टकी चिकित्सा	११८६
शकुनीग्रहजुष्टकी चिकित्सा	११८७
रेवतीग्रहजुष्टकी चिकित्सा	११८८
पूतनाग्रहजुष्टकी चिकित्सा	११८९
गंधपूतनाग्रहजुष्टकी चिकित्सा	,,
शीतपूतनाग्रहजुष्टकी चिकित्सा	११९०
मुखमंडिकाजुष्टकी चिकित्सा	,,
नैगमेयग्रहजुष्टकी चिकित्सा	११९१
बालरोगोंके निदान तथा लक्षण	,,
तालुकंटकके ल०	११९२
महापद्मकके ल०	,,
कुकूणकके ल०	,,
गुदपाकके ल०	,,
अहिपूतनके ल०	,,
अजगल्लीके ल०	११९३
परिगर्भके ल०	,,
दंतोद्भेदरोग	,,
बालरोगोंकी चिकित्सा	,,
नहीं बोलनेवाले बालकोंके भीतरके रोगोंको जाननेका उपाय	११९४
बालकके ज्वरादि रोगोंकी चिकित्सा	,,
भद्रमुस्तादि क्वाथ	,,
चतुर्भद्रिकावलेह	११९५
बिल्वादि क्वाथ	११९५
समंगादि क्वाथ	,,
विडंगादि चूर्ण	,,
मोचरसादि यवागू	,,
नागरादि क्वाथ	,,
लाजादि चूर्ण	,,
रजन्यादि चूर्ण	,,
मुस्तकादि स्वरस	११९६
केसरावलेहिका	,,
धान्यादि पान	,,
द्राक्षादि चूर्ण	,,
कटुकरोहिणी अवलेह	,,
दुग्धवमिघ्न अवलेह	,,
सैंधवादि अवलेह	,,
कणाद्यवलेह	,,
बालकोंकी कृशताहर योग	,,
बालकोंके सूजनपर लेप	११९७
बालकोंके क्षत, विसर्प विस्फोटक तथा ज्वरपर क्वाथ	,,
बालकोंके सिध्म पामा तथा विचर्चिकापर लेप	,,
बालकोंके मुखस्रावपर क्वाथ	,,
बालकोंके मुखपाकपर प्रलेप	,,
बालकोंके रोनेपर चूर्ण	,,
तालुकंटकघ्न कल्क	,,
कुकूणकहर लेप	,,
बालकोंकेनाभि शोथपर स्वेद	,,
नाभिपाकपर तैल तथा अवधूलन ...	,,
बालकोंकी गुदापाकघ्न रोग	,,
अहिपूतनपर लेप	११९८
परिगर्भिकका उपाय	,,
दांत निकलनेके समयके रोगोंपर उपाय	११९८
बालकोंके सामर्थ्यवर्धक प्रयोग	,,
लाक्षादि तैल	,,

भावप्रकाशे उत्तरखंडम् ।

वाजीकरणाधिकार ।

विषय.	पृष्ठ.
नपुंसकके लक्षण, संख्या, निदान	११९९
असाध्य नपुंसकके ल०	१२००
नपुंसककी चिकित्सा करनेकी सामान्य विधि	,,
क्लैब्यकी चिकित्सा	,,
वाजीकरण वस्तु	,,
रतिवर्धन	१२०१
मदनमंजरी वटी	,,
वस्तांड कच्छपांड	१२०२
क्षीरतिवल्लभपूगपाक	,,
कामेश्वरमोदक	१२०३
महाखंडकूष्माण्ड	,,
आम्रपाक	,,
चंदनादि तैल	१२०४
मधुपक्व हरीतकी	१२०५
वानरीवटिका	,,
आकारकरभादि वटिका	१२०६

रसायनाधिकार ।

रसायनके ल०	१२०६
रसायनका फल तथा विधि	,,
रसायनका प्रयोग ...	,,
लोहगूगल	१२०७
रसायनका विशेष फल	१२०८

इत्यनुक्रमणिका समाप्त ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीवेंकटेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः ।

भाषाटीकासमेतः ।

पूर्वखण्डम् ।

मंगलाचरणम् ।

गजमुखममरप्रवरं सिद्धिकरं विघ्नहर्त्तारम् ।
गुरुमवगमनयनप्रदमिष्टकरीमिष्टदेवतां वंदे ॥ १ ॥

अन्वयः—अहं भावमिश्रः गजमुखं नाम गणेशं वन्दे कथंभूतं गणेशं, अमरप्रवरं, अमरेषु प्रवरं नाम अत्यंतश्रेष्ठं, पुनः कथंभूतं गणेशं, सिद्धिकरं अणिमादयः अष्टौ सिद्धयः ताः करं नाम कर्त्तारम्, उक्तं चामरे ' अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः ॥ ' पुनः कथंभूतं गणेशं विघ्नहर्तारम् पुनः निजगुरुं वन्दे कथंभूतं गुरुं अवगमनयनप्रदं नाम ज्ञानदृष्टिप्रदं पुनः इष्टदेवतां वन्दे कथं भूतां इष्टदेवतां इष्टकरीं नाम मनोवांछितफलकरीमित्यन्वयः ॥ १ ॥

भाषा—मैं भावमिश्र सब देवताओंमें श्रेष्ठ अणिमादिक अष्टसिद्धिके देनेवाले विघ्नोंके हरनेवाले श्रीगणेशजीको तथा ज्ञानदृष्टिके देनेवाले अपने गुरुको तथा मनोवांछित फलके देनेवाले अपने इष्टदेवताको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

कवेरुक्तिः ।

आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाभवद्भूमौ । प्रथमं लिखामि तमहं नानातंत्राणि संदृश्य ॥ २ ॥

भाषा—आयुर्वेद अर्थात् वैद्यकशास्त्रका जिस प्रकार पृथ्वीमें आगमन हुआ तिसको मैं अनेक शास्त्रोंका अवलोकन कर प्रथम लिखता हूं ॥२॥

आयुर्वेदस्य लक्षणम् ।

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥३॥

भाषा—जिस शास्त्रमें जीवनके अर्थात् प्राणके हिताहित अर्थात् न्यूनाधिक्य करनेवाली वस्तु तथा रोगोंका निदान रोगके प्रथम उत्पत्तिका कारण और रोगोंके नाशका उपाय कहा होय सो विद्वानोंकरके आयुर्वेद कहा जाता है ॥ ३ ॥

आयुर्वेदस्य निरुक्तिः ।

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥ ४ ॥

भाषा—जिस शास्त्रके द्वारा मनुष्य आयुको पाता है और जानताभी है तिसी कारणसे मुनीश्वरोंने उसे आयुर्वेद कहा है ॥ ४ ॥

शरीरजीवयोर्योगो जीवनं तेनावच्छिन्नः काल आयुः । आयुर्वेदद्वारा आयुष्याणि अनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि ज्ञात्वा तेषां सेवनत्यागाभ्यामारोग्येण आयुर्विन्दति । तेनैव हेतुना परस्यापि आयुर्वेत्ति च ॥

भाषा—शरीर और जीव अर्थात् प्राण इन दोनोंका योग वही जीवन है और उससे घिरा हुआ काल आयु कहाता है. इस आयुके हिताहित द्रव्य अर्थात् वस्तु गुण कर्मोको आयुर्वेदके द्वारा जानकर उनके सेवन तथा त्यागसे अर्थात् हित वस्तुके सेवन और अहित वस्तुके परित्यागसे मनुष्य रोगरहित सुखपूर्वक उत्तम आयुको पाता है इसी प्रकार औरोंकीभी आयुको जानता है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आयुर्वेदप्रादुर्भावस्तत्रादौ ब्रह्मणः प्रादुर्भावः।
विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् ।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम् ५॥

भाषा-आदिमें ब्रह्माजी अथर्ववेदके सर्वस्व सार अर्थ लेकर आयुर्वेदको प्रकाश कर अपने नामसे एक लक्ष श्लोकोंकी ऋजु अर्थात् सरल संहिता बनाते हुए ॥ ५ ॥

ततः प्रजापतिं दक्षं दक्षं सकलकर्मसु ।
विधिधींनरीधिं साङ्गमायुर्वेदमुपादिशत् ॥६॥

भाषा-तिसके उपरांत ब्रह्माजी वही आयुर्वेद सांग अर्थात् अंगसहित सब कार्योंमें चतुर बुद्धिके सागर दक्ष प्रजापतिको पढाते हुए ॥ ६ ॥

दक्षप्रादुर्भावः ।

अथ दक्षः क्रियादक्षः स्वर्वैद्यो वेदमायुषः ।
वेदयामास विद्वांसौ सूर्यांशौ सुरसत्तमौ ॥७॥

भाषा-तिसके अनंतर क्रियामें चतुर राजा दक्ष सूर्यके पुत्र देवताओंमें श्रेष्ठ देवताओंके वैद्य विद्वान् अश्विनीकुमारोंको आयुर्वेदको पढाते हुए७॥

अश्विनीसुतप्रादुर्भावः ।

दक्षादधीत्य दस्रौ संततनुतः संहितां स्वीयाम् । सकलाचेकित्सकलोकप्रतिपत्तिविवृद्धये धन्याम् ॥ ८ ॥

भाषा-तदनंतर अश्विनीकुमार दक्षसे पढकर सब वैद्योंकी चतुरताकी वृद्धिके अर्थ अपनी उत्तम संहिता बनाते भये ॥ ८ ॥

स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेण रुषाऽथ तत् ।
अश्विभ्यां संहितं तस्मात्तौ जातौ यज्ञभागिनौ ॥ ९ ॥

भाषा-इन्हीं अश्विनीपुत्रोंने क्रोधयुक्त भैरवकरके कटे हुए ब्रह्माके शिरको जबसे जोडा तबसे यज्ञमें भाग पाने लगे ॥ ९ ॥

देवासुररणे देवा दैत्यैर्यैः सक्षताः कृताः । अक्षतास्ते कृताः सद्यो दस्राभ्यामद्भुतं महत् १०

भाषा-फिर इन अश्विनीकुमारोंका यह अति अद्भुत कर्म हुआ जो कि इन्होंने देवासुर संग्राममें राक्षसोंकरके घायल करे हुए देवताओंको बहुत जल्दी अच्छा किया ॥ १० ॥

वज्रिणोऽभूद्भुजस्तम्भः स दस्राभ्यां चिकित्सितः । सोमाक्षिपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः ॥ ११ ॥

भाषा-फिर इन्हीं अश्विनीकुमारोंने इंद्रके भुजस्तंभ अर्थात् जकडे हुए हाथको संभाला और किसी समय अमृतसे पतित हुए चंद्रमाको इन्हीं अश्विनीकुमारोंने सुखी किया ॥ ११ ॥

विशीर्णा दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च ।
शशिनो राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यां ते चिकित्सिताः ॥ १२ ॥

भाषा-किसी समय दक्षप्रजापतिके यज्ञमें पूषा नाम देवताके टूटे हुए दांत व भगदेवताके नष्ट हुए नेत्र व चंद्रमाका राजरोग ये सभी इन्हीं अश्विनीकुमारोंसे चिकित्सा किये गये ॥ १२ ॥

भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन्विकृतिं गतः ।
वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यां पुनर्युवा १३

भाषा-भृगुवंशी च्यवन वृद्ध होनेके कारण विकृतिरूपको प्राप्त हो गये थे तिनको कामी जान इन्हीं अश्विनीकुमारोंने वीर्य, वर्ण और स्वरसे युक्त फिर युवा बनाया ॥ १३ ॥

एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषजां वरौ ।
बभूवतुर्भृशं पूज्यावेन्द्रादीनां दिवौकसाम् १४

भाषा-इन कर्मोंकरके तथा औरभी बहुत कर्मोंकरके ये दोनों वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार इंद्रादिक देवताओंके बडे भारी पूज्य होते हुए ॥ १४ ॥

इन्द्रप्रादुर्भावः ।

संदृश्य दस्रयोरिन्द्रः कर्माण्येतानि यत्नवान् ।
आयुर्वेदं निरुद्वेगं तौ ययाचे शचीपतिः १५

भाषा-अश्विनीकुमारोंके इस प्रकार अद्भुत कामोंको देख उद्योगी इंद्र यत्नपूर्वक उनसे इस चमत्कार दिखलानेवाले आयुर्वेदको मांगता हुआ ॥ १५ ॥

नासत्यौ सत्यसन्धेन शक्रेण किल याचितौ ।
आयुर्वेदं यथाधीतं ददतुः शतमन्यवे ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–तब इंद्रकरके प्रार्थना किये हुए अश्विनीकुमारोंने जिस प्रकार अध्ययन किया था वे उसी प्रकार आयुर्वेद इन्द्रको पढाते हुए ॥ १६ ॥

नासत्याभ्यामधीत्यैव आयुर्वेदं शतक्रतुः ।
अध्यापयामास बहूनात्रेयप्रमुखान्मुनीन् १७॥

भाषा–तदनंतर अश्विनीकुमारोंसे अध्ययन कर इन्द्रने वही आयुर्वेद आत्रेयादिक बहुतसे मुनियोंको पढाया ॥ १७ ॥

आत्रेयप्रादुर्भावः ।

एकदा जगदालोक्य गदाकुलमितस्ततः ।
चिन्तयामास भगवानात्रेयो मुनिपुंगवः॥ १८॥

भाषा–एक समय मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् आत्रेयजी सब जगत्को रोगसे व्याकुल देखकर चिंता करने लगे ॥ १८ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि कथं लोका निरामयाः ।
भवन्ति सामयानेतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम् १९

भाषा–क्या करूं ? कहां जाऊं ? ये लोग कैसे नीरोग होंय इन रोगी पुरुषोंको मैं नहीं देख सकता हूं ॥ १९ ॥

दयालुरहमत्यर्थं स्वभावो दुरतिक्रमः । एतेषां दुःखतो दुःखं ममापि हृदयेऽधिकम् ॥ २० ॥

भाषा–क्योंकि मैं अत्यंत दयालु हूं और मेरा स्वभाव पलट नहीं सकता और इन रोगी पुरुषोंके दुःखसे मेरेभी हृदयमें अधिक दुःख होता है ॥ २० ॥

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम् ।
इति निश्चित्य गतवानात्रेयस्त्रिदशालयम् २१॥

भाषा–मैं मनुष्योंके नीरोग होनेके अर्थ अवश्य आयुर्वेदको पढूंगा ऐसा निश्चय करके आत्रेयजी स्वर्गको जाते भये ॥ २१ ॥

तत्र मन्दिरमिन्द्रस्य गत्वा शक्रं ददर्श सः ।
सिंहासनसमासीनं स्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥२२॥
भासयन्तं दिशो भासा भास्करप्रतिमं त्विषा ।
आयुर्वेदमहाचार्यं शिरोधार्यं दिवौकसाम् २३

भाषा–फिर तहां इन्द्रके स्थानमें जाकर सूर्यके समान, अपनी छबिसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए देवता ऋषियोंकरके गायमान आयुर्वेदके महानाचार्य देवताओंके पूज्य इन्द्रको सिंहासनपर बैठे हुए देखा ॥ २२ ॥ २३ ॥

शक्रस्तु तं निरीक्ष्यैव त्यक्तसिंहासनः स्थितः ।
तमग्रे पूजयामास भृशं भूरितपःकृशम्॥२४॥
कुशलं परिपप्रच्छ तथागमनकारणम् ।
स मुनिर्वक्तुमारेभे निजागमनकारणम् ॥ २५॥

भाषा–तदनंतर इन्द्र तपस्या करनेसे अति दुर्बल आते हुए आत्रेयजीको देख सिंहासनसे उतर आगे जाकर कुशलपूर्वक आनेका कारण पूंछकर आत्रेयजीका पूजन करता भया, तब आत्रेयमुनिभी अपने आगमनका हेतु कहने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥

देवराज न जानासि दिव एव यतो भवान् ।
विधात्रा विहितो यत्नात्त्रिलोकीलोकपालकः२६

भाषा–हे देवराज ! आप सिर्फ स्वर्गकेही अधिपति नहीं हो किन्तु ब्रह्माजीने आपको त्रिलोकीका प्रतिपालक बनाया है ॥ २६ ॥

व्याधिभिर्व्यथिता लोकाः शोकाकुलितचेतसः । भूतले सन्ति सन्तापं तेषां हन्तुं कृपां कुरु ॥ २७ ॥

भाषा–इस हेतु तुमसे हमारी यह विनय है कि भूमिमें जो पुरुष व्याधियोंसे पीडित होकर शोक सन्तापसे विकल हृदयवाले हो रहे हैं उनका ताप दूर करनेके लिये दया कीजिये॥२७॥

आयुर्वेदोपदेशं मे कुरु कारुण्यतो नृणाम् ।
तथेत्युक्त्वा सहस्राक्षोऽध्यापयामास तं मुनिम् ॥ २८ ॥

भाषा–संसारी मनुष्योंकी करुणा विचारकर हमको आयुर्वेदकी शिक्षा प्रदान करिये यह वचन श्रवण करके दयानिधि शक्र (इन्द्र) तथास्तु कहकर उन आत्रेय मुनीश्वरको आयुर्वेद पठन कराते हुए ॥ २८ ॥

मुनीन्द्र इन्द्रतः साङ्गमायुर्वेदमधीत्य सः ।
अभिनन्द्य तमाशीर्भिराजगाम पुनर्महीम् २९

भाषा–इस तरह शक्रसे सांग आयुर्वेद पठन करके तथा निज आशिषोंसे शक्रको खुश करके मुनिश्रेष्ठोत्तम आत्रेयजी पुनः भूमिको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथात्रेयो मुनिश्रेष्ठो भगवान्करुणाकरः ।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे नरवर्गानुकम्पया ३०॥
ततोऽग्निवेशं भेडं च जातूकर्णं पराशरम् ।
क्षीरपाणिं च हारितमायुर्वेदमपाठयत् ॥३१॥

भाषा-तत्पश्चात् मुनियोंमें श्रेष्ठ आत्रेयजी पुरुषोंके ऊपर दयायुक्त होकर आत्रेयनामक संहिताको बनाते हुए, फिर उस संहिताको अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि और हारीत इन छः चेलाओंको पठाते हुए ॥ ३० ॥ ३१ ॥

तन्त्रस्य कर्त्ता प्रथममग्निवेशोऽभवत्पुरा ।
ततो भेडादयश्चक्रुः स्वं स्वं तन्त्रं कृतानि च ॥ ३२ ॥ श्रावयामासुरात्रेयं मुनिवृन्देन वन्दितम् । श्रुत्वा च तानि तंत्राणि हृष्टोऽभूदात्रिनन्दनः ॥ ३३ ॥

भाषा-इन चेलाओंमें प्रथम अग्निवेश तन्त्रकर्ता भये, तत्पश्चात् भेड आदि आचार्योंनेभी अपने २ नामके तन्त्र रचित किये और स्वयं २ रचित किये हुए तन्त्रश्रेष्ठोत्तम आत्रेयमुनिको श्रवण कराये, उन तन्त्रोंको श्रवणकरके आत्रेयमुनिजी अधिक आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

यथावत्सूत्रितं दृष्ट्वा प्रहृष्टा मुनयोऽभवन् ।
दिवि देवर्षयो देवाः श्रुत्वा साध्विति चाब्रुवन् ॥ ३४ ॥

भाषा-और वह तन्त्र अतिसुन्दर रचे थे इस हेतु उनको श्रवण करते हुए, अन्य मुनि, पुरुष तथा स्वर्गके देवर्षिसहित देवताभी आनन्दित होकर साधु साधु ऐसा उच्चारते हुए ॥ ३४ ॥

भरद्वाजप्रादुर्भावः ।

एकदा हिमवत्पार्श्वे दैवादागत्य सङ्गताः ।
मुनयो बहवस्तेषां नामभिः कथयाम्यहम् ३५॥
भरद्वाजो मुनिवरः प्रथमं समुपागतः । ततोऽङ्गिरास्ततो गर्गो मरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ ३६ ॥
पुलस्त्योऽगस्तिरसितो वसिष्ठः सपराशरः ।
हारीतो गौतमः सांख्यो मैत्रेयश्च्यवनोऽपि च ॥ ३७ ॥ जमदग्निश्च गार्ग्यश्च कश्यपः काश्यपोऽपि च । नारदो वामदेवश्च मार्कण्डेयः कपिञ्जलः ॥ ३८ ॥ शाण्डिल्यः सह कौण्डिन्यः शाकुनेयश्च शौनकः । आश्वलायनसांकृत्यौ विश्वामित्रः परीक्षतः ॥ ३९ ॥ देवलो गालवो धौम्यः काम्यकात्यायनावुभौ । काङ्कायनो वैजपेयः कुशिको बादरायणः ॥४०॥
हिरण्याक्षश्च लौगाक्षिः शरलोमा च गोभिलः ।
वैखानसा वालखिल्यास्तथैवान्ये महर्षयः ४१॥
ब्रह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च ।
तपसस्तेजसा दीप्ता ह्यमाना इवाग्नयः॥४२॥

भाषा-एक समय हिमालयनामक पर्वतके निकट दैवगतिसे अनेक महर्षि आकर उपस्थित हुए. मैं उनके भिन्न २ नाम वर्णन करता हूं. भरद्वाज, अंगिरा, गर्ग, मरीचि, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अगस्त्य, असित, वशिष्ठ, पराशर, हारीत, गौतम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, गार्ग्य, कश्यप, काश्यप, नारद, वामदेव, मार्कण्डेय, कपिंजल, शांडिल्य, कौण्डिन्य, शाकुनेय, शौनक, आश्वलायन, सांकृत्य, विश्वामित्र, परीक्षित्, देवल, गालव, धौम्य, काम्य, कात्यायन, कांकायन, वैजपेय, कुशिक, बादरायण, हिरण्याक्ष, लौगाक्षि, शरलोमा, गोभिल, वैखानसगण, वालखिल्यगण ये समस्त तथा ऐसेही ब्रह्मज्ञान और यमनियमके निधि तपके प्रतापसे होमी हुई प्रचंड अग्निके तुल्य दीप्तिवान् अन्य महर्षि पुरुषभी आकर उपस्थित हुए ॥ ३५-४२ ॥

सुखोपविष्टास्ते तत्र सर्वे चक्रुः कथामिमाम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ॥४३॥

भाषा-वहां बैठकर सब मुनि यह कथन करने लगे कि, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारोंका मूल कारण देहही कहा गया है ॥४३॥

तपःस्वाध्यायधर्माणां ब्रह्मचर्यव्रतायुषाम् ।
हर्त्तारः प्रसृता रोगा यत्र तत्र च सर्वतः॥४४॥
रोगाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहरा दृष्टा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वांग-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीडाकराः । धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषु महा-
विघ्नस्वरूपा बलात् प्राणानाशु हरन्ति सन्ति
यदि ते क्षेमं कुतः प्राणिनाम् ॥ ४५ ॥

भाषा–परन्तु तपस्या, वेदादिका पठन, धर्म, ब्रह्मचर्य आदिक व्रत और आयुके हरण कर्ता रोग जहां तहां सब स्थानोंमें फैले हुए हैं. ये रोग प्राणियोंके देहको दुर्बल, आभाहीन, तथा कृश करनेवाले और इन्द्रियोंकी सामर्थ्य नष्ट करनेवाले समस्त शरीरोंमें पीडादिक प्राप्त करनेवाले, धर्म आदिक चारों वर्गोंमें उपद्रवस्वरूप होकर प्राणियोंके प्राणोंको हरण करनेवाले यदि भूमिमें विस्तारपूर्वक फैले हुए हैं तो बिचारे प्राणियोंको सुख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

तत्तेषां प्रशमाय कश्चन विधिश्चिन्त्यो भवद्भि-
र्बुधैर्योग्यैरित्यभिधाय संसदि भरद्वाजं मुनिं
तेऽब्रुवन् । त्वं योग्यो भगवन् सहस्रनयनं
याचस्व लब्धं क्रमादायुर्वेदमधीत्य यं गदभ-
यान्मुक्ता भवामो वयम् ॥ ४६ ॥

भाषा–इस हेतु उन रोगोंके क्षयके अर्थ कोई ऐसा प्रयत्न आप विद्वान् पुरुषोंको करना आवश्यक है, क्योंकि तुम लोग सर्वथा उचित हो ऐसा समाज (सभामण्डल) में उच्चार कर सम्पूर्ण मुनीश्वर भरद्वाज मुनिसे बोले हे कृपासिन्धो ! आप समस्तोंमें अति श्रेष्ठ योग्य हो, इस कारण आपही शक्रसे उस आयुर्वेदको मांग लीजियेगा कि जिससे हम लोग क्रमानुसार पठन कर बीमारियोंके डरसे मुक्त हो जावें ॥ ४६ ॥

इत्थं स मुनिभिर्योग्यैः प्रार्थितो विनयान्वितैः ।
भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठो जगाम त्रिदशालयम् ४७॥

भाषा–इस तरह प्रार्थनापूर्वक उन सम्पूर्ण मुनीश्वरोंकरके विनय किये हुए मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी त्रिदिव (स्वर्ग) को यात्रा करते हुए ॥ ४७ ॥

तत्रेन्द्रभवनं गत्वा सुर्षिगणमध्यगम् ।
दृष्टवान्वृत्रहंतारं दीप्यमानमिवानलम् ॥४८॥

भाषा–तहां शक्रके मंदिरमें प्राप्त होकर देवता ऋषिगणोंके बीच बैठे हुए वृत्रासुरके मारनेवाले अग्निके सदृश दीप्तिवान् इन्द्रको देखते हुए ॥ ४८ ॥

दृष्ट्वैव स मुनिं प्राह भगवान् मघवा मुदा ।
धर्मज्ञ स्वागतं तेऽथ मुनिं तं समपूजयत्॥४९॥

भाषा–और ऐश्वर्यादिगुणयुक्त महाराज इन्द्र-नेभी मुनिको दृष्टिगत कर हे धर्मज्ञ ! आनन्दपूर्वक अर्थात् आपका आना श्रेष्ठ हुआ है ऐसा कहकर उनका अर्चन किया ॥ ४९ ॥

सोऽभिगम्य जयाशीर्भिरभिनन्द्य सुरेश्वरम् ।
ऋषीणां वचनं सम्यक् श्रावयामास तत्त्वतः५०

भाषा–तत्पश्चात् भरद्वाज मुनिभी शक्रसे मिलकर उनको स्वयं आशीर्वादोंसे आनन्द कर ऋषियोंके वाक्योंको श्रवण कराते हुए ॥ ५०॥

व्याधयो हि समुत्पन्नाः सर्वप्राणिभयङ्कराः ।
तेषां प्रशमनोपायं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ५१ ॥

भाषा–कि हे भगवन् महाराज इन्द्र ! समस्त जीवधारियोंको भयदायक अधिकसे विकार प्रगट हुए हैं उनके शमनके अर्थ कोई यथार्थ प्रयत्न कहिये ॥ ५१ ॥

अपाठयन्मुनिं साङ्गमायुर्वेदं शतक्रतुः ।
जीवेद्वर्षसहस्राणि देही नीरुङ् निशम्य यम्५२

भाषा–ऐसे वाक्य श्रवण कर महाराज शक्रजी भरद्वाज मुनिसे उस सांग आयुर्वेदको पढाते हुए कि जिसको श्रवण करके प्राणी रोगरहित होकर १००० सालतक जीवता रहता है ॥ ५२ ॥

सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामुनिः ।
यथावदचिरात्सर्वं बुबुधे तन्मना मुनिः॥५३॥

भाषा–और महामुनि भरद्वाजजी सुचित्त होकर उस अपार (अगम्य) तीन काण्डवाले (हेतु, लिंग और औषधात्मक तीन स्कंधोंसे युक्त) आयुर्वेदको अल्पही समयमें यथार्थ समझते हुए ॥ ५३ ॥

तेनायुः सुचिरं लेभे भरद्वाजो निरामयम् ।
अन्यानपि मुनीश्चक्रे नीरुजः सुचिरायुषः५४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-जिससे भरद्वाजजी आरोग्यसाहित बडी अवस्थावाले होकर अन्यान्य मुनियोंकोभी रोगहीन दीर्घावस्थावाले करते हुए ॥ ५४ ॥

तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः । गुणान्द्रव्याणि कर्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥ ५५ ॥ आरोग्यं लेभिरे दीर्घमायुश्च सुखसंयुतम् । आयुर्वेदोक्तविधिनाऽन्येऽपि स्युर्मुनयो यथा ॥ ५६ ॥

भाषा-तत्पश्चात् भरद्वाज महाराजजीने वह शास्त्र भारद्वाजसंहिता नामसे रचित किया कि जिससे उत्पत्तिज्ञानस्वरूप चक्षुओंके द्वारा समस्त ऋषि पुरुषभी गुण द्रव्य प्रदार्थ कर्मोंको विचार कर तथा उस शास्त्रमें कही हुई रीतिका आश्रय कर उस तरह आरोग्य और ऐश्वर्यसंयुक्त दीर्घावस्थाको प्राप्त होते हुए कि जैसे आगे आयुर्वेदमें कही हुई रीतिसे पुराने मुनि पुरुष आरोग्यतासहित सुखैश्वर्यसंयुक्त दीर्घावस्थावाले हो गये हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

चरकप्रादुर्भावः ।

यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः । तदा शेषश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ ५७॥ अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदं च लब्धवान् । एकदा स महीवृत्तं द्रष्टुं चर इवागतः ॥ ५८ ॥

भाषा-जब कि मत्स्यावतार धारण करके विष्णुभगवान्ने वेदका उद्धार किया तब वहांही श्रीशेषजीमहाराजने मत्स्यभगवान्से अंगोंसमेत समस्त वेदपठन किया उसीमेंसे अथर्वणवेदके अन्तर्गत आयुर्वेदकी प्राप्ति हुई और एक समय वेही श्रीशेषजी भूमिका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त समझनेके अर्थ चर (जासूस) के तुल्य वेष धारण कर लोकमें आते भये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

तत्र लोकान् गदैर्ग्रस्तान् व्यथया परिपीडितान् । स्थलेषु बहुषु व्यग्रान् म्रियमाणांश्च दृष्टवान् ॥ ५९ ॥

भाषा-और यहांपर अधिकसे रोगग्रस्त (व्याधिसे पीडित) व्याकुल तथा अनेक स्थानोंपर रोगोंसे मृत्युको प्राप्त भये पुरुषोंको देखा॥५९॥

तान् दृष्ट्वातिदयायुक्तस्तेषां दुःखेन दुःखितः । अनन्ताश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ६०॥

भाषा-उन जीवोंको देख अत्यन्तदयासंयुक्त श्रीशेषजी महाराज उनके कष्टसे कष्टित होकर रोगोंकी शान्तिके लिये प्रयत्न स्मरण करते हुए ॥ ६० ॥

साञ्चन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूव ह । प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्गवेदिनः ॥६१ ॥

भाषा-ऐसा स्मरण करके स्वयंही वेदवेदांगके समझनेवाले पवित्र तथा प्रचलित किसी मुनिके बालक होते हुए ॥ ६१ ॥

यतश्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः । तस्माच्चरकनाम्नासौ ख्यातश्च क्षितिमण्डले६२

भाषा-जो वे चरके तुल्य होकर प्राप्त हुए थे और उनको किसीनेभी नहीं पहिचाना, इस हेतु चरक नामसे भूमिमें प्रसिद्ध भये ॥ ६२ ॥

स भाति चरकाचार्यो वेदाचार्यो यथा दिवि । सहस्रवदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजां कृतः ६३ आत्रेयस्य मुनेः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन्। मुनयो बहवस्तैश्च कृतं तन्त्रं स्वकं स्वकम्६४ तेषां तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता। चरकेणात्मनो नाम्ना ग्रंथोऽयं चरकः कृतः६५॥

भाषा-ये वेही प्रत्यक्ष श्रीशेषजीका अंश भगवान् (चरकाचार्य) सुरगुरु (बृहस्पति) के बराबर विख्यात हैं, कि जिन्होंने बीमारियोंका क्षय किया और पूर्वकथित आत्रेयमुनिजीके चेले अग्निवेश आदिक मुनियोंके रचित किये हुए शास्त्रोंको पवित्रता तथा शुद्धतापूर्वक संचित करके चरक नामक पुस्तक रचित किया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

धन्वन्तरिप्रादुर्भावः ।

एकदा देवराजस्य दृष्टिर्निपतिता भुवि । तत्र तेन नरा दृष्टा व्याधिभिर्भृशपीडिताः६६ तान्दृष्ट्वा हृदयं तस्य दयया परिपीडितम् । दयार्द्रहृदयः शक्रो धन्वन्तरिमुवाच ह ॥६७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–एक समय इन्द्रकी दृष्टि भूमिपर पडी तब दृष्टिगत हुआ कि पुरुष व्याधियोंसे ग्रसित हो रहे हैं, इस तरह उनको देखकर चित्त दयासे पीडित भया तब दयार्द्र होकर इन्द्रने धन्वन्तरिसे कहा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

धन्वन्तरे सुरश्रेष्ठ भगवन् किञ्चिदुच्यते ।
योग्यो भवसि भूतानामुपकारपरो भव ॥६८॥

भाषा–हे सुरश्रेष्ठ ! हे भगवन् ! हे धन्वन्तरिजी ! मैं आपसे कुछ प्रार्थना करता हूं कि आप योग्य हैं इस हेतु प्राणियोंके ऊपर उपकार करनेमें तत्पर हो जाइये ॥ ६८ ॥

उपकाराय लोकानां केन किं न कृतं पुरा । त्रैलोक्याधिपतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादिरूपवान् ६९

भाषा–क्योंकि पुरुषोंके उपकारार्थ किसने क्या नहीं किया ? पूर्व समयमें तीनों लोकोंके अधिपति श्रीविष्णु मत्स्यादिस्वरूपवाले हुए ॥६९॥

तस्मात्त्वं पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव ।
प्रतीकाराय रोगाणामायुर्वेदं प्रकाशय ॥७०॥

भाषा–इस हेतु आप भूतलमें जाइये और वहांपर काशीपुरीके नृप होकर बीमारियोंको नष्ट करनेके वास्ते आयुर्वेदको प्रकाशित कीजिये ॥ ७० ॥

इत्युक्त्वा सुरशार्दूलः सर्वभूतहितेप्सया ।
समस्तमायुषो वेदं धन्वन्तरिमुपादिशत् ॥७१॥

भाषा–इस प्रकार कहकर देवश्रेष्ठ इन्द्रने समस्त प्राणियोंके हितार्थकी आकांक्षासे सर्व आयुर्वेद धन्वन्तरिको पढाया ॥ ७१ ॥

अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिः पुरा ।
आगत्य पृथिवीं काश्यां जातो बाहुजवेश्मनि ॥ ७२ ॥

भाषा–इस तरह धन्वन्तरि पूर्वसमयमें इन्द्रसे आयुर्वेद पठन कर भूमिमें प्राप्त होकर काशीजिके नृप बाहुजके मन्दिरमें उत्पन्न हुए ॥७२॥

नाम्ना तु सोऽभवत् ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ । बाल एव विरक्तोऽभूच्चचार सुमहत्तपः ॥ ७३ ॥

भाषा–और दिवोदास इस नामकरके भूतलमें विख्यात भये, वे बालकपनहीसे विरक्त होकर अति उग्र तपस्या करते हुए ॥ ७३ ॥

यत्नेन महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोन्नृपम् ।
ततो धन्वन्तरिर्लोकैः काशीराजोऽभिधीयते ॥ ७४ ॥

भाषा–तब अत्यन्त प्रयत्नकरके विधि (ब्रह्माजी) ने उनको काशीजीका भूप किया, तभीसे उन धन्वन्तरिजीको सर्व लोक काशीराज कहने लगे ॥ ७४ ॥

हिताय देहिनां स्वीया संहिता विहिताऽमुना ।
अथ विद्यार्थिनो लोकान्संहितां तामपाठयत् ७५

भाषा–वेही काशीभूप धन्वन्तरिजी समस्त प्राणियोंके हितार्थ स्वयं धन्वन्तरिसंहिता बनाकर विद्यार्थियोंको पठन कराते हुए ॥ ७५ ॥

सुश्रुतप्रादुर्भावः ।

अथ ज्ञानदृशा विश्वामित्रप्रभृतयोऽविदन् ।
अयं धन्वन्तरिः काश्यां काशिराजोऽयमुच्यते ॥ ७६ ॥

भाषा–तत्पश्चात् विश्वामित्र आदिक ऋषि मुनियोंने ज्ञानदृष्टिसे पहिचाना, कि जो ये पुरुषोंकरके काशीभूप कहाये जाते हैं वे धन्वन्तरिही हैं ॥ ७६ ॥

विश्वामित्रो मुनिस्तेषु पुत्रं सुश्रुतमुक्तवान् ।
वत्स वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वेश्वरवल्लभाम् ॥ ७७ ॥

भाषा–तब उन ऋषियोंमेंसे विश्वामित्रजी स्वयं अपने सुत सुश्रुतसे बोले कि, हे पुत्र ! आप विश्वेश्वरकी परम प्यारी काशीजीको जाइये ॥ ७७ ॥

तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाहुजः । स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदविदां वरः ॥ ७८ ॥

भाषा–वहांपर जो सुबाहुनामके सुत दिवोदास नामसे विख्यात काशीभूप हैं वे आयुर्वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ प्रत्यक्ष धन्वन्तरिही हैं ॥ ७८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वप्राणिदयातीर्थादुपकारमहामखात्।
आयुर्वेदं पठस्व त्वं लोकोपकृतिहेतवे ॥७९॥

भाषा-इस हेतु पुरुषोंके उपकारार्थ उन्हींसे आयुर्वेदका पठन करो कारण कि, समस्त प्राणियोंपर दयालु रहना, यही तीर्थ और उपकार महायज्ञ गिना जाया करता है ॥ ७९ ॥

पितुर्वचनमाकर्ण्य सुश्रुतः काशिकां गतः।
तेन सार्द्धं समध्येतुं मुनिसूनुशतं ययौ॥८०॥

भाषा-ऐसे तातके वाक्य श्रवण कर महाराज सुश्रुतजी काशीदेशको गमन कर गये और उनके साथ पठनार्थ अन्य सैकडों ऋषिमुनियोंके सुतभी यात्रा करते हुए ॥ ८० ॥

अथ धन्वन्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम्।
भगवन्तं सुरश्रेष्ठं मुनिभिर्बहुभिः स्तुतम्॥८१॥
काशिराजं दिवोदासं तेऽपश्यन् विनयान्विताः।
स्वागतं च तदाचाह दिवोदासो यशोधनः८२
कुशलं परिपप्रच्छ तथागमनकारणम्।
ततस्ते सुश्रुतद्वारा कथयामासुरुत्तरम् ॥ ८३ ॥

भाषा-तत्पश्चात् वहांपर पहुँचकर उन ऋषि मुनियोंके सुतोंने वानप्रस्थाश्रममें स्थित, उपस्थित सुरोंमें श्रेष्ठ, मुनियोंकरके स्तुति किये हुए काशीभूप दिवोदास नामसे विख्यात भगवान् धन्वन्तरिजीको विनययुक्त दृष्टिगत किया, और वेभी इनको अवलोकन कर कुशल क्षेमके सहित शुभागमन पूंछकर और आगमनका हेतु पूंछते हुए तब वे मुनिसुतभी महाराज सुश्रुतजीके द्वारा उत्तर देते हुए ॥ ८१-८३ ॥

भगवन्! मानवान् दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीडितान्। क्रन्दंतो म्रियमाणांश्च जाताऽस्माकं हृदि व्यथा ॥ ८४ ॥

भाषा-कि हे प्रभो ! अनेक व्याधियोंसे ग्रसित रुदन करते हुए मृत्युको प्राप्त होते हुए पुरुषोंको अवलोकन करके हमारे हृदयमें अतिशय व्यथा उत्पन्न हुई ॥ ८४ ॥

आमयानां शमोपायं विज्ञातुं वयमागताः।
आयुर्वेदं भवानस्मानध्यापयतु यत्नतः॥८५॥

भाषा-इस हेतु हम आपके पास उन बीमारियोंकी शांतिका उपाय समझनेके वास्ते आये हैं, आप विधिपूर्वक हम सर्वोंको आयुर्वेद पढाइये ॥ ८५ ॥

अङ्गीकृत्य वचस्तेषां नृपतिस्तानुपादिशत्।
व्याख्यातं तेन ते यत्नाज्जगृहुर्मुनयो मुदा८६

भाषा-तब उन ऋषिमुनिसुतोंके वाक्य श्रवण कर अर्थात् स्वीकार करके काशीभूप उन सर्वोंको आयुर्वेदका उपदेश देते हुए, वेभी उनकी पठन कराई हुई सन्थाको हर्षसहित अच्छी तरहसे ग्रहण करते हुए ॥ ८६ ॥

काशिराजं जयाशीर्भिरभिनन्द्य मुदान्विताः।
सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्था जग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् ॥ ८७ ॥

भाषा-तत्पश्चात् जय आशीर्वादोंसे काशीभूपको खुश कर तथा स्वयं प्रयोजनको सिद्ध करके आनन्दसहित वे सुश्रुत आदि मुनियोंके सुत स्वयं २ स्थानोंको यात्रा करते हुए ॥ ८७॥

प्रथमं सुश्रुतस्तेषु स्वतन्त्रं कृतवान्स्फुटम्।
सुश्रुतस्य सखायोऽपि पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ॥ ८८ ॥

भाषा-उनमेंसे महाराज सुश्रुतजी प्रथम स्वतन्त्र (सुश्रुतसंहिता) रचते हुए व तत्पश्चात् उनके सखाओंनेभी अपने २ तन्त्र रचित किये ॥ ८८ ॥

सुश्रुतेन कृतं तन्त्रं सुश्रुतं बहुभिर्यतः।
तस्मात्तत् सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षितिमण्डले ॥ ८९ ॥

भाषा-उन तन्त्रोंमेंसे महाराज सुश्रुतजीके रचित किये हुए तन्त्रको अधिकोंने श्रवण किया इस हेतु वह संसारमें सुश्रुतसंहिता नामसे प्रसिद्ध भया ॥ ८९ ॥

इति आयुर्वेदप्रवक्तृणां प्रादुर्भावः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ग्रथारम्भः ।

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयो योगरत्नानि यत्नाल्लब्ध्वा स्वे स्वे निबंधे दधुरखिलजनव्याधिविध्वंसनाय । तत्तद्ग्रन्थाद्गृहीतैः सुवचनमणिभिर्भावमिश्रैश्चिकित्साशास्त्रे जाड्यांधकारं प्रशमयितुमिमं संविधत्ते प्रकाशम् ॥९०॥

भाषा–अत्यन्त बुद्धिवान् ऋषि मुनियोंने समस्त प्राणियोंके रोग नाशार्थ आयुर्वेदरूप सागरके बीचसे विधिपूर्वक दवाइयोंके योगस्वरूप दिव्य रत्नोंको ग्रहण करके अपने २ ग्रन्थोंमें उपस्थित किया उन उन ग्रन्थोंसे ग्रहण किये हुए उन्हीं २ वाक्यस्वरूप मणियोंको एकत्र करके (वैद्यकशास्त्रमें) अज्ञानस्वरूप महाघोर अंधकारके नाशार्थ भावमिश्रजी इस पुस्तकस्वरूपी दीप्तिको प्रकाश करते हैं अर्थात् भावप्रकाशनामक ग्रंथको निर्माण करते हैं ॥९०॥

श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भिर्भूमिदेवानाम् ।
भावप्रकाशनाम्ना ग्रन्थोऽयं पठ्यतां सर्वैः९१

भाषा–श्रीपतिके पदोंके प्रसादसे तथा विप्रोंके आशीर्वादसे यह भावप्रकाश नामक पुस्तक समस्त पुरुषोंके पठनके योग्य होवे ॥ ९१ ॥

एतस्य निबन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्य । पुरुषस्तु चतुर्विंशतितत्त्वजीवात्मसमवायस्तस्माच्चतुर्विंशतितत्त्वानां जीवात्मनश्च स्वरूपनिरूपणाय सृष्टिक्रममाह ॥ ९२ ॥

भाषा–चिकित्सा (व्यथा दूर करना) इस पुस्तकका मूल प्रयोजन है, और चिकित्सा मनुष्यको होती है, वह मनुष्य महदादि चौवीस (२४) तत्त्व अथवा जीवात्मा इन सम्पूर्णोंका समुदाय है इस हेतु उन चौबीस (२४) तत्त्वोंका तथा जीवात्माके स्वरूपका निर्णय करनेके लिये प्रथम सृष्टिका क्रम वर्णन करते हैं ॥९२॥

आत्मा ज्योतिश्चिदानंदरूपोनित्यश्च निस्पृहः।
निर्गुणः प्रकृतेर्योगात्सगुणः कुरुते जगत्९३॥
सगुण इच्छादियुक्तः ।

भाषा–यथार्थमें आत्मा ज्योतिःस्वरूप, चिंदानंदरूप, नित्य, स्पृहारहित तथा गुणहीन है परन्तु वही प्रकृतिके संयोगसे सगुण अर्थात् सप्रयोजन होकर अपनी इच्छासे संसारको उत्पन्न करता है ॥ ९३ ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतेः समाः ।
सा जडापि जगत्कर्त्री परमात्मचिदव्ययात्९४

भाषा–सत्व, रज और तम ये प्रकृतिके समान गुण हैं और वह प्रकृति स्वयं जडभी है परंतु चैतन्य परमात्माके आश्रयसे जगत्को उत्पन्न करती है ॥ ९४ ॥

सतः साधोर्भावः सत्त्वं प्रकाशकं ज्ञानं सुखहेतुः,रजो रागात्मकं दुःखहेतुः,ताम्यति ग्लानिं प्राप्नोति अनेनेति तमः आवरकं मोहहेतुः । ते गुणाः समाः प्रकृतिरित्यर्थः । तथासति न्यूनाधिकगुणा विकृतिः ॥

भाषा–सत्त्वका जो प्रकाश है वह सत्त्वगुण कहलाता है और सत्त्वही ज्ञानरूप सुखका कारणरूप है, रज जो है वह रागात्मक है और दुःखका कारण है, तथा मनुष्यको जो अन्धकार ग्लानिका देनेवाला है वह तमोगुण बुद्धिका आच्छादनकर्ता है और मोहका मुख्य कारण है वे समान प्रकृतिरूप हैं और ऐसा न होनेसे न्यूनाधिकगुण विकृति कहलाते हैं ॥

अथ सुश्रुतमुपदिशन् धन्वन्तरिः प्रकृतेः स्वरूपविशेषणमाह ।

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नामेति । अस्यायमर्थः । अव्यक्तं न व्यज्यते स्मेति अव्यक्तं मूलप्रकृत्यपरपर्य्यायं ततः सर्वभूतानां कारणं समवायिकारणं अकारणं न विद्यते कारणं यस्य तत् सत्त्वरजस्तमोलक्षणं समसत्त्वरजस्तमःस्वरूपं अष्टरूपं अव्यक्तं महान् अहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणि इति अष्टौ रूपाणि यस्य तत् । यत इंद्रियाणां महाभूतानां च कारणतया महदादयोऽपि सप्त प्रकृतयः एवमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तमित्युपसंहारः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-वह प्रकृति सब प्राणियोंका कारण अकारण अर्थात् स्वयं कारणसे रहित, सत्त्व-रजस्तमःस्वरूपवाली होकर अव्यक्त महान् अहंकार और पंचतन्मात्रा इस प्रकार आठ-रूपवाली और महदादिकभी इन्द्रियोंके और महाभूतोंके कारणत्व करके सात प्रकृति हैं इसलिये अखिल जगत्की उत्पत्तिका कारणरूप अव्यक्त है, इसका मुख्य कारण यह है कि, अव्यक्त प्रकट नहीं होता यह केवल मूल प्रकृति नाम है ॥

प्रकृतिपुरुषयोः साधर्म्यम् ।

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिङ्गौ उभावपि नित्यौ उभावप्यपरौ उभावपि सर्वगतौ इति । उभावपि नित्यौ लयं क्वचिदपि न यातः । उभावप्यपरौ न विद्यते परोऽपरो याभ्यां तावपरौ ॥

भाषा-प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि, दोनों अनन्त, दोनों अलिंग अर्थात् चिह्नरहित, दोनों नित्य अर्थात् जिसका कभी नाश न होवे, दोनों अपर अर्थात् जिससे परे और दूसरा न हो, और दोनों सर्वव्यापक अर्थात् जो सबमें विद्यमान हैं ॥

अथातो तयोर्वैधर्म्यमाह ।

एका तु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणी चेति । अचेतना जडा, त्रिगुणा तुल्यगुणत्रयात्मिका, बीजधर्मिणी सर्वेषां महदादीनां विकाराणां बीजत्वेनावस्थिता, प्रसवधर्मिणी पुरुषेणाक्रान्ताक्षयं प्राप्य सम्यगतिक्रम्य महदहङ्कारादिक्रमेण जगतः प्रसवित्री, अमध्यस्थधर्मिणी सुखदुःखभोगिनी, न तु सुखदुःखभोगादुदासीना । पुरुषस्तु चेतनावान् निर्गुणोऽप्रसवधर्मा बीजधर्मा मध्यस्थधर्मा चेति । निर्गुणः अविद्यमानसत्त्वादिगुणः, अबीजधर्मा महाप्रलये महदादीनां विकाराणां प्रकृताविव तस्मिन्नवस्थानात् मध्यस्थधर्मा सुखदुःखेच्छाद्वेषादिभ्य उदासीनः ॥

भाषा-प्रकृति तो एक अचेतन अर्थात् चेतनारहित तीन गुणवाली (जिसमें तीनों गुण सदैव समान जान पडते हैं), बीजधर्मवाली (सम्पूर्ण महत्तत्वादिक विकारोंसे स्थित), प्रसवधर्मवाली (पुरुषसे क्षोभको प्राप्त होकर समताको त्याग महत्तत्व और अहंकारादिकको सब प्रकारसे उल्लंघन करके क्रममें संसारको उत्पन्न करनेवाली), अमध्यस्थधर्मवाली (सुख दुःखके भोगोंको भोगनेहारी है, परन्तु सुख दुःखके भोगसे उदासीन नहीं हुई) है. वह पुरुष तो चेतनायुक्त, निर्गुण, अप्रसवधर्मधारी अर्थात् उत्पन्नकर्त्ता नहीं है, अबीजधर्म और मध्यस्थधर्मवाला है, निर्गुणता अर्थात् प्रलयकालमें जिस प्रकार महत्तत्वादिक विकार मायाके भीतर रहते हैं उस प्रकार पुरुषमें नहीं रहते, मध्यस्थधर्म अर्थात् सुख दुःख इच्छा और द्वेषादिकसे उदासीन है, जैसे प्रकृति एक है वैसे पुरुष अनेक हैं ॥

प्रकृतेर्नामान्याह ।

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा । एतानि तस्या नामानि पुरुषं या समाश्रिता ॥ ९५ ॥

भाषा-प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्या और अविकृति पुरुषके आश्रित रहनेसे उस प्रकृतिके ये नाम हैं ॥ ९५ ॥

गुणानाह ।

सत्त्वं रजस्तमस्त्रीणि विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः । तैश्च युक्तस्य चित्तस्य कथयाम्यखिलान् गुणान् ॥ ९६ ॥

भाषा-सत्त्व, रज, तम ये तीन प्रकृतिके गुण समझने चाहिये, इन गुणोंसे संयुक्त चित्तके सम्पूर्ण गुणोंको मैं वर्णन करता हूं ॥ ९६ ॥

सत्त्वादियुक्तस्य मनसो गुणानाह ।

आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनुत्तापश्च तथ्यं वचो मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्च करुणा ज्ञानं च निर्दम्भता । कर्मानिन्दितमस्पृहश्च विनयो धर्मः सदैवादरादेते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गीता गुणा ज्ञानिभिः ॥९७॥ अस्ति धर्ममोक्षपरलोकादिकमिति बुद्ध्या चरतीत्यास्तिकस्तस्य भाव आस्तिक्यम्, अनूत्तापः अक्रोधः, धृतिः भूतप्रेतस्मरक्रोधलोभाद्यावेशराहित्यं, ज्ञानमात्मज्ञानम्, निर्दम्भता कपटाभावः, कर्म अनिन्दितम्, अस्पृहं निष्कामं च ॥

भाषा–आस्तिकपन (धर्म, मुक्ति, लोक, परलोकका विश्वास इस बुद्धिसे जो कर्म करता है, वह आस्तिक है. उसके धर्मको आस्तिक्य कहते हैं), भले प्रकार परिवारमें विभाग करके भोजन करना, अनूत्ताप (क्रोधरहित), सत्य बोलना, मेधा (धारणाशक्तिवाली), बुद्धि, धृति (भूत, प्रेत, काम, क्रोध, लोभादिकोंके आवेशसे बचना), क्षमा, करुणा (दया), ज्ञान (आत्मज्ञान) निर्दम्भता (कपटाभाव), अनिन्दित कर्मकर्ता, निष्काम, विनय और नित्यप्रति धर्ममें प्रीति ये सब लक्षण सत्वगुणयुक्त मनके धीमान् पुरुषोंने कहे हैं ॥ ९७ ॥

रजोगुणयुक्तमनसो लक्षणम्।

क्रोधस्ताडनशीलता च बहुलं दुःखं सुखेच्छाधिका दम्भः कामुकताऽप्यलीकवचनं चाधीरताहंकृतिः। ऐश्वर्यादभिमानितातिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं प्रख्याता हि रजोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥९८॥ अलीकवचनं मिथ्याकथनम्, अटनं पृथ्वीपरिभ्रमणम् ॥

भाषा–महाक्रोधी, मारपीट करनेवाला, दुःख सुखकी अधिक इच्छा, दम्भी, कामी, असत्यवादी, अधीर, अहंकारी, ऐश्वर्य पाकर अभिमान करना, अधिक आनन्दसहित, पृथ्वी (संसार) में घूमना ये सब रजोगुणी मनके लक्षण विख्यात हैं ॥ ९८ ॥

अथ तमोयुक्तमनसो लक्षणमाह।

नास्तिक्यं सुविषण्णतातिशयितालस्यं च दुष्टा मतिः प्रीतिर्निन्दितकर्मशर्मणि सदा निद्रालुताऽहर्निशम्। अज्ञानं किल सर्वतोऽपि संततं क्रोधान्धता मूढता प्रख्याता हि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ९९ ॥ तत्र प्रभूतसत्त्वस्तु सात्त्विकः पुरुषः स्मृतः। राजसस्तामसश्चैव त्रिविधस्तेन मानवः। ततोऽभवन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वापराभिधम् ॥ १०० ॥

भाषा–नास्तिकपन, चित्तमें अत्यंत खेद, महाआलस्य, नीचबुद्धि, दैवनिन्दित कर्म करनेकी इच्छा, दिनरात सोनेमें प्रीति, सब कामोंमें अज्ञान, सदैव क्रोधका अंधकार चित्तमें छाये रहना, सर्व कार्योंमें मूढता ये सब लक्षण तमोगुणवाले मनके हैं। इनमें अधिक सत्त्वगुणवाला पुरुष सात्त्विक कहलाता है, अधिक रजोगुणवाला राजसी और अधिक तमोगुणवाला तामसी कहलाता है, इसी रीतिसे तीन प्रकारके पुरुष संसारमें होते हैं. फिर पीछे " बुद्धितत्त्व " इस नामवाला महत्तत्त्व हुआ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

त्रिगुणं सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम्। चिच्छायाप्राप्तचैतन्यं तदिच्छामयमीरितम् १०१

भाषा–वह त्रिगुण अधिक सत्त्ववाला स्फटिकमणिके सदृश निर्मल है, और चिच्छाया अर्थात् चिद्घनानन्दके आवरणसे चैतन्यताको प्राप्त होकर उसी जगदाधारकी इच्छामय कहा है ॥ १०१ ॥

ततः प्रकृतेस्त्रिगुणं त्रयो गुणा यत्र तत् तच्च सत्त्वबहुलम्। अत्रायमभिप्रायः। यथा निश्चले ह्रदादौ बहुद्रव्यपातात् तदीयं जलं वर्द्धते तथा चिद्रूपपुरुषेणाक्रमणात् तुल्यगुणत्रयात्मिकायाः प्रकृतेर्ज्ञानहेतुः प्रकाशः सत्त्वगुणो वृद्धः प्रवृद्धः सत्त्वतः प्रकृतेः सत्त्वबहुलं बुद्धितत्त्वमभवत् ॥

भाषा–यद्यपि महत्तत्त्वमें प्रकृतिके तीनों गुण हैं, परन्तु सत्त्वगुण, रज तमसे अधिक है, इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जैसे अचल सरोवरादिकोंमें अनेक द्रव्य डालनेसे उस तालावका जल अधिकताको प्राप्त होता है, इसी रीतिसे चैतन्यरूप पुरुषके आक्रमण करनेसे समगुणत्रयात्मिका प्रकृतिके ज्ञानका प्रकाश ऐसा सत्त्वगुण वृद्धिको प्राप्त होता है, फिर उस बुद्धि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाले सत्त्वगुणसे प्रकृतिका अधिक सत्त्वगुणवाला महत्तत्त्व प्रगट होता है ॥

महतस्त्रिगुणाज्जातोऽहङ्कारस्त्रिगुणान्वितः । सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चेति स त्रिधा ॥१०२॥ महतः बुद्धितत्त्वात् त्रिगुणात् त्रयो गुणा यत्र ततः ॥

भाषा—और त्रिगुणात्मक अहंकार तीनों गुणोंसे मिला हुआ है इसीसे वह तीन प्रकारका कहलाता है सात्त्विक, राजस, तामस. महतः बुद्धितत्त्वसे ॥ १०२ ॥

ननु महत्तत्त्वं त्रिगुणयुक्तमेव किमर्थं महतस्त्रिगुणादिति विशेषणम् । सत्यम् । त्रिगुणादिति पुनर्विशेषणादुक्तं सत्त्वबहुलमिति विशेषणमत्र नानुवर्त्तते तेनाहङ्कारोत्पादकं महत्तत्त्वं त्रिगुणमपि रजोबहुलं बोद्धव्यम् । अहङ्कारस्य रजोगुणान्वितस्य मनोधर्मत्वात् अहङ्कारोऽभिमानव्यापारः । अहङ्कारस्त्रिविधस्तमाह सात्त्विक इत्यादि ॥

भाषा—कोई यह शंका करे कि महत्तत्त्व तौ तीनों गुणवाला कहाही गया, फिर 'त्रिगुण' यह विशेषण क्यों दिया ? इसका समाधान यह है कि फिर विशेषणके देनेसे यह तात्पर्य निकला कि, अहंकारकी बाहुल्यता दिखाई कि अधिक सत्त्वगुणवाला विशेषण ऐसे स्थानपर नहीं लिया जाता, इससे यह समझना चाहिये कि अहंकारउत्पन्नकर्ता महत्तत्त्व त्रिगुणवालेसे मिलकरभी रजोगुणवाला अधिक है, क्योंकि रजोगुणसे मिलाही हुआ अहंकार मनका धर्मत्व होनेसे अहंकार अभिमानरूपी व्यापारका लक्षणवाला है, अहंकार तीन प्रकारका है; सात्त्विक इत्यादि वाक्योंसेभी तीन प्रकारका भेद कहा है ॥

तस्य त्रिविधस्य कार्यमाह ।

जातानि सात्त्विकात्तस्मादिन्द्रियाणि सराजसात् । तानि श्रोत्रं त्वचो नेत्रं रसना नासिका तथा ॥ १०३ ॥ वाग्घस्तचरणोपस्थगुदान्येकादशं मनः । पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च । कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चितः॥ १०४॥ बुद्धीन्द्रियाणि बुद्धेराश्रयत्वात् । कर्मेन्द्रियाणि कर्माश्रयत्वात् । सात्त्विकाहङ्काराज्जातत्वादिन्द्रियाणि प्रकाशलक्षणानि । सत्त्वस्य प्रकाशकत्वात् । मनो बुद्धीन्द्रियं विज्ञैः कर्मेन्द्रियमपि स्मृतम् । मनोऽधिष्ठितमेवेदमिन्द्रियं यत् प्रवर्तते ॥ १०५ ॥

भाषा—राजसयुक्त सात्त्विक अहंकारसे ग्यारह इन्द्रियें उत्पन्न हुई. उनके नाम यह हैं, श्रवण, त्वचा (चमडी), नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पाँव, लिंग, गुदा और ग्यारहवां मन, इनमें पहिली पाँच इन्द्रियोंको बुद्धिमान् लोग बुद्धीन्द्रिय कहते हैं, और अन्तकी वाणी आदि पाँच इन्द्रियोंको कर्मके संयोग होनेसे कर्मेन्द्रिय कहते हैं, सात्त्विक अहंकारसे प्रगट हुई इन्द्रियाँ प्रकाशलक्षणवाली होती हैं, क्यों कि वह सत्त्वगुण प्रकाशक हैं इसलिये विद्वान् लोग मनहीको बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय कहते हैं क्योंकि मनहीके अधीन होनेसे इन्द्रियें अपने अपने कर्मोंको करती हैं ॥ १०३–१०५ ॥

तत इन्द्रियाणां विषयानाह ।

शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धो ह्यनुक्रमात् । बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः समाख्याता महर्षिभिः ॥ १०६ ॥ वाच्यं ग्राह्यं च गन्तव्यमानन्दं त्याज्यमेव च । कर्मेन्द्रियाणां विषया ज्ञातव्या विषयो हृदः ॥ १०७ ॥ (हृदः मनसः) तामसादप्यहङ्कारस्तन्मात्राणि सराजसात् । पञ्चाल्पसत्त्वसम्बन्धात्तालिङ्गानि भवन्ति हि ॥ १०८ ॥ शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् । रसतन्मात्रकं गन्धतन्मात्रमिति तानि तु ॥ १०९ ॥ तलिङ्गानि मोहादिलिङ्गानि तानि अद्भुतस्वभावानि बाह्येन्द्रियग्राह्याणि । शब्दादीन्येव तन्मात्राणि तानि च योगिभिरेव ग्राह्याणि । सा सा मात्रा यस्मिन् तत्तन्मात्रम् । तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुर्व-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्भिर्वारि वसुन्धरा । एतानि पञ्च जायन्ते महाभूतानि तत्क्रमात् ॥ ११० ॥

भाषा–कानोंका विषय शब्द, त्वचाका विषय स्पर्श, नेत्रोंका विषय रूप, जिह्वाका विषय रस और नासिकाका विषय गन्ध इस प्रकार क्रमसे बुद्धीन्द्रियोंके विषय महर्षि लोगोंने वर्णन किये हैं. वाणीका विषय बोलना, हाथोंका विषय देना, पाँवोंका विषय चलना फिरना, लिङ्ग (इन्द्रिय) का विषय आनन्द और गुदाका विषय मलका त्यागना, ये कर्मेन्द्रियोंके विषय जानने और बातोंका पहिचानना मनका विषय है. राजसगुणवाले तामस अहंकारके संयोगसेभी पाँच तन्मात्रा उत्पन्न होती हैं, इनमें सत्त्वगुणका अल्प सम्बन्ध होनेसे राजस और तामसके मोहादिक चिह्न पाये जाते हैं, वह अद्भुत स्वभाववाले बाह्येन्द्रियोंकरके ग्राह्य हैं. शब्द तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा ये पाँच तन्मात्रा जाननी. शब्दादितन्मात्रा योगिजनोंकोही दृष्टि आती हैं और दूसरे लोगोंको नहीं दीखती, तन्मात्रा जिसमें होय वह तन्मात्र कहाता है. तन्मात्राओंसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पंचमहाभूत क्रमसे उत्पन्न होते हैं ॥ १०६–११० ॥

एकोत्तरपरिवृद्ध्या वियदादयो जायन्त इत्यर्थः । तद्यथा । शब्दतन्मात्राच्छब्दगुणं वियज्जायते । शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्राच्छब्दस्पर्शगुणो वायुर्जायते । शब्दतन्मात्रस्पर्शतन्मात्रसहितात् रूपतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपगुणो वह्निर्जायते । शब्दतन्मात्रस्पर्शतन्मात्ररूपतन्मात्रसहिताद्रसतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगुणं वारि जायते । शब्दतन्मात्रस्पर्शतन्मात्ररूपतन्मात्ररसतन्मात्रसहिताद् गन्धतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणा वसुन्धरा जायते ॥

भाषा–एक एककी उत्तरोत्तर वृद्धिसे आकाशादि उत्पन्न होते हैं, जैसे शब्दतन्मात्रासे शब्दगुणवाला आकाश प्रगट होता है, शब्दतन्मात्रा-सहित स्पर्शतन्मात्रासे शब्दस्पर्शगुणवाला वायु प्रगट होता है, शब्दतन्मात्रास्पर्शतन्मात्रासहित रूपतन्मात्रासे शब्दस्पर्शरूपगुणवाली अग्नि प्रगट होती है, शब्दतन्मात्रास्पर्शतन्मात्रारूपतन्मात्रायुक्त रसतन्मात्रासे शब्दस्पर्शरूपरसगुणवाला जल उत्पन्न होता है, एवं शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्राके सम्बन्धसे गन्धतन्मात्रासे शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुणवाली पृथ्वी प्रगट होती है ॥

अथ महाभूतानां गुणानाह ।

शब्दः श्रोत्रेन्द्रियं वापि च्छिद्राणि च विविक्तता । वियतः कथिता एते गुणा गुणविचारिभिः ॥ १११ ॥ विविक्तता शरीराणां भावानां शिराख्यास्थिपेशीप्रभृतीनां जातिव्यक्तिभ्यां मिथः पृथक्त्वम् ॥ स्पर्शस्त्वगिन्द्रियं चापि लघुतास्पदनं तनोः । चेष्टा सर्वशरीरस्य वायोरेते गुणाः स्मृताः ॥ ११२ ॥ रूपं नेत्रेन्द्रियं पाकः सन्तापस्तीक्ष्णता तथा । वर्णो भ्राजिष्णुताऽमर्षः शौर्यं वह्नेर्गुणा अमी ॥ ११३ ॥ रूपं लावण्यम् । पाकः उदराग्निना आहारपाकः । सन्तापः औष्ण्यम् । तीक्ष्णता आशुकारिता । वर्णो गौरादिः । भ्राजिष्णुता दीप्तिः । अमर्षः क्रोधः ॥

भाषा–शब्द श्रोत्रेन्द्रिय (कर्णेन्द्रिय) छिद्र और विविक्तता आकाशके गुण हैं और गुणसम्बन्धी विचार करना गुणी पुरुषोंने कहा है, विविक्तता अर्थात् शरीरोंकी शिरा (छोटी नसें), स्नायु (मोटी नसें), अस्थिपेशी (मांसकी थैली) प्रभृति भावोंकी जाति और व्यक्तिसे आपसमें भिन्न २ होना. ये सब गुण गुणियोंने आकाशके वर्णन किये हैं. स्पर्शका होना, त्वगिन्द्रिय, लघुता, देहका कुछ कुछ स्पन्दन (हिलना) और सब शरीरकी चेष्टा होना ये सब वायुके गुण कहे हैं. रूप (लौन), नेत्रेन्द्रिय, पाक (उदरकी अग्निसे आहारका पाक), सन्ताप (गर्मी), तीक्ष्णता (शीघ्रकर्ता), वर्ण (गौररंगादि), भ्राजिष्णुता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(दीप्तवान्), अमर्ष (क्रोध) और शूरता ये सब अग्निके गुण हैं ॥ १११-११३ ॥

रसो रसेन्द्रियं शैत्यं स्नेहश्च गुरुता तथा । सर्वद्रवसमूहश्च शुक्रं वारिगुणाः स्मृताः ॥ ११४ ॥ गन्धो घ्राणेन्द्रियं चापि काठिन्यं गौरवं तथा । वसुन्धरागुणा एते गदिता गुणवेदिभिः ॥११५॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तत्क्रमात् । तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ॥ ११६ ॥ तत्क्रमाच्छब्दतन्मात्रादिक्रमात् । विशेषाः अनुभवयोग्यैः सुखदुःखमोहरूपैर्धर्मैर्विशेष्यन्त इति विशेषाः । अत्र कर्मणि घञ् प्रत्ययः । तन्मात्राणि तु अविशेषाणि यतस्तानि अनुभवयोग्यैः सुखादिभिर्विशेष्टुं न शक्यन्ते सूक्ष्मत्वात् ॥

भाषा-रस, रसेन्द्रिय (जिह्वा), शीतलता (नमी), स्नेह (चिकनापन), गुरुता (भारीपन), सम्पूर्ण वहनेवाले द्रव्योंका एकत्र होना और शुक्र (वीर्य) ये सब जलके गुण हैं. गन्ध, घ्राणेन्द्रिय (नाक), कठिनता और भारीपन ये सब विद्वान् लोगोंने पृथ्वीके गुण कहे हैं. स्थूलभावको प्राप्त होकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँचों शब्द तन्मात्रादिकोंकी विधिसे तन्मात्राओंके विशेष हैं, तत्क्रमात् शब्द तन्मात्रादिकोंकी रीतिसे, अनुभवयोग्य सुख दुःख और मोहरूपी धर्मसंयुक्त जो अभिप्रायको प्राप्त हों वही विशेष हैं. यहां कर्मके अर्थमें घञ् प्रत्यय है और तन्मात्रा अविशेष है क्योंकि वह अत्यन्तसूक्ष्मताके हेतु करके अनुभवके योग्य सुखादिकोंसे अलग नहीं हो सक्ती॥११४-११६॥

प्रकृतेः कारणायोगान्मता प्रकृतिरेव सा ॥ महत्तत्त्वादयः सप्त शक्तेर्विकृतयः स्मृताः॥११७॥ प्रकृतिरेव कारणं न तु कस्यचित् कार्यमित्यर्थः । कार्याणि इन्द्रियाणां सर्वभूतानां कारणत्वान्महर्षिभिर्महत्तत्त्वादयः सप्त । महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीति । शक्तेः प्रकृतेर्विकृतयः कार्याणि ॥

भाषा-प्रकृतिही सबका कारणरूप है अर्थात् कार्यरूप नहीं है, इसलिये कार्य न होनेसे विद्वान् लोगोंने प्रकृतिहीको प्रकृति मानी है. और महत्तत्त्वादिक जो सात हैं वेही उस प्रकृतिकी विकृति हैं; प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा ये आठ प्रकृति हैं ॥ ११७ ॥

इन्द्रियाणां च भूतानां कारणत्वान्महर्षिभिः । महत्तत्त्वादयः सप्त प्रोक्ताः प्रकृतयोऽपि च ॥ ११८ ॥

भाषा-इन्द्रियोंके कार्य और भूतोंके कारण होनेसे महर्षियोंने सात महत्तत्त्वादिकोंकोभी प्रकृति कहा है. प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा इस प्रकारभी आठ प्रकृति हैं ॥ ११८ ॥

दशेन्द्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पञ्च च । एतानि सृष्टिं जानद्भिर्विकाराः षोडश स्मृताः ॥ ११९ ॥ विकाराः कार्याणि ।

भाषा-दश इन्द्रिय, मन और पंच महाभूत, यह सृष्टिके जाननेवाले पुरुषोंने सोलह विकार कहे हैं, उन विकारोंहीका नाम कार्य है॥११९॥

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे । जीवात्मनियतोर्निघ्नो वसति स्वान्तदूतवान् १२०

भाषा-आठ प्रकृति और सोलह विकार, इस प्रकार चौवीस तत्त्वोंसे देहरूप गृह रचा, उसमें शुभाशुभ कर्मोंके अधीन हो जीवात्मा मनरूप दूतको संग ले निवास करता है, इसीका नाम देह है ॥ १२० ॥

अत्र शब्दादीनां वियदादिमहाभूतगुणानां धर्मिभ्यो भिन्नतयापृथक्त्वं निरस्यन्नुक्तानां तत्त्वानामुपसंहारमाह । चतुर्विंशतिभिरिति । तानि च प्रकृतयोऽष्टौ विकाराः षोडशेति । महत्तत्त्वानि प्रकृत्यादीनां भावाः नियतेः शुभाशुभकर्मणः, निघ्नः आयत्तः, स्वान्तदूतवान् मनोदूतयुक्तः ॥

भाषा-अब आकाशादि महाभूतोंके गुणरूपसे शब्दादिकोंकी भिन्नता त्यागकर तत्त्वोंका उपसंहार अर्थात् संक्षेप करके कहते हैं, आठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति सोलह विकार मिलकर चौवीस तत्त्व होते हैं, महत्तत्वादिक जो हैं वह प्रकृत्यादिकोंके भाग हैं, नियतेः (शुभाशुभ कर्मोंके) निम्न (अधीन) स्वान्तदूत (मनरूपीदूतयुक्त) है ॥

स देही कथ्यते पापपुण्यदुःखसुखादिभिः ।
व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबन्धनैः १२१

भाषा–वह जीवात्मा शरीरी कहलाता है पाप पुण्य सुख दुःखादिकोंसे व्याप्त और मनसहित कृत्रिम कर्मके बंधनोंसे बँधा हुआ वह जीवात्मा है ॥ १२१ ॥

स जीवात्मा तस्य देहिनः शरीरजीवात्मनोः संयोगकारकेण मनसा संयोगे ये ये गुणा उत्पद्यन्ते तानाह ॥

भाषा–उस शरीरीके शरीर और जीवात्माके संयोग करानेवाले मनके संयोग होनेपर जो जो गुण उत्पन्न होते हैं उनको कहते हैं ॥

इच्छाद्वेषसुखादुःखानि विषयज्ञानं प्रयत्नो मनः संकल्पश्च विचारणा स्मृतिरथो बुद्धिः कलाविज्ञता । प्राणस्योपरियापनं गुदवशाद्वायोरधः प्रेरणं नेत्रोन्मेषनिमेषकृत्यकरणोत्साहाश्च जीवे गुणाः ॥ १२२ ॥ इच्छा सुखहेतुरभिलाषः, द्वेषो दुःखहेतुर्मनःप्रवृत्तिः, सुखं प्रीतिः, दुःखमप्रीतिः, विषयज्ञानं शब्दादिज्ञानम्, प्रयत्नः कार्ये तात्पर्यं, मनः संशयात्मकं तस्य कर्म संकल्पः, विचारणा ऊहापोहाभ्यां वस्तुविमर्शः, स्मृतिः पूर्वानुभूतस्यार्थस्य स्मरणम्, बुद्धिः निश्चयात्मिका, कलाविज्ञता- शिल्पशास्त्रादिबोधः, प्राणस्य हृदयस्थितस्य वायोः उपरि यापनं मुखादि प्रतिनयनं गुदवशाद्वायोरधःप्रेरणं अपानस्याधःप्रेरणं, नेत्रोन्मेषनिमेषौ नेत्रयोरुन्मीलननिमीलने, कृत्यकरणोत्साहः कार्यारम्भे सामर्थ्येन उत्साहः, जीवे मनोयुक्तस्य जीवात्मनोऽमी इच्छादयो गुणाः ॥

इति श्रीमिश्रलक्ष्मीपतितनय–श्रीमन्मिश्रभावविरचितभावप्रकाशे सृष्टिप्रकरणं प्रथमम् ॥ १ ॥

भाषा–इच्छा, द्वेष, दुःख, सुख, विषयज्ञान, प्रयत्न, मन, संकल्प, विचारणा, स्मृति, बुद्धि, कलाविज्ञान, प्राणपरियापन, गुदवशाद्वायोरधःप्रेरण, नेत्रोन्मेषनिमेष और कार्यकरणोत्साह, ये सब जीवके गुण हैं. इच्छा (सुखकी कारणरूप अभिलाषा), द्वेष (कारणरूप मनकी प्रवृत्ति), सुख (प्रीति), दुःख (अप्रीति), विषयज्ञान (शब्दादिक विषयोंका जानना), प्रयत्न (कार्यमें तत्पर होना), मन (यह क्या वस्तु है इस प्रकारके सन्देह करनेवाला), संकल्प (मानस कर्म), विचारणा (तर्कवितर्कसे वस्तुका विचार), स्मृति (पूर्वमें किये हुए अर्थका स्मरण), बुद्धि (निश्चयात्मिका), कलाविज्ञान (शिल्पादि शास्त्रोंका बोध), प्राणस्योपरियापन (हृदयमें रहनेवाले वायुको मुखादिके प्रति ऊपर चढाना), गुदवशाद्वायोरधःप्रेरण (अपानवायुको नीचे लेजाना), नेत्रोन्मेषनिमेष (दोनों नेत्रोंको खोलना और मींचना), कृत्यकरणोत्साह (कार्य आरंभ करनेमें सामर्थ्यसे उत्साह) मनयुक्त जीवात्माके ये इच्छादिक गुण हैं ॥ १२२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां सृष्टिप्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ गर्भप्रकरणम् ।

चिकित्सायां शरीरी ह्यधिकृतः स शरीरी यथा उत्पद्यते तद्बोधयितुं गर्भोत्पत्तिक्रममाह गर्भोत्पत्तिभूमिस्तु रजस्वला स्त्री ॥

भाषा–चिकित्साशास्त्रमें शरीरीही मुख्य है. इस कारण जिस प्रकार वह शरीरी उत्पन्न होता है, उसके जाननेके लिये गर्भकी उत्पत्तिका क्रम वर्णन करते हैं. गर्भोत्पन्न होनेकी भूमि रजस्वला स्त्री है, इस कारण रजस्वलाका स्वरूप कहते हैं ॥

ततो रजस्वलास्वरूपमाह ।

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापञ्चाशत्समाः स्त्रियाः ।
मासि मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्तवं स्रवेत् ॥ १

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आर्तवस्रावदिवसाद्द्वुः षोडश रात्रयः । गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समयः स्मृतः ॥ २ ॥

भाषा—द्वादशवर्षकी आयुसे ऊपर पचास वर्षकी आयु पर्यन्त महीने महीनेमें स्वयं स्त्रीकी योनिसे आर्तव (रक्त) गिरता है. स्त्री आर्तव गिरनेके दिनसे सोलह रात्रिपर्यन्त ऋतुमती होती है, गर्भ ग्रहण करनेके योग्य वहही समय कहा है ॥ १ ॥ २ ॥

सर्वासामेव चतुर्वर्णस्त्रीणां सर्ववादिसम्मतः पूर्वोक्तः समयः । ग्रन्थान्तरे तु विशेषः । तद्यथा । स्नानदिवसादूर्ध्वं द्वादशरात्रावधि ब्राह्मण्याः, दशरात्रावधि क्षत्रियायाः, अष्टरात्रावधि वैश्यायाः, षड्रात्रावधि शूद्रायाः गर्भधारणे शक्तिः ॥

भाषा—सर्वजातिकी सम्पूर्ण स्त्रियोंके लिये पूर्वोक्त समय सर्व सम्मत है, परन्तु अन्य ग्रन्थोंमें विशेष कहा है, जैसे कि, स्नानके दिनसे ऊपर द्वादश रात्रिपर्यन्त ब्राह्मणी, दशरात्रिपर्यन्त क्षत्रियाणी, अष्ट रात्रिपर्यन्त वैश्या और षष्ठ रात्रिपर्यन्त शूद्राणी गर्भग्रहणके योग्य शक्तिवाली रहती है ॥

अथ रजस्वलाया नियमानाह ।

आर्तवस्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी ।
शयीत दर्भशय्यायां पश्येदपि पतिं न च ॥ ३ ॥
करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाहरेत् ।
अश्रुपातं नखच्छेदमभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥ ४ ॥
नेत्रयोरञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम् ।
अत्युच्चशब्दश्रवणं हसनं बहुभाषणम् ।
आयासं भूमिखननं प्रवातं च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

भाषा—स्त्रीके जिस दिनसे आर्तव गिरे अर्थात् ऋतुमती होय, तबसे वह हिंसारहित, ब्रह्मचर्यसहित कुशोंकी शय्यापर शयन करे और पतिकोभी न देखे, हाथमें मिट्टीका सकोरा लेकर अथवा पत्तलमें हविष्यान्न तीन दिवसपर्यन्त भोजन करे, रोना, नखोंका काटना, तेल लगाना, चन्दनादि लेपन, नेत्रोंमें अञ्जन, स्नान, दिनका सोना और आना जाना, अत्यन्त ऊँचे शब्दका सुनना, हँसना, अत्यन्त बोलना, परिश्रम, भूमिको नाखून आदिसे खोदना, हवामें बैठना इत्यादि कार्य छोड देवे ॥ ३–५ ॥

एतस्या नियमाकरणे दोषानाह ।

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा ।
सा चेत्कुर्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाप्नुयात् ॥ ६ ॥ एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः । नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत् ॥ ७ ॥ अनुलेपात्तथा स्नानाद्दुःखशीलोऽञ्जनाददृक् । स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात्प्रधावनात् ॥ ८ ॥ अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलु जायते । तालुदन्तौष्ठजिह्वासु श्यावो हसनतो भवेत् ॥ ९ ॥ प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात् । स्खलते भूमिखननादुन्मतो वातसेवनात् ॥ १० ॥

भाषा—जो स्त्री मूर्खतासे, आलस्यसे, लोभसे अथवा प्रारब्धवश होकर निषिद्ध आचरण करे तौ गर्भ दोषको प्राप्त होता है. जैसे कि, इस रजस्वला स्त्रीके रोनेसे गर्भ विकृत (विकारयुक्त) नेत्रोंवाला होता है, नखोंके काटनेसे बुरे नखोंवाला और तेल लगानेसे कुष्ठताको प्राप्त होता है, चन्दनादिका लेप और स्नान करनेसे दुःखित, अञ्जन लगानेसे अन्धा, दिनमें सोनेसे अत्यन्त निद्रायुक्त, दौडनेसे चञ्चल और अत्यन्त ऊँचे शब्द सुननेसे बधिर होता है, हँसनेसे तालु, दाँत, ओंठ, जीभ ये श्याम होते हैं. अति बोलनेसे बहुत बोलनेवाला, परिश्रम करनेसे उन्मत्त (पागल), भूमि खोदनेसे और वायु सेवन करनेसेभी उन्मत्त होता है॥ ६–१० ॥

अथ रजस्वलाकृत्यम् ।

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना । तादृशं जनयेत्पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम् ॥ ११ ॥

भाषा—ऋतुमती स्त्री स्नान करनेके अनन्तर जिस मनुष्यको प्रथम देखेगी उसके उसीकी सदृश पुत्र होगा इस कारण पतिको अथवा प्रिय पुत्रादिकको देखे ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रियमिति भर्तरि अनासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत् । चतुर्थादिदिवसेऽपि रजोनिवृत्तौ स्त्री पत्या सङ्गच्छेत् न तु रजोऽनुवृत्तौ ॥

भाषा–यहां प्रिय शब्दका यह अभिप्राय है कि, पति समीप न होय तौ पुत्रादिकको देखे. यदि चौथे दिनसे लेकर रुधिरस्रावकी निवृत्ति होजाय तौ ऋतुमती पतिके पास जाय, परन्तु रुधिरस्राव होनेपर पतिके पास नहीं जाय ॥

प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा । तथा वहति रक्ते तु क्षिप्तं वीर्यमधो व्रजेत् ॥ १२॥

भाषा–क्योंकि, जिस प्रकार वहते हुए पानीमें कोई पदार्थ डाला जाय तौ वह नीचे वह जाता है, तैसेही वहते हुए रजमें जो वीर्य पडे तौ वह झट नीचे चला जाता है ॥ १२ ॥

अथ भर्तृकृत्यम् ।

तत्र गर्भाधाने निषिद्धं विहितं च कालं तयोः फलं चाह ॥

भाषा–उसमें प्रथम गर्भाधानमें जो कालका निषेध और कालका विधान कहा है, उन दोनों कालोंके निषेध और विधानका फल कहते हैं ॥

आयुःक्षयभयाद्भर्त्ता प्रथमे दिवसे स्त्रियम् । द्वितीयेऽपि दिने रत्यै त्यजेदृतुमतीं तथा ॥ १३ ॥ तत्र यश्चाहितो गर्भो जायमानो न जीवति । आहितो यस्तृतीयेऽह्नि स्वल्पायुर्विकलाङ्गकः ॥ १४ अतश्चतुर्थी षष्ठी स्यादष्टमी दशमी तथा । द्वादशी वापि या रात्रिस्तस्यां तां विधिना भजेत् ॥ १५ ॥ विधिना गर्भाधानोक्तविधिना ॥

भाषा–ऋतुस्नानके पीछे पहिले दिन अथवा दूसरे दिन गमन न करे, क्योंकि, ऋतुमती स्त्रीसे प्रथम दिन गमन करे तौ आयुका क्षय होता है और दूसरे दिनभी ऋतुमती स्त्रीको त्याग देवे, क्योंकि दूसरे दिनके रहे हुए गर्भका बालक नहीं जीता है, तीसरे दिनका गमन करनाभी त्याग देवे क्योंकि तीसरे दिनका उत्पन्न हुआ बालक विकलांगयुक्त और अल्पायु होता है; इस कारण चौथी, छठी, आठवीं, दशवीं और बारहवीं रात्रिमें विधिपूर्वक (गर्भाधानोक्त विधिसे) भोग करे ॥ १३–१५ ॥

अत्रोत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च । तन्त्रान्तरे । प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलं चाभिगमात्फलम् ॥ १६ ॥

भाषा–इस प्रकार गमन करनेसे आयु और आरोग्यकी अधिकता होती है । औरभी कहा है कि, सम्भोग करनेसे सन्तान, सौभाग्य, ऐश्वर्य और बल इनकीभी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है१६॥

मनोभवागारमुखेऽबलानां तिस्रो भवन्ति प्रमदाजनानाम् । समीरणा चान्द्रमसी च गौरी विशेषमासामुपवर्णयामि ॥ प्रधानभूता मदनातपत्रे समीरणा नाम विशेष नाडी । तस्या मुखे यत्पतितं तु वीर्यं तन्निष्फलं स्यादिति चन्द्रमौलिः ॥ १७ ॥

भाषा–स्त्रियोंके कामभवनके मुखमें तीन नाडी हैं, समीरणा, चान्द्रमसी और गौरी, अब इनकी विशेषता कहता हूं. योनिमें समीरणा नामक प्रधान विशेष नाडी है उसके मुखमें जो वीर्य गिरता है सो वृथा जाता है, इस प्रकार चन्द्रमौलि (श्रीशिवजी) कहते हैं ॥ १७ ॥

या चापरा चान्द्रमसी च नाडी कन्दर्पगेहे भवति प्रधाना । सा सुन्दरी योषितमेव सूते साध्या भवेदल्परतोत्सवेषु ॥ गोरीति नाडी यदुपस्थगर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात् । पुत्रं प्रसूते बहुधाङ्गना सा कष्टोपभोग्या सुरतोपविष्टा ॥ १८ ॥

भाषा–दूसरी कामभवनमें प्रधान चान्द्रमसी नाडी है उसमें वीर्य गिरनेसे स्त्री कन्याको उत्पन्न करती है और वह थोडे रतोत्सवमेंही साध्य है. प्रधानभूत जो उपस्थमार्गमें गौरी नाडी है वह स्वभावसेही पुत्रको उत्पन्न करती है, वह बहुधा सम्भोगमें कष्टोपभोग्य है ॥ १८ ॥

युग्मायुग्मरात्रीणां फलमाह ।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-सम रात्रियोंमें स्त्रीगमन करनेसे पुत्र और अयुग्म (विषम) रात्रियोंमें गमन करनेसे कन्या उत्पन्न होती हैं ॥ १९ ॥

तत्र दम्पत्योः सम्भोगे यादृक्
पुमान्युक्तस्तादृगुच्यते ।
स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोऽर्चितः ।
भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलंकृतः॥२०॥
ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः ।
पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे॥२१॥

भाषा-स्नान करके शरीरमें चन्दन लगाये हुए, सुगन्धित अतर आदि द्रव्योंको धारण किये हुए, सुगन्ध पुष्पोंसे युक्त, वृष्य (वीर्यको पुष्ट करनेवाले) पदार्थ भक्षण किये हुए, सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए, श्रेष्ठ आभूषणोंसे युक्त, मुखमें तांबूल खाये, अधिक कामी, स्त्रीमें आसक्तायुक्त पुत्रकी इच्छा करनेवाला पुरुष शुभ शय्यापर स्त्रीके पास जावे ॥ २० ॥ २१ ॥

तत्र अयोग्यं पुरुषमाह ।
अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्रान् सव्यथाङ्गः पिपासितः । बालो वृद्धोऽन्यवेगार्त्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ २२ ॥

भाषा-अत्यन्त भोजन किया हुआ, धैर्यरहित, बुभुक्षित, देहमें पीडायुक्त, प्यासा, बालक, वृद्ध, मलमूत्रादिके वेगसे युक्त और रोगी ऐसा पुरुष मैथुन नहीं करे ॥ २२ ॥

तत्र स्त्री यादृशी योग्या तादृशी उच्यते ।
पुरुषस्य गुणैर्युक्ता विहिता न्यूनभोजना ।
नारी ऋतुमती पुंसा सङ्गच्छेत्तु सुतार्थिनी२३

भाषा-पुरुषके पूर्वोक्त गुणोंकरके युक्त, अल्प भोजन किये हुए, पुत्रकी इच्छा करनेवाली ऐसी ऋतुमती स्त्री पुरुषके पास जाय ॥ २३ ॥

तत्र अयोग्यां स्त्रियमाह ।
रजस्वला व्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी ।
वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा । एतासां संगमात्पुंसां वैगुण्यानि भवन्ति हि ॥ २४ ॥

भाषा-रजस्वला, व्याधियुक्त, विशेषतासे योनिरोगवाली, अधिक आयुवाली, कामरहित, मलिन और गर्भिणी ऐसी स्त्रियोंके संगम करनेसे पुरुष रोगी हो जाते हैं ॥ २४ ॥

तत्र रजस्वला दिनत्रयं यावदतौ निषिद्धा । यत उक्तम् ॥

भाषा-पुरुषोंको जिस प्रकारसे स्त्री त्यागनी कही है उसी प्रकारको कहते हैं ॥

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी पुंसां यथावर्ज्या तथांगना॥२५

भाषा-स्त्री प्रथम दिन चांडाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन धोविनकी सदृश कही है ॥ २५ ॥

व्याधिमती च वर्ज्या तत्र स्त्रीणां व्याधयः । प्रदरादयस्तद्युक्ता निषिद्धा तत्रापि विशेषात् योनिरोगिणी ॥

भाषा-रोगयुक्त स्त्री त्याज्य कही है सो उनमें जिन स्त्रियोंके प्रदरादिक अर्थात् गरमी आदिका रोग होंय वे त्यागने योग्य हैं और उनमें जिस स्त्रीको योनिरोग होय उससे तौ अवश्य प्रसंग नहीं करे ॥

गर्भावतरणक्रममाह ।
कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ।
गर्भः सञ्जायते नार्य्याः स जातो बाल उच्यते ॥ २६ ॥

भाषा-कामके वेगयुक्त परस्परमें दोनोंका संयोग होनेसे शुद्ध रुधिर और शुद्ध वीर्यसे स्त्रीके गर्भ रहता है और वह उत्पन्न होकर बालक कहाता है ॥ २६ ॥

गर्भः शुद्धः अशुद्धस्तु गर्भोऽशुद्धशुक्रशोणितयोरपि दम्पत्योः भवति यत आह ।

भाषा-पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रुधिर जो शुद्ध होय तौ गर्भ शुद्ध होता है, और अशुद्ध होय तौ गर्भ अशुद्ध होता है ॥

दंपत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः। यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितमिति॥२७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुष्ठं सञ्जातं यस्य तत् कुष्ठितम्, अत्र तारकादित्वादितच्प्रत्ययः ॥

भाषा–क्योंकि जिस स्त्री पुरुषका कुष्ठनामक महारोग होनेसे रुधिर तथा वीर्य बिगड गया होय और उसमें सन्तान उत्पन्न होय तो वह कुष्ठरोगयुक्त होती है. कुष्ठ जिसको भली भांति उत्पन्न हुआ होय वह कुष्ठित कहाता है ॥२७॥

यत्तु, वातादिदुष्टरेतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः । इति सुश्रुतः । तत्र शुद्धप्रजोत्पादने न समर्था इति बोद्धव्यम् । रोगादिना अशुद्धास्तु प्रजावातादिदुष्टशुक्रा अपि जनयन्ति जन्मान्धबधिरपंग्वादिसम्भवात् ॥

भाषा–" वायु आदिसे जिसका वीर्य दूषित हुआ होय उस पुरुषको सन्तान उत्पन्न करनेकी समर्थता नहीं होती " ऐसा सुश्रुतमें कहा है उस स्थानमें ऐसा अर्थ समझे कि " शुद्ध सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होता " रोगादिकसे पुरुष अशुद्ध होय और वात आदिसे दूषित वीर्यवाला होवे तौभी सन्तान उत्पन्न करता है क्योंकि, उनसे अंधा, बहिरा और पंगु आदिककी उत्पत्ति देखनेमें आती है क्योंकि, ऐसा न होय तौ उनकी उत्पत्तिही न होनी चाहिये यह दुष्टरज शुक्रसेही प्रकट होते हैं ॥

ऋतौ स्त्रीपुंसयोर्योगे मकरध्वजवेगतः ।
मेढ्रयोन्यभिसङ्घर्षाच्छरीरोष्मानिलाहतः २८॥
पुंसः सर्वशरीरस्थं रेतो द्रावयतेऽथ तत् ।
वायुर्मेहनमार्गेण पातयत्यंगनाभगे ॥ २९ ॥
तत्संश्रुत्य व्यात्तमुखं याति गर्भाशयं प्रति ।
तत्र शुक्रवदायातेनार्त्तवेन युतं भवेत् ॥ ३० ॥

भाषा–मदनके वेगसे ऋतुकालमें स्त्री और पुरुष दोनोंका संयोग होनेपर लिंग योनिको आपसमें घिसनेसे शरीरकी उष्णता और वायुकी ताडना होनेसे सम्पूर्ण पुरुषोंके शरीरमें स्थित वीर्य द्रवता है; उसको लिंगके मार्गसे वायु स्त्रीकी योनिमें डाल देता है और खुले हुए मुखवाले गर्भाशयमें वह वीर्य बहकर जाता है. तहां वीर्य स्त्रीके रजसे संयुक्त हो जाता है ॥ २८–३० ॥

गर्भाशयस्य स्वरूपम् ।

शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्रयावर्त्ता सा च कीर्त्तिता । तस्यास्तृतीये त्वावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥ यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः । तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ३२ ॥

भाषा–स्त्रीकी योनि शंखकी नाभिके सदृश तीन आवर्त (चक्र) वाली कही है, उसके तीसरे आवर्तमें गर्भाशय है. जैसा रोहू मछलीका मुख तथा रूप होता है पंडितोंने उसकी स्थिति तथा रूपकी सदृशही गर्भाशय कहा है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अयमर्थः–गर्भशय्याया मुखं रोहितमत्स्यस्येव भवति यथा च रोहितमत्स्यस्य स्थितिर्जले भवति तथा पित्ताशयपक्वाशयमध्ये गर्भशय्यायाः स्थितिर्भवति रूपमपि तस्येव भवति यथा रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महानित्यर्थः ॥

भाषा–इसका तात्पर्य यह है कि, जैसा रोहू मछलीका मुख ऊपरसे छोटा और भीतरसे फैला हुआ होता है, और जिस प्रकार रोहू मछलीका रहना जलमें होता है तिसी प्रकार गर्भाशयकी स्थितिभी पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमें है ॥

शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैव खलु जायते ।
जीवस्तदैव विशति युक्तः शुक्रार्त्तवांतरः॥३३॥
सूर्यांशोः सूर्यमणित उभयस्माद्युताद्यथा ।
वह्निः सञ्जायते जीवस्तथा शुक्रार्त्तवाद्युतात् ३४

भाषा–वीर्य और रजका जिस समय संयोग होता है तबही रज और वीर्यमें जीव प्रवेश करता है. जैसे सूर्यकी किरण और सूर्यकान्तमणिके संयोगसे अग्नि उत्पन्न होती है, तैसेही वीर्य और आर्तवके संयोगसे जीव उत्पन्न हो जाता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

आत्माऽनादिरनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते।
चिदानंदैकरूपोऽयं मनसापि न गम्यते॥३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवंभूतोऽपि जगतो भाविनीबलवत्तया । अविद्यास्वीकृते कर्मवशो गर्भं विशत्यसौ ॥३६॥ गर्भे चतुर्विंशतितत्त्वमये ॥

भाषा-वह जीव अनादि, अनंत, रूपव्यक्त, कहनेमें अशक्य, चिदानंद, एकरूप, मन करकेभी नहीं जाना जाता है, जगत्में भवितव्यताकी प्रबलतासे कर्मवश होकर जीव अज्ञानको स्वीकारकर उस गर्भ (चौवीस तत्त्वमय देह) में प्रवेश करता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

स एव वेत्ता रसनो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यसौ । श्रोता वक्ता च कर्ता च गन्ता रन्तोत्सृजत्यपि ॥ ३७ ॥

भाषा-वह आत्मा स्वादको जानता है, देखता है, सूंघता है, स्पर्श करता है, सुनता है, कहता है, करता है, चलता है, रमता है और मलादिकका त्यागभी करता है ॥ ३७ ॥

दिने व्यतीते नियतं संकुचत्यम्बुजं यथा । ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥३८॥ ऋतौ रजोदर्शनात् षोडशदिनात्मके काले योनिरत्र भगद्वारम् ॥

भाषा-दिनके व्यतीत हो जानेपर जिस प्रकार निश्चयसें कमल वन्द हो जाता है तिसी प्रकार ऋतुके व्यतीत हो जानेपर स्त्रीकी योनि (भगद्वार) वन्द हो जाता है. प्रथम जिस दिनसे आर्तवका दर्शन होय उस दिनसे लकर सोलह रात्रितक ऋतुकाल कहाता है ॥ ३८ ॥

बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ । यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥ ३९ ॥ आधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्त्तवेऽधिके । नपुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा परमेश्वरी ॥ ४० ॥ नन्वेवं सति कथं पुत्रोत्पत्तिः सदैवार्त्तवस्येव बाहुल्यात् । यत उक्तम् आर्त्तवं चतुरञ्जलिप्रमाणं शुक्रं प्रसृतिमात्रमिति ॥

भाषा-अंतरकी वायुकरके वीर्यके दो टुकडें होनेसे दो जीव अर्थात् दो बालक कोखमें आते हैं. यह धर्म और अधर्मसे उत्पन्न हुए यम जोडला कहलाते हैं. वीर्यकी अधिकता होनेसे पुत्र और आर्तवकी अधिकता होनेसे कन्या और वीर्य रजके समान होनेसे नपुंसक होता है, आगे परमेश्वरकी इच्छा. यहां शंका होती है कि, स्त्रियोंका आर्तव सदैव अधिक होता है और पुरुषका वीर्य कम होता है तो पुत्रकी उत्पत्ति किस प्रकार हो सक्ती है ? जैसे कहा है कि आर्तव स्त्रीकी देहमें चार अंजलि प्रमाण है और वीर्य पुरुषकी देहमें एक अंजलिही है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

वाग्भटेऽप्युक्तमात्रेयादिभिः ।

मज्जामेदोवसामूत्रपित्तश्लेष्मशकृन्त्यसृक् । रसो जलं च देहेऽस्मिन्नेकैकाञ्जलिवर्द्धितम् ४१॥ पृथक् स्वप्रसृतं प्रोक्तमोजोमस्तिष्करेतसाम् । द्वावञ्जली तु दुग्धस्य चत्वारो रजसः स्त्रियः । समधातोरिदं मानं विद्याद्वृद्धिक्षयावतः ॥४२॥ इति नैवं, यतो गर्भाशयस्थमेव शुक्रमार्त्तवं च गर्भोत्पत्तिहेतुः शुक्रं कदाचिदत्यन्तहर्षवशाद्दुग्धादिशुक्रलत्वद्रव्यसेवनात् शुक्रबाहुल्यात् गर्भाशये बहु स्रवति कदाचिद्वैमनस्यादिना शुक्राल्पत्वात्स्वल्पमिति एवमार्त्तवमपीति न दोषः ॥

भाषा-वाग्भटमें आत्रेय आदिनेभी कहा है कि " मज्जा, मेद, वसा (चरबी), मूत्र, पित्त, कफ, मल, रुधिर, रस और जल ये सब इस देहमें एकसे एक अधिक अंजलि हैं और ओज, मस्तिष्क तथा वीर्य यह एक एक अंजलि है, स्त्रियोंके दुग्ध दो अंजलि और रज चार अंजलि हैं, यह जिस प्राणीके देहमें समधातु है उसकाही मान जानना. देहकी वृद्धि और क्षय होनेसे धातुका क्षय और वृद्धिभी हो जाती है. इस कारण पुत्रोत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है. इसका समाधान कहते हैं. कि जिस समय गर्भ रहता है उसी समय गर्भोत्पत्तिका कारण गर्भाशयमें वीर्य और आर्तव है, परन्तु अत्यन्त हर्ष होनेसे अथवा दुग्धादि शुक्रवर्द्धक पदार्थोंके सेवनेसें किसी २ समय वीर्य बढकर गर्भाशयमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अधिक गिरता है और कभी दुःखादिसे मन बिगडकर वीर्यकी न्यूनता होनेसे कम गिरता है. इसी प्रकार रजभी न्यूनाधिक होता है इससेही पुत्र कन्या होती हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

सुश्रुतः पुनराह ।

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैव च ।
दोषधातुमलानां तु परिमाणं न विद्यते॥४३॥

वैलक्षण्यात् दीर्घह्रस्वकृशादिभेदेन सादृश्याभावात् अस्थायित्वात् वयोऽहर्निशर्तुभुक्तेषु एकमात्रानवस्थानात् ॥

भाषा–फिर सुश्रुत कहते हैं कि, शरीरधारियोंकी पृथक् २ विलक्षणतासे तथा उनके अस्थायित्वसे दोष, धातु और मलका परिमाण नहीं हो सक्ता. विलक्षणतासे अर्थात् लम्बा, ठिंगना, कृश आदिक भेदसे सदृशता नहीं है इस कारण अस्थायित्वसे अर्थात् आयु, दिन, रात्रि और ऋतु तथा भोजनमें एक मात्राकी स्थिति न होनेसे दोषादिकका परिमाण नहीं हो सक्ता ॥ ४३ ॥

एवं तामभिसङ्गम्य पुनर्मासाद्व्रजेदसौ ॥४४॥

मासादूर्ध्वामिति शेषः । अर्वाग्गमनेन गर्भद्वारविघट्टनात् गर्भच्युतिप्रसङ्गः स्यात् । केचित्तु पुनः पुष्पदर्शनेन गर्भालाभनिश्चये मासादूर्ध्वं गच्छेदिति वदन्ति ॥

भाषा–इस प्रकार एक वार स्त्री समागम करनेके पश्चात् फिर एक मास उपरान्त उसका सेवन करे, क्योंकि मास व्यतीत होनेसे पहलेही स्त्री गमन करे तौ गर्भद्वारका मथन होनेसे गर्भपात होनेकी शंका है. कितनोंका कहना ऐसा है कि, फिर आर्तवका दर्शन होय तौ गर्भ नहीं रहा ऐसा जानकर स्त्रीके पास जावे और यदि गर्भ रह गया होय तौ फिर मास बीत जानेपरभी सम्भोग नहीं करे ॥ ४४ ॥

तत्र परिहार्यपरिहारार्थं सद्योगृहीतगर्भाया लक्षणमाह ॥

भाषा–गर्भ रहनेके पश्चात् त्यागने योग्य बातोंका त्याग करनेके हेतुसे जिसको तुरन्त गर्भ रहा होय ऐसी स्त्रीके लक्षण कहते हैं ॥

शुक्रशोणितयोर्योनेरस्रावोऽथ श्रमोद्भवः । सक्थिसादः पिपासा च ग्लानिः स्फूर्त्तिर्भगे भवेत् ॥ ४५ ॥

भाषा–योनिसे वीर्य और रुधिरका नहीं वृहना, परिश्रम होना, जंघाओंमें पीडा, प्यास, ग्लानि और भगका फडकना इन लक्षणोंसे जाने कि, गर्भ रहा है ॥ ४५ ॥

अथ तस्या एव उत्तरकालीनं लक्षणमाह ।

स्तनयोर्मुखकाश्यं स्याद्रोमराज्युद्गमस्तथा ।
अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्ते विशेषतः ॥ ४६ ॥ छर्दयेत्पथ्यभुक्तं चापि गन्धाद्बिभेति शुभात् । प्रसेकः सदनं चैव गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥ ४७ ॥

भाषा–स्तनोंके अग्रभागोंका श्याम हो जाना, रोमांच खडे होना, विशेषकरके नेत्रोंका मिचना, पथ्य भोजनकीभी वमन कर देना, उत्तम सुगंधिसेभी भयभीत होना, मुखसे लारका गिरना और शरीरमें जकड ये लक्षण गर्भवती स्त्रीके कहे हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

तत्र पुत्रगर्भवत्या लक्षणमाह ।

पुत्रगर्भयुतायास्तु नार्या मासि द्वितीयके । गर्भो गर्भाशये लक्ष्यः पिण्डाकारोऽपरं शृणु ॥४८॥

पिण्डाकारो वर्त्तुलाकृतिः । मासि द्वितीयक इत्यस्य गर्भः पिण्डाकारो लक्ष्यः इत्यनेनैवान्वयो न तु अग्रिमश्लोकेऽपि ॥

भाषा–पुत्रगर्भवती स्त्रीके दूसरे मासमें गर्भ पिंडाकार मालूम होता है ॥ ४८ ॥

दक्षिणाक्षिमहत्त्वं स्यात् प्राक्क्षीरं दक्षिणे स्तने ।
दक्षिणोरुः सुपुष्टः स्यात्प्रसन्नमुखवर्णता॥४९॥
पुन्नामधेयद्रव्येषु स्वप्नेष्वपि मनोरथः ।
आम्रादिफलमाप्नोति स्वप्नेषु कमलादि च५०॥

भाषा–दक्षिण नेत्र किंचित् बडासा प्रतीत होवे, प्रथम दक्षिण स्तनमें दूध आवे, दक्षिण जांघ पुष्ट (भारी) हो, मुखका रंग श्रेष्ठ और प्रसन्न हो, पुरुषसंज्ञक द्रव्योंकी इच्छासे और स्वप्नमेंभी इन द्रव्योंकाही मनोरथ हो, तथा आम्रादि फलोंको और कमलादि पुष्पोंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वप्नमें प्राप्ति हो तौ उसके गर्भमें पुत्र समझना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कन्यागर्भवत्या लक्षणम् ।

कन्यागर्भवतीगर्भे पेशी मासि द्वितीयके ।
पुत्रगर्भस्य लिङ्गानि विपरीतानि चेक्षते ॥५१॥
पेशी दीर्घाकृतिः ।

भाषा-कन्यागर्भवतीस्त्रीके गर्भमें दूसरे महीनेमें पेशी (लंबी दीर्घाकार) मालूम हो और पुत्रगर्भवाली स्त्रीसे विपरीत लक्षण मालूम होते हों तौ उसके गर्भमें कन्या समझना चाहिये ॥५१॥

अथ नपुंसकगर्भलक्षणम् ।

नपुंसकं यदा गर्भे भवेद्गर्भोऽर्बुदाकृतिः ।
उन्नते भवतः पार्श्वे पुरस्तादुदरं महत् ॥५२॥
अर्बुदं वर्त्तुलं फलार्द्धतुल्यम् ।

भाषा-जिस स्त्रीके गर्भमें नपुंसक बालक होता है उस गर्भमें अर्बुदाकार पिण्ड ज्ञात होता है और दोनों कोखोंमें गर्भ ऊँचा प्रतीत हो और आगेसे पेट बडा होता है ॥ ५२ ॥

नपुंसकविशेषानाह ।

आसेक्यश्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ।
अमी सशुक्रा बोद्धव्या अशुक्रःषंढसंज्ञकः ५३

भाषा-आसेक्य, सुगन्धी, कुम्भीक और इर्ष्यक ये नपुंसक वीर्यसहित होते हैं और षंढनामक नपुंसक वीर्यरहित होता है ॥ ५३ ॥

एतेषां लक्षणमाह ।

पित्रोस्तु स्वल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ।
स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोन्नतिमसंशयम् ॥ ५४ ॥ पित्रोर्मातापित्रोः स्वल्पवीर्यत्वात् स्वल्पशुक्रार्त्तवत्वात् आसेक्यनामा मुखयोनीति नामान्तरः स शुक्रं प्राश्येति स पुरुषोऽन्यपुरुषेण स्वमुखे मैथुनं कारयित्वा तस्य शुक्रं प्राश्य मेहनोत्थानं लभते इत्यर्थः ॥

भाषा-माता पिताके शुक्र आर्तव अल्प होनेसे पुरुष आसेक्य नपुंसक होता है जब वह अन्यपुरुषका वीर्य खाता है तब वह पुरुष निःसंदेह मदनोन्मत्त होकर मैथुनकी शक्तिको प्राप्त होता है इसका दुसरा नाम मुखयोनि है ॥ ५४ ॥

यः पूतियोनौ जायेत स हि सौगंधिको भवेत् ।
स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ ५५ ॥ सौगन्धिकः सौगन्धिकनामा नासायोनीति नामान्तरः । बलं मैथुने शक्तिम् ॥

भाषा-जो दुर्गन्धित योनिसे उत्पन्न होता है उसको सौगन्धिक नपुंसक कहते हैं. यह नपुंसक लिंग और भगकी गन्ध सूँघतेही पुरुषताको प्राप्त होता है इसका द्वितीय नाम नासायोनि है॥५५॥

स्वे गुदेऽब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषु पुंवत् प्रवर्त्तते । स कुम्भीक इति ज्ञेयो गुदयोनिस्तु स स्मृतः ॥ ५६ ॥ अब्रह्मचर्यात् ब्रह्मचर्यम् अमैथुनम् अब्रह्मचर्यं मैथुनम् किन्तु स्त्रीवदधोभूतः स्वे गुदे पुरुषान्तरेण मैथुनं तस्मात् ॥

भाषा-जो नपुंसक प्रथम स्वयं गुदामें भोग कराकर स्त्रीसे पुरुषवत् मैथुन करता है वह कुम्भीक नपुंसक कहलाता है इसका दूसरा नाम गुदयोनि है ॥ ५६ ॥

दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्त्तते ।
ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो दृष्टियोनिस्तु स स्मृतः ॥ ५७ ॥

भाषा-जो मनुष्य अन्यको मैथुन करता देखे और फिर आप मैथुन करनेको प्रवृत्त हो जाय उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं इसका द्वितीय नाम दृष्टियोनि है ॥ ५७ ॥

यो भार्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्त्तते । तत्र स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञकः ॥ ५८ ॥ स्त्रीचेष्टिताकारः स्त्रीचेष्टितः समेहनोऽपि पुरुषशक्तिरहितः । स्त्र्याकारः श्मश्रुरहितः ।

भाषा-जो पुरुष अज्ञानतासे मोहके वशीभूत हो स्त्रीके तुल्य आप नीचे सोकर और स्त्रीको अपने ऊपर करके उससे मैथुन करे उसके जो लडका उत्पन्न हो वह साक्षात् स्त्रीके समान लक्षणवाला होता है अर्थात् जनखा डाढीमूंछरहित लिङ्गाकारसहित होता है परन्तु कुछ पुरुषार्थ नहीं कर सक्ता, उसको षंढ कहते हैं ॥ ५८ ॥

ऋतौ ऋतौ पुरुषवत् प्रवर्त्ततेऽङ्गना यदि । तत्र कन्या यदि भवेत् सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ५९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषवत् स्त्रियमारुह्य सा तस्या योनौ स्वयोनिघर्षणं करोति ॥

भाषा–भार्या यदि ऋतुकालमें आप ऊपर हो और पुरुषकों नीचे लिटाकर संभोग करे तब उसके जो कन्या जन्मे वह पुरुषके लक्षणोंवाली होगी और सदैव पुरुषके सदृश नारीको प्यारी समझ उसके ऊपर आरूढ हो उसकी भगसे अपनी भगको घिसती रहेगी तथा इसके डाढी मूंछके कुछ कुछ चिह्न प्रतीत होते हैं ॥ ५९ ॥

अपरा अपि गर्भप्रकृतिराह ।

यदा नार्योपसेतायां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन । मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ ६० ॥ अनस्थिः अत्रेषदर्थे नञ् तेनाल्पकोमलास्थिरित्यर्थः ॥

भाषा–कामके वशीभूत होकर स्त्रीसे स्त्री जिस समय परस्पर मैथुन करे, तब किसी प्रकार अन्योन्य वीर्यका त्याग करती हैं उससे अनस्थि (हड्डीसे रहित अथवा सूक्ष्म हड्डियोंवाला) बालक उत्पन्न होता है ॥ ६० ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमाचरेत् । आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि॥६१॥

भाषा–ऋतुकालमें स्नान किये हुए स्त्री स्वप्नमें मैथुन करे तौ आर्तवकोही लेकर वायु कोखमें गर्भको उत्पन्न करता है ॥ ६१ ॥

मासि मासि प्रवर्द्धेत स गर्भो गर्भलक्षणः । कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः॥६२॥ गर्भलक्षणः प्रकृतगर्भलक्षणः । पैतृकैर्गुणैः केशश्मश्रुलोमनखदन्तशिरास्नायुधमनीरेतःप्रभृतिभिः ॥

भाषा–वह गर्भ मास मासमें गर्भके लक्षणसे युक्त बढता है और पिताके गुणोंसे वर्जित अर्थात् वह कलल (कीचडसा) पैतृकगुण (केश, दाढी, मूँछ, रोम, नख, दन्त, नाडी आदि) से हीन उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥

सर्पवृश्चिककूष्माण्डाकृतयो विकृताश्च ये । गर्भास्ते योषितस्ताश्च ज्ञेयाः पापकृतो भृशम् ॥ ६३ ॥

भाषा–जो गर्भ सांप, वीछू, कूष्माण्डकी आकृतिवाले अथवा विकृत होते हैं वे स्त्रीके पापकर्म करनेसे होते हैं ॥ ६३ ॥

गर्भो वातप्रकोपेण दोहदे चावमानिते । भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूको मिन्मिन एव च॥६४॥

भाषा–वायुके प्रकोपसे दोहद (गर्भचिह्न) मेंभी कुपथ्य करनेसे गर्भ कुबडा, टूंटा, पंगु, गूंगा और मिनमिना उत्पन्न होता है ॥ ६४ ॥

पुत्राणां आहाराचारचेष्टाभेदस्य हेतुमाह ।

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ । स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ ६५ ॥ समुपेयातां संयोगं गच्छेताम् ॥

भाषा–जैसे आहार और चेष्टा तथा आचरणसे स्त्री पुरुष मैथुन करते हैं, उसी प्रकारकी चेष्टावाले उनके पुत्रभी होते हैं ॥ ६५ ॥

गर्भलक्षणम् ।

गर्भाशयगतं शुक्रमार्त्तवं जीवसंज्ञकः । प्रकृतिः सविकारा च तत्सर्वं गर्भसंज्ञकम् ॥ ६६ ॥

भाषा–गर्भाशयमें गये हुए वीर्य और आर्तवको जीव कहते हैं, आठ प्रकृति और सोलह विकार ये सब गर्भसंज्ञक हैं ॥ ६६ ॥

कालेन वर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गोपाङ्गसंयुतः । भवेत्तदा स मुनिभिः शरीरीति निगद्यते६७॥ अङ्गोपाङ्गसंयुतः व्यक्ताङ्गोपाङ्गः ।

भाषा–काल करके बढा हुआ वही गर्भ अंग और उपांगसहित हो जाता है तब मुनीश्वर उसको शरीरी कहते हैं ॥ ६७ ॥

तस्य त्वङ्गान्युपाङ्गानि ज्ञात्वा सुश्रुतशास्त्रतः । मस्तकादभिधीयंते शिष्याः शृणुत यत्नतः६८

भाषा–मैं सुश्रुतसंहितासे उसके अंग उपांगोंको जानकर मस्तकसे कहे हुए सम्पूर्ण अंगोंको कहता हूं, हे शिष्यो ! तुम यत्नपूर्वक सुनो ॥ ६८ ॥

आद्यमङ्गं शिरः प्रोक्तं तदुपांगानि कुन्तलाः । तस्यांतर्मस्तुलुङ्गं च ललाटं भ्रूयुगं तथा॥६९॥ नेत्रद्वयं तयोरन्तर्वर्त्तते द्वे कनीनिके । दृष्टिद्वयं कृष्णगोलौ श्वेतभागौ च वर्त्मनि ॥ ७० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्ष्माण्यपाङ्गौ शङ्खौ च कर्णौ तच्छष्कुलीद्वयम् । पालिद्वयं कपोलौ च नासिका च प्रकीर्त्तिता ॥ ७१ ॥

भाषा—प्रथम अंग शिर है, उसके उपांग केश हैं, उसके भीतर मस्तिष्क (मस्तकमें जो चिकनी वस्तु होती है वह), दो भौंहें, दो नेत्र, उनके भीतर दो पुतलियां, दो दृष्टि (निगाह), दो काले गोलक, दो सफेद गोलक, दो कोए, दो पलक और नेत्रोंके मध्यवाले अपांगभाग, दो शंख (मस्तककी हड्डी), कनपटी, दो कान, दो कानोंके छिद्र, पाली, कपोल (गाल), नाक ॥ ६९–७१ ॥

ओष्ठाधरौ च सक्किण्यौ मुखं तालु हनुद्वयम् । दन्ताश्च दन्तवेष्टश्च रसना चिबुकं गलः॥७२॥

भाषा—ऊपर नीचेके ओष्ठ, ओष्ठोंके किनारे, मुँह, तालु, दो जाबडे, दाँत, मसूडे, रसना (जीभ), चिबुक (ठोडी) और गला है॥७२॥

द्वितीयमङ्गं ग्रीवा तु यया मूर्द्धा विधार्यते । तृतीयं बाहुयुगलं तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥७३॥ तत्रोपरि मतौ स्कन्धौ प्रगण्डौ भवतस्त्वधः । कफोणियुग्मं तदधः प्रकोष्ठयुगलं तथा॥७४॥ मणिबन्धौ तले हस्तौ तयोश्चांगुलयो दश । नखाश्च दश ते स्थाप्या दश च्छेद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७५ ॥

भाषा—द्वितीय अंग गरदन है, जो मस्तक धारण कर रही है. तृतीय अंग दोनों भुजा हैं, इनके उपांगोंको कहते हैं. इनके ऊपर दो कंधे हैं, उसके नीचे प्रगंड (बाजू) हैं, उसके नीचे कोहनी, उसके नीचे प्रकोष्ठ, उसके नीचे पहुँचे, उसके नीचे हाथ उसके नीचे दश अंगुली, और उसमें दश नख रखने योग्य और दश काटने योग्य नख (नाखून) कहे हैं ॥ ७३–७५ ॥

चतुर्थमङ्गं वक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे । स्तनौ पुंसस्तथा नार्या विशेष उभयोरयम् ॥ ७६ ॥ यौवनागमने नार्याः पीवरौ भवतः स्तनौ । गर्भवत्याः प्रसूतायास्तावेव क्षीरपूरितौ ॥७७॥

भाषा—चतुर्थ अंग हृदय है उसके उपांगोंको कहते हैं. हृदयमें स्त्री और पुरुष दोनोंके दो स्तन होते हैं. इनमें जब स्त्री यौवनावस्थामें आती है तब दोनों स्तन बडे हो जाते हैं और जब स्त्री गर्भवती होकर प्रसूता होती है तब वे स्तन दूधसे परिपूर्ण हो जाते हैं ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

हृदयं पुण्डरीकेण सदृशं स्यादधोमुखम् । जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तु निमीलति॥७८॥ आशयस्तच्चु जीवस्य चेतनास्थानमुत्तमम् । अतस्तस्मिंस्तमोव्याप्ते प्राणिनः प्रस्वपन्ति हि ॥ ७९ ॥

भाषा—हृदय कमलके सदृश अधोमुख होता है, जाग्रत् अवस्थामें तो खुला रहता है और सोनेपर बन्द हो जाता है, यही जीवका स्थान है और वही चेतनाका उत्तम स्थान है, इसी कारण तमोगुण प्राप्त होनेपर प्राणी सो जाते हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

चेतनास्थानमुत्तममिति । अयमभिप्रायः । चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्च सेन्द्रियः । केशलोमनखाग्रं च मलं द्रव्यगुणैर्विना ॥ ८० ॥ इत्युक्तवता चरकेण सकलं शरीरं चेतनास्थानमुक्तम्, तदपेक्षया हृदयं विशेषतश्चेतनास्थानमिति ।

भाषा—उत्तम चेतनाका स्थान है इसके कहनेका यह प्रयोजन है कि केश, रोम, नखोंके अग्रभाग, मल और द्रव्यगुण इनसे रहित शेषकी इन्द्रियों सहित देह और मन यह चेतनाका स्थान है इस प्रकार कहकर चरकमुनिने सम्पूर्ण शरीर चेतनाका स्थान है ऐसा कहा है, परन्तु इतना कहनेपरभी विशेषकरके हृदय चेतनाका स्थान है ऐसा कहनेका प्रयोजन है॥८०॥

कक्षयोर्वक्षसः सन्धी जत्रुणी समुदाहृते । कक्षे उभे समाख्याते तयोः स्यातां च वङ्क्षणौ ॥८१॥ उदरं पञ्चमं चाङ्गं षष्ठं पार्श्वद्वयं मतम् । सपृष्ठवंशं पृष्ठं तु समस्तं सप्तमं स्मृतम्॥८२॥

भाषा—हृदयके समीप दोनों कोखकी ओर सन्धि, जत्रु (हसली) है, उसके नीचे दो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोख हैं और उसके दो वंक्षण (कंधेके जोड) हैं, पंचम अंग उदर (पेट) है, षष्ठ अंग दोनों पार्श्व (पसली) हैं, सप्तम अंग पीठके दोनों बांसों सहित समस्त पीठको कहा है ॥८१॥८२॥

उपाङ्गानि च कथ्यन्ते तानि जानीहि यत्नतः । शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः ॥ ॥ ८३ ॥ रक्तवाहिशिराणां स मूलं ख्यातो महर्षिभिः । हृदयाद्वामतोऽधश्च फुप्फुसो रक्तफेनजः ॥ ८४ ॥

भाषा–अब इनके उपांगोंको कहते हैं, उनको यत्नपूर्वक जानो, वाम हृदयके नीचे रक्तसे उत्पन्न हुई प्लीहा होती है, महर्षियोंने रक्तवाहिनी नाडियोंका मूल इसीको कहा है. हृदयसे नीचे वाम और रुधिरके झागोंसे उत्पन्न हुआ फुप्फुस (फेफडा) है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अधो दक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतः स्थितिः । तत्तु रञ्जकपित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ॥ ८५ ॥ अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात् क्लोम तिष्ठति । जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतम् ॥ ८६ ॥ क्लोम तिलकम् । एतत्तु वातरक्तजम् । अत्र वृद्धवाग्भटः । रक्तादनिलसंयुक्तात्कालीयकसमुद्भवः ॥ ८७ ॥ इति ।

भाषा–हृदयसे दक्षिण ओर नीचे यकृत् है, वह रुधिरसे उत्पन्न हुआ, रंजक पित्तका स्थान है. हृदयसे दक्षिणकी ओर नीचे क्लोम (पिपासास्थान) है, यह जलके वहनेवाली नाडियोंका मूल है और तृष्णाको आच्छादन करे है, यह वातरक्तज है ॥ ८५–८७ ॥

मेदः शोणितयोः साराद्वृक्कयोर्युगलं भवेत् । तौ तु पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥ ८८ ॥ उक्ताः सार्द्धास्त्रयो व्यामाः पुंसामन्त्राणि सूरिभिः । अर्द्धव्यासेन हीनानि योषितोऽन्त्राणि निर्दिशेत् ॥ ८९ ॥

भाषा–मेद और रक्तके सारसे दो वृक्क उत्पन्न होते हैं, ये दोनों उदरमें रहनेवाले मेदाको पुष्ट करते हैं, पंडितोंने साढे तीन व्यामकी पुरुषोंकी आतें कही हैं (दोनों भुजाओंकी लम्बाईको व्याम कहते हैं)और स्त्रियोंकी आँतें तीन व्याम प्रमाण हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

उन्दुकश्च कटी चापि त्रिकं वस्तिश्च वंक्षणौ । कण्डराणां प्ररोहः स्यात् स्थानं तद्वीर्यमूत्रयोः ॥ ९० ॥ स एव गर्भस्याधानं कुर्याद्गर्भाशये स्त्रियः । शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिरुदावर्त्ता सा च कीर्त्तिता । तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ९१ ॥

भाषा–उंदुक, कटि, त्रिक (पीठके बाँसके नीचेकी तीन हड्डी), बस्ति (मूत्राशय), वंक्षण, कण्डराओंका प्ररोह, यह वीर्य और मूत्रके स्थान हैं. येही स्त्रियोंके गर्भाधान करते हैं. शंखकी नाभिकी सदृश तीन आवर्त्तवाली योनि कही है (उसमें तीन चक्र होते हैं) इसके तीसरे आवर्त्त (चक्र) में गर्भशय्या है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

वृषणौ भवतः सारात्कफासृग्भ्यां च मेदसाम् । वीर्यवाहिशिराधारौ तौ मतौ पौरुषावहौ ॥९२॥

भाषा–कफ, रक्त और मेदाके सारांशसे दोनों अंडकोश उत्पन्न हुए हैं, ये दोनों वीर्यको वहनेवाली नाडियोंके आधार और पुरुषार्थ देनेवाले कहे हैं ॥ ९२ ॥

गुदस्य मानं सर्वस्य सार्धं स्याच्चतुरङ्गुलम् । तत्र स्युर्वलयस्तिस्रः शङ्खावर्त्तनिभास्तु ताः ॥ ९३ ॥ प्रवाहिणी भवेत् पूर्वा सार्द्धाङ्गुलसमा मता । उत्सर्जनी तु तदधः सा सार्द्धाङ्गुलसम्मिता ॥ ९४ ॥ तस्याधः संवरणी स्यादेकाङ्गुलसमा मता । अर्द्धाङ्गुलप्रमाणं तु बुधैर्गुदमुखं मतम् । मलोत्सर्गस्य मार्गोऽयं पायुर्देहे विनिर्मितः ॥ ९५ ॥

भाषा–समस्त गुदाका प्रमाण साढे चार अंगुल है, शंखके आवर्त्तोंकी सदृश उसमें तीन वली (गोल) हैं, उसमें प्रथम वलीका नाम प्रवाहिणी है, यह डेढ अंगुल प्रमाण है, इसके नीचे द्वितीय उत्सर्जनी है, इसका प्रमाणभी डेढ अंगुलका है, संवरणी नामवाली तृतीय वली है इसका प्रमाण एक अंगुलका है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुदाके मुखका प्रमाण पंडितोंने आधे अंगुलका कहा है, यह गुदा शरीरसे मल त्यागनेका मार्ग निर्माण किया है ॥ ९३-९५ ॥

पुंसः प्रोथौ स्मृतौ यौ तु तौ नितम्बौ च योषितः । तयोः कुकुन्दरे स्यातां सक्थिनी त्वङ्गमष्टमम् ॥ ९६ ॥ तदुपाङ्गानि च ब्रूमो जानुनी पिण्डिकाद्वयम् । जङ्घे द्वे घुटिके पार्ष्णीतले च प्रपदे तथा । पादावंगुलयस्तत्र दश तासां नखा दश ॥ ९७ ॥

भाषा-पुरुषके दो प्रोथ (कूले) कहे हैं वेही स्त्रियोंके नितम्ब हैं और उसके नीचे दो कुकुन्दर (नितम्बोंके ऊपर दो गढे हैं) अष्टम अंग जांघ हैं, उनके उपांग कहते हैं. उसके नीचे दो घुटने, उसके नीचे दो पिंडली, उसके नीचे टकने, उसके नीचे एडी, तलुए, ऊपरकी ओर चरण, उनके अग्रभागमें दश अंगुली और उनमें दश नख हैं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथेदं शरीरमपरेणापि येन येन समवायिकारणेनोत्पद्यते । तानि सर्वाण्याह ।

अथ दोषाः प्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनन्तरम् । आहारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्च वक्ष्यते ॥ ९८ ॥ आर्त्तवं चाथ धातूनां मलास्तदुपधातवः । आशयाश्च कलाश्चापि मर्माण्यथ च सन्धयः ॥ ९९ ॥ शिराश्च स्नायवश्चापि धमन्यः कण्डरास्तथा । रन्ध्राणि भूरिस्रोतांसि जालैः कूर्चाश्च रज्जवः ॥ १०० ॥ सेवन्यश्चाथ सङ्घाताः सीमन्ताश्च तथा त्वचः । लोमानि लोमकूपाश्च देह एतन्मयो मतः ॥ १०१ ॥

भाषा-अब दोष कहते हैं, तदनंतर धातु, आहार आदिकी गति और उसका परिणाम, आर्तव, धातुओंके मल उपधातु, आशय, कला, मर्म, संधि, शिरा, स्नायु, धमनी, कण्डरा, रन्ध्र, बहुतसे स्रोत, जाल, कूर्च, रज्जु, सेवनी, संघात, सीमन्त, त्वचा, रोम और रोमकूप ये सब कहेंगे, क्योंकि, देह इन समवायि कारणोंसेही बना है ॥ ९८-१०१ ॥

तत्र दोषस्वरूपमाह वाग्भटः ।

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः । विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च ॥ १०२ ॥ ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधो मध्योर्ध्वसंश्रयाः । वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ १०३ ॥

भाषा-वात, पित्त और कफ ये तीन दोष संक्षेपतासे कहे हैं. ये विकृत (दूषित) होनेसे देहका नाश करते हैं और अविकृत (शुद्ध) होनेसे शरीरका पालन करते हैं, वे दोष हृदय और नाभिके नीचे, बीचमें और ऊपर व्याप्त होकर अवस्था, दिन, रात्रि और भोजन इनके अंत, मध्य और आदिमें क्रमसे गमन करते हैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

दोषशब्दस्य निरुक्तिमाह ।

धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्येभिर्यतस्ततः । वातपित्तकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृताः । ते धातवोऽपि विद्वद्भिर्गदिता देहधारणात् ॥ १०४ ॥ दोषा इत्यत्र दुष् वैकृत्ये इति दुष्-धातोः दुष्यन्ति एभिरिति वाक्येन अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् इत्यनेन सूत्रेण करणेऽर्थे घञ् प्रत्ययः ॥

भाषा-धातु और मल इससे दूषित हैं इसी कारण वात, पित्त और कफ ये तीन दोष कहे हैं, विद्वानोंने देह धारण करनेसे इनको धातुभी कहा है ॥ १०४ ॥

यत आह सुश्रुतः ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा । धारयंति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥ १०५ ॥ अत्र यथासङ्ख्येनान्वयो बोद्धव्यः । विसर्गादानं वातस्य एव । विक्षेपः शीतोष्णादीनां विविधप्रकारेण प्रेरणम् ॥

भाषा-क्योंकि सुश्रुत कहता है कि, विसर्ग (त्याग करना), आदान (ग्रहण करना) और विक्षेप (डालना) इन तीन क्रियाओंसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य और वायु जगत्को धारण करते हैं उसी प्रकार कफ, पित्त और वायुभी अनुक्रमसे इन तीन क्रियाओंके द्वारा धारण करते हैं यहां अन्वय अनुक्रमसे जानना अर्थात् चन्द्र विसर्ग क्रियासे, सूर्य आदान क्रियासे और वायु विक्षेप क्रियासे जगत्को धारण करते हैं. फिर सोम, सूर्य और वात तथा कफ, पित्त और वात इनकी क्रिया अनुक्रमसे जगत्में तथा देहमें समान है यह कहनाभी ग्रंथकर्त्ताकाही आशय जानना ॥ १०५ ॥

मलाश्च ते रसादीनां मलिनीकरणान्मताः ॥

भाषा–फिर उसकी मलसंज्ञाभी है क्योंकि वह रसादिकको मलिन करते हैं ॥

तत्र वायोः स्वरूपमाह ।

दोषधातुमलादीनां नेता शीघ्रः समीरणः ।
रजोगुणमयः सूक्ष्मो रूक्षः शीतो लघुश्चलः ॥ १०६ ॥ नेता स्थानान्तरं प्रापयिता । शीघ्रः आशुकारी ॥

भाषा–वायु दोष, धातु (रस रक्तादि) मल इनको अन्य स्थानपर पहुँचानेवाला, शीघ्र गमन करनेवाला, रजोगुणयुक्त, सूक्ष्म, रूक्ष, शीतल, हलका और चंचल है ॥ १०६ ॥

अन्यच्च ।

उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टावेगप्रवर्त्तनैः । सम्यग्गत्या च धातूनामिन्द्रियाणां च पाटवैः । अनुगृह्णात्यविकृतो हृदयेन्द्रियचित्तधृक् ॥ १०७ ॥

भाषा–औरभी कहा है कि, वात उत्साह, श्वासका लेना और छोडना यह चेष्टा और वेगप्रवर्त्तन तथा उत्तम गतिसे धातु और इन्द्रियोंकी चतुरतासे रक्षा करता है और हृदय, इन्द्रिय तथा चित्तको धारण करता है ॥ १०७ ॥

रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ।
खरो मृदुर्योगवाही संयोगादुभयार्थकृत् ॥ १०८ ॥ दोहकृत् तेजसा युक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयात् । विभागकरणाद्वायुः प्रधानं दोषसंग्रहे ॥ १०९ ॥

भाषा–रजोगुणमय, सूक्ष्म, शीतल, रूक्ष, चंचल, तीक्ष्ण, नरम, योगवाही (जिसके साथ मिले उसीकेसे गुण करनेवाला), संयोग होनेसे दोनोंका अर्थ करनेवाला, जैसे तेज (सूरज) के मिलनेसे दाह और चंद्रमाके मिलनेसे शीतलताको करता है विभाग करनेसे दोषसमूहमें वात प्रधान है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

पक्वाशयकटीसक्थिश्रोत्रास्थिस्पर्शनेन्द्रियम् ।
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ॥ ११० ॥ एको वायुः पित्तवत् नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधः ॥

भाषा–पक्वाशय, कमर, जंघा, श्रोत्र (कान), अस्थि और त्वचा ये सब वातके स्थान हैं, इनमें पक्वाशय मुख्य स्थान है. एक वातही पित्तके सदृश नाम स्थान और कर्मके भेदोंसे पांच प्रकारका है ॥ ११० ॥

तेषां वायूनां नामानि आह ।

उदानस्तदनु प्राणः समानोऽपान एव च ।
व्यानश्चैतानि नामानि वायोः स्थानप्रभेदतः ॥ १११ ॥

भाषा–उदान, प्राण, समान, अपान और व्यान स्थानके भेदसे ये वायुके नाम हैं ॥१११॥

अथ उदानादीनां स्थानानि आह ।

कण्ठे हृदि तथाधस्तात्कोष्ठवह्नेर्मलाशये । सकलेऽपि शरीरेऽसौ क्रमेण पवनो वसेत् ॥ ११२ ॥

भाषा–कंठ, हृदय, कोठेकी वह्निके नीचे, मलाशय और सम्पूर्ण शरीरमें क्रम करके वातका निवास स्थान है अर्थात् कंठमें उदान, हृदयमें प्राण, कोठेकी अग्निके नीचे (नाभीमें) समान, मलाशय (गुदा) में अपान और सम्पूर्ण शरीरमें व्यान नामक पवन निवास करता है ॥ ११२ ॥

अथ तेषां कर्माणि आह ।

उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः ।
तेन भाषितगीतादिप्रवृत्तिः कुपितस्तु सः ।
ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् विदधाति विशेषतः ॥ ११३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-उत्तम उदान नामक वायु जो गलेमें घूमता है उसीकी शक्तिसे यह प्राणी भाषण करता है और गीतादिकोंके गानेमें प्रवृत्ति होती है और वही वायु कुपित होकर ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंको अर्थात् कंठादिकके रोगोंको विशेष करके करता है ॥ ११३ ॥

यो वायुः प्राणनामासौ मुखं गच्छति देहधृक् । सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते । प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान् ॥ ११४ ॥

भाषा-दूसरी जो मुखमें सदैव चलनेवाली और प्राणोंको धारण करनेवाली प्राणनामक वायु है सो भोजनके अन्नको भीतर प्रवेश करती है और प्राणोंकी रक्षक है. यह कुपित होकर हिचकी, श्वास आदि रोगोंको करती है॥११४॥

आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसङ्गतः । सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान् विविनक्ति हि । स दुष्टो वह्निमान्द्यातिसारगुल्मान् करोति हि ॥ ११५ ॥ तज्जान् इत्यादि । अन्नगतान् रसमलमूत्रादीन् पृथक् करोतीत्यर्थः ॥

भाषा-तीसरी समान नामक वायु आमाशय और पक्वाशयमें विचरनेवाली जठराग्निसे मिलकर अन्नको पचाती है, और अन्नसे उत्पन्न हुए मलमूत्र आदिको पृथक् पृथक् करती है. यह दूषित होकर मंदाग्नि, अतीसार, गुल्म (वायगोला) आदि रोगोंको उत्पन्न करती है ॥ ११५ ॥

पक्वाशयालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् । समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्त्तवान्यधः ११६॥ कुद्धस्तु कुरुते रोगान् घोरान् बस्तिगुदाश्रयान् । शुक्रदोषप्रमेहांश्च व्यानादानप्रकोपजान् ॥ ११७ ॥

भाषा-चौथी पक्वाशयमें रहनेवाली अपानवायु है, मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्तव इनको छोडनेके समय निकालकर बाहर डाल देती है. यह वायु कुपित होकर मूत्राशय और गुदाके आश्रित रोगोंको करती है तथा शुक्रदोष, प्रमेह और अन्य व्यान तथा अपान वायुके कोपसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको उत्पन्न करती है॥११६।११७॥

कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवाहनोद्यतः । स्वेदाऽसृक्स्रपणश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥ ११८ ॥ गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः । प्रायः सर्वाः क्रियास्तास्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ॥ ११९ ॥

भाषा-सम्पूर्ण शरीरमें विचरनेवाली पांचवीं व्यान नामक वायु रसोंके बहानेमें उद्यत, स्वेद (पसीना) और रक्तको बहानेवाली, तथा पांच प्रकारकी चेष्टा करनेवाली है. गमन, अपक्षेपण (नीचेको डालना), उत्क्षेपण (ऊपरको फेंकना), निमेष (नेत्रोंका मीचना) और उन्मेषण (नेत्रोंका खोलना) इत्यादि शरीरियोंकी सर्व क्रिया प्रायः इस वायुकेही अधीन हैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

प्रस्पन्दनं चोद्वहनं पूरणं च विरेचनम् । धारणं चेति पञ्चैताश्चेष्टाः प्रोक्ता नभस्वतः ॥१२०॥ क्रुद्धः स कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् । युगपत् कुपिता एते देहं भिन्द्युरसंशयम् ॥ १२१ ॥ देहं भिन्नं कुर्युर्मारयेयुरित्यर्थः ॥

भाषा-प्रस्पंदन (धीरे धीरे चलना), उद्वहन (कुछ लेकर चलना), पूरण (भरना), विरेचन (निकालना) और धारण ये वायुकी पांच चेष्टा हैं. यह व्यान वायु कुपित होकर प्रायः सर्व शरीरके रोगोंको प्रगट करती है और यदि पांचों वायु एक साथही कुपित होंय तो निःसन्देह देहको नष्ट कर देती हैं अर्थात् उसको मारही डालती हैं ॥ १२० ॥ १२१ ॥

अथ पित्तस्य स्वरूपमाह ।

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम् । रसं कटु लघु स्निग्धं तीक्ष्णमम्लं तु पाकतः ॥ १२२ ॥ पीतं निरामम् । नीलं साममम् । एकं पित्तं वातवत् नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–पित्त एक प्रकारका पतला द्रव्य, उष्ण (गरम), पीत (आमसे अलग पित्तका रंग पीला होता है), नील (आमसे मिले हुए पित्तका रंग नीला होता है), सत्त्वगुणयुक्त, सारक (दस्त लानेवाला), चरपरा, हलका, स्निग्ध, तीक्ष्ण और पाकके समय अम्ल अर्थात् खट्टा हो जाता है. एक पित्त वातके समान नाम स्थान और क्रियाओंके भेदसे पांच प्रकारका है ॥ १२२ ॥

तेषां पित्तानां नामानि आह ।

पाचकं रञ्जकं चापि साधकालोचके तथा ।
भ्राजकं चेति पित्तस्य नामानि स्थानभेदतः ॥ १२३ ॥

भाषा–पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजक ये स्थानभेद करके पित्तके पांच नाम हैं ॥ १२३ ॥

अथ पाचकादीनां स्थानानि आह ।

अग्न्याशये यकृत्प्लीहाहृदये लोचनद्वये । त्वचि सर्वशरीरेषु पित्तं निवसति क्रमात् ॥ १२४ ॥

भाषा–अग्न्याशय, यकृत्, प्लीहा, हृदय, दोनों नेत्र, सम्पूर्ण देह और त्वचा इनमें क्रमसे पित्त निवास करता है अर्थात् अग्न्याशयमें पाचक, यकृत् प्लीहामें रंजक, हृदयमें साधक, दोनों नेत्रोंमें आलोचक तथा सम्पूर्ण शरीर और त्वचामें भ्राजक पित्त रहता है ॥ १२४ ॥

अथ तेषां कर्माणि आह ।

पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्निबलवर्द्धनम् । रसमूत्रपुरीषाणि विरेचयति नित्यशः ॥ १२५ ॥

भाषा–आमाशय और पक्वाशयमें स्थित पाचक पित्त छः प्रकारके आहारोंको पचाता है और शेषाग्निके बलको बढाता है तथा रस, मूत्र, मल आदिको नित्य पृथक् २ करता है ॥ १२५ ॥

पाचकं पित्तमामपक्वाशयमध्यस्थं षड्विधमाहारं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यं लेह्यं चूष्यं पेयं पचति दोषरसमूत्रपुरीषाणि पृथक्करोति च । तदग्न्याशयस्थमेव स्वशक्त्या रसरञ्जनहृदयस्थकफतमोऽपनोदनरूपग्रहणप्रभाप्रकाशनाभ्यङ्गलेपादिपाचनाद्यग्निकर्मणां विशेषाणां पित्तस्थानानामनुग्रहं करोति शेषाणि अपि पित्तस्थानानि यकृत्प्लीहादीनि भागेन गत्वा तत्र तत्र रसरञ्जनादिकर्मभिरुपकरोति इत्यर्थः । कथम्भूतं पाचकं पित्तं शेषाग्निबलवर्द्धनम् । शेषा अग्नयः पृथिव्यादिमहाभूतगणाः ॥

भाषा–यह पाचक पित्त आमाशय और पक्वाशयमें स्थित भक्ष्य, भोज्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय इन छः भोजनोंको पकाता है और रस, वल, मूत्र तथा दोषोंको अलग अलग करता है. यह पित्त अग्न्याशयमें स्थित होकर अपनी शक्तिसे रंगना (लाल करना), हृदयमें स्थित कफ और अंधकारको हटाना, रूपका ग्रहण करना, प्रभाका प्रकाश करना, अभ्यंग और लेपादिका पाक करना इत्यादि अग्निकर्मके द्वारा विशेष पित्तके स्थानोंपर सहायता करता है अर्थात् यकृत्प्लीहादिक शेष पित्तके स्थानोंमें जाकर रसका रंगना आदि कर्मोंसे उपकार करता है और शेषाग्नि (महाभूताग्नि और धात्वग्नि) की शक्तिको बढाता है ॥

यत उक्तं चरकेण ।

शौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः ॥ इति । ऊष्माणः अग्नयः ॥

भाषा–क्योंकि चरकमुनिनेभी कहा है कि, पृथ्वी, जल, आग्नि, वायु और आकाश ये पांच प्रकारकी ऊष्मा (अग्नि) है ॥

यत उक्तं वाग्भटे ।

दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनमिति ॥ १२६ ॥ दोषधातुमलादीनामूष्मैवाग्निरित्यर्थः । रसादिधातुगताः सप्त तेषां बलवर्द्धनम् । यथा गृहे स्थापितानि रत्नानि खद्योतवद् दूरभास्वराणि तान्यपि दीपज्योतिषा दूरप्रकाशकानि भवन्ति । तथा अग्न्याशयस्थपाचकाग्नितेजसा सर्वे अग्नयो बलवन्तो भवंति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-वाग्भटमेंभी लिखा है कि, "दोष, धातु और मलादिककी ऊष्माही अग्नि है, यह आत्रेयवाक्य है." जैसे घरमें रक्खे हुए रत्न खद्योत (पट्वीजने) के सदृश समयमेंही प्रकाश करते हैं और दीपककी ज्योतिसे दूरतक प्रकाश करते हैं, तिसी प्रकार अग्न्याशयमें स्थित पाचक अग्निके तेजसे सर्व अग्नि बलवान् हो जाती हैं ॥ १२६ ॥

तथाच वाग्भटः ।

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तृणामधिको मतः । तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः ॥ १२७ ॥ इति । ननु पित्तादन्योऽग्निराहोस्वित्पित्तमिवाग्निरिति सन्देहः । उच्यते । पित्तस्योष्णादिगुणद्वारा आहारपाचनरञ्जनदर्शनादिकर्मणश्च न खलु पित्तव्यतिरेकेण अन्योऽग्निः । तस्मादग्निरूपस्यैव पित्तस्य स्थानभेदात् पाचकरञ्जकसाधकालोचकभ्राजकसंज्ञाः ॥

भाषा-वाग्भटमें कहा है कि "सब अग्नियोंमें अन्नको पकानेवाली अग्नि मुख्य है, वही सब अग्नियोंका कारण है, और उसीकी वृद्धि तथा क्षयसे सम्पूर्ण अग्नि घटती बढती हैं." अब यह शंका उत्पन्न होती है कि अग्नि पित्तसे अलग है या पित्तकोही आग्नि कहते हैं ? तहां कहते हैं कि, पित्तके उष्णादि गुणोंसेही आहारका पकना, रसका रंगना और दर्शनादि कर्म होते हैं, किन्तु अग्नि पित्तसे अलग नहीं है. इसी कारण अग्निरूप पित्तकेही स्थानभेदसे पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजक नाम हैं ॥ १२७ ॥

तथाच वाग्भटः ।

पाचकं तिलमानं स्यात् काठिन्यान्नास्य दोषता । अनुगृह्णात्यविकृतं पित्तं पाकोष्मदर्शनैः ॥ १२८ ॥ क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैः । पित्तं पञ्चात्मकं तच्च पक्वाशयमध्यगम् ॥ १२९ ॥ पञ्चभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयः । त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणानलशब्दितम् । पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥ १३० ॥ तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् । करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥ १३१ ॥

भाषा-ऐसेही वाग्भटमें कहा है कि "पाचक पित्त तिलके प्रमाण है, कठिनता होनेसे दोष संज्ञक नहीं है. विकाररहित पाचक पित्त पाक, ऊष्म, दर्शन, क्षुधा, तृषा, रुचि, कांति, मेधा, बुद्धि, शूरता और शरीरकी कोमलता करके उपकार करता है." पित्त पांच प्रकारका है, वह पक्वाशय और आमाशयमें रहता है, यह पंचभूतात्मक होनेपरभी इसमें अग्निका गुण प्रगट है इस कारण इसमें द्रवता नहीं है. यह पाचक पित्त पाक आदि कार्योंके करनेसे अग्नि कहलाता है. यह अग्नि अन्नको पचाती है और सारभूत पदार्थ (रस) तथा मल मूत्रादिकको भिन्न भिन्न करती है तथा अपने स्थानोंमें स्थित विशेष पित्तोंको बल देकर उपकार करती है, इस कारण इसका नाम पाचक कहा है ॥ १२८-१३१ ॥

ननु यदि पित्ताग्न्योरभेदस्तदा कथं घृतं पित्तस्य शमकमग्नेर्दीपकमिति । तथा मत्स्याः पित्तं कुर्वन्ति न च तेऽग्निदीप्तिकरा इति । तथा पित्ताधिक्यात्तीक्ष्णोऽग्निरित्यपि कथं स्यात् । तथा समदोषः समाग्निश्चेत्यपि वक्तुं न युज्यते । तथा द्रवं स्निग्धमधोगं च पित्तं वह्निरतोऽन्यथेति । अत्रोच्यते । पित्तमग्नेः सन्ततेरधिष्ठानम् ॥

भाषा-यहां शंका उत्पन्न होती है कि, पित्त और अग्निमें यदि भेद नहीं है तो अग्निको दीपन करनेवाला और पित्तको शमन करनेवाला घी किस प्रकार हो सक्ता है ? तथा मछली पित्तकर्ता है और अग्निको प्रदीप्त करनेवाली नहीं है और पित्तकी अधिकतासेही तीक्ष्णाग्नि होती है यहभी कैसे हो सक्ता है ? अथवा दोषोंके सम होनेसे समाग्नि होती है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहभी नहीं हो सक्ता. तथा पित्त द्रवनेवाला, स्निग्ध और नीचेको जानेवाला है. तथा अग्नि इससे अन्यथा अर्थात् कठोर रूक्ष और ऊपर जानेवाला है. तहां कहते हैं कि, पित्त अग्निके सदा रहनेका स्थान है ॥

तथा चोक्तं तन्त्रान्तरे ।

अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तः पित्तं भिन्नगुणैस्तथा । द्रवं स्निग्धमधोगं च पित्तं वह्निरतोऽन्यथा ॥१३२॥ तस्मात्तेजोमयं पित्तं पित्तोष्मा यः स शक्तिमान् । स सञ्चरति कुक्षिस्थः सर्वतो धमनीमुखैः ॥ १३३ ॥ स कायाग्निः स कायोष्मा स पक्ता स च जीवनम् । अनन्यगतिरित्येव देहे कायाग्निरुच्यते ॥१३४॥

भाषा–क्योंकि अन्य ग्रंथोंमें कहा है कि "अग्नि पृथक् गुणोंसे युक्त है, और पित्त अलग गुणोंसे युक्त है. पित्त द्रवता (पतलापन) युक्त, स्निग्ध और नीचेको जानेवाला है तथा अग्निसे पृथक् है, इसी कारण पित्त तेजयुक्त है और पित्तकी ऊष्मा गरमी शक्तिवान् है, वह कोखमें स्थित धमनीके मुखद्वारा सब शरीरमें विचरती है, वही कायाग्नि है, वही कायोष्मा है, वही पाक करनेवाली है, वही जीवनरूप है, इसकी अनन्य गति है इस कारण देहमें कायाग्नि कही है"॥१३२–१३४॥

अन्यच्च ।

वामपार्श्वाश्रितं नाभेः किञ्चित्सोमस्य मण्डलम् । तन्मध्ये मण्डलं सौर्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः । जरायुमात्रप्रच्छन्नः काचकोशस्थदीपवत् ॥ १३५ ॥

भाषा–औरभी कहा है कि, नाभिके वामपार्श्वमें चन्द्रमण्डल है, उसके मध्यमें सूर्यका मण्डल है, और उसके मध्यमें अग्नि स्थित है; वह केवल (जरायुझिल्ली) से ढकी हुई काँचके पात्रमें स्थित दीपककी सदृश है ॥ १३५ ॥

तथा च मधुकोषे ।

द्रवतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्य तेजोभागोऽग्निरिति । तेन पित्तमप्यग्निवत् मन्यते अतितापितायोगोलकवत् । परमार्थतस्तु अग्निः पित्ताद्भिन्न एवेति सिद्धान्तः ॥

भाषा–मधुकोषमें कहा है कि, द्रवरूप तेजके सदृश है, समुदायरूप पित्त है, और उसका तेजभाग अग्नि है. इसी कारण पित्तभी अग्निके सदृश माना जाता है जैसे अत्यंत तप्त किये हुए लोहेके गोलेको अग्निही मानते हैं इसी प्रकार यहां जानना अर्थात् वास्तवमें अग्नि पित्तसे भिन्न है यह सिद्धांत है ॥

अत एवाह रसप्रदीपे ।

जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः । सौक्ष्म्याद्रसानाऽऽददानो विवक्तुं नैव शक्यते ॥१३६॥ नाभौ मध्ये शरीरस्य विशेषात्सोममण्डलम् । सोममण्डलमध्यस्थं विद्यात्सूर्यस्य मण्डलम् ॥१३७॥ प्रदीपवत्तत्र नृणां स्थितो मध्ये हुताशनः । सूर्यो दिवि यथा तिष्ठंस्तेजोयुक्तैर्गभस्तिभिः ॥ १३८॥ विशोषयति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च । तद्वच्छरीरिणां भुक्तं ज्वलनो नाभिमाश्रितः ॥१३९॥ मयूखैः पचते क्षिप्रं नानाव्यञ्जनसंस्कृतम् । स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रः प्रमाणतः ॥१४०॥ ह्रस्वकायेषु सत्त्वेषु तिलमात्रः प्रमाणतः । कृमिकीटपतङ्गेषु वालमात्रोऽवतिष्ठते ॥१४१॥ इति अलमप्रकृतचिन्तनेन । पुनः प्रकृतमनुसरामः ।

भाषा–रसप्रदीपग्रंथमें कहा है कि भगवान् जठराग्नि ईश्वर अन्नको पचानेवाली और रसको ग्रहण करनेवाली है, परन्तु अति सूक्ष्म होनेसे उसका विवेक नहीं हो सक्ता. शरीरके मध्य नाभिमें विशेषतासे सोममंडल है, उस सोममंडलके मध्यमें स्थित सूर्यका मण्डल है, उसमें दीपकके सदृश मनुष्योंके मध्य अग्नि स्थित है. जैसे सूर्य आकाशमें स्थित अपनी तेजयुक्त किरणोंसे समस्त ताल और सरोवरोंको सुखा देता है तिसी प्रकार नाभिमें स्थित अपनी किरणोंके द्वारा यह जठराग्नि मनुष्योंके अनेक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकारके व्यंजनोंकरके खाये हुए भोजनको पचाता है. स्थूल (बडे) शरीरी जीवोंमें अग्नि यव (जौ) प्रमाण, ह्रस्व शरीरी जीवोंमें तिल प्रमाण और कृमि (गिनार) कीट (कीडे) पतंगों (उडनेवाले जीवों) में बालमात्र अग्नि रहती है ॥ १३६-१४१ ॥

रञ्जकं नाम यत्पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत् । यत्तु साधकसंज्ञं तत् कुर्याद्बुद्धिं धृतिं स्मृतिम् ॥ १४२ ॥ धृतिं मेधाम् ।

भाषा-रंजक नाम जो पित्त है वह रसका रुधिर बनाता है, साधक संज्ञक जो पित्त है वह बुद्धि धृति (मेधा वा धारणाशक्ति) और स्मृतिको करता है ॥ १४२ ॥

यदालोचकसंज्ञं तद्रूपग्रहणकारणम् । भ्राजकं कान्तिकारि स्यालेपाभ्यङ्गादिपाचकम् ॥ १४३

भाषा-आलोचक नामक जो पित्त है वह रूपका ग्रहण अर्थात् देखनेमें कारण है और भ्राजक पित्त कान्ति करता और लेप अभ्यंग (मालिश) आदिको पचाता है ॥ १४३ ॥

अथ श्लेष्मस्वरूपमाह ।

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा । तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ १४४ ॥ एकः श्लेष्मा वातपित्तवत् चं नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधः ॥

भाषा-कफ श्वेत, भारी, स्निग्ध, पिच्छिल, शीतल, तमोगुणयुक्त और स्वादु (मधुर) है तथा विदग्ध होनेसे खारी हो जाता है. एक कफ वात, पित्त और नाम स्थान कर्मके भेदोंसे पांच प्रकारका है ॥ १४४ ॥

अथ श्लेष्मणां नामानि आह ।

कफस्येतानि नामानि क्लेदनश्चावलंबनः । रसनः स्नेहनश्चापि श्लेष्मणः स्थानभेदतः ॥ १४५ ॥

भाषा-क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मण स्थानभेदसे ये कफके पांच नाम हैं ॥ १४५ ॥

अथ क्लेदनादीनां स्थानानि आह ।

आमाशयेऽथ हृदये कण्ठे शिरसि सन्धिषु । स्थानेष्वेषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ १४६ ॥ दोषाणां सकलशरीरव्यापिनामपि पञ्च पञ्च स्थानानीति बाहुल्याभिप्रायेण उक्तानि ॥

भाषा-आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और संधि इन स्थानोंमें क्रमसे मनुष्योंके कफ निवास करता है अर्थात् आमाशयमें क्लेदन, हृदयमें अवलंबन, कंठमें रसन, शिरमें स्नेहन और संधियोंमें श्लेष्मण कफ रहता है. यद्यपि दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं, तथापि पांच पांच स्थान हैं, ये बाहुल्य अभिप्रायसे कहे हैं॥१४६॥

तथा च वाग्भटः ।

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनाम् । व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥ १४७ ॥

भाषा-ऐसेही वाग्भटमें कहा है कि, दोष एकरूप अर्थात् सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक हो रहे हैं तौभी वे दोष कर्मविशेष करके भिन्न भिन्न जानने चाहिये ॥ १४७ ॥

चरकश्च ।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः । इति ।

भाषा-चरकमेंभी कहा है कि, दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं, परन्तु हृदय और नाभिके नीचे, मध्य और ऊर्ध्वमें रहते हैं. अर्थात् वायु नाभिके नीचे, पित्त नाभि और हृदयके बीचमें और कफ ऊपर (प्रधानतासे) रहते हैं ॥

अथ तत्तत्स्थानगतस्य श्लेष्मणः कर्माण्याह । क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्याऽपराण्यपि । अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थानान्युदककर्मणा ॥ १४८ ॥ अयमर्थः क्लेदनोऽन्नं क्लेदयति तेन संहतमन्नं भेदं प्राप्नोति । अपराण्यपि श्लेष्मस्थानानि हृदयादीनि मार्गेण गत्वा तत्र तत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदयालम्बनत्रिकसन्धारणरसग्रहणसमस्तेंद्रियतर्पणसन्धिसंश्लेषणाद्युदककर्मभिरनुगृह्णाति उपकरोति तदेव उत्तरत्र उच्यते ॥

भाषा-क्लेदन कफ अन्नको क्लेदनयुक्त (गीला) करता है और अपनी शक्तिसे कफके दूसरे स्थानोंकोभी जलकर्मके द्वारा सहायता करता है, तात्पर्य यह है कि, क्लेदन कफ अन्नको भिगोता है, इस कारण इकट्ठा हुआ अन्न पृथक् २ हो जाता है. कफ हृदयादि अन्य स्थानोंमें जाकर उन उन स्थानोंमें हृदयका अवलंबन करना, त्रिकसंधारण, रसग्रहण करना, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको तृप्त करना, संधियोंको जोडना इत्यादि जलकर्मोंसे सहायता करता है ॥ १४८ ॥

तथा च अवलंबनकफलक्षणम् ।

रसयुक्तात्मवीर्येण हृदयस्यावलम्बनम् । त्रिकसन्धारणं चापि विदधात्यवलम्बनः ॥१४९॥

त्रिकं शिरोबाहुद्वयसन्धिः ।

भाषा-अवलंबनकफ रसयुक्त वीर्यसे हृदयके भागका अवलंबन और त्रिक (मस्तक और दोनों भुजाओंकी संधि) हड्डीका संधारण करता है ॥ १४९ ॥

रसनकफलक्षणम् ।

उभावपि ततः सौम्यौ तिष्ठतश्चान्तिके यतः । यतो रसान् विजानीतो रसनारसनौ समौ ॥ १५० ॥ रसना रसनेन्द्रियम् । रसनः कण्ठस्थकफः ।

भाषा-रसना और रसनकफ ये दोनों सौम्यगुणयुक्त हैं, दोनों समीप रहते हैं, इस कारण रसना (जीभ) और रसनकफ (कंठमें रहनेवाला कफ) ये दोनों रसको जानते हैं॥१५०॥

स्नेहनश्लेष्मणकफयोर्लक्षणम् ।

स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः । श्लेष्मणः सर्वसन्धीनां संश्लेषं विदधात्यसौ ॥१५१॥

भाषा-स्नेहनकफ स्नेह देकर समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करता है, वैसेही श्लेष्मण कफ सर्व संधियोंका संश्लेष करता है अर्थात् भली भांति जोडता है ॥ १५१ ॥

अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह ।

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम् । रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥ १५२ ॥ धातव इति धाधातोस्तुप्रत्ययः ।

भाषा-रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी), मज्जा और शुक्र ये सातों स्वयं मनुष्योंमें स्थित होकर देहको धारण करते हैं ॥ १५२ ॥

अथ धातूनां कर्माणि आह ।

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे । गर्भोत्पादश्च कर्माणि धातूनां कथितानि हि॥१५३॥

भाषा-प्रीणन, जीवन, लेपन, स्नेहन, धारण, पूरण और गर्भोत्पादन ये क्रमसे उपरोक्त सातों धातुओंके कार्य हैं, अर्थात् रसका कार्य प्रीणन (तृप्त करना), रक्तका कार्य जीवन, मांसका कार्य लेपन, मेदका कार्य स्नेहन, अस्थिका कार्य धारण, मज्जाका कार्य पूरण और शुक्रका कार्य गर्भोत्पादन (गर्भ प्रगट करना) है ॥ १५३ ॥

तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिः ।

यत्पाथो रसधातुर्यस्ततोऽभवदपां रसः । सद्रवं सकलं देहं रसतीति रसः स्मृतः ॥ १५४ ॥

भाषा-रसधातु जलरूप है इस कारण जलमें रस उत्पन्न होता है तथा वह द्रवयुक्त होकर सम्पूर्ण शरीरमें गमन करता है इस कारण रस कहाता है ' गत्यर्थो रसधातुर्यस्ततोऽभवदयं रसः । सदैव ' ऐसा पाठ है. अर्थ-गत्यर्थक रसधातुसे यह रस शब्द बना है ॥ १५४ ॥

अथ रसस्य स्वरूपमाह ।

सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः । स तु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत् ॥ १५५ ॥ सारो यथा गुडमधूकपुष्पबब्बुलत्वग्बदरीमूलादिभवः । सारो मदिरा ।

भाषा-भले प्रकारसे पचे हुए भोजनका जो सार है वही रस है. रस द्रवतायुक्त, श्वेत, शीतल,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वादु, स्निग्ध और चंचल है जैसे गुड, महुएके फूल, वबूरकी छाल, वेरकी जड आदिमेंसे उत्पन्न हुआ जो सार (मद्य) है उसको सार कहते हैं ॥ १५५ ॥

अथ रसस्य स्थानमाह ।

सर्वदेहचरस्यापि रसस्य हृदयं स्थलम् । समानमरुता पूर्वं यदयं हृदये धृतः ॥ १५६ ॥

भाषा-रस यद्यपि सम्पूर्ण शरीरमें विचरनेवाला है तथापि उसका स्थान हृदय है क्योंकि पूर्वमें समान वायुने उसको लाकर हृदयमें स्थापन किया है ॥ १५६ ॥

रसस्य कर्माणि ।

आरुह्य धमनीर्गत्वा धातून् सर्वानयं रसः । पुष्णाति तदनु स्वीयैर्व्याप्नोति च तनुं गुणैः ॥ १५७ ॥ गुणैः शीतस्निग्धपोषकत्वगुणैः ।

भाषा-यह रस धमनीनाडियोंमें जाकर सम्पूर्ण धातुओंको पुष्ट करता है, तदनंतर अपने गुणोंसे अर्थात् शीत, स्निग्ध, पोषकत्व आदि गुणोंसे शरीरमें व्याप्त होता है ॥ १५७ ॥

विदग्धरसः ।

मन्दवह्निविदग्धस्तु कटुर्वाम्लो भवेद्रसः । स कुर्याद्बहुलान् रोगान् विषकृत्यं करोत्यपि ॥ १५८ ॥

भाषा-रस मन्दाग्निसे विदग्ध अधकच्चा होकर कटु (चरपरा) अथवा अम्ल हो जाता है, तब अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है तथा विषके सदृश मारणादिक कार्यकोभी करता है॥१५८॥

अथ रक्तस्य स्वरूपमाह ।

यदा रसो यकृद्याति तत्र रञ्जकपित्ततः । रागं पाकं च संप्राप्य स भवेद्रक्तसंज्ञकः ॥ १५९ ॥ रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् । स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ १६० ॥ पित्तवद्भवेत्, अम्लं भवेदित्यर्थः ।

भाषा-रस जब यकृत्स्थान (कलेजे) में जाता है तब रंजक पित्तकी उष्णतासे रंग और पक्वताको प्राप्त होकर रुधिर बनता है, वह रुधिर सम्पूर्ण शरीरमें रहता है तथा जीवको सर्वोत्तम आधार है और स्निग्ध, भारी, चंचल और स्वादु है, तथा विदग्ध होकर पित्तके सदृश (अम्ल खट्टा) हो जाता है ॥ १५९ ॥१६०॥

जीवस्याधारमुत्तममित्यत आह ।

जीवो वसति सर्वस्मिन् देहे तत्र विशेषतः । वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात् ॥ १६१ ॥ इति । वीर्ये रक्ते मले च शरीरारम्भके वाग्भटोक्तपरिमाणमिते शुद्धे जीवो वसति । न तु दुष्टे प्रवृद्धे रक्तस्रावणोपदेशस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गात् ॥

भाषा-जीव सम्पूर्ण शरीरमें रहता है, विशेषतासे वीर्य, रक्त और मलमें रहता है, क्योंकि जिस समय इनका क्षय होता है उसी समय जीवका क्षय होता है. वीर्य, रुधिर और मलमें जीव रहता है, ऐसा जो ऊपर कहा है उसमें ऐसा समझना कि, वाग्भटके कथनानुसार परिमित शरीरारम्भक शुद्ध वीर्य, रक्त और मलमें जीव रहता है, परन्तु दोषयुक्त और बढे हुए रुधिरमें जीव नहीं रहता, क्योंकि बढे हुए और बिगडे हुए रुधिरको निकालनेकी आज्ञा है ॥ १६१ ॥

अथ रक्तस्य स्थानमाह ।

यकृत्प्लीहा च रक्तस्य मुख्यस्थानं तयोः स्थितम् । अन्यत्र संस्थितवतां रक्तानां पोषकं भवेत् ॥ १६२ ॥

भाषा-रुधिरके यकृत् (कलेजा) और प्लीहा (तिल्ली) ये दो मुख्य स्थान हैं. इनमें रहनेवाला रुधिर अन्य स्थानमें रहनेवाले रक्तको पुष्ट करनेवाला है ॥ १६२ ॥

अथ मांसस्य स्वरूपमाह ।

शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनीकृतम् । तदेव मांसं जानीयात्तस्य मेदोऽपि ब्रुवे ॥ १६३ ॥ शोणितमिति शोणितस्थानगतत्वात् रस एव शोणितसंज्ञां लभते । एवमग्रे रसस्यैव मांसातिव्यपदेशः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-रुधिरमें रहनेवाली अग्निसे पक्व हुए तथा वायुसे घनरूप (गाढे) किये हुए रुधिरकोही मांस जानना. अब मांसके भेद कहते हैं. पूर्वमें कहा है कि, जिस प्रकार रुधिरके स्थानमें गया हुआ रस रुधिरसंज्ञाको पाता है, तिसी प्रकार यहां मांसके स्थानमें गया हुआ रुधिर मांस हो जाता है ॥ १६३ ॥

अथ मांसस्य पेशीमाह ।

यथार्थमूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् । अनुप्रविश्य पिशितं पेशीर्विभजते तथा ॥ १६४ ॥ यथार्थं यथाप्रयोजनम् ।

भाषा-जिस प्रकार यथार्थ उष्णतायुक्त वायु स्रोतों (शिराओं) को विदीर्ण करती है तिसी प्रकार वह मांसमें प्रवेश करके मांसकी पेशियोंके अर्थात् मांसके छोटे छोटे टुकडोंको विभाग करती है ॥ १६४ ॥

मांसपेशीनां संख्यामाह ।

मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पञ्च शतानि हि । तासां शतानि चत्वारि शाखासु कथितान्यथ ॥ १६५ ॥ कोष्ठे षडुत्तरा षष्टिः कथिता मुनिपुङ्गवैः । ग्रीवाया ऊर्ध्वगास्तास्तु चतुस्त्रिंशत् प्रकीर्तिताः ॥ १६६ ॥

भाषा-मांसकी पेशी मनुष्योंके पांच सौ ५०० कही हैं, उनमेंसे चार सौ ४०० पेशी शाखा हाथ पांव आदियोंमें हैं, छियासठ ६६ कोठेमें और चौंतीस ३४ गरदनसे ऊपरके भागमें विद्वानोंने कही हैं ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

ताः शाखागताः प्राह ।

एकैकस्यां तु पादांगुल्यां तिस्रस्तिस्रस्ताः पञ्चदश १५ । पादाग्रे दश १० । पादोपरि कूर्चसन्निविष्टा दश १० । गुल्फतलयोर्दश १० । गुल्फजानुनोरन्तरे विंशतिः २० । जानुनि पञ्च ५ । ऊरौ विंशतिः २० । वंक्षणे दश १० । एवमेकस्मिन् सक्थिनि शतं भवन्ति । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । एतासां समष्टिः चतुःशतम् ॥

भाषा-एक एक पांवकी अंगुलीमें तीन तीन हैं इस प्रकार पांचों अंगुलियोंमें पंद्रह १५, पांवके अग्रभागमें दश १०, पावोंके ऊपर कूर्चस्थानमें दश १०, गुल्फ और तलुओंमें दश १०, गुल्फ और जानुके बीचमें बीस २०, जानु (घुटने) में पांच ५, ऊरु (जंघा) में बीस २०, वंक्षण (ऊरुकी संधि) में दश १०, इस प्रकार सब मिलकर एक सक्थि (पंजेसे लेकर जांघतक सब पूरे पैर) में सौ १०० पेशी हैं. इस प्रकार दूसरे पांवमें तथा दोनों भुजाओंमेंभी सौ सौ पेशी हैं, इन चारों शाखाओंमें चार सौ ४०० पेशी हुई ॥

अथ कोष्ठगताः प्राह ।

गुदे तिस्रः ३ । शेफसि एका १ । सेवन्यामेका १ । वृषणयोर्द्वे २ । स्फिचोः पञ्च पञ्च ५-५ । वस्तिमूर्द्धनि द्वे २ । उदरे पञ्च ५ । नाभ्यामेका १ । पृष्ठोर्ध्वं सन्निविष्टा उभयतः पञ्च पञ्च ५-५ दीर्घाः । पार्श्वयोः षट् ६ । वक्षसि दश १० । अक्षकांसौ प्रति समन्तात् सप्त ७ । अक्षक अधुआ इति लोके अंसौ स्कन्धौ । हृदि द्वे २ । यकृति द्वे २ । क्लोम्नि द्वे २ । तुण्डके द्वे २ । एतासां समष्टिः ६६ षट्षष्टिः ॥

भाषा-गुदामें तीन ३, लिंगमें एक १, सेवनी (सीमन) में एक १, अंडकोषोंमें दो २, दोनों कूलोंमें पांच पांच ५-५, वस्तिके नीचे दो २, पेटमें पांच ५, नाभिमें एक १, पीठके ऊपर दोनों ओर पांच पांच ५-५, दोनों पँसलियोंमें छः ६, छातीमें दश १०, हंसली और स्कन्धोंके इधर उधर सात ७, हृदयमें दो २, यकृत्में दो २, क्लोमामें दो २ और तुण्डक (कन्धेके निकटकी गली) में दो २, इस प्रकार कोठेमें छियासठ ६६ मांसकी पेशी हैं ॥

अथ ग्रीवोर्ध्वगाः प्राह ।

ग्रीवायां चतस्रः ४ । हन्वोरष्टौ ८ । काकलके कण्ठमणौ घण्टिकायामिति यावत् एका १ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गले एका १ । तालुनि द्वे २ । जिह्वायामेका १ । ओष्ठयोर्द्वे २ । नासायां द्वे २ । नेत्रयोर्द्वे २ । गण्डयोश्चतस्रः ४ । कर्णयोर्द्वे २ । ललाटे चतस्रः ४ । शिरसि एका १ । आसां समष्टिः ३४ । एवं सर्वसमष्ट्या मांसपेश्यः पञ्चशतानि भवन्ति ॥

भाषा-गरदनमें चार ४, हनु (ठौडी) में आठ ८, गलेमें एक १, तालुमें दो २, जीभमें एक १, होठोंमें दो २, नाकमें दो २, दोनों नेत्रोंमें दो २, कपोलों (गालों) में चार ४, कानोंमें दो २, ललाट (मस्तक) में चार ४ और शिरमें एक १, इस प्रकार गरदनके ऊपरके भागमें चौंतीस ३४ मांसपेशी हैं, यह सम्पूर्ण शरीरमें कुल पांच सौ ५०० पेशी हुईं ॥

स्त्रीणामपि भवन्त्येताः किन्तु विंशतिरुत्तराः । गर्भाशये गर्भमार्गे योनौ च स्तनयोरपि ॥ १६७ ॥ एताः पञ्चशतानि मांसपेश्यः । स्त्रीणां अधिका विंशतिर्यथा । गर्भाशये तिस्रः ३ । गर्भच्छिद्रसंस्थिताः शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्रः ३ । योनावभ्यन्तरतो मुखाश्रिते प्रसृते द्वे २ । योनावेव बहिर्निर्गते स्रोतःपार्श्वद्वयस्थिते वर्तुले योनिकर्णिकेति यावत् द्वे २ । स्तनयोः पञ्च पञ्च ५-५ यौवने तासां वृद्धिर्भवति ॥

भाषा-जितनी मांसपेशी पुरुषोंके हैं, स्त्रियोंकेभी उतनीही हैं, किन्तु बीस अधिक हैं, वे बीस गर्भाशय, गर्भमार्ग, योनि और स्तन इनमें रहती हैं, ये पांच सौ मांसकी पेशी हैं, अधिक जो बीस हैं सो इस प्रकार हैं कि, गर्भाशयमें तीन ३, गर्भके छिद्रमें स्थित वीर्य और आर्तवको गर्भाशयमें प्रवेश करानेवाली तीन ३, योनिमें भीतर मुखकी ओर फैली हुई दो २, तथा योनिमेंही कुछ बाहर छेदोंके दोनों पार्श्वमें जिसे कर्णिका कहते हैं वहां दो २ और स्तनोंमें पांच पांच ५-५ हैं. यौवनावस्थामें ये वृद्धिको प्राप्त हो जाती हैं, इस प्रकार बीस मांसकी पेशी स्त्रियोंके अधिक होती हैं ॥ १६७ ॥

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता मेहनमुष्कजाः । स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गता हि ताः ॥ १६८ ॥ अस्यायमर्थः-पुंसां मेहनमुष्कयोश्च यास्तिस्रो मांसपेश्यः पूर्वमुक्तास्ताः स्त्रीणां मेहनमुष्काभावात् फलं गर्भाशयं आवृत्य तिष्ठन्ति ॥

भाषा-लिंग और अंडकोषोंमें जो तीन पेशी पुरुषोंके कही हैं वे पेशी स्त्रियोंकेभी होती हैं और गर्भाशयको लिपटी हुई रहती हैं. तात्पर्य यह है कि, एक मांसपेशी लिंगमें और दो अंडकोषोंमें जो पुरुषोंके पहिले कही हैं ये स्त्रियोंके लिंग और अंडकोश न होनेके कारण फल अर्थात् गर्भाशयमें आच्छादित रहती हैं॥१६८॥

गयदासस्त्वाह ।

स्त्रीणां मांसपेश्यस्त्रिभिर्हीनानि पञ्चशतानि ।

भाषा-यहां गयदासका मत ऐसा है कि स्त्रियोंके मांसपेशी तीन हीन पांच सौ अर्थात् ४९७ होती हैं ॥

तथा च भोजः ।

पञ्चपेशीशतान्येव स्त्रीवर्ज्जं विद्धि भूमिप । अतश्च तिस्रो हीयन्ते स्त्रीणां शेफसि मुष्कयोः ॥ १६९ ॥

भाषा-ऐसाही भोजभी कहते हैं कि हे राजन् ! पेशी सब पांच सौ हैं, परन्तु स्त्रियोंके नहीं. क्योंकि लिंग और अंडकोष न होनेसे स्त्रियोंके तीन कम हैं ॥ १६९ ॥

अथ मांसपेशीनां कर्माणि आह ।

शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सन्धयश्च शरीरिणाम् । पेशीभिः संवृतान्येव बलवंति भवंति हि १७०

भाषा-प्राणियोंकी शिरा (नसें), स्नायु (वायुवाहिनी नाडी), अस्थि (हड्डी), पर्व (पोरुए) और संधि ये सब मांसकी पेशियोंसे लिपटी हुई बलवान् होती हैं ॥ १७० ॥

अथ मेदसः स्वरूपमाह ।

यन्मांसं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते । तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्यतिबृंहणम् १७१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–जो मांस अपनी अग्निसे परिपक्व हुआ है उसको मेदा (चर्बी) कहते हैं, वह अत्यंत भारी, स्निग्ध, बलकारी और अतिवृंहण (पुष्टिकारक) है ॥ १७१ ॥

अथ मेदसः स्थानमाह ।

मेदो हि सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिसंस्थितम् । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ १७२ ॥

भाषा–मेदा सम्पूर्ण जीवोंके उदर (पेट) में हड्डियोंसे मिली हुई रहती है, इस कारण मेदवाले पुरुषका पेट विशेषतासे बढ जाता है अर्थात् इसी कारण मेदस्वी पुरुषका पेट बडा होता है ॥ १७२ ॥

अथ अस्थ्नः स्वरूपमाह ।

मेदो यत्स्वाग्निना पक्वं वायुना चाति शोषितम् । तदस्थिसंज्ञां लभते स सारः सर्वविग्रहे ॥ १७३ ॥ अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः । अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनो ध्रुवम् ॥ १७४ ॥ तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् । अस्थीनि न विनश्यंति सारा एतानि सर्वथा ॥ १७५ ॥

भाषा–जब मेदा अपनी अग्निसे पक जाती है और वायु उसको शुष्क कर देती है तब वह अस्थिसंज्ञक अर्थात् हड्डी हो जाती है. यही सम्पूर्ण शरीरमें सार है, जिस प्रकार मध्यभागमें सार होनेसेही वृक्ष पृथ्वीमें स्थित रहते हैं तिसी प्रकार मनुष्य अस्थियोंका सार होनेसेही देह धारण कर रहा है. बहुत कालसे मनुष्योंकी त्वचा और मांस नष्ट होनेपरभी अस्थि नष्ट नहीं होती, अत एव सर्व शरीरका सार हड्डियेंही हैं ॥ १७३–१७५ ॥

अथ अस्थ्नां संख्यामाह ।

शल्यतन्त्रेऽस्थिखण्डानां शतत्रयमुदाहृतम् । तान्येवात्र निगद्यन्ते तेषां स्थानानि यानि च ॥ १७६ ॥ स विंशतिशतं त्वस्थ्नां शाखासु कथितं बुधैः । पार्श्वयोः श्रोणिफलके वक्षःपृष्ठोदरेषु च ॥ १७७ ॥ जानीयाद्विषगेतेषु शतं सप्तदशोत्तरम् । ग्रीवायामूर्ध्वगां विद्यादस्थ्नां षष्टिं त्रिसंयुताम् ॥ १७८ ॥

भाषा–हड्डियोंकी संख्या शल्यतंत्रमें तीन सौ कही है. उनका और उनके जो जो स्थान हैं उन सबका वर्णन यहां करते हैं. अस्थिशाखा अर्थात् दोनों हाथ और दोनों पैरोंमें विद्वानोंने एक सौ बीस १२० हड्डी कही हैं. दोनों पसली, कमर, नितम्ब, वक्षःस्थल, पीठ और पेट इनमें एक सौ सत्रह ११७ अस्थि हैं और गरदन तथा गरदनके ऊपर तिरेसठ ६३ अस्थि हैं ॥ १७६–१७८ ॥

तानि शाखागतानि आह ।

एकैकस्यां पादांगुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पञ्चदश १५ । पादतले पञ्चास्थिशलाकास्तदाधारभूतमेकमस्थि १ एवं षट् ६ । कूर्चे द्वे २ । गुल्फे द्वे २ । पार्ष्णावेकम् १ । जंघयोर्द्वे २ । जानुन्येकम् १ । ऊरावेकम् १ । एवं त्रिंशदेकस्मिन् सक्थनि भवन्ति । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ ॥

भाषा–एक एक अंगुलीमें तीन तीन इस प्रकार पांचों अंगुलियोंमें पंद्रह १५, पांवके तलुएमें पांच ५, अस्थिशलाका (सलाई) और उसके आधारभूत एक १ अस्थि है, इस प्रकार छः ६ हुई. कूर्च (धाई) में दो २, गुल्फ (गट्टों) में दो २, एडीमें एक १, जंघामें दो २, जानुमें एक १, ऊरु(घुटनों) में एक १, सक्थिमें १, इस प्रकार एक पांवमें तीस तथा दूसरे पांवमें तीस ये सब साठ ६० हुई और साठ ६० दोनों हाथोंमें इस भांति कुल अस्थि शाखाओंमें एक सौ बीस १२० हैं ॥

अथ पार्श्वादिगतानि आह ।

पार्श्वयोः षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशत् ७२ । गुदे एकम् १ । शिश्ने भगे वा एकम् १ । नितम्बयोरेकैकम् २ । त्रिके एकम् १ । वक्षसि अष्टौ ८ । पृष्ठे त्रिंशत् ३० । अक्षकसंज्ञे द्वे २ ॥

भाषा–दोनों पसलियोंमें छत्तीस छत्तीस ३६-३६, लिंग और भगमें एक एक, नितम्बोंमें एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक, त्रिकमें एक १, वक्षःस्थल (हृदय) में आठ ८, पीठमें तीस ३० और अक्षक (हँसली) में दो २ हैं ॥

अथ ग्रीवोर्ध्वगतानि आह ।

ग्रीवायां नव ९ । कण्ठनाड्यां चत्वारि ४ । हन्वोरेकैकम् २ । दन्ताः द्वात्रिंशत् ३२ । नासायां त्रीणि ३ । तालुनि एकम् १ । गण्डयोरेकैकम् २ । कर्णयोरेकैकम् २ । भ्रुवोरेकैकम् २ । शिरसि षट् ६ ॥

भाषा-गरदनमें नौ ९, कंठमें चार ४, हनु (जावडों) में एक एक इस प्रकार दो २, दांतोंमें बत्तीस ३२, नाकमें तीन ३, तालुमें एक १, गालोंमें एक एक इस प्रकार २, शिरमें छः ६, इस भांति कुल तिरेसठ ६३ हड्डी गरदनके ऊपरके भागमें हैं ॥

एतानि अस्थीनि पञ्चविधानि भवन्ति तानि यथा । तरुणानि कपालानि रुचकानि भवंति हि । वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचित् ॥ १७९॥ अक्षिकोशश्रुतिघ्राणग्रीवासु तरुणानि च । शिरःशङ्खकपोलेषु तालुसन्धिजानुषु ॥ १८० ॥ कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचकानि च । पाण्योः पार्श्वयुगे पृष्ठे वक्षोजठरपायुषु ॥ १८१ ॥ पादयोर्वलयानि स्युर्नलकानि ब्रुवेऽधुना । हस्तपादांगुलितले कूर्चे च मणिबन्धके । बाहुजंघाद्वये चापि जानीयान्नलकानि तु ॥ १८२ ॥ जानुनितम्बांसगण्डतालुशङ्खशिरःसु कपालानि । दशनास्तु रुचकाः ।

भाषा-यह अस्थि (हड्डी) पांच प्रकारकी हैं, कोई तरुण, कोई कपाल, कोई रुचक, कोई वलय और कोई नलिकास्थि हैं. अक्षिकोष (गोलक), कान, नाक और गरदनमें जो अस्थि हैं वे तरुणसंज्ञक हैं. शिर, शंख (मस्तककी हड्डी), कपोल, तालु, कंधे, कूले और जानु (घुटने) में जो अस्थि हैं वे कपालसंज्ञक हैं. दांतोंमें जो अस्थि हैं वे रुचकसंज्ञक हैं. दोनों हाथ, दोनों पसली, पीठ, वक्षःस्थल, पेट, गुदा और दोनों पांव इनमें जो हड्डी हैं वे वलयसंज्ञक हैं. हाथ पांवकी अंगुलियोंके नीचे, कूर्च, मणिबन्ध (पहुँचा), भुजा और दोनों जांघें इनमें जो अस्थि हैं वे नलकसंज्ञक हैं ॥ १७९-१८२ ॥

अथ अस्थ्नां प्रयोजनमाह ।

मांसान्यन्त्राणि बद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा । अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न दीर्यन्ते पतन्ति च ॥ १८३ ॥

भाषा-शिरा (नसें) और स्नायु (बडी नसें) इनसे देहका मांस और आंतें बंधी हुई हैं, वे अस्थियोंका अवलंबन करके न हटती हैं और न गिरती हैं ॥ १८३ ॥

अथ मज्जास्वरूपमाह ।

अस्थि यत्स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद्घनः । यः स्वेदवत्पृथग्भूतः स मज्जेत्यभिधीयते १८४

भाषा-अपने अग्निसे जब अस्थि पक जाती है तब उसमें जो घन और साररूप कठोरपन है वह स्वेदवत् अर्थात् पसीनेके सदृश विलग होकर निकलती है उसको मज्जा कहते हैं॥ १८४॥

अथ मज्जास्थानमाह ।

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यंतरे स्थितः ॥

भाषा-विशेष करके मज्जा मोटी मोटी हड्डीयोंके भीतर रहती है ॥

अथ शुक्रस्योत्पत्तिमाह ।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते । मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ १८५ ॥ शुक्रस्येति वचनेन शुक्रसम्भव उक्तः ।

भाषा-रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेदा, मेदासे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य उत्पन्न होता है ॥ १८५ ॥

आहारादिगतिः ।

ननु मांसेन रसः शुक्रो भवति स्त्रीणां च आर्त्तवं भवतीति सुश्रुतस्यैव वचनेन रसादेव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुक्रस्य उत्पत्तिरुच्यते । तदेतत् कथं सङ्गच्छते इदमेव सन्देहं दूरी कर्त्तुं आहारादेर्गतिं परिणामं चाह ॥

भाषा–कोई शंका करे कि, एक महीनेमें रससे पुरुषके तौ वीर्य बनता है और स्त्रीके उस रससे आर्तव बनता है, इस प्रकार सुश्रुतके वचनानुसार रससे वीर्य होना कहा है, मज्जासे वीर्य उत्पन्न होना कैसे संभव हो सक्ता है? यह शंका दूर करनेके लिये आहारादिककी गति और परिणाम कहते हैं ॥

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः । माधुर्यं फेनभावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥ १८६ ॥ आहार इत्यत्र आहियते इति आहारः । अकर्त्तरि च कारके संज्ञायामिति सूत्रेण कर्मणि घञ् । स च षड्विधः ॥

भाषा–प्रथम प्राणनामक वायुसे प्रेरित होकर आहार आमाशयमें जाता है, वह आहार छः रसयुक्तभी वहां जाकर मधुर और झागोंवाला हो जाता है ॥ १८६ ॥

तथा च ।

आहार्य्यं षड्विधं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यं तथैव च । लेह्यं चोष्यं तथा पेयं तदुदाहरणानि तु ॥ १८७ ॥ भोज्यं ओदनसूपादि भक्ष्यं मोदकमण्डकम् । चर्व्यं चिपिटधान्यादि रसालादि तु लेह्यते । चोष्यमाम्रफलेक्ष्वादि पीयते पानकं पयः ॥ १९८ ॥

भाषा–आहार छः प्रकारका है, भोज्य, भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय. इनका उदाहरण इस प्रकार है, जैसे भात दाल आदि भोज्य, लड्डू मंडक आदि भक्ष्य, चने परमल आदि चर्व्य, रसाल (रसयुक्त पदार्थ सिखरन) आदि लेह्य, आम ईख (गन्ना) आदि चोष्य और पानी दूध आदि पेय हैं ॥१८७॥१८८॥

आमाशयमाह चरकः ।

नाभिस्तनान्तरे जन्तोराहुरामाशयं बुधाः ॥ इति ।

भाषा–नाभि और स्तन इन दोनोंके बीचमें आमाशय है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥

अत्र विशेषमाह ।

नाभेर्वितस्तिमात्रं च कण्ठदेशात्षडंगुलम् । उरस्तद्विजानीयाच्छेषं तु हृदयं मतम् ॥ १८९ ॥ उरोरक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः । आमाशयस्तु तदधस्तदधो दहनाशयः ॥ १९० ॥ इति ।

भाषा–नाभिसे एक वालिस्त ऊपर और कंठदेशसे छः अंगुल नीचे इनका मध्यभाग उरस्थान (छाती) है और शेषस्थान हृदय कहलाता है. उरके नीचे रक्तस्थान (रक्ताशय) है. उसके नीचे श्लेष्माशय (कफका स्थान) है. उसके नीचे आमाशय है और उसके नीचे दहनाशय (अग्निका स्थान) है ॥१८९॥१९०॥

प्राणानिलेरित इति । हृदयाधिष्ठानेन प्राणनाम्ना वायुना मुखं गतेन अन्तः प्रवेशितः ॥

भाषा–'प्राणवायुसे प्रेरणा पाकर' इस प्रकार पूर्वमें लिखा है इसका अर्थ ऐसा है कि, हृदयमें रहनेवाली प्राण नामक वायु मुखमें जाकर आहारको प्रवेश करती है ॥

तथा च सुश्रुतः ।

यो वायुः प्राणनामाऽसौ मुखं गच्छति देहधृक् । सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥ १९१ ॥

भाषा–सुश्रुतका वाक्य है कि जो प्राण नामक वायु है वह मनुष्यके मुखमें जाकर अन्नको शरीरमें प्रवेश करती है और प्राणोंकोभी अवलंबन करती है ॥ १९१ ॥

क्लेदननामा कफः क्लेदयति । क्लेदनात्संहतं भिनत्ति च ।

भाषा–क्लेदन नामक कफ आहारकोभी भिगोता है और भीगे हुए एकत्र अन्नको पृथक् २ करता है ।

उक्तं च सुश्रुते ।

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नं संहतं च भिनत्त्यतः ॥ इति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-ऐसाही सुश्रुत कहते हैं कि, क्लेदन नामक अन्नको भिगोता है तथा वह इकट्ठा मिलकर आहारको अलग अलग करता है ॥

स आहारः षड्रसोऽप्यामाशये माधुर्यं लभते । आमाशयस्थस्य मधुरस्य कफस्य योगात् ॥

भाषा-वह आहार छः रसयुक्त होकरभी आमाशयमें जाकर मधुरताको प्राप्त होता है क्योंकि आमाशयमें रहनेवाले मधुर कफका संयोग होता है ॥

श्लेष्मस्वरूपम् । उक्तं च ।

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा । तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् । फेनभावं च लभते जठरानलतेजसा ॥ १९२ ॥

भाषा-कफ श्वेत, भारी, स्निग्ध, पिच्छिल, शीतल, तमोगुणयुक्त, स्वादु और विदग्ध होनेसे खारी है तथा जठराग्निकी उष्णतासे फेनभाव (झागोंकी सदृशता) को प्राप्त हो जाता है १९२

यत आह वाग्भटः ।

सन्धुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम् । औदर्योऽग्निर्यथा बाह्यः स्थालीस्थं तोयतण्डुलम् ॥ १९३ ॥ इति ।

भाषा-जैसे वाग्भटमें कहा है कि, जिस प्रकार हांडीमें रखे हुए पानी और चावलोंको बाहरकी अग्नि पका देती है, वैसेही समान वायुसे प्रज्वलित हुई जठराग्नि आमाशयमें स्थित आहारको पका देती है ॥ १९३ ॥

अथ स एवाहारः प्राणवायुना प्रेरितस्ततः किञ्चित् स्खलितः पाचकाख्यपित्तोष्मणा यत्पक्वोऽम्लरसो भवति । उक्तम् । 'अथ पाचकपित्तेन विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥' पाचकपित्तेन पाचकपित्तस्योष्मणा ततः । स एवाहारो नाभिमण्डलाधिष्ठानेन समाननाम्ना वायुना प्रेरितो ग्रहणीमभिनीयते ॥

भाषा-फिर वह आहार प्राणवायुसे प्रेरित हुआ तथा किंचित् स्खलित हो (गिरकर) पाचकपित्तकी उष्णतासे पककर अम्लरसयुक्त हो जाता है. कहा है कि पाचक नाम पित्तकी अग्निसे विदग्ध होकर वह आहार अम्लता (खट्टेपन) को प्राप्त हो जाता है, पश्चात् वह आहार नाभिमण्डलमें रहनेवाली समान नामक वायुसे प्रेरित हुआ ग्रहणीकी ओर जाता है ॥

ग्रहणीलक्षणमाह ।

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्त्तिता । आमपक्वाशयान्तःस्था ग्रहणी साऽभिधीयते ॥ १९४ ॥ पित्तधरा पाचकाख्यं पित्तं यदग्न्यधिष्ठानं तद्धारयति तत्र ग्रहण्यामामाशयपक्वाशयमध्यवर्त्तिपाचकाख्यपित्ताधिष्ठानेन अग्निना आहारः पच्यते, स कटूष्मा भवति इति आह ॥

भाषा-आमाशय और पक्वाशयके मध्यमें रहनेवाली पित्तधरा नामक जो छठी कला है उसको ग्रहणी कहते हैं. पाचक नामक पित्तका जो अग्निका अधिष्ठान उसको धारण करती है. इस कारण वह पित्तधरा कहलाती है. वहां ग्रहणीमें आमाशय तथा पक्वाशयके मध्यमें रहनेवाले पाचक नामक पित्तकी अग्निसे आहार पचता है. वह कटु तथा गरम होता है॥१९४॥

तथा च ।

ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठे वह्निना जायते कटुः ॥ अयमर्थः-आहारो ग्रहण्यां कोष्ठवह्निना ग्रहणीस्थितपाचकपित्तेन वह्निना पच्यते । पच्यमानः स ग्रहणीस्थितस्य कटुरसस्य योगात् कटुर्भवति ॥

भाषा-तहां कहते हैं कि आहार ग्रहणीमें पचता है और कोठेमें रहनेवाली अग्निसे कटु (चरपरा) होता. इसका यह अर्थ है कि ग्रहणीमें कोठेकी अग्निसे अर्थात् पाचकपित्तरूप अग्निसे आहार पचता है और पचते समय उस ग्रहणीमें रहनेवाले तीक्ष्ण रसके योगसे तीक्ष्ण हो जाता है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आहारस्य पाचनम् ।

एतदाहारपाके विशेषमाह । शरीरं पाञ्चभौतिकम् । तत्र पञ्चसु भूतेषु पञ्चाग्नयस्तिष्ठन्ति इत्याह ॥

भाषा–शरीर पंचभूतात्मक है, उन पांच भूतोंमें पांच अग्नि रहती हैं ॥

चरकः ।

भौमाप्याग्नेयवायव्या पञ्चोष्माणः सनाभसाः । पञ्चाहारगुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पचन्त्येनु ॥ १९५ ॥ अत्रोष्मपदेन अग्निरुच्यते । आहारोऽपि पाञ्चभौतिकः । तत्र पाचकपित्तस्थेन अग्निना उत्तेजितेन शरीरवर्तिना भूभागाग्निना आहारवर्तिभूभागः पच्यते । पक्को भूभागः स्वकीयान् गुणान् अभिवर्धयति । एवं जलादिभागा अपि पच्यंते ॥

भाषा–यहां चरक कहता है कि, भौम (भूमिसंबंधी), आप्य (जलसंबंधी), आग्नेय (अग्निसंबंधी), वायव्य (वायुसंबंधी) और नाभस (आकाशसंबंधी) ये पांच ऊष्मा पृथ्वी आदि संबंधी अपने अपने आहारके गुणोंको पाचन करती हैं. यहां ऊष्मा पदसे अग्नि कही है. आहारभी पांचभौतिक है, उसमें पाचकपित्तस्थ अग्निसे उत्तेजित शरीरकी भौमाग्निसे आहारका भूमिभाग पचता है, पक्व हुआ पृथ्वीभाग अपने गुणोंसे बढता है, इसी प्रकार जलादिक भागभी पचता है ॥ १९५ ॥

तथा च सुश्रुते ।

पञ्चभूतात्मके देहे आहारः पाञ्चभौतिकः । विपक्वः पञ्चधा सम्यग्गुणान् स्वानभिवर्धयेत् ॥ १९६ ॥ इति । गुणशब्देन अत्र गुणिनः पृथिव्यादय उच्यन्ते । तेन गुणान् शरीरवर्तिनः पार्थिवादीन् भागान् अभिवर्द्धयेदित्यर्थः ॥

भाषा–तैसेही सुश्रुतमें कहा है कि, पंचभूतात्मक शरीरमें आहारभी पांचभौतिक है, वह पांच प्रकारसे पचकर अपने अपने गुणोंकी वृद्धि करता है. यहां गुणशब्द करके गुणयुक्त पृथ्वी आदिक कहनेका प्रयोजन है. उसमें ऐसा समझना कि, गुणोंकी अर्थात् शरीरमें रहनेवाले पृथ्वी आदिक भागोंकी वृद्धि करता है ॥ १९६ ॥

एवम् अहोरात्रेण पक्व आहारो मिष्टः पटुश्च मधुरो भवति । अम्लस्त्वम्लो भवति । कटुस्तिक्तः, कषायश्च कटुर्भवति ॥

भाषा–इसी प्रकार दिन रात्रिमें परिपक्व हुआ मिष्ट (मीठा) तथा पटु (नोन) आहार मीठा होता है और खट्टा आहार खट्टा होता है तथा कडुआ, तीता और कसैला आहार कटु होता है ॥

उक्तं च ।

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः । कटुतिक्तकषायाणां विपाको जायते कटुः ॥ १९७ ॥ इति ।

भाषा–ऐसा कहा है कि मधुर तथा नोन रस विपाकमें मधुर होता है, अम्ल (खट्टा) रस खट्टा होता है तथा कटु (तीखा) तिक्त (कडुआ) और कसैला रस पाकमें कटु होता है ॥ १९७ ॥

आहारस्य रसः ।

एवं विपक्वस्य आहारस्य सारो निगदितो रसः शेषो ग्रहणीस्थो मलद्रवः मलद्रवस्य जलभागः शिराभिर्बस्तिनीतो मूत्रं भवति ॥

भाषा–इस प्रकार पके हुए आहारके सारको रस कहते हैं. शेष ग्रहणीमें स्थित भाग मलद्रव और मलद्रवमेंसे जलका भाग शिराओंसे बस्ति (मूत्राशय) में जाता है तथा वही मूत्र बनता है ॥

उक्तं च ।

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः । शिराभिस्तज्जलं नीतं बस्तिं मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ १९८ ॥ शेषं किट्टं च यत्तस्य तत्पुरीषं निगद्यते । समानवायुना नीतं तत्तिष्ठति मलाशये ॥ १९९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-कहा है कि, आहारका सार रस है, सारहीन भाग मलद्रव कहलाता है. उस मलद्रवका जल शिराओंसे वस्तिमें जाता है, वहां वस्तिमें मूत्रताको प्राप्त होता है. शेष जो किट्ट (मल) रहा उसको विष्ठा कहते हैं. वह विष्ठा समानवायुद्वारा मलाशयमें जाकर ठहरती है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

मूत्रपुरीषस्य निर्गमः ।

तत्र मलाशयस्थेन अपानवायुना प्रेरितं मूत्रं मेढ्रभगमार्गेण, पुरीषं गुदमार्गेण शरीराद्बहिर्याति ॥

भाषा-वह मूत्र मलाशय वस्तिमें रहनेवाली अपानवायुसे प्रेरित होकर लिंग तदा योनिमार्गद्वारा बाहर निकलता है और विष्ठा गुदाके मार्गद्वारा शरीरसे बाहर जाती है ॥

उक्तं च ।

मूत्रं चोपस्थमार्गेण पुरीषं गुदमार्गतः । अपानवायुना क्षिप्तं बहिर्याति शरीरतः ॥२००॥
उपस्थः शिश्नो भगं च ।

भाषा-कहा है कि, अपानवायुसे प्रेरित होकर मूत्र उपस्थ इन्द्रियके मार्गद्वारा और विष्ठा गुदाके द्वारा शरीरसे बाहर निकलती है. उपस्थ शब्दसे लिंग और योनि जानना ॥ २०० ॥

रसस्य गमनं परिणामश्च ।

रसस्तु समानवायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रसस्य स्थानं हृदयं गत्वा तेन सह मिश्रितो भवति इत्याह ॥

भाषा-समानवायुसे प्रेरित होकर रस धमनीके मार्गद्वारा शरीरका आरंभ करनेवाला रसका स्थान जो हृदय है उसमें जाकर उसके साथ मिल जाता है ॥

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः । स तु व्यानेन विक्षिप्तः सर्वान् धातून् विवर्धयेत् ॥ २०१ ॥ केदारेषु यथा कुल्याः पुष्णन्ति विविधौषधीः । तथा कलेवरे धातून् सर्वान् वर्धयते रसः ॥२०२॥ रसस्तु तत्र तत्र त्रिधा विभज्यते ॥

भाषा-कहा है कि, समानवायुसे प्रेरित हुआ रस हृदयमें जाता है तथा वहां व्यानवायुसे बढकर सर्व धातुओंको बढाता है, जिस प्रकार खेतकी क्यारियोंमें कुल्या (छोटी तलैया) छोटी नालियों (नहरों) का पानी नाना प्रकारकी औषधियोंको पुष्ट करता है उसी प्रकार इस शरीरमें सर्व धातुओंकी वृद्धि करता है. उस स्थानमें रसके तीन भाग होते हैं ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

उक्तं च चरकेण ।

स्थूलः सूक्ष्मस्तन्मलश्च तत्र तत्र त्रिधा रसः । स्वं स्थूलोंऽशः परं सूक्ष्मस्तन्मलो याति तन्मलम् ॥ २०३ ॥ अयमर्थः । स्थूलोंऽशः स्वं याति यथास्थितस्तिष्ठति सूक्ष्मस्त्वंशः परं द्वितीयं धातुं याति । तन्मलः रसादिमलः तन्मलं शरीरारम्भकं तत्तद्धातुमलं यातीत्यर्थः । यथा लौकिकाग्निना इक्षुरसः पच्यते तथा शरीरारम्भकस्य रसस्य अग्निना आहाररसः पच्यते । स पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदण्डमेकं च यावत् प्राक्तनरसधातावेव तिष्ठति॥

भाषा-चरकमेंभी कहा है कि " उस स्थलमें वह रस तीन प्रकारका होता है. स्थूल, सूक्ष्म, और उसका मल स्थूल भाग अपने स्थानमें रहता है, सूक्ष्म भाग धातुमें जाता है और रसका मल धातुओंके मलमें जाता है. " इसका अर्थ यह है कि रसका स्थूल भाग तो अपने आपको प्राप्त होता है अर्थात् जहां होय तहांही रहता है, रसका सूक्ष्म भाग धातुमें जाता है और रसादिकका मल शरीरका आरम्भ करनेवाली धातुओंके मलमें जाता है ऐसा अर्थ है. जिस प्रकार लौकिक अग्नि ईखका रस पकाती है उसी प्रकार शरीरको आरम्भ करनेवाली रसकी अग्निसे आहारका रस पकता है, पकते समय वह पांच अहोरात्र (दिनरात) और डेढ घडीतक रस धातुमेंही रहता है ॥ २०३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उक्तं च सुश्रुते ।

स खलु रसः त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदश कला एकैकस्मिन् धातौ उपतिष्ठते । तत्र कलानां विंशतिः मुहूर्त्तः स दण्डद्वयात्मकः । इत्यभिप्रेत्य आह ॥

भाषा–सुश्रुतमेंभी कहा है कि वह रस तीन हजार और पंद्रह कलापर्यन्त एक एक धातुमेंही रहता है, वीस कलाका एक मुहूर्त जानना और एक मुहूर्त दो घडीका जानना ॥

तथा च भोजः ।

धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो रसः । अहोरात्रात्स्वयं पञ्च सार्द्धं दण्डं च तिष्ठति ॥ २०४ ॥ प्रत्येकमेकैकस्मिन्नित्यर्थः ।

भाषा–सोही भोज कहते हैं कि, रस जिसकी आदि है और मज्जा जिसका अंत है ऐसी प्रत्येक धातुमें क्रमसे रस अपने आप मिलकर पांच अहोरात्र (दिनरात) और डेढ घडीतक रहता है ॥ २०४ ॥

कफस्य उत्पत्तिः ।

ततो यथा पच्यमानात् इक्षुरसात् मलो निर्गच्छति, तथा पच्यमानात् आहाररसात् मलो निर्गच्छति स कफः ॥

भाषा–जिस प्रकार पके हुए ईखके रसमेंसे मल निकलता है उसी प्रकार पाचन हुए आहारके रसमें मल निकलता है वह कफ जानना ॥

उक्तं च सुश्रुते ।

कफः पित्तं मलः स्वेदो नखरोम च । नेत्रविट् त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥ २०५ ॥

भाषा–सुश्रुतमेंभी कहा है कि " कफ, पित्त, देहका मल, पसीना, नख, रोम, नेत्रका मल और त्वचाका स्नेह (चिकनापन) ये धातुओंके क्रमसे मल जानने. " अर्थात् रसका मल कफ, रक्तका मल पित्त, मांसका मल कान आदिका मल, मेदका मल पसीना, हड्डीका मल नख, रोम और मज्जाका मल नेत्रका कीचड तथा त्वचाका स्नेह जानना ॥ २०५ ॥

स्वेदः मलः कर्णादिस्रोतोमलः स च कफः प्राणानिलप्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकं क्लेदनाख्यं कफं गत्वा पुष्णाति । ततः सारभूतस्य आहाररसस्य द्वौ भागौ भवतः, स्थूलः सूक्ष्मश्च । तत्र सूक्ष्मो भागः शरीरारम्भकं रसं पोषयति । सकलशरीराधिष्ठानेन व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् पोषणस्नेहनजठरानलोष्मकृतसन्तापनिवारणादिभिर्गुणैः सकलशरीरं पुष्णाति ॥

भाषा–फिर वह कफ प्राणवायुकी प्रेरणासे धमनीके मार्गद्वारा शरीरारम्भक क्लेदन नामक कफमें जाकर उसको पुष्ट करता है, पश्चात् सारभूत आहारके दो भाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उसमें सूक्ष्म भाग शरीरारम्भक रसको पुष्ट करता है तथा सम्पूर्ण शरीरमें व्यापकर व्यानवायुसे प्रेरित धमनियोंके मार्गमें संचार करता है, वह रस पोषण, स्नेहन, जठराग्निकी गरमीसे उत्पन्न हुए संतापके निवारण आदि गुण करके सम्पूर्ण शरीरको पुष्ट करता है॥

पित्तस्योत्पत्तिः ।

ततः स्थूलो भागः प्राणवायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रक्तस्य स्थानं गत्वा यकृत्प्लीहरूपं गत्वा तेन सह मिलितो भवति । ततः प्राक्तनस्य रक्तस्य अग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदण्डं च यावत् प्राक्तनरक्तधातौ एव तिष्ठति । ततो यथाऽग्निना पुनः पुनः पच्यमानात् इक्षुविकासात् वारंवारं मलं निर्गच्छति तथा पुनः पुनः पच्यमानात् आहाररसात् प्रतिवारं मलं निर्गच्छति । तत्र रक्ताग्निना पच्यमानात् मलं पित्तं निर्गच्छति । तच्च पित्तं समानवायुना प्रेरितं धमनीमार्गेण शरीरारम्भकं पाचकाख्यं गत्वा पुष्णाति । ततः सारभूतस्य आहाररसस्य द्वौ भागौ भवतः, स्थूलः सूक्ष्मश्च । सूक्ष्मो भागो रञ्जकाग्निना पित्तेन सरक्तीकृतः शरीरारम्भकं रक्तं व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् सकलशरीरगतानि रुधिराणि पुष्णाति ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-पश्चात् रसका स्थूलभाग प्राणवायुकी प्रेरणासे धमनीके मार्गमें होकर शरीरारम्भक रक्तके स्थानमें जाकर यकृत्प्लीहारूप होकर उनके साथ मिल जाता है, जैसे वारंवार पकाये हुये ईखके रसमेंसे वारंवार मल निकलता है तिसी प्रकार पहिली शेष रही हुई रक्तकी अग्निसे वारंवार पककर आहाररससे वारंवार मल निकलता है. वहां रक्तकी अग्निसे पके हुए रसमेंसे पित्त निकलता है, वह पित्त समानवायुसे प्रेरित धमनियोंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक पाचक पित्तमें जाकर उसको पुष्ट करता है, पीछे सारभूत आहारके रसके दो भाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म; इनमेंसे सूक्ष्म भाग रंजक अग्निरूप पित्तसे रक्तरूप होता है, तथा वह शरीरारंभक रक्तका पोषण करता है. वह व्यानवायुसे प्रेरित हो धमनीके मार्गद्वारा जाकर संपूर्ण शरीरके रुधिरका पोषण करता है॥

कर्णमलस्य उत्पत्तिः।

ततः स्थूलो भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकाणि मांसानि याति। ततो मांसाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदण्डं च यावत् मांसेष्वेव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलं निर्गच्छति। तद्व्यानवायुना क्षिप्तं कर्णौ आगत्य कर्णविड् भवति। ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च। ततः सूक्ष्मो भागः मांसानि पुष्णाति॥

भाषा-पश्चात् रसका स्थूल भाग व्यानवायुकी प्रेरणासे धमनियोंके मार्ग तथा शिराओंके मार्गद्वारा शरीरारंभक मांसमें जाता है, फिर मांसाग्निसे पचकर पांच अहोरात्र (दिनरात) तथा डेढ घडीपर्यंत मांसमें रहता है, पीछे पाचन हो होकर उसमेंसे मल निकलता है, वह मल शीघ्रतासे दोनों कानोंमें जाकर उसका मल होता है. पश्चात् सारभूत रसके दो भाग होते हैं एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म, सूक्ष्म भाग मांसका पोषण करता है॥

प्रस्वेदस्योत्पत्तिः।

ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शरीरारम्भकस्य मेदसः स्थानमुदरं याति। ततो मेदसोऽग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदण्डं च यावत् मेदसि एव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलो निर्गच्छति प्रस्वेदरूपः। स च शीतः स्रोतसि एव तिष्ठति। शरीरोष्मणा तप्तश्चेत् तदा व्यानव्यायुना प्रेरितः शिरामार्गैः लोमकूपेभ्यो बहिर्याति। जिह्वादन्तकक्षामेढ्रादिमलं च मेदोमलमित्येके। ततः सारभूतस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च। तत्र सूक्ष्मो भागः मेदः पुष्णाति उदरे तिष्ठन्॥

भाषा-पश्चात् स्थूलभाग व्यानवायुसे प्रेरित होकर धमनियोंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक मेदके स्थान उदरमें जाता है. तदनंतर मेदकी अग्निसे फिर पचने लगता है तथा पांच अहोरात्र और डेढ घडीपर्यंत मेदामेंही रहता है, पीछे पकते समय उसमेंसे प्रस्वेद (पसीना) रूप मल निकलता है, वह शीतल होनेसे स्रोतोंमेंही रहता है, जब वह शरीरकी गरमीसे तपता है, तबही व्यानवायुसे प्रेरित शिराओंके मार्गद्वारा रोमोंके छिद्रोंमें होकर बाहर निकलता है. जीभ, दांत, कांख (बगल), लिंग आदिका जो मल है वह मेदका मल है ऐसा किसी २ का मत है. तत्पश्चात् सारभूत रसके दो भाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उसमेंसे सूक्ष्मभाग उदरमें रहकर मेदका पोषण करता है॥

नखस्योत्पत्तिः।

स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकाणि अस्थीनि याति। ततः अस्थ्यग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धं दण्डं च यावत् अस्थिष्वेव तिष्ठति। ततः पच्यमानात् तस्मात् मलो निर्गच्छति। स च व्यानवायुना प्रेरितः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिराभिः मार्गेण आगत्यागत्य अंगुलिषु नखाः तनौ लोमानि च भवन्ति । ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च । तत्र सूक्ष्मभागो अस्थीनि पुष्णाति ॥

भाषा–तदनंतर उसका स्थूल भाग व्यानवायुसे प्रेरित धमनी और शिराओंके मार्गद्वारा शरीरारम्भक अस्थि (हड्डियों) में जाता है, पीछे अस्थियोंमें रहनेवाली अग्निसे पचकर पांच अहोरात्र और डेढ घडीपर्यन्त अस्थियोंमें-ही रहता है पश्चात् पाचन होते समय उसमेंसे मल निकलता है वह व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्गद्वारा अंगुलियोंमें आकर नख हो जाते हैं तथा रोम होते हैं, पश्चात् सारभूत रसके दो भाग होते हैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उनमेंसे सूक्ष्मभाग अस्थियोंका पोषण करता है ॥

नेत्रमलस्योत्पत्तिः ।

ततः स्थूलभागो व्यानव्यायुना प्रेरितः स्रोतोमार्गैः मज्जस्थानानि स्थूलास्थ्यभ्यन्तराणि याति । ततो मज्जाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धदण्डं च यावत् मज्जनि एव तिष्ठति । ततः पच्यमानात् तस्मात् मलं निर्गच्छति । तच्च व्यानवायुना प्रेरितं शिरामार्गैर्नयनयोरागत्य नेत्रविट्चक्षुःस्नेहश्च भवति । ततः सारभूतस्य द्वौ भागौ भवतः, स्थूलः सूक्ष्मश्च । तत्र सूक्ष्मभागो मज्जानं पुष्णाति ॥

भाषा–पश्चात् स्थूलभाग व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्गद्वारा मज्जा, नाभि और अस्थियोंके भीतरके भागमें जाता है. तदनंतर मज्जामें रहनेवाली अग्निसे पचकर पांच अहोरात्र और डेढ घडीपर्यन्त मज्जामेंही रहता है, पीछे पाचन होते समय उसमेंसे मल निकलता है, वह मल व्यानवायुकी प्रेरणासे शिराओंके मार्गद्वारा दोनों नेत्रोंमें आकर नेत्रमल (कीचड) और चक्षुःस्नेह (नेत्रोंकी चिक्कनाई) हो जाता है, तत्पश्चात् सारभूत पदार्थके दो भाग होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, सूक्ष्मभाग मज्जाका पोषण करता है ॥

शुक्रस्य उत्पत्तिः ।

ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितः धमनीभिः शिराभिश्च शुक्रस्य स्थानं सकलं शरीरं गत्वा शरीरारम्भकेण शुक्रेण सह मिश्रितो भवति । ततः शुक्रस्य अग्निना पुनः पच्यते । पच्यमाने तस्मिन् मलं नास्ति । स हि सहस्रधा ध्मातसुवर्णवत् इति उत्तरत्र उपदिश्यते ॥

भाषा–तदनंतर उसका स्थूलभाग व्यानवायुकी प्रेरणासे धमनी (नाडी) और शिरा (नसों) के मार्गद्वारा वीर्यका स्थान जो सम्पूर्ण शरीर है उसमें जाकर शरीरारम्भक वीर्यके साथ मिश्रित होता है, पीछे वीर्यमें रहनेवाली अग्निसे फिर उसका पाचन होता है, पाचन होते समय उसमें मैल नहीं होता, क्योंकि वीर्य तो हजार वार तपाये हुए सुवर्णके सदृश है ॥

उक्तं च ।

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु ।
षट्सु धातुषु जायन्ते मलानि मुनयो जगुः ॥ २०६ ॥ यथा सहस्रधा ध्माते न मलं किल काञ्चने । तथा रसे मुहुः पक्वे न मलं शुक्रतां गते ॥ २०७ ॥

भाषा–कहा है कि, रसादिक छहों धातुओंमें रहनेवाली अग्निसे पके हुए रसको आदि लेकर छहों धातुओंमें मल निकलता है ऐसा मुनिजन कहते हैं, परन्तु जिस प्रकार हजार वार तपाये हुए सुवर्णमें मल नहीं रहता उसी प्रकार वारंवार पके हुए तथा वीर्यरूप हुए रसमेंसे मल नहीं निकलता ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

ओजस्योत्पत्तिः ।

ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः । स्थूलः सूक्ष्मश्च । तत्र सूक्ष्मः स्नेहभागः ओजः तस्य लक्षणमाह ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-पश्चात् सारभूत रसके दो भाग होते हैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, उसमेंसे स्नेह-भागको ओज कहते हैं उसका लक्षण कहते हैं ॥

ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् । सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम् ॥ २०८ ॥ बलं चेष्टापाटवम् ।

भाषा-ओज सम्पूर्ण शरीरमें रहता है, स्निग्ध, शीतल, स्थिर, श्वेत, सोमात्मक और शरीरमें बल तथा पुष्टि करनेवाला है. बल अर्थात् चेष्टाकी समर्थता ॥ २०८ ॥

तथा च ।

चेष्टासु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते ॥

भाषा-सोई कहाहै कि चेष्टामें जो चतुरता (समर्थताफुर्ती) है उसकोही बल कहते हैं ॥

यत्तु सुश्रुते रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खलु तेजस्तदेव बलमिति । तेजस्तेजोद्भवः । अत्रायमभिप्रायः । यस्मात् रसादोजो भवति । स रसः सर्वधातुस्थानगतत्वात् तत्तद्धातुवत् मन्यत इति सर्वधातूनां स्नेहमोजः, क्षीरे घृतमिव । तदेव बलमिति तत्कार्यकारणयोरभेदोपचारात् । अभेदकथनं च चिकित्सैक्यार्थम् ।

भाषा-सुश्रुतमें जो ऐसा कहा है कि " रसको आदि लेकर वीर्यपर्यन्त धातुओंमें जो परम तेज है वह धातुओंमेंसे उत्पन्न हुआ है उसको बल कहा है " इसका यह अभिप्राय है कि, जो रसमेंसे ओज होता है वह रस सम्पूर्ण धातुओंके स्थानमें जाता है, इस कारण वह धातुके सदृश माना जाता है, इस प्रकार सर्व धातुओंका स्नेह ओज है, जिस प्रकार दूधमें घी होता है तिसी प्रकार उसमें बल है, क्योंकि उसके कार्य कारणका उपचार अभेद-रूप है इसी कारण ' अभेदरूप ' कहा है ॥

ओजस्य गुणः ।

अन्यच्च । गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा । प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ २०९ ॥

भाषा-भारी, शीतल, मृदु, स्निग्ध, सान्द्र (गीला), स्वादु, स्थिर, निर्मल, पिच्छिल और सूक्ष्म, इन दश गुणोंसे युक्त ओज कहाता है ॥ २०९ ॥

चरके तु ।

अष्टविन्दुप्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम् । अग्निसोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितं तु तत् २१०॥

भाषा-चरकमें तौ आठ विंदु प्रमाण, कुछ पीला और लाल रंगका ओज कहा है और अग्निसोमात्मक होनेके कारण दो रूपवाला कहा गया है ॥ २१० ॥

वाग्भटश्च ।

ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् । हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम् ॥ २११ ॥ यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयाः । यन्नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम् ॥ २१२ ॥ निष्पद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः । उत्साहप्रतिभाधैर्यलावण्यसुकुमारताः ॥ २१३ ॥

भाषा-वाग्भटजी कहते हैं कि, रससे लेकर शुक्रतक सब धातुओंका परमोत्तम जो तेज है वही ओज है. वह हृदयमें रहता है, तथापि सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त है, तथा देहकी स्थितिको धारण करता है. जब वह ओज बढता है तबही तुष्टि, पुष्टि और बलका उदय होता है और इसीके नाश होनेसे देहकाभी नाश होता है. ओजके रहनेसे प्राणीका जीवन है, और इसीसे देहके आश्रित रहनेवाले उत्साह, बुद्धि, धैर्य, लावण्य और सुकुमारता आदि अनेक प्रकारके भाव प्रगट होते हैं ॥ २११-२१३ ॥

ततः स्थूलो भागो रसो मासेन पुंसां शुक्रं स्त्रीणां त्वार्त्तवं शुक्रं च भवति ॥

भाषा-पश्चात् रसका स्थूल भाग एक महीनेमें पुरुषका वीर्य और स्त्रीका आर्तव तथा वीर्य हो जाता है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उक्तं च सुश्रुते ।

एवं मासेन रसः शुक्रो भवति । स्त्रीणां चेति । बकारात् स्त्रीणामपि शुक्रं भवति ॥

भाषा–सुश्रुतमें कहा है कि इस प्रकार रस एक महीनेमें पुरुषका वीर्य होता है तथा स्त्रियोंकेभी. भीशब्द कहनेसे स्त्रियोंकोभी वीर्य होता है ऐसा जानना ॥

अत एवोक्तं सुश्रुते ।

योषितोऽपि स्रवत्येवं शुक्रं पुंसः समागमे । तत्र गर्भस्य किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते ॥२१४॥ गर्भस्य शुद्धस्य विकृतस्य तु गर्भस्य कारणं तदपि भवति ॥

भाषा–सोही सुश्रुतमें कहा है कि, पुरुषका समागम होनेसे स्त्रीकाभी वीर्यपात होता है, परन्तु वह वीर्य गर्भोपयोगी नहीं होता इस कारण उसको नहीं माना ॥ २१४ ॥

यत उक्तम् ।

सदा नार्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन । सुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ २१५ ॥ इति । एतेन स्त्रीणां सप्तमो धातुरार्त्तवं शुक्रमष्टममिति बोधितम् । आशयाधिक्यवत् ॥

भाषा–जैसे कहा है कि, " जब किसी प्रकार दो स्त्री परस्पर मैथुन करें और अन्योन्य वीर्य त्यागें तो उससे अस्थिरहित गर्भ उत्पन्न होता है. " इसलिये स्त्रियोंके सप्तम धातु आर्तव और अष्टम धातु वीर्यभी जानना, इसी प्रकार स्त्रियोंके एक गर्भाशयभी अधिक है ॥ २१५ ॥

स्त्रीणां गर्भोपयोगि स्यादार्तवं सर्वसम्मतम् । तासामपि बलं वर्णं शुक्रं पुष्टिं करोति हि ॥ २१६ ॥

भाषा–स्त्रियोंका आर्तव गर्भ धारण करनेमें उपयोगी है ऐसा सबने माना है तथा वीर्य उसकोभी बल, वर्ण और पुष्टि देता है ॥२१६॥

एवं च । रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते । मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ २१७ ॥ एवं रस एव केदारकुल्यान्यायेन सर्वान् धातून् पूरयन् मासेन नवदण्डोत्तरेण शुक्रमार्तवं भवतीति सिद्धान्तः । एवं सति रसाद्रक्तमिति सङ्गतमेव । ततो मांसं ततो रक्तोत्पत्तेरनन्तरं मांसं जायते रसादेवेत्यर्थः । मांसान्मेदः प्रजायते इति । मांसादनन्तरं मेदः प्रजायते रसादेवेत्यर्थः । मेदसोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः । एवं ततो मज्जा अग्रे शुद्धं शुक्रं सम्भवतीत्यर्थः ॥

भाषा–इस प्रकार केदारकुल्यान्याय करके रसही सम्पूर्ण धातुओंको परिपूर्ण कर एक मास नौ घडीमें वीर्य और आर्तव होता है यह सिद्धांत है, ऐसा होनेपर रससे रक्त उत्पन्न होता है, रक्त उत्पन्न होनेपर उसी रससे रुधिरका मांस होता है, मांससे मेदा होती है, मांस होनेपर रससे मेदा होती है, मेदा होनेपर रससे अस्थि होती है, इसी प्रकार रससे मज्जा होती है, तदनंतर रससे शुद्ध वीर्य होता है ॥२१७ ॥

रसः शरीरे त्रिधा सञ्चरति इत्याह ।

तथा चोक्तम् ।

रसः शरीरे शब्दार्चिर्जलसंतानवत्त्रिधा । सञ्चरत्यनुरूपोऽयं नित्यमेव हि देहिनाम् ॥२१८॥

भाषा–प्राणीके शरीरमें रस तीन प्रकारसे विचरता (फिरता) है. सो कहाभी है कि, शब्द, अर्चि (अग्नि) और जलके प्रवाहके सदृश प्राणियोंके शरीरमें यह अनुरूप रस तीन प्रकारसे सदा संचार करता है ॥ २१८ ॥

अस्यायमभिप्रायः । पुरुषास्तीक्ष्णाग्नयो मध्यमाग्नयो मन्दाग्नयश्च भवन्ति । तत्र तीक्ष्णाग्नीनां स रसः शब्दसन्तानवत् शीघ्रं सञ्चरति । मध्यमाग्नीनामर्चिःसंतानवत् मध्यवेगेन चरति । मन्दाग्नीनां जलसन्तानवत् मन्दं चरति । तेन मासेन रसात् शुक्रं भवतीति यदुक्तम्, तन्मध्यमाग्नीनधिकृत्य उक्तम् । दीप्ताग्नीनां तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसः किञ्चिन्न्यूनेन मासेन शुक्रं भवति । मन्दाग्नेः किञ्चिदधिकेन मासेन इति सिद्धान्तः॥

भाषा—इसका यह अभिप्राय है कि पुरुष तीक्ष्णाग्नि, मध्याग्नि और मंदाग्नि ऐसे तीन प्रकारके होते हैं. उनमेंसे तीक्ष्णाग्निवाले जो पुरुष हैं उनका रस शब्दके विस्तारवत् शीघ्रतासे संचार करता है, मध्यमाग्निवाले पुरुषोंका रस अग्निके विस्तारवत् मध्यम चालसे संचार करता है और मन्दाग्निवाले पुरुषोंका रस जलके विस्तारवत् मंद चालसे संचार करता है. इसलिये यह जो कहा है कि एक महीनेमें रससे वीर्य होता है वह मध्यम अग्निवालोंके जानना. दीप्ताग्निवालोंके तौ रस कुछ कम एक महीनेमें वीर्य हो जाता है और मंदाग्निवालोंके रस एक महीनेसे कुछ अधिक दिनोंमें वीर्य होता है यह सिद्धांत है ॥

तर्हि वाजीकरिणीनामौषधीनां किं प्रयोजनमित्याह ।

वाजीकरिण्य औषध्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात् । विरेचयन्ति ताः शुक्रं विरेकिद्रव्यवन्नृणाम् ॥ २१९ ॥

भाषा—कोई शंका करे कि जब रससे नियमित समयपर वीर्य उत्पन्न होता है तौ वाजीकरण औषधियोंका क्या प्रयोजन है ? इसका उत्तर यह है कि " वाजीकरण औषधियें अपने अपने प्रभाव और गुणकी विशेषताके कारण विरेचन (जुलाब) द्रव्यके सदृश मनुष्योंके वीर्यका विरेचन करती हैं " ॥ २१९ ॥

वाजीकरिण्यः याभिः औषधीभिः पुरुषः शुक्राधिक्यात् स्त्रीषु वाजिवत् सामर्थ्यं प्राप्नोति ताः वाजीकरिण्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात् । तत्र काश्चिदौषध्यः स्वप्रभावाधिक्यात्, काश्चित् स्वप्रभावगुणाधिक्यात् । तत्र सङ्कल्पपादलेपविशिष्टकान्तास्पर्शादयः स्वप्रभावाधिक्यात् शुक्रं विरेचयन्ति । घृतक्षीरादयः स्वगुणाधिक्यात् स्निग्धत्वाधिक्यात् । माषादयः स्वप्रभावस्निग्धत्वादिगुणाधिक्यात् । वाजीकरिण्य इति बहुवचनमाद्यार्थानुवर्त्तनम् । बल्यबृंहणजीवनीयगणादयः तद्वत् बोद्धव्याः। विरेचयन्ति स्वप्रभावगुणाधिक्यात् शीघ्रमेव रसाद्युत्पादनपूर्वकं शुक्रं जनयित्वा प्रवर्तयन्ति॥

भाषा—वाजीकरण औषधि अर्थात् जिन औषधियोंसे वीर्य अधिक होनेपर पुरुष स्त्रियोंमें घोडेके सदृश सामर्थ्यको प्राप्त होता है उनको वाजीकरण औषधि जाननी, अपने प्रभाव और गुणकी विशेषताके कारण इस कहनेका यह प्रयोजन है कि, उसमें कितनी एक औषधि अपने प्रभावकी अधिकतासे और कितनी एक गुणकी अधिकतासे तथा कितनी एक प्रभाव और गुण इन दोनोंकी अधिकतासे वीर्यका विरेचन करती हैं, उसमें स्त्रीकामनारूप संकल्प, पादलेप, विशेष सुन्दरता आदिक गुणवाली स्त्रियोंका स्पर्श इत्यादि अपने प्रभावकी अधिकतासे वीर्यका विरेचन करती हैं. घी, दूध आदि अपने गुणकी अधिकतासे वीर्यका विरेचन करते हैं, उडद आदि स्निग्धत्वादि अपने गुणकी अधिकतासे तथा अपने वीर्यजनक प्रभावकी आधिक्यतासे वीर्यका विरेचन करते हैं. ' वाजीकरण औषधियां ' इसमें बहुवचन कहनेका कारण यह है कि इसके सिवाय दूसरीभी औषधियें जो वाजीकरण होय तौ उनकोभी समझना अर्थात् बलदायक, पुष्टिकर्त्ता जीवनीयगणकीभी औषधियें जाननी. ' विरेचन करती हैं ' इसका यह अर्थ है कि अपने प्रभाव और गुणकी अधिकतासे रसादिक शीघ्र वीर्यको उत्पन्न करके निकालती हैं ॥

यत आह उत्तरत्र ।

दुग्धं माषाश्च भल्लातः फलमज्जाऽऽमलानि च । जनकानि निगद्यन्ते रेचनानि च रेतसः २२०॥

भाषा—" दूध, उडद, भिलावे, केवांचके बीज, बादाम, पिस्ते आदिकी मींगी तथा आमले ये सब वीर्यको उत्पन्न करनेवाले तथा प्रवृत्त करनेवाले पदार्थ हैं ॥ २२० ॥

ननु बालानां कथं शुक्रं न दृश्यते इत्याह । बालानां शुक्रमस्त्येव किन्तु सौक्ष्म्यान्न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृश्यते । पुष्पाणां मुकुले गन्धो यथा सन्नपि नाप्यते ॥ २२१ ॥ तेषां तदेव तारुण्ये पुष्टत्वाद्व्यक्तिमेति हि । कुसुमानां प्रफुल्लानां गन्धः प्रादुर्भवेद्यथा ॥ २२२ ॥ रोमराज्यादयः पुंसां नारीणामपि यौवने । जायन्तेऽत्र च यो भेदो ज्ञेयो व्याख्यानतः स च ॥ २२३ ॥ व्याख्यानं यथा पुंसां रोमराजीश्मश्रुप्रभृतयः । नारीणां तु रोमराजीस्तनस्तन्यार्त्तवप्रभृतयः ॥

भाषा–कोई कहे कि बालकोंके वीर्य क्यों नहीं दीखता ? उसका कारण कहते हैं कि बालकोंके वीर्य तौ होता है, परन्तु सूक्ष्म होनेसे दीखता नहीं है, जिस प्रकार पुष्पोंकी कच्ची कलियोंमें गन्ध तौ होती है, परन्तु मालूम नहीं होती, वह जब फूल खिलता है तबही उसकी गंध प्रगट हो जाती है तिसी प्रकार बालकोंकेभी वीर्य युवावस्थामें पुष्ट होकर प्रकट हो जाता है. इसी प्रकार पुरुष और स्त्रियोंके रोमावली आदिभी युवावस्थामें प्रगट होती हैं इसका भेदभी इसी प्रकार व्याख्यानसे जानना. जैसे पुरुषके रोमावली, दाढी, मूंछ आदि और स्त्रियोंके रोमावली, स्तन, स्तनोंमें दूध, आर्तव आदि ॥ २२१–२२३ ॥

ननु अन्नरसो वृद्धस्य धातुवृद्धिं कथं न करोतीत्यत आह ।

वार्द्धके वर्द्धमानेन वायुना रसशोषणात् । न तथा धातुवृद्धिः स्यात्ततस्तत्रानिलं जयेत् २२४

भाषा–अन्नका रस वृद्धकी धातुको क्यों नहीं बढाता ? ऐसी शंका होनेपर समाधान करते हैं कि वृद्धावस्थामें बढे हुए वायुद्वारा रस सूखनेसे युवाओंके सदृश धातुकी वृद्धि नहीं हो सक्ती, इस कारण वृद्धकी धातु बढानी होय तौ उसकी वायुको जीते अर्थात् दूर करे ॥ २२४ ॥

अथ शुक्रस्य स्वरूपमाह ।

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् । गर्भबीजं वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः २२५

भाषा–वीर्य सोमात्मक, श्वेत, स्निग्ध, बलकारक और पुष्टिकारक, गर्भका बीज, देहका साररूप और जीवका उत्तम आश्रयरूप कहा है ॥ २२५ ॥

जीवस्याश्रय उत्तम इत्यत आह ।

जीवो वसति सर्वस्मिन् देहे तत्र विशेषतः । वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात् ॥ २२६ ॥

भाषा–जीवका उत्तम आश्रय क्या है ? सो कहते हैं कि जीव सम्पूर्ण देहमें रहता है, उसमेंभी विशेषतासे वीर्यमें तथा रुधिर और मलमें रहता है, इसलिये वीर्य रुधिर और मलका क्षय होनेसे एक क्षणमें शरीरकाभी क्षय हो जाता है ॥ २२६ ॥

अथ गर्भसञ्जननशुक्रस्य लक्षणमाह ।

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च । शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं च तत् २२७॥

भाषा–गर्भोत्पत्ति करनेवाला स्फटिक वीर्यमणिके सदृश, निर्मल रंगवाला, प्रवाही, स्निग्ध, मधुर और मधु (सहत) के सदृश गन्धवाला होता है. कोई कहते हैं कि वह तैल और मधुकी प्रभासदृश होता है ॥ २२७ ॥

अथ शुक्रस्य स्थानमाह ।

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा । एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥२२८॥

भाषा–जिस प्रकार दूधमें घी, तथा ईखमें रस गुप्ततासे रहता है तिसी प्रकार देहधारियोंके सम्पूर्ण शरीरमें वीर्य रहता है ॥ २२८ ॥

अत्र सर्पिर्दृष्टान्तो बहुशुक्रे अल्पमथनेन सर्पिःशुक्रयोर्लाभात् । इक्षुरसदृष्टान्तस्तु स्वल्पशुक्रे पुंसि अतिपीडनेन इक्षुरसशुक्रयोर्लाभात् ॥

भाषा–यहां जैसे घीका दृष्टांत कहा है उसमें ऐसा समझना कि जिस प्रकार दूधको थोडा मथनेसे घी निकल आता है, तैसेही बहुवीर्यवाले देहकोभी थोडा मथनेसे वीर्य प्राप्त हो जाता है. ईखका दृष्टान्त इस प्रकार जानना कि जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varahasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार ईख अत्यंत पेलनेसें रस निकलता है, तिसी प्रकार अल्पवीर्यवाले पुरुषके शरीरमेंसेभी अत्यंत मथन करनेसे वीर्य प्राप्त होता है ॥

अथ शुक्रस्य क्षरणमार्गमाह ।

द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः ।
मूत्रस्रोतःपथे शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥२२९॥

भाषा-दो अंगुल दक्षिण (दाहिनी) पार्श्व (पसली) से ऊपर और वस्तिद्वारके नीचे मूत्रवाही शिराओंके मार्गसे पुरुषका वीर्य प्रवृत्त होता है ॥ २२९ ॥

वृद्धवाग्भटोऽप्याह ।

सप्तमी शुक्रधरा द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधो मूत्रमार्गमाश्रिता सकलशरीरव्यापिनी शुक्रं प्रवर्त्तयतीति सप्तमी कला ॥

भाषा-वृद्धवाग्भट्जी कहते हैं कि दो अंगुल दाहिनी ओर और बस्तिद्वारके नीचे सातवीं शुक्रधरा नामक कला मूत्रमार्गके आश्रयसे रहती है, वह सकल शरीरमें व्याप्त वीर्यको प्रवृत्त करती है ॥

अथ शुक्रक्षरणकारणमाह ।

कृत्स्नदेहस्थितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा । स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्त्तते ॥ २३० ॥
स्त्रीषु व्यायच्छतः स्त्रीषु रतरूपं व्यायामं कुर्वतः ॥

भाषा-सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाला वीर्य जब मनुष्यका मन प्रसन्न होता है अथवा जब स्त्रीके साथ संभोग करते समय हर्ष होता है तबही प्रवृत्त होता है. मूलमें 'स्त्रीषु व्यायच्छतः' यह पद है उसका यह अर्थ है कि स्त्रियोंके साथ रतिरूप व्यायाम करनेसे ॥ २३० ॥

अन्यच्च ।

शुक्रं कामेन कामिन्यां दर्शनात्स्पर्शनादपि ।
शब्दसंश्रवणाद्ध्यानात् संयोगाच्च प्रवर्तते २३१

भाषा-औरभी कहा है कि, स्त्रीका कामभावसे दर्शन, स्पर्श, शब्दश्रवण तथा ध्यानका संयोग होनेसे वीर्य प्रवृत्त होता है ॥ २३१ ॥

अथार्तवस्य स्वरूपमाह ।

स्त्रीणां रस एव मासेन आर्तवं भवति इत्युक्त्वा पुनराह शुक्रत एव । रसादेव रजः स्त्रीणां मासि मासि त्र्यहं स्रवेत् । तद्द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ २३२ ॥ मासेनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्त्तवम् । ईषद्विवर्णं कृष्णं च वायुर्योनिमुखं नयेत् ॥ २३३ ॥

भाषा-स्त्रियोंके रसही एक महीनेमें आर्तव होता है. इस प्रकार कहकर फिर कहते हैं कि वीर्यसेही आर्तव होता है. इससेही स्त्रियोंके महीने २ तीन दिनतक आर्तव होकर वहता है, वह रज बारह वर्षकी आयुके ऊपर स्रवता है और पचास वर्षके पीछे बंद हो जाता है. एक महीनेका इकट्ठा हुआ आर्तव समय आनेपर धमनियों (नाडियों) के मार्गमें कुछ विवर्ण और काले रंगका हो जाता है तथा वायु उसको योनिके मुखपर ले आता है ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

गर्भग्रहणयोग्यस्य आर्त्तवस्य लक्षणमाह ।

शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ।
तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् २३४

भाषा-जो आर्तव खरगोशके रुधिरके सदृश अथवा लाखके रसके सदृश होय, तथा जिसका दाग वस्त्र धोनेपर न रहे वह आर्तव शुद्ध कहाता है अर्थात् गर्भधारण करनेके योग्य होता है ॥ २३४ ॥

आर्तवस्य वर्णद्वयाभिधानं वातादिप्रकृतिभेदेन वर्णभेदात् । यद्वासो न विरञ्जयेत् । यद्वासो लग्नं प्रक्षालितं तद्वासस्त्यजति न तु विकृतरक्तं कुर्यात् । ऋतुः स्त्रीणां रजोदर्शनात् षोडश निशाः तत्र भवमार्त्तवम् । गृहीतगर्भाणां स्त्रीणामार्त्तववहानां स्रोतसां गर्भेण अवरोधादार्त्तवं न स्रवति । किन्तु तदेवाधः प्रतिहतमूर्ध्वमागतमुपचीयमानमपरा भवति । अपरा तु श्रीधर इति लोके । शेषं चोर्ध्वतरमागतं पयोधरौ याति तस्माद्गर्भिण्यः पीवरपयोधरा भवन्ति ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-यहां आर्तवके दो रंग इस कारण कहे हैं कि वातादिक प्रकृतिसे वर्णीकाभी भेद हो जाता है इसी कारण कहा है. 'वस्त्रके ऊपर दाग नहीं रहे' इस कहनेका अर्थ यह है कि जिसका दाग वस्त्रके ऊपर लगा होय और उसको धोया जाय तो वह दाग वस्त्रके ऊपरसे जाता रहता है और विकृत रंगका दाग नहीं दीखता. स्त्रियोंके जिस दिनसे रजोदर्शन होय उससे सोलह रात्रिपर्यन्त ऋतुकाल कहाता है. इस ऋतुकालमें उत्पन्न हुआ वह आर्तव कहाता है. जिन स्त्रियोंके गर्भ रहा होय उन स्त्रियोंका आर्तवके वहनेवाली शिरा (नाडियों) का मार्ग गर्भ रोकता है, तबही आर्तव नहीं निकलता, परन्तु वह आर्तव नीचे आनेसे रुककर ऊपरको जाकर इकट्ठा हो जाता है उसकी जरायु (जेर) हो जाता है. इसको श्रीवरभी कहते हैं और शेष रहा आर्तव ऊपर जाकर दोनों स्तनोंमें जाता है इसीसे गर्भवती स्त्रियोंके स्तन पुष्ट हो जाते हैं ॥

अथ धातुषु अतिरिक्तान् गुणानाह ।

अतिरिक्ता गुणा रक्ते वह्नेर्मांसे तु पार्थिवाः । मेदस्यपां रसे चास्थिन पृथिव्यनिलतेजसाम् ॥ २३५ ॥ मज्ज्ञि शुक्रे च सोमस्य मूत्रे च शिखिनो गुणाः । भुवस्तथार्तवे त्वग्ने रसे क्षीरे तथाऽम्भसः ॥ २३६ ॥

भाषा-रक्तमें अग्निका गुण अधिक है, मांसमें पृथ्वीका गुण अधिक है, मेदमें जलका गुण अधिक है, रसमेंभी जलका गुण अधिक है, अस्थि (हड्डी) में पृथ्वी, वायु और तेजका गुण अधिक है, मज्जा और वीर्यमें चन्द्रका गुण अधिक है, मूत्रमें अग्निका गुण अधिक है, आर्तवमें पृथ्वी तथा अग्निका गुण अधिक है और रस तथा दूधमें जलका गुण अधिक है ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

अथ धातूनां मलाः ।

कफः पित्तं मलः खेषु प्रस्वेदो नखलोम च । नेत्रविट् त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः । नेत्रजिह्वाकपोलानां जलं च रसजं मलम् ॥ २३७ ॥ इत्येके ।

भाषा-कफ, पित्त, कर्णादिक स्रोतः स्थानका मल, पसीना, नख, रोम, नेत्रका मल और त्वचाके ऊपरका स्नेह (चिकनापन) ये धातुओंके क्रमसे मल हैं. कहीं नेत्र, जीभ और कपोलोंका जल ये रसके मल हैं यों कहा है ॥२३७॥

खेषु कर्णादिस्रोतःसु मलः रसनादन्तकक्षामेढ्रादिमलमपि मेदोमलमित्येके । नेत्रविट् त्वचां स्नेहश्च मज्जमलः । शुक्रस्य मलमेव नास्ति, सहस्रधा ध्मातसुवर्णस्येव ॥

भाषा-मूलमें 'मलः खेषु' पद है उसका यह अर्थ है कि, कर्णादिक स्रोतःस्थानके मैल. कितनोंका मत ऐसा कि जीभ, दांत, वगल और लिंग आदिका मल यह मेदाका मल है. नेत्रका मैल, त्वचाके ऊपरकी चिकनाई यह मज्जाका मैल है. हजार वार तपाये हुए सुवर्णमें जैसे मैल नहीं होता. उसी प्रकार वीर्यमेंभी मैल नहीं होता है ॥

अथ उपधातवः ।

वनितानां प्रसूतानां धमनीभ्यां स्तनौ गतात् । रसादेव हि जायेत स्तन्यं स्तनयुगाशयम् ॥ २३८ ॥ शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता । मेदसः स्रवमाणस्य स्नेहो वा कथिता वसा ॥ २३९ ॥

भाषा-प्रसूत हुई स्त्रियोंके दोनों स्तनोंमें दोनों धमनियोंके मार्गमें गये हुए रसकाही दूध हो जाता है और वह दोनों स्तनोंमेंही रहता है. शुद्ध मांसके स्नेहको वसा कहते हैं अथवा मेदके वहनेसे जो स्नेह उत्पन्न होता है उसको वसा कहते हैं ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

शार्ङ्गधरे तु ।

स्तन्यं रजो वसा स्वेदो दन्ताः केशास्तथैव च । ओजश्च सप्तधातूनां क्रमात्सप्तोपधातवः २४०

भाषा-शार्ङ्गधरमें तो ऐसा कहा है कि दूध, रज, वसा, प्रस्वेद, दांत, केश और ओज ये सात धातुओंके क्रमसे उपधातु हैं ॥ २४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथाशयाः ।

उरो रक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः । आमाशयस्तु तदधस्तालिङ्गं चरकोऽवदत् २४१

भाषा-उरस्थान (छाती) ही रक्ताशय है, उसके नीचे श्लेष्माशय अर्थात् कफाशय है, उसके नीचे आमाशय है. उसका स्थान चरकमें ऐसा कहा है ॥ २४१ ॥

तद्यथा ।

नाभिस्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधाः ॥ इति ।

भाषा-" प्राणियोंकी नाभिसे स्तनपर्यन्तके अन्तरको विद्वान्लोग आमाशय कहते हैं " ॥

आमाशयादधः पक्वाशयादूर्ध्वं तु या कला । ग्रहणीनामिका सैव कथितः पाचकाशयः ॥ २४२ ॥ ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्मध्यभागे व्यवस्थितः । तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥ २४३ ॥ पक्वाशयस्तु तदधः स एव तु मलाशयः । तदधः कथितो बस्तिः स हि मूत्राशयो मतः ॥ २४४ ॥

भाषा-आमाशयके नीचे और पक्वाशयके ऊपर जो ग्रहणी नामक कला है उसको पाचकाशय कहते हैं; नाभिसे ऊपर मध्यभागमें अग्न्याशय रहता है; उसके ऊपर तिल है; उस तिलके नीचे पवनाशय है, उसके नीचे पक्वाशय है, वही मलाशय है, उसके नीचे बस्ति है, उसकोही मूत्राशय कहते हैं ॥ २४२-२४४ ॥

आशयानुक्रमस्तु वाग्भटेनोक्तः स यथा । कफाऽऽमपित्तवातानामाशया मलमूत्रयोः । पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ॥ २४५ ॥ धरा गर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयान्तरे । स्तनौ प्रवृद्धौ तावेव बुधैः स्तन्याशयौ मतौ ॥ २४६ ॥

भाषा-आमाशयका क्रम वाग्भटमें इस प्रकार कहा है कि, कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, वाताशय, मलाशय और मूत्राशय ये आशय हैं. पुरुषोंसे स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं, पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमें गर्भाशय कहा है और दोनों स्तन जब बढते हैं तब उनकोही विद्वान् स्तन्याशय मानते हैं ॥ २४५ ॥ २४६ ॥

अथ कलास्वरूपमाह ।

स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान् सन्ततांश्च जरायुना । श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदुः ॥ २४७ ॥ धात्वाशयान्तरे धातोर्यः क्लेदस्त्वधितिष्ठति । देहोष्मणाऽभिपक्वश्च सा कलेत्यभिधीयते ॥ २४८ ॥

भाषा-स्नायुकरके ढका हुआ, जरायुसे विस्तृत और कफसे वेष्टित जो होता है उसको कलाका भाग कहते हैं. धात्वाशय (धातुके स्थान) के मध्यमें धातुका जो भीजा हुआ भाग है तथा जो शरीरकी गर्मीसे पका हुआ होता है उसको कला कहते हैं ॥२४७॥२४८॥

ताः सप्त ।

आद्या मांसधरा प्रोक्ता द्वितीया रक्तधारिणी । मेदोधरा तृतीया तु चतुर्थी श्लेष्मधारिणी ॥ २४९ ॥ पञ्चमी तु मलं धत्ते षष्ठी पित्तधरा मता । रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ॥ २५० ॥

भाषा-वे कला सात हैं पहिली कला मांसधरा, दूसरी रक्तधारिणी, तीसरी मेदोधरा, चौथी श्लेष्मधरा, पांचवीं मलधरा, छठी पित्तधरा और सातवीं वीर्यधरा ये सात कला कही हैं ॥ २४९ ॥ २५० ॥

अथ मर्माणि ।

सन्निपातः शिरास्नायुसन्धिमांसास्थिसम्भवः । मर्माणि तेषु तिष्ठन्ति प्राणाः खलु विशेषतः ॥ २५१ ॥ सप्तोत्तरशतं सन्ति देहे मर्माणि देहिनाम् । तान्येकादश मांसे स्युरष्टावस्थिषु सन्ति हि ॥ २५२ ॥ सन्धीनां विंशतिस्तानि स्नायूनां सप्तविंशतिः । चत्वारिंशत्तथैकं च शिरामर्माणि तत्र तु ॥ २५३ ॥ द्वाविंशतिः सक्थियुगे तावन्त्येव भुजद्वये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वादशोरसि कुक्षौ च पृष्ठदेशे चतुर्दश ॥२५४॥ ग्रीवायामूर्ध्वभागे तु सप्तत्रिंशन्मतानि हि । मर्माणि यानि सन्तीह पञ्चधा च भवन्ति हि ॥ २५५ ॥

भाषा–शिरा, स्नायु, संधि, मांस और अस्थि (हड्डी) ये जब एकत्र होकर मिलते हैं तबही मर्मस्थल कहलाते हैं, उन मर्मस्थानोंमें विशेष करके प्राण रहते हैं. देहधारियोंके शरीरमें सब एक सौ सात १०७ मर्म हैं, उनमेंसे ग्यारह ११ मांसमें होते हैं, आठ ८ अस्थियोंमें, बीस २० संधियोंमें, सत्ताईस २७ स्नायुमें और इकतालीस ४१ मर्म शिराओंमें होते हैं. उनमें बाईस २२ मर्म दोनों पांवोंमें, बाईस २२ दोनों हाथोंमें, छाती और कोखमें मिलकर बारह १२, पीठमें चौदह १४, गरदन और उसके ऊपरके भागमें सैंतीस ३७ मर्म हैं ॥ २५१–२५५ ॥

तान्याह ।

सद्यः प्राणहराणि स्युर्मर्माण्येकोनविंशतिः । मर्मदेशास्त्रयस्त्रिंशत्स्युः कालान्तरमारकाः ॥ २५६ ॥ चत्वारिंशच्च चत्वारि वैकल्यं जनयन्ति हि । मर्माष्टकं रुजाकारि विशल्यघ्नं त्रिकं मतम् ॥ २५७ ॥

भाषा–ये मर्म पांच प्रकारके हैं, उनमेंसे उन्नीस १९ मर्म तत्काल प्राण हरनेवाले हैं, तैंतीस ३३ मर्मस्थान कालांतरमें मृत्यु करनेवाले हैं, चौवालीस ४४ मर्मस्थान विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, आठ ८ मर्म पीडा उत्पन्न करते हैं और तीन मर्मस्थान विशल्यनाशक हैं ॥ २५६ ॥ २५७ ॥

शृङ्गाटकान्यधिपतिः शङ्खौ कण्ठशिरा गुदम् । हृदयं बस्तिनाभी च सद्यो घ्नन्ति हतानि चेत् ॥ २५८ ॥

भाषा–शृंगाटक, अधिपति, शंख, कण्ठशिरा, गुदा, हृदय, बस्ति और नाभि इनमें कदाचित् चोट लग जाय तौ ये तत्काल प्राणीको मार डालते हैं ॥ २५८ ॥

शृङ्गाटकानि घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासन्तर्पकाणां शिरामुखानां शिरसो मध्ये संयोगस्थानं, तानि चत्वारि शिरामर्माणि चतुरंगुलप्रमाणानि हतानि घ्नन्ति सद्यो मारकाणि भवन्ति । अधिपतिर्मस्तकस्याभ्यन्तरे सन्धिशिरसोः सन्निपातः उपरिष्टात् रोमावर्तः स एकः, सन्धिमर्मेदमर्धांगुलप्रमाणं सद्यो मारकम् ॥

भाषा–शृंगाटक नासिका, कर्ण, नेत्र और जीभ इन इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली शिराओंका जो मस्तकमें संयोगस्थान है उसमें चार शिराओंका मर्म चार अंगुल प्रमाणका है । उसके ऊपर प्रहार करनेसे तत्काल मृत्यु होती है. अधिपति मस्तकके अभ्यंतर नाडियोंकी संधि जहां मिली है उसके ऊपर रोमोंका आवर्त है, यह एक मर्म है, यह संधिमर्म आधी अंगुल प्रमाणका है, वह उपरोक्तानुसारही तत्काल मारक है ॥

शङ्खौ भ्रुवोरन्तोपरि कर्णललाटमध्ये तौ द्वौ, अस्थिमर्मणी सार्द्धांगुले सद्यो मारके । कण्ठशिरामातृकाः ग्रीवासुभयपार्श्वयोश्चतस्रः शिरास्ता अष्टौ शिरामर्माणि चतुरंगुलानि सद्योमारकाणि ॥

भाषा–शंख दोनों भौओंके अन्तर्भागके ऊपर कान और ललाटके बीचमें अर्थात् कनपटियोंमें दो अस्थिमर्म हैं, उनका डेढ डेढ अंगुल प्रमाण है और ये सद्योमारक हैं. कंठशिरा इसका दूसरा नाम मातृका है, गरदनके ऊपर दोनों बाजुओंमें चार चार शिरायें हैं, वे आठ शिरायें मर्मस्थान हैं, उनका प्रमाण चार अंगुलका है, इनमेंभी चोट लगनेसे शीघ्र मृत्यु होती है ॥

गुदं प्रसिद्धम् । एकं मांसमर्म चतुरंगुलं सद्योमारकम् । स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरस्याशयद्वारं सत्त्वरजस्तमसामधिष्ठानं हृदयं नाम एकं शिरामर्मेदं चतुरंगुलं सद्योमारकम् ॥

भाषा–गुदा वायु और विष्ठाको त्यागनेवाली स्थूल आंतोंके बन्धनोंसे बँधी हुई यह प्रसिद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है तथा यह मांसमर्म है, इसका प्रमाण चार अंगुलका है और वहभी चोट लगनेसे शीघ्र प्राण हरती है. स्तनोंके मध्य अधिष्ठित उरःस्थानमें आमाशयद्वार है, वह सत्व रज तम इनका अधिष्ठान है, वहांपर हृदय नामक शिरामर्म है यह चार अंगुलप्रमाण है और उसमें चोट लगनेसे तत्कालही प्राणी मर जाता है ॥

बस्तिर्नाभिः पृष्ठकटी गुदवंक्षणशेफसाम् । मध्ये बस्तिस्तनुत्वक् च एकद्वारो ह्यधोमुखः ॥ २५९ ॥

भाषा-वस्ति तथा नाभिभी मर्मस्थान हैं; पीठ, कटि, गुदा, वंक्षण (पेडू) और लिंग इनके बीचमें बस्ति (थैलीसी) है, उसकी त्वचा पतली है तथा उसका एक द्वार है और मुख नीचेहै ॥ २५९ ॥

स्नायुमर्मेदं चतुरंगुलं सद्योमारकम् । नाभिः प्रसिद्धा । शिरामर्मेदं च चतुरंगुलं सद्यो मारकम् ॥

भाषा-बस्ति यह स्नायुमर्म चार अंगुलका है. तथा वह तत्काल प्राण हरनेवाला शिरामर्म है. नाभि प्रसिद्ध है, यह पक्वाशय और आमाशयके बीच शिराओंके द्वारा बनी हुई है; उसका चार अंगुलका शिरामर्म है तथा तत्काल प्राण हरनेवाला है ॥

वक्षोमर्माणि सीमन्तस्तलाः क्षिप्रेन्द्रबस्तयः । बृहत्यौ पार्श्वयोः सन्धी कटीकतरुणे च ये । नितम्बाविति चैतानि कालान्तरहराणि तु ॥ २६० ॥

भाषा-वक्षस्थलोंके मर्म, सीमंत, तल, क्षिप्र, इन्द्रवस्ति, बृहती, पसलियोंकी संधि, कटीकतरुण और नितंब इन स्थानोंके मर्म कालांतरमें प्राण हरण करनेवाले हैं ॥ २६० ॥

वक्षोमर्माणि स्तनयोरधस्तात् द्व्यंगुलं यावत् । स्तनमूले नाम शिरामर्मणी तत्र कफपूर्णकोष्ठतया कालान्तरमारके । स्तनरोहिते स्तनयोरुपरि द्व्यंगुलं यावत् । द्वे मांसमर्मणी रक्तपूरितकोष्ठतया कालान्तरमारके ॥

भाषा-वक्षःस्थलके मर्म स्तनोंके नीचेसे लेकर दो अंगुलतक और स्तनोंकी जडमें दो शिरामर्म हैं, तहां कफ परिपूर्ण होनेसे कालांतरमें मारक हैं. स्तनरोहित स्तनोंसे ऊपर दो अंगुलतक स्तनरोहित नाम दो मर्म हैं, उनमें रुधिर भरा हुआ है, इस कारण वह कालांतरमें प्राण हरण करनेवाले हैं ॥

अपलापौ अंसकूट्योरधस्तात् पार्श्वयोरुपरि द्वे शिरामर्मणी अर्द्धांगुले रक्तेन पूर्णतां गतेन कालान्तरमारके । अपस्तम्बौ उरस उभयोः नाडयौ वातवहे शिरामर्मणी अर्द्धांगुले वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च कालान्तरमारके ॥

भाषा-कन्धेकी अस्थि (हड्डी) के नीचे पसलियोंके ऊपर दो शिरामर्म हैं, उनको अपलापी कहते हैं, वे आधे आधे अंगुल प्रमाण हैं, वे रक्तसे भरे हैं इस कारण कालान्तरमें प्राणनाशक हैं. छातीके दोनों ओर वातवाही शिराओंमें दो मर्म हैं, उनको अपस्तंब कहते हैं, वे वायुसे भरे हैं इस कारण कास तथा श्वास उत्पन्न करनेवाले और कालातरमें प्राणहारक हैं ॥

सीमन्ताः शिरसि पञ्च सन्धयः सन्धिमर्माणि चतुरंगुलानि उन्मादभयचित्तविनाशैः कालान्तरमारकाणि । तलानि मध्यांगुलिमनुक्रम्य हस्तस्य मध्यं तलमेवमपरस्य हस्तस्य पादयोश्चैवं चत्वारि तलानि मांसमर्माणि द्व्यंगुलानि रुजाभिः कालान्तरमारकाणि ॥

भाषा-सीमन्त शिरमें पांच संधि हैं तथा ये चार अंगुलप्रमाणके संधिमर्म हैं. ये उन्माद, भय, मूर्छा आदि करके कालांतरमें मारते हैं। तल बिचली अंगुलीसे लेकर हाथकी हथेलीके मध्य भागमें, वैसेही दूसरे हाथकी हथेलीके मध्यमें, तैसेही दोनों पांवोंके तलुओंमें, इस प्रकार चार मांसमर्म हैं, उनका दो अंगुलका प्रमाण है और वे तलमर्म कहाते हैं. उनमें पीडा होनेसे कालांतरमें प्राण निकलते हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षिप्राणि अंगुष्ठांगुल्योर्मध्ये क्षिप्रम् । तानि च हस्तयोर्द्वे पादयोर्द्वे चैवं चत्वारि स्नायुमर्माणि अर्द्धांगुलानि आक्षेपकेण कालान्तरमारकाणि । इन्द्रवस्तयः प्रकोष्ठयोर्मध्ये द्वौ जंघयोर्मध्ये द्वौ एवं चत्वारि मांसमर्माणि द्व्यंगुलानि शोणितक्षयेण कालांतरमारकाणि ॥

भाषा–क्षिप्र अंगूठा और अंगुलियोंमें क्षिप्र मर्म हैं, वे दोनों हाथोंके तथा दोनों पांवोंके मिलकर चार स्नायुमर्म आधी अंगुलप्रमाण हैं तथा आक्षेपक नाम वायुरोग उत्पन्न होकर कालांतरमें मृत्यु करते हैं. इन्द्रवस्ति दोनों बाजुओंके मध्य, तथा दोनों जंघाओंके मध्यमें चार मांसके मर्म हैं, इनका प्रमाण दो अंगुलका है, रुधिर क्षय होनेसे कालांतरमें मारक हैं ॥

बृहत्यौ स्तनमूलादुभयतः सपृष्ठवंशं यावत् । शिरामर्मणी अर्द्धांगुलावृते शोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैः उपद्रवैः कालान्तरमारके । पार्श्वसन्धी जघनपार्श्वयोः सन्धी प्रति शिरामर्मणी अर्द्धांगुले शोणितपूर्णकोष्ठतया कालान्तरमारके ॥

भाषा–बृहती स्तनोंकी मूलके दोनों ओरसे लेकर पीठके वांसोंपर्यन्त शिरामर्म हैं, उनका प्रमाण आध अंगुल है. रुधिरके अत्यंत निकलनेसे तथा उपद्रव होनेसे कालांतरमें प्राणोंको हरते हैं. पार्श्वसन्धि जांघोंकी दोनों पसलियोंकी संधि, इन प्रत्येकमें शिरामर्म है, ये आधे अंगुलके प्रमाण हैं, ये रक्तसे परिपूर्ण हैं, इस कारण कालांतरमें मृत्यु करते हैं ॥

कटीकतरुणे त्रिकसन्निधाने उभयतः श्रोणिकाण्डे लक्षीकृत्यास्थिनी स्थिते अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले शोणितक्षयात् पाण्डुं विवर्णरूपं कृत्वा कालान्तरमारके । नितम्बौ प्रसिद्धौ द्वे अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुलौ अधः कायशोषेण दौर्बल्येन च कालान्तरमारकौ ॥

भाषा–कटीकतरुण त्रिक (रीढके तलेकी तीन हड्डी) के पास दोनों श्रोणिकांडोंमें अस्थियोंके मध्य अस्थिमर्म हैं, उनका प्रमाण आध अंगुल है, रुधिरके क्षय होनेसे पाण्डु तथा विवर्णरूप करके कालान्तरमें प्राण हरते हैं. नितम्ब ये दोनों प्रसिद्ध हैं. ये अस्थिमर्म हैं, तथा आधी अंगुल प्रमाण हैं, शरीरके नीचेका भाग शोषण होनेसे तथा दुर्बलता होनेसे कालांतरमें प्राण हरते हैं ॥

लोहिताक्षाणिजानूर्वीकूर्चौविटपकूर्पराः । कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सकृकाटिके ॥ २६१ ॥
अंसांसफलकापाङ्गा नीले मन्ये फणे तथा । वैकल्यकरणान्याहुरावर्तौ द्वौ तथैव च ॥२६२॥

भाषा–लोहिताक्ष, आणि, दोनों जानु, दोनों ऊरु, कूर्चा, विटप, कूर्पर, कुकुन्दर, कक्षधर, विधुर, कृकाटिका, अंस, अंसफलक, अपांग, नील, मन्या, फण और आवर्त ये मर्म अंगमें विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

लोहिताक्षम् ऊर्वोरूर्ध्वमधोवंक्षणसन्धेर्लोहिताक्षम् । ते च द्वे बाह्वोर्द्वे ऊर्वोरेवं तानि चत्वारि शिरामर्माणि अर्द्धांगुलानि वैकल्यकराणि तत्र शोणितक्षयेण पक्षाघातः सक्थिसादो वा । आणयः जानुन ऊर्ध्वम् उभयोः पार्श्वयोस्त्र्यंगुला एकस्मिन् जानुनि द्वे अपरस्मिन् द्वे एवं चतस्रः स्नायुमर्माणि अर्धांगुलानि वैकल्यकराणि । तत्र शोथाभिवृद्धिः सक्थिस्तम्भश्च ॥

भाषा–लोहिताक्ष दोनों ऊरुओंके ऊपर वंक्षण (पेडू) संधिके नीचेको लोहिताक्ष मर्म कहते हैं, तथा दोनों ऊरुओंकी दो संधिको देवसंधि कहते हैं, इस प्रकार वे चार शिरामर्म आध अंगुल प्रमाण हैं, उसमें चोट लगनेसे वे अंगमें विकलता उत्पन्न करते हैं. उसमें रुधिरका क्षय होनेसे सक्थिसाद अथवा पक्षाघात नाम वायुरोग उत्पन्न होता है. आणि जानुके ऊपर दो पसलियोंमें तीन अंगुल ऊपर एक, जानुके ऊपर दो और दूसरे जानुके ऊपर दो ये चार आध अंगुल प्रमाण स्नायुमर्म हैं, वे विकलता उत्पन्न करते हैं. उनमें सूजन वृद्धि और सक्थिस्तंभ नामक रोग होते हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जानुनी जङ्घयोः सन्धी सन्धिमर्मणी द्व्यंगुले वैकल्यकरे तत्र खञ्जता । ऊर्व्यो द्वे ऊर्वोर्मध्ये द्वे प्रगण्डयोः मध्ये एवं चतस्रः शिरामर्माणि एकांगुल्या वैकल्यकर्यस्तत्र शोणितक्षयात् सक्थिशोषः । कूर्चाः पादयोरंगुष्ठांगुल्योर्मध्ये तयोरूर्ध्वं हस्तयोरधश्च एवं चत्वारि स्नायुमर्माणि वैकल्यकराणि । तत्र पादयोर्भ्रमणवेपने भवतः । विटपे द्वे वंक्षणवृषणयोर्मध्ये स्नायुमर्मणी एकांगुले वैकल्यकरे च तत्र षाण्ढ्यमल्पशुक्रता वा ॥

भाषा—जानुनी दोनों जांघोंकी संधिमें दो मर्म हैं, वे दो अंगुल प्रमाणके अत्यंत विकलता करनेवाले हैं, इस मर्ममें चोट लगनेसे मनुष्य लंगडा हो जाता है. ऊर्वी—ऊरुके मध्यमें दो तथा प्रगंड (बाजु) में दो, इस प्रकार चार शिरामर्म हैं. वे एक अंगुलके तथा विकलता संपादन करनेवाले हैं. उसमें रुधिरका क्षय होनेसे पांव सूख जाता है. कूर्चा दोनों पावोंके अंगूठे और अंगूठेके पासकी अंगुलीके बीचमें दोनोंके ऊपर और दोनोंके नीचे इस प्रकार चार स्नायुमर्म हैं, वे विकलता करनेवाले हैं, उनमें चोट लगनेसे दोनों पांवोंमें भ्रमण और कम्प होता है. विटप वंक्षण (पेडू) और दोनों अंडकोषोंके बीचमें स्नायुमर्म हैं, वे एक अंगुल प्रमाणके दो मर्म विकलताके करनेवाले हैं, उन दोनोंमें चोट लगनेसे नपुंसकता तथा वीर्य अल्प हो जाता है ॥

कूर्परौ कफोणिजौ द्वौ सन्धिमर्मणी द्व्यंगुलौ वैकल्यकरौ तत्र बाहुमध्ये सङ्कोचः । कुकुन्दरे नितम्बकूपकौ द्वौ सन्धिमर्मणी अर्धांगुले वैकल्यकरे तत्र स्पर्शाज्ञानमधःकायस्य चेष्टोपघातश्च । कक्षधरे वक्षःकक्षयोर्मध्ये द्वे स्नायुमर्मणी एकांगुले वैकल्यकरे तत्र पक्षाघातः । विधुरे कर्णपृष्ठाऽधःसंश्रिते किञ्चिन्निम्नाकारे द्वे स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र बाधिर्यम् ॥

भाषा—कूर्परौ कोहनियोंके ऊपर दो संधिमर्म हैं, उनका प्रमाण दो अंगुलका है और विकलता करनेवाले हैं. उनसे बाहुओंमें संकोच उत्पन्न होता है. कुकुन्दरे दोनों नितम्बोंके गड्ढोंके ऊपर दो संधिमर्म हैं, वे आध अंगुलके हैं, महाविकलता करनेवाले हैं, उनमें चोट लगनेसे स्पर्शका ज्ञान नहीं होता, तथा शरीरके नीचेके भागमें चेष्टाका नाश होता है. कक्षधरे छाती और कोखके बीचमें दो स्नायुमर्म हैं, वे एक अंगुल प्रमाणवाले और विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे पक्षाघात रोग हाता है. विधुरे कानके पीछे कुछ रुके हुए दो स्नायुमर्म हैं, वे आध अंगुल प्रमाण तथा विकलता करनेवाले हैं. उनमें विकार होनेसे बहरापन हो जाता है ॥

कृकाटिके शिरोग्रीवयोरुभयतः सन्धी द्वे संधिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र शिरःकम्पः । अंसौ स्कन्धौ स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र बाहुस्तम्भः । अंसफलके पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसम्बद्धे ग्रीवायां अंसद्वयस्य च संयोगो यत्र तत्त्रिकम् अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र बाह्वोः शून्यता शोषश्च । अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ शिरामर्मणी अर्द्धांगुलौ वैकल्यकरौ तत्रान्ध्यं दृष्टयुपघातो वा ॥

भाषा—कृकाटिके शिर और गरदन इन दोनोंकी संधियोंमें संधिमर्म हैं, उसका प्रमाण आध अंगुलका है, और वह विकलता करनेवाला है, उसमें विकार होनेसे शिरःकम्प रोग हो जाता है. अंसौ कन्धोंमें दो स्नायुमर्म हैं वे आध अंगुल प्रमाणके हैं तथा विकलता करनेवाले हैं, उनमें बाहुस्तम्भरोग होता है. अंसफलके गरदनके ऊपर दोनों कंधोंका जहां संयोग होता है उसको त्रिक कहते हैं. इस त्रिकसे सम्बन्ध रखनेवाली पीठके ऊपर और पीठके बांसोंके दोनों ओर दो अस्थिमर्म आध अंगुलके प्रमाण हैं. वे अंगकी विकलता संपादन करते हैं.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस स्थानमें विकार होनेसे दोनों भुजाओंमें शून्यता उत्पन्न करते हैं और सुखाभी देते हैं. अपाङ्गौ दोनों नेत्रोंके अंतभागमें दो शिरामर्म हैं वे आध अंगुल प्रमाण तथा विकलता करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे अंधा वा मंददृष्टिवाला हो जाता है ॥

नीले मन्ये च कण्ठनाडीमुभयतश्चतस्रो धमन्यः द्वे नीले द्वे मन्ये । तत्र एका मन्या एका नीला । एकस्मिन् पार्श्वे मन्या, नीला च अपरस्मिन् पार्श्वे द्वे द्वे शिरामर्मणी द्व्यंगुले द्व्यंगुले वैकल्यकरे, तत्र मूकता विकृतिस्वरता अरसग्राहिता च । फणे घ्राणमार्गमुभयतः मांसमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्र गन्धाज्ञानम् । आवर्त्तौ भ्रुवोपरि निम्नयोः सन्धिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा ॥

भाषा–नीलमन्ये कंठकी नाडियोंके दोनों बाजुओंमें चार धमनी (नाडी) हैं उनमें दो नीला कहाती हैं और दो मन्या कहाती हैं, उनमें एक पसलीके ऊपर एक नीला और एक मन्या नाडी है तथा दूसरी पसलीके ऊपर एक नीला और एक मन्या है इस प्रकार प्रत्येकके निकट दो दो शिरामर्म हैं वे प्रत्येक दो दो अंगुलके प्रमाण हैं और विकलता उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें विकार होनेसे मूकता गूंगापना स्वरभंग (बुरी आवाज) और रसका ग्रहण नहीं होना इत्यादि विकार होते हैं. फणे नाकके दोनों बाजुओंमें आध आध अंगुलके मांसमर्म हैं, उनमें चोट लगनेसे विकलता होती है और गन्धग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है. आवर्त्तौ दोनों भौहोंके ऊपर और नीचे आध आध अंगुलके प्रमाण संधिमर्म हैं. वे विकलताको करते हैं और उनमें चोट लगनेसे अन्धा और मन्ददृष्टि हो जाता है ॥

गुल्फौ द्वौ मणिबन्धौ द्वौ तथा कूर्चशिरांसि च । रुजाकराणि जानीयादृष्ट्वा चैतानि बुद्धिमान् ॥ २६३ ॥

भाषा–दोनों टखने, दोनों मणिबन्ध (पहुँचे) तथा कूर्च (दोनों भौहोंके बीच) और शिर विद्वानोंने ये मर्मस्थान रोगोंको उत्पन्न करनेवाले कहे हैं ॥ २६३ ॥

गुल्फौ घण्टिके सन्धिमर्मणी द्व्यंगुलौ रुजाकरौ । तत्र रुजा पादस्तम्भः खञ्जता च । द्वौ मणिबन्धौ हस्तप्रकोष्ठसन्धी सन्धिमर्मणी द्व्यंगुलौ रुजाकरौ । तत्र हस्तयोः क्रियारहित्यम् । कूर्चशिरांसि । पादसन्धेरधः उभयतः एकस्मिन् पादे एकमेकं च द्वितीये हस्तयोर्द्वे च एवं चत्वारि स्नायुमर्माणि एकांगुलानि रुजाकराणि । तत्र रुजा शोफश्च ॥

भाषा–गुल्फौ दोनों घुटुओंमें दो दो अंगुलके संधिमर्म हैं और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, इनमें रोग होनेसे पुरुष पादस्तम्भ (पांव जकडना) और खंजा (लंगडा) हो जाता है. मणिबन्धौ हाथके कोठेकी संधियोंमें दो दो अंगुलके दो संधिमर्म पीडा करनेवाले हैं तथा हाथको क्रियारहित (जड) करते हैं. कूर्चशिरांसि पांवोंकी संधिके नीचे दोनों बाजुओंमें एक एक और दोनों बाजुओंकी शिरामें एक एक, इस प्रकार चार स्नायुमर्म एक अंगुल प्रमाणके हैं तथा वे पीडा करनेवाले हैं और रोग होनेसे सूजन करते हैं ॥

उत्क्षेपौ स्थपनी चैव विशल्यघ्नं त्रिकं मतम् ॥ उत्क्षेपौ शङ्खयोरुपरि केशा यावत् । स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले तयोर्विद्धयोः सशल्यो जीवेत् पाकात् पतितशल्यो वा उद्धृतशल्यस्तु म्रियेत । अत एव विशल्यमुद्धृतशल्यं हन्तीति विशल्यघ्नं मर्म । स्थपनी एका भ्रुवोर्मध्ये शिरा मर्मैदमर्द्धांगुलं विशल्यघ्नम् ॥

भाषा–दो उत्क्षेप और एक स्थपनी ये तीन विशल्यघ्न मर्म हैं. उत्क्षेपौ दोनों कनपटियोंके ऊपर बालोंपर्यन्त दो आध आध अंगुलके मर्म हैं. उसके बींधनेसे और शल्य जबतक उसमें रहे तबतक मनुष्य जीवित रहता है परन्तु जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह पककर निकल जाता है अथवा निकाल लिया जाता है तब उसकी मृत्यु हो जाती है, इसी कारण इनको विशल्यघ्न कहा है. स्थपनी दोनों भौंओंके बीचमें एक शिरामर्म आध अंगुलका है और वहभी शल्य निकाल लेनेसे प्राणोंको हरता है ॥

सप्तरात्रान्तरे हन्युः सद्यःप्राणहराणि हि । कालान्तरप्राणहरं पक्षे मासे च मारकम् ॥ २६४ ॥ सद्यः प्राणहरं चान्ते विद्धं कालेन मारयेत् ॥ कालान्तरप्राणहरमन्ते विद्धं तु दुःखदम् ॥ २६५ ॥ अन्ते मर्मसमीपे ।

भाषा-जो जो मर्म तत्काल प्राण हरनेवाले हैं वे सात रात्रियोंमें प्राणोंको हरते हैं. जो कालांतरमें प्राण हरनेवाले हैं वे एक पक्षमें तथा महीनेमें मृत्यु करते हैं. जो मर्म तत्काल प्राण हरनेवाले हैं उनके मर्मोंका अंतभाग (मर्मके समीप) छिदनेसे कालांतरमें प्राणोंको हरते हैं और कालांतरमें प्राण हरनेवाले मर्मोंका अंत छिदनेसे दुख देते हैं ॥ २६४ ॥ २६५ ॥

मर्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छन्ति काये विविधा नराणाम् । प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति वैद्येन यत्नैरपि साध्यमानाः ॥ २६६ ॥

भाषा-पुरुषोंके शरीरमें जो नाना प्रकारके विकार मर्मस्थलमें उत्पन्न होते हैं उनको नष्ट करनेके लिये वैद्य नाना प्रकारके यत्न करके उनकी चिकित्सा करे तो वह विशेष करके कष्टसाध्य होते हैं अर्थात् कष्टसे नष्ट होते हैं॥ २६६ ॥

अथ सन्धयः ।

ते द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च । शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावन्तो भवन्ति हि । शेषास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरास्तज्ज्ञैरुदाहृताः ॥ २६७ ॥

भाषा-संधियें दो प्रकारकी हैं, चेष्टावन्त और स्थिर, तहां हाथ पांव आदि शाखाओंमें तथा ठोढी और कमरमें जो संधि हैं वे चेष्टावाली हैं, शेष सर्व संधियें स्थिर हैं ऐसा तज्ज्ञ लोगोंने कहा है ॥ २६७ ॥

कथिता देहिनां देहे सन्धयो द्वे शते दश । शाखासु तेऽष्टषष्टिश्च कोष्ठे त्वेकोनषष्टिकाः २६८ ग्रीवाया ऊर्ध्वदेशे तु त्र्यशीतिस्ते प्रकीर्तिताः । प्रथमं परिगण्यंते तेषु शाखागता इह ॥ २६९ ॥

भाषा-देहधारियोंके शरीरमें दो सौ दश २१० संधि (जोड) हैं, उनमें अडसट ६८ हाथ पांवमें, उनसठ ५९ कोठेमें, तिरासी ८३ गरदन और उससे ऊपरके भागमें संधि कही हैं, अब उनमेंसे प्रथम शाखागत संधियोंकी गणना करते हैं ॥ २६८ ॥ २६९ ॥

एकैकस्यां पादांगुल्यां त्रयस्त्रयो द्वावंगुष्ठे ते चतुर्दश । गुल्फजानुवंक्षणेष्वेकैकमेवं सप्तदश एकस्मिन् सक्थनि भवन्ति । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । एवमष्टषष्टिः शाखासु ॥

भाषा-एक एक पांवकी अंगुलीमें तीन तीन और अंगूठेमें दो इस प्रकार पांचों अंगुलियोंमें चौदह १४ संधि हैं. तथा टकने, घुटुए और वंक्षण इनमें एक एक इस भांति कुल सत्रह १७ संधियें एक पांवमें होती हैं. इसी प्रकार दूसरे पांव तथा दोनों हाथोंमेंभी जानना. इस प्रकार कुल अडसठ ६८ संधि शाखाओंमें (हाथ पांव आदि) में जाननी ॥

अथ कोष्ठगतानाह ।

त्रयः कटीकपोलेषु । चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे । तावन्त एव पार्श्वयोरष्टावुरसि । एवमेकोनषष्टिः कोष्ठे ॥

भाषा-अब कोठेकी संधियोंको कहते हैं कि कमर और कपोलोंमें तीन ३, पीठके बांसमें चौवीस २४, चौवीस २४ ही दोनों पसलियोंमें, उरःस्थानमें आठ ८ इस भांति उनसठ ५९ संधि कोठेमें जाननी ॥

अथ ग्रीवोर्ध्वगतानाह ।

अष्टौ ग्रीवायां । त्रयः कण्ठे । नाडीहृदयक्लोमफुप्फुसे निबद्धास्त्वष्टादश । द्वात्रिंशदन्तमूलेषु । एकः कण्ठमणौ । नासायां च एकः । द्वौ द्वौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्त्ममण्डलगण्डकर्णशङ्खेषु । द्वौ हनुसन्धौ । द्वावुपरिष्टात् भ्रुवोः शङ्खयोश्चोपरिष्टात् । पञ्च शीर्षकपालेष्वेको मूर्ध्नीति । कण्ठमणौ घण्टिकेति प्रसिद्धे । एते सन्धयोऽष्टविधा भवन्ति ॥

भाषा–अब गरदनके ऊपरकी संधियोंको कहते हैं कि आठ ८ गरदनमें, तीन ३ कंठमें, नाडी, हृदय, क्लोम और फेफडेमें बंधी हुई अठारह १८, दांतोंकी जडमें बत्तीस ३२, कंठमणिमें एक १, नाकमें एक १, वर्त्ममंडल (पलकमंडल), कपोल, कान और कनपट्टियोंमें दो दो इस प्रकार मिलकर आठ ८, ठोडीकी संधियोंमें दो २, भौंहोंके ऊपर दो २ और शंखों (कनपटी) के ऊपर दो २, शिर और कपालमें पांच ५, मूर्धामें एक १ इस भांति कुल तिरासी ८३ संधि गरदनके ऊपरके भागमें हैं. कंठमणि यह लोकमें घंटिका करके प्रसिद्ध है. ये संधियें आठ प्रकारकी हैं ॥

ते यथा ।

कोरोदूखलसामुद्राः प्रतरस्तूनसेविनी । काकतुण्डं मण्डलं च शंखावर्त्तोऽष्ट सन्धयः ॥ २७० ॥ कोरो गर्त्तः, नलिकेत्यन्ये । उदूखलः प्रसिद्धः । समुद्रः सम्पुटः समुद्र एव सामुद्रः । अत्र स्वार्थे अण् । प्रतरन्त्यनेनेति प्रतरो वेलकः । तूनस्येव तूनीरस्येव सेविनी तूनसेविनी । काकतुण्डं काकमुखम् । मण्डलं प्रसिद्धम् । शङ्खस्यावर्त्तः शङ्खावर्तः । एते यथानामप्रकृतयः सन्धयो भवन्तीत्यर्थः॥

भाषा–१ कोर (गड्ढेके सदृश और कोई नलीके सदृश कहते हैं), २ उदूखल (ओखली), ३ सामुद्र (संपुट), ४ प्रतर (जो तरता है उसको प्रतर कहते हैं, प्रतर अर्थात् वेल), ५ तूनसेविनी (तूणीर–तरकस), ६ काकतुण्डा (कौएकी चोंच), ७ मंडल (गोल), ८ शंखावर्त्त (शंखकी नाभिका चक्र) ये आठों सन्धि अपने अपने नामके अनुसार होती हैं ॥ २७० ॥

एषामंगुलिमणिबन्धगुल्फजानुकूर्परेषु कोराः सन्धयः । कक्षावंक्षणदन्तेषूदूखलाः । अंसपीठगुदभगनितम्बेषु सामुद्राः । ग्रीवापृष्ठवंशयोस्तु प्रतराः । शिरःकटीकपालेषु तूनसेविन्यः । हन्वोरुभयतः काकतुण्डाख्याः । कण्ठहृदयक्लोमनाडीषु मण्डलाख्याः । शिरःशृङ्गाटकेषु शंखावर्त्ताः ॥

भाषा–उनमेंसे अंगुली, पहुँचा, टकना, घुटुआ और कोहनी इन स्थानोंमें कोरसंज्ञक संधि है. कोख, पेडू और दांतोंमें उदूखल नामक संधि है. कन्धा, पीठ, गुदा, भग और नितंब इनमें सामुद्र नामक संधि है. गरदन और पीठके बांस इनमें प्रतर नामक संधि है. शिर, कमर और कपाल इनमें तूनसेविनी संधि है. ठोडीके दोनों ओर काकतुंडा संधि है. कण्ठ, हृदय, क्लोम (मसाना) इनमें मंडलनामक संधि है. शिर और शृंगाटक इनमें शंखावर्तसंज्ञक संधि है ॥

अस्थ्नां तु सन्धयो ह्येते केवलाः समुदाहृताः । पेशीस्नायुशिराणां तु सन्धिसंख्या न विद्यते ॥ २७१ ॥

भाषा–यह केवल अस्थियोंकी संधियें हैं. मांसकी पेशी, स्नायु और शिरा (नस) की संधियोंकी संख्याही नहीं है ॥ २७१ ॥

अथ शिरामाह ।

सन्धिबन्धनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः । नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः ॥२७२॥ शरीरं सकलं चैतच्छिराभिः पोष्यते सदा । प्रणालीभिरिवारामाः कुल्याभिः क्षेत्रधान्यवत् ॥ २७३ ॥ अत्र प्रणालीभिः कुल्याभिरिति दृष्टान्तद्वयं स्थूलसूक्ष्मशिराभेदात् ॥

भाषा–सन्धियोंका बंधन करनेवाली और दोष (वातादि) तथा धातु (रसरक्तादि) को बहानेवाली शिरायें हैं वे सब नाभिमें बंधि हैं और चारों ओरको फैल रही हैं. जिस प्रकार प्रणालियों (नहरों) से बाग और कुल्याओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection, Digitized by eGangotri

(छोटी छोटी नदियों) से धानोंके खेत पुष्ट होते हैं. उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर सदा शिराओंसे पुष्ट होते हैं. यहां प्रणाली और कुल्या इनके दो दृष्टान्त लिखे हैं वे स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारकी शिराओंके जाननेके लिये हैं ॥ २७२ ॥ २७३ ॥

प्रसारणाकुञ्चनादिक्रियाभिः सततं तनौ । शिरा एवोपकुर्वन्ति ताः स्युः सप्तशतानि तु ॥ २७४ ॥ यथा द्रुमदले साक्षाद्दृश्यन्ते प्रततः शिराः । तथैव देहिनो देहे वर्त्तन्ते सकलाः शिराः ॥२७५॥ नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिरुपाश्रिता । शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥ २७६ ॥

भाषा-शरीरके फैलने और सुकडने आदि क्रियाओंसेही निरंतर इस शरीरमें शिराही उपकार करती हैं. इन शिराओंकी संख्या सात सौ ७०० है, जिस प्रकार वृक्षके पत्तोंमें शिराओंका जाल प्रत्यक्ष दीखता है, उसी प्रकार प्राणियोंके सर्व देहमें शिरायें रहती हैं. प्राणियोंके प्राण नाभिमें रहते हैं और नाभि प्राणोंके आश्रित रहती है. जैसे पहियेकी नाह आरे सलाईके द्वारा चारों ओरसे घिरी हुई है वैसेही शिराओंसे नाभि लिपटी हुई है ॥२७४-२७६॥

तद्यथा ।

तासां खलु मूलशिराः चत्वारिंशत् । तासां दश वातवहाः, दश पित्तवहाः, दश श्लेष्मवहाः, दश रक्तवहाः, तासां खलु वातवहानां वातस्थानगतानां सप्तशतातिशतं भवति । तावन्त्य एव पित्तवहाः पित्तस्थानगताः । श्लेष्मवहाः तावन्त्यः श्लेष्मस्थानगताः । रक्तवहा यकृत्प्लीहगताः, एवं शिराः सप्तशतं भवन्ति ॥

भाषा-उनमें मूल चालीस शिरा ४० हैं, तिनमेंसे दश १० वात बहानेवाली, दश १० पित्तको बहानेवाली, दश १० कफको बहानेवाली और दश १० रुधिरको बहानेवाली हैं. उनमें वात बहानेवाली वातस्थानमें जाकर एक सौ पिछत्तर १७५ हो गई हैं, एक सौ पिछत्तर १७५ ही पित्त बहानेवाली पित्तस्थानमें जाकर हो गई हैं, इतनीही एक सौ पिछत्तर १७५ कफ बहानेवाली कफस्थानमें जाकर और एक सौ पिछत्तर १७५ ही रुधिरको बहानेवाली यकृत्प्लीहामें जाकर हो गई हैं, इस प्रकार कुल संख्या सात सौ ७०० हैं ॥

तत्र वातवहाः एकस्मिन् सक्थिनि पञ्चविंशतिः । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । विशेषतः कोष्ठे चतुस्त्रिंशत् । तासां श्रोण्यां गुदमेढ्रादिश्रिता अष्टौ ८ । द्वे द्वे पार्श्वयोः ४ । षट् पृष्ठे ६ । तावन्त्य एव उदरे ६ । दश वक्षसि १० । एकचत्वारिंशत् जत्रुणः ऊर्ध्वम् १४१ । तासां चतुर्दश १४ ग्रीवायाम् । चतस्रः ४ कर्णयोः । नव ९ जिह्वायाम् । षट् ६ नासिकायाम् । अष्टौ ८ नेत्रयोः । एवं वातवहानां सपञ्चसप्ततिशतं भवति । एवं विभागः । पित्तवहानामपि विशेषस्तु पित्तवहा नेत्रयोर्दश १० । कर्णयोर्द्वे २ । एवं रक्तवहाः । श्लेष्मवहास्तु षोडश १६ ग्रीवायाम् । कर्णयोर्द्वे २ । एवं शिराणां सप्तशतानि व्याख्यातानि ॥

भाषा-वात बहानेवाली शिरा एक सौ पिछत्तर १७५ कही हैं उनमेंसे पच्चीस २५ एक पांवमें. पच्चीस २५ दूसरे पांवमें, पच्चीस २५ एक हाथमें, पच्चीस २५ दूसरे हाथमें, चौंतीस ३४ कोठेमें, उनमेंसे कमर, गुदा, लिंग आदिके आश्रित आठ ८ हैं, दोनों पसालियोंमें दो दो २-२ इस प्रकार चार ४ पीठमें, छः ६ छः ६ ही उदरमें, वक्षःस्थलमें दश १० हैं. जत्रु (हँसलीके ऊपर) इकतालीस ४१ कही हैं, उनमेंसे चौदह १४ गरदनमें, चार ४ कानोंमें, नौ ९ जीभमें, छः ६ नासिकामें और आठ ८ आंखोंमें इस भांति एक सौ पिछत्तर १७५ वात बहानेवाली हैं. पित्तको बहानेवाली जो एक सौ पिछत्तर शिरा कही हैं वेभी उपरोक्त कहे प्रमाणसे विभाजित हैं, उनमें इतना विशेष है कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोनों नेत्रोंमें दश १० और कानोंमें दो २ हैं. इसी प्रकार रुधिरको वहानेवाली शिरा हैं. कफको वहानेवालियोंमें तौ सोलह १६ गरदनमें और दो २ कानोंमें हैं, शेष उपरोक्त प्रकार हैं. इस भांति सात सौ ७०० शिरा कही है ॥

क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणाम् । करोत्यन्यान्गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् ॥ २७७ ॥ क्रियाणां प्रसारणाकुञ्चनादीनाम् । अमोहं बुद्धिकर्मणाम् । बुद्धीन्द्रियाणां मनसो बुद्धेश्च स्वे स्वे विषये अज्ञानं न करोतीत्यर्थः । अन्यान् गुणान् रसादिव्यापनद्वारा शरीरपोषणादीन् ॥

भाषा–अपनी शिराओंमें फिरनेवाली वायु अंगोंका विस्तार संकोच आदि क्रियाओंमें कोई विकार नहीं आने देती. ज्ञानेन्द्रियका, मनका, तथा बुद्धिका ज्ञान और अन्य अन्य गुणोंकोभी करती है ॥ २७७ ॥

यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते । तदास्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः ॥ २७८ ॥ आजिघ्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम् । करोत्यन्यान् गुणांश्चापि पित्तमात्मा शिराश्चरन् ॥ २७९ ॥ अरोगतां पैत्तिकरोगानुत्पत्तिं करोति । अन्यान् गुणान् मेधाबुद्धिदर्शनशक्त्यादीन् ॥

भाषा–यह वायु जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरती है तब शरीरमें वातसे उत्पन्न हुए अनेक रोगोंको करती है. जब अपनी शिराओंमें पित्त विचरता है तब पित्त कान्तिको करता है, अन्नमें रुचि उपजाता है, अग्निको दीपन करता है, पित्तसंबंधी रोगोंको उत्पन्न नहीं होने देता और धारणाशक्ति, बुद्धि तथा देखनेकी शक्ति आदि अन्य गुणोंको करता है ॥ २७८ ॥ २७९ ॥

यदा तु कुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः । तदास्य विविधा रोगा जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ २८० ॥ स्नेहमङ्गेषु सन्धीनां स्थैर्यं बलमरोगताम् । करोत्यन्यान् गुणांश्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् ॥ २८१ ॥ अरोगतां श्लैष्मिकरोगानुत्पत्तिम् । अन्यान् गुणान् बलपुष्ट्यादीन् ॥

भाषा–यह पित्त जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरता है तब शरीरमें पित्तसे होनेवाले (गरमी) के रोग उत्पन्न होते हैं. जब कफ अपनी शिराओंमें विचरता है तब अंगोंमें स्निग्धता तथा संधियोंकी स्थिरता करता है और बल देता है, कफसंबंधी रोगोंको उत्पन्न नहीं होने देता और पुष्टि आदि अन्य गुणोंकोभी करता है ॥ २८० ॥ २८१ ॥

यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते । तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते श्लेष्मसम्भवाः ॥२८२॥ धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञानमसंशयम् । स्वशिरासु चरद्रक्तं कुर्याच्चान्यान्गुणानपि ॥ २८३ ॥ अन्यान् गुणान् बलपुष्ट्यादीन् ॥

भाषा–यह कफ जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरता है तब शरीरमें कफसे होनेवाले हल्लासादिक रोग उत्पन्न होते हैं. जब रक्त अपनी शिराओंमें विचरता है तब धातुओंको पूरता है, निःसंशय रीतिसे स्पर्शका ज्ञान करता है और बल पुष्टि आदि अन्य गुणोंकोभी करता है ॥ २८२ ॥ २८३ ॥

यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः । तदास्य विविधा रोगा जायन्ते रक्तसम्भवाः ॥ २८४ ॥

भाषा–यह रक्त जब कुपित होकर अपनी शिराओंमें विचरता है, तब शरीरमें रक्तसे उत्पन्न होनेवाले फोड फुंसी आदि रोगोंको प्रगट करता है ॥ २८४ ॥

तत्रारुणा वातवहाः पूर्यन्ते वायुना शिराः । पित्तदुष्टाश्च नीलाश्च शीता गौर्यः स्थिराः कफात् । असृग्धरास्तु ता रक्ताः स्युश्च नात्युष्णशीतलाः ॥ २८५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-वात बहानेवाली शिरायें लाल हैं और वायुसे पूरित हैं. पित्त वहानेवाली शिरायें काली हैं तथा पित्तसे पूरित हैं. कफको वहानेवाली शिरायें सफेद, शीतल, स्थिर और कफसे परिपूर्ण हैं. और वलको वहानेवाली शिरायें लाल, किंचित् गरम तथा रक्तसे परिपूर्ण हैं ॥ २८५ ॥

अथ स्नायुः । तत्र स्नायोः स्वरूपमाह ।

मेदसः स्नेहमादाय शिरा स्नायुत्वमाप्नुयात् । शिराणां हि मृदुः पाकः स्नायूनां तु ततः खरः ॥ २८६ ॥ स्नायवो वन्धनानि स्युर्देहमांसास्थिमेदसाम् । सन्धीनामपि तत्तास्तु शिराभ्यः सुदृढाः स्मृताः ॥ २८७ ॥ नौर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्युता । नियुक्ताऽगाधसलिले भवेद्भारसहा भृशम् ॥ २८८ ॥ एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावन्तः सन्धयः स्मृताः । स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ॥ २८९ ॥ फलकैः काष्ठपट्टैः आस्तीर्णा व्याप्ताः ॥

भाषा-उपरोक्त शिरा नामक नाडियोंमें जो मेदसे स्नेह आता है तव वहही स्नायु हो जाती है. शिराओंका पाक कोमल होता है और स्नायुका पाक कठिन होता है. देहमें जो मांस, हड्डी तथा संधियें हैं उनका वंधनरूप स्नायुही हैं, क्योंकि स्नायु शिराओंकी अपेक्षा दृढ हैं. जिस प्रकार अगाध पानीमें काष्ठसे वनी हुई नाव अनेक वंधनोंसे वंधी हुई वहुत बोझको सहार सक्ती है उसी प्रकार इस शरीरमें जितनी संधियें हैं वे अनेक स्नायुसे वंधी हुई हैं. इससेही मनुष्य वोझको सहन कर सक्ता है ॥ २८६-२८९ ॥

शतानि नव जायन्ते शरीरे स्नायवो नृणाम् । तासां विवरणं ब्रूमः शिष्याः! शृणुत यत्नतः ॥ २९० ॥ शाखासु षट्शतानि स्युः कोष्ठे त्रिंशच्छतद्वयम् । ग्रीवायामूर्ध्वदेशे तु स्नायूनां सप्ततिः स्मृता ॥ २९१ ॥

भाषा-मनुष्योंके शरीरमें नौ सौ ९०० स्नायु हैं, उनका विभाग कहता हूं; हे शिष्यो ! यत्नपूर्वक सुनो. ये स्नायु हाथ पावोंमें छः सौ ६०० हैं, कोठेमें दो सौ तीस २३० हैं और गरदनमें तथा गरदनसे ऊपरके भागमें सत्तर ७० हैं ॥ २९० ॥ २९१ ॥

तत्र शाखागताः प्राह ।

एकैकस्यां पादांगुल्यां षट् षट् तास्त्रिंशत् । तावन्त्य एव तलकूर्चगुल्फेषु । तावन्त्य एव जंघायाम् । दश जानुनि । चत्वारिंशदूरौ । दश वंक्षणे । एवं सार्द्धशतमेकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ ॥

भाषा-हाथ पावोंमें जो छः सौ स्नायु कही हैं वे इस प्रकार हैं कि, पांवोंकी एक एक अंगुलीमें छः हैं इस प्रकार पांचों अंगुलियोंमें तीस ३० हुई. पांवोंके तलुओंमें कूर्चमें और टकनोंमें तीस ३० हैं, तीस ३० ही जांघोंमें, दश १० जानु (घुटुओं) में, चालीस ४० उरस्थानमें, दश १० वंक्षण (पेडू) में, इस प्रकार एक पांवमें डेढ सौ १५० हैं. इसी प्रकार दूसरे पांवमें और दोनों हाथोंमेंभी हैं, अर्थात् कुल हाथ पांवोंमें छः सौ ६०० हैं ॥

अथ कोष्ठगताः प्राह ।

षष्टिः कट्यां । तावन्त्य एव पार्श्वयोः । अशीतिः पृष्ठे । त्रिंशदुरसि ॥

भाषा-कोठेमें जो दो सौ तीस २३० कही हैं वे इस प्रकार हैं कि, साठ ६० कमरमें, साठ ६० ही दोनों पसलियोंमें, अस्सी ८० पीठमें और तीस ३० उरस्थानमें हैं ॥

अथ ग्रीवोर्ध्वगताः प्राह ।

षट्त्रिंशद्ग्रीवायाम्, चतुस्त्रिंशत् मूर्ध्नि, एवं स्नायूनां नवशतानि भवन्ति ।

भाषा-अव गरदन और गरदनसे ऊपरके भागकी कहते हैं कि, छत्तीस ३६ गरदनमें और चौतीस ३४ मस्तकमें इस प्रकार सत्तर ७० हुई. सव मिलकर नौ सौ ९०० स्नायु हुई ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ धमन्यः ।

धमन्यो नाभितो जाताश्चतुर्विंशतिसंख्यया । दशोर्ध्वगा दशाऽधोगाः शेषास्तिर्य्यग्गताः स्मृताः ॥ २९२ ॥

भाषा–धमनियें (नाडियें) नाभिसे उत्पन्न हुई हैं, उनकी संख्या चौवीस हैं उनमें दश १० ऊपरको जाती हैं, दश १० नीचेको जाती हैं, और बाकी टेढी जाती हैं ॥ २९२ ॥

तत्रोर्ध्वगाः ।

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धप्रश्वासोच्छ्वासजृंभितक्षुत्हसितकथितरुदितगीतादि विशेषानभिवहन्त्यः शरीरं धारयन्ति । प्रश्वासः अन्तःप्रविष्टो वायुः । उच्छ्वासः ऊर्ध्वं गच्छन् वायुः । तास्तु हृदयं गताश्त्रिधा जायन्ते । तास्त्रिंशत् । तासां मध्ये द्वे द्वे वातपित्तकफशोणितरसान् वहतः । ता दश । अष्टाभिः शब्दरसरूपगन्धान् गृह्णाति पुरुषः । द्वाभ्यां भाषते । द्वाभ्यां घोषते । द्वाभ्यां स्वपिति । द्वाभ्यां जागर्ति । द्वे अश्रुवाहिन्यौ । द्वे स्तन्यं स्त्रिया वहतः । ते एव शुक्रं नरस्य स्तनाभ्यामभिवहतः । एतास्त्रिंशत् । एताभिरुदरपार्श्वपृष्टोरःस्कन्धग्रीवाशिरोबाहवो धार्यन्ते चाल्यंते च ॥

भाषा–उनमें ऊपर जानेवाली दश १० धमनियें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, निश्वास (भीतर जानेवाली वायु), उच्छ्वास (ऊपर जानेवाली वायु), जम्भाई, छींक, हास्य, कंप, रोना और गीत आदि विशेष कर्मोंसे वहकर शरीरको धारण करती हैं. ये ऊपर जानेवाली दश धमनियें हृदयमें जाकर एक एकमेंसे तीन तीन अर्थात् सब तीस होती हैं. उनमें दोसे वायुका, दोसे पित्तका, दोसे कफका, दोसे रुधिरका और दोसे रसका वहन होता है. आठसे शब्द, रस, रूप तथा गंधका ग्रहण होता है. दोसे बोलता है, दो शब्द होता है, दोसे सोता है, दोसे जागता है, दो आंसू बहाती है और दो स्त्रीके दूधको बहाती हैं और जो स्त्रीके दूधको वहानेवाली हैं वह पुरुषके स्तनोंमें शुक्रको वहानेवाली जाननी. ये सब तीस ३० हुई. ये धमनियें पेट, पसली, पीठ, उरस्थान, कन्धे, ग्रीवा, शिर और भुजाओंको धारण करती हैं और हलाती चलाती हैं ॥

अधोगतास्तु वातमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तवादीन् अधो वहन्ति । तास्तु पित्ताशयं गताश्त्रिधा जायन्ते । तास्त्रिंशत् । तासां मध्ये द्वे द्वे वातपित्तकफशोणितरसान् वहतः । ता दश । द्वे अन्तर्वहे अन्त्राश्रिते । द्वे तोयवहे । द्वे बस्तिगते मूत्रवहे । द्वे शुक्रस्य प्रादुर्भावाय । द्वे तद्विसर्गाय । ते एव नारीणामार्त्तवप्रादुर्भावाय ते अधिसृजतश्च । द्वे स्थूलान्त्रप्रतिबद्धे पुरीषं विसृजतः । अष्टावन्यास्तिर्यग्गताः स्वेदमर्पयन्ति । एतास्त्रिंशत् । एताभिरधो नाभेः पक्वाशयकटीमूत्रपुरीषबस्तिगुदमेढ्रसक्थीनि धार्यन्ते चाल्यन्ते च ॥

भाषा–नीचे जानेवाली दश १० शिरायें वात, मूत्र, विष्ठा, वीर्य और आर्तव इत्यादि पदार्थोंको नीचे ले जाती हैं, ये दश १० धमनियें पित्ताशयमें जाकर एक एकमेंसे तीन तीन अर्थात् सब तीस होती हैं. उनमेंसे दोसे वायुका, दोसे पित्तका, दोसे कफका, दोसे रुधिरका, और दोसे रसका वहन होता है. वे सब दश १० हैं. दो धमनियें आंतोंके आश्रयसे अन्नको वहानेवाली हैं, दो पानीको वहानेवाली हैं, दो मूत्राशयमें रहकर मूत्रको वहन करती हैं, दोसे वीर्य उत्पन्न होता है, दोसे वीर्य बाहर निकलता है, पुरुषोंके वीर्यको उत्पन्न करनेवाली और बाहर निकालनेवाली इन चार धमनियोंके बदले स्त्रियोंके शरीरमें जो चार धमनियें हैं उनमेंसे दो स्त्रियोंके रज उत्पन्न करती हैं और दो बाहर निकालती हैं. दो धमनियें मोटी आंतोंसे बंधी हुई विष्ठाको बाहर निकालती हैं और दूसरी आठ टेढी रहकर पसीना उत्पन्न करती हैं, ये सब तीस हुई, ये धमनियें नाभिके नीचे पक्वाशय, कमर, मूत्र, पुरीष, मूत्राशय, गुदा, लिंग,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और पांवको धारण करती हैं और उनको हलाती चलाती हैं ॥

तिर्यग्गतानां तु चतसृणामेकैका शतधा सहस्रधा च उत्तरोत्तरं विभज्यन्ते । तास्तु असंख्येयास्ताभिरिदं शरीरं गवाक्षितं निबद्धमाततम् । गवाक्षवत् निबद्धमायतं गवाक्षो वातायनं, यथा गवाक्षे बहूनि छिद्राणि भवंति तथा अस्मिन् देहे जालवत् शिराः व्याप्य तिष्ठन्तीति भावः । निबद्धमायतं गवाक्षितम् । गवाक्षाकारान्त्रनिकरयुक्ते कृतमित्यर्थः । तासां मुखानि रोमलग्नानि यैः मुखैः स्वेदः स्रवति । रसं चाभिसन्तर्पयन्ति अन्तर्बहिश्च । तैरेवाभ्यङ्गपरिषेकावगाहनालेपनवीर्याणि त्वचि पक्वानि अन्तः प्रवेशयन्ति । तैरेव स्पर्शं शुभं अशुभं वा गृह्णन्ति ॥

भाषा—टेढी रहनेवाली चार धमनियोंमें एक एकमेंसें उत्तरोत्तर सैकडों और हजारों हुई हैं, वे असंख्यात हैं कि जिनसे यह शरीर जालीकी तरह पूर रहा है. जिस प्रकार जालीमें अनेक छिद्र होते हैं उसी प्रकार इस देहमें जालीके सदृश ये धमनियें पूर रही हैं. इनके मुखोंमें रुएँ लग रहे हैं कि जिन मुखोंसे पसीना निकलता है और भीतर बाहर रससे सींचा करती हैं और बाहरसे अभ्यंग, परिषेक, स्नान, आलेपन इनके वीर्यको त्वचामें पकाकर भीतर प्रवेश करती हैं और येही स्पर्शके शुभ अशुभको ग्रहण करती हैं ॥

यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च ।
धमनीनां तथा खानि रसो यैरभितश्चरेत् २९३

भाषा—जिस प्रकार कमलके तंतु आदिक अवयवोंमें स्वाभाविक छिद्र होते हैं, उसी प्रकार धमनियों (नाडियों) मेंभी स्वाभाविक छिद्र हैं कि जिनसे रस चारों ओर फिरता है ॥ २९३ ॥

पञ्चाभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयन्ति । पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ॥ २९४ ॥ अस्यायमर्थः—धमन्यः कथं भूताः पञ्चाभिभूताः पञ्चभ्यः आकाशादिमहाभूतेभ्यः अभि समंतात् भूताः पञ्च इन्द्रियाणि उभयात्मकं मनश्च यस्य तं पञ्चेन्द्रियं जीवात्मानं पञ्चसु इन्द्रियाधिष्ठानेषु श्रोत्रादिषु पञ्चकृत्वः पञ्चवारान् । पर्य्यायेण तु एकदैव भावयन्ति प्रापयन्ति । पञ्चेन्द्रियं पञ्चानामिन्द्रियाणां समाहारः पञ्चेन्द्रियं श्रोत्रादि तदुपलक्षितं कर्मेन्द्रियं मनश्च । पञ्चसु पृथिव्यादिषु । बुद्धीन्द्रियविषयेषु तदुपलक्षितेषु हस्तादिषु कर्मेन्द्रियविषयेषु । मन्तव्ये मनोविषये च भावयित्वा प्राप्य संयोज्येति यावत् । विनाशकाले पञ्चत्वं आकाशादिभावं आयान्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥

भाषा—आकाश आदि पंचभूतोंसे चारों ओर उत्पन्न हुई ये धमनियें जीवको जिसके ज्ञानेन्द्रिय कर्मेंद्रिय और ज्ञानकर्मरूपी दोनों स्वभाववाला मन है उनके ज्ञानेन्द्रियोंको, कर्मेन्द्रियोंको और मनको अनुक्रमसे पांच वार और अनुक्रम नहीं होते एकही समय जोड देती हैं और इस प्रकार जुडकर जब विनाशका समय आता है तब पीछे पंचमहाभूतरूप हो जाती हैं ॥ २९४ ॥

अथ कण्डराः ।

महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः कंडरास्तास्तु षोडश । प्रसारणाकुञ्चनयोर्दृष्टं तासां प्रयोजनम् ॥ २९५ ॥ चतस्रो हस्तयोस्तासां तावन्त्यः पादयोः स्मृताः । ग्रीवायामपि तावन्त्यस्तावन्त्यः पृष्ठसङ्गताः ॥ २९६ ॥

भाषा—बडी स्नायुको कंडरा कहते हैं और उनकी संख्या सोलह १६ हैं, ये कण्डरायें अंगका संकोच विस्तार करनेमें काम आती हैं. ये कंडरायें दोनों हाथोंमें चार ४, पांवोंमें चार ४, गरदनमें चार ४ और पीठमेंभी चार ४ हैं, इस प्रकार कुल सोलह १६ हैं ॥२९५॥२९६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्र पादहस्तगतानां कण्डराणां नखाः प्ररोहाः । ग्रीवानिबन्धनानामधोभागगतानां प्ररोहो मेढ्रः । पृष्ठनिबन्धानां प्ररोहा नितम्ब-मूर्वोरुवक्षोऽक्षिस्तनपिण्डाः ॥

भाषा–उनमेंसे हाथ तथा पांवोंमें रहनेवाली कंडराओंमेंसे नखरूपी अंकुर फुटते हैं. गरदन-की चार कंडरायें कि: जो गरदनमें बंधकर नीचे भागमें गई हैं उनमें लिंगरूप अंकुर निकलते हैं, और पीठमें रहनेवाली चार कंड-राओंमेंसे नितम्ब, मस्तक, ऊरुस्थान, वक्षस्थल, नेत्र तथा स्तनरूपी अंकुर निकलते हैं ॥

अथ रन्ध्राणि ।

नेत्रश्रवणनासानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्तिते । मुखमेहनपायूनामेकैकं रंध्रमुच्यते ॥ २९७ ॥ दशमं मस्तके प्रोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः । स्त्रीणामन्यानि च त्रीणि स्तनयोर्गर्भ-वर्त्मनि ॥ २९८ ॥

भाषा–नेत्रोंमें दो २, कानोंमें दो २, नाकमें दो २, मुखमें एक १, लिंगमें एक १ और गुदामें एक १ इस प्रकार नौ ९ और दशवां १ मस्तकमें, इसी कारण पुरुषोंके शरीरमें मुख्य छिद्र दश हैं. स्त्रियोंके शरीरमें उपरोक्त प्रकारसे अलग स्तनोंमें दो २ और गर्भाशयमें एक १ इस प्रकार तीन छिद्र अधिक हैं ॥२९७॥२९८॥

अथ स्रोतांसि ।

मनःप्राणान्नपानीयदोषधातूपधातवः । धातूनां च मला मूत्रं मलमित्यादयः स्तनौ ॥ २९९ ॥ सञ्चरन्ति हि यैर्मार्गैस्तानि स्रोतांसि सञ्ज्ञितः । बहूनि तानि संख्याय शक्यन्ते नैव भाषि-तुम् ॥ ३०० ॥

भाषा–मन, प्राण, अन्न, पानी, दोष, धातु, उपधातु, धातुओंका मल, मूत्र और विष्ठा इत्यादि पदार्थ शरीरमें जिस मार्गसे चलते हैं उन मार्गोंको स्रोत (छिद्र) कहते हैं. ये स्रोत बहुत होनेसे संख्या नहीं कही ॥२९९॥३००॥

अथ जालानि ।

निरन्तररंध्राणि करकलितानि समुहितानि च जालानीव जालानि । जालानि तु शिरा-स्नायुमांसास्थ्नामुद्भवन्ति हि । तानि चत्वारि चत्वारि सर्वाण्येव च षोडश ॥ ३०१ ॥

भाषा–निरंतर अनेक छिद्रों करके युक्त और परस्पर मिले हुए जालके सदृश शरीरके भीतरभी जाल है. यह जाल शिरा, स्नायु, मांस और अस्थियोंसे बना है. ये एक एक स्थानमें चार चार हैं, इस प्रकार सब मिलकर सोलह १६ हुए ॥ ३०१ ॥

तानि मणिबन्धगुदसंस्थितानि परस्परानिबद्धा-नि परस्परसंश्लिष्टानि परस्परगवाक्षितानि चेति यैर्गवाक्षितमिदं शरीरम् । अयमर्थः–एक-स्मिन् मणिबन्धे एकं जालं शिरायाः, अपरं स्नायोः, तृतीयं मांसस्य, चतुर्थमस्थ्नः एवं चत्वारि जालानि । एतेन इतरमणिबन्धो गु-ल्फौ च व्याख्यातौ । गवाक्षितं विरचितं नि-रन्तरजालाकाररन्ध्रनिकरपरिकलितमित्यर्थः ॥

भाषा–वे पहुँचे, टकनेमें स्थित, परस्पर बँधे हुए, मिले हुए और छिद्रयुक्त होते हैं, जिनसे कि यह शरीर छिद्रयुक्त है, इसका तात्पर्य यह है कि एक हाथके पहुँचेमें एक शिराका, दूसरा स्नायुका, तीसरा मांसका और चौथा अस्थिका इस प्रकार चार जाल हैं. दूसरे हाथके पहुँचेमें और दोनों पांवोंके टकनोंमेंभी इसी प्रकार चार चार जाल हैं, जिस प्रकार जालीके छिद्र मिले हुए होते हैं तिसी प्रकार इसकेभी छिद्र भीतर-बाहरसे मिले हुए होते हैं॥

अथ कूर्चाः ।

कूर्चाः स्युर्हस्तयोर्द्वौ तु तावन्तौ पादयोरपि । ग्रीवायामेक एकस्तु मेढ्रे सर्वेऽपि षट् स्मृताः । कूर्चा अपि शिरास्नायुमांसास्थिप्रभवाः स्मृताः ॥ ३०२ ॥

भाषा–दोनों हाथोंमें दो २, दोनों पांवोंमें दो २, गरदनमें एक १ और लिंगमें एक १ इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार सब मिलकर छः ६ कूर्च हैं; कुशापुंजके सदृश पदार्थको कूर्च कहते हैं वे लाल तेजस्वी होते हैं. ये कूर्च शिरा, स्नायु, मांस और अस्थियोंसे बने हैं ॥ ३०२ ॥

अथ रज्जवः ।

पृष्ठवंशस्योभयत्र महत्यो मांसरज्जवः । चतस्रो मांसपेशीनां बन्धनं तत्प्रयोजनम् ॥ ३०३ ॥

भाषा-दोनों पीठके वांसोंमें मांसकी मोटी मोटी चार ४ रज्जु (डोरी) हैं, मांसकी पेशियोंको बांधकर रखना यह इनका काम है ३०३॥

अथ सेवन्यः ।

सेवन्यः सप्त तासां तु भवेयुः पञ्च मस्तके । एका शेफसि जिह्वायामेका विध्येन्न ताः क्वचित् ॥ ३०४ ॥

भाषा-शरीरमें सेवनी सात हैं, उनमेंसे माथेमें पांच ५ हैं, लिंगमें एक १ है, और जीभमें १ है, इनको कभीभी न वेधें. सुईसे सिली हुई जगहके सदृशको सेवनी कहते हैं ॥ ३०४ ॥

अथ संघाताः ।

चतुर्दशास्थां संघातः तेषां त्रयो गुल्फजानुवंक्षणेषु । एतेन इतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । त्रिकं शिरसोरेकैकम् । अत्र तु त्रिकपदेन बाहुग्रीवास्थिसंघात उच्यते ॥

भाषा-हड्डियोंके संघात चौदह हैं, उनमेंसे पांवोंके दोनों टकनोंमें दो २, दोनों घुटनोंमें दो २, दोनों वंक्षणोंमें दो २, दोनों भुजाओंमें छः ६, गरदनमें एक १, मस्तकमें एक १ और त्रिकमें एक १ इस प्रकार सब चौदह संघात १४ हुए ॥

अत्र सीमन्ताः ।

चतुर्दशैव सीमन्ताः कथिता मुनिपुङ्गवैः । संघाताः सीव्यताः यैस्तु सीमन्तास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ ३०५ ॥ यैः अस्थिभिः ।

भाषा-उत्तम मुनियोंने चौदह १४ ही सीमंत कहे हैं, जिनसे संघात जोडे गये हैं उनही हड्डियोंमें सीमंत जान लेना ॥ ३०५ ॥

अथ त्वचः ।

क्षीरस्य पच्यमानस्य यथा सन्तानिका भवेत् । पच्यमानस्य शुक्रस्य रजसश्च तथा त्वचः । पूर्वावभासिनी तासां सिध्मस्थानं च सा स्मृता ॥ ३०६ ॥ अथावभासिनी भ्राजकेन पित्तेन अवभासनात् । परिणाहेन विस्तारितस्य व्रीहेरष्टादशो भागः प्रमाणं यस्याः । व्रीहिरत्र यवः सा सिध्मपद्मकण्टकयोरधिष्ठानम् ॥

भाषा-जिस प्रकार अग्निसे औटे हुए दूधमेंसे मलाई होती है, उसी प्रकार पित्तसे पके हुए वीर्य और रजसे त्वचा होती हैं, ये त्वचा सात हैं; इनमें पहिली त्वचाका नाम अवभासिनी है और वह सिध्मनामक (कलफ, छीप) एक प्रकारके कोढका स्थान है, वह त्वचा भ्राजक नाम पित्तसे प्रकाशित होती है, इससेही अवभासिनी कहाती है. विस्तारमें जोके बीस भाग करके उसमें अठारहवां भाग जितना होता है उतना इसका प्रमाण है. यह त्वचा जिस प्रकार सिध्म नामक कोढका स्थान है तिसी प्रकार पद्म कंटक नामक कोढकाभी स्थान है॥ ३०६॥

द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥ द्वितीया यवषोडशभागप्रमाणा तिलकालकन्यच्छव्यङ्गानामधिष्ठानम् ॥

भाषा-दूसरी त्वचाका नाम लोहिता है और उसका प्रमाण जौके सोलहवें भागके सदृश है, यह त्वचा तिलकालक, न्यच्छ और व्यंग (झांई) रोगका स्थान है ॥

तृतीया तु भवेच्छ्वेता स्थानं चर्मदलस्य सा ॥ सा यवद्वादशभागप्रमाणा चर्मदलाजगल्लिकामशकानामधिष्ठानम् ॥

भाषा-तीसरी त्वचाका नाम श्वेता है; इसका प्रमाण जौके बारहवें भागके सदृश है. यह त्वचा चर्मदलनामक कौढ, अजगल्लिका और मस्से होनेका स्थान है ॥

ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका ॥ चतुर्थी यवाष्टभागप्रमाणा ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–चौथीका नाम ताम्रा है, उसका प्रमाण जौके आठवें भागके सदृश है; यह त्वचा किलास और श्वित्रनामक कोढका स्थान है ॥

पञ्चमी वेदिनी नाम्ना पञ्चभागप्रमाणिका । विसर्पकुष्ठाधिष्ठाना ज्ञेया षष्ठी तु रोहिणी । विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगण्डापचीस्थितिः ॥ ३०७ ॥ व्रीहिमात्रप्रमाणा सा रोहिणी ग्रन्थ्यापचीगलगण्डमालार्बुदश्लीपदानामधिष्ठानम् ॥

भाषा–पांचवीं त्वचाका नाम वेदिनी है और उसका प्रमाण जौके पांचवें भागके सदृश है, यह त्वचा विसर्पनामक कोढका स्थान है. छठी त्वचाका नाम रोहिणी है, इसका प्रमाण एक जौके बराबर है, यह त्वचा गांठ, अपची, गलगंड, गंडमाला, अर्बुद और श्लीपदका स्थान है॥३०७

स्थूला त्वक् सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा ॥ सा सप्तमी व्रीहिद्वयप्रमाणा ॥

भाषा–सातवीं त्वचाका नाम मांसधरा है, यह स्थूल है, इसका प्रमाण दो जौके बराबर है. यह त्वचा विद्रधि आदिका स्थान है ॥

तत एवोक्तं शार्ङ्गधरेण ।

स्थूला व्रीहिद्विमात्रयेति । सप्तापि त्वचः समुदिता विंशतितमभागोनषड्यवप्रमाणाः । षड्यवप्रमाणं तु अंगुष्ठोदरतुल्यम् । यत उक्तम् । उदरेष्वंगुष्ठप्रमाणगाढमाविध्येदिति । एतत् प्रमाणं मांसलेषु स्थूलेषु बोद्धव्यम्, न तु ललाटसूक्ष्मांगुल्यादिषु ॥

भाषा–इसके ऊपर शार्ङ्गधरमेंभी कहा है कि स्थूल त्वचा दो जौके बराबर है. सातों त्वचोंका प्रमाण इकट्ठा करनेसे वीसवां भाग कम छः जौके बराबर है, छः जौओंका प्रमाण अंगूठेके उदरके बराबर है अर्थात् इसी कारणसे दूसरे ग्रंथमें कहा है कि पेटको छेदना होय तो अंगूठेके बराबर छेदे, यह प्रमाण मांससे भरे हुए स्थूल भागोंमें जानना, परन्तु ललाट और अंगुली आदिक पतले भागोंमें नहीं जानना ॥

अथ लोमानि लोमकूपाश्च ।

अस्थ्नो मलानि लोमानि चासंख्यानि भवन्ति हि । सन्ति यावन्ति लोमानि तावन्तो लोमकूपकाः ॥ ३०८ ॥

भाषा–रोम हड्डियोंका मैल है और वे असंख्यात हैं, जितने शरीरमें रोम हैं उतनेही वाल निकलनेके रोमकूप (छिद्र) हैं ॥ ३०८ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिवृत्तिः स्वभावादेव जायते । सन्निवेशश्च गात्राणां नात्रास्ते कारणान्तरम् ॥ ३०९ ॥ निर्वृत्तिः सिद्धिः । स्वभावात् ईश्वरात् । सन्निवेशो रचनाविशेषः ॥

भाषा–अंग और उपांगोंका बनना, तथा शरीरकी रचना, निर्वृत्ति (सिद्धि) स्वयं स्वभावसेही होती है; इसमें अन्य कारण कोई नहीं है ॥ ३०९ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तौ ये भवन्त्यगुणा गुणाः । ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥ ३१० ॥ दन्तानां पतनं जन्म पुनः पाते त्वसम्भवः । तलेष्वनुद्भवो लोम्नामेतत्सर्वं स्वभावतः ॥ ३११ ॥

भाषा–गर्भके अंग तथा उपांग बननेमें जो कोई गुण दोष होता है वह गर्भमें आये हुए जीवके धर्म और अधर्मके निमित्तसे होता है ऐसा जानना. पहिली वारके दांत गिर जानेपर दूसरी वार जमते हैं और दूसरी वार गिरनेपर पीछे नहीं जमते. हाथ पांवके तलुएमें स्वभावसेही रोम उत्पन्न नहीं होते, इनका अन्य कारण नहीं है यह सब स्वभावसे होता है ॥३१०॥३११॥

गर्भे मासि मासि यद्भवति तदाह ।

गर्भाशये निपतितं यादृक् शुक्रं तथार्तवम् । तादृगेव द्रवीभूतं प्रथमे मासि तिष्ठति ॥३१२॥ मरुत्पित्तकफैस्तत्स्थैः पच्यमानं द्वितीयके । कललस्थं महाभूतं समुदायं घनीभवेत्॥३१३॥

भाषा–वीर्य और रज गर्भाशयमें जब गिरता है तब वह द्रवरूप (पतला) ही पहिले मासमें रहता है. यह गर्भाशयमें रहनेवाले वात, पित्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और कफसे पककर वीर्य और रजमें रहनेवाला पंचमहाभूतका समुदाय दूसरे महीनेमें घन (गाढा) हो जाता है ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥

अत्र मरुत्कफयोरपि पाकहेतुत्वे तयोरप्यूष्मणोऽधिकरणत्वात् ॥

भाषा—वायु और कफसेभी गर्भपाक होता है, क्योंकि उसमेंभी गरमी रहती है ॥

यत उक्तं चरके ।

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः । तृतीये मासि शिरसो हस्तयोः पादयोस्तथा ॥ ३१४ ॥ पिण्डका पञ्च सिध्यन्ति सूक्ष्माङ्गावयवास्ततोः । सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि चतुर्थे स्युः स्फुटानि हि॥३१५॥

भाषा—चरकमें कहा है कि "पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इस प्रकार पांच प्रकारकी गरमी है." तीसरे महीनेमें दोनों हाथोंके, दोनों पांवोंके और एक मस्तकका, इस प्रकार पांच पिंड और शरीरके सूक्ष्म अवयव निकलते हैं. चौथे महीनेमें सम्पूर्ण अंग और उपांग स्पष्ट होते हैं ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥

हृदयव्यक्तभावेन व्यज्यते चेतनापि च । तस्माच्चतुर्थे गर्भस्तु नानावस्तूनि वाञ्छति ॥ ३१६ ॥ ततो द्विहृदया यत्स्यान्नारी दौहृदिनी मता । दौहृदावज्ञया कुब्जं कुणिं षण्ढं च वामनम् । विकृताक्षमनक्षं वा पुत्रं नारी प्रसूयते ॥ ३१७ ॥

भाषा—हृदयकी स्पष्टता होनेसे चेतनाभी स्पष्ट होती है; इस कारण गर्भको चौथे महीनेमें अनेक वस्तुओंकी इच्छा होने लगती है. एक अपना और दूसरा गर्भका, इस प्रकार उस समयमें स्त्रीके दो हृदय होते हैं; इस कारण गर्भिणी स्त्री दौहृदिनी कहाती है. गर्भवाली स्त्रीकी इच्छा पूर्ण न होनेसे अर्थात् जिस वस्तुपर इच्छा हो वह न देनेसे वह स्त्री कुबडा, टोटा, नपुंसक, बौना, बुरे नेत्रवाला, अथवा अंधा बालक उत्पन्न करती है ॥ ३१६॥३१७॥

यतः स्त्री दौहृदं प्राप्य वीर्यवन्तं चिरायुषम् । पुत्रं प्रसूयते तस्मात्तस्यै वाञ्छितमर्पयेत् ॥ ३१८ ॥ इन्द्रियार्थांस्तु यान्यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी । गर्भबाधाभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्यदापयेत् ॥ ३१९ ॥ भोक्तुमुपभोक्तुमित्यर्थः ॥

भाषा—गर्भवाली स्त्रीको खाने पीने आदिकी जो इच्छा होय और वह पूर्ण हो जाय तौ वह स्त्री पराक्रमी और बडी आयुवाला बालक जनती है; इसलिये उसको जिस वस्तुकी अभिलाषा होय वही वस्तु देनी चाहिये. गर्भिणी स्त्री जो जो वस्तुएं भोगनेकी इच्छा करे, वह वह वस्तु गर्भबाधाके भयसे वैद्य उसको देवे ॥ ३१८ ॥ ३१९ ॥

सा प्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेत्तु गुणान्वितम् । अलब्धदौहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ ३२० ॥ येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदं सावमानिता । प्रसूयते सुतं सार्तिं तस्मिंस्तस्मिंस्तदिन्द्रिये ॥ ३२१ ॥ सार्तिं सव्यथम् ॥

भाषा—जब इच्छा पूरी हो जाय तब स्त्री गुणवान् पुत्र जनती है, और जिनकी इच्छा पूरी नहीं होती उन स्त्रियोंके गर्भमें अथवा उनके शरीरमें अनेक बाधा उत्पन्न होती हैं. गर्भिणी स्त्रियोंकी इच्छित वस्तुएं जिस जिस इन्द्रियके विषयसंबंधी हो उनकी इच्छा पूर्ण न होनेसे उन उन इन्द्रियोंमेंही व्यथावाला पुत्र होता है ॥ ३२० ॥ ३२१ ॥

दौहृदविशेषफलमाह ।

राजसंदर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियः । अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ ३२२ ॥ दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौहृदात् । अलङ्कारप्रियं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ ३२३ ॥ आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते । देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ ३२४ ॥ आश्रमे तपस्विनामाश्रमे दौहृदात् पार्षदोपमं प्रमथोपमम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–जिस स्त्रीको राजाके दर्शन करनेकी इच्छा होय तौ वह स्त्री धनवान् और अत्यंत पूज्य पुत्र जनती है, जिस स्त्रीको उत्तम वस्त्र, रेशमी वस्त्र और आभरण आदिकी इच्छा होय तौ वह स्त्री अलंकारोंकी इच्छा करनेवाला ललित पुत्र जनती है. जो स्त्री तपस्वियोंके आश्रममें जानेकी इच्छा करे वह जितेन्द्रिय और धर्मात्मा संतान जनती है. जिस स्त्रीको देवताकी मूर्त्तिका दर्शन करनेकी इच्छा होय वह स्त्री सदा पार्षद (प्रमथ) के सदृश पुत्र जनती है ॥ ३२२–३२४ ॥

दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते। रक्ताक्षं लोमशं शूरं महिषामिषदोहदात् ॥ ३२५ ॥ वाराहमांसे स्वप्नालुं शूरं सञ्जनयेत्सुतम्। मृगमांसे तु तच्छायं विक्रान्तं वनचारिणम् ॥ ३२६ ॥

भाषा–जिस स्त्रीको सर्पादिककी जाति देखनेकी इच्छा होय तौ वह स्त्री हिंसाके (हत्यारे) स्वभाववाला पुत्र जनती है. भैसका मांस खानेकी इच्छा होय तौ वह वीर, लाल नेत्रवाले और अधिक रोमवाले पुत्रको जनती है. सूकरका मांस खानेकी इच्छा होय तौ शूरवीर और विशेष निद्रालु पुत्र जनती है. हिरनका मांस खानेकी इच्छा होय तौ हिरनकी कांतिवाला, पराक्रमी और वनमें फिरनेवाला बालक जनती है ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥

अतोऽनुक्तेषु या नारी दौहृदं विदधाति हि। शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति। षष्ठे मानसं षष्ठे बुद्धिश्चातिप्रबुद्ध्यते ३२७॥

भाषा–और जिस स्त्रीको इसमें कही हुइ वस्तुओंके अतिरिक्त किसी वस्तुकी इच्छा होय तौ स्त्री उसीके सदृश शरीर आचार और स्वभाववान् पुत्रको जनती है. पांचवें महीनेमें मन प्रगट होता है; छठे महीनेमें बुद्धि अत्यन्त प्रगट होती है ॥ ३२७ ॥

सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि भृशं व्यक्तानि सप्तमे। ओजोऽष्टमे सञ्चरति मातापुत्रौ मुहुः क्रमात् ॥ ३२८ ॥ तेन तौ म्लानमुदितौ स्यातां जातो न जीवति। न जीवत्यष्टमे जातस्तौजो न स्थिरं यतः। तथा नैर्ऋत्यभागत्वादापयेत्तद्बलिं ततः ॥ ३२९ ॥ नैर्ऋत्याय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः ॥

भाषा–सातवें महीनेमें गर्भ समस्त अंग और उपांगों करके स्पष्ट होता है. आठवें महीनेमें ओज माता और पुत्रमें क्रमसे संचार करता है, इसी कारण स्त्री और गर्भ वारंवार मलीन (कुम्हलाए) और मुदित (प्रसन्न) होते हैं, तथा जो बालक आठवें महीनेमें उत्पन्न होता है, वह जीवित नहीं रहता, उसका कारण यही है कि उस महीनेमें ओज स्थिर नहीं रहता, तथा आठवें महीनेमें बालकके शरीरपर नैर्ऋत्य-नामक देवताका भाग लगता है अर्थात् उस देवताको बलि दान देवे. बालकके शरीरमें नैर्ऋत्य देवताका भाग रुद्रने दिया है ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥

यत उक्तं कुमारतन्त्रे।

अष्टमे मासि नैर्ऋत्याय मांसौदनं बलिं दापयेदिति ॥

भाषा–यही कुमारतंत्रमें कहा है कि "आठवें महीनेमें नैर्ऋत्य देवताको मांसयुक्त भातका बलिदान देवे" ॥

नवमे दशमे मासि नारी बालं प्रसूयते। एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ३३०

भाषा–स्त्री नववें वा दशवें महीनेमें बालक जनती है. कोई कोई ग्यारहवें और बारहवें महीनेमेंभी जनती है, कोई विकार होय तो इससे उपरांतमेंभी जनती है ॥ ३३० ॥

गर्भे यदङ्गं प्रथमं भवति तदाह।

शिरो भवति चाङ्गस्य पूर्वमित्याह शौनकः। शिरस्येवोपजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणि यत् ३३१

भाषा–शौनक ऋषि कहते हैं कि सम्पूर्ण अंगोंमें प्रथम मस्तक उत्पन्न होता है, क्योंकि मुख्य इंद्रियें मस्तकमेंही होती हैं ॥ ३३१ ॥

हृदयं जायते पूर्वं कृतवीर्योऽवदन्मुनिः। बुद्धेश्च मनसश्चापि यतस्तत्स्थानमीरितम् ॥ ३३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-कृतवीर्यमुनि कहते हैं कि प्रथम हृदय उत्पन्न होता है, क्योंकि मनका और इंद्रियोंका स्थान हृदय कहा है ॥ ३३२ ॥

पाराशर्य इति प्राह पूर्वं नाभिसमुद्भवः । प्राणो यत्र स्थितो देहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ ३३३॥

भाषा-पाराशर्यमुनि कहते हैं कि प्रथम नाभि उत्पन्न होती है कि, जिसमें रहकर प्राण गरमीकी सहायतासे देहको बढाता है ॥३३३॥

पाणिपादं भवेत्पूर्वं मार्कण्डेयमुनेर्मतम् । देहिनः सकलाश्चेष्टाः पाणिपादाश्रया यताः ॥३३४॥

भाषा-मार्कण्डेय मुनिका मत यह है कि सम्पूर्ण प्राणियोंमें हाथ पांवहीसे चेष्टा होती है इस कारण हाथ और पांव प्रथमही उत्पन्न होने सम्भव हैं ॥ ३३४ ॥

प्रथमं जायते कोष्ठं ततः सर्वाङ्गसम्भवः । एतत्तु कथयामास गौतमो मुनिपुङ्गवः॥३३५॥

भाषा-मुनियोंमें उत्तम गौतम मुनि कहते हैं कि प्रथम कोठा (धड) उत्पन्न होता है और पीछे सम्पूर्ण अंग उत्पन्न होते हैं ॥ ३३५ ॥

सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत्सम्भवन्ति हि । सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मतं धन्वन्तरेरिदम् ३३६

भाषा-धन्वन्तरिका मत यह है कि सम्पूर्ण अंग और उपांग एकही साथ होते हैं, परन्तु सूक्ष्म होनेसे देखनेमें नहीं आते ॥ ३३६ ॥

आम्रस्यानु फले भवन्ति युगपन्मांसास्थिमज्जादयो लक्ष्यन्ते न पृथक् पृथक् तनुतया पुष्टास्त एव स्फुटाः । एवं गर्भसमुद्भवे त्ववयवाः सर्वे भवन्त्येकदा लक्ष्याः सूक्ष्मतया न ते प्रकटतामायान्ति वृद्धिङ्गताः ॥ ३३७ ॥ मज्जादयः इति आदिशब्देन त्वक्केशरमज्जात्वङ्कुरवृन्तानि गृह्यन्ते ॥

भाषा-जैसे छोटे आंवके फलमें मांस, हड्डी, मज्जा, छाल, केशर, मज्जाकी छाल और अंकुर आदिक पदार्थ एकही समयमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु सूक्ष्म होनेसे अलग अलग नहीं दीखते, और जब पुष्ट होते हैं तब स्पष्ट दीखने लगते हैं, उसी प्रकार गर्भमें सम्पूर्ण अवयव एकही समय उत्पन्न होते हैं, परन्तु सूक्ष्म होनेसे दीखते नहीं हैं; जब बढ जाते हैं तब स्पष्ट दीखने लगते हैं ॥ ३३७ ॥

अथ शरीरे पितृज-मातृज-रसजात्मजा भागा उच्यन्ते ।

तत्र-केशाः श्मश्रु च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा । धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि ॥३३८॥ मांसासृङ्मज्जमेदांसि यकृत्प्लीहान्त्रनाभयः । हृदयं च गुदं चापि भवन्त्येतानि मातृतः ॥ ३३९ ॥

भाषा-केश, डाढी, मूँछ, रोम, नख, दांत, शिरायें, धमनियें, स्नायु और वीर्य इतने भाग पितासे उत्पन्न होते हैं. मांस, रक्त, मज्जा, मेदा, कलेजा, प्लीहा, आंत, नाभि, हृदय और गुदा इतने भाग मातासे उत्पन्न होते हैं॥३३८॥३३९॥

शरीरोपचयो वर्णो बलं देहस्थितिस्तथा । रसादेतानि जायन्ते भिषजो मुनयो जगुः३४०

भाषा-शरीरका उपचय (बढना), वर्ण, बल और देहकी स्थिति ये सब रससे प्रगट होते हैं; ऐसा वैद्य और मुनियोंने कहा है ॥ ३४० ॥

ज्ञानं विज्ञानमायुश्च सुखदुःखादिकं तथा । इन्द्रियाणि च सर्वाणि भवन्त्येतानि चात्मनः ॥ ३४१ ॥ दुःखादिकमित्यादिशब्देन नानायोनिजन्मादिकमुच्यते आत्मनः आत्मसन्निकर्षात् न तु आत्मनो जायन्ते, आत्मनो निर्विकारात् प्रकृतिभावानुपपत्तेः ।

भाषा-ज्ञान, विज्ञान, आयु, सुख, दुःख इत्यादिक और सम्पूर्ण इन्द्रियें आदिक अनेक योनियोंमें जन्म होना आदि आत्मासे होते हैं. जो कि ' ज्ञान आदि और संपूर्ण इन्द्रियें आत्मासे होती हैं ' ऐसा कहा है तो निर्विकार आत्मामेंसे कोई वस्तु उत्पन्न होकर घटती नहीं इस कारण आत्मासे अर्थात् आत्माके संयोगसे उत्पन्न होते हैं ऐसा जानना ॥ ३४१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गर्भस्य किं किं विशिष्टोपकारकं तत्तदाह ।
अग्नीषोमौ मही वायुर्नभः सत्त्वं रजस्तमः ।
पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मा गर्भं सञ्जीवयन्ति हि ॥ ३४२ ॥

भाषा–अग्नि, सोम, पृथ्वी, वायु, आकाश, सत्त्व, रज, तम, पांच इन्द्रियें और प्रारब्ध कर्म येही गर्भको जिवाते हैं ॥ ३४२ ॥

अग्निरत्र पाचकालोचकरञ्जकभ्राजकसाधकानाम्; तथा पाञ्चभौतिकानां तथा सप्तधातुगतानामग्नीनां शक्तिरूपतया अवस्थितो वाचोऽधिदेवत्वं प्राप्तो बोधव्यः, स पाचकादिकर्मणा जीवयति । सोमश्च पञ्चात्मकश्लेष्मरसशुक्रादीनां सोमात्मकानां भावानां रसेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतया अवस्थितो मनसश्चाधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः । स च सौम्यधातोरोजःप्रभृतेः पोषणेन पवनपावकसंशुष्कभागस्य आर्द्रताविधानेन जीवयतीति शेषः । मही च जलेन क्लिन्नस्यापि कठिनविधानेन । वायुर्दोषधातुमलाङ्गोपाङ्गादीनां सञ्चारणेन उच्छ्वासनिःश्वासाभ्याम् । नभो मनोरूपतया परिणतं जीवात्मनः शरीरान्तरे जीवनग्रहणमोक्षणे हेतुरिति तदपि जीवयति । पञ्चेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वङ्नेत्रजिह्वाघ्राणानि । शब्दादिग्रहणकर्मणा भूतात्मा कर्मपुरुषः स च अशेषस्यैव राशेश्चैतन्यहेतुर्जीवतीति ॥

भाषा–यहां अग्निशब्दसे पाचक, भ्राजक, आलोचक, रंजक और साधक इन पांच प्रकारके पित्तमें तथा पंचभूतोंमें रहनेवाली गरमियोंकी तथा सात धातुओंमें रहनेवाली अग्नियोंकी शक्तिरूपसे स्थित वाणीके अधिदेवत्वको प्राप्त अग्नि जाननी और वह पाचक आदि कार्योंसे गर्भको जिवाती है. पांच प्रकारका कफ, रस और वीर्य आदि चन्द्ररूप पदार्थोंकी और रसना इंद्रियकी शक्तिरूपसे स्थित मनके अधिदेवत्वको प्राप्त सोमको जानना चाहिये. वह ओज आदि सौम्य धातुओंके पोषणसे और वायु तथा अग्निसे सूखे हुए भागको आर्द्र करके गर्भको जिवाता है. मही (पृथ्वी) पानीके द्वारा आर्द्र हुए भागको कठिन (शुष्क) कर देनेसे गर्भको जिवाती है. वायु दोष, धातु, मल, अंग और उपांगादिके चलानेसे गर्भकी रक्षा करता है. आकाश अवकाशरूप होनेसे उच्छ्वास और निःश्वासके मार्ग होकर गर्भका पालन करता है. सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण मनरूपसे बदलकर जीवात्माके शरीरान्तरमें जीवके ग्रहण और त्यागमें हेतु होनेके कारण गर्भको जिवाते हैं. कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और घ्राण ये पांचों इन्द्रियें अनुक्रमसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, इनके ग्रहण करनेसे पालती हैं. प्रारब्धकर्म सम्पूर्ण देहमें चैतन्य रहनेका कारणरूप है इस कारण यहभी गर्भको जिवाता है ॥

अपरं गर्भस्य जीवनोपायमाह ।

गर्भस्य नाभिनाड्या तु नाडी रसवहा स्त्रियाः । संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यशः ॥ ३४३ ॥ निःश्वासोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नांशान्सोऽधिगच्छति । मातुर्निःश्वासितोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नसम्भवान् ॥ ३४४ ॥ संक्षोभः सञ्चलनम् । माता निःश्वासादिका याश्चेष्टाः करोति तास्ता गर्भोऽपि करोतीत्यर्थः ॥

भाषा–स्त्रीके रसकी वहनेवाली नाडी गर्भनाभिकी नाडियोंके साथ लगी हुई हैं इससे जो कुछ गर्भवती भोजन करती है उसका सब रस गर्भके शरीरमें प्रवेश करता है उससे नित्य गर्भकी वृद्धि होती है. गर्भको मानो निःश्वास होनेसे निःश्वास, उच्छ्वास होनेसे उच्छ्वास, संचलन होनेसे संचलन और स्वप्न होनेसे स्वप्न प्राप्त होता है अर्थात् माता निःश्वास आदि जो जो चेष्टायें करती हैं वे २ चेष्टायें गर्भभी करता है ॥ ३४३ ॥ ३४४ ॥

अथ गर्भवृद्धेर्हेतूपायावाह ।

गर्भस्य नाभिमध्ये तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम् । तदा धमति वातश्च देहस्तेनास्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्धते ॥ ३४५ ॥ ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः । ऊर्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांसि तु यथा तथा ॥ ३४६ ॥ यथा दारयति विस्तारयति तथा तथा देहो वर्धते इति पूर्वेणान्वयः ॥

भाषा-गर्भकी नाभिके मध्यमें एक अविचलतेज ज्योतिःस्थान है. उस स्थानमें सदा पवन चलती रहती है उससे गर्भका शरीर वृद्धि पाता है. गरमीकी सहायतासे वायु गर्भके ऊंचे नीचे और आडे स्रोतों (मल, मूत्र आदि चलनेके मार्गों)को जितना जितना विस्तारित करता है उतनाही गर्भका शरीर बढता जाता है ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥

दृष्टिरोमकूपानामवृद्धिमाह ।

दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्धन्ते कदाचन । ध्रुवाण्येतानि मर्त्यानामिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ३४७ ॥

भाषा-मनुष्योंके रोमकूप (रुओंके छिद्र) और दृष्टि (नेत्रकी पुतली) यह जितनी २ प्रथम होती ह उतनी उतनीही रहती है, बढती नहीं है; ऐसा धन्वन्तरिका मत है ॥ ३४७ ॥

नखकेशानां सदा वृद्धिमाह ।

शरीरे क्षीयमाणेऽपि वर्धते द्वावमौ सदा । स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ ३४८ ॥ प्रकृतिं कृत्वा कारणं कृत्वा । स्थितिः मर्यादा ॥

भाषा-शरीर क्षीण हो जानेपरभी अर्थात् वृद्धावस्थामेंभी नख और केश दोनों स्वभावसेही सदा बढते रहते हैं ॥ ३४८ ॥

अचेतनानि अङ्गानि आह ।

चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः । केशलोमनखाग्रान्तर्मलद्रव्यगुणैर्विना ॥ ३४९ ॥

भाषा-मन और इन्द्रियोंसहित शरीर चेतनाका स्थानरूप है; परन्तु केश, रोम, नखोंके अग्रभाग, भीतरके मलरूप पदार्थ और भीतरके गुणोंमें चेतना नहीं है ॥ ३४९ ॥

गर्भस्य वातविण्मूत्रोत्सर्गाकरणे कारणमाह ।

वातालपत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च । वातमूत्रपुरीषाणि गर्भस्थो न विमुञ्चति ३५० अयोगात् ईषद्योगात् ।

भाषा-वायु अल्प होनेसे और वायुका तथा पक्वाशयका योग होनेसे गर्भमें रहनेवाला जीव नीचेको वायु और मूत्र तथा विष्ठा नहीं छोडता ॥ ३५० ॥

गर्भारोदने कारणमाह ।

जरायुणा मुखे छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते । वायोर्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ३५१

भाषा-जरायु (झिल्ली) के द्वारा मुख ढकनेसे, कंठ कफद्वारा घिरनेसे और वायुका मार्ग रुकनेसे गर्भमें रहनेवाला जीव नहीं रोता ३५१ ॥

अथ गर्भवतीकृत्याकृत्यानि ।

गर्भिणी प्रथमादह्नः प्रहृष्टा भूषिता शुचिः । भवेच्छुक्लाम्बरधरा गुरुविप्रार्चने रता ॥ ३५२ ॥ भोज्यं तु मधुरप्रायं स्निग्धं हृद्यं द्रवं लघु । संस्कृतं दीपनीयं तु नित्यमेवोपयोजयेत् ३५३

भाषा-गर्भिणी स्त्री प्रथम दिनसेही आनन्दमें मग्न, भूषणोंसे युक्त, तथा पवित्र रहे; श्वेत वस्त्रोंको धारण करे; गुरु और ब्राह्मणके पूजनमें तत्पर रहे; अधिकतर मधुर, स्निग्ध, हृदयको प्रिय, पतले और हलके, शुद्ध, भले प्रकार बने हुए और अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ सेवन करे ॥ ३५२ ॥ ३५३ ॥

गर्भिणी न तु कुर्वीत व्यायाममपतर्पणम् । व्यवायं च न सेवेत न कुर्यादतितर्पणम् ॥ ३५४ ॥ रात्रौ जागरणं शोकं यानस्यारोहणं तथा । रक्तमोक्षं वेगरोधं न कुर्यादुत्कटासनम् ॥ ३५५ ॥

भाषा-गर्भिणी स्त्री परिश्रम, अपतर्पण (लंघन), मैथुन तथा अतितर्पण (बहुत भोजन) इत्यादिकभी न करे. रात्रिमें जागरण,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शोक, सवारी, रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना), मल मूत्र आदिके वेगोंको रोकना और बुटुओंसे बैठना इत्यादि कार्य न करे ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते । स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ ३५६ ॥ मलिनां विकृताकारां हीनाङ्गीं न स्पृशेत्स्त्रियम् । न जिघ्रेदपि दुर्गन्धं न पश्येन्नयनाप्रियम् ॥ ३५७ ॥

भाषा–शरीरी दोषोंके आघातसे गर्भिणीके जो जो भाग पीडित होते हैं, उस गर्भमें रहनेवाले बालकके भी उन उनही भागोंमें पीडा होती है. गर्भवती स्त्रियें मलिन, कुरूप, ओछे अंगवाली, किसी स्त्रियोंका स्पर्श नहीं करे, दुर्गन्धित पदार्थको नहीं सूंघे, जो नेत्रोंको बुरा लगे उसको न देखें ॥ ३५६ ॥ ३५७ ॥

वचांसि नापि शृणुयात्कर्णयोरप्रियाणि च । नान्नं पर्युषितं शुष्कं भुञ्जीत क्वथितं न च ॥ ३५८ ॥ चैत्यश्मशानवृक्षांश्च भावांश्चाप्ययशस्करान् । बहिर्निष्क्रमणं क्रोधं शून्यागारं च वर्जयेत् ॥ ३५९ ॥

भाषा–जो कानोंको अप्रिय लगें ऐसे वचन नहीं सुने, बासी, सूखा और क्वाथके सदृश अन्न नहीं खावे. चैत्यवृक्ष (अश्वत्थादि देवतावाचक, चिताके ऊपरके स्थान या वृक्ष, अथवा विश्रामस्थान), श्मशानके वृक्ष और जो ग्लानिकारक पदार्थ हैं उनके पास नहीं जाय, घरसे बाहर नहीं निकले, क्रोध नहीं करे, सूने घरमें नहीं जाय अथवा नहीं रहे ॥ ३५८ ॥ ३५९ ॥

नोच्चैर्ब्रूयान्न तत्कुर्याद्येन गर्भो विनश्यति । तैलाभ्यङ्गोद्वर्तनं च नात्यर्थं कारयेदपि ॥ ३६० ॥ नाम्बुद्वास्तरणं कुर्यान्नात्युच्चं शयनासनम् । एतांस्तु नियमान्सर्वान्यत्नात्कुर्वीत गर्भिणी ॥ ३६१ ॥

भाषा–ऊंचेसे नहीं बोले, और जिससे गर्भ नष्ट हो जाय ऐसे कार्य न करे, शरीरमें तैल नहीं लगावे, उबटन नहीं मले, कठोर बिछौना नहीं करे और सोनेकी शय्या बहुत ऊंची न करे ये सम्पूर्ण नियम गर्भवती स्त्रियें प्रयत्नसे पालन करे ॥ ३६० ॥ ३६१ ॥

अथ प्रसवमानानाह ।

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते । एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ ३६२ ॥

भाषा–नौवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें महीनेमेंभी स्त्री गर्भको जनती है, और कुछ विकार होय तौ इससे उपरांत समयमेंभी जनती है ॥ ३६२ ॥

अथ सूतिकागृहाकृतिः ।

अष्टहस्तायतं चारु चतुर्हस्तविशालकम् । प्राचीद्वारमुदग्द्वारं विदध्यात्सूतिकागृहम् ॥ ३६३ ॥

भाषा–आठ हाथ लंबा, चार हाथ चौडा, सुन्दर, पूर्व द्वारका अथवा उत्तरद्वारका ऐसा प्रसूतिभवन होना चाहिये ॥ ३६३ ॥

आसन्नप्रसवाया लक्षणमाह ।

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने । सशूले जघने नारी विज्ञेया प्रसवोत्सुका ॥ ३६४ ॥ आसन्नप्रसवायास्तु कटीपृष्ठं तु सव्यथम् । भवेन्मुहुः प्रवृत्तिश्च मूत्रस्य च मलस्य च ॥ ३६५ ॥

भाषा–कोख शिथिल (ढीली) हो जाय, हृदयके बंधन छूट जांय और पेडू (जांघों) में शूल होने लगे उस स्त्रीको तुरंत जननेवाली जाननी. जो स्त्री तत्काल प्रसूत होनेवाली हो उस स्त्रीकी कमर और पीठमें पीडा होने लगती है तथा वारंवार मल और मूत्रकी प्रवृत्ति होती है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥

अथ आसन्नप्रसवाया उपचारः ।

तैलेनाभ्यक्तगात्राणां संज्ञातामुष्णवारिणा । यवागूं पाययेत्कोष्णां मात्रया घृतसंयुताम् ॥ ३६६ ॥ कृतोपधाने मृदुभिर्विस्तीर्णे शयने शनैः । आसुप्तसक्थी चोत्ताना नारी तिष्ठेत् व्यथान्विता ॥ ३६७ ॥ आसुप्तसक्थी असङ्कोचितोरुः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-जब स्त्री प्रसूत होनेको होय तब उसके शरीरमें तेल लगाकर गरम जलसे स्नान करावे; यथायोग्य जिसमें घी पडा होय और किंचित् गरम ऐसी यवागू पिलावे, जब पीडा होय तब स्त्रीको नरम नरम बिछौने युक्त शय्यापर धीरे धीरेसे घुटुओंको मोडकर बिठावे॥३६६॥३६७॥

अथ जनयित्र्यः ।

चतस्रोऽशङ्कनीयाश्च स्रावणे कुशला हिताः ।
वृद्धाः परिचरेयुस्ताः सम्यक् छिन्ननखाः स्त्रियः ॥ ३६८ ॥

भाषा-जिसके ऊपर किसी प्रकारका संदेह न होय अर्थात् पूर्ण विश्वासयुक्त, प्रसूत करनेमें चतुर, परम हितकारिणी और नख जिसके कटे हुए हों, ऐसी दाई चार स्त्रियोंसे उपचार करावे तथा सेवा करावे ॥ ३६८ ॥

अथ जनयित्रीकृत्यम् ।

अपत्यमार्गं तैलेन समभ्यज्य समन्ततः ।
एका तु तासु सुभगे प्रवाहस्वेति तां वदेत् ॥ ३६९ ॥ अव्यथा मा प्रवाहिष्ठाः प्रवाहेथा व्यथा यदि । प्रवाहेथाः शनैः पूर्वं प्रगाढं च ततः परम् ॥ ३७० ॥ ततो गाढतरं गर्भे योनिद्वारमुपागते । अपरासहितो गर्भो यावत्पतति भूतले ॥ ३७१ ॥

भाषा-संतान होनेके मार्गको चारों ओर तेल लगाकर उन चार स्त्रियोंमेंसे एक स्त्री उससे कहे कि, हे शुभानने ! जो तुझे अधिक पीडा मालूम होय तो प्रथम थोडा फिर धीरे धीरे बल करके प्रवाह कर, फिर अधिक जोरसे बाहरको ढकेल. तेरा गर्भ योनिके द्वारपर आवे तब जोरसे बाहरको ढकेलना कि जबतक अपरा (जेर आदि) सहित गर्भ पृथ्वीमें न आजाय तबतक ॥ ३६९-३७१ ॥

व्यथारहितायाः प्रवाहणाद्वैगुण्यमाह । मूकं वा बधिरं कुब्जं श्वासकासक्षयान्वितम् । सूते स्रस्ततनुं बालमकाले तु प्रवाहणात् ॥ ३७२ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे गर्भप्रकरणं द्वितीयम् ।

भाषा-विना समयके जोर करनेसे गूंगा, बहरा, कुब्ज, श्वास, खांसी और क्षयरोग करके युक्त और शिथिल शरीरवाला बालक उत्पन्न होता है इसीसे विना कालके गर्भको नहीं निकाले ॥ ३७२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां द्वितीयं गर्भप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ तृतीयप्रकरणप्रारंभः ।

अथ बालस्य जन्मोत्तरविधिः ।

अथ बाले समुत्पन्ने विदधीत विधिं ततः ।
यथैव कुलवृद्धा स्त्री व्यवहारपरम्परा ॥ १ ॥

भाषा-सन्तानके उत्पन्न हो जानेके पश्चात् कुटुम्बकी बूढी नारियोंकी प्रथाके अनुसार विधि करे ॥ १ ॥

अथ प्रसूताया नियमानाह ।

प्रसूता हितमाहारं विहारं च समाचरेत् ।
व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां विवर्जयेत् ॥ २ ॥ मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते । स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ३ ॥

भाषा-प्रसूता नारी हितकारी भोजन और विहार करे और व्यायाम, मैथुन (भोग), गुस्सा और ठंड खाना इत्यादिक न करे. चित्तके विपरीत भोजन करनेसे उसे जो रोग उत्पन्न होता है वह कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होता है इसी लिये पथ्य करना उचित समझा जाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

प्रसूतायाः नियमसमयावधिमाह ।

सर्वतः परिशुद्धास्यात्स्निग्धपथ्याल्पभोजना ।
स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ ४ ॥ सर्वतः परिशुद्धा तु अवसृष्टदुष्टरुधिरा । अतन्द्रिता सावधाना ॥

भाषा-सर्वतः शुद्ध होनेके अनंतर अर्थात् दुष्ट रुधिर आदिक निकलकर शुद्ध हुई प्रसूता स्त्री एक मासपर्यंत सावधानीसें स्निग्ध पथ्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(घृतादि चिकना पथ्य) और कम भोजन करे और नित्यप्रति स्वेद (पसीना) निकलवानेके लिये अंगमें रोगन (तेल) की मालिश करे ॥४॥

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे । सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ५ ॥ व्युपद्रवां विशुद्धां च विज्ञाय वरवर्णिनीम् । ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो नियमं परिहारयेत् ६॥

भाषा–प्रसूता नारी डेढ मासके अंतमें अथवा पुनः मासिकधर्म रजोदर्शनके होनेपर सूतिकानामसे रहित होती है अर्थात् प्रसूताके आचरणसे छूट जाती है यह धन्वन्तरिजीका कथन है. स्त्री उपद्रवोंसे रहित शुद्ध शरीरवाली समझकर चार मासोंके पश्चात् (पीछे) प्रसूता नारीको नियमोंका त्यागन करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ स्तन्यस्वरूपमाह ।

रसप्रसादो मधुरः पक्वाहारनिमित्तजः । कृत्स्नादेहात्स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ ७ ॥ रसप्रसादः रसस्य सारः ॥

भाषा–पारिपक्व हुए भोजनसे उत्पन्न हुआ रसोंका अत्यन्त उत्तम मधुर सार सर्व शरीरसे स्तनोंमें आकर स्तन्य (दूध) कहलाया जाता है ॥ ७ ॥

अथ स्तन्यस्य प्रवृत्त्यवधिमाह ।

स्तन्यं त्रिरात्रात्स्त्रीणां वा चतूरात्रादनन्तरम् । प्रवर्तयन्ति विवृता धमन्यो हृदये स्थिताः ॥ ८ ॥

भाषा–स्त्रीके प्रसूत होनेसे हृदयमें ठहरी हुई धमनियें विवृत (विस्तृत) होकर तीन अथवा चार रातके पश्चात् नारियोंके दूधको निकाला करती हैं ॥ ८ ॥

अथ स्तन्यप्रवृत्तिमाह ।

पयः पुत्रस्य संस्पर्शादर्शनात्स्मरणादपि । ग्रहणादप्युरोजस्य शुक्रवत्सम्प्रवर्तते । स्नेहो निरन्तरस्तस्य प्रवाहे हेतुरुच्यते ॥ ९ ॥

भाषा–सुतके स्पर्शसे, देखनेसे तथा स्मरण रखनेसे अर्थात् याद करनेसे और उसके कुचको ग्रहण करनेसे (पकडनेसे) वीर्यके तुल्य स्तनोंसे दूध प्रवृत्त होता है अर्थात् उतरता है. इसी हेतु पुत्रके ऊपर निरंतर स्नेह (प्रेम) करनाही दूधके प्रवाहमें कारण होता है ॥ ९ ॥

अथ स्तनस्य अल्पताहेतुमाह ।

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात् । क्रोधादत्यपतर्पणात् । स्त्रीणां स्तन्यं भवेत्स्वल्पं गर्भान्तरविधारणात् ॥ १० ॥

भाषा–पुत्रके ऊपर स्नेह न होनेसे, भयसे, शोकसे, क्रोधसे, भूंखे रहनेसे अथवा दूसरा गर्भ रहनेसे नारियोंका दूध कम हो जाता है ॥१०॥

अथ स्तन्यस्य वृद्धिहेतुमाह ।

शालिषष्टिकगोधूमान्मांसक्षुद्रझषानपि । कालशाकमलावूं च नारिकेलं कसेरुकम् ॥ ११ ॥ शृङ्गाटकं वरीं चापि विदारीकन्दमेव च । लशुनं दुग्धवृद्ध्यै स्त्री सेवेत सुमना भवेत् ॥ १२ ॥ कलमस्य तण्डुलानां कलकं या क्षीरे पेषितं पिबति । सा भवति भृशं तरुणी क्षीरभरेणैव तुङ्गकुचयुगला ॥ १३ ॥

भाषा–शालिधान्य, साठीके चाँवल, गोधूम (गेहूं) मांस, छोटी मछली, मरसाका साग, रामतुरई (सुराई), नारियल, कसेरू, सिंघाडा, सतावर, विदारीकन्द तथा पियाज, लहसन, इत्यादिक चीजोंको स्त्री क्षरि वढानेके लिये सेवन करे तथा प्रसन्न रहे. जो नारी कलमके चावलोंको क्षरिके संग मथन करके पिया करती है अर्थात् दूधके साथ पीसकर पीती है वह क्षीरके बोझसे उन्नत दोनों स्तनवाली होती है ॥ ११–१३ ॥

कलमो धान्यविशेषस्तस्य लक्षणमाह ।

कलमः कलिविख्यातो जायते स बृहद्वने । काश्मीरदेशे एवोक्तो महातण्डुलसंज्ञकः॥१४॥

भाषा–कलम एक धान्य होता है, उसके लक्षण ये हैं कि, यह कलम कलि नाम करके प्रसिद्ध है और यह वडे २ वनोंमें उत्पन्न होता है और यही काश्मीर देशमें महातंडुल नाम करके प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदारीकन्दस्य रसं पिबेत्स्तन्यस्य वृद्धये । तच्चूर्णं तस्य वृद्ध्यर्थं पिबेद्वा क्षीरसंयुतम् १५

भाषा-दूधके बढनेके हेतु विदारीकन्दका रस पीवे अथवा उसके चूर्णको क्षीरके सहित पीवे तो स्त्रियोंका दूध बढ जाता है ॥ १५ ॥

अथ स्तन्यस्य दुष्टताहेतुमाह ।

धात्र्या गुरुभिराहारैर्विहारैर्दोषलैस्तथा । देहे दोषाः प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ १६ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः । दूषयन्ति पयस्तेन शरीरे व्याधयः शिशोः ॥ १७ ॥

भाषा-गरिष्ठ और दोषयुक्त भोजनादि करनेसे तथा अयोग्य विहारोंसे माताके शरीरमें दोष कुपित होते हैं उससे क्षीर (दूध) बिगड जाता है. मिथ्या आहार विहार अर्थात् विपरीत भोजनादि विहार करनेवाली नारीके वात आदिक दोष अत्यन्त बिगडकर क्षीरको बिगाड डालते हैं. उस दूषित दूधके पीनेसे बच्चोंके शरीरमेंभी अनेक बीमारियां उत्पन्न होती हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ दुष्टस्तन्यस्य लक्षणमाह ।

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् । पित्तादम्लं च कटुकं राज्योऽभ्भसि तु पीतिकाः ॥ १८ ॥ कफदुष्टं तु यत्तोये निमज्जति च पिच्छिलम् । द्वन्द्वजं तु द्विलिङ्गं स्यात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ १९ ॥

भाषा-पवनसे बिगडा हुआ क्षीर (दूध) कषैला और जलमें तैरनेवाला होता है, पित्तसे बिगडा हुआ अमरसके समान खट्टा और कटु (कडुआ) और जलमें डाल देनेसे उसमें पीतवर्णवाली राजि होंय और कफसे बिगडा हुआ दूध स्निग्ध (चिकना) और जलमें डाल देनेसे डूब जानेवाला होता है. दो दोषोंसे बिगडा हुआ दूध दोनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त और तीनों दोषोंसे बिगडा हुआ दूध तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ दुष्टस्तन्यस्य शोधनविधिमाह ।

धात्री क्षीरविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी । भार्ङ्गीदारुवचाः पिष्ट्वा पिबेत्साऽतिविषास्तथा ॥ २० ॥ पाठामूर्वाब्दभूनिम्बैर्दारुशुण्ठीकलिङ्गकैः । सारिवामत्स्यपित्ताख्यैः क्वाथः स्तन्यविशोधनः ॥ २१ ॥ मत्स्यपित्ता कटुकी ॥

भाषा-धात्री (धाय) क्षीरको शुद्ध करनेके लिये मूंगके यूषको पीवे अथवा भारंगी, देवदारु, वच और अतीस इनको पीसकरके पीवे अथवा पाढा (पाढर), मूर्वा (चुरनिहार), नागरमोथा, चिरायता, देवदारु, सोंठ, इन्द्रजौ, सारिवा (अनन्तमूल) और कुट्की इन वस्तुओंका क्वाथ दूधको शुद्ध करनेवाला प्रसिद्ध है ॥ २० ॥ २१ ॥

पटोलनिम्बासनदारुपाठा मूर्वा गुडूची कटुरोहिणी च । सनागरं च क्वथितं च तोये धात्री पिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः ॥ २२ ॥

भाषा-परवल, नींव, पीतशाली, देवदारु, पाढर, चुरनिहार, नींवकी गिलोय, कुट्की और सोंठ इन सब वस्तुओंके काढेको धाय दुग्धको शुद्ध करनेके अर्थ पीवे ॥ २२ ॥

अथ शुद्धस्तन्यस्य लक्षणमाह ।

नीरे स्तन्यं यदेकीस्यादविवर्णमतन्तुमत् । पाण्डुरं तनु शीतं च तद्दुग्धं शुद्धमादिशेत् २३ ॥

भाषा-जो दूध जलमें छोड देनेसे मिल जाय, वर्ण न बदले अर्थात् अन्य रंगका न होय, तंतु (तार) न छूटे, सफेद रंगका, पतला और ठंडा हो वह दूध शुद्ध जानना चाहिये ॥ २३ ॥

धात्रीलक्षणमाह ।

पीताय यदि बालस्य विदध्यादुपमातरम् । सुविचार्य गुणान्दोषान्कुर्याद्धात्रीं तदेदृशीम् ॥ २४ ॥ सवर्णां मध्यवयसां सच्छीलां मुदितां सदा । शुद्धदुग्धां बहुक्षीरां सवत्सामतिवत्सलाम् ॥ २५ ॥ स्वाधीनामल्पसन्तुष्टां कुलीनां सज्जनात्मजाम् । कैतवेन परित्यक्तां निजपुत्रदृशं शिशौ ॥ २६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-जो बच्चोंको क्षीर पिलानेके वास्ते धाय रक्खे तो गुण और अवगुणोंको सोच समझकरके इस तरह रक्खे कि अपनी अपनी जातिकी, तरुणावस्थावाली (जवानीकी उमरवाली), सरल स्वभाववाली, सर्व कालमें आनन्दित रहनेवाली, शुद्ध तथा अधिक क्षीरवाली, सन्तानयुक्त, अधिक प्रीति करनेवाली, स्वाधीन (अपने आधीन), अल्प मिलनेसेभी सन्तोष करनेवाली, कुलवान्, सज्जन पुरुषकी सुता (कन्या), छलकपटकरके रहित और अन्य बालकोंको अपने सुतके तुल्य समझनेवाली ऐसी स्त्रीको धाय रखनी चाहिये ॥ २४-२६ ॥

अथ निषिद्धां धात्रीमाह ।

शोकाकुला क्षुधार्ता च श्रान्ता व्याधिमती सदा । अत्युच्चा नितरां नीचा स्थूलातीव भृशं कृशा ॥ २७ ॥ गर्भिणी ज्वरिणी चापि लम्बोन्नतपयोधरा । अजीर्णभोजिनी चापि तथा पथ्यविवर्जिता ॥ २८ ॥ आसक्ता क्षुद्रकार्येषु दुःखार्ता चञ्चलापि च । एतासां स्तन्यपानेन शिशुर्भवति सामयः ॥ २९ ॥

भाषा-जो स्त्री शोकसे व्याकुल, भूंखसे पीडित, किसी प्रकारसे थकित हुई, सर्व काल रोगयुक्त, अधिक ऊंची, अधिक नीची, अत्यन्त स्थूल (मोटी), अत्यन्त कृश (दुर्बल, पतली) गर्भवती, ज्वरयुक्त, लंबे और ऊंचे कुचोंवाली, अजीर्णमें आहार करनेवाली, पथ्यसे रहित, छोटे २ कार्य करनेवाली, दुःखसे पीडित और चपल हो ऐसी धायका क्षीर पीनेसे शिशु (बालक) रोगयुक्त होता है ॥ २७-२९ ॥

अथ बालस्य स्तन्यपानविधिः ।

तत्र माता प्रशस्ताङ्गी चारुवस्त्रा पुरोमुखी । उपविश्यासने सम्यग्दक्षिणं स्तनमम्बुना ॥ ३० ॥ प्रक्षाल्येषत्परिस्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम् । उदङ्मुखशिशुं क्रोडे शनैः सन्धार्य पाययेत् ॥ ३१ ॥ माता इत्युपलक्षणम् । धात्री च ईषत्परिस्राव्य ॥

भाषा-अत्यन्त प्रशस्त अंगवाली जननी अथवा धाय चारु (नवीन शोभायमान) कपडोंको धारण करके, पूर्वदिशाको मुख करके, सुन्दर आसनपर स्थित होकर (बैठकर) अपने दहिने कुचाको पानीसे धोकर थोडा दुग्ध उसमेंसे निकाल देवे फिर आगे लिखे मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके उत्तर दिशाकी तरफ मुख करके बालकको धीरेसे अपनी गोदमें लिटाकर दुग्ध पिला देवे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अन्यथा वैगुण्यमाह सुश्रुतः ।

अस्रावितं स्तनं बालः पिबन्स्तन्येन भूयसा । पूर्णस्रोता वमीकासश्वासैर्भवति पीडितः ३२॥

भाषा-स्तनोंमेंसे किंचित् दूध निकाले विना बालकको दूध पिलाया जावे तो वह दूध वैगुण्य करता है इसके विषयमें सुश्रुतजी यों कहते हैं कि, जिसमेंसे प्रथम थोडा दूध न निकाला होय ऐसे स्तनके दूधको बालक पीवे तो उससे शरीरके स्रोत (नाडी) के पूर्ण हो जानेसे वमन, खांसी तथा श्वाससे बालक पीडित हो जाता है ॥ ३२ ॥

स्तन्याभिमन्त्रणमाह ।

क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तु स्तनयोः क्षीरपूरकः । सदैव सुभगो बालो भवत्वेष महाबलः ॥ ३३ ॥ पयोऽमृतसमं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ! । दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राप्यामृतं यथा ॥३४॥ इमौ मन्त्रौ पित्रा अन्येन वा ब्राह्मणेन पठनीयौ । यावत् मन्त्रपाठस्तावत् मात्रा धात्र्या वा दक्षिणहस्तेन स्तनस्पर्शः कार्यः ॥

भाषा-हे शुभानने ! तेरे दोनों स्तन क्षीरनीरनिधि (पयोनिधि तथा जलधि) के सदृश दुग्धसे परिपूर्ण रहें और यह बालक (सन्तान) सर्व काल अत्यन्त सुन्दर और अधिक बलयुक्त होवे जैसे देव अमृतका पान करके आयुष्मान् हो गये हैं उसी तरह अमृतके तुल्य आपके दूधको पीकर यह बालक बडी उमरवाला होवे. इन मंत्रोंको बाप या और कोई ब्राह्मण पठन करें (पढे) और जबतक मंत्र पढा जाय उस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समयतक जननी अथवा धाय अपने दहिने कर (हाथ) से अपने दाहिने कुचाको थामे रहे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ जनन्याः क्षीराभावे धात्र्याश्चालाभे प्रकारमाह ।

क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा । दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्वालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया ॥ ३५ ॥ क्षीरसात्म्यतयेति । यतः शिशोः क्षीरमेव सात्म्यं भवति न तु अन्नादिकम् । आस्तन्यपर्याप्तेरिति यावत् स्त्रियाः स्तन्यस्य सन्ततभावेन प्राप्तिर्भवति । अथ यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता तावदित्यर्थः ॥

भाषा-जननी अथवा धायके दुग्ध न प्राप्त होनेपर जबतक माताके दुग्ध हो आवे अथवा बालक दुग्ध पीनेके लायक हो तबतक छेरी (बकरी) अथवा गायका क्षीरही मात्राके अनुमान बालकको पिलाना चाहिये क्योंकि बच्चोंको प्रकृतिके अनुसार दुग्धही सात्म्य होता है, अन्नादिक नहीं ॥ ३५ ॥

अथ बालस्य अन्नप्राशनसमयः ।

यथोक्तविधिना बालं मासि षष्ठेऽष्टमेऽपि च । अन्नंसंप्राशयेत् किञ्चित्ततस्तद्वर्धयन् क्रमात् ३६

भाषा-छठे अथवा आठवें मासमें शास्त्रोक्त विधिके आनुसार बच्चेको कुछ अन्न खानेको देवे फिर नित्यप्रति क्रमानुसार उसको बढावे ॥३६॥

अथ बालस्य परिचर्याविधिः ।

बालमङ्के सुखं दध्यान्न चैनं तर्जयेत् क्वचित् । सहसा बोधयेन्नैव नायोग्यमुपवेशयेत् ॥ ३७ ॥ अयोग्यं उपवेशनासमर्थम् ॥

भाषा-बच्चेको आनन्दपूर्वक अपनी गोदमें बिठलाकर खुश करना चाहिये, उसको कभी नहीं घुडके और वह सो रहा हो तो जहांतक हो सके वहांतक सहसा उसको न जगाना चाहिये और बैठे रहनेकी शक्तिसे रहित अर्थात् बैठनेकी सामर्थ्य न हो तो कभी उसे नहीं बिठलाना चाहिये ॥ ३७ ॥

नाकृष्य स्थापयेत्क्रोडे न क्षिप्रं शयने क्षिपेत् । रोदयेन्न क्वचित्कार्ये विधिमावश्यकं विना ॥ ३८ ॥ आवश्यको विधिः भेषजदानतैलाभ्यङ्गोद्वर्तनादि ॥

भाषा-घसीटकर बालकको गोदमें कभी न बैठावे और शीघ्रही बिस्तरेपर बच्चेको न डाल देवे और आवश्यक (औषधि देना तेलादि लगाना इत्यादि) विधि (प्रसंग) के विना कभी न रुलाना चाहिये ॥ ३८ ॥

तच्चित्तमनुवर्तेत तं सदैवानुमोदयेत् । निम्नोच्चस्थानतश्चापि रक्षेद्बालं प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥

भाषा-उसके इच्छानुसार कार्य करना आवश्यक है, सर्व काल उसको खुशी रखना चाहिये और तले तथा ऊपरके मकान आदिसे बच्चोंकी यत्नपूर्वक रक्षा करना चाहिये ॥३९॥

बालस्य स्वभावतो हितान्याह ।

अभ्यङ्गोद्वर्तनं स्नानं नेत्रयोरञ्जनं तथा । वसनं मृदु यत्तच्च तथा मृद्वनुलेपनम् । जन्मप्रभृति पथ्यानि बालस्यैतानि सर्वथा ॥ ४० ॥

भाषा-अंगमें तेल मलना, उबटन करना, स्नान, आंखोंमें काजल लगाना, मृदु (कोमल) तथा नवीन वस्त्र पहराना और कोमल पदार्थोंका लेपन ये सम्पूर्ण वस्तुयें बच्चोंको जन्मसमयसेही हितकारी हैं ॥ ४० ॥

बालस्य कवलादेः समयमाह ।

कवलः पञ्चमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्म च । विरेकः षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम् ॥ ४१ ॥

भाषा-बालकको औषधि आदि कवलविधि (कवल धारण) करनी होय तो पांचवें वर्षके उपरांत करे, नस्यकर्म करना होय तो आठवें वर्षके उपरांत करे, विरेचन (जुलाब) करना होय तो सोलहवें वर्षके अनंतर करे और वह मैथुनकर्म बीस वर्षके उपरांत करे. इन अवधियोंके पहिले इन कर्मोंके करनेसे शरीरमें विकार उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाल्यादेरवधिमाह सुश्रुतः ।

वयस्तु त्रिविधं बाल्यं मध्यमं वार्धकं तथा । ऊनषोडशवर्षस्तु नरो बालो निगद्यते ॥ ४२ ॥ त्रिविधः सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथान्नभुक् । दुग्धाशी वर्षपर्यन्तं दुग्धान्नाशी शरद्वयम् । तदुत्तरं स्यादन्नाशी एवं बालस्त्रिधा मतः ॥ ४३ ॥

भाषा–सुश्रुत कहते हैं कि अवस्था तीन तरहकी प्रसिद्ध हैं प्रथम बाल्यावस्था, दूसरी तरुणता (जवानी) और तीसरी वृद्धावस्था (बुढापा). सोलह वर्षसे कम आयुवाला बालक कहलाता है और बालकभी तीन तरहका होता है, प्रथम दुग्ध पीनेवाला, दूसरा दुग्ध और अन्न दोनोंका पान करनेवाला और तीसरा अन्नही खानेवाला होता है. एक सालतक क्षीर पीनेवाला, दो सालतक दुग्ध और अन्नादि भोजन करनेवाला और इसके पश्चात् केवल भोजन करनेवाला होता है इस प्रकार तीन तरहके बच्चे होते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

मध्ये षोडशसप्तत्योर्मध्यमः कथितो बुधैः । चतुर्धा मध्यमो वृद्धियुवापूर्णक्षयान्वितः ॥ भवेदाविंशतिं वृद्धिः युवा द्वात्रिंशतो मतः ४४॥ चत्वारिंशत्समा यावत्तिष्ठेद्वीर्यादिपूरितः । ततः क्रमेण क्षीणः स्याद्यावद्याति सप्ततिः ॥ ४५ ॥ वीर्यादि इति । आदिशब्देन रसादिसर्वधात्विन्द्रियबलोत्साहा उच्यन्ते । क्षीणः सर्वधात्विन्द्रियबलोत्साहहीनः ॥

भाषा–सोलह और सत्तर सालके मध्यमें मध्यम कहा जाता है और वह चार तरहका होता है प्रथम युवा, दूसरा वृद्धि तथा तीसरा पूर्ण और चौथा क्षययुक्त. बीस सालतक वृद्धि होता है, ३२ बत्तीस सालतक तरुणता (युवापन) रहती है और चालीस सालतक वीर्यादिकोंसे पूर्ण रहा करता है पश्चात् क्रमानुसार सब धातु और इन्द्रियां तथा ताकत और उत्साह (उमंग) से ७० सत्तर सालतक क्षीण हो जाता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

ततस्तु सप्ततेरूर्ध्वं क्षीणधातुरसादिकः । क्षीयमाणेन्द्रियबलः क्षीणरेता दिने दिने ॥ ४६ ॥ वलीपलितखालित्ययुक्तः कर्मसु चाक्षमः । कासश्वासादिभिः क्लिष्टो वृद्धो भवति मानवः ॥ ४७ ॥

भाषा–सत्तर ७० सालके बीत जानेपर धातु, रस आदि क्षीण हो जाते हैं, दिनोंदिन इन्द्रियोंका बल क्षीण होता है. वीर्यभी क्षीण होता है. वृद्ध मनुष्य वली (गुजलट), पलित (बालोंका पकना), खालित्य (वांयटे) आदिसे युक्त, कामोंमें अशक्त और खांसी तथा सांस आदिकोंसे रोगयुक्त पुरुष वृद्ध कहलाया जाता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

बाल्ये विवर्धते श्लेष्मा पित्तं स्यान्मध्यमेऽधिकम् । वार्धके वर्द्धते वायुर्विचार्य्यैतदुपक्रमेत् ॥ ४८ ॥ उपक्रमेत् चिकित्सेत् ।

भाषा–बाल्यावस्थामें श्लेष्मा वृद्धिको प्राप्त होता है, तारुण्य (जवानी) में पित्त अत्यन्त होता है और बुढापेमें पवन अधिक बढता है इतना स्मरण करके चिकित्सा करना चाहिये ॥ ४८ ॥

तन्त्रान्तरे तु ।

बाल्याद्वृद्धिश्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ । बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत् ॥ ४९ ॥

भाषा–और शास्त्रमें कहाभी गया है कि बाल्य, वृद्धि, छवि, मेधा, त्वचा, दृष्टि, वीर्य, ताकत, बुद्धि, कर्मेन्द्रियां, मन और जीव ये सम्पूर्ण उत्पन्न होतेही क्रमानुसार दश २ सालमें कम होते जाते हैं ॥ ४९ ॥

अथ प्रकृतयः ।

सप्त प्रकृतयो नृणां वातात्पित्तात्कफात्तथा । संसर्गात्सन्निपाताच्च भवन्ति भिषजां मते ५० शुक्रशोणितसंयोगे यो दोषस्तूत्कटो भवेत् । प्रकृतिर्जायते तेन तस्या लक्षणमुच्यते॥५१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-पुरुषोंकी सात प्रकृतियें होती हैं वातसे, पित्तसे, कफसे, द्वंद्वज (तीनोंके भिन्न भिन्न संसर्गसे) और सन्निपात (तीनोंके संयोग) से एवं ७ प्रकृतियें होती हैं. वीर्य और रजके संयोगके समयमें जो दोष अधिक होता है उस दोषके अनुसार प्रकृति होती है, उसके लक्षण कहते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

वाग्भटे तु आत्रेयादयः ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयान्तरे । यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सर्वथोदिता ॥ ५२ ॥ सोऽपि दोषः स्वभावावस्थितो न तु दुष्टः दुष्टेन तु शुक्रशोणितयोर्दुष्टौ शुद्धगर्भासम्भवात् ॥

भाषा-वाग्भटमें आत्रेय आदिकोंने कहाभी है कि वीर्य, रज तथा गर्भिणीके आहार और विहारके द्वारा गर्भाशयमें जिस दोषकी वृद्धि होती है तिसीके समान प्रकृति होती है. वह दोषभी स्वभावमें स्थित अर्थात् स्वाभाविक समझा जाता है न कि रोगयुक्त, क्योंकि दोषोंके मिल जानेसे तो विगडे हुए वीर्य और रजसे अशुद्ध गर्भका होना सम्भव है ॥ ५२ ॥

वातादिप्रकृतयः ।

जागरूकोऽल्पकेशश्च स्फुटितांघ्रिकरः कृशः । शीघ्रगो बहुवाग्रूक्षः स्वप्ने वियति गच्छति । एवंविधः स विज्ञेयो वातप्रकृतिको नरः॥५३॥

भाषा-अधिक जागरण करनेवाला, सूक्ष्म केशवाला, फटे हुए हाथ तथा पैरवाला, कृश तथा निर्बल, जल्दी चलनेवाला, अधिक वार्त्तालाप करनेवाला, रूखा, स्वप्नमें आकाशमें चलनेवाला पुरुष वातप्रकृतिवाला जानना ॥५३॥

पित्तप्रकृतिलक्षणम् ।

पित्तप्रकृतिको लोको यादृशोऽथ निगद्यते । अकालपलितो गौरः क्रोधी स्वेदी च बुद्धिमान् ॥ ५४ ॥ बहुभोक्ताक्षनेत्रश्च स्वप्ने ज्योतींषि पश्यति । एवंविधो भवेद्यस्तु पित्तप्रकृतिको नरः ॥ ५५ ॥

भाषा-अकालमेंही पलित (सफेद वालवाला), गौरवर्णवाला, गुस्सा करनेवाला, अधिक प्रस्वेद (पसीना) आनेवाला, शुद्धबुद्धिवाला (परम चतुर), अधिक आहार करनेवाला, स्वप्नमें तेजों (अग्नि, बिजली, सूर्य आदिक ज्योतियों) को देखनेवाला पुरुष पित्तप्रकृतिवाला जानना ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

कफप्रकृतिलक्षणम् ।

श्यामकेशः क्षमी स्थूलो बहुवीर्यो महाबलः । स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ ५६ ॥ दृश्यते प्रकृतौ यत्र रूपं दोषद्वयस्य तु । द्विसंसर्गेण जानीयात्सर्वलिंगैस्त्रिदोषजम् ॥ ५७ ॥

भाषा-श्याम (काले) बालोंवाला, क्षमा करनेवाला, मोटा, गाढे वीर्यवाला, अत्यन्त बलवान्, स्वप्न (ख्वाब) में जलाशयों (नदी, तालाव, समुद्र आदिकों) को देखनेवाला पुरुष कफप्रकृतिवाला जानना और जिसकी प्रकृतिमें दो दोषोंका लक्षण दिखलाई पडे उसको द्वंद्वज प्रकृतिवाला और जिसमें सबके चिह्न दिखलाई पडें तो उसको त्रिदोषज प्रकृतिवाला समझना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

वाग्भटे तु ।

विभुत्वादाशुकारित्वाद्बलित्वादल्पकोपनात् । स्वातन्त्र्याद्बहुरोगत्वाद्दोषाणां प्रबलोऽनलः५८

भाषा-वाग्भटमें ऐसा कहा है कि सर्वव्यापक होना, शीघ्रकारी होना, बली होना, कुपित कम होना, स्वातंत्र्य होना और अधिक रोगोंको उत्पन्न करना इन सब गुणोंसे पवन सब दोषोंमें बलवान् है ॥ ५८ ॥

वातप्रकृतिलक्षणानि ।

प्रायस्त एव पवनाध्युषिता मनुष्या । दोषात्मकाः स्फुटितधूसरकेशगात्राः । शीतद्विश्रलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टाः सौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः ॥ ५९ ॥ अल्पपित्तबलजीवितनिद्राः सत्त्वशक्तबहुजल्परवार्चः नास्तिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुभुजः सविलासा गीतहास्यमृगयाकलिलोलाः ॥६०॥ मधुराम्लकटूष्णसात्म्यकांक्षाः कृशदीर्घाकृतयः सशब्दया (पा) नाः । न दृढा न जितेन्द्रिया न वीर्या न च कान्ता दयिता बहुप्रजा वा ॥ ६१ ॥ अक्षीणि चैषां खरधूसराणि वृत्तान्यचारूणि मृतोपमानि । उन्मीलितानीव भवन्ति सुप्ते शैलद्रुमान्ते गगने प्रयान्ति ॥ ६२ ॥ अधन्या मत्सराध्माताः स्तेनाः मोद्धृद्धपिण्डिकाः । श्वश्रृगालोष्ट्रगृध्राखुकाकोलूकाश्च वातिकाः ॥ ६३ ॥

भाषा—वाग्भट्में कहा है कि वातप्रकृतिवाले पुरुष प्रायः दोषयुक्त हुआ करते हैं और फटे गात्रवाले, धूसर केशवाले, ठंडसे वैरभाव करनेवाले, जिनकी धृति, स्मृति, बुद्धि और चेष्टा चंचल होती है ऐसे, सौहार्द (मित्रता), दृष्टि और गति (चाल) में चंचलता रखनेवाले, अधिक वार्त्तालाप करनेवाले, पित्त, कफ, जीवन तथा निद्रा ये जिनके अल्प होते हैं, जर्जरवाणीवाले अर्थात् टूटे फूटे वचन हकलाकर बोलनेवाले, नास्तिक, अधिक आहार करनेवाले, भोग आदि विषयोंसे युक्त, गानविद्यामें चतुर, अति हँसनेवाले, शिकार तथा कलि (झगडे) में अधिक रुचिवाले, मीठा, अमरस, कडुआ तथा उष्ण आहारके अभ्यास करनेमें चित्त लगानेवाले, कृश और दीर्घ आकारवाले, भाषणयुक्त गमन करनेवाले (पानी आदि पदार्थ पीनेमें शब्द करनेवाले), धैर्यतासे रहित, अजितेंद्रिय (इन्द्रियोंको न विजय करनेवाले), वीर्यहीन, पत्नियोंके प्रेमसे विरक्त, अधिक संतानोंसे हीन, रूखे, धूसर, गोल, शोभासे हीन तथा मृतकोंके तुल्य आंखोंवाले, शयनके वश हो जानेसे खुली खुलीसी आखोंवाले, स्वप्न (ख्वाब) में पर्वत वृक्ष तथा आकाशमें चलनेवाले, कीर्तिहीन, वैरभावयुक्त, तस्कर (चोरी करनेवाले,) ऊंची पिंडलीवाले इन सबोंको वातप्रकृतिवाले बुद्धिमानोंको जानना चाहिये और कूकर (कुत्ता), शृंगाल (गीदड), ऊंट, गृध्र, मूषक (चूहा,) काग, उलूक (उल्लू) इनके सदृश वातप्रकृतिवाले हुआ करते हैं अर्थात् इनकेसा स्वर रूप आदि वातप्रकृतिवाले मनुष्यक होते हैं ॥ ५९-६३ ॥

पित्तप्रकृतिलक्षणानि ।

पित्तं वह्निर्वह्निजं चैतदस्मात् पित्तोद्रिक्तस्तीव्रतृष्णो बुभुक्षुः । गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्तांघ्रियुग्मः शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा ॥ ६४॥ दयितमाल्यविलेपनमण्डनः सुचरितः शुचिराश्रितवत्सलः । विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवति भीषु गतिर्द्विषतामपि ॥ ६५ ॥ मेधावी प्रशिथिलसन्धिबन्धमांसो नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः । आवासश्चलिततरंगनीरकेषु भुंक्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ६६ ॥ धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धिर्भूर्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः । सुप्तः पश्येत्कर्णिकारान्पलाशान् दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥६७॥ तनूनि पिङ्गानि चलानि चैषां तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि । क्रोधेन मद्येन खेदैश्च भासा रागं व्रजन्त्याशु विलोचनानि ॥ ६८ ॥ मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेशभीरवः । व्याघ्रर्क्षकपिमार्जारवृकानूकाश्च पैत्तिकाः ६९॥

भाषा—पित्त वह्निरूप (अग्निरूप) है अथवा वह्नि (अग्नि) से उत्पन्न हुआ है. इसीसे पित्तप्रकृतिवाला मनुष्य तीव्र तृषावाला, अधिक भूंखवाला, गौर वर्णवाला, उष्ण अंगवाला, रक्त (लाल) हाथोंवाला तथा लाल पैरोंवाला, शूर, गर्व करनेवाला (अभिमानी), पीले बालोंवाला, सूक्ष्म रोगवोंवाला, फूलोंका हार तथा सुगन्धित आदि वस्तुओंके लेपोंसे प्रीति करनेवाला, सदाचारी, शुद्धाचरणोंका पालन करनेवाला, आश्रितोंपर दया करनेवाला, अनेक प्रकारके ऐश्वर्य्यादि, साहस (हिम्मत) तथा चतुरतासे युक्त, बलधारियोंमें अधिक बलवान्, दुश्मनोंकोभी डरमें सहायता करनेवाला, तीव्र बुद्धिवाला, शिथिल सन्धिबन्धन तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मांसवाला, पत्नियोंको अप्रिय, सूक्ष्म वीर्यवाला, थोडे कामदेववाला, चपल तरंगोंसे युक्त पानीमें रहनेवाला, मीठा, कषैला, तिक्त तथा ठंडा आहार करनेवाला, धर्मद्वेषी, अधिक पसीनेवाला, दुर्गंधसे युक्त देहवाला, मल, गुस्सा, पान तथा आहार अधिक करनेवाला, बहुत वैरभाव करनेवाला, स्वप्न (ख्वाब) में कनेर, टेसूके पुष्प, दिग्दाह, उल्का, बिजली, रवि और अग्निको देखनेवाला होता है, तथा उसके नेत्र अतिसूक्ष्म, पीले रंगवाले, चपल, (चञ्चल) तनु तथा सूक्ष्म पलकवाले और शीतलतासे प्रीति करनेवाले और गुस्सा और मद्यसे भानुकी अत्यन्त तेजवाली किरणोंके सदृश रक्त आभावाले होजाते हैं तथा वे मध्यम आयुवाले बलयुक्त, पंडित तथा क्लेशसे भय पानेवाला होते हैं. सिंह, रीछ, कपि (बन्दर), मार्जार (बिल्ली) और भेडिया इनकीसी प्रकृतिवाले होते हैं ॥ ६४-६९ ॥

कफप्रकृतिलक्षणानि ।

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो गूढस्निग्धश्लिष्टसन्ध्यस्थिमांसः । क्षुत्तृट्दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसन्धः ॥ ७० ॥ प्रियङ्गुदूर्वाशरकाण्डदर्भगोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः । प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षा महाललाटो घननीलकेशः ॥ ७१ ॥ सुदृङ्गः समसुविभक्तचारुदेहो बह्वोजा रतिरसयुक् सपुत्रभृत्यः । धर्मात्मा वदति न निष्ठुरं तु जातु प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरं च वैरम् ॥ ७२ ॥ समदद्विरदेन्द्रतुल्ययानो जलदाम्भोधिमृदङ्गशङ्खघोषः । स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥ ७३ ॥ तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्षमल्पं च भुंक्ते बलवांस्तथापि । रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घसुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः ॥ ७४ ॥ अल्पाहारक्रोधपानाशनेहः प्रज्ञावित्तो दीर्घसूत्रो वदान्यः । हृद्गम्भीरः स्थूलवक्षाः क्षमावान्निद्रालुश्चालुब्धवृत्तः कृतज्ञः ॥ ७५ ॥ ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जो भक्तो गुरूणां स्थिरसौहृदश्च । स्वप्ने सपद्मान् सविहङ्गमालांस्तोयाशयान्पश्यति तोयदांश्च ॥ ७६ ॥ विष्णुरुद्रेन्द्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः । श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः ॥ ७७ ॥

भाषा-श्लेष्मा सोम (चंद्र) रूप होता है इसी कारणसे कफप्रकृतिवाला पुरुष सौम्य होता है और उस देहकी सन्धि तथा अस्थि (हड्डी) गूढ होती हैं अर्थात् दिखलाई नहीं देती हैं और मांस स्निग्ध (चिकना) होता है और वह भूख, प्यास और मानसिक तथा बाह्य दुःखोंसे संतप्त होताही नहीं है तथा बुद्धिवान्, सात्त्विक गुणोंसे युक्त और सत्य भाषण कहनेवाला होता है, कांगनी, दूब, शरकण्डा, कुश, गोरोचन, कमल तथा सुवर्ण इनके तुल्य उसके शरीरका रंग होता है. उसकी बाहु दीर्घ तथा वक्षःस्थल (सीना) पुष्ट (मोटा) और चौडा तथा अधिक बडा होता है और केश काले रंगके और बहुत होते हैं. उसका अंग अत्यन्त कोमल और शरीर डीलडौलका एकसा अत्यन्त शोभायमान होता है. वह अधिक ओज (सामर्थ्य) से युक्त तथा शृंगाररससे युक्त होता है, लडके बहुत होते हैं और नौकर चाकरभी बहुत होते हैं और वह परोकारी तथा धर्मात्माभी होता है, कभी किसीसे कडा शब्द नहीं बोलता है और वैरभावको गुप्त हृदयमें धारण करे रहता है और सन्तोषभी रखनेवाला होता है और उसका चलना मत्त द्विरदेन्द्रके तुल्य अर्थात् मतवाले हाथीके समान होता है और उसका शब्द मेघ, समुद्र, मृदंग तथा शंखध्वनिके समान गम्भीर होता है और वह स्मरणीय शक्तिसे युक्त तथा उद्यमयुक्त होकर अधिक सुशील होता है, बाल्यावस्थामें अधिक रुदन न करनेवाला अर्थात् बहुत नहीं रोनेवाला होता है और चञ्चलताहीन होता है, मीठा कडुआ, कषैला, उष्ण, रूखा और अल्प आहार करनेवाला होता है, थोडा भोजन करनेपरभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वलयुक्त रहा करता है और उसके नेत्र (आंखें) भीतर कोनेकी तरफ रक्तवर्ण, स्निग्ध, दीर्घ, लम्बे, सफेद, काले तथा अधिक पलकोंवाले होते हैं और भोजन गुस्सा, प्यास, शब्द और वैर ये स्वल्प होते हैं और वह प्रज्ञावान् (दूरदर्शी) तथा दीर्घसूत्री (काम करनेमें अधिक देर करनेवाला), उदार, गंभीरचित्त, चौडी छातीवाला, शान्तियुक्त, वहुत सोनेवाला, लोभहीन, कृतज्ञ, सीधा, पंडित, अत्यन्त सुन्दर और लज्जा करनेवाला, गुरुकी सेवा करनेवाला और निश्चल प्रीतिवाला होता है और स्वप्न (ख्वाब) में पद्म (कमल) तथा पानीके जीवजन्तुओंसे युक्त तालावोंको तथा मेघोंको देखता है. कफप्रकृतिवाले विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, गरुड, हंस, ऐरावत, केहरि, तुरंग, गाय तथा वैल इनके सदृश प्रकृतिवाले होते हैं ॥ ७०-७७ ॥

ननु प्रकृतिहेतूनां मध्ये योऽधिकः स स्वव्याधीन्कर्यं न करोति इत्याशङ्कायामाह । विषजातो यथा कीटो न विषेण प्रबाध्यते । तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शकुवन्ति न बाधितुम् ॥ ७८ ॥

भाषा-यह भ्रम उत्पन्न हो सक्ता है कि प्रकृति होनेके कारणों (वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों) मेंसे जो कारण (दोष) प्रकृतिरूपसे अधिक होता है वह अपने अपने रोगोंको क्यों नहीं उत्पन्न करता है तो इसके उत्तरमें यह कहते हैं कि जैसे विष (जहर) से उत्पन्न हुआ कीट (कीडा) जहरसे अधिक रोगयुक्त नहीं हुआ करता है और इसी तरह प्रकृतीके कारण वातादिकभी पुरुषको अधिक वाधित नहीं कर सकते हैं ॥ ७८ ॥

एतौ द्वौ नञौ अपि ईषदर्थे । तेन विषेण विषजदाहादिना ईषत् प्रबाध्यते, न तु भृशम् । तथा च प्रकृतयः प्रकृतिहेतवो दोषाः बाधितुं न शकुवन्ति । करचरणस्फुटितत्वस्वेदनिद्रादिना ईषद् बाधितुं शकुवन्त्येव, न तीव्रभिः ॥

भाषा-'प्रकृतिरूप हुए दोषसे वाधित नहीं हो सक्ता' यह जो ऊपर कहा उसमें ऐसा समझना कि जिस प्रकार विषके कीडेको विषसे मृत्यु आदि अत्यंत बाधा नहीं होती परन्तु दाह आदि थोडी पीडा होती है, उसी प्रकार उस उस प्रकृतिवाले मनुष्योंको वह वह प्रकृतिके कारणरूप दोषोंसे ज्वर आदिकके आनेकी अत्यंत वाधा नहीं होती, परन्तु हाथ पांवका फूँटना, पसीनेका आना और निद्राकी अधिकता आदि थोडी थोडी वाधा होती है ॥

प्रकोपो वाऽन्यभावो वा शमो वा नोपजायते ।
प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ॥ ७९ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे वालप्रकरणं तृतीयम् ॥ ३ ॥

भाषा-परन्तु जो दोष प्रकृतिरूप होय उसका प्रकोप अथवा अन्यभाव वा उपशम नहीं होता परन्तु वह मनुष्य मृत्युपर्यन्त प्रकृतिके स्वभावके अनुसारही रहता है ॥ ७९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां तृतीयं वालप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थप्रकरणम् ।
[दिनचर्य्यर्तुचर्य्याख्यम्]
अथ देशाः ।

भूमिदेशस्त्रिधाऽनूपो जाङ्गलो मिश्रलक्षणः ॥ १ ॥

भाषा-पृथ्वीमें देश तीन तरहके हैं प्रथम अनूप, दूसरा जांगल और तीसरा साधारण ॥ १ ॥

तत्रानूपलक्षणम् ।

नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पलकुलैर्युतः । हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः ॥ २ ॥ शशवाराहमहिषरुरुरोहिकुलाकुलः । प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्यो नीलशस्यफलान्वितः ॥ ३ ॥ अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः । अनूपदेशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्मामयार्तिमान् ॥ ४ ॥

भाषा-जिस देशमें नदी, छोटे छोटे तालाव, और पर्वत अधिक होंय, तालाबोंमें पद्म उत्पल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खिल रहे हों और हंस, सारस, कारण्ड (बत्तक), चकवा, चकवी आदि पक्षी कलोलें कर रहे हों, खरगोश, शूकर, भैंसा, भैंस, रुरु-मृग, रोही आदि पशु अधिक हों, अधिक तरु (पेड) फूलोंसे सुशोभित हों, नीले धान और अनेक तरहके चावलोंसे युक्त खेत, केला और ऊख ये सम्पूर्ण अधिक सुंदर हों वह अनूप देश समझना चाहिये और ऐसेही देशमें वात और कफका रोग अधिक होता है ॥ २-४ ॥

अथ जाङ्गललक्षणम् ।

आकाशशुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः ।
शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कन्धुसंकुलः ॥ ५ ॥
हरिणैणर्क्षपृषतगोकर्णखरसंकुलः । सुस्वादुफ-
लवान्देशो वातलो जाङ्गलः स्मृतः ॥ ६ ॥

भाषा-जो देश आकाशके तुल्य साफ और निर्मल हो, ऊंचा हो और जिसमें जलाश्रय और पेड न्यून हों, और शमी, करील, बेल, आक और बेर सम्पूर्ण पेड अधिक उत्पन्न होते हों और जिसमें हरिण, एणनाम मृग, रीछ, पृषत (मृगविशेष), गोकर्ण (मृगभेद) और गर्दभ ये अधिक रहते हों वह देश अच्छे फलोंसे युक्त जांगल कहलाता है और वह देश वादी होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

तन्त्रान्तरे तु ।

बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोगवान् । जाङ्ग-
लोऽल्पाम्बुशाखी च पित्तासृङ्मारुतोत्तरः॥७

भाषा-शास्त्रान्तरमें तो अधिक पानी और पहाडोंसे युक्त देश अनूप कहला जाता है, इसमें कफ और पवनके रोग अधिक होते हैं और कम पानी तथा पेडवाला जांगल देश होता है और इसमें पित्त और रक्त (खून) और पवनकी अधिकता होती है ॥ ७ ॥

अथ साधारणलक्षणम् ।

संसृष्टलक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः ।
समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुताः ।
समता तेन दोषाणां तस्मात्साधारणो वरः॥८

भाषा-जिस देशमें अनूप और जांगल इन दोनों देशोंके लक्षण मालूम पडें तो उसको साधारण देश समझना चाहिये और उसमें ठंड, वर्षा, ग्रीष्म और पवन बराबर होते हैं और दोषोंके बराबर होनेके कारण साधारण देश अत्यन्त सुन्दर और उत्तम प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

सुश्रुतः ।

उचिते वर्तमानस्य नास्ति दुर्देशजं भयम् ।
आहारस्वप्नचेष्टादौ तद्देशस्य कृते सति ॥ ९ ॥

भाषा-सुश्रुत कहता है कि उचित देशमें रहना पडे तौभी उस देशमें योग्यानुसार आहार, निद्रा और विहार आदि करे फिर उस रहनेवालेको दुर्देशमें रहनेका कुछ भय नहीं रहता ॥ ९ ॥

वृद्धवाग्भटः ।

यस्य देशस्य यो जंतुस्तज्जं तस्यौषधं हितम् ।
देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥ १० ॥
स्वे देशे निचिता दोषा अन्यस्मिन् कोपमा-
गताः । बलवन्तस्तथा न स्युर्जलजाः स्थल-
जास्तथा ॥ ११ ॥

भाषा-वृद्ध वाग्भट कहते हैं कि " जो प्राणी जिस देशका होय उसको उस देशमें उत्पन्न हुई औषधि हितकारी होती है, अपने देशको छोडकर दूसरे देशमें रहता होय उसको जो औषधि अपने देशमें उत्पन्न हुई औषधिके सदृश गुणवाली होय वह औषधि हितकारी है. जलसे अथवा पृथ्वीसे उत्पन्न हुए जो वात पित्त आदि दोष अपने देशमें शरीरके भीतर बढे होंय वे दोष दूसरे देशमें जानेपर कुपित होंय तौ जैसे अपने देशमें बलवान् होते हैं तैसे दूसरे देशमें बलवान् नहीं होते " जैसे कि अनूपदेशमें रहनेवालेके शरीरके भीतर जो पित्तादि दोष बढे हों, वे दोष उस मनुष्यको जांगल देशमें जानेपर कुपित होंय तैसेही अनूपदेशमें बलवान् हुए वातादि जांगलदेशमें बलवान् नहीं हो सक्ते ॥ १० ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ दिनादिपरिचर्याः ।

मानवो येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा । तमेव कारयेद्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ १२ ॥ दिनचर्यां निशाचर्यामृतुचर्यां यथोदिताम् । आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा ॥ १३ ॥

भाषा–मनुष्य जिस प्रकार (आहार विहारादि) करनेसे सर्वदा स्वस्थ (प्रसन्न) रहे उसी प्रसार वैद्य उसका उपाय करे; क्योंकि मनुष्योंको सदैव स्वस्थ रहनेकी इच्छा होती है, जो मनुष्य शास्त्रानुसार दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या करते हैं वे मनुष्य सर्वदा स्वस्थ (निरोगी) रहते हैं, इन क्रियाओंको विना किये सदा स्वस्थ नहीं रह सक्ते ॥ १२ ॥ १३ ॥

तत्र स्वस्थस्य लक्षणमाह सुश्रुतः ।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः । प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ १४ ॥ क्रिया अत्र कर्म, तेन समक्रियः शरीरानुरूपकर्मा ॥

भाषा–सुश्रुतभी कहते हैं कि जिस मनुष्यके वात पित्त आदि दोष, अग्नि, धातु और मल समान स्थित होंय, जो मनुष्य अपने शरीरके अनुसार क्रियायें करता होय और जिसका देह इन्द्रियें तथा मन प्रसन्न होय वह मनुष्य स्वस्थ निरोगी कहाता है ॥ १४ ॥

अथ दिनचर्यामाह ।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः । तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम् ॥ १५ ॥ दध्याज्यादर्शसिद्धार्थबिल्वगोरोचनस्रजाम् । दर्शनं स्पर्शनं कार्यं प्रबुद्धेन शुभावहम् ॥ १६ ॥ स्वमाननं घृते पश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितम् । आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् । तदन्त्रकूजनाध्मानोदरगौरवनिवारणम् ॥ १७ ॥ आदिशब्देन वातमूत्रादीनां ग्रहणम् ॥

भाषा–स्वस्थ मनुष्य आयुष्यकी रक्षाके लिये चार घडीके तडके अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और उस समय दुःखकी शांतिके लिये ईश्वरका स्मरण करे; फिर जागकर दही, घी, दर्पण, सफेद सरसों, बेल, गोलोचन, फूलमाला इनका दर्शन करे, तथा स्पर्श करे इससे शुभ कार्यकी प्राप्ति होती है. जो अधिक जीवनकी अभिलाषा होय तो घीमें अपने मुखको नित्य देखे. प्रातःकाल मल, वायु तथा मूत्र आदिका विसर्जन करनेसे दीर्घायु होती है; क्योंकि इससे पेटका गुडगुडाहट, अफारा और भारीपन आदि सब दूर हो जाता है ॥ १५–१७ ॥

आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ १८ ॥ परिकर्तिका गुदे परिकर्तनवत्पीडा । पुरीषस्य सङ्गो निरोधः । ऊर्ध्ववातः उद्गारबाहुल्यम् ॥

भाषा–मलको रोकनेसे पेटका फूलना, शूल, गुदामें कतरनेके सदृश पीडा होती है, तथा डकार आने लगे और समयपर मुखमेंसे मल निकलने लगता है ॥ १८ ॥

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो ध्मानं क्लमो रुजा । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ १९ ॥ बस्तिमेहनयोः शूलो मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वंक्षणानाहः स्यालिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ २० ॥ विनामः शरीरस्य नम्रता । वंक्षणानाहः वंक्षणस्याकर्षणवत्पीडा ॥

भाषा–वात, मूत्र और मल रोकनेसे पेट फूल जाता है, ग्लानि होती है और दरदभी होता है. वायुको रोकनेसे पेटमें वायुसंबंधी अन्य रोगभी उत्पन्न हो जाते हैं. मूत्र रोकनेसे, मूत्राशयमें तथा लिंगमें शूल होता है, मूतकृच्छ्र, मस्तकमें दर्द, शरीरकी नम्रता और सम्पूर्ण सन्धियोंमें खींचनेके सदृश पीडा होती है ॥ १९ ॥ २० ॥

न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्न वेगानीरयेद्बलात् । कामशोकभयक्रोधान् मनोवेगान्विधारयेत् २१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुदादिमलमार्गाणां शौचं कान्तिबलप्रदम् । पवित्रकरमाख्यातमलक्ष्मीकालिपापहृत् ॥२२॥ प्रक्षालनं मतं पाण्योः पादयोः शुद्धिकारणम् । मलश्रमहरं वृष्यं चक्षुष्यं राजसापहम् ॥२३॥

भाषा-मल, मूत्र आदिका वेग होय तौ तुरन्त मल मूत्रका त्याग करना चाहिये; इससे पहिले अन्य कार्य न करे. वलात्कारसे (किंछकर) मलको नहीं निकाले. काम, क्रोध, भय और शोक इत्यादि मनके वेगोंको जहांतक हो सके रोकताही रहे; परन्तु मल मूत्र आदि शरीरके वेगोंको नहीं रोके. गुदादि जो मल मूत्रके मार्ग हैं उनको स्वच्छ रखनेसे कांति तथा वल बढता है; पवित्रता होती है; अलक्ष्मी, क्लेश तथा पापोंका नाश होता है; हाथ तथा पांवोंके धोनेसे शुद्धता होती है; मल और परिश्रम दूर होता है; तथा पुष्टिकर्ता है और नेत्रोंको हितकारी और रजोगुणको दूर करता है ॥ २१-२३ ॥

अथ दन्तकाष्ठविधिः ।

भक्षयेद्दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम् । कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलमृज्वग्रन्थि तथाऽव्रणम् ॥२४॥ एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन तु । दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ॥ २५ ॥ क्षौद्रत्रिकटुकाक्तेन तैलसिन्धुभवेन वा । चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत् ॥ २६ ॥ तेजोवती तेजवल्कल इति लोके प्रसिद्धा ॥

भाषा-बारह अंगुल लंबी, कनिष्ठिका अंगुलीके अग्रभागके सदृश मोटी, सीधी, गांठ और छिद्ररहित दतौन करे. नरम कूंचीसे एक एक दांतको घिसे तथा दन्त मलनेके चूर्णादिसे मसूडोंको छोडकर मले. शहद, सोंठ, मिरच और पीपल इनके मिले हुए चूर्णसे अथवा तेलकी भावना दिये हुए सेंधेनोनके चूर्णसे, वा तेज वल्कल नामक लकडीके चूर्णसे दांतोंको नित्य शुद्ध करे ॥ २४-२६ ॥

मधूको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा । निम्बः स्यात्तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ॥ २७ ॥ समयं तु समालोक्य दोषं च प्रकृतिं तथा । यथोचितै रसैर्वीर्यैर्युक्तं द्रव्यं प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥ तेनास्य मुखवैरस्यदन्तजिह्वास्यजा गदाः । रुचिवैशद्यलघुता न भवन्ति भवन्ति च ॥ २९ ॥

भाषा-मीठी दतौनोंमें महुआ, तीक्ष्णमें करंज, कडवियोंमें नीम और कसैलियोंमें खैर श्रेष्ठ है. समय, दोष और प्रकृतिको विचार करके योग्य रस और योग्य शक्तिवाले वृक्षकी लकडीकी दतौन करे और दांत स्वच्छ करनेका चूर्णभी योग्य होय तौ लेवे. इस प्रकार दतौन करनेसे मुखकी विरसता (बेजायकापना), दांत जीभ तथा मुखके रोग नष्ट होते हैं; तथा रुचि, स्वच्छता और शरीरमें हलकापन होता है ॥ २७-२९ ॥

अर्के वीर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत् । प्लक्षे चैवार्थसम्पत्तिर्बदर्य्यां मधुराशनम् ॥ ३० ॥ खदिरे मुखसौगन्ध्यं बिल्वे तु विपुलं धनम् । उदुम्बरे तु वाक्सिद्धिराम्रे त्वारोग्यमेव च ॥ ३१ ॥ कदम्बे तु धृतिर्मेधा चम्पके दृढवाक् श्रुतिः । शिरीषे कीर्तिसौभाग्यमायुरारोग्यमेव च ॥ ३२ ॥ अपामार्गे धृतिर्मेधा प्रज्ञाशक्तिस्तथासने । दाडिम्यां सुन्दराकारः ककुभे कुटजे तथा । जातीतगरमन्दारैर्दुःस्वप्नं च विनश्यति ॥३३॥

भाषा-आककी दतौन करनेसे शक्ति, वडकी दतौन करनेसे दीप्ति, करंजकी दतौन करनेसे जय, पीपलकी दतौन करनेसे धनकी संपत्ति, बेरकी दतौनसे मिष्ट भोजन, खैरकी दतौन करनेसे मुखमें सुगंध, बेलकी दतौन करनेसे अत्यन्त धन, गूलरकी दतौन करनेसे वचनकी सिद्धि; आम्रकी दतौन करनेसे आरोग्य, कदंबकी दतौन करनेसे धैर्य तथा स्मरणशक्ति, चंपेकी दतौन करनेसे वाणी तथा कानकी दृढता, सिरसकी दतौन करनेसे कीर्त्ति, सौभाग्य, आयुकी वृद्धि तथा आरोग्य, चिरचिटेकी दतौन करनेसे धैर्य तथा धारणाशक्ति, विजयसारकी दतौन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेसे बुद्धिकी शक्ति, दाडिमकी दतौन करनेसे सुन्दरता, ककुभ (अर्जुन) और कुडे (कुरैया) की दतौन करनेसे सुन्दर स्वरूपका लाभ, चमेली तगर और मन्दारकी दतौन करनेसे खोटे स्वप्न नहीं दीखते हैं ॥ ३०-३३ ॥

गुवाकताल हिन्तालं केतकश्च बृहद्वरः । खर्जूरं नारिकेलं च सप्तैते तृणराजकाः ॥ ३४ ॥ तृणराजसमुत्पन्नं यः कुर्याद्दन्तधावनम् । नरश्चाण्डालयोनिः स्याद्यावद्गङ्गां न पश्यति ॥३५॥

भाषा-सुपारी, ताल, हिंताल, केतक, बृहद्वर (ताड), खजूर और नारियल इन सातोंको तृणराज कहते हैं. जो मनुष्य इनकी दतौन करता है वह मनुष्य जबतक गंगाका दर्शन न करे तबतक चांडाल रहता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

न खादेद्गलतालोष्ठजिह्वादन्तगदेषु तत् । मुखस्य पाके शोथे च श्वासकासवमीषु च ॥ ३६ ॥ दुर्बलोऽजीर्णभुक्तश्च हिक्कामूर्च्छामदान्वितः । शिरोरुजार्तस्तृषितः श्रान्तः पानक्लमान्वितः ॥ ३७ ॥ अर्दितः कर्णशूली च नेत्ररोगी नवज्वरी । वर्जयेद्दन्तकाष्ठं तु हृदामययुतोऽपि च ॥ ३८ ॥ अजीर्णभुक्तः न जीर्णे भुक्तं यस्य सः ॥

भाषा-गला, तालु, होंठ, जीभ और दांतमें जिनके रोग होंय उनको; जिनका मुख पका होय तथा सूजन होय उनको; श्वास, खांसी, वमन रोगवाला, दुबला, जिसका भोजन न पचा होय, तथा सूजन होय उनको; हिचकी, मूर्छा, मदात्ययी, शिरके दर्दवाला, तृषित, थका हुआ, किसी वस्तुके खानेसे जिसको परिश्रम हुआ होय, अर्दित (वातव्याधी), कानके शूलवाला, नेत्ररोगी, नवीन ज्वरयुक्त और हृदयरोगी इन सबको दतौन नहीं करनी चाहिये ॥ ३६-३८ ॥

जिह्वानिर्लेखनं हैमं राजतं ताम्रजं तथा । पाटितं मृदु तत्काष्ठं मृदुपत्रमयं तथा ॥ ३९ ॥ तत्काष्ठं दन्तशोधनयोग्यं काष्ठम् ॥

भाषा-जीभी सोनेकी, चांदीकी तथा तांबेकी बनवावे और जो यह न मिले तौ कोमल चीरी हुई दतौनकी अथवा नरम पीतल आदिकी बना लेवे ॥ ३९ ॥

दशांगुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वां लिखेत्सुखम् । तज्जिह्वामलवैरस्यदुर्गंधजडताहरम् ४०

भाषा-दश अंगुल लंबी, कोमल और स्निग्ध, चीरी हुई अथवा सुवर्ण आदिकी जीभी मलनेसे जीभका मैल, विरसता, दुर्गंधता और जडता दूर होती है ॥ ४० ॥

गण्डूषमपि कुर्वीत शीतेन पयसा मुहुः । कफतृष्णामलहरं मुखान्तःशुद्धिकारकम् ॥ ४१ ॥ सुखोष्णोदकगण्डूषः कफारुचिमलापहः । दन्तजाड्यहरश्चापि मुखलाघवकारकः ॥४२॥

भाषा-शीतल जलके वारंवार कुल्ले करनेसे कफ, तृषा और मल दूर हो जाता है तथा भीतरसे मुख स्वच्छ होता है. किंचित् उष्ण जलके कुल्ले करनेसे कफ, अरुचि, मैल तथा दांतोंकी जडता दूर होती है और मुख हलका हो जाता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

विषमूर्च्छामदार्तानां शोषिणां रक्तपित्तिनाम् । कुपिताक्षिमलक्षीणरूक्षाणां स न शस्यते ४३॥ स सुखोष्णोदकगण्डूषः ॥

भाषा-विष और मूर्च्छाके मदसे पीडित, शोषरोगी, रक्तपित्तयुक्त, जिसके नेत्र दुखते होंय और बल क्षीण हो गया हो, तथा रूक्ष हो, उनको गरम पानीसे कुल्ले नहीं करने चाहिये ॥ ४३ ॥

मुखप्रक्षालनं शीतपयसा रक्तपित्तजित् । मुखस्य पीडिकाशोषनीलिकाव्यङ्गनाशनम् ॥ ४४ ॥ कुर्याद्वापि कटूष्णेन पयसाऽऽस्यविशोधनम् । कफवातहरं स्निग्धं मुखशोषविनाशनम् ॥ ४५ ॥

भाषा-शीतल जलके कुल्ले करनेसे तथा मुख धोनेसे रक्तपित्त और मुखकी पिडिकायें (मुहासे), शोष, नीलिका और व्यंग (झांई) नष्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती हैं. अथवा किंचित् उष्ण जलसे मुख धोनेसे कफ तथा वात दूर होती है; स्निग्धता होती है और मुखका शोष नष्ट होता है ॥४४॥४५॥

अथ नस्यविधिः।

कटुतैलादि नस्यार्थे नित्याभ्यासेन योजयेत्। प्रातः श्लेष्मणि मध्याह्ने पित्ते सायं समीरणे ॥ ४६ ॥ सुगन्धवदनाः स्निग्धनिःस्वना विमलेन्द्रियाः। निर्वलीपलितव्यङ्गा भवेयुर्नस्यशीलिनः ॥ ४७ ॥ सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्। लोचने भवतस्तेन मनोज्ञे सूक्ष्मदर्शने ॥ ४८ ॥ सौवीरं श्वेतसुरमा इति लोके प्रसिद्धम्।

भाषा-नाकको आरोग्य रखनेके लिये नित्यप्रति नाकमें सरसोंका तेल आदि डालनेका अभ्यास करे. कफ बढा होय तौ प्रातःकाल, पित्त बढा होय तौ मध्याह्न काल और वायु बढी होय तौ सायंकाल नाकमें तेल डाले. नाकमें तेल डालनेसे मुखमें सुगंध होती है; शब्दमें स्निग्धता होती है, इन्द्रियें विमल रहती हैं; और वली (शरीरमें सिकुडन पडना), पलित (विना समय केश सफेद होजाना) और व्यंग (झांई) ये उस मनुष्यके कभी नहीं होते ॥ ४६-४८ ॥

अथ अञ्जनविधिः।

स्रोतोऽञ्जनं मतं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम्। दृष्टेः कण्डूमलहरं दाहक्लेदरुजापहम् ॥ ४९ ॥ अक्ष्णो रूपावहं चैव सहते मारुतातपौ। नेत्ररोगा न जायन्ते तस्मादञ्जनमाचरेत् ॥ ५० ॥ स्रोतोऽञ्जनं कृष्णसुर्मा इति लोके। विशुद्धं शोधनं विनापि। सिन्धुसम्भवं सिन्धुनामपर्वतः तत्र सम्भवम्।

भाषा-सफेद सुरमा नेत्रोंको परम हितकारी है; इस कारण वह नित्य लगाना चाहिये. इसको लगानेसे नेत्र मनोहर और सूक्ष्म वस्तुके देखनेवाले होते हैं. सिन्धु नामक पर्वतमें उत्पन्न हुआ काला सुरमा (शुद्ध किया हुआ न होने परभी) उत्तम होता है, इसको लगानेसे नेत्रोंकी खुजली, मैल तथा दाहको नष्ट करता है और क्लेद (नेत्रोंसे पानीका बहना) तथा पीडाको दूर करता है, नेत्र स्वरूपवान् होते हैं और वात तथा वायु और धूपको सहन करनेमें समर्थ होते हैं, काला सुरमा लगानेसे नेत्रोंमें रोग नहीं होते; इस कारण इसकोभी लगाना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

रात्रौ जागरितः श्रान्तश्छर्दितो भुक्तवांस्तथा। ज्वरातुरः शिरःस्नातो नाक्ष्णोरञ्जनमाचरेत् ५१

भाषा-रातमें जागा हुआ, थका हुआ, वमन करनेवाला, जो भोजन कर चुका हो, ज्वररोगी और जिसने शिरसे स्नान किया हो उनको सुरमा नहीं लगाना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथ क्षौरकर्म।

पञ्चरात्रान्नखश्मश्रुकेशरोमाणि कर्तयेत्। केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं सम्प्रसाधनम्। पौष्टिकं धन्यमायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् ५२ सम्प्रसाधनं शोभाजनकम् ॥

भाषा-पांच पांच दिनमें नख, डाढी, केश और रोम कतरवावे और उतरवावे. ऐसा करनेसे शरीरकी शोभा होती है; पुष्टता बढती है धनकी प्राप्ति होती है; आयु बढती है; पवित्रता होती है, और उत्तम कांति झलकती है ॥५२॥ उत्पाटयेत्तु लोमानि नासाया न कदाचन। तदुत्पाटनतो दृष्टेर्दौर्बल्यं त्वरया भवेत् ॥५३॥ केशपाशे प्रकुर्वीत प्रसाधन्या प्रसाधनम्। केशप्रसाधनं केश्यं रजोजन्तुमलापहम् ॥ ५४ ॥ आदर्शालोकनं प्रोक्तं माङ्गल्यं कान्तिकारकम्। पौष्टिकं वल्यमायुष्यं पापालक्ष्मीविनाशनम् ॥ ५५ ॥

भाषा-नाकके रोम कभी नहीं उखाडे, क्यों कि, रोम उखाडनेसे तुरन्त नेत्र निर्बल हो जाते हैं. कंघेसे बालोंको काढकर पुष्ट करे, इस प्रकार काढनेसे केश स्वच्छ होते हैं, और केशोंकी धूल, जीव तथा मैल दूर हो जाता है. शीशेमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुख देखना मंगलरूप है; कांतिकारक, पुष्टिकर्ता, बल तथा आयुको बढानेवाला और पाप तथा अलक्ष्मीका नाश करनेवाला है ॥ ५३–५५ ॥

अथ व्यायामगुणाः ।

लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तघनगात्रता । दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥ ५६ ॥ व्यायामदृढगात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन । विरुद्धं वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते ॥ ५७ ॥ भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः । न चैवं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति ॥ ५८ ॥ न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षकम् । स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ॥ ५९ ॥

भाषा–व्यायाम (कसरत) करनेसे शरीरमें हलकापन, काम करनेकी सामर्थ्य होती है, शरीर सुन्दर तथा घन होता है; कफादिक दोषोंका क्षय होता है और अग्निकी वृद्धि होती है. जिसका शरीर व्यायाम करनेसे दृढ हो गया हो, उसके कभी कोई रोग नहीं होता; विरुद्ध अन्न अथवा पेटमें भली भांति नहीं पचनेवाला अन्नभी शीघ्र पच जाता है, और शरीरका शिथिलत्व आदि शीघ्र नष्ट हो जाता है और अकस्मात् वृद्धपनभी नहीं सताता है, शरीरकी स्थूलता (मुटापा) नष्ट करनेका इससे उत्तम कोई उपाय नहीं है. स्निग्ध (चिकने) पदार्थ खानेवालोंको व्यायाम सर्वदा लाभकारी है ॥ ५६–५९ ॥

वसन्ते शीतसमये सुतरां स हितो मतः । अन्यदापि च कर्तव्यो बलार्धेन यथाबलम्॥६०॥ हृदयस्थो यदा वायुर्वक्त्रं शीघ्रं प्रपद्यते । मुखं च शोषं लभते तद्बलार्धस्य लक्षणम् ॥ ६१ ॥ किं वा ललाटे नासायां गात्रसन्धिषु कक्षयोः । यदा सञ्जायते स्वेदो बलार्धं तु तदादिशेत् ॥ ६२ ॥ भुक्तवान्कृतसम्भोगः कासी श्वासी कृशः क्षयी । रक्तपित्ती क्षती शोषी न तं कुर्यात्कदाचन ॥६३॥ अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिः श्रमः क्लमः। तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तं च जायते ॥ ६४ ॥

भाषा–वसंत ऋतुमें तथा शीतकालमें व्यायाम अत्यंत हितकारी है, दूसरी ऋतुओंमेंभी अपने बलानुसार करे. जिसके हृदयमें रहनेवाली वायु शीघ्र मुखमें आने लगे और मुख सूखने लगे तब बलार्ध समझना अर्थात् बलार्ध होनेपर व्यायाम करना छोड देवे. अथवा जब कपालमें, नाकमें, शरीरकी संधियोंमें और कोखमें पसीना आवे तब बलार्द्ध समझना, अर्थात् बलार्द्धमें व्यायाम न करे. खांसी, श्वास, क्षय, रक्त तथा पित्तरोगी, दुर्बल, क्षती, शोषी, भोजन करनेके पश्चात् और संभोग करनेके पश्चात् कभी कसरत नहीं करे. बहुत कसरत करनेसे खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, श्रम, इन्द्रियोंकी ग्लानि, तृषा, क्षय, मूर्च्छा, तथा ज्वरयुक्त श्वास और रक्तपित्त ये रोग उत्पन्न होते हैं; इसलिये मध्यम रीतिसे व्यायाम करे ॥ ६०–६४ ॥

अथाभ्यङ्गगुणाः ।

अभ्यङ्गं कारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम् । शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥ ६५ ॥ सार्षप गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् । अन्यद्द्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥ ६६॥ गन्धतैलं गन्धद्रव्याणां अगुर्वादीनाम् । अग्नियोगेन निष्कासितः स्नेहः ।

भाषा–सम्पूर्ण अंगोंमें नित्य तैल मले, तेलका लगाना पुष्टिकारक है, विशेष करके शिरमें, कानोंमें और पांवोंमें तेलकी मालिश करे. सरसोंका तेल, अग्निके संयोगसे अगर आदि सुगंधित पदार्थोंका निकासा हुआ तेल (चंपा, चँबेली, बेला, जुही, मोतिया और मदनबाण आदिका तेल), पुष्पोंसे सुवासित किया और अन्य सुगंधित पदार्थोंसे मिला हुआ तेल (चन्दनादि तेल) सर्वदा हितकारी है ॥ ६५॥६६ ॥

अभ्यङ्गो वातकफहृच्छ्रमशान्तिबलं सुखम् । निद्रावर्णमृदुत्वायुष्कुरुते देहपुष्टिकृत् ॥ ६७ ॥ अभ्यङ्गः शीलितो मूर्ध्नि सकलेन्द्रियतर्पकः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृष्टिपुष्टिकरो हन्ति शिरोभूमिगतान् गदान् ॥ ६८ ॥ केशानां बहुतां दार्ढ्यं मृदुतां दीर्घतां तथा। कृष्णतां कुरुते कुर्याच्छिरसः पूर्णतामपि ॥ ६९ ॥

भाषा-अभ्यंग करनेसे वात तथा कफ और थकावट दूर होती है; तथा सुख और बलकी प्राप्ति होती है; निद्रा भले प्रकार आती है; शरीरका वर्ण सुन्दर हो जाता है, तथा कोमलता आ जाती है; आयुकी वृद्धि तथा देहकी पुष्टि होती है. अपवाद समयके अतिरिक्त अभ्यंगसे कभी हानि नहीं होती है. शिरमें मला हुआ तेल सम्पूर्ण इन्द्रियोंको तृप्त करता है. दृष्टिको बल देता है और शिरकी त्वचाके रोगोंको (शिरके दर्दको) दूर करता है. केशोंमें तेल लगानेसे केश बढते हैं, लंबे, नरम, दृढ और काले हो जाते हैं; तथा शिरमें भरे रहते है ॥ ६७-६९ ॥

न कर्णरोगा न मलं न च मन्या हनुग्रहः। नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥ ७० ॥ रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते। तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ७१ ॥

भाषा-नित्य कानमें तेल डालनेसे कानमें रोग और मैल नहीं होता, तथा गरदन और हनुग्रहरोग, ऊँचा सुनना और बहरापनभी नहीं होता. कानमें रस आदि पदार्थ डालने होंय तौ भोजनके पहिले डाले और तेल आदि सूर्यके अस्त होनेपर डाले ॥ ७०-७१ ॥

पादाभ्यङ्गश्च तत्स्थैर्यनिद्रादृष्टिप्रसादकृत्। पादसुप्तिश्रमस्तम्भसङ्कोचस्फुटनप्रणुत् ॥ ७२ ॥ व्यायामक्षुण्णवपुषं पद्भ्यां संमर्दितं तथा। व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥ ७३ ॥ लोमकूपं शिराजालं धमनीभिः कलेवरे। तर्पयेद्बलमाधत्ते स्नेहयुक्तोऽवगाहने ॥ ७४ ॥ अद्भिः संसिक्तमूलानां तरूणां पल्लवादयः। वर्द्धन्ते हि तथा नृणां स्नेहसंसिक्तधातवः ७५

भाषा-पांवोंमें तेल मलना पांवोंकी स्थिरता करता है, निद्रा और दृष्टिको प्रसन्न रखता है, पांवोंका सोना (शून्य हो जाना), परिश्रम, स्तम्भ, संकोच और फटना ये सब रोग नहीं होते. कसरतका अभ्यास रखनेवाले और पांवोंमें तेलकी मालिश करनेवाले मनुष्योंके पास रोग ऐसे नहीं आते जैसे गरुडके समीप सर्प नहीं आते हैं. स्नानके समय तेलका उपयोग किया होय तौ रोमकूपकी शिराओंके समूहको और धमनियोंके द्वारा सम्पूर्ण शरीरको तृप्त करता है और अत्यन्त बलदायक है. जिस प्रकार वृक्षकी जडको जलसे सींचनेसे पत्रादिककी वृद्धि होती है उसी प्रकार मनुष्योंके शरीरको तेलके द्वारा सींचनेसे (मलनेसे) धातुओंकी वृद्धि होती है ॥ ७२-७५ ॥

नवज्वरीअजीर्णी च नाभ्यक्तव्यः कथञ्चन। तथा विरक्तो वान्तश्च निरूढो यश्च मानवः ॥ ७६ ॥ निरूढः दत्तो निरूहवस्तिः यस्मै सः।

भाषा-नवीन ज्वरवाला, अजीर्णसे युक्त, जिसने जुलाब लिया हो, वमन करनेवाला और जिसकी निरूह वस्ति की हो उनको कदापि तेल मलना नहीं चाहिये. ॥ ७६ ॥

पूर्वयोः कृच्छ्रताव्याधेरसाध्यत्वमथापि वा। शेषाणां च त्विह प्रोक्ता वह्निसादादयो गदाः ॥ ७७ ॥ पूर्वयोः तरुणज्वरिणोऽजीर्णिनश्च।

भाषा-नवीन ज्वरवालेको तथा अजीर्णरोगीको तेल मलनेसे रोग कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य हो जाता है और वमन विरेचनादिवालेको तेल मलनेसे मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

अथोद्वर्तनगुणाः।

उद्वर्तनं कफहरं मेदोघ्नं शुक्रदं परम्। बल्यं शोणितकृच्चापि त्वक्प्रसादमृदुत्वकृत् ॥ ७८ ॥ मुखलेपादृढं चक्षुः पीनो गण्डस्तथाऽऽननम्। कान्तमव्यंगपिडकं भवेत्कमलसन्निभम् ॥ ७९ ॥

भाषा-मैलके दूर करनेके लिये शरीरमें चूर्णरूप पदार्थ (उबटन) मलनेसे कफ और मेदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नष्ट होती है; वीर्यकी वृद्धि तथा वलकी प्राप्ति होती है; रुधिर यथावत् होता है और त्वचा स्वच्छ तथा कोमल होती है. इसको मुखपर मलनेसे नेत्र दृढ होते हैं; कपोल पुष्ट होते हैं; मुहासे और झाईं नहीं होतीं, हुई होय तौ नष्ट होती हैं और मुख कमलके समान शोभायमान होता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजोवलप्रदम् ।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मनुत् ॥८०॥
बाह्यैश्च सेकैः शीताद्यैरूष्मान्तर्याति पीडितः ।
नरस्य स्नातमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ८१॥

भाषा–स्नान करना अग्निको दीपन करनेवाला, शक्ति आयु और ओजको बढानेवाला, उत्साह तथा वलको देनेवाला है. खुजली, मैल, परिश्रम, पसीना, आलस्य, तृषा, दाह तथा पाप इनको दूर करता है. शीतल जलादिकोंके सींचनेसे शरीरके बाहरकी गरमी प्रतिहत (दवीहुई) होकर भीतर जाती है, इसीसे मनुष्यकी जठराग्नि प्रवल होती है, इससेही भूँख लगती है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

शीतेन पयसा स्नानं रक्तपित्तप्रशान्तिकृत् ।
तदेवोष्णेन तोयेन वल्यं वातकफापहम्॥८२॥
शिरःस्नानमचक्षुष्यमत्युष्णेनाम्बुना सदा ।
वातश्लेष्मप्रकोपे तु हितं तच्च प्रकीर्तितम्॥८३॥

भाषा–शीतल जलके स्नान करनेसे रक्तपित्त दूर होता है. उष्ण जलके स्नान करनेसे वल बढता है; वात तथा कफका नाश होता है. शिरसे अत्यन्त उष्ण जलसे स्नान करना नेत्रोंको अहितकारी है, परन्तु वात और कफका प्रकोप होय तौ हितकारी है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अशीतेनाम्भसा स्नानं पयःपानं नवाः स्त्रियः ।
एतद्धो मानवाः पथ्यं स्निग्धमल्पं च भोजनम् ॥ ८४ ॥ हरिश्चन्द्रस्य एतत् ॥

भाषा–हरिश्चन्द्र नामक वैद्य सम्पूर्ण मनुष्योंसे कहते हैं कि, " हे मनुष्यो ! उष्ण जलसे स्नान, दुग्ध पीना, युवा स्त्रीसे संभोग और स्निग्ध (घृतादियुक्त) अल्प भोजन ये सर्वदा लोगोंको हितकारी हैं " ॥ ८४ ॥

यः सदामलकैः स्नानं करोति स विनिश्चितम् ।
वलीपालितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं नरः ॥ ८५ ॥
स्नानं ज्वरेऽतिसारे च नेत्रकर्णानिलार्तिषु ।
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ ८६ ॥ स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेणांगस्य मार्जनम् ॥ कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डूत्वग्दोषनाशनम् ॥ ८७ ॥

भाषा–जो मनुष्य सर्वदा देहमें आमले मलकर स्नान करते हैं वे वलीपालितरहित होकर सौ वर्षपर्यन्त जीते हैं; यह. निश्चय है. ज्वर, अतीसार, नेत्र, कानके दर्दवाला, वातरोगी, जिसका पेट अफरा होय, पीनसरोगयुक्त और अजीर्णरोगवाला इन सवको स्नान करना नहीं चाहिये. भोजनके पश्चात्भी स्नान ठीक नहीं है, स्नान करनेके अनन्तर वस्त्रसे अंगको पोंछ डालना चाहिये; इससे कांति बढती है, खुजली और त्वचाके दोष दूर होते हैं ॥ ८५–८७ ॥

अथ वस्त्रधारणगुणाः ।

कौशेयौर्णिकवस्त्रं च रक्तवस्त्रं तथैव च । वातश्लेष्महरं तत्तु शीतकाले विधारयेत् ॥ ८८ ॥
कौशेयं पट्टाम्बरं तसरवस्त्रं च ॥

भाषा–रेशमी वस्त्र (पीतांवर, टसर), ऊनी वस्त्र और रक्तवस्त्र वात तथा कफको हरनेवाला है; इस कारण शीत कालमें ऐसे वस्त्रोंको धारण करे ॥ ८८ ॥

मेध्यं सुशीतं पित्तघ्नं कषायं वस्त्रमुच्यते । तद्धारयेदुष्णकाले तत्रापि लघु शस्यते॥८९॥
कषायं कौङ्कमी इति लोके कषायरागरक्तं वा ।

भाषा–जोगिया रंगसे रंगे हुए वस्त्र पवित्र, शीतल और पित्तको हरनेवाले हैं, इसलिये उनको गरमियोंमें धारण करे. इनमेंभी महिन और हलके वस्त्र श्रेष्ठ हैं ॥ ८९ ॥

शुक्लं तु शुभदं वस्त्रं शीतातपनिवारणम् । न चोष्णं न च वा शीतं तत्तु वर्षासु धारयेत् ॥ ९० ॥ यशस्यं काम्यमायुष्यं श्रीमदानन्दवर्धनम् । त्वच्यं वशीकरं रुच्यं नवनिर्मलमम्बरम् ॥ ९१ ॥ काम्यं कामोद्दीपकम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—सुपेद वस्त्र शुभदायक, शीत और धूपनिवारक हैं, जो न गरम हैं, न शीतल हैं ऐसे वस्त्र वर्षाकालमें धारण करे. निर्मल और नवीन वस्त्र कीर्त्तिको देनेवाले हैं, कामको प्रदीप्त करते हैं, आयुको वढाते हैं, शोभायुक्त करते हैं. तथा आनंदकारक, त्वचाको हितकारी वशीकरण तथा रुचिको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥

कदापि न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमम्बरम् । तत्तु कण्डूकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम् ॥ ९२ ॥ अलक्ष्मीः अशोभा दारिद्र्यं च ।

भाषा—श्रेष्ठ मनुष्य कभी मैले वस्त्र नहीं पहरे, क्योंकि मैले वस्त्रोंसे शरीरमें खुजली होती है, जुयें इत्यादि जीव उत्पन्न होते हैं और ग्लानि, कुरूप तथा दरिद्रता वहुत प्राप्त होती है ॥ ९२ ॥

अथ प्रलेपगुणाः ।

कुंकुमं चन्दनं चापि कृष्णागुरु च मिश्रितम् । उष्णवातकफध्वंसि शीतकाले तदिष्यते ॥ ९३ ॥ चन्दनं घनसारेण वालकेन च मिश्रितम् । सुगन्धि परमं शीतमुष्णकाले प्रशस्यते ॥ ९४ ॥ घनसारः कर्पूरः वालं ह्रीवेरम् ।

भाषा—शीतकालमें केशर, चन्दन और काली अगर इनको मिलाकर लेप करे; क्योंकि ये गरम हैं, तथा वात और कफको मेटनेवाली हैं. उष्णकालमें चंदन, कपूर और सुगंधवाला इनको मिलाकर लेप करे; क्योंकि ये सुगंधित हैं और अत्यंत शीतल हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

चन्दनं घुसृणोपेतं मृगनाभिसमायुतम् । न चोष्णं न च वा शीतं वर्षाकाले तदिष्यते ॥ ९५ ॥ घुसृणं कुंकुमम् । मृगनाभिः कस्तूरी ।

भाषा—वर्षाकालमें चंदन, केशर और कस्तूरीको मिलाकर लेप करे; क्योंकि यह लेप गरम नहीं और शीतलभी नहीं ॥ ९५ ॥

अनुलेपस्तृषामूर्च्छादुर्गन्धस्वेददाहजित् । सौभाग्यतेजस्त्वग्वर्णप्रीत्यौजोबलवर्धनः । स स्नानार्हलोकानामनुलेपोऽपि नो हितः॥९६॥

भाषा—लेपन करनेसे तृषा, मूर्च्छा, दुर्गन्ध, पसीना और दाह दूर होता है और भाग्यशालीपना, तेजस्वीपना, त्वचाका वर्ण, प्रीति, उत्साह तथा बल वढता है. स्नानके प्रकरणके लेखानुसार जिन मनुष्योंके लिये स्नान अहितकारी है उनके लिये लेपभी हितकारी नहीं है ऐसा जानना ॥ ९६ ॥

पुष्पाभरणादिधारणगुणाः ।

सुगन्धिपुष्पपत्राणां धारणं कान्तिकारकम् । पापरक्षोग्रहहरं कामदं श्रीविवर्द्धनम् ॥ ९७ ॥ भूषणैर्भूषयेदङ्गं यथायोग्यं विधानतः । शुचिसौभाग्यसन्तोषदायकं काञ्चनं स्मृतम् ॥९८॥

भाषा—सुगंधित पुष्प और पत्रों (पत्तों) के धारण करनेसे कांति वढती है, पाप नष्ट होता है, राक्षसकी वाधा और ग्रह आदिकी पीडा नष्ट होती है, कामकी वृद्धि होती है, श्री (लक्ष्मी) की वृद्धि होती है. अलंकारोंसे यथाविधि विधानसे शरीरको भूषित करे, कांचन (सोने) के भूषण परम पवित्र हैं, सौभाग्य तथा संतोषके देनेवाले हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

ग्रहदृष्टिहरं पुष्टिकरं दुःस्वप्ननाशनम् । पापदौर्भाग्यशमनं रत्नाभरणधारणम् ॥ ९९ ॥

भाषा—रत्नजडित आभूषणोंके धारण करनेसे ग्रहोंकी पीडा और दुष्ट दृष्टि दूर होती है, पुष्टि होती है, दुष्ट स्वप्नोंका नाश होता है, पाप और दुर्भाग्यकी शांति होती है ॥ ९९ ॥

माणिक्यं तरणेः सुजातममलं मुक्ताफलं शीतगोर्माहेयस्य च विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम् । देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेर्नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ १०० ॥

भाषा—अत्युत्तम निर्मल माणिक्यके धारण करनेसे सूर्यकी पीडा, मोतीके धारण करनेसे चंद्रमाकी पीडा, विद्रुम (मूंगे) के धारण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेसे मंगलकी पीडा, पन्नेके धारण करनेसे बुधकी पीडा, पुखराजके धारण करनेसे बृहस्पतिकी पीडा, हीरेके धारण करनेसे शुक्रकी पीडा, नीलमके धारण करनेसे शनिकी पीडा, गोमेदके धारण करनेसे राहुकी पीडा और वैदूर्य (लहसुनिये) के धारण करनेसे केतुकी पीडा दूर होती है ॥ १०० ॥

वासः शृंगाररत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम् । रक्षोघ्नमर्थ्यमोजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥ १०१ ॥ सततं सिद्धमन्त्रस्य महौषध्यास्तथैव च । रोचनासर्षपादीनां मांगल्यानां च धारणम् । ॥ १०२ ॥ आयुर्लक्ष्मीकरं रक्षोहरं मङ्गलदं शुभम् । हिंस्रादिभयविध्वंसिवशीकरणकारणम् १०३ ॥

भाषा–वस्त्र (नये कपडे), फूलोंकी माला, सुगंध (इतर आदि) और रत्नोंके धारण करनेसे प्रीतिकी वृद्धि होती है, राक्षसकी बाधा दूर होती है, अर्थ (धन), ओज (सामर्थ्य) और सौभाग्य इनकी वृद्धि होती है, ऐसा यह वस्त्रादिकोंका धारण करना उत्तम है, सिद्ध मंत्र, ब्राह्मी आदि महौषधि, गोरोचन तथा सरसों इन मांगलिक पदार्थोंके धारण करनेसे आयु बढती है, लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, राक्षसोंकी पीडा दूर होती है, मंगल और कल्याण होता है, हिंस्रक (सिंहादि) जीवोंका भय दूर होता है और यह वशीकरणका कारण होता है अर्थात् इससे सब लोक वश होते है ॥ १०१–१०३ ॥

अथ भोजनविधिः ।

ततो भोजनवेलायां कुर्यान्माङ्गल्यदर्शनम् । तस्य प्रदर्शनं नित्यमायुर्धर्मविवर्धनम् ॥ १०४ ॥ लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः । पुष्पस्रक् सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः ॥ १०५ ॥

भाषा–इसके अनंतर जब भोजनका समय होय तब मंगलकारक पदार्थोंका दर्शन करे, क्योंकि मांगलिक पदार्थोंका दर्शन नित्य आयु और धर्मको बढाता है; इस लोकमें ब्राह्मण, गौ, अग्नि, फूलोंकी माला, घी, सूर्य, पानी और राजा ये आठ मांगलिक हैं ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

पादुकाधारणं कुर्यात् पूर्वं भोजनतः परम् । पादरोगहरं वृष्यं चक्षुष्यं चायुषो हितम् १०६

भाषा–भोजनके पहले या भोजनके उपरांत पादुका (खडाऊं) धारण करे, इससे पांवोंके रोग दूर होते हैं, शक्ति बढती है, नेत्रोंका तेज बढता है और आयुकी वृद्धि होती है ॥ १०६ ॥

क्षुत्तृडाद्यवरोधे हानिः ।

शरीरे जायते नित्यं वाञ्छा नृणां चतुर्विधा । बुभुक्षा च पिपासा च सुषुप्सा च रतिस्पृहा ॥ १०७ ॥ भोजनेच्छाविघातात्स्यादङ्गमर्दोऽरुचिः श्रमः । तन्द्रा लोचनदौर्बल्यं धातुदाहो बलक्षयः ॥ १०८ ॥

भाषा–मनुष्यके शरीरमें चार प्रकारकी भोजन करनेकी, जल पीनेकी सोनेकी और स्त्रीसे भोग करनेकी इच्छा नित्य बनी रहती है. यदि इन चारोंमेंसे भोजनकी इच्छा नित्य रोकदी जावे तो शरीरमें हटफूटन होती है, अरुचि पैदा होती है, श्रम होता है, तंद्रा और नेत्रोंकी निर्बलता होती है, धातुओंकी जीर्णता और बलका क्षय होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

विघातेन पिपासायाः शोषः कण्ठास्ययोर्भवेत् । श्रवणस्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदि व्यथा ॥ १०९ ॥ निद्राविघाततो जृम्भा शिरो लोचनगौरवम् । अंगमर्दस्तथा तन्द्रा स्यादन्नापाक एव च ॥ ११० ॥

भाषा–पिपासा (प्यास) की इच्छा हो जानेपर पानी नहीं पीनेसे कंठ (गला) और मुख सूख जाता है, कान बंद हो जाते हैं, रक्त (खून) सूख जाता है और हृदयमें पीडा होती है. आती हुई निद्राको रोकनेसे जम्हाई आने लगती हैं, मस्तक और नेत्र भारी होते हैं, अंगमर्द (हडफूटन) होता है, तंद्रा (आलस्य) उत्पन्न होती है और खाये हुए अन्नका पाक नहीं होता ॥ १०९ ॥ ११० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बुभुक्षितो न योऽश्नाति तस्याहारेन्धनक्षयात् । मन्दीभवति कायाग्निर्यथा चाग्निर्निरिन्धनः ॥ १११ ॥ आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः । पचति दोषक्षये धातून्प्राणान्धातुक्षयेऽपि च ॥ ११२ ॥

भाषा-जो मनुष्य क्षुधा लगनेपर नहीं खाते हैं उनकी जठराग्नि आहाररूप ईंधनके न मिलनेसे मंद हो जाती है जैसे लौकिक अग्नि विना ईंधनके बुझ जाती है. जठराग्नि खाये हुए आहारको पचाती है और आहार नहीं मिले तो वात पित्त तथा कफको पचाती है, दोषों (वात, पित्त, कफ) का क्षय होनेपर धातुओंको पचाती है और धातुओंका क्षय हो जानेपर प्राणोंको पचाती है अर्थात् नष्ट करती है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारणः । स्मृत्यायुःशक्तिवर्णौजःसत्त्वशोभाविवर्धनः ॥ ॥११३॥ यथोक्तगुणसम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम् । विचार्य्य दोषकालादीन् कालयोरुभयोरपि॥ ११४॥ उभयोः कालयोः प्रातः सायं च ॥

भाषा-आहारसे संतोष होता है और तत्काल सामर्थ्य प्राप्त होता है, आहारसे देहका पोषण होता है तथा स्मृति, आयु, शक्ति, देहका वर्ण, ओज, सत्व और शोभा इनकी वृद्धि होती है. इसलिये मनुष्योंको उचित है कि, दोष काल आदिका विचार करके वैद्यकशास्त्रके कथनानुसार जिसमें गुण हो ऐसा अन्न प्रातःकाल और संध्यासमय खाना चाहिये ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

तथा च ।

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम् । नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ ११५ ॥ प्रातः प्रथमयामादुपरि द्वितीययामादर्वाक् ॥

भाषा-संध्या और सवेरे (दूसरे प्रहरमें) इन दोनों समयमेंही भोजन करनेकी श्रुतिकी आज्ञा है इसलिये इन दोनों समयके मध्यमें भोजन नहीं करे क्योंकि यह विधिभी अग्निहोत्रके समानही है ॥ ११५ ॥

तथा च ।

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत् । याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ११६

भाषा-सवेरे पहले प्रहरके पश्चात् और दूसरे प्रहरके भीतर भोजन करे क्योंकि ऐसा कहा है कि प्रथम पहरमें भोजन नहीं करे और दूसरे प्रहरमें भूंखा न रहे क्योंकि पहले प्रहरमें भोजन न करनेसे रसकी उत्पत्ति होती है और दूसरे प्रहरमें भोजन न करनेसे बलका क्षय होता है ॥ ११६ ॥

अन्यच्च ।

क्षुत्सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च । काले वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ११७॥

भाषा-परन्तु ऐसाभी कहा है कि, रस, दोष और मल इनके पक जानेपर क्षुधा लगती है इस कारण समय हुआ हो अथवा न हुआ हो जब कि भूंख लगे तब भोजन करे और वही भोजनका समय समझे ॥ ११७ ॥

अथ रसादीनां पाकज्ञानमाह ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः । लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ ११८ ॥

भाषा-शुद्ध डकारका आना, उत्साह (उमंग), यथोचित रीतिसे वेगोत्सर्ग (वायु आदिके वेगका परित्याग), लघुता (हलकापन), भूंख तथा प्यास लगना ये सब लक्षण पचे हुए आहारके हैं ॥ ११८ ॥

अथ स्थानमाह ।

आहारं तु रहः कुर्यान्निर्हारमपि सर्वदा । उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात्प्रकाशो हीयते श्रियाः ॥ ११९ ॥ निर्हारो मलमूत्रोत्सर्गः । अन्यच्च । आहारनिर्हारविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–मनुष्यको आहार और निर्हार (मलमूत्रत्याग) ऐसे स्थानमें करना चाहिये कि जहां कोई अन्य मनुष्य न हो. ऐसा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, और प्रकाशमें अर्थात् सबके सामने मलमूत्रत्याग करनेसे और आहार करनेसे लक्ष्मी नष्ट होती है. अन्य ग्रंथमें कहा है कि ' श्रेष्ठजन आहार, निर्हार और विहार सर्वदा जनरहित स्थानमें करें ' ॥ ११९ ॥

भोजनपात्रमाह ।

दोषहृद्दृष्टिदं पथ्यं हैमं भोजनभाजनम् । रौप्यं भवति चक्षुष्यं पित्तहृत्कफवातकृत् ॥ १२० ॥ कांस्यं बुद्धिप्रदं रुच्यं रक्तपित्तप्रसादनम् । पैत्तलं वातकृद्रूक्षमुष्णं कृमिकफप्रणुत् ॥ १२१ ॥ आयसे काचपात्रे च भोजनं सिद्धिकारकम् । शोथपाण्डुहरं बल्यं कामलापहमुत्तमम् ॥ १२२ ॥ शैलेये मृन्मये पात्रे भोजनं श्रीनिवारणम् । दारुजे विशेषेण रुचिदं श्लेष्मकारि च ॥ १२३ ॥ पात्रं पत्रमयं रुच्यं दीपनं विषपाप्नुत् । जलपात्रं तु ताम्रस्य तदभावे मृदो हितम् ॥ १२४ ॥ पवित्रं शीतलं पात्रं रचितं स्फटिकेन यत् । काचेन रचितं तद्वत्तथा वैदूर्यसम्भवम् ॥ १२५ ॥

भाषा–हैम (सोनेका) भोजनपात्र दोषों (वातादिक) को नाश करनेवाला, नेत्रोंको बल देनेवाला और पथ्य है. चांदीका पात्र नेत्रोंको हितकारी, पित्तनाशक तथा कफ और वातको करनेवाला है. कांसीका पात्र बुद्धि देनेवाला, रुचिकारक और रक्तपित्तकी शुद्धि करनेवाला है. पीतलका पात्र वातकारक, रूखा, गरम, कृमिनाशक और कफको हरनेवाला है. लोहेका अथवा कांचका भोजनपात्र सिद्धिकारक, शोफ (सूजन) और पांडुरोगको हरनेवाला, बलदायक, कामला (पीलिया) नाशक और उत्तम है. शैलेय (पत्थरके) या मिट्टीके पात्रमें भोजन करनेसे लक्ष्मी नष्ट होती है. काष्ठका पात्र विशेष रुचिकारक और कफकारक है. पत्तोंपर भोजन करनेसे रुचि उत्पन्न होती है, अग्नि प्रदीप्त होती है और विष तथा पाप दूर होते हैं. जलपानके लिये तांबेका पात्र होना चाहिये और वह न मिले तो मिट्टीका लेवे वह हितकारक है. स्फटिक कांच या वैदूर्य (लहसुनिये) का पात्र पवित्र और शीतल है ॥ १२०–१२५ ॥

अथ भोजने प्रथमभोज्यम् ।

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम् । अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् १२६

भाषा–भोजनसे पहले लवणसहित अदरक भक्षण करे क्योंकि यह पथ्य है और जठराग्निको प्रदीप्त करता है, रुचि उत्पन्न करता है तथा जीभ और कंठको शुद्ध करता है ॥१२६॥

ननु लवणस्य पित्तजनकत्वात् आर्द्रकस्य कटुकत्वेन पित्तलत्वात् बुभुक्षितस्य वृद्धपित्तस्य कथं प्रथमं लवणार्द्रकभक्षणमुचितम् ? उच्यते । " लवणं सैन्धवं ज्ञेयं चन्दनं रक्तचन्दनम् " इति वचनाल्लवणमत्रसैन्धवम् । तत् त्रिदोषघ्नम् ॥

भाषा–लवण पित्त उपजानेवाला है और अदरकभी कटुताके कारण पित्तकारकही है फिर भूखे मनुष्यका जब पित्त बढा होय तब पहले लवणार्द्रक भक्षण कैसे उचित है ? इस शंकाका यह समाधान है कि लवण कहनेसे सेंधानोन और चंदन कहनेसे लाल चंदन जानना चाहिये ऐसा वचन है इसलिये यहांभी लवणशब्दसे सेंधानोनही समझना चाहिये. सेंधानोन तीनों दोषोंको हरण करता है ॥

अत आह गुणग्रन्थे ।

सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनं पाचनं लघु । स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् ॥ १२७ ॥ आर्द्रकं तु कटुकमपि न पित्तविरोधि मधुरपाकित्वात् ॥

भाषा–गुणग्रंथमें कहा है कि ' सैंधव स्वादु (मीठा), अग्निदीपक, पाचक, हलका, स्निग्ध,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुचिकारक, ठंडा, वीर्यवर्धक, सूक्ष्म, नेत्रोंको हितकारक और त्रिदोषनाशक है. ' अदरकभी कटु है पर उसका पाक मधुर होता है इसलिये यह पित्तका विरोधी नहीं है ॥ १२७ ॥

अत आह तत्रैव ।

आर्द्रिका भेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी च सा । कटुका मधुरा पाके सूक्ष्मा वातकफापहा ॥ १२८ ॥

भाषा-उसी ग्रंथमें लिखा है कि ' अदरक भेदन करनेवाला, भारी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निदीपन करनेवाला, पाककालमें मधुर, सूक्ष्म और वातकफको हरनेवाला है ' ॥ १२८ ॥

अथ चान्यदपि लवणमार्द्रकं च नात्र पित्तविरोधि संयोगस्वभावात् । संयोगस्वभावे च एतादृशम् । भोजनस्य पूर्वं लवणार्द्रकभक्षणबोधकवचनमेव प्रमाणयति ॥

भाषा-और भी एक कारण है कि लवण और अदरकका संयोग हो जानेसे यह पित्तविरोधी नहीं है. इस संयोगका स्वभावही ऐसा है और भोजनके पहले लवण अदरक भक्षण करनेकी आज्ञाही यहां प्रमाण है ॥

दृष्टिदोषविनाशाय ब्रह्मादीनां स्मरणम् । तद्यथा । अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः । इति सञ्चिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते ॥ १२९ ॥ अञ्जनीगर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम् । दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम् ॥ १३० ॥

भाषा-अन्न ब्रह्मरूप, रस विष्णुरूप और भोजन करनेवाला शिवरूप है ऐसा समझकर जो भोजन करता है उसको दृष्टिदोषकी बाधा नहीं होती है. दृष्टिदोषकी शांतिके लिये इस प्रकारभी कहे कि ' अंजनीके गर्भसे उत्पन्न हुए बाल ब्रह्मचारी हनुमान्का मैं दृष्टिदोषकी शांतिके लिये स्मरण करता हूं ' ॥ १२९ ॥ १३० ॥

अथ भोजनक्रमः ।

अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । मध्येऽम्ललवणौ पश्चात्कटुतिक्तकषायकान् ॥ १३१ ॥

भाषा-फिर एकाग्रचित्त होकर पहले मधुर रस, मध्यमें खट्टा और निमकीन रस और अंतमें तीक्ष्ण, कडुआ तथा कषैला रस खाना चाहिये ॥ १३१ ॥

फलान्यादौ समश्नीयाद्दाडिमादीनि बुद्धिमान् । विना मोचफलं तद्वद्गर्जनीया च कर्कटी ॥ १३२ ॥ मृणालबिसशालूककन्देक्षुप्रभृतीनपि । पूर्वमेव हि भोज्यानि न तु भुक्त्वा कदाचन ॥ १३३ ॥ मृणालं पद्मनालं बिसं बिससंज्ञकम् । शालूकन्दं भसड्गभू ॥

भाषा-बुद्धिमान् मनुष्य पहले दाडिम आदि फल खावे, परंतु उनमें केला और ककडीको छोड देवे. कमलकी नाल, भसींडा, शालूककंद और ईख आदिकोभी पहले भक्षण करे. इनको भोजनके पीछे कभी न खावे ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

गुरु पिष्टमयं द्रव्यं तण्डुलान् पृथुकानपि । न जातु भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद्बुभुक्षितः ॥ १३४ ॥ घृतपूर्वं समश्नीयात् कठिनं प्राक् ततो मृदु । अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलाद्रोगेण मुच्यते ॥ १३५ ॥ अयमर्थः-प्राक् घृतपूर्वं कठिनं समश्नीयात् यथा काश्यादिवासिनः प्रथमं सव्यञ्जनां घृतपूर्वां रोटिकां भुञ्जन्ते, ततो मृदु ससूपादि ओदनं भुञ्जन्ते, अन्ते पुनर्द्रवाशिनः, भोजनान्ते दधितक्रदुग्धादि भुञ्जन्ते ॥

भाषा-भोजनके पीछे भारी पिष्टमय (कचौरी, बडी आदि) पदार्थ, चावल, पृथुक (चिरवा) आदि पदार्थ नहीं खावे. विशेष भूंख लगी होय तो थोडा खावे. पहले घीके साथ कठिन पदार्थ और पीछे मृदु (कोमल) पदार्थ खावे और अंतमें द्रव (पतले) पदार्थ खावे. इस प्रकार नियम रखे तो मनुष्य बलपूर्वक रोगसे युक्त नहीं होता है और कदाचित् रोगयुक्त हो जाय तो जल्दीही रोग छूट जाता है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काशी आदिके नगरोंमें रहनेवाले मनुष्य इस विषयमें चतुर होते हैं. वे पहले शाकके साथ घृतयुक्त रोटी खाते हैं, फिर दालके साथ मृदु भात खाते हैं फिर भोजनके अंतमें दही, मठ्ठा और दूध आदि पतले पदार्थ पीते हैं ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

यद्यत्स्वादुतरं तत्तद्विदध्यादुत्तरोत्तरम् । भुक्त्वा यत्प्रार्थ्यते भूयस्तदुक्तं स्वाद्वन्नभोजनम्॥१३६॥

भाषा–जो जो पदार्थ विशेष मीठा हो उसको क्रमसे उत्तरोत्तर खावे. जो पदार्थ एक वार खानेपर फिर दूसरी वार मांगा जाता है वह स्वादिष्ठ कहा जाता है ॥ १३६ ॥

स्वाद्वन्नस्य गुणमाह ।

सौमनस्यं बलं पुष्टिमुत्साहं वृद्धिमायुषः । स्वादु सञ्जनयत्यन्नमस्वादु च विपर्ययम् ॥ १३७ ॥ अत्युष्णान्नं बलं हन्ति शीतं शुष्कं च दुर्जरम् । अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं युक्तियुक्तं हि भोजनम् ॥ १३८ ॥ अतिद्रुताशिताहारे गुणान् दोषान्न विन्दति । भोज्यं शीतमहृद्यं च स्याद्विलम्बितमश्नतः ॥ १३९ ॥

भाषा–स्वादिष्ठ अन्न खानेसे चित्त प्रसन्न होता है, बल बढता है, पुष्टि, उत्साह और आयुकी वृद्धि होती है और अस्वादु अन्न खानेसे सर्वगुण विपरीत होते हैं. अधिक उष्ण अन्न बलका नाश करता है. शीतल अन्न तथा सूखा अन्न कठिनतासे पचता है. जल आदिसे अतिक्लिन्न (गीला) अन्न ग्लानिको उत्पन्न करता है. इसलिये युक्तिके साथ भोजन करे. बहुत शीघ्र भोजन करनेसे भोजनके गुण दोष नहीं जाने जाते हैं और विशेष विलंबसे भोजन करनेसे अन्न शीतल (ठंडा) और हृदयको अप्रिय हो जाता है ॥ १३७–१३९ ॥

गुर्वन्नं त्रिविधं तन्निवारयन्नाह ।

मन्दानलो नरो द्रव्यं मात्रागुरु विवर्जयेत् । स्वभावतश्च गुरु यत्तथा संस्कारतो गुरु ॥ १४० ॥ मात्रागुरुस्तु मुद्गादि माषादिः प्रकृतेर्गुरुः । संस्कारगुरु पिष्टान्नं प्रोक्तमित्युपलक्षणम् ॥ १४१ ॥

भाषा–मंद अग्निवाला मनुष्य मात्रासे भारी, स्वभावसे भारी तथा संस्कारसे भारी इन तीनों प्रकारके पदार्थोंको नहीं खावे. मूंग आदि पदार्थ मात्रासे अधिक खानेसे भारी होते हैं, उरद आदि पदार्थ प्रकृति (स्वभाव) सेही भारी हैं और पिष्टादि (पीसा हुआ) अन्न संस्कारसे भारी होता है. ये उपलक्षणमात्र कहे हैं इससे अन्य पदार्थभी जान लेवे ॥ १४० ॥ १४१ ॥

आहारं षड्विधं चूष्यं पेयं लेह्यं तथैव च । भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्व्यं गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥ १४२ ॥ चूष्यं इक्षुदाडिमादि, पेयं पानकशर्करोदकादि, लेह्यं रसालाकथितादि । कथिता 'कढी' इति लोके । भोज्यं भक्तसूपादि, भक्ष्यं लड्डुकं मोदकादि, चर्व्यं चिपिटं चणकादि ॥

भाषा–आहार छः प्रकारका है चूष्य (चूसने योग्य), पेय (पीने योग्य) लेह्य (चाटने योग्य), भोज्य (भोजन करने योग्य), भक्ष्य (खाने योग्य) और चर्व्य (चावने योग्य). ये क्रमसे उत्तरोत्तर भारी हैं. ईख दाडिम आदि पदार्थ चूष्य हैं. पना सरवत आदि पदार्थ पेय हैं. शिखरन कढी आदि पदार्थ लेह्य हैं. दाल भात आदि भोज्य हैं. लड्डू मोदक आदि भक्ष्य हैं. चिरवा चवेना आदि चर्व्य हैं ॥ १४२ ॥

स्वभावगुरुसंस्कारगुरुणोः स्वभावलघुनश्च भक्ष्यस्य भोजनपरिमाणमाह । 'गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते ॥' अयमर्थः–माषपिष्टान्नादिभिरर्धसौहित्यं कर्तव्यं मुद्गादिभिः स्वभावादेव लघुभिर्मात्रया तृप्तिः कर्तव्येत्यर्थः॥

भाषा–स्वभावसे भारी, संस्कारसे भारी, स्वभावसे हलका और भक्ष्य इनके आहारका परिमाण कहते हैं कि स्वभावसे भारी उडद तथा संस्कारसे भारी पीसे हुए अन्न आदिसे आधी तृप्ति करनी और स्वभावसे हलके तथा मूंग आदि पदार्थोंसे मात्राके योग्य तृप्ति करनी ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रवो द्रवोत्तरश्चापि न मात्रा गुरुरिष्यते ॥ द्रवः पेयादिः, द्रवोत्तरः तक्राद्यधिक ओदनादिः । मात्रातोऽधिकोऽपि मात्रागुरुर्न मन्तव्यः । पेयस्य सर्वतो लघुत्वात् ॥

भाषा—पेय सरवत आदि द्रवरूप पदार्थ और जिसमें द्रवरूप तक्र (छांछ) आदि पदार्थ अधिक पडे हों ऐसे भात आदि पदार्थ मात्रासे अधिक खाने परभी मात्रागुरु (मात्रासे भारी) नहीं होते हैं क्योंकि द्रवरूप पदार्थ सब प्रकारसे लघु (हलके) हैं ॥

उक्तं च सुश्रुतेन ।

पेयलेह्यादिभक्ष्याणां गुरुर्विद्याद्यथोत्तरम् ॥ पेयं पेयादि । लेह्यं रसालादि । आदिशब्दाद्भोज्य-मोदनसूपादि । भक्ष्यं मोदकादि ॥

भाषा—सुश्रुतभी कहते हैं कि, पेय (पीने योग्य) पदार्थ पेया (यवागू) आदि, लेह्य (चाटने योग्य) शिखरन आदि, भोज्य दाल भात आदि और भक्ष्य मोदक आदि ये पदार्थ क्रमसे उत्तरोत्तर अर्थात् पहलेसे दूसरा, दूसरेसे तीसरा, तीसरेसे चौथा विशेष भारी ह ॥

द्रव्याढ्यमपि शुष्कं तु सम्यगेवोपपद्यते । विशुष्कमन्नमभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति ॥ १४३ ॥ अयमर्थः—शुष्कमपि स्रोतोरोधक-मपि द्रव्याढ्यं सम्यक्पाकं याति केवलस्य शुष्कान्नस्य दोषमाह । विशुष्कमन्नमित्यादि॥

भाषा—जो अन्न शुष्क सूखा अर्थात् शरीरमें रस फिरनेके स्रोतों (मार्गों) को रोकनेवाला है, उसमें द्रवरूप (पतले) पदार्थ अच्छी तरह मिलानेसे वह शुष्क अन्न भले प्रकार पचता ह. केवल सूखा अन्नही खाया जाय तो वह भले प्रकार नहीं पचता है ॥ १४३ ॥

अपक्वं तत्किमभवतीत्यपेक्षायामाह ।

पिण्डीकृतमसंछिन्नं विदाहमुपगच्छति ॥ पिं-डीकृतमष्ठीलावद्भूतम् । असंछिन्नं न सम्यगार्द्रं विदाहमुपगच्छति विदग्धं भवतीत्यर्थः ॥

भाषा—द्रवरूप (पतले) पदार्थोंसे अच्छी तरहसे नहीं भीजा हुआ सूखा अन्न भले प्रकारसे नहीं पचकर पिंडीकृत (अष्ठीलावत् पिंडाकार) होकर कच्चा पक्काही रह जाता है ॥

शुष्कादीनां वैगुण्यमाह ।

शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वह्निव्यापदमावहेत् ॥ शुष्कं चिपिटकादि । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । विष्टम्भि चणकमसूरादि वह्निमांद्यं कुर्यात् ॥

भाषा—चिरवा आदि शुष्क अन्न, दूध मछली आदि विरुद्ध अन्न, तथा चने मसूर आदि विष्टंभी अन्न खानेसे जठराग्नि मंद हो जाती है ॥

सक्तुभक्षणविधिः ।

न भुक्त्वा न दंष्ट्वा न निशायां न वा बहून् । न जलान्तरितानद्भिः सक्तूनद्यान्न केव-लान् ॥ १४४ ॥ पुनर्दानं पृथक्पानं सामिषं पयसा निशि । दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ १४५ ॥ सुश्रुतः । सक्तूना-माशु जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥ १४६ ॥

भाषा—भोजन करनेके पीछे सत्तू न खावे, दांतोंसे चाबकर नहीं खावे, रातमें, अधिक तथा पानीमें घोलकर और दो वार तथा विना भोजन केवल सत्तूको नहीं खावे. जिसने एक वार सत्तू खाया है उसको फिर दूसरी वार सत्तू नहीं देवे, केवल सत्तूकोही अलग नहीं पीवे, मांसके साथ सत्तूको नहीं खावे, दूधके साथभी नहीं खावे, रात्रीमेंभी नहीं खावे, दांतोंसे चाव-कर तथा गरम २ सत्तूको नहीं खावे. ये सात बातें सत्तू खानेमें वर्जित हैं. सुश्रुतजी कहते हैं कि सत्तूका अवलेह करके चाटनेसे मृदु होनेके कारण शीघ्र पचता है ॥ १४४-१४६ ॥

विषमाशनस्य लक्षणमाह ।

आलस्यगौरवाटोपशब्दांश्च कुरुतेऽधिकम् । हीनमात्रं तनोः कार्श्यं करोति च बलक्ष-यम् ॥ १४७ ॥ अधिकम् अन्नम् इति यावत् ॥

भाषा—अन्न मात्रासे अधिक खानेसे तो आलस्य, गौरव (भारीपन), पेटका फूलना,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्द (गुडगुडाहट) होना इत्यादि विकार होते हैं और थोडा भोजन करनेसे शरीर दुर्वल हो जाता है और वल नष्ट होता है ॥ १४७ ॥

अकाले भुक्तस्य दोषमाह ।

अप्राप्तकाले भुञ्जानोह्यसमर्थतनुर्नरः । तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं चाधिगच्छति ॥ १४८॥

अप्राप्तकाले कालादतिप्राक् भुञ्जानः असमर्थशरीरो भवति । तथा सति तांस्तान् व्याधीन् शिरोव्यथाविषूचिकालसकविलम्बिकादीन् प्राप्नोति । तेषामाधिक्ये मरणमपि प्राप्नोतीत्यर्थः ।

भाषा–जो मनुष्य भोजनके समयके पहलेही भोजन कर लेवे तो उसका शरीर असमर्थ होता है, और शरीर असमर्थ होनेसे शिरमें दर्द, विषूचिका (हैजा), अलसक, विलंविका आदि रोग उत्पन्न होते हैं. रोगोंकी वृद्धि हो जानेपर कदाचित् मृत्युभी हो जाती है ॥ १४८ ॥

कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तोर्वायुनोपहतेऽनले । कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा ॥ १४९ ॥

भाषा–जो मनुष्य भोजनके समयसे वहुत काल पीछे भोजन करता है उसकी अग्नि वायुसे नष्ट हो जाती है. खाया हुआ अन्न कठिनतासे पचता है और फिर दूसरी वार भोजन करनेकी इच्छाभी नहीं होती है ॥ १४९ ॥

अथ भोजनप्रमाणम् ।

कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीये वारि पूरयेत् । वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ १५० ॥

रसेनान्नस्य रसना प्रथमेनोपतर्पिता । न तथा स्वादमाप्नोति ततः शोध्याम्बुनान्तरा ॥ १५१ ॥

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः । तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥ १५२ ॥ भुक्तस्यादौ जलं पीतं कार्श्यमन्दाग्निदोषकृत् । मध्येऽग्निदीपनं श्रेष्ठमन्ते स्थौल्यकफप्रदम् ॥ १५३ ॥

भाषा–पेटके दो भाग अन्नसे भरे, तीसरा भाग पानीसे भरे और चौथा भाग वायुके चलने फिरनेके लिये खाली रखे. पहले अन्नके रससे जिह्वा (जीभ) तृप्त होजानेपर दूसरे पदार्थके स्वाद (जायके) को नहीं जानती है इसलिये वीच वीचमें जल पीकर जीभको साफ करना चाहिये. अधिक जल पीनेसे ठीक २ अन्न नहीं पचता है और जलके नहीं पीनेसेभी वही दोष होता है अर्थात् अन्न नहीं पचता है इसलिये मनुष्यको अग्नि वढानेके लिये पुनः पुनः थोडा थोडा जल पीना चाहिये. भोजन करनेसे पहले पानी पीवे तौ अग्नि मंद होती है और शरीर कृश (दुर्वल) होता है, भोजनके वीचमें जल पीनेसे अग्निदीपन होता है और भोजनके अंतमें जल पीनेसे शरीर स्थूल (मोटा) होता है और कफ वढता है इससे भोजनके वीचमें पानी पीना श्रेष्ठ है ॥ १५०–१५३ ॥

अन्यच्च ।

समस्थूलकृशा भुक्तमध्यान्तप्रथमाम्बुपाः ॥

इति वाग्भटः भुक्तं भोजनम् ॥

भाषा–वाग्भटभी कहते हैं कि भोजनके वीच वीचमें पानी पीनेसे शरीर समान रहता है, भोजनके अंतमें जल पीनेसे शरीर मोटा होता है और भोजनके पहले जल पीनेसे शरीर कृश हो जाता है ॥

तृषितस्तु न चाश्नीयात्क्षुधितो न पिबेज्जलम् । तृषितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी ॥ १५४

भाषा–तृषित (प्यासा) मनुष्य भोजन नहीं करे क्योंकि यदि वह तृषाको शांत किये विना भोजन करे तो उसको गुल्म रोग (गोलेका रोग) होता है और क्षुधित (भूखा) मनुष्य पानी नहीं पीवे क्योंकि यदि भूंखा भूंखको शांत किये विना यदि पानी पीवे तो उसको जलोदर रोग होता है ॥ १५४ ॥

ननु शिष्टा भोजनान्ते दुग्धं पिबन्ति तत्कथमुचितम् । यतस्त्रिधा विभक्तस्य भोजनकालस्य प्रथमो भागो वातस्य, द्वितीयः पित्तस्य, तृतीयः कफस्य ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-शिष्ट मनुष्य भोजनके अंतमें दूध क्यों पीते हैं? क्योंकि भोजनके तीन भाग होते हैं उनमें पहला भाग वायुका है, दूसरा भाग पित्तका है और तीसरा भाग कफका है ॥

अत एवाह ।

अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । मध्येऽम्ललवणौ पश्चात्कटुतिक्तकषायकान् ॥ १५५ ॥ अस्यायमभिप्रायः-भोजने पूर्वं भुक्तो मधुरो रसो बुभुक्षितस्य वातपित्तयोः शमको भवति । भोजनमध्ये भुक्तौ अम्ललवणौ पित्ताशये च वह्निवृद्धिं कुरुतः । भोजनान्तसमये भुक्ताः कटुतिक्तकषायरसाः कफं शमयन्तीति । अथ भोजनावसानसमयस्य कफकालत्वात् तत्र कथं श्लेष्मजनकं दुग्धं पातुमुचितं भवति ॥

भाषा-इसी लिये यों कहा है कि, एकाग्रमन होकर पहले मधुर रस, बीचमें खट्टा तथा खारी रस और अंतमें कटु (तीखा), कडुवा तथा कसैला रस भक्षण करे. इसका यह अभिप्राय है कि, भोजनके आदिमें मधुर रस भक्षण करनेसे भूंखे मनुष्यके वायु और पित्तकी शांति होती है, बीचमें खट्टा और खारी रस भक्षण करनेसे पित्ताशयमें अग्निकी वृद्धि होती है और भोजनके अंतमें तीखा, कडुआ तथा कसैला रस खानेसे कफकी शांति होती है इससे भोजनके अंतका काल कफका है फिर इस कालमें कफोत्पादक दूधका पीना कैसे उचित हो सकता है ? ॥ १५५ ॥

अत उक्तम् ।

दुग्धं स्वादुरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्धनम् । वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ॥ ॥ १५६ ॥ इति ।

भाषा-और शास्त्रमें दूधके गुण यों लिखे हैं कि, दूध स्वादिष्ठ, स्निग्ध (चिकना), बलवर्धक, धातुको उत्पन्न करनेवाला, वात और पित्तको हरनेवाला, वृष्य, कफकारक, भारी और शीतल है ॥ १५६ ॥

उच्यते ।

विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुंक्ते हि मानवः । तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥ १५७ ॥

भाषा-इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि, दाहकारक जो जो अन्न पान भक्षण किया जाता है उन उन अन्न पानोंसे उत्पन्न हुई दाहकी शांतिके लिये भोजनके अंतमें मनुष्यको दूध पीना चाहिये ॥ १५७ ॥

तथा च ब्रह्मपुराणे ।

कुर्यात्क्षीरान्तमाहारं न दध्यन्तं कदाचन । लवणाम्लकटूष्णानि विदाहीन्यत्ति यानि तु । तद्दोषं हर्तुमाहारं मधुरेण समापयेत् ॥ १५८ ॥

भाषा-ब्रह्मांडपुराणमेंभी यही कहा है कि, क्षीरांत भोजन करे, दध्यंत कभी नहीं करे अर्थात् भोजनके अंतमें दूध पीवे, दही कभी नहीं खावे. खारी, खट्टा, चरपरा, गरम तथा दाहजनक जो पदार्थ भक्षण किया जाता है उनके दोषोंको दूर करनेके लिये अंतमें मधुर पदार्थ खाकर भोजन समाप्त करे ॥ १५८ ॥

भोजनावसानसमये दुग्धादिमधुरभोजनेनैव वर्धितः कफो लवणाम्लकटुभोजनजनितपित्तस्य वृद्धिं विनाशयति । पित्तवृद्धिविनाशनेन कफस्यापि वृद्धिः क्षीणा भवति । क्षीणा कफवृद्धिरग्निमान्द्यादीन् व्याधीनुत्पादयितुं न शक्नोति । ननु शत्रोर्नाशनेन शत्रुहन्तुर्वृद्धिर्दृश्यते नतु क्षीणता, तत् कथं कफः क्षीण इति । उच्यते बलवच्छत्रुविनाशनेन शत्रुहन्तुः क्षीणता च दृश्यते ॥

भाषा-भोजनके अंतमें दूध आदि मधुर पदार्थके भक्षणसे बढा हुआ कफ खट्टे खारी और चरपरे पदार्थके भक्षणसे उत्पन्न हुए पित्तकी वृद्धिको दूर करता है, और पित्तकी वृद्धि दूर हो जानेसे कफकी वृद्धिभी क्षीण होती है और इस कारणसे कफकी वृद्धि अग्निमांद्यादि रोगोंको उत्पन्न नहीं कर सकती. इसपर कदा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित् ऐसी शंका उत्पन्न हो जाय कि, शत्रुके नाश करनेसे उस शत्रुके नाशककी वृद्धि देखनेमें आती है इससे उपरोक्त प्रमाणमें पित्तका नाश करनेसे उसके शत्रु कफकी वृद्धि होती है ऐसा कहना उचित था फिर वहांपर कफकी क्षीणता होती है ऐसा क्यों कहा ? तो यह समाधान है कि, वलवान् शत्रुका नाश करनेसे नाश करनेवालेकीभी क्षीणता हो जाती है ॥

तथा च ।

नाशनात्प्रत्यनीकस्य स्वयं च क्षीयते यथा । वह्निसन्तप्तलोहस्य तप्ततां नाशयेज्जलम्॥ १५९

भाषा–जैसे कि जल जब तपे हुए लोहेकी तप्तता दूर करता है तब वह जलभी स्वयं क्षीण हो जाता है. ऐसेही जो अधिक वलवान् शत्रुको नष्ट करता है तब वह आपभी अधिक क्षीण हो जाता है ॥ १५९ ॥

ननु भोजनावसानसमये भुक्ताः कटुतिक्तकषायाः रसाः कफं शमयिष्यन्ति वातस्य वृद्धिं विधास्यन्ति इति चेत् । तत्र कफादीनां क्षीणशक्तिकत्वात् ॥

भाषा–भोजनके अंतमें खाया हुआ चरपरा कडुआ तथा कसैला रस कफको शांत करेगा, परंतु वातको वढावेगा ऐसी शंका उत्पन्न हो जानेपर यह कहते हैं कि तीक्ष्णादि रसकी शक्ति कफको शांत करके फिर आपभी नष्ट हो जाती है इस कारण वातको नहीं बढा सकती है ॥

तथा च ।

यदेकं नाशयेद्दोषं तन्नान्यं वर्धयेत्कुतः । नाशने ह्येकदोषस्य यतस्तत्क्षीणशक्तिकम् ॥ १६० ॥ वस्तुतो य एव रसः प्राचुर्येण भुक्तस्तस्यैव सर्वे रसा वशा भवन्ति ॥

भाषा–क्योंकि जो पदार्थ एक दोषका नाश करता है वह फिर दूसरे दोषोंको किस प्रकार बढा सकता है ? अर्थात् नहीं बढा सकता. क्योंकि उस पदार्थकी शक्ति एक दोषके नाश करनेमेंही नष्ट हो जाती है. वास्तवमें तो यह है कि जो रस अधिक खाया जाता है उसीके अधीन सब रस रहते हैं ॥ १६० ॥

अत आह सुश्रुतः ।

जग्धाः सर्वेऽपि गच्छन्ति वलिनो वश्यतां रसाः । यथा प्रकुपिता दोषा वशं यान्ति वलीयसः ॥ १६१ ॥ वलिनः रसस्य । वलीयसः दोषस्य ॥

भाषा–सुश्रुतमें कहा है कि, जिस प्रकार कुपित हुए दोषके अधीन इतर सब दोष हो जाते हैं उसी प्रकार खाये हुए सब रस वली रसके अधीन हो जाते हैं ॥ १६१ ॥

एवं भुक्त्वा समाचामेद्रूक्षग्रहणपूर्वकम् । भोजने दन्तलग्नानि निर्हृत्याचमनं चरेत् ॥ १६२ ॥ दन्तान्तरगतं चान्नं शोधनेनाहरेच्छनैः । कुर्य्यादनिर्हृतं तद्धि मुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥ १६३ ॥ दन्तलग्नमनिर्हार्यं लेपं मन्येत दन्तवत् । न तत्र वहुशः कुर्याद्यत्नं निर्हरणं प्रति ॥ १६४ ॥

भाषा–उपर्युक्त रीतिसे भोजन करनेके पश्चात् रूक्ष (खारी आदि) पदार्थसे मुख शुद्ध करके आचमन करे. भोजनके वक्त दांतोंमें जो कुछ अन्न लगा हुआ रह गया हो उसको निकाल देवे फिर आचमन करे. दांतोंके वीचमें प्रविष्ट हुए अन्नको सोने या चांदी या पीतलकी शलाकासे अथवा तृण आदिसे धीरे धीरे निकाले. दांतोंमें लगा हुआ अन्न निकालनेमें न आवे तो इससे मुखमें दुर्गंध आती है. जो कुछ दांतमें लगा हुआ रह जाय नहीं निकले तो उसको दांतोंका लेपही समझे और उसके निकालनेमें विशेष यत्न न करे ॥ १६२–१६४ ॥

आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत् । भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते । अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १६५ ॥

भाषा–आचमन करनेके पश्चात् दोनों हाथोंसे दोनों नेत्रोंको स्पर्श करे. क्योंकि भोजनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पश्चात् हाथोंको धोकर हथेलियोंको आपसमें घिसकर नेत्रोंको स्पर्श करे तो वह पानी नेत्रोंके अंधकारको शीघ्रही नष्ट करता है ॥ १६५ ॥

भुक्त्वा च संस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन्सुखावहान् । विष्णुरात्मा तथैवान्नं परिणामश्च वै यथा । सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ॥ १६६ ॥ अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं ममान्नं जरयन्त्वशेषम् । सुखं च मे तत्परिणामसम्भवं यच्छन्त्वरोगं मम चास्तु देहम् ॥ १६७ ॥ अङ्गारकमगर्स्तिं च पावकं सूर्यमश्विनौ । पञ्चैतान्संस्मरेन्नित्यं भुक्तं तस्याशु जीर्यति ॥ १६८ ॥ इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमार्ज्य तथोदरम् । अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥ १६९ ॥ अतन्द्रितः निरन्तरं जाग्रत् तिष्ठेत् न तु स्वप्यात् । भुक्तमात्रस्य तु स्वप्नात् हन्त्यग्निं कुपितः कफः । इति वचनात् ॥

भाषा—भोजनके पश्चात् निरंतर सुख प्राप्त होनेके लिये सुख देनेवाले अगस्त्य आदिकोंका स्मरण करे जैसे कि, आत्मा अन्न है, अन्नका परिणाम विष्णुही है तौ इस सत्यके प्रभावसे मैंने जो अन्न खाया है वह पच जावे. अगस्त्य, अग्नि तथा वडवानल ये मेरे खाये हुए सब अन्नको पचावें तथा अन्नके परिणाम (परिपाक) से उत्पन्न हुए सुखको मुझे देवें. और मेरा शरीर अरोग (रोगरहित) करें. मंगल ग्रह, अग्नि, सूर्य और अश्विनीकुमार इन पांचोंको जो मनुष्य नित्य स्मरण करता है, उसका खाया हुआ अन्न शीघ्र पच जाता है. इस प्रकार कहता हुआ पेटपर हाथ फेरे और इसके पश्चात् जिसमें आयास (परिश्रम) नहीं होवे ऐसे काम करे, परंतु उसी समयमें सोवे नहीं, क्योंकि, ऐसा कहा है कि भोजनके पश्चात् सो रहनेसे कफ कुपित होकर जठराग्निको नष्ट कर देता है ॥ १६६–१६९ ॥

जीर्णेऽन्ने वर्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेधते । भुक्तमात्रे कफश्चापि क्रमोऽयं भोजनोपरि ॥ १७० ॥ विदग्धे किञ्चित्पक्के किञ्चिदपक्के ॥

भाषा—अन्नके पच जानेपर वात वढता है, विदग्ध (अधपका, कुछ पका कुछ न पका) होनेपर पित्त वढता है और भोजन करनेके पश्चात् कफ वढता है ऐसा इनकी वृद्धिका क्रम है ॥ १७० ॥

भुक्तमात्रे सञ्जातस्य कफस्य प्रतीकारमाह ।

धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः । पूगैः कर्पूरकस्तूरीलवङ्गसुमनःफलैः ॥ १७१ ॥ फलैः कटुकषायैर्वा मुखवैशद्यकारिभिः । ताम्बूलपत्रसहितैः सुगन्धैर्वा विचक्षणः ॥ १७२ ॥ धूमेन अगुर्वादिधूमेन अपोह्य कफं दूरीकृत्य कषायकटुतिक्तकैः फलैः कर्पूरकस्तूरीलवङ्गादिभिः । पूगैः ऋतुकैः । सुमनःफलैः जातीफलैः । एलाहरीतक्यादिफलैः ॥

भाषा—कफको दूर करनेके लिये अगर आदिका धूआं पीवे, अथवा हृद्य (हृदयको प्रिय) कसैले चरपरे तथा कडवे रसोंसे युक्त सुपारी, कपूर, कस्तूरी, लौंग और जायफल आदि पदार्थोंको खावे, अथवा मुखको स्वच्छ करनेवाले चरपरे कसैले हरड आदि फलोंको खावे, अथवा सुगंधित पदार्थोंसे युक्त तांबूल (पान) खावे तो इससे कफ दूर होता है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

अथ तांबूलभक्षणम् ।

रतौ सुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वान्ते च सङ्गरे । सभायां विदुषां राज्ञां कुर्यात्ताम्बूलचर्वणम् ॥ १७३ ॥

भाषा—संभोगके समयमें, सोकर उठनेपर, स्नान करनेके पश्चात्, भोजन करनेपर, वमन (कै) होनेपर, युद्धमें और विद्वान् तथा राजाकी सभामें पान चाबना चाहिये ॥ १७३ ॥

अथ ताम्बूलगुणाः ।

ताम्बूलमुक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं तुवरं सरम् । तिक्तं क्षारोषणं कामरक्तपित्तकरं लघु ॥ १७४ ॥ वश्यं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवात-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रमापहम् । मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारकम् ॥ १७५ ॥ हनुदन्तमलध्वंसि जिह्वेन्द्रियविशोधनम् । मुखप्रसेकशमनं गलामयविनाशनम् ॥ १७६ ॥ नवं तदेव मधुरं कषायानुरसं गुरु । बलासजननं प्रायः पत्रशाकगुणं स्मृतम् ॥ १७७ ॥ वङ्गदेशोद्भवं पर्णं परं कटुरसं सरम् । पाचनं पित्तजनकमुष्णं कफहरं स्मृतम् ॥ १७८ ॥ पर्णं पुराणमकटु क्षुल्लकं तनु पाण्डुरम् ॥ विशेषाद्गुणवद्वेद्यमन्यद्धीनगुणं स्मृतम् ॥ १७९ ॥

भाषा–तांबूल (पान) तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, कसैला, रेचक (दस्तावर), कडुआ, क्षारोषण (उष्णतासे खारी), कामोद्दीपक, रक्तपित्तकारक; हलका, लोगोंको वश करनेवाला; कफ, मुखकी दुर्गंध, मल, वायु और परिश्रम इनको दूर करनेवाला, मुखमें स्वच्छता, सुगंध, कांति और सुंदरता देनेवाला; हनु और दांतके मैलको दूर करनेवाला, जीभको शोधनेवाला, मुखके प्रसेक (लार) को दूर करनेवाला तथा गलेके रोगको दूर करनेवाला है. नवीन पान मधुर, कसैला, भारी, कफकारक और विशेषतासें पत्रशाकके समान गुणकारी है. बंगालदेशका पान विशेष तीक्ष्ण रसवाला, सर (दस्तावर), पाचक, पित्तकारक, गरम तथा कफनाशक है. पुराना पान तीक्ष्णतारहित, हलका, मृदु, पीले रंगका तथा विशेष गुणदायक है. इसकी अपेक्षा अन्य पान हीनगुण हैं ॥ १७४–१७९ ॥

अथ पूगीफलगुणाः ।

पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तनुत् । मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥ १८० ॥ पूगं स्याद्दृढमध्यं यत्स्विन्नं वापि त्रिदोषनुत् । सरसं गुर्वभिष्यन्दि तद्दृशं वह्निनाशनम् ॥ १८१ ॥

भाषा–सुपारी भारी, शीतल, रूखी, कसैली, कफपित्तनाशक, मोहजनक, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा मुखकी विरसताको दूर करनेवाली है. जिस सुपारीका मध्यभाग कठोर है और जो सुपारी उबाली हुई है वह त्रिदोषनाशक है और रसभरी कच्ची सुपारी भारी, कफकारक और विशेषकरके अग्निनाशक है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

अथ खदिरसुधाताम्बूलगुणाः ।

खदिरः कफपित्तघ्नश्चूर्णं वातबलासनुत् । संयोगतस्त्रिदोषघ्नं सौमनस्यं करोति च ॥ १८२ ॥ मुखवैशद्यसौगन्ध्यकांतिसौष्ठवकारकम् । प्रभाते पूगमधिकं मध्याह्ने खदिरं तथा । निशासु चूर्णमधिकं ताम्बूलं भक्षयेत्सदा ॥ १८३ ॥

भाषा–खदिर (कत्था) कफपित्तनाशक है और चूना वातकफनाशक है. कत्था और चूना और पान मिलकर खानेसे तीनों दोष (कफ, वात, पित्त) दूर होते हैं, सौमनस्य अर्थात् मन प्रसन्न होता है और मुख स्वच्छ तथा सुगंधि, कांति और सुंदरतासे युक्त होता है. प्रातःकालमें पान खाया जावे तो उसमें सुपारी अधिक डाले, मध्याह्नमें कत्था अधिक डाले और रात्रिमें चूना अधिक डाले इस प्रकार सब कालमें पान खावे ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

आयुरग्रे यशो मूले लक्ष्मीर्मध्ये व्यवस्थिता । तस्मादग्रं तथा मूलं मध्यं पर्णस्य वर्जयेत् ॥ १८४ ॥ पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे पापसम्भवः । मध्यं पर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥ १८५ ॥ आद्यं विषोपमं पीतं द्वितीयं भेदि दुर्जरम् । तृतीयादनु पातव्यं सुधातुल्यं रसायनम् ॥ १८६ ॥

भाषा–पानके अग्रभागमें आयु (उमर), मूल (जड) में यश और मध्य भागमें लक्ष्मी रहती है इसलिये पानके अग्र, मूल और मध्यभागको त्याग देवे. पानका मूल भाग खानेसे व्याधि (बीमारी) होती है, अग्रभाग खानेसे पाप लगता है और मध्यभाग खानेसे आयु नष्ट होती है. पानके ऊपरकी नसें खानेसे बुद्धिको नष्ट करती हैं. पानकी पहली पीक विषके समान है, इसलिये उसका त्याग करे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरी पीक भेदक (दस्तावर) और दुर्जर (कठिनतासे पचनेवाली) है उसकोभी थूक देवे, तीसरी पीक अमृतके समान और रसायनरूप है इससे इसको और इसके पीछेकी सब पीकोंको पीवे ॥ १८४–१८६ ॥

ताम्बूलं नातिसेवेत न विरिक्तो बुभुक्षितः । देहदन्तेक्षदन्ताग्निश्रोत्रवर्णबलक्षयः । शोषः पित्तानिलास्रं स्यादतिताम्बूलचर्वणात् ॥ १८७ ॥ ताम्बूलं न हितं दन्तदुर्बलेक्षणरोगिणाम् । विषमूर्च्छामदार्तानां क्षयिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ १८८ ॥

भाषा–जिसने रेचक (दस्तावर) औषधि खाई हो, अथवा जो भूंखा हो वह पानका सेवन न करे, जो पानका बहुत सेवन करे तो शरीर, दृष्टि, बाल, दांत, अग्नि, कान, वर्ण और बल इनका क्षय होता है. बहुत पान चाबनेसे शोषरोग, पित्त, वात और रुधिर इनकी वृद्धि होती है. कमजोर दांतवाले, नेत्ररोगी, विष (जहर) से पीडित, मूर्छित, मद (नशा) से पीडित, क्षयी और रक्तपित्तसे युक्त मनुष्यको पान हितकर नहीं है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

अथ भोजनोत्तरं चंक्रमणगुणाः ।

भुक्त्वा शतपदं गच्छेच्छनैस्तेन तु जायते । अन्नसंघातशैथिल्यं ग्रीवाजानुकटीषु च ॥ ॥ १८९ ॥ भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता । आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ १९० ॥ चंक्रममाणस्य पदशतं शनैर्गच्छतः ॥

भाषा–भोजन करनेके पीछे धीरे २ सौ कदम चले क्योंकि इससे भुक्त अन्नसमूह उदरमें शिथिल होकर पचने लगता है, गरदन, जानु (घुटुए) और कमरको सुख होता है, भोजन करके बैठ जानेसे तंद्रा (आलस्य) प्राप्त होती है, सो रहनसे शरीर पुष्ट होता है, दौडनेसे मृत्यु पीछे दौडती है अर्थात् मृत्यु प्राप्त होता है और धीरे २ चलनेसे आयुकी वृद्धि होती है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान् द्विः पार्श्वे तु दक्षिणे। ततस्तद्विगुणान्वामे पश्चात्स्वप्याद्यथासुखम् ॥ १९१ ॥ वामदिशायामनलो नाभेरूर्ध्वेऽस्ति जन्तूनाम् । तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीत भुक्तप्रपाकार्थम् ॥ १९२ ॥ त्रिदोषशमनी खट्वा तूली वातकफापहा । भूशय्या बृंहणी वृष्या काष्ठपट्टी तु वातला ॥ १९३ ॥

भाषा–फिर पहले सीधा सोकर आठ श्वास लेवे, फिर दहनी करवटसे सोकर सोलह श्वास लेवे, फिर बांई करवटसे सोकर बत्तीस श्वास लेवे फिर सुखपूर्वक अर्थात् जैसी इच्छा हो वैसा सोरहे. प्राणियोंके उदरमें नाभिके ऊपर बांये भागमें अग्नि रहती है इसलिये भुक्त अन्नके पाचनके लिये बांई करवटसे सोवे. खट्वा (खाट) पर सोना त्रिदोषनाशक है, तूली (कपासकी बनाई हुई गादी, तोसक) पर सोना वातकफनाशक है और भूशय्या (जमीनपर सोना) पुष्टिकारक तथा वीर्यवर्धक है तथा काष्ठपट्टी (लकडीकी पट्टी, तखत, कौंच) पर सोना वातकारक है ॥ १९१–१९३ ॥

अन्यः पुनराह ।

भूशय्या वातलाऽतीव रूक्षा पित्तास्रनाशिनी । सुशय्याशयनं हृद्यं पुष्टिनिद्राधृतिप्रदम् १९४॥ श्रमानिलहरं वृष्यं विपरीतमतोऽन्यथा । संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं परम् । प्रीतिनिद्राकरं वृष्यं कफवातश्रमापहम् ॥ १९५ ॥

भाषा–दूसरे ग्रंथकर्ता कहते हैं भूमिपर वस्त्र बिछाकर सोना वातकारक, अत्यंत रूक्ष और पित्त तथा रक्तको नष्ट करनेवाला है. सुंदर शय्यापर सोनेसे मन प्रसन्न होता है, पुष्टि निद्रा तथा धैर्यकी प्राप्ति होती है, परिश्रम तथा वायु दूर होता है तथा वीर्य उत्पन्न होता है और दुष्ट शय्यापर सोनेसे उपर्युक्त सब गुण विपरीत होते हैं. संवाहन (हाथ पांव आदिक अंगका मलना) मांस, रुधिर और त्वचामें आनंद करनेवाला, प्रीति तथा निद्राकी वृद्धि करनेवाला, वीर्य बढानेवाला तथा कफ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वात और परिश्रमको दूर करनेवाला होता है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

अथ प्रवाताटनम् ।

प्रवातं रौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भकृद्दाहपित्तनुत् । स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतोऽन्यथा ॥ १९६ ॥ सुखं प्रवातं सेवेत ग्रीष्मे शरदि चान्तरा । निर्वातमायुषे सेव्यमारोग्याय च सर्वदा ॥ १९७ ॥ पूर्वोऽनिलो गुरुः सोष्णः स्निग्धः पित्तास्रदूषकः । विदाही वातलः श्रांतिकफशोषवतां हितः ॥ १९८ ॥ स्वादुः पटुरभिष्यन्दी त्वग्दोषार्शोविषाक्रिमीन् । सन्निपातं ज्वरं श्वासमामवातं च कोपयेत् ॥ १९९ ॥ स्वादुः भक्ष्यद्रव्येषु बाहुल्येन मधुररसजनकः ॥

भाषा–प्रवात (हवामें फिरना) शरीरको रूक्ष, विवर्ण तथा स्तंभित करता है, दाह (जलन) और पित्तको दूर करता है, पसीना, मूर्च्छा तथा तृषा (प्यास) को शांत करता है, अप्रवात अर्थात् जहां अधिक पवन न हो ऐसी जगहमें फिरनेसे उपर्युक्त सब गुण उलटे होते हैं. ग्रीष्म और शरद्दतुमें सुखपूर्वक वातका सेवन करे परंतु इतर ऋतुओंमें आयुकी वृद्धिके लिये और आरोग्यके लिये जहां अधिक पवन न हो ऐसी निर्वात स्थानमें सदा विचरण करे. पूर्वदिशाकी पवन भारी, गरम, स्निग्ध, रक्तपित्तको दूषित करनेवाली, दाहकारक है और वातकारक है तथा श्रांत और कफ तथा शोषरोगवाले मनुष्योंको हितकारी है, भक्षित पदार्थोंको मधुर करनेवाली, पटु (नमकीन) और अभिष्यंदी है, त्वचाके दोष, बवासीर विषरोग, कृमिरोग, सन्निपात, ज्वर, श्वास और आमवात इन रोगोंको कुपित करती है ॥ १९६–१९९ ॥ दक्षिणः पवनः स्वादुः पित्तरक्तहरो लघुः । वीर्येण शीतलो बल्यश्चक्षुष्यो न तु वातलः ॥ २०० ॥ पश्चिमः पवनस्तीक्ष्णः शोषणो बलहृल्लघुः । मेदःपित्तकफध्वंसी प्रभञ्जनविवर्धनः ॥ २०१ ॥ उत्तरो मारुतः शीतः स्निग्धो दोषप्रकोपकृत् । क्लेदनः प्रकृतिस्थानां बलदो मधुरो मृदुः ॥ २०२ ॥ दोषप्रकोपकृत् आतुराणाम् ॥

भाषा–दक्षिणदिशाकी वायु स्वादु (मधुर रसजनक), पित्तरक्तनाशक, हलकी, शीतवीर्य, बलकारक, नेत्रोंको हितकारक है और वातको उत्पन्न करनेवाली नहीं है. पश्चिमदिशाकी वायु तीक्ष्ण, शोषकारक, बलनाशक, हलकी, मेदकी हरनेवाली, पित्तकफनाशक और वातको बढानेवाली है. उत्तरदिशाकी वायु शीतल स्निग्ध, आतुर मनुष्यके दोषोंको कुपित करनेवाली और ग्लानिकारक है तथा प्रकृतिस्थित (स्वस्थ) मनुष्योंको बलदायक है और मधुर तथा कोमल है ॥ २००–२०२ ॥

आग्नेयो दाहकृद्रूक्षो नैर्ऋतो न विदाहकृत् । वायव्यस्तु भवेत्तिक्त ऐशानः कटुकः स्मृतः ॥ २०३ ॥ विष्वग्वायुरनायुष्यः प्राणिनां बहुरोगकृत् । अतस्तं नैव सेवेत सेवितः स्यान्न शर्मणे ॥ २०४ ॥ व्यजनस्यानिलो दाहस्वेदमूर्च्छाश्रमापहः । तालवृन्तभवो वातस्त्रिदोषशमको मतः ॥ २०५ ॥ वंशव्यजनजस्तूष्णो रक्तपित्तप्रकोपणः । चामरो वस्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा । एते दोषजिता वाताः स्निग्धा हृद्याः सुपूजिताः ॥ २०६ ॥

भाषा–अग्निकोणकी वायु दाहकारक और रूक्ष है. नैर्ऋत्य कोणकी वायु दाहकारक नहीं है. वायव्यकोणकी वायु तिक्त (कडवी) है और ईशानकोणकी वायु तीक्ष्ण है. चारों दिशाओंकी मिली हुई वायु आयुनाशक और मनुष्योंके लिये अनेक रोगोंको उत्पन्न करनेवाली है. इसलिये ऐसी वायुका सेवन नहीं करे और किसीने सेवन किया तो उसका कल्याण नहीं होवेगा. पंखेकी वायु दाह, पसीना, मूर्च्छा और श्रमको दूर करनेवाली है. ताडके पंखेकी वायु तीनों दोषोंको शांत करनेवाली है, बांसके पंखेकी वायु गरम और रक्तपित्तको कुपित करनेवाली है. चमर, वस्त्र और मोरके पंखेकी पवन तथा वेंतके पंखेकी पवन दोषोंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूर करनेवाली, स्निग्ध, हृदयको प्रिय और पूजित है ॥ २०३–२०६ ॥

अथ दिवास्वापप्रतिषेधः ।

दिवा स्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः । ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वप्नो निषिध्यते ॥ २०७ ॥ उचितो हि दिवास्वप्नो नित्यं येषां शरीरिणाम् । वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥ २०८ ॥ व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् । क्षीणान् क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान् वृद्धान् रसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत् ॥२०९॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रां सात्मीकृता तु यैः । न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥ २१० ॥ स्वपतां दिवा इति यावत् । जाग्रतां रात्रौ इति शेषः ॥

भाषा–दिनमें सोनेसे कफकी वृद्धि होती है इसलिये दिनमें नहीं सोवे. ग्रीष्मऋतुको छोडकर अन्य ऋतुओंमें दिनमें सोना निषिद्ध है. परंतु जो मनुष्य नित्यही दिनमें शयन करते हैं यदि वे दिनमें शयन नहीं करेंगे तौ उनके वातादिक दोष कुपित होते हैं, इसलिये उनको दिनमें सोना वर्जित नहीं है. व्यायाम (कसरत) करनेमें तत्पर, जो स्त्रीप्रसंग करचुका हो, रस्ता चलनेसे थका हुआ, घोडे आदि वाहनोंपर बैठकर श्रमित हुआ, ग्लानियुक्त, अतिसार, शूल, श्वास, तृषा, हिचकी और वातरोग इन रोगोंसे पीडित, जिसका कफ नष्ट होगया हो, बालक, मदात्ययरोगसे पीडित, वृद्ध, रससे अजीर्णवाला, रात्रिमें जागा हुआ अथवा जिसने भोजन किया हो ऐसे मनुष्योंको दिनमें सुखपूर्वक सुलावे. दिनमें या रातमें जिन्होंने निद्रा जीती है उन मनुष्योंको दिनमें सोनेसे और रातमें जागनेसे कुछभी दोष नहीं होता है ॥ २०७–२१० ॥

भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृत् । कफं करोति वपुषः पुष्टिसौख्यं तनोति हि ॥ २११ ॥ शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम् । वमनं कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम् । आसीनं घूर्णितं तत्तु नाभिष्यंदि न रूक्षणम् ॥ २१२ ॥

भाषा–भोजनके अनंतर निद्रा लेनेसे वात तथा पित्त नष्ट होता है और कफ बढता है, शरीर पुष्ट होता है और सुख मालूम होता है. निद्रा लेनेसे पित्तका नाश, तेलके मर्दनसे वातका नाश और वमन (कै) करनेसे कफका नाश होता है. लंघन करनेसे ज्वरका नाश होता है और बैठे बैठे ऊंघनेसे अभिष्यंद और रूक्षता नहीं होती है ॥ २११ ॥ २१२ ॥

अपरानप्युदरेऽन्नस्य संस्थापनहेतूनाह ।

शब्दान् स्पर्शांश्च रूपाणि रसान् गन्धान् मनःप्रियान् । भुक्तवानपि सेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ २१३ ॥ उदरे इति शेषः ॥

भाषा–भोजनके अनंतर मनको प्रिय लगे ऐसे शब्द (गाना, बजाना आदि), स्पर्श, रूप, रस और गंधका सेवन करे इससे पेटमें अन्न भली भांति रह जाता है ॥ २१३ ॥

अन्नस्य उदरेऽस्थितिहेतूनाह ।

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धो जुगुप्सितः । भुक्तमप्रयतं चान्नमतिहास्यं च वामयेत् ॥ २१४ ॥ अप्रयतमपवित्रम् ॥

भाषा–मनको अप्रिय ऐसे शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध और अपवित्र अन्न इनका सेवन करनेसे तथा बहुत हँसनेसे अन्नका वमन होता है ॥ २१४ ॥

अन्यदपि वर्जनीयमाह ।

शयनं चाशनं चाति न भजेन्न द्रवाधिकम् । नाग्न्यातपौ न प्लवनं न यानं नापि वाहनम् ॥ २१५ ॥ प्लवनं बाहुभ्यां जलप्रतरणम्, यानं मार्गे चलनम्, वाहनमश्वादि ॥

भाषा–भोजनके अनंतर अत्यंत सोना, बैठे रहना, पतले पदार्थोंको अधिकतासे सेवन करना,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निसे तपना, पानीमें तैरना, बहुत चलना, घोडे आदि वाहनोंपर बैठना इन कर्मोंको दो घडीतक नहीं करे ॥ २१५ ॥

व्यायामं च व्यवायं च धावनं यानमेव च । युद्धं गीतं च पाठं च मुहूर्तं भुक्तवांस्त्यजेत् २१६

भाषा–व्यायाम (कसरत), मैथुन, दौडना, मार्ग चलना, लडाई करना, गाना और बोलना इत्यादि कार्योंकोभी भोजनके अनंतर दो घडीतक त्याग देवे ॥ २१६ ॥

अजीर्णस्य हेतूनाह ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च । कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ २१७ ॥ ईर्ष्याभयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन । विद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्क परिपाकमेति ॥ २१८ ॥ सन्धारणात् अधोवातमलमूत्रादीनाम् ॥

भाषा–बहुत जल पीनेसे, विषमाशन (थोडा बहुत अवेर सवेर खाने) से, मल मूत्रादिके वेगके रोकनेसे, निद्राके विपर्ययसे अर्थात् कभी दिनमें और कभी रात्रिमें सोनेसे भोजनके समयपर हलका तथा हितकारक खाया हुआ अन्नभी मनुष्यको नहीं पचता है. ईर्षा (दूसरेके गुणोंको न देख सकना), भय, क्रोध, लोभ, रोग, दीनता और द्वेष इनसे युक्त मनुष्यका भुक्त अन्न अच्छी तरहसे नहीं पचता है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

अध्यशनलक्षणमाह ।

अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते । तन्निवारयन्नाह । प्राग्भुक्ते चानले मन्दे द्विरह्नि न समाहरेत् ॥ २१९ ॥ अस्यायमर्थः । प्रातर्भुक्ते अजीर्णे सति अहन्येव पुनर्न भुञ्जीत इत्यर्थः । रात्रौ पुनस्तथापि सति भुञ्जीतैव ॥

भाषा–अजीर्ण हो जानेपर जो कुछ उस समयमें खाया जाता है वह अध्यशन कहाता है. इसलिये पहिला खाया हुआ अन्न जबतक न पच जाय और जठराग्नि मंद होय तो दिनमें दूसरी वार भोजन नहीं करे परंतु अजीर्ण हो जानेपरभी रात्रिमें भोजन करनेसे दोष नहीं होता ॥ २१९ ॥

अत आह सुश्रुत एव ।

प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशो न दुष्यति । पूर्वं भुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति पावकम् ॥ २२० ॥ अस्य तु अयमर्थः–पूर्वं भुक्ते रात्रिभुक्ते अन्ने विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिदपक्के प्रातर्भुञ्जानः पावकं हन्तीत्यर्थः ॥ अत आह । सायमाशे त्वजीर्णे तु प्रातर्भुक्तं विषोपमम् ॥ २२१ ॥ इति ॥

भाषा–प्रातःकालमें किये हुए भोजनसे यदि अजीर्ण उत्पन्न हो गया हो तो सायंकालमें भोजन करनेमें कुछ दोष नहीं है परंतु संध्यामें किये हुए भोजनसे यदि अजीर्ण हो गया हो और प्रातःकालमें फिरभी भोजन किया जाय तो जठराग्नि मंद हो जाती है और प्रातःकालमें वह खाया हुआ अन्न विषके सदृश हो जाता है अर्थात् विषके सदृश परिणाम करता है ॥ २२० ॥ २२१ ॥

सायमाशाजीर्णे भोजनोपायमाह ।

भवेद्यदि प्रातरजीर्णशङ्का तदाभयां नागरसैन्धवाभ्याम् । विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुञ्जीत चान्नं मितमन्नकाले ॥ २२२ ॥

भाषा–सुश्रुतमें लिखा है कि, यदि संध्याकालका किया हुआ भोजन नहीं पच गया ऐसी शंका उत्पन्न होय तो प्रातःकालमें सोंठ, सेंधानोन और हरड इनका चूर्ण कर ठंडे जलके साथ खाकर फिर भोजनके समयमें थोडा भोजन करे ॥ २२२ ॥

दिवा स्त्रीसंगनिषेधः ।

आयुःक्षयभयाद्विद्वान्नाह्नि सेवेत कामिनीम् । अवशो यदि सेवेत तदा ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ २२३ ॥ अवशः अजितेन्द्रियः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-आयुके क्षीण होनेके भयसे विद्वान् लोग दिनमें स्त्रीका सेवन नहीं करे, परंतु विशेष अजितेंद्रिय अर्थात् कामातुर होकर पराधीन हो जाय तौ ग्रीष्मऋतु या वसंतऋतुमें दिनमें स्त्रीके साथ संभोग करे ॥ २२३ ॥

उपवेशनाटनादिगुणाः ।

आस्या वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यसुखप्रदा। अध्वा वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यविनाशनः।२२४। यत्तु चंक्रमणं नातिदेहपीडाकरं भवेत्। तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ॥ २२५ ॥

भाषा-बैठे रहनेसे शरीरका वर्ण अच्छा हो जाता है तथा कफ, स्थूलता, सुकुमारता और सुख इनकी प्राप्ति हो जाती है. चलनेसे शरीरका वर्ण बिगड जाता है, तथा कफ, स्थूलता और सुकुमारता नष्ट हो जाती है. शरीरको पीडा न होय इस प्रकार धीरे २ फिरनेसे आयु, बल और बुद्धि इनकी वृद्धि होती है, अग्नि प्रदीप्त होती है और सब इन्द्रियें सचेत होती हैं ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

उष्णीषोपानद्गुणाः ।

उष्णीषं कान्तिकृत्केश्यं रजोवातकफापहम्। लघु तच्छस्यते यस्माद्गुरु पित्ताक्षिरोगकृत् ॥ २२६ ॥ उपानद्धारणं नेत्र्यमायुष्यं पादरोगहृत्। सुखप्रचारमौजस्यं वृष्यं च परिकीर्तितम् ॥ २२७ ॥ पादाभ्यामनुपानद्भ्यां सदा चंक्रमणं नृणाम्। अनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रियघ्नमदृष्टिदम् ॥ २२८ ॥

भाषा-पगडीका धारण करना कांतिको बढाता है, केशोंको हितकारी है, धूल, वात तथा कफको दूर करनेवाला है. हलकी पगडी धारण करना अच्छा है क्योंकि भारी पगडीका धारण करना पित्त और नेत्ररोगोंको उत्पन्न करता है. पांवमें जूतियोंका पहिरना नेत्रोंको सुखकारक है तथा आयुको बढानेवाला, पांवोंके रोगोंको दूर करनेवाला, सुखपूर्वक संचार करानेवाला, उत्साह और शक्तिको बढानेवाला कहा है. सदा पांवोंमें जूती न पहरकर फिरनेवाले मनुष्योंकी आरोग्यता और आयुकी हानि होती है तथा इंद्रियें नष्ट होती हैं और दृष्टिभी नष्ट होती है ॥ २२६-२२८ ॥

अथ छत्रदंडधारणगुणाः ।

छत्रस्य धारणं वर्षातपवातरजोऽपहम्। हिमघ्नं हितमक्ष्णोश्च माङ्गल्यमपि कीर्तितम् ॥२२९॥ सत्त्वोत्साहबलस्थैर्यधैर्यतेजोविवर्धनम्। अवष्टम्भकरं चापि भयघ्नं दण्डधारणम् ॥२३०॥

भाषा-छत्र (छत्री, छाता) का धारण करना वर्षा, धूप, पवन और रज (धूल) इनको दूर करता है तथा शीतनाशक, नेत्रोंको हितकारी और मंगलकारक कहा है. दंड (लकडी, लाठी) का धारण करना शक्ति, उत्साह, बल, स्थिरता, धैर्य और तेज इनकी वृद्धि करता है, सहारा देता है और भयको नष्ट करता है ॥ २२९ ॥ २३० ॥

अथ शिबिकाद्यारोहणगुणाः ।

ऊर्ध्वाच्छादनसंयुक्ता शिबिका सर्ववल्लभा। तस्यामारोहणं नृणां त्रिदोषशमकं मतम् ॥ २३१ ॥ वातश्लेष्मगदार्तानामहिता भ्रमकृत्तरिः। पित्तानिलकरो हस्ती लक्ष्म्यायुःपुष्टिवर्द्धनः ॥ २३२ ॥ घोटकारोहणं वातपित्तान्निश्रमकृन्मतम्। मेदोवर्णकफघ्नं च हितं तद्बलिनां परम् ॥ २३३ ॥

भाषा-ऊपरसे ढकी हुई शिबिका (पालकी) सबको प्रिय लगती है, इसमें बैठनेसे मनुष्योंके तीनों दोष शांत हो जाते हैं. तरि (नौका, नांव) वातकफरोगोंसे पीडित मनुष्योंके लिये हितकारी नहीं है, किंतु भ्रम (चक्कर) करनेवाली है. हाथीपर बैठना पित्त तथा वातको उत्पन्न करता है तथा लक्ष्मी, आयु और पुष्टि इनको बढाता है. घोडेपर सवारी करना वात, पित्त तथा अग्निको बढाता है, परिश्रमकारक है तथा मेद, वर्ण और कफको नष्ट करता है, बलवान् मनुष्योंको घोडेकी सवारी बहुत हितकारी है ॥ २३१-२३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ आतपादीनां गुणाः ।

आतपः स्वेदमूर्च्छास्रपित्ततृष्णाश्रमश्रमान् । दाहं विवर्णतां कुर्यादेतांश्छाया व्यपोहति ॥ २३४॥ वृष्टिर्वृष्या हिमा वल्या निद्रालस्यविधायिनी । भयावहा मोहकरी कुहेलिः कफवातला ॥२३५॥ कुहेलिः कुआशा इति लोके॥

भाषा–आतप (धूप) स्वेद (पसीना), मूर्च्छा, रक्तपित्त, तृषा, ग्लानि, परिश्रम, दाह और विवर्ण (रंगका बदलना) इनको उत्पन्न करता है और च्छाया स्वेद, मूर्च्छा, रक्तपित्त, तृषा, ग्लानि, परिश्रम, दाह और विवर्ण इनको दूर करती है. वृष्टि (वर्षा) वीर्यवर्धक, शीतल, बलकारक, निद्राजनक और आलस्यको बढानेवाली है, कुहेलि (कुहर) भयकारक, मोहकारक और कफ तथा वातको बढानेवाला है ॥ २३४ ॥ २३५ ॥

अग्निर्वातकफस्तम्भशीतवेपथुनाशनः। आमाभिष्यन्दशमनो रक्तपित्तप्रकोपणः ॥ २३६ ॥ सद्यःश्लेष्मकरो धूमो नेत्रयोरहितो भृशम् । शिरोगौरवकृच्चापि वातपित्तं च कोपयेत् २३७

भाषा–अग्नि वात, कफ, स्तंभ, शीत और कंप इनको नष्ट करती है तथा आमाभिष्यंदको शांत करती और रक्तपित्तको दूर करती है. धूम (धूआं) तत्काल कफका करनेवाला, नेत्रोंको अहितकारक, शिरको भारी करनेवाला तथा वातपित्तको कुपित करनेवाला है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

अथ सदाचरणम् ।

मैत्रीं सद्भिः समं कुर्यात् स्नेहं सत्सु तु सर्वथा । संसर्गं साधुभिः कुर्यादसत्सङ्गं परित्यजेत् ॥ २३८ ॥ सत्सु सर्वथा सज्जनेषु मनोवाक्कर्मभिः । सेवेत देवभूदेववृद्धवैद्यनृपातिथीन् । विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत कानपि ॥ २३९ ॥ गुरूणां सन्निधौ तिष्ठेत्सदैव विनयान्वितः । पादप्रसारणादीनि तत्र नैव समाचरेत् ॥२४०॥ अपकारपरेऽपि स्यादुपकारपरः पुमान् । आत्मवत्सकलान्पश्येद्वैरिणो दूरतो वसेत् ॥ २४१ ॥ न किञ्चिदात्मनः शत्रूनात्मानं कस्यचिद्रिपुम् । प्रकाशयेन्नापमानं न च निस्नेहतां प्रभोः ॥ २४२ ॥

भाषा–श्रेष्ठ मनुष्योंके साथ मित्रता करे तथा उनके ऊपर सब प्रकारसे सर्वदा स्नेह रखे, मन वचन तथा कर्मसे उनसेही संसर्ग करे. नीच मनुष्योंका संग कभी नहीं करे. देव, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथि इन लोगोंका सेवन करे, याचकों (मांगनेवालों) को विमुख अर्थात् निराश न करे, किसीकी अवज्ञा न करे. गुरु (बडे) लोगोंके पास सर्वदा विनयान्वित (नम्रतायुक्त) रहे, उनके पास पांव पसारके नहीं बैठे, उनके पास अयोग्य कार्य कभी नहीं करे, अपकार करनेवाले मनुष्योंके ऊपर उपकार करनेमेंही तत्पर रहे, सब मनुष्योंको अपने समान जाने, शत्रुसे सदा दूर रहे. अमुक मनुष्य मेरा शत्रु है अथवा अमुक मनुष्यका मैं शत्रु हूं ऐसा कभी प्रकाशित नहीं करे, किसी जगह अपना अपमान हुआ हो उसीको तथा प्रभुकी निस्नेहता यदि अपने ऊपर हुई हो तो उसको प्रकाशित नहीं करे ॥ २३८–२४२ ॥

नात्मानमुदके पश्येन्न नग्नः प्रविशेज्जलम् । तथा नाज्ञातगाम्भीर्यं न हिंस्रप्राणिसेवितम् ॥२४३॥ काले हितं मितं सत्यं संवादि मधुरं वदेत् । भुञ्जीत मधुरप्रायं स्निग्धं काले हितं मितम् ॥२४४॥ न रात्रौ दधि भुञ्जीत न च निर्लवणं तथा । नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं न चाप्यघृतशर्करम् ॥ २४५ ॥ जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति । तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ॥ २४६ ॥ नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शङ्कितः । नोद्यमे विरमेत्कापि हेतावीर्ष्येत्फले न तु ॥२४७॥ हेतौ फलहेतौ उद्यमे, फले धनादौ ॥

भाषा–पानीमें अपना प्रतिबिंब न देखे, नग्न होकर जलमें प्रवेश न करे, जिसकी गहराई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मालूम न हो तथा जिसमें मगर आदि हिंसक प्राणी रहते होंय ऐसे जलमें प्रवेश नहीं करें, समयपर, थोडा, हितकारी, सत्य, प्रसंगके अनुसार तथा मधुर ऐसा वचन बोले, जब भोजनका समय हो तब अधिक मधुर, स्निग्ध (सरस), घृत (घी) से युक्त, हितकारी तथा प्रमाणानुसार ऐसा भोजन करे, रात्रिमें दही नहीं खावे, लवणरहित दही कभी नहीं खावे, मूंगकी दाल, शहद, घी और शर्करा इनके विनाभी कभी भोजन नहीं करे, मनुष्यके अभिप्रायको जानकर वह जिससे प्रसन्न होय उसी प्रकार उस मनुष्यके साथ वर्तन करे अर्थात् अन्य मनुष्योंको प्रसन्न रखनाही चतुरता है. जिस प्रकार सहायरहित अकेला मनुष्य सुखी नहीं होता है उसी प्रकार सबके ऊपर विश्वास करनेवाला अथवा सबके ऊपर संदेह रखनेवालाभी कभी सुखी नहीं होता है. उद्यम करनेमें कभी विराम नहीं करे किंतु सदैव उद्योग करता रहे, फलके हेतुमें ईर्ष्या करे परंतु फल (धनादि) में ईर्ष्या नहीं करे अर्थात् किसी ऐश्वर्यवान् मनुष्यको अथवा उसके ऐश्वर्यको देखकर ईर्ष्या नहीं करे किंतु किस उपायसे यह धनवान् हुआ है उस उपायके करनेमें यत्न करे ॥ २४३-२४७ ॥

वेगान्न धारयेज्जातु मनोवेगान्विधारयेत्। न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतानतिलालयेत् ॥२४८॥ वर्षातपादिषु च्छत्री दण्डी रात्रौ भयेषु च। सोपानत्कस्तनुं रक्षेद्विचरेद्युगमात्रदृक् ॥२४९॥ युगमात्रदृक् अग्रतो हस्तचतुष्टयमितां भूमिं पश्यन् ॥

भाषा-मल, मूत्र तथा अपानवायु आदिके वेगोंको कदापि नहीं रोके, मनके वेगों (काम, क्रोध, लोभ आदि) को रोके, इंद्रियोंको विशेष पीडित नहीं करे और उनका लालन (लाड) भी विशेष नहीं करे. वर्षा तथा आतप (गरमी, धूप) आदिमें छत्री धारण करे. रात तथा भयके समयमें हाथमें लकडी धारण करे. जूती पहरे रहे. सब प्रकारसे देहकी रक्षा करे तथा आगेको चार हाथ पृथ्वी देखकर चले ॥ २४८ ॥ २४९ ॥

नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्निस्कन्धमभिव्रजेत्। सन्दिग्धनावं वृक्षं च नारोहेद्दुष्टयानकम् ॥ २५० ॥ दुष्टयानं दुष्टगजघोटकादि ॥

भाषा-हाथोंसे तैरकर नदीके परतीरको नहीं जावे, जहां अग्निसमूह हो वहां नहीं जावे. जिसमें संदेह हो ऐसी नावपर नहीं चढे, वृक्षपर नहीं चढे, दुष्ट यान (गज घोडा आदि) पर नहीं चढे ॥ २५० ॥

नासंवृतमुखं कुर्यात्सभायां च विचक्षणः। कासं श्वासं तथोद्गारं जृम्भणं क्षवथुं तथा ॥ २५१ ॥ नासिकां न विकुष्णीयान्नासीतोत्कटुकः क्वचित्। नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्न नखेन लिखेद्भुवम् ॥ २५२ ॥ सम्मार्जनीरजो नैव देहे दद्यात्कदाचन। न नखेन तृणं छिन्द्यान्नोच्छिष्टो ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥२५३॥ नोपरक्तं न चोद्यन्तं नास्तं यातं दिवाकरम्। सर्वथा न समीक्षेत न जले प्रतिबिम्बितम् ॥ २५४ ॥ नेक्षेत सततं सूक्ष्मं दीप्तामेध्याप्रियाणि च। पौरन्दरं धनुर्नैव दर्शयेत्कमपि क्वचित् ॥२५५॥ नेच्छेद्बलवता युद्धं न भारं शिरसा वहेत्। गात्रं न नादयेत् केशान् हस्तेन धुनुयान्न च ॥२५६॥ न गच्छेत्पूज्ययोर्मध्ये दम्पत्योरन्तरेण च। रिपोरन्नं न भुञ्जीत गणिकान्नमपि क्वचित्। प्रतिभूर्न भवेत् क्वापि न च साक्षी वृथा भवेत् ॥ २५७ ॥ प्रतिभूः जामिन ॥

भाषा-सज्जन मनुष्योंकी सभामें मुखके संमुख मुख करके कभी खांसी, श्वास, डकार, जम्हाई अथवा छींक नहीं लेवे. उकडू कभी नहीं बैठे. घुटुए ऊंचे करके बहुत देरतक नहीं बैठे. नखोंसे पृथ्वीको कभी नहीं खोदे. बुहारीकी धूल शरीरपर कभी न पडने देवे. नखसे तृण (तिनुके) को नहीं तोडे. जूंठे मुख अर्थात् विना मुख धोये ब्राह्मणको स्पर्श नहीं करे, राहुसे ग्रस्त अथवा उदय होते हुए वा अस्त होते हुए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूर्यको नहीं देखे. पानीमें पडे हुए सूर्यके प्रतिबिंबको नहीं देखे. आकाशमें तने हुए इंद्रधनुष्यको किसी समयमेंभी किसीको नहीं दिखावे. बलवान्के साथ युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करे. मस्तकपर बोझको नहीं उठावे. हाथ आदिसे शरीरको ठोककर शब्द न करे. हाथसे केशाको नहीं हलावे. दो पूज्य मनुष्य अथवा स्त्री पुरुष दोनों खडे होंय तो उनके बीचमें होकर कभी नहीं जावे. शत्रु अथवा वेश्याका अन्न कभी नहीं खावे. किसी समयमेंभी किसीका प्रतिभू (जामीन) नहीं बने. किसीका वृथा साक्षी नहीं होवे ॥ २५१–२५७ ॥

छार्गीं न धारयेज्जातु द्यूतं दूरात्परित्यजेत् । विश्वासं नाचरेत्स्त्रीणां ताः स्वतंत्रा न चारयेत् । रक्षणीयाः सदा यत्नाद्यौवने तु विशेषतः ॥ २५८ ॥ न भिन्ने शयने स्वप्यान्नानेकविवरेऽपि च । नैको देवालये नैव रात्रौ तरुतलेऽपि च ॥ २५९ ॥ एवं दिनानि गमयेत्सदाचारपरः सदा । ततो रात्रिप्रयुक्तानि कुर्यात्कर्माणि मानवः ॥ २६० ॥ इत्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत् । स विन्दत्यायुरारोग्यं प्रीतिं धर्मं धनं यशः ॥ २६१ ॥

भाषा–किसीकी धरोहर नहीं रखे. जहां द्यूत (जूआ) होता हो वहां नहीं ठहरे, उसको दूरसेही त्याग देवे. स्त्रियोंका विश्वास कभी नहीं करे. स्त्रियोंको स्वतंत्रासे न रखे. स्त्रियोंकी सदैव यत्नके साथ रक्षा करे. उसमेंभी युवावस्थामें स्त्रियोंकी विशेष करके रक्षा करनी चाहिये. स्त्रीको भिन्न (अलग) शय्यापर नहीं सुलावे. पुरुषोंके स्थानमें स्त्रीको नहीं रखे, अथवा अनेक छिद्रोंसे युक्त स्थानमें शयन न करे, रात्रिको देवमंदिरमें वा वृक्षके तले अकेला कभी नहीं सोवे. इस प्रकार सदैव सदाचारमें तत्पर रहकर दिन व्यतीत करे और रातमें रात्रिके समयानुकूल कार्योंको करे. संक्षेपसे जो यह सदाचार कहा है इसके अनुसार जो मनुष्य आचरण करता है उसको आयु, आरोग्य, प्रीति, धर्म और यश इनकी प्राप्ति होती है ॥ २५८–२६१ ॥

अथ सन्ध्यायां निषिद्धकर्माणि ।

एतानि पञ्च कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद्बुधः । आहारं मैथुनं निद्रां संपाठं गतिमध्वनि ॥ २६२ ॥ भोजनाज्जायते व्याधिर्मैथुनाद्गर्भविकृतिः । निद्राया निःस्वता पाठादायुर्हानिर्गतेर्भयम् ॥ २६३ ॥

भाषा–विद्वान् मनुष्योंको संध्याकालमें आहार (भोजन), मैथुन (स्त्रीप्रसंग), निद्रा, पाठ (अध्ययन) और मार्ग चलना ये पांच कर्म नहीं करने चाहिये. क्योंकि संध्यासमयमें भोजनके करनेसे व्याधि (बीमारी) पैदा होती है, मैथुन करनेसे गर्भमें विकृति उत्पन्न होती है, निद्रासे निर्धनता प्राप्त होती है, पढनेसे आयुका क्षय होता है और मार्गमें चलनेसे भय उत्पन्न होता है ॥ २६२ ॥ २६३ ॥

अथ रात्रिचर्यामाह ।

ज्योत्स्ना शीता स्मरानंदप्रदा तृट्पित्तदाहहृत् । ततो हीनगुणः कुर्यादवश्यायोऽनिलं कफम् ॥ २६४ ॥ तमो भयावहं मोहदिङ्मोहजनकं भवेत् । पित्तहृत्कफहृत्कामवर्धनं क्लमकृच्च तत् ॥ २६५ ॥ रात्रौ च भोजनं कुर्यात् प्रथमप्रहरान्तरे । किञ्चिदूनं समश्नीयाद्दुर्जरं तत्र वर्जयेत् ॥ २६६ ॥

भाषा–चंद्रमाकी चांदनी शीत (ठंडी), मदनसंबंधी आनंदको देनेवाली तथा तृषा, पित्त और दाह इनको हरनेवाली है. अवश्याय (हिम, ओस) चांदनीसे हीन गुणवाला है तथा वात और पित्तको करनेवाला है. तम (अंधकार) भयदायक, मोहकारक, दिशाओंमें भ्रम उत्पन्न करनेवाला तथा पित्त और कफको हरनेवाला तथा कामदेवको बढानेवाला और क्लम (ग्लानि) को करनेवाला है. रात्रिके प्रथम प्रहरमें दिनकी अपेक्षा कुछ कम भोजन करे और उसमें दुर्जर (बहुत देरसे पचनेवाला) ऐसा भोजन नहीं करे ॥ २६४–२६६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ मैथुनम् ।

शरीरे जायते नित्यं देहिनः सुरतस्पृहा । अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिः शिथिलता तनोः ॥ २६७ ॥ बालेति गीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश । ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि ॥ २६८ ॥ तदूर्ध्वमधिरूढा स्यात्पञ्चाशद्वत्सरावधि । वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता ॥ २६९ ॥ अधिरूढा प्रौढा ॥

भाषा-प्राणीके शरीरमें नित्य मैथुन करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है और इच्छा हो जानेपर मैथुन न करनेसे प्रमेहरोग और मेदरोग इनकी वृद्धि होती है तथा शरीरमें शिथिलता प्राप्त होती है. स्त्री सोलह वर्षतक बाला कहाती है, सोलह वर्षके उपरांत बत्तीस वर्षतक युवा (जवान) कहाती है, बत्तीस वर्षके उपरांत पचास वर्षतक प्रौढा कहाती है और इसके पीछे वृद्धा (बूढी) कहाती है और स्त्रीको वृद्धावस्थामें कामदेवसंबंधी उत्सव नहीं रहता है ॥ २६७-२६९ ॥

निदाघशरदोर्बाला हिता विषयिणी मता । तरुणी शीतसमये प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥२७०॥ नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं वर्धयते बलम् । तरुणी ह्रासयेच्छक्तिं प्रौढोद्भावयते जराम् ॥ २७१ ॥ सद्यो मांसं नवं चान्नं बाला स्त्री क्षीरभोजनम् । घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यःप्राणकराणि षट् ॥२७२॥ पूतिमांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि । प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यःप्राणहराणि षट् ॥ २७३ ॥ प्राणशब्दोऽत्र बलवाचकः । बालार्कः कन्यार्कः ॥

भाषा-ग्रीष्मऋतुमें और शरदृतुमें विषयी पुरुषोंको बालास्त्री अत्यंत हितकारक है, शीतसमयमें युवा स्त्री हितकारक है और वर्षाऋतु तथा वसंतऋतुमें प्रौढा स्त्री विशेष करके हितकारक है.. सर्वदा बाला स्त्रीके सेवन करनेसे बलकी वृद्धि होती है, युवा स्त्रीके सेवन करनेसे शक्तिका क्षय होता है और प्रौढा स्त्रीके सेवन करनेसे जरा (बुढापा) प्राप्त होती है. ताजा मांस, नवीन अन्न, बाला स्त्री, क्षीरभोजन (दूधका सेवन), घी और गरम जलसे स्नान ये छः वस्तुएं तत्काल प्राण (बल) को देनेवाली हैं. पूति (सडा हुआ) मांस, वृद्धा स्त्री, बालार्क (प्रातःकालमें उदित हुआ या कन्याराशिस्थ सूर्य), तत्कालमें जमाया हुआ दही, प्रभात समयमें मैथुन और प्रातःकालकी निद्रा ये छः वस्तुएं तत्काल प्राण (बल) को हरण करनेवाली हैं ॥ २७०-२७३ ॥

वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात् । वयोऽधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः स्थविरायते ॥ २७४ ॥ आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः । स्थिरोपचितमांसाश्च भवंति स्त्रीषु संयताः ॥ २७५ ॥ सेवेत कामतः कामं बलाद्बाजीकृतो हिमे । प्रकामं तु निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे । व्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वृष्टिनिदाघयोः ॥ २७६ ॥

भाषा-वृद्ध पुरुषभी तरुण स्त्रीके साथ संभोग करनेसे युवाके सदृश हो जाता है, और युवा पुरुष वृद्धा स्त्रीके संग संभोग करनेसे वृद्धके सदृश हो जाता है. नियमानुसार स्त्रियोंके संग संभोग करनेवाले पुरुषकी आयुकी वृद्धि होती है, जरा (बुढापा) शीघ्र प्राप्त नहीं होती है, शरीरका वर्ण उत्तम होता है, बलकी वृद्धि होती है तथा मांस स्थिरता और वृद्धिको प्राप्त होता है, हेमंतऋतुमें वाजीकरणकी औषधि खाकर और बलवान् होकर इच्छानुसार मैथुन करे. शिशिरऋतुमेंभी इच्छानुसार स्त्रीप्रसंग करे परंतु वसंतऋतु और शरदृतु इन दोनों ऋतुओंमें तीन तीन दिनके उपरांत स्त्रीसंग करना चाहिये और वर्षाऋतु तथा ग्रीष्ममें एक एक पक्ष (पखवाडे) के उपरांत मैथुन करना चाहिये ॥२७४-२७६॥

सुश्रुतस्तु ।

त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदां नरः । सर्वेष्वृतुषु घर्मे तु पक्षात्पक्षाद्व्रजेद्बुधः ॥२७७॥ समेयात्संगच्छेत् । घर्मे ग्रीष्मे ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–सुश्रुतजी कहते हैं कि बुद्धिमान् पुरुष संपूर्ण ऋतुओंमें तीन तीन दिनके उपरांत स्त्रीसंग करे, परंतु ग्रीष्मऋतुमें पक्षपक्षमें स्त्रीसंग करे ॥ २७७ ॥

शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते तु दिवानिशि । वर्षासु वारिदध्वाने शरत्सु सरसि स्मरः ॥ २७८ ॥ उपेयात्पुरुषो नारीं संध्ययोर्न च पर्वसु । गोसर्गे चार्द्धरात्रे च तथा मध्यादिनेऽपि च ॥ २७९ ॥ विहारं भार्यया कुर्यादेशेऽतिशयसंवृते । रम्ये श्राव्याङ्गनागाने सुगन्धे सुखमारुते ॥ २८० ॥ देशे गुरुजनासन्ने विवृतेऽतित्रपाकरे । श्रूयमाणे व्यथाहेतुवचने न रमेत ना ॥ २८१ ॥

भाषा–शीतकालमें रात्रिसमयमें मैथुन करे, ग्रीष्मऋतुमें दिनके समयमें मैथुन करे, वसंतऋतुमें रात्रि और दिन दोनों समयमें मैथुन करे. वर्षाकालमें जब घन गर्जना करने लगेगा और बिजली चमकने लगेगी तब मैथुन करे और शरद्ऋतुमें इच्छानुसार सरोवरादिके तट्पर अच्छे स्थानमें मैथुन करे, प्रातःकाल, संध्याकाल, पर्व (अमावास्या आदि), गौओंको छोडनेका समय, अर्धरात्र तथा मध्याह्न (दुपहर) इन समयोंमें मैथुन नहीं करे. अत्यंत गुप्त, रमणीय, सुगंधित, सुखकर पवनवाले और जहांपर स्त्रियोंका गान सुननेमें आवे ऐसे सुंदर स्थानोंमें स्त्रीके साथ विहार करे. जो स्थान बडे पुरुषोंके समीप हो तथा जो खुला हो अथवा जो बहुत लज्जाकारक हो अथवा जहांपर मनको ग्लान करनेवाले वचन सुननेमें आवे ऐसे स्थानमें पुरुष स्त्रीके साथ विहार नहीं करे ॥ २७८–२८१ ॥

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धः सुमनोऽन्वितः । भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेषः समलंकृतः २८२॥ ताम्बूलवदनः पत्न्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः । पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ॥२८३॥ अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्रान्सव्यथाङ्गः पिपासितः । बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ २८४ ॥ रोगी मैथुनसंवर्जनीयरोगयुक्तः ॥

भाषा–पुत्रकी इच्छा करनेवाला पुरुष स्नान कर, अंगमें चंदनका लेप कर, सुगंधित पदार्थोंको धारण कर, फूलोंकी माला पहरकर, वीर्यवर्धक पदार्थोंको भक्षण कर, स्वच्छ वस्त्रोंको पहिनकर, भूषणोंसे भूषित होकर, उत्तम वेष कर, तांबूल (पान बीडा) चाबकर, पत्नीमें विशेष अनुरक्त होकर जब कामदेवकी वृद्धि होय तब सुंदर शय्यापर स्त्रीसे प्रसंग करे. बहुत भोजन करनेवाला, धैर्यहीन, क्षुधित (भूंखा), दुःखित शरीरवाला, प्यासा, बालक, वृद्ध, मलमूत्रादिके वेगोंसे पीडित, मैथुनसे हानवाले रोगोंसे युक्त ऐसे मनुष्यको मैथुन नहीं करना चाहिये ॥ २८२–२८४ ॥

भार्यां रूपगुणोपेतां तुल्यशीलां कुलोद्भवाम् । अतिकामोऽभिकामां तु हृष्टो हृष्टामलंकृताम् ॥ २८५ ॥ सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरणबृंहितः । रजस्वलामकामां च मलिनामप्रियां तथा ॥ २८६ ॥ वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् । हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिरोगसमन्विताम् ॥ २८७ ॥ सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्राजितामपि । नाधिगच्छेत्पुमान्नारीं भूरिवैगुण्यशङ्कया ॥ २८८ ॥

भाषा–पुरुषको उचित है कि वाजीकरणके उपायोंसे हृष्ट पुष्ट तथा कामयुक्त होकर रूपवती, सर्वगुणसंपन्न, अपने समान स्वभाववाली, श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न, कामदेवके वेगसे अधिक पीडित, वस्त्र तथा अलंकारोंसे भूषित ऐसी स्त्रीके साथ परम आनंदसे युक्तिपूर्वक संभोग करे. रजस्वला, कामवेगसे रहित, मलिन, अप्रिय, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णवाली, अपनी अवस्थासे अधिक अवस्थावाली, रोगसे पीडित, हीनांगवाली, गर्भिणी, द्वेषयुक्त, योनिरोगों (सोमादि) से पीडित, अपने गोत्रकी, गुरुकी स्त्री और संन्यासिनी इन स्त्रियोंसे पुरुष अनेक दोषोंकी शंकाके कारण प्रसंग नहीं करे ॥ २८५–२८८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रजस्वलां गतवतो नरस्यासंयतात्मनः । दृष्ट्या-युस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत् ॥ २८९ ॥ लिङ्गिनां गुरुपत्नीं च सगोत्रामथ पर्वसु । वृद्धां च सन्ध्ययोश्चापि गच्छतो जीवनक्षयः ॥ ॥ २९० ॥ लिङ्गिनीं प्रव्रजिताम् ॥

भाषा—जो पुरुष अपने मनको वशमें न रखता हुआ रजस्वलाके संग प्रसंग करे उसकी दृष्टि, आयु और तेज इनकी हानि होती है तथा अधर्म होता है. संन्यासिन, गुरुकी स्त्री, अपने गोत्रमें उत्पन्न हुई अथवा वृद्धा स्त्रीके साथ प्रसंग करनेसे तथा प्रातःसमय और संध्यासमय तथा पर्व (अमावास्या आदि) में स्त्रीके साथ प्रसंग करनेसे जीवनका क्षय होता है ॥ २८९ ॥ २९० ॥

गर्भिण्यां गर्भपीडा स्याद्व्याधितायां बल-क्षयः । हीनाङ्गीं मलिनां द्वेष्यां क्षामां वन्ध्या-मसंवृते । देशेऽभिगच्छतो रेतः क्षीणं म्लानं मनो भवेत् ॥ २९१ ॥ गर्भिणीं गर्भवासदि-वसात् द्वितीये मासि गर्भस्थितेरनिश्चये यथो-क्तनक्षत्रादिलाभाभावे वा तृतीये मासि पुंस-वने कृते नाभिगच्छेत् ॥

भाषा—गर्भिणीके संग प्रसंग करनेसे गर्भको पीडा होती है. रोगिणी स्त्रीके संग प्रसंग करनेसे बलका क्षय होता है. हीनांगवाली, मलिन, द्वेषयुक्त, क्षाम (दुर्बल) और वांझ इन स्त्रियोंके संग प्रसंग करनेसे वीर्य क्षीण होता है और मन मलिन होता है. गर्भ रहनेके दिनसे दूसरे महीनेमें गर्भ रहनेका निश्चय न हुआ हो तौ अथवा ज्योतिषशास्त्रमें कहे हुए नक्षत्र न मिलने पर अथवा तीसरे महीनेमें पुंसवनकर्म करनेपर गर्भिणी स्त्रीसे प्रसंग नहीं करे ऐसा कहा है इसीलिये ऊपर गर्भिणीस्त्रीके साथ प्रसंग नहीं करे ऐसा लिखा है ॥ २९१ ॥

यतः पुंसवनानन्तरमाह व्यासः ।

ततस्त्यजेन्नदीतीरं देवखातोदकं तथा । भर्तुः शय्यां मृतापत्यां तथैवामिषभोजनम्॥२९२॥

भाषा—व्यासजी कहते हैं कि पुंसवनकर्मके पश्चात् नदीका तीर, देवखात (अकृत्रिम तालाव) का जल, पतिकी शय्या, जिसकी संतान न जीती हो ऐसी स्त्री और मांसभक्षण इनको गर्भिणी स्त्री त्याग देवे ॥ २९२ ॥

अन्यच्च ।

आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत् । देवारामनदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य च ॥२९३॥ इति ॥

भाषा—अन्य ग्रंथमें कहा ह कि मांसका भक्षण, देवताका दर्शन, बागमें जाना, नदीका स्नान और पुरुषका संभोग इनको गर्भिणी स्त्री सर्वथा त्याग देवे ॥ २९३ ॥

क्षुधितः क्षुब्धचित्तश्च मध्याह्ने तृषितोऽबलः । स्थितस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपं च विन्दति ॥ २९४ ॥ व्याधितस्य रुजा ह्रीहा मूर्च्छा मृत्युश्च जायते । प्रत्यूषे चार्धरात्रे च वातपित्ते प्रकुप्यतः ॥ २९५ ॥ तिर्यग्योनावयोनौ वा दुष्टयोनौ तथैव च । उपदंशस्तथा वायोः कोपः शुक्रसुखक्षयः ॥ २९६ ॥

भाषा—क्षुधित (भूंखा), व्याकुलचित्तवाला, तृषित (प्यासा), निर्बल ऐसा पुरुष स्त्रीके साथ प्रसंग करे अथवा मध्याह्नमें स्त्रीप्रसंग करे तो शरीरमें स्थित शुक्र (वीर्य) की हानि होती है और वायु कोपको प्राप्त होता है. रोगी पुरुष स्त्रीसे प्रसंग करे तो उसको पीडा, ह्रीहा और मूर्च्छा प्राप्त होती है तथा उसकी मृत्युभी होती है. प्रातःकाल वा अर्धरात्रिके समयमें स्त्रीसंग करनेसे वायु तथा पित्त कुपित हाता है. पशुके संग वा सृष्टिक्रमके विरुद्ध मैथुन करनेसे अथवा दुष्ट योनिमें मैथुन करनेसे उप-दंश (सुजाक, गरमी) तथा वातकोप होता है और वीर्य तथा सुखका क्षय होता है ॥ २९४-२९६ ॥

उच्चारिते मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे । उत्ताने च भवेच्छीघ्रं शुक्राश्मर्य्यास्तु सम्भवः ॥२९७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वमेतत्त्यजेत्तस्माद्यतो लोकद्वयाऽहितम् । शुक्रं तूपस्थितं मोहान्न सन्धार्यं कदाचन ॥ २९८॥ स्नानं सशर्करं क्षीरं भक्ष्यमैक्षवसंस्कृतम् । वातो मांसरसः स्वप्नो सुरतान्ते हिता अमी ॥२९९॥ शूलकासज्वरश्वासकार्श्यपाण्ड्वामयक्षयाः । अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ३००

भाषा–मूत्रका वेग रोकनेसे तथा चलित वीर्यको राकनेसे अथवा विपरीत रति करनेसे तत्काल शुक्राश्मरी (वीर्यकी पथरी) होना संभव है और इह लोक तथा परलोकमेंभी अहितकारक है इसलिये ऐसा कभी नहीं करे, चलित हुए वीर्यको कभी भूलकरभी नहीं रोके. मैथुन करनेके अनंतर स्नान करे और शर्करायुक्त दूध पीवे और खांडके वनाये हुए लड्डू आदि पदार्थ खावे, वायुका सेवन करे, मांसका रस पीवे, निद्रा लेवे ये सब मैथुनके अनंतर हितकारक होते हैं. अधिक मैथुन करनेसे शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, पांडुरोग, क्षय और आक्षेप आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २९७-३०० ॥

अथ निद्रागुणाः ।

रात्रौ जागरणं रूक्षं कफदोषविषार्तिजित् । निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्यमतन्द्रिताम् । पुष्टिं वर्णं बलोत्साहं वह्निदीप्तिं करोति हि ॥ ३०१ ॥ यो लेढि शयनसमये मधुमिश्रं बीजपूरदलचूर्णम् । स तु लज्जाकरवातप्रसरनिरोधात्सुखं स्वपिति॥ ३०२ ॥

भाषा–रात्रिमें जागना रूक्षता करता है तथा कफ और विषकी पीडाको हरता है. रात्रिकालमें समयपर सोनेसे धातुओंकी समता होती है और आलस्य दूर होता है, पुष्टि होती है, शरीरका वर्ण सुंदर होता है, उत्साह बढता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है. जो मनुष्य सोनेके समयमें बिजौरेके पत्तोंके चूर्णमें शहद मिलाकर चाटता है वह लज्जाकर वायु (अपानवायु) के प्रसर (वेग) का निरोध हो जानेसे सुखपूर्वक शयन कर सकता है ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥

अथ उषःपानगुणाः ।

सवितुः समुदयकाले प्रसृतीः सलिलस्य पिवेदष्टौ । रोगजरापरिमुक्तो जीवेद्वत्सरशतं साग्रम् ॥ ३०३ ॥ अस्य जलपानस्योपक्रमकाले रात्रेश्चतुर्थप्रहरं प्रवेशः तथाच भोजः " पिवति पर्युषितं जलमन्वहं तिमिरिणीचरमे प्रहरे यदि ॥ " एतज्जलपानकालमर्यादा सूर्योदयातिसन्निहितप्रातःकालः ॥

भाषा–जो मनुष्य सूर्योदयके समयमें आठ अंजलि वासा पानी पीता है वह रोग और जरासे छूट जाता है तथा सौ वर्षतक जीता है. जब रात्रिका चौथा प्रहर प्रारंभ हो तब इस जलके पीनेका समय है. क्योंकि, भोज कहते हैं कि " रातका चौथा प्रहर होनेपर उठकर जो नित्य जल पीता है " इससे इस पानी पीनेका समय सूर्योदयसे पहले है ॥ ३०३ ॥

तथा च तन्त्रान्तरे ।

अम्भसः प्रसृतीरष्टौ रवावनुदिते पिवेत् । वातपित्तकफाञ्जित्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ३०४॥ इति । सलिलस्यात्र पर्युषितस्य ग्रहणं भोजवचनानुरोधात् ॥

भाषा–अन्य ग्रंथमें लिखा है कि, जो मनुष्य सूर्योदयसे पहले आठ अंजलि पानी पीता है वह वात पित्त तथा कफको जीतकर सौ वर्षतक जीता है. यहां भोजके वचनसेही वासा पानी पीना जानना चाहिये ॥ ३०४ ॥

अर्शःशोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकुष्ठमेदोविकारा मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः । ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तोस्तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥ ३०५ ॥ विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं पिबति खलु नरो यो घ्राणरंध्रेण वारि । स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ ३०६ ॥ निशीथोऽत्र निशान्धकारः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-रात्रिके अंतमें पानी पीनेका अभ्यास करनेसे अर्श (ववासीर), शोफ (सूजन), ग्रहणी, ज्वर, जठरजरा, कोढ, मेदविकार, मूत्राघात, रक्तपित्त, कर्णरोग, कंठरोग, शिरोरोग, श्रोणिशूल (कमरका दर्द), नेत्ररोग, वातापेत्तोत्पन्न रोग, क्षतजरोग, तथा कफसे उत्पन्न हुए रोग ये सब रोग नष्ट होते हैं. रात्रिका अंधकार दूर हो जानेपर प्रातःसमयमें उठकर जो मनुष्य सदैव नाकके रंध्रके द्वारा पानी पीता है, वह बहुत बुद्धिवान्, गरुडके समान दृष्टिवाला, वलीपलितसे रहित तथा संपूर्ण रोगोंसे रहित होता है ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥

पातव्यं नासया नीरं प्रसृतित्रयमात्रया ।
व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकाशशोथहरम्।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिसञ्जननम्
॥ ३०७ ॥ स्नेहे पीते क्षते शुद्धावाध्माने स्तिमितोदरे। हिक्कायां कफवातोत्थे व्याधौ तद्वारि वारयेत् ॥ ३०८ ॥ तद्वारि नासा पेयम् ॥

भाषा-नाकके छिद्रके द्वारा तीन अंजली प्रमाण पानी पीनेसे व्यंग (झांई), वली, पलित (विना समय केशोंका सफेद होना,) पीनस, स्वरभंग, खांसी और सूजन ये रोग नष्ट होते हैं. रात्रिके नष्ट होनेपर नाकके द्वारा पानी पीनेसे दृष्टिकी वृद्धि होती है और यह नाकके द्वारा पानी पीना रसायन है. जिसने स्नेह (तेल घी आदि) पान किया हो अथवा जो क्षत (घाव) रोगवाला है वा जिसने विरेचन लिया है, जिसका पेट अफर रहा हो, जठराग्नि मंद हुई हो और हिचकी आती हो तो और कफ वात रोगोंमें उसका नासिकासे पानी नहीं पीना चाहिये ॥ ३०७ ॥ ३०८ ॥

अथ ऋतुचर्या ।

चयकोपसमा यस्मिन् दोषाणां सम्भवन्ति हि । ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ॥ ३०९ ॥ ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्त प्रावृड् मिथुनकर्कटौ । सिंहकन्ये स्मृता वर्षा तुलावृश्चिकयोः शरत् । धनुर्ग्राहौ च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः ॥ ३१० ॥ मेषवृषौ रविणा संक्रान्तौ । एवं मिथुनकर्कटौ इत्यादि॥

भाषा-सूर्यके १२ राशियोंमें फिरनेसे छः ऋतु होते हैं, इनमें दोषों (वात, पित्त और कफ) की वृद्धि, कोप और शमन होता है. मेष और वृषकी संक्रांतिको ग्रीष्मऋतु, मिथुन और कर्ककी संक्रांतिको प्रावृट्, सिंह और कन्या संक्रांतिको वर्षा, तूल तथा वृश्चिककी संक्रांतिको शरद्, धनु तथा मकरकी संक्रांतिको हेमंत और कुंभ तथा मीनकी संक्रांतिको वसंतऋतु कहते हैं ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥

अन्ये तु ।

शिशिरः पुष्पसमयो ग्रीष्मो वर्षाशरद्धिमाः ।
माघादिमासयुग्मैः स्युर्ऋतवः षट् क्रमादमी
॥ ३११ ॥ गङ्गाया दक्षिणे देशे वृष्टेर्बहुलभावतः । उभौ मुनिभिराख्यातौ प्रावृड्वर्षाभिधावृतू ॥ ३१२ ॥ उत्तरायणमाद्यैस्तैः परैः स्याद्दक्षिणायनम् । आद्यमुष्णं बलहरं ततोऽन्यद्बलदं हिमम् ॥ ३१३ ॥

भाषा-कोई कहते हैं कि, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमंत ये छः ऋतुएं माघ आदिक दो दो महीनोंमें क्रमसे होती हैं जैसे माघ और फाल्गुन ये दो महीने शिशिरऋतु, चैत्र तथा वैशाख ये दो महीने वसंतऋतु, ज्येष्ठ और आषाढ ग्रीष्मऋतु, श्रावण तथा भाद्रपद वर्षाऋतु, आश्विन और कार्तिक शरद्ऋतु और मार्गशीर्ष तथा पौष ये दो महीने हेमंतऋतु हैं. गंगानदीके दक्षिण देशमें वृष्टि अधिक होती है इसलिये मुनियोंने प्रावृट् और वर्षा ये दो ऋतुएं अलग अलग कही हैं और गंगाके उत्तर देशमें शीत विशेष होता है इसलिये हेमंत और शिशिर ये दो ऋतुएं पृथक् पृथक् कही हैं. परंतु छः ऋतुओंमें शिशिरकी गणना नहीं है. पहिली तीन ऋतुएं उत्तरायण तथा दूसरी तीन ऋतुएं दक्षिणायन ये दो अयन होते हैं. उत्तरायण गरम और बलको हरनेवाला है और दक्षिणायन शीतल और बलको बढानेवाला है ॥३११-३१३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ऋतूनां गुणदोषाः ।

हेमन्तः शीतलः स्निग्धः स्वादुर्जठरवह्निकृत् । शिशिरः शीतलोऽतीव रूक्षो वाताग्निवर्धनः ॥ ३१४ ॥ हेमन्तः स्वादुः प्रायेण द्रव्येषु स्वादुरसजनकः एवमन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥

भाषा–हेमंतऋतु शीतल, स्निग्ध और अधिकतासे पदार्थोंमें स्वादुता उत्पन्न करनेवाली तथा जठराग्निको बढानेवाली है. शिशिरऋतु शीतल, अत्यंत रूक्ष तथा वात और जठराग्निको बढानेवाली है ॥ ३१४ ॥

वसन्तो मधुरः स्निग्धः श्लेष्मवृद्धिकरश्च सः । ग्रीष्मो रूक्षोऽतिकटुकः पित्तकृत् कफनाशनः ॥ ३१५ ॥ वर्षाः शीता विदाहिन्यो वह्निमान्द्यानिलप्रदाः । शरदुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्यबलावहा ॥ ३१६ ॥ चयप्रकोपोपशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु । वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥ ३१७ ॥ चीयते लघुरूक्षाग्निरौषधीभिः समीरणः । तद्विधस्तद्विधे देहे कालस्यौष्ण्यान्न कुप्यति ॥ ३१८ ॥ तद्विधो रूक्षो लघुश्च । तद्विधे रूक्षे लघौ च ॥

भाषा–वसंतऋतु पदार्थोंमें मधुरता उत्पन्न करनेवाली, स्निग्ध तथा कफकी वृद्धि करनेवाली है. ग्रीष्मऋतु रूक्ष, पदार्थोंमें तीक्ष्णता उत्पन्न करनेवाली, पित्तकारक तथा कफनाशक है. वर्षाऋतु शीतल, दाहकारक, अग्निको मंद करनेवाली तथा वातकारक है. शरदृतु उष्ण, पित्तकारक तथा मनुष्योंमें बल उत्पन्न करनेवाली है. वायु ग्रीष्मऋतुमें संचित होती है, वर्षाऋतुमें कुपित होती है और शरदृतुमें शांत होती है. पित्त वर्षाऋतुमें संचित होता है, शरदृतुमें कुपित होता है और हेमंतऋतुमें शांत होता है. कफ शिशिरऋतुमें संचित होता है, वसंतऋतुमें कुपित होता है और ग्रीष्मऋतुमें शांत होता है. ग्रीष्मऋतुमें हलकी और रूक्ष औषधियोंसे वायुका संचय होता है, परंतु संचित हुई हलकी और रूक्ष वायु हलके और रूक्ष हुए शरीरमें उस कालकी उष्णतासे कुपित नहीं हो सकती ॥ ३१५–३१८ ॥

अद्भिरम्लविपाकाभिरौषधीभिश्च तादृशम् । पित्तं याति चयं कोपं न तु कालस्य शैत्यतः ॥ ३१९ ॥ तादृशम् अम्लविपाकम् ॥

भाषा–वर्षाऋतुमें अम्लविपाकी (खट्टे विपाकवाले) जलसे तथा वैसीही औषधियोंसे अम्लपाकी पित्तका संचय होता है, परंतु यह संचित हुआ पित्त उस कालकी शीतलतासे कुपित नहीं हो सकता ॥ ३१९ ॥

चीयते स्निग्धशीताभिरुदकौषधिभिः कफः । तुल्ये च काले देहे च स्कन्नत्वान्न प्रकुप्यति ॥ ३२० ॥ तुल्येऽपि काले स्निग्धे शीतले च । स्कन्नत्वादेहे शुष्कत्वात् ॥

भाषा–शिशिरऋतुमें स्निग्ध और शीतल औषधियोंसे तथा वैसेही जलसे कफ संचित होता है; परंतु वह संचित हुआ कफ स्निग्ध और शीतलताको लिये सूखा रहनेसे तथा देहमें शुष्कता रहनेसे कुपित नहीं हो सकता ॥ ३२० ॥

हिमे याति शमं पित्तं वायुः श्लेष्मा च चीयते । स वायुः शिशिरे कोपं यात्येवोपहतः कफः ॥ ३२१ ॥ हेमन्ते सञ्चितः श्लेष्मा शिशिरे त्वतिचीयते । शीतास्निग्धगुरुद्रव्यैः शैत्यस्कन्नो न कुप्यति ॥ ३२२ ॥ स्कन्नः कठिनीभूतः ॥

भाषा–हेमंतऋतुमें पित्त शांत होता है और वायु तथा कफ संचित होता है. इस हेमंतऋतुमें संचित हुआ वायु शिशिरऋतुमें कुपित होता है, परंतु कफ केवल बंधाही रहता है. हेमंतऋतुमें शीतल, स्निग्ध तथा भारी पदार्थोंसे संचित हुआ कफ शिशिरऋतुमें बढता है, परंतु शीतलता लिये कठिन होनेसे कुपित नहीं होता है ॥ ३२१ ॥ ३२२ ॥

इति कालस्वभावोऽयमाहारादिवशात् पुनः । चयादीन्यान्ति सद्योऽपि दोषाः काले विशेषतः ॥ ३२३ ॥ चयकोपशमाः पूर्वाह्णे वसन्तस्य लिङ्गम्, मध्याह्ने ग्रीष्मस्य, अपराह्णे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रावृषः, प्रदोषे वार्षिकम् । शरदर्धरात्रे, प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् । एवमहोरात्रमपि वर्षामिव शीतोष्णवर्षा दोषोपचयप्रकोपोपशमाः जानीयादिति सुश्रुतः ॥

भाषा-इस प्रकार यह कालका स्वभाव है और दोष विना समयमेंभी तैसे तैसे आहारादिके मिल जानेसे तत्काल वृद्धि, प्रकोप तथा शमनताको प्राप्त होते हैं, किंतु अपने अपने कालमें विशेषकरके वृद्धि, प्रकोप तथा शमनताको प्राप्त होते हैं. सुश्रुतमें लिखा है कि, दिनके पहले भागमें वसंतऋतुके चिह्न दीखते हैं, मध्याह्नमें ग्रीष्मऋतुके, अपराह्णमें प्रावृट्के, प्रदोषसमयमें वर्षाऋतुके, अर्धरात्रिमें शरदृतुके और पिछली रात्रिमें हेमंतऋतुके चिह्न दीखते हैं. इस प्रकार अहोरात्रमेंभी वर्षके समान शीति, उष्णता और वर्षाके भाव होते हैं और दोषोंकीभी वृद्धि प्रकोप और शांति होती है ऐसा जाने ॥ ३२३ ॥

अथ अकाले दोषवृद्धिः ।

चयकोपशमान् दोषा विहाराहारसेवनैः । समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ ३२४ ॥ समानैः तुल्यैः, चयादियोग्यैरिति यावत् । विपर्य्ययं कालेऽपि वैपरीत्यं बोध्यम् ॥

भाषा-विना समयमेंभी जिनसे दोषोंकी वृद्धि होवे ऐसे आहारविहारादिके सेवनसे दोषोंकी वृद्धि होती है. जिनसे दोष कुपित होंय ऐसे आहारविहारादिके सेवनसे दोष कुपित होते हैं और जिनसे दोषशमन होय ऐसे आहारविहारादिके सेवनसे दोषशमन होता है. इसी प्रकार समय होनेपरभी जिनसे दोषवृद्धि न होय ऐसे आहारविहारादिके सेवनसे दोषवृद्धि नहीं होती है, जिनसे दोषप्रकोप नहीं होय ऐसे आहारविहारादिके सेवनसे दोष कुपित नहीं होते हैं और जिनसे दोषशमन न होय ऐसे आहारविहारादिके सेवनसे दोषशमन नहीं होता है ॥ ३२४ ॥

अथ दोषचयलक्षणमाह सुश्रुतः ।

स्वस्थानस्थस्य दोषस्य वृद्धिः स्याच्छ्वासकोष्ठता । पीतावभासता वह्निमन्दता चाङ्गगौरवम् ॥ ३२५ ॥ आलस्यं चयहेतौ तु द्वेषश्च चयलक्षणम् । सञ्चयोपहता दोषा लभन्ते नोत्तरां गतिम् ॥ ते चोत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ॥ ३२६ ॥

भाषा-सुश्रुत कहते हैं कि अपने २ स्थानमें स्थित दोषोंकी जब वृद्धि होती है तब कोष्ठ श्वाससे पूर्ण हो जाता है, अंगमें पीलापन दिखाई देता है, जठराग्नि मंद हो जाती है, शरीरमें गौरव (भारीपन) तथा आलस्य हो जाता है. और जिन पदार्थोंसे दोषवृद्धि हुई है उन पदार्थोंमें अरुचि उत्पन्न होती है ये लक्षण दोषसंचयमें होते हैं. यदि संचयसमयमेंही दोषोंको औषधोपचारसे हारा जावे तौ वे दोष फिर उत्तर गति (वृद्धि) को प्राप्त नहीं होते हैं और जो वे दोष हरनेमें न आवें तो वृद्धिको प्राप्त होकर विशेषकरके वलवान् हो जाते हैं ॥ ३२५-३२६ ॥

अथ वर्षर्तौ नियमाः ।

वर्षासु प्रबलो वायुस्तस्मान्मिष्टादयस्त्रयः । रसाः सेव्या विशेषेण पवनस्योपशान्तये ॥ ३२७ ॥ मिष्टादयस्त्रयः मधुराम्ललवणाः ॥

भाषा-वर्षाऋतुमें वायु प्रबल होती है इसलिये उस वायुकी शांतिके लिये विशेष मधुर, खट्टे तथा निमकीन (खारी) रसोंका सेवन करना चाहिये ॥ ३२७ ॥

भवेद्वर्षासु वपुषः क्लिन्नत्वं यद्विशेषतः । तत्क्लेशशान्तये सेव्या अपि कट्वादयस्त्रयः ॥ ३२८ ॥ कट्वादयस्त्रयः कटुतिक्तकषायाः ॥

भाषा-वर्षाऋतुमें शरीर विशेषकरके क्लिन्न (भीजा हुआ) रहता है इसलिये उस क्लेशकी शांतिके लिये तीक्ष्ण, कडवे तथा कसैले रसोंकाभी सेवन करना चाहिये ॥ ३२८ ॥

स्वेदनं मर्दनं सेव्यं दध्युष्णं जाङ्गलामिषम् । गोधूमाः शालयो माषा जलं कौपं जलं च्युतम् ॥ ३२९ ॥ न भजेत् पूर्वपवनं वृष्टिं घर्मं हिमं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रमम् । नदीतीरं दिवास्वप्नं रूक्षं नित्यं च मैथुनम् ॥ ३३० ॥

भाषा–वर्षाऋतुमें पसीना लेना, शरीरका मलवाना हितकर है, दही, गरम पदार्थ, जंगली जीवोंका मांस, गेहूं, शालिधान, उडद इनको भक्षण करे तथा कुंएका अथवा झरनेका पानी पीवे. पूर्वकी पवनका सेवन, वर्षामें भीगना, धूपमें रहना, हिम (ओस) का सेवन, परिश्रम, नदीके तीरपर रहना, दिनमें सोना, रूक्ष पदार्थोंका खाना और नित्य मैथुन करना ये सब कार्य वर्षाऋतुमें वर्जित हैं ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥

अथ शरदृतौ नियमाः ।

सर्पिः स्वादुकषायतिक्तकरसा यच्छीतलं यल्लघु क्षीरं स्वच्छसितेक्षवः पटुरसः स्वल्पं पलं जाङ्गलम् । गोधूमा यवमुद्गशालिसहिता नादेयमंशूदकं चन्द्रश्चन्दनमिन्दुरांजिरजनी माल्यं पटो निर्मलः ॥ ३३१ ॥ विश्रामः सुहृदां गणेषु मधुरा वाचः सरःक्रीडनं पित्तानां च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरामोक्षणम् । एतान्यत्र घनावसानसमयेऽपथ्यानि भुञ्जेदधि व्यायामाम्लकटूष्णतीक्ष्णदिवसस्वप्नं हिमं चातपम् ॥ ३३२ ॥

भाषा–घीका सेवन, मधुर कसैले तथा कडवे रसोंका भक्षण, शीतल तथा हलके पदार्थोंका भक्षण, दूधका पीना, स्वच्छ मिश्री, ईख, निमकीन रस, जंगली जीवोंका थोडा मांस, गेहूं, यव (जौ), मूंग और शालिचांवल इनका भक्षण; नदीके जलका पीना या अंशूदकका पीना; कपूर, चंदन, चांदनीसे युक्त रात्रि, पुष्पोंकी माला और स्वच्छ वस्त्र इनका सेवन; मित्रोंकी मंडलीमें बैठना, मधुर वचन बोलना, सरोवरमें क्रीडा करना, पित्तप्रकृतिवालोंको विरेचन (जुल्लाब) लेना, बलवान् मनुष्योंको शिरामोक्षण (फस्त खुलवाना) ये सब कार्य शरदृतुमें हितकारक हैं और दहीका खाना, व्यायाम (कसरत) करना; खट्टा, तीक्ष्ण, गरम और कडवे पदार्थोंका सेवन, दिनमें शयन, हिमका सेवन और धूपका खाना ये सब कार्य शरदृतुमें अपथ्य अर्थात् अहितकारक हैं ॥ ३३१ ॥ ३३२ ॥

अंशूदकलक्षणमाह ।

दिवसेऽर्ककरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः । ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ ३३३ ॥

अत्र समग्रग्राह्यर्थं दिवसे दिवापादद्वये निशापादं च । चन्द्रः कर्पूरः ॥

भाषा–जिस पानीके ऊपर दिनमें (दो प्रहर) सूर्यकी और रात्रिमें (एक प्रहर) चंद्रमाकी किरणें पडती हैं उसको अंशूदक जाने. यह पानी स्निग्ध है तथा दोषत्रय (वात, पित्त, कफ) को नष्ट करनेवाला है ॥ ३३३ ॥

इक्षवः शाल्यो मुद्गा सरोऽम्भः क्वथितं पयः । शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दुरश्मयः ३३४

भाषा–ईख, शालिधान, मूंग, सरोवरका जल, क्वथित (औटाया हुआ) दूध और प्रदोषसमयमें चंद्रमाकी किरणें ये सब पदार्थ शरदृतुमें पथ्य (हितकर) हैं ॥ ३३४ ॥

अथ हेमन्तर्तौ नियमाः ।

प्रातर्भोजनमम्लमिष्टलवणान्यभ्यङ्गघर्मश्रमान् गोधूमैक्षवशालिमाषपिशितं पिष्टं नवान्नं तिलान् । कस्तूरीं वरकुंकुमागुरुयुतामुष्णाम्बु शौचं तथा स्निग्धं स्त्रीषु सुखं गुरूष्णवसनं सेवेत हेमन्तके ॥ ३३५ ॥

भाषा–प्रातःकालमें भोजन, खट्टे मीठे तथा निमकीन पदार्थोंका सेवन, शरीरमें तेलमर्दन, पसीने निकालना, परिश्रम करना, गेहूं, ईख, शालिधान, उडद तथा मांसका सेवन, पीसा अन्न, नया अन्न तथा तिलोंका सेवन, कस्तूरी, केशर, अगर इनसे युक्त पदार्थोंका सेवन, उष्ण जलसे शौच करना, स्निग्ध पदार्थोंका सेवन, स्त्रीप्रसंग तथा भारी और गरम कपडे पहरना इन सबको हेमंतऋतुमें सेवन करना चाहिये ॥ ३३५ ॥

अथ शिशिरर्तौ नियमाः ।

शिशिरे शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम् । विशेषतस्ततस्तत्र हेमन्तस्य मतो विधिः ३३६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—शिशिरऋतुमें शीत अधिक होता है और आदानकालके कारणसे रूक्षताभी अधिक होती है इसलिये इस ऋतुमें विशेषकरके उपर्युक्त हेमंतऋतुमें कही हुई विधिके अनुसारही वर्ताव करे ॥ ३३६ ॥

अथ वसन्ततौ नियमाः ।

वान्ति नस्यमथाभयां च मधुना व्यायाममुद्वर्तनं संसेवेत मधौ कफघ्नकवलं शूल्यं पलं जाङ्गलम् । गोधूमान्बहुशालिभेदसहितान्मुद्गान्यवान् षष्टिकान् लेपश्चन्दनकुंकुमागुरुकृतं रूक्षं कटूष्णं लघु ॥ ३३७ ॥ मिष्टमम्लं दधि स्निग्धं दिवास्वप्नं च दुर्जरम् । अवश्यायमपि प्राज्ञो वसन्ते परिवर्जयेत् ॥ ३३८ ॥

भाषा—वमनकारक औषधियोंका सेवन, नस्य अर्थात् नाकमें औषधिको डालना, शहदके साथ हडका खाना, व्यायाम (कसरत) करना, चूर्णसे शरीरको मलना, कफनाशक कुल्ले करना, लोहेपर सिका हुआ जंगली जीवोंका मांस खाना, गेहूं, अनेक प्रकारके शालिधान (चांवल), मूंग, जौ तथा साठी चावल इनका खाना, चंदन केशर तथा अगुरुका लेप करना और जो पदार्थ रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम और हलके हैं उनको सेवन करना ये सब वसंतऋतुमें अत्यंत हितकारी हैं. मीठे, खट्टे पदार्थ, दही, चिकने पदार्थ इनका सेवन, दिनमें सोना, दुर्जर अर्थात् कठिनतासे पचनेवाले पदार्थोंका सेवन ये सब वसंत ऋतुमें अहितकारी हैं इनको त्याग देना चाहिये ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

अथ ग्रीष्मर्तुनियमाः ।

स्वादुस्निग्धहिमं लघु द्रवमयं द्रव्यं रसालां सितां सक्तुं क्षीरमजाङ्गलानि सितया शालिं रसं मांसजम् । शीतांशुं शयनं दिवा मलयजं शीतं पयः पानकं सेवेतोष्णदिने त्यजेत्तु कटुकक्षाराम्लघर्मश्रमान् ॥ ३३९ ॥

भाषा—मीठे, चिकने, शीतल, हलके और द्रवरूप (पतले) पदार्थोंका सेवन, रसाला (शिखरन), खांड, सत्तू, दूध, ग्रामवासी जीवोंका मांस, खांडके साथ शालिचावलोंका भात तथा मांसरस इनका खाना, चंद्रकी किरणोंका सेवन, दिनमें सोना, चंदनका लगाना और जलका पीना ये सब ग्रीष्मऋतुमें हितकारी हैं इनको सेवन करे. चरपरे, खारी और खट्टे पदार्थोंका सेवन, धूपमें रहना और परिश्रम करना ग्रीष्मऋतुमें इन सबको त्याग देवे ॥ ३३९ ॥

ऋतुष्वेषु य एतैस्तु विधिभिर्वर्तते नरः । दोषानृतुकृतान्नैव लभते स कदाचन ॥ ३४० ॥

इति श्रीलटकनतनय—श्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे दिनचर्यादि प्रकरणं चतुर्थम् ॥४॥

भाषा—जो मनुष्य इन ऋतुओंमें कही हुई विधियोंके अनुसार वर्तन करता है वह ऋतुकृत दोषोंको कभी प्राप्त नहीं होता है ॥ ३४० ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां दिनचर्यर्तुचर्यानामकं चतुर्थं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमप्रकरणम् ।

[मिश्रवर्गः ।]

व्याधेर्लक्षणं तत्र वाग्भटः ।

रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता । रोगा दुःखस्य दातारो ज्वरप्रभृतयो हि ते ॥ १ ॥ ते च स्वाभाविकाः केचित्केचिदागन्तवः स्मृताः । मानसाः केचिदाख्याताः कथिताः केऽपि कायिकाः ॥ २ ॥

भाषा—वाग्भट कहते हैं कि, जो दोषोंकी विषमता है सोही रोग है और जो दोषोंकी समता है वही आरोग्यता है. ज्वर आदिक रोगही प्राणीको दुःख देनेवाले हैं, ये रोग चार प्रकारके कहे हैं. १ स्वाभाविक, २ आगंतुक, ३ मानसिक और ४ कायिक ॥ १ ॥ २ ॥

तत्र स्वाभाविकाः शरीरस्वभावादेव जाताः क्षुत्पिपासासुषुप्तिजरामृत्युप्रभृतयः अथवा स्वस्वभावादुत्पत्तेर्जाता स्वाभाविकाः सहजा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति यावत् । ते च जन्मान्धत्वादयः । आगन्तवोऽभिघातादिजनिताः । अथवा जन्मोत्तरभाविनः । मानसाः कामक्रोधलोभमोहभयाभिमानदैन्यपैशुन्यशोकविषादेर्ष्यासूयामात्सर्यप्रभृतयः । अथवा उन्मादापस्मारमूर्च्छाभ्रममोहतमःसंन्यासप्रभृतयः । कायिकाः पाण्डुरोगप्रभृतयः ॥

भाषा–भूख, प्यास, सुषुप्ति, जरा (बुढापा), मृत्यु आदिक जो अपने स्वभावसेही होते हैं उनको स्वाभाविक रोग कहते हैं. अथवा जो जन्मांधता आदिक जन्मके साथही स्वभावसे उत्पन्न होते हैं उनको स्वाभाविक रोग कहते हैं. जो रोग लकडी पत्थर आदिके लगनेसे उत्पन्न होते हैं उनको आगंतुक रोग कहते हैं अथवा जो रोग जन्म होनेके अनंतर हो जाते हैं उनको आगंतुक रोग कहते हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दैन्य, पैशुन्य (चुगली), शोक, विषाद. ईर्ष्या, असूया (दूसरेके गुणोंमें दोषोंका ढूंढना) और मात्सर्य आदि, अथवा उन्माद, अपस्मार (मृगी) मूर्च्छा, भ्रम, मोह, अंधकार, संन्यास आदि जो रोग मनसे उत्पन्न होते हैं उनको मानसिक रोग कहते हैं और पांडुरोग आदि जो रोग शरीरसे उत्पन्न होते हैं उनको कायिक रोग कहते हैं ॥

अथ व्याधिभेदाः ।

कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ।
कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ३

भाषा–कोई व्याधि कर्मसे होती हैं, कोई व्याधि दोष (वात, पित्त, कफ) से होती हैं और कोई व्याधि कर्म और दोष इन दोनोंसे होती हैं इस प्रकार कर्मज, दोषज और कर्मदोषज ऐसी तीन प्रकारकी व्याधियें कही हैं ॥३॥

तत्र कर्मजा व्याधयः ।

यत् प्राक्तनं दुष्कर्म प्रबलं केवलभोगनाश्यम्, प्रायश्चित्तनाश्यं वा, ततो जाताः न तु दुष्टवातादिदोषेण जनितास्तथा ॥

भाषा–पूर्वजन्मके प्रबल दुष्ट कर्मोंको भोगनेसे अथवा उनका प्रायश्चित्त करनेसे जो व्याधियें दूर होती हैं उनको कर्मज व्याधियें जाने. ये वातादिक दोषोंकी दुष्टतासे नहीं उत्पन्न होती हैं ॥

यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधिचिकित्सितः । न शमं याति यो व्याधिः सः ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥ ४ ॥

भाषा–शास्त्रके प्रमाणसे जिनका निर्णय करके व्याधिके अनुसार चिकित्सा करनेपरभी जो रोग शांत नहीं होता है उस रोगको विद्वान् लोग कर्मज रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

दोषजा व्याधयः ।

दोषजाः–मिथ्याहारविहारप्रकुपितवातपित्तकफजाः । ननु मिथ्याहारविहारिणामपि प्राक्तनसुकृतेन नैरुज्यं दृश्यत एव । ततो दोषजेष्वपि प्राक्तनं दुष्कर्मैव कारणम्, तत्कथं दोषजा इत्युच्यंते । दोषजेष्वपि वस्तुतः आदिकारणं दुष्कर्म वर्तत एव, किन्तु तत्र मिथ्याहारविहारदूषिता दोषा हेतवो दृश्यन्त इति दोषजा इत्युच्यन्त इति समाधिः ।

भाषा–मिथ्या आहार विहारादिके सेवनसे कुपित हुए वात पित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए रोगोंको दोषज रोग कहते हैं. यहांपर ऐसी शंका उत्पन्न होती है कि मिथ्या आहार विहार करनेवाले मनुष्य पूर्वजन्मके सुकृत (पुण्य) से रोगरहित दिखाई देते हैं इसलिये दोषज रोगोंमेंभी पूर्वजन्मका पापकर्महीं कारण है फिर उनको दोषज रोग क्यों कहते हैं ? इसका यही समाधान है कि, वास्तवमें दोषजरोगोंमेंभी आदि कारण दुष्कर्महीं है तौभी उन रोगोंमें मिथ्या आहार विहारादिसे दूषित हुए वातादिक दोषही हेतु देखनेमें आते हैं इसीसे वे रोग दोषज कहे जाते हैं ॥

कर्मदोषोद्भवा व्याधयः ।

स्वल्पदोषा गरीयांसस्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः ॥ ५ ॥ अत्र कारणं दुष्कर्म प्रबलं यतो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोषाल्पत्वेऽपि व्याधेर्गरीयस्त्वं तत्कर्मक्षयादेव क्षीणं भवति । दोषाः स्वल्पा अपि निदानत्वेनोक्ता दृश्यन्त एवेति दोषाणां कारणतां मन्यन्त इति ॥

भाषा—वात पित्त आदि दोष अल्प होने परभी जो रोग अधिक होते हैं उनको कर्मदोषज रोग कहते हैं. दोष अल्प होनेपरभी रोग बढते हैं इसमें प्रबल पापकर्मही कारण है, क्योंकि पूर्वजन्मके प्रबल पापकर्म भोगनेसे वे रोग क्षीण होते हैं. और स्वल्प दोषभी रोगोंके निदानरूप देखनेमें आते हैं और इसीलिये उन रोगोंमें दोषोंकोभी कारण मानते हैं ॥ ५ ॥

अथ रोगक्षयहेतवः ।

कर्मक्षयात्कर्मकृता दोषजाः स्वस्वभेषजैः। कर्मदोषोद्भवा यान्ति कर्मदोषक्षयात् क्षयम् ॥६॥ दोषजाः स्वस्वभेषजैरिति दोषजेषु आदिकारणं दुष्कर्म तद्भेषजार्थं द्रव्यक्षयादिजनितदुःखभोगेन कटुतिक्तकषायाद्यहृद्यभक्षणादिजनितदुःखभोगेन च क्षयं यान्ति । शेषा दुष्टा हेतवो दोषास्ते स्वस्वभेषजैः क्षयं यान्ति इत्यर्थः ॥

भाषा—कर्मज रोग तो कर्मके क्षय होनेसे क्षीण होते हैं, दोषजरोग अपनी अपनी औषधियोंसे क्षीण होते हैं, और कर्मदोषज रोग कर्म और दोष इन दोनोंके दूर होनेसे क्षीण होते हैं. दोषजरोग अपनी २ औषधियोंसे क्षीण होते हैं ऐसा कहा है वहांपर ऐसा समझे कि दोषजरोगोंका मूल कारण दुष्कर्म है और वह औषध आदिके लिये धन खर्च करनेसे उत्पन्न हुए दुःख भोगनेसे तथा तक्षिण, कडवे, कषाय तथा अप्रिय पदार्थोंके भक्षणसे उत्पन्न हुए दुःख भोगनेसे क्षय होता है और शेष दुष्ट हेतु अपने अपने दोषोंकी औषधियोंसे क्षय हो जाते हैं ॥६॥

अथ त्रिविधा रोगाः ।

साध्या याप्या असाध्याश्च व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः । सुखसाध्यः कष्टसाध्यो द्विविधः साध्य उच्यते ॥ ७ ॥

भाषा—साध्य याप्य और असाध्य इस प्रकार रोग तीन प्रकारके हैं और साध्यकेभी दो भेद हैं सुखसाध्य और कष्टसाध्य ॥ ७ ॥

अथ याप्यलक्षणमाह ।

यापनीयं तु तं विद्यात् क्रिया धारयते हि यम् । क्रियायां तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति ॥ ८ ॥ प्राप्ता क्रिया धारयति सुखिनं याप्यमातुरम् । प्रपतिष्यदिवागारं स्तम्भो यत्नेन योजितः ॥ ९ ॥

भाषा—जो रोग क्रिया (चिकित्सा) को धारण करे उस रोगको यापनीय जाने, उस रोगमें की हुई क्रिया (चिकित्सा) निवृत्त अर्थात् निष्फल हो जाय तब वह रोगी शीघ्रही नष्ट होता है जिस प्रकार प्रपतिष्यत् (गिर जानेवाले) घरको यत्नपूर्वक लगाया हुआ खंभ रोक रखता है उसी प्रकार गदातुर (रोगी) की हुई चिकित्सासे सुखपूर्वक शरीरको धारण करता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

साध्ययाप्ययोश्चिकित्सावश्यकत्वम् ।

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा । घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥ १० ॥ अक्रियावतां चिकित्सारहितानाम् ।

भाषा—जो रोग साध्य हैं और यदि उनकी चिकित्सा नहीं की जाय तो वे रोग याप्य हो जाते हैं और जो याप्यरोग हैं उनकी चिकित्सा न की जाय तौ वे असाध्य हो जाते हैं और वे असाध्य रोग चिकित्सारहित मनुष्योंके प्राणोंको नष्ट करते हैं ॥ १० ॥

अथ उपद्रवस्य लक्षणम् ।

रोगारम्भकदोषस्य प्रकोपादुपजायते । योऽन्यो विकारः स बुधैरुपद्रव इहोदितः ॥ ११ ॥

भाषा—रोगोंको आरंभ करनेवाले दोषोंका उपद्रव हो जानेसे जो कुछ अन्य विकार उत्पन्न हो जाते हैं उनको बुध लोग उपद्रव कहते हैं॥ ११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ अरिष्टस्य लक्षणम् ।

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते ।
तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टं चापि तदुच्यते ॥ १२ ॥

भाषा–जिन लक्षणोंके हो जानेसे रोगीकी अवश्य मृत्यु हो जावे ऐसे चिह्न दिखाई देते हैं, उन लक्षणोंको अरिष्ट वा रिष्ट कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ चिकित्साया लक्षणम् ।

या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते । दोषधातुमलानां या साम्यकृत्सैव रोगहृत् ॥ १३ ॥ क्रियाऽत्र कर्म, व्याधिर्हन्यतेऽनयेति व्याधिहरणी । करणाधिकरणयोश्चेति सूत्रेण करणार्थे ल्युट् ॥

भाषा–जो क्रिया रोगोंको नष्ट करती है उस क्रियाको चिकित्सा कहते हैं यही क्रिया (चिकित्सा) दोष धातु और मल इनको समान करती है और रोगोंको नष्ट करती है ॥ १३ ॥

तथाच ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ॥ १४ ॥ या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च । सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ १५ ॥ क्रियाऽत्र चिकित्सा ॥

भाषा–औरभी लिखा है कि जिन क्रियाओंसे शरीरमें स्थित धातु समान होंय उन्हीं क्रियाओंको चिकित्सा कहते हैं, रोगोंको नष्ट करनेके लिये उन्हीं क्रियाओंको करे यही वैद्योंका कर्म है. जो क्रिया उत्पन्न हुए रोगोंको शमन करती है और अन्य रोगोंको उत्पन्न नहीं करती है उसीको चिकित्सा समझे, परतु जो क्रिया एक रोगको शांत करे और दूसरे रोगको उत्पन्न करे वह क्रिया चिकित्सा नहीं कहाती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

तथा च अमरसिंहः ।

आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणम् । उपायः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नवक्रिया ॥ १६ ॥ इति ।

भाषा–क्रियाशब्दके अमरकोशमें नौ अर्थ है १ आरंभ, २ निष्कृति (प्रायश्चित्त), ३ शिक्षा, ४ पूजन, ५ संप्रधारण (विचार), ६ उपाय, ७ कर्म, ८ चेष्टा और ९ चिकित्सा ॥ १६ ॥

अथ चिकित्साविध्युपदेशः ।

जातमात्रः चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः । वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ १७ ॥ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ १८ ॥ अयमर्थः–भिषक् आदौ रोगं परीक्षेत विचारयेत् । ततः पश्चाद्रोगौषधविचारानन्तरं ज्ञानपूर्वं सावधानो न त्वज्ञाय कर्म चिकित्सामौषधदानादिरूपां समाचरेत् इत्यर्थः ॥

भाषा–रोगकी उत्पत्ति होतेही शीघ्रही उसकी चिकित्सा करनी चाहिये किंतु रोगको अल्प जानकर उसकी उपेक्षा कभी नहीं करे अर्थात् कभी नहीं भूले, क्योंकि अल्प रोगभी अग्नि शत्रु और विषके सदृश अधिक विकारको करता है. वैद्योंको प्रथम रोगकी परीक्षा करनी चाहिये, तदनंतर औषधिका विचार करना चाहिये और तत्पश्चात् ज्ञानपूर्वक सावधानतासे भिषक्कर्म (चिकित्सा) करना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

रोगाज्ञानेन चिकित्साकरणे दोषः ।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् । अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया १९ स्वैरितया सिद्धिर्भवति नापि भवतीत्यर्थः ॥

भाषा–जो वैद्य औषधियोंके विधानको जानता हुआभी रोगोंको विना जाने चिकित्सा करता है उसकी सिद्धि कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है ॥ १९ ॥

अन्यच्च ।

भेषजं केवलं कर्तुं यो जानाति न चामयम् । वैद्यकर्म स चेत्कुर्याद्वधमर्हति राजतः ॥ २० ॥

भाषा–अन्य ग्रंथमें कहा है कि, जो मनुष्य केवल चिकित्सा करना जानता है परंतु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोगोंको नहीं जानता है वह मनुष्य यदि वैद्यकर्म करे तौ वह राजासे वध्य है ॥ २० ॥

रोगज्ञाने भेषजाज्ञाने दोषः ।

यस्तु केवलरोगज्ञो भेषजेष्वविचक्षणः । तं वैद्यं प्राप्य रोगी स्याद्यथा नौर्नाविकं विना ॥२१॥ नाविकं कर्णधारं विना यथा नौः सङ्कटे पतति तथा रोगीत्यर्थः ॥

भाषा-जो वैद्य केवल रोगोंको जानता है परंतु औषधि करनेमें विचक्षण न होय, ऐसे वैद्यको प्राप्त होकर रोगी जिस प्रकार मल्लाहके विना नाव संकटमें पडती है उसी प्रकार संकटमें पडता है ॥ २१ ॥

अन्यच्च ।

यस्तु केवलशास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक् । स मुह्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवम् २२

भाषा-अन्य ग्रंथमें लिखा है कि, जो वैद्य केवल वैद्यशास्त्रको जानता है परंतु चिकित्सा करनेमें कुशल नहीं है, वह वैद्य जिस प्रकार भीरु (कायर, डरपोक) पुरुष आहव (लडाई) को देखकर मोहको प्राप्त होता है उसी प्रकार रोगीके पास जाकर मोहको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

रोगौषधयोर्ज्ञाने गुणः ।

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः । देशकालविभागज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ २३ ॥ आदावन्ते रुजां ज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः । भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ २४ ॥ चिकित्सितमित्यत्र भावे क्तः ।

भाषा-जो वैद्य रोगोंके भेदको जानता होय, संपूर्ण औषधियोंमें कोविद (विचक्षण) होय और देश तथा कालके विभागोंको जानता होय उस वैद्यको निःसंशय सिद्धि प्राप्त होती है. वैद्यको आदि और अंतमें रोग जाननेका प्रयत्न करना चाहिये, पश्चात् औषधियोंकी विधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥२३॥२४॥

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन । न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥ २५ ॥ न जिह्रीयान्न लज्जेत् । ध्रुवा नियता ॥

भाषा-कोई वैद्य विकार अर्थात् रोगके नामके जाननेमें कुशल नहीं होय तोभी उसको लज्जा नहीं करना चाहिये, क्योंकि संपूर्ण रोगोंकी स्थिति नामसेही नियत नहीं है ॥२५॥

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः । अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥ २६ ॥ ये न कुर्वन्त्यसाध्यानां चिकित्सां ते भिषग्वराः । अतो वैद्यैः श्रमः कार्यः साध्यासाध्यपरीक्षणे ॥ २७ ॥ रोगाज्ञानोपाया अग्रे वक्ष्यन्ते ॥

भाषा-दोषोंके विना रोग नहीं होते इस लिये वैद्य किसी रोगका नाम शास्त्रमें न कहा हो तोभी दोषोंके चिह्न देखकर उस रोगकी चिकित्सा करे. जो असाध्य रोगोंकी चिकित्सा नहीं करते हैं वे उत्तम वैद्य हैं इसलिये वैद्योंको पहले श्रमपूर्वक साध्य असाध्यकी परीक्षा करनी चाहिये. रोग जाननेके उपाय आगे कहे जायंगे ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ चिकित्सापद्धतिः ।

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे तूष्णनिवारणम् । कृत्वा कुर्यात्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ २८ ॥ अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न क्रिया कृता । क्रियाहीनाऽतिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ २९ ॥ अयमर्थः । काले चिकित्साऽवसरे । अप्राप्ते अनागते । या क्रिया चिकित्सा । यथा ज्वरे जीर्णतामप्राप्ते तरुण एव कषायदानक्रिया न सिद्ध्यति । या च क्रिया चिकित्सावसरे प्राप्ते न कृता । अर्थात्पश्चात्कृता । यथा दाहे कथञ्चिच्छान्ते पश्चाच्छीतलानुलेपनादिक्रिया, तथा हीनातिरिक्ता च क्रिया साध्येष्वपि न सिध्यति ॥

भाषा-शीतसे रोग हुआ हो तौ शीतका और गरमीसे रोग हुआ हो तौ गरमीका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवारण करे, पश्चात् यथायोग्य चिकित्सा करे, परंतु चिकित्साका समय जाने नहीं देवे. चिकित्साका समय प्राप्त न होनेपर जो चिकित्सा की जाती है, अथवा चिकित्साका अवसर प्राप्त होनेपर जो चिकित्सा नहीं की जाती है किंतु पीछेसे की जाती है, अथवा जो चिकित्सा अल्प रोगमें अधिक और अधिक रोगमें अल्प की जाती है वह चिकित्सा रोग साध्य होनेपरभी कार्यसिद्धि अर्थात् रोगमुक्ति नहीं कर सकती. जिस प्रकार ज्वर जीर्ण न होनेपर तरुण ज्वरमेंही जो क्वाथ आदिक देनेकी क्रिया की जाय तो वह क्रिया उपयोगी नहीं होती, अथवा दाह शांत होनेके पश्चात् शीतल लेपादिक चिकित्सा की जाय तौ वहभी उपयोगी नहीं होती. इसी प्रकार हीन वा आधिक चिकित्साभी किसी कामकी नहीं है ॥ २८ ॥ २९॥

अतिरिक्तां हीनां च क्रियां वर्जयन्नाह ।

विकारेऽल्पे महत्कर्म क्रिया लघ्वी गरीयसी ।
द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तकर्मता ॥३०॥
क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ।
पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासङ्करो हितः
॥ ३१ ॥ भिन्नरूपाभिस्तु क्रियाभिः सांकर्यमपि न दोषाय ॥

भाषा–विकार अल्प होनेपर बडी चिकित्सा और भारी रोगमें अल्प चिकित्सा करनी ये दोनों चिकित्सायें अयोग्य हैं. एक क्रियासे गुंण न होय तो पहली क्रियाका वेग शांत हो जानेपर दूसरी क्रिया करे, परंतु साथही साथ दोनों क्रियाएं नहीं करे क्योंकि ये हितकर नहीं होती हैं. परंतु यदि क्रियाएं अलग २ हों तो उनके करनेमें दोष नहीं है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

यत आह ।

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्न क्रियासंकरो हितः ।
ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः सांकर्यं नैव दुष्यति ३२

भाषा–यही अन्य ग्रथमें कहा है कि, संपूर्ण प्रकारकी तुल्य क्रियाएं एकसाथ करनेमें हित नहीं होता है परंतु क्रियाएं यदि अलग २ हों तो उनके एकसाथ करनेमें दोष नहीं है ॥३२॥

अत एवोक्तम् ।

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ।
अवलेहोऽञ्जनं चापि प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ३३ ॥ ज्वर इति शेषः ॥

भाषा–इसीलिये अन्य ग्रंथमें कहा है कि, त्रिदोषसे उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रथमहीसे लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह और अंजनका उपयोग करे ॥ ३३ ॥

न चैकान्तेन निर्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः ।
स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सता ३४

भाषा–विद्वान् लोगोंको एक शास्त्रके ऊपरही आग्रह धरकर नहीं बैठना चाहिये, परंतु चिकित्सा करते समय अपनी बुद्धिसे वैद्यको तर्क वितर्क करना चाहिये ॥ ३४ ॥

यत आह ।

उत्पद्यते च साऽवस्था दोषकालबलं प्रति ।
यस्यां कार्यमकार्यं स्यात्कर्म कार्यं विवर्जितम्
॥ ३५ ॥ विवर्जितं कर्म कर्तव्यं भवति इत्यर्थः॥

भाषा–दोष और कालके बलसे रोगकी ऐसी स्थिति होती है, कि जिसमें शास्त्रकी रीतिसे करने योग्य कार्य है वह अकार्य (नहीं करने योग्य) होता है और नहीं करने योग्य (अकार्य) कार्य हो जाता है ॥ ३५ ॥

अथ चिकित्सायाः फलम् ।

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः ।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ ३६ ॥ आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वाणा विहिताश्च ये । पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता नीरोगाश्च भवन्ति ते ॥ ३७ ॥

भाषा–चिकित्सा करनेसे कहीं धन मिलता है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म होता है, कहीं यशकी प्राप्ति होती है और कहीं क्रियाका अभ्यासही बढता है, इसलिये किसी समयभी चिकित्सा निष्फल नहीं होती. जो आयुर्वेदोक्त तथा धर्मशास्त्रोक्त युक्तियोंसे चलते हैं वे रोगरहित होते हैं तथा पुण्य और आयुकी वृद्धि होती है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ वैद्योपजीविका ।

नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् । ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थं तु वृत्तये ॥ ३८ ॥ चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः । स यत्करोति सुकृतं सर्वं तद्भिषगश्नुते ॥ ३९ ॥ न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः । ततः सर्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥ ४० ॥

भाषा-वैद्य लोभके वश होकर असमर्थ मनुष्योंसे धन लेकर चिकित्साका पुण्य विक्रय नहीं करे, परंतु जो लोग समर्थ तथा धनवान् हों उनसे आजीविकाके लिये धन लेनेकी इच्छा करे. जो दुर्बुद्धि मनुष्य अपने शरीरकी चिकित्सा कराकर उसके बदलेमें वैद्यको कुछ भी नहीं देता है, वह मनुष्य जो कुछ पुण्य करता है वह संपूर्ण वैद्यको प्राप्त होता है. मनुष्योंके विना देश नहीं है, और मनुष्य रोगके विना नहीं हैं इसलिये सब जगह वैद्योंकी आजीविका सिद्धही है ॥ ३८-४० ॥

अथ चिकित्साया अङ्गानि ।

रोगी दूतो भिषग्दीर्घमायुर्द्रव्यं सुसेवकः । सदौषधं चिकित्साया इत्यङ्गानि बुधा जगुः ॥ ४१ ॥

भाषा-१ रोगी, २ दूत, ३ वैद्य, ४ दीर्घायु, ५ द्रव्य, ६ श्रेष्ठ सेवक और ७ उत्तम औषध ये सात चिकित्साके अंग हैं ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ४१ ॥

तत्र रोगिणो लक्षणमाह ।

रोगो यस्यास्ति रोगी स स चिकित्स्यस्तु यादृशः । यादृशश्चाचिकित्स्योऽपि वक्ष्यमाणो निशम्यताम् ॥ ४२ ॥

भाषा-जिसको रोग होय उस मनुष्यको रोगी कहते हैं. अब किस रोगीकी चिकित्सा करे और किस रोगीकी चिकित्सा न करे इस विषयमें मैं कहता हूं सुनो ॥ ४२ ॥

तत्र चिकित्स्यः ।

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन चक्षुषा । चिकित्स्यो भिषजां रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ४३ ॥ सत्त्वं व्यसनाभ्युदयक्रियादिषु अविह्वलताकरं तेन युक्तः । चक्षुषा चक्षुरुपलक्षितेन ततोऽन्येनापि इन्द्रियेण चिकित्स्यः रोगात् मोचयितव्यः ॥

भाषा-जिसकी प्रकृति स्वाभाविक हो, जिसके शरीरका वर्ण बदला न होय, सत्व (बल) से युक्त होय, जिसकी चक्षु आदिक इंद्रियें योग्य स्थितिमें होंय, जो जितेंद्रिय होय तथा जिसकी भक्ति वैद्यके ऊपर होय ऐसा रोगी वैद्यको चिकित्सा करने योग्य है अर्थात् ऐसे रोगीकी चिकित्सा वैद्य करे ॥ ४३ ॥

अन्यच्च ।

आयुष्मान्सत्त्ववान्साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि । चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ४४ ॥ आयुर्वेदोऽस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिकः ॥

भाषा-औरभी कहा है कि, जो रोगी आयुष्मान्, सत्ववान्, साध्य, धनवान्, मित्रोंवाला, वैद्यका कहना माननेवाला तथा वैद्यकशास्त्रको माननेवाला होय उस रोगीकी वैद्य चिकित्सा करे ॥ ४४ ॥

अथ अचिकित्स्यः ।

चण्डः साहसिको भीरुः कृतघ्नो व्यग्र एव च । शोकाकुलो मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः ॥ ४५ ॥ वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनश्च शङ्कितः । भिषजामविधेयाः स्युर्नोपक्रम्या भिषग्विधाः । एतानुपाचरन् वैद्यो बहून्दोषानवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥ चण्डोऽत्यन्तक्रोधशीलः । साहसिकः अविचार्यकारी भीरुर्भयशीलः । कृतघ्नो वैद्यकृतोपकारलोपकः । व्यग्रः व्याकुलः । विहीनः करणैश्च यः निजेन्द्रियशक्तिरहितः । वैरी न चिकित्स्यः कदाचिद्रोगोद्रेके अपवादभयात् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैद्यविद्वेषी वैद्यधूर्तः । शंकितो वैद्यविश्वासरहितः । भिषजामविधेयाः वैद्यवचनाविधायिनः । भिषग्विद्धाः वैद्यतुल्याः एते न उपक्रम्याः न चिकित्स्याः ॥

भाषा–जो रोगी अत्यंत क्रोधी, विना विचारे कार्य करनेवाला, भीरु (डरपोक), कृतघ्न (कियेको न माननेवाला), व्याकुल, शोकाकुल, मरनेकी ईच्छा करनेवाला, इंद्रियोंकी शक्तिसे रहित, शठ, वैद्यधूर्त (वैद्यको ठगनेवाला) श्रद्धाहीन, वैद्यके ऊपर शंका करनेवाला, वैद्यका वचन नहीं माननेवाला अथवा वैद्यके तुल्य होय उस रोगीकी चिकित्सा नहीं करे क्योंकि इनकी चिकित्सा करनेसे वैद्य बहुत दोषोंको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

तथा च सुश्रुतः ।

स न सिध्यति वैद्यस्तु गृहे यस्य न पूज्यते ॥

भाषा–सुश्रुतजी कहते हैं कि जिस घरमें वैद्यकी पूजा नहीं होती है उस मनुष्यकी कदापि सिद्धि नहीं होती ॥

अथ दूतस्य लक्षणम् ।

यश्चिकित्सकमानेतुं याति दूतः स कथ्यते । स च यादृक् समुचितस्तादृगत्र निगद्यते ॥४७॥ दूताः सुजातयोऽव्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः । सुखीनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः॥४८॥ सजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संगताः । भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे । यस्यां प्राणमरुद्याति सा नाडी जीवसंज्ञिता ॥ ४९ ॥ सजातयः रोगिसमानजातयः ॥

भाषा–जो मनुष्य वैद्यको बुलानेको जाय उसको दूत कहते हैं. अब वह दूत कैसा होना चाहिये सो कहते हैं. दूत उत्तम कुलवान्, संपूर्ण अंगोंसे युक्त, चतुर, स्वच्छ वस्त्रोंसे युक्त, सुखी, अश्व (घोडे) पर वा बैलपर आरूढ, सफेद फल फूल धारण करे, रोगीकी जातिवाले, सुंदर चेष्टासे युक्त और सजीव दिशामें स्थित रहनेवाले तथा औषधिके समयपर आये हुए ऐसे दूत रोगीके सुखके कारण जाने. जिस दिशामें नासिकाकी प्राणवायु चलती होय उस दिशाको सजीवदिशा कहते हैं ॥ ४७–४९ ॥

अथ दूतस्य यात्रायां शकुनविचारः ।

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते । न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं तु सुखावहम्॥५०॥ प्रदीप्तमग्निम् । दूतो रोगी च रिक्तहस्तो वैद्यं न पश्येत् ॥

भाषा–जब दूत रोगीके लिये वैद्यको बुलानेको जावे तब सौम्य (शीतल) शकुन होय तौ रोगीके लिये शुभकारक नहीं है परंतु बलती हुई अग्नि मिले तौ वह सुखकर होती है. दूत अथवा रोगी रीते हाथ वैद्यको नहीं देखे॥५०॥

तथाहि ।

रिक्तहस्तो न पश्येत्तु राजानं भिषजं गुरुम् । दैवज्ञं देवतां मित्रं फलेन फलमादिशेत्॥५१॥

भाषा–राजा, वैद्य, गुरु, ज्योतिषी, देवता और मित्र इनके समीप रीते हाथ नहीं जावे, किंतु हाथमें फल लेकर जावे क्योंकि, फलसेही श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति होती है ॥ ५१ ॥

अथ सुवैद्यस्य लक्षणम् ।

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते । स च यादृक्समीचीनस्तादृशोऽपि निगद्यते ॥ ५२ ॥ तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृती । लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ॥ ५३ ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान्व्यवसायी प्रियंवदः । सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥ ५४ ॥ दृष्टकर्मा दृष्टा परेण कृता चिकित्सा येन सः । स्वयंकृती स्वयं चिकित्साकुशलः । लघुहस्तः सिद्धिमद्धस्तः ॥

भाषा–जो चिकित्सा करे उसको चिकित्सक (वैद्य) कहते हैं. अब वैद्य जैसा उत्तम होना चाहिये सो कहते हैं. यथार्थ शास्त्रके अर्थको जाननेवाला, अन्यकी की हुई चिकित्सा जिसने देखी हो, तथा जो स्वयं चिकित्सामें कुशल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो, लघुहस्त (सिद्ध हाथवाला), पवित्र, शूर (उत्साहयुक्त), जिसके पास औषधे तैयार हो, समयपर योग्य उपचारोंको जाननेवाला, बुद्धिमान्, उद्योगी, प्रिय बोलनेवाला और सत्य तथा धर्ममें तत्पर रहनेवाला ऐसा वैद्य प्रशंसाके योग्य है ॥ ५२-५४ ॥

अथ निषिद्धो वैद्यः ।

कुचैलः कर्कशः स्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः ।
पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा यदि ॥ ५५ ॥

कर्कशः अप्रियवादी । स्तब्धः साभिमानः । ग्रामीणः व्यवहाराचतुरः ॥

भाषा-मलिन वस्त्रोंसे युक्त, कर्कश अर्थात् अप्रिय बोलनेवाले, अभिमानी, ग्रामीण (व्यवहारमें मूर्ख) तथा अपने आप विना बुलायेही जानेवाले ऐसे वैद्य धन्वंतरिके सदृश हों तोभी पूज्य नहीं होते हैं ॥ ५५ ॥

अथ वैद्यस्य कर्म ।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५६ ॥

अस्यायमर्थः-व्याधेः सम्यक् परिचयो व्यथाशान्तिकरणं च वैद्यस्य कर्म, न तु वैद्यः आयुषः प्रभुरित्यर्थः। अपरे तु एवं व्याचक्षते। व्याधेस्तत्त्वतः परिचयो वेदनायाः शान्तिकरणं च। एतदेव न वैद्यस्य वैद्यत्वं, किन्तु वैद्यः आयुषः प्रभुः आगन्तुमृत्युशतहरणात् ॥

भाषा-रोगको यथार्थ रीतिसे जानना और रोगीकी पीडाको दूर करना यही वैद्यका वैद्यत्व है. वैद्य कोई आयुका प्रभु नहीं है. कोई ऐसा कहते हैं कि रोगको यथार्थ रीतिसे जानना और रोगीकी पीडाको दूर करना केवल यही वैद्यका काम नहीं है किन्तु वैद्य आयुकाभी प्रभु है, क्योंकि, वैद्य आगंतुक सौ मृत्युओंको दूर कर सकता है ॥ ५६ ॥

तथा च सुश्रुते धन्वन्तरिः ।

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते । तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥५७॥

अयमर्थः-अथर्वाणः अथर्वतत्त्वज्ञत्वेन अथर्वतुल्याः मृत्युमेकोत्तरं शतं प्रचक्षते तत्रैको मृत्युः कालसंयुक्तः । काल आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यं संहर्ता । सर्वैरुपायैर्निवारयितुमशक्यः स ब्रह्मादीनायुषोऽन्ते संहरति । अत आह लिङ्गपुराणे कार्त्तिकेयं प्रति महादेवः ' ममायुर्ग्रसते कालः कुतः पुत्र ! रसायनम् ॥' इति । तेन कालेन संयुक्तः संहाराय नियुक्तः सोऽवश्यम्भावी । शेषाः शतं मृत्यवः आगन्तवः आगन्तुरूपहेतुजन्मानः, कार्यकारणयोः अभेदोपचारात् ॥

भाषा-सुश्रुतमें कहा है कि अर्थवेदके तत्त्वको जाननेवाले ऐसा कहते हैं कि ' एक सौ एक मृत्यु हैं ' उनमें एक मृत्यु तौ आयुके अंतमें सर्व प्राणियोंको अवश्य संहार करनेवाली है. इसका निवारण किसी उपायसे नहीं हो सकता किंतु शेषकी सौ आगंतुक मृत्युओंका निवारण हो सकता है. सब प्राणियोंका अवश्य संहार करनेवाला काल तौ आयुके अंतमें ब्रह्मादिकोंकोभी नष्ट करता है. यही लिंगपुराणमें महादेवने कार्त्तिकेयसे कहा है कि हे पुत्र ! काल तौ मेरी आयुकाभी ग्रास करता है, फिर रसायन क्या है ? इससे कालसे संयुक्त मृत्यु तौ सब प्राणियोंके संहारके लिये अवश्यमेव होगी और शेष एक सौ मृत्यु आगंतुक नये उत्पन्न हुए कारणोंसे आनेवाली हैं और उनका निवारण तौ उन कारणोंका निवारण करनेसे हो सकता है ॥ ५७ ॥

आगन्तवो हेतवो यथा ।

विषभक्षणमजीर्णमत्यन्तभोजनं च दुर्देशजलपानम्, तथाऽतिबलवैरिव्याघ्रवनमहिषमत्तमातङ्गादिभिर्युद्धम्, दन्दशूकेन क्रीडनम्, अत्युच्चवृक्षारोहणं, बाहुभ्यां महातरङ्गिणीतरणम्, एकाकिनो रात्रौ दुर्गे मार्गे गमनम् इत्यादि । आगन्तुहेतुजा मृत्यवो दुर्निमित्ता भाविभावनाबलवत्त्वात् आयुषि सत्यपि मार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यन्ति । यथा मल्लिकातैलवर्तिवह्निषु विद्यमानेषु वात्या दीपं नाशयति ॥

भाषा–विषका भक्षण, अजीर्ण होनेपरभी फिर भोजन, दुष्ट देशका पानी पीना, अत्यंत बलिष्ठ शत्रु, बाघ, जंगली भैंसा, मदोन्मत्त हाथी आदिकके साथ लडाई, सर्पके साथ क्रीडा करना, विशेष ऊंचे वृक्षपर चढना, बाहुओंसे बडी नदीमें तैरना, रात्रिमें अकेलाही दुर्गम मार्गमें जाना इत्यादि ये सब कारण आगंतुक कहलाते हैं. जैसे दीपकमें बत्ती तेल और अग्निके होते हुएभी पवन दीपकको नष्ट करता है, वैसेही आगंतुक मृत्यु हेतुओंके बलिष्ठ होनेसे भावी भावनाकी प्रबलताके कारण आयुके शेष रहने परभी प्राणीको मार डालते हैं॥

तथाच ।

यथा सत्यपि तैलादौ दीपं निर्वापयेन्मरुत् । एवमायुष्यहीनेऽपि हिंसन्त्यागन्तुमृत्यवः ५८ किन्तु आगन्तुनिमित्तानि निवारयितुं च शक्यन्ते ॥

भाषा–जिस प्रकार तेल बत्ती आदि होनेपरभी वायु दीपकको बुझाती है उसी प्रकार आयु विद्यमान होनेपरभी आगंतुक मृत्यु प्राणियोंको मार डालती हैं ॥ ५८ ॥

यत आह सुश्रुते धन्वन्तरिः ।

दोषागन्तुनिमित्तेभ्यो रसमंत्रविशारदौ । रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ॥ ५९ ॥ वैद्यमन्त्रिणौ नृपतिं नित्यं यत्नाद्रक्षेताम् । कुतः दोषागन्तुनिमित्तेभ्यः । दोषा निषिद्धाहारविहारदूषिताः वातपित्तकफरोगोत्पादकाः । आगन्तवः निषिद्धा विहारा अतिवैरिविग्रहादयः । ते निमित्तानि येषां तेभ्यः शतमृत्युभ्यः । वैद्यपुरोहितौ कथं शतं मृत्यून् निवारयितुं शक्तौ तत्राह । यतस्तौ रसमन्त्रविशारदौ । प्रथमं वैद्यो दिनचर्यारात्रिचर्यर्तुचर्योक्ताहारविहाराभ्यां वातपित्तकफधातुमलान्समानेव रक्षति ततो रसज्ञत्वाद्रसैर्मृत्युंजयादिभिर्निषिद्धाहारविहारदूषितदोषजनितान्विकारान्मृत्युहेतूनपहरति । मन्त्री च सद्बुद्धिदानेन मृत्युहेतुभ्यो निषिद्धविहारेभ्यो नृपतिं निवारयति । तत आगन्तुमृत्यवो निवारयितुं शक्याः न तु अवश्यम्भाविनः ।

भाषा–आगंतुक निमित्तोंका निवारण हो सकता है क्योंकि सुश्रुतमें धन्वन्तरिका वचन है कि ' रस और मंत्रमें कुशल वैद्य और पुरोहित (मंत्री) यत्नपूर्वक दोष और आगंतुक कारणोंसे राजाकी नित्य रक्षा करें. ' दोष निषिद्ध आहार विहारादिसे दूषित हुए, रोगोंको उत्पन्न करनेवाले वात, पित्त, कफ इनसे होनेवाली मृत्युओंसे राजाकी रक्षा करे अथवा आगंतुक अर्थात् अतिबलवान् वैरीसे युद्ध करना आदि निषिद्ध विहारादिसे होनेवाली मृत्युओंसे राजाकी रक्षा करें. यहां शंका होती है कि वैद्य और पुरोहित सौ आगंतुक मृत्युओंका निवारण किस प्रकार कर सकते हैं ? तहां कहते हैं कि, प्रथम वैद्य और पुरोहित दोनों रस और मत्रोंको जाननेवाले हैं. प्रथम वैद्य दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या आदिमें कहे हुए आहार और विहारोंसे वात, पित्त, कफ तथा धातु और मल इनकी समानतासे रक्षा करता है तथा रसज्ञ होनेके कारण मृत्युंजयादि रसोंके द्वारा निषिद्ध आहार विहारसे कुपित हुए दोषोंसे उत्पन्न हुए मृत्युके हेतुरूप विकारोंको दूर करता है. और मंत्रीभी श्रेष्ठबुद्धिसे मृत्युके कारणरूप निषिद्ध विहारोंसे राजाको निवारण करता है अर्थात् बचा सकता है इससे सिद्ध हुआ कि, सौ आगंतुक मृत्युओंका निवारण हो सकता है परंतु अवश्य होनेवाली मृत्युका निवारण नहीं हो सकता ॥ ५९ ॥

अथ आयुर्विचारः ।

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः । तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत् ।६०।

भाषा–प्रथम भिषक् (वैद्य) यत्नपूर्वक रोगीकी आयुकी परीक्षा करे क्योंकि आयु दीर्घ होनेसे चिकित्सा सफल होती है ॥ ६० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ दीर्घायुषो लक्षणानि ।

सौम्या दृष्टिर्भवेद्यस्य श्रोत्रं वक्त्रं तथैव च । स्वादु गंधं विजानाति स साध्यो नात्र संशयः ॥ ६१ ॥ पाणिपादौ च यस्योष्णौ दाहः स्वल्पतरो भवेत् । जिह्वा तु कोमला यस्य स रोगी न विनश्यति ॥ ६२ ॥ स्वेदहीनो ज्वरो यस्य श्वासो नासिकया चरेत् । कण्ठश्च कफहीनः स्यात् स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ ६३ ॥ यस्य निद्रा सुखेन स्याच्छरीरं द्युतिमद्भवेत् । इन्द्रियाणि प्रसन्नानि स रोगी नैव नश्यति ६४॥

भाषा—जिस रोगीके नेत्र, कान और मुख सौम्य होय, जो रसको जानता है तथा जो गंधकोभी जानता है उस रोगीका रोग निःसंशय साध्य होता है. जिसके हाथ तथा पांव गरम होंय, दाह अल्प होय तथा जीभ कोमल होय वह रोगी नष्ट नहीं होगा. जिसको स्वेदरहित ज्वर आता हो, श्वास नाकमेंसे चले और कंठ कफरहित हो वह रोगी अवश्य जीता है. जिसको सुखसे निद्रा आती हो, जिसका शरीर कांतियुक्त हो और इंद्रियें सब प्रसन्न हों वह रोगी कभी नष्ट नहीं होगा ॥ ६१–६४ ॥

अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि ।

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् । तदरिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध मे ॥ ६५ ॥ शृणोति विविधाञ्छब्दान् विपरीताञ्छृणोति च । यो न शृणोति चाकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ६६ ॥ यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् । उष्णगात्रोऽतिमात्रं यो भृशं शीतेन कम्पते ॥ ६७ ॥ तमपि गतायुषं वदन्तीत्यन्वयः ॥

भाषा—शरीरप्रकृति तथा स्वभावका बदल जाना अरिष्ट कहाता है, यह संक्षेपसे मैंने कहा अब विस्तारसे कहता हूं सुनो. जो रोगी अनेक प्रकारके शब्दोंको सुने, विपरीत शब्दोंको सुने अथवा अकस्मात् कुछभी नहीं सुने उसको गतायु कहते हैं. जो रोगी शीतल पदार्थको उष्ण जाने और उष्ण पदार्थको शीतल जाने तथा जिसका शरीर अत्यंत उष्ण होय अथवा शीतसे अत्यंत कांपता होय उसको गतायु कहते हैं ॥ ६५–६७ ॥

प्रहारं नैव जानाति यो गच्छेदन्यथापि वा । पांशुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते ॥ ६८ ॥ वर्णान्यतो वा राज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि । स्नातानुलिप्तं यं चापि भजन्ते नीलमीलिकाः ॥ ६९ ॥ विपरीतेन गृह्णाति रसान्यश्चोपयोजितान् । यो वा रसान्न सेवेत तं गतासुं प्रचक्षते ॥ ७० ॥ सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धं च सुगन्धवत् । गृह्णाति योऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे निरामयः ॥ ७१ ॥ रात्रौ सूर्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् । दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ ७२ ॥ दिवा वा चन्द्रवर्चसं सूर्यमित्यन्वयः । ज्योतींषि नक्षत्राणि ॥

भाषा—शरीरमें प्रहार (चोट) करनेपरभी जिसको मालूम नहीं होता है, अथवा जो कुछका कुछ जानता है, जो अपने सब शरीरको धूलसे आच्छादित जानता है, जिसके शरीरका वर्ण बदल गया हो अथवा जिसके देहमें काली पीली रेखायें होजायँ, स्नान कर चंदनादिका लेप करनेपरभी जिसके देहपर नीलमीलिका (प्रभाकीट, काली मक्खी) बैठती हैं, जो खाये हुए रसके स्वादको विपरीत जाने, अथवा जो रसके स्वादको किंचिन्मात्रभी नहीं जाने उसको गतायु जाने. जो सुगंधको दुर्गंध जाने और दुर्गंधको सुगंध जाने, वा अन्य गंध जाने, जो दीपक शांत होनेपर रोगकी शांति जाने, जो रात्रिको सूर्य और दिनमें चंद्रमाको प्रकाशित देखे तथा नक्षत्रोंको दिनमें प्रकाशित देखे उसको गतायु जाने ॥ ६८–७२ ॥

विद्युत्वतोऽसितान्मेघान् गगने निर्घृणे घनान् । विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम् ॥ ७३ ॥ यश्चानिलं मूर्त्तिमन्तमन्तरिक्षेऽवलोकते । धूम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ ७४ ॥ प्रदीप्तामिव यो लोकं यो वाप्लुतामिवाम्भसा । भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ ७५ ॥ यो न पश्यति ऋक्षाणि यश्च दैवीमरुन्धतीम् । ध्रुवमाकाशगङ्गां च तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ७६ ॥ आदर्शेऽम्बुनि घर्मे वा छायां यश्च न पश्यति । पश्यत्येकाङ्गहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वजाम् ॥ ७७ ॥ श्वकाककङ्कगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् । आतुरो लभते मृत्युं स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ ह्रीश्रिया नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा । अकस्माच्च भजन्ते यं स गतासुरसंशयम् ॥ ७९ ॥ प्रभा प्रतिभा ॥

भाषा-जो बादलोंके विनाही घनरहित आकाशमें बिजलीयुक्त घन मेघोंको देखे, जो आकाशको विमान, यान (वाहन) तथा प्रासाद (महल) इनसे युक्त देखे, जो अंतरिक्षमें वायुको मूर्तिमान् देखे, जो पृथ्वीको धुआं कोहर तथा वस्त्रोंसे आच्छादित देखे, जो संपूर्ण जगत्को जलता हुआ वा जलमें डूबता देखे, जो भूमिको रेखाओंसे युक्त अष्टापदके सदृश आकारवाली देखता है, जिसको नक्षत्र, अरुंधती, ध्रुव और आकाशगंगा (शिशुमारचक्र) नहीं दीखते हैं उसको गतायु जाने. जिसको दर्पण जल तथा धूपमें अपनी परछाईं नहीं दीखती, दीखे तो एक अंगसे रहित दीखे अथवा विकृत (बुरे रूपकी) अथवा अन्य प्राणियोंके सदृश दीखे, अथवा कुत्ता, कौवा, कंकपक्षी, गृध्र (गीध), प्रेत, यक्ष और राक्षस इनकी छाया दीख पडे, वह रोगी होय तो मृत्युको प्राप्त हो जावे और स्वस्थ (नीरोगी) होय तो व्याधिको प्राप्त हो जावे अर्थात् रोगी होवे. जिस रोगीकी लज्जा, शोभा, तेज, ओज, स्मृति और कांति ये सब नष्ट हो जावें अथवा अकस्मात् लज्जा शोभा आदिक जिसको प्राप्त हो जावें. उसको निःसंशय गतायु जाने ॥ ७३-७९ ॥

यस्याधरौष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः । उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ ८० ॥ आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति वा । खञ्जनप्रतिभा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥ ८१ ॥ कृष्णा तथानुलिप्ता च जिह्वा शून्या च यस्य वै । कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून ॥ ८२ ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका । अवस्फूर्जति भग्ना वा स न जीवति मानवः ॥ ८३ ॥ अवस्फूर्जति श्वासवेगेनोच्चैः शब्दं करोतीत्यर्थः ॥

भाषा-जिसका नीचेका होंठ पडगया हो तथा ऊपरका होंठ ऊपर चढगया हो अथवा जिसके दोनों होंठ जामुनके सदृश काले हो जायँ उस मनुष्यका जीना दुर्लभ है. जिसके दांत लाल या काले हो जायँ अथवा गिर पडें अथवा खंजनपक्षीकी सदृश वर्णवाले हो जायँ उसको गतायु जाने. जिसकी जीभ काली, चिकनी, शून्य अथवा कठोर हो जाय वह प्राणी शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होगा. जिसकी नाक कुटिल (टेढी), स्फुटित (फटी हुई), सूखी, झुकी हुई अथवा श्वासके वेगसे बडा शब्द करती है वह मनुष्य नहीं जीवेगा ॥ ८०-८३ ॥

संक्षिप्ते विषमे स्तब्धे रूक्षे साश्रे च लोचने । स्यातां परिश्रुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ ८४ ॥ केशाः सीमन्तिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ । लुठन्ति चाक्षिपक्ष्माणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥ ८५ ॥ लुठन्ति पतन्ति ।

भाषा-जिसके नेत्र छोटे, टेढे, स्तब्ध (पथराये हुए), रूखे और आंसुओंसे भरे हुए हों अथवा जिसके नेत्रोंसे आंसू गिरते हों उस मनुष्यको गतायु जाने. जिसके केश गुथेसे हो जायँ, जिसकी भौंहें संकुचित हो जायँ अथवा झुक जायँ और जिसके पलकोंके बाल गिर जायँ वह मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो जावेगा ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः । एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान्विमुञ्चति ॥ ८६ ॥ उत्थाप्यमानो बहुशः संमोहं योऽधिगच्छति । बलवान् दुर्बलो वापि तं पक्वं भिषगादिशेत् ॥ ८७ ॥ निद्रा निरन्तरं यस्य यो जागर्ति च सर्वदा । मुह्यद्वा वक्तुकामश्च प्रत्याख्येयः स जानता ॥ ८८ ॥ उत्तरौष्ठं च यो लिह्यादुत्करांश्च करोति यः । प्रेतैर्वा भाषते सायं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥ ८९ ॥ उत्करान् हस्तपादादिविक्षेपान् ॥

भाषा-जो रोगी मुखमें अन्न धरनेपरभी नहीं निगले, मस्तकको स्थिर न रख सके, जिसकी दृष्टि एकाग्र हो जाय अथवा जिसका मन मूढ हो जाय वह मनुष्य शीघ्रही प्राणोंको छोडेगा. जो उठानेपरभी विशेष मोहको प्राप्त हो जाय, फिर वह चाहे बलवान् हो अथवा दुर्बल हो उसको वैद्य गतायु जाने. जो सदैव सोयाही करे अथवा सदैव जागाही करे वा जो बोलनेकी इच्छा होनेपरभी मोहको प्राप्त होकर न बोलसके उसको विद्वान् वैद्य त्याग देवे. जो ऊपरके होंठको चाटे तथा हाथ पांवोंको इधर उधर पटके और सायंकालमें प्रेतोंके साथ भाषण करे वह मनुष्य शीघ्रही प्रेतरूप जाने अर्थात् शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो जायगा ॥ ८६–८९ ॥

खेभ्यश्च रोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते । पुरुषस्याविषार्तस्य स सद्यो जीवितं त्यजेत् ॥ ९० ॥ सम्यक् चिकित्स्यमानस्य विकारो योऽभिवर्धते । प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तदृतायुषः ॥ ९१ ॥ भूताः प्रेताः पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च । मरणाभिमुखं जन्तुमुपसृत्य च नित्यशः ॥ ९२ ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतीच्छन्ति जिघांसया । तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषः ॥ ९३ ॥

भाषा-जिस मनुष्यके रोमकूपोंसे विषसे पीडित न होनेपरभी रुधिर निकलने लगे वह शीघ्रही जीवितको त्याग देता है. अच्छी तरहसे चिकित्सा करनेपरभी जिस मनुष्यका बल, मांस क्षीण हो जाय और विकार बढता जाय उस मनुष्यको गतायु जाने. जिसकी मृत्यु समीप आगई हो उस मनुष्यके पास नित्य भूत, प्रेत, पिशाच तथा अनेक प्रकारके राक्षस आते हैं और उस मनुष्यको मारनेकी इच्छासे औषधियोंकी शक्तिको नष्ट कर देते हैं और इसी कारणसे जिसकी मृत्यु समीप आगई हो उस मनुष्यकी जो चिकित्सा की जाती है वह सब तरहसे निष्फल हो जाती है ॥ ९०–९३ ॥

ननु आयुषि सति चिकित्सायाः साफल्यमुक्तम्, आयुरस्ति चेतदा तदेव जीवनहेतुः, किं चिकित्साविधानेन ? तत्र उच्यते । आयुषि सति चिकित्सायाः फलं वेदनानिग्रहः ॥

भाषा-यहां ऐसी शंका उत्पन्न होती है कि, आयु होय तबही चिकित्सा सफल होती है ऐसा कहा है तब जिसकी आयु होय वह जीवनका हेतु आयु होनेसे अवश्यमेव जीवेगा फिर चिकित्सा करनेसे क्या प्रयोजन है ? तहां उत्तर कहते हैं कि, आयु होनेपर चिकित्साका फल केवल वेदनाका निग्रह करनाही है ॥

उक्तं च ।

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत्सव्यथो भेषजं विना । भेषजेन पुनर्जीवेत् स एव हि निरामयः ॥ ९४ ॥ किञ्च आयुषि सत्यपि रोगी चिकित्सां विना उत्थातुं न शक्नोति ॥

भाषा-जैसे कहा है कि, आयु होनेपर चिकित्सा न करे तो रोगी वेदनासहित जीता है और औषधि करनेपर निरामय व्यथारहित जीता है. आयुके रहनेपरभी रोगी चिकित्साके विना नहीं उठ सकता ॥ ९४ ॥

यत आह चरकः ।

सति चायुषि नापायं विनोत्थातुं क्षमो रुजी । दर्शितश्चात्र दृष्टान्तः पङ्कमग्नो यथा गजः ॥ ९५ ॥ किञ्च चिकित्सां विना आयुष्मानपि अवसीदति ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–चरक कहते हैं कि, जिस प्रकार कीचमें फँसा हुआ हाथी विना निकाले नहीं निकल सकता. उसी प्रकार रोगी आयुके होनेपरभी विना उपाय करे नहीं उठ सकता और आयुके होनेपरभी चिकित्सा न की जाय तो रोगी मर जाता है ॥ ९५ ॥

अत आह स एव ।

सति चायुषि नष्टः स्यादामयैश्चाचिकित्सितैः ।
यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्वाति वात्यया ॥ ९६ ॥

भाषा–औरभी चरक कहते हैं कि, जिस प्रकार तैलादि होनेपरभी वायुसे दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार आयुके होनेपरभी यदि चिकित्सा न की जाय तो रोगी रोगोंसे मर जाता है ॥ ९६ ॥

अत एव उक्तम् ।

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्या गच्छन्त्यसाध्यताम् । घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नगणामक्रियावताम् ॥ ९७ ॥ इति । चिकित्सातु अनिश्चितायुषोऽपि कर्तव्या ।

भाषा–यदि चिकित्सा नहीं की जाय तो साध्य रोग याप्य हो जाते हैं और याप्य रोग असाध्य हो जाते हैं और रोग असाध्य हो जायँ तो वे मनुष्योंके प्राण विना लिये नहीं रहते हैं और इसलिये जिनकी आयुका निश्चय नहीं हुआ हो तौभी उन मनुष्योंकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९७ ॥

यत आह ।

तावत्प्रतिक्रिया कार्या यावच्छ्वसिति मानवः ।
कदाचिद्दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥ ९८॥
इति तु यस्यासाध्यत्वं सन्दिग्धं तं प्रत्युक्तम् । येषु तु असाध्यता शास्त्रेण अनुभवेन विनिश्चिता ते पुनर्न चिकित्स्याः । यत उक्तम् । ' सद्वैद्यास्ते न येऽसाध्यानारभन्ते चिकित्सितुम् ' ॥ इति ॥

भाषा–जबतक मनुष्य श्वास लेता होय तबतक उस मनुष्यकी चिकित्सा करे क्योंकि जिसकी मृत्युके चिह्न दीखतेभी होंय तथापि वह मनुष्य दैवयोगसे कदाचित् जी जाता है. इसका यही अभिप्राय है कि जिसके असाध्यतामें संशय होय उसकी चिकित्सा करनी चाहिये, परंतु शास्त्रसे तथा अनुभवसे जिसके असाध्यत्वका निश्चय हो गया है उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये और इसीलिये ऐसा कहा है कि ' जो असाध्यकी चिकित्सा करना आरंभ नहीं करते वेही वैद्यश्रेष्ठ हैं ' ॥ ९८ ॥

अथ द्रव्यावश्यकता ।

द्रव्यमपेक्षन्ते रोगिप्रभृतयो यतः । विना वित्तं न भैषज्यं चिकित्साङ्गं ततो धनम् ९९॥

भाषा–रोगी आदिक सब लोगोंको द्रव्यकी इच्छा होती है और वित्तके विना औषधिभी नहीं हो सकती इसलिये धनकोभी एक चिकित्साका अंग माना है ॥ ९९ ॥

अथ परिचारकस्य लक्षणम् ।

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे ।
वैद्यवाक्यकृदश्रान्तो युज्यते परिचारकः १००
स्निग्धः प्रीतः । अजुगुप्सुः अनिन्दकः ॥

भाषा–रोगीका परिचारक (टहल करनेवाला) मनुष्य स्नेही, निंदा न करनेवाला, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें सदैव युक्त अर्थात् तत्पर, वैद्यके कथनानुसार आचरण करनेवाला और कभी नहीं थकनेवाला ऐसा होना चाहिये ॥ १०० ॥

अथ भेषजस्य लक्षणम् ।

वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्द्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ।
तद्यादृशमवश्यं स्याद्रोगघ्नं तादृशं ब्रुवे॥१०१॥

भाषा–वैद्य जिस पदार्थसे रोगको नष्ट करता है वह पदार्थ औषध कहाता है. अब उस औषधको मैं कहता हूं कि जिससे रोग अवश्य नष्ट होवें ॥ १०१ ॥

अथ औषधग्रहणपरिभाषा ।

प्रशस्तदेशे सञ्जातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् । अल्पमात्रं बहुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥१०२॥
दोषघ्नमगदानिकरमधिकं न विकारि यत् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समीक्ष्य काले दत्तं च भेषजं स्याद्गुणावहम् ॥ १०३ ॥ आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिः स्मृतः । अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥ १०४ ॥ आग्नेयाः अधिकाग्न्यंशाः । सौम्यः अधिकसोमांशः । ओषधय एवौषधानि । अत्र स्वार्थे अण् । अनुरूपाणि सदृशानि ॥

भाषा-श्रेष्ठ देशमें उत्पन्न हुई, शुभ दिनमें उखाडी हुई, अल्प मात्रासे विशेष गुण करनेवाली, गंध, वर्ण तथा रस इनसे युक्त, दोषोंको नष्ट करनेवाली, ग्लानि न करनेवाली तथा जो अधिक खानेसेभी विकार न करनेवाली ऐसी औषधि यदि विचारपूर्वक समयपर दी जावे तो गुणकारक होती है. विंध्याचल आदि पर्वतोंमें अग्निका भाग विशेष होता है और हिमालयमें चंद्रमाका भाग विशेष होता है इसलिये विंध्याचल आदि पर्वतोंमें उत्पन्न हुई औषधियोंमें उष्णता अधिक होती है और हिमालयमें उत्पन्न हुई औषधियोंमें शीतलता अधिक होती है क्योंकि कारणके सदृशही कार्यमें गुण होते हैं ॥ १०२-१०४ ॥

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च । गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ॥ १०५ ॥ आदित्यसम्मुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि । साधारणधराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥ १०६ ॥ साधारणधराद्रव्यं सर्वभूमिभवं द्रव्यम् । उत्तराश्रितं स्वस्मात् उत्तरदिग्भवम् ॥

भाषा-अन्य वन और उपवनोंमेंभी औषधियें उत्पन्न होती हैं उनको प्रसन्नमन होकर, पवित्रतापूर्वक स्वच्छ होकर, सूर्यके सन्मुख खडा रहकर, मौन धारण कर, महादेवको मनमें नमस्कार कर, प्रातःकालके समयमें शुभ दिनमें औषधिको ग्रहण करे. अपनेसे उत्तर दिशामें संपूर्ण भूमिमें उत्पन्न हुई औषधिको ग्रहण करे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः । जन्तुग्रहिहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ १०७ ॥ शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् । विरेकवमनार्थं तु वसंतान्ते समाहरेत् ॥ १०८ ॥ वसन्तान्ते वसन्तमध्ये । समाहरेत् संगृह्णीयात् ॥

भाषा-जो औषधियें सर्पकी बमईमें, अशुद्ध स्थानमें, अनूप देश (बहुत जलवाले स्थान) में, श्मशानमें, ऊषर धरतीमें तथा मार्गमें उत्पन्न हुई हैं अथवा जो औषधि जीवोंसे, गरमीसे तथा शीतलतासे व्याप्त हैं वे औषधियें कार्य सिद्ध करनेवाली नहीं हैं. शरद्ऋतुमें औषधियें रससे युक्त होती हैं इसलिये सब कामोंके लिये उनको ग्रहण करे. परंतु विरेचन तथा वमन करानेके लिये वसंतऋतुमें औषधियोंका संग्रह करे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो ध्रुवम् । गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ १०९ ॥

भाषा-बुद्धिमान् वैद्य जिन वृक्षोंकी जड बहुत मोटी होय उन वृक्षोंकी त्वचा (छाल) ही लेवे और जिनकी जड सूक्ष्म होय उन वृक्षोंका संपूर्ण भाग लेवे ॥ १०९ ॥

अन्यच्च ।

महान्ति येषां मूलानि काष्ठगर्भाणि सर्वतः । तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि सर्वशः ॥ ११० ॥ न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद्बीजकादितः । तालीसादेव पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ॥ १११ ॥ क्वचिन्मूलं क्वचित्कन्दः क्वचित्पत्रं क्वचित्फलम् । क्वचित्पुष्पं क्वसित्सर्वं क्वचित्सारः क्वचित्त्वचः ॥ ११२ ॥ चित्रकं सूरणं निम्बो वासा च त्रिफला क्रमात् । धातकी कण्टकारी च खदिरः क्षीरपादपः ॥ ११३ ॥ क्वचिन्निम्बस्य गृह्णीयात्पत्राभावे त्वचामपि । बालं फलं तु बिल्वस्य पक्वमारग्वधस्य च ॥ ११४ ॥ अङ्गेऽनुक्ते जटा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्राह्या भागेऽनुक्तेऽखिलं समम् । पात्रेऽनुक्ते मृदः पात्रं कालेऽनुक्ते त्वहर्मुखम् ॥ ११५ ॥ नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु । विना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ११६ ॥ धान्यमन्नम् ।

भाषा–अन्य ग्रंथमें लिखा है कि जिन वृक्षोंकी जड मोटी होती है और भीतर लकडी होती है उन वृक्षोंकी छालही लेवे और सूक्ष्म जडवाले वृक्षका संपूर्ण भाग लेवे. वड आदि वृक्षकी छाल लेवे. विजयसार आदि वृक्षका सार लेवे, तालीसपत्र आदिके पत्ते लेवे और त्रिफला आदिके फल लेवे. किसीकी जड, किसीका कंद, किसीके पत्ते, किसीके फल, किसीके फूल, किसीका सर्व भाग, किसीका सार और किसीकी छाल लेनी चाहिये. जैसे चीतेकी जड, सूरनका कंद, नींव और अडूसेके पत्ते, त्रिफलाके फल, धवईके फूल, कटेरीका सर्वांग, खैरका सार और दूधवाले वृक्षोंकी छाल लेवे. यदि नींवके पत्ते न मिले तो छालही लेवे. बेलका कच्चा फल और अमलतासका पक्का फल लेवे. जहांपर औषधिका अंग न कहा हो वहां उसकी जड लेवे. जहां औषधियोंकी तोल लिखी न हो वहां संपूर्ण औषधियें समान भाग लेवे. जहां केवल पात्रही लिखा हो वहां मृत्तिका (मिट्टी) का पात्र लेवे और जहां औषधि लेनेका समय न कहा हो वहां प्रातःकाल लेवे अर्थात् सवेरे औषधि लेवे. संपूर्ण औषधोंके कामोंमें नये पदार्थोंकाही उपयोग करे, परंतु वायविडंग, पीपल, गुड, धान्य (चावल), घी और शहद इन वस्तुओंको पुरानाही लेना चाहिये ॥ ११०–११६ ॥

पुराणं तु प्रशस्तं स्यात्ताम्बूलं काञ्जिकं तथा । शुष्कं नवीनद्रव्यं तु योज्यं सकलकर्मसु ॥ ११७ ॥ आर्द्रं तु द्विगुणं युञ्ज्यादेष सर्वत्र निश्चयः । गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी ॥ ११८ ॥ अश्वगन्धा सहचरः शतपुष्पा प्रसारिणी । प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणं नैव कारयेत् ॥ ११९ ॥ सहचरः कुरण्टकः कटसरैआ इति लोके ॥

भाषा–पान और कांजीभी पुरानीही श्रेष्ठ होती है. सर्व औषधियोंमें सूखे वा नये पदार्थोंका उपयोग करे और जो औषधियें गीली लेवे तो दो भाग लेवे. यही सर्व स्थानोंमें निश्चय है. गिलोय, कूडा, अडूसा, पेठा, सतावर, असगंध, कटसरैया, सौंफ और पसरन ये औषधियें सदैव गीली लेनी चाहिये, परंतु दो भाग नहीं लेवे ॥ ११७–११९ ॥

वासानिम्बपटोलकेतकवलाकूष्माण्डकेन्दीवरी वर्षाभूः कुटजाश्च कन्दसहिता सा पूतिगन्धामृताः । ऐन्द्री नागबलाकुरुण्टकपुरो क्षत्रामृता सर्वदा सार्द्रा एव तु न क्वचिद्द्विगुणिताः कार्येषु योज्या बुधैः ॥ १२० ॥ वरी शतावरी । पूतिगन्धा गन्धप्रसारणी । ऐन्द्री इन्द्रवारुणी । नागबला गुलशकरी । कुरण्टकः पीतपुष्पं कटसरैआ । पुरो गुग्गुलुः ॥

भाषा–अडूसा, नींव, परवल, केतकी (केवडा), खिरैटी, पेठा, सतावर, सोंठ, कूडाकंद, गंध प्रसारिनी, गिलोय, इंद्रवारुणी (इंदोरनि), नागबला, कटसरैया, गूगल, सौंफ और गिलोय ये सब पदार्थ गीले लेवे परंतु दो भाग नहीं लेवे ॥ १२० ॥

घृतं तैलं च पानीयं कषायं व्यञ्जनादिकम् । पक्त्वा शीतीकृतं चोष्णं तत्सर्वं स्याद्विषोपमम् ॥ १२१ ॥

भाषा–घी, तेल, जल, क्वाथ (कषाय) और व्यंजन (भोजनके पदार्थ) आदि अग्निपर एक वार सिद्ध करके शीतल हो जानेपर फिरभी यदि गरम किये तो वे विषके सदृश हो जाते हैं इसलिये इन पदार्थोंको फिर गरम न करे॥१२१॥

अथ द्रव्याणां परीक्षा ।

सूक्ष्मास्थिमांसला पथ्या सर्वकर्मणि पूजिता । क्षिप्ताम्भसि निमज्जेद्या मल्लातक्यस्तथोत्तमाः ॥ १२२ ॥ वराहमूर्द्धवत्कन्दो वाराहीकन्दसं-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञकः । सौवर्चलं तु काचाभं सैन्धवं स्फटिकप्रभम् ॥ १२३ ॥ सुवर्णच्छविकं ज्ञेयं स्वर्णमाक्षिकमुत्तमम् । इन्द्रपुष्पप्रतीकाशा मनोह्वा चोत्तमा मता ॥ १२४ ॥ श्रेष्ठं शिलाजतु ज्ञेयं प्रक्षिप्तं न विशीर्यते । तोयपूर्णे कांस्यपात्रे प्रतानेन विवर्धते ॥ १२५ ॥

भाषा-जो हरड छोटी गुठलीवाली और अधिक गूदेवाली होती है वह सब कामोंमें उत्तम है. जो भिलावा पानीमें डालनेसे डूबे वह उत्तम है. जो वाराहीकंद सूअरके मस्तकके सदृश होता है वह उत्तम है. जो संचरनोन कांचके सदृश होता है, वह उत्तम कहाता है. जो सेंधानोन स्फटिकमणिके सदृश कांतिवाला है वह उत्तम है. सोनामक्खी सोनेके सदृश कांतिवाली हो तो उत्तम जाने. मनशिल इंद्रपुष्पके सदृश हो तो वह उत्तम है. शिलाजित जो जमीनपर गिरनेपर नहीं फैले, तथा जो जलसे भर हुए कांसीके पात्रमें डालनेसे सूतके सदृश बढे वह उत्तम है ॥ १२२-१२५ ॥

कर्पूरस्तुवरः स्निग्ध एला सूक्ष्मफला वरा । श्वेतचंदनमत्यंतं सुगंधि गुरुपूजितम् ॥ १२६ ॥ रक्तचन्दनमत्यन्तं लोहितं प्रवरं मतम् । काकतुण्डनिभः स्निग्धो गुरुः श्रेष्ठो गुरुर्मतः ॥ ॥ १२७ ॥ सुगन्धि लघु रूक्षं च सुरदारु वरं मतम् । सरलं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धि च गुणावहम् ॥ १२८ ॥ अतिपीता प्रशस्ता तु ज्ञेया दारुनिशा बुधैः । जातीफलं गुरु स्निग्धं समं शुभ्रान्तरं वरम् ॥ १२९ ॥ मृद्वीका सोत्तमा ज्ञेया या स्याद्गोस्तनसन्निभा । करमर्दफलाकारा मध्यमा सा प्रकीर्तिता ॥ १३० ॥ गोस्तनसन्निभा मुनक्का इति लोके । करमर्दफलाकारा करम्बा इति लोके ॥

भाषा-जो कपूर कसैला और स्निग्ध हो वह उत्तम है. सूक्ष्म दानोंवाली इलायची श्रेष्ठ है. सफेद चंदन भारी और सुगंधित हो वह श्रेष्ठ होता है, लाल चंदन जो अधिक लाल हो वह उत्तम है. अगर काककी चोंचकी सदृश स्निग्ध और भारी हो वह उत्तम है. देवदारु सुगंधित हलका और रुक्ष हो तो उत्तम है. सरल बहुत स्निग्ध और सुगंधित हो वह उत्तम है. दारुहलदी जो अत्यंत पीली हो वह उत्तम है. जायफल भारी, स्निग्ध, गोल और भीतरसे सफेद हो तो वह उत्तम है. जो दाख (मुनक्का) गौके स्तनोंके सदृश हों वे उत्तम हैं और जो करौंदेके फलके सदृश आकारवाली होय वह मध्यम है ॥ १२६-१३० ॥

खण्डं तु विमलं श्रेष्ठं चन्द्रकान्तसमप्रभम् । गव्याज्यसदृशं रुच्यं गन्धं मधुवरं मतम् १३१

भाषा-जो खांड निर्मल और चंद्रकांतमणिके समान सफेद होय वह उत्तम है और शहद जो गौके घीके सदृश रुचिकारक और सुगंधित होय वह श्रेष्ठ कहा है ॥ १३१ ॥

अथ स्वभावतो हितानि ।

शालीनां लोहितः शालिः षष्टिकेषु च षष्टिकः । शूकधान्येष्वपि यवो गोधूमः प्रवरो मतः ॥ १३२ ॥ शिम्बीधान्ये वरो मुद्गो मसूरश्चाढकी तथा । रसेषु मधुरः श्रेष्ठो लवणेषु च सैन्धवः ॥ १३३ ॥ दाडिमामलकं द्राक्षा खर्जूरं च परूषकम् । राजादनं मातुलुङ्गं फलवर्गेषु शस्यते ॥ १३४ ॥ परूषकं फारसा इतिलोके । राजादनं खिरिणी इति लोके । मातुलुङ्गं बिजउरा इति लोके ॥

भाषा-चावलोंमें लाल चावल, षष्टिकोंमें सांठी चावल, शूक अर्थात् भूसीवाले धान्योंमें जौ तथा गेहूं श्रेष्ठ हैं. शिंबी (फलीवाले) धान्योंमें मूंग, मसूर तथा अरहर तथा रसोंमें मधुर रस और नमकोंमें सेंधानमक श्रेष्ठ है. फलवर्गोंमें अनार, आमला, दाख (अंगूर), खजूर (छुहारा), फालसा, खिन्नी और बिजौरा नींबू श्रेष्ठ है ॥ १३२-१३४ ॥

पत्रशाकेषु वास्तूकं जीवन्ती पोतिका वरा । पटोलं फलशाकेषु कन्दशाकेषु सूरणम् १३५ ॥ एणः कुरङ्गो हरिणो जाङ्गलेषु प्रशस्यते ।

©C-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्षिणां तित्तिरिर्लावो वरो मत्स्येषु रोहितः ॥१३६॥ हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णतया मतः । कुरङ्गस्ताम्र उद्दिष्टो हरिणः कृत्तिको महान् ॥ १३७ ॥ जलेषु दिव्यं दुग्धेषु गव्यमाज्येषु गोभवम् । तैलेषु तिलजं तैलमैक्षवेषु सिता हिता ॥ १३८ ॥

भाषा–पत्रशाकोंमें बथुआ, जीवंती तथा पोई और फलशाकोंमें परवल तथा कंदशाकोंमें सूरणकंद (जिमीकंद) उत्तम है. जंगली जीवोंमें काला लाल तथा चित्रित हरिण और पक्षियोंमें तीतर तथा लवा उत्तम है. हरिण तांबेके सदृश वर्णवाला होता है, एण काला होता है और कुरंग हिरण काला तथा लाल वर्ण मिला हुआ अर्थात् चित्रित होता है. मछलियोंमें रोहू मछली और जलोंमें दिव्यजल उत्तम है. दुग्धोंमें गायका दूध और घृतोंमें गायका घीही श्रेष्ठ है. तैलोंमें तिलका तेल और ईखसे बने हुए पदार्थोंमें मिश्रीही उत्तम है ॥ १३५–१३८ ॥

अथ स्वभावादहितानि ।

शिम्बीषु माषान्ग्रीष्मर्तौ लवणेष्वौषरं त्यजेत् । फलेषु लकुचं शाके सार्षपं न हितं मतम् ॥ १३९ ॥ गोमांसं ग्राम्यमांसेषु न हितं महिषीवसा । मेषीपयः कुसुम्भस्य तैलं त्याज्यं च फाणितम् ॥ १४० ॥ इक्षुरसः परिपक्वो योऽर्धघनः फाणितम् । तद्धि छोयाराव इति लोके ॥

भाषा–शिंबी (फलीवाले) धान्योंमें उडद, ऋतुओंमें ग्रीष्मऋतु, नमकोंमें खारी पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ लवण ये हितकर नहीं हैं अर्थात् इनको त्याग देवे. फलोंमें लकुच (बडहर), शाकोंमें सरसोंका शाक हितकारी नहीं है. ग्रामके जीवोंके मांसोंमें गायका मांस और वसाओंमें भैंसकी वसा (चर्बी) अहितकारी है. दूधोंमें भेडका दूध तथा तैलोंमें कुसुंभेका तेल और मिठाइयोंमें फाणित (राब) त्याज्य है ॥ १३९ ॥ १४० ॥

अथ संयोगविरुद्धानि ।

मत्स्यमानूपमांसं च दुग्धयुक्तं विवर्जयेत् । कपोतं सर्षपस्नेहभर्जितं परिवर्जयेत् ॥ १४१ ॥ मत्स्यानिक्षोर्विकारेण तथा क्षौद्रेण वर्जयेत् । सक्तून्मांसपयोयुक्तानुष्णैर्दधि विवर्जयेत् ॥१४२॥ उष्णैर्नभोऽम्बुना क्षौद्रं पायसं कृसरान्वितम् । रम्भाफलं त्यजेत्तक्रदधिबिल्वफलान्वितम् ॥ १४३ ॥ दशाहमुषितं सर्पिः कांस्ये मधुघृतं समम् । कृतान्नं च कषायं च पुनरुष्णीकृतं त्यजेत् ॥ १४४ ॥ एकत्र बहुमांसानि विरुध्यन्ते परस्परम् । मधुसर्पिर्वसा तैलं पानीयं वा पयस्तथा ॥ १४५ ॥

भाषा–मछली और अनूपदेशका मांस दूधके साथ भक्षण करना वर्ज्य है. सरसोंके तेलमें भूना हुआ कबूतरका मांस वर्ज्य करने योग्य है. मछलीको इक्षुविकार (गुड राव आदि) के साथ अथवा शहदके साथ नहीं खाना चाहिये, वर्जित है. मांस और दूधके साथ सत्तू नहीं खावे. गरम पदार्थोंके साथ दही नहीं खावे. गरम पदार्थोंके साथ तथा वर्षाके जलके साथ शहदको नहीं खावे. पायस (खीर) के साथ खिचडी खाना त्याज्य है. तक्र (छाछ), दही और बेलफलके साथ केलेकी फली नहीं खावे. जो घी कांसीके पात्रमें दश दिन धरा हो वह त्याज्य है. शहद और घी समान खाना त्याज्य है. फिर गरम किया हुआ भोजन और फिर गरम किया हुआ क्वाथ सर्वथा त्याज्य है. बहुतसे मांस एकत्र मिलानेसे वे परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार शहद, घी, वसा (चर्बी), तेल, पानी तथा दूध इन पदार्थोंको परस्परमें मिलानेसे ये विरुद्ध हो जाते हैं, अत एव त्याज्य हैं ॥ १४१–१४५ ॥

अथ भेषजग्रहणसंकेतः ।

लवणं सैन्धवं प्रोक्तं चन्दनं रक्तचन्दनम् । चूर्णलेहासवस्नेहाः साध्या धवलचन्दनैः । कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ १४६ ॥ अन्तः सम्मार्जने ज्ञेया ह्यजमोदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यवानिका । बहिः सम्मार्जने सैव विज्ञातव्याऽजमोदिका ॥ १४७ ॥ पयः सर्पीः प्रयोगेषु गव्यमेव हि गृह्यते । शकृद्रसो गोमयको मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ १४८ ॥

भाषा-जहां लवण कहा होय वहां सेंधानोन लेवे. जहां केवल चंदन कहा होय वहां लाल चंदन लेवे. जहां चंदनका चूर्ण, अवलेह, आसव अथवा तेल निकालना होय वहां सफेद चंदन लेवे और जहां क्वाथ अथवा लेप करना कहा हो वहां लाल चंदन लेवे. शरीरके भीतरका भाग शुद्ध करनेमें जहां अजमोदा कहा हो वहां अजवायन लेवे और जहां बाहरका भाग शुद्ध करनेमें अजमोदा कहा हो वहां अजमोदाही लेवे, दूध और घी जहां कहा हो वहां गायकाही दूध और गायकाही घी लेवे. उसी प्रकार जहां विष्ठा रस या मूत्र कहा हो वहां गायकेही गोबरका रस और गायकाही मूत्र लेवे ॥ १४६-१४८ ॥

अथ प्रतिनिधिः ।

चित्रकाऽभावतो दन्ती क्षाः शिखरिजोऽथवा । अभावे धन्वयासस्य प्रक्षेप्या तु दुरालभा ॥ १४९ ॥ शिखरी अपामार्गः ॥

भाषा-चीतेके अभाव (न मिलने) में दंती वा चिरचिटेका खार लेवे. धमासेके अभावमें जवासा लेवे ॥ १४९ ॥

तगरस्याप्यभावे तु कुष्ठं दद्याद्भिषग्वरः । मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या जिङ्गिनीप्रभवा बुधैः ॥ १५० ॥ अहिंस्राया अभावे तु मानकंदः प्रकीर्तितः । लक्ष्मणाया अभावे तु नीलकण्ठशिखा मता ॥ १५१ ॥ नीलकण्ठशिखा मयूरशिखा ॥

भाषा-तगरके अभावमें कूटको लेवे. मूर्वा न मिले तो वैद्यश्रेष्ठ जिंगनीकी छालको लेवे. आहिंस्राके अभावमें मानकंद लेवे और लक्ष्मणाके अभावमें मोरशिखा लेवे ॥ १५० ॥ १५१ ॥

बकुलाभावतो देयं कह्लारोत्पलपङ्कजम् । नीलोत्पलस्याभावे तु कुमुदं देयमिष्यते ॥ १५२ ॥ जातीपुष्पं न यत्रास्ति लवंगं तत्र दीयते । अर्कपर्णादिपयसो ह्यभावे तद्रसो मतः ॥ १५३ ॥ पौष्करामावतः कुष्ठं तथा लाङ्गल्यभावतः । स्थौणेयकस्याभावे तु भिषग्भिर्दीयते गदः ॥ १५४ ॥ चविकागजपिप्पल्यौ पिप्पलीमूलवत्स्मृतौ । अभावे सोमराज्यास्तु प्रपुन्नाटफलं मतम् । यदि न स्याद्दारुनिशा तदा देया निशा बुधैः ॥ १५५ ॥ सोमराजी बाकुची । प्रपुन्नाटफलं चक्रमर्दफलम् । दारुनिशा दारुहरिद्रा । निशा हरिद्रा ॥

भाषा-पौरसिरिके अभावमें लाल कमल अथवा नीले कमल लेवे. नीले कमलके अभावमें कमोदनी लेवे. चमेलीके फूलोंके अभावमें लौंग लेवे. आंकके पत्तोंके दूधके अभावमें उन्हींका रस लेवे. पोहकरमूल और कालिहारीके अभावमें कूठ लेवे. थुनेरके अभावमेंभी वैद्य कूठही लेवे. चाव और गजपीपलके अभावमें पीपलामूल लेवे. बावचीके अभावमें पँवार (चकवड) के बीज लेवे. दारुहलदीके अभावमें हलदीही लेवे ॥ १५२-१५५ ॥

रसाञ्जनस्याभावे तु सम्यग्दार्वी प्रयुज्यते । सौराष्ट्र्यभावतो देया स्फटिका तद्गुणा जनैः ॥ १५६ ॥ सौराष्ट्री सोरटीमाटी इति लोके । स्फटिका फट्टाकिरी इति लोके ॥

भाषा-रसौतके अभावमें दारुहलदीका प्रयोग करे. सोरठी मिट्टीके अभावमें फिटकरी लेवे ॥ १५६ ॥

तालीसपत्रकाभावे स्वर्णताली प्रशस्यते । भाङ्ग्यभावे तु तालीसं कण्टकारी वटाऽथवा ॥ १५७ ॥ रुचकाऽभावतो दद्याल्लवणं पांशुपूर्वकम् । अभावे मधुयष्ट्यास्तु धातुकीं च प्रयोजयेत् ॥ १५८ ॥ रुचकं चौहार इति लोके । पांशुलवणं खारी अथवा रेह इति लोके ॥

भाषा-तालीसपत्रके अभावमें स्वर्णतालीस लेवे. भारंगीके अभावमें तालीसपत्र वा कटेरीकी जड लेवे. काले चौहार नमकके अभावमें पांशु (रेहका) लवण लेवे. मुलहठीके अभावमें धायके फूल लेवे ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमिष्यते । द्राक्षा यदि न लभ्येत प्रदेयं काश्मरीफलम् ॥ १५९ ॥ तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः । लवङ्गकुसुमं देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १६० ॥ कस्तूर्यभावे कङ्कोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः । कङ्कोलस्याप्यभावे तु जातीपुष्पं प्रदीयते ॥ १६१ ॥ सुगन्धिमुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः । कर्पूराभावतो देयं ग्रन्थिपर्णी विशेषतः ॥ १६२ ॥ कुंकुमाभावतो दद्यात्कुसुम्भकुसुमं नवम् । श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरं देयमिष्यते ॥ १६३ ॥ अभावे त्वेतयोर्वैद्यः प्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् । रक्तचन्दनकाभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः ॥ १६४ ॥ मुस्ता चातिविषाभावे शिवाभावे शिग्रु मता । अभावे नागपुष्पस्य पद्मकेशरमिष्यते ॥१६५॥ मेदा जीवककाकोली ऋद्धिवृद्धेऽपि वाऽस्ति । वरीविदार्यश्वगन्धावाराहीश्च क्रमात् क्षिपेत् ॥१६६॥ वरी शतावरी ॥

भाषा–अम्लवेतके अभावमें चूका लेवे. दाख यदि न मिले तौ कुंभेरका फल लेवे और दाख और कुंभेरका फल न मिले तौ बंधूकका फूल लेवे. नखके अभावमें लौंगका फूल लेवे. कस्तूरीके अभावमें वैद्य कंकोल डाले. कंकोलके अभावमें चमेलीका फूल डाले. कपूरके अभावमें सुगंधमोथा डाले, अथवा गठौना डाले. केशरके अभावमें कसूमके नये फूल लेवे. सफेद चंदनके अभावमें कपूर लेवे. सफेद चंदन और कपूर इन दोनोंके अभावमें लाल चंदन डाले. लाल चंदनके अभावमें नई खस डाले. अतीसके अभावमें मोथा लेवे. हरडके अभावमें आंवला लेवे. नागकेशरके अभावमें कमलकी केशर लेवे. मेदा तथा महामेदाके अभावमें शतावरी लेवे. जीवक तथा ऋषभके अभावमें विदारीकंद लेवे. काकोली तथा क्षीरकाकोलीके अभावमें असगंध और ऋद्धि तथा वृद्धिके अभावमें वाराहीकंद लेवे ॥ १५९–१६६ ॥

वाराह्यश्च तथाभावे चर्मकारालुको मतः । वाराहीकन्दसंज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टिसंज्ञकः॥ १६७॥ वाराहीकन्द एवान्यश्चर्मकारालुको मतः । अनूपसम्भवे देशे वराह इव लोमवान् ॥१६८॥ भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते । भल्लातकाभावतश्चित्रं नलक्षेक्षोरभावतः ॥ १६९ ॥ सुवर्णाभावतः स्वर्णमाक्षिकं प्रक्षिपेद्बुधः । श्वेतं तु माक्षिकं ज्ञेयं बुधै रजतवद्भवम् ॥ १७० ॥ माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम् । हेमाभमथवा रौप्यं मृतं यत्र न लभ्यते ॥ १७१ ॥ तत्र कान्तेन कर्माणि भिषक् कुर्याद्विचक्षणः । कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं योजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ १७२ ॥ अभावे मौक्तिकस्यापि मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत् । मधु यत्र न लभ्येत तत्र जीर्णगुडो मतः ॥ १७३ ॥ मत्स्यण्डचभावतो दद्याद्भिषजः सितशर्कराम् । असम्भवे सितायास्तु बुधैः खण्डं प्रयुज्यते । क्षीराभावे रसो मौद्गो माषुरो वा प्रदीयते ॥ १७४ ॥

भाषा–वाराहीकंदके अभावमें चर्मकारालु लेवे. वाराहीकंदको पश्चिममें गृष्टि (गेंठी) कहते हैं. वाराहीकंदका भेदही चर्मकारालु कहा है. यह अनूपदेशमें उत्पन्न होता है और इसके सूअरकेसे बाल होते हैं. जिस औषधिमें भिलावेका प्रयोग कहा है वहां उसके बदलेमें लाल चंदन डाले और अन्यत्र भिलावेके अभावमें चित्रक डाले. ईखके अभावमें नरसल लेवे. सुवर्णके अभावमें सोनामक्खी डाले. चांदीके अभावमें रूपामक्खी डाले. सोनामक्खी और रूपामक्खीके अभावमें पीली मिट्टी डाले. सुवर्णकी भस्म और चांदीकी भस्म जहां न मिले वहां कांतलोहकी भस्म डाले. कांतलोहके अभावमें श्रेष्ठ वैद्य तीक्ष्ण लोह डाले. मोतीके अभावमें मोतीकी सींप लेवे. जहां मधु (शहद) न मिले वहां पुराना गुड लेवे. मिश्रीके अभावमें सफेद खांड लेवे. सफेद चीनी (बूरा) के अभावमें खांडको काममें लावे. दूधके अभावमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूंगका यूष (रस) अथवा मसूरका रस लेवे ॥ १६७-१७४ ॥

अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि यानि तेषु च तेषु च ।
योज्यमेकतराभावे परं वैद्येन जानता ॥ १७५ ॥
रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च ।
युञ्ज्याद्विविधमन्यच्च द्रव्याणां तु रसादिवित् ॥ १७६ ॥ योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्मतः । यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ १७७ ॥ व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि त्यजेत् । अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तद्रसादिवित् ॥ १७८ ॥

भाषा-यहां जो प्रतिनिधिरूप औषधियें कही हैं वे न मिलें तौ उस २ पदार्थकी जो प्रतिनिधि हैं उनकोही विद्वान् वैद्य काममें लावे. जैसे चित्रकके अभावमें दंती और दंतीके अभावमें चित्रक काममें लावे. पदार्थोंके रस आदिको जाननेवाला वैद्य रस वीर्य और विपाक आदिसे समान द्रव्यको विचारकर दूसरी औषधकोभी प्रयोगमें मिलावे. केवल इस प्रतिनिधिके भरोसेही न रहे. प्रयोगमें जो प्रधान औषधि है उसकी प्रतिनिधि नहीं ली जाती किंतु जो अप्रधान औषधि है उसकी प्रतिनिधि दूसरी औषध प्रयोगमें मिलावे. जो प्रयोगमें कही हुई औषधि कदाचित् रोगको अहितकारी हो तौ उसको उस गणमेंसे निकाल डाले और जो रोगकी नाशक हो परंतु उसका उस गणमें पाठ नहीं कहा होय तथापि रसादिको जाननेवाला वैद्य उसको प्रयोगमें मिला देवे ॥१७५-१७८॥

अथ द्रव्यगतपञ्चपदार्थकर्माणि ।

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ।
पदार्थाः पञ्च तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च ॥ १७९ ॥

भाषा-प्रत्येक पदार्थमें रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पांच पदार्थ रहते हैं और ये अपने अपने काम करते हैं ॥ १७९ ॥

तत्र वाग्भटः ।

रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः ।
षड्द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वं बलावहाः ॥ १८० ॥ ऊषणः कटुः ॥

भाषा-वाग्भट कहते हैं कि, मधुर, अम्ल, खारी, कडवा, चरपरा और कसैला ये छः रस पदार्थोंमें रहते हैं और उनमें पहिला पहिला रस पीछे पीछेके रससे अधिक बली है अर्थात् सबसे बली मिष्टरस और सबसे निर्बल कसैला रस है ॥ १८० ॥

तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम् ।
कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ॥ १८१ ॥
ये रसा वातशमना भवन्ति यदि तेषु वै ।
रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम् ॥ १८२ ॥ ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै । तीक्ष्णोष्णलघुता चैव न ते तत्कर्मकारिणः ॥ १८३ ॥ ये रसाः श्लेष्मशमना भवन्ति यदि तेषु वै । स्नेहगौरवशैत्यानि न ते हन्युः कफं तदा ॥ १८४ ॥

भाषा-पहले तीन रस (मधुर, खट्टा, खारी) वातनाशक हैं, और शेष तीन वातकारक हैं. दूसरे तीन रस (कडवा, चरपरा, कसैला) कफनाशक हैं, और शेष तीन रस कफकारक हैं. कसैला कडवा और मधुर रस पित्तनाशक हैं और शेष तीन रस पित्तकारक हैं. जो रस वातको हरनेवाला है उस रसवाले पदार्थोंमें यदि रूक्षता, शीतलता और हलकापन होय तो वह वायुको नष्ट नहीं कर सकता. जो रस पित्तको शमन करनेवाला है उस रसवाले पदार्थोंमें यदि तीक्ष्णता, उष्णता और हलकापन होय तौ वह पित्तको शमन नहीं कर सकता. जो रस कफको शमन करनेवाला है उस रसवाले पदार्थोंमें यदि स्निग्धता, भारीपन और शीतलता होय तौ वह रस कफको नष्ट नहीं कर सकता ॥१८१-१८४॥

अथ मधुररसस्य गुणाः ।

मधुरो हि रसः शीतो धातुस्तन्यबलप्रदः ।
चक्षुष्यो वातपित्तघ्नः कुर्यात्स्थौल्यमलक्रिमीन् ॥ १८५ ॥ रसेषु प्रवरश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षोर्हितः । बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेन्द्रियौजसाम् ॥ १८६ ॥ प्रशस्तो बृंहणः कण्ठ्यो गुरुः सन्धानकृन्मतः । विषघ्नः पिच्छिलश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषोर्हितः ॥ १८७ ॥

भाषा–मधुररस शीतल है, धातु और स्तनसंबंधी दूध तथा बलको बढाता है, नेत्रोंमें हितकारी है, वातपित्तनाशक है तथा यह स्थूलता मलसंग्रह और कृमिरोगको करता है. सब रसोंमें यह (मीठा) रस श्रेष्ठ है. चिकनाई, प्रीति, आयु, बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, वर्ण, केश, इंद्रिय और ओज (शक्ति) को हितकारी है. बृंहण (पुष्ट करनेवाला), कंठको शुद्ध करनेवाला, भारी, संधानकारक (टूटेको जोडनेवाला), विषनाशक, पिच्छिल (गिलगिला), स्निग्ध तथा प्रीति और आयुका हित करनेवाला है ॥ १८५–१८७ ॥

अतियुक्तस्य मधुररसस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो ज्वरश्वासगलगण्डार्बुदक्रिमीन् । स्थौल्याग्निमान्द्यमेहांश्च कुर्यान्मेदःकफामयान् ॥ १८८ ॥

भाषा–यदि मधुररसका अत्यंत सेवन करे तो ज्वर, श्वास, गलगंड, अर्बुद, कृमिरोग, स्थूलता, अग्निकी मंदता, प्रमेह, मेद और कफके रोगोंको करता है ॥ १८८ ॥

अथ अम्लस्य गुणाः ।

रसोऽम्लः पाचनो रुच्यः पित्तश्लेष्मास्रदो लघुः । लेखितोष्णो बहिःशीतः क्लेदनः पवनापहः ॥ १८९ ॥ स्निग्धस्तीक्ष्णः सरः शुक्रविबन्धानाहदृष्टिहा । हर्षणो रोमदन्तानामक्षिभ्रूविनिकोचनः ॥ १९० ॥ लेखितः लेखनः । बहिःशीतः स्पर्शशीतः । विनिकोचनः सङ्कोचनः ॥

भाषा–अम्ल (खट्टा) रस पाचक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पित्त कफ तथा रुधिरको बढानेवाला, हलका, लेखन, उष्ण, स्पर्श करनेमें शीतल, क्लेदनकारक, वातनाशक, स्निग्ध, तीक्ष्ण तथा सर (दस्तावर) है. वीर्य, विबंध, आनाह (अफरा) और नेत्र (दृष्टि) इनको नष्ट करनेवाला है. रोमांच करनेवाला, दांतोंको हर्ष देनेवाला तथा नेत्र और भौंहोंको संकोचित करनेवाला है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

अतियुक्तस्य अम्लस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो भ्रमं कुर्यात्तृड्दाहतिमिरज्वरान् । कंडूपांडुत्ववीसर्पशोथविस्फोटकुष्ठकृत् ॥ १९१ ॥

भाषा–अम्लरसका विशेष उपयोग करनेसे भ्रम, तृषा, दाह, तिमिर, ज्वर, खुजली, पांडुता, वीसर्प, सूजन, विस्फोटक और कुष्ठ इनको उत्पन्न करता है ॥ १९१ ॥

अथ लवणस्य गुणाः ।

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफपित्तदः । पुंस्त्ववातहरः कायशैथिल्यमृदुताकरः । चक्षुर्नासास्यजलदः कपोलगलदाहकृत् ॥ १९२ ॥

भाषा–लवणरस शुद्ध करनेवाला, रुचि उत्पन्न करनेवाला, पाचक, कफ तथा पित्तको उपजानेवाला, पुरुषता तथा वातको नष्ट करनेवाला, शरिरमें शिथिलता तथा मृदुता करनेवाला, नेत्र नाक और मुखमें पानीका लानेवाला और गाल तथा गलेमें दाह करनेवाला है ॥ १९२ ॥

अतियुक्तस्य लवणस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तोऽक्षिपाकास्रपित्तकोठक्षतादिकृत् । वलीपलितखालित्यं कुष्ठवीसर्पतृट्प्रदः ॥ १९३ ॥ कोठो वरटाकृतदंशशोथवत् । पलितं केशशुक्लता । खालित्यं शिरसि केशनाशः ॥

भाषा–लवणरस अत्यंत खानेसे नेत्रपाक, रक्तपित्त, कोढ और क्षतादि रोगोंको करनेवाला है. वली (गुजलट), पलित (सफेद बालोंका होना), खालित्य (बालोंका उड जाना), कुष्ठ, विसर्प और तृषा इनको करनेवाला है ॥ १९३ ॥

अथ कटुगुणाः ।

कटुरुष्णश्च तीक्ष्णश्च विशदो वातपित्तकृत् । श्लेष्महृल्लघुराग्नेयः कृमिकंडूविषापहः ॥ १९४ ॥ रूक्षः स्तन्यहरश्चापि मेदः स्थौल्यापकर्षणः । अश्रुदो नासिकास्याक्षिजिह्वाग्रोद्वेजको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मतः ॥ १९५ ॥ दीपनः पाचनो रुच्यो नासिकाशोषणो भृशम् । क्लेदमेदोवसामज्जशकृन्मूत्रोपशोषणः । स्रोत प्रकाशको रूक्षो मेध्यो वर्चोविबन्धकृत् ॥ १९६ ॥ आग्नेयः अधिकाग्न्यंशः । मेध्यो मेधायै हितः । वर्चोविबन्धकृत् मलबन्धं करोति ॥

भाषा—कटु (चरपरा) रस गरम, तीक्ष्ण, विशद, वातपित्तकारक, कफनाशक, हलका, अग्निका अधिक भागवाला, कृमि, खुजली तथा विषको हरनेवाला है, रूक्ष, स्तनोंका दूध नष्ट करनेवाला, मेदसे हुई स्थूलताको नष्ट करनेवाला, आंखोंमें आंसू लानेवाला, नाक मुख नेत्र और जीभको उद्वेग उत्पन्न करनेवाला, अग्निदीपक, पाचक, रुचिकारक, नाकको सुखानेवाला, क्लेद, मेद, वसा (चर्बी), मज्जा, विष्ठा और मूत्रको सुखानेवाला, स्रोतोंको प्रकट करनेवाला, रूक्ष, बुद्धिवर्धक और मलको रोकनेवाला है ॥ १९४–१९६ ॥

अतियुक्तस्य कटुरसस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो भ्रान्तिदाहमुखतालोष्ठशोषकृत् । कण्ठादिपीडामूर्च्छान्तर्दाहदो बलकान्तिहृत् ॥ १९७ ॥

भाषा—कटुरसका अत्यंत उपयोग करनेसे भ्रम तथा दाह करनेवाला, मुख तालु तथा होंठ इनको सुखानेवाला, कंठ आदिमें पीडा करनेवाला, मूर्च्छा तथा तृषाको उत्पन्न करनेवाला तथा बल और कांतिका नाशक है ॥ १९७ ॥

अथ तिक्तरसस्य गुणाः ।

तिक्तः शीतस्तृषामूर्च्छाज्वरपित्तकफाञ्जयेत् । कृमिकुष्ठविषोत्क्लेददाहरक्तगदापहः ॥ १९८ ॥ रुच्यः स्वयमरोचिष्णुः कण्ठस्तन्यविशोधनः । वातलोऽग्निकरो नासाशोषणो रूक्षणो लघुः ॥ १९९ ॥ रुच्यः अन्येषु वस्तुषु रुचिमुत्पादयति । स्वयमरोचिष्णुः यथा निम्बः स्वयं न रोचते अन्येषु वस्तुषु रुचिं करोति ॥

भाषा—तिक्त (कडुआ) रस शीतल, तृषा, मूर्च्छा, ज्वर, पित्त तथा कफ इनको जीतनेवाला, कृमि, कुष्ठ, विष, उत्क्लेद (जी मचलना), दाह और रुधिरसंबंधी रोग इनको हरनेवाला, स्वयं (आप) अरुचिकारक होनेपरभी दूसरे पदार्थोंमें रुचि उत्पन्न करनेवाला, कंठ तथा दूधको शुद्ध करनेवाला, वातकारक, अग्निदीपक, नाकको सुखानेवाला, रूक्ष और हलका है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

अतियुक्ततिक्तगुणाः ।

सोऽतियुक्तः शिरःशूलमन्यास्तम्भश्रमार्त्तिकृत् । कम्पमूर्च्छातृषाकारी बलशुक्रक्षयप्रदः ॥ २०० ॥

भाषा—तिक्तरसका अत्यंत उपयोग करनेसे शिरमें वेदं, गर्दनमें स्तंभता, परिश्रम, पीडा, कंप, मूर्च्छा तथा तृषा इनको उत्पन्न करनेवाला तथा बल और वीर्यका क्षय करनेवाला है॥२००॥

अथ कषायगुणाः ।

कषायो रोपणो ग्राही स्तम्भनः शोधनस्तथा । लेखनः पीडनः सौम्यः शोषणो वातकोपनः ॥ २०१ ॥ कफशोणितपित्तघ्नो रूक्षः शीतो लघुर्मतः । त्वक्प्रसाधन आमस्य स्तम्भनो विशदो मतः । जिह्वाया जाड्यकृत्कण्ठस्रोतसां च विबन्धकृत् ॥ २०२ ॥ रोपणः घ्राणस्य । स्तम्भनो गात्राणाम् । शोधनो व्रणस्य । लेखनो व्रणाद्युत्सन्नमांसस्य । पीडनो हृदयस्य वातकारित्वात् । सौम्यः सोमादुत्पन्नः । शोषणो व्रणमज्जादीनाम् ।

भाषा—कसैलारस रोपण (घावको भरनेवाला), मलको रोकनेवाला, शरीरको स्तंभित करनेवाला, व्रणशोधक, व्रणके ऊपर उठे हुए मांसको छीलनेवाला, पीडाकारक, सोम (चंद्र) से उत्पन्न हुआ, व्रण तथा मज्जा आदिको सुखानेवाला, वायुको कुपित करनेवाला, कफ रुधिर तथा पित्त इनको हरनेवाला, रूक्ष, शीतल, हलका, त्वचाको शुद्ध तथा ठीक करनेवाला, आमको रोकनेवाला, फैलनेवाला, जीभको जड करनेवाला तथा कंठ तथा स्रोतोंको रोकनेवाला है ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतियुक्तस्य कषायस्य गुणाः ।

सोऽतियुक्तो ग्रहाध्मानहृत्पीडाक्षेपणादिकृत् ॥ २०३ ॥

भाषा–कसैले रसका अत्यंत उपयोग करनेसे ग्राही, अफरा, हृदयकी पीडा और आक्षेप आदिक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥२०३॥

अथ मधुरादीनामपरे विशेषः ।

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णशालियवादृते । मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात्सिताया जाङ्गलामिषात् ॥ २०४ ॥ अम्लं पित्तकरं प्रायो विना धात्रीं च दाडिमीम् । लवणं प्रायशो द्वेषि नेत्रयोः सैन्धवं विना ॥ २०५ ॥ प्रायः कटु तथा तिक्तमवृष्यं वातकोपनम् । शुण्ठी कृष्णारसोनानि पटोलममृतां विना ॥ २०६ ॥

भाषा–पुराने चावल, जौ, मूंग, गेहूं, शहद, मिश्री और जंगली जीवोंका मांस इनको छोडकर शेष सब मधुर रसवाले पदार्थ प्रायः कफको करनेवाले हैं. आंवला, दाडिम (अनार) को छोडकर शेष सब अम्लरसवाले पदार्थ प्रायः पित्तको उत्पन्न करनेवाले हैं. सेंधेनोनको छोडकर शेष सब लवण (नमक) नेत्रोंको अहितकारक हैं. सोंठ, पीपल, लहसुन, परवल और गिलोयको छोडकर शेष सब चरपरे और कडवे पदार्थ वातको कुपित करनेवाले और वीर्यको अहितकारक हैं ॥ २०४–२०६ ॥

चरकेऽपि ।

पिप्पली नागरं वृष्यं कटु चावृष्यमुच्यते । प्रायशः स्तम्भनं प्रोक्तं कषायमभयां विना ॥ २०७ ॥ सामान्येनात्र निर्दिष्टा गुणाः षड्रससम्भवाः । रसानां योगतस्तु स्यादन्य एव गुणोदयः ॥ २०८ ॥ संयोगाद्विषतां याति सममाज्येन माक्षिकम् । अमृतत्वं विषं याति सर्पदष्टस्य वै यथा ॥ २०९ ॥

भाषा–चरकमें कहा है कि, सोंठ, पीपल ये दोनों वीर्यको बढानेवाली हैं और अन्य चरपरे पदार्थ वीर्यको हानिकारक हैं. हरडके विना शेष सब कसैले पदार्थ प्रायः शरीरको स्तंभन करनेवाले हैं. ये छःहों रसोंके गुण सामान्य रीतिसे कहे हैं, परंतु परस्पर रसोंके संयोग होनेसे उनमें और औरही गुण प्रकट होते हैं जैसे अमृतके सदृश घीमें समान भाग शहद मिलानेसे विष (जहर) हो जाता है. एवं सर्पके डसेपर विषभी अमृतभावको प्राप्त हो जाता है ॥ २०७–२०९ ॥

अथ द्रव्यगुणाः ।

लघुर्गुरुस्तथा स्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्रमात् । नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः २१०

भाषा–हलकापन आकाशका गुण है, भारीपन पृथ्वीका गुण है, चिकनापन जलका गुण है, रूक्षता वायुका गुण है और तीक्ष्णता अग्निका गुण है ॥ २१० ॥

अथ लघ्वादिगुणवतां गुणाः ।

लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च । गुरु वातहरं पुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकि च ॥२११॥ स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम् । रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम् । तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवातहृत् ॥ २१२ ॥ लघु द्रव्यम् । एवं गुर्वादि । तथा चोक्तम् । गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये । रसेषु व्यपदिश्यंते साहचर्योपचारतः॥२१३॥

भाषा–हलके पदार्थ पथ्य, कफनाशक और शीघ्र पचनेवाले हैं. भारी पदार्थ वातनाशक, पुष्टिकारक, कफकारक और देरसे पचनेवाले हैं. स्निग्ध (चिकने) पदार्थ वातनाशक, कफकारक, वीर्यवर्धक और बलको देनेवाले हैं. रूक्ष पदार्थ अत्यंत वातवर्धक और कफनाशक हैं. तीक्ष्ण (तीखे) पदार्थ अधिक पित्तकारक, लेखन (छीलनेवाले) तथा कफ और वातको हरनेवाले हैं. यहां लघु शब्दसे लघुगुणयुक्त द्रव्य गुरुशब्दसे गुरुगुणयुक्त द्रव्य और इसी तरह अन्यत्रभी समझे. किसीने कहा है कि गुरु आदिक गुण रसोंके वशीभूत हुए भूमि आदिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रव्योंमें रहते हैं और भूमिके आदिके साहचर्यके कारणसे वे रस माने जाते हैं ॥२११-२१३॥

सुश्रुते तु गुणा एते विंशतिस्तान्ब्रुवे शृणु ।
गुरुर्लघुः स्निग्धरूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः ॥ २१४ ॥ पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्च मृदुकर्कशौ । स्थूलः सूक्ष्मो द्रवः शुष्क आशुर्मन्दः स्मृता गुणाः ॥ २१५ ॥ तत्र गुरुलघुस्निग्धरूक्षतीक्ष्णा गुणा उक्ता एव॥

भाषा-सुश्रुतमें जो वीस गुण कहे हैं सो कहता हूं सुनो. १ भारी, २ हलका, ३ स्निग्ध, ४ रूक्ष, ५ तीक्ष्ण, ६ श्लक्ष्ण, ७ स्थिर, ८ सर, ९ पिच्छिल, १० विशद, ११ शीत, १२ उष्ण, १३ मृदु, १४ कर्कश, १५ स्थूल, १६ सूक्ष्म, १७ द्रव, १८ शुष्क, १९ आशु और २० मंद ये वीस गुण हैं. इनमें भारी, हलका, स्निग्ध, रूक्ष और तीक्ष्ण ये गुण कह चुके हैं. अब शेष गुणोंको कहते हैं ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

श्लक्ष्णः स्नेहं विनापि स्यात्कठिनोऽपि हि चिक्कणः । स्थिरो वातमलस्तम्भी सरस्तेषां प्रवर्तकः ॥ २१६ ॥ पिच्छिलस्तन्तुलो बल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः । (सन्धानो भग्नस्य) क्लेदच्छेदकरः ख्यातो विशदो व्रणरोपणः ॥ २१७ ॥ शीतस्तु ह्लादनः स्तम्भी मूर्च्छा तृट्स्वेददाहनुत् । उष्णो भवति शीतस्य विपरीतश्च पाचनः ॥ २१८ ॥ ह्लादनः सुख जनकः । स्तम्भी रक्तातिप्रवृत्त्यादीनाम् । उष्णः शीतस्य विपरीतस्तेन असुखजनकः । रक्तातिप्रवृत्त्यादीनामस्तम्भनः । मूर्च्छातृट्स्वेददाहकृत् पाचनो व्रणादीनाम् । मृदुकर्कशौ प्रसिद्धौ ॥

भाषा-श्लक्ष्णगुण स्नेहयुक्त पदार्थोंके विनाभी होता है और वह कठिन होनेपरभी चिकना है. स्थिरगुण वात और मलको रोकनेवाला है. सरगुण वातको तथा मलको प्रवृत्त करनेवाला है. पिच्छिलगुण तंतुवाला (रेसेवाला), बलकारक, संधानकारक और कफकारक है. विशद गुण आर्द्रता (गीलापन) को मिटानेवाला और व्रणको भरनेवाला है. शीतगुण सुख देनेवाला, रक्तकी विशेष प्रवृत्तिको करनेवाला और मूर्च्छा, तृषा, दाह तथा स्वेद इनको रोकनेवाला है. उष्णगुण शीतगुणसे विपरीत करनेवाला और पाचन है. मृदु गुण और कर्कश गुण ये दोनों प्रसिद्ध हैं ॥ २१६-२१८ ॥

स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत् । देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥ २१९ ॥ द्रवः क्लेदकरो व्यापी शुष्कस्तद्विपरीतकः । आशुराशुकरो देहे धावत्यम्भसि तैलवत् । मन्दः सकलकार्येषु शिथिलोऽल्पोऽपि कथ्यते ॥ २२० ॥

भाषा-स्थूलगुण शरीरमें स्थूलताको करनेवाला और स्रोतोंको रोकनेवाला है. सूक्ष्मगुण शरीरके सूक्ष्म छिद्रोंमें तैल आदि पदार्थको प्रविष्ट करता है. द्रवगुण क्लेदकारक (आर्द्रतोत्पादक) और व्यापक है. शुष्कगुण द्रवगुणसे विपरीत है. आशुगुण जैसे तेल पानीमें फैलता है वैसेही शीघ्र शरीरमें फैलता है. मंदगुण सब कार्योंमें शिथिलता करता है ॥ २१९ ॥२२०॥

अथ गुणप्रस्तावादीपनादयो गुणाः सलक्षणाः ।

पचेन्नामं वह्निकृद्यदीपनं तद्यथा मिसिः । वह्निकृत् वह्निदीप्तिकृत् । ननु यद्वह्निं प्रदीपयति तदामं कथं न पचेदित्याशंकायामुच्यते दीपनद्रव्यं तावन्तं वह्निं प्रदीपयति यथा अन्ने भोक्तुमिच्छामुत्पादयति न तु आमं पक्तुं क्षमम् । यथा सूक्ष्मदीपाग्निः उद्योतं करोति न तु बृहत्स्थालीस्थान् तण्डुलान् ओदनं कर्तुं क्षमः ।

भाषा-जो पदार्थ आमको नहीं पकावे परंतु अग्निको प्रदीप्त करे वह दीपन कहाता है. जैसे सौंफ. यहां शंका होती है कि, जो पदार्थ अग्निको प्रदीप्त करता है वह पदार्थ कच्चेको नहीं पकाता है यह कैसे हो सकता है ? तहां कहते हैं कि, दीपन पदार्थ अग्निको इतना दीपन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता है कि जिससे अन्न खानेकी इच्छा उत्पन्न होजाय, परंतु वह पदार्थ आमके पकानेको समर्थ नहीं है, जिस प्रकार सूक्ष्म दीपककी शिखा (टेम) प्रकाशही कर सकती है, परंतु बडी स्थालीमें चावलोंको नहीं पका सकती है ॥

पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् । नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥ २२१ ॥

ननु यद्वह्निं न दीपयति तदामं कथं पचतीत्याशङ्कायामाह । पाचनं वह्निदीप्तिमकुर्वाणमप्यामं पचति । यथाग्न्याधानीस्थोऽङ्गारसमूहोऽन्नं पचति, न तु दीपवत्सर्वतः प्रदीपयति ।

भाषा–जो पदार्थ कच्चेको पकाता है परंतु अग्निको दीपन नहीं करता है वह पाचन कहाता है. जैसे नागकेशर. जो पदार्थ अग्निको दीपन करता है और कच्चेकोभी पकाता है वह दीपनपाचन कहाता है. जैसे चीता. यहां शंका होती है कि, जो पदार्थ अग्निको दीपन नहीं करता है वह कच्चेको कैसे पका सकता है ? तहां कहते हैं कि, जैसे चूल्हेमें रहनेवाला अंगार अन्नको पकाता है, परंतु दीपकके समान सर्वत्र प्रकाश नहीं कर सकता है, वैसेही पाचन पदार्थ आमको पकाता है ॥ २२१ ॥

न शोधयति यद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथाऽऽमृता ॥ २२२ ॥ यद्द्रव्यं दोषत्रयं न शोधयति नोर्ध्वाधोमार्गाभ्यामानयति, समान्दोषान् नोदीरयति न वर्धयति शमनं तत् ॥

भाषा–जो पदार्थ तीनों दोषोंको शुद्ध नहीं करता है अर्थात् ऊंचे नीचे मार्गमें नहीं लेजा सकता, समान दोषोंको नहीं बढाता और विषम दोषोंको सम करता है वह पदार्थ शमन कहाता है. जैसे गिलोय ॥ २२२ ॥

कृत्वा पाकं मलानां च भित्त्वा बन्धमधो नयेत् । तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ २२३ ॥ मलानामपक्वानां वातपित्तश्लेष्मणां बन्धं वायुबन्धं भित्त्वा अधो नयेत् । मलानधः पातयति ॥

भाषा–जो पदार्थ कच्चे वात पित्त और कफको पकाकर वायुके बंधको भेदन करके नीचे ले जाता है अर्थात् मलोंको गिरा देता है, वह पदार्थ अनुलोमन कहाता है. जैसे कि हरीतकी (हरड) ॥ २२३ ॥

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् । नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात्कृतमालकम् ॥ २२४ ॥ मलादिकम्–आदिशब्दात् कफपित्ते । कृतमालः धनबहेरा सोंदाल्वा इति लोके ॥

भाषा–जो पदार्थ कोष्ठ (कोठे) में चिपटे हुए पकाने योग्य मल कफ और पित्तको विना पकायेही नीचे ले जाता है वह स्रंसन कहाता है. जैसे अमलतास ॥ २२४ ॥

मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं मलैः । भित्त्वाऽधः पातयति यद्भेदनं कटुकी यथा ॥ २२५ ॥ अबद्धं शिथिलं बद्धं गाढं मलैः दोषैः तत्रापि वातैः, बहुत्वमाधिक्यबोधनार्थं तैः पिण्डितं गुटिकीकृतम् ॥

भाषा–जो पदार्थ अबद्ध (शिथिल) अथवा बद्ध (दृढ) होकर रहे अथवा वात (वादी) से मेंगनीके समान हुए मलादिकोंको भेदकर (तोडकर) गुदाके मार्गसे नीचे डाल देवे वह पदार्थ भेदन कहाता है. जैसे कुटकी ॥ २२५ ॥

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् । रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ २२६ ॥ रेचयत्यपि अधःपातयति च । त्रिवृता तेओडि ॥

भाषा–जो पदार्थ पके अथवा कच्चे मलादिकको पतला करके गुदाके मार्गसे नीचे गेरदेवे वह रेचन कहाता है. जैसे निसोथ ॥ २२६ ॥

अपक्वं पित्तश्लेष्मान्नं नयत्यूर्ध्वं नयेत्तु यत् । वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ २२७ ॥ ऊर्ध्वं नयेन्मुखमार्गेण बहिष्कुर्यात् । मदनस्य फलं मयनाफलमिति लोके ॥

भाषा–जो पदार्थ नहीं पके हुए ऐसे पित्त और कफको बलपूर्वक मुखके द्वारा निकाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(वमन करावे) वह वमन कहाता है. जैसे मैनफल ॥ २२७ ॥

स्थानाद्बहिर्नयद्ऊर्ध्वमधो वा मलसञ्चयम् । देहसंशोधनं तत्स्याद्देवदालीफलं यथा ॥ २२८ ॥ देवदाली सोनैआ इति लोके ।

भाषा-जो पदार्थ स्वस्थानमें संचित मलोंको ऊपरके भागोंमें लाकर मुख नासिकाके द्वारा बाहर निकाले अथवा उस संचयको अधोभाग अर्थात् गुदा लिंग वा भगके द्वारा बाहर निकाले वह देहसंशोधन कहाता है. जैसे देवदाली ॥ २२८ ॥

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् । ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली ॥ २२९ ॥ रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत् । वातकृत्स्तम्भनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुण्टुकौ ॥ २३० ॥ वातकृत् प्रतिलोमवातकृत् । स्तम्भनं अधोगामिमलादीनाम् । वत्सक कुरैआ, टुण्टुकः सोनापाठा ॥

भाषा-जो पदार्थ अग्निको दीपन करनेवाला तथा कच्चेको पकानेवाला और गरम होनेसे द्रवतारूप (गीलेपन) को सुखानेवाला है वह ग्राही कहाता है. जैसे सोंठ, जीरा, गजपीपल. जो पदार्थ रूक्ष शीतल कसैला तथा लघुपाकी होनेसे वातको उलटा करनेवाला होय वह पदार्थ स्तंभन कहाता है. जैसे कूडा, सोनापाठा ॥ २२९ ॥ २३० ॥

श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयति यद्बलात् । छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु ॥ २३१ ॥ क्षारा यवक्षारादयः ॥

भाषा-जो पदार्थ परस्पर मिले हुए कफादि दोषोंको अपनी शक्तिसे तोड फोडकर अलग २ कर देवे वह छेदन कहाता है. जैसे खार (जवाखारादि), काली मिरच और शिलाजीत ॥ २३१ ॥

धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् । लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः ॥ २३२ ॥ उल्लेखयेत्कृशीकुर्यात् । लेखनं कृशीकारकं क्षौद्रं मधु । यवा इन्द्रयवाः ॥

भाषा-जो पदार्थ देहकी रसादि धातुओंको और वातादि दोषोंको सुखाके देहको दुर्बल करे वह लेखन कहाता है. जैसे शहद, गरम जल, वच और जौ ॥ २३२ ॥

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं हि तत् । यथाश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी ॥ २३३ ॥ हर्षो रन्तुं समुत्साहः ।

भाषा-जिस पदार्थके प्रयोग करनेसे स्त्रीके साथ रमण करनेका उत्साह होता है वह वाजीकरण कहाता है. जैसे असगंध, मूसली, बूरा (चीनी) और शतावर ॥ २३३ ॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते । यथा नागबलाद्याः स्युर्बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ २३४ ॥ नागबला गोरक्षचाकुलिया इति लोके ॥

भाषा-जिस द्रव्यसे वीर्यकी वृद्धि होती है वह शुक्रल कहाता है. जैसे नागबला आदि और कौंछके बीज ॥ २३४ ॥

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जामलानि च । एतानि जनकानि स्यू रेचकानि च रेतसः ॥ २३५ ॥ जनकानि प्रभावाच्छीघ्रमेव रसादिपूर्वकं शुक्रं जनयन्ति रेचकानि आधिक्यात्प्रवर्तयन्ति च ॥

भाषा-दूध, उडद, भिलाएकी मींगी और आंवले ये पदार्थ अपने प्रभावसे शीघ्रही रसादिको उत्पन्न करके वीर्यको प्रकट करते हैं और अधिक होनेसे उसका रेचन अर्थात् उसको निकाल देते हैं ॥ २३५ ॥

प्रवर्तिनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् । जातीफलं स्तंभकं स्यात्कालिङ्गं क्षयकारि च ॥ २३६ ॥ स्त्री स्मरणकीर्तनदर्शनसम्भाषणस्पर्शनचुम्बनालिङ्गननिधुवनैः समस्तैः व्यस्तैश्च शुक्रस्य प्रवर्तिनी प्रवृत्तिकारिणी । रेचनं बृहतीफलम्, बृहत्कण्टिकारीफलमपि शुक्रस्य रेचकं प्रवर्तकम् । कालिङ्गं राजकर्कटी ॥

भाषा-स्त्री वीर्यको प्रवृत्त करनेवाली है, कटेरीका फल वीर्यका रेचक है, जायफल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वीर्यका स्तंभन करनेवाला है और कालिंग (तरबूज) वीर्यको क्षय करनेवाला है. स्त्री स्मरण, कीर्तन, दर्शन, संभाषण, स्पर्श, चुंबन, आलिंगन और मैथुन इन क्रियाओंसे वीर्यको प्रवृत्त करती है ॥ २३६ ॥

रसायनं तु तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ॥ यथा हरीतकी दन्ती गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ २३७ ॥ पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति । व्यवायि तद्यथा भङ्गा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ २३८ ॥ अन्यद्द्रव्यं पक्वं तद्गुणं करोति । व्यवायि तु अपक्वमेवं स्वगुणैः सकलशरीरं व्याप्य पाकं याति । अहिसमुद्भवं फेनम् (अफीमम्) ॥

भाषा–जो पदार्थ जरा और व्याधिका नाश करनेवाला है वह रसायन कहाता है. जैसे हरड, दंती, गूगल तथा शिलाजीत. जो पदार्थ पहले संपूर्ण शरीरमें व्यापकर पश्चात् पक्कावस्थाको प्राप्त होता है वह पदार्थ व्यवायी कहाता है. जैसे भांग तथा अफीम. अन्य द्रव्य परिपाकको प्राप्त होकर अपना गुण करते हैं और व्यवायी द्रव्य तौ कच्चेही अपने गुणोंसे सर्व शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पक्कावस्थाको प्राप्त होते हैं ॥ २३७ ॥ २३८ ॥

सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान्यत्करोति विकाशि तत् । विशोष्यौजश्च धातुभ्यो यथा ऋमुककोद्रवौ ॥ २३९ ॥ धातुभ्यः सकलशरीरस्थेभ्यो वीर्येभ्यः । ओजः उपधातुविशेषं विशोष्य । ऋमुकं पूगफलम् ॥

भाषा–जो द्रव्य सर्व शरीरमें रहनेवाले वीर्यमेंसे ओजको सुखाकर शरीरकी संधियोंके बंधनको शिथिल करते हैं वे द्रव्य विकाशी कहाते हैं. जैसे सुपारी और कोदों ॥ २३९ ॥

बुद्धिं लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते । तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २४० ॥ मदकारि मादकम् ॥

भाषा–जो द्रव्य अधिक तमोगुणवाला और बुद्धिको नष्ट करनेवाला हो वह द्रव्य मदकारी (मादक) कहाता है. जैसे मदिरा आदि ॥ २४० ॥

व्यवायि च विकाशि स्याच्छ्लेष्मच्छेदि मदावहम् । आग्नेयं जीवितहरं योगवाही स्मृतं विषम् ॥ २४१ ॥ व्यवायि सकलकायगुणव्यापनपूर्वकपाकगमनशीलम् । विकाशि ओजःशोषणपूर्वकसन्धिबन्धशैथिल्यकरणशीलम् । मदावहं तमोगुणाधिक्येन बुद्धिविध्वंसकम् । आग्नेयं अधिकाग्निगुणम् । योगवाहि संसर्गिगुणग्राहकम् । विषं लक्ष्यं दृष्टान्तो वत्सनाभशक्तुकादिभिः ॥

भाषा–जो पदार्थ व्यवायी, विकाशी, कफनाशक, मादक, अग्निके अधिक अंशसे युक्त, प्राणनाशक और योगवाही हो वह पदार्थ विष कहाता है. जैसे वत्सनाभ और शक्तुक आदि. वत्सनाभि शक्तुक आदि पदार्थ सर्व शरीरमें व्याप्त होनेपर पक्कावस्थाको प्राप्त होते हैं इसलिये ये पदार्थ व्यवायी हैं, ओजको सुखाकर संधियोंके बंधनको शिथिल करते हैं अतएव विकाशी हैं, तमोगुणका भाग इनमें विशेष होनेसे बुद्धिको नष्ट करके मद उत्पन्न करते हैं इसलिये मादक हैं और अग्निके अधिक अंशसे युक्त रहनेसे आग्नेय हैं तथा जिस पदार्थके साथ मिलेंगे उस पदार्थके गुणोंको ग्रहण करनेवाले होनेसे योगवाहीभी हैं ॥ २४१ ॥

निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतेभ्यो दोषसञ्चयम् । निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २४२ ॥ दोषा वातादयः ।

भाषा–जो पदार्थ अपने प्रभावसे स्रोतोंसे दोषोंके समूहको निकाले वह प्रमाथी कहाता है. जैसे मिरच और वच ॥ २४२ ॥

पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः ॥ धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४३ ॥ गौरवं शरीरे ।

भाषा–जो पदार्थ रसको वहनेवाली शिराओंको पिच्छिलता तथा भारीपनसे रोककर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीरमें भारीपन करता है वह अभिष्यंदी कहाता है. जैसे दही ॥ २४३ ॥

विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात् तथा तृषाम् । हृदि दाहश्च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥ २४४ ॥ गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गि-वस्तुगुणान् ॥ पच्यमानं यथैतन्मधुजलतैला-ज्यसूतलोहादिः ॥ २४५ ॥

भाषा-जिस द्रव्यके खानेसे खट्टी डकार आवे, प्यास लगे, हृदयमें दाह होय, वह द्रव्य विदाही कहाता है. इस द्रव्यका पाक बहुत देरसे होता है. जो पदार्थ अपने साथ मिले हुए पदार्थके गुणोंको ग्रहण करता है, वह योगवाही कहाता है. जैसे शहद, तेल, घी, पारा और लोहा आदि ॥ २४४ ॥२४५ ॥

अथ वीर्यं तत्र वाग्भटः ।

उष्णशीतगुणोत्कर्षाद्धुधैवीर्यं द्विधा स्मृतम् । यत्सर्वमग्निसोमीयं दृश्यते भुवनत्रयम् ॥ २४६ ॥ उष्णं वातकफौ हन्याच्छीतं तु तनुते जराम् । शीतं वातकफातङ्कान्करुते पित्तहृत्परम् २४७॥

भाषा-संपूर्ण संसार अग्नि और चंद्रसे संबंध रखनेवाला है ऐसा दीखता है, इस कारणसे किसी पदार्थमें गरमी और किसी पदार्थमें शीतलता अधिक होती है. इसी लिये विद्वानोंने पदार्थोंमें उष्ण और शीत ऐसा दो प्रकारका वीर्य माना है. उष्ण वीर्यसे वात तथा कफ नष्ट होता है और पित्त बढता है और शीत वीर्यसे पित्त नष्ट होता है और वात तथा कफकी पीडा अधिक होती है ॥ २४६॥२४७॥

अन्यच्च ।

तत्रोष्णं भ्रमतृड्ग्लानिस्वेददाहाशुपाकताम् । शमं च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः । ह्लादनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्तपित्तयोः २४८

भाषा-अन्य ग्रंथमें कहा है कि, उष्ण वीर्यसे भ्रम, तृषा, ग्लानि, स्वेद तथा दाह होता है और वात तथा कफ शांत होता है. उसी प्रकार शीत वीर्यसे आनंद, जीवन, मलादिकका स्तंभन तथा रक्त और पित्त स्वच्छ होता है ॥ २४८ ॥

अथ विपाकः ।

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् । रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः ॥ २४९ ॥ मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः । कटुतिक्तकषायाणां पाकः स्यात्प्रायशः कटुः ॥ २५० ॥

भाषा-जठराग्निके संयोगसे रसका परिणाम (मीठा खट्टा आदिक) होनेपर जो दूसरा रस उत्पन्न होता है वह विपाक कहाता है. मधुर और खारी रसका अधिकतासे मधुर विपाक होता है, खट्टे रसका प्रायः खट्टाही विपाक होता है. तीक्ष्ण (चरपरे), कडवे तथा कसैले रसका प्रायः तीक्ष्णही विपाक होता है ॥ २४९ ॥ २५० ॥

तथा च वाग्भटः ।

त्रिधा रसानां पाकः स्यात्स्वाद्वम्लकटुकात्मकः । प्रायःपदेन व्रीहिः स्यात्स्वादुरम्लो विपाकतः ॥२५१॥ शिवा कषाया मधुरा पाके शुण्ठी कटुका मधुरपाकेत्यादि ।

भाषा-वाग्भटमें कहा है कि, रसोंका मधुर खट्टा तथा तीक्ष्ण इस प्रकार तीन तरहका विपाक होता है. यहां प्रायःशब्दका यह अभिप्राय है कि, किसी स्थानमें यह नियम बदल जाता है जैसे चावल मधुर होनेपरभी उनका विपाक खट्टा होता है. हर्र कसैली होनेपर उसका पाक मधुर होता है और सोंठ कटुक होनेपरभी उसका पाक मधुरही होता है ॥ २५१ ॥

अथ विपाकानां गुणाः ।

श्लेष्मकृन्मधुरः पाको वातपित्तहरो मतः । अम्लस्तु कुरुते पित्तं वातश्लेष्मगदापहः ॥ २५२ ॥ कटुः करोति पवनं कफं पित्तं च नाशयेत् । विशेष एव रसतो विपाकानां निदर्शितः ॥ २५३ ॥

भाषा-मधुरपाक कफोत्पादक है और वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाला है. खट्टा पाक पित्तको उत्पन्न करता है और वात तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कफके रोगोंको नष्ट करता है. तीक्ष्ण पाक वातकारक तथा कफ और पित्तको नष्ट करनेवाला है. इस प्रकार विपाक रससे विशेष होता है ॥ २५२ ॥ २५३ ॥

अथ प्रभावः ।

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम् । दन्तीरसाद्यैस्तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी ॥ २५४ ॥ मधूकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम् । प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ॥ २५५ ॥ समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् । क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः । ज्वरं हन्ति शिरोबद्धा सहदेवीजटा यथा ॥ २५६ ॥ तथा नानौषधियोगेषु फलं प्रति स्वभाव एव आश्रयणीयो न तु तत्र रसादिरूपहेतुविचारः कर्त्तव्यः॥

भाषा–रस आदि संपूर्ण समान होनेपरभी कोई पदार्थ किसी पदार्थसे जो विशेष कर्म करता है वह कर्म उस पदार्थके प्रभावसे होता है ऐसा जाने. जैसे दंती और चित्रक दोनों रस वीर्य विपाकादिक गुणोंसे समान हैं तौभी दंतीमें रेचकता अधिक है वैसा चित्रक नहीं है. दंतीमें जो विशेष शक्ति है उससे विरेचन होता है इसीको प्रभाव कहते हैं. उसी प्रकार महुआ और दाख ये दोनों रसादि गुणोंमें समानही हैं परंतु दाखमें विरेचनशक्ति अधिक है. घीके रस आदिसे दूध समानही है तौभी घीमें अग्निको दीपन करनेकी शक्ति अधिक है. वैसेही आंवलेके रस आदिसे लकुच (बडहर) समानही है तौभी आंवला त्रिदोषनाशक है. कहीं २ एक द्रव्यही अपने प्रभावसे काम करता है. जैसे सहदेईकी जड शिरमें बांधे तो ज्वर नष्ट होता है. इसी प्रकार अनेक प्रकारकी औषधियोंका संयोग करनेसे जो फल उत्पन्न होता है उसमें उनका स्वभाव (प्रभाव) ही कारणरूप जाने. परंतु उसमें रस, गुण, वीर्य, विपाकादिरूप कारणोंका विचार नहीं करना चाहिये ॥ २५४–२५६ ॥

अत आह सुश्रुतः ।

अमीमांसान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः । आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ २५७ ॥ प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः । नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान्परीक्षेत कदाचन ॥ २५८ ॥ विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाल्पं हि जीयते । रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्व्यपोहति ॥ २५९ ॥

इति लक्ष्मीपतिनयभावमिश्रविरचिते भावप्रकाशे पंचमप्रकरणे मिश्रवर्गः समाप्तः ।

भाषा–सुश्रुतजी कहते हैं कि, जो औषधि प्रसिद्ध स्वभाववाली हैं उनमें रस आदि कारणोंका विचार तथा तर्क नहीं करना चाहिये. किंतु विद्वान् वैद्यशास्त्रके ऊपर आधार रखकर उन औषधोंको काममें लावे. जिन औषधियोंका फल प्रत्यक्ष देखनेमें आता है और स्वभावसे प्रसिद्ध है उन औषधियोंकी उन रस आदि कारणोंसे विद्वान् परीक्षा नहीं करे. परस्पर विरुद्ध गुणवाली औषधियोंका संयोग होनेसे उनमें रस गुण विपाकादिकी न्यूनाधिकता हो जाती है, क्योंकि रसको विपाक जीत लेता है, रस और विपाकको वीर्य जीत लेता है और रस विपाक तथा वीर्य इन तीनोंको प्रभाव जीत लेता है. इसका तात्पर्य यह है किसी रोगीको ऐसी दवा दी कि जिसमें अनेक औषधि अनेक गुणवाली हैं तौ उसमें जो औषधि रस वीर्य विपाक और प्रभावमें अधिक होवे वही सबोंके गुणोंको दबाकर अपने गुणको करेगी ॥ २५७–२५९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे मिश्रवर्गः ।

अथ हरीतक्यादिवर्गः ।

रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाणां स्वरूपाणि अभिधाय कुत्र द्रव्ये के रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाः सन्तीति बोधयितुं द्रव्यगतान् रसगुणवीर्यविपाकप्रभावान् आह । तत्र प्रथमं हरीतक्या उत्पत्तिनामलक्षणगुणानाह ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-इस प्रकार रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभावके स्वरूपको कह चुके. अब किस किस पदार्थमें कैसे २ रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव हैं यह जाननेके लिये प्रत्येक पदार्थका रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव कहते हैं. तहां प्रथम हरडकी उत्पत्तिसे नाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥

हरीतक्युत्पत्तिः ।

दक्षं प्रजापतिं स्वस्थमश्विनौ वाक्यमूचतुः । कुतो हरीतकी जाता तस्यास्तु कति जातयः ॥ १ ॥ रसाः कति समाख्याताः कति चोपरसाः स्मृताः । नामानि कति चोक्तानि किं वा तासां च लक्षणम् ॥ २ ॥ के च वर्णा गुणाः के च का च कुत्र प्रयुज्यते । केन द्रव्येण संयुक्ता कांश्च रोगान्व्यपोहति ॥ ३ ॥ प्रश्नमेतद्यथा पृष्टं भगवन् ! वक्तुमर्हसि । अश्विनोर्वचनं श्रुत्वा दक्षो वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ पपात बिन्दुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिबतोऽमृतम् । ततो दिव्यात्समुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी ॥ ५ ॥

भाषा-स्वस्थ (प्रसन्नचित्त) बैठे हुए दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने पूंछा कि, हरड कहांसे उत्पन्न हुई और इसकी कितनी जाती हैं ? इसमें कितने रस और कितने उपरस हैं ? तथा इसके नाम और लक्षण क्या है ? इसका वर्ण और गुण क्या है ? किस २ हरडका किस २ कार्यमें उपयोग होता है और यह हरड किन २ पदार्थोंके साथ मिलनेसे किन २ रोगोंको नष्ट करती है ? हे भगवन् ! हमारे इन प्रश्नोंका यथोचित रीतिसे उत्तर दीजिये. इस प्रकार अश्विनीकुमारोंका वचन सुनकर दक्षप्रजापति उनसे बोले कि, जब शक्र (इंद्र) अमृतपान करता था तब उस अमृतमेंसे एक बूंद उसकी पृथ्वीपर गिर पडी उससे सात प्रकारकी हरड उत्पन्न हुई है ॥ १-५ ॥

हरीतकीनामानि ।

हरीतक्यभया पथ्या कायस्था पूतनाऽमृता । हैमवत्यव्यथा चापि चेतकी श्रेयसी शिवा । वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥ ६ ॥

भाषा-हरीतकी, अभया, पथ्या, कायस्था, पूतना, अमृता, हैमवती, अव्यथा, चेतकी, श्रेयसी, शिवा, वयस्था, विजया, जीवंती और रोहिणी ये हरडके १५ संस्कृत नाम हैं. (चेतना, प्रपथ्या, जीवप्रिया, जीवनिका, भिषग्वरा, प्राणदा, जीव्या, जया, देवी, दिव्या, चेतनिका, नंदिनी, जीवनीया, प्रमथा, रसायनफला, मेध्या, शक्रसृष्टा, पाचनी, सुधा, बल्या, शाका, रुद्रप्रिया, वनतिक्ता, सुधोद्भवा, भिषक्प्रिया, हिमजा, गिरिजा ये हरडके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥ ६ ॥

अनेक भाषाके हरडके नाम ।

सं.-हरीतकी.
हिं.-हरड, हर्र, हर्ड.
बं.-हरीतकी.
म.-हिरडा, बाळहरडी.
गु.-हरडे, हिमज.
क.-अणिलेकाय.
ते.-करक्काय.
ता.-अंकेनं, कडूमारा.
तु.-अणिलेमारा.
मला.-कटुक्कामार.
उत्.-कडकै.
फा.-हलेले जर्द, अस्फर.
अ.-एहलीलज, कावली, अहलीज अस्फर.
अं.-Black Myrobolam Chebulic ब्लॅक् माइरोबोलम् चेबुलिक्. Myrobolans मैरोबोलन्स्.
ला.-Terminalia Chebula टर्मिनेलिया चेबुला.

सप्त हरीतकीभेदाः ।

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया । जीवंती चेतकी चेति विज्ञेयाः सप्तजातयः ॥ ७ ॥

भाषा-१ विजया, २ रोहिणी, ३ पूतना, ४ अमृता, ५ अभया, ६ जीवंती और ७ चतकी ये सात जाति हरडकी हैं ॥ ७ ॥

" विन्ध्याद्रौ विजया हिमाचलभवा स्याच्चेतकी पूतना । सिन्धौ स्यादथ रोहिणी निगदिता जाता प्रतिस्थानके । चम्पायाममृताभया च जनिता देशे सुराष्ट्राह्वये । जीवन्तीति हरीतकी निगदिता सप्त प्रभेदा बुधैः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–विजया हरड विंध्याचल पर्वतपर उत्पन्न होती है, चेतकी हरड हिमालय पर्वतपर होती है, पूतना हरड सिन्धुनदीके किनारेपर होती है और रोहिणी हरड तो प्रतिस्थानमें होती है, अमृता और अभया हरड चम्पारण्य देशमें उत्पन्न होती हैं और जीवंती हरड सौराष्ट्र-देशमें उत्पन्न होती है, इस प्रकार सातों जातिकी हडोंके भेद वैद्यलोगोंने वर्णन किये हैं।"

तेषां पृथग्लक्षणानि ।

अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता । पूतनास्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता ॥ ८ ॥ पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्ण-वर्णिनी । त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामिय-माकृतीः ॥ ९ ॥

भाषा–जो हरड तोंबीके सदृश गोल होय वह विजया कहाती है. जो हरड साधारण गोल होय वह रोहिणी हरड कहाती है. जो हरड बडी गुठलीवाली और सूक्ष्म (पतली) होय वह पूतना कहाती है. जो हरड बहुत गूदेवाली है वह अमृता कहाती है. पांच रेखावाली हरड अभया कहाती है. सुवर्णके सदृश वर्णवाली हरड जीवंती कहाती है और तीन रेखावाली हरड चेतकी कहाती है. इस प्रकार सातों प्रकारकी हरडोंका स्वरूप है ॥ ८ ॥ ९ ॥

हरीतकीप्रयोगाः ।

विजया सर्वरोगेषु रोहिणी व्रणरोहिणी । प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥ १० ॥ अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोगहृत् । चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथायुक्तं प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

भाषा–विजया संपूर्ण रोगोंमें देवे. घावके भरनेमें रोहिणी हरड उत्तम है. पूतना हरड लेपके कार्यमें उत्तम है. अमृता हरड शोधन (जुलाब आदि) में उत्तम है. अभया हरड नेत्ररोगोंमें उत्तम है. जीवंती हरड संपूर्ण रोगोंको हरण करनेवाली है और चेतकी हरड चूर्णके लिये उत्तम है, इस कारण इनकी योग्यताका विचार करके इनका यथायोग्य प्रयोग करे ॥ १० ॥ ११ ॥

" हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी । कदाचित्कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ॥

भाषा–हरड मनुष्योंका माताके समान हित करनेवाली है, माता तो कभी कुपितभी हो जाती है, परन्तु उदरमें स्थित अर्थात् खाई हुई हरड कभी हानिकारक नहीं होती, सदैव रक्षाही करती है. ॥ "

चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः । षडंगुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता ॥ १२ ॥ काचिदास्वादमात्रेण काचिद्गंधेन भेदयेत् । काचित्स्पर्शेन दृष्ट्याऽन्या चतुर्द्धा भेदयेच्छिवा ॥ १३ ॥ चेतकीपादपच्छायामुपसर्पन्ति ये नराः । भिद्यंते तत्क्षणादेव पशुपक्षिमृगादयः ॥ १४ ॥ चेतकी तु धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः । तावद्विद्येत वेगैस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ १५ ॥ नृपादिसुकुमाराणां कृशानां भेषजद्विषाम् । चेतकी परमा शस्ता हिता सुखविरेचनी ॥ १६ ॥ सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता । सुखप्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥ १७ ॥

भाषा–चेतकी हरड दो प्रकारकी है एक सफेद, दूसरी काली. सफेद हरड विस्तारमें छः अंगुलकी होती है और काली हरड एक अंगुल लंबी होती है. कोई हरड खानेसे दस्त लाती है, कोई हरड सूंघनेसे, कोई स्पर्शसे और कोई हरड देखने मात्रसे दस्त लाती है. इस प्रकार हरडमें चार प्रकारकी भेदन करनेकी शक्ति है. चेतकी हरडके वृक्षकी च्छायामें मनुष्य, पशु, पक्षी तथा मृग आदि कोईभी प्राणी जावे तो उसको उसी समयमें दस्त होने लगते हैं. चेतकी हरडको मनुष्य जबतक हाथमें धारण करे रहेगा तबतक उस हरडके प्रभावसे उसको दस्त होते रहेंगे. राजा, सुकुमार (नाजुक) तथा दुर्बल शरीरवाला अथवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसकी औषधिपर अरुचि होय उनके लिये चेतकी हरड बहुत उत्तम है क्योंकि इससे सुखपूर्वक रेचन होता है और यह हितकारी है. हरडोंकी सात जातियोंमें विजया हरड प्रधान है क्योंकि इसका प्रयोग सुखकारी है तथा यह सुलभ अर्थात् सर्वत्र मिलभी जाती है और सर्व रोगोंमें प्रशस्त है ॥ १२-१७ ॥

हरीतकीगुणाः ।

हरीतकी पञ्चरसाऽलवणा तुवरा परम्। रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी । चक्षुष्या लघुरायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी ॥ १८ ॥

भाषा-हरड खारी (लवण) रसके अतिरिक्त सब रसवाली अर्थात् हरडमें मिष्ट, अम्ल, कटु, तिक्त और कषाय ये पांचों रस हैं, विशेषकर तुवरा (कसैली) है, रूखी, गरम, अग्निदीपनी, मेध्या (बुद्धिको हितकारी), मधुरपाकवाली, रसायनी, नेत्रोंके लिये हितकारी, हलकी, आयुवर्धक, शरीरमें तत्वोंकी वृद्धि करनेवाली और वायुको अनुलोम करनेवाली है ॥ १८ ॥

श्वासकासप्रमेहार्शःकुष्ठशोथोदरक्रिमीन् । वैस्वर्यग्रहणीरोगविबन्धविषमज्वरान् ॥ १९॥ गुल्माध्मानतृषाछर्दिहिक्काकण्डूहृदामयान् । कामलां शूलमानाहं प्लीहानं च यकृत्तथा । अश्मरीमूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं च नाशयेत् ॥ २० ॥

भाषा-हरड श्वास, खांसी, प्रमेह, बवासीर, कोढ, शोथ, उदर, कृमि, स्वरभंग, संग्रहणी, कोष्ठबद्धता, विषमज्वर, गुल्म, अफरा, प्यास, वमन, हिचकी, खुजली, हृदयके रोग, कामला, शूल, आनाह, प्लीहा, यकृत् (कलेजा), पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्रघात इन सब रोगोंको हरनेवाली है ॥ १९ ॥ २० ॥

स्वादुतिक्तकषायत्वात्पित्तहृत्कफहृत्तु सा । कटुतिक्तकषायत्वादम्लत्वाद्वातहृच्छिवा ॥ २१ ॥ पित्तकृत्कटुकाम्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा । प्रभावाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत्प्रकाश्यते । हेतुभिः शिष्यबोधार्थं नापूर्वं क्रियतेऽधुना ॥ २२ ॥ कर्मान्यत्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदतः । यतस्ततो नेति चिंत्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥ २३ ॥ पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नाय्वाम्लो व्यवस्थितः । वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थिरस्तुवरो रसः ॥ २४ ॥

भाषा-हरडमें मधुर, तीक्ष्ण तथा कसैला रस होनेसे पित्तको नष्ट करती है, तीक्ष्ण (चरपरा), कडवा और कसैला रस होनेसे कफको हरती है और खट्टा रस होनेसे वातकोभी दूर करती है. हरड तीक्ष्ण और खट्टी होनेके कारण वायु और पित्तको क्यों उत्पन्न नहीं करती है ? ऐसी शंका होनेपर समाधान करते हैं कि, हरडमें स्वाभाविक प्रभावहीसे दोषोंके निवारणका कर्तव्य सिद्ध है हम उसीका प्रयोजन शिष्योंको समझानेके लिये यहां सर्व कारणोंको दिखाकर प्रकाश करते हैं, परंतु वह कुछ हम अपूर्व (नवीन) रचकर नहीं दिखाते हैं जैसे आमले और बडहल ये दोनों गुणोंमें समान होनेपरभी पृथक् २ कार्य करते हैं. यह कितना अंतर है, इसलिये गुण समान होनेपरभी वह गुणोंके सर्व आश्रयभेदसे उनका कार्य भिन्न २ होता है वैसेही हरड तीक्ष्ण और अम्लरसके आश्रयभेदसे पित्त तथा वायुको उत्पन्न नहीं कर सकती ऐसा विचार कर संदेह नहीं करना चाहिये. हरडकी मींगमें मधुर रस है, नसोंमें खट्टा रस है, डंडीमें कडवारस है, छालमें चरपरारस है और गुठलीमें कसैलारस है ॥ २१-२४ ॥

नवा स्निग्धा घना वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याऽम्भसि । निमज्जेत्सा प्रशस्ता च कथिताऽतिगुणप्रदा ॥ २५ ॥ नवादिगुणयुक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता । हरीतक्याः फले यत्र द्वयं तच्छ्लेष्मुच्यते ॥ २६ ॥

भाषा-जो हरड नई, चिकनी, घन तथा भारी होय और पानीमें डालनेसे डूब जावे वह हरड उत्तम और अत्यंत गुणकारक होती है. अथवा जिस हरडमें नवीनता आदि ऊपर कहे हुए गुण होवें तथा तोलमेंभी दो कर्ष अर्थात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो तोलेकी हो ये दोनों गुण जिसमें हो वह हरड श्रेष्ठ होती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

चर्विता वर्द्धयत्यग्निं पेषिता मलशोधिनी । स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ॥ २७ ॥

भाषा–हरड दांतोंसे चबाकर खानेसे अग्निको बढाती है, पीसकर खाई हुई हरड मलको शुद्ध करती है अर्थात् रेचनसे उदरशुद्धि करती है, पकाई हुई हरड खानेसे दस्तोंको बंद करती है और भुनी हुई हरड वातादि दोषोंको नष्ट करती है ॥ २७ ॥

उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां निर्मूलिनी पित्तकफानिलानाम् । विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी स्यात्सह भोजनेन ॥ २८ ॥ अन्नपानकृतान्दोषान्वातपित्तकफोद्भवान् । हरीतकी हरत्याशु सुक्तस्योपरि योजिता ॥ २९ ॥

भाषा–भोजनके साथ खाई हुई हरड बुद्धि और बलको बढाती है, तथा इंद्रियोंको प्रकाशित करती है और पित्त, कफ और वादीको नष्ट करती है तथा मल, मूत्र और मलोंको निकालती है. भोजनके पीछे भक्षण की हुई हरड अन्नपानके दोष तथा वात पित्त कफसे उत्पन्न हुए दोषोंको तत्काल दूर करती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा । घृतेन वातजान्रोगान्सर्वरोगान्गुडान्विता ॥ ३० ॥

भाषा–नमकके साथ हरडको खावे तौ कफको, चीनी (बूरा) के साथ खावे तौ पित्तको, घृतके साथ खावे तौ वातसे उत्पन्न हुए रोगोंको और गुडके साथ हरड खावे तौ सब रोगोंको दूर करती है ॥ ३० ॥

सिन्धूत्थशर्करा शुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ३१ ॥

भाषा–वर्षाऋतुमें सेंधेनमकके साथ, शरद्ऋतुमें मिश्रीके साथ, हेमंतऋतुमें सोंठके साथ, शिशिरऋतुमें पीपलके साथ, वसंतऋतुमें मधुके साथ और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ हरड रसायनगुणोंकी इच्छा करनेवालोंको सेवन करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशो लंघनकर्शितश्च । पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्तरक्तस्त्वभयां न खादेत् ॥ ३२ ॥

भाषा–मार्गमें चलनेसे थका हुआ, बलहीन, रूक्षप्रकृति, कृश, लंघन (उपवासादि) से दुर्बल हुआ, अधिक पित्तवाला, गर्भवती स्त्री और जिसका रुधिर निकाला गया है इन मनुष्योंको हरड नहीं खाना चाहिये ॥ ३२ ॥

हरडका विशेष विवरण ।

भाषा–हरडकी उत्पत्ति प्रायः शरद् और पर्वतीय देशोंमें होती है. इसके पेड बडे २ होते हैं. इनकी गणना शाखी वा वनस्पती जातिके वृक्षोंमें है. इसके पत्ते अडूसेके वा अमरूदके पत्तोंके समान दो २ इधर उधर आमने सामने होते हैं. और वे कुछ कुछ ललाई लिये तथा हरे हरे और कोमल होते हैं. इसके फूल बहुत छोटे २ आमके मौरके सदृश तथा पीले रंगके होते हैं. इसके कच्चे फल विहारीनींबूके सदृश दोनों ओरसे नोकदार तथा १ या १॥ इंच लंबे और बीचमें गोल होते हैं, जब ये वृक्षके ऊपर कच्चे रहते हैं तब अनीदार कांटोंसे युक्त तथा धारयुक्त रहते हैं. इनको सुखानेसे इनके ऊपरकी छाल सूख जाती है और ऊपरसे खरिदरीसी दीखने लगती है और खडी पांच रेखासी विदित होती है. अधसूखी हरडोंको फोड फोडकर धूपमें डाल देते हैं, इनको हर्रा कहते हैं, इनको छीपीलोग रंगतके काममें लाते हैं. संपूर्ण संसारमें हरडका नाम प्रसिद्ध है क्योंकि वैद्यलोग इसको व्यवहारमें लेते हैं. बडी हरड तोलमें २ से ५ तोलेतककी होती है, परंतु पांच तोले वजनकी सर्वत्र नहीं होती है, कहीं देशदेशांतरमें पायी जाती है. मध्यम हरड तोलमें ½ से १ तोलेतककी होती है और यह त्रिफलामें गेरी जाती है. तीसरी छोटी (जंगी) हरड

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती है, यह जुल्लावमें लीजाती है. हरड जैसी नवीन होगी वैसीही अधिक गुणवाली होगी. प्रयोगोंमें हरडकी छालही लीजाती है. इसका दर्पनाशक सहत है और इसकी प्रतिनिधि निसोथ, आंवला वा कावली हरड है. इसकी मात्रा ४ रत्तीसे लेकर छः मासेतककी है.

अथ विभीतकस्य नामानि।

विभीतकस्त्रिलिङ्गः स्यान्नाक्षः कर्षफलस्तु सः।
कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः ॥२३॥

भाषा—विभीतक, विभीतकी, अक्ष, कर्षफल, कलिद्रुम, भूतवास और कलियुगालय ये वहेडेके संस्कृत नाम हैं. (तैलफल, संवर्तक, वासंत, कलिवृक्ष, वहेडक, हार्य, कल्क, धर्मघ्न, अनिलघ्नक, कासघ्न, धर्मद्वेषी, अक्षक, तुमुल, विंध्यजातक, तिलपुष्प, रोमहर्ष, तुमल, वनप्रिय, भूतावास, तुष, कलि, कलिंद, संवर्त, विभीत, विषघ्न, कुशिक, वहुवीर्य ये वहेडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥ २३ ॥

अनेक भाषाके वहेडेके नाम.

सं.—विभीतक.
हिं.—वहेडा.
बं.—वेहरो.
म.—वेहडा, हेळा.
गु.—वेहेडा, वेडां.
क.—तारिकाइ, तोरे.
तै.—वल्ला, तादि.
ता.—अक्कनडं.
तु.—दांडिमारा.
मला.—तान्नि.
फा.—बलेले.
अ.—वलेलज.
अं—Myrobolam Belleric मायरो बोलम् बेलिरिक्
ला.—Terminalia Bellerica टर्मेनेलिया बेलिरिका.

विभीतकस्य गुणाः ।

विभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत्।
उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम्
॥ ३४ ॥ रूक्षं नेत्रहितं केश्यं कृमिवैस्वर्यनाशनम् । विभीतमज्जा तृट्छर्दिकफवातहरो लघुः । कषायो मदकृच्चाथ धात्रीमज्जापि तद्गुणः ॥ ३५ ॥

भाषा—वहेडा मधुरपाकवाला, कसैला, कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाला, वीर्यमें उष्ण, स्पर्शमें शीतल, दस्तको भेदन करनेवाला, खांसीको नष्ट करनेवाला, रूखा, नेत्रोंको हितकारी, बालोंको उत्तम और दृढ करनेवाला और कृमी तथा स्वरहीनताको दूर करनेवाला है. बहेडेकी मज्जा (मींग) तृषा, छर्दि (वमन), कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाली है तथा हलकी, कसैली और मदकारक है. आमलेकी मज्जाभी इन्ही गुणोंसे युक्त है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

वहेडेका विशेष विवरण.

भाषा—वहेडेके वृक्ष शाखीजातिके कहाते हैं. इन वृक्षोंकी उत्पत्ति हिंदुस्थानमें सर्वत्र होती है, परंतु विशेष करके ये वृक्ष पर्वतोंपर बहुत होते हैं. ये वृक्ष बहुत ऊंचे होते हैं. इसके पत्ते महुएके पत्तोंके समान होते हैं और फूल बहुत छोटे २ और गुच्छेसे लटकते हैं. ये वृक्ष वसंतऋतुमें फलते हैं. इसके फल छोटे कागजी नींबूके सदृश गोल और जायफलसे कुछक बडे होते हैं. वैद्यलोगोंने बहेडोंको मुख्य माना है, और तंत्रशास्त्रवालेभी अपने प्रयोगोंमें इनका उपयोग करते हैं. त्रिफलामें येही बहेडे पडते हैं. मथुरा और कोशीके मार्गमें ये वृक्ष बहुत हैं. उत्तम बहेडा तोलमें एक तोलेका होता है. प्रयोगमें बहेडेकी छाल ली जाती है. इसकी मात्रा ३ मासेकी है. इसका दर्पनाशक सहतका शरबत है. इसकी प्रतिनिधि छोटी हरड है.

अथ आमलक्या नामानि ।

त्रिष्वामलकमाख्यातं धात्री त्रिष्वफलाऽमृता ।

भाषा—आमलक, आमलकी, धात्री, तिष्यफला, अमृता ये आमलेके संस्कृत नाम हैं. (पंचरसा, श्रीफली, धात्रिका, शिवा, अकरा, वयस्था, वृष्या, कायस्था, बहुफली, शांता, अमृतफला, वृत्तफला, रोचनी, कर्षफला, तिष्या, धात्रीफल, श्रीफल, अमृतफल, शिव, जातीफलरसा, शीता, धात्रेयी, आमलका, धारा, दिव्या, अमृतोद्भवा, साधुफला, अमला, शीतफला, वृष्यफला, बहुफला और शुक्ति ये आमलेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके आमलेके नाम.

सं.–आमलकी.
हिं.–आमला, आंवला
बं.–आमलकी, आम्ला.
म.–आंवळी.
गु.–आंवळां, आमली.
क.–नेल्लि.
तै.–उसरकाय.
ता.–नल्लिमारं.
उ.–अंडा.
फा–आमलज.
अ.–अम्लज.
अं.–Emblic Myrobalan एंब्लिक् माइरो बेलन्
ला.–Phylanthus Amblica फिलेन्थस् एंब्लिका.

आमलक्या गुणाः।

हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः। रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ॥ ३६ ॥ हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्यशैत्यतः। कफं रूक्षकषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥ ३७ ॥ यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम्। तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ ३८ ॥

भाषा–आमलेके रस, गुण, वीर्य और विपाकादि सब हरडकेही सदृश हैं, परंतु उसमें विशेषता यह है कि, आमला रक्तपित्त और प्रमेहको नष्ट करनेवाला है और वीर्यको अत्यंत बढानेवाला तथा रसायन है. आमला अम्ल (खट्टा) होनेसे वातको नष्ट करता है, मधुर तथा शीतल होनेसे पित्तको नष्ट करता है और रूक्ष तथा कसैला होनेसे कफको नष्ट करता है, इस प्रकार आमला वातादि तीनों दोषोंको नष्ट करनेवाला है. इस प्रकरणमें जिस जिस वृक्षके फलमें जैसा जैसा वीर्य होता है उसकी मज्जामेंभी वैसाही वीर्य होता है ऐसा समझे ॥ ३६–३८ ॥

आमलेका विशेष विवरण.

आमला यह एक शाखीजातिका बडा वृक्ष होता है. ये वृक्ष हिंदुस्थानमें सर्वत्र होते हैं. आमलेके दो भेद हैं एक बागी अर्थात् बागमें होनेवाला और दूसरा जंगली (जंगलमें होनेवाला). इनमें बागी आमले उत्तम गुणदायक और बडे होते हैं. यह वृक्ष शरद्ऋतुमें फलता है. इसके पत्ते छोटे २ इमलीके पत्तोंके समान होते हैं, और इसकी डालियोंपर छोटे २ सरसोंके दानेके समान पीले २ फूल होते हैं और माघ तथा फाल्गुनके महीनेमें उत्तम फल आजाते हैं. आमलेके फल देखनेमें गोल २ कुछ हरे पीले होते हैं और सुपारीके बराबर बडे होते हैं, परंतु काशी रामनगरके आमले बहुत बडे और उत्तम होते हैं. इन आमलोंके बराबर बडे आमले और कहीं नहीं होते हैं. इनके ऊपर छः रेखायें खरबूजेके सदृश होती हैं और भीतर छः कोनवाली अतिकठोर गुठली होती है. प्रायः अतारलोग इनका अचार और मुरब्बा बनाते हैं. इन्हीं आमलोंको त्रिफलामें डालते हैं. कोई २ आमला तोलमें ३ तोलेका होता है. इसका दर्पनाशक सहत है अर्थात् आमलेसे कुछ उपद्रव हो तो सहत खावे. इसकी प्रतिनिधि हरड है, प्रयोगमें आमलेके फलकी छाल लेते हैं. इसकी मात्रा ४ मासेसे लेकर ६ मासेतककी है.

अथ त्रिफलाया लक्षणनामगुणाः।

पथ्याविभीतधात्रीणां फलैः स्यात्त्रिफला समैः। फलत्रिकं च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥ ३९ ॥

भाषा–हरड, बहेडा और आंवला इन तीनों फलोंको समान भाग लेकर एकत्र करे तो इसको त्रिफला, फलत्रिक अथवा वरा कहते हैं. (वराशब्दके पर्यायवाचक शब्द सब त्रिफलाके वाचक हैं जैसे श्रेष्ठा, अग्रा, तथा त्रिफली, फलत्रय आदि नामभी त्रिफलाके हैं. हिंदुस्थानकी सब भाषाओंमें यह त्रिफलाकेही नामसे प्रसिद्ध है ॥) ३९ ॥

त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठहरा सरा। चक्षुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वरनाशिनी ॥ ४० ॥

भाषा–त्रिफला कफ, पित्त, प्रमेह तथा कुष्ठ इनको नष्ट करनेवाला, सर (कफ पित्तादि दोषोंको दस्तके मार्गसे निकालनेवाला), नेत्रोंको हितकारक, अग्निको दीपन करनेवाला और विषम ज्वरको नष्ट करनेवाला है ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ शुण्ठ्या नामानि ।

शुण्ठी विश्वा च विश्वं च नागरं विश्वभेषजम् ।
ऊषणं कटुभद्रं च शृङ्गवेरं महौषधम् ॥ ४१ ॥

भाषा-शुंठी, विश्वा, विश्व, नागर, विश्वभेषज, ऊषण, कटुभद्र, शृंगवेर, महौषध ये सोंठके संस्कृत नाम हैं. (महौषधि, शुष्कार्द्र, भेषज, कफारि, शुंठि, शुंठ्य, इंद्रभेषज, विश्वौषध, कटुग्रंथि, कटूत्कटक, कटूषण, सौवर्ण, आर्द्रक, शोषण, नागराह्व, आर्द्रज, औषध, आर्द्रिक और सौपर्ण ये सोंठके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥ ४१ ॥

अनेक भाषाके सोंठके नाम ।

सं.-शुंठी.	मला.-इंचि.
हिं.-सोंठ.	फा.-जंजवील.
बं.-शुंठ, शुंट.	अं.-Ginger root जिंजररूट् Drygi-nger ड्राईंजंजर.
गु.-सूंठ.	
म.-सुंठ.	
क.-शुंठि.	ला.-Gingiber offi-cinale जिंजिवेर् आफिसिनेली.
ते.-शुंठी.	
तु.-सुंटि.	
ता.-इंजि.	

शुंठीगुणाः ।

शुण्ठी रुच्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः ।
स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवातविबन्धनुत् ॥ ४२ ॥ वृष्या स्वर्य्या वमिश्वासशूलकासहृदामयान् । हन्ति श्लीपदशोथार्शआनाहोदरमारुतान् ॥ ४३ ॥ आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांशपरिशोषि यत् । संगृह्णाति मलं तत्तु ग्राही शुंठ्यादयो यथा ॥ ४४ ॥ विबन्धभेदनी या तु सा कथं ग्राहिणी भवेत् । शक्तिर्विबन्धभेदे स्याद्यतो न मलपातने ॥ ४५ ॥

भाषा-सोंठ रुचिकारक, आमवातनाशक, पाचक, चरपरी, हलकी, स्निग्ध, पाकमें मीठी, कफ वात तथा मलके बंधको तोडनेवाली, वीर्यवर्धक, गरम तथा स्वरको उत्तम करनेवाली है. वमन, श्वास, शूल, खांसी, हृदयके रोग, श्लीपद, शोथ (सूजन), बवासीर, आनाह, उदर और वातके रोग इन सब रोगोंको यह सोंठ नष्ट करनेवाली है. जिसमें अग्निका गुण अधिक है, तथा जो पदार्थ जलको सुखानेवाला है और मलको रोकता है वह पदार्थ ग्राही कहाता है. सोंठ आदि पदार्थोंमें ये गुण सब हैं इसलिये इनको ग्राही कहते हैं. यहां ऐसी शंका होती है कि, जब सोंठ मलबंधको तोडनेवाली है तब यह ग्राही किस प्रकार होसकती है ? इसका उत्तर यही है कि, सोंठमें मलबंधको भेदनेकी शक्ति है, परंतु मलको निकालनेकी शक्ति नहीं है ॥ ४२-४५ ॥

सोंठका विशेष विवरण ।

यह गुल्म अथवा औषध जातिकी वनस्पतिका कंद है. पूर्वकी ओर आसाम आदि मुल्कोंमें अनेक जातिकी सोंठ होती है. उनमें मौठकी सोंठ सबमें श्रेष्ठ है. सोंठ खेतोंमें बोई जाती है. इसके पत्ते बांसके पत्तोंके समान लंबे २ होते हैं. इसकी जडमें बडी २ गांठें होती हैं उसको अदरक कहते हैं, उसी अदरकको दूधमें पकाकर सुखानेसे सोंठ हो जाती है. जिसमें रेसे (तुष) अधिक न हों अर्थात् बेरेसेकी तथा तोडनेमें जो सपेद और नरम मालूम हो वही सोंठ उत्तम समझे. इसके दर्पनाशक कपूर और सहत हैं. इसकी प्रतिनिधि अदरक है. इसकी मात्रा २ मासेसे लेकर ६ मासेतककी है.

अथ आर्द्रकस्य नामानि ।

आद्रकं शृङ्गवेरं स्यात्कटुभद्रं तथार्द्रिका ।

भाषा-आर्द्रक, शृंगवेर, कटुभद्र, आर्द्रिका ये अदरकके संस्कृत नाम हैं. (गुल्ममूल, मूलज, कंदल, वर, महीज, सैकतेष्ट, अनूपज, अपाकशाक, आर्द्राख्य, राहुच्छत्र, सुशाकक, आर्द्रशाक, शार्ङ्ग, सच्छाक, कंदर, महाजंबु, ककुद, कंदौषध, कटूत्कट, अपाकृष्णक, चंद्राख्य ये अदरकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके अदरकके नाम.

सं.–आर्द्रक.	फा.–जिंजबीलतर.
हिं.–अदरक, अदरख.	अ.–जिंजिबिलतर.
बं.–आदा.	अं.–Ginger जिंजर.
म.–आलें.	ला.–Gingiber Officinale जिंजिबेर ओफिसिनेली.
गु.–आदु.	
क.–अल्ल.	
ते.–अल्लम्.	

आर्द्रकगुणाः ।

आर्द्रिका मेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता। कटुका मधुरा पाके रूक्षा वातकफापहा। ये गुणाः कथिताः शुण्ठ्यास्तेऽपि सन्त्यार्द्रकेऽखिलाः ॥ ४६ ॥ भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम् । अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ ४७ ॥ कुष्ठपाण्ड्वामये कृच्छ्रे रक्तपित्ते व्रणे ज्वरे । दाहे निदाघशरदोर्नैव पूजितमार्द्रकम् ॥ ४८ ॥

भाषा–अदरक मलभेदक, भारी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला, चरपरा, पाकमें मधुर और वात तथा कफको नष्ट करनेवाला है. जो गुण सोंठमें हैं वे संपूर्ण गुण अदरकमें हैं. भोजनसे पहले लवण और अदरकका खाना सर्वदा पथ्य है तथा अग्निको दीप्त करनेवाला, रुचिकारक और जीभ तथा कंठको शोधनेवाला है. कोढ, पांडु, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, व्रण, ज्वर, दाह इन रोगोंमें और ग्रीष्मऋतु तथा शरद्तुमें अदरक खाना वर्जित है ॥ ४६–४८ ॥

अदरकका विशेष विवरण.

यह गुल्मजातिकी वनस्पतिका कंद है. यह रेतली जमीनमें और जलके किनारे होता है. इसके पत्ते हलदीके या छोटी इलायचीके पत्तोंके समान होते हैं. इसके जडमें गांठें होती हैं उसीको अदरक कहते हैं. यह सर्वत्र प्रसिद्ध है. इसकी प्रतिनिधि सोंठ है. इसके दर्पनाशक कपूर और सहत हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

अथ पिप्पल्या नामानि ।

पिप्पली मागधी कृष्णा वैदेही चपला कणा । उपकुल्योषणा शौण्डी कोला स्यात्तीक्ष्णतण्डुला ॥ ४९ ॥

भाषा–पिप्पली, मागधी, कृष्णा, वैदेही, चपला, कणा, उपकुल्या, ऊषणा, शौंडी, कोला, तीक्ष्णतंडुला ये पीपलके संस्कृत नाम हैं. (कृकरा, चपला, कटुबीजा, कोरंगी, तिक्ततंडुला, श्यामा, दंतफला, मगधोद्भवा, उषणा, मगधा, कोल्या, कटी, एरंडा, कृकला ये पीपलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥४९॥

अनेक भाषाके पीपलके नाम.

सं.–पिप्पली.	गो.–हिपली.
हिं.–पीपल, पीपर.	फा.–पिलिपल् दराज.
बं.–पीपुल.	अ.–दार फिलफिल.
म.–पिंपळी.	अं.–Long Pepper लांग् पेपर्.
गु.–पीपर, लींडीपीपर.	ला.–Piper Langum पाइपर् लांगम्.
क.–हिप्पली.	
ते.–पिप्पलु.	
ता.–पिंपालि.	

पिप्पलीगुणाः ।

पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी । अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्महरी लघुः ॥ ५० ॥ पिप्पली रेचनी हन्ति श्वासकासोदरज्वरान् । कुष्ठप्रमेहगुल्मार्शःप्लीहशूलामामारुतान् ॥ ५१ ॥ आर्द्रा कफप्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः । पित्तप्रशमनी सा तु शुष्का पित्तप्रकोपिणी ॥ ५२ ॥ पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी । श्वासकासज्वरहरा वृष्या मेध्याग्निवर्द्धिनी ॥ ५३ ॥ जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली । कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनुत् । द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद्गुडोऽत्र भिषजां मतः ॥ ५४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-पीपल अग्निको दीपन करनेवाली, वीर्यको बढानेवाली, पाकमें मधुर, रसायन और अनुष्ण है, तथा चरपरी, चिकनी और वात तथा कफको नष्ट करनेवाली, हलकी और रेचक है, तथा श्वास, खांसी, उदर, ज्वर, कोढ, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहा, शूल तथा आमवातको नष्ट करनेवाली है. यह पीपल गीली होय तौ स्निग्ध, कफकारक, शीतल, भारी, मधुर और पित्तको शांत करनेवाली होती है और सूखी होय तौ पित्तको कुपित करती है. शहदके संग पीपल खानेसे मेदा तथा कफको घटानेवाली और वीर्यको बढानेवाली है तथा बुद्धि और जठराग्निको बढानेवाली है. जीर्णज्वरमें और मंदाग्निमें गुडके साथ पीपलका खाना श्रेष्ठ है. गुडके साथ पीपल खानेसे खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदयके रोग, पांडुरोग और कृमि ये सब रोग नष्ट होते हैं. गुडके साथ पीपल खावे तो पीपलके चूर्णसे गुड दुगुना लेवे अर्थात् एक भाग पीपलके चूर्णमें दो भाग पुराना गुड मिलाकर यह गुड-पिप्पली खावे, यह वैद्योंका सिद्धांत है॥५०-५४॥

पीपलका विशेष विवरण.

यह गुल्मजातिकी औषधिका फल है. इसकी वेल चलती है. इसके पत्ते नागवल्ली (पान) के समान कोमल होते हैं. इसकी जडको पीपलामूल कहते हैं. इसकी वेल मालवे आदि देशोंमें अधिकतासे होती है और वहांसेही देशदेशांतरको जाती है. पसारी गांधीलोगोंकी दूकानमें बहुत मिलती है, पीपल दो प्रकारकी होती है छोटी और बडी. उनमें छोटी पीपल अधिक गुण करती है. प्रयोगमें पुरानी पीपल लेवे. इसका दर्पनाशक गुलाबका फूल और पीला चंदन है. इसकी प्रतिनिधि काली मिरच और सोंठ है. इसकी मात्रा ४ रत्तीसे लेकर १ मासेतककी है.

अथ मरीचस्य नामानि ।

मरिचं वेल्लजं कृष्णमूषणं धर्मपत्तनम् ।

भाषा-मरिच, वेल्लज, कृष्ण, ऊषण, धर्मपत्तन ये काली मिरचके संस्कृत नाम हैं. (पलित, पवित, श्याम, कोल, वल्लीज, यवनेष्ट, वरिष्ठ, वृत्तफल, शाकांग, कटुक, शिरोवृत्त, वीर, कपिविरोचन, मृष्ट, सर्वाहित, तीक्ष्ण, चर्मबंधन, चटकाशिर, चरप्रिय, कृमिहर, धन, वेणुज, वेणुक, कफविरोधी, शुद्धकोलक ये काली मिरचके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥

अन्य भाषाके काली मिरचके नाम.

सं.-मरिच.	तु.-येड्डेमंचि.
हिं.-काली मिरच, गोल मिरच.	मला.-कुरुमुलागु
बं.-मरिच, गौल मरिच.	फा.-फिलफिल अस्वद.
म.-मिरें.	अ.-फिलफिल अबीद.
गु.-मरि, तीखां.	अं.-Black Pepper ब्लॅक् पेपर.
क.-कप्प, मेणसु.	ला.-Piper Nigrum पायपर नाइग्रम्.
तै.-मरिपालु.	
ता.-सेवियं.	

मरीचस्य गुणाः ।

मरिचं कटुकं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित् ।
उष्णं पित्तकरं रूक्षं श्वासशूलकृमीन्हरेत्॥५५॥
तदार्द्रं मधुरं पाके नात्युष्णं कटुकं गुरु । किंश्चित्तीक्ष्णगुणं श्लेष्मप्रसेकि स्यान्न पित्तलम् ५६

भाषा-काली मिरच चरपरी, तीक्ष्ण, अग्निको दीपन करनेवाली, कफ तथा वातको नष्ट करनेवाली, गरम, पित्तकारक और रूखी है और श्वास, शूल तथा कृमिको हरनेवाली है. गीली काली मिरच पाकमें मधुर होती है और अत्यंत गरम नहीं होती है तथा चरपरी, भारी, किंचित् तीक्ष्णतायुक्त, कफनिःसारक है, तथा पित्तकारक नहीं है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

काली मिरचका विशेष विवरण.

यह गुल्मजातिकी औषधका फल है. इसकी वेल होती है. इसके पत्ते नागरवेल अर्थात् पानोंके समान नोकदार होते हैं. इसकी वेल विना वृक्षके आश्रय नहीं चल सकती. इसके फल गोल छोटे २ झुमकेदार पोईके फलोंके समान होते हैं. इसके फल कच्ची अवस्थामें हरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रंगके होते हैं और बहुत चरपरे नहीं होते हैं. परंतु पकनेपर अत्यंत तीक्ष्ण होजाते हैं. काली मिरच प्रायः दो प्रकारकी देखनेमें आती है एक पूर्वी और एक दक्षिणी. इनमें दक्षिणी मिरच अत्यंत गुणदायक होती है. दक्षिणदेशके मलबार आदिकी खादर उपजाऊ भूमिमें इसकी अधिकतासे उत्पत्ति होती है. वहांके लोग इस वेलके छोटे २ टुकडे करके बडे २ वृक्षकी जडमें लगा देते हैं. तीन वर्षमें वेलपर फल आते हैं. फल पककर लाल होते हैं, परंतु सूख जानेपर काले हो जाते हैं. बहुत लोग सफेद मिरचोंको दक्षिणी कहते हैं, परंतु वे दक्षिणी नहीं हैं, दक्षिणी मिरचें तो ऊपरसे भूरी और भीतरसे हरियाई लिये होती हैं और तीक्ष्ण अधिक होती हैं. कोई धुली हुई मिरचोंको सफद मिरच कहते हैं, परंतु सफेद मिरचकी जातिही पृथक् है. इसके सेवनसे अवगुण होवे तो इसके दर्पनाशक मिश्री, घी, दूध, सहत और चांवल ये हैं. इसकी प्रतिनिधि पीपल है. इसकी मात्रा १ रत्तीसे लेकर १ मासेतककी है.

अथ त्रिकटुकनामलक्षणगुणाः ।

विश्वोपकुल्या मारिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते । कटुत्रिकं तु त्रिकटु त्र्यूषणं व्योष उच्यते ॥५७॥

भाषा–सोंठ पीपल और मिरच इन तीनोंको समान लेकर एकत्र मिलानेसे त्रिकटुक कहाता है. कटुत्रिक, त्रिकटु, त्र्यूषण और व्योष ये त्रिकुटके संस्कृत नाम हैं ॥ ५७ ॥

त्र्यूषणं दीपनं हन्ति श्वासकासत्वगामयान् । गुल्ममेहकफस्थौल्यमेदःश्लीपदपीनसान् ५८॥

भाषा–त्रिकुटा अग्निको दीपन करनेवाला है, तथा श्वास, खांसी, त्वचाके रोग, गुल्म, प्रमेह, कफ, स्थूलता, मेद, श्लीपद और पीनसरोग इनको नष्ट करता है ॥ ५८ ॥

अथ पिप्पलीमूलस्य नामानि ।

ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलमूषणं चटकाशिरः ।

भाषा–ग्रंथिक, पिप्पलीमूल, ऊषण, चटकाशिर ये पीपलामूलके संस्कृत नाम हैं. (मूल, चविकाशिर, कोलमूल, कटुग्रंथी, कटुमूल, कटूषण, सर्वग्रंथि, पत्राढ्य, विरूप, शोणसंभव, सुग्रंथि, ग्रंथिल, कणामूल, रूढक, मगधाजटा, षड्ग्रंथि, कृष्णामूल, अंघ्रिग्रंथिक, शौंडिक, चपलामूल, चटिकाशिर, मागध, मागधीजटा ये पीपलामूलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥

अनेक भाषाके पीपलामूलके नाम.

सं –पिप्पलीमूल.	फा.–फिल्फिल् मोया.
हिं.–पीपलामूल.	अ.–असलुल फिल्फिल्
बं.–पीपुलमूल.	अं.–Piper Root पाइपर रूट्.
म.–पिंपळमूळ.	ला.–Piper Officinarum पाइपर् ओफिसिनेरम्.
गु.–पीपरीमूल.	
क.–हिप्पलियवेरु.	
ते.–पिप्पलीवेरु.	

पिप्पलीमूलगुणाः ।

दीपनं पिप्पलीमूलं कटूष्णं पाचनं लघु । रूक्षं पित्तकरं भेदि कफवातोदरापहम् । आनाहप्लीहगुल्मघ्नं कृमिश्वासक्षयापहम् ॥ ५९ ॥

भाषा–पीपलामूल दीपन, चरपरा, गरम, पाचन, हलका, रूक्ष, पित्तकारक तथा सरभेदक है और कफ, वात, उदररोग, आनाह, प्लीहा, गुल्म, कृमि, श्वास तथा क्षय इन रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ५९ ॥

अथ चतुरूषणस्य लक्षणगुणाः ।

त्र्यूषणं सकणामूलं कथितं चतुरूषणम् । व्योषस्यैव गुणाः प्रोक्ता अधिकाश्चतुरूषणे ६०

भाषा–त्र्यूषण (सोंठ, मिरच, पीपल) और पीपलामूल इन चारोंको एकत्र मिलानेसे उसको चतुरूषण कहते हैं. इस चतुरूषणमें ऊपर कहे हुए त्रिकटुकेही समान गुण हैं ॥ ६० ॥

अथ चव्यनामानि ।

भवेच्चव्यं तु चविका कथिता सा तथोषणा ।

भाषा–चव्य, चविका और ऊषणा ये चव्यके संस्कृत नाम हैं. (चव्यक, चविक, वजिर, गंधनाकुली, वल्लीकोल, कोलवल्ली, कुटिलमस्तक, तीक्ष्णा, करिकणावल्ली, कुकर, चवण, उच्छिष्ट, कोलवल्लिका, चबी, चबि, पुरंदर, तेजोवती,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोला, नाकुली, वशिर, वल्ली, कोल, कुक्कुटमस्तक, कणावल्ली, कुटिलसप्तक, कटुका और कटुपाकिनी ये चव्यके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥

अनेक भाषाके चव्यके नाम.

सं.-चव्य.	तै.-चैकारा, सेवा, चैकार्ण.
हिं.-चव्य.	ता.-चवक.
बं.-चईगाछ.	ला.-Chavica Roxburghi चविका रॉक्सबर्घी. Piper Chava पाइपर चव.
म.-चवक, मिरवेलीचें मूळ.	
गु.-चवक.	
क.-चव्य, काडमेणसिन, कट्टिगे वेरु.	

चव्यगुणाः ।

कणामूलगुणं चव्यं विशेषाद्गुदजापहम् ॥६१॥

भाषा-चव्यमें पीपलामूलके सदृशही गुण हैं और विशेष करके यह गुदाके रोगोंको नष्ट करती है ॥ ६१ ॥

चव्यका विशेष विवरण.

यह क्षुपजातिकी रूखडी है. इसके पत्ते केलेकेसे छोटे होते हैं, परंतु कोमल और पतले होते हैं, इसीके फलको गजपीपल कहते हैं. यह सर्वत्र प्रसिद्ध है. प्रयोगमें इसकी छाल लेते हैं. मात्रा १ मासेसे ४ मासेतककी है.

अथ गजपिप्पल्या नामानि ।

चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथिता गजपिप्पली ।
कपिवल्ली कोलवल्ली श्रेयसी वशिरश्च सा॥ ६२॥

भाषा-चाविकाफल, गजपिप्पली, कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी, वाशिर ये गजपीपलीके संस्कृत नाम हैं. (गजोषणा, चव्यफला, चव्यजा, क्षुद्रवैदेही, स्थूलवैदेही, दीर्घग्रंथि, तैजसी, वर्तुली, चविका, वंशिक, सर्वदापुष्प, मर्कटपिप्पली, करंज, पार्वतेय, गजकृष्णा, गजाह्वा, इभकृष्णा, हस्तिपिप्पली, करिकृष्णा, राजकृष्णा, करिपिप्पली, इभकणा, कपिवल्लिका, कुंजरपिप्पली ये गजपीपलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥ ६२ ॥

अनेक भाषाके गजपीपलीके नाम.

सं.-गजपिप्पली.	ला.-Scendapsus Officinalis सिंडाप्सस् ऑफिसिनेलिस्. Plantago Amplexicaulis प्लॅन्टेगो अंप्लिक्सिकोलिस्
हिं.-गजपीपल.	
बं.-गजपिपुल.	
म.-गजपिंपळी, मिरवेलीची पिंपळी.	
गु.-गजपीपर.	
क.-गजाहिप्पली.	
तै.-पेद्द पिप्पलू.	

गजपिप्पलीगुणाः ।

गजकृष्णा कटुर्वातश्लेष्महृद्वह्निवर्द्धिनी । उष्णा निहन्त्यतीसारं श्वासकण्ठामयक्रिमीन् ॥६३॥

भाषा-गजपीपल चरपरी, वातकफनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली तथा गरम है और अतीसार, श्वास, कंठके रोग और कृमिरोग इनको नष्ट करनेवाली है ॥ ६३ ॥

गजपीपलका विशेष विवरण.

गजपीपल चविकाका फल है इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

अथ चित्रकस्य नामानि ।

चित्रकोऽनलनामा च पीठो व्यालस्तथोषणः ।

भाषा-चित्रक, अनलनामा अर्थात् अग्निवाचक संपूर्ण नाम, पीठ, व्याल और ऊषण ये चीतेके संस्कृत नाम हैं. (अग्नि, शार्दूल, चित्रपाली, कुट, शिखी, कृशानु, दहन, ज्योति, पालक, अनल, दारुण, वह्नि, पावक, शबल, पाठी, द्वीपी, चित्रांग, शूर, पाठीन, वल्लरी, हवि, हुताशन, अरुण, ज्योतिष्क, हुतभुक्, ज्वलन, शठ, ज्वाल, दीपसंज्ञा, अमल, कृष्णवर्त्मा, जातवेदा, वह्नी, विभाकर, विभावसु, बृहद्भानु, वैश्वानर, शिखावान्, शुचि, शुष्मा, सप्तार्चि, हिमाराति, हिरण्यरेता, शंबर, पाली, लोहितांग, माली, पाची ये चीतेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोला, नाकुली, वशिर, वल्ली, कोल, कुक्कुटमस्तक, कणावल्ली, कुटिलसप्तक, कटुका और कटुपाकिनी ये चव्यके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥

अनेक भाषाके चव्यके नाम.

सं.-चव्य.	तै.-चैकारा, सेवा, चैकार्ण.
हिं.-चव्य.	ता.-चवक.
बं.-चईगाछ.	ला.-Chavica Roxburghi चविका रॉक्सबर्घी. Piper Chava पाइपर चवं.
म.-चवक, मिरवेलीचें मूळ.	
गु.-चवक.	
क.-चव्य, काडमेणसिन, कट्टिगे बेरु.	

चव्यगुणाः ।

कणामूलगुणं चव्यं विशेषाद्गुदजापहम् ॥६१॥

भाषा-चव्यमें पीपलामूलके सदृशही गुण हैं और विशेष करके यह गुदाके रोगोंको नष्ट करती है ॥ ६१ ॥

चव्यका विशेष विवरण.

यह क्षुपजातिकी रूखडी है. इसके पत्ते केलेकेसे छोटे होते हैं, परंतु कोमल और पतले होते हैं, इसीके फलको गजपीपल कहते हैं. यह सर्वत्र प्रसिद्ध है. प्रयोगमें इसकी छाल लेते हैं. मात्रा १ मासेसे ४ मासेतककी है.

अथ गजपिप्पल्या नामानि ।

चविकायाः फलं प्राहैः कथिता गजपिप्पली ।
कपिवल्ली कोलवल्ली श्रेयसी वशिरश्च सा॥ ६२॥

भाषा-चाविकाफल, गजपिप्पली, कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी, वाशिर ये गजपीपलीके संस्कृत नाम हैं. (गजोषणा, चव्यफला, चव्यजा, क्षुद्रवैदेही, स्थूलवैदेही, दीर्घग्रंथि, तैजसी, वर्तुली, चविका, वंशिक, सर्वदापुष्प, मर्कटपिप्पली, करंज, पार्वतेय, गजकृष्णा, गजाह्वा, इभकृष्णा, हस्तिपिप्पली, करिकृष्णा, राजकृष्णा, करिपिप्पली, इभकणा, कपिवल्लिका, कुंजरपिप्पली ये गजपीपलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥ ६२ ॥

अनेक भाषाके गजपीपलीके नाम.

सं.-गजपिप्पली.	ला.-Scendapsus Officinalis सिंडाप्सस् ऑफिसिनेलिस्. Plantago Amplexicaulis प्लॅन्टेगो अंप्लिक्सिकोलिस्
हिं.-गजपीपल.	
बं.-गजपिपुल.	
म.-गजपिंपळी, मिरवेलीची पिंपळी.	
गु.-गजपीपर.	
क.-गजाहिप्पली.	
तै.-पेद्द पिप्पलू.	

गजपिप्पलीगुणाः ।

गजकृष्णा कटुर्वातश्लेष्महृद्वह्निवर्द्धिनी । उष्णा
निहन्त्यतीसारं श्वासकण्ठामयक्रिमीन् ॥६३॥

भाषा-गजपीपल चरपरी, वातकफनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली तथा गरम है और अतीसार, श्वास, कंठके रोग और कृमिरोग इनको नष्ट करनेवाली है ॥ ६३ ॥

गजपीपलका विशेष विवरण.

गजपीपल चविकाका फल है इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

अथ चित्रकस्य नामानि ।

चित्रकोऽनलनामा च पीठो व्यालस्तथोषणः ।

भाषा-चित्रक, अनलनामा अर्थात् अग्निवाचक संपूर्ण नाम, पीठ, व्याल और ऊषण ये चीतेके संस्कृत नाम हैं. (अग्नि, शार्दूल, चित्रपाली, कुट, शिखी, कृशानु, दहन, ज्योति, पालक, अनल, दारुण, वह्नि, पावक, शबल, पाठी, द्वीपी, चित्रांग, शूर, पाठीन, वल्लरी, हवि, हुताशन, अरुण, ज्योतिष्क, हुतभुक्, ज्वलन, शठ, ज्वाल, दीपसंज्ञा, अमल, कृष्णवर्त्मा, जातवेदा, वह्नी, विभाकर, विभावसु, बृहद्भानु, वैश्वानर, शिखावान्, शुचि, शुष्मा, सप्तार्चि, हिमाराति, हिरण्यरेता, शंबर, पाली, लोहितांग, माली, पाची ये चीतेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके चीतेके नाम.

सं.–चित्रक.
हिं.–चीता, चित्रक.
बं.–चिता, चितेगाछ.
म.–चित्रक.
गु.–चित्रो.
क.–चित्रमूल.
तै.–चित्रमूलमु.
ता.–कोदिवेल्ल, शिवपु.
तु.–बोलडु चित्रमूल.
मला.–ठंपकोट्टु वेलि.
फा.–बेखवरंदा.
अ.–शितरज. [ऐसो.
अं.–प्लंबेगो कौरुलेला.-Plumbago Zeylanica प्लंबेगो झिलेनिका.

चित्रकस्य गुणाः ।

चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः । रूक्षोष्णो ग्रहणीकुष्ठशोथार्शःकृमिकासनुत् ॥ वातश्लेष्महरो ग्राही वातार्शःश्लेष्मपित्तहृत् ६४

भाषा–चीता पाकमें चरपरा, अग्निवर्धक, पाचन, हलका, रूक्ष, गरम और ग्राही है, तथा संग्रहणी, कोढ, सूजन, ववासीर, कृमि, खांसी, वात, कफ, वादीकी ववासीर और कफ पित्तको नष्ट करनेवाला है ॥ ६४ ॥

चीतेका विशेष विवरण.

यह क्षुपजातिकी वनस्पति है. इसका पेड छोटासा होता है. इसके पत्ते गोल होते हैं. इसपर सपेद, काले, पीले और लाल ४ प्रकारके फूल आते हैं. इन चारोंमें सपेद फूलवाला चित्रक सर्वत्र होता है. इसको पानीमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे चकत्ते पडते हैं. इसी लिये वैद्यगण इसको अग्नि कहते हैं. प्रयोगमें इसकी छाल लेते हैं. इसकी प्रतिनिधि पीपरामूल अथवा अकरकरहा है. इसका दर्पनाशक रूमीमस्तंगी वा पीला चंदन है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

अथ पञ्चकोलस्य लक्षणगुणाः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः । पञ्चभिः कोलमात्रं यत्पञ्चकोलं तदुच्यते ॥६५॥

भाषा–पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इन पांचोंको एक एक कोल अर्थात् आठ आठ मासे लेकर एकत्र करनेसे इसको पंचकोल कहते हैं ॥ ६५ ॥

पञ्चकोलं रसे पाके कटुकं रुचिकृन्मतम् । तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफवातनुत् ॥ प्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥६६॥

भाषा–पंचकोल रसमें तथा पाकमें चरपरा है तथा रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, पाचक, अग्निको दीपन करनेवाला, कफ वातको नष्ट करनेवाला है तथा गोला, प्लीहा, उदर, अफरा, शूल इनको नष्ट करनेवाला और पित्तको कुपित करनेवाला है ॥ ६६ ॥

अथ षड्षणस्य लक्षणगुणाः ।

पञ्चकोलं समरिचं षड्षणमुदाहृतम् । पञ्चकोलगुणं तत्तु रूक्षमुष्णं विषापहम् ॥ ६७ ॥

भाषा–पंचकोलमें काली मिरच मिलानेसे षड्षण कहाता है. षड्षण गुणोंमें पंचकोलकेही समान है, विशेषकरके रूक्ष, गरम और विषनाशक है ॥ ६७ ॥

अथ यवान्या नामानि ।

यवानिकोग्रगन्धा च ब्रह्मदर्भाऽजमोदिका । सैवोक्ता दीप्यका दीप्या तथा स्याद्यवसाह्वया ॥ ६८ ॥

भाषा–यवानिका, उग्रगंधा, ब्रह्मदर्भा, अजमोदिका, दीप्यका, दीप्या, यवसाह्वया ये अजवायनके संस्कृत नाम हैं. (यवानी, दीप्यक, दीप्य, यवसाह्वय, यवाग्रज, दीपनी, वातारि, भूकदंवका, यवज, दीपनीय, शूलहंत्री, उग्रा, तीव्रगंधा, भूमिक, कारवी, अग्निगंधा, अग्निवर्द्धनी, यवान, ह्रद्या, ब्रह्मदर्भाह्वय, यवाह्व, क्षेत्रयवानिका, अजमोदा ये अजवायनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ६८ ॥

अनेक भाषाके अजवायनके नाम.

सं.–यवानी.
हिं.–अजवाइन, अजमान.
बं.–यमानी, योयान.
म.–ओवा.
गु.–अजमा, जवाइन.
क.–ओंडु, ओमु.
तै.–वामु.
ता.–अमन, ओमं.
तु.–ओमा.
मला.–ओम.
फा.–नानुखा.
अ.–कमून मुलूकी.
अं.–Bhishops weedseed बिशप्स् वीड्सीड्.
ला.–Carum Copticum केरम् कोप्टिकम्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यवान्या गुणाः ।

यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः । दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शुक्रशूलहृत् ॥ वातश्लेष्मोदरानाहगुल्मप्लीहकृमिप्रणुत् ॥ ६९ ॥

भाषा-अजवायन पाचक, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, हलकी, अग्निको दीपन करनेवाली, कडवी और पित्तकारक है तथा वीर्य, शूल, वात, कफ, उदर, आनाह, गुल्म, प्लीहा तथा कृमि इनको नष्ट करनेवाली है ॥ ६९ ॥

अजवायनका विशेष विवरण.

अजवायन क्षुपजातिकी वनस्पतिके बीज हैं. ये क्षुप चार चार फूट ऊँचे होते हैं. किसानलोग इनको खेतोंमें बहुत बोते हैं. इनके पत्ते छोटे २ हालोंके पत्तोंके समान कटीले होते हैं और इनकी डालियोंपर छत्तेसे आते हैं, उनपर सफेद फूल लगते हैं और जब वे छत्ते पक जाते हैं तब उनमें अजवायन उत्पन्न होती है, उनको कूटनेसे छोटे २ दानेसे निकलते हैं इन्हींको अजवायन कहते हैं. इनको साग आदिमें डालते हैं.

अजमोदाया नामानि ।

अजमोदा खराश्वा च मयूरो दीप्यकस्तथा । तथा ब्रह्मकुशा प्रोक्ता कारवी च समस्तका ७०

भाषा-अजमोदा, खराश्वा, मयूर, दीप्यक, ब्रह्मकुशा, कारवी, समस्तका ये अजमोदके संस्कृत नाम हैं. (खराह्वा, वस्तमोदा, मर्कटी, मोदा, गंधदला, हस्ती, गंधपत्रिका, मायूरी, शिखिमोदा, मोदाख्या, वह्निदीपिका, ब्रह्मकोशी, विशाली, हृद्यगंधा, उग्रगंधिका, मोदिनी, फलमुख्या, मयूरका, दीप्यका, वल्ली, लौमकर्कटी, रोमकर्कट, यवान, कृमिरोगजित्, दीप्यवल्ली, मर्कटा, कराह्वा, कर्कटा, लोचमस्तका, यवानिका, मेध्यदा, विशल्या, हास्तिकावरी, हयगंधा, गंधपत्रिका ये अजमोदके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७० ॥

अनेक भाषाके अजमोदके नाम.

सं.-अजमोदा.	फा.-करफस.
हिं.-अजमोद. (यान्.	अ.-हबुलकतुकेरफस.
बं.-वनयमानी, वनयोम.-अजमोदा.	अं.-Celery Seed सेलेरी सीड्.
गु.-बौडी अजमोद.	ला.-Apium Graveolence एपियम् ग्रेवियोलेन्स्.
क.-अजमोदा.	
तै.-आजमौदा, वामं.	

अजमोदागुणाः ।

अजमोदा कटुस्तीक्ष्णा दीपनी कफवातनुत् । उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या बलकरी लघुः॥ नेत्रामयकफच्छर्दिहिक्कावस्तिरुजो हरेत्॥७१॥

भाषा-अजमोद चरपरा, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कफ तथा वातको नष्ट करनेवाला, गरम, दाहकारक, हृदयको प्रिय, वीर्यवर्धक, बलकारक और हलका है तथा नेत्ररोग, कफ, वमन, हिचकी और वस्तिगत (मसानेकी) पीडा इन रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ७१ ॥

अजमोदका विशेष विवरण.

अजमोद अजवायनकाही एक भेद है. इसके क्षुप अजवायनकेही समान होते हैं. मालीलोग इनको खेतोंमें बोते हैं. इनकी शाखाओंपर बडे बडे छत्तेसे लगते हैं, उनपर सुपेद सुपेद फूल लगते हैं और जब वे छत्ते पक जाते हैं और फूट जाते हैं तब उनमें जो दाने उत्पन्न होते हैं वे छत्तोंसे अलग होते हैं, उनको अजमोद कहते हैं. ये दाने अजवायनके दानोंसे चौगुने बडे होते हैं. इसकी प्रतिनिधि सोंफ है अथवा पर्वती अजमोद है. इसका दर्पनाशक काहूके फूल अथवा मस्तंगी है. इसकी मात्रा ९ मासेकी है. प्रयोगमें इसके दानेही लिये जाते हैं.

पारसीकयवानीनामानि ।

यवानी, यावनी, तीव्रा, तुरुष्का, मदकारिणी, दीप्य, श्याम, कुबेराख्य, मादक, मदकारक और पारसीकयवानी ये खुरासानी अजवायनके संस्कृत नाम हैं.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके खुरासानी अजवायनके नाम.

सं.–पारसीकयवानी.
हि.–खुरासानी अजवायन.
बं.–खुराशानी योयान्.
म.–किरमाणी ओवा.
गु.–खुरसाणा अजमा, करमाणी छहारी.
तै.–खुरसाण वामु.
ता.–खोरसनी ओनाम, शिट्टामुट्टी.
फा.–तुख्मवंजे, वंज.
अ.–बजरूल बंज, अवीद शीकरान्.
अं.–Henban हेन्बेन्.
ला.–Artimisia Maritima आर्टिमिसिया मारिटिमा.

पारसीकयवानीगुणाः ।

पारसीकयवानी तु यवानीसदृशी गुणैः । विशेषात्पाचनी रुच्या ग्राहिणी मादिनी गुरुः ७२

भाषा–खुरासानी अजवायनके गुण अजवायनके समानही हैं परंतु विशेषकरके यह पाचन, रुचिकारक, ग्राही, मादक तथा भारी है॥७२॥

खुरासानी अजवायनका विशेष विवरण.

पारस देशके अजवायनको किरमानी अजवायन या खुरासानी अजवायन कहते हैं. यह अजवायन खुरासानके जंगलमें उत्पन्न होता है. इसके क्षुप तथा पत्ते अजवायनसे बडे होते हैं. इसकी शाखाओंमेंभी छत्ते आते हैं और उनपर सफेद २ फूल लगते हैं. वहांके लोग जब वे छत्ते पककर सुख जाते हैं तब उनको तोड तोडकर २ दाने निकालते हैं. इसके दाने अजवायनके दानोंसे दूने बडे होते हैं. प्रयोगमें इसके फलोंकोही लेते हैं. इसकी मात्रा ६ मासेकी है.

जीरकशुक्लजीरकनामानि ।

जीरको जीरणोऽजाजी कणा स्यादीर्घजीरकः ।

भाषा–जीरक, जीरण, अजाजी, कणा, दीर्घजीरक ये जीरेके संस्कृत नाम हैं. (जरण, जीर, जीर्ण, दीप्य, दीपक, अजाजिका, वह्निसख, मागध, दीप्यक, दीर्घज, हृद्य, मनोज्ञ, वरुण, पूज्यमान, पीताभ, रुच्य ये जीरेके तथा गौराजाजी, श्वेतजीरक, कणाह्वा, कणजीर्णा, सिताजाजी, दीर्घजीरक, दीर्घजीर आदि सफेद जीरेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेकभाषाके जीरेके तथा सफेद जीरेके नाम.

सं.–जीरक, गौराजाजी
हिं.–जीरा, सफेदजीरा.
बं.–शुक्लजीरा, सादाजीरा.
म.–जिरें, पांढरें जिरें.
गु.–जीरूं, धोलूं जीरूं.
क.–जीरगे.
तै.–जिलकर्रा, तेल्लाजिरकर्रा.
ता.–चिरकं.
तु.–जिरडरी.
फा.–जीरा.
अ.–कमुन्.
यू.–खामुन्.
अं.–Cumin Seed क्युमिन् सीड्.
ला.–Cumminum Cyminum कमिनम् सिमिनम्.

कृष्णजीरकनामानि ।

कृष्णजीरः सुगन्धश्च तथैवोद्गारशोधनः ॥ ७३॥

भाषा–कृष्णजीर, सुगंध, उद्गारशोधन ये काले जीरेके संस्कृत नाम हैं. (कृष्णा, कृष्णाजाजी, जरणा, काली, नीलकणा, काश्मरिजीरका, वर्षकाली, वांतिशोधिनी, कालमेषी, पटु, सुगंधा, कणजीर, सुजरणा, कालमेषिका, वर्षा, हृद्या, काकजीरक, कालजीरक, उद्गारशोधिनी, नीला, भेदिनी, भेदनिका, रुच्या, बहुगंधा ये काले जीरेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७३ ॥

अनेक भाषाके काले जीरके नाम.

सं.–कृष्णजीर.
हिं.–काला जीरा.
बं.–कालजीरे.
म.–शहाजिरें.
गु.–शाजीरूं.
क.–करिजीरगे, शाजीरगे.
तै.–नल्ल जिलकर्रा.
फा.–जीरेश्याह.
अ.–कमुन् किरमानी.
अं.–Black Caraway Seed ब्लॅक् कारावे सीड्.
ला.–Carum Nigrum केरम् नाइग्रम्

स्थूलजीरकनामानि ।

कालाजाजी तु सुषवी कालिका चोपकालिका।
पृथ्वीका कारवी पृथ्वी पृथुकृष्णोपकुञ्चिका ॥
उपकुञ्ची च कुञ्ची च बृहज्जीरक इत्यपि७४॥

भाषा–कालाजाजी, सुषवी, कालिका, उपकालिका, पृथ्वीका, कारवी, पृथ्वी, पृथुकृष्णा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपकुंचिका, उपकुंची, कुंची, बृहज्जीरक ये कलौंजीके संस्कृत नाम हैं. (स्थूलजीरक, स्थूलकणा, जरणा, जारिणी, जीर्णा, तरुणी, पतिंवरा, पृथिवी, पृथुका, पृथु, कुंचिका, दिव्या, काला, कृष्णा, मनोज्ञा, भेषज, शाली, बहुगंधा, कालिका, उपकालिका ये कलौंजीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७४ ॥

अनेक भाषाके कलौंजीके नाम.

सं.-कालाजाजी.	फा.-शादाने, शोनिझु.
हिं.-कलौंजी, मगरेल.	अ.-हबतुस्सोदा.
बं.-मोटा केले जीरे.	अं.-Small Fenel Flower स्मॉल फेनेल् फ्लॉवर्.
म.-काळें जिरें.	
गु.-कलौंजी जीरूं.	
क.-करिदोडु जीरगे.	ला.-Nigella Sativa निगेल्ला सेटिवा.
तै.-नेजीरकर्रा.	

त्रिविधजीरकगुणाः ।

जीरकत्रितयं रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघु। संग्राहि पित्तलं मेध्यं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ ७५ ॥ ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम् । चक्षुष्यं पवनाध्मानगुल्मच्छर्द्यतिसारहृत् ७६॥

भाषा-तीनों प्रकारके जीरे (सफेद जीरा, काला जीरा, कलौंजी) रूक्ष, चरपरे, गरम, अग्निप्रदीपक, हलके, ग्राही, पित्तकारक, मेध्य (मेधाको उत्पन्न करनेवाले), गर्भाशयशोधक, ज्वरनाशक, पाचक, वीर्यवर्धक, बलकारक, रुचिकारक, कफनाशक, नेत्रोंको हितकारी हैं तथा वात, आध्मान, गुल्म, वमन तथा अतीसार इन रोगोंको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ७५॥७६॥

तीनों जीरोंका विशेष विवरण ।

जीरा क्षुप जातिकी वनस्पति है और सर्वत्र प्रसिद्ध है. जीरा दो प्रकारका होता है. एक काला और एक सफेद, किसीके मतसे जीरा पांच प्रकारका है. जैसे साधारण जीरा, काला जीरा, स्याह जीरा, कलौंजी और शंखजीरा. काला जीरा कावूल देशमें होता है. इसके क्षुप छोटे २ होते हैं. इसको खेतमें बोते हैं. इसके पत्ते छोटे २ होते हैं. सोयेके समान इसपर छत्ते आते हैं और उन्हींमेंसे जीरा उत्पन्न होता है. काला जीरा श्याम रंगका और छोटा २ होता है. कलौंजीके क्षुप पूर्वकी ओर बहुत होते हैं. इसका क्षुप बहुत छोटा होता है. इसके पत्ते लंबे २ मूलीकेसे होते हैं. बीचमेंसे एक लंबी सांठ निकलती है उसपर सफेद फूल आते हैं. उन फूलोंमेंसे दो दो तीन तीन अंगुल लंबी फलियें निकलती हैं और उन फलियोंमेंसे छोटे २ काले दाने निकलते हैं, इनको ही कलौंजी कहते हैं. इनके फलकी २ मासेकी मात्रा कही है. इनका दर्पनाशक कतीरा है और प्रतिनिधि अजवायन है.

धान्यकस्य नामानि ।

धान्यकं धानकं धान्यं धाना धानेयकं तथा । कुनटी धेनुका छत्रा कुस्तुम्बुरु वितुन्नकम् ७७॥

भाषा-धान्यक, धानक, धान्य, धाना, धानेयक, कुनटी, धेनुका, छत्रा, कुस्तुंबुरु, वितुन्नक, ये धनियेके संस्कृत नाम हैं. (धानेय, धनिक, धना, धनिका, धन्याक, धन्य, धनीयक, धन्या, धान्याक, धनेयक, धानेय, धेन्निका, धानी, छल्लीधान्य, हृद्या, वेषणा, वेषणाग्रा, धान्यबीज, बीजधान्य, सुगंधि, शाकयोग्य, तुंवुरु, तुंबर, कुस्तुंबर, अल्लका, अल्लक, जनप्रिय, सूक्ष्मपत्र, वेधक, अवविका, हृद्यगंधा, निःसार, छत्रधान्य, ये धनियेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७७ ॥

अनेक भाषाके धनियेके नाम.

सं.-धान्यक.	तु.-कोत्तंबरी, कोत्तुमल्ली.
हिं.-धनिया.	
बं.-धने.	मला.-कोत्तमपालरि.
म.-धने, कोथिंबीर.	फा.-तुख्मे करुनीझ.
गु.-धाणा, कोथमीर.	अ.-कजबुरा.
क.-कोथुंबुरी, हव्वीज.	अं.-Coriander Seed कोरियंडर् सीड्.
तै.-कोतिमिरी, धनियालु.	
ता.-कोत्तमल्ली, उत्तंवरी.	ला.-Coriandrum Sativum कोरियंड्रम् सेटाइवम्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धान्यकस्य गुणाः।

धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु। तिक्तं कटूष्णवीर्यं च दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥ ज्वरघ्नं रोचकं ग्राहि स्वादुपाकि त्रिदोषनुत्। तृष्णादाहवमिश्वासकासकार्श्य-कृमिप्रणुत् ॥ आर्द्रं तु तद्गुणं स्वादु विशेषा-त्पित्तनाशि तत् ॥ ७९ ॥

भाषा–धनिया कसैला, स्निग्ध (चिकना), वलनाशक, मूत्रजनक, हलका, कडवा, चरपरा, उष्णवीर्य, जठराग्निको दीपन करनेवाला, पाचक, ज्वरनाशक, रोचक, ग्राही और पाकमें मीठा है तथा त्रिदोष, तृषा, दाह, वमन, श्वास, खांसी, कृशता और कृमिरोग इनको नष्ट करनेवाला है. गीले धनियेके गुण सब सूखे धनियेके समानही हैं, परंतु विशेष करके गीला धनिया मीठा और पित्तनाशक है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

धनियेका विशेष विवरण.

धनियेकी गणना क्षुपजातिमें है. ये बागोंमें तथा खेतोंमें अधिकतासे उत्पन्न होते हैं. इसके पत्ते कटीले और कोमल होते हैं. इसकी शाखाओंपर छत्तेसे लगते हैं और वे फूलते हैं. फिर पकनेपर उनमेंसे गोल २ मूंगके दानेके समान धनियेके दाने निकलते हैं. ये सर्वत्र प्रसिद्ध हैं. इसके फलकी मात्रा २ मासेसे लेकर ६ मासेतककी है.

शतपुष्पानामानि।

शतपुष्पा शताह्वा च मधुरा कारवी मिसिः। अतिलम्बी सितच्छत्रा संहिता छत्रिकापि च ॥ ८० ॥

भाषा–शतपुष्पा, शताह्वा, मधुरा, कारवी, मिसि, अतिलंबी, सितच्छत्रा, संहिता, छत्रिका, ये सोयेके संस्कृत नाम हैं. (छत्रा, शालेय, शालीन, शताक्षी, शतपुष्पिका, तालपर्णी, माधवी, शोफका, घोषा, शिफ्रा, अतिच्छत्रा, अवाक्पुष्पी, संघातपत्रिका, वज्रपुष्पी, सुपुष्पिका, शतप्रसूना, वहला, पुष्पाह्वा, शतपत्रिका, मिशी, सालेय, मिसी, पोति, अहिच्छत्रा, तालपर्णी, शालेया, शीतशिवा, वनजा ये सोयेके नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८० ॥

अनेक भाषाके सोयेके नाम.

सं.–शतपुष्पा.	फा.–शुत, तुख्मे शूत.
हिं.–सोया.	अ.–शीतव्वत वजरुल.
बं.–शुल्फा.	अं.–Dillseed डिल्सीड्.
म.–बाळंतशोप.	ला.–Anetham Graveyolence एनिथम् ग्रेवियोलेन्स्.
गु.–शूवा दाणा.	
क.–संजसिगे.	
तै.–पेद्द सदापचेट्टु, सदापा.	

शतपुष्पागुणाः।

शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः। उष्णा ज्वरानिलश्लेष्मव्रणशूलाक्षिरोगहृत् ८१

भाषा–सोया हलका, तीक्ष्ण, पित्तकारक, दीपन, चरपरा और गरम है तथा ज्वर, वात, कफ, व्रण, शूल और नेत्रके रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ८१ ॥

सोयेका विशेष विवरण।

सोयेकी गिनती क्षुपजातिमें है. इसके क्षुप छोटे २ होते हैं. इनको खेतोंमें बोते हैं. इसके पत्ते माजूफल समान कटीले होते हैं. इनकी डालियोंपर फूलोंके छत्तेसे लगते हैं और वे छत्ते पकजानेपर उनमेंसे सौंफके समान सोयेके बीज निकलते हैं. चैत्र वैशाखमें यह फूलता है और दूरतक इसकी सुगंध जाती है. इसकी मात्रा १ मासेसे ६ मासेतककी है.

मिश्रेयानामानि।

छत्रा शालेयशालीनौ मिश्रेया मधुरा मिसिः।

भाषा–छत्रा, शालेय, शालीन, मिश्रेया, मधुरा मिसि, ये सौंफके संस्कृत नाम हैं. (सिता, मधुरिका, माधुरी, तापसप्रिया, गंधाधिका, घोषवती, सुगंधा, तृषाहरा, शीतशिवा, सुपुष्पिका, शतप्रसूना, पुष्पाह्वा, मिशी, घोषा, पोतिका, अहिछत्रा, माधवी, कारवी, संघातपत्रिका, अवाक्पुष्पी, तालपर्णी, मंगल्या, शतप,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिका, वनपुष्पा, भूरिपुष्पा, सुरसा, कन्या, बलशाली, मागध्या, मधुरी ये सौंफके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं) ॥

अनेक भाषाके सौंफके नाम.

सं.-मिश्रेया.	फा.-बादियान.
हिं.-सौंफ.	अ.-एनियानज, अस्लूल एनियानज.
बं.-मौरी.	अं.-Fenel Seed फेनल् सीड्.
म.-बडीशोप.	ला.-Faeniculum Vulgare फेनुक्युलम् वल्गेरी.
गु.-वरियाली.	
क.-दोड्ड सब्बसिगे.	
ते.-पेद्दजिलकर्रू,सोंफ.	
ता.-सोहिकिरे.	

मिश्रेयागुणाः ।

मिश्रेया तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनिशूलनुत् ।
अग्निमान्द्यहरी हृद्या बद्धविट्कृमिशूलहृत् ॥
रूक्षोष्णा पाचनी कासवमिश्लेष्मानिलान्हरेत् ॥ ८२ ॥

भाषा-सौंफमें सोयेके समानही गुण हैं तौभी सौंफ विशेषकरके योनिशूल और मंदाग्निको हरनेवाली है तथा हृदयको प्रिय है और मलकी बद्धता, कृमि और शूल इन रोगोंको दूर करनेवाली है तथा रूखी, गरम और पाचन है और खांसी, वमन, कफ और वात इनको नष्ट करनेवाली है ॥ ८२ ॥

सौंफका विशेष विवरण ।

सौंफके क्षुप सोयेकेही समान होते हैं. इनकोभी खेतोंमें बोते हैं. इनके पत्ते सोयेके पत्तोंके समानही कटीले होते हैं. इनकी डालियोंपरभी फूलोंके छत्ते लगते हैं और उनमेंसे सौंफके दाने निकलते हैं. नई सौंफका रंग हरा होता है. इसकी मात्रा १ मासेसे लेकर ६ मासेतककी है. हकीमलोग प्रसूत हुई स्त्रियोंको इसका क्वाथ रुधिरशुद्धिके लिये तथा गर्भस्थानकी शुद्धिके लिये देते हैं.

मेथीवनमेथीनामानि ।

मेथिका मेथिनी मेथी दीपनी बहुपत्रिका ।
बोधिनी बहुबीजा च जातिर्गन्धफला तथा ॥ ८३ ॥
वल्लरी चक्रिका मन्था मिश्रपुष्पा च कैरवी । कुञ्चिका बहुपर्णी च पित्तजिद्वायुनुद्द्विधा ॥ ८४ ॥

भाषा-मेथिका, मेथिनी, मेथी, दीपनी, बहुपत्रिका, बोधिनी, बहुबीजा, जाति, गंधफला, वल्लरी, चक्रिका, मंथा, मिश्रपुष्पा, कैरवी, कुंचिका, बहुपर्णी, पित्तजित् तथा वायुनुत् ये मेथी और वनमेथी इन दोनोंके संस्कृत नाम हैं. (वधनी, गंधबीजा, चंद्रिका, पीतबीजा, मुनींद्रिका ये मेथी और वनमेथीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अनेक भाषाके मेथीके नाम.

सं.-मेथिका.	फा.-तुरभे शमपीत.
हिं.-मेथी.	अ.-वजरूल हुल्वा.
बं.-मेथी.	अं.-Fenugreek फेनुग्रीक्.
म.-मेथी.	ला.-Trigonella Faenum Graceum ट्राइगोनेल्ला फेनम् ग्रेसियम्.
गु.-मेथी.	
क.-मेथय, मेंते.	
ते.-मेंतुलु, मेंति.	
ता.-वेंदायम्.	
मला.-उळुवा वेंतायुम्.	

मेथीवनमेथीगुणाः ।

मेथिका वातशमनी श्लेष्मघ्नी ज्वरनाशिनी ।
ततः स्वल्पगुणा बल्या वार्जिनां सा तु पूजिता ॥ ८५ ॥

भाषा-मेथी वायुनाशक, कफनाशक तथा ज्वरनाशक है. वनमेथी मेथीकी अपेक्षा गुणोंमें न्यून (अल्पगुणवाली) है, परंतु घोडोंके लिये यह परमोत्तम हितकारी और बलदायक है ॥ ८५ ॥

मेथीका विशेष विवरण.

मेथीके क्षुप छोटेसे होते हैं. इसको खेतोंमें बोते हैं. इसके पत्ते गोल और छोटे २ होते हैं. इसमें एक हरे रंगकी बाल निकलती है और उसपर पीले २ फूल आते हैं फिर फलियें लगती हैं, उन फलियोंमेंसे मेथीके दाने निकलते हैं, इसके पत्तोंकी भाजी करते हैं. बाल झडते हों तौ उनके रोकनेको मेथीके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत्तोंकी [illegible]टिश बांधते हैं. तथा बाहर भीतरकी सूजनके लेये और जली हुई चमडीके ऊपरभी इस पोटि[illegible]शको बांधते हैं. सूजनके दर्दमें मेथीके चूनकी पो[illegible]टिश बांधते हैं.

चन्द्रिकानामानि ।

चन्द्रिका चर्महन्त्री च पशुमेहनकारिका ।
नन्दिनी का[illegible]री भद्रा वासपुष्पा सुवासरा ८६॥

भाषा-चंद्रिका, चर्महंत्री, पशुमेहनकारिका, नंदिनी, [illegible]गरवी, भद्रा, वासपुष्पा, सुवासरा और चंद्र[illegible]शूर ये हालोंके संस्कृत नाम हैं. (अशा[illegible]लक, रक्तराजी, सिद्धप्रयोजना, कालमेषा, [illegible]रकृष्ण, दीर्घबीज और अहालिम ये हालों[illegible]के संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते [illegible].) ॥ ८६ ॥

अनेक भाषाके हालोंके नाम.

सं.-चंद्रशूर.	अ.-हवर रशाद, वजरुल जिरजिर.
हिं.-हालों.	अं.-Common Cress कॉमन् क्रेस्.
बं.-हालिम.	ला.-Lepidium Sativum लेपिडिअम् सेटिवम्.
म.-आहाळींव, हालिम.	
गु.-अशेलियो, अशेरीओ.	
फा.-हालम तुख्म.	

चंद्रिकागुणाः ।

चन्द्रशूरं हितं हिक्कावातश्लेष्मातिसारिणाम् ।
असृग्वातगदद्वेषि बलपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ८७ ॥

भाषा-हालों हिचकी, वातकफ, अतीसार इन रोगोंमें हितकारक है, रुधिर तथा वातके रोगोंको नष्ट करनेवाला है और बलकारक तथा पुष्टिजनक है ॥ ८७ ॥

हालोंका विशेष विवरण.

हालोंकी गणना क्षुप जातिमें है. इसके क्षुप खेत आदिमें बोये जाते हैं. इसके क्षुप धनियेके समान और पत्तेभी धनियेकेसेही कटीले होते हैं. इसके ऊपर असमानी रंगके फूल आते हैं. इसके बीज छोटे २ काले होते हैं. इसकी प्रतिनिधि गंदना है. इसका दर्पनाशक कतीरा है और इसकी मात्रा ७ मासेकी है. इसका अर्क हुचकी, रुधिरविकार, और वातको नष्ट करनेवाला है तथा पुष्टिवर्धक है.

चतुर्बीजगुणाः ।

मेथिका चन्द्रशूरश्च कालाऽजाजी यवानिका ।
एतच्चतुष्टयं युक्तं चतुर्बीजमिति स्मृतम् ॥ ८८॥
तच्चूर्णं भक्षितं नित्यं निहन्ति पवनामयम् ।
अजीर्णं शूलमाध्मानं पार्श्वशूलं कटिव्यथाम् ॥ ८९ ॥

भाषा-मेथी, हालों, काला जीरा और अजवायन इन चारों द्रव्योंको एकत्र करनेसे इनको चतुर्बीज (चारदाना) कहते हैं. चतुर्बीजका चूर्ण नित्य खानेसे वातके रोग, अजीर्ण, शूल, अफरा, पसलीका शूल और कमरकी पीडा दूर होती है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

हिङ्गुनामानि ।

सहस्रवेधि जतुकं बाह्लीकं हिङ्गु रामठम् ।

भाषा-सहस्रवेधि, जतुक, बाह्लीक, हिंगु और रामठ ये हींगके संस्कृत नाम हैं. (उग्रगंध, भूतारि, उग्रवीर्य, सूपांग, रक्षोघ्न, जंतुनाशन, अगूढगंध, जरण, भेदन, दीप्त, सहस्रवेध, सूपधूपन, अत्युग्र, जंतुघ्न, शूलनाशन, बाह्लिक, वाह्लीं, जरक, जतु, शूलद्विट्, रमठ, हिंगुक, पिण्याक, गृहिणी, मधुरा, केसर, जातुक, रमठध्वनि, शूलहृत् ये हींगके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके हींगके नाम.

सं.-हिंगु.	फा.-अंगुझ दर्खते, अंगुझ खालीस.
हिं.-हींग.	अ.-हिलसाति.
बं.-हिंगु.	अं.-Assafoetida आसाफोटिडा.
म.-हिंग.	ला.-Ferula Narthex फेरुला नार्थेक्स. Narthex Assafoetida नार्थेक्स आसाफोटिडा.
गु.-वघारनी, हिंग.	
क.-इंगिन, इंगु, हिंगलद.	
ते.-इंगुवा.	
ता.-पेरुंगायम्.	
तु.-इंगु.	
मला.-पेरुंकायम्.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिंगुगुणाः ।

हिंगूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहृत् ।
शूलगुल्मोदरानाहकृमिघ्नं पित्तवर्द्धनम् ॥९०॥

भाषा-हींग गरम, पाचन, रुचिकारी, तीक्ष्ण है और वायु, कफ, शूल, गुल्म, उदर, आनाह तथा कृमि इनको नष्ट करनेवाली और पित्त-वर्धक है ॥ ९० ॥

हींगका विशेष विवरण.

हींगके वृक्ष वाह्लीक देश (वलख जो काबुलके राज्यमें है), हिरात, खुरासान ईरान आदि देशोंमें होते हैं. इस वृक्षके पत्ते और छालमें चीरा देनेसे दूध निकलता है, उसीको पत्तोंमें या वकरेकी खालमें रखकर सुखाते हैं तो वह दूध गोंदके समान जम जाता है इसीको हींग कहते हैं. हींगकी अनेक जातियां हैं, परंतु उन सवमें हीरा हींग उत्तम होती है. पठानलोग जो लहसनी हींग वेचनेको लाते हैं, उसको पदार्थमें डालनेसे पदार्थका स्वाद सर्वथा विगड जाता है, यह हींग लहसुन और चनेका चूर्ण मिलाकर उसमें हींगका पानी डालकर तैयार किया जाता है. जैपुरके राज्यमें हींगका एक भेद है उसको हींगडा कहते हैं. जैनी लोग इसीको वरतते हैं. इसकी मात्रा २ रत्तीसे ४ रत्तीतककी है. इसका अर्क पाचन तथा रुचिकारक है और कृमि, शूल और उदररोगको दूर करनेवाला है.

वचानामानि ।

वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका ।
क्षुद्रपत्री च मङ्गल्या जटिलोग्रा च लोमशा ॥ ९१ ॥

भाषा-वच, उग्रगंधा, षड्ग्रंथा, गोलोमी, शतपर्विका, क्षुद्रपत्री, मंगल्या, जटिला, उग्रा, लोमशा ये वचके संस्कृत नाम हैं. (वचा, भद्रा, विजया, रक्षोघ्नी, इक्षुपर्णी, कांगा, वच्या, स्मारणी, वोधनीया, भूतनाशिनी, श्लेष्मघ्नी, इक्षुपत्रिका, जलजा और तीक्ष्णपत्रा ये वचके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥९१॥

अनेक भाषाके वचके नाम.

सं.-वचा.
हिं.-वच.
वं.-वच.
म.-वेखंड.
गु.-वज.
क.-वाजेगिड, नारुवेरु, वजे, कवणदगड्डे.
तै.-वासा, वाडज.
ता.-वाशुंवु.
तु.-वाजे.
मला.-वायंपु.
गो.-येखंड.
यू.-अकुरून
फा.-सोसन, [illegible]जर्द, अगर तुर[illegible]की, सवेववा.
अ.-उद[illegible]लवुज.
अं.-S[illegible]eetflagroot स्वीट्[illegible]फ्ल्यॅगरूट्.
ला.-Acho[illegible]rus Calamus [illegible] एकोरस् केलेमस्[illegible].

वचागुणाः ।

वचोग्रगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वान्तिकृद्वह्निकृत् । विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी ॥ अपस्मारकफोन्मादभूतजन्त्वनिलान्हरेत् ॥ ९२ ॥

भाषा-वच उग्रगंधवाली, चरपरी, कडवी और गरम है तथा वमन और जठराग्निको बढानेवाली है और मलवंध, अफरा (पेटका फूलना), शूल, अपस्मार (मृगी), कफ, उन्माद, भूत, जंतु (कृमि) और वातरोग इन रोगोंको नष्ट करती है ॥ ९२ ॥

वचका विशेष विवरण.

वच गुल्मजातिकी वनस्पति है. इसके गुल्म विशेषकरके रेतली जमीनमें और अनूप देशमें होते हैं. इसके पत्ते ईखके समान लंबे २ होते हैं, इसपर फूल नहीं आते. इसके जडको वच कहते हैं. इसका रंग काला भूरा होता है. इसमें एक प्रकारका सुगंध होता है, परंतु उससे चित्तमें ग्लानि उत्पन्न होती है. असल वच कलकत्तेमें मिलती है. कहीं कहीं पसारी लोग एक प्रकारकी सफेद २ लकडी वच समझकर वेचते हैं परंतु उसमें सुगंध नहीं होता है और वह विशेष गुणदायकभी नहीं होती है. वचका पाठ सुगंधादि गणमें होनेसे सुगंधयुक्त वचका लेनाही ठीक है और वैद्योंने सुगंधयुक्त वचकोही प्रधान माना है. प्रयोगमें इसकी लकडीकी छाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है. इसका अर्क अग्निजनक और वमनकारक है तथा विबंध, आध्मान और शूल इनको हरता है.

पारसीकवचानामानि ।

पारसीकवचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीति सा ।

भाषा–पारसीकवचा, शुक्ला और हैमवती ये तीन खुरासानी वचके संस्कृत नाम हैं. (मेध्या, श्वेतवचा, षड्ग्रंथा, दीर्घपत्रिका, तीक्ष्णगंधा, मंगल्या, विजया, श्वेता, शतपर्वा, भोगवती, लोना, कर्षणी, वीरयुक्ता ये शुभा, खुरासानी वचके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके खुरासानी वचके नाम.

सं.–पारसीकवचा.
हिं.–खुरासानी वच.
बं.–श्वेतवच, खोरासानी वच.
म.–पांढरे वेखंड.
गु.–धोळां वज, दुधिया वज.
क.–विले वजे.
ते.–तेल्ला वासा.
ता.–वशंबु
फा.–सोसन जर्द.
अ.–उदलवुज.
अं.–Sweet Flag Root स्वीट फ्लॅग्-रूट.
ला.–Achoras Calamus एकोरस केलेमस.

पारसीकवचगुणाः ।

हैमवत्युदिता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः ॥९३॥

भाषा–खुरासानी वचके गुण वचकेही समान हैं, परंतु विशेषकरके यह वातविनाशक है ॥ ९३॥

खुरासानी वचका विशेष विवरण.

खुरासानी वचके गुल्म खुरासानमें अनूपदेशकी रेतली जमीनमें उत्पन्न होते हैं. इसके पत्ते ईखके समान लंबे २ होते हैं, इसमें फूल नहीं आते हैं. इसका अर्क भूतोन्मादको दूर करनेवाला और वलनाशक है.

कुलिञ्जनामानि ।

सुगन्धाप्युग्रगन्धा च ।

बं.–म.–गु.–क.–वायुम हैं. (कुलिंजन, कुलंज, गंधमूल, विलंग. तीक्ष्णमूल कुलंजन, गंधवीज ये कुलीजनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अन्य भाषाके कुलीजनके नाम.

सं.–सुगंधा
हिं.–कुलिंजन, कुलीजन.
वं.–कुलंजन.
म.–कोळिंजन.
गु.–कोलिंजन.
क.–कोळंजन.
फा.–खिरदारु.
अ.–इर्क खोलिंजान.
अं.–Greater Galangal ग्रेटर् गेलंगाल.
ला.–Alpinia Officinarum. आल्पिना ऑफिसिनेरम्.

कुलिंजनगुणाः ।

विशेषात्कफकासनुत् । सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठमुखशोधिनी ॥ ९४ ॥

भाषा–कुलिंजन विशेषकरके कफ तथा खांसीको हरनेवाला, स्वरको उत्तम करनेवाला और हृदय, कंठ तथा मुखको शुद्ध करनेवाला है ॥ ९४ ॥

कुलीजनका विशेष विवरण.

कुलीजनकी वेल होती है. इसकी उत्पत्ति जंगलमें होती है. इसकी आकृति दाखके वेलकीसी होती है. इसके पत्ते नागरपानके समान होते हैं. इसी वेलकी जडको कुलीजन कहते हैं. कोई २ पानहीकी जडको कुलीजन कहते हैं, परंतु यह पानकी जड नहीं है. इसकी मात्रा १ मासेकी है. इसका अर्क स्वरको शुद्ध करनेवाला तथा कंठ और मुखको शुद्ध करनेवाला है.

सुगंधागुणाः ।

अपरा सुगन्धा स्थूलग्रन्थिः यस्या लोके महाभरी इति नाम । स्थूलग्रन्थिः सुगन्धा स्यात्ततो हीनगुणा स्मृता ॥ ९५ ॥

भाषा–जो दूसरी वच सुगंधयुक्त मोटी गांठकी महाभरीनामसे लोकमें प्रसिद्ध है, वह कुलीजनसे गुणोंमें हीन होती है ॥ ९५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके द्वीपांतरवचा (चोवचीनी) के नाम.

सं.-द्वीपांतरवचा, अमृतोपहिता. [चीनी.
हिं.-चोपचीनी, चोव-
बं.-तोपचीनी.
म.-चोपचीनी.
गु.-चोपचीनी.
क.-चोबचीनी.
तै.-फिरंगी चक्का.
यू.-खसिलियर आशसिनी.
फा.-एवन.
अ.-एवन.
अं.-China Root चाइना रूट.
ला.-Smilax China स्माइलॅक्स चाइना.

चोवचीनीति लोके या प्रसिद्धा तस्या गुणाः ।

द्वीपान्तरवचा किञ्चित्तिक्तोष्णा वह्निदीप्तिकृत् ।
विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी ॥
॥९६॥ वातव्याधीनपस्मारमुन्मादं तनुवेदनाम् ।
व्यपोहति विशेषेण फिरङ्गामयनाशिनी ॥९७॥

भाषा-चोबचीनी किंचित् कडवी, गरम और जठराग्निको दीपन करनेवाली है तथा विबंध, आध्मान (अफरा) और शूल इन रोगोंका नष्ट करनेवाली, मल मूत्रका शोधन करनेवाली, वातव्याधि, अपस्मार (मृगी), उन्माद तथा शरीरकी पीडाको नष्ट करनेवाली है तथा विशेषकरके फिरंग (गरमी) रोगको नष्ट करनेवाली है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

चोपचीनीका विशेष विवरण ।

चोवचीनीकी उत्पत्ति चीन और यूरोपखंडमें होती है. इसके पत्ते असगंधके समान होते हैं. इसकी गांठें तोडनेमें दृढ और लाल रंगकी होती हैं, भारी गांठवाली चोवचीनी अच्छी होती है. चीन देशकी चोबचीनीभी अच्छी होती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

हवुषाद्वयं तन्मध्ये प्रथमं फलं मत्स्यसदृशं विस्रगन्धं द्वितीयमश्वत्थफलसदृशं मत्स्यगन्धं; तयोर्नामानि ।

हवुषा वपुषा विस्रा पराश्वत्थफला मता । मत्स्यगन्धा प्लीहहन्त्री विषघ्नी ध्वांक्षनाशिनी९८

भाषा-हबुषा, वपुषा, विस्रा ये प्रथम प्रकारके हाऊबेरके संस्कृत नाम हैं. (विस्रगंधा, विगंधिका, विपुषा, हपुषा, विश्रगंधा, विश्री, कुष्ठघ्नी, विषदूषणी ये प्रथम प्रकारके हाऊबेरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) अश्वत्थफला, मत्स्यगंधा, प्लीहहंत्री, विषघ्नी, ध्वांक्षनाशिनी ये दूसरे प्रकारके हाऊबेरके संस्कृत नाम हैं. (स्वल्पफला, कच्छुघ्नी, प्लीहशत्रु, कफघ्नी, अफराजिता, यक्षघ्ना, वपुषा, ध्वांक्षनाशिकी, विश्रगंधा, विषहा, चित्रगंधा, दुर्गंधा ये दूसरे प्रकारके हाऊबेरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ९८ ॥

अनेक भाषाके हाऊबेरके नाम.

सं.-हपुषा.
हिं.-बडी हाऊबेर, छोटी हाऊबेर.
बं.-हबुषा.
मं.-थोरली शेरणी, लहान शेरणी, झाऊ.
गु.-मोटी शेरणी, नानी शेरणी, होश.
क.-हिरे हव्वे, किरि हव्वे, परडुहव्वे.
तै.-पेद्द हपुषा, चिन्न हपुषा.
उत्.-बडी झाऊ.
फा.-हजरतजहूर.
ला.-Thevetia Nerifolia थेवेटिया नेरिफोलिया.

हबुषाद्वयगुणाः ।

हवुषा दीपनी तिक्ता मृदूष्णा तुवरा गुरुः ।
पित्तोदरसमीरार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृत् ॥ परा-
प्येतद्गुणा प्रोक्ता रूपभेदो द्वयोरपि ॥ ९९ ॥

भाषा-हाऊबेर अग्निप्रदीपक, कडवी, कोमल, गरम, कसैली तथा भारी है और पित्त, उदररोग, वात, ववासीर, संग्रहणी, गुल्म (गोला) और शूलरोगको नष्ट करती है. दूसरे प्रकारकी हाऊबेरकेभी इसी प्रकार गुण होते हैं, किंतु इन दोनोंके रूपमें केवल भेद है ॥ ९९ ॥

दोनों हाऊबेरका विवरण ।

हाऊबेर दो प्रकारका है, एक चकोही वाला और दूसरा छोटे पत्तोंवाला. की छाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नदीके किनारे अथवा तालावके किनारे सजल जमीनमें होते हैं. इसके पत्ते झुमकेदार तथा नागचंपेके पत्तोंके समान छः अंगुलतक लंबे होते हैं. इस वृक्षका रंग लाल होता है. यह वृक्ष तीन हाथसे अधिक ऊंचा नहीं होता. वडे पत्तोंवाले हाऊवेरके वृक्ष कोंकणदेशमें अधिकतासे पाये जाते हैं और छोटे पत्तोंवाले हाऊवेरके वृक्ष चीन जपान आदि देशमें अधिकतासे पाये जाते हैं. इसके पत्ते शरूके पत्तोंके समान वहुत छोटे २ होते हैं. ये वृक्षभी ललाई लिये हुए तथा जालदार और वडे घटाटोपसे विशेषही सुंदर दिखाई देते हैं. इसकी प्रतिनिधि चव्य है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

विडंगनामगुणाः ।

पुंसि क्लीबे विडङ्गः स्यात्कृमिघ्नो जन्तुनाशनः।
तंडुलश्च तथा वेल्लममोघा चित्रतंडुला॥१००॥

भाषा–विडंग, कृमिघ्न, जंतुनाशन, तंडुल, वेल्ल, अमोघा, चित्रतंडुला ये वायविडंगके संस्कृत नाम हैं. (विडंगा, कृमिहा, तंडुला, तंडुलीयका, वातारि, जंतुघ्नी, मृगगामिनी, कृमिजित्, कृमिहंत्री, कैरली, गह्वरा, मोघा, कपाली, वरा, सुचित्रवीजा, जंतुहंत्री, कैरल, भृंगगामिनी, कृमिहर, भूतघ्न, कृमिहृत्, जंतुघ्न, कृष्णतंडुल, कैराला, तंडुलाधिका, क्षुद्रतंडुला, जंतुहारिणी, कृमिशत्रु, भस्मक, कृमिकंटक, कैराल, केवल, जंतुनाशक, रसायन, पावक, कृमिरिपु, गर्दभ, कापाली, चित्रा, वृषणाशन, घोषा, चित्रबीजा ये वायविडंगके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १०० ॥

अनेक भाषाके वायविडंगके नाम.

सं.–विडंग.	तै.–वायुविडंगमु.
हिं.–वायविडंग.	ता.–वायविलम्.
बं.–विडंग.	फा.–वरंग कावली.
म.–वावडिंग.	अ.–वरंज कावली.
गु.–वावडींग, वावडिंग.	अं.–Babreng बेब्रेंग्.
क.–वायुविडंग, वायुविलंग.	ला.–Embelia ribes एंबेलिया रिबेस्.

विडंगगुणाः ।

विडङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वह्निकरं लघु । शूलाध्मानोदरश्लेष्मकृमिवातविबन्धनुत् ॥ १०१ ॥

भाषा–वायविडंग चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, रूखा, जठराग्निप्रदीपक और हलका है तथा शूल, अफरा, उदररोग, श्लेष्मा (कफ), कृमि, वात और मलबंध इनको नष्ट करनेवाला है ॥ १०१ ॥

वायविडंगका विशेष विवरण.

वायविडंगके वृक्ष पहाडकी तलहटी भावरमें अधिकतासे होते हैं. इसके पत्ते कडे चिकने तथा ललाई लिये गोंदनिके पत्तोंके समान होते हैं. इसपर छोटे २ लाल वर्णके फूलोंके गुच्छे आते हैं और इंद्रगोप (वीरवहूटी) के समान लाल गोल फलोंके गुच्छे लगते हैं. इसीके फलके रजको कोई कवीला कहते हैं. इसके दर्पका नाशक कतीरा है. इसकी प्रतिनिधि वाकलाकी फलीके बीज हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है. पेटके चपटे कीडे काढनेको सूखे वायविडंगोंको पीसकर मक्खन और मिश्रीके साथ मिलाकर नौ वर्षतक उमरवाले वालोंको १ चमचाभर और वडी उमरवाले मनुष्योंको २ चमचाभर देते हैं. छोटे बच्चोंको पिलानेके दूधमें वायविडंगके थोडे दाने मिलानेसे उनके पेटमें वादीका कोप नहीं होता है.

तुम्बुरुफलनामानि ।

तुम्बुरुः सौरभः सौरो वनजः सानुजोऽन्धकः।

भाषा–तुंवुरु, सौरभ, सौर, वनज, सानुज और अंधक ये तुंवरूके संस्कृत नाम हैं. (तुंवरु, अद्रिज, तीक्ष्णवल्क, तीक्ष्णफल, तीक्ष्णपत्र, महामुनि, स्फुटफल, सुगंध, द्विज, सुगंधि, शूलघ्न, सौरज, गंधालु, वित्रिक, तुंबरा, तुंवरक, पश्चिमार्णवतीरज, वीचीतरंगविक्षोभमारुतोद्भूतपल्लव ये तुंवरूके संस्कृतनाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके तुंबरूके नाम.

सं.-तुंबुरु.
हिं.-तुंबरू.
बं.-तुंबरुफल, नेपालिधने.
म.-तिरफळ,चिरफळ.
कों.-तिसळी.
गु.-तुंबरुफल.
क.-तुंबरु.
ला.-Xanthoxylon Alata क्सान्थोक्सिलन् अलाटा.

तुम्बुरुफलगुणाः ।

तुम्बुरु ग्रथितं तिक्तं कटुपाकेऽपि तत्कटु । रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रुच्यं लघु विदाहि च ॥ १०२ ॥ वातश्लेष्माक्षिकर्णौष्ठशिरोरुग्गुरुताकृमीन् । कुष्ठशूलारुचिश्वासप्लीहकृच्छ्राणि नाशयेत् ॥ १०३ ॥

भाषा-तुम्बरू कडवा, पचनेमें चरपरा, रूक्ष, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला, तीक्ष्ण, रुचिकारक, हलका और दाहकारक है तथा वात, कफ, नेत्ररोग, कर्णरोग, ओष्ठरोग, शिरके रोग, भारीपन, कृमि, कोढ, शूल, अरुचि, श्वास, प्लीहा और मूत्रकृच्छ्र इनको नष्ट करनेवाला है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

तुंबरूका विशेष विवरण.

तुंबरूके वृक्ष दक्षिणकी ओर और कोंकण देशमें अधिकतासे पाये जाते हैं, ये वृक्ष बडे २ होते हैं और उनपर कांटे बहुत होते हैं. इसके फल मालकांगुनीके झुमकेके समान जान पडते हैं. जैसे मालकांगुनीके झुमकेमेंसे लाल बीज निकलते हैं वैसे तुंबरूके झुमकेमेंसे मिरचकेसे काले वर्णके बीज निकलते हैं, उनको तोडनेसे उनमेंसे पीले रंगकी मींग निकलती है, उसमें तेलकीसी चिकनाई होती है और उसमें दर्पभी विशेष होता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

वंशलोचननामानि ।

स्याद्वंशरोचना वांशी तुगाक्षीरी तुगा शुभा । त्वक्क्षीरी वंशजा शुभ्रा वंशक्षीरी च वैष्णवी १०४

भाषा-वंशरोचना, वांशी, तुगाक्षीरी, तुगा, शुभा, त्वक्क्षीरी, वंशजा, शुभ्रा, वंशक्षीरी. वैष्णवी ये वंशलोचनके संस्कृत नाम हैं. (वंशलोचना, वंशगा, वैष्णवी, त्वक्सारा, त्वक्क्षीरी, कर्मरी, श्वेता, वंशकर्पूररोचना, तुंगा, रोचनिका, पिंगा, वंशशर्करा, वंशा, क्षीरिका, वंशवर्धिनी, वंशकर्पूर, रोचना ये वंशलोचनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १०४ ॥

अनेक भाषाके वंशलोचनके नाम.

सं.-वंशलोचना.
हिं.-वंशलोचन.
ब.-बाँशकावर.
म.-वंशलोचन.
गु.-बांस कपूर.
क.-वंशरोचना.
तै.-वंशलोचनमु.
फा.-तवाशीर.
अ.-तवाशीर.
अं.-The Siliceous Concretion दि सिलिशस् कॉन्क्रेशन्.
ला.-Bombusa Arundinacia बंबुसा अरंडिनेशिआ.

वंशलोचनगुणाः ।

वंशजा बृंहणी वृष्या बल्या स्वाद्वी च शीतला । तृष्णाकासज्वरश्वासक्षयपित्तास्रकामलाः ॥ हरेत्कुष्ठं व्रणं पाण्डुं कषाया वातकृच्छ्रजित् ॥ १०५ ॥

भाषा-वंशलोचन शरीरकी धातुओंको बढानेवाला, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, स्वादिष्ठ, शीतल है और तृष्णा, खांसी, ज्वर, श्वास, क्षय, पित्त, रुधिरविकार, कामला, कोढ, व्रण, पाण्डुरोग तथा वायुके रोगोंको दूर करनेवाला और कसैला है ॥ १०५ ॥

वंशलोचनका विशेष विवरण.

वंशलोचन बडे और मोटे पोलीजातिके पहाडी बांसोंके भीतर रसके समान गांठ गांठमें होता है, जब बांस पक जाते हैं तब वह नारियलके दूधके तुल्य जम जाता है, उन बांसोंको काट काटकर सुखा देते हैं तब वह रसभी सूख जाता है, जब उन बांसोंको फोडते हैं तब गांठ गांठमेंसे सफेद सफेद वह सूखा हुआ रस निकलता है उसीको वंशलोचन कहते हैं. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समुद्रफेननामानि ।

समुद्रफेनः फेनश्च डिण्डीरोऽब्धिकफस्तथा ।

भाषा–समुद्रफेन, फेन, डिण्डीर, अब्धिकफ ये समुद्रझागके संस्कृत नाम हैं. (अर्णवजमल, अर्णवज, सिन्धुकफ, डिण्डिर, समुद्रकफ, जलहास, फेनक, उदधिमल, श्वेतधामा, लवणोदधिसम्भव, वार्द्धिफेन, पयोधिज, सुफेन, अब्धिडिण्डीर, सामुद्र, शुष्काशुष्क, विंध्याह्व, उदधिफेन और सारमल ये समुद्रझागके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाय जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके समुद्रझागके नाम.

सं.–समुद्रफेन.	फा.–कफेदरिया.
हिं.–समुद्रफेन, समुद्रझाग.	अ.–जुबदुलूबेदर.
बं.–समुद्रफेन.	इं.–Cattlefishbone कॅट्लफिशबोन.
म.–समुद्रफेण.	
गु.–समुद्रफीण.	
क.–कडलनागले.	ला.–Sepia Offisinalis सेपिया ऑफिसिनेलिस.
ते.–सामुद्रनालिके.	

समुद्रफेनगुणाः ।

समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलश्च सः । कषायो विषपित्तघ्नः कर्णरुक्कफहृत्सरः ॥१०६॥

भाषा–समुद्रफेन नेत्रोंको हितकारी, मलभेदक, शीतल, चंचल, कषायरसयुक्त है और विष, पित्त, कर्णरोग तथा कफरोग इनका नाशक है तथा हलका है ॥ १०६ ॥

समुद्रझागका विशेष विवरण.

समुद्रके झागोंका खार जो मछली खा जाती है और फिर उसको उगल देती है. वह जो एकत्र हो जाता है उसको समुद्रफेन कहते हैं. यहभी एक जातिके पत्थर हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

अथ अष्टवर्गस्य लक्षणगुणाः ।

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके । अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः ॥१०७॥

अष्टवर्गो हिमः स्वादुर्बृंहणः शुक्रलो गुरुः । भग्नसन्धानकृत्कामबलासबलवर्द्धनः । वातपित्तास्रतृद्दाहज्वरमेहक्षयप्रणुत् ॥ १०८ ॥

भाषा–जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि इन आठ औषधियोंके मिलनेसे अष्टवर्ग होता है ऐसा चरक आदि मुनियोंने कहा है. यह अष्टवर्ग शीतल, मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, भारी, टूटे हुएके जोडनेवाला है और काम, कफ तथा बलको बढानेवाला है और वात, पित्त, रक्त, तृषा, दाह, ज्वर, प्रमेह तथा क्षय इन रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

तत्र जीवकर्षभकयोरुत्पत्तिलक्षणानि ।

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ । रसोनकन्दवत्कन्दौ निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥ जीवकः कूर्चकाकार ऋषभो वृषशृङ्गवत् ॥ १०९॥

भाषा–जीवक और ऋषभक ये दोनों हिमालय पर्वतके शिखरमें उत्पन्न होते हैं. ये दोनों कंद लहसुनकंदके सदृश भीतरसे खाली होते हैं और उनके पत्ते सूक्ष्म होते हैं. जीवकका आकार कुँचीके सदृश और ऋषभकका आकार बैलके सींगके सदृश होता है ॥ १०९ ॥

जीवकनामानि ।

जीवको मधुरः शृङ्गो ह्रस्वाङ्गः कूर्चशीर्षकः ।

भाषा–जीवक, मधुर, शृंग, ह्रस्वाङ्ग, कूर्चशीर्षक ये जीवकके संस्कृत नाम हैं. (कूर्मशीर्षक, क्ष्वेड, दीर्घायु, शृंगक, प्रिय, शृंगकूर्च, शीर्ष, मधुरक, चिरजीवक, जीवन, प्राणद, जीव्य, भृंगाह्व, चिरञ्जीव, क्षीरजीवी, वृद्धिद, आयुष्मान्, जीवद, मांगल्य और बलद ये जीवकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

ऋषभनामानि ।

ऋषभो वृषभो धीरो विषाणी द्राक्ष इत्यपि ।

भाषा–ऋषभ, वृषभ, धीर, विषाणी, द्राक्ष ये ऋषभके संस्कृत नाम हैं. (दुर्द्धर, मातृक, वल्लुर, नृप, ऋषभक, वृष, वीर, पृथिवीपति, गोपति, ककुद्मान्, पुंगव, वोढी, शृंगी, धुर्य, भूपति, कामी, रूक्षप्रिय, उक्षा, लांगली, गोबन्धुर, बन्धूर, गोरक्ष, वनवासी, ऋषिप्रिय, मधुर, शीतल और कामद ये ऋषभके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवकर्षभकगुणाः ।

जीवकर्षभको बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ ।
मधुरौ पित्तदाहास्रकार्श्यवातक्षयापहौ ॥ ११० ॥

भाषा-ये दोनों कंद बलदायक, शीतल, वीर्यको तथा कफको बढानेवाले और मधुर हैं. तथा पित्त, दाह, रक्त, दुर्बलता, वायु और क्षय इनको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ११० ॥

मेदामहामेदयोरुत्पत्तिलक्षणानि ।

महामेदाभिधः कन्दो मोरङ्गादौ प्रजायते ।
महामेदाखनामेदा स्यादित्युक्तं मुनीश्वरैः ॥ १११ ॥ शुक्लार्द्रकनिभः कन्दो लताजातः सुपाण्डुरः । महामेदाभिधो ज्ञेयो मेदालक्षणमुच्यते ॥ ११२ ॥ शुक्लकन्दो नखच्छेद्यो मेदोधातुमिव स्रवेत् । यः स मेदेति विज्ञेयो जिज्ञासातत्परैर्जनैः ॥ ११३ ॥

भाषा-महामेदा नामक कंद मोरंग आदि स्थानोंमें होता है और इस महामेदाकी खानिमेंही मेदा होती है ऐसा मुनीश्वरोंने कहा है. महामेदानामक कंद सूखे हुए अदरकके सदृश होता है, पीले रंगकी लतासे उत्पन्न होता है. ये महामेदाके लक्षण हैं. अब मेदाके लक्षण कहते हैं. मेदाकाभी कंद श्वेत होता है और जिसमें नखके छेदनेसे मेदा धातुके सदृश रस निकले उसको मेदा जाने ॥ १११-११३ ॥

मेदानामानि ।

शल्यपर्णी मणिच्छिद्रा मेदा मेदोभवाध्वरा ।

भाषा-शल्यपर्णी, मणिच्छिद्रा, मेदा, मेदोद्भवा, अध्वरा ये मेदाके संस्कृत नाम हैं. (धीरा, मधुरा, जीवनी, रसा, श्रेष्ठा, विभावरी, वसा, शल्यपर्णिका, मेदसारा, स्नेहवती, मेदिनी, स्निग्धा, द्रवा, साध्वी, शल्यदा, बहुरन्ध्रिका, मेदोवती, पुरुषदान्तिका, छिद्रबहुला, भव्या, जीवनिका और स्वल्पपर्णी ये मेदाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

महामेदानामानि ।

महामेदा वसुच्छिद्रा त्रिदन्ती देवतामणिः ॥ ११४ ॥

भाषा-महामेदा, वसुच्छिद्रा, त्रिदन्ती, देवतामणि ये महामेदाके संस्कृत नाम हैं. (देवमणि, विपांडुरा, जीवनी, पांशुरोगिणी, महामेद, पुरोद्भवा, देवेष्ट, सुरमेदा, दिव्या, देवगन्धा, वृक्षार्हा, सोमा, देवेष्टा, सुरामेदा और मेदोद्भवा ये महामेदाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ११४ ॥

मेदायुगगुणाः ।

मेदायुगं गुरु स्वादु वृष्यं स्तन्यकफावहम् ।
बृंहणं शीतलं पित्तरक्तवातज्वरप्रणुत् ॥ ११५ ॥

भाषा-मेदा और महामेदा भारी, स्वादिष्ठ, वीर्यवर्द्धक, दुग्ध तथा कफको बढानेवाली, पुष्टिकारक, शीतल, रक्तपित्त तथा वातज्वरको दूर करनेवाली है ॥ ११५ ॥

काकोली क्षीरकाकोल्योरुत्पत्तिलक्षणानि ।

जायते क्षीरकाकोली महामेदोद्भवस्थले । यत्र स्यात्क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ॥ ११६ ॥ पीवरीसदृशः कन्दः क्षीरं स्रवति गन्धवान् । स प्रोक्तः क्षीरकाकोली काकोलीलिङ्गमुच्यते ॥ ११७ ॥ यथा स्यात्क्षीरकाकोली काकोल्यपि तथा भवेत् । एषा किञ्चिद्भवेत्कृष्णा भेदोऽयमुभयोरपि ॥ ११८ ॥

भाषा-जहां महामेदा उत्पन्न होती है वहांही क्षीरकाकोली होती है और जहां क्षीरकाकोली होती है वहांही काकोलीभी होती है. क्षीरकाकोलीका कंद असगंधके सदृश होता है और गंधयुक्त दूध स्रवता है. अब काकोलीके लक्षण कहते हैं. जैसी क्षीरकाकोली होती है वैसीही काकोलीभी होती है, परन्तु काकोली कुछ काली होती है, इसमें केवल इतनाही भेद है ॥ ११६-११८ ॥

काकोलीनामानि ।

काकोली वायसोली च वीरा कायस्थिका तथा ।

भाषा-काकोली, वायसोली वीरा, कायस्थिका ये काकोलीके संस्कृत नाम हैं. (शीतपाकी, वयस्या, वायसोलिका, क्षीरा, धीरा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुक्ला, मेदुरा, ध्वांक्षिका, स्वादुमांसी, वयस्था, जीवंती, मधुरा, शुक्लक्षीरा, पयस्विनी, कायस्थिका और जीवनीया ये काकोलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

क्षीरकाकोलीनामानि ।

सा शुक्ला क्षीरकाकोली वयस्था क्षीरवल्लिका । कथिता क्षीरिणी धारा क्षीरशुक्ला पयस्विनी ॥ ११९ ॥

भाषा–सफेद काकोली क्षीरकाकोली कहाती है. क्षीरकाकोली, वयस्था, क्षीरवल्लिका, कथिता, क्षीरिणी, धारा, क्षीरशुक्ला, पयस्विनी ये क्षीरकाकोलीके संस्कृत नाम हैं. (पयस्या, महावीरा, क्षीरकाकोलिका, सुकोली, अष्टमी, क्षीरविषाणिका, जीववल्ली, जीवशुक्ला, क्षीरा, क्षीरवल्ली, वयस्या, क्षीरमधुरा और दुग्धाढ्या ये क्षीरकाकोलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ११९ ॥

द्विविधकाकोलीगुणाः ।

काकोलीयुगलं शीतं शुक्रलं मधुरं गुरु । बृंहणं वातदाहास्रपित्तशोषज्वरापहम् ॥ १२० ॥

भाषा–दोनों काकोली शीतल, वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, शरीरकी धातुओंकी बढानेवाली हैं और वात, दाह, रुधिरके रोग, पित्त, शोष तथा ज्वर इनको नष्ट करनेवाली हैं ॥ १२० ॥

ऋद्धिवृद्ध्योरुत्पत्तिलक्षणानि ।

ऋद्धिर्वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशयामले । श्वेतलोमान्वितः कन्दो लताजातः सरन्ध्रकः ॥ १२१ ॥ स एव ऋद्धिर्वृद्धिश्च भेदमप्येतयोर्ब्रुवे । तूलग्रन्थिसमा ऋद्धिर्वामावर्त्तफला च सा ॥ वृद्धिस्तु दक्षिणावर्त्तफला प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ १२२ ॥

भाषा–ऋद्धि और वृद्धि ये दोनों कन्द कोशयामल देशमें होते हैं. ये कन्द लता (वेलों) में छिद्रोंयुक्त और श्वेत रोमवाले होते हैं. अब इनमें जो भेद है सो कहते हैं ऋद्धि कपासकी गांठके सदृश बांई ओर घूमे हुए फलवाली होती है और वृद्धिका फल दांई ओर घूमा हुआ होता है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

ऋद्धिवृद्धिनामानि ।

ऋद्धियुग्मं सिद्धिलक्ष्म्यौ वृद्धेरप्याह्वया इमे ॥ १२३ ॥

भाषा–ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी ये ऋद्धिके संस्कृत नाम हैं. (प्राणप्रिया, वृष्या, प्राणदा, सम्पदाह्वया, योग्या, प्राणप्रदा, सिद्धा, जीवदात्री, योग्या, चेतनीया, रथाङ्गी, मंगल्या, लोककान्ता, जीवश्रेष्ठा और यशस्या ये ऋद्धिके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) वृद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी ये वृद्धिके संस्कृत नाम हैं. (बोधनिका, प्रिया, सुरोत्तमा, योग्या, ऋद्धि, पुष्टिदा, वृद्धिदात्री, मंगल्या, श्री, सम्पत्, आशी, जनेष्टा, भूति, मुत्, सुख और जीवभद्रा ये वृद्धिके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १२३ ॥

ऋद्धिगुणाः ।

ऋद्धिर्बल्या त्रिदोषघ्नी शुक्रला मधुरा गुरुः । प्राणैश्वर्यकरी मूर्च्छा रक्तपित्तविनाशिनी १२४

भाषा–ऋद्धि बलदायक, त्रिदोषनाशक, वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ठ, भारी, आयु तथा ऐश्वर्यको बढानेवाली है और मूर्च्छा तथा रक्तपित्तको नष्ट करनेवाली है ॥ १२४ ॥

वृद्धिगुणाः ।

वृद्धिर्गर्भप्रदा शीता बृंहणी मधुरा स्मृता । वृष्या पित्तास्रशमनी क्षतकासक्षयापहा १२५॥

भाषा–वृद्धि स्त्रियोंको सुखदायक और गर्भधारण करानेवाली है तथा शीतल, पुष्टिकारक, मधुर, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा रुधिरको शांत करनेवाली है और क्षत, खांसी तथा क्षयको क्षय करनेवाली है ॥ १२५ ॥

राज्ञामप्यष्टवर्गस्तु यतोऽयमतिदुर्लभः । तस्मादस्य प्रतिनिधिर्ग्रहीयात्तद्गुणं भिषक् ॥ ॥ १२६ ॥ मुख्यसदृशः प्रतिनिधिः ॥

चू इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-यह अष्टवर्ग राजाओंकोभी बहुत दुर्लभ है अर्थात् नहीं प्राप्त होता है इसलिये वैद्य उसके सदृश गुणवाली प्रतिनिधिका उपयोग करे॥ १२६॥

अष्टवर्गस्य प्रतिनिधिः ।

मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्द्वेऽपि चासति । वरीविदार्यश्वगन्धावाराहीश्च क्रमात् क्षिपेत् ॥ १२७ ॥ मेदामहामेदा स्थाने शतावरीमूलम् । जीवकर्षभकस्थाने विदारीमूलम् । काकोली क्षीरकाकोली स्थाने अश्वगन्धामूलम् । ऋद्धिवृद्धिस्थाने वाराहीकन्दं गणैस्तत्तुल्यं क्षिपेत् ॥

भाषा-मेदा और महामेदाके अभावमें शतावर, जीवक और ऋषभकके अभावमें विदारीकंद, काकोली और क्षीरकाकोलीके अभावमें असगन्ध और ऋद्धि तथा वृद्धिके अभावमें वाराहीकंद डाले ॥ १२७ ॥

अष्टवर्गका विशेष विवरण.

अष्टवर्ग जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि ये आठों औषधिकन्द हैं और पर्वतोंमें होते हैं. इनके लक्षण और आकृति तथा उत्पत्ति अनेक ग्रन्थकारोंने लिखी हैं परन्तु यह कलियुगमें राजाओंकोभी मिलनी कठिन है; ऐसा लिखा है, इसलिये इनके अभावमें इनकी प्रतिनिधिः ही लेनी चाहिये.

मधुयष्टीनामानि ।

यष्टीमधु तथा यष्टीमधुकं क्लीतकं तथा । अन्यत् क्लीतनकं तत्तु भवेत्तोये मधूलिका॥ १२८॥

भाषा-यष्टीमधु, यष्टीमधुक, क्लीतक, क्लीतनक ये मुलहठीके संस्कृत नाम हैं. (यष्टी, मधुयष्टी, यष्टयाह्वा, यष्टयाह्विका, मधुक, यष्टिका, मधुयष्टिका, यष्टिमधु, यष्टिमधुका, यष्टीक, यष्टयाह्व, यष्टयाह्वक, यष्टि, मधुस्रवा और मधुयष्टिक ये मुलहठीके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) जलमें होनेवाली मुलहठीको मधूलिका कहते हैं ॥ १२८ ॥

अनेक भाषाके मुलहठीके नाम.

सं.-यष्टीमधु.	तै.-यष्टिमधुकमु.
हिं.-मुलहठी, मीठी लकडी.	फा.-बेखमहक.
बं.-यष्टीमधु.	अ.-असलुस् सुस्.
म.-ज्येष्ठीमध.	अं.-Liquorice Root लिकरिस् रूट्.
गु.-जेठीमध.	ला.-Glycyrrhiza Glabra ग्लिसिरिझा ग्लेब्रा.
कों.-गोडकाष्ठ.	
क.-यष्टीमधु, शींय्कट्टगे.	

मधुयष्टीगुणाः ।

यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत् । स्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्रजित् ॥ व्रणशोथविषच्छर्दितृष्णाग्लानिक्षयापहा ॥ १२९ ॥

भाषा-मुलहठी, शीतल, भारी, स्वादिष्ठ, नेत्रोंको हितकारी, बल तथा वर्णके लिये उत्तम, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, केशोंको और स्वरको हितकारी है तथा पित्त, वात, रुधिरविकार, व्रणशोथ, विष, वमन, तृषा, ग्लानि तथा क्षय इनको नष्ट करनेवाली है ॥ १२९ ॥

मुलहठीका विशेष विवरण.

मुलहठीके क्षुप हिमालय पर्वत, कोचीन, चीन तथा दक्षिण यूरोपमें होते हैं. इसके पत्ते छोटे २ और गोल होते हैं. इसकी फली छोटी और पतली होती है. इसके फूल लाल होते हैं और इसकी जड मीठी और तिक्त होती है. इसकी लकडीकी मात्रा २ मासेकी है.

काम्पिल्लनामानि ।

काम्पिल्लः कर्कशश्चन्द्रो रक्ताङ्गो रोचनोऽपि च ।

भाषा-काम्पिल्ल, कर्कश, चन्द्र, रक्तांग, रोचन ये कबीलेके संस्कृत नाम हैं. (कम्पिल्लक, काम्पील, कम्पिल्य, काम्पिल्य, रेचनी, काम्पिल्लका, रेचना, पिकाक्ष, राचनी, लघुपत्रक, कम्पील्लक, रेची, रेचन, रंजक, लोहिताङ्ग, रक्तचूर्णक, रक्तफल, नदीवास, बहुपुष्प और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुफल ये कबीलेके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कबीलेके नाम.

सं.–कांपिल्ल.
हिं.–कबीला, कमीला.
बं.–कमलागुंडि, कामलागुंडी.
म.–कपिला.
गु.–कपिलो.
क.–कंपिल्लक.
फा.–कन्विलाय.
अ.–किन्वीर.
अं.–Kamila केमिला, Rottlera रोट्लीरा.
ला.–Rottlera Tinctoria रोट्लीरा टिंक्टोरिआ.

काम्पिल्लगुणाः ।

काम्पिल्लः कफपित्तास्रकृमिगुल्मोदरव्रणान् । हंति रेची कटूष्णश्च मेहानाहविषाश्मनुत् १३०

भाषा–कबीला रेचक, चरपरा, गरम है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, कृमि, गुल्म, उदररोग, व्रण, प्रमेह, आनाह, विष तथा पथरी इन सबको नष्ट करनेवाला है ॥ १३० ॥

कबीलेका विशेष विवरण.

कारामंडल, कनकान, त्रिवांकुर, महीसूर, मुंबई और आसामके किसी २ अंशमें और भारतवर्षके दूसरे पहाडी देशोंमें कबीलेके वृक्ष उत्पन्न होते हैं. इसके पत्ते गूलरके समान होते हैं और इसके फल छोटे बेरके समान होते हैं, उनपर लाल २ रजसी होती है उसीको कबीला कहते हैं. बिकनेके लिये जो कबीला आता है वह साधारणतः फलसे झाडकर निकाला जाता है. कोई वायविडंगके ऊपर जो लाल २ रजसी होती है, उसीको कबीला मानते हैं. वे कहते हैं कि, वायविडंगोंको बांसकी झहरी टोकरियोंमें डालकर और नीचे कपडा बिछाकर पांवोंसे खूब मलते हैं तो उनका रज छूटकर नीचे गिरता है. वही कबीला है. कोई पर्वतीय वृक्षके डालीपर जो गांठसी होती है उसमें जो लाल चूर्णसा निकलता है उसको कबीला मानते हैं. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

आरग्वधनामानि ।

आरग्वधो राजवृक्षः शम्याकश्चतुरंगुलः । आरेवतो व्याधिघातः कृतमालः सुवर्णकः ॥ कर्णिकारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्गः स्वर्णभूषणः॥ १३१॥

भाषा–आरग्वध, राजवृक्ष, शम्याक, चतुरंगुल, आरेवत, व्याधिघात, कृतमाल, सुवर्णक, कर्णिकार, दीर्घफल, स्वर्णाङ्ग, स्वर्णभूषण ये अमलताके संस्कृत नाम हैं. (जठरनुत्, चक्रपरिव्याध, सम्यक्, मन्थान, रोचन, नृपद्रुम, हिमपुष्प, राजतरु, कण्डूघ्न, महाकर्णिकार, ज्वरान्तक, अरुज, स्वर्णपुष्प, स्वर्णद्रु, कुष्ठसूदन, कर्णाभरणक, महाराजद्रुम, आरोग्याशिम्बी, व्यथान्तक, आमहा, स्वर्णस्थाली, रेचन, कुण्डली, हेमपुष्प, शेफालिका, नक्तमाल, स्वर्णवृक्ष, सारफल, कुष्ठघ्न और द्रुमोत्पल ये अमलतासके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १३१ ॥

अनेक भाषाके अमलतासके नाम.

सं.–आरग्वध.
हिं.–अमलतास, घनवहेडा, किरवारो.
बं.–सोंदाल, सोनालु, एखालनडी.
म.–बाहवा, थोर वाहवा.
गु.–गरमालो, मोटो गरमालो.
उत्.–सुनारि.
क.–हेग्गके.
तै.–रेल्लाकाया.
तु.–रुक्के, कायिसारा.
ता.–कोमरे.
मला.–कट्टुकोना.
फा.–खियारे चंबर.
अ.–खियारे शंबर.
अं.–Pudding pipe-tree पुडिंग् पाइप्ट्री.
ला.–Cassia Fistula केशिया फिस्चुला.

आरग्वधगुणाः ।

आरग्वधो गुरुः स्वादुः शीतलः स्रंसनो गुरुः । ज्वरहृद्रोगपित्तास्रवातोदावर्त्तशूलनुत् ॥१३२॥

भाषा–अमलतास भारी, स्वादिष्ठ, शीतल, स्रंसन (मलादिकको ढीला करनेवाला) और गुरु है तथा ज्वर, हृद्रोग, पित्त, रक्तविकार, वात, उदावर्त तथा शूलको नष्ट करनेवाला है ॥ १३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आरग्वधफलगुणाः ।

तत्फलं स्रंसनं रुच्यं कुष्ठपित्तकफापहम् । ज्वरे तु सततं पथ्यं कोष्ठशुद्धिकरं परम् ॥ १३३ ॥

भाषा-इसकी फली मलको शिथिल करनेवाली और रुचिकारी है तथा कोढ, पित्त तथा ज्वरको नष्ट करनेवाली है. यह ज्वरमें सर्वदा पथ्य और कोठेको अत्यंत शुद्ध करनेवाली है ॥ १३३ ॥

अमलतासका विशेष विवरण.

अमलतासका वृक्ष बडा होता है. इसके पत्ते बडी जामुनके समान होते हैं और वे शाखाओंमें दोनों ओर आमने सामने लग रहते हैं. इसके फूल पांच २ पंखडीके पीले २ प्रत्येक डालीमें बहुतसे होते हैं. इसकी फली २ बालिस्तसे लेकर ४ बालिस्ततक लंबी होती है. इसके भीतर काला गूदा और इमलीकेसे चीयां निकलते हैं. इसका गूदाही प्रयोगमें लिया जाता है. अनेक चमडीके रोगोंमें इसके पत्तोंकी मालिश आदि करते हैं. इसके गूदेके ५ अंशमें ३ अंश शर्करा होती है और पेक्टिन् नामक द्रव्य और गोंदभी होता है. इसकी मात्रा ४ मासेकी है.

कटुकानामानि ।

कट्वी तु कटुका तिक्ता कृष्णभेदा कटुम्भरा । अशोका मत्स्यशकला चक्राङ्गी शकुलादनी ॥ मत्स्यपित्ता काण्डरुहा रोहिणी कटुरोहिणी ॥ १३४ ॥

भाषा-कट्वी, कटुका, तिक्ता, कृष्णभेदा, कटुम्भरा, अशोका, मत्स्यशकला, चक्राङ्गी, शकुलादनी, मत्स्यपित्ता, कांडरुहा, रोहिणी, कटुरोहिणी ये कुटकीके संस्कृत नाम हैं. (काण्डेरुहा, अरिष्टा, तिक्तरोहणिका, जननी, तिक्तरोहिणी, नकुलासादनी, शतपर्वा, द्विजाङ्गी, मलभेदिनी, अशोकरोहिणी, कृष्णा, कृष्णभेदी, महौषधी, अंजनी, कटु, केदारकटुका, वातघ्नी, ब्राह्मणांगी, मत्स्यवित्रा, आमघ्नी, सादनी, सिंही, बहुला, जनी, विप्रांगी, भद्रा, वान्तिदा, कटंभरा और अतिक्तिका ये कटुकीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १३४ ॥

अनेक भाषाके कुटकीके नाम.

सं.-कटुका.
हिं.-कुटकी.
बं.-कटकी.
म.-कुटकी, केदार कुटकी.
गु.-कडु.
क.-कटुकी, कतिगरबु.
ते.-कटुकरोहिणी.
ता.-कटुरोहिणी.
फा.-खर्बकेसियाह.
अ.-खर्बक, अस्वद, खर्बके अवीयद.
अं.-Black Hellebore ब्लाक् हेल्लेबोर.
ला.-Picrorrihiza Kurroa पिकोह्रिजा कुर्रोआ.

कटुकागुणाः ।

कटी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः । भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा ॥ प्रमेहश्वासकासास्रदाहकुष्ठकृमिप्रणुत् ॥ १३५ ॥

भाषा-कुटकी रसमें कडवी, पाकमें चरपरी, रूखी, शीतल, हलकी, मलभेदक, अग्निदीपक, हृदयको हितकारी है और कफ, पित्त, ज्वर, प्रमेह, श्वास, खांसी, रुधिरविकार, दाह, कोढ तथा कृमिरोगको नष्ट करनेवाली है ॥ १३५ ॥

कुटकीका विशेष विवरण.

कुटकीके गुल्म हिमालयके समीप पर्वतोंके जंगलमें उत्पन्न होते हैं. इसके पत्ते अंडेके समान आकृतिवाले होते हैं और उनके नीचेका भाग बडा और बगल खांडेत होती है. इसके फूल नीले गुच्छोंमें होते हैं. कुटकी दो प्रकारकी है, कृष्णा (काली) और पीत (पीली). पीले रंगकी कुटकी नेत्ररोगोंको नष्ट करती है. प्रयोगमें इसकी जड लेते हैं. इसकी मात्रा ५ रत्तीसे लेकर २ मासेतककी है.

किरातकनामानि ।

किरततिक्तः कैरातः कटुतिक्तः किरातकः । काण्डतिक्तो नार्यतिक्तो भूनिम्बो रामसेनकः ॥ किरातकोऽन्यो नैपालः सोऽल्पतिक्तो ज्वरान्तकः ॥ १३६ ॥

भाषा-किरततिक्त, कैरात, कटुतिक्त, किरातक, कांडतिक्त, नार्यतिक्त, भूनिंब और रामसेनक ये चिरायतेके संस्कृत नाम हैं. (हेम,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनार्यतिक्त, तिक्तक, चिरातिक्त, सुतिक्तक, चिराटिका, कटुतिक्ता, कैरातक, कैरातातिक्त, कांडीतिक्तक ये चिरायतेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं). अर्धातिक्त, नैपाल ज्वरांतक ये नैपालदेशके चिरायतेके संस्कृत नाम हैं. (नेपालनिंब, तृणनिंब, नाडीतिक्त, निद्रारि, सन्निपातहा ये नैपालदेशके चिरायतेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १३६ ॥

अनेक भाषाके चिरायतेके नाम.

सं.–किराततिक्त, नैपाल.	क.–नेलवंउचु.
हिं.–चिरायता.	तै.–नेलामेमु.
बं.–चिरता, चिराता, नेपालनिंब.	फा.–नेनिहाद.
म.–किराईत, काडेकिराईत.	अ.–कसबुज, जारिरा.
गु.–करियातु.	अं.–Chireta चिरेता.
	ला.–Sovirtia Chirata स्विर्टिया चिरेटा.

किरातगुणाः ।

किरातः सारको रूक्षः शीतलस्तिक्तको लघुः । सन्निपातज्वरश्वासकफपित्तास्रदाहनुत् ॥ कासशोथतृषाकुष्ठज्वरव्रणकृमिप्रणुत् ॥ १३७ ॥

भाषा–चिरायता दस्तावर, रूखा, शीतल, कडवा, हलका है और सन्निपातज्वर, श्वास, कफ, पित्त, रुधिरविकार, दाह, खांसी, सूजन, तृषा, कुष्ठ, ज्वर, व्रण और कृमिरोगको भंजन करता है ॥ १३७ ॥

चिरायतेका विशेष विवरण.

भारतवर्षमें प्रायः ३७ प्रकारका चिरायता होता है और संपूर्ण पृथ्वीमें १८० प्रकारके चिरायतेके गुल्म हैं ऐसा मालूम हो गया है. ह गुल्म Gentianacex श्रेणीमें है. हिंदुस्थाका चिरायता Gentiana (जेनासियान) समधर्मी है. साधारण चिरायता (जिसको कार्यमें लाते हैं) हिमालयपर्वतमें चार ारसे लेकर दश हजार फूटकी ऊंचाईपर पन्न होता है. खाशिया पहाडमें चार पांच हजार की ऊंचाईपरभी चिरायता उत्पन्न होता है. चिरायतेके गुल्म नैपाल तथा कोंकण देशमेंभी उत्पन्न होते हैं. चिरायतके वृक्ष प्रतिवर्ष उत्पन्न होते हैं. इनकी ऊंचाई दो फूटसे लेकर पांच फूटतक होती है. इसके पत्ते लंबे २ और छोटे होते हैं. इनके कांड गोल और शाखाशून्य होते हैं. शरत्कालमें इन वृक्षोंपर सफेद सफेद फूल आते हैं इसी समयमें इन वृक्षोंको जडके साथ उखाडकर सुखा लेते हैं. इसके दो भेद हैं एक कडुवा और दूसरा मीठा. इसका सर्वांग प्रयोगमें लिया जाता है. रासायनिक उपायसे चिरायतेके वीर्यको निकालकर श्रेष्ठ बलकारी औषधि तैयार करते हैं. इसकी प्रतिनिधि पीला चंदन और केशर है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

इन्द्रयवनामानि ।

उक्तं कुटजबीजं तु यवमिन्द्रयवं तथा । कलिङ्गं चापि कालिङ्गं तथा भद्रयवा अपि ॥ ॥ १३८ ॥ इति धन्वन्तरिः प्राह । अमरे प्राह । क्वचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तदमिधायकम् । फलानीन्द्रयवास्तस्य तथा भद्रयवा अपि ॥ १३९ ॥

भाषा–कुटजबीज, यव, इंद्रयव, कालिंग, कालिंग, भद्रयव तथा इंद्रवाचक समस्त शब्द ये इंद्रयवके संस्कृत नाम हैं. (कौटज, यवफल, इंद्र, शक्राशन, शक्राह्व, ऐंद्रयव, शतक्रतुयव, कलिंगक, शक्रबीज, वत्सक, वत्सकबीज, कालिंगबीज, कूटज और भद्रज ये इंद्रजौके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥१३८॥२३९॥

अनेक भाषाके इंद्रजौके नाम ।

सं.–इन्द्रयव.	फा.–जबान कुंचिस्क.
हिं.–इंद्रजौ.	अ.–लेसानुत् असाकीर.
बं.–इंद्रयव.	ला.–Seed of Holarrhena Antidysenterica सीड् आव् होलरहेना ऑन्टिडिसेंटेरिका.
म.–इंद्रजव,कुड्याचें बीं.	
गु.–इंदरजव.	
क.–कोडसियेगबीज, कोडमुरकनबीज.	
तै.–कुडिसेपालु.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection: Digitized by eGangotri

इंद्रयवगुणाः ।

इन्द्रयवं त्रिदोषघ्नं संग्राहि कटु शीतलम् ।
ज्वरातीसाररक्तार्शोवमिवीसर्पकुष्ठनुत् ॥ दीपनं गुदकीलास्रवातास्रश्लेष्मशूलजित् ॥ १४० ॥

भाषा-इन्द्रजौ त्रिदोषनाशक, ग्राही, चरपरा, शीतल और ज्वर, अतीसार, रुधिरविकार, अर्श (बवासीर), वमन, विसर्प तथा कुष्ठ इन सबको नष्ट करता है तथा अग्निप्रदीपक है और गुदाके रोग, वात, रुधिरके दोष, कफ तथा शूलको जीतनेवाला है ॥ १४० ॥

इंद्रजौका विशेष विवरण.

कुडेके बीजोंको इंद्रजौ कहते हैं. इंद्रजौ मीठे और कडवे दो प्रकारके होते हैं. इसके दर्पनाशक घीयाके बीज हैं. इसकी प्रतिनिधि नारियलकी गिरी है. इसकी मात्रा ५ रत्तीसे लेकर ३० रत्तीतककी है.

मदननामानि ।

मदनश्छर्दनः पिण्डो नटः पिण्डीतकस्तथा ।
करहाटो मरुवकः शल्यको विषपुष्पकः १४१

भाषा-मदन, छर्दन, पिंड, नट, पिंडीतक, करहाट, मरुवक, शल्यक, विषपुष्पक ये मैनफलके संस्कृत नाम हैं. (गालव, गाल, गोलफल, गालफल, मातुल, तगर, बीजपुष्पक, कंटाल, पिचुक, मुचुकुन्द, कंटकी, करहाटक, शल्य, कंठ, रामच्छर्दनक, रामाच्छर्दनक, कैटर्य, धाराफल, नगर, राठ, गाल्ल, ग्रंथिफल, घंटाल, और वस्तिशोधन ये मैनफलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १४१ ॥

अनेक भाषाके मदनके नाम ।

सं.-मदन.
हिं.-मैनफल.
बं.-मयनाफल.
म.-गेळा.
गु.-मींढोल.
क.-बोनगरे.
ते.-वसन्तकडिमिचेट्टु.
ता.-मडुककरय.
उत्.-पातर.
ने.-मैदल.
प.-सिण्डकोल्ल.
द.-मेठाहल.
अ.-जौजुक्की.
इं.-Bushy Gardenia बुशीगार्डिनिया.
ला.-Randaidumetorum रेंडिया डयुमेटोरम

मदनगुणाः ।

मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्योष्णो लेखनो लघुः ।
वान्तिकृद्विद्रधिहरः प्रतिश्यायव्रणान्तकः ॥
रूक्षः कुष्ठकफानाहशोथगुल्मव्रणापहः॥१४२॥

भाषा-मैनफल मधुर, कडवा, उष्णवीर्य, लेखन, हलका, वमनकारक, विद्रधिनाशक है और रूक्ष तथा प्रतिश्याय (जुखाम), व्रण, कोढ, कफ, अफरा (पेट फूलना), सूजन और गुल्मको नष्ट करनेवाला है ॥ १४२ ॥

मैनफलका विशेष विवरण.

मैनफलका वृक्ष बडा होता है. इसके पत्ते लम्बे और गोल खरदरेसे आमने सामने दोनों ओर होते हैं. इसकी आकृति चिरचिटेकीसी होती है; इसके फूल गोल पांच पखरीके सफेद और कुछ कुछ पीलेसे होते हैं. फल अखरौटके सदृश गोल और उसमें रेखा पडी होती हैं. यह वृक्ष कांटेदार होता है. इसकी मात्रा दो मासेकी है.

रास्नानामानि ।

रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा ।
एलापर्णी च सुरसा सुगन्धा श्रेयसी तथा १४३

भाषा-रास्ना, युक्तरसा, रस्या, सुवहा, रसना, रसा, एलापर्णी, सुरसा, सुगंधा, श्रेयसी ये रायसनके संस्कृत नाम हैं. (एकपर्णी, सुरभी, नाकुली, सर्पगंधा, पलंकषा, द्रोणगंधिका, गन्धनाकुली, नकुलेष्टा, भुजंगाक्षी, छत्राकी, सुगंधिमूला, रसाढ्या, अतिरसा, मुक्तरसा और युक्तरसा ये रायसनके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १४३ ॥

अनेक भाषाके रास्नाके नाम.

सं.-रास्ना.
हिं.-रायसन, रासना.
बं.-रास्ना.
म.-नावलीच्यामुळच्या.
गु.-रासना.
क.-रसना केदारे.
ते.-रासना, पुडुका.
फा.-रासुन.
अ.-जंजवीलशामी.
ला.-Vanda roxburghi वान्डा रोक्सबर्घी.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रास्नागुणाः।

रास्नामपाचिनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित्। शोथश्वाससमीरास्रवातशूलोदरापहा। कासज्वरविषाशीतिवातिकामयसिध्महृत्॥ १४४॥

भाषा–रायसन पाचक, कडवी, भारी, गरम, कफ तथा वातको जीतनेवाली है और सूजन, श्वास, वातरक्त, वातशूल, उदररोग, खांसी, ज्वर, विष, अस्सी प्रकारके वात रोग तथा सिध्मकुष्ठको नाश करती है॥ १४४॥

रास्नाका विशेष विवरण.

रास्नाके वृक्ष नदीके किनारे और पर्वतोंकी तलहटीमें विशेष करके होते हैं, इसकी जडमें कुछ कुछ सुगन्धभी आती है. इसके पत्ते सनायसे दूने लम्बे चौडे होते हैं, परन्तु आकृति सनायहीकीसी होती है. प्रयोगमें इसका सर्वांग ग्रहण किया जाता है. इसकी उत्पत्ति बदरीनारायण केदारनाथमें बहुत होती है. इसकी मात्रा आधे मासेसे लेकर २ मासेतककी है.

नाकुलीनामानि।

नाकुली सुरसा नागसुगन्धा गन्धनाकुली। नकुलेष्टा भुजङ्गाक्षी सर्पाङ्गी विषनाशिनी १४५

भाषा–नाकुली, सुरसा, नागसुगंधा, गंधनाकुली, नकुलेष्टा, भुजंगाक्षी, सर्पाङ्गी, विषनाशिनी ये नाईके संस्कृत नाम हैं. (महासुगंधा, सुवहा, फणिहंत्री, नकुलाह्या, अहिभुक्, विषमर्दनिका, अहिमर्दिनी, विषमर्दिनी, महाहिंगधा और अहिलता ये नाईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ १४५॥

अनेक भाषाके नाकुलीके नाम.

सं.–नाकुली.	तै.–पन्नपुचेट्टु.
हिं.–नाई, नाकुलीकंद, नकुलकंद.	फा.–विषमुंगरी, छोटा चांदा.
बं.–नाकुली, सुगंधनाकुली.	ला.–Rauwolfia Sarpentina रोवोलफिया सर्पेन्टिना.
म.–मुंगुसवेल, सांपसंद.	
गु.–नोरवेल.	

नाकुलीगुणाः।

नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विनाशयेत्। भोगिलूतावृश्चिकाखुविषज्वरकृमिव्रणान् १४६

भाषा–नाकुली कसैली, कडवी, चरपरी, गरम है और सर्प, लूता, विच्छू तथा चूहेका विष, ज्वर, कृमि और व्रणको नष्ट करती है॥१४६॥

नाकुलीका विशेष विवरण.

नाकुली जंगलमें होती है, इसके पत्ते नागरवेलके समान होते हैं और इसके नीचे कन्द निकलता है. उसीको वैद्यलोग प्रयोगमें लेते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

माचिकानामानि।

(पश्चिमदेशे मोइआ इति लोके प्रसिद्धो वृक्षविशेषः)। माचिका प्रस्थिकाम्बष्ठा तथा चाम्बालिकाम्बिका। मयूरविदला केशी सहस्रा बालमूलिका॥ १४७॥

भाषा–माचिका, प्रस्थिका, अम्बष्ठा, अम्बालिका, अम्बिका, मयूरविदला, केशी, सहस्रा, बालमूलिका ये मोइयेके संस्कृत नाम हैं. (बालिका, बाला, शठाम्बा, अम्बा, दृढवल्का, मयूरिका, गन्धपत्री, चित्रपुष्पी, श्रेयसी, मुखवाचिका, छिन्नपत्री और भूरिमल्ली ये मोइयेके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.)॥ १४७॥

अनेक भाषाके मोइयेके नाम.

सं.–माचिका.	फा.–रोवातरीख.
हिं.–मोइया.	अ.–एनबुससालब.
बं.–माचिका.	इं.–Solenum Nigrum सोलनुम निगरम.
म.–लघुकावळी.	
गु.–नाहानी पीलुडी.	
क.–कावईकाके.	

माचिकागुणाः।

माचिकाऽम्ला रसे पाके कषाया शीतला लघुः। पक्वातीसारपित्तास्रकफकण्ठामयापहा १४८॥

भाषा–मोइया रसमें खट्टा, पाकमें कसैला, शीतल, हलका है और पक्वातीसार, पित्त, रुधिरविकार, कफ तथा कंठके रोगोंको नष्ट करनेवाला है॥ १४८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेजवतीनामानि ।

(तेजवल्कले तेजपाता इति च लोके ।)
तेजस्विनी तेजवती तेजोह्वा तेजनी तथा ।

भाषा—तेजस्विनी, तेजवती, तेजोह्वा, तेजनी ये तेजबलके संस्कृत नाम हैं. (तेजन्या, लघुवल्कला, महौजसी, पारिजाता, शीतातिक्ता, अतितेजनी, अश्वघ्ना, वल्कली, सुवर्णनाकुली, बिडालघ्नी और सुतेजसी ये तेजबलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तेजबलके नाम.

सं.—तेजवती.
हिं.—तेजवल.
बं.—तेजवल.
म.—तेजवल.
गु.—तेजवल.
द.—जलधरी.
अं.—Toothache tree टुथएकट्री.
ला.—Zanthoxylon Hostile जेन्थोक्सिलोन होस्टिली.

तेजवतीगुणाः ।

तेजस्विनी कफश्वासकासास्यामयवातहृत् ।
पाचन्युष्णा कटुस्तिक्ता रुचिवह्निप्रदीपनी ॥ १४९ ॥

भाषा—तेजबल पाचन, गरम, चरपरा, कडवा, रुचिकारक, अग्निको उत्पन्न करनेवाला हैं और कफ, श्वास, खांसी, मुखरोग तथा वायुरोगको नष्ट करता है ॥ १४९ ॥

तेजबलका विशेष विवरण.

तेजबलकी बेल वनमें होती है. इसकी छाल लाल होती है. इसीको तेजवल्कल और तेजवती कहते हैं. इसके फल काली मिरचके समान होते हैं. यह सुगन्धित पदार्थ है. इसकी मात्रा एक मासेकी है.

ज्योतिष्मतीनामानि ।

ज्योतिष्मती स्यात्कटभी ज्योतिष्का कङ्गनीति च । पारावतपदी पण्या लता प्रोक्ता ककुन्दनी ॥ १५० ॥

भाषा—ज्योतिष्मती, कटभी, ज्योतिष्का, कंगनी, पारावतपदी, पण्या, लता, ककुंदनी ये मालकांगनिके संस्कृत नाम हैं. (महाज्योतिष्मती, तीक्ष्णा, कंगुनी, बृहत्कंगुनी, तेजोवती, बहुरसा, कनकप्रभा, सुवर्णनकुली, लवणा, अग्निदीप्ता, तेजस्विनी, सुरलता, अग्निफला, अग्निगर्भा, शैलसुता, सुतैला, सुवेगा, वायसी, तीव्रा, काकाण्डी, वायसादनी, गीर्लता, श्रीलता, सौम्या, त्रिपर्णी और पीड्या ये मालकांगनीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ १५० ॥

अनेक भाषाके मालकांगनीके नाम ।

सं.—ज्योतिष्मती.
हिं.—मालकांगनी.
बं.—लताफट्की.
म.—मालकांगणी.
गु.—मालकांकणां.
क.—कौगुएरडु.
तै.—बावंजी.
फा.—काल.
अं.—Staffree स्टॉफट्री.
ला.—Celastrus Paniculata सिलेस्ट्रस पेनिक्युलेटा.

ज्योतिष्मतीगुणाः ।

ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफसमीरजित् । अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णावह्निबुद्धिस्मृतिप्रदा ॥ १५१ ॥

भाषा—मालकांगनी चरपरी, कडवी, दस्तावर, कफ तथा वायुको जीतनेवाली, अत्यंत उष्ण, वमनकारक, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक और बुद्धि तथा स्मृतिको तीव्र करनेवाली है ॥ १५१ ॥

मालकांगनीका विशेष विवरण.

मालकांगनीकी वेल जंगल और वनोंमें वृक्षोंके आश्रयसे चलती है. इसके पत्ते गोल गोल कुछ कुछ अनीदार और थोडे थोडे कंगूरेदार दंडीमें बराबर भरे हुए होते हैं. इसके फूल छोटे छोटे पांच पखडीके और झुमकेदार लगते हैं; और इसके फलभी झुमकेदार चने अथवा मटरके समान बडे होते हैं. ये फल कच्ची अवस्थामें हरे और पकजानेपर पीले हो जाते हैं, इसके भीतर लाल रंगके छः बीज निकलते हैं, इन बीजोंको कोल्हूमें पिलवाकर तेल निकाल लेते हैं. इसके फलोंका शाकभी बनता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुष्ठ (कूठ) नामानि ।

कुष्ठरोगाह्वयं वाप्यं पारिभव्यं तथोत्पलम् ।

भाषा–कुष्ठरोगाह्वय (जितने कुष्ठरोगके नाम हैं वे सब), वाप्य, पारिभाव्य, उत्पल ये कूठके संस्कृत नाम हैं. (कुष्ठ, व्याधि, पाकल, कदाख्य, दुष्ट, याप्य, गदाख्य, आप्य, जरण, कौबेर, भासुर, गदाह्व, गदाह्वय, कुठिक, काकल, नीरुज, आमय, रुजा, गद, वाणीराज, पारिभद्रक, कुत्सित, पद्मक, पावन, रोग, रोगाह्वय, किंजल्क और हरिभद्रक ये कूठके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कूठके नाम.

सं.–कुष्ठ.	फा.–कोश्तह.
हिं.–कूठ.	अ.–कुस्तबेहेरी.
बं.–कुड.	अं.–Costusroot
म.–कोष्ठ.	कोष्टस्रूट.
गु.–कठ.	ला.–Saurueala ppa
क.–कोठ.	सौसुरीआलेप्पा.
तै.–चंगल, कुष्ठ.	

कुष्ठगुणाः ।

कुष्ठमुष्णं कटु स्वादु शुक्रलं तिक्तकं लघु ।
हन्ति वातास्रवीसर्पकाससकुष्ठमरुत्कफान् १५२

भाषा–कूठ गरम, चरपरा, स्वादिष्ट, वीर्यवर्द्धक, कडवा, हलका है और वातरक्त, विसर्प, खांसी, कुष्ठ वात तथा कफको नष्ट करनेवाला है ॥ १५२ ॥

कूठका विशेष विवरण.

कूठके वृक्ष पर्वतोंपर होते हैं. इसके पत्ते अदरकके समान छोटे होते हैं परन्तु ये इस देशमें नहीं होते, अन्य देशोंमें अधिक होते हैं. विशेषकरके सिंधुनदीके किनारेका कूठ उत्तम होता है. इस वृक्षकी जड सुगन्धित होती है, उसीका नाम कूठ है. कूठ दो प्रकारका होता है एक कडवा और दूसरा मीठा. खानेकी औषधोंमें मीठा कूठ लेना, कडवा कभी नहीं लेना. यह वांतिकारक है. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

कुष्ठभेदपुष्करमूलनामानि ।

उक्तं पुष्करमूलं तु पौष्करं पुष्करं च तत् ।
पद्मपत्रं च काश्मीरं कुष्ठभेदमिमं जगुः १५३॥

भाषा–पुष्करमूल, पौष्कर, पुष्कर, पद्मपत्र, काश्मीर ये पौष्करमूलके संस्कृत नाम हैं. (पद्मपर्णक, पद्मकर्ण, पुष्करिणी, वीरपुष्कराह्वया, ब्रह्मतीर्थ, श्वासारि, मूलपुष्कर, पुष्करजटा, पुष्कराशिफा, वीर, पद्मपत्रक, पद्मपुण्य, सागर, शूर, वृक्षरुह, समूलक, शूलघ्न और कुष्ठभेद ये पोहकरमूलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १५३ ॥

अनेक भाषाके पोहकरमूलके नाम.

सं.–पुष्करमूल.	गु.–पोकरमूल.
हिं.–पोहकरमूल.[मूल.	क.–पुष्करमूल.
बं.–कुष्ठविशेष, पुष्कर-	तै.–काश्मीरमु.
म.–पुष्करमूल.	ता.–चन्नाकुवा.

पुष्करमूलगुणाः ।

पौष्करं कटुकं तिक्तमुष्णं वातकफज्वरान् ।
हन्ति शोथारुचिश्वासान् विशेषात् पार्श्वशूलनुत् ॥ १५४ ॥

भाषा–पोहकरमूल चरपरा, कडवा है और वात तथा कफसे उत्पन्न हुए ज्वर, शोथ, अरुचि तथा श्वासरोगको दूर करता है. विशेषकरके यह पसलीके शूलको निर्मूल करता है ॥ १५४ ॥

पुष्करमूलका विशेष विवरण.

पुष्करमूलभी कूठहीका भेद है; क्योंके कूठके पत्तोंमें व शाखाओंमें किसी प्रकारका भेद नहीं जान पडता; गुणभी एकही है. कूठके अभावमें पुष्करमूल और पुष्करमूलके अभावमें कूठ लिया जाता है.

कटुपर्णीनामानि ।

कटुपर्णी हैमवती हेमक्षीरी हिमावती । हेमाह्वा पीतदुग्धा च तन्मूलं चोकमुच्यते॥१५५॥

भाषा–कटुपर्णी, हेमवती, हेमक्षीरी, हिमावती, हेमाह्वा, हेमदुग्धा ये चोकके संस्कृत नाम हैं. (स्वर्णक्षीरी, हेमाशिखा, पटुवर्णी, पीतपुष्पा, स्वर्णदुग्धा, स्वर्णाह्वा, रुक्मिणी, सुवर्णा, कांचनी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षीरिणी, काञ्चनक्षीरी, कर्विणी, तिक्तदुग्धा, हिमाद्रिजा, यवचिश्वा, हिमोद्भवा, हैमी और हिमजा ये चोकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १५५ ॥

अनेक भाषाके कटुपर्णीके नाम.

सं.—कटुपर्णी.	अं.—Gamboge Thistle गमबोज थिसल.
हिं.—चोक.	
बं.—चोक.	
म.—कांटे धोत्रा.	ला.—Argemone Maxicana अर्गिमोन मेक्सिकेना.
गु.—दारुडी.	
क.—चिक्कणिके.	

कटुपर्णीगुणाः ।

हेमाह्वा रेचनी तिक्ता भेदिन्युत्क्लेशकारिणी ।
कृमिकण्डूविषानाहकफपित्तासृकुष्ठनुत् १५६॥

भाषा—चोक रेचक (दस्तावर), कडवा, भेदक, ग्लानिकारक है और कृमि, खुजली, विष, अफरा, कफ, पित्त, रुधिर और कोढको शमन करनेवाला है ॥ १५६ ॥

चोकका विशेष विवरण.

सत्यानाशी कटेहरीका क्षुप होता है. विशेष करके ये क्षुप खडहर खाई और सूखे हुए तालतलैयोंमें अधिक उत्पन्न होते हैं. इसके पत्ते फल शाखा आदि सब अंगोंमें कांटे होते हैं और फूल पीले रंगके होते हैं. फलका डोरा होता है उसमेंसे काले रंगके बीज निकलते हैं, उनका तेल निकालते हैं. इसके पत्ते तोडनेसे पीला दूध निकलता है. इसकी जडको चोक कहते हैं. इस देशके लोग उसको ऊंटकंटीला कहते हैं सो ऊंटकटीला यह नहीं है.

कर्कटशृङ्गीनामानि ।

शृङ्गी कर्कटशृङ्गी च स्यात् कुलीरविषाणिका । अजशृङ्गी च वक्रा च कर्कटाख्या च कीर्तिता ॥ १५७ ॥

भाषा—शृंगी, कर्कटशृंगी, कुलीर, विषाणिका, अजशृंगी, वक्रा, कर्कटा (कर्कटाख्या अर्थात् जितने कैंकडेके संस्कृतमें नाम हैं सब) ये काकडासींगीके संस्कृत नाम हैं. (कर्कटशृंगिका, कासविनाशिनी, कुलिंगी, महाघोषा, चक्रांगी, कर्कटी, वनभूर्जजा, कर्कटाख्या, कुलीरशृंगी, घोषा, चक्रा, शिखरी, कौलिरा, विषाणिका, चद्रास्पन्दा, नवांगा, कुलीरविषाणिका, नतांगी, वक्रा और मेषशृंगी ये काकडासिंगीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १५७ ॥

अनेक भाषाके काकडासिंगीके नाम.

सं.—कर्कटशृंगी.	क.—कर्कटीशृंगी.
हिं.—काकडासींगी.	तै.—कर्कटाशृंगी.
बं.—काकडाशृंगी.	लै.—Pistacia Intergnirrima पिष्टेसिया इन्टीग्रीरमा.
म.—काकडशिंगी.	
गु.—काकडासींगी.	

कर्कटशृङ्गीगुणाः ।

शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफवातक्षयज्वरान् । श्वासोर्ध्ववाततृट्कासहिक्कारुचिवमीन् हरेत् ॥ १५८ ॥

भाषा—काकडासिंगी कसैली, कडवी, गरम है और कफ, वात, क्षय, ज्वर, श्वास, ऊर्ध्ववात, तृषा, खांसी, हिचकी, अरुचि तथा वमनको नष्ट करनेवाली है ॥ १५८ ॥

काकडासींगीका विशेष विवरण.

काकडासींगीका वडा वृक्ष होता है, इसका आकार जियापोतेके पेडके सदृश होता है, उसकी फली भीतरसे खक्खल होती है उसीका नाम काकडासींगी है.

कट्फलनामानि ।

कट्फलः सोमवल्कश्च कैटर्य्यः कुम्भिकाऽपि च । श्रीपर्णिका कुमुदिका भद्रा भद्रवतीति च ॥ १५९ ॥

भाषा—कट्फल, सोमवल्क, कैटर्य, कुम्भिका, श्रीपर्णिका, कुमुदिका, भद्रा, भद्रवल्ली ये कायफलके संस्कृत नाम हैं. (त्वक्फल, कुम्भी, कैटर्य, काफल, कुम्भिपाकी, पुरुष, कुमुदी, सोमवृक्ष, रोहिणी, नासानु, अरण्य, कृष्णगर्भ, प्रचेतसी, भद्रावती, महाकुम्भी, रामसेनक, कुमुदा, उग्रगन्ध, भद्ररंजनक, लघुकाश्मर्य और श्रीपर्णी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये कायफलके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १५९ ॥

अनेक भाषाके कायफलके नाम.

सं.–कट्फल.	तै.–पापरवुडम.
हिं.–कायफल.	फा.–उदुलवर्क.
वं.–कट्फल.	अ.–दारशीशवान.
गु.–कायफल.	ला.–Myricasapida
म.–कुम्भ्याची साल.	मिरिकासापिडा.
क.–किरुसिवन्नि.	

कट्फलगुणाः ।

कट्फलस्तुवरस्तिक्तः कटुर्वातकफज्वरान् । हन्ति श्वासप्रमेहार्शःकासकण्ठामयारुचीः १६०

भाषा–कायफल कसैला, कडवा, चरपरा है और वात, कफ, ज्वर, श्वास, प्रमेह, ववासीर, खांसी, कंठके रोग तथा अरुचि इन सवको दूर करनेवाला है ॥ १६० ॥

कायफलका विशेष विवरण.

कायफलका वडा वृक्ष होता है. इसके पत्ते पानके समान और फूल लाल लाल होते हैं. फल जायफलके समान गोल गोल होते हैं, उस फलके ऊपरकी छाल जो जावित्रीकी समान होती है उसको रामपत्री कहते हैं. इस वृक्षकी छाल मोटी और भारी वजनदार होती है. इसकें फल और छाल दोनों प्रयोगमें आते हैं.

भार्ङ्गीनामानि ।

भार्ङ्गी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मणयष्टिका ।

भाषा–भार्ङ्गी, भृगुभवा, पद्मा, फञ्जी, ब्राह्मणयष्टिका ये भारंगीके संस्कृत नाम हैं. (भारंगी, ब्राह्मणी, भृङ्गजा, अंगारवल्लरी, मुखधौता, दूर्वा, गर्दभशाक, गर्दभशाका, फंजिका, बर्बर, वालेयशाक, वर्द्धक, ब्रह्मयष्टि, यष्टि, ब्रह्मयष्टिका, शाकवालेय, अंगारवल्ली, वालेयब्राह्मिका, गर्दभशाखी, ब्राह्मी, ब्राह्मणयष्टी, वान्तारि, वातारि, कासजित्, भ्रमरेष्टा, शक्रमाता, भृगुभवा, खरशाका, कासघ्नी, भृगुजा, भार्गवी और कालिंगवल्ली ये भारंगीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके भारंगीके नाम.

सं.–भार्ङ्गी.	क.–किरुदेगु. [चूया.
हिं.–भारंगी.	तै.–भंटभारंगी, नैपा-
वं.–वामुनहाटी.	ला.–Clerodendron
म.–भारंग.	Seretun क्लेरोड्रेन्ड्रन् सीरेटन.
गु.–भारंगी.	

भार्ङ्गीगुणाः ।

भार्ङ्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः । दीपनी तुवरा गुल्मरक्तनुन्नाशयेद् ध्रुवम् ॥ शोथकासकफश्वासपीनसज्वरमारुतान् ॥ १६१ ॥

भाषा–भारंगी रूखी, चरपरी, कडवी, रुचिकारी, गरम, पाचक, हलकी, अग्निको दीपन करनेवाली, कसैली है और गुल्म, रुधिरविकार, सूजन, खांसी, कफ, श्वास, पीनस, ज्वर तथा वातको नष्ट करती है ॥ १६१ ॥

भारंगीका विशेष विवरण.

भारंगीके वडे वडे वृक्ष वनमें होते हैं, इसके पत्ते लम्वे २ और फूल गोल गोल सफेद् रंगके ललाई लिये होते हैं. पत्ते जडमें विशेष करके होते हैं. पत्तोंका शाक वहुत अच्छा वनता है.

पाषाणभेदनामानि ।

पाषाणभेदकोऽश्मघ्नो गिरिभिद्भिन्नयाजनी ।

भाषा–पाषाणभेद, अश्मघ्न, गिरिभित्, भिन्नयाजनी ये पाषाणभेदके संस्कृत नाम हैं. (शिलाभेद, अश्मभेदक, उपलभेद, नगभिद्, शैलगर्भज, अश्मभित्, पाषाणभेदक, पाषाणभेदन, पाषाणभेदी, श्वेता, उपलभेदी, उपलभित् और शिलागर्भज ये पाषाणभेदके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाये हैं.) ॥

अनेक भाषाके पाखानभेदके नाम.

सं.–पाषाणभेद.	फा.–गोशाद.
हिं.–पाखानभेद.	अ.–जितियाना. [स्प.
वं.–पाथरचूरी.	इं.–Irissp. आइरिस्-
म.–पाषाणभेद.	लै.–Coleus Arom-
गु.–पाषाणभेद.	cticum कोलियस
क.–हिट्टलीक.	ॲरोमेटिकम्.
तै.–तेल्लामुरूपिण्डी.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाषाणभेदगुणाः ।

अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो बस्तिशोधनः।
भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुजः ॥
योनिरोगान्प्रमेहांश्च प्लीहशूलव्रणानि च १६२

भाषा-पाखानभेद शीतल, कडवा, कसैला, बास्तिशोधक, मलभेदक (दस्त करता) है और बवासीर, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, हृदयके रोग, योनिरोग, प्रमेह, प्लीहा, शूल और व्रण इन सब रोगोंको दूर करता है ॥ १६२ ॥

पाषाणभेदका विशेष विवरण.

पाषाणभेदका क्षुप वनस्पतिकी गणनामें है, परन्तु पाषाणभेद दो प्रकारका होता है एक वनस्पतिकी जड होती है, उसको पाषाणभेदकी लकडी कहते हैं और दूसरा खनिज होता है वह पाषाणभेद पत्थरके नामसे प्रसिद्ध है. यह अन्य द्वीपोंसे आता है. मात्रा १ मासेकी है.

धातकीनामानि ।

धातकी धातुपुष्पी च ताम्रपुष्पी च कुञ्जरा।
सुभिक्षा बहुपुष्पी च वह्निज्वाला च सा स्मृता ॥ १६३ ॥

भाषा-धातकी, धातुपुष्पी, ताम्रपुष्पी, कुञ्जरा, सुभिक्षा, बहुपुष्पी, वह्निज्वाला ये धायके संस्कृत नाम हैं. (धात्री, धातुपुष्पिका, धातुपुष्पी, धातुपुष्पिका, वह्निपुष्पी, धावनी, अग्निज्वाला, पार्वती, बहुपुष्पिका, कुमुदा, सीधुपुष्पी, मधवासिनी, गुच्छपुष्पी, संघपुष्पी, रोध्रपुष्पिणी, तीव्रज्वाला, वह्निशिखा और मद्यपुष्पा ये धायके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)१६३॥

अनेक भाषाके धायके नाम.

सं-धातकी.
हिं.-धायके फूल, धवईके फूल.
बं.-धाइफूल.
म.-धायटीफूल.
गु.-धावडीना फूल.
क.-धायिफूल.
तै.-धातुकीपुड.
ला.-Woodfardia Flaribonda उडफोर्डिया फ्लारिबंडा.

धातकीगुणाः ।

धातकी कटुका शीता मृदुकृत्तुवरा लघुः । तृष्णातीसारपित्तास्रविषक्रिमिविसर्पजित् १६४

भाषा-धायके फूल चरपरे, शीतल, मृदुता करनेवाले, कसैले, हलके हैं और तृषा, अतीसार, पित्त, रुधिरदोष, विष, कृमि तथा विसर्पको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १६४ ॥

धायका विशेष विवरण.

धायके वृक्ष वनमें बहुत होते हैं इसके पत्ते अनारके पत्तोंके समान होते हैं परन्तु अनारके पत्ते हरे होते हैं और धायके पत्ते कुछ कुछ पीलापन लिये हुए होते हैं, इसके फूल अत्यन्त लाल कलीके समान होते हैं, इसके फूलमें पखरी होती हैं. इसके पुष्पही प्रयोगमें लिये जाते हैं इसकी मात्रा १ मासेकी है.

मञ्जिष्ठानामानि ।

मञ्जिष्ठा विकसा जिङ्गी समङ्गा कालमेषिका ।
मण्डूकपर्णी भण्डीरी भण्डी योजनवल्लयपि ॥ १६५ ॥ रसायन्यरुणा काला रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका । भण्डीतकी च गण्डीरी मंजूषा वस्त्ररञ्जनी ॥ १६६ ॥

भाषा-मंजिष्ठा, विकसा, जिंगी, समंगा, कालमेंषिका, मण्डूकपर्णी, भंडीरी, भंडी, योजनवल्ली, रसायनी, अरुणा, काला, रक्तांगी रक्तयष्टिका, भंडीतकी, गंडीरी, मंजूषा, वस्त्ररंजनी, ये मंजीठके संस्कृत नाम हैं. (योजनवल्लिका, मण्डूका, काण्डीरा, रक्तयष्टि, रक्ता, योजनपर्णिका, लतायष्टि, हेमपुष्पी, भिंडीरी, काण्डिरी, भण्डिल, भांडिरी, भंडि, भांडिका हरिणी, गौरी, वप्रा, रोहिणी, चित्रलता, चित्रा, चित्रांगी, जननी, विजया, क्षत्रिणी, रागाढ्या, कालभाण्डिका, ज्वरहन्त्री, छत्रा, नागकुमारिका, भण्डीरलतिका, रागांगी, वस्त्रभूषणा, क्षेत्रिणी, ताम्रमूली, ताम्रिका, लोहितलता और ताम्रवल्ली ये मंजीठके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥१६५॥१६६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके मजीठके नाम.

सं.–मंजिष्ठ.
हिं.–मजीठ.
बं.–मंजिष्ठा.
म.–मंजिष्ट.
गु.–मजीठ.
क.–मंजिष्ठा.
तै.–मंजिष्ठतीठी.
ता.–मंजिट्टी.
फा.–रुनास.
अ.–फुवहतुसिवग.
अं.–Maddor root मेडररुट्.
ला.–Rubia Cordifolia रूबिया कॉर्डिफोलिया.

मंजिष्ठागुणाः.

मञ्जिष्ठा मधुरा तिक्ता कषाया स्वरवर्णकृत् ।
गुरुरुष्णा विषश्लेष्मशोथयोन्यक्षिकर्णरुक् ।
रक्तातीसारकुष्ठास्रवीसर्पव्रणमेहनुत् ॥ १६७ ॥

भाषा–मजीठ मधुर, कडवा, कसैला, स्वर तथा वर्णको उत्तम करनेवाला, भारी, गरम है और विष, कफ, शोथ, योनिरोग, नेत्ररोग, कर्णरोग, रक्तातीसार, कुष्ठ, रुधिरविकार, विसर्प, व्रण तथा प्रमेहको नष्ट करता है ॥ १६७ ॥

मजीठका विशेष विवरण.

मजीठ लताजातिकी औषधि है. इसकी बेल बहुत लंबी होती है. इसके पत्ते कुछ लंबे मेंडकके रंगके होते हैं. इसकी उत्पत्ति नेपाल अफगान तथा ग्रीकके मुल्कोंमें होती है. इसको खेतोंमें बोते हैं. इसकी जड लाल रंगकी होती है. इसकी जडकोही प्रयोगमें लेते हैं. औषधिके सिवाय रंगतके काममेंभी यह जड बहुत आती है. इसकी मात्रा १ मासेभरकी है.

कुसुम्भनामानि ।

स्यात्कुसुम्भं वह्निशिखं वस्त्ररञ्जकमित्यपि ।

भाषा–कुसुम्भ, वह्निशिख, वस्त्ररंजक ये कसूमके संस्कृत नाम हैं. (लोहित, ग्राम्य, कुंकुम, महारजन, कुक्कुटशिख, पावक, पीत, पद्मोत्तर, रक्त, वस्त्ररंजन और अग्निशिख ये कसूमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कसूमके नाम.

सं.–कुसुंभ.
हिं.–कसूम (कर्क).
बं.–कुसुमफूल.
म.–कर्ड्याचें फूल.
गु.–कसुंबो.
क.–कसुम्भ.
फा.–पुलेमास्कर.
अ.–अखरीज, अबुलअस्फर.
अं.–Officinal Carthamus आफिसिनल् कार्थेमस्.
ला.–Carthamus Tinctorius कार्थेमस् टिंकटोरियस.

कुसुम्भगुणाः.

कुसुम्भं वातलं कृच्छ्ररक्तपित्तकफापहम् १६८॥

भाषा–कसूम वातकारक है और मूत्रकृच्छ्र रक्तपित्त तथा कफको नष्ट करनेवाला है॥१६८॥

कसूमका विशेष विवरण.

कसूम खेतोंमें बहुत बोया जाता है, इसके क्षुप दो दो हाथ ऊंचे कटेहरीके समान कांटेदार होते हैं और पत्तोंपरभी छोटे छोटे कांटे होते हैं. इसके ऊपर गैंदेके फूलके समान फूल आते हैं. उनमें केशरके समान महीन महीन तारसे होते हैं, उसको कसूम कहते हैं. यह बहुधा रंगके काममें बहुत आता है. इसके बीजोंको करे कहते हैं, इसका तेलभी निकाला जाता है. इसके फूलकी मात्रा १ मासेकी है.

लाक्षानामानि ।

लाक्षा पलंकषाऽलक्तो यावो वृक्षामयो जतुः ।
ब्राह्मण्यङ्गारवल्ली च खरशाका च हञ्जिका १६९

भाषा–लाक्षा, पलंकषा, अलक्त, याव, वृक्षामय, जतु, ब्राह्मणी, अंगारवल्ली, खरशाखा, हंजिका ये लाखके संस्कृत नाम हैं. (कीट्जा, राक्षा, शतघ्नी, रक्तमातृका, द्रुमामय, गराषिका, खदिरका, रक्ता, रङ्गमाता, पलंकशा, कृमिहा, द्रुमव्याधि, अलक्तक, पलाशा, मुद्रिणी, दीप्ति, जन्तुका, गन्धमादिनी, नीला, द्रवरसा, पित्तारि, कृमिजा, क्रिमिजाजतुका और गर्णधका ये लाखके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १६९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके लाखके नाम.

सं.—लाक्षा.	फा.—लाक.
हिं.—लाख, लाही.	अ.—लुक, लुकमकसुल.
बं.—लाहा.	अं.—Shell lac शेल-लाक.
म.—लाख.	ला.—Coccus lacca कोकस लाका.
गु.—लाख.	
क.—अरगु.	
तै.—लाका.	

लाक्षागुणाः ।

लाक्षा वर्ण्या हिमा वल्या स्निग्धा च तुवरा लघुः। अनुष्णा कफपित्तास्रहिक्काकासज्वरप्रणुत्॥ व्रणोरःक्षतवीसर्पकृमिकुष्ठगदापहा । अलक्तकौ गुणैस्तद्वद्विशेषाद्व्यङ्गनाशनः॥ १७०॥

भाषा—लाख वर्णको सुन्दर करनेवाली, शीतल, बलदायक, स्निग्ध, कसैली, उष्णतारहित है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, हिचकी, खांसी, ज्वर, व्रण, उरःक्षत, विसर्प, कृमि और कुष्ठ रोगोंको नष्ट करती है ॥ १७० ॥

लाखका विशेष विवरण.

पीपल, पिलखन, बेर, शीशम आदि वृक्षोंकी शाखाओंके ऊपर जो लाल लाल पदार्थ लगा होता है उसीको लाख कहते हैं. इनमें पीपलकी लाख उत्तम होती है और अनेक औषधियोंके प्रयोगमें आती है. इसी लाखको गरम पानीमें पकाकर महावर बनाते हैं, इसी लाखके रंगकी कारस (रोशनाई) बहुत पक्की बनती है. इसके लिखे हुए ग्रन्थ हजारों वर्षतक नहीं मिटते हैं. इसकी दर्पनाशक मस्तंगी है. इसकी प्रतिनिधि रेवतचीनी है और इसकी मात्रा १ मासेकी है.

हरिद्रानामानि ।

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी । कृमिघ्ना हलदी योषित्प्रिया हट्टविलासिनी १७१

भाषा—हरिद्रा, कांचनी, पीता, निशाह्वा (जितने रात्रिके नाम हैं वे सब), वरवर्णिनी, कृमिघ्ना, हलदी, योषित्प्रिया, हट्टविलासीनी, ये हलदीके संस्कृत नाम हैं. (युवती, हेमरागिणी, कंचनी, क्षणदा, गौरी, मेदघ्नी, यामिनी, क्षपा, तमस्विनी, गन्धपलाशिका, सुवर्णवर्णा, मंगलप्रदा, कावेरी, उमा, वर्णवती, पिंजा, पीतवालुका, हेमरागी, रभंगवासा, घर्षणी, पीतिका, रंजनी, निशा, बहुलावर्णिनी, रात्रिनामिका, हरित्, सवर्णा, शिवा, दीर्घरागा, वरांगी, अनेष्टा, वरा, वर्णदात्री, पवित्रा, हरिता, विषघ्नी, पिंगा, मंगल्या, मंगला, लक्ष्मी, भद्रा, शिफा, शोभा, शोभना, सुभगाह्वया, श्यामा, ज्वरान्तिका, कृमिघ्नी, जयन्ती और वर्णविलासिनी ये हलदीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १७१ ॥

अनेक भाषाके हलदीके नाम ।

सं.—हरिद्रा.	फा.—जरदचोब.
हिं.—हलदी.	अ.—उरुफुस्सुफुर.
बं.—हरिद्रा.	अं.—Turmeric टर्मेरिक.
म.—हळद.	ला.—Curcumalonga करक्युमालोंगा.
गु.—हलदर.	
क.—अरसीन.	
तै.—पसुपु.	

हरिद्रागुणाः ।

हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्तनुत् । वर्ण्या त्वग्दोषमेहास्रशोथपाण्डुव्रणापहा १७२

भाषा—हलदी चरपरी, कडवी, रूखी, गरम है तथा कफ, पित्त, त्वचाके दोष, प्रमेह, रुधिरविकार, सूजन, पांडुरोग और व्रणका विनाश करती है ॥ १७२ ॥

हलदीका विशेष विवरण.

पहाडकी ओरके जंगलोंमें हलदीके खेतके खेत बोये जाते हैं. इसके क्षुप छोटे छोटे और अदरकके समान होते हैं और पत्ते चौडे चौडे होते हैं; इसके नीचे धुइयांके समान गांठें होती हैं, उसको खोद खोदकर धूपमें डाल देते हैं, जब वह सूख जाती है उसको हलदी कहते हैं हरी हलदीकी भाजीभी अच्छी बनती है.

कर्पूरहरिद्रानामानि ।

दार्वी मेदाऽऽम्रगन्धा च सुरभी दारुदारु च । कर्पूरा पद्मपत्रा स्यात् सुरीमत् सुरतारका १७३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–दार्वी, मेदा, आम्रगंधा, सुरभी, दारुदारु, कर्पूरा, पद्मपत्रा, सुरीमत्, सुरतारका, (सुरनायिका) ये कपूरहलदीके संस्कृत नाम हैं ॥ १७३ ॥

अनेक भाषाके कपूरहलदीके नाम.

सं.–कर्पूरहरिद्रा.	तै.–पालुपसुपु.
हिं.–कपूरहलदी, अम्बिया हलदी.	अं.–Mango Jinger मँगो जिंजर.
बं.–आमआदा.	ला.–Curcuma aromatica करक्युमा एरोमेटिका.
म.–आंबेहळद.	
गु.–आंवाहळदर.	
क.–कस्तुरी अरसिना.	

कर्पूरहरिद्रागुणाः ।

आम्रगन्धिर्हरिद्रा या सा शीता वातला मता । पित्तघ्नमधुरा तिक्ता सर्वकण्डूविनाशिनी ॥ ७४ ॥.

भाषा–अम्बिया हलदी शीतल, वातकारक, पित्तनाशक, मधुर, कडवी है और सर्व प्रकारकी खुजली दूर करती है ॥ १७४ ॥

कपूरहलदीका विशेष विवरण.

अम्बियाहलदीकी उत्पत्ति विशेष करके उत्तरकी ओरके जंगलोंमें होती है. इसकी गांठें हलदीसे बडी होती हैं. इसको टुकडे करकरके सुखा देते हैं, इसको अम्बियाहलदी कहते हैं और इसीको कपूरहलदीभी कहते हैं.

अनेक भाषाके वनहल्दीके नाम.

सं.–वनहरिद्रा.	तै.–अडविपसुपु.
हिं.–वनहलदी, जंगली हलदी.	ता.–कस्तुरीमंजुल, काटमंजल.
म.–रानहळद.	अ.–Wild Termeric वाइल्ड् टमरिक्
गु.–वनहलदर.	

वनहरिद्रागुणाः ।

अरण्यहलदीकन्दः कुष्ठवातास्रनाशनः ।

भाषा–वनहलदी कुष्ठ वात और रुधिरविकारको नष्ट करती है ॥

दारुहरिद्रानामानि ।

दार्वी दारुहरिद्रा च पर्जन्या पर्जनीति च । कटङ्कटेरी पीता च भवेत्सैव पचम्पचा॥ १७५॥ सैव कालीयकः प्रोक्तस्तथा कालेयकोऽपि च । पीतद्रुश्च हरिद्रुश्च पीतदारु कपीतकम्॥ १७६॥

भाषा–दार्वी, दारुहरिद्रा, पर्जन्या, पर्जनी, कटङ्कटेरी, पीता, पचंपचा, कालीयक, कालेयक, पीतद्रु, हरिद्रु, पीतदारु, कपीतक ये दारुहलदीके संस्कृत नाम हैं. (द्वितीयाभा, हरिद्रा, काष्ठा, मर्मरी, पीतिका, स्थिररागा, कामिनी, दारुनिशा, कामवती, दारुपीता, कर्कटिनी, हेमकांति, पीतत्वक्, पीतचन्दन, निर्दिष्टा, काष्ठरजनी, हैमवती और हेमक्रान्ता ये दारुहलदीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

दारुहरिद्रागुणाः ।

दार्वी निशागुणा किंतु नेत्रकर्णास्यरोगनुत् ॥ १७७ ॥

भाषा–दारुहलदी हलदीके सदृश गुणवाली है और विशेष करके नेत्रके रोग, कानके रोग तथा मुखके रोगोंको शमन करती है ॥ १७७॥

दारुहलदीका विशेष विवरण.

दारुहलदीके वृक्ष वनमें बडे बडे ऊंचे होते हैं. पत्ते कुडेके वृक्षके समान होते हैं. विशेष करके यह पर्वतोंमें अधिक उत्पन्न होते हैं, इसकी लकडी पीली होती है. यही दारुहलदी है.

रसाञ्जनोत्पत्तिः ।

दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पादं पक्त्वा यथाघनम् । तदा रसाञ्जनाख्यं तन्नेत्रयोः परमं हितम् ॥ १७८ ॥

भाषा–दारुहलदीका काढा करके उसमें उतनाही गौका दूध डाले और जब क्वाथ और दूधका चौथा भाग शेष रहकर गाढा होजाय तब उतार लेवे उसको रसौत कहते हैं. यह रसौत नेत्रोंको परम हितकारी है ॥ १७८ ॥

रसाञ्जननामानि ।

रसाञ्जनं तार्क्ष्यशैलं रसगर्भं च तार्क्ष्यजम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-रसांजन, तार्क्ष्यशैल, रसगर्भ, तार्क्ष्यज ये रसौतके संस्कृत नाम हैं. (दार्वीक्वाथोद्भव, वालभैषज्य, तार्क्ष्य, रसोद्भूत, रसाग्रज, कृतक, वीर्याञ्जन, रसनागर्भ और अग्निसार ये रसौतके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके रसौतके नाम.

सं.-रसांजन.	अं.-Extract of Indian Berberis एक्स्ट्रॉक्ट आफ इंडियन वरबारिस.
हिं.-रसौत.	
बं.-रसवत.	
म.-रसांजन.	
गु.-रसवंती.	ले.-Extractum Berberis एक्स्ट्रॉक्टं वरबारिस.
क.-रसांजन.	
ते.-रसांजनमु.	
अ.-हुनूज.	

रसाञ्जनगुणाः ।

रसाञ्जनं कटु श्लेष्मविषनेत्रविकारनुत् । उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत् ॥ १७९ ॥

भाषा-रसौत चरपरी, गरम, रसायन, कडवी, छेदन है और कफ, विष, नेत्रविकार तथा व्रणदोषको हरनेवाली है ॥ १७९ ॥

रसौतका विशेष विवरण.

दारुहलदीकी कच्ची और गीली लकडियोंको चौगुने जलमें पकावे और जब चौथा भाग शेष रहजाय तब उसको छान लेवे और उस क्वाथको चौगुने दूधमें औटावे, जब औटते औटते दूध जल जाय और क्वाथ गाढा होजाय तब उतार लेवे और पत्तोंमें लपेटकर रख देवे. इसीको रसौत कहते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

वाकुचीनामानि ।

अवल्गुजो वाकुची स्यात्सोमराजी सुपर्णिका । शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतिफलीति च ॥ सोमवल्ली कालमेषी कुष्ठघ्नी च प्रकीर्तिता ॥ १८० ॥

भाषा-अवल्गुज, वाकुची, सोमराजी, सुपर्णिका, शशिलेखा, कृष्णफल, सोमा, पूतिफली, सोमवल्ली, कालमेषी, कुष्ठघ्नी ये वाकुचीके संस्कृत नाम हैं. (वेजानी, सुवल्ली, सोमवल्लिका, चन्द्रलेखा, कृष्णा, पूतिफला, वागुजी, वाकुजी, सोमराजिका, ऐन्दवी, शूलोत्खा, कृमिघ्नी, सुवल्लिका, सिता, सितावरी, चन्द्री, सुप्रभा, कुष्ठहन्त्री, काम्बोजी, पूतिगन्धा, वल्गुजा, चन्द्रराजी, त्वग्दोषापहा, कान्तिदा, अवल्गुजा, चन्द्रप्रभा, पूतिगंधिका, कण्डूघ्नी और असितत्वचा ये बावचीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं ॥ १८० ॥

अनेक भाषाके बावचीके नाम.

सं.- वाकुची.	ता.-वोगिविट्टलु.
हिं.-बावची, वायची.	अं.-Esculent Flacourtia एस्क्यूलंट फ्लाकुर्शिया.
बं.-हाकुच, सोमराज.	
म.-बांवची.	ला.-Psoralia Corylifolia सोरेलिया कोरिलिफोलिया.
गु.-बावची.	
क.-बाउच्चिगे. [लिये.	
ते.-तिप्पतोगे, नेलवय	

वाकुचीगुणाः ।

वाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी । विष्टम्भहृद्धिमा रुच्या सरा श्लेष्मास्रपित्तनुत् ॥ रूक्षा हृद्या श्वासकुष्ठमेहज्वरकृमिप्रणुत् ॥ १८१ ॥ तत्फलं पित्तलं कुष्ठकफानिलहरं कटु । केश्यं त्वच्यं वमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत् ॥ १८२ ॥

भाषा-बावची मधुर, कडवी, पाकमें चरपरी, रसायन, विष्टम्भनाशक, शीतल, रुचिकारी, दस्तावर, रूखी, हृदयको हितकारी है और कफ, रक्तपित्त, श्वास, कोढ, प्रमेह, ज्वर तथा कृमिको नष्ट करनेवाली है. बावचीका फल पित्तकारक, केश तथा त्वचाको हितकारी, चरपरा है और कुष्ठ, कफ, वात, वमन, श्वास, खांसी, शोथ, आम और पाण्डुरोगको नष्ट करनेवाला है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

बावचीका विशेष विवरण.

बावची क्षुप जातिकी औषधि है, इसके पत्ते छोटे २ अरनीके समान कटे हुए गोल होते हैं.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फूलोंका गुच्छा बालोंके समान काला होता है. इन्ही बालोंमें बावचीके दाने होते हैं. इसके दाने काले चपटे होते हैं और उनमें दुर्गन्ध आती है. इसके बीजही व्यवहारमें विशेष आते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

चक्रमर्दनामानि ।

चक्रमर्दः प्रपुन्नाटो दद्रुघ्नो मेषलोचनः ।
पद्माटः स्यादेडगजश्चक्री पुन्नाट इत्यपि १८३

भाषा–चक्रमर्द, प्रपुन्नाट, दद्रुघ्न, मेषलोचन, पद्माट, एडगज, चक्री, पुन्नाट ये चकवडके संस्कृत नाम हैं. (तार्कण, तार्कल, प्रपुन्नड, मेषाक्षि, कुसुम, प्रपुन्नाल, अडगज, गजाख्य, मेषाह्वय, एडहस्ती, व्यावर्त्तक, चक्रगज, पुन्नाड, विमर्दक, तर्वट, चक्राह्व, शुक्रनाशन, दृढबीज, प्रपुन्नाड, खर्जूघ्न, चक्रमर्दक, उरणाख्य, उरणाख्यक, उरणाक्ष, उरणाक्षक और चक्रपद्माड ये चकवडके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १८३ ॥

अनेक भाषाके चकवडके नाम.

सं.–चक्रमर्द.
हिं.–चकवड, पवाड, पवार, पमाड, पमार.
बं.–चाकुन्दा, एडांची.
म.–टाकळा, तरोटा.
गु.–कुवाडियो.
क.– टकरिके, चगचे.
ते.–तांव्यमु, तगिरिस.
ता.–तगरे, विंदु.
तु.–तजंकु.
मला.–तकर.
गो.–तेकिलो.
फा.–संजीसवोया.
अं.–Oval leaved cassia ओवल्लीवड् केशिया.
ला.–Cassiatora केशिया टोरा.

चक्रमर्दगुणाः ।

चक्रमर्दो लघुः स्वादू रूक्षः पित्तानिलापहः ।
हृद्यो हिमः कफश्वासकुष्ठदद्रुकृमीन्हरेत् ॥ १८४ ॥ हन्त्युष्णं तत्फलं कुष्ठकण्डूदद्रुविषानिलान् । गुल्मकासकृमिश्वासनाशनं कटुकं स्मृतम् ॥ १८५ ॥

भाषा–चकवड हलका, मधुर, रूक्ष, हृदयको हितकारी, शीतल है और पित्त, वात, कफ, श्वास, कोढ, दाद तथा कृमिको नष्ट करनेवाला है. चकवडका फल गरम तथा चरपरा है और कोढ, खुजली, दाद, विष, वात, गुल्म, खांसी, कृमि तथा श्वास इन सब रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

चकवडका विशेष विवरण.

पमार (चकवड) के क्षुप वर्षाऋतुमें अधिकतासे उत्पन्न होते हैं, विशेषकरके जंगलमें और पहाडकी तलहटीमें इसकी उत्पति अधिक होती है; इसके पत्ते गोल और एक दंडीमें पांच पांच होते हैं; इसके फूल पीले होते हैं. फलियें पतली पतली मूंगकी फलीसे तिगुनी लम्बी होती हैं; उनमें छोटे छोटे मोठकेसे दाने होते हैं, इन दानोंका रंग काला होता है. इसके पत्तोंका शाकभी अच्छा बनता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

अतिविषानामानि ।

विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रतिविषाऽरुणा । शुक्लकन्दा चोपविषा भंगुरा घुणवल्लभा ॥ १८६ ॥

भाषा–विषा, अतिविषा, विश्वा, शृंगी, प्रतिविषा, अरुणा, शुक्लकन्दा, उपविषा, भंगुरा, घुणवल्लभा ये अतीसके संस्कृत नाम हैं. (काश्मीरा, श्वेता, प्राविषा, शृंगीका, शृंगिका, महौषध, श्वेतकन्दा, भृंगी, विरूपा, श्यामकन्दा, विषरूपा, वीरा, माद्री, अमृता, श्वेतवचा, मृद्वी, शिशुभैषज्य और अतिसारघ्नी ये अतीसके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १८६ ॥

अनेक भाषाके अतीसके नाम.

सं.–अतिविषा.
हिं.–अतिस.
बं.–आतईच.
म.–अतिविष.
गु.–अतवस.
क.–अतिविषा.
ते.–अतिवासा.
ला.–Aconitum Heterophyllum एकोनाइटम हिटरोफाइलम.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिविषागुणाः ।

विषा सोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत् । कफपित्तातिसारामविषकासवमिक्रिमीन् ॥ १८७ ॥

भाषा-अतीस गरम, चरपरा, कडवा, पाचन, अग्निको दीप्त करनेवाला है और कफ, पित्त, अतिसार, आम, विष, खांसी, वमन और कृमिरोगको नष्ट करता है ॥ १८७ ॥

अतीसका विशेष विवरण.

अतीस यह क्षुप जातिकी वनस्पति है. इसके पत्ते करेलेकेसे होते हैं. इसके नीचे कन्द होता है. अतीस काला, सफेद और लाल इन भेदोंसे तीन जातिका होता है; परन्तु गुण तीनोंका समान है. विशेषतः औषधिके प्रयोगमें सफेद-कोही लेते हैं. इसकी जडको अतीस कहते हैं. इसकी छाल रंगतके काममेंभी आती है. इसकी मात्रा ९ रत्तीसे ३॥ मासेकी है.

लोध्रनामानि ।

(शावरलोध्रः पाटिआलोध इति लोके) । लोध्रस्तिरीटकश्चैव शावरो मालवस्तथा । द्वितीयः पट्टिकालोध्रः क्रमुकः स्थूलवल्कलः ॥ जीर्णपत्रो बृहत्पत्रः पट्टी लाक्षाप्रसादनः १८८

भाषा-लोध्र, तिरीटक, शावर, मालव ये पहले प्रकारके लोधके संस्कृत नाम हैं. (लोध्रक, लोध्रवृक्ष, मार्जन, तिन्दुक, लक्तकर्मा, शुक्ल, शबरलोध्र, महालोध्र, मार्जन, बलिप्रिय, वानराघात, बलभद्र, रोध्र, भिल्लतरु, तिल्लक, काण्डकीलक, शम्बर, हस्तिलोध्रक, तिलक, काण्डनील, हेमपुष्पक, भिल्ली, शावरक और तिरीट ये पहले प्रकारके लोधके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) पट्टिकालोध्र, क्रमुक, स्थूलवल्कल, जीर्णपत्र, बृहत्पत्र, पट्टी, लाक्षाप्रसादन ये दूसरे प्रकारके पट्टिकाख्य लोध (पठानी लोध) के संस्कृत नाम हैं. (पट्टिकाख्य, पट्टिका, पट्टिलोध्र पट्टिलोध्रक, वल्कलोध्र, बृहद्दल, जीर्णवुध्र, बृहद्वल्क, शीर्णपत्र, अक्षिभेषज, शावर, श्वेतलोध्र, गालव, वहुलत्वच और वल्क ये दूसरे प्रकारके लोधके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १८८ ॥

अनेक भाषाके लोधके नाम.

सं.-लोध्र, पट्टिकालोध्र.
हिं.-लोध, पठानीलोध.
बं.-लोध्रकाष्ठ, पाटिया लोध.
म.-लोध, पांढरा लोध्र, तांबडा लोध्र.
गु.-लोदर, पठाणी लोदर.
क.-लोध, बिलियलोध.
ते.-तेल्ल लोङ्गचेट्टु
अ.-मुगाम्.
ला.-Syimplocos racemosa सिंप्लोकोस रेसिमोसा.

लोध्रगुणाः ।

लोध्रो ग्राही लघुः शीतश्चक्षुष्यः कफपित्तनुत् । कषायो रक्तपित्तासृग्ज्वरातीसारशोथहृत् १८९

भाषा-लोध ग्राही, हलका, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, कसैला है और कफ, पित्त, रक्तपित्त, रुधिरविकार, ज्वर, अतीसार तथा शोथको हरनेवाला है ॥ १८९ ॥

लोधका विशेष विवरण.

लोधके वडे बडे वृक्ष हिमालय आदि पर्वतोंमें उत्पन्न होते हैं. इसके पत्ते वडे और लम्बे होते हैं. इसके फूल सफेद, पीले और लाल रंगके मिश्रित होते हैं. इस वृक्षकी जडकी छालको प्रयोगमें लेते हैं. यह छाल रंगतके काममेंभी वहुत आती है.

लशुननामानि ।

लशुनस्तु रसोनः स्यादुग्रगन्धो महौषधम् । अरिष्टो म्लेच्छकन्दश्च यवनेष्टो रसोनकः १९०

भाषा-लशुन, रसोन, उग्रगंध, महौषध, अरिष्ट, म्लेच्छकन्द, यवनेष्ट, रसोनक ये लहसुनके संस्कृत नाम हैं. (शुक्लकन्द, महाकन्द, वातारि, दीर्घपत्रक, रसुन, गृंजन, कटुकन्द, राहूच्छिष्ट, राहूत्सृष्ट और भूतघ्न ये लहसुनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पायें जाते हैं.) १९० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके लहसनके नाम.

सं.–लशून.	फा.–सीर
हिं.–लहसन.	अ.–सुमइस्कुदीर्युन.
बं.–रसुन.	अं.–Garlic root गारलिकरूट.
म.–लसूण.	
गु.–लसण.	ला.–Allium Sativam एलियम् सेटाइवम्.
क.–वेळ्ळुळ्ळि.	
तै.–तेल्लउल्ली.	

लशुनोत्पत्तिः ।

यदामृतं वैनतेयो जहार सुरसत्तमात् । तदा ततोऽपतद्बिन्दुः सरसोनोऽभवद्भुवि॥ १९१ ॥

भाषा–किसी समय देवराज इन्द्रसे गरुडजीने अमृत हरण करलिया था. उस समय झटकेसे अमृतका एक बिन्दु पृथ्वीपर गिरपडा, उसी बिन्दुसे यह रसोन उत्पन्न हुआ॥ १९१ ॥

लशुनरसाः ।

पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः । तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः॥ १९२ ॥

भाषा–पृथ्वीपर छः रस हैं उनमेंसे एक अम्लरसको छोडकर अमृतमें पांचों रस विद्यमान हैं. इसलिये गुणके जाननेवालोंने उस अमृतसे प्रगट हुए पदार्थका नाम रसोन रक्खा है॥१९२॥

लशुनस्थरसाः ।

कटुकश्चापि मूलेषु तिक्तः पत्रेषु संस्थितः ॥ १९३ ॥ नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः । बीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः ॥ १९४ ॥

भाषा–लहसुनकी जडमें चरपरा रस, पत्तोंमें कडवारस, नालमें कसैलारस, नालके अग्रभागमें खारी रस और बीजोंमें मधुररस रहता है ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

लशुनगुणाः ।

रसोनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धोष्णः पाचनः सरः । रसे पाके च कटुकस्तीक्ष्णो मधुरको मतः ॥ १९५ ॥ भग्नसन्धानकृत्कण्ठ्यो गुरुः पित्तास्रवृद्धिदः । बलवर्णकरो मेधाहितो नेत्र्यो रसायनः ॥ १९६ ॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूल विबन्धगुल्मारुचिकासशोफान् । दुर्नामकुष्ठानलसादजन्तुसमीरणश्वासकफांश्च हन्ति १९७

भाषा–लहसुन पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, गरम, पाचन, दस्तावर, पाकमें तथा रसमें तीक्ष्ण और मधुर है और भग्नस्थानको जोडनेवाला, कंठको उत्तम करनेवाला, भारी, पित्त तथा रुधिरको बढानेवाला और बल, वर्णके लिये उत्तम है, मेधाको हितकारी, नेत्रोंको सुखदायक, रसायन है और हृदयरोग, अजीर्ण, ज्वर, कोखका दर्द, मलबन्ध (मलोंका बद्ध होकर रहना), गुल्म, अरुचि, खांसी, सूजन, बवासीर, कुष्ठ, मंदाग्नि, कृमि, वात, श्वास तथा कफको नष्ट करनेवाला है ॥ १९५–१९७ ॥

निषेधः ।

मद्यं मांसं तथाम्लं च हितं लशुनसेविनाम् । व्यायाममातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम् । रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतान्निरन्तरम् ॥१९८॥

भाषा–लहसुन खानेवालोंको मद्य, मांस, और खटाई ये परम हितकारी हैं. व्यायाम (कसरत), धूप, क्रोध, बहुत जल, दूध और गुड इन पदार्थोंको निरंतर छोड देवे ये अहितकारी हैं ॥ १९८ ॥

लहसुनका विशेष विवरण.

लहसुनके क्षुप सर्वत्र अधिकतासे होते हैं. इसके पत्ते प्याजके समान लम्बे होते हैं और नीचे गुलाबी रंगका कन्द होता है, इसीको लहसन कहते हैं. लहसनमें महादुर्गन्ध आती है. इसकी मात्रा आधे तोलेकी है.

पलाण्डुनामानि ।

पलाण्डुर्यवनेष्टश्च दुर्गन्धो मुखदूषकः ।

भाषा–पलाण्डु, यवनेष्ट, दुर्गन्ध, मुखदूषक, ये पलांडुके संस्कृत नाम हैं.(सुकन्दक, निकेतन, नीचभोज्य, लोहितकन्द तीक्ष्णकन्द, उष्ण, मुखदूषण, शूद्रप्रिय, दीपन, कृमिघ्न, मुखगन्धक, बहुपत्र, विश्वगन्ध, रोचन और सुकन्द ये पियाजके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके पियाजके नाम.

सं.-पलांडु.
हिं.-पियाज, प्याज.
बं.-पेयाज.
म.-कांदा.
गु.-डुंगरी.
क.-[नि] ईरुळ्ळी.
तै.-यर्रउल्ली.
ता.-ईरवंगाइ.
फा.-प्याज.
अ.-वसल.
अं.-Bulb onion बल्वअनियन.
ला.-Allium Seha एलिअम सेहा.

पलांडुगुणाः।

पलाण्डुस्तु गुणैर्ज्ञेयो रसोनसदृशो गुणैः।
स्वादुः पाके रसेऽनुष्णः कफकृन्नातिपित्तलः॥
हरते केवलं वातं बलवीर्यकरो गुरुः॥ १९९॥

भाषा-प्याज लहसुनके सदृशही गुणवाला है. पाक तथा रसमें मधुर, गरम नहीं; कफकारक, अत्यंत पित्तकारक नहीं, बल तथा वीर्यकी वृद्धि करनेवाला, भारी और केवल वायुको नष्ट करनेवाला है॥ १९९॥

प्याजका विशेष विवरण.

प्याजके क्षुप दो बालिस्त ऊंचे होते हैं. इनको बागवान लोग खेतोंमें बोते हैं. इसके पत्ते नालकी तुल्य भीतरसे खुक्खल और कोमल होते हैं, इसका कन्द नीचे धरतीमें होता है, वह कन्द गुलाबी तथा सफेद रंगका होता है, इस कन्दपर छिलके बहुत होते हैं, दुर्गन्ध अधिक आती है; इसकी मात्रा आधे तोलेकी है.

भल्लातकनामानि।

भल्लातकं त्रिषु प्रोक्तमरुष्कोऽरुष्करोऽग्निकः।
तथैवाग्निमुखो भल्ली वीरवृक्षश्च शोफकृत् २००

भाषा-भल्लातक, अरुष्क, अरुष्कर अग्निक, अग्निमुख, भल्ल, वीरवृक्ष, शोफकृत् ये भिलावेके संस्कृत नाम हैं. (व्रणकृत्, भूतनाशन, भल्लातकी, अग्निमुखी, अह्वला, अन्तःसत्त्वा, भल्लिका, भल्ली, निर्दहन, तपन, अनल, कृमिघ्न, शैलबीज, वातारि, स्फोटबीजक, पृथग्बीज, धनुर्वृक्ष, बीजपादप, वह्नि, महातीक्ष्णा, अग्निक, स्फोटहेतु, शोफनुत्, स्नेहबीज और रक्तहर ये भिलावेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ २००॥

अनेक भाषाके भिलावेके नाम.

सं.-भल्लातक.
हिं.-भिलावा.
बं.-भेला.
म.-बिबवा, भिलावा.
गु.-भिलामां. [क्यारु.
क.-केरबीज, गेरु,
तै.-नल्लजीडी, भल्लातिकी.
ता.-तेतांक्कोटै. कैंगोटेमार.
तु.-तेरेमारा.
मला.-चेरमारा.
उत्.-भल्लिप.
फा.-बिलादुर.
अ.-हबुल कल्ब.
अं.-Markingnut मार्किंग्नट्.
ला.-Semicarpus Anacardium सेमिकार्पस् एनेकार्डियम्.

भल्लातकगुणाः।

भल्लातकफलं पक्वं स्वादुपाकरसं लघु। कषायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं छेदि भेदनम्॥२०१॥
मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफवातव्रणोदरम्। कुष्ठार्शोग्रहणीगुल्मशोफानाहज्वरक्रिमीन्॥२०२॥
तन्मज्जा मधुरो वृष्यो बृंहणो वातपित्तहा। वृन्तमारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत्॥ २०३॥ भल्लातकः कषायोष्णः शुक्रलो मधुरो लघुः। वातश्लेष्मोदरानाहकुष्ठार्शोग्रहणीगदान्। हन्ति गुल्मज्वरश्वित्रवह्निमान्द्यकृमिव्रणान्॥ २०४॥

भाषा-भिलावेका पक्का फल पाकमें और रसमें मधुर, हलका, कसैला, पाचक, स्निग्ध, तीक्ष्ण, गरम, मलको छेदन करनेवाला, भेदन (फोडनेवाला), मेधाको हितकारी, अग्निकारक है और कफ, वात, व्रण, उदररोग, कोढ, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, सूजन, अफरा, ज्वर और कृमि इन सबको नष्ट करनेवाला है. भिलावेकी मींग मधुर, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक और वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है. भिलावेकी डंडी मधुर, पित्तनाशक, केशोंको हितकारी और अग्निको दीपन करनेवाली है. भिलावा कसैला, गरम, वीर्यवर्द्धक, मधुर, हलका है और वात, कफ, उदररोग, अफरा, कोढ, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वेतकुष्ठ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निकी मंदता, कृमि और व्रणको हरनेवाला है ॥ २०१–२०४ ॥

भिलावेका विशेष विवरण.

भिलावेका वृक्ष बहुत बडा होता है, इसके पत्ते बडके समान होते हैं और फूल लाल रंगके बडे बडे होते हैं, इसके फल किञ्चित् लम्बाई लिये गोल गोल करौंदेके सदृश होते हैं. फिर सूखकर काले पड जाते हैं, परन्तु इनका रस नहीं सूखता, रस उनमें बनाही रहता है. इसके दर्पनाशक तिल और नारियलकी गिरी है. इसके फलकी मात्रा ४ रत्तीसे लेकर ३॥ मासे तककी है. कोई २ इसको विष मानते हैं. इसके तेलको संधिवात और नसके हट जानेपर ऊपर लगाते हैं परंतु इसमें दूसरी औषधको मिलाकर इसकी शक्ति कुछ न्यून नहीं की जाय तो इससे चमडीके ऊपर छाले पडकर फफोले उछर आते हैं.

भङ्गानामानि ।

भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया।

भाषा–भंगा, गंजा, मातुलानी, मादिनी, विजया, जया ये भंगके संस्कृत नाम हैं. (शक्राशन, त्रैलोक्यविजया, मत्कुणारि, इन्द्राशन, वीरपत्रा, चपला, अजया, आनन्दा, हर्षिणी, मोहिनी, भृंगी, धूर्तवधू, मातुला, मातुली, नोली, मनोहरा, हरा, उन्मत्तिनी, योगिनी, धूर्तपत्नी; कामाग्नि, तन्द्रारुचिवर्द्धिनी, वीरपत्री, शिवा, माया, शिवप्रिया, मत्ता और ज्ञानवल्लिका ये भंगके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके भांगके नाम.

सं.–भंगा.	फा.–कनक, जुजव आजम.
हिं.–भांग, भंग, गांजा.	अ.–किन्नवकेन वुर्वारंरु रुहुलबंज.
बं.–सिद्धि, भांग, गांजा.	अं.–Indian Hemp इंडियन् हेम्प्.
म.–भांग, गांजा.	ला.–Cannabis Indica कॅनाबिस इंडिका.
गु.–भांग.	
ब्र.–विन.	
ते.–जनपरितुलु गांजाई.	

भंगागुणाः ।

भङ्गा कफहरी तिक्ता ग्राहिणी पाचनी लघुः।
तीक्ष्णोष्णा पित्तला मोहमन्दवाग्वह्निवर्द्धिनी ॥ २०५ ॥

भाषा–भांग कफनाशक, कडवी, ग्राही, पाचक, हलकी, तीक्ष्ण, गरम, पित्तकारक है और मोह, मद, वचन तथा अग्निको बढाती है॥२०५॥

भांगका विशेष विवरण.

भांगके बडे बडे क्षुप होते हैं, परन्तु आठ फुटसे अधिक ऊंचे नहीं होते. इसके फूल हरे हरे गुच्छेदार होते हैं और इसके पत्ते नींबके पत्तोंके समान लम्बे और कंगूरेदार होते हैं, परन्तु लम्बाई चौडाईमें नींबके पत्तोंसे कुछ छोटे होते हैं, प्रत्येक डंडीपर तीन, पांच अथवा सात पत्ते होते हैं. भांग दो प्रकारकी होती है, एक पुरुषके नामसे दूसरी स्त्रीके नामसे. पुरुष जातिके क्षुपसे भांगके पत्ते लिये जाते हैं, जिनको लोग घोटकर पीते हैं, और स्त्री जातिके क्षुपसे गांजेकी उत्पत्ति होती है, जिसके पत्तोंसे चरस बनता है, रातमें जब ओस पडनेसे गांजेके पत्ते तर हो जाते, तब प्रातःकाल उनमें मनुष्य फिरते हैं; जब ओस और पत्तोंका मैल शरीरोंमें लग जाता है तब वे मनुष्य अपने शरीरको मलमलकर मैल उतार लेते हैं, उसी मैलको चरस कहते हैं, वह काबुल और बलक बुखारेसे बहुत आता है, दोनों जातिके क्षुप एक स्थानपर होनेसे जटा नहीं बांधी जासक्ती; वैद्यकशास्त्रमें भंग और भंगके बीजोंके सिवाय इसके और किसी अंशका व्यवहार नहीं होता परन्तु गांजा किसी किसी प्रयोगमें लिया जाता है. भांगकी मात्रा ४ रत्तीकी है और गांजेकी मात्रा आध रत्तीकी है. गांजेकी प्रतिनिधिमें गांजेका सत्त देते हैं.

खाखसनामानि ।

तिलभेदः खसतिलः खाखसश्चापि स स्मृतः।

भाषा–तिलभेद, खसतिल और खाखस ये पोस्तके डोरेके संस्कृत नाम हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके पोस्तके नाम.

सं.-खाखस.
हिं.-पोस्तके डोडे, खसखस.
बं.-टेरीवृक्ष, पोस्तदानार गाछ.
म.-पोस्त.
गु.-अफीणना डोडवा.
फा.-कोकनार.
अ.-अनुनास.
अं.-Popee Seed पोपी सीड.
ला.-Papabarisacapsinle पापावरिस्काप्सिन्ले.

खाखसगुणाः।

स्याद्वा खसफलोद्भूतं वल्कलं शीतलं लघु। ग्राहि तिक्तं कषायं च वातकृत्तत्कफास्रहृत् ॥ २०६ ॥ धातूनां शोषकं रूक्षं मदकृद्वाग्विवर्धनम्। मुहुर्मोहकरं रुच्यं सेवनात्पुंस्त्वनाशनम् ॥ २०७ ॥

भाषा-खसखसका छुलका शीतल, हलका, ग्राही, कडवा, कसैला, वातकारक है तथा कफनाशक, रक्तनाशक, धातुओंको सुखानेवाला, रूक्ष, मदकारक, वचनवर्द्धक, वारंवार मोहजनक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला और सेवन करनेसे पुरुषार्थहीन करनेवाला है ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

पोस्तका विशेष विवरण.

पोस्त यह क्षुप जातिकी वनस्पति है. पोस्तके खेत मालवा, पटना, खानदेश, सिंध और रुहेलखण्डमें अधिकतासे होते हैं, इसके क्षुप चार फुटसे अधिक ऊंचे नहीं होते. उनपर लाल और सफेद रंगके बहुत सुन्दर गुल्लालेके समान फूल आते हैं, इसपै डोरे लगते हैं, उन डोरोंको छुरीकी नोकसे गोद देते हैं तो उनमेंसे जो दूध निकलता है उनको पकाकर अफीम बनाते हैं, उन डोरोंके भीतर जो दाने निकलते हैं उनको खसखस कहते हैं.

अहिफेनकनामानि।

उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकम्।

भाषा-खसफलक्षीर, आफूक, अहिफेनक ये अफीमके संस्कृत नाम हैं. (अफेनु, खसखसरस, निफेन, नागफेन, पोस्तरस और भुजंगफेन ये अफीमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके अफीमके नाम.

सं.-अहिफेनक.
हिं.-अफीम.
बं.-आफि, अहिफेन.
म.-अफू.
गु.-अफीण.
क.-अफेन.
तै.-नेल्लामन्दु.
फा.-अफयून, तिर्याक.
अ.-लबनुल खसखास.
अं.-Opium ओपियम्.
ला.-Opium ओप्यम्.

अहिफेनकगुणाः।

आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम्। तथा खसफलोद्भूतवल्कलप्रायमित्यपि २०८।

भाषा-अफीम शोषक, ग्राही, कफनाशक, वायुकारक तथा पित्तकारक है और जो पोस्तकी छालके गुण हैं वेही गुण अफीमके हैं ॥२०८॥

अफीमका विशेष विवरण.

अफीमका वृत्तान्त पोस्तमें लिखा है. इसका दर्पनाशक तवाशीर और घी है और प्रतिनिधि आसवच है. इसकी मात्रा पाव रत्तीकी है.

खाखसतिलनामानि।

उच्यन्ते खसबीजानि ते खाखसतिला अपि।

भाषा-खसबीज, खाखसतिल ये खसखसके संस्कृत नाम हैं. (सूक्ष्मतंडुल, सूक्ष्मबीज, खस्खसी, शुभ्रपुष्प, लसतल, सुबीज, तिलभेद और खसतिल ये खसखसके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके खसखसके नाम.

सं.-खसबीज.
हिं.-खसखस, पोस्तके दाने.
बं.-पोस्तदाना.
म.-खसखस.
गु.-पोस्तबीज.
क.-खसखस.
तै.-गसगस.
ता.-गसगस.
तु.-कसकसे.
मला.-कशकश.
फा.-तुख्मेकोकनार.
अ.-हबुलकोकनार.
अं.-Popee Seeds पॉपीसीड्स.
ला.-Papavar Somnifarum पापावर सोम्निफेरम्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खाखसतिलगुणाः

खसबीजानि बल्यानि वृष्याणि गुरूणि च। जनयन्ति कफं तानि शमयन्ति समीरणम् ॥ २०९ ॥

भाषा–खसखसके दाने बलदायक, वीर्यवर्द्धक, भारी, कफको उत्पन्न करनेवाले और वातको शांत करनेवाले हैं ॥ २०९ ॥

सैन्धवनामानि ।

सैंधवोऽब्धी शीतशिवं माणिमंथं च सिन्धुजम् ।

भाषा–सैंधव, शीतशिव, माणिमन्थ, सिन्धुज ये सेंधेनोनके संस्कृत नाम हैं. (सिन्धूद्भव, नादेय, लवणोत्तम, सितशिव, सितसिव, शिताशिव, सिन्धूपल, वशिर, सिन्धुदेशज, माणिबन्ध, सिन्धुमन्थज, सिंधुलवण, सिन्धूभव, सिन्धुसम्भव, शिवसिद्ध, शिवात्मज और पथ्य ये सेंधेनोनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सेंधेनोनके नाम.

सं.–सैंधव.	अ.–मिलहेहिन्दी.
हिं.–सेंधानोन.	अं.–Chloride of Sodium क्लोराइड आफ सोडियम्.
बं.–सैन्धवलवण.	
म.–शेंदेलोण.	
गु.–सिंधालूण.	ला.–Sodia Cloridum सोडिया क्लोरिडम.
क.–सैंधव.	
तै.–सिंधुउप्पु.	
फा.–नमकसंग.	

सैन्धवगुणाः ।

सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनं पाचनं लघु । स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् ॥ २१० ॥

भाषा–सेंधानोन स्वादिष्ठ, अग्निको प्रदीप्त करनेवाला, पाचन, हलका, स्निग्ध, रुचिकारक, शीतल, वृष्य, सूक्ष्म, नेत्रोंको हितकारी और तीनों दोषोंको हरनेवाला है ॥ २१० ॥

सेंधेनोनका विशेष विवरण.

सेंधेनोनकी सिन्धुकी ओर अनेक खानें हैं. उन खानोंमें पत्थरकी तुल्य यह निकलता है, यह सम्पूर्ण नमकोंमें शुद्ध और उत्तम होता है, लाल और सुफेद इन भेदोंसे सेंधानोन दो प्रकारका होता है परन्तु सफेदकी बहुत प्रशंसा है.

शाकम्भरीयनामानि ।

शाकम्भरीयं कथितं गुडाख्यं रौमकं तथा ।

भाषा–शाकम्भरीय, रौमक और गुडाख्य (गुडके जितने नाम हैं वे सब) ये सांभरके संस्कृत नाम हैं. (वसुक, रौम, लवण, गुडलवण, शुभ्र, पृथ्वीज, गडदेशज, गडोत्थ, महारम्भ, साम्भर और समरोद्भव ये सांभरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सांभरनोनके नाम.

सं.–शाकंभरीय.	गु.–सांभरलून.
हिं.–सांभरनोन.	क.–गाढलवण, सम्भरदेशज.
बं.–सामरलुण.	
म.–सांबरलोण, सांभरमीठ.	फा.–मिलहेअवकीर.

शांकंभरीयगुणाः ।

गुडाख्यं लघु वातघ्नमत्युष्णं भेदि पित्तलम् । तीक्ष्णोष्णं चापि सूक्ष्मं चाभिष्यंदि कटुपाकि च ॥ २११ ॥

भाषा–सांभर हलका, वातविनाशक अत्यन्त गरम, भेदक, पित्तकारक, तीक्ष्ण, अभिष्यन्दी और पाकमें चरपरा है ॥ २११ ॥

साम्भरनोनका विशेष विवरण.

साम्भरनोन मरुदेशके खारी सरोवरमें उत्पन्न होता है.

सामुद्रलवणनामानि ।

सामुद्रं यत्तु लवणमक्षीवं वशिरं च तत् । सामुद्रजं सागरजं लवणोदधिसम्भवम् ॥ २१२ ॥

भाषा–सामुद्र, अक्षीव, वशिर, समुद्रज, सागरज, लवणोदधिसंभव ये समुद्रनोनके संस्कृत नाम हैं. (सामुद्रिक, त्रिकूट, लवणाब्धिज, वासर, कडक, शिव और अक्षीर ये समुद्रनोनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २१२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके समुद्रनोनके नाम.

सं.–सामुद्रलवण.	तै.–उप्पुं.
हिं.–समुद्रनोन, पांगा.	फा.–नमक.
बं.–करकचनुन.	अ.–मिलहशोरी.
म.–मीठ.	अं.–Salt साल्ट्.
गु.–दरियाईलून. वडागरलवण.	ला.–Sodia Muras सोडिया मुरास.

सामुद्रलवणगुणाः ।

सामुद्रं मधुरं पाके सतिक्तं मधुरं गुरु ।
नात्युष्णं दीपनं भेदि सक्षारमविदाहि च ।
श्लेष्मलं वातनुत्तिक्तमरूक्षं नातिशीतलम् २१३

भाषा–समुद्रनोन मधुर, पाकमें चरपरा और मधुर, भारी, बहुत गरम नहीं, अग्निप्रदीपक, मलभेदक, खारीरसयुक्त, दाहहीन, कफकारक, वातनाशक, कडवा, निरूक्ष है और अत्यन्त शीतलभी नहीं है ॥ २१३ ॥

समुद्रनोनका विशेष विवरण.

समुद्रनोन समुद्रके जलको जमाकर बनाया जाता है.

बिडलवणनामानि ।

बिडं पाकं च कृतकं तथा द्राविडमासुरम् ।

भाषा–बिड, पाक्य, कृतक, द्राविड, आसुर ये विरियासञ्चर नोनके संस्कृत नाम हैं. (बिडलवण, धूर्त, विड्गन्ध, कालंलवण, द्राविडक, खंडक्षार, घंड्किालवण, द्राविण, सुपाक्य, खंडलवण, कृत्रिमक और विड ये विरियासञ्चर नोनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके विरियासंचरनोनके नाम.

सं.–बिडलवण.	बं.–विट्नून.
हिं.–विरियासंचरनोन, कबीलानोन.	म.–बिडलोण.
	गु.–बिडलूण.

बिडलवणगुणाः ।

बिडं सक्षारमूर्द्ध्वाधः कफवातानुलोमनम् २१४
ऊर्ध्वं कफमधो वातं सञ्चारयेदित्यर्थः ॥
दीपनं लघुतीक्ष्णोष्णं रूक्षं रुच्यं व्यवायि च ।
विबंधानाहविष्टम्भहृद्रुग्गौरवशूलनुत् ॥२१५॥

भाषा–विरियासंचरनोन खारीरसयुक्त, कफको ऊपर और वातको नीचे खैंचनेवाला, दीपन, हलका, तीक्ष्ण, गरम, रूक्ष, रुचिकारी, व्यवायी है और विबन्ध, आनाह, विष्टम्भ, हृदयके रोग भारीपन तथा शूलको नष्ट करता है ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

बिडनोनका विशेष विवरण.

बिडनोन प्रसारिणीके कल्ककका क्षार बनाते हैं उसका नाम बिडलोन है.

सौवर्चललवणनामानि ।

सौवर्चलं स्याद्रुचकं मन्थपाकं च तन्मतम् ।

भाषा–सौवर्चल, रुचक, मन्थपाक ये कालेनोनके संस्कृत नाम हैं. (अक्ष, रुच्य, दुर्गन्ध, शूलनाशन, कृष्णलवण, तिलक, ह्यगन्ध, कोद्रविक, पाक्य और मेचक ये कालेनोनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके काले नोनके नाम.

सं.–सौवर्चल.	फा.–नमकसियाह.
हिं.–कालानोन, सोचरनोन, चोहारकोडा.	अ.–मलाअस्वद्.
बं.–संचरलवण.	अं.–Black Salt ब्लाक् साल्ट्.
म.–पादेलोण.	ला.–Unaqua Sodii Chloredum अनाक्वा सोडिआइ क्लोरेडम्.
गु.–संचललूण.	
क.–सौवर्चल.	
तै.–नेल्लउप्पु.	

सौवर्चलगुणाः ।

रुचकं रोचने भेदि दीपनं पाचनं परम् ।
सुस्नेहं वातनुन्नातिपित्तलं विशदं लघु ॥ उद्गारशुद्धिदं सूक्ष्मं विबन्धानाहशूलजित् ॥२१६॥

भाषा–काला नोन रुचिकारक, मलभेदक, दीपन, अत्यंत पाचन, स्निग्ध, वातनाशक, अत्यंत पित्तकारी नहीं, विशद, हलका, डकारको शुद्ध करनेवाला और सूक्ष्म है और विबन्ध, आनाह (पेट फूलना) तथा शूलको जीतनेवाला है ॥ २१६ ॥

काले नोनका विशेष विवरण.

कालानोन हिमालयपर्वतके सक्षार जलसे बनाया जाता है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खानिजलवणनामानि ।

औद्भिदं पांशुलवणं यज्जातं भूमितः स्वयम् ।

भाषा–यह निमक अपनेही सदृश भूमिमें स्वयं उत्पन्न होता है. औद्भिद और पांशुलवण ये इसके संस्कृत नाम हैं. (रोमक, वसुक, वसु, ओखर, पांसव, ऐरिण, ऊखरज, सार्वसह, उद्भिद, पांशु, उखर, पाशुक्षारक, और्व्य, सार्वगुण, वस्तगंध, रोम्यलोण, पार्थिव, भूमिज, भौम, पृथ्वीभव, भूमिपत्र ये खारीनोनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके खारीनोनके नाम.

सं.–औद्भिद.	अ.–अबकेर.
हिं.–खारीनोन, रेहगवांनोन.	अं.–Nitre salt petre नाइट्रे साल्ट् पिटर्.
म.–सोरा, खारीभेद.	ला.–Potassium Nitras पोटेसिअम् नाइट्रस्.
गु.–खारानुं लूण.	
क.–वैल गट्टेयउप्पु.	
फा.–शोरा.	

खानिजलवणगुणाः ।

क्षारं गुरु कटु स्निग्धं शीतलं वातनाशनम् २१७

भाषा–यह नोन खारी, भारी, चरपरा, स्निग्ध, शीतल और वातनाशक है ॥ २१७ ॥

औद्भिदनोनका विशेष विवरण.

औद्भिदनोन रेतली खारी जंगल देशकी भूमिमें उत्पन्न होता है, इसको रेहभी कहते हैं. इसकी पोटलीको गरम करके वातपीडावालेके सेक करे तो वातकी पीडाके सब रोग दूर होते हैं, इसीका कचलोन बनता है.

अनेक भाषाके चनेके खारके नाम.

सं.–चणकाम्लक.	म.–हरभऱ्याच्या आंबेचा क्षार.
हिं.–चनेका खार, चनकलोनी.	गु.–चणानो खार.

चणकाम्लकगुणाः ।

चणकाम्लकमत्युष्णं दीपनं दन्तहर्षणम् ।
लघ्वनुरसं रुच्यं शूलाजीर्णविबन्धनुत् २१८

भाषा–चनेका खार बहुत गरम, अग्निको दीपन करनेवाला और दांतोंको हर्ष करनेवाला, खारीरसवाला, रुचिकारक है और शूल, अजीर्ण तथा मलबंधको दूर करता है ॥ २१८ ॥

चनेके खारका विशेष विवरण.

प्रातःकाल चनेके छोटे छोटे क्षुपोंके ऊपर जो ओसके कण मोतीके सदृश झलकते हैं, उस ओससे एक सफेद चादरको भिगोकर सुखा लेवे और इसी प्रकार इक्कीस बार भिगोवे और सुखावे, पश्चात् उस चादरमें जो अम्ल पदार्थ लग जाता है उसको जलमें धो लेवे, उसके ऊपरका पानी निकार देवे और नीचे जो जम जाय उसीका नाम चनाखार है.

यवक्षारनामानि ।

पाक्यक्षारो यवक्षारो यावशूको यवाग्रजः ।

भाषा–पाक्यक्षार, यवक्षार, यावशूक, यवाग्रज ये जवाखारके संस्कृत नाम हैं. (यवलास, यवशूक, सारक, रेचक, यवनालक, तिर्य, तीक्ष्णरस, यवनालज, यवज, यवशूकज, यवाह्व और यवापत्य ये जवाखारके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके जवाखारके नाम.

सं.–यवक्षार.	अ.–नुतरून.
हिं.–जवाखार.	अं.–Carbonate of Potash कार्बोनेट आफ पोटाश.
बं.–यवक्षार.	ला.–Potassium Carbonass पोटासिअम कार्बोनस.
म.–जवाखार.	
गु.–जवाखार.	
क.–जवाखार.	
तै.–यवखार.	

यवक्षारगुणाः ।

यवक्षारो लघुः स्निग्धः सुसूक्ष्मो वह्निदीपनः । निहन्ति शूलवातामश्लेष्मश्वासगलामयान् ॥ पाण्डर्शोग्रहणीगुल्मानाहप्लीहहृदामयान् ॥ २१९ ॥

भाषा–जवाखार हलका, स्निग्ध, बहुत सूक्ष्म, अग्निदीपक है और शूल, वात, आम, कफ, श्वास तथा गलेके रोगोंको नष्ट करनेवाला है, पांडुरोग तथा बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, मलबंध, प्लीहा और हृदयरोगको नष्ट करता है ॥ २१९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जवाखारका विशेष विवरण.

कच्चे जौओंके पञ्चांगको अग्निमें जलाकर राखकर लेवे, फिर उस राखकी कसूमकी भांति रैनी टपका लेवे फिर उसको अग्निपर कढाई चढाकर उसका पानी जला देवे, जब वह जम जाय तो उसको कढाईसे खुर्चकर एक कांचके पात्रमें रख देवे, उसीका नाम जवाखार है.

स्वर्जिकानामानि।

स्वर्जिकापि स्मृतः क्षारः कापोतः सुखवर्चकः। कथितः स्वर्जिकाभेदो विशेषज्ञैः सुवर्चिकः॥ २२०॥

भाषा—क्षारकापोत, सुखवर्चक, स्वर्जिका ये सज्जीके संस्कृत नाम हैं. (स्वर्जि, शूलघ्नी, सौवर्चल, रुचक, मृज्जिकाक्षार, सर्जिका, सुवर्चिक, सुघ्नी, योगवाही, स्वर्जका, सुरवर्चक, सुघ्निका, सर्जि, सर्जिक्षार, स्वार्जिक, स्वर्जी, सुखोर्जिक, सुवर्जिक, स्वर्जिक्षार, सुवर्चि, सुवची और स्वर्जिकाक्षार ये सज्जीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ २२०॥

अनेक भाषाके सज्जीके नाम.

सं.—स्वर्जिका.	अ—कलीव, शब्बुल, अस्फर.
हिं.—सज्जी.	अ.—Carbonate of Soda कार्बोनेट आफ् सोडा.
बं.—साजिखार, साजिमाटि.	ला.—Caraxylons boetidum. केरोक्सिलन् बोएटीडुम्.
म.—सज्जीखार.	
गु.—साजीखार.	
क.—साजीखार.	
फा.—संजार कलिया.	

स्वर्जिकागुणाः।

स्वर्जिकाल्पगुणा तस्माद्विशेषाद्वल्मशूलहृत्। सुवर्चिका स्वर्जिकावद्बोद्धव्या गुणतो जनैः॥ २२१॥

भाषा—सज्जी जवाखारसे हीन गुणोंवाली है, विशेष करके गुल्म तथा शूलको नष्ट करती है। सुवर्चिकामेंभी सज्जीके सदृशही गुण हैं॥ २२१॥

टंकणक्षारनामानि।

भाग्यं टङ्कणं क्षारो धातुद्रावकमुच्यते।

भाषा—सौभाग्य, टंकण क्षार, धातुद्रावक सुहागेके संस्कृत नाम हैं. (लोहद्रावी, सुभग, धातुवल्लभ, पाचनक, मालतीतीरज, लोहश्लेषण, रसशोधन, रसाधिक, रसघ्न, वर्त्तुल, कनकक्षार, मलिन, मालतीतीरसम्भव, द्रावक, लोहशुद्धिकारक, रंगद, स्वर्णपाचक, टङ्क, धातुसन्धिकर और श्वेतटंकण ये सुहागेके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके सुहागेके नाम.

सं.—टंकणक्षार.	फा.—तीगार.
हिं.—सुहागा.	अ.—बुरग.
बं.—सोहागा.	इं.—Biborate of Soda बाइबोरेट् आफ सोडा, Borax बोराक्स.
म.—स्वागीखार, टांकणखार.	
गु.—टंकणखार.	
क.—विलीयटंकण.	ला.—Sodas Baiboras सोडास् बायबोरास.
तै.—एलिगारम्.	

टंकणक्षारगुणाः।

टङ्कणं वह्निकृद्रूक्षं कफहृद्धातपित्तकृत्॥ २२२॥

भाषा—सुहागा अग्निको उत्पन्न करनेवाला, रूक्ष, कफनाशक और वायुकारक तथा पित्तकारक है॥ २२२॥

सुहागेका विशेष विवरण.

उत्तर दिशाकी ओर भोटानदेशमें सुहागेकी खानि है, भोटिये लोग वहांसे उसको खोद खोदकर बकरोंमें भर लाते हैं, उसकी चार चार छः छः रत्तीकी सफेद सफेद चौकियें होती हैं, उसको कच्चा सुहागा कहते हैं, कुछ तो वैसाही देशदेशान्तरोंको चला जाता है और कुछ रामनगरकी मंडीमें पकाया जाता है, उसके नौसादरके समान बडे बडे टुकडे होते हैं.

क्षारद्वयं क्षारत्रयं च।

स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम्। टङ्कणेन युतं तत्तु क्षारत्रयमुदीरितम्॥ मिलितं तूक्तगुणकृद्विशेषाद्वल्महृत्परम्॥ २२३॥

भाषा—सजी और जवाखार इन दोनों मिले हुओंको क्षारद्वय कहते हैं और इनमें सुहागा

निघ.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिलानेसे यह क्षारत्रय कहा जाता है, ये उपरोक्त सम्पूर्ण गुण करते हैं और विशेष करके गुल्मको तो अवश्यही विध्वंस करते हैं ॥२२३॥

क्षाराष्टकम् ।

पलाशवज्रिशिखरीचिभार्कतिलनालजाः । यवजः स्वर्जिका चेति क्षाराष्टकमुदाहृतम् ॥ क्षारा एतेऽग्निना तुल्या गुल्मशूलहरा भृशम्॥२२४

भाषा–पलाश (ढाक), थूहर, ओंगा, इमली, आक, तिलनाल (तिलखंडे) इनका खार और जवाखार तथा सज्जीखार इन आठ खारोंको क्षाराष्टक कहते हैं. यह क्षाराष्टक अग्निके सदृश है गुल्म और शूलको निर्मूल करता है२२४

चुक्रनामानि ।

चुक्रं सहस्रवेधि स्याद्रसाम्लं शुक्लमित्यपि ।

भाषा–चुक्र, सहस्रवेधि, रसाम्ल और शुक्ल ये चूकके संस्कृत नाम हैं. इसको हिन्दीमें चूक और गुजरातिमें चुका कहते हैं ॥

चुक्रगुणाः ।

चुक्रमत्यम्लमुष्णं च दीपनं पाचनं परम् । शूलगुल्मविबन्धामवातश्लेष्महरं सरम् ॥ वमितृष्णास्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यहृत् ॥ २२५॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे हरीतक्यादिवर्गः समाप्तः ।

भाषा–चूक अत्यन्त खट्टा, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन, दस्तावर है और शूल, वायगोला, मलबंध, आमवात, कफ, वमन, तृषा, भूंखकी विरसता, हृदयकी पीडा तथा अग्निकी मंदताको नष्ट करता है ॥ २२५ ॥

चूकका विशेष विवरण.

चूक, दाडिमी, अनार, आमले, नींबू, और इमलीका रस निकालकर पका लेते हैं, उसीको चूक कहते हैं. दाडिमीका चूक उत्तम होता है. अथवा कई पालकके शाककी भाँति खट्टा शाक चूका नामसे प्रसिद्ध है उसको चूक कहते हैं.

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे हरीतक्यादिवर्गः समाप्तः ।

अथ कर्पूरादिवर्गः ।

तत्रादौ कर्पूरस्य नामानि ।

पुंसि क्लीबे च कर्पूरः सिताभ्रो हिमवालुकः । घनसारश्चन्द्रसंज्ञो हिमनामापि स स्मृतः ॥ १॥

भाषा–कर्पूर, सिताभ्र, हिमवालुक, घनसार, चंद्रसंज्ञ (जितने चंद्रमाके नाम हैं. वे सब), हिमनाम (हिम (बरफ) के जितने नाम हैं वे सब) ये कपूरके संस्कृत नाम हैं. (औषधीश, सोमसंज्ञक, सिताभ्रक, शिला, हिमांशु, शीतांशु, चन्द्रभस्म, निशापति, तरुसार, भस्माह्वय, रेणुसार, हिमाह्वय, वेधक, रेणुसारक, शीतमरीचि, भस्मवेधक, विधु, शीतमयूख, जैवातृक, ग्लौ, कुमुदवान्धव, हिमवालुका, इन्दु, द्विजराज, नक्षत्रेश, निशीथिनीनाथ, यामिनीपति, शशधर, सोम, क्षपाकर, हिमाह्व, क्षपापति, सिताभ्र, शीत, घनसारक, शीतकर, शशाङ्क, हिमकर, शीतप्रभ, शाम्भव, शुभ्रांशु, स्फटिक, अभ्रसार, मिहिका, चन्द्रार्द्रक, चन्द्र, नाकतुषार, गौर, कुमुद, शीतलरज, सिताह्व, शशि और हिमोपल ये कपूरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥१॥

अनेक भाषाके कपूरके नाम.

सं.–कर्पूर.	ब्र.–पारोपराकु.
हिं.–कपूर.	फा.–कापूर.
बं.–कर्पूर.	अ.–काफूर.
म.–कापूर.	अं.–Camphor कॅम्फर.
गु.–कपूर.	ला.–Camphora केम्फोरा.
क.–कर्पूर.	
तै.–कर्पूरमु.	

कर्पूरगुणाः ।

कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो लघुः । सुरभिर्मधुरस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ॥ २ ॥ दाहतृष्णास्यवैरस्यमेदोदौर्गन्ध्यनाशनः । कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्वभेदतः ॥ पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ॥ ३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-कपूर शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, हलका, सुगन्धित, मधुर, कडवा है और कफ, पित्त, विष, दाह, तृषा, मुखकी विरसता भेद तथा दुर्गन्धता इनको नष्ट करता है. पक्का और कच्चा इस भांति कपूर दो प्रकारका है, पक्के कपूरसे कच्चा कपूर अधिक गुणकारी है ॥ २ ॥ ३ ॥

चीनाकपूरकनामानि।

चीनाकसंज्ञ (चीनक, चीनकपूर, कृत्रिम, धवल, पटु, मेघसार, तुषार और द्वीपकर्पूरज) ये चिनिया कपूरके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके चीनिया कपूरके नाम.

सं.-चीनाककपूर.	तै.-चिनी कर्पूरमु.
हिं.-चीनिया कपूर.	ला.-Laurus Camphore लॉरस केम्फोरा.
म.-चिनी कापूर.	
गु.-चीनाई कंपूर.	
क.-चीनी कप्पूर.	

चीनाक (चिनिया) कर्पूरगुणाः।

चीनाकसंज्ञः कर्पूरः कफक्षयकरः स्मृतः।
कुष्ठकण्डूवमिहरस्तथा तिक्तरसश्च सः ॥ ४ ॥

भाषा-चीनिया कपूर कडवा है और कफ, कोढ, खुजली तथा वमन इन सबको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

कपूरका विशेष-विवरण.

कपूरके वृक्ष विशेषकरके इन्नखुर्दा, चीन, जपान, हिंदुस्थान इन देशोंमें होते हैं, इन वृक्षोंकी गिनती तजकी जातिमें है, इन वृक्षोंकी शाखाओंकी छाल ऊपरसे खरदरी तथा भीतरसे चिकनी होती है, इन वृक्षोंके ऊपर मौर आता है और फलभी मटरके समान छोटे २ लगते हैं, फलोंके बीजमें कपूरके समान कुछ सुगंधि आती है, इन वृक्षोंकी छालमें गोदनेसे जो दूध निकलता है उसीसे कपूर बनाया जाता है. एक वृक्षमेंसे अनुमान छः सेर कपूर निकलता है. इसकी भीमसेनी आदिक तथा पर्णकपूर चीनियाकपूर कृत्रीमकपूर आदिक बहुत भी हैं. चीनदेशमें औरभी एक तरहके छोटे २ क्षुपजातिके वृक्ष होते हैं उनके पत्तोंसे औटायके कपूर निकाला जाता है, इसको चिनीलोग नागाई कहते हैं, यह भीमसेनी कपूरकी अपेक्षा भारी है, परंतु हवामें रखनेसे बहुत जल्दी उड जाता है, इसमें दौना मरुवाके वृक्षके समान सुगंधि आती है, औरभी एक वृक्षसे कपूर निकाला जाता है उसको चीनियाकपूर तथा पक्क (पक्का) भी कहते हैं, यह कपूर वरास तथा पत्री कपूरसे हलका होता है. हिंदुस्थानमें एक केलेकी जातिसे कपूर पैदा होता है उसको कपूरकेला कहते हैं. प्रयोगमें कपूरके अभावमें सुगंधित मोथा लेवे, इसकी मात्रा ४ रत्तीकी है.

कस्तूरिनामानि।

मृगनाभिर्मृगमदः कथितस्तु सहस्रभित्।
कस्तूरिका च कस्तूरी वेधमुख्या च सा स्मृता ॥ ५ ॥

भाषा-मृगनाभि, मृगमद, सहस्रभित्, कस्तूरिका, कस्तूरी, वेधमुख्या ये कस्तूरीके संस्कृत नाम हैं. (गन्धधूलि, मदाह्वा, मृगनाभिजा, अण्डजा, नाभि, मिश्रा, योजनगन्धिका, गन्धशेखर, मृग, मृगी, नाभी, मदलता, योजनगन्धा, मार्गगन्धवोधिका, कालांगी, धूपसंचारी, गन्धपिशाचिका, वातामोद, मदनी, गन्धकेलिका, मार्जारी, सुभगा, बहुगन्धदा, सहस्रवेधी, श्यामा, कामान्धा, मृगाण्डजा, कुरङ्गनाभि, ललिता, श्यामला और मोदिनी ये कस्तूरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.)॥ ५ ॥

अनेक भाषाके कस्तूरीके नाम.

सं.-कस्तूरी.	क.-कस्तूरी.
हिं.-कस्तूरी.	फा.-मुष्क.
बं.-मृगनाभि.	अ.-मिस्क.
म.-कस्तूरी.	इं.-Musk मुस्क.
गु.-कस्तूरी.	ला.-Moscus मोस्कस्.

कस्तूरीलक्षणानि।

कामरूपोद्भवा कृष्णा नैपालीनीलवर्णयुक्।
काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरि त्रिविधा स्मृता ॥ ६ ॥ कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्यमा भवेत् । काश्मीरदेशसम्भूता कस्तूरी ह्यधमा मता ॥ ७ ॥

भाषा–कामरूप देशकी कस्तूरी काली, नेपालकी नीली और काश्मीर देशकी कस्तूरी भूरे रंगकी होती है. इनमें कामरूप देशकी कस्तूरी उत्तम, नेपालकी मध्यम और काश्मीर देशकी अधम होती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

कस्तूरीगुणाः ।

कस्तूरिका कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः । कफवातविषच्छर्दिशीतदौर्गन्ध्यशोषहृत् ॥ ८ ॥

भाषा–कस्तूरी तीक्ष्ण, कडवी, खारी, गरम, वीर्यवर्द्धक, भारी है और कफ, वात, विष, वमन, शीत, दुर्गन्धता तथा शोषको हरनेवाली है ॥ ८ ॥

मुष्कबीजगुणाः ।

लता कस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वी वृष्या हिमा लघुः । चक्षुष्या छेदिनी श्लेष्मतृष्णावस्त्यास्यरोगहृत् ॥ ९ ॥

भाषा–मुष्कदानोंको संस्कृतमें लताकस्तूरी कहते हैं. मुष्कदाना, कडवा, मधुर, वीर्यवर्द्धक, शीतल, लघु, नेत्रोंको हितकारी, मलभेदक है और कफ, तृषा, बस्तिगतरोग तथा मुखके रोगोंको नष्ट करता है ॥ ९ ॥

कस्तूरीका विशेष विवरण.

कस्तूरीकी उत्पत्ति हिरनकी नाभिमें होती है. जिन हिरनोंकी नाभिसे कस्तूरी निकलती है वे हिरन काश्मीर नेपाल और कामरू देशमें होते हैं, उनको कस्तूरीमृग कहते हैं. इन हिरनोंको मारकर उनकी नाभिको काट लेते हैं. उसको कस्तूरीका नाभा कहते हैं. नाभा तोलमें तीन तथा चार तोलेका होता है. उसका आकार गोल होता है, उसके ऊपर छोटे छोटे बालभी होते हैं और रंग भूरा होता है. एक ओरसे कटे हुएका चिह्नभी होता है. देखनेमें आडूके बराबर होता है. उस नाभिको चीरकर कस्तूरी निकाल लेते हैं. किसीमें मक्काके चूनके समान, किसीमें सिलमिलीके दानोंके समान, किसीमें तिलके दानेके समान, किसीमें कुल्थीके बीजके समान, किसीमें कलौंजीके दानेके समान और किसी नाभिमेंसे इलायचीके दानेकी समान कस्तूरी निकलती है. कस्तूरीके दर्पनाशक चंदन और तवाखीर हैं. इसकी प्रतिनिधि अंबर है. इसकी मात्रा २ रत्तीकी है.

जवादिकस्तूरीगुणाः ।

गन्धमार्जारवीर्यं तु वीर्यकृत् कफवातहृत् । कण्डूकुष्ठहरं नेत्र्यं सुगधं स्वेदगन्धनुत् ॥ १० ॥

भाषा–जवादि कस्तूरीको संस्कृतमें गन्धमार्जारवीर्य और गुजराथीमें जवादियां कस्तूरी कहते हैं. यह कस्तूरी वीर्यवर्द्धक है और कफ वात, खुजली, कोढ तथा पसीनेकी दुर्गन्धको दूर करती है ॥ १० ॥

चन्दननामानि ।

श्रीखण्डं चन्दनं न स्त्री भद्रः श्रीस्तैलपर्णिकः । गन्धसारो मलयजस्तथा चन्द्रद्युतिश्च सः ॥ ११ ॥

भाषा–श्रीखंड, चंदन, भद्रश्री, तैलपर्णिक, गन्धसार, मलयज, चन्द्रद्युति ये चन्दनके संस्कृत नाम हैं. (चन्द्रकान्त, गोशीर्ष, भोगिवल्लभ, भद्रसार, एकांग, पटीर, वर्णक, भद्राश्रय, सेव्य, रौहिण, ग्राम्य, सर्पेष्ट, पीतसार, महार्ह, श्वेतचंदन, तिलपर्ण, मङ्गल्य, मलयोद्भव, गन्धराज, सुगन्ध, सर्पावास, शीतलगन्धाढ्य, पावन, शीतगन्ध, भद्राश्रिय, सितहिम, सर्वप्रिय और राजयोग्य ये चन्दनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ११ ॥

अनेक भाषाके सफेद चंदनके नाम.

सं.–चंदन. [चंदन.
हिं.–सफेद चंदन.
बं.–चंदन.
म.–चंदन.
गु.–सुखड.
क.–वेट्ठपंचेगन्ध.
तै.–चन्दन.
फा.–सन्दल सुफेद.
अ.–संदले अबीपद.
इं.–Sandal Wood सँडल वुड.
ला.–Santalum Album सेन्टलम् अल्बम्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रेष्ठ चंदनलक्षणम्।

स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम्।
ग्रन्थिकोटरसंयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १२॥

भाषा-जो चन्दन स्वादमें कडवा, घिसनेमें पीला, काटनेमें लाल, देखनेमें सुफेद और गांठदार तथा कोटरयुक्त होय वह चन्दन श्रेष्ठ कहाता है ॥ १२ ॥

चंदनगुणाः।

चन्दनं शीतलं रूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु।
श्रमशोषविषश्लेष्मतृष्णापित्तास्रदाहनुत् १३॥

भाषा-चन्दन शीतल, रूखा, कडवा, आह्लादजनक, हलका है और परिश्रम, शोष, विष, कफ, तृषा, पित्त, रुधिरविकार तथा दाहको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

चंदनका विशेष विवरण.

सफेद चन्दनके वृक्ष बडे बडे ऊंचे और सघन होते हैं. इसके पत्ते नीमके समान कुछ नोक मुडी हुईसी विछुवेकेसे खमदार लम्बे चौडे होते हैं, इसके पुष्प होतेही नहीं. इसेक बीज गोल मटरसे कुछ मोटे होते हैं; कर्णाटकादि देशोंमें और मलयागिरिपर चन्दनके वृक्ष बहुत होते हैं; मलयागिरि चन्दन सम्पूर्ण हिंदुस्थानमें प्रसिद्ध है. इसकी लकडीमें अत्यन्त सुगन्धि आती है, इसकी प्रतिनिधि कपूर है. इसकी लकडीकी मात्रा ४ मासेकी है.

पीतचन्दननामानि।

(कलम्बक इति लोके।)

कालीयकं तु कालीयं पीताभं हरिचन्दनम्।
हरिप्रियं कालसारं तथा कालानुसार्य्यकम् १४

भाषा-कालीयक, कालीय, पीताभ, हरिचंदन, हरिप्रिय, कालसार, कालानुसार्यक (सुराह) ये पीले चंदनके संस्कृत नाम हैं ॥ १४ ॥

अनेक भाषाके पीले चंदनके नाम.

सं.-कालीयक.	गु.-पीळो चंदन.
हिं.-पीलाचंदन, कलंबक.	फा.-संदल अबयिज.
बं-पीतचंदन.	ला.-Santalum Flonum सेन्टेलम् फ्लोनम्.
म.-पिंवळें चंदन.	

पीतचंदनगुणाः।

कालीयकं रक्तगुणं विशेषाद्व्यङ्गनाशनम्।

भाषा-पीले चंदनमें लाल चंदनकेही सदृश गुण हैं, विशेष करके व्यंग (झांई) को नष्ट करता है ॥

पीतचन्दनका विशेष विवरण.

पीले चन्दनके वृक्ष उत्तर खण्डमें गन्धमादनपर होते हैं; इनकी आकृति मलयागिरिहीके समान होती है; परन्तु पीला हरदीकी लकडीके सदृश होता है.

रक्तचन्दननामानि।

रक्तचन्दनमाख्यातं रक्ताङ्गं क्षुद्रचन्दनम्।
तिलपर्णं रक्तसारं तत्प्रवालफलं स्मृतम् ॥१५

भाषा-रक्तचन्दन, रक्तांग, क्षुद्रचंदन, तिलपर्ण, रक्तसार, प्रवालफल ये लाल चंदनके संस्कृत नाम हैं. (ताम्राभ्र, ताम्रसार, रञ्जन, रक्तबीज, कुचन्दन, तिलपर्णी, पत्राङ्ग, कुमादे, रक्ताक्त, ताम्रवृक्ष, लोहितचंदन, ताम्रसारक, अर्कचन्दन, तिलपर्णिका, पतङ्गपत्राङ्ग और भास्करप्रिय ये लाल चन्दनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १५ ॥

अनेक भाषाके लाल चन्दनके नाम.

सं.-रक्तचंदन.	मला.-चेन्चंदनं.
हिं.-लाल चन्दन.	फा.-संदलेसुर्ख.
बं.-रक्तचंदन.	अ.-संदलेअहमर.
म.-रक्तचंदन.	इं.-Redsandalwood रेड संडलवुड्.
गु.-रतांजली.	ला.-Ptero carpus Santalum टेरो कारपस् सेन्टेलम्.
क.-रक्तचंदन.	
तै.-रक्तचंदनमु.	
ता.-सेनशाण्डनम्,कन्-चंदनं	

रक्तचंदनगुणाः।

रक्तं शीतं गुरु स्वादुच्छर्दितृष्णास्रपित्तहृत्।
तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम्॥ १६॥

भाषा-रक्तचन्दन शीतल, भारी, मधुर, कडवा, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक है और वमन, तृषा, रुधिरके रोग, पित्त, ज्वर तथा विष इन सबको नष्ट करता है ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाल चंदनका विशेष विवरण.

लाल चन्दनके वृक्ष कारवार, महीसुर, त्रावणकोर और मलवार इन देशोंमें होते हैं. ये वृक्ष सिरसके समान बडे बडे ऊंचे होते हैं. इसके पत्ते कुछ लम्बे और कोने गोल गोल होते हैं. दो दो तीन तीन इंच लम्बी फलियें लगती हैं; उन फलियोंमें लाल लाल चोटलीकेसे दाने निकलते हैं; इसकी लकडी लाल रंगकी होती है, उसीको लाल चन्दन कहते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

पतङ्गनामानि.

पतङ्गं रक्तसारं च सुरङ्गं रञ्जनं तथा । पट्टरञ्जकमाख्यातं पत्तूरं च कुचन्दनम् ॥ १७ ॥

भाषा–पतङ्ग, रक्तसार, सुरङ्ग, रंजन, पट्टरंजक, पत्तूर, कुचंदन ये पतंगके संस्कृत नाम हैं. (पत्रांग, रक्तकाष्ठ, सुरंगद, पत्राण्य, पट्टरंग, भार्यावृक्ष, रक्तक, लोहितरंगकाष्ठ, रोगकाष्ठ और पट्टरंजनक ये पतंगके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १७ ॥

अनेक भाषाके पतंगके नाम.

–पतंग.	मला.–चप्पनं.
–पतंग	फा.–बकं.
बकम् काष्ठ.	अ.–वकम्
पतंग.	अं.–Sappan Wood सेप्पन वुड्.
पतङ्ग, पतङ्गवृक्ष.	ला.–Caisalpinia Sappan सेसाल पिनिया सेप्पन.
ङ्ग, वक्कापुचेट्टु.	
सरतांगि.	
कमनंग.	

पतंगगुणाः ।

क्ले मधुरं शीतं पित्तश्लेष्मव्रणास्रनुत् । ग्रि वद्वेद्यं विशेषाद्दाहनाशनम् ॥ १८ ॥ माल तु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः । मधुर विशेषोऽस्ति पूर्वः श्रेष्ठतमो और कारण ।

होय वङ्ग मधुर, शीतल और पित्तविना- बढाता नाशक है. इसमें पीले चन्दनके जो गूग और विशेष करके दाहनाशक है. सदृश,

सब प्रकारके चन्दन रसादिकमें इकसारही हैं, केवल गंधकीही विशेषता है, सम्पूर्ण चन्दनोंके गुणोंमें सफेद चन्दन सर्वोत्तम है ॥ १८ ॥१९॥

पतंगका विशेष विवरण.

पतंगके वृक्ष मलबार और बंगालमें होते हैं, ये वृक्ष बडे बडे होते हैं, इसकी लकडी लाल रंगकी गठीली होती है; पत्ते बडे बडे और फूलभी लाल रंगके होते हैं; उसकी लकडीको पतंग कहते हैं; उसका रंग छीपी आदि रंगतवालोंके काममें बहुत आता है.

अगुरुनामानि ।

अगुरु प्रवरं लोहं राजार्हं योगजं तथा । वंशिकं कृमिजं वापि कृमिजग्धमनार्यकम् ॥ २० ॥

भाषा–अगुरु, प्रवर, लोह, राजार्ह, योगज, वंशिक, कृमिज, कृमिजग्ध, अनार्यक ये अगरके संस्कृत नाम हैं. (अगरु, लघु, लोहाख्य (लोहेके सम्पूर्ण नाम), जोंगक, कृष्ण, वर्णप्रसादन, वंशक, पिच्छिल, भृंगज, पातक, अनार्यज; असार, अग्निकाष्ठ और काष्ठक ये अगरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंन्थोंमें पाये जाते हैं.)॥२०॥

अनेक भाषाके अगरके नाम.

सं.–अगुरु.	फा.–कशवेबवा.
हिं.–अगर, कालीअगर.	अ.–उदगरकी.
बं.–अगरु.	अं.–Eagle Wood ईगल वुड्.
म.–कृष्णागर.	ला.–Aguilaria Agallocha एग्विलेरिया एगेलोका.
गु.–अगरु.	
तै.–हरुगुहचेट्टु, अगर.	
ता.–अगर.	
तु.–हागलगंध.	
मला.–अकिल.	

अगुरुगुणाः ।

अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णं च पित्तलम् । लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत् ॥ २१ ॥ कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति । अगुरुप्रभवः स्नेहः कृष्णागुरुसमः स्मृतः ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-अगर गरम, चरपरी, त्वचाको हितकारी, कडवी, तीक्ष्ण, पित्तकारक, हलकी है और कर्णरोग, शीत, वात तथा कफको नष्ट करनेवाली है. जो अगर काले रंगकी होती है उसमें अधिक गुण है और वह अगर लोहेके सदृश पानीमें डूब जाती है. अगरसे बनाये हुए तेलमें भी काली अगरके सदृशही गुण हैं ॥२१॥२२॥

अगरका विशेष विवरण.

मलयपर्वत, आसाम प्रदेश और प्रशान्त सागरके टापुओंमें अगरके वृक्ष उत्पन्न होते हैं; इसकी शाखा कदापि सीधी नहीं होती, अगर अनेक प्रकारकी होती हैं; जैसे कृष्णागरु, दाहागुरु, काष्ठागुरु, स्वाद्वगुरु और मंगल्यागुरु. उन सबमें काली अगर उत्तम और गुणदायक कही है, और वही सब औषधियोंके प्रयोगमें लीजाती है; इसकी यही उत्तमता है कि भारी हो और जलमें डूब जाय और नरम ऐसी होती है कि दांतोंके दबानेसे दांतोंको चुपट जाती है; इसको जलमें पीसनेसे सुगन्धि निकलती है; काली अगरके समान और अगरोंमें ऐसी सुगन्धि नहीं आती. अगरका दर्पनाशक गुलाब है इसकी प्रतिनिधि चंदन, दालचीनी, केशर, बालछड और रूमीमस्तंगी है. इसकी मात्रा ३॥ मासेकी है.

देवदारुनामानि ।

देवदारु स्मृतं दारुभद्रं दार्वीन्द्रदारु च ।
मस्तदारु द्रुकिलिमं कृत्रिमं सुरभूरुहः ॥२३॥

भाषा-देवदारु, दारुभद्र, इन्द्रदारु, मस्तदारु, द्रुकिलिम, कृत्रिम, सुरभूरुह ये देवदारुके संस्कृत नाम हैं. (सुराह्वय, भद्रदारु, देवकाष्ठ, पीतद्रु, भद्रवत्, शतपादप, पारिभद्रक, पीतदारु, पूतिकाष्ठ, कल्पपादप, किलिम, दारुक, स्निग्धदारु, अमरदारु, शिवदारु, शाम्भव, भूतहारि, भवदारु, शक्रद्रुम, इन्द्रवृक्ष, सुराह्व, स्नेहवृक्ष, सुरद्रुम, सुरदारु और सुरकाष्ठ ये देवदारुके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥२३॥

अनेक भाषाके देवदारुके नाम.

सं-देवदारु.	ते.-देवदार चेक्का.
हिं.-देवदारु.	मा.-देवदार.
बं.-देवदारु.	फा.-शजर तुलजीन.
म.-तेल्या देवदार.	अ. Cedrus-deodara
गु.-देवदार.	ला.सिड्रस देवदारा.

देवदारुगुणाः ।

कटुपाकि च ।
देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं वाज्वरास्रजित् ॥
विबन्धाध्मानशोथामतन्द्राहिक्कारुत् ॥ २४ ॥
प्रमेहपीनसश्लेष्मकासकण्डूसम

भाषा-देवदारु हलका, स्निग्धचन्दनसूरा, सूजन, पाकमें चरपरा है और विबन्ध, अ[illegible] विकार आम, तन्द्रा, हिचकी, ज्वर, रुधिर[illegible] प्रमेह, पीनस, कफ, खांसी, खुजली तथा वात को नष्ट करता है ॥ २४ ॥

देवदारुका विशेष विवरण.

देवदारुके वृक्ष हिमालय, ब्रह्मदेश, बंगा पिनांग आदि देशोंमें होते हैं, ये वृक्ष बडे ऊंचे झादेदार होते हैं, इसके पत्ते लम्बे गोलाई लिये हुए होते हैं, और फूल अ फूलोंके समान गुच्छेके गुच्छे लगते हैं, लकडीमें सुगंधभी ऐसी आती है कि स्थान सुगन्धिसे सदैव परिपूर्ण रहता है. दो जाति हैं, एकमें तेलके समान होती और दूसरीमें रूखापन होता है. लकडीसे तेल निकलता है उसको 'टा कहते हैं.

धूपसरलनामानि ।

सरलः पीतवृक्षः स्यात्तथा सुरभिद

भाषा-सरल, पीतवृक्ष, सुरभिदा रलके संस्कृत नाम हैं. (पूतिकाष्ठ, वृक्षक, पीतद्रु, पीतदारु, भद्रदारु, स्निग्धदारुसंज्ञक, स्निग्ध, मरिच[illegible]डवा, भिदारु ये धूपसरलके संस्कृत [illegible]मन, पाये जाते हैं.) ॥ इन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिये कल्याणकारी है, कभी कभी महिषाक्ष गूगलभी मनुष्योंके काममें आता है ऐसा किसी किसीका मत है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

गुग्गुलुगुणाः ।

गुग्गुलुर्विशदस्तिक्तो वीर्योष्णः पित्तलः सरः । कषायः कटुकः पाके कटू रूक्षो लघुः परः ॥ ३५ ॥ भग्नसन्धानकृद्वृष्यः सूक्ष्मः स्वर्यो रसायनः । दीपनः पिच्छिलो बल्यः कफवातव्रणापचीः ॥ ३६ ॥ मेदोमेहाश्मवातांश्च क्लेदकुष्ठाममारुतान् । पिंडिकाग्रन्थिशोफार्शोगण्डमालाकृमीञ्जयेत् ॥ माधुर्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्च पित्तहा ॥ ३७ ॥ तिक्तत्वात्कफजित्तेन गुग्गुलुः सर्वदोषहा । स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वतिलेखनः ॥ ३८ ॥ स्निग्धः काञ्चनसङ्काशः पक्वजम्बूफलोपमः । नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः॥ ३९॥ शुष्को दुर्गन्धकश्चैव त्यक्तप्रकृतिवर्णकः । पुराणः स तु विज्ञेयः गुग्गुलुर्वीर्यवर्जितः ॥४०॥ अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम् । मद्यं रोषं त्यजेत्सम्यग्गुणार्थी गुग्गुलुसेवकः ४१॥

भाषा–गूगल स्वच्छ, कडवा, उष्णवीर्य, पित्तकारक, दस्तावर, कसैला, चरपरा, पाकमें कटु, रूक्ष, अत्यन्त हलका, टूटे (हड्डी आदि) को जोडनेवाला, वीर्यकारक, सूक्ष्म, स्वरको हितकारी, रसायन, अग्निको दीपन करनेवाला, चिकना, बलवर्द्धक है और कफ, वात, व्रण, अपची, मेद, प्रमेह, पथरी, वात, क्लेद (ग्लानि), कुष्ठ, आमवात, पिडका, ग्रन्थि (गांठके रोग), सूजन, बवासीर, गंडमाला तथा कृमिरोगको नष्ट करता है. गूगल मधुर होनेसे वातको, कसैला होनेसे पित्तको और कडवा होनेसे कफको जीतता है; इस कारण गूगल त्रिदोषनाशक है. जो गूगल नवीन होय वह पुष्टि देता है और मैथुनकी शक्ति बढाता है, पुराना होय तो अत्यन्त लेखन है. जो गूगल स्निग्ध, सुवर्णके सदृश, पकी जामुनके सदृश, सुगन्धित और पिच्छिल होय वह नया जानना. जो गूगल सूखा, दुर्गंधित और स्वाभाविक गुण तथा वर्णसे रहित हो उसको पुराना गूगल जानना. पुराना गूगल शक्तिहीन होता है. गूगलके सेवन करनेवाले जो पूर्ण लाभके इच्छुक हैं उनको खट्टे, मिरच आदि तीक्ष्ण और अजीर्णकर्ता कच्चे पदार्थ, मैथुन, परिश्रम, धूप, मदिरा और रोष (क्रोध) त्याग देना चाहिये॥३५–४१॥

गूगलका विशेष विवरण.

गूगलके वृक्ष मारवाड सिंध तथा सिंगापुरके जंगलमें विशेषतः रेतली और पर्वतोंकी भूमिमें उत्पन्न होते हैं, इसके पत्ते अनीरहित छोटे छोटे नींबके पत्तोंके समान होते हैं, फूल लाल रंगके छोटे पांच पखडीवाले मंजरीके मध्यमें निकलते हैं, फल छोटे बेरके समान तीन धारवाले होते हैं, इसके फलोंको गूगलिया कहते हैं, ग्रीष्मऋतुमें सूर्यकी किरणोंके तापसे इस वृक्षमेंसे गोंद निकलता है उसी गोंदको गूगल कहते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

श्रीवासनामानि ।

श्रीवासः सरलस्रावः श्रीवेष्टो वृक्षधूपकः ।

भाषा–श्रीवास, सरलस्राव, श्रीवेष्ट, वृक्षधूपक ये सरलके गोंदके संस्कृत नाम हैं. (वेष्टसार, रसावेष्ट, श्रीपिष्ट, पद्मदर्शन, पायस, वृकधूप, सरलद्रव, रक्तशीर्षक, रसाह्वास, यवास, घृताह्वय, दध्याह्वय, क्षीराह्वय, क्षीरश्री, वायस, वृक्षधूप, चितागन्ध, रसायक, श्रीरस, वेष्ट, लक्ष्मीवेष्ट, वेष्टक, क्षीरशीर्ष, सुधूपक, धूपाङ्ग, तिलपर्ण, सरलाङ्ग और तैलपर्णी ये सरलके गोंदके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सरलके गोंदके नाम.

सं.–श्रीवास.
हिं.–सरलका गोंद, सरलका रस, गंधबिरोजा.
बं.–टर्पिन तेल, गन्धबिरजा.
म.–सरलाडीक, चंद्रुस.
गु.–चंद्रस, गंधवेरीजो.
क.–श्रीवेष्टक.
ता.–पिनैमारु.
फा.–संदरूस, काइरुवा.
अ.–संदरुस.
अं–Gumcopal Saudarack गम्कोपल् संडरेक.
ला.–Trachilobium Hornimanniaaum ट्रेकिलोबिअम् होर्निमोनिएनम्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीवासगुणाः ।

श्रीवासो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः । पित्तलो वातमूर्द्धाक्षिस्वररोगकफापहः ॥ रक्षोघ्नः स्वेददौर्गन्ध्ययूकाकण्डूव्रणप्रणुत् ॥ ४२ ॥

भाषा-सरलका गोंद मधुर, कडवा, स्निग्ध, गरम, कसैला, दस्तावर, पित्तकारक है और वात, शिरके रोग, नेत्रके रोग, स्वररोग, कफ, राक्षसकी पीडा, स्वेद, दुर्गन्धता, यूका (जूं, लीख), खुजली तथा व्रणको दूर करता है ॥ ४२ ॥

सरलके गोंदका विशेष विवरण.

यह सरलवृक्षका गोंद है. इसी प्रकारके धूपजातिके वृक्ष दक्षिण हिंदुस्थानमें तथा आफ्रिका खंडमें होते हैं उनको और उनके गोंदको चंदुस कहते हैं. चंदुसका वार्निश बनता है. चंदुसको मलहममेंभी डालते हैं. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

रालनामानि ।

रालस्तु शालनिर्यासस्तथा सर्ज्जरसः स्मृतः । देवधूपो यक्षधूपस्तथा सर्वरसश्च सः ॥ ४३ ॥

भाषा-राल, शालनिर्यास, सर्जरस, देवधूप, यक्षधूप, सर्वरस ये रालके संस्कृत नाम हैं. (विरूप, वह्निवल्लभ, कलकल, काल, कलयज, बहुरूप, धूपन, सालज, सालनिर्यास, सर्ज्य, धूनक, शालसार, शाल, शालवेष्ट, सालवेष्ट, अग्निवल्लभ, सर्जमणि, साल, कलकलोद्भव, ललत, देवेष्ट, शीतल, सालरस, सुरभि, सर्जनिर्यासक, सुरधूप, कलकललज, महारूप, क्षण और शालरस ये रालके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४३ ॥

अनेक भाषाके रालके नाम.

सं.-राल.
हिं.-राल.
बं.-धूना, धूनो.
म.-पिवळी राळ.
गु.-राल.
क.-सर्जरस.
ते.-सर्ज्जरसमु, सर्ज्ज.
फा.-राल मगरेबी.
अ.-किकहर.
फि.-नारुस.
अं.-Yellow Resin यलो रेझिन्.
ला.-Resinafleva रेजीनाफ्लेवा.

रालगुणाः ।

राळो हिमो गुरुस्तिक्तः कषायो ग्राहको हरेत् । दोषास्रस्वेदवीसर्पज्वरव्रणविपादिकाः ॥ ग्रहभग्नाग्निदग्धाः श्रीशूलातीसारनाशनः ४४

भाषा-राल शीतल, भारी, कडवी, कसैली, ग्राही है और दोष, रुधिरविकार, पसीना, विसर्प, ज्वर, व्रण, विपादिकानामक कोढ, ग्रह, भग्न रोग, अग्निदाह, अलक्ष्मी, शूल तथा अतीसारका नाश करती है ॥ ४४ ॥

रालका विशेष विवरण.

रालका वृक्ष बहुत ऊंचा होता है, यह वृक्ष बंगाल, अबूका पहाड और उत्तरहिंदुस्थान इन देशोंमें होता है. इसके गोंदको वैद्यलोग राल कहते हैं, इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

कुन्दुरुनामानि ।

कुन्दुरुस्तु मुकुन्दः स्यात्सुगन्धः कुन्द इत्यपि ।

भाषा-कुन्दरु, मुकुन्द, सुगन्ध, कुन्द ये कुन्दरुके संस्कृत नाम हैं. (पालंक्या, सौराष्ट्री, शिखरीवली, पालंकी, मुकुन्दु, कुन्दु, कुन्दर, तीक्ष्णगन्ध, कुन्दुरुक, कुन्दक, तीक्ष्णगोपुरक, बहुगन्ध, पालिन्द, भीषण, कन्दारु, बिडालाक्ष, पालंक, खपुर, स्वाक्ष, नागवधूप्रिय और शल्लकीनिर्यास ये गन्धबिरोजेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कुन्दरुके नाम.

सं.-कुन्दुरु.
हिं.-गंधविरोजा, कुंदरु.
बं.-कुन्दुरु खोटी.
म.-अवल कुंदर, सालईचा डीक.
गु.-किन्दुरु, इसेस शेषगुंदर.
क.-इडवोल.
ते.-कुन्दुरुमु, गुगुलमु.
फा.-कन्दुर रूमी, खोटीमस्तकी.
अ.-कुन्दुरेजकर.
अं.-Olibanum ओलिबेनम्.
ला.-Boswelia Therifera बोज्वेलिया थेरीफेरा.

कुन्दुरुगुणाः ।

कुन्दुरुर्मधुरस्तिक्तस्तीक्ष्णस्त्वच्यः कटुर्हरेत् । ज्वरस्वेदग्रहालक्ष्मीमुखरोगकफानिलान् ॥४५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–कुन्दरु मधुर, कडवा, तीक्ष्ण, त्वचाको हितकारी, चरपरा है और ज्वर, पसीना, ग्रह, अलक्ष्मी, मुखके रोग, कफ तथा वातका नाश करता है ॥ ४५ ॥

कुंदरूका विशेष विवरण.

कुन्दरु शल्लकी वृक्षके गोंदको कहते हैं, इसका रंग सफेद होता है, इसमें कुछ कुछ सुगंधभी आती है. इसकी मात्रा ४ रत्तीकी है.

शिलारसनामानि ।

सिल्लकस्तु तुरुष्कः स्याद्यतो यवनदेशजः ।
कपितैलं च संख्यातस्तथा च कपिनामकः ४६

भाषा–सिल्लक, तुरुष्क, कपितैल और जितने कपि (बंदर) नामके शब्द हैं वे सब ये शिलारसके संस्कृत नाम हैं. (कृत्रिम, कपिशचल, मुक्तिमुक्त, पिंडित, सैंहिकारस, कपि, कपिल, चला, पिण्डात, वर, सिद्धपिण्डक, सिद्ध, पावन, पवन, धूम्र, धूम्रवर्ण, सुगंधिक, सिद्धसार, पीतसार, पिण्याक, कपिज, कल्क, पिंडितैलक, करेवर, कृत्रिमक, लेपन, शल्लकीद्रव, पिष्टक, तैलपर्णी, वृकधूप, कपिचंचल, यावल, तैलाख्य, पिण्डक, याव, यावन, यवनदेशज, अश्मपुष्प और चञ्चलतैलक ये शिलारसके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४६ ॥

अनेक भाषाके शिलारसके नाम.

सं.–शिलारस.	अ.–उसारेकमिया, मिथाससाइला.
हिं.–शिलारस.	अं.–Liquid Amber लिक्विड्अम्बर.
बं.–शिलारस.	ला.–Liquidamber Arientatis लिक्विडम्बर ऑरिएन्टेटिस.
म.–शिलारस.	
गु.–शेलारस.	
क.–पिण्डतैल.	
फा.–सलारस.	

शिलारसगुणाः ।

सिल्लकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः शुक्रकान्तिकृत् । वृष्यः कण्ठ्यः स्वेदकुष्ठज्वरदाहग्रहापहः ॥ ४७ ॥

भाषा–शिलारस चरपरा, मधुर, स्निग्ध, गरम, वीर्यवर्द्धक, कांतिकारक, बलदायक, कंठको हितकारी है और पसीना, कोढ, ज्वर, दाह तथा ग्रहदोष इन सब रोगोंको नष्ट करता है ॥ ४७ ॥

शिलारसका विशेष विवरण.

शिलारस शिल्लकवृक्षका गोंद होता है. यह अन्य देशदेशांतरोंसे आता है. यह पक्के लसोडेके रसके समान चिकना और सुगंधित होता है, इसका धूम्र वर्ण होता है. इसकी मात्रा ४ रत्तीकी है.

जातीफलनामानि ।

जातीफलं जातिकोशं मालतीफलमित्यपि ।

भाषा–जातीफल, जातिकोश, मालतीफल ये जायफलके संस्कृत नाम हैं. (फलजाती, कोषक, सुमनफल, जातीकोष, कोश, कोष, राजभोग्य, जातीकोश, जातिफल, जातिशस्य, शालूक, मज्जसार, जातिसार, पुट और मदशौंड ये जायफलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके जायफलके नाम.

सं.–जातिफल.	ता.–जोदिकराय.
हिं.–जायफल.	फा.–जोझेबुला.
बं.–जायफल.	अ.–जोज अलतीव.
म.–जायफळ.	अं.–Nutmeg नट्मेग्.
गु.–जायफल.	ला.–Myristica Officinalis मिरिस्टिका ऑफिसिनेलिस्.
क.–जाईफल.	
तै.–जाजिकाया.	

जातिफलगुणाः ।

जातीफलं रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु ।
कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम् ४८
निहन्ति मुखवैरस्यं मलदौर्गन्ध्यकृष्णताः ।
कृमिकासवमिश्वासशोषपीनसहृद्रुजः ॥ ४९ ॥

भाषा–जायफल रसमें कडवा, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, हलका, चरपरा, अग्निप्रदीपक, ग्राही, स्वरको हितकारी, कफ तथा वातको विनष्ट करनेवाला, मुखकी विरसताको नाश करनेवाला है तथा मल, दुर्गन्धता, कृष्णता, कृमि, खांसी, वमन, श्वास, शोष, पीनस और हृदयरोगको दूर करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जायफलका विशेष विवरण.

पूर्व और दक्षिणदिशाकी ओर जायफलके वृक्ष बहुत होते हैं. फल जामुनके समान कुछ लम्बाई लिये गोल गोल होते हैं. इसकी छालके भीतर बालकेसा गुच्छा होता है, उसको जावित्री कहते हैं. कुछ कालोपरांत उसका रंग पीला पड जाता है, उसके भीतर कठिन बक्कलका बीज होता है, उसको तोडनेसे जायफल निकलता है. जायफलको घीमें रख देनेसे बहुत दिनतक ज्योंका त्यों रहता है. इसका दर्पनाशक बनफसा और धनिया है. इसकी प्रतिनिधि जावित्री है. इसकी मात्रा २ रत्तीसे १० रत्तीतककी है.

जातीपत्रीनामानि ।

जातीफलस्य त्वक्प्रोक्ता जातीपत्री भिषग्वरैः ।

भाषा—वैद्यलोग जायफकी छालकोही जावित्री कहते हैं. जातिपत्री, जातीपत्री ये जावित्रीके संस्कृत नाम हैं. (जातीकोषा, सुमनपत्रिका, जातिकोषी, सुमनपत्री, मालती, पत्रिका, सौमनसायिनी और जातीफलत्वक् ये जावित्रीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके जावित्रीके नाम.

सं.—जातिपत्री.	फा.—जवत्री.
हिं—जावित्री.	अ.—बीसवासा.
बं.—जैत्री, जयित्री.	अं.—Mace मेस.
म.—जायपत्री.	ला.—Myristica Fragrans मिरिस्टिका फॅग्रन्स.
गु.—जावंत्री.	
क. जायपत्री.	
तै.—जाजिपत्री.	

जातीपत्रीगुणाः ।

जातीपत्री लघुः स्वादुः कटूष्णा रुचिवर्णकृत् ।
कफकासवमिश्वासतृष्णाकृमिविषापहा ॥५०॥

भाषा—जावित्री हलकी, मधुर, कडवी, गरम, रुचिकारक, वर्णको उत्तम करनेवाली है और कफ, खांसी, वमन, श्वास, तृषा, कृमि तथा विष इनको नष्ट करती है ॥ ५० ॥

जावित्रीका विशेष विवरण.

जावित्री और जायफल एकही वृक्षसे उत्पन्न होते हैं. सुमात्रा, सिंहल, पिनांग आदि देश और हिंदुस्थानीय महासमुद्रके द्वीपोंमें जायफल अधिकतासे होते हैं. यह देखनेमें सुंदर हरे रंगका होता है, आजकल दक्षिणदेशमेंभी इसकी अधिकता होने लगी है, जायफलके ऊपरकी छाल फटकर जो कुछ लाल केशरसी निकलती है उसीको जावित्री कहते हैं. इस फलके बीजको जायफल कहते हैं, सुगंध होनेसे जावित्री पानमें रखकर खाई जाती है, इसका दर्पनाशक गुलाबका फूल और अरबी बबूलका गोंद है. इसकी प्रतिनिधि जायफल है. इसकी मात्रा चार रत्तीसे लेकर १ मासेतककी है.

लवङ्गनामानि ।

लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञं श्रीप्रसूनकम् ।

भाषा—लवंग, देवकुसुम, श्रीसंज्ञ, श्रीप्रसूनक ये लवंगके संस्कृत नाम हैं. (कलिकोत्तम, भृङ्गार, सुषिर, तीक्ष्ण, वारिज, शेखर, लव, प्रसून, लवंगक, लवंगकलिका, दिव्य, श्रीपुष्प, रुचिर, ग्रहणीहर, तोयाधिप्रिय, वारिपुष्प, तीक्ष्णपुष्प, गीर्वाणकुसुम, चंदनपुष्प, दिव्यगंध और प्रसूनक ये लौंगके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके लौंगके नाम.

सं.—लवंग.	फा.—मेहक्.
हिं.—लौंग, लौंग.	अ.—मीखककर्नफूल.
बं.—लवंग.	अं.—Cloves क्लोव्झ.
म.—लवंग.	ला.—Caryophyllus aromaticus कॅरियोफाइलस ॲरोमेटिकस्.
गु.—लवींग.	
क.—लवंगकलिका.	
तै.—लवंगालु.	
ता.—किरम्बेर.	

लवंगगुणाः ।

लवङ्गं कटुकं तिक्तं लघु नेत्रहितं हिमम् । दीपनं रुच्यं कफपित्तास्ननाशकृत् ॥ ५१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृष्णां छर्दिं तथाध्मानं शूलमाशु विनाशयेत् । कासं श्वासं च हिक्कां च क्षयं क्षययति ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

भाषा–लौंग चरपरी, कडवी, हलकी, नेत्रोंको हितकारी, शीतल, अग्निको दिपन करनेवाली, पाचक, रुचिकारी है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, तृषा, वमन, अफरा, शूल, खांसी, श्वास, हिचकी तथा क्षयको अवश्य क्षय करती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

लौंगका विशेष विवरण.

लौंगके वृक्ष जंगवारमें अधिकतासे उत्पन्न होते हैं, देखनेमें अत्यन्त मनोहर होते हैं, हरे हरे रंगके पत्तोंमें महा सुगंध आती है, इसके फूलोंकी कलियोंको लौंग कहते हैं, जब लौंगोंके गुच्छेके गुच्छे वृक्षोंपर लगते हैं तब महा सुगंधसनी पवन कोसोंतक भूमि और घोरे नेरेके वृक्षोंको सुगंधिसे परिपूर्ण कर देती है. इसकी मात्रा ३॥ मासेकी है. इसकी प्रतिनिधि दालचीनी, कुलिंजन और जायफल है. इसका दर्पनाशक अरबी बबूलका गोंद है.

स्थूलैला (पूरबी) नामानि ।

एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटापि च । भद्रैला बृहदेला च चन्द्रबाला च निष्कुटिः ॥ ५३ ॥

भाषा–स्थूला एला, बहुला, पृथ्वीका, त्रिपुटा, भद्रैला, बृहदेला, चंद्रबाला, निष्कुटि ये बडी इलायचीके संस्कृत नाम हैं. (मलेया, ताडकीफल, स्थूला, त्रिदिवोद्भवा, सुरभित्वक्, महिला, कन्या, कुमारी, कुमारिका, पृथ्वी, गोपुटा, कायस्था, कांता, घृताचीगर्भसम्भवा, इन्द्राणी, ऐन्द्री, दिव्यगंधा, निष्कुटी, चर्मसम्भवा, बाला, बलवती, एलीका, सागरगामिनी, गंधालीगर्भ और महैला ये बडी इलायचीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५३ ॥

अनेक भाषाके बडी इलायचीके नाम.

सं.–स्थूलैला.
हिं.–वडी इलायची, लाल इलायची.
बं.–वड एलाइच.
म.–थोरवेला, थोरवेलदोडा.
गु.–मोटी एलची, जाडी एलची.
क.–दोड्डयालक्की.
ते.–पेंग एलाकुलु, एलूकचेटु.
ता.–एलम्.
फा.–हैलकल्कं.
अ.–काकलेकिवार.
अं.–Large Cardamom लार्जकार्डमोम्.
ला.–Amomum Suvulatum एमोमं सुव्युलेटम्.

स्थूलैलागुणाः ।

स्थूलैला कटुका पाके रसे चानलकृल्लघुः । रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्रकण्डूश्वासतृषापहा ॥ हृल्लासविषबस्त्यास्याशिरोरुग्वमिकासनुत् ५४॥

भाषा–बडी इलायची पाकमें और रसमें चरपरी, अग्निदीपक, हलकी, रूक्ष, गरम है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, खुजली, श्वास, तृषा, हृल्लास (उबाकी लेना), विष, मूत्राशयके रोग, शिरोरोग, वमन और खांसीको नष्ट करती है ॥ ५४ ॥

बडी इलायचीका विशेष विवरण.

बडी इलायचीके क्षुप अदरकके समान छोटे छोटे होते हैं; इसके पत्तेभी अदरकके समान होते हैं, परन्तु अदरकसे अधिक चौडे होते हैं, बडी इलायचीके बीजोंमेंभी छोटी इलायचीके समान सुगंधि आती है, इसका रंग लाल होता है, ऊपर जटायें होती हैं; जटाओंको उखाडनेसे भीतरसे तिकौनी निकलती है और उसके भीतर सुगन्धित दाने निकलते हैं. इसके दर्पनाशक गुलाबके फूल हैं. इसकी प्रतिनिधि छोटी इलायची है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

एलानामानि ।

सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुत्था कोरङ्गी द्राविडी त्रुटिः ।

भाषा–सूक्ष्मैला, उपकुंचिका, तुत्था, कोरंगी, द्राविडी, त्रुटि ये छोटी इलायचीके संस्कृत नाम है. (वयस्था, तीक्ष्णगंधा, भृंगपार्णिका, त्रिपुटा, क्षुद्रैला, त्रिपुटि, छर्दिकारिपु, त्वचिसुगंधा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुटिका, चन्द्रसम्भवा, कपोतपर्णी, दिवोद्भवा, चन्द्रवाला, बहुला, निष्कुटि, कुनटी, गौरांगी, गर्भारा, गन्धफलिका, सुगन्धि, चन्द्रिका और श्वेतैला ये छोटी इलायचीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

[गं· अनेक भाषाके छोटी इलायचीके नाम.

सं.-सूक्ष्मैला.	तु.-एलाकि.
हिं.-छोटी इलायची, सुफेद इलायची.	फा.-हैल हाल.
बं.-छोट इलायच, गुजराती, इलायच.	अ.-काकले सगीर या काकले सिगार.
म.-लघुवेला, एलदोडे.	अं.-Thee lsser Car-da-mum दि लेसर् कार्डामोम्.
गु.-झीणी एलची, एलची कागदी.	ला.-Eleteria Car-damomum इलेटिरिया कार्डामोमम्.
क.-यालक्कि.	
तै.-एलांकि.	
ता.-एलं, इलांचि.	

एलागुणाः ।

एला सूक्ष्मा कफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रहृत् ।
रसे तु कटुका शीता लघ्वी वातहरी मता ॥५५॥

भाषा-छोटी इलायची रसमें चरपरी, शीतल, हलकी है और वात, कफ, श्वास, खांसी, बवासीर और मूत्रकृच्छ्रका नाश करनेवाली है ॥ ५५ ॥

छोटी इलायचीका विशेष विवरण.

छोटी इलायचीके क्षुप गुजरात और मलबार देशमें बहुत होते हैं, इसका क्षुपभी लाल इलायचीके समान होता है. फूल सफेद इलायचीके और लाल इलायचीके दोनों सुगन्धित होते हैं, इसके बीज काले और सरस होते हैं. इसका दर्पनाशक गुलाबका फूल और मिश्री है. इसकी प्रतिनिधि बडी इलायची है. इसकी मात्रा ५ रत्तीसे १० रत्तीतककी है.

त्वक्पत्रनामानि ।

त्वक्पत्रं च वराङ्गं स्याद्भृङ्गं चोचं तथोत्कटम् ।

भाषा-त्वक्पत्र, वरांग, भृंग, चोच, उत्कट ये तेजके संस्कृत नाम हैं. (रामेष्ट, विज्जुल, त्वच, गुडत्वच, पत्रचोच, सुरभिवल्कल, सूतकट, त्वचा, हृद्य, त्वक्, वल्कल, मुखशोधन, शकल, सिंहल, बल्य, सुरस, कामवल्लभ, बहुगन्ध, धनप्रिय, लटपर्ण, गन्धवल्कल, वर, शीत, सैंहल और तनुत्वक् ये तेजके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तजके नाम.

सं.-त्वक्पत्र.	गु.-जाडी तज.
हिं.-तज.	क.-तज.

त्वक्पत्रगुणाः ।

त्वचं लघूष्णं कटुकं स्वादु तिक्तं च रूक्षकम् ।
पित्तलं कफवातघ्नं कण्ड्वामारुचिनाशनम् ॥
हृद्बस्तिरोगवातार्शःकृमिपीनसशुक्रहृत् ॥५६॥

भाषा-तज हलकी, गरम, चरपरी, मधुर, कडवी, रूखी, पित्तकारक है और कफ, वात, खुजली, आम तथा अरुचिको नष्ट करती है और हृदयके रोग, मूत्राशयके रोग, बवासीर, कृमि, पीनस तथा वीर्यको नष्ट करती है ॥ ५६ ॥

दारुचीनीनामानि ।

त्वक्स्वाद्वी तु तनुत्वक्स्यात्तथा दारुसिता मता ।

भाषा-त्वक्स्वाद्वी, तनुत्वक्, त्वक् और दारुसिता ये दारुचीनीके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके दालचीनीके नाम.

सं.-दारुचीनी.	ब्र.-मिटख्यावो.
हिं.-दालचीनी.	लु.-थ्वाक, थ्विन.
बं.-दारुचीनी.	फा.-दारुचीनी.
म.-दालचिनी.	अ.-सालीखा.
गु.-पातली तज.	अं.-Cinnamon Bark सिन्नामन बार्क.
तै.-डालचीनी, सनलिंगु.	ला.-Cinnamomum Zeylanicum सिन्नामोमम् झिलानिकम्.
ता.-करुवापत्ते.	
तु.-इजिन.	
मला.-करुवा.	

दारुचीनीगुणाः ।

उक्ता दारुसिता स्वाद्वी तिक्ता चानिलपित्तहृत् । सुरभिः शुक्रला वर्ण्या मुखशोषतृषापहा ॥ ५७ ॥

भाषा-दालचीनी मधुर, कडवी, चरपरी, सुगंधित, वीर्यवर्द्धक, वर्णको उत्तम करनेवाली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है और वात, पित्त, मुखका शोष तथा तृषाको शमन करनेवाली है ॥ ५७ ॥

दालचीनीका विशेष विवरण.

दालचीनीके वृक्ष सिंहल, मलबार, कोचीन, चीन, सुमात्रा और जावा आदि देशोंमें अधिकतासे होते हैं. इसके पत्ते तमालपत्रकी समान होते हैं, पत्तोंको सुखानेपर उनमेंसे लौंगकेसी सुगन्धि आती है, वृक्षकी डंडीके ऊपर सुफेद फूल आता है, फूलमें गुलाबके समान सुगन्ध आती है, फल करौंदेके समान कुछ सुफेद कुछ लाल होते हैं, इनमेंसे तेल निकलता है, इसके फूलका अर्क और सारांश बनाते हैं. सिंहल द्वीपकी दालचीनी बहुत उत्तम होती है, वृक्षकी पतली छालहीको दालचीनी कहते हैं और दूसरी जातिके मोटे वृक्षकी छालको तज कहते हैं. इसकी दर्पनाशक खांड और मिश्री है. इसकी प्रतिनिधि कुलीजन, तज, तालीसपत्र और सुगंधवाला है. इसकी मात्रा ६ मासेकी है.

तमालपत्रनामानि ।

पत्रं तमालपत्रं च तथा स्यात्पत्रनामकम् ।

भाषा–पत्र, तमालपत्र और पत्रवाचक संपूर्ण शब्द ये तेजपातके संस्कृत नाम हैं. (तेजपत्र, गन्धजात, पत्रक, पाकरञ्जन, दलाह्वय, गोमेद, वसनाह्वय, गोमेदक, छदन, दल, पलाश, अंकुश, वास, तापस, सुकुमारक, वस्त्र, तमालक, गोपन, वसन, तमाल, सुरनिर्गन्ध, इष्टगन्ध, शीतरस, सुरस और रोमश ये तेजपातके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तेजपातके नाम.

सं.–तेजपत्र.	फा.–सादरसु.
हिं.–तेजपात.	अ.–साजिज.
बं.–तेजपत्र, तेजपाता.	अं–Falia Malabathy फोलिया मालाबथी.
म.–तमालपत्र, संभारपान.	ला.–Sinnamomum Tamala सिन्नामोमं टमाला.
गु.–तमालपत्र.	
क.–पत्रक.	
तै.–आकुपत्री.	

तमालपत्रगुणाः ।

पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं लघु ।
निहन्ति कफवातार्शोहृल्लासारुचिपीनसान् ५८

भाषा–तेजपात मधुर, किंचित् तीक्ष्ण, गरम, पिच्छिल, हलका है और कफ, वात, बवासीर, हृदयरोग, अरुचि तथा पीनस इन सब रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ ५८ ॥

तेजपातका विशेष विवरण.

तेजपातके वृक्ष उत्तरखण्डके वनमें बहुत होते हैं. इसके पत्ते लम्बे लम्बे तजके पत्तोंके समान होते हैं और कोई कोई वैद्य तजके पत्तोंहीको तेजपात कहते हैं. यह सुगंधित पदार्थ है. इसकी प्रतिनिधि बालछड और दर्पनाशक रूमीमस्तंगी है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

नागकेशरनामानि ।

नागपुष्पः स्मृतो नागः केशरो नागकेशरः ।
चाम्पेयो नागकिञ्जल्कः कथितः काञ्चनाह्वयः ॥ ५९ ॥ अयं पुष्पे तु क्लीबः ।

भाषा–नागपुष्प, नाग, केशर, नागकेशर, चाम्पेय, नागकिंजल्क और जितने सुवर्णके नाम हैं वे सब ये नागकेशरके संस्कृत नाम हैं. (महौषध, राजपुष्प, फलक, स्वरघातन, कांचनाह्वय, भुजंगाख्य, षट्पदप्रिय, इभाख्य, पुष्परेचन, नागाख्य, केसरी, किंजल्क, नागीय, कांचन, सुवर्ण, हेमकिंजल्क, रुक्म, हेम, पिंजर, फणिकेशर, पुन्नागकेशर, नागपुष्प, नाग ये नागकेशरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जातेहैं.) ॥ ५९ ॥

अनेक भाषाके नागकेशरके नाम.

सं.–नागपुष्प.	क.–नागकेशर.
हिं.–नागकेशर.	तै.–नागकेशरालु.
बं.–नागेश्वर.	ता.–नांगल.
म.–नाकेसर, नागकेशर.	अ.–नारमुष्क.
गु.–नागकेशर.	ला.–Mesuaferia मेस्युआफेरिया.

नागकेशरगुणाः ।

नागपुष्पं कषायोष्णं रूक्षं लघ्वामपाचनम् ।
ज्वरकण्डूतृषास्वेदच्छर्दिहृल्लासनाशनम् ॥ दौर्गन्ध्यकुष्ठवीसर्पकफपित्तविषापहम् ॥ ६० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—नागकेशर कसैली, गरम, रूखी, हलकी, आमको पचानेवाली है और ज्वर, खुजली, तृषा, स्वेद, वमन, हल्लास, दुर्गन्धता, कुष्ठ, विसर्प, कफ, पित्त और विषको दूर करनेवाली है ॥ ६० ॥

नागकेशरका विशेष विवरण.

पुन्नागवृक्षकी केशर अर्थात् नागचम्पेकी कलीको नागकेशर कहते हैं. इसकी दो जाती हैं, यह गोवा और कोंकणदेशसे आती है, पुन्नागके बडे बडे वृक्ष होते हैं, इसकी लकडी इमारत आदिके काममें आती है, इसके पत्ते चिंचोडके समान लम्बे होते हैं, इसपर लाल फूल बहुत आते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

त्रिजातं चातुर्जातकं च ।

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम् ।
नागकेशरसंयुक्तं चातुर्जातकमुच्यते ॥ ६१ ॥

भाषा—दालचीनी, इलायची और तेजपात इन तीनोंको त्रिसुगंधि और त्रिजातक कहते हैं. इसमें नागकेशर और मिलानेसे उसको चातुर्जातक कहते हैं ॥ ६१ ॥

त्रिजातचातुर्जातगुणाः ।

तद्वयं रोचनं रूक्षं तीक्ष्णोष्णं मुखगन्धहृत् ।
लघुपित्ताग्निकृद्वर्ण्यं कफवातविषापहम् ॥ ६२ ॥

भाषा—ये त्रिजातक और चातुर्जातक दोनों रेचक, रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम, मुखदुर्गन्धनाशक हैं और कफ, वात तथा विषको नष्ट करते हैं और हलके, पित्तकारक, अग्निवर्द्धक और वर्णको सुंदर करनेवाले हैं ॥ ६२ ॥

कुंकुमनामानि ।

कुंकुमं घुसृणं रक्तं काश्मीरं पीतकं वरम् ।
सङ्कोचं पिशुनं धीरं वाह्लीकं शोणिताभिधम् ॥ ६३ ॥

भाषा—कुंकुम, घुसृण, रक्त, काश्मीर, पीतक, वर, संकोच, पिशुन, धीर, वाह्लीक और जितने रुधिर (खून) के नाम हैं वे सब केसरके संस्कृत नाम हैं. (काश्मीरज, कुसुमात्मक, पीतन, रक्तचन्दन, घस्र, हरिचंदन, खल, रज, दीपक, लोहित, सौरभ, चन्दन, काश्मीरजन्म, अग्निशिख, वीर, चारु, वरयोनिक, वरवाह्लिक, वाह्लिक, अग्निशेखर, असृक्, शठ, शोणित, वरेण्य, अरुण, कालेयक, जागुड, कांत, वह्निशिख, केसर, गौर, केसरक, धीर, अस्र, रुधिर ये केसरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं ॥ ६३ ॥

अनेक भाषाके केशरके नाम.

सं.—कुंकुम.	तै—कुंकुमपुव्वु.
हिं.—केशर, केसर.	फा.—करकीमास.
बं.—कुंकुम.	अ.—जाफरान.
म.—केशर.	अं.—Saffron सॅफ्रन्.
गु.—केसर.	ला.—Crocistigmata क्रोकिस्टिग्माटा.
क.—कुंकुम.	

कुंकुमलक्षणानि ।

काश्मीरदेशजे क्षेत्रे कुंकुमं यद्भवेद्धि तत् ।
सूक्ष्मकेशरमारक्तं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥ ६४ ॥
बाह्लीकदेशसञ्जातं कुंकुमं पाण्डुरं मतम् ।
केतकीगन्धयुक्तं तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ६५ ॥
कुंकुमं पारसीके यन्मधुगन्धि तदीरितम् ।
ईषत्पांडुरवर्णं तदधमं स्थूलकेशरम् ॥ ६६ ॥

भाषा—जो केशर काश्मीर देशके क्षेत्रमें होती है वह सूक्ष्म, लाल, कमलके सदृश गधयुक्त और उत्तम होती है. बाह्लीक देशमें उत्पन्न हुई केशर सूक्ष्म केतकीके सदृश गंधवाली और पाण्डु (भूरे) रंगवाली होती है. यह मध्यम है. पारिस देशमें जो केशर होती है वह मोटी, मधुके सदृश गंधवाली और किंचित् पाण्डुवर्ण होती है. यह अधम है ॥ ६४-६६ ॥

कुंकुमगुणाः ।

कुंकुमं कटुकं स्निग्धं शिरोरुग्व्रणजन्तुजित् ।
तिक्तं वामिहरं वर्ण्यं व्यङ्गदोषत्रयापहम् ६७ ॥

भाषा—केशर चरपरी, चिकनी, कडवी, वर्णको उत्तम करनेवाली है और शिरोरोग, व्रण, कृमि, (कीडा), वमन, व्यंग (झाईं) तथा तीनों दोषोंको नष्ट करती है ॥ ६७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केशरका विशेष विवरण.

केशरके वृक्ष काश्मीर, बलखबुखारा, ईरान, आदि देशोंमें अधिकतासे होते हैं, इसका क्षुप न बहुत बडा न छोटा मध्यम जातिका होता है. क्षुपके नीचे मूलमें गठीके समान एक गांठसी होती है, ऊपर एक छत्तेदार फूल लगता है, उसके ऊपर महीन महीन तन्तु निकलते हैं, वे कुछ कुछ पिलापन लिये हुए लाल रंगके होते हैं, जैसे कसूमके पुष्पमें लाल तन्तु निकलते हैं, वैसेही केशरके पुष्पमें होते हैं. उनको बीन बीनकर डिब्बोंमें भर रखते हैं. सब केशरोंमें काश्मीरदेशकी केशर उत्तम समझी जाती है, ईरान देशमें इसका व्यवहार अनेक प्रकारसे होता है, प्रसव करनेके लिये ईरानदेशकी स्त्रियें केशरकी गोलियें आनन्दपूर्वक सदैव अञ्चलमें बांधे रहती हैं, और प्रसव होनेके उपरांत जरायुकी पीडा दूर करनेके लिये नित्य प्रति नियमानुसार सब भक्षण करती रहती हैं. इसका दर्पनाशक रूमीसौंफ हैं और प्रतिनिधि तज है. इसकी मात्रा एक मासेकी है.

गोरोचनानामानि ।

गोरोचना तु मङ्गल्या वन्द्या गौरी च रोचना ।

भाषा–गोरोचना, मंगल्या, वंद्या, गौरी, रोचना ये गोलोचनके संस्कृत नाम हैं. (गोपित्त, वन्दनीया, मनोरमा, रोचनारुचि, शोभा, रुचिरा, शोभना, शुभा, रोचनी, पिंगा, मंगला, शिवा, पीता, गौतमी, गव्या, वन्दनी, कांचनी, मेध्या, श्यामा, रामा, भूतविद्राविणी, गोपित्तसम्भवा, पिंगला, नन्दिनी, पाविनी और गोरुचि ये गोलोचनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके गोरोचनके नाम.

सं.–गोरोचना.
हिं.–गोरोचन, गोलोचन.
बं.–गोरोचना.
म.–गोरोचन.
गु.–गोरोचन.
क.–गोरोचन.
ते.–गोरोचनमु.
फा.–गायरोहन.
अ.–हजरूलवक्कर.
अं.–Golestone Bijoor गोलस्टोन् बिजोर.
ला.–Bostaurus बोस्टोरूस.

गोरोचनागुणाः ।

गोरोचना हिमा तिक्ता वश्या मङ्गलकान्तिदा । विषालक्ष्मीग्रहोन्मादगर्भस्रावक्षतास्रहृत् ॥ ६८ ॥

भाषा–गोरोचन शीतल, कडवा, वश्यकारक, मंगल, कान्तिदायक है और विष, अलक्ष्मी, ग्रह, उन्माद, गर्भस्राव, क्षत तथा रुधिरविकारका नाश करनेवाला है ॥ ६८ ॥

गोरोचनका विशेष विवरण.

गोरोचन गायके मस्तकमें गोल कंकरके समान निकलता है, इसका रंग लाल पीला नारंगीके समान होता है. यह औषधिके प्रयोगमें बहुत आता है, तांत्रीक लोग वशीकरण आदिक कर्मोंमें इससे यंत्र मंत्र बहुत लिखते हैं, कई इसे गौके पित्ताशयसे उत्पन्न होता है ऐसा मानते हैं. इसको तोडनेसे एक ऊपर और एक नीचे परत मालूम होता है. यह कंकरी सुपारीसे लेकर नींबूतक बडी होती है. इसकी मात्रा ३ रत्तीकी है.

नखनखीगन्धद्रव्यनामानि ।

नखं व्याघ्रनखं व्याघ्रायुधं तच्चक्रकारकम् । नखं स्वल्पं नखी प्रोक्ता हनुर्हट्टविलासिनी ६९

भाषा–नख, व्याघ्रनख, व्याघ्रायुध, चक्रकारक ये नखके संस्कृत नाम हैं. (व्याघ्रनखी, व्याडयुध, करज, कूटस्थ, नखाङ्ग, नख्य, चक्रनायक, चक्री, चक्रनख, व्यस्रफल, दीपिनख, खपुर, व्यालपाणिज, व्यालायुध, व्यालबल और व्यालखड्ग ये नखके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) छोटे छोटे नखोंको नखी, हनु और हट्टविलासिनी कहते हैं. (शुक्ति, शंख, खुर, कोलदल, व्यालायुध, शंखनख, नखरी, करजाख्य, अपचखुर, नख, व्याघ्रनख, कररुह, शिम्बी, शफ, चलकोशी, करज, हनु, नागहनु, पाणिज, बदरीवच, रूप्य, पण्यविलासिनी, सन्धिनाल और पाणिरुह ये साधारण नखके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ६९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके नखके नाम.

सं.—नख, व्याघ्रनख.
हिं.—नख, नखी.
बं.—नखी गन्धद्रव्य, छोट नखी.
म.—नखला, वाघनख.
गु.—नखला, नखली.
क.—नख, वाघनख.
फा.—नाखूनपर्या.
अ.—अजफारुत्तीव.
अं.—Shell शेल्.
ला.—Helix Ashera हेलिक्स् आशेरा.

नखद्रव्यगुणाः ।

नखद्वयं ग्रहश्लेष्मवातास्रज्वरकुष्ठहृत । लघूष्णं शुक्रलं वर्ण्यं स्वादु व्रणविषापहम् ॥ अलक्ष्मीमुखदौर्गन्ध्यहृत्पाकरसयोः कटु ॥७०॥

भाषा—दोनों नख हलके, वीर्यवर्द्धक, गरम, वर्णको उत्तम करनेवाले, मधुर हैं और ग्रह, कफ वात, रुधिरविकार, ज्वर, कोढ, व्रण, विष, अलक्ष्मी तथा मुखकी दुर्गन्धताको नष्ट करते हैं और पाक तथा रसमें चरपरे हैं ॥ ७० ॥

नखद्रव्यका विशेष विवरण.

नखद्रव्य नदीके जीवोंके नख होते हैं. ये सुगन्धित पदार्थ हैं. धूप और तेलादिकमें सुगन्धिके लिये डाले जाते हैं और घोडे हाथियोंके नखभी अनेक औषधियोंमें डाले जाते हैं. गन्ध अर्थवाली और गन्धयुक्त नखी पांच प्रकारकी होती हैं, कोई बेरीके पत्तोंके समान, कोई कमलके पत्तोंके समान, कोई घोडेके खुरकी आकारवाली, कोई हाथीके कानके सदृश और पांचवीं सूअरके कानके तुल्य होती है, ऐसा चरकमुनि कहते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

बालनामानि ।

बालं ह्रीबेरबर्हिष्ठोदीच्यं केशाम्बुनाम च ।

भाषा—बाल, ह्रीबेर, बर्हिष्ठ, उदीच्य, केशवाचक तथा अंबुवाचक सब शब्द सुगंधवालाके संस्कृत नाम हैं. (बालक, वारिद, केशनामक, कचामोद, वरपिंग, कुन्तल, केशनामा, अम्बुनामक, केश, केश्य, वज्र, ललनाप्रिय, कुन्तलोशीर, ह्रीबेरक, वारि, तोय और जल ये सुगंधबालाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सुगंधबालाके नाम.

सं.—बाल.
हिं.—सुगन्धबाला.
बं.—बाल्य, गन्धवाला.
म.—वाळा.
गु.—वालो धोलो.
क.—मुष्टिपाल.
ते.—वाट्टिवेल्ल.
फा.—असारूं.
ला.—Pavonia odorata पावोनिया आडोरेटा.

बालकगुणाः ।

बालकं शीतलं रूक्षं लघु दीपनपाचनम् । हृल्लासारुचिवीसर्पहृद्रोगामातिसारजित् ७१॥

भाषा—सुगंधवाला शीतल, रूक्ष, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन है और हृल्लास, अरुचि, विसर्प, हृदयरोग और आमातिसारको नष्ट करता है ॥ ७१ ॥

सुगन्धबालाका विशेष विवरण.

सुगन्धवाला बालोंके समान बहुत बारीक और लम्बा बडकी दाढीके समान होता है. विशेष करके यह जलके समीपकी भूमिम बहुत होता है. इसकी जड अधिक प्रभाववाली होती है. कञ्जर लोग कुदालोंस खोद खोदकर लाते हैं, खसमें और इसमें थोडाही अन्तर होता है, खस सरैंठेकी जड होती है और सुगन्धबाला टांटलकी जड होती है. इसकी मात्रा १ रत्तीकी है.

वीरणनामानि ।

स्याद्वीरणं वीरतरुर्वीरं च बहुमूलकम् ।

भाषा—वीरण, वीरतरु, वीर, बहुमूलक ये वीरनके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके वीरनके नाम.

सं.—वीरण.
हिं.—वीरन.
बं.—वेणा.
म.—खस्खस.
ते.—अवरुगाड्डि.
ता.—वेत्तेवेर.
उत्.—विणा, गन्दविणा.
अं.—Andropogan Muricats अॅन्ड्रोपोगन् म्युरिकॅट्स्.

वीरणगुणाः ।

वीरणं पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् । मधुरं ज्वरनुद्भ्रान्तिमदजित्कफपित्तहृत् ॥ तृष्णास्रविषवीसर्पकृच्छ्रदाहव्रणापहम् ॥७२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–वीरन पाचक, शीतल, स्तंभक, लघु, तिक्तरसयुक्त और मधुर है तथा ज्वर, वमन, उन्मत्तता, कफ, पित्त, तृष्णा, रक्तविकार, विष, वीसर्प, मूत्रकृच्छ्र, दाह और व्रण इनको नष्ट करनेवाला है ॥ ७२ ॥

उशीरनामानि ।

वीरणस्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदं च तत् ।
अमृणालं च सेव्यं च समगन्धिकमित्यपि ७३

भाषा–उशीर, नलद, अमृणाल, सेव्य, समगन्धिक ये खसके संस्कृत नाम हैं (अभय, अवदाह, लामज्जक, लघुभय, इष्टकापथ, मृणाल, लघुलय, अवदात, अवदाहेष्टकापत्र, इन्द्रगुप्त, उशीरक, जलवास, हरिप्रिय, रणप्रिय, शिशिर, शीतमूलक, वितानमूलक, दाहहरण, जलमोद, गन्धाढ्य, सुगंधिक, सुगंधिमूलक, सुगंधिमूल, कम्भु, कटायन, वीरतर, वीरभद्र और बहुमूलक ये खसके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७३ ॥

अनेक भाषाके खसके नाम.

सं.–उशीर.	क.–वालद वेरु.
हिं.–खस.	तै.–वट्टीवेरु नेल्ल.
बं.–वीरणमूल, वेणारं मूल.	अं.–The root of a fragrant grass दि रुट् आफ् ए फॅग्रॅन्ट् ग्रास्.
म.–काळा वाळा.	
गु.–काळो वाळो, काला वालाना मूल.	

उशीरगुणाः ।

उशीरं पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् ।
मधुरं ज्वरहृद्भ्रान्तिमदनुत्कफपित्तहृत् ॥
तृष्णास्रविषवीसर्पदाहकृच्छ्रव्रणापहम् ॥७४॥

भाषा–खस पाचक, शीतल, वीर्यस्तम्भक, हलकी, कडवी, मधुर है और ज्वर, वमन, मद, कफ, पित्त, तृषा, रुधिरविकार, विष, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र और व्रणको नष्ट करनेवाली है ॥ ७४ ॥

खसका विशेष विवरण.

खस वीरण घासकी जड होती है; यह जलाशयके समीपकी भूमिमें बहुत उत्पन्न होती है; इसकी जड दो दो फूट नीचे पृथ्वीमें चली जाती है. कञ्जरलोग उसको कुदालोंसे खोद खोदकर एकत्र कर लेते हैं, फिर उसको पानीसे धोकर स्वच्छ कर लेते हैं; उसीको वीरणमूल (खस) कहते हैं; ग्रीष्मऋतुमें धनाढ्य लोग इसकी टट्टी बनाकर अपने स्थानोंमें लगाते हैं; फिर उन टट्टियोंपर जल छिडकवाते हैं, तब उनमेंसे मन्द मन्द पवनके आश्रयसे सुगन्धि निकलती है. वीरनकी मात्रा आधे तोलेकी है और खसकी मात्रा २ मासेकी है.

जटामांसीनामानि ।

जटामांसी भूतजटा जटिला च तपस्विनी ।

भाषा–जटामांसी, भूतजटा, जटिला, तपस्विनी ये जटामांसीके संस्कृत नाम हैं. (जटी, पेसी, लोमशा, मिसी, मांसी, हिंस्रा, मिषिका, चक्रवर्तिनी, नलद, वह्निनी, कृष्णजटा, किरातिनी, क्रव्यादी, पिशिता, पिशी, पेशी, पेशिनी, जटामांसिनी, जटाला, नलदा, मेषी, तामसी, माता, अमृतजटा, जननी, जटावती, मृगभक्षा, मिसी, मिसीका और मिषी ये जटामांसीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके जटामांसीके नाम.

सं.–जटामांसी.	क.–बहुलगन्ध.
हिं.–जटामांसी, बालछड.	तै.–जटामांसी.
बं.–जटामांसी.	फा.–सुंबुल.
म.–जटामांसी.	अ.–सुंबुलतीख.
गु.–जटामांसी, बालछड.	अं.–Spikenard स्पाइनार्ड.
	ला.–Nardostachys. नारडोस्टेकीस.

जटामांसीगुणाः ।

मांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिबलप्रदा । स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्रदाहवीसर्पकुष्ठनुत् ॥ ७५ ॥

भाषा–जटामांसी कडवी, कसैली, मेधाको हितकारी, कांतिदायक, बलदायक, मधुर, शीतल है और त्रिदोष, रुधिरविकार, दाह, विसर्प तथा कुष्ठको नष्ट करनेवाली है ॥ ७५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जटामांसीका विशेष विवरण.

जटामांसी (बालछड) गुल्मजातिकी वनस्पति है. इसके पत्ते सजीवनके समान होते हैं. यह हिमालयके जंगलमें उत्पन्न होती है, इसकी जडपर धूसर रंगके रुएँ जमे रहते हैं, फूल गुच्छोंमें लगते हैं, इसकी मूल अत्यन्त सुगंधित होती है. प्रयोगमें इसकी जडकोही लेते हैं. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

शैलेयनामानि।

शैलेयं तु शिलापुष्पं वृद्धं कालानुसार्यकम्।

भाषा-शैलेय, शिलापुष्प, वृद्ध, कालानुसार्यक ये शैलेयके संस्कृत नाम हैं. (शैलाख्य, सुभग, गिरिपुष्पक, शिलासन, शीतशिव, शैलज, शीतल, शैल, कालानुसार्य, शिलेय, शैलक, कालानुसारिवा, अश्मपुष्पक, शिलापुष्प, गृह, शिलाभव, शिलोद्भव, स्थविर, पलित, जीर्ण, शिलोत्थ, शिलादद्रु और शिलाप्रसून ये भूरिछरीलेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके शैलेयके नाम.

सं.-शैलेय.	क.-कलडू.
हिं.-भूरिछरीला, पत्थरका फूल.	तै.-शैलेयमनेद्रव्यमु.
बं.-शैलज.	फा.-दहाल.
म.-दगडफूल.	अ.-आशीना.
गु.-छडीलो, पत्थरफूल.	ला.-Parmelia Parleta पारमेलिया परलेटा.

शैलेयगुणाः।

शैलेयं शीतलं हृद्यं कफपित्तहरं लघु। कण्डूकुष्ठाश्मरीदाहविषहृद्रुदरक्तहृत्॥ ७६॥

भाषा-भूरिछरीला शीतल, हृदयको हितकारी, हलका है और कफ, पित्त, खुजली, कोढ, पथरी, दाह, विष और खूनी बवासीरको दूर करता है॥७६॥

भूरिछरीलेका विशेष विवरण.

भूरिछरीला नदी आदि जलाशयोंके समीप जो पर्वत और वृक्ष होते हैं उन पर्वतोंके पत्थरोंपर और वृक्षोंपर बर्फ पडनेके समय सिवार और काईसी जम जाती है; उसमें छोटी छोटी पत्तीभी निकलती है; वह ग्रीष्मऋतुमें सूर्यकी किरणोंके तेजसे सूखकर छालसी उतर पडती है, उसीको छारछबीला और भूरिछरीला कहते हैं. इसमें अधिक सुगन्ध आती है. इसका दर्पनाशक सौंफ है और प्रतिनिधि किरमानी अजवायन है. इसकी मात्रा ३॥ मासेसे ७ मासेतककी है.

मुस्तकनामानि।

मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिदनामकम्।

भाषा-मुस्तक, मुस्त और जितने मेघके नाम हैं ये सब नागरमोथेके संस्कृत नाम हैं (वालेय, परिपेलव, कुरुविन्द, अम्बुवाह, अम्बुभृत्, तडित्वान्, वारिवाह, बलाहक, स्तनयित्नु, तोयद, तोयधर, अभ्रनामक, गांगेय और कसेरुक ये नागरमोथेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

मुस्तकजातिः।

कुरुविन्दश्च संख्यातोऽपरः क्रोडकसेरुकः॥ भद्रमुस्तं च गुन्द्रा च तथा नागरमुस्तकः७७

भाषा-कुरुविंद, क्रोड, कसेरुक, भद्रमुस्त, गुंद्रा और नागरमुस्तक ये सब मोथेकी जाति हैं॥ ७७॥

अनेक भाषाके मोथेके नाम.

सं.-मुस्तक.	तै.-तुंगमुस्त, सकहतुंग.
हिं.-मोथा, नागरमोथा.	ता.-कोरग.
बं.-मुता, नागरमुता.	फा.-मुश्कजमीन.
म.-मोथा, नागरमोथा.	अ.-शादकोफी.
गु.-मोथ, नागरमोथा.	ला.-Cyherus Rotundaus साइहेरस् रोटंडोस्.
क.-मुस्ता, नागरमुस्ता.	

मुस्तगुणाः।

मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपनपाचनम्। कषायं कफपित्तास्रतृड्ज्वारुचिजन्तुहृत्७८॥ अनूपदेशे यज्जातं मुस्तकं तत्प्रशस्यते। तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागरमुस्तकम् ७९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–मोथा चरपरा, शीतल, ग्राही, कडवा, दीपन, पाचक, कसैला है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, तृषा, ज्वर, अरुचि तथा कृमिका नाश करनेवाला है. जो मोथा अनूपदेशमें उत्पन्न होता है वह उत्तम है, और उसमेंभी मुनियोंने नागरमोथा श्रेष्ठ कहा है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

नागरमोथेका विशेष विवरण.

नागरमोथा जलभूमिमें अथवा जलाशयकी भूमिमें उत्पन्न होता है, यह तृणजातिका क्षुप है. इसके पत्ते घासके समान लम्बे लम्बे होते हैं. इसके बीचमें एक डंडी निकलती है. वह बहुत लम्बी और तिकोनी होती है, उसके ऊपर हरे रंगके छोटे छोटे फूल आते हैं; उन फूलोंके इधर उधर तीन पत्तेभी लम्बे लम्बे होते हैं, उसके नीचे जडमें कसेरूके सदृश काले रंगका कन्द होता है. उसीको नागरमोथा अथवा मोथा कहते हैं. इसके दर्पनाशक सौंफ, खीरेके बीज और चंदन है. इसकी प्रतिनिधि दालचीनी और पीपलामूल है. इसकी मात्रा ३ मासेकी है.

कचूरनामानि ।

कर्चूरो वेधमुख्यश्च द्राविडः कल्पकः शटी ।

भाषा–कर्चूर, वेधमुख्य, द्राविड, कल्पक, शटी ये कर्चूरके संस्कृत नाम हैं. (कार्श्य, दुर्लभ, गन्धमूलक, गन्धसार और जटाल ये कचूरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कचूरके नाम.

सं.–कर्चूर.	ते.–कचोरालु.
हिं.–कचूर, काली हलदी.	फा.–जरंवाद.
बं.–कर्चूर.	अ.–एरकुलकाफर.
म.–कचोरा.	अं.–Long Zedcory लांग जेडोरी.
गु.–कचूरा.	ला.–Carcuma Zerumbet करक्युमा झेरंबेट.
क.–गोरोचन.	

कर्चूरगुणाः ।

कर्चूरो दीपनो रुच्यः कटुकस्तिक्त एव च ।
सुगन्धिः कटुपाकः स्यात्कुष्ठार्शोव्रणकासनुत् ॥
उष्णो लघुर्हरेच्छ्वासं गुल्मवातकफक्रिमीन् ८०

भाषा–कचूर अग्निदीपक, रुचिकारक, कडवा, चरपरा, सुगंधित, पाकमें चरपरा, गरम, हलका है और कोढ, ववासीर, व्रण, खांसी, गुल्म, वात, कफ तथा कृमिको नष्ट करता है ॥ ८० ॥

कचूरका विशेष विवरण.

कचूरके क्षुप जंगलमें विशेष करके होते हैं. इसके पत्ते हलदीके समान होते हैं. इसके नीचे अमिया हलदीके सदृश गांठें होती हैं. उस गांठके टुकडे टुकडे करके सुखा लेते हैं, उसीको कचूर कहते हैं. यह प्रायः वर्षाऋतुमें बहुत उत्पन्न होता है. इसका दर्पनाशक सफेद चंदन है. इसकी प्रतिनिधि सतावर है और इसकी मात्रा ४ मासेकी है.

मुरानामानि ।

मुरा गन्धकुटी दैत्या सुरभिः शालपर्णिका ।

भाषा–मुरा, गंधकुटी, दैत्या, सुरभि, शालपर्णिका ये मुराके संस्कृत नाम हैं. (गंधिनी, तालपर्णी, गन्धाढ्या, पुरागंधवती, दिव्या, गंधमादिनी, भूरिगन्धा, कुटी, भूतगंधा, तालपर्णिका और मुरामांसी ये मुराके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मुराके नाम.

सं.–मुरा.	म.–मोरमांसी.
हिं.–मुरा, एकांगी.	गु.–मोरमांसी.
बं.–मुरमांसी.	क.–मुरे.

मुरागुणाः ।

मुरा तिक्ता हिमा स्वाद्वी लघ्वी पित्तानिलापहा । ज्वरासृग्भूतरक्षोघ्नी कुष्ठकासविनाशिनी ॥ ८१ ॥

भाषा–मुरा कडवी, शीतल, मधुर, हलकी है और पित्त, वात, ज्वर, रुधिरविकार, भूत, राक्षस, कोढ तथा खांसीको शमन करती है ॥ ८१ ॥

मुराका विशेष विवरण.

मरोडफलीके क्षुप चार पांच फुट ऊंचे वनमें बहुत होते हैं, पत्ते शीशमकेसे होते हैं, फूल पीले रंगके होते हैं, फलियें इमठी हुई रस्सीकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भांतिकी होती हैं. ये मरोडी खाये होती हैं इसलिये इनका नाम मरोडफली है. कई मुराको पृथक्ही मानते हैं. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

गन्धपलाशीनामानि।

(सुगन्धद्रव्यं काश्मीरे।)

शठी पलाशी षड्ग्रन्था सुव्रता गन्धमूलिका।
गन्धारिका गन्धवधूर्वधूः पृथुपलाशिका॥८२॥

भाषा—शठी, पलाशी, षड्ग्रंथा, गंधमूलिका, गंधारिका, गंधवधू, वधू, पृथुपलाशिका ये गंधपलाशीके संस्कृत नाम हैं. (गंधमूली, ग्रंथिका, कर्पूर, पलाश, सटी, षटी, गन्धशटी, कर्बुर, कर्चूर, सुगंधासटी, गंधमूला, गंधोलि, गंधमूलक, सुगंधा, गंधसटी, गन्धमूल, गन्धपलाशी, जमिूतमूल, कच्छोरा, हिमजा, हैमी, षड्ग्रंथि, पलाशा, हिमग्रंथा, अम्लनिशा, सुगंधमूला, गंधोरी, शठिका, पलाशिका, समुद्रा, तूणी, दूर्वा, गंधा, सठी, अम्लहरिद्रा, सौम्या और हिमोद्भवा ये गंधपलाशीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८२ ॥

अनेक भाषाके कपूरकचरीके नाम.

सं.—शठी.	क.—गंधशटी.
हिं.—गन्धपलाशी, कपूरकचरी.	तै.—किचलिरागट्टल.
बं.—शटी, गन्धशटी.	अ.—जरंवाद.
म.—कपूरकचरी.	ला.—Carcuma Aromatica करक्युमा आरोमाटिका.
गु.—कठ, गंधपलाशी.	

गंधपलाशीगुणाः।

भवेद्गन्धपलाशी तु कषाया ग्राहिणी लघुः।
तिक्ता तीक्ष्णा च कटुकानुष्णास्यमलनाशिनी॥ शोथकासव्रणश्वासशूलहिध्मग्रहापहा॥ ८३॥

भाषा—गंधपलाशी कसैली, ग्राही, हलकी, कडवी, तीक्ष्ण, चरपरी, उष्णतारहित है और मुखका मल, सूजन, खांसी, व्रण, श्वास, शूल, हिचकी तथा ग्रहबाधा इनको दूर करनेवाली है॥ ८३॥

कपूरकचरीका विशेष विवरण.

कपूरकचरीकी बेल बहुत विस्तारपूर्वक चलती है, इसकी मूल सुगंधियुक्त कन्दके समान होती है, इसी कन्दके टुकडे करकरके सुखा लेते हैं. इसीको कपूरकचरी कहते हैं. इसकी जडको तोडनेसे कपूरकीसी सुगंध आती है. यह काश्मीरमें प्रसिद्ध है. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

प्रियंगुगन्धप्रियंगुनामानि।

प्रियंगुः फलिनी कान्ता लता च महिलाह्वया।
गुन्द्रा गुन्द्रफला श्यामा विष्वक्सेनाङ्गना प्रिया॥ ८४॥

भाषा—प्रियंगु, फलिनी, कांता, लता, गुंद्रा, गुंद्रफला, श्यामा, विष्वक्सेना, अंगना, प्रिया और जितने स्त्रीके नाम हैं वे सब ये प्रियंगुके संस्कृत नाम हैं. (गंधफला, गोवंदनी, कृष्णपुष्पी, कृशाङ्गी, महिलाह्वया, कारम्भा, प्रियक, कटु, गोवर्णा, भेदिनी, मिथवल्ली, फलप्रिया, गौरी, वृत्ता, कंगु, कङ्गनी, भंगुरा, गौरवल्ली, सुभंगा, पर्णभेदिनी, शुभा, पीता, मंगल्या, प्रेयसी, अंगनाप्रिया, वनिता और नारिवल्लभा ये प्रियंगुके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८४ ॥

अनेक भाषाके प्रियंगुके नाम.

सं.—प्रियंगु. [ककूँदनी.	तै.—प्रेंकणपुचेट्टु.
हिं.—प्रियंगु, फूलप्रियंगु,	ता.—प्रियंगु.
बं.—प्रियंगु, गन्धप्रियंगु.	ला.—Prunus Mahaleb प्रुनस महालिब.
म.—गह्वला.	
गु.—कांग, घऊँला.	
क.—नेरिपलगु.	

प्रियंगुगुणाः।

प्रियंगुः शीतला तिक्ता त्वगनिलपित्तहृत्।
रक्तातियोगदौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा॥ गुल्मतृट् विषमोहघ्नी तद्वन्धप्रियंगुका॥ ८५॥
तत्फलं मधुरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु।
विबन्धाध्मानबलकृत्स्रंग्राहि कफपित्तजित् ८६

भाषा—प्रियंगु शीतल, कडवा, कसैला है और वात, पित्त, रुधिरकी अधिकता, दुर्गंध,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पसीना, दाह, ज्वर, गुल्म, तृषा, विष तथा मोहको नष्ट करनेवाला है. जो गुण इसमें हैं वेही फूलप्रियंगुमें हैं. इसका फल मधुर, रूखा, कसैला, शीतल, भारी है और मलबन्ध, अफरा तथा बलको करनेवाला है, ग्राही है और कफ तथा पित्तको जीतनेवाला है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

प्रियंगुका विशेष विवरण.

फूलप्रियंगुका क्षुप पर्वतोंपर लताके समान होता है. इसके पत्ते मौलश्रीके सदृश होते हैं. इसमें बहुत पतली बाल निकलती है. फल बादामके सदृश बहुत छोटे और गेहूंकेसे दाने होते हैं. इसके भीतरकी गिरी बहुत सुगन्धित होती है; अरगजे इत्यादिमें पडती है. इसकी छालकी मात्रा १ मासेकी और फलकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

रेणुका (मरिचसदृशा) नामानि ।

रेणुका राजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा ।
भस्मगन्धा पाण्डुपुत्री स्मृता कौन्ती हरेणुका ॥ ८७ ॥

भाषा–रेणुका, राजपुत्री नंदिनी, कपिला, द्विजा, भस्मगन्धा, पांडुपुत्री, कौंती, हरेणुका. ये रेणुकाके संस्कृत नाम हैं. (हरेणु, भस्मगन्धिका, कृतान्ता, खरनादिनी, अभीष्टा, वरत्करी, वरमुखी, वरा, कान्ता, महिला, हिमा, रेणु, सुपर्णिका, शिशिरा, शान्ता, वृत्ता, हेमगन्धिनी, धर्मिणी, कपिलोमा, हैमवती और पांडुपत्नी ये रेणुकाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८७ ॥

अनेक भाषाके रेणुकाके नाम.

सं.–रेणुका.	क.–रेणुका.
हिं.–रेणुका, सह्मालूके बीज.	ता.–येट्टी.
बं.–रेणुक.	ला.–Vitex Speciosa विटेक्स स्पेश्योजा.
म.–रेणुकबीज.	
गु.–रेणुका.	

रेणुकागुणाः ।

रेणुका कटुका पाके तिक्तानुष्णा कटुर्लघुः ।
पित्तला दीपनी मेध्या पाचिनी गर्भपातिनी ॥
बलासवातकृच्चैव तृट्कण्डूविषदाहनुत् ॥८८॥

भाषा–रेणुका चरपरी, कडवी, गरम नहीं, हलकी, चरपरी, पित्तकारक अग्निको दीपन करनेवाली, बुद्धिको हितकारी, पाचक, गर्भको गिरानेवाली है और कफ, वात, विह्वलता, तृषा, खुजली, विष तथा दाहको नाश करती है॥८८॥

रेणुकाका विशेष विवरण.

रेणुकाका बहुत बडा वृक्ष होता है, इसके पत्ते गोल और फूलभी गोल होते हैं. उसमेंसे मूँग वा काली मिरचके समान जो बीज निकलते हैं उसको रेणुका कहते हैं. कोई वैद्य मेहंदीके बीजोंको और कोई वैद्य सम्हालूके बीजोंको रेणुका कहते हैं. कोई कहते हैं कि इसकी वेल होती है और वह मेवाड प्रांतमें होती है. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

ग्रन्थिपर्णनामानि ।

ग्रन्थिपर्णं ग्रन्थिकं च काकपुच्छं च गुच्छकम् ।
नीलपुष्पं सुगन्धं च कथितं तैलपर्णकम् ८९

भाषा–ग्रन्थिपर्ण, ग्रंथिक, काकपुच्छ, गुच्छक, नीलपुष्प, सुगन्ध, तैलपर्णक ये ग्रंथिपर्णके संस्कृत नाम हैं. (बर्हिपुष्प, स्थौणेय, ग्रन्थिपर्णक, शुक, कुकुर, बर्ह, शुकबर्ह, विशीर्णाख्य, स्वारामगुच्छक, बर्हिपुच्छ, शुकच्छद, गुत्थक, बर्हिकुसुम और काकपुष्प ये गठोनेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८९ ॥

अनेक भाषाके गठोनेके नाम.

सं.–ग्रंथिपर्णं	म.–गठोन्याचं झाड.
हिं.–गठोना, गठिवन	गु.–तगरनी गांठ.
बं.–गेठेना, गेंटेला.	क.–गठोना.

ग्रन्थिपर्णगुणाः ।

ग्रन्थिपर्णं तिक्ततीक्ष्णं कटूष्णं दीपनं लघु ।
कफवातविषश्वासकण्डूदौर्गन्ध्यनाशनम् ९०॥

भाषा–गठिवन कडवा, तीक्ष्ण, चरपरा, गरम, अग्निप्रदीपक, हलका है और कफ, वात,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विष, श्वास, खुजली और दुर्गन्धताका नाश करता है ॥ ९० ॥

गठिवनका विशेष विवरण.

गठिवन विशेष करके कामरूदेशमें बहुत उत्पन्न होता है; यह तृण जातिकी औषधि है. इसके पत्ते अंगुलीके समान लम्बे २ होते हैं और फूल नीले आते हैं, उन फूलोंके गुच्छे लगते हैं, इसमें बहुतसी गांठें होती हैं, इसीसे इसको गठिवन कहते हैं; इसमें नागरमोथेकीसी सुगंधि आती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

स्थौणेयकनामानि ।

स्थौणेयकं बर्हिबर्हं शुकबर्हं च कुक्कुरम् । शीर्णरोम शुकं चापि शुकपुष्पं शुकच्छदम् ॥९१॥

भाषा-स्थौणेयक, बर्हिबर्ह, शुकबर्ह, कुक्कुर, शीर्णरोम, शुक, शुकपुष्प, शुकच्छद ये थुनेरके संस्कृत नाम हैं (विकीर्णसंज्ञ, स्थौणेय, हरित, शुकपुच्छ, बर्हिशिख, मयूरचूड, विकीर्णरोम, कीरवर्णक, बर्हिचूड, शुकपिच्छ, विकच और शीर्णरोमक) ये थुनेरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ९१ ॥

अनेक भाषाके थुनेरके नाम.

सं.-स्थौणेयक.	ने.-भटिउर.
हिं.-थुनेर.	ला.-Clerodendrom infartunatum क्लेरोडेन्ड्रम् इन्फार्चुनेटम्.
म.-थुणेर.	
गु.-भरुंठ.	
क.-स्थौणजे.	
ते.-सुगंधद्रव्यमु.	

स्थौणेयकगुणाः ।

स्थौणेयकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्धं त्रिदोषनुत् । मेधाशुक्रकरं रुच्यं रक्षोघ्नं ज्वरजन्तुजित् ॥ हन्ति कुष्ठास्रतृड्दाहदौर्गन्ध्यतिलकालकान् ॥ ९२ ॥

भाषा-थुनेर चरपरी, मधुर, चिकनी, त्रिदोषनाशक, बुद्धिदायक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारी, भूतप्रेतनाशक है और ज्वर, जीव, कोढ, रुधिरविकार, तृषा, दाह, दुर्गन्ध तथा तिलकालक इन सब रोगोंको दूर करती है ॥ ९२ ॥

ग्रन्थिपर्णभेदनामानि ।

निशाचरो धनहरः कितवो गणहासकः ।

भाषा-निशाचर, धनहर, कितव और गणहासक ये भटेउरके संस्कृत नाम हैं. (तस्कर, चोरक, चण्डा, क्रोधमूर्च्छित, दुष्कुलीन, विरोध, कोरक, धनहरी, क्षेम, राक्षसी, गणहास, शङ्कित, खड्ग, दुष्पत्र, क्षेमक, रिपु, चपल, धूर्त, पटु, नीच, कोपनक, चोर, फलचोरक, दुष्कुल, ग्रंथिल, सुगन्धि, पर्णचोरक, ग्रन्थिपर्ण, ग्रन्थिदल, ग्रन्थिपत्र ये भटेउरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके भटेउरके नाम.

सं.-चोरक.	म.-भटोरा.
हिं.-भटेउर.	गु.-भंटीउर.
बं.-चोरक.	क.-भटोरा.

चोरकगुणाः ।

चोरको मधुरस्तिक्तः कटुः पाके कटुर्लघुः । तीक्ष्णो हृद्यो हिमो हन्ति कुष्ठकण्डूकफानिलान् ॥ रक्षोऽश्रीस्वेदमेदोऽस्रज्वरगन्धविषव्रणान् ॥ ९३ ॥

भाषा-भटेउर मधुर, कडवा चरपरा, पाकमेंभी चरपरा, हलका, तीक्ष्ण, हृदयको हितकारी, शीतल है और कोढ, खुजली, कफ, वात, भूतादिक, अलक्ष्मी, पसीना, मेद, रुधिरविकार, ज्वर, दुर्गन्ध, विष तथा व्रणका विनाश करता है ॥ ९३ ॥

थुनेर और भटेउरका विशेष विवरण.

थुनेर और भटेउर ये दोनों गठिवनहीके भेद हैं. थुनेरकी मात्रा २ मासेकी है और भटेउरकी मात्राभी २ मासेकी है.

तालिसपत्रनामानि ।

तालीसमुक्तं पत्राढ्यं धात्रीपत्रं च तत्स्मृतम् ।

भाषा-तालीस, पत्राढ्य, धात्रीपत्र ये तालीसके संस्कृत नाम हैं. (तालीसपत्र, शुकोदर, ग्रंथिकापत्र, तुलसीच्छद, पत्राख्य, अर्कबंधु, करिपत्र, करिच्छद, नील, नीलाम्बर, ताल, तालपत्र, तमाह्वय, ताली, सपत्रक, तामलकी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दल, मुखरोगहर, हृद्य, सुपत्र, अर्कवाह, करीपत्र, आमलकी पत्र और घनच्छद ये तालीसपत्रके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)

अनेक भाषाके तालीसपत्रके नाम.

सं.-तालीस.	तै.-तालीशपत्री.
हिं.-तालीसपत्र.	ता.-तालिसपत्रम्.
बं.-तालीशपत्र.	फा.-ज़रनब.
म.-लघु तालीसपत्र.	अ.-तालीसफर.
गु.-तालीसपत्र.	ला.-Taxus baccata टेक्सस बेकेटा.
क.-तालीसपत्र.	

तालीसपत्रगुणाः ।

तालीसं लघु तीक्ष्णोष्णं श्वासकासकफानिलान् । निहन्त्यरुचिगुल्मामवह्निमान्द्यक्षयामयान् ॥ ९४ ॥

भाषा-तालीसपत्र हलका, तीक्ष्ण, गरम है और श्वास, खांसी, कफ, वात, अरुचि, गुल्म, आम, अग्निकी मंदता तथा क्षयको क्षय करता है ॥ ९४ ॥

तालीसपत्रका विशेष विवरण.

तालीसपत्रके वृक्ष हिमालयपर्वतपर उत्पन्न होते हैं. इसके पत्ते लम्बे लम्बे चिकने होते हैं, इसपर आमलेके समान फलोंके गुच्छे आते हैं. इसकी लकडी बहुत पक्की होती है. व्यवहारमें इसके पत्ते लिये जाते हैं. इसकी मात्रा ६ रत्तीसे १ मासेतककी है.

कङ्कोलनामानि ।

कङ्कोलं कोलकं प्रोक्तं तथा कोषफलं स्मृतम् ।

भाषा-कङ्कोल, कोलक, कोषफल ये कङ्कोलके संस्कृत नाम हैं. (कङ्कोलक, तैलसाधन, कोशफल, फल, कोरक, काकोल, गन्धव्याकुल, कृतफल, कटुकफल, द्वेष्य, स्थूलमरिच, माधवोचित, कट्फल, कालमारिच, कटुक, कोलमरिच, मागधोषित, कृतफल, द्वीपसम्भव और सुगंधिफल ये शीतलचीनीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके शीतलचीनीके नाम.

सं.-कंकोल.	फा.-कबाबह.
हिं.-शीतलचीनी, कबाबचीनी, कंकोल.	अ.-कबाब, हब्बउलरुसबाब.
बं.-कांकला. [नी.	अं.-Cubeb Pepper क्यूबेब पेपर.
म.-कंकोल, कापुरचीनी.	ला.-Cubeba Officinalis क्यूबेबा आफिसिनेलिस.
गु.-चणकबाब, कंकोल.	
तै.-कबाबचीनी.	

कङ्कोलगुणाः ।

कङ्कोलं लघु तीक्ष्णोष्णं तिक्तं हृद्यं रुचिप्रदम् । आस्यदौर्गन्ध्यहृद्रोगकफवातामयान्ध्यहृत् ९५

भाषा-शीतलचीनी हलकी, तीक्ष्ण, गरम, कडवी, हृदयको हितकारी, रुचिकारक है और मुखकी दुर्गन्धता, हृदयरोग, कफ, वात तथा अन्धताको हरेनवाली है ॥ ९५ ॥

शीतलचीनीका विशेष विवरण.

शीतलचीनीकी वेल हिमालयपर्वतपर तथा चीनदेशमें होती है. इसके फल मिरचकेसे होते हैं, इनको कंकोल कहते हैं. कंकोल दो जातिकी होती है बडी और छोटी, बडी तो पाचक और क्षुधावर्द्धक है और छोटी मुखमें डालनेसे शीतलताको उत्पन्न करती है, इसमें इलायची और पिपरमेण्टके सदृश सुगंधि आती है. इनमें मोटे वक्कलवालीको कंकोल और पतले वक्कलवालीको शीतलचीनी कहते हैं. दोनोंके स्वादमें बहुत अन्तर है. इसका दर्पनाशक मस्तंगी और चंदन है. इसकी प्रतिनिधि दालचीनी और छोटी इलायची है. इसके फलकी मात्रा २ मासेकी है.

गन्धकोकिलागन्धमालतीगुणाः ।

स्निग्धोष्णा कफहृत्तिक्ता सुगन्धा गंधकोकिला । गन्धकोकिलया तुल्या विज्ञेया गन्धमालती ॥ ९६ ॥

भाषा-गंधकोकिला स्निग्ध, गरम, कफकोहरनेवाली और सुगंधित है. गंधमालतीभी गंधकोकिलाके सदृश जाने ॥ ९६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लामज्जकनामानि ।

(उशीरवत् पीतच्छवि तृणविशेषः)

लामज्जकं सुनालं स्यादमृणालं लयं लघु ।
इष्टकापथकं सेव्यं नलदं चावदातकम् ॥९७॥

भाषा-लामज्जक, सुनाल, अमृणाल, लय, लघु, इष्टकापथक, सेव्य, नलद, अवदातक ये लामज्जकके संस्कृत नाम हैं. (सुनील, शीघ्र, दीर्घमूल, जलाश्रय और अवदाह ये लामज्जकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥९७॥

अनेक भाषाके लामज्जके नाम.

सं.-लामज्जक.	गु.-सुगंधिपीलु.
हिं.-लामज्जक.	क.-लामंच.
बं.-गन्धवेणा [ळा.	ते.-तेल्लबट्टिवेरु.
म.-लावज, पिंवळा वा-	मला.-रामंचम्.

लामज्जकगुणाः ।

लामज्जकं हिमं तिक्तं लघु दोषत्रयास्रजित् ।
त्वगामयस्वेदकृच्छ्रदाहपित्तास्ररोगनुत् ॥९८॥

भाषा-लामज्जक शीतल, कडवा, हलका है और तीनों दोष, रक्तविकार, त्वचाके रोग, पसीना, मूत्रकृच्छ्र, दाह तथा रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ९८ ॥

लामज्जकका विशेष विवरण.

लामज्जक तृणजातिका सुगन्धित पदार्थ है. इसका रंग पीला होता है. इसकी जड लम्बी होती है और यह विशेषकरके जलाशयके निकट उत्पन्न होता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

एलवालुकनामानि ।

(एलवालुकं कङ्कोलसदृशं कुष्ठगन्धि) ।

एलवालुकमैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम् ।
एलवालुकमेलालु कपित्थं पत्रमीरितम् ॥९९॥

भाषा-एलवालुक, ऐलेय, सुगन्धि, हरिवालुक, एलालु, कपित्थपत्र ये एलुएके संस्कृत नाम हैं. (वालु, वालुक, एलावालुक, एलवालु, आलुक, एलवालुक, कपित्थत्वक्, गन्धत्वक्, कुष्ठ, गन्धी, कपित्थगन्धात्वक्, एलालु और एल्वालु ये एलुएके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ९९ ॥

अनेक भाषाके एलुएके नाम.

सं.-एलवालुक.	गु.-एलवा.
हिं.-एलुआ.	क.-कलंगडले, सुर-
बं.-एलवालुक.	सुरिके.
म.-एलावालुक.	ते.-कुतुखडम.

एलवालुकगुणाः ।

एलालु कटुकं पाके कषायं शीतलं लघु ।
हन्ति कण्डूव्रणच्छर्दितृट्कासारुचिहृद्रुजः ॥
बलासविषवित्तास्रकुष्ठमूत्रगदक्रिमीन् ॥१००॥

भाषा-एलुआ चरपरा, पाकमें कसैला, शीतल, हलका है और खुजली, व्रण, वमन, तृषा, खांसी, अरुचि, हृदयरोग, कफ, विष, पित्त, रक्तविकार, कोढ, मूत्रकृच्छ्र तथा कृमिको शमन करता है ॥ १०० ॥

एलुएका विशेष विवरण.

एलुआ एक सुगन्धित पदार्थ है. इसका रंग कंकोलकेसा काला होता है. इसमें कूठके समान गन्ध आती है. एलुवा गुवारपाठेके रससे बनाया जाता है जिसे मुसब्बर एलुवाभी कहते हैं. पर बहुत वैद्य एलवालुक एलवेसे पृथक् मानते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

कैवर्तीमुस्तकनामानि ।

कुटन्नटं दासपुरं बालेयं परिपेलवम् ।
प्लवगोपुरगोनर्दकैवर्तीमुस्तकानि च ॥ १०१ ॥

भाषा-कुटन्नट, दासपुर, बालेय, परिपेलव, प्लव, गोपुर, गोनर्द, कैवर्ती, मुस्तक ये केवटी मोथेके संस्कृत नाम हैं. (वितुन्नक, वन्य, कुटनट, सितपुष्प, दासपूर, कैवर्तमुस्त, दशपूर, कैवर्त्ती, परिपेल, पारिपेल, कैवर्त्तिमुस्तक, कैवर्त्तमुस्तक, वनसम्भव, धान्य, शीतपुष्प और जीर्णवृन्तक ये केवटी मोथेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १०१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके केवटी मोथेके नाम.

सं.–कुटन्नट.
हिं.–केवटीमोथा.
बं.–केउट मुथा.
म.–क्षुद्रमोथ, केवटीमोथ, जलमोथ.
गु.–केवडी मोंथ.
क.–कोमठी मोथा.

वितुन्नकलक्षणम् ।

मुस्तावत्पेलवपुटं शुक्राभं स्याद्वितुन्नकम् ।

भाषा–वितुन्नक (केवटी मोथा) मोथेके सदृश कोमल पत्रवाला और वीर्यकी कान्तिके सदृश अर्थात् सुफेद होता है ॥

वितुन्नकगुणाः ।

वितुन्नकं हिमं तिक्तं कषायं कटुकांतिदम् । कफपित्तास्रवीसर्पकुष्ठकण्डूविषप्रणुत् ॥ १०२॥

भाषा–केवटीमोथा शीतल, कडवा, कसैला, चरपरा, कांतिदायक है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, विसर्प, कुष्ठ, कण्डू तथा विषका नाश करता है ॥ १०२ ॥

केवटीमोथेका विशेष विवरण.

केवटीमोथेकी तृणजाति है. इसकी जडमें सुगन्ध आती है और इसपर सुफेद फूल लगते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

स्पृक्कानामानि ।

(स्पृक्का सुगन्धिद्रव्यं शाकविशेषः)

स्पृक्काऽसृग् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता लघुः । समुद्रान्ता वधूः कोटिवर्षाऽलङ्कोपिकेत्यपि ॥ १०३ ॥

भाषा–स्पृक्का, असृक्, ब्राह्मणी, देवी, मरुन्माला, लता, लघुसमुद्रान्ता, वधू, कोटिवर्षा, अलंकोपिका ये असबरगके संस्कृत नाम हैं. (लतामरुत्, लंकारिका, कुटिला, देवपुत्रिका, देवपुत्री, पृक्का, पिशुना, लंकायिका, लंकापिका, मनु, मालालिका, मालानी, लघ्वी, पंचगुन्निरसा, समुद्रकान्ता, मरुत्, माला, कोटी, वर्षा, लंकोपिका, तस्कर, चोरक और चण्ड ये असबरगके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)१०३॥

अनेक भाषाके स्पृक्काके नाम.

सं.–स्पृक्का. [क.
हिं.–असबरग, अस्परवं.–गंधपिंडि, स्पृक्काशाक.
म.–कर्पूरवल्ली.
गु.–कपूरी मधुरी.
क.–हिक्के.
ता.–कारीतुंब.
तै.–स्पृक्कमेनडु द्रव्यमु.
ला.–Salivia Bengalensis सालिविआ बेंगालेन्सिस् Anisomelas Malabarica एनिसोमेलास मलेबारिका.

स्पृक्कागुणाः ।

स्पृक्का स्वाद्वी हिमा वृष्या तिक्ता निखिलदोषनुत् । कुष्ठकंडूविषस्वेददाहास्रज्वररक्तहृत् १०४

भाषा–असवरग स्वादु, शीतल, शुक्रवर्द्धक, चरपरा है और सम्पूर्ण दोष, कोढ, खुजली, विष, पसीना, दाह, रुधिरविकार और रक्तगत ज्वरको दूर करता है ॥ १०४ ॥

स्पृक्काका विशेष विवरण.

असवरग सुगन्धित पदार्थ है, यह उत्तरखंडमें बहुत प्रसिद्ध है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

पर्पटीनामानि ।

(पद्मावती इति उत्तरदेशे सुगन्धिद्रव्यम्)

पर्पटी रञ्जना कृष्णा जंतुका जननी जनी । जतुकृष्णाग्निसंस्पर्शा जतुकृच्चक्रवर्त्तिनी १०५

भाषा–पर्पटी, रंजना, कृष्णा, जंतुका, जननी, जनी, जतुकृष्णा, अग्निसंस्पर्शा, जतुकृत्, चक्रवर्त्तिनी ये पपडीके संस्कृत नाम हैं. (कृष्णा, जनेष्टा, जतुकारी, तिर्यक्फला, निशान्धा, सुपत्रिका, बहुपुत्री, राजवृक्षा, कपिकच्छुफलोपमा, सूक्ष्मवल्ली, भ्रमरी, कृष्णवल्लिका, विज्जुल्लिका, कृष्णरुहा, ग्रन्थिपर्णा, सुवर्चिका, तरुवल्ली, दीर्घफला, रजनी, जतुका और जनिजन्तुका ये पपडीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १०५ ॥

अनेक भाषाके पर्पटीके नाम.

सं.–पर्पटी.
हिं.–पपडी, पपरी, पनरी.
म.–रंगवासा, पापडी, जंतुवासा.
गु.–पर्पटी.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर्पटीगुणाः।

पर्पटी तुवरा तिक्ता शिशिरा वर्णकृल्लघुः।
विषव्रणहरी कण्डूकफपित्तास्रकुष्ठनुत्॥१०६॥

भाषा-पपडी कसैली, कडवी, शीतल, वर्णको उत्तम करनेवाली, हलकी है और विष, व्रण, खुजली, कफ, पित्त, रुधिरविकार तथा कोढको नष्ट करती है॥ १०६॥

पर्पटीका विशेष विवरण.

पर्पटी (पपडी, पनडी) यह सुगंधित द्रव्य मालवे देशमें अधिक विख्यात है. इस देशमें इसको पनडी और उत्तरखंडमें पद्मावती कहते हैं. इसको कपडोंमें रखनेसे कसाई जानवर उनको नहीं खाता. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

नलिकानामानि।

(उत्तरापथे प्रसिद्धा सुगन्धा बलाकृतिर्यवारी इति च क्वचित्प्रसिद्धा)।

नलिका विद्रुमलता कपोतचरणा नटी। धमन्यञ्जनकेशी च निर्मध्या सुषिरा नली॥१०७॥

भाषा-नलिका, विद्रुमलता, कपोतचरणा, नटी, धमनी, अंजनकेशी, निर्मध्या, सुषिरा, नली ये नलिकाके संस्कृत नाम हैं. (कपोतांघ्रि, विद्रुमलतिका, कपोतवाणा, नलिनी, अध्मानी, स्तुत्या, रक्तदला और नर्तकी ये नलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ १०७॥

अनेक भाषाके नलिकाके नाम.

सं.-नलिका.	गु.-नलिका.
हिं.-नली, पवारी.	क.-वेतनलिके.
म.-नलिकाजाई, पवारी.	ते.-पक्केमुक.

नलिकागुणाः।

नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्तहृत्।
कृच्छ्राश्मवाततृष्णास्रकुष्ठकण्डूज्वरापहा१०८

भाषा-नली शीतल, हलकी, नेत्रोंको हितकारी है और कफ, पित्त, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, वात, तृषा, रुधिरविकार, कोढ, खुजली तथा ज्वरको शमन करती है॥ १०८॥

नलिकाका विशेष विवरण.

नलिका एक सुगंधित औषधि है, उत्तरखण्डमें नलीनामसे विख्यात है. इसका स्वरूप मूंगेके समान होता है. इसके पत्ते लाल और फल कुछ लम्बे कुछ गोलाई लिये हुए बिंबाफलके समान होते हैं. कहीं २ यह पवारी और पवाली नामसे प्रसिद्ध है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

प्रपौंडरीकनामानि।

(प्रपौंडरीकं सुगन्धद्रव्यं पुण्डेरी)

प्रपौंडरीकं पौंड्यं चक्षुष्यं पौंडरीयकम्।

भाषा-प्रपौण्डरीक, पौण्ड्य, चक्षुष्य, पौण्डरीयक ये पुण्डेरीके संस्कृत नाम हैं. (श्रीपुष्प, पुण्डरी, शीत, पुण्डरीयक, पुण्ड्यं, पुण्डरीक, पौण्डरी, तालपुष्पक, सालपुष्प, दृष्टिकृत्, स्थलपद्म, सुपुष्प, सानुज और अनुज ये पुण्डेरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके पुण्डेरीके नाम.

सं.-प्रपौंडरीक.	गु.-पुण्डरिया, पांडेरवा.
हिं.-पुण्डरिया, पुण्डेरी.	क.-पुंडरिक.
म.-पुंडरीकवृक्ष.	

प्रपौंडरीकगुणाः।

पौंड्यं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम्।
चक्षुष्यं मधुरं पाके वर्ण्यं पित्तकफप्रणुत्१०९॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे कर्पूरादिवर्गः समाप्तः॥ २॥

भाषा-पुण्डेरी मधुर, कडवी, कसैली, वीर्यवर्द्धक, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, पाकमें मधुर, व्रणको उत्तम करनेवाली और पित्त तथा कफका नाश करनेवाली है॥ १०९॥

पुंडेरीका विशेष विवरण.

प्रपौण्डरीक एक सुगंधित वृक्ष होता है; इसको कोई २ यूनानी वैद्य मुमीरा कहते हैं. इसके पत्ते हरे, फूल बैंजनी और लकडी पीली होती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे कर्पूरादिवर्गः समाप्तः॥ २॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ गुडूच्यादिवर्गः ३ ।

गुडूच्या उत्पत्तिः ।

अथ लङ्केश्वरो मानी रावणो राक्षसाधिपः । रामपत्नीं बलात्सीतां जहार मदनातुरः ॥ १ ॥ ततस्तं बलवान्रामो रिपुं जायापहारिणम् । वृतो वानरसैन्येन जघान रणमूर्धनि ॥ २ ॥ हते तस्मिन्सुरारातौ रावणे बलगर्विते । देवराजः सहस्राक्षः परितुष्टश्च राघवे ॥ ३ ॥ तत्र ये वानराः केचिद्राक्षसैर्निहता रणे । तानिन्द्रो जीवयामास संसिच्यामृतवृष्टिभिः ४ ततो येषु प्रदेशेषु कपिगात्रात्परिच्युताः । पीयूषबिन्दवः पेतुस्तेभ्यो जाता गुडूचिका ५॥

भाषा–एकदा अभिमानी राक्षसोंका अधिपति लंकेश्वर रावण कामातुर हो बलात्कारसे रामपत्नी सीताको हरकर ले गया; तब रामचंद्रने वानरसेनाकी सहायता लेकर स्त्रीहरण करनेवाले शत्रु रावणको रणभूमिमें मारा. जब देवताओंका शत्रु और बलकरके गर्ववाला रावण मर गया, तब देवताओंके राजा इन्द्रने रामचंद्रपर अत्यंत प्रसन्न होकर युद्धमें राक्षसोंके हाथसे मरे हुए वानरोंको अमृतकी वर्षा करके जीवित किया. इस प्रकार अमृतसे भीजे वानरोंके शरीरपरसे जहां जहां अमृतकी बूंदें गिरीं वहीं वहीं गिलोय उत्पन्न हुई है ॥ १–५ ॥

गुडूचीनामानि ।

गुडूची मधुपर्णी स्यादमृताऽमृतवल्लरी । छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीति च ॥ ६ ॥ जीवंती तन्त्रिका सोमा सोमवल्ली च कुण्डली । चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या च रसायनी ॥ चन्द्रहासी वयस्था च मण्डली देवनिर्मिता ॥ ७ ॥

भाषा–गुडूची, मधुपर्णी, अमृता, अमृतवल्लरी, छिन्ना, छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा, वत्सादनी, जीवन्ती, तन्त्रिका, सोमा, सोमवल्ली, कुण्डली, चक्रलक्षणिका, धीरा, विशल्या, रसायनी, चन्द्रहासी, वयस्था, मंडली, देवनिर्मिता ये गिलोयके संस्कृत नाम हैं. (अमृतवल्ली, तंत्री, निर्जरा, जीवन्तिका, वातरक्तारि, पामरोद्धारा, पित्तघ्नी, उद्धारा, गुडूची, वरा, ज्वरारि, श्यामा, सुरकृता, मधुपर्णिका, अमृतलता, सोमलतिका, भिषक्प्रिया, कुण्डलिनी, नागकुमारिका, छन्निका, चन्द्रहासा, अमृतसम्भवा, चक्राङ्गी और नागकन्या ये गिलोयके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ६ ॥ ७ ॥

अनेक भाषाके गिलोयके नाम.

सं.–गुडूची.	फा.–गलोय.
हिं.–गिलोय.	अ.–गिलोइ.
बं.–गुलंच.	डा.–Tinspora cardifolia टाइनस्पोराकॉर्डिफोलिया.
म.–गुळवेल.	
गु.–गलो.	
क.–अमरदवल्ली.	ला.–Coculus Cordifolious कोक्यूलस कार्डिफोलियस.
तै.–तिप्पतिगे, तियातिज.	
ता.–सिन्दीलकोदि.	

गुडूचीगुणाः ।

गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी । संग्राहिणी कषायोष्णा लघ्वी बल्याग्निदीपनी ॥ दोषत्रयामतृड्दाहमेहकासांश्च पाण्डुताम् ॥ ८ ॥ कामलाकुष्ठवातास्रज्वरकृमिवमीन्हरेत् । प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत् ॥ ९ ॥

भाषा–गिलोय चरपरी, कडवी, पाकमें स्वादिष्ठ, रसायनरूप, ग्राही, कसैली, गरम, हलकी, बलदायक, अग्नि प्रदीप्त करनेवाली है और वातादि तीनों दोष, आम, तृषा, दाह, प्रमेह, खांसी, पाण्डुरोग, कामला, कोढ, वायु, रुधिरविकार, ज्वर, कृमि, वमन, श्वास, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, हृदयरोग तथा वातका नाश करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

गिलोयका विशेष विवरण.

गिलोयकी वेल वृक्षोंपर फैल जाती है. इसके पत्ते पानके समान शोभायमान होते हैं. इसपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैशाख जेठमें मौर आता है. उसीमें छोटे छोटे फूलभी आते हैं. परन्तु उस समय पुराना पत्ता एकभी नहीं रहता. सब पत्ते पीले पडपडकर गिर जांते हैं और कोमल कोमल नवीन पत्ते निकल आते हैं. परन्तु गिलोय दो जातिकी होती है. एक गिलोयपर फल नहीं आते, दूसरी जातिकी गिलोयपर फल मकोईके समान नीले रंगके गुच्छोंमें लगते हैं और पकनेपर वे लाल लाल हो जाते हैं. इसी गिलोयका सत्त्व निकलता है जिसकी वैद्य लोग अत्यन्त प्रशंसा करते हैं. इसकी मात्रा ४ मासेकी है.

नागवल्ली (पान) नामानि ।

ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागिनी नागवल्लरी ।

भाषा-ताम्बूलवल्ली, ताम्बूली, नागिनी, नागवल्लरी ये पानके संस्कृत नाम हैं. (नागवल्ली, नागवल्लिका, दिव्याभीष्टा, पर्णलता, ताम्बूली, सप्तशिरा, सप्तलता, फणिवल्ली, भुजंगलता, भक्ष्यपत्र, ताम्बूलवल्लिका, पर्णगृहाशया, मुखभूषण और ताम्बूल ये पानके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पानके नाम.

सं.-तांबूली.	ता.-वेट्टिली.
हिं.-पान, नागरवेल.	मला.-वेत्तिला.
बं.-पान.	फा.-वर्गतंबोल.
म.-नागवेल, पानवेल.	अ.-कान.
गु.-नागरवेलनां पान.	अं.-Betel leaf बिटल लीफ.
क.-नागरवल्ली, यलिवल्ली.	ला.-Piper Betel पाइपर बिटल.
तै.-तमालपाकु.	

नागवल्लीगुणाः ।

ताम्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम् ।
वश्यं तिक्तं कटुक्षारं रक्तपित्तकरं लघु ॥
बल्यं श्लेष्मास्यदौर्गंध्यमलवातश्रमापहम् १०

भाषा-पान विशद, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, कसैला, दस्तावर, वश्यकारक, चरपरा, खारी, रक्तपित्त करनेवाला, हलका, बलदायक है और कफ, मुखकी दुर्गंधता, मल, वात तथा परिश्रमको नष्ट करता है ॥ १० ॥

पानकी वेलका विशेष विवरण.

पानकी वेल अत्यन्त शोभायमान और मनोहर होती है. इसकी कई जातिया हैं. बंगला मौहवा, महाराजपुर, बिलौआ, कपूरी, फुलवा इन प्रदेशोंमें पान बहुत होते हैं परन्तु इनमें मोहवेके पानकी और फुलवेके पानकी अधिक प्रशंसा है. इसकी वेल विशेष करके जहां तहां टट्टियोंपर अधिक फैली रहती है. कहीं कहीं अगस्तियाके वृक्षपरभी इसकी वेल फैली हुई देखनेमें आती है. इसकी मात्रा यथोपयुक्त है.

बिल्व (वेल) नामानि ।

बिल्वः शांडिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि ।

भाषा-बिल्व, शांडिल्य, शैलूष, मालूर, श्रीफल ये बेलके संस्कृत नाम हैं. (महाकपित्थाख्य, गोहरीतकी, पूतिवात, मंगल्य, त्रिशिख, कपीतन, महाकपित्थ, अतिमांगल्य, महाफल, शल्य, हृद्यगन्ध, कर्कटाह्व, शैलपत्र, शिवेष्ट, पत्रश्रेष्ठ, त्रिपत्र, गन्धपत्र, लक्ष्मीपत्र, गन्धफल, दुरारुह, त्रिशाखपत्र, शिवद्रुम, सदाफल, सत्यफल, सुनीतिक, समीरसार, सत्यधर्म, अधरारुह, कण्टकाढ्य, सितानन, नीलमालिक और पीतफल ये बेलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके बेलके नाम.

सं.-बिल्व.	ता.-विल्वं.
हिं.-बेल.	तु.-वेलपत्रे.
बं.-विल्व, वेल.	अ.-अनार हिंदी.
म.-बेलवृक्ष, बेलफळ.	अं.-Bengalkins बेंगालकिन्स.
गु.-बिली.	ला.-Aegle marmelos ईगल मार्मेलोज.
क.-बेल्लवन.	
तै.-मारेडुचेट्टु	

बिल्वगुणाः ।

श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तकृत् ।
वातश्लेष्महरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः ११

भाषा-बेल कसैला, कडवा, ग्राही, रूखा, अग्नि तथा पित्तको करनेवाला, वात तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कफको हरनेवाला, बलदायक, हलका, गरम और पाचक है ॥ ११ ॥

बेलका विशेष विवरण.

बेलका वृक्ष बडा होता है. इसकी शाखाओंमें कांटे होते हैं, इसके पत्ते डालियोंमें बहुत होते हैं. एक डंटलमें तीन तीन पत्ते त्रिशूलाकार होते हैं. इसके फूल सफेद और सुगंधित छोटे २ होते हैं और इसके फल गोल गोल कडे छिलकेके तोलमें आध पावसे लेकर ढाईसेर तकके होते हैं. खानेमें स्वादिष्ठ और बीज बहुत होते हैं और गोंदके समान एक पदार्थ चुपकता हुआ उसके गूदेमें मिला होता है. ग्रीष्मऋतुके आरम्भमें इसके पुराने पत्ते गिरकर नवीन पत्ते लाल रंगके निकलते हैं, परन्तु फिर हरे हो जाते हैं. इसकी लकडी बहुत पवित्र गिनी जाती है. बहुत लोग चन्दनके समान मानते हैं. इसके मूलकी छाल दशमूलके क्वाथमें एक प्रधान औषधि मानी जाती है. बेलके वृक्ष हिंदुस्थानके प्रत्येक स्थानमें होते हैं और वनमें तो बेलका वनही है. इसका कच्चा फल औषधिके प्रयोगमें आता है. बेलफलकी जगह बेलगिरीभी प्रयोगमें लेते हैं. इसकी प्रतिनिधि इमलीके बीज हैं और दर्पनाशक अजमायन है. इसकी मात्रा ७ मासेकी है.

गम्भारीनामानि ।

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका । काश्मीरी काश्मरी हीरा काश्मर्यः पीतरोहिणी ॥ कृष्णवृन्ता मधुरसा महाकुसुभिकापि च ॥ १२ ॥

भाषा–गम्भारी, भद्रपर्णी, श्रीपर्णी मधुपर्णिका, काश्मीरी, काश्मरी, हीरा, काश्मर्य, पीतरोहिणी, कृष्णवृंता, मधुरसा, महाकुसुभिका ये कुंभेरके संस्कृत नाम हैं. (सर्वतोभद्रा, भद्रा, गोपभद्रिका, कम्भारिका, कुमुदा, सद्भद्रा, कृष्णफला, कट्फला, कृष्णवृंतिका, सर्वतोभद्रिका, स्निग्धपर्णी, सुभद्रा, कम्भारी, गोपभद्रा, क्षीरिणी, विदारिणी, महाभद्रा, मधुभद्रा, स्वरुभद्रा, कृष्णा, अश्वेता, रोहिणी, गृष्टि, स्थूलत्वचा, मधुमती, सुफला, मोदिनी, महाकुमुदा, सुदृढत्वचा, महाकुमुदिका और पीतफला ये कुम्भेरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १२ ॥

अनेक भाषाके कुम्भेरके नाम.

सं.–गंभारी.	क.–सीवनी.
हिं.–कुम्भेर, खम्भारी.	तै.–साल्लागुंवुची चेट्टु.
बं.–गाम्भारी, गाभार.	ला.–Gmilica Arboria मिलाइना आर्बोरिया.
म.–शिवण.	
गु.–शिवण.	

गम्भारीगुणाः ।

काश्मरी तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा मधुरा गुरुः। दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित् ॥ दोषतृष्णामशूलार्शोविषदाहज्वरापहा ॥ १३ ॥

भाषा–कुम्भेर कसैली, कडवी, उष्णवीर्य, मधुर, दीपन, पाचक, बुद्धिको हितकारी, भेदक हैं और भ्रम, शोष, तृषा, आम, शूल, बवासीर, विष, दाह तथा ज्वरको नष्ट करती है ॥ १३ ॥

गम्भारीफलगुणाः ।

तत्फलं बृहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम् । वातपित्ततृषारक्तक्षयमूत्रविबन्धनुत् ॥ १४ ॥ स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्लं विशुद्धिकृत् । हन्याद्दाहतृषावातरक्तपित्तक्षतक्षयान् ॥ १५ ॥

भाषा–कुम्भेरका फल वीर्यवर्द्धक, बलदायक, भारी, केशोंको हितकारी, रसायन, पाकमें मधुर, शीतल, स्निग्ध, कसैला, खट्टा, कोठेको शुद्ध करनेवाला है और वात, पित्त, तृष्णा, रुधिरविकार, क्षय, मूत्रविबंध, दाह, तृषा, वातरक्तविकार तथा क्षतक्षयको शमन करता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

कुम्भेरका विशेष विवरण.

कुम्भेरका वृक्ष बहुत बडा होता है. इसके पत्ते समुद्रशोष और पीपलके पत्तोंसे कुछेक बडे होते हैं. इसपर फूल पीले रंगके लगते हैं.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके फलभी पीले होते हैं. इसकी छाल सफेद रंगकी होती है और इसमें दूध निकलता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

पाटलिघण्टापाटलिनामानि।

पाटलिः पाटलाऽमोघा मधुदूती फलेरुहा। कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी कालस्थाल्यलिवल्लभा ॥ १६ ॥ ताम्रपुष्पी च कथिताऽपरा स्यात्पाटला सिता। मुष्ककी मोक्षको घण्टापाटलिः काष्ठपाटला ॥ १७ ॥ कालस्थालीत्यत्र काचस्थालीत्येके।

भाषा-पाटलि, पाटला, अमोघा, मधुदूती, फलेरुहा, कृष्णवृन्ता, कुबेराक्षी, कालस्थाली, अलिवल्लभा, ताम्रपुष्पी ये पाढलके संस्कृत नाम हैं. (कर्बूरा, अम्बुबासिनी, कालवृन्ता, कुम्भी, तोयाधिवासिनी, तोयपुष्पी, कुम्भिका, सुपुष्पिका, वसन्तदूती, स्थालिस्थिरगन्धा, अम्बुवासी, कालवृंती, कामदूती, अलिप्रिया और कोकिला ये पाढलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) मुष्कक, मोक्षक, घंटापाटलि, काष्ठपाटला, श्वेतपाटला ये घंटापाटलिके संस्कृत नाम हैं. (श्वेतकुम्भी, श्वेतकुबेराक्षी, श्वेतफलेरुहा, काष्ठकुबेराक्षी और काष्ठपाटलि ये घंटापाढलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १६ ॥ १७ ॥

अनेक भाषाके पाढलके नाम.

सं.-पाटला, श्वेतपाटला.
हिं.-पाडरि, पाढल, सफेद पाडर, कठपाडर.
बं.-पारुल, घण्टापारुल.
म.-रक्तपाडळ.
गु.-रातापूलना पाडल, श्वेतपाडर, कांकच.
क.-हादरी, विलियहादरी.
ते.-कलगौरु, कलिगोट्टुचेट्टु.
ता.-पड्रि.
उत्.-पाटुडि.
ला.-Vignonia suaviolens विग्नोनिया सुवियोलेन्स्. Seriospemrum Chelonoides सिरियोस्पर्म् केलोनोइडिस्.

पाटलागुणाः।

पाटला तुवरा तिक्तानुष्णा दोषत्रयापहा। अरुचिश्वासशोथास्रच्छर्दिहिक्कातृषाहरी १८॥ पुष्पं कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफास्रनुत्। पित्तातिसारहृत्कण्ठ्यं फलं हिक्कास्रपित्तहृत् १९

भाषा-पाढल कसैली, कडवी, उष्णतारहित, त्रिदोषनाशक है और अरुचि, श्वास, सूजन, रुधिरविकार, वमन, हिचकी तथा तृषाको नष्ट करती है. पाढलका फल कंठको हितकारी है और पित्त, अतीसार, हिचकी तथा रक्तपित्तको दूर करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

पाढलका विशेष विवरण.

पाढलके वृक्ष वनमें होते हैं. फूल गुलाबी और तांबेके रंगके होते हैं. इसके पत्ते वेलके समान होते हैं. यह पाढल दो प्रकारकी होती है, दूसरी सुफेद रङ्गकी पाढल होती है उसको श्वेतपाढल कहते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

अग्निमन्थनामानि।

अग्निमन्थो जयः स स्याच्छ्रीपर्णी गणिकारिका। जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका ॥ २० ॥

भाषा-अग्निमन्थ, जय, श्रीपर्णी, गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्कारी, नादेयी, वैजयन्तिका ये अरणीके संस्कृत नाम हैं (हविर्मन्थ, कर्णिका, गिरिकर्णिका, श्रीपर्ण, तेजोमन्थ, ज्योतिष्क, पावक, अरणि, वह्निमन्थ, मथन, पावकारणी, अग्निमथन, अरणीकेतु, विजया, अनंता, नदीजा, तनुत्वक्, वह्निमूल और अग्निबीजक ये अरणीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २० ॥

अनेक भाषाके अरनीके नाम.

सं-अग्निमंथ. [अगेथू.
हिं.-अरनी, गनियारी,
बं.-गणिर आगगन्त.
म.-थोर ऐरण, नरवेल.
गु.-अरणी.
क.-नरुवल.
ते.-नेलीचेट्टु.
उत्.-अगीवथ.
ला.-Clerodendron Phlomoides क्लेरोडेन्ड्रन् फ्लोमोइडिस्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निमन्थगुणाः ।

अग्निमन्थः श्वयथुनुद्वीर्योष्णः कफवातहृत् । पांडुनुत्कटुकस्तिक्तस्तुवरो मधुरोऽग्निदः॥२१॥

भाषा–अरनी उष्णवीर्य, चरपरी, कडवी, कसैली, मधुर, अग्निवर्द्धक है और सूजन, कफ, वात तथा पाण्डुरोगको हरती है ॥ २१ ॥

अरणीका विशेष विवरण.

अरणीके बडे बडे वृक्ष सब स्थानोंमें होते हैं. इसके पत्ते गोल किञ्चित् नोकीले और अत्यंत कोमल होते हैं, फूल सुफेद रंगके गुच्छेदार होते हैं. इसके फल छोटे करौंदेके समान होते हैं, इसके पत्तोंमें गंध आती है, डालियोंकी लकडी अंदरसे पोली होती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

श्योनाकनामानि ।

श्योनाकः शोषणश्च स्यान्नटकट्वङ्गटुण्टुकाः । मण्डूकपर्णपत्रोर्णशुकनासकुटन्नटाः ॥ दीर्घवृन्तोऽरलुश्चापि पृथुशिम्बः कटम्भरः ॥२२॥

भाषा–श्योनाक, शोषण, नट, कट्वङ्ग, टुण्टुक, मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, शुकनास, कुटन्नट, दीर्घवृंत, अरलु, पृथुशिम्ब, कटम्भर ये अरलूके संस्कृत नाम हैं. (टिण्टुक, कीरनाशन, पूतिवृक्ष, पूतिनाग, भूतिपुष्प, मुनिद्रुम, भल्लूक, टेण्टूक, पीत, वृक्ष, भूतसार, निःसार, फलवृन्ताक, पूतिपत्र, वसंतक, मण्डूकपर्ण, पीतांग, जम्बूक, पीतपादप, वातारि, पीतक, शोण, कुनट, विरोचन, भ्रमरेष्ट और जंघनेत्र ये अरलूके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं ॥ २२ ॥

अनेक भाषाके अरलूके नाम.

सं.–श्योनाक.	गु.–अरलू.
हिं.–सोनापाठा, अरलू, टेंटू.	क.–शोणा, शोडिलमर.
बं.–शोनापाता, सोनालु.	तै.–पेद्दामानु.
म.–दिंडा, टेंडु.	ता.–पन.
को.–जगदळा, फळफळा, टेंटवें.	ला.–Orocylum Indicum ओरोसिलं इन्डिकम्.

श्योनाकगुणाः ।

श्योनाको दीपनः पाके कटुकस्तुवरो हिमः । ग्राही तिक्तोऽनिलश्लेष्मपित्तकासप्रणाशनः ॥२३॥टुण्टुकस्य फलं बालं रूक्षं वातकफापहम् । हृद्यं कषायं मधुरं रोचनं लघु दीपनम्॥ गुल्मार्शःकृमिहृत्प्रौढं गुरु वातप्रकोपणम् २४

भाषा–अरलू अग्निको दीपन करनेवाला, पाकमें चरपरा, कसैला, शीतल, ग्राही, कडवा है और वात, कफ, पित्त तथा खांसीको नष्ट करता है. अरलूका कच्चा फल, रूखा, हृदयको हितकारी, कसैला, मधुर, रुचिकारक, हलका, अग्निप्रदीपक, वातनाशक तथा कफनाशक है. अरलूका पक्का फल गुल्म, ववासीर तथा कृमिको नष्ट करता है और भारी है तथा वायुको कुपित करता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अरलूका विशेष विवरण.

अरलूका वृक्ष बहुत ऊंचा होता है. इसकी फली लम्बी तलवारके समान दो दो फूटकी होती है. फलीके भीतर रुई और दाने निकलते हैं, दूसरे प्रकारका श्योनाकभी बहुत बडा होता है, उसका फूल लाली लिये समुद्रशोषके समान होता है और उसपरभी फली बहुत बडी बडी लगती हैं. बहुत वैद्य अरडूनामक बडे वृक्षको जिसके पत्ते नींबके समान बडे होते हैं और फलभी नींबके फलके आकार जरा बडा लगता है, पत्तोंमें कुछ दुर्गंधसी आती है उसे अरलू मानते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

बृहत्पञ्चमूलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

श्रीफलः सर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका । श्योनाकः पञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मतम् ॥ २५ ॥ पञ्चमूलं महत्तिक्तं कषायं कफवातनुत् । मधुरं श्वासकासघ्नमुष्णं लघ्वग्निदीपनम् ॥ २६ ॥

भाषा–बेल, कुम्भेर, पाढल, अरनी और अरलू इन पांचोंको बृहत्पंचमूल कहते हैं. यह बृहत्पंचमूल कडवा, कसैला, मधुर, गरम, हलका,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निको दीपन करनेवाला है और कफ, वात, श्वास तथा खांसीको दूर करता है॥ २५॥ २६॥

शालिपर्णीनामानि।

शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी गुहा। विदारिगन्धा दीर्घाङ्गी दीर्घपत्रांशुमत्यपि॥ २७॥

भाषा-शालिपर्णी, स्थिरा, सौम्या, त्रिपर्णी, पीवरी, गुहा विदारिगंधा, दीर्घांगी, दीर्घपत्रा, अंशुमती ये सरिवनके संस्कृत नाम हैं. (सुदला, सुपत्री, कुमुदा, ध्रुवा, सुपर्णिका, दीर्घमूला, दीर्घपत्रिका, वातघ्नी, पीतिनी, तन्वी, सुधा, सर्वानुकारिणी, शोफघ्नी, सुभगा, देवी, शोथघ्नी, निश्चला, व्रीहिपर्णिका, सुमूला, शुभपत्रिका, सुपर्णी, शालिपत्री, शालिदला, विदारी, सालपर्णी, एकमूला, अस्तमती, शालानी, शालिका, और कीटविनाशिनी ये सरिवनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ २७॥

अनेक भाषाके सरिवनके नाम.

सं.-शालिपर्णी.	तै.-सियाकुपना.
हिं.-सरिवन.	ला.-Desmodium Gangeticum डेस्मोडियम गॅन्जेटिकं.
बं.-शालपानि.	
म.-सालवण.	
गु.-समेरवो.	
क.-मुरुलुवोने.	

शालिपर्णीगुणाः।

शालिपर्णी गुरुच्छर्दिज्वरश्वासातिसारजित्। शोषदोषत्रयहरी बृंहण्युक्ता रसायनी॥ तिक्ता विषहरी स्वादुः क्षतकासकृमिप्रणुत्॥ २८॥

भाषा-सरिवन भारी, पुष्टिकारक, रसायन, कडवी, मधुर है और ज्वर, श्वास, अतीसार, शोष, तीनों दोष, वमन, विष, क्षत (घाव), खांसी तथा कृमिको दूर करती है॥ २८॥

शालिपर्णीका विशेष विवरण.

शालिपर्णीका छोटासा क्षुप होता है, इसके पत्ते गोल होते हैं, उसकी एक एक डंडीमें तीन तीन पत्ते होते हैं, उसमें छोटी छोटी कली लगती हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

पृष्ठीपर्णीनामानि।

पृष्ठिपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपर्ण्यहिपर्ण्यपि। क्रोष्टुविन्ना सिंहपुच्छी कलशी धावनिर्गुहा २९

भाषा-पृष्ठिपर्णी, पृथक्पर्णी, चित्रपर्णी, अहिपर्णी, क्रोष्टुविन्ना, सिंहपुच्छी, कलशी, धावनी, गुहा ये पिठवनके संस्कृत नाम हैं. (पृश्निपर्णी, तन्वी, क्रोष्टुकपुच्छिका, त्रिपर्णी, पूर्णपर्णी, कलसी, सिंहलांगली, अंघ्रिवल्लिका, पिष्टपर्णी, लांगली, क्रोष्टुकमेखला, दीर्घा, शृगालवृन्ता, दीर्घपत्रा, अतिगुहा, घष्टिला, चित्रपर्णिका, क्रोष्टुपुच्छी, कदला, कंकशत्रु, चक्रकुल्या, चक्रपर्णी, शीर्णमाला, महागुहा, शृगालविन्ना, धमनी, मेखला, लांगुलिका, ब्रह्मपर्णी, दीर्घपर्णी, सिंहपुष्पी, अंघ्रिपर्णी और विष्णुपर्णी ये पिठवनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ २९॥

अनेक भाषाके पिठवनके नाम.

सं.-पृष्ठिपर्णी.	क.-तोरेमोड.
हिं-पिठवन, पिठौनी, पृश्निपर्णी, पिथिवन.	तै.-कोलाकुपन्ना.
	ला.-Urara Lagopoides उरेरिया लेगोपोईडिस, Urariapicta उरेरियापिक्ट.
बं.-चाकुले, चाकुलिया	
म.-पिठवण.	
गु.-नाहानो समेरवो.	

पृष्ठिपर्णीगुणाः।

पृष्ठिपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा। हन्ति दाहज्वरश्वासरक्तातीसारतृड्भमीः॥ ३०॥

भाषा-पिठवन त्रिदोषनाशक, वीर्यवर्द्धक, गरम, मधुर, दस्तावर है और दाह, ज्वर, श्वास, रक्तातीसार, तृषा तथा वमनको दूर करती है॥ ३०॥

पिठवनका विशेष विवरण.

पृष्ठपर्णीका क्षुप गेहुंओंके खेतमें होता है. इसको कवराभी कहते हैं. इसके पत्ते लम्बे लम्बे लगभग चार चार अंगुलके होते हैं, इनमें बहुत चौड़ाई नहीं होती और इसपर नसें चमकती हैं. इसके फूल सुफेद कुछ कुछ नीलापन लिये जटायुक्त होते हैं. फलियोंकी पूंछसी निकलती हैं. परन्तु अल्पमूल होनेके कारण देशान्तरमें इसका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चांग व्यवहारमें लिया जाता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

वार्ताकीनामानि ।

वार्ताकी क्षुद्रभण्टाकी महती बृहती कुली ।
हिंगुली राष्ट्रिका सिंही महोष्ट्री दुष्प्रधर्षिणी ३१

भाषा–वार्ताकी, क्षुद्रभण्टाकी, महती, बृहती, कुली, हिंगुली, राष्ट्रिका, सिंही, महोष्ट्री, दुष्प्रधर्षिणी ये बडी कटेरीके संस्कृत नाम हैं. (प्रसहा, आक्रान्ता, क्षुद्रवार्ताकी, रक्तपाकी, लता, वृहतिका, क्रान्ता, सिंहिका, स्थूलकण्टा, क्षुद्रभंटा, भंटाकी, महोटिका, वहुपत्री, कण्टतनु, कण्ठालु, कटूफल, डोवडी, वनवृन्ताकी और पारावेदी ये वडी कटेरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ३१ ॥

अनेक भाषाके वडी कटेरीके नाम.

सं.–वार्ताकी.	तै.–पेद्दामुलुंगा.
हिं.–वडी कटेरी, वडी भटकटैया, वडी कठाई.	ता.–चेरुचुण्ट.
	फा.–वादंजान.
बं.–भांटा तितवेगुन.	अ.–वालुंहिनुं जंगली.
म.–मोठी डोरली.	ला.–Solanum indicum सोलेनम इंडिकम.
गु.–उभीभोरींगणी.	
क.–हेग्गुलु.	

वार्ताकीगुणाः ।

बृहती ग्राहिणी हृद्या पाचनी कफवातहृत् ।
कटुतिक्तास्यवैरस्यमलारोचकनाशिनी॥ उष्णा
कटुज्वरश्वासशूलकासाग्निमान्द्यजित् ॥ ३२ ॥

भाषा–वडी कटेरी ग्राही, हृदयको हितकारी, पाचक, गरम, चरपरी, कडवी है और कफ, वात, मुखकी विरसता, मल, अरुचि, कोढ, ज्वर, श्वास, शूल, खांसी तथा अग्निकी मंदताको नष्ट करती है ॥ ३२ ॥

वडी कटेरीका विशेष विवरण.

बृहती अर्थात् कटेहरीका छोटासा क्षुप जंगलमें होता है. इसमें कांटे बहुत कम होते हैं. इसके पत्ते बैंगनकेसे होते हैं. इसके फल गोल २ वडे आमलेके समान चितले और पीले होते हैं. इसको वडी कटेरी या बैंगना कटेरीभी कहते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

कण्टकारीनामानि ।

कण्टकारी तु दुःस्पर्शा क्षुद्रा व्याघ्री निदिग्धिका । कण्टालिका कण्टकिनी धावनी
बृहती तथा ॥ ३३ ॥

भाषा–कंटकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धिका, कंटालिका, कंटकिनी, धावनी, बृहती ये कटेरीके संस्कृत नाम हैं. (कुली, कासघ्नी, कंटकारिका, स्पृही, धावनिका, दुष्प्रधर्षिणी, कंठश्रेणी, प्रचोदनी, राष्ट्रिका, अनाक्रान्ता, भंटाकी, सिंही, कुलि, निदिग्धा, क्षुद्रकंटिका, बहुकण्टा, क्षुद्रफला, कण्टालिका और चित्रफला ये कटेरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ३३ ॥

अनेक भाषाके कटेरीके नाम.

सं.–कण्टकारी.	ता.–करिमुल्लि.
हिं.–कटेरी, लघुकटाई, भटकटैया.	तु.–कल्लुंटे.
	मला.–चेरुवालुटिना.
बं.–कंटकारी.	उत्.–कण्ठमारिष.
म.–लघु रिंगणी.	ला.–Solanum Jonthocarpum सोलेनम् जोन्थोकार्पम्.
गु.–वेटीभोरींगणी.	
क.–नेल्लगुल्लू.	
तै.–रेवटीमुलंगा.	

क्षुद्रानामानि ।

उभे च बृहत्यौ अत आह सुश्रुतः ।
क्षुद्रा या क्षुद्रभद्राख्या बृहतीति निगद्यते ।
श्वेता क्षुद्रा चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्रदूतिका ॥
गर्भदा चन्द्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्करी ३४

भाषा–कटेरी और बडी कटेरी इन दोनोंको बृहती कहते हैं. शाश्वतकोषमें कहा है कि, कटेरी और बडी कटेरी ये दोनों बृहती कहाती हैं. श्वेता, क्षुद्रा, चंद्रहासा, लक्ष्मणा, क्षेत्रदूतिका, गर्भदा, चंद्रभा, चंद्री, चंद्रपुष्पा और प्रियंकरी ये सफेद फूलवाली कटेरीके संस्कृत नाम हैं ॥ ३४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके सफेद कटेरीके नाम.

सं.–क्षुद्रा.	क.–बिळे नेलगुळ्ळू.
हिं.–सफेद कटेरी.	ला.–Ophioxylon serpentinum ऑफिक्सिलोन् सर्पेन्टिनम्.
बं.–श्वेत कंटकारी.	
म.–पांढरी रिंगणी.	
गु.–धोळी भोरिंगणी.	

कण्टकारीगुणाः ।

कण्टकारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः । रूक्षोष्णा पाचनी कासश्वासज्वरकफानिलान् ॥ ३५ ॥ निहन्ति पीनसं श्वासपार्श्वपीडाहृदामयान् । तयोः फलं कटु रसे पाके च कटुकं भवेत् ॥ शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु ॥ ३६ ॥ हन्यात्कफमरुत्कण्डूकासमेदकृमिज्वरान् । तद्वत्प्रोक्ता सिता क्षुद्रा विशेषाद्गर्भकारिणी ॥ ३७ ॥

भाषा–कटेरी दस्तावर, कडवी, चरपरी, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, रूखी गरम, पाचन है और पीनस, श्वास, पसलीकी पीडा तथा हृदयरोगको नष्ट करती है; इन दोनोंके फल चरपरे, पाकमेंभी चरपरे, वीर्यरेचक, भेदक, कडवे, पित्त तथा अग्निको करनेवाले, हलके हैं और कफ, वात, खुजली, खांसी, मेदा, कृमि और ज्वरको दूर करते हैं. सफेद फूलकी कटेरीके गुणभी कटेरीके सदृशही हैं, परन्तु विशेष करके यह गर्भकारक है ॥३५–३७॥

कटेरीका विशेष विवरण.

कटेहरीके क्षुप छत्तेसे पृथ्वीपर फैले हुए होते हैं, इसके पत्ते कटीले और शाखाओंमेंभी बहुत कांटे होते हैं, फूल बैंजनी रंगके आते हैं; फल कच्ची अवस्थामें छोटे गूलरके समान हरे और सुफेद चितले होते हैं, पकनेपर पीले पड जाते हैं. दूसरी कटेहरी इसी प्रकारकी होती है परन्तु उसके फूल सुफेद होते हैं, वह बहुत कम होती है, ढूंढनेसे कहीं मिल जाती है. इसकी मात्रा मासेकी है.

गोक्षुरनामानि ।

गोक्षुरः क्षुरकोऽपि स्यात्त्रिकण्टः स्वादुकण्टकः । गोकण्टको गोक्षुरको वनशृङ्गाट इत्यपि ॥ पलङ्कषा श्वदंष्ट्रा च तथा स्यादिक्षुगन्धिका ॥ ३८ ॥

भाषा–गोक्षुर, क्षुरक, त्रिकंट, स्वादुकंटक, गोकंटक, गोक्षुरक, वनशृंगाट (वनके सिंघाडे), पलंकषा, श्वदंष्ट्रा, इक्षुगंधिका ये गोखरूके संस्कृत नाम हैं. (कंठी, षडंग, स्थलशृंगाटक, बहुकंटकक्षुर, कंटफल, क्षुद्रक्षुर, भक्षटक, चणद्रुम, वनशृंगाटक, इक्षुगंध और स्वादुकंट ये गोखरूके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥३८॥

अनेक भाषाके गोखरूके नाम.

सं.–गोक्षुर.	फा.–तुख्मेखार.
हिं.–गोखरू, छोटे गोखरू.	अ.–बजरूलीखस्क.
बं.–तोखरि.	ला.–Pedalium Murex पेडेल्यं मुरेक्स (बडा), Tribulus Terrestris ट्रिब्युलस टेरेस्ट्रीस.
म.–सराटे, लहान गोखरू.	
गु.–गोखरू.	
क.–नेग्गिलु, सरांटी.	
तै.–पालेरु.	

गोक्षुरगुणाः ।

गोक्षुरः शीतलः स्वादुर्बलकृद्वस्तिशोधनः । मधुरो दीपनो वृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरीहरः ॥ प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत् ॥३९॥

भाषा–गोखरू शीतल, मधुर, बलदायक, मूत्राशयका शुद्ध करनेवाला, स्वादिष्ठ, अग्निप्रदीपक, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिदायक है और पथरी, प्रमेह, श्वास, खांसी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, हृदयरोग तथा वातरोगका नाश करता है ॥ ३९ ॥

गोखरूका विशेष विवरण.

गोखरू दो जातिके होते हैं; एक पहाडी गोखरू और दूसरे देशी गोखरू. पहाडी गोखरूसे देशी गोखरू छोटे होते हैं. पहाडी गोखरुओंके छोटे छोटे क्षुप होते हैं. उनमें पीले और सुफेद रंगके फूल आते हैं और फलके चार कोने होते हैं, उनपर एक एक कांटा होता है. देशी गोखरुओंका पृथ्वीपर छत्तासा होता है, पत्ते चनेके पत्तोंके समान होते हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फूल पीले आते हैं, फलके ऊपर छः कांटे अलग अलग होते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

लघुपञ्चमूलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी वार्त्ताकी कण्टकारिका ।
गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतैः कनिष्ठं पञ्चमूलकम्॥४०॥
पञ्चमूलं लघु स्वादु बल्यं पित्तानिलापहम् ।
नात्युष्णं बृंहणं ग्राहि ज्वरश्वासाश्मरीप्रणुत्४१

भाषा–सरिवन, पिठवन, बडी कटेरी, छोटी कटेरी और गोखरू इन पांचोंको लघुपंचमूल कहते हैं. लघुपंचमूल हलका, मधुर, बहुत गरम नहीं, पुष्टिदायक, ग्राही, बलकारक है और पित्त, वातज्वर, श्वास तथा पंथरीको नष्ट करनेवाला है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

दशमूलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम् ।
दशमूलं त्रिदोषघ्नं श्वासकासशिरोरुजः ॥
तन्द्राशोथज्वरानाहपार्श्वपीडारुचीर्हरेत्॥४२॥

भाषा–लघुपंचमूल और बृहत्पंचमूल इन दोनोंको मिलाकर दशमूल कहाता है. दशमूल त्रिदोषनाशक है और श्वास, खांसी, शिरोरोग, तन्द्रा, सूजन, ज्वर, अफरा, पसलीकी पीडा और अरुचिको नष्ट करता है ॥ ४२ ॥

जीवन्तीनामानि ।

(शर्करावन्मधुरपुष्पा व्रततिः) ।
जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा ।
मङ्गल्यनामधेया च शाकश्रेष्ठा पयस्विनी४३॥

भाषा–जीवन्ती, जीवनी, जीवा, जीवनीया, मधुस्रवा, मंगल्यनामधेया, शाकश्रेष्ठा, पयस्विनी ये जीवन्तीके संस्कृत नाम हैं. (जीवदा, सुखंकरी, रक्तांगी, प्राणदा, भद्रा, मंगल्या, मृगराट्का, स्रवा, मधुश्रवा, जीव्या, जीवदात्री, जीवभद्रा, क्षुद्रजीवा, यशस्या, शृंगाटी, जीवपृष्ठा, कांजिका, शशशिम्बिका, सुपिंगला, पुत्रभद्रा, मधुश्वासा, जीववृषा, जीवपत्री, जीवपुष्पी और जीववर्द्धनी ये जीवन्तीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४३ ॥

अनेक भाषाके जीवंतीके नाम.

सं.–जीवन्ती.	क.–होणहाले.
हिं.–जीवन्ती.	ला.–Dregia Valubilis ड्रेगिया वेल्यूबिलिस.
बं.–जीवई, जीन्ती.	
म.–हरणवेल.	
गु.–मीठी खरखोडी.	

जीवन्तीगुणाः ।

जीवन्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोषत्रयापहा । रसायनी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः ॥ ४४ ॥

भाषा–जीवन्ती शीतल, मधुर, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी, ग्राही और हलकी है ॥ ४४ ॥

जीवंतीका विशेष विवरण.

जीवन्तीकी बेल चलती है. इसके फलोंके डोडे होते हैं, उनमेंसे आकके समान दूध निकलता है, इसके पत्ते गोल बेरके समान होते हैं, उनका शाक बनाते हैं. इसलिये इसका नाम शाकश्रेष्ठा है. जीवन्ती अनेक जातिकी होती है. एक जीवन्तीकी बेल होती है, उनके फूलोंका शाक बनता है. दूसरी स्वर्णजीवन्ती होती है. उसके डोडेमें पीला दूध निकलता है. तीसरी छोटी जीवन्ती होती है, चौथी कडवी जीवन्ती होती है, उसके फल कडवे होते हैं. पांचवीं अर्कपुष्पी होती है. उसके फूल आकके फूलोंके समान होते हैं. छठी जीवन्तीकी बडी बेल होती है, उसका बहुत बडा विस्तार होता है, उसके पत्तोंको तोडनेसे पीला दूध निकलता है. उसके फलोंके डोडे तीन धारवाले होते हैं, उसकी जडको अंग्रेजीमें सालसापरेला कहते हैं. प्रयोगमें जीवन्तीका फल लिया जाता है इसकी मात्रा ४ मासेकी है.

मुद्गपर्णीनामानि ।

मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्ण्यल्पिका सहा ।
काकमुद्गा च सा प्रोक्ता तथा मार्जारगन्धिका ॥ ४५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-मुद्गपर्णी, काकपर्णी, सूर्यपर्णी, अल्पिका, सहा, काकमुद्गा मार्जारगंधिका ये मुगवनके संस्कृत नाम हैं. (शिम्बीपर्णिका, शिंबीपर्णी, क्षुद्रसहा, शिम्बी, वनजा, रिंगिणी, ह्रस्वा, शूर्पपर्णी, कुरंगिका, कोशिला, वनोद्भवा, वनमुद्गा, आरण्यमुद्गा, मुद्गवल्ली, वन्या और करंजिका ये मुगवनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४५ ॥

अनेक भाषाके मुगवनके नाम.

सं.-मुद्गपर्णी.	क.-कोहसरु.
हिं.-मुगवन.	तै.-कारुपेसारा.
बं.-मुगानि, वनमाषा.	ला.-Phasiolus Trilobetus फेसियोलस ट्रायलो बेटस.
म.-मुगवेल, रानमूग.	
गु.-जंगलीमग.	

मुद्गपर्णीगुणाः ।

मुद्गपर्णी हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला ।
चक्षुष्या क्षतशोथघ्नी ग्राहिणी ज्वरदाहनुत् ॥
दोषत्रयहरी लघ्वी ग्रहण्यर्शोऽतिसारजित् ४६॥

भाषा-मुगवन शीतल, रूखी, कडवी, मधुर, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, ग्राही, तीनों दोषोंको हरनेवाली, हलकी है और क्षत, सूजन, ज्वर, दाह, संग्रहणी, बवासीर और अतीसारका नाश करती है ॥ ४६ ॥

मुगवनका विशेष विवरण.

मुद्गपर्णीकी मूंगके समान वेल होती है, यह वेल वृक्षपर चढती है. इसके पत्ते मूंगके समान हरे हरे होते हैं और फूल पीले रंगके आते हैं, और फलीभी मूंगके सदृश आती हैं. यह एक प्रकारकी वनकी मूंग है. इसका पंचांग लिया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.-

माषपर्णीनामानि ।

माषपर्णी सूर्यपर्णी काम्बोजी हयपुच्छिका ।
पाण्डुलोमशपर्णी च कृष्णवृन्ता महासहा ४७

भाषा-माषपर्णी, सूर्यपर्णी, काम्बोजी, हयपुच्छिका, पाण्डुलोमशपर्णी, कृष्णवृंता, महासहा ये मषवनके संस्कृत नाम हैं. (पर्णिनी, पाण्डुलोमशा, ऋषिप्रोक्ता, हयपुच्छी सिंहपुच्छिका, सिंहपुच्छी, लोमशपर्णिनी, पाण्डुलोमा, आर्द्रमाषा, मांसमाषा, मंगल्या, हंसमासा, अश्वपुच्छी, माषपर्णिका, कल्याणी, वज्रमूली, शालिपर्णी, विसारिणी, आत्मोद्भवा, बहुफला, स्वयम्भू, सुलभा, घना, सिंहविन्ना, विशाम्बिका, सूरपर्णी और पाण्डुरा ये मषवनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४७ ॥

अनेक भाषाके मषवनके नाम.

सं.-माषपर्णी.	क.-रानोडिड्डिकाउट्टु.
हिं.-मषवन, वनउर्दी, वनउडद.	तै.-कारुमीनुरु.
बं.-माषानी.	ला.-Grangea Madraspatana ग्रेंजिआ मेड्रासपटना.
म.-रानउडीद.	
गु.-जंगली अडद.	

माषपर्णीगुणाः ।

माषपर्णी हिमा तिक्ता रूक्षा शुक्रबलास्रकृत् ।
मधुरा ग्राहिणी शोथवातपित्तज्वरास्रजित् ४८

भाषा-मषवन शीतल, कडवी, रूखी, वीर्यवर्धक, बलवर्धक, रुधिरवर्द्धक, मधुर, ग्राही है और सूजन, वात, पित्त, ज्वर तथा रक्तविकारका नाश करती है ॥४८॥

मषवनका विशेष विवरण.

माषपर्णीकी वेल विशेष करके वन उपवन और पर्वतोंमें उत्पन्न होती है, इसके पत्ते उडदके समान होते हैं और उनपर बहुत बारीक बारीक रुयें होते हैं और घोडेके पूंछके बालकी आकार उसके बाल होते हैं. इसका सर्वांग ग्रहण किया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

जीवनीयगणस्य लक्षणं गुणाश्च ।

अष्टवर्गः सयष्टीको जीवन्ती मुद्गपर्णिका ।
माषपर्णीगणोऽयं तु जीवनीयगणः स्मृतः ४९
जीवनो मधुरश्चापि नाम्ना स परिकीर्तितः ।
जीवनीयगणः प्रोक्तः शुक्रकृद्बृंहणो हिमः ५०
गुरुर्गर्भप्रदः स्तन्यः कफकृत्पित्तरक्तहृत् ।
तृष्णां शोषं ज्वरं दाहं रक्तपित्तं व्यपोहति ५१

भाषा-अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृद्धि), मुलहठी, जीवन्ती, मुगवन और मषवन इन सबको जीवनीय गण कहते हैं. जीवन और मधुर येभी इसीके नाम हैं. जीवनीयगण वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, शीतल, भारी, गर्भदायक, दूध तथा कफको उत्पन्न करनेवाला है और पित्त, तृषा, शोष, ज्वर, दाह तथा रक्तपित्तका नाश करता है ॥ ४९-५१ ॥

शुक्लैरण्डनामानि ।

शुक्ल एरण्ड आमण्डश्चित्रो गन्धर्वहस्तकः ।
पञ्चांगुलो वर्द्धमानो दीर्घदण्डोऽप्यदण्डकः ॥
वातारिस्तरुणश्चापि रुबूकश्च निगद्यते ॥५२॥

भाषा-शुक्लैरंड, आमंड, चित्र, गंधर्वहस्तक, पंचांगुल, वर्द्धमान, दीर्घदंड, अदंडक, वातारि, तरुण, रुबूक ये सफेद अरंडके संस्कृत नाम हैं. (व्याघ्रपुच्छ, चित्रक, एरंड, त्रिपुटीफल, शूलशत्रु, दीर्घदन्तक, गंधर्वहस्तक, उरुबुक रुबुक, चेंचुक, मण्ड, व्यडत्वक्, एरण्डक, इष्ट, अमंगल, तुच्छद्र, व्रणहा, त्रिपुटी, व्याघ्रदल, उरुबूक, रुवक, बुक, अमंड, व्यडम्बन, कान्त, दीर्घपत्रक और स्नेहप्रद ये सफेद अरंडके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५२ ॥

अनेक भाषाके सफेद अरंडके नाम.

सं.-शुक्लैरंड.	फा.-बेदंजीर.
हिं.-अरंड,सफेद अरंड.	अ.-शिखा.
बं.-भेराण्डा, शादारंडी.	अं.-Castor Oil Plant कास्टर ऑइल प्लान्ट.
म.-एरंड.	ला.-Ricinus Comunis रिसिनम् कोम्युनिस.
गु.-एरडो.	
क.-एरडु आंडकले.	
ते.-आमुडामु.	

रक्तैरण्डनामानि ।

रक्तोऽपरो रुबूकः स्यादुरुबूको रुवुस्तथा ।
व्याघ्रपुच्छश्च वातारिश्चञ्चुरुत्तानपत्रकः ५३॥

भाषा-रक्तैरण्ड, रुबूक, रुबूक, उरुबूक, रुबु, व्याघ्रपुच्छ, वातारि, चंचू, उत्तानपत्रक ये लाल अरंडके संस्कृत नाम हैं. (हस्तिकर्ण, व्याघ्र, व्याघ्रकर, रुबु, त्रिबीज, नागकर्ण, करपर्ण, व्याघ्रबल, रक्तक, चिरवीर्य, ह्रस्वैरण्ड और व्याघ्रपुच्छ ये लाल अरंडके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५३ ॥

अनेक भाषाके लाल अरंडके नाम.

सं.-रक्तैरंड.	गु.-रातोएरडो.
हिं.-लाल अरंड.	ते.-अमिदपुचेट्टु.
बं.-लालभेंडा, बड भेराण्डा.	फा.-तुख्मेवेदंजीर.
म.-तांबडा एरंड.	अ.-हबुलखिरुबा.

एरंडगुणाः ।

एरण्डयुग्मं मधुरमुष्णं गुरु विनाशयेत् ।
शूलशोथकटीबस्तिशिरःपीडोदरज्वरान्॥५४॥
ब्रध्नश्वासकफानाहकासकुष्ठाममारुतान् ।
एरण्डपत्रं वातघ्नं कफकृमिविनाशनम् ॥५५॥
मूत्रकृच्छ्रहरं चापि पित्तरक्तप्रकोपणम् ।
वातार्यग्रदलं गुल्मं बस्तिशूलहरं परम्॥५६॥
कफवातकृमीन्हन्ति वृद्धिं सप्तविधामपि ।
एरण्डफलमत्युष्णं गुल्मशूलानिलापहम्५७॥
यत्कृत्प्लीहोदरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम् ।
तद्वन्मज्जा च विड्भेदीवातश्लेष्मोदरापहः५८॥

भाषा-दोनों प्रकारके एरंड मधुर, गरम, भारी हैं और शूल, सूजन, कमरका दर्द, बस्तिकी पीडा, शिरका दर्द, उदरपीडा, ज्वर, ब्रध्न, श्वास, कफ, अफरा, खांसी, कोड और आमवातको नष्ट करनेवाले हैं. एरंडके पत्ते वात, कफ, कृमि और मूत्रकृच्छ्रका नाश करते हैं, तथा पित्त और रुधिरको कुपित करते हैं. एरंडके आगेके कोमल पत्ते गुल्म, बस्तिशूल, कफ, वात, कृमि और सात प्रकारकी वृद्धिको नष्ट करते हैं. एरंडका फल अत्यंत गरम, चरपरा, दीपन है और गुल्म, शूल, वात, यकृत्, प्लीहा, उदररोग और अर्शरोगका नाश करता है. इसकी मींग भेदक है और वायु, कफ और उदररोगका नाश करती है ॥ ५४-५८॥

अरंडका विशेष विवरण.

सुफेद अरण्ड और लाल अरण्डके वृक्ष प्रायः खेतोंकी वाडपर लगाये जाते हैं कहीं कहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खेतके खेत बो देते हैं, इसके पत्ते बहुत बडे बडे पांच कँगूरेवाले होते हैं, आकार कपासके पत्तोंकेसा होता है, परंतु लम्बाव चौडावमें उनसे दशगुने बडे होते हैं, इसके फलोंकी गहलें होती हैं अर्थात् बहुत लम्बे लम्बे गुच्छे और उनके ऊपर कोमल कोमल कांटे होते हैं, जिसके लाल फल होते हैं उसको जोगिया अरण्ड कहते हैं और जिसके सुफेद फल होते हैं उसको सुफेद अरण्ड कहते हैं और सब आकार एकही प्रकारका होता है, एक एक फलमेंसे तीन तीन बीज निकलते हैं उसको अरण्डी कहते हैं. वह ऊपरसे चित्रित होती है, अरण्डीका रंग कत्थई और सुफेद रेखायें होती हैं, बीजकी मींग सुफेद निकलती है, मींगके भीतर तेल होता है. प्रयोगमें इसकी जड, पत्ते, तेल और बीज लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

शुक्लरक्तार्कनामानि ।

अलर्को गुणरूपः स्यान्मन्दारो वसुकोऽपिच ।
श्वेतपुष्पः सदापुष्पः सबालार्कः प्रतीयसः५९

भाषा-अलर्क, गुणरूप, मन्दार, वसुक, श्वेतपुष्प, सदापुष्प, सवालार्क, प्रतीयस ये सफेद आकके संस्कृत नाम हैं. (श्वेतार्क, राजार्क, गणरूपक, तपन, श्वेत, दीर्घपुष्प, शिवाह्वय, प्रताप, शीतार्कक, शर्करापुष्प, काष्ठील, वृत्तमल्लिका, वेधा, शम्भु और गणरूपी ये सफेद आकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५९ ॥

अनेक भाषाके सफेद आकके नाम.

सं.-श्वेतार्क.	गु.-धोलो आकडो.
हिं.-सफेद आक, मंदार.	क.-बिळेयक्के.
बं.-श्वेत आकन्द.	ते.-तेल्ल जिल्लीडे.
म.-पांढरी रुई.	फा.-दुध.
	अ.-उषर.

रक्तार्कनामानि ।

रक्तोऽपरोऽर्कनामा स्यादर्कपर्णो विकीरणः ।
रक्तपुष्पः शुक्लफलस्तथा स्फोटः प्रकीर्तितः६०

भाषा-अर्कपर्ण, विकीरण, रक्तपुष्प, शुक्लफल, स्फोट और जितने सूर्यके नाम हैं वे सब लाल आकके संस्कृत नाम हैं. (क्षीरदल, शुकफल, तुलफल, अर्क, सदाम्रुम, प्रताप, क्षीरकाण्डक, विक्षीर, भास्कर, हरिदश्व, विवस्वान्, अहर्मणि, अहर्बान्धव, अर्यमा, अहर्पति, उष्णरश्मि, भानु, विकर्त्तन, गणरूप, मन्दार, प्रभाकर, विभाकर, दिवाकर, विभावसु, विवस्वान्, सप्ताश्व, सविता, सूनु, आस्फोत, वसुक, हिमारति, पुच्छी, प्रताप, क्षीरी, खर्ज्जूघ्न, शीतपुष्पक, जम्मल, क्षीरपर्णी, विकोरण, सदापुष्प, सूर्याह्व, आस्फोतक, आस्फोटक, रवि, करितनुफल और क्षीरा ये लाल आकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ६० ॥

अनेक भाषाके लाल आकके नाम.

सं.-रक्तार्क.	फा.-रबुर्क.
हिं.-लाल आक.	अं.-Gigontic Swallow-wart जाइगोंटिक स्वालोवर्ट्.
बं.-आकन्द.	
म.-तांबडी रुई.	
गु.-रातो आकडो.	ला.-Calotropis Gigentea कॅलोट्रोपिस् जाइगेंटिया.
क.-यक्के.	
ते.-नीलाजिल्लीडे.	

अर्कद्वयगुणाः ।

अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषव्रणान् । निहंति प्लीहगुल्मार्शःश्लेष्मोदरशकृत्कृमीन् ॥ ६१ ॥

भाषा-दोनों प्रकारकी आक दस्तावर हैं और वात, कोढ, खुजली, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, कफ, उदररोग और मलकी कृमिको नष्ट करती हैं ॥ ६१ ॥

श्वेतार्ककुसुमगुणाः ।

अलर्ककुसुमं वृष्यं लघु दीपनपाचनम् । अरोचकप्रसेकार्शःकासश्वासनिवारणम् ॥६२॥

भाषा-सफेद आकका फूल वीर्यवर्द्धक, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन है और अरुचि, कफ, बवासीर, खांसी तथा श्वासको नाश करनेवाला है ॥ ६२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रक्तार्ककुसुमगुणाः ।

रक्तार्कपुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठक्रिमिघ्नं कफनाशनं च । अर्शो विषं हन्ति च रक्तपित्तं संग्राहि गुल्मे श्वयथौ हितं तत् ॥ ६३ ॥

भाषा—लाल आकका फूल मधुर, कडवा, ग्राही है और कृमि, कफ, ववासीर, विष, रक्तपित्त, गुल्म तथा सूजनको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥

अर्कक्षीरगुणाः ।

क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु । कुष्ठगुल्मोदरहरं श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ ६४ ॥

भाषा—आकका दूध कडवा, गरम, चिकना, खारी, हलका है और कोढ, गुल्म तथा उदररोगका नाश करता है और विरेचन करानेमें यह परमोत्तम है ॥ ६४ ॥

आकका विशेष विवरण.

आकके पेड जंगल और भूडोंपर बहुत होते हैं. ये पांच छः फूट ऊंचे हो जाते हैं, परन्तु फूल और फलोंके भारसे डालियां नीचेको झुक जाती हैं, इसके पत्ते वडके सदृश बडे बडे होते हैं, परन्तु दूध पत्ते और डाली सबमें होता है, इसपर तोतेकेसी आकृतिवाले हरे हरे फल शाखाओंमें लगते हैं, फलोंके सूखनेपर उनमेंसे काले काले दाने और कोमल कोमल रुई बहुत निकलती है. इसके कोयले बहुतही हलके होते हैं. इसकी मात्रा २ रत्तीसे २ मासेतककी है.

सीहुण्डनामानि ।

सीहुण्डः सिंहतुण्डः स्याद्वज्री वज्रद्रुमोऽपि च । सुधा समन्तदुग्धा च स्नुक् स्त्रियां स्यात्स्नुही गुडा ॥ ६५ ॥

भाषा—साहुण्ड, सिहतुण्ड, वज्री, वज्रद्रुम, सुधा, समन्तदुग्धा, स्नुक्, स्नुही, गुडा ये थूहरके संस्कृत नाम हैं. (नागद्रु, बहुदुग्धिका, महावृक्ष, वज्रा, सीहुण्डा, दण्डवृक्षक, सेहुण्ड, सिंहुण्ड, स्नुषा, स्नुहा, वज्र, वज्रद्रु, वज्रकण्टक, गुड, गुडि, गुला, बहुशाल, कृष्णसार, निस्त्रिंशपत्रिका, नेत्रारि, शाखाकण्ठ, काण्डशाख, कालिशद्रुम और काण्डरोहक ये थूहरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ६५ ॥

अनेक भाषाके थूहरके नाम.

सं.—सीहुंड.
हिं.—थूहर, सेहुंड.
बं.—मनसागाछ, सिजवृक्ष.
म.—निवडुंग.
गु.—खुरासानी थारे.
क.—निवडुंग.
ते.—चेंमुड्.
फा.—लादनां.
अ.—जकुम, फर्य्युन.
अं.—Milks Hedge मिल्क्स हेज्ज, Prickly pear प्रिक्ली पिअर.
ला.—Euphorbia trigona युफोर्बिया ट्रायगोना.

सीहुण्डगुणाः ।

सीहुण्डो रेचनस्तीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः । शूलमष्ठीलिकाध्मानकफगुल्मोदरानिलान् ६६ ॥ उन्मादमोहकुष्ठार्शःशोथमेदोऽश्मपाण्डुताः । व्रणशोथज्वरप्लीहविषदूषीविषं हरेत् ॥ ६७ ॥ उष्णवीर्यं स्नुहीक्षीरं स्निग्धं च कटुकं लघु । गुल्मिनां कुष्ठिनां चापि तथैवोदररोगिणाम् ॥ हितमेतद्विरेकार्थं ये चान्ये दीर्घरोगिणः ॥ ६८ ॥

भाषा—थूहर रेचक (दस्तावर), तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, चरपरा, भारी है और शूल, अष्ठीलिका, अफरा, कफ, गुल्म, उदररोग, वात, उन्माद, मोह, कोढ, ववासीर, सूजन, मेद, पथरी, पाण्डुता, व्रण, सूजन, ज्वर, प्लीहा, विष और दूषित विषको नष्ट करता है. थूहरका दूध, उष्णवीर्य, स्निग्ध, चरपरा, हलका है और गुल्म, कोढ, उदर और दीर्घ रोगवालोंको विरेचन (दस्त) करानेमें हितकारी है ॥ ६६-६८ ॥

थूहरका विशेष विवरण.

थूहर और सेहुंड दोनों एकही जातिके वृक्ष हैं, सेहुंडकी दंडी मोटी और कांटेदार होती है और पत्ते कोमल कोमल पथरचटेके समान होते हैं, परन्तु दूध इसकी शाखा शाखा और पत्ते पत्तेमें होता है. थूहरकी शाखा पतली और पत्तेभी छोटे छोटे हरी मिर्चकेसे लम्बे लम्बे होते हैं. इसके सब अंगोंमेंसे दूध निकलता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, इसकी बहुत जाति हैं, तिधारा, चौधारा, पचधारा, षट्धारा, सप्तधारा, नागफनी, विलायती, आंगुलिया, खुरासानी और कांटेवाले. ये सब प्रकारके थूहर पहाडोंमें होते हैं. इसके दूधकी मात्रा १ मासेकी है.

सीहुण्डभेदनामानि ।

(शातला अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा ।)
शातला सप्तला सारा विमला विदुला च सा । तथा निगदिता भूरिफेना चर्मकषेत्यपि ॥ ६९ ॥

भाषा—शीतला, सप्तला, सारा, विमला, विदुला, भूरिफेना, चर्मकषा ये सातलाके संस्कृत नाम हैं. (अमला, बहुफेना, फेना, दीप्ता, विषाणिका, स्वर्णपुष्पी, पुत्रघना ये सातलाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥६९॥

अनेक भाषाके सातलाके नाम.

सं.—शातला.	फा.—एशन्.
हिं.—सातला.	अ.—सातर.
बं.—सिजविशेष.	ला.—Origanum Valgaris ओरिगॅनं वल्गॅरिस्, Acacia cancinum ॲक्यासिया क्यान्सिनम्.
म.—शिकेकाई.	
गु.—साथेर.	
क.—बडीलसौनुली.	

शातलागुणाः ।

शातला कटुका पाके वातला शीतला लघुः । तिक्ता शोथकफानाहपित्तोदावर्त्तरक्तजित् ७०

भाषा—शातला पाकमें चरपरी, वातकारक, शीतल, हलकी, कडवी है और सूजन, कफ, अफरा, पित्त, उदावर्त्त तथा रुधिरविकारका नाश करती है ॥ ७० ॥

सातलाका विशेष विवरण.

सातलाकी वेल जंगल और वनोंमें होती है. इसके पत्ते खैरके पत्तोंके समान छोटे छोटे होते हैं, इसका फूल पीला होता है, उसमें पतली तथा चपटी फली लगती है. उसमें काले बीज निकलते हैं. उसमें पीले रंगका दूध निकलता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

कलिहारीनामानि ।

कलिहारी तु हलिनी लाङ्गली शक्रपुष्प्यपि । विशल्याग्निशिखानन्ता वह्निवक्त्रा च गर्भनुत् ॥ ७१ ॥

भाषा—कलिहारी, हलिनी, लांगली, शक्रपुष्पी, विशल्या, अग्निशिखा, अनंता, वह्निवक्त्रा, गर्भनुत् ये कलिहारीके संस्कृत नाम हैं. (कलिकारी, लांगलिकी, दीप्ता, गर्भघातिनी, अग्निजिह्वा, वह्निशिखा, लांगुली, गर्भपातिनी, अग्निमुखी, हली, नक्ता, इन्द्रपुष्पिका, विद्युज्ज्वाला, व्रणहृत्, पुष्पसौरभा, स्वर्णपुष्पा और इन्द्रपुष्पिका ये कलिहारीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७१ ॥

अनेक भाषाके कलिहारीके नाम.

सं.—कलिहारी.	अं.—Wolfs bane वुल्फ्स्बेन.
हिं.—कलिहारी, कलियारी.	ला.—Gloriosa Superba ग्लोरीओझा सुपरबा, Aconitum Napellus एकोनाइटम् नेपिल्स्.
बं.—ईशलांगला.	
म.—कळलावी.	
गु.—कलगारी.	
क.—राडागारी.	

कलिहारीगुणाः ।

कलिहारी सरा कुष्ठशोफार्शोव्रणशूलजित् । सक्षारा श्लेष्मजित्तिक्ता कटुका तुवरापि च ॥ तीक्ष्णोष्णा कृमिहृल्लघ्वी पित्तला गर्भपातिनी ॥ ७२ ॥

भाषा—कलिहारी दस्तावर, खारी, कडवी, चरपरी, कसैली, तीक्ष्ण, गरम, हलकी, पित्तकारक, गर्भको गिरानेवाली है और कोढ, सूजन, बवासीर, कृमि, व्रण, शूल तथा कफको नष्ट करनेवाली है ॥ ७२ ॥

कलिहारीका विशेष विवरण.

कलिहारीके क्षुप नागवेलके समान तथा वडके आकारके होते हैं. इसके पत्ते अंधाहूलीकेसे होते हैं. इसके फूल लाल और पीले तथा सफेद मिश्रित रंगके अत्यन्त शोभायमान और मनोहर होते हैं, इसके फल तीन रेखावाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाल मिर्चके समान होते हैं, उसकी लाल छालके भीतर इलायचीके बीजोंके समान बीज होते हैं, इसके नीचे एक गांठ होती है उसको वत्सनाभ और तेलियां मीठा कहते हैं. इसकी जड प्रयोगमें लेते हैं. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

श्वेतरक्तकरवीरनामानि ।

करवीरः श्वेतपुष्पः शतकुम्भोऽश्वमारकः । द्वितीयो रक्तपुष्पश्च चण्डातो लगुडस्तथा ७३॥

भाषा–करवीर, श्वेतपुष्प, शतकुम्भ, अश्वमारक ये सफेद कनेरके संस्कृत नाम हैं. (प्रतिहास, शतप्रास, चण्डात, हयमारक, अश्वमार, अश्वघ्न, हयारि, शीतकुम्भ, तुरंगारि, रंगारि, शातकुम्भ, प्रचण्ड, अश्वहा, वीर, हयमार, हयघ्न, शतकुंद, अश्वरोधक, वीरक, कुन्द, शंकुन्द्र, श्वेतपुष्पक, अश्वान्तक, नखराह्व, अश्वनाशक, स्थलकुमुद, दिव्यपुष्प, हरिप्रिय, गौरीपुष्प और सिद्धपुष्प ये सफेद कनेरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) रक्तपुष्प, चण्डात, लगुड ये लाल कनेरके संस्कृत नाम हैं. (रक्तप्रसव, गणेशकुसुम, चण्डीकुसुम, क्रूर, भूतद्रावी और रविप्रिय ये लाल कनेरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७३ ॥

अनेक भाषाके सफेद और लाल कनेरके नाम.

सं.–श्वेतपुष्प, रक्तपुष्प.
हिं.–सफेद कनेर, लाल कनेर. [करवी.
बं.–श्वेत करवी, लाल
म.–पांढरी कण्हेर, तांबडी कण्हेर.
गु.–धोलोकणेर, राती कणेर.
क.–वाकणलिंगे, केगणलिंगे.
तै.–कनेरचेट्टु.
फा.–खरजेहरा.
अ.–सुमुल, हिमारकदली.
अं.–Olender ओलेयंडर.
ला.–Nerium Olender नीरियम ओलियंडर.

करवीरगुणाः ।

करवीरद्वयं तिक्तं कषायं कटुकं च तत् । व्रणलाघवकृन्नेत्रकोपकुष्ठव्रणापहम् ॥ वीर्योष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम् ॥ ७४ ॥

भाषा–दोनों प्रकारकी कनेर कडवी, कसैली, चरपरी, उष्णवीर्य, व्रणकारक, लाघवता करनेवाली है और नेत्रकी पीडा, कोढ, व्रण, कृमि तथा खुजलीको नष्ट करती है. इसको भक्षण करे तो यह विषके समान प्राण हरण करे ॥ ७४ ॥

कनेरका विशेष विवरण.

कनेरके वृक्ष वन, उपवन, पुष्पवाटिकाओंमें बहुत होते हैं, इसके कई भेद हैं, किसीपर लाल फूल, किसीपर गुलाबी फूल, किसीपर सफेद फूल और किसीपर पीले फूल आते हैं, इसके पत्ते लम्बे लम्बे और फल फलीके आकार होते हैं. इसमें विष बहुत होता है.

धत्तूरनामानि ।

धत्तूरधूर्त्तधुत्तूरा उन्मत्तः कनकाह्वयः । देवता कितवस्तूरी महामोही शिवप्रियः ॥ मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः ॥ ७५ ॥

भाषा–धत्तूर, धूर्त, धुत्तूर, उन्मत्त, कनकाह्वय (जितने सुवर्णके नाम हैं वे सब), देवता, कितव, तूरी, महामोही, शिवप्रिय, मातुल, मदन ये धत्तूरेके संस्कृत नाम हैं. (मदनदेविका, खरदूषण, पुरीमोह, धूर्तकृत्, घण्टिक, शठ, मातुलक, श्याम, शिवशेखर, खर्ज्जूघ्न, काहलापुष्प, खल, कण्टफल, मोहन, कलम, मत्त, शैव, धुस्तुर, धुत्तुर, देवता, उन्मत्तक, मदनक, हरवल्लभ, कनक, सविष, मोहन, गदकर, घण्टापुष्प और महाशठ ये धत्तूरेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) इसके फलको मातुलपुत्रक कहते हैं ॥ ७५ ॥

अनेक भाषाके धत्तूरेके नाम.

सं.–धत्तूर.
हिं.–धतूरा, धत्तूरा.
बं.–धुत्तूरा.
म.–धोत्रा, धोतरा.
गु.–धंतुरो.
क.–मदकुणीके.
तै.–उम्मीते.
ता.–उमततताई.
फा.–तातूरहा.
अ.–जोजमासील.
अं.–Thorn Apple थॉर्न ॲपल.
ला.–Datura Stramouium डातुरा स्ट्रामोनियम्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धत्तूरगुणाः ।

धत्तूरो मदवर्णाग्निवातकृज्ज्वरकुष्ठनुत् । कषायो मधुरस्तिक्तो यूकालिक्षाविनाशकः ॥ उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ ७६ ॥

भाषा-धत्तूरा मदकारक, वर्णको उत्तम करनेवाला, अग्नि तथा वायुको करनेवाला, गरम, भारी, कसैला, मधुर, कडवा; जूँ लीखको नष्ट करनेवाला है और ज्वर, कोढ, व्रण, कफ, खुजली, कृमि तथा विषको नष्ट करनेवाला है ॥ ७६ ॥

धत्तूरेका विशेष विवरण.

धत्तूरेके वृक्ष बनमें, बागोंमें, जंगलामें बहुत होते है; परन्तु इसके कई भेद हैं, काला, नीला, सफद, पीला. काले और सुनहरी फूलका धत्तूरा पुष्पवाटिकाओंमें होता है. पत्ते पानके आकार जरा कडए कोमल होते हैं, फूल घण्टाकार बीचमें सफद रंग और ऊपर सफेद रंग बीचमें नीला, काला और पीला रंग होता है, जिसके पांच भाग होते हैं, फूलके बाहिरी भागकी पांच पंखुडियें नीले रंगकी होती हैं. फल गोल काँटेदार और भीतर बहुत बीजवाला होता है. जिस धतूरेका रंग अत्यन्त काला और डंडी, पत्ते, फूल, फल तथा सर्वांग काला हो, उस धत्तूरेमें विष अधिक होता है. फल सूखकर फूटके समान खिल जाते हैं. उन बीजोंको वैद्य लोग व्यवहारमें बहुत लाते हैं. प्रयोगमें इसके पत्ते, फल तथा फलके बीज लिये जाते हैं. इसकी मात्रा १ रत्तीकी है.

आटरूषनामानि ।

वासको वाशिका वासा भिषङ्माता च सिंहिका । सिंहास्यो वाजिदन्ता स्यादाटरूषोऽटरूषकः ॥ आटरूषो वृषस्ताम्रः सिंहपर्णश्च सः स्मृतः ॥ ७७ ॥

भाषा-वासक, वाशिका, वासा, भिषङ्माता, सिंहिका, सिंहास्य, वाजिदन्ता, आटरूष, अटरूषके, वृष, ताम्र, सिंहपर्ण ये अडूसेके संस्कृत नाम हैं. (रामरूपक, माटीसिंही, वैद्यमाता, वृष, कसनोत्पाटन, सिंही, वाजिदन्तक, आमलक, वाशा, अटरूष, वास, वाजी, वैद्यसिंही, सिंहपर्णी, रसादनी, सिंहमुखी, कण्ठीरवी, सितकर्णी, वाजिदन्ती, नासा, पंचमुखी, सिंहपत्री, मृगेन्द्राणी और सिंहासन ये अडूसेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७७ ॥

अनेक भाषाके अडूसेके नाम.

सं.-आटरूष.
हिं.-वासा, अडूसा, विसोंटा.
बं.-वासक.
म.-अडुळसा.
गु.-अडूरसो.
क.-शोणा, शोडीलमर.
तै.-पेद्दामानु.
ता.-अधडोडे.
ला.-Orocylum Indicum ओरोकीलम इंडिकम.

आटरूषगुणाः ।

वासको वातकृत्स्वर्यः कफपित्तास्ननाशनः । तिक्तस्तुवरको हृद्यो लघुश्शीतस्तृडर्त्तिहृत् ॥ श्वासकासज्वरच्छर्दिमेहकुष्ठक्षयापहः ॥ ७८ ॥

भाषा-अडूसा वातकारक, स्वरके लिये उत्तम, कडवा, कसैला, हृदयको हितकारी, हलका, शीतल है और कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषाकी पीडा, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, प्रमेह, कोढ तथा क्षयको क्षय करता है ॥ ७८ ॥

अडूसेका विशेष विवरण.

अडूसा अर्थात् विसोंटेके वृक्ष जंगल और वनोंमें होते हैं, परंतु उंचाईमें चार पांच फुट ऊंचे होत हैं. एकमें सफेद रंगका फूल आता है और दूसरेमें लाल रंगका फूल लगता है. पत्ते लम्बे लम्बे गोंदनीकेसे होते हैं. इनमें लाल फूलवाला अधिक गुणदायक है और इनही पुष्पोंमेंसे शहद निकलता है. प्रयोगमें इसके पत्ते और फूल लिये जाते हैं. इसकी मात्रा ४ मासेकी है.

पर्पटनामानि ।

पर्पटो वरतिक्तश्च स्मृतः पर्पटकश्च सः । कथितः पाशुपर्यायस्तथा कवचनामकः ॥ ७९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–पर्पट, वरातिक्त, पर्पटक और पांशुके तथा कवचके जितने पर्याय शब्द हैं वे सब ये पित्तपापडेके संस्कृत नाम हैं. (त्रियष्टि, तिक्त, चरक, वरक, रेणु, तृष्णारि, शीत, शीतप्रिय, पांशु, कल्पांग, वर्मकंटक, कृष्णशाख, प्रगन्ध, सुतिक्त, रक्तपुष्पक, पित्तारि, कटुपत्र, नक्र और शीतवल्लभ ये पित्तपापडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७९ ॥

अनेक भाषाके पित्तपापडेके नाम.

सं.–पर्पट.	फा.–श्यातरह.
हिं.–पित्तपापडा.	अ.–बकललतल.
बं.–श्वेतपापडा.	अं.–Rangiarepinse रंगियारेपिन्सी.
म.–पित्तपापडा.	
गु.–खडसलियो.	ला.–Fumeria Parviflora फमेरिया पारविफ्लोरा.
क.–पर्पाटक.	
तै.–पार्पाटकम्.	

पर्पटगुणाः ।

पर्पटो हन्ति पित्तास्रभ्रमतृष्णाकफज्वरान् ।
संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ८०

भाषा–पित्तपापडा ग्राही, शीतल, कडवा, वातकारक, हलका है और पित्त, रक्तविकार, भ्रम, तृषा, कफ, ज्वर तथा दाहको दूर करनेवाला है ॥ ८० ॥

पित्तपापडेका विशेष विवरण.

पित्तपापडेके क्षुप खेतोंमें बहुत होते हैं. इसके ऊपर बाल निकलते हैं, यह दो जातिका होता है, एकमें नीले फूल और दूसरेमें लाल फूल आते हैं. पत्ते बहुतही छोटे छोटे होते हैं. लाल फूलका अधिक फलदायक है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

निम्बनामानि ।

निम्बः स्यात् पिचुमर्दश्च पिचुमन्दश्च तिक्तकः ।
अरिष्टः पारिभद्रश्च हिंगुनिर्यास इत्यपि ॥ ८१ ॥

भाषा–निम्ब, पिचुमर्द, पिचुमन्द, तिक्तक, अरिष्ट पारिभद्र, हिंगुनिर्यास ये नीमके संस्कृत नाम हैं. (नियमन, नेता, सतिक्तक, सर्वतोभद्र, सुभद्र, पारिभद्रक, शुकप्रिय, शीर्षपर्णी, वरत्वच, छर्दन, पीतसार, रविप्रिय, मालक, पक्वकृत्, अर्कपादप, पूकमालक, कीटक, विबंध, निम्बक, कैटर्य, छर्दिघ्न, प्रभद्र, काकफल, कीरेष्ट, सुगना, विशीर्णपर्ण, पीतसारक, शीत और राजभद्रक ये नीमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८१ ॥

अनेक भाषाके नीमके नाम.

सं.–निंब.	फा.–दरखहक.
हिं.–नीम.	अं–Nimbtree निम्बट्री.
बं.–निम्ब.	
म.–कडुलिम्ब.	ला.–Exadirecta Indica एक्सडिरेक्टा इंडिका.
गु.–लींबडो.	
क.–बेड.	
तै.–वप.	

निम्बगुणाः ।

निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटुपाकोऽग्निवातनुत् । अहृद्यः श्रमतृड्कासज्वरारुचिकृमिव्रणुत् ॥ ८२ ॥ व्रणपित्तकफच्छर्दिकुष्ठहृल्लासमेहनुत् । निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमिपित्तविषप्रणुत् ॥ ८३ ॥ वातलं कटुपाकं च सर्वारोचककुष्ठनुत् । निम्बफलं रसे तिक्तं पाके तु कटु भेदनम् ॥ स्निग्धं लघूष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शःकृमिमेहनुत् ॥ ८४ ॥

भाषा–नीम शीतल, हलका, ग्राही, पाकमें चरपरा, हृदयको अप्रिय है और अग्नि, वात, परिश्रम, तृषा, ज्वर, अरुचि, कृमि, व्रण, पित्त, कफ, वमन, कोढ, हृल्लास और प्रमेहको नष्ट करता है. नीमके पत्ते नेत्रोंको हितकारी, वातकारक, पाकमें चरपरे हैं और सर्व प्रकारकी अरुचि, कोढ, कृमि, पित्त तथा विषको नष्ट करते हैं. नींबके फल कडवे, पाकमें चरपरे, मलभेदक, स्निग्ध, हलके, गरम हैं और कोढ, गुल्म, बवासीर, कृमि तथा प्रमेहको विनष्ट करते हैं ॥ ८२–८४ ॥

नीमका विशेष विवरण.

नीमके वृक्ष बहुत ऊंचे और घनाकार होते हैं. इसके पत्ते कंगनीदार, अनीदार होते हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और उनकी नोक कुछ फिरी हुई होती है. वसन्त ऋतुके आदिमें कोमल कोमल लाल रंगके नवीन पत्ते निकलते हैं और मौरभी पत्तोंके साथही साथ हरे रंगका निकलता है, इसपर वसन्तऋतुके अन्तमें बारीक और सफेद रंगके फूल आते हैं और सुगंधभी कुछ कुछ चमेलीके फूलोंकीसी आती है, इसके फल लम्बे और गोल खिन्नीके फलोंके सदृश आते हैं, उनको निंबौली या निबौरी कहते हैं, निंबौली बहुत कोमल होती हैं, छूते छूते टूट जाती हैं. खानेमें मीठी और हीकदार होती हैं, कच्ची अवस्थामें हरी और पकनेपर पीली पड जाती हैं, उनके भीतर हरी मींगभी निकलती है, उसमें तेल होता है, इसके वृक्ष नगर और ग्रामोंमें अधिक होते हैं. प्रयोगमें इसकी छाल और पत्ते लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी हैं.

महानिम्बनामानि ।

महानिम्बः स्मृतो द्रेका रम्यको विषमुष्टिकः ।
केशामुष्टिर्निम्बकश्च कार्मुको जीव इत्यपि ८५

भाषा-महानिंब, द्रेका, रम्यक, विषमुष्टिक, केशामुष्टि, निम्बक, कार्मुक, जीव ये बकायनके संस्कृत नाम हैं. (केशमुष्टिक, क्षीर, काकाण्ड, बृहन्निम्ब, महातिक्त, महाद्रेष्क, हिमद्रुम, पार्वत, गैरिक, शुक्लसारक, सकालेयक, गिरिपत्र, यवनेष्ट और कैटर्य ये बकायनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८५ ॥

अनेक भाषाके बकायनके नाम.

सं.-महानिंब.	क.-महावेड.
हिं.-बकाइन, बकायन.	तै.-पेद्दवेपा.
बं.-घोडा निम.	फा.-तुजा कुनार्य.
म.-कवड्या निंब, बकाणी निंब.	अ.-वान.
गु.-बकान.	ला.-Melia Azedarach मेलिया एजेडेरक.

महानिंबगुणाः ।

महानिंबो हिमो रूक्षस्तिक्तो ग्राही कषायकः ।
कफपित्तभ्रमच्छर्दिकुष्ठहृल्लासरक्तजित् ॥ प्रमेहश्वासगुल्मार्शोमूषिकाविषनाशनः ॥ ८६ ॥

भाषा-बकायन शीतल, रूखी, कडवी, ग्राही, कसैली है और कफ, पित्त, भ्रम, वमन, कोढ, हल्लास (जी मिचलाना), रुधिरविकार, प्रमेह, श्वास, गुल्म, बवासीर तथा मूसों (चूहों) के विषको दूर करती है ॥ ८६ ॥

बकायनका विशेष विवरण.

बकायनके बडे लम्बे २ झादेदार वृक्ष होते हैं, इसके पत्ते नीमके पत्तोंसे कुछ बडे होते हैं. इसके फूलभी नीमके समान होते हैं, परन्तु कुछ २ नीलापन उनपर होता है. इसके फल गोल २ होते हैं और गुच्छेके गुच्छे लटकते रहते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

पारिभद्रनामानि ।

पारिभद्रो निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातकः ।

भाषा-पारिभद्र, निंबतरु, मन्दार, पारिजातक ये फरहदके संस्कृत नाम हैं. (पालाश, रक्तपुष्प, प्रभद्रक, कण्टकी, कण्टकिंशुक, रक्तपुष्पक, कृमिशत्रु, रक्तकुसुम, कृमिघ्न, बहुपुष्प और रक्तकेशर ये फरहदके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके फरहदके नाम.

सं.-पारिभद्र.	क.-हरिवाल.
हिं.-फरहद.	तै.-मुलमोतिचेट्टू.
बं.-पालतेमान्दार.	ता.-मुराक.
म.-पांगेरा.	ला.-Erythrina Indica एरिथ्रिना इण्डिका.
को.-पारिंगा.	
गु.-फरहद.	

पारिभद्रगुणाः ।

पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोथमेदःकृमिप्रणुत् ।
तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम् ८७

भाषा-फरहद वात, कफ, सूजन, मेद तथा कृमिको नष्ट करता है. इसके पत्ते पित्तरोग तथा कर्णरोगको नष्ट करते हैं ॥ ८७ ॥

फरहदका विशेष विवरण.

फरहद (पारिभद्र) के वृक्ष जंगल और वनमें बहुत होते हैं, इसके पत्ते ढाकके समान एक एक डालीमें तीन तीन होते हैं. फूल लाल रंगके अत्यन्त शोभायमान होते हैं, इसपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फलियें लगती हैं और शाखाओंपर सूक्ष्म कांटे होते हैं. प्रयोगमें इसकी छाल तथा स्वरस लेते है. इसकी मात्रा ३ मासेकी है.

काञ्चनाररक्तकांचनारनामानि ।

काञ्चनारः काञ्चनको गण्डारिः शोणपुष्पकः। कोविदारश्चमरिकः कुद्दालो युगपत्रकः ॥ कुण्डली ताम्रपुष्पश्चाश्मन्तकः स्वल्पकेशरी ॥ ८८ ॥

भाषा–कांचनार, कांचनक, गंडारि, शोणपुष्पक ये कचनारके संस्कृत नाम हैं. (कांचन, रक्तपुष्प, कांतर, कनकप्रभ, सुवर्णार, गिरिज, करक, कांचनारक, युग्मपत्र, महापुष्प, युगुलच्छद, चमरिक, कुद्दाल, युगपत्रक, युगपत्र, काञ्चनाल, ताम्रपुष्प, कुद्दार, रक्तकाञ्चन, चम्पाविदल ये कचनारके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) कोविदार, चमारिक, कुद्दाल, कुण्डली, ताम्रपुष्प, अश्मंतक, स्वल्पकेशरी ये दूसरे प्रकारके कचनारके संस्कृत नाम हैं. (कुली, आस्फोतक, उद्दालक, स्वल्पकेश और चमरी ये दूसरे प्रकारके कचनारके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८८ ॥

अनेक भाषाके कचनारके नाम.

सं.–कांचनार, कोविदार.	गु.–कांचनार.
हिं.–कचनार, सफेद कचनार.	क.–कोचाले, कचनार.
बं.–कांचन.	ते.–देवकांचन.
म.–कोरल, कांचन.	ला.–Bowhenia Variegata बोहिनिया वेरिएगेट.

काञ्चनारगुणाः ।

काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरः श्लेष्मपित्तनुत् । कृमिकुष्ठगुदभ्रंशगण्डमालाव्रणापहः ॥ ८९ ॥ कोविदारोऽपि तद्वत्स्यात्तयोः पुष्पं लघु स्मृतम् । रूक्षं संग्राहि पित्तास्रप्रदरक्षयकासनुत् ॥ ९० ॥

भाषा–कचनार शीतल, ग्राही, कसैली है और कफ, पित्त, कृमि, कोढ, गुदभ्रंश, गण्डमाला और व्रणको नष्ट करती है. कोविदारकेभी येही गुण हैं. इन दोनोंके फूल, हलके रूखे, ग्राही हैं और पित्त, रुधिरविकार प्रदर क्षय तथा खांसीको नष्ट करते हैं ॥ ८९॥९०॥

कचनारका विशेष विवरण.

कचनार दो प्रकारका होता है लाल और सफेद. ये वृक्ष जंगल और पहाडोंमें अधिक होते हैं, इसके पत्ते एक एक शाखामें बराबर बराबर दो दो होते हैं, इसको सफेद फूल आते हैं और फलियें लगती हैं. दूसरी जातिका कचनारभी इसी प्रकारका होता है परन्तु उसके फूल लाल रंगके होते हैं और कोई बात विशेष नहीं होती, इसकी कलियोंका शाक और रायता अच्छा बनता है. इसकी पुट देनेसे सोनेकी भस्म होती है. प्रयोगमें इनकी छाल ली जाती है. इनकी मात्रा २ मासेकी है.

शोभाञ्जननामानि ।

(शोभाञ्जनः श्यामः श्वेतो रक्तश्च ।)

शोभाञ्जनः शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः । तद्बीजं श्वेतमरिचं मधुशिग्रुः सलोहितः ॥९१॥

भाषा–शोभांजन, शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, अक्षीव, मोचक ये सहिंजनेके संस्कृत नाम हैं.(शुभाञ्जन, सौभांजन, विद्रधिनाशन, मधुगुंजन, हरितशाक, शाकपत्र, शिग्रुक, सुपत्रक, क्षमादंश, कोमलपत्रक, बहुमूल, दंशमूल, तीक्ष्णमूल, उग्र, कामिनीश, शोभनक, शोभांजन, तीक्ष्णगन्ध, सुतीक्ष्ण, वनपल्लव, श्वेतमरिच, कटुकन्द, गन्ध, गन्धक, कालविक, मेचक, आक्षीव, शुभांजन, स्त्रीचित्तहारी, द्रविणनाशन, कृष्णगंधा, मूलकपर्णी, मोच, तिल, शिग्रु, जलप्रिय, मुखमोद, कृष्णशिग्रुचलुषा और रुचिरांजन ये सहिंजनेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) इसके बीजको श्वेत मरिच कहते हैं, मधुशिग्रु यह एक लाल सहिंजनेका संस्कृत नाम है. (रक्तशिग्रु, सुरंगी, शुभांजना, कृष्णबीज, गर्भपातक, रक्तक, मधुर, बहुलद, सुगंध, केसरी, सिंह और मृगारि ये लाल सहिंजनेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ९१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके सहिंजनेके नाम.

सं.-शोभाञ्जन, श्वेतशिग्रु, रक्तशिग्रु.
हिं.-सहिंजिना, सफेद सहिंजना, लाल सहिंजना.
बं.-सजिने, सादा सजिने, लाल सजडो.
म.-शेवगा, पिवळा, पांढरा, काळा व रक्त शेवगा.
को.-शेगट.
गु.-शरघवो, पीळो काळो शरघवो.
क.-विलियनुग्गि, केंपु नुग्गि, करियनुग्गि.
तै.-मुलंगा.
ता.-मुरंगे.
तु.-नर्ग.
मला.-मुरिना.
दे.-सेगत.
अं.-Horse Radish Tree हॉर्सरॉडिशट्री.
ला.-Moringa pterygosperma मोरिंगा टेरिगोस्पर्मा.

शिग्रुगुणाः ।

शिग्रुः कटुः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः । दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत् संग्राही ॥ शुक्रलो हृद्यः पित्तरक्तप्रकोपणः ॥ ९२ ॥ चक्षुष्यः कफवातघ्नो विद्रधिश्वयथुकृमीन् । मेदोऽपचीविषप्लीहगुल्मगण्डव्रणान्हरेत् ॥ ९३ ॥ श्वेतः प्रोक्तगुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाहकृद्भवेत् । प्लीहानं विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नः पित्तरक्तहृत् ॥ ९४ ॥ मधुशिग्रुः प्रोक्तगुणो विशेषादीपनः सरः । शिग्रुवल्कलपत्राणां स्वरसः परमार्तिहृत् ॥ ९५ ॥ चक्षुष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम् । अवृष्यं कफवातघ्नं तन्नस्येन शिरोऽर्त्तिनुत् ९६

भाषा-सहिंजना चरपरा, पाकमें चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, मधुर, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक, रूक्ष, खारी, कडवा, दाहकारक, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, हृदयको हितकारी, पित्त तथा रक्तको कुपित करनेवाला, नेत्रोंको हितकारी है और कफ, वात, विद्रधि, सूजन, कृमि, मेद, अपची, विष, प्लीहा, गुल्म, गंडमाला तथा व्रणको नष्ट करता है. सफेद सहिंजनाभी उपरोक्त गुणोंवाला है, विशेष करके दाहकारक है और प्लीहा, विद्रधि, व्रण, पित्त तथा रक्तविकारको नष्ट करता है. लाल सहिंजनेमेंभी येही गुण हैं; विशेष करके अग्निको दीपन करनेवाला तथा दस्तावर है. सहिंजनेकी छाल और पत्तोंका स्वरस महापीडाको नष्ट करता है. सहिंजनेके बीज नेत्रोंको हितकारी, तीक्ष्ण गरम हैं, वीर्यवर्द्धक नहीं हैं और विष, कफ तथा वायुको शमन करते हैं. इसके बीजोंका नस्य (नास) लेनेसे शिरका दर्द निःसन्देह दूर होता है ॥ ९२-९६ ॥

सहिंजनेका विशेष विवरण.

सहिंजनेके वृक्ष वन और बागोंमें अधिक होते हैं, इसके फूलोंका रंग देखकर तीन चार प्रकारका भेद माना जाता है, फूल नीले, सफेद और लाल आते हैं, इनमें सफेद फूलका सहिंजना उत्तम होता है, फूलोंकी बडी लम्बी लम्बी डालियें गुच्छेके समान लटकती हैं, इसके पत्ते सिरसके सदृश डालीके दोनों ओर बराबर होते हैं, देखनेमें शिरसके समान परन्तु कुछ बडे होते हैं, फली दो दो फूट लम्बी होती हैं. प्रयोगमें इसकी छाल तथा फली ली जाती है. इसके बीजकी मात्रा १ मासेकी है और छालकी मात्रा २ मासेकी है.

अपराजितानामानि ।

(श्वेतपुष्पा नीलपुष्पा चापराजिता ।)
आस्फोता गिरिकर्णी स्याद्विष्णुक्रान्ताऽपराजिता ।

भाषा-आस्फोटा, गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता, अपराजिता ये सफेद कोयलके संकृत नाम हैं. (भूमिलग्ना, नगपर्यायकर्णी, गवाक्षी, गिरिशालिनी, अश्वक्षुरार्दिकर्णी, कटभी, दधिपुष्पिका, गर्दभी, सितपुष्पा, श्वेतस्पंदा, किणिही, श्वेता, भद्रा, सुपुष्पी, विषहंत्री, सुपुत्री, सिंहपुष्पी, श्वेतवराटा और गवादिनी ये कोयलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके कोयलके नाम.

सं.–अपराजिता, नीलापराजिता.
हिं.–सफेद कोयल, नीली कोयल.
बं.–अपराजिता, नीलापराजिता, हापरमाली.
म.–गोकर्णी, काळी, पांढरी, सुपली.
.–धोळी गरणी, काळी गरणी, धोळो कुंपो.
क.–विलियगिरिकर्णिके, नीलगिरिकर्णिके.
तै.–गंटुना, नीलगंटुना.
ता.–काक्कान, काकनन्कौडी.
मला.–आरल.
अं–Indian mazereyun इंडियन् माझीरियन्.
ला.–Cletorea Ternatea क्लिटोरिया टरनेटिया.

अपराजितागुणाः ।

अपराजिते कटू मेध्ये शीते कण्ठ्ये सुदृष्टिदे ।
कुष्ठमूत्रत्रिदोषामशोथव्रणविषापहे ॥ कषाये कटुके पाके तिक्ते च स्मृतिबुद्धिदे ॥ ९७ ॥

भाषा–दोनों प्रकारकी कोयल चरपरी, मेधाको हितकारी, शीतल, कंठको शुद्धकर्त्री, दृष्टिको उत्तम करनेवाली, पाकमें चरपरी, कसैली, स्मृति तथा बुद्धिको देनेवाली है और कोढ, मूत्रका दर्द, तीनों दोष, आम, सूजन, व्रण तथा विषको दूर करती है ॥ ९७ ॥

कोयलका विशेष विवरण.

अपराजिता (कोयल) की लता बन बाग और प्रायः खेतोंकी वाडोंपर होती है, परन्तु इसकी दो जाति होती हैं, एक सफेद फूलकी कोयल और दूसरी काले फूलकी कोयल होती है, इसके पत्ते बहुत छोटे छोटे महीन जातिके होते हैं.

सिन्दुवारनामानि ।

सिन्दुवारः श्वेतपुष्पः सिंदुकः सिंदुवारकः ।
नीलपुष्पी तु निर्गुण्डी शेफाली सुवहा च सा ॥ ९८ ॥

भाषा–सिन्दुवार, श्वेतपुष्प, सिन्दुक, सिन्दुवारक ये सफेद फूलवाले सम्हालूके संस्कृत नाम हैं. (इन्द्राणिका, इन्द्रसुरस, निर्गुण्डी, सिन्धुवारक, सिंधुवार, सिन्धुक, इन्द्रसुरिष, सिंदुवारित, इन्द्राणी, शक्राणी, कासनाशिनी, सुरसा, सिन्धु, शुक्लपृष्ठक, विसुगन्धक, सुरस, स्थिरसाधनक, अनन्त, सिद्धक, अर्थसिद्धक और सिन्दुवारिका ये सफेद फूलवाले सम्हालूके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) नीलपुष्पी, निर्गुण्डी, शेफाली, सुवहा ये नीले फूलवाले सम्हालूके संस्कृत नाम हैं. (नीलिका, नीलनिर्गुण्डी, सिन्दुक, नीलसिन्दुक, नीलसिन्दुवार, पीतसहा, निर्गुण्डी, भूतकेशी इन्द्राणी, नीलिका, कपिका, शोफालिका, शीतभीरु, नीलमंजरी, कर्तरीपत्रा और भूतकेशी ये नीले फूलवाले सम्हालूके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ९८ ॥

अनेक भाषाके सम्हालूके नाम.

सं.–सिन्दुवार, नीलसिन्दुवार, निर्गुण्डी.
हिं.–सम्हालु, निर्गुण्डी, मेउडी, नीलसम्हालु, सिहरु, सम्हालुके बीज.
बं.–निशिन्दा, नीलशिन्दा.
म.–निर्गुण्डी पांढऱ्या फुलांची, काळया फूलांची, लिङ्गुर, निर्गुण्डीचें बीज.
गु.–नागड्य, नागड्यनावी, धोळी नगोड, नीळी नगोड.
क.–करिलोक्कि, मेउडी, विलियलोक्कि, लक्की, नेक्की, काडलोक्कि.
तै.–तेल्लावाविली, नाविलिचेट्टु, तेल्लव, नेल्लावाविली नेल्लानोच्चिली.
ता.–नोकचि, वेन्नोच्चि, कारुनोच्चि.
तु.–करिनेक्कि, नेक्कि.
मला.–इन्द्राणि, वेन्नोच्चि.
द्रा.–सान्वासि, काले-सुन्वालि.
पं.–वणा, लहरि.
को.–निगूड, वणई.
फा.–परंगुष्ट, तुख्मेपञ्जंगुष्ट, मिसवान.
अ.–असलुक, हबुलफुक्का, बजरुल असलुक.
अं.–Fiveleavd Chastetree फाइव्-लिव्ड् चेष्टट्री.
ला.–Vitex Negundo वाइटेक्स निगुण्डो.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिन्दुवारगुणाः ।

सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः । केश्यो नेत्रहितो हन्ति शूलशोथामरुतान् ॥ ९९ ॥ कृमिकुष्ठारुचिश्लेष्मज्वरान्नीलापि तद्विधा । सिन्दुवारदलं जन्तुवातश्लेष्महरं लघु ॥ १०० ॥

भाषा—दोनों प्रकारके सम्हालू स्मृतिदायक, कडवे, कसैले, चरपरे, हलके, केशोंको उत्तम करनेवाले, नेत्रोंको हितकारी हैं और शूल, आमवात, कृमि, कोढ, अरुचि, कफ तथा ज्वरको नष्ट करते हैं. सम्हालूके पत्ते जन्तु, वात तथा कफको हरते हैं और हलके हैं ॥ ९९ ॥ १०० ॥

निर्गुंडीका विशेष विवरण.

निर्गुण्डीके वृक्ष वन और बागोंमें बहुत होते हैं. इसके पत्ते अरहरके समान लम्बे तथा मखमलके सदृश नरम और गिलगिले होते हैं. एक एक डण्डीपर पांच पांच पत्ते लगते हैं. ये पत्ते बहुत हरे और नीचेसे सफेद होते हैं, निर्गुंडी कई जातिकी होती है, किसीपर काले और किसीपर लाल फूल होते हैं, फल आमके मौरके समान गुच्छेदार और केशरके रंगके समान होते हैं. इसके पत्तोंको पुस्तकमें या कपडेमें रखनेसे उनमें कीडा नहीं लगता है. प्रयोगमें इसकी जड तथा पत्ते लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कुटजनामानि ।

कुटजः कूटजः कीटो वत्सको गिरिमल्लिका । कालिङ्गः शक्रशाखी च मल्लिकापुष्प इत्यपि । इन्द्रो यवफलः प्रोक्तो वृक्षकः पाण्डुरद्रुमः ॥ १०१ ॥

भाषा—कुटज, कूटज, कीट, वत्सक, गिरिमल्लिका, कालिंग, शक्रशाखी, मल्लिकापुष्प, इन्द्र, यवफल, वृक्षक, पाण्डुरद्रुम ये कूडेके संस्कृत नाम हैं. (वरतिक्त, शक्राशन, शक्र, वत्सक, पाण्डुर, कटुक, कुटक, कौटज, तिक्तक, रक्तनाशक, शक्राह्वय, काही, प्रावृष्य, शक्रपादप, संग्राही, पाण्डुद्रुम. प्रावृषेण्य, महागन्ध, इन्द्रद्रु और शक्रशाखी ये कुडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १०१ ॥

अनेक भाषाके कुडेके नाम.

सं.—कुटज, श्वेतकुटज.
हिं.—कुडा, कुरैया.
बं.—कुडचिगाछ, कुटराज. (कुडा.
म.—काळा कुडा, सफेद
गु.—कालोकडो, दुधला.
क.—कोडसिगे, कोडमुरक, करिकोडसिगयमारा.
तै.—अंकुटुचेट्टु, अर्गिशचेट्टु, तुम्भिकचेट्टु, अंकेलु, चरालकुष्ठ.
ता.—वेप्पाले.
तु.—कोडंजि.
मला.—वेनपाला.
उत्.—कुडिया.
अ.—तिवाज.
अं.—Ovalleaved Rose Bay ओवल्लीवड रोझबे.
ला.—Wrightia antidysenterica राइटिया अंटिडिसेन्टेरिका.

कुटजगुणाः ।

कुटजः कटुको रूक्षो दीपनस्तुवरो हिमः । अर्शोऽतिसारपित्तास्रकफतृष्णामकुष्ठनुत् १०२

भाषा—कुडा चरपरा, रूखा, अग्निको दीपन करनेवाला, कसैला, शीतल है और बवासीर, अतिसार, पित्त, रक्तविकार, कफ, तृषा, आम तथा कुष्ठको नष्ट करता है ॥ १०२ ॥

कूडेका विशेष विवरण.

कुडेका वृक्ष बडा होता है. इनके पत्ते बादामके समान लंबे होते हैं. इसपर सफेत फूल आते हैं. इसकी फलियां लंबी और पतली होती हैं. इन फलियोंमेंसे जौके बराबर जो बीज निकलते हैं उनको ' इंद्रयव ' कहते हैं. कूडा दो प्रकारका है काला और सफेद. काले कूडेका वृक्ष सफेद कूडेके वृक्षसे अधिक बडा होता है और इसके पत्तोंपर किंचित् श्यामता मालूम होती है. काले कूडेकी फलियां सफेद कूडेकी अपेक्षा दूनी लंबी होती हैं. काला कूडा विशेष उष्ण है और गुणोंमें सफेद कूडेसे न्यून है. इसके फूलोंका शाक बनाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करञ्जनामानि।

करञ्जो नक्तमालश्च करजश्चिरबिल्वकः। घृतपूर्णकरञ्जोऽन्यः प्रकीर्यः पूतिकोऽपि च॥ स चोक्तः पूतिकरजः सोमवल्कश्च स स्मृतः॥ १०३॥

भाषा–करंज, नक्तमाल, करज, चिरबिल्वक ये करंजके संस्कृत नाम हैं. (पूतिक, पूतिपत्रक, पूतिकरंज, कैडर्य, कलिमार, पूतिपर्ण, बह्वफल, रोचन, करंजक और उदकीर्य ये करंजके संस्कृत नाम अन्य ग्रथोंमें पाये जाते हैं.) घृतपूर्णकरंज, प्रकीर्य, पूतिक, पूतिकरज और सोमवल्क ये घियाकरंजके संस्कृत नाम हैं॥ १०३॥

अनेक भाषाके करंजके नाम.

सं.–करञ्ज, पूतिकरञ्ज, घृतकरञ्ज, षड्ग्रन्थ, महाकरञ्ज.
हिं.–करञ्ज, करञ्जभेद.
बं.–डहरकरञ्ज, नाटा करञ्ज.
म.–चोपडा करञ्ज, घाणेरा करञ्ज, वावळा.
गु.–करञ्ज, चरेलकणसे.
क.–तपसीयमरनु, हिरियहुलिगिलु, वारुव, कानग्यानगिडा.
तै.–कानगुचेट्टु, कंज.
मला.–पोन्नं, आविल.
ता.–पुंगामारं.
तु.–राहुबिज.
अं.–Smooth leaved Pongamia स्मूथ्लीव्ड् पोंगेमिया.
ला.–Pongamia Glabra पोंगे मिआ ग्लेब्रा, Almus Integrefolia अलमस् इन्टेग्रेफोलिया.

करञ्जगुणाः।

करञ्जः कटुकस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो योनिदोषहृत्। कुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शोव्रणकृमिकफापहः॥ १०४॥ तत्पत्रं कफवातार्शःकृमिशोथहरं परम्। भेदनं कटुकं पाके वीर्योष्णं पित्तलं लघु॥ १०५॥ तत्फलं कफवातघ्नं मेहार्शःकृमिकुष्ठजित्। घृतपूर्णकरञ्जोऽपि करञ्जसदृशो गुणैः॥ १०६॥

भाषा–करंज चरपरी, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, योनिदोषोंको हरनेवाली है और कोढ, उदावर्त्त, गुल्म, बवासीर, कृमि, व्रण तथा कफका नाश करती है. करंजेके पत्ते मलभेदक, पाकमें चरपरे, उष्णवीर्य, पित्तकारक, हलके हैं और कफ, वात, बवासीर, कृमि तथा शोथको हरनेवाले हैं. करंजेके फल कफ, वात, प्रमेह, बवासीर, कृमि तथा कोढको नष्ट करते हैं. घियाकरंजके गुणभी करंजके सदृशही हैं॥ १०४–१०६॥

करंजका विशेष विवरण.

करंजके वृक्ष बडे होते हैं. इसके पत्ते गोल आगेसे अनीदार तथा केसूलाकी कलीके आकारके होते हैं और एक २ डालीमें पांच २ सात २ होते हैं. फूल सफेद गुच्छेदार होते हैं. इसकी फलियां लंबी और चपटी होती हैं. फलीके बीचमेंसे बदामी रंगके चपटे बीज निकलते हैं. प्रयोगमें करंजके बीज, तेल, छाल और पत्ते लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

उदकीर्यनामानि।

उदकीर्यस्तृतीयोऽन्यः षड्ग्रन्था हस्तिवारुणी। मर्कटी वायसी चापि करञ्जी करभञ्जिका॥ १०७॥

भाषा–उदकीर्य, षड्ग्रन्था, हस्तिवारुणी, मर्कटी, वायसी, करंजी और करभंजिका ये उदकीर्य नामक तीसरी करंजके संस्कृत नाम हैं॥ १०७॥

अनेक भाषाके उदकीर्यके नाम.

सं.–उदकीर्य, करंजी,
हिं.–अरारी, करंजिया.
म.–थोरेकरंज.
तै.–पेद्दकंज.

करंजीगुणाः।

करञ्जी स्तम्भनी तिक्ता तुवरा कटुपाकिनी। वीर्योष्णा वमिपित्तार्शःकृमिकुष्ठप्रमेहजित्॥ १०८॥

भाषा–यह करंज वीर्यस्तम्भक, कडवी, कसैली, पाकमें चरपरी, उष्णवीर्य है और वमन,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पित्त, बवासीर, कृमि कोढ तथा प्रमेहको नष्ट करती है ॥ १०८ ॥

उदकीर्यकरंजका विशेष विवरण.

उदकीर्य करंजके बहुत बडे बडे वृक्ष वनमें होते हैं, इसके पत्ते पाकरके पत्तोंकी समान गोल और ऊपरके भागमें चमकदार होते हैं. इसमें फल आसमानी रंगके नीले नीले झुमकेदार लगते हैं. इसके पत्तोंमें दुर्गन्ध आती है. एवं छः सात प्रकारका करंज हैं. प्रयोगमें इसके पत्ते और बीज लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी हैं.

श्वेतरक्तगुञ्जानामानि ।

श्वेता रक्तोच्चटा प्रोक्ता कृष्णला चापि सा स्मृता । रक्ता सा काकचिञ्ची स्यात्काकानन्ती च रक्तिका ॥ काकादनी काकपीलुः सा स्मृता काकवल्लरी ॥ १०९ ॥

भाषा—सफेद और लाल इस भांति दो प्रकारकी घुंघुची होती है. उसमें उच्चटा, कृष्णला ये सफेद चोंटलीके संस्कृत नाम हैं. (श्वेतकाम्बोजी, श्वेतगुंजा, भिरिण्डिका, श्वेतोच्चटा, श्वेतबीजा, श्वेतरक्तिका और श्वेत गुंजिका ये सफेद चोंटलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) काकचिञ्ची, काकानन्ती, रक्तिका, काकादनी, काकपीलु, काकवल्लरी ये लाल चोंटलीके संस्कृत नाम हैं. (गुंजिका, गुंजा, काकजंघा, शिखंडिनी, कृष्णला, काकिनी, कक्षा, कनीचि, काकणन्तिका, शांगुष्टा, काकतिक्ता, काकतुंडिका, काका, काकिणी, काञ्ची, चूडामणि, सौम्या, शिखंडी, अरुणा, ताम्रिका, शीतपाकी, कृष्णचूडिका, रक्ता, काम्बोजी, भीलभूषणा, वन्या, श्यामलचूडा, काकचिंचिका, काकणन्ती, काकशिम्बी, रक्तला, वक्रशल्या, ध्वांक्षनखा, दुर्मोघा, चटकी, तुलाधीजा और अंगारवल्लरी ये लाल चोंटलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १०९ ॥

अनेक भाषाके घुंघुचीके नाम.

सं.—गुञ्जा, श्वेतगुञ्जा.
हिं.—घुंघुची, चोंटली, चिरमिटी, सफेद घूंघची.
बं.—कुंच, सादाकुंच.
म.—गुंज, पांढरी गुंज.
को.—माडलवेल.
गु.—चणोठी राती, चणोठीधोली.
क.—गुलगुंजे, एरडु.
तै.—गुलविंदे.
ता.—करिन.
तु.—गोजी.
मला.—कुन्नि गुंजा.
उ.—रुंज.
फा.—चश्मेखरूस्.
अ.—हब सुर्ख, हब सुफेद.
अं.—Bead tree बिड् ट्री.
ला.—Abrus precatorius एब्रेस् प्रिकेटोरियस्.

गुंजाद्वयगुणाः ।

गुञ्जाद्वयं तु केश्यं स्याद्वातपित्तज्वरापहम् । मुखशोषभ्रमश्वासतृष्णामदविनाशनम् ११०॥ नेत्रामयहरं वृष्यं बल्यं कण्डूं व्रणं हरेत् । कृमीन्द्रलुप्तकुष्ठानि रक्ता च धवलापि च ॥ १११॥

भाषा—दोनों प्रकारकी घुंघुची केशोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, बलदायक है और वात, पित्त, ज्वर, मुखशोष, भ्रम, श्वास, तृषा, मंद, नेत्रके रोग, खुजली, व्रण, कृमि, इन्द्रलुप्त तथा कोढको नष्ट करती है ॥ ११० ॥ १११ ॥

चोंटलीका विशेष विवरण.

लाल गुंजा और सुफेद गुंजा अर्थात् चोंटलीकी वेल जंगलोंमें अधिकतासे होती है, इसके पत्ते इमलीके समान होते हैं और फली सेमकी फलीके समान गुच्छोंमें लगती है और उन फलियोंके भीतर चोंटली निकलती हैं, वह लाल रंगकी होती है और मुखपर किञ्चित् काली होती है, और सफेद रंगकी चोटली सम्पूर्ण सफेद होती है, इस प्रकार चोंटलीके दो भेद कहे हैं. इसमें सफेद घुंघची बिगडकर काली पड जाती हैं, लाल घुंघचीकी वेल बहुत कम होती है. इसकी जड मुलहठीके समान होती है. घुंघची एक उपविष गिनी जाती है. प्रयोगमें इसकी जड पत्ते और बीज लिये जाते हैं. इसकी मात्रा १ रत्तीसे लेकर ३ रत्तीतककी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपिकच्छूनामानि ।

कपिकच्छूरात्मगुप्ता वृष्या प्रोक्ता च मर्कटी ।
अजरा कण्डुरा व्यङ्गा दुस्पर्शा प्रावृषायणी ॥
लाङ्गली शूकशिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ ११२ ॥

भाषा–कपिकच्छू, आत्मगुप्ता, वृष्या, मर्कटी, अजरा, कण्डुरा, व्यंगा, दुःस्पर्शा, प्रावृषायणी, लांगली, शूकशिंबी ये कौंछके संस्कृत नाम हैं (शुकशिम्बा, कपिप्रभा, शुकपिंडी, स्वयंगुप्ता, कण्डूरा, शूकशिम्बिका, जडा, अध्यण्डा, शुकशिम्बि, ऋष्यप्रोक्ता, सद्यशोथा, शूका, शूकवर्ती, गात्रभंगा, कच्छुमती, कच्छुरा, ऋषभी, कपिकच्छुरा, ऋषभजटा, स्वगुप्ता, अजाह्वा, प्रावृषा, शूकशिंबा, अजहा, वानरी, कपिकच्छु, शूकपिण्डी, व्याघ्रा, सुतप्ता, महर्षभी, कुण्डली, चण्डा, दुरभिग्रहा, कपिरोमफला, गुप्ता, दुःस्पर्शा, अजडा, प्रावृषेण्या, वदरी, गुरु, आर्षभी, शिम्बी, वराहिका, तीक्ष्णा, रोमालु, वनशूकरी, काशीरोमा, रोमवल्ली और वृष्या ये कौंछके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ११२ ॥

अनेक भाषाके कौंछके नाम.

सं.–कपिकच्छू.
हिं.–कौंछ, किवांच.
बं.–आलुकुशि, धुनारगुंड, दया, शुयाशिम्बी. (बीज.
म.–कुहिली, कुहिलीचे
गु.–कउचों, भेरवनी शीगनां बी.
क.–नसुगुन्नी.
तै.–पिल्लिअडुगु.
ता.–पुनाइक्कु, आलि.
मला.–नायिकरुणा.
गो.–खवल्यावालि.
अं.–Cowhage कौहेज.
ला.–Mucuna Pruriens म्युक्युना प्रुरिएन्स.

कपिकच्छूगुणाः ।

कपिकच्छूर्भृशं वृष्या मधुरा बृंहणी गुरुः ।
तिक्ता वातहरी बल्या कफपित्तास्रनाशिनी ॥
तद्बीजं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम् ११३॥

भाषा–कौंछ अत्यंत वीर्यवर्द्धक, मधुर, पुष्टिकारक, भारी, कडवी, वातनाशक, बलदायक है और कफ, पित्त तथा रुधिरविकारको दूर करती है. इसके बीज वातनाशक और अत्यंत वाजीकरण करनेवाले हैं ॥ ११३ ॥

कौंछका विशेष विवरण.

कौंछकी वेल वन और कैरोंमें होती है. इसके फूल निष्पावके समान होते हैं और फलियेंभी निष्पावहीके समान होती हैं. फलियोंके ऊपर बहुत बारीक रुएं अधिकतासे होते हैं, इसका रुआं शरीरमें लगनेसे अत्यन्त खुजली और पीडा होती है, फलियोंके भीतरसे सेमके बीजोंके समान बीज निकलते हैं. छोटी कौंछका क्षुप होता है. प्रयोगम इसकी जड, पत्ते और बीज लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

मांसरोहिणीनामानि ।

मांसरोहिण्यतिरुहा वृंता चर्मकरी कृशा । प्रहारवल्ली विकशा वीरवल्लयपि कथ्यते ॥ ११४ ॥

भाषा–मांसरोहिणी, अतिरुहा, वृंता, चर्मकरी, कृशा, प्रहारवल्ली, विकशा, वीरवल्ली ये मांसरोहिणीके संस्कृत नाम हैं. (चर्मकषा, वसा, अग्निरुहा, मांसरोही, कशामांसी, मांसरोहा, रसायनी, सुलोमा, लोमकरणी, रोहिणी, और चन्द्रवल्लभा ये मांसरोहिणीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाय जाते हैं.) ॥ ११४ ॥

अनेक भाषाके मांसरोहिणीके नाम.

सं.–रोहिणी, मांसरोहिणी.
हिं.–मांसरोहिणी, रोहिणी.
बं.–चामारकरशा.
म.–रोहिणी, मांसरोहिणी.
गु.–रोण्य.
क.–रोहिणी, मांसरोहिणी.
अं.–Redwood Tree रेड्वुड् ट्री.
ला.–Soymida Febrifuga सोयमीडा फेब्रिफ्युगा.

मांसरोहिणीगुणाः ।

स्यान्मांसरोहिणी वृष्या रसा दोषत्रयापहा ।

भाषा–मांसरोहिणी वीर्यवर्द्धक, दस्तावर और त्रिदोषनाशक है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मांसरोहिणीका विशेष विवरण.

रोहिणी और मांसरोहिणीके वृक्ष जंगलमें बहुत होते हैं. इसके पत्ते खिरनीके पत्तोंके समान होते हैं, परन्तु नीमके पत्तोंके समान एक डंडीमें आमने सामने बराबर सात सात पत्ते होते हैं. इसके फल छोटे छोटे लाल रंगके होते हैं; रोहिणीकी छाल त्वचाको काला कर देती है.

चिल्लकगुणाः ।

चिल्लको वातनिर्हारी श्लेष्मघ्नो धातुपुष्टिकृत् । आग्नेयो विषवद्यस्य फलं मत्स्यनिषूदनम् ॥ ११५ ॥

भाषा-चिल्लक वातनाशक, कफ हरनेवाली, धातुको पुष्ट करनेवाली और गरम है. चिल्लका फल विषके सदृश मच्छियोंको मार डालता है ॥ ११५ ॥

चिल्लककी विशेष विवरण.

चिल्लकके वृक्ष छोटे छोटे होते हैं; इसको हिंदीमें चिल्ल और पर्वती भाषामें गंधारी कहते हैं. ये वृक्ष विशेषकरके पर्वत अथवा पथरीली भूमिमें बहुत उत्पन्न होते हैं, इसके पत्ते हरे और फूल नीले रंगके होते हैं, इसके फल रीठेके समान गोल गोल होते हैं. इसके फलके द्वारा धीवर लोग मछलियोंको मारते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

टङ्कारीगुणाः ।

टङ्कारी वातजित्तिक्ता श्लेष्मघ्नी दीपनी लघुः । शोथोदरव्यथाहन्त्री हिता पीठविसर्पिणाम् ॥ ११६ ॥

भाषा-टंकारी वातको जीतनेवाली, कडवी, कफनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, पीठ और विसर्परोगवालोंको हितकारी है तथा सूजन और उदरकी पीडाको नष्ट करती है११६॥

टंकारीका विशेष विवरण.

टंकारीके क्षुप वन और जंगलमें अधिक होते हैं. इसपर पत्ते लम्बे और गोल आते हैं, फूल लाल गुलाबी कई प्रकारके आते हैं, फल छोटे छोटे झुमकेदार लगते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

वेतसनामानि ।

वेतसो नम्रकः प्रोक्तो वानीरो वञ्जुलस्तथा । अभ्रपुष्पश्च विदुलो रथशीतश्च कीर्तितः ११७

भाषा-वेतस, नम्रक, वानीर, वंजुल, अभ्रपुष्प, विदुल, रथशीत ये वेंतके संस्कृत नाम हैं (निचुल, दीर्घपत्रक, कलन, मंजरीनम्र, वंजुलप्रिय, गन्धपुष्प, रथाम्र, वेतसी, सुषेण और गन्धपुष्पक ये वेंतके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ११७ ॥

अनेक भाषाके वेंतके नाम.

सं.-वेतस.	क.-वेडुसि.
हिं.-वेंत.	ते.-पीपारुवा.
बं.-बेंत्र.	अं.-Cane केन्.
म.-मोठा वेत.	ला.-Calamus केलेमस्.
गु.-नेतर.	

वेतसगुणाः ।

वेतसः शीतलो दाहशोथार्शोयोनिरुक्प्रणुत् । हन्ति वीसर्पकृच्छ्रास्रपित्ताश्मरिकफानिलान् ॥ ११८ ॥

भाषा-वेंत शीतल है और दाह, शोथ, बवासीर, योनिरोग, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, पथरी, कफ तथा वातको नष्ट करता है॥११८॥

वेंतका विशेष विवरण.

वेंतकी दो जाति हैं. वेंत और जलवेंत ये वेंत जलके निकटकी भूमिमें उत्पन्न होते हैं. इसके पेडभी लताके आकारके होते हैं, पत्ते बांसके समान लंब होते हैं और फल फूल आतेही नहीं. वेंतकी छड बहुत लंबी लंबी होती हैं, वेंतके ऊपरका बक्कल बहुत पक्का होता है, कुरसी आदि उसीसे बिनी जाती है. वेंत जलमेंभी उत्पन्न होता है उसके गुण वेंतहीके समान होते हैं. प्रयोगमें इसकी कोंपल और पत्ते लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जलवेतसनामानि ।

निकुञ्चकः परिव्याधो नादेयो जलवेतसः ।

भाषा–निकुंचक, परिव्याध, नादेय, जलवेतस ये जलवेंतके संस्कृत नाम हैं. (शाखालु, मेघपुष्प, तोयकाम, अभ्रपुष्पक, नदीकुलप्रिय, नीरप्रिय, सुशीतल और व्याधिघात ये जलवेंतके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके जलवेंतके नाम.

सं.–जलवेत.	क.–वेतसु.
हिं.–जलवेंत.	ला.–Elatine vertia verticellata इलेटिन्वेर्टिआ वेरटीकेलाटा.
बं.–जलवेत.	
म.–वेत, जलवेत.	
गु.–जलजांबवो.	

जलवेतसगुणाः ।

जलजो वेतसः शीतकुष्ठहृद्वातकोपनः ।

भाषा–जलवेंत शीतल, कुष्ठनाशक और वायुको कुपित करनेवाला है.

इज्जलनामानि ।

इज्जलो हिज्जलश्चापि निचुलश्चाम्बुजस्तथा ।

भाषा–इज्जल, हिज्जल, निचुल और अंबुज ये हिज्जलके संस्कृत नाम हैं.

अनेक भाषाके हिज्जलके नाम.

सं.–हिज्जल.	म.–हिज्जल.
हिं.–हिज्जल.	गु.–समुद्रशोष.

हिज्जलगुणाः ।

जलवेतसवद्वेद्यो हिज्जलोऽयं विषापहः ।

भाषा–हिज्जल जलवेंतके सदृशही गुणवाला है, विशेष करके विषविनाशक है ॥

हिज्जलका विशेष विवरण.

हिज्जलके वृक्ष प्रायः जलाशयके निकट अधिक उत्पन्न होते हैं. इसके पत्ते छोटे छोटे रामशरके समान होते हैं और इनके फल तीन रेखायुक्त इलायचीके समान होते हैं. जूडी दूर करनेमें कुनैनके समान है. इसका फल प्रयोगमें लिया जाता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

अंकोटनामानि ।

अंकोटो दीर्घकीलः स्यादङ्कोलश्च निकोचकः ।

भाषा–अंकोट, दीर्घकील, अंकोल, निकोचक ये अंकोटके संस्कृत नाम हैं. (कोलक, रेंची, विषघ्न, दीर्घकीलक, पीतसार, ताम्रफल, गन्धपुष्प, अंकोटक, अंकोठ, निकोठक, अंकोलक, वोध, नेदिष्ठ, रामठ, कंकरोल, घलन्त, दृढकण्टक, कोठर, गूढपत्र, मदन, गुप्तस्नेह, गूढवल्लिका, पीत, गुणाढ्यक, लम्बकर्ण, रोचन, विशाल, तैलगर्भ, कठोर, वामक और लम्बपर्णक ये अंकोलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके अंकोलके नाम.

सं.–अंकोट. [कोल]	क.–अंकुले.
हिं.–ढेरा, टेरा, अंकड, धला आंकड, आंकोड.	तै.–उडीके.
बं.–आंकड, धला आंकड, आंकोड.	ला.–Alangium Lamarchii एलेन्जियम् लेमार्किआइ.
म.–अंकोली वृक्ष.	
गु.–अंकोल्या.	

अंकोटगुणाः ।

अङ्कोटकः कटुस्तीक्ष्णः स्निग्धोष्णस्तुवरो लघुः । रेचनः कृमिशूलामशोफग्रहविषापहः ॥ ११९ ॥ विसर्पकफपित्तास्रमूषकाहिविषापहः । तत्फलं शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं बृंहणं गुरु ॥ वल्यं विरेचनं वातपित्तदाहक्षयास्रजित् ॥ १२० ॥

भाषा–अंकोल चरपरा, तीक्ष्ण, चिकना, गरम, कसैला, हलका, रेचक है और कृमि, शूल, आम, सूजन, ग्रह, विष, विसर्प, कफ, पित्त, रुधिरविकार, तथा सांप और मूषक (चूहों) का विष नष्ट करता है. इसका फल शीतल, स्वादिष्ठ, कफनाशक, पुष्टिकारक, भारी, बदलायक, रेचक है और वात, पित्त, दाह, क्षय तथा रुधिरविकारको नाश करता है ११९॥१२०॥

अंकोलका विशेष विवरण.

अंकोल अर्थात् ढेरेके वृक्ष बडे बडे होते हैं; ये वृक्ष विशेष करके जंगल वन और पर्वतोंपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अधिक पाये जाते हैं; इसके पत्ते एक अंगुल चौडे और पांच छः अंगुल लम्बे होते हैं; फूल सफेद होते हैं; फल कच्ची अवस्थामें नीले और पकनेपर लाल पड जाते हैं, उनके ऊपर कालापन झलकता रहता है. इस वृक्षपर कांटे बहुत होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

बलानामानि।

बला वाट्यालिका वाट्या सैव वाट्यालकाऽपि च।

भाषा-बला, वाट्यालिका, वाट्या, वाट्यालक ये खिरैंटीके संस्कृत नाम हैं. (वाट्यपुष्पी, समांशा, विलला, बलिनी, बला, ओदनी, समंगा, ओदनिका भद्रा, भद्रोदनी, खरकाष्ठिका, कल्याणिनी, भद्रबला, मोटापाटी, बलाढ्या, शीतपाकी, वाटी, निलया, वाट्याली, वाटिका, खरयष्टिका, ओदनाह्वा, वातघ्नी, कनका, रक्ततन्दुला, क्रूरा, प्रहासा, वारिगा, फणिजिह्विका, जयन्ती और कठोरयष्टिका ये खिरैंटीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके खिरैंटीके नाम.

सं.-बला.	बीमलीव्डासिडा, Heart leaved Sida हार्टलीव्डसिडा.
हिं.-खिरैंटी, वरियारा, बीजवन्द.	
बं.-श्वेत वेडेला.	ला.-Sida carpinifolia सिडा कार्पिनिफोलिया. Sida Cardifolia सिडाकार्डिफोलिया.
म.-लघुचिकणा, खिर.	
गु.-बलदाणा, खरेटी.	
क.-वेण्णेगरग.	
तै.-मुर्पेडी.	
तु.-काडिरु.	
अं.-Hornbeam leaved sida, होर्न-	

महाबलानामानि।

महाबला पीतपुष्पा सहदेवी च सा स्मृता॥ १२१॥

भाषा-महाबला, पीतपुष्पा, सहदेवी ये पीले फूलवाली बलाके संस्कृत नाम हैं. (ज्येष्ठबला, करम्भरा, केशरुहा, केसरिका, मृगादनी, वर्षपुष्पा, केशवर्द्धिनी, प्रसादनी, देवबला, सारिणी, देवार्हा, गन्धवल्लरी, मृगा, मृगरसा, वर्षपुष्पी, वाट्या, वाट्यायिनी, सहदेवा, देवसहा, बृहद्बला, गन्धवल्ली, महागन्धा और मंगलार्थप्रसादनी ये दूसरी पीले फूलवाली बला (सहदेई) के संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ १२१॥

अनेक भाषाके सहदेईके नाम.

सं.-महाबला, सहदेवी.	ता.-नेच्चिट्टी.
हिं.-सहदेई.	मला.-पिरिना.
बं.-पीतपुष्प वेडेला.	ला.-Sida rhombifolia सिडारोंबिफोलिया.
म.-भांबुर्डी.	
गु.-सहदेवी.	
क.-वेल्लुदुरुवे.	

अतिबलानामानि।

ततोऽन्याऽतिबला ऋष्यप्रोक्ता कङ्कतिका च सा।

भाषा-अतिबला, ऋष्यप्रोक्ता, कंकतिका, ये तीसरी बला (कंघी) के संस्कृत नाम हैं. (बलिका, बल्या, विकंकता, वाट्यपुष्पिका, घंटा, शीता, शीतपुष्पा, भूरिबला और वृष्य गंधिका ये तीसरी बला (कंघी, ककई) के संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके कंघीके नाम.

सं.-अतिबला.	क.-मुल्लुदुरुवे.
हिं.-कंगही, कंघी, ककहिया.	अं.-Indian Malow इंडियनमेलो.
म.-विकंकती, आककई, कासली.	ला.-Abutilon indicum एब्युटिलन्इंडिकम्.
गु.-खपाट.	

नागबलानामानि।

गाङ्गेरुकी नागबला झषा ह्रस्वगवेधुका॥ १२२॥

भाषा-गांगरुकी, नागबला, झषा, ह्रस्वगवेधुका ये चौथी बला (गंगेरन) के संस्कृत नाम हैं. (खरगन्धिनी, गोरक्षतंडुला, भद्रौदनी, खरगंधा, चतुःपला, महोदया, महापत्रा, महाशाखा, महाफला, विश्वदेवी, अनिष्ठा, देवदण्डा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महागन्धा और खरवल्लरिका ये चौथी वला (गंगेरन; गुलसकरी) के संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके गंगेरनके नाम.

सं.–नागवला.	कों.–लेंची.
हिं.–गंगेरन, गुलसकरी.	गु.–गंगेटी.
बं.–गोरख, चाकुले, पानसांडा.	क.–वट्टगरुके.
म.–गांगेटी, गांडे धामण.	ला.–Sida spinosa सिडास्पिनोझा.

बलाचतुष्टयगुणाः ।

बलाचतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्तिकृत् । स्निग्धं ग्राहि समीरास्रपित्तास्रक्षतनाशनम् ॥ १२३ ॥ बलामूलत्वचश्चूर्णं पीतं सक्षीरशर्करम् । मूत्रातिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः ॥ १२४ ॥ हरेन्महाबला कृच्छ्रं भवेद्वातानुलोमनी । हन्यादतिबला मेहं पयसा सितया समम् ॥ १२५ ॥

भाषा–चारों प्रकारकी वला शीतल, मधुर, बलवर्धक, कांतिदायक, स्निग्ध, ग्राही है और वात, रक्तपित्त, रुधिरविकार तथा क्षयको नष्ट करता है. इसकी जडकी छालका चूर्ण जो दूध बूरा (चीनी) के साथ खावे तो मूत्रातिसार रोग नष्ट होता है. इसमें किंचित्भी संशय नहीं है. यह दृष्टिका देखा हुआ है. महाबला मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करती है और वातको अनुलोम करती है अर्थात्वादीको गुदाद्वारा निकालती है. अतिबला दूध और मिश्रीके साथ पीवे तो प्रमेहको नष्ट करती है ॥ १२३–१२५ ॥

बलाका विशेष विवरण.

बला अनेक प्रकारकी होती है जैसे खिरेंटी, कंघी, गंगेरन, गंगेटी, सहदेई इत्यादि. इनमें खिरेंटीकेभी कई भेद हैं. एक प्रकारकी खिरेंटी वह होती है कि, जिसके वृक्ष डेढ हाथ ऊंचे होते हैं और पत्ते तुलसीके पत्तोंके समान होते हैं फूल पीले आते हैं और फल छोटे २ आते हैं और इसमें बहुतसे बीज निकलते हैं. इसके पत्तोंका शाक बनाते हैं. दूसरे प्रकारकी खिरटीका वृक्ष पुरुषके बराबर ऊंचा होता है. इसके पत्ते अनीदार होते हैं और फूल सफेद रंगके होते हैं, फल बारीक और गोल आते हैं. उनमेंसें जो बीज निकलते हैं उनको वलाबीज अथवा बीजबंद कहते हैं. कंघीके वृक्षभी दो ढाई हाथ ऊंचे होते हैं और फूल पीले, फल चक्रकी समान और गोल होते हैं, इनको प्रायः बालक छापा करते हैं. इसके बीजभी खिरेंटीकी समान होते हैं. गंगेरनका वृक्ष सहदेईके वृक्षकी सदृश होता है किन्तु इसके पत्ते कुछ अधिक मोटे और दो अनीवाले होते हैं. इसके फूल गुलाबी रंगके होते हैं, और फलभी सहदेईसे बडे होते हैं, और फलके सूखनेपर उसके अपने आप पांच भाग हो जाते हैं. सहदेईके वृक्ष छोटे और बडे दो प्रकारके होते हैं, इसके पत्ते पतले और खरखरे होते हैं. इसके फल फूल पीले रंगके होते हैं, और फल छोटे २ गोल होते हैं और उसमें कांटे होते हैं. इनकी मात्रा २ मासेकी है.

लक्ष्मणानामानि ।

पुत्रकाकाररक्तालपविन्दुभिर्लाञ्छिता सदा । लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत् ॥ १२६

भाषा–लक्ष्मणा वेल पुत्रकके सदृश होती है और पत्तोंपर रक्तके सदृश लाल छोटी छोटी बूंदें होती हैं, इसकी आकृति तथा गंध बकरेके समान होता है. लक्ष्मणा, पुत्रजननी ये दो लक्ष्मणाके संस्कृत नाम हैं. (नागपत्री, पुत्रदा, पुत्रकन्दा, पुच्छदा, नागिनी, नागाह्वा, नागपुत्री, तूलिनी और मंजिका ये लक्ष्मणाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १२६ ॥

अनेक भाषाके लक्ष्मणाके नाम.

सं.–लक्ष्मणा.	म.–लक्ष्मणा.
हिं.–लक्ष्मणा.	गु.–हनुमानवेलो.

लक्ष्मणागुणाः ।

कथिता पुत्रदाऽवश्यं लक्ष्मणा मुनिपुङ्गवैः ।

भाषा–लक्ष्मणा अवश्य पुत्रको देनेवाली है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥

लक्ष्मणाका विशेष विवरण.

लक्ष्मणा औषधि बहुत कम मिलती है, यह कहीं कहीं पर्वत इत्यादिमें उत्पन्न होती है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके पत्ते चौडे होते हैं. उनपर लाल २ लाल चन्दनके समान बूँदेंसी पडी होती हैं, इसके नीचे सफेद रंगका कन्द होता है.

स्वर्णवल्लीनामानि ।

स्वर्णवल्ली रक्तफला काकायुः काकवल्लरी ।

भाषा—स्वर्णवल्ली, रक्तफला, काकायु और काकवल्लरी ये स्वर्णवल्लीके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके स्वर्णवल्लीके नाम.

सं.—स्वर्णवल्ली.	म.—सोनवेल, सोनुली.
हिं.—स्वर्णवल्ली.	गु.—स्वर्णवल्ली.

स्वर्णवल्लीगुणाः ।

स्वर्णवल्ली शिरःपीडां त्रिदोषान्हन्ति दुग्धदा ।

भाषा—स्वर्णवल्ली मस्तककी पीडा और तीनों दोषोंको हरनेवाली है, तथा स्त्रियोंका दूध बढानेवाली है ॥

स्वर्णवल्लीका विशेष विवरण.

स्वर्णवल्ली अर्थात् सोनवेल प्रायः पर्वत वाग और वनोंमें अधिक होती है, इसके पत्ते गोल अनींदार होते हैं, फल लाल लगते हैं, और इस लताका रंग सम्पूर्ण पीला होता है, इसी कारण इसका नाम स्वर्णलता है.

कार्पासीनामानि ।

कार्पासी तुण्डकेरी च समुद्रान्ता च कथ्यते ।

भाषा—कार्पासी, तुण्डकेरी, समुद्रान्ता ये कपासके संस्कृत नाम हैं. (बदरा, पट्द, बादरा, सूत्रपुष्पा, बदरी, कार्पासिका, कर्पासी, कर्पासकारिणी, चव्या, तुला, तुण्डकेरिका मरुद्भवा, पिचु, बादर, कार्पास पट्लुन और छादन ये कपासके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कपासके नाम.

सं.—कार्पासी.	अ.—हवुलकुतन.
हिं.—कपास, नरमावडी.	अं.—Cotton plant कॉटनप्लॅन्ट.
बं.—कार्पास.	
म.—कापशी.	ला.—Gossypium Herbaceum गॉसिपियं अर्बेसियम्.
गु.—कपास.	
क.—हत्ति, काडहत्ति.	
ते.—पत्तिचेट्टु.	
फा.—कुतन.	

कार्पासीगुणाः ।

कार्पासकी लघुः कोष्णा मधुरा वातनाशनी ।
तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तकृन्मूत्रवर्द्धनम् ॥ १२७॥
तत्कर्णपीडकानादपूयास्रावविनाशनम् । तद्बीजं स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरु ॥ १२८॥

भाषा—कपास हलकी, किञ्चित् गरम, मधुर और वातनाशक है. कपासके पत्ते वातनाशक, रुधिर करनेवाले, मूत्र बढानेवाले हैं और कानकी पीडा, कर्णनाद और पीव (राद) बहना इन सबको नष्ट करते हैं. कपासका फल दुग्धवर्द्धक, वीर्यको बढानेवाला, चिकना, कफकारी और भारी है ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

कपासका विशेष विवरण.

कपासके पेड सब हिंदुस्थानमें बहुत होते है, इसकी बडी खेती होती है. उत्तम उत्तम वस्त्रादिक सब कपासहीके बनते हैं, कपासके फूल पीले और बीचमें लाल होते हैं; उसमें गूलर तिकोने आते हैं, उनके भीतरसे कपास निकलती है, वह कपास चर्खीमें ओटी जाती है, उसमें जो बीज निकलते हैं उनको बिनौले कहते हैं, इसके पत्तेमें पांच अनी होती हैं जैसे अरंडके पत्तोंमें होती है, परन्तु इनसे बहुत छोटे होते हैं; एक काली कपास होती है जिसके फूल काले और बिनौलेभी काले होते हैं; एक नरमावाडी होती है, जिसके पेड बडे बडे होते हैं, फल फूल बारहों महीने आते हैं. उसकी रुई नर्म होती है, बिनौले हरे होते हैं, ये सब कपासहीके भेद हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी हैं.

वंशनामानि ।

वंशस्त्वक्सारकर्मारस्त्वचिसारस्तृणध्वजः ।
शतपर्वा शतफली वेणुमस्करतेजनाः ॥ १२९॥

भाषा—वंश, त्वक्सार, कर्मार, त्वचिसार, तृणध्वज, शतपर्वा, शतफली, वेणु, मस्कर, तेजन ये बांसके संस्कृत नाम हैं. (किलाटी, पुष्पघातक, बृहत्तृण, किष्कुपर्वा, वन्य, सुपर्वा, तृणकेतुक, कण्टालु, कण्टकी, महाबल, दृढ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्रन्थि, दृढपत्र, धनुद्रुम, धानुष्य, दृढकाण्ड, कीचक, कुक्षिरन्ध्र, षट्पदालय, कण्ठ, मृत्युबीज, वादनीय, फलान्तक, तृणकेतु, पर्वयोनि, सुपर्वन्, तृणराजक, बहुपर्वन् और दुरारूह ये बांसके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १२९ ॥

अनेक भाषाके बांसके नाम.

सं.–वंश.	वेन्नेमुक, वेन्नशोणे, वेत्तु.
हिं.–वांस.	ता.–मुंगिल.
बं.–वांश.	वम्.–माण्डगय.
म.–वेळु, पोकळ वेळु, भरीव वेळु.	अं.–Bamboo cane बँबूकेन.
को.–कळक.	ला.–Bambusa Vulgaris बाँबुसा वल्गेरिस्.
गु.–बांश.	
क.–गळा, विदिरु	
ते.–कीचकई, वेदुरु,	

वंशगुणाः।

वंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो वास्तिशोधनः। छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्रव्रणशोथजित् ॥ १३० ॥ तत्करीरः कटुः पाके रसे रूक्षो गुरुः सरः। कषायः कफकृत्स्वादुर्विदाही वातपित्तलः ॥ १३१ ॥ तद्यवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः। वातपित्तकरा उष्णा बद्धमूत्रा कफापहाः ॥ १३२ ॥

भाषा–बांस दस्तावर, शीतल, स्वादिष्ठ, कसैला, वस्तिशोधक, मलच्छेदक है और कफ, पित्त, कोढ, रुधिरविकार, व्रण तथा सूजनको नष्ट करता है. बांसके अंकुर पाकमें तथा रसमें चरपरे, रूक्ष, भारी, दस्तावर, कसैले, कफकारक, स्वादिष्ठ, दाहकारक हैं और वात तथा पित्तको बढानेवाले हैं. बांसके चावल दस्तावर, रूक्ष, कसैले, पाकमें चरपरे, वातकारक, पित्तकारक, गरम, मूत्ररोधक और कफनाशक हैं ॥ १३०–१३२ ॥

बांसका विशेष विवरण.

बांस दो प्रकारके होते हैं. एक खुक्कल अर्थात् पोला और दूसरा ठोस अर्थात् कठा, ये वन जंगल और पर्वतोंपर बहुत उत्पन्न होते हैं; पत्ते तीन चार अंगुल लम्बे और एक अंगुल चौडे होते हैं. कभी कभी दैवयोगसे दश पांच वर्षमें बांस फलताभी है. इसके फूल सफेद छोटे छोटे होते हैं; उसमें चावल निकलते हैं; ये दीन लोगोंके खान पानमें आते हैं. पोले बांसको फोडनेसे उसके भीतर वंशलोचन निकलता है, वही असली वंशलोचन है. प्रयोगमें इसकी कोपल, छाल और चावल लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

नलनामानि।

नलः पोटगलः शून्यमध्यश्च धमनस्तथा।

भाषा–नल, पोटगल, शून्यमध्य, धमन ये नलके संस्कृत नाम हैं. (नाल, कलंक, कुक्षिरन्ध्र, कीचक, दीर्घवंश, विभीषण, छिद्रान्त, मृदुपत्र, वंशपत्र, मृदुच्छद, लालवंश, नट, नटी, नर्त्तक और मृत्युपुष्प ये नलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके नलके नाम.

सं.–नल.	कच्छी–आंचा.
हिं.–नल, नरसल.	अं.-Indian Tobacco इन्डियन टोबेको.
बं.–नल.	ला.–Lobelia Nicotia Naefolia लोबिलिया निकोटिया नेफोलिया.
म.–नळ, देवनळ.	
गु.–नडसल, नाळी.	
क.–देवनाल. उच्चगोळिवे.	
ते.–भुंगुएडुरू.	

नलगुणाः।

नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफरक्तजित्। उष्णो हृद्बस्तियोन्यर्त्तिदाहपित्तविसर्पहृत् ॥ १३३ ॥

भाषा–नरसल मधुर, कडवी, कसैली, गरम है और कफ, रुधिरविकार, हृदयकी पीडा, मूत्राशयकी पीडा, योनिकी पीडा, दाह, पित्त तथा विसर्पको नष्ट करती है ॥ १३३ ॥

नलका विशेष विवरण.

नरसल अर्थात् नल बांसके समान जलाशयके निकट जंगलोंमें उत्पन्न होते हैं; इसके पत्ते ईखके पत्तोंके समान होते हैं; और इसकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आकृतिभी ईखहीके सदृश होती है, जिस प्रकार गन्नेके ऊपर अगोल होता है; उसी प्रकार इसके ऊपरभी होता है; परन्तु ऊंचावमें ईखसे तिगुना ऊंचा होता है. यह भीतरसे पोला होता है. प्रयोगमें इसकी डंडी और पत्ते लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

भद्रमुञ्जमुञ्जनामानि।

भद्रमुञ्जः शरो बाणस्तेजनश्चक्षुवेष्टनः। मुञ्जो मुञ्जातको बाणः स्थूलदर्भः सुमेखलः॥ १३४॥

भाषा-भद्रमुंज, शर, बाण, तेजन और चक्षुवेष्टन ये रामसरके संस्कृत नाम हैं. (इषु, कांड, उत्कट, सायक, इक्षुवेष्टन, क्षुर, इक्षुर, क्षुरिकापत्र, विशिख ये रामसरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) मुञ्ज, मुंजातक, बाण, स्थूलदर्भ, सुमेखल ये मूंजके संस्कृत नाम हैं. (इक्षुकाण्ड, मौञ्जी, तृणाख्य, ब्रह्मण्य, तेजनाह्वय, वानीरक, मुंजनक, शीरी, दर्भाह्वय, दुर्मूल, दृढतृण, दृढमूल, बहुप्रज, रञ्जन और शक्रभंग ये मूंजके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ १३४॥

अनेक भाषाके मूंज और रामसरके नाम.

सं.-भद्रमुञ्ज, मुञ्ज.	तै.-मुंजगड्डि; अनिस्फुलिंग.
हिं.-रामसर, मूंज.	ला.-Saccharum Munga साचारम मूंगा.
बं.-मुंज, रामशर, सरपत.	
म.-मोळ.	

मुंजद्वयगुणाः।

मुंजद्वयं तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा। दाहतृष्णाविसर्पामूत्रकृच्छ्राक्षिरोगजित्॥ दोषत्रयहरं वृष्यं मेखलासूपयुज्यते॥ १३५॥

भाषा-दोनों प्रकारकी मूंज मधुर, कसैली, शीतल, वीर्यवर्द्धक है और दाह, तृषा, विसर्प, आम, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग तथा तीनों दोषोंको नष्ट करती है, मूंज मेखला जो बालककी कमरमें उपनयनके समयमें कसी जाती है, उसमें उपयोग की जाती है॥ १३५॥

मूंजका और भद्रमूंजका विशेष विवरण.

मूंज और भद्रमूंजके झुण्डभी नलके समान जलाशयके समीप या रेतेमें बहुत होते हैं; इसको वीणभी कहते हैं, इसके वल्कलको मूंज कहते हैं. फूल फल हरेदार लम्बे लम्बे सफेद रंगके होते हैं. प्रयोगमें इसकी जड और पत्ते लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

काशनामानि।

काशः काशेक्षुरुद्दिष्टः स स्यादिक्षुरसस्तथा। इक्ष्वालिकेक्षुगन्धा च तथा पोटगलः स्मृतः॥ १३६॥

भाषा-काश, काशेक्षु, इक्षुरस, इक्ष्वालिका, इक्षुगंधा, पोटगल ये कासके संस्कृत नाम हैं. (सुकांड, नादेय, नीरज, काकेक्षु, वायसेशिरि, कर्मभूल, इक्षुरम्लिका, इषीका, अश्ववाला, चामरपुष्प, चामरपुष्पक, काशी, काशा, कांडेक्षु, अमरपुष्पक, नाशक, इनहासक, इक्षारि, इक्षुर, इक्षुकांड, शारद, सितपुष्पक, दर्भपत्र, लेखन, कांड, कांडक, कच्छलकारक और दर्भपत्र ये कासके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)१३६

अनेक भाषाके कासके नाम.

सं.-काश.	क.-काजुल, गलगिनहुल्लु.
हिं.-कास.	ते.-रेलु.
बं.-केशेघास.	ला.-Coix Barbata कुइक्स बारबेटा.
म.-कसई.	
गु.-कांसडो.	

काशगुणाः।

काशः स्यान्मधुरस्तिक्तः स्वादुपाको हिमः सरः। मूत्रकृच्छ्राश्मरीहारक्षयपित्तजरोगजित्॥ १३७॥

भाषा-कास मधुर, कडवा, पाकमें मधुर, शीतल, दस्तावर है और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह, रुधिरविकार, क्षय तथा पित्तसम्बन्धी रोगोंको नष्ट करता है॥ १३७॥

कासका विशेष विवरण

कास नदियोंके किनारे कीचडमें उत्पन्न होती है, इसके पत्ते बाभरके समान बरन् एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकारकी देशी वाभरही होती है. इसके फूल सफेद अधिक शोभायमान मञ्जरीके समान आते हैं. इसकी मात्रा ६ मासेतककी है.

गुन्द्रनामानि ।

गुन्द्रः पटेरको रच्छः शृङ्गवेराभमूलकः ।

भाषा–गुन्द्र, पटेरक, रच्छ और शृंगवेराभमूलक ये पटेरके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके पटेरके नाम.

सं.–गुंद्र.	अं.–Elephant Grass एलेफंट ग्रास.
हिं.–पटेर, गोंदपटेर.	ला.–Typha Eliphantina टाइफा एलिफंटाइना.
म.–पाणीगवत.	
गु.–पुन्द्रखड.	
क.–आपु.	

गुन्द्रगुणाः ।

गुन्द्रः कषायो मधुरः शिशिरः पित्तरक्तजित् । स्तन्यशुक्रकृजोमूत्रशोधनो मूत्रकृच्छ्रहृत् ॥ १३८ ॥

भाषा–पटेर कसैली, मधुर, शीतल, दुग्धवर्द्धक है और पित्त, रुधिरविकार तथा मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाली है और वीर्य, रज तथा मूत्रको शुद्ध करती है ॥ १३८ ॥

गुंद्रका विशेष विवरण.

गुन्द्रपटेर अर्थात् गोंदपटेर पानीमें होती है, इसके पत्ते बहुत लम्बे चार पांच फूटतक और एक इंच चौडे होते हैं, पत्तेमें पत्ते निकलते हैं, पत्ते मोटे बहुत होते हैं बरन् बीचमेंसे चिर जाते हैं, उनके ऊपर एक वाल बाजरेके समान होती है, वालपर एक पतलीसी लकडी ऊपर और होती है. इनकी चटाई इत्यादि अनेक पदार्थ बनते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

एरकानामानि ।

एरका गुन्द्रमूला च शिविर्गुन्द्रा शरीति च ।

भाषा–एरका, गुन्द्रमूला, शिवि, गुन्द्रा और शरी ये मोथी तृणके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके मोथीतृणके नाम.

स.–एरका.	म.–एरका, पाणलव्हाळा.
हिं.–मोथीतृण.	गु.–एरका
बं.–होगला.	

एरकागुणाः ।

एरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वातकोपिनी । मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाहपित्तशोणितनाशिनी ॥ १३९ ॥

भाषा–मोथीतृण शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, वातको कुपित करनेवाली है और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह, पित्त तथा रुधिरको नष्ट करती है ॥ १३९ ॥

मोथीतृणका विशेष विवरण.

मोथीतृण जलमें उत्पन्न होती है, इसके पत्ते बडे बडे लम्बे होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कुशक्षुरपत्रकुशनामानि ।

कुशो दर्भस्तथा वर्हिः सूच्यग्रो यज्ञभूषणः । ततोऽन्यो दीर्घपत्रः स्यात्क्षुरपत्रस्तथैव च ॥ १४० ॥

भाषा–कुश, दर्भ, वर्हि, सूच्यग्र और यज्ञभूषण ये कुशाके संस्कृत नाम हैं और जिसके पत्ते लम्बे होते हैं वह डाभ कहाती है, इसको क्षुरपत्र कहते हैं ॥ १४० ॥

अनेक भाषाके दाभके नाम.

सं.–कुश.	तु.–दर्भेपांति.
हिं.–कुशा, दाभ, डाभ.	मला.–अत्तुदर्भ.
म.–बारीक दर्भ, मोठे दर्भ.	तै.–कुश दुर्वालु, दुर्भ.
गु.–कुश, दाभडो.	ला.–Andropogon Nardaides एंड्रोपोगन नारडेइडिस.
क.–बिलिय बुट्टकुशि.	

कुशद्वयगुणाः ।

दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम् । मूत्रकृच्छ्राश्मरीतृष्णाबस्तिरुक्प्रदरास्रजित् १४१

भाषा–कुशा और दाभ त्रिदोषनाशक, मधुर, कसैली, शीतल हैं और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, तृषा, बास्तिरोग, प्रदर तथा रुधिरविकारको दूर करती हैं ॥ १४१ ॥

कुशका विशेष विवरण.

कुशा और दर्भ दोनों एकही जातिके तृण हैं, यह रेतली भूमिमें भूडों और जंगलोंमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न होती है, इसके पत्ते कासहीके समान होते हैं, तृणोंहीको पत्ते समझना. वे सुईके समान नोकदार होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कत्तृणनामानि ।

कत्तृणं रोहिषं देवजग्धं सौगन्धिकं तथा । भूतीकं व्यामपौरे च श्यामकं धूमगन्धिकम् ॥ १४२ ॥

भाषा-कत्तृण, रोहिष, देवजग्ध, सौगंन्धिक, भूतीक, व्याम, पौर, श्यामक, धूमगन्धिक ये रोहिषतृणके संस्कृत नाम हैं. (सुगन्ध तृणशीत, सुशीतल, रौहिष, रोहिषतृण, कातृण, भूति, ध्यामक और पूतिमुद्गल ये रोहिषतृणके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १४२ ॥

अनेक भाषाके रोहिसके नाम.

सं.-कत्तृण.	फा.-खवालमानून.
हिं.-रोहिस, सौधिया, गंधेजघास.	अ.-अजस्वर.
बं.-रामकर्पूर.	तै.-कामंचिगड्डि.
म.-सुगन्धरोहिषतृण.	ला.-Andropogon Schoenathus एंड्रोपोगन् सिउन्याथस्.
गु.-रींस.	
क.-किरुगंजणि.	

कत्तृणगुणाः ।

रोहिषं तुवरं तिक्तं कटुपाकं व्यपोहति । हृत्कण्ठव्याधिपित्तास्रशूलकासकफज्वरान् ॥ १४३ ॥

भाषा-रोहिषतृण कसैला, कडवा, पाकमें चरपरा है और हृदयरोग, कंठरोग, पित्त, रुधिरविकार, शूल, खांसी, कफ तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ १४३ ॥

रोहिसतृणका विशेष विवरण.

रोहिषतृण लम्बे और सुगन्धित मालवे राजपूतानेके जंगलमें बहुत होते हैं. इसके पत्ते छोटे छोटे और हरे हरे अत्यन्त शोभायमान होते हैं, इसके सर्वांगमें बहुत सुगन्धि आती है. दूसरे रोहिषतृणके कुछ बडे क्षुप होते हैं. उसका तैल निकलता है, उसमें बहुत सुगंध होती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

भूतृणनामानि ।

गुह्यबीजं तु भूतीकं सुगन्धं जम्बुकप्रियम् । भूतृणं तु भवेच्छत्रा मालातृणकमित्यपि ॥ १४४ ॥

भाषा-गुह्यबीज, भूतीक, सुगंध, जम्बुकप्रिय, भूतृण, छत्रा और मालातृण ये भूतृणके संस्कृत नाम हैं. (रोहिण, भूति, कुटुंबक, सुमाली, अतिच्छत्र, अतिगंध, गुच्छाल, गुच्छ, बधिर, शृंगारोह, पुंस्त्वविग्रह ये भूतृणके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १४४ ॥

अनेक भाषाके शरबानके नाम.

सं.-भूतृण.	ता.-कक्कुमारिप्पल.
हिं.-शरबाण.	अं.-Roussa Grass रौस्सा ग्रास.
म.-पाण्यांतील वाळा	
गु.-सुगंधरोंस.	ला.-Andropogon Martini अंड्रोपोगन् मार्टिनि.
क.-परिमलद् गंजाणि, शंथि, बोडे.	

भूतृणगुणाः ।

भूतृणं कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रेचनं लघु । विदाहि दीपनं रूक्षमनेत्र्यं मुखशोधनम् ॥ अवृष्यं बहुविट्कं च पित्तरक्तप्रदूषणम् ॥ १४५ ॥

भाषा-भूतृण चरपरा, कडवा, तीक्ष्ण, गरम, रेचक, हलका, दाहकारक, अग्निप्रदीपक, रूक्ष, नेत्रोंके लिये अहितकारी, मुखशोधक, वीर्यको अहितकारी और भेदक है तथा पित्त और रुधिरको कुपित करनेवाला है ॥ १४५ ॥

भूतृणका विशेष विवरण.

भूतृण जंगल और बागादिक स्थानोंमें अधिक उत्पन्न होता है, इसमें गुच्छेसे लगते हैं और बीज छोटे छोटे होते हैं. प्रयोगमें इसकी जड लेते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

नीलदूर्वानामानि ।

नीलदूर्वा रुहाऽनन्ता भार्गवी शतपर्विका । शष्पं सहस्रवीर्या च शतवल्ली च कीर्तिता ॥ १४६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–नीलदूर्वा, रुहा, अनन्ता, भार्गवी, शतपर्विका, शष्प, सहस्रवीर्या, शतवल्ली ये नीली दूबके संस्कृत नाम हैं. (शाद्वल, हरित, शतपर्वा, शीतकुम्भी, शीतला, वामिनी, हरिता, शाम्भवी, श्यामा, शीता, अमृता, धूर्ता, शतग्रन्थि, अनुवल्लिका, शिवा, शिवेष्टा, मंगला, जया, भूतहन्त्री, शतमूला, महौषधी, विजया, गौरी, शान्ता, गुणा, नन्दा, महावरा, हरसालिका, तिक्तपर्वा, दुर्मरा, बहुवीर्या, हरिता, हरितालो, कच्छरुहा, अमरी, सौम्या, शीतली और असितालता ये नीली दूबके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १४६ ॥

अनेक भाषाके हरी दूबके नाम.

सं.–नीलदूर्वा.	मला.–करुकपुल्लु.
हिं.–हरी दूब,नीलीदूब.	गो.–जिरवांकुर.
बं.–नीलदूर्वा, दूर्वा.	उत्–दुब.
म.–निळी दूर्वा, हरळी, काळी दूर्वा.	अं.–Creeping Cynodan क्रीपिंग साइनोडन.
गु.–नीलीध्रो.	ला.–Cynodan Dactylan साइनोडन डेक्टिलन्.
क.–हसुगरुके.	
तै.–दूर्वालु, गरिके.	
ता.–अरुगम् पुल्लु.	
तु.–कडिकेपांति.	

नीलदूर्वागुणाः।

नीलदूर्वा हिमा तिक्ता मधुरा व्रणरोपणी। कफपित्तास्रवीसर्पतृष्णादाहत्वगामयान् ॥ १४७॥

भाषा–नीली दूब शीतल, कडवी, मधुर, कसैली है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, विसर्प, तृषा, दाह तथा त्वचाके रोगोंको नष्ट करती है ॥ १४७ ॥

नीली दूबका विशेष विवरण.

नीली दूब जंगलमें बहुत होती है, भूमिही भूमिमें दूबकी बेलसी चलती हैं और गांठ गांठपर जडभी पकडती जाती हैं; उसको दूबके नाल कहते हैं, ऊपरको नहीं उठती और पृथ्वीपरही छत्तेसे फैल जाते हैं, पत्ते नालोंपर छोटे छोटे और लम्बे लम्बे लगे होते हैं और इसके नाल बडे लम्बे लम्बे फैलते चले जाते हैं; यह सम्पूर्ण भारतवर्षमें प्रसिद्ध है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

श्वेतदूर्वानामानि।

दूर्वा शुक्ला तु गोलोमी शतवीर्या च कथ्यते।

भाषा–श्वेतदूर्वा, गोलोमी, शतवीर्या ये सफेद दूबके संस्कृत नाम हैं (गण्डाली, शकुलाक्षक, सितदूर्वा, शतपर्वा, सितालता, सिता, श्वेता, सिताख्या, चण्डा, भद्रा, भार्गवी, दुर्मरा, गौरी, विघ्नेशानकान्ता, अनंता, विद्या, श्वेतकाण्डा, प्रचण्डा, सहस्रवीर्या, सहस्रकाण्डा, सहस्रपर्वा, सुरवल्लभा, शुभा, सुपर्वा, सितच्छदा, स्वच्छा और कच्छान्तरुहा ये सफेद दूबके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सफेद दूबके नाम.

सं.–श्वेतदूर्वा.	गु.–धोलीध्रो.
हिं.–सफेद दूब.	
बं.–सादा दूर्वा.	क.–बिलियकरुके.
म.–श्वेत दूर्वा, पांढरी हरियाळी.	तै.–गरिकेगडि.

श्वेतदूर्वागुणाः।

श्वेता दूर्वा कषाया स्यात्सग्राही व्रण्या च जीवनी। तिक्ता हिमा विसर्पासृक्तृट्पित्तकफदाहहृत् ॥ १४८ ॥

भाषा–सफेद दूब कसैली, मधुर, व्रणमें हितकारी, जीवनरूप, कडवी, शीतल है और विसर्प, रक्तविकार, तृषा, पित्त, कफ तथा दाहको नष्ट करती है ॥ १४८ ॥

सफेद दूबका विशेष विवरण.

सफेद दूबकाभी नीली दूब अर्थात् हरी दूबकेसा कहीं कहीं कोई छत्ता हो जाता है. वह बहुत सफेद होती है परन्तु सब आकृति हरीही दूबकेसी होती है, यह बहुत थोडी मिलती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

गण्डदूर्वानामानि।

गण्डदूर्वा तु गण्डाली मत्स्याक्षी शकुलाक्षकः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-गण्डदूर्वा, गण्डाली, मत्स्याक्षी, शकुलाक्षक ये गाँडर दूबके संस्कृत नाम हैं. (तीव्रा, मत्स्याक्षिका, जलस्था, ग्रन्थिपर्णी, वाह्लीं, शकुलादनी, अतितीव्रा, मत्स्याली, ग्रन्थिला, वारुणी, मतिनेत्रा, श्यामग्रन्थि, सूचिपत्रा, श्यामकाण्डा, कलाया, शकुलाक्षी, चित्रा और शकुलाक्षका ये गाँडर दूबके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके गांडर दूबके नाम.

सं.-गंडदूर्वा.	गु.-गांठावाली धो, गंडूर धो.
हिं.-गांडरदूब.	क.-मीनगत्ते.
बं.-गेंटेदूर्वा.	तै.-पोन्नगण्डी.
म.-गण्डूर दूर्वा, गाँठीहरळी.	

गण्डदूर्वागुणाः ।

गण्डदूर्वा हिमा लोहद्राविणी ग्राहिणी लघुः । तिक्ता कषाया मधुरा वातकृत्कटुपाकिनी ॥ दाहतृष्णाबलासास्रकुष्ठपित्तज्वरापहा॥ १४९॥

भाषा-गांडरदूब शीतल, लोहद्रावक, ग्राही, हलकी, कडवी, कसैली, मधुर, वातकारक, पाकमें चरपरी है और दाह, तृषा, कफ, रुधिरविकार, कोढ, पित्त तथा ज्वरको नष्ट करती है ॥ १४९ ॥

गाँडरदूबका विशेष विवरण.

गाँडर एक प्रकारकी घास होती है, इसके क्षुप दो दो तीन तीन फुट ऊँचे हो जाते हैं, जलाशयके स्थानमें कोसोंतक लगातार इसके खेत होते हैं. इसके तृण काँसके समान लम्बे लम्बे होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

विदारीकंदनामानि ।

विदारीकन्द एवान्यैश्चर्मकारालुको मतः । अनूपसम्भवे देशे वाराह इव लोमवान् ॥ १५० ॥ विदारी स्वादुकन्दा च सा तु क्रोष्ट्री सिता स्मृता । इक्षुगन्धा क्षीरवल्ली क्षीरशुक्ला पयस्विनी ॥ वाराहवदना गृष्टिर्बदरेत्यपि कथ्यते ॥ १५१

भाषा-जहां अधिक पानी होता है अर्थात् अनूपदेशमें सूअरके सदृश रोमवाला वाराहीकंद होता है. वाराहीकन्द, चर्मकारालुक, विदारी, स्वादुकन्दा, क्रोष्ट्री, सिता, इक्षुगन्धा, क्षीरवल्ली, क्षीरशुक्ला, पयस्विनी, वाराहवदना, गृष्टि, बदरा ये विदारी कन्दके संस्कृत नाम हैं. (वृष्यकन्दा, त्रिपर्णी, शुक्ला, गजवाजिप्रिया, विदारिका, शृगालिका, वृषवर्द्धिनी, विडाली, वृषवल्लिका, भूकूष्माण्डी, स्वादुलता, गजेष्टा, वाजिवल्लभा, गन्धफला, वृक्षवल्ली और भूमिकूष्माण्ड ये विदारीकन्दके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १५० ॥ १५१ ॥

अनेक भाषाके विदारीकंदके नाम.

सं.-वाराहीकन्द.	गु.-विदारीकन्द. फगवेलानो कंद, भोकोळु.
हिं.-विदारीकन्द. वाराहीकन्द, विलाईकंद.	क.-नेलकुंबल.
बं.-भुईकुम्हडा.	तै.-नेलगुंबुडु.
म.-भुइकोहळा.	ला.-Puraria Tuberosa प्युरेरिया ट्युबरोझा.
कों.-बेंदरीचा कांदा.	

विदारीकंदगुणाः ।

विदारी मधुरा स्निग्धा बृंहणी स्तन्यशुक्रदा । शीता स्वर्या मूत्रला च जीवनी बलवर्णदा ॥ गुरुः पित्तास्रपवनदाहान्हन्ति रसायनी ॥ १५२ ॥

भाषा-विदारीकंद मधुर, चिकना, पुष्टिकारक, दुग्धवर्द्धक, शीतल, स्वरको हितकारी, मूत्रको बढानेवाला, जीवनरूप, बल तथा वर्णको देनेवाला, भारी, रसायन है और पित्त, रुधिरविकार, वात तथा दाहको नष्ट करनेवाला है ॥ १५२ ॥

विदारीकंदका विशेष विवरण.

विदारीकन्दकी वेल अनूपदेशके जंगलोंमें होती है, कोई कोई उसको चर्मकारालुकभी कहते हैं, यह कन्द वराहके समान रोमयुक्त उत्पन्न होता है, इसके पत्ते बडे बडे घुइयांके समान होते हैं, इसके नीचे जडमें बहुत बडा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कन्द निकलता है, उसका रंग लाली लिये होता है, दूसरे क्षीरविदारीकन्दकीभी बेलही चलती है, इसका कन्दभी मूलीके समान होता है, पत्ते एक एक शाखामें सात सात आठ आठ होते हैं, कन्दका रंग लाल और सफेद होता है. इसकी मात्रा आधे तोलेकी है.

मुशलीकन्दनामानि ।

तालमूली तु विद्वद्भिर्मुशली परिकीर्त्तिता ।

भाषा–तालमूली, मुशली ये मुसलीके संस्कृत नाम हैं. (खलनी, तालमूलिका, तालिका, अर्शोघ्नी, ताली, सुवहा, तालपत्रिका, गोधापदी, हेमपुष्पी, भूताली, दीर्घकन्दिका, तालपत्री, कांचनपुष्पिका, महावृष्या, वृष्यकन्दा और खर्जूरी ये मुसलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मुसलीके नाम.

सं.–तालमूली, मुशली.	क.–नेलताडी.
हिं.–मुसली श्याम, मुसली सफेद.	तै.–निलयतलि.
बं.–तालमूली.	ला.–Hypoxis Orchioides हाइपोक्सिज आर्चिओइडिस्.
म.–काळी मुसळी, पांढरी मुसळी.	
गु.–मुसली.	

मुशलीगुणाः ।

मुशली मधुरा वृष्या वीर्योष्णा बृंहणी गुरुः ।
तिक्ता रसायनी हन्ति गुदजान्यनिलं तथा ॥ १५३ ॥

भाषा–मुसली मधुर, वीर्यवर्द्धक, उष्णवीर्यवाली, पुष्टिकारक, भारी, कडवी, रसायनरूप है और गुदजरोग (ववासीर, भगंदर आदि) तथा वातको दूर करनेवाली है ॥ १५३ ॥

मुसलीका विशेष विवरण.

काली मुसली और सफेद मुसली इन भेदोंसे दो प्रकारकी मुसली है, इसमें सफेद मुसलीकी अपेक्षा काली मुसली उत्तम है, काली मुसलीका क्षुप इस प्रकारका होता है कि, जैसे चार पांच पत्तोंवाला खजूरका नवीन बिरवा होता है, इसमें छोटे छोटे पीले फूल आते हैं, उसकी जडके नीचे अंगुलीके समान मूली होती है, उसके ऊपरकी छाल भूरे रंगकी होती है और भीतरका गर्भ सफेद रंगका निकलता है, उसको मुसली कहते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

शतावरीमहाशतावरीनामानि ।

शतावरी बहुसुता भीरुरिन्दीवरी वरी । नारायणी शतपदी शतवीर्या च पीवरी ॥ १५४ ॥
महाशतावरी चान्या शतमूल्यर्द्धकण्टिका ।
सहस्रवीर्या हेतुश्च ऋष्यप्रोक्ता महोदरी १५५॥

भाषा–शतावरी, बहुसुता, भीरु, इंदीवरी, वरी, नारायणी शतपदी, शतवीर्या, पीवरी ये शतावरीके संस्कृत नाम हैं. (शतमूली, महाशीता, भीरुपत्री, ऋष्यप्रोक्ता, अहेरु, अभीरु, अभीरुपत्री, महापुरुषदन्ता, रंगिणी, द्वीपिशत्रु, ऋष्यगता, कांचनकारिणी, मदभंजिनी, पीवरा, वृष्या, दिव्या, द्वीपिका, दरकण्टिका, सूक्ष्मपत्रा, सूक्ष्मपत्रिका, सुपत्रा, बहुमूला, शताह्वया, द्वीपशत्रु, स्वादुरसा, शताह्वा, लघुपर्णिका, जटा, आत्मगुप्ता, मूला, महौषधी, मधुरा, केशिका, शतपत्रिका, विश्वस्था, वैष्णवी, काष्णी, वासुदेवप्रियंकरी, दुर्मना, तैलवल्ली, अर्धकण्टिका और सुपत्रिका ये शतावरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) महाशतावरी, शतमूली, अर्द्धकण्टिका, सहस्रवीर्या, हेतु, ऋष्या, महोदरी ये बडी शतावरके संस्कृत नाम हैं. (सुरसा, महापुरुषदन्तिका, वीरा, तुरंगिणी, बहुपत्रिका, ऊर्ध्वकण्ठी, महावीर्या, फणिजिह्वा, महती, सुवीर्या और स्वादुरस्या ये बडी शतावरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥१५४॥१५५॥

अनेक भाषाके शतावरके नाम.

सं.–शतावरी, महाशतावरी.	क.–किरियआसडी.
हिं.–शतावर, बडी शतावर.	तै.–एट्टुमट्टिंडा.
बं.–शतमूली.	फा.–गुर्जदस्ती.
म.–शतावरी, शतमूळी, सहस्रमुळी.	अ.–शकाकुलमिश्री.
गु.–सेमूखा महाशतावरी.	अं.–Asparagus Racemosus एस्पेरेगस् रेसिमोसस.
	ला.–A. adscendens ए. एडसेंडेन्स्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शतावरीगुणाः ।

शतावरी गुरुः शीता तिक्ता स्वाद्वी रसायनी । मेधाग्निपुष्टिदा स्निग्धा नेत्र्या गुल्मातिसारजित् ॥ शुक्रस्तन्यकरी बल्या वातपित्तास्रशोथजित् ॥ १५६ ॥

भाषा-शतावर भारी, शीतल, कडवी, मधुर, रसायनरूप, बुद्धिके लिये उत्तम, अग्निवर्द्धक, स्निग्ध, नेत्रोंको हितकारी वीर्यवर्द्धक, दुग्धको बढानेवाली, बलदायक है और गुल्म, अतिसार, वात, पित्त, रक्तविकार तथा शोथको नष्ट करती है ॥ १५६ ॥

महाशतावरीगुणाः ।

महाशतावरी मेध्या हृद्या वृष्या रसायनी । शीतवीर्या निहन्त्यर्शोग्रहणीनयनामयान् ॥ १५७ ॥

भाषा-बडी शतावर बुद्धिके लिये उत्तम, हृदयको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, रसायनरूप, शीतवीर्य है और बवासीर, संग्रहणी तथा नेत्ररोगको दूर करती है ॥ १५७ ॥

शतावरका विशेष विवरण.

शतावरकी वेल जंगलोंमें होती है, वेलका रंग सफेदी लिये होता है, इसके पत्ते अत्यन्त छोटे छोटे सोयेके पत्तोंके समान होते हैं, इसकी वेलको कोई कोई वैद्यलोग एकलकण्ठी कहते हैं, इसमें कांटें वहुत होते हैं, फूल सफेद छोटे होते हैं, वडी शतावरीभी इसी प्रकारकी होती है, इससे कुछ अधिक वडी होती है, और इसकी अनन्त मूल होती हैं और कुछ भेद नहीं होता. शतावरी वर्षाके आरम्भमें हरी होती है और फूल आते हैं. एक वृक्षके नीचे सैकडों जड होती हैं इससेही शतावरी कहते हैं. इसकी मात्रा आधे तोलेकी है.

अश्वगन्धानामानि ।

गन्धान्ता वाजिनामादिरश्वगन्धा हयाह्वया । वराहकर्णी वरदा बलदा कुष्ठगन्धिनी॥ १५८॥

भाषा-गंधा अंतमें और वाजिनाम आदिमें जिनके ऐसे शब्द, अश्वगन्धा, हयाह्वया (जितने अश्ववाचक शब्द हैं वे), वराहकर्णी, वरदा, बलदा, गंधिनी ये असगंधके संस्कृत नाम हैं (वाजिगन्धा, कटुका, अश्वावरोहक, वाराहकर्णी, तुरगी, बल्या, वाजिकरी, हया, अश्वकन्दिका, काम्बुका, अश्वारोहा, अश्वगन्धिका, तुरगगंधा, कम्बुका, अश्वावरोहिका, बलजा, वाजिनी, अवरोहिका, वराहकर्णी, पुष्टिदा, पुष्टिपीवरा, पलाशपर्णी, वातघ्नी, श्यामला, कामरूपिणी, काला, प्रियंकरी, गंधपत्री, हयप्रिया, वाराहपत्री, वरगात्रकरी और कुष्ठगन्धा ये असगन्धके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १५८ ॥

अनेक भाषाके असगंधके नाम.

सं.-अश्वगंधा.	ता.-अश्वगंडि.
हिं.-असगंध.	मला.-अमुकिरं, पिवटे.
बं.-अश्वगंधा.	फा.-मेहेमन् वररी.
म.-आस्कंध.	अं-Winter Cherry वुइंटर चेरि.
दे.-ढोरगुंज.	ला.-Phisalis Somnifera फाइसेलिस् सोम्निफेरा, Withania Somnifera उइथानिया सोम्नीफेरा.
गु.-आसोंध.	
क.-अंगरबेरू, हिरेबेरु, अमाकिरे, हिरे मद्दिनबेरु.	
तै.-पिल्लिआंड्रा, पेन्नेरु, अश्वगंधि.	

अश्वगंधागुणाः ।

अश्वगन्धाऽनिलश्लेष्मश्वित्रशोथक्षयापहा । बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णातिशुक्रला ॥ १५९ ॥

भाषा-असगन्ध बलदायक, रसायनरूप, कडवी, कसैली, गरम, वीर्यको अत्यन्त बढानेवाली है और वायु, कफ, श्वेत कोढ, सूजन तथा क्षयको क्षय करती है ॥ १५९ ॥

असगंधका विशेष विवरण.

असगन्धके क्षुप छोटे छोटे जंगलमें और पहाडमें होते हैं. इसके पत्ते लम्बे लम्बे कुरबकके समान होते हैं; और इसके फल पनसोंखेके समान गोल और लाल होते हैं; उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीचे छोटी मूलीके समान कन्द होता है; उस कन्दको निकालकर सुखा लेते हैं; उसको असगंध कहते हैं. प्रयोगमें इसकी जड लेते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी हैं.

पाठानामानि ।

पाठाम्बष्ठाम्बष्ठकी च प्राचीना पापचेलिका । एकाष्ठीला रसा प्रोक्ता पाठिका वरातिक्तिका ॥ १६० ॥

भाषा–पाठा, अम्बष्ठा, अम्बष्ठकी, प्राचीना, पापचेलिका, एकाष्ठीला, रसा, पाठिका, वरातिक्तिका ये पाढके संस्कृत नाम हैं. (पापचेली, कुचेली, कुचेला, छिन्नवेषिका, अम्बष्ठिका, यूथिका, स्थापनी, श्रेयस्करी, विद्धकर्णिका, तिक्तपुष्पा, बृहत्तिक्ता, शिशिरा, वृकी, मालती, वरा, देवी, वृतपर्णी, तिक्ता, विद्धकर्णी, अविद्धकर्णी, अविद्धकर्णा, सुस्थिरा, प्रतानिनी, वत्सादनी, मालवी, त्रिशिरा, त्रिवृत्, वृत्तपर्णी, रक्तघ्नी, विषहन्त्री, महौजसी, रुचिष्या, दीपनी और वल्लिका ये पाढके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १६० ॥

अनेक भाषाके पाढके नाम.

सं.–पाठा.
हिं.–पाढ, पाठ.
बं.–आकनादि.
म.–पहाड, पहाडमूळ.
कों.–पहाड.
गु.–काळी पाट, करेंढियुं.
क.–पाठा, अगरुसुटि, अगळुशुटी.
तै.–पाढचेट्टू.
ता.–पाडा.
तु.–तिपले.
मला.–पाटक्किटण.
अं.–Parroroot पेरोरूट्.
ला.–Stephania Hernandifolia स्टेफानिया हर्नाडिफोलिया, Cissampelospareira सिसाम्पिलोस्परिरा.

पाठागुणाः ।

पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वातश्लेष्महरी लघुः । हन्ति शूलज्वरच्छर्दिकुष्ठातीसारहृद्रुजः ॥ दाहकण्डूविषश्वासकृमिगुल्मगरव्रणान्॥ १६१

भाषा–पाढ गरम, चरपरी, तीक्ष्ण, हलकी है और वात, कफ, शूल, ज्वर, वमन, कोढ, अतिसार, हृदयरोग, दाह, खुजली, विष, श्वास, कृमि, गुल्म और विषैला व्रण इन सबको नष्ट करता है ॥ १६१ ॥

पाढका विशेष विवरण.

पाठकी वेल वनोंमें होती है; इसके पत्ते कुछ गोल गोल होते हैं, जहांसे पत्ते निकलते हैं उनकी जडहीमेंसे श्वेत और सूक्ष्म मोरके समान फूल निकलते हैं, इसके फल मकोयके समान लाल रंगके होते हैं. वांगकी जडको लघुपाठा कहते हैं तथा वांगकीभी वेलही होती है; इसके पत्ते कंजीके समान होते हैं. कंजीके पत्ते ऊपर हरे और नीचे सफेद होते हैं, परन्तु वांगके पत्ते ऐसे नहीं होते, इनका आकार गोल और सब कंजीके समान कुछेक पीलापन लिये होते हैं; इसके फूल सूक्ष्म और सफेद हैं. और फूल पीलूके सदृश होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी हैं.

श्वेतत्रिवृन्नामानि ।

श्वेता त्रिवृत्ता भण्डी स्यात्त्रिवृता त्रिपुटापि च । सर्वानुभूतिः सरला निशोत्रा रेचनीति च १६२

भाषा–श्वेता त्रिवृत्ता, भंडी, त्रिवृता, त्रिपुटा, सर्वानुभूति, सरला, निशोत्रा, रेचनी ये निसोथके संस्कृत नाम हैं. (सरा, सुवहा, त्रिभंडी, सरसा, सरणी, सहा, रोचनी, मालविका, श्यामा, मसूरी, अर्द्धचन्द्रा, विदला, सुषेली, कालिङ्गिका, कालमेषी, काली, त्रिवेला, त्रिवृत्तिका और सारा ये निसोथके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १६२ ॥

अनेक भाषाके निसोथके नाम.

सं.–श्वेत त्रिवृत्.
हिं.–सफेद निसोथ.
बं.–श्वेत तेउडी.
म.–तेड, निशोत्तर (पांढरे).
गो.–तिगडे.
गु.–नसोत्तर. [दन्ति.
क.–बिळे तिगडे, नागतै.–तेल्ल तेगडा.
ता.–तिवंडे.
मला.–तिगडे.
फा.–निसोथ.
अ.–तुरबद्द.
अं.–Turbith Root टर्बिथ् रूट.
ला.–Ipomoea Turpethum आयपोमिया टर्पीथम्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वेतात्रिवृद्गुणाः ।

श्वेता त्रिवृद्रेचनी स्यात्स्वादुरुष्णा समीरहृत् ।
रूक्षा पित्तज्वरश्लेष्मपित्तशोथोदरापहा १६३॥

भाषा-सफेद निसोथ रेचक (दस्तावर), मधुर गरम, रूखी है और वात, पित्त, ज्वर, कफ, सूजन तथा उदररोगको नष्ट करती है १६३॥

सफेद निसोथका विशेष विवरण.

सफेद निसोथकी बेल जंगलमें होती है. इसपर घंटाकार सफेद फूल आते हैं और गोल गोल फल आते हैं. उनमें चार चार बीज होते हैं. इसके पत्ते नोकदार और गोल होते हैं. इसकी बेलकी लकडीमें तीन धारें होती हैं. निसोथ तीन प्रकारकी होती है; सफेद, काली और लाल. परन्तु सफेद निसोत सबसे उत्तम है. इसका दर्पनाशक बदामरोगन है. इसकी प्रतिनिधि काला दाना और इंद्रायनका गूदा है. इसकी मात्रा २ मासेसे ४॥ मासेतककी है.

श्यामत्रिवृन्नामानि ।

त्रिवृत्श्यामार्द्धचन्द्रा च पालिन्दी च सुषेणिका । मसूरविदला कोलकैषिका कालमेषिका ॥ १६४ ॥

भाषा-श्यामा त्रिवृत्, अर्द्धचन्द्रा, पालिन्दी, सुषेणिका, मसूरविदला, कोलकैषिका और कालमेषिका ये काले निसोथके संस्कृत नाम है ॥ १६४ ॥

अनेक भाषाके काले निसोथके नाम.

सं.-श्यामा त्रिवृत.	म.-काळे निशोत्तर.
हिं.-काला निसोथ, श्याम पनिलर.	गु.-काली नसोत्तर.
बं.-श्याम तेउडी.	क.-करे तिगडे.
	तै.-नेल्ल तेगडा.

श्यामात्रिवृद्गुणाः ।

श्यामा त्रिवृत्ततो हीनगुणा तीव्रविरेचनी । मूर्च्छादाहमदभ्रान्तिकण्ठोत्कर्षणकारिणी १६५

भाषा-काला निसोथ सफेद निसोथसे हीन गुणोंवाली, अत्यन्त दस्तावर है और मूर्च्छा, दाह, मद, भ्रम तथा कंठका घिसना इन सबको करनेवाली है ॥ १६५ ॥

काली निसोथका विशेष विवरण.

काली निसोथकीभी लताही होती है, इसके फूल कालापन लिये बैंजनीसे होते हैं और पत्ते गोल गोल नोकदार उसी प्रकारके होते हैं, परन्तु सफेदसे कुछ छोटे और फलभी कुछ छोटे होते हैं और सब आकार इकसार होता है. इसकी मात्रा १ मासेसे ३ मासेतककी है.

लघुदन्तीनामानि ।

लघुदन्ती विशल्या च स्यादुदुम्बरपर्ण्यपि । तथैरण्डफला शीघ्रा श्येनघण्टा घुणप्रिया ॥ वाराहाङ्घ्री च कथिता निकुम्भश्च मकूलकः १६६

भाषा-लघुदन्ती, विशल्या, उदुंबरपर्णी, एरंडफला, शीघ्रा, श्येनघण्टा, घुणप्रिया, वाराहाङ्घ्री, निकुम्भ, मकूलक ये छोटी दंतीके संस्कृत नाम हैं. (दन्ती, प्रत्यक्पर्णी, दन्तिका, श्वेतघण्टा, निकुम्भी, निःशल्या, निष्कुम्भ, निष्कुम्ब, नागस्फोता, दन्तिनी, उपचित्रा, भद्रा, रूक्षा, रेचनी, अनुकूला, चक्रदन्ती, मधुपुष्पा, तरुणी, एरंडपत्री, एरण्डपत्रिका, विशोधिनी, कुंभी और उदुंबरदला ये छोटी दन्तीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १६६ ॥

अनेक भाषाके छोटी दंतीके नाम.

सं.-लघु दंती.	तै.-दंत्तीचेट्टु.
हिं.-छोटी दंती.	फा.-दंद.
बं.-दंतीगाछ.	अ.-हबुलं मुलुक.
म.-दांती.	अं.-Crotten-seeds क्रोटन्सीड्स्.
गु.-नाहानो नेपालो, दांती.	ला.-Crotten Tiglium क्रोटन् टिग्लिअम्.
रा.-दात्यूणी.	
क.-दंती गिडा.	

लघुदंतीगुणाः ।

द्रवन्ती साम्बरी चित्रा प्रत्यक्पर्ण्यर्कपर्ण्यपि । चित्रोपचित्रा न्यग्रोधी प्रत्यक्श्रेण्याखुकर्ण्यपि ॥ १६७ ॥

भाषा-द्रवन्ती, साम्बरी, चित्रा, प्रत्यक्पर्णी, अर्कपर्णी, चित्रोपचित्रा, न्यग्रोधी, प्रत्यक्श्रेणी और आखुकर्णी ये बडी दन्तीके संस्कृत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाम हैं. (वृहद्दन्ती, गुच्छफला, दुग्धगर्भा, विरेचनी, विषभद्रा, भद्रदन्ती, ज्योतिष्का, जयावहा ये वृहद्दंतीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १६७ ॥

अनेक भाषाके वडी दंतीके नाम.

सं.–द्रवंती.
हिं.–वडी दंती, मुंगलाई अंड,
बं.–सांवरी, बृहदंती.
म.–थोर दांती, मोंगली एरंड.
गु.–मोटा नेपालो, रतनजोत.
क.–दोड्ड दंती, मर औडल, गुवौडल.
तै.–अडवी अमुडमु.
ता.–कडलामनाक्कु.
तु.–कडालंडुडु.
मला.–काटामांकु.
फा.–शकारहुजवा.
अ.–अबुखलसा.
अं.–The Physic nut दि फिजिक् नट्.
ला.–Cureus Multifidus कर्कस मल्टिफिडस.

दन्तीद्वयगुणाः ।

दन्तीद्वयं सरं पाके रसे च कटु दीपनम् ।
गुदांकुराश्मशूलार्शःकण्डूकुष्ठविदाहनुत् ॥
तीक्ष्णोष्णं हन्ति पित्तास्रकफशोथोदरकृमीन् ॥ १६८ ॥

भाषा–दोनों प्रकारकी दन्ती दस्तावर, पाकमें तथा रसमें चरपरी, अग्निप्रदीपक, तीक्ष्ण, गरम है और गुदाके रोग, पथरी, शूल, बवासीर, खुजली, कोढ, दाह, पित्त, रुधिरविकार, कफ, सूजन, उदररोग तथा कृमिरोगको नष्ट करती है ॥ १६८ ॥

लघुदन्तीफलगुणाः ।

क्षुद्रदन्तीफलं तु स्यान्मधुरं रसपाकयोः ।
शीतलं सृष्टविण्मूत्रं गरशोथकफापहम् ॥ १६९ ॥

भाषा–छोटी दन्तीका फल रस तथा पाकमें मधुर, शीतल, मलमूत्रको निकालनेवाला, विषजन्य सूजन और कफको नष्ट करनेवाला है ॥ १६९ ॥

दंतीका विशेष विवरण.

छोटी दन्ती और वडी दन्तीके क्षुप वनमें और उपवनमें उत्पन्न होते हैं, इसके पत्ते छोटे छोटे और मोटे दलके होते हैं, सम्पूर्ण आकृति गूलरकीसी होती है, इसके फूल महुवेके समान होते हैं, इसका फल जमालगोटा होता है, तीन तीन फल एकत्र लगते हैं. वडी दन्तीका बडा वृक्ष होता है. इसके फल एरण्डके समान होते हैं, उसमेंसे अण्डीकी समान वीज निकलते हैं, तिसमें दूध होता है.

जयपालनामानि ।

जयपालो दंतिबीजं विरेच्यातं तिंतिलीफलम् ।

भाषा–जयपाल, दन्तिबीज, तिन्तिलीफल ये जमालगोटेके संस्कृत नाम हैं. (जैपाल, तिंतिडीफल, मलद्रावि, निकुम्भाख्य, बीजरेचक, बीजरेचन, कुम्भीबीज, कुम्भिनीबीज, घंटाबीज, घण्टिनीबीज, शोधिनीबीज और चक्रदन्तीबीज ये जमालगोटेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके जमालगोटेके नाम.

सं.–जयपाल.
हिं.–जमालगोटा.
बं.–जयपाल.
म.–जेपाळबीज.
गु.–नेपाळो, नेपालनां बीज.
क.–नेपाल.
तै.–नेपालवेमु.
ता.–नर्वाल.
तु.–व्यारिविट्टु.
मला.–निर्वाल.
फा.–तुख्मे वेद अंजीर खताई.
अ.–हबुस सलातीन.
अं.–Croten Seeds क्रोटन् सीड्स्, Parjig Croton पार्जिग् क्रोटन्.
ला.–Croton Tigtium क्रोटन् टिग्लिअम्, Olium Crotonis ओलिअम् क्रोटोनिस्.

जयपालगुणाः ।

जयपालो गुरुः स्निग्धो रेची पित्तकफापहः ।

भाषा–जमालगोटा भारी, चिकना, रेचक, दस्तावर है और पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाला है ॥

जमालगोटेका विशेष विवरण.

दन्तीके बीजोंको जमालगोटे कहते हैं, जमालगोटे अंडीके समान होते हैं. इनके बीचमें जिह्वासी होती है वही वमन कराती है और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनकी मींगमें तेल होता है. वैद्यलोग उसको शुद्ध करके उसकी चिकनाई दूर कर देते हैं तब वह खानेके योग्य होता है. इसका वृक्ष छोटा दो तीन फुटके अनुमानका होता है, यह दो प्रकारका होता है, एकको दन्ती और दूसरेको द्रवन्ती (बडी दन्ती) कहते हैं, लघुदंतीके पत्ते अडूसेके पत्तोंसे कुछ समतावाले होते हैं और बडी दन्तीके बडे और कट्वां होते हैं. ये बीज रेचक हैं. प्रयोगमें इसके बीज लिये जाते हैं. जमालगोटा कोष्ठविघातक है इसलिये हकीम लोग इसका देना वर्जित करते हैं. इसके दर्पनाशक घी, दूध, छाछ या केवल घृतपान हैं. इसकी मात्रा १ चावलकी है.

इन्द्रवारुणीनामानि ।

ऐन्द्रीन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षी च गवादिनी ।

भाषा-ऐन्द्री, इन्द्रवारुणी, चित्रा, गवाक्षी, गवादिनी ये इंद्रायणके संस्कृत नाम हैं. (इंद्रवारुणिका, विशाला, गजचिर्भिटा, मृगैर्वारु, क्षुद्रसहा, चित्रफला, भरा, पिट्टक्कोटी, मृगादनी, इन्द्रा, अरुणा, इंद्रचिर्भिटा, सूर्या, विषघ्नी, गणकर्णिका, माता, सुकर्णिका, सुफला, तारका, वृषभाक्षी, पीतपुष्पा, इंद्रवल्लरी, हेमपुष्पी, क्षुद्रफला, वारुणी, बालकप्रिया, रक्तैर्वारु, विषलता, शक्रवल्ली, विषापहा, अमृता, विषवल्ली, चित्रवल्ली, बहुफला, कपिलाक्षी, मृगेक्षणा और मृगेक्षणा ये इन्द्रायणके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके इंद्रायणके नाम.

सं.-इंद्रवारुणी.
हिं.-इन्द्रायण, फरफेंदु.
बं.-राखालशशा, राखालताडू.
म.-लघु इन्द्रावण, लघु कवंडळ.
गु.-इन्दरवारणुं.
मा.-तसतुंबो, गुडतुंबो.
क.-हामेक्के.
तै.-एतिपुच्छा.
ता.-पेयकामट्टी, टुमट्टी.
फा.-खुर्यजातलख.
अ.-हंजल.
अं.-Colocynth कोलोसिंथ्.
ला.-Citrullus Colocynthis सिट्रलस् कोलोसिंथिस्.

वारुणीनामानि ।

वारुणी च पराप्युक्ता सा विशाला महाफला । श्वेतपुष्पा मृगाक्षी च मृगैर्वारु मृगादनी ॥ १७० ॥

भाषा-वारुणी, विशाला, महाफला, श्वेतपुष्पा, मृगाक्षी, मृगैर्वारु, मृगादिनी ये बडी इन्द्रायणके संस्कृत नाम हैं. (महद्रवारुणी, काया, आत्मरक्षा, चित्रफला, तुंबसी, त्रपुसी, रम्या, महेन्द्री, त्रपुसा, चित्रवल्ली, दीर्घवल्ली, बृहत्फला, बृहद्वारुणी, सौम्या, श्वेतपुष्पा, हस्तिदन्ती, कटुरसा, कपिलाक्षी, कुम्भसी, उरुप्रिया, चित्रला, देवी और गजचिर्भिरा ये बडी इन्द्रायणके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १७० ॥

अनेक भाषाके बडी इंद्रायणके नाम.

सं.-वारुणी, महाफला.
हिं.-बडी इंद्रायण.
बं.-वडवाकाल.
म.-थोर इन्द्रावण.
कों.-कवंडळ.
गु.-मोटो इंद्रायणो.
क.-हिरिय हामेक्के.
तै.-पापर बुडमा, कार्कारुकमु, वेरिं पुच्चा.
ता.-कोरट्टी, शवरीपझमू.
तु.-कक्कॅडेळु.
मला.-पेदिकारि, अनुत्तुम्माट्टि.
फा.-हंजलम्हर.
अ.-शेमहंजल.
अं.-Bitter Apple बिटर् ॲपल्.
ला.-Trichosanthes Plamata ट्रिकोसंथस् पाल्मॅटा.

गवादिनीद्वयगुणाः ।

गवादिनीद्वयं तिक्तं पाके कटु सरं लघु । वीर्योष्णं कामलापित्तकफप्लीहोदरापहम् १७१ श्वासकासापहं कुष्ठगुल्मग्रन्थिव्रणप्रणुत् । प्रमेहमूढगर्भामगण्डामयविषापहम् ॥ १७२ ॥

भाषा-दोनों प्रकारकी इन्द्रायण कडवी, पाकमें चरपरी, दस्तावर, हलकी, उष्णवीर्य हैं और कामला, पित्त, कफ, प्लीहा, उदररोग, श्वास, खांसी, कोढ, गुल्म, गांठ, व्रण, प्रमेह, मूढ गर्भ, आम, गण्डमाला और विषरोगका नाश करती है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इंद्रायणका विशेष विवरण.

लघु इन्द्रायण और बडी इन्द्रायणकी वेल अधिक तर कैरोंमें और खारी भूमिमें उत्पन्न होती है, इसके पत्ते लम्बे २ बीचमें कटेसे होते हैं, और फूल पीले रंगके पांच पंखडीके होते हैं, इसके फल सूक्ष्म कांटेयुक्त लाल रंगके छोटी नारंगीके समान अत्यन्त शोभायमान होते हैं. इसके बीचमें बीज बहुत होते हैं और उसमें इलेटीरिअम् नामक सत्व होता हैं. दूसरी इन्द्रायण रेतली भूमिमें उत्पन्न होती है, उसका फल पीले रंगका होता है और फूल सफेद होता है. प्रयोगमें इसके फलका गूदा लिया जाता हैं. इसका दर्पनाशक कतीरा, विहीदाना, मस्तंगी और निशास्ता है. इसकी प्रतिनिधि इसबंद, रसोत और निसोथ है. इसकी मात्रा ६ रत्तीसे लेकर २ मासेतककी है.

नीलीनामानि।

नीली तु नीलिनी तूली कालदोला च नीलिका। रञ्जनी श्रीफली तुत्था ग्रामीणा मधुपर्णिका॥ क्षीतका कालकेशी च नीलपुष्पा च सा स्मृता॥ १७३॥

भाषा–नीली, नीलिनी, तूली, कालदोला, नीलिका, रंजनी, श्रीफली, तुत्था, ग्रामीणा, मधुपर्णिका, क्षीतका, कालकेशी नीलपुष्पा ये नीलके संस्कृत नाम हैं. (नीला, मेघवर्णा, कुत्सला, दूली, क्षीतकिका, काला, नीलपुष्पिका, तूणी, दोला, दोलिका, द्रोणिका, अक्षीका, ग्रामणी, ग्रामिणी, द्रोणी, भेला, तुच्छा, नीलपत्री, राज्ञी, नीलपुष्पी, काली, श्यामा, शोधिनी, श्रीफला, ग्राम्या, भद्रा, भारवाहा, माची, कृष्णा, व्यंजनकेशी, महाफला, असिता, क्षीतनी, केशी, चारटिका, गन्धपुष्पा, श्यामलिका, रंगपत्री, महावला, स्थिररंगा, रंगपुष्पी, वृंतिका, अंजनकेशिका, चारटी, विजया, गन्धपुष्पी और स्थिरागा ये नीलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ १७३॥

अनेक भाषाके नीलके नाम.

सं.–नीली.	मला.–अवारी.
हिं.–नील, लील.	तु.–नीली.
ब.–नीलगच्छी.	अं.–Indigo इंडिगो.
म.–नीळ, गुळी.	ला.–Indigofera Cordifolia इंडिगोफेरा कार्डिफोलिया.
गु.–गळी.	
क.–नीली.	
तै.–नीलीचेट्टू.	
ता.–नीली.	

नीलीगुणाः।

नीलिनी रेचनी तिक्ता केश्या मोहभ्रमापहा। उष्णा हन्त्युदरप्लीहवातरक्तकफानिलान्॥ आमवातमुदावर्तं मदं च विषमुद्धतम्॥ १७४॥

भाषा–नील रेचक, कडवा, केशोंको हितकारी, गरम है और मोह, भ्रम, उदररोग, प्लीहा, वात, रुधिरविकार, कफ, आमवात, उदावर्त्त, मद तथा भारी विषको नष्ट करता है॥ १७४॥

नीलका विशेष विवरण.

नीलके क्षुप छोटे छोटे किसानलोग खेतोंमें बोते हैं, इसके पत्ते सरफुंकके समान नीले और कुछेक कालापन लिये होते हैं, इसकी फली टेढी और गोल होती है. इसकी डाली और पत्तोंकी कुट्टी कर कुण्डोंमें पानी भर उसमें गलाते हैं, तब उसका नील बनाते हैं, वह नीले रंगके काममें बहुत आता है.

शरपुंखनामानि।

शरपुंखः प्लीहशत्रुर्नीलीवृक्षाकृतिश्च सः।

भाषा–शरपुंख, प्लीहशत्रु, नीलीवृक्षाकृति ये सरफोंकेके संस्कृत नाम हैं. (कालशाक, प्लीहारि, कालिका, काण्डपुंखा, बाणपुंखा, इषुपुंखिका, सायकपुंखा और इषुपुंखा ये सरफोंकेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके सरफोंकेके नाम.

सं.-शरपुंख.
हिं.-सरफोंका, सफेद सरफोंका.
बं.-वननील.
म.-उन्हाळी, रानटी नीळ.
गु.-शरपुंखा.
क.-कोग्गि.
ते.-पापाराचेट्टू.
ता.-कोल्लुक्कवकेल्लापे.
अं.-Purple Tephrosia पर्पल् टेफ्रोझिया.
ला.-Tephrosia Purpurea टेफ्रोझिया पर्पूरिया.

शरपुंखगुणाः ।

शरपुंखो यकृत्प्लीहगुल्मव्रणविषापहः । तिक्तः कषायः कासास्रश्वासज्वरहरो लघुः ॥ १७५ ॥

भाषा-सरफोंका कडवा, कसैला, हलका है और यकृत्, प्लीहा, गुल्म, व्रण, विष, खांसी, रुधिरविकार, श्वास तथा ज्वरको दूर करता है ॥ १७५ ॥

सरफोंकेका विशेष विवरण.

सरफोंकेके क्षुप जंगलोंमें छोटे छोटे उत्पन्न होते हैं; इसके पत्ते नीलके पत्तोंके समान नीले नीले होते हैं, फूल लाल होते हैं और फलियां छोटी छोटी लगती हैं. उस फलीमें बहुत नान्हे नान्हे रुयें होते हैं, और दूसरी जातिकी फलीमें रुआं नहीं होता, सफेद सरफोंकेका क्षुप पृथ्वीपर फैला हुआ होता है, उसके पत्ते कुछेक छोटे होते हैं, और फूल सफेद रंगके आते हैं. इसकी मात्रा १ मासेतककी है.

यवासनामानि ।

यासो यवासो दुःस्पर्शो धन्वयासः कुनाशकः ।

भाषा-यास, यवास, दुःस्पर्शी, धन्वयास, कुनाशक ये जवासेके संस्कृत नाम हैं. (यवासक, अनन्ता, वालपत्र, अधिकण्टक, दुरमूल, समुद्रांत, दीर्घमूला, मरुद्भव, कण्टकी, वहुकंटक, क्षुद्रेंगुदी, रोदनिका, विषघ्न, कण्टकालुक, त्रिपर्णिका, गन्धारी, वासन्त, वनदर्भ, विवर्णक, तीक्ष्णकण्टक और सूक्ष्मपत्र ये जवासेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके जवासेके नाम.

सं.-यवास.
हिं.-जवासा, दुलाह.
बं.-यवासा.
म.-जवासा, तांबडा धमासा.
गु.-जवासो.
क.-तोरेइंगुल.
फा.-फाराक्युशन्.
अ.-अलगुल्हाज.
ला.-Alhagimpurorun आल्हाजिमोरोरन्.

दुरालभानामानि ।

दुरालभा दुरालम्भा समुद्रान्ता च रोदिनी । गान्धारी कच्छुराऽनन्ता कषाया हरिविग्रहा ॥ १७६ ॥

भाषा-दुरालभा, दुरालंभा, समुद्रान्ता, रोदिनी, गांधारी, कच्छुरा, अनंता, कषाया, हरिविग्रहा ये धमासेके संस्कृत नाम हैं. (दुराभिग्रहा, दुःस्पर्शा, कुनाशक, धनुर्यास, युवस, धन्वयवास, विकटक, आत्ममूली, पद्ममुखी, ताम्रमूला, धन्वयास, धन्वी, धन्वयवासक, प्रबोधिनी, सूक्ष्मदला, विरूपा, दुर्लभा, दुष्प्रधर्षा, ताम्रमूली, मरुज्जन्मा, उष्ट्रभक्ष्या, मृदुपर्णा, कषायका, प्राह्लादनी, फणिहारी, विशारदा, रविग्रहा, अजाभक्ष्या और ग्राहिणी ये धमासेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १७६ ॥

अनेक भाषाके धमासेके नाम.

सं.-दुरालभा.
हिं.-धमासा, हिंगुणा.
बं.-दुरालभा.
म.-धमासा. कांटेबुबूक.
गु.-धमासो.
क.-वाल्लिदुरुवे, नेलइंगळ.
त.-पिलरेगाटि, दुलगोडी.
फा.-बादावर्द.
अ-शुकाई.
ला.-Fagonia arabica फगोनिया अरेबिका.

यवासदुरालभागुणाः ।

यासः स्वादुः सरस्तिक्तस्तुवरः शीतलो लघुः । कफमेदोमदभ्रान्तिपित्तासृक्कुष्ठकासजित् १७७
तृष्णाविसर्पवातास्रवमिज्वरहरः स्मृतः । यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा १७८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-जवासा स्वादिष्ट, दस्तावर, कडवा, कसैला, शीतल, हलका है और कफ, मेद, मद, भ्रम, पित्त, रुधिरविकार, कोढ, खांसी, तृषा, विसर्प, वातरक्त, वमन तथा ज्वरको नष्ट करता है. जो गुण जवासेमें हैं वेही गुण पण्डितोंने धमासेमें कहे हैं ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

जवासा और धमासेका विशेष विवरण.

जवासाभी धमासेहीकी आकृतिका होता है और यहभी जलाशयके समीपकी भूमिमें अधिक उत्पन्न होता है, परन्तु जवासेके कांटे कुछेक धमासेसे बडे होते हैं और कांटेभी धमासेसे इसके कुछ बडे बडे होते हैं, पत्तोंमेंभी कुछ अधिकता पाई जाती है, वर्षाऋतुके आदि अंतमें यह फलता फूलता है और वर्षाऋतुमें तो आपसे आपही जल जाता है. धमासा रेतली और जलाशयके निकट खादरकी भूमिमें अधिकतासे होता है, पत्ते बहुत छोटे और उसपर बहुत छोटेही छोटे फल लगते हैं और छोटे छोटे कांटेसे परिपूर्ण रहता है, पृथ्वीसे हाथ हाथभर ऊंचे क्षुप होते हैं. इन दोनोंकी मात्रा २ मासेकी है.

मुण्डीनामानि ।

मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना । श्रवणाह्वा मुण्डतिका तथा श्रवणशीर्षका १७९

भाषा-मुण्डी, भिक्षु, श्रावणी, तपोधना, श्रवणाह्वा, मुंडतिका, श्रवणशीर्षका ये मुंडीके संस्कृत नाम हैं. (श्रवणा, भूतघ्नी, पलंकषा, कदम्बपुष्पा, अरुणा, मुण्डीरिका, कुम्भला, प्रव्राजिता और परिव्राजिका ये मुंडीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १७९ ॥

अनेक भाषाके मुण्डीके नाम.

सं.-मुंडी, श्रावणी.
हिं.-छोटी मुंडी, मुंडी.
बं.-मुंडीरी, थुलकुडी.
म.-धाकटीमुंडी, बोंडथरा, वरसवोंडी.
गु.-नहानीमुंडी.
क.-किरिय बोंडथर, मुडीकस.
ते.-बोडसरपुचेट्टु, बोड.
ता.-कोट्टक.
अ.-कमादरयुस.
ला.-Sphaeranthus Indicus स्फिरेंथस इंडिकस्.

महामुंडीनामानि ।

महाश्रावणिकाऽन्या तु सा स्मृता भूकदम्बिका । कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथाऽतितपस्विनी ॥ १८० ॥

भाषा-महाश्रावणिका, भूकदम्बिका, कदंबपुष्पिका, अव्यथा, अतितपस्विनी ये बडी मुंडीके संस्कृत नाम हैं. (महामुंडी, लोचनी, कदम्बपुष्पी, त्रिकचा, क्रोडचूडा, पलंकषा, नदीकदम्ब, मुण्डाख्या, महामुण्डनिका, माता, स्थाविरा, लोतनी, भूकन्द, अलम्बुषा, वृद्धा, छिन्नग्रन्थिका, नीलकदम्बिका और वोडा ये बडी मुंडीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १८० ॥

अनेक भाषाके महामुण्डीके नाम.

सं.-महामुंडी, महाश्रावणिका.
हिं.-बडी मुंडी, गोरखमुंडी.
बं.-बडी थुलकुडी.
म.-मोठी मुंडी, गोरखमुंडी.
गु.-मोठी मुंडी, कलार.
क.-हिरिय बोंडथर.

मुण्डीद्वयगुणाः ।

मुंडी तिक्ता कटुः पाके वीर्योष्णा मधुरा लघुः । मेध्या गंडापचीकृच्छ्रकृमियोन्यार्तिपांडुनुत् ॥ १८१ ॥ श्लीपदारुच्यपस्मारप्लीहमेदोगुदार्त्तिहृत् । महामुण्डी च तत्तुल्या गुणैरुक्ता महर्षिभिः ॥ १८२ ॥

भाषा-गोरखमुंडी पाकमें चरपरी, उष्णवीर्य, मधुर, हलकी, मेधाको हितकारी है और गलगंड, अपची, मूत्रकृच्छ्र, कृमि, योनिकी पीडा, पाण्डुरोग, श्लीपद, अरुचि, अपस्मार, प्लीहा, मेद तथा गुदाकी पीडाको नष्ट करती है. बडी गोरखमुंडीमेंभी येही गुण हैं ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

मुण्डीका विशेष विवरण.

मुण्डी और महामुण्डी तृणके समान प्रसर जातिकी वनस्पति है. इसके पत्ते अंगुलीके समान लम्बे लम्बे होते हैं और फल कदम्बके समान अथवा मरेठीके तुल्य किंवा घुंटीके सदृश होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपामार्गनामानि ।

अपामार्गस्तु शिखरी ह्यधःशल्यो मयूरकः । मर्कटी दुर्ग्रहा चापि किणिही खरमञ्जरी ॥ १८३ ॥

भाषा-अपामार्ग, शिखरी, अधःशल्य, मयूरक, मर्कटी, दुर्ग्रहा, किणिही, खरमंजरी ये ओंगेके संस्कृत नाम हैं. (शैखरिक, धामार्गव, प्रत्यक्पर्णी, कीशपर्णी, अपांगक, किणी, कीशपर्णी, शमत्कार, शैखरेय, अधामार्गव, केशपर्णी, स्थलमंजरी, प्रत्यक्पुष्पी, क्षारमध्यम, अधोघंटा, कान्तरिक, दुरभिग्रह, वासिर, पराक्पुष्पी, कंटी, कर्कटपिप्पली, कटुमञ्जरिका, अघाट, क्षुरक, पांडुकण्टक, नालाकंठ, कुब्ज और मालाकंठ ये ओंगेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १८३ ॥

अनेक भाषाके ओंगेके नाम.

सं.-अपामार्ग.	तै.-दुच्चीणिके.
हिं.-ओंगा, चिरचिरा, चिरचिटा, लटजीरा.	ता.-नायुरुवि.
बं.-अपांग.	मला.-कडालाडी.
म.-अघाडा, आघेडा.	फा.-खारबालूगोना.
गु.-अघेडो.	अ-अत्कम.
पं.-पुटकंडा. [डो.	अं.-Rough chaff tree रफ् चाफ् ट्री.
मा.-सफेद आंधीझारा.	ला.-Achyranthis aspera एकिरन्थिस् एस्पिरा.
रा.-अंधाहोली.	
क.-उत्तरणे.	

अपामार्गगुणाः ।

अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनः तिक्तकः कटुः । पाचनो रोचनश्छर्दिकफमेदोऽनिलापहः ॥ निहन्ति हृद्रुजाध्मानकण्डूशूलोदरापचीः ॥ १८४ ॥

भाषा-चिरचिरा दस्तावर, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, कडवा, चरपरा, पाचक, रुचिकारक है और वमन, कफ, मेद, वात, हृदयरोग, अफरा, ववासीर, खुजली, शूल, उदररोग तथा अपचीरोगको नष्ट करता है ॥ १८४ ॥

ओंगेका विशेष विवरण.

अपामार्ग अर्थात् चिरचिटेके क्षुप जंगलमें विना बोये जोतेही बहुत उत्पन्न हो जाते हैं; पृथ्वीसे एक एक हाथ दो दो हाथ ऊंचे हो जाते हैं; इसके पत्ते गोल होते हैं. बीचमेंसे सफेद रंगके बाल निकलते हैं; उन बालोंपर छोटे छोटे उलटे कांटोंवाले बीज निकलते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

रक्तापामार्गनामानि ।

रक्तोऽन्यो वसिरो वृत्तफलो धामार्गवोऽपि च । प्रत्यक्पर्णी केशपर्णी कथिता कपिपिप्पली ॥ १८५ ॥

भाषा-रक्तापामार्ग, वसिर, वृत्तफल, धामार्गव, प्रत्यक्पर्णी, केशपर्णी, कपिपिप्पली ये लाल चिरचिटेके संस्कृत नाम हैं. (क्षुद्रापामार्ग, आघट्टक, दुग्धनिका, रक्तविट्, कल्पपत्रिका, क्षव, अधामार्गव, प्रत्यक्श्रेणी, स्वरच्छद, कूट, मर्कटपिप्पली, कुब्ज और दुरभिग्रह ये लाल चिरचिटेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १८५ ॥

अनेक भाषाके लाल ओंगेके नाम.

सं.-रक्तापामार्ग.	मा.-आंधीझाडा लाल.
हिं.-लाल ओंगा, चिरचिरा.	क.-केंपिगुत्तरणे.
बं.-रक्तापांग.	ला.-Achyranthis Laparia एकिरेन्थिस् लेपेरिया.
म.-तांबडा अघाडा.	
गु.-रातो अघेडो, झिपटो.	

रक्तापामार्गगुणाः ।

अपामार्गोऽरुणो वातविष्टम्भी कफकृद्धिमः । रूक्षः पूर्वगुणैर्न्यूनः कथितो गुणवेदिभिः ॥ १८६ ॥ अपामार्गफलं स्वादु रसे पाके च दुर्जरम् । विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ १८७ ॥

भाषा-लाल चिरचिटा वातनाशक, कफकारक, शीतल, रूक्ष और पूर्वोक्त चिरचिटेसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह चिरचिटा गुणज्ञ पुरुषोंने हीन गुणवाला कहा है. चिरचिटेके बीज रसमें स्वादिष्ठ, पाकमें दुर्जर, विष्टम्भी, वातकारक, रूखे हैं और रक्तपित्तको दूर करते हैं ॥१८६॥१८७॥

लाल चिरचिटेका विशेष विवरण.

लाल चिरचिटाभी उसी प्रकारका होता है. इसके पत्ते कुछ कुछ गोल और लाल होते हैं, फूल पीले और फल लाल लाल बालपर लगे होते हैं परन्तु उनके ऊपर कांटेभी होते हैं. इस प्रकार लाल और सफेद दो जातिका चिरचिटा होता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

कोकिलाक्षनामानि ।

कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुरिक्षुरः क्षुरकः क्षुरः । भिक्षुः काण्डेक्षुरप्युक्तः इक्षुगन्धेक्षुवालिका ॥ १८८ ॥

भाषा–कोकिलाक्ष, काकेक्षु, इक्षुर, क्षुरक, क्षुर, भिक्षु, काण्डेक्षु, इक्षुगन्धा, इक्षुबालिका ये कोकिलाक्षके संस्कृत नाम हैं. (कोकिलाक्षक, कोकिलनयन, शृगाली, शृंखली, शूरक, शृगालघण्टी, वज्रास्थि, शृंखला, वज्रकण्टक, वज्र, शृंखलिका, पिकेक्षणा, पिच्छिला, वीरतरु, त्रिक्षुर, शुक्लपुष्प और कुलाहक ये तालमखानेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥१८८॥

अनेक भाषाके तालमखानेके नाम.

सं.–कोकिलाक्ष.
हिं.–तालमखाना, कैलया.
बं.–कुलियाखाडा, कुले कांटा, कुलक.
म.–विखरा, तालिमखाना.
कों.–कोलिस्ता, कोलसा.
गो.–कोळुंबुले झाड.
गु.–एखरो.
क.–कुलुगोलिके, कोलवलिके, नीरगोळगोळिके.
तै.–निरगोबी, गोलिमिडिचेट्टु.
ता.–निरमुल्लि.
तु.–कोवमुल्लुडे.
मला.–वायलचुल्लि.
उत्.–कुइलिरखा, माखुरेण.
अं.–Long Leaved Barlaria लाँग् लीव्ड्बार्लेरिया.
ला.–Astercantha Longifolia एस्टकैंथा लाँजिफोलिया.

कोकिलाक्षगुणाः ।

क्षुरकः शीतलो वृष्यः स्वाद्वम्लः पित्तलस्तथा । तिक्तो वातामशोथाश्मतृष्णादृष्ट्यनिलास्रजित् ॥ १८९ ॥

भाषा–तालमखाना शीतल, वीर्यवर्द्धक, मधुर, खट्टा, पित्तकारक, कडवा है और वातसंबंधी आम, सूजन, पथरी, तृषा, नेत्ररोग तथा रुधिरविकारको नष्ट करता है ॥ १८९ ॥

तालमखानेका विशेष विवरण.

तालमखानेके क्षुप प्रायः जलके निकट तथा चौमासेकी तालतलैया और सूखे हुए सरोवरोंमें बहुत उत्पन्न होते हैं. पत्ते लम्बे लम्बे होते हैं. क्षुपोंपर कांटे बहुत होते हैं. गूमेके समान ठौर ठौर गांठें होती हैं, उन गाठोंमेंसे जो बीज निकलते हैं उन्हींको तालमखाना कहते हैं. इसकी मात्रा आधे तोलेतककी है.

अस्थिसंहारीनामानि ।

ग्रन्थिमानस्थिसंहारी वज्राङ्गी वास्थिशृङ्खला ।

भाषा–ग्रन्थिमान्, अस्थिसंहारी, वज्रांगी, अस्थिशृंखला ये हडसंघारीके संस्कृत नाम हैं. (वज्रवल्ली, कुलिश, शिरालक, अमर, अस्थिसंहारक और क्रोष्टुघण्टिका ये हडसंघारीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके हडसंहारीके नाम.

सं.–अस्थिसंहारी.
हिं.–हडसंघारी, हडजोडा.
बं.–हाडभांगा.
म.–कांडवेल.
गु.–हाडसांकल.
क.–मणिगुरवल्लि, साडुबळ्ळि, मंगरबाळ्ळे.
तै.–नाल्लेरु.
ता.–आरुगणि.
तु.–सांडुवेरु.
मला.–चणालंपरंडा.
गो.–साडावळ्ळि.
ला.–Vitis Quadrangularis विटिस् कोड्रैंग्युलारिस्.

अस्थिसंहारीगुणाः ।

अस्थिसंहारकः प्रोक्तो वातश्लेष्महरोऽस्थियुक् । उष्णः सरः कृमिघ्नश्च दुर्नामघ्नोऽक्षि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोगजित् ॥ रूक्षः स्वादुर्लघुर्वृष्यः पाचनः पित्तलः स्मृतः ॥ १९० ॥ कण्डूत्वग्विरहितमस्थिशृंखलाया माषार्द्रं द्विदलमकंचुकं तदर्द्धम् । सम्पिष्टं तदनु ततस्तिलस्य तैले संपक्वं वटकमतीववातहारि ॥ १९१ ॥

भाषा—हडसंघारी हाड्डियोंको जोडनेवाली, गरम, दस्तावर, रूखी, मधुर, हलकी, वीर्यको बढानेवाली, पाचक, पित्तकारक है और वात, कफ, कृमि, ववासीर तथा नेत्ररोगको नष्ट करनेवाली है. इसकी लकडीकी छाल छीलकर शेष लकडी एक भाग और छुलके रहित गीली उडदकी दाल आधा भाग ले दोनाको पीस बडी बनाकर तिलके तैलमें पकावे यह पकी हुई बडी अत्यंत वातनाशक है ॥ १९० ॥ १९१ ॥

हडसंहारीका विशेष विवरण.

हडसंहारीकी वेल थूहरकी जातिसे सम्बन्ध रखती है. इस वेलमें चार छः अंगुलपर गाँठें होती हैं. यह द्विधारी, तिधारी, चौधारी और पंचधारी होती है. इनसे एक प्रकारकी हडसंहारीकी जाति होती है. कण्डवेलके भिन्न भिन्न भाग कण्डवेल होते हैं, इसको संस्कृतमें काण्डवल्ली कहते हैं. शंकलके समान होती हैं इसलिये इसको हडसंहारी कहते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

कुमारीनामानि ।

कुमारी गृहकन्या च कन्या घृतकुमारिका ।

भाषा—कुमारी, गृहकन्या, कन्या, घृतकुमारिका ये घीकुवारके संस्कृत नाम हैं. (सहा, घृतकुमारी, दीर्घपत्रिका, अफला, सुरसा, स्थलेरुहा, तरणी, सुवहा, वहुपत्री, अमरा, अजरा, कण्टकंप्रावृता, विपुलस्रवा, ब्रह्मघ्नी, वीरा, भृंगेष्टा, तरुणी, रामा, कपिला, अम्बुधिस्रवा, सुकण्टका, स्थूलदला, गृहकन्यका, अदला, मंडला, माता, अतिपिच्छला और कण्टकिनी ये घीकुवारके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके घीकुवारके नाम.

सं.—घृतकुमारी, गृहकन्या.
हिं.—घिकुवार, घीगुवार, ग्वारपाठा, कुवारपाठा.
बं.—घृतकुमारी.
म.—कोरफड.
कों.—कुवारकांडे, कोरकण्ड.
गु.—कुवार.
क.—लोयिसर, कटालिगिड, कन्येकुमारी.
ते.—कालाबांडा, विर जाजितोगे, पित्तगोरिंटकलवंद.
ता.—कट्टाले.
तु.—नोलिसरा.
मला.—कट्टावाला.
फा.—दरखतेसिन्न.
अ.—मुसव्वर.
अं.—Barbadoes Aloes बार्बडोझ् आलोझ्.
ला.—Aloe Barbedense आलोई बार्बडेन्स्.

कुमारीगुणाः ।

कुमारी भेदिनी शीता तिक्ता नेत्र्या रसायनी । मधुरा बृंहणी बल्या वृष्या वातविषप्रणुत् ॥ १९२ ॥ गुल्मप्लीहयकृद्वृद्धिकफज्वरहरी हरेत् । ग्रन्थाग्निदग्धविस्फोटपित्तरक्तत्वगामयान् ॥ १९३ ॥

भाषा—घीकुवार दस्तावर, शीतल, कडवा, नेत्रोंको हितकारी, रसायनरूप, मधुर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक है और वात, विष, गुल्म, प्लीहा, यकृत्, अंडवृद्धि, कफज्वर, ग्रन्थि, अग्निदाह, विस्फोटक, पित्त, रुधिरविकार तथा त्वचारोगको नाश करता है ॥ १९२ ॥ १९३ ॥

घीकुवारका विशेष विवरण.

घीकुवारके क्षुप रेतली भूमिमें वा खतीली पृथ्वीमें अथवा नदीके तटके निकट अधिकतासें उत्पन्न होते हैं; पत्ते लम्बे और अधिक मोटे होते हैं; पत्तोंके दोनों ओर कांटे होते हैं; उन पत्तोंके भीतर घीके समान गूदा और रसभरा होता है. पत्तोंकी नोक अनीदार होती है; घीकुवारके क्षुपके मध्यसे एक डंडा निकलता है, उसमें लाल फूल आते हैं; इसी घीकुवारके रससे एलुआ बनता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वेतपुनर्नवानामानि ।

पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घपत्रिका ।

भाषा–पुनर्नवा, श्वेतमूला, शोथघ्नी, दीर्घपत्रिका ये श्वेतपुनर्नवाके संस्कृत नाम हैं. (कठिल्ल, चिराटिका, वृश्चीरा, श्वेतपुनर्नवा, सितवर्षाभू, वर्षागी, वर्षाही, विशाख, शाशिचाटिका, पृथ्वी, घनपत्र और कठिल्लक ये श्वेतपुनर्नवाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सफेद पुनर्नवाके नाम.

सं.–श्वेतपुनर्नवा.
हिं.–सफेद पुनर्नवा. विषखपरा, सांठ.
बं.–श्वेतपुण्या, श्वेतगांदावन्ने.
म.–पांढरी घेटुळी.
कों.–खापरी, सांठ.
गु.–धोळी साटोडी.
क.–विळे वेल्लडकिलु, सनाडिका.
ते.–तेल्ला अटातामामिडी.
ता.–मुक्किराटे.
मला.–तामिळामा, तालुतामा.
अ.–हंदकूकी.
अं.–Spreading Hogweed स्प्रेडिंग हॉग्वीड्.
ला.–Boerhavia Diffusa बोर्हाविआ डिफ्यूझा.

श्वेतपुनर्नवागुणाः ।

कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी परा ।
शोफानिलगरश्लेष्महरी व्रण्योदरप्रणुत् १९४॥

भाषा–सफेद पुनर्नवा चरपरी, कसैली, अत्यन्त अग्निप्रदीपक है और पाण्डुरोग, सूजन वायु, विष, कफ, व्रण तथा उदररोगको दूर करती है ॥ १९४ ॥

रक्तपुनर्नवानामानि ।

पुनर्नवापरा रक्ता रक्तपुष्पा शिलाटिका ।
शोथघ्नः क्षुद्रवर्षाभूर्वृषकेतुः कपिल्लकः॥१९५॥

भाषा–रक्तपुनर्नवा, रक्तपुष्पा, शिलाटिका, शोथघ्न, क्षुद्रवर्षाभू, वृषकेतु, कपिल्लक ये लाल पुनर्नवाके संस्कृत नाम हैं. (रक्तपत्रिका, रक्तकांडा, वर्षकेतु, वर्षाभू, प्रावृषायणी, कठिल्लक, क्रूरा, मण्डलपत्रिका, लोहिता, वैशाखी, रक्तवर्षाभू, शोफघ्नी, रक्तपुष्पिका, विकस्वरा, विषघ्नी, प्रावृषेण्या, सारिणी, वर्षाभव, शोणपत्र, भौम, पुनर्भव और नव्य ये लाल पुनर्नवाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १९५ ॥

अनेक भाषाके लाल पुनर्नवाके नाम.

सं.–रक्त पुनर्नवा.
हिं.–लाल पुनर्नवा, लाल विषखपरा.
बं.–रक्तगांदावन्ने.
म.–तांबडी घेटुळी.
गु.–राती साटोडी.
क.–केंप वेल्लडकिलु.
ते.–येर्राअटातामामिडी.
ला.–Boerhavia Procumbens बोर्हाविआ प्रोक्म्बेन्स्.

रक्तपुनर्नवागुणाः ।

पुनर्नवारुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः ।
वातला ग्राहिणी श्लेष्मापित्तरक्तविनाशिनी ॥ १९६ ॥

भाषा–लाल सांठ कडवी, पाकमें चरपरी, शीतल, हलकी, वातकारक ग्राही है और पित्त तथा रुधिरविकारको नष्ट करती है ॥ १९६ ॥

पुनर्नवाका विशेष विवरण.

पुनर्नवा तीन चार प्रकारका होता है, पत्ते गोल होते हैं, फूल लाल सफेद भिन्न भिन्न रंगके होते हैं, इसमें सफेद रंगके फूलका विषखपरा होता है और लाल रंगकी सांठको गदहसट्ट और शुनेरा कहते हैं, विषखपरेका क्षुप पृथ्वीपर फैला हुआ होता है, पत्ते गोल और लाल २ किनारीदार होते हैं, फूल सफेद होते हैं; सांठ मूडकी रेतली भूमिमें अधिकतासे होती है; पत्ते चौंलाईके समान ललाई लिये हुए होते हैं और फूल लाल रंगके होते हैं; एक नीले रंगका पुनर्नवा होता है; उसके फूलभी नीले रंगके होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

गन्धप्रसारिणीनामानि ।

प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रतापनी।सरणी सारणी भद्रा बला चापि कटंभरा ॥ १९७ ॥

भाषा–प्रसारणी, राजबला, भद्रपर्णी, प्रतापनी, सरणी, सारणी, भद्रा, बला, कटंभरा ये पसरनके संस्कृत नाम हैं. (गन्धाली, गन्धाढ्या, गन्धभद्रा, शरणा, शरणी, गन्धोली, भद्रबला,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरणि, सुप्रसरा, प्रसरा, सरा, चारुपर्णी, प्रतानिका, प्रबला, राजपर्णी, चन्द्रपर्णी, चन्द्रवल्ली, प्रभद्रा और प्रसारिणी ये पसरनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १९७ ॥

अनेक भाषाके पसरनके नाम.

सं.-गंधप्रसारिणी.
हिं.-गंधप्रसारिणी, पसरन. [धाली.
बं.-गंधभादली, गा-
म.-चांदवेल, नितणवेली.
गु.-नारी.
क.-हेसरणे, हसराणि.
ते.-गोंतेम गोरुचेट्टु.
ला.-Peaderia Foetida पिडेरिया फिटीडा.

गन्धप्रसारिणीगुणाः ।

प्रसारिणी गुरुर्वृष्या बलसन्धानकृत्सरा । वीर्योष्णा वातहृत्तिक्ता वातरक्तकफापहा ॥ १९८ ॥

भाषा-पसरन भारी, वीर्यवर्द्धक, बलदायक संधानकारक, दस्तावर, उष्णवीर्य, कडवी है और वात, रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करती है ॥ १९८ ॥

गन्धप्रसारिणीका विशेष विवरण.

गन्धप्रसारिणीकी बहुत लम्बी और फैलनेवाली वेल होती है, इसकी शाखा बडी बडी लम्बी फैलती हैं, पत्ते रतालुकी आकृतिके होते हैं, परन्तु छोटे होते हैं और फल गोल गोल होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कृष्णसारिवानामानि ।

इन्द्रजम्बूकवत्पत्रा सुगन्धा कलघण्टिका । कृष्णा तु शारिवा श्यामा गोपी गोपवधूश्च सा ॥ १९९ ॥ इयमपि जम्बूवत्पत्रा दुग्धगर्भा व्रततिर्भवति ॥

भाषा-सारिवा, श्यामा, गोपी, गोपवधू, कलघंटिका ये काली सारिवाके संस्कृत नाम हैं. (श्यामलता, पालिन्दी, गोपिनी, कृष्णशारिवा, चिह्नधारिणी दृढबान्धिनी, गोपवल्ली, गोपा, सारिवा, उत्पलसारिवा, अनन्ता, कालपेषी, महाश्यामा, सुभद्रा, दीर्घमूला, मसूरविदला, कृष्णमूली, कृष्णा, चन्दनसारिवा, भद्रा, चन्दनगोपा, चंदना और कृष्णवल्ली ये काली सारिवाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) इसके पत्ते इन्द्रजंबूकके सदृश सुगंधित होते हैं ॥ १९९ ॥

अनेक भाषाके कालीसरके नाम.

सं.-कृष्णसारिवा.
हिं.-कालीसर, करियाँसाउ, काली साँव.
बं.-श्यामालता.
म.-काळी उपलसरी, कावळी.
गु.-कालां फूलवाली उपलसरी.
क.-कृष्ण सारिवा.

श्वेतसारिवानामानि ।

धवला शारिवा गोपी गोपा कन्या कृशोदरी । स्फोटा श्यामा गोपवल्ली लतास्फोता च चन्दना ॥ २०० ॥

भाषा-धवला, शारिवा, गोपी, गोपा, गोपकन्या, कृशोदरी, स्फोटा, श्यामा, गोपवल्ली, लता, आस्फोटा ये सफेद फूलवाली सारिवाके संस्कृत नाम हैं. (सारिवा, अनंता, उत्पलसारिवा, भद्रवल्ली, नागजिह्वा, करालां, भद्रवल्लिका, सुगंधा, भद्रा, शारदा, प्रतानिका, काष्ठसारिवा, गोपवधू और धवलसारिवा ये सफेद फूलवाली सारिवाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २०० ॥

अनेक भाषाके गौरीसरके नाम.

सं.-सारिवा.
हिं.-गौरीसर, गौरियाँसाउ, सालसा, गौरी साँव.
बं.-अनंतमूल.
म.-श्वेत उपलसरी, पांढरी कावळी.
कों.-पांढरी उपरसाळ, उपटसुळी, शेंबवेल, सुगंधकावळी, श्यामी, लहान कावळी.
गो.-दुदवाली.
गु.-धोळी उपलसरी, कपूरी, काळी वेल.
क.-करिवंट, सोगदे, सुगंधि बळ्ळि, नामदेवेरु.
ते.-पलाशगंधि.
ता.-नान्नारि.
तु.-कन्याबेरु.
मला.-नान्नारि.
अं.-Indian Sarsaparilla इंडियन् सार्सापरिला.
ला.-Hemidesmus Indicus हेमिडेस्मस् इंडिकस्.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोपीशब्दादिविवरणम् ।

गोपी गोपस्य स्त्री पुंयोगाद् ङीष् । गोपी गां पातीति गोपा गोपकन्या । श्यामापदेन कृष्णा श्वेतापि सारिवा कथ्यते सा श्वेतेन सारिवापदस्य प्रयुक्तत्वात् । यद्यथा "सारिवायां निशि श्यामाश्यामौ च हरितासितौ ।"

भाषा–इसकेभी जामुनके सदृश पत्ते और यह दुग्धयुक्त होती है. 'श्यामा' यह शब्द दोनों सारिवाओंमें लगसक्ता है, क्योंकि शाश्वतकोषमें "सारिवा और रात्रि यह दोनों श्यामा कहाती हैं, और हरित तथा कृष्ण ये दोनों वर्ण श्यामा कहाते हैं" ऐसा लिखा है ॥

सारिवाद्वयगुणाः ।

सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु ।
अग्निमांद्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम् ॥
दोषत्रयास्रप्रदरज्वरातीसारनाशनम् ॥ २०१ ॥

भाषा–दोनों प्रकारकी सारिवा मधुर, चिकनी, वीर्यकर्त्ता, भारी है और अग्निकी मंदता, अरुचि, श्वास, खांसी, आम, विष, तीनों दोष, रक्तविकार, प्रदर, ज्वर तथा अतिसारको नष्ट करती हैं ॥ २०१ ॥

सारिवाका विशेष विवरण.

काली सारिवा और सफेद सारिवा अर्थात् साईकी काली वेल होती है. पत्ते अनारके समान और सफेद सारिवाके जामुनके समान होते हैं और उन पत्तोंमें सफेद सफेद छींटेसे होते हैं, इनकी वेलकी जडमें कपूरकचरीके समान सुगंध आती है और इसमें दो दो फली लगती हैं, इसको कोई कोई मनुष्य सारसापरेला कहते हैं. इसकी मात्रा आधे तोलेकी है.

भृंगराजनामानि ।

भृङ्गराजो भृङ्गरजो मार्कवो भृङ्ग एव च ।
अङ्गारकः केशराजो भृङ्गारः केशरञ्जनः २०२॥

भाषा–भृंगराज, भृंगरज, मार्कव, भृंग, अंगारक, केशराज, भृंगार, केशरंजन ये भांगरेके संस्कृत नाम हैं. (भृङ्गारक, पितृप्रिय, रंगक, केश्य, कुन्तलवर्द्धन, पतङ्ग, मार्कर, मार्क, नागमार, पररु, भृंगसोदर, एकरज, करंजक, अजागर और पंकजात ये भांगरेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २०२ ॥

अनेक भाषाके भांगरेके नाम.

सं.–मार्कव, भृंगराज.	ता.–करिशलंकान्नि.
हिं.–भांगरा, भंगरा, भेगरिया, भंगरैया.	मला.–कुन्नान्नि.
बं.–भीमराज.	उत्.–कलाकेशदुरा.
म.–माका.	फा.–जमर्दर.
गो.–काजलमाव.	अ.–हर्जीज.
गु.–भांगरो.	अं.–Traling Eclipta ट्रेलिंग इक्लिप्टा.
क.–गरग, काडिगेरगु.	ला.–Eclipta Prostrata इक्लिप्टा प्रोस्ट्रेटा.
तै.–गुंटकलगरचेट्टु, गुंटगलिजेरु.	

भृंगराजगुणाः ।

भृङ्गारः कटुकस्तीक्ष्णो रूक्षोष्णः कफवातनुत् । केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत् ॥ दन्त्यो रसायनो बल्यः कुष्ठनेत्रशिरोर्तिनुत् ॥ २०३ ॥

भाषा–भांगरा चरपरा, तीक्ष्ण, रूक्ष, गरम, केशोंको उत्तम करनेवाला, त्वचाके लिये हितकारी, दांतोंको उत्तम करनेवाला, रसायनरूप, बलदायक है और कफ, वात, कृमि, श्वास, खांसी, सूजन, आम, पाण्डुरोग, कोढ, नेत्रोंकी पीडा तथा मस्तककी पीडाको दूर करता है ॥ २०३ ॥

भांगरेका विशेष विवरण.

भांगरेके गुल्म प्रायः जलके निकटकी भूमिमें बहुत उत्पन्न होते हैं. इसकी शाखाओंमें कालापन होता है, इसके पत्ते लम्बे लम्बे लाहीकेसे और पत्तेके नीचे दानेदार फलसे होते हैं. इसके पत्तोंका रस कालासा होता है. यह सफेद काले और पीले इन फूलोंके भेदसे तीन प्रकारका होता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

शणपुष्पीनामानि ।

शणपुष्पी स्मृता घण्टा शणपुष्पसमाकृतिः ।

भाषा–शणपुष्पी, घंटा, शणपुष्पसमाकृति ये ये शणपुष्पीके संस्कृत नाम हैं. (बृहत्पुष्पी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शणिका, शणघंटिका, शणपुष्पिका, पीतपुष्पी, स्थूलफला, लोमशा, माल्यपुष्पिका और घंटारवा ये शणपुष्पीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके शणपुष्पीके नाम.

सं.-शणपुष्पी.	क.-गिलुगीच्चि, गिलिगिजि.
हिं.-शणहुली, झुनझुनिया, पटसन, वनसन, घागही, शणई.	तै.-शणमतुवेल्ल, जेनपनर, रेल्लचेट्टु.
बं.-वनशणई, झनझने, शोणोर गाछ.	ता.-जेनप्पनर.
म.-रानताग, थोर खुळखुळा.	ब्र.-पन.
गु.-शणपुष्पी, खुळखुळा.	फा.-लादना.
	ला.-Crotolaria Verrucossa क्रोटोलेरिया वेर्रुकोस्सा.

शणपुष्पीगुणाः ।

शणपुष्पी कटुस्तिक्ता वामिनी कफपित्तजित्।

भाषा-शणपुष्पी कडवी, चरपरी, वमनकारक है और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है ॥

शणपुष्पीका विशेष विवरण.

शणपुष्पी भारतवर्षमें सर्वत्र होती है. इसका वृक्ष हडके समान होता है और पत्ते छोटे छोटे होते हैं, इसके फूल पीले २ होते हैं और फल लम्बे और खुक्कल होते हैं, उसके भीतर काले काले दाने बजते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

त्रायमाणानामानि ।

बलभद्रा त्रायमाणा त्रायन्ती गिरिसानुजा ।

भाषा-बलभद्रा, त्रायमाणा, त्रायंती, गिरिसानुजा ये त्रायमाणके संकृत नाम हैं. (सुभद्राणी, बलभद्रिका, वार्षिक, बलदेवा, भद्रनामिका, कुलत्रा, त्रायमाणिका, सुकामा, वार्षिका, गिरिजा, अनुजा, मंगल्यार्हा, देवबला, पालिनी, भयनाशिनी, अवनी, रक्षणी और त्राणा ये त्रायमाणके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके त्रायमाणके नाम.

सं.-त्रायमाणा.	क.-त्रायमाणा.
हिं.-त्रायमाण.	फा.-अस्प्रका.
बं.-बलाडुमुर, वनभादलिया.	ला.-Thalictrum Foliolosum थेलिक्ट्रम् फोलिओलोझम्.
म.-त्रायमाण.	
गु.-त्राहिमान.	

त्रायमाणागुणाः ।

त्रायन्ती तुवरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा ।
ज्वरहृद्रोगगुल्मार्शोभ्रमशूलविषप्रणुत्॥ २०४॥

भाषा-त्रायमाण कसैली, कडवी, दस्तावर है और पित्त, कफ, ज्वर, हृदयरोग, गुल्म, बवासीर, भ्रम, शूल तथा विषको दूर करती है ॥ २०४ ॥

त्रायमाणका विशेष विवरण.

त्रायमाणके पत्ते गोजियाके समान पृथ्वीपर फैले हुए होते हैं और बीचमें दो दंडीसी निकलती है, उसके बीजोंको त्रायमाण कहते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

मूर्वानामानि ।

मूर्वा मधुरसा देवी मोरटा तेजनी स्रुवा । मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि २०५॥

भाषा-मूर्वा, मधुरसा, देवी, मोरटा, तेजनी, स्रुवा, मधूलिका ये मूर्वाके संस्कृत नाम हैं. (धनुर्माला, धनुर्गुणा, मधुश्रेणी, कर्म्मकरी, धनुःशाखा, श्रुवा, सुरीगका, देवश्रेणी, पृथक्त्वचा, मधुस्रवा, अतिरसा, पीलुपर्णिका, दिव्यलता, ज्वलिनी और गोपवल्ली ये मूर्वाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २०५ ॥

अनेक भाषाके मूर्वाके नाम.

सं.-मूर्वा.	तै.-सांगा, चागचेट्टु, षागचेट्टु.
हिं.-चुरनहार, मूर्वा, मुरहरी, चूर्णहार.	ता.-मरूल.
बं.-मूर्वा, मुरहर.	अं.-Bowstring Hemp बोस्ट्रिंग् हेंप्.
म.-मोरवेल, मुहुरसी.	ला.-Clematis Triloba क्लिमेटिस् ट्राइलोबा.
गु.-मोरवेल.	
क.-सौंगवल्ली, हेग्गुरुटिके, हेग्गुरुटिगे.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूर्वागुणाः ।

मूर्वा सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तास्रमेहनुत् ।
त्रिदोषतृष्णाहृद्रोगकण्डूकुष्ठज्वरापहा ॥२०६॥

भाषा–मूर्वा दस्तावर, भारी, स्वादिष्ठ, कडवी है और पित्त, रुधिरविकार, प्रमेह, तीनों दोष, तृषा, हृदयरोग, खुजली, कोढ तथा ज्वरको नष्ट करती है ॥ २०६ ॥

मूर्वाका विशेष विवरण.

मूर्वाकी वेल वनमें होती है, इसमें छोटे २ और मधुर मधुर फल लगते हैं. पत्ते इसके घीकुवारकी समान चिकने और कुछ मोटे मोटे होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

काकमाचीनामानि ।

काकमाची ध्वांक्षमाची काकाह्वा चैव वायसी ।

भाषा–काकमाची, ध्वांक्षमाची, काकाह्वा, वायसी ये मकोयके संस्कृत नाम हैं. (घनाघना, काकमाचिका, काका, वायसाह्वा, सर्वतिक्ता, वहुफला, कट्फला, रसायनी, गुच्छफला, काकमाता, स्वादुपाका, सुन्दरी, तिक्तिका, वहुतिक्ता, जघनेफला और काकिनी ये मकोयके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके मकोयके नाम.

सं.–काकमाची.
हिं.–मकोय, कवैयानी. कवैया.
वं.–गुडकामाई, काकमाची, मदनमधुनि.
राज.–चिरपोटन, मको.
म.–कांगोणी, कामोणी.
गु.–पीलुडी, कांगोणी.
क.–काके.
तै.–वलसु.
तु.–काकेंडेल.
मला.–कांडनगरी.
फा.–रोवातरीख.
अ.–एलवुस् सालव.
अं.–Nite seed नाइट सीड.
ला.–Solanum Nigrum सोलेनम् नाइग्रम.

काकमाचीगुणाः ।

काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वरशुक्रदा ।
तिक्ता रसायनी शोथकुष्ठार्शोज्वरमेहजित् ॥
कटुर्नेत्रहिता हिक्काच्छर्दिहृद्रोगनाशिनी २०७॥

भाषा–मकोय स्निग्ध, गरम, स्वरको उत्तम करनेवाली, वीर्यको वढानेवाली, कडवी, रसायनरूप, चरपरी, नेत्रोंको हितकारी है और तीनों दोष, सूजन, कोढ, ववासीर, ज्वर, प्रमेह, हिचकी, वमन तथा हृदयरोगको दूर करती है ॥ २०७ ॥

मकोयका विशेष विवरण.

मकोयके छोटे २ क्षुप वागोंमें विनाही बोये वहुत हो जाते हैं. इसके पत्ते लाल मिर्चके समान होते हैं. फूल सफेद और वहुत छोटे २ होते हैं, इसके फल काले रंगके मकोईके समान होते हैं और गुच्छोंमें लगते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

काकनासानामानि ।

काकनासा तु काकाङ्घ्री काकतुण्डफला च सा ।

भाषा–काकनासा, काकाङ्घ्री, काकतुण्डफला ये कौआठोडीके संस्कृत नाम हैं. (ध्वांक्षनासा, काकतुण्डी, वायसी, सुरंगी, ध्वांक्षतुण्डा, सुनासिका, वायसाह्वा, ध्वांक्षनखी, काकाक्षी, ध्वांक्षनासिका, काकप्राणा, काकश्मश्रू, चोरस्नायु और शिरोवाला ये कौआठोडीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कौआठोडीके नाम.

सं.–काकनासा.
हिं.–कौआठोडी.
वं.–केउयाठंटी.
म.–थोर कावळी, श्वेत कावळी.
गु.–श्वेतपीलुडी, राजगरु.
क.–हिरियकागेदोंडे.
तै.–काकदोंडचेट्टु, वेलुमसंदिचेट्टु.
ला.–Gymnema Sylvestri जिम्नेमा सिल्वेस्ट्री.

काकनासागुणाः ।

काकनासा कषायोष्णा कटुका रसपाकयोः ।
कफघ्नी वामनी तिक्ता शोथार्शःश्वित्रकुष्ठहृत् ॥ २०८ ॥

भाषा–कौआठोडी कसैली, गरम, रस तथा पाकमें चरपरी, वमनकारक, कडवी है और कफ तथा श्वेत कोढको नष्ट करती है ॥२०८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कौआठोडीका विशेष विवरण.

कौआठोडी विशेषकरके जंगल और कैठरकी पृथ्वीमें होती है. इसके पत्ते गुलाबके पत्तोंसे छोटे होते हैं. इसके फूल नीले और सुफेद रंगके कौवेकी नासिकाके समान होते हैं. इसपर फली लगती हैं और उनमेंसे लोबियेके समान बीज निकलते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

काकजंघानामानि ।

काकजंघा नदीकान्ता काकतिक्ता सुलोमशा ।
पारावतपदी दासी काका चापि प्रकीर्त्तिता ॥ २०९ ॥

भाषा-काकजंघा, नदीकान्ता, काकतिक्ता, सुलोमशा, पारावतपदी, दासी, काका ये काकजंघाके संस्कृत नाम हैं. (काकाह्वी, काकांगी, काकनासिका, काककला, कृषीवल, काकांगा, ध्वांक्षजंघा, काकाह्वा और सुरंगी ये काकजंघाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २०९ ॥

अनेक भाषाके काकजंघाके नाम.

सं.-काकजंघा.	गु.-अघेडी.
हिं.-काकजंघा, मसी.	क.-चीलेच.
बं.-केउयाठोडा, कांगुडकाउली.	ते.-नालादुच्चीणीके.
म.-कांग.	ला.-Leea Hirta.
दे.-घावकाडी.	लीआ हीर्टा.

काकजंघागुणाः ।

काकजंघा हिमा तिक्ता कषाया कफपित्तजित् । निहन्ति ज्वरपित्तास्रज्वरकण्डूविषकृमीन् ॥ २१० ॥

भाषा-काकजंघा शीतल, कडवी, कसैली है और कफ, पित्त, ज्वर, रुधिरविकार, खुजली, विष तथा कृमिको नष्ट करती है ॥ २१० ॥

काकजंघाका विशेष विवरण.

काकजंघाके क्षुप जंगलमें और वनोंमें बहुत होते हैं. इसके पत्ते लम्बे लम्बे होते हैं परन्तु वे हरे और काले रंगके होते हैं. फूल छोटे छोटे और काले रंगके होते हैं. पत्तोंपर खरखरापन और बारीक बारीक रुआंसा होता है, शाखा गांठदार होती है और उनमें थोडी थोडी दूरपर ऐंडाबैंडापन होता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

नागपुष्पीनामानि ।

नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रामदूतिका ।

भाषा-नागपुष्पी, श्वेतपुष्पा, नागिनी और रामदूतिका ये नागपुष्पीके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके नागपुष्पीके नाम.

सं.-नागपुष्पी.	म.-नागाली.
हिं.-नागपुष्पी.	

नागिनीगुणाः ।

नागिनी रोचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफपित्तनुत् । विनिहन्ति विषं शूलं योनिदोषवमिकृमीन् ॥ २११ ॥

भाषा-नागपुष्पी रेचक, कडवी, तीक्ष्ण, गरम है और कफ पित्त, विष, शूल, योनिरोग, वमन तथा कृमिको नष्ट करती है ॥ २११ ॥

नागपुष्पीका विशेष विवरण.

नागपुष्पीकी वेल चलती है, यह वनके वृक्षोंपर फैल जाती है, इसके फूल सफ़ेद और काले होते हैं. एक एक शाखामें एक एक पत्ता होता है, इसके नीचे कन्द होता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

मेषशृङ्गीनामानि ।

मेषशृङ्गी विषाणी स्यान्मेषवल्ल्यजशृङ्गिका ।

भाषा-मेषशृंगी, विषाणी, मेषवल्ली, अजशृंगिका ये मेढाशिंगीके संस्कृत नाम हैं. (नन्दीवृक्ष, चक्षुर्बहल, मेढ्रशृंगी, गृहद्रुमा, बहलचक्षु, मेषविषाणिका, विषाणिका, अजशृंगी, चक्रश्रेणी, अजगन्धिनी, मौर्वी, नेत्रौषधि, आवर्तिनी, वर्तिका, सर्पदंष्ट्रिका, तिक्तदुग्धा, पुत्रशृंगी, कर्णिका और अक्षिभेषज ये मेढाशिंगीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके मेढाशिंगीके नाम.

सं.–मेषशृंगी.
हिं.–मेढाशिंगी.
बं.–मेडाशिंगे, गाडलशिंगी.
म.–मेढशिंगी, भेडशिंग.
गु.–मेढाशिंग.
क.–उडियमारा, उडिमारा.
ते.–ओडिमारु.
ता.–ओडियमारम्.
मला.–ओटि, उटि.
फा.–किस्त.
अं.–वर्किस्त.
अं.–Screwtree स्क्रूट्री.
ला.–Jaimila Sulvestor जाइमिला सिल्वेस्टर.

मेषशृङ्गीगुणाः ।

मेषशृङ्गी रसे तिक्ता वातला श्वासकासहृत् । रूक्षा पाके कटुस्तिक्ता व्रणश्लेष्माक्षिशूलनुत् ॥ २१२ ॥ मेषशृङ्गीफलं तिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत् । दीपनं स्रंसनं कासकृमिव्रणविषापहम् ॥ २१३ ॥

भाषा–मेढाशिंगी रसमें कडवी, वातकारक, रूखी, पाकमें चरपरी है और श्वास, खांसी, व्रण, कफ तथा नेत्रके शूलको नष्ट करती है. मेढाशिंगीका फल कडवा, अग्निप्रदीपक, स्रंसन है और कोढ, प्रमेह, कफ, खांसी, कृमि, व्रण तथा विषको दूर करता है ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

मेढाशिंगीका विशेष विवरण.

मेढाशिंगीका बडा वृक्ष होता है, इसके पत्ते फालसेके समान और फूल लाल होते हैं इसकी फली गोल और लम्बी होती है, इसके वृक्ष प्रायः पर्वतोंपर बहुत होते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

हंसपदीनामानि ।

हंसपादी हंसपदी कीटमाता त्रिपादिका ।

भाषा–हंसपादी, हंसपदी, कीटमाता, त्रिपादिका ये हंसपादीके संस्कृत नाम हैं. (त्रिपादी, मधुस्रवा, सुवहा, हंसवती, गोधांघ्रि, गोधापदिका, त्रिदला, चित्रपदा, हंसपदिका, हंसांघ्रि, रक्तपादी, त्रिपदा, घृतमंडलिका, विश्वग्रन्थि, त्रिपदिका, त्रिपदी, कीटमारी, कर्णाटी, ताम्रपादी, विक्रान्ता, ब्रह्मादनी, पदांगी, शीतांगी, सुतपादिका, संचारिणी, पादिका, प्रह्लादी, कीरपादिकी, धार्तराष्ट्रपदी, गोधापदी ये हंसपदीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके हंसपदीके नाम.

सं.–हंसपदी.
हिं.–हंसपदी, हंसपगी, हंसराज.
बं.–गोयाले लता.
म.–हंसपादी, लाल लाजाळू.
गु.–हंसराज.
क.–नविलडि, केंपु मृदुलमुरिके.
ते.–हंसपादमु.
ता.–शेरुप्पादि.
फा.–परस्पाशान.
अ.–शारुलजीन.
अं.–Maiden hair मेडन् हेअर.
ला.–Adiantam Lunulatum एडिएन्टम् ल्युन्युलेटम्.

हंसपदीगुणाः ।

हंसपादी गुरुः शीता हन्ति रक्तविषव्रणान् । विसर्पदाहातीसारलूताभूताग्निरोहिणीः २१४॥

भाषा–हंसपदी भारी, शीतल है और रुधिरविकार, विष, व्रण, विसर्प, दाह, अतिसार, लूता, भूतबाधा और अग्निरोहिणीको नष्ट करती है ॥ २१४ ॥

हंसपदीका विशेष विवरण.

हंसपदीके क्षुप जलाशयके समीप अत्यन्त शीतल स्थानोंमें होते हैं, विशेष करके ये कुएँ, बावडी इत्यादि स्थानोंमें बहुत होते हैं; इसको इस देशमें हंसराज कहते हैं; इसकी जड लाल और कोमल होती है; पत्ते हरे रंगके छोटे छोटे होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

सोमलतानामानि ।

सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्विजप्रिया ।

भाषा–सोमवल्ली, सोमलता, सोमक्षीरी, द्विजप्रिया ये सोमलताके संस्कृत नाम हैं. (चन्द्रवल्लरी, इन्दुलेखा, सोमवल्लिका, महागुल्मा, यज्ञश्रेष्ठा, धनुर्लता, सोमार्हा, गुल्मवल्ली, यज्ञ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वल्ली, सोमक्षीरा, सोमा और यज्ञांगा ये सोमलताके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके सोमवल्लीके नाम.

सं.-सोमवल्ली.	अं.-The moon plant दि मून् प्लॅन्ट्.
हिं.-सोमवल्ली.	ला.-Sarcostemma Brevistigme सार्क्रोस्टेमा ब्रेविस्टिमा.
बं.-सोमलता.	
म.-थोर सोमवल्ली.	
गु.-सोमलता.	
क.-सोमवल्ली.	
तै.-सोममु, पुल्लातिगे, पल्लीटीजी.	

सोमलतागुणाः ।

सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायनी ।

भाषा-सोमलता त्रिदोषनाशक, चरपरी, कडवी और रसायन है ॥

सोमलताका विशेष विवरण.

सोमलता थूहरकी जो कई प्रकारकी जाति हैं उनमेंसे सोमलताभी एक भांतिकी वेल है; इसमें शुक्ल पक्षके दिनमें क्रमवार प्रतिपदासे लेकर पूर्णमासीतक एक एक पत्ता प्रतिवासर निकलता है; पन्द्रह तिथियोंमें पन्द्रह पत्ते हो जाते हैं; फिर कृष्णपक्षकी परिवासे लेकर अमावस्यातक एक एक पत्ता प्रतिदिन गिरजाता है; पन्द्रह दिनमें एक पत्ता नहीं रहता, इस लताका चन्द्रमासे अधिक स्नेह है इसी कारण इस अद्भुत लताका नाम सोमलता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

आकाशवल्लीनामानि ।

आकाशवल्ली तु बुधैः कथिताऽमरवल्लरी ।

भाषा-आकाशवल्ली, अमरवल्लरी, खवल्ली ये आकाशवेलके संस्कृत नाम हैं. (दुःस्पर्शा और व्योमवल्लिका ये आकाशवेलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके आकाशवेलके नाम.

सं.-आकाशवल्ली.	तै.-इंद्रजाल, पाचितिगे.
हिं.-आकाशवेल, अमरवेल.	ता.-कोतान, इंदिरावल्लि, नांदे.
बं.-आलोकलता, आकाशवेल.	मला.-आकाशवल्लि.
म.-अमरवेल, अंतरवेल, सोनवेल.	फा.-कनवाल व्युलासीई.
गु.-अमरवेल.	अ.-अफतिमून.
क.-बेळुवळ्ळि, नेलमुदवळ्ळि; शाविगेवळ्ळि, अमरबळ्ळि.	ला.-Cuscutareflexa कस्कुटारिफ्लेक्सा.

आकाशवल्लीगुणाः ।

खवल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिलाक्ष्मामयापहा । तुवराऽग्निकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी ॥ २१५ ॥

भाषा-आकाशवेल ग्राही, कडवी, पिच्छिल, नेत्ररोगनाशक, कसैली, अग्निकारक और हृदयको हितकारी है और पित्त, कफ तथा आमको नष्ट करती है ॥ २१५ ॥

आकाशवेलका विशेष विवरण.

आकाशवेल डोरेकी समान कीकर बेर अडूसे इत्यादि वृक्षोंपर फैली हुई होती है, इसका रंग पीला होता है और फूल सफेद २ आते हैं; इसकी जड कहीं नहीं होती, इसी कारण इसका नाम आकाशवेल है. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

पातालगरुडीनामानि ।

छिलिहिण्टो महामूलः पातालगरुडाह्वयः ।

भाषा-छिलिहिण्ट, महामूल, पातालगरुड ये पातालगरुडीके संस्कृत नाम हैं. (वत्सादनी, तिक्ताङ्गा, मोचिकाभिधा, तार्क्षी, सौपर्णी, गारुडी, दीर्घकाण्डा, दृढकाण्डा, महाबला, दीर्घवल्ली और दृढलता ये पातालगरुडीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके पातालगरुडीके नाम.

सं.–पातालगरुडी.
हिं.–पातालगरुडी, छिरेटा.
बं.–शिलिन्दा. [डळ.
म.–गरुडवेल, भूयपा-
गु.–पातालगरुडी, बेवडीओलप.
क.–तागडीबळ्ळि.
ते.–दूसरतोगे.
ता.–कात्तुककोदी.
फा.–फरीदबुटी.
ला.–Cocculus Villosus कोक्युलस् विलोसस्.

पातालगरुडीगुणाः ।

छिलिहिण्टः परं वृष्यः कफघ्नः पवनापहः ।

भाषा–पातालगरुडी वीर्यको अधिक बढानेवाली है और कफ तथा वायुको नष्ट करनेवाली है ॥

पातालगरुडीका विशेष विवरण.

पातालगरुडी अर्थात् छिरेटीकी वेल होती है, यह बहुत मोटी और दृढ होती है, इसके तन्तुभी बहुत पक्के होते हैं, इसके फल छोटे २ और गुच्छोंमें लगते हैं, तरुण अवस्थामें हरे और पकनेपर काले पड जाते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

वन्दानामानि ।

वन्दा वृक्षादनी वृक्षभक्ष्या वृक्षरुहापि च ।

भाषा–वन्दा, वृक्षादनी, वृक्षभक्ष्या, वृक्षरुहा ये बांदाके संस्कृत नाम हैं. (सेव्या, परपुष्टा, पराश्रया, जीवन्तिका, काकुरुहा, वन्दाका, शेखरी, वन्दका, वन्दक, नीलवल्ली, वन्दाकी, परवासिका, वाशिनी, पुत्रिणी, वन्ध्या, पादपरुहा, शिखरी, तरुरोहिणी, वृक्षादनी, कामवृक्ष, शैखरी, केशरूपा, तरुरुहा, तरुस्था, गन्धमादनी, कामिनी, तरुभुक्, श्यामा, उपदी, वृक्षभक्ष्या, नीलवर्णा, वन्दाकी, गन्धमादनी और रोहिणी ये बांदाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके वन्दाके नाम.

सं.–वन्दा.
हिं.–वन्दा, वंदाल, बांदा.
बं.–परगाछा, वान्दडा.
म.–बादांगुल.
गु.–गुन्दी.
क.–वंदणिके.
ते.–वाजिनीके.
ला.–Loranthus Longifoliaus लोरेन्थस लाँगिफोलियुस्.

वन्दागुणाः ।

वन्दाकः स्याद्धिमस्तिक्तः कषायो मधुरो रसे ।
माङ्गल्यः कफवातास्रक्षोव्रणविषापहः २१६॥

भाषा–बांदा शीतल, कडवा, कसैला, मधुर, मंगलकारक है और कफ, वात, रुधिरविकार, व्रण तथा विषका नाश करता है ॥ २१६ ॥

वन्दाका विशेष विवरण.

वन्दा विविध प्रकारका वृक्षोंपर वृक्षसरीखा हो जाता है, उसकी जड अलग नहीं होती, वृक्षहीमें उत्पन्न हो जाता है, कोई कोई ऐसा कहते हैं कि काकादि कोई पक्षी किसी वृक्षकी शाखा लाकर वृक्षपर रख देता है, उसीमें पत्ते निकल आते हैं, और वही फल फूलकर वन्दा होता है, किसीमें लाल, किसीमें पीला, किसीमें सफेद और किसीमें नीला फूल होता है, और पत्तेभी भिन्न भिन्न जातिके होते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

वटपत्रीनामानि ।

वटपत्री तु कथिता मोहिनी रेचनी बुधैः ।

भाषा–वटपत्री, मोहिनी, रेचनी ये वटपत्रीके संस्कृत नाम हैं. (ऐरावती, इरावती, इनानी, गोधावती, श्यामा और खट्वाङ्गनासिका ये वटपत्रीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके वडपत्रीके नाम.

सं.–वटपत्री.
हिं.–वडपत्री, वटपत्री.
बं.–वडपातारकुचा.
म.–वटपत्री.
ते.–पिण्डि.
ला.–Laicopedium लॅकोपेडियम.

वटपत्रीगुणाः ।

वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्रगदापहा ।

भाषा–वटपत्री मोहकारक, रेचन, कसैली, गरम है और योनिरोग तथा मूत्ररोगका नाश करती है ॥

वटपत्रीका विशेष विवरण.

वटपत्री पाषाणभेदहीका भेद है. इसके पत्ते वडके समान होते हैं, इसीसे इसका नाम वटपत्री है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिङ्गुपत्रीनामानि ।

हिंगुपत्री तु कबरी पृथ्वीका पृथुका पृथुः ।

भाषा-हिंगुपत्री, कबरी, पृथ्वीका, पृथुका, पृथु ये हिंगुपत्रीके संस्कृत नाम हैं. (त्वक्पत्री, पृथुला, बाष्पिका, बाष्पीका, बाष्पी, दीर्घिका, दारुपत्रिका, कारवी, करवी, पृथिवी, पृथिवीका, बाष्पका, वाष्पा, पत्री, तन्वी, दारुपत्री और बिल्वा ये हिंगुपत्रीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके हिंगुपत्रीके नाम.

सं.-हिंगुपत्री.	म.-वाफळी.
हिं.-हिंगुपत्री.	गु.-वहुफली.
बं.-रांदुनी.	

हिंगुपत्रीगुणाः ।

हिंगुपत्री भवेद्रुच्या तीक्ष्णोष्णा पाचनी कटुः । हृद्बस्तिरुग्विबन्धार्शःश्लेष्मगुल्मानिलापहा ॥ २१७ ॥

भाषा-हिंगुपत्री रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, पाचन है और हृदयरोग, बस्तिरोग, मलविबन्ध, बवासीर, कफ, गुल्म तथा वातको दूर करती है ॥ २१७ ॥

हिंगुपत्रीका विशेष विवरण.

हिंगुपत्रीके पत्तोंके गुण और नाम हींगके पत्तोंसे मिलते हैं. जैसे कि, हींगके पत्तोंको संस्कृतमें कबरी और कर्बरी कहते हैं. सो इसकोभी कबरी और कर्वरी कहते हैं. गुणभी हींगसे मिलते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

वंशपत्रीनामानि ।

वंशपत्री वेणुपत्री पिण्डा हिंगुशिवाटिका ।

भाषा-वंशपत्री, वेणुपत्री, पिण्डा, हिंगुशिवाटिका ये वंशपंत्रीके संस्कृत नाम हैं. (वंशदला और जीर्णपत्रिका ये वंशपत्रीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके वंशपत्रीके नाम.

सं.-वंशपत्री.	अं.-Dekamalleg-am Gârdinia डीकेमालीगम, गार्डिनिया.
हिं.-वंशपत्री, डीकामाली.	
म.-डीकेमाली.	
गु.-डीकामारी.	
क.-कलहत्ती.	
तै.-चीभहींगवा.	
अ.-कनखाभ.	ला.-Gardinialucida गार्डिन्याल्युसिडा.

वंशपत्रीगुणाः ।

हिंगुपत्रीगुणा विज्ञैर्वंशपत्री च कीर्तिता ।

भाषा-वंशपत्रीके गुण हिंगुपत्रीके सदृशही जाने ॥

वंशपत्रीका विशेष विवरण.

वंशपत्रीका मध्यम जातिका वृक्ष होता है. गुजरातदेशमें इसके वृक्ष बहुत होते हैं; वहां इसको मालडी कहते हैं, इसके पत्ते मोगरेके समान होते हैं, फूल सफेद होते हैं, फल पोस्तके डोरेके सदृश होते हैं, इस वृक्षके गोंदको डिकामारी कहते हैं.

मत्स्याक्षीनामानि ।

मत्स्याक्षी वाह्लिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनीति च ।

भाषा-मत्स्याक्षी, बाह्लिका, मत्स्यगन्धा और मत्स्यादनी ये मछेछीके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके मत्सीके नाम.

सं.-मत्स्याक्षी.	म.-मत्स्याक्षी.
हिं.-मत्सी.	गु.-मत्स्याक्षी.
बं.-मत्स्याक्षी.	

मत्स्याक्षीगुणाः ।

मत्स्याक्षी ग्राहिणी शीता कुष्ठपित्तकफास्रजित् । लघुस्तिक्ता कषाया च स्वाद्वी कटुविपाकिनी ॥ २१८ ॥

भाषा-मत्सी ग्राही, शीतल, हलकी, कडवी, कसैली, मधुर, पाकमें चरपरी है और कोढ, पित्त, कफ तथा रुधिरविकारको दूर करती है ॥ २१८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मत्सीका विशेष विवरण.

मत्स्याक्षी अर्थात् मछेछीके क्षुप छोटे छोटे होते हैं, इसके पत्ते उडदके पत्तोंके समान होते हैं और फूल सफेद और पीलें रंगके होते हैं, इसमें मछलीके समान गन्ध आती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

सर्पाक्षीनामानि ।

सर्पाक्षी स्यात्तु गण्डाली तथा नाडीकपालकः ।

भाषा–सर्पाक्षी, गण्डाली और नांडीकपालक ये सर्पाक्षीके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके सरहटीके नाम.

सं.–सर्पाक्षी.	म.–सर्पाक्षी.
हिं.–सरहटी, गंडनी.	

सर्पाक्षीगुणाः ।

सर्पाक्षी कटुका तिक्ता सोष्णा कृमिनिकृंतनी । वृश्चिकोन्दुरसर्पाणां विषघ्नी व्रणरोपिणी ॥ २१९ ॥

भाषा–सर्पाक्षी चरपरी, कडवी, गरम, व्रणरोपक है और कृमिरोग, वीछू, मूसा तथा सर्प इनके विषको नष्ट करती है ॥ २१९ ॥

सर्पाक्षीका विशेष विवरण.

सर्पाक्षी एक सरफोंकेका भेद है. सरफोंकेमें और इसमें किसी प्रकारका भेद नहीं पाया जाता. इसकी मात्रा ३ रत्तीकी है.

शंखपुष्पीनामानि ।

शङ्खपुष्पी तु शंखाह्वा माङ्गल्यकुसुमापि च ।

भाषा–शंखपुष्पी, शंखाह्वा, मांगल्यकुसुमा ये शंखपुष्पीके संस्कृत नाम हैं. (चण्डा, सुपुष्पी, कम्बुमालिनी, पीतपुष्पी, कम्बुपुष्पा, मलविनाशिनी, किरीटी, शंखकुसुमा, भूलग्ना, शंखगालिनी, कम्बूपुष्पी, वनमालिनी, इतरा, सूक्ष्मपत्रा, रक्तपुष्पी, रक्तपुष्पिका ये शंखपुष्पीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके शंखाहुलीके नाम.

सं.–शंखपुष्पी.	गु.–शंखावली.
हिं.–शंखाहुली, शंखपुष्पी, कोडिछा.	क.–शंखपुष्पी.
बं.–शंखाहुली.	ला.–Evolvulus erecta इवोल्व्युलस् इरेक्टा.
म.–शंखोली, सांखवेल.	

शंखपुष्पीगुणाः ।

शंखपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानसरोगहृत् । रसायनी कषायोष्णा स्मृतिकान्तिबलाग्निदा । दोषापस्मारभूताश्रीकुष्ठकृमिविषप्रणुत् ॥ २२० ॥

भाषा–शंखाहुली दस्तावर, मेधाको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, मानसिक रोगोंको नष्ट करनेवाली, रसायन, कसैली, गरम है तथा स्मृति, कान्ति, बल तथा अग्निको देनेवाली है और दोष, अपस्मार, भूत, अलक्ष्मी, कोढ, कृमि तथा विषको नष्ट करती है ॥ २२० ॥

शंखपुष्पीका विशेष विवरण.

शंखपुष्पी अर्थात् शंखाहूलीका छत्ता प्रायः ऊषर भूमिमें होता है. इसके पत्ते छोटे छोटे धूसर-रंगके घासके समान होते हैं, फूल बहुत छोटे छोटे सफेद रंगके शंखके सदृश होते हैं, सफेद फूलवालीको सफेद शंखाहूली कहते हैं, लाल फूलवालीको लाल शंखाहूली कहते हैं और नीले फूलवाली शंखाहूलीको विष्णुक्रांता कहते हैं. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

अर्कपुष्पीनामानि ।

अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका ।

भाषा–अर्कपुष्पी, क्रूरकर्मा, पयस्या, जलकामुका ये अर्कपुष्पीके संस्कृत नाम हैं. (सूर्यवल्ली, कुटुम्बिनी, क्षीरिणी, वक्रशल्या, दुराधर्षा, सिरिण्टिका, शीना, प्रहरकुटकी, शीतला, जलेरुहा, सितपर्णी, शीतपर्णी और अर्कपुष्पिका ये अर्कपुष्पीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके अर्कपुष्पीके नाम.

सं.-अर्कपुष्पी, कुटुंबिनी.
हिं.-अंधाहुली, अर्कहुली, दाधियार, क्षीरवृक्ष, अर्कपुष्पा.
बं.-वडक्षीरुई.
म.-पहारकुटुंवी, शिरदोडी.
को.-शिरदोडी, शिरवल्ली, मोठी कावळी, वाकांडी, देवभोंवरी.
गु.-खरणेर.
क.-मारिंजेवर्णिमेयभेद, मरुलिगनकसा.
ला.-Holostema Rheedii होलोस्टेमा ऱ्हीडिआइ.

अर्कपुष्पीगुणाः ।

अर्कपुष्पी कृमिश्लेष्ममेहपित्तविकाराजित् ।

भाषा-अर्कपुष्पी कृमि, कफ, प्रमेह तथा पित्तविकारको नष्ट करती है ॥

अर्कपुष्पीका विशेष विवरण.

अर्कपुष्पी जीवन्तिहीका भेद है, इसकी वेल नागरवेलके समान होती है, इसके पत्ते गिलोयके तुल्य छोटे होते हैं. फूल सूर्यमुखीके समान गोल आता है, और इसमें दूध निकलता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

लज्जालुनामानि ।

लज्जालुः स्याच्छमीपत्रा समङ्गा जलकारिका । रक्तपादी नमस्कारी नाम्ना खदिरकेत्यपि ॥ २२१ ॥

भाषा-लज्जालु, शमीपत्रा, समंगा, जलकारिका, रक्तपादी, नमस्कारी, खदिरका ये छुईमुईके संस्कृत नाम हैं. (कान्दिरी, खदिरपत्रिका, संकोचिनी, प्रसारिणी, सप्तपर्णी, खदिरी, गण्डमालिका, लज्जा, लज्जिका, स्पर्शलज्जा, अस्रराधिनी, रक्तमूला, ताम्रमूला, स्वगुप्ता, महाभीता और वाशिनी, ये छुईमुईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २२१ ॥

अनेक भाषाके लज्जावन्तीके नाम.

सं.-लज्जालु.
हिं.-लज्जावंती, शर्मानी, छुईमुई, लजारु.
बं.-लज्जावती, लाजवती, लाजुक.
म.-लाजाळू, लाजरी, संकोरणी. [मणी.
गु.-रीसामणी, लजाक.-मुदॆदरे मुरुव, ओळ्ळुमुच्चक, मुदुलमुरिके.
ते.-मुनुगुडामारमु.
ता.-तोट्टलशुरुंगि.
तु.-नाचिकेडे.
मला.-तोट्टनवाति.
ला.-Mimosa Sensetiva माइमोसा सेंन्सिटिवा.

लज्जालुगुणाः ।

लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित् । रक्तपित्तमतीसारं योनिरोगान्विनाशयेत् ॥ २२२ ॥

भाषा-लज्जावंती शीतल, चरपरी, कसैली है और कफ, पित्त, रक्तपित्त, अतिसार तथा योनिरोगका नाश करती है ॥ २२२ ॥

लज्जावन्तीका विशेष विवरण.

लज्जावंती अर्थात् छुईमुईके क्षुप वेलके समान होते हैं, पत्ते छौंकर अथवा खैरके समान होते हैं, फूल गुलाबी नीले मिश्रित रंगके होते हैं, इसकी जड लाल होती है, इसको स्पर्श करनेसे यह लज्जाके मारे सर्माकर सुकडजाती है, पश्चात् विस्तृत हो जाती है. यह दो प्रकारकी होती है, एक कांटेवाली, और दूसरी विना कांटेकी, हाथके लगतेही सुकड सुकडाकर नीचेको झुक जाती है. इसीलिये इसका नाम छुईमुई लज्जावन्ती रक्खा है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

अलम्बुषानामानि ।

अलम्बुषा खरत्वक् च तथा मेदोगलास्मृता ।

भाषा-अलम्बुषा, खरत्वक् और मेदोगला ये अलम्बुषाके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके अलंबुषाके नाम.

सं.-अलम्बुषा.
हिं.-अलम्बुषा, एक जातिकी छुईमुई, फूलशोला.
बं.-फूलशोला.
म.-खरत्वक्.
ला.-A sort of Sensitive Plant ए सॉर्ट ऑव्ह सेन्सेटिव्ह प्लॅन्ट.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलम्बुषागुणाः ।

अलम्बुषा लघुः स्वादुः कृमिपित्तकफापहा ।

भाषा–अलम्बुषा (लज्जालुका भेद) हलकी तथा मधुर है और कृमि, पित्त तथा कफको नष्ट करती है ॥

अलंबुषाका विशेष विवरण.

यह एक प्रकारका लज्जालुही है. प्रयोगमें इसका सर्वांग लिया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

दुग्धिकानामानि ।

दुग्धिका स्वादुपर्णी स्यात्क्षीरा विक्षीरिणी तथा ।

भाषा–दुग्धिका, स्वादुपर्णी, क्षीरा, विक्षीरिणी ये दुद्धीके संस्कृत नाम हैं. (दुग्धी, क्षीरात्मिका, क्षीरी, क्षीरावी, मरुद्भवा, क्षीरिणी, क्षीराविका, ग्राहिणी, कच्छुरा और ताम्रमूला ये दुद्धीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके दुद्धीके नाम.

सं.–दुग्धिका.	ते.–पिलपालचेट्टु.
हिं.–दुद्धी, दूधिया.	फा.–निशाशत.
बं.–दुधि, दुध्या, क्षीरुई.	ला.–Euphorbia Hirta युफोर्बिया हिर्टा, Euparviflora युपार्विफ्लोरा, Euthymefolia युथाइमिफोलिया.
म.–दुधी.	
को.–दुधनी, दुधुर्ली, दार्दुडी.	
गु.–नागार्जुनी, दुधेली.	
क.–मरिजवणीगे.	

दुग्धिकागुणाः ।

दुग्धिकोष्णा गुरू रूक्षा वातला गर्भकारिणी ।
स्वादुक्षीरा कटुस्तिक्ता सृष्टमूत्रामलापहा ॥
स्वादुर्विष्टम्भिनी वृष्या कफकुष्ठकृमिप्रणुत् ॥ २२३ ॥

भाषा–दुद्धी गरम, भारी, रूक्ष, वातकारक, गर्भदायक, स्वादिष्ठ, दूधवाली, चरपरी, कडवी, मूत्र लानेवाली, मलको रोकनेवाली, मधुर, वीर्यवर्द्धक है और मल, कफ, वात तथा कृमिको नष्ट करती है ॥ २२३ ॥

दुद्धीका विशेष विवरण.

दुद्धीका क्षुप छत्तासा होता है, ऊपरको कम उठता है, क्षितिहीमें फैलता है. दुद्धी तीन प्रकारकी होती है, एक नोकदार, लाल पत्तोंकी, एक गोल पत्तोंकी और एक मूंगके दानोंके समान छोटे छोटे पत्तोंकी होती है; तीना प्रकारकी दुद्धीमें दूध निकलता है. प्रयोगमें इसका सर्वांग लिया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

भूम्यामलकनामानि ।

भूम्यामलकिका प्रोक्ता शिवा तामलकीति च ।
बहुपत्रा बहुफला बहुवीर्या जटापि च ॥२२४॥

भाषा–भूम्यामलकिका, शिवा, तामलकी, बहुपत्रा, बहुफला, बहुवीर्या, जटा ये भूआमलेके संस्कृत नाम हैं. (भूम्यामलकी, भूम्यामली, तालीं, क्षेत्रामली, झारिका, बहुपुष्पी, जटा, अध्यंडा, तालीं, अजटा, सूक्ष्मफला, क्षेत्रामलकी, वितुन्नका, अफला, अमला, अजुटा, झटामला, अमलजुटा, तमाली, तमालिका, उच्चट, दृढपादी, वितुन्ना, वितुन्निका, भूधात्री, चारटी, बहुपत्रिका, अहिमपदा, वीरा, विश्वपर्णी, हिमालया, अरुहा, भूपर्वा, दलस्पर्शिनी, बहुपुत्रा, सूक्ष्मदला, दृढपादा, अमली, तमालिनी, पुत्रश्रेणिका और हिलोलिका ये भूआमलेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २२४ ॥

अनेक भाषाके भूँईआमलेके नाम.

सं.–भूम्यामलकी.	ते.–नेलउसीरीके.
हिं.–भूँई आमला, भूमिआंवरा.	ता.–किलकायनेल्लि.
बं.–भूँई आमला.	तु.–नेलनेल्लि.
म.–भुई आंवळी.	मला.–किलानेल्लि.
गु.–भों आंवळी, भों आंमली.	ला.–Phyllanthus Niruri फाइलेन्थस् निरुरि.
क.–आर्रुनेल्लि, किरिनेल्लि, नेलनेल्लि.	

भूम्यामलकगुणाः ।

भूधात्री वातकृत्तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ।
पिपासाकासपित्तास्रकफकण्डूक्षतापहा २२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-भुँईआमला व तकारक, कडवा, कसैला, मधुर, शीतल है और तृषा, पित्त, रुधिरविकार, कफ, मल तथा क्षतको नष्ट करता है ॥ २२५ ॥

भूँईआमलेका विशेष विवरण.

भूँईआमलेके छोटे छोटे क्षुप होते हैं. इसके पत्ते छोटे छोटे होत ह, पत्तोंके नीचे राईके दानेके समान फलोंकी शाखा होती है. प्रयोगमें इसके फल लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

ब्राह्मीनामानि ।

ब्राह्मी कपोतवङ्का च सोमवल्ली सरस्वती ।

भाषा-ब्राह्मी, कपोतवंका, सोमवल्ली, सरस्वती ये ब्राह्मीके संस्कृत नाम हैं. (वयःस्था, मत्स्याक्षी, सुरसा, ब्रह्मचारिणी, सोमवल्लरी, सोम्या, सुरश्रेष्ठा, सुवर्चला, कपोतवेगा, वैधात्री, दिव्यतेजा, महौषधि, स्वायम्भुवी, सौम्यलता, सुरेष्टा, ब्रह्मकन्यका, मण्डूकमाता, मण्डूकी, वीरा, भारती, वरा, परमेष्ठिनी, दिव्या और शारदा ये ब्राह्मीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके ब्राह्मीके नाम.

सं.-ब्राह्मी.	मला.-मुत्तल.
हिं.-ब्राह्मी, बरंभी.	फा.-जरनव.
बं.-ब्रह्मशाक, ब्राह्मी.	अं.-Indian Pennywort इंडियन् पेनिवर्ट्.
म.-ब्राह्मी.	
गु.-ब्राह्मी.	ला.-Hydrocotyle Asiatica हाइड्रोकोटाइल् एसियाटिका.
क.-आदेगल.	
ते.-ब्राह्मीचट्टु.	
ता.-वल्लारि.	
तु.-तिमरे.	

ब्रह्ममण्डूकीनामानि ।

मण्डूकपर्णी भाण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ।

भाषा-मण्डूकपर्णी, माण्डूकी, त्वाष्ट्री, दिव्या, महौषधी ये ब्रह्ममण्डूकीके संस्कृत नाम हैं. (मण्डकी, भेकी, मण्डूकपर्णिका, ब्रह्ममण्डूकी, सुप्रिया और दारुच्छदा ये ब्रह्ममण्डूकीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके ब्रह्ममण्डूकीके नाम.

सं.-मण्डूकपर्णी.	गु-खड्भरामी.
हिं.-ब्रह्ममाण्डूकी.	ते.-मण्डूकब्रह्मी.
बं.-अधावर्णी, थालकुनी.	ता.-वल्लरीकेरा.

ब्राह्मीब्रह्ममण्डूकीगुणाः ।

ब्राह्मी हिमा सरा तिक्ता लघुर्मेध्या च शीतला । कषाया मधुरा स्वादुपाकायुष्या रसायनी ॥ २२६ ॥ स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्रकामनित् । विषशोफज्वरहरी तद्वन्मण्डूकपर्णिनी ॥ २२७ ॥

भाषा-ब्राह्मी शीतल, दस्तावर, कडवी, हलकी, मेधाको हितकारी, कसैली, मधुर, पाकमें मधुर, आयुको बढानेवाली, रसायन, स्वरको हितकारी, स्मरणशक्तिदायक है और कोढ, पाण्डु, प्रमेह, रुधिरविकार, खांसी, विष, सूजन तथा ज्वरको नष्ट करती है. मण्डूकपर्णीके-भी येही गुण हैं ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

ब्राह्मीका विशेष विवरण.

ब्राह्मी और मंडूकपर्णी ये दोनों प्रसर जातिकी औषधि हैं. ब्राह्मीके क्षुपका छत्तासा प्रायः सजलक्षिति अथवा जलाशयके समीपकी भूमिमें होता है. इसके पत्ते छोटे छोटे गोल एक ओरसे खुलेहुए होते हैं. दूसरी ब्रह्ममण्डूकी होती है, उसके छोटे पत्ते होते हैं. इसका दर्पनाशक सफेद चंदन और गुलाबजल है तथा प्रतिनिधि दालचीनी है. प्रत्यककी मात्रा २ मासेकी है.

द्रोणानामानि ।

द्रोणा च द्रोणपुष्पी च फलेपुष्पा च कीर्तिता ।

भाषा-द्रोणा, द्रोणपुष्पी, फलेपुष्पा ये गूमाके संस्कृत नाम हैं. (क्षुद्रपत्री, कुम्भयोनि, कुरुम्बिका, चित्राक्षुप, कुरुम्बा, सुपुष्पी, चित्रपत्रिका, श्वसनक, पालेन्दी, कुम्भयोनिका, छत्राणी, छत्रका, कौण्डिन्य और वृक्षसारक ये गूमाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके गूमाके नाम.

सं.–द्रोणपुष्पी.
हिं.–गूमा, गोमा.
बं.–द्रोणपुष्पी, गलघासिया.
म.–कुंभा, गोमा.
कों.–तंवा, शेतवड.
गु.–कुबो.
क.–तुंबे, कुंभीवृक्ष.
ते.–गयस्चेट्टु.
ता.–तुंटे.
तु.–तुंबे.
मला.–तुंपा.
ला.–Leucas Cephalotus ल्युकास् सिप्पेलोटस्.

द्रोणपुष्पीगुणाः।

द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादू रूक्षोष्णा वातपित्तकृत्। मतिक्ष्णलघ्वी स्वादुपाका कटुः च भेदिनी। कफामकामलाशोथतमकश्वासजन्तुजित् ॥ २२८ ॥

भाषा–गूमा भारी, मधुर, रूखी, गरम, तीक्ष्ण, खारी, पाकमें मधुर, चरपरी, दस्तावर है और वात, पित्त, कफ, आम, कामला, सूजन, तमकश्वास और कृमिको नष्ट करती है ॥ २२८ ॥

गूमाका विशेष विवरण.

गूमेके क्षुप जंगलमें बहुत होते हैं, गुच्छे गांठ गांठमें होते हैं, उन गुच्छोंमें सफेद फूल आते हैं, इसके भीतर बीज होते हैं और फलके ऊपर दो पत्ते होते हैं. प्रयोगमें इसका सर्वांग लिया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

सुवर्चलानामानि।

सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा बदरापि च। सूर्यावर्त्ता रविप्रीताऽपरा ब्रह्मसुदुर्लभा ॥ २२९ ॥

भाषा–सुवर्चला, सूर्यभक्ता, वरदा, बदरा, सूर्यावर्त्ता, रविप्रीता ये हुरहुरके संस्कृत नाम हैं. (आदित्यभक्ता, अर्कभक्ता, सूर्यभक्ता, अर्ककांता, रसम्भवा, सौरि, सुवेजा, अर्कहिता, रवीष्टा, सत्यनाशी मार्तण्डवल्लभा, विक्रांता और भास्करेष्टा ये हुरहुरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) हुलहुल दूसरी जातिकीभी होती है उसको संस्कृतमें ब्रह्मसुदुर्लभा, और हिंदीमें ब्रह्मसोंचली कहते हैं ॥ २२९ ॥

अनेक भाषाके हुरहुरके नाम.

सं.–आदित्यभक्ता, सुवर्चला.
हिं.–हुरहुर, हुलहुल, सोंचली.
बं.–हुडहुडे, वनशलो.
म.–आदेता, सूर्यफूल वल्ली, खोबरदोडी.
गु.–सूरजमुखी.
क.–सूर्यकांति, आदित्यभक्ति.
ते.–सूर्यकांतिपु.
ता.–सूर्यकांति.
फा.–गुले आफताव परस्त.
अ.–अरदमून.
अ.–Sunflower सनफ्लॉवर.
ला.–Helianthus annuas हेलिएंथस् एन्युअस्.

सुवर्चलागुणाः।

सुवर्चला हिमा रूक्षा स्वादुपाका सरा गुरुः। अपित्तला कटुः क्षारा विष्टम्भकफवातजित् ॥ २३० ॥

भाषा–हुलहुल शीतल, रूखी, पाकमें मधुर, दस्तावर, भारी, पित्तकारक नहीं, चरपरी, खारी है और मलबंध, कफ तथा वातका विनाश करती है ॥ २३० ॥

ब्रह्मसुवर्चलागुणाः।

अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः। निहन्ति कफपित्तास्रश्वासकासारुचिज्वरान् ॥ विस्फोटकुष्ठमेहास्यनिरुक्कृमिपाण्डुताः ॥ २३१ ॥

भाषा–ब्रह्मसोंचली कडवी, कसैली, गरम, दस्तावर, रूखी, हलकी, चरपरा है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, विस्फोट, कुष्ठ, प्रमेह, योनिरोग, कृमि तथा पाण्डुताको नष्ट करती है ॥ २३१ ॥

हुरहुलका विशेष विवरण.

ब्रह्मसुवर्चला अर्थात् हुरहुरकी बेल तथा क्षुप होते हैं, ये विशेषकरके बागमें बोये जाते हैं, प्रायः इसपर सूर्योदय होनेपर फूल प्रफुल्लित होजाते हैं, और सूर्यके अस्त होनेपर संकुचित होजाते हैं, बेलवाले हुरहुरमें जो फूल आते हैं, वे नीले रंगके होते हैं और क्षुपवाले हुरहुरके फूल सफेद होते हैं. और बहुत सुन्दर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और सूर्याकार होते हैं परन्तु छोटे छोटे होते हैं. प्रयोगमें इसके पत्र आदि लिये जाते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

वंध्याकर्कोटकीनामानि ।

वन्ध्याकर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरीति च । नागारिर्नक्रदमनी विषकण्टकिनी तथा ॥ २३२॥

भाषा-वन्ध्याकर्कोटकी, देवी, कन्या, योगीश्वरी, नागारि, नक्रदमनी, विषकण्टकिनी ये बांझककोडेके संस्कृत नाम हैं. (नागारांति, वन्ध्या, नागहन्त्री, मनोज्ञा, पथ्या, दिवा, पुत्रदा, सकन्दा, कन्दवल्ली, ईश्वरी, श्रीकन्दा, सुगंधा, सर्पदमनी, विषकन्दाकिनी, वरा, कंदशालिनी, भूतापहा, सर्वौषधी, विषमोहप्रशमनी और महायोगेश्वरी ये बांझककोडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २३२ ॥

अनेक भाषाके बांझककोडेके नाम.

सं.-वंध्याकर्कोटकी.	गु.-वांझकंटोलो.
हिं.-बांझककोडा, बांझखखसा, बनककोडा.	क.-बंजमडवागलु.
बं.-तित्कांकरोल, तित्कांकडी.	ता.-पलुपघेल्कुलुंग.
म.-वांझकटोली, वांझकंटोली.	ला.-Momordica dioicamale मोमोर्डिका डायोइकामेल.

वंध्याकर्कोटकीगुणाः ।

वन्ध्या कर्कोटकी लघ्वी कफनुद्व्रणशोधिनी । सर्पदर्पहरी तीक्ष्णा विसर्पविषहारिणी॥२३३॥

भाषा-बांझककोडा हलका, कफनाशक, व्रणको शुद्ध करनेवाला, तीक्ष्ण, सर्पका मद हरनेवाला है और विसर्प तथा विषको दूर करता है ॥ २३३ ॥

बांझककोडका विशेष विवरण.

वंध्याकर्कोटकी अर्थात् बांझककोडेकी बेल ककोडेके समान जंगलके वृक्षोंपर फैल जाती है, परंतु इसमें फल नहीं आते इसलिये इसको बांझ ककोडा कहते हैं, फलके स्थानमें खाली एक कोष होता है और इसकी जडके नीचे खोदनेसे एक कंद निकलता है. प्रयोगमें इसका सर्वांश लिया जाता है. इसकी मात्रा ३ मासेकी है.

मार्कण्डिकानामानि ।

मार्कण्डिका भूमिवल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी ।

भाषा-मार्कण्डिका, भूमिवल्ली, मार्कण्डी, मृदुरेचनी ये भुंईखखसेके संस्कृत नाम हैं (भूवल्ली, पीतपुष्पी, पीतपुष्पा, महौषधी और जालतिका ये भुंईखखसेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं ॥)

अनेक भाषाके भुंईखखसेके नाम.

सं.-मार्कंडिका,	ते.-नेलतांघेडी.
हिं.-भुंईखखसा.	फा.-सना.
बं.-कांकरोलभेद.	अ.-सना.
म.-भुईतरवड.	अं.-Alexandrian sena अलेक्झांड्रियन् सेना.
कों.-सोनामुखी.	
गु.-धोली मीढी आवर.	
क.-तलाडवल्ली.	

मार्कंडिकागुणाः ।

मार्कण्डिका कुष्ठहरी ऊर्ध्वाधः कायशोधिनी । विषदुर्गन्धकासघ्नी गुल्मोदरविनाशिनी २३४

भाषा-भुंईखखसा ऊपर नीचेसे शरीरको शुद्ध करनेवाला है और कोढ, विष, दुर्गंध, खांसी, गुल्म तथा उदररोगको नष्ट करता है ॥ २३४ ॥

भुंईखखसेका विशेष विवरण.

भुंईखखसाकी एक लता होती है, इसके पत्ते परवलके समान होते हैं और फूल पीले रंगके होते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

देवदालीनामानि ।

देवदाली तु वेणी स्यात्कर्कटी च गरागरी । देवताण्डी वृत्तकोशस्तथा जीमूत इत्यपि ॥ पीतापरा खरस्पर्शा विषघ्नी गरनाशिनी ॥ २३५॥

भाषा-देवदाली, वेणी, कर्कटी, गरागरी, देवतांडी, वृत्तकोश, जीमूत ये देवदालीके संस्कृत नाम हैं. (जीमूतक, कण्टफला, सहा, कोषफला, वृंटफला, घोरा, कदम्बा, विषहा, सार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूषिका, वृत्तकोषा, दाली, लोमशपत्रिका, तुरंगिका, तर्कारी, देवताड, घोषा, आखुविषहा, चतुरंगका, देवदालिका ये देवदालीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) दूसरे प्रकारकी एक पीली देवदाली होती है उसको खरस्पर्शा, विषघ्नी, गरनाशिनी कहते हैं ॥ २३५ ॥

अनेक भाषाके देवदालीके नाम.

सं.–देवदाली.
हिं.–सोनैया, बंदाल, विदाली, घघरवेल.
बं.–देयाताडा, घोषकलता.
म.–देवडांगरी, कांटे इंद्रावण, घुले इंद्रावण.
गु.–कुकडवेल.
क.–देवदाळि, देवडंगर.
तै.–डानरगंडि.
अं.–Bristly luffa ब्रिस्ट्रलिल्युफा.
ला.–Luffa echinata ल्युफा एकिनेटा.

देवदालीगुणाः ।

देवदाली रसे तिक्ता कफार्शःशोफपाण्डुताः । नाशयेद्वामनी तिक्ता क्षयहिक्काकृमिज्वरान् ॥ २३६ ॥ देवदालीफलं तिक्तं कृमिश्लेष्मविनाशनम् । स्रंसनं गुल्मशूलघ्नमर्शोघ्नं वातजित्परम् ॥ २३७ ॥

भाषा–देवदाली रसमें कडवी, वमनकारक है और कफ, बवासीर, सूजन, पाण्डुता, क्षय, हिचकी, कृमि तथा ज्वरको नष्ट करती है. देवदालीका फल कडवा, स्रंसन, अत्यंत वातनाशक है और कृमि, कफ, गुल्म, शूल तथा बवासीरको नष्ट करता है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

देवदालीका विशेष विवरण.

देवदाली, वन्दाल, घघरवेल, सुनैया और खखसाके फलवाली बडी वेल होती है, खेतकी बाडोंपर किसान लोग बहुत लगा देते हैं, इसके फूल सफेद, पीले और लाल तीन रंगके होते हैं. फलोंके ऊपर छोटे छोटे कांटे होते हैं. इसका फल छोटी तराईकेसा होता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

जलपिप्पलीनामानि ।

जलपिप्पल्यभिहिता शारदी शकुलादनी । मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गलीत्यपि कीर्तिता ॥ २३८ ॥

भाषा–जलपिप्पली, शारदी, शकुलादनी, मत्स्यादनी, मत्स्यगंधा, लांगला ये जलपीपलके संस्कृत नाम हैं. (तोयवल्लरी, अग्निज्वाला, चित्रपत्री, प्राणदा, तृणशीता और बहुशिखा ये जलपीपलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २३८ ॥

अनेक भाषाके जलपीपलके नाम.

सं.–जलपिप्पली, मत्स्याक्षी.
हिं.–मछेछी, पानिसिगा, गंगातिरिया, जलपीपर, मछेंद्री.
बं.–कांचडाघास, कांचडाशाक.
म.–जलपिंपळी, मत्स्याक्षी.
गु.–रतवेलियो, मत्स्याक्षी.
क.–हुनगुंदा, नीरहिप्पली, होन्नगोन्ने.
तै.–पौन्नगंडी, बोक्केना.
ता.–पोदुदाळे, तालेबोडं.
मला.–काट्टुतिप्पली.
फा.–पीपलआबी.
अ.–फिलफिलमाय.
अं.–Purple Lippa पर्पल लिप्पा.
ला.–Lippia nodiflora लिप्पिया नोडीफ्लोरा.

जलपिप्पलीगुणाः ।

जलपिप्पलिका हृद्या चक्षुष्या शुक्रला लघुः । संग्राहिणी हिमा रूक्षा रक्तदाहव्रणापहा ॥ कटुपाकरसा रुच्या कषाया वह्निवर्द्धनी ॥ २३९ ॥

भाषा–जलपीपल हृदयको प्रिय, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, हलकी, ग्राही, शीतल, रूखी, कसैली, पाकमें चरपरी, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक है और रक्तविकार, दाह तथा व्रणको नष्ट करती है ॥ २३९ ॥

जलपीपलका विशेष विवरण.

जलपीपलके क्षुप प्रायः सजलभूमिमें उत्पन्न होते हैं, इसके पत्ते बडी नोनियाके समान और नोकदार होते हैं; इसमें पीपलके समान एक बाल निकलती है. प्रयोगमें इसका सर्वांश लिया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

गोजिह्वानामानि ।

गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपर्णिनी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-गोजिह्वा, गोजिका, गोभी, दार्विका, खरपर्णिनी ये गोभीके संस्कृत नाम हैं. (कुरसा, दार्विपत्रिका, अनडुज्जिह्वा, दर्विका, दर्वी, दार्वी, गोजिह्विका, खरपत्री, वातोना, अधोमुखा और अधोपुष्पी ये गोभीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके गोभीके नाम.

सं.-गोजिह्वा.	ते.-येदुनालुक चेट्टु, भरीलीकचेट्टु.
हिं.-गोभी, गोजिया.	
बं.-दाडीशाक.	
म.-पाथरी, भुईपाथरी.	फा.-कलमरूमी.
गु.-भोपाथरी, भुईपात्रा.	ला. Elephantopus Scabar एलिफेन्टोपस् स्केबर.
क.-येदुनालगे, हक्करिके, एत्तिननालिगे.	

गोजिह्वागुणाः ।

गोजिह्वा वातला शीता ग्राहिणी कफपित्तनुत् ।
हृद्या प्रमेहकासास्रव्रणज्वरहरी लघुः ॥ कोमला गुवरा तिक्ता स्वादुपाकरसा स्मृता ॥२४०॥

भाषा-गोभी वातकारक, शीतल, ग्राही, हृदयको हितकारी, हलकी, कोमल, कसैली, कडवी, पाकमें मधुर है और कफ, पित्त, प्रमेह, खांसी, रुधिरविकार, व्रण तथा ज्वरको नष्ट करती है ॥ २४० ॥

गोभीका विशेष विवरण.

गोभीके क्षुप छोटे छोटे तीन तीन फूट ऊंचे होते हैं. किसानलोग खेतोंमें बोते हैं. इसके पत्ते लम्बे लम्बे और चिकने होते हैं. सब पत्तोंके बीचमें एक फूल बहुत बडा चक्राकार अत्यन्त शोभायमान कोई हरे रंगका और कोई पीले रंगका उत्पन्न होता है. उस फूलके बीचमें एक डंडीसी निकलती है उसपर पीले पीले फूल आते हैं, फिर कुछ दिन उपरान्त उसमें छोटी छोटी फली लगती हैं, उन फलियोंमेंसे छोटे छोटे भूरे रंगके बीज निकलते हैं. प्रयोगमें इसका सर्वांश लिया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

नागदमनीनामानि ।

विज्ञेया नागदमनी बलामोटा विषापहा ।
नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरीति च २४१

भाषा-नागदमनी, बलामोटा, विषापहा, नागपुष्पी, नागपत्रा, महायोगेश्वरी ये नागदौनके संस्कृत नाम हैं. (नम्बु, जम्बवती, वृक्षा, रक्तपुष्पी, जाम्बवी, मलघ्नी, दुर्धर्षा, दुःसहा, वृत्ता, वृत्तपुष्पा, मदघ्नी, विषमर्दिनी, विफला, वनकुमारी, विषारी, श्रीकंदा और कंदशालिनी ये नागदौनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २४१ ॥

अनेक भाषाके नागदौनके नाम.

सं.-नागदमनी.	ते.-ईश्वरिचेट्टु, दरणमु.
हिं.-नागदौन, बरियारा, नागदमन.	ता.-माचिपत्री.
बं.-नागदना.	ने.-तितापात.
म.-नागदवण.	ला.-Artimisia Vulgaris आर्टिमिसिया वल्गेरिस.
गु.-झीपटो.	
क.-नागदमनी.	

नागदमनीगुणाः ।

बलामोटा कटुस्तिक्ता लघुः पित्तकफापहा ।
मूत्रकृच्छ्रव्रणान्रक्षो नाशयेज्जालगर्दभम् २४२
सर्वग्रहप्रशमनी निःशेषविषनाशिनी । जयं सवत्र कुरुते धनदा सुमतिप्रदा ॥ २४३ ॥

भाषा-नागदौन चरपरी, कडवी, हलकी, सर्व स्थानोंमें जय करनेवाली, धनदायक, सुमति देनेवाली है और पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ्र, व्रण, राक्षसभय, जालगर्दभ, सर्व ग्रहोंकी पीडा और सब प्रकारके विषको नष्ट करती है॥२४२॥२४३॥

नागदौनका विशेष विवरण.

नागदौनके वृक्ष अननसके वृक्षोंके समान होते हैं, इसके पत्ते बिलिस्त चौडे और सफेद होते हैं. बीचमेंसे तीन हाथ लंबा एक डंडा निकलता है और उसपर लंबे सफेद फूल आते हैं, फलमें लहसनके समान लंबे २ बीज होते हैं. प्रायः प्रयोगमें इसके पत्ते लिये जाते हैं. इसकी मात्रा ८ रत्तीकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वीरतरुनामानि ।

वेल्लन्तरो जगति वीरतरुः प्रसिद्धः श्वेतासितारुणविलोहितनीलपुष्पः । स्याज्जातितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः स्यात्कण्टकी विजलदेशज एष वृक्षः ॥ २४४ ॥

भाषा-वेल्लंतर और वीरतरु ये वरवेलके संस्कृत नाम हैं. (वेल्लतर, क्षुधाकुशलसंज्ञक, दीर्घमूल, वीरवृक्ष, कृच्छ्रारि, शमीपत्र, सूक्ष्मपत्र, जातितुल्यकुसुम, कंटकी, विजलदेशज, बहुधार, बृहद्वास, दीर्घपत्र, अश्मकृच्छ्रहा, ग्रंथिपर्ण, वीरद्रु, वीरपादप, बहुवार, वेलतुर, बहुमूल ये वरवेलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) यह वृक्ष चार प्रकारके फूलोंका होता है. एक सफेद, दूसरा काला, तीसरा लाल और चौथा बहुत लाल रंगका होता है; इन सबमें कांटे होते हैं और पत्ते शमीके सदृश छोटे छोटे होते हैं, तथा ये वृक्ष जांगल देशमें होते हैं ॥ २४४ ॥

अनेक भाषाके वरवेलके नाम.

सं.-वेल्लंतर.	तै.-वेलतरु.
हिं.-वरवेल.	ता.-विडात्तेर.
बं.-वीरतरु.	ला.-Desmanthus cinereus डेस्मान्थस् सिनेरियस्.
म.-वेलतूर, येलतर.	
गु.-वेलतरू, गलतोरो.	
क.-ओंडउ, येडातरि, वाडावेनगिड.	

वीरतरुगुणाः ।

वेल्लन्तरो रसे पाके तिक्तस्तृष्णाकफापहः । मूत्राघाताश्मजिद्ग्राही योनिमूत्रानिलार्तिजित् ॥ २४५ ॥

भाषा-वरवेल रसमें तथा पाकमें कडवा, ग्राही है और तृष्णा, कफ, मूत्राघात, पथरी, योनिकी पीडा, मूत्रकी पीडा तथा वातरोगको नष्ट करता है ॥ २४५ ॥

वरवेलका विशेष विवरण.

यह वृक्ष चार प्रकारका होता है, एक सफेद फूलका, दूसरा काले फूलका, तीसरा लाल फूलका और चौथा अतीव लाल फूलका. यह वृक्ष उजाडमें होता है. इन सब वृक्षोंमें कांटे होते हैं और इनके पत्ते शमी (छोकर) केसे होते हैं. प्रयोगमें इसकी जड ली जाती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

छिक्कनीनामानि ।

छिक्कनी क्षवकृत्तीक्ष्णा छिक्किका घ्राणदुःखदा ।

भाषा-छिक्कनी, क्षवकृत्, तीक्ष्णा, छिक्किका, घ्राणदुःखदा ये नकछिकनीके संस्कृत नाम हैं. (उग्रा, उग्रगंधा, क्षवक, क्रूर और नासासंवेदनापटु ये नकछिनीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके नकछिकनीके नाम.

सं.-छिक्कनी.	फा. वेखगाडजवाँ.
हिं.-नकछिकनी.	अ. उफरकुदुश.
बं.-हाँचुटी, छिकनी, हेंचेतागाछ.	ला. Centipeda orbicularis सेंटिपेडा आर्बिक्युलेरिस्.
म.-नाकशिकणी.	
गु.-नाकछीकणी.	

छिक्कनीगुणाः ।

छिक्कनी कटुका रुच्या तीक्ष्णोष्णा वह्निपित्तकृत् । वातरक्तहरी कुष्ठकृमिवातकफापहा ॥ २४६ ॥

भाषा-नकछिकनी चरपरी, रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, अग्निजनक तथा पित्तकारक है और वातरक्त, कोढ, कृमि तथा कफको नष्ट करती है ॥ २४६ ॥

नकछिकनीका विशेष विवरण.

नकछिकनीके क्षुप जलाशयके समीप आपसे आप उत्पन्न हो जाते हैं; इसके पत्ते छोटे छोटे होते हैं और फूल पीले पीले होते हैं, उसके नीचे एक कन्द होता है, उसमें अत्यन्त तीक्ष्ण गंध आती है और सूंघनसे छींकें आने लगती हैं.

कुकुन्दरनामानि ।

कुकुन्दरस्ताम्रचूडः सूक्ष्मपत्रो मृदुच्छदः ।

भाषा-कुकुन्दर, ताम्रचूड, सूक्ष्मपत्र और मृदुच्छद ये कुकरौंदेके संस्कृत नाम हैं.(कुकुंद,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुकुरुद, कुकुद्रु, कुकुरद्रु ये कुकुरोंदेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कुकरोंदेके नाम.

सं.-कुकुंदर.	फा.-कमाकिसुस.
हिं.-कुकरोंदा.	अ.-सनौवरूल अर्द.
बं.-कुकुरमुता, कुकुरशाका.	ला.-Blumea Odoreta ब्लुमिया ओडोरेटा.
म.-कुकुरवंदा.	
गु.-बोडियोकलार.	

कुकुन्दरगुणाः ।

कुकुन्दरः कटुस्तिक्तो ज्वररक्तकफापहः । तन्मूलमार्द्रं निःक्षिप्तं वदने मुखशोषहृत् २४७॥

भाषा-कुकुरोंदा चरपरा, कडवा है और ज्वर, रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करता है. इसकी गीली जड काट्कर मुखमें रखे तो मुखशोष नष्ट होता है ॥ २४७ ॥

कुकरोंदेका विशेष विवरण.

कुकरोंदा अर्थात् भकुरमरके वृक्ष सजलभूमिके निकट शीतल स्थानोंमें आपसे आपही उत्पन्न हो जाते हैं; इसके पत्ते छोटे परन्तु तमाखुकी आकृतिके होते हैं और फूल पीले होते हैं, और इसके ऊपर लाल रंगकी चोटीसी होती है. प्रयोगमें इसका सर्वांग लिया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

सुदर्शननामानि ।

सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपर्णिका ।

भाषा-सुदर्शना, सोमवल्ली, चक्राह्वा, मधुपर्णिका ये सुदर्शनके संस्कृत नाम हैं. (चक्राङ्गी, दध्यानी और वृषकर्णी ये सुदर्शनाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सुदर्शनाके नाम.

सं.-सुदर्शना.	म.-सुदर्शना.
हिं.-सुदर्शना.	गु.-सुदर्शन.
बं.-सुदर्शन गुलञ्च.	

सुदर्शनागुणाः ।

सुदर्शना स्वादुरुष्णा कफशोफास्रवातजित् ।

भाषा-सुदर्शना मधुर, गरम है और कफ, सूजन, रक्तविकार तथा वातको नष्ट करती है ॥

सुदर्शनाका विशेष विवरण.

सुदर्शनाका चक्रके समान गोल क्षुप बागोंमें होता है; मक्काके समान नरम होता है. यह हिंदुस्थानकी सब भाषाओंमें सुदर्शना नामसेही प्रसिद्ध है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

आखुकर्णीनामानि ।

आखुकर्णी त्वाखुकर्णपर्णिका भूदरीभवा ।

भाषा-आखुकर्णी, आखुकर्णपर्णिका, भूदरीभवा ये मूसाकानीके संस्कृत नाम हैं. (मूषाकर्णी, आखुपर्णी, वृषपर्णी, आखुकर्णिका, भूचरी, द्रवन्ती, शम्बरी, भूधराश्रया, कृशिका, उन्दुकर्णी, न्यग्रोधी, मूषिकपर्णी, वृश्चिकपर्णी, बहुकर्णिका, माता, भूमिचरी, चण्डा, बहुपादिका, प्रत्यक्श्रेणी, वृषा, पुत्रश्रेणी, आदिभू, चित्रा, सुवर्णी, शतमूलिका, आखुपर्णिका, प्रतिपर्णशिफा, सहस्रमुखी, विक्रान्तपत्रश्रेणी, उपचित्रा, मूषिकाह्वया, रण्डा, मूषिकाफंजिपत्रिका, मूषिपर्णिका, संचित्रा, मूषीकर्णी, सुकर्णिका और न्यग्रोधी ये मूषाकर्णीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मूसाकानीके नाम.

सं.-मूषाकर्णी.	ते.-एलुकचेविचेट्टु.
हिं.-मूसाकानी.	फा.-गोरोमुष, सतर.
बं.-इंदुरकाणी पाना.	अ.-आजानुलफार.
म.-उन्दिरकानी, भोपनी.	यू.-शरदम्.
गु.-उन्दरकर्नी.	ला.-Ipomea Reniformis आइपोमिया रेनिफोर्मिस्.
क.-वल्लिहरुहे.	

आखुकर्णीगुणाः ।

आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः । विपाके कटुका मूत्रकफामयकृमिप्रणुत् ॥ २४८ ॥

भाषा-मूसाकानी चरपरी, कडवी, कसैली, शीतल, हलकी, पाकमें चरपरी है और मूत्ररोग, कफसंबंधी रोग तथा कृमिको नष्ट करती है ॥ २४८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूषाकर्णीका विशेष विवरण.

मूषाकर्णी अर्थात् मूषाकानीके क्षुप पृथ्वीपर फैले हुए होते हैं. हरेक पत्तेके नीचे जड होती है, डाली पतली और लाली लिये होती है, मिर्चके समान पत्ते पत्तेपर फल होते हैं. प्रयोगमें इसका सर्वांश लिया जाता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

मयूरशिखानामानि।

मयूराह्वशिखा प्रोक्ता सहस्राहिर्मधुच्छदा।

भाषा–मयूराशिखा, सहस्राहि, मधुच्छदा, नीलकंठशिखा ये मोरशिखाके संस्कृत नाम हैं. (बर्हिचूडा, शिखिनी, शिखालु, सुशिखा, शिखा, शिखिवला, केकिशिखा और मयूरचूडा ये मोरशिखाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मोरशिखाके नाम.

सं.–मयूरशिखा.	क.–होरेयसूवु.
हिं.–मोरशिखा.	फा.–असनाने, असलान.
बं.–मयूरशिखा.	ला.–Cilosia Cristata सिलोसिया क्रिस्टाटा.
म.–मोरशेंडा, मण्यारशिखा.	
गु.–मोरशिखा.	

मयूरशिखागुणाः।

नीलकण्ठशिखा लघ्वी पित्तश्लेष्मातिसारजित्।

इति श्रीभावप्रकाशे गुडूच्यादिवर्गः ॥ ३ ॥

भाषा–मोरशिखा हलकी है तथा पित्त, कफ और अतिसारको नष्ट करती है ॥

मोरशिखाका विशेष विवरण.

मोरशिखाके क्षुप होते हैं, इसपर मोरकी चोटीके समान चोटी होती है; इसीलिये इसका नाम मोरशिखा है. प्रयोगमें इसका सर्वांश लिया जाता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे गुडूच्यादिवर्गः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ पुष्पवर्गः ४।

कमलस्य नामानि।

वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम्।
सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ॥ १ ॥
पङ्केरुहं तामरसं सारसं सरसीरुहम्। विसप्रसूनराजीवपुष्कराम्भोरुहाणि च ॥ २ ॥

भाषा–पद्म (पद्म शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनोंमें होता है), नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्रपत्र, शतपत्र, कुशेशय, पंकेरुह, तामरस, सारस, सरसीरुह, विसप्रसून, राजीव, पुष्कर, अंभोरुह ये कमलके संस्कृत नाम हैं. (पङ्कज, कमल, अब्ज, अम्बुज, सरोरुह, पाथोज, नल, अंभोज, अम्बुजन्म, अम्बुरुह, अम्बुपद्म, सुजल, आस्यपत्र, पाथोरुह, पुष्कर, वार्ज, तामरस, कञ्ज, कज, विसकुसुम, महोत्पल, वारिरुह, सरासिज, सलिलज, विसप्रसून, वारिज, कवार, वनशोभन, जलजन्म, जलरुट्, जलरुह, सरोज, सरोजन्म सरोरुट्, श्रीवास, श्रीपर्ण, इन्दिरालय, जलजात, नालीक, नालिक, वनज, अम्लान, पुटक, सारज और कुटप ये कमलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १ ॥ २ ॥

अनेक भाषाके कमलके नाम.

सं.–कमल.	ता.–तामरे, वेळंबल.
हिं.–कमल, सफेद कमल.	मला.–तामरा, वेळंपल.
बं.–पद्म, श्वेत पद्म.	तु.–तावरे, अलिगे.
म.–कमळ, पांढरें कमळ.	फा.–नीलुफर.
गु.–कमल, धोले कमल.	अ.–करंबुलमा.
क.–तावरे विलियतावरे.	अ.–Lotus लोटस्.
तै.–पद्ममु, तावरा.	ला.–Nelumbium Speciosum नीलम्बियम् स्पेसियोसम्.

कमलभेदाः।

विशेषतः सितं पद्मं पुण्डरीकमिति स्मृतम्।
रक्तं कोकनदं ज्ञेयं नीलमिन्दीवरं स्मृतम् ॥३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-विशेष करके सफेद कमलको पुण्डरीक, लाल कमलको कोकनद और नीलकमलको इन्दीवर कहते हैं ॥ ३ ॥

कमलगुणाः ।

कमलं शीतलं वर्ण्यं मधुरं कफपित्तजित् ।
तृष्णादाहास्रविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ ४ ॥
धवलं कमलं शीतं मधुरं कफपित्तजित् ।
तस्मादल्पगुणं किञ्चिदन्यद्रक्तोत्पलादिकम् ५

भाषा-कमल शीतल, वर्णको उत्तम करनेवाला, मधुर है और कफ, पित्त तृषा, दाह, रुधिरविकार, विस्फोटक, फोडा, विष तथा विसर्पको दूर करता है. सफेद कमल शीतल, मधुर है और कफ तथा पित्तको नष्ट करता है. अन्य लाल कमल आदि इससे कुछ न्यून गुणवाले हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

कमलका विशेष विवरण.

लाल, नीले और सफेद इन फूलोंके भेदसे कमल तीन प्रकारके होते हैं; कमल विशेष करके गम्भीर और निर्मल नीरवाले स्वच्छ सरोवर और तालोंमें उत्पन्न होते हैं; इसके पत्ते बडे बडे गोल और चिकने होते हैं, जिनपर जलका बिन्दु न ठहरे इस प्रकारके अद्भुत और शोभायमान होते हैं; उन पत्तोंको पुरैनके पातभी कहते हैं; उनके नीचे जो डंडी होती है; उसको मृणाल अर्थात् कमलकी नाल कहते हैं. कमलके फूलोंमे जो पीला पीला जीरा होता है; उसको कमलकेशर कहते हैं; कमलके फूलोंमें जो सरस रस लगा होता है उसको कमलकी रज और मकरन्द कहते हैं; कमलमें जो फल लगते हैं उनको पद्मकोष कहते हैं, उनमें जो बीज निकलते हैं उनका नाम कमलगट्टे हैं, कमलकी जडको भसींडे कहते हैं. इसकी मात्रा ६ मासेकी है.

पद्मिनीनामानि ।

मूलनालदलोत्फुल्लफलैः समुदिता पुनः ।
पद्मिनी प्रोच्यते प्राज्ञैर्बिसिन्यादि च सा स्मृता ॥ ६ ॥ आदिशब्दान्नलिनी कमलिनीत्यादि ॥

भाषा-मूल, नाल, पत्र और बीजादिसे संयुक्त प्रफुल्लित कमलको विद्वान्लोग पद्मिनी कहते हैं. पद्मिनी, बिसिनी, कमलिनी, नलिनी ये पद्मिनीके संकृत नाम हैं. (कुन्दिनी मृणालिनी, पुटकिनी, पंकजिनी सरोजिनी, अरविन्दिनी, अब्जिनी, नालिकिनी, अम्भोजिनी, पुष्करिणी और जम्बालिनी ये पद्मिनीके संकृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं ॥ ६ ॥

अनेक भाषाके पद्मिनीके नाम.

सं.-पद्मिनी.	गु.-कमळणी.
हिं.-पद्मनी.	क.-कमलिनी.
म.-कमळणी.	

पद्मिनीगुणाः ।

पद्मिनी शीतला गुर्वी मधुरा लवणा च सा ।
पित्तासृक्कफनुद्रूक्षा वातविष्टम्भकारिणी ॥ ७ ॥

भाषा-पद्मिनी शीतल, भारी, मधुर, खारी, रूखी, वात तथा मलबंधको करनेवाली है और पित्त, रुधिरविकार तथा कफको नष्ट करती है॥ ७॥

नवपत्रादि ।

संवर्तिका नवदलं बीजकोशस्तु कर्णिका ।
किञ्जल्कः केसरः प्रोक्तो मकरन्दो रसः स्मृतः ॥ पद्मनालं मृणालं स्यात्तथा बिसमिति स्मृतम् ॥ ८ ॥

भाषा-पद्मिनीके नवीन पत्तोंको संवर्त्तिका, बीजकोशको कर्णिका, केसरको किंजल्क और रसको मकरन्द कहते हैं, पद्मिनीकी नालको मृणाल अथवा बिस (भसींडा) कहते हैं ॥ ८ ॥

संवर्तिकागुणाः ।

संवर्तिका हिमा तिक्ता कषाया दाहतृट्प्रणुत् ।
मूत्रकृच्छ्रगुदव्याधिरक्तपित्तविनाशिनी ॥ ९ ॥

भाषा-संवर्त्तिका (नवीन पत्ते) शीतल, कडवी, कसैली है और दाह, तृषा, मूत्रकृच्छ्र, गुदाके रोग तथा रक्तपित्तको नष्ट करती है॥ ९॥

कर्णिकागुणाः ।

पद्मस्य कर्णिका तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ।
मुखवैशद्यकृल्लघ्वी तृष्णासृक्कफपित्तनुत् ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-कमलकी कर्णिका (बीजकोष) कडवी, कसैली, मधुर, शीतल, मुखको स्वच्छ करनेवाली, हलकी है और तृषा, रक्तविकार, कफ तथा पित्तको नष्ट करती है ॥ १० ॥

किञ्जल्कगुणाः ।

किञ्जल्कः शीतलो वृष्यः कषायो ग्राहकोऽपि सः । कफपित्ततृषादाहरक्तार्शोविषशोथजित् ॥ ११ ॥

भाषा-कमलकी केशर शीतल, वृष्य, कसैली, ग्राही है और कफ, पित्त, तृषा, दाह, रक्तविकार, बवासीर, विष तथा सूजनको नष्ट करती है ॥ ११ ॥

मृणालगुणाः ।

मृणालं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रजिद्गुरु । दुर्जरं स्वादुपाकं च स्तन्यानिलकफप्रदम् ॥ संग्राहि मधुरं रूक्षं शालूकमपि तद्गुणम् ॥१२॥

भाषा-मृणाल (कमलकी नाल, भसीडा) शीतल, वृष्य, भारी, दुर्जर पाकमें मधुर, दुग्धवर्द्धक, वातकफको करनेवाली, ग्राही, मधुर, रूक्ष है और पित्त, दाह तथा रक्तविकारको नष्ट करती है. कमलके कन्दमेंभी नालके सदृश गुण हैं ॥ १२ ॥

स्थलकमलनामानि ।

पद्मचारिण्यतिचराऽव्यथा पद्मा च शारदा ।

भाषा-पद्मचारिणी, अतिचरा, अव्यथा, पद्मा, शारदा ये स्थलकमलके संस्कृत नाम हैं.(चारिटी, पद्माह्वा, सुगन्धमूला, अम्बुरुहा, लक्ष्मी, श्रेष्ठा, सुपुष्करा, रम्या, पद्मावती, स्थलरुहा, पुष्करिणी, पुष्करपर्णिका और पुष्करनाडी ये स्थलकमलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके स्थलकमलके नाम.

सं.-पद्मचारिणी.	गु.-स्थलकमल.
हिं.-स्थलकमल.	ला.-Ionidium suffruticosum
बं.-स्थलपद्म.	आयोनिडिअम् सुफ्रुटिकोसम्
म.-स्थलकमलिनी.	
क.-कलुदावरे.	

स्थलकमलगुणाः ।

पद्मानुष्णा कटुस्तिक्ता कषाया कफवातजित् । मूत्रकृच्छ्राश्मशूलघ्नी श्वासकासविषापहा ॥ १३ ॥

भाषा-स्थल कमल गरम नहीं, चरपरा, कडवा, कसैला है और कफ, वात, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, शूल, श्वास, खाँसी तथा विषका नाश करता है ॥ १३ ॥

स्थलकमलका विशेष विवरण.

स्थलकमलभी कमलकी समानही होता है, परन्तु यह बात अधिक है कि, पृथ्वीमें उत्पन्न होता है, आकृति तो सब कमलहीकी है, किन्तु पत्ते और फूल फल सब कमलसे छोटे होते हैं. इसकी मात्रा ६ मासेकी है.

कुमुदनामानि ।

श्वेतं कुवलयं प्रोक्तं कुमुदं कैरवं तथा ।

भाषा-कुवलय, कुमुद कैरव ये कुमुदके संस्कृत नाम हैं. (चन्द्रकान्त, गर्दभ, कुमुद, सौगन्धिक, कन्दोत, कच्छ, कुव, गंधसोम, सितोत्पल, धवलोत्पल, श्वेतोत्पल, कह्लार, शीतलक, शशिकांत, चंद्रिकाम्बुज और इन्दुकमल ये कुमुदके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके बबूलेके नाम.

सं.-कुवलय.	क.-विलियनेइदिलु.
हिं.-बबूला, कुमुद, कुई.	ला.-Nymphaea Lotus निम्फेइआ लोटस्.
म.-पांढरें कमळ.	
गु.-पोयणां.	

कुमुदगुणाः ।

कुमुदं पिच्छिलं स्निग्धं मधुरं ह्लादि शीतलम् ।

भाषा-कुमुद पिच्छिल, चिकना, मधुर, सुखदायक और शीतल है ॥

कुमुदिनीनामानि ।

कुमुद्वती कैरविका तथा कुमुदिनीति च । सा तु मूलादिसर्वाङ्गैरुक्ता समुदिता बुधैः १४

भाषा-जो कुमुद सम्पूर्ण जड आदि सर्वांग करके सहित होय उसको विद्वान् कुमुदिनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहते हैं. कुमुदिनी, कुमुद्वती, कैरविका ये कुमोदिनीके संस्कृत नाम हैं. (उत्पलिनी, कैरविणी, चंद्रेष्टा, कुवलयिनी, इंन्दीवरिणी और नीलोत्पलिनी ये कुमोदिनीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १४ ॥

अनेक भाषाके कुमुदिनीके नाम.

सं.—कुमुद्वती.	अनार.
हिं.—कमोदिनी, कमलिनी, तालावका	वं.—सुंदीपुष्प.
	म.—कुमुदिनी.

कुमुदिनीगुणाः ।

पद्मिन्या ये गुणाः प्रोक्ताः कुमुदिन्याश्च ते स्मृताः ।

भाषा—जो गुण ऊपर पद्मिनीके कहे हैं वेही गुण कमोदनीके जाने ॥

कुमुदका विशेष विवरण.

कुमुदभी कमलके तुल्य तीन प्रकारके होते हैं, लाल, नीले और सफेद फूलोंके भेदसे जाने जाते हैं, कुमुदके फूल कमलके फूलोंसे छोटे होते हैं, और रात्रिको चन्द्रमाके उदय होनेपर खिलते हैं और सूर्यका प्रकाश होतेही बन्द हो जाते हैं. इसके पत्ते फूलके ऊपरही लगे होते हैं, इसमें जावित्रीके समान कोष होता है, उस कोषका फल हो जाता है. कच्ची अवस्थामें तो उसके भीतर लाल दाने होते हैं और पक जानेपर वह दाने काले पड जाते हैं, उस फलको घंघोल कहते हैं. इनकी जडको चाच अथवा सालक कहते हैं. इसकी मात्रा ६ मासेकी है.

वारिपर्णीशैवालनामानि ।

वारिपर्णी कुम्भिका स्याच्छैवालं शैवलं च तत् ।

भाषा—वारिपर्णी, कुम्भिका ये कुम्भीके संस्कृत नाम हैं. (वारिमूली, खमूलिका, आकाशमूली, कुतृण, कुमुदा, जलवल्कल, श्वेतपर्णी, अशकुम्भी, पानीयपुष्पज, कुम्भी, खमूलि, पर्णी, पृश्नी, वारिकर्णिका और वारिकर्णी ये कुम्भीके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥ शैवाल, शैवल ये सिवारके संस्कृत नाम हैं. (जलनीली, जलज, शेपान, शेवाल, शिवल, शेपाल, जलनीलिका, जलनील, अम्बुचामर, जलकुन्तल, मंजुल, सैवाल, वारिचामर, सलिलकुण्डल, हटपर्णी, अम्बुताल, जलशूक, जलाञ्जन, जलकेश, वांवार और जलपृष्ठजा ये सिवारके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके कुम्भीके नाम.

सं.—वारिपर्णी.	म.—जलमण्डवी.
हिं.—कुम्भी, जलकुम्भी, काई.	गु.—जलऊपरना वेला.
वं.—पाना, टोका पाना.	क.—हांवलं.

वारिपर्णीगुणाः ।

वारिपर्णी हिमा तिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा कटुः ।
दोषत्रयहरी रूक्षा शोणितज्वरशोषकृत् ॥ १५ ॥

भाषा—जलकुंभी शीतल, कडवी, हलकी, स्वादिष्ठ, दस्तावर, चरपरी, त्रिदोषनाशक, रूक्ष है और रक्तविकार, ज्वर तथा शोषको नष्ट करती है ॥ १५ ॥

अनेक भाषाके सिवारके नाम.

सं.—शैवाल.	फा.—पसमेंदरा.
हिं.—सिवार.	अ.—तुहलव.
बं.—शेओयाला.	ला.—Serratophyllum Submersum सिरेटोफाइलं सब्मर्सम्.
म.—शेवाळ.	
गु.—शेवाळ.	
तै.—नासु.	

शैवालगुणाः ।

शैवालं तुवरं तिक्तं मधुरं शीतलं लघु ।
स्निग्धं दाहतृषापित्तरक्तज्वरहरं परम् ॥ १६ ॥

भाषा—सिवार कसैली, कडवी, मधुर, शीतल, हलकी, चिकनी है और दाह, तृषा, पित्त, रुधिरविकार तथा ज्वरको अत्यन्त नष्ट करनेवाली है ॥ १६ ॥

शतपत्रीनामानि ।

शतपत्री तरुण्युक्ता कर्णिका चारुकेशरा ।
महाकुमारी गन्धाढ्या लाक्षा कृष्णातिमञ्जुला ॥ १७ ॥

भाषा—शतपत्री, तरुणी, कर्णिका, चारुकेसरा महाकुमारी, गन्धाढ्या, लाक्षा, कृष्णा, अति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंजुला ये गुलाबके संस्कृत नाम हैं. (सौम्यगन्धा, सुवृत्ता, शतपत्रिका, लाक्षापुष्पा, सुमना, सुशीता और शतदला ये गुलाबके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंम पाये जाते हैं.) ॥ १७ ॥

अनेक भाषाके गुलाबके नाम.

सं.–शतपत्री.	अ.–जरंजवीन.
हिं.–गुलाब.	अं.–Cabbagerose कॅबेजरोज् Confection Of rosa कन्फेक्शन् ऑफ रोझ.
बं.–गोलाप.	
म.–गुलाबाचं फूल.	
गु.–मोशमी गुलाब.	
क.–चेवडे.	
ते.–गुलाबीपुवु.	ला.–Roso Damascena रोसाडेमेसेना
फा.–गुलेसुख.	

शतपत्रीगुणाः।

शतपत्री हिमा हृद्या ग्राहिणी शुक्रला लघुः।
दोषत्रयास्रजिद्वर्ण्या तिक्ता कट्वी च पाचनी १८

भाषा–गुलाब शीतल, हृदयको प्रिय, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, हलका, वर्णको उत्तम करनेवाला, कडवा, चरपरा, पाचन है और तीनों दोषोंको तथा रुधिरविकारको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

सेवतीका विशेष विवरण.

सेवती और गुलाब ये दोनों एकही जातिके हैं. परन्तु सेवतीका वृक्ष और गुलाबका क्षुप होता है, विशेष करके ये दोनों वन, उपवन और पुष्पवाटिकाओंमें बहुत होते हैं, सेवतीके सफेद फूल होते हैं और प्राचीन है और गुलाब दो प्रकारका होता है, एक देशी जिसमें महासुगन्ध आती है और फूल गुलाबी होते हैं, फूल चैत्र वैशाखमें आते हैं, दूसरा सादा गुलाब चीनी वह कई प्रकारका होता है, लाल, गुलाबी, सफेद और पीले भाँति भाँतिके फूल बारहों महीने आते हैं, वह नवीन जातिका है अर्थात् पहिले हिन्दोस्थानमें नहीं होता था, अब ऐसा फैला है कि उसके नामसे गुलाबवाडी और पुष्पोद्यान प्रसिद्ध हो गये हैं. इसकी मात्रा ६ मासेकी है.

वासंतीनामानि।

नेपाली कथिता तज्ज्ञैः सप्तला नवमल्लिका।

भाषा–नेपाली, सप्तला, नवमल्लिका, वासन्ती ये नेवारीके संस्कृत नाम हैं. (प्रहसन्ती सुवसन्ता, वसन्तजा, सुकुमारा, शिखरिणी, मधुगन्धा, गुच्छपुष्पा, ग्रैष्मिका, राजादनदला, वनजा, सूक्ष्मपुष्पिका, नवमालिका, भद्रवर्म, देवलता, गन्धनिलया, मालिका, ग्रीष्मभवा, अतिमोदा, ग्रैष्मी, ग्रीष्मोद्भवा, सुकुमारी, सुरभि, शुचिमल्लिका, सुगन्धा, नेवाली, ग्रीष्मी, वनवासिनी, समला, कान्ता और अतिसुलभा ये नेवारीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके नेवारीके नाम.

सं.–नेपाली.	क.–विखान्तिभेद.
हिं.–नेवारी, वासन्ती.	ला.–Ixora Parviflora इक्सोरा पार्विफ्लोरा.
बं.–नेपाली, नेओयार.	
म.–नेवाळी.	
गु.–नेवरी.	

वासंतीगुणाः।

वासंती शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयास्रजित्।

भाषा–नेवारी शीतल, हलकी, कडवी है और तीनों दोष तथा रक्तविकारको नष्ट करती है ॥

नेवारीका विशेष विवरण.

नेवारीके क्षुप उपवन और पुष्पवाटिकाओंमें होते हैं, इसके पत्ते खिरनीकी समान होते हैं, तथा पांच पांच पखुरीके फलोंके गुच्छ होते हैं. और वे फूल प्रायः ग्रीष्मऋतुमें खिलते हैं, उनमें अत्यन्त सुगन्धि आती है, इसपर चनेकी बराबर फलोंके झुमके लगते हैं; प्रथम अवस्थामें हरे और पकनेपर काले हो जाते हैं. इसकी मात्रा ६ मासेकी है.

वार्षिकीनामानि।

श्रीपदी षट्पदानन्दा वार्षिकी मुक्तबन्धना।

भाषा–श्रीपदी, षट्पदानन्दा, वार्षिकी और मुक्तबन्धना ये रायबेलके संस्कृत नाम हैं. (शीतभीरु, मदयन्ती, प्रमोदिनी, अतिगंधा, गवाक्षी, भूपदी, वार्षिका, अष्टापदा, देवलता, दलकोषका ये रायबेलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके रायवेलके नाम.

सं.-वार्षिकी.
हिं.-वेलवार्षिकी, वेला.
बं.-वेलफुल.
म.-साट्इंमोगरी.
कों.-कसरी.
गु.-लवारो, चिखलियो.
क.-काडमल्लिगे.
ते.-अडविमल्ले.
ता.-कटुमल्लिगे.
तु.-एड्रोलि.
मला.-कटुमल्लिका.
ला.-Jasminum Angusti foliu-um जॅस्मिनम् आंगुस्टिफोलिअम्.

वार्षिकीगुणाः।

वार्षिकी शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयापहा।
कर्णाक्षिमुखरोगघ्नी तत्तैलं तद्गुणं स्मृतम् १९॥

भाषा-रायवेल शीतल, हलकी, कडवी है और तीनों दोष, कर्णरोग, नेत्ररोग तथा मुखरोगोंको नष्ट करती है, इसके तेलमेंभी येही गुण हैं १९॥

वार्षिकीका विशेष विवरण.

वार्षिकी अर्थात् वेलेके क्षुप बेलकी समान होते हैं और पत्ते मोतियेकी समान होते हैं, ग्रीष्मऋतुमें फूल आते हैं, फूलका रंग सफेद होता हैं, एक फूलमें छःसे लेकर बत्तीसतक पंखुरी होती हैं, उन फूलोंमे उत्तम सुगन्धि आती है. उन फूलोंका तेलभी बहुत सुगन्धित बनता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

मालतीनामानि।

जातिर्जाती च सुमना मालती राजपुत्रिका।
चेतिका हृद्यगन्धा च सा पीता स्वर्णजातिका॥ २०॥

भाषा-जाति, जाती, सुमना, मालती, राजपुत्रिका, चेतिका, हृद्यगधा ये चमेलीके संस्कृत नाम हैं. (सुप्रेया, चेतकी, सुरभिगन्धा, सुकुमारी, सन्ध्यापुष्पी, मनोहरा, राजपुत्री, मनोज्ञा, तिलकालिनी, जनेष्टा, नन्दिका, प्रियंवदा, मालिनी, वासन्ती, प्रहसंती, सुवसंता, वसंतजा और वार्षिका ये चमेलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जात हैं.) पीली जाति (चमेली) को स्वर्णजातिका कहते हैं॥२०॥

अनेक भाषाके चमेलीके नाम.

सं.-जाति.
हिं.-चमेली, चंबेली.
बं.-चामेली.
म.-चमेली. मोगऱ्याचा भेद.
गु.-चमेली.
फा.-यासमम.
अं.-Spanish Jasmine स्पॅनिश् जास्मिन.
ला.-Jasminuml Grandiflorum जेस्मिनम् ग्राण्डिफ्लोरम्. Jasminum revolutnm जेस्मिनम् रिव्होल्युटम्.

मालतीगुणाः।

जातीयुगं तिक्तमुष्णं तुवरं लघु दोषजित्।
शिरोक्षिमुखदन्तार्त्तिविषकुष्ठानिलास्रजित् २१॥

भाषा-चमेली और पीली चमेली कडवी, गरम, कसैली, हलकी, दोषोंको जीतनेवाली है और मस्तकरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, विष, कोढ, वात तथा रक्तविकारको नष्ट करती है॥ २१॥

चमेलीका विशेष विवरण.

चमेलीकी बेल वन, बाग और पुष्पावाटिकाओंमे बहुत लगाई जाती है, फूल बहुत छोटे छोटे और कोमल पँखुरीके होते हैं, फूलोंका रंग सफेद और पँखुरीके नीचे नोकपर कुछ कुछ लालीसी होती है, इसकी बन्द कलियाँ जब खिलती हैं. तब मन्द मन्द सुगन्ध आती है ये प्रायः चौमासेमें बहुत खिलती हैं, इसके फूलोंका तेल परमोत्तम बनता है, पीली चमेलीका फूल पीले रंगका होता है, और पत्ते कुछ बडे होते हैं. इसकी मात्रा २मासेकी है.

यूथिकानामानि।

यूथिका गणिकाम्बष्ठा सा पीता हेमपुष्पिका।

भाषा-यूथिका, गणिका, अम्बष्ठा ये जूहीके संस्कृत नाम हैं. (यूथी, वासन्ती, बालपुष्पी, शिखण्डिनी, मागधी, प्रहसन्ती, बालपुष्पिका, भृङ्गानन्दा, पुष्पगन्धा, गुणोज्ज्वला, चारुमोदा, शिखण्डी, हरिणी, शंखयूथिका, सुगन्धिका, यूथतरुणी, सुगन्धा, मोदनी, बहुगन्धा और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गजाह्वया ये जूहीके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) हेमपुष्पिका यह पीली जूहीका संस्कृत नाम है. (स्वर्णयूथी, हेमपुष्पी, मनोहरा, सुवर्णयूथी, हेमपुष्पा, सुगन्धा, हेमयूथिका, युवतीष्टा, रक्तगन्धा, शिखण्डी, नागपुष्पिका, पीतयूथी, पीतिका, कनकप्रभा, हैमा, गन्धाढ्या, सुवर्णाह्वा और व्यक्तगन्धा ये पीली जूहीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके जूहीके नाम.

सं.–यूथिका.	तै.–जुइपुष्पालु.
हिं.–जुही, पीली जुही.	ला.–Jasminum auriculatum जॅस्मिनम् ओरिक्युलेटम्.
बं.–जुई, स्वर्णजुई.	
म.–पांढरी पिवळी जुई.	
क.–यरडुमोल्ले.	

यूथिकागुणाः ।

यूथीयुगं हिमं तिक्तं कटु पाकरसं लघु ।
मधुरं तुवरं हृद्यं पित्तघ्नं कफवातलम् ॥ व्रणास्रमुखदन्ताक्षिशिरोरोगविषापहम् ॥ २२ ॥

भाषा–दोनों प्रकारकी जूही शीतल, कडवी, पाकमें तथा रसमें चरपरी, हलकी, मधुर, कसैली, हृदयको प्रिय, कफकारक तथा वातकारक है और पित्त, व्रण, रक्तविकार, मुखरोग, दन्तरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा विषको नष्ट करती है ॥ २२ ॥

जूहीका विशेष विवरण.

जूही दो प्रकारकी होती है, एक सफेद फूलकी और दूसरी पीले फूलकी, प्रायः इसकी बेल सुन्दर सुन्दर उपवन और पुष्पोद्यानोंमें अधिक बोई जाती है, पत्ते चमेलीसे मिलते हुए होते हैं परन्तु कुछ छोटे होते हैं, फूलकी पंखुरियां सफेद रंगकी और महासुगंधियुक्त होती है, दूसरी पीले रंगकी जूही होती है उसपर पीले फूल लगते हैं. इसकी सुगन्ध गन्धराजसेभी अधिक होती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

चंपकनामानि ।

चाम्पेयश्चम्पकः प्रोक्तो हेमपुष्पश्च स स्मृतः ।
एतस्य कलिका गंधफलीति कथिता बुधैः ॥ २३ ॥

भाषा–चाम्पेय, चंपक, हेमपुष्प ये चंपेके संस्कृत नाम हैं. (सुकुमार, सुरभि, शीतल, कांचन, षट्पदातिथि, कुसुमाधिराट्, हेमाह्व, सुभग, शीतलच्छद, कुसुमाधिप, वरलब्ध, उग्रगन्ध, कटु, हेमपुष्पक, पुण्यगन्ध, नागपुष्प, स्वर्णपुष्प, भृंगमोही, भ्रमरातिथि, दीनपुष्प, वनदीप, स्थिरगंध, अतिगंधक, पीतपुष्प और स्थिरपुष्प ये चम्पेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) गन्धफली यह चंपेकी कलीका संस्कृत नाम है. (बहुगन्धा, गन्धमोदिनी और चंपककोरक ये चंपेकी कलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २३ ॥

अनेक भाषाके चम्पेके नाम.

सं.–चांपेय.	क.–संपगे.
हिं.–चम्पा.	तै.–चंपागी पुवुलु.
बं.–चांपा.	ला.–Michelia Champaca मिचेलिया चम्पेका.
म.–सोनचांफा.	
गु.–चंपो.	

चंपकगुणाः ।

चम्पकः कटुकस्तिक्तः कषायो मधुरो हिमः ।
विषकृमिहरः कृच्छ्रकफवातास्रपित्तनित् ॥ २४ ॥

भाषा–चंपा चरपरी, कडवी, कसैली, मधुर, शीतल है और विष, कृमि, मूत्रकृच्छ्र, कफ, वात, रक्तविकार तथा पित्तको नष्ट करती है ॥ २४ ॥

चंपेका विशेष विवरण.

चम्पेके वृक्ष बडे बडे बागोंमें और उपवनोंमें लगाये जाते हैं, इसके पत्ते लम्बे लम्बे अमरुदकी सदृश होते हैं और फूल पीले और मनोहर अत्यत मन्द सुगंधिवाले होते हैं, प्रायः हमारे देशमें इसके वृक्ष बहुत कम होते हैं पर मालवेमें बहुत होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

बकुलनामानि ।

बकुलो मधुगन्धश्च सिंहकेसरकस्तथा ।

भाषा–बकुल, मधुगंध, सिंहकेसरक ये मौलसिरीके संस्कृत नाम है. (केशर, कंठ, तैलाक्ष मधुपंजर, मुकुल, वकुल मल्ल, वरलब्ध, सीधुगन्ध, स्त्रीमुखमद, दोहल मधुपुष्प, सुरभि, अनरानन्द, स्थिरकुसुम, शारदेय, करक,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिन्धुगन्ध, विशारद, गूढपुष्पक, धन्वी, मदन, मद्यमोद और चिरपुष्प ये मौलसिरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मौलसिरीके नाम.

सं.-वकुल.	ता.-मागिल मार.
हिं.-मोलसिरी.	अं.-Surinam med lar सरिनाम् मेड्लर.
बं.-बकुलगाछ.	ला.-Mimusops Elengi माइमुसोप्स इलेंजि.
म.-बकुळ, वकुळी.	
कों.-ओंवळ.	
गु.-बोलसेरी.	
क.-बकुल, रेंजे.	
ते.-पागडा.	

बकुलगुणाः ।

बकुलस्तुवरोऽनुष्णः कटुपाकरसो गुरुः ।
कफपित्तविषश्वित्रकृमिदन्तगदापहः ॥ २५ ॥

भाषा-मौलसिरी कसैली, गरम नहीं, पाकमें चरपरी तथा भारी है और कफ, पित्त, विष, श्वेत कोढ, कृमि तथा दन्तरोगको नष्ट करती है ॥ २५ ॥

बृहद्बकुलनामानि ।

शिवमल्ली पाशुपत एकाष्ठीलो बुको वसुः ।

भाषा-शिवमल्ली, पाशुपत, एकाष्ठील, बुक, वसु ये बडी मौलसिरीके संस्कृत नाम हैं. (शैव, शिवापिण्ड, सुव्रत, वसुक, शिवांग, शिवेष्ट, कृमिपूरक, शिवाह्लाद और शाम्भव ये बडी मौलसिरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके बडी मौलसिरीके नाम.

सं.-शिवमल्ली.	म.-थोर वकुळ.
हिं.-बनहुला, बडी मौलसिरी,	गु.-मोटी बोलसरी.

बृहद्बकुलगुणाः ।

बुकोऽनुष्णः कटुस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ।
योनिशूलतृषादाहकुष्ठशोथास्रनाशनः ॥ २६ ॥

भाषा-बडी मौलसिरी गरम नहीं, चरपरी, कडवी है और कफ, पित्त, योनिशूल, तृषा, दाह, कुष्ठ, सूजन तथा रुधिरविकारको नष्ट करती है ॥ २६ ॥

मौलसिरीका विशेष विवरण.

मौलसिरीके वृक्ष वन और उपवनमें बहुत होते हैं, इसके पत्ते राजजामुनकी समान होते हैं और फूल सफेद और सूक्ष्म तथा चक्राकार होते हैं, उनमें महासुगन्धि आती है, इसकी सुगन्धि सूखनेपरभी न्यून नहीं होती, मौलसिरीकी नर नारी दो जाति हैं, एकमें फल आते हैं और दूसरीमें नहीं आते. जिसमें फल नहीं आते उस मौलसिरीके फूल कुछ बडे होते हैं और रंग सफेद होता है और जिसपर सिन्दूरी रंगके फूल आते हैं उसका फल कुछ लाली लिये छोटा छोटा होता है और जिस मौलसिरीमें फल नहीं आता उसको मालश्री कहते हैं और जिसपर फल आता है उसको मौलसरा कहते हैं. दूसरी बडी मोलश्रीका बडा फूल होता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कदम्बनामानि ।

कदम्बः प्रियको नीपो वृत्तपुष्पो हलिप्रियः ।

भाषा-कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्तपुष्प, हलिप्रिय ये कदम्बके संस्कृत नाम हैं. (सुरभी, प्रावृषेण्य, हरिप्रिय, ललनाप्रिय, प्रियक, हारिद्र, अशोकारि, नीप, कादम्ब, षट्पदेष्ट, जाल, कादम्बर्य, जीर्णपर्ण, महाढ्य और कर्णपूरक ये कदम्बके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कदमके नाम.

सं-कदम्ब.	अ.-कदम्ब.
हिं.-कदम, कदम्ब.	ला.-Anthocephalus Cadumba एंथोसिफालस् कडंबा. Nauclea Parviflora नोक्लिया पार्विफ्लोरा.
बं.-कदमगाछ.	
म.-कळंब, कदम्ब.	
गु.-कदंब.	
क.-कडउ.	
ते.-कडिमिचेट्टु.	

कदंबगुणाः ।

कदम्बो मधुरः शीतः कषायो लवणो गुरुः ।
सरो विष्टम्भकृद्वृक्षः कफस्तन्यानिलप्रदः २७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–कदम्ब मधुर, शीतल, कसैला, खट्टा, हलका, दस्तावर, विष्टम्भकारक, रूक्ष है और कफ, दुग्ध और वातको बढानेवाला है ॥ २७ ॥

कदंबका विशेष विवरण.

कदम्बके वृक्ष बडे बडे होते हैं, इस हमारे देशमें कम हैं. परन्तु मथुरा वृन्दावनमें बहुत हैं, इसके पत्ते गोल गोल महुवेकेसे होते हैं और फल गोल छोटे नींबूके समान आते हैं, इसमें फूलभी गोलही होता है, उसके नीचे फल उत्पन्न होता है, फूल छोटा और सुगन्धयुक्त होता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कुब्जकनामानि ।

कुब्जको भद्रतरणिर्बृहत्पुष्पोऽतिकेसरः । महासहा कण्टकाढ्या नीलाऽलिकुलसंकुला ॥२८॥

भाषा–कुब्जक, भद्रतरणि, बृहत्पुष्पक, अतिकेसर, महासहा, कंटकाढ्या, नीला, अलिकुलसंकुला ये कूंजाके संस्कृत नाम हैं. (खर्व, देवतरुणी और वारिकण्टक ये कूजाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २८ ॥

अनेक भाषाके कूजाके नाम.

सं.–कुब्जक.	म.–कुब्ज.
हिं.–कूजा.	गु.–कुजडो.

कुब्जकगुणाः ।

कुब्जकः सुरभिः स्वादुः कषायानुरसः सरः । त्रिदोषशमनो वृष्यः शीतहर्त्ता च स स्मृतः ॥ २९ ॥

भाषा–कूजा सुगन्धि, स्वादिष्ठ, कसैला, दस्तावर, तीनों दोषोंको शमन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक और शीतलतानाशक है ॥ २९ ॥

कूजेका विशेष विवरण.

कूजेका क्षुप बहुत बडा होता है, वन और उपवनोंमें बहुत देखनेमें आता है. इसके पत्ते गुलाबके पत्तोंसे कुछ बडे होते हैं और फूल सेवतीके समान सफेद होते हैं.

मल्लिकानामानि ।

मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च भूपदी ।

भाषा–मल्लिका, मदयन्ती, शीतभीरु, भूपदी ये मोतियेके संस्कृत नाम हैं. (भद्रवल्ली, प्रिया, सौम्या, वनचंद्रिका, तृणशून्य, तृणशून्या, वनचन्द्रिक, नारीष्टा, सिता और मल्ली ये मोतियेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मोतियेके नाम.

सं.–मल्लिका.	क.–वल्लिमल्लिगे.
हिं.–मोतिया.	ते.–मल्लिपुष्पालु.
बं.–मल्लिकाफूलेर गाछ.	ला.–Jasminum Sambac जेस्मिनम् सेविक.
म.–वेलमोगरा, मोगरी.	
गु.–वेल्य, डोलर.	

मल्लिकागुणाः ।

मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका हरेत् । वातपित्तास्यदृग्व्याधिकुष्ठारुचिविषव्रणान् ॥ ३० ॥

भाषा–मोतिया गरम, हलका, वीर्यवर्द्धक, कडवा, चरपरा है और वात, पित्त, मुखरोग, नेत्ररोग, कोढ, अरुचि तथा व्रणको नष्ट करता है ॥ ३० ॥

मल्लिकाका विशेष विवरण.

मल्लिका अर्थात् मोतियेके क्षुप बेलेकी समान पुष्पवाटिकाओंमें अधिक होते हैं, इसके पत्ते बेलेकीही सदृश होते हैं, फूलकी कली गोल गोल मोतियोंकेसे गुच्छ लताकी चोट्योंपर लटकते रहते हैं. जब यह खिलती है, तब उसकी महासुंगधि महक उठती है और उसमें छह पंखुरी होती हैं. फूल सफेद होता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

माधवीनामानि ।

माधवी स्यात्तु वासन्ती पुंड्रको मण्डकोऽपि च । अतिमुक्तो विमुक्तश्च कामुको भ्रमरोत्सवः ॥ ३१ ॥

भाषा–माधवी, वासन्ती, पुण्ड्रक, मण्डक, अतिमुक्त, विमुक्त, कामुक, भ्रमरोत्सव ये माधवीके संस्कृत नाम हैं. (चंद्रवल्ली, सुगंधा, भृङ्गप्रिया, भद्रलता, भूमिमण्डपभूषणा, वासंती, पुण्ड्रकलता, अतिमुक्तक, माधविका, विमु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुक, माधवीलता, वसंतदूती और लतामाधवी ये माधवीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ३१ ॥

अनेक भाषाके माधवीके नाम.

सं.-माधवी.	तै.-माधवतोगे.
हिं.-माधवी, बसन्ती.	अं.-Clustered Hiptega क्लस्टर्ड हिप्टेज.
बं.-माधवीलता.	
म.-मधुमाधवी, वीरवंती.	ला.-Hiptega Madablota हिप्टेज मेडेब्लोटा.
गु.-मधुमाधवी.	
क.-इंद्रगोच्चे, विरवंतिगे, इरुवंती मल्लिगे.	

माधवीगुणाः ।

माधवी मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा ।

भाषा-माधवी मधुर, शीतल, हलकी और त्रिदोषनाशक है ॥

माधवीका विशेष विवरण.

माधवीकी लता बहुत लम्बी और फैलनेवाली होती है, प्रायः मालीलोग बागमें लगा देते हैं, बेलके ऊपरकी छाल भूरी होती है और कुछ कुछ लाली लियेभी होती है, इसके पत्ते चमेलीके समान होते हैं और सुगंधिका तो कहनाही क्या है; सम्पूर्ण उपवनको सुगंधिका भाण्डागार बना देती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

केतकनामानि ।

केतकः सूचिकापुष्पो जम्बुकः ककचच्छदः ।
सुवर्णकेतकी त्वन्या लघुपुष्पा सुगन्धिनी ॥ ३२ ॥

भाषा-केतक, सूचिकापुष्प, जम्बुक, ककचच्छद ये केतकीके संस्कृत नाम हैं. (सूचिपुष्प, हलीन, जम्बुल, चामरपुष्प, केतकी, तीक्ष्णपुष्पा, विफला, धूलिपुष्पिका, मेध्या, कण्टदला, शिवद्विष्टा, नृपप्रिया, ककचा, दीर्घपत्रा; स्थिरगंधा, गंधपुष्पा, इंदुकलिका, दलपुष्पा और पांशुला ये केतकीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) सुवर्णकेतकी, लघुपुष्पा, सुगंधिनी ये सुवर्णकेतकीके संस्कृत नाम हैं. (स्वर्णकेतकी, हेमकेतकी, कनकप्रसवा, पुष्पी, हैमी, छिन्नरुहा, विष्ठारुहा और स्वर्णपुष्पी ये सुवर्णकेतकीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ३२ ॥

अनेक भाषाके केवडेके नाम.

सं.-केतकी.	ता.-केदगे.
हिं.-केवडा, पीलाकेवडा.	तु.-केदई, मुंदेई.
बं.-केयागाच्छ, सोणाकेया.	मला.-केता.
म.-पांढरा केवडा, केतकी, सोनकेवडा.	गो-केदई, बोंडई.
गु.-केवडो.	फा.-करज.
क.-केदगे, मुंडिगे होवणद दारे.	अ.-कादी.
तै.-मुगलीपुवु, गाजंगी.	ला.-Pandanus Odoratissimus पेन्डेनस् ओडोरेटिसिमस्.

केतकगुणाः ।

केतकः कटुकः स्वादुर्लघुस्तिक्तः कफापहः ।
उष्णा तिक्तरसा ज्ञेया चक्षुष्या हेमकेतकी ॥ ३३ ॥

भाषा-केवडा चरपरा, मधुर, हलका, कडवा, और कफनाशक है. पीला केवडा गरम, कडवा और नेत्रोंको हितकारी है ॥ ३३ ॥

केवडेका विशेष विवरण.

केवडेके वृक्ष बहुत बडे नहीं होते, विशेष करके जलके निकटवाले बागोंमें बहुत होते हैं. इसकी शाखाओंमें छोटे छोटे कांटे होते हैं, इसके पत्ते लम्बे लम्बे दो दो फूटके किनारोंपर कांटे और नोक अनीदार होते हैं, उसके मध्यभागमें एक मोटी बालसी निकलती है, वह पत्तोंसे वेष्टित होती है, उसमें अत्यन्त मनोहारिणी और क्लेशनिवारिणी महातीव्र सुगंधि आती है, उसीको केवडेका फूल कहते हैं, उन फूलोंपर परागसा लगा होता है, दूसरी पीली केतकी होती है उसका छोटा क्षुप होता है, उसका रंग पीला होता है, उसपर पीले रंगके महासुगंधित पुष्प आते हैं सुगंधिके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषयमें इसका नाम सब संसारमें प्रसिद्ध है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

किङ्किरातनामानि ।

किङ्किरातो हेमगौरः पीतकः पीतभद्रकः ।

भाषा–किंकिरात, हेमगौर, पीतक, पीतभद्रक ये किंकिरातके संस्कृत नाम हैं. (किंकिराट, विप्रलम्बी, षट्पदानन्दवर्द्धन, विप्रलोभी और पीताम्लान यह किंकिरातके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके किंकिरातके नाम.

सं.–किंकिरात.	गु.–रामबावल.
हिं.–किंकिरात.	फा.–मधिलान.
म.–देवबाभूळ.	

किंकिरातगुणाः ।

किंकिरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेदसौ ।
कफपित्तपिपासास्रदाहशोषवमिकृमीन् ॥३४॥

भाषा–किंकिरात शीतल, कडवा, कसैला है और कफ, पित्त, तृषा, रक्तविकार, दाह, शोष, वमन तथा कृमिको नष्ट करता है ॥३४॥

किंकिरातका विशेष विवरण.

किंकिरातका बडा वृक्ष होता है, इसके पत्ते छोटे छोटे बबूरकी समान होते हैं और फूल पीले होते हैं, इसको कोई कोई वैद्यवर रामबबूर कहते हैं, परन्तु उसमें और इसमें बडा अंतर है.

कर्णिकारनामानि ।

कर्णिकारः परिव्याधः पादपोत्पल इत्यपि ।

भाषा–कर्णिकार, परिव्याध, पादपोत्पल ये कर्णिकारके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके कनेरके नाम.

सं.–कर्णिकार.	म.–कण्हेर.
हिं.–कनेर.	गु.–नहानोगरमाळो.
बं.–छोटासोंदाल.	क.–कंडीर.

कर्णिकारगुणाः ।

कर्णिकारः कटुस्तिक्तस्तुवरः शोधनो लघुः ।
रञ्जनः सुखदः शोथश्लेष्मास्रव्रणकुष्ठजित् ३५॥

भाषा–कनेर चरपरी, कडवी, कसैली, कोठेको शुद्ध करनेवाली, हलकी, रंगदायक, सुखदायक है और सूजन, कफ रक्तविकार, व्रण तथा कोढको नष्ट करती है ॥ ३५ ॥

कर्णिकारका विशेष विवरण.

कर्णिकारके वृक्ष प्रायः पर्वतोंपर विशेषकरके होते हैं, इसके पत्ते ढाकके पत्तोंकी समान लम्बे चौडे होते हैं, और फूल लाल होते हैं, इसपर फली लगती हैं.

अशोकनामानि ।

अशोको हेमपुष्पश्च वञ्जुलस्ताम्रपल्लवः ।
कङ्केलिपिण्डपुष्पश्च गन्धपुष्पो नटस्तथा ३६॥

भाषा–अशोक, हेमपुष्प, वंजुल, ताम्रपल्लव, कङ्केलि, पिण्डपुष्प, गंधपुष्प, नट ये अशोकके संस्कृत नाम हैं. (शोकनाशक, विचित्र, कर्णपूरक, अंगनाप्रिय, वीतशोक, विशोक, वंजुलद्रुम, मधुपुष्प, अपशोक, कङ्केली, केलिक, रक्तपल्लव, चित्र, कर्णपूर, सुभग, दोहली, रोगितरु, वामाङ्घ्रियातन, पिंडीपुष्प, रामा, पल्लद्रु, कांतांघ्रिदोहद, कांताचरणदोहद, चक्रगुच्छ, स्त्रीनिरीक्षणदोहद, शोकहर्ता, स्मराधिवास, दोषहारी, प्रपल्लव और वामांघ्रिघातक ये अशोकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ३६ ॥

अनेक भाषाके अशोकके नाम.

सं.–अशोक.	मला.–अशोकम्.
हिं.–अशोक, अशोगि.	ला.–Guattaria Langifalia ग्वेटेरियालोंजि फोलिया. Jonesia Asoka जोनिसिया अशोका.
बं.–अस्पाल.	
म.–अशोक.	
गु.–आशुपालो.	
क.–अशोके.	
ते.–अशोकभानु.	

अशोकगुणाः ।

अशोकः शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः । दोषापचीतृषादाहकृमिशोषविषास्रजित् ॥ ३७ ॥

भाषा–अशोक शीतल, कडवा, ग्राही, वर्णको उत्तम करनेवाला, कसैला है और वातादि दोष, अपची, तृषा, दाह, कृमि, शोष, विष तथा रुधिरविकारको नष्ट करता है ॥ ३७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अशोकका विशेष विवरण.

अशोक वृक्षकी दो जाति हैं; एकके पत्ते रामफलकी समान और फूल नारंगीके रंगके तुल्य होते हैं और माघ फाल्गुनमें खिलते हैं. दूसरे अशोकके पत्ते आमके पत्तोंकी समान होते हैं; फूल सफेद कुछेक साधारण पीले रंगके होते हैं; इसपर चौमासेके आरंभमें फल आते है. इसके कच्चे फल हरे और पकनेपर लाल हो जाते हैं. इसके फल खानेके योग्य नहीं होते और इन फलोंमेंसे बीज निकलते हैं; वे बीज किसी औषधिके प्रयोगमें नहीं लिये जाते. प्रदरादिरोगोंमें केवल छालही काममें आती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

बाणपुष्पनामानि ।

अम्लातोऽम्लाटनः प्रोक्तस्तथाम्लातक इत्यपि । कुरण्टको वर्णपुष्पः स एवोक्तो महासहः ॥ ३८ ॥

भाषा-अम्लात, अम्लाटन, आम्लातक, कुरंटक, वर्णपुष्प, महासह ये वर्णपुष्पके संस्कृत नाम हैं ॥ ३८ ॥

अनेक भाषाके बाणपुष्पके नाम.

सं.-अम्लात, वर्णपुष्प.	बं.-आयला.
हिं.-बाणपुष्प.	

अम्लातगुणाः ।

अम्लाटनः कषायोष्णः स्निग्धः स्वादुश्च तिक्तकः ।

भाषा-बाणपुष्प कसैला, गरम, स्निग्ध, मधुर और कडवा है ॥

सैरेयकनामानि ।

सैरेयकः श्वेतपुष्पः सैरेयः कटसारिका । सहाचरः सहचरः स च भिन्द्यापि कथ्यते ३९

भाषा-सैरेयक, श्वेतपुष्प, सैरेय, कटसारिका, सहाचर, सहचर, भिन्दि ये सफेद फूलकी कटसरैयाके संस्कृत नाम हैं. (मृदुकण्ट, महासह, बाण, उद्यान, पाकी, सौरियक, कण्टकुरण्ट, झिण्टिका और झिण्टि ये सफेद फूलकी कटसरैयाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ३९ ॥

अनेक भाषाके कटसरैयाके नाम.

सं.-कुरण्टक.	क.-गोरेटें.
हिं.-कटसरैया, पियावांसा.	तै.-गोरेंडू.
बं.-झिंटि, झांटि.	ला.-Barleria Prionitis बार्लेरिया प्रायोनिटिस्.
म.-कोरांटा.	

सैरेयकभेदाः ।

कुरण्टकोऽत्र पीते स्याद्रक्ते कुरबकः स्मृतः । नीले बाणा द्वयोरुक्तो दासी आर्तगलश्च सः ॥ ४० ॥

भाषा-पीले फूलकी कटसरैयाको कुरण्टक, लाल फूलकी कटसरैयाको कुरबक और काले फूलकी कटसरैयाको बाणा, दासी तथा आर्तगल कहते हैं इनमें बाण शब्द स्त्रीलिंग और पुंल्लिंग दोनोंमें है ॥ ४० ॥

सैरेयगुणाः ।

सैरेयः कुष्ठवातास्रकफकण्डूविषापहः । तिक्तोष्णो मधुरोऽनम्लः सुस्निग्धः केशरञ्जनः ४१

भाषा-कटसरैया कडवी, गरम, मधुर, अम्ल नहीं, चिकनी, केशरंजक (बालोंको रंगनेवाली) है और कोढ, वात, रक्तविकार, कफ, खुजली तथा विषको नष्ट करती है ॥ ४१ ॥

पियावांसेका विशेष विवरण.

पियावांसा अर्थात् कटसरैयाके क्षुप वन और बागोंमें बहुत होते हैं, इसकी चार प्रकारकी जाति हैं, इसके फूलोंका रंगभी चार प्रकारका होता है; सफेद, पीला, लाल और नीला, इन चारों प्रकारके पियावांसोंमें कांटे होते हैं, इसके पत्तेभी सबके छोटे छोटे एकसेही होते हैं, किसीमें विशेष अंतर नहीं होता. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कुन्दनामानि ।

कुन्दं तु कथितं माध्यं सदापुष्पं च तत् स्मृतम् ।

भाषा-कुन्द, माध्य, सदापुष्प ये कुंदके संस्कृत नाम हैं. (शुक्लपुष्प, दलकोष, वरट, वोरट, मकरन्द, महामोद, मनोहर, मुक्तापुष्प, तारपुष्प, अट्टपुष्पक, दमन, वनहास, मनोज्ञ, भृङ्गबन्धु मनोरम, अट्टहास और भृङ्गसुहृत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये कुन्दके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कुन्दके नाम.

सं.–कुंद.	क.–सुरगि.
हिं.–कुन्द, कुंदेका वृक्ष.	तै.–मोल्ल.
बं.–कुन्द.	ला.–Gasminum
म.–कुन्द.	maltiflorum
कों.–कुंदकागडा.	गॅस्मिनम् मल्टि-
गु.–कुंदकागडो, जेलर.	फ्लोरम्.

कुंदगुणाः ।

कुन्दं शीतं लघु श्लेष्मशिरोरुग्विषपित्तहृत् ।

भाषा–कुन्द, शीतल, हलका है और कफ, मस्तकरोग, विष तथा पित्तको नष्ट करता है ॥

कुंदका विशेष विवरण.

कुन्दके क्षुप वन और पुष्पवाटिकाओंमें बहुत होते हैं और फूल सफेद मोतीके तुल्य होते हैं सदैव खिलते रहते हैं, सुगन्ध अधिक होती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

मुचुकुन्दनामानि ।

मुचुकुन्दः क्षत्रवृक्षश्चित्रकः प्रतिविष्णुकः ।

भाषा–मुचुकुंद, क्षत्रवृक्ष, चित्रक, प्रतिविष्णुक ये मुचुकुंदके संस्कृत नाम हैं. (दीर्घपुष्प, बहुपत्र, सुदल, मुण्डी वृक्षानुकारक, हरिवल्लभ, सुपुष्प, अर्ध्यार्हलक्षणक और रक्तप्रसव ये मुचुकुंदके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मुचुकुन्दके नाम.

सं.–मुचुकुन्द.	तै.–लोलगु.
हिं.–मुचुकुंद, मचकन.	ता.–व्ङो.
बं.–मुचकुंद.	ला.–Pterosperum-
म.–मुचकुंद.	um Suberifoli-
गु.–मुचकुंद.	um टरोस्परमम्
क.–मुचकुंद.	सुबेरी फोलियम्.

मुचुकुन्दगुणाः

मुचुकुन्दः शिरःपीडापित्तास्रविषनाशनः ।

भाषा–मुचुकुंद शिरका दर्द, पित्त, रक्तविकार और विषको नष्ट करता है ॥

मुचुकुंदका विशेष विवरण.

मुचकुंदके वृक्ष वनोंमें बहुत होते हैं; इसके पत्ते बडे बडे अखरोटके समान होते हैं; और फूल छोटे छोटे लाल रंगके सुगंधित होते हैं. तथा फल लम्बे और गोल लकडीके समान चित्रित होते हैं; दूसरा और एक प्रकारका मुचकुन्दका क्षुप होता है, वह जंगलों और वनोंमें बहुत होता है; इसके पत्ते और फूल बेलके समान होते हैं; फल करौंदेकी तुल्य लगते हैं, फूलोंमें सुगंधि आती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

तिलकनामानि ।

तिलकः क्षुरकः श्रीमान्पुरुषश्छिन्नपुष्पकः ।

भाषा–तिलक, क्षुरक, श्रीमान्, पुरुष, छिन्नपुष्पक ये तिलपुष्पके संस्कृत नाम हैं. (मुखमंडनक, विशेषक, पुण्ड्र, पुण्ड्रक, स्थिरपुष्पी, छिन्नरुह, दृग्धरुह, मृतजीव, तरुणीकटाक्षकाम, वासंत, सुंदर, दुग्धरुह, भालविभूषणसंज्ञ, पुन्नाग, रेचक और शतपत्रक ये तिलपुष्पके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तिलकके नाम.

सं.–तिलक.	गु.–तिलक.
हिं.–तिलकपुष्प.	क.–तिलकपुष्प.
म.–तिलकवृक्ष,तिळवा.	

तिलकगुणाः ।

तिलकः कटुकः पाके रसे चोष्णो रसायनः ।
कफकुष्ठकृमीन्बस्तिमुखदन्तगदान्हरेत् ॥४२॥

भाषा–तिलक रसमें तथा पाकमें चरपरा, गरम, रसायन है और कफ, कोढ, कृमि, बस्तिरोग, मुखरोग तथा दंतरोगका नाश करता है ॥ ४२ ॥

तिलकका विशेष विवरण.

तिलकके वृक्ष पर्वतोंपर अधिक होते हैं; इसके पत्ते पीपलके समान और फूल तिलके तुल्य होते हैं; इसके फूलोंमें मंद सुगंधि आती है.

बंधुजीवनामानि ।

बन्धुको बन्धुजीवश्च रक्तो माध्याह्निकोऽपि च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-बंधूक, बंधुजीव, रक्त, माध्याह्निक ये दुपहरियाके संस्कृत नाम हैं. (रक्तक, बंधुजीवक, बंधुक, बंधुबंधुल, बंधुजीवक, बंधजीव, बंधूली, बंधुर, सूर्यभक्तक, ओष्ठपुष्प, अर्कवल्लभ, मध्यंदिन, रक्तपुष्प, रागपुष्प, हरिप्रिय, शर- और सुपुष्प ये दुपहरियाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके दुपहरियाके नाम.

सं.-बन्धूक.	क.-वन्दूरे.
हिं.-दुपहरिया, गोजुनियां.	तै.-नितिमल्ली.
बं.-बान्धुलि फूलेरगाछ.	ला.-Pentapeter Phoenicea पेनटापिटिर् फिनिश्या.
म.-दुपारीचे फूल.	
गु.-बपोरिया.	

बन्धूजीवगुणाः ।

बन्धूकः कफकृद्ग्राही वातपित्तहरो लघुः ।

भाषा-दुपहरिया कफकारक, ग्राही, हलका है और वात तथा पित्तको नष्ट करता है ॥

दुपहरियाका विशेष विवरण.

दुपहरियाके क्षुप माली लोग बागोंमें बहुत लगा देते हैं. इसके पत्ते डेढ अंगुल चौडे और एक वालिस्त लम्बे नोकदार नीमके सदृश चारों ओर आरेकेसे चिह्न होते हैं; इसके फल गोल गोल कुछ नोकदारसे होते हैं और उसमें काली मिर्चके सदृश काले बीज होते हैं, ये दुपहरियाके समय खिलती है; इसलिये इसको दुपहरिया कहते हैं. इसकी मात्रा २मासेकी है.

जपापुष्पनामानि ।

ओंड्रपुष्पं जपा चाथ त्रिसन्ध्या सारुणा सिता ।

भाषा-ओंड्रपुष्प, जपा ये गुडहरके संस्कृत नाम हैं. (प्रातिका, हरिवल्लभा, जवा, ओंड्राख्या, रक्तपुष्पी, अर्कप्रिया, रागपुष्पी और ओंड्रपुष्पी ये जपाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) लाल तथा सफेद फूलवाले ओंड्रहुलको त्रिसंध्या कहते हैं ॥

अनेक भाषाके ओण्ड्रहुलके नाम.

सं.-जपापुष्प.	तु.-दासनपु.
हिं.-ओण्ड्रहुल, ओडहुल, जवा, गुडहर.	मला.-चैंपरुत्ति.
बं.-जवा फूलेरगाछ.	गो.-दासनेफूल.
म.-जासवंद.	अं.-Shoeflowar शुफ्लावर.
गु.-जासुद.	ला.-Hidiscus Rosasinensis हिडिस्कस् रोझासाईनेन्सिस्.
क.-दासनळ, दाशाळ.	
तै.-दासनचेट्टु, जपा.	
ता.-कैंबरत्ते.	

जपापुष्पगुणाः ।

जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफवातजित् ।

भाषा-ओण्ड्रहुल ग्राही और केशोंको उत्तम करनेवाली है. लाल फूलवाला ओण्ड्रहुल कफ नाशक तथा वातनाशक है ॥

जपापुष्पका विशेष विवरण.

जपापुष्प अर्थात् गुडहलके क्षुप बागोंमें प्रायः मालीलोग शोभाके लिये लगा देते हैं, इसके पत्ते लम्बे लम्बे और फूल अत्यन्त लाल होते हैं और कुछ कुछ चिकने तथा पतले होते हैं.

सिन्दूरीनामानि ।

सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सुकोमला ।

भाषा-सिंदूरी, रक्तबीजा, सुकोमला ये सिंदूरियाके संस्कृत नाम हैं. (रक्तपुष्पी, वीरपुष्पा, करच्छदा और शोणपुष्पी ये सिंदूरियाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके सिन्दूरियाके नाम.

सं.-सिन्दूरी.	ता.-माजिटी.
हिं.-सिन्दूरिया, जाफर.	मला.-कुण्णामान्नळ.
म.-शेन्द्री.	गो.-कुंकामिफल.
गु.-सिंदूरी रातां फूलवाली जासुद.	अं.-Arnatto आरनाटो.
क.-भांगारा कथि सिन्दूरी.	ला.-Bixa Orrimana बिक्सा ओरिमाना.
तै.-जाफराचेट्टु.	

सिंदूरीगुणाः ।

सिन्दूरी विषपित्तास्रतृष्णावान्तिहरी हिमा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–सिंदूरिया शीतल है और विष, पित्त, रक्तविकार, तृषा तथा वमनको नष्ट करती है ॥

सिंदूरियाका विशेष विवरण.

सिंदूरियाके क्षुप उपवनोंमें होते हैं, इसके पत्ते बेलके समान होते हैं, और फूल लाल लाल सिंदूरकी तुल्य होते हैं, उसके बीजभी लाल रंगके होते हैं, इनको जलमें डालनेसे जल लाल हो जाता है.

मुनिवृक्षनामानि ।

अथागस्त्यो वङ्गसेनो मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः ।

भाषा–अगस्त्य, वंगसेन, मुनिपुष्प, मुनिद्रुम ये अगस्तियेके संस्कृत नाम हैं. (अगस्ति, शीघ्रपुष्प, व्रणारि, दीर्घफलक, रक्तपुष्प, सुरप्रिय, शुक्लपुष्प, व्रणापह, खरध्वंसी, पवित्र, मुनितरु, वंगसेनक, कनली और वक्रपुष्प ये अगस्तियेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके अगथियाके नाम.

सं.–अगस्त्य.	ता.–अगति.
हिं.–अगथिया, अगस्तिया, हथिया.	अं.–Large Flowered Agati लार्जफ्लावर्ड एगेटी.
बं.–बक.	
म.–अगस्ता, हदगा.	ला.–Agati Glandiflora एगाटी ग्लांडीफ्लोरा.
गु.–अगथियो.	
क.–अगसेयमर.	
तै.–अनीसे, अविसि.	

मुनिवृक्षगुणाः ।

अगस्तिः पित्तकफजिच्चातुर्थिकहरो हिमः ।
रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रतिश्यायनिवारणः ४३

भाषा–अगथिया शीतल, रूक्ष, वातकारक, कडवा है और पित्त, कफ, चातुर्थिक ज्वर (चौथिया) तथा प्रतिश्यायको नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

अगथियाका विशेष विवरण.

अगथियोंके वृक्ष पुष्पोद्यानोंमें अधिक होते हैं, इसके पत्ते सोहननेकेसे होते हैं, इस वृक्षपर विशेष करके नागरबेल (पानोंकी बेलें) चढा करती हैं, जिससे इसके पत्ते उत्तम होते हैं, इसके फूल लाल और सफेद बांके होते हैं, इसकी फली अत्यन्त कोमल होती है. यह इसकी ठीक पहिंचान है कि, जब अगस्त्यमुनिका उदय होता है तबही अगस्तियाके फूल खिलते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

तुलसी (शुक्ला कृष्णा) नामानि ।

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी ।
अपेतराक्षसी गौरी शूलघ्नी देवदुन्दुभिः ४४॥

भाषा–तुलसी, सुरसा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमंजरी, अपेतराक्षसी, गौरी, शूलघ्नी, देवदुन्दुभि ये तुलसीके संस्कृत नाम हैं. (वैष्णवी, वृन्दा, सुगंधा, गन्धहारिणी, अमृता, पत्रपुष्पा, पवित्रा, सुरवल्लरी, सुभगा, तीव्रा, पावनी, विष्णुवल्लभा, सुरेज्या, कायस्था, सुरदुन्दुभि, सुरभि, बहुपत्री, मंजरी, हरिप्रिया, अश्यामा, त्रिदशमञ्जरी, भूतघ्नी, भूतपत्री, वर्णास, कठिंजर, कुठेरक, पुण्या, माधवी, सुरवल्ली, प्रेतराक्षसी, सुवहा, विष्णुपत्नी, माला, श्रेष्ठा, पापघ्नी, लक्ष्मी और कृष्णवल्लभा ये तुलसीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४४ ॥

अनेक भाषाके तुलसीके नाम.

सं.–तुलसी, गौरी.	मला.–कृष्णतुलसी, शिवतुलसी.
हिं.–सफेद तुलसी, काली तुलसी.	फा.–रेहान.
ब.–श्वेत तुलसी, कृष्ण तुलसी.	अ.–उलसी बदरूत.
म.–पांढरी तुळस, काळी तुळस.	अं.–White Basil वाइट बेजिल, Purple stalked Basil पर्पल स्टाक्ड् बेजिल.
गु.–धोली तुलसी, काली तुलसी.	ला.–Ocimum Album ओसिमम् आल्बम्, Ocimum sectam असिमम् सेक्टम्.
क.–बिळे तुलसी, करे तुलसी.	
तै.–तुलसी, कृष्णतुलसी.	
तु.–कप्पु तोलचि.	

तुलसीगुणाः ।

तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत् ।
दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुक्ला कृष्णा च तुलसी गुणैस्तुल्या प्रकीर्तिता ॥ ४५ ॥

भाषा-तुलसी चरपरी, कडवी, अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, गरम, दाह तथा पित्तको करनेवाली है और कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार, पसलीकी पीडा, कफ तथा वातको नष्ट करती है. सफेद और काली तुलसी दोनों गुणोंमें समान हैं ॥ ४५ ॥

तुलसीका विशेष विवरण.

तुलसीके क्षुप जंगलमें और बागोंमें बहुत होते हैं और बहुतेरे गृहस्थी लोग पूजाके लिये अपने अपने घरोंमें बना लेते हैं, इसके पत्ते गोल गोल कुछ लम्बाई लिये अत्यन्त कोमल होते हैं और उनमें सुगंधिभी आती है, उसको डाल डालमें बाल निकलती है, उसको मञ्जरी कहते हैं, दूसरी श्याम पत्तोंकी श्याम तुलसी कहलाती है, परन्तु आकृति दोनोंकी एकही प्रकारकी है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

मरुबकनामानि ।

मारुतोऽसौ मरुबको मरुन्मरुरपि स्मृतः । फणी फणिज्जकश्चापि प्रस्थपुष्पः समीरणः ॥ ४६ ॥

भाषा-मारुत, मरुबक, मरुत्, मरु, फणी, फणिज्जक, प्रस्थपुष्प, समीरण ये मरुवेके संस्कृत नाम हैं. (खरपत्र, गन्धपत्र, बहुवीर्य, शीतलक, सुराह्व, जम्बीर, प्रस्थकुसुम, आजन्मसुरभिपत्र और कुलसौरभ ये मरुवेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४६ ॥

अनेक भाषाके मरुआके नाम.

सं.-मरुबक.	अ.-मर्जुस.
हिं.-मरुआ, मरुवा.	अं.-Sweet Marorran स्वीट मार्जोरन.
बं.-मरुया.	
म.-मर्वा.	
गु.-मरवो.	
ते.-रुद्रजाडइ.	
फा.-मर्जुस.	ला.-Ariganum Marjorana ओरिग्येनम् मार्जोराना.

मरुबकगुणाः ।

मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुः । वृश्चिकादिविषश्लेष्मवातकुष्ठकृमिप्रणुत् ॥ कटुपाकरसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकः ४७॥

भाषा-मरुआ अग्निकारक, हृदयको हितकारी, तीक्ष्ण, रुचिकारक, कडवा, रूक्ष और सुगन्धित है, तथा वीछू आदिका विष, कफ, वात, कोढ और कृमिको दूर करता है ॥४७॥

मरुवेका विशेष विवरण.

मरुवेके क्षुप बागोंमें अधिक होते हैं, इसके पत्ते लम्बे २ अंगुलीके समान अत्यन्त सुगंधित होते हैं, इसमें तुलसीके समान बहुतसी बालें निकलती हैं, मरुवेके सब अंगोंमें सुगन्धि आती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

दमनकनामानि ।

उक्तो दमनको दान्तो मुनिपुत्रस्तपोधनः । गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कलपत्रकः ४८

भाषा-दमनक, दान्त, मुनिपुत्र, तपोधन, गन्धोत्कट, ब्रह्मजट, विनीत, कलपत्रक ये दौनेके संस्कृत नाम हैं. (पुष्पचामर, मदनक, दमन, मुनि, जटिला, दण्डी, पाण्डुरोग, ब्रह्मजटा, पुंडरीक, तापसपत्री, पत्री, पवित्रक, देवशेखर, कुलपत्र और तपस्विपत्र ये दौनेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४८ ॥

अनेक भाषाके दौनेके नाम.

सं.-दमनक.	अं.-Arteemesia Indica आर्टिमिसिया इंडीका.
हिं.-दौना, दवना.	
बं.-दोना, दना.	
म.-दवणा, रान दवणा.	
क.-चित्तरटे.	
ते.-सावित्रचेट्टु.	ला.-Artimesia Sieversiana आर्टिमिसिया सिवर्सियाना.

दमनकगुणाः ।

मदनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यः सुगन्धिकः । ग्रहणाद्विषकुष्ठास्रक्लेदकण्डूत्रिदोषजित् ॥ ४९॥

भाषा-दौना कसैला, कडवा, हृदयको प्रिय, वीर्यवर्द्धक, सुगन्धित है और भूत, प्रेत, विष,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोढ, रक्तविकार, ग्लानि, खुजली तथा त्रिदोषको नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

दौनेका विशेष विवरण.

दौनेके छोटे छोटे क्षुप होते हैं, इसके पत्ते अत्यन्त सुगन्धयुक्त होते हैं, पत्तोंके ऊपर बहुत रुवांसा होता है और फूलोंके छत्तेसे होते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

बर्बरीनामानि।

बर्बरी तुवरी तुङ्गी खरपुष्पाऽजगन्धिका। पर्णाशस्तत्र कृष्णे तु कठिल्लककुठेरकौ ॥ तत्र शुक्लेऽर्जकः प्रोक्तो वटपत्रस्ततोऽपरः ५०

भाषा–बर्बरी, तुवरी, तुङ्गी, खरपुष्पा, अजगंधिका, पर्णाश ये बर्बरीके संस्कृत नाम हैं. (कबरी, खरपुष्पिका, असुरसा, बर्वा, अजगंधा, कबरा, सुरभि, तुलसीद्वेषा और सुरसा ये बर्बरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) काली बर्बरीको कठिल्लक और कुठेरक, सफेद बर्बरीको अर्जक और तीसरी जातिकी बर्बरीको वटपत्र कहते हैं ॥ ५० ॥

अनेक भाषाके बर्बरीके नाम.

सं.–बर्बरी.	क.–कगोरले, करीयकगोरले.
हिं.–बर्बरी, वनतुलसी, बबइ.	तै.–कारूतुलसी.
बं.–बाबुइ तुलसी, वनबाबुइ तुलसी.	फा.–पलंगमुष्क.
म.–रानतुळस.	अ.–फरंजमुष्क.
गु.–रानतुलसी भेद.	ला.–Ocimum Gratissimum ओसिमम् ग्राटिसिमम्.

बर्बरीगुणाः।

बर्बरीत्रितयं रूक्षं शीतं कटु विदाहि च। तीक्ष्णं रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च ॥ पित्तलं कफवातास्रकण्डूकृमिविषापहम्॥५१॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीमिश्रभावविरचिते श्रीभावप्रकाशे पुष्पादिवर्गः समाप्तः।

भाषा–तीनों प्रकारकी बर्बरी रूखी, शीतल, चरपरी, दाहकारक, तीक्ष्ण, रुचिको उत्पन्न करनेवाली, हृदयको हितकारी, अग्निप्रदीपक, पाकमें हलकी, पित्तकारक है और कफ, वात, रुधिरविकार, खुजली, कृमि तथा विषको नष्ट करती है ॥ ५१ ॥

बर्बरीका विशेष विवरण.

बर्बरी अर्थात् वनतुलसी तीन प्रकारकी होती है, वनतुलसी मरुवेका भेद है. वनतुलसी जंगल और वनोंमें अधिक होती है. इसके पत्ते पियाबांसेके समान छोटे होते हैं, उनमें नीमके पत्तोंकेसे कँगूरे होते हैं और फूल पीलापन लिये होते हैं. इसमें सुगन्धिभी बहुत आती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे पुष्पादिवर्गः समाप्तः।

अथ वटादिवर्गः ५.

वटनामानि।

वटो रक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः। क्षीरी वैश्रवणो वासो बहुपादो वनस्पतिः॥१॥

भाषा–वट, रक्तफल, शृंगी, न्यग्रोध, स्कन्धज, ध्रुव, क्षीरी, वैश्रवण, वास, बहुपाद, वनस्पति ये बडके संस्कृत नाम हैं. (नन्दी, शुङ्ग, बृहत्पाद, वैश्रवणालय, वैश्रवणोदय, वृक्षनाथ, यमप्रिय, कर्मज, भाण्डीर, जटाल, रोहिण, अवरोहि, विटपी, स्कन्धरुह, मण्डली, महच्छाय, भृंगी, यक्षावास, यक्षतरु, पादरोहण, नील, शिफारुह, बहुपात, जटिल और जटी ये बडके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥१॥

अनेक भाषाके बडके नाम.

सं.–वट.	मला.–पेराल, वटं.
हिं.–बड.	फा.–दरख्तरेशा, वडवाईरेशा, एबगर्द.
बं.–वट.	अ.–जातुद्वाईबथ, आव.
म.–वड.	अं.–Banyantree बनियन्ट्री.
गु.–वड.	ला.–Ficus Indicus फाइकस् इंडिकस्.
क.–आलदमारा, गोलिमारा.	
तै.–मर्रिचेट्टु.	
ता.–अलामाराम.	
तु.–गोलिडामारा.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वटगुणाः।

वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्तव्रणापहः। वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत्॥ २॥

भाषा-वड शीतल, भारी, ग्राही, वर्णको उत्तम करनेवाला, कसैला है और कफ, पित्त, व्रण, विसर्प, दाह तथा योनिदोषको नष्ट करता है॥ २॥

वडका विशेष विवरण.

बडका वृक्ष महाविशाल होता है, इसके पत्तेभी लम्बे चौडे होते हैं और फल छोटे छोटे झडबेरके बराबर आते हैं, इसकी शाखाओंमेंसे लाल लाल अंकुर निकलते हैं, जब वह बढ जाते हैं उनको बडकी दाढी कहते हैं, वह इतनी बढती है कि लटकती लटकती पृथ्वीमें आकर जम जाती है. जहां जहां यह दाढी जम जाती है वहां वहां वडके वृक्ष हो जाते हैं, इस प्रकार एक वडकी अनेक जडें हो जाती हैं परन्तु वह सब वास्तवमें एकही हैं और परस्पर मिली हुई हैं, ऐसेही बढते बढते उस बडका बडा बीघोंमें विस्तार हो जाता है.

पिप्पलनामानि।

बोधिद्रुः पिप्पलोऽश्वत्थश्चलपत्रो गजाशनः।

भाषा-बोधिद्रु, पिप्पल, अश्वत्थ, चलपत्र, गजाशन ये पीपलके संस्कृत नाम हैं. (केशव्रालय, चैत्यद्रु, बोधितरु, कृष्णावास, चैत्यवृक्ष, नागबन्धु, देवात्मा, महाद्रुम, कपीतन, बोधिद्रुम, चलदल, कुञ्जराशन, अच्युतवास, पवित्रक, शुभद, बोधिवृक्ष, याज्ञिक, गजभक्षक, क्षीरद्रुम, विप्र, मंगल्य, श्यामल, गुह्यपुष्प, सेव्य, सत्य, शुचिद्रुम और धनुर्वृक्ष ये पीपल वृक्षके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके पीपलके नाम.

सं.-पिप्पल.	तु.-अत्तासामारा.
हिं.-पीपलवृक्ष.	मला.-अरायल.
बं.-अश्वत्थ, अशोथगाछ.	फा.-दरख्तलरजां.
म.-पिंपळ.	अं.-Poplar leaved Figtree पोप्लरलीव्ड फिग्ट्री.
गु.-पीपलो.	ला.-Ficus Religioza फाइकस रिलिजियोझा.
क.-अरलीमारा.	
तै.-राईचेट्टु, कुलुजुव्विचेट्टु.	
ता.-अराकमरं.	

पिप्पलगुणाः।

पिप्पलो दुर्जरः शीतः पित्तश्लेष्मव्रणास्रजित्। गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्ण्यो योनिविशोधनः॥ ३॥

भाषा-पीपल दुर्जर, शीतल, भारी, कसैला, रूखा, वर्णको उत्तम करनेवाला योनिको शुद्ध करनेवाला है और पित्त, कफ, वर्ण तथा रक्तविकारको नष्ट करता है॥ ३॥

पीपलवृक्षका विशेष विवरण.

पीपलका वृक्ष बहुत बडा होता है. ये वृक्ष ग्राम और नगरोंहीमें देखे जाते हैं. वनोंमें बहुत कम होते हैं, इसके पत्ते गोल और अनीदार डालियोंपर लगते हैं, वे पत्ते सदैव हिलते रहते हैं, इसपरभी छोटे अंकुर होते हैं, फलभी पत्तोंकी मूलमें छोटे झडबेरकी तुल्य लगते हैं, उनको पिपलौति कहते हैं, इसकी शाखाओंपर लाखभी आती है परन्तु सदैव नहीं. कोई समयं पाकर यह वृक्ष बहु श्रेष्ठ और पवित्र है और ऋषि मुनियोंने इसको पूजनके योग्य समझ रक्खा है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

पिप्पलभेदनामानि।

पारीषोऽन्यः पलाशश्च कपिरूतः कमण्डलुः। गर्दभाण्डः कन्दरालः कपीतनसुपार्श्वकौ॥ ४॥

भाषा-पारीष, पलाश, कपिरूत, कमण्डलु, गर्दभाण्ड, कन्दराल, कपीतन और सुपार्श्वक,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये पारिसपीपलके संस्कृत नाम हैं. (तूल, तूद, ब्रह्मकाष्ठ, ब्राह्मणेष्ट, यूपक, ब्रह्मदारु, सुपुष्प, सुरूप, नीलवृंतक, क्रमुक, विप्रकाष्ठ, मृदुसार, नूद, ब्रह्मण्य, ब्रह्मचारी, कपिचूत, कपिरूत, कपिवास, क्षीरपादप, पारीश, वली, फलिका, ये पारस पीपलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४ ॥

अनेक भाषाके पारसपीपलके नाम.

सं.–पारीष.	तै.–गंगारावि.
हिं.–पारसपीपल, गजदंड, गजहुंड.	ता.–पूरवस.
बं.–गजशुण्डी.	फा.–येलाबेल्य.
म.–पारसापिंपळ.	अं.–Hibixus हिबिक्सस्.
कों.–भेंडीचें झाड.	ला.–Thaspesia Polpunea थेस्पिसिया पोपल्पुनिया.
गु.–पारशपीपलो.	
क.–बंगरली.	

पारीषगुणाः।

पारीषो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफप्रदः।
फलेऽम्लो मधुरो मूले कषायस्वादुमज्जकः॥५॥

भाषा–पारशपीपल दुर्जर, चिकना, फलमें खट्टा, जडमें मीठा, कसैला और स्वादिष्ठ मींगवाला है और कृमि, वीर्य तथा कफको बढानेवाला है ॥ ५ ॥

पारसपीपलका विशेष विवरण.

पारसपीपलका वृक्ष पीपलके समान होता है, परन्तु पीपलमें फूल नहीं होते और पारस पीपलमें भिंडीके समान पीले फूलभी आते हैं, इसके फलके डोरे भिंडीके आकारके होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

नन्दीवृक्षनामानि।

नन्दीवृक्षोऽश्वत्थभेदः प्ररोही गजपादपः।
स्थालीवृक्षः क्षयतरुः क्षीरी च स्याद्वनस्पतिः॥ ६ ॥

भाषा–नन्दीवृक्ष, अश्वत्थभेद, प्ररोही, गजपादप, स्थालीवृक्ष, क्षयतरु, क्षीरी और वनस्पति ये नन्दीवृक्षके संस्कृत नाम हैं ॥ ६ ॥

अनेक भाषाके वेलिया पीपलके नाम.

सं.–नन्दीवृक्ष.	गु.–वेलियो पीपलो.
हिं.–वेलिया पीपल.	तै.–वट्टिचेट्टु.

नन्दीवृक्षगुणाः।

नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुस्तिक्तस्तुवर उष्णकः।
कटुपाकरसो ग्राही विषपित्तकफास्रजित्॥७॥

भाषा–वेलिया पीपल हलका, मधुर, कडवा, कसैला, गरम, पाकमें तथा रसमें चरपरा, ग्राही है और विष, पित्त, कफ, रुधिरविकारको दूर करता है ॥ ७ ॥

वेलियापीपलका विशेष विवरण.

वेलिया पीपलभी पीपलका भेद है इसके पत्ते बडे बडे होते हैं, इसकी शाखाओंमेंभी अंकुर होते हैं, इसकी जड बहुत मोटी होती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

उदुम्बरनामानि।

उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः।

भाषा–उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञाङ्ग, हेमदुग्धक ये गूलरके संस्कृतनाम हैं. (क्षीरवृक्ष, हेमदुग्ध, सदाफल, अपुष्पफलसंवंध, शीतवल्कल, कृमिकण्ट, क्रिमिकण्टक, कृमिकण्टक, पाणिमुख, पुष्पहीन, यज्ञफल, यज्ञोदुम्बर, उदुम्बर, ब्रह्मवृक्ष, हेमदुग्धी, सुचक्षु, श्वेतवल्क, कालस्कन्ध, यज्ञयोग्य, यज्ञीय, सुप्रतिष्ठित, शीतवल्क, यज्ञसार, पुष्पशून्य, पवित्रक, सौम्य, शीतफल और जघनेफल ये गूलरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके गूलरके नाम.

सं.–उदुंबर.	तै.–अत्तिचेट्टू.
हिं.–गूलर, गूलड.	फा.–अंजीरे आदम.
बं.–यज्ञउडुमुर.	अ.–जमीज.
म.–उंबर.	अं.–Figtree फिगट्री.
गु.–उंबरो.	ला.–Ficus glomirata फाइकस् ग्लोमिरेट.
क.–अत्ति.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदुम्बरगुणाः ।

उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफास्रजित् ।
मधुरस्तुवरो वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः ॥ ८ ॥

भाषा—गूलर शीतल, रूखा, भारी, मधुर, कसैला, वर्णको उत्तम करनेवाला, व्रणको शुद्ध करनेवाला, रोपण है और पित्त, कफ तथा रक्तविकारको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

जघनेफलानामानि ।

काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलयुर्जघनेफला ।

भाषा—काकोदुम्बरिका, फल्गु, मलयू, जघनेफला ये कठूमरके संस्कृत नाम हैं. (उदुम्बरफला, कर्कशच्छदना, असुमा, क्षीरी, खरपत्रिका, कृष्णउदुम्बरिका, खरपत्री, राजिका, क्षुद्रोदुम्बरिका, कुष्ठघ्नी, फल्गुवाटिका, अजाजी, फल्गुनी, चित्रभेषजा, ध्वांक्षनाम्नी, फल्गुफला, बहुफला, खरदला, काकोदुम्बर, काकोदुम्बरिका, अजाक्षी और भद्रोदुम्बरिका ये कठूमरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कठूमरके नाम.

सं.—काकोदुंबरिका.	फा.—अंजीरेदस्ती.
हिं.—कठूमर, कठगूलरि.	अ.—तनवारिं.
बं.—काकडुमुर.	अं.—Figtree फिगट्री.
म.—काळाउम्बर.	ला.—Ficus oppositifolia फाइकस ओपोझिटिफोलिया.
गु.—कालो उंबरो.	
क.—काडअत्ति.	
तै.—ब्रह्ममेडिचेट्टू.	

जघनेफलागुणाः ।

मलघूः स्तम्भकृत्तिक्ता शीतला तुवरा जयेत् ।
कफपित्तव्रणश्वित्रकुष्ठपाण्डूर्शकामलाः ॥ ९ ॥

भाषा—कठूमर मलबंध करनेवाला, कडवा, शीतल, कसैला है और कफ, पित्त, व्रण, श्वेत कोढ, पाण्डुरोग, अर्श तथा कामलाको दूर करता है ॥ ९ ॥

गूलरका विशेष विवरण.

गूलर अर्थात् उदुम्बर कठूमरका बडा वृक्ष होता है इसपर फूल नहीं आते, इसकी शाखाओंमेंसे फल उत्पन्न होते हैं, फल गोल गोल अंजीरके समान होते हैं और इसमेंसे दूध निकलता है. इसके पत्ते लभेडेकेसे होते हैं.नदी उदुम्बरके पत्ते गूरलके पत्तोंसे छोटे और फल-भी छोटे होते हैं, कठूमरके पत्ते गूलरके पत्तोंसे बडे होते हैं, बरन् गंगेरनकी पत्तोंके समान होते हैं, इसके पत्तोंको छूनेसे हाथोंमें खुजली होने लगती है और पत्तोंमें दूध निकलता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

प्लक्षनामानि ।

प्लक्षो जटी पर्करी च पर्कटी च स्त्रियामपि ।

भाषा—प्लक्ष, जटी, पर्करी, पर्कटी ये पाखरके संस्कृत नाम हैं. (चारुदर्शिनी, शृङ्गी, वरोहशाखी, अश्वत्थी, पिंपरी, कमण्डलुतरु, कपीतन, क्षीरी, सुपार्श्व, कमण्डलु, गर्दभाण्ड, पीतन, दृढप्ररोह, प्लक्षक, प्लवङ्ग, महाबल, कन्दरालु, पर्कोटी, प्लक्षा और प्लीक्षा ये पाखरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पाखरके नाम.

सं.—प्लक्ष.	गु.—पीपर्य.
हिं.—पाखर, पिलखन पाकर, पकरिया.	क.—हसुरी.
बं.—पाकुडगाछ.	ला.—Ficus Virance फाइकस विरेन्स.
म.—पिंपरीवृक्ष.	

प्लक्षगुणाः ।

प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः ।
दाहपित्तकफास्रघ्नः शोथहा रक्तपित्तहृत् ॥ १० ॥

भाषा—पाखर कसैला, शीतल है और व्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, रक्तविकार, सूजन तथा रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ १० ॥

पाखरका विशेष विवरण.

पाखरके वृक्ष वडपीपलकी भाँतिके जंगल और ग्रामोंमें बहुत होते हैं, इसके पत्ते लम्बे लम्बे आमकेसे होते हैं, जब नया वृक्ष लगाना होता है तो इसके गुद्दोंको काटकर बोदेते हैं, उसीमेंसे हरे हरे पत्ते निकलने लगते हैं. पांच छः वर्षमें वैसाही वृक्ष छायादार हो जाता है, इसके सघनकी प्रशंसा है कि, ऐसी उत्तम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छाया और किसी वृक्षकी नहीं होती ! इसकी मात्रा १ मासेकी है.

शिरीषनामानि।

शिरीषो भण्डिलो भण्डी मण्डीरश्च कपीतनः।
शुकपुष्पः शुकतरुर्मृदुपुष्पः शुकप्रियः॥११॥

भाषा–शिरीष, भण्डिल, भण्डी, भण्डीर, कपीतन, शुकपुष्प, शुकतरु, मृदुपुष्प, शुकप्रिय ये शिरसके संस्कृत नाम हैं. (कर्णपूर, शुकद्रुम, मण्डीर, भण्डीर, मूर्द्धपुष्प, विषघाती, विषनाशन, शीतपुष्प, भण्डिक, स्वर्णपुष्पक, शुकेष्ट, बर्हपुष्प, विषहन्ता, सुपुष्पक, उद्दानक, शुकतरु, लोमशपुष्पक, कपीतक, कलिंग, श्यामल, शंखिनीफल, मधुपुष्प, वृत्तपुष्प, शिखिनीफल, प्लवग और श्यामवर्ण ये शिरसके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ११ ॥

अनेक भाषाके सिरसके नाम.

सं.–शिरीष.	फा.–दरख्तेजकरिया.
हिं.–सिरस, सेरसा.	अ.–सुलतानुल् असजार.
बं.–शिरीषगाछ.	ला.-Albizzialebbek आल्बीझियालेबेक, Albiamara आल्बीएमरा.
म.–शिरसी.	
गु.–सरसडियो.	
क.–सिरसु.	
तै.–दिरसन, शिरीषंम्रानु.	

शिरीषगुणाः।

शिरीषो मधुरोऽनुष्णस्तिक्तश्च तुवरो लघुः।
दोषशोथविसर्पघ्नः कासव्रणविषापहः॥१२॥

भाषा–सिरस मधुर, गरम नहीं, कडवा, कसैला, हलका है और दोष, सूजन, वीसर्प, खाँसी, व्रण तथा विषको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

सिरसका विशेष विवरण.

सिरसके वृक्ष बडे बडे ऊँचे और सघन जंगलोंमें होते हैं, पत्ते आमलेके समान छोटे छोटे और डालियोंमें बराबर होते हैं, इसके फूल छोटे छोटे तन्तुओंसे सुसज्जित अत्यन्त कोमल हरे हरे कुछ पीले पीले सुगन्धियुक्त बहुत सुन्दर होते हैं. इसकी फली पतली चपटी तीन चार आठ अंगुलतक लम्बी पौन अंगुलसे ज्यादा चौडी होति है उसके भीतर भूरे रंगके बीज होते हैं, एक फलीमें दश बीजका प्रमाण है.

क्षीरवृक्षपञ्चवल्कलयोर्लक्षणम्।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारीषप्लक्षपादपाः।
पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक्पञ्च वल्कलम्॥१३॥ केचित्तु पारीषस्थाने शिरीषं वेतसं वदन्तीति शेषः।

भाषा–बड, गूलर, पीपल, पारसपीपल और पाखर ये पांच क्षीरी वृक्ष (दूधवाले वृक्ष) कहाते हैं और इन पांच वृक्षोंकी छालको पंच वल्कल कहते हैं. कोई कहते हैं कि, पारस पीपलके स्थानमें सिरस अथवा जामुनको क्षीरी वृक्षोंमें गिना है ॥ १३ ॥

क्षीरवृक्षगुणाः।

क्षीरवृक्षा हिमा वर्ण्या योनिरोगव्रणापहाः।
रूक्षाः कषाया मेदोघ्ना विसर्पामयनाशनाः॥१४॥ शोथपित्तकफास्रघ्नाः स्तन्या भग्नास्थियोजकाः। त्वक्पञ्चकं हिमं ग्राहि व्रणशोथविसर्पजित्॥१५॥ तेषां पत्रं हिमं ग्राहि कफवातास्रनुल्लघु। विष्टम्भाध्मानजित्तिक्तं कषायं लघु लेखनम्॥१६॥

भाषा–क्षीरीवृक्ष शीतल, वर्णको उत्तम करनेवाले हैं और मेद, विसर्प, योनिरोग, व्रण, सूजन, पित्त, कफ तथा रक्तविकारको नष्ट करते हैं. इन पाचोंकी छाल, शीतल, ग्राही है और व्रण, सूजन तथा विसर्पको नष्ट करती है. इन पाँचोंके पत्ते शीतल, ग्राही, हलके, कडवे, कसैले, किंचित् लेखन हैं और कफ, वात, रक्तविकार, मलबंध तथा आध्मानको नष्ट करते हैं ॥ १४–१६ ॥

शालनामानि।

शालस्तु सर्जकाश्र्याश्वकर्णिकः सस्यसम्बरः।

भाषा–शाल, सर्ज, काश्र्य, अश्वकर्णक, सस्यसंवर ये शालके संस्कृत नाम हैं. (अश्वकर्णिका, उपमेत, दीर्घशाख, जलदाशन, लतातरु, लताशंख, शंखतरु, शंख-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृक्ष, सर्जरस, कल, कललजोद्भव, वल्लीवृक्ष, चीरपर्ण, रालकार्य, अजकर्णक, बस्तकर्ण, कषायी, ललन्, गन्धवृक्षक, वंश, रालनिर्यास, दिव्यसार, सुरेष्टक, शूर, अग्निवल्लभ, यक्षधूप, सिद्धक, जरणद्रुम, तार्क्ष्यप्रसव, धन्य, दीर्घपर्ण, कुशिक और कौशिक ये शालके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके शालके नाम.

सं.-शाल.	तै.-एपचेट्टु.
हिं.-शाल.	ता.-कुंगलियम्.
.-शालगाच्छ, लता-शाल.	अं.-Saltree सालटी.
म.-लघुराळेचा वृक्ष.	ला.-Shoria Robusta शोरिया रोबुस्टा.
क.-सज्जरदामर.	

शालगुणाः ।

अश्वकर्णः कषायः स्याद्व्रणस्वेदकफकृमीन् ।
ब्रध्नविद्रधिबाधिर्ययोनिकर्णगदान्हरेत् ॥ १७ ॥

भाषा-शाल कसैला है तथा व्रण, पसीना, कफ, कृमि, ब्रध्न, विद्रधि, बहिरापन, योनिरोग तथा कर्णरोगको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

शालभेदनामानि ।

सर्जकोन्योऽजकर्णः स्याच्छालो मरिचपत्रकः ।

भाषा-सर्जक, अजकर्ण, शाल और मरिचपत्रक ये सर्जके संस्कृत नाम हैं ॥

शालभेदगुणाः ।

अजकर्णः कटुस्तिक्तः कषायोष्णो व्यपोहति ।
कफपाण्डुश्रुतिगदान्मेहकुष्ठविषव्रणान् ॥ १८ ॥

भाषा-सर्ज (शालका भेद) चरपरा, कडवा कसैला, गरम है और कफ, पांडुरोग, कर्णरोग, प्रमेह, कोढ, विष तथा व्रणको नष्ट करता है १८

शालका विशेष विवरण.

शालके बडे बडे वृक्ष होते हैं. इसके पत्तेभी बहुत बडे २ होते हैं और फूल सुकुमखोंमें लगते हैं. अश्वकर्ण अजकर्ण आदिक दूसरेभी अनेक शालके भेद हैं. इसके गोंदको राल कहते हैं. इनमें शालकी मात्रा २ मासेकी है और सर्जककी मात्रा १ मासेकी है.

शल्लकीनामानि.

शल्लकी गजभक्ष्या च सुवहा सुरभी रसा ।
महेरुणा कुन्दुरुकी वल्लकी च बहुस्रवा ॥ १९ ॥

भाषा-शल्लकी, गजभक्ष्या, सुवहा, सुरभि, रसा, महेरुणा, कुन्दुरुकी, वल्लकी, बहुस्रवा ये सालईके संस्कृत नाम हैं. (गजभक्षा, गजाप्रिया, ह्लादिनी, रुहा, वसा, मोचा, सुरभी, सुरभिरसा, शिल्लकी, सिल्लकी, सल्लकी, सिल्लकी, सिल्लभूमिका, गजाशना, महेरणा, महारणा, ह्लादिका, अश्वमूत्री, कुम्भी, अस्त्रफला, करका, सुखमोदा, सुगन्धा, सुरभिस्रवा, गजवल्लभा, ह्रस्वदा, गन्धवीरा, सुस्रवा, वनकर्णिका, नागवधू, सुश्रीका, गन्धमूला, रसाला और जलतिक्तिका ये सालईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ १९॥

अनेक भाषाके सालईके नाम.

सं.-शल्लकी.	क.-तदीकु.
हिं.-सालई, सलई.	ता.-कुलि.
बं.-शलई, शालविशेष.	ला.-Boswelia Therifera बोझवेलिया थेरिफेरिया.
म.-शालईवृक्ष.	
गु.-शालेडुं.	

शल्लकीगुणाः ।

शल्लकी तुवरा शीता पित्तश्लेष्मातिसारजित् ।
रक्तपित्तव्रणहरी पुष्टिकृत्समुदीरिता ॥ २० ॥

भाषा-सालई कसैली, शीतल, पुष्टिकारक है और पित्त, कफ, अतिसार, रक्तपित्त तथा व्रणको नष्ट करती है ॥ २० ॥

सल्लकीका विशेष विवरण.

सल्लकी अर्थात् सालईका बहुत बडा वृक्ष होता है, इसके पत्ते नीमके समान होते हैं, और फलमें तीन रेखा होती हैं. इसी वृक्षका गोंद कुन्दरु होता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

शिंशिपानामानि ।

शिंशपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा च सा गुरुः ।
कपिला सैव मुनिभिर्भस्मगर्भेति कीर्तिता ॥ २१ ॥

भाषा-शिंशिपा, पिच्छिला, श्यामा, कृष्णसारा ये सीसमके संस्कृत नाम हैं (पिपला,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युगपत्रका, धूम्रिका, वीरा, कपिला, अगरुशिंशिपा, अगुरुयुग्मपत्रिका, कालानुसार्य, धीरा, मंडलपत्री और तीक्ष्णधूनका ये सीसमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) जो सीसम कपिल (भूरे) रंगका होता है उसको कहते हैं ॥ २१ ॥

अनेक भाषाके सीसमके नाम.

सं.–शिंशिपा.	तै.–जिट्टरेगुचेट्टु.
हिं.–सीसम, कपिलवर्ण सीसम.	ता.–जानुक् कुकट्टइ.
बं.–शिशुगाछ, शादा शिशुगाछ.	अ.–सासम.
म.–काळाशिसवा.	अं.–Black wood ब्लाकवुड.
गु.–शिशम.	ला.–Dalbergia Latifolia डालबर्जिया लेटिफोलिया.
क.–करीयइविडु.	

शिंशिपागुणाः ।

शिंशिपा कटुका तिक्ता कषाया शोषहारिणी । उष्णवीर्या हरेन्मेदःकुष्ठश्वित्रवमिकृमीन् ॥ वस्तिरुग्व्रणदाहास्रबलार्शांसि गर्भपातिनी ॥ २२ ॥

भाषा–सीसम चरपरा, कडवा, कसैला, उष्णवीर्य, गर्भ गिरानेवाला है और मेद, कोढ, चित्रितकुष्ठ, वमन, कृमि वस्तिरोग, वर्ण, दाह, रक्तविकार तथा कफको नष्ट करता है ॥२२॥

शीशमका विशेष विवरण.

शीशमके वृक्ष बहुत बडे बडे जंगलमें होते ह, इसके पत्ते गोल गोल नोकदार बेरीके बराबर होते हैं और फूल बहुत छोटे छोटे गुच्छोंमें लगते हैं, फली बहुत पतली और चपटी छोटी होती है, उसमें छोटे छोटे चपटे बीज निकलते हैं, शीशमकी लकडी कुछ कुछ श्यामता और ललाई लिये भूरे रंगकी होती है. दूसरा काले रंगका शीशमभी इसी प्रकारका होता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

अर्जुनाख्यनामानि ।

ककुभोऽर्जुननामाख्यो नदीसर्जश्च कीर्तितः । इन्द्रद्रुर्वीरवृक्षश्च वीरश्च धवलः स्मृतः ॥ २३ ॥

भाषा–ककुभ, नदीसर्ज, इन्द्रद्रु, वीरवृक्ष, वीर और अर्जुनाख्य (जितने अर्जुनके नाम हैं वे सब) ये कोहके संस्कृत नाम हैं. (फाल्गुन, पार्थ, चित्रगोधी, धनंजय, वैरांतक, किरीटी, पांडव, वीरतरु, इन्द्रद्रुम, शम्बर, गाण्डीवी, कर्णारि, करवीरक, कौन्तेय, इन्द्रसूनु, गंडीरी, शिवमल्लक, सव्यसाची, वीरद्रु, कृष्णसारथि और पृथाज ये कोहके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २३ ॥

अनेक भाषाके कोहके नाम.

सं.–ककुभ.	गु.–आसोंदरों.
हिं.–कोह, काह, अर्जुनवृक्ष.	क.–अश्मर.
बं.–अर्जुनगांछ.	तै.–मट्टिचट्टु.
म.–सारडोल, अर्जुनवृक्ष.	ला.–Bauhenia tomentosa बोहिनिया टोमेन्टोझा.

ककुभगुणाः ।

ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षयविषास्रजित् । मेदोमेहव्रणान्हन्ति तुवरः कफः कफपित्तहृत् ॥ २४ ॥

भाषा–कोह शीतल, हृदयको, हितकारी, कसैला है और क्षत, क्षय, विष, रुधिरविकार, मेद, प्रमेह, व्रण, कफ तथा पित्तको नष्ट करता है ॥ २४ ॥

कोहका विशेष विवरण.

अर्जुनके वृक्ष बडे २ लम्बे २ और ऊंचे २ वनोंमें होते हैं, इसके पत्ते लम्बे और गोल अनीदार होते हैं, इसकी छाल सफेद रंगकी होती है और उसमें दूध निकलता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

बीजकनामानि ।

बीजकः पीतसारश्च पीतशालक इत्यपि । बन्धूकपुष्पः प्रियकः सर्जकश्चासनः स्मृतः ॥ २५ ॥

भाषा–बीजक, पीतसार, पीतशालक, बन्धूकपुष्प, प्रियक, सर्जक, असन ये विजयसारके संस्कृत नाम हैं. (पीतशाल, पीतसालक, पीत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साल, परमायुध, महासर्ज, सौरि, बीजवृक्ष, नीलक, प्रियसालक और असन ये विजयसारके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)२५॥

अनेक भाषाके विजयसारके नाम.

सं.-बीजक.	अं.-Indian Kinotree इन्डियन किनोट्री.
हिं.-विजयसार.	ला.-Pterocarpus Marsupium टेरोकार्पस मर्सुपियम्.
बं.-पियाशाल.	
म.-बिवला.	
गु.-वीयो.	
क.-कपिन्नहाने.	
तै.-महिचेट्टु.	
फा.-कमरकस.	

बीजकगुणाः।

बीजकः कुष्ठवीसर्पश्वित्रमेहगुदक्रिमीन् ।
हन्ति श्लेष्मास्रपित्तं च त्वच्यः केश्यो रसायनः ॥ २६ ॥

भाषा-विजयसार त्वचाको हितकारी, केशोंको उत्तम करनेवाला, रसायन है और कोढ, विसर्प, चित्रित कोढ, प्रमेह, गुदाके रोग, कृमि, कफ, रक्तविकार तथा पित्तको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

विजयसारका विशेष विवरण.

असन अर्थात् विजसारके वृक्ष वनोंमें बहुत बडे बडे होते हैं. इसके पत्ते पीपलके पत्तोंसे कुछ कुछ छोटे होते हैं, और फूल पीले आमलेके समान होते हैं. इसकी लकडी कालापन लिये होती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

खदिरनामानि ।

खदिरो रक्तसारश्च गायत्री दन्तधावनः ।
कण्टकी बालपत्रश्च बहुशल्यश्च यज्ञियः॥२७॥

भाषा-खदिर, रक्तसार, गायत्री, दन्तधावन, कण्टकी, बालपत्र, बहुशल्य, यज्ञिय ये खैरके संस्कृत नाम हैं. (बालतनय, पथिद्रुम, तिक्तसार, कण्टकीद्रुम, प्रसख, यूपद्रु, बालपुत्र, कर्कटी, जिह्मशल्य, कुष्ठहृत्, बालपत्रक, यूपद्रुम, खदपत्री, क्षितिक्षय, सुशल्य, वक्रकण्टक, यज्ञांग, जिह्मशल्य, सारद्रुम, कुष्ठारि, बहुसार और मेध्य ये खैरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २७ ॥

अनेक भाषाके खैरके नाम.

सं.-खदिर.	क.-कैंपिन खैर.
हिं.-खैर.	तै.-चण्डचेट्टु.
बं.-खयेरगाछ.	ला.-Acacia Catechu एकेश्याकेटेच्यू.
म.-खैर.	
गु.-खेर.	

खदिरगुणाः ।

खदिरः शीतलो दन्त्यः कण्डूकासारुचिप्रणुत्।
तिक्तः कषायो मेदोघ्नः कृमिमेहज्वरव्रणान् ॥
श्वित्रशोथामपित्तास्रपाण्डुकुष्ठकफान्हरेत् २८॥

भाषा-खैर शीतल, दांतोंको हितकारी, कडवी, कसैली है और खुजली, खांसी, अरुचि, मद, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, चित्रित कोढ, सूजन, आमपित्त, रुधिराविकार, पाण्डुरोग, कोढ तथा कफको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

खैरका विशेष विवरण.

खैरके वृक्ष वनमें बडे बडे होते हैं, इसकी छाल खरदरी और चव्की हुई होती है, इसके पत्ते आमलेकेसे छोटे छोटे होते हैं, इसपै महीन महीन और टेढे टेढे कांटे होते हैं, खैरसार और कत्था येभी खैरकी लकडीका बनाया जाता है, दूसरे सफेद खैर और दुर्गन्धित खैरके वृक्ष वनमें बहुत होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

श्वेतखदिरनामानि ।

खदिरः श्वेतसारोऽन्यः कदरः सोमवल्कलः ।

भाषा-खदिर, श्वेतसार, कदर, सोमवल्कल ये खैरके संस्कृत नाम हैं. (सोमवल्क, ब्रह्मशल्य, खदिरोपम, कार्मुक, कुजकण्टक, सोमसार, सोमवृक्ष, पथिद्रुम, श्यामसार, नेमिवृक्ष, कण्टाढ्य, महावृक्ष और द्विजप्रिय ये सफेद खैरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सफेद खैरके नाम.

सं.-श्वेत खदिर.	गु.-खेर धोलासारवालो.
हिं.-सफेद खैर.	क.-बिळीयार्ति.
बं.-पापरी खयेरगाछ.	तै.-रवासुतेल्लचण्ड.
म.-पांढरा खैर.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वेतखदिरगुणाः ।

कदरो विशदो वर्ण्यो मुखरोगकफास्रजित् ।

भाषा–सफेद खैर स्वच्छ, वर्णको उत्तम करनेवाला है और मुखरोग, कफ तथा रक्तविकारको नष्ट करता है ॥

सफेद खैरका विशेष विवरण.

सफेद खैरके वृक्ष वनमें बहुत होते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

इरिमेदनामानि ।

इरिमेदो विट्खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदकः ।

भाषा–इरिमेद, विट्खदिर, कालस्कन्ध, अरिमेदक ये दुर्गंध खैरके संस्कृत नाम हैं. (विट, अस्थिमेद, क्रिमिशात्रव, गिरिमेद, मस्तद्रुम, गोधास्कन्ध, अहिमार, पूतिमेद और अहिमेदक ये दुर्गंध खैरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके दुर्गन्ध खैरके नाम.

सं.–इरिमेद	गु.–गन्धिलोखैर.
हिं.–दुर्गंधखैर.	अं.–Sponge tree स्पंज ट्री.
बं.–गुये बावला, विटखैर.	ला.–Acacia Farnesiana एकेशिया फारनेशियाना.
म.–शेण्या खैर, गंधियाहिंवर.	

इरिमेदगुणाः ।

इरिमेदः कषायोष्णो मुखदन्तगदास्रजित् ।
हन्ति कण्डूविषश्लेष्मकृमिकुष्ठविषव्रणान् २९॥

भाषा–दुर्गन्धखैर कसैली, गरम है और मुखरोग, दन्तरोग, रुधिराविकार, खुजली, विष, कफ, कृमि, कोढ तथा विषजन्य व्रणको नष्ट करती है ॥ २९ ॥

दुर्गंध खैरका विशेष विवरण.

दुर्गंध खैरके वृक्ष वनमें बहुत होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

रोहीतकनामानि ।

रोहीतको रोहितको रोही दाडिमपुष्पकः ।

भाषा–रोहीतक, रोहितक, रोहि, दाडिमपुष्पक ये रोहेडेके संस्कृत नाम हैं. (रोहित, कुशल्मला, सदाप्रसून, कूटशाल्मलि, विरोचन, शाल्मलिक, रक्तपुष्प, सदापुष्प, रक्तघ्न, प्लीहनाश, प्लीहघाती, रुच्य, रक्तप्रसाद, रोही, प्लीहशत्रु, प्लीहघ्न, मांसदलन, यकृद्वैरी, चलच्छद, प्लीहारि, रोहितेय और रोहिण ये रोहेडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके रोहेडेके नाम.

सं.–रोहितक.	क.–यरडुमलु.
हिं.–रोहेडा.	तै.–मुलुमोदुगचेट्टु.
बं.–रोढा, रयना.	ला.–Tecama Undulata टिकामा अण्डचुलेटा.
म.–रक्तरोहिडा.	
गु.–रगतरोहिडो.	

रोहितकगुणाः ।

रोहीतकः प्लीहघाती रुच्यो रक्तप्रसाधनः ।

भाषा–रोहेडा रुचिकारक, रुधिरको शुद्ध करनेवाला और प्लीहाको नष्ट करनेवाला है ॥

रोहिडेका विशेष विवरण.

रोहिडेके वृक्ष सघन वनमें अधिक होते हैं, फूल अनारके समान लाल रंगके होते हैं, लाल और सफेद रंगके फूलोंके भेदसे रोहिडेकी दो जाति हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

बब्बूलनामानि ।

बब्बूलः किङ्किरातः स्यात्किङ्किराटः सपीतकः ।
स एव कथितस्तज्ज्ञैराभाषट्प्रदमोदिनी ३०॥

भाषा–बब्बूल, किंकिरात, किंकिराट, सपीतक, आभाषट्प्रद, मोदिनी ये बबूरके संस्कृत नाम हैं. (मालाफल, युग्मकण्ट, दृढारुह, कण्टकी, सूक्ष्मपत्र, पीतपुष्प, कषायक, युगलाक्ष, कण्टालु, तीक्ष्णकण्टक, गोशृङ्ग, पंक्तिबीज, दीर्घकण्टक, कफान्तक, दृढबीज, अज-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्ष, कण्टल, बब्बोल और बावल ये बबूरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥३०॥

अनेक भाषाके बबूरके नाम.

सं.-बबूल.
हिं.-बबूर, बबूल, कीकर.
बं.-बावलागाछ.
म.-बाभळ.
गु.-बाबल.
क.-जालि.
तै.-बार्बुरमु, वलवंतुडु.
ता.-करुवेल.
मला.-करुवेल.
उत्.-गुइडा.
फा.-मुगिलां, गोन्.
अ.-अमुगिलां, सिमग.
अं.-Acacia Tree अकेशिया ट्री, Gum Arabic गम् अरेबिक्.
ला.-Acacia Arabica अकेशिया अरेबिका.

बब्बूलगुणाः ।

बब्बूलः कफनुद्ग्राही कुष्ठक्रिमिविषापहः ।

भाषा-कीकर ग्राही है और कफ, कोढ, कृमि तथा विषको नष्ट करता है ॥

बबूरका विशेष विवरण.

बबूरके बहुतसे वृक्ष जलाशयके समीप जंगलादिमें एकत्र उपज खडे होते हैं, इसमें सुईके समान महा तीक्ष्ण कांटे होते हैं; और वे कांटे दो दो एकत्र लगे होते हैं. पत्ते बहुत छोटे छोटे आमलेकेसे होते हैं; फूल पीले रंगके गोल गोल लगते हैं; उसमें मिरचके सदृश टेडी टेडी फली होती हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

अरिष्टनामानि ।

अरिष्टकस्तु माङ्गल्यः कृष्णवर्णोऽर्थसाधनः ।
रक्तबीजः पीतफेनः फेनिलो गर्भपातनः ३१

भाषा-अरिष्टक, मांगल्य, कृष्णवर्ण, अर्थसाधन, रक्तबीज, पीतफेन, फेनिल, गर्भपातन ये रीठेके संस्कृत नाम हैं. (गुच्छफल, अरिष्ट, मंगल्य, छुम्भबजिक, प्रकीर्य और सोमवल्कल ये रीठेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ३१ ॥

अनेक भाषाके रीठेके नाम.

सं.-अरिष्टक.
हिं.-रीठा.
बं.-रिटेगाछ.
म.-रिठा.
कों.-रिंगी.
गु.-अरिठा.
क.-अटाळ, अरिठाल.
तै.-कंकडु, कुकडु.
ता.-पूवंडि.
तु.-नुरेकाइदमारा.
मला.-चावाकायिमारं.
गो.-दिव्यारुकु.
फा.-फिंदकहिंदी.
अ.-बुंदक.
अं.-Soap-berri सोपबेरि, Soapnut Tree सोपनट् ट्री.
ला.-Sapindus Emarginatus सेपिंडस् इमार्जिनटस्, Sapindus Trifoliatus सेपिंडस् ट्रिफोलिएटस्.

अरिष्टगुणाः ।

अरिष्टस्तु त्रिदोषघ्नो ग्रहभिद्गर्भपातनः ।

भाषा-रीठा त्रिदोषनाशक, ग्रहोंको दूर करनेवाला और गर्भ गिरानेवाला है ॥

रीठेका विशेष विवरण.

रीठेके वृक्ष वन और बागोंमें बहुत होते हैं; इसके पत्ते एक डंडीमें छः सात नीमकी तुल्य लगे होते हैं, परन्तु उनमें आरेकेसे खार नहीं होते, इसके फलोंके गुच्छे होते हैं; उनको रीठा कहते हैं; उनके भीतर काली गुठली निकलती हैं; उसके भीतर पीली मींग होती है. इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है.

गर्भकरनामानि ।

पुत्रजीवो गर्भकरो यष्टिपुष्पोऽर्थसाधकः ।

भाषा-पुत्रजीव, गर्भकर, यष्टिपुष्प, अर्थसाधक ये पितौजियेके संस्कृत नाम हैं. (पवित्र, गर्भद, सुतजीवक, अपत्यजीव, सिद्धिद, अपत्यजीवक, जीवपुत्रक, श्लीपदापह, कुमारजीव, यष्टीपुष्प और अर्द्धसाधक ये पितौजियेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके जियापोताके नाम.

सं.–पुत्रजीव.
हिं.–जियापोता, पुतजीया, पितौंजिया, पतिंजिया, जियापति.
बं.–जियापुँता, पुतजिया.
म.–पुत्रजीवक.
गु.–पुत्रजीवक.
क.–पुत्रजीव.
तै.–पुत्रजीवि, शीश.
ला.–Putrajiva Roxburghii पुत्रजीवा रॉक्सबुर्घिआइ.

गर्भकरगुणाः।

पुत्रजीवो गुरुर्वृष्यो गर्भदः श्लेष्मवातहृत्।
सृष्टमूत्रमला रूक्षो हिमः स्वादुः पटुः कटुः ३२

भाषा–जियापोता भारी, वीर्यवर्द्धक, गर्भदायक मलमूत्रकी प्रवृत्ति करनेवाला, रूखा, शीतल, मधुर, खारी, चरपरा, नमकीन है और कफ तथा वातको नष्ट करता है ॥ ३२ ॥

पतिंजियाका विशेष विवरण.

पुत्रजीवक अर्थात् पितौंजियाके वृक्ष इंगुदीके वृक्षके समान होते हैं. इसके पत्तेभी उसी आकारके और फूलभी उसी प्रकारके होते हैं, इसके बीजोंकी माला रुद्राक्षके तुल्य बनती है, प्रायः साधुलोग बहुत बना लेते हैं.

इंगुदनामानि।

इंगुदोऽङ्गारवृक्षश्च तिक्तकस्तापसद्रुमः।

भाषा–इंगुद, अंगारवृक्ष, तिक्तक, तापसद्रुम ये हिंगोटके संस्कृत नाम हैं. (भल्लकीवृक्ष, इंगुदी, कंटक, पुत्रिपत्रा, तापसतरु, कंटक, इंगुल, हिंगुपत्र, विषकण्ट, अनिलान्तक, गौरत्वक्, तनुपत्र, शूलारि, विषकण्टक, तीक्ष्णकण्ट, तैलफल, पूतिगन्ध, विगन्धक, क्रोष्टुफल, तिक्तमज्ज, कृशरक, जलजंतुविनाशक, दीर्घघण्टा, दीर्घघण्ट, तैलबीजा, दारूपमफला और अंगुलिदलां ये हिंगोटके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके हिंगोटके नाम.

सं.–इंगुदी.
हिं.–हिंगोट, गोंदी.
बं.–जियापुता, इङ्गोट.
म.–हिंगणबेट.
गु.–इङ्गोरियो.
तै.–गरा.
अ.–हिलेलजे.
अं.–Delil डेलिल.
ला.–Balanites Roxburghii बेलेनाइटीस राक्सबुर्घिआइ.

इंगुदगुणाः।

इंगुदः कुष्ठभूतादिग्रहव्रणविषकृमीन्। हन्त्युष्णश्चित्रशूलघ्नस्तिक्तकः कटुपाकवान् ॥ ३३॥

भाषा–हिंगोट गरम, कडवा, पाकमें चरपरा है और कोढ, भूतादिग्रह, व्रण, विष, कृमि, चित्रितकोढ तथा शूलको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

इंगुदीका विशेष विवरण.

इंगुदीके बडे बडे वृक्ष जंगल और वनोंमें उत्पन्न होते हैं. इस वृक्षमें कांटेभी होते हैं, इसके फल नींबूके समान कुछेक लम्बे और गोल होते हैं, फलके ऊपर गुठलीके सदृश रस लगा रहता है, मानो फल रसमें तर रहता है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

जिङ्गिनीनामानि।

जिङ्गिनी झिङ्गिनी झिङ्गी मुनिर्यासा प्रमोदिनी।

भाषा–जिंगिनी, झिंगिनी, झिंगी, मुनिर्यास, प्रमोदिनी ये झिंगिनीके संस्कृत नाम हैं. (कुलकमंजरी यह जिंगिनीका संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाया जाता है.) ॥

अनेक भाषाके जिंगिनीके नाम.

सं.–जिंगिनी.
हिं.–जिंगिणी.
म.–मोई, मोक.
गु.–मवेडी, मोलेहु.
क.–ओरीथ, मरग.
ला.–Odiva wodier ओडिनावोडियर.

जिंगिनीगुणाः।

जिङ्गिनी मधुरा सोष्णा कषाया व्रणशोधिनी।
कटुका व्रणहृद्रोगवातातीसारहृत्पटुः ॥ ३४ ॥

भाषा–जिंगिनी मधुर, गरम, कसैली, खारी, व्रणको शुद्ध करनेवाली, चरपरी, नमकीन है और व्रण, वात, अतीसार तथा हृदयरोगको नष्ट करती है ॥ ३४ ॥

जिंगिनीका विशेष विवरण.

जिंगनीके बडे बडे ऊँचे वृक्ष जंगल और पहाडोंमें होते हैं, इसके पत्ते मरुवेके समान शाखाओंमें बराबर दोनों ओर लगे होते हैं और फूल सफेद और फल बेरके समान आते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तमालनामानि ।

तमालः ।

भाषा-तमाल यह एक तमालका संस्कृत नाम है. (तापित्थ, कालस्कन्ध, अमितद्रुम, लोकस्कन्ध, नीलध्वज, नीलताल, ताापिञ्ज, तापिच्छ, कृष्णस्कन्ध, तम, तमा, कालताल और महाबल ये तमालके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तमालके नाम.

सं.-तमाल.	म.-तमालवृक्ष.
हिं.-स्यामतमाल.	गु.-तमाल.
बं.-तामालगाछ.	तै.-तमालु.

तमालगुणाः ।

तमालः शालवद्वेद्यो दाहविस्फोटहृत्पुनः ।

भाषा-तमालके गुण शालके सदृश जाने, विशेषकरके यह दाह तथा विस्फोटको नष्ट करता है ॥

तमालका विशेष विवरण.

तमालके वृक्ष प्रायः यमुना और तापी नदीके निकट बहुत होते हैं, वृक्षकी मूल और शाखा श्याम रंगकी होती हैं, इसके पत्ते गोल शीशमके सदृश और फूल लाल २ होते हैं और फल छोटे २ करौंदेके समान होते हैं.

तूणीनामानि ।

तूणी तुन्नक आपीनस्तृणिकः कच्छकस्तथा ।
कुठेरकः कान्तलको नन्दिवृक्षश्च नन्दकः ३५॥

भाषा-तूणी, तुन्नक, आपीन, तृणिक, कच्छक, कुठेरक, कांतलक, नन्दिवृक्ष और नंदक ये तुनके संस्कृत नाम हैं ॥ ३५ ॥

अनेक भाषाके तुनके नाम.

सं.-तूणी.	म.-तूनी.
हिं.-तुन, महानीम.	उत.-महालिम्बु.
बं.-तुंदगाछ.	अं.-Cedrela Toona सेड्रेला टूना.
पं.-द्रावी.	

तूर्णागुणाः

तुणी रक्तः कटुः पाके कषायो मधुरो लघुः ।
तिक्तो ग्राही हिमो वृष्यो व्रणकुष्ठास्रपित्तजित् ॥ ३६ ॥

भाषा-तुन लाल, चरपरी, पाकमें कसैली, मधुर, हलकी, कडवी, ग्राही, शीतल, वीर्यवर्द्धक है और व्रण, कोढ तथा रक्तपित्तको नष्ट करती है ॥ ३६ ॥

तुनका विशेष विवरण.

तुनके बडे बडे सघन वृक्ष जंगल और वनोंमें होते हैं. इसके पत्ते नीमके पत्तोंसे कुछेक बडे होते हैं, फूल बहुत छोटे २ सफेद रंगके आते हैं. लकडी इसकी बहुत उत्तम होती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

भूर्जपत्रनामानि ।

भूर्जपत्रः स्मृतो भूर्जचर्म्मी बहुलवल्कलः ।

भाषा-भूजर्पत्र, भूर्जचर्म्मी, बहुलवल्कल ये भोजपत्रके संस्कृत नाम हैं. (सुचर्मा, छंदपत्र, वल्कलद्रुम, भूर्जपत्रक, चित्रत्वक्, बिन्दुपत्र, रक्षापत्र, विचित्रक, भूतघ्न, मृदुपत्र, मृदुचर्म्मी, शैलेन्द्रस्थ, चर्म्मद्रुम, छत्रपत्र, शिवि, स्थिरच्छद, मृदुत्वक्, दलनिर्मोक, पद्मकी, विद्यादल, पत्रपुष्पक, भुज, बहुपट, बहुत्वक् और मृदुच्छद ये भोजपत्रके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके भोजपत्रके नाम.

सं.-भूर्ज्जपत्र.	अं.-Jacque Montii जेक्के मोंटी.
हिं.-भोजपत्र.	
बं.-भूर्ज्जिपत्र.	ला.-Betula Bojaputra बिट्युला भोजपत्रा.
म.-भूर्जपत्र.	
गु.-भोजपत्र.	
क.-भूर्जपत्र.	

भूर्जपत्रगुणाः ।

भूर्जो भूतग्रहश्लेष्मकर्णरुक्पित्तरक्तजित् ।
कषायो राक्षसघ्नश्च मेदोविषहरः परः ॥ ३७॥

भाषा-भोजपत्र कसैला है और भूत, ग्रह, कफ, कर्णरोग, पित्त, रक्तविकार, राक्षसबाधा, मेद तथा विषको नष्ट करता है ॥ ३७ ॥

भोजपत्रका विशेष विवरण.

भोजपत्रके वृक्ष हिमालय आदि पर्वतोंपर अधिकतासे उत्पन्न होते हैं, इस वृक्षकी छाल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हीको भोजपत्र कहते हैं. छाल कागज तथा सूखे केलेके पतोंके समान होती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

पलाशनामानि ।

पलाशः किंशुकः पर्णो याज्ञियो रक्तपुष्पकः । क्षारश्रेष्ठो वातहरो ब्रह्मवृक्षः समिद्वरः ॥ ३८ ॥

भाषा–पलाश, किंशुक, पर्ण, याज्ञिय, रक्तपुष्पक, क्षारश्रेष्ठ, वातहर, ब्रह्मवृक्ष, समिद्वर ये ढाकके संस्कृत नाम हैं. (करक, त्रिपत्रक, ब्रह्मपादप, पलाशक, त्रिपर्ण, रक्तपुष्प, पूतद्रु, ब्रह्मवृक्षक, ब्रह्मोपनेता, काष्ठद्रु, बीजस्नेह, कृमिघ्न, वक्रपुष्पक और सुपर्णी ये ढाकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ३८ ॥

अनेक भाषाके ढाकके नाम.

सं.–पलाश.	उत्.–पराशु.
हिं.–ढाक, टेसू, केसू, धारा, कांकरिया, पलाश.	अं.–Downy Branch Butea डाउनी ब्रांच ब्युटिया.
बं.–पलाशगाछ.	ला.–Butea Frondoza ब्युटिया फ्रंडाझा (लाल), Butea Parviflora ब्युटिया पार्विफ्लोरा (धवल).
म.–पळस.	
गु.–खाखरो.	
क.–मत्तलु.	
तै.–मातुकाचेट्टु.	
ता.–परशन.	

पलाशगुणाः ।

पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णो व्रणगुल्मजित् । कषायः कटुकस्तिक्तः स्निग्धो गुदजरोगजित् ॥ ३९ ॥ भग्नसन्धानकृद्दोषग्रहण्यर्शःकृमीन्हरेत् । तत्पुष्पं स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम् ॥ ४० ॥ वातलं कफपित्तास्रकृच्छ्रजिद्ग्राहि शीतलम् । तृड्दाहशमकं वातरक्तकुष्ठहरं परम् ॥ ४१ ॥ फलं लघूष्णं मेहार्शःकृमिवातकफापहम् । विपाके कटुकं रूक्षं कुष्ठगुल्मोदरप्रणुत् ॥ ४२ ॥

भाषा–पलाश अग्निको दीपन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक, दस्तावर, गरम, कसैला, चरपरा, कडवा, स्निग्ध, टूटे हुएको जोडनेवाला है और व्रण, गुल्म, गुदाके रोग, दोष, संग्रहणी, ववासीर तथा कृमिको नष्ट करता है. ढाकके फूल स्वादिष्ठ, पाकमें चरपरे, कडवे, कसैले, वातकारक, ग्राही, शीतल हैं और कफ, पित्त, रुधिरविकार, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, दाह, वातरक्त तथा कुष्ठको नष्ट करते हैं. ढाकके फल हलके, गरम, पाकमें चरपरे, रूक्ष हैं और प्रमेह, ववासीर, कृमि, वात, कफ, कोढ, गुल्म तथा उदरपीडाको दूर करते हैं ॥ ३९–४२ ॥

ढाकका विशेष विवरण.

ढाकके वृक्ष जंगल और वनोंमें बहुत होते हैं, एक एक डंडीमें तीन २ पत्ते होते हैं, प्रथम लाल रंगके निकलते हैं, फिर हरे हो जाते हैं, फूल काले और लाल कुछेक पीलापन लिये अत्यन्त सुन्दर डालियोंमें लगते हैं. उसमें बडी २ फलियें लगती हैं. उनमेंसे चपटे और गोल बीज निकलते हैं, उनको सब लोग ढकपन्ना कहते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

शाल्मलिनामानि ।

शाल्मलिस्तु भवेन्मोचा पिच्छिला पूरणीति च । रक्तपुष्पा स्थिरायुश्च कण्टकाढ्या च तूलिनी ॥ ४३ ॥

भाषा–शाल्मलि, मोचा, पिच्छिला, पूरणी, रक्तपुष्पा, स्थिरायु, कण्टकाढ्या, तूलिनी ये सेमरके संस्कृत नाम हैं. (शल्मलि, शाल्मली, शल्मली, तूलिफला, दुरारोहा, शाल्मलिनी, शाल्मल, अपूरणी, निर्गन्धपुष्पी, तुलिनी, कुक्कटी, कण्टकाष्ठ, मोचनी, शीमूलु, कदुला, चिरजीवी, पिच्छिल, रक्तपुष्पक, तूलवृक्ष, मोचाख्य, कण्टकद्रुम, कुकुटी, रक्तोत्पल, रम्यपुष्प, बहुवीर्य, यमद्रुम, दीर्घद्रुम, स्थूलफल, दीर्घायु और दीर्घपादपा ये सेमलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके सेमलके नाम.

सं.—शाल्मलि.
हिं.—सेमल, सेमर.
बं.—शिमुल.
म.—सांवरी, शेवरी.
गु.—शेमलो.
क.—यवलवदमर.
तै.—रुगचेट्टु.
ता.—इलावु.
मला.—मल्लिलवु.
अं.—Silk Cotton Tree सिल्ककाटनट्री.
ला.—Bambax Malabaricum बॉबेक्स मेलेबेरिकम, Salmalia Malabarica सालमेलिया मेलबेरिका.

शाल्मलिगुणाः ।

शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी ।
श्लेष्मला पित्तवातास्रहारिणी रक्तपित्तजित् ४४

भाषा—सेमल शीतल, मधुर, पाकमें मधुर, रसायन, कफकारक है और पित्त, वात, रुधिरविकार तथा रक्तपित्तको नष्ट करती है ॥ ४४ ॥

सेमलका विशेष विवरण.

सेमलके वृक्ष अत्यन्त बडे और सघन वनोंमें और जंगलोंमें अधिकतासे होते हैं, उसकी एक २ डंडीमें पांच २ सात २ पत्ते होते हैं, इस वृक्षमें कांटे होते हैं, वे कांटे जडमें पोले और ऊपरसे महीन होते हैं, फूल लाल कमलके समान बडे होते हैं, उनमें आकके सदृश फल लगते हैं, उनको सेमलगद्दे कहते हैं, सूखनेपर उनके भीतरसे रुई निकलती है. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

मोचरसनामानि ।

निर्यासः शाल्मलेः पिच्छा शाल्मलीवेष्टकोऽपिच । मोचास्रावो मोचरसो मोचनिर्यास इत्यपि ॥ ४५ ॥

भाषा—शाल्मलीनिर्यास, पिच्छा, शाल्मलीवेष्टक, मोचास्राव, मोचरस, मोचनिर्यास ये मोचरसके संस्कृत नाम हैं. (मोचसार, मोचश्रुत, मोचस्रुत, पिच्छिलखार, सुरस, मोचाक, शाल्मलि, मोचाह्व, वेश्मरस और शाल्मलरस ये मोचरसके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४५ ॥

अनेक भाषाके मोचरसके नाम.

सं.—मोचरस.
हिं.—मोचरस, सेमरका गोंद.
बं.—शिमुलेर आठा.
म.—सांवरीचा डीक.
गु.—शेमलानो गुंद.

मोचरसगुणाः ।

मोचास्रावो हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः । प्रवाहिकातिसारामकफपित्तास्रदाहनुत् ॥ ४६ ॥

भाषा—मोचरस शीतल, ग्राही, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, कसैला है और प्रवाहिका, अतिसार, आम, कफ, पित्त, रुधिरविकार तथा दाहको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥

मोचरसका विशेष विवरण.

सेमलके गोंदहीको मोचरस कहते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कूटशाल्मलिनामानि ।

कुत्सितः शाल्मलिः प्रोक्तो रोचनः कूटशाल्मलिः ।

भाषा—कुत्सित शाल्मलि, रोचन और कूटशाल्मलि ये कूटशाल्मलिके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके काले सेमरके नाम.

सं.—कूटशाल्मलि.
हिं.—कालासेमर.
म.—काळी सांवर.
गु.—कालो शेमलो.

कूटशाल्मलिगुणाः ।

कूटशाल्मलिकास्तिक्तः कटुकः कफवातनुत् । भेद्युष्णः प्लीहजठरयकृद्गुल्मविषापहः ॥ भूतानाहविबन्धास्रमेदःशूलकफापहः ॥ ४७ ॥

भाषा—कूटशाल्मलि कडवा, चरपरा, दस्तावर, गरम है और कफ, वात, प्लीहा, उदररोग, यकृत्, गुल्म, विष, भूत, अफरा, मलबन्ध, रुधिरविकार, मेद, शूल तथा कफको नष्ट करता है ॥ ४७ ॥

कूटशाल्मलीका विशेष विवरण.

कूटशाल्मलीके वृक्ष जंगलमें बहुत होते हैं, इसके फूल अनारके समान लाल रंगके होते हैं, दूसरी जातिके सेमलपर सफेद रंगतके फूल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आते हैं, इस वृक्षके दो भेद हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

धवनामानि।

धवो धटो नन्दितरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः।

भाषा–धव, धट, नन्दितरु, स्थिर, गौर, धुरंधर ये धायके संस्कृत नाम हैं. (शाकठाख्य, दृढतरु, गौर, कषाय, मधुरत्वक्, शुष्कवृक्ष, शुष्काङ्ग, पाण्डुतरु, धवल, पाण्डुर, पीतफल और मधुरत्वक् ये धायके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके धायके नाम.

सं.–धव.	तै.–नारिंजचेट्टु.
हिं.–धाय, धौं, धव.	ला.–Anogisus Latifolia एनोजिसस लाटिफोलिया.
बं.–धाऊयागाछ.	
म.–धावडा.	
गु.–धावडो.	
क.–सिरिवरु.	

धवगुणाः।

धवः शीतः प्रमेहार्शःपाण्डुपित्तकफापहः।
मधुरस्तुवरस्तस्य फलं च मधुरं मनाक् ४८॥

भाषा–धाय शीतल, मधुर, कसैली है और प्रमेह, बवासीर, पाण्डु, पित्त तथा कफको नष्ट करती है. धायके फल किंचित् मधुर होते हैं ॥ ४८ ॥

धायका विशेष विवरण.

धायके वृक्ष वनोंमें बहुत बडे २ होते हैं, इसके पत्ते अमरूदके समान और छाल सफेद रंगकी होती है, फल बहुत छोटे २ होते हैं, इसकी लकडीके हल और मूसल बनाते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

धन्वंगनामानि।

धन्वङ्गस्तु धनुर्वृक्षो गोत्रवृक्षः सुतेजनः।

भाषा–धन्वङ्ग, धनुर्वृक्ष, गोत्रवृक्ष और सुतेजन ये धामिनके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके धामिनके नाम.

सं.–धन्वंग.	म.–धामण.
हिं.–धामिन.	गु.–धामण.

धन्वंगगुणाः।

धन्वङ्गः कफपित्तास्रकासहृत्तुवरो लघुः।
बृंहणो बलकृद्रूक्षः सन्धिकृद्व्रणरोपणः॥४९॥

भाषा–धामिन कसैली, हलकी, पुष्टिकारक, बलदायक, रूक्ष, सन्धानकारक, व्रणरोपक है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, खांसी तथा हृदयरोगको नष्ट करती है ॥ ४९ ॥

धामिनका विशेष विवरण.

धामिनके बडे २ ऊंचे वृक्ष वनोंमें होते हैं, इसके पत्ते बेरीकी समान परन्तु कुछ बडे होते हैं, लकडी इसकी बहुत दृढ होती है प्रायः इसकी कडियें बहुत बनाई जाती हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

करीरनामानि।

करीरः ककरोऽपत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः।

भाषा–करीर, ककर, अपत्र, ग्रन्थिल, मरुभूरुह ये करीरके संस्कृत नाम हैं. (गूढपत्र, शाकपुष्प, कटुफल, तीक्ष्णसार, कण्टकी, ककच, निष्पत्रिका, करिर, करक, तीक्ष्णकण्टक, मृदुफल, निष्पत्र, शोणपुष्प, विदाहिक, शतकुन्त, सुफल, उष्णसुन्दर, विष्वक्पत्र और कृशशाख ये करीरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं. ॥)

अनेक भाषाके करीरके नाम.

सं.–करीर.	तै.–कवरकुराक.
हिं.–करीर, करील.	फा.–कबार.
बं.–करील.	अं.–Caper केपर.
म.–नेबती.	ला.–Caparis Spinosa केपरिस स्पाइनोझा.
गु.–केरडी.	
क.–तिप्पतिगे.	

करीरगुणाः।

करीरः कटुकस्तिक्तः स्वेद्युष्णो भेदनः स्मृतः।
दुर्नामकफवातामगरशोथव्रणप्रणुत् ॥ ५० ॥

भाषा–करीर चरपरा, कडवा, स्वेदजनक, गरम, मलभेदक (दस्तावर) है और बवासीर, कफ, वात, आम, विष, सूजन तथा व्रणको नष्ट करता है ॥ ५० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करीलका विशेष विवरण.

करीलके वृक्ष छोटे २ होते हैं, प्रायः यह वृक्ष जंगल और मारवाडकी भूमिमें बहुत होते हैं इनकी डंडी नीले रंगकी और फूल गुलाबी रंगके होते हैं, फागुन और चैतके महीनेमें इनपर फल फूल आते हैं. पत्ते न होनेके कारण केवल फूलही फूल दीखते हैं और कांटे महातीव्र होते हैं. इनके फलोंका अचार होता है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

शाखोटनामानि ।

शाखोटः पीतफलको भूतावासः खरच्छदः ।

भाषा-शाखोट, पीतफलक, भूतावास, खरच्छद ये सहोरेके संस्कृत नाम हैं (पिशाचद्रु, पीतफल, कर्कशच्छद, शंखिनीवास, भूतवृक्ष, सकट, अक्षधर, करच्छद, गवाक्षी, रूक्षपत्र, पीत, कैशिक्योज और क्षीरनाश ये सहोरेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सिहोडेके नाम.

सं.-शाखोट.	तै.-भारिणिकेचेट्टु.
हिं.-सिहोडा, सहोरा.	ला.-Streplu Sasper स्ट्रेप्ल्यू सासपर.
बं.-शेओडा, शांडा.	
म.-सहोड, हेदी.	
गु.-साहोडा.	

शाखोटगुणाः ।

शाखोटो रक्तपित्तार्शोवातश्लेष्मातिसारजित् ।

भाषा-शाखोट रक्तपित्त, ववासीर, वात, कफ तथा अतिसारको नष्ट करता है ॥

सिहोडेका विशेष विवरण.

सिहोडेके वृक्ष महा गठीले और झाडझंकाडसे होते हैं परन्तु बहुत बडे नहीं होते. इसके पत्ते छोटे २ आर चिकने २ होते हैं, फूल सफेद २ और लकडीमें कांटेसे जान पडते हैं परन्तु कांटे होते नहीं. हरियानेमें इसे हींस कहते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

वरुणनामानि ।

वरुणो वरणः सेतुस्तिक्तशाकः कुमारकः ।

भाषा-वरुण, वरण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक ये वरनेके संस्कृत नाम हैं. (उरुमाण, सेतुवृक्ष, श्वेतद्रु, मारुतापह, कुमार, अश्मरीघ्न, सेतुक, वराण, शिखिमण्डल, श्वेतवृक्ष और साधुवृक्ष ये वरनेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके वरनेके नाम.

सं.-वरुण.	तै.-उरुमट्टि, जाजिचेट्टु.
हिं.-वरना, वरुण.	ता.-मरलिंगम्.
बं.-वरुणगाछ.	ला.-Crataeva Religiosa क्रेटिवा रिलिजिओसा.
म.-भाव्वरणा.	
गु.-वायवारणो.	
क.-मदवसले.	

वरुणगुणाः ।

वरुणः पित्तलो भेदी श्लेष्मकृच्छ्राश्ममारुतान् । निहन्ति गुल्मवातास्रकृमींश्चोष्णोऽग्निदीपकः ॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कटुकी रूक्षको लघुः ॥ ५१ ॥

भाषा-वरना पित्तकारक, मलभेदक, कसैला, मधुर, कडवा, चरपरा, रूखा, हलका, गरम, अग्निको दीपन करनेवाला है और कफ, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, वात, गुल्म, रक्तविकार तथा कृमिको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

वरनेका विशेष विवरण.

वरनेके बडे बडे ऊंचे और सघन वृक्ष जंगलोंमें होते हैं, इसके पत्ते बेलके समान एक एक डंडीमें तीन तीन लगे होते हैं, और फल गोल गोल हरे रंगके नीम्बूकी आकृतिके होते हैं तथा फूल सफेद रंगके छोटे छोटे होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

कटभीनामानि ।

कटभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणुः कटम्भरः ।

भाषा-कटभी, स्वादुपुष्प, मधुरेणु, कटंभर ये कटभीके संस्कृत नाम हैं. (नाभिका, शौण्डी, पाटली, किणिही, क्षुद्रश्यामा, कैडर्य, श्यामला और भद्रेंद्राणी ये कटभीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके कटभीके नाम.

सं.–कटभी.	अं.–Careystree केरिसट्री.
हिं.–कटभी, करही.	ला.–Careya Arborea केरिया आर्बोरिया.
म.–वाकुम्भा, कीन्ही.	
गु.–वापुंगा.	
क.–वेल्लाल.	

कटभीगुणाः ।

कटभी तु प्रमेहार्शोनाडीव्रणविषकृमीन् ।
हन्त्युष्णा कफकुष्ठघ्नी कटुरूक्षा च कीर्तिता ॥
तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात्कफशुक्रहृत् ॥५२॥

भाषा–कटभी गरम, चरपरी, रूक्ष है और प्रमेह, ववासीर, नाडीव्रण (नसूर), विष, कृमि, कफ तथा कोढको नष्ट करती है. इसका फल कसैला है, विशेष करके कफ तथा वीर्यका नाश करता है ॥ ५२ ॥

कटभीका विशेष विवरण.

कटभीके मध्य आकारके वृक्ष होते हैं, इसके पत्ते गोल और कुछ कुछ लम्बाई लिये होते हैं और फल अरण्ड खर्बुजके समान परन्तु छोटे होते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

मोक्षनामानि ।

मोक्षस्तु मोक्षकोऽपि स्याद्गोलीढो गोलिहस्तथा । क्षारश्रेष्ठः क्षारवृक्षो द्विविधः श्वेतकृष्णकः ॥ ५३ ॥

भाषा–मोक्ष, मोक्षक, गोलीढ, गोलिह, क्षारश्रेष्ठ, क्षारवृक्ष ये मोखेके संस्कृत नाम हैं. (गौलिक, मेहन, पाटली, विषापह, जटाल, वनवासी, सुतीक्ष्णक, क्षारोष्ण, शिखरी, घण्टापाटलि, क्षुद्रपाटलि, मुष्कक, जटालु झाट्ल, घण्टा, पाटलि, क्षारद्रु, कालमुष्कक, घण्टाक, तीक्ष्ण, घण्टक और कालास्थाली ये मोखेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) मोखा सफेद और काला, इस भांति दो प्रकारका होता है ॥ ५३ ॥

अनेक भाषाके मोखेके नाम.

सं.–मोक्ष.	तै.–मोक्कपुचेट्टु.
हिं.–मोखा, फरवाह.	ला.–Schrebera Swisteno Oides स्क्रीबीरा स्विस्टेनो आइडिस्.
बं.–घण्टापारूल.	
म.–मोखाडा.	
गु.–मरखो.	
क.–मोखदलाई.	

मोक्षगुणाः ।

मोक्षकः कटुकस्तिक्तो ग्राह्युष्णः कफवातहृत् ।
विषमेदोगुल्मकण्डूबस्तिरुक्कृमिशुक्रनुत् ।५४।

भाषा–मोखा चरपरा, कडवा, ग्राही, गरम है और कफ, वात, विष, मेद, गुल्म, खुजली, बस्तिरोग, कृमि तथा वीर्यको नष्ट करता है॥५४॥

मोखेका विशेष विवरण.

मोखेके वृक्ष दो जातिके होते हैं, एक काला और दूसरा सफेद. इसके पत्ते बडे बडे होते हैं, और उनमेंसे आकके समान दूध निकलता है, फल घण्टाकार होते हैं. इस वृक्षसे क्षार बनाया जाता है.

शिरीषिकानामानि ।

शिरीषिका टिण्टिणिका दुर्बलाम्बुशिरीषिका ।

भाषा–शिरीषिका, टिण्टिणिका, दुर्बला और अंबुशिरीषिका ये ढाढोनके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके ढाढोनके नाम.

सं.–शिरीषिका.	म.–जलशिरसी.
हिं.–ढाढोन.	गु.–जलसरसडियो.

जलशिरीषिकागुणाः ।

त्रिदोषविषकुष्ठार्शोहरी वारिशिरीषिका ।

भाषा–ढाढोन त्रिदोष, विष, कोढ तथा ववासीरको नष्ट करती है ॥

ढाढोनका विशेष विवरण.

ढाढोन जलमें उत्पन्न होती है और इसके पत्ते शिरीषके पत्तोंकी सदृश होते हैं. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

शमीनामानि ।

शमी सक्तफला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मङ्गल्या च तथा लक्ष्मीः शमीरः साल्पिका स्मृता ॥ ५५ ॥

भाषा-शमी, सक्तुफला, तुङ्गा, केशहंत्री, फला, शिवा, मंगल्या, लक्ष्मी ये छोंकरके संस्कृत नाम हैं. (शान्ता, शुभदा, पवित्रा, पापनाशिनी, सक्तुफली, सक्तुफला, काननारि, कचरिपुफला, केशमथनी, ईशानी, तपनतनया, इष्टा, शुभकरी, हविर्गन्धा, दुरितदमनी, शक्तुफलिका, समुद्रा, वह्निगर्भा, समीर, ईशान, सुरभि, पापशमनी, भद्रा, शंकरी, सुपुत्रा, सुखदा, ईशाना, शंकुफलिका और सुभद्रा ये छोंकरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) अल्प शमीको शमीर कहते हैं ॥ ५५ ॥

अनेक भाषाके छोंकरके नाम.

सं.-शमी.	तै.-शमीचेट्टु.
हिं.-छोंकर, शमी, सफेद कीकर.	अं.-Spongetree स्पंजट्री.
बं.-शाई.	ला.-Prosopis Spicigera प्रोसोपिस स्पाइसिजेरा.
म.-शमी.	
गु.-खीजडी.	
क.-बन्नि, काबन्नि.	

शमीगुणाः ।

शमी तिक्ता कटुः शीता कषाया रेचनी लघुः । कफकासभ्रमश्वासकुष्ठार्शःकृमिजित्स्मृता ॥ ५६ ॥

भाषा-छोंकर कडवा, चरपरा, शीतल, कसैला, रेचक (दस्ताबर), हलका है और कफ, खाँसी, भ्रम, श्वास, कोढ, बवासीर तथा कृमिका नाश करता है ॥ ५६ ॥

शमीका विशेष विवरण.

शमीके वृक्ष वनोंमें बडे बडे ऊंचे होते हैं, इसके पत्ते खरके समान होते हैं और फली सेंगरीके सदृश होती है, परन्तु यहभी एक कीकर बब्बुलका भेद है, इसको छोंकर करते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

सप्तपर्णनामानि ।

सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः ।

भाषा-सप्तपर्ण, विशालत्वक्, शारद, विषमच्छद ये सतवनके संस्कृत नाम हैं. (विद्धविनद, विन्याक, सारद, देववृक्ष, दलेगन्धि, शिरोरुजा, ग्रहनाश, सूतिपत्र, ग्रहाशी, ग्रहनाशन, गुच्छपुष्प, शुक्तिपर्ण, सुपर्णक, अयुक्छद, अयुग्मच्छद, गुच्छपुष्प, युग्मपर्ण, मुनिच्छद, बृहत्त्वक्, बहुपर्ण, शाल्मलिपत्र, मदगन्ध, गन्धिपर्ण, सप्तच्छद, छत्रपर्ण और शरदिपुष्प ये सतवनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सतौनेके नाम.

सं.-सप्तपर्ण.	गु.-सात्विन.
हिं.-सतौना, सतवन, छतिवन.	क.-एलेलेग.
बं.-छातिमगाछ, छेतेन.	तै.-एडाकुल.
म.-सात्विण.	ला.-Alstonia Scholaris आल्स्टोनिया स्कोलेरिस.

सप्तपर्णगुणाः ।

सप्तपर्णो व्रणश्लेष्मवातकुष्ठास्रजन्तुजित् । दीपनः श्वासगुल्मघ्नः स्निग्धोष्णस्तुवरःसरः॥५७॥

भाषा-सतौना अग्निको दीपन करनेवाला, स्निग्ध, गरम, कसैला, दस्ताबर है और व्रण (घाव), कफ, वात, कोढ, रुधिरविकार तथा जन्तुका नाश करता है ॥ ५७ ॥

सतवनका विशेष विवरण.

सतवनके बडे ऊंचे ऊंचे वृक्ष होते हैं, इसके पत्ते सेमलके समान और एक एक डालीमें सात सात होते हैं. इसकी मात्रा २ मासेकी है.

तिनिशनामानि ।

तिनिशः स्यन्दनो नेमी रथद्रुर्वञ्जुलस्तथा ।

भाषा-तिनिश, स्यन्दन, नेमि, रथद्रु, वंजुल ये तिनिशके संस्कृत नाम हैं. (सर्वसार, अश्मगर्भक, तिनाशक, अक्षक, चित्रकर्मा, अतिमुक्तक, चित्रंकृत्, चक्री, शतांग, शकट, रथ, रथिक, भस्मगर्भ, मेषी, जलधर और स्पंदन ये तिनिशके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके तिनिशके नाम.

सं.–तिनिश.
हिं.–तिनिश, तिरिच्छ.
बं.–तिनाश.
म.–तिवस.
गु.–हर्म्मो.
ला.–Ougeniadal Bargia Oides युजिनियाडाल बर्जिया ओइडिस्.

तिनिशगुणाः ।

तिनिशः श्लेष्मपित्तास्रमेदःकुष्ठप्रमेहजित् ।
व्रणपाण्डुकृमिप्रणुत् ॥५८॥

भाषा–तिनिश कसैला है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, मेद, कोढ, प्रमेह, चित्रित कोढ, दाह, व्रण, पाण्डु तथा कृमिको नष्ट करता है५८

तिनिसका विशेष विवरण.

तिनिसके बडे लम्बे और सघन वृक्ष होते हैं, इसके पत्ते छोंकरके समान नन्हे नन्हे होते हैं, इनकी आकृति खैर अथवा कीकरकीसी होती है. इसकी मात्रा १ मासेकी है.

भूमीसहनामानि ।

भूमीसहो द्वारदारुर्नरिदारुः खरच्छदः ।

भाषा–भूमीसह, द्वारदारु, नरिदारु, खरच्छद ये सागवनके संस्कृत नाम हैं. (क्रकचपत्र, खरपत्र, अतिपत्रक, महीरुह, श्रेष्ठकाष्ठ, स्थिरसार, गृहद्रुम, अनिल, अर्ण, महापत्र, शाकतरु, शाकवृक्ष, शाखाख्य, अर्जुनोपम, शरपत्र, अतिपत्र, भूमिरुह, दीर्घच्छद, कोलफल, योगी, हलीमक, गन्धसार, स्थिरसार, स्थिरक और ध्रुवसाधन ये सागवनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सागवनके नाम.

सं.–भूमीसह.
हिं.–सागौन, सागवन.
बं.–शेंगुतगाछ.
म.–साग.
गु.–साग.
क.–नैगु.
तै.–टेकुचेट्टु.
ता.–टेकु.
फा.–फिलगोस.
अ.–फिलजोश उजनुलपिल.
अं.–Indian Teaktree इण्डियन टीकट्री.
ला.–Tactona Grandis टेकटोना ग्रांडीस.

भूमीसहगुणाः ।

भूमीसहस्तु शिशिरो रक्तपित्तप्रसादनः ।
इति श्रीभावप्रकाशे वटादिवर्गः ॥ ५ ॥

भाषा–सागौन शीतल और रक्तपित्तको शुद्ध करनेवाला है ॥

सागवनका विशेष विवरण.

भूईसहेके बडे बडे लम्बे वृक्ष जंगलमें होतेहैं, इसके पत्ते बडे बडे और खरखरे होते हैं, और फल सफेद और बहुत छोटे छोटे होते हैं. यह सागौनहीका भेद है इसकी मात्रा २ मासेकी है.

इति श्रीभावप्रकाशे भाषाटीकायां पञ्चमप्रकरणे वटादिवर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ आम्रादिवर्गः ६.

तत्रादौ आम्रनामानि ।

आम्रः प्रोक्तो रसालश्च सहकारोऽतिसौरभः ।
कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः पिकवल्लभः ॥१॥

भाषा–आम्र, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामांग, मधुदूत, माकन्द, पिकवल्लभ ये आमके संस्कृत नाम हैं. (चूतक, अम्र, फलश्रेष्ठ, फलोत्पत्ति, मृषालक, चूत, षट्पदातिथि, वसंतद्रु, पिकप्रिय, स्त्रीप्रिय, गन्धबन्धु, अलिप्रिय, शरेष्ट, मदिरासख, पिकबन्धु, केशवायुध, कोषी, परपुष्टमहोत्सव, कामशर, कामवल्लभ, कामाङ्ग, कीरेष्ट, माधवद्रुम, भृंगाभीष्ट, सीधुरस, माधूली, कोकिलोत्सव, वसन्तदूत, मोदाख्य, मन्मथालय, मध्वावास, मदन, पिकराग, नृपप्रिय, प्रियाम्बु, कोकिलावास, वसन्तपादप, भ्रमरप्रिय, मनोज्ञ, मन्मथावास, शुकप्रिय, वनोत्सव, मदाढ्य और मंजरी. ये आमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके आमके नाम.

सं.-आम्र.
हिं.-आम.
बं.-आम.
म.-आंबा.
गु.-आंबो.
क.-माविनफल.
तै.-मामिडि.
ता.-मामरं, मांडि.
तु.-कक्कु.
मला.-माबु.
फा.-आंबा.
अ.-अम्बज.
अं.-Mangotree मांगोट्री.
ला.-Maugifera Indica मेंगीफरा इण्डिका.

आम्रपुष्पगुणाः ।

आम्रपुष्पमतीसारकफपित्तप्रमेहनुत् । असृग्दुष्टिहरं शीतं रुचिकृद्ग्राहि वातलम् ॥ २ ॥

भाषा-आमका फूल (मौर) शीतल, रुचिकारी, ग्राही, वातकारक है और अतिसार, कफ, पित्त, प्रमेह और दुष्ट रुधिरका नाश करता है ॥ २ ॥

आमाम्रफलगुणाः ।

आम्रं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुतपित्तकृत् । तरुणं तु तदत्यम्लं रूक्षं दोषत्रयास्रकृत् ॥३॥

भाषा-कच्ची अमियां कसैली, खट्टी, रुचिकारक, वात तथा पित्तको करनेवाली है. तरुण (बडा और विना पका) आम खट्टा, रूखा है और त्रिदोष तथा रक्तविकारको करनेवाला है ॥ ३ ॥

शुष्कामाम्रफलगुणाः ।

आम्रमामं त्वचा हीनमातपातिविशोषितम् । अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफवातजित् ४॥

भाषा-कच्चे आमके ऊपरका छिलका छील टुकडे करके घाममें सुखालेवे उसको आम्रपेषी (अमचूर) कहते हैं. यह अमचूर खट्टा, स्वादिष्ठ, कसैला, मलभेदक, दस्तावर है और कफ तथा वातको जीतनेवाला है ॥ ४ ॥

पक्वाम्रफलगुणाः ।

पक्वं तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बलसुखप्रदम् । गुरु वातहरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम् ॥ कषायानुरसं वह्निश्लेष्मशुक्रविवर्द्धनम् ॥ ५ ॥

भाषा-पक्का आम मधुर, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, बलदायक, सुखदायक, भारी, वातनाशक, हृदयको प्रिय, वर्णको उत्तम करनेवाला, शीतल, पित्तकारक नहीं तथा कसैले रससे युक्त है तथा अग्नि, कफ और वीर्यको बढानेवाला है ॥ ५ ॥

वृक्षपक्वाम्रगुणाः ।

तदेव वृक्षसम्पक्वं गुरु वातहरं परम् । मधुराम्लरसं किञ्चिद्भवेत्पित्तप्रकोपनम् ॥ ६ ॥

भाषा-जो आम वृक्षपरही पका हो वह भारी, वातनाशक, मधुर, अम्ल और किंचित् पित्तको कुपित करनेवाला है ॥ ६ ॥

कृत्रिमपक्वाम्रगुणाः ।

आम्रं कृत्रिमपक्वं च तद्भवेत्पित्तनाशनम् । रसस्याम्लस्य हीनस्तु माधुर्याच्च विशेषतः ७॥

भाषा-कृत्रिमपक्व (पालसे पकाया हुआ) आम अम्लरसहीन और विशेष करके मधुर होता है ॥ ७ ॥

चोषिताम्रगुणाः ।

चोषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्यकरं लघु । शीतलं शीघ्रपाकि स्याद्वातपित्तहरं सरम् ॥८॥

भाषा-चूँसा हुआ आम अत्यन्त रुचिकारी, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, हलका, शीतल, शीघ्रपाचक, वात तथा पित्तको हरनेवाला और दस्तावर है ॥ ८ ॥

आम्ररसगुणाः ।

तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः । अहृद्यस्तर्पणोऽतीव बृंहणः कफवर्द्धनः ॥ ९ ॥

भाषा-आमका निकाला हुआ रस बलदायक, भारी, वातनाशक, दस्तावर, हृदयको अप्रिय, तृप्तिदायक, अत्यन्त पुष्टिकारक और कफवर्द्धक है ॥ ९ ॥

आम्रखण्डगुणाः ।

तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिरपाकि च । मधुरं बृंहणं बल्यं शीतलं वातनाशनम् ॥१०॥

भाषा-आमका खंड भारी, अत्यन्त रुचिकारी, देरसे पचनेवाला, मधुर, पुष्टिकारक,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलदायक, शीतल और वायुका नाश करनेवाला है ॥ १० ॥

दुग्धाम्रगुणाः ।

वातपित्तहरं रुच्यं बृंहणं बलवर्द्धनम् । वृष्यं वर्णकरं स्वादु दुग्धाम्रं गुरु शीतलम् ॥ ११॥

भाषा–दूधके साथ खाया हुआ आम वातपित्तनाशक, रुचिकारी, पुष्टिदायक, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, वर्णको उत्तम करनेवाला, स्वादिष्ठ, भारी, मधुर और शीतल है ॥ ११ ॥

आम्रातियोगगुणाः ।

मन्दानलत्वं विषमज्वरं च रक्तामयं बद्धगुदोदरं च । आम्रातियोगो नयनामयं वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात् ॥ १२ ॥ एतदम्लाम्रविषयं मधुराम्लपरं न तु । मधुरस्य परं नेत्रहितं त्वाद्या गुणा यतः ॥ १३ ॥ शुण्ठ्याम्भसोऽनुपानं स्यादाम्राणामतिभक्षणे। जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सह सौवर्चलेन च ॥ १४॥

भाषा–अत्यन्त आम खानेसे मंदाग्नि, विषमज्वर, रुधिरदोष, अत्यन्त मलका रोध और नेत्ररोगको करता है, इस कारण आम अत्यन्त नहीं खाना चाहिये. जो कुछ दोष वह केवल खट्टे आममें है सो मधुर आममें नहीं हैं, क्योंकि मधुर आममें तो नेत्रोंको हितकारी इत्यादि गुण रहते हैं. आम अधिक खाये होय तो सोंठको पानीके साथ खावे, अथवा जीरा काले नोनके साथ खावे ॥ १२–१४ ॥

आम्रावर्त्तलक्षणम् ।

पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः । घर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त इति स्मृतः १५

भाषा–पक्के आमके रसको वस्त्रपर डालकर धूपमें सुखावे, सूखनेपर फिर और रस डाले, इस प्रकार वारंवार करनेसे आम्रावर्त (अमावट) बन जाता है ॥ १५ ॥

अनेक भाषाके अमावटके नाम.

सं.–आम्रावर्त.	बं.–आमट.
हिं.–अमावट, आम्रावर्त.	म.–आंब्याचें साठ.

आम्रावर्तगुणाः ।

आमावर्तस्तृषाच्छर्दिवातपित्तहरः सरः । रुच्यः सूर्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च स हि कीर्त्तितः ॥ १६ ॥

भाषा–आम्रावर्त दस्तावर, रुचिकारक, सूर्यकी किरणोंसे सूखनेके कारण हलका है और तृषा, वमन, वात तथा पित्तको नाश करता है ॥१६॥

आम्रबीजगुणाः ।

आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्यतीसारनाशनम् । ईषदम्लं च मधुरं तथा हृदयदाहनुत् ॥ १७ ॥

भाषा–आमकी गुठली (कोइली) कसैली, कुछ खट्टी, मधुर है और वमन, अतीसार, तथा हृदयके दाहको नष्ट करती है ॥ १७ ॥

आम्रनवपल्लवगुणाः ।

आम्रस्य पल्लवो रुच्यः कफपित्तविनाशनः ।

भाषा–आमके नवीन पत्ते रुचिकारक और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाले हैं ॥

आमका विशेष विवरण.

आम जगत्में प्रसिद्ध फल है, इसके समान और कोई दूसरा फल नहीं है. आमके वनके वन देखनेमें आते हैं और बागोंमेंभी एकसे एक उत्तम वृक्ष छांट छांटकर लगाये जाते हैं. इसके वृक्ष बहुत बडे बडे होते हैं, कोई कोई बाग ऐसे सघन हैं कि वनभी उनको देखकर संकुचित होता है, वह बाग अन्धेरिया बागके नामसे प्रसिद्ध है. इस देशमें ऐसा कोई ग्राम और नगर नहीं जहां दश बीस आमके बाग न हों. इसके पत्ते जामनकेसे होते हैं, एक बालिस्त लंबे दो अंगुल चौडे, वसन्तऋतुमें और वर्षाऋतुमें लाल लाल कोमल पत्ते निकलते हैं और फिर हरे हो जाते हैं, फूलके स्थानमें मौर डाली डालीपर छा जाता है, फल गोल और कुछ लम्बे, कच्ची अवस्थामें हरे और पकनेपर पीले और हरेही रहते हैं, उनका रस ऐसा मीठा होता है कि खातेही चित्त, प्रसन्न हो जाय. फलके भीतर एक गुठली होती है, वही बोई जाती है, उसीसे वृक्ष उत्पन्न होता है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आम्रातकनामानि ।

आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाम्रः कपीतनः ।

भाषा-आम्रातक, पीतन, मर्कटाम्र, कपीतन, ये अंबाडेके संस्कृत नाम हैं. (पीतनक, कपिचूत, अम्लवाटक, वर्षपाकी, कपिचूड, तनुक्षीरि, कपिप्रिय, मधुराम्लक, अम्रवाटिक, भृंगीफल, रसाढ्य, तनुक्षीर, अम्बरातक, कपिचूड, अम्बरीष, आम्रात, आम्रातक, अध्वगभोग्य, मर्कटाम्रक और तुंगी ये अम्बाडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके अंबाडेके नाम.

सं.-आम्रातक.	इं.-Spondias Ekminute स्पोन्डिआस् एक मिनट्, Hog Plum हाग् प्लम्, Wild Mango वाइल्ड् मँगो.
हिं.-अंबाडा.	
बं.-आमडा.	
म.-अंबाडा.	
गु.-जंगली आंबो, अंभेडा.	
क.-आंबोडेयकायि.	
तै.-आमाटं, अंबालमु.	
ता.-काट्टमा.	
मला.-अंबालम्.	ला.-Spondias mangifera स्पोन्डिआस मेंगिफरा.

आम्रातकगुणाः ।

आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृत्सरम् ।
पक्वं तु तुवरं स्वादु रसे पाके हिमं स्मृतम् ॥ १८ ॥ तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् । गुरु बल्यं मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित् ॥ १९ ॥

भाषा-अम्बाडा खट्टा, वातनाशक, भारी, गरम, रुचिकारी और दस्तावर है. पक्का अंबाडा कसैला, स्वादिष्ठ, रसमें तथा पाकमें शीतल, तृप्तिकारक, कफकारी, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, ग्राही, पुष्टिकारक, भारी, बलकारक है और वात, पित्त, क्षत, दाह, क्षय तथा रुधिरविकारका नाश करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अंबाडेका विशेष विवरण.

आम्रातक अर्थात् अम्बाडेके वृक्ष प्रायः पर्वत और वनोंमें बहुत होते हैं. इसके पत्ते जिंगनीके पत्तोंके समान एक शाखामें बराबर दोनों ओर होते हैं, इसपर आमके तुल्य मोर आता है, फल कन्दूरीके समान छोटे छोटे होते हैं, उनको अम्बाडा कहते हैं. इनका अचार डालते हैं. ये स्वादमें खट्टे होते हैं.

राजाम्रनामानि ।

राजाम्रष्टङ्क आम्रातः कामाह्वो राजपुत्रकः ।

भाषा-राजाम्र, टंक, आम्रात, कामाह्व, राजपुत्रक ये राजाम्र (कलमी आम) के संस्कृत नाम हैं. (राजफल, स्मराम्र, कोकिलोत्सव, मधुर, कामेष्ट और नृपवल्लभ ये राजाम्र (कलमी आम) के संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके राजाम्रके नाम.

सं.-राजाम्र.	म.-कलमी आंबा, हाफुस, पायरी.
हिं.-कलमी आम, मालदह आम.	गु.-हाफुस आंबो.

राजाम्रगुणाः ।

राजाम्रं तुवरं स्वादु विशदं शीतलं गुरु ।
ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्मवातकृत्कफपित्तनुत् २०॥

भाषा-राजाम्र कसैला, स्वादिष्ठ, स्वच्छ, शीतल, भारी, ग्राही, रूखा है और मलबन्ध, अफरा तथा वातको करनेवाला है और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाला है ॥ २० ॥

कोशाम्रनामानि ।

कोशाम्र उक्तः क्षुद्राम्रः कृमिवृक्षः सुकोशकः ।

भाषा-कोशाम्र, क्षुद्राम्र, कृमिवृक्ष, सुकोशक ये कोशाम्रके संस्कृत नाम हैं. (घनस्कन्ध, वनाम्र, जन्तुपादप, क्षुद्राम्रक, रक्ताम्र, लाक्षावृक्ष, और सुरक्तक ये कोशाम्रके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कोशाम्रके नाम.

सं.-कोशाम्र.	गु.-हलकी जातनों आंबो, कोशम.
हिं.-कोशंब, छोटा आम.	क.-जूरिमाचु.
बं.-केओड़ा, जलपाइ.	ला.-Slecheratrijuga स्लीचराट्रिजगा.
म.-कोशिंब.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोशाम्रगुणाः ।

कोशाम्रः कुष्ठशोथास्रपित्तव्रणकफापहः । तत्फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोष्णं गुरु पित्तलम् ॥
पक्वं तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत् ॥२१॥

भाषा–कोशाम्र कोढ, सूजन, रक्तपित्त, व्रण और कफका नाश करता है. इसका फल ग्राही, वातनाशक, अम्ल, गरम, भारी और पित्तकारी है. इसका पक्का फल अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक, हलका, गरम है और कफ तथा वायुको नष्ट करता है ॥ २१ ॥

कोशाम्रका विशेष विवरण.

कोशाम्र जंगली आमको कहते हैं, इसके वृक्षभी आमके समान होते हैं और पत्ते तथा फल छोटे छोटे देखनेमें आते हैं.

पनसनामानि ।

पनसः कण्टकिफलः पनसोऽतिबृहत्फलः ।

भाषा–पनस, कंटकिफल, पनस, अतिबृहत्फल ये कटहलके संस्कृत नाम हैं. (अपुष्प, फलेंद, स्थूलकंटफल, कण्टाकाल, आशय, मुरजफल, पलस, फलस, चम्पकालु, चम्पाकोष, चम्पालु, मृदङ्गफल, पानस, महासर्ज्ज, फलिन, फलवृक्षक, कंटाफल, मूलफलद, अपुष्पफलद, और पूतफल ये कटहलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कटहरके नाम.

सं.–पनस.	तु.–पेला.
हिं.–कटहर, कटहल, कठैल.	मला.–पिलावु.
बं.–कांटाल.	अं.–Indian Jack-tree इंडियन् जॅकट्री.
म.–फणस.	ला.–Artocorpus Integrifolia आर्टोकार्पस इन्टेग्रिफोलिया.
गु.–फनस.	
क.–हलसिनहण्णु.	
तै.–पनसकायि.	
ता.–पलाचु, चिरा.	

पनसगुणाः ।

पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम् ।
तर्पणं बृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मलं भृशम् २२
बल्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतव्रणान् ।
आमं तदेव विष्टम्भि वातलं तुवरं गुरु ॥
दाहकृन्मधुरं बल्यं कफमेदोविवर्द्धनम् ॥२३॥

भाषा–कटहलका पक्का फल शीतल, स्निग्ध, पित्तनाशक, वातनाशक, तृप्तिदायक, पुष्टिकारक, स्वादिष्ठ, मांसको बढानेवाला, अत्यन्त कफकारक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक है और रक्तपित्त, क्षत तथा व्रणका विनाश करता है. कटहरका कच्चा फल ग्राही, वातकारक, कसैला, भारी, दाहकारक, मधुर, बलदायक है और कफ तथा मेदको बढानेवाला है ॥ २२ ॥ २३ ॥

पनसबीजगुणाः ।

पनसोद्भवबीजानि वृष्याणि मधुराणि च ।
गुरूणि बद्धविट्कानि सृष्टमूत्राणि संवदेत् २४

भाषा–कटहलके बीज वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, ग्राही और मूत्रको बढानेवाले हैं ॥ २४॥

अन्यच्च ।

मज्जा पनसजो वृष्यो वातपित्तकफापहः ।
विशेषात्पनसो वर्ज्यो गुल्मिभिर्मन्दवह्निभिः ॥ २५ ॥

भाषा–कटहलकी मींग वीर्यवर्द्धक, वात, पित्त तथा कफका नाश करनेवाली है, विशेष करके गुल्मरोगी तथा मंदाग्निवालोंको इसका खाना वर्जित है ॥ २५ ॥

कटहरका विशेष विवरण.

कटहरके वृक्ष बहुत बडे बडे होते हैं, प्रायः बागोंमें माली लोग बहुत लगाते हैं, इसके पत्ते गोल गोल भेंडेकेसे होते हैं. फूल आतेही नहीं, कटहर बहुत बडा फल होता है और वह गूलरके समान लकडीको फोडकर, निकलता है. फल पहले हरे रंगका होता है, ऊपर नरम नरम कांटे होते हैं, कटहरपर हेमन्तऋतुके पश्चात् फल लगते हैं. वह फल गजभर लम्बा और बहुत मोटा होता है.

लकुचनामानि ।

लकुचः क्षुद्रपनसो लिकुचो डहुरित्यपि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—लकुच, क्षुद्रपनस, लिकुच, डहु ये बडहलके संस्कृत नाम हैं. (ऐरावत, अम्लक, निकुच, कषायी, दृढवल्कल, कार्श्य, शाल, शूर, स्थूलस्कन्ध और ग्रंथिमत्फल ये बडहरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके बडहलके नाम.

सं.—लकुच.	गु.—क्षुद्रफनस, लकुच.
हिं.—बडहल.	क.—आंजणु.
बं.—डहुयागाछ, मादर.	ला.—Artocarpus Lakoocha आर्टोकार्पस लकुचा.
म.—क्षुद्रफणस, ओट.	

लकुचगुणाः ।

आमं लकुचमुष्णं च गुरु विष्टम्भकृत्तथा । मधुरं च तथाम्लं च दोषत्रितयरक्तकृत् ॥ २६ ॥ शुक्राग्निनाशनं वापि नेत्रयोरहितं स्मृतम् । सुपक्वं तत्तु मधुरमम्लं चानिलपित्तहृत् ॥ कफवह्निकरं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकं च तत् ॥ २७ ॥

भाषा—बडहलका कच्चा फल गरम, भारी, ग्राही, मधुर, खट्टा, तीनों दोष तथा रुधिरको करनेवाला, वीर्य तथा अग्निको नष्ट करनेवाला और नेत्रोंको अहितकारी है. बडहलका पक्का फल मधुर, अम्ल, वातनाशक, पित्तनाशक, कफ तथा अग्निको करनेवाला, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक और विष्टम्भकारक है ॥ २६ ॥ २७ ॥

बडहलका विशेष विवरण.

बडहरके वृक्ष बहुत ऊंचे ऊंचे और झादेदार होते हैं, प्रायः बागोंमें बहुत देखनेमें आते हैं. इसके पत्ते पाखरके समान और फल गांठदार गोल गोल कैथके बराबर होते हैं, कच्ची अवस्थामें हरे हरे होते हैं, उनको पेडपरसे तोडकर पालमें रखकर पकालेते हैं, उसके भीतर दश बीस सफेद रंगके बीज निकलते हैं. यह भी कटहरहीका भेद है, इसके फलको लकुच कहते हैं; ये पीले रंगके होते हैं.

कदलीनामानि ।

कदली वारणा मोचाम्बुसारांशुमतीफला ।

भाषा—कदली, वारणा, मोचा, अंबुसारा, अंशुमतीफला ये केलेके संस्कृत नाम हैं. (सुफला, वारणवल्लभा, सुकुमारा, चर्मण्वती, सत्पत्री, नगरौषधि, वारणबुसा, अंशुमत्फला, काष्ठीला, कदलवारबुसा, वारणबुषा, सकृत्फला, गुच्छफला, हस्तिविषाणी, गुच्छदन्तिका, निःसारा, राजेष्टा, बालकप्रिया, ऊरुस्तम्भा, भानुफला, वनलक्ष्मी, कदलक, मौचक, रोचक, लोचक, वारवृषा, आयतच्छदा, तन्तुविग्रहा, और अम्बुसारा ये केलेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके केलेके नाम.

सं.—कदली.	ता.—बाले.
हिं.—केला, केरा, कदली.	तु.—बारे
बं.—केला.	मला.—वाळा.
म.—केळ.	फा.—मावज, मोज.
गु.—केलुं.	अ.—तना.
क.—बाळि.	अं.—Plantain प्लँटेन.
तै.—अरटि, याराटि, चक्राकेली.	ला.—Musasapientum मुसासेपियेन्टम्.

कदलीगुणाः ।

मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफनुद्गुरु । स्निग्धं पित्तास्रतृड्दाहक्षतक्षयसमीरजित् २८ पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यं च बृंहणम् । क्षुत्तृष्णानेत्रगदहन्मेहघ्नं रुचिमांसकृत् ॥ २९ ॥ माणिक्यमर्त्यामृतचम्पकाद्या भेदाः कदल्या बहवोऽपि सन्ति । उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति निर्दोषता स्याल्लघुता च तेषाम् ॥ ३० ॥

भाषा—केला मीठा, शीतल, ग्राही, भारी, स्निग्ध है और कफ, पित्त, रक्तविकार, दाह, क्षत, क्षय तथा वातको नष्ट करता है. पक्का केला स्वादिष्ठ, शीतल, पाकमें मधुर, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिको करनेवाला, मांसको बढानेवाला है और क्षुधा, तृषा, नेत्ररोग तथा प्रमेहको नष्ट करता है. माणिक्यकदली,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मर्त्यकदली, अमृतकदली और चम्पककदली इत्यादिक केलेकी अनेक जाति हैं. ये सब प्रकारके केले उपरोक्त गुणवाले हैं, तथा निर्दोषता और हलकापन ये गुण अधिक हैं ॥२९॥३०॥

केलेका विशेष विवरण.

केला संपूर्ण भारतवर्षमें और उत्तरखंडके वन और पहाडोंमें अधिकतासे होता है, केलेकी अनेक जाति हैं, जैसे पहाडी केला, चम्पैकेला, जंगली केला, वडा केला, काठकेला, काला केला इत्यादि, परन्तु गुणमें सब समान हैं, केलेका बहुत ऊंचा वृक्ष होता है, पत्ते दो चार गजतक लम्बे और आध २ गज चौडे होते हैं. ये वृक्ष खम्भके समान होते हैं और पत्तेमें पत्ते निकलते चले जाते हैं, सिवाय पत्तोंके कोई शाखा इसमें नहीं होती, केवल पत्तोंहीसे वेष्टित होता है, उसमें बक्कलके भीतर बक्कलही बक्कल निकलता है कुछ सार नहीं होता, उसके बीचमें एक डंडा निकलता है, उस डण्डेपर फली आती हैं, बीचमें सबसे ऊपर कमलककलीसेभी बडा लाल रंगका एक फूल नाकेदार बुरजीके तुल्य आता है, फली कच्ची अवस्थामें हरी होती हैं, उनको तोडकर रखनेसे पीले रंगकी हो जाती हैं.

चिर्भिटनामानि।

चिर्भिटं धेनुदुग्धं च तथा गोरक्षकर्कटी।

भाषा—चिर्भिट, धेनुदुग्ध, गोरक्षकर्कटी ये चिर्भिटके संस्कृत नाम हैं. (सुचित्रा, चित्रफला, क्षेत्रचिर्भिटा, पाण्डुफला, पथ्या, रोचनफला, चिर्भिटिका और कर्कचिर्भिटा ये चिर्भिटके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके चिर्भिटके नाम.

सं.—चिर्भिट. [फूट.
हिं.—कचरिया, सैंध,
बं.—काकुड, गोमुक.
म.—चिबूड, शेंदाड.
गु.—चिभडुं.
क.—अरमेक्के, हिरिमेक्के, दोड्डमेक्के, अडिकेबाळे, पच्चेकायिगिड.
तै.—बुररंगपण्ड्.
ता.—तुम्मिटिकाय.
तु.—अडकाबारे.
फा.—खयार.
अं.—Pubescent cucumber पुबिसेंट ककुंबर.
ला.—Cucumis Pubescens क्युक्युमिस प्युबिसेन्स, Cucumis Trigonus क्युक्युमिस ट्राइगोनस्.

चिर्भिटगुणाः।

चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्तकफापहम्।
अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि पक्वतृष्णं च पित्तलम्॥ ३१॥

भाषा—कचरिया मधुर, रूक्ष, भारी, पित्तनाशक, कफनाशक, गरम नहीं और ग्राही है. पक्की कचरिया गरम और पित्तकारक है॥३१॥

कचरियाका विशेष विवरण.

कचरियाकी बेल चलती है, यह बेल खेत और बागोंमें बोई जाती है, इसके फल चित्रित कण्डूके समान होते हैं और फूल पीले २ होते हैं, उन फलोंमें खर्बूजेके सदृश बीज निकलते हैं.

नालिकेरनामानि।

नालिकेरो दृढफलो लाङ्गली कूर्चशीर्षकः।
तुङ्गः स्कन्धफलश्चैव तृणराजः सदाफलः ३२॥

भाषा—नालिकेर, दृढफल, लांगली, कूर्चशीर्षक, तुङ्ग, स्कन्धफल, तृणराज, सदाफल ये नारियलके संस्कृत नाम हैं. (नारिकेली, नारिकारी, नारिकेरि, नारिकेली, सदापुष्प, शिरःफल, मृदुफल, पुटोदक, नारिकेर, रसफल, सुतुङ्ग, कूर्चशेखर, दृढनीर, नीलतरु, मङ्गल्य, उच्चतरु, स्कन्धतरु, दाक्षिणात्य, दुरारुह, त्र्यम्बकफल, शिराफल, करकाम्भा, पयोधर, मुस्कुण, कौशिकफल, फलमुण्ड, जटाफल, मुण्डफल, विश्वामित्रप्रिय, नारकेर, सुभङ्ग, फलकेशर, वरफल, महाफल, श्रीफल, तोयगर्भ और त्र्यक्षफल ये नारियलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ ३२॥

अनेक भाषाके नारियलके नाम.

सं.—नारिकेर.
हिं.—नारियल, नरियल.
बं.—नारिकेल, नारकोल.
म.—नारळी, माड, नारळ.
गु.—नालीएर.
क.—टेंगिनकायि.
तै.—टेंकाया, नारिकदम
ता.—टेन्नामारं, टेंगा.
तु.—टारे.
मला.—टेना.
उत्.—नडिया. [यल.
फा.—जोजहिन्दी, नारी-
अ.—नारजिल्.
अं.—Coconut Palm कोकोनट् पाम.
ला.—Cocos nusifera कोकोस न्यूसिफेरा.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नालिकेरगुणाः।

नालिकेरफलं शीतं दुर्जरं बस्तिशोधनम्। विष्टम्भि बृंहणं बल्यं वातपित्तास्रदाहनुत् ३३॥ विशेषतः कोमलनालिकेरं निहन्ति पित्तज्वर-पित्तदोषान्। तदेव जीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग्भिः ॥ ३४ ॥ तस्याम्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु। पिपासापित्तजित्स्वादु बस्तिशुद्धिकरं परम् ॥ ३५ ॥ नालिकेरस्य तालस्य खर्जूरस्य शिरांसि तु। कषायस्निग्धमधुरबृंहणानि गुरूणि च ॥ ३६ ॥

भाषा-नारियलका फल (गोला) शीतल, दुर्जर, मूत्राशयशोधक, ग्राही, पुष्टिकारक, बलदायक है और वात, पित्त, रक्तविकार तथा दाहको नाश करता है. कोमल नारियलका फल विशेषकरके पित्तज्वर तथा पित्तके दोषोंको नष्ट करता है. नारियल पुराना भारी, पित्तकारक, विदाही तथा विष्टम्भकारक वैद्योंने कहा है. नारियलका पानी शीतल, हृदयको प्रिय, अग्निको दीपन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक, हलका, तृषा तथा पित्तको नष्टकरनेवाला, मधुरहै और मूत्राशयको शुद्ध करता है. नारियल, ताड और खजूर इनकी शिरा रेषा, कसैली, स्निग्ध, मधुर, पुष्टिकारक और भारी हैं ॥ ३३-३६ ॥

नारियलका विशेष विवरण.

नारियलका बहुत बडा वृक्ष होता है, आकार खजूर और ताडके समान होता है, यह वृक्ष पूर्वकी ओर कलकत्ते और जगन्नाथमें और कोची, मुम्बईमें बहुत हैं विशेष करके नदी अथवा समुद्रके निकट अधिक उत्पन्न होते हैं, इसमें शाखा नहीं होती, इसमें ऊपरके भाग खजूरकेसे पत्ते होते हैं, उनही पत्तोंके बीचमें नारियल लगते हैं, उस नारियलको फोडके निचोडनेसे जो रस निकलता है, उनको नारियलका दूध कहत ह; नब वे नारियल सूख जाते हैं तो उनके भितरके भागको गोला अथवा खोपडा कहते हैं, ये फल मंगलादि कार्यामें बहुत लिये जाते हैं.

कालिन्दनामानि।

कालिंदं कृष्णबीजं स्यात्कालिङ्गं च सुवर्तुलम्।

भाषा-कालिन्द, कृष्णबीज, कालिङ्ग, सुवर्त्तुल ये तरबूजके संस्कृत नाम हैं. (मांसफल, हित्रःफल, चित्रवल्लिका, चित्र, मधुरफल, वृत्तफल, घृणाफल, मांसल, अल्पप्रमाणक, सुखाश, राजतिनिष, लतापनस, नाटाम्र, ब्रेट, शीर्णवृन्त, बृहद्गोल, मुखवास, सेट, गोडुम्ब, रक्तबीज, चेलान और मूत्रल ये तरबूजके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तरबूजके नाम.

सं.-कालिन्द.	गो.-बच्चंगा.
हिं.-तरमुज, हिँदोना.	उत्.-तरपुज.
बं.-तरमुज.	फा.-हिंदवाना.
म.-कलिंगड, टरबुज.	अ.-बत्तिखहिंदी.
गु.-तरबूज, कालिंगडुं.	अं.-Water Melon वाटर मेलन.
क.-कौंडे, बच्चंगायि.	
तै.-तरबूजं, पुच्चकाया.	ला.-Citrullus Vulgaris साइट्रलस वलगेरिस.
ता.-कोम्मट्टी.	
तु.-बच्चंगे.	
मला.-वत्तक.	

कालिंदगुणाः।

कालिंदं ग्राहि दृक्पित्तशुक्रहृच्छीतलं गुरु। पक्वं तु सोष्णं सक्षारं पित्तलं कफवातजित् ३७

भाषा-तरबूज ग्राही, शीतल, भारी है और दृष्टिकी शक्ति, पित्त तथा वीर्यको हरनेवाला है. पक्का तरबूज गरम, खारी, पित्तकारक, कफनाशक तथा वातविनाशक है ॥ ३७ ॥

तरबूजका विशेष विवरण.

तरबूज रेतली भूमिमें नदीके निकट बोये जाते हैं. इसकी वेल चलती है. इसके पत्ते गोल, कटीले और कँगूरेदार होते हैं और फूल हरे काले विचित्र और सफेद रंगके होते हैं, कच्चे फलका गूदा सफेद और पकनेपर गूदा लाल और बीजभी लाल होते हैं. चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ इन तीन महीनोंमें असंख्यात तरबूजे आते हैं, दूसरे सरदे तरबूज होते हैं, उनका सब आकार तो इसी प्रकारका होता है; परन्तु गूदा पीला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और बीज काले रंगके होते हैं, इनकी बहार कार्तिक अगहनमें होती है, इनका रंग हरा और सफेद् चित्रित होता है, और असली तरबूज चैत्र वैशाखवाले कोई काले और कोई सफेद् और कोई कोई चीतलभी होते हैं. किसी २ देशमें सदैव तरबूज होते हैं.

खर्बूजनामानि।

दशाङ्गुलं तु खर्बूजं कथ्यंते तद्गुणा अथ।

भाषा–दशांगुल, खर्बूज ये खरबूजेके संस्कृत नाम हैं. (फलराज, अमृताह्व, षड्भुजा, मधुफला, षड्रेखा, वृत्तकर्कटी, तिक्ता, तिक्तफला, मधुपाका, वृत्तेर्वारु और षण्मुखा ये खरबूजेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके खरबूजेके नाम.

सं.–खर्बूज.	तै.–खरबुजं.
हिं.–खरबूजा.	फा.–खरपुजा.
बं.–खरमुज, खरबुजा.	अ.–बित्तिख.
म.–खर्बुज.	अं.–Melon मेलन.
गु.–खरबुज, तळियां-शकरटेटी.	ला.–Cucumis melo कुक्युमिस मेलो.
क.–षड्भुजा सौते.	

खर्बूजगुणाः।

खर्बूजं मूत्रलं बल्यं कोष्ठशुद्धिकरं गुरु। स्निग्धं स्वादुतरं शीतं वृष्यं पित्तानिलापहम् ॥३८॥ तेषु यच्चाम्लमधुरं सक्षारं च रसाद्भवेत्। रक्तपित्तकरं तत्तु मूत्रकृच्छ्रकरं परम् ॥ ३९ ॥

भाषा–खरबूजा मूत्रकारक, बलदायक, कोठेको शुद्ध करनेवाला, स्निग्ध, अत्यन्त स्वादिष्ठ, शीतल, वीर्यवर्द्धक, पित्तनाशक, वातनाशक है. जो खरबूजा खट्टा, मीठा और खारी रसका होय वह रक्तपित्त तथा अत्यन्त मूत्रकृच्छ्रको करता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

खरबूजेका विशेष विवरण.

खर्बूजेकी बेल नदीके निकट रेतीमें उत्पन्न होती है. इसके पत्ते गोल गोल और फूल पीले रंगके होते हैं, चैत्र वैशाखमें फल लगते हैं, फल देखनेमें अत्यन्त शोभायमान और दश रेखा युक्त होते हैं. रंग पीला और रेखाओंका रंग नीला होता है, उसके भीतर गुदे समेत बीज निकलते हैं, उस गूदेको धोकर बीज निकाल लेते हैं, बीजोंको छीलकर मींग निकाल लेते हैं.

त्रपुसनामानि।

त्रपुसं कण्टकिफलं सुधावासः सुशीतलम्।

भाषा–त्रपुस, कण्टकिफल, सुधावास, सुशीतल ये खीरेके संस्कृत नाम हैं. (पीतपुष्पा, काण्डालु, कण्टालु, त्रपुस, कर्कटी, बहुफला, कण्टकिलता, कोषफला, तुन्दिलफला और सुधावासा ये खीरेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके खीरेके नाम.

सं.–त्रपुस.	तु.–तेक्करे.
हिं.–खीरा.	मला.–मुळ्ळनवेळ्ळरि.
बं.–शँशा.	फा.–शियार खुर्द.
म.–तौसें, तवसे, खिरा.	अं.–The Cucumber दी कुक्युम्बर.
गु.–तांस्लि.	ला.–Cucumis Sativus कुक्युमिस् सेटिव्हस्.
क.–तसेयकायि मुळ्ळसौते.	
तै.–दोजकाइ.	
ता.–मु वेळ्ळरि.	

त्रपुसगुणाः।

त्रपुसं लघु नीलं च नवं तृट्क्लमदाहजित्। स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरं परम्॥४०॥ तत्पक्वमम्लमुष्णं स्यात्पित्तलं कफवातनुत्। तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित्॥४१

भाषा–छोटा नीला और नवीन खीरा मधुर, शीतल है और तृषा, ग्लानि, दाह, पित्त तथा अत्यन्त रक्तपित्तका नाश करता है. पक्का खीरा खट्टा, गरम, पित्तकारक, कफनाशक तथा वातनाशक है. खीरेका बीज मूत्रकारक, शीतल, रूखा, पित्तनाशक तथा मूत्रकृच्छ्रनाशक है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

खीरेका विशेष विवरण.

खीरे माली लोग खेतोंमें बहुत बोते हैं; और इसकी बेल चलती है, परन्तु इनकी दो जाती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती हैं, एक तो खेतोंमें बोये जाते हैं. भूमिहीमें वेल फैलकर फल फूल आते हैं, फूल पीले और फल एक एक बालिस्त लम्बे होते हैं. दूसरे बालमखीरे कहलाते हैं. उनकीभी वेल चलतीहै. खीरे लम्बे लम्बे होते हैं, और रंगके पीले बीच बीचमें कांटोंकेसे चिह्न होते हैं, और सब आकार उसी प्रकारके हैं परन्तु पक जानेपर दोनों जातिके खीरोंमें बीज निकलते हैं. बालम खीरे (बालम काकडी) मालवेमें बहुत होते हैं.

पूगीफलनामानि।

पूगी पूगश्च घोरण्टः गुवाकः क्रमुकोऽस्य तु।
फलं पूगीफलं प्रोक्तमुद्वेगं च तदीरितम्॥४२॥

भाषा-पूगी, पूग, घोरंट, गुवाक, क्रमुक ये सुपारीके संस्कृत नाम हैं. (घोण्टा, गूवाक, कवीतन, क्रमु, क्रमुकी, पूगवृक्ष, दीर्घपादप, दृढवल्कल, वल्करु, चिक्कण, अकोट, तन्तुसार, सुरंजन, गोपदल, राजताल, छत्राफल और करमट्ट ये सुपारीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४२ ॥

अनेक भाषाके सुपारीके नाम.

सं.-पूग.	मला.-कमुकु.
हिं.-सुपारी.	ता.-कमुकु.
बं.-सुपारी.	फा.-पोपिल.
म.-सुपारी, पोफळ.	अ.-फोफिल.
गु.-सोपारी. [डिके.	अं.-Betelnut palm विटलनट्पाम.
क.-अडिकेमारा अ-	ला.-Areca-catechu एरिका केटेचु.
तै.-पोकाकाया.	
तु.-कांगु.	

पूगगुणाः।

पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तजित्।
मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम्॥४३॥
आर्द्रं तद्वर्वभिष्यन्दि वह्निदृष्टिहरं स्मृतम्।
स्विन्नं दोषत्रयच्छेदि दृढमध्यं तदुत्तमम्॥४४॥

भाषा-सुपारी भारी, शीतल, रूक्ष, कसैली, मोहजनक, अग्निप्रदीपक, रुचिकारी है और कफ, पित्त तथा मुखकी विरसताको दूर करती है. गीली (कच्ची) सुपारी भारी, अभिष्यन्दि है और जठराग्नि तथा नेत्रोंकी दृष्टिको हरती है. चिकनी सुपारी त्रिदोषनाशक है. जिस सुपारीका मध्य भाग दृढ होय वह सुपारी उत्तम है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

सुपारीका विशेष विवरण.

सुपारीके वृक्ष ताड और नारियलकी जातिके लम्बे बागोंमें बहुत होते हैं, इसका वृक्ष खम्भके समान सीधा चला जाता है, इसके पत्ते बडे बडे नारियलकेसे होते हैं. इसके ऊपर बडे बडे बेरके शिरके सदृश कुछ लम्बाई लिये गोल गोल फल आते हैं, उनको छीलनेसे भीतरसे सुपारी निकलती है, सुपारीकी अनेक जाती हैं; जिहाजी, श्रीवर्धनी, माणिकचन्दी, चिकनी और अनेक प्रकारकी होती हैं.

तालनामानि।

तालस्तु लेखपत्रः स्यात्तृणराजो महोन्नतः।

भाषा-ताल, लेखपत्र, तृणराज, महोन्नत ये ताडके संस्कृत नाम हैं. (तल, भूमिपिशाच, दीर्घतरु, द्रुमश्रेष्ठ, द्रुमेश्वर, तालद्रुम, पत्री, दीर्घस्कन्ध, ध्वजद्रुम, मधुरस, मदान्ध्य, दीर्घपादप, चिरायु, तरुराज, दीर्घपत्र, गुच्छपत्र, आसवद्रु, करपत्रवान्, दीर्घद्रु, तन्तुनिर्यास, तन्तुगर्भ और शतपर्वा ये ताडके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके ताडके नाम.

सं.-ताल.	गो.-तळटमाड्डो.
हिं.-ताड.	फा.-ताल.
बं.-ताल.	अ.-तार.
म.-ताड.	अं.-Palmyra Palm पालमाइरापाम.
गु.-ताड.	
क.-ताळिमारा.	ला.-Barassus Flabelliformis बोरेसस फ्लेबेलिफोर्मिस.
तै.-तालमु, ताति.	
ता.-ताळि, पनेमारं.	
तु.-तारि.	
मला.-तालं, पना.	

तालगुणाः।

पक्वं तालफलं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम्। दुर्जरं बहुमूत्रं च तन्द्राभिष्यन्दि शुक्रदम्॥ ४५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तालमज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मदकरो लघुः ।
श्लेष्मलो वातपित्तघ्नः सस्नेहो मधुरः सरः४६॥

भाषा–ताडका पक्का फल पित्तवर्धक, रक्तवर्धक तथा कफवर्द्धक, दुर्जर, सहजही नहीं पचनेवाला, बहुत मूत्र लानेवाला, अभिष्यन्दि, तन्द्रा और वीर्यको देनेवाला है. नवीन ताडकी मींग किंचित् मदकारी, हलकी, कफकारक, वातनाशक, पित्तनाशक, स्निग्ध, मधुर और दस्तावर है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

ताडीगुणाः ।

तालजं तरुणं तोयमतीव मदकृन्मतम् ।
अम्लीभूतं तदा तु स्यात्पित्तकृद्वातदोषहृत् ४७

भाषा–ताडीका नवीन रस अत्यन्त मदकारक (नसा लानेवाला) है. यदि यह खट्टा होगया होय तो पित्तकारक और वातनाशक है ॥४७॥

ताडका विशेष विवरण.

ताडके वृक्ष बडे बडे ऊँचे होते हैं. इनकी दो जाति हैं, एक नर और दूसरी नारी, उनकी यह परीक्षा है कि, नरमें फल नहीं आते और नारीमें फल आते हैं. नरमें डाली नहीं होती और खंभके समान इकसार बहुत ऊँचा होता है और नारीजातिके ताडमें बडे बडे नारियलके सदृश फल लगते हैं; उस वृक्षको ऊपरसे गोद देते हैं, उसमें जो रस निकलता है उसको किसी पात्रमें ले लेते हैं. उस रसको ताडी कहते हैं, ताडके पत्ते लम्बे चौडे चार चार फुटके होते हैं; इनके पंखे बडे २ बनते हैं, उसके फलोंको तडवे कहते हैं.

बिल्वनामानि ।

बिल्वः शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि ।
बालं बिल्वफलं बिल्वकर्कटी बिल्वपेशिका४८

भाषा–बिल्व, शांडिल्य, शैलूष, मालूर, श्रीफल ये बेलके संस्कृत नाम हैं. (महाकपित्थाख्य, श्रीफल, गोहरीतकी, पूतिवात, मंगल्य, त्रिशिख, कपोतन, महाकपित्थ, अतिमंगल्य, महाफल, शल्य, हव्यगन्ध, शलाटु, कर्कटाह्व, शैलपत्र, शिवेष्ट, पत्रश्रेष्ठ, त्रिपत्र, गन्धपत्र, लक्ष्मीफल, गन्धफल, दुरारुह, त्रिशाखपत्र, शिवद्रुम, सदाफल, सत्यफल, सुनीतिक, समीरसार, सत्यधर्म, अधरारुह, कण्टकाढ्य, सितानन, नीलमल्लिक, पीतफल और सोमहरीतकी ये बेलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) कच्चे बेलफलको बिल्वकर्कटी और बिल्वपेशिका कहते हैं ॥४८ ॥

अनेक भाषाके बेलके नाम.

सं.–बिल्व.	तै.–मारेडचेट्टु, बिल्व.
हिं.–बेल.	ता.–बिल्वम्.
बं.–बिल्व, बेल.	अं.–Bangalkins बँगालकीन्स.
म.–बेलवृक्ष, बेलफळ, बेलफला.	ला.–Eaglmarmelos ईगलमार्मेलोझ.
गु.–बीली.	
क.–बेल्लवन्, बेलपत्रि.	

बिल्वगुणाः ।

ग्राहिणी कफवातामशूलघ्नी बिल्वपेशिका ।

भाषा–कच्चा बेल ग्राही है और कफ, वात, आम तथा शूलको नष्ट करता है ॥

अन्यच्च ।

बालं बिल्वफलं ग्राहि दीपनं पाचनं कटु ।
कषायोष्णं लघु स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् ॥ ४९ ॥ पक्वं गुरु त्रिदोषं स्याद्दुर्जरं पूति मारुतम् । विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वह्निमान्द्यकृत् ॥ ५० ॥ फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम् । बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम् ॥ द्राक्षाबिल्वशिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ॥ ५१ ॥

भाषा–अन्य ग्रंथोंमेंभी कहा है कि कच्चा बेल ग्राही, अग्निप्रदीपक, पाचक, चरपरा, कसैला, गरम, हलका, स्निग्ध, चिक्कन, कडवा और वातनाशक तथा कफनाशक है. पक्का बेलफल भारी, तीनों दोषवाला, दुर्जर, दुर्गन्धित, विदाहि (दाह करनेवाला), ग्राही, मधुर और अग्निको मंद करनेवाला है. बेलके अतिरिक्त शेष सब फल पके हुए गुणदायक हैं, परन्तु बेल तौ कच्चाही अधिक गुणवाला है. दाख, बेल और आंवला हरड आदि फल सूखे हुए तो अधिक गुणवाले हैं ॥ ४९–५१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बेलका विशेष विवरण.

बेलका वृक्ष बडा होता है. इसकी शाखाओंमें कांटे होते हैं, इसके पत्ते डालियोंमें बहुत होते हैं. एक डंटलमें तीन तीन पत्ते त्रिशूलाकार होते हैं. इसके फूल सफेद और सुगन्धित छोटे २ होते हैं और इसके फल गोल गोल कडे छिलकेके तोलमें आध पावसे लेकर डाईसेर तकके होते हैं. खानेमें स्वादिष्ठ और बीज बहुत होते हैं और गोंदके समान एक पदार्थ चुपकता हुआ उसके गूदेमें मिला होता है. इसका कच्चा फल औषधिके प्रयोगमें आता है. बेलफलकी जगह बेलगिरीभी प्रयोगमें लेते हैं. इसकी प्रतिनिधि इमलीके बीज हैं और दर्पनाशक अजमायन है. इसकी मात्रा ७ मासेकी है.

कपित्थनामानि।

कपित्थस्तु दधित्थः स्यात्तथा पुष्पफलः स्मृतः। कपिप्रियो दधिफलस्तथा दन्तशठोऽपि च ॥ ५२ ॥

भाषा-कपित्थ, दधित्थ, पुष्पफल, कपिप्रिय, दधिफल, दन्तशठ ये कैथके संस्कृत नाम हैं. (मन्मथ, कवित्थ, देवपादाढ्य, मालूर, मंगल्य, नील, मल्लिका, ग्राहिफल, चिरपाकी, ग्रन्थिफल, कुचफल, कपीष्ट, गंधफल, दन्तफल, करभवल्लभ, काठिन्यफल, करंजफलक और अक्षसस्य ये कैथके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५२ ॥

अनेक भाषाके कैथके नाम.

सं.-कपित्थ.	मला.-विळावु.
हिं.-कैथ, कैथा.	अं.-Wood Apple वुडएपल, Elephant Apple एलिफंट एपल.
बं.-कयेथगाछ, कत्वेल.	
म.-कंवठ.	
गु.-कोठ.	
क.-बेलडा, वळुवल बेलळु.	ला.-Feronia Elephantinum फेरोनिया एलिफेंटिनम्.
तै.-एलांगाकाया.	
ता.-विळामारं.	

कपित्थगुणाः।

कपित्थमामं संग्राहि कषायं लघु लेखनम्। पक्वं गुरु तृषाहिक्काश्मनं वातपित्तजित् ॥ स्यादल्पं तुवरं कण्ठशोधनं ग्राहि दुर्जरम् ५३॥

भाषा-कैथका कच्चा फल ग्राही, कसैला, हलका और लेखन है. कैथका पक्का फल भारी है और तृषा, हिचकी, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाला है. बहुतही छोटा फल कसैला, कण्ठको शुद्ध करनेवाला, ग्राही तथा दुर्जर है ॥ ५३ ॥

कैथका विशेष विवरण.

कैथके वृक्ष सम्पूर्ण हिन्दुस्थानमें पाये जाते हैं, लम्बाईमें अत्यन्त ऊंचे और झादेदार होते हैं. इसके पत्ते छोटे और चिकने मेहँदी पत्तोंके समान होते हैं और फूल छोटे छोटे सफेद रंगके होते हैं, वर्षाऋतुमें इसकी कलियें निकलती हैं और फल बेलके समान गोल गोल आते हैं. उन फलोंमें एक बडा आश्चर्यजनक गुण यह है कि, उस फलको कोई हाथी खाजाय तो उसके पेटमें उसका सार भाग अर्थात् गूदा निकल जायगा और गूदे रहित और देखनेमें जैसेका तैसा कहींसे टूटा फूटा नहीं ऐसा कैथ सावित मलके साथ निकल जाता है.

नारङ्गनामानि।

नारङ्गो नागरङ्गः स्यात्त्वक्सुगन्धो मुखप्रियः।

भाषा-नारङ्ग, नागरङ्ग, त्वक्सुगन्ध, मुखप्रिय ये नारंगीके संस्कृत नाम हैं. (नार्यंग, नागर, ऐरावत, नागरुक, चक्राधिवासी, किर्मिर, किर्मिरत्वक्, सुरंग, त्वग्गन्ध, इरावत, चक्रवास, योगरंग, गन्धाढ्य, गंधपत्र और वरिष्ठ ये नारंगीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके नारङ्गीके नाम.

सं.-नारंग.	तु.-किचिलि.
हिं.-नारंगी.	मला.-मधुरनारकं.
बं.-नारंगालेबु.	फा.-नारंज.
म.-नारिंग.	अ.-नारंज.
गु.-नारिंगी.	अं.-Orange ऑरेंज.
क.-कित्तले, हेरळे.	ला.-Citrus Aurantium साइट्रस ओरेंटियम्.
तै.-दयाकाया, नारंगमु.	
ता.-नारंगं.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारङ्गगुणाः ।

नारङ्गो मधुराम्लः स्यादीपनो वातनाशनः ।
अपरं त्वम्लमत्युष्णं दुर्जरं वातहृत्सरम् ॥५४॥

भाषा–नारंगी मधुर, खट्टी, अग्निको दीपन करनेवाली और वातनाशक है. दूसरी जातिकी नारंगी खट्टी, बहुत गरम, दुर्जर, वातनाशक और दस्तावर है ॥ ५४ ॥

नारंगीका विशेष विवरण.

नारंगीके वृक्ष मध्यम जातिके बागोंमें बहुत होते हैं. इसके पत्ते निम्बूके समान होते हैं और फूल अत्यन्त सुगन्धित और सफेद रंगके आते हैं, तथा फल गोल गोल होते हैं, कच्ची अवस्थामें हरे और पकनेपर लाल सिन्दूरिया रंगके हो जाते हैं.

तिन्दुकनामानि ।

तिन्दुकः स्फूर्जकः कालस्कन्धश्चासितकारकः ।

भाषा–तिन्दुक, स्फूर्जक, कालस्कन्ध, असितकारक ये तेंदूके संस्कृत नाम हैं. (अनिलसार, अतिमुक्तक, स्फूर्जन, सृष्ट, स्यन्दन, रावण, रव, कृष्णत्वक्, कृष्णसार, सुसार, विरूपक, शितिसारक, स्फूर्जक, तिंदु, केन्दु, तिन्दुल, तिन्दुकि, तिन्दुकी, नीलसार, स्वर्यक, रवण और स्यन्दनाह्वय ये तेंदूके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तेंदूके नाम.

सं.–तिन्दुक.
हिं.–तेंदू.
बं.–गाव, तेंद.
म.–टेंभुर्णी, आयन.
.–टिंबरवो.
क.–टुंबरु, जगळमर.
तै.–तमिक्.
ता.–तुम्बिक.
फा.–अबनुसुझाड.
अं.–Ebony एबनी.
ला.–Diospyros Embryopteris डायोस्पाइरोस् एम्ब्रिओप्टेरिस.

तिन्दुकगुणाः ।

स्यादामं तिन्दुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ।
पक्वं पित्तप्रमेहास्रश्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु ॥ ५५ ॥

भाषा–तेंदूका कच्चा फल ग्राही, वातकारक, शीतल और हलका है. तेंदूका पक्का फल मधुर, भारी है और पित्त, प्रमेह, रक्तविकार तथा कफको नष्ट करता है ॥ ५५ ॥

तेंदूका विशेष विवरण.

तेंदूके वृक्ष अत्यन्त ऊँचे ऊँचे होते हैं, इसके पत्ते गोल गोल नोकदार शीशमकेसे होते हैं. छाल काली काली होती है, उसमें खार होता है, इसकी लकडी स्थानादिकोंके बनानेके काममें आती है. इसके भीतरका सार काला और वजनदार होता है, हिन्दुस्थानी लोग इसको आवनूस कहते हैं, तेंदूके फल गोल और शोभायमान निम्बूके समान हरे हरे होते हैं, पकनेपर पीले पड जाते हैं.

कुपीलुनामानि ।

तिन्दुको यस्तु कथितो जलदो दीर्घपत्रकः ।
कुपीलुः कुलकः कालस्तिन्दुकः कालपीलुकः ॥
काकेन्दुर्विषतिन्दुश्च तथा मर्कटतिन्दुकः ॥५६॥

भाषा–तिन्दुक, जलद, दीर्घपत्रक, कुपीलु, कुलक, कालतिन्दुक, कालपीलुक, काकेन्दु, विषतिन्दु, मर्कटतिन्दुक ये कुचलेके संस्कृत नाम हैं. (कारस्कर, किम्पाक, विषतिन्दु, विषद्रुम, गरद्रुम, रम्यफल, कुपाक, कालकूटक, कच्चीर, वर्तुल और चिपिट ये कुचलेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५६ ॥

अनेक भाषाके कुचलेके नाम.

सं.–तिन्दुक.
हिं.–कुचला.
बं.–कुंचिले.
म.–कुचला.
कों.–काजरा.
गु.–झेरकोचला.
क.–कांजिवार.
तै.–मुष्टिचेट्टु, मुसिडि.
ता.–एट्टेमारं, कोकोडि.
तु.–कायेरुमारा.
मला.–कन्निराम.
फा.–इफराकी.
अ.–कातिलुल्कल्क फलूजमाही.
अं.–Pison Nut पाइजन नट्, Vomit Nut वोमिट् नट.
ला.–Strychnos xvomica नास् नक्सवामिका.

कुपीलुगुणाः ।

कुपीलुः शीतलस्तिक्तो वातलो मदकृल्लघुः ।
पादव्यथाहरो ग्राही कफपित्तास्ननाशनः ॥५७॥

भाषा–कुचला शीतल, कडवा, वातकारक, मदकर्त्ता (नसा करनेवाला), हलका, पाँवकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीडाको दूर करनेवाला, ग्राही है और कफ, पित्त तथा रुधिरविकारका नाश करता है॥५७॥

कुचिलेका विशेष विवरण.

कुचिलेके वृक्ष मध्यम आकारके होते हैं, प्रायः वनोंमें बहुत देखनेमें आते हैं, इसके पत्ते पानके समान और फल नारंगीकेसे सुन्दर सुन्दर होते हैं, इसके बीजोंको कुचिला कहते हैं.

राजजम्बूनामानि ।

फलेन्द्रा कथिता नन्दी राजजम्बूर्महाफला ।
तथा सुरभिपत्रा च महाजम्बूरपि स्मृता॥५८॥

भाषा-फलेंद्रा, नन्दी, राजजंबू, महाफला, सुरभिपत्रा, महाजंबू ये बडी जामुनके संस्कृत नाम हैं. (स्वर्णमाता, शुकप्रिया, कोकिलेष्टा, महानीला, बृहत्फला, महापत्रा, फलेंद्र और नन्द ये बडी जामुनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५८ ॥

अनेक भाषाके बडी जामुनके नाम.

सं.-राजजम्बू.	ते.-पेद्दनेरडि.
हिं.-बडीजामुन, फरेंद्र.	अं.-Jambul Tree जाम्बुल ट्री.
बं.-बडजाम.	ला.-Eugenia Jambolana युजिनिया जांबोलेना.
म.-रायजाम्भूळ.	
गु.-जाम्बु.	
क.-दोड्डनिरलु.	

राजजम्बूगुणाः ।

राजजम्बूफलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रोचनम् ।

भाषा-बडी जामुन स्वादिष्ठ, विष्टम्भि, भारी और रुचिकारी है ॥

जलजम्बुकानामानि ।

क्षुद्रा जम्बूः सूक्ष्मपत्रा नादेयी जलजम्बुका ।

भाषा-क्षुद्रजम्बू, सूक्ष्मपत्रा, नादेयी, जलजम्बुका ये छोटी जामुनके संस्कृत नाम हैं. (दीर्घपत्रा और सूक्ष्मकृष्णफला ये छोटी जामुनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके छोटी जामुनके नाम.

सं.-जलजम्बुका.	म.-लहान जांभूळ.
हिं.-छोटी जामुन.	गु.-क्षुद्रजंबु.
बं.-क्षुद्रेजाम.	

जंबूगुणाः ।

जम्बूः संग्राहिणी रूक्षा कफपित्तास्रदाहजित् ।

भाषा-छोटी जामुन ग्राही, रूक्ष है और कफ, पित्त, रुधिरविकार, तथा दाहको दूर करती है ॥

जामुनका विशेष विवरण.

जामुनके वृक्ष तीन चार प्रकारके होते हैं, एक नदीके निकट होते हैं, जिनके पत्ते कनेरके समान होते हैं. उनको नदीजामुन कहते हैं, दूसरी बडी जामुन होती है उसके पत्ते पीपलकेसे होते हैं, उसको जमुना कहते हैं, तीसरी साधारण जामुन होती है, उसके पत्ते आमकेसे होते हैं, फल मध्यम जातिका होता है, कच्ची अवस्थामें हरी हरी होती हैं और पकनेपर उनका रंग बैंजनी हो जाता है, फूलके स्थानमें जामुनपर मौरही आता है.

बदरीनामानि ।

पुंसि स्त्रियां च कर्कन्धूर्बदरी कोलमित्यपि ।
फेनिलं कुवलं घोंटा सौवीरं बदरं महत् ॥
अजप्रिया कुहा कोली विषमोभयकण्टका॥५९॥

भाषा-कर्कंधू, कर्कंधु (स्त्रीलिंग तथा पुँल्लिंग), बदरी, कोल, अजप्रिया, कुहा, कोली, विषमा और उभयकण्टका ये छोटे बेरके संस्कृत नाम हैं और फेनिल, कुवल, घोंटा, सौवीर और बदर ये बडे बेरके संस्कृत नाम हैं.) ॥ ५९ ॥

अनेक भाषाके बेरके नाम.

सं.-बदरी, बदर.	ता.-इलंडे, कल्लारि.
हिं.-बेर, छोटाबेर.	तु.-बोगोरि.
बं.-कुलफल, बडकुलगाछ.	मला.-इलांटा, कोलं.
म.-बोर, रायबोर.	फा.-कुनार.
गु.-बोरडी.	अ.-सीदरनबक.
क.-येरनु, यळचे.	अं.-Jujab जुजब.
तै.-रेगुपंडु, रेगुचेट्टु.	ला.-Zizyphus Jujuba जिजिफस जुजुवा.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वदरविशेषाणां लक्षणानि गुणाश्च ।

पक्व्यमानं सुमधुरं सौवीरं वदरं महत् । सौवीरं वदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥६०॥ बृंहणं पित्तदाहासृक्षयतृष्णानिवारणम् । सौवीरं लघु सम्पक्वं मधुरं कोलमुच्यते ॥ ६१ ॥ कोलं तु वदरं ग्राहि रुच्यमुष्णं च वातलम् । कफपित्तकरं चापि गुरु सारकमीरितम् ॥६२॥ कर्कन्धूः क्षुद्रवदरं कथितं पूर्वसूरिभिः । अम्लं स्यात्क्षुद्रवदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥ ६३ ॥ स्निग्धं गुरु च तिक्तं च वातपित्तापहं स्मृतम् । शुष्कं भेद्यग्निकृत्सर्वं लघुतृष्णाक्लमास्रजित् ॥ ६४ ॥

भाषा–पका हुआ और बहुत मीठा जो वडा वेर होता है उसे सौवीर कहते हैं. वडा (सौवीर) वेर शीतल, दस्तावर, भारी, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक है और पित्त, दाह, रुधिरविकार, क्षय तथा तृषाको नष्ट करनेवाला है. जो पका हुआ और छोटा वेर होय वह कोल कहाता है. कोलवेर ग्राही, रुचिकारक, गरम, वातकारक, कफकारक, पित्तकारक, भारी और दस्तावर है. बहुत छोटे अर्थात् झडिया बेरको कर्कंधु कहते हैं. कर्कन्धुवेर खट्टा, कसैला, किंचित् मीठा, स्निग्ध, भारी, कडवा और वातनाशक, पित्तनाशक है. सूखा हुआ बेर दस्तावर, अग्निवर्द्धक, हलका है और तृषा, ग्लानि तथा रक्तविकारको दूर करता है ॥ ६०–६४ ॥

वेरका विशेष विवरण.

वेरके वृक्ष अनेक जातिके होते हैं और ये सब स्थानोंमें देखे जाते हैं. इसके वृक्ष काँटेदार मध्यम भागके होते हैं और पत्ते छोटे और गोल कुछेक लम्बाई लिये होते हैं, फूल बौरहीमें छोटे छोटे सफेद रंगके होते हैं, फल अपनी अपनी जातिके आते हैं, छोटे, बडे, लम्बे, गोल, पैवन्दी, कठा, पौडा और रामपुरी इत्यादि. एक और झडबेर कहलाते हैं, उनके क्षुप छोटे छोटे पृथ्वीपर फैले हुए होते हैं, उनका एक वनही है जिसका नाम श्रीवद्रिकाश्रम है. दिल्लीसे आगे कोसोंतक वेरहीके वृक्ष देखनेमें आते हैं, उनही क्षुपोंको काट कांटकर और उनके पत्ते झाड झाडकर वडे वडे ऊँचे ढेर लगा देते हैं, उसको पाला कहते हैं, उसीसे गाय भैंसोंकी उदरपूरणा होती है. उन क्षुपोंमें झोटे छोटे वेरभी लगते हैं प्रथम हरे होते हैं, मध्यम अवस्थामें पीले और अन्त समय लाल पडकर सुकडेसे हो जाते हैं.

प्राचीनामलकनामानि ।

प्राचीनामलकं लोके पानीयामलकं स्मृतम् ।

भाषा–प्राचीन आमलेको लोकमें पानीयामलक कहते हैं ॥

अनेक भाषाके प्राचीनामलकके नाम.

सं.–प्राचीनामलक.
हिं.–पानीआमला.
बं.–पानि अम्बरा.
म.–पानआंवळे.
गु.–पाणिआंवला.
अं.–Flacaurtia Cataphracta फ्लाकुर्श्या काटाफ्राक्टा.
ला.–Flaro Montchii फ्लारो मोचिआई.

प्राचीनामलकगुणाः ।

प्राचीनामलकं दोषत्रयजिज्ज्वरघाति च ।

भाषा–पानी आमला तीनों दोष तथा ज्वरका नाश करता है ॥

पानीआमलेका विशेष विवरण.

पानीआमलेके वृक्ष जलाशयके समीप होते हैं, इसमें काँटेभी होते हैं, इसके पत्ते लम्बे और फल लाल लाल वेरके समान कठिया होते हैं.

लवलीनामानि ।

सुगन्धमूला लवली पाण्डुः कोमलवल्कला ।

भाषा–सुगन्धमूला, लवली, पाण्डु और कोमलवल्कला ये लवलीफलके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके हरफारेवडीके नाम.

सं.–लवली.
हिं.–लवलीफल, हरफारेवडी.
बं.–नोयाड, नोयाल.
म.–रायआँवळा.
गु.–हरफारेवडी.
ला.–Ciccodisticha साइकाडिस्टिका.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लवलीगुणाः ।

लवलीफलमश्मार्शःकफपित्तहरं गुरु ।
विशदं रोचनं रूक्षं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे ॥६५॥

भाषा—लवलीफल भारी, विशद, रुचिकारक, रूक्ष, स्वादु, अम्ल, कसैला ह और पथरी, बवासीर, कफ तथा पित्तका नाश करता है ॥६५॥

हरफारेवडीका विशेष विवरण.

हरफारेवडीके बहुत सुन्दर सुन्दर वृक्ष पुष्पोद्यानोंमें होते हैं. इसके पत्ते कसौंदीके समान होते हैं और फल गूलरके सदृश शाखाओंमेंसे निकलते हैं.

करमर्दनामानि ।

करमर्दः सुषेणः स्यात्कृष्णपाकफलस्तथा ।
तस्माल्लघुफला या तु सा ज्ञेया करमर्दिका ६६

भाषा—करमर्द, सुषेण, कृष्णपाकफल ये करौंदेके संस्कृत नाम हैं. (वनेक्षुद्रा, कराम्ल, करमर्दक, अविघ्न, करामर्द, कृष्णफल, कृष्णफलपाक, पाककृष्ण, फलकृष्ण, वनालय, वनालय, कराम्बुक, कणचूक, वोल, वश, करमर्दी, कराम्लक, पाणिमर्द, कण्टकी, अविघ्न, सुपुष्प, दृढकण्टक, जातिपुष्प, क्षीरफल, डिण्डिम, गुच्छी, क्षारी और वहुदल ये करौंदेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) जिसमें छोटा फल आता है उसको करमर्दिका (करौंदी) कहते हैं ॥ ६६ ॥

अनेक भाषाके करौंदेके नाम.

सं.—करमर्द.
हिं.—करौंदा, करौंदी.
बं.—करमचा.
म.—करवंद.
गु.—करमदां.
क.—करिजिगे.
तै.—वाका.
अं.—Jasmineflowered Carissa जास्मिन्फ्लावर्ड केरिसा.
ला.—Carissa Corndas केरिसा कोरंदास.

करमर्दगुणाः ।

करमर्दद्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषाहरम् । उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥ तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्तसमीरजित् ॥ ६७ ॥

भाषा—दोनों करौंदोंके कच्चे फल खट्टे, भारी, तृषानाशक, गरम, रुचिकारी, रक्तपित्तकारक तथा कफकारक हैं. पक्का करौंदा मीठा, रुचिकारी, हलका, पित्तनाशक तथा वातविनाशक है ॥ ६७ ॥

करौंदेका विशेष विवरण.

करौंदेके क्षुप बागोंमें बहुत होते हैं. इसके फूल सफेद और सुगन्धित जुहीके समान आते हैं, फलोंके गुच्छे बेरोंके समान लगते हैं परन्तु वे दो जातिके होते हैं. एक सफेद नोकोंपर लाली लिये अत्यन्त मनोहर होते हैं. दूसरे कच्चे हरे आधे लाल और पकनेपर काले काले हो जाते हैं.

प्रियालनामानि ।

प्रियालस्तु खरस्कन्धश्चारो बहुलवल्कलः ।
राजादनस्तापसेष्टः सन्नकद्रुर्धनुष्पटः ॥ ६८ ॥

भाषा—प्रियाल, खरस्कन्ध, चार, बहुलवल्कल, राजादन, तापसेष्ट, सन्नकद्रु, धनुष्पट ये चिरौंजीके संस्कृत नाम हैं. (अखट्ट, ललन, चारक, बहुवल्क, सन्नद्रु, तापसप्रिय, स्नेहवीज, उपवट, मोक्षवीर्य, द्रुसल्लक, राजातन, प्रियालक, हसन्नक और पियालक ये चिरौंजीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ६८ ॥

अनेक भाषाके चिरौंजीके नाम.

सं.—प्रियाल.
हिं.—चिरौंजी, पियाल.
म.—चारीळी.
गु.—चारोळी.
क.—चार्वाळ, मोरप्पि.
तै.—चारुपप्पु, चारुमामिडि.
ता.—कारप्पारुप्पु.
मला.—मुरळ.
फा.—नुकले खाजा.
अ.—हबुस्समाना.
ला.—Buchannania Latifolia, व चेनेनिया लेटिफोलिया.

प्रियालगुणाः ।

चारः पित्तकफास्रघ्नस्तत्फलं मधुरं गुरु ।
स्निग्धं सरं मरुत्पित्तदाहज्वरतृषापहम् ॥६९॥
प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ।
हृद्योऽतिदुर्जरः स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः ॥ ७० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–चिरौंजी पित्त, कफ तथा रक्तविकारका नाश करती है. चिरौंजीका फल मधुर, भारी, स्निग्ध, दस्तावर है और दाह, ज्वर तथा तृषाको नष्ट करता है. चिरोंजीकी मींग मधुर, वीर्यवर्द्धक, पित्तनाशक, वातनाशक, हृदयको प्रिय, अतिदुर्जर, स्निग्ध, विष्टम्भी और आमवर्द्धक है॥ ६९ ॥ ७० ॥

चिरौंजीका विशेष विवरण.

चिरौंजीके वृक्ष कोंकण आदि देशमें अधिक होते हैं. पत्ते छोटे छोटे बेरके समान नीले रंगके होते हैं, उसमें जो मींग निकलती है, उसीको चिरौंजी कहते हैं.

क्षीरिणीनामानि ।

राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या क्षीरिकापि च ।

भाषा–राजादन, फलाध्यक्ष, राजन्या, क्षीरिका ये खिरनीके संस्कृत नाम हैं. (राजफल, कपीष्ट, क्षीरवृक्ष, नृपद्रुम, निम्ववीज, मधुफल, माधवोद्भव, क्षीरी, गुच्छफल, भूपेष्ट, राजवल्लभ, श्रीफल, दृढस्कन्ध और क्षीरशुक्र ये खिरनीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके खिरनीके नाम.

सं.–क्षीरिणी.
हिं.–खिन्नी, खिरनी.
बं.–क्षीरिणी, राजणी.
म.–खिरणी.
गु.–रायण.
क.–खिरणी मारा.
ता.–पल्ल.
अं.–Obtuse Leaved Mimusops ओब्टुस् लिव्डमाइमुसोप्स्.
ला.–Mimusops Hexandra माइमुसोप्स हेग्झान्ड्रा.

क्षीरिणीगुणाः ।

क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु ।
तृष्णामूर्च्छामदभ्रान्तिक्षयदोषत्रयास्रजित् ७१

भाषा–खिरणीका फल वीर्यवर्द्धक, बलदायक, स्निग्ध, शीतल, भारी है और तृषा, मूर्च्छा, मद, भ्रांति, क्षय, तीनों दोष तथा रक्तविकारको नष्ट करता है ॥ ७१ ॥

खिरनीका विशेष विवरण.

खिरनीके वृक्ष बडे बडे ऊँचे होते हैं, इसके पत्ते नेवाडीके समान होते हैं, इसमें शीतऋतुमें मौर आता है और वसन्तऋतुमें फल आते हैं, फल निंबौलीके समान गुच्छे लगते हैं, वे कच्ची अवस्थामें हरे और पकनेपर पीले हो जाते हैं, और कोई २ पकनेपरभी हरेही रहते हैं उनको हरियल कहते हैं. उन फलोंमेंसे दूधभी निकलता है.

विकंकतनामानि ।

विकङ्कतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलः स्वादुकण्टकः ।
स एव यज्ञवृक्षश्च कण्टकी व्याघ्रपादपि ७२॥

भाषा–विकङ्कत, स्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल, स्वादुकण्टक, यज्ञवृक्ष, कण्टकी, व्याघ्रपात् ये कण्टाईके संस्कृत नाम हैं. (वैकंकत, वृत्तिकर, कण्टकारी, किंकिरी, सृग्दारु, कण्टपत्र, स्रुग्दारु, मधुपर्णी, कण्टपाद्, बहुफल, गोपघोंटा, स्रुवद्रुम, किंकिणी, पृथुबीज, सुधावृक्ष, पादरोहिण और रावण ये कण्टाईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७२ ॥

अनेक भाषाके कंटाईके नाम.

सं.–विकङ्कत.
हिं.–कंटाई, किंकिणी.
बं.–बइँचिगाछ.
म.–गुलघोंटी, वेहकळ.
गु.–विकळो.
क.–हलुमाणिका मालेगु.
ते.–कानवेगुचेट्टु.
ला.–Solastrus Mantana सिलास्ट्रस् मोंटेना.

विकंकतगुणाः ।

विकङ्कतफलं पक्वं मधुरं सर्वदोषजित् ।

भाषा–कण्टाईका पक्का फल मधुर और संपूर्ण दोषनाशक है ॥

कंटाईका विशेष विवरण.

विकंकतके वृक्ष जंगल और वनोंमें बहुत बडे बडे होते हैं, इनके पत्ते छोटे छोटे और डालियोंमें कांटे होते हैं, इनमें बहुत अच्छे २ बेरके समान गोल गोल फलभी लगते हैं.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद्माक्षनामानि ।

पद्मबीजं तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी ।

भाषा-पद्मबीज, पद्माक्ष, गालोड्य, पद्मकर्कटी ये कमलगट्टेके संस्कृत नाम हैं. (कन्दली, भेंडा, क्रौञ्चादनी, क्रौञ्चा और श्यामा ये कमलगट्टेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके कमलगट्टेके नाम.

सं.-पद्मबीज.	गु.-कमलकाकडी.
हिं.-कमलगट्टा.	क.-पद्माक्ष.
बं.-पद्मबीचि.	ते.-तामरकाडा.
म.-कमळाक्ष.	अ.-वालके कुवति.

पद्माक्षगुणाः ।

पद्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकं गुरु ।
विष्टम्भि वृष्यं रूक्षं च गर्भसंस्थापकं परम् ॥
कफवातकरं बल्यं ग्राहि पित्तास्रदाहनुत् ७३॥

भाषा-कमलगट्टा शीतल, स्वादिष्ट, कसैला, कडवा, भारी, विष्टम्भि, वीर्यवर्द्धक, रूक्ष, गर्भ स्थापित करनेवाला, बलदायक, ग्राही, कफकारक तथा वातकारक है और पित्त, रक्तविकार तथा दाहको नष्ट करता है ॥ ७३ ॥

कमलगट्टेका विशेष विवरण.

कमलगट्टे कमलके बीजको कहते हैं, ये कमलकोषके भीतर रीठेके गुठलीके समान होते हैं, इनके भीतर सफेद रंगकी गिरी निकलती है.

मखान्ननामानि ।

मखान्नं पद्मबीजाभं पानीयफलमित्यपि ।

भाषा-मखान्न, पद्मबीजाभ और पानीयफल ये मखानेके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके मखानेके नाम.

सं.-मखान्न.	म.-मखाणे.
हिं.-मखाना.	गु.-मखाना.
बं.-माखाना.	ला.-Euryeloferox युर्यलोफेरोक्स.

मखान्नगुणाः ।

मखान्नं पद्मबीजस्य गुणैस्तुल्यं विनिर्दिशेत् ।

भाषा-मखानेमें कमलगट्टेके सदृश गुण जाने ॥

मखानेका विशेष विवरण.

कमलगट्टेको भाडमें भूननेसे मखाने बन जाते हैं, उनकी वतासेकेसी आकृति हो जाती है.

शृंगाटकनामानि ।

शृङ्गाटकं जलफलं त्रिकोणफलमित्यपि ।

भाषा-शृंगाटक, जलफल, त्रिकोणफल ये सिंगाडेके संस्कृत नाम हैं. (जलसूचि, संघाटिका, वारिकण्टक, शुक्रदुग्ध, शृंगाट, वारिकुब्जक, क्षीरशुक्र, जलकण्टक, शृंगरुह, जलवल्ली, जलाशय, शृंगकन्द, शृंगमूल, विषाणी, जलकन्द, त्रिकोट, त्रिकट और त्रिक ये सिंगाडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सिंगाडेके नाम.

सं.-शृङ्गाटक.	फा.-सुरंजान.
हिं.-सिंघाडे, सिंगाडे.	अं.-Watercaltrap वाटरकेल्ट्राप.
बं.-पाणिफल, सिंगाडे.	ला.-Trapa Bispinosa ट्रापा बिस्पिनोझा.
म.-सिंगाडे.	
गु.-सिंगोडां.	
क.-सिंघाडे.	
ते.-परिकेगड्डु.	

शृंगाटकगुणाः ।

शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषायकम् ।
ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं पित्तास्रदाहनुत् ७४॥

भाषा-सिंगाडा शीतल, स्वादिष्ठ, भारी, वीर्यवर्द्धक, कसैला, ग्राही, वीर्यकारक, वातकारक तथा कफकारक है और पित्त, रक्तविकार तथा दाहको नष्ट करता है ॥ ७४ ॥

सिंघाडेका विशेष विवरण.

सिंघाडेकी बेल बडे बडे तालोंमें और झीलोंमें होती है. इसके पत्ते गोल गोल हरे रंगके और लाल रंगके होते हैं. बेलमें तीन धारवाले फल लगते हैं, उन फलोंके ऊपर दो काँटे और एक अनी बनी होती है और कहींसे ऊँचा कहींसे नीचा उसका अद्भुतही प्रकारका रंग ढंग होता है, कोई हरे रंगका, कोई लाल रंगका और कोई धूसर रंगका एवं अच्छे रंगे बिरंगे बनाये होते हैं. उनको छीलनेसे भीतर एक ऐसी सफेद गिरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निकलती है. मानो कपूरकी तिकोनी डली, उसको सिंघाडेकी मींग कहते हैं, और उसको बहुत शुद्ध समझकर व्रतमें खाते हैं.

कैरविणीफलनामानि।

उक्तं कुमुदबीजं तु बुधैः कैरविणीफलम्।

भाषा–कुमुदबीज, कैरविणीफल, कुमुद्वतीबीज ये कैरविणीफलके संस्कृत नाम हैं. (कुमुदिनी, चन्द्रेष्टा, कुवलयिनी, इन्दीवरिणी और नीलोत्पलिनी ये कैरविणीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कैरविणीफलके नाम.

सं.–कुमुदबीज.	म.–कैरविणीचे फळ.
हिं.–कैरवणीफल, बेरा.	गु.–पोयणानां बीज.

कैरविणीफलगुणाः।

भवेत्कुमुद्वतीबीजं स्वादु रूक्षं हिमं गुरु।

भाषा–कमोदिनीके बीज स्वादिष्ठ, रूक्ष, शीतल और भारी हैं ॥

मधूकनामानि।

मधूको गुडपुष्पः स्यान्मधुपुष्पो मधुस्रवः।
वानप्रस्थो मधुष्ठीलो जलजेऽत्र मधूलकः॥७५॥

भाषा–मधूक, गुडपुष्प, मधुपुष्प, मधुस्रव, वानप्रस्थ, मधुष्ठील ये महुएके संस्कृत नाम हैं. (मधुवृक्ष, रोध्रपुष्प, माधव, मध्वग, तीक्ष्णसार, डोलाफल, महाद्रुम, मधुक, मधुवार और मध्वल ये महुएके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) जलमें होनेवाले महुएको मधूलक कहते हैं ॥ ७५ ॥

अनेक भाषाके महुएके नाम.

सं.–मधूक.	मला.–इरुप्पा.
हिं.–महुआ, जलमहुआ.	ता.–कठइल्लुपि, मधुकं.
बं.–मौल, मउल, मौया.	फा.–चकां.
म.–मोह.	अं.–Elloopatree इलूपाट्री.
कों.–मोहटी.	ला.–Bassia latifolia बेसिया लाटिफोलिया.
गु.–मुहुडा.	
क.–महूइप्पे, इप्पेमारा.	
तै.–इप्पर, इपापिन्ना.	

मधूकपुष्पगुणाः।

मधूकपुष्पं मधुरं शीतलं गुरु बृंहणम्। बल-
शुक्रकरं प्रोक्तं वातपित्तविनाशनम् ॥ ७६ ॥

भाषा–महुएका फूल मधुर, शीतल, भारी, पुष्टिकारक, बलवर्धक, वीर्यवर्धक है और वात तथा पित्तको दूर करता है ॥ ७६ ॥

मधूकफलगुणाः।

फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वातपित्तनुत्।
अहृद्यं हन्ति तृष्णास्रदाहश्वासक्षतक्षयान् ७७

भाषा–महुएका फल शीतल, भारी, मधुर, वीर्यवर्द्धक, हृदयको अप्रिय है और वात, पित्त, तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास, क्षत तथा क्षयको नष्ट करता है ॥ ७७ ॥

महुएका विशेष विवरण.

महुएके वृक्ष वनमें और पर्वतोंमें बडे बडे ऊंचे होते हैं. इसके पत्ते बादाम अथवा वडके पत्तोंके समान होते हैं. फूलमें शहदके समान गन्ध आती है और उसमेंसे सरीफेके फलके समान बीज निकलते हैं, उसके फलोंमेंसे तेल निकलता है.

परूषनामानि।

परूषकं तु परुषमल्पास्थि च परापरम्।

भाषा–परूषक, परूष, अल्पास्थि, परापर ये फालसेके संस्कृत नाम हैं. (गिरिपीलु, नागदलोपम, परावत, नीलचर्म, नीलमंडल और मृदुफल ये फालसेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके फालसेके नाम.

सं.–परूषक.	फा.–पालसा.
हिं.–फालसा, परुषा.	अ.–फालसा.
बं.–फलसा.	अं.–Asiatic Grewia एश्याटिक ग्रेविया.
म.–फालसा.	ला.–Grewia Asitica ग्रेविया एश्याटिका.
गु.–फालसा.	
क.–वेट्टहा, दोगाले.	
तै.–पुटिकी.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परूषगुणाः ।

परूषकं कषायाम्लमामं पित्तकरं लघु । तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम् ॥ हृद्यं तु पित्तदाहास्रज्वरक्षयसमीरहृत् ॥ ७८ ॥

भाषा-कच्चा फालसा कसैला, खट्टा, पित्तकारक और हलका है. पक्का फालसा पाकमें मधुर, शीतल, विष्टम्भि, पुष्टिकारक, हृदयको प्रिय है और पित्त, दाह, रक्तविकार, ज्वर, क्षय तथा वातको नष्ट करता है ॥ ७८ ॥

फालसेका विशेष विवरण.

फालसेके वृक्ष मध्यम आकारके होते हैं, इसके पत्ते बेलके समान तीन तीन मिले हुए होते हैं, फल दो तीन एकत्र होते हैं, फल कच्ची अवस्थामें हरे और पकनेपर ऊदे रंगके हो जाते हैं.

तूतनामानि ।

तूतः स्थूलश्च पूगश्च ऋमुको ब्रह्मदारु च ।

भाषा-तूत, स्थूल, पूग, ऋमुक, ब्रह्मदारु ये सहतूतके संस्कृत नाम हैं. (तूद, ब्रह्मकाष्ठ, ब्रह्मण्य, मृदुसार, सुपुष्प, नीलरंगक, तूल, ब्राह्मणेष्ट, नीलवृन्तक, विप्रकाष्ठ, मदसार, पूण, ब्रह्मनेष्ट, नूढ, पूष और पलाशिक ये सहतूतके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सहतूतके नाम.

सं.-तूत.	अ.-तूत, तूर्द हामीज.
हिं.-सहतूत.	अं.-Mulberrias मलबेरिझ.
बं.-तूत, तूद.	ला.-Morus Indica मोरस इण्डिका, Morusnigra मोरस निग्रा.
म.-तूतै, सेंतूत.	
गु.-शेतूत.	
तै.-कम्बलिचेट्टु.	
ता.-मषुकट्टइचेडि.	
फा.-शाहतूत, तुततुर्श.	

तूतगुणाः ।

तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्तानिलापहम् । तदेवामं गुरु सरमम्लोष्णं रक्तपित्तकृत् ॥ ७९ ॥

भाषा-पक्का सहतूत भारी, स्वादिष्ठ, शीतल, पित्तनाशक तथा वातनाशक है. कच्चा सहतूत भारी, दस्तावर, खट्टा, गरम और रक्तपित्तको करनेवाला है ॥ ७९ ॥

सहतूतका विशेष विवरण.

सहतूतके वृक्ष बागोंमें बहुत होते हैं, पत्ते अंजीरके समान तीन तीन कँगूरेवाले और नीमके पत्तोंके सदृश चारों ओर आरेकेसे चिह्न होते हैं. ये वृक्ष दो प्रकारके होते हैं. एकपर काले सहतूत आते हैं; और दूसरेपर सफेद सहतूत आते हैं; इसके फल फलीके समान होते हैं और उनमें बाजरेकेसे दाने सर्वत्र लगे रहते हैं; वह फली अत्यन्त कोमल और रसीली होती है.

दाडिमनामानि ।

दाडिमः करको दन्तबीजो लोहितपुष्पकः ।

भाषा-दाडिम, करक, दन्तबीज, लोहितपुष्पक ये दाडिमके संस्कृत नाम हैं. (दाडिमीसार, कुट्टिम, फलषाडव, रक्तबीज, सुफल, दन्तबीजिक, मधुबीज, कुचफल, शुकवल्लभ, मणिबीज, वल्कफल, पिण्डपुष्प, दाडिम्ब, पर्वरुट, स्वाद्वम्ल, पिण्डरि, फलशाडव, मुखवल्लभ, रक्तपुष्प, डालिम, शुकादन, फलसाडव, सुनील, नीलपत्र और नीलपत्रक ये दाडिमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके दाडिमके नाम.

सं.-दाडिम.	तु.-दालिंब.
हिं.-दाडिम, अनार.	मला.-उरुयापळम.
बं.-दाडिम, डालिम.	फा.-अनार तुरस.
म.-डाळिंब, दालिंब.	अ.-रुमान हामीज.
गु.-दालिम.	अं.-Pomegranate पोम्ग्रानेट.
क.-दालिंब.	ला.-Punica Granatum प्युनिका ग्रानेटम्.
तै.-डानिम्मचेट्टु, दालिम्बकाया.	
ता.-माडळे.	

दाडिमगुणाः ।

तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम् । तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड्दाहज्वरनाशनम् ॥ ८० ॥ हृत्कण्ठमुखगन्धघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु । कषायानुरसं ग्राहि स्निग्धं मेधाबलापहम् ॥ ८१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्तकरं लघु।
अम्लं तु पित्तजनकमम्लं वातकफापहम्॥८२॥

भाषा–अनारका फल मीठा, खट्टा, मीठा और केवल खट्टा इस भांति तीन प्रकारका होता है. इनमें मीठा अनार त्रिदोषनाशक, तृप्तिदायक, वीर्यवर्द्धक, हलका, कसैले रसवाला, ग्राही, स्निग्ध, बुद्धिदायक तथा बलदायक है और दाह, ज्वर, हृदयरोग, कंठरोग तथा मुखकी दुर्गन्धको नष्ट करता है. खट्टा मीठा अनार अग्निको दीपन करेवाला, रुचिकारी, किंचित् पित्तकारक और हलका है. केवल खट्टा अनार पित्तको उत्पन्न करनेवाला, खट्टा है और वात तथा कफको नष्ट करता है ॥ ८०–८२ ॥

अनारका विशेष विवरण.

अनारका वृक्ष मध्यम आकारका होता है, ये सब स्थानोंमें मिलते हैं; उत्तरखण्डके पहाडोंमें, काबुलमें, खन्धाहारमें, इसके सिवाय और २ देशोमेंभी अधिक होते हैं; इसके पत्ते हरे और लम्बे लम्बे होते हैं. और फूल अत्यन्त शोभायमान सिन्दूरिया रंगका होता है. अनारकी दो जाति हैं; एक नर, दूसरी नारी. नरमें फूल बहुत बडा आता है और फल नहीं लगते; नारी जातिके अनारमें फूल छोटे फल गोल और बडे लगते हैं. फलके भीतर दाने मणियोंके समान और लाल कान्तिवाले होते हैं; वह मधुर, खट्टमधुरे और सम्पूर्ण खट्टे ऐसे तीन प्रकारके होते हैं. रंगमें कोई लाल और कोई धूसर होता है.

बहुवारनामानि।

बहुवारस्तु शीतः स्याद्बुद्दालो बहुवारकः।
शेलुः श्लेष्मातकश्चापि पिच्छिलो भूतवृक्षकः॥ ८३ ॥

भाषा–बहुवार, शीत, उद्दाल, बहुवारक, शेलु, श्लेष्मातक, पिच्छिल, भूतवृक्षक ये लिसोडेके संस्कृत नाम हैं. (कर्बुदार, लेखशाटक, शेलु, गन्धपुष्प, शापित, द्विजकुत्सित, शीतफल, शाकट, कर्बुदारक भूतद्रुम और श्लेष्मात ये लिसोडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८३ ॥

अनेक भाषाके लिसोडेके नाम.

सं.–बहुवार.
हिं.–लिसोडा, निसोरा.
बं.–बहुयार, चालता-गाछ.
म.–भोंकर, शेलवट.
गु.–गुंदी.
क.–चेङ्कु, गोंदिणी.
तै.–नाक्केरु, नुककेरु.
ता.–विडि.
फा.–सिपिस्तान.
अ.–सेफिस्तान, दबक.
अं.–Narrowleaved Sepistun नेरो लिव्ड सेपिस्टन्.
ला.–Cordia Myxa कॉर्डिया मिक्सा.

बहुवारगुणाः।

बहुवारो विषस्फोटव्रणवीसर्पकुष्ठनुत्। मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफपित्तहृत् ॥ ८४ ॥
फलमामं तु विष्टम्भि रूक्षं पित्तकफास्रजित्।
तत्पक्वं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ८५॥

भाषा–लिसोडा मधुर, कसैला, कडवा, केशोंको हितकारी है और विष, विस्फोट, व्रण, विसर्प, कोढ, कफ तथा पित्तको नष्ट करता है. लिसोडेका कच्चा फल विष्टम्भी, रूखा है और पित्त, कफ तथा रक्तविकारको नष्ट करता है. लिसोडेका पक्का फल मधुर, स्निग्ध, कफकारक, शीतल और भारी है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

लिसोडेका विशेष विवरण.

लिसोडेके वृक्ष जंगल और वनमें अधिक होते हैं; इसके पत्ते गोल कुछ लम्बाई लिये हुए होते हैं; फल अलूचेके समान गोल रसीले गुच्छोंमें लगते हैं, भीतरसे चुपकते हैं. इसी प्रकारके लभेडेके वृक्षभी होते हैं; इसके पत्तेभी इसी भांतिके होते हैं, परन्तु फल इससे छोटे होते हैं. कच्चे रङ्गमें हरे और पकनेपर कुछ गुलाबीसे हो जाते हैं; फलके भीतर बीज और कुछ गोंदसा निकलता है.

कतकनामानि।

पयःप्रसादिः कतकः कतकं तत्फलं तत्।

भाषा–पयःप्रसादि (जलको निर्मलकर्त्ता), कतक ये निर्मलीफलके संस्कृत नाम हैं. (छेदनीय, श्लक्ष्ण, तोयप्रसादन, काल्य, कतकरेणु, शोधनात्मक, अम्बुप्रसादनफल, रुचिष्य, लेख-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नात्मक, अम्बुप्रसाद, कत, तिक्तफल, गुच्छफल, तिक्तमरिच और तोयप्रसादफल ये निर्मलीफलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके निर्मलीफलके नाम.

सं.-कतक.
हिं.-पायपसारी, निर्मलीफल.
बं.-निर्मलफल.
म.-निर्मळी, निवळी. चिल्हार.
गु.-निर्मली.
क.-चित्तु, चिल्लिकाये.
तै.-चिल्लचेट्टु.
ता.-टेट्टामार.
मला.-टेट्टामारम्.
गो.-चिलु, चीलबी.
अं.-A nut Which clears water ए नट् विच क्लिअर्स् वाटर.
ला.-Strychnos Potetarum स्ट्रिक्नोस पोटेटेरम्.

कतकगुणाः ।

कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मलताकरम् । वातश्लेष्महरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥ ८६ ॥

भाषा-निर्मलीका फल नेत्रोंको हितकारी, जलको निर्मल करनेवाला, वातनाशक, कफनाशक, शीतल, मधुर, कसैला और भारी है ॥ ८६ ॥

निर्मलीका विशेष विवरण.

कतक अर्थात् निर्मलीफल गोल होते हैं, और उसके ऊपरभी छाल कुचिलेकी छालके समान होती है. विशेष करके इसकी सब आकृति कुचिलेसे मिलती है.

द्राक्षानामानि ।

द्राक्षा स्वादुफला प्रोक्ता तथा मधुरसापि च । मृद्वीका हारहूरा च गोस्तनी चापि कीर्तिता ॥ ८७ ॥

भाषा-द्राक्षा, स्वादुफला, मधुरसा, मृद्वीका, हारहूरा, गोस्तनी ये दाखके संस्कृत नाम हैं. (स्वाद्वी, चारुफला, रसा, यक्ष्मघ्नी, तापसप्रिया, प्रियाला, गुच्छफला, रसाला, अमृतफला, स्वादुफला, फलोत्तमा और सुफला ये दाखके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८७ ॥

अनेक भाषाके दाखके नाम.

सं.-द्राक्षा.
हिं.-दाख, अंगूर.
बं.-मनेका, आंगूर.
म.-काळीं द्राक्षें.
गु.-द्राक्ष.
क.-वेडगणद्राक्षे, चिक्कुद्राक्षे.
तै.-द्राक्षा.
ता.-कोडिमाड्डि.
फा.-अंगूर, मुनक्का.
अ.-एनबजबीब, हबुसजबीब.
अं.-Grape Roisins ग्रेप रोझिन्स.
ला.-Vitis Venifera वाइटिस विनिफेरा.

द्राक्षागुणाः ।

द्राक्षा पक्का सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः । स्वादुपाकरसा स्वर्या तुवरा सृष्टमूत्रविट्॥८८॥ कोष्ठमारुतकृद्धृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा । हन्ति तृष्णाज्वरश्वासवातवातास्रकामलाः ॥ ८९ ॥ कृच्छ्रास्रपित्तसंमोहदाहशोषमदात्ययान् । आमा स्वल्पगुणा गुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत् ॥ वृष्या स्याद्गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत् ॥ ९० ॥ गोस्तनी 'मुनक्का' इति लोके ।

भाषा-पक्का अंगूर दस्तावर, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक, भारी, पाकमें तथा रसमें मधुर, स्वरको उत्तम करनेवाला, कसैला, मल तथा मूत्रकी प्रवृत्ति करनेवाला, कोठेमें वातकारक, वीर्यको बढानेवाला, कफ तथा रुचिको उत्पन्नकर्ता है और तृषा, ज्वर, श्वास, वात, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मोह, दाह, शोष तथा मदात्ययरोगको नष्ट करता है. कच्चा अंगूर हीनगुणवाला तथा भारी है. खट्टा अंगूर रक्तपित्तको करनेवाला है. गोस्तनी (गायके स्तनके सदृश) दाख वीर्यवर्धक, भारी और कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाली है ॥ ८८-९० ॥

अबीजागुणाः ।

अबीजाऽन्या स्वल्पतरा गोस्तनीसदृशी गुणैः । द्राक्षा पर्वतजा लघ्वी साम्ला श्लेष्मास्रपित्तकृत्॥९१॥द्राक्षा पर्वतजा याद्राक्षादृशी करम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिका ॥ ९२ ॥ अबीजा ईषद्बीजा 'किस्-मिस्' इति लोके । पर्वतजा 'पाहाडी' इति लोके । करमर्दिका करौंदी इति लोके ।

भाषा–किस्मिस (जिसमें बीज नहीं होते अथवा छोटे बीजोंवाली होती है वह) गोस्तनी दाखके सदृश गुणोंवाली है. पर्वतमें उत्पन्न हुई दाख हलकी, अम्ल और कफ तथा अम्लपित्तको करनेवाली है. करमर्दिका (करौंदेके सदृश) दाखमेंभी पर्वतोत्पन्न दाखके सदृश गुण हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

दाखका विशेष विवरण.

दाख काली, लाल और किसमिस, हरी लाल इत्यादि अनेक जातिकी होती है. उत्पत्ति इसकी काबुल, कन्दाहार तथा उनहीं देशान्तरोंमें होती है. काठकी टट्टियोंपर इसकी बेल चलती है, इसके पत्ते हाथकी आकृतिके होते हैं, मानों हथेलीमें पांचों उँगलियें लगादी हों. फल गुच्छोंमें लगते हैं, उनको अंगूर कहते हैं, वह अंगूर सूखकर दाखें बन जाती हैं, काले अंगूरोंकी काली दाखें और भूरे अंगूरोंकी भूरी दाखें होती हैं.

क्षुद्रखर्जूरीपिण्डखर्जूरीनामानि ।

भूमिखर्जूरिका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा । तथा स्कन्धफला काककर्कटी स्वादुमस्तका ॥ ९३ ॥ पिण्डखर्जूरिका त्वन्या सा देशे पश्चिमे भवेत् । खर्जूरी गोस्तनाकारा परद्वीपादिहागता ॥ जायते पश्चिमे देशे सा च्छोहारीति कीर्त्यते ॥ ९४ ॥

भाषा–भूमिखर्जूरिका, स्वाद्वी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, काककर्कटी, स्वादुमस्तका ये खजूरके संस्कृत नाम हैं. (खर्जु, खर्जू, खर्जूरी, खरस्कन्धा, दुष्प्रधर्षा, दुरारुहा, कषायी, निःश्रेणी, यवनेष्टा और हरिप्रिया ये खजूरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) एक जातिकी पिंडखर्जूर होती है, यह पश्चिमदेश (काबुल आदि) में होती है. एक जातिकी खजूर गायके स्तनके सदृश अन्य द्वीपसे आती है वह पश्चिमदेशमें उत्पन्न होती है, उसको छुहारा कहते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अनेक भाषाके खजूरके नाम.

सं.–खर्जूरी.	तु.–इचिलु.
हिं.–खजूर, पिंडखजूर, छुहारा.	ता.–पेरिच्चु.
बं.–खजूर, पिंडखेजूर, छोहारा.	मला.–काटेन्टु.
म.–सिंदी, खजूरी, खजूर.	फा.–तमररुतव.
गु.–खजूरी, छुवारी, खारेक.	अ.–खुर्मातर, खुर्मा-खुष्क.
क.–ईंचिलु, सिंहइंचिलु, करीइंचिलु.	अं.–Date Palm डेटपाम.
तै.–ईंटाचेट्टु, खजुरपंडु.	ला.–Phoenix Montana फिनिक्स मोंटेना.

खर्जूरीत्रितयगुणाः ।

खर्जूरीत्रितयं शीतं मधुरं रसपाकयोः । स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षयहरं गुरु ॥ ९५ ॥ तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् । कोष्ठमारुतहृद्ग्रह्यं वान्तिवातकफापहम् ॥ ९६ ॥ ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णाकासश्वासनिवारकम् । मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भूतगदान्तकृत् ॥ महतीभ्यां गुणैरल्पा स्वल्पखर्जूरिका स्मृता ॥ ९७ ॥

भाषा–तीनों प्रकारकी खजूर शीतल, रसमें तथा पाकमें मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, हृदयको प्रिय, भारी, तृप्तिदायक, पुष्टिकारक, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, बलदायक है और क्षत, क्षय, रक्तपित्त, कोठेकी वायु, वमन, कफ, ज्वर, अतीसार भूँख, तृषा, खांसी, श्वास, मद, मूर्च्छा, वातपित्त तथा मद्यसे हुए रोगोंको नष्ट करती है. बडी खजूरसे छोटी खजूरमें अल्प गुण हैं ॥ ९५–९७ ॥

खर्जूरीतोयगुणाः ।

खर्जूरीतरुतोयं तु मदपित्तकरं भवेत् । वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् ॥ ९८ ॥

भाषा–खजूरका पानी मद तथा पित्तको करनेवाला, वात तथा कफको हरनेवाला, रुचिकारी, अग्निको दीपन करनेवाला और बल तथा वीर्यको बढानेवाला है ॥ ९८ ॥

पिण्डखर्जूरीभेदनामानि ।

सुलेमानी तु मृदुला दलहीनफला च सा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-सुलेमानी, मृदुला और दलहीनफला ये सुलेमानी खजूरके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके सुलेमानी खजूरके नाम.

सं.-सुलेमानी.	गु.-सुलेमानी, मुसी, खारेक.
हिं.-सुलेमानी खजूर.	म.-खारीक.

पिंडखर्जूरीभेदगुणाः ।

सुलेमानी श्रमभ्रान्तिदाहमूर्च्छास्रपित्तहृत् ।

भाषा-सुलेमानी खजूर परिश्रम, भ्रांति (भौंर), दाह, मूर्च्छा, रुधिरविकार तथा पित्तको दूर करती है ॥

खजूरका विशेष विवरण.

खजूर पिण्डखजूर और छुहारेके वृक्ष सीधे लम्बे लम्बे चले जाते हैं. उनमें पत्ते लम्बे और शाखाभी लम्बी लम्बी होती है, वृक्षपर खपटरेसे सरीफेके समान वक्कल जमा रहता है, ऊपर शाखाओंमें फल लगते हैं, वे खानेमें उत्तम नहीं होते, वखसे वखसे होते हैं, इसलिये उनको धनाढ्य लोग नहीं खाते, दीन लोग खाते हैं. दूसरी पिण्डखजूर होती है, उसके फल तोडतोडकर बोरियोंमें भर देते हैं. तीसरा छुहारा होता है. ये दोनों खजूरके समान आकारवाले होते हैं.

वातादनामानि।

वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपमफलस्तथा ।

भाषा-वातादू, वातवैरी, नेत्रोपमफल ये बादामके संस्कृत नाम हैं. (सुफल, बादाम वाताव और वातवैरी ये बादामके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके बादामके नाम.

सं.-वातादू.	फा.-बदामशीरी, बदाम तल्खा.
हिं.-बादाम.	अ.-लोजलहलु, लोजल मुर.
बं.-बादाम.	अं.-Almond आमंड.
म.- बदाम.	ला.-Amygdalus Communis एमिग्डेलस् कम्युनीस.
गु.-बदाम.	
क.-बादामु.	
ते.-बेदम.	
ता.-नट्टवदुम.	

वातादगुणाः ।

वातादू उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः शुक्रकृद्गुरुः ।
वातादमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ॥
स्निग्धोष्णःकफकृन्नेष्टोरक्तपित्तविकारिणाम् ९९

भाषा-बादाम गरम, स्निग्ध, वीर्यकारक, भारी और वातनाशक है. बादामकी मींग मीठी, वीर्यवर्द्धक, पित्तनाशक, वातनाशक, स्निग्ध, गरम, कफकारक और रक्तपित्तवाले रोगियोंको अहितकारक है ॥ ९९ ॥

बादामका विशेष विवरण.

बादामके वृक्ष बडे २ होते हैं. इसके पत्ते महुवेके पत्तोंके समान लम्बे चौडे होते हैं. उसके फलके बीज बादाम कहलाते हैं.

सेवनामानि ।

मुष्टिप्रमाणं बदरं सेवं सिविंतिकाफलम् ।

भाषा-मुष्टिप्रमाण, बदर, सेव और सिविंतिकाफल ये सेवके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके सेवके नाम.

सं.-सेव, महाबदर.	फा.-सेव.
हिं.-सेव.	अ.-तुफाह.
बं.-सेउ.	अं.-Apple ॲपल.
म.-मोठें बोर.	ला.-Pyrus Malus पाइरस मेलस.
गु.-सेवफल.	
क.-सेव.	

सेवगुणाः ।

सेवं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद्गुरु । रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत् ॥ १०० ॥

भाषा-सेव वातनाशक, पित्तविनाशक, पुष्टिकारक, कफकारक, भारी, पाकमें तथा रसमें मधुर, शीतल, रुचिकारक और वीर्यको बढानेवाला है ॥ १०० ॥

अमृतफलगुणाः ।

अमृतफलं लघु वृष्यं सुस्वादु त्रीन्हरेद्दोषान् ।
देशेषु मुद्गलानां बहुलं तल्लभ्यते लोकैः १०१ ॥
यत्काण्डाहारकाबिलप्रभृतिषु देशेषु नाशपातीति नाम्ना प्रसिद्धम् ।

CC-0: Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–अमृतफलको खुरासान और काबुल आदि देशोंमें नासपाती कहते हैं. नासपाती हलकी, वीर्यवर्द्धक, बहुत मीठी, वातादि तीनों दोषोंको नष्ट करनेवाली और मुगलोंके देशोंमें अधिक मिलती है ॥ १०१ ॥

सेवका विशेष विवरण.

सेव, वीह और नासपाती इन तीनोंकी एकही जाति है इनमें अंतर थोडाही है, जैसे छुहारे पिंडखजूर खजूरकी एकही जाती है, सेवके वृक्ष कश्मीर और काबुलमें बहुत होते हैं, पर नासपाती हिंदुस्तानमेंभी बहुत होती है. इनके वृक्ष अमरूदके वृक्षके बराबर होते हैं, पत्तेभी अमरूदके पत्तोंके बराबर कुछ चौडे होते हैं. कश्मीरकी सेव बहुत मधुर होती है और काबुलकी तुरश होती है, कश्मीरकी नासपातीभी बहुतही मधुर होती है, जिसे नाक कहते हैं. वीहका मुरब्बा दस्तोंकी व्याधिमें काम आता है और बलदायक होता है.

पीलुनामानि ।

पीलुर्गुलफलः स्रंसी तथा शीतफलोऽपि च ।

भाषा–पीलु, गुलफल, स्रंसी, शीतफल ये पीलुके संस्कृत नाम हैं. (शीतसह, धानी, गुडफल, विरेचनफल, शाखी, श्याम, करवल्लभ, कलभवल्लभ और पीलुक ये पीलुके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पीलुके नाम.

सं.–पीलु.	अं.–Mustardtree of Scripture मस्टर्डट्री आफ् स्क्रिप्चर.
हिं.–पीलु.	
बं.–पीलुगाछ.	
म.–लघुपीलु.	
गु.–पीलु.	
क.–मिरीये ऊगनि.	
ते.–गोलुगुचेट्टु.	
ता.–कोकु.	
फा.–दरखते मिस्वाक्.	
अ.–ईराक.	ला.–Salvadara Parsica सालवेडोरापर्सिका, Salvadora Oleaides सालवेडोरा ओलिओइडिस.

पीलुगुणाः ।

पीलु श्लेष्मसमीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत् ।
स्वादु तिक्तं च यत्पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहृत् ॥ १०२ ॥

भाषा–पीलु पित्तकारक, मलभेदक (दस्तावर) है और कफ, वात तथा गुल्मको नष्ट करता है. जो पीलू मीठा और कडवा होय वह अत्यन्त गरम नहीं और त्रिदोषनाशक है ॥ १०२ ॥

पीलूका विशेष विवरण.

पीलूके वृक्ष दो जातिके होते हैं, एक छोटा और दूसरा बडा. छोटे पीलूपर बहुत छोटे छोटे फल आते हैं और पकनेपर लाल पड जाते हैं. दूसरा बडा पीलू होता है उसके फूल पीले और फल लाल और काले होते हैं.

अक्षोटनामानि ।

पीलुः शैलभवोऽक्षोटः कर्परालश्च कीर्तितः ।

भाषा–पर्वतके पीलूको अक्षोट कहते हैं और कर्परालभी कहते हैं (अखरोट, पार्वतीय, फलस्नेह, गुडाशय, कीरेष्ट, स्वादुमज्ज, पृथक्छद, रेखाफल, वृत्तफल, मदनाभफल, अक्षोटक, अखोट, आखोट, आक्षोड, आक्षोट, कन्दराल और आस्फोटक ये अखरोटके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके अखरोटके नाम.

सं.–अक्षोट.	अं.–Walnut वालनट्, Belgaum Walnut बेलगाम वालनट्.
हिं.–अखरोट.	
बं.–आक्रोट.	
म.–अक्रोड.	
गु.–अखोड.	
क.–अखोट.	
फा.–चार्तगंज. [मगज.	ला.–Aleurites Triloba एल्युराइटीस ट्रायलेबा.
अ.–जोझ अक्रुपम्	

अक्षोटगुणाः ।

अक्षोटकोऽपि वातादसदृशः कफपित्तकृत् ।

भाषा–अखरोटके गुण बादामके समान हैं और कफ तथा पित्तको करता है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अखरोटका विशेष विवरण.

अखरोटके वृक्ष बडे बडे ऊँचे होते हैं, फूल सफेद रंगके छोटे छोटे और गुच्छेमें कई कई आते हैं. इसके पत्ते गोल और कुछ कुछ लम्बाई लिये हुए मोटे मोटे होते हैं और फल गोल गोल मैनफलके समान होते हैं, उन फलोंके ऊपर हरी हरी छाल होती है, उसको छील डालते हैं. उसके छीलनेसे चार रेखावाली खरदरी खरदरी गुंठलियें निकलती हैं उनको अखरोट कहते हैं. उनके फोडनेसे एक स्निग्ध जातिकी गिरी निकलती है वह अखरोटकी गिरी कहलाती है.

बीजपूरनामानि ।

बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फलपूरकः ।

भाषा-बीजपूर, मातुलुंग, रुचक, फलपूरक ये बिजौरेके संस्कृत नाम हैं. (अम्लकेशर, बीजपूर्ण, पूर्णबीज, सुकेशर, बीजक, सुफूर, बीजफलक, जन्तुघ्न, दन्तुरच्छद, पूरक और रोचनफल ये बिजौरेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके बिजौरे नींबूके नाम.

सं.-बीजपूर.	तै.-दबाकाया.
हिं.-बिजौरा नींबू.	फा.-तुरंज.
बं.-टावालेबु.	अ.-उतरंज.
म.-महाळुंग.	अं.-Citrus साइट्रस.
गु.-बीजोरु.	ला.-Citrus Acida साइट्रस एसीडा.
क.-माधवला.	

बीजपूरगुणाः ।

बीजपूरफलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु ।
रक्तपित्तहरं कण्ठजिह्वाहृदयशोधनम् ॥ श्वास-
कासारुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम् ॥ १०३ ॥

भाषा-बिजौरेका फल मधुर, रसमें खट्टा, अग्निको दीपन करनेवाला, हलका, कंठ, जीभ तथा हृदयको शुद्ध करनेवाला, हृदयको प्रिय है और श्वास, खांसी, अरुचि तथा तृषाको नष्ट करता है ॥ १०३ ॥

बिजौरेका विशेष विवरण.

बिजौरे नींबूके वृक्ष मध्यम आकारके बागोंमें बहुत होते हैं. इसके पत्ते नींबूकी आकृतिके होते हैं परन्तु लम्बाई चौडाईमें उनसे आठ दशगुणे होते हैं फल गोल और नोकदार अमरूदकी आकृति नीचेसे भारी ऊपरसे पतला होता है. इसमें बीज अधिक होते हैं, फूल सफेद रंगके होते हैं. ये नींबू खट्टे बहुत होते हैं. किसी किसी देशमें बिजौरा नींबू मीठाभी होता है.

मधुकर्कटीनामानि ।

बीजपूरोऽपरः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी ।

भाषा-एक दूसरी जातिका बिजौरा होता है, उसको मधुर और मधुकर्कटी कहते हैं ॥

अनेक भाषाके चकोतरेके नाम.

सं.-मधुकर्कटी.	बं.-वातविलेबु.
हिं.-चकोतरा.	म.-चकोतरा.

मधुकर्कटीगुणाः ।

मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ।
रक्तपित्तक्षयश्वासकासहिक्काभ्रमापहा ॥ १०४ ॥

भाषा-चकोतरा स्वादिष्ठ, रुचिकारक, शीतल, भारी है और रक्तपित्त, क्षय, श्वास, खांसी, हिचकी तथा भ्रमको दूर करता है ॥ १०४ ॥

चकोतरेका विशेष विवरण.

चकोतरेके पेड नींबूसे कुछही बडे होते हैं, पत्ते बिजौरे नींबूके समान होते हैं, परन्तु फल बहुत बडे खरबूजेकी आकृतिके होते हैं, खरबूजेके ऊपर दशरेखा होती हैं और चकोतरेके भीतर दशरेखा होती हैं, रंगमें दोनों पीले होते हैं और फूल सफेद होते हैं. इसके बीज नींबूसे बडे होते हैं.

जम्बीरद्वयनामानि ।

स्याज्जम्बीरो दन्तशठो जम्भजम्भीरजम्भलाः ।

भाषा-जम्बीर, दन्तशठ, जंभ, जंभीर, जम्भल ये जम्बीरी नींबूके संस्कृत नाम हैं. (रोचनक, मुखशोधी, जाड्यारि, जन्तुजित्, जम्भक, जम्भर, दन्तहर्षण, दन्तकर्षण, गम्भीर, जाम्भिर, रेवत, वक्रशोधी, दन्तहर्षक और जम्भी ये जम्बीरी नींबूके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके जम्भीरी नींबूके नाम.

सं.–जम्भीर.	गु.–लांबा लींबु.
हिं.–जंभीरी नींबू.	क.–कनिले.
बं.–जामीर लेबू.	तै.–ज़ंभिर.
म.–ईड लिंबु.	फा.–लिमुनेशिरि.

जंबीरद्वयगुणाः ।

जम्बीरमुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविबन्धनुत् । शूलकासकफोत्क्लेशच्छर्दितृष्णामदोषजित् ॥ ॥ १०५ ॥ आस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्य-कृमीन्हरेत् ॥ स्वल्पजम्बीरिका तद्वत्तृष्णाछर्दिनिवारिणी ॥ १०६ ॥

भाषा–जम्भीरी नींबू गरम, भारी, खट्टा है और वात, कफ, मलबंध, शूल, खांसी, कफोत्क्लेश, वमन, तृषा, आमसंबंधी दोष, मुखकी विरसता, हृदयकी पीडा, अग्निकी मंदता तथा कृमिको दूर करता है. एक जम्भीरी दूसरी भांतिका छोटा होता है, वह तृषाको तथा वमनको नष्ट करता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

जंभीरी नींबूका विशेष विवरण.

जम्भीरी नींबूके वृक्ष बागोंमें अधिक देखे जाते हैं. इसके फूल सफेद रंगके होते हैं और पत्ते कागजी नींबूके समान परन्तु लम्बाई चौडाईमें दूने तिगुने होते हैं. फल कागजी नींबूसे चौगुने बडे होते हैं. कच्ची अवस्थामें हरे रंगके और पकजानेपर पीले पड जाते हैं. ये जम्भीरी नींबू गोल गोल पीले रंगके अत्यन्त शोभा देते हैं.

निम्बूकनामानि ।

निम्बूः स्त्री निम्बुकं क्लीबे निम्बूकमपि कीर्तितम् ।

भाषा–निम्बू (स्त्रीलिंग), निम्बूक, निंबुक (ये दो नपुंसकलिंग) ये कागजी नींबूके संस्कृत नाम हैं. (अम्लजम्बीर, वह्निदीप्य, वह्निबीज, अम्लसार, दन्ताघात, शोधन, जन्तुमारी और रोचन ये कागजी नींबूके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके नींबूके नाम.

सं.–निम्बू.	तै.–निम्मपंडु.
हिं.–कागजी नींबू.	फा.–लिमुनेतुर्श.
बं.–कागजी लेंबु.	अ.–लिमुनेहाजिम.
म.–कागदीलिंबु.	अं.–Lemons लेमन्स.
गु.–खाटा गोल लींबु, कागदीलिंबु.	ला.–Lemonum Acidum लेमोनं एसिडं.
क.–कचिले.	

निंबूकगुणाः ।

निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु ।

भाषा–कागजी नींबू खट्टा, वातनाशक, दीपन, पाचक और हलका है ॥

अन्यच्च ।

निम्बुकं कृमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम् । वातपित्तकफशूलिने हितं कष्टनष्टरुचिरोचनं परम् ॥ १०७ ॥ त्रिदोषवह्निक्षयवातरोगनिपीडितानां विषविह्वलानाम् । मन्दानले बद्धगुदे प्रदेयं विषूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ १०८ ॥

भाषा–अन्यत्रभी कहा है कि यह नींबू कृमिसमूहको नष्ट करनेवाला, तीक्ष्ण, खट्टा, उदरपीडानाशक, ग्रहबाधाको दूर करनेवाला, अत्यंत रुचिकारक है और वात, पित्त, कफ तथा शूलवालोंको अत्यन्त हितकारी है. तीनों दोष, अग्नि, क्षय तथा वातसंबंधी पीडावालोंको, विषसे विह्वल हुएको, अग्निकी मंदता, मलबंध तथा विषूचिका रोगवालोंको यह नींबू देना चाहिये ऐसा मुनि कहते हैं ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

नींबूका विशेष विवरण.

कागजी नींबूके तरुवर उत्तम उत्तम वाटिकाओंमें माली लोग लगाते हैं. ये वृक्ष न बहुत बडे न छोटे मध्यम आकारके होते हैं. इसके पत्ते जामुनके समान चिकने चिकने होते हैं. फूल सफेद रंगके छोटे छोटे और फल गोल गोल हरे रंगके होते हैं, पकनेपर पीले पड जाते हैं, पतले बल्कलके कारण कागजी नींबू कहाते हैं.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिष्टनिम्बूफलगुणाः।

मिष्टनिम्बूफलं स्वादु गुरु मारुतापित्तनुत्। गररोगविषध्वंसि कफोत्क्लेशि च रक्तहृत्॥ शोषारुचितृषाछर्दिहरं बल्यं च बृंहणम्॥१०९॥

भाषा-सर्बती नींबू मधुर, भारी है और वात, पित्त, विष, सर्पविष, रक्तविकार, शोष, अरुचि, तृषा तथा वमन इनको नष्ट करता है और कफसंबंधी रोगोंको करनेवाला, बलदायक और पुष्टिकारक है ॥ १०९ ॥

अनेक भाषाके मीठे नींबूके नाम.

सं.-मिष्टनिम्बू.	बं.-कमलालेबु.
हिं.-सर्बतीनींबू, मीठा नींबू.	म.-गोड लिंबु.
	गु.-मीठां लींबू.

मीठे नींबूका विशेष विवरण.

सर्बतीनींबू सबसे शोभायमान होता है और अनुमान यहभी जानपडता है कि यह पूर्ण रसकी खान है, माली लोग शोभाहीके लिये इनको लगा लेते हैं, इसके फूलभी सफेद सफेद और पत्ते हरे हरे अधिक सुन्दरताको प्राप्त होते हैं, जिसके उपरांत हरे और पीले फल गोल गोल नारंगीके सदृश चित्तपर मोहिनी डालकर जालमें फँसा देते हैं.

कर्मरंगनामानि।

कर्मरंग यह कमरखका संस्कृत नाम है. (कारुक, शिराल, शुकप्रिय, बृहद्दल, रुजाकर, कर्मार, कर्मरक पीतफल, कर्मर, धाराफल और कर्मारक ये कमरखके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कमरखके नाम.

सं.-कर्मरंग.	अं.-Carambola करम्बोला.
हिं.-कमरख.	
बं.-कामराङ्गा.	ला.-Averhoa Carambola एवरहोया करंबोला.
म.-कर्मर.	
गु.-कर्मरङ्ग.	

कर्मरङ्गगुणाः।

कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातहृत्।

भाषा-कमरख शीतल, ग्राही, स्वादिष्ठ, खट्टी है और कफनाशक तथा वातविनाशक है ॥

कमरखका विशेष विवरण.

कमरखके वृक्ष बहुत बडे नहीं होते, बागोंहीमें लगाये जाते हैं, पत्ते गुलाबके वृक्षके समान होते हैं, फूल लाल रंगके रंगीले होते हैं, फल गुच्छेके सदृश एक एक डालीमें दश दश, पन्द्रह पन्द्रह लगते हैं. उन फलोंपर तीन तीन चार चार पांच पांच धारेंसी खडी होती हैं.

अम्लिकानामानि।

अम्लिका चुक्रिकाम्ली च चुक्रा दन्तशठापि च। अम्ला च चिंचिका चिञ्चा तिन्तिडीका च तिन्तिडी॥ ११० ॥

भाषा-अम्लिका, चुक्रिका, अम्ली, चुक्रा, दन्तशठा, अम्ला, चिंचिका, चिंचा, तिन्तिडीका, तिन्तिडी ये इमलीके संस्कृत नाम हैं. (तिन्तिडीक, तिन्तिलिका, वृक्षाम्ल, अम्लीका, आम्लिका, आम्लिका, तिन्तिड, तिन्तिली, तिन्तिका, आब्दिका, चुक्रु, अत्यम्ला, भुक्ता, भुक्तिका, चारित्रा, गुरुपत्रा, पिच्छिला, यमदूतिका, चरित्रा, शाकचुक्रिका, सुचुक्रिका सुतिन्तिडी, पंक्तिपत्रा और सर्वाम्ला ये इमलीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ११० ॥

अनेक भाषाके इमलीके नाम.

सं.-अम्लिका.	ता.-पुलि.
हिं.-इमली.	अ.-तमरीहदी.
बं.-तेंतुल.	अं.-Tamarind Tree टॅमेरिंडट्री.
म.-चिंच.	
गु.-आंबली.	ला.-Tamarindus Indicus टॅमेरिंडस् इंडिकस्.
क.-हुणिचे.	
तै.-चिंताचेट्टु.	

अम्लिकागुणाः।

अम्लिकाऽम्ला गुरुर्वातहरा पित्तकफास्रकृत्। पक्का तु दीपनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत्॥ १११ ॥

भाषा-कच्ची इमली खट्टी, भारी, वातविनाशक है और पित्त, कफ, रुधिरविकार करने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाली है. पक्की इमली अग्निप्रदीपक, रूखी, दस्तावर, गरम है और कफनाशक तथा वातनाशक है ॥ १११ ॥

इमलीका विशेष विवरण.

इमलीके वृक्ष बहुत बडे बडे ऊँचे और सघन जंगल तथा नगरके निकट घरबाहर सर्वत्र स्थानोंमें होते हैं, पत्ते चौटलीके समान डालियोंमें दोनों ओर बराबर लगे होते हैं और खट्टे होते हैं; फूल गुच्छोंमें लगे होते हैं, रंग पीला २ उनमें कुछ लाल २ बिन्दुसे पडे होते हैं, फलियें कटारेके समान तिरछी और लम्बी होती हैं, उसकोभी कटारा कहते हैं; उन कटारोंपर सूखे हुए छिलके होते हैं, छिलकोंके छीलनेसे गूदा निकलता है परन्तु उस गूदेके भीतरभी बीज निकलते हैं, उनको चोइये कहते हैं. यह इमली दो प्रकारकी होती है एक लाल गूदेकी, दूसरी सफेद गूदेकी.

अम्लवेतसनामानि ।

स्यादम्लवेतसश्चुक्रं शतवेधि सहस्रनुत् ।

भाषा–अम्लवेतस, चुक्र, शतवेधि, सहस्रनुत् ये अमलवेंतके संस्कृत नाम हैं. (अम्ल, रसाम्ल, आम्लवेतस, वेतसाम्ल, अम्लसार, वेधक, भीम, भेदन, भेदी, बोधि, राजाम्ल, अम्लभेदक, अम्लांकुश, रक्तसार, फलाम्ल, अम्लनायक, सहस्रवेधि, वीराम्ल, गुल्म, केतु, वराभिध, शंखद्रावी, मांसद्रावी, वराङ्गी और महाक्षार ये अमलवेंतके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके अमलवेंतके नाम.

सं.–अम्लवेतस.	अं.–Common Soral कामनसॉरेल.
हिं.–अमलवेंत.	
बं.–थैकड, अम्लवेतस.	ला.–Acido Zeyfolia असीडो जेफोलिया.
म.–चुका.	
गु.–अम्लबेद.	
फा.–तुर्षक.	

अम्लवेतसगुणाः ।

अम्लवेतसमत्यम्लं भेदनं लघु दीपनम् ।
हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमहर्षणम् ११२॥
रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं प्लीहोदावर्त्तनाशनम् ।
हिक्कानाहारुचिश्वासकासार्जीर्णवमिप्रणुत् ११३
कफवातामयध्वंसि छागमांसद्रवत्वकृत् ॥
चणकाम्लगुणं ज्ञेयं लोहसूचीद्रवत्वकृत् ११४

भाषा–अमलवेंत अत्यन्त खट्टा, मलभेदक, हलका, अग्निप्रदीपक, पित्तकारक, रोमहर्षक, रूक्ष, बकरीका मांस और लोहेकी सुईको गलानेवाला, चनेके खारके सदृश गुणोंवाला है और हृदयरोग, शूल, गुल्म, मल तथा मूत्रके दोष, प्लीहा, उदावर्त्त, हिचकी, अफरा, अरुचि, श्वास, खांसी, अजीर्ण, वमन, कफ तथा वातसंबंधी रोगको नष्ट करता है ॥११२–११४॥

अमलवेंतका विशेष विवरण.

अमलवेंतके वृक्ष मध्यम आकार और दो प्रकारके होते हैं, एक अम्लवेत, दूसरी वेती, ये छोटे होते हैं, ये पेड मालियोंके बागोंमें बहुत होते हैं, फूल सफेद रंगके और फल गोल खरबूजेके समान, कच्चा हरा और पकनेपर पीला पड जाता है और चिकना होता है.

वृक्षाम्लनामानि ।

वृक्षाम्लं तिंतिडीकं च चुक्रं स्यादम्लवृक्षकम्।

भाषा–वृक्षाम्ल, तिन्तिडीक, चुक्र, अम्लवृक्षक ये विषांविलके संस्कृत नाम हैं. (अम्लशाक, चुक्राम्ल, तिन्तिडीफल, शाकाम्ल, अम्लपूर, पूराम्ल, रक्तपूरक, चूडाम्ल, बीजाम्ल, फलाम्लक, अम्लवृक्ष, अम्लफल, रसाम्ल, श्रेष्ठाम्ल, अत्यम्ल, अम्लबीज और चुक्रफल ये विषांविलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके विषांविलके नाम.

सं.–वृक्षाम्ल.	अं.–Kokam Buttertree कोकं बटरट्री.
हिं.–विषांबिल,कोकम.	
बं.–महादा.	ला.–Garcinie Purpurea गारसीनिया परप्यूरिया.
म.–आमसोल.	
गु.–कोकम.	
क.–तित्तोडिक.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृक्षाम्लगुणाः ।

वृक्षाम्लमाममम्लोष्णं वातघ्नं कफपित्तलम् ।
पक्वं तु गुरु संग्राहि कटुकं तुवरं लघु ॥ ११५ ॥
अम्लोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं कफवातकृत् ।
तृष्णार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृद्रोगजन्तुजित् ११६

भाषा—कच्चा विषांविल खट्टा, गरम, वातनाशक, कफकारक तथा पित्तकारक है, पक्का विषांविल भारी, ग्राही, चरपरा, कसैला, हलका, खट्टा, गरम, रुचिकारक, रूक्ष, अग्निप्रदीपक, कफनाशक तथा वातहारक है और तृषा, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, शूल, हृदयरोग तथा जन्तुका नाश करता है ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

विषांविलका विशेष विवरण.

विषांविलके वृक्ष गोवाकी ओर अधिक होते हैं, देखनेमें अत्यन्त सुन्दर और झादेदार होते हैं, पत्ते लम्बे और चिकने शीतऋतुमें मौर आता है और वसन्तऋतुमें फल लगते हैं, फल नारंगीके समान होते हैं, इसके सब अंग खट्टे होते हैं.

चतुरम्लपञ्चाम्लयोर्लक्षणम् ।

अम्लवेतसवृक्षाम्लबृहज्जम्बीरनिम्बुकैः ।
चतुरम्लं हि पञ्चाम्लं बीजपूरयुतैर्भवेत् ११७ ॥

भाषा—अमलवेंत, विषांविल, बडा जम्भीरी और कागजी नींबू इन चारोंको चतुराम्ल (चारखटाई) और बिजौरा नींबूके मिलानेसे पंचाम्ल खटाईपंचक कहते हैं ॥ ११७ ॥

परिभाषा ।

फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तद्गुदाहृतम् । बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम् ॥ ११८ ॥
फलेषु सरसं यत्स्याद्गुणवत्तद्गुदाहृतम् । द्राक्षाबिल्वशिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ११९
फलतुल्यगुणं सर्वं मज्जानमपि निर्दिशेत् ।
फलं हिमाग्निदुर्वातव्यालकीटादिदूषितम् ॥
अकालजं कुभूमिजं पाकातीतं न भक्षयेत् १२०
पाकातीतं पाकमतिक्रम्य स्थितम् ।

इति श्रीभावप्रकाशे आम्रादिफलवर्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

भाषा—बेलके अतिरिक्त शेष सब फल पक्केही गुणकारक जानने और बेल तो कच्चाही अधिक गुणवाला होता है, दाख, बेल और हरड आदि सूखी हुई होंय तो अधिक गुणदायक हैं. शेष सब फल सरसही अधिक गुणकारक हैं. जो गुण फलमें कहे हैं वेही गुण उसकी मींगमें जानने. जो फल हिम (बरफ) से, अग्निसे, खराब पवनसे, सर्पसे, अथवा कीडे आदिसे दूषित हुआ होय, विना समय हुआ होय, खराब भूमिमें उत्पन्न हुआ होय, अथवा पककर बिगड गया होय, वह फल कदापि नहीं खाना चाहिये ॥ ११८–१२० ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां आम्रादिफलवर्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविषोपविषवर्गः ७।

धातवः ।

स्वर्णं रूप्यं च ताम्रं च रङ्गं जशदमेव च ।
सीसं लौहं च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः १

भाषा—१ सुवर्ण (सोना), २ चांदी, ३ तांबा, ४ रांगा, ५ जस्त, ६ सीसा और ७ लोहा ये सात धातु पर्वतोंमें होती हैं ॥ १ ॥

धातुगुणाः ।

वलीपलितखालित्यकार्श्यबल्यजरामयान् ।
निवार्य देहं दधति नृणां तद्धातवो मताः ॥ २ ॥

भाषा—ये धातु वली (त्वचा सुकड जाना), पलित (केशोंका श्वेत हो जाना), खालित्य (बालोंका शिरसे उड जाना,) दुर्बलता, निर्बलता, वृद्धता और रोग इनको नष्ट करके मनुष्योंके शरीरको धारण करती हैं इसी कारण ये धातु कहाती हैं ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुवर्णोत्पत्तिः ।

मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्चेति सप्तैते कीर्तिताः परमर्षयः ॥ ३ ॥
पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम् ।
पत्नीर्विलोक्य लावण्यलक्ष्मीसम्पन्नयौवनाः ॥ ४ ॥ कन्दर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः ।
पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेममागमत् ॥ कृत्रिमं चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः ॥ ५ ॥

भाषा–१ मरीचि, २ अंगिरा, ३ अत्रि, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह, ६ क्रतु और ७ वशिष्ठ ये सातों मुनि परमर्षि कहाते हैं. ये जितात्मा महर्षि अपने आश्रममें रहते थे, तहां रूप, लावण्य, लक्ष्मी और यौवनसे सम्पन्न इनकी स्त्रियोंको देखकर, कामके बाणोंसे पीडित चित्तवाले अग्निदेवका जो वीर्य पृथ्वीपर गिरा वही सुवर्ण (सोना) होगया. पारेके वेधसे नवीन कृत्रिम सोनाभी बनाते हैं ॥ ३–५ ॥

सुवर्णनामानि ।

स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम् ।
तपनीयं च गाङ्गेयं कलधौतं च कांचनम् ॥ ६ ॥
चामीकरं शातकुम्भं तथा कार्त्तस्वरं च तत् ।
जाम्बूनदं जातरूपं महारजतमित्यपि ॥ ७ ॥

भाषा–स्वर्ण, सुवर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, गाङ्गेय, कलधौत, कांचन, चामीकर, शातकुम्भ, कार्त्तस्वर, जांबूनद, जातरूप, महारजत ये सुवर्णके संस्कृत नाम हैं. (द्राविण, भूरिपिञ्जर, भर्म, कर्बूर, रुक्म, अष्टापद, करहाटक, ऋक्थ, सानसि, अकुप्य, लोहोत्तम, भूत्तम, पुरट, रेकन, कर्बुर, भद्र, गैरिक, चाम्पेय, भरु, चन्द्र, कल्याण, अभ्रक, अग्निबीज, लोहवर, ऊर्द्ध्व, सारुक, स्पर्शमणिप्रभव, मुख्यधातु, शतखंड, उज्ज्वल, मनोहर, अग्निवीर्य, अग्नि, भास्कर, पिंजान, आर्पिजर, तेज, दीप्त, अग्निभ, दीप्तक, मङ्गल्य, सौमेरुक, भृङ्गार, जाम्बव, आग्नेय, निष्क, तपनीयक, अग्निशिख, चंड, अय, पेश, कृशन, लोह, अमृत, मरुत, दत्र, चारुरत्न, पीतक, श्रीनिकेत, भूषणार्ह और सूर्याख्य जितने सूर्यके नाम हैं वे सब ये सुवर्णके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ६ ॥ ७ ॥

अनेक भाषाके सोनेके नाम.

सं.–सुवर्ण.	ते.–भंगार.
हिं.–सुवर्ण, सोना.	फा.–तिला, जर.
बं.–सोना.	अ.–जहब.
म.–सोनें.	अं.–Gold गोल्ड.
गु.–सोनु.	ला.–Auram औरम.
क.–स्वर्ण.	

सुवर्णपरीक्षा ।

दाहे रक्तं सितं छेदे निषेके कुंकुमप्रभम् ।
तारं शुल्वोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ॥ ८ ॥ तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् । दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम् ॥ ९ ॥ सत् उत्तमम् । दलं जोर इति लोके । स्फुटं यद्धनाहतं स्फुटति ।

भाषा–जो सुवर्ण तपानेमें लाल, काटनेमें सफेद, कसौटीमें कसनेमें केशरके सदृश, चांदी और तांबेसे रहित, चिकना, कोमल (नरम) और भारी होवे वह सोना उत्तम होता है. जो सोना सफेद, कठोर, रूखा, खराब वर्णवाला, मलसहित, गांठके सदृश, तपानेमें तथा काटनेमें सफेद, कसनेमेंभी सफेद, हलका और चोट मारनसे फूट जाय, ऐसा सुवर्ण त्यागने योग्य है औषधमें इसे न लेना ॥ ८ ॥ ९ ॥

सुवर्णगुणाः ।

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् ।
स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम् ॥ १० ॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम् । हृद्यमायुःकरं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत् ॥ विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित् ॥ ११ ॥ बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजाञ्छोषयतीह काये । असौख्यकृच्चापि सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणं च कुर्यात् ॥ १२ ॥ असम्यङ् मारितं स्वर्णं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलं वीर्यं च नाशयेत् । करोति रोगान्मृत्युं च तद्धन्याद्यत्नतस्ततः ॥ १३ ॥

भाषा-सुवर्ण शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, भारी, रसायन, स्वादिष्ठ, कडवा, कसैला, पाकमें मीठा, पिच्छिल, पवित्र, पुष्टिकारक, नेत्रोंको हितकारी, बुद्धि, स्मरणशक्ति तथा विचार शक्तिको देनेवाला, हृदयको प्रिय, आयुको बढानेवाला, कांति तथा वाणीको स्वच्छ करनेवाला, स्थिरतादायक और दो प्रकारके स्थावर जंगम, विष, क्षय, उन्माद, तीनों दोष, ज्वर तथा शोषको नष्ट करनेवाला है. अशुद्ध सोना मनुष्योंके बल तथा वीर्यको हरता है. अनेक रोग उत्पन्न करके शरीरको सुखा देता है, सर्वदा दुःख करनेवाला है और मृत्युभी कर देता है. भली भांति नहीं मारा हुआ सोना बल तथा वीर्यको नष्ट करता है. रोगोंको उत्पन्न करनेवाला और मृत्युदायक है, इस कारण यत्नपूर्वक मारना चाहिये ॥ १०-१३ ॥

रूप्योत्पत्तिः ।

त्रिपुरस्य वधार्थाय निर्निमेषैर्विलोचनैः ।
निरीक्षयामास शिवः क्रोधेन परिपूरितः॥१४॥
अग्निस्तत्कालमपतत्तस्यैकस्माद्विलोचनात् ।
ततो रुद्रः समभवद्वैश्वानर इव ज्वलन् ॥१५॥
द्वितीयादपतन्नेत्रादश्रुबिन्दुस्तु वामकात् ।
तस्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्मसु योजयेत् ॥ कृत्रिमं च भवेत्तद्धि वङ्गादिरसयोगतः ॥ १६ ॥

भाषा-त्रिपुरासुरके वध करनेको क्रोधसे परिपूर्ण श्रीमहादेव निर्निमेष (पलक न मारकर) नेत्रोंसे उस दैत्यको देखते हुए, उस समय उनके एक नेत्रसे तत्काल अग्नि निकली और श्रीमहादेव अग्निकी भांति प्रज्वलित हुए और दूसरे वामनेत्रसे आंसूकी बूंद गिरी, उससे चांदी उत्पन्न हुई है. चांदीको शास्त्रोक्त विधिसे उपयोग करना. रांगा आदिमें पारदके उपयोगसे कृत्रिम चांदीभी होती है ॥ १४-१६ ॥

रूप्यनामानि ।

रूप्यं तु रजतं तारं चन्द्रकान्ति सितप्रभम् ।

भाषा-रूप्य, रजत, तार, चन्द्रकान्ति, सितप्रभ ये चांदीके संस्कृत नाम हैं. (दुर्वर्णक, श्वेत, खर्जूर, लोहराजक, अकुप्य, रजत, सौध, विमल, चन्द्रलोहक, शुभ्र, वसुश्रेष्ठ, रुधिर, श्वेत, महाशुभ, तप्तरूपक, चन्द्रभूति, सित, कलधूत, इन्दुलोहक, रौप्य, धूत, चन्द्रहास, राजरंग, दुर्वर्ण, रंगबीज, कलधौत, कुप्य, रुचिर, चन्द्रवपु, महावसु, बाष्कल, महाधन और शुभ ये चांदीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके चांदीके नाम.

सं.-रूप्य.	तै.-एण्डी.
हिं.-चांदी, रूपा.	फा.-नुकरा.
बं.-रूप.	अ. फिद्दा.
म.-रुपें, चांदी.	अं.-Silver सिल्वर.
गु.-रूपुं.	ला.-Argentum आजन्टम्.
क.-बेल्लि.	

रूप्यपरीक्षा ।

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे घनक्षमम् ॥
वर्णाढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं रूप्यं नवगुणं शुभम् ॥ १७ ॥ कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु । दाहच्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥

भाषा-जो चांदी उत्तम वर्णवाली चन्द्रमाके समान स्वच्छ, भारी, चिकनी, नरम, तपाने तथा काटनेमें सुफेद और चोट मारनेसे नहीं खिले अर्थात् टुकडे २ न होवे वह उत्तम चांदी जाननी. इन नौ प्रकारसे चांदीकी परीक्षा करे. जो चांदी कठोर, बनाई हुई, रूखी, लाल, पीले दलवाली, हलकी, तपानेमें तथा काटने कूटनेमें बिखर जाय (टुकडे २ हो जाय) ऐसी चांदी निषिद्ध जाननी ॥ १७ ॥ १८ ॥

रूप्यगुणाः ।

रूप्यं शीतं कषायाम्लं स्वादु पाकरसं सरम् ।
वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् ॥
प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यविरादधृतम्१९॥
तारं शरीरस्य करोति तापं विद्धं घनं यच्छ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ति शुक्रनाशनम् । वीर्यं बलं हन्ति तनोश्च पुष्टिं महागदान्पोषयति ह्यशुद्धम् ॥ २० ॥

भाषा–चांदी शीतल, कसैली, खट्टी, पाकमें तथा रसमें मधुर, दस्तावर, आयुस्थापक, स्निग्ध, लेखन, वात तथा पित्तको जीतनेवाली और प्रमेहादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करनेवाली है. अशुद्ध चांदी शरीरमें ताप उत्पन्न करती है, वीर्यबल तथा पुष्टताको नष्ट करती है और महान् रोगोंकी वृद्धि करके शरीरका शोषण करती है ॥ १९ ॥ २० ॥

ताम्रोत्पत्तिः ।

शुक्रं यत्कार्त्तिकेयस्य पतितं धरणीतले । तस्मात्ताम्रं समुत्पन्नमिदमाहुः पुराविदः २१॥

भाषा–कार्तिकेयका शुक्र पृथ्वीपर गिरनेसे तांबा उत्पन्न हुआ है, यह विद्वान् कहते हैं॥२१

ताम्रनामानि ।

ताम्रमौदुंबरं शुल्बमुदुंबरमपि स्मृतम् । रविप्रियं म्लेच्छमुखं सूर्यपर्यायनामकम्॥२२॥

भाषा–ताम्र, औदुम्बर, शुल्ब, उदुम्बर, रविप्रिय, म्लेच्छमुख और जितने सूर्यके नाम हैं वे सब तांबेके संस्कृत नाम हैं. (द्विष्ट, वरिष्ठ, कनीयस, ताम्रक, द्यष्ट, उडुम्बर, शुल्ब, ओडुम्बर, मुनिपित्तल, अर्क, सूर्य, लोहितायस, लोहिताय, तपनेष्ट, अम्बक, अरविन्द, रविलोह, रक्त, नैपालिक, रक्तधातु, सर्वलोह, पवित्र, ब्रह्मवर्चस और भासुर ये तांबेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २२ ॥

अनेक भाषाके ताम्बेके नाम.

सं.–ताम्र.	ता.–सेनबु.
हिं.–तांबा.	फा.–मिस.
बं.–तामा.	अ.–नुहास.
म.–तांबें.	अं.–Copper कापर.
गु.–त्रांबो.	ला.–Cuprum क्युप्रम.
क.–ताम्र.	
तै.–रागी.	

ताम्रपरीक्षा ।

जपाकुसुमसङ्काशं स्निग्धं मृदु घनक्षमम् । लोहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते २३ कृष्णं रूक्षमतिस्तब्धं श्वेतं चापि घनासहम् । लोहनागयुतं चेति शुल्बं दुष्टं प्रकीर्त्तितम्२४॥

भाषा–जो तांबा जवाके फूलके सदृश लालवर्ण, स्निग्ध, कोमल, घन चोटसे टूटे नहीं और लोहा तथा सीसा रहित होय वह मारनेमें उत्तम कहा है, जो तांबा काला, रूक्ष, अत्यंत कठोर, सफेद, घनकी चोटसे खिलजाय और लोहा तथा सीसा मिला हुआ होय वह तांबा दुष्ट कहा है अर्थात् मारणकर्ममें त्याज्य है ॥ २३ ॥ २४ ॥

ताम्रगुणाः ।

ताम्रं कषायं मधुरं च तिक्तमम्लं च पाके कटु सारकं च । पित्तापहं श्लेष्महरं च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनं च ॥ २५ ॥ पाण्डूदरार्शोज्वरकुष्ठकासश्वासक्षयान्पीनसमम्लपित्तम् । शोथं कृमिं शूलमपाकरोति प्राहुः परे बृंहणमल्पमेतत् ॥ २६ ॥

भाषा–तांबा कसैला, मधुर, कडवा, खट्टा, पाकमें चरपरा, दस्तावर, पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाला, शीतल, रोपण (घावको भरनेवाला), हलका, लेखन है और पाण्डुरोग, उदररोग, बवासीर, ज्वर, कोढ, खांसी, श्वास, क्षय, पीनस, अम्लपित्त, सूजन, कृमि तथा शूलको नष्ट करता है, कोई कोई इसको अल्प बृंहण करनेवाला कहते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

ताम्रदोषाः ।

एको दोषो विषे ताम्रे त्वसम्यङ्मारितेऽष्ट ते। दाहः स्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छा क्लेदो रेको वमिर्भ्रमः ॥ २७॥ रेकः विरेकः ।

भाषा–विषमें तो केवल एकही दोष है, परंतु नहीं मारे हुए तांबेमें दाह, पसीना, अरुचि, मूर्च्छा, ग्लानि, विरेचन, वमन और भ्रम ये आठ दोष हैं ॥ २७ ॥

रङ्गनामानि ।

रङ्गं वङ्गं त्रपु प्रोक्तं तथा पिच्चटमित्यपि ।

भाषा–रंग, वंग, त्रपु, पिच्चट ये रांगेके संस्कृत नाम हैं. (स्वर्णज, नागजीवन, मृदङ्ग,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरुपत्र, तमर, नागज, कस्तूरी, आलीमक, सिंहल, स्ववेत, नाग, त्रपुष, आप, पूतिगंध और चिप्पट ये रांगेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके रांगेके नाम. ।

सं.–रंग, वङ्ग.	तै.–तागारामु.
हिं.–रांगा, वङ्ग.	फा.–अरजीज.
बं.–राङ्ग, वङ्ग.	अ.–रुसास्.
म.–कथील.	अं.–Tin टीन्.
गु.–कथीर.	ला.–Stannum स्टेन्नम्.
क.–तवर.	

रङ्गपरीक्षा ।

खूरकं मिश्रकं चापि द्विविधं वङ्गमुच्यते ।
उत्तमं खुरकं तत्र मिश्रकं त्ववरं मतम् ॥२८॥

भाषा–रांगा खुरक और मिश्र इस भांति दो प्रकारका है. इसमें खुरक रांगा उत्तम होता है और मिश्रक अधम होता है ॥ २८ ॥

रंगगुणाः ।

रंगं लघु सरं रूक्षमुष्णं मेहकफकृमीन् ।
निहन्ति पाण्डुं सश्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक् ॥ २९ ॥ सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वंगोऽखिलमेहवर्गम् । देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ३०॥

भाषा–रांगा हलका, दस्तावर, रूखा, गरम, नेत्रोंको हितकारी, किंचित् पित्तकारक है और प्रमेह, कफ, कृमि, पांडु तथा श्वासको नष्ट करता है. जिस प्रकार सिंह हाथियोंको मार डालता है उसी प्रकार शुद्ध रांगा सम्पूर्ण प्रमेहोंको नष्ट करता है, देहमें सुख करता है, इन्द्रियोंको बलवान् करता है और अवश्य शरीरमें पुष्टि देता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

जसदनामानि ।

जसदं रंगसदृशं रीतिहेतुश्च तन्मतम् ।

भाषा–जसद, रङ्गसदृश और रीतिहेतु ये जस्तेके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके जस्तेके नाम.

सं.–जसद.	तै.–खर्परं.
हिं.–जस्ता.	फा.–रुएतुतिया.
बं.–दस्ता.	अ.–शबहा.
म.–जस्त.	अं.–Zine जिंक.
गु.–जसत.	ला.–Zincum जिंकं.

जसदगुणाः ।

जसदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् ।
चक्षुष्यं परमं मेदान्पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ३१

भाषा–जस्ता कसैला, कडवा, शीतल, नेत्रोंको हितकारी है और कफ, पित्त, महान् प्रमेह, पाण्डु तथा श्वासको नष्ट करता है ॥ ३१ ॥

सीसोत्पत्तिः ।

दृष्ट्वा भोगिसुतां रम्यां वासुकिस्तु मुमोच यत् ।
वीर्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम् ३२

भाषा–भोगीसर्पकी रमणीय कन्याको देखकर वासुकी नागका जो वीर्य गिरा उससे सीसा उत्पन्न हुआ है, और वह सीसा मनुष्योंके सर्व रोगोंको दूर करता है ॥ ३२ ॥

सीसनामानि ।

सीसं ब्रध्नं च वप्रं च चोगेष्टं नागनामकम् ।
नागनामकम् नागः भुजङ्ग इत्यादि ॥

भाषा–सीस, ब्रध्न, वप्र, योगेष्ट और नागके जितने नाम हैं वे सब ये सीसेके संस्कृत नाम हैं. (सुवर्णक, चीन, पिष्ट, तिन्दूर, कारण, सीसक, सीसपत्रक, नाग, गण्डूपदभव, वर्द्ध, स्वर्णारि, यवनेष्ट, चीर, ब्रध्न, पिच्चट, सुवर्णारि, त्रपु, वध्रक, महाबल, यामुनेष्टक, बहुमल, श्वेतरंजन, जड, भुजङ्गम, उरंग, कुरंग, परिपिष्टक, मृदुकृष्णायस, पद्म, तारशुद्धिकर, शिरावृत्त, वयोरंग, चीनापिष्ट, चीतरंग, धातुमल और पार्वत ये सीसेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके सीसेके नाम.

सं.–सीसः	ते.–शिशू.
हिं.–सीसा.	फा.–सुर्व.
बं.–सीसे, सीसा.	अ.–रुसासुल.
म.–शिसें.	अं.–Lead लेड.
गु.–शीसूं.	ला.–Plumbum प्लंबम्.
क.–सीसा.	

सीसगुणाः ।

सीसं रंगगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् । नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति । वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ ३३ ॥

भाषा–सीसेमें रांगेके सदृश गुण हैं, विशेष करके प्रमेहनाशक है. जो सीसा निरन्तर सेवन करे तो हाथियोंके सदृश बल देता है, रोगोंको नष्ट करता है, जीवनका विस्तार होता है, अग्नि दीपन होती है, कामदेवका बल बढता है और मृत्यु दूर होती है ॥ ३३ ॥

सीसदोषाः ।

पाकेन हीनौ किल वंगनागौ कुष्ठानि गुल्मांश्च तथाऽतिकुष्ठान् । कंडूं प्रमेहानिलसादशोथभगन्दरादीन्कुरुतः प्रभुक्तौ ॥ ३४ ॥

भाषा–यदि सीसा और रांगा कच्चा खानेमें आवे तो कोढ, अत्यन्त दुःखदायी गुल्म, खुजली, प्रमेह, वातकी पीडा, सूजन और भगंदर आदि रोगोंको करता है ॥ ३४ ॥

लोहोत्पत्तिः ।

पुरा लोमिनदैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि । उत्पन्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ३५

भाषा–पहिले देवताओंके युद्धमें मरे हुए लोमिननामक दैत्योंके शरीरमेंसे अनेक प्रकारके लोह उत्पन्न हुए हैं ॥ ३५ ॥

लोहनामानि ।

लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी ।

भाषा–लोह (पुंल्लिंग और नपुंसकलिंग) शस्त्रक, तीक्ष्ण, पिंड, कालायस, आयस ये लोहेके संस्कृत नाम हैं. (तीव्र, लोहकान्तक, क्रान्त, लौह, शस्त्रालय, शस्त्र, शम्बक, पित्त, पित्ताशय, शच, मुण्डज, निशित, खड्ग, अयस, कान्त, चित्रायस और चालज ये लोहेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके लोहेके नाम.

सं.–लोह.	तै.–इनुमु.
हिं.–लोहा.	फा.–आहन्.
बं.–लौह.	अ.–हदीद्.
म.–लोखंड.	अं.–Iron Steel आइरन् स्टील.
गु.–लोटुं.	
क.–अयस्कान्त.	ला.–Ferrum फेरम्.

लोहदोषाः ।

गुरुतादृढतोत्क्लेदः कश्मलं दाहकारिता । अश्मदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्तायसस्य तु ३६

भाषा–लोहेमें भारीपन, दृढता, ग्लानिकारकता, मूर्च्छाकारकता तथा दाहकारकता, पथरीदोष और बहुत दुर्गन्धता ये सात दोष हैं॥३६॥

लोहगुणाः ।

लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु । रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत्।३७॥ कफं पित्तं गरं शूलं शोथार्शःप्लीहपाण्डुताः । मेदोमेहकृमीन्कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि ॥ ३८ ॥

भाषा–लोहा कडवा, दस्तावर, शीतल, मधुर, कसैला, भारी, रूक्ष, आयुदाता, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, वातकारक है और कफ, पित्त, विष, शूल, सूजन, बवासीर, प्लीहा, पाण्डु, मेद रोग, प्रमेह, कृमि तथा कोढको नष्ट करता है. लोहेकी कीट (मैल) में भी येही गुण हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अशुद्धलोहदोषाः ।

पाण्डुत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद्भृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीं च । नानारुजानां च तथा प्रकोपं करोति हृल्लासमशुद्धलोहम् ॥ ३९ ॥ जीवहारि मदकारि चायसं देहशुद्धिमदसंस्कृतं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्रुवम् । पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजां च यच्छति ॥ ४० ॥

भाषा—जो अशुद्ध लोहा खानेमें आवे तौ पाण्डुरोग, कोढ, मरण, हृदयके रोग, शूल, पथरी, श्वास और अनेक प्रकारके रोगोंका कोप होता है. भली भांति न शुद्ध किया हुआ लोहा जीवनको हरनेवाला, मदकारक, देहकी स्वच्छताको नष्ट करनेवाला, सामर्थ्य हरनेवाला और हृदयमें दारुण पीडा उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

लोहसेवने पथ्यम् ।

कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा । मद्यमम्लरसं चापि त्यजेल्लोहस्य सेवकः॥४१॥

भाषा—लोहा सेवन करनेवालोंको पेठा, तिलका तेल, उडद, राई, मद्य (दारू) और खटाई ये सब त्यागने चाहिये ॥ ४१ ॥

सारलोहस्य लक्षणम् ।

क्षमाभृच्छिखराकाराण्यङ्गान्यम्लेन लेपयेत् । लोहे स्युर्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते४२

भाषा—जो लोहेके कठोर बडे बडे टुकडोंको अम्ल (खट्टे) रससे लेप करनेपर टुकडोंपर पर्वताकार जोंहर सूक्ष्म २ होजाय वह लोहा सारलोह कहाता है ॥ ४२ ॥

सारलोहगुणाः ।

लोहं साराह्वयं हन्याद्ग्रहणीमतिसारकम् । अर्द्धं सर्वांगजं वातं शूलं च परिणामजम् ॥ छर्दिं च पीनसं पित्तं श्वासं कासं व्यपोहति ॥ ४३ ॥

भाषा—सारलोह संग्रहणी, अतीसार, अर्द्धांगवात, सर्वांगवात, परिणामज शूल, वमन, पीनस, पित्त, श्वास तथा खांसीको अवश्य नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

कान्तलोहस्य लक्षणम् ।

यत्पात्रे न प्रसरति जले तैलबिन्दुः प्रतप्ते हिंगुर्गन्धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्ववल्कः । तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं कृष्णांगः स्यात्सजलचणकः कान्तलोहं तदुक्तम् ॥ ४४ ॥

भाषा—जिस लोहेके पात्रमें उष्ण जल भरकर तेलकी बूंद डालनेसे नहीं फैले, तथा जिसमें डालनेसे हींग अपनी गन्ध त्याग दे और तैसेही नीमका वल्कल रखनेसे कडवेपनको त्याग दे, और दूध गरम करनेसे शिखराकार उफान ऊपरको खडा होजाय तथा भूमिमें न गिरे और जिस पात्रमें चने भिजोनेसे काले होजाय उसको कांतलोह कहते हैं ॥ ४५ ॥

कान्तलोहगुणाः ।

गुल्मोदरार्शःशूलाममामवातं भगन्दरम् । कामलाशोथकुष्ठानि क्षयं कान्तमयो हरेत्४५॥ प्लीहानमम्लपित्तं च यकृच्चापि शिरोरुजम् । सर्वान्रोगान् विजयते कान्तलोहं न संशयः ॥ बलं वीर्यं वपुःपुष्टिं कुरुतेऽग्निं विवर्द्धयेत् ४६॥

भाषा—कांतलोहा गुल्म (गोला), उदररोग, बवासीर, आम, आमवात, भगंदर, कामला, शोथ, कुष्ठ, क्षय, प्लीहा, अम्लपित्त, यकृत् और शिरके रोग इत्यादि सब रोगोंको निःसंदेह नष्ट करता है. तथा बल वीर्य और शरीरमें पुष्टता करता है, जठराग्निकी वृद्धि करता है ॥ ४६ ॥

किट्टीलक्षणगुणाः ।

ध्मायमानस्य लोहस्य मलं मण्डूरमुच्यते । लोहसिंहानिका किट्टी सिंहानं च निगद्यते । यल्लोहं यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टमपि तद्गुणम्४७॥

भाषा—लोहेको अग्निमें धमानेसे जो मैल निकलता है, उसको मण्डूर, लोहसिंहानिका, किट्टी और सिंहान कहते हैं, जिस लोहेमें जो गुण हैं वेही उसकी कीटमेंभी हैं ॥ ४७ ॥

उपधातवः ।

सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिकं तारमाक्षिकम् । तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु ॥ ४८ ॥ उपधातवः गौणा धातवः ।

भाषा—सोनामाखी, रूपामाखी, तूतिया, कांसी, पीतल, सिन्दूर और शिलाजित ये सात उपधातु हैं ॥ ४८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपधातुगुणाः ।

उपधातुषु सर्वेषु तत्तद्धातुगुणा अपि । संति किं तेषु तत्रोनास्तत्तदंशाल्पभावतः ॥ ४९ ॥

भाषा–सम्पूर्ण उपधातुओंमें उसी उसी धातुके गुण हैं, परन्तु उसमें धातुओंका अंश अल्प होनेसे हीन गुणवाली होती हैं ॥ ४९ ॥

सुवर्णमाक्षिकनामानि ।

स्वर्णमाक्षिकमाख्यातं तापीजं मधुमाक्षिकम् । ताप्यं माक्षिकधातुश्च मधुधातुश्च स स्मृतः ५०

भाषा–स्वर्णमाक्षिक, तापीज, मधुमाक्षिक, ताप्य, माक्षिकधातु, मधुधातु ये सोनामाखीके, संस्कृत नाम हैं. (धातुमाक्षिक, ताप्यक, स्वर्णाह्वय, सुवर्णमाक्षिक, तापिच्छ, आपीत, पीतमाक्षिक, आवर्त्त, क्षौद्रधातु, माक्षिकधातु, कदम्ब, चक्रनामा, तापिज्ज, स्वर्णवर्ण, हेमद्युति ये सोनामाखीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५० ॥

अनेक भाषाके सोनामाखीके नाम.

सं.–सुवर्णमाक्षिक.	अ.–मुर्कशीशाजहवी.
हिं.–सोनामाखी.	अं.–Iron Pyrites आयर्न पाइराइट्स.
बं.–स्वर्णमाक्षिक.	
म.–दगडी सोनामुखी.	
गु.–सोनामखी.	ला.–Ferri Sulphuretum फेरीसल्फ्युरेटम्.
क.–धातुमाक्षिक.	
तै.–स्वर्णमाखी.	

सुवर्णमाक्षिकलक्षणम् ।

किञ्चित्सुवर्णसाहित्यात्स्वर्णमाक्षिकमीरितम् । उपधातुः सुवर्णस्य किञ्चित्स्वर्णगुणान्वितम् ॥ ५१ ॥ तथा च काञ्चनाभावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम् । किन्तु तस्यानुकल्पत्वात्किञ्चिदूनगुणास्ततः ॥ ५२ ॥ न केवलं स्वर्णगुणा वर्त्तंते स्वर्णमाक्षिके । द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणा यतः ॥ ५३ ॥

भाषा–इसमें किंचित् सुवर्ण मिला होता है. इस कारण इसको स्वर्णमाक्षिक कहते हैं. सोनामाखी सोनेकी उपधातु है, इससे इसमें किंचित् सुवर्णकेही गुण रहते हैं, इसलिये सोनेके अभावमें सोनामाखी देते हैं. परन्तु ये सोनेके अभावमें देते हैं. इससे इसमें सोनेसे कुछ हीन गुण हैं. सोनामाखीमें केवल सोनेके गुण रहते हैं. यह नहीं किन्तु उसमें अन्य पदार्थोंका संसर्ग होनेसे अन्य गुणभी रहते हैं ॥ ५१–५३ ॥

सुवर्णमाक्षिकगुणाः ।

सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् । चक्षुष्यं बस्तिरुक्कुष्ठपांडुमेहविषोदरान् ॥ अर्शः शोथं विषं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥ ५४ ॥

भाषा–सोनामाखी स्वादु, कडवी, वीर्यवर्द्धक, रसायन, नेत्रोंको हितकारी है और बस्तिरोग, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, बवासीर, सूजन, खुजली और त्रिदोषको दूर करतीहै ॥ ५४ ॥

सुवर्णमाक्षिकदोषाः ।

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् । तथैव मालां व्रणपूर्विकां च करोति तापीजमशुद्धमेतत् ॥ ५५ ॥

भाषा–अशुद्ध सोनामाखी अग्निकी मंदता, बलकी हानि, विष्टम्भिता, नेत्ररोग, कोढ और अनेक व्रण (घाव) उत्पन्न करती है ॥ ५५ ॥

तारमाक्षिकलक्षणनामानि ।

तारमाक्षिकमन्यत्तु तद्वेद्रजतोपमम् । किञ्चिद्रजतसाहित्यात्तारमाक्षिकमीरितम् ॥ ५६ ॥

भाषा–रूपामाखी चांदीके सदृश होती है और उसमें किंचित् चांदी रहती है इससे तारमाक्षिक (रूपामाखी) कहलाती है. तथा (विमल, माक्षिकश्रेष्ठ, श्वेताक्षरूप्यमाक्षिक और रौप्यमाक्षिक ये रूपामाखीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५६ ॥

अनेक भाषाके रूपामाखीके नाम.

सं.–तारमाक्षिक.	गु.–रूपामाखी.
हिं.–रूपामाखी.	क.–यरडुमाक्षिक.
बं.–रौप्यमाक्षी.	तै.–रूपामाखी.
म.–रौप्यमाक्षिक.	अ.–मुर्कशीशाफिद्दा.

तारमाक्षिकलक्षणम् ।

अनुकल्पतया तस्या ततो हीनगुणाः स्मृताः । न केवलं रूप्यगुणा यतः स्यात्तारमाक्षिकम् ५७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-चांदीके अभावमें रूपामाखी देते हैं इस कारण चांदीसे हीनगुण है. रूपामाखीमें चांदीकेही गुण हैं ऐसा नहीं किन्तु अन्य गुणभी रहते हैं ॥ ५७ ॥

तारमाक्षिकगुणाः ।

स्वादु पाके रसे किञ्चित्तिक्तं वृष्यं रसायनम् ।
चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरम् ॥
अर्शःशोथं क्षयं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ५८

भाषा-रूपामाखी पाकमें मीठी, रसमें किंचित् कडवी, वीर्यवर्द्धक, रसायन, नेत्रोंको हितकारी है और वस्तिरोग, कोढ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, बवासीर, सूजन, क्षय, खुजली तथा त्रिदोषको नष्ट करती है ॥ ५८॥

तारमाक्षिकदोषाः ।

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् । तथैव मालां व्रणपूर्विकां च करोति तापीजमिदं च तद्वत् ॥ ५९ ॥

भाषा-अशुद्धरूपामाखी मंदाग्नि, बलकी हानि, विष्टम्भिता, नेत्ररोग, कोढ, गंडमाला, और अनेक व्रण उत्पन्न करती है ॥ ५९ ॥

तुत्थनामानि ।

तुत्थं वितुन्नकं चापि शिखिग्रीवं मयूरकम् ।

भाषा-तुत्थ, वितुन्नक, शिखिग्रीव, मयूरक ये तूतियाके संस्कृत नाम हैं. (मूषातुत्थ, कांस्यनील, तुत्थक, शिखिकण्टक, हरिताश्म, नीलांगज, मयूरग्रीवक, ताम्रगर्भ, अमृतोद्भव, मयूरतुत्थ, मृतक, शिखिकंठ, नील, तुत्थांजन, हेमसार, मृताभिद और ताम्रोपधातु ये तूतियाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तूतियाके नाम.

सं.-तुत्थ. [था.	फा.-दूदिया.
हिं.-तूतिया, नीलाथो-	अ.-तूतियाअकजर.
बं.-तूतिया.	अं.-Sulphate of Copper सल्फेट आफ कापर.
म.-मोरचूत.	
गु.-मोरथुथु.	
क.-मयूरतुत्थ.	
ते.-मेलतुतु.	ला.-Cupresulphas क्युप्रिसल्फास.

तुत्थलक्षणम् ।

तुत्थं ताम्रोपधातुर्हि किञ्चित्ताम्रेण तद्भवेत् ।
किञ्चित्ताम्रगुणं तस्माद्वक्ष्यमाणं गुणं च तत् ॥ ६० ॥

भाषा-नीलाथोथा तांबेकी उपधातु है इसमें कुछ तांबेका योग होता है, इससे कुछ तांबेके गुण रहते हैं और अन्यभी गुण रहते हैं ॥६०॥

तुत्थगुणाः ।

तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ।
लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥
विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नं खर्परं चापि तद्गुणम् ६१॥

भाषा-नीलाथोथा चरपरा, खारी, कसैला, वमनकारक, हलका, लेखन, मलभेदक (दस्तावर), शीतल, नेत्रोंको हितकारी है और कफ, पित्त, विष, पथरी, कोढ तथा खुजलीको दूर करता है. जो इसमें गुण हैं वेही खपरियामेंभी हैं ॥ ६१ ॥

कांस्यनामानि ।

ताम्रत्रपुजमाख्यातं कांस्यं घोषं च कंसुकम् ।

भाषा-ताम्रत्रपुज, कांस्य, घोष, कंसुक ये कांसेके संस्कृत नाम हैं. (विद्युत्प्रिय, कंस, ताम्रार्द्ध, वंगशुल्बज, कंसास्थि, प्रकाश, घंटाशब्द, असुराह्वय, सौराष्ट्रक, कांसीय, घोरपुष्प, वह्निलोहक, दीप्तलोहक, घोरपुष्पक, दीप्तलोह, कांसक, कांस और दीप्ति ये कांसेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कांसीके नाम.

सं.-कांस्य.	ते.-कंचु.
हिं.-कांसी.	फा.-रोईन.
बं.-कांसा.	अ.-तालिकून.
म.-कांसें.	अं.-Bellmetal बेलमेटल.
गु.-कांसु.	
क.-कंचु.	ला.-Brinze ब्रींज.

कांस्यलक्षणम् ।

उपधातुर्भवेत्कांस्यं द्वयोस्तरणिरङ्गयोः ।
कांसस्य तु गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा जनैः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संयोगजप्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृताः ॥ ६२ ॥

भाषा–कांसी तांबा और रांगा दोनोंके मिलनेसे बनती है और इनकीही उपधातु है. जो तांबेमें और रांगेमें गुण रहते हैं, वेही गुण कांसेमें हैं. संयोगके प्रभावसे इसमें अन्य गुणभी हैं ॥ ६२ ॥

कांस्यगुणाः ।

कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम् ।
गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम् ॥ ६३ ॥

भाषा–कांसी कसैली, कडवी, गरम, लेखन, विशद, दस्तावर, भारी, नेत्रोंको हितकारी, रूखी है और कफपित्तको अत्यन्त नष्ट करता है ॥ ६३ ॥

आरकूटनामानि ।

पित्तलं त्वारकूटं स्यादारो रीतिश्च कथ्यते ।

भाषा–पित्तल, आरकूट, आर, रीति ये पीतलके संस्कृत नाम हैं. (कपिलोह, सुवर्णक, रिरी, पीतलोह, सुलोहक, ब्राह्मी, राजा, कपिला, ब्रह्मरीति, महेश्वरी, पतिकाबेर, द्रव्यदारु, रीती, मिश्र, राजरीति, क्षुद्रसुवर्ण, सिंहल, पिंगल, पीतनक, लोहितक, पिंगललोह, पीतक, पाकतुण्डी, राजपुत्री, ब्रह्माणी, हरिलोह और पिंग ये पीतलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पीतलके नाम.

सं.–पित्तल, आरकूट.	क.–पित्ताले.
हिं.–पीतल.	तै.–इत्तडी.
बं.–पितल.	फा.–बिरंज.
म.–पितळ.	अं.–Brass ब्रास.
गु.–पीतल.	

आरकूटलक्षणम् ।

राजरीतिर्ब्रह्मरीतिः कपिला पिङ्गलापि च ।
रीतिरप्युपधातुः स्यात्ताम्रस्य जसदस्य च ६४
पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा जनैः ।
संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः ॥ ६५ ॥

भाषा–पीतल तपाकर कांजीमें डालनेसे ललाई झलके वह पीतल राजरीति और जिसमें पीलापन झलके वह पीतल ब्रह्मरीति कहाती है. पीतल तांबा और जस्ताके मिलनेसे बनता है यह तांबा और जस्तकी उपधातु है इस कारण इसमें तांबे और जस्तके सदृश गुण हैं. संयोगके प्रभावसे उसमें अन्य गुणभी हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

आरकूटगुणाः ।

रीतिकायुगलं रूक्षं तिक्तं च लवणं रसे ।
शोधनं पाण्डुरोगघ्नं कृमिघ्नं नातिलेखनम् ६६

भाषा–दोनों जातिका पीतल रूखा कडवा, रसमें खारी, शोधक, अत्यंत लेखन नहीं और पांडुरोग तथा कृमिरोगको नष्ट करता है ॥ ६६ ॥

सिन्दूरनामानि ।

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भश्च सीसजम् ।

भाषा–सिन्दूर, रक्तरेणु, नागगर्भ, सीसज ये सिंदूरके संस्कृत नाम हैं. (नामजंबीर, रक्त, सन्ध्यग, शिव, रक्तवालुका, रंगज, वङ्गज, शृंगारभूषण, नागरक्त, नागसम्भव, रक्तचूर्ण, रक्तवालुक, रक्तशासन, आलदर्शन, नागरेणु, सीमन्तक, नागगर्भक, शोण, वीररज, गणेशभूषण, सन्ध्याराग, शृंगारक, सौभाग्य, अरुण, मंगल्य और सीसोपधातु ये सिन्दूरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सिंदूरके नाम.

सं.–सिंदूर.	अं.–Minium मिनियम्, Red lead रेडलेड्.
हिं.–सिन्दूर.	
बं.–सिन्दुर.	
म.–शेंदुर.	ला.–Plumbum oxydum प्लंबम् आक्साइडम्.
तै.–सिन्दुरम्.	
फा.–सिरिन्ज.	

सिंदूरलक्षणम् ।

सीसोपधातुः सिन्दूरो गुणैस्तत्सीसवन्मतम् ।
संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः ॥

भाषा–सिन्दूर सीसेकी उपधातु है इस कारण इसमें सीसेके सदृश गुण हैं और संयोगके प्रभावसे अन्यगुणभी हैं ॥ ६७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिंदूरगुणाः ।

सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहम् ।
भग्नसन्धानजननं व्रणशोधनरोपणम् ॥ ६८ ॥

भाषा-सिन्दूर गरम, टूटे हुएको जोडनेवाला, व्रणशोधक, रोपण, घावको भरनेवाला है और विसर्प, कोढ, खुजली तथा विषको नष्ट करता है ॥ ६८ ॥

शिलाजतूत्पत्तिः ।

निदाघे घर्मसन्तप्ता धातुसारं धराधराः ।
निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्त्तितम् ॥
सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं तच्चतुर्विधम् ॥ ६९ ॥

भाषा-गरमियोंमें पर्वत धूपसे सन्तापित होकर धातुओंके सारको गोंदके सदृश छोडते हैं. उसको शिलाजीत कहते हैं, सोनेका, चांदीका, तांबेका और लोहेका इस भांति चार प्रकारका शिलाजीत होता है ॥ ६९ ॥

शिलाजतुनामानि ।

शिलाजत्वद्रिजतु च शैलनिर्यास इत्यपि ।
गैरेयमश्मजं चापि गिरिजं शैलधातुजम् ७० ॥

भाषा-शिलाजतु, अद्रिजतु, शैलनिर्यास, गैरेय, अश्मज, गिरिज, शैलधातुज ये शिलाजीतके संस्कृत नाम हैं. (अर्थ्य, शिलाज, अगज, शैल, शैलेय, शीतपुष्पक, शिलाव्याधि, अश्मोत्थ, अश्मलाक्षा, अश्मजतुक और जत्वश्मक ये शिलाजीतके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ७० ॥

अनके भाषाके शिलाजीतके नाम.

:.-शिलाजत्.
हिं.-शिलाजीत.
गु.-शिलाजित.
म.-शिलाजीत.
क.-कल्लुंड, कलुवेचरु.
अं.-Aspholt आस्फोल्ट, Jew's pitch जूज पिच्.
ला.-Asphaltum Punjabinum आस्फल्टम् पंजाबिनम्.

शिलाजतुगुणाः ।

शिलाजं कटु तिक्तोष्णं कटुपाकं रसायनम् ।
छेदि योगवहं हन्ति कफमेदोऽश्मशर्कराः ॥ ७१ ॥
मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वाताशीसि च पाण्डुताम् ।
अपस्मारं तथोन्मादं शोथकुष्ठोदरकृमीन् ॥ ७२ ॥

भाषा-शिलाजीत चरपरा, कडवा, गरम, पाकमें चरपरा, रसायन, मलको छेदन करनेवाला, योगवाही है और कफ, मेद, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वादी, बवासीर, पाण्डु, अपस्मार (मृगी) उन्माद, सूजन, उदररोग तथा कृमिका नाश करता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सौवर्णादिशिलाजतुगुणाः ।

सौवर्णं तु जपापुष्पवर्णं भवति तद्रसात् ।
मधुरं कटु तिक्तं च शीतलं कटुपाकि च ॥ ७३ ॥ राजतं पाण्डुरं शीतं कटुकं स्वादुपाकि च । ताम्रं मयूरकण्ठाभं तीक्ष्णमुष्णं च जायते ॥ ७४ ॥ लौहं जटायुपक्षाभं तत्तिक्तं लवणं भवेत् । विपाके कटुकं शीतं सर्वं श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ ७५ ॥

भाषा-सोनेका शिलाजीत जपाके फूलके सदृश लाल वर्णवाला होता है और वह रसमें मीठा, चरपरा, कडवा, शीतल तथा पाकमें चरपरा होता है. चांदीका शिलाजीत सफेद होता है, वह शीतल, चरपरा और पाकमें मधुर है. तांबेका शिलाजीत मोरके गलेके सदृश वर्णवाला होता है, वह तीक्ष्ण और गरम होता है. लोहेका शिलाजीत जटायु (गिद्ध) के पंखोंके सदृश वर्णवाला होता है और वह कडवा, खारी, पाकमें चरपरा, शीतल तथा सबमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ७३-७५ ॥

रसनिरुक्तिः ।

रसायनार्थिभिर्लोकैः पारदो रस्यते यतः ।
ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ७६

भाषा-रसायनकी इच्छा करनेवाले लोग इस पारेका भक्षण करते हैं इससे पारा रस कहाता है और इसको धातुभी कहते हैं ॥ ७६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पारदोत्पत्तिः।

शिवाङ्गाच्च्युतं रेतः पतितं धरणीतले। तद्देहसारजातत्वाच्छुक्लपच्छ रभूच्च तत् ॥७७॥

भाषा-शिवके अंगसे स्खलित हुआ वीर्य पृथ्वीपर गिरा, उनके देहका सार होनेसे सफेद और स्वच्छ हुआ है वह पारा कहाता है ॥७७॥

पारदलक्षणम्।

क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं चतुर्विधम्। श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत्तु भवेत्क्रमात् ॥ ७८ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलु जातितः। श्वेतं शस्तं रुजां नाशे रक्तं किल रसायनम् ॥ धातुवादे तु तत्पीतं खेगतौ कृष्णमेव च ॥ ७९ ॥

भाषा-क्षेत्रके भेदसे यह पारा सफेद, लाल, पीला और काला ऐसे चार प्रकारका जानना, सफेद पारा ब्राह्मणजातिका, लाल क्षत्रियजातिका, पीला वैश्यजातिका और काला शूद्रजातिका है. सफेद पारा रोगोंको नष्ट करनेमें उत्तम है, लाल पारा रसायन है, पीला पारा धातुवाद (सोना चांदी आदि बनाने) में उत्तम है और काला पारा आकाशमें चलनेकी गति देनेमें उत्तम है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

पारदनामानि।

पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः। चपलः शिववीर्यं च रसः सूतः शिवाह्वयः ॥ ८० ॥

भाषा-पारद, रसधातु, रसेन्द्र, महारस, चपल, शिववीर्य, रस, सूत और जितने महादेवके नाम हैं वे सब पारदके संस्कृत नाम हैं. (रसराज, रसनाथ, महातेज, रसलेह, रसोत्तम, सूतराट्, जैत्र, शिवबीज, शिव, अमृत, लोकेश, दुर्द्धर, प्रभु, रुद्रज, हरतेज, अचिन्तज, अविनाशक, खेचर, अमर, देहद, मृत्युनाशक, स्कन्द, स्कन्दांशक, देव, दिव्यरस, रसायनश्रेष्ठ, यशोद, सूतक, सिद्धधातु, पारदक, रजस्वल, मूर्ति, पार, लोहेश, दुर्धर, मृत्युनाशक, हेमनिधि, त्रिनेत्र, स्वामी और रोधण ये पारेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ८० ॥

अनेक भाषाके पारेके नाम.

सं-पारद.	फा.-सिमाब.
हिं.-पारा.	अ.-जीवक.
बं.-पारद.	अं.-Mercury मर्क्युरी.
म.-पारा.	ला.-Hydrargyrum हेड्रार्जिरं.
गु.-पारो.	
क.-पारदरस.	
तै.-पारदरसमु.	

पारदगुणाः।

पारदः षड्रसः स्निग्धस्त्रिदोषघ्नो रसायनः। योगवाही महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः ॥ सर्वामयहरः प्रोक्तो विशेषात्सर्वकुष्ठनुत् ॥८१॥ स्वस्थो रसो भवेद्ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो जनार्दनः। रञ्जितः कामितश्चापि साक्षाद्देवो महेश्वरः ॥८२॥ मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धनमनुभूय खे गतिं कुरुते। अजरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ ८३ ॥ असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्य नास्ति चिकित्सितम्। रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥ ८४॥

भाषा-पारा छहोंरसयुक्त, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, योगवाही, अत्यंत वीर्यवर्द्धक, सर्व नेत्रोंमें बलदायक, सम्पूर्णरोगनाशक है और विशेष करके सर्व प्रकारके कोढोंको नष्ट करता है. स्वस्थ पारा ब्रह्मारूप, बद्धपारा (बंधा हुआ) विष्णुरूप, रंजित और कामित पारा साक्षात् महेश्वररूप है. मूर्च्छित पारा रोगोंको नष्ट करता है, बद्धपारा आकाशमें चलनेकी शक्ति देता है और मारा हुआ पारा प्राणीको अजर अमर करता है, इस कारण पारेसे अन्य करुणाकारक कौन है? मनुष्य, हाथी और घोडोंके जो रोग असाध्य हैं, अथवा जिन रोगोंकी चिकित्सा नहीं हो सक्ती उन रोगोंको पारा नष्ट करता है ॥ ८१-८४ ॥

पारददोषाः।

मलं विषं वह्निगिरित्वचापलं नसर्गिकं दोषमुशन्ति पारदे। उपाधिजौ द्वौ त्रयुनाग योगजौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोषौ रसेन्द्रे कथितौ मुनीश्वरैः ॥ ८५ ॥ मलेन मूर्च्छा मरणं विषेण दाहोऽग्निना कष्टतरः शरीरे। देहस्य जाड्यं गिरिणा सदा स्याच्चाञ्चल्यतो वीर्यहृतिश्च पुंसाम् ॥ ८६ ॥ वङ्गेन कुष्ठं भुजगेन षण्ढो भवेदतोऽसौ परिशोधनीयः ॥ ८७ ॥ वह्निर्विषं मलं चेति मुख्या दोषास्त्रयो रसे। एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं मूर्च्छां नृणां क्रमात् ॥ ८८ ॥ अन्येऽपि कथिता दोषा भिषग्भिः पारदे यदि। तथाप्येते त्रयो दोषा हरणीया विशेषतः ॥८९॥ संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम्। देहस्य नाशं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥ ९० ॥

भाषा-मल, विष, अग्नि, गिरिदोष और चपलता ये दोष पारेमें स्वाभाविक हैं. रांगेके तथा शीशेके योगसे अन्य दो आगंतुक दोषभी हैं, ऐसे सात दोष मुनियोंने कहे हैं. मलसे मूर्च्छा, विषसे मृत्यु, अग्निसे शरीरमें महाभयंकर दाह, गिरिदोषसे सर्वदा देहमें जडता और चपलतासे पुरुषोंका वीर्य नष्ट करता है. रांगेके योगसे कोढ होता है और शीसेके योगसे नपुंसकताभी होती है, इस कारण पारेको शुद्ध करना चाहिये. अग्नि, विष और मल ये तीन दोष पारेमें मुख्य हैं और ये दोष क्रमसे मनुष्योंके संताप, मरण तथा मूर्च्छा करते हैं. यद्यपि वैद्योंने पारेमें औरभी दोष कहे हैं तौभी विशेष करके ये तीन दोष अवश्य नष्ट करने चाहिये. जो संस्काररहित पारेका सेवन करता है उसके इतनी बाधा करता है, कि देहका नाश और महाभयंकर रोग अवश्य उत्पन्न होते हैं ॥ ८५-९० ॥

उपरसाः।

गन्धो हिंगुलमभ्रतालकशिलाः स्रोतोऽञ्जनं टङ्कणं राजावर्तकचुम्बकौ स्फटिकया शङ्खखटी गैरिकम्। कासीसं रसकं कपर्दसिकता बोलाश्च कंकुष्ठकं सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः ॥ ९१ ॥ उपरसा गौणाः रसाः।

भाषा-गंधक, हिंगुल, अभ्रक, हरताल, मैनशिल, सुरमा, सुहागा, राजावर्त्त (रावटी), चुंबक, फट्करी, शंख, खरिया, गेरू, कसीस, खपरिया, कौडी, वालू, गोल, कंकुष्ठ (मुरदासंग) और सोरटकी मट्टी ये उपरस (गौणरस) हैं, क्योंकि इनमें पारेके कुछ गुण रहते हैं. ॥९१॥

हिंगुलनामानि।

हिंगुलं दरदं म्लेच्छमिंगुलं चूर्णपारदम्।

भाषा-हिंगुल, दरद, म्लेच्छ, इंगुल, चूर्णपारद ये सिंगरफके संस्कृत नाम हैं. (हंसपाद, रसस्थान, रक्तपारद, हिंगुलि, हिंगुलु, रक्त, मर्कटशीर्ष, रस, उरु, उन्द, कपिशीर्षक, बर्बर, सुरंग, सुनर, रंजन, मनोहर, चित्राङ्ग, चर्मारक, रसोद्भव, रंजक, रसगर्भ, चर्मार और नानाशृंगारवर्द्धन ये सिंगरफके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सिंगरफके नाम.

सं.-हिंगुल.	अं.-Red Sulphuret of Mercury रेड सल्फरेट आफ मर्क्युरि, Nativa Cinnabar नेटिव सिनेबार.
हिं.-हिंगुल, सिंगरफ.	ला.-Hydrargyri Sulphuretum हैड्रार्जिरी सल्फ्युरेटं.
बं.-हिंगुल.	
म.-हिंगूळ.	
गु.-हिंगलो.	
क.-इंगुलियक.	
तै.-हंगिलाकामु.	
फा.-सिंग्रफ.	
अ.-जंजफर.	

हिंगुललक्षणम्।

दरदस्त्रिविधः प्रोक्तश्चर्मारः शुकतुण्डकः। हंसपादस्तृतीयः स्याद्गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥९२॥ चर्मारः शुक्लवर्णः स्यात्स पीतः शुकतुण्डकः। जवाकुसुमसङ्काशो हंसपादो महोत्तमः ॥९३॥

भाषा-चर्मार, शुकतुंडक और हंसपाद इस भांति सिंगरफ तीन प्रकारका है. सफेद वर्णवाला सिंगरफ चर्मार कहाता है. पीतरंगका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिंगरफ तुंडक कहाता है और जवाके फूलके सदृश लाल सिंगरफ हंसपाद कहाता है. इनमें पहलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा हिंगुल उत्तम है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

हिंगुलगुणाः ।

तिक्तं कषायं कटु हिंगुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि । हृल्लासकुष्ठज्वरकामलांश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ ९४ ॥ ऊर्द्ध्वपातनयुक्त्या तु डमरुयन्त्रपाचितम् । हिंगुलं तस्य सूतं तु शुद्धमेवं न शोधयेत् ॥ ९५ ॥

भाषा–सिंगरफ कडवा, कसैला, चरपरा है और नेत्ररोग, कफ, पित्त, हृल्लास, कोढ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात तथा विषको नष्ट करता है. हिंगुलको ऊर्द्ध्वपातनयुक्तिसे डमरूयंत्रमें पकावे, इस हिंगुलका पारा शुद्ध है इसको शुद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

गन्धकोत्पत्तिः ।

श्वेतद्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्या रजसाप्लुतम् । दुकूलं तेन वस्त्रेण स्नातायाः क्षीरनीरधौ ॥ प्रसृतं यद्रजस्तस्माद्गन्धकः समभूत्ततः ॥९६॥

भाषा–पहिले श्वेतद्वीपमें पार्वती क्रीडा करती थी, वहां उसके जब रजोदर्शनसे वस्त्र भीग गये तब उन कपडोंयुक्त पार्वतीने क्षीरसागरमें स्नान किया उस समय उन वस्त्रोंमेंसे जो रज फैला उससे गंधक उत्पन्न हुआ है ॥ ९६ ॥

गन्धकनामानि ।

गन्धको गन्धिकश्चापि गन्धपाषाण इत्यपि । सौगन्धिकश्च कथितो बलिर्बलरसोऽपि च९७

भाषा–गन्धक, गन्धिक, गन्धपाषाण, सौगंधिक, बलि, बलरस ये गंधकके संस्कृत नाम हैं. (गांरीबीज, गंधाश्म, पामाघ्न, सुगंधिक, पामारि, शुल्बारि, गन्धी, गन्धमोदन, वरपूतिगंध, गन्ध, दिव्यगन्ध, सगन्ध, रसगंधक, कुष्ठारि, कीटघ्न, क्रूरगन्ध और शरभूमिज ये गंधकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ९७ ॥

अनेक भाषाके गंधकके नाम.

सं.–गंधक.	फा.–गोगिर्द.
हिं.–गंधक.	अ.–किब्रित.
बं.–गन्धक.	अं.–Sulphur Brimstone सल्फर ब्रिम्स्टोन.
म.–गन्धक.	
गु.–गन्धक.	
क.–गंधक.	ला.–Sulphur सल्फर.
तै.–गंधकमु.	

गन्धकलक्षणम् ।

चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः । रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्वेतौ रसायने ॥ व्रणादिलेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥ ९८॥ श्रेष्ठो हेमक्रियादिषु प्रशस्ततरः सर्वत्र ॥

भाषा–लाल, पीला, सफेद और काला इस भांति गंधक चार प्रकारका है. इनमें सोना बनानेवालोंको लाल, रसायनके काममें पीला तथा सफेद, व्रण आदिपर लगानेके काममें सफेद और काला गंधक सोना बनाना आदि सब क्रियायोंमें उत्तम है, परन्तु यह दुर्लभ है ॥ ९८ ॥

गन्धकगुणाः ।

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः । पित्तलः कटुकः पाके जन्तुकण्डूविसर्पजित् ॥ हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान्रसायनः ॥ ९९ ॥

भाषा–गन्धक चरपरा, कडवा, उष्णवीर्य, कसैला, दस्तावर, पित्तकारक, पाकमें चरपरा, रसायन है और खुजली, विसर्प, कृमि, कोढ, क्षय, प्लीहा, कफ तथा वातको नष्ट करता है ॥९९॥

अशुद्धगन्धकदोषाः ।

अशोधितो गन्धक एष कुष्ठं करोति तापं विषमं शरीरे । शोषं च रूपं च बलं तथौजः शुक्रं निहन्त्येव करोति चास्रम् ॥ १०० ॥

भाषा–अशुद्ध गन्धक कोढ, विषमज्वर, सूजन तथा रक्तविकार उत्पन्न करता है और रूप, बल ओज तथा वीर्यका नाश करता है ॥ १०० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभ्रकोत्पत्तिः ।

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम् । विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः ॥ १०१ ॥ ते निपतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम् । तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम् ॥ १०२ ॥

भाषा-पहिले वृत्रासुरके मारनेको इन्द्रने वज्र उठाया उस समय उसमेंसे निकलकर जो चिनगारी आकाशमें फैल गई और पश्चात् मेघका शब्द होनेपर पर्वतोंके शिखरोंमें गिरगई उससेही यह अभ्रक उत्पन्न हुआ है ॥ १०१ ॥१०२ ॥

अभ्रकनामानि ।

तद्वज्रं वज्रजातत्वादभ्रमभ्ररवोद्भवात् । गगनात्स्खलितं यस्माद्गगनं च ततो मतम् १०३॥

भाषा-यह अभ्रक वज्रसे उत्पन्न हुआ है, इससे वज्र कहाता है. मेघके शब्दसे हुआ है इससे अभ्रक कहाता है और आकाशसे गिरा है, इससे गगन कहाता है. अभ्रक, गगन और आकाशवाचक सम्पूर्ण शब्द ये अभ्रकके संस्कृत नाम हैं. (गिरिजाबीज, निर्मल, गिरिजामल, अब्द, व्योम, घन, शुभ्र, बहुपत्र, घनाह्वक, गिरिज, अमल, गौरीमल, गरजध्वज, अभ्र, भृंग, अंबर, अन्तरिक्ष, आकाश, ख, अनन्त, गौरीज और गौरिजेय ये अभ्रकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १०३ ॥

अनेक भाषाके अभ्रकके नाम.

सं.-अभ्रक.	तै.-अभ्रकं.
हिं.-अभ्रक, अबरख.	फा.-सितारे जमीन्.
बं.-अभ्र.	अ.-तल्क.
म.-अभ्रक.	अं.-Talc टाल्क, Glimmer ग्लिमर.
गु.-अभ्रक.	ला.-Mica माइका.
क.-अभ्रक.	

अभ्रकलक्षणम् ।

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तत्स्याच्चतुर्विधम् । क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णं च वर्णतः॥१०४॥ प्रशस्यते सितं तारं रक्तं तच्च रसायने । पीतं हेमनि कृष्णं तु गदेषु हृतयेऽपि च ॥ १०५ ॥ पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चेति चतुर्विधम् । मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकं दलसञ्चयम्॥ १०६ ॥ अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठप्रदायकम् । ददुरं त्वग्निनिःक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिम् ॥ १०७ ॥ गोलकान्बहुशः कृत्वा स स्यान्मृत्युप्रदायकः। नागं तु नागवद्ब्रूते फूत्कारं परिमुञ्चति॥१०८॥ तद्भक्षितमवश्यं तु विदधाति भगन्दरम् । वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठेत्तन्नाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥१०९॥ सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधिवार्द्धक्यमृत्युहृत् । अभ्रमुत्तरशैलोत्थं बहुसत्त्वं गुणाधिकम्॥दक्षिणाद्रिभवं स्वल्पसत्त्वमल्पगुणप्रदम् ॥ ११०॥

भाषा-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन भेदोंसे अभ्रक चार प्रकारका है. सफेद अभ्रक ब्राह्मण है. लाल क्षत्रिय है, पीला वैश्य है और काला शूद्र है. चांदी बनाने आदिमें सफेद, रसायनकार्यमें लाल, सुवर्ण बनाने आदिमें पीला और रोग नष्ट करनेमें काला अभ्रक उत्तम है. पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र इस भांति अभ्रककी चार जाति हैं. जिस अभ्रकको अग्निमें डालनेसे उसके पत्र छूट जांय, वह पिनाक है. अज्ञानतासे जो इसको भक्षण करले तो यह महाकुष्ठ उत्पन्न करता है. जो अभ्रक अग्निमें डालनेसे मेंडककी भांति शब्द करता है वह दर्दुर अभ्रक जानना, यह अभ्रक शरीरमें अनेक गांठोंको उत्पन्न करके मृत्यु कर देता है. जो अभ्रक अग्निमें डालनेसे सर्पके सदृश फुँकार मारता है वह अभ्रक नाग जानना. इस नाग-अभ्रकको भक्षण करनेसे अवश्यमेव भगंदर रोग उत्पन्न होता है. जो अभ्रक वज्र (हीरे) के सदृश किसी प्रकारका विकार नहीं पाकर अग्निमें स्थिर रहे उसको वज्र जानना, सम्पूर्ण जातिके अभ्रकोंमें वज्र अभ्रक उत्तम है, और यह रोग, वृद्धता तथा मृत्युका नाश करता है. उत्तरदिशाके पर्वतोंमें उत्पन्न हुआ अभ्रक अत्यन्त सामर्थ्यवान् और अत्यन्त गुणकारी है. दक्षिणदिशाके पर्वतोंमें उत्पन्न हुआ अभ्रक हीन गुणवाला और अल्पसामर्थ्ययुक्त है १०४-११०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभ्रकगुणाः ।

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करं धातुविवर्द्धनं च । हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेहकुष्ठप्लीहोदरग्रन्थिविषाक्रिमींश्च ॥ १११ ॥ रोगान्हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव । दीर्घायुष्कान्जनयति सुतान्विक्रमैः सिंहतुल्यान्मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ ११२ ॥

भाषा–अभ्रक कसैला, मधुर, शीतल, आयुवर्धक तथा धातुवर्द्धक है और त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कोढ, प्लीहा, उदररोग, गांठ, विष तथा कृमि इनको नष्ट करता है. जो मारा हुआ अभ्रक निरंतर सेवन करे तो रोग नष्ट होते हैं, शरीर दृढ होता है, वीर्यकी वृद्धि होती है, नित्य तरुणतायुक्त सौ स्त्रियोंको भोग सक्ता है, दीर्घायुवाले तथा सिंहके सदृश पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करता है, तथा मृत्युके भयको दूर करता है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

अशुद्धाभ्रकदोषाः ।

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पांडुगदं च शोथम् । हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं त्वसिद्धं गुरुतापदं स्यात् ॥ ११३ ॥

भाषा–अशुद्ध अभ्रक मनुष्योंके अनेक प्रकारकी पीडाको करता है. अशुद्ध अभ्रक अत्यंत ताप करता है ॥ ११३ ॥

हरितालनामानि ।

हरितालं तु तालं स्यादालं तालकमित्यपि ।

भाषा–हरिताल, ताल, आल, तालक ये हरतालके संस्कृत नाम हैं. (पिंजर, पित्तल, मनोज्ञ, हरितालक, छत्रांग, कांचनरस, गोदन्त, नटभण्डन, विस्रगन्धि, पीतक, कर्बूर, पीतन, हरिबीज, सिद्धधातु, पिंजल, लोमहृत्, वंशपत्रक, वर्णक, नटभूषण, अल, पीतगोरोच, चित्रांग, पिञ्जरक, वैदल, कनकरस, कांचनक, बिडालक, चित्रगंध, पिङ्ग, पिङ्गसार और गौरीललित ये हरतालके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके हरतालके नाम.

सं.–हरताल.	अं.–Orpiment ओर्पिमेंट.
हिं.–हरताल.	ला.–Yellow Arsenicum Sulphidum यलो आर्सेनिक सल्फाडम्.
बं.–हरताल.	
म.–हरताळ.	
गु.–हडताल.	
क.–हरिदाल.	
तै.–हरितालामु.	

हरितालल्क्षणम् ।

हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिंडसंज्ञकम् । तयोराद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीनगुणं परम् ॥ ११४ ॥ स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत् । पत्राख्यं तालकं विद्याद्रुणाढ्यं तद्रसायनम् ॥ ११५ ॥ निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु । स्त्रीपुष्पहारकं स्वल्पगुणं तत्पिण्डतालकम् ॥ ११६ ॥

भाषा–हरताल दो प्रकारका है, जिसमेंसे पत्र निकले वह पत्राख्य (तवकिया) और जो पिंडके सदृश हो वह पिंड कहाता है, इन दोनोंमें पहिला हरताल श्रेष्ठ है और दूसरा हरताल हीन गुणवाला है. सुवर्णके सदृश वर्णवाला, भारी, स्निग्ध और अभ्रकके सदृश पत्रोंवाला पत्राख्य हरताल गुणोंकरके युक्त तथा रसायन है. और जो पत्ररहित पिंडके सदृश हरताल होता है, वह अल्प सत्त्ववाला, भारी स्त्रीके पुष्पको नष्ट करनेवाला और अल्प गुणवाला है ॥ ११४–११६ ॥

हरितालगुणाः ।

हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् । कण्डूकुष्ठास्यरोगान्नकफपित्तकव्रणान् ११७ हरति च हरितालं चारुतां देहजातां सृजति च बहुतापं चाङ्गसङ्कोचपीडाम् । वितरति कफवातौ कुष्ठरोगं विदध्यादिदमशितमशुद्धं मारितं चाप्यसम्यक् ॥ ११८ ॥

भाषा–हरताल चरपरा, स्निग्ध, कसैला, गरम है और विष, खुजली, कोढ, मुखके रोग, रुधिर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकार, कफपित्त, केश तथा व्रण इनको नष्ट करता है. अशुद्ध और भले प्रकार नहीं मारा हुआ हरिताल देहकी शोभाको नष्ट करता है. अत्यन्त संताप तथा अंगोंमें संकोचकी पीडाको करता है, और वात तथा कुष्ठको उत्पन्न करता है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

मनःशिलानामानि ।

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका ।
नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता ॥ ११९ ॥

भाषा-मनःशिला, मनोगुप्ता, मनोह्वा, नागजिह्विका, नैपाली, कुनटी, गोला, शिला, दिव्यौषधि ये मैनशिलके संस्कृत नाम हैं. (मनोज्ञा, रोगशिला, कुलटी, नेपालिका, कल्याणिका, नागमाता और रसनेत्रिका ये मैनाशिलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ११९ ॥

अनेक भाषाके मनशिलके नाम.

सं.-मैनशिल.	ते.-मानुशिला.
हिं.-मनशिल,मैनशिल.	अं.-Realgar रीलगार.
बं.-मनगाछ.	ला.-Arsenicum Sulphidum आर्सेनिकम सल्फाइडम.
म.-मनशीळ.	
गु.-मणशीळ.	
क.-मनशिले.	

मनःशिलागुणाः ।

मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः ।
तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतकफास्रनुत् ॥ १२० ॥

भाषा-मैनसिल भारी, वर्णको उत्तम करनेवाली, दस्तावर, गरम, लेखन, चरपरी, कडवी, स्निग्ध है और विषविकार, श्वास, खांसी, भूतबाधा, कफ तथा रक्तविकारका नाश करती है ॥ १२० ॥

अशुद्धमनःशिलादोषाः ।

मनःशिला मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण । मलानुबन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं वृच्छ्रगदं च कुर्यात् ॥ १२१ ॥

भाषा-अशुद्ध मैनशिल बलको मंद करती है, तथा मलका अनुबंध (दस्तका रोकना) मूत्ररोग और शर्करायुक्त मूत्रकृच्छ्र रोगको करती है ॥ १२१ ॥

स्रोतोंजनसौवीरनामानि ।

अञ्जनं यामुनं चापि कापोताञ्जनमित्यपि ।

भाषा-अंजन, यामुन और कापोतांजन ये सुरमेके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके सुरमेके नाम.

सं.-स्रोतोंञ्जन.	फा.-सूर्मेअस्फहानी.
हिं.-सुरमा, अंजन.	अ.-कुहलइसवद.
बं.-श्वेतसुरमा, नील सुरमा.	अं.-Sulphuret of Antimony सल्फरेट आफ आंटिमनी.
म.-काळा पांढरा सुरमा.	ला.-Antimonii sulphuretum आंटिमोनिआई सल्फुरेटम्.
गु.-सुरमो, कालो सुरमो.	
क.-स्रोतोञ्जन.	
ते.-सौवीरांजन.	

स्रोतोऽजनलक्षणम् ।

तत्तु स्रोतोऽञ्जनं कृष्णं सौवीरं श्वेतमीरितम् ।
वल्मीकशिखराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम् १२२
घृष्टं तु गैरिकाकारमेतत्स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ।
स्रोतोऽञ्जनसमं ज्ञेयं सौवीरं तत्तु पांडुरम् १२३

भाषा-काला सुरमा स्रोतोञ्जन कहाता है और सुफेद सुरमा सौवीर कहाता है. बांबीके शिखरके सदृश और तोडनेमें अंजनके टुकडेके समान तथा घिसनेसे गेरूके सदृश होय वह स्रोतोञ्जन कहाता है. सफेद सुरमाभी स्रोतोंजनके सदृश होता है, परन्तु कुछ पीले रंगका होता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

स्रोतोऽजनगुणाः ।

स्रोतोऽञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफपित्तनुत् । कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहिच्छर्दिविषापहम् ॥ १२४ ॥ सिध्मक्षयास्रहृच्छीतं सेव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीयं सदा बुधैः । स्रोतोऽञ्जनगुणाः सर्वे सौवीरेऽपि मता बुधैः ॥ किन्तु द्वयोरञ्जनयोः श्रेष्ठं स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥ १२५ ॥

भाषा–स्रोतोञ्जन मधुर, नेत्रोंको हितकारी, कसैला, लेखन, स्निग्ध, ग्राही, शीतल है और कफ, पित्त, वमन, विष, सफेद कोढ, क्षय तथा रक्तविकार इनको नष्ट करता है, यह सदा बुद्धिमानोंको सेवनीय है. जो स्रोतोंजनमें गुण हैं वे सौवीरमेंभी हैं, ऐसा विद्वानोंने कहा है. किन्तु दोनों अंजनोंमें स्रोतोंजनही श्रेष्ठ कहा है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

टंकणगुणाः ।

टंकणोऽग्निकरो रूक्षः कफघ्नो वातपित्तकृत् । अयं उपरसत्वात् पुनरुक्तः ।

भाषा–सुहागा अग्निकारक, रूखा, कफनाशक, वातकारक तथा पित्तकारक है (यह उपरस होनेसे यहां द्वितीय बार लिखा है इसके नामादिक हरितक्यादि वर्गमें कहे हैं.) ॥

स्फटिकानामानि ।

स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता शुभ्रा च रङ्गदा । दृढरङ्गा सुरंगा च दृढा रङ्गापि कथ्यते ॥ १२६ ॥

भाषा–स्फटी, स्फटिका, श्वेता, शुभ्रा, रंगदा, दृढरंगा, सुरंगा, दृढा, रंगा ये फट्किरीके संस्कृत नाम हैं. (स्फटिकारी, स्फटिकारिका, रंगांगा और गतरंगा ये फट्किरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १२६ ॥

अनेक भाषाके फट्किरीके नाम.

सं.–स्फटिका.	फा.–जाक सफेद.
हिं.–फट्किरी.	अ.–शवेयमानी.
बं.–फट्किरी.	अं.–Alum एलम.
म.–तुरटी.	ला.–Aluminum Sulphas एलमीनम् सल्फस.
गु.–फटकडी.	
क.–फटिकी.	
ते.–फाटिके.	

स्फटिकागुणाः ।

स्फटिका तु कषायोष्णावातपित्तकफव्रणान् । निहंति श्वित्रवीसर्पान्योनिसंकोचकारिणी १२७

भाषा–फटकिरी कसैली, गरम, योनिको संकुचित करनेवाली है और वात, पित्त, कफ, व्रण, कोढ तथा विसर्पको नष्ट करती है॥१२७॥

अनेक भाषाके रावटीके नाम.

सं.–राजावर्त्त.	हिं.–रावटी.

राजावर्तगुणाः ।

राजावर्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्तनाशनः । राजावर्तः प्रमेहघ्नः छर्दिहिक्कानिवारणः १२८॥

भाषा–रेवटी चरपरी, कडवी, शीतल है और पित्त, प्रमेह, वमन तथा हिचकीको नष्ट करती है ॥ १२८ ॥

चुम्बकनामानि ।

चुंबकः कांतपाषाणोऽयःकांतो लोहकर्षकः ।

भाषा–चुम्बक, कान्तपाषाण, अयस्कान्त और लोहकर्षक ये चुम्बक (लोहेके खैंचनेवाले) लोहेके संस्कृत नाम हैं. (यह लोह कांतलोहकीही एक जाति है) ॥

अनेक भाषाके चुम्बकके नाम.

सं.–चुम्बक.	म.–लोहचुंबक.
हिं.–चुम्बक.	गु.–चमक.

चुम्बकगुणाः।

चुम्बको लेखनः शीतो मेदोविषगरापहः ।

भाषा–चुम्बक लेखन, शीतल है और मेद, विष तथा गरलविषका नाश करता है ॥

गैरिकसुवर्णगैरिकनामानि ।

गैरिकं रक्तधातुश्च गैरेयं गिरिजं तथा । सुवर्णगैरिकं त्वन्यत्ततो रक्ततरं हि तत् १२९॥

भाषा–गैरिक, रक्तधातु, गैरेय, गिरिज ये गेरुके संस्कृत नाम हैं. (गिरिमृत्, लोहितमृत्तिका, गिरिधातु, गवेधुक, धातु, सुगन्धधातु, गिरिमृद्भव, वनाउक्त, गवेरुक, प्रत्यश्म और ताम्रधातु ये गेरुके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) दूसरा सुवर्णगैरिक (सुवर्णगेरू) होता है, यह अत्यन्त लाल होता है ॥१२९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके गेरूके नाम.

सं.-गैरिक.
हिं.-गेरू, पीलागेरू.
बं.-गिरिमाटी.
म.-सोन काव, सोन गेरू, तांबे गेरू.
गु.-गेरू, सोनागेरू.
क.-जाजु, होजाजु.
फा.-गिलेसुर्ख.
अ.-तीनेअगरेबी.
अं.-Oker ओकर, Redlumber - stone रेडलम्बर-ष्टोन.
ला.-Bolerubra बोले रुब्रा.

गैरिकद्वयगुणाः।

गैरिकद्वितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम्।
चक्षुष्यं दाहपित्तास्रकफहिक्काविषापहम् १३०

भाषा-दोनों प्रकारके गेरू स्निग्ध, मधुर, कसैले, शीतल, नेत्रोंको हितकारी हैं और दाह, पित्त, रक्तविकार, कफ, हिचकी तथा विषको नष्ट करते हैं ॥ १३० ॥

खटिकानामानि।

खटिका कठिनी चापि लेखनी च निगद्यते।

भाषा-खटिका, कठिनी, लेखनी ये खडियाके संस्कृत नाम हैं. (पाकशुक्ला, शिलाधातु, खटि, खडी, खटी, खटिनी, धवलमृत्तिका, श्वेतधातु, पाण्डुमृत्तिका, सितधातु, पाण्डुमृत, कक्खटी, वर्णरेखा, मृत्तिकानखा, अनीलातु, वर्णलेखिका, शुक्लधातु, धातुफल, कठिनिका और मकल्ल ये खडियाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके खरियाके नाम.

सं.-खटिका.
हिं.-खरिया, खडियामट्टी.
बं.-खडिमाट्टी.
म.-खडू.
गु.-खडी.
क.-बेणेबहु.
फा.-गिले सुफेद.
अ.-तिनेअबीयद.
अं.-Pipeclay पाइपक्ले.
ला.-Carbonate of Calcium कार्बोनेट आफ कल्शियम.

खटिकागुणाः।

खटिका दाहजिच्छीता मधुरा विषशोथजित्।
लेपादेतद्गुणाः प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा ॥
खटी गौरखटी द्वे च गुणैस्तुल्ये प्रकीर्तिते १३१

भाषा-खडिया दाहनाशक, शीतल, मधुर, विषनाशक और शोथनाशक है, खरियामें लेप करनेसे तो ये गुण हैं, खानेसे तो मिट्टीकी सदृशही है, खरिया और गौर खरिया यह दोनों गुणोंमें समान हैं ॥ १३१ ॥

वालुकानामानि।

वालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजापि च ॥

भाषा-वालुका, सिकता, शर्करा, रेतजा ये वालूके संस्कृत नाम हैं. (सिक्ता, शीतला, सूक्ष्मशर्करा, प्रवाहोत्था, महाश्लक्ष्णा, सूक्ष्मा, पानीयचूर्णका, वालिका, प्रवाही, महासूक्ष्मा और पानीयवर्णिका ये वालूके संस्कृत नाम ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके वालूके नाम.

सं.-वालुका.
हिं.-वालू, रेत.
बं.-वाली.
म.-वाळू.
गु.-रेती, वेलु.
क.-मललू.
तै.-विशिका.
फा.-रेग.
अ.-रमल.
अं.-Sand सॅन्ड.
ला.-Silica सिलिका.

वालुकागुणाः।

वालुका लेखनी शीता व्रणोरःक्षतनाशिनी।

भाषा-रेत लेखन, शीतल है और व्रण तथा छातीके घावको नष्ट करता है ॥

तुत्थभेदनामानि।

खर्परी तुत्थकं तुत्थादन्यत्तूत्थरसकं स्मृतम्।

भाषा-खर्परी, तुत्थक, रसक ये खपरियाके संस्कृत नाम हैं. (चक्षुष्य, अमृतोत्पन्न, दार्विका, खर्पर, खर्परिका, तुत्थ, खर्परीतुत्थ, खर्परीतुत्थक और जशदोपधातु ये खपरियाके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके खपरियाके नाम.

सं.-तुत्थक.
हिं.-खर्परिया, खपरिया.
बं.-खामर.
म.-कलखापरी.
गु.-खापरियो.
क.-खर्परी.
तै.-खर्परं.
फा.-संगवसरी.
अ.-तूतिया किरमानी.
अं.-Blak Jack ब्लाक जॅक.
ला.-Zinci sulphidum जिंकि सल्फाइडं.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुत्थभेदगुणाः ।

ये गुणास्तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः।

भाषा–खपरिया एक जातिका तूतियाही है परन्तु तूतियेसे पृथक् है और रसक खपरिया नामसे प्रसिद्ध है. पहिले तूतियेमें जो गुण कहे हैं वेही गुण खपरियामें हैं ॥

काशीसनामानि ।

काशीसं धातुकाशीसं पांशुकाशीसमित्यपि ।
तदेव किञ्चित्पीतं तु पुष्पकाशीसमुच्यते १३२

भाषा–काशीस, धातुकाशीस, पांशुकाशीस ये काशीसके संस्कृत नाम हैं.(खाचर, धातुशेखर, शोधन, हंसलोमश, शुभ्र, कासीस और नेत्रौषीध ये काशीसके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) किंचित् पीले वर्णका होता है उसको पुष्पकाशीस कहते हैं ॥ १३२ ॥

अनेक भाषाके कासीसके नाम.

सं.–काशीस. [सीस.	फा.–जाकेसब्ज.
हिं.–कसीस, पुष्पक-	अ.–जाजे अखदर.
बं.–धातुकासीस, पुष्प	अं.–Sulphate of
कासीस. [नीली.	Iron सल्फेट आफ्
म.–हिराकस, श्वेत-	आयर्न.
गु.–हीराकसी.	ला.–Ferry sulphas
क.–कासीस.	फेरि सल्फास.

काशीसगुणाः ।

काशीसमम्लमुष्णं च तिक्तं च तुवरं तथा ।
वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकण्डूविषप्रणुत् ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्त्तितम्।१३३॥

भाषा–कसीस खट्टा, गरम, कडवा, कसैला, केशोंको हितकारी है और वात, कफ, नेत्रोंकी खुजली, विष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी तथा चित्रित कोढको नष्ट करता है ॥ १३३ ॥

सौराष्ट्रीमृत्तिकानामानि ।

सौराष्ट्री तुवरी कांक्षी मृत्तालकसुराष्ट्रजे ।
आढकी चापि साख्याता मृत्स्ना च सुरमृत्तिका ॥ १३४ ॥

भाषा–सौराष्ट्री, तुवरी, कांक्षी, मृत्तालका, सुराष्ट्रजा, आढकी, मृत्स्ना, सुरमृत्तिका ये गोपीचदनके संस्कृत नाम हैं. (पर्पटी, कालिका, सती, सुजाता, पार्वती, मसी, मृदाह्वया, मृत्त, आसङ्ग, कालीमृत्तिका, कंसोद्भवा और सौराष्ट्रा ये गोपीचन्दनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १३४ ॥

अनेक भाषाके गोपीचन्दनके नाम.

सं.–गोपीचन्दन,	गु.–सोरठी माटी.
हिं.–गोपीचन्दन, सोर-	ला.–Silicate of Al.
ठकी मिट्टी.	umina सिलिकेट
म.–गोपीचन्दन.	आफ् एल्युमीना.

सौराष्ट्रीमृत्तिकागुणाः ।

स्फटिकाया गुणाः सर्वे सौराष्ट्र्या अपि कीर्त्तिताः ।

भाषा–जो गुण फट्करीमें हैं वेही गुण सोरठकी मट्टीमें हैं ॥

कृष्णमृत्तिकानामानि ।

कृष्णमृत्

भाषा–कृष्णमृत् यह एक और मृदा, मृत्तिका, मृत्स्ना, क्षेत्रजा और कृष्णमृत्तिका ये काली मट्टीके संकृतनाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं ॥

अनेक भाषाके काली मिट्टीके नाम.

सं.–कृष्णमृत्.	म.–माती.
हिं.–काली मिट्टी	गु.–काली माटी
मिट्टी.	तै.–नोडुलु.
बं–माटी, काल माटी.	

कृष्णमृत्तिकागुणाः ।

कृष्णमृत्क्षतदाहास्रप्रदरश्लेष्मपित्तनुत् ।

भाषा–काली मिट्टी क्षत, दाह, रक्तविकार प्रदररोग, कफ तथा पित्तको नष्ट करती है ॥

कर्दमनामानि ।

कर्दम्

भाषा–कर्दम, यह एक और पंक, जलकल्क, चुलुक, मल, चिकिल, पलित, द्राप, पलल, निषद्वर, जम्बाल, साद और दम ये कीचडके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके कीचडके नाम.

सं.—कर्दम.	ल.—Hydrasis Silicate of Alumunum हैड्रासिस सिलिकेट आफ् अल्युमीनियम्.
हिं.—कीचड.	
बं.—कादा.	
म.—चिखल.	
गु.—कादव.	
अं.—Mudblack clay मड ब्लाक् क्ले.	

कर्दमगुणाः ।

कर्दमो दाहपित्तार्त्तिशोथघ्नः शीतलः सरः ।

भाषा—कीचड शीतल, दस्तावर है और दाह, पित्तकी पीडा, तथा शोथ को नष्ट करता है ॥

बोलनामानि ।

बोलगन्धरसप्राणपिण्डगोपरसाः समाः ।

भाषा—गोल, गंधरस, प्राण, पिंड, गोपरस ये बोलके संस्कृत नाम हैं. (निर्लोह, बर्बररस, सुगन्ध, नालक, पार, रसगन्ध, सित, रक्तापह, मुण्ड, सुरस, पिण्डक, विष, बर्बर, सौरभ, रसगंधक, महागंध, विश्व, शुभगन्धक, विश्वगन्ध, व्रणारि, गोप, गोरस, पिण्ड, गोस, शश, गोपशश, गान्धार, मसिवर्द्धन, बोलज, गोपक और गोल ये बोलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके बोलके नाम.

सं.—बोल.	फा.—मुर.
हिं.—बोल, हीराबोल.	अ.—मुरसाफ.
बं.—गन्धरस, बोल.	अं.—Myrrha मिर्हा.
म.—बाळंतबोळ.	ला.—Balsa Modendron Myrrha बालसा मोडेड्रन मिर्हा.
गु.—हिराबोल.	
क.—बोल.	
तै.—वालिम, त्रोपोलम्.	
ता.—बेल्ल इप्पोलम्.	

बोलगुणाः ।

बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यं दीपनपाचनम् । मधुरं कटु तिक्तं च दाहस्वेदात्रिदोषजित् । ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ १३५ ॥

भाषा—बोल रुधिरनाशक, शीतल, मेधाको हितकारी, अग्निप्रदीपक, पाचक, मधुर, चरपरा, कडवा, गर्भाशयशोधक है और दाह, पसीना, त्रिदोष, ज्वर, मृगी तथा कुष्ठरोगका नाश करता है ॥ १३५ ॥

कंकुष्ठोत्पत्तिः ।

हिमवत्पादशिखरे कंकुष्ठमुपजायते ।

भाषा—कंकुष्ठ हिमालयपर्वतके शिखरोंमें उत्पन्न होता है ॥

कंकुष्ठलक्षणम् ।

तत्रैकं रक्तकालं स्यादन्यदण्डकं स्मृतम् । पीतप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कंकुष्ठमादिशेत् ॥ श्यामं पीतं लघु त्यक्तसत्त्वं नेष्टं तथाण्डकम् ॥ १३६ ॥

भाषा—कंकुष्ठ रक्तकाल और अण्डक इस भांति दो प्रकारका है, जो भारी, स्निग्ध और पीत कांतिवाला हो वह पहिला रक्तकाल कंकुष्ठ श्रेष्ठ है. जो श्याम, पीला और हलका हो वह अण्डक है, यह श्रेष्ठ नहीं है ॥ १३६ ॥

कंकुष्ठनामानि ।

कंकुष्ठं काककुष्ठं च वराङ्गं कोलकाकुलम् ।

भाषा—कंकुष्ठ, काककुष्ठ, वरांग, कोलकाकुल ये केकोठके संस्कृत नाम हैं. (विरंग, रंगदायक, पुलक, शोधक और कालपालक ये कंकोठके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कंकोठके नाम.

सं.—कंकुष्ठ.	म.—कंकुष्ठ.
हिं.—कंकोठ, मुरदासंग.	गु.—पीलियो.
बं.—पार्वतीयमृत्तिकाविशेष.	फा.—मुरदारसंग.

कंकुष्ठगुणाः ।

कंकुष्ठं रेचनं तिक्तं कटूष्णं वर्णकारकम् । कृमिशोथोदराध्मानगुल्मानाहकफापहम् १३७

भाषा—कंकोठ रेचक (दस्तावर), कडवा, चरपरा, गरम, वर्णकारक है और कृमि, शोथ, उदररोग, अफरा, गुल्म, आनाह तथा कफका नाश करता है ॥ १३७ ॥

रत्ननिरुक्तिः ।

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत् । ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः १३८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–धनकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जिसमें अत्यन्त रमते हैं इस कारण शब्दशास्त्र जाननेवालोंने इसको रत्न कहा है ॥ १३८ ॥

रत्ननाम ।

रत्नं क्लीबे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते । तत्तु पाषाणभेदोऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते ॥ १३९ ॥

भाषा–रत्नशब्द नपुंसकलिंगमें है और उसका पर्याय मणि पुँल्लिंग तथा स्त्रीलिंगमें होता है, रत्न पत्थरकी जाति है और मोती आदिभी रत्नमेंही कहे हैं ॥ १३९ ॥

तथा चामरसिंहः ।

रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च ।

भाषा–अमरकोशमेंभी कहा है कि रत्न और मणि दोनों पत्थरकी जाति हैं और मोती आदिभी पत्थरकी जाति हैं ॥

रत्ननिरूपणम् ।

रत्नं गारुत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च । इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैडूर्यमित्यपि ॥ मौक्तिकं विद्रुमश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव १४०

भाषा–रत्न (हीरा), गारुत्मत (पन्ना), पुष्पराग (पुखराग), माणिक्य (माणिक, पद्मराग), इन्द्रनील (नीलम्), गोमेद, वैडूर्य (लहसुनिया), मौक्तिक, (मोती) और विद्रुम (मूँगा) ये नौ रत्न कहे हैं ॥ १४० ॥

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि नवरत्ननिरूपणम् ।

मुक्ताफलं हीरकं च वैडूर्यं पद्मरागकम् । पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा ॥ प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव १४१॥

भाषा–विष्णुधर्मोत्तरमेंभी कहा है कि मोती, हीरा, लहसुनिया, पद्मराग, पुखराज, गोमेद, नीलम्, पन्ना और मूंगा ये नौ महारत्न हैं १४१॥

हीरकनामानि ।

हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रो मणिवरश्च सः ।

भाषा–हीरक (पुँल्लिंग), वज्र अस्त्री (पुंनपुंसकलिंग), चन्द्र, मणिवर ये हीरेके संस्कृत नाम हैं. (अशिर, षट्कोण, दृढगर्भक, हीर, दधीच्यस्थि, वज्रक, सूचीमुख, वरारक, रत्नमुख्य, अभेद्य, दृढांग और वज्रपर्यायनामक ये हीरेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके हीरेके नाम.

सं.–हीरक.	फा.–इल्माश्.
हिं.–हीरा.	अं.–Diamond डायमन्ड्.
बं. हिरे.	
म.–हिरा.	ला.–Pure carbon प्यूर कार्बन्,
गु.–हिरो.	
क.–वज्र.	Adamas एडम्स्.
तै.–वज्रं.	

हीरकलक्षणम् ।

स तु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः । पीतो वैश्योऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मकश्च सः ॥ १४२ ॥ रसायने मतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः । क्षत्रियो व्याधिविध्वंसी जरामृत्युहरः स्मृतः ॥ १४३ ॥ वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तस्तथा देहस्य दार्ढ्यकृत् । शूद्रो नाशयति व्याधीन्वयस्तम्भं करोति च १४४॥

भाषा–हीरेकी चार जाति हैं, उसमें सफेद वर्णवाला ब्राह्मण, लाल वर्णवाला क्षत्रिय, पीले वर्णका वैश्य और काले रंगका शूद्र जानना. ब्राह्मणहीरा रसायनके काममें लायक तथा सर्व सिद्धिदायक है. क्षत्रिय हीरा रोगनाशक है, तथा जरा मरण हरनेवाला है. वैश्यहीरा धन देनेवाला तथा देहकी दृढता करनेवाला है. और शूद्र हीरा व्याधियोंको नष्ट करता है तथा आयुस्थापक है ॥ १४२–१४४ ॥

हीरकपुंस्त्रीनपुंसकजातिः ।

पुंस्त्रीनपुंसकानीह लक्षणीयानि लक्षणैः । सुवृत्ताः फलसम्पूर्णास्तेजोयुक्ता बृहत्तराः ॥ १४५ ॥ पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दुविवर्जिताः । रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षडस्रास्ते स्त्रियः स्मृताः ॥ १४६ ॥ (षडस्राः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षट्कोणाः)। त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः। तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धनकारिणः ॥ ४७ ॥ स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः। नपुंसकास्त्ववीर्याः स्युरकामाः सत्त्ववर्जिताः ॥ १४८ ॥ स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीबं क्लीबे प्रयोजयेत्। सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरुषा वीर्यवर्धनाः ॥ १४९ ॥

भाषा-हीरेके लक्षणों करके पुँल्लिङ्ग, स्त्री और नपुंसक भेदभी हैं. जो हीरा उत्तम गोलाकार, फलयुक्त, कांतियुक्त, बहुत बडा और रेखा बिन्दु करके रहित हो वह पुरुषसंज्ञक है. जो हीरा रेखा बिन्दु करके युक्त हो तथा छः कोनेवाला हो वह स्त्रीसंज्ञक है. जो हीरा तीन कोनोंवाला तथा बहुत लम्बा हो वह नपुंसक है, इनमें पुरुष हीरा सर्वोत्तम है और इससे रसका बंधन होता है. स्त्रीजातिका हीरा शरीरको सुन्दर करनेवाला और स्त्रियोंको सुखदायक है, नपुंसक जातिका हीरा वीर्यरहित, सुखदायक नहीं और शक्तिरहित है. स्त्रीजातिका हीरा स्त्रियोंको देवे और नपुंसक जातिका हीरा नपुंसकोंको देवे तथा पुरुषजातिका हीरा सर्वदा सबको देना चाहिये और वीर्यवर्द्धक है ॥ १४५-१४९ ॥

अशुद्धहीरकदोषाः।

अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा। पाण्डुतां पंगुलत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत् ॥ १५० ॥

भाषा-अशुद्ध हीरा कोढ, पसलीकी पीडा, पाण्डुरोग तथा पंगुता (लंगडापन) करता है इस कारण हीरेको शुद्ध करके मारना चाहिये ॥ १५० ॥

मारितहीरकगुणाः।

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च। सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥

भाषा-मारा हुआ हीरा आयुको बढानेवाला, बलदायक, वीर्यकी वृद्धि करनेवाला, वर्णको उत्तम कर्त्ता, सुखदायक तथा सर्वरोगनाशक है ॥ १५१ ॥

गारुत्मतनामानि।

गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः।

भाषा-गारुत्मत, मरकत, अश्मगर्भ, हरिन्मणि ये पन्नेके संस्कृत नाम हैं. (गारुत्मक, गरुडाश्म, मरक्त, राजनील, गरुडाङ्कित, रौहिणेय, सौपर्ण, गरुडोद्गीर्ण, बुधरत्न, अश्मगर्भज, गरलारि, वापबोल, गारुड, गरुडोत्तीर्ण और वाप्रबोल ये पन्नेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पन्नेके नाम.

सं.-मरकत.	फा.-जुमुरईद.
हिं.-पन्ना.	अ.-जुमुईद.
बं.-पान्ना.	अं.-Emerold इमरोल्ड.
म.-पाचूरत्न.	
गु.-पानां	
क.-पाचिपच्चे.	ला.-Smaragdus स्मेरेग्डस्.
तै.-नीलम्.	

माणिक्यनामानि।

माणिक्यं पद्मरागः स्याच्छोणरत्नं च लोहितम्।

भाषा-माणिक्य, पद्मराग, शोणरत्न, लोहित ये चुन्नीके संस्कृत नाम हैं. (लोहितक, शोणरत्नक, रत्नराट, रविरत्नक, तरणिरत्न, शृंगारी, रंगमाणिक्य, तरुण, रत्ननामक, रागयुक्, रत्न, शोणोपल, सौगन्धिक, कुरुबिंद, कुरुबिल्व, कुरुविन्दक, लक्ष्मीपुष्प और अरुणोपल ये चुन्नीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके चुन्नीके नाम.

सं.-माणिक्य. [लाल.	तै.-माणिक्यं.
हिं.-चुन्नी, मानिक,	फा.-लालवदपूशानी.
बं.-माणिक.	अ.-लाल.
म.-माणिक.	अं.-Ruby रुबी.
गु.-माण्यक, चुनी.	ला.-Rubinus रुबिनस्.
क.-माणक.	

पुष्परागनामानि।

पुष्परागो मञ्जुमणिः स्याद्वाचस्पतिवल्लभः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–पुष्पराग, मंजुमणि, वाचस्पतिवल्लभ ये पुखराजके संस्कृत नाम हैं. (जीवरत्न, पीतस्फटिक, पुखराज, पीत, पीतरक्त, पीताश्मा, गुरुरत्न और पीतमणि ये पुखराजके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पुखराजके नाम.

सं.–पुष्पराग.	क.–पुष्पराग.
हिं.–पुखराज.	तै.–पुष्परागं.
बं.–पुष्पराग.	अं.–Topaz टोपाज.
म.–पुष्कराज.	ला.–Topagio टोपाजियो.
गु.–पुखराज, पीलुरत्न.	

इन्द्रनीलगोमेदनामानि।

नीलं तथेन्द्रनीलं च गोमेदः पीतरत्नकम्।

भाषा–नील, इन्द्रनील ये नीलमके संस्कृत नाम हैं. (शौरिरत्न, नीलाश्मा, नीलरत्नक, नीलोपल, तृणग्राही, महानील और सुनीलक ये नीलमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) गोमेद, पीतरत्नक ये गोमेदके संस्कृत नाम हैं. (पिंगस्फटिक, अगस्तिसत्त्व, तमोमणि, बाहुरत्न और स्वर्भानव ये गोमेदके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके नीलमके नाम.

सं.–नील.	क.–नील.
हिं.–नीलम, नीलमणि.	तै.–नीलं.
बं.–नीलमणि.	अं.–Saffire सेफायर.
म.–नीलमणि.	ला.–Saffirus सेफायरस्.
गु.–नीलम.	

अनेक भाषाके गोमेदमणिके नाम.

सं.–गोमेद.	गु.–गोमेदमणि.
हिं.–गोमेदमणि.	तै.–गोमेदकं.
बं.–गोमेदमणि.	अ.–Onyx ओनिक्स.
म.–गोमेदमणि.	ला.–Onyx ओनिक्स.

वैदूर्यनामानि।

वैदूर्यं दूरजं रत्नं स्यात्केतुग्रहवल्लभम्।

भाषा–वैदूर्य, दूरज, रत्न केतुग्रहवल्लभ ये लहसुनियेके संस्कृत नाम हैं. (राष्ट्रक, वैडूर्य, केतुरत्न, मेघखराकुर, बालवायज, बालसूय, बालसूर्यक, कैतव, प्रावृष्य, अभ्ररोह, शराब्दांकुर, विदूररत्न और विदूरज ये लहसुनियेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके वैडूर्यमणिके नाम.

सं.–वैदूर्य.	गु.–लसणीयो.
हिं–वैडूर्यमणि, लहसुनिया.	क.–वैडूर्य.
ब.–वैदूर्य.	अं.–Catseye कॅट्सआई.
म.–वैडूर्यरत्न.	

मौक्तिकनामानि।

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलं च तत्।

भाषा–मौक्तिक, शौक्तिक, मुक्ता, मुक्ताफल ये मोतीके संस्कृत नाम हैं. (शुक्तिज, शौक्तिकेय, शशिप्रभ, अम्भसार, विन्दुफल, मुक्तिका, शौक्तेयक, इन्दुरत्न, लक्ष्मी, हिम, शुक्तिबीज, हारी, कुवल, सौम्य, तार, तारा, मौतिक, शीतल, नीरज, नक्षत्र, शुक्तिमणि, स्वच्छ, हिमबल, सुधांशुभ, शुधांशुरत्न, लक्ष, शशिप्रिय, हैमवत और भूरुह ये मोतीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मोतीके नाम.

सं.–मौक्तिक.	तै.–मोत्यालु.
हिं.–मोती.	फा.–मरबारीद.
बं.–मुक्ता.	अ.–लोला.
म.–मोतीं.	अं.–Pearl पर्ल.
गु.–मोती.	ला.–Margarita मार्गारिटा.
क.–मौक्तिक.	

मौक्तिकोत्पत्तिः।

शुक्तिः शंखो गजक्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः।
वेणुरेते समाख्यातास्तज्ज्ञैर्मौक्तिकयोनयः १५२

भाषा–मोती शीप, शंख, हाथी, सुअर, सर्प, मत्स्य (मछली), मेंडक और बांस इन आठोंमेंसे उत्पन्न होता है. परन्तु आजकल प्रायः सीपकाही मोती मिलता है ॥ १५२ ॥

मौक्तिकगुणाः।

मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बलपुष्टिदम्।

भाषा–मोती शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, बलदायक तथा पुष्टिदायक है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवालनामानि ।

पुंसि क्लीबे प्रवालः स्यात्पुमानेव तु विद्रुमः ।

भाषा—प्रवाल, (पुँल्लिंग तथा नपुंसकलिंग) विद्रुम (पुँल्लिंग) ये मूंगेके संस्कृत नाम हैं. (अंगारकमणि, अम्भोधिपल्लव, भौमरत्न, रत्नांग, रक्तांग, लतामणि, रक्तकन्द, रक्तकन्दल और रक्ताकार ये मूंगेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मूँगेके नाम.

सं.—प्रवाल.	फा.—मिरजान्.
हिं.—मूँगा.	अ.—वसद.
बं.—पला, मुँगा.	अं.—Redcoral रेडकोरल्.
म.—पोंवळें.	ला.—Coralium Rubrum कोरेलियं रुब्रम्.
गु.—परवाली.	
क.—अवलेहवत.	
ते.—प्रवालकं, पागडालु.	

रत्नगुणाः ।

रत्नानि भक्षितानि स्युर्मधुराणि सराणि च ।
चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि मृतानि च ॥ मंगल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च ॥ १५३ ॥

भाषा—रत्न भक्षण करनेसे मधुर, दस्तावर, नेत्रोंको हितकारी और शीतल हैं. धारण करनेसे विषनाशक, मंगलकारक, मनोज्ञ और ग्रहदोष दूर करनेवाले हैं ॥ १५३ ॥

रत्नमालाप्रमाणम् ।

किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीतिकारित्वेन दोषहरं भवतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह रत्न मालायाम् ।

भाषा—कौन कौनसा रत्न किस किस ग्रहका दोष हरनेवाला है, ऐसा प्रश्न होनेपर रत्नमाला ग्रंथसे उत्तर लिखते हैं ॥

माणिक्यं तरणेः सुजातममलं मुक्ताफलं शीतगोर्माङ्गेयस्य तु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम् । देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेर्नीलं निर्मलमन्ययोर्निगदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ १५४ ॥

भाषा—सूर्यके लिये माणिक, चन्द्रमाके लिये निर्मल मोती, मंगलके लिये मूँगा, बुधके लिये पन्ना, बृहस्पतिके लिये पुखराज, शुक्रके लिये हीरा, शनिके लिये नीलम, राहुके लिये गोमेद और केतुके लिये लहसुनिया धारण करना चाहिये ॥ १५४ ॥

उपरत्ननिरूपणम् ।

उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैव च ।
मुक्ता शुक्तिस्तथा शङ्ख इत्यादीनि बहून्यपि ॥ १५५ ॥ उपरत्नानि गौणरत्नानि । कर्पूराश्मा कपनीया, कर्पूरनिया । मुक्काशुक्तिः 'सीप' इति लोके प्रसिद्धा ।

भाषा—काँच कर्पूराश्मा (कपूर्निया) मोतीकी सीप तथा शंख इत्यादि उपरत्न बहुत हैं ॥ १५५ ॥

उपरत्नगुणाः ।

गुणा यथैव रत्नानामुपरत्नेषु ते तथा ।
किन्तु किञ्चित्ततो हीना विशेषोऽयमुदाहृतः ॥ १५६ ॥

भाषा—जो गुण रत्नोंमें कहे हैं, वेही गुण उपरत्नोंमें हैं, परन्तु कुछ कुछ न्यून गुण हैं, इतनाही अन्तर है ॥ १५६ ॥

विषनामानि ।

विषं तु गरलः क्ष्वेडस्तस्य भेदानुदाहरेत् ।

भाषा—विष, गरल, क्ष्वेड ये विषके संस्कृत नाम हैं. (काकोल, दारद, सौराष्ट्रिक, शौल्ककेय, ब्रह्मपुत्र, प्रदीपन, आहेय, अमृत, गरद, काल, कूट, कसाकूल, हारिद्र, रक्तशृंगिक, नील, गर, घोर, हाला, हल, हलाहल, शृंगी, भुगर, जांगल, तीक्ष्णरस, रसायन, जांगुल, वत्सनाभ, जीवनाघात, किषल और प्राणहर ये विषके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके विषके नाम.

सं.–विष.	क.–वशनवी.
हिं.–बचनाग, विष.	तै.–नाभी.
बं.–काट विष.	फा.–जहर.
म.–बचनाग, विष.	अ.–विष.
गु.–बिष.	अं.–Poison पाँइझन.

विषभेदाः ।

वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः ।
सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूटस्तथैव च ॥
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी नव १५७॥

भाषा–१ वत्सनाभ, २ हारिद्र, ३ सक्तुक, ४ प्रदीपन, ५ सौराष्ट्रिक, ६ शृंगिक, ७ कालकूट, ८ हालाहल और ९ ब्रह्मपुत्र ये नौ विषके भेद हैं ॥ १५७ ॥

वत्सनाभस्वरूपम् ।

सिन्दुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा ।
यत्पार्श्वेन तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः १५८

भाषा–जिसके पत्ते सह्मालूके सदृश हों, आकृति बछडेकी नाभिके सदृश हो, जिसके समीप दूसरे वृक्षकी वृद्धि न होय, वह वत्सनाभ विष जानना ॥ १५८ ॥

हारिद्रस्वरूपम् ।

हरिद्रातुल्यमूलो यो हारिद्रः स उदाहृतः ।

भाषा–जिसकी जड हल्दीके वृक्षकी सदृश हो वह हारिद्र विष कहा है ॥

सक्तुकस्वरूपम् ।

यद्ग्रन्थिः सक्तुकेनैव पूर्णमध्यः स सक्तुकः ।

भाषा–जिसके गांठमें सत्तूके सदृश चूर्ण भरा हुआ हो वह सक्तुक विष जानना ॥

प्रदीपनस्वरूपम् ।

वर्णतो लोहितो यः स्याद्दीप्तिमान्दहनप्रभः ।
महादाहकरः पूर्वैः कथितः स प्रदीपनः १५९॥

भाषा–जो लाल वर्णवाला, दीप्त, अग्निके सदृश कांतिवाला और अत्यन्त दाहकारक हो वह प्रदीपन विष कहा है ॥ १५९ ॥

सौराष्ट्रिकस्वरूपम् ।

सुराष्ट्रविषये यः स्यात्स सौराष्ट्रिक उच्यते ।

भाषा–जो सोरठ देशमें उत्पन्न होता है वह सौराष्ट्रिक विष कहा है ॥

शृंगिकस्वरूपम् ।

यस्मिन्गोशृंगके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम् ।
स शृंगिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्त्वविशारदैः १६०

भाषा–जिसको गायके सींगको बाँधनेसे दूध लाल होजाय उसको द्रव्यतत्त्व जाननेवालोंने शृंगिक (सींगिया) विष कहा है ॥ १६० ॥

कालकूटस्वरूपम् ।

देवासुररणे देवैर्हतस्य पृथुमालिनः । दैत्यस्य रुधिराज्जातस्तरुरश्वत्थसन्निभः ॥ १६१ ॥
निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिः परिकीर्तितः।
सोऽहिक्षेत्रे शृंगवेरे कोङ्कणे मलये भवेत्१६२

भाषा–देवता और असुरोंके संग्राममें देवताओंने पृथुमालिन नामक एक दैत्यको मारा, उस दैत्यके रुधिरसे पीपलके सदृश एक वृक्ष उत्पन्न हुआ, उस वृक्षके गोंदको मुनियोंने कालकूट विष कहा है. यह कालकूट अहिक्षेत्रमें, शृंगवेरमें, कोंकणदेशमें और मलयाचलमें होता है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

हालाहलस्वरूपम् ।

गोस्तनाभफलो गुच्छस्तालपत्रच्छदस्तथा ।
तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः ॥१६३॥ असौ हालाहलो ज्ञेयः किष्किन्धायां हिमालये । दक्षिणाब्धितटे देशे कोङ्कणेऽपि च जायते ॥ १६४ ॥

भाषा–जिसके फल दाखोंके गुच्छेके सदृश हो, तथा पत्ते तालवृक्षकी सदृश हों और जिसके तेजसे समीपके वृक्षादिक भस्म हो जाय, वह हालाहल विष जानना यह हालाहल विष हिमालयमें, किष्किन्धामें, दक्षिण समुद्रके तटपर और कोंकणदेशमें होता है॥१६३॥१६४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मपुत्रस्वरूपम् ।

वर्णतः कपिलो यः स्यात्तथा भवति सारतः ।
ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले १६५॥

भाषा-जिसका वर्ण पीला हो, वह ब्रह्मपुत्र विष जानना, यह मलयाचलमें होता है ॥१६५॥

विषलक्षणम् ।

ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रियो लोहितप्रभः ।
वैश्यः पीतः सितः शूद्रो विष उक्तश्चतुर्विधः ॥ १६६ ॥

भाषा-जो विष श्वेत वर्णवाला हो वह ब्राह्मण जातिका, जो विष लाल कांतिवाला हो वह क्षत्रिय जातिका; जो विष पीले रंगवाला हो वह वैश्य जातिका और जो श्याम वर्णवाला हो वह शूद्र जातिका जानना इस भांति विष चार प्रकारका कहा है ॥ १६६ ॥

विषप्रयोगः ।

रसायने विषं विप्रं क्षत्रियं देहपुष्टये । वैश्यं कुष्ठविनाशाय शूद्रं दद्याद्वधाय हि ॥ १६७ ॥

भाषा-रसायनके काममें ब्राह्मण जातिके विषका, देहकी पुष्टिके कार्यमें क्षत्रिय जातिके विषका, कुष्ठरोग नष्ट करनेमें वैश्य जातिके विषका और वध करनेके कार्यमें शूद्र जातिके विषका प्रयोग करना चाहिये ॥ १६७ ॥

विषगुणाः ।

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ।
आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम्॥१६८॥
व्यवायि सकलकायगुणव्यापनपूर्वकं पाकमनशीलम् । विकाशि ओजःशोषणपूर्वकं सन्धिबन्धशिथिलीकरणशीलम् । आग्नेयं अधिकाग्न्यम् । योगवाहि सङ्क्रिगुणग्राहकम् । मदावहं तमोगुणाधिक्येन बुद्धिविध्वंसकम् ।

भाषा-विष प्राणनाशक, व्यवायि (सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर पचनेवाला), विकाशि (ओजको सुखाकर संधिबंधनोंको शिथिल करनेवाला), आग्नेय (अग्निके अधिक अंशयुक्त), योगवाही (साथीके गुणोंको करनेवाला), वातकारक, कफनाशक और मदकारक है. जो इस विषको युक्तिके साथ उपयोग करे तो प्राणदायक रसायन, योगवाही, त्रिदोषनाशक, पुष्टिकारक और वीर्यवर्द्धक है ॥१६८॥

अशुद्धविषदोषाः ।

तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम् ।
योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्धनम्॥१६९॥
ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे ते स्युर्हीना विशोधनात् । तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ १७० ॥

भाषा-अशुद्ध विषमें जो दुर्गुण रहते हैं वे शुद्ध करनेसे दूर होजाते हैं इस कारण औषधियोंके प्रयोगोंमें विषको शुद्ध करके प्रयोग करे ॥ १६९ ॥ १७० ॥

उपविषनिरूपणम् ।

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः ।
गुञ्जाऽहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥ १७१ ॥ (उपविषाणि गौणविषाणि । एषां गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः) ॥

इति श्रीभावप्रकाशे धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविषोपविषवर्गः समाप्तः ॥ ७ ॥

भाषा-आकका दूध, थूहरका दूध, लांगली (कलिहारी), कनेर, घुँघुची, अफीम और धतूरा ये सात उपविष अर्थात् गौणविषकी जातियां हैं (इनके गुण यहां वहां देखने चाहिये) ॥ १७१ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पञ्चमप्रकरणे धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविषोपविषवर्गः समाप्तः ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ धान्यवर्गः ८ ।

धान्यानां भेदाः ।

शालिधान्यं व्रीहिधान्यं शूकधान्यं तृतीयकम् । शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम् ॥ १ ॥ शालयो रक्तशाल्याद्या व्रीहयः षष्टिकादयः । यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बिधान्यकम् ॥ कंग्वादिकं क्षुद्रधान्यं तृणधान्यं च तत्स्मृतम् ॥ २ ॥

भाषा–शालिधान्य, व्रीहिधान्य, शूकधान्य, शिंबीधान्य और क्षुद्रधान्य इस भांति धान्योंके पांच भेद हैं. तहां लाल चावल आदि शालिधान्य, सांठी आदि व्रीहिधान्य, यव आदि शूकधान्य, मूंग आदि शिम्बीधान्य और कंगुनी आदि क्षुद्रधान्य कहे हैं. क्षुद्रधान्यको तृणधान्यभी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

शालिधान्यलक्षणम् ।

कण्डनेन विना शुक्ला हैमन्ताः शालयः स्मृताः ॥ ३ ॥

भाषा–जो चावल हेमन्तऋतुमें होते हैं और भुसीसे रहित सफेद होते हैं वे शालिधान्य जानने ॥ ३ ॥

शालिनामानि ।

रक्तशालिः सकलमः पाण्डुकः शकुनाहृतः । सुगन्धकः कर्दमको महाशालिश्च दूषकः ॥ ४ ॥ पुष्पाण्डकः पुण्डरीकस्तथा महिषमस्तकः । दीर्घशूकः काञ्चनको हायनो लोध्रपुष्पकः ॥ ५ ॥ इत्याद्याः शालयः सन्ति बहवो बहुदेशजाः । ग्रन्थविस्तरभीतेस्ताः समस्ता नात्र भाषिताः ॥ ६ ॥

भाषा–रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, कांचनक, हायन और लोध्रपुष्पक इत्यादि अनेक प्रकारके बहुत देशोंमें उत्पन्न होनेवाले शालिधान्य होते हैं. यहां ग्रन्थ बढ जानेके भयसे सम्पूर्ण नहीं कहे ॥ ४–६ ॥

अनेक भाषाके धानके नाम.

सं.–शालिधान्य.	क.–नेल्ल.
हिं.–धान, शालिधान, चावल.	ते.–धान्यमु.
बं.–शालिधान्य, चावल.	फा.–विरंज.
म.–साळी, भात, तांदूळ.	अ.–उरज.
गु.–शालि, चोखा.	अं–Rice राइस्.
	ला.–Orzia Sativa ओरिझा सेटाइवा.

शालिगुणाः ।

शालयो मधुराः स्निग्धा बल्या बद्धाल्पवर्चसः । कषाया लघवो रुच्याः स्वर्या वृष्याश्च बृंहणाः ॥ ७ ॥ अल्पानिलकफाः शीताः पित्तघ्ना मूत्रलास्तथा । शालयो दग्धभृज्जाताः कषाया लघुपाकिनः ॥ ८ ॥ सृष्टमूत्रपुरीषाश्च रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः । कैदारा वातपित्तघ्ना गुरवः कफशुक्रलाः ॥ कषायाश्चाल्पवर्चस्का मेध्याश्चैव बलावहाः ॥ ९ ॥ कैदाराः कृष्टक्षेत्रजाः उप्ताः ।

भाषा–शालिधान्य मधुर, स्निग्ध, बलदायक, अल्पपरिमाण, बद्धमलको निकालनेवाले, कसैले, हलके, रुचिकारक, स्वरको उत्तम करनेवाले, वीर्यवर्द्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाले, किंचित् वातकारक तथा कफकारक, शीतल, पित्तकारक तथा मूत्रवर्द्धक हैं. जो चावल जली हुई मिट्टीसे उत्पन्न हुए हैं वे कसैले, पाकमें हलके, मलमूत्रको निकालनेवाले, रूक्ष और कफशोधक हैं. जो चावल खेतमें बोनेसे उत्पन्न हों वे वातपित्तनाशक, भारी, कफ तथा वीर्यको बढानेवाले, कसैले, मेधाको हितकारी, बलदायक और अल्प मल लानेवाले हैं ॥ ७–९ ॥

स्थलशालिगुणाः ।

स्थलजाः स्वादवः किंचित्कफघ्ना वातपित्तदाः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किञ्चित्तिक्ताः कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥ १० ॥ स्थलजाः अकृष्टभूमिजाताः स्वयं जाताः।

भाषा-जो चावल विना जोती बोई पृथ्वीसे स्वयं उत्पन्न हुए हैं वे मधुर, पित्तनाशक, कफनाशक, वातकारक तथा पित्तदायक, किंचित् चरपरे, कसैले और पाकमें चरपरे हैं ॥ १० ॥

वापितशालिगुणाः।

वापिता मधुरा वृष्या बल्याः पित्तप्रणाशनाः। श्लेष्मलाश्चाल्पवर्चस्काः कषाया गुरवो हिमाः ॥ ११ ॥ वापिताः कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे च।

भाषा-बोनेसे अथवा विना बोनेसे उत्पन्न हुए चावल मधुर, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, पित्तनाशक, कफवर्द्धक, अल्प मल निकालनेवाले, कसैले, भारी और शीतल हैं ॥ ११ ॥

अवापितशालिगुणाः।

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चिद्धीनाः प्रोक्ता अवापिताः। (कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे वा) रोपितास्तु नवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः ॥ १२ ॥ येभ्यस्तु रोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः। छिन्नरूढा हिमा रूक्षा बल्याः पित्तकफापहाः ॥ बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चाल्पतिक्तकाः ॥ १३ ॥

भाषा-बोनेसे उत्पन्न हुए चावलोंकी अपेक्षा विना बोये हुए चावलोंमें अल्प गुण कहे हैं, बोये हुए चावल नवीन होंय तो वीर्यवर्द्धक और जीर्ण होंय तो हलके हैं. बोये हुए और नहीं बोये हुये शालि चावलोंमें बोये हुए शीघ्र पकनेवाले और गुणोंमें अधिक हैं. जो चावल काटनेपर पश्चात् उगे हुए बोये होंय वे शीतल, रूखे, बलकारक, पित्तनाशक तथा कफनाशक, मलरोधक, कसैले, हलके और किंचिन्मात्र कडवे हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

रक्तशालिगुणाः।

रक्तशालिर्वरस्तेषु बल्यो वर्ण्यस्त्रिदोषजित्। चक्षुष्यो मूत्रलः स्वर्यः शुक्रलस्तृड्ज्वरापहः ॥ १४ ॥ विषव्रणश्वासकासदाहनुद्वह्निपुष्टिदः। तस्मादल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः ॥ १५ ॥ (रक्तशालिः 'दाऊदखानी' इति लोके, मगधदेशे प्रसिद्धः)

भाषा-संपूर्ण धान्योंमें रक्तशालि श्रेष्ठ, बलदायक, वर्णको उत्तम करनेवाले, त्रिदोषनाशक, नेत्रोंको हितकारी, मूत्रकारक, स्वरको उत्तम करनेवाले, वीर्यको बढानेवाले, अग्निप्रदीपक, पुष्टिकारक हैं और तृषा, ज्वर, विष, व्रण, श्वास, खांसी तथा दाहको नष्ट करनेवाले हैं. दूसरे महाशालि आदि चावलोंकी अपेक्षा ये अल्प गुणवाले हैं. (दाऊदखानीचावल मगधदेशमें प्रसिद्ध हैं.) ॥ १४ ॥ १५ ॥

व्रीहिधान्यलक्षणम्।

वार्षिकाः कण्डिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः। कृष्णव्रीहिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि ॥ १६ ॥ शालामुखो जतुमुख इत्याद्या व्रीहयः स्मृताः। कृष्णव्रीहिः स विज्ञेयो यत्कृष्णतुषतण्डुलः ॥ १७ ॥ पाटलः पाटलापुष्पवर्णको व्रीहिरुच्यते। कुक्कुटाण्डाकृतिर्व्रीहिः कुक्कुटाण्डक उच्यते ॥ १८ ॥ शालामुखः कृष्णशूकः कृष्णतण्डुल उच्यते। लाक्षावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः ॥ १९ ॥

भाषा-जो चावल वर्षाऋतुमें पकते हैं और छडनेसे सफेद होते हैं तथा देरमें पकते हैं वे व्रीहिधान्य कहाते हैं. कृष्ण व्रीहि, पाटल, कुक्कुटांडक, शालामुख और जतुमुख इत्यादि व्रीहिधान्यके भेद हैं. जिसकी भुसी और चावल कृष्णवर्ण होय वह कृष्ण व्रीहि जानना, जिसका वर्ण पाटलपुष्पके सदृश हो उसको पाटल जानना, जिसकी आकृति मुरगेके अण्डेके सदृश हो उसको कुक्कुटांडक जानना, जिसका शूक (कांटा) और चावल काला हो उसको शालामुख जानना, जिसका मुख लाखके सदृश वर्णवाला हो उसको जतुमुख जानना ॥ १६-१९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्रीहिधान्यगुणाः ।

व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्यतो हिमाः । अल्पाभिष्यन्दिनो बद्धवर्चस्काः षष्टिकैः समाः ॥ कृष्णव्रीहिर्वरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे ॥ २० ॥

भाषा–संपूर्ण व्रीहिधान्य पाकमें मधुर, वीर्यवाले, शीतल, अल्प अभिष्यन्दी, मलरोधक और सांठीके समान हैं, इनमें कृष्णव्रीहि उत्तम हैं और इससे अल्प गुणवाले हैं ॥ २० ॥

षष्टिकलक्षणम् ।

गर्भस्था एव ये पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः ।

भाषा–जो गर्भमेंही अर्थात् बालमेंही पक जाते हैं, उनको सांठी धान्य कहते हैं ॥

षष्टिकनामानि ।

षष्टिकः शतपुष्पश्च प्रमोदकमुकुन्दकौ । महाषष्टिक इत्याद्याः षष्टिकाः समुदाहृताः ॥ एतेऽपि व्रीहयः प्रोक्ता व्रीहिलक्षणदर्शनात् ॥ २१ ॥

भाषा–षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्दक और महाषष्टिक इत्यादि सांठीधान्यके भेद हैं. इनमें व्रीहिके लक्षण दीखते हैं इससे येभी व्रीहि कहे हैं ॥ २१ ॥

षष्टिकगुणाः ।

षष्टिका मधुराः शीता लघवो बद्धवर्चसः । वातपित्तप्रशमनाः शालिभिः सदृशा गुणैः ॥ २२ ॥ षष्टिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोषजित् । स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी ॥ रक्तशालिगुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणा परा ॥ २३ ॥

भाषा–सांठी चावल शीतल, हलके, मलको बांधनेवाले, वात तथा पित्तको शांत करनेवाले और शालिधान्यके सदृश गुणदायक हैं. इन सबमें सांठीचावल उत्तम, हलके, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, मधुर, कोमल, ग्राही, बलदायक, ज्वरको नष्ट करनेवाले और रक्तशालिके सदृश गुणवाले हैं, इससे औरोंमें अल्प गुण हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

धानका विशेष विवरण.

धानकी तीन चार जाति हैं, शालि, शूक, शिम्बी और तृणधान्य, इनमें शालिधान अनेक प्रकारके होते हैं. देशके भेदसे इसके नाम भिन्न २ हैं. संस्कृत ग्रंथोंमें अनेक नाम कहे हैं जैसे कलम, सुगंधशालि, धान्योत्तम, राजभोग्य, सुवर्णशालि, प्रमोदक, षष्टिक इत्यादि अनेक जाति हैं. उन सबके वर्त्तमानकालमें संस्कृत नाम प्रचलित नहीं हैं. देश २ में जुदे २ नाम हैं जैसे हंसराज, वांसमती, सुनखर्चा, बिंदली, दाऊदखानी, मुनिया, दलबादल, चवल, फतेपुरी, बंकी, नागपुरी, मोथा, गोसाळवेल, निरपुंज, माध्यावरंगल, माढी, खारी पटणी, कोळंबा, दोडका, पनवेल, बहाड, कमोद, आबेमोहोर, सोनवेल, जिरेसाळ, बोडका, गुज्या, पटणी इत्यादि अनेक नाम प्रचलित हैं. जो साठ दिनमें पककर तैयार हो जाय उनको सांठीधान कहते हैं, और धानोंकी अपेक्षा ये हलके और पथ्य हैं. जौ, गेहूं, बाजरा, ज्वार इत्यादिको शूकधान्य कहते हैं. मूंग, उडद, मोठ, चने इत्यादिको शिम्बीधान्य कहते हैं. शमा, कंगुनी, कोदों आदिको तृणधान्य कहते हैं.

शूकधान्यानि तत्र यवभेदाः ।

यवस्तु सितशूकः स्यान्निःशूकोऽतियवः स्मृतः । तोक्मस्तद्वत्स हरितस्ततः स्वल्पश्च कीर्त्तितः ॥ २४ ॥

भाषा–जौ और गेहूँ ये शूक धान्योंमें गिने जाते हैं. यव, अतियव और तोक्म ये तीन जौकी जातियां हैं. सफेद सुईवालेको जौ कहते हैं. जो जौ शूक (सुई) रहित हों वे अतियव कहाते हैं और जो हरे वर्णवाले तथा शूकरहित छोटे हों वे तोक्म कहाते हैं ॥ २४ ॥

यवनामानि ।

[यवस्तु मेध्यः सितशूकसंज्ञो दिव्योऽक्षतः कंचुकिधान्यराजौ । स्यात्तीक्ष्णशूकस्तुरगप्रियश्च शुक्लेयेष्टश्च पवित्रधान्यम् ॥]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-यव, मेध्य, सितशूक, दिव्य, अक्षत, कंचुकि, धान्यराज, तीक्ष्णशूक, तुरगप्रिय, शक्तु, हयेष्ट, पवित्रधान्य ये जौके संस्कृत नाम हैं. (शितशूक, हयप्रिय, यवक, श्वेतशुङ्ग, प्रवेट, शीतशूक, कंचुकी, तुरंगप्रिय ये जौके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके जौके नाम.

सं.-यव.	अ.-शईर.
हिं.-जौ.	अं.-Bitter Barley बिटरबार्लि, Pearl Barley पर्लबार्लि.
बं.-यव.	
म.-जव, जौं.	
क.-मुंडजयव.	
ते.-यवधान्य.	ला.-Herdeum Hexasticum होर्डियं हेग्झास्टिकम्.
ता.-वार्लिअरिसु.	
फा.-जब.	

यवगुणाः ।

यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः । व्रणेषु तिलवत्पथ्यो रूक्षो मेधाग्निवर्द्धनः ॥ २५ ॥ कटुपाकोऽनभिष्यन्दी स्वर्यो बलकरो गुरुः । बहुवातमलो वर्णस्थैर्यकारी च पिच्छिलः ॥ २६ ॥ कण्ठत्वगामयश्लेष्मपित्तमेदःप्रणाशनः । पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहितवृट्प्रणुत् ॥ अस्मादतियवो न्यूनस्तोक्मो न्यूनतरस्ततः ॥ २७ ॥

भाषा-जौ कसैले, मधुर, शीतल, लेखन, कोमल, व्रणरोगमें तिलके सदृश, पथ्य, रूक्ष, बुद्धि तथा अग्निको बढानेवाले, पाकमें चरपरे, अनभिस्यंदी, स्वरको उत्तम करनेवाले बलकारक, भारी, वात तथा मलको बहुत करनेवाले, वर्णको स्थिर करनेवाले, पिच्छिल है और कण्ठरोग, त्वचाके रोग, कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, खांसी, ऊरुस्तंभ, रुधिरविकार तथा तृषाको नष्ट करते हैं. जौसे अतियवमें अल्प गुण हैं और अतियवसे तोक्ममें अल्प गुण हैं ॥ २५-२७ ॥

गोधूमनामानि ।

गोधूमः सुमनोऽपि स्यात्त्रिविधः स च कीर्त्तितः ।

भाषा-गोधूम, सुमन ये गेहूँके संस्कृत नाम हैं. (बहुदुग्ध, अरूप, म्लेच्छभोजन, निस्तुष, क्षीरी, रसाल, गोधुम और सुमना ये गेहूके, संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके गेहूँके नाम.

सं.-गोधूम.	फा.-गंदुम.
हिं.-गेहूँ.	अ.-हिंता.
बं.-गम.	अं-Wheat ह्वीट.
म.-गहूं.	ला.-Triticum Valgari ट्रिटिकं वल्गेरी.
गु.-घऊँ.	
क.-गोदी.	
ते.-गोदुमु.	

गोधूमलक्षणम् ।

महागोधूम इत्याख्यः पश्चादेशात्समागतः । मधूली तु ततः किञ्चिदल्पा सा मध्यदेशजा ॥ निश्शूको दीर्घगोधूमःक्वचिन्नन्दीमुखाभिधः २८

भाषा-गेहूंके तीन भेद हैं, जो गेहूँ पश्चिम मारवाड आदि देशसे आते हैं वे महागोधूम (बडे गेहूँ) कहाते हैं. इन गेहूँसे कुछ छोटे होते हैं वे मधूली कहाते हैं और वे मध्यप्रदेश मथुरा, दिल्ली, आगरा आदिमें होते हैं. जो गेहूं भूसीरहित होते हैं. वे दीर्घ गोधूम कहाते हैं और कहीं कहीं इसको नन्दीमुखभी कहते हैं ॥ २८ ॥

गोधूमगुणाः ।

गोधूमो मधुरः शीतो वातपित्तहरो गुरुः । कफशुक्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत्सरः ॥ २९ ॥ जीवनो बृंहणो वर्ण्यो व्रण्यो रुच्यः स्थिरत्वकृत् । (कफप्रदो नवीनः न तु पुराणः) । पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूलभाक् ॥ ३० ॥ वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात् ।

भाषा-गेहूं मधुर, शीतल, वातनाशक पित्तनाशक, भारी, कफनाशक, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, स्निग्ध, सन्धानकारक, दस्तावर, जीवनरूप, पुष्टिकारक, वर्णको उत्तम करनेवाले, व्रणको हितकारी, रुचिकारक और स्थिरता करनेवाले हैं. नये गेहूं कफकारक हैं, परन्तु पुराने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गेहूं कफकारक नहीं हैं. क्योंकि वाग्भट कहते हैं कि वसन्तमें पुराने जौ, पुराने गेहूं, मधु, जंगली जीवोंका मांस और शूलसे पकाया हुआ मांस खाना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

मधूलीगुणाः ।

मधूली शीतला स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः ।
शुक्रला बृंहणी पथ्या तद्वन्नन्दीमुखः स्मृतः ३१

भाषा–मधूली गेहुं शीतल, स्निग्ध, पित्तनाशक, मधुर, हलके, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिदायक और पथ्य हैं. नन्दीमुख गेहूंओंमेंभी येही गुण हैं ॥ ३१ ॥

शिम्बीधान्यम् ।

तत्रादौ शिंबीधान्यनामानि ।

शमीजाः शिम्बिजाः शिम्बीभवाः सूर्याश्च वैदलाः ।

भाषा–शमीज, शिम्बिज, शिम्बीभव, सूर्य और वैदल ये शिंबीधान्यके संस्कृत नाम हैं ॥

शिम्बीधान्यगुणाः ।

वैदला मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः ।
वातलाः कफपित्तघ्नबद्धमूत्रमला हिमाः ॥
ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारिणः ॥ ३२ ॥ मुद्गमसूरयोः आध्मानकारित्वमन्यवैदलापेक्षया, न तु सर्वथा, एतयोरपि किञ्चिदाध्मानकारित्वात् ।

भाषा–शिम्बीधान्य मधुर, रूक्ष, कसैले, पाकमें चरपरे, वातकारक, कफनाशक, पित्तनाशक, मूत्र तथा मलको बांधनेवाले, शीतल और मूंग तथा मसूरको छोडकर सब आध्मानकारक हैं. मूंग और मसूर ये अन्य शिम्बीधान्योंकी अपेक्षा अफरा घटानेवाले हैं परन्तु सर्वथा अफरा नहीं करते येभी नहीं किंचित् अफरा तो करतेही हैं ॥ ३२ ॥

मुद्गनामानि ।

[मुद्गस्तु सूपश्रेष्ठः स्याद्वर्णार्हश्च रसोत्तमः ।
मुक्तिप्रदो हयानन्दः सुफलो वाजिभोजनः॥]

भाषा–मुद्ग, सूपश्रेष्ठ, वर्णार्ह, रसोत्तम, मुक्तिप्रद, हयानन्द, सुफल, वाजिभोजन ये मूंगके संस्कृत नाम हैं.) ॥

अनेक भाषाके मूंगके नाम.

सं.–मुद्ग.	मला.–चेरुपायरु.
हिं.–मूंग.	पं.–मूंजि.
बं.–मुग.	फा.–बुनुमाष.
म.–हिरवे काळे मूग.	अ.–मज.
गु. मग.	अं.–Green Grain ग्रीन ग्रेन.
क.–हेसरु, पच्चे हसरु.	ला.–Phaseolus Mungo फसीओलस् मुंगो.
तै.–पेसलु, पच्चापेसलु.	
ता.–पच्चे पायरु.	
तु.–पदेंगी.	

मुद्गगुणाः ।

मुद्गो रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः ।
स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा ३३

भाषा–मूंग रूखी, ग्राही, कफनाशक, पित्तनाशक, शीतल, स्वादु, अल्पवातकारक, नेत्रोंको हितकारी तथा ज्वरनाशक है ॥ ३३ ॥

मुद्गभेदाः ।

मुद्गो बहुविधः श्यामो हरितः पीतकस्तथा ।
श्वेतो रक्तश्च तेषां तु पूर्वपूर्वो लघुः स्मृतः ॥ ३४ ॥ सुश्रुतेन पुनः प्रोक्तो हरितः प्रवरो गुणैः । चरकादिभिरप्युक्त एष एव गुणाधिकः ॥ ३५ ॥

भाषा–मूंग काली, हरी, पीली, सफेद और लाल इस भांति अनेक प्रकारकी है. इनमें पीछेकी अपेक्षा पहिली २ में अधिक हलकापन है. सुश्रुत तो हरी मूंगमेंही सर्वोत्तम गुण कहते हैं और चरकादिकभी हरी मूंगमेंही अधिक गुण कहते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

माषनामानि ।

[माषस्तु कुरुविन्दः स्याद्धान्यवीरो वृषांकुरः ।
मांसलश्च बलाढ्यश्च पिञ्यश्च पितृभोजनः ॥]

भाषा–माष, कुरुविन्द, धान्यवीर, वृषांकुर, मांसल, बलाढ्य, पिञ्य, पितृभोजन ये उडदके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संस्कृत नाम हैं. (बीजरत्न, वली ये उडदके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके उडदके नाम.

सं.-माष.	अ.-माषा.
हिं.-उडद, उरद.	अं.-Kidneybean किडनीबीन.
बं.-माष, कलाय.	ला.-Phaseolus Rediatus फेसिओलस् रेडिएटस्, Phasiolos Roxburghii फेसिओलस् रॉक्सबुर्घि आइ.
म.-उडिद.	
गु.-अडद.	
क.-उद्दु.	
तै.-मिनुउलु.	
ता.-उलंदु.	
तु.-उर्दु.	
मला.-उलुन्नु.	
फा.-माष.	

माषगुणाः ।

माषो गुरुः स्वादुपाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः । स्रंसनस्तर्पणो वल्यः शुक्रलो बृंहणः परः ॥ ३६ ॥ भिन्नमूत्रमलः स्तन्यो मेदःपित्तकफप्रदः । गुदकीलार्दितश्वासपंक्तिशूलानि नाशयेत् ॥ ३७ ॥ कफपित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि । कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत् ॥ ३८ ॥

भाषा-उडद भारी, पाकमें मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, वातनाशक, स्रंसन, तृप्तिकारक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, अत्यन्त पुष्टिकारक, मल तथा मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति करनेवाले, दुग्धवर्द्धक, मेदप्रद, कफप्रद तथा पित्तकारक हैं और गुदकील (बवासीर), अर्दितवात, श्वास और पंक्तिशूलका नाश करते हैं. उडद, दही, मछली और बैंगन ये चारों कफपित्तको बढानेवाले हैं ॥ ३६-३८ ॥

राजमाषनामानि ।

राजमाषो महामाषश्चपलश्चबलः स्मृतः ।

भाषा-राजमाष, महामाष, चपल, चबल ये लोबियेके संस्कृत नाम हैं. (बर्बट, मरुत्कर, द्विजसप्त, नीलमाष, नृपमाष, नृपोचित, सितमाष, दीर्घबीज, निष्पाव, राजमाषक सुकुमार, दीर्घशिम्बी और क्षुधाभिजनक ये लोबियेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके लोबियेके नाम.

सं.-राजमाष.	तु.-लट्ठने.
हिं.-लोबिया.	मला.-कोत्तापयल.
बं.-वरबटी कलाय.	फा.-लोबिया.
म.-चवळचा, अळसुंदा.	अ.-फरीका.
गु.-चोला.	अं.-Chinese Dolicas चाइनीज् डोलिकोस्.
क.-अळसंदी, तडगणि.	ला.-Dolichos Sinensis डोलिकोस् सिनेन्सिस्.
तै.-दन्तुपेसलु, अलचंदल.	
ता.-कारामणि.	

राजमाषगुणाः ।

राजमाषो गुरुः स्वादुस्तुवरस्तर्पणः सरः । रूक्षो वातकरो रुच्यः स्तन्यो भूरिबलप्रदः ३९॥

भाषा-लोबिया भारी, मधुर, कसैला, तृप्तिदायक, दस्तावर, रूक्ष, वातकारक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, दुग्धवर्द्धक और अत्यन्त बलदायक है ॥ ३९ ॥

राजमाषभेदाः ।

श्वेतो रक्तस्तथा कृष्णस्त्रिविधः स प्रकीर्तितः । यो महांस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः ॥ ४० ॥

भाषा-लोबिया श्वेत, लाल तथा काला इस भांति तीन प्रकारका है. जो बडा होता है, उसमें अधिक गुण होते हैं ॥ ४० ॥

निष्पावनामानि ।

निष्पावो राजशिम्बिः स्याद्वल्लकः श्वेतशिम्बिकः ।

भाषा-निष्पाव, राजशिंबि, वल्लक और श्वेतशिंबि ये निष्पावके संस्कृत नाम हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके निष्पावके नाम.

सं.–निष्पाव.	तै.–अनमु.
हिं.–निष्पाव, भट्वांसु, राजशिंबीके बीज.	ता.–वेलावरायी.
बं.–राजशिम्बीबीज, भेटरासु.	तु.–अवेर.
म.–पावटे, वर्णे.	मला.–वेलावरा, मोच्चा.
गु.–ओलिया, वाल.	ला.–Lablab valgaris लेबलेब वलगेरिस्.
क.–अवरि.	

निष्पावगुणाः ।

निष्पावो मधुरो रूक्षो विपाकेऽम्लो गुरुः सरः ।
कषायः स्तन्यपित्तास्रमूत्रवातविबन्धकृत् ॥
विदाह्युष्णो विषश्लेष्मशोथहृच्छुक्रनाशनः ४१

भाषा–निष्पाव मधुर, रूक्ष, पाकमें अम्ल, भारी, दस्तावर, कसैला, दुग्धवर्द्धक है और पित्त, रुधिर, मूत्र, वात तथा अफरेको करनेवाला है तथा विदाही, गरम है और विष, कफ, शोथ और वीर्यका नाश करता है ॥ ४१ ॥

वनमुद्गनामानि ।

मकुष्ठो वनमुद्गः स्यान्मकुष्ठकमुकुष्ठकौ ।

भाषा–मकुष्ठ, वनमुद्ग, मकुष्ठक और मुकुष्ठक, ये मोठके संस्कृत नाम हैं. (कृमीलक, अमृत, अरण्यमुद्ग, वल्लीमुद्ग, मुकुष्ठ, मयष्ठ, राजमुद्ग, मयष्ठक, वरक, निगूढक, कुलीनक, खण्डी, मुद्गष्टक, मुद्गष्ट, मयष्टक, मयूष्ट, मद्यक, मयुष्टक और मयुष्ट ये मोठके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मोठके नाम.

सं.–मकुष्ठ.	अं.–Aconite Leaved Kidneybean ॲकोनाइट् लीव्ड् किड्नी बीन.
हिं.–मोठ.	
बं.–वनमूंग.	ला.–Phaseolus Aconitifolias फेसिओलस् ॲकोनिटि फोलिअस.
म.–मटक्या, मठ.	
गु.–मठ.	
क.–मडिके, मुगहेसरु भेद.	
तै.–कंकंपेसालु.	
फा.–माष हिंदी.	

वनमुद्गगुणाः ।

मकुष्ठो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः । वह्निजिन्मधुरः पाके कृमिकृज्ज्वरनाशनः ॥ ४२ ॥

भाषा–मोठ वातकारक, ग्राही, कफनाशक, पित्तनाशक, हलकी, अग्निको जीतनेवाली, पाकमें मधुर, कृमिकारक है और ज्वरको नष्ट करती है ॥ ४२ ॥

मसूरनामानि ।

मङ्गल्यको मसूरः स्यान्मङ्गल्या च मसूरिका ।

भाषा–मंगल्यक, मसूर, मंगल्या, मसूरिका ये मसूरके संस्कृत नाम हैं. (रागदालि, मंगल्य, पृथुबीजक, सूर, कल्याणबीज, गुरुबीज, मसूरक, व्रीहिकांचन, गभोलिक, ताम्बूलराग, हालासक, मसुरा, मसूरा, मसुरिका और मांसल्या ये मसूरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मसूरके नाम.

सं.–मसूर.	ता.–मिसुर.
हिं.–मसूर.	फा.–बुनोसुर्ख.
बं.–मुसूरि कलाय.	अ.–अदस्.
म.–मसूरा.	अं.–Lentil लेंटिल्.
गु.–मसुर.	ला.–Ervaylens इर्वेलेन्स्.
क.–चन्नंगी.	
तै.–मसूरपप्पु.	

मसूरगुणाः ।

मसूरो मधुरः पाके संग्राही शीतलो लघुः ।
कफपित्तास्रजिद्रूक्षो वातलो ज्वरनाशनः ॥ ४३ ॥

भाषा–मसूर पाकमें मधुर, ग्राही, शीतल, हलकी, रूक्ष, वातकारक है और कफ, पित्त, रक्तविकार तथा ज्वरका नाश करती है ॥ ४३ ॥

आढकीनामानि ।

आढकी तुवरी चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका ।

भाषा–आढकी, तुवरी, शणपुष्पिका ये अरहरके संस्कृत नाम हैं. (वर्या, मृत्ताल, मृत्तालक, काक्षी, करवीरभुजा, वृत्तबीजा, सुराष्ट्रजा, पीतपुष्पा, मृत्स्ना, तुवरिका और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृत्तालका ये अरहरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके अरहरके नाम.

सं.-आढकी.	तु.-तोगोरि.
हिं.-अरहर, अडहर.	मला.-आढका तुवर.
बं.-अडहर, आइरि.	फा.-शाखुल.
म.-तुरी.	अं.-Pigeon Pea पिजिअन् पी.
गु.-तुवर.	ला.-Csjanus Indicus केजेनस् इंडिकस्.
क.-तोगरी.	
तै.-कादुलु.	
ता.-अदगि, तुवरे.	

आढकीगुणाः ।

आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः ।
ग्राहिणी वातजननी वर्ण्या पित्तकफास्रजित् ४४

भाषा-अरहर कसैली, रूखी, मधुर, शीतल, हलकी, ग्राही, वातको उत्पन्न करनेवाली, वर्णको उत्तम करनेवाली है और पित्त, कफ तथा रक्तविकारका नाश करती है ॥ ४४ ॥

चणकनामानि ।

चणको हरिमन्थः स्यात्सकलप्रिय इत्यपि ।

भाषा-चणक, हरिमन्थ, सकलप्रिय ये चनेके संस्कृत नाम हैं. (वाजिमन्थ, जीवन, हरीमन्थक, हरिमन्थज, चण, सुगन्ध, कृष्णचंचुक, बालभोज्य वाजिभक्ष्य, कंचुकी और बालभैषज्य ये चनेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके चनेके नाम.

सं.-चणक.	तु.-कडले.
हिं.-चने, चना, छोला.	मला.-कटाला.
बं.-छोलारगाछ.	फा.-नखूद्.
म.-हरभरे, चणे.	अ.-हुमम्.
गु.-चणा.	अं.-Gram ग्राम्.
क.-कडले, मोनेगडले.	ला.-Cicer Arietinum सीसर् एरिएटिनम्.
तै.-शनिगालु, चनगालु.	
ता.-कडले.	

चणकगुणाः ।

चणकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्तकफापहः ।
लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः ४५
स चाङ्गारेण सम्भृष्टस्तैलभृष्टश्च तद्गुणः ।
आर्द्रभृष्टो बलकरो रोचनश्च प्रकीर्त्तितः ॥ ४६ ॥
शुष्कभृष्टोऽतिरूक्षश्च वातकुष्ठप्रकोपणः । स्विन्नः पित्तकफौ हन्यात्सूपः क्षोभकरो मतः ४७ ॥
आर्द्रोऽतिकोमलो रुच्यः पित्तशुक्रहरो हिमः ।
कषायो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः ४८ ॥

भाषा-चने शीतल, रूखे, हलके, कसैले, विष्टम्भी, वातकारक हैं और पित्त, रुधिर, कफ तथा ज्वरका नाश करते हैं. अग्निसे अथवा तेलमें भुने हुए चनेभी ऐसेही गुणकारक हैं. गीले भुने हुए चने बलदायक और रुचिकारक हैं. सूखे भुने अत्यंत रूक्ष हैं और वात तथा कुष्ठको कुपित करनेवाले हैं. उसीजे हुए चने पित्त तथा कफको नष्ट करते हैं. चनेकी रांधी हुई दाल क्षोभकारक है. गीले चने कोमल, रुचिकारक, पित्तनाशक, वीर्यनाशक, शीतल, कसैले, वातकारक, ग्राही, हलके और कफपित्तनिवारक हैं ॥ ४५-४८ ॥

कलायनामानि ।

कलायो वर्त्तुलः प्रोक्तः सतीनश्च हरेणुकः ।

भाषा-कलाय, वर्त्तुल, सतीन, हरेणुक ये मटरके संस्कृत नाम हैं. (मुण्डचणक, हरेणु, रेणुक, सतीनक, खण्डिक, त्रिपुट, अतिवर्तुल, शमन, नीलक, वंठी, सतील, अनलक और सतीनक ये मटरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पटरके नाम.

सं.-कलाय.	तु.-पट्टाणि.
हिं.-मटर, केराव.	मला.-पट्टानि, पायरू.
बं.-बाँटुला मटर.	अं.-Field pea फील्ड् पी.
म.-वाटाणे.	ला.-Pisum Sativum पाइसम् सेटाइवम्.
गु.-वटाणा.	
क.-वट्टकडले, वटाणि.	
तै.-गुंडचणगलु.	
ता.-पटाणि.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कलायगुणाः।

कलायो मधुरः स्वादुः पाके रूक्षश्च शीतलः।

भाषा–मटर मधुर, पाकमेंभी मधुर और शीतल हैं॥

त्रिपुटनामानि।

त्रिपुटः खण्डिकोऽपि स्यात्कथ्यंते तद्गुणा अथ।

भाषा–त्रिपुट और खण्डिक ये खेसारीके संस्कृत नाम हैं. (कराला, त्रिपुटा, कांडिका, लंका, रूक्षणात्मिका, करटा, खंडका, कलाय, चंडिका, घंटिका, क्षुद्रघण्टिका ये खेसारीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके खेसारीके नाम.

सं.–त्रिपुट.
हिं.–खेसारी, कस्सा.
बं.–खेसारि कलाय.
म.–लांक.
गु.–मकाई.
तै.–लांक.
फा.–मासंग.
अ.–हबुलबकर.
अं.–Chickling Vetch चिक्लिंग् वेच्.
ला.–Lathyrus Sativus लेथिरस् सेटिवस्.

त्रिपुटगुणाः।

त्रिपुटो मधुरास्तिक्तस्तुवरो रूक्षणो भृशम्।
कफपित्तहरो रुच्यो ग्राहकः शीतलस्तथा॥
किन्तु खञ्जत्वपङ्गुत्वकारी वातातिकोपनः॥४९॥

भाषा–खेसारी मधुर, कडवी, कसैली, रूक्ष, कफनाशक पित्तनाशक, रुचिकारी, ग्राही, शीतल है और खंजा तथा लंगडा करती है तथा वातको अत्यंत कुपित करनेवाली है॥ ४९॥

कुलित्थनामानि।

कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ।

भाषा–कुलत्थिका, कुलत्थ ये कुलथीके संस्कृत नाम हैं. (कुलित्थ, ताम्रबीज, श्वेतबीज, सितेतर, कालवृन्त, ताम्रवृक्ष, ताम्रवृन्त और ताम्रबीज ये कुलथीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके कुलथीके नाम.

सं.–कुलित्थ.
हिं.–कुलथी.
बं.–कुलथी कलाय.
म.–कुळिथ.
दे.–हुलगे.
गु.–कुलथी.
क.–हुरुळी.
ते.–वुलवुलु.
ता.–कोळु.
तु.–कुडु.
मला.–कोळु, मुतिरा.
गो.–कुल्थ.
फा.–किल्लत.
अ.–हबुलकिलत.
अं.–Two flowered Dolicos टु वर्ड डोलिकोस्.
ला.–Dolichos Biflorus डोलिकस् बाइफ्लोरस्.

कुलित्थगुणाः।

कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत्।
लघुर्विदाही वीर्योष्णः श्वासकासकफानिलान्॥ ५०॥ हन्ति हिक्काश्मरीशुक्रदाहानाहान्सपीनसान्। स्वेदसंग्राहको मेदोज्वरकृमिहरः परः॥ ५१॥

भाषा–कुलथी पाकमें चरपरी, कसैली, पित्तकारक तथा रुधिरविकारकारक, हलकी, दाहकारक, उष्णवीर्य, पसीना रोकनेवाली है और श्वास, खांसी, कफ, वात, हिचकी, पथरी, वीर्य, दाह, अफरा, पीनस, मेद, ज्वर तथा कृमिको नष्ट करती है॥ ५०॥ ५१॥

तिलनामलक्षणम्।

तिलः कृष्णः सितो रक्तः सवर्ण्योऽल्पतिलः स्मृतः।

भाषा–तिल यह एक तिलका संस्कृत नाम हैं. (होमधान्य, पवित्र, पितृतर्पण, पापघ्न, पूतधान्य, जटिल, वनोद्भव, स्नेहफल, पूरफल और तैलफल ये तिलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) सफेद, काले और लाल इस भांति तीन प्रकारके तिल होते हैं. जो तील वनमें होते हैं वे अल्पतिल कहाते हैं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके तिलके नाम.

सं.-तिल.
हिं.-तिल, काले तिल.
बं.-तिलगाछ.
म.-तीळ, काळे तीळ.
गु.-तल.
क.-एळ्ळु.
तै.-नोवुलु.
ता.-एल, नुवु.
तु.-उरु, एन्मे.
मला.-कारेल्लू.
फा.-कुंजद.
अ.-सिमसिम.
अं.-Sisamum Niger Seeds सिसेमम् नाइजर सीड्स्.
ला.-Sisamus Indicum सिसेमस् इण्डिकम्.

तिलगुणाः ।

तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः । विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनु (कृ) त् ॥ ५२ ॥ बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः । दन्त्योऽल्पमूत्रकृद्ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः ॥ ५३ ॥ कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्लो मध्यमः सितः । अन्ये हीनतराः प्रोक्तास्तज्ज्ञैरक्तादयस्तिलाः ॥ ५४ ॥

भाषा-तिल रसमें चरपरे, कडवे, मधुर, कसैले, भारी, पाकमें चरपरे, स्वादिष्ठ, स्निग्ध, कफ तथा पित्तको नष्ट करनेवाले, बलदायक, केशोंको उत्तम करनेवाले, स्पर्शमें शीतल, त्वचा (चमडी) को हितकारी, दुग्धवर्द्धक, व्रणरोगमें हितकारी, दांतोंको उत्तम करनेवाले, मूत्रको अल्प करनेवाले, ग्राही, वातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाले और बुद्धिवर्द्धक हैं. काले तिल सर्वोत्तम और वीर्यवर्द्धक हैं, सफेद तिल मध्यम हैं और लाल आदि तिल हीनगुणवाले हैं ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ ५२-५४ ॥

अतसीनामानि ।

अतसी नीलपुष्पी च पार्वती स्यादुमा क्षुमा ।

भाषा-अतसी, नीलपुष्पी, पार्वती, उमा, क्षुमा ये अलसीके संस्कृत नाम हैं. (पिच्छिला, देवी, मदगन्धा, मदोत्कटा, हैमवती, सुनीला, नीलपुष्पिका, चणका, क्षौमी, रुद्रपत्नी, सुवर्चला और मसृणा-ये अलसीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके अलसीके नाम.

सं.-अतसी.
हिं.-अलसी.
बं.-मसिना, तिसी.
म.-अळशी, जवशी.
गु.-अलसी.
क.-अगसि.
तै.-मल्लपगसिचेट्टु.
ता.-अलिविराई.
फा.-तुख्मेकतान.
अ.-वजरुल कतान.
अं.-Linseed लिन्सीड्.
ला.-Lini Semina लिनिसैमिना.

अतसीगुणाः ।

अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरुः । उष्णा दृक्छुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी ५५

भाषा-अलसी मधुर, कडवी, चिकनी, पाकमें चरपरी, भारी, गरम, दृष्टिनाशक, वीर्यनाशक, वातनाशक और कफनाशक तथा पित्तनाशक है ॥ ५५ ॥

तुवरीगुणाः ।

तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता लघ्वी कफविषासृजित् । तीक्ष्णोष्णा वह्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठकृमिप्रणुत् ५६

भाषा-तुवरी ग्राही, हलकी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निकारक है और कफ, विष, रुधिरविकार, खुजली, कोढ तथा कोठेकी कृमिको नष्ट करनेवाली है ॥ ५६ ॥

सर्षपनामानि ।

सर्षपः कटुकः स्नेहस्तुन्तुभश्च कदम्बकः । गौरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः सिद्धार्थ इति कथ्यते ५७

भाषा-सर्षप, कटुक, स्नेह, तुन्तुभ, कदम्बक ये सरसोंके संस्कृत नाम हैं. (भूतघ्न, रक्षितफल, उग्रगंध, ग्रहघ्न, सरिषप, कदम्बद, बिंबट, कदम्ब, तन्तुक और राजक्षवक ये सरसोंके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) सफेद सरसोंको विद्वान् सिद्धार्थ कहते हैं ॥ ५७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके सरसोंके नाम.

सं.–सर्षप.	मला.–काडुका.
हिं.–सरसों.	गो.–सासमा.
बं.–सरिषा, सर्षे.	फा.–सर्पफ.
म.–शिरस.	अ.–उर्फे अबीयद.
गु.–सरशव.	अं.–Sinapis alba सिनापिस् आलबा.
क.–बिळेसासेव.	ला.–Brassica Campestris ब्रेसिका कँपेष्ट्रिस्.
ते.–पाच्चा अवालु.	
ता.–काडमु.	
तु.–दासेभि.	

सर्षपगुणाः ।

सर्षपस्तु रसे पाके कटुः स्निग्धः सतिक्तकः । तीक्ष्णोष्णः कफवातघ्नो रक्तपित्ताग्निवर्धनः ॥ ५८ ॥ रक्षोहरो जयेत्कण्डूं कुष्ठकोष्ठक्रिमिग्रहान् । यथा रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥ ५९ ॥

भाषा–सरसों रसमें और पाकमें चरपरी, स्निग्ध, कडवी, तीक्ष्ण, गरम, कफनाशक, वातनाशक, रुधिरपित्तवर्द्धक, अग्निवर्द्धक, राक्षसबाधाको हरनेवाली है और खुजली, कोढ, कोठेकी कृमि तथा ग्रहको नष्ट करती है. जो लाल सरसोंमें गुण हैं वेही सफेद सरसोंमें हैं परंतु सफेद सरसों उत्तम होती है ॥५८॥५९॥

राजिकानामानि ।

राजी तु राजिका तीक्ष्णगन्धा क्षुज्जनिका सुरी । क्षवः क्षुताभिजननः कृमिकृत्कृष्णसर्षपः ॥ ६० ॥

भाषा–राजी, राजिका, तीक्ष्णगंधा, क्षुज्जनिका आसुरी ये राईके संस्कृत नाम हैं. (कृमिक, क्षुताभिजनक, कृष्णिका, कटु, असुरी, काकोदुम्बरिका, रक्तिका, रक्तसर्षप, अतितीक्ष्णा, मधुरिक, वृक्षक, क्षुतक, ज्वलन्ती और ज्वलत्प्रभा ये राईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) क्षव, क्षुताभिजनक, कृमिका, कृष्णसर्षप ये कृष्णराईके संस्कृत नाम हैं. (राजक्षवक, कृष्णा, तीक्ष्णफला, राजिका, राज्ञी, राजसर्षप, कृष्णिका, सूरी, मुष्टक, व्यष्टक, कटुक और क्षुधाभिजनन ये कृष्णराईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ६० ॥

अनेक भाषाके कृष्णराईके नाम.

सं.–राजी, क्षव.	ते.–वर्णालु.
हिं.–राई, कृष्णराई.	अ.–खरदल.
बं.–राइसर्षे, कालसर्षे.	अं.–Mustard Seeds मस्टर्ड सीड्स्.
म.–मोहरी, रायी.	ला.–Sinapis Nigra सिनापिस नाइग्रा.
गु.–राई, कालीराई.	
क.–सासिराई.	

राजिकागुणाः ।

राजिका कफपित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा रक्तपित्तकृत् । किञ्चिद्रूक्षाग्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमीन्हरेत् ॥ अतितीक्ष्णा विशेषेण तद्वत्कृष्णापि राजिका ॥ ६१ ॥

भाषा–राई कफनाशक, पित्तनाशक, तीक्ष्ण, गरम, रक्तपित्तकारक, किंचित् रूक्ष, अग्निको दीपन करनेवाली है और खुजली, कोढ तथा कोठेकी कृमिका नाश करती है, विशेष करके अत्यंत तीक्ष्ण है, लाईमेंभी येही गुण हैं (कृष्णराईको लाई कहते हैं) ॥ ६१ ॥

क्षुद्रधान्यनामानि ।

क्षुद्रधान्यं कुधान्यं च तृणधान्यमिति स्मृतम् ।

भाषा–क्षुद्रधान्य, कुधान्य, और तृणधान्य ये क्षुद्रधान्यके संस्कृत नाम हैं ॥

क्षुद्रधान्यगुणाः ।

क्षुद्रधान्यमनुष्णं स्यात्कषायं लघु लेखनम् । मधुरं कटुकं पाके रूक्षं च क्लेदशोषकम् ॥ वातकृद्बद्धविट्कं च पित्तरक्तकफापहम् ॥६२॥

भाषा–क्षुद्रधान्य गरम नहीं, तथा कसैले, हलके, लेखन, मधुर, पाकमें चरपरे, रूक्ष, क्लेदशोषक (गीलेपनको सुखानेवाले), वातकारक, मलको बांधनेवाले हैं और पित्त, कफ तथा रक्तविकारका नाश करते हैं ॥ ६२ ॥

कंगूनामानि ।

स्त्रियां कंगुप्रियंगू द्वे कृष्णा रक्ता सिता तथा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीता चतुर्विधा कंगुस्ताम्रा पीता वरा स्मृता ॥ ६३ ॥

भाषा-कंगु, प्रियंगु ये कंगनीके संस्कृत नाम हैं. (प्रियंगू, कंगू, कंगुका, कंगुनीका, कंगूनी, चीनक और पीततण्डुल ये कंगनीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) कंगनी काली, लाल, सफेद और पीली इस भांति चार प्रकारकी हैं, इनमें पीली श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥

अनेक भाषाके कंगनीके नाम.

सं.-कंगू.	तै.-प्रैंकणपुचेट्टू.
हिं.-कंगनी, कांकुनि.	फा.-गल.
बं.-कांगुनी.	ला.-Panicum Miliaceum पेनिकं मिलियेस्यं.
म.-कांग.	
गु.-कांग.	
क.-नवणे.	

कंगूगुणाः ।

कंगुस्तु भग्नसन्धानवातकृद्बृंहणी गुरुः । रूक्षा श्लेष्महराऽतीव वाजिनां गुणकृद्वृशम् ॥ ६४ ॥

भाषा-कंगनी भग्नसंधानकारक, टूटे हुए स्थानको जोडनेवाली, वातकर्त्ता, पुष्टिदायक, भारी, रूक्ष, अत्यंत कफनाशक और घोडोंके लिये अत्यंत हितकारी है ॥ ६४ ॥

चीनाकनामानि ।

[चीनाकः काककंगुश्च सुश्लक्ष्णः श्लक्ष्णकः स्मृतः ।]

भाषा-चीनाक, काककंगु, सुश्लक्ष्ण और श्लक्ष्णक ये चैनाके संस्कृत नाम हैं. ॥

अनेक भाषाके चैनाके नाम.

सं.-चीनाक.	फा.-उरजन.
हिं.-चैना, चीना.	अ.-बारेगा.
बं.-चिने.	अं.-Millet मिलेट.
म.-राळे.	ला.-Panicum Miliari पेनिकं मिलियेरी.
गु.-चीणा.	
क.-चीनक.	

चीनाकगुणाः ।

चीनाकः कंगुभेदोऽस्ति स ज्ञेयः कंगुवद्गुणैः ।

भाषा-चैनाभी कंगनीकाही भेद है इसमें कंगनीकेही सदृश गुण हैं ॥

श्यामाकनामानि ।

[श्यामाकः श्यामकः श्यामस्त्रिबीजः स्यादविप्रियः । सुकुमारो राजधान्यं तृणबीजोत्तमश्च सः ॥

भाषा-श्यामाक, श्यामक, श्याम, त्रिबीज, अविप्रिय, सुकुमार, राजधान्य और तृणबीजोत्तम ये समेके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके समेके नाम.

सं.-श्यामाक.	तै.-श्यामालु.
हिं.-समा, सावा.	फा.-शामाख.
बं.-शामाधान.	ला.-Panicum Frumentaceum पेनिकं फ्रुमेन्टेश्यं.
म.-सावे.	
गु.-सामो.	
क.-सावि.	

श्यामाकगुणाः ।

श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफपित्तहृत् ।

भाषा-समा शोषणकर्त्ता, रूखा, वातकारक और कफनाशक तथा पित्तनाशक है ॥

कोद्रवनामानि ।

कोद्रवः कोरदूषः स्यादुद्दालो वनकोद्रवः ।

भाषा-कोद्रव, कोरदूष ये कोदोंके संस्कृत नाम हैं. (कद्रव, कोरदूषक, कोरदुष्क, कोद्दार, कोद्दाल, कुद्दाल, मदनाग्रक, कोर्द्रव ये कोदोंके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) उद्दाल, वनकोद्रव ये दो वनकोदोंके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके कोदोंके नाम.

सं.-कोद्रव.	अं.-Punctured paspalum पंक्च्युअर्डपापेलं.
हिं.-कोदों.	ला.-Paspalum Scrobiculatium पासपेलं स्क्रोबिक्युटेलियम.
बं.-कोदोंधान्य.	
म.-हरीक.	
गु.-कोदरा.	
क.-हारक	
तै.-आलुवालु.	
अ.-कोद्दु.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोद्रवगुणाः ।

कोद्रवो वातलो ग्राही हिमपित्तकफापहः ।
उद्दालस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ६५

भाषा–कोदों वातकारक, ग्राही, शीतल और पित्त नाशक तथा कफनाशक हैं। उद्दाल अर्थात् वनकोदों गरम ग्राही और अत्यंत वातकारक है ॥ ६५ ॥

चारुकनामानि ।

चारुकः सरबीजः स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ।

भाषा–सरपत्तेके बीजको चारुक कहते हैं ॥

चारुकगुणाः ।

चारुको मधुरो रूक्षो रक्तपित्तकफापहः ।
शीतलो लघुवृष्यश्च कषायो वातकोपनः ॥ ६६ ॥

भाषा–चारुक मधुर, रूखा, रुधिर, कफनाशक, पित्तनाशक, शीतल, हलका, वीर्यवर्द्धक, कसैला और वातको कुपित करनेवाला है ॥ ६६ ॥

वंशयवगुणाः ।

यवा वंशभवा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः ।
बद्धमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्तकरा सराः ॥ ६७ ॥

भाषा–बांससे उत्पन्न हुए यव रूखे, कसैले, पाकमें चरपरे, मूत्रको रोकनेवाले, कफनाशक, वातकारक तथा पित्तको करनेवाले और दस्तावर हैं ॥ ६७ ॥

कुसुम्भबीजनामानि ।

कुसुम्भबीजं वरटा सैव प्रोक्ता वरट्टिका ।

भाषा–कसूमके बीजोंको वरटा और वरटिका कहते हैं ॥

अनेक भाषाके कर्रके नाम.

सं.–कुसुंभबीज.	गु.–कसुम्बाना बीज.
हिं.–कर्र, कर.	फा.–तुख्मकापशा.
बं.–कुसुमफल.	अ.–हबुल् अस्फरा.
म.–कर्डई.	

कुसुंभबीजगुणाः ।

वरटा मधुरा स्निग्धा रक्तपित्तकफापहा ।
कषाया शीतला गुर्वी स्यादवृष्या तनिलापहा ॥ ६८ ॥

भाषा–कर्र मधुर, चिकनी, कसैली, शीतल, भारी है, तथा वीर्यवर्द्धक नहीं है और रक्तपित्त, कफ तथा वातका नाश करती है ॥ ६८ ॥

गवेधुकानामानि ।

गवेधुका तु विद्वद्भिर्गवेधुः कथिता स्त्रियाम् ।

भाषा–गवेधुका, गवेधु ये गरहेडुएके संस्कृत नाम हैं. (गवेडु, गवेडु, गवेडुका, कुन्त, क्षुद्रा, गोजिह्वा और गुन्द्रगुत्थ ये गरहेडुएके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके गरहेडुएके नाम.

सं.–गवेधुका.	म.–कसरू.
हिं.–गरहेडुआ.	गु.–थेगी.

गवेधुकागुणाः ।

गवेधुः कटुका स्वाद्वी कार्श्यकृत्कफनाशिनी ।

भाषा–गरहेडुआ चरपरा, मधुर, कृशताकारक और कफको नष्ट करनेवाला है ॥

नीवारनामानि ।

प्रसाधिका तु नीवारस्तृणान्नमिति च स्मृतम् ।

भाषा–प्रसाधिका, नीवार, तृणान्न ये तीनीके संस्कृत नाम हैं. (अरण्यधान्य, मुनिधान्य, तृणोद्भव, तृणधान्य, वनव्रीहि और अरण्यशालि ये तीनीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके तीनीके नाम.

सं.–नीवार.	क.–जरहुमेधे.
हिं.–तीनी, नीवार.	तै.–निवरिचेट्टु.
बं.–उडीधान्य.	ला.–Pinicum Italicum पेनिकं इटालिकं.
म.–देवभात.	
गु.–नानवी.	

नीवारगुणाः ।

नीवारः शीतलो ग्राही पित्तघ्नः कफवातकृत् ।

भाषा–तीनी शीतल, ग्राही, पित्तनाशक और कफकारक तथा वातको करनेवाली है ॥

यवनालनामानि ।

[यवनालो यावनालः शिखरी वृत्ततण्डुलः ।
दीर्घनालो दीर्घशरः क्षेत्रेक्षुश्चेक्षुपत्रकः ॥]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-यवनाल, यावनाल, शिखरी, वृत्ततण्डूल, दीर्घनाल, दीर्घशर, क्षेत्रेक्षु, इक्षुपत्रक ये जुआरके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके ज्वारके नाम.

सं.-यावनाल. [आर.
हिं.-पनेरा, ज्वार, जुबं.-जोयार, जनार, भुटो.
म.-जोंधळे, ज्वारी.
गु.-जारय, जुवार.
क.-जोलदहेसरु, कारुजोल.
ते.-जोन्नलु.
ता.-चोळं, चोन्नल.
तु.-जोळा.
मला.-चोळं.
फा.-जुरेभका. [रूस.
अ.-हंतारुमिया, खंद-
अं.-Great Millet ग्रेट्मिलेट्.
ला.-Holcus vulgare होलकस् वलगेरी, Sorghum vulgare सोरघम् वलगेरी.

यावनालगुणाः ।

यावनालो हिमः स्वादुर्लोहितः श्लेष्मपित्तजित् । अवृष्यस्तुवरो रूक्षः क्लेदकृत्कथितो लघुः ॥ ६९ ॥

भाषा-यावनाल (पनेरा) शीतल है और रक्तविकार, कफ तथा पित्तको नष्ट करता है. पुष्टिवर्द्धक नहीं है तथा कसैला, रूक्ष, ग्लानिकारक और हलका है ॥ ६९ ॥

परिभाषा ।

धान्यं सर्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम् । तत्तु वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हितम् ॥ ७० ॥ वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति । न तु त्यजति वीर्यं स्वं क्रमान्मुञ्चत्यतः परम् ॥ ७१ ॥ एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । पुराणा विरसा रूक्षा न तथा गुणकारिणः ॥ ७२ ॥ पुराणा वर्षद्व्यादुपरि स्थिताः । यवादयो नवाः स्वास्थ्यान् प्रति हिताः । पथ्याशिनां तु पुराणा हिताः । " पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् । " इति वसन्ते वाग्भटेन उक्तत्वात् ।

इति श्रीभावप्रकाशे धान्यवर्गः समाप्तः ॥ ८ ॥

भाषा-सम्पूर्ण नवीन धान्य, मधुर, भारी और कफकारक होते हैं. एक वर्षके प्राचीन होंय तौ अत्यन्त हलके, पथ्य और हितकारी हैं. एक वर्षके पश्चात् सम्पूर्ण धान्य भारीपन छोड देते हैं, परन्तु अपने वीर्यको नहीं छोडते और पश्चात् अनुक्रमसे शक्तिकोभी छोडते जाते हैं. धान्योंमें जौ, गेहूं, तिल और उडद ये नवीन उत्तम और हितकारी हैं. पुराने होनेसे रसरहित और रूक्ष होजानेसे गुणकारक नहीं हैं. इस स्थानमें 'प्राचीन' दो वर्षसे अधिक रहे हुओंको जानना. नवीन जौ आदि धान्य स्वस्थ शरीरवालोंको हितकारी हैं, परन्तु पथ्य भोजन करनेवालोंको प्राचीनही हितकारी है, क्योंकि वाग्भटमें कहा है कि "वसन्तऋतुमें प्राचीन जौ, प्राचीन गेहूं, जंगली पशुओंका मांस और लोहसे पका हुआ मांस खाना चाहिये ॥ ७०-७२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे धान्यवर्गः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ शाकवर्गः ९ ।

शाकनिरूपणम् ।

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा । शाकं षडिधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

भाषा-पत्ते, फूल, फल, नाल (डंडी), कंद और संस्वेदज इस भांति छः प्रकारके शाक कहे हैं, इनमें पहिलेकी अपेक्षा दूसरा भारी है ॥ १ ॥

शाकगुणाः ।

प्रायः शाकानि सर्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च । रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च ॥ २ ॥ शाकं भिनत्ति वपुरस्थि निहन्ति नेत्रं वर्णं विनाशयति रक्तमथापि शुक्रम् । प्रज्ञाक्षयं च कुरुते पलितं च नूनं हन्ति स्मृतिं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोतामिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥ शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देहविनाशनाय । तस्माद्बुधः शाकविवर्जनं तु कुर्यात्तथाम्लेषु स एव दोषः ॥ ४ ॥ एतानि शाकनिन्दकानि वचनानि सामान्यानि । अथ शाकेषु विशिष्टानि वचनानि ।

भाषा–प्रायः सम्पूर्ण शाक विष्टम्भी, भारी, रूक्ष, मलको अधिक करनेवाले, मलनिःसारक तथा वातनिःसारक हैं. शाक शरीरकी हड्डियोंको भेदनेवाला, नेत्रोंको नष्ट करनेवाला है, वर्ण रुधिर तथा वीर्यका नाश करता है, बुद्धिका क्षय करता है, केशोंको सफेद करता है और स्मृति (स्मरणशक्ति) तथा गतिको नष्ट करता है ऐसा विद्वान् कहते हैं. सम्पूर्ण शाकोंमें रोग रहते हैं और वे रोग देहको नष्ट करनेमें हेतु हैं इस कारण बुधजन सर्वदा शाकोंको छोड देते हैं, जो शाकमें दोष हैं, वेही दोष अम्ल (खट्टे) पदार्थोंमें हैं. यह शाककी निंदा करनेवाले सामान्य वचन हैं. इनमें जो विशेष वचन हैं वे नीचे हैं ॥ २–४ ॥

पत्रशाकानि ।

वास्तूकद्वयनामानि ।

वास्तूकं वास्तुकं च स्यात्क्षारपत्रं च शाकराट् । तदेव तु बृहत्पत्रं रक्तं स्याद्गौडवास्तुकम् ॥ प्रायशो यवमध्ये स्याद्यवशाकमतः स्मृतम् ५॥

भाषा–वास्तूक, वास्तुक, क्षारपत्र, शाकराट् ये वथुएके संस्कृत नाम हैं. (पांशुपत्र, शाकश्रेष्ठ, शाकवीर, कङ्कोल्ल, घनाघन, वास्तु, वसुक, हिलमोचिका, शाकराज, राजशाक और चक्रवर्ती ये वथुएके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) बडे पत्तोंवाला जो वथुआ होता है उसको गौडवास्तुक कहते हैं. गौडवास्तुक यह एक बडे वथुएका संस्कृत नाम है. (चिल्ली, चिल्लीका, तुनी, अम्ललोहिता, क्षारवृक्षा, मृदुपत्री, क्षारपत्रा, वास्तकी, महद्दला और गौडवास्तु ये बडे वथुएके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) वथुआ अधिक करके जौके खेतमें होता है इस कारण इसको यवशाकभी कहते हैं ॥ ५ ॥

अनेक भाषाके वथुएके नाम.

सं.–वास्तुक, गौडवास्तूक.	अं.–White Goose foot व्हाइट गूजफट, Purple Goose foot परपल गूजफूट.
हिं.–बथुआ, चिल्ली, बडा बथुआ.	
बं.–वेतुया, वेतोशाक.	
म.–चाकवत, चंदनबट्वा, चील.	
गु.–वथवो, वाथरो, चीली. [डुवे.	ला.–Chenopodium Album केनोपोडिअम् आल्बं, Chenopodium Atriplisis केनोपोडियम् एट्रिप्लिसिस्.
क.–चक्रवर्त, चंदनबट्टै.–विलीपचिल्लीके.	
फा.–मुसेलेसा, सरमक.	
अ.–रोक्वतुल्वजामेल, कुतुफ.	

वास्तूकद्वयगुणाः ।

वास्तूकद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम् । दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम् ॥ सरं प्लीहास्रपित्तार्शःकृमिदोषत्रयापहम् ॥ ६ ॥

भाषा–दोनों प्रकारका वथुआ मधुर, खारी, पाकमें चरपरा, अग्निको दीपन करनेवाला, पाचक, रुचिकारक, हलका, दस्तावर है और प्लीहा, रक्तपित्त, बवासीर, कृमि और त्रिदोषका नाश करता है ॥ ६ ॥

पोतकीनामानि ।

पोतक्युपोदिका सा तु मालवाऽमृतवल्लरी ।

भाषा–पोतकी, उपोदिका, मालवा, अमृतवल्लरी ये पोईके संस्कृत नाम हैं. (कलम्बी, पिच्छला, पिच्छिलच्छदा, मोहिनी मदशाक, विशाला, बलिपोदकी, उपोदिका, उपोती, वृश्चिकप्रिया, अपोदिका, पूतिका और पुतिका ये पोईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके पोईके नाम.

सं.-पोतकी.
हिं.-पोईका साग.
बं.-पुईशाक.
म.-मयाळ.
गु.-पोथी.
क.-बसळे.
तै.-पेहा, बच्याले.
तु.-बसले.
ता.-पाचाळे.
मला.-पाचाळा.
गो.-पाळी.
अं.-Redmalabar Night Shads रेडमल्बार नाइट शेड्स.
ला.-Bassella Rubra बसेलारुब्रा, Bassella Alba बसेला आल्बा.

पोतकीगुणाः ।

पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वातपित्तनुत् । अकण्ठ्या पिच्छिला निद्राशुक्रदा रक्तपित्तजित् ॥ बलदा रुचिकृत्पथ्या बृंहणी तृप्तिकारिणी ॥ ७ ॥

भाषा-पोई शीतल, स्निग्ध, कफकारक, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाली, कण्ठको अहितकारी, पिच्छिल, निद्रादायक, वीर्यवर्द्धक, रक्तपित्तनाशक, बलदायक, रुचिकारी, पथ्य, पुष्टिदायक और तृप्तिदायक है ॥ ७ ॥

मारिषनामानि ।

मारिषो वाष्पको मार्षः श्वेतो रक्तश्च स स्मृतः ।

भाषा-मारिष, वाष्पक और मार्ष ये मरसेके संस्कृत नाम हैं. मरसा सफेद और लाल दो प्रकारका है ॥

अनेक भाषाके मरसेके नाम.

सं.-मारिष.
हिं.-सफेद मरसा, लाल मरसा, नवडा.
बं.-कांटा, नटेरशाक.
म.-माठाची भाजी, पोकळ्याची भाजी.
गु.-डाभो.
त.-डुगलकुरा.
ला.-Amaranthus Tricalar एमेरेंथस ट्रिकलर.

मारिषगुणाः ।

मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुद्गुरुः । वातश्लेष्मकरो रक्तपित्तनुद्विषमाग्निजित् ॥ ८ ॥ रक्तमाषो गुरुर्नातिसक्षारो मधुरः सरः । श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः ॥ ९ ॥

भाषा-मरसा मधुर, शीतल, विष्टम्भी, पित्तनाशक, भारी, वातकारक, कफकारक, रक्तपित्तनाशक है और अग्निकी विषमताकोभी नष्ट करता है. लाल मरसा बहुत भारी नहा ह तथा खारयुक्त, दस्तावर, कफकारक, पाकमें चरपरा और अल्प दोषवाला है ॥ ८ ॥ ९ ॥

तण्डुलीयनामानि ।

तण्डुलीयो मेघनादः काण्डेरस्तण्डुलेरकः । भण्डीरस्तंडुलीबीजो विषघ्नश्चाल्पमारिषः १०

भाषा-तण्डुलीय, मेघनाद, काण्डेर, तण्डुलेरक, भण्डीर, तण्डुलीबीज, विषघ्न, अल्पमारिष ये चौलाईके संस्कृत नाम हैं. (तण्डुलीयक, तण्डुल, तण्डुलिक, तंजुलीयक, ग्रन्थिल, बहुवीर्य, घनस्वन, सुशाक, पथ्यशाक, स्फूर्ज्जथु, स्वनिताह्वय, वीर और तण्डुलनामा ये चौलाईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १० ॥

अनेक भाषाके चौलाईके नाम.

सं.-तण्डूलीय.
हिं.-चौलाईका शाक.
बं.-क्षुदेनटे.
म.-तांदुळजा.
गु.-तांदलजानी भाजी.
क.-किरुकुशाले.
तै.-मोलाकुरा.
ता.-मुल्लुकिरई.
फा.-सफेदमर्ज.
अ.-बुकलेय मानीया.
अं.-Hermaphrodite Amaranth हरमेफ्रोडाइट एमेरेंथ.
ला.-Amaranthus Tenipolius अमरेंथस् टेन्युइफोलियस.

तंडूलीयगुणाः ।

तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्रजित् । सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः ॥ ११ ॥

भाषा-चौलाई हलकी, शीतल, रूक्ष, मल तथा मूत्रको प्रवर्त्तानेवाली, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, विषनाशक है और कफ तथा रक्तविकारको नाश करती है ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जलतण्डुलीयनामानि ।

पानीयं तण्डुलीयं तु कचटं समुदाहृतम् ।

भाषा–पानीयतण्डुलीय और कचट (जलतंडुलीय) ये जल चौलाईके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके जलचौलाईके नाम.

सं.–जलतण्डुलीय.	म.–पानतांदुळजा.
हिं.–जलचौलाई.	गु.–पाणीनो तांदलजो.
बं.–चांपानटे.	तै.–कुईकोरा.

जलतंडुलीयगुणाः ।

कचटं तिक्तकं रक्तपित्तानिलहरं लघु ।

भाषा–जलचौलाई कडवी, हलकी है और रक्तविकार, पित्त तथा वातका नाश करती है ॥

पालक्यानामानि ।

पालक्या वास्तुकाकारा क्षुरिका चीरितच्छदा।

भाषा–पालक्या, वास्तुकाकारा, क्षुरिका, चीरितच्छदा ये पालकके संस्कृत नाम हैं. (पालक्य, पलंक्या, क्षुरपत्रिका, सुपत्रा, स्निग्धपत्रा, ग्रामिणी, ग्राम्यवल्लभा, क्षुरिका, पालंक्या और पालंकी ये पालकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पालकके नाम.

सं.–पालक्या.	फा.–इस्यनाख, अस्यनाख.
हिं.–पालकका शाक.	अं.–Spinage स्पाइनेज.
बं.–पालङ्शाक.	ला.–Spinasia Oleracea स्पाइनेश्या ओलिरेश्या
म.–पालक.	
गु.–टांको.	
क.–पालक्य.	

पालक्यागुणाः ।

पालक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी गुरुः । विष्टम्भिनी मदश्वासपित्तरक्तकफापहा ॥ १२ ॥

भाषा–पालक वातकारक, शीतल, कफकारक, दस्तावर, भारी, विष्टंभी है और मद, श्वास, पित्त, रक्तविकार तथा कफका नाश करता है ॥ १२ ॥

कालशाकनामानि ।

नाडिकं कालशाकं च श्राद्धशाकं च कालकम् ।

भाषा–नाडिक, कालशाक, श्राद्धशाक और कालक ये नाडीशाकके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके नाडीके नाम.

सं.–नाडिक.	ला.–Phalugium Tuberosum फेलज्युम ट्वेरोसम.
हिं.–नाडीका शाक.	
म.–कुळीची भाजी.	
गु.–करली.	

कालशाकगुणाः ।

कालशाकं सरं रुच्यं वातकृत्कफशोथहृत् । बल्यं रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥ १३ ॥

भाषा–नाडीका शाक दस्तावर, रुचिकारी, वातकारक, कफनाशक सूजननाशक, बलदायक, मेधाको हितकारी, शीतल और रक्तपित्त नाशक है ॥ १३ ॥

पट्टशाकनामानि ।

पट्टशाकस्तु नाडीको नाडीशाकश्च स स्मृतः ।

भाषा–पट्टशाक, नाडीक, नाडीशाक ये पटुएशाकके संस्कृत नाम हैं. (नाडीच, केचुक, पेचुली, पेचु और विश्वरोचन ये पटुएशाकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके पटुएके नाम.

सं.–पट्टशाक.	गु.–अलवी.
हिं.–पटुआ शाक.	ला.–Ipomea reptans आइपोमिया रिप्टेन्स.
बं.–पाट्शाक.	
म.–अलव्या.	

पट्टशाकगुणाः ।

नाडीको रक्तपित्तघ्नो विष्टम्भी वातकोपनः ।

भाषा–पटुआशाक रक्तपित्तनाशक, विष्टम्भी और वातको कुपित करनेवाला है ॥

कलम्बीनामानि ।

कलम्बी शतपर्वी च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ।

भाषा–कलम्बी, शतपर्वी ये कलमी शाकके संस्कृत नाम हैं. (कडम्बी, कलम्बू और कलं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विका ये कलमी शाकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कलमीके नाम.

सं.-कलम्बी.	अ.-कन्दकलंब.
हिं.-कलमी शाक.	अं.-Cabbage कबेज्.
बं.-कलमी.	ला.-Costus Speciasus कोस्टस् स्पेसियोसस्.
म.-केलुटपेंपा.	
गु.-कोबी.	
फा.-कलाम.	

कलंबीगुणाः ।

कलम्बी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्रकारिणी ।

भाषा-कलमी शाक दुग्धवर्द्धक, मधुर और शुक्रकारक है ॥

लोणीबृहल्लोणीनामानि ।

लोणा लोणी च कथिता बृहल्लोणी तु घोटिका ।

भाषा-लोणा और लोणी ये नोनियेके संस्कृत नाम हैं. बृहल्लोणी, घोटिका ये बडे नोनियेके संस्कृत नाम ॥

अनेक भाषाके नोनियेके नाम.

सं.-लोणी, बृहल्लोणी.	ता.-कोरिलकीरई, लकीरई.
हिं.-नोनिया, कुलफा, अम्लनोनिया.	फा.-खुरफा.
बं.-वडणुनी, क्षुदेणुनी.	अ.-वल्कतुलहुमक्का.
म.-घोळ, लहान घोळ.	अं.-Purslene पर्सलेन्.
गु.-लुणी, मोठी लुणी.	ला.-Portulaca Oleracea पोर्चलेका ओलिरेसिया.
क.-गोलि.	
तै.-अईलकुस.	

लोणीबृहल्लोणीगुणाः ।

लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वातश्लेष्महरी पटुः । अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला मन्दाग्निविषनाशिनी ॥ १४ ॥ घोटिकाऽम्ला सरा चोष्णा वातकृत्कफपित्तहृत् । वाग्दोषव्रणगुल्मघ्नी श्वासकासप्रमेहणुत् ॥ शोथलोचनरोगे च हिता तज्ज्ञैरुदाहृता ॥ १५ ॥

भाषा-नोनिया रूक्ष, भारी, वातनाशक, कफनाशक, खारी, अग्निप्रदीपक, खट्टी है और बवासीर, मन्दाग्नि तथा विषका नाश करती है. बडी नोनिया खट्टी, दस्तावर, गरम, वातकारक और सूजन तथा नेत्ररोगमें हितकारी है और कफपित्त, वचनदोष, व्रण, गुल्म, श्वास, खांसी तथा प्रमेहका नाश करती है ॥१४॥१५॥

चाङ्गेरीनामानि ।

चाङ्गेरी चुक्रिका दन्तशठाम्बष्ठाऽम्ललोणिका। अश्मन्तकस्तु शफरी पिसली चाम्लपत्रका १६

भाषा-चाङ्गेरी, चुक्रिका, दंतशठा, अंबष्ठा, अम्ललोणिका, अश्मन्तक, शफरी, पिसली और अम्लपत्रक ये चांगेरीके संस्कृत नाम हैं ॥१६॥

अनेक भाषाके चाङ्गेरीके नाम.

सं.-चांगेरी. [ना.	गु.-बहुखाटीलुणी.
हिं.-चांगेरी, अंबिलोना.	क.-आमरुल.

चाङ्गेरीगुणाः ।

चाङ्गेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफवातनुत् । पित्तलाऽम्ला ग्रहण्यर्शःकुष्ठातीसारनाशिनी ॥ १७ ॥

भाषा-चांगेरी अग्निको दीपन करनेवाली, रुचिकारक, रूक्ष, गरम, कफनाशक, वातविनाशक, पित्तकारक, खट्टी है और संग्रहणी, बवासीर तथा अतीसारका नाश करती है १७॥

चुक्रिकानामानि ।

चुक्रिका स्यात्तु पत्राम्ला रेचनी शतवेधिनी ।

भाषा-चुक्रिका, पत्राम्ला, रेचिनी, शतवेधिनी ये चूकेके संस्कृत नाम हैं. (चुक्र, चुक्रवास्तुक, लिकुच, अम्लवास्तुक, दलाम्ल, अम्ल, शाकाख्य और अम्लहिलमोचिका ये चूकेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके चूकेके नाम.

सं.-चुक्रिका.	अ.-हरमेजा.
हिं.-चूका.	अं.-Bladdere Dack ब्लेडरडाक.
बं.-चुकापालङ्.	ला.-Rumex vesicarius रुमेक्स् वेसिकरियस्.
म.-आंबट चुका.	
क.-हुलिचकोत.	
फा.-हुरशक.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चुक्रिकागुणाः।

चुक्रा त्वम्लतरा स्वाद्वी वातघ्नी कफपित्तकृत्।
रुच्या लघुतरा पाके वृन्ताकेनातिरोचनी १८॥

भाषा–चूका अधिक खट्टा, स्वादु, वातनाशक, कफकारक, पित्तकारक, रुचिकारी, पाकमें अत्यन्त हलका और बैंगनके साथ खानेसे अत्यन्त रुचिकारी है ॥ १८ ॥

चंचुकीनामानि।

चिञ्चा चञ्चुश्चञ्चुकी च दीर्घपत्रा सतिक्तका।

भाषा–चिंचा, चंचु, चंचुकी, दीर्घपत्रा, सतिक्तका ये चंचुके संस्कृत नाम हैं. (शुनकचंचूका, त्वक्सारा और पटुपत्रिका ये चंचुके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके चंचुके नाम.

सं.–चंचु. [चुक.	तै.–चिन्तचेट्टु.
हिं.–चंचु, चेवुना, चे-	ला.–Carchorus Acutengularis कार्कोरस् एक्युटेंग्युलेरीस.
बं.–चेचको.	
म.–लघुचंचू, थोरचंचु.	
गु.–लुंछ.	

चंचुकीगुणाः।

चंचुः शीता सरा रुच्या स्वाद्वी दोषत्रयापहा। धातुपुष्टिकरी बल्या मेध्या पिच्छिलका स्मृता ॥ १९ ॥

भाषा–चंचु शीतल, दस्तावर, रुचिकारक, स्वादु, त्रिदोषनाशक, धातुको पुष्ट करनेवाला, बलकारक, मेधाको हितकारी और पिच्छिल है ॥ १९ ॥

हिलमोचिकानामानि।

ब्राह्मी शङ्खधराऽऽचारी ब्राह्मी च हिलमोचिका।

भाषा–ब्राह्मी, शंखधरा, आचारी, ब्राह्मी, हिलमोचिका ये हुलहुलके संस्कृत नाम हैं. (हिलमोचि, मोची, मत्स्याक्षी, हेलंची, मम्बी, मत्स्याक्षी, जलब्राह्मी और चक्राङ्गि ये हुलहुलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके हुलहुलके नाम.

सं.–हिलमोचिका.	बं.–हिञ्चेशाक.
हिं.–हुलहुल.	गु.–हिलमोचिका.

हिलमोचिकागुणाः।

शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिलमोचिका।

भाषा–हुलहुल शोथ, कोढ, कफ और पित्तका नाश करती है ॥

शितिवारनामानि।

शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः सुनिषण्णकः। श्रीवारकः सूचिपत्रः पर्णकः कंकुटः शिखी ॥ २० ॥

भाषा–शितिवार, शितिवर, स्वस्तिक, सुनिषण्णक, श्रीवारक, सूचिपत्र, पर्णक, कंकुट, शिखी ये सिरियारीके संस्कृत नाम हैं. (वितुन्न, सनिषण्ण, चुचु, सुतपत्र, शितिचार, सूच्याह्वय, सूच्याह्व, सूचिपत्रक, कुरण्ट, सूचिदल, श्वेतावर और बभ्रु ये सिरियारीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ २० ॥

अनेक भाषाके सिरियारीके नाम.

सं.–शितिवार.	गु.–सुनिसरणक. [मु.
हिं.–सिरियारी, चौपतिया.	तै.–सुनिषण्णमने शाक- फा.–अंजरा.
बं.–सुषुणीशाक, शुशुनीशाक.	ला.–Blepharis Edulis ब्लेफेरिस् इड्युलीस्.
म.–कुरडू.	

शितिवारलक्षणम्।

चाङ्गेरीसदृशः पत्रैश्चतुर्दल इतीरितः। शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥२१॥

भाषा–शिरियारी चांगेरीके सदृश और चार पत्तोंवाली होती है. यह शाक जलयुक्त देशोंमें होता है और इसको चतुःपत्री कहते हैं ॥२१॥

शितिवारगुणाः।

सुनिषण्णो हिमो ग्राही मोहदोषत्रयापहः। अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रूक्षदीपनः॥ वृष्यो रुच्यो ज्वरश्वासमेहकुष्ठभ्रमप्रणुत्॥२२॥

भाषा–शिरियारी शीतल, ग्राही, अविदाही, हलकी, स्वादिष्ठ, कसैली, रूखी, अग्निप्रदीपक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक है और मोह, तीनों दोष, ज्वर, श्वास, प्रमेह, कोढ तथा भ्रमका नाश करती है ॥ २२ ॥

मूलीपत्रगुणाः ।

पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूलकजं नवम् ।
स्नेहस्निग्धं त्रिदोषघ्नमसिद्धं कफपित्तकृत् २३॥

भाषा-मूलीके ताजे पत्तोंका शाक पाचक, हलका, रुचिकारक और गरम है. तेलमें भुना हुआ शाक त्रिदोषनाशक और विना भुना हुआ कफकारक तथा पित्तकारक है ॥ २३ ॥

द्रोणपुष्पीगुणाः ।

द्रोणपुष्पीदलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत् ।
मेदनं कामलाशोथमेहज्वरहरं कटु ॥ २४ ॥

भाषा-गूमाका शाक स्वादु, रूक्ष, भारी, पित्तकारक, मलभेदक (दस्तावर), चरपरा है और कामला, शोथ, प्रमेह तथा ज्वरका नाश करता है ॥ २४ ॥

यवानीशाकगुणाः ।

यवनीशाकमाग्नेयं रुच्यं वातकफप्रणुत् ।
उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं लघुशूलकृत् ॥ २५ ॥

भाषा-अजवायनका शाक अग्निकारी, रुचिकर्त्ता, वातनाशक, कफकारक, गरम, चरपरा, कडवा, पित्तकारक, हलका और शूलकारक है ॥ २५ ॥

दद्रुघ्नपत्रगुणाः ।

दद्रुघ्नपत्रं दोषघ्नमस्रवातकफावहम् । कण्डूकासक्रिमिश्वासदद्रुकुष्ठप्रणुल्लघु ॥ २६ ॥

भाषा-पमार (चकवड) के पत्ते दोषनाशक, हलके हैं और रुधिर, वात, कफ, खुजली, श्वास, खांसी, कृमि, दाद तथा कोढका नाश करते हैं ॥ २६ ॥

सेहुण्डगुणाः ।

सेहुण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रोचनं हरेत् । आध्मानाष्ठीलिकागुल्मशूलशोथोदराणि च ॥ २७ ॥

भाषा-थूहरके पत्ते तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, रोचक हैं और अफरा, अष्ठीलिका, गुल्म, शूल, सूजन तथा उदररोगका नाश करते हैं ॥ २७ ॥

पर्पटगुणाः ।

पर्पटो हन्ति पित्तास्रज्वरतृष्णाकफभ्रमान् ।
संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघु २८॥

भाषा-पित्तपापडेके पत्ते ग्राही, शीतल, कडवे, हलके, वातकारक हैं और पित्त, रक्तविकार, ज्वर, तृष्णा, कफ, दाह तथा भ्रमका नाश करते हैं ॥ २८ ॥

गोजिह्वागुणाः ।

गोजिह्वा कुष्ठमेहास्रकृच्छ्रज्वरहरी लघुः ।

भाषा-गोभीके पत्ते कोढ, प्रमेह, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरका नाश करते हैं तथा हलके हैं ॥

पटोलपत्रगुणाः ।

पटोलपत्रं पित्तघ्नं दीपनं पाचनं लघु ।
स्निग्धं वृष्यं तथोष्णं च ज्वरकासकृमिप्रणुत् ॥ २९ ॥

भाषा-पटोलपत्र (पटोलपात) अग्निप्रदीपक, पाचन, हलके, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, गरम हैं और पित्त, ज्वर, खांसी तथा कृमिका नाश करते हैं ॥ २९ ॥

गुडूचीपत्रशाकगुणाः ।

गुडूचीपत्रमाग्नेयं सर्वज्वरहरं लघु । कषायं कटु तिक्तं च स्वादुपाकं रसायनम् ॥ ३० ॥
बल्यमुष्णं च संग्राहि हन्यादोषत्रयं तृषाम् ।
दाहप्रमेहवातासृक्कामलाकुष्ठपाण्डुताः ॥ ३१ ॥

भाषा-गिलोयके पत्ते अग्निको बढानेवाले, सर्वज्वरनाशक, हलके, कसैले, चरपरे, कडवे, पाकमें मीठे, रसायनरूप, बलदायक, गरम, ग्राही हैं और त्रिदोष, तृषा, दाह, प्रमेह, वात, रक्तविकार, कामला, कुष्ठ तथा पाण्डुरोगका नाश करते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कासमर्दनामानि ।

कासमर्दोऽरिमर्दश्च कासारिः कर्कशस्तथा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–कासमर्द, अरिमर्द, कासारि, कर्कश ये कसौंदीके संस्कृत नाम हैं. (कालङ्कत, विमर्द, कासमर्दक, कनक, काल और जरण ये कसौंदीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कसौंदीके नाम.

सं.–कासमर्द.
हि.–कसौंदी, चकौडी.
बं.–कालाकासुन्दा.
म.–रानकासविंदा.
गु.–कासुन्दरानां पांदडां.
क.–कासवदी.
ते.–गुर्र पुताञ्चं.
अं.–Round Podded Cassia राउन्ड् पाडेड् केश्या.
ला.–Cassia Sophera केश्या सोफेरा.

कासमर्दगुणाः ।

कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्रनुत् । मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम् ॥ विशेषतः कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु ॥ ३२ ॥

भाषा–कसौंदीके पत्ते रुचिकारी, वीर्यवर्द्धक, विषनाशक, कासनाशक, रक्तविकारनाशक, मधुर, कफ तथा वातनाशक, पाचक, कण्ठको शुद्ध करनेवाले, हलके, पित्तनाशक हैं, तथा विशेष करके खांसीको नष्ट करते हैं ॥ ३२ ॥

चणकशाकगुणाः ।

रुच्यं चणकशाकं स्याद्दुर्जरं कफवातकृत् । अम्लं विष्टम्भजनकं पित्तनुद्दन्तशोथहृत् ॥ ३३ ॥

भाषा–चनेका शाक रुचिकारक, दुजर, कफकारक, वातकारक, खट्टा, विष्टम्भकारक है और पित्त तथा दांतोंकी सूजनको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

कलायशाकगुणाः ।

कलायशाकं भेदि स्याल्लघु तिक्तं त्रिदोषजित् ।

भाषा–मरका शाक मलभेदक, हलका, कडवा और त्रिदोषनाशक है ॥

सार्षपशाकगुणाः ।

कटुकं सार्षं शाकं बहुमूत्रमलं गुरु । अम्लपाकं विदाह्यं स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषजित् ॥ सक्षारलवणं तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम् ॥ ३४ ॥

भाषा–सरसोंका शाक चरपरा, मूत्र तथा मलको बहुत करनेवाला, भारी, पाकमें खट्टा, विदाही, गरम, रूखा, त्रिदोषनाशक, क्षारयुक्त, नमकीन, तीक्ष्ण, स्वादु और सब शाकोंमें निन्दित है ॥ ३४ ॥

पुष्पशाकानि ।

अगस्तिपुष्पगुणाः ।

अगस्तिकुसुमं शीतं चातुर्थिकनिवारणम् । नक्तान्ध्यनाशनं तिक्तं कषायं कटुपाकि च ॥ पीनसश्लेष्मपित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥ ३५ ॥

भाषा–अगथियेका फूल शीतल, चातुर्थिक (चौथिया) ज्वरनाशक, रतौंधेको दूर करनेवाला, कडवा, कसैला, पाकमें चरपरा है और पीनस, कफ, पित्त तथा वातका नाश करता है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ ३५ ॥

कदलीपुष्पगुणाः ।

कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु । वातपित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत् ॥ ३६ ॥

भाषा–केलेका फूल स्निग्ध, मधुर, कसैला, भारी, शीतल है और वात, पित्त, रक्तपित्त तथा क्षयको नष्ट करता है ॥ ३६ ॥

शोभाञ्जनपुष्पगुणाः ।

शिग्रोः पुष्पं तु कटुकं तीक्ष्णोष्णं स्नायुशोथकृत् । कृमिहृत्कफवातघ्नं विद्रधिप्लीहगुल्मजित् ॥ मधु शिग्रोस्त्वक्षिहितं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ३७ ॥

भाषा–सहजनेके फूलका शाक चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, नसोंमें सूजन करनेवाला है और कृमि, वात, विद्रधि (नसूर), प्लीहा तथा गुल्मका नाश करता है. सहजनेका मधु (शहद) नेत्रोंको हितकारी है और रक्तपित्तको दूर करता है ॥ ३७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शाल्मलीपुष्पगुणाः।

शाल्मलीपुष्पशाकं तु घृतसैन्धवसाधितम्।
प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यं च न संशयः॥३८॥
रसे पाके च मधुरं कषायं शीतलं गुरु।
कफपित्तास्रजिद्ग्राहि वातलं च प्रकीर्तितम्३९

भाषा-सेमलके फूलका शाक जो घी और सेंधा नोन डालकर बनाया हो तो दुःसाध्य प्रदरको नष्ट करता है. रसमें और पाकमें मधुर, कसैला, शीतल, भारी, ग्राही, वातकारक है और कफ तथा पित्तको नष्ट करता है॥ ३८॥ ३९॥

फलशाकानि।

कूष्माण्डनामानि।

कूष्माण्डं स्यात्पुष्पफलं पीतपुष्पं बृहत्फलम्।

भाषा-कूष्माण्ड, पुष्पफल, पीतपुष्प, बृहत्फल ये पेठेके संस्कृत नाम हैं. (वृणावास, तिमिष, ग्राम्यकर्कटि, कुष्मांडक, कर्कारू, शिखिवर्धक, कुम्भाण्ड, कुंष्माडी, कर्कोटिका, कुम्भाण्डी, सुफला, कश्वफला और नागपुष्पफला ये पेठेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाय जाते हैं.)॥

अनेक भाषाके पेठेके नाम.

सं.-कूष्माण्ड.
हिं.-पेठा, कुम्हडा.
बं.-कुमडागाछ.
म.-कोहाळा.
क.-दारकोहोला.
गु.-पदकोलु.
तै.-पुल्लाहा.
फा.-रूमाकुद.
अ.-महदेवा. [कीन.
अ.-Pumpkin पपला.-Benincassa Cerifera बेनिनकासा सेरिफेरा.

कूष्मांडगुणाः।

कूष्मांडं बृंहणं वृष्यं गुरु पित्तास्रवातनुत्।
बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम्४०
वृद्धं नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु।
बस्तिशुद्धिकरं चेतोरोगहृत्सर्वदोषजित्॥४१॥

भाषा-पेठा पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, भारी है और पित्त, रक्तविकार तथा वातको नष्ट करता है. कच्चा पेठा पित्तनाशक तथा शीतल है. मध्यम पेठा कफकारक और पक्का पेठा अत्यन्त शीतल नहीं, स्वादु, खारी, अग्निप्रदीपक, हलका, बस्तिको शुद्ध करनेवाला है तथा मानसिक रोग अपस्मार, उन्मत्तता आदि और सर्व दोषोंको जीतनेवाला है॥ ४०॥ ४१॥

कूष्माण्डीनामानि।

कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुरपि कीर्त्तिता।

भाषा-बहुत छोटे पेठेको कूष्माण्डी और कर्कारु कहते हैं॥

कूष्मांडीगुणाः।

कर्कारुर्ग्राहिणी शीता रक्तपित्तहरा गुरुः।
पक्का तिक्ताऽग्निजननी सक्षारा कफवातनुत्४२

भाषा-कूष्माण्डी ग्राही, शीतल, रक्तपित्तनाशक और भारी है. पक्की कूष्मांडी, कडवी, अग्निकारक, खारी और कफनाशक तथा वातनाशक है॥ ४२॥

अलाबूनामानि।

अलाबूः कथिता तुम्बी द्विधा दीर्घा च वर्तुला।

भाषा-अलाबू, तुम्बी ये लम्बे कदूके संस्कृत नाम हैं. (अलाबु, तुम्ब, तुम्बक, तुंबा, पिंडफला, महाफला, आलाबू, एलाबु लांबु, लाबुका, तुम्बिका, तुम्बी, अलीबु और तुम्बक ये लम्बे कदूके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) तोंबी लंबी और गोल इस भांति दो प्रकारकी होती है॥

अनेक भाषाके लंबे कदूके नाम.

सं.-अलाबू.
हिं.-लंबा कदू, रामतोरई, लौकी, मीठीतोंबी.
बं.-लाबु, कदु.
म.-दुध्याभोंपळा.
गु.-आलडी.
क.-कडंडबलकायि.
तै.-हीरातुंडीकाया.
फा.-कुद्दूगरिन.
अ.-किरा
अं.-Vbi[illegible] Gourd हाइ गूर्ड.
ला.-Cu[illegible]arbita Lagen[illegible]aria कुकुबटा[illegible]जिनेरिया.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलाबूगुणाः ।

मिष्टतुम्बीफलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु ।
वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्धनम्॥४३॥

भाषा–तोंबी हृदयको प्रिय, पित्तनाशक, कफनाशक, भारी, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक है और धातुको पुष्ट करती है ॥ ४३ ॥

कटुतुम्बीनामानि ।

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्सा तुम्बी च महाफला।

भाषा–इक्ष्वाकु, कटुतुंबी, तुंबी, महाफला ये कडवी तोंबीके संस्कृत नाम हैं. (पिण्डफला, राजपुत्री, नृपात्मजा, फलिनी, तिक्ततुम्बी, तिक्तका, कटुतिक्तका, लम्बा, कटुकालाबु, कटुफला, तुम्बिनी, बृहत्फला, दन्तबीजा, तिक्तबीजा, तुम्बिका, तुम्बीका, क्षत्रियवरा और कटुतुम्बिनी ये कडवी तोंबीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके कटुलौकीके नाम.

सं.–इक्ष्वाकु.	फा.–कटुतल्ख.
हिं.–कटुलौकी, कडवी तोंबी.	अ.–करडल्मर.
बं.–तितलाउ.	अं.–Bottle Gourd बॉटलगूर्ड.
म.–कडूभोंपळा.	ला.–Lagenaria Valgaris लजीनारिया वलगेरिस.
गु.–कडवी तुंबडी.	
क.–कडीसोरे.	
तै.–चेतिआनब.	

कटुतुंबीगुणाः ।

कटुतुम्बी हिमा हृद्या पित्तकासविषापहा ।
तिक्ता कटुर्विपाके च वातपित्तज्वरान्तकृत् ४४

भाषा–कडवी तोंबीका फल शीतल, अहृद्य, (हृदयको अप्रिय), कडवा, पाकमें चरपरा है और पित्त, खांसी, विष, वात, पित्त तथा ज्वरको नष्ट करता है. यह वमनविरेचनकारक है) ॥४४॥

कर्कटीनामानि ।

एर्वारुः कर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ।

भाषा–एर्वारु, कर्कटी ये ककडीके संस्कृत नाम हैं. (लोमशी, व्यालपत्रा, बृहत्फला, व्यालपत्री, लोमशा, स्थूला, तोयफला, हस्तिदन्तफला, छर्दापनिका, पीनसा, मूत्रला, मूत्रफला, त्रपुषा, हस्तिपर्णी, लोमशकाण्डा, बहुकन्दा, चिर्भटी, कर्कटाक्ष, शान्तनु, वालुङ्गी, त्रपुषी, इर्वारु, उर्वारु और ईर्वारु ये ककडीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके ककडीके नाम.

सं.–कर्कटी.	फा.–खयार दराज.
हिं.–ककडी.	अ.–किस्साकदस्.
बं.–कांकुड.	अं.–Cucumber कम्बर.
म.–काकडी.	ला.–Cucumis Sativus क्युक्युमिस् सेटिवस्.
गु.–काकडी.	
क.–क्येयसौते.	
तै.–दोसकाया.	

कर्कटीगुणाः ।

कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः ।
रुच्या पित्तहरा सामा पक्वा तृष्णाग्निपित्तकृत् ॥ ४५ ॥

भाषा–कच्ची ककडी शीतल, रूखी, ग्राही, मधुर, भारी, रुचिकारी है और पित्तनाशक है. पक्की ककडी तृषा, अग्नि और पित्तको बढानेवाली है ॥ ४५ ॥

चिचिण्डनामानि ।

चिचिण्डः श्वेतराजिः स्यात्सुदीर्घा गृहकूलकः।

भाषा–चिंचिंडा, श्वेतराजि, सुदीर्घ, गृहकूलक ये चचेंडेके संस्कृत नाम हैं. (चिचुण्ड, वेश्मकूल, बृहत्फला, अहिफला, दीर्घफला और चीनकर्कटिका ये चचेंडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके चचेंडेके नाम.

सं.–चिचिण्ड.	अं.–Snakegourd स्नेकगूर्ड.
हिं.–चचेंडा.	ला.–Trichosanthis Anguina ट्रीकोसेंथिस् ऐग्विना.
बं.–चिचिण्डा.	
म.–टरकांकडी.	
गु.–पडोलुं.	
तै.–पोटलकाया.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिर्चिडगुणाः ।

चिचिण्डो वातपित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः । शोषणोऽतिहितः किञ्चिद्गुणैर्न्यूनः पटोलतः ॥ ४६ ॥

भाषा-चचेंडा वातनाशक, पित्तनाशक, बलदायक, पथ्य, रुचिकारक, शोषी (क्षयरोगी) को अत्यंत हितकर्ता (बहुत हितकारी) और परवलसे कुछहीन गुणवाला है ॥ ४६ ॥

कारवेल्लनामानि ।

कारवेल्लं कठिल्लं स्यात्कारवेल्ली ततो लघुः ।

भाषा-कारवेल्ल, कठिल्ल ये करेलेके संस्कृत नाम हैं. (उपकाण्ड, सुकाण्डक, कठिल्लक और कारवेल्लक ये करेलेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) इससे छोटे करलेको कारवेल्ली (करेली) कहते हैं ॥

अनेक भाषाके करेलेके नाम.

सं.-कारवेल्ल.	तै.-करिला, काकरकाया.
हिं.-करेला, करेल्ली.	फा.-कारेलाह.
बं.-बडकरेला उच्छे, छोटकरलाउच्छे.	अ.-किस्सउलहिमार.
म.-कारलें, क्षुद्रकारली.	अं.-Hairy Mordica हेरी मोर्डिका.
गु.-कारेलुं.	ला.-Memordica Choratia मेमोर्डिका करेटिया.
क.-हागेल.	

कारवेल्लगुणाः ।

कारवेल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तमवातलम् । ज्वरपित्तकफास्रघ्नं पाण्डुमेहकृमीन्हरेत् ॥ तद्वुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद्दीपनी लघुः ४७॥

भाषा-करेला शीतल, मलभेदक, दस्तावर, हलका, कडवा है और वातकारक नहीं है और ज्वर, पित्त, कफ, रक्तविकार, पाण्डुरोग, प्रमेह और कृमिको नष्ट कराता है. करेलीमेंभी करलेके सदृश गुण हैं. विशेषकरके अग्निप्रदीपक और हलकी है ॥ ४७ ॥

महाकोशातकीनामानि ।

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाबला । धामार्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णश्च स स्मृतः ४८॥

भाषा-महाकोशातकी, हस्तिघोषा, महाफला, धामार्गव, घोषक, हस्तिपर्ण ये घियातोरईके संस्कृत नाम हैं. (बृहत्कोशातकी, हस्तिकोशातकी, ग्राम्यकोशातकी, महत्पुष्पा, सर्पीतिका और हस्तिघोषातकी ये घियातोरईके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥४८॥

अनेक भाषाके घियातोरईके नाम.

सं.-महाकोशातकी.	क.-करहीरे, तुप्पीरि,
हिं.-घियातोरई, नेनुआ.	तै.-पुच्चाबीरकाया.
बं.-हस्तिघोषा, धुंदुल.	फा.-खियार, ओरीसातरडि.
म.-घोसाळें, पारोसा.	ला.-Luffa Pentandra ल्युफा पेंटेंड्रा.
गु.-गलकां.	

महाकोशातकीगुणाः ।

महाकोशातकी स्निग्धा रक्तपित्तानिलापहा ।

भाषा-घियातोरई चिकनी है और रक्तपित्त तथा वायुको नष्ट करती है ॥

राजकोशातकीनामानि ।

धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना । राजकोशातकी चेति तथोक्ता राजिमत्फला ४९

भाषा-धामार्गव, पीतपुष्प, जालिनी, कृतवेधना, राजकोशातकी, राजिमत्फला ये तोरईके संस्कृत नाम हैं. (कोशातकी, स्वादुफला, सपुष्पा, कर्कोटकी, धाराफला, दीर्घफला और सुकोषा ये तोरईके संस्कृत नाम अन्य ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ४९ ॥

अनेक भाषाके तोरईके नाम.

सं.-राजकोशातकी.	अं.-Acuteangled Cucumder एक्युटेंगल्ड् ककम्बर.
हिं.-तोरई.	ला.-Luffaacutengula ल्युफाएक्युटेंग्यला.
बं.-घोषालता.	
म.-शिरोळें, दोडका.	
गु.-झुमखडां.	
क.-धारवितरोई.	
तै.-बीरकाया.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजकोशातकीगुणाः ।

राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातकृत् । पित्तघ्नी दीपनी श्वासज्वरकासकृमिप्रणुत् ५०॥

भाषा–तोरई शीतल, मधुर, कफकारक वातकारक, पित्तनाशक, अग्निप्रदीपक है और श्वास, खांसी, ज्वर, कृमिको नष्ट करती है ॥ ५० ॥

पटोलनामानि ।

पटोलः कूलकस्तिक्तः पाण्डुकः कर्कशच्छदः । राजीफलः पाण्डुफलो राजेयश्चामृताफलः ॥ बीजगर्भः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः ॥ ५१ ॥

भाषा–पटोल, कूलक, तिक्त, पाण्डुक, कर्कशच्छद, राजीफल, पाण्डुफल, राजेय, अमृताफल, बीजगर्भ, प्रतीक, कुष्ठहा, कासभंजन ये परवलके संस्कृत नाम हैं. (राजीमान, तिक्तोत्तम, कुष्ठारि, कासमर्दन, पश्चराजीफल, ज्योत्स्ना, कच्छुर, ज्वरनाशन, तिक्तक, पट्ट, पटुक, कर्कशदल, कुजल, वाजिमान्, लताफल, राजफल, राजपटोल, वरतिक्त, तिक्तभद्रक, कटुफल, कटु, कटुक, नागफल, पंजर, कच्छुघ्नी और प्रतीक ये परवलके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५१ ॥

अनेक भाषाके परवलके नाम.

सं.–पटोल.
हिं.–परवल, कडवे परवल.
बं.–पलतालता.
म.–पडवळ.
गु.–परवल.
क.–कहिपडवल.
अं.–Sespadula सेसपदूला.
ला.–Trichosanthis Cucumerina ट्रिकोसँथिस् कुकुमेरिना.

पटोलगुणाः ।

पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम् । स्निग्धोष्णं हन्ति कासास्रज्वरदोषत्रयाक्रिमीन् ॥ ५२ ॥ पटोलस्य भवेन्मूलं विरेचनकरं सुखात् । नालं श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारि फलं पुनः ॥ दोषत्रयहरं प्रोक्तं तद्वत्तिक्ता पटोलिका ॥ ५३ ॥

भाषा–परवल पाचक, हृदयको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, हलका, अग्निप्रदीपक, स्निग्ध, गरम है और खांसी, रक्तविकार, ज्वर, त्रिदोष तथा कृमिका नाश करता है. परवलकी जड सुखपूर्वक विरेचन करनेवाली है. परवलकी नाल (डंडी) कफनाशक है. परवलके पत्ते पित्तनाशक हैं और फल त्रिदोषनाशक है. कडवे परवरमेंभी येही गुण हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

बिंबीनामानि ।

बिम्बी रक्तफला तुण्डी तुण्डिकेरी च बिंबिका । ओष्ठोपमफला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥ ५४ ॥

भाषा–बिम्बी, रक्तफला, तुण्डी, तुण्डिकेरी, बिम्बिका, ओष्ठोपमफला, पीलुपर्णी ये कंदूरीके संस्कृत नाम हैं. (ओष्ठी, कर्मकरी, तुण्डिकेरिका, तुण्डिकेरि, झुण्डिकेशि, बिम्बक, बिंबजा, दन्तच्छदोपमा, रुचिरफला और छर्दिनी ये कन्दूरीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ ५४ ॥

अनेक भाषाके कन्दूरीके नाम.

सं. बिंबी.
हिं.–कंदूरी, कुन्दुरू.
बं.–तेलाकुच, कुदरका.
म.–गोड तोंडली.
दे.–कोंडबळी.
गु.–घोलीटीडोरी.
क.–सीहिदोंडे, तोंडेहण्णु, कोडेबळ्ळि.
ते.–दोंडतिमें, काकिदोंडा.
तु.–मणोलि.
मला.–कोवा, तोंडि.
ला.–Coccinia Indica कोक्सिनिया-इंडिका.

बिंबीगुणाः ।

बिम्बीफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्रवातजित् । स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मानकारकम् ॥ ५५ ॥

भाषा–कन्दूरीका फल स्वादु, शीतल, भारी, पित्तनाशक, रक्तविकारनाशक, वातविनाशक, स्तम्भक, लेखन, रुचिकारक है और विबन्ध तथा अफरेको करता है ॥ ५५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिंबिनामानि ।

शिंबिः शिंबी पुस्ताशिंबी तथा पुस्तकशिंबिका।

भाषा—शिम्बि, शिंबी, पुस्तशिम्बी और पुस्तकशिम्बिका ये सेमके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके सेमके नाम.

सं.—शिंबि.	ता.—मोच्चे, कोटै.
हिं.—सेम, सेंभि.	अ.—बिनस.
बं.—बोरा, वखटी.	अं.—Black seeded Dolichos ब्लाकसीडेड् डोलिकोस्.
म.—थोर घेवडा, वालपापडी.	
गु.—वालोल, पांदडी.	
क.—चळ्ळबरि, गटबरि, तट्टबरे.	ला.—Dolicos Lablab डोलिकोस् लब्लब.
तै.—चिक्कुंड, अनुमुलु.	

शिंबिगुणाः ।

शिम्बीद्वयं च मधुरं रसे पाके हिमं गुरु ।
बल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं वातपित्तजित् ५६

भाषा—सेम दो प्रकारकी होती है. दोनों प्रकारकी सेम रसमें तथा पाकमें मीठी, शीतल, भारी, बलदायक, दाहकारक है और वात तथा पित्तको नष्ट करती है ॥ ५६ ॥

कोलशिम्बिनामानि ।

कोलशिम्बिः कृष्णफला तथा पर्यंकपट्टिका ।

भाषा—कोलशिम्बी, कृष्णफला, पर्यंकपट्टिका ये सुअरासेमके संस्कृत नाम हैं. (खड्गा, सूकरपादिका, कुशिम्बी, कुत्सास्त्रशिम्बी और पुस्तकशिम्बिका ये सुअरासेमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सुअरासेमके नाम.

सं.—कोलशिम्बी.	म.—आबईची शेंग.
हिं.—सुअरासेम, कालीसेभि.	गु.—काली वालोर.
ब.—शेमगाछ.	तै.—कारुचिकटु.

कोलशिम्बिगुणाः ।

कोलशिंबिः समीरघ्नी गुर्व्युष्णा कफपित्तकृत् । शुक्राग्निसादकृद्वृष्या रुचिकृद्बद्धविड् गुरुः ॥ ५७ ॥

भाषा—सुअरासेम वातनाशक, भारी, गरम, कफकारक, पित्तकारक, शुक्र और जठराग्निको मंद करनेवाली, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारी, मलको बांधनेवाली और भारी है ॥ ५७ ॥

सौभाञ्जनफलगुणाः ।

फलं सौभाञ्जनं स्वादु कषायं कफपित्तनुत् ।
शूलकुष्ठक्षयश्वासगुल्महृद्दीपनं परम् ॥ ५८ ॥

भाषा—सहंजनेकी फली स्वादु, कसैली, कफ तथा पित्तको दूर करनेवाली है और शूल, कोढ, क्षय, श्वास तथा गुल्म (गोलेका रोग) इनको हरनेवाली और अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली है ॥ ५८ ॥

वृन्ताकनामानि ।

वृन्ताकं स्त्री तु वार्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकापि च।

भाषा—वृन्ताक, वार्ताकु, भण्टाकी, भण्टिका ये बैंगनके संस्कृत नाम हैं. (वार्ताकी, कण्टवृन्ताकी, कण्टालु, कण्टपत्रिका, निद्रालु, मांसलफला, वृन्ताकी, महोटिका, चित्रफला, कण्टकिनी, महती, कटुफला, मिश्रवर्णफला, नीलफला, रक्तफला, शाकश्रेष्ठा, वृत्तफला, नृपप्रियफला, हिंगुली, सिंही, दुष्प्रधर्षिणी, वार्ताकुण, वार्ताक, शाकबिल्व, राजकूष्मांड, महाबृहती, शाकबिल्वक, वार्तिक, वातिगम, वङ्गण, अङ्गण, नीलवृषा, भाण्टिका और नीलकण्टका ये बैंगनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके बैंगनके नाम.

सं.—वृन्ताक.	तु.—बदने.
हिं.—बैंगन, भंटा, भांटा.	मला.—वाळुतिना.
बं.—बेगुनगाछ.	फा.—बादंगान्.
म.—वांगें.	अ.—बादंजान.
गु.—रिंगणी, वंताकडी.	अं.—Bringle ब्रिंजल.
क.—बदनेकाइ.	ला.—Solanum Melangena सोलेनं मेलंजीना.
तै.—वंकायि.	
ता.—कट्टारि.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृन्ताकगुणाः ।

वृन्ताकं स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकमपित्तलम् । ज्वरवातबलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु ॥ ५९ ॥ तद्भालं कफपित्तघ्नं वृद्धं पित्तकरं लघु । वृन्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम् ॥ ६० ॥ कफमेदोऽनिलामघ्नमत्यर्थं लघु दीपनम् । तदेव हि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितम् ॥ ६१ ॥ अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्डसमं भवेत् । तदर्शःसु विशेषेण हितं हीनं च पूर्ववत् ॥ ६२ ॥

भाषा–बैंगन मधुर, तीक्ष्ण, गरम, पाकमें चरपरा, पित्तकारक नहीं, अग्निप्रदीपक, वीर्यवर्द्धक, हलका है और ज्वर, वात तथा कफका नाश करता है. छोटे बैंगन कफनाशक तथा पित्तनाशक हैं और बडे बैंगन पित्तकारक तथा हलके हैं. अग्निमें पकाये हुए बैंगन अर्थात् बैंगनका भर्त्ता किञ्चित् पित्तकारक, हलका, अग्निको दीपन करनेवाला है और कफ, मेद, वात तथा आमका नाश करता है. जो इन बैंगनोंमें तेल और नमक डाला होय तौ वे बैंगन भारी और स्निग्ध हैं और एक प्रकारका बैंगन मुरगेके अण्डेके सदृश होता है वह बैंगन अर्शरोगमें विशेष हितकारी है और काले बैंगनोंसे गुणोंमें हीन है ॥ ५९–६२ ॥

डिण्डिशनामानि ।

डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्यपि ।

भाषा–डिंडिश, रोमशफल और मुनिनिर्मित ये ढेंढसके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके टिंडेके नाम.

सं.–डिंडिश.	गु.–कंटोला.
हिं.–ढेंढस, टिंडे.	तै.–अगोरकर.
म.–ढेंढसे.	

डिण्डिशगुणाः ।

डिण्डिशो रुचिकृद्भेदी पित्तश्लेष्मापहः स्मृतः । शीतलो वातकृद्रूक्षो मूत्रलश्चाश्मरीहरः ॥ ६३ ॥

भाषा–ढेंढस रुचिकारक, मलभेदक (दस्तावर), बहुत शीतल, वातकारक, रूक्ष, मूत्रवर्द्धक है और पित्त, कफ तथा पथरीरोगका नाश करता है ॥ ६३ ॥

पिण्डारगुणाः ।

पिण्डारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकारकम् । पाके लघु विशेषेण विषशान्तिकरं स्मृतम् ६४

भाषा–पिण्डार (पिण्डालु) शीतल, बलकारक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पाकमें हलका, विशेषकरके विषको शान्त करनेवाला और पित्तनाशक है ॥ ६४ ॥

कर्कोटीनामानि ।

कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते ।

भाषा–कर्कोटकी, पीतपुष्पा, महाजाली ये ककोडेके संस्कृत नाम हैं. (महाजालिनिका, अवन्ध्या, बोधनाजालि, मनोज्ञा और मनस्विनी ये ककोडेके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके ककोडेके नाम.

सं.–कर्कोटकी.	तै.–आगाकर.
हिं.–ककोडा, खेखसा.	ता.–इगारवल्ली.
बं.–काकरोल.	तु.–काडकंचाला.
म.–कर्टोली, कंटोली.	मला.–वेंपावल.
गु.–कंटोला.	ला.–Momordica dioicea मोमोर्डिका डायोइका.
क.–मडुवागाल, माडाहागल, कार्चि.	

कर्कोटीगुणाः ।

कर्कोटी मलहृत्कुष्ठहृल्लासारुचिनाशनी । श्वासकासज्वरान्हन्ति कटुपाका च दीपनी ॥ ६५ ॥

भाषा–ककोडा मलनाशक, पाकमें चरपरा, अग्निप्रदीपक है और कोढ, जी मिचलाना, अरुचि, खांसी, श्वास तथा ज्वरका नाश करता है ॥ ६५ ॥

डोडिकानामानि ।

डोडिका विषमुष्टिश्च डोडीत्यपि सुमुष्टिका ।

भाषा–डोडिका, विषमुष्टिका, डोडी और सुमुष्टिका ये करेलुआके संस्कृत नाम हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके करेरुएके नाम।

सं.-डोडिका.
हिं.-करेरुआ.
म.-गोडी दोडी.
गु.-मीठी खरखोली.

डोडिकागुणाः।

डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः। हन्ति पित्तकफार्शांसि कृमिगुल्मविषामयान् ॥ ६६ ॥

भाषा-करेरुआ पुष्टिदायक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, हलका है और पित्त, कफ, बवासीर, कृमि, गुल्म तथा विषरोगका नाश करता है ॥ ६६ ॥

कण्टकारीगुणाः।

कण्टकारीफलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघु। रूक्षोष्णं श्वासकासघ्नं ज्वरानिलकफापहम् ६७

भाषा-कटेरीके फल कडवे, चरपरे, अग्निप्रदीपक, हलके रूखे, गरम हैं और श्वास, खांसी, ज्वर, वात तथा कफका नाश करते हैं ॥ ६७ ॥

नालशाकम्।

तत्र सर्षपनालगुणाः।

तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वातश्लेष्मव्रणापहम्। कण्डूवमिहरं दद्रुकुष्ठघ्नं रुचिकारकम् ॥ ६८ ॥

भाषा-सरसोंकी नाल (डण्डी) तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक है और वात, कफ, व्रण, खुजली, वमन, दाद तथा कोढका नाश करती है ॥ ६८ ॥

कन्दशाकानि।

तत्र सूरणनामानि।

सूरणः कन्द ओलश्च कन्दलोऽर्शोघ्न इत्यपि।

भाषा-सूरण, कन्द, ओल, कन्दल, अर्शोघ्न ये जिमीकन्दके संस्कृत नाम हैं. (कण्टाल, कण्डुल, कन्दी, सुकन्दी, स्थूलकन्दक, दुर्नामारि, सुवृत्त, कन्दशूरण, तीव्रकंठ, कन्दार्ह, कन्दवर्द्धन, बहुकन्द, रुच्यकन्द और शूरणकन्द ये जिमीकन्दके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके सूरणकन्दके नाम।

सं.-सूरण.
हिं.-सूरणकन्द, जिमीकन्द.
बं.-ओल.
म.-गोडा सुरण.
गु.-सूरण.
क.-सूरण.
ता.-सूरण. [दा.
तै.-मंचा कंदा दोलकंफा.-ओल.
ला.-Amorphophallus paniculatus एमोर्फोफेलस पेनिक्युलेटस्.

सूरणगुणाः।

सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डुकृत्कटुः। विष्टम्भी विशदो रुच्यः कफार्शःकृन्तनो लघुः ॥ ६९ ॥ विशेषादर्शसे पथ्यः प्लीहगुल्मविनाशनः। सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ७० ॥ दद्रूणां कुष्ठिनां रक्तपित्तिनां न हितो हि सः। सन्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥ ७१ ॥

भाषा-जिमीकन्द अग्निको दीपन करनेवाला, रूखा, कसैला, खुजली करनेवाला, चरपरा, विष्टम्भी, विशद, रुचिकारी, हलका है और कफ तथा अर्शरोगका नाश करता है. विशेष करके अर्शरोगमें पथ्य है और प्लीहा तथा गुल्मको नष्ट करता है. सम्पूर्ण कन्दशाकोंमें सूरण श्रेष्ठ कहा है. दाद, रक्तपित्त और कोढरोगवालोंको सूरण हितकारी नहीं है. एक प्रकारकी कांजी डालनेसे सूरण बहुत गुणकारक हो जाता है ॥ ६९-७१ ॥

आलुकनामानि।

आलुकमप्यालुकं तत्कथितं वीरसेनकम्। काष्ठालुकशंखालुकहस्त्यालूकानि कथ्यन्ते ॥ पिण्डालुकसप्तालुकरक्तालूकानिचोक्तानि ७२। काष्ठालुकं काठिन्ययुक्तम् (कठारु)। शंखालुकं श्वेततायुक्तम् (शंखालू) ॥ हस्त्यालुकं दीर्घतायुक्तं महाशरीरम्। पिंडालुकं वर्तुलं (पिंडालू)। सप्तालुकं मधुरतायुक्तं रोमान्वितम्। रक्तालुकं (रक्तालू, रतालू) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–आरुक, आलुक और वीरसेन ये आलूके संस्कृत नाम हैं. जो आलू कठिन होता है उसको काठालू कहते हैं. जो श्वेततायुक्त होता है उसको शंखालुक कहते हैं. जो लम्बा और बडा होता है उसको हस्त्यालुक कहते हैं. जो गोल होता है उसको पिंडालु कहते हैं. जो मधुरतायुक्त और रोमवाला होता है उसको सप्तालुक कहते हैं. जो लाल रंगका होता है उसको रक्तालुक कहते हैं. हिन्दीमें रतालू कहाता है ॥ ७२ ॥

आरूकगुणाः ।

आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भी मधुरं गुरु ।
सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत् ॥ कफानिलकरं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्निवर्द्धनम् ॥७३॥

भाषा–सब जातिके आलू शीतल, विष्टम्भी, मधुर, भारी, मलकारक, मूत्रकारक, रूखे, दुर्जर, रक्तपित्तनाशक, कफकारक, वातकारक, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और किंचित् अग्निवर्द्धक है ॥ ७३ ॥

रक्तालुभेदः ।

रक्तालुभेदे या दीर्घा तन्वी च पृथुतालुका ।

भाषा–रक्तालूके भेदोंमेंही लम्बी तथा पतली होती है उसको आलुकी कहते हैं ॥

अनेक भाषाके घुइयांके नाम.

सं.–रक्तालु.	अं.–Great Leaved Caledium ग्रटलीव्ड केलेड्यम्.
हिं.–घुइया, अरुई.	
म.–अळवाचा कांदा.	ला.–Erum Indicum एरमइण्डिकम्.
गु.–अलवी.	
अ.–हुयाकलकाश.	

रक्तालुगुणाः ।

आलुकी बलकृत्स्निग्धा गुर्वी हृत्कफनाशिनी ।
विष्टम्भकारिणी तैले तलिताऽतिरुचिप्रदा७४॥

भाषा–घुइयां बलदायक, स्निग्ध, भारी, हृदयरोगनाशक, कफनाशक और विष्टम्भकारक है. तेलमें भुनी हुई घुइयां अत्यंत रुचिकारी है॥७४॥

मूलकद्वयनामानि ।

मूलकं द्विविधं प्रोक्तं तत्रैकं लघुमूलकम् ।
शालमर्कटकं विस्रं शालेयं मरुसम्भवम्॥७५॥
चाणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलकपोतिका ।
नेपालमूलकं चान्यत्तद्भवेद्गजदन्तवत् ॥ ७६ ॥

भाषा–मूली दो प्रकारकी होती है, इनमें जो छोटी मूली है उसके लघुमूलक, शालमर्कटक, विस्र, शालेय, मरुसंभव, चाणक्यमूलक, तीक्ष्ण और मूलकपोतिका ये संस्कृत नाम हैं. जो हाथीके दांतके सदृश बडी मूली होती है उसको नेपालमूलक कहते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अनक भाषाके मूलीके नाम.

सं.–लघुमूलक, नेपालमूलक.	तै.–मुल्लिंगि.
हिं.–मूली, वडी मूली.	फा.–तुरव. [जलू.
बं.–मूली, चणकमूली.	अ.–फजल् बजरुल्, फ-
म.–मुळा. [ला.	अं.–Radish रॅडिश.
गु.–मुला, नाहाना मु-	ला.–Raphanus Sativus रफेनस् सेटिवस्.
क.–मुलंगी.	

मूलकद्वयगुणाः ।

लघुमूलं कटूष्णं स्याद्रुच्यं लघु च पाचनम् ।
दोषत्रयहरं स्वर्यं ज्वरश्वासविनाशम् ॥ ७७ ॥
नासिकाकण्ठरोगघ्नं नयनामयनाशनम् ।
महत्तदेव रूक्षोष्णं गुरु दोषत्रयप्रदम् ॥ स्नेहसिद्धं तदेव स्याद्दोषत्रयविनाशनम् ॥ ७८ ॥

भाषा–छोटी मूली चरपरी, गरम, रुचिकारक, हलकी, पाचक, त्रिदोषनाशक, स्वरको उत्तम करनेवाली है और ज्वर, श्वास, नासिकारोग, कण्ठरोग तथा नेत्ररोगका नाश करती है. वडी मूली रूखी, गरम, भारी और त्रिदोषको उत्पन्न करनेवाली है. यह मूली जो तेलमें पकाई हो तो त्रिदोषनाशक है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

गृञ्जननामानि ।

गृञ्जनं गाजरं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम् ।

भाषा–गृंजन, गाजर, नारंगवर्णक ये गाजरके संस्कृत नाम हैं. (पिण्डमूल, पीतकन्द, सुमू-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक, स्वादुमूल, सुपीत, गार्जर, नारंग और पीतमूलक ये गाजरके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके गाजरके नाम.

सं.-गृंजन, गाजर.	फा.-जर्दक.
हिं.-गाजर.	अ.-जजर.
बं.-गाजर.	अं.-Carrot root क्यारट रूट.
म.-गाजर.	
गु.-गाजर.	
क.-गर्जरि.	ला.-Daucus carota डाकस केरोटा.
ते.-गृञ्जनं.	

गृञ्जनगुणाः ।

गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु ।
संग्राहिरक्तपित्तार्शोग्रहणीकफवातजित् ॥७९॥

भाषा-गाजर मधुर, तीक्ष्ण, कडवी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, ग्राही है और रक्तपित्त, ववासीर, संग्रहणी, कफ तथा वातका नाश करती है ॥ ७९ ॥

कदलीकन्दगुणाः ।

शीतलः कदलीकन्दो बल्यः केश्योऽम्लपित्तजित् । वह्निकृद्दाहहारी च मधुरो रुचिकारकः ॥ ८० ॥

भाषा-केलेका कन्द शीतल बलदायक, केशोंको उत्तम करनेवाला, अम्लपित्तको नष्टकर्त्ता, अग्निकारक, दाहनाशक, मधुर और रुचिकारक है ॥ ८० ॥

मानकन्दनामानि ।

मानकः स्यान्महापत्रः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ।

भाषा-मानक, महापत्र ये मानकंदके संस्कृत नाम हैं. (स्थलपद्म, विस्तीर्णपर्ण, माण, बृहच्छद, छत्रपत्र और माणक ये मानकन्दके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मानकन्दके नाम.

सं.-मानक.	म.-मानकन्द.
हिं.-मानकन्द.	गु.-मानकन्द.

मानकन्दगुणाः ।

मानकः शोथहृच्छीतो रक्तपित्तहरो लघुः ।

भाषा-मानकन्द शीतल, हलका है और सूजन तथा रक्तपित्तका नाश करता है ॥

वाराहीकंदनामानि ।

[वाराही सूकरी क्रोडकन्या गृष्टिश्च गृष्टिका।]

भाषा-वाराही, सूकरी, क्रोडकन्या, गृष्टि और गृष्टिका ये वाराहीके संस्कृत नाम हैं. (चर्मकारालुक, विष्वक्सेनप्रिया, बदरा, कच्छा, वनमालिनी, बिल्वमूला, शूकरी, क्रोडकन्यका, विष्वक्सेनकान्ता, वराही, कौमारी, त्रिनेत्रा, ब्रह्मपुत्री, क्रोडी, कन्या, माधवेष्टा, शूकरकन्द, क्रोड, वनवासी, कुष्ठनाशन, बल्य, अमृत, महावीर्य, शम्बरकन्द, वराहकन्द, वीर, ब्राह्मीकन्द, महौषध, सुकन्दक, वृद्धिद, व्याधिहन्ता और मागधी ये वाराहीकन्दके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

वाराहीकन्दगुणाः ।

वाराही पित्तला बल्या कटूष्णा तिक्ता रसायनी । आयुःशुक्राग्निकृन्मेहकफकुष्ठानिलापहा ॥ ८१ ॥

भाषा-वाराहीकन्द पित्तकारक, बलदायक, चरपरा, कडवा, रसायन, आयुवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक तथा अग्निवर्द्धक है और प्रमेह, कफ, तथा वातका विनाश करता है ॥ ८१ ॥

हस्तिकर्णनामानि ।

[हस्तिकर्णो हस्तिपत्रः स्थूलकंदोऽतिकंदकः ।
बृहत्पत्रोऽतिपत्रश्च हस्तिकंदः सुकर्णकः ॥]

भाषा-हस्तिकर्ण, हस्तिकन्द, हस्तिपत्र, स्थूलकन्द, अतिकन्दक, बृहत्पत्र, अतिपत्र, हस्तिकन्द और सुकंदक ये हस्तिकर्णके संस्कृत नाम हैं. (त्वग्दोषारि, कुष्ठहन्ता, गिरिवासी, नागाश्रय, गजकर्ण, गजकन्द और नागकन्द ये हस्तिकर्णके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके हस्तिकन्दके नाम.

सं.-हस्तिकर्ण.	म.-हस्तिकर्ण.
हिं.-हस्तिकर्णकन्द.	गु.-मानकन्दनी.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हस्तिकर्णगुणाः ।

गजकर्णो तु तिक्तोष्णा तथा वातकफाञ्जयेत् । शीतज्वरहरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्दकः ॥ ८२ ॥ पाण्डुशोथकृमिप्लीहगुल्मानाहोदरापहः । ग्रहण्यर्शोविकारघ्नो वनसूरणकन्दवत् ॥ ८३ ॥

भाषा–हस्तिकर्ण कडवा, गरम, पाकमें मधुर है. हस्तिकर्णका कन्द वनसूरनकन्दके सदृश है तथा शीतज्वर, वातकफ, पाण्डु, सूजन, कृमि, प्लीहा, गुल्म, अफरा, उदरके रोग, संग्रहणी तथा बवासीरको नष्ट करता है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

केमुकगुणाः ।

केमुकं कटुकं पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघु । दीपनं पाचनं हृद्यं कफपित्तज्वरापहम् ॥ कुष्ठकण्डूप्रमेहास्रनाशनं वातलं कटु ॥ ८४ ॥

भाषा–केमुक (केमुआं) पाकमें चरपरा, कडवा, ग्राही, शीतल, हलका, अग्निप्रदीपक, पाचक, हृदयको प्रिय, वातकारक, चरपरा है और कफ, पित्त, ज्वर, कोढ, श्वास, प्रमेह तथा रक्तविकारका नाश करता है ॥ ८४ ॥

कसेरुलक्षणम् ।

कसेरु द्विविधं तत्तु महद्राजकसेरुकम् । मुस्ताकृति लघु स्याद्यत्तच्चिचोढमिति स्मृतम् ॥ ८५ ॥

भाषा–कसेरु दो प्रकारके होते हैं जो बडे कसेरु होते हैं उनको राजकसेरु कहते हैं और जो मोथेकी आकृतिवाला छोटा होता है उसको चिचोड कहते हैं ॥ ८५ ॥

अनेक भाषाके कसेरूके नाम.

सं.–कसेरु.	क.–सेकिनगडे.
हिं.–कसेरू.	तै.–इट्टिकोति.
बं.–केशुर.	ला.–Scripus Kesoor स्क्रिपस् कैसूर.
म.–कचरा.	
गु.–कसेलां.	

कसेरुगुणाः ।

कसेरुकद्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु । पित्तशोणितदाहघ्नं नयनामयनाशनम् ॥ ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मारुचिस्तन्यकरं स्मृतम् ॥ ८६ ॥

भाषा–दोनों जातिके कसेरू शीतल, मधुर, कसैले, भारी, ग्राही, वीर्यवर्द्धक, वातकारक, कफकारक, अरुचिकारक, दुग्धवर्द्धक हैं और पित्त, रक्तविकार, दाह तथा नेत्ररोगका नाश करते हैं ॥ ८६ ॥

शालूकलक्षणम् ।

पद्मादिकन्दः शालूकं करहाटश्च कथ्यते । मृणालमूलं भिस्साण्डं लजालूकं च कथ्यते ८७

भाषा–कमल आदिके कन्दको संस्कृतमें शालूक और करहाट कहते हैं. कमलकी जडको भिस्सांड और लजालूक कहते हैं ॥ ८७ ॥

शालूकगुणाः ।

शालूकं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रहृद्गुरु । दुर्जरं स्वादुपाकं च स्तन्यानिलकफप्रदम् ॥ संग्राहि मधुरं रूक्षं भिस्साण्डमपि तद्गुणम् ८८

भाषा–कमलकन्द शीतल, वीर्यवर्द्धक, भारी, दुर्जर, पाकमें मधुर, दुग्धवर्धक, वातकारक, कफकारक, ग्राही, मधुर, रूक्ष है और पित्त, दाह तथा रक्तविकारका नाश करता है. भसीडेमेंभी येही गुण हैं ॥ ८८ ॥

निषिद्धशाखानि ।

बालं ह्यनार्त्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम् । कन्दं विवर्जयेत्सर्वं यद्वाऽन्यादिविदूषितम् ॥ ८९ ॥ अतिजीर्णमकालोत्थं रूक्षं सिद्धमदेशजम् । कर्कशं कोमलं चातिशीतव्यालादिदूषितम् ॥ संशुष्कं सकलं शाकं नाश्नीयान्मूलकं विना ॥ ९० ॥ अतैलादिसिद्धं रूक्षम् । अदेशजम् अशुभस्थानजम् ।

भाषा–जो कन्द कच्चा, विना ऋतुमें उत्पन्न हुआ, पुराना, व्याधित, दीमक आदि कीडोंका खाया हुआ, अग्नि आदिसे दूषित हुआ, अत्यंत जीर्ण, रूखा, विना समय उत्पन्न हुआ, तेल आदिमें न पकाया हुआ, निकृष्ट भूमिमें उत्पन्न हुआ, कठिन, अत्यंत कोमल, अत्यन्त शीतल, सर्पादिकसे दूषित ऐसा कन्द नहीं खाना चाहिये. मूलीके अतिरिक्त और सब शाक सूखे हुए नहीं खाने चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संस्वेदजशाकनामानि ।

उक्तं संस्वेदजं शाकं भूमिच्छत्रं शिलींध्रकम् ।
क्षितिगोमयकाष्ठेषु वृक्षादिषु तदुद्भवेत् ॥९१॥

भाषा-संस्वेदज, भूमिच्छत्र शिलीन्ध्रक ये संस्वेदजशाकके संस्कृत नाम हैं. (भूच्छत्र, पृथिवीकन्द, शिलींध्र, कवच, भूमीच्छत्र, भूमिस्फोट, धरांकुर, भूसुता, छत्र, छत्राक, उच्छिलीन्ध्र और स्वेदज ये संस्वेदजशाकके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) यह शाक पृथ्वी, गोवर, लकडी और वृक्षादिकोंमें उत्पन्न होता है ॥९१॥

अनेक भाषाके सांपकी छत्रीके नाम.

सं.-संस्वेदज.
हिं.-सांपकी छत्री, छतोना.
बं.-छातकुड, छातोना.
म.-अळंबी, भुइफोड.
गु.-संस्वेदज शाको.
अ.-Mushroom मशरुम.
ला.-Fungi फंगाई.

संस्वेदजशाकगुणाः ।

सर्वे संस्वेदजाः शीता दोषलाः पिच्छिलाश्च ते । गुरवश्छर्द्यतीसारज्वरश्लेष्मामयप्रदाः ॥ ९२ ॥ श्वेतशुभ्रस्थलीकाष्ठवंशगोव्रणसम्भवाः । नातिदोषकरास्ते स्युः शेषास्तेभ्यो विगर्हिताः ॥ ९३ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते भावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणे शाकवर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

भाषा-सम्पूर्ण संस्वेदज शाक शीतल, दोषयुक्त, पिच्छिल, भारी हैं और वमन, अतीसार, ज्वर तथा कफसंबंधी रोगोंको उत्पन्न करते हैं. जो संस्वेदज शाक श्वेतवर्णवाले, पवित्रस्थानमें उत्पन्न हुए, काष्ठ, वांस तथा गोवरमें उत्पन्न हुए हों वे अत्यन्त दोषकारक नहीं हैं. शेषके संपूर्ण संस्वेदज शाक निंदित हैं ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पञ्चमप्रकरणे शाकवर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पूर्वखण्डस्य प्रथमो भागः समाप्त ॥ १ ॥

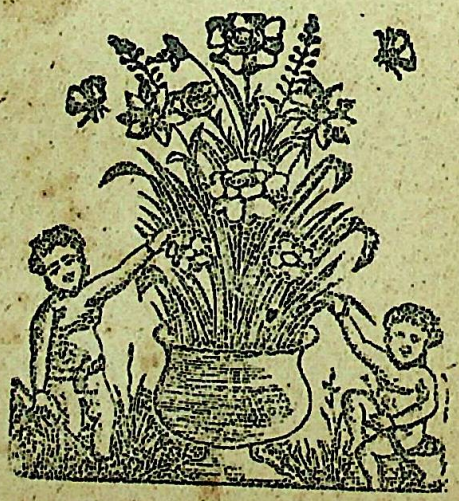

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

* अथ श्रीभावप्रकाशस्य-पूर्वखण्डे *

द्वितीयो भागः ।

अथ मांसवर्गः ।

मांसनामानि ।

मांसं तु पिशितं क्रव्यमामिषं पललं पलम् ।

भाषा-मांस, पिशित, क्रव्य, आमिष, पलल और पल ये मांसके संस्कृत नाम हैं ॥

मांसगुणाः ।

मांसं वातहरं सर्वं बृंहणं बलपुष्टिकृत् ।
प्रीणनं गुरु हृद्यं च मधुरं रसपाकयोः ॥ १ ॥

भाषा-सर्व प्रकारके मांस वातनाशक, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, तृप्तिदायक, भारी, हृदयको प्रिय और रसमें तथा पाकमें मधुर हैं ॥ १ ॥

मांसभेदाः ।

मांसवर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलानूपभेदतः ।

भाषा-सम्पूर्ण मांस दो प्रकारके हैं, एक जांगलमांस और दूसरे अनूपमांस ॥

जाङ्गलजातयः ।

मांसवर्गोऽत्र जङ्घाला बिलस्थाश्च गुहाशयाः ।
तथा पर्णमृगा ज्ञेया विष्किराः प्रतुदास्तथा ॥
प्रसहा अथ च ग्राम्या अष्टौ जाङ्गलजातयः २

भाषा-यहां मांसवर्गमें जांगल, बिलस्थ (बिलेशय), गुहाशय, पर्णमृग, विष्किर, प्रतुद, प्रसह और ग्राम्य ये आठ जांगल जातियें हैं ॥ २ ॥

जांगलमांसगुणाः ।

जाङ्गला मधुरा रूक्षास्तुवरा लघवस्तथा । बल्यास्ते बृंहणा वृष्या दीपना दोषहारिणः ॥ ३ ॥
मूकतां मिन्मिनत्वं च गद्गदत्वार्दिते तथा ।
वाधिर्य्यमरुचिच्छर्दिप्रमेहमुखजान्मदान् ॥
श्लीपदं गलगण्डं च नाशयत्यनिलामयान् ॥४॥

भाषा-जांगलजातिके मांस मधुर, रूक्ष, कसैले, हलके, बलदायक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, अग्निको दीपन करनेवाले, दोषनाशक हैं और गूंगापन, मिनमिनापन, तोतलापन, अर्दितवात (लकवा,), वहरापन, अरुचि, वमन, प्रमेह, मुखरोग, श्लीपद, गलगण्ड तथा वातसंबंधी रोगोंको नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अनूपजातयः ।

कुलेचराः प्लवाश्चापि कोशस्थाः पादिनस्तथा ।
मत्स्या एते समाख्याताः पञ्चधानूपजातयः५॥

भाषा-कूलेचर, प्लव, कोशस्थ, पादी और मत्स्य ये पांच अनूपजातियें हैं ॥ ५ ॥

अनूपमांसगुणाः ।

अनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वह्निसादनाः ।
श्लेष्मलाः पिच्छिलाश्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम् ॥ तथाऽभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायः पथ्यतमाः स्मृताः ॥ ६ ॥

भाषा-अनूपजातिके मांस मधुर, स्निग्ध, भारी, अग्निको मन्द करनेवाले, कफकारक, पिच्छिल, मांसको बहुत पुष्टिदायक, अभिष्यंदी और विशेषकरके बहुत पथ्य हैं ॥ ६ ॥

जाङ्गलगणना ।

हरिणैणकुरङ्गर्ष्यपृषतन्यङ्कुशम्बराः । राजीवोऽपि च मुण्डी चैत्याद्या जाङ्गलसंज्ञकाः ॥७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-हरिण, एण, कुरङ्ग, ऋष्य, पृषत, न्यंकु, शम्बर, राजीव और मुण्डी इत्यादि पशु जंघालसंज्ञक हैं ॥ ७ ॥

जांगलविशिष्टगुणाः ।

हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णः प्रकीर्तितः । ईषत्ताम्रः कुरङ्ग स्यादेणतुल्याकृतिर्महान् ॥ ८॥ ऋष्यो नीलांगको लोके स रोझ इति कीर्तितः । पृषतश्चन्द्रविन्दुः स्याद्धरिणात्किञ्चिदल्पकः ॥ ९ ॥ न्यंकुर्बहुविषाणोऽथ शम्बरो गवयो महान् । राजीवस्तु मृगो ज्ञेयो राजिभिः परितो वृतः ॥ यो मृगः शृङ्गहीनः स्यात्स मुण्डीति निगद्यते ॥ १० ॥

भाषा-जो मृग लाल वर्णका होय उसको हरिण, जो काला हो उसको एण, जो किंचित् लाल वर्णका बडा और एणके सदृश आकृतिवाला हो उसको कुरंग, जो नीले वर्णका हो उसको ऋष्य और लोकमें रोझ, जो चन्द्रके सदृश छींटोंवाला और हरिणसे कुछ छोटा हो उसको पृषत, जिसके बहुतसे सींग हों उसको न्यंकु (बारहसिंगा), बडे रोझको शम्बर, जिसके शरीरमें अधिक रेखा पडी हों उसको राजीव और जो मृग सींगरहित होता है उसको मुण्डी कहते हैं ॥ ८-१० ॥

जांगलगुणाः ।

जंघालाः प्रायशः सर्वे पित्तश्लेष्महराः स्मृताः । किञ्चिद्वातकराश्चापि लघवो बलवर्द्धनाः ॥११॥

भाषा-प्रायः सर्व जंघाल पित्तनाशक, कफनाशक, कुछ वातकारक, हलके और बलवर्द्धक हैं ॥ ११ ॥

बिलेशयगणना ।

गोधाशशभुजंगाखुशल्क्याद्या बिलेशयाः ।

भाषा-गोह, खरगोश, सांप, मूसा और शल्की (सेई) इत्यादिक बिलस्थ (भट्टोंमें रहनेवाले) कहाते हैं ॥

बिलेशयगुणाः ।

बिलेशया वातहरा मधुरा रसपाकयोः । बृंहणा बद्धविण्मूत्रा वीर्योष्णाश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ १२ ॥

भाषा-बिलस्थोंके मांस वातनाशक, रसमें तथा पाकमें मधुर, पुष्टिकारक, मल तथा मूत्रको बांधनेवाले और उष्णवीर्य हैं ॥ १२ ॥

गुहाशयगणना ।

सिंहव्याघ्रवृका ऋक्षतरक्षुद्वीपिनस्तथा । बभ्रुजम्बूकमार्जारा इत्याद्याः स्युर्गुहाशयाः ॥ स्थूलपुच्छो रक्तनेत्रो बभ्रुदेहः स नाकुलः ॥ १३ ॥

भाषा-सिंह, बाघ, भेडिया, रीछ, तरक्षु, (चीतल), चीता, बभ्रु (नौला), गीदड और बिलाव इत्यादि जीव गुहाशय (गुफामें रहनेवाले) कहाते हैं. जो मोटी पूछवाला और लाल नेत्रोंयुक्त तथा बभ्रुके सदृश देहवाला होता है उसको नाकुल (न्योला) कहते हैं ॥ १३ ॥

गुहाशयगुणाः ।

गुहाशया वातहरा गुरूष्णा मधुराश्च ते । स्निग्धा बल्या हिता नित्यं नेत्रगुह्यविकारिणाम् ॥ १४ ॥

भाषा-सम्पूर्ण गुहाशयोंका मांस वातनाशक, भारी, गरम, मधुर, स्निग्ध, बलदायक और नेत्र तथा गुदाके रोगवालोंको सर्वदा हितकारी है ॥ १४ ॥

पर्णमृगगणना ।

वनौकोवृक्षमार्जारो वृक्षमर्कटिकादयः । एते पर्णमृगाः प्रोक्ताः सुश्रुताद्यैर्महर्षिभिः ॥ १५ ॥ वनौको वानरः । वृक्षमार्जारो वृक्षबिडालः । वृक्षमर्कटिका ' रूषी वानर ' इति लोके ।

भाषा-वानर, वृक्षपर रहनेवाले बिलाव (वन बिलाव) और वृक्षमर्कटी (रूषी) ये सुश्रुत आदि महर्षियोंने पर्णमृग कहे हैं ॥ १५ ॥

पर्णमृगगुणाः ।

स्मृताः पर्णमृगा वृष्याश्चक्षुष्याः शोषिणे हिताः । श्वासार्शःकासशमनाः सृष्टमूत्रपुरीषकाः ॥ १६ ॥

भाषा-पर्णमृगोंका मांस वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, शोष (क्षय) रोगवालोंको हितकारी, मल तथा मूत्रको निकालनेवाला है और श्वास, बवासीर तथा खांसीको नष्ट करता है॥ १६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विष्किरगणना ।

वर्त्तकालावबर्हीरकपिञ्जलकतित्तिराः । कुलिङ्ग-कुक्कुटाद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥ १७ ॥
विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्धि विष्किराः ।
कपिञ्जल इति प्राज्ञैः कथितो गौरतित्तिरिः १८

भाषा–वर्त्तक (चित्रविचित्र रंगके पंखोंकी चिडिया), लाव (लवा), बटेर, गौरतीतर, तीतर, घरकी चिडिया और मुरगा आदिक विष्किर कहाते हैं. ये जीव कुरेद कुरेदकर खाते हैं इससे इनकी विष्किर संज्ञा है. कपिञ्जल अर्थात् गौरतीतर (कबूतर) जानना ॥ १७ ॥ १८ ॥

विष्किरगुणाः ।

विष्किरा मधुराः शीताः कषायाः कटुपाकिनः ।
बल्या वृष्याः त्रिदोषघ्नाः पथ्यास्ते लघवः स्मृताः ॥ १९ ॥

भाषा–विष्किर जीवोंका मांस मधुर, शीतल, कसैला, पाकमें चरपरा, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, पथ्य और हलका है ॥ १९ ॥

प्रतुदगणना ।

हारीतो धवलः पाण्डुश्चित्रपक्षो बृहच्छुकः ।
पारावतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः २०
प्रतुद्य भक्षयन्त्येते तुण्डेन प्रतुदास्ततः ।
कपोतो धवलः पांडुः शतपत्रो बृहच्छुकः ॥२१॥

हारीतः हरियल इति लोके ।

भाषा–हरियल, पिंडुकिया, चित्रपक्ष (एक प्रकारका तोता), बडा तोता, कबूतर, खंजन और कोयल आदिक प्रतुद कहाते हैं. ये चोंचसे पदार्थको निखोलकर खाते हैं इससे इनको प्रतुद कहा है. कबूतर सफेद और पाण्डुवर्ण ऐसे दो प्रकारका होता है. शतपत्र यह बडे तोतेहीका नाम है. और अमरकोशमें तो कठफोरेको लिखा है ॥ २० ॥ २१ ॥

प्रतुदगुणाः ।

प्रतुदा मधुराः पित्तकफघ्नास्तुवरा हिमाः ।
लघवो बद्धवर्चस्काः किञ्चिद्वातकराः स्मृताः २२

भाषा–प्रतुतजीवोंका मांस मधुर, पित्तनाशक, कफनाशक, कसैला, शीतल, हलका, मलको बांधनेवाला और किंचित् वातकारक है ॥२२॥

प्रसहगणना ।

काको गृध्र उलूकश्च चिलश्च शशघातकः ।
चाषो भासश्च कुरर इत्याद्याः प्रसहाः स्मृताः ॥
प्रसहाः कीर्त्तिता एते प्रसह्याच्छिद्य भक्षणात् ॥ २३ ॥
शशघातकः बाज इति लोके । चाषो नीलकण्ठ इति लोके । "भासो गृध्रविशेषः स्यात्" । कुररः 'कुरांकुर' इति लोके ।

भाषा–कौआ, गिद्ध, उल्लू, चील, बाज व शिकरा, बकुई, नीलकण्ठ, भास (एक प्रकारका गिद्ध) और कुरर (कुञ्ज) इत्यादि प्रसह कहाते हैं. ये बलात्कारसे छीनकर खाते हैं इससे इनका नाम प्रसह है ॥ २३ ॥

प्रसहगुणाः ।

प्रसहाः खलु वीर्योष्णास्तन्मांसं भक्षयन्ति ये ।
ते शोषभस्मकोन्मादशुक्रक्षीणा भवन्ति हि॥२४

भाषा–प्रसह जीवोंका मांस उष्णवीर्य है, इससे जो इनको खाते हैं उनको शोष, भस्मक और उन्माद रोग होता है तथा वीर्य क्षीण होता है ॥ २४ ॥

ग्राम्यगणना ।

छागमेषवृषाश्वाश्वा ग्राम्याः प्रोक्ता महर्षिभिः ।

भाषा–बकरी, मेंढा, बैल और घोडा इत्यादि जीव ग्राम्य हैं ॥

ग्राम्यगुणाः ।

ग्राम्या वातहराः सर्वे दीपनाः कफपित्तलाः ।
मधुरा रसपाकाभ्यां बृंहणा बलवर्द्धनाः ॥ २५ ॥
इति अनूपा जन्तवः ।

भाषा–ग्राम्य जीवोंका मांस वातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला, कफकारक, पित्तकारक, पाकमें तथा रसमें मधुर, पुष्टिदायक और बलवर्द्धक है ॥ २५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कूलेचरगणना ।

लुलायगण्डवाराहचमरीवारणादयः । एते कूलचराः प्रोक्ता यतः कूले चरन्त्यपाम् ॥ २६ ॥

लुलायो महिषः । गण्डः खड्गः । चमरी चमरपुच्छि गौ ।

भाषा-भैंसा, गेंडा, सूअर, चमरगाय (सुरै गाय) और हाथी आदि कूलेचर (जलके किनारे रहनेवाले) हैं ॥ २६ ॥

कूलेचरगुणाः ।

कूलेचरा मरुत्पित्तहरा वृष्या वलावहाः । मधुराः शीतलाः स्निग्धा मूत्रलाः श्लेष्मवर्धनाः ॥ २७ ॥

भाषा-कूलेचर जीवोंका मांस वातनाशक, पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, मधुर, शीतल, स्निग्ध, मूत्रको बढानेवाला और कफवर्द्धक है ॥ २७ ॥

प्लवगणना ।

हंससारसकारण्डवकक्रौञ्चशरारिकाः । नन्दीमुखी सकादम्बा बलाकाद्याः प्लवाः स्मृताः ॥ प्लवंति सलिले यस्मादेते तस्मात्प्लवाः स्मृताः २८ स्थूला कठोरा वृत्ता च यस्याश्चञ्चूपरि स्थिता । गुटिका जम्बुसदृशी प्रोक्ता नन्दीमुखीति सा ॥ २९ ॥ कारण्डः कर्पर्दिकाख्यो बृहद्भेदः । बलाका बगुली इति लोके ।

भाषा-हंस, सारस, चकवा, बगला, क्रौंच, (ढेंक), शरारी (बगलेका भेद,) नन्दीमुखी, बत्तक और बलाका आदि जीवोंको प्लव कहते हैं. ये जलमें तैरते हैं इस कारण इनका नाम प्लव है. जिसकी चोंच ऊपरसे मोटी, कठोर, गोल और जम्बूके सदृश गोलाईयुक्त हो उसको नंदीमुखी कहते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

प्लवगुणाः ।

प्लवाः पित्तहराः स्निग्धा मधुरा गुरवो हिमाः । वातश्लेष्मप्रदाश्चापि बलशुक्रकराः सराः ॥ ३० ॥

भाषा-प्लवजीवोंका मांस पित्तनाशक, चिकना, मीठा, भारी, शीतल, वात तथा कफको उत्पन्न करनेवाला, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और दस्तावर है ॥ ३० ॥

कोशस्थगणना ।

शङ्खः शङ्खनखश्चापि शुक्तिशम्बूककर्कटाः । जीवा एवंविधाश्चान्ये कोशस्थाः परिकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ शङ्खनखः क्षुद्रशङ्खः ।

भाषा-शंख, छोटा शंख, सीप, शम्बूक (जलकी छोटी सीप) और कर्कट (केकडा) आदिक तथा इसी प्रकारके औरभी जीव कोशस्थ कहाते हैं ॥ ३१ ॥

कोशस्थगुणाः ।

कोशस्था मधुराः स्निग्धा वातपित्तहरा हिमाः । बृंहणा बहुवर्चस्का वृष्याश्च बलवर्द्धनाः ॥ ३२ ॥

भाषा-कोशस्थजीवोंका मांस मधुर, चिकना, वातनाशक, पित्तनाशक, शीतल, पुष्टिकारक, बहुतमलकर्त्ता, वीर्यवर्द्धक और बलदायक है ॥ ३२ ॥

पादिगणना ।

कुम्भीरकूर्मनक्राश्च गोधामकरशङ्कवः । घण्टिकः शिशुमारश्चेत्यादयः पादिनः स्मृताः ॥ ३३ ॥ (कुम्भीरो मारको जलजन्तुः । कूर्मः कच्छपः । नक्रः नाका इति लोके । गोधा गोहि जलजन्तुः । मकरः मगर इति लोके । शङ्कुः शाकुच इति लोके । घण्टिकः घडियाल इति लोके) ।

भाषा-कुम्भीर (मार डालनेवाला जलका जीव), कछुआ, नाका, गोह, मगरमच्छ, शंकु (शाकुच), घडियाल और शिशुमार (सूंस) इत्यादि जलमें रहनेवाले जिनके पांव होते हैं उनको पादी कहते हैं ॥ ३३ ॥

पादिगुणाः ।

पादिनोऽपि च ये ते तु कोशस्थानां गुणैः समाः ।

भाषा-पादी जीवोंका मांसभी कोशस्थके सदृश गुणकारक है ॥

मत्स्यनामानि ।

मत्स्यो मीनो विकारश्च झषो वैसारिणोऽण्डजः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शकुली पृथुरोमा च स सुदर्शन इत्यपि ॥ रोहिताद्यास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परिकीर्तिताः ॥ ३४ ॥

भाषा–मत्स्य, मीन, विकार, झष, वैसारिण, अंडज, शकुली, पृथुरोमा और सुदर्शन ये मछलियोंके संस्कृत नाम हैं. रोहिडा आदिक जो जीव जलमें होते हैं, उनकोभी मछली कहते हैं ॥ ३४ ॥

मत्स्यगुणाः ।

मत्स्याः स्निग्धोष्णमधुरा गुरवः कफपित्तलाः । वातघ्ना बृंहणा वृष्या रोचका बलवर्द्धनाः ॥ मद्यव्यवायसक्तानां दीप्ताग्नीनां च पूजिताः ३५

भाषा–मछली चिकनी, गरम, भारी, कफकारक, पित्तकारक, वातनाशक, पुष्टिदायक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, बलवर्द्धक है और मद्य (दारू) तथा मैथुनमें आसक्तोंको तथा प्रदीप्त जठराग्निवालोंको हितकारी है ॥ ३५ ॥

जङ्गलादीनां नामानि गुणाश्च ।

तत्र जङ्गलेषु हरिणगुणाः ।

हरिणः शीतलो बद्धविण्मूत्रो दीपनो लघुः । रसे पाके च मधुरः सुगन्धिः सन्निपातहा ३६

भाषा–हिरनका मांस शीतल, मल तथा मूत्रको बांधनेवाला, अग्निप्रदीपक, हलका, रसमें तथा पाकमें मीठा, सुगंधि और सन्निपातनाशक है ॥ ३६ ॥

एणहरिणगुणाः ।

एणः कषायो मधुरः पित्तासृक्कफवातहृत् । संग्राही रोचनो बल्यो ज्वरप्रशमनः स्मृतः ३७

भाषा–एण नामक मृगका मांस कसैला, मीठा, ग्राही, रुचिकारक, बलदायक है और पित्त, रक्तविकार, कफ, वात तथा ज्वरका नाश करता है ॥ ३७ ॥

कुरङ्गगुणाः ।

कुरङ्गो बृंहणो बल्यः शीतलः पित्तहद्गुरुः । मधुरो वातहद्ग्राही किञ्चित्कफकरः स्मृतः॥ ३८॥

भाषा–कुरंग नामक मृगका मांस पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, शीतल, पित्तनाशक, भारी, मधुर, वातनाशक, ग्राही और किंचित् कफकारक है ॥ ३८ ॥

रोझनामानि ।

ऋष्यो नीलाण्डकश्चापि गवयो रोझ इत्यपि ।

भाषा–ऋष्य, नीलांडक, गवय और रोझ ये रोझके संस्कृत नाम हैं ॥

रोझगुणाः ।

गवयो मधुरो बल्य स्निग्धोष्णः कफपित्तलः ।

भाषा–रोझका मांस मधुर, बलदायक, स्निग्ध, गरम, कफकारक तथा पित्तकारक है ॥

पृषतगुणाः ।

पृषतस्तु भवेत्स्वादुर्ग्राहकः शीतलो लघुः । दीपनो रोचनः श्वासज्वरदोषत्रयास्रजित् ॥ ३९ ॥

भाषा–पृषत (चित्तल) नामक मृगका मांस मधुर, ग्राही, शीतल, हलका, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक है और श्वास, ज्वर, त्रिदोष तथा रक्तविकारका नाश करता है ॥ ३९ ॥

न्यंकुगुणाः ।

न्यंकुः स्वादुर्लघुर्बल्यो वृष्यो दोषत्रयापहः ।

भाषा–न्यंकु नामक मृग (बारहसिंगा) का मांस मधुर, हलका, बलदायक, वीर्यवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है ॥

सावरगुणाः ।

सावरं पललं स्निग्धं शीतलं गुरु च स्मृतम् । रसे पाके च मधुरं कफदं रक्तपित्तहृत् ॥ ४० ॥

भाषा–सावर मृगका मांस स्निग्ध, शीतल, भारी, रसमें तथा पाकमें मीठा, कफकारक और रक्तपित्तनाशक है ॥ ४० ॥

राजीवगुणाः ।

राजीवस्तु गुणैर्ज्ञेयः पृषतेन समो जनैः ।

भाषा–राजीवनामक मृगके मांसके गुण पृषत चित्तलके मांसके सदृशही हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुण्डीगुणाः ।

मुण्डी तु ज्वरकासास्रक्षयश्वासापहो हिमः ।

भाषा—मुण्डी (सींगरहित) मृगका मांस शीतल है और ज्वर, खांसी रक्तविकार, क्षय तथा श्वासका नाश करता है ॥

बिलशयाः ।

तत्र शशनामानि ।

लम्बकर्णः शशः शूली लोमकर्णो बिलेशयः ।

भाषा—लंबकर्ण, शश, शूली, लोमकर्ण और बिलेशय ये खरगोश (चौगडा) के संस्कृत नाम हैं ॥

शशगुणाः ।

शशः शीतो लघुर्ग्राही रूक्षः स्वादुः सदा हितः । वह्निकृत्कफपित्तघ्नो वातसाधारणः स्मृतः ॥ ज्वरातीसारशोषास्रश्वासामयहरश्च सः ॥ ४१ ॥

भाषा—खरगोशका मांस शीतल, हलका, ग्राही, रूखा, स्वादु, सदा हितकारी, अग्निकारक, कफनाशक, पित्तनाशक, साधारण वातकारक है और ज्वर, अतिसार, शोष, रक्तविकार तथा श्वासको नष्ट करता है ॥ ४१ ॥

सेधानामानि ।

सेधा तु शल्यकः श्वावित्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ।

भाषा—सेधा, शल्यक और श्वावित् ये सेहके संस्कृत नाम हैं ॥

सेधागुणाः ।

शल्यकः श्वासकासास्रशोषदोषत्रयापहः ।

भाषा—सेहका मांस श्वास, खांसी, रक्तविकार, शोष तथा त्रिदोषका नाश करता है ॥

पक्षिनामानि ।

पक्षी खगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः । शकुनिर्विः पतत्री च विष्किरो विकिरोऽण्डजः ४२॥

भाषा—पक्षी, खग, विहंग, विहग, विहंगम, शकुनि, वि, पतत्री, विष्किर, विकिर और अंडज ये पक्षीके संस्कृत नाम हैं ॥ ४२ ॥

पक्षिमांसगुणाः ।

धान्याङ्कुरचरा येऽत्र तेषां मांसं लघूत्तमम् । आनूपं बलकृन्मांसं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ४३॥

भाषा—जो पक्षी धान्य तथा अंकुर खानेवाले हैं उनका मांस हलका और उत्तम है. जो पक्षी जलमें रहनेवाले हैं उनका मांस स्निग्ध, बलदायक और बहुत भारी है ॥ ४३ ॥

तेषु विष्किरेषु वर्तकनामानि ।

वर्तीको वर्तकश्चित्रस्ततोऽन्यो वर्त्तका स्मृता ।

भाषा—वर्त्तीक, वर्तक और चित्र ये बटेरके संस्कृत नाम हैं. इसकी जातिके दूसरे पक्षियोंको वर्त्तका कहते हैं ॥

वर्तकगुणाः ।

वर्त्तकोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः । सुरुच्यः शुक्रदो बल्यो वर्त्तकाल्पगुणा ततः ॥४४॥

भाषा—बटेरका मांस अग्निकारक, शीतल, रुचिकारी, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, ज्वरनाशक, तथा त्रिदोषनाशक है. वर्तकामें इससे हीन गुण हैं ॥ ४४ ॥

लावनामानि ।

लावा विष्किरवर्गेषु ते चतुर्धा मता बुधैः । पांशुलो गौरकोऽन्यस्तु पौण्ड्रको दर्भरस्तथा ॥४५

भाषा—विष्किरवर्गमें लवामी है, वह पांशुल, गौरक, पौण्ड्रक और दर्भर इस भांति चार प्रकारका होता है ॥ ४५ ॥

लावमांसगुणाः ।

लावा वह्निकराः स्निग्धा गरघ्ना ग्राहिका हिताः ॥ पांशुलः श्लेष्मलस्तेषुवीर्योष्णोऽनिलनाशनः४६

गौरो लघुतरो रूक्षो वह्निकारी त्रिदोषजित् । पौण्ड्रकः पित्तकृत्किञ्चिल्लघुर्वातकफापहः ॥ दर्भरो रक्तपित्तघ्नो हृदामयहरो हिमः ॥ ४७ ॥

भाषा—लवेका मांस अग्निकारक, स्निग्ध, विषविनाशक, ग्राही और हितकारी है. पांशुलजातिका लवा कफकारक, उष्णवीर्य और वातनाशक है. गौरकजातिका लवा अत्यन्त हलका, रूक्ष, अग्निकारक और त्रिदोषनाशक है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पौड्रकजातिका लवा पित्तकर्ता, किंचित् हलका, वातनाशक तथा कफनाशक है और दर्भरजातिका लवा रक्तपित्तनाशक, हृदयरोगहारक और शीतल है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

वार्तीकनामानि ।

वार्तीको वर्तिचटको वार्तीकश्चैव स स्मृतः ।

भाषा–वार्तीक, वर्तिचटक और वार्तीक ये बगेरेके संस्कृत नाम हैं ॥

वार्तीकगुणाः ।

वार्तीको मधुरः शीतो रूक्षश्च कफपित्तनुत् ।

भाषा–बगेरेका मांस शीतल, रूक्ष और कफनाशक तथा पित्तनाशक है ॥

तित्तिरिनामानि ।

तित्तिरिः कृष्णवर्णः स्याच्चित्रोऽन्यो गौरतित्तिरिः ।

भाषा–जो तीतर काले रंगका हो वह काला तीतर और जो चित्रविचित्र वर्णका हो वह गौर तीतर कहाता है ॥

तित्तिरिगुणाः ।

तित्तिरिर्बलदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः । श्वासकासज्वरहरस्तस्माद्गौरोऽधिको गुणैः ॥ ४८ ॥

भाषा–तीतरका मांस बलदायक, ग्राही है और हिचकी, त्रिदोष, श्वास, खांसी तथा ज्वरका नाश करता है. काले तीतरकी अपेक्षा गौर तीतरके मांसमें अधिक गुण हैं ॥ ४८ ॥

चटकनामानि ।

चटकः कलविङ्कः स्यात्कुलिङ्गः कालकण्ठकः ।

भाषा–चटक, कलविंक, कुलिंग और कालकण्टक ये चिडेके संस्कृत नाम हैं ॥

चटकगुणाः ।

कुलिङ्गः शीतलः स्निग्धः स्वादुः शुक्रकफप्रदः । सान्निपातहरो वेश्मचटकश्चातिशुक्रलः ॥ ४९ ॥

भाषा–चिडेका मांस शीतल, स्निग्ध, मधुर, वीर्यवर्द्धक, कफवर्द्धक और सन्निपातनाशक है. घरोंमें रहनेवाले चिडेका मांस अत्यन्त वीर्यवर्द्धक है ॥ ४९ ॥

कुक्कुटनामानि ।

कुक्कुटः कृकवाकुः स्यात्कालज्ञश्चरणायुधः । ताम्रचूडस्तथा दक्षो प्रातर्नादी शिखण्डिकः ५०

भाषा–कुक्कुट, कृकवाकु, कालज्ञ, चरणायुध, ताम्रचूड, दक्ष, प्रातर्नादी और शिखंडिक ये मुरगेके संस्कृत नाम हैं ॥५० ॥

कुक्कुटगुणाः ।

कुक्कुटो बृंहणः स्निग्धो वीर्योष्णोऽनिलहृद्गुरुः । चक्षुष्यः शुक्रकफकृद्बल्यो वृष्यः कषायकः ५१ आरण्यकुक्कुटः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलो गुरुः । वातपित्तक्षयवमिविषमज्वरनाशनः ॥ ५२ ॥

भाषा–मुरगेका मांस पुष्टिदायक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, वातनाशक, भारी, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यवर्द्धक कफवर्धक, बलदायक, वृष्य और कसैला है. वनमुरगेका मांस स्निग्ध, पुष्टिकारक, कफकर्ता, भारी है और वात, पित्त, क्षय, वमन तथा विषमज्वरका नाश करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

प्लवदाः ।

हारीतनामानि ।

हारीतो रक्तपीतः स्याद्धरितोऽपि स कथ्यते ।

भाषा–हारीत, रक्तपीत और हरित ये हरियलके संस्कृत नाम हैं ॥

हरितमांसगुणाः ।

हारीतो रूक्ष उष्णश्च रक्तपित्तकफापहः । स्वेदस्वरकरः प्रोक्त ईषद्वातकरश्च सः ॥ ५३ ॥

भाषा–हरियलका मांस, रूखा, गरम, रक्तपित्तनाशक, कफनाशक, स्वेदकारक स्वरको उत्तम करनेवाला और किंचित् वातकारक है ॥ ५३ ॥

पाण्डुनामानि ।

पाण्डुस्तु द्विविधो ज्ञेयश्चित्राक्षः कलध्वनिः । द्वितीयो धवलः प्रोक्तः स कपोतः स्फुटस्वनः ५४

भाषा–पंडाकृता दो प्रकारकी होती है. एक चित्रित पंखोंयुक्त मीठे स्वरवाली होती है और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरी सफेद वर्णयुक्त स्फुट शब्दोंवाली हो ती है, पहिलीको पाण्डु और दूसरीको धवल और कपोत कहते हैं ॥ ५४ ॥

पांडुमांसगुणाः ।

चित्रपक्षः कफहरो वातघ्नो ग्रहणीप्रणुत् ।
धवलः पाण्डुरुद्दिष्टो रक्तपित्तहरो हिमः ॥५५॥

भाषा—चित्रपक्षका मांस कफनाशक और वातनाशक तथा संग्रहणीनाशक है. धवलका मांस रक्तपित्तनाशक और शीतल है ॥ ५५ ॥

मयूरनामानि ।

मयूरश्चन्द्रकी केकी मेघरावो भुजङ्गभुक् ।
शिखी शिखावलो बर्ही शिखण्डी नीलकण्ठकः ॥ शुक्लापाङ्गः कलापी च मेघनादानुलास्यपि ॥ ५६ ॥

भाषा—मयूर, चन्द्रकी, केकी, मेघराव, भुजंगभुक्, शिखी, शिखावल, बर्ही, शिखंडी, नीलकण्ठ, शुक्लोपांग, कलापी और मेघनादानुलासी ये मोरके संस्कृत नाम हैं ॥ ५६ ॥

मयूरमांसगुणाः ।

रसे पाके च मधुरः संग्राही वातशान्तिकृत् ।

भाषा—मोरका मांस रसमें तथा पाकमें मधुर, ग्राही और वातनाशक है ॥

पारावतनामानि ।

पारावतः कलरवः कपोतो रक्तवर्द्धनः ।

भाषा—पारावत, कलरव, कपोत और रक्तवर्द्धक ये परेवा और कबूतरके संस्कृत नाम हैं ॥

पारावतगुणाः ।

पारावतो गुरुः स्निग्धो रक्तपित्तानिलापहः ।
संग्राही शीतलस्तज्ज्ञैः कथितो वीर्यवर्द्धनः ५७

भाषा—पारावत और कबूतर इन दोनोंका मांस भारी, स्निग्ध, ग्राही, शीतल वीर्यवर्द्धक और रक्तपित्तनाशक तथा वातनाशक है ॥५७॥

पक्ष्यण्डगुणाः ।

नातिस्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाकरसानि च ।
वातघ्न्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम् ॥ ५८ ॥

भाषा—पक्षियोंका अंडा बहुत स्निग्ध नहीं, वृष्य, भारी, पाकमें तथा रसमें मधुर, वातनाशक और अत्यंत वीर्यवर्द्धक है ॥ ५८ ॥

ग्राम्यच्छागनामानि ।

छागलो बर्करश्छागो बस्तोऽजः क्षेलकः स्तुभः ।
अजा छागी स्तुभा चापि छेलिका च गलस्तनी ॥ ५९ ॥

भाषा—छागल, बर्कर, छाग, बस्त, अज, क्षेलक और स्तुभ ये बकरेके संस्कृत नाम हैं और अजा, छागी, स्तुभा, छेलिका और गलस्तनी ये बकरीके संस्कृत नाम हैं ॥ ५९ ॥

ग्राम्यच्छागमांसगुणाः ।

छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादुपाकं त्रिदोषनुत् ।
नातिशीतमदाहि स्यात्स्वादु पीनसनाशनम् ६०
परं बलकरं रुच्यं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् । अजायास्त्वप्रसूताया मांसं पीनसनाशनम् ॥ ६१ ॥
शुष्ककासेऽरुचौ शोषे हितमग्नेश्च दीपनम् ।
अजासुतस्य बालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम् ६२
हृद्यं ज्वरहरं श्रेष्ठं सुखदं बलदं भृशम् । मांसं निष्कासिताण्डस्य छागस्य कफकृद्गुरु ॥ ६३ ॥
स्रोतःशुद्धिकरं बल्यं मांसदं वातपित्तनुत् ।
वृद्धस्य वातलं रूक्षं तथा व्याधिमृतस्य च ॥
ऊर्द्ध्वजत्रुविकारघ्नं छागमुण्डं रुचिप्रदम् ॥६४॥

भाषा—बकरेका मांस हलका, स्निग्ध, पाकमें मीठा, त्रिदोषनाशक, बहुत शीतल नहीं, दाहकारक नहीं, स्वादु, पीनसनाशक, अत्यन्त बलकर्ता, रुचिकारी, पुष्टिदायक और वीर्यवर्द्धक है. अप्रसूता (विना ब्याई) बकरीका मांस पीनसको नष्ट करनेवाला, अग्निप्रदीपक और सूखी खांसी, अरुचि तथा शोषरोगमें हितकारी है. बकरीके बच्चेका मांस बहुत हलका, हृदयको प्रिय, ज्वरनाशक, श्रेष्ठ, सुखदायक और बहुत बलदायक है. जिसके अंड निकाल डाले हों ऐसे बकरेका मांस कफकारक, भारी, नाडियोंको शुद्ध करनेवाला, बलदायक, मांसवर्द्धक,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वातनाशक तथा पित्तनाशक है. वृद्ध, रोगयुक्त और मृतक बकरेका मांस वातकारक और रूखा है. बकरेके मस्तकका मांस हंसलीसे ऊपरके विकारोंको नष्ट करनेवाला और रुचिकारी ह ॥ ६०–६४ ॥

मेषनामानि ।

मेद्रो मेढो हुडो मेष उरणोऽप्येडकोऽपि च । अविर्वृष्णिस्तथोर्णायुः कथ्यंते तद्गुणा अथ ६५

भाषा–मेद्र, मेढ, हुड, मेष, उरण, एडक, अवि, वृष्णि और ऊर्णायु ये मेंढेके संस्कृत नाम हैं ॥ ६५ ॥

मेषमांसगुणाः ।

मेषस्य मांसं पुष्टं स्यात्पित्तश्लेष्मकरं गुरु । तरुण-वाण्डविहीनस्य मांसं किंचिल्लघु स्मृतम् ॥६६॥

भाषा–मेंढेका मांस पुष्टिदायक, पित्तकारक, कफकारक और भारी है. जिसके अंड निकाल लिये हों ऐसे मेंढेका मांस कुछ हलका है॥६६॥

एडकनामानि ।

एडकः पृथुशृङ्गः स्यान्मेदःपुच्छस्तु दुम्बकः ।

भाषा–एडक, पृथुशृंग, मेदःपुच्छ और दुम्बक ये दुंबेके संस्कृत नाम हैं ॥

एडकमांसगुणाः ।

एडकस्य पलं ज्ञेयं मेषामिषसमं गुणैः । मेदःपुच्छोद्भवं मांसं हृद्यं वृष्यं श्रमापहम् ॥ पित्त-श्लेष्मकरं किंचिद्वातव्याधिविनाशनम् ॥ ६७ ॥

भाषा–एडकका मांस मेंढेके मांसके सदृश गुणवाला है और दुम्बाका मांस हृदयको प्रिय, वृष्य, श्रमनाशक, पित्तकारक तथा कफकारक है और वातसंबंधी रोगोंको नष्ट करता है ॥६७॥

वृषभनामानि ।

बलीवर्दस्तु वृषभ ऋषभश्च तथा वृषः । अनड्वान्सौरभेयोऽपि गौरुक्षा भद्र इत्यपि ॥ सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौरुदाहृता ॥ ६८ ॥

भाषा–बलीवर्द, वृषभ, ऋषभ, वृष्य, अनड्वान्, सौरभेय, गौ, उक्षा और भद्र ये बैलके संस्कृत नाम हैं और सुरभि, सौरभेयी, माहेयी और गौ ये गायके संस्कृत नाम हैं ॥ ६८ ॥

गोमांसगुणाः ।

गोमांसं तु गुरु स्निग्धं पित्तश्लेष्मविवर्द्धनम् । बृंहणं वातहृद्व्यायमपथ्यं पीनसप्रणुत् ॥ ६९ ॥

भाषा–बैलका मांस भारी, स्निग्ध, पित्तवर्द्धक, कफवर्द्धक, पुष्टिकारक, वातनाशक, बलदायक, अपथ्य और पीनसरोगनाशक है ॥ ६९ ॥

अश्वनामानि ।

घोटकेऽप्यश्वतुरगास्तुरङ्गाश्च तुरङ्गमाः । वाजि-वाहावंगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः ॥ ७० ॥

भाषा–घोटक, अश्व, तुरग, तुरंगम, वाजि, वाह, अर्व, गन्धर्व, हय, सैन्धव, और सप्ति ये घोडेके संस्कृत नाम हैं ॥ ७० ॥

अश्वगुणाः ।

अश्वमांसं तु सुरसं बह्निकृत्कफपित्तलम् । वात-हृद्रोगघं बल्यं वयस्थं मधुरं लघु ॥ ७१ ॥

भाषा–घोडेका मांस करैला, अग्निकारक, कफ तथा पित्तको करनेवाला, वातनाशक, पुष्टिदायक, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी, मधुर और हलका है ॥ ७१ ॥

क्रूलेचराः ।

तत्र महिषनामानि ।

महिषो घोटकारिः स्यात्कासरश्च रजस्वलः । पीनस्कन्धः कृष्णकायो लुलायो यमवाहनः ७२

भाषा–महिष, घोटकारि, कासर, रजस्वल, पीनस्कन्ध, कृष्णकाय, लुलाय और यमवाहन ये भैंसेके संस्कृत नाम हैं ॥ ७२ ॥

महिषमांसगुणाः ।

महिषस्यामिषं स्वादु स्निग्धोष्णं वातनाशनम् । निद्राशुक्रप्रदं बल्यं तनुदार्ढ्यकरं गुरु ॥ वृष्यं च मृद्वविण्मूत्रं वातपित्तासृङ्नाशनम् ॥ ७३ ॥

भाषा–भैंसेका मांस मधुर, स्निग्ध, गरम, वातनाशक, निन्द्राकारक, शुक्रदायक, बलदायक, शरीरको दृढ करनेवाला, वृष्य, मल तथा मूत्रको अधिक करनेवाला है और वात, पित्त तथा रक्तविकारका नाश करता है ॥ ७३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मण्डूकनामानि ।

मण्डूकः प्लवगो भेको वर्षाभूर्दर्दुरो हरिः ।

भाषा-मण्डूक, प्लवग, भेक, वर्षाभू, दर्दुर और हरि ये मेंडकके संस्कृत नाम हैं ॥

मंडूकगुणाः ।

मण्डूकः श्लेष्मलो नातिपित्तलो बलकारकः ।

भाषा-मेण्डकका मांस कफकारक, अत्यन्त पित्तकारी नहीं और बलदायक है ॥

पादिनः ।

कच्छपनामानि ।

कच्छपो गूढपात्कूर्मः कमठो दृढपृष्ठकः ।

भाषा-कच्छप, गूढपाद्, कूर्म, कमठ और दृढपृष्ठक ये कछुएके संस्कृत नाम हैं ॥

कच्छपमांसगुणाः ।

कच्छपो बलदो वातपित्तनुत्पुंस्त्वकारकः ।

भाषा-कछुएका मांस बलदायक, वात तथा पित्तको नष्ट करनेवाला और वीर्यकारक है ॥

सद्योहतमांसगुणाः ।

सद्योहतस्य मांसं स्याद्व्याधिघाति यथाऽमृतम् ।
वयःस्थं बृंहणं सात्म्यमन्यथा तद्धि वर्जयेत् ७४

भाषा-तत्कालके मारे हुए जीवोंका मांस अमृतके सदृश रोगनाशक, आयुस्थापक, पुष्टिदायक और शरीरके स्वभावसे मिलता हुआ है इससे इसको ग्रहण करे और बासी मांसको त्याग देवे ॥ ७४ ॥

स्वयंमृतमांसगुणाः ।

स्वयं मृतस्य चावल्यमतीसारकरं गुरु ।

भाषा-स्वयं मरे हुए जीवका मांस बलकी हानिकारक, अतीसारको करनेवाला और भारी है ॥

वृद्धबालमांसगुणाः ।

वृद्धानां दोषलं मांसं बालानां बलदं लघु ।
सपदष्टस्य मांसं च शुष्कमांसं त्रिदोषकृत् ॥
व्यालदष्टं च दुष्टं च शुष्कं शूलकरं परम् ॥७५॥

भाषा-वृद्ध (बुड्ढे) जीवोंका मांस दोषकारक और बालक जीवोंका मांस बलदायक और हलका है. सर्पके काटनेसे मरे हुए जीवोंका मांस और सूखा मांस त्रिदोषकारक है. हिंसक जीवोंके काटनेसे मरे हुए जीवोंका मांस सूखा मांस और दूषितमांस अत्यंत शूलकारक है॥७५॥

विषादिमृतमांसगुणाः ।

विषाम्बुरुङ्मृतस्यैतन्मृत्युदोषरुजाकरम् । क्लिन्नमुत्क्लेशजनकं कृशं वातप्रकोपणम् ॥ तोयपूर्णशिराजालं मृतमप्सु त्रिदोषकृत् ॥ ७६ ॥

भाषा-विष, रोग अथवा जलसे मरे हुए जीवोंका मांस दोषोंको उत्पन्न करनेवाला, रोगकारक और मृत्युदायक है. गीला मास ग्लानिकारक, कृश करनेवाला और वातप्रकोपक है. जिसकी नसोंमें जल भर गया हो उसका मांस और जलसे मरे हुएका मांस त्रिदोषकारी है ॥ ७६ ॥

जात्यादिपरत्वेन गुणाः ।

विहङ्गेषु पुमाञ्श्रेष्ठः स्त्री चतुष्पदजातिषु । पराद्धों लघु पुंसां स्यात्स्त्रीणां पूर्वार्द्धमादिशेत् ॥ ७७ ॥
देहमध्यं गुरुप्रायं सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम् । पक्षक्षेपाद्विहङ्गानां तदेव लघु कथ्यते ॥ ७८ ॥
गुरूण्यण्डानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम् । उरःस्कन्धोदरं कुक्षी पादौ पाणी कटी तथा ७९
पृष्ठत्वग्यकृदन्त्राणि गुरूणीह यथोत्तरम् । लघु वातकरं मांसं खगानां धान्यचारिणाम् ॥ ८० ॥
मत्स्याशिनां पित्तकरं वातघ्नं गुरु कीर्तितम् । पलाशिनां श्लेष्मकरं लघु रूक्षमुदीरितम् ॥८१॥
बृंहणं गुरु वातघ्नं तेषामेवं पलाशिनाम् । तुल्यजातिष्वल्पदेहा महादेहेषु पूजिताः ॥
अल्पदेहेषु शस्यन्ते तथैव स्थूलदेहिनः ॥८२॥

भाषा-पक्षियोंमें पुरुषजातिके पक्षियोंका मांस और पशुओंमें स्त्रीजातिके पशुका मांस उत्तम है. पुरुषोंके ऊपर भागका मांस हलका है और स्त्रियोंका नीचेके भागका मांस उत्तम है. सम्पूर्णदेहके मध्यभागका मांस अधिक भारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता है और पक्षियोंका पंखोंके हिलानेसे देहका मध्यभाग हलका होता है. सम्पूर्ण जातिके पक्षियोंका अंडा और गरदन भारी होती है. तथा छाती, कन्धा, उदर, कोख, पांव, हाथ, कमर, पीठ, त्वचा (चमडी), कलेजा और आंत ये पूर्वपूर्वसे पीछे पीछेके भारी होते हैं. धान्य (गहूं, ज्वार, बाजरा आदि) खानेवाले पक्षियोंका मांस हलका और वातकारक है. मछली खानेवाले पक्षियोंका मांस पित्तकारक, वातनाशक और भारी है. फल खानेवाले पक्षियोंका मांस कफकारक, हलका और रूक्ष है. मांस खानेवाले पक्षियोंका मांस पुष्टिकारक, भारी और वातनाशक है. जिनका देह बडा और मोटा होता है. उनके सदृश जातिके प्राणियोंमें जो छोटे देहवाले होते हैं. उनका मांस उत्तम और जिनका देह छोटा होता है उनके सदृश जातिके प्राणियोंमें जिनका देह बडा होता है उनका मांस उत्तम है ॥ ७७–८२ ॥

मत्स्याः ।

रोहितलक्षणम् ।

रक्तोदरो रक्तमुखो रक्ताक्षो रक्तपक्षतिः । कृष्णपुच्छो झषः श्रेष्ठो रोहितः कथितो बुधैः ॥८३॥

भाषा–जिन मछलियोंके पेट, मुख, नेत्र और पंख ये लाल होते हैं तथा पूंछ काली होती है उनको विद्वानोंने उत्तम रोहू मछली कहा है ॥ ८३ ॥

रोहितगुणाः ।

रोहितः सर्वमत्स्यानां वरो वृष्योऽर्दितार्तिजित् । कषायानुरसः स्वादुर्वातघ्नो नातिपित्तकृत् ॥ ऊर्ध्वजत्रुगतान्रोगान्हन्याद्रोहितमुण्डकम् ॥ ८४ ॥

भाषा–रोहित (रोहू) मछली सर्व मछलियोंमें श्रेष्ठ, वृष्य, अर्दितवात (लकवा) नाशक, कसैली, स्वादु, वातनाशक है और अत्यन्त पित्तकारक नहीं है. रोहूका मस्तक हंसलीसे ऊपरके रोगोंको नष्ट करता है ॥ ८४ ॥

शिलींध्रगुणाः ।

शिलीन्ध्रः श्लेष्मलो बल्यो विपाके मधुरो गुरुः । वातमित्तहरो हृद्य आमवातकरश्च सः ८५

भाषा–सिलन्ध मछली कफकारी, बलदायक, पाकमें मधुर, भारी, वातनाशक, पित्तनाशक, हृदयको प्रिय और आमवातकारक है ॥ ८५ ॥

भंकुरगुणाः ।

भंकुरो मधुरः शीतो वृष्यः श्लेष्मकरो गुरुः । विष्टम्भजनकश्चापि रक्तपित्तहरः स्मृतः ॥८६॥

भाषा–भाकुर मछली मधुर, शीतल, वृष्य, कफकारक, भारी, विष्टम्भजनक और रक्तपित्तनाशक है ॥ ८६ ॥

मोचिकागुणाः ।

मोचिका वातहृद्बल्या बृंहणी मधुरा गुरुः । पित्तहृत्कफकृद्रुच्या वृष्या दीप्ताग्नये हिता ८७

भाषा–मोचिका (मोई) मछली वातनाशक, बलदायक, पुष्टिकारक, मधुर, भारी, पित्तनाशक, कफकारक, रुचि उत्पन्न करनेवाली, वृष्य और जिनकी अग्नि दीपन है उनके लिये हितकारी है ॥ ६८ ॥

पाठीनगुणाः ।

पाठीनः श्लेष्मलो बल्यो निद्रालुः पिशिताशनः । दूषयेद्रुधिरं पित्तकुष्ठरोगं करोति च ॥ ८८ ॥

भाषा–पाठीन (पठिना) मच्छी कफकारक, बलदायक, निद्राजनक, मांसको तोडनेवाली, रुधिरको दूषित करनेवाली और पित्तकारक तथा कोढरोगनाशक है ॥ ८८ ॥

शृङ्गीगुणाः ।

शृङ्गी तु वातशमनी स्निग्धा श्लेष्मप्रकोपणी । रसे तिक्ता कषाया च लघ्वी रुच्या स्मृता बुधैः ॥ ८९ ॥

भाषा–शृंगी (सींगी) मछली वातनाशक, स्निग्ध, पित्तको कुपित करनेवाली, रसमें कडवी, कसैली, हलकी और रुचिकारक है ॥ ८९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इल्लीसगुणाः ।

इल्लीसो मधुरः स्निग्धो रोचनो वह्निवर्द्धनः । पित्तहृत्कफकृत्किञ्चिल्लघुर्वृष्योऽनिलापहः ९०॥

भाषा—इल्सा मछली मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, अग्निवर्द्धक, पित्तनाशक, कफकारक, किंचित् हलकी, वृष्य और वातनाशक है ॥९०॥

शष्कुलीगुणाः ।

शष्कुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तुवरा स्मृता ।

भाषा—सौरी मछली ग्राही, हृदयको प्रिय, मधुर और कसैली है ॥

गर्गरगुणाः ।

गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजित्कफकोपनः ।

भाषा—गर्गरामछली पित्तकारक, किंचित वातनाशक और कफको कुपित करनेवाली है ॥

कविकागुणाः ।

कविका मधुरा स्निग्धा कफघ्ना रुचिकारिणी । किञ्चित्पित्तकरी वातनाशिनी वह्निवर्द्धिनी ॥९१॥

भाषा—कविका (कवई) मछली मधुर, स्निग्ध, कफनाशक, रुचिकारक, किंचित् पित्तकर्ता, वायुको नष्ट करनेवाली और अग्निवर्द्धक है ॥ ९१ ॥

वर्मिमत्स्यगुणाः ।

वर्मिमत्स्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिकरो लघुः ।

भाषा—वर्मीमछली वातनाशक, पित्तहारक, रुचिकारक और हलकी है ॥

दण्डमत्स्यगुणाः ।

दण्डमत्स्यो रसे तिक्तः पित्तरक्तं कफं हरेत् । वातसाधारणः प्रोक्तः शुक्रलो बलवर्द्धनः ॥९२॥

भाषा—दण्डारीमछली रसमें कडवी, रक्तपित्तनाशक, कफनाशक, वातके लिये साधारण और वीर्यको तथा बलको बढानेवाली है ॥९२॥

एरङ्गीगुणाः ।

एरङ्गी मधुरः स्निग्धो विष्टम्भी शीतलो लघुः ।

भाषा—एरंगी मछली मधुर, स्निग्ध, विष्टम्भी, शीतल और हलकी है ॥

महाशफरीगुणाः ।

महाशफरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकफापहः । शिशिरो मधुरो रुच्यो वातसाधारणः स्मृतः ९३

भाषा—महाशफर (पपता) मछली कडवी, पित्तनाशक, कफनाशक, शीतल, मधुर, रुचिकारक और वायुके लिये साधारण ह ॥ ९३ ॥

गरघ्नीगुणाः ।

गरघ्नी मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृत् । कफघ्नी रुचिकृल्लघ्वी दीपनी बलवीर्यकृत् ॥९४॥

भाषा—गरघ्नी (गरई) मछली मधुर, कडवी, कसैली, वातनाशक, पित्तनाशक, कफहारक, रुचिकारक, हलकी, अग्निप्रदीपक और बलवर्धक तथा वीर्यवर्द्धक है ॥ ९४ ॥

मद्गुरगुणाः ।

मद्गुरो वातहृद्बल्यो वृष्यः कफकरो लघुः ।

भाषा—मद्गुर (मंगुरी) मछली वातनाशक, बलदायक, वृष्य, कफकारक और हलकी है ॥

सपादमत्स्यगुणाः ।

सपादमत्स्यो मेधाकृन्मेदःक्षयकरश्च सः । वातपित्तकरश्चापि रुचिकृत्परमो मतः ॥ ९५ ॥

भाषा—सपाद (टेंगरा) मछली बुद्धिवर्द्धक, मेदका क्षय करनेवाली, वातपित्तकारक और रुचिकारक है ॥ ९५ ॥

शफरीगुणाः ।

प्रोष्ठी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रघ्नी कफवातजित् । स्निग्धास्यकण्ठरोगघ्नी रोचनी च लघुः स्मृता ॥ ९६ ॥

भाषा—प्रोष्ठी (शफरी) मछली कडवी, चरपरी, स्वादु, वीर्यनाशक, कफ तथा वातको जीतनेवाली, स्निग्ध, मुखकी विरसताको दूर करनेवाली तथा कण्ठरोगनाशक, रुचिकारी और हलकी है ॥ ९६ ॥

क्षुद्रमत्स्यगुणाः ।

क्षुद्रा मत्स्याः स्वादुरसा दोषत्रयविनाशनाः । लघुपाका रुचिकरा बलदास्ते हिता मताः ९७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–छोटी मछली स्वादु, त्रिदोषनाशक, पाकमें हलकी, रुचिकारी, बलदायक और हितकारी है ॥ ९७ ॥

अतिक्षुद्रमत्स्यगुणाः ।

अतिसूक्ष्माः पुंस्त्वहरा रुच्याः कासानिलापहः ।

भाषा–बहुत छोटी मछली पुरुषतानाशक, रुचिकारी, खांसीको दूर करनेवाली और वातनाशक है ॥

मत्स्याण्डगुणाः ।

मत्स्यगर्भो भृशं वृष्यः स्निग्धः पुष्टिकरो लघुः । कफमेदःप्रदो बल्यो ग्लानिकृन्मेहनाशनः ॥ ९८ ॥

भाषा–मछलीका अंडा अत्यन्त वृष्य, स्निग्ध, पुष्टिकारक, हलका, कफवर्धक, मेदवर्द्धक, बलदायक, ग्लानिकारक और प्रमेहनाशक है ॥९८॥

शुष्कमत्स्यगुणाः ।

शुष्कमत्स्या नवा बल्या दुर्जरा विड्विबन्धिनः ।

भाषा–सूखी हुई मछली बलवर्द्धक, दुर्जर और मलरोधक है ॥

दग्धमत्स्यगुणाः ।

दग्धमत्स्यो गुणैः श्रेष्ठः पुष्टिकृद्बलवर्द्धनः ।

भाषा–भुनी हुई मछली उत्तम, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है ॥

कूपजादिमत्स्यगुणाः ।

कौपमत्स्याः शुक्रमूत्रकृच्छ्रश्लेष्मविवर्द्धनाः । सरोजा मधुराः स्निग्धा बल्या वातविनाशनाः ९९
नादेया बृंहणा मत्स्या गुरवोऽनिलनाशनाः। रक्तपित्तकरा वृष्याः स्निग्धोष्णाः स्वल्पवर्चसः १००
चौञ्जाः पित्तकराः स्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः।
ताडागा गुरवो वृष्याः शीतला मलमूत्रदाः ॥
ताडागवत्क्षिप्तजाता बलायुर्मतिदृक्कराः ॥१०१॥

भाषा–कूप (कुए) की मछली वीर्य, मूत्र का० ८, २ कफको बढानेवाली है. सरोज (छोटे तालाब) की मछली मधुर, स्निग्ध, बलदायक और वातविनाशक है. नदीकी मछली पुष्टिकारक, भारी, वातनाशक, रक्तपित्तकारक, मैथुनशक्तिवर्द्धक, गरम और अल्पविष्ठा लानेवाली है. चौञ्ज (हौज) की मछली पित्तकारक, स्निग्ध, मधुर, हलकी और शीतल है. तडागकी मछली भारी, वृष्य, शीतल और मलजनक तथा मूत्रजनक है. झरनेकी मछली तडागके सदृश, बल, आयु, बुद्धि और दृष्टिको बढानेवाली है ॥ ९९–१०१ ॥

ऋतुविशेषे मत्स्यविशेषगुणाः ।

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः।
वसन्ते ते तु नादेया ग्रीष्मे चौञ्जसमुद्भवाः १०२
तडागजाता वर्षासु तास्वपथ्या नदीभवाः ।
नैर्झराः शरदि श्रेष्ठा विशेषोऽयमुदाहृतः॥ १०३॥

इति श्रीमिश्रलटकतनय श्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे मांसवर्गः समाप्तः ॥ १० ॥

भाषा–हेमन्तऋतुमें कुएकी मछली, शिशिरऋतुमें तालाबकी मछली, वसन्तऋतुमें नदीकी मछली, ग्रीष्मऋतुमें हौज (चोए) की मछली, वर्षाऋतुमें तडागकी मछली और शरदृतुमें झरनेकी मछली श्रेष्ठ है. वर्षाऋतुमें नदीकी मछली अपथ्य है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे मांसवर्गः समाप्तः ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कृतान्नवर्गः

तत्र अन्नानां साधनप्रकाराः सिद्धानां गुणाश्च।

तत्र परिभाषा।

समवायिनि हेतौ ये मुनिभिर्गणिता गुणाः। कार्येऽपि तेऽखिला ज्ञेयाः परिभाषेति भाषिताः ॥ १ ॥ क्वचित्संस्कारभेदेन गुणभेदो भवेद्यतः। भक्तं लघु पुराणस्य शालेस्तच्चिपिटो गुरुः ॥ २ ॥ क्वचिद्योगप्रभावेण गुणान्तरमपेक्ष्यते। कदन्नं गुरु सर्पिश्च लघूक्तं सुहितं भवेत् ॥ ३ ॥

भाषा-मुनिश्वरोंने जिन पदार्थोंमें जो गुण कहे है उन पदार्थोंके बनाये हुए अन्नमेंभी वे सम्पूर्ण गुण होते हैं. ये सामान्यतासे कहा है. किसी अन्नमें संस्कारभेदसे अन्य गुण हो जाते हैं जैसे कि पुराने चावलोंका भात हलका होता है, परन्तु वही शालिचावलोंका बना हुआ भात खिलता नहीं और चिउरा भारी होता है. कहीं संयोगके प्रभावसेभी गुणोंमें अन्तर हो जाता है, जैसे कि दुष्ट अन्न भारी है और घीभी भारी है. परन्तु वह दुष्ट अन्न यदि घीमें बना होय तो हलका और हितकारी होता है ॥ १-३ ॥

भक्तनामानि।

भक्तमन्नं तथान्धश्च क्वचित्कूरं च कीर्त्तितम्। ओदनोऽस्त्री स्त्रियां भिस्सा दीदिविः पुंसि भाषितः ॥ ४ ॥

भाषा-भक्त, अन्न, अंध, ओदन, भिस्सा और दीदिवि ये भातके संस्कृत नाम हैं. कहीं कूरभी भातका नाम है ॥ ४ ॥

भक्तसाधनम्।

सुधौतास्तंडुलाः स्फीतास्तोये पञ्चगुणे पचेत्। तद्भक्तं प्रस्तुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम् ॥ ५ ॥

भाषा-भले प्रकार उत्तम रीतिसे धोये हुए चावलोंको पांचगुने जलमें पकावे, जब पक जाय तब वह जल (मांड) निकाल देवे तो यह उष्ण भात निर्मल और गुणकारी होता है ॥ ५ ॥

भक्तगुणाः।

भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघु। अधौतमशृतं शीतं गुर्वरुच्यं कफप्रदम् ॥ ६ ॥

भाषा-भात अग्निकारक, पथ्य, तृप्तिदायक, रुचिकारक और हलका है. विना धोये हुए चावलोंका, विना मांड निकाला हुआ भात और शीतल हुआ भात भारी, अरुचिकारक और कफवर्द्धक है ॥ ६ ॥

दालीनामानि।

दलितं तु शमीधान्यं दालिर्दाली स्त्रियामुभे। दाली तु सलिले सिद्धा लवणार्द्रकहिङ्गुभिः ॥ संयुक्ता सूपनाम्नी स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ७

भाषा-फलीके (मूंग, चना, अरहर, उरद आदि) धान्योंको दलनेसे दाल हो जाती है. दालि और दाली ये दालके संस्कृत नाम हैं. जलमें डालकर दालको पकावे, जब उसीज जाय तब उसमें नमक, अदरख और हींग यथायोग्य डाले तब वह सूप (दाल) तयार होती है ॥ ७ ॥

दालीगुणाः।

सूपो विष्टम्भको रूक्षः शीतस्तु स विशेषतः। निस्तुषो भृष्टसंसिद्धो लाघवं सुतरां व्रजेत् ॥ ८ ॥

भाषा-सूप (दाल) विष्टम्भकारी, रूक्ष और विशेषकरके शीतल है. भुनी हुई छिलके रहित दाल अत्यन्त हलकी है ॥ ८ ॥

कृसरासाधनम्।

तण्डुला दालिसंमिश्रा लवणार्द्रकहिङ्गुभिः। संयुक्ताः सलिले सिद्धाः कृसरा कथिता बुधैः ॥ ९ ॥

भाषा-दाल और चावल मिलाकर उसमें नमक, अदरक और हींग डालकर जलमें सिद्ध करे उसको विद्वानोंने कृशरा (खिचरी कहा है ॥ ९ ॥

कृसरागुणाः।

कृसरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्तकफप्रदा। दुर्जरा बुद्धिविष्टम्भमलमूत्रकरी स्मृता ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–खिचरी वीर्यवर्द्धक, बलकारक, भारी, कफ तथा पित्तको उत्पन्न करनेवाली, दुर्जर, बुद्धि, विष्टम्भ, मल तथा मूत्रको बढानेवाली है ॥ १० ॥

तापहारीसाधनम् ।

घृते हरिद्रासंयुक्ते माषजां भर्जयेद्वटीम् । तंडुलांश्चापि निर्धौतान्सहैव परिभर्जयेत् ॥ ११ ॥ सिद्धयोग्यं जलं तत्र प्रक्षिप्य कुशलः पचेत् । लवणार्द्रकहिंगूनि मात्रया तत्र निःक्षिपेत् ॥ एषा सिद्धिः समानज्ञा प्रोक्ता तापहरी बुधैः ॥ १२ ॥

भाषा–घीमें हलदी डालकर उसमें उडदकी बडी और धुले हुए स्वच्छ चावलोंको भून लेवे, पश्चात् जितने जलमें पक जाय उतना जल चढाकर कुशल पुरुष पकावे और यथायोग्य नमक, अदरख और हींग डाले, जब भली भांति पक जाय तब तापहारी (ताहरी) कहाती है ॥ ११ ॥ १२ ॥

तापहरीगुणाः ।

भवेत्तापहरी बल्या वृष्या श्लेष्माणमाचरेत् । बृंहणी तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्तहरा स्मृता १३

भाषा–ताहरी तृप्तिदायक, रुचिकारक, बलदायक, वृष्य, कफकारक, पुष्टिदायक भारी और पित्तनाशक है ॥ १३ ॥

परमान्ननामानि ।

पायसं परमान्नं स्यात्क्षीरिकापि तदुच्यते ।

भाषा–पायस, परमान्न और क्षीरिका ये खीरके संस्कृत नाम हैं ॥

परमान्नसाधनम् ।

शुद्धेऽर्द्धपक्के दुग्धे तु घृताक्तांस्तण्डुलान्पचेत् । ते सिद्धाः क्षीरिका ख्याता ससिताज्ययुतोत्तमा ॥ १४ ॥

भाषा–अधऔटे स्वच्छ दूधमें घीके भुने हुए चावल डाले जब चावल पकजांय तब उसमें स्वच्छ बूरा और घी डाले यह उत्तम खीर बनजाती है ॥ १४ ॥

परमान्नगुणाः ।

क्षीरिका दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बलवर्द्धिनी ।

भाषा–खीर दुर्जर, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है ॥

नालिकेरक्षीरीसाधनम् ।

नालिकेरं तनूकृत्य छन्नं पयसि गोः क्षिपेत् । सितागव्याज्यसंयुक्ते तत्पचेन्मृदुनाऽग्निना १५

भाषा–नारियल (गोले) के छोटे २ टुकडे करके गायके दूधमें डाले और उसमें स्वच्छ खांड और गायका घी डाले इस प्रकार धीमी अग्निसे पकावे तो नारियलकी खीर बनजाती है ॥ १५ ॥

नालिकेरक्षीरीगुणाः ।

नालिकेरोद्भवा क्षीरी स्निग्धा शीतातिपुष्टिदा । गुर्वी सुमधुरा वृष्या रक्तपित्तानिलापहा ॥ १६ ॥

भाषा–नारियलकी खीर स्निग्ध, शीतल, बहुत पुष्टिकारक, भारी, मधुर, वीर्यवर्द्धक और रक्तपित्तनाशक तथा वातनाशक है ॥ १६ ॥

समितासाधनम् ।

समितां वर्त्तिकां कृत्वा सूक्ष्मां तु यवसान्निभाम् । शुष्कां क्षीरेण संसाध्या भोज्या घृतसितान्विता ॥ १७ ॥

भाषा–मैदाकी बहुत बारीक जौके सदृश बत्ती बंटकर सुखावे, फिर दूधमें पकावे और घी तथा खांड डालकर सेवन करे ॥ १७ ॥

समितागुणाः ।

सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्तानिलापहा । ग्राहिणी सन्धिकृद्रुच्या तां खादेन्नातिमात्रया ॥ १८ ॥

भाषा–यह सिमई तृप्तिकारक, बलवर्द्धक, भारी, पित्तनाशक, वातनाशक, ग्राही (मलको रोकनेवाली), सन्धानकारक और रुचिको उत्पन्न करनेवाली है, इसको बहुत नहीं खावे ॥ १८ ॥

मण्डकसाधनम् ।

गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोषितास्ततः । प्रोक्षिता यन्त्रनिष्पिष्टाश्चालिताः सामिताः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्मृताः ॥ १९ ॥ वारिणा कोमलां कृत्वा सामितां साधु मर्दयेत् । हस्तलालनया तस्या लोप्त्रीं सम्यक् प्रसारयेत् ॥ २० ॥ अधोमुखघटस्यै-तद्विस्तृतं प्रक्षिपेद्बहिः । मृदुना वह्निना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते ॥ २१ ॥ (लोप्त्री (लोई) इति लोके) ।

भाषा-सफेद गेहूं धोकर ओखलीमें कूट्ले फिर सुखाकर पिसवावे और हेलक (कपडेकी चलनी) में छानले उसको मैदा कहते हैं. मैदाको पानीमें मांडकर भली भांति कुचले, पश्चात् हाथोंसे लोई बनाकर रोटीके सदृश करले, फिर चूल्हेपर उलटे घडेकी तलीपर डालकर मन्दाग्निसे पकावे इसको मण्डक कहते हैं ॥ १९-२१ ॥

मंडकगुणाः ।

दुग्धेन साज्यखण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः । अथवा सिद्धमांसेन सतक्रवटकेन वा ॥ २२ ॥ मण्डको बृंहणो वृष्यो बल्यो रुचिकरो भृशम् । पाकेऽपि मधुरो ग्राही लघुर्दोषत्रयापहः ॥२३॥

भाषा-खांड और घृतयुक्त दूधके साथ अथवा पकाये हुए मांसके साथ तथा दहीपको-डीके साथ भक्षण करे. मण्डक पुष्टिकारक, वृष्य, बलवर्द्धक, अत्यन्त रुचिकारक, पाकमें मधुर, ग्राही, हलका है और तीनों दोषोंको नष्ट करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

पूरीसाधनम् ।

कुर्यात्सामितयाऽतीव तन्वी पर्पटिका ततः । स्वेदयेत्तप्तके तां तु पोलिकां जगदुर्बुधाः ॥२४॥

भाषा-मैदाकी अथवा चूनकी पतली रोटीके सदृश पूरी बेल ले, पश्चात् घीमें सेकले उसको पोलिका (पूरी) कहते हैं ॥ २४ ॥

पूरीगुणाः ।

तां खादेल्लप्सिकायुक्तां तस्या मण्डकवद्गुणाः ।

भाषा-इसको लप्सी (हलुए) के साथ भक्षण करे, इसके गुण मण्डकके सदृश हैं ॥

लप्सिकासाधनम् ।

सामितां सर्पिषा भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत् । तस्मिन्घनीकृते न्यस्येल्लवङ्गं मरिचादिकम् ॥ सिद्धैषा लप्सिका ख्याता गुणांस्तस्या वदा-म्यहम् ॥ २५ ॥

भाषा-मैदाको घीमें भूनकर शर्करा (बूरा) युक्त पानीमें डाले, जब पकते गाढा हो जाय तब उसमें लौंग मिरच आदि डाले, सिद्ध होने-पर लप्सिका कहाती है ॥ २५ ॥

लप्सिकागुणाः ।

लप्सिका बृंहणी वृष्या बल्या पित्तानिलापहा । स्निग्धा श्लेष्मकरी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम् २६

भाषा-लप्सिका (हलुआ) पुष्टिदायक, वृष्य, बलकारक, वातनाशक पित्तनाशक, स्निग्ध, कफकारक, भारी, रुचिकारी और अत्यन्त तृप्तिकारक है ॥ २६ ॥

रोटिकासाधनम् ।

शुष्कगोधूमचूर्णेन किञ्चित्पुष्टां च पोलिकाम् । तप्तके स्वेदयेत्कृत्वा भूयोऽङ्गारैश्च तां पचेत् ॥ सिद्धैषा रोटिका प्रोक्ता गुणं तस्या प्रचक्ष्महे २७

भाषा-सूखे गेहूंके चूनमें पानी डालकर मांडले और बेलकर तवेपर सेंककर फिर नीचे अंगारोंपर सेंके, जब भली भांति सिक जाय तब रोटिका (रोटी) कहाती है ॥२७ ॥

रोटिकागुणाः ।

रोटिका बलकृद्रुच्या बृंहणी धातुवर्द्धनी । वातघ्नी कफकृद्गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिता॥२८॥

भाषा-रोटिका (रोटी) बलकारक, रुचि-कारी, पुष्टिकारक, धातुवर्द्धक, वातनाशक, कफकारी, भारी और जिनकी अग्नि प्रदीप्त है उनको हितकारी है ॥ २८ ॥

अंगारकर्कटीसाधनम् ।

शुष्कगोधूमचूर्णं तु साम्बु गाढं विमर्दयेत् । विधाय वटकाकारं निर्धूमेऽग्नौ शनैः पचेत् २९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–सूखे हुए उत्तम गेहूंके चूनको करी मांडकर हाथोंसे गोल २ लोई बनाले और धूमरहित मन्द २ अग्निसे पकावे जब भली भांति सिद्ध हो जाय उसको अंगारकर्कटी (बाटी) कहते हैं ॥ २९ ॥

अंगारकर्कटीगुणाः ।

अङ्गारकर्कटी ह्येषा बृंहणी शुक्रला लघुः । दीपनी कफकृद्बल्या पीनसश्वासकासजित् ३०

भाषा–बाटी पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक है और पीनस, श्वास तथा खांसीको नष्ट करती है ॥३०॥

यवरोटिकागुणाः ।

यवजा रोटिका रुच्या मधुरा विशदा लघुः । मलशुक्रानिलकरी बल्या हन्ति कफामयान् ३१

भाषा–जौकी रोटी रुचिकारी, मधुर, विशद, हलकी, मलकारक, वीर्यकारक, वातकारक, बलकारी है और कफसंबंधी रोगोंको नष्ट करती है ॥ ३१ ॥

माषरोटिकासाधनम् ।

माषाणां दालयस्तोये स्थापितास्त्यक्तकञ्चुकाः । आतपे शोषिता यन्त्रे पिष्टास्ता धूमसी स्मृताः ॥ धूमसीरचिता चैव प्रोक्ता झर्झरिका बुधैः ॥ ३२ ॥

भाषा–उडदकी दालको पानीमें भिजोकर छिलके निकाल देवे. पश्चात् धूपमें सुखाकर चक्कीमें पिसवावे, उस चूनको धूमसी कहते हैं, धूमसीकी बनाई हुई रोटीको संस्कृतमें झर्झरी कहते हैं ॥ ३२ ॥

झर्झरीगुणाः ।

झर्झरी कफपित्तघ्नी किञ्चिद्वातकरी स्मृता ।

भाषा–यह झर्झरी रोटी कफपित्तनाशक और किंचित् वातकारक है ॥

चणकरोटिकागुणाः ।

चणक्या रोटिका रूक्षा श्लेष्मपित्तास्रनुद्गुरुः । विष्टम्भिनी च चक्षुष्या तद्वणा चातिशष्कुली ॥ ३३ ॥

भाषा–चनेकी रोटी रूखी, विष्टम्भकारक, भारी, नेत्रोंको अहितकारी है और कफ, पित्त तथा रक्तविकारका नाश करती है. तेलकी पूरीमेंभी येही गुण हैं ॥ ३३ ॥

पिष्टिकासाधनम् ।

दालिः संस्थापिता तोये ततोऽपहृतकञ्चुका । शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता बुधैः ॥ ३४ ॥

भाषा–दालको पानीमें भिगोदे, भीजनेपर छुलके निकाल डाले, पश्चात् शिलपै खूब पीसले इसको पिष्टिका (पिट्ठी) कहते हैं ॥ ३४ ॥

वेढमिकासाधनम् ।

माषपिष्टिकया पूर्णगर्भा गोधूमचूर्णतः । रचिता रोटिका सैव प्रोक्ता वेढमिका बुधैः ॥ ३५ ॥

भाषा–गेहूंके मढे हुए आटेमें उडदकी पिट्ठी भरके रोटी बनावे, उसको पिट्ठीकी रोटी (बेढई) कहते हैं ॥ ३५ ॥

वेढमिकागुणाः ।

भवेद्वेढमिका बल्या वृष्या रुच्याऽनिलापहा । उष्मसन्तर्पणी गुर्वी बृंहणी शुक्रला परम् ॥३६॥ भिन्नमूत्रमला स्तन्यमेदःपित्तकफप्रदा । गुदकीलार्दितश्वासपंक्तिशूलानि नाशयेत् ॥ ३७ ॥

भाषा–यह रोटी बलदायक, वृष्य, रुचिकारक, वातनाशक, गरम, तृप्तिदायक, भारी, पुष्टिकारक, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, मलभेदक, मूत्र लानेवाली, दूध तथा मेदको बढानेवाली, पित्तकारक, कफकारक है और गुदकील (गुदाके मस्से), अर्दितवात, श्वास और पंक्तिशूलका नाश करती है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पर्पटसाधनम् ।

धूमसी रचिता हिङ्गुहरिद्रालवणैर्युता । जीरकस्वार्जिकाभ्यां च तनूकृत्य च वेल्लिता ॥३८॥

भाषा–उडदकी दालको पानीमें भिजोकर छुलके निकालकर धूपमें सुखावे, उसको पिसवाकर बारीक आटा करले, उस आटेमें हींग, हलदी, नमक, जीरा और सज्जी डालकर पानीसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मांडले और बहुत पतला पतला वेललेवे उसको पर्पट (पापड) कहते हैं ॥ ३८ ॥

पर्पटगुणाः ।

पर्पटास्ते सदाङ्गारभृष्टाः परमरोचकाः । दीपनाः पाचना रूक्षा गुरवः किञ्चिदीरिताः ॥३९॥ मौद्गाश्च तद्गुणाः प्रोक्ता विशेषाल्लघवो हिताः । चणकस्य गुणैर्युक्ताः पर्पटाश्चणकोद्भवाः ॥ स्नेहभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुणैः ॥ ४० ॥

भाषा—पापड अंगारोंपर भूनकर खावे तो अत्यन्त रुचिकारी, अग्निप्रदीपक, पाचक, रूक्ष और किंचित् भारी है. इसी प्रकार मूंगकी दालके पापडोंमेंभी गुण हैं, परन्तु हलके और रुचिकारक हैं. चनेके पापडोंमें चनेके सदृश गुण हैं. जो पापड तेलमें भुने जाय तो मध्यम गुणदायक हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

पूरिकासाधनम् ।

माषाणां पिष्टिकां पूर्यात्लवणार्द्रकहिङ्गुभिः । वया पिष्टिकया पूर्णा समिताकृतपोलिका ॥ ततस्तैलेन पक्वा सा पूरिका कथिता बुधैः ४१

भाषा—उडदोंकी पिट्ठीमें नमक, अदरक तथा हींग डालकर मैदाकी लोईमें भर लेवे, पश्चात् बेलकर इसको तेलमें अथवा घीमें सेक लेवे, इसको पूरिका (कचौरी) कहते हैं ॥ ४१ ॥

पूरिकागुणाः ।

रुच्या स्वाद्वी गुरुः स्निग्धा बल्या पित्तास्रदूषिका । चक्षुस्तेजोहरी चोष्णा पाके वातविनाशिनी ॥ तथैव घृतपक्वापि चक्षुष्या रक्तपित्तहृत् ॥ ४२ ॥

भाषा—कचौरी स्वादिष्ठ, भारी, स्निग्ध, बलकारी, पित्त तथा रक्तविकारको दूषित करनेवाली, नेत्रोंका तेज हरनेवाली, पाकमें गरम और वातविनाशक है. यदि यह घीमें बनाई हुई होय तो नेत्रोंको हितकारी और रक्तपित्तनाशक है ॥ ४२ ॥

वटकसाधनम् ।

माषाणां पिष्टिका युक्ता लवणार्द्रकहिङ्गुभिः । कृत्वा विदध्याद्वटकांस्तांस्तैलेषु पचेच्छनैः ४३

भाषा—उडदोंकी पिट्ठीमें नोन, अदरक और हींग मिलाकर धीरे धीरे तेलमें बडे पकावे, अथवा पिट्ठीकी बरी बनाकर तेलमें पकावे ॥४३॥

वटकगुणाः।

विशुष्का वटका बल्या बृंहणा वीर्यवर्द्धनाः । वातामयहरा रुच्या विशेषादर्दितापहाः ॥४४॥ विबन्धभेदिनः श्लेष्मकारिणोऽत्यग्निपूजिताः । संचूर्ण्य निक्षिपेत्तक्रे भृष्टजीरकहिङ्गुभिः ॥४५॥ लवणं तत्र वटकान्सकलानपि मज्जयेत् । शुक्लस्तत्र वटको बलकृद्रोचनो गुरुः ॥ ४६ ॥ विबन्धहृद्विदाही च श्लेष्मलः पवनापहः । राज्यरूपातिनो वान्यान्पाचनांस्तांस्तु भक्षयेत् ॥ ४७ ॥ राज्यक्ता (राइता) इति लोके ।

भाषा—वडे बलदायक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, वायुरोगनाशक, रुचिकारक और विशेषकरके अर्दितवात (लकवा) को दूर कर्त्ता, मलबन्धभेदक (दस्तावर), कफकारी और अग्निप्रदीप्तवालोंके लिये उत्तम है. तथा हींगका चूर्ण भूनकर मट्ठे (छाछ) में डाले, पश्चात् नमक डालकर उनमें वडीं छोड देवे. यह वडी वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, भारी, मलभेदक, विदाही, कफकारक और वातनाशक है. अथवा रायतेमें मिलाकर वा और अन्य पाचन वस्तुओंके साथ खावे ॥ ४४—४७ ॥

काञ्जिकवटकसाधनम् ।

मन्थनी नूतना धार्या कटुतैलेन लेपिता । निर्मलेनाम्बुनापूर्य तस्यां चूर्णं विनिःक्षिपेत् ॥ ४८ ॥ राजिकाजीरलवणहिङ्गुशुण्ठीनिशाकृतम् । निःक्षिपेद्वटकांस्तत्र माण्डस्यास्य च मुद्रयेत् ॥ ततो दिनत्रयादूर्ध्वमम्लाः स्युर्वटका ध्रुवम् ॥ ४९ ॥

भाषा—एक नवीन मट्टीका पात्र लेकर उसमें सरसोंका तेल चुपडे, पश्चात् कडवे तेलको चुपडकर निर्मल जल भरके उसमें राई, जीरा, नमक, हींग, सोंठ और हलदी इनका चूर्ण डालकर वडे डालदे और पात्रका मुख बंद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके तीन दिनतक रखे रहने देवे तो वे वडे खट्टे हो जायंगे. उनको कांजिकवट (कांजीके वडे) कहते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

कांजिकवटकगुणाः ।

काञ्जिकवटको रुच्यो वातघ्नः श्लेष्मकारकः शीतः । दाहं शूलमजीर्णं क्षिप्रं हरते दृगामयेष्वहितः ॥ ५० ॥

भाषा–कांजीके वडे रुचिकारी, वातविनाशक, कफकारक, शीतल, दाहनाशक, शूलनाशक तथा अजीर्णनाशक हैं, नेत्ररोगियोंको अहितकारी हैं ॥ ५० ॥

अम्लिकावटकसाधनम् ।

अम्लिकां स्वेदयित्वा तु जलेन सह मर्दयेत् । तन्नीरे कृतसंस्कारे वटकान्मज्जयेत्पुनः ॥५१॥

भाषा–पक्की इमलीको कतरकर जलमें औटावे और जलके साथही मललेवे, पश्चात् उन बनाये हुए पानीमें वडे छोड दे और नमक मसाला आदि डाल दे तो इमलीके वडे बन जाते हैं ॥ ५१ ॥

अम्लिकावटकगुणाः ।

अम्लिकावटकास्ते तु रुच्या वह्निप्रदीपनाः ॥ वटकस्य गुणैः पूर्वैरेषोऽपि च समन्वितः ॥५२॥

भाषा–इमलीके वडे रुचिकारी, अग्निप्रदीपक हैं इनमें पूर्वोक्त वडोंकेभी गुण हैं ॥ ५२ ॥

मुद्गवटकगुणाः ।

मुद्गानां वटकास्तक्रे भर्जिता लघवो हिमाः । संस्कारजप्रभावेण त्रिदोषशमना हिताः ॥५३॥

भाषा–मूंगके वडे छाछमें भिगोदेवे, उनको सेवन करे तो ये हलके और शीतल हैं. और संस्कारके प्रभावसे त्रिदोषनाशक तथा हितकारी होते हैं ॥ ५३ ॥

माषवटिकासाधनम् ।

माषाणां पिष्टिका हिङ्गुलवणार्द्रकसंस्कृता । तया विरचिता वस्त्रे वटिकाः साधुशोषिताः ॥ भर्जितास्तत्तैलैस्ता अथवाम्बुप्रयोगतः ॥५४॥

भाषा–उडदकी पिट्ठीमें हींग, नोन तथा अदरख मिलाकर कपडेपर वडी तोडकर सुखालेवे. यह वडी तेलमें डालकर अथवा कढीमें डालकर पकावे ॥ ५४ ॥

माषवटिकागुणाः ।

वटकस्य गुणैर्युक्ता ज्ञातव्या रुचिदा भृशम् ।

भाषा–यह वडी वडोंके सदृश गुणवाली है और अत्यन्त रुचिकारक है ॥

कूष्माण्डकवटीगुणाः ।

कूष्माण्डकवटी ज्ञेया पूर्वोक्तवटिकागुणा । विशेषात्पित्तरक्तघ्नी लघ्वी च कथिता बुधैः ५५

भाषा–पेठेकी वडीभी पूर्वोक्त वडीके सदृश गुणवाली है. विशेष करके रक्तपित्तनाशक और हलकी है ॥ ५५ ॥

मुद्गवटीगुणाः ।

मुद्गानां वटिका तद्वद्रुचिता साधिता तथा । पथ्या रुच्या तथा लघ्वी मुद्गसूपगुणा स्मृता ॥ ५६ ॥

भाषा–उपरोक्त प्रकारही मूंगकी वडी बनावे. यह वडी रुचिकारी, हलकी और मूंगकी दालके समान गुणवाली है ॥ ५६ ॥

अलीकमत्स्यसाधनम् ।

माषपिष्टिकया लिप्तं नागवल्लीदलं महत् । तच्च संस्वेदयेद्युक्त्या स्थाल्यामास्तारकोपरि । ततो निष्कास्य तं खण्डशं ततस्तैलेन भर्जयेत् ॥ ५७ ॥ खण्डशं खण्डेन योज्यमिति यावत् । अलीकमत्स्य उक्तोऽयं प्रकारः पाकपण्डितैः । तं वृन्ताकभटित्रेण वास्तूकेन च भक्षयेत् ॥ ५८ ॥

भाषा–वडे नागरवेलके पान उडदकी पिट्ठीमें लपेटकर युक्तिसे कढाईमें पकावे, फिर छोटे छोटे कतरके तेलमें भून लेवे तो अलीकमत्स्य तयार होते हैं. इनको बैंगन के भरतेके साथ अथवा वथुएके सागसे या रायतेसे भक्षण करे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलीकमत्स्यगुणाः ।

अलीकमत्स्याः शुष्का वा किंवा कथितया पुनः । बृंहणा रोचना वृष्या बल्या वातगदापहाः ॥ ५९ ॥ कोष्ठशुद्धिकराः शुष्काः किञ्चित्पित्तप्रकोपणाः । अर्दिते सहनुस्तम्भे विशेषेण हिताः स्मृताः ॥ ६० ॥

भाषा-अलीकमस्य सूखी खावे या कढीके साथ खावे. कढीके साथ खाई हुई पुष्टिकारक, रुचिकारी, वृष्य, बलकारक है और वातसंबंधी रोगोंको नष्ट करती है. यह (अलीक मत्स्य) सूखी खाय तो कोठेको शुद्ध करनेवाली; किंचित् पित्तप्रकोपक और अर्दित वातमें तथा हनुस्तम्भ रोगमें विशेष करके हितकारी है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

कथितासाधनम् ।

स्थाल्यां घृते वा तैले वा हरिद्राहिङ्गु भर्जयेत् । अवलेहनसंयुक्तं तक्रं तत्रैव निक्षिपेत् ॥ एषा सिद्धा समरिचा कथिता कथिता बुधैः ॥ ६१ ॥

भाषा-कढाईमें घी अथवा तेल डालकर उसमें हलदी और हींगको भूने, पश्चात् उसमें घुला हुआ बेसन और मट्ठा डाले, फिर नोन मिरच, मसाला आदि डालकर पकावे, पकनेपर कथिता (कढी) तयार होती है ॥ ६१ ॥

कथितागुणाः ।

कथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वह्निप्रदीपनी । कफानिलविबन्धघ्नी किञ्चित्पित्तप्रकोपिणी ६२

भाषा-कढी पाचक, रुचिकारक, हलकी, अग्निप्रदीपक, किंचित् पित्तप्रकोपक है और कफ, वात तथा मलके अवरोधको नष्ट करती है ॥ ६२ ॥

मुद्गार्द्रकवटकसाधनम् ।

मुद्गपिष्टविरचितान्वटांस्तैलेन पाचितान् । हस्तेन चूर्णयेत्सम्यग्यस्मिंश्चूर्णे विनिःक्षिपेत् ॥ ६३ ॥ भृष्टं हिंग्वार्द्रकं सूक्ष्मं मरीचं जीरकं तथा । निम्बूरसं यवानीं च युक्त्या सर्वं विमिश्रयेत् ॥ ६४ ॥ मुद्गपिष्टे पचेत्सम्यक्स्थाल्यामास्तारकोपरि । तस्यास्तु गोलकं कुर्यात्तन्मध्ये पूरणं क्षिपेत् ॥ तैले तान्गोलकान्पक्त्वा कथितायां निमज्जयेत् ॥ ६५ ॥

भाषा-मूंगकी पिट्ठीकी वडी बनाकर तेलमें पकावे, पश्चात् हाथसे मलकर चूर्ण करले, उसमें भूनी हुई हींग, छोटे छोटे अदरकके टुकडे, भुना हुआ जीरा, मिरच, नींबूका रस और अजवायन ये सब युक्तिसे मिलाकर फिर कढाईमें पकावे, पश्चात् इसके गोले बनाकर उसके भीतर मसाला भरकर फिर उन गोलोंको तेलमें पकावे, पकनेपर कढीमें डाल देवे ॥ ६३-६५ ॥

मुद्गार्द्रकवटकगुणाः ।

गोलकाः पाचकाः प्रोक्तास्ते त्वार्द्रकवटा अपि । मुद्गार्द्रकवटा रुच्या लघवो बलकारकाः ॥ दीपनास्तर्पणाः पथ्यास्त्रिषु दोषेषु पूजिताः ॥ ६६ ॥

भाषा-ये बडे रुचिकारक, पाचक, हलके, बलकारक, अग्निप्रदीपक, तृप्तिकारक, पथ्य और त्रिदोषनाशक हैं ॥ ६६ ॥

पकौरीसाधनम् ।

दालयश्चणकानां तु निस्तुषा यन्त्रपेषिताः । तच्चूर्णं बेसनं प्रोक्तं पाकशास्त्रविशारदैः ॥ वटिका बेसनस्यापि कथितायां निर्भर्जिता ६७

भाषा-चनेकी दालके छुकले छुटाकर चक्कीमें पिसवावे, उस दालके चूर्णको पाकशास्त्र जाननेवाले बेसन कहते हैं, इस बेसनकी वरियोंको कढीमें डाले उसको पकौडी कहते हैं ॥ ६७ ॥

पकौरीगुणाः ।

रुच्या विष्टम्भजननी बल्या पुष्टिकरी स्मृता ।

भाषा-ये वडी रुचिकारक, विष्टम्भजनक, बलदायक और पुष्टिकारक हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मांसस्य प्रकाराः ।

शुद्धमांससाधनम् ।

पाकपात्रे घृतं दद्यात्तैलं च तदभावतः । तत्र हिङ्गु हरिद्रां च भर्जयेत्तदनन्तरम् ॥६८॥ छागादेरस्थिरहितं मांसं तत्खंडितं धुवम् । धौतं निर्गालितं तस्मिन्घृते तद्भर्जयेच्छनैः ॥ ६९ ॥ सिद्धयोग्यं जलं दत्त्वा लवणं तु पचेत्ततः । सिद्धे जलेन संपिष्य वेशवारं परिक्षिपेत् ॥७०॥

भाषा–पकानेके बरतनमें घी और घी न मिले तो तेल डाले तदनन्तर हींग तथा हलदी-को डालकर उसमें भूने पश्चात् बकरी आदिका हड्डीरहित मांस लेवे, उसके टुकडे करके धोवे. पश्चात् तेलमें अथवा घीमें धीरे धीरे पकावे, इसमें नोन और जलभी डाले, जब पक जाय तब उसमें गरम मसाला डाल देवे ॥ ६८–७० ॥

वेशवारद्रव्याणि ।

द्रव्याणि वेशवारस्य नागवल्लीदलानि च । तण्डुलाश्च लवङ्गानि मरीचानि समासतः ॥ अनेन विधिना सिद्धं शुद्धमांसमिति स्मृतम् ॥ ७१ ॥

भाषा–नागरवेलके पान, चावल, लौंग और मिरच ये मसालेके पदार्थ संक्षेपसे जानने. इस प्रकारसे पकाये हुए मांसको शुद्ध मांस कहते हैं ॥ ७१ ॥

शुद्धमांसगुणाः ।

शुद्धमांसं परं वृष्यं बल्यं रुच्यं च बृंहणम् । त्रिदोषशमकं श्रेष्ठं दीपनं धातुवर्द्धनम् ॥ ७२ ॥

भाषा–शुद्ध मांस अत्यन्त वृष्य, बलदा-कय, रुचिकारक, पुष्टिकारी, त्रिदोषनाशक, श्रेष्ठ, अग्निको दीपन करनेवाला और धातु-वर्द्धक है ॥ ७२ ॥

सहद्रकगुणाः ।

छागादेर्मांसमूर्वादेः कुट्टितं खण्डितं पुनः । शुद्धमांसविधानेन पचेदेतत्सहद्रकम् ॥ सहद्रकं गुणैर्ग्रन्थे शुद्धमांसगुणं स्मृतम् ॥ ७३ ॥

भाषा–बकरेके ऊरु आदिकके मांसके टुकडे कर कूट ले और उपरोक्त शुद्ध मांसकी रीतिसे पकावे पकनेपर इसको सहद्रक कहते हैं. सहद्रक मांसमें शुद्धमांसके सदृश गुण हैं ये गुण ग्रंथोंमें कहे हैं ॥ ७३ ॥

तक्रमांससाधनम् ।

पाकपात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रां हिङ्गु भर्जयेत् । छागादेः सकलस्यापि खण्डान्यपि च भर्ज-येत् ॥ ७४ ॥ सिद्धयोग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदु-तरं तथा । जीरकादियुते तक्रे मांसखण्डानि तारयेत् ॥ ७५ ॥

भाषा–पाकपात्र (कढाई, ढेगची) में घी डालकर उसमें हलदी तथा हींग भूनले और बकरीआदिके मांसके टुकडेभी उसमें भूने, फिर यथायोग्य जल डालकर मन्द २ अग्निसे पकावे, पश्चात् जीरा आदि मसाला पडे हुए मट्ठेमें उन मांसके टुकडोंको डाले, तयार होनेपर इसको तक्रमांस (अखनी) कहते हैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

तक्रमांसगुणाः ।

तक्रमांसं तु वातघ्नं लघु रुच्यं बलप्रदम् । कफघ्नं पित्तलं किञ्चित्सर्वाहारस्य पाचनम् ॥ ७६ ॥

भाषा–तक्रमांस (अखनी) वातनाशक, कफ, नाशक, हलका, रुचिकारी, बलदायक, किंचित्-पित्तकारक और सम्पूर्ण प्रकारके आहारको पचानेवाला है ॥ ७६ ॥

हरीसासाधनम् ।

पाकपात्रे तु बृहंति मांसखण्डानि निःक्षिपेत् । पानीयं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिङ्गु जीरकम् ॥७७॥ हरिद्रामार्द्रकं शुण्ठीं लवणं मरिचानि च । तण्डु-लांश्चापि गोधूमाञ्जम्बीराणां रसान्बहून् ॥७८॥ यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि । तथा पचेत्तु निपुणो बहुमांसं क्षितिर्यथा ॥७९॥

भाषा–पाकपात्रमें बडे २ मांसके टुकडे डालकर उसमें पानी, घी, हींग, जीरा, हलदी, अदरख, सोंठ, नमक, मिरच, चावल, गेहूं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा जम्भीरीनींबूका रस बहुत डालके पकावे, जब सब वस्तुयें भली भांति पक जांय तब उतार लेवे इसको हरीसा कहते हैं ॥७७-७९॥

हरीसागुणाः ।

एषा हरीसा बलकृद्धातपित्तापहा गुरुः । शीतोष्णा शुक्रदा स्निग्धा सरा संधानकारिणी ॥८०॥

भाषा-हरीसा (आस) बलदायक, वातनाशक पित्तनाशक, भारी, शीतल, गरम, वीर्यवर्द्धक, दुस्तावर और टूटी हड्डी आदिको जोडनेवाला है ॥ ८० ॥

तलितमांससाधनम् ।

शुद्धमांसविधानेन मांसं सम्यक्प्रसाधितम् । पुनस्तदाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ८१

भाषा-शुद्ध मांसकी रीतिके अनुसार मांसको पकाकर पीछे उसको घीमें तललेवे. उसको तलित मांस कहते हैं ॥ ८१ ॥

तलितमांसगुणाः ।

तलितं बलमेधाग्निमांसौजःशुक्रवृद्धिकृत् । तर्पणं लघु सुस्निग्धं रोचनं दृढताकरम् ॥८२॥

भाषा-तलित मांस तृप्तिकारक, हलका, बहुत स्निग्ध, रुचिकारी, शरीरको दृढ करनेवाला और बल, बुद्धि, अग्नि, मांस, ओज तथा वीर्यको बढानेवाला है ॥ ८२ ॥

शूल्यपलसाधनम् ।

कालखण्डादिमांसानि ग्रन्थितानि शलाकया । घृतं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ तत्तु शूल्यमिदं प्रोक्तं पाककर्मविचक्षणैः ॥ ८३ ॥

भाषा-कलेजेके मांसको कुचलकर घी और नोन मिलाकर लोहेकी सलाईमें लपेटकर धूएरहित अग्निपर पकावे. पाककर्ममें कुशल पुरुष इनको शूल्यमांस (कबाब) कहते हैं ॥ ८३ ॥

शूल्यपलगुणाः ।

शूल्यं पलं सुधातुल्यं रुच्यं वह्निकरं लघु । कफवातहरं बल्यं किञ्चित्पित्तकरं हि तत् ॥८४॥

भाषा-शूल्य मांस अमृततुल्य रुचिकारी, अग्निको दीपन करनेवाला, हलका, कफनाशक, वातनाशक, बलदायक और किंचित् पित्तकारक है ॥ ८४ ॥

मांसशृङ्गाटकसाधनम् ।

शुद्धमांसं तनूकृत्य कर्तितं स्वेदितं जले । लवङ्गहिङ्गुलवणमरिचार्द्रकसंयुतम् ॥ ८५ ॥ एलाजीरकधान्याकनिम्बूरससमन्वितम् । घृते सुगन्धे तद्भृष्टं मांसशृङ्गाटकं स्मृतम् ॥ ८६ ॥

भाषा-शुद्ध मांसके छोटे छोटे टुकडे करके पानीमें पकावे, पश्चात् उसमें लौंग, हींग, नोन, मिरच, अदरक, इलायची, जीरा, धनिया तथा नींबूका रस डालकर घीमें भूनले, उनको मांसशृंगाटक कहते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

मांसशृङ्गाटकगुणाः ।

मांसशृङ्गाटकं रुच्यं बृंहणं बलकृद्गुरु । वातपित्तहरं वृष्यं कफघ्नं वीर्यवर्धनम् ॥ ८७ ॥

भाषा-मांसशृंगाटक रुचिकारी, पुष्टिकारक, बलदायक, भारी, वातनाशक, पित्तनाशक, वृष्य, कफकारक और वीर्यवर्द्धक है ॥ ८७ ॥

मांसरसगुणाः ।

सिद्धमांसरसो रुच्यः श्रमश्वासक्षयापहः । प्रीणनो वातपित्तघ्नः क्षीणानामल्परेतसाम् ८८॥ विश्लिष्टभग्नसन्धीनां शुद्धानां शुद्धिकांक्षिणाम् । स्मृत्योजोबलहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम् ८९ शस्यते स्वरहीनानां दृष्ट्यायुःश्रवणार्थिनाम् । प्रकाराः कथिताः सन्ति बहवो मांससम्भवाः ॥ ग्रन्थविस्तारभीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्तिताः ९०

भाषा-पकाये हुए मांसका रस रुचिकारी, तृप्तिदायक, वातनाशक, पित्तनाशक, परिश्रमनाशक, श्वासनाशक, क्षयनाशक है, क्षीण (लटे हुए) तथा अल्पवीर्यवालोंको पुष्ट कर्ता, बिखरी हुई और टूटी हुई संधियोंका जोडनेवाला है. शरीरकी शुद्धि चाहनेवालोंको, स्मृति, ओज तथा बलसे हीनोंको, ज्वरसे क्षीण हुए और क्षतरोगवालोंको, स्वरहीनोंको, दृष्टि आयु और श्रवण शक्ति बढानेवालोंको तथा स्वस्थ शरीरवालोंकोभी मांसका रस परम हितकारी है. मांस बनानेके भेद अनेक प्रकार हैं, परन्तु यहां ग्रंथका विस्तार होनेके भयसे नहीं कहे हैं ॥८८-९०॥

CC-0, Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शाकपाकविधिः ।

हिङ्गुजीरयुते तैले क्षिपेच्छाकं सुखण्डितम् । लवणं चाम्लचूर्णादिसिद्धे हिङ्गूदकं क्षिपेत् ॥ इत्येवं सर्वशाकानां साधनोऽभिहितो विधिः ॥ ९१ ॥

भाषा–तेलमें हींग तथा जीरा भूने पश्चात् सम्हाला हुआ शाक कतरकर उसमें छोंक देवे, जब गल जाय तब नोन, खट्टा चूर्ण आदि तथा हींगका पानी डाले, यही सम्पूर्ण शाक बनानेकी रीति है ॥ ९१ ॥

मंठकविधिः ।

समितां मर्दयेदन्यजलेनापि च सन्नयेत् । तस्यास्तु वटिकां कृत्वा पचेत्सर्पिषि नीरसम् ॥ ९२ ॥ एलालवङ्गकर्पूरमरीचाद्यैरलङ्कृते । मज्जयित्वा सितापाके ततस्तं च समुद्धरेत् ॥ अयं प्रकारः संसिद्धौ मंठ इत्यभिधीयते ॥ ९३ ॥ सन्नयेत् मर्दयेत् ।

भाषा–मैदाको घी तथा जलसे खूब मलकर उसमें इलायची, लौंग, कपूर और मिरच आदिक डाले और चपटी वडी बना लेवे, फिर घीमें सेककर खांडकी चासनीमें पाग लेवे, फिर चासनीसे निकाल लेवे. इस प्रकारसे बनाई हुई वस्तुको मंठ (मठरी) कहते हैं ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

मंठकगुणाः ।

मंठस्तु बृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः । पित्तानिलहरो रुच्यो दीप्ताग्नीनां सुपूजितः ॥ ९४ ॥ समिताः शर्करासर्पिर्निर्मिता अपरेऽपि ये । प्रकारा अमुना तुल्यास्तेऽपि चेत्तद्गुणाः स्मृताः ॥ ९५ ॥

भाषा–मंठ पुष्टिकारक, वृष्य, वलदायक, मधुर, भारी, वातनाशक, पित्तनाशक, रुचिकारी और प्रदीप्त अग्निवालोंके लिये उत्तम है, इसी प्रकार औरभी मैदा खांड तथा घीके बने पदार्थ (वालूसाइ आदि) जाने, उनमेंभी येही गुण हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

सम्पावविधिः ।

पर्पटयः साज्यसमिता निर्मिता घृतभर्जिताः । कुट्टिताश्चालिताः शुद्धशर्कराभिर्विमर्दिताः ॥ ९६ ॥ तत्र चूर्णं क्षिपेदेलालवङ्गमरिचानि च । नालिकेरं सकर्पूरं चारवीजान्यनेकधा ॥ ९७ ॥ घृताक्तसमिता पुष्टरोटिका रचिता ततः । तस्यान्तः पूरणं तस्य कुर्यान्मुद्रां दृढां सुधीः ॥ ९८ ॥ सर्पिषि प्रचुरे तान्तु सुपचेन्निपुणो जनः । प्रकारज्ञैः प्रकारोऽयं सम्पाव इति कीर्तितः ॥ ९९ ॥

भाषा–मैदा और घी मिलाय रोटी बनाकर घीमें सेंक लेवे, सिकनेपर कूट ले और छान ले, पश्चात् स्वच्छ बूरा मिलावे फिर इलायची, लौंग, काली मिरच, नारियलकी मींग और कपूर डाले, फिर मोमन पडी हुई मैदाकी रोटीसी वेल लेवे, पश्चात् उस चूर्णको उसके भीतर भरे और मजबूत मुख बंद कर देवे, चतुर पुरुष इसको घीमें भली भांति सेक लेवे, सिकनेपर इसको संपाव (गुजिया) कहते हैं. इस संपावके गुण मंठके सदृशही जाने ॥ ९६–९९ ॥

कर्पूरनालिकाविधिः ।

घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः । लवङ्गोल्बणकर्पूरयुतया सितयाऽन्वितम् ॥ १०० ॥ पचेदाज्येन सिद्धैषा ज्ञेया कर्पूरनालिका । सम्पावसदृशी ज्ञेया गुणैः कर्पूरनालिका ॥ १०१ ॥

भाषा–मोमन पडी हुई मैदाकी लोईको वेलकर लंबा संपुट बनावे. फिर लौंग, मिरच, कपूर और खांड मिलाकर उसके भीतर भरे और मुख बंद करके घृतमें सेक लेवे. इसको कर्पूरनालिका कहते हैं. इसमें संपावकेही सदृश गुण हैं ॥ १०० ॥ १०१ ॥

फेनिकाविधिः ।

समिताया घृताढ्याया वर्तिं दीर्घां समाचरेत् । तास्तु सन्निहिता दीर्घाः पीठस्योपरि धार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

येत् ॥ १०२ ॥ वेल्लयेद्वेल्लनेनैता यथैका पर्पटी भवेत् । ततश्छुरिकया तान्तु संलग्नामेव कर्त्तयेत् ॥ १०३ ॥ ततस्तु वेल्लयेद्भूयः सट्टकेन च लेपयेत् । शालिचूर्णं घृतं तोयं मिश्रितं सट्टकं वदेत् ॥ १०४ ॥ ततः संवृत्य तल्लोप्त्रीं विदधीत पृथक्पृथक् । पुनस्तां वेल्लयेल्लोप्त्रीं यथा स्यान्मण्डलाकृतिः ॥ १०५ ॥ ततस्तां सुपचेदाज्ये भवेयुश्च स्फुटाः स्फुटाः । सुगंधया शर्करया तदुद्भूलनमाचरेत् ॥ १०६ ॥ सिद्धैषा फेनिका नाम्नी मण्डकेन समा गुणैः । ततः किञ्चिल्लघुरियं विशेषोऽयमुदाहृतः ॥ १०७ ॥ वेल्लयेत् प्रसारयेत् । वेल्लनः 'वेलुन' इति लोके । पर्पटी (रोटी) । लोप्त्री 'लोई' इति लोके ।

भाषा-मोमनयुक्त मैदाको मलकर उसमें घी डालकर लंबी लंबी बत्ती बनावे, फिर सबको लपेटकर लंबी लंबी बत्ती करे, पश्चात् वेलनसे वेलकर रोटी बनावे, तदनंतर चाकूसे कतरकर सबको मिलाले, फिर कतरकर लेवे और सट्टकका लेप करे, चावलका चूर्ण, घृत और जल इन सबको मिला लेवे. इसको सट्टक कहते हैं. इस सट्टकको लपेटकर वेल लेवे, फिर मिलाकर गोल गोल बनाले. तत्पश्चात् घीमें सेक लेवे, जब सिक जायगी तब तारतार अलग हो जायंगे, फिर सुगंधित खांडकी चासनीमें पाग लेवे. तयार होनेपर फेनिका (फेनी) कहाती है. फेनीमें मंडकके सदृश गुण हैं, विशेष करके किंचित् हलकी है ॥ १०२-१०७ ॥

शष्कुलीविधिः ।

समितायां घृताक्तायां लोप्त्रीं कृत्वा च वेल्लयेत् । आज्ये तां भर्जयेत्सिद्धां शष्कुलीं फेनिकागुणा ॥ १०८ ॥

भाषा-मोमनयुक्त मैदाको मलकर लोई करे, फिर पतली वेलकर घीमें छोड देवे. जब सिक जाय तब निकाल ले इसको शष्कुली (खस्तापूरी) कहते हैं. इसमें फेनीके सदृश गुण हैं ॥ १०८ ॥

मोदकविधिः ।

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि तु । निपुणो भर्जयेदाज्ये खण्डपाकेन योजयेत् ॥ युक्तेन मोदकान्कुर्यात्ते गुणैर्मण्डका यथा ॥ १०९ ॥

भाषा-घृतयुक्त मैदाके सेव बनाकर घीमें सेक लेवे और खांडकी चासनीमें डालके लड्डू बनाय ले इन लड्डूओंमेंभी मंडकके सदृश गुण हैं ॥ १०९ ॥

मुक्तामोदकविधिः ।

मुद्गानां धूमसीं सम्यग्घोलयेन्निर्मलाऽम्बुना । कटाहस्थघृतैरूर्ध्वं झर्झरं स्थापयेत्ततः ॥ ११० ॥ धूमसीं तु द्रवीभूतां प्रक्षिपेज्झर्झरोपरि । पतन्ति बिन्दवस्तस्मात्तान्सुपक्वान्समुद्धरेत् ॥ सितापाकेन संयोज्य कुर्याद्धस्तेन मोदकान् ॥ १११ ॥

भाषा-मूंगकी धूमसीको जलमें घोलकर घीकी भरी हुई कढाईमें बडे बडे छेदवाली पोनियामें उस सनी हुई मूंगकी धूमसीको झाड देवे तो उसकी छोटी छोटी बूंद कढाईमें पडेंगी उनको सिकनेपर निकाल ले और चासनीमें डालकर हाथसे लड्डू बनावे ॥ ११० ॥ १११ ॥

मुक्तामोदकगुणाः ।

लघुर्ग्राही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचिप्रदः । चक्षुष्यो ज्वरहृद्बल्यस्तर्पणो मुद्गमोदकः ११२

भाषा-बूंदीके लड्डू हलके, ग्राही, त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ठ, शीतल, रुचिकारक, नेत्रोंको हितकारी, ज्वरनाशक, बलदायक और तृप्तिकारक हैं ॥ ११२ ॥

बेसनमोदकविधिः ।

एवमेव प्रकारेण कार्या बेसनमोदकाः ।

भाषा-उपरोक्त लड्डूके सदृशही बेसनके लड्डू बनावे उनको मोतीचूरके लड्डू कहते हैं ॥

बेसनमोदकगुणाः ।

ते बल्या लघवः शीताः किञ्चिद्वातकरास्तथा । विष्टम्भिनो ज्वरघ्नाश्च पित्तरक्तकफापहाः ११३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–मोतीचूरके लड्डू बलकारक, हलके, शीतल, किंचित् वातकारक, विष्टम्भी, ज्वरनाशक, पित्तरक्तनाशकतथा कफनाशक हैं ॥११३॥

दुग्धकूपिकाविधिः।

तण्डुलचूर्णविमिश्रितनष्टक्षीरेण सान्द्रपिष्टेन। दृढकूपिकां विदध्यात्तां च पचेत्सर्पिषा सम्यक् ॥ ११४ ॥ अथ तां कोरितमध्यां घनपयसा पूर्णगर्भां च। सट्टकमुद्रितवदनां सर्पिषि सुपक्ववदनां च ॥ अथ पाण्डुखण्डपाके स्नपयेत्कर्पूरवासिते कुशलः ॥ ११५ ॥

भाषा–चावलोंके चूर्णमें मावा (खोहा) मिलाकर मजबूत कुप्पी बनावे, उसको घीमें छोडकर सेक लेवे. पकनेपर निकालकर बीचमें छेदकर गाढा मिश्रीयुक्त दूध भर देवे और सट्टकसे मुख खूब बंद करके फिर घीमें सेके, जब उसका मुख सिकजाय तब चतुर मनुष्य कपूरसे सुवासित खांडकी चासनीसे पाग लेवे, उसको दुग्धकूपिका कहते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

दुग्धकूपिकागुणाः।

दुग्धकूपिका सा बल्या पित्तानिलापहा चैव। वृष्या शीता गुवा शुक्रकरी बृंहणी रुच्या ॥ विदधाति कायपुष्टिं दृष्टिं दूरप्रसारिणीं सुचिरम् ॥११६ ॥

भाषा–दुग्धकूपिका बलकारक, पित्तनाशक, कफनाशक, वृष्य, शीतल, भारी, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिकारक, शरीरकी पुष्टि करनेवाली और दृष्टिको दूरदर्शक करनेवाली है ॥ ११६ ॥

कुण्डलिनीविधिः।

नूतनं घटमानीय तस्यान्तः कुशलो जनः। प्रस्थार्द्धपरिमाणेन दध्नाऽम्लेन प्रलेपयेत् ११७॥ द्विप्रस्थां समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसम्मितम्। घृतमर्द्धशरावं च घोलयित्वा घृते क्षिपेत् ॥ ११८ ॥ आतपे स्थापयेत्तावद्यावद्याति तदम्लताम्। ततस्तत्प्रक्षिपेत्पात्रे सच्छिद्रे भाजने तु तत् ॥ ११९ ॥ परिभ्राम्य परिभ्राम्य तत्सन्तप्ते घृते क्षिपेत्। पुनः पुनस्तदावृत्त्या विदध्यान्मण्डलाकृतिम् ॥ १२० ॥ तां सुपक्वां घृतान्नीत्वा सितापाके तनुद्रवे। कर्पूरादि सुगन्धं च स्नापयित्वोद्धरेत्ततः ॥ १२१ ॥

भाषा–नवीन मृत्तिकाके घडेमें आध सेर खट्टे दहीका लेपकर देवे, पश्चात् दो सेर मैदा उसमें डाले और एक सेर दही तथा आध सेर घृत घोलकर जबतक खट्टा न होय तबतक धूपमें रखा रहने देवे, पश्चात् जिस बासनमें नीचे छेद हो उस पात्रमें करके नीचे घृत भरी हुई कढाईमें गोल गोल करके छोडता जाय, जब वह सिक जाय तब घीमेंसे निकालकर कर्पूर आदिसे सुगंधित हुई खांडकी चासनीमें डाल देवे और पश्चात् निचोडकर निकाल ले, उसको कुण्डलिनी (जलेबी) कहते हैं ॥११७-१२१॥

कुण्डलिनीगुणाः।

एषा कुण्डलिनी नाम्ना पुष्टिकान्तिबलप्रदा। धातुवृद्धिकरी वृष्या रुच्या च क्षिप्रतर्पणी ॥ १२२ ॥

भाषा–यह जलेबी पुष्टिकारक, कांतिकारक, पुष्टिदायक, धातुवर्द्धक, वृष्य, रुचिकारी और तुरंत तृप्तिकारक है ॥ १२२ ॥

पश्चात् परिवेष्याणि।

रसालाविधिः।

आदौ माहिषमम्लमम्बुरहितं दध्याढकं शर्करां शुभ्रां प्रस्थयुगोन्मितां शुचिपटे किञ्चिच्च किञ्चित्क्षिपेत्। दुग्धेनार्द्धघटेन मृण्मयनवस्थाल्यां दृढं स्नावयेदेलाबीजलवङ्गचन्द्रमरिचैर्योग्यैश्च तद्योजयेत् ॥ १२३ ॥

भाषा–प्रथम खटाई तथा जलरहित पांच सौ बारह ५१२ तोलेभर भैंसका दूध लेकर आधी आधी दो नई मृत्तिकाकी हांडीमें दो सौ छप्पन तोले दही जमावे, उसमें खट्टा पानी न रहे और कर्रा हो जाय तब उसको स्वच्छ कपडेमें रखकर दो सौ छप्पन तोलेभर सफेद बूरा इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार डाले कि दहीमें थोडी थोडी बूरा डालकर नीचेको स्वच्छ पात्रमें दही छानता जाय, पश्चात् इसमें इलायची, लौंग, कपूर और मिरच यथायोग्य डाले ॥ १२३ ॥

रसालागुणाः ।

भीमेन प्रियभोजनेन रचिता नाम्ना रसाला स्वयं श्रीकृष्णेन पुरा पुनः पुनरियं प्रीत्या समास्वादिता । एषा येन वसन्तवर्जितदिने संसेव्यते नित्यशस्तस्य स्यादतिवीर्यवृद्धिरनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम् ॥ १२४ ॥ ग्रीष्मे तथा शरदि ये रविशोषिताङ्गा ये च प्रमत्तवनिता-सुरतातिखिन्नाः । ये चापि मार्गपरिसर्पणशीर्णगात्रास्तेषामियं वपुषि पोषणमाशु कुर्यात् ॥ १२५ ॥ रसाला शुक्रला बल्या रोचनी वातपित्तजित् । दीपनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा ॥ रक्तपित्तं तृषां दाहं प्रतिश्यायं विनाशयेत् ॥ १२६ ॥

भाषा-प्रिय भोजनके बनानेवाले भीमसेनने स्वयं यह रसाला बनाई थी, और श्रीकृष्णने परम प्रीतिसे वारंवार स्वाद लेकर खाईथी. जो मनुष्य वसंतऋतुको त्यागकर नित्य भोजन करते हैं, उनके निरंतर वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि होती है और सर्व इन्द्रियोंमें बल बढता है. जिनका शरीर ग्रीष्म तथा शरदृतुमें सूर्यके तापसे सूख गया है, जो मदोन्मत्त स्त्रियोंके संभोगमें अतिखिन्न हो गया है और जिनका शरीर मार्ग चलनेसे शिथिल हो गया है उन पुरुषोंके शरीरोंको तत्काल पुष्टि करती है. यह रसाला (श्रीखंड) वीर्यवर्द्धक, बलदायक, रुचिकारक, वातकारक, पित्तनाशक, अग्निको दीपन करनेवाली, पुष्टिकारक, स्निग्ध, मधुर, शीतल, दस्तावर है और रक्तपित्त, तृषा, प्रतिश्याय (जुखाम) का नाश करती है ॥१२४-१२६॥

शर्करोदकविधिः ।

जलेन शीतलेनैव घोलिता शुभ्रशर्करा । एलालवङ्गकर्पूरमरीचैश्च समन्विता ॥ शर्करोदकनाम्ना तत्प्रसिद्धं विदुषां मुखैः ॥ १२७ ॥

भाषा-शीतल जलमें सफेद खांड घोलकर उसमें इलायची, लौंग, कपूर तथा मिरच डाल देवे उसको विद्वान् शर्करोदक (सरबत) कहते हैं ॥ १२७ ॥

शर्करोदकगुणाः ।

शर्करोदकमाख्यातं शुक्रलं शिशिरं सरम् । बल्यं रुच्यं लघु स्वादु वातपित्तप्रणाशनम् ॥ मूर्च्छाछर्दितृषादाहज्वरशांतिकरं परम् ॥ १२८ ॥

भाषा-सरबंत वीर्यवर्द्धक, शीतल, दस्तावर, बलदायक, रुचिकारी, स्वादिष्ठ, हलका है और वात, पित्त, मूर्च्छा, वमन, तृषा, दाह तथा ज्वरको शांत करता है ॥ १२८ ॥

प्रपानकानि ।

आम्रफलप्रपानकविधिः ।

आम्रमामं जले स्विन्नं मर्दिते दृढपाणिना । सिताशीताम्बुसंयुक्तं कर्पूरमरिचान्वितम् १२९

भाषा-कच्ची आमियोंको जलमें औटाकर दृढतासे मल लेवे, पश्चात् सफेद बूरा, शीतल जल, कपूर और मिरच डाले, इसको प्रपानक (आमका पन्ना) कहते हैं ॥ १२९ ॥

प्रपानकगुणाः ।

प्रपानकमिदं श्रेष्ठं भीमसेनेन निर्मितम् । सद्यो रुचिकरं बल्यं शीघ्रमिन्द्रियतर्पणम् ॥ १३० ॥

भाषा-यह श्रेष्ठ प्रपानक भीमसेनने निर्माण किया है. यह प्रपानक तत्काल रुचिकारी, बलदायक और तुरन्त इंद्रियोंको तृप्त करनेवाला है ॥ १३० ॥

अम्लिकाफलपानकविधिः ।

अम्लिकायाः फलं पक्वं मर्दितं वारिणा दृढम् । शर्करामरिचैर्मिश्रं लवङ्गेन्दुसुवासितम् ॥ १३१ ॥

भाषा-पक्की इमलीको जलमें भिगोकर खूब मललेवे, और उसमें सफेद बूरा, मिरच, लौंग और कपूर आदि डालकर सुवासित कर लेवे, इसको अम्लिकाप्रपानक (इमलीका पन्ना) कहते हैं ॥ १३१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अम्लिकाफलपानकगुणाः ।

अम्लिकाफलसम्भूतं पानकं वातनाशनम् । पित्तश्लेष्मकरं किञ्चित्सुरुच्यं वह्निबोधनम् १३२

भाषा–यह इमलीका पन्ना वातविनाशक, पित्तकारक, कफकारी, रुचिकारक और अग्निवर्द्धक है ॥ १३२ ॥

निम्बुकफलपानकविधिः ।

भागैकं निम्बुजं तोयं षड्भागं शर्करोदकम् । लवङ्गमरिचैर्मिश्रं पानं पानकमुत्तमम् ॥ १३३ ॥

भाषा–एक भाग नींबूके रसमें छः भाग खांडका पानी (सरबत) डाले और उसमें लौंग तथा मिरच डाले, इसको नींबूप्रपानक (नींबूका पन्ना) कहते हैं ॥ १३३ ॥

निम्बुकफलपानकगुणाः ।

निम्बूफलभवं पानमत्यम्लं वातनाशनम् । वह्निदीप्तिकरं रुच्यं समस्ताहारपाचकम्॥१३४॥

भाषा–नींबूका पन्ना उत्तम अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारी और सम्पूर्ण आहारको पचानेवाला है ॥ १३४ ॥

धान्याकपानकविधिः ।

शिलायां साधु सम्पिष्टं धान्याकं वस्त्रगालितम् । शर्करोदकसंयुक्तं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् ॥ नूतने मृण्मये पात्रे स्थितं पित्तहरं परम् ॥१३५॥

भाषा–धनियेको शिलापर भली भांति पीसकर वस्त्रमें छान लेवे उसमें बूराका पानी डाले और कर्पूरादिसे सुगंधित करे और उसको नवीन मट्टीके पात्रमें रखे, यह पन्ना अत्यन्त पित्तनाशक है ॥ १३५ ॥

काञ्जीगुणाः ।

(काञ्जीविधिर्वटकावसरे लिखितः)

काञ्जीकं रोचनं रुच्यं पाचनं वह्निदीपनम् । शूलाजीर्णविबन्धघ्नं कोष्ठशुद्धिकरं परम् ॥ न भवेत्काञ्जिकं यत्र तत्र जालिः प्रदीयते ॥१३६॥

भाषा–कांजी बनानेकी विधि बडी बनानेके विषयमें लिख आये हैं. कांजिका प्रपानक रुचियुक्त, रुचिकारक, पाचक, अग्निको दीपन करनेवाला है और शूल, अजीर्ण तथा मलबंधका नाश करता है और कोठेको अत्यंत शुद्ध करनेवाला है. कांजी जहां न मिले वहां नीचे लिखी हुई जाली देवे ॥ १३६ ॥

जालिविधिः ।

आममाम्रफलं पिष्टं राजिकालवणान्वितम् । भृष्टहिङ्गुयुतं पूतं घोलितं जालिरुच्यते ॥ १३७ ॥

भाषा–कच्ची अमियाको पीसकर उसमें राई, सेंधानोन और भुनी हुई हींग डालकर उस पानीमें घोल लेवे, उसको जाली कहते हैं ॥ १३७ ॥

जालिगुणाः ।

जालिर्हरति जिह्वायाः कुण्ठत्वं कण्ठशोधनी । मन्दं मन्दं तु पीता सा रोचनी वह्निबोधिनी ॥ १३८ ॥

भाषा–जाली जीभकी जडताको नष्ट करती है तथा कण्ठको शुद्ध करती है, यह जाली धीरे धीरे पीवे तो अत्यन्त रुचिकारी और अग्निवर्द्धक है ॥ १३८ ॥

तक्रविधिः ।

तुर्यांशेन जलेन संयुतमतिस्थूलं सदम्लं दधि प्रायो माहिषमम्बुकेन विमले मृद्भाजने गालयेत् । भृष्टं हिंगु च जीरकं च लवणं राजीं च किञ्चिन्मितां पिष्टां तत्र विमिश्रयेद्भवति तत्तक्रं न कस्य प्रियम् ॥ १३९ ॥

भाषा–अत्यन्त गाढे और खट्टे भैंसके दहीको लेकर उसमें चौथा भाग जल डाले पश्चात् मृत्तिकाके पात्रमें रईसे विलोवे. फिर उसमें भुनी हींग, जीरा, नमक तथा किंचित् राई इनको पीसकर मिला देवे तो तक्र (मट्ठा, छाछ) तैयार हो जाता है. यह छाछ किसको प्रिय नहीं है ॥ १३९ ॥

तक्रगुणाः ।

तक्रं रुचिकरं वह्निदीपनं पाचनं परम् । उदरे ये गदास्तेषां नाशनं तृप्तिकारकम् ॥ १४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—तक्र रुचिकारी, अग्निको दीपन करनेवाला, अत्यन्त पाचन, पेटके संपूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला और तृप्तिकारक है ॥ १४० ॥

दुग्धगुणाः ।

विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुंक्ते हि मानवः । तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनांते पयः पिबेत् १४१ दुग्धस्य अपरे गुणा उक्ता एव दुग्धवर्गे ।

भाषा—जो मनुष्य दाह करनेवाले अन्नपानका उपयोग करते हैं उनको दाहकी शांति करनेके लिये भोजनके अन्तमें दूध पीना चाहिये. दूधमें जो और गुण हैं उनको दुग्धवर्गमें कहेंगे ॥ १४१ ॥

सक्तुविधिः ।

धान्यानि भ्राष्ट्रभृष्टानि यन्त्रपिष्टानि सक्तवः ।

भाषा—चावल जौ आदि धान्योंको भाडमें भुनाकर पिसवा ले उसको सत्तू कहते हैं ॥

यवसक्तुगुणाः ।

यवजाः सक्तवः शीता दीपना लघवः सराः । कफपित्तहरा रूक्षा लेखनाश्च प्रकीर्त्तिताः १४२॥ ते पीता बलदा वृष्या बृंहणा भेदनास्तथा । तर्पणा मधुरा रुच्याः परिणामे बलापहाः ॥ १४३ ॥ कफपित्तश्रमक्षुत्तृड्वृद्धिनेत्रामयापहाः । प्रशस्ता घर्मदाहाढ्यव्यायामार्तशरीरिणाम् ॥ १४४ ॥

भाषा—जौके सत्तू शीतल, अग्निप्रदीपक, हलके, दस्तावर, कफनाशक, पित्तनाशक, रूक्ष और लेखन हैं. सक्तुओंका पीना बलदायक, वृष्य, पुष्टिकारक, मलभेदक, तृप्ति करनेवाला, मधुर, रुचिकारी, अन्तमें बलनाशक है और कफ, पित्त, परिश्रम, भूंख, प्यास, अण्डवृद्धि और नेत्ररोगको नष्ट करता है. जो पसीना, दाह तथा व्यायाम (कसरत) करनेसे व्याकुल हैं, उन मनुष्योंको यह हितकारी है ॥ १४२-१४४ ॥

चणकयवसक्तुगुणाः ।

निस्तुषैश्चणकैर्भृष्टैस्तुर्यांशैश्च यवैः कृताः । सक्तवः शर्करासर्पिर्युक्ता ग्रीष्मेऽतिपूजिताः ॥ १४५ ॥

भाषा—छुलके रहित भने हुए चनोंके और चौथे भाग जौके सत्तू बनाकर उसमें बूरा और घी मिलाकर खावे. ये ग्रीष्मऋतुमें अत्यन्त हितकारी हैं ॥ १४५ ॥

शालिसक्तुगुणाः ।

सक्तवः शालिसम्भूता वह्निदा लघवो हिमाः । मधुरा ग्राहिणो रुच्याः पथ्याश्च बलशुक्रदाः ॥ १४६ ॥

भाषा—शालि चावलोंके सत्तू अग्निप्रदीपक, हलके, शीतल, मधुर, ग्राही, रुचिकारी, पथ्य, बलवर्धक तथा वीर्यवर्द्धक हैं ॥ १४६ ॥

सामान्यपरिभाषा ।

न भुक्त्वा न रदैश्छित्त्वा न निशायां न वा बहून् । न जलान्तरितानद्भिः सक्तूनद्यान्न केवलान् ॥ १४७ ॥ पृथक्पानं पुनर्दानमामिषं पयसा निशि । दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ १४८ ॥

भाषा—सत्तू भोजन करनेके अनन्तर न पिये, दांतोंसे कुचलकर न खावे, रात्रिमें न खाय, अधिक न खाय, दो बार पानी डालकर न खाय और केवल सत्तू न खाय, अलग पीना, एक वार जिसने खाये होय उसको दूसरी वार न देना, मांसके साथ और दूधके साथ रात्रिमें दांतोंसे कुचलकर और गरम करके इस प्रकार सत्तू नहीं खाना चाहिये ऐसे वर्जित हैं ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

धानागुणाः ।

यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियाम् । धानाः स्युर्दुर्जरा रूक्षास्तृट्प्रदा गुरवश्च ताः ॥ तथा मेहकफच्छर्दिनाशिन्यः सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ १४९ ॥

भाषा—भुसी रहित जौओंको भुनवा लेवे, उसको धाना (बहुरी) कहते हैं. बहुरी दुर्जर (कठिनतासे पचे), भारी, रूक्ष, तृषा लगानेवाली है और प्रमेह, कफ तथा वमनका नाश करती है ॥ १४९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाजगुणाः ।

येषां स्युस्तण्डुलास्तानि धान्यानि सतुषाणि च । भृष्टानि स्फुटितान्याहुर्लाजा इति मनीषिणः ॥ १५० ॥ लाजाः स्युर्मधुराः शीता लघवो दीपनाश्च ते । स्वल्पमूत्रमला रूक्षा बल्याः पित्तकफच्छिदः ॥ छर्यतीसारदाहास्रमेहमेदस्तृषापहाः ॥ १५१ ॥

भाषा–जिसमें चावल निकलते हैं उन छुलके सहित धान्योंको भाडमें भुना लेवे उसको लाजा (खील) कहते हैं. खील मधुर, शीतल, हलकी, अग्निप्रदीपक, मल तथा मूत्रको अल्प करनेवाली, रूक्ष, बलदायक है और पित्त, कफ, वमन, अतीसार, दाह, रक्तविकार, प्रमेह, मेद तथा तृषाका नाश करती है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

चिपिटगुणाः ।

शालयः सतुषा आर्द्रा भृष्टा अस्फुटिताश्च तत् । कुट्टिताश्चिपिटाः प्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका अपि ॥ १५२ ॥ पृथुका गुरवो वातनाशनाः श्लेष्मला अपि । सक्षीरा बृंहणा वृष्या बल्या भिन्नमलाश्च ते ॥ १५३ ॥

भाषा–भुसी सहित गीले शालिधान्योंको भूनकर विना खिलेही तत्काल कूट लेवे. वे कूटकर चिपटे हो जाते हैं उनको चिपिट और पृथुक कहते हैं. पृथुक (चौले) भारी, वातनाशक, कफकारक, खारी, पुष्टिकारक, वृष्य, बलदायक और मलभेदक (दस्त लानेवाले) हैं ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

होलकगुणाः ।

अर्द्धपक्वैः शमीधान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलकः । होलकोऽल्पानिलो मेदःकफदोषत्रयापहः ॥ भवेद्यो होलको यस्य स च तत्तद्गुणो भवेत् ॥ १५४ ॥

भाषा–अधपके शमी धान्योंको तोडकर भूनले उसको होला कहते हैं. होला अल्प वातकारक है और मेद, कफ तथा त्रिदोषका नाश करता है. जिस धान्यके होले होंय उसके गुणभी उन होलोंमें रहते हैं ॥ १५४ ॥

ऊचीगुणाः ।

मञ्जरी त्वर्द्धपक्वा या यवगोधूमयोर्भवेत् । तृणानलेन संभृष्टा बुधैरूचीति सा स्मृता ॥ ऊची कफप्रदा बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा ॥ १५५ ॥

भाषा–जौ अथवा गेहूंकी अधपकी मंजरी (बाल) लेकर तृणोंकी आगमें भून लेवे, उसको ऊची कहते हैं. ऊची (ऊंवी) कफकारक, बलदायक, हलकी, पित्तनाशक तथा वातनाशक है ॥ १५५ ॥

कुल्माषगुणाः ।

अर्धस्विन्नास्तु गोधूमा अन्येऽपि चणकादयः । कुल्माषा इति कथ्यन्ते शब्दशास्त्रेषु पण्डितैः ॥ कुल्माषा गुरवो रूक्षा वातला भिन्नवर्चसः ॥ १५६ ॥

भाषा–गेहूं अथवा चने आदिको अधपके कर लेवे उसको शब्दशास्त्रविशारद कुल्माष (घुघुरी) कहते हैं. कुल्माष (घुघुरी) भारी, रूखी, वातकारक और मलभेदक है ॥ १५६ ॥

तिलकुट्टगुणाः ।

पललं तु समाख्यातं सैक्षवं तिलपिष्टकम् । पललं मलकृद्वृष्यं वातघ्नं कफपित्तकृत् ॥ बृंहणं च गुरु स्निग्धं मूत्राधिक्यनिवर्त्तकम् ॥ १५७ ॥

भाषा–तिलोंको कूटकर उसमें गुड आदि मिलावे उसको पलल (तिलकुट) कहते हैं. तिलकुट मलकारक, वृष्य, वातनाशक, कफकारक, पित्तकर्ता, पुष्टिदायक, भारी, चिकनी है और मूत्रकी अधिकताको नष्ट करती है ॥ १५७ ॥

तिलखलिनामानि ।

तिलकुट्टं तु पिण्याकं तथा तिलखलिः स्मृता ।

भाषा–तिलकुट्ट, पिण्याक और तिलखलि ये खलके संस्कृत नाम हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक भाषाके खलके नाम.

सं.-तिलखलि.	गु.-खोल.
हिं.-खली.	अं.-Oil-cake ऑइल्-केक्.
म.-तिळाची पेंड.	

तिलखलिगुणाः।

पिण्याको लेखनो रूक्षो विष्टम्भी दृष्टिदूषणः।

भाषा-तिलकी खल ग्लानिकारक, रूक्ष, विष्टम्भी है और दृष्टिको दूषित करती है॥

तन्दुलगुणाः।

तण्डुलो मेहजन्तुघ्नः स नवस्त्वतिदुर्जरः।

इति श्रीभिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्र-विरचिते श्रीभावप्रकाशे कृतान्न-वर्गः समाप्तः॥ ११॥

भाषा-चावल प्रमेह तथा कृमिरोगको नष्ट करते हैं. जो चावल नवीन होय वे अत्यन्त दुर्जर हैं॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचम-प्रकरणे कृतान्नवर्गः समाप्तः॥ ११॥

अथ वारिवर्गः १२।

वारिनामानि।

पानीयं सलिलं नीरं कीलालं जलमम्बु च।
आपो वार्वारि कं तोयं पयः पाथस्तथोदकम्॥
जीवनं वनमम्भोऽर्णोऽमृतं घनरसोऽपि च॥१॥

भाषा-पानीय, सलिल, नीर, कीलाल, जल, अम्बु, आप, वार, वारि, क, तोय, पय, पाथ, उदक, जीवन, वन, अम्भ, अर्ण, अमृत, घनरस ये पानीके संस्कृत नाम हैं. (मेघप्रसव, कमल, भुवन, कबन्ध, पुष्कर, सर्वतोमुख, सलिल, सल, पर्य, अन्ध, कवन्ध, उद, दृक, नार, शम्बर, अभ्रपुष्प, घृत, कृतन्न, यादोनिवास, जीवनीय, कुलीनस, कुलीन, पिप्पल, कुश, विष, काण्ड, सवर, सर, कूपीट, चन्द्रोरस, सदन, कर्बुर, व्योम, सम्व, इरा, वाज, तामर, कम्बल, स्यन्दन, सम्बल, जलपीथ, क्षर, ऋत, ऊर्ज, कोमल, सोम, नारा, छन्न, क्षोद, नभ, मधु, पुरीष, रेत, कश, जन्म, वृबूक, बुस, तुग्या, कर्बुर, कर्बूर, सुक्षेम, धरुण, सुरा, अरविन्द, धनुन्धतु, जामि, आयुधानि, क्षय, अहि, अक्षर, स्रोत, तृप्ति, रहस, रस, भेषज, सह, शव, षह, ओज, सुख, क्षत्र, आरया, शुभ, यादु, भूत, भविष्य, महत्, यश, मह, सर्क्षीक, सतीन, गहन, अभीर, गम्भलङ्ग, अन्न, हवि, सद्य, योनि, मत्स्ययोनि, सत्य, रयि, सत्, पूर्ण, सर्व, अक्षित, बर्हिनाम, सर्पि, अप, पवित्र, इन्दु, हेम, स्व, सर्ग, सम्बर, अम्ब, वपु, अम्बु, तूप, शुक्र, तेज, दर्भ, जलाष, वज्र और नीलकण्ठप्रिय ये पानीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.)॥ १॥

अनेक भाषाके जलके नाम.

सं.-पानीय.	तै.-नीळू.
हिं.-जल, पानी.	ता.-तण्णीर, जलं.
बं.-जल, पानि.	फा.-आब.
म.-पाणी.	अ.-माय.
गु.-पानी.	अं.-Water वाटर.
क.-नीरु.	ला.-Aqua अक्वा.

वारिगुणाः।

पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्च्छापिपासापहं तन्द्राच्छर्दिविबन्धहृद्बलकरं निद्राहरं तर्पणम्। हृद्यं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलं लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूष-वज्जीवनम्॥ २॥

भाषा-जल परिश्रमनाशक, ग्लानिहारक, बलकारक, तृप्तिदायक, हृदयको प्रिय, गुप्तरस-युक्त, नित्य हितकारी, शीतल, हलका, स्वच्छ, रसका कारणरूप, अमृतके सदृश जीवनदायक है और मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबन्ध, निद्रा और अजीर्णको नष्ट करता है॥ २॥

वारिभेदाः।

पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौममिति द्विधा। दिव्यं चतुर्विधं प्रोक्तं धाराजं करका-भवम्॥ तौषारं च तथा हैमं तेषु धारं गुणाधिकम्॥ ३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–मुनियोंने दिव्य (आकाशका) और भौम (पृथ्वीका) इस प्रकार जल दो प्रकारका कहा है. धाराज, करकाभव, तौषार और हैम इस भांति दिव्य जल चार प्रकारका है. इन चारोंमेंभी धाराजजल अधिक गुणवाला है ॥ ३ ॥

धाराजललक्षणम् ।

धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्थूलवाससा । शिलायां वा सुधायां वा धौतायां पतितं च सत् ॥ ४ ॥ सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते । भाजने मृण्मये वापि स्थापितं धारमुच्यते ॥ ५ ॥

भाषा–धारारूपसे गिरा हुआ जल स्वच्छ पत्थरपर गिरा हुआ हो अथवा धूली हुई पृथ्वी पर गिरा हो उसको वस्त्रसे छान लेवे और सुवर्णके, चांदीके, तांबेके, स्फटिकके, कांचके अथवा मट्टीके पात्रमें भर रखे, उसको धाराजल कहते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

धाराजलगुणाः ।

धारं नीरं त्रिदोषघ्नमनिर्देश्यरसं लघु । सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादि जीवनम् ॥ ६ ॥ पाचनं मतिकृन्मूर्छातन्द्रादाहश्रमक्लमान् । तृष्णां हरति चात्यर्थं विशेषात्प्रावृषि स्थितम् ॥ ७ ॥

भाषा–धाराजल त्रिदोषनाशक, अपूर्वरसवाला, हलका, सौम्य, रसायन, बलदायक, तृप्तिकारक, आनंददायक, जीवनरूप, पाचन, बुद्धिवर्द्धक है और मूर्च्छा, आलस्य, दाह, परिश्रम, ग्लानि तथा तृषाका नाश करता है. यह धाराजल वर्षाऋतुमें लिया हो तो अधिक पथ्य है ॥ ६ ॥ ७ ॥

धाराजलभेदाः ।

धाराजलं च द्विविधं गाङ्गसामुद्रभेदतः ।

भाषा–धाराजल दो प्रकारका है एक गाङ्ग और दूसरा सामुद्र ॥

गांगसामुद्रजललक्षणम् ।

आकाशगङ्गासम्बन्धि जलमादाय दिग्गजाः । मेघैरन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥८॥ गाङ्गमाश्वयुजे मासि प्रायो वर्षति वारिदः । सर्वथा तज्जलं ज्ञेयं तथैव चरके वचः ॥ ९ ॥ स्थापिते हेमजे पात्रे राजते मृण्मयेऽपि वा । शाल्यन्नं येन संसिक्तं भवेदक्लेदिवर्णवत् ॥ तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्रमन्यथा ॥ १० ॥

भाषा–सत्पुरुषोंका वचन है कि, दिग्गज आकाशगंगाका जल लेकर बादलोंसे छिपे हुए वर्षाते हैं. विशेष करके आश्विन मासमें जो जल वर्षता है, वह आकाशगंगाका होता है, उसको गांग समझना. सुवर्णके, चांदीके अथवा मट्टीके पात्रमें रक्खा हुआ गांगजल सर्वथा रोगियोंको देवे. चरकमेंभी इसी प्रकार कहा है कि, जिस जलमें भिगोये हुए चावल जैसेके वैसेही वर्णवाले रहजांय वह गाङ्ग जल जानना. यह जल सम्पूर्णदोषनाशक है जिसमें ये गुण न होंय वह सामुद्र जल जानना ॥ ८–१० ॥

गांगसामुद्रजलगुणाः ।

तत्तु सक्षारलवणं शुक्रदृष्टिबलापहम् । विस्रं च दोषलं तीक्ष्णं सर्वमर्मसु नो हितम् ॥ ११ ॥ सामुद्रं त्वाश्विने मासि गुणैर्गाङ्गवदादिशेत् । यतोऽगस्त्यस्य दिव्यर्षेरुदयात्सकलं जलम् १२ निर्मलं निर्विषं स्वादु शुक्रलं स्याददोषलम् । फूत्कारविषवातेन नागानां व्योमचारिणाम् ॥ वर्षासु सविषं तोयं दिव्यमप्याश्विनं विना १३॥

भाषा–सामुद्र जल क्षारयुक्त, खारी, दुर्गन्धवाला, दोषवर्द्धक, तीक्ष्ण, सम्पूर्ण कार्योंमें निन्दित और वीर्य, दृष्टि तथा बलका नाशक है. आश्विन मासमें वर्षे हुए समुद्रजलमेंभी गांगजलके सदृश गुण रहते हैं; क्योंकि अगस्त्यमुनिके तारेके उदय होनेपर सर्व जल निर्मल, विषरहित, स्वादिष्ठ, वीर्यवर्द्धक और दोषरहित होते हैं. इस कारण कहा है कि वर्षाऋतुमें दिव्य जलभी आकाशमें विचरनेवाले विषैले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवोंकी पवनसे विषयुक्त हो जाता है, परन्तु आश्विनमासमें गिरा हुआ दिव्य जल विषैला नहीं होता ॥ ११–१३ ॥

अनार्त्तवजलगुणाः ।

अनार्त्तवं प्रमुञ्चन्ति वारि वारिधरास्तु यत् ।
तत्त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनां परिकीर्तितम् ॥ १४ ॥
अनार्त्तवं पौषादिमासचतुष्टयविषयम् ।

भाषा—जो जल विना ऋतु बादलोंसे वर्षता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंके त्रिदोषकारक है. यह जो विना ऋतुके जलकी निंदा करी है वह पौष आदि चार महीनोंकी जाननी ॥ १४ ॥

करकाजललक्षणम् ।

दिव्यवाय्वग्निसंयोगात्संहताः खात्पतन्ति याः ।
पाषाणखंडवच्चापस्ताः करक्योऽमृतोपमाः १५ ॥

भाषा—दिव्य । यु और अग्निके संयोगसे पत्थरके टुकडोंके सदृश जो जल गिरता है उसको करकाभव जल (ओला) कहते हैं १५

करकाजलगुणाः ।

करकाजं जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरम् ।
दारुणं शीतलं सान्द्रं पित्तहृत्कफवातकृत् १६ ॥

भाषा—ओलेका जल अमृततुल्य, रूक्ष, विषद, भारी, स्थिर (बंधा हुआ), दारुण, शीतल, पित्तनाशक, कफकारक तथा वातकारक है ॥ १६ ॥

तौषारजललक्षणम् ।

आपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निरापस्तदुद्भवाः । धूमावयवनिर्मुक्तास्तुषाराख्यास्तु ताः स्मृताः ॥ १७ ॥
आपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निर्नदीमारभ्य समुद्रपर्यन्ते वह्निरास्ते तदुद्भवाः वह्निभवा धूमावयवनिर्मुक्ताः धूमांशरहिताः आपस्तुषाराख्याः । तुष् तुषार इति च लोके ।

भाषा—नदीसे समुद्रपर्यन्त जो अग्नि रहती है उस अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ और जिनमें धुएंका लेश मात्र न हो उस जलको तौषार कहते हैं अर्थात् जिसको ओस कहते हैं ॥ १७ ॥

तौषारजलगुणाः ।

अपथ्याः प्राणिनां प्रायो भूरुहाणां तु नाहिताः । तुषाराम्बु हिमं रूक्षं स्याद्वातलमपित्तलम् ॥ कफोरुस्तम्भकण्ठाग्निमेहगण्डादिरोगनुत् ॥ १८ ॥

भाषा—तौषार जल प्रायः प्राणियोंको अहितकारी और वृक्षोंको हितकारी है. तुषारका जल शीतल, रूक्ष, वातकारक ह, पित्तकारक नहीं और कफ, ऊरुस्तम्भ, कण्ठरोग, अग्नि, प्रमेह और गलगण्डादि रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १८ ॥

हैमजललक्षणम् ।

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवीभूयाभिवर्षति । यत्तदेव हिमं हैमं जलमाहुर्मनीषिणः ॥ १९ ॥

भाषा—हिमालयके शिखर आदिमेंसे हिम (बरफ) पिघलकर वर्षता है, उसको विद्वान् हैमजल कहते हैं ॥ १९ ॥

हैमजलगुणाः ।

हिमाम्बु शीतं पित्तघ्नं गुरु वातविवर्द्धनम् ।
हैमं जलम् कुआशाजलम् ।

भाषा—हिम (बरफ) का जल शीतल, पित्तनाशक, भारी और वातवर्द्धक है ॥

अन्ये तु ।

और्वानलधूमेरितमम्बु समुद्रस्य यद्धनीभूतम् ।
पवनानीतमुदीच्यां तद्धिममिति कथ्यते सद्भिः ॥ हिमं कुआशा इति लोके

भाषा—अन्य विद्वान् कहते हैं कि वडवानलके धुएंकी प्रेरणासे इकट्ठा हुआ और पवनसे उत्तर दिशामें आया हुआ जो समुद्रका जल है ह हिम कहाता है ॥

हैमजलगुणाः ।

हिमं तु शीतलं रूक्षं दारुणं सूक्ष्ममित्यपि ।
न तद्दूषयते वातं न च पित्तं न वा कफम् ॥ २० ॥

भाषा—हिम जल शीतल, रूक्ष, दारुण और सूक्ष्म है तथा वात, पित्त और कफको दूषित करनेवाला नहीं है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भौमजलभेदाः ।

भौममम्भो निगदितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः ।
जाङ्गलं परमानूपं ततः साधारणं क्रमात् ॥२१॥

भाषा–भौम (पृथ्वीसंबंधी) जल तीन प्रकारका है. एक जांगल, दूसरा आनूप और तीसरा साधारण, इस भांति क्रमसे जानने ॥ २१ ॥

जांगलादिजललक्षणम् ।

अल्पोदकोऽल्पवृक्षश्च पित्तवातामयान्वितः ।
ज्ञातव्यो जाङ्गलो देशस्तत्रत्यं जाङ्गलं जलम् ॥ २२ ॥ बह्वम्बुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्मामयान्वितः । देशोऽनूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥ २३ ॥ मिश्रचिह्नस्तु यो देशः स हि साधारणः स्मृतः । तस्मिन्देशे यदुदकं तत्तु साधारणं स्मृतम् ॥ २४ ॥

भाषा–जो देश थोडे जलवाला, अल्प वृक्षोंवाला और पित्त तथा वातसंबंधी रोगयुक्त हो उस देशको जांगल देश जानना और उस देशमें होनेवाले जलको जांगल जल कहते हैं. जो देश अधिक जलवाला, अधिक वृक्षोंवाला और वात तथा कफके रोगयुक्त हो उस देशको अनूपदेश कहते हैं, उस देशमें होनेवाले जलको आनूप जल कहते हैं. जिस देशमें जांगल और अनूप देशोंके मिश्रित लक्षण होंय उस देशको साधारण कहते हैं उसमें होनेवाले जलको साधारण जल कहते हैं ॥ २२–२४ ॥

जागलादिजलगुणाः ।

जाङ्गलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तनुत् ।
वह्निकृत्कफहृत्पथ्यं विकारान्हरते बहून् ॥२५॥
आनूपं वार्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु ।
वह्निहृत्कफकृद्ध्यं विकारान्कुरुते बहून् ॥२६॥
साधारणं तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु । तर्पणं रोचनं तृष्णादाहदोषत्रयप्रणुत् ॥ २७ ॥

भाषा–जांगलजल रूखा, खारी, हलका, पित्तनाशक, अग्निकारक, कफनाशक, पथ्य है और अनेक विकारोंको नष्ट करता है. आनूपजल अभिष्यन्दि, मधुर, स्निग्ध, घन (गाढा), भारी, मंदाग्निकर्त्ता, कफकारक, हृदयको प्रिय और अनेक विकारोंको करनेवाला है. साधारण जल मधुर, अग्निप्रदीपक, शीतल, हलका, तृप्तिकर्त्ता, रुचिकारक है और तृषा, दाह तथा त्रिदोष इनका नाशक है ॥ २५–२७ ॥

नादेयजललक्षणम् ।

नद्या नदस्य वा नीरं नादेयमिति कीर्तितम् ।

भाषा–नदी और नदके जलको नादेय कहते हैं ॥

नादेयजलगुणाः ।

नादेयमुदकं रूक्षं वातलं लघु दीपनम् । अनभिष्यन्दि विशदं कटुकं कफपित्तनुत् ॥ २८ ॥

भाषा–नादेय जल रूखा, वातकारक, हलका, अग्निप्रदीपक है, अभिष्यन्दि नहीं है और विशद, चरपरा, कफनाशक तथा पित्तनाशक है ॥ २८ ॥

नानानदीजलगुणाः ।

नद्यः शीघ्रवहा लघ्व्यः सर्वा याश्चामलोदकाः ।
गुर्व्यः शैवलसंछन्ना मंदगाः कलुषाश्च याः २९॥
हिमवत्प्रभवाः पथ्या नद्योऽश्माहतपार्थसः ।
गङ्गाशतद्रुसरयूयमुनाद्या गुणोत्तमाः ॥ ३० ॥
सह्यशैलभवा नद्यो वेणागोदावरीमुखाः ।
कुर्वंति प्रायशः कुष्ठमीषद्वातकफावहाः ॥ ३१ ॥
नदीसरस्तडागस्थे कूपप्रस्रवणादिजे । उदके देशभेदेन गुणान्दोषांश्च लक्षयेत् ॥ ३२ ॥

भाषा–जो नदियें शीघ्र चलनेवाली और निर्मल जलयुक्त हों वे हलके जलवाली हैं, जो नदियें सिवारसे आच्छादित, मंद वेगवाली और मलिन जलयुक्त हैं, उनका जल भारी जानना. गंगा, सतलज, सरयू और यमुना आदि नदियें कि जो हिमालयसे उत्पन्न हुई हैं, वे उत्तमगुणवाली जाननी. वेणा और गोदावरी आदि नदियें कि जो सह्याद्रिमेंसे उत्पन्न हुई हैं, वे विशेष करके कोढ, किंचित् वात तथा कफको करती हैं. नदी, सरोवर, तालाव, कुआ अथवा झरने आदिके जलके गुण दोष उस उस देशके अनुसारही जाने ॥ २९–३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

औद्भिदजललक्षणम् ।

विदार्य भूमिं निम्नां यन्महत्या धारया स्रवेत् ।
तत्तोयमौद्भिदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥३३॥

भाषा—जो जल नीचेकी पृथ्वीको फाडकर बडी धारसे वहता है, उसको महर्षियोंने औद्भिद जल कहा है ॥ ३३ ॥

औद्भिदजलगुणाः ।

औद्भिदं वारि पित्तघ्नमविदाह्यतिशीतलम् ।
प्रीणनं मधुरं बल्यमीषद्वातकरं लघु ॥ ३४ ॥

भाषा—औद्भिद जल पित्तनाशक है, दाहकारक नहीं है और अत्यंत शीतल, तृप्तिकारक, मधुर, बलदायक, किंचित् वातकारक और हलका है ॥ ३४ ॥

नैर्झरजललक्षणम् ।

शैलसानुस्रवद्धारिप्रवाहो निर्झरो झरः । स तु प्रस्रवणश्चापि तत्रत्यं नैर्झरं जलम् ॥ ३५ ॥

भाषा—जो जल पर्वतके झरनोंमेंसे झरता है वह जलप्रवाह निर्झर, झर और प्रस्रवण कहाता है. यह जल स्रवता है इस कारण इसको नैर्झर कहते हैं ॥ ३५ ॥

नैर्झरजलगुणाः ।

नैर्झरं रुचिकृन्नीरं कफघ्नं दीपनं लघु । मधुरं कटुपाकं च वातलं स्याच्च पित्तलम् ॥ ३६ ॥

भाषा—नैर्झर जल रुचिकारक, कफनाशक, अग्निप्रदीपक, हलका, मधुर, पाकमें चरपरा, वातकारक और पित्तल है ॥ ३६ ॥

सारसजललक्षणम् ।

नद्याः शैलादिरुद्धाया यत्र संश्रित्य तिष्ठति ।
तत्सरोजलसंज्ञं च तदम्भः सारसं स्मृतम् ३७

भाषा—पर्वत आदिसे रुका हुआ नदीका जल स्रवस्रवके जहां एकत्र होता हो और वह जल कमलोंसे आच्छादित हो उस जलको सारस जल कहते हैं ॥ ३७ ॥

सारसजलगुणाः ।

सारसं सलिलं बल्यं तृष्णाघ्नं मधुरं लघु ।
रोचनं तुवरं रूक्षं वद्धमूत्रमलं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

भाषा—उस सारस (सरोवर) का जल बलदायक, तृषानाशक, मधुर, हलका, रुचिकारक, रूक्ष, कसैला और मलमूत्रको बांधनेवाला है ॥ ३८ ॥

तादागजललक्षणम् ।

प्रशस्तभूमिभागस्थो बहुसंवत्सरोषितः । जलाशयस्तडागः स्यात्तडागं तज्जलं स्मृतम् ३९॥

भाषा—अधिक वर्षोंसे संचित उत्तम स्थानपर रहनेवाला जो जलाशय है उसको तडाग (तालाव) कहते हैं और उसमें रहनेवाले जलको ताडाग जल कहते हैं ॥ ३९ ॥

ताडागजलगुणाः ।

ताडागमुदकं स्वादु कषायं कटुपाकि च ।
वातलं बद्धविण्मूत्रमसृक्पित्तकफापहम् ॥४०॥

भाषा—ताडागजल मधुर, कसैला, पाकमें चरपरा, वातकारक, मूत्र तथा मलको बांधनेवाला है और रुधिरविकार, पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाला है ॥ ४० ॥

वाप्यजललक्षणम् ।

पाषाणैरिष्टकाभिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः । ससोपाना भवेद्वापी तज्जलं वाप्यमुच्यते ॥ ४१ ॥

भाषा—पत्थरोंसे अथवा ईंटोंसे बहुत बडा कुआ बनवाकर उसमें आने जानेकी पेरी बना लेवे उसको वापी अर्थात् बावडी कहते हैं और उस बावडीके जलको वाप्यजल कहते हैं ॥४१॥

वाप्यजलगुणाः ।

वाप्यं वारि यदि क्षारं पित्तकृत्कफवातहृत् ।
तदेव मिष्टं कफकृद्धातपित्तहरं भवेत् ॥ ४२ ॥

भाषा—यदि बावडीका जल खारी होय तो पित्तकारक है और कफको तथा वातको नष्ट करता है. जो मीठा होय तो कफकारक और वात तथा पित्तको नष्ट करता है ॥ ४२ ॥

कौपजललक्षणम् ।

भूमौ खातोऽल्पविस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः । बद्धोऽबद्धः स कूपः स्यात्तदम्भः कौपमुच्यते ॥ ४३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–पृथ्वीमें अल्प विस्तारवाला, गहरा और गोल आकारवाला गड्ढा खुदवाकर जो जल निकल आवे उसको कूप (कुआ) कहते हैं और कुएके जलको कौपजल कहते हैं ॥ ४३ ॥

कौपजलगुणाः ।

कौपं पयो यदि स्वादु त्रिदोषघ्नं हितं लघु । तत्क्षारं कफवातघ्नं दीपनं पित्तकृत्परम् ॥४४॥

भाषा–यदि कुएका जल मीठा होय तो त्रिदोषनाशक, हितकारक और हलका है. जो खारी होय तो कफवातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला और अत्यंत पित्तकारक है ॥ ४४ ॥

चौंज्यजललक्षणम् ।

शिलाकीर्णं स्वयं श्वभ्रं नीलाञ्जनसमोदकम् । लतावितानसंच्छन्नं चौंज्यमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥ अश्मादिभिरबद्धं यत्तच्चौंड्यमिति वा परे । तत्रत्यमुदकं चौंड्यं मुनिभिस्तदुदाहृतत् ॥ ४६ ॥

भाषा–जो गड्ढा शिलाओंसे व्याप्त अंजनके सदृश नील जलवाला और अनेक लताओंसे ढका हुआ हो उसको चौंज्य कहते हैं. कोई आचार्य कहते हैं कि जो यह शिला आदिसे नहीं बंधा हो उसको चौण्डच कहते हैं. चौण्डचके जलको चौंज्य कहते हैं ॥ ४५॥४६॥

चौंज्यजलगुणाः ।

चौंज्यं वह्निकरं नीरं रूक्षं कफहरं लघु । मधुरं पित्तनुद्रुच्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ४७ ॥

भाषा–चौंज्यजल अग्निकारक, रूक्ष, कफनाशक, हलका, मधुर, पित्तनाशक, रुचिकारक, पाचन और स्वच्छ है ॥ ४७ ॥

पाल्वलजललक्षणम् ।

अल्पं सरः पल्वलं स्याद्यत्र चन्द्रर्क्षगे रवौ । न तिष्ठति जलं किञ्चित्तत्रत्यं वारि पाल्वलम्॥४८॥ रवौ सूर्ये चन्द्रर्क्षके कर्कराशिस्थे श्रावणे मासि इति यावत् । " चन्द्रर्क्षं मृगशिरस्तत्रगे इति मुख्यपाठः । "

भाषा–सूर्य जब मृगशिर नक्षत्रमें आवे तब जिसमें पानी न रहे ऐसी छोटी तलैयाको पल्वल कहते हैं और उसका जल पाल्वल कहाता है ॥ ४८ ॥

पाल्वलजलगुणाः ।

पाल्वलं वार्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु त्रिदोषकृत् ।

भाषा–पाल्वल जल अभिष्यंदि, भारी, स्वादिष्ठ और त्रिदोष करनेवाला है ॥

विकिरजललक्षणम् ।

नद्यादिनिकटे भूमिर्या भवेद्वालुकामयी । उद्ध्रियते ततो यत्तु तज्जलं विकिरं विदुः ॥ ४९ ॥

भाषा–नदी आदिके समीपमें जो रेतेकी पृथ्वी होती है उसको खुदवाकर जो जल निकल आता है, उसको विकिर कहते हैं ॥ ४९ ॥

विकिरजलगुणाः ।

विकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दोषं लघु च स्मृतम् । तुवरं स्वादु पित्तघ्नं क्षारं तत्पित्तलं मनाक्॥५०॥

भाषा–विकिर जल शीतल, स्वच्छ, निर्दोष, हलका, कसैला, मधुर और पित्तनाशक है. यह जल जो खारी होय तो किञ्चित् पित्तकारक है ॥ ५० ॥

कैदारजललक्षणम् ।

केदारं क्षेत्रमुद्दिष्टं कैदारं तज्जलं स्मृतम् ।

भाषा–केदार नाम खेतका है और केदारके जलको कैदार कहते हैं ॥

कैदारजलगुणाः ।

कैदारं वार्यभिष्यन्दि मधुरं गुरु दोषकृत् ।

भाषा–कैदार जल अभिष्यन्दि, मधुर, भारी और दोषोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥

वृष्टिजलगुणाः ।

वार्षिकं तदहर्वृष्टं भूमिस्थमहितं जलम् । त्रिरात्रमुषितं तत्तु प्रसन्नममृतोपमम् ॥ ५१ ॥

भाषा–पृथ्वीपर पडा हुआ बर्सातका जल प्रथम दिन अपथ्यरूप है, परंतु तीन दिनके पश्चात् स्वच्छ हुआ जल अमृतके समान है॥५१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋतुपरत्वेन जलगुणाः ।

हेमन्ते सारसं तोयं ताडागं वा हितं स्मृतम् । हेमन्ते विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥ ५२ ॥ वसन्तग्रीष्मयोः कौपं वाप्यं वा नैर्झरं जलम् । नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः ॥ ५३ ॥ विषवद्वनवृक्षाणां पत्राद्यैर्दूषितं यतः । औद्भिदं वान्तरीक्षं वा कौपं वा प्रावृषि स्मृतम् ॥ ५४ ॥ शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम् । दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः ॥ ५५ ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् । अनभिष्यन्दि निर्दोषमान्तरीक्षजलोपमम् ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधासमम् ॥ ५६ ॥ रविकरैर्जुष्टमित्युक्ते दिवापदं समस्तदिवसप्राप्त्यर्थं शीतकरांशुभिर्जुष्टमित्युक्ते निशीतिपदं समस्तरात्रिप्राप्त्यर्थम् । अन्यच्च । शरदि स्वच्छसुदयादगस्त्यस्याखिलं हितम् ।

भाषा-हेमन्तऋतुमें तथा शिशिरऋतुमें सरोवरका तथा तडागका जल हितकारी है. वसंतऋतुमें और ग्रीष्मऋतुमें कुएका, बांवडिका तथा पर्वतके झरनेका जल हितकारी है. वसंतमें तथा ग्रीष्ममें विद्वानोंको नदीका जल नहीं पीना चाहिये, क्योंकि उस समय वनके विषैले वृक्षोंके पत्तों आदिसे वह दूषित हुआ होता है. वर्षाऋतुमें औद्भिद, आन्तरिक्ष (आकाशका) अथवा कूपका जल पीना चाहिये. शरदृतुमें नदीका जल तथा जिस जलाशयके ऊपर संपूर्ण दिन सूर्यकी किरणें पडती होंय और रात्रिमें चन्द्रमाकी किरणें पडती होंय उस जलाशयका पानी हितकारी है, ऐसे जलाशयके जलको अंशूदक कहते हैं. अंशूदक जल स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, अनभिष्यंदी, निर्दोष, अंतरिक्षजलके सदृश, बलकारक, रसायनरूप, मेधाको हितकारी, शीतल, हलका और अमृतके सदृश है. कोई ऐसाभी कहते हैं कि "शरदृतुमें अगस्त्यका उदय होनेपर सर्वजल हितकारी है" ॥ ५२-५६ ॥

वृद्धसुश्रुतस्तु ।

पौषे वारि सरोजातं माघे तत्तु तडागजम् । फाल्गुने कूपसम्भूतं चैत्रे चौंज्यं हितं मतम् ॥ ५७ ॥ वैशाखे नैर्झरं नीरं ज्येष्ठे शस्तं तथौद्भिदम् । आषाढे शस्यते कौपं श्रावणे दिव्यमेव च ॥ ५८ ॥ भाद्रे कौप्यं पयः शस्तमाश्विने चौंडचमेव च । कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते ॥ ५९ ॥

भाषा-वृद्धसुश्रुत कहते हैं कि "पौषमासमें सरोवर (झीलका) जल, माघमें तडागका, फाल्गुनमें कुएका, चैत्रमें चौंज्यका, वैशाखमें झरनेका, ज्येष्ठमें औद्भिदका, आषाढमें कुएका, श्रावणमें अंतरिक्षका, भाद्रपदमें कुएका, आश्विनमें चौंड्यका और कार्तिकमें तथा मार्गशिरमें सर्व जलाशयोंका जल हितकारी है ॥ ५७-५९ ॥

जलग्रहणसमयः ।

भौमानामम्भसां प्रायो ग्रहणं प्रातरिष्यते । शीतत्वं निर्मलत्वं च यतस्तेषां मतो गुणः ६०

भाषा-पृथ्वीपरका जल, नदी, तालाव, सरोवर आदिका जल अधिक करके प्रातःकालमें भर लेना चाहिये, क्योंकि उस समय उसमें शीतलता और निर्मलता ये दो गुण होते हैं ॥ ६० ॥

जलपानविधिः ।

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः । तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥ ६१ ॥

भाषा-अधिक जल पिये तो भली भांति अन्न नहीं पचता है और जल नहीं पिये तोभी अन्न नहीं पचता है, इस कारण मनुष्यको अग्नि बढनेके लिये जल थोडा २ बार बार पीना चाहिये ॥ ६१ ॥

शीतलजलपानम् ।

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये । श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने तमके वमथौ तथा ॥ ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्बु प्रशस्यते ॥ ६२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–मूर्च्छा, पित्त, गरमी, दाह, विष, रक्तविकार, मद्यात्यय, परिश्रम, भ्रम, तमकश्वास, वमन और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त इन रोगोंमें तथा जिसका अन्न जल गया हो उनको शीतल जल पीना चाहिये ॥ ६२ ॥

शीतलजलनिषेधः ।

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे । आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ॥ ६३ ॥ अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ । हिक्कायां स्नेहपाने च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥ ६४ ॥

भाषा–पसलीके दर्दमें, प्रतिश्याय (जुखाम) में, वायुसंबंधी रोगोंमें, गलग्रहरोगमें, अफरेमें, कोष्ठबद्धमें, विरेचन (जुलाब) लेनेपर, तात्कालिक ज्वरमें, अरुचिमें, संग्रहणीमें, गुल्मरोगमें श्वास तथा खांसीमें, विद्रधिमें, हिचकी और स्नेह (तेल आदि) के पीनेमें शीतलजल वर्जित है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अल्पजलपानम् ।

अरोचके प्रतिश्याये मन्देऽग्नौ श्वयथौ क्षये । मुखप्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रामये ज्वरे ॥ व्रणे च मधुमेहे च पिबेत्पानीयमल्पकम् ॥ ६५ ॥

भाषा–अरुचि, प्रतिश्याय, मंदाग्नि, शोथ, क्षय, मुखप्रसेक (मुखसे जल बहना), उदररोग, कोढ, नेत्ररोग, ज्वर, व्रण और मधुमेह इनमें थोडा जल पीना चाहिय ॥ ६५ ॥

जलपानावश्यकता ।

जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वं तु तन्मयम् । नातोऽत्यन्तनिषेधेन कदाचिद्वारि वार्यते ॥६६॥

भाषा–जल प्राणियोंका जीवनरूप है और संपूर्ण जगत् जलसे भरा हुआ है, इस कारण किसी समयमेंभी जल पीनेका अत्यंत अवरोध नहीं करना चाहिये ॥ ६६ ॥

हारीतश्च ।

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविनाशिनी । तस्मादेयं तृषार्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥ ६७ ॥ तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति । अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वर्जयेत् ॥ ६८ ॥

भाषा–हारीत मुनिने कहा है कि तृषा अत्यंत भयंकर है, क्योंकि तत्काल प्राणोंको नष्ट कर देती है, इस कारण तृषित मनुष्यको जल देना चाहिये जिससे प्राण स्थिर रहे. तृषित (प्यासे) मनुष्यको मोह उत्पन्न होता है और मोहसे प्राण जाते हैं. इस कारण किसी समयमेंभी जलका त्याग नहीं करे ॥६७॥६८॥

गुणकारिजलम् ।

अगन्धमव्यक्तरसं सुशीतं तर्षनाशनम् । स्वच्छं लघु च हृद्यं च तोयं गुणवदुच्यते ॥६९॥

भाषा–जो जल दुर्गंधरहित, कोई रसयुक्त न हो, बहुत शीतल, तृषानाशक, निर्मल, हलका और हृदयको प्रिय हो वह जल गुणकारी जानना ॥ ६९ ॥

निंदितजलम् ।

पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं पर्णशैवालकर्दमैः । विवर्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं निहतं जलम् ॥ ७० ॥ कलुषं छन्नमम्भोजपर्णनीलीतृणादिभिः । दुःस्पर्शनमसंस्पृष्टं सौरचान्द्रमरीचिभिः ॥ ७१ ॥ अनार्त्तवं वार्षिकं तु प्रथमं तच्च भूमिगम् । व्यापन्नं परिहर्त्तव्यं सर्वदोषप्रकोपनम् ॥ ७२ ॥ तत्कुर्यात्स्नानपानाभ्यां तृष्णाध्मानचिरज्वरान् । कासाग्निमान्द्याभिष्यन्दकण्डूगण्डादिकं तथा ॥ ७३ ॥

भाषा–जो जल पिच्छिल, कृमियुक्त, पत्ते, सिवार तथा कींचसे खराब हुआ, वर्णरहित, रसरहित, गाढा अथवा दुर्गंधयुक्त हो वह अहितकारी है. तैसेही कलुषित (गदला), कमलके पत्ते, सिवार तथा तृण आदिसे आच्छादित, बुरे स्थानका, सूर्य तथा चंद्रमाकी किरणोंसे रहित, विना ऋतु (पौष आदि महीने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नौका) वर्षनेपर जो तीन दिनतक न रखा रहा हो और बिगडा हुआ जल छोड देना चाहिये, क्योंकि उस जलसे सम्पूर्ण दोष कुपित होते हैं. ऐसे जलमें स्नान करनेसे तथा पीनेसे तृषा, अफरा, जीर्णज्वर, खांसी, अग्निकी मंदता, अभिष्यंदी, कण्डू, गलगण्ड आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ७०-७३ ॥

दूषितजलनिर्दोषकरणविधिः ।

निन्दितं चापि पानीयं क्वथितं सूर्यतापितम् ।
सुवर्णं रजतं लौहं पाषाणं सिकतामपि ॥ ७४ ॥
भृशं सन्ताप्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा ।
कर्पूरजातिपुन्नागपाटलादिसुवासितम् ॥ ७५ ॥
शुचि सान्द्रपटस्रावि क्षुद्रजन्तुविवर्जितम् ।
स्वच्छं कनकमुक्ताद्यैः शुद्धं स्याद्दोषवर्जितम् ॥ ७६ ॥ पर्णमूलविषग्रन्थिमुक्ताकनकशैवलैः ।
गोमेदेन च वस्त्रेण कुर्यादम्बुप्रसादनम् ॥७७॥

भाषा-दूषित जलको उष्ण कर लेनेसे, अथवा सूर्यकी किरणोंसे तपानेसे, अथवा सुवर्ण, चांदी, लोहा, पत्थर तथा रेत (वालू) को बहुत तपाकर सात वार बुझानेसे, कपूर, चमेली, केशर, पाढर आदि द्वारा सुवासित करनेसे पवित्र वस्त्रमें छानकर जिससे छोटे छोटे जीव निकल जाय इस कारण स्वच्छ करनेसे, वा सुवर्ण मोती आदि द्वारा स्वच्छ करनेसे जल शुद्ध और दोषरहित हो जाता है. पत्ते, जड तथा कमलकी नालसे, मोती, सुवर्ण, शैवाल, गोमेद और वस्त्रसे जलको स्वच्छ करना चाहिये ॥ ७४-७७ ॥

पीतजलपाकविधिः ।

पीतं जलं जीर्य्यति यामयुग्माद्यामैकमात्राच्छृतशीतलं च । तदर्द्धमात्रेण शृतं कदुष्णं पयःप्रपाके त्रय एव कालाः ॥ ७८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे वारिवर्गः समाप्तः ॥ १२ ॥

भाषा-शीतल जल पिया हुआ दो प्रहरमें पचता है, गरम करके शीतल किया हुआ जल पीनेसे एक प्रहरमें पचता है और किंचित् उष्ण पिया हुआ पानी चार घडीमें पचता है इस प्रकार जल पचनेके तीनही समय हैं ॥ ७८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे वारिवर्गः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ दुग्धवर्गः १३ ।

दुग्धनामानि ।

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं बालजीवनमित्यपि ।

भाषा-दुग्ध, क्षीर, पय, स्तन्य, बालजीवन ये दूधके संस्कृत नाम हैं. (पीयूष, ऊधस्य, अमृत, दोहज, अवदोह और दोहापनय ये दूधके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके दूधके नाम.

सं.-दुग्ध.	तै.-पालु.
हिं.-दूध.	ता.-पाल.
बं.-दुध.	फा.-शीरे.
म.-दूध.	अ.-जुवन.
गु.-दूध.	अं.-Milk मिल्क.
क.-हालु.	ला.-Lactus लक्टस्.

दुग्धगुणाः ।

दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् । सद्यःशुक्रकरं शीतं सात्म्यं सर्वशरीरिणाम् ॥ १ ॥ जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजीकरं परम् । वयस्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ॥ २ ॥ विरेकवान्तिबस्तीनां सेव्यमोजोविवर्द्धनम् । जीर्णज्वरे मनोरोगे शोषमूर्च्छा भ्रमेषु च ॥ ३ ॥ ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहे तृषि हृदामये । शूलोदावर्तगुल्मेषु बस्तिरोगे गुदांकुरे ॥ ४ ॥ रक्तपित्तेऽतिसारे च योनिरोगे श्रमे क्लमे । गर्भस्रावे च सततं हितं मुनिवरैः स्मृतम् ॥ ५ ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणाः क्षुद्रचवायकृशाश्च ये । तेभ्यः सदातिशयितं हितमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–दूध मधुर, स्निग्ध, वातनाशक, पित्तनाशक, दस्तावर, वीर्यको शीघ्र उत्पन्न करनेवाला, शीतल, सर्वप्राणियोंके अनुकूल, जीवनरूप, पुष्टिकारक, बलदायक, बुद्धिको उत्तम करनेवाला, अत्यंतवाजीकरण, आयुको स्थापन करनेवाला, आयुष्य, संधानकारक, रसायन है और विरेचन, वमनक्रिया तथा बस्तिक्रियाके सदृशही ओजवर्द्धक है. जीर्णज्वर, मानसिकरोग, उन्मादादिक, शोष, मूर्च्छा, भ्रम, संग्रहणी, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, हृदयरोग, शूल, उदावर्तरोग, गुल्म, बस्तिरोग, अर्श, बवासीर, रक्तपित्त, अतीसार, योनिरोग, परिश्रम, ग्लानि और गर्भस्राव इनमें मुनियोंने दूध सर्वदा हितकारी कहा है. जो बालक, वृद्ध, क्षतवाला, क्षीण हुआ, भूखसे दुर्बल हुआ अथवा मैथुनसे दुर्बल हुआ है, उनको दूध सर्वदा अत्यंत हितकारी है ॥ १–६ ॥

गोदुग्धगुणाः ।

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रसपाकयोः । शीतलं स्तन्यकृत्स्निग्धं वातपित्तास्रनाशनम् ॥ ७ ॥ दोषधातुमलस्रोतःकिञ्चित्क्लेदकरं गुरु । जरासमस्तरोगाणां शान्तिकृत्सेविनां सदा ॥ ८ ॥ कृष्णाया गोर्भवेद्दुग्धं वातहारि गुणाधिकम् । पीताया हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत् ॥ श्लेष्मलं गुरु शुक्लाया रक्तचित्रा च वातहृत् ॥ ९ ॥

भाषा–गायका दूध विशेष करके रसमें तथा पाकमें मधुर, शीतल, दुग्धवर्द्धक, स्निग्ध, वातनाशक, पित्तनाशक, रक्तविकारनाशक है, दोषधातु, मल तथा नाडियोंको किंचित् आर्द्र करनेवाला, भारी और सर्वदा सेवन करनेवालोंके सम्पूर्ण रोग तथा वृद्धताको नष्ट करनेवाला है. काली गायका दूध वातनाशक और अधिक गुणवाला है. पीली गायका दूध पित्तनाशक तथा वातनाशक है. सफेद गायका दूध कफकारक तथा भारी है. लाल तथा चितकबरी गायका दूध वातविनाशक है ॥ ७–९ ॥

सद्यःप्रसूतविवत्सगोदुग्धगुणाः ।

बालवत्सविवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोषकृत् ।

भाषा–छोटे बछडेवाली तथा विना बच्चेवाली गायका दूध त्रिदोषकारक है ॥

बष्कयिणीगोदुग्धगुणाः ।

बष्कयिण्यास्त्रिदोषघ्नं तर्पणं बलकृत्पयः ।

भाषा–वाखरी (बकन्न) गायका दूध त्रिदोषनाशक, तृप्तिकारक और बलदायक है ॥

देशविशेषगोदुग्धगुणाः ।

जाङ्गलानूपशैलेषु चरन्तीनां यथोत्तरम् । पयो गुरुतरं स्नेहो यथाहारं प्रवर्त्तते ॥ १० ॥

भाषा–जांगलदेश, अनूपदेश और पर्वतोंमें चरनेवाली गायोंका दूध एकसे एक अधिक भारी है और जिस वस्तुका गायें आहार करती हैं, उसही वस्तुका दूधमें चिकनापन होता है॥१०॥

आहारविशेषतया गोदुग्धगुणाः ।

स्पल्पान्नभक्षणाज्जातं क्षीरं गुरु कफप्रदम् । तत्तु बल्यं परं वृष्यं स्वस्थानां गुणदायकम् ॥ पलालतृणकार्पासबीजजातं गुणैर्हितम् ॥ ११ ॥

भाषा–जो गायें थोडा अन्न खाती हैं इससे उनका दूध भारी, कफकारक, बलवर्द्धक, अत्यंत वृष्य और नीरोगी मनुष्योंको गुणदायक है. जो पलाल, करवी, घास, विनौला आदि खाती हैं, उनका दूध अत्यंत हितकारी जानना ॥ ११ ॥

माहिषदुग्धगुणाः ।

माहिषं मधुरं गव्यात्स्निग्धं शुक्रकरं गुरु । निद्राकरमभिष्यन्दि क्षुधाधिक्यकरं हितम् १२॥

भाषा–भैंसका दूध गायके दूधसे अधिक मधुर, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, भारी, निद्रादायक, कफकारी, क्षुधावर्द्धक और शीतल है ॥ १२ ॥

छागदुग्धगुणाः ।

छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु । रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम् ॥ १३ ॥ अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात् । स्तोकाम्बुपानाद्व्यायामात्सर्वरोगापहं पयः १४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-बकरीका दूध कसैला, मधुर, शीतल, ग्राही, हलका है और रक्तपित्त, अतीसार, क्षय, खांसी तथा ज्वरको नष्ट करता है. बकरी चरपरे तथा कडवे पदार्थोंको खाती है, पानी थोडा पीती है और फिरनेका अधिक परिश्रम करती है. इस कारण बकरीका दूध सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

मृगीदुग्धगुणाः ।

मृगीणां जाङ्गलोत्थानामजाक्षीरगुणं पयः ।

भाषा-जंगलमें उत्पन्न हुई हिरनी आदिका दूध बकरीके दूधके सदृशही है ॥

आविकदुग्धगुणाः ।

आविकं लवणं स्वादु स्निग्धोष्णं चाश्मरीप्रणुत् । अहृद्यं तर्पणं वृष्यं शुक्रपित्तकफप्रदम् ॥ गुरु कासाऽनिलोद्भूते केवले चानिले वरम्॥१५॥

भाषा-भेडका दूध खारी, स्वादिष्ठ, स्निग्ध, गरम, पथरीको नष्ट करनेवाला, हृदयको अप्रिय, तृप्तिदायक, वृष्य, वीर्यकारक, कफकारक, पित्तकारक है तथा वातकी खांसी वा वातरोगमें हितकारी है ॥ १५ ॥

वडवादुग्धगुणाः ।

रूक्षोष्णं वडवाक्षीरं बल्यं शोषानिलापहम् । अम्लं पटु लघु स्वादु सर्वमैकशफं तथा॥१६॥

भाषा-घोडीका दूध रूखा, गरम, बलदायक, खट्टा, खारी, हलका और स्वादिष्ठ है. एक खुरवाले सब पशुओंका दूध इसी गुणयुक्त है ॥ १६ ॥

औष्ट्रदुग्धगुणाः ।

औष्ट्रं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीपनं तथा । कृमिकुष्ठकफानाहशोथोदरहरं सरम् ॥ १७ ॥

भाषा-ऊंटनीका दूध हलका, मधुर, खारी, अग्निप्रदीपक, दस्तावर है और कृमि, कोढ, कफ, अफरा, सूजन तथा उदररोगका नाश करता है ॥ १७ ॥

हस्तिनीदुग्धगुणाः ।

बृंहणं हस्तिनीदुग्धं मधुरं तुवरं गुरु । वृष्यं बल्यं हिमं स्निग्धं चक्षुष्यं स्थिरताकरम्॥१८॥

भाषा-हस्तिनीका दूध पुष्टिकारक, मधुर, कसैला, भारी, वृष्य, बलकारक, शीतल, स्निग्ध, नेत्रोंको हितकारी और दृढताकारक है ॥१८॥

स्त्रीदुग्धगुणाः ।

नार्या लघु पयः शीतं दीपनं वातपित्तजित् । चक्षुःशूलाभिघातघ्नं नस्याश्च्योतनयोर्वरम् १९

भाषा-स्त्रीका दूध हलका, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाला है और वात, पित्त, नेत्रोंका शूल तथा अभिवातका नाश करता है और नस्य देनेमें तथा आश्च्योतनकार्यमें उत्तम है ॥ १९ ॥

धारोष्णदुग्धगुणाः ।

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधासमम् । दीपनं च त्रिदोषघ्नं तद्धाराशिशिरं त्यजेत् ॥ २० ॥ धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतं तु माहिषम् । शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥ २१ ॥ आमं क्षीरमभिष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्द्धनम् । ज्ञेयं सर्वमपथ्यं तु गव्यमाहिषवर्जितम् ॥ २२ ॥ नारीक्षीरं त्वामेव हितं न तु शृतं हितम् । शृतोष्णं कफवातघ्नं शृतशीतं तु पित्तनुत् ॥ २३ ॥ अर्द्धोदकं क्षीरशिष्टमामाल्पघुतरं पयः । जलेन रहितं दुग्धमतिपक्वं यथा यथा ॥ तथा तथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बलविवर्द्धनम् ॥ २४ ॥

भाषा-गायका धारोष्ण दूध बलकारक, हलका, शीतल, अमृतके सदृश, अग्निको दीपन करनेवाला और त्रिदोषनाशक है. गायका दूध दुहकर शीतल हो गया हो तो अग्निसे गरम करके उसका उपयोग करे. गायका दूध धारोष्ण और भैंसका दूध दुहकर पीछे शीतल हो गया हो वह प्रशंसित है. भेडका दूध गरम और बकरीका दूध औटाकर शीतल हुआ पथ्य है. कच्चा दूध अभिष्यंदि, भारी, कफकारक, तथा आमवर्द्धक है. इस कारण गाय तथा भैंसके अतिरिक्त सब कच्चे दूध अपथ्य हैं. स्त्रीका दूध तो कच्चाही हितकारी है, परंतु गरम किया हुआ अहितकारी है. गरम किया हुआ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूध कफनाशक तथा वातनाशक और गरम करके शीतल किया हुआ दूध पित्तनाशक है. दूधमें आधा जल डालकर उसको औटावे, जब केवल दूधही शेष रहे तब वह दूध कच्चेसेभी अधिक हलका है. जलरहित दूध जितना जितना अधिक पकावे उतना उतनाही भारी, स्निग्ध, वृष्य और बलवर्द्धक होता है ॥ २०-२४ ॥

पीयूषादिलक्षणम् ।

क्षीरं तत्कालसूताया घनं पीयूषमुच्यते । नष्टदुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः २५॥ अपक्वमेव यन्नष्टं क्षीरशाकं हि तत्पयः । दध्ना तक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा ॥ २६ ॥ द्रवभावेन सहितं तक्रपिण्डः स उच्यते । नष्टदुग्धं भवेन्नीरं मोरटं जेज्जटोऽब्रवीत् ॥ २७ ॥ किलाटकः 'खरेटा' इति लोके । क्षीरशाकं 'तुर्पिभरा' इति लोके ।

भाषा-तत्काल व्याई हुई गाय भैंसके दूधको पीयूष अर्थात् खीश कहते हैं. जो दूध जलकर नष्ट हो गया हो या पिंड बन गया हो उसको किलाट अर्थात् मावा (खोवा) कहते हैं. जो दूध कच्चाही जमकर मावेके सदृश हो गया हो उसको क्षीरशाक कहते हैं. दूधको दही अथवा छाछसे जमाकर स्वच्छ वस्त्रमें बांध उसके जलको निकालनेसे जो पिंड बंध जाता है उसमें यदि जलका अंश होय तौ तक्रपिंड कहाता है. फट जानेपर दूधमेंसे जो जल निकलता है उसको मोरट कहते हैं ऐसा जेज्जट आचार्य कहते हैं ॥ २५-२७ ॥

पीयूषादिगुणाः ।

पीयूषं च किलाटश्च क्षीरशाकं तथैव च । तक्रपिण्ड इमे वृष्या बृंहणा बलवर्द्धनाः ॥२८॥ गुरवः श्लेष्मला हृद्या वातपित्तविनाशनाः । दीप्ताग्नीनां विनिद्राणां विद्रधौ चाभिपूजिताः ॥२९॥ मुखशोषतृषादाहरक्तपित्तज्वरप्रणुत् । लघुर्बलकरो रुच्यो मोरटः स्यात्सितायुतः ॥ ३० ॥

भाषा-पीयूष, किलाट, क्षीरशाक और तक्रपिण्ड ये सब वृष्य, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, भारी, कफकारक, हृदयको प्रिय, वातनाशक, पित्तनाशक और जिनकी अग्नि प्रदीप्त है, जिनको निद्रा नहीं आती, उनको तथा विद्रधिरोगवालेको बहुत उत्तम है. बूरासहित मोरट हलका, बलदायक, रुचिकारक है और मुखशोष, तृषा, दाह, रक्तपित्त तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ २८-३० ॥

संतानिकागुणाः ।

सन्तानिका गुरुः शीता वृष्या पित्तास्रवातनुत् । तर्पणी बृंहणी स्निग्धा बलासबलशुक्रला ॥ ३१ ॥

भाषा-सन्तानिका (मलाई) भारी, शीतल, वृष्य, पित्तरक्तविकारनाशक, वातनाशक, तृप्तिकारक, पुष्टिदायक, स्निग्ध है और कफ, बल तथा वीर्यको बढाती है ॥ ३१ ॥

खांडयुक्तदुग्धगुणाः ।

खण्डेन सहितं दुग्धं कफकृत्पवनापहम् । सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं त्रिमलापहम् ॥ सगुडं मूत्रकृच्छ्रघ्नं पित्तश्लेष्मकरं परम् ॥३२ ॥

भाषा-खांड पडा हुआ दूध कफकारक और वातनाशक है. बूरा अथवा मिश्री पडा हुआ दूध वीर्यवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है. गुड पडा हुआ दूध मूत्रकृच्छ्रनाशक है और पित्त तथा कफको अत्यंत करनेवाला है ॥ ३२ ॥

प्रभातादिसमयदुग्धगुणाः ।

रात्रौ चन्द्रगुणाधिक्याद्धचायामाकरणात्तथा । प्राभातिकं तदा प्रायः प्रादोषाद्गुरु शीतलम् ॥ ३३ ॥ दिवाकरकराघाताद्धचायामानलसेवनात् । प्राभातिकात्तु प्रादोषं लघु वातकफापहम् ॥ ३४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-रात्रिमें चंद्रमाके गुण अधिक होनेसे और चलने फिरनेका परिश्रम नहीं होनेसे प्रभातकालका दूध अधिक करके संध्याकालके दूधसे भारी और शीतल है. दिनमें सूर्यकी किरणोंका ताप होनेसे और परिश्रमकी गरमीका सेवन होनेसे संध्याका दूध प्रभातके दूधसे हलका है और वात तथा कफको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

समयविशेषे दुग्धसेवनगुणाः ।

वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम् । बाले वृद्धिकरं क्षये क्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं क्षीरं सदा सेव्यते ॥ ३५ ॥ वदन्ति पेयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहौदनादिकम् । भवत्यजीर्णे निशि पीतशर्करा क्षीरालपपानस्य तु शेषमुत्सृजेत् ॥ ३६ ॥ विदाहीन्यन्नपानानि दिवा भुङ्क्ते हि यन्नरः । तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं सदा पिबेत् ॥ ३७ ॥ दीप्तानले कृशे पुंसि वातवृद्धे पयःप्रिये । मतं हिततमं पथ्यं सद्यः शुक्रकरं यतः ॥ ३८ ॥

भाषा-पूर्वाह्ण कालमें दूधका पीना वृष्य, पुष्टिकारक और अग्निप्रदीपक है, मध्याह्नकालमें दूधका सेवन बलवर्द्धक, कफनाशक, पित्तनाशक है और अग्निको दीपन करता है. रात्रिके समय दूधका सेवन बालकोंको वृद्धिकारक, क्षयका नाश करनेवाला, वृद्ध लोगोंको वीर्यवर्द्धक, अत्यंत पथ्य, अनेक दोषोंको शांत करनेवाला और नेत्रोंको हितकारी है. रात्रिमें केवल दूधही पीना चाहिये, उसके साथ भोजन आदि न करे, ऐसाभी कोई २ कहते हैं. रात्रिमें दूधके साथ भोजन करनेसे अजीर्ण होता है और निद्रा नहीं आती है. पीनेके लिये पात्रमें लिया हुआ दूध सब पीजावे, परंतु उसमेंसे छोडे नहीं. दिनमें जो दाहकारक अन्न आदि सेवन किया हो उसकी दाहकी शांति करनेके लिये नित्य रात्रिमें दूध पीना चाहिये, जिनकी अग्नि दीपन है उनको, दुर्बल शरीरवालोंको, बालकको, युवा तथा वृद्धको दूध अत्यंत हितकारी, पथ्य और तत्काल वीर्यवर्द्धक है ॥ ३५-३८ ॥

मथितदुग्धगुणाः ।

क्षीरं गव्यमथाजं वा कोष्णं दण्डाहतं पिबेत् । लघु वृष्यं ज्वरहरं वातपित्तकफापहम् ॥ ३९ ॥

भाषा-गाय अथवा बकरीका दूध रईसे मथकर किंचित् उष्ण करके पिये तो हलका, वृष्य, ज्वरनाशक, वातनाशक, पित्तनाशक तथा कफनाशक है ॥ ३९ ॥

दुग्धफेनगुणाः ।

गोदुग्धप्रभवं किंवा छागीदुग्धसमुद्भवम् । भवेत्कोष्णं त्रिदोषघ्नं रोचनं बलवर्द्धनम् ॥ ४० ॥ वह्निवृद्धिकरं वृष्यं सद्यस्तृप्तिकरं लघु । अतीसारेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

भाषा-गाय अथवा बकरीके दूधका झाग त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, बलवर्द्धक, अग्निप्रदीपक, वृष्य, शीघ्र तृप्तिकारक और हलका है. यह फेन अतीसारमें, अग्निकी मंदतामें तथा जीर्णज्वरमें बहुत उत्तम है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

निन्दितदुग्धम् ।

विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गंधं ग्रथितं पयः । वर्जयेदम्ललवणयुक्तं बुद्ध्यादिहृद्यतः ॥ ४२ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे दुग्धवर्गः समाप्तः ॥ १३ ॥

भाषा-जो दूध विवर्ण, विरस (बूरे स्वादका), खट्टा, दुर्गंधित, फटा हुआ, अम्ल पदार्थ अथवा खारी पदार्थयुक्त हो उसको त्याग दे. क्योंकि इससे बुद्धि आदि नष्ट होती है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे दुग्धवर्गः समाप्तः ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ दधिवर्गः १४ ।

अनेक भाषाके दहीके नाम.

सं.–दधि.	तै.–पेरगु.
हिं.–दही.	ता.–ताइर.
म.–दही.	फा.–दोग.
गु.–दही.	अ.–जुगरात.
क.–मोसर.	अं.–Curd कर्ड.

दधिगुणाः ।

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु ।
पाकेऽम्लं श्वासपित्तास्रशोथमेदःकफप्रदम् ॥१॥
मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरे ।
अतीसारेऽरुचौ काश्र्ये शस्यते बलशुक्रकृत्॥२॥

भाषा–दही गरम, अग्निप्रदीपक, स्निग्ध, किंचित् कसैला, भारी, पाकमें खट्टा है और श्वास, पित्त, रक्तविकार, सूजन, मेद तथा कफ इनको करता है. यह दही मूत्रकृच्छ्र, प्रतिश्याय (जुखाम), शीत, विषमज्वर, अतीसार, अरुचि और दुर्बलता इन सबमें अत्यंत हितकारी है तथा बलवर्धक और वीर्यवर्द्धक है ॥ १ ॥ २ ॥

दधिभेदाः ।

आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लं च ततः परम् ।
अम्लं चतुर्थमत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्चधा ॥ ३ ॥

भाषा–मंद, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल और अत्यम्ल इस प्रकार दहीके पांच भेद हैं ॥ ३ ॥

मन्ददधिलक्षणम् ।

मन्दं दुग्धं यदव्यक्तरसं किञ्चिद्घनं भवेत् ।

भाषा–जो दही दूधके सदृश, अव्यक्त रसवाला और किंचित् घन (गाढा) हो उसको मंद दही जानना ॥

मन्ददधिगुणाः ।

मन्दं स्यात्सृष्टविण्मूत्रं दोषत्रयविदाहकृत् ।

भाषा–मंद दही मल तथा मूत्रको प्रवर्त्तानेवाला है और त्रिदोष और दाहको उत्पन्न करता है ॥

स्वादुदधिलक्षणम् ।

यत्सम्यग्घनतां यातं व्यक्तं स्वादुरसं भवेत् ।
अव्यक्ताम्लरसं तत्तु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम्॥४॥

भाषा–जो दही भली भांति गाढा हुआ, स्फुटा हुआ, स्वादिष्ठ, अव्यक्त और अम्लरसयुक्त हो उसको विद्वान् लोग स्वादु कहते हैं ॥ ४ ॥

स्वादुदधिगुणाः ।

स्वादु स्यादत्यभिष्यन्दि वृष्यं मेदःकफावहम् ।
वातघ्नं मधुरं पाके रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ५ ॥

भाषा–स्वादु दही अत्यंत अभिष्यंदि, मैथुनशक्तिवर्द्धक, मेदवर्धक, कफवर्द्धक, वातनाशक, पाकमें मधुर और रक्तपित्तको स्वच्छ करनेवाला है ॥ ५ ॥

स्वाद्वम्लदधिलक्षणम् ।

स्वाद्वम्लं मधुरं सान्द्रं कषायाद्युरसं भवेत् ।

भाषा–जो दही खट्टा, मीठा और गाढा कषायरसयुक्त है उसको स्वाद्वम्ल कहते हैं ॥

स्वाद्वम्लदधिगुणाः ।

स्वाद्वम्लस्य गुणा ज्ञेयाः सामान्यदधिवज्जनैः ।

भाषा–इस दहीके गुण सामान्य दहीके सदृशही जाने ॥

अम्लदधिलक्षणम् ।

यत्तिरोहितमाधुर्यं व्यक्ताम्लत्वं तदम्लकम् ।

भाषा–जिस दहीमेंसे मिठास जाता रहा हो और खट्टा तथा अव्यक्त रसयुक्त हो गया हो उस दहीको अम्ल जानना ॥

अम्लदधिगुणाः ।

अम्लं तु दीपनं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ।

भाषा–अम्ल दही अग्निप्रदीपक, पित्तवर्धक, रक्तवर्धक तथा कफवर्द्धक है ॥

अत्यम्लदधिलक्षणम् ।

तदत्यम्लं दन्तरोमहर्षकण्ठादिदाहकृत् ।

भाषा–जिस दहीसे दांत हर्षित हो जाय, रोम खडे हो जाय और कंठ आदिमें दाह हो जाय उसको अत्यम्ल कहते हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्यम्लदधिगुणाः।

अत्यम्लं दीपनं रक्तवातपित्तकरं परम्।

भाषा-अत्यम्ल (अत्यंत खट्टा) दही अग्निप्रदीपक है और रक्तविकार, वात तथा पित्तको अत्यंत उत्पन्न करता है॥

गोदधिगुणाः।

गव्यं दधि विशेषेण स्वाद्वम्लं च रुचिप्रदम्। पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टिकृत्पवनापहम्॥ उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम्॥ ६॥

भाषा-गायका दही विशेष करके मीठा, खट्टा रुचिकारक, पवित्र, अग्निप्रदीपक, हृदयको प्रिय, पुष्टिकारक और वातनाशक है. सम्पूर्ण दहियोंमें गायका दही अधिक गुणवाला जानना॥ ६॥

माहिषदधिगुणाः।

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत्। स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्वस्रदूषकम्॥७॥

भाषा-भैंसका दही बहुत स्निग्ध, कफकारक, वातनाशक, पित्तनाशक, पाकमें मीठा, अभिष्यंदि, वृष्य, भारी और रक्तविकार-नाशक है॥ ७॥

आजदधिगुणाः।

आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रयापहम्। शस्यते श्वासकासार्शःशयकार्श्येषु दीपनम्॥ ८॥

भाषा-बकरीका दही उत्तम, ग्राही, हलका, त्रिदोषनाशक अग्निप्रदीपक है और श्वास, खांसी, बवासीर, क्षय तथा दुर्बलतामें हितकारी है॥ ८॥

पक्वदुग्धदधिगुणाः।

पक्वं दुग्धभवं रुच्यं दधि स्निग्धं गुणोत्तमम्। पित्तानिलापहं सर्वधात्वग्निबलवर्द्धनम्॥ ९॥

भाषा-पके दूधका दही रुचिकारक, स्निग्ध, उत्तम गुणवाला, पित्तनाशक, वातनाशक और सम्पूर्ण धातुओंके तथा अग्निके बलको बढानेवाला है॥ ९॥

निःसारदुग्धदधिगुणाः।

असारं दधि संग्राहि शीतलं वातलं लघु। विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणीरोगनाशनम्॥ १०॥

भाषा-निःसार दूधका दही ग्राही, शीतल, वातकारक, हलका, विष्टम्भि, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक और संग्रहणीरोगनाशक है॥ १०॥

गालितदधिगुणाः।

गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं कफकृद्गुरु। बलपुष्टिकरं रुच्यं मधुरं नातिपित्तकृत्॥ ११॥

भाषा-गालित (वस्त्रमें छना हुआ) दही स्निग्ध, वातनाशक, कफकारक, भारी, बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिकारी, मधुर है और अत्यंत पित्तकारक नहीं है॥ ११॥

शर्करासहितदधिगुणाः।

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णापित्तास्रदाहजित्। सगुडं वातनुद्वृष्यं बृंहणं तर्पणं गुरु॥ १२॥

भाषा-बूरा पडा हुआ दही श्रेष्ठ और तृषानाशक, पित्तनाशक, रक्तविकारनाशक तथा दाहनाशक है. गुड पडा हुआ दही वातनाशक, वृष्य, पुष्टिकारक, तृप्तिदायक और भारी है॥ १२॥

रात्रौ दधिसेवननिषेधः।

न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्। नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना॥ १३॥

अयमर्थः-रात्रौ दधि न भुञ्जीत भुञ्जीत चेत्तदा अघृतशर्करममुद्गसूपमक्षौद्रमनुष्णं विनामलकैश्च दधि न भुञ्जीत। तेन घृतशर्करादियुक्तं दधि रात्रावपि भुञ्जीतेत्यर्थः।

भाषा-रात्रिमें दही नहीं खावे. यदि खावे तो विना घृत और बूराके खावे, विना मूंगकी दालके, विना शहदके, विना गरम किये हुए और विना आवलोंके नहीं खावे. घी बूरा (खांड) आदियुक्त दही रात्रिमेंभी खा लेना चाहिये॥ १३॥

तथा च।

शस्यते दधि नो रात्रौ शस्तं चाम्बुघृतान्वितम्। रक्तपित्तकोत्थेषु विकारेषु तु नैव तत्॥१४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–रातमें दही खाना उत्तम नहीं. यदि खानेकी आवश्यकता होय तो घी तथा पानी डालकर खावे, रक्तपित्त तथा कफसंबंधी विकारोंमें घी तथा पानीसहितभी दही नहीं खावे ॥ १४ ॥

ऋतुविशेषतया विधिनिषेधः ।

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते । शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम् ॥१५॥

भाषा–हेमंत, शिशिर और वर्षा इन तीन ऋतुओंमें दही खाना उत्तम है. शरद्, ग्रीष्म और वसंतऋतुमें दही खाना अधिक करके उत्तम नहीं है ॥ १५ ॥

विधिरहितदधिसेवनदोषाः ।

ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्डामयभ्रमान् । प्राप्नुयात्कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः ॥ १६ ॥

भाषा–ज्वर, रक्तविकार, पित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डुरोग, भ्रम और भयंकर कामलारोगको प्राप्त होता है जो विधिको छोडकर दहीपर प्रेम करता है ॥ १६ ॥

सरमस्तुलक्षणम् ।

दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः । स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति १७

भाषा–दहीके ऊपर जो चिकना और घन पदार्थ होता है वह सर कहाता है और दहीके मण्ड (पानी) को मस्तु (दहीका तोर) कहते हैं ॥ १७ ॥

सरगुणाः ।

सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवह्निप्रणाशनः । साम्लो बस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ॥ १८ ॥

भाषा–सर मधुर, भारी, वृष्य, वायु तथा अग्निको नष्ट करनेवाला, अम्लरहित, बस्तिरोगको शांतकर्ता, पित्तवर्धक तथा कफवर्द्धक है ॥ १८ ॥

मस्तुगुणाः ।

मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् । स्रोतोविशोधनं ह्लादि कफतृष्णानिलापहम् ॥ अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसञ्चयम् १९

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे दधिवर्गः समाप्तः ॥ १४ ॥

भाषा–मस्तु ग्लानिनाशक, बलकारक, हलका, अन्नकी इच्छा करनेवाला, नाडियोंको शुद्ध करनेवाला, आनंददायक, कफनाशक, तृषानाशक, वातनाशक, अवृष्य, शीघ्र तृप्तिकारक और मलके संचयको तोडनेवाला है ॥ १९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे दधिवर्गः समाप्तः ॥ १४ ॥

अथ तक्रवर्गः १५ ।

तक्रनामानि ।

भाषा–तक्र, छाच्छिका, दण्डाहत, घोल, गोरस, द्रव, अम्ल, कंकर, मथित, मलिन, भग्नसंधिक, मोरसज, कालशेय, विलोडित, अरिष्ट, उदश्वित्, प्रमथिक, अम्बर, घल और केवल ये तक्रके संस्कृत नाम हैं ॥

अनेक भाषाके छाछके नाम.

सं.–तक्र.	ता.–मोरु.
हिं.–छांछ, मट्ठा, तक्र.	फा.–मस्त, मठा.
बं.–घोल.	अ.–हमीज.
म.–ताक, तक्र.	अं.–Buttermilk बटरमिल्क, Whey ह्वे.
गु.–छाश.	
क.–मज्जिगे.	
तै.–मज्जिगे.	

तक्रभेदाः ।

घोलं तु मथितं तक्रमुदश्वित्च्छाच्छिकापि च ।

भाषा–घोल, मथित, तक्र, उदश्वित् और छाच्छिका इस भांति छांछके पांच भेद हैं ॥

तक्रादिलक्षणम् ।

ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम् । तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्त्वर्द्धवारिकम् ॥ छाच्छिका सारहीना स्यात्स्वच्छा प्रचुरवारिका ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(मथितं 'महुवा' इति लोके । छच्छिका छाछ इति लोके ।)

भाषा-जिस दहीका विना पानी डाले मलाई सहित बिलोनेपर जो मट्ठा होता है उसको घोल कहते हैं. ऊपरकी मलाई निकालकर विना पानीका जो दही बिलोया जाय उसको मथित कहते हैं. जो दही चौथा भाग पानी डालकर बिलोया जाय वह तक्र (मट्ठा) कहाता है. आधा पानी डालकर बिलोया हुआ दही उदश्वित् कहाता है और बिलोकर जिसमेंसे मक्खन निकाल लिया हो तथा अधिक पानी डालकर बिलोया हो उसको छच्छिका (छांछ) कहते हैं ॥ १ ॥

घोलादितक्रगुणाः ।

घोलं तु शर्करायुक्तं गुणैर्ज्ञेयं रसालवत् । वातपित्तहरं ह्लादि मथितं कफपित्तनुत् ॥ २ ॥ तक्रं ग्राहि कषायाम्लं स्वादुपाकरसं लघु । वीर्योष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥ ३ ॥ ग्रहण्यादिमतां पथ्यं भवेत्संग्राहि लाघवात् । किञ्च स्वादुविपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपणम् ॥ ४ ॥ अम्लोष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् । कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चापि कफापहम् ॥ ५ ॥ न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः । यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ ६ ॥ उदश्वित्कफकृद्बल्यमामघ्नं परमं मतम् । छच्छिका शीतला लघ्वी पित्तश्रमतृषाहरी ॥ वातनुत्कफकृत्सा तु दीपनी लवणान्विता ॥ ७ ॥

भाषा-बूरा डालकर सेवन किया हुआ घोल आमके सदृश गुणवाला है. मथित वातनाशक, पित्तनाशक, हृदयको प्रिय और कफपित्तनाशक है. तक्र ग्राही, कसैला, खट्टा, पाकमें तथा रसमें मीठा, हलका, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, वृष्य, प्रीणन, वातनाशक और ग्रहणी आदि रोगवालोंको पथ्य है. तक्र हलका होनेसे ग्राही (मलको रोकनेवाला) है किंचित् पाकमें स्वादु होनेसे पित्तप्रकोप नहीं करता है, अम्ल, उष्णवीर्य, दीपन, वृष्य, प्रीणन, वातनाशक, कसैला, गरम और विकाशी तथा रूक्ष होनेसे कफनाशक है. तक्रका सेवन करनेवाले मनुष्य कदापि पीडित नहीं होते और तक्र सेवनसे नष्ट हुए रोग उत्पन्न नहीं होते. जैसे देवताओंके सुखके लिये अमृत होता है तैसेही तक्र पृथ्वीमें मनुष्योंको सुखदायक है. उदश्वित् कफकारक, बलवर्द्धक और अत्यंत आमनाशक है. छच्छिका शीतल, हलकी, पित्तनाशक, तृषानाशक, वातनाशक और कफकारक है. लवण डालकर सेवन करनेसे छच्छिका अग्निको दीपन करती है ॥ २-७ ॥

भिन्नभिन्नतक्रगुणाः ।

समुद्धृतघृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः । स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद्गुरु वृष्यं कफावहम् ॥ अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु पुष्टिकफप्रदम् ॥ ८ ॥

भाषा-जिसमेंसे घी सम्पूर्ण निकाल लिया हो ऐसा तक्र पथ्य है और अत्यंत हलका है. जिसमेंसे थोडा घृत निकाल लिया हो ऐसा तक्र उपरोक्त तक्रसे भारी, वृष्य और कफकारक है. जिसमेंसे बिलकुल घी नहीं निकाला हो ऐसा तक्र गाढा, भारी, पुष्टिकारक है और कफ करता है ॥ ८ ॥

दोषव्याधिविशेषतया तक्रगुणाः ।

वातेऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठीसैन्धवसंयुतम् । पित्ते स्वादु सितायुक्तं सव्योषमधिके कफे ॥ ९ ॥ हिङ्गुजीरयुतं घोलं सैन्धवेन च संयुतम् । भवेदतीव वातघ्नमर्शोऽतीसारहृत्परम् ॥ १० ॥ रुचिदं पुष्टिदं बल्यं बस्तिशूलविनाशनम् । मूत्रकृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम् ॥ ११ ॥

भाषा-वातमें खट्टा और सोंठ तथा सेंधा पडा हुआ तक्र उत्तम है. पित्तमें बूरा मिला हुआ तथा मीठा तक्र उत्तम है, कफकी वृद्धिमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोंठ, मिरच और पीपलयुक्त तक्र उत्तम है. हींग, जीरा तथा सेंधा मिला हुआ घोल अत्यन्त वातनाशक, बवासीरनाशक, अतीसारनाशक, रुचिकारक, पुष्टिदायक, बलवर्द्धक और बस्तिशूलनाशक है. गुड डाला हुआ घोल मूत्रकृच्छ्रपर उत्तम है और चीतेयुक्त घोल पाण्डुरोगमें उत्तम है ॥ ९-११ ॥

आमपक्वतक्रगुणाः।

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च।
पीनसे श्वासकासादौ पक्वमेव प्रयुज्यते ॥१२॥

भाषा-कच्चा तक्र कोठेके कफको नष्ट करनेवाला है और कंठमें कफ करता है. पीनस, श्वास और खांसी आदिमें पक्के तक्रका सेवन करे ॥ १२ ॥

तक्रसेवनम्।

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च तथा वातामयेषु च।
अरुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतोपमम् ॥ १३ ॥ तच्च हन्ति गरच्छर्दिप्रसेकविषमज्वरान्। पाण्डुमेदोग्रहण्यर्शोमूत्रग्रहभगन्दरान् ॥ १४ ॥ मेहं गुल्ममतीसारं शूलप्लीहोदरारुचीः। श्वित्रकोष्ठगतव्याधीन्कुष्ठशोथतृषाकृमीन् ॥ १५ ॥

भाषा-शीतकाल, अग्निकी मंदता, वातरोग, अरुचि और नाडियोंका अवरोध इनमें तक्र अमृतके सदृश काम करता है. तक्र विष, वमन, प्रसेक (जी मिचलना), विषमज्वर, पाण्डुरोग, मेद, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, भंगदर, प्रमेह, गुल्म, अतीसार, शूल, प्लीहा, उदररोग, अरुचि, सफेद कोढ, सूजन, तृषा और कृमिको नष्ट करता है ॥ १३-१५ ॥

तक्रनिषेधः।

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले। न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे ॥ १६ ॥

भाषा-उष्णकालमें, क्षत (घाव) में, दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्तज रोगमें तक्र कदापि नहीं देवे ॥ १६ ॥

तक्रविशेषगुणाः।

यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत्।

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे तक्रवर्गः समाप्तः ॥ १५ ॥

भाषा-पहिल जो आठ प्रकारके दही कहे हैं, उनमेंसे जिस दहीका जो तक्र हो उस तक्रमें उसही दहीके सदृश गुण जानने ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे तक्रवर्गः समाप्तः ॥ १५ ॥

अथ नवनीतवर्गः १६।

नवनीतनामानि।

म्रक्षणं सरजं हैयङ्गवीनं नवनीतकम्।

भाषा-म्रक्षण, सरज, हैयंगवीन, नवनीत ये मक्खनके संस्कृत नाम हैं. (नवोद्धृत, मन्थज, दधिसार, नवनी, कलम्बुट और दधिज ये मक्खनके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके मक्खनके नाम.

सं.-नवनीत.	तै.-पेन्ना.
हिं.-मक्खन, नौनी.	फा.-मसका.
बं.-नुनी, माखन.	अ.-जुब्द.
म.-लोणी.	अं.-Butter बटर.
गु.-मांखण.	ला.-Butyrum बुटिरम.
क.-वेण्णी.	

गव्यनवनीतगुणाः।

नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत्।
संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोऽर्दितकासहृत् ॥
तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ॥१॥

भाषा-गायका मक्खन हितकारी, वृष्य, वर्णको उत्तम करनेवाला, बलदायक, अग्निप्रदीपक, ग्राही है और वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, बवासीर, अर्दितवात (लकवा) तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खांसीको नष्ट करता है. यह मक्खन बालकोंके लिये तथा वृद्धके लिये हितकारी है, परंतु बालकोंको तो अमृतसदृशही है ॥ १ ॥

माहिषनवनीतगुणाः ।

नवनीतं महिष्यास्तु वातश्लेष्मकरं गुरु ।
दाहपित्तश्रमहरं मेदःशुक्रविवर्द्धनम् ॥ २ ॥

भाषा—भैंसका मक्खन वातकारक, कफकारक, भारी है और दाह पित्त, तथा परिश्रमको नष्ट करता है और मेद तथा वीर्यको बढाता है ॥ २ ॥

दुग्धोत्थनवनीतगुणाः ।

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत् ।
वृष्यं बल्यमतिस्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम् ३॥

भाषा—दूधसे निकाला हुआ मक्खन नेत्रोंको हितकारी, रक्तपित्तनाशक, वृष्य, बलदायक, अत्यंतस्निग्ध, मधुर, ग्राही और शीतल है ॥३॥

सद्यस्कनवनीतगुणाः ।

नवनीतं तु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु ।
मेध्यं किञ्चित्कषायाम्लमीषत्तक्रांशसंक्रमात् ४॥

भाषा—तत्कालका निकाला हुआ मक्खन मधुर, ग्राही, शीतल, हलका, बुद्धिको हितकारी और किंचित् छाछका अंश रहनेसे कुछ कसैला तथा खट्टा है ॥ ४ ॥

चिरंतननवनीतगुणाः ।

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्दिर्शःकुष्ठकारकम् ।
श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम् ॥५॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे नवनीतवर्गः समाप्तः ॥ १६ ॥

भाषा—बासी मक्खन खारी, चरपरा है और खट्टा हो जानेसे वमन, बवासीर तथा कोढको करता है और कफकारी, भारी तथा मेदकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ५ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे नवनीतवर्गः समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ घृतवर्गः १७ ।

घृतनामानि ।

घृतमाज्यं हविः सर्पिः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ।

भाषा—घृत, आज्य, हवि, सर्पि ये घीके संस्कृत नाम हैं. (पुरोडाश, नवनीतक, पवित्र, वह्निभोग्य, तेजस, अभिघारक, ओज, तोयद, पीथ, अमृत, होम्य, नवनीतज, भोजनार्ह और जीवन ये घीके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥

अनेक भाषाके घीक नाम.

सं.—घृत.	अ.—समन्.
हिं.—घी.	अं.—Clearified Butter क्लेरीफाइड बटर.
बं.—घि, घृत.	
म.—तूप.	
गु.—घी.	ला.—Butyrum Depuratum बुटिरम डेप्युरेटम्.
तै.—नेई.	
फा.—रोगनेजर्द.	

घृतगुणाः ।

घृतं रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वह्निदीपनम् ।
शीतवीर्यं विषालक्ष्मीपापपित्तानिलापहम् ॥१॥
अल्पाभिष्यन्दि कान्त्योजस्तेजोलावण्यबुद्धिकृत् । स्वरस्मृतिकरं मेध्यमायुष्यं बलकृद्गुरु ॥ २ ॥ उदावर्तज्वरोन्मादशूलानाहव्रणान्हरेत् । स्निग्धं कफकरं रक्षोरक्तक्षयविसर्पनुत् ॥ ३ ॥

भाषा—घी रसायन, मधुर, नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक, शीतवीर्य, विषनाशक, अलक्ष्मी (अशोभा) नाशक, पापनाशक, पित्तनाशक, वातनाशक, किंचित् अभिष्यंदि है और कांति, बल, तेज, लावण्य, बुद्धि, स्वरकी निर्मलता तथा स्मरणशक्तिके लिये उत्तम है तथा मेधाको हितकारी, आयुवर्द्धक, बलकारी, भारी, स्निग्ध, कफकारक है तथा उदावर्त, ज्वर, उन्माद, शूल, अफरा, व्रण, क्षय, विसर्प तथा रक्तविकारको नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोघृतगुणाः ।

गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्यमग्निकृत् ।
स्वादु पाककरं शीतं वातपित्तकफापहम् ॥ ४ ॥
मेधालावण्यकान्त्योजस्तेजोवृद्धिकरं परम् ।
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥ ५ ॥
बल्यं पवित्रमायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम् ।
सुगन्धं रोचनं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ६ ॥

भाषा–गायका घी विशेषकरके नेत्रोंको हितकारी, वृष्य, अग्निप्रदीपक, पाकमें मधुर, शीतल, वातनाशक, पित्तनाशक, कफनाशक है तथा बुद्धि, लावण्य, कांति, ओज तथा तेज इनकी वृद्धि करनेवाला, अलक्ष्मी, पाप तथा राक्षसका नाशक, आयुस्थापक, भारी, बलवर्धक, पवित्र, आयुवर्द्धक, मंगलरूप, रसायन, सुगंधयुक्त, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, सुंदर और सम्पूर्ण घीमें उत्तम है ॥ ४–६ ॥

माहिषघृतगुणाः ।

माहिषं तु घृतं स्वादु पित्तरक्तानिलापहम् ।
शीतलं श्लेष्मलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते ७ ॥

भाषा–भैंसका घी मधुर, शीतल, कफकारक, वृष्य, भारी, पाकमें मधुर है और पित्त, रक्तविकार तथा वातका नाश करता है ॥ ७ ॥

आजघृतगुणाः ।

आजमाज्यं करोत्यग्निं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ।
कासे श्वासे क्षये चापि हितं पाके भवेत्कटु ॥ ८ ॥

भाषा–बकरीका घी अग्निकारक, नेत्रोंको हितकारी, बलवर्द्धक, पाकमें चरपरा है और खांसी, श्वास तथा क्षयमें हितकारी है ॥ ८ ॥

औष्ट्रघृतगुणाः ।

औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोषक्रिमिविषापहम् ।
दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ९ ॥

भाषा–ऊंटनीका घी पाकमें चरपरा, अग्निप्रदीपक है और शोष, कृमि, विष, कफ, वात, कोढ, गुल्म तथा उदररोगका नाश करता है ॥ ९ ॥

आविकघृतगुणाः ।

पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्वरोगविनाशनम् ।
वृद्धिं करोति चास्थीनामश्मरीशर्करापहम् ॥
चक्षुष्यमग्निधुक्षणं वातदोषनिवारणम् ॥ १० ॥

भाषा–भेडका घी पाकमें हलका, सर्वरोगनाशक, अस्थि (हड्डियों) की वृद्धि करनेवाला, पथरीनाशक, शर्करानाशक, नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक है और वायुके दोषोंको निवारण करता है ॥ १० ॥

नारीघृतगुणाः ।

कफेऽनिले योनिदोषे पित्ते रक्ते च तद्धितम् ।
चक्षुष्यमाज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥ ११ ॥

भाषा–स्त्रीका घी कफ, वात, योनिदोष, पित्त और रक्तविकारमें हितकारी, नेत्रोंको उत्तम करनेवाला और अमृतके समान है ॥ ११ ॥

वडवाघृतगुणाः ।

वृद्धिं करोति देहाग्नेर्लघु पाके विषापहम् ।
तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुद्वडवाघृतम् ॥ १२ ॥

भाषा–घोडीका घी शरीरकी अग्निको बढानेवाला, पाकमें हलका, विषविनाशक, तृप्तिकारक है और नेत्रके रोग और दाहको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

दुग्धभवघृतगुणाः ।

घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्ररोगहृत् । निहंति पित्तदाहास्रमदमूर्च्छाभ्रमानिलान् ॥ १३ ॥

भाषा–दूधसे निकाला हुआ घी ग्राही, शीतल है और नेत्ररोग, पित्त, दाह, रक्तविकार, मद, मूर्च्छा, भ्रम तथा वातको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

हैयंगवीयकगुणाः ।

हविर्ह्यस्तनदुग्धोत्थं तत्स्याद्धैयङ्गवीयकम् ।
हैयङ्गवीनं चक्षुष्यं दीपनं रुचिकृत्परम् ॥
बलकृद्बृंहणं वृष्यं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ १४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—पहिले दिनके दहीसे निकाला हुआ घी हैयंगवीन कहाता है. यह घी नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक, अत्यंत रुचिकारी, बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, वृष्य और विशेष करके ज्वरनाशक है ॥ १४ ॥

पुराणघृतगुणाः ।

वर्षोर्द्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत्त्रिदोषनुत् ।
मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम् ॥ १५ ॥
यथा यथाऽखिलं सर्पिः पुराणमधिकं भवेत् ।
तथा तथा गुणैः स्वैः स्वैरधिकं तदुदाहृतम् ॥ १६ ॥

भाषा—एक वर्षका रखा हुआ घी पुराना कहाता है. यह घी त्रिदोषनाशक है और मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, मृगी तथा तिमिरका नाश करता है. सर्व प्रकारका घी जितना जितना अधिक पुराना होता है उतना उतनाही अपने अपने गुणोंको अधिक करता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

नवीनघृतोपयोगः ।

योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे ।
बलक्षये पाण्डुरोगे कामलानेत्ररोगयोः ॥ १७ ॥

भाषा—नवीन घी भोजन, तर्पण, परिश्रम, बलका क्षय, पाण्डुरोग, कामला तथा नेत्ररोग इन सबमें उपयोग करना चाहिये ॥ १७ ॥

घृतनिषेधः ।

राजयक्ष्माणि बाले च वृद्धे श्लेष्मकृते गदे ।
रोगे सामे विषूच्यां च विबन्धे च मदात्यये ॥
ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पिर्बहु मन्यते ॥ १८ ॥

इति श्रीभिश्रलब्धतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे घृतवर्गः समाप्तः ॥ १७ ॥

भाषा—बालक तथा वृद्धको तथा राजयक्ष्मा, कफरोग, आम, विषूचिका (हैजा), मलबन्ध, मदात्यय, ज्वर और मंदाग्नि इन सबमें विशेष घृत नहीं देना चाहिये ॥ १८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे घृतवर्गः समाप्तः ॥ १७ ॥

अथ मूत्रवर्गः १८ ।

गोमूत्रगुणाः ।

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायकम् ।
लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ १ ॥
शूलगुल्मोदरानाहकण्डूक्ष्मिमुखरोगजित् । किलासगदवातामवस्तिरुक्कुष्ठनाशनम् ॥ कासश्वासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत् ॥ २ ॥ कण्डूकिलासगदशूलमुखाक्षिरोगान्गुल्मातिसारमरुदामयमूत्ररोधान् । कासं सकुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान्गोमूत्रमेकमपि पीतमपाकरोति ॥ ३ ॥
सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम् ।
अतोऽविशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ ४ ॥
प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्चोग्रहापहम् । शूलगुल्मरुजानाहकामलापाण्डुरोगहृत् ॥ कषायं तिक्ततीक्ष्णं च पूरणात्कर्णशूलनुत् ॥ ५ ॥

भाषा—गोमूत्र चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, खारी, कसैला, हलका, अग्निप्रदीपक, मेधाको हितकारी, पित्तकारक है और कफ, वात, शूल, गुल्म, उदर, अफरा, खुजली, नेत्ररोग, मुखरोग, किलासकोढ, वातसंबंधी रोग, बस्तिरोग, कोढ, खांसी, श्वास, सूजन, कामला तथा पाण्डुरोगका नाश करता है. गोमूत्र पिया जाय तो खुजली, किलासकोढ, शूल, मुखरोग, नेत्ररोग, गुल्म (गोला), अतिसार, वातसंबंधीरोग, मूत्ररोध, खांसी, कोढ, उदररोग, कृमि और पाण्डुरोगका नाश करता है. सर्व मूत्रोंमें गौका मूत्र अधिक गुणवाला है. इस कारण जहां केवल मूत्रही कहा हो वहां गायका मूत्रही लेना चाहिये. गायका मूत्र कसैला, कडवा, तीक्ष्ण, कानमें डालनेसे कर्णशूलनाशक है और प्लीहा (पिलही वा तिल्ली), उदररोग, श्वास, खांसी, सूजन, मलरोध, ग्रहबाधा, शूल, गुल्म, अफरा, कामला तथा पाण्डुरोगका नाश करता है ॥ १-५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नरमूत्रगुणाः ।

नरमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद्रसायनम् । रक्त-पामाहरं तीक्ष्णं सक्षारलवणं स्मृतम् ॥ ६ ॥

भाषा–मनुष्यका मूत्र खारी, तीक्ष्ण, रक्त-विकारनाशक, खुजली और विषको नष्ट करने-वाला और सेवन करनेसे रसायन है ॥ ६ ॥

मूत्रसामान्यपरिभाषा ।

गोजाविमहिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते । खरोष्ट्रेभनराश्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम् ॥७॥

इति श्रीमिश्रलटकतनय श्रीभावमिश्र-विरचिते श्रीभावप्रकाशे मूत्र-वर्गः समाप्तः ॥ १८ ॥

भाषा–गौ, बकरी, भेड और भैंस इनके मूत्रोंमें तो स्त्रीजातिका मूत्र उत्तम है. और गधा, ऊंट, हाथी, मनुष्य और घोडा इनमें पुरुष जातिका मूत्र उत्तम है ॥ ७ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचम-प्रकरणे मूत्रवर्गः समाप्तः ॥ १८ ॥

अथ तैलवर्गः १९ ।

तैलस्वरूपम् ।

तिलादिस्निग्धवस्तूनां स्नेहस्तैलमुदाहृतम् । तत्तु वातहरं सर्वं विशेषात्तिलसम्भवम् ॥ १ ॥

भाषा–तिल आदि स्निग्ध वस्तुओंका जो स्नेहभाग निकलता है उसको तेल कहते हैं. सम्पूर्ण प्रकारके तेल वातनाशक हैं. तिलका तेल विशेषकरके वातनाशक है ॥ १ ॥

अनेक भाषाके तेलके नाम.

सं.–तैल.	ते.–नुने.
हिं.–तेल.	द्रा.–रोगन.
बं.–तेल.	फा.–रोगन.
म.–तेल.	अं.–Oil आइल.
गु.–तेल.	ला.–Oleum आल्युम्.
क.–यण्णी.	

तिलतैलगुणाः ।

तिलतैलं गुरु स्थैर्यबलवर्णकरं सरम् । वृष्यं विकाशि विशदं मधुरं रसपाकयोः ॥ २ ॥ सूक्ष्मं कषायानुरसं तिक्तं वातकफापहम् । वीर्येणोष्णं हिमं स्पर्शे बृंहणं रक्तपित्तकृत् ॥ ३ ॥ लेखनं बद्धविण्मूत्रं गर्भाशयविशोधनम् । दीपनं बुद्धिदं मेध्यं व्यवायि व्रणमेहनुत् ॥ ४ ॥ श्रोत्रयोनिशिरःशूलनाशनं लघुताकरम् । त्वच्यं केश्यं च चक्षुष्यमभ्यङ्गे भोजनेऽन्यथा ॥ ५ ॥ छिन्नभिन्नच्युतोत्पिष्टमथितक्षतपिच्छिते । भग्न-स्फुटितविद्धाग्निदग्धविश्लिष्टदारिते ॥ ६ ॥ तथाऽभिहतनिर्भुग्नमृगव्याघ्रादिविक्षते । बस्तौ पानेऽन्नसंस्कारे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ॥ सेका-भ्यङ्गावगाहेषु तिलतैलं प्रशस्यते ॥ ७ ॥

भाषा–तिलका तेल भारी, स्थिरताकारक, बलदायक, वर्णको उत्तम करनेवाला, दस्तावर, वृष्य, विकाशि, विशद, रसमें तथा पाकमें मधुर, सूक्ष्म, कसैला, कडवा, वातनाशक, कफनाशक, उष्णवीर्य, शीतलस्पर्शवाला, पुष्टि-कारक, रक्तपित्तकर्ता, लेखन, मलमूत्रको बांधनेवाला, गर्भाशयको शुद्ध करनेवाला, अग्नि-प्रदीपक, बुद्धिदायक, मेधाको हितकारी, व्यवायि है तथा व्रण, प्रमेह, कर्णरोग, योनिशूल और मस्तकशूल इनका नाश करनेवाला, शरीरमें लघुता करनेवाला, मलनेसे त्वचा (चमडी) केश (बाल) तथा नेत्रोंको हितकारी और खानेसे त्वचा, केश तथा नेत्रोंको हानिकारक है और छिदा, भिदा, गिरा, पिसा, मसला, घाव, पिचा, टूटा, फटा, बिंधा, अग्निसे जला, स्थानसे हटा, चिरा, चोट लगा, तिरछा, मृग बाघ आदिसे घायल हुआ इन सबके होनेपर, बस्तिकर्ममें, पीनेमें, अन्नके बनानेमें, छोंकनेमें, नस्यकर्ममें, कर्ण और नेत्रोंके डालनेमें, सेक-नेमें, मर्दनमें और अवगाहनमें तिलका तेल उत्तम है ॥ २–७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विशेषः ।

ननु बृंहणलेखनयोः कथं सामानाधिकरण्यमित्याह—रूक्षादिदुष्टः पवनः स्रोतः सङ्कोचयेद्यदा । रसोऽसम्यग्वहन्नाश्यं कुर्याद्रक्ताद्यवर्द्धयन् ॥ ८ ॥ तेषु प्रवेष्टुं सरत्वसौक्ष्म्यस्निग्धत्वमार्दवैः । तैलं शमं रसं नेतुं कृशानां तेन बृंहणम् ॥ ९ ॥ व्यवायि सूक्ष्मतीक्ष्णोष्णसरत्वैर्मेदसः क्षयम् । शनैः प्रकुरुते तैलं तेन लेखनमीरितम् ॥ १० ॥ द्रुतं पुरीषं बध्नाति स्खलितं तत्प्रवर्त्तयेत् । ग्राहकं सारकं चापि तेन तैलमुदीरितम् ॥ ११ ॥ घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते । तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ १२ ॥

भाषा—कोई शंका करे कि तिलका तेल बृंहण होनेपर लेखन किस प्रकार हो सक्ता है तहां कहते हैं कि " रूक्ष आदि पदार्थोंसे दूषित हुई वात नाडियोंका संकोच करती है, तब रस भली भांति नहीं वहनेसे रुधिर आदिको नहीं बढाकर दुर्बलता करता है. उस समयमें तेल अपना प्रवेश कारकपना गुण करके सहित तथा कोमलता करके सहित नाडियोंमें रसका प्रवेश करानेको तथा उनमें भली भांति गति करानेको समर्थ होता है. इससे तेल दुर्बलोंको पुष्टिदायक कहा है. तिसी प्रकार तेल सम्पूर्ण शरीरमें तत्काल व्याप्त होनेवाला, पतला, तीक्ष्ण, उष्ण और प्रवेशकारक होनेसे धीरे धीरे मेदका क्षय करता है, इसी कारण तेल लेखन (कृशकारी) कहा है. तेल पतले मलको बांध देता है और छूटे हुए मलको निकाल देता है इस कारण तेल ग्राही और सारक दोनों गुणयुक्त है. पक्का घी एक वर्ष पीछे हीनवीर्य हो जाता है और तेल पक्का हो अथवा कच्चा हो जितना पुराना होगा उतनाही अधिक गुणवाला होता है ॥ ८–१२ ॥

सार्षपतैलगुणाः ।

दीपनं सार्षपं तैलं कटु पाकरसं लघु । लेखनं स्पर्शवीर्योष्णं तीक्ष्णं पित्तास्रदूषकम् ॥ १३ ॥ कफमेदोऽनिलार्शोघ्नं शिरःकर्णामयापहम् । कण्डूकुष्ठकृमिश्वित्रकोठदुष्टकृमिप्रणुत् ॥ तद्वद्राजिकयोस्तैलं विशेषान्मूत्रकृच्छ्रकृत् ॥ १४ ॥ (राजिकयोः कृष्णराई आरक्तराई द्वयोः)

भाषा—सरसोंका तेल अग्निप्रदीपक, रसमें तथा पाकमें चरपरा, हलका, लेखन, स्पर्श तथा वीर्यमें उष्ण, तीक्ष्ण, पित्त तथा रुधिरको दूषित करनेवाला है और कफ, मेद, वात, बवासीर, मस्तकके रोग, कर्णरोग, खुजली, कोढ, कृमि, चित्रित कोढ, कोठ तथा दुष्ट कृमिको नष्ट करता है. काली राई तथा लाल राई (लाई) के तेलमेंभी येही गुण हैं. विशेष करके राईका तेल मूत्रकृच्छ्रको करता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

तुवरीतैलगुणाः ।

तीक्ष्णोष्णं तुवरीतैलं लघु ग्राहि कफास्रजित् । वह्निकृद्विषहृत्कण्डूकुष्ठकोठकृमिप्रणुत् ॥ मेदोदोषापहं चापि व्रणशोथहरं परम् ॥ १५ ॥

भाषा—तुवरी (तोरी) का तेल तीक्ष्ण, गरम, हलका, ग्राही, अग्निकारक है और विष, कफ, रक्तविकार, खुजली, कोढ, कोष्ठरोग, कृमि, मेददोष, व्रण तथा सूजनको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

अतसीतैलगुणाः ।

अतसीतैलमाग्नेयं स्निग्धोष्णं कफपित्तकृत् । कटुपाकमचक्षुष्यं बल्यं वातहरं गुरु ॥ १६ ॥ मलकृद्रसतः स्वादु ग्राहित्वग्दोषहृद्धनम् । बस्तौ पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णस्य पूरणे ॥ अनुपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये १७॥

भाषा—अलसीका तेल अग्निके अधिक अंशयुक्त, स्निग्ध, गरम, कफ तथा पित्तको करनेवाला, पाकमें चरपरा, नेत्रोंको अहितकारी, बलवर्द्धक, वातनाशक, भारी, मलकर्त्ता, मधुररसयुक्त, ग्राही, चर्मदोषनाशक और घन है. बस्तिकर्ममें, पीनेमें, अभ्यंगमें, नस्यकर्ममें, कानके डालनेमें, वातकी शांतिके लिये अनुपानविधिमेंभी इस तेलका उपयोग करे ॥ १६ ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुसुम्भतैलगुणाः।

कुसुम्भतैलमम्लं स्यादुष्णं गुरु विदाहि च।
चक्षुष्यंमहितं बल्यं रक्तपित्तकफप्रदम्॥१८॥

भाषा–कुसुमका तेल खट्टा, गरम, भारी, विदाही, नेत्रोंको अहितकारी, बलवर्द्धक और रक्तपित्तकारक तथा कफकारक है ॥ १८ ॥

खसबीजतैलगुणाः।

तैलं तु खसबीजानां बल्यं वृष्यं गुरु स्मृतम्।
वातहृत्कफहृच्छीतं स्वादुपाकरसं च तत्॥१९॥

भाषा–खसखसका अर्थात् पोस्तके बीजोंका तेल बलवर्द्धक, वृष्य, भारी, वातनाशक, कफनाशक, शीतल और पाकमें तथा रसमें मधुर है१९

एरण्डतैलगुणाः।

एरण्डतैलं तीक्ष्णोष्णं दीपनं पिच्छिलं गुरु।
वृष्यं त्वच्यं वयःस्थापि मेधाकान्तिबलप्रदम् ॥ २० ॥ कषायानुरसं सूक्ष्मं योनिशुक्रविशोधनम्। विस्रं स्वादुरसे पाके सतिक्तं कटुकं सरम् ॥ २१ ॥ विषमज्वरहृद्रोगपृष्ठगुह्यादिशूलनुत्। हन्ति वातोदरानाहगुल्माष्ठीलाकटिग्रहान् ॥ २२ ॥ वातशोणितविड्बन्धव्रश्नशोथामविद्रधीन्। आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ॥ एक एव निहन्तायमेरण्डस्नेहकेसरी ॥ २३ ॥

भाषा–अंडीका तेल तीक्ष्ण, गरम, अग्निप्रदीपक, पिच्छिल, भारी, वृष्य, त्वचाको हितकारी, आयुस्थापक, बुद्धिवर्धक, कांतिवर्धक, बलवर्द्धक, कसैले रसवाला, सूक्ष्म, योनि तथा वीर्यको शुद्ध करनेवाला, दुर्गन्धित, चरपरा, रसमें मधुर, पाकमें चरपरा, कडवा, दस्तावर है और विषमज्वर, हृदयरोग, पीठ तथा गुह्यादिका शूल, वातसंबंधी उदररोग, अफरा, गुल्म, अष्ठीला नामक रोग, कटिरोह (कमरका जकडजाना), वात, रक्तविकार, मलबन्ध, ब्रह्न, सूजन, आम और विद्रधि इनका नाश करता है. अंडीका तेलरूपी सिंह शरीररूपी वनमें फिरते हुए आमवातरूपी बडे हाथीको नष्ट करता है ॥ २०–२३ ॥

सर्जरसोद्भूततैलगुणाः।

तैलं सर्जरसोद्भूतं विस्फोटव्रणनाशनम् ।
कुष्ठपामाकृमिहरं वातश्लेष्मामयापहम् ॥ २४ ॥

भाषा–रालका तेल विस्फोटक (फोडा), व्रण, कोढ, खुजली, कृमि, वात तथा कफके रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ २४ ॥

सम्पूर्णतैलगुणाः।

तैलं स्वयोनिगुणकृद्वाग्भटेनाखिलं मतम्।
अतः शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिवत् ॥ २५ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे तैलवर्गः समाप्तः ॥ १९ ॥

भाषा–तेल जिस पदार्थमेंसे निकाला हो उसही पदार्थके गुणोंको करता है, ऐसा वाग्भटने कहा है. इसी कारण शेष सम्पूर्ण जातिके तेलोंके गुण जिस पदार्थमेंसे निकाला हो उसी पदार्थके सदृश जाने ॥ २५ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे तैलवर्गः समाप्तः ॥ १९ ॥

अथ सन्धानवर्गः २०।

कांजिकलक्षणम्।

सन्धितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः।

भाषा–धान्यके मण्डक आदि जो रक्खे हुए हो उनको लोग कांजी कहते हैं ॥

कांजिकगुणाः।

काञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु।
दाहज्वरहरं स्पर्शात्पानाद्वातकफापहम् ॥ १ ॥
माषादिवटकैर्यत्तु क्रियते तद्गुणाधिकम्।
लघु वातहरं तत्तु रोचनं पाचनं परम् ॥ २ ॥
शूलाजीर्णविबन्धामनाशनं बस्तिशोधनम्।
शोषमूर्च्छाभ्रमार्त्तानां मदकण्डूविशोषिणाम् ३॥
प्रशस्यते न काञ्जिकं कुष्ठीनां रक्तपित्तिनाम्।
पाण्डुरोगे यक्ष्माणि च तथा शोषातुरेषु च॥४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षतक्षीणे तथा श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते ।
एतेषां न हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥५॥

भाषा-कांजी मलभेदक, दस्तावर, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, पाचन, हलकी, स्पर्श (लगाने) से दाहज्वरनाशक और पीनेसे वातनाशक तथा कफनाशक है. उडद आदिके बडोंसे जो कांजी बनाई जावे वह कांजी अधिक गुणवाली, हलकी, वातनाशक, रुचिको उत्पन्न करनेवाली, बहुत पाचक है और शूल, अजीर्ण, मलबन्ध तथा आमको नष्ट करनेवाली और बस्तिशोधक है. शोष, मूर्च्छा, भ्रम, मद, खुजली, जिनका देह सूखगया, कोढ और रक्तपित्त रोगवालोंको हितकारी नहीं है. पांडुरोग, क्षय, शोथसें हुई आतुरता, क्षतसे हुई दुर्बलता, परिश्रम और मन्दज्वरकी पीडामें कांजी अहितकारी है तथा दोषोंको कुपित करनेवाली है ॥ १-५ ॥

तुषोदकलक्षणम् ।

तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः । (यवैः उदके संहितैः सन्धानवर्गोक्तत्वात्)

भाषा-तुषरहित कच्चे जौओंके टुकडे टुकडे करके संधानकी रीतिसे पानीमें भिगो देवे, वह पानी तुषोदक कहाता है ॥

तुषोदकगुणाः ।

तुषाम्बु दीपनं हृद्यं पाण्डुकृमिगदापहम् ।
तीक्ष्णोष्णं पाचनं पित्तरक्तकृद्बस्तिशूलनुत् ६॥

भाषा-तुषोदक अग्निप्रदीपक, हृदयको प्रिय, तीक्ष्ण, गरम, पाचन, पित्तकारक है और पांडु, कृमि तथा बस्तिशूलका नाश करता है ॥ ६ ॥

सौवीरलक्षणम् ।

सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम् ।
गोधूमैरपि सौवीरमाचार्याः केचिदूचिरे ॥ ७ ॥

भाषा-तुष (छिलका) रहित कच्चे अथवा पक्के जौओंके टुकडे टुकडे करके पानीमें भिजो देवे, वह पानी सौवीर कहाता है. कोई आचार्य कहते हैं कि इसी प्रकार गेहूंके टुकडे भिजोनेसेभी सौवीर होता है ॥ ७ ॥

सौवीरगुणाः ।

सौवीरं तु ग्रहण्यर्शःकफघ्नं भेदि दीपनम् ।
उदावर्त्ताङ्गमर्दास्थिशूलानाहेषु शस्यते ॥ ८ ॥

भाषा-सौवीर संग्रहणीनाशक, बवासीरनाशक, कफनाशक, मलभेदक, अग्निप्रदीपक है और उदावर्त्त, अंगमर्द, हड्डियोंका दर्द तथा अफरा इनमें बहुत उत्तम है ॥ ८ ॥

आरनाललक्षणम् ।

आरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ।
पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ ९ ॥

भाषा-तुषरहित कच्चे कथवा पक्के गेहूंको भिजोनेसे आरनाल कांजी होती है. आरनाल कांजीके गुण उपरोक्त सौवीर कांजीके सदृशही जाने ॥ ९ ॥

धान्याम्ललक्षणम् ।

धान्याम्लं शालिचूर्णं च कोद्रवादिकृतं भवेत् ।

भाषा-चावलोंका चूर्ण अथवा कोदोंका चूर्ण भिजोनेसे जो तैयार हो उसको धान्याम्ल कांजी कहते हैं ॥

धान्याम्लगुणाः ।

धान्याम्लं धान्ययोनित्वात्प्रीणनं लघु दीपनम् ।
अरुचौ वातरोगेषु सर्वेष्वास्थापने हितम् ॥ १० ॥

भाषा-धान्याम्ल धान्योंसे उत्पन्न हुई है. इस कारण तृप्तिकारक, हलकी, अग्निप्रदीपक है और अरुचिमें, वातसंबंधी रोगोंमें तथा पिचकारी मारनेमें हितकारी है ॥ १० ॥

शिण्डाकीलक्षणम् ।

शिण्डाकीराजिकायुक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवैः ।
सर्षपस्वरसैर्वापि शालिपिष्टकसंयुतैः ॥ ११ ॥
(सन्धितारीति शेषः) ।

भाषा-राई और मूलीके पत्तोंको भिजोनेसे अथवा सरसोंका स्वरस और चावलोंका चून भिजोनेसे जो कांजी बनाई जाती है, उसको शिण्डाकी कहते हैं ॥ ११ ॥

शिण्डाकीगुणाः ।

शिण्डाकी रोचनी गुर्वी पित्तश्लेष्मकरी स्मृता ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–शिंडाकी कांजी रुचिकारक, भारी, पित्तकारक तथा कफकारक है ॥

शुक्तलक्षणम् ।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च । यत्र द्रव्येऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥ १२ ॥

भाषा–तेल और नमक डालकर जिस द्रवमें कन्द, मूल और फल आदि भिजोकर जो कांजी बनाई जाय उस द्रवको शुक्त कहते हैं ॥ १२ ॥

शुक्तगुणाः ।

शुक्तं कफघ्नं तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु । पाण्डुक्रिमिहरं रूक्षं भेदनं रक्तपित्तकृत् ॥ १३ ॥

भाषा-शुक्त (सिरका) कफनाशक, तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारक, पाचन, हलका, रूखा, मलभेदक, रक्तपित्तको करनेवाला, पांडुनाशक और कृमिनाशक है ॥ १३ ॥

आसुतलक्षणम् ।

कन्दमूलफलाढ्यं यत्तत्तु विज्ञेयमासुतम् ।

भाषा–कन्द, मूल और फल आदिके रसकी जो कांजी बनाई जाय उसको आसुत कहते हैं ॥

आसुतगुणाः ।

तद्रुच्यं पाचनं वातहरं लघु विशेषतः ।

भाषा–आसुत (आचार) रुचिकारक, पाचन, वातनाशक और विशेष करके हलका है ॥

मद्यनामानि ।

मद्यं तु सीधुर्मैरेयमिरा च मदिरा सुरा । कादंबरी वारुणी च हालापि बलवल्लभा ॥ १४ ॥

भाषा–मद्य, सीधु, मैरेय, इरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, वारुणी, हाला, बलवल्लभा ये मदिराके संस्कृत नाम हैं. (प्रसन्ना, चपला, हलिप्रिया, अमृता, वीरा, मेधावी, माधवी, कापिशायन, परिश्रुता, वरुणात्मजा, गन्धोत्तमा, परिस्रुता, कश्य, प्रसन्नेरा, माणिका, कपिशी, गन्धमादनी, कत्तोय, मद, कपिशिका, मत्ता, सीता, कामिनीप्रिया, मदगन्धा, माध्वीक, मधु, सन्धान, आसव, मदनी, सुप्रतिमा, मनोज्ञा, विधाता, मादनी, हली, गुणारिष्ट, सरक, मधुलिका, मदोत्कटा, महानन्दा, कारण, तत्व, मदिष्ठा, परिप्लुता, कल्प, साधुरसा, शुण्डा, माद्वीक, मदना, कापिश, अब्धिजा, कल्या और मधूल ये मदिराके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १४ ॥

मद्यलक्षणम् ।

पेयं यन्मादकं लोकैस्तन्मद्यमभिधीयते ।

भाषा–जो पीनेका पदार्थ मादक (नशा करनेवाला) हो उसको लोक मद्य कहते हैं ॥

मद्यभेदाः ।

यद्याऽरिष्टं सुरा सीधुरासवाद्यमनेकधा ।

भाषा–अरिष्ट, सुरा, सीधु और आसव आदि मद्यके अनेक भेद हैं ॥

मद्यगुणाः ।

मद्यं सर्वं भवेदुष्णं पित्तकृद्वातनाशनम् । भेदनं शीघ्रपाकं च रूक्षं कफहरं परम् ॥ १५ ॥ अम्लं च दीपनं रुच्यं पाचनं चाशुकारि च । तीक्ष्णसूक्ष्मं च विशदं व्यवायि च विकाशि च ॥ १६ ॥

भाषा–सम्पूर्ण जातिकी मदिरा गरम, पित्तकारक, वातको नष्ट करनेवाली, मलभेदक, शीघ्र पचनेवाली, रूखी, अत्यंत कफनाशक, खट्टी, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक, पाचन, शीघ्रता करनेवाली, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, व्यवायी (प्रथम शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचनेवाली) तथा विकाशि है ॥ १५ ॥ १६ ॥

अरिष्टलक्षणम् ।

पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम् । (अरिष्टं मद्यमिति लोके । यथा द्राक्षारिष्टम् । दशमूलारिष्टम् । बब्बूलारिष्टमिति ।)

भाषा–पकाई हुई औषधि और जलसे अर्थात् क्वाथ आदिसे जो मद्य बनाई जाती है, उसे अरिष्ट कहते हैं (लोकमें अरिष्टको मद्यही कहते हैं, जैसे कि दाखोंका अरिष्ट, दशमूलका अरिष्ट और बबूलका अरिष्ट) ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरिष्टगुणाः।

अरिष्टं लघु पाकेन सर्वतश्च गुणाधिकम्। अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥१७॥

भाषा-अरिष्ट पाकमें हलका और सबसे अधिक गुणवाला है. जिस पदार्थका अरिष्ट बनाया जाय उस अरिष्टमें उसही पदार्थके सदृश गुण होते हैं ॥ १७ ॥

सुरालक्षणम्।

शालिषष्टिकपिष्टादिकृतं मद्यं सुरा स्मृता।

भाषा-चावल अथवा सांठी चावलोंके चूर्ण आदिसे बनाई हुई मदिरा सुरा कहाती है ॥

सुरागुणाः।

सुरा गुर्वी बलस्तन्यपुष्टिमेदःकफप्रदा। ग्राहिणी शोथगुल्मार्शोग्रहणीमूत्रकृच्छ्रनुत् ॥ १८ ॥

भाषा-सुरा भारी, ग्राही, बलवर्धक, दुग्धवर्धक, पुष्टिकारक, मदवर्धक तथा कफवर्द्धक है और सूजन, गुल्म, बवासीर, संग्रहणी तथा मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करती ह ॥ १८ ॥

वारुणीलक्षणम्।

पुनर्नवाशिलापिष्टैर्वारुणी विहिता स्मृता। संहितैस्तालखर्जूररसैर्या सापि वारुणी ॥ १९ ॥

भाषा-पुनर्नवा (सांठी) शिलपर पीसकर उसकी मदिरा बनावे, उसको वारुणी कहते हैं. और ताडी या खजूरीके रसकी जो मदिरा हो उसकोभी वारुणी कहते हैं ॥ १९ ॥

वारुणीगुणाः।

सुरावद्वारुणी लघ्वी पीनसाध्मानशूलनुत्। (सुरातो भेदार्थं लघ्वीति।)

भाषा-वारुणी सुराके सदृशही है, परन्तु सुरासे हलकी है और पीनस, अफरा तथा शूलको नष्ट करती है ॥

सीधुद्वयलक्षणम्।

इक्षोः पक्वै रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च सः। आमैस्तैरेव यः सीधुः स च शीतरसः स्मृतः ॥ २० ॥

भाषा-ईखके पके हुए रससे जो मदिरा बनाई जाय उसको पक्करस सीधु कहते हैं और ईखके कच्चेही रससे जो मदिरा बनाई जाय उसको शीतरस सीधु कहते हैं ॥ २० ॥

सीधुद्वयगुणाः।

सीधुः पक्वरसः श्रेष्ठः स्वराग्निबलवर्णकृत्। वातपित्तकरः सद्यः स्नेहनो रोचनो हरेत् ॥ २१ ॥ विबन्धमेदःशोफार्शःशोफोदरकफामयान्। तस्मादल्पगुणः शीतरसः संलेखनः स्मृतः २२

भाषा-पक्करस सीधु श्रेष्ठ, स्वरको उत्तम करनेवाली, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक, वर्णको उत्तम करनेवाली, वातकारक, पित्तकारक, तत्काल स्निग्धता करनेवाली, रुचिकारक है और मलबंध, मेद, सूजन, बवासीर, उदरकी सूजन तथा कफसंबंधी रोगोंको नष्ट करती है. इस मदिराकी अपेक्षा शीतरस सीधु हीनगुणवाली और लेखन है ॥ २१ ॥ २२ ॥

आसवलक्षणम्।

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। यथा लोहासवादिः।

भाषा-कच्ची औषधिसे और कच्चे पानीसे जो मदिरा बनाई जाय उसको आसव कहते हैं. जैसे कि लोहासव आदि ॥

आसवगुणाः।

आसवस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः।

भाषा-जिस पदार्थका आसव बनाया जाय उस आसवमें उस पदार्थके सदृशही गुण होते हैं ॥

नवीनमद्यगुणाः।

मद्यं नवमभिष्यन्दि त्रिदोषजनकं सरम्। अहृद्यं बृंहणं दाहि दुर्गन्धं विशदं गुरु ॥ २३ ॥

भाषा-नवीन मद्य अभिष्यन्दी, तीनों दोषोंको उत्पन्न करनेवाली, दस्तावर, हृदयको अप्रिय, पुष्टिकारक, दाह करनेवाली, दुर्गंधित, विशद और भारी है ॥ २३ ॥

जीर्णमद्यगुणाः।

जीर्णं तदेव रोचिष्णु क्रिमिश्लेष्मानिलापहम्। हृद्यं सुगन्धि गुणवल्लघु स्रोतोविशोधनम् ॥२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–पुरानी मदिरा रुचिको उत्पन्न करनेवाली, कृमिनाशक, कफनाशक, वातविनाशक, हृदयको प्रिय, सुगंधित, गुणकारी, हलकी और स्रोतों अर्थात् छिद्रोंको शुद्ध करनेवाली है ॥ २४ ॥

सात्त्विकादिमनुष्याणां मद्यचेष्टाः ।

सात्त्विके गीतहास्यादि राजसे साहसादिकम् । तामसे निन्द्यकर्माणि निद्रां च मदिराऽऽचरेत् ॥ २५ ॥ (आचरेत्कुर्यात् ।)

भाषा–जो सत्त्वगुणी मनुष्यने मद्य पी हो तो गीत और हास्यादिक करता है, रजोगुणी मनुष्यने पी हो तो साहसादि (पुरुषार्थके वीरकर्मोंको) करता है और तमोगुणी मनुष्यने पी हो तो वह निन्द्यकार्य करता है तथा इसको निद्रा अधिक होती है ॥ २५ ॥

मद्यपानविधिः ।

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् ।
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा २६॥
किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ।
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् २७

भाषा–जो मनुष्य प्रसन्नतासे विधिपूर्वक तथा अपनी शक्तिके अनुसार मात्रा करके नियमित समयमें मद्य पीता है और हितकारी अन्न भक्षण करता है उस मनुष्यको मद्य अमृतके सदृश होती है, जैसा अन्नका स्वभाव है, तैसाही मद्यका स्वभाव है. जो विधिको छोडकर सेवन करता है उसको रोगकारक होती है और जो युक्तिपूर्वक सेवन करता ह उसको अमृततुल्य गुणकारी होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

मद्यगंधनाशकोपायः ।

मुस्तैलबालगदजीरकधान्यकैला यश्चर्वयन्सदसि वाचमभिव्यनक्ति । स्वाभाविकं मुखजमुज्झति पूतिगन्धं गन्धं च मद्यलशुनादिभवं च नूनम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे सन्धानवर्गः समाप्तः ॥ २० ॥

भाषा–नागरमोथा, कवाबचीनी, कूठ, जीरा, धनिया और इलायची इनको चाबकर जो मनुष्य सभामें बात चीत करे उसके मुखकी स्वाभाविक दुर्गन्ध दूर हो जाती है और मदिरा तथा लहसुन आदिसे उत्पन्न हुई दुर्गन्धभी अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ २८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे सन्धानवर्गः समाप्तः ॥ २० ॥

अथ मधुवर्गः २१ ।

मधुनामानि ।

मधु माक्षिकमाध्वीकक्षौद्रसारघ्यमीरितम्। माक्षिकावरटीभृङ्गवान्तपुष्परसोद्भवम् ॥ १ ॥

भाषा–मधु, माक्षिक, माध्वीक, क्षौद्र, सारघ्य, मक्षिकावान्त, वरटीवान्त, भृंगवान्त, पुष्परसोद्भव ये मधुके संस्कृत नाम हैं. (पवित्र, कुसुमासव, माक्षीक, पुष्पासव, पुष्परसाह्वय, और मकरन्दरस ये मधुके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १ ॥

अनेक भाषाके मधुक नाम.

सं.–मधु.	तै.–तेनी.
हिं.–मधु, शहत.	फा.–शहद, अगवीन.
बं.–मधु.	अ.–असल.
म.–मध.	अं.–Honey हनी.
गु.–मध.	ला.–Mel मेल.
क.–जेनतुप्प.	

मधुगुणाः ।

मधु शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेखनम् ।
चक्षुष्यं दीपनं स्वर्यं व्रणशोधनरोपणम् ॥ २ ॥
सौकुमार्यकरं सूक्ष्मं परं स्रोतोविशोधनम् ।
कषायानुरसं ह्लादि प्रसादजनकं परम् ॥ ३ ॥
वर्ण्यं मेधाकरं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत् ।
कुष्ठार्शःकासपित्तास्रकफमेहकृमिक्रिमीन् ॥ ४ ॥
भेदस्तृष्णावमिश्वासहिक्कातीसारविड्ग्रहान् ।
दाहक्षतक्षयांस्तच्चु योगवाह्यल्पवातलम् ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—शहत शीतल, हलका, मधुर, रूक्ष, ग्राही, विलेखन, नेत्रोंको हितकारी, अग्निप्रदीपक, स्वरको उत्तम करनेवाला, व्रणशोधक, रोपण, सुकुमारता करनेवाला, सूक्ष्म, स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला, कसैले रससहित, आह्लादकारक, प्रसादजनक, वर्णको उज्ज्वल करनेवाला, बुद्धिकारक, वृष्य, विशद, रुचिकारक है और मेद, तृषा, वमन, श्वास, हिचकी, अतिसार, मलबंध, कोढ, बवासीर, खांसी, पित्त, रक्तविकार, कफ, प्रमेह, ग्लानि, कृमि, दाह, क्षत और क्षय इन सबको नष्ट करता है. योगवाही (जैसे पदार्थके साथ मिले उसकेही सदृश गुण करनेवाला) और किंचित् वातकारक है ॥ २–५ ॥

मधुभेदाः ।

माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौतिकं छात्रमित्यपि ।
आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः ॥६॥

भाषा—माक्षिक, भ्रामर, क्षौद्र, पौतिक, छात्र, आर्घ्य, औद्दालक और दाल ये आठ शहतके भेद हैं ॥ ६ ॥

माक्षिकलक्षणम् ।

माक्षिकाः पिङ्गवर्णास्तु महत्यो मधुमाक्षिकाः ।
ताभिः कृतं तैलवर्णं माक्षिकं परिकीर्त्तितम् ७॥

भाषा—पिंगल वर्णवाली जो बडी मक्खी होती हैं उनको मधुमक्खी कहते हैं, इनका किया हुआ जो तेलके सदृश वर्णवाला मधु होता है, वह माक्षिक मधु कहाता है ॥ ७ ॥

माक्षिकगुणाः ।

माक्षिकं मधुषु श्रेष्ठं नेत्रामयहरं लघु । कामलार्शःक्षतश्वासकासक्षयविनाशनम् ॥ ८ ॥

भाषा—माक्षिक मधु सब मधुओंमें श्रेष्ठ, नेत्ररोगनाशक, हलका ह और कामला, बवासीर, क्षत, श्वास, खांसी तथा क्षयको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

भ्रामरलक्षणम् ।

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः षट्पदेभ्योऽलिभिश्चितम् । निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतम् ॥ ९ ॥

भाषा—प्रसिद्ध भौंरोंसे किंचित् छोटे भौंरोंका बनाया हुआ और स्फटिक मणिके सदृश निर्मल जो मधु हो उसको भ्रामर कहते हैं ॥ ९ ॥

भ्रामरगुणाः ।

भ्रामरं रक्तपित्तघ्नं मूत्रजाड्यकरं गुरु । स्वादुपाकमभिष्यन्दि विशेषात्पिच्छिलं हिमम् १०॥

भाषा—भ्रामर मधु रक्तपित्तनाशक, मूत्रमें जाड्यता करनेवाला, भारी, पाकमें मधुर, अभिष्यन्दि, विशेष करके पिच्छिल (गिलगिला) और शीतल है ॥ १० ॥

क्षौद्रलक्षणम् ।

माक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्राख्यास्तत्कृतं मधु । मुनिभिः क्षौद्रमित्युक्तं तद्वर्णात्कपिलं भवेत् ॥ ११ ॥

भाषा—कपिलरंगवाली सूक्ष्म मक्खियें क्षुद्रा कहाती हैं, और इन मक्खियोंके किये हुए मधुको मुनियोंने क्षौद्र कहा है. क्षौद्र मधु कपिल (भूरे) वर्णवाला होता है ॥ ११ ॥

क्षौद्रगुणाः ।

गुणैर्माक्षिकवत्क्षौद्रं विशेषान्मेहनाशनम् ।

भाषा—क्षौद्रमधु माक्षिकके सदृश गुणवाला है तथा विशेष करके प्रमेहनाशक है ॥

पौतिकलक्षणम् ।

कृष्णा या मशकोपमा लघुतराः प्रायो महापीडिका वृक्षाणां पृथुकोटरान्तरगताः पुष्पासवं कुर्वते । तास्तज्ज्ञैरिह पूतिका निगदितास्ताभिः कृतं सर्पिषा तुल्यं यन्मधु तद्वनेचरजनैः संकीर्तितं पौतिकम् ॥ १२ ॥

भाषा—अधिक करके मच्छरके सदृश अत्यंत सूक्ष्म, काली, लोगोंको बहुत पीडा करनेवाली और वृक्षोंकी खखोडलमें रहनेवाली जो मक्खी मधु बनावे उनको विद्वान् पूतिका कहते हैं. उनका बनाया हुआ घीके सदृश जो मधु होता है, उनको वनमें फिरनेवाले लोग पौतिक कहते हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पौतिकगुणाः ।

पौतिकं मधु रूक्षोष्णं पित्तदाहास्रवातकृत् ।
विदाहि मेहकृच्छ्रघ्नं ग्रन्थ्यादिक्षतशोषि च १३

भाषा–पौतिक मधु रूक्ष, गरम, विदाही, पित्तकारक, दाहकारक, रक्तविकारकारक, वातकारक, प्रमेहनाशक, मूत्रकृच्छ्रनाशक है और गांठ आदि तथा क्षतका शोषण करता है ॥ १३ ॥

छात्रलक्षणम् ।

[illegible]ः कपिलाः पीताः प्रायो हिमवतो वने ।
कुर्वन्ति छत्रकाकारं तज्जं छात्रं मधु स्मृतम् १४॥

[illegible]–अधिक करके हिमालयके वनमें पिंगल और पीली मक्खियें छत्रके सदृश आकारवाली जो मधु बनाती हैं उस मधुको छात्र कहते हैं ॥ १४ ॥

छात्रगुणाः ।

छात्रं कपिलपीतं स्यात्पिच्छिलं शीतलं गुरु ।
स्वादुपाकं कृमिश्वित्ररक्तपित्तप्रमेहजित् ॥ भ्रम-
तृण्मोहविषहृत्तर्पणं च गुणाधिकम् ॥ १५ ॥

भाषा–छात्रमधु भूरे वर्णका, पीला, पिच्छिल, शीतल, भारी, पाकमें मधुर, तृप्तिदायक, अधिक गुणवाला है और कृमि, सफेद कोढ, रक्तपित्त, प्रमेह, भ्रम, तृषा, मोह तथा विषको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

आर्घ्यकलक्षणम् ।

मधूकवृक्षनिर्यासं जरत्कार्वाश्रमोद्भवम् । स्रव-
न्त्यार्घ्यं तदाख्यातं श्वेतकं मालवे पुनः॥१६॥
तीक्ष्णं तुण्डासु याः पीता मक्षिकाः षट्पदो-
पमाः । अर्घ्यास्तास्तत्कृतं यत्तदार्घ्यमित्यपरे
जगुः ॥ १७ ॥

भाषा–जरत्कारुमुनिके आश्रममें उत्पन्न हुए महुएके वृक्षोंमेंसे जो गोंद स्रवता है, वह अर्घ्य कहाता है. इसको मालवेमें श्वेतक कहते हैं. दूसरे मुनि कहते हैं कि "भौंरेके सदृश और तीक्ष्ण मुखवाली जो पीली मक्खियें होती हैं उनका नाम अर्घ्य है, उनके बनाये हुए मधुकोभी आर्घ्य कहते हैं" ॥ १६ ॥ १७ ॥

आर्घ्यगुणाः ।

आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परम् ।
कषायं कटुकं पाके तिक्तं च बलपुष्टिकृत्॥ १८॥

भाषा–आर्घ्य मधु नेत्रोंको अत्यन्त हितकारी, कफनाशक, पित्तनाशक, उत्तम, कसैला, पाकमें चरपरा, कडवा, बलदायक तथा पुष्टिदायक है ॥ १८ ॥

औद्दालकलक्षणम् ।

प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकी-
टकाः । कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत्स्यादौद्दालकं
मधु ॥ १९ ॥

भाषा–प्रायः बमईमें रहनेवाले कपिल वर्णयुक्त जो छोटे छोटे कीडे होते हैं वे कपिल वर्णवाला थोडा मधु बनाते हैं, उस मधुको औद्दालक कहते हैं ॥ १९ ॥

औद्दालकगुणाः ।

औद्दालकं रुचिकरं स्वर्यं कुष्ठविषापहम् । कषा-
यमुष्णमम्लं च कटुपाकं च पित्तकृत् ॥ २० ॥

भाषा–औद्दालक मधु रुचिकारक, स्वरके लिये उत्तम, कोढनाशक, विषनाशक, कसैला, गरम, खट्टा, पाकमें चरपरा और पित्तकारक है ॥ २० ॥

दाललक्षणम् ।

संसृत्य पतितं पुष्पाद्यात्तु पत्रोपरि स्थितम् ।
मधुराम्लकषायं च तद्दालं मधु कीर्त्तितम् २१॥

भाषा–पुष्पोंमेंसे झरकर पत्तोंके ऊपर पडा हुआ जो मधुर, खट्टा और कसैला मकरंद (रस) होता है, वह दाल मधु कहाता है॥२१॥

दालगुणाः ।

दालं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफापहम् ।
कषायानुरसं रूक्षं रुच्यं छर्दिप्रमेहजित् ॥
अधिकं मधुरं स्निग्धं बृंहणं गुरु भारिकम् २२
(लघु पाके, गुरु भारिकं, तुलितम् ।)

भाषा–दाल मधु पाकमें हलका, अग्निप्रदीपक, कफनाशक, कसैले रसवाला, रूक्ष, रुचिकारी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वमननाशक, प्रमेहनाशक, अधिकमधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक और तोलमें भारी है ॥ २२ ॥

नवपुराणमधुगुणाः ।

नवं मधु भवेत्पुष्ट्यै नातिश्लेष्महरं सरम् । पुराणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्नमतिलेखनम् ॥२३॥ मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः । एकसंवत्सरे वृत्ते पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥ २४॥

भाषा-नवीन मधु पुष्टिकारक है, अत्यन्त कफनाशक नहीं है और दस्तावर है. पुराना मधु ग्राही, रूक्ष, मेदनाशक और अत्यन्त लेखन है. मधुको, खांडको तथा गुडको जब एक वर्ष बीत जाय तब ये पुराने होते हैं, ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥ २३ ॥ २४ ॥

शीतलोष्णमधुकगुणाः ।

विषपुष्पादपि रसं सविषा भ्रमरादयः । गृहीत्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुणवन्मधु२५॥ विषान्वयात्तदुष्णं तु उष्णे चोष्णेन वा सह । उष्णार्त्तस्योष्णकाले च स्मृतं विषसमं मधु ॥ २६ ॥

भाषा-विषैले भौंरे आदि विषैले फूलोंमेंसेभी रस लेकर मधु बनाते हैं, वह मधु शीतलही गुणकारी है. परन्तु उसमें किसी विषैले पदार्थका संयोग होनेसे अथवा गरम पदार्थका संयोग रहनेसे, अथवा गरम रोगोंसे पीडितको उष्ण कालमें देनेसे वह मधु गरम होकर विषकी सदृश काम करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

मदननामानि ।

मदनं तु मधूच्छिष्टं मधुशेषं च सिक्थकम् । मध्वाधारो मदनकं मधूषितमपि स्मृतम् ॥२७॥

भाषा-मदन, मधूच्छिष्ट, मधुशेष, सिक्थक, मध्वाधार, मदनक, मधूषित ये मोमके संस्कृत नाम हैं. (सिक्थ, शिक्थ, शिक्थक, मधुज, मधुसभव, मादन, काच, विघस, उच्छिष्ट, मोदन, मक्षिकामल, क्षौद्रेय, पीतराग, स्निग्ध, माक्षिकज, क्षौद्रज और मधूत्थित ये मोमके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) २७॥

अनेक भाषाके मोमके नाम.

सं.-मदन.	गु.-मीण.
हिं.-मोम.	फा.-मोम.
बं.-मोम.	अ.-शमा.
म.-मेण.	अं.-Wax वॉक्स.

मदनगुणाः ।

मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतघ्नं व्रणरोपणम् । भग्नसन्धानकृद्धातकुष्ठवीसर्परक्तजित् ॥ २८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीभावमिश्रविरचिते श्रीभावप्रकाशे मधुवर्गः समाप्तः ॥ २१ ॥

भाषा-मोम कोमल, स्निग्ध, भूतनाशक, व्रणरोपक, भग्नसंधानकारक (घावको भरनेवाला) है और वात, कोढ, विसर्प तथा रक्तविकारका नाश करता है ॥ २८ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे मधुवर्गः समाप्तः ॥ २१ ॥

अथ इक्षुवर्गः २२ ।

इक्षुनामानि ।

इक्षुर्दीर्घच्छदः प्रोक्तस्तथा भूमिरसोऽपि च । गुडमूलोऽसिपत्रश्च तथा मधुतृणः स्मृतः ॥१॥

भाषा-इक्षु, दीर्घच्छद, भूमिरस, गुडमूल, असिपत्र, मधुतृण ये ईखके संस्कृत नाम हैं. (मधुयष्टि, विपुलरस, गुडदारु, रसाल, कोशकार, इक्षूर, असिपत्रक, पयोधर, कर्कोटक, वंश, कान्तार, सुकुमारक, अधिपत्र, गुडतृण और मृत्युपुष्प ये ईखके संस्कृत नाम अन्य ग्रंथोंमें पाये जाते हैं.) ॥ १ ॥

अनेक भाषाके ईखके नाम.

सं.-इक्षु.	फा.-नेशकर.
हिं.-ईख, गन्ना.	अ.-कसबुशासक्कर.
बं.-इक्षु, कुशिर.	अं.-Sugarcane शूगरकेन.
म.-ऊस.	ला.-Saccharum Album सेक्करम आलबम्.
गु.-शेरडी.	
क.-कब्बु.	
ते.-चिरकु.	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इक्षुगुणाः ।

इक्षवो रक्तपित्तघ्ना वल्या वृष्याः कफप्रदाः ।
स्वादुपाकरसाः स्निग्धा गुरवो मूत्रला हिमाः२॥

भाषा–ईख रक्तपित्तनाशक, बलदायक, मैथुनशक्तिवर्धक, कफकारक, पाकमें तथा रसमें मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रवर्द्धक और शीतल ह ॥ २ ॥

इक्षुभेदाः ।

पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वंशकः शतपोरकः ।
कान्तारस्तापसेक्षुश्च काण्डेक्षुः सूचिपत्रकः॥३॥
नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकः ।
मनोगुप्ता च इत्येता जातयस्तत्र कीर्त्तिताः॥४॥

भाषा–पौंड्रक, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कांतार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर, कोशक और मनोगुप्ता ये इखकी जातियां हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

पौण्ड्रकभीरुकेक्षुगुणाः ।

वातपित्तप्रशमनो मधुरो रसपाकयोः । सुशीतो बृंहणो वल्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा ॥ ५ ॥

भाषा–पौण्ड्रक (सफेद पौंडा) और भीरुक ईख वातनाशक, पित्तनाशक, रसमें तथा पाकमें मधुर, अत्यन्त शीतल, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक ह ॥ ५ ॥

कोशकेक्षुगुणाः ।

कोशको हि गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः ।

भाषा–कोशक नामक ईख भारी, शीतल और रक्तपित्तनाशक तथा क्षयनाशक ह ॥

कान्तारेक्षुगुणाः ।

कान्तारेक्षुगुरुर्वृष्यः श्लेष्मलो बृंहणः सरः ।

भाषा–कान्तार ईख (काला गन्ना) भारी, वृष्य, कफकारक, पुष्टिदायक और दस्तावर है ॥

दीर्घपत्रेक्षुगुणाः ।

दीर्घपत्रः सुकठिनः सक्षारो वंशकः स्मृतः ।

भाषा–दीर्घपत्र (बडी पोईवाला) ईख बहुत कठिन और खारयुक्त है ॥

शतपोरकेक्षुगुणाः ।

शतपर्वा भवेत्किञ्चित्कोशकारगुणान्वितः ।
विशेषात्किञ्चिदुष्णश्च सक्षारः पवनापहः ॥६॥

भाषा–शतपोरक (जिसमें बहुत पोई हों) गन्ना किंचित् कोशकरके सदृश गुणयुक्त, विशेष करके किंचित् गरम, खारयुक्त और वातविनाशक है ॥ ६ ॥

तापसेक्षुगुणाः ।

तापसेक्षुर्भवेन्मृद्वी मधुरा श्लेष्मकोपनी । तर्पणी रुचिकृच्चापि वृष्या च बलकारिणी ॥ ७ ॥

भाषा–तापस (चीनिया) ईख मृदु, मधुर, कफको कुपित करनेवाली, तृप्तिकारक, रुचिकर्त्ता, वृष्य और बलदायक है ॥ ७ ॥

काण्डेक्षुगुणाः ।

एवं गुणैस्तु काण्डेक्षुः स तु वातप्रकोपणः ।

भाषा–कांडेक्षुमेंभी तापसेक्षुके सदृश गुण हैं, परन्तु वातको कुपित करनेवाली है ॥

सूचीपत्रादीक्षुगुणाः ।

सूचीपत्रा नीलपोरा नैपालाश्चैव वंशकाः । वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥ ८ ॥

भाषा–सूचीपत्र जिसमें बहुत बारीक पत्ते होते हैं, नीलपोर, वंशक और नैपाल ईख वातकारक, कफनाशक, पित्तनाशक, कसैली और रक्तपित्तनाशक हैं ॥ ८ ॥

मनोगुप्तेक्षुगुणाः ।

मनोगुप्ता वातहरी तृष्णामयविनाशिनी ।
सुशीता मधुराऽतीव रक्तपित्तप्रणाशिनी ॥ ९ ॥

भाषा–मनोगुप्ता नामक ईख वातनाशक, तृषारोगनाशक, बहुत शीतल, अत्यन्त मीठी और रक्तपिनाशक है ॥ ९ ॥

बालकादीक्षुगुणाः ।

बाल इक्षुः कफं कुर्यान्मेदोमेहकरश्च सः । वातहारी युवा स्वादुरीषत्तीक्ष्णश्च पित्तनुत् ॥ रक्तपित्तहरो वृद्धः क्षतहृद्बलवीर्यकृत् ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-बाल (थोडे दिनोंकी वा कच्ची) ईख कफकारक और मेद तथा प्रमेहको उत्पन्न करनेवाली है. युवा (अधपकी) ईख वातनाशक, मधुर, किंचित् तीक्ष्ण और पित्तनाशक है. वृद्ध (पक्की) ईख रक्तपित्तनाशक, क्षतनाशक, बलकारक और वीर्यकारक है ॥ १० ॥

इक्ष्वंगगुणाः ।

मूले तु मधुरोऽत्यर्थं मध्येऽपि मधुरः स्मृतः ।
अग्रे ग्रन्थिषु विज्ञेय इक्षुः पटुरसो जनैः॥११॥

भाषा-गन्ना जडमें अत्यन्त मधुर, मध्यमें मधुर और अग्रभागमें गाठोंमें खारी है ॥११॥

दंतनिष्पीडितेक्षुगुणाः ।

दन्तनिष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्रनाशनः ।
शर्करासमवीर्यः स्यादविदाही कफप्रदः॥१२॥

भाषा-चूंसा हुआ गन्नेका रस पित्तनाशक, रक्तविकारनाशक, शर्कराके समान वीर्यवाला है दाहकारक नहीं है और कफकारक है ॥१२॥

यंत्रादिपीडितेक्षुरसगुणाः ।

मुलाग्रज तु यन्त्रादिपीडनान्मलसङ्करात् ।
किञ्चित्कालविधृत्या च विकृतिं याती यान्त्रिकः ॥ तस्माद्विदाही विष्टम्भी गुरुः स्याद्यान्त्रिको रसः ॥ १३ ॥

भाषा-गन्नेकी जड, अग्रभाग, जीव तथा गांठ आदि सब यंत्र (कोल्हू) में पिलनेसे, मैल आदि मिलनेसे और किंचित् अधिक समयतक रक्खे रहनेसे पिला हुआ रस विकारयुक्त हो जाता है, इस कारण कोल्हूका पिला हुआ रस दाहको उत्पन्न करनेवाला, विष्टम्भी और भारी है ॥ १३ ॥

पर्युषितेक्षुरसगुणाः ।

रसः पर्युषितो नेष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरुः ।
कफपित्तकरः शोषी भेदनश्चातिमूत्रलः ॥ १४ ॥

भाषा-ईखका बासी रस अप्रिय, खट्टा, वातनाशक, भारी, कफवर्धक, पित्तको बढानेवाला, शोषकारक, मलभेदक और अत्यन्त मूत्रवर्द्धक है ॥ १४ ॥

पक्वेक्षुरसगुणाः ।

पक्वो रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफवातनुत् । गुल्मानाहप्रशमनः किञ्चित्पित्तकरः स्मृतः ॥ १५ ॥

भाषा-ईखका पक्का रस भारी, स्निग्ध, बहुत तीक्ष्ण, कफनाशक, वातनाशक, गुल्म तथा अफरेको शांत करनेवाला और किंचित् पित्तकारक है ॥ १५ ॥

इक्षुरसविकारगुणाः ।

इक्षोर्विकारास्तृड्दाहमूर्च्छापित्तास्रनाशनाः ।
गुरवो मधुरा बल्याः स्निग्धा वातहराः सराः ॥
वृष्या मोहहराः शीता बृंहणा विषहारिणः१६

भाषा-ईखके रससे बने हुए गुडादिक पदार्थ तृषा, दाह, मूर्च्छा, पित्त तथा रक्तविकारोंके नाशक, भारी, मधुर, बलदायक, स्निग्ध, वातनाशक, दस्तावर, वृष्य, मोहको नष्ट करनेवाले, शीतल, पुष्टिदायक और विषविनाशक हैं ॥ १६ ॥

फाणितलक्षणम् ।

इक्षो रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद्गाढो बहुद्रवः । स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया ॥ १७ ॥

भाषा-किंचित् गाढा बहुत पतला और पक्का हुआ ईखका रस फाणित (राब) कहाता है ॥ १७ ॥

फाणितगुणाः ।

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं कफशुक्रकृत् ।
वातपित्तश्रमान्हन्ति मूत्रबस्तिविशोधनम्१८॥

भाषा-फाणित (राब) भारी, अभिष्यन्दी, पुष्टिकारक, कफकारक, वीर्यको करनेवाला, वात, पित्त तथा परिश्रमका नाशक और मूत्र तथा बस्तिको शुद्ध करनेवाला है ॥ १८ ॥

मत्स्यण्डीलक्षणम् ।

इक्षो रसो यः सम्पक्वो घनः किञ्चिद्द्रवान्वितः ।
मन्दं यत्स्यन्दते तस्मात्तन्मत्स्यण्डी निगद्यते ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा–भली भांति पकाया हुआ गाढा और द्रव्ययुक्त ईखका रस मत्स्यण्डी (मीजां) कहाता है ॥ १९ ॥

मत्स्यंडीगुणाः ।

मत्स्यण्डी भेदिनी बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा । मधुरा बृंहणी वृष्या रक्तदोषापहा स्मृता ॥ २० ॥

भाषा–मत्स्यण्डी मलभेदक, बलकारक, हलकी, पित्तनाशक, वातनाशक, मधुर, पुष्टिकारक, वृष्य है तथा रुधिरसंबंधी रोगोंको नष्ट करता है ॥ २० ॥

गुडलक्षणम् ।

इक्षो रसो यः सम्पक्को जायते लोष्टवद्दृढः स गुडो गौडदेशे तु मत्स्यण्डचेव गुडो मतः ॥ २१ ॥

भाषा–ईखका रस भली भांति पकाकर जो मट्टीके समान दृढ (गाढा) हो जाता है उसको गुड कहते हैं. परन्तु गौडदेशमें मत्स्यंडीकोही गुड कहते हैं ॥ २१ ॥

अनेक भाषाके गुडके नाम ।

सं.–गुड.	क.–हेसरू.
हिं.–गुड.	तै.–बेल्लमु.
बं.–गुड.	फा.–कन्देसिया.
म.–गूळ.	अ.–कन्दे अस्वद.
गु.–गोड.	अं.–Treacle ट्रीकल.

गुडगुणाः ।

गुडो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः । नातिपित्तहरो मेदःकफकृिमिबलप्रदः ॥ २२ ॥

भाषा–गुड वीर्यवर्द्धक, भारी, स्निग्ध, वातनाशक, मूत्रको शुद्ध करनेवाला है और अत्यंत पित्तनाशक नहीं है और मेद, कफ कृमि तथा बलको बढाता ह ॥ २२ ॥

पुराणगुडगुणाः ।

गुडो जीर्णो लघुः पथ्योऽनभिष्यन्द्यग्निपुष्टिकृत् । पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥ २३ ॥

भाषा–पुराना गुड हलका, पथ्य, अभिष्यन्दी नहीं, अग्निवर्द्धक, पित्तनाशक, मधुर, वृष्य, वातको हरनेवाला और रुधिरको स्वच्छ करनेवाला है ॥ २३ ॥

नवीनगुडगुणाः ।

गुडो नवः कफश्वासकासाक्रिमिकरोऽग्निकृत् ।

भाषा–नवीन गुड कफ, श्वास, खाँसी, कृमि और अग्निको बढाता है ॥

अनुपानभेदेन गुडगुणाः ।

श्लेष्माणमाशु विनिहन्ति सदार्द्रकेण पित्तं निहन्ति च तदेव हरीतकीभिः । शुण्ठ्या समं हरति वातमशेषमित्थं दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय ॥ २४ ॥

भाषा–अदरखके साथ खाया हुआ गुड तत्काल कफनाशक, हरडके साथ खाया हुआ गुड पित्तनाशक और सोंठके साथ खाया हुआ गुड सम्पूर्ण वातविनाशक है. इस प्रकार गुड तीनों दोषोंको नष्ट करता है. इस कारण गुडके अर्थ नमस्कार है ॥ २४ ॥

खंडगुणाः ।

खण्डं तु मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं बृंहणं हितम् । वातपित्तहरं स्निग्धं बल्यं वान्तिहरं परम् २५॥

भाषा–खांड मधुर, वृष्य, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक, शीतल, वातनाशक, पित्तनाशक, स्निग्ध, बलदायक और अत्यंत वमननाशक है ॥ २५ ॥

सितालक्षणम् ।

खण्डं तु सिकतारूपं सुश्वेतं शर्करा सिता ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—जो खांड रेतेके सदृश और सफेद होती है उसको शर्करा और सिता कहते हैं ।

चीनीबूराके नाम् ।

सं.—खण्ड.	गु.—साकरियाखांड.
हिं.—चीनी बूरा.	

सितागुणाः ।

सिता सुमधुरा रुच्या वातपित्तासृदाहहृत् ।
मूर्च्छाछर्दिज्वरान्हन्ति सुशीता शुक्रकारिणी २६

भाषा—यह खांड (बूरा) अत्यन्त मधुर, रुचिकारक, वातपित्त, रक्तविकार, दाह, मूर्च्छा, वमन तथा ज्वरको नष्ट करनेवाली, बहुत शीतल और वीर्यवर्द्धक है ॥ २६ ॥

अनेक भाषाके मिश्रीके नाम ।

सं.—सिता.	अ.—सक्करे अबीयद.
हिं.—मिश्री.	अं.—PurifiedSugar Candy प्युरिफाइड स्युगरकेंडी
बं.—मिचरी.	
म.—खडी साखर.	
गु.—खडीसाकर.	
क.—कलुसक्करी.	ला.—Saccharum Purificitum सक्करम प्युरिफिकिटम्.
ते.—फाटिकेपां.	
फा.—नवात.	

पुष्पसितासितोपलागुणाः ।

भवेत्पुष्पसिता शीता रक्तपित्तहरी लघुः ।
सितोपला सरा लघ्वी वातपित्तहरी हिमा २७॥

भाषा—सफेद बूरा शीतल, रक्तपित्तविनाशक और हलकी है. मिश्री दस्तावर, हलकी, वातनाशक, पित्तनाशक और हलकी है ॥ २७ ॥

मधुशर्करागुणाः ।

मधुना शर्करा रूक्षा कफपित्तहरी गुरुः ।
छर्यतीसारतृड्दाहरक्तहृत्तुवरा हिमा ॥ २८ ॥

भाषा—शहदसे बनाई हुई खांड रूखी, कफनाशक, पित्तनाशक, भारी, कसैली, शीतल है और वमन, अतीसार, तृषा, दाह तथा रक्तविकारको नष्ट करती है ॥ २८ ॥

परिभाषा ।

यथा यथैषां नैर्मल्यं मधुरत्वं यथा यथा ।
स्नेहलाघवशैत्यादि सरत्वं च तथा तथा २९॥

इति श्रीभावप्रकाशे इक्षुवर्गः समाप्तः ।

भाषा—खाँड और बूरा जितनी २ अधिक स्वच्छ करें उतना २ ही अधिक मधुर, स्निग्ध, हलकी, शीतल और दस्तावर होती है ॥ २९ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे पंचमप्रकरणे भाषाटीकायामिक्षुवर्गः समाप्तः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ अनेकार्थनामवर्गः ।

द्व्यर्थानि नामानि ।

१ अश्मन्तकः—अम्ललोणिका, कोविदारश्च ।
२ कठिल्लकः—कारवेल्लः, रक्तपुनर्नवा च
३ कुलकः—पटोलं, कुपीलुश्च । [च ।
४ कोशातकी—महाकोशातकी, राजकोशातकी
५ दीप्यकः—यवानी, अजमोदा च ।
६ मरुवकः—फणिजकः, पिण्डीतकश्च ।
७ मधूलिका—मूर्वा, जलयष्टी च ।
८ रुचकम्—सौवर्चलं, बीजपूरकं च ।
९ लोणिका—लोणीशाकं, चाङ्गेरीशाकं च ।
१० वसुकः—रक्तार्कः, क्षारलवणं च ।
११ बाह्लीकं—कुंकुमं, हिंगु च ।
१२ वितुन्नकम्—धान्यकं, तुत्थं च ।
१३ स्वादुकण्टकः—गोक्षुरो, विकङ्कतश्च ।
१४ अग्निमुखी—भल्लातकी, लाङ्गली च ।
१५ अग्निशिखम्—कुंकुमं कुसुम्भं च ।
१६ अजशृङ्गी—मेषशृङ्गी कर्कटशृङ्गी च ।
१७ प्रियंगुः—फलिनी, कंगुश्च ।
१८ भृङ्गः—भृङ्गराजः, त्वक् च ।
१९ समङ्गा—माञ्जिष्ठा, लज्जालुश्च ।
२० अमोघा—विडङ्गं, पाटला च ।
२१ मोचा—कदली, शाल्मलिश्च ।
२२ कुटन्नटः—श्योनाकः, कैवर्त्तीमुस्तं च ।
२३ कुनटी—धानिका, मनःशिला च ।
२४ घोण्टा—पूगः, बदरी च ।
२५ त्रिपुटा—त्रिवृत्, सूक्ष्मैला च ।
२६ शठी—कर्चूरः, गन्धपलाशी च ।
२७ दन्तशठः—जम्बीरः, कपित्थश्च ।
२८ दन्तशठा—अम्लिका, चाङ्गेरी च ।
२९ अरुणम्—माञ्जिष्ठा अतिविषा च ।

दो अर्थवाले शब्द ।

१ अश्मन्तक—खट्टी नोनिया और कचनार.
२ कठिल्लक—करेला और लाल पुनर्नवा.
३ कुलक—परवल और कुचला.
४ कोशातकी—तुरई और गलका तोरई.
५ दीप्यक—अजवाइन और अजमोद.
६ मरुवक—मरुआ और मैनफल.
७ मधूलिका—मूर्वा और जलमुलेठी.
८ रुचक—कालानिमक और बिजौरानींबू.
९ लोणिका—नोनियाशाक और चूका.
१० वसुक—लाल आक और खारी नोन.
११ बाह्लीक—केशर और हींग.
१२ वितुन्नक—धनियां और लीलाथोथा.
१३ स्वादुकण्टक—गोखरू और कंटाई.
१४ अग्निमुखी—भिलावा और कलिहारी.
१५ अग्निशिख—केशर और कुसुंभ.
१६ अजशृंगी—मेढाशिंगी और काकडाशिंगी.
१७ प्रियंगु—गोंदी और कंगनी.
१८ भृंग—भांगरा और तज.
१९ समंगा—मंजीठ और लज्जालु.
२० अमोघा—वायविडंग और पाढर.
२१ मोचा—केला और सेमल.
२२ कुटन्नट—टेंटू और केवटीमोथा.
२३ कुनटी—धनियां और मैनशिला.
२४ घोंटा—सुपारी और बेर.
२५ त्रिपुटा—निसोत और छोटी इलायची.
२६ शठी—कचूर और गंधपलाशी.
२७ दन्तशठ—जम्भीरीनींबू और कैथ.
२८ दन्तशठा—इमली और चूका.
२९ अरुण—मंजीठ और अतीस.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३० कणा—पिप्पली, जीरकं च ।
३१ तालपर्णी—मुशली, मुरा च ।
३२ पीलुपर्णी—मूर्वा, बिम्बी च ।
३३ ब्राह्मणी—भार्ङ्गी, स्पृक्का च ।
३४ अपराजिता—विष्णुक्रान्ता, शालिपर्णी च ।
३५ आस्फोता—अपराजिता, सारिवा च ।
३६ पारावतपदी—ज्योतिष्मती, काकजंघा च ।
३७ शारदी—सारिवा, जलपिप्पली च ।
३८ उग्रगन्धा—वचा, यवानी च ।
३९ परिव्याधः—कर्णिकारः, जलवेतसश्च ।
४० अञ्जनम्—स्रोतोऽञ्जनं सौवीरञ्च ।
४१ अग्निः—चित्रकः, भल्लातश्च ।
४२ कृमिघ्नः—विडङ्गः, हरिद्रा च ।
४३ तेजनः—शरः, वेणुश्च ।
४४ तेजनी—तेजस्वती, मूर्वा च ।
४५ रोचनः—कम्पिल्लः, रोचना च ।
४६ राजादनम्—क्षीरिका, प्रियालश्च ।
४७ शकुलादनी—कटुका, जलपिप्पली च ।
४८ गोलोमी—श्वेतदूर्वा, वचा च ।
४९ पद्मा—पद्मचारिणी, भार्ङ्गी च ।
५० श्यामा—सारिवा, प्रियङ्गुश्च ।
५१ धान्यम्—धान्यकं, शाल्यादि च ।
५२ सहस्रवीर्या—नीलदूर्वा, महाशतावरी च ।
५३ सेव्यम्—उशीरं, लामज्जकं च ।
५४ उदुम्बरः—जन्तुफलं, ताम्रं च ।
५५ ऐन्द्री—इन्द्रवारुणी, इन्द्राणी च ।
५६ कटम्भरा—कटुका, श्योनाकं च ।
५७ क्षारः—यवक्षारः, स्वर्जिका च ।
५८ गण्डीरः—गण्डारी, मञ्जिष्ठा च ।
५९ गन्धारी—दुरालभा, गन्धपलाशी च ।
६० चित्रा—इन्द्रवारुणी, बृहद्दन्ती च ।
६१ तुंडिकेरी—कार्पासी, बिम्बी च ।
६२ धारा—गुडूची, क्षीरकाकोली च ।
६३ बालपत्रः—खदिरः, यवासश्च ।

३० कणा—पीपल और जीरा.
३१ तालपर्णी—मुसली और मुरा (गन्धद्रव्यविशेष).
३२ पीलुपर्णी—मूर्वा और कन्दूरी. [शेष.)
३३ ब्राह्मणी—भारंगी और स्पृक्का. (गंधद्रव्यवि
३४ अपराजिता—कोयल और शालिपर्णी.
३५ आस्फोता—कोयल और सरिवन.
३६ पारावतपदी—मालकांगनी और काकजंघा.
३७ शारदी—सरिवन और जलपीपल.
३८ उग्रगंधा—वच और अजवायन.
३९ परिव्याध—कनेर और जलवेत.
४० अञ्जन—काला सुरमा और सफेद सुरमा.
४१ अग्नि—चीता और भिलावा.
४२ कृमिघ्न—वायविडंग और हलदी.
४३ तेजन—सरपता और बांस.
४४ तेजनी—मालकांगनी और मूर्वा.
४५ रोचन—कपीला और गोलोचन.
४६ राजादन—खिरनी और चिरौंजी.
४७ शकुलादनी—कुटकी और गजपीपल.
४८ गोलोमी—सफेद दूब और वच.
४९ पद्मा—सरोजनी और नारंगी.
५० श्यामा—सरिवन और प्रियंगु.
५१ धान्य—धनियां और शालीचावल.
५२ सहस्रवीर्या—नीली दूब और बडीशतावर
५३ सेव्य—खस और लामज्जक.
५४ उदुम्बर—गूलर और तांबा.
५५ ऐन्द्री—इन्द्रायन और इन्द्रवारुणी.
५६ कटम्भरा—कुटकी और अरलू.
५७ क्षार—जवाखार और सज्जीखार.
५८ गण्डीर—गंडारीशाक और मंजीठ.
५९ गन्धारी—धमासा और गंधपलाशी.
६० चित्रा—इन्द्रायन और बडी दन्ती.
६१ तुंडिकेरी—कपास और कुंदुरू.
६२ धारा—गिलोय और क्षीरकाकोली.
६३ बालपत्र—खैर और जवासा.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६४ वारि–बालकम्, उदकं च ।
६५ अङ्गारवल्ली–भार्ङ्गी, गुञ्जा च ।
६६ अमृणालं–लामज्जकम्, उशीरं च ।
६७ कुण्डली–गुडूची, कोविदारश्च ।
६८ गन्धफली–प्रियङ्गुः, चम्पककालिका च ।
६९ दीर्घमूलः–यवासः, शालिपर्णी च ।
७० पिच्छिला–शाल्मली, शिंशपा च ।
७१ पुष्यफलः–कपित्थः, कूष्माण्डश्च ।
७२ पोटगलः–नलः, काशश्च ।
७३ यवफलः–कुटजः, वंशश्च ।
७४ देवी–मूर्वा, स्पृक्का च ।
७५ विश्वा–शुण्ठी, अतिविषा च ।
७६ शीतशिवम्–सैन्धवं, मिश्रेया च ।
७७ कर्कशः–काम्पिल्यः, कासमर्दश्च ।
७८ चर्मकषा–शातला, मांसरोहिणी च ।
७९ नंदिवृक्षः–अश्वत्थभेदः, गोमुखपत्रशाखः।
८० पयः–क्षीरम्, उदकं च ।
८१ रुहा–दूर्वा, मांसरोहिणी च ।
८२ सिंही–बृहती, वासा च ।

अथ व्यर्थानि नामानि।

१ क्रमुकः–पूगः, तूदः, पट्टिकालोध्रश्च ।
२ क्षुरकः–कोकिलाक्षः, गोक्षुरः, तिलकनाम-पुष्पविशेषश्च ।
३ प्रियकः–प्रियङ्गुः, कदम्बः, असनश्च ।
४ पृथ्वीका–कालाजाजी, बृहदेला, हिङ्गुपत्री च ।
५ भूतीकं–भूनिम्बं, कत्तृणं, भूस्तृणं च ।
६ सोमवल्कः–कट्फलः, श्वेतखदिरः, घृतपूर्णकरञ्जश्च ।
७ सौगन्धिकं–कह्लारं, कत्तृणं, गन्धकं च ।
८ भृङ्गः–भृङ्गराजः, त्वग्, भ्रमरश्च ।
९ अरिष्टः–निम्बः, रसोनं, मद्यं च ।
१० मर्कटी–कपिकच्छुः, अपामार्गः, करञ्जी च।
११ अम्बष्ठा–पाठा, चाङ्गेरी, मोचिका च ।

६४ वारी–नेत्रवाला और पानी.
६५ अंगारवल्ली–भारंगी और घुंघुची.
६६ अमृणाल–लामज्जक और खस.
६७ कुण्डली–गिलोय और कचनार.
६८ गन्धफली–प्रियंगु और चम्पेकी कली.
६९ दीर्घमूल–सेमल और शालपर्णी.
७० पिच्छिल–जवासा और सीसम.
७१ पुष्पफल–कैथा और पेठा.
७२ पोटगल–नरसल और कांस.
७३ यवफल–इन्द्रजौ और बांस.
७४ देवी–मूर्वा और स्पृक्का.
७५ विश्वा–सोंठ और अतीस.
७६ शीतशिव–सैंधव और सौंफ.
७७ कर्कश–कबीला और कसौंदी.
७८ चर्मकषा–सातला और मांसरोहिणी.
७९ नन्दीवृक्ष–बेलिया पीपल और तुन.
८० पय–दूध और पानी.
८१ रुहा–दूब और मांसरोहिणी.
८२ सिंही–कटेरी और अडूसा.

तीन अर्थवाले शब्द।

१ क्रमुक–सुपारी, सहतूत और पठानीलोध.
२ क्षुरक–तालमखाना, गोखरू और तिलकपुष्प.
३ प्रियक–प्रियंगु, कदम और विजेसार.
४ पृथ्वीका–कलौंजी, बडी इलायची और हिंगुपत्री.
५ भूतीक–चिरायता, कत्तृण और भूस्तृण.
६ सोमवल्क–कायफल, सफेद खैर और घियाकरंज.
७ सौगन्धिक–लाल कमल, कत्तृण और गंधक.
८ भृंग–भांगरा, तज और भौंरा.
९ अरिष्ट–नीम, लहसुन और मद्य.
१० मर्कटी–कौंछ, चिरचिटा और करंज.
११ अम्बष्ठा–पाढ, चूका और मोइया.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१२ कृष्णा-पिप्पली, कलाजी, नीली च ।
१३ क्षीरिणी-दुग्धिका, क्षीरकाकोली, श्वेतसारिवा च ।
१४ मधुपर्णी-गुडूची, गम्भारी, नीला च ।
१५ मण्डूकपर्णः-श्योनाकः, मंजिष्ठा, ब्रह्ममाण्डूकी च ।
१६ श्रीपर्णी-गम्भारी, गणिकारिका, कट्फलं च ।
१७ अमृता-गुडूची, हरीतकी, धात्री च ।
१८ अनन्ता-दुरालभा, नीलदूर्वा, लाङ्गली च ।
१९ ऋष्यप्रोक्ता-अतिबला, महाशतावरी, कपिकच्छुश्च ।
२० कृष्णवृन्ता-पाटली, गम्भारी, माषपर्णी च ।
२१ जीवन्ती-गुडूची, शाकविशेषः, वन्दा च ।
२२ लता-सारिवा, प्रियंगुः, ज्योतिष्मती च ।
२३ समुद्रान्ता-दुरालभा, कार्पासी, स्पृक्का च ।
२४ हैमवती-हरीतकी, श्वेतवचा, पीतदुग्धः सेहुंडश्च (यस्य मूलं चोक इति प्रसिद्धम्) ।
२५ अव्यथा-हरीतकी, महाश्रावणी, पद्मचारिणी च ।
२६ षड्ग्रन्था-वचा, गन्धपलाशी, करञ्जी च ।
२७ वरदा-सुवर्चला, अश्वगन्धा, वाराही च ।
२८ इक्षुगन्धा-काशः, कोकिलाक्षः, गोक्षुरः, (क्षीरविदारी) च ।
२९ कालस्कन्धः-तमालः, तिन्दुकं, कालखदिरश्च ।
३० महौषधम्-शुण्ठी, रसोनः, विषं च ।
३१ मधु-क्षौद्रं, पुष्परसः, मद्यं च ।
३२ कपीतनः-आम्रातकः, शिरीषः, गर्दभाण्डश्च ।
३३ मदनः-पिण्डीतकः, धत्तूरः, सिक्थकं च ।
३४ शतपर्वा-वंशः, दूर्वा, वचा च ।
३५ सहस्रवेधी-अम्लवेतसः, मृगमदः, हिंगु च ।

१२ कृष्णा-पीपल, कलौंजी और नील.
१३ क्षीरिणी-दुद्धी, क्षीरकाकोली और सफेद सरिवन.
१४ मधुपर्णी-गिलोय, कम्भारी और नील.
१५ मंडूकपर्णी-अरलू, मंजीठ और ब्रह्ममंडूकी.
१६ श्रीपर्णी-कंभारी, गनियारी और कट्फल.
१७ अमृता-गिलोय, हरड और आंबले.
१८ अनन्ता-धमासा, नीलीदूब और कलियारी.
१९ ऋष्यप्रोक्ता-अतिबला, बडी शतावर और कौंछ.
२० कृष्णवृन्ता-पाढल, कंभारी और मसिवन.
२१ जीवन्ती-गिलोय, जीवन्तीशाक और बांदा.
२२ लता-सरन, प्रियंगु और मालकांगनी.
२३ समुद्रांता-धमासा, कपास और स्पृक्का.
२४ हैमवती-हरड, सफेद वच और पीले दूधकी कटेरी.
२५ अव्यथा-हरड, मुंडी और सहोजनी.
२६ षड्ग्रंथा-वच, गंधपलासी और करंजी.
२७ वरदा-हुलहुल, असगंध और वाराहीकन्द.
२८ इक्षुगन्धा-कांस, तालमखाने और गोखरू.
२९ कालस्कंध-श्यामतमाल, तेंदू और कालाखैर.
३० महौषध-सोंठ, लहसुन और विष.
३१ मधु-सहत, फूलका रस और मदिरा.
३२ कपीतन-अंबाडा, शिरसवृक्ष और गर्दभांड.
३३ मदन-मैनफल, धतूरा और मोम.
३४ शतपर्वा-बांस, दूब और वच.
३५ सहस्रवेधी-अमलवेत, कस्तूरी और हींग.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६ ताम्रपुष्पी–धातकी, पाटला, श्यामा-त्रिवृच्च ।
३७ सदापुष्पा–श्वेतार्कः, रक्तार्कः कुन्दं च ।
३८ सुरभी–सल्लकी, मुरा, एलवालुकं च ।
३९ लक्ष्मीः–ऋद्धिः, वृद्धिः, शमी च ।
४० कालानुसार्यम्–कालीयकं, तगरं, शैलेयं च ।
४१ चांपेयः–चंपकः, नागकेसरः, पद्मकेसरश्च ।
४२ नादेयी–गणिकारिका, जलजम्बः, जल-वेतसी च ।
४३ पाक्यम्–विडम्, सौवर्चलम्, यवक्षारश्च ।
४४ विशल्या–लाङ्गली, गुडूची, लघुदन्ती च ।
४५ इन्द्रद्रुः–ककुभः, देवदारुः, कुटजश्च ।
४६ काश्मीरम्–कुंकुमम्, पुष्करमूलम्, गम्भारी च ।
४७ काश्मीरी–गुन्द्रः, पटेरकः, शरश्च ।
४८ गुन्द्रा–प्रियंगुः, भद्रम्, मुस्तकं च ।
४९ चुक्रम्,–पत्राम्ला, अम्लवेतसम्, वृक्षा-म्लश्च ।
५० पारिभद्रः–निम्बः पारिजातः, देवदारु च ।
५१ पीतदारु–हरिद्रा, देवदारु, सरलश्च ।
५२ वीरः–ककुभः, वीरणं, काकोली च ।
५३ वीरतरुः–ककुभः, वीरणम्, शरश्च ।
५४ मयूरः–अपामार्गः, अजमोदा, तुत्थं च ।
५५ रक्तसारः–रक्तचन्दनं, पतङ्गं, खादिरश्च ।
५६ बदरा–सुवर्चला, अश्वगन्धा, वाराही च ।
५७ वसिरः–रक्तापामार्गः, गजपिप्पली, समु-द्रलवणं च ।
५८ सौवीरम्–अञ्जनभेदः, बदरम्, सन्धान-भेदश्च ।
५९ वञ्जुलः–अशोकः, वेतसः, तिनिशश्च ।
६० शिला–मनःशिला, शिलाजतु, गैरिकं च ।
६१ सोमवल्ली–बाकुची, गुडूची, ब्राह्मी च ।
६२ अक्षीवः–शोभाञ्जनः, महानिम्बः, समुद्र-लवणं च ।

३६ ताम्रपुष्पी–धायके फूल, पाढल और निसोत.
३७ सदापुष्प–सफेद आक, लाल आक और कंद.
३८ सुरभी–सालई, मुरा और एलुआ.
३९ लक्ष्मी–ऋद्धि, वृद्धि और छोंकरा. [ला.
४० कालानुसार्य–पीला चन्दन, तगर और छडी.
४१ चाम्पेय–चंपा, नागकेशर और कमलकेशर.
४२ नादेयी–गनियारी, जलजामुन और जलवेंत.
४३ पाक्य–विडनोन, कालानोन और जवाखार.
४४ विशल्या–कलियारी, गिलोय और छोटी
४५ इन्द्रद्रु–कोह, देवदारु और कूडा. [दंती.
४६ काश्मीर–केशर, पोहकरमूल और कंभारी.
४७ काश्मीरी–काश्मीरी गुंद्र, पटेरा और सरपता.
४८ गुंद्रा–प्रियंगु, भद्रमोथा और मोथा.
४९ चुक्र–चूका, अमलवेत और वृक्षाम्ल.
५० परिभद्र–नीम, फरहद और देवदारु.
५१ पीतदारु–हलदी, देवदारु और सरल.
५२ वीर–कोह, वीरणतृण और काकोली.
५३ वीरतरु–कोह, वीरणतृण और शरपता.
५४ मयूर–चिरचिटा, अजमोदा और लीलाथोथा.
५५ रक्तसार–लालचंदन, पतंग और खैर.
५६ बदरा–हुलहुल, असगंध और वाराहीकंद.
५७ वसिर–लालचिरचिटा, गजपीपल और समुद्रलवण.
५८ सौवीर–सफेद सुरमा, बेर और कांजी-का भेद.
५९ वंजुल–अशोक, अमलवेंत और तिनिस.
६० शिला–मैनशिल, सिलाजीत और गेरू.
६१ सोमवल्ली–बावची, गिलोय और ब्राह्मी.
६२ अक्षीव–सहिंजना, बकायन और समुद्र-लवण.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६३ कारवी—कालजाजी, शताह्वा, अजमोदा च।
६४ धामार्गवः—रक्तापामार्गः, राजकोशातकी, महाकोशातकी च ।
६५ दुःस्पर्शः—यवासः, कपिकच्छूः, कण्टकारी च ।
६६ पलाशः—किंशुकः गन्धपलाशी, पत्रं च ।
६७ कालमेषी—मञ्जिष्ठा, बाकुची, श्यामात्रिवृच्च।
६८ पलङ्कषा—गुग्गुलुः, गोक्षुरः, लाक्षा च ।
६९ मधुरसा—द्राक्षा, मूर्वा, गम्भारी च ।
७० रसा—रास्ना, शल्की, पाठा च ।
७१ श्रेयसी—हरीतकी, रास्ना, गजपिप्पली च ।
७२ लोहम्—अयः, कांस्यम्, अगुरु च ।
७३ सहा—मुद्गपर्णी, बलाभेदः, शतपत्री ।
७४ रास्ना—नाकुली, नीलपुष्पः, सिन्दुवारश्च ।

६३ कारवी—कलौंजी, शतावर और अजमोद.
६४ धामार्गव—लालओंगा, गलकातोरई और तोरई.
६५ दुःस्पर्श—जवासा, कौंछ और कटेरी.
६६ पलाश—ढाक, गंधपलाशी और पत्रज.
६७ कालमेषी—मंजीठ, बाबची और कालीनिसो-
६८ पलंकषा—गूगल, गोखरू और लाख. [त.
६९ मधुरसा—दाख, मूर्वा और कम्भारी.
७० रसा—रास्ना, सालई और पाटा.
७१ श्रेयसी—हरड, रास्ना और गजपीपल.
७२ लोह—लोहा, कांसी और अगर.
७३ सहा—मुगवन, ककही और सेवती.
७४ रास्ना—नाकुली, नील और संभालू.

अनेकार्थवाचकाः शब्दाः ।

अक्षशब्दार्थः ।

अक्षशब्दः स्मृतोऽष्टासु सौवर्चलविभीतके ।
कर्षपद्माक्षरुद्राक्षशकटेन्द्रियपाशके ॥ १ ॥

भाषा—संचरनोन, बहेडा, एक कर्ष, पद्माख, रुद्राक्ष, गाडी, इन्द्रिय और फांसे इस प्रकार अक्षशब्द आठ अर्थवाला कहा है ॥ १ ॥

काकशब्दार्थः ।

काकाख्यः काकमाची च काकोली काकणन्तिका । काकजंघा काकनासा काकोदुम्बारिकापि च ॥ सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः ॥ २ ॥

भाषा—मकोय, काकोली, लाल घुंघुची, काकजंघा, काकनासा, कठूमर और कौआपक्षी ये सात अर्थ काकशब्दके हैं ॥ २ ॥

नागशब्दार्थः ।

सर्पाद्विरदमेषेषु सीसके नागकेसरे ।
नागवल्ल्यां नागदंत्यां नागशब्दः प्रयुज्यते ३

भाषा—सर्प, हाथी, मेंढा, शीशा, नागकेशर नागरवेलपान और नागदन्ती ये नागशब्दके अर्थ हैं ॥ ३ ॥

रसशब्दार्थः ।

मांसे द्रवे चेक्षुरसे पारदे मधुरादिषु ।
बालरोगे विषे नीरे रसो नवसु वर्त्तते ॥ ४ ॥

भाषा—मांस, द्रव, ईखका रस, पारा, मधुर आदि छः रस, बालकका एक रोग, विष और जल ये नौ अर्थ रसशब्दके हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणे
अनेकार्थनामवर्गः समाप्तः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ मानपरिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् । अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १ ॥ चरकस्य मतं वैद्यैराद्यैर्यस्मान्मतं ततः । विहाय सर्वमानानि मागधं मानमुच्यते ॥ २ ॥

भाषा–तोलके विना कदापि पदार्थोंकी युक्ति नहीं होती, इस कारण प्रयोगोंमें कार्मोंके लिये यहां मान (तोल) कहता हूं. प्राचीन वैद्योंने चरकके मतको स्वीकार किया है, इस कारण सम्पूर्ण तोलोंको छोडकर चरकके मतानुसार मगधदेशके मागध मानको कहता हूं ॥ १ ॥ २ ॥

तथाच ।

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः । त्रसरेणुस्तु पर्य्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ ३ ॥ जालान्तरगतैः सूर्य्यकरैर्वंशी विलोक्यते । षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका ॥ ४ ॥ तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः । यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ ५ ॥ षड्भिस्तु रातिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ । माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ ६ ॥ टंकः स एव कथितस्तद्वयं कोल उच्यते । क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते ॥ ७ ॥ कोलद्वयं तु कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका । अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ ८ ॥ बिडालपदकं चैव तथा षोडशिकां मता । करमध्यो हंसपदं सुवर्णः कवलग्रहः ॥ ९ ॥ उदुम्बरं च पर्य्यायः कर्षमेव निगद्यते । स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिः सैमेका तथा ॥ १० ॥ शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका । प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ११ ॥ पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतं च निगद्यते । प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ १२ ॥ अष्टमानश्च स ज्ञेयः कुडवाभ्यां च मानिका । शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ १३ ॥ शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकः । भाजनं कांस्यपात्रं च चतुःषष्टिपलश्च सः ॥ १४ ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः । उन्मानं च घटो राशिर्द्रोणपर्य्यायसंज्ञितः ॥ १५ ॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः । शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ १६ ॥ द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः । चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ १७ ॥ पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः । तुलापलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १८ ॥ माषषट्कोक्षबिल्वानि कुडवप्रस्थमाढकम् । राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणम् ॥ १९ ॥

भाषा–तीस परमाणुका एक त्रसरेणु होता है और त्रसरेणुकीही पर्याय वंशी है. जाली तथा झरोखोंमें होकर जो सूर्यकी किरणें आती हैं, उनका नाम वंशी है. छः त्रसरेणु (वंशी) की एक मरीचि होती है. छः मरीचिकी एक राई होती है. तीन राईकी एक सरसों होती है. आठ सरसोंका एक जौ होता है. चार जौकी एक गुंजा होती है. छः गुंजोंका एक मासा होता है, मासेको हेम और धान्यक कहते हैं. चार मासेका एक शाण होता है इस शाणको धरण तथा टंकभी कहते हैं, दो शाणका एक कोल होता है, क्षुद्रक, वटक और द्रंक्षण ये कोलकेही नाम हैं. दो कोलका एक कर्ष होता है. पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कवलग्रह और उदुंबर ये सब कर्षके नाम हैं. दो कर्षका अर्द्धपल होता है, शुक्ति और अष्टमिका यह अर्द्धपलकेही नाम हैं. दो अर्द्धपलका एक पल होता है. मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी और बिल्व ये पलके ही नाम हैं अन्य भाषाओंमें इसीको पक्का टकाभर कहते हैं. दो पलकी एक प्रसृति होती है, प्रसृतभी प्रसृतिकाही नाम है. दो प्रसृतिकी एक अंजली होती है, कुडव अर्द्ध शराव और अष्टमान ये अंजलीकेही नाम हैं. दो अंजलीकी एक मानिका होती है. शराव और अष्टपल ये मानिकाकेही नाम हैं. दो शरावका एक प्रस्थ होता है. चार प्रस्थका एक आढक होता है. भाजन, कांस्यपात्र और चतुःषष्टिपल ये आढककेही नाम हैं. चार आढकका एक द्रोण होता है. कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट और राशि ये द्रोणकेही नाम हैं. दो द्रोणका एक शूर्प होता है. कुम्भ और चतुःषष्टिशरावक ये शूर्पके ही नाम हैं. दो शूर्पकी एक द्रोणी होती है. वाह और गोणी ये द्रोणीके नाम हैं. चार द्रोणीकी खारी होती है. ये खारी (४०९६) चार हजार छियानवे पलकी होती है. दो हजार (२०००) पलका एक भार होता है. और सौ (१००) पलकी एक तुला होती है, ये सब ग्रन्थोंका निश्चय है. माष, टंक, अक्ष, बिल्व कुडव, प्रस्थ, आढक, राशि, गोणी और खारी ये उत्तरोत्तर चौगुनी हैं ॥ ३–१९ ॥

मागधपरिभाषायां षड्रत्तिको माषश्चतुर्विंशतिरत्तिकष्टंकः षण्णवतिरत्तिकः कर्षः । अयं चरकसम्मतः । सुश्रुतमते तु पञ्चरत्तिको माषः विंशतिरत्तिकः टंकः, अशीतिरत्तिकः कर्षः । अयमेव कालिङ्गपरिभाषायामपि । यतः तत्राष्टरत्तिको माषो द्वात्रिंशद्रत्तिकः टंकः, सार्द्धटंकद्वयमितः कर्षः ।

भाषा–इस मगधदेशकी परिभाषाके अनुसार छः रत्तीका मासा, चौबीस रत्तीका टंक और छियानवें रत्तीका कर्ष होता है, यह चरककी सम्मति है. सुश्रुतके मतसे पाँच रत्तीका मासा, बीस रत्तीका टंक और अस्सी रत्तीका कर्ष होता है. कलिंगदेशकी परिभाषामेंभी अस्सी रत्तीकाही कर्ष होता है. जिस परिभाषामें आठ रत्तीका मासा होता है, उसमें बत्तीस रत्तीका टंक होता है और ढाई टंकका एक कर्ष होता है ॥

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः । द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ २० ॥ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः । मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम् ॥ २१ ॥ मृद्दारुवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरंगुलम् । विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ २२ ॥

भाषा–गुंजासे लेकर कुडवतक द्रवरूप पदार्थोंको, गीले पदार्थोंको और सूखे पदार्थोंको प्रमाणानुसार लेवे. द्रवपदार्थ और गीले पदार्थ प्रस्थपर्यंत दूने भाग लेवे (क्योंकि सूखे पदार्थोंसे गीले पदार्थमें बोझ अधिक होता है) और प्रस्थसे लेकर तुला पर्यन्त दूनी लेनी कहीं नहीं लिखी है. मिट्टीका, लकडीका, अथवा लोहे आदिका चार अंगुल चौडा और चार अंगुल ऊँचा जो पात्र बरतन हो उससे कुडवकी माप होती है ॥ १०–२२ ॥

अथ कालिंगमानम् ।

यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ । अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुश्रुतसम्मता ॥ २३ ॥ यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः । यवद्वयेन गुञ्जा स्यात्त्रिगुञ्जो वल उच्यते ॥ २४ ॥ माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्ताभिर्वा भवेत्क्वचित् । चतुर्भिर्माषकैः शाणः स निष्कष्टंक एव च ॥ २५ ॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषिकः । चतुःकर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ २६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुःपलैश्च कुडवः प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः । स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् ॥ २७ ॥ प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् । नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधिं यथाम्भोऽल्पं महानलम् ॥ अतिमात्रं च दोषाय शस्योपस्थे बहूदकम् ॥ २८ ॥

भाषा–कलियुगमें मनुष्य मन्द अग्निवाले, छोटे शरीरके और हीनशक्तिवाले होते हैं इस कारण उनके योग्य जो मात्रा विद्वानोंने स्वीकृत की हैं उनको अब हम कहते हैं. बारह सफेद सरसोंका एक जौ होता है, दो जौकी एक गुंजा (रत्ती) होती है, तीन गुंजाका एक वल्ल होता है. आठ गुंजाका मासा होता है, कहीं सात गुंजाकाभी मासा माना है. चार मासेका शाण होता है, शाणको टंक और निष्कभी कहते हैं. छः मासेका गद्याणक होता है, दश मासेका कर्ष होता है, चार कर्षका पल होता है, पलकाही नाम वृशशाण है. चार पलका कुडव होता है और प्रस्थ आदिकी तोल तौ मागधपरिभाषाके अनुसारही जानना. मात्राकी मर्यादा नहीं है, इस कारण काल, अग्नि, अवस्था, बल, प्रकृति, दोष और देशविचार कर मात्रा देवे. जिस प्रकार किंचित् जल अधिक अग्निको शांत नहीं कर सक्ता, तिसी प्रकार थोडी औषधि बडी व्याधिको नष्ट नहीं कर सक्ती. जैसे खेतमें उत्पन्न हुए धान्योंपर अधिक पानी पडे तौ हानि करता है, तिसी प्रकार अल्परोगमें अधिक औषधि देवे तौभी हानि करती है॥ १३–२८ ॥

औषधियोंका विधान ।

स्वरसश्च तथा कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ । ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २९ ॥

भाषा–स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट, इस भांति औषधियोंके पांच प्रकारके कषाय (क्वाथ) होते हैं. इनमें स्वरससे कल्क, कल्कसे क्वाथ, क्वाथसे हिम और हिमसे फांट हलका है ॥ २९ ॥

स्वरसकी विधि ।

अहतात्तत्क्षणात्कृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवेत् । वस्त्रनिष्पीडिता यश्च स्वरसो रस उच्यते ३० (अहताच्छीताग्निकीटादिभिरनुपहतात्क्षुण्णात्संपिष्टात्) ।

भाषा–शीतसे, अग्निसे अथवा कीडे आदिसे खराब नहीं हुई गीली औषधि कूट पीसकर उसको कपडेसे छानकर रस निकाल लेवे उसको स्वरस कहते हैं ॥ ३० ॥

अन्यच्च ।

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं च द्विगुणे जले । अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः॥३१॥ (चूर्णितं चूर्णीकृतम् ।)

भाषा–अथवा सोलह तोले गीली औषधिका चूर्ण कर उसको द्विगुने जलमें डालकर एक दिन राततक पडा रहने देवे, उसमेंसे जो रस निकले वह भी उत्तम स्वरस कहाता है ॥३१॥

अन्यच्च ।

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे । जलेऽष्टगुणित साध्यं पादशिष्टं च गृह्यते ३२॥

भाषा–गीली औषधि नहीं मिले तो रूखी औषधि लेकर उसका चूर्ण करे और उसमें अठगुना जल डाल कर औटावे जब चौथा भाग शेष रहे तब उतार ले इसकोभी स्वरस कहते हैं ॥ ३२ ॥

स्वरसकी मात्रा ।

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत् । निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्॥३३॥ (निशोषितं निशायामुषितम् ।)

भाषा–पहिला स्वरस भारी है इससे उसकी मात्रा अर्द्धपल (दो तोले)की है. और दूसरा तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीसरे प्रकारका अर्थात् रात्रिमें भिजोकर बनाये हुए और अग्निसे औटाकर बनाये हुए स्वरसकी मात्रा एक पल (चार तोले) की है॥३३॥

स्वरसमें मिश्री आदि डालनेका प्रमाण ।

सितामधुगुडक्षाराज्ञीरकं लवणं तथा । घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रान्रसे क्षिपेत् ॥३४॥ (कोलः टङ्कद्वयं च ।)

भाषा—इस स्वरसमें मिश्री, सहत, गुड, खार, नीरा, लवण, घी, तेल और चूर्ण आदि डाले तो एक कोल डाले ॥ ३४ ॥

चावलोंका स्वरस करनेकी विधि ।

कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत् । भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु॥३५॥

भाषा—एक पल (४ तोले) छुकलेरहित चावलोंको अठगुने पानीमें भिजोकर कोमल कर लेवे, पश्चात् वह स्वरसरूप पानी सर्व कर्मोंमें उपयोग करे ॥ ३५ ॥

हिम बनानेकी विधि ।

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् । निशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः॥ तस्य मानं मतं पाने पलद्वयमितं बुधैः॥३६॥ (क्षुण्णं चूर्णीकृतम् ।)

भाषा—एक पल औषधिको भले प्रकार कूट पीसकर छहगुने गरम जलमें डाले और रात्रिभर धरा रहने देवे पश्चात् प्रातःकाल होनेपर छान लेवे उसको हिम अथवा शीत कषाय कहते हैं. विद्वानोंने इसकी मात्रा दो पलकी कही है ॥ ३६ ॥

मंथ बनानेकी विधि ।

जले चतुष्पलं शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत् । मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक्ततस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥ ३७ ॥ (क्षुण्णं चूर्णीकृतं मन्थयेन्मथ्नीयात् ।)

भाषा—शीतल जलमें एक पल औषधिका चूर्ण भिजो देवे जब भीग जावे, तब इसको मिट्टीके पात्रमें रईसे मथ लेवे इसको मंथ कहते हैं, इसकी मात्रा दो पलकी है ॥ ३७ ॥

फाण्ट बनानेकी विधि ।

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् । मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ ३८ ॥ स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । क्षौद्रं सितागुडादींस्तु कर्षमात्रान्विनिःक्षिपेत् ॥ ३९ ॥ (क्षुण्णे चूर्णीकृते स चूर्णद्रवः फाण्टः स्यात् इति अन्वयः।)

भाषा—भली भांति किया हुआ औषधिका चूण एक पल मिट्टीके पात्रमें रख उसमें चौगुना जल डालकर भिजो देवे और फिर कपडेमें छान लेवे इसको फाण्ट कहते हैं. फाण्टकी मात्रा दो पलकी है. इसमें शहत, मिश्री, गुड आदि डाले तो एक कर्ष डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कल्क बनानेकी विधि ।

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् । प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्षसम्मितम् ॥ ४० ॥ कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया । सितां गुडसमां दद्याद्द्रवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४१ ॥

भाषा—गीली औषधिको सिलपर पीसकर और सूखी औषधि होय तो उसमें पानी डालके पीसकर छान लेवे, उसको कल्क कहते हैं. प्रक्षेप और आवाप ये कल्कके नाम हैं. इसकी मात्रा एक कर्षकी है. कल्कमें मधु, घी अथवा तेल डालना होय तो दूना डाले. मिश्री अथवा गुड डालना होय तो कल्कके सदृशही डाले और कोई द्रव्य डालना होय तो चौगुना डाले ॥ ४० ॥ ४१ ॥

चूर्ण करनेकी विधि ।

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्स्याच्चूर्णरजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता ॥ ४२ ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता । चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ ४३ ॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः । पिबेच्चतुर्गुणं रेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ४४ ॥ चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम् । पित्तवातकफार्तङ्गे त्रिद्व्येकपलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति । अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥

भाषा–उत्तम सूखी हुई औषधिको भली भांति पीसकर वस्त्रसे छान लेवे, उसको चूर्ण कहते हैं, रज और क्षोद भी चूर्णके ही नाम हैं. चूर्णकी मात्रा एक कर्ष (एक तोले) की है. चूर्णमें गुड डालना होय तो चूर्णके बराबरही डाले और बूरा डालना हो तो दूनी डाले. चूर्णमें हींग डालना होय तौ भूनकर डाले, कि जिसमें उत्क्लेद (जी मिचलना) न हो. घी आदि पतली वस्तुओंमें चूर्ण चाटना होय तौ वह वस्तु दूनी डाले. और घोलकर पिये तौ द्रवपदार्थ चूर्णसे चौगुना लेवे. चूर्ण, अवलेह, गोली और कल्क इनके ऊपर जो गरम जल पिये तौ पित्तरोगमें एक पल, वायुरोगमें दो पल और कफरोगमें तीन पल पिये. जिस प्रकार पानीमें पडा हुआ तेल क्षणमात्रमें फैल जाता है, तैसेही अनुपानके बलसे औषधि सम्पूर्ण अंगोंमें फैल जाती है ॥ ४२–४६ ॥

भावना देनेकी विधि ।

द्रवेण यावता सम्यक्चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत् । भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ४७

भाषा–जितने द्रवपदार्थमें भली भांति चूर्ण डूब जाय, उतने द्रवसे चूर्णकी भावना देवे, उत्तम वैद्योंने भावनाका यही प्रमाण कहा है ॥ ४७ ॥

पुटपाककी विधि ।

पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः । अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ ४८ ॥ पुटपाकस्य पाकोऽयं लेपस्याङ्गारवर्णता । लेपं च द्व्यङ्गुलं स्थूलं कुर्य्याद्द्व्यङ्गुलमात्रकम् ॥ ४९ ॥ काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् । पलमात्रो रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत् ॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः कोलमिता बुधैः ॥ ५० ॥

भाषा–पुटपाकके कल्कका स्वरस लिया जाता है, इस कारण पुटपाककी विधि कहता हूं. औषधियोंका कल्क करके उसके ऊपर काश्मरी (कंभारी) वड अथवा जामुन आदिके पत्तोंको भले प्रकार लपेट देवे और उसके ऊपर दो अगल मट्टीका लेपकर अग्निमें छोड देवे, जब दहकते अंगारेकी सदृश वर्णवाला हो जाय तब निकाल लेवे, यह पुटपाककी रीति है. पश्चात् मट्टी और पत्तोंको दूर करके कल्कके रसको निचोड लेवे. इस रसकी मात्रा एक पलकी है और उसमें शहत डालना होय तो एक कर्ष (तोला) डाले इस रसमें अन्य कोई कल्क, चूर्ण अथवा द्रवपदार्थ आदि डालना होय तो एक कोल (आठ मासे) डाले ॥ ४८–५० ॥

उष्णोदककी विधि ।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेन वा । अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं भवेत् ॥५१॥ श्लेष्मामवातमेदोघ्नं बस्तिशोधनदीपनम् । कासश्वासज्वरान्हन्ति पीतमुष्णोदकं निशि ५२

भाषा–गरम करनेपर पानीका अष्टमांश, चतुर्थांश, अथवा अर्द्धभाग शेष रहे तब पानीको गरम हुआ जाने, अथवा भले प्रकार गरम होनेको ही गरम हुआ जाने. रात्रिमें गरम पानी पिये तौ कफ, आमवात, मेद, खांसी, श्वास तथा ज्वर नष्ट होता है, बस्तिशोधक और अग्निप्रदीपक है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

---

१ कफके रोगोंमें अष्टमांश, वातरोगोंमें चतुर्थांश और पित्तके रोगोंमें अर्द्धावशेष जल ग्रहण करे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षीरपाककी विधि ।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् ।
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत्॥५३॥

भाषा-द्रव्यसे दूध आठगुना लेवे और उसमें जल दूधसे चौगुना डाले पश्चात् यह सब औटावे, जब केवल दूधही शेष रहे तब उतार ले, इसको पिये तो आमसे उत्पन्न हुआ शूल नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

क्वाथकी विधि ।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णद्रव्यपले क्षिपेत् ।
मृत्पात्रे क्वाथयेद्राद्यमष्टमांशावशेषितम् ॥५४॥
कर्षादौ तु पलं यावद्यात्षोडशिकं जलम् ।
ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥
चतुर्गुणमतश्चोर्ध्वं यावत्प्रस्थादिकं जलम्॥५५॥
तज्जलं पाययेद्दीप्ताग्निकोष्ठं मृदग्निसाधितम् ।
श्रृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते५६
(षोडशिकं षोडशगुणम् ।)

भाषा-भली भांति कूटी हुई एक पल औषधिमें सोलह गुना जल डालकर मट्टीके पात्रमें पकावे, जब आठवां भाग शेष रहे तब उतार लेवे, उसको क्वाथ कहते हैं. क्वाथ करना हो तो एक तोलेसे चार तोलेतक औषधिमें सोलह गुना पानी डाले, इससे ऊपर सोलह तोलेतक औषधिमें आठगुना पानी डाले और इससे पीछे चौंसठ तोलेतक औषधिमें चौगुना जल डालकर धीमी २ अग्निसे पकावे और अष्टमांश शेष रहनेपर किञ्चित् गरम हो उस समय उसको पीवे. श्रृत, कषाय और निर्यूह ये क्वाथकेही नाम हैं ॥ ५३-५६ ॥

क्वाथ पीनेकी मात्रा ।

मात्रोत्तमा पलेन स्यात्त्रिभिरक्षैस्तु मध्यमा ।
जघन्या च पलार्द्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च॥५७॥

भाषा-स्नेह (तेल) क्वाथ और औषधिकी मात्रा एक पल (चार तोले) की उत्तम, तीन तोलेकी मध्यम और दो तोलेकी अधम जाननी ॥ ५७ ॥

तन्त्रान्तरे ।

क्वाथ्यद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते ।
चतुर्भागावशिष्टं तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥ ५८ ॥
दीप्ताग्निं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम् ।
अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रस्थितं तु चिकित्सकाः ॥ ५९ ॥ क्वाथत्यागमनिच्छतस्त्वष्टभागावशेषितम् । पारम्पर्य्योपदेशेन वृद्धवैद्यः पलद्वयम् ॥ ६० ॥ अष्टभागावशेषितस्य चतुर्भागावशिष्टापेक्षया गुरुत्वाद्दीप्ताग्निं महाकायं पलद्वयं पाययेत् मध्यमाग्निमल्पकायं पलमात्रं पाययेत् । " मात्रोत्तमा पलेन स्यात् " इत्यादिवचनात् ।

भाषा-अन्य ग्रन्थोंमें कहा है कि " क्वाथ करनेके लिये एक पल औषधि लेकर उसमें सोलह गुना जल डाले जब चौथा भाग शेष (बाकी) रहे तब वह पिये " जो रोगी प्रदीप्त अग्निवाला और बडी देहवाला हो वह १६ तोले क्वाथ पिये. अन्य वैद्य कहते हैं " इस १६ तोले क्वाथमेंसे आधा भाग छोडकर प्रदीप्त अग्निवाला और बडे शरीरवाला रोगी दो पल (आठ तोले) पिये. परन्तु वृद्ध वैद्य कि, जिनकी क्वाथका भाग छोडनेकी इच्छा नहीं है, वे परम्पराकी पद्धतिप्रमाण पकाकर आठवां भाग अर्थात् आठ रुपयेभरही शेष रखकर वे सब क्वाथ प्रदीप्त अग्निवाले तथा बडे शरीरवाले रोगियोंको पिलाते हैं. " चौथा भाग शेष रहे हुए क्वाथसे आठवां भाग शेष रहा हुआ क्वाथ भारी होता है, इससे प्रदीप्त अग्निवाले और बडी कायवाले मनुष्यको उतनाही क्वाथ पीना चाहिये, परन्तु मध्य अग्निवाले तथा मध्य शरीरवाले मनुष्यको तो एक पलकीही मात्रा उत्तम है. इस वचनके अनुसार चार तोलेही पिये ॥ ५८-६० ॥

क्वाथमें मधु आदि डालनेका प्रमाण ।

क्वाथे क्षिपेत्सितांशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः । वा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तापित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ६१ ॥ जरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु । हिङ्गु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ ६२ ॥ क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं च - न्यद्द्रव्यं तथा । कल्कं चूर्णादिकं क्वथे निः- क्षिपेत्कर्षसम्मितम् ॥ ६३ ॥ तपोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः । औषधं हेमरजतं मृद्भाजनपरिस्थितम् ॥ ६४ ॥ पिबेत्प्रसन्नहृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम् । निधायाचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ ६५ ॥

भाषा–क्वाथमें बूरा डालना हो तो वातरोगमें चौथा भाग, पित्तरोगमें आठवां भाग और कफरोगमें सोलहवां भाग डाले. शहत डालना हो तो कफके रोगमें चौथा भाग, पित्तरोगमें आठव भाग और वातरोगमें सोलहवां भाग डाले. जीरा, गूगल, क्षार, नोन, शिलाजीत, हींग अथवा सोंठ, मिर्च, पीपल डालनी हों तो चार चार मासे डाले. दूध, घी, गुड, तेल, मूत्र और कोई द्रवपदार्थ, कल्क अथवा चूर्ण आदिमें डालना हो तो एक तोला डाले. भली भांति बैठ विश्राम लेकर मुख, हृदय तथा नेत्रोंको प्रसन्न करके सुवर्णके, चांदीके, अथवा मट्टिके पात्रमें भरा हुआ क्वाथ पिये, पश्चात् उस पात्रको उलटा करके रख देवे, फिर जलसे कुल्ले करके तांबूल आदि मुखशोधक पदार्थ खाय ॥ ६१–६५ ॥

अवलेहकी विधि ।

क्वाथादेर्यत्पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसाक्रिया । सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥ ६६ ॥ सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः । द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ ६७ ॥ सुपक्के तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सु मज्जनम् । स्थिरत्वं पीडिते मुद्रां गन्धवर्णरसोद्भवः ॥ ६८ ॥ दुग्धमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलकषायकम् । वासाक्वाथं यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ६९ ॥

भाषा–क्वाथ आदिको फिर पकाकर जो गाढा हो जाय उसका रसक्रिया, अवलेह और लेह कहते हैं. अवलेहकी मात्रा एक पलकी करे. अवलेहमें चीनी (बूरा) डालना हो तो चूर्णसे चौगुना, गुड डालना हो तो चूर्णसे दूना और द्रवपदार्थ मिलाना होय तो चूर्णसे चौगुना डाले, यहही सर्वत्र निश्चय है. अवलेहमें जब चासनीके सदृश तार निकलने लगे, पानीमें डालनेसे डूब जाय, कठिन हो जाय, अंगुलीके दबानेसे अंगुलीकी रेखा उठ आवें और गंध वर्ण तथा रस अपूर्व हो जाय, उस अवलेहको भली भांति पका हुआ जाने. अवलेहके ऊपर दूध, ईखका रस, पंचमूलके कषायका यूष और अडूसेका क्वाथ इनमेंसे यथायोग्य अनुपान देवे ॥ ६६–६९ ॥

गोली बनानेकी विधि ।

वटका अथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी । मोदको वटिका पिण्डी गुडो वर्त्तिस्तथोच्यते ॥ ७० ॥ लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराऽथवा । गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥ ७१ ॥ (तत्र वह्निसिद्धे गुडादौ ।) कुर्यादग्निसिद्धेन क्वचिद्गुग्गुलुना वटीं । द्रवेण मधुना वापि गुटिका कारयेद्बुधः ॥ ७२ ॥ सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः । चूर्णे चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥ ७३ ॥ (तत्समं चूर्णसमम्) । द्रवं तु द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ॥ ७४ ॥ (द्रवं द्रवरूपं द्रव्यम्) कर्षप्रमाणं तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते । (बलमिति कालादेरपि उपलक्षणम्) ।

भाषा–गुटिका (गोली) वटी (वडी) मोदक (लड्डू) वटिका (बडे) पिंडी (मुठिया) गुड (गोला) और वर्त्ति (बत्ती) ये गोलियोंके ही प्रकार हैं. ये अग्निपर अवलेहके सदृश बनाई जाती हैं. इसमें गुड अथवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शर्करा (बूरा) का पाक करके औषधिका चूर्ण डालकर उसकी गोली बनावे. किसी समय विद्वान् विना पाकके ही गूगलसे, मधुसे, अथवा अन्य द्रव पदार्थसे भी गोली बनाते हैं. बूराकी गोली बनानी होय तो चूर्णसे चौगुना बूरा लेवे. गुडकी बनानी होय तो गुड चूर्णसे दूना भाग लेवे. और गूगलसे अथवा मधुसे गोली बनानी होय तो चूर्णके सदृश ही गूगल और मधु लेवे. अन्य किसी द्रवपदार्थसे गोलियें बनानी हो तो उत्तम वैद्य चूर्णसे दुगुना द्रवपदार्थ लेवे. इन गोलियोंकी मात्रा एक तोलेकी है, परन्तु इसमें बल और समय आदिको देखना चाहिये ॥ ७०–७४ ॥

घृत और तेलकी विधि ।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव च । चतुर्गुणद्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ ॥ ७५ ॥ (मात्रा पलोन्मिता भक्षणाय) । निक्षिप्य क्काथयेत्तोयं क्काथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् । पादशेषं गृहीत्वा तु स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ ७६ ॥ चतुर्गुणं मृदुद्रव्यं कठिनेऽष्टगुणं जलम् । मृद्वादिक्काथ्यसंघाते दद्यादष्टगुणं पयः । अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् ॥ ७७ ॥(मृदुद्रव्ये आर्द्रद्रव्ये गुडूच्यादौ । कठिने शुष्कद्रव्ये शुण्ठ्यादौ । अत्यन्तकठिने चिरशुष्के देवदार्वादौ ।) कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं जलम् । तदूर्ध्वं कुडवं यावद्द्वेदष्टगुणं पयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणाम् ॥ ७८ ॥ (पूर्वं चतुर्गुणं मृदुद्रव्य इत्यादिना क्काथ्यद्रव्यतन्मृदुत्वादिगुणभेदेन जलगतपरिमाणमुक्तम् । इदानीं केचिदाचार्याः । कर्षादितः पलं यावदित्यादिवचनेन क्काथ्यद्रव्यगतपरिमाणभेदेन जलगतपरिमाणं मन्यन्ते ।) अम्बुक्काथरसैर्यत्र पृथक्स्नेहस्य साधनम् । कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ७९ ॥ अस्यायमर्थः। अम्बुना स्नेहसाधने कल्कं स्नेहस्य चतुर्थांशं दद्यात् । क्काथेन स्नेहस्य क्काथेन स्नेहसाधने स्नेहस्य षष्ठभागं कल्कं दद्यात् । स्वरसैः स्नेहसाधने स्नेहस्य अष्टमं भागं कल्कं दद्यात् ।

भाषा—जो कल्क किया हो उससे चौगुना घी अथवा तेल उसमें मिलाकर घृत अथवा तैलसे चौगुने द्रवपदार्थमें पकावे, द्रवपदार्थके जल जानेपर घी अथवा तेलही शेष रहे, तब निचोड लेवे. खानेके लिये इस तेल अथवा घीकी मात्रा एक पल (चार तोले) की है अथवा क्काथ करनेके चूर्णमें उससे चौगुना पानी डालकर पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें घी अथवा तेल डालकर सम्पूर्ण पानी जल जानेतक उसको पकावे और फिर उतार लेवे. यहां जो चौगुना पानी डालना कहा है वह गिलोय आदि कोमल पदार्थोंमें जानना. सौंठ आदि सूखे पदार्थ होंय तो आठ गुना पानी डाल, सूखे और गीले मिले हों तो भी आठ गुना पानी डाले और देवदारु आदि बहुत दिनोंके सूखे पदार्थ हों तो सोलह गुना डाले. पानीका यह प्रमाण क्काथ करनेके पदार्थोंके कोमलपने आदि गुणोंसे कहे, परन्तु बहुतसे आचार्य तो यह जलका प्रमाण पदार्थोंकी तोलसे कहते हैं. जैसे कि, एक तोलेसे चार तोले तक पदार्थोंमें आठगुना जल और चौंसठ तोलेसे खारी तक पदार्थोंमें चौगुना पानी डाले. घी अथवा तेलको पानीसे पकाना हो तो घी अथवा तेलका चौथा भाग कल्क डाले, क्काथसे पकाना हो तो छठा भाग कल्क डाले और स्वरससे पकाना हो तो आठवां भाग डाले ॥ ७५–७९ ॥

पुनर्विशेषम् ।

दुग्धे दधिरसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः । कल्काच्च सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥ कल्कात्, कल्कद्रव्यात् । चतुर्गुणं तोयं पेषणार्थम् । द्रवाणि यत्र स्नेहेषु प-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वादीनि भवन्ति हि । यत्र स्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ८१ ॥ अस्यायमर्थः । यत्र स्नेहेषु आदीनि पञ्चद्रव्याणि दुग्धदधिस्वरसतक्रकल्कोपयुक्तजलानि प्रत्येकं स्नेहसमानि बोद्धव्यानि यथापूर्वम् दुग्धदधिस्वरसतक्रं समुदितं स्नेहाच्चतुर्गुणं भवति ।

भाषा–फिर कहते हैं कि, दूधमें, दहीमें स्वरसमें अथवा चौथा भाग पानीसहित छाछमें पकाना हो तो आठवां भाग कल्क डाले. कल्कके पदार्थोंसे चौगुने पानीमें यह कल्क पिसा हुआ होना चाहिये कि, जिससे उत्तम पाक हो जाय. जिस स्नेहको दूध, दही, स्वरस छांछ और कल्क पीसतेमें पडा हुआ पानी, इन पांच पदार्थोंका योग देना हो उस स्नेहमें दही, दूध, स्वरस और छांछ इन सबकी तोल पकाते समय स्नेहसे चौगुनी होती है (क्योंकि स्नेह पदार्थको चौगुने द्रवमें पकावे ऐसा प्रथम कहा है) ॥ ८०–८१ ॥

द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि । तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ॥ ८२ ॥ क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रोदितः क्वचित् । क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥ ८३ ॥ कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे ॥८४॥ (केवले द्रवे क्वाथेतरस्मिन्स्वरसादिरूपे) पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम् । स्नेहात्स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ ॥ ८५ ॥ वर्त्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदाङ्गुल्या विवर्त्तितः । शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८६ ॥ यदा फेनोद्गमस्तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि । वर्णगन्धरसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८७ ॥ स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा । ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥ ८८ ॥ मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले । ईषत्काठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः ॥ ८९ ॥ तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः । आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः ॥ ९० ॥ नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु । अभ्यङ्गार्थः खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् ॥ ९१ ॥ घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे । प्रकुर्वन्त्युषितास्त्वेते विशेषाद्गुणसञ्चयम् ॥ ९२ ॥

भाषा–केवल द्रवसे ही जो स्नेहका पाक करना हो तो औषधियोंको चौगुने पानीसे पीसकर उसमें कल्क डाले. कहीं केवल क्वाथसे ही स्नेहको पकाना कहा होय वहां औषधिके चूर्णको क्वाथमें डालनेके पीछे उस औषधिका कल्कभी स्नेहमें डालना चाहिये. विना कल्क डालेही स्नेहको पकाना हो तो वहां उस स्नेहको क्वायके अतिरिक्त अन्य स्वरस आदि द्रव्यमेंही पकावे. फूलका कल्क डालकर स्नेहको पकाना होय तो वहा स्नेहसे चौगुना पानी और आठवां भाग फूलका कल्क चाहिये. पाक करते २ जब कल्क अंगुलीके मलनेसे बत्तीसा हो जाय और अग्निमें डालनेसे कुछ शब्द न करे तब स्नेहका पाक हुआ जाने. तेलका पाक करे तो तेलमें झाग आनेसे और घीका पाक करे तो घीके झाग बैठ जानेसे पाक सिद्ध हुआ जाने. स्नेहमें अपूर्व वर्ण (स्वरूप) गंध और रसकी उत्पत्ति हो येभी पूर्णपाक हो जानेकी परीक्षा है. स्नेहका पाक मृदु, मध्य और खर, इस भांति तीन प्रकारका है. जिसमें कल्क किञ्चित् रस भरा हुआ रहे वह पाक मृदु जानना जिसमें कल्क रसरहित हो जाय परन्तु मृदु रहे उसका पाक मध्य जानना और कल्क जिसमें किंचित् कठिन होजाय उसका पाक खर जानना. जिसमें कल्क जल जाय उस पाकको दाहकारक और निष्प्रयोजन जानना. जो पाक कच्चा रह गया होय वह जठराग्निकी मंदता करता है, भारी तथा शक्तिहीन होता है. नाकमें डाल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेके काममें मृदुपाक उपयोगी है, सब कामोंमें मध्यपाक उपयोगी है और अभ्यंग कार्यमें खरपाक उपयोगी है इस कारण इसको समझकर उसका उपयोग करे. घी, तेल और गुड आदि पदार्थ ताजे लाकर उसही दिन औषधियोंमें उपयोग नहीं करे परन्तु कुछ दिनोंतक रख छोडे क्योंकि ये पदार्थ जितने पुराने होयँ उतनेही अधिक गुणकारी होते हैं ॥ ८२-९२॥

सन्धानकी विधि।

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सान्धितं भवेत्। आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ ९३ ॥ (भेषजेषु यदुचितं तद्भेषजोचितम्।)

भाषा-जो पदार्थ द्रवरूप पदार्थोंमें अधिक कालतक रख छोडे वह संधित हो जाता है, यह संधित (खट्टा हुआ) पदार्थ आसव और अरिष्ट नामक भेदोंसे दो प्रकारका है, जिस प्रकार औषधियोंमें काम आता है, वह प्रकार अब कहते हैं ॥ ९३ ॥

आसव और अरिष्टके लक्षण।

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। अरिष्टः क्वाथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ ९४ ॥

भाषा-कच्ची औषधिसे और कच्चे पानीसे जो मद्य बनाई जाय उसको आसव कहते हैं (जैसे कुमार्यासव) और क्वाथ करके जो मदिरा बनाई जाय उसको अरिष्ट कहते हैं. इनकी मात्रा एक पलकी है ॥ ९४ ॥

सामान्य अरिष्टकी विधि।

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रव्याद्द्रोणं गुडात्पलम्। क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशकम् ॥९५॥ (दशमांशकम् गुडस्यैव दशमांशकम्।)

भाषा-जहां अरिष्टमें डालनेके पदार्थोंकी तोल नहीं कही हो वहा १०२४ तोले द्रव और ४०० तोले गुड डाले २०० तोले मधु और ४० रुपयेभर औषधि डाले ॥ ९५ ॥

दो प्रकारकी सीधु।

ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वामधुरद्रवैः। सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वमधुरद्रवैः ॥ ९६ ॥ (मधुरद्रवैः इक्षुरसादिभिः।)

भाषा-विना पकी ईख आदिके मधुर रससे जो बनी हो वह शीतरस सीधु कहाती है और पकाई हुई ईख आदिके रसोंसे जो मदिरा बनाई जाय वह पक्वरस सीधु कहाती है ॥९६॥

सुरा तथा सुराकी जाति।

परिपक्वान्नसंधानात्समुत्पन्नां सुरां जगुः। सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्ततः कादम्बरी घना ॥ ९७ ॥ तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्घनः। पक्वांशो हतसारः स्यात्सुराबीजं किराटकम् ॥ ९८ ॥ यत्तालखर्जूररसैः सन्धितां ला हि वारुणी ॥ ९९ (सुराबीजम्, यवगोधूमतण्डुलादि।)

भाषा-पके हुए अन्नका सन्धान करके जो मद्य उत्पन्न की जाती है, उसको सुरा कहते हैं. पतली सुरा प्रसन्ना कहाती है और गाढी सुरा कादंबरी कहाती है, मदिराके नीचेकी रही हुई जगल कहाती है और बहुत गाढी नीचेकी जो गाद होती है, उसको मेदक कहते हैं. इस कीचडको पकाकर सारभाग निकाल लेनेपर जो गेहूं जौ अथवा चावल आदिका फोकस शेष रहता है उसको सुराबीज और किराटक कहते हैं. ताडी अथवा खजूरोंके रसका सन्धान करके जो मदिरा बनाई जाती है, वह वारुणी कहाती है ॥ ९७-९९ ॥

शुक्तके लक्षण।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च। विनष्टमभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥ १००॥ (अभिषूयन्ते द्रवेण आप्लाव्य सन्धीयन्ते।)

भाषा-तेल और नमक डालकर जिस द्रवमें कन्द, मूल और फल आदिका सन्धान करे तो वह द्रव शुक्त (सिरका) कहाता है॥१००॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चुक्रके लक्षण ।

विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रव्यं । विनष्टं सन्धितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते ॥ १०१ ॥ गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा । सन्धितं चाम्लतां यातं गुडचुक्रं प्रचक्ष्यते ॥ एवमेव हि शुक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा ॥ १०२ ॥

भाषा–बिगडकर खट्टे हुए अथवा बिगडे हुए मधुर द्रव्यका जो संधान किया जाता है, वह चुक्र कहाता है. गुडपानी; तेल, कंद, मूल और फल इनके संधानमें जब खट्टापन आवे तब उसको गुडचुक्र कहते हैं. दाखका चूकभी इसी प्रकार होता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

तुषोदक, सौवीर, आरनाल, कांजिक और शिंडाकीके लक्षण ।

तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः । यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सावीरं साधितं भवेत् ॥ १०३ ॥ आरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः । पक्वैर्वा संहितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ १०४ ॥ कुल्माषधान्यं मण्डादि संहितं काञ्जिकं विदुः । शिण्डकी संहिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १०५ ॥

भाषा–कच्चे तुषसहित जौओंका पानीमें जो संधान किया जाय वह तुषोदक कहाता है. तुषरहित पक्के जौओंका जो सन्धान किया जाय वह सौवीर कहाता है. भूसीरहित कच्चे अथवा पक्के गेहुओंका जो सन्धान किया जाय उसको आरनाल कहते हैं. आरनालमें सौवीरके सदृश गुण हैं. उडदके बडे और मंड आदिका जो सन्धान किया जाय वह कांजिका (कांजी) कहाती है. मूली और सरसा आदिके पत्तोंका जो आचार करते हैं, उसको शिंडाकी कहते हैं ॥ १०३–१०५ ॥

इति औषधिविधानं समाप्तम् ।

अथ धातूनां शोधनमारणविधिः ।

मारणयोग्य सुवर्णके लक्षण ।

दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुंकुमप्रभम् । तारशुल्वोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ॥ १ ॥ तच्छेदे कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् । दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे स्फुटं लघु त्यजेत् ॥ २ ॥ (सत्, उत्तमम् ।)

भाषा–जो सुवर्ण तपानेमें लाल, काटनेमें सफेद, कसौटीपर कसनेसे केशरके सदृश दीखे, चांदी तथा तांबे करके रहित स्निग्ध, कोमल और भारी हो वह सुवर्ण उत्तम जानना. जो सुवर्ण सफेद, कठिन, रूखा, बुरे वर्णवाला, मलसहित पतरोंवाला, तपाने तथा काटनेमें सफेद, कसनेमेंभी सफेद हलका और चोट मारनेसे फट जाय ऐसा सुवर्ण त्याज्य है ॥ १ ॥ २ ॥

सुवर्णकी शोधनविधि ।

पत्तलीकृतपत्राणि हेम्नो वह्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ ३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये तु त्रिधा त्रिधा । एवं हेम्नः परेषां च धातूनां शोधनं भवेत् ॥ ४ ॥

भाषा–सुवर्णके पतले पतले पत्तर करके अग्निमें तपावे, जब लाल हो जायं तब तेलमें, छांछमें, कांजीमें, गोमूत्रमें और कुलथीके काथमें डालकर तीन तीन बार बुझावे तब सुवर्ण शुद्ध होता है. अन्य धातुओंकोभी इसी भांति शुद्ध करे ॥ ३ ॥ ४ ॥

अशुद्ध सुवर्णके दोष ।

बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं पोषयतीह काये । असौख्यकार्येव सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणं च कुर्यात् ॥ ५ ॥

भाषा–अशुद्ध सुवर्ण मनुष्योंके बल तथा वीर्यको हरण करनेवाला, शरीरमें अनेक रोगों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को बढानेवाला सर्वदा असुख (दुःख) का कर्त्ता और मृत्युकोभी करनेवाला है ॥ ५ ॥

सुवर्णकी मारण विधि।

स्वर्णस्य द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत्। तद्गोलकसमं गन्धं निक्षिप्यादधरोत्तरम् ॥ ६ ॥ (स्वर्णस्य, अतितनूकृतपत्रस्य । गन्धम्, गन्धकचूर्णम् ।) गोलकं च ततो रुद्ध्वा शरावसम्पुटे। त्रिंशदुपलैर्दग्धात्पुटान्येव चतुर्दश ॥ निरुद्धं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ॥७॥(रुद्ध्वा सवस्त्रकुट्टितचिक्कणमृत्तिकया । वनोपलः, अरने उपले इति लोके । निरुद्धं यत्पुनर्न जीवति ।)

भाषा-जिसके बहुत पतले पतले पत्तर कर लिये हों ऐसे सुवर्णसे दूना पारा ले दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके गोला बना लेवे उस गोलेकी बराबर गंधक ले उसका चूर्ण करके गोलेके चारों ओर लगा देवे और गोला रखनेकी घडियामें भी छिडक दे. गोलेको शराव संपुटमें रख संपुटको दृढतासे कपरमट्टी करके सुखाकर तीस अरने उपलोंकी अग्निमें रख देवे, सम्पूर्ण उपले बलकर जब राख शीतल हो जाय तब उसमेंसे निकालकर फिर तीस अरने उपलोंकी अग्निमें रख देवे. इसी प्रकार वारंवार अग्निकी चौदह पुट देवे तो सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होजायगी. प्रत्येक पुटमें ऊपर कहे अनुसार वारंवार गंधक देता जावे ॥ ६ ॥ ७ ॥

सुवर्ण मारणकी दूसरी विधि।

काञ्चने गलिते नाम षोडशांशेन निक्षिपेत्। चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्ट्वा कृत्वा तु गोलकम् ॥ ८ ॥ गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम्। शरावसम्पुटे धृत्वा पुटेद्विंशद्वनोपलैः ॥ एवं सप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते ॥ ९ ॥ (अत्रापि पूर्ववद्गन्धः प्रदातव्यः।)

भाषा-सुवर्णको गलाकर उसमें सोलहवां भाग सीसा डाले, पश्चात् इस रसका बारीक चूर्ण करके नींबूके रसमें खरल कर गोला बना लेवे गोलेकी बराबरही गंधक लेकर उसका चूर्ण कर गोलेके चारों ओर लगा देवे और गोलेके रखनेके पात्रमेंभी छिडक देवे. गोलेके ऊपर तथा नीचे दो घडियोंके संपुटमें रख संपुटको दृढतासे कपरमट्टी करके सुखा लेवे, पश्चात् बीस अरने उपलोंकी अग्निमें रक्खे इस प्रकार वारंवार अग्निकी सात पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म हो जाती है. इसमें भी पहिले सदृश वारंवार गंधक देता जावे ॥ ८ ॥ ९ ॥

सुवर्ण मारणकी तीसरी विधि।

काञ्चनारैरसघृष्टौ समसूतकगन्धयोः। कज्जलीं हेमपत्राणि लेपयेत्समयातया ॥ १० ॥ काञ्चनत्वचः कल्कैर्मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्। धृत्वा सत्संपुटे गोलं मृन्मूषासम्पुटे च तत् ॥ ११ ॥ विधाय सन्धिरोधं च कृत्वा संशोष्य गोलकम्। वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ ॥ १२ ॥ निरुत्थं जायते भस्म सर्वकर्मसु योजयेत्। काञ्चनारप्रकारेण लांगली हन्ति काञ्चनम् ॥ १३ ॥ ज्वालामुखी तथा हन्याद्यथा हन्ति मनःशिला ॥ १४ ॥

भाषा-पारा और गंधक दोनों समान भाग लेकर उसको कचनारके रसमें मलकर कजली कर लेवे, फिर सुवर्णकी बराबर कजलीको सुवर्णके पतरोंपर लेप कर देवे, पश्चात् कचनारकी छालको बारीक पीसकर उसकी दो मूषा बनावे उसके बीचमें सोनेके पत्तर रखके मट्टीकी मूषामें रख दोनोंके मुखको कपरमट्टीसे भली भांति बंद कर देवे और सुखाकर अत्यन्त तेज अग्नि देवे, इस प्रकार तीन संपुट देनेसे सुवर्णकी निरुत्थ भस्म हो जाती है, इस भस्मको सर्व रोगोंपर देवे. जिस प्रकार कचनार सुवर्णको मार देता है, तैसेही कालियारी,

१ जो घी सुहागा आदि मित्रपंचक डालनेसे भी नहीं जीवे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुलहुल तथा मैनसिलभी सुवर्णको मार देता है ॥ १०-१४ ॥

सुवर्णमारणकी चौथी विधि ।

शिलासिन्दूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः । सप्तधा भावनां दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः ॥१५॥ ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः । पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते ॥ एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

भाषा-मैनसिल और सिन्दूर दोनों समान लेकर इनका चूर्ण करके आकके दूधमें भावना देकर सुखा लेवे, इस प्रकार सुखा सुखाकर सात भावना देनेके पीछे गलाये हुए सुवर्णमें सोनेकी बराबर ही कल्क डाले. कल्क डालनेके पीछे अग्निमें रखके घमावे कि; जिससे कल्क जल जाय, इस प्रकार तीन वार मैनशिल सिन्दूरका कल्क डालनेसे सुवर्ण मर जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

मारित सुवर्णके गुण ।

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् । स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम् ॥ १७ ॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम् । हृद्यमायुष्करं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत् ॥ विषक्षयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित् ॥ १८ ॥ (वृष्यं वृषाय कामुकाय हितम् ।)

भाषा-मारा हुआ शीतल वृष्य (कामी पुरुषोंको हितकारी) बलदायक, भारी, वृद्धता नाशक, रोगनाशक, मधुर, कडवा, कसैला, पाकमें मधुर, पिच्छिल (गिलगिला), पवित्र, पुष्टिकारक, नेत्रोंको हितकारी, बुद्धिको उत्तम करनेवाला, स्मरणशक्तिवर्द्धक, बुद्धि तथा बलको बढानेवाला, हृदयको प्रिय, आयुवर्द्धक, कान्तिकारक, वाणीको शुद्ध करनेवाला (हकलाना मिनमिनाना आदि दूर करनेवाला), स्थिरताकारक और स्थावर तथा जंगम इन दोनों प्रकारके विष, क्षय, उन्माद, तीनों दोष, ज्वर तथा शोषको नष्ट करता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अशुद्ध सुवर्णके दोष ।

असम्यङ्मारितं स्वर्णं बलं वीर्यं च नाशयेत् । करोति रोगान्मृत्युं च तद्धन्याद्यत्नतस्ततः ॥ १९ ॥

भाषा-भले प्रकार नहीं मारा हुआ सोना बलनाशक, वीर्यनाशक, रोगोंको उत्पन्न करनेवाला और मृत्युदायक है, इस कारण, सुवर्णको बडे यत्नसे मारे ॥ १९ ॥

धात्वादिमारणोपयुक्तपुटप्रकाराः ।

लोहादेरपुनर्भावस्तद्रुणत्वं गुणाढ्यता । सलिले तरणं चापि तत्सिद्धिः पुटनाद्भवेत् ॥ ॥ २० ॥ गम्भीरे विस्तृते कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके । वनोत्पलसहस्रेण पूरिते पुनरौषधम् ॥ २१॥ कोष्ठे रुद्ध्वा प्रयत्नेन गोविष्ठोपरि धारयेत् । वनोत्पलसहस्रार्द्धं कोष्ठिकोपरि निःक्षिपेत् ॥ २२ ॥ वह्निं विनिःक्षिपेत्तत्र महापुटमिति स्मृतम् ॥ २३ ॥ (कोष्ठं मृन्मूषा । गोविष्ठा गोबर इति लोके ।)

भाषा-लोहादि धातुओंकी अग्निकी पुट देनेसे फिर वह धातु जीवित नहीं होती, रख रहनेपर उसमें अधिक गुण आते हैं और वह धातु पानीमें तैरती है, ये सिद्धि पुट देनेसे होती हैं, दो हाथ ऊंचा और दो हाथ चौडा चौकोर गड्ढा खोदकर उसमें एक हजार अरने उपले भरे, पश्चात् औषधिको भट्टीकी मूषामें रख यत्नपूर्वक कपरमट्टीसे बंद करके उस गड्ढेमें रख देवे पश्चात् ऊपरसे पांच सौ उपले उसके ऊपर चिनकर अग्नि लगा देवे इस प्रकार करनेको महापुट कहते हैं ॥ २०-२३ ॥

गजपुटलक्षण ।

सपादहस्तमानेन कुण्डे निम्ने तथाते । व-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नोपलसहस्रेण पूर्णं मध्ये विधारयेत् ॥ २४ ॥ औषधद्रव्यसंयुक्तां कोष्ठिकां मुद्रितां मुखे । अर्धार्धानि करंडानि अर्धान्युपरि निःक्षिपेत् ॥ एतद्गजपुटं प्रोक्तं ख्यातं सर्वं पुटोत्तमम् ॥ २५ ॥ (हस्तश्चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाणः स सपादः तेन त्रिंशदङ्गुलप्रमणेनेत्यर्थः ।) अत एवोक्तम् । साधारणनरांगुल्या त्रिंशदंगुलको गजः ॥ २६ ॥

भाषा—साधारण मनुष्यकी तीस[1] अंगुल प्रमाण चौकोर गडढा खोदकर उसमें पांच सौ अरने उपले भर देवे पीछे जिसमें औषधि रक्खी हो उस मूषाका मुख बंद करके कपरमट्टी कर उस गड्ढेमें रखकर और पांच सौ उपले रखकर अग्नि लगा देवे, इस प्रकार करनेको गजपुट कहते हैं, यह गजपुट सम्पूर्ण पुटोंमें उत्तम है ॥ २४–२६ ॥

वाराह तथा कुक्कुटपुटका लक्षण ।

अरत्निमात्रके कुण्डे पुरं वाराहमुच्यते । वितस्तिमात्रके खाते कथितं कौक्कुटं पुटम् ॥ २७ ॥ (अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिनेत्यमरः । निःसृतकनिष्ठया मुष्ट्योपलक्षितो हस्तोऽरत्निरित्यर्थः ।) षोडशांगुलके खाते कस्यचित्कौक्कुटं पुटम् ।

भाषा—छोटी अंगुलिको छोडकर बाकी सब अंगुलियोंको मींचकर मुट्ठी बांध लेवे, ऐसे एक हाथके गड्ढेमें उपले भरकर उसके बीचमें मूषा रखके अग्नि दे देवे इसको वाराह पुट कहते हैं. एक विलस्तके लंबे चौडे गड्ढेमें उपले भरकर मध्यमें मूषा रख अग्नि देवे, उसको कौक्कुट पुट कहते हैं किसीका मत ऐसा है कि सोलह अंगुलके गड्ढेमें उपले भरकर उपरोक्त विधिसे कर उसको कौक्कुट पुट कहते हैं ॥ २७ ॥

कपोतपुटादिके लक्षण ।

यत्पुटं दीयते खाते अष्टसंख्यैर्वनोपलैः ॥२८॥ कपोतपुटमेतत्तु कथितं पुटपंडितैः । गोष्ठान्तर्गोखुरक्षुण्णं शुष्कं चूर्णितगोमयम् ॥२९॥ गोवरं तत्समाख्यातं वरिष्ठं रससाधने । बृहद्भाण्डस्थितैर्यत्र गोवरैर्दीयते पुटम् ॥ ३० ॥ तद्गोवरपुटं प्रोक्तं भिषग्भिः सूतभस्मनि । बृहद्भाण्डे तुषैः पूर्णे मध्ये मूषां विधारयेत् ॥ क्षिप्त्वाग्निं मुद्रयेद्भाण्डं तद्भाण्डपुटमुच्यते ॥३१

भाषा—गड्ढेमें आठ उपले भरकर बीचमें मूषा रख अग्नि देवे इसको विद्वान् पंडित लोग कपोत पुट कहते हैं. गोशालाके भीतर गायोंके खुरोंसे करते हुए गोबरको सुखाकर जो चूर्ण होता है उसको गोबर कहते हैं, यह गोबर पारेके सिद्ध करनेमें उत्तम है. बडे पात्रमें गोबर भरकर उसके बीचमें मूषा रखकर अग्नि देवे, इसको गोबरपुट कहते हैं, पारेकी भस्म करनेमें यह गोबरपुट उपयोगी है, ऐसा विद्वान् वैद्योंने कहा है. बडे पात्रमें भूसा भर उसके बीचमें मूषा रखकर अग्नि लगा देवे और पात्रका मुख बंद कर देवे उसको भांडपुट कहते हैं ॥ २८–३१ ॥

वालुकायंत्रकी विधि ।

भाण्डे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिका । कूपिकाकण्ठपर्यन्तं वालुकाभिश्च पूरिते ॥३२॥ भेषजं कूपिकासंस्थं वह्निना यत्र पच्यते । वालुकायन्त्रमेतद्धि यन्त्रतन्त्रबुधैः स्मृतम् ॥ ३३ ॥

भाषा—वालुकायंत्र एक बिलस्त चौडे पात्रमें शीशी रखकर और शीशी बाहरकी खाली जगहमें गलेतक रेता भर देवे, फिर पात्रके नीचे अग्नि लगाकर उस शीशीकी औषधिको पकावे, इस यंत्रको विद्वान् 'वालुकायंत्र' कहते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

---

१ चौवीस अंगुल प्रमाणको एक हाथ कहते हैं, तो सवा हाथ ३० अंगुल हुआ इसपर अन्य ग्रंथका प्रमाण है, कि साधारण मनुष्यके ३० अंगुलको गज कहते है, इससे तीस अंगुल लंबा चौडा और ऊंचा गजपुट होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोलायंत्रका लक्षण ।

निबद्धमौषधं सूतैर्भूर्जे तत्त्रिगुणाम्बरे । रसपोटलिकां काष्ठे दृढं बध्वा गुणेन हि ॥ ३४ ॥ सन्धानपूर्णकुम्भान्तः स्वावलंबनसन्धितम् । अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि ॥ दोलायंत्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि ३५

भाषा-दोलायन्त्र औषधिको भोजपत्रमें बांधकर और भोजपत्रके ऊपर तिहेरा वस्त्र बांधके पोटली कर लेवे, इस पोटलीको एक लकडीके बीचमें डोरेसे लटकती हुई बांधे पश्चात् कांजी आदि संधित पदार्थोंसे भरी हुई हांडीमें उस पोटलीको लटका देवे और ऊपर वह लकडी अटका देवे. हांडीके भीतर वह पोटली अध बीचमें लटकती हुई रक्खे और हांडीके नीचे उसी प्रकरणमें कहे हुए अनुक्रमसे अग्नि बाले, यह दोलायंत्र कहाता है, दोलायंत्रको कोई स्वेदनयंत्रभी कहते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

स्वेदनयंत्रका लक्षण ।

साम्बुस्थालीमुखे बद्धे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च । पिधाय पच्यते यन्त्रं तद्यन्त्रं स्वेदनं स्मृतम् ॥ ३६ ॥

भाषा-स्वेदनयंत्र-हांडीमें पानी भरके और ऊपर मुखपर वस्त्र बांधकर उस वस्त्रपै बाफ देनेकी औषधिको रख उसके ऊपर ढकनी ढक देवे और नीचे अग्नि जला देवे, यह स्वेदनयंत्र कहाता है ॥ ३६ ॥

विद्याधरयंत्रका लक्षण ।

अथ स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि । स्थालीमूर्ध्वमुखीं सम्यङ् निरुध्य मृदुमृत्स्नया ॥ ३७ ॥ ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः । अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यावत्प्रहरपंचकम् ॥ ३८ ॥ स्वाङ्गशीतं ततो यन्त्राद् गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् । विद्याधराभिधं यन्त्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

भाषा-विद्याधरयंत्र-एक हांडीमें पारा भरकर उस हांडीके मुखपर बडे मुखकी दूसरी हांडी लेकर ढक देवे, पहिली हांडीके मुखकी तथा दूसरी हांडीके पेटकी संधिको कोमल मट्टीसे बंद कर देवे और ऊपरकी हांडीमें पानी भर देवे, फिर चूल्हेपर चढाकर पांच प्रहरतक सावधानतासे अग्नि बाले, पश्चात् अग्नि शीतल होनेपर ऊपरकी हांडीकी तलीमेंसे पारा छुटा लेवे, इस उत्तम पारेको ग्रहण करे इसको विद्याधरयंत्र कहते हैं ॥ ३७-३९ ॥

भूधरयंत्रका लक्षण ।

वालुकाभिः समस्ताङ्गं गर्तं मूषां रसान्विताम् । दीपोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं भूधरनामकम् ॥४०॥

भाषा-भूधरयंत्र-जिसमें एक छोटा गड्ढा करा हो ऐसा एक बडा गड्ढा करके उस छोटे गड्ढेमें रेत बालू भरे उसमें जिसके भीतर पारा भरा हुआ हो ऐसी मूषा अथवा हांडी रखकर बडे गड्ढेमें जलते हुए उपले भर देवे इसको भूधरयंत्र कहते हैं ॥ ४० ॥

डमरुयंत्रका लक्षण ।

यन्त्रं डमरुसंज्ञं स्यात्तत्स्थाल्योर्मुद्रिते मुखे ।

भाषा-डमरूयंत्र-एक हांडीके ऊपर दूसरी हांडीको उलटी करके रक्खे, पश्चात् दोनोंके मुखकी संधियें बंद कर देवे, इसको डमरूयंत्र कहते हैं ॥

मारण योग्य चांदीके लक्षण ।

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहच्छेदघनक्षमम् । स्वर्णादिरहितं स्वच्छं तारं नवगुणं शुभम् ४१

भाषा-भारी, स्निग्ध (चिक्कन), कोमल, सफेद, दाह, छेद तथा घनकी चोटको सहन करनेवाली, सुवर्णादि करके रहित और स्वच्छ इन नौ गुणोंसे युक्त जो चांदी हो वह उत्तम और मारने योग्य है ॥ ४१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अयोग्य चांदीके लक्षण ।

कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु । दाहच्छेदक्षनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ४२ ॥

भाषा—जो चांदी कठोर, बनाई हुई, रूक्ष, लाल, पीले पत्तरवाली, हलकी, तपानेसे अथवा काटनेसे फट जाय वह चांदी दुष्ट कही है॥४२॥

चांदी शोधनेकी विधि ।

पत्तलीकृतपत्राणि तारस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले चक्रे च कांजिके ॥ ४३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं रजतपत्राणां विशुद्धिः संप्रजायते ॥ ४४ ॥

भाषा—चांदीके पतले पतले पत्तर करके अग्निमें तपावे और तपा तपाकर तेलमें, छांछमें, कांजीमें, गोमूत्रमें और कुलथीके काढेमें बुझावे, इस प्रकार तीन तीन बार बुझानेसे सम्पूर्ण प्रकारकी चांदी शुद्ध हो जाती है ॥ ४३॥४४॥

अशुद्ध चांदीके दोष ।

रूप्यं त्वशुद्धं प्रकरोति तापं विबन्धकं वीर्यबलक्षयं च । देहस्य पुष्टिं हरते तनोति रोगांस्ततः शोधनमस्य कुर्यात् ॥ ४५ ॥

भाषा—विना शुद्ध करी हुई चांदी शरीरमें ताप करनेवाली, मलबंधकारक, वीर्यनाशक, बलनाशक, शरीरकी पुष्टताको नष्ट करनेवाली और रोगोंको उत्पन्न करनेवाली है, इस कारण चांदीको शुद्ध करना चाहिये ॥ ४५ ॥

चांदीमारणविधि ।

भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित् । तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत् ॥४६॥ धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटे त्रिंशद्भनोपलैः । समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ एवं चतुर्दश पुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥ ४७ ॥

भाषा—एक भाग तवकिया हरतालको एक प्रहरतक किसी खट्टे (नींबू आदिके) रसमें खरल करे, पश्चात् उस हरतालको तीन भाग चांदीके पतरोंपर प्रलेप करे, फिर इन पतरोंको मूषामें रख कपरमट्टी कर तीस उपलोंकी अग्निमें रक्खे, अग्नि शीतल होनेपर निकाल ले और नींबूके रसका घोटा हुआ हरताल लेपकर कपरमट्टीकर अग्निकी पुट देवे इस प्रकार चौदह पुड देनेसे चांदीकी भस्म होती है ॥४६॥४७॥

चांदी मारनेकी दूसरी विधि ।

स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत् । तालकस्य प्रकारेण तारपत्रस्य बुद्धिमान् ॥ पुटैश्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥ ४८ ॥

भाषा—उपरोक्त हरतालके सदृश सोनामाखीको थूहरके दूधसे खरल करे, पश्चात् सोनामाखीसे तिगुनी चांदीके पतरोंपर इसका प्रलेप करे, फिर इन पतरोंको मूषामें रख कपरमट्टी कर तीस उपलोंकी अग्निसे पुट देवे, अग्नि शीतल होनेपर निकाल ले, फिर सोनामाखीका प्रलेप करके कपरमट्टी कर अग्निकी पुट देवे, इस प्रकार चौदह पुट देनेसे चांदीकी भस्म हो जाती है ॥ ४८ ॥

मारित चांदीके गुण ।

रौप्यं शीतं कषायं च स्वादुपाकरसं सरम् । वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् ॥ प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद् ध्रुवम् ४९

भाषा—चांदी शीतल, कसैली, पाकमें तथा रसमें मधुर, दस्तावर, यौवनको स्थिर करनेवाली, स्निग्ध, लेखन, वातनाशक, पित्तनाशक और प्रमेह आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करनेवाली है ॥ ४९ ॥

मारणयोग्य तांबेके लक्षण ।

जपाकुसुमसंकाशं स्निग्धं गुरु घनक्षमम् । लोहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥५०॥

भाषा—जो तांबा जपा (गुडहर) के फूलके सदृश कांतिवाला, स्निग्ध, भारी, घनकी चोट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहन कर लेवे और लोहा तथा सीसा आदिसे रहित हो वह तांबा मारणकार्यमें उत्तम कहा है ॥ ५० ॥

अयोग्य तांबेके लक्षण ।

कृष्णं रूक्षमतिस्वच्छं श्वेतं चापि घनासहम् । लोहनागयुतं चेति शुल्बं दुष्टं प्रकीर्तितम् ५१

भाषा–जो तांबा काला, रूखा, अत्यन्त स्वच्छ, सफेद, घनकी चोटको न सहनेवाला और लोहा तथा सीसे सहित हो वह तांबा अयोग्य जानना ॥ ५१ ॥

ताम्रशोधनेकी विधि ।

पत्तलीकृतपत्राणि ताम्रस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ ५२ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं ताम्रस्य पत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ ५३ ॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वशुद्धेऽष्टौ भ्रमो वमिः । विरेकः स्वेद उत्क्लेदो मूर्च्छा दाहोऽरुचिस्तथा ॥ ५४ ॥ न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते । एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौ दोषाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५५ ॥

भाषा–तांबेके पतले करे हुए कंटकवेधी पत्तरोंको अग्निमें तपावे, तपा तपाके तेलमें, छांछमें, कांजीमें गोमूत्रमें और कुलथीके काढेमें बुझावे, इस प्रकार तीन वार करनेसे तांबेके पत्तर शुद्ध हो जाते हैं. विषमें तो केवल एक ही दोष है, परन्तु अशुद्ध तांबेमें भ्रम, वमन, विरेचन, पसीना, उत्क्लेद (उकलाहट), मूर्च्छा, दाह और अरुचि ये आठ दोष हैं. जिसको विष कहते हैं, वह विष नहीं है, परन्तु वास्तवमें तांबाही विष है, क्योंकि विषमें तो एकही दोष है और तांबेमें आठ दोष हैं ॥ ५२–५५ ॥

तांबेकी मारणविधि ।

सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः । वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिःक्षिपेत् ५६ पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत् । तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद्विगुणेन च ॥ ५७ ॥ गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम् । ततः पिष्ट्वा च मीनाक्षीं चाङ्गेरीं वा पुनर्नवाम् ॥ ५८ ॥ (चाङ्गेरी चतुष्पत्राम्लालोनिकाभेदः) । तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेद्वयङ्गुलोन्मितम् । धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत् ॥ ५९ ॥ वालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणाम्बुभिः । दत्त्वा भाण्डमुखं मुद्रां ततश्चुल्ल्यां विपाचयेत् ॥ ६० ॥ क्रमवृद्ध्याग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम् । स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य मर्दयेच्छूरणद्रवैः ॥ ६१ ॥ यामैकं गोलकं तच्च निःक्षिपेच्छूरणोदरे । मृदा लेपस्तु कर्त्तव्यः सर्वतोऽङ्गुष्टमात्रकः ॥ ६२ ॥ पाच्यं गजपुटे क्षिप्तं मृदं भवति निश्चितम् । वमनं च विरेकं च भ्रमं क्लममथारुचिम् ॥ विदाहं स्वेदमुत्क्लेदं न करोति कदाचन ॥ ६३ ॥

भाषा–तांबेके सूक्ष्म पत्र करके तीन दिन पर्यन्त नींबूके रसमें स्वेद देवे, पश्चात् खरलमें डालकर इससे चौथा भाग पारा डालकर एक प्रहरतक खरल करे फिर पत्रोंको निकालकर एक प्रहरतक नींबूके रसमें खरल करे और दूने गन्धकसे लेपन करके गोला कर लेवे, पश्चात् मठ्ठेकी अथवा चौपतिया नोंनिया, वा पुनर्नवाको पीसकर उसके कल्कको गोलेपर दो अंगुल मोटा लेप देवे, फिर इस गोलेको पात्रमें रख शेष भागको वालूसे भरकर ऊपरसे शराव ढक देवे, पश्चात् मुखको राख और लवणसे बन्दकरके चूल्हेपर चढावे और अनुक्रमसे बढाते २ चार प्रहरतक आंच देवे, अग्नि शीतल होनेपर उसमेंसे तांबा निकाल ले, पश्चात् एक पहरतक सूरनकन्दके रसमें खरल करे, खरल किये हुए तांबेका गोला करके उसको सूरन कन्दके पेटमें रक्खे, उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर एक अंगूठा प्रमाण मट्टीका प्रलेप करके तुरन्त गजपुटमें पकावे तो अवश्य तांबा मर जायगा. इस प्रकार मरा हुआ तांबा कदापि वमन, विरेचन, भ्रम, ग्लानि, अरुचि, दाह, पसीना, अथवा उत्क्लेद नहीं करता है ॥ ५६-६३ ॥

मारित तांबेके गुण ।

ताम्रं कषायं मधुरं सातिक्तमम्लं च पाके कटु सारकं च । पित्तापहं श्लेष्महरं च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनं च ॥ ६४ ॥ पाण्डूदरार्शोज्वरकुष्ठकासश्वासक्षयान्पीनसमम्लपित्तम् । शोथं कृमीञ्शूलमपाकरोति प्राहुर्बुधा बृंहणमल्पमेतत् ॥ ६५ ॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वसम्यङ्मारिते पुनः । दाहः स्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छा क्लेदो रेको वमिर्भ्रमः ॥६६॥ (रेकः विरेकः ।)

भाषा—मारा हुआ तांबा कसैला, मधुर, कडवा, खट्टा, पाकमें चरपरा, दस्तावर, पित्तकफनाशक, शीतल, रोपण, हलका, लेखन है और पाण्डु, उदररोग, बवासीर, ज्वर, कोढ, खाँसी, श्वास, क्षय, पीनस, अम्लपित्त, सूजन, कृमि तथा शूल इनको नष्ट करता है. पण्डित कहते हैं कि तांबा अल्प पुष्टिकारक है. विषमें तो एकही दोष है, परन्तु भली भांति नहीं मारे हुए तांबेमें दाह, पसीना, अरुचि, मूर्च्छा, ग्लानि, विरेचन, वमन और भ्रम ये आठ दोष रहते हैं ॥ ६४-६६ ॥

वंगका स्वरूप ।

वङ्गं च गिरिजं तच्च खुरकं मिश्रकं द्विधा । तयोस्तु खुरकं श्रेष्ठं मिश्रकं त्वहितं मतम् ॥६७

भाषा—वंग (रांग) पर्वतमें होती है और उसके खुरक तथा मिश्रक ये दो भेद हैं. इनमें खुरक उत्तम है और मिश्रक अहितकारी है ॥ ६७ ॥

अशुद्ध वंगके दोष ।

वङ्गं विधत्ते खलु शुद्धिहीनमाक्षेपकम्पौ च किलासगुल्मौ । कुष्ठानि शूलं किल वातशोथं पाण्डुं प्रमेहं च भगंदरं च ॥ ६८ ॥ विषोपमं रक्तविकारवृन्दं क्षयं च कृच्छ्राणि कफज्वरं च । मेहाश्मरीविद्रधिमुष्करोगान्नागोऽपि कुर्यात्कथितान्विकारान् ॥ ६९ ॥

भाषा—विना शोधा हुआ रांग आक्षेपकवात, कम्पवात, गुल्म, किलासकोढ, कोढ, शूल, वातसंबंधी सूजन, पाण्डु, प्रमेह, भगंदर, विषके सदृश भयंकर अनेक रुधिरसम्बन्धी विकार, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, कफज्वर, पथरी, विद्रधि और अंडकोषोंके रोगोंको उत्पन्न करता है. सीसाभी जो भली भांति शोधा हुआ न हो तो वह भा इन सब विकारोंको उत्पन्न करता है ॥६८॥६९

वंगकी शोधनविधि ।

वङ्गनागौ प्रतप्तौ च गलितौ तौ निषेचयेत् । त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्रविदुग्धेऽपि च त्रिधा ॥ ७० ॥ (निषेचयेत्तैलतक्राम्लिकागोमूत्रकुलत्थकाथेषु प्रत्येकं त्रिधा त्रिधा ततोऽर्कदुग्धेऽपि त्रिधा ।)

भाषा—रांग सीसेको तपावे और गला गलाकर, छांछमें, कांजीमें, गोमूत्रमें और कुलथीके क्वाथमें तीन २ वार बुझावे, पीछे आकके दूधमेंभी तीन वार बुझावे, इस प्रकार करनेसे दोनोंकी शुद्धि हो जाती है ॥ ७० ॥

वंगकी मारणविधि ।

मृत्पात्रे द्राविते वङ्गं चिञ्चाश्वत्थत्वचोरजः । क्षिप्त्वा वङ्गचतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् ॥७१॥ (चिञ्चा तिन्तिडी । रजः चूर्णम् । अयोदर्वी लौहहाता ।) ततो द्वियाममात्रेण वङ्गं भस्म प्रजायते । अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन विमर्दयेत् ॥ ७२ ॥ ततो गजपुटे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् । तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥ एवं दशपुटैः पक्वं वङ्गं भवति मारितम् ॥ ७३ ॥

भाषा–मट्टीके पात्रमें गलाये हुए रांगमें रांगसे चौथा भाग इमली तथा पीपलकी छालका चूर्ण डालकर लोहेकी करछीसे दो पहरतक घोटे, इस प्रकार करनेसे रांगकी भस्म हो जाती है, पश्चात् उस भस्ममें उसकी बराबरही हरताल डालकर फिर नींबूके रसमें खरल करे, पश्चात् उसको अग्निकी गजपुटमें पकावे, फिर दशवां भाग हरताल डालकर नींबूके रसमें खरल कर एक पहरतक मर्दन करे और गजपुटमें पकावे, इस प्रकार दश पुट देनेसे रांग भली भांति मर जाता है ॥ ७१–७३ ॥

मारित वंगके गुण ।

वङ्गं लघु सरं रूक्षं कुष्ठं मेहकफकृमीन् । निहन्ति पाण्डुं सश्वासं नेत्र्यमीषत्तु पित्तलम् ॥ ॥ ७४ ॥ सिंहो गजौघं तु यथा निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम् । देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ७५

भाषा–वंग हलकी, दस्तावर, रूक्ष, नेत्रोंको हितकारी, किंचित् पित्तकारक और कोढ, प्रमेह, कफ, कृमि, पाण्डु तथा श्वासको नष्ट करती है. जिस प्रकार सिंह हाथियोंके झुण्डको नष्ट कर देता है, तिसी प्रकार वंगकी भस्म सम्पूर्ण प्रमेहोंको नष्ट करती है, देहमें सुख उत्पन्न करती है, इन्द्रियोंको बलवान् करती है और मनुष्यके शरीरमें निश्चय पुष्टि देती है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

जस्तेका स्वरूप और गुण ।

जशदं गिरिजं तस्य दोषाः शोधनमारणे । वङ्गस्येव हि बोद्धव्या गुणांस्तु गणयाम्यथ ॥ ७६ ॥ जशदं च सरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् । चक्षुष्यं परमं मेहान्पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ॥ ७७ ॥

भाषा–जस्ता पर्वतमें होता है. जस्ताके दोष, शोधन और मारण रांगके सदृशही जानने. अब जस्तेके गुण कहता हूं. जस्ता दस्तावर, कडवा, शीतल, कफनाशक, पित्तनाशक, नेत्रोंको अत्यंत हितकारी है और प्रमेह, पाण्डु तथा श्वासको नष्ट करता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

सीसेकी शोधनविधि ।

तस्य साहजिका दोषा रङ्गस्येव निदर्शिताः । शोधनं चापि तस्येव भिषग्भिर्गदितं पुरा ७८

भाषा–रांगमें जो दोष हैं वहही शीशेमें स्वाभाविक हैं और शीशेका शोधनभी रांगके सदृशही करे ऐसा प्राचीन वैद्योंने कहा है ७८॥

सीसेकी मारणविधि ।

ताम्बूलरससम्पिष्टं शिलालेपात्पुनः पुनः । द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थं भस्म जायते७९ (शिला मनःशिला ।)

भाषा–पानके रससे मनशिलको खरलमें बारीक पीसकर शीशेपर प्रलेप करके गजपुट देवे, इस प्रकार वारंवार प्रलेप करके अग्निकी बत्तीस पुट देनेसे शीशेकी निरुत्थ भस्म हो जाती है ॥ ७९ ॥

सीसामारणकी दूसरी विधि ।

अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णं चतुर्थांशेन निःक्षिपेत् । मृत्पात्रे विद्रुतो नागो लोहदर्व्या प्रचालितः ॥ ८० ॥ यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्या स्यान्मनःशिला । काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद्गजपुटेन च ॥ ८१ ॥ स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया काञ्जिकेन च । पुनः पचेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः ॥ ८२ ॥

भाषा–मट्टीके पात्रमें शीशेको गलाकर उसमें शीशेका चौथा भाग पीपलकी तथा इमलीकी छालका चूर्ण डालकर लोहेकी करछीसे एक प्रहरतक चलावे तो शीशेकी भस्म हो जाती है. उस भस्मको बराबर मनशिलको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कांजीमें पीसकर गजपुटमें पकावे, जब अग्नि शीतल होजाय तब फिर उस भस्मको मनशिल तथा कांजीमें पीसकर गजपुटमें पकावे, इस प्रकार अग्निकी साठ पुट देनेसे शीशा भली भांति मर जाता है ॥ ८०-८२ ॥

मारित शीशेके गुण ।

सीसं रङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ८३ ॥ नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं च नाशयति जीवनमातनोति । वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ ८४ ॥

भाषा-शीशेमें रांगके सदृश गुण हैं और विशेष करके प्रमेहको नष्ट करता है. जो शीशेको निरंतर सेवन करे तौ सौ हाथियोंके सदृश बलवाला होता है, रोग नष्ट होते हैं, जीवनका विस्तार होता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, कामदेवकी शक्ति बढती है और मृत्यु दूर होती है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अशुद्ध लोहेके दोष ।

खञ्जत्वकुष्ठामयमृत्युकारी हृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीं च । नानारुजानां च तथा प्रकोपं कुर्याच्च हल्लासमशुद्धलौहम् ॥ ८५ ॥

भाषा-अशुद्ध लोहा खंजता (लूलापन), कुष्ठ, मृत्यु, हृदयरोग, शूल, पथरी, हल्लास (सूखी रद्द अर्थात् उबाकी) और अन्य अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ८५ ॥

लोहेकी शोधनविधि ।

पत्तलीकृतपत्राणि लौहस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ ८६ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं लौहस्य पत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ ८७ ॥

भाषा-लोहेके पतले करे हुए पत्रोंको अग्निमें तपाकर तेलमें, छांछमें, कांजीमें, गोमूत्रमें और कुलथीके काढेमें तीन तीन वार बुझावे, इस प्रकार करनेसे लोहेकी शुद्धि होती है ॥ ८६-८७ ॥

लोहेकी मारणविधि ।

शुद्धं लौहमं चूर्णं पातालगरुडीरसैः । मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ८८ ॥ पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठाराच्छिन्नकारसैः । पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ८९ ॥

भाषा-शुद्ध लोहेके चूर्णको पातालगरुडी (छिलहिंटा) के रससे खरल करके शराव संपुटमें रख गजपुटमें फूंक देवे, इस प्रकार तीन वार गजपुटमें फूंके, पीछे घीकुवारके रसमें पीस पीसकर तीन गजपुट देवे और फिर हडसंघारीके रसमें पीसकर छः गजपुट देवे इस प्रकार करनेसे लोहा मर जाता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

लोहा मारनेकी दूसरी विधि ।

क्षिपेच्च द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णतः । मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत् ॥ एवं सप्तपुटैर्मृत्युं लौहचूर्णमवाप्नुयात् ॥ ९० ॥

भाषा-लोहेके चूर्णमें दशवां भाग शिंगरफ डालकर घीकुवारके रससे दो प्रहरतक खरलमें पीस अग्निकी पुट देवे, इस प्रकार अग्निकी सात पुट देनेसे लोहेका चूर्ण मर जाता है ॥ ९० ॥

लोहा मारनेकी तीसरी विधि ।

सत्योऽनुभूतो योगेन्द्रैः क्रमोऽन्यो लोहमारणे ॥ ९१ ॥ कथ्यते रामराजेन कौतूहलधियाऽधुना । सूतकाद्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ९२ ॥ द्वयोः समं लौहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः । यामयुग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके ॥ ९३ ॥ घर्मे धृत्वा रुबूकस्य पत्रैराच्छादयेद् बुधः । यामद्वयाद्भवेदुष्णं धान्यराशौ न्यसेत्ततः ॥ ९४ ॥ दत्त्वोपरि शरावं तु त्रिदिनान्ते समुद्धरेत् । पिष्ट्वा च गालयेद्वस्त्रादेवं वारितरं भवेत् ॥ ९५ ॥ दाडिमस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दलं पिष्ट्वा तच्चतुर्गुणवारिणा । तद्रसेनायसं चूर्णं सप्तीय प्लावयेदिति ॥ ९६ ॥ आतपे शोषयेत्तच्च पुटेदग्नं पुनः पुनः । एकविंशतिवारैस्तान्म्रियते नात्र संशयः ॥ एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि मारयेत् ॥ ९७ ॥

भाषा-लोहेके मारनेमें बडे बडे योगियोंने अनुभव किया है, अब जो अन्य प्रकार बुद्धिमें कौतुक आनेके लिये रामराज नामक वैद्य कहते हैं सो लिखते हैं कि, पारेमें दूना गंधक डालकर कजली करे, पश्चात् उस कजलीके समान लोहेका चूर्ण उसमें डालकर घीकुवारके रससे दो प्रहरतक खरलमें मर्दन करे, पश्चात् इस चूर्णका गोला बना तांबेके पात्रमें रख धूपमें धर देवे और चारों ओरसे अंडके पत्ते ढक देवे इस प्रकार करनेसे दो पहरमें गरम हो जाता है, पश्चात् उसको शरावमें रख धान्योंके समूहमें तीन दिनतक गाड देवे, फिर बाहर निकाल पीसकर कपडेमें छान लेवे, इस प्रकार करनेसे यह चूर्ण पानीमें तैरने लगता है, फिर इस चूर्णको चौगुने पानीसे पीसे हुए अनारके पत्तोंमें भिजोकर धूपमें सुखावे पश्चात् अग्निकी पुट देवे; इस प्रकार वारंवार सुखाकर इकतीस पुट देवे तो लोहेका चूर्ण निःसंदेह मर जाता है. सुवर्ण आदि अन्य धातुएंभी इस रीतिसे मर सक्ती हैं ॥ ९१-९७ ॥

मारित लोहके गुण ।

लोहं तिक्तं सरं शीतं कषायं मधुरं गुरु । रूक्षं वयस्थं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ ९८ ॥ कफं पित्तं गरं शूलं शोफार्शःप्लीहपाण्डुताः । मेदोमेहकृमीन्कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि ॥ ९९ ॥ गुञ्जामेकां समारभ्य यावत्स्युर्नववल्लिकाः । तावल्लोहं समश्नीयाद्यथादोषानलं नरः ॥ १०० ॥ कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा । मद्यमम्लरसं चैव वर्जयेल्लोहसेवकः ॥ १०१ ॥

भाषा-लोहा कडवा, दस्तावर, शीतल, कसैला, मधुर, भारी, रूखा, आयुस्थापक, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, वातकारक है और कफ, पित्त, विष, शूल, सूजन, बवासीर, प्लीहा, पाण्डुता, मेद, प्रमेह, कृमि तथा कोढको नष्ट करता है. लोहेकी कीटमेंभी लोहेके सदृशही गुण हैं. आप कफादिक दोषोंपर जठराग्निका बलावल विचारकर एक रत्तीसे नौरत्ती तक खावे. लोहका सेवन करनेवालेको पेठा (कुम्हडा), तिलका तेल, उडद, राई, मद्य और अम्लरस (खटाई) का त्याग करना चाहिये ॥ ९८-१०१ ॥

सम्पूर्ण धातुओंके मारनेकी साधारण विधि ।

शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः । म्रियन्ते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा ॥ १०२ ॥

भाषा-श्रीगुरुके वचनोंपर विश्वास रखकर कहता हूं कि, मनशिल और गंधकको आकके दूधमें महीन पीस उससे वारंवार लेप कर अग्निकी बारह पुट देवे इस प्रकार करनेसे सुवर्ण आदिक सर्व धातु मर जाती हैं ॥१०२॥

अथोपधातूनां मारणप्रकारः ।

अशुद्ध सोनामाखीके दोष ।

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् । मालां तथैव व्रणपूर्विकां च कुर्यादशुद्धं खलु माक्षिकं च ॥ १ ॥

भाषा-अशुद्ध सोनामाखी अग्निकी मन्दता, बलकी हानि, उग्र विष्टंभिता, नेत्ररोग, कोढ, माला (गंडमाला) और व्रणसमूहको उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

सोनामाखीशोधनविधि ।

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च । मातुलुङ्गद्रवैर्याम जम्बीरस्य द्रवैः पचेत् ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सुलोहितम् । भवेत्ततस्तु संशुद्धिः स्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ ३ ॥

भाषा-तीन भाग सोनामाखी और एक भाग सेंधानोन लेकर बिजौरे नींबूके रससे लोहेके पात्रमें पकावे, जबतक वह पात्र लाल न हो जाय तबतक करछीसे चलाता रहे, इस प्रकार करनेसे सोनामाखी शुद्ध हो जाती है ॥२॥३॥

सोनामाखी मारणविधि ।

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् । तक्रेण वाजमूत्रेण म्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥४॥

भाषा-सोनामाखीको कुलथीके काढेमें अथवा तेलमें वा छांछमें अथवा बकरेके मूत्रमें खरल करके अग्निकी पुट देवे तो सोनामाखी मर जाती है ॥ ४ ॥

रूपामाखी शोधनेकी विधि ।

स्वर्णमाक्षिकवद्दोषा विज्ञेयास्तारमाक्षिके । अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं शोधनं तस्य कथ्यते ॥५॥ कर्कोटीमेषशृङ्ग्यार्कचुत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दिनम् । भावयेद्दातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यते ध्रुवम् ॥ ६ ॥ (मेषशृंगी । मढाशृंगी । विमला तारमाक्षिकम् ।)

भाषा-रूपामाखीमेंभी सोनामाखीके सदृश्यही दोष रहते हैं इस कारण उन दोषोंकी शान्तिके लिये रूपामाखीकी शोधनविधि कहते हैं. रूपामाखीको एक दिनतक ककोडा, (खेखसा), मेढाशिंगी और नींबूके रसमें पीसकर धूपमें सुखावे, इस प्रकार करनेसे रूपामाखी शुद्ध होती है ॥ ५ ॥ ६ ॥

रूपामाखीमारणविधि ।

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् । मरणं वाजमूत्रेण तारमाक्षिकमृच्छति ॥ ७ ॥

भाषा-रूपामाखीको कुलथीके काढेमें, तेलमें, छांछमें अथवा बकरेके मूत्रमें भली भांति खरल कर अग्निकी पुट देवे तो रूपामाखी मर जाती है ॥ ७ ॥

सोनामाखी और रूपामाखीके विशेष गुण ।

न केवलं स्वर्णरूप्यगुणास्तापीजयोर्मताः । द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणास्तयोः ॥ ८ ॥ माक्षिकं मधुरं तिक्तं स्वर्यं वृष्यं रसायनम् । चक्षुष्यं बस्तिरुक्कुष्ठं पाण्डुमेहविषोदरम् ॥ अर्शः शोफं क्षयं कण्डूं त्रिदोषं च नियच्छति ॥ ९ ॥

भाषा-सोनामाखीमें सोनेके सदृश गुण रहते हैं और रूपामाखीमें चांदीके सदृश गुण रहते हैं. येही नहीं परन्तु इनमें अन्य पदार्थोंके संसर्ग होनेसे अन्यगुणभी रहते हैं. सोनामाखी तथा रूपामाखी मधुर, कडवी, स्वरको उत्तम करनेवाली, वृष्य, रसायन, नेत्रोंको हितकारी है और बस्तिरोग, कोढ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, बवासीर, सूजन, क्षय, खुजली, तथा वातादि तीनों दोषोंको नष्ट करनेवाली है ॥ ८ ॥ ९ ॥

तूतिया शोधनेकी विधि ।

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारककपोतयोः । दशांशं टंकणं दत्त्वा पचेल्लघुपुटे ततः ॥ पुटं दध्ना पुटं क्षाद्रैर्यं तुत्थंविशुद्धये ॥ १० ॥

भाषा-तूतिया (नीलाथोथा) में दशवां भाग सुहागा डालकर खरलमें बिलाव तथा कबूतरकी विष्ठाके साथ मर्दन कर अग्निकी हलकी पुट देवे, पश्चात् दहीमें मर्दन कर पुट देवे फिर सहतमें मर्दन कर पुट देवे तो नीलाथोया शुद्ध होकर मर जाता है ॥ १० ॥

शुद्ध तूतियाके गुण ।

तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ ११ ॥ विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नं तद्गुणं खर्परं मतम् ॥ १२ ॥

भाषा-तूतिया चरपरा, खारी, कसैला, वमन करनेवाला, हलका, लेखन, दस्तावर, शीतल,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेत्रोंको हितकारी है और कफ, पित्त, विष, पथरी, कोढ तथा खुजलीको नष्ट करता है खपरियामेंभी येही गुण हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

कांसी तथा पीतलकी शोधन विधि ।

अथ कांस्यस्य रीतेश्च शोधनं त्वभिधीयते । पत्तलीकृतपत्राणि कांस्यस्याग्नौ प्रतापयेत् ॥ निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ १३ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषायेऽत्र त्रिधा त्रिधा । एवं कांस्यस्य रीतेश्च विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ १४ ॥

भाषा–कांसीके सूक्ष्म किये हुए पत्रोंको अग्निमें तपाकर तेलमें, छाछमें, कांजीमें, गोमूत्रमें और कुलथीके काढेमें अनुक्रमसे तीन तीन वार बुझावे इस प्रकार करनेसे कांसी शुद्ध हो जाता है. पीतलभी इसी प्रकारसे शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

मारणविधि ।

अर्कक्षीरेण सम्पिष्टो गन्धकस्तेन लेपयेत् । समेन कांस्यपत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः॥१५॥ ततो मूषापुटे धृत्वा पचेद्गजपुटेन च । एवं पुटद्वयात्कांस्यं रीतिश्च म्रियते ध्रुवम् ॥१६॥

भाषा–कांसीके पत्रोंकी बराबर गन्धक लेकर आकके दूधमें पीसे, पश्चात् नींबूके रससे वारंवार स्वच्छ किये हुए पत्रोंको लेपकर मूषा सम्पुटमें रख गजपुटकी अग्नि देवे इस भांति दो पुट देनेसे कांसी मरजाती है. पीतलभी इसही विधिके करनेसे मरजाता है ॥१५॥१६॥

मारित कांसा और पीतलके गुण ।

कांस्यं कषायं तीक्ष्णोष्णं लेखनं विशदं सरम् । गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम् ॥ १७ ॥ रीतिका तु भवेद्रूक्षा सतिक्ता लवणा रसे । शोधिनी पाण्डुरोगघ्नी कृमिहृन्नातिलेखनी ॥ १८ ॥

भाषा–कांसी कसैली, तीक्ष्ण, गरम, लेखन, विशद, दस्तावर, भारी, नेत्रोंको हितकारी, रूखी और कफ तथा पित्तकी अत्यन्त नाशक है. पीतल रूखा, कडवा, रसमें खारी (निमकीन) करनेवाला, देहशोधक, पाण्डुरोगनाशक, कृमिहारक है और अत्यन्त लेखनी नहीं है ॥ १७ ॥ १८ ॥

सिन्दूरशोधनकी विधि ।

दुग्धाम्लयोगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिता बुधैः१९

भाषा–सिन्दूरको दूधमें, तथा नींबूके रसमें दो दो पहर खरल करनेसे सिन्दूरकी शुद्धि होती है ॥ १९ ॥

सिन्दूरके गुण ।

सिन्दूर उष्णो वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहः । भग्नसन्धानजननो व्रणशोधनरोपणः ॥ २० ॥

भाषा–सिन्दूर गरम, विसर्प, कोढ, खुजली तथा विषका विनाशक, टूटी, हड्डीको जोडनेवाला, व्रणको स्वच्छ करनेवाला तथा व्रणरोपण है ॥ २० ॥

शिलाजीतको शुद्धकरनेकी विधि ।

गोमूत्रगन्धवत्कृष्णं स्निग्धं मृदु तथा गुरु । तिक्तं कषायं शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् । ॥ २१ ॥ (आयसम् अयस उपधातुसम्बन्धि ।) विन्द्यादौ बहुलं तत्तु तत्र लोहं यतोऽधिकम् । तच्छोधनमृते व्यर्थमनेकमलमेलनात् ॥ २२ ॥ शिलाजतु समानीय सूक्ष्मं खंडं विधाय च । निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ २३ ॥ मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् । स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ २४ ॥ उपरिस्थं घनं यत्स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके । एवं पुनः पुनर्नीतं द्विमासाभ्यां शिलाजतु ॥ २५ ॥ भवेत्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिंगोपमं भवेत् । निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥२६॥

भाषा–जो शिलाजीत गोमूत्रके सदृश गन्धवाला, काला, चिकना, कोमल, भारी, कडवा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कसैला और शीतल हो, वह शिलाजीत सर्वोत्तम जानना. शिलाजीत लोहेकी उपधातु है, विन्ध्याचल आदि पर्वतोंमें अधिक होता है क्योंकि इन पर्वतोंमें ही लोहा अधिक होता है. शिलाजीतमें अनेक प्रकारके मलादिक मिले होते हैं इस कारण विना शोधा हुआ व्यर्थ है. शिलाजीतके सूक्ष्म समान टुकडे करके अत्यन्त गरम जलमें डाले और एक प्रहरतक पडे रहने देवे पश्चात् पानीको सफेद वस्त्रसे छानकर लेवे, इस पानीको मट्टीके पात्रमें डालकर धूपमें रक्खे, धूपमें रहनेसे पानीके ऊपर जमी हुई मलाईको लेकर बडे दूसरे बासनमें रक्खे, उस मलाईको फिर गरम जलका संस्कार देवे, पश्चात् घोलकर पानीको वस्त्रमें छान लेवे, फिर मट्टीके बासनमें भरके धूपमें रक्खे, धूपमें रहनेसे पानीके ऊपर आई हुई मलाईको लेकर फिर तीसरे पात्रमें डाले, इस भांति दो महीनेतक वारंवार करनेसे जब पानीके ऊपर मलाई नहीं आवे और सब काला भाग नीचेही रह जाय तौ शिलाजीतके काले भागको शुद्ध हुआ जाने. जो शिलाजीत अग्निके ऊपर डालनेसे लिंगके सदृश हो जाय और धुआँ न निकले तौ शिलाजीतको शुद्ध और कार्यमें उपयोगी जानकर सम्पूर्ण कार्योंमें लावे ॥ २१–२६ ॥

शिलाजीतको शुद्ध करनेकी दूसरी विधि ।

अथान्य प्रकारः । तत्र प्रथमतस्तस्य बहिर्मलमपाकर्तुं केवलजलेन प्रक्षालनं कर्त्तव्यम् । ततस्तदन्तर्गतमृत्तिकासिकतादिदोषदूरीकरणाय वक्ष्यमाणक्काथेन तत्र भावना देया ।

भाषा–प्रथम तौ बाहरके मैलको दूर करनेके लिये केवल जलसे शिलाजीतको धोवे और पीछे उसके भीतर रहनेवाली मट्टी और रेती आदि दोषको दूर करनेके लिये जो क्काथ नीचे लिखा है उस क्काथसे भावना देवे ।

तदाह वाग्भटः ।

व्याध्यधितसात्म्यं समनुसरन्भावयेदयःपात्रे । प्राक्केवलजलधौतं शुष्कं काथैस्ततो भाव्यम् ॥ २७ ॥ तुल्यं गिरिजेन जले वसुगुणिते भावनौषधं क्काथ्यम् । तत्क्काथे पादांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम् ॥ २८ ॥ तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः । स्वैः स्वैरेवं क्काथैर्भाव्यं वारान्सप्तवेत्सप्त ॥ २९ ॥ अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् । त्र्यहं युञ्जात गिरिजमेकेन तथा त्र्यहम् ॥ ३० ॥ फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च । शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ॥ ३१ ॥

भाषा–" रोग और रोगीको जो क्काथ अनुकूल हो उसका विचार करके शिलाजीतके टुकडोंको उस क्काथसे लौहेके पात्रमें भावना देवे. वह इस प्रकार कि, प्रथम केवल जलसे धोकर सुखावे, पश्चात् शिलाजीतकी बराबर भावना देनेकी औषधि लेकर उसका आठगुने जलमें क्काथ करे, जलकर चौथा भाग जल जब शेष रहे तब उस गरम जलको छान कर उसमें शिलाजीत डाले, जब शिलाजीत पानीमें एक रस हो जाय तब उसको सुखा[1] कर फिर नये क्काथमें डाले, इस प्रकार रोगके और रोगीके हितके लिये उस क्काथको सात वार भावना देवे, पश्चात् स्निग्ध किये हुए और शुद्ध किये हुए मनुष्यको तीन दिनतक तिक्तके घी खिलावे, पश्चात् तीन दिनतक हरड, बहेडा और आमलोंके क्काथके साथ शिलाजीत खिलावे, पश्चात् तीन दिनतक परवलके क्काथ और उसके पीछे मुलहटीके क्काथके साथ शिलाजीत सेवन करावे. इस प्रकार सेवन कराया हुआ शिलाजीत शरीरको उपकारी है " ॥ २७–३१ ॥

क्काथद्रव्याणां भावनाफलं चाह हारीतः । लोहस्थितं निम्बगुडूचिसार्पे र्यैर्वैर्यथावत्परिभावयेत्तत् । सन्तानिकाकीटपतङ्गदंशदुष्टौषधीदो-

---

१ अडूसा, नीम, गिलोय, कटेरी और परवल इन सबका कल्क डालकर जो घी बनाया जाय उसको तिक्तक घी कहते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्रकोर्णानिशाक्षारकन्यार्कक्षनकद्रवैः ॥ १३ ॥ सूतं कृतेन यूषेण वारान्सप्त विमर्दयेत् । इत्थं सम्मूर्च्छितः सूतस्त्यजेत्सप्तापि कंचुकान् ॥ १४ ॥ (वन्ध्याकन्दः वाँझ कांकुड । क्षुद्रार्द्धं छोटी कटाई बडी कटाई । ऊर्णा, मेषकी उर्णा । निशा हरिद्रा । क्षारः यवक्षारः । कन्या कुमारिका । अर्कपत्ररसः कनकधत्तूरपत्ररसः ।)

भाषा–हरड, बहेडा, आमला, सौंठ, मिर्च, पीपल, बांझककोडेका कन्द, कटेरी, बडी कटेरी, चीता, ऊन, हलदी, जवाखार, घीकुवारका रस, आकके पत्तोंका रस और धतूरेके पत्तोंका रस इनका क्वाथ करके इस क्वाथसे पारेको सात वार मर्दन करे, इस प्रकार करनेसे पारा मूर्च्छित हो जाता है, इस प्रकार मूर्च्छित किया हुआ पारा सातों कांचलियोंसे रहित हो जाता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

ऊर्ध्वपातनविधिः ।

मयूरश्रीतताप्याभ्यां नष्टपिष्टीकृतस्य च । यन्त्रे विद्याधरे कुर्याद्रसेन्द्रस्योर्द्ध्वपातनम् ॥ १५ ॥ (ताप्यम् सुवर्णमाक्षिकम् । नष्टपिष्टीकृतस्य, कुमारिकाद्रवयोगेन तावत् मर्दनं कर्त्तव्यं यावत् परदः पृथक् न दृश्यते इत्यर्थः । विद्याधरयन्त्रे डमरूयन्त्रे ।)

भाषा–घीकुआरके रसमें नीला थोथा तथा सोनामाखीके साथ इस पारेको इस भांति खरल करे कि, जिससे पारा अलग न दीखे, पश्चात् उसको डमरूयंत्रमें डालकर उडा लेवे इसको ऊर्ध्वपातन कहते हैं ॥ १५ ॥

अधःपातनविधिः ।

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणाम्लैरसंयुतैः । नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लपयेदूर्द्ध्वभाजनम् ॥ १६ ॥ सप्तौ दीप्तैरधःपातमुपलैस्तस्य कारयेत् । यन्त्रे भूधरसंज्ञे तु ततः सूतो विशुध्यति ॥ १७ ॥ स्वेदनादिक्रियाभिस्तु शोधितोऽसौ यदा भवेत् । तदैव धीमता नित्यं प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥ १८ ॥

भाषा–हरड, बहेडा, आमला, सहिंजना, चीता, लवण और राई इनके साथ घीकुवारके रससे पारेको इस प्रकार खरल करे कि, जिससे पारा अलग न दीखे, पश्चात् उस पारेकी ऊपरकी हांडीमें चुपडकर भूधरयन्त्रमें रख ऊपर उपलोंको सुलगाकर नीचेकी हांडीमें पातन करे. स्वेदन, मूर्च्छन, ऊर्ध्वपातन और अधःपातनरूप क्रियाओंसे जब पारेकी शुद्धि हो जाय तब पारा सम्पूर्ण काम करता है और संपूर्ण प्रयोगमें उपयोग करने योग्य होता है ॥ १६-१८

मुख्य दोषहर शोधनेकी विधि ।

गृहकन्या हरति मलं त्रिफलाऽग्निं चित्रको विषं हन्ति । तस्मादेभिर्मिश्रैर्वारान्सप्त मूर्च्छयेत्सम्यक् १९

भाषा–घीकुवार पारेके मैलको नष्ट करता है, हरड बहेडा तथा आमले पारेकी अग्निको नष्ट करते हैं और चीता पारेके विषको दूर करता है, इस कारण इन सबको एकत्र कर इनमें सात वार पारेको खरलमें मर्दन करे (एक बारका रस जब सूख जाय तब दूसरी बार डाले इस प्रकार सात बार करे) ॥ १९ ॥

सर्वदोषहरसंक्षिप्तशोधनविधिः ।

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः । फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते ॥ २० ॥ कुमार्या च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत् । एवं कदर्थितः सूतो षण्डो भवति निश्चितम् ॥ २१ ॥ बह्वौषधिकषायेण स्वेदितः स बली भवेत् । सर्पाक्षीचिञ्चिकावन्ध्याभृङ्गाब्दैः स्वेदितो बली । ततः स पावकद्रावैः स्विन्नः स्यादतिदीप्तिमान् ॥ २२ ॥ (सर्पाक्षी नागफणी । चिञ्चिका इमली । वन्ध्या वांझककोडा । भृङ्गः भृङ्गराजः । अब्दो मुस्ता । पावकः चित्रकम् ।)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-घीकुवार, चीता लाल सरसों, करेरी, हरड, बहेडा और आंवलोंका क्वाथ करके इससे तीन दिनतक खरलमें पारेको मर्दन करे इस प्रकार करनेसे पारा सम्पूर्ण मलोंसे रहित हो जाता है पश्चात् घीकुवारके रससे और हलदीसे एक दिनतक पारेको मर्दन करे इस प्रकार करनेसे पारा निःसन्देह नपुंसक हो जाता है. फिर नागफनी, इमली, बांझ ककोडा, भांगरा और नागरमोथा इनके क्वाथमें दोलायन्त्रसे पारेको स्वेदन करे तो पारा बलवान् हो जाता है. पश्चात् चीतेके क्वाथमें इसही प्रकार स्वेदन करे तो पारा अत्यंत दीप्तिमान् हो जाता है ॥ २०-२२ ॥

पारेकी मारणविधि ।

घृतसारं रसं तोयं गन्धकं नवसादरम् ।
यामैकं मर्दयेदम्लैर्भागं कृत्वा समं समम् ॥ २३ ॥
काचकूप्यां विनिःक्षिप्य तां च मृद्वस्त्रमुद्रया ।
विलिप्य परितो वक्त्रं मुद्रां दत्त्वा विशोषयेत् ॥
॥ २४ ॥ अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत् । पिठरीं वालुकापूरैर्भृत्वा चाकूपकागलम् ॥ २५ ॥ निवेश्य चुल्ल्यां तदधो वह्निं कुर्याच्छनैः शनैः । तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वालयेत्क्रमात् ॥ २६ ॥ एवं द्वादशभिर्यामैर्म्रियते रस उत्तमः । स्फोटयेत्स्वाङ्गशीतं तमूर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत् ॥ २७ ॥ अधस्थं च मृतं सूतं गृह्णीयात्तं तु मात्रया । यथोचितानुपानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २८ ॥

भाषा-घरका धुआं, पारा, फटकरी, गंधक और नौसादर इन पांचोंको समान भाग लेकर एक प्रहरतक नींबूके रससे खरल करे, फिर कांचकी शीशीमें भरकर शीशीके चारों ओर कपरोटी करे, फिर मुखपर डाट लगाकर धूपमें सुखावे, पश्चात् जिसके नीचे छोटासा छेद होय ऐसी हांडीमें शीशी रखके हांडीमें शीशीके गलेतक रेत भर देवे, फिर चूल्हेपै चढाकर उसके नीचे मंद मंद अग्नि देवे और फिर अनुक्रमसे उस अग्निको बढाता जावे, इस प्रकार करनेपर बारह पहरमें पारा मर जाता है, वह उत्तम होता है. पश्चात् जब शीशी शीतल हो जाय तब उसको फोड डाले और ऊपर लगा हुआ गन्धक छोडकर नीचेका मारा हुआ पारा ले लेवे, इस पारेकी योग्य मात्रासे और योग्य अनुपानसे सर्व कार्योंमें उपयोग करे ॥ २३-२८ ॥

पारा मारनेकी दूसरी विधि ।

अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ।
तत्सम्पुटे क्षिपेत्सूतं मलयूदुग्धभावितम् ॥ २९ ॥ (मलयूः काकोदुम्बरिका)
द्रोणपुष्पीप्रसूनानि विडङ्गमरिमेदकः । एतच्चूर्णमधश्चोर्ध्वं दत्त्वा मुद्रा प्रदीयते ॥ ३० ॥
तद्गोलं स्थापयेत्सम्यङ्मृन्मूषासम्पुटे पचेत् । एवमेकपुटेनैव सूतकं भस्म जायते । तत्प्रयोज्यं यथास्थाने यथामात्रं यथाविधि ॥ ३१ ॥

भाषा-चिरचिटेके बीजोंको पीसकर दो मूषा बना लेवे, पश्चात् उसमें कठूमरके रससे घुटा हुआ पारा रक्खे, फिर गूमाके फूल वायविडंग और काला खैर इनका चूर्ण लेकर पारेके ऊपर तथा नीचे रख देवे, फिर संपुटकी सन्धि बन्द कर देवे तदनन्तर इस मूषामें रख कपरमट्टी कर अग्निकी पुट देवे, इस प्रकार एक पुट देनेसेही पारेकी भस्म हो जायगी, इस भस्मको योग्य स्थानमें, योग्य मात्रासे और योग्य रीतिसे कार्यमें लावे ॥ २९-३१ ॥

पारा मारनेकी तीसरी विधि ।

काकोदुम्बरिकादुग्धै रसं किञ्चिद्विमर्दयेत् ।
तद्दुग्धघृष्टहिङ्गोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत् ।
धृत्वा तद्गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासम्पुटेऽधिके ।
पचेदेकपुटेनैव सूतकं याति भस्मताम् ॥ ३३ ॥

भाषा-प्रथम कठूमरके दूधसे पारेको किंचित् मर्दन करे, फिर इसी दूधसे हींगको पीसकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो मूषा बनावे; फिर पारेको संपुटमें रख सन्धि बन्द करके उस संपुटके गोलेको मोटी मट्टीकी मूषामें रक्खे और फिर कपरमट्टी करके गजपुटमें फूंक देवे, इस प्रकार करनेसे पारेकी भस्म हो जाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पारा मारनेकी चौथी विधि ।

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकन्दगर्भितः । मृन्मूषासम्पुटे पक्वः सूतो याति भस्मताम् ॥ ३४ ॥

भाषा—पारेको पानोंके रसमें मर्दन करके बांझककोडे (बांझखखसा) के कन्दमें रख बन्द कर फिर मिट्टीकी मूषामें रख कपरमट्टी करके गजपुटमें फूंक देवे, इस प्रकार करनेसे पारेकी भस्म होजाती है ॥ ३४ ॥

रसकपूर बनानेकी विधि ।

तत्र पारदस्य संक्षिप्तं शोधनं कर्त्तव्यम् । शुद्धसूतसमं कुर्यात्प्रत्येकं गैरिकं सुधीः ॥ इष्टिकां खटिकां तद्वत्स्फाटिकां सिन्धुजन्म च ॥ ३५ ॥ वल्मीकं क्षारलवणं भाण्डरञ्जकमृत्तिकाम् । सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य वाससा परिशोधयेत् ॥ ३६ ॥ (खटिका खडी । स्फाटिका फटकिरी । सिन्धुजन्म सैन्धवम् । वल्मीकम् वमई इति लोके । क्षारलवणं खारीनोन । भाण्डरञ्जकमृत्तिका कांविस ।) एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत् । तच्चूर्णसहितं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षिपेत् ॥ ३७ ॥ तस्याः स्थाल्या मुखे स्थालीमपरां धारयेत्समाम् । सवस्त्रकुट्टितमृदा मुद्रयेदनयोर्मुखम् ॥ ३८ ॥ संशोष्य मुद्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् । सम्यग्विशोष्य मुद्रां तां स्थालीं चुल्ल्यां विधारयेत् ॥ ३९ ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् । अङ्गारोपरि तद्यन्त्रं रक्षेद्यत्नादहर्निशम् ॥ ४० ॥ शनैरुद्घाट्येद्यन्त्रमूर्ध्वस्थालीगतं रसम् । कर्पूरवत्सुविमलं गृह्णीयाद्गुणवत्तरम् ॥ ४१ ॥ तद्देवकुसुमचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमैर्युक्तम् । खादन्हरति फिरङ्गं व्याधिं सोपद्रवं सपदि ॥ ४२ ॥ विन्दति वह्नेर्दीप्तिं पुष्टिं वीर्यं बलं विपुलम् । रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः सततम् ॥ ४३ ॥

भाषा—प्रथम पारेको ऊपर कहे अनुसार संक्षेपसे शुद्ध करे, पश्चात् गेरू, चूना, ईंट, खडिया, फटकरी, सेंधानोन, वमईकी मट्टी, खारीनोन और पात्र रंगनेकी मट्टी (कांविस) इन सबमेंसे प्रत्येकको पारेकी बराबर लेकर सबको पीसे और वस्त्रसे छानकर इस चूर्णसहित पारेको एक पहरतक मर्दन कर हांडीमें रक्खे, पश्चात् उस हांडीके ऊपर उलटी दूसरी हांडी रखकर दोनों हांडियोंके मुखकी सन्धिको वस्त्रसहित मट्टीसे बन्द करे और सुखाकर फिर उसके ऊपर कपरमट्टी करके फिर सुखावे और फिर कपरोटी करके भली भांति सुखावे, पश्चात् हांडीको चूल्हेपर चढाके चार दिनतक अखंड अग्नि देवे. अंगारोंके ऊपर रखे हुए यंत्रकी यत्नपूर्वक रक्षा करे पश्चात् धीरेसे उस यंत्रको उघाडकर ऊपरकी हांडीमें आया हुआ अत्यन्त गुणवान् और कपूरके सदृश निर्मल पारेको ले लेवे, यह पारा रसकपूर कहाता है. लौंग, चन्दन, कस्तूरी और केसरके साथ यह रसकपूर खाया जाय तो उपद्रवसहित फिरंग नामक (गरमीका) रोग तत्काल शांत हो जाता है, अग्निप्रदीपक, शरीरमें पुष्टिदाता, वीर्य तथा बलको अत्यंत बढानेवाला है और रसकपूर सेवन करनेवाला पुरुष सौ स्त्रियोंको भोग सक्ता है ॥ ३५-४३ ॥

सिन्दूररसकी विधि ।

शुद्धसूतस्य गृह्णीयाद्विरङ्गभागचतुष्टयम् । शुद्धगन्धस्य भागैकं तावत्कृत्रिमगन्धकम् ॥ ४४ ॥ अथवा पारदस्यार्द्धं शुद्धगन्धकमेव हि । तयोः कज्जलिकां कुर्याद्दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ४५ ॥ मृत्तिकां वाससा सार्द्धं कुट्टयेदतियत्नतः । तया वारत्रयं सम्यक्काचकूपीं प्रलेपयेत् ॥ ४६ ॥ मृत्तिकां शोषयित्वा तु कूप्यां कज्जलिकां क्षिपेत् । तां कूपीं वालुका-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यन्त्रे स्थापयित्वा रसं पचेत् ॥ ४७ ॥ अग्निं निरंतरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् । गृह्णीयादूर्ध्वसंलग्नं सिन्दूरसदृशं रसम् ॥ ४८ ॥

भाषा—वैद्य शुद्ध किया हुआ पारा चार भाग, शुद्ध किया हुआ गंधक एक भाग और बना हुआ गंधक एक भाग लेवे अथवा शुद्ध किया हुआ पारा दो भाग लेवे और शुद्ध किया हुआ गंधक आधा भाग लेवे पश्चात् पारेकी और गंधककी कजली करके एक दिनतक घोटे वस्त्रके साथ कुटी हुई मट्टीसे अत्यन्त यत्नपूर्वक कांचकी शीशीपै तीन वार प्रलेप करके उसमें वह कजली रक्खे, इस शीशीको वालुकायंत्रमें रख चार रात्रि दिनतक अखंडित अग्नि देवे, पश्चात् शीशीके ऊपरके भागमें लगा हुआ सिंदूरके सदृश पारा ले लेवे, इस पारेको रससिंदूर कहते हैं ॥ ४४–४८ ॥

मारित और मूर्छित पारेके गुण ।

पारदः कृमिकुष्ठघ्नो जयदो दृष्टिकृत्सरः । मृत्युहच्च महावीर्यो योगवाही ज्वरापहः ॥ ४९ ॥ स्मृत्योजोरूपदो वृष्यो वृद्धिकृद्धातुवर्द्धनः । षण्डत्वनाशनः शूरः खेचरः सिद्धिदः परः ॥ ५० ॥ पारदः सकलरोगहा स्मृतः षड्रसो निखिलयोगवाहकः । पञ्चभूतमय एष कीर्त्तितस्तेन तद्गुणगणैर्विराजते ॥ ५१ ॥

भाषा—पारा कृमिनाशक, कोढनाशक, जयकारक, नेत्रोंको उत्तम करनेवाला, दस्तावर, मृत्युनाशक, अत्यंतवीर्यवान्, योगवाही, जिस अनुपानसे देवे उसीके समान गुण करनेवाला, ज्वरनाशक, स्मृति, ओज तथा रूपको देनेवाला, कामी पुरुषोंको हितकारी, वृद्धिकारक, धातुवर्द्धक, नपुंसकतानाशक, आकाशमें विचरनेकी शक्तिको देनेवाला, वीरता और अनेक सिद्धिदायक है ॥ ४९–५१ ॥

रसामृते ।

यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सह योजितः । रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥ ५२ ॥

भाषा—रसामृत नामक ग्रन्थमें कहा है कि—"पारा सम्पूर्ण रोगनाशक छः रसवाला और सब संसर्गी पदार्थोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाला है, पारा पंचभूतमय कहाता है, इससे पांचों भूतोंके गुणोंके समूह इसमें रहते हैं" जिस रोगका जो उपाय है उसके साथ पारेका उपयोग करे तौ पारा मनुष्योंके, हाथियोंके और घोडोंके उस रोगको नष्ट करे ॥ ५२ ॥

उपरसोंकी शोधनविधि ।

हिंगुलकी शोधनविधि ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् । सप्तवाराप्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ १ ॥

भाषा—भेडके दूधमें तथा अम्लवर्ग (खटाई नींबू आदिके रस) में हिंगुलकी यत्नपूर्वक सात भावना देवे तो सिंगरफ शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

शोधित हिंगुलके गुण ।

तिक्तं कषायं कटु हिंगुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि । हृल्लासकण्डूज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ २ ॥

भाषा—हिंगुल कडवा, कसैला, चरपरा, नेत्ररोगनाशक और कफ, पित्त, हृल्लास, खुजली, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात तथा विष (जहर) का विनाशक है ॥ २ ॥

हिंगुलसे पारा निकालनेकी विधि ।

निम्बूरसैर्निम्बपत्ररसैर्वा याममात्रकम् । घृष्ट्वा दरदमूर्ध्वं तु पातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ३ ॥ तत्रोर्ध्वपिठरीलग्नं गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् । शुद्धमेव हि तं सूतं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ ४ ॥

भाषा—नींबूके रससे अथवा नींबूके पत्तोंके रससे एक प्रहरतक हिंगुलको मर्दन कर पारेके विषयमें कही हुई युक्तिके अनुसार पारेको ऊपर चढावे, हिंगुलका पारा शुद्ध होता है, इस कारण इसको सम्पूर्ण कार्योंमें उपयोग करे ॥ ३ ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अशुद्ध गंधकके दोष ।

अशुद्धो गन्धकः कुर्यात्कुष्ठं पित्तरुजां भ्रमम् । हन्ति वीर्यं बलं रूपं तस्माच्छुद्धः प्रयुज्यते ॥ ५ ॥

भाषा–विना शुद्ध किया हुआ गंधक कोढ, पित्तसंबंधी रोग और भ्रमको उत्पन्न करता है, तथा वीर्य बल और रूपको नष्ट करता है, इस कारण शुद्ध किया हुआ गंधकही उपयोग करे ॥ ५ ॥

गंधककी शोधनविधि ।

लौहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत् । तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गन्धकजं रजः ॥ ६ ॥ विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा तनुवस्त्रे विनिःक्षिपेत् । यथा वस्त्राद्विनिस्रुत्य दुग्धमध्येऽखिलं पतेत् ॥ एवं स गन्धकः शुद्धः सर्वकर्मोचितो भवेत् ॥ ७ ॥

भाषा–लोहेके पात्रमें घी डालकर अग्निमें गरम करे, गरम हुए घीमें उसके बराबरही गंधकका चूर्ण डाले, जब गंधक पिघल जाय तब उसको इतने बारीक कपडेमें छोडे कि जिससे वस्त्रसे स्रवकर दूधमें सब गंधक गिर जावे, इस प्रकार करनेसे गंधक शुद्ध हो जाता है और वह सम्पूर्ण कामोंमें उपयोगी होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

शुद्धगंधकके गुण ।

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः । पित्तलः कटुकः पाके कण्डूवीसर्पजन्तुजित् ॥ हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान्त्रसायनम् ॥ ८ ॥

भाषा–गंधक चरपरा, कडवा, उष्णवीर्य, दस्तावर, पित्तकारक, पाकमें चरपरा, जरानाशक तथा मृत्युनाशक है और खुजली, विसर्प, कृमि, कोढ, क्षय, प्लीहा, कफ तथा वातका नाशक है ॥ ८ ॥

अशुद्ध अभ्रकके दोष ।

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च कुर्यात् । हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यसह्यामशुद्धमभ्रं गुरु वह्निहत्स्यात् ॥ ९ ॥

भाषा–अशोधित अभ्रक मनुष्योंको अनेक प्रकारकी पीडादायक, हृदयमें तथा पसलीमें असह्य पीडा उत्पन्न करनेवाला, भारी, जठराग्निको नष्ट करनवाला और कोढ, क्षय तथा पाण्डुरोगको दूर करनेवाला है ॥ ९ ॥

अभ्रककी शोधनविधि ।

कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत् । भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा तण्डुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥ भावयेदष्टयामं तदेवमभ्रं विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

भाषा–काले अभ्रकको कोयलोंमें डालकर अग्निसे धमावे जब अभ्रक लाल हो जाय तब दूधमें डाले, पश्चात् उसके परत अलग अलग करके चौलाई और नींबूके रससे आठ पहर तक भावना देवे, इस प्रकार करनेसे अभ्रक शुद्ध हो जाता है ॥ १० ॥

अभ्रकमारणविधि ।

कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोषयित्वाऽथ मर्दयेत् । अर्कक्षीरैर्दिनं खल्ले चक्राकारं च कारयेत् ॥ ११ ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत् । पुनर्मर्द्य पुनः पाच्यं सप्तवारान्पुनः पुनः ॥ १२ ॥ ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् । म्रियते नाम सन्देहः प्रयोज्यं सर्वकर्मसु ॥ १३ ॥ तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत् । घृते जीर्णे तदभ्रं तु सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ १४ ॥

भाषा–नीचे लिखे अनुसार धान्याभ्रक करके सुखावे. पश्चात् खरलमें एक दिनतक आकके दूधसे मर्दन करे, फिर उसकी टिकिया बनाकर आकके पत्तोंमें लपेटकर भली भांति गजपुटमें रखके फूंक देवे, इस प्रकार वारंवार करके सात सात वार होनेपर वडकी जटाओंके क्वाथसे खरलमें मर्दन करके तीन वार गजपुटमें फूंके इस प्रकार करनेसे अभ्रक अवश्य मर जाता है, फिर लोहेके पात्रमें मरे हुए अभ्रककी बराबर घी डालकर उसमें उस अभ्रकको पकावे, जब सब घी जल जावे तब उसको सम्पूर्ण प्रयोगोंके कार्यमें लावे ॥ ११–१४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धान्याभ्रककी विधि ।

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बद्ध्वा च कम्बले ।
त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेत्करैः॥१५॥
कम्बलाद्गालितं सूक्ष्मं वालुकारहितं च यत् ।
तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तमभ्रमारणसिद्धये॥१६॥

भाषा—अभ्रकसे चौथा भाग चावल लेकर उसके साथ अभ्रकको कम्बलमें बांधकर तीन रात्रिपर्यन्त पानीमें पडा रहने देवे, पश्चात् भीगे हुए अभ्रकको हाथसे मलकर खोल लेवे कम्बलमेंसे जो निकले हुए रेतीके सदृश सूक्ष्म अभ्रकके कण हों उनको धान्याभ्रक जानना इस धान्याभ्रकको ऊपर कही हुई रीतिसे मारे ॥ १५–१६ ॥

मारित अभ्रकके गुण ।

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करं धातुविवर्द्धनं च । हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेहकुष्ठं प्लीहोदरं ग्रन्थिविषाकृमींश्च ॥ १७ ॥ रोगान्हन्ति दृढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव । दीर्घायुष्कान्जनयति सुतान्सिंहतुल्यप्रभावान्मृत्योर्भीतिं हरति सुतरां सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ १८ ॥

भाषा—अभ्रक कसैला, मधुर, बहुत शीतल, आयुष्कारक, धातुवर्द्धक है और त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कोढ, प्लीहा, उदरकी गांठ, विष तथा कृमियोंका नाशक है; जो मारा हुआ अभ्रक निरंतर सेवन किया जाय तो रोगोंको हरता है, शरीरको दृढ करता है, वीर्यकी वृद्धि करता है, नित्य तारुण्यतासे पूर्ण होकर सौ स्त्रियोंके साथ रम सक्ता है. दीर्घायुवाले तथा सिंहके सदृश पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करता है और मृत्युका भय नष्ट होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अशुद्ध हरतालके दोष ।

अशुद्धं तालमायुर्हत्कफमारुतमेहकृत् । तापस्फोटाङ्गसङ्कोचं कुरुते तेन शोधयेत्॥ १९ ॥

भाषा—अशोधित हरताल आयुनाशक, ताप, स्फोट, अंगकी संकोचता, कफ, वात तथा प्रमेहको उत्पन्न करता है, इस कारण हरतालको शुद्ध करना चाहिये ॥ १९ ॥

हरतालशोधनकी विधि ।

तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं कांजिके पचेत्।
दोलायन्त्रेण यामैकं ततः कूष्माण्डजद्रवैः
॥ २० ॥ तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रिफलाजले । एवं यन्त्रे चतुर्यामे पक्वं शुद्ध्यति तालकम् ॥ २१ ॥

भाषा—तबकिया हरतालका चूर्ण करके एक प्रहरतक दोलायंत्रसे कांजीमें पचावे, पश्चात् एक प्रहरतक पेठेके रसमें एक प्रहरतक तिलके तेलमें और एक प्रहरतक हरड, बहेडा और आमलोंके पानीमें पचावे, इस प्रकार दोलायंत्रमें चार प्रहरतक पकावे. तब हरताल शुद्ध होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

हरतालकी मारणविधि ।

सदलं तालकं शुद्धं पौनर्नवरसेन तु । खल्वे विमर्दयेद्देकं दिनं पश्चाद्विशोषयेत् ॥ २२ ॥ ततः पुनर्नवक्षारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत् । तत्र तालकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ २३ ॥ आकण्ठपिठरं तस्य पिधानं धारयेन्मुखे । स्थालीं चुल्ल्यां समारोप्य क्रमाद्वह्निं विवर्धयेत् ॥ २४ ॥ दिनान्यन्तरशून्यानि पञ्च वह्निं प्रदापयेत् । एवं तन्म्रियते तालं मात्रा तस्यैकरक्तिका । अनुपानान्यनेकानि यथायोग्यं प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

भाषा—शुद्ध करी पत्रोंवाली तबकिया हरतालको एक दिनतक खरलमें पुनर्नवा (सांठी) के रसमें पीसकर सुखा लेवे फिर एक हांडी लेकर उसके आधे भागमें पुनर्नवाका खार भरकर उसके ऊपर हरतालका गोला रख पीछे पुनर्नवाके खारसे हांडीको भर देवे और मुखपर पाला ढककर उस हांडीको चूल्हेपर चढावे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुक्रमसे अग्निको बढाता जावे, अखंड पांच दिन रात्रितक इस प्रकार अग्नि देनेसे हरताल मर जाता है, हरतालकी मात्रा एक रत्तीकी करे और उसमें योग्यता विचारकर अनेक अनुपानोंसे प्रयोग करे ॥ २२-२५ ॥

शोधित और मारित हरितालके गुण ।

हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् । कण्डूकुष्ठास्यरोगास्रकफपित्तकचव्रणान् ॥ २६ ॥

भाषा-हरताल चरपरा, स्निग्ध, कसैला, गरम है और विष, खुजली, कोढ, मुखरोग, रक्तविकार, कफ, पित्त, केश और व्रणका नाशक है ॥ २६ ॥

अन्यच्च ।

तालकं हरते रोगान्कुष्ठमृत्युज्वरापहम् । शोधितं कुरुते कान्तिं वीर्यवृद्धिं तथायुषम् २७

भाषा-शोधा हुआ हरताल रोगनाशक, कोढ, मृत्यु तथा ज्वरको हरनेवाला, कांतिको उत्तम करनेवाला, वीर्यवर्द्धक और आयुको बढानेवाला है ॥ २७ ॥

अशुद्ध मनशिलके दोष ।

तालकस्यैव भेदोऽस्ति मनोगुप्तैव चान्यका । तालकं त्वतिपीतं स्याद्भवेद्रक्ता मनःशिला ॥ २८ ॥ मनःशिला मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण । मलस्य बन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात् ॥ २९ ॥

भाषा-मैनशिल भी हरतालकाही भेद है, परन्तु अंतर इतनाही है कि, हरताल बहुत पीला होता है और मैनशिल लाल होती है. अशोधित मैनशिल प्राणियोंके बलकी मंदता, मलबद्धता, मूत्ररोग और शर्करायुक्त मूत्रकृच्छ्रको करता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

मनशिलकी शोधनविधि ।

पचेऽहमजामूत्रे दोलायन्त्रे मनःशिलाम् । भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाः सा विशुद्ध्यति ३०

भाषा-मनशिलको तीन दिनतक दोलायंत्रमें बकरीके मूत्रके साथ पकावे और पश्चात् उसको बकरीके पित्तसे सात भावना देवे, इस प्रकार करनेसे मनशिल शुद्ध हो जाती है ॥ ३० ॥

शोधित मनशिलके गुण ।

गुर्वी मनःशिला वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः । तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतकफास्रनुत् ३१

भाषा-मैनशिल भारी, वर्णको उत्तम करनेवाली, दस्तावर, गरम, लेखन, चरपरी, कडवी, स्निग्ध है और विष, श्वास, खांसी, भूत, कफ और रक्तविकारका नाश करती है ॥ ३१ ॥

खपरिया शोधनेकी विधि ।

नरमूत्रे च गोमूत्रे सप्ताहं रसकं पचेत् । दोलायन्त्रेण शुद्धः स्यात्ततः कार्येषु योजयेत् ॥ ३२

भाषा-खपरियाको दोलायंत्रसे सात दिनतक मनुष्यके मूत्रमें और सात दिनतक गायके मूत्रमें स्वेद देवे, इस प्रकार करनेसे खपरिया शुद्ध होती है, शुद्ध करनेके पश्चात् उसको काममें लावे ॥ ३२ ॥

शुद्धखपरियाके गुण ।

खर्परं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ विषाश्मकुष्ठकण्डूनां नाशनं परमं मतम् ॥ ३३ ॥

भाषा-खपरिया चरपरी, खारी, वमनकारक, हलकी, लेखन, मलभेदक, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, कफनाशक, पित्तनाशक है और विष, पथरी, कोढ तथा खुजलीको अत्यंत नष्ट करनेवाली है ॥ ३३ ॥

सब उपरसोंकी साधारण शोधन विधि ।

सूर्यावर्तो वज्रकन्दः कदली देवदालिका । शिग्रुः कोशातकी वन्ध्या काकमाची च वालकम् ॥ ३४ ॥ एषामेकरसेनैव त्रिक्षारैर्लवणैः सह । भावयेदम्लवर्गैश्च दिनमेकं प्रयत्नतः ॥ ३५ ॥ ततः पचेच्च तद्वद्वैर्दोलायन्त्रे दिनं सुधीः । एवं शुद्ध्यन्ति ते सर्वे प्रोक्ता उपरसा हि ये ॥ ३६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा-हुलहुल, कडवा जमीकन्द, केला, देवदाली (बंदाल सोनैया), सहंजना, तोरई, वांझककोडा, मकोय और सुगंधवाला इनमेंसे एकका रस, जवाखार, सुहागा, सज्जी, पांचों नोन और अम्लवर्ग इनमें एक दिनतक प्रयत्नसे उपरसोंकी भावना देवे और पीछे दोलायंत्रमें एक दिनतक उपरोक्त पदार्थोंके रसमें पचावे इस प्रकार करनेसे सब उपरस शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३४-३६ ॥

विशेष शुद्धि ।

कंकुष्ठं गैरिकं शङ्खः कासीसं टङ्कनं तथा ।
नीलाञ्जनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सवराटकाः ॥ ३७ ॥ जम्बीरवारिणा स्विन्नाः क्षालिताः कोष्णवारिणा । शुद्धिमायान्त्यमी योज्या भिषग्भिर्योगसिद्धये ॥ ३८ ॥ (एवं शोधितानाम् उपरसानां पृथग्गुणा गुणग्रन्थे द्रष्टव्याः) ।

भाषा-कंकुष्ठ (मुरदाशंख), गेरू, शंख, कशीस, सुहागा, काला सुरमा, सीपकी जाति, छोटे शंख और कौडी इन सबको नीबूके रसमें स्वेद देवे, फिर गरम जलसे धो डाले इस प्रकार करनेसे सब शुद्ध हो जाते हैं वैद्यकरके शुद्ध किये हुए ही पदार्थोंको कार्यमें लावे. शुद्ध किये हुए उपरसोंमें जो पृथक् गुण हैं वे अन्यत्र कहे हुए गुणप्रकरणमेंसे देख लेना ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

रत्नोंकी शोधन मारण विधि ।

अशुद्ध वज्रके दोष ।

अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा ।
पांडुत्वं पङ्गुलत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत् ॥ १ ॥

भाषा-अशोधित हीरा कोढ, पसलियोंमें दर्द, पाण्डुरोग और पंगुलत्व (लंगडेपना) को करता है, इस कारण हीरेको शुद्ध करके मारना चाहिये ॥ १ ॥

हीरेकी शोधन विधि ।

कुलत्थकोद्रवक्काथे दोलायन्त्रे विपाचयेत् ।
व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं त्रिदिनात्तद्विशुद्ध्यति ॥ २ ॥

भाषा-हीरेको कटेरीके कंदमें डालकर दोलायंत्रद्वारा कुलथीके और कोदोंके क्काथमें तीन दिनतक पचावे इस प्रकार करनेसे हीरा शुद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

हीरा शोधनेकी दूसरी विधि ।

गृहीत्वाऽह्नि शुभे वज्रं व्याघ्रीकन्दोदरे क्षिपेत् । महिषीविष्ठया लिप्त्वा कारीषाग्नौ विपाचयेत् ॥ ३ ॥ त्रियामायां चतुर्थ्यां यामिन्यन्तेऽश्वमूत्रके । सेचयेत्पाचयेदेवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

भाषा-शुभ दिनमें हीरेको कटेरीके कंदमें डालकर भैंसकी विष्ठाका प्रलेप कर रात्रिके चार प्रहरतक अरने उपलोंकी अग्निमें पकावे और प्रातःकाल घोडेके मूत्रमें बुझावे, इस प्रकार सात रात्रिपर्यन्त करनेसे हीरा शुद्ध हो जाता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

हीरेकी मारणविधि ।

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्षिपेत्क्काथे कुलत्थजे ।
तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ ५ ॥

भाषा-हीरेको तपा तपाके हींग और सैंधेनोन करके युक्त किये हुए कुलथीके क्काथमें डाले, इस प्रकार इक्कीस वार करनेसे हीरा भस्मरूप हो जाता है ॥ ५ ॥

हीरा मारणकी दूसरी विधि ।

मेषशृङ्गभुजङ्गास्थिकूर्मपृष्ठाम्लवेतसम् । शशदन्तं समं पिष्ट्वा वज्रीक्षीरेण गोलकम् । कृत्वा तन्मध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातमेव हि ॥ ६ ॥

भाषा-मेढेका सींग, सर्पकी हड्डी, कछुएकी पीठ, अमलवेंत और खरगोशके दांत इन सबको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें पीसकर उसका गोला बनावे, उसके भीतर हीरेको रखकर अग्निकी पुट देवे, इस प्रकार करनेसे हीरा तुरंत मर जाता है ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मारित हीरेके गुण ।

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च।
सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥ ७ ॥

भाषा–मारा हुआ हीरा सेवन करनेसे पुष्टि, बल तथा वीर्यकी वृद्धि होती है; शरीरका वर्ण उत्तम होता है; सुखकी प्राप्ति और निःसंदेह सर्व रोगोंका नाश होता है ॥ ७ ॥

शेषरत्नोंकी शोधनमारणविधि ।

वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा । शुद्धानां मारितानां च तेषां शृणु गुणानपि ॥ ८ ॥ मणयो वीर्यतः शीता मधुरास्तुवरा रतात् । चक्षुष्या लेखनाश्चापि साक्षाद्विषहारकाः । धारणात्ते तु मङ्गल्या ग्रहदृष्टिहरा अपि ॥ ९ ॥ (उपरत्नानां शोधनमारणविधिश्चिन्त्यः ।)

भाषा–सम्पूर्ण रत्नोंको हीरेके सदृशही शुद्ध करके मारण करे. अब शुद्ध और मारित रत्नोंके गुण कहताहूं सुन, रत्न शीतवीर्य, मधुर, रसमें कसैला, नेत्रोंको हितकारी, लेखन, दस्तावर और विषविनाशक है. रत्नोंके पहरनेसे मंगल होता है, ग्रहकी पीडा नष्ट होती है और ग्रहकी दृष्टि दूर होती है, उपरत्नोंके शोधन और मारणकी विधि वैद्यको इसी प्रकार समझ लेनी चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

विष और उपविषोंकी शोधनविधि ।

वत्सनाभका स्वरूप ।

सिन्धुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा ।
यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः॥ १॥

भाषा–सम्हालूके सदृश पत्तोंवाला, बछडेकी नाभके सदृश आकारवाला और जिसके समीपमें दूसरे वृक्षकी वृद्धि नहीं होती हो वह वत्सनाभ विष कहाता है ॥ १ ॥

विषकी शोधनविधि ।

गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्यं विषं तेन विशुद्ध्यति ।
रक्तसर्षपतैलाक्ते तथा धार्यं च वाससि ॥ २॥
ये गुणा गरले प्रोक्तास्ते स्युर्हीना विशोधनात् । तस्माद्विषं प्रयोगे तु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

भाषा–विषको तीन दिनतक गोमूत्रमें रखे और पश्चात् लाल राईके तेलसे भीजे हुए कपडेमें रक्खे, इस प्रकार करनेसे विष शुद्ध होजाता है. विषमें जो गुण हैं वे शुद्ध करनेसे न्यून हो जाते हैं; इस कारण विषको शुद्ध करनेसे पश्चात् औषधियोंमें उपयोग करे ॥ २ ॥ ३ ॥

विषके गुण ।

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ।
आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम् ॥ ४ ॥
(व्यवायि सकलकायगुणव्यापनपूर्वकं पाकगमनशीलम् । विकाशि ओजःशोषणपूर्वकं सन्धिबन्धशिथिलीकरणशीलम् । आग्नेयम् अधिकाग्न्यंशम् । योगवाहि सङ्गिगुणग्राहकम् । मदावहं तमोगुणप्राधान्येन बुद्धिविध्वंसकम्) तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम् । योगवाहि परं वातश्लेष्मजित्सन्निपातहृत् ॥५॥

भाषा–विष प्राणनाशक, व्यवायी (प्रथम सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचनेवाला), विकाशि (ओजको सुखाकर संधियोंके बंधनोंको शिथिल करनेवाला), आग्नेय (अग्निका अधिक अंशवाला), वातनाशक, कफनाशक, योगवाही (संसर्गी पदार्थोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाला) और मदावह (अपनेमें तमोगुणकी प्रधानता होनेसे बुद्धिको नष्ट करनेवाला) है. यह विष जो युक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो जीवनदायक, रसायन, योगवाही, वात तथा कफको जीतनेवाला और सन्निपातनाशक है ॥ ४ ॥ ५ ॥

उपविषोंका निरूपण ।

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः ।
गुञ्जाहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयतः ॥६॥
(एतेषां शोधनं चिन्त्यम् । गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः ।)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषा—आकका दूध, थूहरका दूध, कलियारी, कनेर, घुंघुची, अफीम और धतूरा ये सात उपविषकी जाति हैं. इनको शुद्ध करनेकी विधि विचार लेनी और इनके गुण उसके प्रकरणमें देखने चाहिये ॥ ६ ॥

अथ द्रव्याणां गुणवतामवधिः ।

पदार्थोंमें गुण रहनेकी अवधि।

गुणहीनं भवेद्धर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् । मासद्वयात्तथा चूर्णं लभते हीनवीर्यताम् ॥ १ ॥ हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरं यदि । हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ २ ॥ (घृततैलाद्या इति योगविशेषणम् । चतुर्मासाधिकाः वत्सरादुपरि चत्वारो मासा अधिका येषु ते ।)

भाषा—औषधि जैसीकी तैसीही रूपवाली होय तो वहभी एक वर्ष पीछे गुणरहित होजाती है, चूर्ण दो महीने पीछे हीन शक्तिवाला होजाता है, गोली और अवलेह एक वर्षके पश्चात् हीनशक्तिवाला होजाता है, घी और तेल आदि पदार्थ सोलह मासके पीछे शक्तिहीन होजाते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

ग्रंथांतरोंसे घी तेलका विशेष वर्णन ।

घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् । तैलं पक्वमपक्वं च चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ ३ ॥ (तदपि षोडशमासाभ्यन्तरीणं पक्वं तैलं गुणाधिकं बोद्धव्यम् ।) औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ॥ ४ ॥ (औषध्यो धान्यादयः । लघुपाकाः शीघ्रपाका निर्वीर्याः स्युः ।) पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवो धातवो रसाः ॥ ५ ॥

भाषा—पक्का घी एक वर्षके पीछे शक्तिरहित हो जाता है और तेल पक्का हो अथवा कच्चा हो तो भी बहुत कालतक अविचल अधिक गुणवाला रहता है. इसका प्रयोजन ऐसा जानना कि—पक्का तेल भी सोलह महीनेतक अधिक गुणवाला रहता है. तत्काल पकनेवाली धान्य आदि औषधियें एक वर्षके पीछे शक्तिरहित हो जाती हैं. आसव (द्राक्षासवादि) धातु स्वर्णादि और रस चन्द्रोदयादि तो जितने बढकर अधिक पुराने हों उतनेही अधिक गुणवाले होते हैं ॥ ३-५ ॥

अथ स्नेह पीनेकी विधि ।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा । मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ॥ १ ॥ स्थावरो जङ्गमश्चैव द्वियोनि स्नेह उच्यते । तिलतैलं स्थावरेषु जङ्गमेषु घृतं वरम् । द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा यमकस्त्रिवृतो महान् ॥ २ ॥ (अस्य अयमर्थः । द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां घृततैलाभ्यां यमकाख्यः स्नेहः स्यात् । त्रिभिः स्नेहैः घृततैलवसारूपैस्त्रिवृताख्यः स्यात् । चतुर्भिर्घृततैलवसामज्जाभिर्महान्महास्नेहः स्यादित्यर्थः ।) पिबेदहं चतुरहं पञ्चाहं षडहानि वा ॥ ३ ॥ (मृदुमध्यक्रूरकोष्ठापेक्षया त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहानि चेति । यदुक्तम् ।) मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निग्धस्नेहोपसेवया । मध्यकोष्ठश्चतुर्भिश्च दिवसैः स्निह्यति ध्रुवम् ॥ ४ ॥ पञ्चभिर्वाथ षड्भिर्वा दिनैः क्रूरो विशुद्ध्यति । सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्म्यीभवति सेवितः ॥ ५ ॥ (मृदुमध्यक्रूरकोष्ठानां सर्वेषां सप्तरात्रात्परं सात्म्यीभवति । वातानुलोम्यवह्निदीप्तिकोष्ठशुद्धिमृदुस्निग्धाङ्गतास्वरवचनाङ्गलघवधातुपुष्टिद्विजदार्ढ्यनिर्जरताबलवर्णकारी भवति । न तु भक्तद्वये वातानुलोम्यादीन् करोति ।)

भाषा—घी, तेल, चरबी और मज्जा (हड्डीके भीतरकी मींग) इन चार प्रकारका स्नेह (चिकनाई) कहाता है. जब सूर्यका कुछ उदय हो उस समय मनुष्यको स्नेह पीना चाहिये. स्थावर और जंगम इन दोनोंमेंसे स्नेह उत्पन्न होता है, स्थावर (वृक्षादिक) से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न हुए स्नेहोंमें तिलका तेल उत्तम है और जंगम (पशु आदि) से उत्पन्न हुए स्नेहोंमें घी उत्तम है. घी और तेल, इन दोनोंको एकत्र करनेसे यमक नामक स्नेह होता है. घी, तेल और चरबी इन तीनोंके इकट्ठे होनेसे त्रिवृत् नामक स्नेह होता है. घी, तेल, चरबी और मींग, इन चारोंके इकट्ठे होनेसे महास्नेह होता है. कोठा कोमल है, मध्यम है, अथवा क्रूर है, इसका विचार करके तीन दिनतक, चार दिनतक, पांच दिनतक, स्नेह पीना चाहिये. कहा है कि-" कोमल कोठा तीन दिनतक स्नेहका सेवन करे तो स्निग्ध होता है. मध्यम कोठा चार दिनतक स्नेहका सेवन करे तो स्निग्ध होता है, और क्रूर कोठा पांच अथवा छः दिनतक स्नेहका सेवन करनेसे शुद्ध होता है " सेवन किया हुआ स्नेह (तैल घृतादिक) सात रात्रिके पश्चात् शरीरके अनुसार होजाता है, इसीसे वायुको उत्तम चलानेवाला, अग्निप्रदीपक, कोठेको शुद्ध कर्त्ता, अंगोंको मृदु तथा स्निग्ध करनेवाला; स्वर तथा वाणीको सुन्दर करनेवाला, शरीरमें लघुताकारक, धातुको पुष्टिकर्त्ता, वांतोंको दृढ करनेवाला, वृद्धतानाशक, बलवर्द्धक और शरीरका वर्ण सुधारनेवाला है, परन्तु दो वारका उपयोग किया स्नेह वातादिका अनुलोमन नहीं करता है ॥ १-५ ॥

दोषकालवयोवह्निबलान्यालोक्य योजयेत् । हीनां च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान् ॥ ६ ॥ अमात्रया तथाऽकाले मिथ्याहारविहारतः । स्नेहः करोति शोथार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञिताः ॥ ७ ॥

भाषा-दोष, काल, अवस्था, अग्नि और बलको देखकर बुद्धिमान् वैद्य हीन, मध्यम. अथवा अधिक मात्राका उपयोग करावे । स्नेह अयोग्य मात्रासे और अयोग्य आहार विहारसे शरीरमें सूजन, बवासीर आलस्य निद्रा और बेहोशताको उत्पन्न करता है ॥ ६ ॥ ७॥

देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्यैकपलोन्मिता । मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी ॥ ८ ॥ (मध्यमाय मध्यमाग्नये । जघन्याय हीनाग्नये ।) अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसम्मताः । अहोरात्रेण महती जीर्यत्यग्नि तु मध्यमा ॥ जीर्यत्यल्पा दिनार्द्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥ ९ ॥ (अयमर्थः । या अहोरात्रेण जीर्यति सा मात्रा महती । एवं मध्यमा कनिष्ठा च ज्ञेया ।)

भाषा-प्रदीप्त अग्निवाले मनुष्यको स्नेहकी चार तोलेकी मात्रा देवे, मध्यम अग्निवालोंको तीन तोलेकी मात्रा देवे और मन्दाग्निवालेको दो तोलेकी मात्रा देवे. अथवा सम्पूर्ण वैद्योंकी स्वीकार करी हुई स्नेहकी दूसरी तीन मात्रा भी हैं; वे ये हैं कि, जो मात्रा एक दिन रातमें पचे उसको बडी मात्रा जाननी, सम्पूर्ण दिनमें पचे उसको मध्यम मात्रा जाननी और आधे दिनमें पचे उसको अल्पमात्रा जाननी ये अल्पमात्रा सुखदाई हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अल्पा स्यादीपनी वृष्या स्वल्पदोषे प्रपूजिता । मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी ॥ ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥ १० ॥

भाषा-अल्प दोषवाले मनुष्योंको अल्पमात्रा बहुत उत्तम, अग्निको दीपन करनेवाली और मैथुनशक्तिको बढानेवाली है. मध्यम मात्रा पुष्टिकारक और भ्रमनाशक है. उत्तम (बडी) मात्रा कोढ, उन्माद, ग्रह और अपस्मारनाशक है ॥ १० ॥

सुश्रुतः पुनरेवमाह ।

या मात्रा प्रथमे यामे गते जीर्यति वासरे । सा मात्रा दीपयत्यग्निमल्पदोषे च पूजिता ॥ ११ ॥ या मात्रा वासरस्यार्द्धे व्यतीते परिजीर्यति । सा वृष्या बृंहणी च स्यान्मध्यदोषे प्रपूजिता ॥ १२ ॥ या मात्रा चरमे यामे स्थितेऽह्नः परिजीर्यति । सा मात्रा स्नेहनी ज्ञेया बहुदोषेषु पूजिता ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ।
देयं बहुकफे वह्निव्योषक्षारसमन्वितम् ॥१४॥

भाषा-इस विषयमें फिर सुश्रुत कहता है कि, जो मात्रा प्रथम प्रहरके पश्चात् पचजाती है वह मात्रा अग्निको दीपन करती है और अल्प दोषीको बहुत उत्तम है. जो मात्रा दो प्रहरमें पचती है वह मात्रा वृष्य, पुष्टिकारक और मध्यम दोषवालेको बहुत उत्तम है और जो मात्रा दिनके तीन पहर व्यतीत होनेपर पचती है वह मात्रा बहुत स्निग्धता करनेवाली और अत्यन्त दोषवालेके लिये उत्तम है. पित्त अधिक होय तो केवल घी देवे. वात अधिक हो तो लवणसहित घी देवे और कफ अधिक हो तो चीता, सोंठ, मिर्च, पीपल तथा खार इन पदार्थोंसहित घी देवे ॥ ११-१४ ॥

रूक्षक्षतविषार्त्तानां वातपित्तविकारिणाम् ।
हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ १५ ॥ कृमिकोष्ठानिलविषाः प्रवृद्धकफमेदसः । पिबेयुस्तैलसात्म्याश्च तैलं दाढ्यार्थिनस्तु ये ॥ व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्ता महारुजः ॥ १६ ॥ मन्दाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः । क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्त्ता दीप्तवह्नयः ॥ मज्जानं च पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम् ॥ १७ ॥ (क्रूराशयाः क्रूरकोष्ठाः । सर्वतः सर्वस्मात्स्नेहात् ।)

भाषा-रूक्ष, क्षत (घाववाले) तथा विषसे पीडित, वात तथा पित्तके विकारसहित और जिनकी बुद्धि तथा स्मरणशक्ति हीन होगई हो ऐसे मनुष्योंको घी पीना बहुत उत्तम है. जिसके कोठेमें कृमि बढगये हों, वायुका उपद्रव हो, कफ अथवा मेद बढगये हों, तथा जिनको तेल पीनेका अभ्यास हो और शरीरकी दृढताकी इच्छा हो उनको तेल पीना चाहिये. जो कसरत करनेसे दुःखित हैं, जिनका वीर्य तथा रुधिर सूख गया है, जो महान् रोगोंसे व्याकुल है, तथा जिनकी अग्नि प्रबल है, वात प्रबल है, उन मनुष्योंको वसा (चरबी) पीनी चाहिये. जिनके कोठे क्रूर हैं, जो क्लेशको सहनेवाले हैं, वातसे पीडित हैं, दीप्ताग्नियुक्त हैं उनको मज्जा अथवा घी पीना चाहिये, घी सबसे हितकारी है ॥ १५-१७ ॥

शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि ।
वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ १८ ॥ नस्याभ्यञ्जनगण्डूषमूर्द्धकर्णाक्षितर्पणे । तैलं घृतं वा युञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ १९ ॥ घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते । वसामज्ञः पिबेन्मण्डमनुपानं सुखावहम् ॥ २० ॥

भाषा-शीतकालमें दिनमें और उष्णकालमें रातको स्नेहपान करे, वायु तथा पित्तकी अधिकतामें रात्रिके समय और कफ तथा वातकी अधिकता होय तो दिनमें स्नेहपान करे. नस्यकर्ममें, मालिश करनेमें, कुल्ले करनेमें, मस्तक, कान अथवा नेत्रमें डालना होय तो दोषोंका बलाबल विचारकर तेलका अथवा घीका उपयोग करे. घृत पिये तो ऊपरसे उष्णजल पिये, तेलके ऊपर मूंगका क्वाथ पिये और चरबी तथा मज्जाके ऊपर भातका गाढा २ मांड पीना चाहिये, स्नेहके ऊपर ये अनुपान हितकारी हैं ॥ १८-२० ॥

स्नेहद्विषः शिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ।
तृष्णालुकानुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत् ॥ २१ ॥ सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्पतण्डुला । सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यस्नेहनकारिणी ॥ २२ ॥ शर्कराचूर्णसंयुक्ते दोहनस्थे घृते तु गाम् । दुग्ध्वा क्षीरं पिबेदूक्षः सद्यःस्नेहनमुत्तमम् ॥ २३ ॥

भाषा-जिसकी स्नेहपानसे अरुचि है उनको, बालकोंको, वृद्धोंको, सुकुमार शरीरवालोंको, कृश शरीरवालोंको तथा उष्णकालमें जिनको अधिक तृषा लगती हो उनको भातके साथ स्नेहपान करावे. अधिक घी, तिल तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थोडे चावलयुक्त और किंचित् गरम ऐसी यवागूका सेवन करनेसे शरीर तुरन्त स्निग्ध हो जाता है. रूक्ष हुआ मनुष्य दुहनेके बासनमें खांड (बूरा) और घी डालकर उसमें गायको दुहे और वह दूध पिये तो तुरन्त उत्तम रीतिसे शरीरमें स्निग्धता (चिक्कनता) होती है ॥ २१–२३ ॥

मिथ्याचाराद्धृत्वाच्च यस्य स्नेहो न जीर्यति । विष्टभ्य वापि जीर्येत वारिणोष्णेन वामयेत् ॥ २४ ॥ स्नेहस्याजीर्णशङ्कायां पिबेदुष्णोदकं नरः । तदोद्गारा भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुचिस्तथा ॥ २५ ॥ स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरीकृतः । तदास्योदीर्यते तृष्णा विषमा तस्य पाययेत् ॥ २६ ॥ शीतलं पायसं तेन तृष्णा तस्य प्रशाम्यति । अजीर्णी वर्जयेत्स्नेहमुदरी तरुणज्वरी ॥ २७ ॥ दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छालो मेहपीडितः । दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च वान्तस्तृष्णाश्रमान्वितः ॥ अकालप्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥ २८ ॥

भाषा–जिस मनुष्यको अयोग्य आहार विहारसे, अथवा अधिक होनेसे स्नेह नहीं पचे, अथवा अजीर्णतासे पचे तो वह मनुष्य उष्ण जलसे वमन करे. स्नेहका अजीर्ण होनेकी शंका हो तो मनुष्य उष्ण जल पिये इससे शुद्ध डकार आती है और अन्नमें रुचि उत्पन्न होती है. पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यकी अग्नि स्नेह पानसे बहुत तीक्ष्ण होकर अधिक तृषा लगावे तो उसको शीतल दूधपाक (खीर) पिलावे, इस प्रकार पीनेसे तृषा शांत हो जायगी. जिसको अजीर्ण उदररोग तथा नवीन ज्वर हो, जिनका शरीर दुर्बल हो, अन्नमें अरुचि हो, जिनका शरीर मोटा हो, मूर्च्छा तथा प्रमेहसे पीडित हो, जिसका बस्तिकर्म किया हो, जिन्होंने जुलाब लिया हो तथा वमन करनेवालेको, तृषितको, परिश्रमीको और जो स्त्री अकालमें प्रसववाली हो उसको स्नेहपान नहीं करावे. जिस दिन मेघसे आकाश घिर रहा हो उस दिनभी स्नेहपान न करे ॥ २४–२८ ॥

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचित्तकाः ॥ ॥ २९ ॥ वृद्धबालकृशा रूक्षाः क्षीणास्राः क्षीणरेतसः । वातार्तास्तिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम् ॥ ३० ॥ वातानुलोम्यं दीप्ताग्नेर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् । मृदुस्निग्धांगता ग्लानिः स्नेहद्वेषोऽथ लाघवम् ॥ ३१ ॥ विमलेन्द्रियता सम्यक्स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः । भक्तद्वेषो मुखस्रावो [illegible] प्रवाहिका ॥ ३२ ॥ तन्द्रातीसारखण्डत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् । रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ॥ ३३ ॥ श्यामाकचणकाद्यैश्च तैक्ष्ण्यिण्याकशक्तुभिः । दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्दृढेन्द्रियः ॥ ३४ ॥ निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः । स्नेहे व्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् ॥ दिवास्वप्नमभिष्यन्दि रूक्षान्नं च विवर्जयेत् ॥ ३५ ॥

भाषा–जिनको स्वेद देना हो, जिनको रेचक (जुलाब) देकर शुद्ध करना हो, मद्य, स्त्री, अथवा व्यायाममें जिनका चित्त आसक्त हो, वातसे पीडित, तिमिर (रतौंधा) रोगी, वृद्ध, बालक, जो दुर्बल होता जाता हो इन सबको तथा रूक्षशरीरवालोंको, क्षीण होगया है रुधिर जिनका और क्षीणवीर्यवालोंको स्नेह क्रिया करनी उत्तम है. भले प्रकार स्निग्ध हुएकी परीक्षा यह है कि वायुका यथायोग्य बहना, अग्निका प्रदीप्त होना, मल चिकना और अलग अलग निकले, शरीर कोमल और नीला दीखे, ग्लानि न हो स्नेहसे द्वेष हो, शरीरमें लघुता और इंद्रियोंमें निर्मलता होती है. रूक्ष मनुष्यके इनमें उलटे लक्षण होते हैं. जो मनुष्य बहुत स्निग्ध हुआ हो उसके लक्षण ये हैं कि अन्नमें अरुचि, बारका गिरना, गुदामें दाह, मल पतला पतला आवे, शरीरमें आलस्य और शरीर फीका पड जाता है. रूक्ष मनुष्यको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्नेहपानसे स्निग्ध करना चाहिये और जो अत्यन्त स्निग्ध मनुष्य हैं उनको श्यामाक (समखिया, कोदव) और चने आदि खिलाकर तथा छांछ, खल और सत्तू आदि खवाकर रूक्ष करना चाहिये. स्नेहका सेवन करनेवाला मनुष्य जरारहित, बल तथा वर्ण करके युक्त होता है, अग्निदीपन होती है, कोठा शुद्ध होता है, धातु पुष्ट होती है और इन्द्रियें दृढ होती हैं. स्नेह सेवन करनेवालेको कसरत, शीतमें रहना, वेगोंका रोकना, जागरण करना, दिनमें सोना और रूक्ष तथा हुत [illegible]रमें गुरुता करनेवाला भोजन ये सब त्यागने चाहिये॥२९-३५॥

पञ्च कर्मोंके नाम।

प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेकश्चानुवासनम्। एतानि पञ्च कर्माणि निरूहो नावनं तथा॥ १॥

भाषा-वमन, विरेचन, अनुवासन, निरूहण और नावन (नस्य) ये पांच कर्म कहाते हैं॥ १॥

अथ वमनविधिः।

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम्। वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक्॥ २॥ बलवन्तं कफव्याप्तं हृल्लासादिनिपीडितम्। तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत्॥ ३॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे। हृद्रोगे कुष्ठवीसर्पे मेहाजीर्णभ्रमेषु च॥ ४॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु। अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु॥ ५॥ नासातालोष्ठपाकेषु कर्णस्रावेऽधिजिह्वके। गलशुण्ड्यामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा॥ मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक्॥ ६॥

भाषा-प्रवीण वैद्य शरद्ऋतुमें, वसंतऋतुमें और वर्षाऋतुमें प्राणियोंको वमन करावे और विरेचन देवे. जो मनुष्य बलवान्, कफसे व्याप्त, हल्लासादिसे पीडित, धीरचित्तवाला और जिसकी प्रकृति वमनके अनुकूल हो उनको वमन करावे. विषदोष, स्तन्यरोग, मंदाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृदयरोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, अपची, खांसी, श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, अपस्मार (मृगी), ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नाक, तालु तथा ओष्ठके पकनेमें, कर्णस्राव (कानके बहनेमें,) अधिजिह्वक, गलशुंडी, अतिसार, पित्त अथवा कफके रोग, मेद और अरुचि इन सब रोगोंमें वैद्य रोगीको वमन करावे॥ २-६॥

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः। नातिवृद्धो गर्भिणी च न स्थूलो न क्षतातुरः॥ ७॥ मदार्त्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः। उदावर्त्युर्ध्वरक्तौ च दुश्च्छर्द्यः केवलानिली॥ ८॥ पाण्डुरोगी कृमिव्याप्तः पठनात्स्वरघातवान्। एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः॥ कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुककाथपानतः॥ ९॥ (ऊर्ध्वरक्तौ यस्य नासाक्षिकर्णास्यमार्गैः रक्तं प्रवर्त्तते सः। भुक्तरूक्षकर्कशद्रव्यो दुश्च्छर्द्यः। मधुकस्थाने मधूकेति द्वितीयः पाठः।)

भाषा-तिमिर, गुल्म (गोला) तथा उदररोगी, कृश, अतिवृद्ध, गर्भवती स्त्री, अत्यन्त स्थूल, क्षत (घाव) से व्याकुल, मदरोगी, बालक, रूक्ष, भूंखा तथा निरूहण बस्ति करे करे हुएके, उदावर्त्त तथा ऊर्ध्वरक्तौ (जिसकी नाक, कान, नेत्र और मुखमेंसे रक्त निकले), जिसे कठिनतासे वमन होती हो (अर्थात् वमनकी औषधसे भी मुशकिलसे वमन होती हो) जिसके कोठेमें केवल वायुका दोष हो, पाण्डुरोगी, कृमिसे व्याप्त और पढनेसे स्वर जिसका नष्ट हो गया हो, उनको वमन नहीं करावे, यदि ये अजीर्णसे पीडित हों अथवा विषसे पीडित हों तौ अथवा कफसे व्याप्त हुए हों और वमन करानेकी आवश्यकता हो तो इनको मुलहठीका क्वाथ पिलाकर वमन करावे॥ ७-९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं च वामयेत् । पाययित्वा यवागूं वा क्षीरतक्रदधीनि च ॥ १० ॥ असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लेश्य देहिनाम् । स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥ वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधु वा हितम् । बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ १२ ॥ (बीभत्सम् अरुच्यम् । विपरीतं रुच्यम् ।) क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके । अर्द्धभागावशिष्टं च वमनेष्ववचारयेत् ॥ १३ ॥ क्वाथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता । मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ १४ ॥ वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे । अर्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥ (अर्धत्रयोदशपलं सार्द्धषट्कम् ।) कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं मात्रयोत्तमम् । मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयं तु पलं भवेत् ॥ १६ ॥ वमने चाष्ट वेगाः स्युः पित्तान्ता उत्तमास्तु ते । षड् वेगा मध्यमा वेगाश्चत्वारस्त्वपरे मताः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य सुकुमार (नाजुक), कृश, बालक, वृद्ध अथवा भयभीत हो, इनमेंसे किसीको वमन करानी हो तो प्रथम उसकी प्रकृतिसे न मिलें ऐसे कफकारी भोजनोंसे दोषोंको कुपित करके यवागू, दूध, छाँछ और दही आदि पदार्थ पिलाकर वमन करावे । स्निग्ध किये हुए और अग्निसे स्वेदन किये हुए मनुष्यको वमन करावे तौ भली भाँति वमन (उलटी वा रद्द) होती है । सर्व प्रकारकी वमनोंमें सैंधानोन अथवा मधु देनेसे अनुकूल होता है । वमनकी औषधि बीभत्स (जो रुचे नहीं) देवे और रेचनमें औषधि विपरीत (जो रुचे) देवे । क्वाथ करनेका पदार्थ सोलह तोले लेकर दो सौ छप्पन तोले पानीमें पकावे, जब आधा शेष रहे तब रोगीको वमनके लिये देवे । क्वाथ पीनेमें नौ प्रस्थकी मात्रा बडी, छः प्रस्थकी मध्यम और तीन प्रस्थकी अल्प मात्रा कहाती है । वमनमें, विरेचनमें और रुधिर निकालनेमें प्रस्थ जहाँ आवे तहाँ छब्बीस तोलेका जानना यह विद्वानोंने कहा है। कल्क, चूर्ण और अवलेह इनकी बारह तोलेकी मात्रा उत्तम है, आठ तोलेकी मध्यम है और चार तोलेकी मात्रा अल्प है, वमनमें आठ वेग हों और अन्तमें पित्त आवे तो उत्तम जानना, छः वेग मध्यम और चार वेग आवें तो कनिष्ठ जानना ॥ १०–१७ ॥

कफं कटुकतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् । सुस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ १८ ॥ कृष्णां कट्फलसिन्धुं च कफे कोष्णजलैः पिबेत् । पटोलवासानिम्बांश्च पित्ते शीतजलैः पिबेत् ॥ १९ ॥ (कट्फलं मयनफलम् ।) सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् । अजीर्णे कोष्णपानीयं सिन्धुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ २० ॥ (मदनं मयनफलम् ।) वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासने स्थितम् । कण्ठमेरण्डनालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ॥ २१ ॥ प्रसेको हृद्ग्रहः कोठः कण्डूर्दुश्छर्दिते भवेत् । अतिवान्ते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारो विसंज्ञता ॥ २२ ॥ जिह्वानिःसरणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः । रक्तच्छर्दिः ष्ठीवनं च कण्ठपीडा च जायते ॥ २३ ॥ (हनुसंहतिः हन्वोरमिलनम् ।) वमनस्यातियोगे तु मृदु कुर्याद्विरेचनम् । वमनेन प्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः । स्निग्धाम्ललवणैर्युक्तैर्घृतक्षीररसैर्हिताः ॥ २४ ॥ (रसैर्मांसरसैः ।) फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः । निःसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत् ॥ २५ ॥ (निःसृतां जिह्वाम् ।) व्यावृत्तेऽक्षिणी घृताभ्यक्ते पीडनं च शनैः शनैः । हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातहृत् ॥ २६ ॥ रक्तपित्तविधानेन रक्तष्ठीवमुपाचरेत् । धात्रीरसाञ्जनोशीरलाजचन्दनवारिभिः ॥ २७ ॥ मन्थं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् । शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्या रोगाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥ २८ ॥ हृत्कण्ठशिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नित्वं च लाघवम् । कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वान्तस्य लक्षणम् ॥ २९ ॥ ततोऽ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पराह्णे दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकशालिभिः । हृद्यैश्च जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषं च भोजयेत् ॥ ३० ॥ तन्द्रानिद्रास्यदौर्गन्ध्यं कण्डूश्च ग्रहणी विषम् । सुवान्तस्य न पीडायै भवन्त्येते कदाचन ॥ ३१ ॥ अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा । स्नेहाभ्यंगं च रोषं दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ३२ ॥

इति वमनाधिकारः ।

चरपरे, तीक्ष्ण और गरम पदार्थोंसे कफको जीते । मीठे और शीतल पदार्थोंसे पित्तको जीते । मीठे, खारी, खट्टे और गरम पदार्थोंसे वातसहित कफको जीते । कफके ऊपर पीपल, मैनफल तथा सेंधानोन किंचित् गरम पानीके साथ पिये । पित्तकी अधिकतामें पटोलपत्र, अडूसा और नीम शीतल जलसे पिये । कफसहित वातमें मैनफलके चूर्णके साथ दूध पिये । अजीर्ण हो तो किंचित् गरम पानी और सेंधानोन पीकर वमन करें । वैद्य रोगीको वमनकी औषध पिलाकर उकरू बिठलाकर उसके गलेमें उसके हाथसे ही अण्डीके पत्तेकी नाल डालकर वमन करावे । जैसी चाहिये तैसी वमन न हो तो उसके ये लक्षण होते हैं कि—मुखमें पानी आना, हृदयका रुकना, देहमें चकत्ते होना और खुजलीका होना होता है । बहुत वमन हो तो इसके लक्षण ये होते हैं कि तृषाका लगना, हिचकी तथा डकारका आना, बेहोशीपन और जीभका बाहर निकलना, आँखोंका फटना, मुखका फैलना, वमनके साथ अथवा थूकनेमें रुधिरका आना और गलेमें पीडाका होना ये लक्षण होते हैं । वमनका अत्यन्त योग होय तो मृदु विरेचन (दस्त) करावे, वमन करनेमें जीभ भीतर बैठ गई हो तो स्निग्ध, खारी और खट्टे रसोंसे युक्त कर घीके, दूधके और मांसरसके हितकारी कुल्ले करावे और उस मनुष्यके आगे दूसरा मनुष्य बैठकर अम्लफल (नींबू आदि) खावे । जीभ निकली पडी हो तो जीभपर तिलका और दाखका कल्क चुपडकर उसको भीतरको प्रवेश करे । आँखकी पुतली फट गई हो तो घी चुपडकर धीरे धीरे भीतरको दबावे । मुख फटगया हो तो सेंक करे और नाकमें कफ तथा वातनाशक बूँदें डाले । थूकनेमें रुधिर आता हो तो रक्तपित्तके अनुसार उपचार करे । आमला, रसोत, खस, खील इनको चन्दनके जलमें विलोकर घी, मधु तथा खाँड डालके पिलावे तो वमनसे उत्पन्न हुए तृषा आदि रोग शांत होते हैं । हृदय, गला तथा मस्तक शुद्ध हो जाय, अग्नि प्रदीप्त हो जाय, शरीरमें लघुता आजाय और कफ तथा पित्तका नाश हो जाय तो भली भाँति वमन हुई जाने । जिसको भले प्रकार वमन हो गई हो ऐसे प्रदीप्त अग्निवाले मनुष्यको दो पहर पीछे मूँग, साँठी चावल तथा रुचिकारी जंगली जीवोंका मांस इनका पाक करके बना हुआ यूष खवावे, जिसको भली भाँति वमन हुई हो उसको निद्रा, आलस्य, मुखकी दुर्गन्धता, खुजली, संग्रहणी और विष ये कदापि पीडा नहीं करते । विद्वान् मनुष्यको वमन करनेके पश्चात् एक दिनतक अजीर्णकारक पदार्थ, शीतल जल, कसरत, मैथुन, तेलका अभ्यंग (मालिश) और क्रोध इनको छोड देना चाहिये ॥ १८–३२ ॥

अथ विरेचनविधिः ।

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग्विरेचनम् । अवान्तस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणी छादयेत्कफः ॥ ३३ ॥ मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् । अथ वा पाचनैरामं बलासं परिपाचयेत् ॥ ३४ ॥ ऋतौ वसन्ते शरदि देहशुद्धौ विरेचयेत् । अन्यदात्ययिके कार्ये शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ ३५ ॥ (आत्ययिके प्राणसंकटे ।) पित्ते विरेचनं युञ्ज्यादामोद्भूते गदे तथा । उदरे च तथाध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः ॥ ३६ ॥ दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः । शोधनैः शोधिता ये तु न तेषां पुनरुद्भवः ॥ ३७ ॥ बालो वृद्धो भृशं स्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः । श्रान्तस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ ३८ ॥ नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी । शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥ ३९ ॥ जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरोगी भगन्दरी । अर्शःपाण्डूदरग्रन्थिहृद्रोगारुचिपीडिताः ॥ ४० ॥ योनिरोगप्रमेहार्त्तो गुल्म-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्लीहव्रणार्दितः । विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः ॥ ४१ ॥ कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः । प्लीहशोथाक्षिरोगार्त्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः ॥ ४२ ॥ शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः । बहुपित्तो मृदुः कोष्ठो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ॥ ४३ ॥ बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते । मृद्वी मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा ॥ ४४ ॥ क्रूरे तीक्ष्णा मता द्रव्यैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः । मृदुर्द्राक्षापयश्चञ्चूतैलैरपि विरिच्यते ॥ ४५ ॥ मध्यमस्त्रिवृतात्तिक्तारजवृक्षैर्विरिच्यते । क्रूरः स्नुक्पयसा हमक्षीरीदन्तीफलादिभिः ॥ ४६ ॥ (चञ्चुतैलम् एरण्डतैलम् । हेमक्षीरी [चोक] । दन्तीफलम्, बृहद्दन्तीफलम्—जयपालेति प्रसिद्धम्।)

प्रथम मनुष्यको स्नेहपान कराकर स्वेद देवे और पश्चात् वमन करावे, वमन करानेके पीछे योग्य रीतिसे रेचन (जुलाब) देवे, वमन कराये विना रेचन देवे तो कफ नीचेके भागमें आकर ग्रहणी नामक शरीरके भीतरके स्थानको ढक देता है कि—जिससे अग्नि मंद हो जाती है, शरीरमें गुरुता हो जाती है, अथवा प्रवाहिका आदिक रोग हो जाते हैं । वमन विना कराये रेचन दिया हो तो कच्चे कफको उपायसे पकाना चाहिये । वसन्तऋतु और शरद्ऋतुमें शरीरको शुद्ध करनेके लिये रेचन देवे, पीडा प्राणसंकटके सदृश हो तो विद्वान् वैद्य अन्य ऋतुओंमें भी रेचन देवे । पित्त, आमसे हुए रोग, उदररोग, अफरा और बद्धकोष्ठ (कोठेकी अशुद्धि) इन रोगोंपर विशेष करके विरेचन देवे । लंघनसे और पाचनके उपायसे जीते हुए दोष किसी समयमें फिर पीछे कुपित होते हैं, परन्तु रेचन देनेसे जिनको शुद्ध कर दिया हो ऐसे दोष पीछे उत्पन्नही नहीं होते । बालक, वृद्ध, अत्यंत स्निग्ध, क्षतसे क्षीण हुए, भयभीत, थका हुआ, तृषासे पीडित, अत्यंत स्थूल, गर्भवाली स्त्री, नवीन ज्वररोगी, तत्काल प्रसूता स्त्री, मंदाग्निवाला, मदात्ययरोगी, जिसके बाण आदि शल्य लग रहा हो और रूक्ष शरीरवाला अर्थात् जिसने प्रथम स्नेह (घृतादिपान वा मुंजिस न लीनी हो) इनको विद्वान् वैद्य रेचन नहीं देवे। जीर्ण ज्वरवाले, विषव्याप्त, वातरोगी, भगंदरवाले तथा बवासीर, पाण्डु, उदर, गाँठ, हृदयरोग, अरुचि, योनिरोग, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, व्रण, कर्णरोग, मस्तकरोग, मुखरोग, गुदरोग, शिश्नरोग, प्लीहा, सूजन, नेत्ररोग, कृमिरोग, क्षारसे हुए विकार, वातविकार, शूर तथा मूत्राघात इनसे पीडितोंको तथा विषव्याप्त हुओंको रेचन देना चाहिये । जिस मनुष्यके कोठेमें पित्त अधिक हो उसको मृदु कोठेवाला जानना, जिसके कोठेमें अधिक कफ हो उसको मध्यम कोठेवाला जानना और जिसके कोठेमें वात अधिक हो उसको कठोर कोठेवाला जानना । कठिन कोठेवाले मनुष्यको रेचन धीरे धीरे लगता है, मृदु कोठेवालेको रेचनकी मृदु मात्रा देवे, मध्यम कोठेवालेको मध्यम मात्रा देवे और कठिन कोठेवालेको तीव्र मात्रा देवे । मृदु पदार्थोंकी मात्रा मृदु कहाती है, मध्यम पदार्थोंकी मात्रा मध्यम कहाती है और तीव्र पदार्थोंकी मात्रा तीव्र कहाती है । मृदु (नरम) कोठेवाले मनुष्यको दाख, दूध और अंडीके तेल आदिसे भी रेचन लगता है, मध्यम कोठेवाले मनुष्यको निसोत, कुटकी और अमलतासे रेचन लगता है और कठिन कोठेवाले मनुष्यको थूहरका दूध, चोक, दन्ती (जमालगोटेकी जड) और जमालगोटे आदिसे रेचन लगता है॥ ३३–४६ ॥

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफान्तिका । वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥ ४७ ॥ द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलं भवेत् । पलार्द्धं च कषायाणां कनीयं तु विरेचनम् ॥ ४८ ॥ कल्कमोदकचूर्णानां कर्षो मध्याज्यलेहतः । कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ॥ ४९ ॥ पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्काथादिभिः पिबेत् । त्रिफलाक्काथगोमूत्रैः पिबेद्योषं कफार्दितः ॥ ५० ॥ त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः । वातार्दितो विरेकाय जांगलानां रसेन वा॥५१॥

जिसके तीस वार वेग होकर दस्त आवे और अन्तमें कफ आम निकले वह रेचनकी मात्रा उत्तम जाननी, जिससे बीस वार वेग होकर दस्त आवे और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तमें कफ आवे वह मात्रा रेचनकी मध्यम जाननी और जिससे दश वार वेग होकर दस्त आवे और अन्तमें कफ आवे उसको रेचनकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । रेचन होनेके लिये दो पल कषाय (काढा) की मात्रा उत्तम है, एक पल कषायकी मात्रा मध्यम है और अर्द्धपल कषायकी मात्रा कनिष्ठ होती है (एक पल चार तोलेका होता है). कल्क, लड्डू और चूर्ण ये प्रत्येक एक तोले शहदमें अथवा एक तोले घीमें मिलाकर दो तोलेकी मात्रा देवे, अथवा अवस्था और रोगपर ध्यान देकर योग्य मालूम हो तो चार तोलेकी भी मात्रा देवे । पित्तसे पीडित मनुष्योंको दाख आदि क्काथके साथ निसोथका चूर्ण खाना चाहिये । कफसे पीडित मनुष्योंको हरड, बहेडा तथा आमलेके क्काथ और गोमूत्रके साथ सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण खाना चाहिये । वायुसे पीडित मनुष्योंको रेचनके लिये खट्टे पदार्थोंके साथ अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ निसोत, सेंधानोन तथा सोंठ इनका चूर्ण खाना चाहिये ॥ ४७-५१ ॥

एरण्डतैलं त्रिफलाक्काथेन द्विगुणेन वा । युक्तं पीतं पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते ॥ ५२ ॥ (शीघ्रमेव विरिच्यते इत्यर्थः ।) त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् । समृद्वीकारसं क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ ५३ ॥ त्रिवृद्दुरालभामुस्तशर्करोदीच्यचन्दनम् । द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्वशीतलं च घनात्यये ॥ ५४ ॥ (उदीच्यं वाला । घनात्यये शरदि ।) पिप्पलीं नागरं सिन्धुं श्यामां त्रिवृतया सह । लिह्यात्क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ॥ ५५ ॥ (श्यामा सारिवा ।) त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् । अभया मरिचं शुण्ठी विडंगामलकानि च ॥ ५६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च । एतानि समभागानि दन्ती तु त्रिगुणा भवेत् ॥ ५७ ॥ त्रिवृताष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा । मधुना मोदकान्कृत्वा कर्षमात्रान्प्रमाणतः ॥ ५८ ॥ एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् । तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ॥ ५९ ॥ पानाहारविहारेषु भवेन्नियन्त्रणः सदा । विषमज्वरमन्दाग्निपाण्डुकासभगन्दरान् ॥ ६० ॥ पृष्ठपार्श्वोरुजघनजंघोदररुजं जयेत् । स्नेहाभ्यंगं च रोषं च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ६१ ॥ सततं शीलनादेव पलितानि प्रणाशयेत् । अभयामोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ॥ ६२ ॥

इत्यभयादिमोदकः ।

हरड, बहेडा, आमलेके दूने क्काथके साथ अथवा दूधके साथ अंडीका तेल पिये तो भी तुरंत रेच (दस्त) लगता है । वर्षाऋतुमें रेचके लिये दाखके रसके और मधुके साथ निसोत, इन्द्रजौ, पीपल और सोंठ इनका उपयोग करे । शरद्ऋतुमें रेचके लिये दाखके रसके साथ निसोत, धमासा, नागरमोथा, खाँड, नेत्रवाला, सफेद चंदन और मुलहटीके चूर्णका उपयोग करे, यह रेच शीतल है । शिशिर और वसंत ऋतुमें रेचके लिये शहतके साथ पीपल, सोंठ, सेंधानोन, सारिवा और निसोत इनका चूर्ण खाना चाहिये । ग्रीष्म ऋतुमें रेचके लिये समान भाग निसोतका और मिश्रीका चूर्ण उपयोग करे । हरड, मिरच, सोंठ, वायविडंग, आमला, पीपलामूल, दालचीनी, पत्रज और नागरमोथा इन सबको समान भाग लेकर उसमें तिगुनी दन्ती (जमालगोटेकी जड), आठ गुना निसोत और छः गुनी मिश्री डालकर शहतके साथ एक एक तोलेके लड्डू बनावे इन लड्डुओंमेंसे प्रातःकाल एक एक लड्डू खावे और उसके ऊपर शीतल जल पिये, इसके खानेके पीछे जबतक उष्णजल न पिये अथवा उष्ण अन्न न खावे, तबतक दस्त होते रहते हैं । इन मोदकोंके खानेवालेको सर्वदा खाने पीने और विहार करनेमें अधिक परहेज करनेकी आवश्यकता नहीं है । ये लड्डू खानेसे विषमज्वर अग्निकी मंदता, पाण्डुरोग, खाँसी, भगंदर, पीठका दर्द, पसलीका दर्द, ऊरुका दर्द, जंघा तथा उदररोग नष्ट होता है । जिस दिन ये लड्डू खावे उस दिन शरीरमें तेल नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मले और क्रोध भी नहीं करे । इनको नित्य सेवन करनेसे वलीपलित नष्ट होता है, ये अभयादि मोदक (लड्डु) रसायनमें उत्तम हैं ॥ ५२–६२ ॥

पित्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी । सुगन्धि किञ्चिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेद्बुधः । निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न शयीत च ॥ ६३ ॥ शीताम्बु न स्पृशेत्कापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः । बलासौषधपित्तानि वायुर्वान्ते यथा व्रजेत् । रेकान्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ॥ ६४ ॥ दुर्विरिक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धता कुक्षिशूलरुक् । पुरीषवातसंगश्च कण्डूमण्डलगौरवम् ॥ ६५ ॥ विदाहोऽरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते । तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा स्निग्धं तु रेचयेत् । तेनास्योपद्रवा यान्ति दीप्ताग्निर्लघुता भवेत् ॥ ६६ ॥

रेचकी औषधि पीनेके पश्चात् शीतल जलसे नेत्रोंको सींचकर किंचित् सुगन्धित पदार्थ (अतर आदि) सूँघ पान चावे, वायुरहित स्थानमें बैठे, दस्तके वेगको नहीं रोके, सोवे नहीं, शीतल जलका स्पर्श न करे और किंचित् उष्ण जल पीता रहे । जिस प्रकार वमन करनेसे कफ, औषधि, पित्त और वात यह सब मुखद्वारसे निकलते हैं तैसेही रेच लेनेसे मल (विष्ठा), पित्त, औषधि और कफ यह सब गुदद्वारसे निकलते हैं । ठीक विरेचन न लगे तो नाभिमें तथा कोखमें दर्द होता है, मल तथा अधोवायु रुक जाती है, देहमें खुजली होने लगती है, चकत्ते पड जाते हैं, देह भारी हो जाती है, दाह, अरुचि, अफरा, भ्रम और वमन होती है । जिसको भली भांति रेचन लगा हो उस मनुष्यको पाचन पदार्थ देकर उसके आमको पचाकर पीछे स्नेहपान कराकर स्निग्ध करे और पश्चात् रेचन देवे इस प्रकार करनेसे ये सब उपद्रव नष्ट होते हैं, अग्नि दीपन होती है और शरीर हलका होता है ॥ ६३–६६ ॥

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छा भ्रंशे गुदस्य च । शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसन्निभम् ॥ ६७ ॥ मेदोनिभं जलाभासं रक्तं चापि विरिच्यते । तस्य शीताम्बुभिः सिक्त्वा शरीरं तण्डुलाम्बुभिः ॥ ६८ ॥ मधुमिश्रैस्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु । सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ॥ ६९ ॥ पिष्ट्वा नाभिप्रलेपेन हन्त्यतीसारमुल्बणम् । सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषीकृतैः ॥ ७० ॥ (सौवीरं सन्धानम्) अजाक्षीरं रसं चापि वैष्किरं हरिणं तथा । शालिभिः षष्टिकैस्तुल्यैर्मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ ७१ ॥ वर्त्तिकालावकिरकपिञ्जलकातित्तिराः । चकोरकराद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः । कपिञ्जल इति ख्यातो लोके कपिशतित्तिरः ॥ ७२ ॥ (ककरः कराट इति लोके । हरिणस्ताम्रवर्णो मृगः ।) शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात्संग्रहणं भिषक् । लाघवे मनसस्तुष्टावनुलोमं गतेऽनिले ॥ ७३ ॥

रेच अधिक लग जाय तो मूर्च्छा होती है, काँच निकलती है, पेटमें दर्द होने लगता है, आम अधिक निकलती है और मांसके धोवनके सदृश, मेदके सदृश तथा जलके सदृश रक्त गिरने लगता है । इस प्रकार जिसको बहुत दस्त होने लगे तो उसके शरीरपर शीतल जल छिडके और चावलोंके शीतल धोवनमें शहत मिलाकर पिलावे जिससे थोडी वमन हो जाय । आमकी छालके कल्कको दहीमें अथवा जौकी काँजीमें पीसकर नाभिपर लेप करे, इस प्रकार करनेसे भयंकर दस्त भी बंद होते हैं । कच्चे अथवा पक्के तुषरहित जौकी काँजी सौवीर कहाती है । शालि चावल अथवा साठी चावलोंके साथ अथवा मसूरके साथ बकरीका दूध और विष्किर पक्षीका तथा लाल हिरनका मांसरस देवे, इससे भी दस्त बंद हो जाते हैं । बटेर, लवा, तीतर, कबरा तीतर, चकोर और कराट आदि पक्षी विष्किर कहाते हैं । बहुत रेच लगा हो तो वैद्य शीतल और दस्तको रोकनेवाली (अतीसार रोगपर कही) औषधिसे दस्त रोके । जैसा चाहिये ऐसा रेच लगा हो तो शरीरमें लघुता होती है, मन प्रसन्न होता है और वायुकी गति ठीक होती है ॥ ६७–७३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि । इन्द्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदीप्तता ॥ ७४ ॥ धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् । प्रतापसेवां शीताम्बु स्नेहाभ्यङ्गमजीर्णताम् ॥ ७५ ॥ व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः । शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ॥ ७६ ॥ जंघालविष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् । हरिणैणकुरंगर्ष्यवातायुमृगमात्रकाः । राजीवः वृषतश्चैव जंघालाः शरभादयः ॥ ७७ ॥

इन लक्षणोंसे भली भाँति रेच (जुलाब) होनेकी परीक्षा करके उस मनुष्यको रात्रिमें पाचन पदार्थ देवे । रेचका सेवन करनेसे इन्द्रियोंमें शक्ति बढती है, बुद्धि स्वच्छ होती है, अग्नि दीपन होती है और धातुकी तथा शरीरकी स्थिरता होती है । रेच लेनेके पश्चात् शीतल पवन, शीतल जल, अजीर्णकारक अन्न, व्यायाम (दंड कसरत आदि परिश्रम), मैथुन और तेलका मलना इनका सेवन नहीं करे । रेचके ऊपर चावल, सांठी चावल और मूँग आदिकी यवागू बनाकर खावे । अथवा जंघाल पशुओंके वा विष्किर पक्षियोंके मांसके रसके साथ चावलोंका भात खावे वह हितकारी है । हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, वातायु, राजीव और वृषत आदि मृगकी जाति हैं और शरभ आदि पशु जंघाल कहाते हैं ॥ ७४–७७ ॥

अथ स्नेहवस्तिविधिः ।

वस्तिर्द्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् । यः स्नेहो दीयते स स्यादनुवासननामकः ॥७८॥ कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते । वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः ॥ ७९ ॥ (वस्तिभिः मृगादीनां मूत्राशयैः) तत्रानुवासनाख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते । अनुवासनभेदश्च मात्रावस्तिरुदीरितः ॥ ८० ॥ पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्द्धापि वा भवेत् । अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥ ८१ ॥ नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी । नास्थाप्या नानुवास्याश्च जीर्णोन्मादतृड्दिताः ॥ ८२ ॥ शोथमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः । नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः । नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ॥८३॥ (नेत्रं नाडी) तथा चोक्तं विश्वप्रकाशे—नेत्रं मन्थगुणे वस्त्रे तरुमूले विलोचने । नेत्रबन्धे च नाड्यां च नेत्रो नेतरि भेद्यवत् ॥ ८४ ॥ इति ॥

अनुवासन और निरूहण इस प्रकार वस्ति (पिचकारी) के दो भेद हैं । घी अथवा तेल आदिकी पिचकारी अनुवासन वस्ति कहाती है और क्वाथ, दूध तथा तेलको एकत्र करके उससे जो पिचकारी लगाई जाय उसको निरूहणवस्ति कहते हैं । मृग आदिके मूत्राशयकी कोथलीरूप साधनसे पिचकारी दी जाती है, इस कारण पिचकारीको वस्ति कहते हैं, वस्ति मूत्राशयका नाम है । दोनों प्रकारकी वस्तियोंमें यहां प्रथम अनुवासन वस्तिकी रीति कहते हैं, मात्रावस्ति यह अनुवासन वस्तिका ही भेद है । मात्रावस्तिमें घी आदिकी मात्रा आठ तोले भरकी अथवा चार तोलेकी करे, जो मनुष्य रूक्ष शरीरवाला, तीक्ष्ण अग्नि करके युक्त और केवल वातवाला जो मनुष्य हो उसको अनुवासनवस्ति देवे । कुष्ठरोगी, प्रमेहवाला, स्थूलशरीरी और उदररोगवाला जो मनुष्य हो उसको अनुवासन वस्ति नहीं देवे । अजीर्ण, उन्माद, तृषा, सूजन, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वास, खाँसी और क्षय (राजयक्ष्मा) इनसे पीडितोंको निरूहवस्ति नहीं देवे । और अनुवासनवस्ति भी नहीं देवे । वस्ति देनेकी नली—सुवर्ण आदि धातुओंकी, वृक्षकी, बाँसकी, नरसलकी, हाथीदाँतकी, सींगके अग्रभागकी और मणिकी बनावे । विश्वप्रकाशकोषमें कहा है कि, नपुंसकलिंगवाला नेत्रशब्द—वस्त्रमें, वृक्षकी जडमें, नेत्रमें, नेत्रके बंधमें और नलीमें प्रवर्त्तता है॥ ७८–८४॥

एकवर्षात्तु षड्वर्षाद्यावन्मानं षडंगुलम् । ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसम्मितम् ॥ ८५ ॥ ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता । मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कौलास्थिसन्निभम् । यथासङ्ख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्निभम्। गोपुच्छसन्निभं मूले स्थूलं तस्मात्क्रमात्कृशम् ॥ ८६॥ (मुद्गच्छिद्रादिप्रमाणं नेत्रं क्रमेण षड्वर्षाय द्वादशवर्षाय तदूर्ध्ववर्षाय ज्ञेयम्) आतुरांगुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते। कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम् ॥ ८७॥ (परीणाहोऽत्र स्थौल्यम्) तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात् ॥ ८८॥ (कर्णिका गवादिकर्णवत्) योजयेत्तत्र वस्तिं च बन्धद्वयविधानतः। मृगाजशूकरगवां माहिषस्यापि वा भवेत्॥८९॥ (वस्तिरिति शेषः) मूत्रकोषस्य वस्तेस्तु तदलाभे तु चर्मणः। कषायरक्तः स मृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ॥ ९० ॥

एक वर्षसे लेकर छः वर्षतकके बालकको वस्ति देवे तो छः अंगुलकी नलीका उपयोग करे, छः वर्षसे पीछे बारह वर्षतकके मनुष्यको वस्ति देवे तो आठ अंगुलकी नलीका उपयोग करे और बारह वर्षसे ऊपरके मनुष्यको वस्ति देवे तो बारह अंगुलकी नलीका उपयोग करे। छः अंगुलकी नलीमें मूँगके दानेके सदृश, आठ अंगुलकी नलीमें मटरके सदृश और बारह अंगुलकी नलीमें बेरकी गुठलीकी बराबर छेद रक्खे। नली चिकनी तथा गायकी पूँछके सदृश जडमें मोटी और उसके पीछे ऊपरसे क्रमवार सूक्ष्म होनी चाहिये। नली जडमें रोगीके अंगूठेकी बराबर मोटी होनी चाहिये, ऊपरके भागमें बिचली अंगुलीकी बराबर मोटी होनी चाहिये और गोल मुखवाली होवे। नलीके तीन भाग छोडकर चौथे भागरूप जडमें गाय आदिके कानके सदृश दो कर्णिका बनावे और उन कर्णिकाओंमें हिरणके, बकरेके, सुअरके, बैल अथवा भैंसेके मूत्राशयकी कोथलीको दो बंधनोंसे बाँधकर मिलादेवे, यदि मूत्राशयकी कोथली न मिले तो चमडेकी (या रबरकी) कोथली बनाकर बाँध देवे। यह कोथली कसेले रंगसे लाल रंगी, बहुत नरम, चिकनी और दृढ होय तो हितकारी होती है ॥ ८५–९०॥

व्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितम्। मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनालिकापरीणाहि च ॥ ९१ ॥ शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः। कुरुते परिवृद्धिं च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥ ९२ ॥ दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते। ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥ ९३ ॥ न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वानुवासयेत्। मदं मूर्च्छां च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ ९४ ॥ (द्विधा भोजने वस्तौ च) रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्तं बलं वर्णं च हापयेत्। युक्तस्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वाऽनुवासयेत् ॥ ९५ ॥ (युक्तस्नेहं यथोचितस्नेहं भोज्यं भोजयित्वेत्यर्थः।)

व्रण (घाव) में पिचकारी लगानी हो तो नली आठ अंगुलकी और मूँगके समान छिद्रवाली तथा गीधके पंखके सदृश मोटी होनी चाहिये। भली भाँति वस्तिका सेवन करनेसे शरीर पुष्ट तथा वर्ण उत्तम होता है, बल बढता है, आरोग्यताकी प्राप्ति और आयुकी वृद्धि होती है। शीतकालमें और वसन्तऋतुमें स्नेहकी वस्ति दिनमें देनी उत्तम है और ग्रीष्मऋतुमें, वर्षाऋतुमें तथा शरदृतुमें स्नेहकी वस्ति रात्रिमें देनी उत्तम है। रोगीको अधिक घी अथवा तेलका भोजन कराकर अनुवासनवस्ति नहीं देवे, कारण कि—भोजनमें और पिचकारीमें ऐसे दो वार स्नेहका उपयोग होनेसे मद और मूर्च्छा उत्पन्न होती है। जिसने अत्यंत रूक्ष अन्न खाया हो उसको वस्ति देवे तो बल और वर्णका नाश होता है, इस कारण रोगीको यथायोग्य घीवाला अन्न खिलाकर पश्चात् वस्ति देवे ॥ ९१–९५ ॥

हीनमात्रावुभौ वस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ। अतिमात्रौ तथानाहक्लमातीसारकारकौ ॥९६॥ (उभौ वस्ती अनुवासननिरूहाख्यौ।) उत्तमा स्यात्पलैः षड्भिर्मध्यमा स्यात्पलैस्त्रिभिः। पलार्ध्यर्द्धेन हीनास्यादुक्तमात्रानुवासने॥९७॥ शताह्वासैन्धवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम्। तन्मात्रोत्तममध्यान्त्या षट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥ ९८ ॥ विरेचनात्सप्तरात्रे गते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जातबलाय च । भुक्तान्नायानुवास्याय वस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ ९९ ॥ अथानुवास्यं स्वभ्यक्तमुष्णाम्बुस्वेदितं शनैः । भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः । उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत्स्नेहवस्तिना ॥ १०० ॥ (उष्णाम्बुस्वेदितम्, उष्णाम्बुना स्नापितम् ।) सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजंघाप्रसारिणः । कुञ्चितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत् ॥ १०१ ॥ बद्धं वस्तिमुखं सूत्रैर्वामहस्तेन धारयेत् । पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः ॥ १०२ ॥ जृम्भाकासक्षयादींश्च वस्तिकाले न कारयेत् । त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीडने ॥ १०३ ॥ ततः प्रणिहिते स्नेहे उत्तानो वाक्छतं भवेत् । स्वजानुनः करावर्त्तं कुर्याच्छोटिकया पुनः ॥ १०४ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः । निमिषोन्मेषणं पुंसामंगुल्या छोटिकाथ वा ॥ १०५ ॥ गुर्वक्षरोच्चारणं वा स्यान्मात्रेयं स्मृता बुधः । प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथा वीर्यं प्रसर्पति ॥ १०६ ॥ (यथा वीर्यं स्नेहादि) ताडयेत्तलयोरेनं त्रींस्त्रीन्वाराञ्छनैः शनैः । स्फिजोश्चैव तथा श्रोणी शय्यां चैवोत्क्षिपेत्ततः ॥ १०७ ॥ स्फिजोश्चैनं स्वपाणिभ्यां पूर्ववत्ताडयेद्बुधः । शय्यां च पादतस्तस्य त्रीन्वारानुत्क्षिपेत्ततः । जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥ १०८ ॥

अनुवासन और निरूह नामक दोनों वस्ति जो अल्प मात्रासे दीजावे तो योग्य कार्य नहीं करतीं और अधिक मात्रासे दी जावे तौ अफरा, ग्लानि और अतीसारको उत्पन्न करे हैं । अनुवासन वस्तिमें स्नेहकी छः पलकी मात्रा उत्तम जाननी, तीन पलकी मात्रा मध्यम और डेढ पलकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । स्नेहमें सोंफका और सेंधे निमकका चूर्ण डाले, इस चूर्णकी मात्रा छः मासेकी उत्तम, चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ (हीन) मात्रा जाननी । रेचन (जुलाब) लेनेसे सात दिन व्यतीत होनेपर जिसके शरीरमें बल आगया हो ऐसे रोगीको भोजनके पश्चात् अनुवासन वस्ति देवे । रोगीको भली भांति धीरे धीरे तेल मलकर उष्णजलसे धीरे धीरे स्वेदित करके भोजन करावे और पश्चात् शास्त्रकी रीतिके अनुसार चारों ओर फिराकर मल, मूत्र तथा वायुका त्याग कराकर अनुवासनवस्ति देवे । रोगीको बाँई करवटसे सुलाकर बाँई जांघको फैला देवे और दहनी जाँघको सकोड लेवे, फिर गुदाको चिकनी करके पश्चात् उसमें नली रक्खे, फिर धीर बुद्धिवाला वैद्य डोरेसे बँधी हुई पिचकारीके मुखको वाम हाथसे पकडकर दायें हाथसे मध्यवेगसे दाब देवे, पिचकारी देनेके समयमें रोगीको जँभाई, खाँसना और छींकना आदि त्याग देना चाहिये । पिचकारीके दबानेका काल तीस मात्रातकका जाने । अपने घटुए पर हाथ फेरके एक चुटकी बजावे, अथवा नेत्र मीचकर खोले, अथवा एक गुरु अक्षर जैसे 'ए' का उच्चारण करे तौ उतने समयकी एक मात्रा होती है । शरीरमें स्नेह भली भाँति पहुँचनेके पीछे सौ मात्रातक अर्थात् जबतक सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण होय उस समयतक संपूर्ण शरीर चित्त करके सोवे कि जिससे सम्पूर्ण शरीरमें स्नेह फैल जाय । पश्चात् धीरे धीरे रोगीके पाँवोंके दोनों तलुओंमें वैद्य तीन तीन वार अपने हाथके तलुएसे ठोके ऐसेही दोनों कूले ठोके । पश्चात् उसकी शय्या उचकाकर अपने हाथसे पूर्ववत् तीन वार ठोके, फिर पाँवोंकी ओरकी शय्या उचकावे, इस प्रकार विधान होनेके पीछे रोगीको सुखसे निद्रा करावे ॥ ९६–१०८ ॥

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु । उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥ १०९ ॥ (उपद्रवस्थाने तुषचोषाविति सुश्रुते पाठः ।) जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः । लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ॥ ११० ॥ अनुवासिताय दातव्यमितरेऽह्नि सुखोदकम् । धान्यशुण्ठीकषायं वा स्नेहव्यापत्तिनाशम् ॥ १११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(सुखोदकमुष्णोदकम् । व्यापत्तिर्व्याधिः) अनेन विधिना षड् वा सप्त चाष्टौ नवापि वा । विधेया वस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥ ११२ ॥ दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवंक्षणौ । सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्द्धस्थमनिलं जयेत् ॥ ११३ ॥ बलं वर्णं च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः । चतुर्थपञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी ॥ ११४ ॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च । अष्टमो नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥ ११५ ॥ (यथाक्रममिति वचनात् अष्टमोऽस्थि स्नेहयेत् ।) एवं शुक्रगतान्दोषान्द्विगुणः साधु साधयेत् ॥ ११६ ॥ (अष्टादशदिवसावधिकः वस्तिः) अष्टादशाष्टादशकादिनाद्यो ना निषेवते । स कुञ्जरवलोऽश्वस्य जवतुल्योऽमरप्रभः ॥ ११७ ॥

जिस रोगीके विना उपद्रव पवनसहित और विष्ठासहित स्नेह (तेल) गुदामेंसे तुरन्त निकल जाय उसको भली भाँति अनुवासित हुआ जाने (मूलमें ' उपद्रवं विना ' इसके बदले सुश्रुतमें ' उषचोषौ विना ' यह पाठ है ।) स्नेह गुदामेंसे निकलनेके पश्चात् और खाये हुए अन्नके पच जानेपर रोगी जो प्रदीप्त अग्निवाला होय तौ उसको सायंकालमें हलका अन्न खानेको देवे । फिर दूसरे दिन जिसको अनुवासनवस्ति दी हो उसके स्नेहके विकारोंको नष्ट करनेके लिये उष्णजल पिलावे, अथवा धनियांका और सोंठका काढा पिलावे । इस प्रकार छः, सात, आठ अथवा नौ अनुवासनवस्ति देवे और सम्पूर्ण वस्ति देनेके पश्चात् अन्तमें निरूहणवस्ति देवे । पहिली वस्तिसे मूत्राशय और वंक्षण (पेडू) स्निग्ध (चिकना) होता है, दूसरी वस्तिसे मस्तककी वायु शांत होती है, तीसरी वस्तिसे बल ठीक होता है तथा वर्ण उत्तम होता है । चौथी और पाँचवीं वस्तिसे बल, रस तथा रुधिर स्निग्ध होता है, छठी वस्तिसे मांस स्निग्ध होता है, सातवीं वस्तिसे मेदा स्निग्ध होती है, आठवीं वस्तिसे हड्डियें स्निग्ध होती हैं और नौवीं वस्तिसे मज्जा स्निग्ध होती है, इस प्रकार अठारह वस्ति देनेसे वीर्यके सर्व दोष नष्ट होते हैं । जो पुरुष अठारह दिनतक अठारह वस्तियोंका सेवन करे वह पुरुष हाथीके सदृश बलवान्, घोडेके सदृश वेगवाला और देवताओंके सदृश कान्तियुक्त होता है ॥ १०९ ॥ ११७ ॥

रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिं दिनेदिने । दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामभ्यावाधभयात्त्र्यहात् । स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः ॥ ११८ ॥ (अनत्ययः अबाधः) तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते । अथ वा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः । तस्याऽप्यल्पतरो देयो न हि स्निग्धेऽवतिष्ठते ॥ ११९ ॥ (अवतिष्ठते दत्तः स्नेह इति शेषः) अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः । तदांगसदनाध्माने शूलं श्वासश्च जायते ॥ १२० ॥ पक्वाशये गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् । तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधैर्युक्तं फलवर्तिमथापि वा ॥ १२१ ॥ यथानुलोमनो वायुर्मलः स्नेहश्च जायते । तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ॥ १२२ ॥ यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहवर्तिरनिःसृतः । सर्वोऽल्पो व्यावृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः स विजानता ॥ १२३ ॥ अनायातं त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् । स्नेहवस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥ १२४ ॥ गुडूच्येरण्डपूतीकभार्ङ्गीवृषकरौहिषम् । शतावरीं सहचरं काकनासां पलोन्मिताम् ॥ १२५ ॥ यवमाषातसीकोलकुलत्थान्प्रसृतोन्मितान् । चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ॥ १२६ ॥ पचेत्तैलाढकं सर्वैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः । अनुवासनमेताद्धि सर्ववातविकारनुत् ॥ १२७ ॥ (पूतीकः करञ्जः । रौहिषम् ईषत्सुगन्धतृणविशेषः । काकनासा कौआठोडी । प्रसृतम् पलद्वयम्) षोढा सप्त व्यापदस्तु जायन्ते वस्तिकर्मणः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूषितात्समुदायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ॥ १२८ ॥ (समुदायेन समुचितनेत्रादिसामग्र्या) पानाहारविहाराश्च परिहाराश्च कृत्स्नशः । स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥ १२९ ॥

जो मनुष्य रूक्ष और अधिक वातवाला हो उसको वैद्य नित्य वस्ति देवे और शेष मनुष्योंको अग्निके बाधके भयसे तीन दिनके अनंतर वस्ति देवे। रूक्ष शरीरवाले मनुष्योंको अल्प मात्राकी अनुवासनवस्ति देवे तौ अधिक कालतक गुण नहीं करती, स्निग्ध मनुष्योंको अल्प मात्राकी निरूहवस्ति देवे तौ वह अनुकूल होती है। अथवा जिस मनुष्यको वस्ति देनेके पीछे तुरन्त ही केवल स्नेह निकल जाय उसको भी बहुत थोडी मात्राकी वस्ति देवे, क्योंकि स्निग्ध (चिकने) शरीरमें डाला हुआ स्नेह (तेल) स्थिर नहीं रहता। भली भाँति शुद्धि न होनेसे मनुष्यका जो विष्ठासहित स्नेह है वह पीछे नहीं निकले तो अंग शिथिल हो जाता है, पेट अफर जाता है, दर्द होता है, श्वास और पक्वाशयमें गुरुता होती है; इस प्रकार हुआ हो तौ तीक्ष्ण औषधियोंवाली तीक्ष्ण निरूहवस्ति देवे, अथवा वस्त्रादिककी मोटी बत्ती बनाकर उसमें औषधि डालकर गुदामें प्रवेश करे कि जिससे वायु अनुलोम होय और विष्ठासहित स्नेह बाहर निकले, ऐसे मनुष्यको विरेचन देना भी उत्तम है और तीक्ष्ण नस्य देना भी उत्तम है। अनुवासनवस्ति शरीरमेंसे बाहर निकलनेपर जिस मनुष्यको कुछ उपद्रव न करे वह मनुष्य रूक्ष होनेसे उसके शरीरमें सम्पूर्ण स्नेह काममें आ गया, यह समझ चतुर वैद्य उसकी उपेक्षा करे; अर्थात् उस स्नेहको बाहर निकालनेका यत्न नहीं करे। स्नेह एक रात्रि दिनतक बाहर न निकले तौ उसको शोधनके उपायसे बाहर निकाले, परन्तु उसको निकालनेके लिये दूसरी बार स्नेहकी वस्ति नहीं देवे। गिलोय, अण्ड, करंज, भारङ्गी, अडूसा, रोहिषतृण (सौंधियातृण), सतावर, कटसरैया और कौआठोडी इन सबको चार चार तोले लेकर और जौ, उरद, अलसी, बेरकी गुठली, तथा कुलथी इन औषधियोंको आठ आठ तोले लेवे, फिर सबको चार द्रोण जलमें पकावे, जब एक द्रोण शेष रहे तब उसमें चार चार तोले सब जीवनीय गणकी औषधियोंके साथ एक आढक तेल पकावे। इस प्रकार पकाये हुए तेलका उपयोग करे तौ वातसम्बन्धी सर्व विकार नष्ट होते हैं, यह अनुवासन तेल कहाता है। वस्तिक्रियामें कुछ विपरीतता हो जाय तौ बयालीस प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। जो ये रोग उत्पन्न होंय तौ सुश्रुतके कहे अनुसार नली आदि सामग्रियोंसे उसकी चिकित्सा करे। इस क्रियामें पान, आहार, विहार और सम्पूर्ण निषेध स्नेहपानकी रीतिके अनुसार पाले, इस कार्यमें संशय न करे ॥ ११८-१२९ ॥

अथ निरुहवस्तिविधिः ।

निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः । तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः ॥ १३० ॥ (कारणान्तरैः समवायिकारणभेदैः) निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः । स्वस्थाने स्वापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥ १३१ ॥ निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थं पादोत्तरं परम् । मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनं च कुडवास्त्रयः ॥ १३२ ॥ (परं श्रेष्ठम्) अतिस्निग्धोऽक्लिष्टदोषः क्षतक्षीणः कृशस्तथा ॥ १३३ ॥ (अक्लिष्टदोषः अदत्तोत्क्लेशन इति यावत् । क्षतक्षीणः उरःक्षतवान्) आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः । गुदशोफातिसारार्तो विषूचीकुष्ठसंयुतः ॥ १३४ ॥ गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी । वातव्याधावुदावर्ते वातासृग्विषमज्वरे ॥ १३५ ॥ मूर्च्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च । वृद्धचसृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेषु निरूहणम् ॥ १३६ ॥ शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः । उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजनम् ॥ १३७ ॥ मध्याह्ने गृहमध्ये च यथा योग्यं निरूहयेत् । (स्निग्धम् स्वभ्यक्तम् । स्विन्नम् उष्णाम्बुस्नापितम्) स्नेहवस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम् । जाते निरूहे च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततो भवेदुत्कटकासनः ॥ १३८ ॥ तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रं तु निरूहागमनेच्छया । (अत्र मुहूर्त्तमात्रशब्देनैतदपि बाधितम् । निरूहप्रत्यागमनकालको मुहूर्त्तमात्रः) अनायातं मुहूर्तं तु निरूहं शोधनैर्हरेत् । निरूहैरेव मतिमान्क्षारमूत्राम्लसैन्धवैः ॥ १३९ ॥ यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः । लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत् ॥ १४० ॥ यस्य स्याद्वस्तिरल्पाल्पवेगो हीनमलानिलः । मूर्च्छार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूहं तमादिशेत् ॥ १४१ ॥

अलग अलग औषधियोंके दिलानेसे निरूहवस्तिके अनेक भेद होते हैं और ये भेद होनेसेही महात्मा मुनियोंने उन वस्तियोंके पृथक् पृथक् नाम कहे हैं। पंडितोंने निरूहवस्तिका दूसरा नाम आस्थापन कहा है, कारण कि इससे दोषोंकी और धातुओंकी अपने अपने स्थानमें स्थिति होती है। निरूहवस्तिकी सवा प्रस्थकी मात्रा उत्तम जाननी, एक प्रस्थकी मात्रा मध्यम जाननी और तीन कुडव (तीन पाव) की मात्रा निकृष्ट जाननी। अत्यन्त स्निग्ध शरीरवाला जिसके दोषोंको पकाकर उन्हें स्थानोंसे न निकाले हो उसको, उरःक्षतरोगी, कृश, अफरायुक्त, वमन, हिचकी, बवासीर, खांसी, श्वास, गुदाके रोग, सूजन, अतीसार, विषूचिका (हैजा) और कोढ, इन रोगोंसे पीडित तथा गर्भवती स्त्री, मधुमेहवाला और जलोदररोगी, इन सबको निरूहवस्ति नहीं देवे; वातसम्बन्धी रोग, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, तृषा, उदररोग, अफरा, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, अण्डवृद्धि, रक्तप्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और हृदयरोग इनसे पीडितोंको विद्वान् वैद्य विधिपूर्वक निरूहणवस्ति देवे। मल, मूत्र तथा अधोवायुके वेगोंका जो त्यागन कर चुका हो, भूँखा, उष्णजलसे स्वेदित और तैलादिकका जिसने मालिश किया हो, ऐसे रोगीको विद्वान् वैद्य मध्याह्नके समयमें घरके भीतर पहिलेकी अनुसार यथायोग्य निरूहवस्ति देवे। निरूहवस्ति देनेके पीछे उस पिचकारीको गुदद्वारसे बाहर निकाले और दो घडीतक रोगी उकरू बैठा रहे। दो घडीके भीतर निरूहवस्ति बाहर निकलती है। जो दो घडीमें निरूहवस्तिका द्रव्य बाहर नहीं निकले तो जवाखार, गोमूत्र, नींबूका रस और सेंधानिमक इनकी पिचकारी मारनेरूप शोधनके उपायसे उस निरूहवस्तिके तैलको बाहर निकाले। जिस मनुष्यके क्रमानुसार मल, पित्त, कफ और वात निकले और शरीरमें लघुता हो तो उस मनुष्यके निरूहवस्ति उत्तम लगी हुई जाने। जिस मनुष्यके अल्पवेगसे पिचकारी बाहर निकले, मल तथा पवन अल्प अल्प निकले, मूर्च्छा, पीडा, जडता और अरुचि हो उसको निरूहवस्ति भली भांति नहीं लगी हुई जानना ॥ १३०–१४१ ॥

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः। आस्थापने स्नेहवस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ॥१४२॥ (विविक्तता दत्तौषधनिःसरणम्) अनेन विधिना युंज्यान्निरूहं वस्तिदानवित् । द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् ॥ १४३ ॥ सस्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह । कषायकटुमूत्राद्याः कफे तृष्णास्त्रयो हिताः ॥ १४४ ॥ पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात् । निरूढं भोजयित्वा च ततस्तमनुवासयेत् ॥ १४५ ॥ सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः । वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ॥ १४६ ॥ दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः । पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्वस्तिं विचक्षणः ॥ १४७ ॥

दी हुई औषधि निकल जाय, मनमें प्रसन्नता हो, स्निग्धता हो और व्याधिनिग्रह (रोगोंका घटना हो) यह स्नेहवस्ति तथा निरूहवस्ति भली भांति देनेके लक्षण हैं। वस्ति देनेमें यथार्थ चतुर वैद्य इस प्रकारसे निरूहवस्ति देवे। योग्य लगे तो यह वस्ति दूसरी वार तीसरी वार और चौथी वार भी देवे। वायुरोग होय तो स्नेहवाली एक निरूहवस्ति देवे, पित्तका रोग होय तो दूधवाली दो निरूहवस्ति देवे और कफरोग होय तो कसैले, चरपरे और गोमूत्र आदि पदार्थोंको गरम करके इनकी तीन निरूहवस्ति देवे। जो मनुष्य पित्त, कफ और वायुसे घिरा हुआ हो उसको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुक्रमसे दूधकी, मूँगके रसकी और मांसके रसकी वस्ति देवे । जिसको निरूहवस्ति दी हो उस मनुष्यको भोजनके पश्चात् अनुवासनवस्ति देवे । सुकुमार शरीरवालेको, वृद्धको और बालकको कोमलवस्ति हितकारक है, जो इनको तीक्ष्ण वस्ति दी जाय तो इनके बलका और आयुका नाश होता है । विद्वान् वैद्य प्रथम उत्क्लेशनवस्ति देवे, पश्चात् दोषरहित वस्ति देवे और तदनन्तर संशमनीय वस्ति देवे ॥ १४२–१४७ ॥

अथोत्क्लेशनवस्तिः ।

एरण्डबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा । हपुषाफलकल्कश्च वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥ १४८ ॥

अण्डीके बीज, महुएकी छाल, पीपल, सेंधानोन, वच और पलाशीके फलका कल्क इनकी वस्ति देनेको उत्क्लेशन वस्ति कहते हैं कि, जिससे दोष पककर अपने अपने स्थानोंसे छूटकर अलग हो जाते हैं ॥ १४८ ॥

अथ दोषहरवस्तिः ।

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च । सकाञ्जिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ १४९ ॥

शतावर, महुआ, बेलगिरी, इन्द्रजौ और कांजी इनको गोमूत्रमें पीसकर उससे वस्ति देवे, उसको दोषहरवस्ति कहते हैं कि, जिससे वात आदिक दोषोंका नाश होता है ॥ १४९ ॥

अथ शमनवस्तिः ।

प्रियंगुर्मधुकं मुस्ता तथैव च रसाञ्जनम् । सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दोषाणां शमनः स्मृतः ॥ १५० ॥

फूलप्रियंगु (ककूंदनिके बीज), महुआ, नागरमोथा और रसोत इनको दूधमें पीसकर उससे वस्ति देवे, यह संशमनीयवस्ति कहाती है कि, जिससे दोषोंका शमन होता है ॥ १५० ॥

अथ लेखनवस्तिः ।

त्रिफलाक्काथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः । ऊषकादिप्रतीवापैर्वस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥ १५१ ॥

हरड, बहेडा और आमलेका क्काथ, गोमूत्र, शहत और जवाखार इनसे जो वस्ति देवे उसको लेखन बस्ति कहते हैं, ये बस्ति लेखन हैं ॥ १५१ ॥

अथ बृंहणवस्तिः ।

बृंहणद्रव्यनिष्क्काथैः कल्कैर्मधुरकैर्युताः । सर्पिर्मांसरसोपेता वस्तयो बृंहणाः स्मृताः ॥ १५२ ॥

धातुओंको बढानेवाले पदार्थोंका क्काथ, मधुर पदार्थोंका कल्क, घी और मांसके रससे जो वस्ति दी जाय वह बृंहणवस्ति कहाती है, इस वस्तिसे धातुओंकी वृद्धि होती है ॥ १५२ ॥

अथ पिच्छिलवस्तिः ।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीपुष्पजांकुराः १५३ ॥ (ऐरावती नारङ्गी । शेलुः बहुआर ।) क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलसंज्ञिताः । अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणैः ॥ १५४ ॥ (अजश्छागः । उरभ्रो मेषः । एणः कृष्णमृगः) । मात्रा पिच्छिलवस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता ॥ १५५ ॥

बेर, नारंगी, शेलु (निसोरे), शेमलके फूलोंके अंकुर इनको दूधमें पकाकर मधु डालकर बकरेके घोडेके तथा काले हिरणके रुधिरके साथ जो वस्ति दी जाय वह पिच्छिलवस्ति कहाती है, इस वस्तिसे शरीरमें पिच्छिलता होती है । पिच्छिलवस्तिकी मात्रा बारह पलकी जाननी ॥ १५३–१५५ ॥

अथ निरूहमात्राविधिः ।

दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुनः प्रसृतिद्वयम् । विनिर्मथ्य ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥ १५६ ॥ एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत् । सम्मूर्च्छिते कषायं तु चतुःप्रसृतिसम्मितम् ॥ १५७ ॥ गृह्णीयाच्च तदा वाल्पमन्ते द्विप्रसृतोन्मितम् । क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक् ॥ १५८ ॥ एवं प्रकल्पितो वस्तिर्द्वादशप्रसृतिर्भवेत् । वाते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्य षट्पलम् ॥ १५९ ॥ पित्ते चतुष्पलं क्षौद्रं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दद्यात्स्नेहं पलत्रयम् । कफे तु षट्पलं क्षौद्रं क्षिपेत्स्नेहं चतुष्पलम् ॥ १६० ॥

प्रथम एक तोला सेंधानोन लेकर सोलह तोले शहत डालकर खूब पीसे, पश्चात् उसमें चौबीस तोले स्नेह डालकर सबको मर्दन करके खूब मिला लेवे पश्चात् उसमें आठ तोले कल्क डालकर घोट लेवे, फिर बत्तीस तोले क्वाथ और तत्पश्चात् सोलह तोले योग्य चूर्ण डालकर सबको खूब मर्दन करे, फिर विद्वान् वैद्य उससे निरूहवस्ति देवे, इस प्रकार करी हुई वस्ति तोलमें बारह प्रसृति होती है । विशेष यह है कि वातकी अधिकता हो तो चार पल शहत और छः पल स्नेह डाले, पित्तकी अधिकता हो तो चार पल शहत और तीन पल स्नेह डाले और कफकी अधिकता हो तो छः पल शहत और चार पल स्नेह डाले ॥ १५६–१६० ॥

अथ मधुतैलकवस्तिः ।

एरण्डक्वाथतुल्यांशं मधुतैलं पलाष्टकम् । शतपुष्पापलार्द्धेन सैन्धवार्द्धेन संयुतम् । मधुतैलकसंज्ञोऽयं वस्तिर्दारुविलोडितः ॥ १६१ ॥ मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्त्तनाशनः । बलवर्णकरश्चैव वृष्यो दीपनबृंहणः ॥ १६२ ॥

आठ पल एरंडकी जडका क्वाथ करके उसमें चार पल शहत, चार पल तेल, आधी पल (दो तोले) सौंफ और आधा पल सेंधानिमक डालकर सबको रईसे बिलोवे (मथे) यह मधुतैलक वस्ति कहाती है । इस पिचकारीसे बलकी वृद्धि होती है, वर्ण उत्तम होता है, मैथुनकी शक्ति बढती है, अग्नि प्रदीप्त होती है, धातुकी पुष्टि होती है और मेद, गुल्म, प्लीहा, मल तथा उदावर्त्त इन सबका नाश होता है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

अथ यापनवस्तिः ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत् । हपुषासैन्धवाक्षांशो वस्तिः स्याद्यापनः परः ॥ १६३ ॥

शहत, घी, दूध और तेल इनको आठ आठ तोले लेकर उसमें एक तोला हाऊबेर और एक तोला सेंधानोन डालकर घोटे, इसकी जो पिचकारी करे उसको यापनवस्ति कहते हैं, यह वस्ति पाचन और दस्तावर है ॥ १६३ ॥

अथ युक्तरथवस्तिः ।

एरण्डमूलनिष्क्काथो मधुतैलं ससैन्धवम् । एष युक्तरथो वस्तिः सवचापिप्पलीफलः ॥ १६४ ॥

एरंडकी जडका क्वाथ करके उसमें शहत, तेल, सेंधानोन, वच और पीपल डाले तो वह पिचकारी युक्तिरथ वस्ति कहाती है ॥ १६४ ॥

अथ सिद्धवस्तिः ।

पञ्चमूलस्य निष्क्काथैस्तैलं मागधिका मधुः । ससैन्धवः सयष्ट्याह्वः सिद्धवस्तिरिति स्मृतः ॥ १६५ ॥ स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् । वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहवस्तिवत् ॥ १६६ ॥

पंचमूलके क्वाथमें तेल पीपल, सेंधानिमक तथा मुलहटी डालकर जो पिचकारी दी जाय वह सिद्धवस्ति कहाती है । वस्ति लेनेवाले मनुष्यको गरम जलसे स्नान करना, दिनमें सोना और अजीर्णकारक पदार्थ खाना, इन सबोंको छोड देना चाहिये और सब स्नेहवस्तिकी रीतिके अनुसार आचरण करे ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

अथोत्तरवस्तिविधिः ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् । निरूहादुत्तरो यस्मात्तस्मादुत्तरसंज्ञकः ॥ १६७ ॥ द्वादशांगुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् । मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥ १६८ ॥ पञ्चविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिकी । तदूर्ध्वं पलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः ॥ १६९ ॥ अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः । स्थितस्य जानुमात्रे च पिष्टे स्निग्धशलाकया ॥ १७० ॥ स्निग्धया मेढ्रमार्गे तु ततो नेत्रं नियोजयेत् । शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्रं रन्ध्रांगुलानि षट् ॥ १७१ ॥ ततोऽवपीडयेद्वस्तिं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शनैर्नेत्रं विनिर्हरेत् । ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः ॥ २७२ ॥

अब इसके उपरांत उत्तरवस्ति-लिंगमें अथवा योनिमें पिचकारी मारनेकी विधि कहता हूँ, यह वस्ति निरूहणवस्ति देनेके पश्चात् देनी चाहिये, इसी कारण इसको उत्तरवस्ति कहते हैं । मध्यमें गौके कानके समान कर्णिकावाली, मालतीके फूलकी डंडीके समान और सरसों जिस छिद्रमें निकल जाय इतने बडे छेदवाली ऐसी बारह अंगुलकी नली बनावे । पचीस वर्षसे हीन अवस्थावालेको इस वस्तिमें स्नेहकी दो तोलेकी मात्रा पचीस वर्षसे अधिक अवस्थावालोंको चार तोलेकी मात्रा देवे ऐसा उत्तम वैद्य कहते हैं । निरूहवस्तिसे शुद्ध हुए और स्नानसे तथा भोजनसे तृप्त हुए पुरुषको आसनपर उकरू बैठाकर उसके लिंगमें प्रथम जैसी चाहिये ऐसी चिकनी सलाई लेकर उसके मार्गको साफ करके पश्चात् घीसे भरी छः अंगुलकी नली धीरे २ लिंगके छिद्रमें डाले, पश्चात् वस्तिको दबाकर धीरेसे नली बाहर निकाल लेवे, बाहर निकालकर पश्चात् लिंगमेंसे स्नेह बाहर निकाले तब पूर्वोक्त कही हुई स्नेह वस्तिकी रीतिके अनुसार करे इस प्रकार करना हितकारी है ॥ १६७-१७२ ॥

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्यादशांगुलम् । मुद्गप्रवेशयोग्यं च योन्यन्तश्चतुरंगुलम् ॥ १७३ ॥ द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं वियोजयेत् । मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ॥ १७४ ॥ शनैर्निष्कम्पमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः ॥ मालतीपुष्पवृन्ताभं नेत्रमित्युदितं पुनः ॥ १७५ ॥ (सूक्ष्मशब्दाभिधानं बालानां ततोऽपि नेत्रस्य सूक्ष्मताबोधनार्थम् ।) योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी । मूत्रमार्गे पलोन्मानं बालानां च द्विकार्षिकी ॥ १७६ ॥ उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः । अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्तावुत्तरसंज्ञिते ॥ १७७ ॥ भूयो वस्तिं विदध्याच्च संयुक्तं शोधनैर्गुणैः । फलवर्त्तिं विदध्याद्वो योनिमार्गे दृढां भिषक् ॥ १७८ ॥ सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां शोधन द्रव्यसंयुताम् । दह्यमाने तथा वस्तौ दद्याद्वर्त्तिं विशारदः । क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन वा ॥ १७९ ॥ (दह्यमाने वस्तौ, यस्मिन् स्थाने वस्तिर्दत्तस्तस्मिन् दह्यमाने ।) वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्त्तवजा रुजः । हन्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचितो मेहिने क्वचित् ॥ १८० ॥ सम्यग्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रम एव च । वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानाः स्नेहवस्तिना ॥ १८१ ॥

स्त्रियोंके अंगमें उत्तरवस्तिकी क्रिया करनी हो तो कनिष्ठ अंगुलीके सदृश मोटी और जिसमें मूँग निकल जाय इतने छेदवाली दश अंगुलकी सूक्ष्म नली बनवावे, यह नली गर्भाशयमें चार अंगुल डाले और मूत्रके मार्गमें डालनी होय तो दो अंगुल डाले । बालकोंको मूत्रकृच्छ्रका विकार हुआ हो तो इससे भी अधिक सूक्ष्म नली बनवाकर हाथको कांपनेसे रोककर धीरे धीरे लिंगके भीतर एक अंगुल डाले, यह नली मालतीके फूलकी डंडीके सदृश चाहिये ऐसा ऊपर कह आये हैं । स्त्रियोंके गर्भाशयमें स्नेहकी आठ तोलेकी मात्रा करे और मूत्रके मार्गमें चार तोलेकी मात्रा करे, बालकोंके लिंगमें दो तोलेकी मात्रा करे । विद्वान् वैद्य स्त्रीको सीधी (चित्त) सुलाकर घुटने ऊपरको करके पिचकारी मारे । यह उत्तरवस्ति बाहर न निकले तो वैद्य शोधनगुणवाली दूसरी पिचकारी मारे, अथवा योनिके मार्गमें सूतसे बनी चिकनी और शोधनपदार्थोंको संयुक्त करके दृढ फलवर्त्ती प्रवेश करे । जिस स्थानमें पिचकारी मारी हो उसी स्थानमें दाह होय तो चतुर वैद्य दूधवाले वृक्षोंके क्वाथसे अथवा शीतल जलसे दूसरी पिचकारी मारे । यह उत्तरवस्ति पुरुषोंके वीर्यके दोषों (रोगों) को और स्त्रियोंके ऋतुसंबंधी दोषोंको नष्ट करती है । प्रमेह रोगवालोंको कदापि उत्तरवस्तिकी क्रिया नहीं करे, उत्तरवस्ति भली भाँति होनेके लक्षण, भली भाँति न देनेसे हुई पीडा और अन्य समस्त अनुक्रम स्नेहकी वास्तिके सदृशही जानने ॥ १७३-१८१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फलवर्त्तिविधिः।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षिप्ता श्लक्ष्णा स्वांगुष्ठसन्निभा। मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता॥ १८२॥

मल निकलनेके लिये गुदामें घी चुपडकर रोगीके अँगूठेके सदृश मोटी और चिकनी वत्ती प्रवेश करे, उसको वैद्य लोग फलवर्त्ति कहते हैं॥ १८२॥

नस्यग्रहणविधिः।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम्। नावनं नस्यकर्मेति तस्य नाम द्वयं मतम्॥ १८३॥ (नस्यकर्म नासिकायां कर्म चिकित्सा येन तत् नस्यकर्म।) **नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा। रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम्॥ १८४॥ कफपित्तानिलध्वंसि पूर्वमध्यापराह्णके। दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे॥ १८५॥** (दिनस्य त्रिधा विभक्तस्य पूर्वभागादौ) **नस्यं त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पितः। तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी ज्वरदूषितः॥ १८६॥ अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पीतस्नेहोदकासवः। क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्त्तो वृद्धबालकौ। वेगावरोधी श्रान्तश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत्॥ १८७॥** (नस्यमिति शेषः) **अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत्। अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते॥ १८८॥**

नाकसे ग्रहण करनेकी जो औषधि हो उसको विद्वान् नस्य कहते हैं, इसके नावन और नस्यकर्म ये दो नाम हैं। जिससे नाककी चिकित्सा होती है, इस कारण उसको नस्यकर्म कहते हैं। रेचन और स्नेहन ये नस्यके दो भेद हैं। जिस नस्यसे भीतरके पदार्थोंकी हीनता हो वह रेचन कहाता है और जिस नस्यसे भीतरके पदार्थोंकी वृद्धि करी जाय वह स्नेहन कहाता है। कफ नष्ट करना हो तो पूर्वाह्ण (प्रातःकालके) समयमें नस्य देवे, पित्तका नाश करना होय तो मध्याह्न समयमें नस्य देवे और वातको नष्ट करना हो तो अपराह्ण समयमें नस्य देवे, जो रोग भयंकर होय तो रात्रिमें भी नस्य देवे। भोजनके पश्चात्, तत्काल मेघोंसे छाये हुए दिनमें (अर्थात् जिस दिन बद्दल होय), लंघन करके, नवीन प्रतिश्याय (जुकाम) रोगमें, गर्भिणी स्त्रीको, ज्वरसे दूषित हुएको, अजीर्णमें जिसको वस्ति दी हो उसको, जिसने स्नेह जल अथवा आसव तुरत पिया हो उसको, क्रोध हो तब, शोकाकुलको, प्यासा, वृद्ध, बालक, मलमूत्रका वेग रोकनेवाला, परिश्रमी और जिसको स्नान करनेकी इच्छा हो, इन सबको नस्य देना वर्जित है। बालक जबतक आठ वर्षका न हो तबतक उसको नस्य नहीं देवे और अस्सी वर्षसे ऊपरके वृद्धको भी नस्य नहीं देवे॥ १८३–१८८॥

रेचननस्यविधानम्।

अथ वै रेचनं नस्यं ग्राह्यं तैले सुतीक्ष्णके। तीक्ष्णं भेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथै रसैस्तथा॥ १८९॥

तीक्ष्ण तैलोंसे अथवा तीक्ष्ण औषधियोंमें पकाये हुए स्नेहोंसे अर्थात् तैलोंसे क्वाथोंसे वा रसोंसे रेचन नस्य देवे॥ १८९॥

रेचननस्यविधिः।

नासिकारन्ध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च बिन्दवः। प्रत्येकं रेचनं योग्यं मुख्यमध्याल्पमात्रया॥ १९०॥

नासिकाके दोनों छिद्रोंमें रेचन नस्य देवे, प्रत्येक छिद्रमें आठ आठ बूँदें डाले यह उत्तम मात्रा है, छः छः बूँदें डाले यह मध्यम मात्रा है और चार चार बूँदें डाले यह कनिष्ठ मात्रा है॥ १९०॥

नस्यौषधप्रमाणम्।

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम्। हिंगु स्याद्यवमात्रं तु माषैकं सैन्धवं मतम्॥ १९१॥ क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयं च त्रिकार्षिकम्। कार्षिकं मधुरद्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत्॥ १९२॥

नस्यकर्ममें तीक्ष्ण औषधि आधा तोला लेवे, हींग एक जौभर लेवे, सेंधा निमक एक मासा लेवे, दूध आठ शाण लेवे, पानी तीन तोले लेवे और मधुर द्रव्य एक तोलेभर लेवे॥ १९१॥ १९२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रेचननस्यस्य द्वौ भेदौ ।

अवपीडः प्रधमनो द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ । शिरोविरेचनस्यार्थे तौ तु देयौ यथायथम् ॥ १९३ ॥

रेचन नस्यके अवपीड और प्रधमन इन नामवाले और दो भेद हैं । नस्य देकर मस्तकको खाली करना हो तो योग्य रीतिसे इन दोनों भेदोंका उपयोग करे ॥ १९३ ॥

नस्यभेदद्वयलक्षणम् ।

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः । सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ १९४ ॥ षडंगुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तया धमेत् । तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हितम् ॥ १९५ ॥

जिसके साथ तीक्ष्ण पदार्थ मिले हों ऐसी औषधिका कल्क करके उसको निचोडकर जो रस निकले वह अवपीड कहाता है । छः अंगुलकी दो मुखवाली नलीमें आधा तोला तीक्ष्ण चूर्ण भरकर मुखसे फूंककर उस चूर्णको नाकमें चढा देवे उसको प्रधमन कहते हैं ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

रेचनस्नेहननस्यस्योपयोगः ।

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये । अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे ॥ १९६ ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वै रेचनं हितम् । भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन शस्यते ॥ १९७ ॥ गलरोगे सान्निपाते निद्रायां विषमज्वरे । मनोविकारे कृमिषु पूज्यते चावपीडनम् ॥ १९८ ॥ अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते । चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ १९९ ॥

ऊर्ध्वजत्रुगत अर्थात् हंसलीके ऊपरके रोगोंमें, कफसे उत्पन्न हुए रोगोंमें, स्वरके क्षयमें, अरुचिमें, जुकाममें, शिरके दर्दमें, पीनसमें, सूजन, मृगी तथा कोढमें, रेचन नस्य देना हितकारी है । डरे हुएको, स्त्रियोंको, कृश मनुष्योंको और बालकोंको स्नेहन नस्य देना उत्तम है । गलेके रोगमें, सन्निपातमें, निद्रामें, विषमज्वरमें, मनके विकारोंमें (अपस्मारादिकोंमें) और कृमिरोगमें अवपीडन नस्य देना योग्य है । अत्यन्त कुपित हुए दोषोंमें और जिनमें ज्ञान नष्ट हो जाय ऐसे रोगोंमें धीर वैद्योंको चूर्णका प्रधमन नस्य देना योग्य है, कारण वह अत्यंत तीक्ष्ण है ॥ १९६–१९९ ॥

रेचननस्यौषधिगुणौ ।

नस्यं स्याद्गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पलीसैन्धवेन वा । जलपिष्टेन कर्णाक्षिनासामूर्द्धभवा गदाः ॥ २०० ॥ मन्याहनुगलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः । मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैन्धवैः ॥ २०१ ॥ नस्यं कोष्णाम्भसा पिष्टं दद्यात्संज्ञप्रबोधनम् । अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेऽपतन्त्रके ॥ २०२ ॥

सोंठके चूर्णका तथा गुडको एकत्र करके अथवा पीपल तथा सेंधेको पानीमें पीसकर उससे नस्य देवे तो कानके, नेत्रोंके, नाकके, मस्तकके, गरदनके, ठोडीके, बाहुओंके और पीठके रोग नष्ट होते हैं । महुएका सत, पीपल, वच, मिरच और सेंधा इनको थोडे थोडे उष्ण जलमें पीसकर उससे नस्य देवे तो मृगी, उन्माद, सन्निपात और अपतंत्रक वात इनकी असंज्ञाका नाश होता है ॥ २००–२०२ ॥

रेचननस्यापरविधिः ।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च । बस्तमूत्रेण संपिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ २०३ ॥ (श्वेतमरिचम् सहिंजनेका बीज)

सेंधानोन, सहिंजनके बीज, सरसों और कूठ इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर इससे नस्य देवे तो तन्द्रा नष्ट होती है ॥ २०३ ॥

प्रधमननस्यौषधिः ।

रोहितस्य च पित्तेन भावितं मरिचं वचा । कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः ॥ २०४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिरच, वच और कायफल इनका चूर्ण करके रोहेडा (रोहू) मछलीके पित्तकी भावना देकर नलीसे प्रधमन नस्य देवे ॥ २०४ ॥

बृंहणस्नेहननस्यकल्पना ।

अथ बृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना । मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ २०५ ॥ मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताऽष्टभिः । मध्यमा तु चतुःशाणैर्हीना शाणमिता मता ॥ २०६ ॥ एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः । मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम् । एकान्तरं द्व्यन्तरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ २०७ ॥ (एकान्तरम् एकं दिनमन्तरं नस्यशून्यम् यत्र तत्र एकान्तरम्) त्र्यहं पञ्चाहमथ वा सप्ताहं वा सुयन्त्रितः ॥ २०८ ॥ (अथ वा त्र्यहम् त्रीण्यहानि यावत् प्रतिदिनम् । एवं पञ्चाहं सप्ताहम् । सुयन्त्रितः सावधानः । यथा छिक्का न भवति) मर्शे शिरोविरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः । दोषोत्क्लेशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् । दोषोत्क्लेशनिमित्तासु युंज्याद्वमनशोधनम् ॥ २०९ ॥ (वमनरूपं शोधनम्) अथ क्षयनिमित्तासु यथास्वं बृंहणं हितम् । शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्त्तार्द्धभेदके ॥ २१० ॥ दन्तरोगेऽबले हीने मन्याबाह्वंशजे गदे । मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा ॥ २११ ॥ अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने । पूज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ॥ २१२ ॥

अब बृंहण नस्यकी कल्पना (विधि) कहते हैं । इसके मर्श और प्रतिमर्श इस भाँति दो भेद हैं । तर्जनी अंगुलीसे गिरी हुई आठ बूँदोंकी जो मात्रा हो वह शाण कहाती है, इस शाणसे जो स्नेहनस्य दिया जावे वह मर्श कहाता है । आठ आठ शाणकी मात्रा एक एक नथनेमें डाली जाय वह मर्शकी उत्तम मात्रा जाननी, चार शाणकी मात्रा एक एक नथनेमें डाली जाय तौ मर्शकी मध्यम मात्रा जाननी । और एक शाणकी मात्रा एक एक नथनेमें डाली जाय वह मर्शकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । (जो एक एक नाकमें दो दो बूँदेंही डाली जायँ वह प्रतिमर्श कहाती है ।) विद्वान् वैद्य दोषका बलाबल देखकर एक दिनमें दो तीन वार अथवा एक दिनके अंतरसे वा दो दिनके अंतरसे मर्श नस्यका उपयोग करावे । अथवा तीन, पाँच अथवा सात दिनतक बराबर नस्यका उपयोग करावे, परन्तु उसमें रोगीको छींकना आदि न होय ऐसी सावधानतासे रक्खे । मर्श नस्य देनेके समयमें स्थानसे भ्रष्ट हुए दोष कुपित हुए हों तो उससे और मस्तकके खाली करनेका रेचन नस्य देनेसे, मेद आदिका क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी व्याधियें उत्पन्न होती है । जो दोषके कोपसे रोग उत्पन्न होयँ तो वमनरूप शोधनका उपयोग करे । और मेद आदिके क्षयसे रोग उत्पन्न होय तौ फिर स्नेहका उपयोग करे । मस्तकरोग, नासिकाके रोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्तरोग, आधाशीशी, दन्तरोग, बलका क्षय, गर्दन, भुजा, कंधा इनके रोगोंमें, मुखशोष, कर्णनाद, वातपित्तसंबंधी विकार, विना समय बालोंका श्वेत हो जाना, जिसमें डाढी, मूँछ बिलकुल गिर पडें ऐसा (उंदरी नामक रोग) इनमें स्नेहोंसे अथवा मधुर पदार्थोंके रससे स्नेहन नस्य देना योग्य है ॥ २०५ ॥ २१२ ॥

बृंहणस्नेहननस्ययोर्विधिः ।

सशर्करं पयःपिष्टं भृष्टमाज्येन कुंकुमम् । नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवा रुजः ॥ २१३ ॥ भूशङ्खाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्द्धभेदकान् । नस्यं स्यादणुतैलेन तथा नारायणेन वा । माषादिना वा सर्पिर्भिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ २१४ ॥ अणुतैलमुक्तं सुश्रुतेन । तद्यथा—" तिलपरिपीडनोपकरणकाष्ठानि आहृत्य यैरनल्पकालं तिलाः परिपीडितास्तानि अणूनि खण्डशः कल्पयित्वा उलूखले संकुट्य कटाहे पानीयेन आप्लाव्य क्वाथयेत् ततस्तैलं निःसरति तत्तैलं हस्तेन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जलाग्निःसार्यं वातघ्नौषधकल्केन पचेत् । तत् अणुतैलमिति तद्वातरोगहरम् । "

शर्कराखंड सहित दूधमें घृतसे सिकी हुई केशरको पीसकर नस्य देवे तो वातरक्तसे हुई पीडा नष्ट होती है, तिसी प्रकार भौंह, कपाल, नेत्र, मस्तक तथा कानके रोग, सूर्यावर्त्त और आधाशीशी ये भी नस्यसे नष्ट होते हैं । अथवा अणुतेल, नारायणतेल, माषादितेल, अथवा उन्हीं उन्हीं योग्य औषधियोंसे पकाये हुए घीसे भी स्नेहन नस्य देवे । " अणुतेल बनानेकी विधि सुश्रुतमें इस भाँति कही है कि–तेल पिलनेके कोल्हूकी लकडी कि जिससे अधिक कालतक तेल पिला हो उसको लाकर उसके सूक्ष्म सूक्ष्म काटकर टुकडे करके ओखलीमें कूट लेवे और पानीसे भरी कढाईमें डालकर नीचे अग्नि वाले, जब उसमेंसे तेल निकले उस तेलको हथेलीसें निकाल लेवे, फिर वातनाशक औषधिके कल्कसे पकावे, इसको अणुतेल कहते हैं, यह तेल वातसंबंधी रोगोंको नष्ट करे है " ॥ २१३ ॥ २१४ ॥

नस्यस्यान्यो विधिः ।

तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने तथा । दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥ २१५ ॥ माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरौहिषैः । कृतोऽश्वगन्धया क्काथो हिंगुसैन्धवसंयुतः ॥ २१६ ॥ कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकम्पनम् । जयेदर्दितवातं च मन्यास्तम्भापबाहुकौ ॥ २१७ ॥ प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विस्राबिन्दुमिता मता । प्रत्येकशो नासिकया स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥ २१८ ॥ स्नेहे ग्रन्थिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः । तर्जनी यं स्रवेद्बिन्दुं सा मात्रा बिन्दुसंज्ञिता ॥ २१९ ॥ एवंविधैर्बिन्दुसंज्ञैरष्टाभिः शाण उच्यते । स देयो मर्शनस्येषु प्रतिमर्शो द्विबिन्दुकः ॥ २२० ॥ समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश । प्रभाते दन्तकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥ २२१ ॥ व्यायामाध्वव्यवायान्ते विण्मूत्रान्तेऽञ्जने कृते । कवलान्ते भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥ २२२ ॥ वमनान्ते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते । ईषदुच्छिक्कनात्स्नेहो यथा वक्त्रं प्रपद्यते । नस्ये निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥ २२३ ॥ (मात्रायुक्तम् ।) उच्छिष्टं न पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ २२४ ॥ (उच्छिष्टम् नस्यावशिष्टम् ।)

कफवातरोगमें और केवल वातमें तैलका नस्य देवे, पित्तरोग हो तो सर्वदा घीका और मज्जा नाम चरबीका नस्य देवे । उडद, कौंचके बीज, रायसन, एरंडकी जड, बला, रोहिषतृण और असगंध इनका क्काथ करके उसमें हींग तथा सेंधानोन डालकर किंचित् उष्ण करके क्काथका नस्य देवे तो कंपसहित पक्षाघात (अर्द्धांग), अर्दितवात (लकवा), गरदनका रह जाना और भुजाओंका रह जाना इन सब रोगोंको नष्ट करे है । नाकके प्रत्येक नथनेमें स्नेहकी दो तीन बूंदें डाले तो इसको प्रतिमर्श नस्य कहत हैं । तर्जनी अंगुलीको स्नेहमें दो पोरुएतक डुबोकर निकाल लेवे उस अंगुलीमेंसे जो बूंदें टपकें वह बिन्दुरूप मात्रा कहाती है । इसी कारण आठ बिन्दुओंसे शाण नामक मात्रा होती है कि, जो मर्शनामक नस्यमें उपयोगी है । प्रतिमर्श नामक नस्यमें ऐसी दो बूंदोंका उपयोग करनेमें आता है । शाणरूप मात्रासे जो नस्य दिया जाय वह मर्श कहाता है और दो दो बूँदें जिस नस्यमें दी जायँ वह प्रतिमर्श कहाता है । विद्वानोंको प्रतिमर्श नस्य देनेके चौदह समय जानने । प्रभातसमय १ दतौनके पश्चात् २ घरसे बाहर निकलते समय ३ व्यायाम (कसरत) करनेके पछि ४ मार्ग चलकर आनेके पश्चात् ५ मैथुनके पीछे ६ मल त्यागनेके पश्चात् ७ मूत्रके पीछे ८ अंजन लगानेके पीछे ९ कवल खानेके पश्चात् १० भोजनके पश्चात् ११ दिनमें सोनेके पीछे १२ वमन करनेके पश्चात् १३ और सायंकालमें १४ प्रतिमर्श नस्य दिया जाता है । किञ्चित् छींक आनेपर नाकमें डाला हुआ पदार्थ यदि मुखमें आ जाय तब जानना कि प्रतिमर्शकी जैसी मात्रा चाहिये वैसी हो चुकी है, नाकमेंसे मुखमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आये हुए पदार्थको पिये नहीं वरन् तुरन्त थूक देवे ॥ २१५–२२४ ॥

प्रतिमर्शनस्यविषयः ।

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्त्ते बाले वृद्धे च पूज्यते । प्रतिमर्शान्न जायन्ते रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥ २२५ ॥ वलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत् । बिभीतं निंबगम्भारी शिवा शैलुश्च काकिनी ॥ २२६ ॥ एकैकतैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥ २२७ ॥

क्षीण, तृषासे व्याकुल, मुख तथा शोषरोगी और वृद्धको प्रतिमर्श नस्य हितकारी है । प्रतिमर्शका उपयोग करनेसे हँसलीके ऊपर भागमें रोग उत्पन्न नहीं होते, वली (देहमें सिकुरे पड जाना) तथा पलितका नाश होता है और इन्द्रियोंकी शक्ति उत्तम होती है । बहेडा, नीम, कंभारी, हरड, निसोरे और मालकांगनी इनमेंसे एक पदार्थके तेलका नस्य लेनेका अभ्यास करे तो अवश्य पलित (विना समय बालोंका श्वेत हो जाना) नष्ट होता है ॥ २२५–२२७ ॥

नस्यसामान्यविधिः ।

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे । देशे वातरजोमुक्ते कृतदन्तनिघर्षणम् । विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभालगलं तथा ॥ २२८ ॥ उत्तानशायिनं किञ्चित्प्रलम्बशिरसं नरम् । आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम् ॥ २२९ ॥ समुन्नामितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् । कोष्णेनाच्छिन्नधारेण हेमतारादिशुक्तिभिः । शुक्त्या वा यंत्रयुक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत् ॥ २३० ॥ (प्लोतैर्वस्त्रैस्तदुपलक्षितैस्तूलैरपि ।) नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् । न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छिकेन्न हसेत्तथा ॥ २३१ ॥ एतैर्हि विहितः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते । ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसम्भवः ॥ २३२ ॥ शृंगाटकमभिव्याप्य स्थापयेन्न गिलेद्द्रवम् । पञ्च सप्त दशैव स्युर्मात्राः स्नेहस्य धारणे ॥ २३३ ॥ उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रागतं द्रवम् । वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्संमुखं न हि ॥ २३४ ॥

अब नस्य लेनेकी विधि कहता हूँ । दतौन करनेके पश्चात्, शुद्धि करनेके पीछे और धूमपान कराकर कपालमें तथा गलेमें स्वेदित करनेके पीछे रोगीको वायु तथा रज (धूल) से रहित स्थानमें चित्त सुलावे, मस्तकको किंचित् लटकता रहने देवे, हाथ पांव लंबे करावे, नेत्रोंको वस्त्रसे ढककर और नाककी नोंक (टिसुआ) ऊँची करके नस्य देवे । सोने अथवा चांदी आदिकी चमचीसे वा सीपसे या किसी यन्त्रकी युक्तिसे वा कपडे अथवा रुईके फोहेसे बीचमें धार न टूटे इस प्रकार किंचित् उष्ण नस्य नाकमें डाले । नाकमें नस्य जिस समय डाला जाता हो उस समय रोगी मस्तकको नहीं हिलावे, क्रोध नहीं करे, किसीसे बोले नहीं, छींक नहीं लेवे और हँसे भी नहीं, कारण कि–मस्तक हिलाने आदिसे स्नेह भीतर नहीं पहुँचता और खाँसी, जुकाम, मस्तकपीडा और नेत्रपीडा उत्पन्न होती है । नस्यको कपालकी हड्डीतक पहुँच जानेपर स्थिर रक्खे, जिससे निकल न जाय, पांच सात अथवा दश गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक नस्यको धारण कर रक्खे, पश्चात् बैठकर नाकमेंसे मुखमें आये हुए द्रवको थूक देवे, जब थूके तब दाहिनी अथवा बांई ओर थूके, किंतु सामने नहीं थूके ॥ २२८–२३४ ॥

नस्यदानानन्तरमकर्तव्यं कर्म ।

नीते नस्ये मनस्तापं रजः क्रोधं च सन्त्यजेत् । शयीत निद्रां त्यक्त्वा च प्रोत्तानो वाक्छतं नरः ॥ २३५ ॥ तथा शिरोविरेकान्ते धूमो वा कवलो हितः । नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः ॥ २३६ ॥ शुद्धिहीनातियोगा हि विज्ञेयाः शास्त्रचिन्तकैः । लाघवं मलसंसिद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ॥ २३७ ॥ चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् । कण्डूः प्रदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः । मूर्ध्नि हीनविशुद्धेस्तु लक्षणं परि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कीर्तितम् ॥ २३८ ॥ (हीनविशुद्धेर्हीननस्येन विशुद्धेः ।) मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः । शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ २३९ ॥ (मस्तुलुंगम् मस्तकान्तःस्नेहः । इन्द्रियविभ्रमः इन्द्रियाणाम् अयथाविषयग्रहः ।)

नस्य देनेके पीछे मनमें सन्तापको नहीं आने देवे, धूलसे दूर रहे, क्रोधका त्याग करे और जबतक सौ अक्षरोंका उच्चारण हो तबतक निद्रा नहीं लेवे, चित्त सोता रहे, मस्तकको रेचननस्यसे खाली करनेपर धूमपान करे और कवल खावे यह हितकारी है । नस्यका प्रयोग करनेके पश्चात् शास्त्र जाननेवाले लक्षणोंसे शुद्धिके हीनयोगकी और अतियोगकी परीक्षा करे । मस्तककी भली भाँति शुद्धि हो जाय तौ शरीरमें लघुता होती है, मल साफ उतरता है, स्रोतोंके रोग नष्ट होते हैं और चित्तमें तथा इन्द्रियोंमें प्रसन्नता होती है । हीनयोग अर्थात् नस्य अल्प देनेसे मस्तक भली भाँति शुद्ध नहीं हुआ हो तब खुजली, शरीरमें चिकनापन तथा भारीपन होता है और नाडियोंमें कफ बढता है, मस्तक बहुत खाली हो गया हो तौ नाकमेंसे माथेकी चरबी गिरने लगती है, वायुकी वृद्धि होती है, इन्द्रियें अपने अपने विषयको भली भाँति ग्रहण नहीं कर सक्तीं और मस्तक जड हो जाता है ॥ २३५–२३९ ॥

नस्यहीनयोगातियोग-चिकित्सा ।

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् । तत्र हीनेन नस्येन शुद्धे वातघ्नमाचरेत् ॥ २४० ॥ सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्येन दीयते । कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ॥ १४१ ॥ लक्षणं तदतिस्निग्धे तत्र रूक्षं प्रदापयेत् । भोजयेच्चानभिष्यन्दि नस्ये वातिकमादिशेत् ॥ २४२ ॥

नस्यका हीनयोग और अतियोग हो गया हो तौ जिससे कफ वात नष्ट हो ऐसा उपाय करे, नस्यका अल्पयोग हुआ हो तौ जिससे वातका नाश हो ऐसा उपाय करे और रेचन नस्यसे मस्तक बहुत खाली हो गया हो तौ फिर घीका नस्य देवे । स्नेहन नस्यसे मस्तक बहुत स्निग्ध हो गया हो तौ कफका स्राव होता है, मस्तकमें गुरुता होती है और इन्द्रियोंमें भ्रम होता है । इस प्रकार हुआ हो तौ वैद्य रोगीको रूक्ष पदार्थोंका नस्य देवे, जिससे सरदी न हो ऐसे पदार्थ खावे और जिससे वातकी वृद्धि हो ऐसी क्रियाका उपयोग करे ॥ २४०–२४२ ॥

इति पञ्चकर्माणि ।

धूमपानविधिः ।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा । रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥ १ ॥ शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा । बृंहणस्य च पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥ २ ॥ रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च । अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रान्तो भीतश्च दुःखितः ॥ ३ ॥ दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा । पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी ॥ ४ ॥ शिरोऽभितापी तिमिरी छर्ध्यध्मानप्रपीडितः । क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी ॥ ५ ॥ रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः । भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ ६ ॥ अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् । तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जनतर्पणम् ॥ ७ ॥ सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्कराम्बु वा । मधुराम्लौ रसौ वापि वमनाय प्रदापयेत् ॥ ८ ॥ धूमस्तु द्वादशाद्वर्षाद्दह्यतेऽशीतिकान्न च । कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ॥ ९ ॥ वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः । धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनः । दृढकेशाद्विजश्मश्रुः सुगन्धिवदनो भवेत् ॥ १० ॥

शमन (कुपित हुए दोषोंको शांत करनेवाला), बृंहण (धातुओंको पुष्ट करनेवाला), रेचन (शरीरको दोषोंसे खाली करनेवाला), कासहा (खाँसीको नष्ट करनेवाला) वामन (वमनकारक) और व्रण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धूपन (व्रणको धुआँ देनेवाला) इस प्रकार धूमपानके छः भेद हैं। मध्य तथा प्रायोगिक ये दो शमनके पर्याय हैं। स्नेहन और मृदु ये दो बृंहणके पर्याय हैं और शोधन तथा तीक्ष्ण ये दो रेचनके पर्याय हैं। थका हुआ, भयभीत, दुःखित, जिसके पिचकारी लगाई हो, जिसको रेच (जुलाब) दिया हो, जो रात्रिमें जागा हो, तृषित, दाहसे पीडित, जिसका तालु सूख गया हो, उदररोगी, जिसका मस्तक तप्त हो, तिमिररोगी, वमन करे हुए, अफरेवाला, उरःक्षतरोगयुक्त, प्रमेहसे पीडित, पाण्डुरोगी, गर्भवाली स्त्री, रूक्षशरीरी, क्षीण हुआ, जिसने दूध, शहद, घी अथवा आसवका उपयोग किया हो, जिसने अन्न, दही अथवा मछली खाई हो, बालक, वृद्ध और दुर्बलशरीरयुक्त इनको धूमपानका ग्रहण योग्य नहीं है। जो धूम अयोग्य समयमें पिये अथवा बहुत पिये तौभी उपद्रवोंको उत्पन्न करे है। धूमपापानसे कोई उपद्रव हो तौ उसको शांत करनेके लिये घी पिये, नस्य देवे, अञ्जन आँजे, तृप्त करे, घी लगावे, ऊखका रस पिये, दाख खावे, दूध पिये, बूराका सरबत पिये, अथवा मधुर और खट्टे रसका उपयोग करावे। बारह वर्षके प्रथम और अस्सी वर्षके पीछे धूमपान वर्जित है। जो धुएँका योग्य रीतिसे पान करा जाय तौ खाँसी, श्वास, जुखाम, गरदनका स्तंभ, जावडेका स्तंभ, मस्तककी पीडा, वातके विकार और कफके विकार नष्ट होते हैं। धुएँका उपयोग करनेसे इन्द्रियें, वाणी तथा मन स्वच्छ होता है केश, दाँत और दाढी, मूँछ दृढ होते हैं और मुख सुगन्धित होता है ॥ १–१० ॥

धूमपाननालिकामानम्।

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपार्विका। कनिष्ठिकापरीणाहा राजमाषागमान्तरा॥११॥ (राजमाषागमा समस्ता नाडी।) धूमनाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणोंऽगुलैः। चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्वात्रिंशद्भिर्मृदौ मता ॥ १२ ॥ (मृदौ बृंहणे) तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशोन्मितैः ॥ १३ ॥ (तीक्ष्णे रेचने) दशांगुलैर्वामनीये तथा स्याद्व्रणनाडिका। (तथा दशांगुलमिता।) कलायमण्डलस्थूला कुलत्थागमरन्ध्रका ॥ १४ ॥

शमन धूम देना होय ता रोगीके चालीस अंगुलकी लंबी, बृंहण धूम देना हो तो रोगीके बत्तीस अंगुलकी लंबी, रेचन धूम देना हो तो रोगीके चौबीस अंगुलकी लंबी, कासनाशक धूम देना हो तो रोगीके सोलह अंगुलकी लंबी, वामक धूम देना हो तो रोगीके दश अंगुलकी लंबी और व्रणको धूम देना हो तो भी रोगीके दश अंगुलकी लंबी नली बनवावे। यह नली तीन संधिवाली, तीन पेचोंकी, छोटी अंगुलीके सदृश मोटी और जिसमें चौराईका दाना चला जाय ऐसे छिद्रवाली बनवावे, परन्तु वमन और व्रणको धूम देनेकी नली मटरके समान गोल और जिसमें कुलथीका दाना चला जाय ऐसे छिद्रवाली बनवावे ॥ ११–१४ ॥

धूमपानविधिः।

अथैषिकां प्रलिम्पेच्च सुश्लक्ष्णां द्वादशांगुलाम् ॥ १५ ॥ (इषिकाम् शरकाण्डम्।) धूमद्रव्यस्य कल्केन लेपश्चाष्टांगुलः स्मृतः। कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् ॥ १६ ॥ इषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात्। अंगारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रन्ध्रके ॥ १७ ॥ वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत्। नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव धमेत्सुधीः ॥ १८ ॥ शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा कल्कमंगारदीपितम्। छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥ १९ ॥

नली तैयार करनेके पीछे सरकंडेकी बारह अंगुलकी लंबी सलाई लेकर जो औषधि धूमपान करनेकी हो उसका कल्क उस सलाई पर आठ अंगुलतक लगावे। एक तोलेभर कल्क लगावे, उसको छायामें सुखाकर उसमेंसे सरकंडेकी सलाई निकाल लेवे फिर उस छिद्रमें घृतसे भिगोकर बत्ती बहुत सँभालकर रक्खे। इस बत्तीको अंगारोंसे सुलगाकर औषधिकी नलीको नालके छिद्रमें रखकर मुखसे धुएँको पिये और धुआँ मुखसे निकाल देवे और नाकसे पीकर धुआँ मुखसे निकाल देवे। जो व्रणको धुआँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देना हो तो अंगारेसे सुलगाये हुए कल्कको शराव संपुटमें रख ऊपरके शराव (शिकोरे) छिद्रयुक्तमें नली लगाकर उससे व्रणको धुआँ देवे ॥१५-१९॥

धूमपानौषधिकल्कः ।

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ । रेचने तीक्ष्णकल्कं च श्वासघ्ने क्षुद्रकोषणम् ॥ २० ॥ वामने स्नायुचर्माढ्यं दद्याद्धूमस्य पानकम् । व्रणे निम्बवचाढ्यं च धूपनं संप्रशस्यते । अन्येऽपि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशान्तये ॥ २१ ॥

शमन धूममें इलायची आदिका, वृहण धूममें घृतादियुक्त कल्का, रेचन धूममें राई आदि तीक्ष्ण पदार्थका, कासघ्न धूममें कटेरी और काली मिरचका, वामन धूममें स्नायु (जीवोंकी नस) और चमडे आदिका, व्रणको धूम देनेमें नीम और वच आदिका कल्क उपयोगमें लेवे। इसी प्रकार शांतिके लिये घरमें और भी धूनी देवे ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ गृहदेयधूमः ।

यथा—मयूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम् ॥ २२ ॥ मरिचं हिंगु मांसी च बीजं कार्पाससम्भवम् । छागरोमाहिनिर्मोको विष्ठा बैडालिकी तथा ॥२३॥ (अहिनिर्मोकः सर्पकंचुकः।) गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद्घृतविमिश्रितम् । गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान्बालग्रहान्हरेत् । पिशाचान्राक्षसान्हत्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥२४॥

मोरपंख, नीमके पत्ते, कटेरीके फल, कालीमिरच, हींग, जटामांसी, बिनौले, बकरीके बाल, सांपकी केंचुली, बिलावकी विष्ठा और हाथीदाँत इनका चूर्ण करके उसमें थोडा घी डालकर उस चूर्णका घरमें धुआँ देवे तो सम्पूर्ण बालग्रह, पिशाच और राक्षस दूर होते हैं और सर्व प्रकारके ज्वर भी नष्ट होते हैं। यह धूम 'अपराजित धूम' इस नामसे कहा जाता है ॥ २२-२४ ॥

धूमपाने त्याज्यकार्यम् ।

मनस्तापं रजःक्रोधौ धूमपाने निवारयेत् । नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशाद्विजान्यपि ॥२५॥

धूमपान करनेवाले मनमें संताप नहा आने देवें, धूलसे दूर रहें और क्रोध नहीं करें। धुएँकी नाल किसी ताम्र आदि धातुकी बनवाना चाहिये, अथवा बाँस नरसल आदिकी बनवावे ॥ २५ ॥

गण्डूषकवलप्रतिसारणाविधिः ।

तत्र गण्डूषविधिः ।

स्नेहक्षीरकषायाद्यैर्द्रवैः सम्पूर्णमाननम् । आपूर्य स्थीयते तावद्विधिर्गण्डूषधारणे ॥१॥ कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् । नेत्रघ्राणश्रुतिर्यावत्तावद्गण्डूषधारणम् ॥ २ ॥ गण्डूषान्तसुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः । मनुष्यस्त्रींस्तथा पंच सप्त वाऽऽदोषनाशनात् ॥३॥ (गलादिक इति आदिशब्देन गण्डकपोलौ गृह्येते सुश्रुतोक्तत्वात् ।)

स्नेह, दूध और क्वाथ आदि द्रवपदार्थोंसे मुखको पूर्ण भरके जबतक रह सके तबतक रक्खे; यह कुल्ले करनेके समयकी अवधि है, अथवा कफसे मुख जबतक भर जावे तबतक, अथवा जो दोष हो उसका छेदन होनेपर अथवा नेत्रोंमेंसे और नाकमेंसे जबतक पानी झरने लगे तबतक मुखमें क्वाथको धारण करे। मनुष्य स्वस्थतापूर्वक कपालमें, गलेमें तथा गालोंपर जबतक पसीना आवे तबतक अथवा जो दोष हो उसका नाश होनेतक तीन, पाँच तथा सात कुल्ले करे ॥ १-३ ॥

गण्डूषभेदाः ।

चतुर्विधः स्याद्गण्डूषः स्नेहनः शमनस्तथा । शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तादृशः ॥४॥ स्निग्धोष्णैः स्नेहकृद्वाते स्वादु शीतैः प्रसादनः । पित्ते कटुम्ललवणैरुष्णैः संशोधनः कफे । कषायतिक्तमधुरैः कदुष्णैः रोपणो व्रणे ॥५॥

स्नेहन (चिकनाहट करनेवाला), शमन (शान्तकर्त्ता), शोधन (स्वच्छ करनेवाला) और रोपण (स्वच्छ धातुओंकी भरती करके घावको भर लावे ऐसा) इस भाँति कुल्लेके चार भेद हैं। वातकी अधिकता होय तो स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंसे कुल्ले करे इसको स्नेहन कहते हैं। पित्तकी अधिकता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो तो मधुर और शीतल पदार्थोंसे कुल्ले करे, इसको शमन कहते हैं । कफकी अधिकता होय तो चरपरे, खट्टे, खारी और उष्ण पदार्थोंसे कुल्ले कर; इसको शोधन कहते हैं और व्रण होय ता किंचित् गरम, कसैले, कडवे और मधुर पदार्थोंसे कुल्ले करे, इसको रोपण कहते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

गण्डूषकवलौषधमानम् ।

दद्याद्द्रवेषु चूर्णं च गण्डूषे कोलमात्रकम् । कर्षप्रमाणः कल्कश्च कवले दीयते बुधैः॥६॥

कुल्ले करनेके द्रवमें एक तोला चूर्ण डाले और कवलमें कर्ष प्रमाण कल्क डाले ॥ ६ ॥

गण्डूषकवलयोरवस्थामर्यादा ।

धार्यन्ते पञ्चमाद्वर्षाद्गण्डूषाः कवलादयः । व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् । इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डूषे विधृते भवेत् ॥ ७ ॥ हरेदास्यस्य वैरस्यं शोषं पाकं व्रणं तृषाम् । दन्तचालं च गण्डूषो वैशद्यं तु करोति हि॥८॥

कुल्ले और कवलका उपयोग पांच वर्षकी अवस्था होनेके पश्चात् करे । कुल्लेको मुखमें धारण करनेसे रोगोंका नाश, संतोषकी प्राप्ति, स्वच्छता, मुखमें लघुता और इन्द्रियोंमें प्रसन्नता होती है । कुल्लोंके करनेसे मुखकी विरसता, मुखका सूख जाना, मुखका पक जाना (छाले हो जाना), व्रण, तृषा और दाँतोंका हिलना नष्ट होता है तथा स्वच्छता प्राप्त होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

कवलविधिः ।

वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे । अर्द्धं निक्षिप्य संचर्व्य निष्ठीवेत्कवले विधिः ॥ ९ ॥ कवलः कुरुते कांक्षां भक्ष्येषु हरते कफम् । तृष्णां शोषं च वैरस्यं दन्तचालं च नाशयेत् ॥ १० ॥

वात पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाले पदार्थके कवलको मुखमें रख आधा चाबकर थूक देवे; यह कवलकी विधि है । कवल—भक्ष्यपदार्थोंमें इच्छाको उत्पन्न करता है; कफ, तृषा, शोष, विरसता और दाँतोंके हिलनेको नष्ट करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

प्रतिसारणविधिः ।

दन्ताजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्घर्षणमंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ ११ ॥ वैरस्यं मुखदौर्गन्ध्यं मुखशोषं तथा तृषाम् । अरुचिं दन्तपीडां च निहन्ति प्रतिसारणम् ॥ १२ ॥ हीने जाड्यकफोत्क्लेशावरसज्ञानमेव च । अतियोगान्मुखे पाकः शोषतृष्णा वमिः क्लमः ॥ १३ ॥

अंगुली द्वारा चूर्ण, कल्क, अथवा अवलेहसे दाँतोंको, जीभको तथा मुखको धीरे धीरे घिसे इसको प्रतिसारण (मंजन) कहते हैं । प्रतिसारण—विरसता, मुखकी दुर्गन्ध, मुखका शोष, तृषा, अरुचि और दाँतकी पीडाको नष्ट करे है । जो प्रतिसारणकी हीनमात्राका उपयोग किया हो तौ शरीरमें जडता होती है, कफका प्रकोप होता है और रसोंका ज्ञान नहीं होता है । तैसेही जो उसका अत्यंत योग हुआ होय तौ मुखका पकना (छाले हो जाना), मुखशोष, तृषा, वमन अथवा ग्लानि होती है ॥ ११–१३ ॥

अथ स्वेदविधिः ।

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मस्वेदसंज्ञितः । उपनाहो द्रवस्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः ॥ १ ॥ (तापस्वेद ऊष्मस्वेदश्च ताभ्यां संज्ञितः । उपनाहः उपनाहस्वेद इत्यर्थः ।) स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ । उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसङ्घे द्रवो हितः ॥ २ ॥ (द्रवः स्वेदः) महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान्स्मृतः । दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्यमे मध्यमो मतः ॥ ३ ॥ बलासे रूक्षणः स्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले । (रूक्षणः रूक्षयतीति रूक्षणः नन्द्यादित्वाल्ल्युट् प्रत्ययः ।) कफमेदोवृते वाते कोष्णं गेहं रवेः करान् । नियुद्धं मार्गगमनं गुरु प्रावरणं ध्रुवम् ॥ ४ ॥ चिन्ताव्यायाममारांश्च सेवेतामयमुक्तये । येषां नस्यं प्रदातव्यं वस्तिश्चापि हि देहि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाम् । शोधनीयाश्च ये केचित्पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः ॥ ५ ॥

तापस्वेद, ऊष्मस्वेद, उपनाहस्वेद और द्रवस्वेद इस भाँति स्वेद (पसीने) निकालनेके चार भेद हैं। ये सम्पूर्ण स्वेद वायुरोगोंको नष्ट करे हैं । तापस्वेद और ऊष्मस्वेद ये विशेष करके कफनाशक हैं, उपनाहस्वेद वायुको नष्ट करे है और पित्तका विशेष सम्बन्ध होय तो द्रवस्वेद हितकारी होता ह । अत्यन्त बलवान् वातसम्बन्धी महारोग होय तो प्रबलस्वेद करावे, मध्यम प्रकारकी व्याधि हो तो मध्यम प्रकारका स्वेद देवे और अल्प व्याधि हो तो अल्प साधारण स्वेद देवे । कफका रोग होय तो रूक्ष करनेवाला स्वेद देवे और कफसहित वायुका रोग होय तो रूक्षता तथा स्निग्धता इन दोनोंको करनेवाला स्वेद देवे । कफ तथा मेदसहित वायुरोग हो तो इस रोगसे छूटनेके लिये किंचित् गरमीयुक्त गृहमें रहे, सूर्यकी किरणोंका सेवन करे, युद्ध करे, मार्गमें अधिक चले और मोटे तथा भारी वस्त्र पहरे, चिन्ता किया करे, व्यायाम (कसरत) और बोझ उठानेका अभ्यास करे । जिसको नस्य देना हो, वस्ति देनी हो अथवा रेचन देना हो उसके शरीरमें प्रथम स्वेदकी क्रिया करनी चाहिये ॥ १–५ ॥

स्वेद्या ऊर्द्धं त्रयोऽपीह भगन्दर्यर्शसस्तथा । अश्मर्या चातुरो जन्तुः शमयेच्छस्त्रकर्मणः ॥ ६ ॥ (शस्त्रकर्मणः ऊर्ध्वं पश्चाच्च इति सुश्रुते) पश्चात्स्वेद्याहते शल्ये मूढगर्भगदे तथा । काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात्स्वेद्या नितम्बिनी ॥ ७ ॥ सर्वान्स्वेदान्निवाते च जीर्णान्ते वावचारयेत् । स्वेदाद्धातुस्थिता दोषाः स्नेहक्लिन्नस्य देहिनः ॥ ८ ॥ द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्तर्गत्वा यान्ति विरेकताम् । स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी । स्वेद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥ ९ ॥ (शीतलैः आर्द्रवस्त्रादिभिः ।

भगन्दर, ववासीर, अथवा पथरी इससे व्याकुल हुएके शस्त्रक्रिया करानेसे पहिले अथवा शस्त्रक्रिया करानेके पीछे स्वेद देवे, ऐसा सुश्रुतमें कहा है । स्त्रीके उदरमें शल्य हो तौ उसको निकालनेके पश्चात् स्वेद देवे, स्त्रीके उदरमें अधिककालसे गर्भ जैसेका तैसा ही स्थिर रहनेसे दर्द रहता हो तौ उसको दूर करके पश्चात् स्वेद देवे, तैसेही समय पर प्रसव हुआ हो अथवा विना समय प्रसव हुआ होय तोभी स्त्रीको प्रसव होनेके पश्चात् स्वेद देवे । सम्पूर्ण प्रकारके स्वेद वायुरहित स्थानमें और खाये हुए अन्नके पच जानेपर देवे । घी अथवा तेल आदि स्नेहपदार्थसे अभ्यंग करनेके पश्चात् स्वेद देनेसे धातुओंमें रहनेवाले दोष द्रवताको प्राप्त हो कोठेके भीतर जाकर रेचके सदृश मलके साथ निकल जाते हैं । रोगीके शरीरकी प्रथम स्नेहपदार्थका अभ्यंग मालिश करनेके पश्चात् स्वेद देवे और स्वेद देनेमें उसके नेत्रोंको गीले वस्त्र आदि शीतल पदार्थसे ढक रक्खे और हृदयकोभी तैसेही शीतल पदार्थसे ढका रक्खे ॥ ६–९ ॥

अजीर्णी दुर्बली मेही क्षतक्षीणः पिपासितः । अतिसारी रक्तपित्ती पाण्डुरोगी तथोदरी । मेदस्वी गर्भिणी चैव न हि स्वेद्या विजानता ॥ १० ॥ " स्वेदादेषां याति देहो विनाशं नो साध्यत्वं यान्ति चैषां विकाराः । " एतान्यपि मृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् । मृदुस्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ ११ ॥ अतिस्वेदात्सन्धिपीडादाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः । पित्तासृक्पिडिकाकोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत् ॥ १२ ॥

अजीर्णरोगी, दुबला, प्रमेहरोगी, क्षतक्षीण, तृषित, अतीसाररोगवाला, रक्तपित्तरोगी, पाण्डु, उदर तथा मेदरोग वाला और गर्भवती स्त्री इनको विद्वान् वैद्य स्वेद नहीं देवे, कारण कि इनको स्वेद देनेसे बहुत दुःख होता है और यह रोग होनेपर इनके विकार स्वेदसे साध्य नहीं होते । इन रोगोंके विकार स्वेदसे साध्य होते हैं, जो ऐसा जाननेमें आवे तो इन रोगवालोंको भी मृदु २ स्वेदके उपचार करे । हृदयपर, अंडकोषोंपर और नेत्रोंपर स्वेद देना होय तो मृदु मृदु साधारण स्वेद देवे । स्वेदका अतियोग होनेसे संधियोंमें पीडा, दाह, तृषा, ग्लानि, भ्रम और पित्त तथा रुधिरके प्रकोपसे हुए फोडे निकल आते हैं । जो स्वेद देनेसे इस प्रकार होय तो उसमें शीतल उपचार करे ॥ १०–१२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तापस्वेदविधिः।

तेषु तापाभिधः स्वेदो बालुकावस्त्रपाणिभिः। कपालकन्दुकांगारैर्यथायोग्यं हि जायते ॥ १३ ॥

रेती (बालू), वस्त्र, हाथ, ठीकरा, अथवा वस्त्रकी पोटलीको तपाकर इनसे योग्य रीतिके अनुसार जो सेंका जाय उसको तापस्वेद कहते हैं, अंगारोंसे सेंक करना भी तापस्वेदमें गिना जाता है ॥ १३ ॥

उष्मस्वेदविधिः।

प्रतप्तरम्लसिक्तैश्च कायेऽलक्तकवेष्टिते। उष्मस्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिण्डे वृकाक्षिभिः। अथ वा वातनिर्णाशिद्रव्यक्काथरसादिभिः। उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं विधाय च ॥ १४ ॥ विमुद्रचास्यं त्रिखण्डां च धातुजां काष्ठजामुत। षडंगुलास्यां गोपुच्छां नाडीं युञ्ज्याद्विहस्तकाम् ॥ १५ ॥ सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम्। हस्तिशुण्डिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ १६ ॥ (त्रिखण्डामिति स्वेदसौकर्यार्थम्। षडङ्गुलास्यामिति मूले षडंगुलं विशालमुखं गोपुच्छमिव क्रमकृशम्। तेन अग्रे गोपुच्छाग्रपरिमाणेन कृशां नाडीम् अन्तःसरन्ध्राम् द्विहस्तकां हस्तद्वयपरिमाणाम्। हस्तिशुण्डिकयेति हस्तिशुण्डेव क्रमकृशत्वान्नाड्या इयं संज्ञा) पुरुषाययममात्रां वा भूमिं सम्मार्ज्य खादिरैः। काष्ठैर्दग्ध्वा तथाऽभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ १७ ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम्। एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेदमाचरेत् ॥ १८ ॥

वस्त्रसे शरीरको लपेटकर तपाया हुआ और पश्चात् जिसके ऊपर खट्टा रस छिडका हुआ ऐसे लोहेके गोलेसे अथवा ईंट आदिसे जो सेंक किया जाय उसको उष्मस्वेद कहते हैं, वातनाशक पदार्थोंका उष्ण क्काथ अथवा रस आदि एक घडेमें भरे, उस घडेका मुख बंद कर देवे, इस घडेकी बगलमें एक छिद्र करके उसमें धातुकी अथवा काष्ठकी नली लगाकर उससे जो स्वेद दिया जाय वह भी उष्मस्वेद कहाता है। यह नली स्वेद देनेकी अनुकूलताके लिये तीन संधिवाली, जडमें छः अंगुल चौडी, गायकी पूँछके समान अनुक्रमसे पतली, भीतर छेदवाली और दो हाथ लंबी बनावे। वातरोगवाले मनुष्यको भली भाँति बैठाकर, स्नेहपदार्थका अभ्यंग कर शरीरपर मोटा वस्त्र उढाकर इस नलीसे स्वेद देवे। यह नली हाथीकी सूँडके सदृश अनुक्रमसे पतली होती है, इसी कारण हस्तिशुण्डिका कहलाती है। पृथ्वीमें साढे तीन अथवा चार हाथ लंबा गड्ढा खोदे, उसमें खैरकी लकडी बालकर अग्नि बाहर निकाल लेवे फिर उस गड्ढेमें दूध अथवा पूर्वोक्त धान्याम्लका पानी छिडककर उसमें वातको नष्ट करनेवाले आक एरण्ड आदिके पत्ते बिछाकर उसपर रोगीको सुलावे, पश्चात् मोटा वस्त्र उढा देवे, इस भाँति जो गड्ढेका स्वेद दिया जाय वह उष्मस्वेद कहाता है। रोगीको उसीजे हुए उडद आदि पदार्थोंमें सुलाकर जो स्वेद दिया जाय वह भी उष्म स्वेद कहाता है ॥ १४–१८ ॥

उपनाहस्वेदविधिः।

तथोपनाहस्वेदं च कुर्य्याद्वातहरौषधैः। प्रदिह्य देहं वातार्त्तं क्षीरमांसरसादिभिः ॥ १९ ॥ अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः। अथ ग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च ॥ २० ॥ दधिसौवीरकक्षीरैर्वीरतर्वादिना तथा। कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥ २१ ॥ शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः। एरण्डमूलजीरैश्च राम्नामूलकशिग्रुभिः ॥ २२ ॥ मिसिकृष्णाकुठेरैश्च लवणैरम्लसंयुतैः। प्रसारण्यश्वगन्धाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः ॥ २३ ॥ गुडूच्या वानरीबीजैर्यथालाभसमाहृतैः। क्षुण्णैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम्। महाशाल्वणसंज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्त्तिहृत् ॥ २४ ॥ (अस्य अयमर्थः—उपनाहस्वेदं च कुर्यात्। केन प्रकारेण इत्याकांक्षायां तत्प्रकारमाह। वातहरौषधैः। कथम्भूतैः ? अम्लपिष्टैः अम्लेन काञ्जिक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्वादिना पिष्टैः । सलवणैः स्नेहसंयुतैः । क्षीर-मांसरसान्वितैः । सुखोष्णैः । वातार्तं देहं प्रदिह्य प्रलिप्य स्वेदयेदित्यर्थः) अथवाम्लेन सम्पिष्टैः कोष्णैः सूक्ष्मपुटस्थितैः । भेषजैः स्वेदयेत्किंवा स्विन्नैः कोष्णैः पटस्थितैः॥२५॥

वातनाशक औषधियोंको काँजी अथवा छाछ आदि खट्टे रसोंसे पीसकर उसमें नोन, घी, दूध, मांसका रस, ग्राम अथवा जलके समीप रहनेवाले जीवोंका मांस, काकोली आदि जीवनीय गणकी औषधि, दही, काँजी और वीरतरु आदि गणकी औषधि डालकर गरम करके उससे रोगीको सहता सहता उसके शरीरपर लेप करे, पश्चात् कुलथी, उडद, गेहूँ, अलसी, तिल, सरसों, सोंफ, देवदारु, निर्गुंडी, कलौंजी, अण्डकी जड, जीरा, रायसन, मूली, सहँजना, वरियारी, पीपल, वनतुलसी, पाँचों निमक, अम्लपदार्थ, गन्धप्रसारिणी, असगन्ध, वला, दशमूल, गिलोय, कौंचके बीज, इनमेंसे जितने पदार्थ मिलें उतने लेकर पीसे फिर औटाकर रोगीके शरीरपर वस्त्रके सदृश बांधकर जो स्वेद दिया जाय वह एक प्रकारका उपनाहस्वेद कहाता है । उपरोक्त पदार्थोंसे किया हुआ स्वेदका प्रयोग 'महाशाल्वण' इस नामसे प्रसिद्ध है, और वह प्रयोग सम्पूर्ण प्रकारकी वातसंबंधी पीडाको नष्ट करे है, औषधियोंको अम्लरससे पीस किंचित् उष्ण कर मृदु वस्त्रसे शरीरपर बाँधकर जो स्वेद दिया जाय वह भी उपनाह स्वेद कहाता है। औषधियोंको औटाकर किंचित् उष्ण होय तब वस्त्रपै लेप कर शरीरपर बाँधकर जो स्वेद दिया जाय वह भी उपनाहस्वेद कहाता है ॥ १९–२५ ॥

द्रवस्वेदविधिः ।

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नो द्रव्यक्काथेन पूरिते । कटाहे कोष्ठके वापि सूपविष्टोऽवगाहयेत् ॥ २६ ॥ सौवर्णे राजतं वापि ताम्रं लौहं च दारुजम् । कोष्ठकं तत्र कुर्वीतोच्छ्राये षड्विंशदंगुलम् । आयामे वा तदेव स्याच्चतुष्कोणं तु चिक्कणम् ॥ २७ ॥ पक्षान्तरमाह । नाभेः षडंगुलं यावन्मग्नं क्काथस्य धारया । कोष्णया स्कन्धयोः सिक्तस्तिष्ठेत्स्निग्धतनुनरः ॥ २८ ॥ (अयमर्थः—प्रथमतो वातघ्नद्रव्यक्काथेन कंठपूरितकोष्ठके कटाहे वा सूपविष्टस्तिष्ठेत् । अथवा नाभेः षडंगुलमूर्द्ध्वं यावत् क्काथे मग्न उपविष्टः पश्चात् क्काथस्य धारया स्कन्धयोः सिच्यमानस्तिष्ठेत् । यावत् कोष्ठकं परिपूर्णं भवति इत्यर्थः । क्काथपक्षे प्रथमतः स्नेहाभ्यक्ततनुरुपविशेत्) मुहूर्त्तैकं समारभ्य यावत्स्यात्तच्चतुष्टयम् । तावत्तदवगाहेत यावदारोग्यनिश्चयः ॥ २९ ॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् । एकान्तरो द्व्यन्तरो वा युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥३० ॥ (एतावता क्काथो दुग्धं च नित्यमेव युज्यते । स्नेहस्तु दिनमेकं द्वे वा दिने गमयित्वा युक्तः, अग्निमांद्यशंकया इति भावः ।) शिरामुखैर्लोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत् । शरीरे बलमाधत्ते युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥ ३१ ॥ जलसिक्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरादयः । तथैव धातुवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते ॥३२॥ नातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः । शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे । दीप्तेऽग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३३ ॥

कढाव अथवा कोठीमें गलेतक वातनाशक औषधियोंका क्काथ भरकर रोगीको उसमें भली भाँति बैठाकर गाता लगवावे; यह द्रवस्वेद कहाता है। यह कोठी सुवर्णकी चाँदीकी, ताँबेकी, लोहेकी, अथवा लकडीकी, छब्बीस अंगुल चौडी लंबी और चौकोर तथा चिकनी होनी चाहिये । रोगीके शरीरको घी तेल आदिकी मालिश कर नाभिसे ऊपर छः अंगुलतक क्काथमें बैठावे, इस भाँति क्काथसें भरी हुई कोठीमें बैठकर उसके दोनों कंधोंपर किंचित् उष्ण क्काथकी धारा डाले, जबतक कोठी पूरी न हो जाय तबतक डालता रहे, यह भी द्रवस्वेद कहाता है । दो घडीसे आठ घडीतकके समयतक आरोग्य निश्चय होनेपर्यन्त रोगीको इसी प्रकार स्नान करावे, ऊपर कहे अनुसार तेलसे, दूधसे अथवा घीसे भरे हुए पात्रमें रोगीको स्नान करावे वह भी द्रवस्वेद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहाता है । द्रवस्वेद देनेमें क्वाथका और दूधका प्रतिदिन उपयोग करना चाहिये, परन्तु स्नेहपदार्थोंका उपयोग करना होय ता बीचमें एक दिनका अथवा दो दिनका अन्तर डालकर करे, कारण कि स्नेहका नित्य उपयोग करनेसे अग्नि मन्द हो जानेका भय रहता है । द्रवस्वेदके प्रयोगमें लिया हुआ घी आदि स्नेह पदार्थ नसोंके मुखोंमें रोमोंके छिद्रोंमें और बडी नाडियोंमें भीतर जाकर शरीरको तृप्त करते ह और बल देते हैं । जिस प्रकार वृक्षकी जडमें पानी सींचनेसे वृक्षके अंकुर आदि वृद्धिको प्राप्त होते हैं, तैसेही स्नेहका सेचन होनेसे धातुओंकी वृद्धि होती है । वातका नाश करनेके लिये इस द्रवस्वेदसे अधिक दूसरा कोई भी उपाय नहीं । शीत, शूल, अंगोंका जकड जाना, तथा भारीपन नष्ट हो जाय, अग्नि दीपन हो जाय और शरीरमें मृदुता (कोमलता) आ जाय तब स्वेदकी क्रियाको छोड देना चाहिये ॥ २६–३३ ॥

मूर्द्धतैलविधिः ।

अभ्यङ्गः परिषेकश्च पिचुर्बस्तिरिति क्रमात् । मूर्द्धतैलं चतुर्द्धा स्याद्बलवत्तद्यथोत्तरम् ॥१॥ (अभ्यङ्गः तैलेन शिरसो मर्दनम् । परिषेकः शिरसि धारापातनम् । पिचुः तैलाक्तं तूलं 'फाहा' इति लोके । वस्तिः वक्ष्यमाणः) त्रयोऽभ्यङ्गादयः पूर्वं प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः । शिरोवस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः ॥ २ ॥ शिरोवस्तिश्चर्मणः स्याद्विमुखो द्वादशांगुलः । शिरःप्रमाणस्तं बद्धा मस्तके माषपिष्टकैः ॥ ३ ॥ सन्धिरोधं विधायाशु स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् । तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासाकर्णमुखस्रुतिः ॥ ४ ॥ वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम् । स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् ॥ ५ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः । विना भोजनमेवात्र शिरोवस्तिः प्रशस्यते ॥ ६ ॥ प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्च सप्त दिनानि वा । विमोच्य शिरसो वस्तिं गृह्णीयाच्च समन्ततः ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वं कार्यं ततः कोष्णे नीरे स्नानं समाचरेत् । अनेन दुर्जया रोगा वातजा यान्ति सङ्क्षयम् । शिरः कम्पादयस्तेन सर्वकालेषु युज्यते ॥ ८ ॥ (पञ्च सप्त दिनानि वा इति उक्त्वा सर्वकालेषु इति शिरःकम्पादिरोगानुवृत्तौ ज्ञेयम् ।)

मस्तकमें तेलका मर्दन करना, ऊँचेसे तेलकी धार डालना, तेलसे भीगे हुए रुईके फाहे रखना और तेलसे वस्ति देना, इस प्रकार शिरमें तेल डालनेके चार भेद हैं । इनमें पहिलेके तीन भेद सर्व स्थानोंमें प्रसिद्ध हैं; इस कारण इनका व्याख्यान नहीं करते । अब मस्तकमें तेलसे वस्ति देनेकी विधि कि, जिसको विद्वानोंने स्वीकृत किया है; उसका व्याख्यान करते हैं । दो मुखकी बारह अंगुल ऊँची और मस्तकमें आ जाय ऐसी चमडेकी टोपी बनवावे, इस टोपीको मस्तकमें पहरकर उडदके आटेसे उसकी संधियोंको बंद कर तथा उसके मुखके नीचे उडदके आटेकी वाड लगाकर ऊपरके मुखमें किञ्चित् उष्ण तेल खूब भर देवे । यह मस्तकमें तेलकी वस्ति दीजाती है । नाक, कान और मुखमेंसे पानी झरे तबतक, वा वेदना मिटने पर्यन्त, अथवा हजार मात्रा होनेतक इस वस्तिको धारण कर । अपने घुटुओंपर हाथको फेरके घुमाकर एक चुटकी बजावे, जितनी देरमें चुटकी बजे इतने समयकी एक मात्रा होती है ऐसा सर्व ग्रंथोंका निश्चय है । जबतक रोगीने भोजन नहीं किया हो उस समयतक यह वस्ति देना उत्तम है । पांच अथवा सात दिनतक यह प्रयोग नित्य करे । वस्तिके धारणका समय पूर्ण हो जाय तब टोपीको उतारकर चारों ओरसे तेल लेलेवे उसके पश्चात् रोगीको किञ्चित् उष्ण जलमें कडा करके स्नान करावे, यह वस्ति देनेसे मस्तकका कंप आदि वातसम्बन्धी भारी कठिन रोग होयँ तो भी क्षय होते हैं । पांच अथवा सात दिनतक वस्तिकी क्रिया करनेपर भी रोग नष्ट नहीं होय तो अधिक दिनतक यह वस्ति देवे ॥ १–८ ॥

अथ कर्णविधिः ।

स्वेदयेत्कर्णदेशं तु किञ्चिन्नुः पार्श्वशायिनः । मूत्रैः स्नेहैः रसैरुष्णैः श्रोत्ररन्ध्रं प्रपूरयेत् ॥ १ ॥ कर्णं च पूरितं रक्षेच्छतं पंच शतानि वा । सहस्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकंठशिरोगदे ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection: Digitized by eGangotri

मूत्राद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते । तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ३ ॥ तद्यथा-कर्णे शूलाकुले कोष्णं बस्तमूत्रं ससैंधवम् । निक्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूलपाकादिका रुजः ॥ ४ ॥ शृङ्गवेरं च मधुकं सैंधवं तैलमेव च । कटूष्णं कर्णयोर्देयमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ ५ ॥ पीतार्कपत्रमाज्येन लिप्तं वह्नौ प्रतापयेत् । तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूलहरः परः ॥ ६ ॥

रोगीको एक करवट सुवाकर उसके कानके प्रदेशको किञ्चित् सेंककर कानके छिद्रको उष्णमूत्रसे, स्नेहसे, अथवा रससे भर देवे । कर्णरोग हो तो सौ मात्रातक, गलरोग होय तौ पांच सौ मात्रातक और मस्तकरोग होय तो हजार मात्रा तक कानको तेल आदिसे पूरित रहने देवे । कर्णको मूत्र आदिसे भरना होय तो भोजनसे पहिले भरे और तेल आदिसे भरना होय तो सूर्यके अस्त होजानेपर भरे यह उत्तम है । कर्णमें शूल हो तो सेंधानोनसहित किंचित् उष्ण बकरेका मूत्र कानमें डाले, इस प्रकार करनेसे कर्णका शूल तथा कानका पकना आदि सब पीडा शांत हो जाती है । अदरकका रस, शहद, सेंधानिमक और तेल इतने पदार्थ कानमें किंञ्चित् गरम गरम डाले तो कानकी पीडा नष्ट होती है । आकके पीले पत्तोंको घी चुपडकर अग्निमें सेंककर उनका रस कानमें डाले तो कानका शूल नष्ट होता है, कानका दर्द दूर होनेका यह उत्तम उपाय है ॥ १-६ ॥

अथ लेपविधिः ।

आलेपस्य तु नामानि लेपो लेपनलिम्पकौ । दोषघ्नो विषहा वर्ण्यः स च लेपस्त्रिधा मतः ॥ १ ॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागार्द्धांगुलोन्नतः । आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयति च्छविम् ॥ २ ॥ (चतुर्भागत्रिभागार्द्धांगुलोन्नतः एवं त्रिप्रमाणः ।) दोषघ्नो लेपो यथा-शोथघ्नीदारुसिद्धार्थशुंठीशोभाञ्जनत्वचाम् । आरनालेन पिष्टानां प्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ३ ॥ (शोथघ्नी पुनर्नवा ।) शिरीषं मधुयष्टी च तगरं रक्तचन्दनम् । एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं वालकमेव च ॥ ४ ॥ इति सञ्चूर्ण्य लेपोऽयं पंचमांशघृतप्लुतः । जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशाङ्ग इति संज्ञितः । विसर्पे चैव विस्फोटाञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत् ॥ ५ ॥

नाम-आलेप, लेप, लेपन और लिप्तक ये लेपके पर्याय हैं । भेद-दोषघ्न (दोषोंका नष्ट करनेवाला), विषहा (विषविनाशक) और वर्ण्य (वर्णको उत्तम करनेवाला) इस भांति लेपके तीन भेद हैं । एक अंगुलका ऊँचा थर, पौन अंगुलका ऊँचा थर और आधी अंगुलका ऊँचा थर, इस भांति लेपके थरके तीन भेद हैं । गीला लेप रोगनाशक है और सूखा हुआ कांतिको नष्ट करे है । पुनर्नवा, सांठी, देवदार, सरसों, सोंठ, सहँजनेकी छाल इन पांचोंको कांजीमें पीस इनका लेप करे तो सम्पूर्ण प्रकारकी सूजन नष्ट होती है, यह लेप दोषघ्न कहाता है । शिरस, मुलहटी, तगर, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, कूठ और नेत्रवाला इन पदार्थोंका चूर्ण कर उसमें पांचवां भाग घी डालकर पानीसे लेप करे, इससे विसर्प, विस्फोटक, सूजन और दुष्टव्रणोंका क्षय होता है, इस लेपको विद्वान् लोग दशांगलेप कहते हैं ॥ १-५ ॥

विषहा लेपो यथा-अजादुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः । शोथमारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्णमार्त्तिकः ॥ ६ ॥ (नवनीतेनार्धिकेन । कृष्णमार्त्तिकः कृष्णमृत्तिकाकृतः ।) कृमिविषापहलेपो यथा-लांगल्यतिविषालाबूजालिनीबीजमूलकैः । लेपो धान्याम्बुसम्पिष्टः कीटविस्फोटनाशनः ॥ ७ ॥ मुखकान्तिदो लेपो यथा-रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियंगवः । वटांकुरा मसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ ८ ॥ अथ लेपविधिश्चैव प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः । आलेपश्च प्रदेहश्च द्वौ भेदौ तस्य भाषितौ ॥ ९ ॥ चर्मार्द्रं माहिषं यद्वत्प्रोच्यते सम्मितस्तयोः । शीतस्तनुर्विशोषी च प्रलेपः पित्तहन्मतः ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बकरीके दूधमें तिल पीस उसमें भैंसका मक्खन मिलाकर लेप करे अथवा काली मिट्टीका लेप करे तौ भिलावे आदिसे हुई सूजन नष्ट होती है, इस लेपको विद्वान् विषहा कहते हैं। कलिहारी, अतीस, कडुई तोंबी, घियातोरईके बीज और मूली इन औषधियोंकी कांजीमें पीस लेप करे तो विषैले कीडेसे उत्पन्न हुआ विस्फोट नष्ट होता है। रक्तचन्दन, मजीठ, लोध, कूठ, प्रियंगु, वडके अंकुर और मसूर इनका लेप करे तौ मुखके ऊपरकी झाँई नष्ट होती और मुखकी कांति उत्तम होती है, इस लेपको विद्वान् वर्ण्य कहते हैं। प्रलेप और प्रदेह इस भांति लेपके दो भेद हैं। इन दोनों लेपोंको जितना भैंसका गीला चमडा होता है, उतनाही मोटा और वैसाही चमकता हुआ रखना चाहिये। जो लेप शीतल, पतला और सूख जाय ऐसा होय वह प्रलेप कहाता है, प्रलेपसे पित्त नष्ट होता है। जो लेप तुरन्त नहीं सूखे गाढा और गरम हो वह प्रदेह कहाता है, प्रदेहसे वात और कफ नष्ट होता है ॥ ६–१० ॥

आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः श्लेष्मवातहा। न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत् ॥ ११ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ॥ तमसा पिहितो ह्यूष्मा लोमकूपमुखे स्थितः। विना लेपेन निर्याति रात्रौ नो लेपयेदतः ॥ १२ ॥ (तमसा रात्र्यन्धकारेण।) रात्रावपि प्रलेपादिर्व्रणे देयो विचक्षणैः। अपाकिन्यतिगंभीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे ॥ १३ ॥ प्रलेपो यथा–मधुकं चन्दनं मूर्वा नलमूलं च पर्पटम्। उशीरं वालकं पद्मं प्रलेपः पित्तशोथहृत् ॥ १४ ॥ प्रदेहो यथा–बीजपूरजटा हिंस्रा देवदारु महौषधम्। रास्नाऽरणिः प्रदेहोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ १५ ॥ (अरणिः अग्निमन्थः।) कृष्णा पुराणपिण्याकशिग्रुत्वक्सिकताशिवाः। गोमूत्रपिष्टः कोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्मशोथहा ॥ १६ ॥

रात्रिमें लेप नहीं करे, सूखे हुए लेपको शरीरपर नहीं रक्खे, परन्तु गांठ (फोडा) आदिपर उसके बैठनेको गाढा लेप किया हो तौ उसको रहने देवे। रोमोंके छिद्रोंके मुखमें रहनेवाली गरमी रात्रिके अन्धकारसे ढक जाती है, इस कारण रात्रिमें प्रलेप नहीं करे, यदि लेप किया होय तौ रात्रिको वह गरमी रोमोंमें रुक जाती है। जो व्रण पकता न होय, अत्यन्त गम्भीर हो और रुधिरसे तथा कफसे उत्पन्न हुआ हो उसपर विद्वानोंको रात्रिमें भी लेप करना चाहिये। मुलहटी, चन्दन, मूर्वा, लाल कमलकी जड, पद्मकाष्ठ, सुगन्धवाला, खस और कमल इनका प्रलेप पित्तकी सूजनको नष्ट करे है। बिजौरेकी जड, जटामांसी, देवदार, रायसन, सोंठ और अरनी (अगेथू) इनका प्रदेह वातसम्बन्धी सूजनको नष्ट करे है। पीपल, पुरानी खल, सहजनेकी छाल, खांड और हरड इनको गोमूत्रमें पीसकर किंचित् उष्ण प्रदेह करे तो कफसम्बन्धी सूजन नष्ट होती है ॥ ११–१६ ॥

अथ शोणितस्रावण [फस्त] विधिः।

क्षोणितं स्रावयेज्जन्तोरामय प्रसमीक्ष्य च। प्रस्थं प्रस्थार्द्धमथ वा प्रस्थार्द्धार्द्धमथापि वा ॥ १ ॥ शरत्काले स्वभावेन शोणितं स्रावयेन्नरः। त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या नश्यन्ति रुधिरोद्भवाः ॥ २ ॥ व्यभ्रे वर्षासु विद्युत्सु शीते ग्रीष्मे शरद्यपि। मध्याह्ने शीतकाले च रुधिरं स्रावयेद्बुधः ॥ ३ ॥ मधुरं वर्णतो रक्तमशीतोष्णं तथा गुरु। शोणितं स्निग्धविस्रं च विदग्धं पित्तकृद्भवेत् ॥ ४ ॥ विस्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा। भूम्यादिपंचभूतानामेते रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ ५ ॥ रक्ते दुष्टे भवेच्छोथो रक्तमण्डलमेव च। व्यथा दाहश्च पाकश्च कंडूश्च पिडकोद्गमः ॥ ६ ॥ वृद्धे रक्ताङ्गनेत्रत्वं शिराणां पूर्णता तथा। गात्राणां गौरवं निद्रा मेहो दाहश्च जायते ॥ ७ ॥ क्षीणेऽस्रे मधुराकांक्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता। शैथिल्यं च शिराणां स्याद्वातादुन्मार्गगामिता ॥ ८ ॥ (वातादूक्षक्षैण्यजनितात्)

प्राणीके रोगपर ध्यान देकर एक प्रस्थ, आधा प्रस्थ अथवा सोलह तोले रुधिर निकाले। शरदृतुमें स्वाभा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विक रीतिसे मनुष्य रुधिर निकलवावे । रुधिरसे उत्पन्न हुए चर्मदोष, गाँठ और सूजन आदि विकार रुधिर निकलवानेसे नष्ट होते हैं । जिस समय बद्दल न होयँ, वर्षाऋतुमें, बिजली चमकती हो, ग्रीष्मऋतुमें, शरद्ऋतुमें, मध्याह्न समयमें और शीतकालमें विद्वान् वैद्य रोगोंपर ध्यान देकर रुधिर निकाले । रुधिर मधुर, वर्णमें लाल, शीतलतासे तथा उष्णतासे रहित, भारी, चिकना, कच्चे पदार्थके सदृश गंधवाला और पित्तके सदृश दाहशक्तिवाला होता है । रुधिरमें जो गंध है वह पृथ्वीका गुण है, द्रवता जलका गुण है, रक्तता तेजका गुण है, चलन वायुका गुण है और शब्द आकाशका गुण है, अर्थात् इस प्रकार रुधिरमें पांचों भूतोंके गुण हैं । रुधिर बिगड गया हो तौ सूजन, लाल चकत्ते, शरीरमें पीडा, दाह, शरीरका पक जाना, खुजली और फुन्सी होती हैं । शरीरमें रक्त बढ गया हो तौ अंग तथा नेत्र लाल हो जाते हैं; नसें सूज जाती हैं, गात्रमें भारीपन होता है, निद्रा अधिक आती है और प्रमेह तथा दाह होता है । शरीरमें रुधिरकी क्षीणता हो तौ मधुर पदार्थ खानेकी इच्छा, मूर्च्छा, त्वचा (चमडी) में रूक्षता तथा रुधिरकी क्षीणतासे उत्पन्न हुई वात और शरीरकी नसें शिथिल हो जाती हैं और अयोग्य क्रमसे चलने लगती हैं ॥ १–८ ॥

अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम् । आस्कन्दि सूचीनिस्तोदि रक्तं स्याद्वातदूषितम् ॥ ९ ॥ पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावं च विस्रकम् । अम्लोष्णं मक्षिकाणां पिपीलीनामनिष्टकम् ॥ १० ॥ शीतलं बहुलं स्निग्धं गैरिकोदकसन्निभम् । मांसपेशीप्रभं स्कंदि मन्दगं कफदूषितम् ॥ ११ ॥ त्रिदोषदुष्टं संसृष्टं त्रिदुष्टं पूतिगन्धकम् । सर्वलक्षणसंयुक्तं काञ्जिकाभं च जायते ॥ १२ ॥ विषदुष्टं भवेच्छ्यावं नासिकोन्मार्गगं तथा । विस्रं काञ्जिकसंकाशं सर्वकुष्ठकरं तथा ॥ १३ ॥ इन्द्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम् । शोथे दाहेऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ ॥ १४ ॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले । पाण्डुरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥ १५ ॥ ग्रन्थ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगाधिमन्थकाभिधे । विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥ १६ ॥ रक्ताभिष्यन्दतन्द्रायां पूतिघ्राणस्य दैहिके । यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिडकोद्गमे ॥ १७ ॥ कर्णौष्ठघ्राणवक्त्राणां पाके दाहे शिरोरुजि । उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावे प्रशस्यते ॥ १८ ॥ दोषेष्वेषु प्रोक्षणैर्वा जलौकालाबुकादिभिः । अथ वापि शिरामोक्षैः कारयेद्रक्तपातनम् ॥ १९ ॥

रुधिर यदि वायुसे बिगडा हुआ हो तौ लाल, झागोंवाला, रूक्ष, कठोर, पतला, शीघ्र चलनेवाला और सुइयोंकी सदृश पीडा करनेवाला होता है । रुधिर यदि पित्तसे बिगडा होय तौ मधुरतारहित, गरम मक्खियों तथा चैंटी (कीडियों) को अप्रिय, पीला, हरे रंगवाला, नीला, काला और कच्चे पदार्थके सदृश गंधवाला होता है । यदि रुधिर कफसे बिगडा होय तौ शीतल, बहुल, स्निग्ध, गेरूके पानीके सदृश कांतिवाला, मांसकी पेशीसे फैलनेवाला और मंदगतियुक्त होता है । जो रुधिर दो दोषोंसे बिगडा होय तौ उसमें दो दोषोंके लक्षण देखनेमें आते हैं और जो तीन दोषोंसे बिगडा होय तौ दुर्गन्धतायुक्त सम्पूर्ण लक्षणोंवाला, तथा कांजीके सदृश होता है । जो रुधिर विषसे बिगडा हो तो काला, नाकमेंसे निकलनेवाला, कच्चे पदार्थक सदृश गंधवाला, कांजीके समान और सर्व प्रकारके कोढोंको उत्पन्न करनेवाला होता है । शुद्ध रुधिर पतला और चौमासेमें होनेवाले इन्द्रगोप (वीरबहूटी) कीडेके सदृश रंगवाला होता है । वातरक्त, सूजन, दाह, अंगोंका पकना, शरीरका लाल रंग होना, नाक आदिमेंसे रक्त निकलना, कोढ, पीडासहित, वायुके दुर्जय होनेपर विषसे दूषित हो जाना, पाण्डुरोग, श्लीपद, रुधिरका विषसे दूषित हो जाना, गांठ, अर्बुद, अपचीनामक गलेकी गांठ, क्षुद्ररोग, अधिमंथ, विदारी, स्तनरोग, गात्रका पीडित हो जाना, भारीपन, रक्ताभिष्यन्द, तन्द्रा, नाक अथवा मुखमेंसे दुर्गन्धका निकलना, दाह, यकृत् (कलेजा), प्लीहा, विसर्प, विद्रधि, पिडका,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्ण होंठ नाक और मुखका पकना, मस्तकरोग, उपदंश और रक्तपित्त इतने रोगोंमें रुधिर निकालना बहुत उत्तम है । इन रोगोंमें सिंगिये लगवाकर अथवा जोंक लगवाकर, वा तूँबी आदि लगवाकर अथवा नस खोलकर रुधिर निकाले ॥ ९–१९ ॥

न क्षुब्धीत शिरामोक्षं कृशस्थाऽतिव्यवायिनः । क्लीबस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतायाः पाण्डुरोगिणः ॥ २० ॥ पंचकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम् । सर्वाङ्गशोथयुक्तानामुदरिश्वासकासिनाम् ॥ २१ ॥ छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि । ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च । आघातात्क्षुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते ॥ २२ ॥ (तथा च क्षुतरक्तस्य रक्तपित्तादिना गतरक्तस्य) एषां चात्ययिके योगे जलौकाभिर्विनिर्हरेत् । तथा च विषजुष्टानां शिरामोक्षो न शस्यते ॥ २३॥ शृङ्गेण जलौकाभिरलाबूभिरपि त्रिधा । वातपित्तकफैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद्बुधः ॥ २४ ॥ द्विदोषाभ्यां तु दुष्टं यत्त्रिदोषैरपि दूषितम् । दूषितं स्रावयेद्युक्त्या शिरामोक्षैः पदैस्तथा ॥२५॥ गृह्णाति शोणितं शृंगं दशांगुलमितं बलात् । जलौका हस्तमात्रं तु तुम्बी तु द्वादशांगुलम् ॥ २६ ॥ पदमंगुलमात्रस्य शिरा सर्वागशोधिनी । शीते निरन्ने मूर्च्छार्तिनिद्राभीतिमदश्रमैः ॥ २७ ॥ युक्ते नास्रावयेद्रक्तं तथा विण्मूत्रसंगिनाम् । शोणिते चाप्रवृत्ते तु कुष्ठत्रिकटुसैन्धवैः ॥ २८ ॥ मर्दयेद्व्रणवक्त्रे च तेन रक्तं प्रवर्त्तते । तस्मान्न शीते नात्युष्णे नास्विन्ने नातितापिते ॥ २९ ॥ पीत्वा यवागूं तृप्तस्य स्रावयेच्छोणितं बुधः । अतिस्विन्नस्योष्णकाले तथैवातिशिराव्यधात् ॥ ३० ॥ अतिप्रवर्तते रक्तं तत्र कुर्यात्प्रतिक्रियाम् । अतिप्रवृत्ते रक्ते तु लोध्रसर्जरसाञ्जनैः ॥ ३१ ॥ यवगोधूमचूर्णैश्च धवधन्वनगैरिकैः । सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वा भस्मना क्षौमवस्त्रयोः ॥ ३२ ॥ मुखं व्रणस्य बद्ध्वा च शीतैश्चोपचरेद्व्रणम् । विध्येदूर्ध्वशिरां तावद्दहेत्क्षारेण वह्निना ॥ ३३ ॥ व्रणं कषायः सन्धत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम् । व्रणास्यं पाचयेत्क्षारो दाहः सङ्कोचयेच्छिराः ॥ ३४ ॥ रक्ते दुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति । अतो रक्षेत्सावशेषं रक्ते नातिस्रुतिर्हिता ॥ ३५ ॥

दुर्बल, बहुत मैथुन करनेवाला, नपुंसक, भयभीत, गर्भवती स्त्री, प्रसूता स्त्री, पाण्डुरोगी, वमन आदि पंचकर्मोंसे शुद्ध हुआ, जिसने स्नेहपान किया हो, अर्शरोगी, सर्व अंगोंमें सूजनयुक्त, उदररोगी, श्वास, खाँसी, वमन, अतीसार इन रोगोंकरके युक्त, जिसके शरीरमें स्वेदन क्रिया अधिक करी हो, सोलह वर्षकी अवस्थासे छोटा, सत्तरवर्षसे अधिक आयुवाला और जिसका रक्तपित्त आदिसे रुधिर निकलगया हो, इन सबकी नस खोलकर रुधिर नहीं निकाले । इन रोगियोंके यदि रुधिर निकालनेकी अत्यन्त आवश्यकता हो तो जोंक लगाकर निकाले । परन्तु इन रोगियोंके विष (जहर) चढा हुआ हो तो उनकी फस्त खोलकरही रुधिर निकालना उत्तम है । विद्वान् वैद्य वायुसे, पित्तसे, अथवा कफसे बिगडे रोगीका रुधिर सींगी, जोंक अथवा तूँबी लगाकर निकाले, परन्तु दो दोषसे अथवा तीन दोषसे बिगडा हो तो युक्तिसे फस्त खोलकर और पछने लगाकर रुधिरको निकाले । सींगी—आसपासके दश अंगुलतकके रुधिरको बलात्कारसे खींचती है, जोंक एक हाथतक रुधिरको खींचती है, तूँबी बारह अंगुलतकके रुधिरको खींचती है; पछना एक अंगुलतकके रुधिरको निकाले है और फस्त खोलनेसे सम्पूर्ण शरीरका रुधिर निकलकर शुद्ध हो जाता है । शीतकालमें, भूँखा, मूर्च्छित, निद्रायुक्त, भयभीत, मदयुक्त, थका हुआ और जिसका मल अथवा मूत्र रुक गया हो, इन सबका रुधिर नहीं निकाले । रुधिर निकालनेकी क्रिया करनेपर भी रुधिर नहीं निकले तो कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल और सेंधे निमकको बारीक पीस उस व्रणके मुखपर लगाके रगडे तो रुधिर निकलने लगता है । जिस समय अत्यन्त शीत तथा उष्णता न हो, रोगीकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वेदनाक्रिया न करी हो और उसका शरीर अत्यन्त-गरम न किया हो उस समय रोगीको यवागू पिलाकर तृप्त करके पश्चात् रुधिर निकालना चाहिये । जिसको अत्यन्त पसीना आ रहा हो, उष्णकाल हो अथवा जिसके शस्त्र अत्यन्त गहरा लग गया हो उसके रुधिर अधिक निकलता है । इस प्रकार रुधिर बहुत निकलने लगे तो लोध, राल, रसौत, जौ तथा गेहूँको चून, धायका चूर्ण, धतूरेका चूर्ण, गेरू, साँपकी काचलीका चूर्ण, रेशमी कपडेकी भस्मसे, अथवा सादे कपडेकी भस्मसे उस घावके मुखको बन्द करके उसके ऊपर शीतल उपचार करे अथवा उस बींधी हुई नसके ऊपर भागको फिर वेधे, बींधे हुएके ऊपर खारी डाले, वा बांधे हुएको अग्निसे जलावे औषधि डालनेसे बींधे हुएका जोड मिल जाता है, शीतल उपचार करनेसे रुधिरकी रुकावट होती है, क्षार डालनेसे व्रणका मुख जुड जाता है और दाग देनेसे नस मुकड जाती है । बिगडा हुआ रक्त शरीरमें किंचित् शेष (बाकी) रह जाय तो भी व्याधिका प्रकोप नहीं होता, इस कारण रुधिरको शेष रख देवे, कारण कि—रुधिर अधिक निकलना उत्तम नहीं है ॥ २०—३५ ॥

आन्ध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं शिरसो रुजः । पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कादाहौ च पाण्डुताम् ॥ ३६ ॥ कुरुतेऽतिस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च । देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्तेनैव धार्यते ॥ ३७ ॥ रक्तं जीवस्य चाधारस्तस्माद्रक्षेदसृग्बुधः । शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते ॥ ३८ ॥ कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत् । क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥ ३९ ॥ रसः समुचितः पाने क्षीरं षष्टिकया हितम् । पीडाशान्तिर्लघुत्वं च व्याध्युपद्रवसंक्षयः ॥ ४० ॥ मनःस्वास्थ्यं भवेच्छिद्रं सम्यङ्निःसारितेऽसृजि । व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकान् ॥ ४१ ॥ एकाशनं दिवा निद्रां क्षाराम्लकटुभोजनम् । शोकं वादमजीर्णं च त्यजेदाबलदर्शनात् ॥ ४२ ॥

रुधिर बहुत निकले तो अन्धापन, आक्षेपक वात, तृषा, तिमिर, मस्तकरोग, पक्षाघात, श्वास, खांसी हिचकी, दाह, तथा पाण्डुरोग इनकी उत्पत्ति होती है और किसी समय मृत्यु भी हो जाती है । शरीरकी उत्पत्ति रुधिरसे हुई है, रुधिरही शरीरको धारण करता है और रुधिरही जीवका आधाररूप है; इस कारण विद्वानोंको रुधिरकी रक्षा करनी चाहिये । रुधिर निकालनेके पश्चात् शीतल उपचार करनेसे वायुका प्रकोप होय तो पीडायुक्त सूजनपर किंचित् उष्णतायुक्त घी लगावे । रुधिर निकलनेसे अधिक निर्बलता हो जाय तो रोगीको हिरण, खरगोश, मेंढा, काला हिरन और बकरेके मांसका रस पिलाना चाहिये और दूधके साथ सांठी चावलोंको खिलावे तो इससे अच्छा होता है । रुधिर बराबर ठीक निकल गया होय तो पीडाकी शांति, शरीरमें लघुता, रोग तथा उपद्रवका क्षय और मनको स्वस्थता इतने चिह्न होते हैं । रुधिर निकालनेके पश्चात् शरीरमें जबतक बल न आवे तबतक अत्यन्त परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलसे स्नान, अधिक पवनमें रहना, एक समय भोजनका अभ्यास, दिनमें सोना, खारी, अम्ल तथा तीक्ष्ण पदार्थ खाना, शोक करना और विवाद करना, इन सबको छोड देवे तथा अजीर्ण नहीं होने देवे ॥ ३६—४२ ॥

नेत्रस्वच्छकारिणी क्रिया ।

सेक आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा । पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥

सेक (पानी आदिकी धार डालनी), आश्च्योतन (बूँदें डालना), पिंडी (लुपडी बांधना), बिडाल (लेप करना), तर्पण (तृप्ति करनेके लिये नेत्रोंमें दूध आदि भरना), पुटपाक (पकाया हुआ रस नेत्रोंमें डालना) और अंजन (आंजना) इतनी क्रियाओंसे नेत्रोंका उपचार करे ॥ १ ॥

सेकविधिः ।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः । मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलः ॥ २ ॥ स सस्नेहो भवेद्वाते पित्ते रक्ते च रोपणः । लेखनस्तु कफे कार्यस्तस्य मात्राऽभिधी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यते ॥३॥ षड्भिर्वाचां शतैः स्नेहे चतुर्भिश्चैव रोपणे। तैस्त्रिभिर्लेखने कार्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥ ४ ॥ निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्या च्छोटिकाऽथ वा। गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ ५ ॥ सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रौ चात्यन्तिके गदे। एरण्डस्य दलैः पिष्टैः पक्कमाजं पयो हितम्। सुखोष्णं नेत्रयोरन्तः सिक्तं वातार्तिनाशनम् ॥ ६ ॥

रोगीके नेत्रोंको मिचवाकर उसके ऊपर चार अंगुल ऊँचेसे सूक्ष्म (पतली) धारा डाले, यह धारा नेत्रसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंमें उत्तम है। वातकी पीडा हो तो घी आदि स्नेह पदार्थोंकी धारा देवे, यह स्नेहन सेक कहाता है। पित्तकी अथवा रुधिरकी पीडा होय तो हरड आदिके रसकी धारा देवे, यह रोपण-सेक कहाता है। कफकी पीडा होय तो मलको उखाडनेवाले सोंठ आदिके रसकी धारा देवे, यह लेखन सेक कहाता है। स्नेहन सेक करना हो तो छः सौ मात्रातक करे, रोपण सेक करना हो तो चार सौ मात्रातक करे और लेखन सेक करना हो तो तीन सौ मात्रातक करे, इससे नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं। मनुष्य नेत्र मीचकर खोले इतने समयकी, वा एक चुटकी बजानेमें जितना समय लगे इतने समयकी अथवा एक गुरु अक्षर जितने समयमें बोला जाय इतने समयकी एक मात्रा होती है। धारा डालनेका सेक दिनमें ही करे, परन्तु महादुःखदायी रोग होय तो रात्रिमें भी करे। पिसे हुए अण्डीके पत्तोंके साथ बकरीका दूध पकाकर किंचित् गरम गरम उस दूधको नेत्रोंपै डाले तो वह सेचन उत्तम है और वातसम्बन्धी पीडाको नष्ट करे है ॥ २–६ ॥

आश्च्योतनविधिः।

क्काथक्षौद्रासवस्नेहबिन्दुना यत्तु पातनम्। द्व्यंगुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हितम् ॥ ७ ॥ बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु रोपणे दश बिन्दवः। स्नेहे ते द्वादश प्रोक्ताः शीतले कोष्णरूपिणः ॥ ८ ॥ उष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः। वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ॥९॥ कफे तिक्तोष्णरूक्षं च क्रमादाश्च्योतनं हितम्। आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्कतोन्मिता ॥ १० ॥ ततः परं लोचनाभ्यां भेषजानामयोगतः। आश्च्योतनं न कर्त्तव्यं निशायां केनचित्क्वचित् ॥ ११ ॥ तद्यथा–विल्वादिपंचमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः। क्काथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ॥ १२ ॥

रोगीके नेत्रोंको दो अंगुल खोलकर उसमें क्काथ, शहद, आसव अथवा स्नेहकी बूंदें डाले, इसको आश्च्योतन कहते हैं; यह हितकारी है। लेखन क्रिया करनी होय तो आठ बूंदें डाले, रोपण क्रिया करनी हो तो दश बूँदें डाले और स्नेहन क्रिया करनी हो तो बारह बूँदें डाले। शीतकाल होय तो किञ्चित् गरम करके बूँदें डाले और उष्णकाल होय तो शीतल बूँदें डाले, यह सम्पूर्ण क्रियाओंका सिद्धान्त है। वातकी पीडा होय तो कडवी तथा स्नेहयुक्त बूँदें हितकारी हैं, पित्तकी पीडा हो तो मधुर और शीतलतायुक्त बूँदें डालना हितकारी है और कफकी पीडा होय तो कडुवे गरम तथा रूक्ष औषधियोंकी बूँदें डालना हितकारी है। सम्पूर्ण आश्च्योतनकी मात्रा सौ गुरु अक्षरोंका जितने समयमें उच्चारण हो इतने समयकी जाननी, कोई वैद्य किसी रोगपर नेत्रोंमें रात्रिके समय बूँदें नहीं डाले। बेल आदि पंचमूल, कटेरी, अरण्ड और सहँजनेका क्काथ करके उसकी सहती सहती गरम बूँदें नेत्रमें डाले, इससे वाताभिष्यन्द (वातसे आँखोंका दुखना) नामक रोगका नाश होता है ॥ ७–१२ ॥

पिण्डिकाविधिः।

युक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी कवलमात्रया। वस्त्रखण्डेन संबध्या नेत्रेऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ १३ ॥ स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्ते सा शीतला मता। रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥ १४ ॥ सा यथा–धात्रीविरचिता पित्ते शिग्रुपत्रकृता कफे ॥ १५ ॥

योग्य औषधियोंका कल्क करके उसकी कवलके सदृश टिकिया नेत्रोंपर रखकर उसपर ऊपरसे वस्त्रकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पट्टी बाँधे यह पिंडीकी क्रिया है । इस टिकियाको रखकर बाँधनेसे नेत्र दुखनेकी पीडा नष्ट होती है । नेत्र वातसे दुखने लगे होयँ तौ स्नेहयुक्त गरम टिकिया रक्खे; पित्तसे दुखने लगे होयँ तौ शीतलतायुक्त टिकिया रक्खे, गरम और रूखे पदार्थोंकी टिकिया कफरोगमें रक्खे, यह विद्वानोंने कहा है । अण्डके पत्ते, जड और छाल इनकी टिकियासे वातकी पीडा नष्ट होती है, आमलोंकी टिकियासे पित्तकी पीडा नष्ट होती है और सहँजनेकी टिकियासे कफकी पीडा नष्ट होती है ॥ १३–१५ ॥

बिडालकविधिः ।

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः । तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखालेपविधानवत् ॥ १६ ॥ यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः । जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥ १७ ॥

नेत्रके पलकोंको छोडकर बाहरके भागपर लेप करे इसको बिडालकविधि कहते हैं । मुखके ऊपर लेप करनेकी जो मात्रा कही है वही मात्रा बिडालककी जाननी । मुलहठी, सुवर्णगेरू, सेंधानिमक, दारुहलदी और खपरिया इनको समान भाग लेकर पानीमें पीसकर नेत्रके बाहरके भागपर लेप करे तो नेत्रके सम्पूर्ण रोगोंका नाश होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

तर्पणविधिः ।

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः । अभितो माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिपिण्डितौ ॥ १८ ॥ समौ दृढौ च सम्बाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रकोशयोः । पूरयेद्घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ १९ ॥ सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा । निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ २० ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः । भिषग्भिरेष विख्यातस्तर्पणस्योदितो विधिः ॥ २१ ॥ यद्रूक्षं च परिष्यन्दि नेत्रं कुटिलमाविलम् । शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् ॥ २२ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः । शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं वातविपर्ययैः ॥ २३ ॥ दत्तेन तर्पयेत्सम्यङ्नेत्ररोगविशारदः । तर्पणं धारयेद्वर्त्मरोगे वाचां शतं बुधः ॥ २४ ॥ स्वस्थे कफे सन्धिरोगे वाचां पंच शतानि च । षट्शतानि कफे कृष्णरोगे सप्त शतानि हि ॥ २५ ॥ दृष्टिरोगे शतान्यष्टावधिमन्थे सहस्रकम् । सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेव हि तर्पणम् ॥ २६ ॥ पूर्णे चापांगमार्गेण स्रावयित्वाऽक्षि शोधयेत् । स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्यैरितं ततः ॥ २७ ॥ यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् । एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं तर्पणं चरेत् ॥ २८ ॥

जिसमें वायु, धूप अथवा धूल न हो ऐसे घरमें रोगीको चित्त सुलाकर सने हुए उडदके चूनका, एकसा, दृढ, गांठरहित ऐसा दोनों नेत्रोंपर घेरा बनावे, पश्चात् रोगीकी आँखोंको मिचवाकर उष्ण जलसे पिघलाया हुआ घी, सौ वार जलसे धोया हुआ घी, अथवा दूधसे निकाला हुआ घी जबतक पलक डूबे तबतक उस घेरेमें भरे, इसके भरनेपर धीरेसे रोगीकी आँखें खुलवावे, यह तर्पणकी प्रसिद्ध विधि वैद्योंने कही है । नेत्र रूक्ष हो गये हों, पानी झरता हो, मैले तथा पलकोंरहित हो गये हों, नेत्रोंकी नसें लाल होकर बहुत पीडा करती हों, तिमिर, अर्जुन, फूला, अभिष्यन्द, अधिमंथ, शुष्कनेत्र, नेत्रपाक, नेत्रोंकी सूजन, अथवा वातविपर्यय रोग होय तौ इन सब रोगोंमें विद्वान् वैद्य तर्पण विधि करे । वर्त्मरोग होय तौ जबतक सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण हो तबतक नेत्रोंपर तर्पणको रहने देवे । स्वस्थतामें, कफमें तथा संधिरोगमें पाँच सौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण होय तबतक तर्पणको रहने देवे । पित्तकी पीडा होय तौ छः सौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवे । काली पुतलीके रोगोंमें सात सौ और दृष्टिरोगोंमें आठ सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण होनेतक तर्पण धारण करे । अधिमंथरोग (पुतलीमें मानो कोई वस्तु चुभती हो ऐसी पीडा उठकर आधे मस्तकमें वेदना) होय तौ सहस्र गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवे और वातसंबंधी रोग होय तौ भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहस्र गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण हो तबतक तर्पणको रहने देवे । तर्पणविधि पूर्ण होनेपर नेत्रके कोयेसे घीको बहाकर निकाल डाले, फिर गरम किये जौके आटेसे नेत्रोंको साफ कर डाले और तत्पश्चात् घीके जोरसे बढे हुए कफको यथायोग्य धूमपान करके दूर करे । एक दिन, पाँच दिन अथवा सात दिनतक तर्पणक्रिया करे ॥ १८–२८ ॥

यथार्थतर्पणाचिह्नम् ।

तर्पणे तृप्तिलिंगानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् । सुखस्वप्नाववोधत्वं वैशद्यं नेत्रपाटवम् । निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ २९ ॥ (निर्वृतिः सुखम् । क्रियालाघवं नेत्रस्य । क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुता ।) गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत् । घर्षतोदयुतं नेत्रमतितर्पितमादिशेत् ॥ ३० ॥ आस्रावशोफपीडाढ्यमुपदेहसमाकुलम् । रूक्षमस्रावमरुणं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ ३१ ॥ अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयतेत चिकित्सिते । रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥ (अनयोः अतितर्पितहीनतर्पितयोः ।) दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायां संभ्रमेषु च । अशान्तोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते ॥ ३३ ॥

तर्पण यथार्थ हुआ होय तो निद्रा सुखपूर्वक आवे और सुखपूर्वक ही जाग जाय, स्वच्छता, नेत्रोंकी शक्ति तथा सुख बढता है, व्याधिकी शांति होती है और खोलना मीचना आदि क्रिया करनेमें लघुता होती है, इस प्रकारके चिह्न होनेसे नेत्रोंका तर्पण भली भाँति हुआ जानना । जो तर्पणका अधिक योग हुआ होय तो नेत्र भारी होते हैं, मैले हो जाते हैं, अत्यन्त स्निग्धता होती है, आँसू बहते हैं, खुजली होती है, जिस प्रकार थर चढा हो नेत्र इस भाँति हो जाते हैं और घिसनेकी समान पीडा होती है, इन चिह्नोंसे वैद्यको नेत्रोंका अत्यन्त तर्पण हुआ जानना । जो नेत्रका हीन तर्पण हुआ होय तो नेत्रोंमेंसे पानी झरता है, सूजन तथा पीडा होती है, नेत्र लिप्तता करके आकुल रहते हैं, रूक्षता होती है, गीलापन नहीं रहता और लाली होती है । जो तर्पण अधिक अथवा हीन हुआ होय तो दोषोंकी वक्रता होती है इस कारण उनकी चिकित्सा करनेका प्रयत्न करे । जो अत्यंत तर्पण हुआ होय तो रूक्ष उपचार करे और हीनतर्पण हुआ होवे तो स्निग्ध उपचार करे । बद्दलके दिनमें अत्यंत उष्ण तथा शीतल समयमें जब चिंता तथा संभ्रम होय तब और उपद्रव शांत होनेसे पहिले नेत्रोंका तर्पण करना योग्य नहीं है ॥ २९–३३ ॥

पुटपाकविधिः ।

द्वे बिल्वे स्निग्धमांसस्य परद्रव्यपलं मतम् । द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ ३४ ॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् । पुटपाकविधानेन तत्पश्चात्तद्रसं बुधः ॥ ३५ ॥ तर्पणोक्तेन विधिना यथावदवधारयेत् । दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ ३६ ॥ स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा । हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्य स तु लेखनः । दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥ ३७ ॥ (इतरो रोपणः) स्नेहमांसवसामज्जमेदःस्वाद्वौषधैः कृतः । स्नेहनः पुटपाकः स्याद्धार्योऽयं वाक्छतं नरैः ॥ ३८ ॥ जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः । कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिन्धुजैः ॥ ३९ ॥ समुद्रफेनकासीसस्रोतोऽञ्जदधिमस्तुभिः । लेखनो वाक्छतं तस्य परं धारणमिष्यते ॥ ४० ॥ स्तन्यजाङ्गलमज्जाज्यतिक्तद्रव्यविपाचितः । लेखनात्त्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ ४१ ॥ निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकाभिः स्यात्पञ्चतिक्तक इति प्रथितो गणोऽयम् । आचरेत्तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने । (व्यापत्तिदर्शने मिथ्याकृतपुटपाकजनितव्याधिदर्शने ।) तेजांस्यनिलमाकाशमादर्शं भास्वराणि च । नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ ४२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्नेहयुक्त आठ तोले मांस लेकर उसमें अन्य औषधि चार तोले, द्रवपदार्थ सोलह तोले डालकर सबको एकत्र पीसे; पश्चात् उसका एक गोला बनाकर पत्तोंसे ढककर पूर्वोक्त पुटपाककी रीतिसे अग्निमें पकावे, पश्चात् उसमेंसे रस निचोड लेवे उस रसको तर्पणकी रीतिके अनुसार सम्पूर्ण प्रकारसे नेत्रोंमें उपयोग करे। रोगीको चित्त सुलाकर उसके नेत्रोंमें यह रस डाले। स्नेहन (स्निग्धता करनेवाला), लेखन (मलको उखाडनेवाला) और रोपण (भरती करनेवाला) इस भाँतिसे इस रसके तीन भेद हैं। अत्यंत रूक्ष हुए मनुष्योंको स्नेहन रस उत्तम है, स्निग्ध मनुष्योंको लेखन रस उत्तम है, और दृष्टिको बल देनेके लिये रोपण रस उत्तम है कि, जिससे पित्तरुधिरका विकार, व्रण और वात नष्ट होते हैं। स्नेह, मांस, चरबी, मज्जा, मेद तथा मधुर औषधियोंसे बनाये हुए पुटपाकका रस स्नेहन होता है, स्नेहन रसको दो सौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण होय तबतक धारण करे, जंगली जीवोंका कलेजा और मांस, लेखन औषधि, काले लोहे (पोलादलोहे) का चूर्ण, ताँबेका चूर्ण, शंख, मूँगा, सेंधानोन, समुद्रफेन, कसीस तथा सुरमेका चूर्ण और दहीका पानी इनसे किये हुए पुटपाकका रस लेखन होता है, लेखन रसको सौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण होय तबतक धारण कर रक्खे। स्त्रीका दूध, जंगली पशुओंका मांस, मधु, घी, नीम, गिलोय, अडूसा, परवल और कटेरी इनसे बनाया हुआ पुटपाकका रस रोपण होता है, रोपण रसको तीन सौ गुरु अक्षरोंका जबतक उच्चारण होय तबतक धारण कर रक्खे। नीमको आदि लेकर कटेरीतक जो पदार्थ कहे वह तिक्तकगण कहाता है। पुटपाकके रसका अधिक अथवा न्यून उपयोग होनेसे रोगोंकी उत्पत्ति देखनेमें आवे तो तर्पणके विषयमें कही हुई क्रिया करे। नेत्रका तर्पण किया हो अथवा पुटपाकके रसका उपयोग किया हो वह रोगी तेजके सन्मुख नहीं देखे, वायुके सामने दृष्टि नहीं करे, आकाशको नहीं देखे, शीशा और प्रकाशित बिजली आदि पदार्थोंको भी नहीं देखे ॥ ३४–४२ ॥

अंजनविधिः ।

अथ सम्पक्कदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् । अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ ४३ ॥ तद्यथा—रसो वर्ती तथा चूर्णमिति त्रिविधमञ्जनम् । यथापूर्वं बलं तेषु श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥ ४४ ॥ तत्प्रत्येकं त्रिधा प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा । स्नेहनं चेति लिङ्गानि तेषां विस्तरतः शृणु ॥ ४५ ॥ लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैरञ्जनमुच्यते । नेत्रवर्त्मशिराजालश्रोत्रशृङ्गाटकास्थितम् ॥ ४६ ॥ मुखनासाक्षिभिर्दोषमुत्क्लिश्य स्रावयेच्च तत् । कषायं तिक्तकं चापि सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ ४७ ॥ तत्स्नेहशैत्याद्वर्ण्यं स्याद्दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् । मधुरं स्नेहसंपन्नमञ्जनं स्यात्प्रसादनम् ॥ ४८ ॥ दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहनार्थं च तद्धि तत् । हरेणुमात्रा वर्त्तिस्तु लेखनी स्यात्प्रमाणतः ॥ ४९ ॥ सार्द्धैकरेणुकमिता रोपणी वर्त्तिरिष्यते । क्रियते स्नेहनी वर्त्तिर्द्विहरेणुकमात्रया । रसाञ्जनस्य मात्रा तु पिष्टवर्तिमिता मता ॥ ५० ॥

सम्पूर्ण दोषोंके पक जानेके पश्चात् नेत्रोंमें योग्य अंजन आँजे, जो नेत्रोंमें लगाया जावे वह पदार्थ अंजन कहाता ह। रसरूप बत्तीरूप और चूर्णरूप ये अंजनके तीन भेद हैं। इनमें चूर्णसे बत्ती बलवान् है और बत्तीसे रस बलवान् है। इस प्रत्येक अंजनके लेखन रोपण और स्नेहन इस भाँति तीन तीन भेद हैं, इनका लक्षण विस्तारसे कहते हैं सो सुनो। जो खारी, तीक्ष्ण और खट्टे रसवाला अंजन होय वह लेखन अंजन कहाता है। यह अंजन नेत्रोंमें, पलकोंमें, नसोंके समूहमें, कानमें और कपालकी हड्डीमें रहनेवाले दोषोंको स्थानसे गिराकर मुखसे, नाकसे तथा नेत्रोंसे निकाल देताहै। कसैले तथा कडवे रसवाला और स्नेहयुक्त जो अंजन होय वह रोपण कहाता है। यह स्नेह तथा शीतल होनेसे रोपण अंजन वर्णको उत्तम करे है और दृष्टिके बलको भी बढावे है। मधुररसवाला और स्नेहयुक्त जो अंजन होय वह प्रसादन कहाता है, स्नेहन अंजन दृष्टिके दोषको शुद्ध करनेके लिये और दृष्टिको स्निग्ध करनेके लिये उपयोगी है। लेखन बत्ती बनावे तो एक मटरके बराबर बनावे। दृष्टिका बल बढानेके लिये जो बत्ती बनाई जाय वह डेढ मटरकी बराबर बनावे और दृष्टिको स्निग्ध कर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेके लिये जो बत्ती बनाई जाय वह दो मटरकी बराबर बनावे, रसरूप अंजनकी मात्रा एक पिष्टवर्तिकी बराबर बनावे ॥ ४३–५० ॥

चूर्णं तु लेखनं वैद्यैर्द्विशलाकं प्रदीयते । रोपणं त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नेहनाञ्जने ॥ ५१ ॥ (चतस्रः शलाकाः स्नेहनाञ्जने चूर्णे) मुखे या मुकुलाकारा कलायपरिमण्डला । अष्टांगुला शलाका स्यादश्मजा धातुजाथ वा ॥ ५२ ॥ (कलायपरिमण्डला अग्रे कलायवद्वर्त्तुला ।) ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता । सुवर्णरजतोद्भूता स्नेहने समुदाहृता ॥ ५३ ॥ अंगुली च मृदुत्वेन रोपणे सम्प्रयुज्यते । कृष्णभागावधिं लिम्प्यादपांगं यावदञ्जनम् ॥ ५४ ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते । पूर्वाह्णे वापराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ ५५ ॥ वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते तु सदैव हि । अथ वा सर्वदा प्रातः सायं वाञ्जनमाचरेत् ॥ ५६ ॥ नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां तत्प्रयुज्यते । श्रान्तेऽथ रुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ॥ ५७ ॥ अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रयुज्यते । रागोपदेहौ तिमिरं शूलं संरम्भमेव च । निद्राक्षयं च कुरुते निषिद्धे युक्तमञ्जनम् ॥ ५८ ॥

लेखन चूर्ण आँजना होय तो उसकी दो सलाई आँजे, रोपण चूर्ण आँजना होय तो उसकी तीन सलाई आँजे, और स्नेहन चूर्ण आँजना होय तौ उसकी चार सलाई आँजे । आँजनेकी सलाई कलीके सदृश मुखवाली, मटरकी सदृश गोल, आठ अंगुलकी और पत्थरकी अथवा धातुकी होनी चाहिये । लेखन चूर्ण आँजना होय तो ताँबेकी, लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाई होनी चाहिये । स्नेहन चूर्ण आँजना होय तौ सोनेकी अथवा चाँदीकी सलाइ होनी चाहिये । रोपण चूर्ण आँजना होय तो अंगुलीसे आँजे, कारण कि अंगुली कोमल होती है । जो अंजन आँजना होय वह काली पुतलीके नीचेसे नेत्रके कोनेतक आँजे । हेमन्तऋतुमें और शिशिरऋतुमें मध्याह्न समयमें अंजन आँजना चाहिये, ग्रीष्म ऋतुमें और शरदृतुमें पूर्वाह्ण समय अथवा अपराह्ण समयमें अंजन आँजे, वर्षाऋतुमें जिस समय बादल न होय और बहुत गरमी न होय उस समय आँजे, वसंत ऋतुमें जब रुचे तबही अंजन लगावे, अथवा अधिक करके सर्वदा प्रातःकाल वा संध्या समय आँजे, जिस समयमें बहुत शीतलता, उष्णता, वायु और बादल न होयँ उस समयमें अंजन लगावे । थका हुआ, रुदन किये हुआ, भयभीत हुआ, जिसने मदिरा (दारू) पी होय, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णयुक्त और जिसने मल मूत्रके वेगको रोका होय इन सबको अंजन नहीं लगाना चाहिये । जिनको अंजन आँजनेका निषेध किया है उनके अंजन आँजे तो नेत्रोंमें लाली होती है, नेत्र सूजेसे हो जाते हैं, तिमिर, शूल, तथा दोषोंका कोप होता है और निद्राका नाश होता है ॥ ५१–५८ ॥

लेखनकारिणी वर्तिः ।

शङ्खनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला । पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ ५९ ॥ छागक्षीरेण सम्पिष्य वर्तिं कुर्याद्यवोन्मिताम् । एरण्डमात्रां सम्पिष्य जलैः कुर्याद्यथाञ्जनम् ॥ ६० ॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् । रात्र्यान्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्त्तिश्चन्द्रोदया हरेत् ॥ ६१ ॥ इति चन्द्रोदयावर्त्तिर्लेखनी ।

शंखकी नाभि, बहेडेकी मींग, हरड, मैनाशिल, पीपल, मिर्च, कूठ और वच इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर एक अंडीकी बराबर जौके आकारवाली बत्ती बनावे । इस बत्तीको पानीमें पीसकर योग्य रीतिसे आँजे, इसके लगानेसे तिमिर, मांसकी वृद्धि, काच, पटल, अर्बुद, रतौंधा और एक वर्षका फूला नष्ट होता है । इस बत्तीका नाम चन्द्रोदया वर्त्ति है ॥ ५९–६१ ॥

रोपणकारिणी वर्तिः ।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः । जातिपुष्पाणि पञ्चाशन्मरिचानि तु षोडश ॥ ६२ ॥ सूक्ष्मं पिष्ट्वाऽम्बुना वर्त्तिः कृता कुसुमिकाभिधा । तिमिरार्जुन-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुक्राणां नाशिनी मांसवृद्धिनुत् । एतस्या अञ्जने प्रोक्ता मात्रा सार्धहरेणुका ॥ ६३ ॥ इति कुसुमिका रोपणी वर्ती ।

अस्सी तिलके फूल, साठ पीपलके बीज, पचास चमेलीके फूल और सोलह दाने मिर्च इनको पानीमें बारीक पीसकर जो बत्ती बनाई जाय उसको कुसुमिकावर्ती कहते हैं । यह वर्त्ती—तिमिर, अर्जुन (सफेद भागमें लाल बूँद) तथा फूलेको नष्ट करे है और मांसकी वृद्धिको भी दूर करे है । इस वर्त्तीकी आँजनेमें डेढ मटरकी बराबर मात्रा जाननी ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

स्नेहनकारिणी वर्तिः ।

धान्यक्षपथ्याबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च । पिष्ट्वा वर्तिं जलैः कुर्यादञ्जनं द्विहरेणुकम् । नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा ॥ ६४ ॥

आमलेकी गुठलीकी मींग एक भाग, बहेडेकी गुठलीकी मींग दो भाग और हरडोंकी गुठलीकी मींग तीन भाग इनको पानीमें पीसकर बत्ती बनावे और वह दो मटरकी बराबर नेत्रोंमें लगावे इसके लगानेसे नेत्रोंका पानी गिरना तथा वातरक्तका विकार नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

लेखनकारिणी रसक्रिया ।

तुत्थमाक्षिकसिन्धूत्थाः सिताशंखमनःशिलाः । गैरिकं सिन्धुफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ ६५ ॥ संयोज्य मधुना कुर्यादञ्जनार्थं रसक्रियाम् ॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरीं पराम् ॥ ६६ ॥

नीलाथोथा, सोनामाखी, सेंधानोन, खाँड, शंखका चूर्ण, मैनशिल, गेरू, समुद्रफेन और काली मिर्च इनको खूब पीसकर मधुमें मिलाकर आँजे, इसके लगानेसे पलकोंके रोग, अर्म, तिमिर, काच और शुक्ररोग इन सबका अत्यन्त शीघ्र नाश होता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

रोपणी रसक्रिया ।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला । समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचं तथा ॥ ६७ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मने । अञ्जनं छेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ॥ ६८ ॥

रसोत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, सेंधानोन, गेरू और मिर्च इनको समान भाग लेकर सहतमें खूब बारीक पीसे, पश्चात् पलकोंपर लगावें तो पलकोंका गीलापन तथा खुजली नष्ट होती है और पलकोंके बाल गिर गये हों तो फिर उगने लगते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

स्नेहनकारिणी रसक्रिया ।

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत् । ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ॥ ६९ ॥

निर्मलीके फल और थोडे कपूरको सहतमें घिसकर आँजे तो नेत्र स्निग्धतापूर्वक स्वच्छ होते हैं ॥ ६९ ॥

लेखनचूर्णम् ।

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचशंखचन्दनसैन्धवैः । अञ्जनं हरते नित्यं सर्वानक्षिगदान्बलात् ॥ ७० ॥ (दक्षः कुक्कुटः) तथा च निघण्टुः—कृकवाकुस्तथा दक्षः कालज्ञोऽथ शिखण्डिक इति ।

मुरगेके अंडेका छिलका, मैनशिल, काँच, शंख, चंदन और सेंधानोन इनका चूर्ण करके नित्य आँजे तो बलात्कारसे हुए नेत्रोंके सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं । निघंटुमें कृकवाकु, दक्ष, कालज्ञ और शिखडिक ये मुरगेके संस्कृत नाम कहे हैं, इसीसे हमने इस श्लोकमें मुरगेका अंडा अर्थ किया है ॥ ७० ॥

रोपणचूर्णम् ।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्यवारिणा । गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ ७१ ॥ शुष्कं तच्च जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत् । विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ ७२ ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत् । अञ्जयेन्नयनं तेन सर्वदोषप्रशान्तये । समस्तनेत्ररोगघ्नं चूर्णमेतन्न संशयः ॥ ७३ ॥

पत्थरके खरलमें खपरियाको पीस पानीमें भली भाँति भिजो देवे, फिर उसके ऊपरके जलको निताररे और नीचेके कूडेको फेंक देवे, इन सबको सुखाकर पपडीकी सदृश जब हो जाय तब उसका चूर्ण करे फिर हरड बहेडा, और आमलेके रसकी तीन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावना देवे और फिर दशवाँ भाग कर्पूरका चूर्ण मिलावे। यह चूर्ण आँजे तो सम्पूर्ण दोषोंकी शांति होती है और नेत्रोंके सर्व रोग निःसन्देह नष्ट होते हैं ॥ ७१–७३ ॥

स्नेहनचूर्णम् ।

अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेत्त्रिफलारसैः । सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥७४॥ (सौवीरं श्वेतमञ्जनम् ।) अञ्जयेत्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम् । सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ॥७५॥

सफेद सुरमेको अग्निमें तपा तपाकर सात वार हरड, बहेडे तथा आमलेके रसमें डालकर बुझावे, फिर तपाकर सात वार स्त्रीके दूधमें बुझावे, फिर इस सुरमेका चूर्ण करके नित्य नेत्रोंमें आँजे तो नेत्रोंको हितकारी होता है, नेत्रसंबंधी सम्पूर्ण विकारोंका निःसंदेह नाश होता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

प्रत्यंजनविधिः ।

गतदोषमपेताश्रु प्रपश्येत्सम्यगम्भसि । प्रक्षाल्याऽक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यञ्जनं ततः ॥ ७६ ॥ न वा निर्वातदोषेऽक्षिधावनं सम्प्रयोजयेत् । प्रत्यञ्जने कृते दद्याच्चूर्णं तीक्ष्णप्रसादनम् ॥ ७७ ॥

नेत्रोंके दोष दूर होनेके पश्चात् आँसू निकल जानेपर तथा नेत्रोंमें देखनेकी जब शक्ति आ गई हो तब नेत्रोंको जलसे धो डाले; पश्चात् दोषोंको निःशेष करनेके लिये उसी दोषके अनुसार प्रत्यंजन (दूसरी बार) आँजे। नेत्रोंके जबतक दोष दूर न हो जायँ तबतक नेत्रोंको नहीं धोवे, नेत्रोंको धोनेके पीछे प्रत्यंजन आँजे कि जिससे तीक्ष्ण औषधिके लगानेसे हुआ नेत्रोंका ताप नष्ट हो जाय ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

नयनामृतचूर्णम् ।

तद्यथा–शुद्धनागेन्द्रतुल्यं तु शुद्धं सूतं विनिक्षिपेत् । कृष्णाञ्जनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ७८ ॥ दशमांशेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे विनिक्षिपेत् ॥ एतत्प्रत्यञ्जनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ ७९ (कृष्णाञ्जनं स्रोतोऽञ्जनम्) तथा च मदनपालः–स्रोतोऽञ्जनं तु तद्विद्यादञ्जनाभं यदञ्जनम् ॥ ८० ॥ इति नयनामृतं प्रत्यञ्जनम् ।

शुद्ध किये हुए सीसेको पिघलाकर उसमें उसके बराबरही शुद्ध पारा डाले और दोनोंके बराबर काला सुरमा डाले, पश्चात् इन सबका एकत्र चूर्ण करके उसमें उसका दशवाँ भाग कर्पूर डाले। इसका नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे तो नेत्रके रोग निःशेष हो जाते हैं। इसका नाम 'नयनामृत' है। मदनपालनामक कोषमें कहा है कि " जो सुरमा अंजनके सदृश काला होय वह स्रोतोंजन कहाता है" ॥ ७८–८० ॥

दृष्टिस्वच्छकारिणी शलाका ।

त्रिफलाभृंगशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा । गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः। तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान्गदान् ८१

शुद्ध सीसेको बारबार तपा तपाकर हरड, बहेडा तथा आमलोंके रसमें, घीमें, गोमूत्रमें, शहदमें और बकरीके दूधमें बुझावे, पश्चात् इस सीसेकी सलाई बनाकर नेत्रमें फेरे तो इससे नेत्रसंबंधी सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥

इति भेषजानां विधानानि ।

अथ भेषजभक्षणसमयः ।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः । कषायांस्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥ ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् । किञ्चित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने । सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ २ ॥

विद्वान् पुरुष अधिक करके औषधि प्रातःकालमें खावे और क्वाथ पीना होय तौ प्रातःकालमें ही पिये परन्तु उसमें नीचे लिखे भेदोंपर ध्यान रक्खे। किंचित् सूर्योदय होनेके पश्चात्, दिनको भोजन करनेके समयमें, संध्याको भोजन करनेके समयमें, बारंबार और रात्रिमें इस भाँति मनुष्योंके औषधि खानेके पाँच समय हैं ॥ १ ॥ २ ॥

प्रथमकालः ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः । लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत्॥३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पित्त अथवा कफकी अत्यंत अधिकतामें, रेच (जुलाब) लेना होय, वमन (उलटी) करानी होय, वा लेखनके अर्थ, प्रातःकालमें विना खाये औषधिका उपयोग करे ॥ ३ ॥

द्वितीयकालः ।

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते । अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावति-दीपनम् । दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥ व्यानकोपे तु भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत् । हिक्काक्षेप-ककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात् ॥ ६ ॥

अपान वायुके विगुण होनेपर दिनके भोजनसे किंचित् पहिले औषध लेना उत्तम है, अरुचि हो तो खानेके विचित्र पदार्थोंके साथ खावे कि, जिससे रुचि होती है । रोगीके नाभिस्थानमें रहनेवाली समानवायु बिगडी होय और अग्नि मंद हो गई होय तो कुशल वैद्य अग्निको प्रदीप्त करनेवाली औषधि भोजनके मध्यमें खवावे । सर्व शरीरमें रहनेवाली व्यान वायुका कोप हुआ होय तो भोजनके अंतमें औषधि खिलावे । हिचकी, आक्षेपक वायुकी अथवा कंपकी अधिकता होय तो पहिले और भोजनके पीछे भी औषधि खिलावे ॥ ४–६ ॥

तृतीयकालः ।

उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि । ग्रासग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्यभोजने ॥ ७ ॥ प्राणे प्रदुष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते प्रदीयते । औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥ ८ ॥

स्वरभंगादिकारिणी गलेमें रहनेवाली जो उदानवायु है उसका प्रकोप हुआ हो तो सायंकालके भोजनमें ग्रासग्रासके साथ औषधि देवे, हृदयमें रहनेवाली प्राणवायुका प्रकोप होय तो अधिक करके सायंकालके भोजन करनेके पश्चात् धीर वैद्य औषधि सेवन करावे, यह तीसरा समय है ॥ ७ ॥ ८ ॥

चतुर्थकालः ।

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च । सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥ ९ ॥

तृषा, वमन, हिचकी, श्वास अथवा विषकी पीडा होय तो अन्नके साथ या वारंवार औषधि सेवन करावे यह चौथा समय है ॥ ९ ॥

पंचमकालः ।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा । पाचने शमने देयमनन्नं भेषजं निशि ॥ १० ॥

हँसलीके ऊपरके भागमें विकार हो और लेखन किया, बृंहणक्रिया, पाचनक्रिया अथवा शमनक्रिया करनी हो तो रात्रिमें विना भोजन करे औषधि सेवन करावे ॥ १० ॥

निरन्नकोष्ठ औषधिसेवनगुणाः ।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव । तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयं च ॥ ११ ॥

जो मनुष्य निरन्न कोठेमें औषधिका सेवन करे तो औषधिकी शक्ति अधिक होती है और वह औषधि अवश्य तथा तुरन्त रोगको नष्ट करती है । परन्तु बालक, वृद्ध, युवा स्त्रिय अथवा मृदु प्रकृतिवाले मनुष्य निरन्न कोठेमें औषधि सेवन करे तो तुरन्त उनको ग्लानि होती है और शरीरके बलका नाश होता है ॥ ११ ॥

अन्नेन सहौषधसेवनगुणाः ।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति । एतद्धितं स्थविरबालकृशाङ्गनाभ्यः प्राग्भोजनाद्यदशितं किल तच्च तद्वत् ॥ १२ ॥ (तद्वदन्नावृतवद्भेषजमिति शेषः) औषधशेषे भुक्तं भोजनशेषे यदौषधं पीतम् । न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ १३ ॥ (पीतमित्युपलक्षणं लीढादिकं च)

अन्नमें मिलाकर जो औषधिका सेवन किया जाय वह तुरन्त पच जाती है, बलका क्षय नहीं करती है; तथा मुखमेंसे वारंवार निकलती भी नहीं । वृद्ध, बालक, दुर्बल शरीरवाले और स्त्रियोंको इस प्रकार औषधिका सेवन करना हितकारी है । भोजन करनेके पहिले औषधिका उपयोग करनेसे जो गुण होता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उ[illegible]द्या सा हन्ति [illegible] य खाई हुई औषधि भी गुण करत[illegible]क्षीणा च [illegible] किंचित् शेष (बाकी) रहने[illegible]ः ॥ २[illegible] अथवा भोजन किंचित् शेष रहनेपर[illegible]वका पान करे तो वह औषधि रोगोंको शान्त नहीं करती और अन्य रोगोंको कुपित करती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

औषधपाकापाकाचिह्नम् ।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णासुमनस्कताः । लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ १४ ॥ क्लमो दाहोऽङ्गसदनभ्रममूर्च्छाशिरोरुजः । अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ १५ ॥

रोगीकी औषधि पच गई होय तो पवन अपने अनुकूल चलती है, स्वस्थता होती है, भूँख तथा तृषा लगती है, मनमें प्रसन्नता होती है, शरीरमें लघुता होती है और डकार ठीक आती है और जो रोगीकी औषधि न पची होय तो ग्लानि, दाह, अंगमें पीडा, भ्रम, मूर्च्छा, मस्तकमें दर्द, अरुचि तथा बलकी हानि होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

चरकोक्तौषधसेवनविधिः ।

देवान्गुरूंस्तथा विप्रान्पूजयित्वा प्रणम्य च । आशिषं च समादाय श्रद्धया भेषजं भजेत् ॥ १६ ॥ रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा । सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥ १७ ॥ ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः । देवाश्च सौषधिग्रामा भूमिदेवाश्च पान्तु वः ॥ १८ ॥ औषधं हेमरजतमृद्राजनपरिस्थितम् । पिबेदाप्तजनस्याग्रे प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ १९ ॥ विश्रान्तस्तूपविश्याथ पीत्वा पात्रमधोमुखम् । निक्षिप्याचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ २० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे पञ्चमप्रकरणं चिकित्सायां सप्ताङ्गानि च सम्पूर्णानि ।

देवता, गुरु तथा ब्राह्मणको पूजा प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लेकर श्रद्धासे औषधिका सेवन करे । गुरु तथा ब्राह्मण रोगीको आशीर्वाद देवे कि—"जैसे रसायन ऋषियोंको और अमृत देवताओंको तथा नागोंको रोगरहित तथा बलवान् करे है, तिसी प्रकार यह औषधि तुमको रोगरहित तथा बलवान् करे । ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि, अन्यदेवता, औषधियोंका समूह और ब्राह्मण तुम्हारी रक्षा करें ।" रोगी अपने मुख और नेत्रोंको प्रसन्न रख अपने स्नेही और भले मनुष्योंके आगे सुवर्णके, चांदीके अथवा मिट्टीके पात्रमें रक्खी हुई औषधि सेवन करे । विश्रामसे बैठकर औषधिको पिये, पीनेके पश्चात् औषधिके पात्रको पृथ्वीपर औंधा डाल देवे पश्चात् जलसे आचमन करके पान आदिको सेवन करे ॥ १६–२० ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां पंचमप्रकरणं चिकित्सायां सप्ताङ्गानि च सम्पूर्णानि ।

अथ षष्ठं प्रकरणम् ।

चिकित्सार्थं रोगिणो वाग्भटोक्तपरीक्षा ।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैस्तं परीक्षेत रोगिणम् । आयुरादि दृशा स्पर्शाच्छीतादि प्रश्नतः परम् ॥ १ ॥ (आयुरादि, आदिशब्दात्साध्यत्वासाध्यत्वादि दृशा दर्शनेन । स्पर्शने शीतादि शीतोष्णमृदुकठिनत्वादि, नाडीपरीक्षणं वा । प्रश्नतः, उदरलाघवगौरवतृषाऽतृषाबुभुक्षाबलाबलादि । तत्र दर्शनं नेत्रजिह्वामूत्रादीनां कर्त्तव्यम्) मिथ्याहृता विकारा हि दुराख्याताश्च तथैव च । तथा दुष्परिपृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकान् ॥ २ ॥

दर्शनसे, स्पर्शसे और पूछनेसे रोगीकी परीक्षा करनी चाहिये । दर्शनसे अर्थात् रोगीके नेत्र, जीभ तथा मूत्र आदिको देखकर आयुकी और रोगके साध्य असाध्यत्व आदिकी परीक्षा करे । स्पर्शसे अर्थात् रोगीके शरीरको स्पर्श करके शीतताकी, उष्णताकी, कोमलताकी और कठोरता आदिकी परीक्षा करे अथवा नाडीकी परीक्षा करे । पूँछनेसे अर्थात् रोगीको पूँछकर उसके पेटकी, लघुता, गुरुता,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृषा, तृषाका अभाव, भूख, भूखका अभाव, बल और बलका अभाव आदिकी परीक्षा करे । जो रोग भली भाँति नहीं देखे, भली भाँति नहीं कहे और भली भाँति नहीं पूँछे वे रोग वैद्यको मोहित कर देते हैं, इस कारण वैद्य विकारोंको यथार्थ रीतिसे देखे, पूँछे और कहे ॥ १ ॥ २ ॥

नेत्रपरीक्षा ।

नेत्रं स्यात्पवनाद्रूक्षं धूम्रवर्णं तथारुणम् । कोणं गतं प्रविष्टं च तथा स्तब्धविलोकनम् ॥ ३ ॥ हरिद्राखण्डवर्णं वा रक्तं वा हरितं तथा । दीप्तद्वेषि सदाहं च नेत्रं स्यात्पित्तकोपतः ॥ ४ ॥ चक्षुर्बलासबाहुल्यात्स्निग्धं स्यात्सलिलप्लुतम् । तथा धवलवर्णं च ज्योतिर्हीनं बलान्वितम् ॥ ५ ॥ नेत्रं द्विदोषबाहुल्यात्स्यादोषद्वयलक्षणम् । त्रिदोषालिङ्गसंघेन तं मारयति रोगिणम् ॥६॥ त्रिदोषदूषितं नेत्रमन्तर्मग्नं भृशं भवेत् । त्रिलिंगं सलिलस्रावि प्रान्तेनोन्मीलयत्यपि ॥ ७ ॥

वायुके प्रकोपसे नेत्र रूक्ष, धुएँके सदृश रंगवाले, लाल, तिरछे देखनेवाले और भीतरको घुसे हुए होते हैं । पित्तके प्रकोपसे नेत्र हलदीके टुकडेके सदृश पीले, लाल, हरे वर्णके, दीपकके ऊपर अरुचिवाले और दाहयुक्त होते हैं । कफके प्रकोपसे नेत्र स्निग्ध, पानीसे व्याप्त हुए, सफेद, तेजरहित और दृढतायुक्त होते हैं । दो दोषोंके प्रकोपसे नेत्र दो दोषोंके लक्षणयुक्त होते हैं, तीन दोषोंके प्रकोपसे नेत्र तीन दोषयुक्त होते हैं और रोगीकी मृत्यु कर देते हैं । जो नेत्र तीनों दोषोंसे दूषित हुए हों वे बहुत भीतरको बैठ जाते हैं, पानी निकलता है तथा अन्तिम भागसे खुल सक्ते हैं ॥ ३-७ ॥

जिह्वापरीक्षा ।

शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटना रसनाऽनिलात् । रक्ता श्यावा भवेत्पित्तालिप्तार्द्रा धवला कफात् ॥ ८ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा कृष्णा दोषत्रयेऽधिके । सैव दोषद्वयाधिक्ये दोषद्वितयलक्षणा ॥ ९ ॥

वायुके प्रकोपसे जीभ शाक विषकी पीडा तों) के सदृश, रूखी और फटी हुई सेवन करावे प्रकोपसे जीभ लाल और काली होती प्रकोपसे जीभ गीली आर धौली होती ह । ८ दोषोंके प्रकोपसे जीभ दो दोषोंके लक्षणयुक्त होती है और तीन दोषोंके प्रकोपसे जीभ जली हुईके सदृश और कठोर स्पर्शवाली होती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

मूत्रपरीक्षा ।

वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलं च पित्ततः । रक्तमेव भवेद्रक्ताद्धवलं फेनिलं कफात् ॥ १० ॥

वातके प्रकोपस मूत्र पीले रंगका होता है, पित्तके प्रकोपसे मूत्र लाल तथा नीला होता है, रुधिरके कुपित होनेसे मूत्र लाल होता ह और कफके कुपित होनेसे मूत्र सफेद तथा झागोंयुक्त होता है ॥ १० ॥

नाडीपरीक्षा ।

पुंसो दक्षिणहस्तस्य स्त्रियो वामकरस्य तु । अंगुष्टमूलगां नाडीं परीक्षेत भिषग्वरः ॥ ११ ॥ अंगुलीभिस्तु तिसृभिर्नाडीमवहितः स्पृशेत् । तच्चेष्टया सुखं दुःखं जानीयात्कुशलोऽखिलम् ॥ १२ ॥ सद्यःस्नातस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णातपशीलिनः । व्यायामश्रान्तदेहस्य सम्यङ् नाडी न बुध्यते ॥ १३ ॥ वातेऽधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले । पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयांगुलिगा कफे ॥ १४ ॥ तर्जनीमध्यमामध्ये वातपित्ताधिके स्फुटा । अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वातकफे भवेत् ॥ १५ ॥ मध्यमानामिकामध्ये स्फुटा पित्तकफेऽधिके ॥ अंगुलित्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सन्निपाततः ॥ १६ ॥ वाताद्वक्रगतिं धत्ते पित्तादुत्प्लुत्य गामिनी ॥ कफान्मन्दगतिर्ज्ञेया सन्निपातादतिद्रुता ॥ १७ ॥ वक्रमुत्प्लुत्य चलति धमनी वातपित्ततः । वहेद्वक्रं च मन्दं च वातश्लेष्माधिकत्वतः ॥ १८ ॥ उत्प्लुत्य मन्दं चलति नाडी पित्तकफेऽधिके । कामात्क्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिन्तामयप्लुता ॥ १९ ॥ स्थित्वा स्थित्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चलेद्या सा हन्ति स्थानच्युता तथा। अतिक्षीणा च शीता च प्राणान्हन्ति न संशयः॥ २०॥ ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत्। मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च सैव मन्दतरा मता॥ २१॥ चपला क्षुधितस्य स्यात्तृप्तस्य भवति स्थिरा। सुखिनोऽपि स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता॥ २२॥

श्रेष्ठ वैद्य पुरुषके दहने हाथके और स्त्रीके वाम हाथके अँगूठेकी जडमें जो नाडी है उसकी परीक्षा करे। सावधान रहकर तीनों अंगुलियोंसे नाडी स्पर्श करे और उस नाडीकी चेष्टासे सुखदुःखादि सब जान लेवे। तत्काल स्नान किया हुआ, सोया हुआ, भूखा, प्यासा, धूपसे तपा हुआ और व्यायाम (दंड-कसरत) करनेसे थका हुआ इनकी नाडी भली भांति समझमें नहीं आती है। वातकी अधिकता होय तो नाडी तर्जनी अंगुलीके नीचे चलती है, पित्तकी अधिकता होय तौ नाडी बीचकी अंगुलीके नीचे चलती है, कफकी अधिकता होय तौ नाडी तीसरी अनामिकाके नीचे चलती है। वात तथा पित्तकी अधिकता होय तौ नाडी तर्जनीके तथा मध्यमाके मध्यमें चलती है, वात तथा कफकी अधिकता होय तौ नाडी अनामिका और तर्जनीके मध्यमें चलती है और जो पित्तकफकी प्रधानता हो तौ नाडी मध्यमा और अनामिकाके मध्यमें चलती है, और त्रिदोषका कोप होय तौ नाडी तीनों अंगुलियोंमें चलती है। वातकी अधिकता होय तौ नाडी टेढी बांकी चलती है, पित्तकी अधिकता होय तौ नाडी उछल उछलकर चलती है, कफकी अधिकतासे नाडी धीरे धीरे चलती है, त्रिदोषका प्रकोप होय तौ नाडी अत्यन्त शीघ्र चलती है, वायु तथा पित्तकी अधिकता होय तौ नाडी आडी और उछल उछलकर चलती है, वात तथा कफकी अधिकता होय तो नाडी टेढी और धीरे धीरे चलती है और पित्त तथा कफकी अधिकता होय तौ उछल उछलकर धीरे धीरे चलती है। काम तथा क्रोधसे नाडी वेगयुक्त चलती है और चिन्ता अथवा भयसे नाडी क्षीण हुई चलती है। जो नाडी ठहर ठहरकर चलती हो, अपने स्थानको छोडकर अन्यत्र चलती हो, अत्यन्त क्षीण हो, अथवा अत्यन्त शीतल हो गई हो वह नाडी निःसंदेह प्राणोंका नाश करती है। ज्वरका कोप होय तौ नाडी गरम होती है और वेगसे चलती है, जिसकी अग्नि मंद हो गई हो और जिसकी धातुएँ क्षीण हो गई हों उसकी नाडी बहुत धीरे २ चलती है। भूखे मनुष्यकी नाडी चपल होती है, तृप्त हुएकी नाडी स्थिर होती है, सुखी मनुष्यकी नाडीभी स्थिर और बलवती होती है॥ ११–२२॥

अथ येन येन रोगज्ञानं स्यात्तत्तदाह।
हेतुस्तदनु सम्प्राप्तिं पूर्वरूपं च लक्षणम्।
तथैवोपशयः पंच रोगविज्ञानहेतवः॥ २३॥

हेतु, सम्प्राप्ति, पूर्वरूप, लक्षण और उपशय ये पांच वैद्यको रोगोंका यथार्थ ज्ञान होनेमें कारण हैं॥२३॥

हेतुलक्षणम्।

यत्तु न स्याद्विना येन तस्य तद्धेतुरुच्यते। शास्त्रे संव्यवहाराय तत्पर्यायान्प्रचक्ष्महे॥ २४॥ निदानं कारणं हेतुर्निमित्तं च निबन्धनम्। मूलमायतनं तत्र प्रत्ययोऽपि निगद्यते॥ २५॥ (तत्र हेतुर्व्याधीनां ज्ञानाय। हेतुर्यथा वर्षारूक्षश्रमहिमानशनानि मैथुनशोकचिन्ताभयादयो वातप्रकोपहेतवो वातजान् व्याधीन् बोधयन्ति। शरत्कटम्लोष्णतीक्ष्णक्रोधतृषाक्षुधाभिघाततपादयः पित्तप्रकोपहेतवः पित्तजान् व्याधीन्बोधयन्ति। वसन्तमधुरस्निग्धशीतादयः कफप्रकोपहेतवः कफजान् व्याधीन् बोधयन्ति।)

जो रोग जिसके विना न होय उस रोगका वह हेतु कहाता है। निदान, कारण, हेतु, निमित्त, निबन्धन, मूल, आयतन और प्रत्यय ये शब्द एक अर्थवाले हैं। वैद्यकशास्त्रकी छन्दोबद्ध कवितामें हेतु शब्दके ये अधिक पर्याय कहे हैं। वर्षाऋतु रूक्ष पदार्थ, श्रम, हिम, भोजनका अभाव, मैथुन, शोक, चिन्ता और भय आदिक जो वातके कुपित होनेमें कारण हैं, उन्हींसे वातसम्बन्धी रोग जाने जाते हैं। शरद्ऋतु, कडवे पदार्थ, अम्ल पदार्थ, गरम पदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ, क्रोध, तृषा, भूख, चोट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और धूप आदिक जो पित्तके कुपित होनेमें कारण हैं, उन्हींसे पित्तसम्बन्धी रोग जाने जाते हैं । वसन्त-ऋतु, मधुर पदार्थ, स्निग्ध पदार्थ और शीत आदिक जो कफके कुपित होनेमें कारण हैं, उन्हींसे कफसम्बन्धी रोग जाने जाते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

सम्प्राप्तिलक्षणम् ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता । उत्पत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ २६ ॥ (यथा दुष्टेन दोषेण यथा कारणभेदेन दोषेण यथा च अनुविसर्पता अनेकधा दोषाणां विसर्पता ऊर्ध्वाधस्तिर्यगादिगतिभेदेन तथा च विसर्पता आमयस्य या उत्पत्तिः असौ सम्प्राप्तिः । शास्त्रे व्यवहाराय सम्प्राप्तेः पर्यायानाह जातिरागतिरिति ।)

दोष—कि, जो ऊँची, नीची और तिरछी आदि पृथक् पृथक् गतिसे शरीरमें फैलते हैं वेही दोष जिस कारणसे दुष्ट होकर और जिस गतिसे शरीरमें फैलकर रोगकी उत्पत्ति होय उसी कारणसहित वह गति संप्राप्ति कहाती है । वैद्यकशास्त्रमें व्यवहारके लिये जाति और आगति ये दो संप्राप्तिके पर्याय माने हैं ॥ २६ ॥

सम्प्राप्त्यौपाधिकभेदाः ।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः । सा भिद्यते यथाऽत्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ २७ ॥ (सम्प्राप्तिर्व्याधीनां ज्ञानाय हेतुः । यथा मिथ्याहारविहारकुपितवाताद्यामाशयगमनरसदूषणकोष्ठाग्निवाहिनिरसनरूपं ज्वरोत्पत्तिप्रकारं बोधयति । तथा व्याधीनां संख्यादोषांशकल्पनाप्राधान्यबलकालांश्च बोधयति । तेषु ज्ञातेषु चिकित्साविशेषश्च स्यात् । सांख्यादिरूपविशेषस्तेभ्यः सा संप्राप्तिर्भिद्यते भेदवती क्रियते इत्यर्थः । तत्र संख्यां विवृणोति । तथा ज्वरोऽष्टधा अतीसारः षड्विध इत्यादि ।)

संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और काल ये विशेषतासे संप्राप्तिके अलग अलग भेद माने हैं । इस ग्रन्थमें ज्वर आठ प्रकारके हैं और अतिसार छः प्रकारके हैं इत्यादि रोगोंके भेदोंकी संख्या कही जायगी, उन्हीं भेदोंसे संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह संख्यासंप्राप्ति कहाती है ॥ २७ ॥

विकल्पव्याख्यानम् ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽशांशकल्पना ॥२८॥ (समवेतानां समुदितानां दोषाणाम् अंशांशकल्पना हीनमध्याधिकभेदैर्भागकल्पना विकल्पः ।)

एकत्र हुए दोषोंमें कौनसा अधिक है, कौनसा मध्यम है और कौनसा दोष हीन है, इस प्रकार दोषोंके भागोंकी जो कल्पना करी जाय वह विकल्प कहाता है । इस विकल्पमें संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह विकल्पसंप्राप्ति कहाती है ॥ २८ ॥

प्राधान्यव्याख्यानम् ।

स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ २९ ॥ (व्याधेः स्वातन्त्र्येण प्राधान्यं पारतन्त्र्येण अप्राधान्यं च वदेदित्यर्थः । यथा स्वतन्त्रस्य ज्वरस्य प्राधान्यं ज्वराधीनानां श्वासादीनामप्राधान्यम्)

जो रोग स्वतंत्र हो वह प्रधान व्याधि कहाती है और जो रोग इस स्वतंत्र व्याधिके अधीन हो वह अप्रधान व्याधि कहाती है । जैसे कि—ज्वरको लेकर श्वास आदि व्याधि हुई हों तो ज्वर प्रधान है और श्वास आदि व्याधियें अप्रधान हैं । इसी प्रकार प्रधानतासे तथा अप्रधानतासे संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह प्रधानसंप्राप्ति कहाती है ॥ २९ ॥

बलव्याख्यानम् ।

हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ३० । (अत्रापि व्याधेरित्यनुवर्त्तते । हेत्वादेः हेतुपूर्वरूपरूपाणाम् कात्स्न्येन साकल्येन अवयवैः एकदेशेन व्याधेर्बलाबलयोर्विशेषणम् विशेषबोधः)

हेतु, पूर्वरूप और लक्षण ये सम्पूर्ण अंशोंसे हैं अथवा थोडे थोडे अंशोंसे हैं ? इस परीक्षासे व्याधिकी सबलता और निर्बलताका जो निश्चय किया जाय वह बलसंप्राप्ति कहाती है ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालव्याख्यानम् ।

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ ३१ ॥ (नक्तमत्राव्ययं रात्रिवाचकम् । एतेन एतदुक्तं यस्मिन्नक्तादिरंशो यस्य दोषस्य प्रकोप उक्तोऽस्ति सोंऽशस्तस्य दोषजस्य व्याधेः काल इत्यर्थः ।)

रात, दिन, ऋतु और भोजन किये अन्नादिक इनके जिस जिस अवयवमें जिस जिस दोषका प्रकोप होना कहा है उस उस अवयवके उस उस दोषसे हुइ व्याधिका काल जानना; इस प्रकार कालसे संप्राप्तिका जो निश्चय किया जाय वह कालसंप्राप्ति कहाती है ॥ ३१ ॥

नक्ताद्यंशैर्वाग्भटोक्तवातादिप्रकोपः ।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः। वयोऽहोरात्रभुक्तानामन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ ३२ ॥ इति (ते वातपित्तकफाः) ऋतुषु वातादिकोपो यथा—वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरादि उष्णके । वसन्ते तु कफः कुप्येदेषा प्रकृतिरार्त्तवी ॥ ३३ ॥

रात्रि आदिके किस किस अवयवमें किस किस दोषका प्रकोप होता है इस विषयमें वाग्भट कहते हैं कि—" वातादि दोष सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाले हैं तो भी विशेष करके वायु नाभिके नीचे रहती है, पित्त हृदयके मध्यमें रहता है और कफ हृदयके ऊपरके भागमें रहता है । पुरुषकी अवस्थाका अन्त (वृद्धापना) वायुके प्रकोप होनेका समय है, अवस्थाका मध्यभाग पित्तके प्रकोपका समय है, और अवस्थाका आदि भाग (बालकपन) कफके प्रकोप होनेका समय है । दिन तथा रात्रिका अंतभाग वायुके कुपित होनेका समय है, मध्यभाग पित्तके प्रकोप होनेका समय है और आद्य भाग कफके प्रकोप होनेका समय है । भोजन किये अन्नादिका अन्त वायुके प्रकोपका समय है, मध्यभाग पित्तके प्रकोप होनेका समय है और आदि भाग कफके प्रकोपका समय है । किस ऋतुमें किस दोषका प्रकोप होता है यह भी कहा है कि—" वर्षाऋतुमें और शिशिरऋतुमें वातका प्रकोप होता है, शरदृतुमें और ग्रीष्मऋतुमें पित्तका प्रकोप होता है और वसन्तऋतुमें कफका प्रकोप होता है, यह ऋतुओंका स्वभाव है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पूर्वरूपलक्षणम् ।

पूर्वरूपं तु तद्येन विद्याद्भाविनमामयम् । सामान्यं च विशिष्टं च द्विविधं तदुदाहृतम् ॥ ३४ ॥ सामान्यं तत्र दोषाणां विशेषैरनधिष्ठितम् । विशिष्टमीषद्व्यक्तं स्याद्विशेषैश्च समन्वितम् ॥ ३५ ॥ (दोषाणां विशेषाः जृम्भातिशयनेत्रदाहाग्निमान्द्यादयः । तत्र पूर्वरूपं व्याधीनां ज्ञानाय हेतुः । यथा श्रमादयो भाविनं ज्वरं बोधयन्ति । अथ च अत एव श्रमादयोऽतिशयितजृम्भायुक्ता भाविनं वातज्वरं नेत्रदाहयुक्ताः पित्तज्वरं वह्निमान्द्ययुक्ता भाविनं कफज्वरं बोधयन्ति ।)

जिससे भविष्य कालमें रोगकी उत्पत्ति होना मालूम हो वह रोगका पूर्वरूप कहाता है । सामान्य पूर्वरूप और विशेष पूर्वरूप इस भाँति पूर्वरूपके दो भेद हैं । जो पूर्वरूप दोषोंकी विशेषतारहित हो वह सामान्य पूर्वरूप कहाता है और जो पूर्वरूप दोषोंकी विशेषता करके युक्त हो वह विशेष पूर्वरूप कहाता है । जैसे कि अत्यन्त जम्भाई आवे, नेत्रोंमें दाह हो और अग्निकी मंदता होना आदि जो दोषोंका विशेष है उस करके रहित केवल श्रमादि ज्वरका सामान्य पूर्वरूप है अर्थात् वह भविष्यकालमें सामान्य रीतिसे ज्वर आना जनाता है और यह विशेषतासे युक्त हुए श्रमादिक ज्वरका विशेष पूर्वरूप है अर्थात् श्रमादिक जो अत्यन्त जम्भाईसे युक्त हों वह भविष्यकालमें वातज्वरका आना जनाता है; नेत्रोंका दाहसे युक्त होना भविष्यकालमें पित्तज्वर आना जनाता है और अग्निकी मंदतासे युक्त हो वह भविष्यकालमें कफज्वर आना जनाता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

लक्षणलक्षणम् ।

पूर्वरूपं विशिष्टं यद्व्यक्तं तल्लक्षणं स्मृतम् संस्थानं लिङ्गं चिह्नं च व्यञ्जनं रूपमाकृतिः ॥ ३६ ॥ (विशिष्टं पूर्वरूपम् ईषद्व्यक्तरूपम् तदेव सम्यग्व्यक्तं लक्षणं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्मृतम् । तस्य शास्त्रे व्यवहाराय पर्यायानाह—संस्थानमित्यादि ।)

अमुक प्रकारके रोगकी किंचित् सूचना देनेवाला, विशेष पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक प्रकाशवाला अर्थात् अधिक स्पष्टतासे रोगको बतानेवाला रोगका जो रूप होता है वह लक्षण कहाता है । वैद्यकशास्त्रोंमें व्यवहारके लिये संस्थान, लिंग, चिह्न, रूप और आकृति ये लक्षणके पर्यायी शब्द माने हैं ॥ ३६ ॥

ज्वरसामान्यलक्षणम् ।

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वांगग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरः परिकीर्तितः ।
॥ ३७ ॥ (युगपदेतल्लक्षणं ज्वरं बोधयति ।)

जिस रोगमें पसीना रुक जाय, संताप हो और सब अंग जकड जावें ये सब एकही समयमें हों तो वह रोग ज्वर कहाता है । एक समयमें होना ये लक्षण ज्वरको सूचित करते हैं ॥ ३७ ॥

उपशयलक्षणम् ।

औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ।
नृणामुपशयं विद्यात्स हि सात्म्यमिति स्मृतः ॥ ३८ ॥

जिससे मनुष्योंको सुख हो ऐसी औषधिका, अन्नका और विहारका जो सेवन हो वह उपशय कहाता है और सात्म्य भी इसका पर्याय है ॥ ३८ ॥

वायोरुपशयः ।

मधुरलवणसाम्लस्निग्धनस्योष्णनिद्रागुरुरविकरवस्तिस्वेदसंमर्दनानि । दधिघृततिलतैलाभ्यंगसन्तर्पणानि प्रकुपितपवमानं शान्तमेतानि कुर्युः ॥ ३९ ॥

मधुर, खारी, अम्ल तथा स्निग्धपदार्थ, नस्य, गरम पदार्थ, निद्रा, भारी पदार्थ, सूर्यकी किरणें वास्तिक्रिया, स्वेदन, शरीरका मर्दन, दही, घृत, तिल, तेलकी मालिश और तृप्ति ये कुपित हुए पवनको शांत करे हैं (इन पदार्थोंके तथा क्रियाओंके सेवन करनेसे जिस रोगकी शांति हो तो जानना कि यह रोग वायुका है) ॥ ३९ ॥

पित्तोपशयः ।

तिक्तस्वाद्वकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनज्योत्स्नाभूगृहयन्त्रवारिजलजं स्त्रीगात्रसंस्पर्शनम् । सर्पिःक्षीरविरेकसेकरुधिरस्रावप्रदेहादिकं पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं नयेत् ॥ ४० ॥

कडवे, मधुर, कसैले तथा शीतल (ठंढे) पदार्थ, वायु, छाया, रात्रि, पंखेकी पवन, चाँदनी, पृथ्वीके भीतर बनवाया हुआ शीतलतायुक्त घर, फुवारोंका जल, कमल, स्त्रीके शरीरका स्पर्श, दूध, घी, विरेचन, पानीका छिडकना, रुधिर निकलवाना और शीतल पदार्थोंका प्रलेप आदिक, पान, आहार, विहार और औषधि पित्तको शांत करे हैं (इन पदार्थोंके तथा क्रियाओंके सेवन करनेसे जिस रोगकी शांति हो तो जानना कि यह रोग पित्तका है)॥ ४० ॥

कफोपशयः ।

रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं धूमात्युष्णशिरोविरेकवमनस्वेदोपवासादिकम् । तृड्वाताध्वनियुद्धजागरजलक्रीडांगनासेवनं पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं हरेत् ॥ ४१ ॥ जलक्रीडा कफं कथं हरति तदाह । जलक्रीडाजनितशैत्येनावरुद्धोष्मा पंकलिप्तोऽभितः पाकाग्निरिवोग्रो भूत्वा कफं शोषयतीति समाधिः ।

रूखे, खारी, कसैले, कडवे तथा चरपरे पदार्थ, व्यायाम, थूकना, धूमपान, अत्यन्त उष्ण, मस्तकका खाली करना, वमन, स्वेद, उपवास आदि, तृषा, वात, मार्ग (रस्ता) का चलना, युद्ध, जागना, जलक्रीडा और स्त्रियोंका सेवन इत्यादि, पान, आहार, विहार और औषधि ये उग्र कफकोभी शान्त करे हैं (इन पदार्थोंका तथा क्रियाओंका उपयोग करनेसे जो रोग शान्त हो तौ जानना कि, यह रोग कफसंबंधी है) । यहां प्रश्न होता है, कि—जलक्रीडा कफको शांत कैसे करे ? इसका समाधान यह है कि, जलमें क्रीडा करनेसे उत्पन्न हुई शीतलतासे बाहरको निकलनेवाली शरीरकी उष्णता चारों ओरसे कीचसे ढकी चूल्हेकी अग्निके सदृश उग्र होकर कफका शोषण करती है ॥ ४१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोगनिदानविवेचनम्।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः। तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥ ४२॥ (सर्वेषां रोगाणां निदानं सन्निकृष्टं कारणम् कुपिताः स्वहेतुदुष्टा मलाः वातापित्तकफा एव इत्यन्वयः।) तथा च वाग्भटः—"दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम्" इति। ननु आगन्तुजव्याधिषु व्यभिचारः स्यात्। तन्न, तत्रापि उत्पत्त्यनन्तरं दोषप्रकोपस्य अवश्यम्भावित्वात्। उत्पन्नद्रव्येषु गुणयोगस्येव। उक्तं च चरकेआगन्तुर्हि व्यथापूर्वो जायते पश्चान्निजैर्दोषैरनुबध्यत इति। तत्प्रकोपस्य तु दोषप्रकोपस्य तु निदानम्। विविधानि नानाविधानि यानि अहितानि असात्म्यानि आहारादीनि तेषां सेवनम् ॥

अपने हेतुओंसे दुष्ट हुए वात, पित्त और कफही सम्पूर्ण रोगोंका निदान है अर्थात् समीपका कारण है और उनके प्रकोपका कारण अनेक प्रकारके असात्म्य आहार, विहार आदिका सेवन है। वाग्भटमें भी कहा है कि—"वात आदि दोषही सम्पूर्ण रोगोंके मुख्य कारण हैं।" यहां शंका होती है कि "प्रहार आदिसे उत्पन्न हुए आगंतुक व्याधियोंके कारण भी वात पित्त आदिमें संभव नहीं हो सक्ते इसकी क्या रीति है?" तहाँ कहते हैं कि, जिस प्रकार द्रव्योंकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् उसमें गुणोंका योग होता है, तैसेही आगंतुक व्याधियोंकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् उनमें भी दोषोंका प्रकोप अवश्य होता है, इस कारण इन व्याधियोंके भी वात पित्तादिक कारण हैं। चरकने भी कहा है कि "प्रथम आगंतुक व्याधि व्यथाके लिये अकेली होकर पश्चात् अपने दोषोंमें संबंध पाती है" ॥ ४२ ॥

वायुकोपकारणम्।

नीवारस्त्रिपुटः सतीनचणकः श्यामाकमुद्गाढकी निष्पावश्च मकुष्ठकश्च वरटा मङ्गल्यकः कोद्रवः। यद्रव्यं कटुकं सतिक्ततुवरं शीतं च रूक्षं लघु स्वल्पाशो विषमाशनं निरशनं भुक्ते ह्यजीर्णेऽशनम् ॥ ४३ ॥ भुक्तं जीर्णतरं परिश्रमभरो गर्त्तादिकोष्णं घनं बाहुभ्यां तरणं तरोः प्रपतनं मार्गेऽतियानं पदा। दण्डादिप्रहृतिस्तथोच्चपतनं धातुक्षयो जागरो मार्गस्यावरणं व्यवायभृशता वातादिवेगाहातिः ॥ ४४ ॥ अत्यर्थं वमनं विरेचनमतिस्रावोऽधिकश्चासृजो रोगान्मांसविहीनतातिमदनश्चिन्ता च शोको भयम्। वर्षा वै शिशिरो दिनस्य रजनेर्भागौ तृतीयौ घनाः प्राग्वातस्तुहिनं शरीरमरुतो दुष्टेरमी हेतवः ॥ ४५ ॥ (नीवारः प्रसाधिकाः तीनी इति लोके। त्रिपुटः खेसरी इति लोके। सतीनः वर्त्तुलकलायः। निष्पावः कोलशिम्बिसदृशफला। राजशिम्बिस्तस्या बीजमन्नं भवति। वरटी वराटिका, कुसुम्भबीजम् वररै इति लोके। मङ्गल्यको मसूरः।) विषमाशनम्—बहुस्तोकमकाले वा भुक्तं तद्विषमाशनम् ॥ ४६ ॥ (अतियानं, पादाभ्यामतिचलनम्, तरोः प्रपतनम्, तरोरित्युपलक्षणम्। जागरो रात्रौ। वातादिवेगाहातिः आदिशब्देन विण्मूत्राश्रुच्छिक्कोद्गारच्छर्दिशुक्रक्षुत्तृषोच्छ्वासनिद्राः संगृह्यन्ते। दिनस्य त्रिधा विभक्तस्य। एवं रजनेश्च। यस्य पुनरुक्तिस्तेन तेन वातस्य अतिदुष्टिर्बोद्धव्या।)

नीवार (पसाई), मटर, चना, समा, मूँग, अरहर, चौरा, मोरा (मोथी), कसूमके बीज, मसूर, कोदों, चरपरे, कडवे, कसैले, शीतल, रूक्ष और हलके पदार्थ, अल्पभोजन, विषमभोजन (कुसमयमें थोडा वा बहुत भोजन करना), उपवास, भोजनके ऊपर भोजन, पहिला भोजन जीर्ण न होनेपर भोजन, अधिक परिश्रम, गड्ढे आदिका उलंघना, हाथोंसे पानीमें तैरना, वृक्ष आदिके ऊपरसे गिरना, पाँवोंसे अधिक मार्गमें फिरना, लकडीका चोट लगना, ऊँचे स्थानसे गिरना, धातुओंका क्षय, रात्रिमें जागना, शोक आदिसे गिरना, अत्यन्त मैथुन, वात, विष्ठा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूत्र, आँसू छींक, डकार, वमन, वीर्य, भूँख, तृषा, श्वास तथा निद्रा इनके वेगोंका रोकना, अत्यन्त वमन, अत्यन्त विरेचन, रुधिरका अत्यन्त गिरना अथवा अधिक निकालना, रोग होनेसे मांसरहित हो जाना, अत्यन्त कामदेव, चिंता, शोक, भय, वर्षाऋतु, शिशिरऋतु, दिनका तीसरा भाग, रात्रिका तीसरा भाग, बादल, पूर्वदिशाकी वायु और हिम ये सब शरीरकी वायुके कुपित होनेमें कारण हैं । उपरोक्त कारणोंमें जिस जिस कारणकी पुनरुक्ति है उस उस कारणसे वायुका अत्यन्त कोप होता है ऐसा जानना ॥ ४३-४६ ॥

पित्तकुपितकारणम् ।

कटुम्लोष्णाविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातपस्त्रीसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः । भुक्ते जीर्यति भोजने च शरदि ग्रीष्मे तथा प्राणिनां मध्याह्ने च तथार्द्धरात्रिसमये पित्तप्रकोपो भवेत् ॥ ४७ ॥

चरपरे, अम्ल (खट्टे), गरम, विदाही, तीक्ष्ण, और खारी पदार्थ, क्रोध, उपवास, धूप, स्त्रीका संभोग, तृषा और भूँखका रोकना, व्यायाम, मद्य आदि, अजीर्णमें भोजन, शरदृतु, ग्रीष्मऋतु, मध्याह्न और अर्द्धरात्रिका समय ये सब शरीरमें पित्त कुपित होनेके कारण हैं ॥ ४७ ॥

विदाहिलक्षणम् ।

विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् । हृदि दाहं च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥ ४८ ॥ अन्यत्र-माषैस्तिलैः कुलत्थैश्च मत्स्यैर्मेषाभिषेण च । गव्येन दधितक्रेण नृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ ४९ ॥

जो पदार्थ खानेके पश्चात् अधिक देरसे पके, खट्टी डकार आवे, तृषा लगावे और हृदयमें दाह करे, वह विदाही पदार्थ कहाता है । उडद, तिल, कुलथी, मछली, मेंढेका मांस, गायका दही और गायकी छाछ इनसे भी मनुष्योंके पित्तका कोप होता है ॥४८॥४९॥

कफकुपितकारणम् ।

गुरुपटुमधुराम्लस्निग्धमाषैस्तिलैश्च द्रवदधिदिननिद्राशीतसर्पिःप्रपूरैः । प्रथमदिवसभागे रात्रिभागेऽपि चाद्ये भवति हि कफकोपो भुक्तमात्रे वसन्ते ॥ ५० ॥ (प्रथमदिवसभागे त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य प्रथमभागे । एवं रात्रेश्चाद्यभागे ।)

भारी, खारी, मधुर तथा अम्ल पदार्थ, उडद, तिल, द्रवपदार्थ, दही, दिनमें सोना, शीत, एक स्थानपर बैठे रहना, दिनके तीन भागोंमें पहिला भाग, रात्रिका भी पहिला भाग, भोजन करनेके पश्चात् तुरंतका समय और वसंतऋतु ये सब शरीरमें कफके कुपित होनेके कारण हैं ॥ ५० ॥

एको रोगोऽन्यरोगनिमित्तम् ।

ननु सर्वेषां रोगाणां दुष्टा दोषा एव किमन्यदप्यस्तीति संशये चरक आह-निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपलक्ष्यते ॥५१॥ इति रोगस्य निदानार्थकरः रोगोऽपि उपलक्ष्यते दृश्यते । अत्र दृष्टान्तमाह-तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीयत । रक्तपित्तात्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते । प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥५२॥ अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते । प्रतिश्यायादथो कासः कासात्सञ्जायते क्षयः ॥ ५३ ॥ अन्ये तु आहुर्मधुकोशे रोगस्य रोगश्चेन्निदानं तथा निदानमित्येव उच्येत, तद्धिहाय निदानार्थकरः इति वचनमेतद्धाधेयाति । रोगस्य रोगो निदानार्थकरः निदानकार्यकरणे सहायः । निदानं तु रक्तपित्तादीन्कांतिचिद्रोगान्प्राति ज्वरादिरेव हेतुरिति सिद्धान्तः । अत एव अग्रे स्पष्टमेव आह चरकः-कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वेति । प्रथमस्य रोगस्य ज्वरादेर्यो दुष्टो दोषो हेतुः स एव पश्चाद्भाविनो रक्तपित्तादेरपि रोगस्य हेतुः । सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥ ५४ ॥ इति नियमात् । तत्र यदा रक्तपित्तादेरुपद्रवलक्षण एव योगेन रोगत्वविघातः स्यात्तत सर्वेषामिति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चनं सामान्यम् । निदानार्थकर इति विशेषवचनात् ॥

" दुष्ट हुए दोषही सम्पूर्ण रोगोंके निदान हैं । अथवा अन्य भी कोई निदान हैं ? " ऐसी शंका होनेपर उसका उत्तर चरकसे कहते हैं कि–" एक रोग भी अन्य रोगके निदानका काम करनेवाला होता है, जैसे कि ज्वरसे रक्तपित्त होता है और ज्वरसे तथा रक्तपित्तसे श्वास होता है, दाह बढनेसे जठररोग होता है और जठरके रोगसे सूजन होती है । अर्शसे पेटमें पीडा तथा गुल्म होता है और जुकामसे खांसी तथा खांसीसे क्षय होता है । " मधुकोश नामक ग्रन्थमें कहा है कि–" जो एक रोग दूसरे रोगको उत्पन्न करता है वह दूसरे रोगका निदान होता है । " यही कहना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं कहकर निदानका काम करनेवाला होता है, ऐसा कहा है; इसको बताते हैं कि–' निदानको अपना काम करनेमें रोग सहायक होता है; परन्तु आप निदानरूप नहीं होता । ' ज्वरसे रक्तपित्त आदि रोग उत्पन्न होते हैं वहां ज्वरका निदान होता है, ऐसा सिद्धान्त है । दुष्ट हुआ जो दोष वह प्रथम उत्पन्न हुए ज्वर आदिका निदान होता है कारण कि कुपित हुए दोष ही सम्पूर्ण रोगोंके निदान हैं ऐसा नियम है । परन्तु इनका कहना अयोग्य है कारण कि, जिस ज्वरका निदान है वही जो रक्तपित्त आदिका निदान होता होय तौ रक्तपित्त आदिके उपद्रवोंके लक्षण ही एकसे होनेसे उनकी रोगता खंडित हुई जाती है, इस कारण कुपित हुए दोष ही सर्व रोगोंके निदान हैं इस वचनको सामान्य गिनकर ' एक रोग भी अन्य रोगके निदानका काम करनेवाला अर्थात् निदान ही होता है ' ऐसा अर्थ मानना योग्य है ॥ ५१–५४ ॥

रोगहेतुना रोगविचित्रता ।

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ॥ ५५ ॥ यथा ज्वरो रक्तपित्तमुत्पाद्य स्वयं प्रशाम्यति । ननु यो दोषोद्रेकेण ज्वरो रक्तपित्तमुत्पादितवांस्तस्मिन् सति स तु ज्वरः कथं शाम्यति तत्र व्याधिस्वभाव एव कारणमिति न दोषः । न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥ ५६ ॥ अन्यो हेत्वर्थमपि कुरुते स्वयं च न प्रशाम्यति । यथा प्रतिश्यायः कासं करोति स्वयं च न प्रशाम्यति । तथार्शो जठरगुल्मौ करोति स्वयं च न निवर्त्तते इति ॥

चरक कहते हैं कि–"कोई रोग दूसरे रोगका निदानरूप होकर आप शान्त हो जाता है " जैसे कि ज्वर रक्तपित्तको उत्पन्न करके आप शान्त हो जाता है । यहाँ शंका होती है कि दोषकी अधिक वृद्धिसे जो ज्वरने रक्तपित्तको उत्पन्न किया, वह रक्तपित्त होनेपर ज्वरकी शांति कैसे होनी चाहिये ? तहाँ कहते कि, इस विषयमें रोगोंका ऐसा स्वभावही है, ऐसा मानना अर्थात् ऐसा माननेमें कोई दोष नहीं आवेगा । फिर चरक कहते हैं कि " कोई रोग अन्य रोगको उत्पन्न करता है और उत्पन्न करके आप शान्त भी नहीं होता ।" जैसे कि जुकाम खाँसीको उत्पन्न करता है और उत्पन्न करके आप शांत नहीं होता, तैसे ही अर्श जठरके रोगको तथा गुल्मरोगको उत्पन्न करे है और आप शांत नहीं होता ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अधिकक्षीणदोषधातुमलानां सुश्रुतोक्तचिकित्सा ।

अत्यन्तकृत्सितावेतौ सदा स्थूलकृशौ नरौ । श्रेष्ठो मध्यशरीरस्तु स्थूलः क्षीणो न पूजितः ॥ ५७ ॥ कर्षयेद् बृंहयेच्चापि सदा स्थूलकृशौ नरौ । रक्षणं चापि मध्यस्य कुर्वीत कुशलो भिषक् ॥ ५८ ॥ अन्यत्र–क्षपयेद् बृंहयेच्चापि दोषधातुमलान्भिषक् । नरो रोगान्वितो यावद्रोगेण रहितो भवेत् ॥ ५९ ॥ क्षपयेदतिप्रवृद्धान्दोषधातुमलांस्तत्र क्षैण्यहेतुभिरौषधान्नविहारैर्ह्रासयित्वा शमीकुर्यात् । बृंहयेत्क्षीणान्दोषादींस्तद्वृद्धिहेतुभिरौषधान्नविहारैर्वर्द्धयित्वा शमीकुर्यात् । अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः । तमेव कारयेद्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ ६० ॥

सुश्रुत कहते हैं कि–"सर्वदा स्थूल (मोटा) और कृश (पतला) शरीरवाला मनुष्य उत्तम नहीं है, मध्यम शरीरवाला मनुष्य श्रेष्ठ है, मोटा मनुष्य और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृश मनुष्य दोनों उत्तम नहीं हैं, सदा विद्वान् वैद्य स्थूल मनुष्यके शरीरमें कर्षण क्रिया करे, कृश मनुष्यके शरीरमें बृंहण क्रिया (चिकित्सा) करे और मध्यम शरीरवाले मनुष्यको जैसाका तैसाही रहने देवे।" फिर कहा है कि "रोगी मनुष्य जबतक रोगमुक्त हो तबतक वैद्य दोषोंका, धातुओंका और मलोंका कर्षण करे और बृंहण करे।" कर्षण करे अर्थात् अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुए दोषोंको, धातुओंको और मलोंको जो क्षीण करे ऐसी औषधियोंसे, अन्नोंसे तथा विहारोंसे क्षीण करके सम करे। बृंहण करे अर्थात् क्षीण हुए दोष आदिको जो वृद्धि दे ऐसी औषधियोंसे, अन्नोंसे तथा विहारोंसे बढाकर सम करे। अस्वस्थ मनुष्य जिस विधिसे स्वस्थ होय वही विधि वैद्य करे कारण कि-सर्वदा सबको स्वस्थताकी ही इच्छा होती है ॥ ५७-६० ॥

अथ स्वस्थलक्षणम्।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥६१॥ समक्रियः शरीरानुरूपकर्मा। आत्मा शरीरम्। तन्त्रान्तरेऽपि-विण्मूत्राखिलदोषधातुसमताकांक्षान्नपाने रुचिर्भुक्तं जीर्यति पुष्टये परिणतिः स्वभावबोधैः सुखम्। गृह्णीतो विषयान्यथास्वमुचितान्वृत्तिं मनोवृत्तितः स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दशविधं जन्तोरिदं लक्षणम् ॥ ६२ ॥ रुचिः शरीरकान्तिः। ननु अहर्निशर्तुभुक्तवत्सु दोषाणां वृद्धेः कथं समदोषता? उच्यते। अहोरात्रप्रथमभागादिषु तत्तद्दोषवृद्धेः स्वस्थवृत्तोक्तविधिभिरुपशमात्समदोषतेति न दोषः। किञ्च-यत्समत्वं हि दोषाणां भिषग्भिरवधार्यते। न तत्स्वास्थ्यं विना वक्तुं शक्यमन्येन हेतुना ॥ ६३ ॥ तेन समदोषस्वस्थयोर्लक्षणमन्योन्यापेक्षया स्वस्थः समदोषः स्वस्थेभ्यो हितं च तद्दोषधातुमलानां स्वप्रमाणस्थितानां साम्यानुवृत्तिहेतुर्यदव्यापन्न स्वस्थानुवृत्तिं करोति। ऋतुचर्याध्याये सेव्यत्वेनोक्तम्। तथा मात्राशितीयेऽध्याये रक्तशालिषष्टिकयवगोधूमजाङ्गलमांसजीवन्तीशाकादि मोदकक्षीरादि। तथा यदोजस्करं रसायनं वाजीकरणं सर्वदा शीलनीयत्वेन निर्दिष्टम् ॥

जिस मनुष्यके दोष, अग्नि, मल और धातु ये समान हों, शरीरसे जैसा चाहिये तैसा काम होता हो और शरीर, इन्द्रियें तथा मन प्रसन्न रहते हों वह मनुष्य स्वस्थ (आरोग्य) कहाता है। अन्य ग्रंथोंमें भी कहा है कि-"विष्ठा, मूत्र, सम्पूर्ण दोष, सम्पूर्ण धातुओंकी समता, अन्नकी इच्छा, जलकी इच्छा, शरीरकी कांति, खाये हुए अन्नका पचना, अन्नपुष्टि करे ऐसा परिणाम होना, सुखपूर्वक शयन, सुखपूर्वक जागना, योग्य विषयोंका यथार्थ रीतिसे ग्रहण होना, हर्ष (खुशी) और मनकी निर्मलता ये चौदह लक्षण जिसमें हों उसको स्वस्थ जानना।" यहाँ शंका होती है कि-सर्वदा मनुष्योंको दिनका, रात्रिका, ऋतुओंका और भोजनका संबंध होनेसे दोष बढे ही करते हैं, इस कारण दोषोंकी समता कैसे हो? तहाँ कहते हैं कि-दिन, रात्रि, ऋतु तथा भोजन इनके प्रथम भाग आदिमें उन्हीं उन्हीं दोषोंकी जो वृद्धि होती है उनकी स्वस्थता रहनेके आचरणमें कहे प्रकारसे उपशम किया जाय तो दोषोंकी समता होती है इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं। फिर भी कहा है कि-"जिसको वैद्य दोषोंकी समता विचारते हैं वह समता स्वस्थताके विना दूसरे हेतुसे नहीं कही जा सक्ती।" इससे सिद्ध होता है कि "समदोषके लक्षणको लेकर स्वस्थता प्राप्त होती है और स्वस्थके लक्षणको लेकर समदोषता प्राप्त होती है इस कारण जो स्वस्थ हो वह समदोष कहाता है और जो समदोष हो वह स्वस्थ कहाता है ॥ ६१-६३ ॥

अथ दोषधातुमलवृद्धिनिदानम्।

तत्तद्वृद्धिकराहारविहारातिनिषेवणात्। दोषधातुमलानां हि वृद्धिरुक्ता भिषग्वरैः ॥ ६४ ॥ अतिवृद्धानां तेषां लक्षणान्याह-वाते वृद्धे भवेत्कार्श्यं पारुष्यं चोष्णकामिता। गाढं मलं बलं चाल्पं गात्रस्फूर्तिर्विनिद्रता ॥ ६५ ॥ विण्मूत्रनेत्रगात्राणां पीतत्वं क्षीणमिन्द्रियम्। शीतेच्छातापमूर्च्छाः स्युः पित्ते वृद्धेऽल्पमूत्रता ॥ ६६ ॥ विडादिशौक्ल्यं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शीतत्वं गौरवं चातिनिद्रता । सन्धिशैथिल्यमुत्क्लेदो मुखसेकः कफेऽधिके ॥ ६७ ॥

"वातकी अत्यन्त वृद्धि" हुई हो तौ दुर्बलता, कठोरता, गरमीकी इच्छा, मलकी गाढता (करडापन), अल्पबल, शरीरका फडकना और निद्राका नहीं आना ये होते हैं. "पित्तकी अत्यन्त वृद्धि" हुई हो तौ मल, मूत्र, नेत्र तथा शरीरमें पीलापन होता है, इन्द्रियें क्षीण होती हैं, शीतकी इच्छा होती है, ताप तथा मूर्च्छा होती है और मूत्र अल्प हो जाता है। "कफकी अत्यन्त वृद्धि" हो तौ मलादिकमें श्वेतपन, शीत तथा शरीरमें भारीपन होता है, निद्रा अधिक आती है, संधियोंमें शिथिलता तथा ग्लानि होती है और मुखसे पानी बहता है ॥ ६४–६७ ॥

रसे वृद्धेऽन्नविद्वेषो जायते गात्रगौरवम् । लालाप्रसेकश्छर्दिश्च मूर्च्छा सादो भ्रमः कफः ॥ ६८ ॥ प्रवृद्धं रुधिरं कुर्याद्गात्रमारक्तवर्णकम् । लोचनं च तथा रक्तं शिराः पूरयतेऽपि च ॥ ६९ ॥ अन्यच्च–रक्तं तु कुरुते वृद्धं विसर्पप्लीहविद्रधीन् । कुष्ठं वातासृकं गुल्मं शिरापूर्णत्वकामले ॥ ७० ॥ गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते । व्यङ्गाग्निसादसंमोहो रक्तेक्षणमूत्रताः ॥ ७१ ॥ गुदमेढ्रास्यपाकार्शःपिडकाप्रशकास्तथा । इन्द्रलुप्ताङ्गमर्दासृग्दरास्तापं करांघ्रिषु ॥ ७२ ॥ शमयेद्रक्तवृद्धयुत्थान्वक्तक्षुतिविरेचनैः । मांसं वृद्धं तु गण्डौष्ठस्फिग्गुपस्थोरुबाहुषु ॥ ७३ ॥ जंघयोः कुरुते वृद्धिं तथा गात्रस्य गौरवम् । उदरे पार्श्वयोर्वृद्धिः कासश्वासादयस्तथा । दौर्गन्ध्यं स्निग्धता गात्रे मेदोवृद्धौ भवेदिति ॥ ७४ ॥ अन्यच्च–प्रवृद्धं कुरुते मेदः श्रममल्पेऽपि चेष्टिते । तृट्स्वेदगलगण्डौष्ठरोगमेहादिजन्म च ॥ ७५ ॥ श्वासं स्फिग्जठरग्रीवास्तनानां लम्बनं तथा । वृद्धान्यस्थीनि कुर्वन्ति अस्थीन्यन्यानि चास्थिषु ॥ ७६ ॥ आचरन्ति तथा दन्तान्विकटान्महतस्तथा । मज्जा वृद्धः समस्ताङ्गनेत्रगौरवमाचरेत् ॥ ७७ ॥ शुक्राश्मरी शुक्रवृद्धौ शुक्रस्यातिप्रवर्तनम् । मलप्रवृद्धावाटोपो जायते जठरे व्यथा ॥७८॥

"रसकी अत्यन्त वृद्धि" होय तौ अन्नमें द्वेष तथा शरीरमें गुरुता होती है, लार झरती है, वमन, मूर्च्छा, शरीरमें पीडा, भ्रम और कफकी वृद्ध होती है। "रुधिरकी अत्यन्त वृद्धि" होय तौ शरीर तथा नेत्र लाल हो जाते हैं और नसें पूर्ण हो जाती हैं। और भी कहा है कि, रुधिर अत्यन्त बढा हो तो विसर्प, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, वातरक्त, गुल्म, नसोंकी परिपूर्णता, कामला, शरीरकी गुरुता, निद्रा, मद, दाह, व्यङ्ग (झाईं), अग्निकी मन्दता, मोह, त्वचा तथा मूत्रमें लाली होना, गुदाका पकना, लिंगका पकना, मुखका पकना, बवासीर, फुन्सी, मस्से, इन्द्रलुप्त रोग, अंगोंका टूटना, प्रदर, हाथमें ताप तथा पावोंमें ताप होता है। रुधिर बढनेसे जो रोग उत्पन्न हुए हों उनको रुधिर निकालने और रेच देनेसे शांत करे। "मांस अत्यन्त बढा" होय तौ कपोल, ओष्ठ, कूले, लिंग, जंघा, भुजा और पींडरी बढती हैं तथा शरीरमें गुरुता होती है। "मेदा अत्यन्त बढी" हो तो उदर तथा पसवाडोंकी वृद्धि होती है, खाँसी, श्वास, दुर्गन्धता और शरीरमें स्निग्धता होती है। फिर भी कहा है कि, मेदा अत्यन्त बढी होय तौ किंचित् परिश्रम करनेसे अधिक परिश्रम होता है, तृषा अत्यन्त लगती है, पसीना बहुत आता है, गलगण्ड तथा होंठके रोग होते हैं, प्रमेह आदि भी उत्पन्न होते हैं, श्वास होता है और कूले, नट, गरदन तथा स्तन लंबे हो जाते हैं। "हड्डी अत्यन्त बढी" हों तो हड्डियोंमें दूसरी हड्डी उत्पन्न हो जाती हैं और दाँत विकट तथा मोटे हो जाते हैं। "मज्जा अत्यंत बढी" हो तौ सर्व अंग और नेत्रोंमें गुरुता हो जाती है। "वीर्य अत्यंत बढा" हो तो शुक्राश्मरी नामक पथरी रोग होता है और वीर्यकी अधिक प्रवृत्ति होती है। "मल अत्यंत बढ रहा" हो तौ अफरा और पेटमें पीडा होती है ॥ ६८–७८ ॥

मूत्रे वृद्धे मुहुर्मूत्रमाध्मानं वस्तिवेदना । स्वेदे वृद्धे तु दौर्गन्ध्यं त्वचि कण्डूश्च जायते ॥ ७९ ॥ आर्तवातिप्रवृत्तिः स्याद्दौर्गन्ध्यं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चार्तवे भवेत् । अङ्गमर्दश्च जायेत लिंगं स्यादार्तवेऽधिके ॥ ८० ॥ स्तनयोरतिपीनत्वं क्षीरस्रावो मुहुर्मुहुः । तोदश्च तत्र भवति स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥ ८१ ॥ उदरादिप्रवृद्धिस्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते । स्वेदश्च गर्भवत्याः स्यात्प्रसवे व्यसनं महत् ॥ ८२ ॥

"मूत्र अत्यंत बढ रहा" हो तौ वारंवार मूत्र आता है, मूत्राशयमें अफरा और पीडा होती है। "पसीना अत्यंत बढ रहा" हो तौ दुर्गन्धता और त्वचा (चमडी) में खुजली होती है। "स्त्रियोंके रजकी अत्यंत वृद्धि" हो तौ रजकी अत्यंत प्रवृत्ति होती है, रजमें दुर्गन्ध आती है और अंग टूटते हैं। "स्त्रियोंका दूध अत्यंत बढ रहा" हो तौ स्तन अत्यंत पुष्ट होते हैं, दुग्ध वारंवार झरता है और स्तनोंमें पीडा होती है। "गर्भवती स्त्रियोंका गर्भ अधिक बढ गया" हो तौ उदर आदि अंग बढ जाते हैं, पसीना बहुत आता है और प्रसवके समयमें अधिक कष्ट होते हैं ॥ ७९–८२ ॥

अथातिवृद्धदोषधातुमलक्षयविधिः ।

तत्तद्ध्रासकराहारविहारपरिषेवणात् । दोषधातुमलानां हि ह्रासो निगदितो नृणाम् ॥ ८३ ॥ पूर्वः पूर्वोऽतिवृद्धत्वाद्बृंहणेद्धि परस्परम् । तस्मादतिप्रवृद्धानां धातूनां ह्रसनं हितम् ॥ ८४ ॥

दोष, धातु और मलोंको हीन करनेवाले आहार विहारोंको भली भाँति सेवन करनेसे मनुष्योंके दोष, धातु और मल बलहीन होते हैं, इनमें दोष अत्यंत बढकर धातुओंको बढाते हैं और धातुएँ बढकर मलोंको बढाते हैं, इस कारण अत्यंत बढी हुई धातुओंको अल्प करना हितकारी है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ दोषधातुमलक्षयनिदानम् ।

असात्म्यान्नसदाक्रोधशोकचिन्ताभयश्रमैः । अतिव्यवायानशनात्यर्थसंशोधनैरपि ॥ ८५ ॥ वेगानां धारणाच्चापि साहसादभिघाततः । दोषाणामथ धातूनां मलानां च भवेत्क्षयः ८६

विरुद्ध प्रकृतिवाला, अन्न, सर्वदा क्रोध, शोक, चिंता, भय, श्रम, अत्यन्त मैथुन, उपवास, अत्यन्त रेचन (दस्तावर) आदि, दस्त आदिके वेगोंका रोकना, साहस और प्रहार आदि अभिघात इनसे दोषोंका, धातुओंका और मलोंका क्षय होता है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

अथ क्षीणदोषादिलक्षणम् ।

वातक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मन्दवाक्यं विसंज्ञता । पित्तक्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निमान्द्यं प्रभाक्षयः ॥ ८७ ॥ सन्धयः शिथिला मूर्च्छा रौक्ष्यं दाहः कफक्षये । हृत्पीडा कण्ठशोषौ त्वक् शून्या तृट् च रसक्षये ॥ ८८ ॥ शिराः श्लथा हिमा मूर्च्छा त्वक्पारुष्यं क्षयेऽसृजः । गण्डौष्ठकन्धरास्कन्धवक्षोजठरसन्धिषु ॥ ८९ ॥ उपस्थशोथपिण्डीषु शुष्कता गात्ररूक्षता । तोदो धमन्यः शिथिला भवेयुर्मांससंक्षये ॥ ९० ॥ प्लीहाभिवृद्धिः सन्धीनां शून्यता तनुरूक्षता । प्रार्थना स्निग्धमांसस्य लिंगं स्यान्मेदसः क्षये ॥ ९१ ॥ अस्थिशूलं तनौ रौक्ष्यं नखदन्तत्रुटिस्तथा । अस्थिक्षये लिंगमेतद्वैद्यैः सर्वैरुदाहृतम् ॥ ९२ ॥ शुक्राल्पत्वं पर्वभेदस्तोदः शून्यत्वमस्थिनि । लिंगान्येतानि जायन्ते नराणां मज्जसंक्षये ॥ ९३ ॥ शुक्रक्षये रतेऽशक्तिर्यथा शेफसि मुष्कयोः । चिरेण शुक्रसेकः स्यात्सेके रक्ताल्पशुक्रता ॥ ९४ ॥

"वायु क्षीण होनेसे" शरीरकी चेष्टा अल्प होती है, अल्प बोल सक्ता है और विसंज्ञता (संज्ञारहितता) होती है। "पित्तके क्षय होनेसे" कफ अधिक होता है, अग्नि मंद हो जाती है और कांतिका क्षय होता है। "कफ क्षीण होय" तौ संधियोंमें शिथिलता होती है, गला सूख जाता है, त्वचा सूख जाती है और तृषा लगती है। "रुधिर क्षीण होय" तौ नसें शिथिल तथा शीतल होती हैं, मूर्च्छा आती है और त्वचा कठोर हो जाती है। "मांस क्षीण होनेसे" कपोल, होंठ, गरदन, खंभे, उदर, संधियें, लिंग और पाँवकी पींडरी सूख जाती हैं, शरीर रूक्ष हो जाता है, पीडा होती है और नाडियें शिथिल हो जाती हैं। "मेदा क्षीण होनेसे" प्लीहा बढ जाती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, संधियें शून्य हो जाती हैं, शरीरमें रूक्षता और स्नेहयुक्त मांसभक्षणकी इच्छा होती है। "अस्थि क्षीण होनेसे" अस्थियोंमें शूल होता है, शरीर रूक्ष होता है और नख तथा दाँत टूटने लगते हैं, ये अस्थि क्षीण होनेके चिह्न सब वैद्योंने कहे हैं। "मज्जा क्षीण होनेसे" वीर्यकी अल्पता, संधियोंका टूटना, पीडा और अस्थियोंमें शून्यता ये चिह्न होते हैं। "वीर्यका क्षय होनेसे" मैथुनमें अशक्ति होती है, लिंगमें तथा अण्डकोषोंमें पीडा होती है, वीर्य देरसे स्खलित होता है और अल्प तथा लाल हो जाता है ॥ ८७–९४ ॥

अथोजःक्षयनिदानम्।

ओजः संक्षीयते कोपाच्चिताशोकश्रमादिभिः। रूक्षतीक्ष्णोष्णकटुकैः कर्षणैरपरैरपि ॥ ९५॥

कोप, चिन्ता, शोक, श्रम आदि, रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम तथा चरपरे पदार्थ और कर्षणक्रियासे भी ओजका क्षय होता है ॥ ९५ ॥

अथोजःक्षीणलक्षणम्।

बिभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं चिन्तयेद्व्यथितेन्द्रियः। अभ्युत्थायोन्मना रूक्षः क्षामः स्यादोजसः क्षये ॥ ९६ ॥

ओज क्षीण होनेसे मनुष्य बलहीन हो जाता है, वारंवार भयभीत होता है, चिंता तथा इंद्रियोंमें पीडा होती है, कांतिरहित हो जाता है, मनमें भय पावे, रूक्ष तथा दुर्बल हो जाता है ॥ ९६ ॥

अथ मल [विष्ठा] क्षीणलक्षणम्।

पुरीषस्य क्षये पार्श्वे हृदये च व्यथा भवेत्। सशब्दस्यानिलस्योर्द्ध्वगमनं कुक्षिसंवृतिः ९७

विष्ठा क्षीण होनेसे पसली तथा हृदयमें पीडा होती है, वायु शब्द करता २ ऊपरको चलता है और कोखें सुकड जाती हैं ॥ ९७ ॥

अथ मूत्रादिक्षयलक्षणम्।

मूत्रक्षयेऽल्पमूत्रत्वं वस्तौ तोदश्च जायते। स्वेदनाशे त्वचो रौक्ष्यं चक्षुषोरपि रूक्षता ॥ ९८ ॥ स्तब्धाश्च रोमकूपाः स्युर्लिङ्गं स्वेदक्षये भवेत्। आर्तवस्य स्वकाले चाभावस्तस्याल्पताऽथ वा ॥ ९९ ॥ जायते वेदना योनौ लिङ्गं स्यादार्तवक्षये। अभावः स्वल्पता वा स्यात्स्वप्नस्य भवतस्तथा॥१००॥ म्लानौ पयोधरावेतल्लक्षणं स्तन्यसंक्षये। अनुन्नतो भवेत्कुक्षिर्गर्भस्यास्पन्दनं तथा। इति गर्भक्षये प्राज्ञैर्लक्षणं समुदाहृतम्१०१॥

मूत्र क्षीण होनेसे मूत्र अल्प हो जाता है और मूत्राशयमें पीडा होती है। "स्वेद (पसीना) क्षीण होनेसे" त्वचा रूखी हो जाती है, नेत्र भी रूक्ष हो जाते हैं और रोमोंके छिद्र स्तब्ध हो जाते हैं। "स्त्रियोंके रज क्षीण होनेसे" रज समयानुसार नहीं आता, अल्प हो जाता है और योनिमें पीडा होती है। "स्त्रियोंके दूध क्षीण होनेसे" दूधका अभाव हो जाता है, यदि आवे तो अल्प आता है और स्तन मुरझा जाता है। "स्त्रियोंका गर्भ क्षीण होनेसे," पेट नीचा हो जाता है और गर्भ पेटमें फरकता नहीं है, ये लक्षण विद्वानोंने कहे हैं ॥ ९८–१०१ ॥

अथ क्षीणधातुवर्द्धनविधिः।

तत्तत्संवर्द्धनाहारविहारातिनिषेवणात्। तत्तत्प्राप्य नरः शीघ्रं तत्तत्क्षयमपोहति॥१०२॥ ओजस्तु वर्द्धते नृणां सुस्निग्धैः स्वादुभिस्तथा। वृष्यैरन्यैर्विशेषात्तु क्षीरमांसरसादिभिः ॥ १०३ ॥ अन्यच्च–दोषधातुमलक्षीणो बलक्षीणोऽपि मानवः। तत्तत्संवर्धनं यत्तदन्नपानं प्रकांक्षति ॥ १०४ ॥ यद्यदाहारजातं तु क्षीणः प्रार्थयते नरः। तस्य तस्य स लाभेन तत्तत्क्षयमपोहति ॥ १०५ ॥

धातु, दोष तथा मलोंको बढानेवाले आहार विहारोंका अत्यंत सेवन करनेसे उनकी प्राप्ति होनेपर तुरन्त क्षीणता नष्ट हो जाती है। भली भाँति स्नेह करके युक्त, मधुर और मैथुनकी शक्तिको बढानेवाले, तथा स्वादिष्ठ आहारोंसे मनुष्योंका ओज बढता है और उसमें भी दूध तथा मांसरस आदिके उपयोगसे अत्यंत बढता है। और भी कहा है कि–जिसके दोष, धातु, मल तथा बल क्षीण हो गये हो वह मनुष्य उन्हीं उन्हीं पदार्थोंको बढानेवाले अन्नपानोंकी इच्छा करता है। धातु, आदिकी क्षीणता पाये हुए मनुष्यको जिस जिस आहारकी इच्छा होय वह वह आहार मिलनेसे धातु आदिका क्षय नष्ट हो जाता है ॥ १०२–१०५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ वातादिक्षीणतायां वस्त्वभिलाषा ।
कषायकटुतिक्तानि रूक्ष शीतलघूनि च ।
यवमुद्गप्रियंगूश्च वातक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १०६ ॥ तिलमाषकुलत्थादिपिष्टान्नविकृतिं तथा । मस्तुशुक्ताम्लतक्राणि काञ्जिकं च तथा दधि ॥ १०७ ॥ क म्ललवणोष्णानि तीक्ष्णं क्रोधं विदाहि च । समयं देशमुष्णं च पित्तक्षीणोऽभिकांक्षति॥१०८॥ मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च । दधि क्षीरं दिवास्वप्नं कफक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १०९ ॥

जिसकी वात क्षीण हुई हो वह मनुष्य कसैले, चरपरे, कडवे, रूक्ष, शीतल तथा हलके पदार्थ, जौ, मूँग और कंगनी इनकी इच्छा करता है । जिसका पित्त क्षीण हुआ हो वह मनुष्य तिल, उडद, कुलथी आदि पिसे हुए अन्नका विकार, दहीकी मलाई, सिरका, अम्ल छाछ, काँजी, दही, चरपरे, अम्ल, खारी, गरम तथा तीक्ष्ण पदार्थ, क्रोध, विदाही पदार्थ, उष्ण काल और गरम प्रदेश इनकी इच्छा करता है । जिसका कफ क्षीण हुआ हो वह मनुष्य मधुर, स्निग्ध, शीतल, खारी, अम्ल तथा भारी पदार्थ, दही, दूध और दिनमें शयन इनकी इच्छा करता है ॥ १०६–१०९ ॥

रसक्षीणो नरः कांक्षत्यन्धोऽतिशिशिरं मुहुः ।
रात्रिनिद्रां हिम चन्द्रं भोक्तुं च मधुरं रसम् ॥ ११० ॥ इक्षुं मांसरसं मन्थं मधुसर्पिर्गुडोदकम् । द्राक्षादाडिमशुक्ता म्ले सस्नेहलवणानि च । रक्तसिद्धानि मांसानि रक्तक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १११ ॥

जिसका रस क्षीण हुआ हो वह मनुष्य वारंवार अत्यंत शीतल जल, रात्रिमें निद्रा, हिम, चन्द्रमा, मधुर रस, ईख, मांसका रस, मन्थ, शहद, घी और गुडयुक्त जलकी इच्छा करता है । जिसका रुधिर क्षीण हो गया हो वह मनुष्य दाख अथवा दाडिमका सिरका, स्नेहयुक्त तथा लवणयुक्त पदार्थ और रुधिरमें पकाये हुए मांसकी इच्छा करता है ॥११०॥१११॥

अन्नानि दधिसिद्धानि खांडवांश्च बहूनपि ।
स्थूलक्रव्यादमांसानि मांसक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११२ ॥ (खांडवा मधुराम्लादिरससंयोगपाचिताः गुडावप्रभृतयः ।) मेदःसिद्धानि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च । सक्षाराणि विशेषेण मेदःक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११३ ॥ अस्थिक्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थिस्नेहसंयुतम् । स्वाद्वम्लसंयुतं द्रव्यं मज्जाक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११४ ॥

जिसका मांस क्षीण हो गया हो वह मनुष्य दहीमें पकाया हुआ अन्न, मधुर तथा खारी आदि रसोंके संयोगसे पकाये हुए पदार्थ और मांसका भक्षण करनेवाले मोटे प्राणियोंके मांसकी इच्छा करता है । जिसकी मेदा क्षीण हो गई वह मनुष्य मेदामें पकाये हुए ग्राम्य, आनूप तथा जलचर प्राणियोंके मांसकी और विशेष करके खारी पदार्थोंकी इच्छा करता है । जिसकी अस्थियें क्षीण हो गई हों वह मनुष्य मज्जासे तथा अस्थियोंके स्नेहसे संयुक्त मांसकी और जिसकी मज्जा क्षीण हो गई हो वह मधुर तथा अम्ल रसवाले पदार्थोंकी इच्छा करता है ॥ ११२–११४ ॥

शिखिनः कुक्कुटस्याण्डं हंससारसयोस्तथा ।
ग्राम्यानूपौदकानां च शुक्रक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ११५ ॥

जिसका वीर्य क्षीण हो गया हो वह मनुष्य मोर, मुरगा, हंस, सारस, ग्रामके पक्षी, आनूप और जलमें रहनेवाले पक्षी इनके अंडोंकी इच्छा करता है ॥ ११५ ॥

यवान्नं यवकान्नं च शाकानि विविधानि च ।
मसूरमाषयूषं च मलक्षीणोऽभिकांक्षति११६

जिसकी विष्ठा क्षीण हो गई हो वह मनुष्य जौ, सूक्ष्म गेहूँ, अनेक प्रकारके शाक और मसूर तथा उडदका यूष इनकी इच्छा करता है ॥ ११६ ॥

पेयामिक्षुरसं क्षीरं सगुडं बदरोदकम् । मूत्रक्षीणोऽभिलषति त्रपुसैर्वारुकाणि च॥११७

जिसका मूत्र क्षीण हो गया हो वह मनुष्य पीनेके पदार्थ, ईखका रस, दूध, गुडयुक्त बेरका जल, खीरा और ककडी इनकी इच्छा करता है ॥ ११७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यङ्गोद्वर्त्तने मद्यं निवातशयनासने । गुरु प्रावरणं चैव स्वेदक्षीणोऽभिकांक्षति॥११८॥

जिसका स्वेद क्षीण हो गया हो वह मनुष्य तैलादिकका अभ्यंग (मालिश), उबटन, मद्य, पवनरहित स्थानमें शयन तथा बैठना और भारी वस्त्रोंकी इच्छा करता है ॥ ११८ ॥

कटूम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च । फलशाकानि पानानि स्त्री कांक्षत्यार्त्तवक्षये ॥ ११९ ॥

जिसका रज क्षीण हो गया हो वह स्त्री—चरपरे, खट्टे, खारी, गरम, विदाही और गुरुतायुक्त पदार्थ, फलोंका शाक तथा अन्न, पानोंकी इच्छा करती है ॥ ११९ ॥

सुराशाल्यन्नमांसानि गोक्षीरं शर्करां तथा । आसवं दधि हृद्यानि स्तन्याक्षीणाऽभिवाञ्छति ॥ १२० ॥

जिसका दूध क्षीण हो गया हो वह स्त्री—मदिरा, चावल, मांस, गायका दूध, खाँड, आसव, दही और हृदयको प्रिय मालूम हों ऐसे अन्नादिककी इच्छा करती है ॥ १२० ॥

मृगाजाविवराहाणां गर्भान्वाञ्छति संस्कृतान् । वसाशूल्यप्रकारादीन्भोक्तुं गर्भपरिक्षये ॥ १२१ ॥

जिसका गर्भ क्षीण हो गया हो वह स्त्री—मृग, बकरा, मेंढा, सुअर इनके पके हुए गर्भकी, चरबीकी, तथा लोहेके काँटेसे पकाये हुए मांस आदि खानेकी इच्छा करती है ॥ १२१ ॥

अथ सुश्रुतोक्तबललक्षणम् ।

रसादिशुक्रपर्यन्तं धातुपुष्टिनिमित्तकम् । चेष्टासु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते॥१२२॥

सुश्रुत कहते हैं कि—रससे लेकर वीर्यपर्यन्त सम्पूर्ण धातुएँ पुष्ट होनेके लिये चेष्टा करनेमें शरीरकी जो समर्थता है वह बल कहाती है ॥ १२२ ॥

अथ बलक्षयनिदानम् ।

अभिघाताद्भयात्क्रोधाच्चिन्तया च परिश्रमात् । धातूनां संक्षयाच्छोकाद्बलं संक्षीयते नृणाम् ॥ १२३ ॥

अभिघात (चोट) से, भयसे, क्रोधसे, चिंतासे, परिश्रमसे, धातुओंके क्षयसे और शोकसे मनुष्योंका बल क्षीण होता है ॥ १२३ ॥

अथ बलक्षयलक्षणम् ।

गौरवं स्तब्धता गात्रे मुखम्लानिर्विवर्णता । तन्द्रा निद्रा वातशोथो बलव्यापत्तिलक्षणम् ॥ १२४ ॥

शरीरमें गुरुता, स्तब्धता, मुखका मुरझाना, वर्णका बिगडना, तंद्रा, निद्रा और वातसंबन्धी सूजन ये बलके क्षयके लक्षण हैं ॥ १२४ ॥

अथ बलवृद्धिनिदानम् ।

दोषसाम्यकरं यत्तु वह्निसाम्यकरं च यत् । धातुपुष्टिकरं द्रव्यं बलं तदभिवर्द्धयेत् १२५॥

जो पदार्थ दोषोंकी तथा अग्निकी समता करनेवाला है और धातुओंको पुष्ट करता है वह पदार्थ बलको बढावे है ॥ १२५ ॥

अथ बलाबललक्षणम् ।

कृशोऽपि बलवान्काश्चित्स्थूलोऽत्यल्पबलो यतः । तस्माच्चेष्टापटुत्वेन बलवन्तं विदुर्बुधाः ॥ १२६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकतनयश्रीमन्मिश्रभावविरचिते श्रीभावप्रकाशे पूर्वखण्डे षष्ठं प्रकरणं समाप्तम् ।

कोई मनुष्य शरीरमें दुर्बल होनेपर भी बलवान् होता है और कोई मनुष्य शरीरमें मोटा होनेपर भी अल्प बलवाला होता है, इस कारण विद्वान् वैद्योंने निश्चय किया है कि, शरीरकी हाल चाल आदि चेष्टा करनेमें जो मनुष्य समर्थ हो वही बलवान् होता है ॥ १२६ ॥

इति श्रीभावप्रकाशभाषाटीकायां षष्ठप्रकरणं सम्पूर्णम्।

इति पूर्वखण्डं समाप्तम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीवेङ्कटेशाय नमः ।

अथ भावप्रकाशः ।

भाषाटीकासमेतः ।

मध्यखण्डम्-२.

अथ ज्वराधिकारः ।

यतः समस्तरोगाणां ज्वरो राजेति विश्रुतः । अतो ज्वराधिकारोऽत्र प्रथमं लिख्यते मया ॥ १ ॥

ज्वर सम्पूर्ण रोगोंका राजा है ऐसा कहा है इस कारण मैं सबसे पहिले यहाँ ज्वराधिकार लिखता हूँ॥१॥

अथ ज्वरोत्पत्तिः ।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः । ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसंघातागन्तुजः स्मृतः ॥ २ ॥ अस्यायमर्थः-दक्षकर्तृको योऽपमानः तेन संक्रुद्धो यो रुद्रः, तस्य यो निःश्वासः, तस्मात्सम्भव उत्पत्तिर्यस्य स ज्वरः । क्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भूतत्वेन ज्वरः स्वभावात्पैत्तिक इति बोध्यते । यत उक्तं चरकेण-क्रोधात्पित्तमित्यादि । तेन सर्वज्वरेषु पित्तोपशमकारिणी चिकित्सा कर्त्तव्या । अत एव आह वाग्भटः-उष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्युष्मणा विना। तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ॥ ३ ॥ रुद्रसम्भूतत्वेन ज्वरस्य देवतात्मकत्वात्पूजार्हत्वं च उपदर्शितम् । अत एव वैदेहः-ज्वरः सम्पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यतीति ॥

सुश्रुतमें लिखा है कि-"दक्ष प्रजापतिके अपमान करनेसे क्रोधित हुए महादेवजीका जो श्वास निकला उसीसे ज्वर उत्पन्न हुआ है । ज्वर कुपित हुए महादेवजीके श्वाससे उत्पन्न होनेके कारण स्वाभाविक रीतिसे पित्तप्रकृतिवाला है ऐसा जानना; क्योंकि "क्रोधसे पित्त उत्पन्न होता है" इत्यादि प्रमाण चरकमें कहे हैं । तात्पर्य यह है कि-सम्पूर्ण ज्वरोंमें जिससे पित्त शमन हो ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये । वाग्भट भी कहते हैं कि-"पित्तके विना गरमी नहीं होती और गरमीके विना ज्वर नहीं होता, इस कारण पित्तज्वरमें पित्त विरुद्ध अर्थात् पित्तको कुपित करनेवाली चिकित्सा कदापि न करे ।" श्रीमहादेवजीसे उत्पन्न होनेके कारण ज्वर देवतारूप है, इस कारण पूजन करनेके योग्य भी है यह वैदेह आचार्यका मत है कि-उत्तम रीतिसे ज्वरका पूजन करे तो ज्वर तत्काल शान्त हो जाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ ज्वरमूर्तिः ।

रुद्रकोपाग्निसम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः । त्रिपादस्त्रिप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ ४ ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलो माल्यविग्रहः । पिङ्गेक्षणो ह्रस्वजंघो बीभत्सो बलवान्महान् ॥ ५ ॥ पुरुषो लोकनाशार्थप्रसो ज्वर इति स्थितः । तैस्तैर्नामभिरन्येषां सत्त्वानां परिकीर्त्यते ॥ ६ ॥ जन्मादौ निधने चैव प्रायो विशति देहिनाम् । ऋते देवमनुष्याभ्यां नान्यो विषहते हि तम् ॥ ७ ॥ तस्य ज्वरस्य संख्यारूपां सम्प्राप्तिमाह-ज्वरोऽष्टधेति । अष्टधात्वं विवृणोति-पृथगिति । वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिकश्चेति त्रयः, द्वन्द्वजाश्च त्रयः-वातपैत्तिकः, वातश्लैष्मिकः, पित्तश्लैष्मिक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्चेति। सङ्घातजः सान्निपातिक एकः। आगन्तुजोऽभिघातजः॥ "द्व्युल्वणैकोल्वणैः षट् स्युर्हीनमध्याधिकैश्च षट्। समश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश॥" इति चरके। त्रयोदश सान्निपाता उक्तास्ते यथा। वातोल्वणः। पित्तोल्वणः। कफोल्वणः। वातपित्तोल्वणः। वातश्लेष्मोल्वणः। पित्तश्लेष्मोल्वणः। एवं षट्। अधिकवातो मध्यपित्तो हीनकफः। अधिकवातो मध्यकफो हीनपित्तः। अधिकपित्तः मध्यवातः हीनकफः। अधिकपित्तः मध्यकफः हीनवातः। अधिककफः मध्यवातः हीनपित्तः। अधिककफो मध्यपित्तो हीनवातश्चेति षट्। उल्वण एकः। त्रयोदश। अत्र तु त्रिदोषजत्वेन साम्यात्सान्निपातिक एक एव गणितः। आगन्तुज इति अत्रागन्तुशब्देन अभिघातादयो हेतव उच्यन्ते। कुत्रचिद्व्याधयः कार्यकारणयोरभेदोपचारात्। आगन्तुजा अभिघाताद्यनेककारणयोगादनेके भवन्ति, तथाप्यागन्तुजत्वेन साम्यादागन्तुकोऽप्यत्र एक एव गणितः। ननु आगन्तुजेऽपि ज्वरे वातादिलक्षणदर्शनादागन्तुजः कथं दोषजाद्भिन्नः? उच्यते। उत्तरकालं दोषोत्पत्तेः। तथा च चरके—"आगन्तुको हि व्यथापूर्वं जायते पश्चाद्भिन्नैर्दोषैरनुबध्यते" इति॥

रुद्रकी क्रोधरूप अग्निसे उत्पन्न हुआ और सर्व जीवोंको संतापित करनेवाला ऐसा ज्वर नामवाला पुरुष प्राणियोंको नाश करनेके लिये प्रगट हुआ। यह पुरुष तीन पाँववाला, भस्मरूपी, आयुधको धारण किये, तीन शिरयुक्त, दीर्घ उदरवाला, बाघम्बरको पहिरे, कपिल रंगका, मुंडोंकी मालाको धारण किये हुए है, पीली आँखोंवाला, छोटी छोटी जाँघें, भयंकररूप, महाबलवान् और बहुत लम्बा ऐसा ज्वररूपी पुरुष मनुष्योंके नाश करनेके लिये स्थित है। यह ज्वर मनुष्योंके अतिरिक्त और जीवोंमें अन्य अन्य नामोंसे कहा जाता है। यह बहुधा करके प्राणियोंके जन्म और मरणके समय शरीरमें प्रविष्ट होता है। इसको देवता और मनुष्योंके विना कोई भी नहीं सह सक्ता, यह सुश्रुतमें कहा है। अब ज्वरकी संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं। वातिक (वातसे उत्पन्न होनेवाला), पैत्तिक (पित्तसे उत्पन्न होनेवाला), श्लैष्मिक (कफसे उत्पन्न होनेवाला), वातपित्तज (वायु और पित्त दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला), वातकफज (वायु और कफ दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला), पित्तकफज (पित्त और कफ दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला), सान्निपातिक (वातादि तीनों दोषोंसे उत्पन्न होनेवाला) और आगन्तुज (चोट आदिके लगनेसे उत्पन्न होनेवाला) ऐसा ज्वर आठ प्रकारका है। तीनों दोषोंसे उत्पन्न होनेवाला जो सान्निपातिक ज्वर है उसके भेद कहता हूँ, द्व्युल्वण अर्थात् दो दोष जिसमें अधिक हो और एकोल्वण अर्थात् जिसमें एक दोष अधिक हो, इस प्रकार द्व्युल्वण और एकोल्वण इनके भेदोंसे छः प्रकारका और हीन, मध्य तथा अधिक दोष इनके भेदोंसे छः प्रकारका और जिसमें तीनों दोष उल्वण हों एक वह, इस प्रकार सब तेरह सन्निपात कहे। जैसे कि—चरकमें कहे हैं, वातोल्वण १ पित्तोल्वण २ कफोल्वण ३ वातपित्तोल्वण ४ वातकफोल्वण ५ पित्तकफोल्वण ६ ये छः हुए, अधिकवात मध्यपित्त हीनकफ, अधिकवात मध्यकफ हीनपित्त, अधिकपित्त मध्यवात हीनकफ, अधिकपित्त मध्यकफ हीनवात, अधिककफ मध्यवात हीनपित्त, अधिककफ मध्यपित्त हीनवात ये ६ हुए और एक त्र्युल्वण अर्थात् जिसमें तीनों दोष उल्वण हों, इस प्रकार सन्निपातके तेरह भेद कहे हैं, किन्तु यहाँ तो तीनों दोषोंके समान होनेसे एक ही सान्निपात कहा है। "आगंतुज इति" अर्थात् प्रहार (चोट) आदि नवीन कारणोंसे जो ज्वर उत्पन्न हो उसको आगंतुज ऐसा कहते हैं। कहीं कहीं कारण और कार्यके अभेदोपचारसे आगन्तुज रोग (आगन्तुक) एकही माना है जैसे कि—आगन्तुजज्वर प्रहार आदि अनेक कारणोंके योगसे अनेक प्रकारका होता है तथापि आगन्तुजत्वकी समानतासे यहां आगन्तुज ज्वर एकही गिना है। शंका—आगन्तुज ज्वरमें वातादिके ही लक्षण देखनेमें आते हैं, फिर किस कारण आगन्तुज ज्वरको दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंसे अलग गिना है? समाधान—आगन्तुज रोगमें दोषोंकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पत्ति पीछे होती है इस कारण उसको दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंसे अलग कहा है । चरकमें लिखा है कि—आगन्तुज ज्वर प्रथम किसी प्रकारकी पीडा उत्पन्न होकर उत्पन्न होता है, पश्चात् उन्हीं उन्हीं दोषोंसे संबन्धित हो जाता है ॥ ४–७ ॥

अथ दूरसमीपकारणकथनपूर्वकज्वरसंप्राप्तिः।
मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदा स्यू रसानुगाः ॥ ८ ॥ मिथ्याहारविहाराभ्यामनुचिताहारचेष्टाभ्यां हेतुभूताभ्यां दोषाः वातपित्तकफाः आमशयाश्रयाः आमाशयं गताः रसानुगा रसदूषका बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं कोष्ठगताग्नेरुष्माणम्, न तु समस्तमग्निं, तदा तु दोषपाकासम्भवः स्यात् । बहिः प्रक्षिप्य ज्वरदाः स्युर्ज्वरकारिणो भवेयुरित्यर्थः ॥

अयोग्य आहार और अयोग्य विहारके करनेसे वात पित्त कफ ये तीनों दोष आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोष्ठकी अग्निकी उष्णताको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करनेवाले होते हैं । यहा कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकाले हैं, समस्त अग्निको ही निकाले ऐसा नहीं समझना चाहिये, कारण यह है कि जो अग्नि बाहर निकल जावेगी तो पश्चात् दोषोंका पाचन कैसे होगा ? ॥ ८ ॥

अथ ज्वरसामान्यविशेषपूर्वरूपम् ।
श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः । इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ९ ॥ जृम्भांगमर्दौ गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । अप्रहर्षश्च शीतं च भवन्त्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ १० ॥ सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात् । पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम् ॥ ११ ॥ श्रमो व्यापारं विनैव । अरतिः अस्वस्थचित्तत्वम् । विवर्णत्वं म्लानगात्रता । वैरस्यं मुखस्य अप्रकृतरसता । नयनप्लवः नयनयोः अश्रुपूर्णत्वम् । शीतवातातपादिषु मुहुरिच्छाद्वेषौ । आदिशब्दाज्ज्वलने जले च । यत उक्तं चरकेण—" ज्वलनातपवातेषु भक्तिद्वेषावनिश्चितौ । " शयनादिषु इति अन्ये। अंगमर्दोऽगस्फोटनम् । गुरुता गात्रस्य । रोमहर्षः रोमाञ्चता । अरुचिर्भोज्ये, तमः तमोमग्नस्येव ज्ञानम् । अप्रहर्षः हर्षाभावः । शीतं लगति । चकाराद्बलहानिः । उपदेशबलद्वेषादयोऽपि भवन्ति । एकादशश्लोकस्थं सामान्यत इति पदं पूर्वश्लोकाभ्यां सम्बन्धनीयम् । तेन सामान्यतो ज्वरे उत्पत्स्यति भविष्यति श्रमादयः पूर्वमेव भवन्ति इत्यर्थः । उत्पत्स्यति इति आत्मनेपदिनोऽपि शतृभावः आर्षत्वात् । विशेषात् उच्यते । समीरणात् ज्वर उत्पत्स्यति अतिशयेन जृम्भा भवति । पित्तज्वर उत्पत्स्यति अत्यर्थं नयनयोर्दाहो भवति । कफज्वर उत्पत्स्यति अत्यर्थेन न अन्नाभिनन्दनम् अन्नाकांक्षा न भवति । जृम्भादयो भवन्ति यतः सामान्यधर्मा क्रान्तो विशिष्टो धर्मो भवति ॥

ज्वर उत्पन्न होनेसे पहिले जो लक्षण होते हैं उनको कहते हैं । विनाही परिश्रम किये श्रम (थकावट) मालूम हो, चित्तका कहीं नहीं लगना, शरीरका रंग बदल जावे, मुखमें विरसता, नेत्र जलसे डबडबसे हो जायँ, शीत, पवन और गरमी, धूप इनकी बारबार इच्छा हो और बारबार द्वेष हो, जम्भाई आने लगें, शरीर टूटे और भारी हो जाय, रोमांच हो आवें, भोजनमें अरुचि हो जाय, चारों ओर अन्धकार दीखे, आनन्दका नाश हो और सरदी लगे ये लक्षण ज्वर आनेसे किंचित् पहिले होते हैं । चरक कहते हैं कि—अग्नि, धूप, पवन और जलमें वारंवार इच्छा होय और वारंवार द्वेष हो, ऐसा निश्चय नहीं है । अन्यवैद्य कहते हैं कि सरदी, पवन धूप और शयन इनसे वारंवार प्रीति और वारंवार द्वेष करे । मूलके " उत्पत्स्यति " इस शब्दमें 'पद' धातु व्याकरणके अनुसार आत्मनेपदी होनेपर भी ' शानच् ' प्रत्यय नहीं किया, किन्तु 'शतृ' प्रत्यय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया है, यह ऋषियोंके वैदिक सम्प्रदायके अनुसार किया है, ऐसा समझना। ये सामान्य पूर्वलक्षण कहे अब कुछ विशेष कहते हैं। वातज्वरके पहिले जम्भाई अधिक आती हैं, पित्तज्वरके आनेसे पहिले नेत्रोंमें जलन होती है और कफज्वरके आनेसे पहिले अन्नसे रुचि जाती रहती है ॥ ९--११ ॥

अथ द्वन्द्वजपूर्वरूपम्।

रूपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः ॥१२॥ अन्यतराभ्यां जृम्भानेत्रदाहाभ्यां जृम्भान्नारुचिभ्यां नेत्रदाहान्नारुचिभ्यां वा संसृष्टैः रूपैः श्रमादिभिः द्वन्द्वजं द्विदोषजं पूर्वरूपं विदुः ॥

उपरोक्त प्रकारके मिले हुए लक्षणोंसे द्वन्द्वज पूर्वरूप कहना, अर्थात् वातपित्तज्वरके उत्पन्न होनेसे पूर्व जम्भाइयोंका आना और नेत्रोंमें जलन होती है। वातकफज्वरके आनेसे पूर्व जृंभा और भोजनमें अरुचि होती है और कफपित्तज्वर आनेसे पहले नेत्रोंमें दाह और भोजनमें अरुचि होती है ॥ १२ ॥

अथ सान्निपातिकपूर्वरूपम्।

सर्वलिंगसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे ॥ १३ ॥ सर्वदोषजप्रकोपजे पूर्वरूपे सर्वलिंगसमवायः। अतिशयितजृम्भानेत्रदाहान्नारुचिसहितानां श्रमादीनां समवायो भवति ॥

जब त्रिदोषज ज्वर आनेवाला होता है उससे कुछ पहिले सब लक्षण होते हैं अर्थात् जम्भाई, नेत्रोंमें जलन और अन्नमें अरुचि ये सब लक्षण अधिकतर होते हैं ॥ १३ ॥

अथ ज्वरसामान्यलक्षणम्।

स्वेदावरोधः संतापः सर्वांगग्रहणं तथा। युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ १४ ॥ ताप इति वक्तव्ये सन्तापाभिधानं देहेन्द्रियमनसां सन्तापबोधनार्थम्। यत उक्तं चरकेण—ज्वरविशेषणम् देहेन्द्रियमनस्तापीति। तत्र देहसन्तापो देहेन्द्रियोष्णता। इन्द्रियसन्तापः इन्द्रियतापवैकृत्यम्। यत उक्तम्—इंद्रियाणां तु वैकृत्यं यत्र संतापलक्षणम्। वैचित्त्यमरतिर्ग्लानिर्मनःसंतापलक्षणम् ॥ १५ ॥ इति। सर्वांगग्रहणम्, सर्वेषामंगानां वेदनया ग्रहणं सर्वाणि अंगानि स्तम्भनगृहीतानि इव वा भवन्ति। युगपदिति, मिलितमेतल्लक्षणम्। प्रत्येकस्य व्यभिचारात्। यथा स्वेदावरोधः कुष्ठपूर्वरूपे। तथा सन्तापो दाहव्याधौ। तथा सर्वांगग्रहणं सर्वांगरोगाख्यवातव्याधौ।

जिस रोगमें स्वेदावरोध (पसीनेका न आना), संताप और सम्पूर्ण शरीरमें पीडाका होना ये सब लक्षण एक साथ होंय उसको ज्वर कहते हैं। शंका होती है कि--पित्तज्वरमें तो पसीने आते हैं और यहां स्वेदावरोध अर्थात् पसीनोंका न आना ऐसा कहा इनमें विरुद्धता आती है? उत्तर--स्वेदावरोध यह तो सामान्य लक्षण है. और पित्तज्वर विशेष है ऐसा जैजट, कार्त्तिक और कुण्ड आदि वैद्योंका मत है। अन्य वैद्य इस प्रकार कहते हैं-- " स्वेदका अवरोध " अर्थात् स्वेद जो अग्नि है उसका अवरोध कहिये दोषोंसे आच्छादित हो जाना इस प्रकार व्याकरणसे अर्थ जानना ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ स्वेदावरोधकारणम्।

रुणद्धि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः। भवत्यत्युष्णगात्रश्च स्विद्यते न च सर्वशः ॥ १६ ॥ (यस्माज्ज्वरोऽत्र भवति सर्वशः स्विद्यते न च।)

ज्वर रसरूप धातुओंको रोक देता है इस कारण ज्वररोगीका शरीर बहुत गरम हो जाता है परन्तु पसीना नहीं आता ॥ १६ ॥

अत्र ज्वरसामान्यचिकित्सा।

अंशांशं यत्र दोषाणां विवेक्तुं नैव शक्नुयात्। साधारणीं क्रियां तत्र विदध्यात्तु चिकित्सकः ॥ १७ ॥ सामान्यतो ज्वरी पूर्वं निर्वाते निलये वसेत्। निर्वातमायुषो वृद्धिमारोग्यं कुरुते यतः ॥ १८ ॥ व्यजनस्यानिलस्तृष्णास्वेदमूर्च्छाश्रमापहः। तालवेत्रभवो वातस्त्रिदोषशमनो मतः ॥ १९ ॥ वंशव्यजनजः सोष्णो रक्तपित्तप्रकोपणः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चामरो वस्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा ॥ २० ॥ एते दोषजितो वाताः स्निग्धा हृद्याः सुपूजिताः । नवज्वरी भवेद्यत्नाद्रूक्षणवसनावृतः ॥ २१ ॥ यथर्तुपक्वपानीयं पिबेत्किञ्चिन्निवारयन् । विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते । न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥ २२ ॥

जिस ज्वरमें वैद्य दोषोंके अंशांशको न जान सके उसमें वैद्यको उचित है कि, साधारण चिकित्सा करे । ज्वररोगीकी यही सामान्य चिकित्सा है कि, जिस रोजसे ज्वर आवे उसी दिनसे उसको वायुरहित घरमें रक्खे । निर्वातस्थान-आयुको बढानेवाला और आरोग्यता करनेवाला है । पंखेकी वायु (हवा)-तृषा, पसीना, मूर्च्छा और श्रमको नष्ट करे है । ताडके पंखेकी पवन त्रिदोषनाशक है । बाँसके पंखेकी पवन-उष्ण और रक्तपित्तको कुपित करे है । चमर, वस्त्रके पंखेकी, मोरछलकी और बेतके पंखेकी पवन वात आदि दोषनाशक, स्निग्ध, हृद्यको हितकारी और उत्तम है । नवीन ज्वरवाले रोगीको भारी और गरम ऐसे वस्त्र उढावे और पहरावे, तथा ऋतुके अनुसार औटाये हुए जलको थोडा २ पीनेको देवे । विनाही औषधिके रोग केवल पथ्य करनेसे शान्त हो जाते हैं किन्तु पथ्यहीन मनुष्यके सैकडों औषधियोंके करनेसेभी शान्त नहीं होते ॥ १७-२२ ॥

अथ तरुणज्वरत्याज्यानि ।

परिषेकान्प्रदेहांश्च स्नेहान्संशोधनानि च । दिवा स्वप्नं व्यवायं च व्यायामं शिशिरं जलम् । क्रोधप्रवातभोज्यांश्च वर्जयेत्तरुणज्वरी ॥ २३ ॥ (परिषेकः स्नानादिः । प्रदेहोऽनुलेपनाभ्यङ्गादिः ।)

तरुण (नवीन) ज्वरवाला रोगी स्नानादिक, चन्दनादिकका शरीरपर लेप करना, अथवा तैलादिक मर्दन, स्नेहपानादि, वमन, विरेचनादि, दिनमें सोना, मैथुन, दंडकसरत, शीतजलका पीना, क्रोध करना, पवनका सेवन और भोजन इन सबको त्याग देवे ॥ २३ ॥

अथ त्याज्यसेवनावगुणाः ।

शोषं छर्दिं मदं मूर्च्छां भ्रमं तृष्णामरोचकम् । प्राप्नोत्युपद्रवानेतान्परिषेकादिसेवनात् ॥ २४ ॥ (आदिशब्देन प्रदेहादयो गृह्यन्ते ।) व्यायामाज्ज्वरसंवृद्धिर्व्यवायात्स्तम्भमूर्च्छनम् । मृतिश्च स्नेहपानाद्यैर्मूर्च्छा च्छर्दिर्मदोऽरुचिः ॥ २५ ॥ गुर्वन्नभोजनात्स्वप्नाद्विष्टम्भो दोषकोपनम् । अग्निसादः खरत्वं च स्रोतसां चाप्रवर्तनम् ॥ २६ ॥ (मृतिरिति व्यवायादित्यत्र सम्बध्यते । स्वप्नादिवास्वापात् ।)

उपरोक्त स्नानादिक सेवन करनेसे शोष, वमन, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृषा और अरुचि इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होते हैं । हारीतने प्रत्येकके अलग अलग दूषण कहे हैं उनको कहते हैं कि, व्यायाम अर्थात् दण्ड कसरत करनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है, मैथुन करनेसे शरीर जकडासा हो जाता है तथा मूर्च्छा और मृत्यु होती है । स्नेह पान करनेसे मूर्च्छा, वमन, मद और अरुचि होती है । भारी अन्न खानेसे और दिनमें शयन करनेसे मलविष्टम्भ हो जाता है, दोषोंका कोप होता है, जठराग्नि मन्द हो जाती है, तीव्रता और शरीरके स्रोत, छिद्र बन्द हो जाते हैं ॥ २४-२६ ॥

तथा चोक्तम् ।

अन्यच्च वर्जयेत्-सज्वरो ज्वरमुक्तो वा विदाहीनि गुरुणि च । असात्म्यान्नानि पानानि विरुद्धाध्यशनानि च ॥ २७ ॥ व्यायाममतिचेष्टां वाऽभ्यंगं स्नानं च वर्जयेत् । तेन ज्वरः शमं याति शान्तश्च न पुनर्भवेत् ॥ २८ ॥

रोगी ज्वरयुक्त हो अथवा ज्वरसे रहित हो गया हो तब भी दाहकारक और भारी, तथा अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल अन्न, पान, विरुद्ध (संयोगविरुद्धादि) और अधिक भोजन अथवा भोजनपर भोजन, दण्डकसरत, चलना, फिरना इत्यादि अधिक चेष्टा करना, तैलादिकको शरीरसे मलना और स्नान इन सबको त्याग देवे । इस प्रकार करनेसे ज्वर शान्त हो जाता है और शान्त होकर फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ २७ ॥ २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ज्वरलंघनम्।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधाय यत्। विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मा-
ल्लंघनमाचरेत् ॥ २९ ॥ ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम्। ज्वरान्ते भेषजं
दद्याज्ज्वरमुक्ते विरेचनम् ॥ ३० ॥ त्रिविधं त्रिविधे दोषे तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत्।
दोषेऽल्पे लंघनं पथ्यं मध्ये लंघनपाचनम्। प्रभूते शोधनं तच्च मूलादुन्मूलयेन्मलान् ३१ ॥

चरक और वाग्भटमें कहा है कि, दूषित हुए वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको ढककर, आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रोंको आच्छादित करके ज्वरको उत्पन्न करत हैं इस कारण आमदोषादिकोंके पचानेके लिये, जठराग्निको दीपन करनेके लिये और शरीरके स्रोतों (छिद्रों) को शुद्ध करनेके लिये ज्वरमें लंघन कराने चाहिये। ज्वरके आदिमें लंघन करावे, ज्वरके मध्यमें पाचन देवे, ज्वरके अन्तमें औषधि देनी और ज्वरके जानेपर विरेचन (जुलाब) देवे। वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी अल्प, मध्य और अधिकता देखकर लंघन, पाचन और शोधन देवे। तहां दोष अल्प होयँ तो लंघन करानेही श्रेष्ठ हैं, दोष मध्यम होयँ तो लंघन करावे और पाचन भी देवे और जो दोष अत्यन्त बढे होयँ तो शोधन कराना चाहिये, क्योंकि शोधन (विरेचनादि) करानेसे मल जडसे उखड जाते हैं ॥ २९-३१ ॥

चक्रदत्तश्च।

तरुणं तु ज्वरं पूर्वं लंघनेन क्षयं नयेत्। आमदोषमलिंगाद्वा लंघयेत्तं यथाविधि ३२॥

चक्रदत्त कहता है कि, नवीन ज्वरको प्रथम लंघन (उपवास) कराकर क्षय करे और जो अपक्व दोषोंके लक्षण दीखें तो अथवा उनके लक्षण स्पष्ट न दीखें तो यथाविधि लंघन करावे ॥ ३२ ॥

अथ दोषपाकसमयः।

वातः पचति सप्ताहात्पित्तं तु दशभिर्दिनैः। श्लेष्मा द्वादशभिर्धत्रैःपच्यते वदतांवर॥ ३३॥

वायु सात दिनमें लंघन करनेसे पचती है, पित्त दश दिनतक लंघन करनेसे पचता है और कफ बारह दिन लंघन करनेसे पच जाता है ॥ ३३ ॥

लंघनं लंघनीयस्तु कुर्यादोषानुरूपतः। त्रिरात्रमेकरात्रं वाऽहोरात्रमथ वा ज्वरे
॥ ३४ ॥ निर्वातसेवनात्स्वेदाल्लंघनाद्दुष्ण-
वारिणः। पानादामज्वरे क्षीणे पश्चादौषध-
माचरेत् ॥ ३५ ॥

लंघन कराने योग्य ज्वररोगीको दोषानुसार तीन रात, एक रात और एक दिनरात लंघन करावे। वायुरहित स्थानमें रहनेसे, पसीने निकलवानेसे, अथवा वफारा देनेसे, लंघन करनेसे और उष्ण जलको पीनेसे आमज्वरको क्षीण करके पश्चात् औषधि सेवन करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

आत्रेयेणोक्तम्।

ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम्। ज्वरान्ते भेषजं दद्याज्ज्वरमुक्ते विरेचनम् ३६॥
दोषशेषस्य पाकार्थमग्नेः सन्धुक्षणाय च। लंघितश्चाप्यदोषश्चेद्यवागूपानमाचरेत्॥ ३७॥
शालिषष्टिकमुद्गानां यूषं वा शस्तमा-
चरेत्। पञ्चकोलेन संसिद्धां यवागूं मध्य-
लंघने ॥ ३८ ॥ अत्यर्थं लंघितं दृष्ट्वा तस्य
संतर्पणं हितम्। द्राक्षादाडिमखर्जूरप्रियालैः
सपरूषकैः। तर्पणार्हस्य कर्तव्यं तर्पणं
ज्वरशान्तये ॥ ३९ ॥ (अत्र लंघनशब्देन
अनशनमुच्यते) यत आह सुश्रुतः—आन-
द्धस्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः। ताव-
त्स्वनशनं कुर्यात्ततः संसर्गमाचरेत् ॥ ४० ॥
(आनद्धस्तिमितैर्दोषैः सम्बद्धः। संसर्गमौ-
षधान्नादिप्रसंगम्।) यत आह चरकः—
चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ।
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम्।
चतुष्प्रकारा संशुद्धिर्वमनं च विरेचनम्॥ ४१॥
निरूहवस्तिशिरोविरेचनानि। न तु अनुवा-
सनं तस्य बृंहणत्वात्। अत्र लंघनं कर्षण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मित्यर्थः । तथा च सुश्रुतः-शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः । तल्लंघनमिति ज्ञेयं बृंहणं तु पृथग्विधम् ॥ ४२ ॥ लंघनात्कर्षणादन्यत् शरीरपोषकमित्यर्थः । ननु आनद्धस्तिमितैर्दोषैरित्यादि पूर्वोक्तसुश्रुतवचनात्सामान्यतो ज्वरिणा यथा अनशनरूपं लंघनं क्रियते, तथा चतुष्प्रकारा संशुद्धिः इत्यादिचरकवचनाद्वमनादिरूपं लंघनं सर्वैर्ज्वरिभिः कथं न क्रियते ? तत्र उच्यते, वमनादिकम् अवस्थाविशेषे तु क्रियते न तु सर्वज्वरेषु । तथा च सुश्रुतः-सोत्क्लेशे बलिने देयं वमनं श्लैष्मिकज्वरे । पित्तप्राये विरेकस्तु कार्यः प्रशिथिलाशये ॥ ४३ ॥ सरुजेऽतिरुजे कार्यं सोदावर्ते निरूहणम् । कफाभिपन्ने शिरसि कार्यं मूर्द्धविरेचनम् ॥ ४४ ॥ अपि च सर्वज्वरिभिः पिपासानिग्रहश्च न कार्यः । यत आह हारीतः-तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यःप्राणविनाशिनी । तस्माद्देयं तृषार्तायै पानीयं प्राणधारणम् ॥ ४५ ॥ अतोऽवस्थाविशेष एव पिपासासहनं ज्वरिभिर्मारुतसेवनं च कार्यम्, सुश्रुतेन प्रवातसेवनस्य सर्वथा निषिद्धत्वात् । अतो मारुतसेवनम् अपि अवस्थाविशेष एव युक्तम् । आतपसेवनं च अवस्थाविशेष एव युक्तम् । लंघनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते । तदा तु मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः ॥ ४६ ॥ ज्वरघ्नैः पाचनैर्द्रव्यैः कषायैः समुपाचरेत् ॥ ४७ ॥ इत्यत्र लंघनपाचनयोः स्फुट एव भेदः । व्यायामोऽपि न कार्यस्तस्य अतिनिषिद्धत्वात् । अवस्थाविशेषे पुनः पार्श्वपरिवर्तनादिरूपः सोऽपि कर्तव्यः । तस्माच्चतुष्प्रकारा संशुद्धिरित्यादिश्लोके लंघनपदं कर्षणपर्यायमिति निर्णीतम् ॥

आत्रेयऋषि कहते हैं कि-ज्वरके प्रारम्भमें लंघन करावे, ज्वरके मध्यमें पाचन देवे और ज्वरके अन्तमें बलानुसार कोठेको शुद्ध करनेके लिये रेचन देवे । लंघन करनेसे जिसके दोष नष्ट हो गये हैं उन शेष दोषोंको पचानेके लिये और अग्निको दीपन करनेके लिये यवागू पान करे । अथवा शालि धानोंके चावल, सांठी धानके चावल और मूँगका यूष बनाकर पिलावे । और जो मध्यम लंघन किये होयँ तो पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) की यवागू बनाकर पिलावे । और जिसने अत्यंत लंघन किये होयँ उनको दाख, अनार, खर्जूर, चिरौंजी और फालसे इनसे सन्तर्पण (तृप्ति) करे, यह अत्यन्त हितकारक है । जो रोगी तर्पण करने योग्य हैं उनके ज्वरकी शांतिके लिये अवश्य तर्पण करावे । सुश्रुत कहते हैं कि, जबतक दोष निश्चल रहें (स्रवित या पक्व रहें) तबतक लंघन कराने चाहिये पीछे औषध देवे (आनद्धस्तिमितता दोषोंकी निश्चलता और संसर्ग औषधान्नादिका संसर्ग ऐसा तात्पर्य है) चरकमें चार प्रकारकी संशुद्धि तृषा, वायुसेवन, आतप, पाचन, उपवास और व्यायाम इन सबको लंघन कहा है । यहाँ लंघनशब्दका अर्थ कर्षण समझना । जैसा कि, सुश्रुतमें कहा है कि, जो द्रव्य अथवा जो क्रिया शरीरको हलका करनेवाली है उनको लंघन कहते हैं, और जो द्रव्य अथवा जो क्रिया शरीरको पुष्ट करे है उसको बृंहण कहते हैं । ऐसा कहनेपरभी यहाँ लंघनशब्दका अर्थ उपवासही समझना चाहिये । जैसे कि सुश्रुतमें कहा है कि, जबतक रोगी दोषोंके सम्बन्धसे आतुर रहे तबतक लंघन करावे, जब दोष क्षय होने लगे तब अन्न आदिके साथ संसर्ग औषधि देवे । वमन, विरेचन, निरूहवस्ति और शिरोविरेचनादिसे चार प्रकारकी संशुद्धि जाननी । यहाँ अनुवासनवस्ति ग्रहण करनी नहीं चाहिये, कारण यह है कि विधि तो शरीर कर्षण करनेवाली है और अनुवासन वस्ति शरीरको पुष्ट करनेवाली है । शंका-ऐसे सुश्रुतके कहे अनुसार ज्वररोगीको सामान्य रीतिसे उपवासरूप लंघन कराते हैं परन्तु चरकमें जो चार प्रकारकी वमन विरेचनादि शुद्धिरूप लंघन कहे हैं उनको क्यों नहीं कराते ? उत्तर-वमन विरेचनादि क्रिया ज्वरकी विशेष अवस्थाओंमें कराते हैं किन्तु सर्व ज्वरोंमें नहीं कराते । क्योंकि सुश्रुतमें कहा है कि, यदि रोगी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलवान् होय और ज्वर कफसे उत्पन्न हुआ हो और कफकी अधिकतासे जिसको उबकाई आती होयँ तो वमन करावे । जिस रोगीका कोठा कठिन होवे और ज्वरमें पित्तकी अधिकता होवे तो विरेचन करावे । जो वायुसे ज्वर उत्पन्न हुआ हो और उदावर्त भी हो तो निरुहवस्ति प्रयोग करे । और जो शिर कफसे भर गया होय तो शिरोविरेचनादि करे । सर्व ज्वरोंमें तृषा प्यासको नहीं रोकना चाहिये, कारण यह है कि, तृषा अत्यन्त भयंकर घोर है और तत्काल प्राणोंका नाश करनेवाली है इस कारण तृषित (प्यासे) मनुष्यको प्राणधारक पानी पीनेको देवे । ज्वरवाले मनुष्यको ज्वरकी अवस्थाविशेषमें तृषाका सहना उचित है, परन्तु सर्व अवस्थाओंमें तृषाका सहना उचित नहीं है । ज्वरवाले मनुष्यको अधिक वायुका सेवन नहीं करना चाहिये, ऐसा सुश्रुतमें कहा है । इस कारण वायुका सेवन ज्वरकी अवस्थाविशेषमें उचित है किन्तु सर्व अवस्थाओंमें उचित नहीं है इसी प्रकार धूपका सेवन भी अवस्थाविशेषमें उचित है परंतु सर्व अवस्थाओंमें सेवन करना उचित नहीं है । जो लंघनके करनेसे, उष्ण जलके पीनेसे तथा यवागूके पीनेसे दोष नहीं पचे तो मुखकी विरसता, तृषा, अरुचि और ज्वरनाशक तथा हृदयको हितकारी ऐसे जो पाचनरूप क्वाथ हैं उनको पिलावे । इस वचनमें लंघनको और पाचनको स्पष्ट रीतिसे पृथक् दिखाया है, ज्वरमें व्यायाम (दण्ड कसरत आदि परिश्रम) करना भी अत्यन्त निषिद्ध है इस कारण नहीं करना चाहिये, परन्तु अवस्थाविशेषमें करवट लेना इत्यादि व्यायाम करना चाहिये ॥ ३६–४७ ॥

अथोपवासरूपलंघनफलम् ।

लंघनेन क्षयं नीते दोषे सन्धुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्योपजायते ॥४८॥

लंघनेन अनशनेन दोषे प्रवृद्धे क्षयं नीते । यत आह—"आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः ।" पचतीति सन्धुक्षिते अनले आच्छादकदोषे क्षीणेऽग्नौ प्रदीप्ते यथोक्तसम्प्राप्तिसामग्रीविघटनाद्विज्वरत्वम् । शरीरस्य गौरवाभावेन लघुत्वम् । क्षुद् बुभुक्षा च जायते इत्यर्थः । अन्यत्राह सुश्रुतः—अनवास्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम् । ज्वरघ्नं ज्वरिणः कांक्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ४९ ॥

अनवस्थितदोषाग्नेः स्वस्थानादितस्ततो गतो दोषोऽग्निश्च यस्य तस्य ज्वरिणः कांक्षा अन्नाभिलाषः रुचिः लंघनेन आमपाकान्मुखशोषादिनाशे मुखस्य यत्प्रकृतत्वं सैव रुचिः शोभा " रुचिः स्त्री दीप्तिशोभायामभीष्टार्थाभिलाषयोः ।" इति मेदिनीकारः ॥

लंघन करनेसे बढे हुए दोष क्षीण होते हैं और जठराग्नि दीपन होती है इससे ज्वर नष्ट हो जाता है, शरीरमें लघुता होती है और भूँख लगती है । अग्नि आहारको पचाती है और जब आहार नहीं रहता तब दोषोंको पकाती है, ऐसा शास्त्रमें कहा है । इस कारण वृद्धिको प्राप्त हुए अग्निको ढकनेवाले दोषोंका लंघनोंके द्वारा क्षय होनेसे अग्नि दीपन होती है तब आगे कही हुई ज्वरकी संप्राप्तिके कारणोंका नाश होनेसे ज्वर उतर जाता है, शरीर हलका होता है और भूँख लगने लगती है । सुश्रुतमें भी कहा है कि, जिसके दोष और अग्नि अपने स्थानसे इधर उधरको चले गये होयँ ऐसे ज्वररोगीको लंघन करानेसे दोष पच जाते हैं, ज्वर जाता रहता है, अग्नि दीपन हो जाती है, अन्नमें इच्छा उत्पन्न होती है, आमके पचनेसे और मुखशोषादिके नाश होनेसे पहिलेकी सदृश मुखकी शोभा उत्पन्न होती है और शरीरका हलकापन प्रगट होता है । " रुचिशब्द स्त्रीलिंग दीप्ति, शोभा, आसक्ति और अभिलाष इन अर्थोंमें आता है" ऐसा मेदिनी कोषमें कहा है इस कारण हमने मूलके रुचिशब्दका शोभा अर्थ किया है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ सम्यक्कृतलंघनलक्षणम् ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे । हृद्योद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥५०॥
स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये ।
कृतं लंघनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ ५१ ॥

हृदयस्य शुद्धिः अनवरोधः । उद्गारशुद्धिः सधूमाम्लोद्गाराभावः । कण्ठस्य शुद्धिः कफानवलिप्तत्वम् । आस्यशुद्धिः मुखस्य प्रकृतरसत्वम् । तन्द्राक्लमे तन्द्रा च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्लमश्च तस्मिन् । तन्द्रा निद्रा, क्लमोऽत्र ग्लानिः । क्षुत्पिपासासहोदये क्षुत्पिपासयोः सह युगपदुदये । अन्तरात्मनि मनसि । एतानि लक्षणानि मिलितानि एव सम्यक्कृतं लंघनं बोधयन्ति, न तु प्रत्येकम् ॥

अधोवायु, मल और मूत्रका शुद्ध रीतिसे निकलना, शरीरमें हलकापना, हृदय, डकार, कंठ और मुख इनका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका नाश, पसीनेका आना, रुचिका होना, क्षुधा (भूँख) और तृषा (प्यास) इनका एकसाथ एक समयमें उत्पन्न होना और अन्तःकरण व्यथारहित होना, यह सब लक्षण होयँ तो उनको भले प्रकारसे लंघन हुए जानना । इन लक्षणोंमेंसे जो एक दो लक्षण होयँ तो नहीं और सम्पूर्ण लक्षण एक साथ होयँ तो अच्छे लंघन हुए जानना ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ हीनलंघनलक्षणम् ।

कफोत्क्लेशः सहल्लासः ष्ठीवनं च मुहुर्मुहुः । कण्ठस्य हृदयाशुद्धिस्तन्द्रा स्याद्धीनलंघने ॥ ५२ ॥ कफोत्क्लेशः कफस्य वमनाय उपस्थितिः । हल्लासः उपस्थितवमनत्वमिव । ष्ठीवनं हृदयात्कफनिर्गमः ॥

कफ वमनकी समान निकलनेको तत्पर हो, वारंवार उबकाई आवे तथा वारंवार कफका थूकना, कफसे कंठ लकडा होवे, हृदय भारी हो और तन्द्रा हो ये सब लक्षण हीन लंघनके जानने ॥ ५२ ॥

अथातिलंघनलक्षणम् ।

पर्वभेदोऽगमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च । क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ ५३ ॥ मनसः संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्धवातस्तमो हृदि । देहाग्निबलहानिश्च लंघनेऽतिकृते भवेत् ॥ ५४ ॥ कर्णनेत्रयोः स्वविषयग्रहणासामर्थ्यम् । मनसः संभ्रमः भ्रांतिः । उर्द्धवातः उद्गारबाहुल्यम् । हृदि तमः अन्धकारप्रविष्टस्येव ज्ञानम् ॥

शरीरकी समस्त सन्धियोंमें पीडा होती हो, देह टूटे, खांसी, मुखशोष, क्षुधाका नाश, अरुचि, तृषा, कान और नेत्रोंमें निर्बलता, मनमें भ्रमका होना, वारंवार बहुत डकारोंका आना, हृदयमें अंधकारका होना, देह, अग्नि और बलकी हानि होना ये सब लक्षण अत्यंत लंघन (उपवास) किये हुए मनुष्यके होते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथ बलानुकूललंघनकथनम् ।

बलाविरोधिना चैनं लंघनेनोपपादयेत् । बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः । ॥ ५५ ॥ अयमर्थः-एनं रोगिणं बलाविरोधिना अनतिबलक्षयकारिणा लंघनेन उपपादयेत् उपचरेत् कुत इति चेत्तत्राह-यदर्थमस्मै आरोग्याय अयं क्रियाक्रमः चिकित्सोपक्रमः । तत् आरोग्यं बलाधिष्ठानं बलाश्रयमित्यर्थः ॥

वैद्यको चाहिये कि, जिससे बलका नाश होवे ऐसे लंघन न करावे क्योंकि आरोग्य बलके आधीन है और उस आरोग्यके लिये ही यह सब क्रियाक्रम कहा है ॥ ५५ ॥

अथ लंघननिषेधः ।

तद्धि मारुततृष्णाक्षुन्मुखशोषभ्रमान्वितैः । न कार्यं गुर्विणीबालवृद्धदुर्बलभीरुभिः । न क्षयाध्वश्रमक्रोधकामशोषचिरज्वरी ॥ ५६ ॥ तत् अनशनम् । उल्वणमारुतयुक्तेन ज्वरिणा न कार्यं, मारुतोऽत्र निरामो बोद्धव्यः । सामे मारुते लंघनं कार्यमेव । यत आह तन्त्रान्तरे-अवश्यमेव कुर्वीत ज्वरी सामे समीरणे । लंघनं ह्यामपाकार्थं न तदूर्द्धं यथा कफे । तद्धि मारुततृष्णायां लंघनं कार्यमेव च ॥ ५७ ॥ न तथा मुखशोषभ्रमावापि निरामावेव विवक्षितौ । सामयोस्तु तल्लंघनं कार्यमेव । गुर्विणीबालवृद्धादिभिरपि निरामैरेव नैव लंघनं कार्यम् । सामैः पुनस्तैरपि लंघनं कार्यमेव । क्षयो धातुक्षयो राजयक्ष्मा च । वातजे ज्वरे लंघनं न कार्यम् । तदूर्द्धम् आमपाकादूर्द्धम् । अत एवोक्तम्-कफपित्ते द्वे धातू सहेते लंघनं बहु । आमक्षयादूर्द्धमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ५८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुश्रुत कहता है कि--वह लंघन वातज्वरवाले, तृषावाले, क्षुधासे पीडित, मुखशोषरोगी, श्रमरोगी, गर्भिणी स्त्री, बालक, वृद्ध, दुर्बल (बलहीन), भीरु (भयभीत), धातुक्षयवाले, क्षयरोगी, अत्यंत मार्ग (रास्ता) चलनेसे थके हुए, परिश्रम करनेसे थके हुए, क्रोधी, कामसे पीडित, शोषरोगी और बहुत कालके ज्वररोगी इनको कदापि लंघन नहीं कराने चाहिये, यहाँ ऐसा जानना कि--यदि वातज्वरवाले मनुष्यके जो वायु आमसे रहित होय तो लंघन नहीं करावे और जो वायु आमसहित होय तौ अवश्य लंघन करावे, कारण यह है कि, वातज्वरमें आमको पचानेके लिये लंघन कराये जाते हैं। जिस प्रकार कफमें आमके पक्व जानेपर भी लंघन कराये जाते हैं। उस प्रकार वातमें आमके पच जानेपर लंघन नहीं कराये जाते। कारण यह है--कि कफ और पित्त ये दोनों द्रवरूप होनेसे बहुत लंघनोंको सह सक्ते हैं, परन्तु वायु तो आमके पच जानेपर क्षणभर भी लंघन सहन नहीं कर सक्ती है ऐसा अन्य ग्रंथोंमें कहा है। भ्रम और मुखशोष भी जो आमसे रहित होय तो लंघन नहीं करावे और जो आमसहित होयँ तो अवश्य लंघन करावे। उसी प्रकार गर्भवती स्त्री, बालक और वृद्ध आदि जो आमसे रहित होयँ तो लंघन नहीं करावे और जो आमसहित होयँ तो अवश्य लंघन करावे ॥ ५६--५८ ॥

अथामलक्षणम्।

आहारस्य रसः सारो यो न पक्कोऽग्निलाघवात्। आमसंज्ञा च लभते बहुव्याधिसमाश्रयः ॥ ५९ ॥

आहारका साररूप जो रस है वह अग्निकी लघुता अर्थात् मंदतासे नहीं पचता, उसको आम कहते हैं, वह अनेक व्याधि उत्पन्न होनेका आश्रय अर्थात् कारण है ॥ ५९ ॥

तन्त्रान्तरे तु।

आममन्नरसं केचित्केचित्तु मलसञ्चयम्। प्रथमं दोषदुष्टिं वा केचिदामं प्रचक्षते ॥ ६० ॥ अविपक्वमसंसक्तं दुर्गन्धं बहुपिच्छिलम्। सादनं सर्वगात्राणामाम इत्यामशब्दितः ॥ ६१ ॥ तेनामेन समायुक्ता दोषा दूष्याश्च तादृशाः। तदुद्भवा आमयाश्च सामा इति बुधैः स्मृताः ॥ ६२ ॥

कोई वैद्य अन्नके अपक्व रसको आम कहते ह, कोई मलके समूहको आम कहते हैं और कोई वैद्य दोषोंकी प्रथम दुष्टताको आम कहते हैं। अपक्व मलसे अलग रहनेवाला, दुर्गन्धवाला, अधिकतर चिकना और सर्व शरीरको पीडित करनेवाला ऐसा जो पदार्थ है उसको आम कहते हैं। उस आममें संयुक्त हुए दोष और दूष्य एवं उन दोष और दूष्योंसे उत्पन्न हुए रोगाको साम कहते हैं ॥ ६०--६२ ॥

अथ सामवायुलक्षणम्।

वायुः सामो विबन्धाग्निसादतन्द्रान्त्रकूजनैः। वेदनाशोथनिस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ ६३ ॥ विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् ॥ स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघे सूर्योदये निशि ॥ ६४ ॥ (विचरेद्युगपद्वायुरामश्चैककालं विचरेत् कुपितः सामो वायुः भृशमतिशयेन गृह्णाति अंगानि इत्यर्थः।

साम वायु मलरोधक है, अग्निको मन्द करती है, तन्द्रा और आलस्यको करे है, आँतोंमें शब्द करे है। अनुक्रमसे वेदना, सूजन और तोडने सरीखी पीडा इनका उत्पन्न करे है। कुपित हुई सामवायु एकही समय आमसहित सम्पूर्ण अंगोंमें विचरती ह आर सब अंगोंको ग्रहण करके पीडित करे है ; तथा तैल घृतादि स्नेह पदार्थोंसे वर्षाऋतुमें सूर्यादयमें और रात्रिमें वृद्धिको प्राप्त होती है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ निरामवायुलक्षणम्।

निरामो विशदो रूक्षो निर्गन्धोऽत्यल्पवेदनः। विपरीतगुणैः शान्तिं स्निग्धैर्याति विशेषतः ॥ ६५ ॥

निरामवायु--विशद (साफ), रूखी, दुर्गंधरहित, बहुत थोडी पीडा करनेवाली और अपनेसे विपरीत गुणवाले पदार्थोंसे शान्त होती है और विशेष करके तैल घृतादि स्निग्ध (चिकने) पदार्थोंसे शांत होती है ॥ ६५ ॥

अथ सामपित्तलक्षणम्।

पित्तं सामं भवेदम्लं दुर्गन्धं हरितं गुरु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अम्लिकाकण्ठहृद्दाहकरं श्यावं तथा स्थिरम् ॥ ६६ ॥

सामपित्त—अम्ल (खट्टा), दुर्गन्धित, हरा, भारी, खटाईकी समान कण्ठमें और हृदयमें दाह करनेवाला, श्यामतायुक्त और स्थिर होता है ॥ ६६ ॥

अथ निरामपित्तलक्षणम् ।

निरामं पित्तमाताम्रमत्युष्णं कटुकं सरम् । दुर्गन्धि रुचिकृद्वह्निबलवर्द्धनमीरितम् ॥६७॥

निरामपित्त—लाल, बहुत गरम, चरपरा, सारक (दस्तावर), दुर्गन्धित, रुचिकारक तथा जठराग्नि और बलको बढानेवाला है ॥ ६७ ॥

अथ सामकफलक्षणम् ।

आविलस्तंतुलः स्त्यानः कंठदेशे च तिष्ठति। सामो बलासो दुर्गन्धस्तृट्क्षुधोरुपघातकृत् ॥ ६८ ॥

सामकफ—आविल (मैला), तंतुयुक्त, स्त्यान (गाढा), कंठको पकडनेवाला, दुर्गन्धित तथा क्षुधा और तृषाका नाश करनेवाला होता है ॥ ६८ ॥

अथ निरामकफलक्षणम् ।

श्लेष्मा निरामो निर्गन्धः फेनवांश्छेदवानपि । भवेत्सपिंडितः पांडुरास्यवैरस्यनाशकृत् ६९॥

निरामकफ—दुर्गन्धरहित, झागोंदार, खण्डित, गाँठदार, पांडुरंगका और मुखकी विरसताको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ६९ ॥

अथ सामव्याधिलक्षणम् ।

आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धिर्दोषाप्रवृत्त्याविलमूत्रताभिः । गुरूदरत्वारुचिसुप्तताभिरामान्वितं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ७० ॥ आमं जयेल्लंघनकोष्णपेयालघ्वन्नसूपौदनतिक्तयूषैः। विरूक्षणस्वेदनपाचनैश्च संशोधनैरूर्द्धमधस्तथैव ॥ ७१ ॥

आलस्य, तन्द्रा, हृदयमें अशुद्धता, मलादिकका नहीं उतरना, मूत्रका गदला होना, उदरमें भारीपन, अरुचि और अधिकतर निद्राका आना, ये लक्षण होंय तो सामव्याधि जाननी । लंघन, उष्णपेया, हलका अन्न, दाल, भात, कडवे पदार्थोंका यूष, रूखा करना, स्वेदन, पाचन और ऊर्ध्व (वमनादिक) तथा अधःशोधन (विरेचनादिक) इनसे आमको जीते ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ जलपानावश्यकता ।

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति । अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वर्जयेत् ॥ ७२ ॥

सुश्रुतमें कहा है कि—तृषित मनुष्यको मोह उत्पन्न होता है और मोहसे प्राण नष्ट होते हैं, इस कारण किसी अवस्थामें भी जलका पीना निषेध नहीं करे ॥ ७२ ॥

हारीतेनोक्तम् ।

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविनाशिनी । तस्माद्देयं तृषार्त्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥ ७३ ॥ अवश्यं पेयमपि जलं ज्वरी किञ्चिद्वारयन्पिबेत् । जीविनां जीवनं जीवो जगत्सर्वं च तन्मयम् । अतोऽत्यन्तनिषेधेन न क्वचिद्वारि वारयेत् ॥ ७४ ॥ जीवनं जलं, किञ्चित्तु वारयेदेव उक्तं च—ज्वरे । नेत्रामये कुष्ठे मन्देऽग्नावुदरे तथा । अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये । व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ ७५ ॥ मुखप्रसेके मन्दमाचरेत् अल्पं पिबेत् । अतियोगेन सलिलं तृष्यतोऽपि प्रयोजितम् । प्रयाति श्लेष्मपित्तत्वं ज्वरितस्य विशेषतः ॥ ७६ ॥

तृषा बडी भयंकर है और तत्काल प्राणोंका नाश करनेवाली है इस कारण तृषित (प्यासे) मनुष्यको प्राणधारक जल पिलाना चाहिये। जल तो ज्वररोगी अवश्य पिये परन्तु थोडा थोडा ठहर ठहरकर पिये। जल प्राणियोंका जीवन है और सब जगत् जलरूप है, इस कारण किसी अवस्थामें भी जलका अत्यन्त निषेध नहीं किया है (अत्यन्त निषेध नहीं किया है इस कहनेसे थोडा थोडा पानी पीना चाहिये)। सुश्रुतमें भी कहा है—ज्वर, नेत्ररोग, कुष्ठरोग, मन्दाग्नि, उदररोग, अरुचि, प्रतिश्याय, प्रसेक (मुखमें पानीका भर भर आना), सूजन, क्षय, व्रण और मधुमेह इन रोगोंमें जल थोडा पीना चाहिये। और बहुत भी जल नहीं पीना चाहिये जैसे कहा है कि—यदि तृषासे पीडित मनुष्य अधिक जल पिये तो उसके वह जल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कफपित्त हो जाता है और ज्वररोगी जो अधिक जल पिये तो उसको विशेष करके कफ पित्त हो जाता है ॥ ७३--७६ ॥

नवज्वरे शीतलजलपाननिषेधः ।

नवज्वरे प्रतिश्याये पार्श्वशूले नवग्रहे । सद्यःशुद्धौ तथाध्माने व्याधौ वातकफोद्भवे॥७७॥ अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ । हिक्कायां स्नेहपाने च शीतं वारि विवर्जयेत् । सेव्यमानेन शीतेन ज्वरस्तोयेन वर्द्धते ॥ ७८ ॥ अत्र शीतं जलम् अक्वथितं निषिद्धम् । तथा सति क्वथितमायातम् ।

नवीनज्वर, प्रतिश्याय (जुकाम), पसलियोंकी पीडा, गलेका पड जाना, जिसने तत्काल वमन अथवा विरेचन किया हो, आध्मान (अफरा), वात और कफके रोग, अरुचि, संग्रहणी, गुल्म (वायगोला), श्वास, खांसी, विद्रधि, हिचकी और जिसने स्नेहपान किया हो इनको शीतल जल नहीं पीना चाहिये। यही अपक्व शीतल जलका निषेध है किन्तु औटाकर जो शीतल किया गया है उसका निषेध नहीं है, कारण यह है कि, शीतल जलको पीनेसे ज्वर वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ क्वथितजललक्षणगुणाः ।

क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं च यत् । तत्तोयं क्वथितं ज्ञेयं दोषघ्नं पाचनं लघु ॥ ७९ ॥ (निर्वेगं शनैः क्वथितम् ।)

जो जल औटाते औटाते धीरे धीरे झागरहित और निर्मल (मलरहित) हो जावे उसको क्वथित (औटा हुआ) जल जानना । यह क्वथितजल--त्रिदोषनाशक, पाचक और हलका है ॥ ७९ ॥

अथ क्वथितजलपानविधिः ।

वातश्लेष्मज्वरार्ताय हितमुष्णाम्बु तृष्यते । दीपनं स्यात्तु कफजे वातपित्तानुलोमनम् । तद्धि मार्दवकृद्दोषस्रोतसां शीतमन्यथा । ॥ ८० ॥ वाग्भटश्च--तृष्णायां पथ्यमुष्णाम्बु पिबेद्वातकफज्वरे । तत्कफं विलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्तयेत् ॥ ८१ ॥ उदीर्य चाग्निं स्रोतांसि मृदूकृत्य विशोधयेत् । वातपित्तकफस्वेदशकृन्मूत्राणि सारयेत् ॥ ८२ ॥

सुश्रुत कहता है कि--वात कफ ज्वरवाले मनुष्योंको तृषाके समय उष्ण (औटाया हुआ) जल अत्यंत हितकारी है । यह जल--अग्निको दीपन करनेवाला, कफको छेदन करनेवाला, वातपित्तको अनुकूल करनेवाला तथा दोष और शरीरके स्रोतोंको नरम करे है और शीतल जल इससे विपरीत गुणोंवाला है । वाग्भट भी कहता है कि--वातकफज्वरमें तृषाके समय उष्ण जल पीना चाहिये । उष्णजल--कफको दूर करके तत्काल तृषाको शांत करे है, अग्निको दीपन करके स्रोतों (छिद्रों) को नरम कर शुद्ध करे है, तथा वात, पित्त, कफ, स्वेद, विष्ठा और मूत्रको प्रवर्तावे है ॥ ८०--८२ ॥

अथोष्णोदकलक्षणगुणाः ।

क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं तथा । अर्द्धावशिष्टं यत्तोयं तदुष्णोदकमुच्यते ॥ ८३ ॥ ज्वरकासकफश्वासपित्तवाताममेदसाम् । नाशनं पाचनं चैव पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥ ८४ ॥

जो जल औटाते औटाते धीरे धीरे झागरहित, निर्मल और आधा बाकी रह जाय उसको उष्णोदक कहते हैं । वह उष्णजल--ज्वर, खाँसी, कफ, श्वास, पित्त, वात, आम और मेदको नष्ट करता है, पाचक और सर्वदा पथ्य है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथर्तुभेदेन जलपाकभेदाः ।

त्रिपादशेषं सलिलं ग्रीष्मे शरादि शस्यते ॥ ८५ ॥ निदाघे त्वर्द्धपादोनं पादहीनं तु शारदम् । हिमेऽर्द्धशेषं शिशिरे तथा वर्षावसन्तयोः ॥ ८६ ॥ शिशिरे च वसन्ते च हिमे चार्द्धावशेषितम् । अष्टमांशावशेषं तु वारि वर्षासु शस्यते ॥ ८७ ॥ इति केचिद् बुधाः प्रावृड्वर्जेष्वागमदर्शनात् । पक्षयोस्त्रिषु वेदेषु बाणेष्वङ्केषु वस्तुषु । एषु भागावशेषं स्यादम्बु वर्षादिषु क्रमात् ॥ ८८ ॥ अत्र दोषाणां यथा उल्वणता हीनता वा तथा व्यवस्था कल्पनीया तत्पादहीनं पित्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्नमर्द्धहीनं तु वातनुत्। त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं संग्राह्यग्निप्रदीपनम् ॥ ८९ ॥

ग्रीष्म और शरद्ऋतुमें एक पादहीन अर्थात् सेरभरको औटाय तीन पाव कर जल सेवन करना चाहिये। अन्य वैद्य कहते हैं कि--ग्रीष्मऋतुमें अर्द्धावशेष अर्थात् सेरभरका आध सेर और शरदृतुमें सेरका तीन पाव पीना चाहिये। हेमन्त, शिशिर, वर्षा और वसन्तऋतुमें सेरभरका आध सेर शेष रहा जल पीना चाहिये। परन्तु कितनेक विद्वान् कहते हैं कि, शिशिर, वसन्त और हेमन्तऋतुमें तो अर्द्धावशिष्ट ही जल पीना चाहिये, परन्तु वर्षाऋतुमें अष्टावशेष अर्थात् सेरभरका आध पाव शेष (बाकी) रक्खे। और कितनेक वैद्य कहते हैं कि--वर्षाऋतुमें आठवां भाग शेष रहा, शरद्ऋतुमें छठा भाग शेष रहा, हेमन्तऋतुमें चौथा भाग शेष रहा, शिशिर ऋतुमें पांचवां भाग शेष रहा, वसन्तऋतुमें तीसरा भाग शेष रहा और ग्रीष्मऋतुमें आधा भाग शेष रहा हुआ जल पीना चाहिये। इस प्रकार उष्णजलके विषे अनेक मत दिखाई देते हैं इस कारण दोषोंकी उग्रता और हीनताके अनुसार उसकी कल्पना करे। वह गरम जल--चार भागका तीन भाग शेष रहा अर्थात् सेरभरका तीन पाव पित्तनाशक है। चार भागका दो भाग अर्थात् सेरभरका आधसेर शेष रहा वातविनाशक है। चार भागका एक भाग अर्थात् सेरभरका एक पाव शेष रहा जल कफनाशक है, तथा मलरोधक और अग्निको दीपन करनेवाला है ॥८५-८९॥

अथ ग्रन्थान्तरेष्वारोग्यांबुनाम्नोक्तस्यास्य लक्षणगुणानाह।

पादशेषं तु यत्तोयमारोग्याम्बु तदुच्यते। आरोग्याम्बु सदा पथ्यं कासश्वासकफापहम् ॥ ९० ॥ सद्यो ज्वरहरं ग्राहि दीपनं पाचनं लघु। आनाहपाण्डुशूलार्शोगुल्मशोथोदरापहम् ॥ ९१ ॥

जो जल औटाते औटाते चार भागका एक भाग अर्थात् सेरभरका पावभर शेष रहा होय. उसको आरोग्याम्बु कहा है। आरोग्याम्बु-सदैव पथ्य (हित) है, तथा खाँसी, श्वास और कफको नष्ट करनेवाला है, विशेष करके ज्वरको तत्काल हरनेवाला है, मलरोधक, अग्निप्रदीपक, पाचन, हलका एवं आनाह (अफरा), पांडुरोग, शूल, ववासीर, गुल्म, सूजन और उदररोगको नष्ट करे है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अथर्तुभेदेन जलग्रहणम्।

हेमन्ते शिशिरे चाम्बु सारसं वा तडागजम्। वसन्तग्रीष्मयोः कौप्यं वाप्यं वा नैर्झरं हितम् ॥ ९२ ॥ नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः। विषवत्पत्रपुष्पादिदुष्टनिर्झरयोगतः ॥ ९३ ॥ औद्भिदं चान्तरिक्षं वा कौप्यं वा प्रावृषि स्मृतम्। शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम् ॥ ९४ ॥ दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः। ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम्। ॥ ९५ ॥ अनभिष्यन्दि निर्दोषं चान्तरिक्षजलोपमम्। बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधासमम् ॥ ९६ ॥ शरद्यगस्त्यस्योदयादखिलं सलिलं हितम् ॥ ९७ ॥ वृद्धसुश्रुतः-कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते ॥ ९८ ॥

हेमन्त और शिशिरऋतुमें सरोवरका अथवा तालाबका जल लेना चाहिये। वसन्तऋतु और ग्रीष्मऋतुमें कुएँका, बावडाका अथवा झरनेका जल हितकारी है। वसन्त और ग्रीष्मऋतुमें नदीका जल नहीं लेना चाहिये, क्योंकि विषैले पत्ते, फूल तथा दुष्ट झरनोंका उसमें योग होता है। वर्षाऋतुमें औद्भिद (जो पृथिवीको फोडकर वहता है), आकाश संबन्धीय (मेघका) जल, अथवा कुएँका जल लेना चाहिये। शरद्ऋतुमें नदीका जल और विशेषकरके अंशूदक जल हितकारी है। जिस जलके ऊपर दिनमें सूर्यकी किरणें पडती होंय और रात्रिमें चन्द्रमाका किरणें पडती होंय उसको अंशूदक कहते हैं। अंशूदक जल--स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, अनभिष्यन्दि (शरदीको नहीं करनेवाला), निर्दोष, आकाशके जलकी समान, बलकारक, रसायन, मेधाजनक, शीतल, हलका और अमृतकी समान है। अन्य ग्रंथोंमें लिखा है कि--शरद्ऋतुमें अगस्त्यऋषिका उद होनेपर सर्व जल हितकारी है। इसी प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृद्ध सुश्रुत भी कहता है कि--कार्त्तिक और अगहनके महीनेमें सम्पूर्ण जल हितकारी होते हैं ॥९२--९८ ॥

अथ शृतशीतजलविषयः ।

दाहातिसारपित्तास्रमूर्च्छामद्यविषार्तिषु । मूत्रकृच्छ्रे पाण्डुरोगे तृष्णाच्छर्दिश्रमेषु च ॥ ९९ ॥ मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा । सन्निपातसमुत्थेषु शृतशीतं प्रशस्यते ॥ १०० ॥

सुश्रुत कहता है कि--दाह, अतिसार, पित्त, रुधिरविकार, मूर्च्छा, मद्यजनित पीडा, विषजन्य रोग, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, तृष्णा, वमन, श्रम, मद्य (दारू) पान करनेसे उत्पन्न हुए रोग, पित्तजन्य रोग और सन्निपातजन्य रोग इनमें औटाये हुए जलको शीतल करके पिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ क्वथितजलशीतीकरणविधिगुणौ ।

शृताम्बु तत्त्रिदोषघ्नं यदन्तर्बाष्पशीतलम् । अरूक्षमनभिष्यन्दि कृमितृड्ज्वरहल्लघु ॥ १०१ ॥ धारापातेन विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम् । भिनत्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति ॥ १०२ ॥ अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १०३ ॥ अन्तर्बाष्पशीतलम्, पिहितमेव शीतलम् ।

जो जल औटाकर ढका हुआही अपने आप शीतल हुआ है वह शृत शीतजल--त्रिदोषनाशक, रूखा नहीं, अनभिष्यन्दि (शरदीको नहीं करनेवाला), हलका तथा कृमि, तृषा और ज्वरका हरनेवाला है । जो जल धारारूपसे पतित करके शीतल किया है वह विष्टम्भकारक है । और जो उष्णजल वायु करके ताडित किया गया है अर्थात् जिसको खूब पवन लग गई ह वह दुर्जर (बहुत देरमें कठिनतासे पचनेवाला) है । रात्रिमें किया हुआ गरम जल कफके समूहको तोडता है, वायुको अपकर्षण करता है और अजीर्णको शीघ्रही पचा देता है ॥ १०१--१०३ ॥

अथात्र विशेषः ।

दिवा शृतं पयो रात्रौ गुरुतामधिगच्छति । रात्रौ शृतं दिवा पीतं गुरुत्वमधिगच्छति ॥ १०४ ॥ तत्तु पर्युषितं वह्निगुणोत्सृष्टं त्रिदोषकृत् । गुर्वम्लपाकं विष्टम्भि सर्वरोगेषु निन्दितम् ॥ १०५ ॥ शृतशीतं पुनस्तप्तं तोयं विषसमं भवेत् । निर्यूहोऽपि तथा शीतः पुनस्तप्तो विषोपमः ॥ १०६ ॥

दिनमें औटाया हुआ जल रातमें भारी हो जाता है और रातका औटाया हुआ जल दिनमें पिये तो भारी होता है । यह औटाकर बासी हुआ जल त्रिदोषकारक, भारी, अम्लपाकी, विष्टम्भकारक और सर्व रोगोंमें निन्दनीय है । जो जल औटाकर शीतल हुआ है उसको यदि फिर गरम करे तो वह विषकी समान हो जाता है । इसी प्रकार क्वाथ भी शीतल होनेपर दुबारा गरम किया जाय तो विषकी समान हो जाता है ॥ १०४--१०६ ॥

अथोष्णजललक्षणरात्रिपानगुणौ ।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेन द्विकेन वा । अथ वा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥ १०७ ॥ श्लेष्मानिलाममेदोघ्नं दीपनं वस्तिशोधनम् । श्वासकासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि १०८

रात्रिमें अष्टावशेष रहे जलको, चतुर्थांश शेष रहे जलको, अर्द्धावशेषको, अथवा केवल औटाये हुएही जलको उष्णोदक कहते हैं । रात्रिमें उष्ण जलको पीनेसे--कफ, वात, आम और मेदा नष्ट होती है, अग्नि दीपन होती है, वस्तिशोधक तथा श्वास, खाँसी और ज्वर नष्ट होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथोष्णजलविशेषगुणाः ।

उष्णं तदग्निजननं लघ्वच्छं वस्तिशोधनम् ॥ १०९ ॥ पार्श्वरुक्पीनसाध्मानं हिक्कानिलकफापहम् । शस्तं तृट्श्वासशूलेषु सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ॥ ११० ॥

उष्णजल--अग्निको प्रगट करनेवाला, हलका, स्वच्छ, वस्तिशोधक तथा पसलियोंकी पीडा, पीनस, आध्मान (अफरा), हिचकी, वात और कफके रोगोंको नष्ट करता है, एवं तृषा, श्वास, शूल, जिसने तत्काल वमन विरेचन करी हो और नवीनज्वर इनमें अत्यंत हितकारक है ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अथ शीतलजलविषयः ।

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये । भ्रमश्रमपरीतेषु तमके क्षयथौ तथा ॥ १११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धूमोद्गारे विदग्धेऽन्ने शोषे च मुखकण्ठयोः। ऊर्द्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतलाम्बु प्रशस्यते ॥ ११२ ॥ शीतलं जलम् आममेव न तु क्वथितम्, क्वथितं तु शीतं दाहादिषु यदुक्तम्, तत् सज्वरेषु, विज्वरेषु तु दाहादिषु आमं शीतं प्रशस्यते इति भेदः।

सुश्रुत कहता है कि--मूर्च्छा, पित्त, गरमी, दाह, विष, रुधिरके रोग, मदात्ययरोग, भ्रम, श्रम, तमक श्वास, सूजन, धुएँकी डकार, भोजनकी विदग्ध अवस्थामें, मुखशोष, कँठशोष और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त रोग इन रोगोंमें शीतल जलही हितकारक है। औटाकर शीतल किया हुआ जल जो दाहादिक रोगोंमें कहा है वह ज्वरसाहित दाहादिकमें जानना। और ज्वररहित केवल दाहादिक रोगोंमें तौ विना औटाया हुआही शीतल जल उत्तम है ॥ १११ ॥ ११२ ॥

अथ जलपाकावधिः।

आमं जलं पाकमुपैति यामात्पक्वं पुनः शीतलमर्द्धयामात्। पक्वं कदुष्णं च ततोऽर्द्धकालादेवं तु पीतस्य जलस्य पाके ॥ ११३ ॥

कच्चा जल एक प्रहरमें पचता है, औटाकर शीतल किया हुआ जल चार घडीमें पचता है, और औटाया हुआ कुछ कुछ गरम जल दो घडीमें पचता है, ये पिये हुए जलके पकनेके तीन समय कहे हैं ॥ ११३ ॥

अथ रोगविशेषे जलसंस्कारः।

पित्तमद्यविषार्त्तेषु तिक्तकैः श्रृतशीतलम्। जलं हितमिति शेषः तिक्तानि बहुलानि तेभ्यो निश्चित्य योगमाह सुश्रुतः—मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः। श्रृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये॥ ११४॥ छत्रात्र धान्याकः। यत आह निघण्टौ धन्वन्तरिः—कुस्तुम्बरूः स्वर्णिका च च्छत्रा धान्यं वितुन्नकम् ॥ ११५ ॥ धान्यकं दीपनं रुच्यं पाचनं स्वादुपाकि च। दोषत्रयतृषादाहश्वासकासज्वरप्रणुत् ॥ ११६॥ इत्यादि। चक्रदत्तवङ्गसेनवृन्दादयः छत्रास्थाने नागरं पठन्ति। तद्यथा—" मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः। " नागरम् कटुकमपि न अत्र पित्तजनकं मधुरपाकित्वादिति तेषामभिप्रायः, नागरं मुस्तकमिति केचित्। क्वचिदेकदेशेन समुदायोऽवगम्यते। यथा भीमो भीमसेन इति। चन्दनैरित्यत्र सहार्थे तृतीया। तेन मुस्तादिभिः षड्भिरामैरेव क्षुण्णैः सहितं जलं श्रृतं जलमेव केवलं यथर्तुपक्वं पश्चात्तच्छीतलीकृतं दद्यात्, तथा च वङ्गसेनः यदप्सु श्रृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते। कर्षमात्रं ततो द्रव्यं ग्राहयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ ११७ ॥ अस्यायमर्थः-यद्यस्माद्धेतोः अप्सु जले श्रृतशीतासु श्रृतासु केवलासु एव यथर्तुपक्वासु शीतासु तासु शीतलीकृतासु षडंगादि द्रव्यं प्रयुज्यते आममेव संक्षुद्य जले स्थाप्यते ततः प्रक्षेप्यत्वात् कर्षमात्रं द्रव्यं समुचितं षडंगादि, प्रास्थिकेऽम्भसि प्रस्थमात्रे क्वथितशीतले जले क्षिप्त्वा ग्राहयेत्। अत एव षडंगमभिधाय षडंगपानीयमिति वंगसेनादिभिरुक्तम्। अस्मिन् पक्षे चन्दनं श्वेतमेव ग्राह्यं न तु रक्तं, तत्कषायलेपयोरेव प्रयोक्तुं युक्तम्। यत : आह—कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचंदनम् ॥११८॥ इति। षडंगपानीयमिदम्, षडंगादेः पाने अनुविधातव्ये प्रक्रिय विहिता वंगसेनेन—कर्षमात्रं यथा द्रव्यं ग्राहयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि। अर्द्धश्रृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥११९॥ आदिशब्देन यूषयवागूविलेपीभक्तानि गृह्यन्ते। पानप्रक्रियां शार्ङ्गधरोऽप्येतामेवाह। क्षुण्णं द्रव्यं पलं साध्यं चतुःषष्टिपले जले। अर्द्धशिष्टं तु तद्देयं पाने पेयादिसंविधौ ॥ १२० ॥ पानप्रयोगं च षडंगमुक्तवान्। अस्मिन् पक्षे चन्दनं रक्तं ग्राह्यम्। कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ १२१ ॥ इति वचनात्। तथा च रक्तचन्दनगुणाः। रक्तं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिमं स्वादुपाकं छर्दितृष्णास्रपित्तजित्। तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम् ॥ १२२ ॥ षडंगादि प्रयुज्यते इति आदिशब्देन वक्ष्यमाणादयो योगा उच्यंते। यथा—श्रीपर्णीचन्दनोशीरसमधूकपरूषकम्। श्रीपर्णीपरूषकयोः फलं ग्राह्यं मधूकस्य तु पुष्पम्। पानं पित्तज्वरं हन्यात्सारिवाद्यं सशर्करम् ॥ १२३ ॥ हन्यात्सयष्टिमधुकं तथैवोत्पलपूर्वकम्। पाने श्रृतं जलं किं वा सोत्पलं शर्करायुतम् ॥ १२४ ॥ हन्यात्पित्तज्वरमिति शेषः उत्पलमत्र कमलमित्यादि।

पित्तदोष, मद्यविकार और विषसे पीडित मनुष्योंको कडवे द्रव्योंके द्वारा जलको औटाकर शीतल करके पीनेको देवे, यह अत्यन्त हितकारक है। कडवे द्रव्य तो अनेक हैं, इस कारण उनमेंसे उन उन पदार्थोंका सुश्रुत निश्चय करके योग कहता है। नागरसोथा, पित्तपापडा, सुगंधवाला, धनिया, खस और चन्दन इनको जलमें डालकर औटावे, पश्चात् उस जलको शीतल करके तृषा, दाह और ज्वरको शमन करनेके लिये पिये। यहाँ छत्राशब्दका अर्थ धनियेका लिया है, क्योंकि कुस्तुम्बुरु, स्वार्णिका, छत्रा, धान्य और वितुन्नक यह धनियेके नाम हैं, ऐसा धन्वन्तरिने निघण्टुमें कहा है। धनिया अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिको उत्पन्न कर्ता, पाचन तथा पचनेमें मधुर है और वातादि तीनों दोष, तृषा, दाह, श्वास, खाँसी और ज्वरको नष्ट करता है, इत्यादि इसके गुण भी कहे हैं। चक्रदत्त, वंगसेन और वृन्द आदि वैद्य तो 'छत्रा' शब्दके स्थानमें 'नागर' को स्थापन करके "मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः" ऐसा पाठ कहते हैं। नागर अर्थात् सोंठ यद्यपि चरपरी है तथापि मधुरपाकी होनेसे पित्तको उत्पन्न करनेवाली नहीं है, ऐसा समझकर छत्रा शब्दके स्थानमें नागरको स्थापन करते हैं। और कितनेक वैद्य उक्त नागरशब्दका अर्थ 'नागरमोथा' करते हैं जैसे कि, किसी स्थलमें 'भीम' शब्दसे भीमसेनका ज्ञान होता है इसी प्रकार और भी स्थानोंमें एक देशके कहनेसे समस्तका ज्ञान होता है। नागरमोथा आदि छः औषधियोंको कच्चा ही एकत्र कूटकर जलमें डाले, उस जलको ऋतुके अनुसार पकाकर पश्चात् शीतल करके पित्त आदि रोगियोंको देवे। किन्तु वंगसेन कहता है कि, जलको ऋतुके अनुसार औटावे, पश्चात् शीतलकर उस ६४ तोले जलमें नागरमोथा आदि छः औषधियोंको कच्चीही कूटकर सब एकत्र करके एक तोले भर डाल देवे, ऐसे कहनेसे यह ज्ञान होता है कि—वंगसेन क्वाथ करनेका पक्ष नहीं लेता, केवल जल बनानेका ही पक्ष लेता है। वंगसेन आदि वैद्य नागरमोथा आदि छः औषधिरूप अंगसे संस्कृत किये हुए जलको 'षडंगपानीय' कहते हैं। यह पूर्वोक्त विषयको पुष्ट करता है। यहाँ चन्दन कहनेसे सफेद चन्दन समझना, किन्तु लाल चन्दन नहीं समझना क्योंकि क्वाथमें और प्रलेपमें लाल चन्दन लेना श्रेष्ठ है। कहा भी है--"विशेष करके लाल चन्दन क्वाथमें और लेपमें लेना चाहिये" यह षडंगपानीय बनानेकी विधि कही। और षडंग आदि पान बनाना होय तो वंगसेन आदि बडे ग्रन्थोंके अनुसार बनाना जैसे कि, वह अपने ग्रन्थमें लिखते हैं। ६४ तोले जलमें कुटी हुई औषधि एक तोला डालकर पकावे, जब वह जल आधा शेष रहे तब उसका प्रयोग करे। पेया, यवागू, विलेपी और भात बनानेकी भी यहही विधि जाननी। शार्ङ्गधर भी पान बनानेकी प्रक्रिया इस प्रकार कहता है कि, ६४ पल जलमें कुटी हुई औषधि एक पल (४ तोले) प्रमाण डालकर पकावे और जब वह जल आधा रह जाय तब उसको प्रयोग करे। पेया आदि बनानेकी विधि भी इसी प्रकार समझनी। यहां जलका क्वाथ कहा है इस कारण यहां सफेद चन्दन नहीं किन्तु लाल चन्दन लेना चाहिये। क्योंकि--'विशेष करके क्वाथ और लेपमें लाल चन्दन लेना चाहिये' ऐसा कहा है। "लाल चन्दन--शीतल, स्वादुपाकी, कडवा, नेत्रोंको हितकारी, वीर्यको बढानेवाला तथा वमन, तृषा, रक्तपित्त, ज्वर, व्रण और विष इनको नष्ट करे है।" ये लाल चन्दनके गुण कहे हैं। पान बनानेके और भी अनेक प्रयोग हैं। कुम्भेरके फल, चन्दन, खस, महुएके फूल, फालसे, सारिवा और मिश्री इनसे बनाया हुआ पान पित्तज्वरको नष्ट करता है। मुलैठी और कमल डालकर अथवा कमल और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सफेद खाँड जलमें डालकर पकावे, फिर उसका पान बनाकर सेवन करे, यह पित्तज्वरादि रोगोंको नष्ट करता है । इत्यादि और भी अनेक प्रयोग जानने ॥ ११४--१२४ ॥

अथ दिननिद्रानिषेधः ।

दिवा स्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः । ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वापो निषिध्यते ॥ १२५ ॥ उचितो हि दिवास्वापो नित्यं येषां शरीरिणाम् । वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥ १२६ ॥

रोगी दिनमें शयन नहीं करे, क्योंकि दिनमें सोनेसे कफकी वृद्धि होती है, इस कारण ग्रीष्म ऋतुके विना शेष सर्व ऋतुओंमें दिनमें सोना नहीं चाहिये । परन्तु जिन मनुष्योंको सदैव दिनमें सोनेका अभ्यास है जो वह दिनमें नहीं सोवे तो उनके वायु आदि दोष कुपित होते हैं इस कारण उनके लिये दिनमें सोनेका निषेध नहीं है ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ दिवाशयनार्हमनुष्याः ।

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतक्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवमीतृषापरिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान् । क्षीणान्क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्वृद्धांस्तथाऽजीर्णिनो रात्रौजागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत् ॥ १२७ ॥

व्यायाम (कसरत) अथवा अधिकतर परिश्रम करनेसे, स्त्रीप्रसंग करनेसे, अधिक मार्ग चलनेसे और अधिकतर हाथी घोडे आदिपर चढनेसे जो थक गये हैं उनको तथा श्रमयुक्त, अतिसाररोगी, शूलरोगी, श्वासरोगवाला, वमनयुक्त, तृषारोगी, हिक्कारोगी, वातसे पीडित, क्षीण, जिनका कफ क्षीण हो गया हो, बालक, मदिरा अथवा अन्योन्य मादक नसाकी द्रव्योंको भक्षण करनेवाले, वृद्ध, अजीर्णरोगी, रात्रिमें जागनेवाले और उपवास करनेवाले अर्थात् जिन्होंने लंघन किया है ऐसे मनुष्योंको इच्छाके अनुसार दिनमें सुलावे ॥ १२७ ॥

अथ वातादिज्वरपाकावधिः ।

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः । श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकमुपैति हि ॥ १२८ ॥ रसस्य आमत्वे अवधिमतिक्रम्यापि ज्वरस्तिष्ठति । यत आह सुश्रुतः-बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात्परं ज्वरे । लंघनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते ॥ १२९ ॥ तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः । कषायैः पाचनैर्हृद्यैर्ज्वरघ्नैः समुपाचरेत् ॥ १३० ॥ इति ।

वातज्वर सात दिनमें पचता है, पित्तज्वर दश दिनमें पचता है और कफज्वर बारह दिनमें पचता है। जो रस आम अर्थात् कच्चा होय तो इस अवधिके उपरांत भी ज्वर रहता है जैसा कि सुश्रुत कहता है-- "बहुत दोषयुक्त और मन्दाग्निवाले मनुष्यके सात दिनके पश्चात् ज्वर रहे और उसके दोष लंघन, उष्ण जल और यवागूसे भी न पचें तो मुखकी विरसतानाशक, तृषानिवारक, अरुचिको दूर करनेवाले, पाचन करनेवाले, हृदयको हितकारी और ज्वरको नष्ट करनेवाले ऐसे क्वाथोंके द्वारा चिकित्सा करे ॥ १२८--१३० ॥

अथ ज्वरतरुणाद्यवस्था ।

आसप्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः । द्वादशाहमभिव्याप्य मध्यं जीर्णं ततः परम् ॥ १३१ ॥ आसप्तरात्रादिति, अत्र रात्रिपदादयं रात्रिशब्दो दिवसस्य उपलक्षकः । तेन सप्तमदिवसादर्वाग् ज्वरः तरुण इत्यर्थः । तथा चोक्तं तन्त्रान्तरे-ज्वरे व्यतीते षडहे जीर्ण इत्युच्यते बुधैः । द्वादशाहात्परं जीर्णमाहुरन्ये मनीषिणः ॥ १३२ ॥ अत एव जातूकर्णः-जीर्णः त्रयोदशदिवसे इति ।

ज्वर सात दिनतक तो तरुण कहा जाता है, बारह दिनतक मध्यम कहा जाता है और इसके पश्चात् जीर्ण कहा जाता है ऐसा विद्वान् वैद्य कहते हैं । 'आसप्तरात्रात्' इस पदमें जो रात्रि शब्द है वह दिनवाचक जानना । ऐसाही अन्य ग्रंथोंमें भी कहा है कि-- " छः दिनके पश्चात् ज्वर जीर्ण हो जाता है, ऐसा विद्वान् कहते हैं । " कोई विद्वान् बारह दिनके पश्चात् ज्वरको जीर्ण कहते हैं और इसी प्रकार जातूकर्ण ऋषि भी कहता है कि-- " ज्वर तेरहवें दिनमें जीर्ण हो जाता है । " ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ज्वरौषधदानसमयः।

वातिके सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिके। श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ १३३ ॥ पाययेदातुरं साममौषधं सप्तमे दिने। शमनेनाथ वा हृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत् ॥ १३४ ॥ गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं श्रृतम्। वातज्वरे तथा पेयं कालिंगं सप्तमेऽहनि ॥ १३५ ॥ एतां क्रियां प्रयुञ्जीत षड्रात्रं सप्तमेऽहनि। पिबेत्कषायसंयोगात्पेयां ज्वरविनाशिनीम् ॥ १३६ ॥ एतां क्रियां लंघनादिरूपां कषायसंयोगात् कषायेण साधितां पेयामित्यर्थः। खरनादेनाप्युक्तम्—इति षड्रात्रिकः प्रोक्तो नवज्वरहरो विधिः। ततः परं पाचनीयं शमनीयं ज्वरे हितम् ॥ १३७ ॥ सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये दशाहतः। लंघने भोजिते केचिद्देयमामोल्वणे न तु ॥ १३८ ॥ सप्ताहात्सप्ताहमारभ्येत्यर्थः; अत्र ल्यब्लोपे कर्मणि पंचमी। दशरात्रात्परं सर्वैर्दातव्यमिति निश्चितम् ॥ १३९ ॥ इति। अत एव दशरात्रेण द्वादशाहेन वेति लंघनवता आतुरेणेत्यर्थः। ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम्। पाचनं पाययेद्वैद्यो निरामं सप्तमेऽहनि ॥ १४० ॥ सप्तमेऽहनि लघ्वन्नं दत्त्वा अष्टमे दिने कषायं पाययेदित्यर्थः। सप्तरात्रात्परं केचिन्मन्यन्ते देयमौषधम् ॥ १४१ ॥ सप्तरात्रात् परम् अष्टमेऽहनि इत्यर्थः। केचिच्चरकादयः। चक्रदत्तोऽपि—सप्तरात्रेण पच्यंते सप्तधातुगता मलाः। निरामस्तु ततः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमे दिने ॥ १४२ ॥ एवं सति कषायदाने सप्तमाष्टमयोर्दिवसयोर्विकल्पः। तत्रापि वयोबलाग्निदोषदेशकालोचितं कुर्यात्। भेषजमन्नं च दोषपाकं दृष्ट्वा दद्यादित्याह सुश्रुतः—पैत्तिके च ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते। अचिरज्वरितस्यापि भैषज्यं दोषपाकतः ॥ १४३ ॥ अस्यायमर्थः। अल्पकालसमुत्थिते पैत्तिके ज्वरे दोषपाकं दृष्ट्वा भैषज्यं देयं न तु तत्र दशरात्रापेक्षा, तथा अचिरज्वरितस्यापि पैत्तिकेतरनवज्वरयुक्तस्यापि दोषपाकं दृष्ट्वा भैषज्यं देयमित्यर्थः ॥

वातज्वरमें छः दिनतक लंघन (उपवास) कराकर पश्चात् सातवें दिन औषधि देवे, पित्तज्वरमें दश दिनतक लंघन कराकर पश्चात् औषधि देनी चाहिये और कफज्वरमें बारह दिनतक लंघन कराकर पश्चात् औषधि देवे, परन्तु यह पहले कह चुके हैं कि, जो वातज्वर रोगी साम होय तौ सातवें दिन औषधि पिलावे और निराम होय तो रोगको शमन करनेवाली औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे। इसी प्रकार शार्ङ्गधरभी कहता है कि " वातज्वरके सब लक्षण होयँ तो गिलोय, पीपलामूल और सोंठ इनका पाचनरूपी क्वाथ बनाकर सातवें दिन रोगीको पिलावे। " हारीत भी कहता है कि " छः दिनतक तो लंघनरूप आदि क्रिया करे और सातवें दिन क्वाथसे सिद्ध की हुई ज्वरनाशक ऐसी पेया पीनी चाहिये। " खरनाद भी कहता है कि, " इस प्रकार तरुणज्वरको हरनेवाली विधि छः दिनतक कही है पश्चात् पाचन और शमनक्रिया ज्वरमें हितकारी है। " वाग्भट भी कहता है कि " रोगीको सातवें दिन हलका अन्न भोजन कराकर फिर उस दिनसे औषधि देवे। ऐसा कितनेक वैद्य कहते हैं और कितनेक वैद्य कहते हैं कि, रोगीको दशवें दिन हलका अन्न भोजन कराकर फिर उसी दिनसे औषधि देवे और कितनेक वैद्य कहते हैं कि, " जो आम उल्वण होय तौ औषधि कदापि न देवे।" इस विषयमें चरक तौ यह कहते हैं कि " ज्वरवाले रोगीको छः दिनके पश्चात् जो वह निराम होय तो सातवें दिन हलका अन्न भोजन कराकर पश्चात् आठवें दिन क्वाथ पिलावे। " इसी प्रकार सुश्रुत कहता है कि " सात दिनके पश्चात् आठवें दिन औषधि देनी चाहिये, ऐसा चरकादि ऋषियोंका मत है। " चक्रदत्त भी कहता है कि " सात धातुओंमें प्राप्त हुआ मल सात दिनमें पचता है, इस कारण विशेष करके ज्वर आठवें दिन आमरहित हो जाता है। " इस प्रकार अनेक मतभेद हैं। इन सबसे यह सिद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता है कि, क्काथ देनेमें सातवें और आठवें दिनका विकल्प है, सातवें अथवा आठवें दिन जो क्काथ देना कहा है इस कहनेकेही ऊपर न रहे; किन्तु अवस्था, बल, अग्नि, दोष, देश और काल (समय) इनको देखकर औषधि देवे, कारण यह है कि, जो दोष पहिलेही पच जाय तो अवधिसे पहिलेही औषधि और अन्न देना चाहिये और जो नहीं पचे तो समयके आनेपर भी नहीं देनी चाहिये। जैसा कि, सुश्रुत कहता है कि, थोडे समयके उत्पन्न हुए पित्त-ज्वरमें जब दोषोंका पाक होय तब औषधि देवे, किन्तु उसमें दशही दिन बीत जानेकी रास्ता न देखे उसी प्रकार थोडे कालसे उत्पन्न हुए वातज्वरमें और थोडे कालसे उत्पन्न हुए कफज्वरमें भी जब दोषोंका पाक हो तब औषधि देवे ॥ १३३–१४३ ॥

अथ दोषपाकलक्षणम् ।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च । पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ १४४ ॥ ज्वरे मृदौ स्वल्पीभूते । मलेषु वातपित्तकफ-मूत्रपुरीषेषु प्रचलेषु स्वमार्गसञ्चारिषु । पक्वं निरामम् । " दोषप्रकृतिवैकृत्यादेतेषां पक्वलक्षणम् । " दोषाणां दुष्टवातपित्तक-फानां प्रकृतिः ज्वरस्य तदुपद्रवाणां च उत्पादनम्, तस्याः वैकृत्यं वैपरीत्यं तस्मा-दोषपाकज्ञानम् । अन्येषां मते । क्षुत्क्षा-मत्वं लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् । दोष-प्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ १४५ ॥ दोषप्रवृत्तिः दोषाणां स्वमार्गसञ्चारः ॥

सुश्रुत कहता है कि—" जब ज्वर हलका हो जाय, शरीर भी हलका हो जाय और वात, पित्त, कफ, मूत्र और विष्ठा ये मल अपने अपने मार्गमें संचार करने लगें तो दोष पचकर आमरहित हो गये ऐसा जानना, इस प्रकार जब दोष पच जायँ तब ज्वरमें औषधि देनी चाहिये । " दुष्ट हुए वात पित्त और कफ इनके ज्वरको तथा ज्वरके उपद्रवोंको उत्पन्न करनेका जो स्वभाव है वह स्वभाव बदल गया होय तो दोषोंका पाक हुआ जानना, यह कितनेक वैद्योंका मत है । भूँख, शरीरका हलकापन, ज्वरकी सूक्ष्मता, दोषोंका अपने अपने मार्गमें संचारण और उत्साह इन लक्षणोंसे जानना कि, ज्वर आमसे रहित हो गया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् । तत्राऽनुक्ते प्रभातं स्यात्कषायेषु विशेषतः ॥ १४६ ॥ मुख्यभैषज्यसम्बन्धो निषिद्ध-स्तरुणज्वरे । तोयपेयादिसंस्कारे त्वदोषं तत्र भेषजम् ॥ १४७ ॥ नं कषायं प्रशं-सन्ति नराणां तरुणे ज्वरे । कषायेणाकुली-भूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥ १४८ ॥ आकुलीभूताः प्रवृद्धाः स्वमार्गं परित्यज्य इतस्ततो गताः । अत्र कषायशब्देन क्काथो गृह्यते । उक्ताश्च क्काथस्य पर्यायाः—श्रृतं क्काथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते । तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोषं तत्र भेषजम् । ॥ १४९ ॥ तत्र तरुणज्वरे भेषजं मुख्यभे-षजं क्काथरूपं, न तु कल्पनमुद्दिश्य कषायः प्रतिषिध्यते इति कल्पनं तोयपेययवाग्वादि-कम् । ननु—स्वरसश्च तथा कल्कः क्काथश्च हिमफाण्टकौ । ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १५० ॥ इति वच-नात्स्वरसादयोऽपि कथं न निषिध्यन्ते, तत्राह—तत्र यस्तु कषायः स्यात्स वर्ज्यस्त-रुणज्वरे ॥ १५१ ॥ चतुर्थभागावशेषकर-णेन अष्टमभागशेषकरणेन च कषायवर्णः कषायरसश्च स्यात् । यः कषायः क्काथः, स तरुणज्वरे निषिद्धः । "पादशिष्टः कषायः स्यात् । " अतः षडंगादिः तरुणज्वरे न निषिद्धः । पाकादूर्ध्वं पाके चोक्तलक्षणा-भावेन कषायत्वाभावात् । दोषा वृद्धा कषा-येण स्तम्भितास्तरुणज्वरे । स्तभ्यन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥ १५२ ॥ कषायेण स्तम्भिताः प्रवृत्तये निवारिताः । यत आह कषायरसगुणान् ' कषायः स्तम्भनः शीतो रूक्षः पित्तकफापहः । '

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि। स्तभ्यन्ते आध्मानं कुर्वन्ति, न विपच्यन्ते सुखेन न विपच्यन्ते दुःखं दत्त्वा विलंबेन विपच्यन्ते इति यावत्। अन्यच्च— न च्यवन्ते न पच्यन्ते कषायैः स्तम्भिता मलाः। तिर्यग्विमार्गगा वाते घोरं कुर्युर्नवज्वरम् ॥ १५३ ॥

मनुष्योंको औषधि सेवन करनेके पाँच काल कहे हैं, और जिस औषधिके पीनेका समय नहीं कहा है उसको प्रातःकाल सेवन करना चाहिये। कषाय अर्थात् काढेको विशेष करके प्रातःकाल ही पीना चाहिये। तरुणज्वरमें कषाय पीनेका निषेध है, परन्तु वह कषाय यदि जल और पेयादिके संस्कारके लिये उपयोगमें लाया गया होय तौ निषेध नहीं है। कहाभी है कि "मनुष्योंको तरुण ज्वरमें कषाय देना नहीं चाहिये कारण यह है, कि—कषायसे वृद्धिको प्राप्त हुए दोष अपने मार्गको छोडकर आममें मिल जाते हैं, फिर उनको जीतना अत्यन्त कठिन हो जाता है।" श्रृत, क्वाथ, कषाय और निर्यूह ये क्वाथके नाम हैं। तरुण ज्वरमें जल, पेया और यवागूको सिद्ध करनेके लिये कषायका उपयोग करनेमें किसी प्रकार निषेध नहीं है। शंका—स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट ये पाँचों क्वाथ कहे जाते हैं और इनमें उत्तरोत्तर अधिक हलकापन है। इस वचनसे स्वरस आदि पाँचों पदार्थोंको कषाय कहनेपर 'तरुण ज्वरमें कषाय पीना निषेध है' इस कहनेसे केवल एक क्वाथकाही निषेध कैसे समझें, पाँचों कषायोंका निषेध क्यों नहीं मानते? समाधान—जलका चौथा अथवा आठवाँ भाग शेष रहे ऐसी रीतिसे जो पकाया हुआ क्वाथ कसैले रंगका और कसैले रसयुक्त हो जाय उसीको कषाय अर्थात् क्वाथ कहते हैं और वही तरुण ज्वरमें निषिद्ध है। यह शास्त्रका वचन है। सोलह भाग जलका जो चार भाग जल शेष रहा होय ऐसी विधिसे जो पकाया गया हो उस क्वाथको कषाय कहते हैं इस कारण तरुण ज्वरमें षडंग आदि पानीका निषेध नहीं जानना। कारण यह है कि, अपाकके होनेसे अथवा अर्द्धपाकके होनेसे षडंग आदिमें कषायके लक्षण नहीं मिलते। तरुण ज्वरमें बढे हुए दोष कषायोंसे स्तंभन करनेसे स्तंभित हो जाते हैं, परिपक्व नहीं होते परन्तु ऐसे बलात्कारसे स्तंभित किये हुए दोष विषम ज्वरको पैदा करते हैं। कषाय स्तम्भन (दोषोंको रोकनेवाला), शीतल, रूखा तथा पित्त और कफको नष्ट करनेवाला है। इस वचनके कहे अनुसार कषायमें दोषोंको स्तम्भन करनेका गुण रहता है, इस कारण तरुणज्वरमें कषायके देनेसे दोष वृद्धिको प्राप्त होकर स्तम्भन अर्थात् अफरेको उत्पन्न करते हैं और सुखसे नहीं पकते, किन्तु दुःख देकर विलम्बसे पचते हैं। अन्य ग्रंथोंमें भी कहा है कि—"कषायसे स्तम्भित हुए दोष स्थानसे नहीं टलते हैं और न पकते हैं, किन्तु वे टेढे मार्गमें जाकर तरुण ज्वरको अत्यन्त भयंकर कर देते है।" ॥ १४६—१५३ ॥

अथ तरुणज्वरवमननिषेधः।

अनवस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे। हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहं च कुरुते भृशम् ॥ १५४ ॥ अयमर्थः। कफादिदोषोपस्थितौ स्वयमेव चेद्भवति वमनं न तद्दोषाय। अनवस्थितदोषाणां तरुणज्वरे वमनं यत्नकृतं हृद्रोगादीन्करोति इत्यर्थः। एतेन वचनेन तरुणज्वरे यत्नाद्वमनं निषिद्धम्। अवस्थाविशेषे तदपि कर्तव्यमित्याह—सद्योभुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते। वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥१५५॥ वमनं वेति विकल्पो लंघनापेक्षया। वमनार्हस्य इत्यनेन गर्भिण्यतिकृशातिवृद्धादिनिषेधः। वमितं लंघयेत्प्राज्ञो लंघितं न तु वामयेत्। वमनं क्लेशबाहुल्याद्दन्यालंघनकर्षितम्। न कार्यं गुर्विणीबालवृद्धदुर्बलभीरुभिः ॥ १५६ ॥ अनशनमिति शेषः। अनेन अनशनवचनेन गुर्विण्यादीनाम् अनशननिषेधः। ज्वरे सामे पाचनं निरामे शमनं पथ्यान्नं मण्डादिकं च दद्यात्। पाचनलक्षणं पश्चाद्व्रणप्रस्तावे बोद्धव्यम् ॥

कफ आदि दोषोंको अधिकतर ऊपरको आनेसे जो अपने आपही वमन (रद) हो जाय तब तो कोई हानि नहीं, किन्तु तरुण ज्वरमें जो कफादि ऊपरको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं आते हों ऐसे रोगियोंको यत्नपूर्वक वमन नहीं करानी चाहिये । यत्नपूर्वक वमन करानेसे—हृदय-रोग, श्वास, अफरा और मोह उत्पन्न होता है इस कारण तरुण ज्वरमें यत्नसे वमन नहीं करानी चाहिये, तथापि अवस्थाविशेषमें वमन करानी निषेध नहीं है । जैसे कहा है कि—"तत्काल भोजन किये हुए मनुष्यके तृप्तिसे जो ज्वर उत्पन्न हुआ होय और वह मनुष्य वमन कराने योग्य होय तथा गर्भिणी, अत्यन्त कृश और अत्यन्त वृद्ध न होय तो उसको लंघनके बदले वमन करानी चाहिये ।" ऐसा वाग्भटका मत है । इस विषयमें वृद्ध वाग्भट कहता है कि—"जिसने वमन करी होय उसको लंघन कराने चाहिये और जिसने लंघन किये होयँ उसको वमन नहीं करानी चाहिये । कारण यह है कि—वमन अत्यंत क्लेशयुक्त होनेके कारण लंघनसे कृश हुए मनुष्यको मार डालती है । गर्भवती स्त्री, बालक, वृद्ध, दुर्बल और भयभीत इनको वमन नहीं करावे । गर्भवती आदिका जो ज्वर आम-सहित होय तौ पाचन औषधि देवे और जो आम-रहित होय तौ शमन औषधि तथा पथ्य अन्नका रस इत्यादिक देवे । पाचनके लक्षण द्रव्यखंडमें कह चुके हैं सो देख लेना ॥ १५४—१५६ ॥

अथ पाचनशमनौषधदानसमयः ।

पाययेदातुरं सामं पाचनं सप्तमे दिने । शमनेनाथ वा दृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत् ॥ १५७ ॥ कृशं चैवाल्पदोषं च शमनीयैरुपाचरेत् । लालाप्रसेको हृल्लासो हृदयाशुद्धयरोचकौ ॥ १५८ ॥ तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता । क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः ॥ १५९ ॥ आमज्वरस्य लिंगानि न दद्यात्तत्र भेषजम् । भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम् ॥ १६० ॥ भूयो बाहुल्येन । पाययेदोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः । स सुप्तं कृष्णसर्पं तु कराग्रेण परामृशेत् ॥ १६१ ॥ इति । वचनात् आमज्वरे भेषजनिषेधात्कथं सामे ज्वरे वा पाचनं देयम् ? उच्यते निरुपद्रवे सामज्वरे पाचनं देयम् । सोपद्रवे तु सामे भेषजं निषिद्धम् । सप्ताहात्परतोऽदुष्टे सामे स्यात्पाचनं ज्वरे । निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ॥ १६२ ॥ अदुष्टे निरुपद्रवे । स्तब्धे सोपद्रवे ।

जो रोगी आमसहित होय तौ सातवें दिन पाचन देना चाहिये और जो आमरहित होय तौ शमनसे उपचार करे, तथा जो दुर्बल और अल्पदोष युक्त होय तौ भी शमनकीही औषधि देवे । शंका—लारका गिरना, अथवा मुखसे पानीका गिरना, उबकाईका आना, हृदयका भारीपन, अरुचिका होना, तन्द्रा और आलस्य हो, भोजनका पाक न होय, मुखमें विरसता होय, शरीरमें भारीपन, क्षुधाका नाश, मूत्रका अधिक आना, शरीर बंधासा हो और ज्वरका अधिक वेग होना ये आमज्वरके लक्षण हैं, आमज्वरमें औषधि नहीं देनी चाहिये । जो आमदोषोंमें औषधि दी जावे तौ वह ज्वरकी वृद्धि करती है । अन्यत्र भी कहा है कि "जो वैद्य आमज्वरमें भूलसे दोषोंको हरनेवाली औषधि देता है वह सोते हुए काले सांपको हाथके अग्रभागसे छूकर जगाता है ।" इन वचनोंसे सिद्ध होता है कि, आम-ज्वरमें औषधि नहीं देनी चाहिये, फिर तुम पाचन देना कैसे कहते हो ? समाधान—जो आमज्वर उपद्रवोंसे रहित होय तौ पाचन देना चाहिये और जो उपद्रवोंसे सहित होय तो कदापि औषधि नहीं देनी, क्योंकि वाग्भट कहता है कि, "जो सात दिनके पश्चात् ज्वर आमसहित भी हो परन्तु उपद्रवोंसे रहित होय तो पाचन देवे और आमसे रहित होय तो शमन देवे, किन्तु जो ज्वर आम और उपद्रव दोनोंसे संयुक्त होय तौ कदापि औषधि नहीं देनी चाहिये ।" ॥ १५७—१६२ ॥

सामान्यज्वरपाचनकषायः ।

नागरं देवकाष्ठं च ध्यामकं बृहतीद्वयम् । दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितेभ्यो ज्वरापहम् ॥ १६३ ॥ ध्यामकं रोहिषं तदलाभे उशीरं दद्यात् । बृहतीद्वयं बृहत्फला सूक्ष्मफला च बृहती क्षुद्रा बृहती चेति कण्टकारीद्वयं वा दद्यात् । "कण्टकारीद्वयं शुण्ठी ध्यामकं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुरदारु च " इति शार्ङ्गधरेण उक्तत्वात्। इति नागरादिक्काथः।

सोंठ, देवदारु, रोहिषतृण, कटेरी और बडी कटेरी इनको समान भाग लेकर क्काथ बनावे, पश्चात् ज्वर-रोगीको ज्वरके पचानेके लिये देवे यह सुश्रुत कहता है। इसी प्रकार शार्ङ्गधर भी कहता है कि " दोनों प्रकारकी छोटी बडी कटेरी, रोहिषतृण, सोंठ और देवदारु इन पांच औषधियोंका क्काथ देना चाहिये।" इसमें यदि रोहिषतृण न मिले तौ उसके अभावमें खस लेनी चाहिये। इसको नागरादि क्काथ कहते हैं ॥ १६३ ॥

सर्वज्वरेषु सामान्यसंशमनौषधिः।

अथ संशमनीयानि कषायाणि निबोध मे। सर्वज्वरेषु देयानि यानि वैद्येन जानता ॥ १६४॥ वृश्चीवो विल्ववर्षाभूः पयः सोदकमेव च। पचेत्क्षीरावशेषं तत्पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ १६५ ॥ वृश्चीवः श्वेतपुनर्नवा। वर्षाभूः रक्तपुनर्नवा तथा च मदनपालः—पुनर्नवः श्वेतमूलो वृश्चीवो दीर्घपत्रकः। पुनर्नवाऽपरा रक्ता वर्षाभू रक्तपुष्पकः ॥१६६॥

सुश्रुत कहता है कि " अब मैं संशमनीय औषधियोंको कहता हूँ कि, जिनको वैद्य जानकर सर्व ज्वरोंमें प्रयोग करे। सफेद पुनर्नवा (सांठ), बेलका गूदा, लाल पुनर्नवा (गदहपुनेरा), दूध और जल इन सबको मिलाकर पकावे, जब जल जलकर केवल दूध शेष रहे तब उतारकर छान लेवे, फिर शीतल करके पान करे तौ सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं।" " सफेद जडवाले और लम्बे पत्तेवाले पुनर्नवेको वृश्चीव कहते हैं और लाल फूलके तथा लाल जडवाले पुनर्नवेको रक्त पुनर्नवा कहते हैं।" ऐसा मदनपालनिघण्टुमें कहा है ॥ १६४–१६६ ॥

दुग्धपाकविधिः।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम्। क्षीरावशेषं पातव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ १६७ ॥ उदकाद्विगुणं क्षीरं शिंशपोशीरमेव च। तत्क्षीरशेषं क्वथितं पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ १६८ ॥

चार तोले औषधि, बत्तीस तोले दूध और दूधसे चौगुना जल डाले, फिर सबको मिलाकर पकावे, जब जल जलकर केवल दूधही शेष रहे तब पिये, यह दूधपाककी विधि कही। दूसरे प्रकारसे भी कही है कि " जलसे दुगुना दूध लेकर उसमें सीसमका बुरादा और खस डालकर पकावे, जब दूध शेष रहे और जल जल जाय तब पिये, इसको पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।" ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

अथ गुडूच्यादिक्काथः।

गुडूचीधान्यकारिष्टं पद्मकं रक्तचन्दनम्। एषां क्काथः सुप्रसिद्धः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ १६९ ॥ दीपनो दाहहृल्लासतृष्णाछर्व-रुचिं हरेत् ॥ १७० ॥

गिलोय, धनियां, नीमकी छाल, पद्माख और लाल चन्दन इनका जगत्प्रसिद्ध क्काथ सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला, अग्निप्रदीपक तथा दाह, उबकाई, तृषा, वमन और अरुचिको दूर करनेवाला है ॥ १६९ ॥ १७० ॥

अथ संशोधननिषेधः।

छर्दिमूर्च्छामदश्वासभ्रमतृड्विषमज्वरान्। संशोधनस्य पानेन प्राप्नोति तरुणज्वरी ॥ १७१ ॥ निषिद्धमपि संशोधनमवस्थाविशेषे देयम्। रोगे शोधनसाध्ये तु यं विद्याद्दोषदुर्बलम्। तं समीक्ष्य भिषक्कुर्याद्दोषप्रत्यावनं मृदु ॥ १७२ ॥ दोषदुर्बलम्। दोषैरुपचितैर्दुर्बलं न तु उपवासादिकृशम्। सद्यो ज्वरे विषेऽजीर्णे मन्देऽग्नावुदरे तथा। स्तन्यरोगे च हृद्रोगे कासे श्वासे च वामयेत् ॥ १७३ ॥ जीर्णज्वरगरच्छर्दिगुल्मप्लीहोदरेषु च। शूले शोथे मूत्रघाते कृमिरोगे विरेचयेत् ॥ १७४ ॥ चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेत्तत्र बलं नृणाम्। अव्यापदुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत् ॥ १७५ ॥ कुतो बलं न अपेक्षणीयम् इत्याशंकायामाह—तदा तस्यामवस्थायां शोधनं दुर्बलस्यापि दोषदुर्बलस्यापि अव्यापद्भवेत्। छर्द्यादिव्याधिकृन्न भवतीत्यर्थः। बलवतः पुरुषस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्वदोषस्य । पक्वोऽप्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययम् । विषमं वा ज्वरं कुर्याद्बलव्यापदमेव वा ॥ १७६ ॥ पक्वः लंघनाम्बुपानपेयादिभिः । अनिर्हृतः अधोमार्गेण अनुत्सृष्टः । महात्ययं विषमं ज्वरं चातुर्थिकं तस्यैव महात्ययत्वादिति गदाधरः । गम्भीरमिति कार्तिकः । महात्ययं महाकष्टं वा । बलव्यापदं बलक्षयम् ।

सुश्रुत कहता है कि "तरुण नवीन ज्वरवाला रोगी शोधन औषधि पिये तो वमन, मूर्च्छा, मद, नसा, श्वास, भ्रम, तृषा और विषमज्वर उत्पन्न होता है।" यद्यपि तरुणज्वरमें संशोधनका निषेध है, तथापि अवस्थाविशेषमें संशोधन कराना चाहिये। कहा है कि "रोगी दोषोंकी वृद्धिसे बहुत दुःखित हो गया हो और रोग शोधनसे ही शांत होय, विना शोधनके शांत न होय तो वैद्यको उचित है कि, मृदुरीतिसे संशोधन देकर दोषोंको उखाडे। तत्कालका उत्पन्न हुआ ज्वर, विषविकार, अजीर्णदोष, अग्निकी मन्दता, अरुचि, स्तन्यरोग, हृदयरोग, खाँसी और श्वास इन रोगोंमें वमन (रद्द) करावे। जीर्णज्वर, विषविकार, वमन, गुल्म (वायगोला), प्लीहा, उदररोग, शूल, सूजन, मूत्राघात और कृमिरोग इन रोगोंमें विरेचन (जुलाब) करानी चाहिये। जो दोष चंचल होय और कोठा नरम होय तो वैद्य उसके बलाबलको विना विचारे ही शोधन औषधि देवे, कारण यह है कि, ऐसी अवस्थामें दोषोंसे दुर्बल हुए मनुष्यके शोधनसे वमनादि विकार उत्पन्न नहीं होते हैं। बलवान् पुरुषके पके हुए दोष जो अपने स्थानमें स्थित होयँ तौ उनका शोधन नहीं करनेसे अन्यान्यरोग उत्पन्न होते हैं। सुश्रुत कहता है कि—"लंघनसे, जलपानसे और पेयादिसे जो दोष पक गया है उसको यदि अधोमार्ग दस्त द्वारा न निकाला जाय तौ वह देहमें स्थित होकर मदात्यय विषमज्वर अथवा बलक्षयको उत्पन्न करता है।" महात्यय यह अत्यंत हानिकारक चातुर्थिक है, ऐसा गदाधर आचार्य कहता है। महात्ययको गंभीरज्वर ऐसा कार्तिक वैद्य कहता है, अथवा महात्यय शब्दका अर्थ अत्यंत कष्टका है ॥ १७१—१७६ ॥

अथ संशोधनम् ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्काहरीतकीभिः कथितः कषायः । सामे सशूले कफवातपित्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ १७७ ॥ इति आरग्वधादिः क्काथः । अन्यच्च—पथ्यारग्वधतिक्कात्रिवृदामलकैः शृतं तोयम् । पाचनसारकमुक्तं मुनिभिर्जीर्णज्वरे सामे ॥१७८॥ इति आरोग्यपञ्चकद्वयम् ।

अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका क्काथ आम और शूलयुक्त कफ, वात और पित्तज्वरमें अत्यंत हितकारी है, दीपन और पाचन है। हरड, अमलतास, कुटकी, निसोत और आमले इनका क्काथ आमसहित जीर्णज्वरमें पाचन है और दस्तको लानेवाला है। इन दोनों क्काथोंको आरोग्यपंचक कहते हैं ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

अथ सारिवादिकल्कः ।

अनन्ता वालकं मुस्तं नागरं कटुरोहिणी । पिष्ट्वा सुखाम्बुना कल्कं पाययेदक्षसम्मितम् ॥१७९॥ कल्कः स्वल्पेन कालेन हन्यात्सर्वज्वरामयान् । विदध्यात्कोष्ठसंशुद्धिं दीपयेच्च हुताशनम् ॥ १८० ॥ अनन्ता सारिवा ।

अनन्तमूल गोरीसाँव, सुगंधवाला, नागरमोथा, सोंठ और कुटकी इनको मन्दोष्ण जलमें पीसकर एक तोले भर पिये तो थोडेही दिनोंमें सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं, कोठा शुद्ध होता है और जठराग्नि दीपन होती है ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ संशोधनशमनौषधनिषेधः ।

पीताम्बुर्लंघनक्षीणो जीर्णो भुक्तः पिपासितः । न पिबेद्दौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ १८१ ॥ पीताम्बुः पीततिक्ताम्बुः भुक्तो भुक्तवानित्यर्थः । अत्र अध्यवसितादित्वात् कर्तरि क्तप्रत्ययः । इतरत् संशमनम् ।

जिस मनुष्यने कडवा जल पिया हो, जो लंघन उपवास करनेसे क्षीण हो गया हो, वृद्ध, जिसने तत्काल भोजन किया हो और तृषासे पीडित इनको कदापि संशोधन और शमन औषधि नहीं पीनी चाहिये ॥ १८१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ सुदर्शनचूर्णम्।

त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारीयुगं शठी। त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥ १८२ ॥ कटुका पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च वालकम्। निम्बः पुष्करमूलश्च मधुयष्टी च वत्सकः ॥ १८३ ॥ यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा। वचात्वक्पद्मको-शीरचन्दनातिविषाबलाः ॥ १८४ ॥ शालि-पर्णी पृश्निपर्णी विडंगं तगरं तथा। चित्रकं देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥ १८५ ॥ जीवकर्षभकौ चैव लवंगं वंशलोचनम्। पुण्डरीकं च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम्। ॥ १८६ ॥ तालीसपत्रमेतानि समभागानि चूर्णयेत्। अर्द्धांशं सर्वचूर्णस्य किरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ १८७ ॥ एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम्। ज्वरांश्च निखिलान्हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १८८ ॥ दोषजा-गन्तुकांश्चापि धातुस्थान्विषमज्वरान्। सन्नि-पातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥ १८९ ॥ शीतादीनपि दाहादीन्मेहं तन्द्रां भ्रमं तृषाम्। कासं श्वासं च पाण्डुं च हृद्रोगं कामलामपि ॥ १९० ॥ त्रिकपृष्ठ-कटीजानुपार्श्वशूलं निवारयेत्। शीताम्बुना पिबेदेतत्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ १९१ ॥ सुद-र्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम्। तथा ज्वराणां सर्वेषां चूर्णमेतत्प्रणाशनम् ॥ १९२ ॥ पुष्करमूलाभावे तु कुष्ठमपि दद्यात्। भार्ङ्ग्यभावे कण्टकारीमूलम्। सौराष्ट्र्यभावे स्फटिकां दद्यात्। तगरालाभे कुष्ठं देयम्। जीवकर्षभयोरलाभे विदारीक-न्दस्य भागद्वयं दद्यात्। पुण्डरीकं श्वेतक-मलम्। काकोल्यभावे अश्वगन्धामूलम्। तालीसपत्रकाभावे स्वर्णताली प्रदीयते इति। अथवा कण्टकारीजटा देया।

त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला), हलदी, दारुहलदी, कटेरी, कटाई, कचूर, त्रिकुटी (सोंठ, मिरच, पीपल), पीपलामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण, सुगंध-वाला, नीमकी छाल, पोहकरमूल, मुलेठी, कुडेकी छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहिंजनेके बीज, सोरठकी मिट्टी, वच, दालचीनी, पद्माख, खस, चन्दन, अतीस, खिरैटी, शालिपर्णी (सरिवन), पृश्निपर्णी (पिठिवन), वायविडंग, तगर, चीता, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, लौंग, वंशलोचन, पुण्डेरिया, सुगंधद्रव्य, काकोली, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र ये सब समान भाग लेवे और सबकी बराबर चिरायता लेवे, पश्चात् सबका एकत्र चूर्ण करे। इसको सुदर्शनचूर्ण कहते हैं। यह सुदर्शन चूर्ण—तीनों दोषोंको हरनेवाला है और सर्व प्रकारके ज्वरोंको निःसन्देह नष्ट करनेवाला है। तथ दोषोंसे उत्पन्न हुए आगंतुज (चोट आदिके लगनेसे उत्पन्न हुए) ज्वर, धातुगतज्वर, विषमज्वर, सान्नि-पातोत्पन्नज्वर और मानसिक पीडासे उत्पन्न हुए ज्वर इन सबको अवश्य दूर करता है। एवं शीतादिविकार, दाहादिदोष, प्रमेह, तन्द्रा, भ्रम, तृषा, खाँसी, श्वास, पाण्डुरोग, हृदयरोग, कामलारोग, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, जंघाशूल और पार्श्वशूल (पसलियोंमें पीडा) को निवारण करता है। सम्पूर्ण ज्वरोंको नष्ट करनेके लिये इसको शीतल जलके साथ भक्षण करे। जिस प्रकार विष्णुका सुदर्शन चक्र दैत्योंको नष्ट करता है, उसी प्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सम्पूर्ण ज्वरोंको नष्ट करता है। इस चूर्णमें यदि पोहकरमूल न मिले तो उसके बदले कूठ लेना चाहिये, भारंगी न मिले तो कटेरीकी जड लेनी चाहिये, सोरठकी मिट्टी न मिले तो फट्किरी, तगर न मिले तो कूठ और तालीशपत्र न मिले तो स्वर्णतालीश अथवा कटेरीकी जड लेनी चाहिये। जीवक और ऋषभक इन दोनोंके अभावमें विदारीकंद दो भाग लेना चाहिये तथा काकोलीके न मिलनेपर असगन्धकी जड डालनी चाहिये १८२-१९२

इति सुदर्शनचूर्णम्।

अथ निम्बादिचूर्णम्।

निम्बपत्रवराव्योषयवानीलवणत्रयम्। क्षारो दिग्वह्निरामेषु त्रिनेत्रान् क्रमशोऽश-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कान् ॥ १९३ ॥ सर्वमेकीकृतं चूर्णं प्रत्यूषे भक्षयेन्नरः । ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसज्वरम् ॥ १९४ ॥ चातुर्थिकं महाघोरं सततं सन्ततं दिवा । धातुस्थं च त्रिदोषोत्थं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ १९५ ॥

नीमके पत्ते दश भाग, हरड एक भाग, आमले एक भाग, बहेडा एक भाग, सोंठ एक भाग, मिर्च एक भाग, पीपल एक भाग, अजवाइन पाँच भाग, सेंधानिमक एक भाग, विरियासंचरनिमक एक भाग, काला निमक एक भाग और जवाखार दो भाग लेवे, इन सबको एकत्र पीस कूट चूर्ण बनाकर प्रातःकाल भक्षण करे। इसको खानेसे ऐकाहिक ज्वर (एकन्तरा), द्व्याहिक (एकंतरा), त्र्याहिक (तिजारी), चातुर्थिक (चौथिया), सतत (दिनरातमें दो बार आनेवाला), संतत (सात, दश और बारह दिनतक एकसा रहनेवाला) ज्वर, धातुगत ज्वर और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ ज्वर अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १९३–१९५ ॥

इति निम्बादिचूर्णम्।

अथ शठ्यादिक्काथः।

शठी निशाद्वयं दारु शुण्ठी पुष्करमूलकम्। एला गुडूची कटुका पर्पटं च यवासकः १९६ शृंगी किराततिक्तं च दशमूली तथैव च। क्काथमेषां पिबेत्कोष्णं सिन्धुचूर्णयुतं नरः। ज्वरान्सर्वान्द्रुतं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १९७ ॥ इति शठ्यादिक्काथः। अनुभूतोऽयम्।

कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, सोंठ, पोहकरमूल, इलायची, गिलोय, कुटकी, पित्तपापडा, जवाखार, काकडासिंगी, चिरायता और दशमूलकी समस्त औषधि इनका क्काथ बनाकर उसमें सेंधे निमकका चूर्ण डालकर सुहाता सुहाता पीवे। यह सर्व प्रकारके ज्वरोंको निःसंदेह नष्ट करता है। यह हमारा कई वार आजमाया हुआ है ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

अथ हरीतक्यादिगुटी।

हरीतकीत्रिवृद्वृद्धदारकाणां पृथग्भवेत्। पलद्वयं कणा शुण्ठी गुडूची गोक्षुरो वरी ॥ १९८ ॥ सहदेवी विडंगं च प्रत्येकं पलसम्मितम्। मधुना वटिकां कृत्वा खादञ्ज्वरमपोहति। कासं श्वासं मलस्तम्भं वह्निमान्द्यं नियच्छति ॥ १९९ ॥ अनुभूतेयम्।

हरड, निसोत, त्रिधारा और विधारा यह प्रत्येक आठ आठ तोले लेवे, पीपल, सोंठ, गिलोय, गोखरू, सतावर, सहदेई और बायविडंग ये प्रत्येक चार चार तोले लेवे, सबको एकत्र पीसकर सहतमें गोली बना लेवे। इन गोलियोंको भक्षण करनेसे ज्वर, खाँसी, श्वास, मलरोध और अग्निकी मंदता नष्ट होती है। यह भी हमारी अनुभव करी हुई है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

अथ लाक्षादितैलम्।

लाक्षा दशाक्षा त्वरुणा षडक्षा सचन्दनं लोहितचन्दनं च। त्वक्पत्रकं वारि सुरा समुस्ता प्रत्येकमेतानि पलोन्मितानि ॥ २०० ॥ किराततिक्तक्षिवृता सतिक्ताऽमृताकणापर्पटकण्टकार्यः। विडंगविश्वामलकानि वासारसानिशावीरणसिन्दुवाराः ॥ २०१ ॥ एतानि देयानि पृथक्पलार्द्धमानानि सर्वाणि च भेषजानि। कल्कानमीषां विदधीत गव्यदुग्धेन वै सार्द्धतुलामितेन ॥ २०२ ॥ तैलं तिलानां तु तुलानुमानं तेनैव कल्केन शनैः पचेच्च। हन्याज्ज्वरांस्तैलमिदं समस्तान्कुर्याद्बलं वीर्यमतीव पुष्टिम् ॥ २०३ ॥ विमर्दनादाशु परिश्रमं भ्रमं शमं नयेत्सञ्जनयेद् द्युतिं तनोः। तथा व्यायामस्थितमुद्वहामपि प्रहृत्य निद्रां समुपार्जयेत्सुखम् ॥ २०४ ॥ अरुणा मञ्जिष्ठा, वारि वालम्, रसा राम्ना। इति लाक्षादितैलम्।

उत्तम पीपलकी लाख दश तोले, मजीठ ६ तोले, चन्दन चार तोले, लाल चन्दन ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले, सुगन्धवाला ४ तोले, कपूरकचरी ४ तोले और नागरमोथा ४ तोले, चिरायता २ तोले, निसोत दो तोले, कुटकी दो तोले, गिलोय २ तोले, पीपल दो तोले, कटेरी २ तोले, बायविडंग २ तोले, सोंठ दो तोले, आमले दो तोले,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अड्डूसा २ तोले, रास्ना दो तोले, हलदी २ तोले, खस २ तोले और निर्गुण्डी (सम्हालू) २ तोले इन सबको ६०० तोले गायके दूधमें पीस लेवे, फिर इस कल्कको ४०० तोले तिलके तेलमें मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको सिद्ध करे । इसको धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावे यह तेल सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है, तथा बल, वीर्य और अत्यन्त पुष्टिको उत्पन्न करता है । इस तेलको शरीरादिकमें मर्दन करनेसे परिश्रम और भ्रम तत्काल दूर हो जाता है, शरीरमें कान्ति उत्पन्न होती है, हड्डियोंकी पीडा दूर होती है तथा सुखपूर्वक निद्रा आती है ॥२००–२०४॥

अथ द्वितीयलाक्षादितैलम् ।

लाक्षारससमं तैलं तैलान्मस्तु चतुर्गुणम् । अश्वगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः ॥ २०५ ॥ समूर्वा रोहिणी रास्नाशताह्वा-मधुकैः समैः । सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैल-मभ्यञ्जनादिना ॥ २०६ ॥ सर्वज्वरक्षयो-न्मादश्वासापस्मारवातनुत् । यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते ॥ २०७ ॥ मस्तु दधिजलम् । कौन्ती रेणुका । चन्दनमत्र श्वेतमेव न तु रक्तम् । रोहिणी कटुका । इति लाक्षादितैलम् ।

लाखका रस एक भाग, तिलका तेल एक भाग, दहीका तोड चार भाग, असगन्ध, हलदी, देवदारु, रेणुका, कूठ, नागरमोथा, चन्दन, मूर्वा, कुटकी, रास्ना, सतावर और मुलैठी इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले लेवे, सबको मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे । इस तेलको मर्दन करनेसे सर्व प्रकारके ज्वर, क्षय, उन्माद, श्वास, अपस्मार (मृगी), वातरोग तथा यक्ष, राक्षस और भूतकी बाधा दूर होती है । यह तेल गर्भिणी स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है ॥२०५–२०७॥

अथ महालाक्षादितैलम् ।

लाक्षा हरिद्रा मञ्जिष्ठा फेनिलं मधुकं बला । लामज्जकं चन्दनं च चम्पकं नीलमुत्प-लम् ॥ २०८ ॥ प्रत्येकमेषां षण्मुष्टीः पक्त्वा तोये चतुर्गुणे । चतुर्भागावशेषे तु गर्भे चैतत्समावपेत् ॥ २०९ ॥ रेणुका पद्मकं चैव वाजिगन्धा तथैव च । वेतसं चोरकं कुष्ठं देवदारु नखं त्वचम् ॥ २१० ॥ शत-पुष्पा पुण्डरीकं मांसी मधुकमेव च । एभिरक्षमितैः कल्कैः कषायेणैव पेषितैः ॥ २११ ॥ मस्तुशुक्तारनालानामाढकांशं समावपेत् । क्षीराढकसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१२ ॥ अभ्यङ्गात्तैलमेतद्धि शीघ्रं दाहानपोहति । व्यपोहति तथा वात-पित्तश्लेष्मभवज्वरम् ॥ २१३ ॥ सप्रलापं सतृष्णं च तालुशोषभ्रमान्वितम् । ग्रहोपसृष्टा ये बाला रक्षसा दूषिताश्च ये । तेषां कष्टं प्रशमयेत्तैलं लाक्षादिकं महत् ॥ २१४ ॥ फेनिलं बदरी । लामज्जकम् उशीरवत् पीत-च्छवि तृणविशेषः । " लामज्जकं यदा न स्यादुशीरं दीयते तदा । " चम्पकमित्यस्य स्थाने कुत्रापि गैरिकमिति पाठः । नीलोत्प-लस्यालाभे तु कुमुदं देयमिष्यते । समाव-पेत्प्रक्षिपेदित्यर्थः । चोरकं ग्रन्थिपर्णस्य भेदः ' भटिउर ' इति नैपालदेशे भवति, तदलाभे ग्रन्थिपर्णं देयम् । पुण्डरीकं श्वेतकमलम् । मस्तु दधिजलम् । शुक्तं सन्धानभेदः । आरनालः सोऽपि सन्धानभेदः । इति महा-लाक्षादितैलम् ।

लाख, हलदी, भजीठ, बेर (केचिन्मते रीठा), मुलैठी, खिरैटी, लामज्जकतृण, चन्दन, चम्पा (केचिन्मते गेरू) और नीले कमल ये प्रत्येक चौबीस चौबीस तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे; फिर उसमें रेणुका, पद्माख, असगन्ध, बेत, भटेउर, कूठ, देवदारु, नख (सुगंध द्रव्य), दालचीनी, सौंफ, पुण्डेरिया (किसीके मतसे सफेद कमल), जटामांसी और मुलैठी ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर उसी क्वाथसे पीसकर मिला देवे, पश्चात् दहीका तोड, शुक्त और आरनाल प्रत्येक एक एक आढक, दूध एक आढक और तिलका तेल १६ पल, सबको मिला-कर यथाविधिसे तेलको पकावे । इस तेलको हरी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रादिकसे मर्दन करे तो शीघ्रही दाह जलन नष्ट होती है । तथा प्रलाप, तृष्णा, तालुशोष और भ्रमसहित वात, पित्त और कफज्वरको नष्ट करे है । जो बालक ग्रहसे ग्रसित हैं और जो मनुष्य राक्षसबाधासे पीडित हैं उनके कष्टको यह महालाक्षादि तैल अवश्य दूर करता है । शुक्त और आरनालके लक्षण प्रथम कह आये हैं सो देख लेना । यदि लामज्जकतृण न मिले तो उसके बदले खस लेनी, नील कमलके न मिलने पर कुमुद (कमोदिनीका फूल या बबूला) लेना चाहिये । भटेउरके अभावमें गठिवन लेना चाहिये । इसको महालाक्षादि तैल कहते हैं ॥ २०८-२१४ ॥

अथ नवज्वरे रसप्रयोगः ।

सूतो गन्धष्टंकणः शोषणश्च सर्वैस्तुल्याश्-
र्करा मत्स्यपित्तैः । भूयो भूयो मर्दयेत्तत्त्रिरात्रं
वल्लो देयः शृङ्गवेरद्रवेण ॥ २१५ ॥ तापे
शीतं व्यञ्जनैस्तक्रभक्तं वृन्ताकाढ्यं पथ्यमे-
तत्प्रदिष्टम् । अह्नैवोग्रं हन्ति सद्योज्वरं तु
पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि तोयं च दद्यात् ॥ २१६ ॥
अस्य प्रक्रिया-शुद्धपारदःभागः १, गंध-
कभागः १, सोहागाभृष्टभागः १, मरिच-
भागः १, शर्कराभागाः ४, रोहितमत्स्यपित्त-
भागाः ४, प्रतिदिनं सर्वं दिनत्रयं मर्दयेत् ।
रसमिमं रक्तिकात्रयमितम् आर्द्रकरसेन
दद्यात् । ओदनं तक्रं वृन्ताकफलं भोक्तुं
दद्यात् । व्यञ्जनाद्यैः शीतलमुपचारं कुर्यात्
अयमुदकमञ्जरीरसो नवज्वरेषु रसरत्न-
प्रदीपे उक्तः ।

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग, काली मिर्च एक भाग, भुना हुआ सुहागा एक भाग, सफेद खांड चार भाग और मछलीका पित्त चार भाग इन सबको एकत्र खरलमें डालकर तीन दिनतक बारंबार घोटे, फिर इसमेंसे दो रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रसके साथ सेवन करे, पश्चात् जो गरमी मालूम होय तो शीतल जल पिये, पंखे आदिसे हवा करे इत्यादि शीतल प्रयोग करे । तक्र (मट्ठा, छांछ) और भात तथा बैंगन इनका भोजन यह सब इसपै पथ्य है अर्थात् इनको भक्षण करे । इसको सेवन करनेसे अत्यन्त उग्र तरुण ज्वर एकही दिन जाता है, इस रसको खानेसे यदि अधि मालूम होय अथवा पित्तकी तेजी होय मस्तकपर शीतल जलकी धारा देवे यह सर्व प्र नवीन ज्वरोंमें हितकारी है । यह 'उदकम रसरत्नप्रदीपमें कहा है ॥ २१५॥२१६ ॥

अथ ज्वरधूमकेतुरसः ।

अद्यात्समं सूतसमुद्रफेनं हिंगुं सुगन्धं
मृद्य याममम् । नवज्वरे वल्लयुगं त्रिघ
द्रङ्भसाऽयं ज्वरधूमकेतुः ॥ २१७ ॥
प्रक्रिया यथा-शुद्धपारदः, शुद्धगन्
शुद्धहिंगुलः, समुद्रफेनः समभागं
याममेकम् आर्द्रकरसेन संमर्द्य रक्तिकाम
मितम् आर्द्रकरसेन दिनत्रयं नव
भक्षयेदिनत्रयान्नवज्वरो नश्येत् ।
ज्वरधूमकेतुः, रसेन्द्रचिन्तामणौ ।

शुद्ध पारा, शुद्ध समुद्रफेन, शुद्ध सिंगरफ शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेकर करे फिर एक पहरतक अदरखके रसमें खरल छः छः रत्तीकी गोलियां बना लेवे, प्रति दिन गोली अदरखके साथ सेवन करे, इस प्रकार दिनतक सेवन करनेसेही तरुण (नवीन) ज्वर न होता है । यह 'ज्वरधूमकेतुरस' रसेन्द्रचिन्तामणि ग्रन्थमें कहा है ॥ २१७ ॥

इति ज्वरधूमकेतुः ।

अथ महाज्वरांकुशो रसः ।

शुद्धसूतो विषं गन्धः प्रत्येकं शाणसम्मित
धूर्तबीजं त्रिशाणं स्यात्सर्वेभ्यो द्विगुण
भवेत् ॥ २१८ ॥ हेमाह्वा कारयेदेषां सूक्ष्म
चूर्णं प्रयत्नतः । जम्बीरबीजकैर्देयं चूर्ण
गुञ्जाद्वयोन्मितम् ॥ २१९ ॥ आर्द्रकस्य
रसेनापि ज्वरं हन्ति त्रिदोषजम् । ऐकाहिकं
द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥२२०॥
विषमं च ज्वरं हन्यान्नवं जीर्णं च सर्वथा
महाज्वरांकुशो नाम्ना रसोऽयं सर्वसम्मत
॥२२१॥ प्रक्रिया-शुद्धपारदः, शुद्धगन्धक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोंठ एक तोला, सुहागा दो तोले, काली मिर्च तोला, कौडीकी भस्म १॥ तोला और शुद्ध विष मासे लेवे, सबको एकत्र कर पीस लेवे तो हुताशन रस बनता है। इसमेंसे प्रतिदिन एक रत्ती ाण ज्वरमें खाय, इससे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २३९ ॥ २४० ॥

अथ ज्वरघ्नी वटिका।

शुद्धजैपालटंकं तु कट्टी टंकद्वयोन्मिता। गौरिकं टंकमेकं च कन्यानीरेण मर्दयेत् ॥ २४१ ॥ कलायसदृशी कार्या वटिका च भक्षयेत्। शीतलेन जलेनैव वटी जीर्णज्वरापहा ॥ २४२ ॥

शुद्ध जमालगोटा ४ मासे, कुटकी ८ मासे और गेरू ४ मासे, इन सबको खरलमें डालकर घीकुवार के रससे खरल करे और मटरकी बराबर गोली बना लेवे, इसमेंसे एक गोली प्रतिदिन भक्षण करे, यह जीर्णज्वरको नष्ट करे है ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

अथ रविसुन्दररसः।

द्विभागतालेन हतं च ताम्रं रसं च गन्धं च समीनमायुः। विषं समं च द्विगुणं च ताम्रं त्रिःसप्तवारेण दिवाकरांशौ ॥ २४३ ॥ विमर्द्य चारिष्टरसेन चूर्णं गुञ्जैकदत्तं सितया समेतम्। ज्वरांकुशोऽयं रविसुन्दराख्यो ज्वरान्निहन्त्यष्टविधान्समस्तान् ॥ २४४ ॥ अस्य प्रक्रिया। पारदटंकः १, गन्धकटंकः १, विषटंकः १, द्विगुणतालकहतताम्रटंकः २, रोहितमत्स्यकपित्तटंकः १, सर्वमेकत्र चूर्णयित्वा निम्बपत्ररसैर्भावयित्वा २१ वारानुष्णे संशोष्य रक्तिकामात्रं १ श्वेतशर्करया भक्षणीयम्। इति सर्वज्वरे रविसुन्दरो रसः।

शुद्ध पारा १ टंक, शुद्ध गंधक १ टंक, शुद्ध विष १ टंक, दुगुनी हरतालसे मारा हुआ ताँवा २ टंक और रोहूमछलीका पित्त १ टंक लेवे, सबको एकत्र नीमके पत्तोंके रसमें खरल करके २१ भावना देवे और २१ वार सूर्यकी धूपमें सुखावे, फिर इसमेंसे एक रत्ती प्रमाण लेकर मिश्रीके साथ सेवन करे तो यह ज्वरोंके लिये अंकुशरूप रविसुन्दररस आठ प्रकारके अथवा सब प्रकारके ज्वरोंको करता है ॥ २४३ ॥ २४४ ॥

अथ कज्जली।

शुद्धं सूतं तथा गन्धं खल्वे तावद्विमर्दयेत् सूतं न दृश्यते यावत्किन्तु तत्कज्जलं भवेत् ॥ २४५ ॥ एषा कज्जलिका ख्याता वृष्टिवीर्यवर्द्धिनी ॥ नानानुपानयोगेन सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ २४६ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक दोनोंको समान लेकर खरलमें तबतक मर्दन करे कि जबतक न दीखे, जब मर्दन करते करते पारा दीखना बंद हो जावे और कज्जलकी समान हो जाय तो यह कज्जली बनती है। यह कज्जली—पुष्टिकारक और वीर्यको बढानेवाली है, तथा अनेक अनुपानविशेषोंसे रोगोंको हरनेवाली है। कज्जली बनानेकी विधि गुण रसरत्नप्रदीपमें कहे हैं ॥ २४५ ॥ २४६ ॥

अथ रसपर्पटी।

जपापत्ररसेनाथ वर्द्धमानरसेन च। भृंगरसेनापि काकमाच्या रसेन च। रसं के धयेत्तेन तत्समं शोधयेद्बलिम् ॥ २४७ भृंगराजरसैः पिष्ट्वा शोषयेदर्करश्मिसप्तधा वा त्रिधा वापि पश्चाच्चूर्णं तु क ॥ २४८ ॥ चूर्णयित्वा समं तेन र मर्दयेत्। नष्टसूतं यदा चूर्णं भवेत्कज्ज भम् ॥ २४९ ॥ निर्धूमवदरांगारे द्रवी त्प्रयत्नतः। तत्र तं महिषीविष्ठास्थ कदलीदले ॥ २५० ॥ निक्षिपेत्तदुपर्यन्द दत्त्वा प्रपीडयेत्। शीतलं च ततः पमुद्धृत्य विचूर्णयेत्। एवं सिद्धा भवेद्वघातिनी रसपर्पटी ॥ २५१ ॥ ज्वरादिव्याधिभिर्व्याप्तं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः। चक कृपया युक्तः सुधावद्रसपर्पटीम् ॥ २५२ रक्तिकासम्मितां तावद्दृष्टजीरकसंयुताम् गुञ्जार्धभृष्टहिंग्वाढ्यां भक्षयेद्रसपर्पटीम् रोगानुरूपभैषज्यैरपि तां भक्षयेद्बुधः॥२५ पिबेत्तदनु पानीयं शीतलं चुलुकत्रय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्य चैकैकां रक्तिकां वर्द्धयेद्विपक्
५४ ॥ नाधिकां दशगुञ्जातो भक्षयेत्तां
न । एकादशदिनारम्भात्तां ततो
र्धयेत् ॥ २५५ ॥ एवमेतां समश्नीया-
शतिनासरान् । शिवं गुरूंस्तथा विप्रा-
येत्वा प्रणम्य च ॥ २५६ ॥ श्रद्धया
देतां क्षीरमांसरसाशनः । ज्वरं च
वापि तथातीसारमेव च ॥ २५७ ॥
पाण्डुरोगं च शूलं प्लीहं जलोदरम् ।
दोन्गदान्हत्वा हृष्टः पुष्टश्च वीर्यवान् ।
वर्षैर्वशतं साग्रंवलीपलितवर्जितः ॥२५८॥

प्रथम पारेको लेकर जवा (गुडहल अर्थात् ओड-
) के पत्तोंके रसमें, सफेद अरण्डके रसमें, भाँग-
समें और मकोयके रसमें यत्नपूर्वक शोधन करे,
उसीकी समान गन्धक लेकर भाँगरेके रसमें
कर सूर्यकी धूपमें सुखावे, इस प्रकार सात वार
वार गन्धकको शुद्ध कर लेवे, पश्चात् उस
र्णको शुद्ध किये हुए पारेके साथ खरलमें
मर्दन करे, जब मर्दन करते करते
खना बन्द हो जाय तथा कजलकी
काला हो जाय तब उसको लोहेकी कर-
के बेरकी ल...ड़ियोंके धुएँ रहित अँगारोंपै
ीको रख देवे, जब वह गरम होकर पानीकी
ली हो जाय तब भैंसके गोबरके ऊपर एक
त्ता रख देवे और शीघ्रताके साथ उसके
छीमेंसे कजलीको डाल देवे और ऊपरसे
त्ता दबाकर ढक देवे, जब शीतल हो जाय
पत्तेसे उठाकर चूर्ण कर लेवे इस प्रकार
शक रसपर्पटी सिद्ध होती है । पूर्वकालमें
जब इस जगत्को ज्वरादि रोगोंसे व्याप्त
तब कृपा करके अमृतकी समान इस रसपर्प-
ी बनाया था । इसमेंसे एक रत्ती प्रमाण लेकर एक
भुने जीरेके साथ और आधी रत्ती भुनी हींगके
भक्षण करे और यथा रोगोंमें यथा यथा अनु-
के साथ भक्षण करे, उसके ऊपर तीन चुल्लू
जल पिये, प्रतिदिन एक २ रत्ती बढाकर
रे और दश गुंजासे अधिक न बढावे, जब
दिन हो जाय तब एक २ क्रमसे घटाता
जाय घटाते २ फिर एक रत्तीक कर लेवे । इस
प्रकार बीस दिनतक सेवन करे । महादेव, गुरु और
ब्राह्मणोंकी पूजा करके तथा उनको प्रणाम करके
श्रद्धासे इसको भक्षण करे । इसपै दूध और मांस-
रस (सोरुआ) भोजन करे । इसको सेवन करनेसे
ज्वर, अतीसार, संग्रहणी, कामला, पाण्डुरोग, शूल,
प्लीहा, तिल्ली और जलोदररोग नष्ट होता है तथा रोगी
हृष्ट, पुष्ट और वीर्यवान् हो जाता है । और वह
मनुष्य १०० वर्षसे अधिक, वलीपलितसे रहित होकर
जीता है ॥ २४७–२५८ ॥

इति रसपर्पटी ।

अथ ज्वरिणोऽन्नकालनिर्णयः ।

क्षुत्सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च । काले
वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः
॥ २५९ ॥ आमे पाकं गते नृणां
यदा भोजनलालसा । भवेत्काले ह्यकाले वा
सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ २६० ॥ अथ
ज्वरपाककालान्नदानकालौ । वातिकः सप्त-
रात्रेषु दशरात्रेण पैत्तिकः । श्लैष्मिको
द्वादशाहेन ज्वरः पाकमुपैति हि ॥ २६१ ॥
ज्वरस्य पाक उपशम ज्वरपाकेनैव रसपाको
दोषपाकोऽपि कथितः । यथा दोषपाकं
विना ज्वरपाको न भवति रसपाकं विना
दोषपाकश्च न भवति । ननु यथा पैत्तिक-
ज्वरो दशाहोरात्रेण पाकं याति । एका-
दशदिनेऽन्नं दीयते । तथा श्लैष्मिको ज्वरो
द्वादशाहोरात्रेण पाकं याति । त्रयोदशे
दिवसेऽन्नं दीयते । तथा वातिको ज्वरः
सप्ताहोरात्रेण पाकं याति । अष्टमे दिवसेऽन्नं
कथं न दीयते । कथं सप्तम एव दिवसेऽन्नं
दीयते इति । उच्यते–कफपित्ते द्वे धातू
सहेते लंघनं बहु । आमक्षयाद्ऊर्द्धमपि वायुर्न
सहते क्षणम् ॥ २६२ ॥ इति वचनादामर-
सपाके जाते आहारलाभं विना वायुः क्षण-
मात्रमपि सोढुं न शक्नोति स आशुकारि-
त्वात्क्षणादाक्षेपकादीन्विकारान्सञ्जनयति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुद्धविषं, प्रत्येकटंकः १, धत्तूरबीजः टंकः ३, चोकटंकः १२, सर्वेषां चूर्णमतिसूक्ष्मं कर्तव्यम् । इतिमहाज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु शार्ङ्गधरे ।

शुद्ध पारा १ टंक, शुद्ध वत्सनाभविष १ टंक, शुद्ध गंधक १ टंक, धतूरेके बीज ३ टंक और चोख (पीले फूलवाली कटेरीकी जड) १२ टंक इन सबको एकत्र बारीक पीसकर चूर्ण कर लेवे, इसमेंसे दो रत्ती प्रमाण जम्भीरी नींबूके रसमें, अदरखके रसमें अथवा जीरेके साथ सेवन करे । इसको सेवन करनेसे त्रिदोषज्वर, ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, त्र्याहिकज्वर, चातुर्थिकज्वर, विषमज्वर, नवीन ज्वर और जीर्णज्वर इत्यादि सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं । यह महाज्वरांकुश रस सर्व वैद्योंकी सम्मतिसे बनाया गया है और शार्ङ्गधरमें कहा है॥२१८–२२१॥

अथ ज्वरघ्नी वटिका ।

एको भागो रसाच्छुद्धाच्छैलेयः पिप्पली शिवा । आकारकरभो गन्धः कटुतैलेन शोधितः ॥ २२२ ॥ फलानि चेन्द्रवारुण्याश्चतुर्भागमिता अमी । एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिन्द्रवारुणिकारसैः ॥ २२३ ॥ माषोन्मितां वटीं कृत्वा दद्यात्सद्योज्वरे बुधः । छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी वटिका मता ॥ २२४ ॥ शैलेयः छर इति लोके । शिवा हरीतकी । आकारकरभः 'अकरकरा' इति लोके । चतुर्भागमिता अमी शैलेयादयः षट् समुदिता भागचतुष्टयमिताः । इति ज्वरघ्नी वटिका शार्ङ्गधरे ।

शुद्ध पारा एक भाग, तथा भूरिछरीला, पीपल, हरड, अकरकरा, कडवे तेलसे शुद्ध किया हुआ गंधक और इन्द्रायनके फल ये सब चार चार भाग लेवे इन सबको एकत्र करके इन्द्रायनके रसमें खरल करे और उरदकी बराबर गोलियें बना लेवे, इसको गिलोयके रसके अनुपानसे नवीन ज्वरमें देवे । इसको ज्वरघ्नी वटिका कहते हैं । यह शार्ङ्गधरमें कहा है ॥ २२२–२२४ ॥

अथ द्वितीयज्वरघ्नी वटिका ।

रसं गन्धं च दरदं जैपालं क्रमवर्द्धितम् । दन्तीरसेन सम्पिष्य वटीं गुञ्जामितां कृ॥ २२५ ॥ प्रभाते सितया सार्द्धमदि शीतवारिणा । एकेन दिवसेनैव नवज्वर भवेत् ॥ २२६ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग, शुद्ध सिंगरफ तीन भाग और शुद्ध जमालगोटेके बी भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर दन्ती (जमालगोटेकी जड) के रसमें खरलकर और गुंजाकी समान गोलियें बना लेवे एक गोली प्रातःकाल सफेद चीनी और शीतल जलके साथ सेवन करे तो एकही दिनमें नवीन ज्वर नष्ट हो जाता है । यह ज्वरघ्नीवटिका रसरत्नप्रदीपमें लिखी है ॥ २२५॥ २२६ ॥

अथ नवज्वरहरी वटी ।

रसो गन्धो विषं शुण्ठी पिप्पली मरिचानि च । पथ्या विभीतकं धात्री दन्तीबीजं शोधितम् । चूर्णमेषां समांशानां द्रोणसे रसैः पुटेत् । वटीं माषनिभां कुर्याद्भक्षयेत्तने ज्वरे ॥ २२७ ॥ इति नवज्वरहरी व

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध वत्सनाभ सोंठ, पीपल, काली मिरच, हरड, बहेडा, आ और शुद्ध किये हुए जमालगोटेके बीज ये सब च भाग लेकर चूर्ण करे, पश्चात् द्रोणपुष्पी (गूम रसमें भावना देकर खरल कर फिर उरदके गोलियें बना लेवे, इनको नवीन ज्व सेवन करे ॥ २२७ ॥

अथ सर्वज्वरहरवटी ।

एकभागो रसो भागद्वयं शुद्धं च गन्धगरलस्य त्रयो भागाश्चतुर्भागा हिमाव ॥ २२८ ॥ जैपालकः पञ्चभागो निम्बुद्र विमर्दितः । कृमिघ्नप्रमिता वट्यः का सर्वज्वरच्छिदः ॥ २२९ ॥ भृङ्गवें दातव्या वटिकैका दिने दिने । जीर्णज्वरे तथाऽजीर्णे सामे वा विषमे तथा । ज्वरं सर्वं निहन्तीयं दावो वनमिवानलः ॥ २३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरुण पारा एक भाग, शुद्ध गंधक दो भाग, शुद्ध ...भ विष तीन भाग, सत्यानासी कटेरी (जिसमें दूध निकलता है, पीले फूल होते हैं और काले ...निकलते हैं) की जड चार भाग और शुद्ध ...ा पाँच भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर ...र्क रसमें खरल करे और वायविडंगकी समान ...टियें बना लेवे, प्रतिदिन एक एक गोली अदरखके ...के साथ सेवन करे। यह सर्वज्वरहरवटी सर्व ...वा ...के ज्वरोंको नष्ट करे, तथा जीर्णज्वर, अजीर्णज्वर, ...मज्वर अथवा विषमज्वरको दूर करे है। जिस प्रकार ...ावाग्नि वनको भस्म कर देती है ॥ २२८--२३० ॥

अथ सामान्यज्वरे महाज्वरांकुशरसः ।

शुद्धं सूतं विषं गन्धं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ।
त्रुटिपर्णी द्विगुणं व्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम् ॥ २३१ ॥ आर्द्रकस्य रसैः किं वा जम्बी-
रोत्थस्य रसैर्युतम् । महाज्वरांकुशो नाम्ना सर्व-
ज्वरविनाशनः ॥२३२॥ ऐकाहिकं द्व्याहिकं
त्र्याहिकं च चतुर्थकम् । विषमं वा त्रिदोषं
च ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ २३३ ॥

शुद्धपारदटंकः १, शुद्धविषटंकः १, गन्धकटंकः १, धत्तूरबीजटंकः ३, त्रिकुटा प्रत्येकटंकः ४, सर्वेषां चूर्णमतिसूक्ष्मं कार्यम् । इति महाज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु ।

...ली । पारा एक भाग, शुद्ध विष एक भाग, शुद्ध ...ता एक भाग, धतूरेके बीज तीन भाग, सोंठ चार ...छीमें काली मिर्च चार भाग और पीपल चार भाग ...त्ता सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करे, इसमेंसे ...पत्तेदिन दो रत्ती प्रमाण अदरखके रसके साथ ...शक ...भीरी नींबूके रसके साथ सेवन करे । यह ...जव ...श रस सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला ...तत्र ...ीत ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, ...बनाय...ज्वर और त्रिदोषज्वरको नष्ट करनेवाला ...भुन ...है ॥ २३१--२३३ ॥

...भक्षण ...सा

अथ श्वासकुठाररसः ।

...तं गन्धं विषं चैव टंकणं च मनःशिला ।
...तानि टंकमात्राणि मरिचं त्वष्टटंककम् ॥ २३४ ॥ कट्त्रयं टंकषट्कं खल्ले क्षिप्त्वा विचूर्णयेत् । रसः श्वासकुठारोऽयं सर्व-ज्वरहरः परः ॥ २३५ ॥ इति श्वासकुठारो रसः श्वासे सर्वज्वरे, रसरत्नाकरे ।

शुद्ध पारा एक टंक, शुद्ध गंधक एक टंक, शुद्ध वत्सनाभ विष एक टंक, सुहागा एक टंक, शुद्ध मैनसिल एक टंक, काली मिर्च ८ टंक और त्रिकुटेकी तीनों औषधि ६ टंक लेवे, सबको एकत्र करके खरल करे, यह श्वासकुठाररस सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है । यह रसरत्नाकर ग्रंथमें लिखा है ॥ २३४ ॥ २३५ ॥

अथ ज्वरांकुशः ।

दारुमूषां शिखिग्रीवां रसकं च पृथक् पृथक् । टंकत्रयानुमानेन गृहीत्वा कनकद्रवैः ॥ २३६ ॥ मर्दयेत्त्रिदिनं कार्या वटी चणकमात्रया । मरिचैरेकविंशत्या सप्तभि-स्तुलसीदलैः ॥ २३७ ॥ खादेद्वटीद्वयं पथ्यं दुग्धभक्तं सशर्करम् । तरुणं विषमं जीर्णं हन्यात्सर्वज्वरं ध्रुवम् ॥ २३८ ॥ दारुमूषा दारुमूषी । शिखिग्रीवा तुत्थम् । रसकं 'खपरिआ' इति लोके । प्रत्येकं स्यात् टंकत्रयम् ३ धत्तूरपत्रस्य रसेन मर्दयेत् । ज्वरांकुशः सर्वज्वरेषु ।

दारुमूषा (विषविशेष), शुद्ध तूतिया और शुद्ध खपरिया प्रत्येक तीन तीन टंक लेकर धतूरेके रसमें तीन दिनतक खरल करे और चनेकी बराबर गोलियें बना लेवे प्रतिदिन दो गोलियां २१ काली मिर्च और सात तुलसीके पत्तोंके साथ सेवन करे । इसपै मिश्री मिलाकर दूध और भातका भोजन करे । यह ज्वरां-कुश रस--तरुणज्वर, विषमज्वर, जीर्णज्वर और सर्व प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करे है ॥ २३६--२३८ ॥

अथ हुताशनरसः ।

नागरं कर्षमात्रं च टंकणं कर्षकद्वयम् । मरिचं सार्द्धकर्षं स्यात्तावद्गन्धवराटकम् ॥ २३९ ॥ विषं कर्षचतुर्थांशं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् । रसो हुताशनो नाम्ना खाद्यो गुञ्जामितो ज्वरे ॥ २४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतो वातिके ज्वरे पाकदिनानामन्तिमे सप्तम एव दिनेऽन्नं दीयते। ज्वराभिभूतः षडहे व्यतीते विपक्कदोषः कृतलंघनादिः। यो भेषजं खादति वैद्यवश्यो निःसंशयं हन्त्यचिरात्स रोगान्॥२६३॥ ज्वराभिभूतः वातज्वराभिभूतः विपक्कदोषः पक्कवातः। कृतलंघनादिः आदिशब्दात् कृतपक्कजलपानानिवातगृहवासगुरूष्णवसनधारणादिः भेषजमिति अन्नस्यापि उपलक्षणम्। ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नं प्रतिभोजितम्। पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम्॥२६४॥ इति। ज्वरितं वातज्वरिणम्। षडहेऽतीते इति उपलक्षणम्। पित्तज्वरिणं दशाहेऽतीते। श्लेष्मज्वरिणं द्वादशाहेऽतीते। लघ्वन्नं भोजितं ज्वरिणम्। पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्पुनः। स एव सर्वज्वरिणं दिनान्ते भोजयेल्लघु॥२६५॥ दिनान्ते, अन्तशब्दोऽत्र मध्यवाची तेन त्रिधा विभक्तस्य दिवसे मध्यभागे पित्तस्य प्राधान्यसमये। ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्द्धसंश्रयाः। वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात्॥२६६॥ ते वातपित्तश्लेष्माणः। पित्तकालोऽपि मध्याह्नादर्वाक्। यामामध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्। यामामध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः॥२६७॥ श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा। वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम्॥२६८॥ तदा पित्तप्राधान्यसमये, अन्यथा उक्तसमयादन्यथा वेगापाये जठराग्निवेगनाशे तद्भोजनं ज्वरवेगाभिवर्द्धनं भवतीत्यर्थः।

रस दोष और मलोंके पकनेपर रोगीको भूँख लगती है, वह भूँखका समय हो या न हो उसीको अन्नकाल कहते हैं अर्थात् रोगीको अन्न भोजनके लिये देनेका वही समय है। और भी कहा है "जब मनुष्योंके आम पच जाती है उत्पन्न होती है चाहे वह समय हो अथवा न हो, उसीको अन्नकाल कहते हैं अर्थात् वही भोजन देनेका समय कहा है।" इससे यह सिद्ध होता ह कि, जब ज्वर पक जाय तब अन्न देना चाहिये। वातज्वर सात रात्रिमें, पित्तज्वर दश रात्रिमें और कफज्वर बारह दिनमें पक (च) ता है, जब ज्वरका पाक होता है तब रस और दोषोंका पाक भी होता है, क्योंकि विना दोषोंका पाक हुए ज्वरका पाक नहीं होता है और विना रसका पाक हुए दोषोंका पाक नहीं होता है। शंका—पित्तज्वर दश दिनरातमें पचता है और ग्यारहवें दिन उसमें अन्न दिया जाता है, तथा कफज्वर बारह दिनरातमें पचता है और तेरहवें दिन उसमें अन्न दिया जाता है उसी प्रकार वातज्वर सात दिनमें पचता है, उसमें भी आठवें दिन अन्न देना चाहिये सो आठवें दिन अन्न क्यों नहीं देते, सातवेंही दिन क्यों अन्न देते हैं? समाधान—"कफ और पित्त ये दोनों धातु द्रवरूप अर्थात् पतले होनेके कारण बहुतसे लंघनोंको सहते हैं, परन्तु वायु तो आम पक जानेके पश्चात् क्षणभर भी लंघनको नहीं सह सक्ती।" इससे सिद्ध होता है कि—आमरसके पकनेके पश्चात् आहार न मिले तो वायु क्षणभर भी लंघनको नहीं सह सक्ती। यह शीघ्रकारी होनेके कारण विकलता आदि विकारोंको उत्पन्न कर देती है, इस कारण वातज्वरमें पचनेके अन्तदिन अर्थात् सातवेंही दिन अन्न दिया जाता है। धन्वन्तरि भी कहते हैं कि—"वातज्वरवाला मनुष्य वैद्यके कहे अनुसार लंघन, उष्णजलपान, वातरहित स्थानमें निवास, भारी और गरम वस्त्रोंका धारण इत्यादि नियमोंको पालता हुआ वातदोषके पच जानेपर छः दिनके पश्चात् सातवें दिन अन्न और औषधिको जो भक्षण करता है वह मनुष्य थोडेही कालमें रोगोंको नष्ट कर देता है।" इसी प्रकार चरक भी कहता है कि—"वातज्वरवाले मनुष्यको छः दिनके पश्चात्, पित्तज्वरवालेको दश दिनके पश्चात् और कफज्वरवालेको बारह दिनके पश्चात् हलका अन्न भोजन कराकर पाचन अथवा शमन क्वाथ पिलाना चाहिये।" और भी कहा है कि—"वैद्य सर्व ज्वरवाले रोगियोंको पाचन अथवा शमन क्वाथ पिलावे। और दिनके तीन भाग करे, उसके मध्यभागमें [illegible], भोजन,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समय दिनका मध्यभाग है ऐसा वाग्भटके कथनसे सिद्ध होता है। वाग्भट कहता है कि--" यद्यपि वात पित्त और कफ सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं तथापि अनुक्रमसे हृदयके और नाभिके नीचेके भागमें मध्य भागमें और ऊपरके भागमें विशेष करके रहते हैं और उसी प्रकार अनुक्रमसे अवस्थाके, दिनके, रात्रिके तथा भोजनके अन्तमें, मध्यमें और आदिमें प्रधानता पाई जाती है। यद्यपि पित्तकी प्रधानताका दिनका सम्पूर्ण मध्यभाग हैं, तथापि रोगीको दुपहरसे पहले ही अन्न देना चाहिये क्योंकि एक प्रहरके मध्यमें भोजन नहीं करना चाहिये। और दोपहरतक भोजन विना (भूँखा) नहीं रहना चाहिये। कारण यह है कि--पहिले प्रहरमें रसकी उत्पत्ति होती है और दूसरे प्रहरमें भोजन नहीं करनेसे बलका नाश होता है। शंका--उपरोक्त वचनसे जो यह कहा कि एक प्रहरके भीतर भोजन नहीं करना चाहिये और दुपहरका समय भोजन किये विना नहीं छोडना चाहिये इसमें क्या कारण है जो एक प्रहरके भीतर तथा दो प्रहरके बाद भोजन निषेध किया? समाधान--" दिनके मध्यभागमें कफके क्षय होनेसे अग्नि अधिकतर बढकर बलवान् हो जाती है, इस कारण जठराग्निके वेगके समयमें ही भोजन देना चाहिये। अग्निका वेग शांत होनेके पश्चात् जो भोजन दिया जावे तो वह भोजन ज्वरके वेगको बढाता है।" ऐसा शास्त्रमें कहा है, इस कारण दो पहरसे पहिले ही भोजन देना चाहिये, यह हमारा मत है ॥ २५९--२६८ ॥

अथ विषमज्वरेऽन्नदानसमयः ।

सर्वज्वरेषु सप्ताहं मात्रावल्लघु भोजयेत् । वेगापायोऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ २६९ ॥ सर्वज्वरेषु सर्वविषमज्वरेषु वेगापाये ज्वरवेगापाये भोजयेत् । अन्यथा ज्वरवेगापायं विना तद्भोजनं ज्वरवेगाभिवर्द्धनं भवति ।

चरक कहता है कि--" सर्व प्रकारके विषम ज्वरोंमें जब ज्वरका वेग शांत हो जाय तो सात दिन पर्यन्त मात्राके अनुमानसे हलका अन्न भोजन करावे और जो ज्वरके वेगके विना शांत हुएही भोजन दिया [illegible] ज्वरके वेगको बढानेवाला

अथ भोजनादिस्थाननिर्णयः ।

आहारनिर्हारविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः ॥ २७० ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंको उचित ह कि--आहार (भोजन) मलमूत्रादिका त्याग, स्त्रीसंग निर्जन (एकांत) स्थानमें करे ॥ २७० ॥

अथ ज्वरोपवेशनगुणः ।

ज्वरे प्रमेहो भवति स्वल्पैरपि विचेष्टितैः । निषण्णं भोजयेत्तस्मान्मूत्रोच्चारौ च कारयेत् ॥ २७१ ॥ निषण्णं यथास्थानस्थितमेव न तु स्थानान्तरं नीतम् ।

सुश्रुत कहता है कि " ज्वरमें अल्प चेष्टा करनेसे अर्थात् अधिकतर उठने बैठनेसे अथवा चलने फिरनेसे प्रमेह रोग उत्पन्न हो जाता है, इस कारण ज्वररोगी जहां बैठा होय वहां ही उसे भोजन करा देवे और उसी स्थानके निकट मलमूत्र त्याग करावे किन्तु भोजनादि करानेके लिये दूसरी जगह न लिवा जावे।" ॥ २७१ ॥

अथ कवलविधिगुणौ ।

यथादोषोचितैर्द्रव्यैः कर्तव्यः कवलग्रहः । अरोचकास्यवैरस्यमलपूतिप्रसेकहृत् ॥ २७२ ॥ भृष्टजीरकचूर्णेन सिन्धुजन्मयुतेन च । जिह्वादन्तामुखस्यान्तर्घृष्ट्वा कवलमाचरेत् ॥ २७३ ॥ मुखे मलं विगन्धत्वं विरसत्वं च नश्यति । मनः प्रसन्नं भवति भोजनेऽतिरुचिर्भवेत् ॥ २७४ ॥

ज्वररोगी भोजन करनेके समय यथा दोषानुसार द्रव्योंका कवलग्रह (कुल्ले) करे कि--जिससे अरुचि, मुखकी विरसता, मुखका मैल, मुखमें दुर्गन्धका आना और मुखमें बारबार पानीका भरभर आना ये सब दूर होते हैं। भुने हुए जीरेके चूर्णमें सेंधेनिमकका चूर्ण मिलाकर उससे मुखके भीतर जीभ और दांतोंको घिसकर कवल (कुल्ले) करे। कवलविधिके करनेसे मुखका मैल, दुर्गन्धता और विरसता नष्ट होती है, चित्त प्रसन्न होता है और भोजनमें अधिक

॥ २७२--२७४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ज्वरिणे हितवस्तुदातव्यता ।

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् । अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपि च ॥ २७५ ॥ अयमर्थः । यद्यपि ज्वरितस्य हिते भक्ष्येऽरुचिर्भवेत्, तथापि ज्वरितो हितमेवाश्नीयादिति नियमः । गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात्कथञ्चन । न तु तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय च ॥ २७६ ॥ आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः । तावत्कालं स लघ्वन्नमश्नीयात्सुविरिक्तवत् ॥ २७७ ॥ आनद्धः स्थिमितैर्दोषैरपक्वैर्दोषैर्व्याप्त इत्यर्थः । सातत्यात्स्वाद्वभावाच्च पथ्यं द्वेषत्वमागतम् ॥ २७८ ॥ सातत्यादेकस्यैव भक्ष्यस्य सर्वदा उपयोगात्स्वाद्वभावात् भक्ष्यान्तरादपि विस्वादुतः पथ्यमप्रियं स्यात्तथापि तदेव पथ्यम् । कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ॥ २७९ ॥ अथ ज्वरितोऽन्नकाले अश्नीयादेवेति द्वितीयो नियमः कुतः इति चेत् हि यतो हेतोः अभुञ्जानः क्षीयते पक्वदोषधातुर्भवति ततः म्रियतेऽपि च ।

ज्वररोगीको हितकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे अरुचि होय तौ भी उसको हितकारक ही पदार्थ भोजन करावे । क्योंकि सुश्रुत कहता है कि–"भारी और अभिष्यन्दकारक पदार्थ ज्वररोगीको कभी भी किसी रीतिसे भी नहीं भक्षण करने चाहिये और उसी प्रकार विना समयमें भी भोजन नहीं करना चाहिये । कारण यह है कि, अहित पदार्थोंका किया हुआ भोजन ज्वरवालेकी आयुको और सुखको नष्ट करता है । जबतक ज्वरवाला मनुष्य आमदोषोंसे व्याप्त रहे, तबतक वह अत्यन्त विरक्तकी समान थोडा और हलका अन्न भोजन करता रहे । ज्वररोगीको हितवस्तुमें जो अरुचि होती है उसका कारण यह है कि, सदैव एकही भोजनके करनेसे अथवा उसके स्वादिष्ठ न होनेसे उसमें अरुचि होती है । ज्वरमें जो पथ्य (हितकारक पदार्थ) अप्रिय भी लगे तोभी पथ्य ही वस्तु देना उत्तम है । ज्वररोगीको पथ्यभोजन अप्रिय लगे तौ उसकी अन्य कल्पना करके दूसरे प्रकारसे वही बनाकर देवे अथवा उसीके गुणोंवाली अन्य पथ्य वस्तु भोजन करावे । ज्वरवालेको भोजनके समय अवश्य भोजन करना चाहिये कारण यह है कि, भोजनके समय भोजन नहीं करनेसे ज्वरवाला क्षीण हो जाता है तथा जठराग्निके दोषोंसे और धातुओंके पाकसे मर जाता है ॥ २७५–२७९ ॥

अथ ज्वरहितकार्य्यान्नादिकम् ।

रक्तशाल्यादयः शस्ता पुराणा षष्टिकैः सह । यवाग्वोदनलाजाश्च ज्वरितानां ज्वरापहाः ॥ २८० ॥ मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान् । यूषार्थे यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ २८१ ॥ पटोलपत्रं वार्ताकं कुलकं कारवेल्लकम् । कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम् ॥ २८२ ॥ पत्रं गुडूच्याः शाकार्थे ज्वरितानां ज्वरापहम् । लावान्कपिञ्जलानेणान्हरिणान्पृषताञ्छशान् ॥ २८३ ॥ कुरङ्गान्कालपुच्छांश्च तथैव मृगमातृकान् । मांसार्थे मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ २८४ ॥ सारसक्रौञ्चशिखिनस्तथा तित्तिरकुक्कुटान् । गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति केचिदेवं व्यवस्थिताः ॥ २८५ ॥ तित्तिर इत्यत्र कृष्णतित्तिरः । ज्वरितानां प्रकोपं तु यदा याति समीरणः । तदैतेऽपि हि शस्यन्ते मात्राकालोपपादिताः ॥ २८६ ॥ निम्बुकं दाडिमं धात्रीफलमम्लं प्रकांक्षते । प्रदद्यादम्लसात्म्याय काञ्जिकं वा पुरातनम् ॥ २८७ ॥ एतेषां गुणनामानि पूर्वोक्तानि ।

ज्वरवाले मनुष्योंको यवागू, भात और खीलोंके लिये लाल शालि चावल और पुराने सांठी चावल अत्यन्त हितकारक हैं और ज्वरको नष्ट करनेवाले हैं । जिन ज्वररोगियोंको यूष सात्म्य (माफिक) है उनको यूषके लिये मूँग, मसूर, चने, कुलथी और मोठ देना चाहिये । ज्वररोगीको पटोलपत्र, बैंगन,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परवल, करेला, ककोडा, पित्तपापडा, गोजिया, कच्ची मूली और गिलोयके पत्ते इनका शाक देना चाहिये, ये ज्वरनाशक हैं । जिन ज्वरवाले मनुष्योंको मांसका भक्षण सात्म्य अर्थात् माफिक है । उनको लवा, तीतर, काला हिरन, लाल हिरन; चितकबरा हिरन, खरगोश, किंचित् लालहिरन, कालपुच्छहिरन और सम्पूर्ण जातिके हिरनोंका मांस देना चाहिये । कितनेक वैद्य कहते हैं कि—"सारस, क्रौञ्च, मोर, काला तीतर और मुरगा इनका मांस भारी और गरम होनेके कारण ज्वररोगियोंके लिये हितकारक नहीं है, परन्तु जिस ज्वररोगीको वायुका कोप होय उसको मात्रा और कालका विचारकर इनका मांस देना हितकारक है । जिन रोगियोंको खटाई खाना सात्म्य है उनको यदि खटाईकी इच्छा होय तौ नींबू, अनारदाना, आमले अथवा पुरानीं काँजी देवे । इन सब पदार्थोंके नाम और गुण पहिले द्रव्यखंडमें कह चुके हैं ॥ २८०--२८७ ॥

अथान्नसाधनविधिमण्डलक्षणे ।

तण्डुलानां सुसिद्धानां चतुर्दशगुणे जले ।
रसः सिक्थैर्विरहितो मण्ड इत्यभिधीयते ॥ २८८ ॥ शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तो दीपनः पाचनश्च सः । अन्नस्य सम्यक्सिद्धौ च ज्ञेया मण्डस्य सिद्धता ॥ २८९ ॥ पेयायूषयवागूनां विलेपीभक्तयोरपि । मण्डो ग्राही लघुः शीतो दीपनो धातुसाम्यकृत् । ज्वरघ्नस्तर्पणो बल्यः पित्तश्लेष्मश्रमापहः ॥ २९० ॥

उत्तम शालिधानके चावलोंको लेकर चौदहगुने जलमें पकावे, जब चावल भले प्रकारसे गल जायँ तब उन चावलोंको अलग कर देवे और उसको ग्रहण करे उसकी मंड (मांड) संज्ञा है । उसमें सोंठका चूर्ण और सेंधानिमक मिलाकर सेवन करे तौ अग्नि दीपन होती है और पाचनभी होता है । यहाँ चावलोंके भले प्रकार पक जानेसे ही मंडका सिद्ध होना जानना । इसी प्रकार पेया, यूष, यवागू, विलेपी और भातका भी अन्नके पक जानेसे सिद्ध हुआ जानना । मंड--ग्राही, हलका, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाला, धातुओंको सम करनेवाला, ज्वरनाशक, तृप्तिकारक, बलकर्ता तथा पित्त कफ और श्रमको नष्ट करनेवाला है ॥ २८८–२९० ॥

अथ पेयाविधिगुणौ ।

चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता ।
द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः ॥ २९१ ॥ सातिलघ्वी ग्राहिणी च धातुपुष्टिविधायिनी । तृड्ज्वरानिलदौर्बल्यकुक्षिरोगविनाशिनी ॥ २९२ ॥ स्वेदाग्निजननी ज्ञेया वातवर्चोऽनुलोमनी । शुण्ठीसैन्धवसंयुक्ता दीपनी पाचनी च सा । आमशूलहरी रुच्या स्याद्विबन्धविनाशिनी २९३॥

लाल शालि आदि चावलोंको चौदहगुने जलमें पकाकर जो अधिक पतली और थोडे चावलोंके कणोंवाली होय उसको उत्तम वैद्य पेया कहते हैं । पेया--अत्यन्त हलकी, मलको रोकनेवाली, धातुको पुष्ट करनेवाली, तथा तृषा, ज्वर, वात, दुर्बलता और कोखके रोगोंको हरनेवाली है, पसीनोंको लानेवाली, अग्निको दीपन करनेवाली, वायु और मलको अनुलोमनकारी और जो इसमें सोंठ और सेंधेनिमकका चूर्ण मिला दिया जाय तौ यह दीपन, पाचन, रुचिकारक, आमशूल और विबन्धको नष्ट करनेवाली हो जाती है ॥ २९१--२९३ ॥

अथ प्रमथ्याविधिगुणौ ।

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात् । तोयेऽष्टगुणिते तस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥ २९४ ॥ द्रव्यं पाच्यद्रव्यम् । तस्याः पलद्वयशेषायाः । गुणैः प्रमथ्या पेयावत्ततो लघ्वी विशेषतः ॥ २९५ ॥

चार तोले द्रव्यको लेकर उसको जलमें पीसकर अठगुने जलमें पकावे, जब दो पल (आठ तोले) शेष रहे तब उतार लेवे, इसको प्रमथ्या कहते हैं । प्रमथ्याके गुण पेयाकी समान हैं और विशेष करके हलकी है ॥ २९४--२९५ ॥

अथ यूषविधिगुणौ ।

अष्टादशगुणे नीरे शिम्बीधान्यभृतो रसः । विरलान्नो घनः किञ्चित्पेयातो यूष उच्यते । उक्तः स एव निर्यूहो रुचिकृच्च विशेषतः ॥ २९६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिम्बीधान्य (दो दालवाले अन्न) को अठारह गुने जलमें पकावे, जब अन्न अच्छे प्रकारसे गल जाय और पेयासे कुछ अधिक गाढा हो जाय तब उसको यूष कहते हैं। और इसीको निर्यूह भी कहते हैं। यह विशेष करके रुचिकारक है ॥ २९६ ॥

अथ यूषपरिविधिः।

कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्द्धकार्षिकी। वारिप्रस्थेन विपचेत्तद्भवो यूष उच्यते ॥ २९७ ॥ अयमर्थः। यूषधान्यं पलमितं तत्कल्कीकृतम्। शुण्ठी पिप्पली च समुदिता अर्द्धकर्षमिता कल्कीकृता। उभयमपि प्रस्थमितेन वारिणा पचेत्। तद्भवो यूषः। यूषो बल्यो लघुः पाके रुच्यः कण्ठ्यः कफापहः ॥ २९८ ॥

शिम्बीधान चार तोले लेकर जलमें पीस लेवे, फिर सोंठ और पीपल दोनों आधा कर्ष लेकर जलमें पीस लेवे, पश्चात् सबको ६४ तोले जलमें पकावे उससे जो रस प्रगट होय उसको यूष कहते हैं। यूष बलकारक, पाकमें हलका, रुचिकारक, कंठको हितकारी और कफनाशक है ॥ २९७ ॥ २९८ ॥

अथ वृन्दटीकातो मुद्गयूषविधिः।

मुद्गानां द्विपलं तोये श्रुतमर्द्धावशेषिते। पादस्थं मर्दितं पूतं दाडिमस्य पलेन तत् ॥ २९९ ॥ युक्तं सैन्धवविश्वाद्यैधान्यकैः पादिकांशिकैः। कणाजीरकयोश्चूर्णं शनैः केनावचूर्णितम्। संस्कृतो मुद्गयुषोऽयं पित्तश्लेष्महरो मतः ॥ ३०० ॥

आठ तोले मूँगको लेकर एक सौ अट्ठाईस तोले जलमें पकावे, जब जल जलकर चौथा भाग शेष रहे तब उतारकर मूँगको हाथोंसे खूब मसलकर कपडेमें छान लेवे। उसमें चार तोले अनारका रस और सेंधा निमक, सोंठ तथा धनियाँ, प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिला देवे पश्चात् किंचित् पीपल और जीरेके चूर्णसे बघार लेवे तो यह संस्कृत मूँगका यूष पित्तका नाशक है ॥ २९९ ॥ ३०० ॥

अथ मुद्गयूषगुणाः।

मुद्गानामुत्तमो यूषो दीपनः शीतलो लघुः। व्रणोर्द्ध्वजत्रुतृड्दाहकफपित्तज्वरान्नजित् ३०१

मूँगका यूष--दीपन (जठराग्निको बढानेवाला), शीतल, हलका, तथा व्रण (घाव), ऊर्ध्वजत्रुरोग, तृषा, दाह, कफ, पित्तज्वर और रुधिरके विकारोंको नष्ट करता एवं सब यूषोंमें उत्तम है ॥ ३०१ ॥

अथ मुद्गामलकयूषगुणाः।

मुद्गामलकयूषस्तु भेदी पित्तानिलापहः। तृड्दाहशमनः शीतो मूर्च्छाश्रममदापहः ३०२ ॥

मूँग और आमलोंका यूष--भेदक (दस्तावर), पित्त और वातनाशक, तृषा और दाहको शमन करनेवाला, शीतल तथा मूर्च्छा, श्रम और मदको दूर करे है ॥ ३०२ ॥

अथ मसूरयूषगुणाः।

मसूरयूषः संग्राही वृंही स्वादुः प्रमेहनुत् ३०३

मसूरका यूष--मलरोधक, पुष्टिकारक, स्वादिष्ट और प्रमेहको हरनेवाला है ॥ ३०३ ॥

अथ यवागूविधिगुणौ।

यवागूः षड्गुणे तोये संसिद्धा घनसिक्थका। पृथग्द्रवैस्तु विरलैः संयुक्ता ज्वरिणे हिता ॥ ३०४ ॥ यवागूर्दीपनी लघ्वी तृष्णाघ्नी वस्तिशोधिनी। श्रमग्लानिहरी पथ्या ज्वरे चैवातिसारके ॥ ३०५ ॥

धानोंको छःगुने जलमें पकावे, जब अन्न गल जाय और खूब गाढी हो जाय, परन्तु अलग अलग रहे और जल थोडा रहे उसको यवागू कहते हैं। यवागू--ज्वररोगीको अत्यंत हितकारी है, अग्निको दीपन करनेवाली, हलकी, तृषानाशक, वस्तिशोधक, श्रम और ग्लानिको हरनेवाली, ज्वर और अतीसारमें पथ्य है ॥ ३०४-३०५ ॥

अथ विलेपीविधिगुणौ।

चतुर्गुणाम्बुसंसिद्धा विलेपी घनसिक्थका। पृथग्द्रवेण रहिता ख्याता शिथिलभक्तिका ॥ ३०६ ॥ संसिद्धा अतीव सिद्धा। विलेपी 'गिलहथी' इति लोके। विलेपी दीपनी बल्या हृद्या संग्राहिणी लघुः। व्रणाक्षिरोगिणां पथ्या तर्पणी तृड्ज्वरापहा ॥ ३०७ ॥

शालि चावलोंको चौगुने जलमें पकावे, जब चावल गल जायँ परन्तु अलग अलग होयँ और जलसे रहित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होयँ तब उसको विलेपी कहते हैं। विलेपी अग्निको दीपन करनेवाली, बलकारक, हृदयको हितकारी, मलरोधक, हलकी, व्रण और नेत्ररोगियोंको पथ्य (हित), तृप्तिकारक, तृषा और ज्वरको दूर करे है॥ ३०६--३०७॥

अथ भक्तविधिगुणौ।

जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम्। विपचेत्स्रावयेन्मण्डं तद्भक्तं मधुरं लघु ॥ ३०८ ॥ चक्रदत्तस्तु-अन्नं पञ्चगुणे तोये यवागूं षड्गुणे पचेत्। तत्र अन्नं भक्तम्। तथा च-"भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री स दीदिविः।" इत्यमरः। भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं मूत्रलं लघु। सुधौतं प्रभृतं चोष्णं विशदं गुणवत्तरम् ॥ ३०९ ॥ अधौतमप्रभृतं शीतं वृष्यं गुरु कफप्रदम्। अत्युष्णं बलहृद्भक्तं शीतं शुष्कं च दुर्जरम्। अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं दुर्जरं तण्डुलान्वितम् ॥ ३१० ॥ अतिक्लिन्नं सजलं यत्पर्युषितम्। भृष्टतण्डुलजं रुच्यं सुगन्धि कफहृल्लघु। वातास्थापितमन्दाग्निविरिक्तानां प्रशस्यते ॥ ३११ ॥

सोलह तोले चावलोंको चौदह गुने जलमें पकावे, जब चावल अच्छे प्रकारसे गल जाँय तब मांडको पसाकर अलग कर देवे, उसको भक्त (भात) कहते हैं। भात मधुर और हलका है। चक्रदत्त तो यह कहता है कि-"जो पाँच गुने जलमें पकाया जावे उसको अन्न (भात) कहते हैं और जो छः गुने जलमें सिद्ध किया जाय उसको यवागू कहते हैं। अन्न शब्दका अर्थ यहां भात है क्योंकि "भिस्सा, भक्त, अन्धस्, अन्न, ओदन और दीदिवि" ये भातके नाम अमरकोशमें कहे हैं। भात-अग्निको दीपन करनेवाला, पथ्य, तृप्तिकारक, मूत्रको लानेवाला और हलका है। उत्तम रीतिसे धुला हुआ, पसाया हुआ और गरम भात विशद (स्वच्छ) तथा अधिक गुणोंवाला है। नहीं धोया हुआ, नहीं पसाया हुआ और शीतल भात-वीर्यजनक, भारी और कफकारी है। अत्यन्त गरम भात-बलको हरनेवाला है। शीतल और सुखाया हुआ भात अत्यंत कठिनतासे पचनेवाला है। बहुत जलवाला बासी भात-ग्लानिकारक है। जिसमें चावल अच्छे प्रकारसे न गले होयँ ऐसा भात दुर्जर अर्थात् बहुत कालमें कठिनतासे जीर्ण (पाचन) होता है। भुने हुए चावलोंका भात-रुचिकारक, सुगन्धियुक्त, कफनाशक, हलका तथा वातरोगी, निरूहवस्तियुक्त, मन्दाग्निवाले और जिन्होंने विरेचन (जुलाब) लिया है उन मनुष्योंको अत्यंत हितकारी है ॥ ३०८-३११ ॥

अथ रसौदनविधिः।

मांसलं सक्थिजं मांसं तथाऽनास्थि च तैत्तिरम्। चतुष्पलोन्मितं सूक्ष्मं कल्पितं क्षालितं जले ॥ ३१२ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलं शुण्ठीजीरकधान्यकैः। द्विशाणैः संयुते तोये काथ्यमर्द्धाढकोन्मिते ॥ ३१३ ॥ पादस्थितं जलं तत्र दर्व्याः संकुट्टिताद्धरेत्। तं रसं मर्दितं हिंगुभृष्टसैन्धवजीरकैः। युक्तं प्रधूपितं पथ्यं शुद्धानां शुद्धिकांक्षिणाम्॥ ३१४॥

पुष्ट जीवकी जांघका मांस तथा हड्डीरहित तीतरका मांस १६ सोलह तोले लेकर उसके महीन महीन टुकडे करके जलसे धो लेवे, पश्चात् पीपल, पीपलामूल, सोंठ, जीरा और धनियां ये प्रत्येक आठ मासे लेवे, फिर सबको मिलाकर एक सौ अढाईस तोले जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब मांसको खूब करछीसे कूटकर हाथोंसे मलकर रस निकाल लेवे। पश्चात् हींग, सेंधानिमक और भुने जीरेसे बघारकर भातमें मिला देवे, इसको रसौदन कहते हैं। यह रसौदन वमन विरेचनादि शुद्ध हुए मनुष्योंके लिये और जो शुद्ध होनेकी इच्छा करते हैं उनके लिये पथ्य है ॥ ३१२-३१४ ॥

अथ रसौदनगुणाः।

रसौदनो गुरुर्वृष्यो बल्यो वातज्वरापहः ३१५

रसौदन-भारी, मैथुनशक्तिको बढानेवाला, बलकारक और वातज्वरको हरनेवाला है ॥ ३१५ ॥

अथ मण्डादिपदार्थप्रक्रिया।

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपलेऽम्बुनि। तत्काथेनार्द्धशिष्टेन मण्डपेयादि साधयेत् ॥ ३१६ ॥ वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं ग्राहयन्त्याढकेऽम्भसि। भेषजस्यातिबाहुल्यात्कदा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिदरुचिर्भवेत् ॥ ३१७ ॥ यैरन्नैरौषधैर्यैश्च कृता मण्डादयो बुधैः। विचार्य यद्गुणानेतांस्तद्गुणानेव निर्दिशेत् ॥ ३१८ ॥

ये केवल जलसे मण्ड आदि पदार्थोंको सिद्ध करनेकी विधि कही। अब औषधियोंसे सिद्ध करनेकी विधि कहते हैं। १६ तोले औषधि लेकर दो सौ छप्पन तोले जलमें पकावें, जब आधा जल शेष रहे तब उस क्काथसे मण्ड और पेयादिकको सिद्ध करे। परन्तु वृद्ध वैद्य तौ दो सौ छप्पन तोले जलमें केवल चार तोले औषधि डालते हैं, कारण यह है कि—औषधिके अधिक होनेसे रोगीके अरुचि होनेकी सम्भावना है। जिन अन्न और औषधियोंसे मंडादिक बनाये जावे, उन्ही अन्न और औषधिके अनुसार विचारकर गुण कहे ॥ ३१६–३१८ ॥

औषधसिद्धपेयागुणाः।

अन्नकाले हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता। दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्तानां ज्वरापहा ॥ ३१९ ॥

उन्हीं २ यथादोषानुसार पाचन औषधियोंसे सिद्ध की हुई पेया भोजनके समयमें देनेसे हितकारी होती है, अग्निको दीपन करती है, पाचन है, हलकी और ज्वरकी पीडाको हरनेवाली है ॥ ३१९ ॥

अथ वातज्वरादिपेयासाधनौषधविधानम्।

पञ्चमूल्याः कषायं तु पाचनं वातिकज्वरे। सक्षौद्रं पैत्तिके मुस्तकटुकेन्द्रयवैः कृतम् ॥ ३२० ॥ पिप्पल्यादिकषायं तु पाचनं कफजे ज्वरे। लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया ॥ ३२१ ॥ महत्या पञ्चमूल्याथ व्याघ्रीदुःस्पर्शगोक्षुरैः। सिद्धानि भिषगन्नानि प्रयुञ्जीत यथाक्रमम्। वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफवाते त्रिदोषजे ॥ ३२२ ॥ अयमर्थः—वातपित्ते लघुना पञ्चमूलेन सिद्धानि अन्नानि भिषक् प्रयुञ्जीत। शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी कण्टकारीद्वयं तथा। गोक्षुरः पञ्चमः प्रोक्तः पञ्चमूलमिदं लघु ॥ ३२३ ॥ श्लेष्मपित्ते पिप्पल्या सह धान्यया। कफवाते महत्या पञ्चमूल्या। श्रीफलः सर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका। श्योनाकः पञ्चमः प्रोक्तं पञ्चमूलमिदं महत् ॥ ३२४ ॥ त्रिदोषजे व्याघ्रीदुःस्पर्शगोक्षुरैः। व्याघ्री कण्टकारिका। दुःस्पर्शः यवासः।

जैसे वातज्वरमें पंचमूलका क्काथ पाचन है, पित्तज्वरमें नागरमोथा, कुटकी और इन्द्रजौका क्काथ पाचन है और कफज्वरमें पिप्पल्यादि क्काथ पाचन है इस प्रकार जैसा दोष होय उसी दोषको पचानेवाली औषधियोंके क्काथसे पेया करनी चाहिये। वातपित्तज्वरमें लघुपंचमूलके क्काथसे, कफपित्तज्वरमें पीपल और धनियेंके क्काथसे, कफवातज्वरमें बृहत्पञ्चमूलके क्काथसे और त्रिदोषज्वरमें कटेरी, जवासा और गोखरू इनके क्काथसे सिद्ध किया हुआ अन्न (विशेषकरके पेया) देना चाहिये। शालिपर्णी (सलवन), पृश्निपर्णी (पिठवन) कटेरी, बडी कटेरी और गोखरू इनको पंचमूली अथवा लघु पंचमूल कहते हैं। बेल, कुम्भेर (खँभारी), पाटल, अरनी (अगेथू) और श्योनाक (सवन) इनको बृहत्पंचमूल कहते हैं ॥ ३२०–३२४ ॥

पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्वशिरोरुजि। श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ ३२५ ॥ विबद्धवर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः श्रृताम्। सर्पिष्मतीं पिबेत्पेयां ज्वरी दोषानुलोमनीम् ॥ ३२६ ॥ कासी श्वासी च हिक्की च पञ्चमूलीश्रृतां पिबेत् ॥ ३२७ ॥ यवोऽत्र अन्नम्। अत्र पञ्चमूली बृहती लघ्वी च हिता, तया श्रृतां पेयां पिबेदित्यर्थः। पेया भेषजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनी। वातमूत्रपुरीषाणां दोषाणां चानुलोमिका ॥ ३२८ ॥ स्वेदनाय च सोष्णत्वाद् द्रवत्वात्तृट्क्षयाय च। आहारभावात्प्राणाय सरत्वाल्लाघवाय च। ज्वरघ्नी हेतुसाम्यत्वात्तस्मात्तां पूर्वमाचरेत् ॥ ३२९ ॥ हेतुसाम्यत्वाच्छेतवः वातपित्तकफास्तेषां साम्यत्वात्।

ज्वरमें यदि मूत्राशय, पसली और शिरमें पीडा होय तौ गोखरू और कटेरीके क्काथसे सिद्ध की हुइ ज्वरको हरनेवाली लाल शालिचावलोंकी पेया पीनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिये । ज्वरमें मलका अवरोध हो गया होय तौ पीपल और आमलोंके क्वाथसे पकाई हुई पेयामें घृत डालकर पीवे इससे दोष योग्य मार्गसे प्रवर्तने लगते हैं । ज्वरमें खाँसी, श्वास और हिचकी होय तौ लघुपंचमूल अथवा बृहत्पंचमूलके क्वाथसे सिद्ध की हुई लाल शालि चावलोंकी पेया पिये । पेया--औषधियोंके संयोग होनेसे और हलकी होनेसे अग्निको दीपन करती है, तथा वायु, मूत्र, विष्ठा और दोषोंको यथा मार्गमें प्रवर्तांती है । पेया उष्ण होनेके कारण पसीनेको लाती है, पतली होनेसे तृषाको दूर करे है, आहाररूप होनेके कारण तृप्तिकारक है, सारक (दस्तावर) होनेके कारण हलकी है और वात, पित्त, एवं कफको साम्य करनेके हेतु पेया ज्वरनाशक है । इस कारण ज्वरमें प्रथम पेयाका उपयोग करना चाहिये ॥ ३२५--३२९ ॥

अथ पंचमुष्टिकयूषः ।

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकशुण्ठयोः । एकैकमुष्टिमादाय पचेदष्टगुणे जले ॥ ३३० ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः । शूले प्रशस्यते गुल्मे कासे श्वासे क्षये ज्वरे ॥ ३३१ ॥

जौ, बेर, कुलथी, मूँग, मूलीकी डंडी प्रत्येक चार चार तोले लेकर अठगुने जलमें पकावे तौ पंचमुष्टिक यूष सिद्ध होता है । यह पंचमुष्टिक यूष वात, पित्त और कफनाशक है, तथा शूल, गुल्म (वायगोला), खांसी, श्वास, क्षय और ज्वरमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥

अथ वर्तिप्रयोगः ।

रुद्धमूत्रपुरीषस्य गुदे वर्तिं निधापयेत् । पिप्पलीपिप्पलामूलयवानीचव्यसाधिताम् । पाययेत्तु यवागूं वा मारुताद्यनुलोमिनीम् ॥ ३३२ ॥

ज्वरमें यदि विष्ठा और मूत्र रुक गया होय तौ पीपल, पीपलामूल, अजवायन और चव्य इनसे सिद्ध की हुई वर्ति (बत्ती) गुदामें चढावे, अथवा वातादिदोषोंको यथामार्गमें स्थित करनेवाली यवागू पिलावे ॥ ३३२ ॥

अथ पेययवाग्वपवादः ।

मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफोत्थिते । ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूर्न हिता ज्वरे ॥ ३३३ ॥ दाहच्छर्यर्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम् । घर्मार्तं मद्यपं चापि तोयालोडितसक्तुकम् ॥ ३३४ ॥ शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् । ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तमन्नं हितं क्वचित् ॥ ३३५ ॥ लाजतर्पणं लाजसक्तुरूपं तर्पणम् ।

पित्त कफसे उत्पन्न हुए ज्वरमें यदि मदात्यय रोग होय अथवा रोगी नित्य मद्य पीता हो, वा ऊर्ध्वगत रक्तपित्त सहित हो तौ उसको यवागू नहीं देनी चाहिये, इसी प्रकार ग्रीष्मऋतुमें भी यवागू पीना हितकारक नहीं है । दाह (जलन) और वमन (रद्द) से पीडित, दुर्बल, निराहार, तृषासे व्याकुल, गरमीसे पीडित और निरंतर मदिराको पीनेवाला ऐसे ज्वररोगीको पेया अथवा यवागू नहीं देनी चाहिये, किन्तु खीलोंके सत्तूको जलमें घोलकर उसमें मिश्री और सहत मिलाकर तर्पणरूप पीनेको देवे और किसी समय ज्वरनाशक फलोंके रससे संयुक्त अन्न भी देना चाहिये ॥ ३३३--३३५ ॥

अथ सन्तर्पणस्वरूपम् ।

द्राक्षादाडिमखर्ज्जूरमृदिताम्बुसशर्करम् । लाजचूर्णं समध्वाज्यं सन्तर्पणमुदाहृतम् ॥ ३३६ ॥ लाजचूर्णं द्राक्षादिजलशर्करामध्वाज्यसहितं तर्पणम् उक्तमित्यर्थः ।

खीलोंके सत्तू, दाख, अनार और खजूर इनको जलमें घोलकर उसमें मिश्री, सहत और घी डालकर ज्वरवाला मनुष्य पिये, इसको सन्तर्पण कहते हैं ॥ ३३६ ॥

अथ लाजसक्तुगुणाः ।

लाजानां सक्तवः क्षौद्रसितायुक्तां विशेषतः । छर्द्यतीसारतृड्दाहविषमूर्च्छाज्वरापहाः ॥ ३३७ ॥

खीलोंके सत्तुओंमें सहत और मिश्री मिलाकर पिये तो विशेष करके वमन, अतीसार, तृषा, दाह, विष, मूर्च्छा और ज्वरका नाश होता है ॥ ३३७ ॥

अथ चरकोक्ततर्पणप्रकारः ।

तत्र तर्पणमेवादौ प्रदेयं लाजसक्तुभिः । ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करम् ॥ ३३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ज्वरघ्नफलान्याह चरकः। द्राक्षादाडिमखर्जूरप्रियालैः सपरूषकैः। तर्पणार्हस्य दातव्यं तर्पणं ज्वरनाशनम् ॥ ३३९ ॥ प्रियालमत्र पक्वफलं न तन्मज्जा गुरुत्वात्। तर्पणास्य दाहच्छर्दितृषार्तस्य। लंघितस्य क्षीणस्येत्यर्थः।

ज्वरनाशक फलोंके रसयुक्त, सहत और चीनी-मिश्रित सत्तुओंका प्रथम तर्पण देवे। वे ज्वरनाशक फल कौन कौनसे हैं, उनको चरकने इस प्रकार कहा है। दाहसे, वमनसे तथा तृषासे पीडित और लंघनोंमें क्षीण हुए ज्वरवाले मनुष्यको दाख, अनार, खजूर, चिरौंजीका पक्का फल और फालसे इनके रसोंसे संयुक्त तर्पण देनेसे ज्वरका नाश होता है ॥३३८ ॥ ३३९॥

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः ॥ ३४० ॥ रसोऽत्र मांसस्य रसः तेन सिक्त ओदनो रसौदनः। "अन्नेन व्यञ्जनम्" इत्यनेन समासः। मुद्गयूषोदनश्चैव हितः कफसमुत्थिते। स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ॥ ३४१ ॥ स एव मुद्गयूषौदन एव। कृशोऽल्पदोषो यः क्षीणकफो जीर्णज्वरान्वितः। विबन्धासृष्टदोषश्च रूक्षपित्तानिलज्वरी। पिपासातः सदाहश्च पयसा स सुखी भवेत् ॥ ३४२ ॥ अजादुग्धं गुडोपेतं पातव्यं ज्वरशान्तये। तदेव तु पयः पीतं तरुणे हन्ति मानवम् ॥ ३४३ ॥ तरुणे ज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम्। तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ ३४४ ॥

श्रम, उपवास और वायुसे उत्पन्न हुए ज्वरमें सदैव रसौदन हितकारी है। रस अर्थात् मांसके रससे भीजा हुआ जो ओदन अर्थात् भात है उसको रसौदन कहते हैं। कफसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मूँगके यूषसे भीजा हुआ भात हितकारी है और पित्तज्वरमें मूँगके यूषके साथ मिश्री मिला हुआ भात शीतल होनेके कारण हितकारी है। जो मनुष्य दुर्बल, अल्पदोषवाले, क्षीणकफवाले, जीर्णज्वरयुक्त, जिसके मलबन्ध होनेके कारण दोष अनुलोमन नहीं होते, रूक्ष, पित्त और वातज्वरवाले, तृषा और दाहसे पीडित हैं उनको दूध पीनेसे सुख होता है अर्थात् उपरोक्त मनुष्योंके लिये दूधका सेवन अत्यन्त हितकारी है। बकरीके दूधमें गुड मिलाकर सेवन करनेसे ज्वर शांत होता है और जो तरुणज्वरमें दूध पिया जावे तो मनुष्यको मार देता है। अन्यत्र भी लिखा है कि, जीर्णज्वर और कफके क्षीण होनेपर अमृतकी समान गुण करता है और जो वही दूध तरुण (नवीन) ज्वरमें पिया जावे तो विषकी समान मनुष्यको मार देता है ॥ ३४०–३४४ ॥

अथ ज्वररोगिनियमाः।

न द्विरद्यान्न पूर्वाह्णे नाभिष्यन्दि कदाचन। न तीक्ष्णं न गुरुप्रायं भुञ्जीत तरुणज्वरी ॥ ३४५ ॥ न जातु तर्पयेत्प्राज्ञः सहसा ज्वरकर्शितम्। तेन संशमितोऽप्यस्य पुनरेव भवेज्ज्वरः ॥ ३४६ ॥

ज्वरवाले रोगीको दो वार भोजन नहीं करना चाहिये। पूर्वाह्णके समय भी नहीं भोजन करना चाहिये। अभिष्यन्दि, तीक्ष्ण और अधिक भारी अन्न भी ज्वरवालेको नहीं खाने चाहिये। ज्वरसे कर्शित हुए मनुष्यको कदापि एक साथ तर्पण नहीं देना चाहिये, कारण यह है कि, तर्पणसे शांत हुआ भी ज्वर फिर आ जाता है ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥

ज्वरमुक्तिपूर्वलक्षणम्।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पो विड्भिदसंज्ञता। कूजनं चातिवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ३४७ ॥ विड्भिद् मलप्रवृत्तिः अत्र सम्पदादित्वात् भावे क्विप्। कूजनं कुन्थनम्। अतिवैगन्ध्यं गात्रस्य। ज्वरमुक्तौ भविष्यंत्यामेतल्लक्षणं भवति। ननु दोषक्षयं विना न व्याधिनिवृत्तिः क्षीणाश्च दोषाः कथमेवंविधं रूपं करिष्यन्ति? उच्यते–कश्चित्क्षीणोऽपि विनाशकाले स्वशक्तिं दर्शयति। यथा निर्वाणावस्थायां दीपो विशेषात्प्रज्वलति। वाग्भटोऽप्याह–धातून्प्रक्षोभयन्दोषो मोक्षकाले विलीयते। ततो नरः श्वसन्कूजन्वमन्स्विद्यन्न चेष्टते ॥ ३४८ ॥ त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदन्तवेगे च धातुगे। लक्षणं मोक्ष-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काले स्यादन्यस्मिन्स्वेददर्शनम् ॥ ३४९ ॥ पूर्वोक्तमेतद्दाहादिलक्षणं मोक्षकाले एतेषु एव ज्वरेषु स्यात् । केषु त्रिदोषजेषु अन्तर्वेगे धातुगे ज्वरे अन्यस्मिन्स्वेदमात्रदर्शनं भवति ।

दाह, पसीना, भ्रम, तृषा, कम्प, दस्तोंका होना, संज्ञाहीनता, कूँजना और शरीरमें अत्यन्त दुर्गन्धता आना ये ज्वरके मोक्ष होनेके पूर्वलक्षण हैं अर्थात् जब ज्वर छुटनेको होता है तो यह सब लक्षण होते हैं । शंका—दोषोंके क्षय हुए विना रोगकी निवृत्ति नहीं होती, फिर किस कारण रोगकी निवृत्तिके समयमें क्षीण हुए दोष दाहादि दारुण विकारोंको करते हैं ? समाधान—कोई क्षीण हुआ भी अपने विनाशके समय अपनी विशेषशक्ति दिखाता है, जैसे कि, दीपक निर्वाण (बुझने) के समय अत्यंत प्रज्वलित होता है । वाग्भट भी कहाता है कि—" दोषमुक्त होनेके समय धातुओंको क्षोभित करके नाशको प्राप्त होते हैं, इसी कारण रोगी श्वास लेता है, कूँजता है, वमन करता है, पसीनेयुक्त और चेष्टारहित हो जाता है । " यह उपरोक्त दाहादि लक्षण त्रिदोषज्वर अन्तर्वेगीज्वर और धातुगतज्वरके मोक्षके समय होते हैं और अन्य ज्वरोंमें तो मोक्षके समय केवल पसीना ही आता है ॥ ३४७–३४९ ॥

अथ ज्वरमुक्तिलक्षणम् ।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् । स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ ३५० ॥ सुश्रुतोऽप्याह—स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च । क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ३५१ ॥

शरीरका हलका होना, ग्लानि, मोह (बेहोशी), और संतापका नष्ट होना, मुखका पकना अर्थात् मुखमें छाले पड जाना, इन्द्रियें अपने २ कार्य करनेको समर्थ होयँ, व्यथा (पीडा) का नाश, पसीने और छींकका आना, मनका स्वाभाविक स्थितिमें स्थित होना, अन्नमें अभिलाषाका उत्पन्न होना और शिरमें खुजलीका होना ये ज्वरमुक्तिके लक्षण जानने । सुश्रुत भी कहता है कि—" देहमें पसीनोंका आना, हलका होना, शिरमें खुजलीका चलना, मुखका पकना, छींकका आना और अन्नमें इच्छाका होना ये ज्वरमुक्तिके लक्षण हैं । " ॥ ३५०॥३५१ ॥

अथज्वरमुक्तपालनीयनियमाः ।

व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान्भवेत् ॥ ३५२ ॥ व्यायामं च व्यवायं च प्रवातं शिशिरं जलम् । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान्भवेत् ॥ ३५३ ॥ जन्तोर्ज्वरविमुक्तस्य स्नानं कुर्यात्पुनर्ज्वरम् । तस्माज्ज्वरविमुक्तोऽपि स्नानं विषमिव त्यजेत् ॥ ३५४ ॥ बलवर्णाग्निवपुषां यावन्न प्रकृतिर्भवेत् । तावज्ज्वरेण मुक्तोऽपि वर्जनीयानि वर्जयेत् ॥ ३५५ ॥

ज्वरके मुक्त होनेपर भी जबतक शरीरमें बल न आवे तबतक परिश्रम, स्त्रीप्रसंग, स्नान, चलना फिरना इत्यादि न करने चाहिये और भी कहा है कि, ज्वरके मुक्त होनेपर भी जबतक बलवान् न होय तबतक परिश्रम, मैथुन, पवनका सेवन और शीतल जल इनको नहीं सेवन करे । ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य यदि स्नान कर लेवे तो फिर ज्वर उत्पन्न हो जाता है, इस कारण ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य स्नानको भी विषकी समान समझकर त्याग देवे । जबतक बल, वर्ण, अग्नि और देह ये पहिलेकी समान प्रकृतिके अनुसार न होयँ, तबतक ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य भी त्यागने योग्य वस्तु त्याग देवे॥ ३५२–३५५॥

अथ वातज्वराधिकारः ।

वातलाहारचेष्टाभ्यां वायुरामाशयाश्रयः । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरकृत्स्याद्रसानुगः ॥ ३५६ ॥ तस्य पूर्वरूपमुक्तम् ।

वातकारक आहार और विहारके करनेसे वायु आमाशयमें प्राप्त होकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करता है ॥ ३५६ ॥

वातज्वरपूर्वरूपम् ।

जृम्भात्यर्थं समीरणादिति । समीरणज्वरे उत्पत्स्यति अत्यर्थं जृम्भा स्यात् । जृम्भा च श्रमादिपूर्विका भवति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब वातज्वर उत्पन्न होनेको होता है उससे कुछेक पहिले प्रथम श्रमादि उत्पन्न होकर फिर जम्भाई अधिक आती है।

वातज्वरलक्षणम्।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठमुखशोषणम्। निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ३५७ ॥ शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं बद्धविट्कता। शूलाध्माने जृम्भणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ ३५८ ॥ एतानि लक्षणानि प्रायोभावित्वेन सुश्रुते निर्दिष्टानि। चकारादन्यान्यपि चरकनिदानोक्तानि बोद्धव्यानि। तान्येव श्लोकेन प्रदर्शयति—भवन्ति विविधा वातवेदनाः स्यादसुप्तता। पिण्डिकोद्वेष्टनं कर्णस्वनो वक्त्रकषायता ॥३५९॥ गात्रसादो हनुस्तम्भो विश्लेषः सन्धिजानुनोः। शुष्ककासो वमिर्लोमदन्तहर्षः श्रमभ्रमौ। अरुण मूत्रनेत्रादि तृट्प्रलापोष्णगात्रताः ॥ ३६० ॥ विषमो वेगः, शरीरोष्णतादिरूपो ज्वरवेगो विषमो भवतीत्यर्थः। क्षवस्तम्भः छिक्काया अभावः। तथा च वाग्भटः—हर्षो रोमाङ्गदन्तेषु वेपथुः क्षवथोर्ग्रहः ॥ ३६१ ॥ चरकोऽपि—क्षयथूद्गारविनिग्रह इति। शिरोहृद्गात्ररुक्, अत्र गात्रपदे प्रयुक्ते शिरोहृच्छब्दप्रयोगः तत्र तत्र विशेषेण वेदनाबोधनार्थः।

शरीर काँपे, ज्वरका विषम वेग हो, कंठ, होठ और मुख सूखे, निद्राका न आना, छींकका रुकना, देहमें रूखापन, शिर, हृदय और शरीरमें पीडा, मुखमें विरसता, मलका बँध जाना, शूल और अफरा होवे और जम्भाई अधिक आवें, वातज्वरमें ये लक्षण विशेष करके होते हैं ऐसा सुश्रुत कहता है। चरकके निदानमें इसके सिवाय अन्य लक्षण भी कहे हैं वे ये हैं कि—निद्रा न आवे, पिंडरियोंमें हडफूटन हो, कानोंमें शब्द हो, मुख कसैला हो जाय, अंगोंमें पीडा होय, ठोडी जकड जाय, संधि और घुटनोंमें फटने सरीखी पीडा होय, सूखी खाँसी आवे, वमन हो, रोमांच हो आवे, दन्तहर्ष हो, श्रम और भ्रम हो, मूत्र और नेत्रादि लाल हो जायँ, तृषा (प्यास) लगे, प्रलाप (वृथा बकवाद) हो और सब शरीर गरम हो जाता है। इसी प्रकार वाग्भटमें भी कहा है कि—"वातज्वरमें रोमांच खडे हो जाते हैं, दाँत खट्टे हो जाते हैं, कंप होता है और छींक नहीं आती है।" चरक भी कहता है कि—वातज्वरमें छींक और डकार रुक जाती है।" ॥ ३५७–३६१ ॥

अथ वातज्वरचिकित्सा।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्पिधापयन्। विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥ ३६२ ॥ इति वचनात्सामान्यतो ज्वरितगात्रस्य यावदारोग्यदर्शनं लंघनविधानम्। वातज्वरिणो लंघनविधाने विशेषमाह चरकः—ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नं प्रतिभोजितम्। पाचनं शामनीयं च कषायं पाययेद्भिषक् ॥ ३६३ ॥ सुश्रुतोऽप्याह—वातिके सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिके। श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ ३६४ ॥ ननु "अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः" इति श्रुतिः, तदन्नं विना प्राणिभिः कथं स्थातव्यमित्याह—दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता। न हि दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनं महत् ॥ ३६५ ॥ कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहु। आमक्षयादूर्ध्वमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ३६६ ॥

वातादि दोष दुष्ट होकर आमाशयमें जाकर अग्निको आच्छादित (ढक) करके अन्न आदि अपक्करसके साथ मिलकर शरीरके स्रोतों (छिद्रों) को ढककर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, इस कारण ज्वरमें लंघन कराने चाहिये। इस प्रकार ये सामान्य रीतिसे ज्वररोगीको लंघन कराने कहे किन्तु वातज्वरमें लंघन करानेके विषय चरक विशेष कहता है कि—"वातज्वरवाले मनुष्यको छः दिनतक लंघन करावे पश्चात् सातवें दिन हलका अन्न भोजन कराकर वैद्य पाचन अथवा शमन औषधि देवे।" सुश्रुत भी कहता है कि—"वातज्वरमें सातवें दिन, पित्तज्वरमें ग्यारहवें दिन और कफज्वरमें तेरहवें दिन औषधि देनी चाहिये।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शंका--अन्नही प्राणियोंको प्राणरूप है, ऐसा श्रुतिमें कहा है, फिर अन्नके विना मनुष्य किस प्रकार जी सक्ते हैं । समाधान--लंघनोंका सहन करना यह दोषोंकी शक्ति है, कुछ मनुष्यकी शक्ति नहीं है, क्योंकि दोषोंके क्षय होनेपर कोई मनुष्य भी लंघनोंको नहीं सह सक्ता । कफ और पित्त ये दोनों द्रव (पतले) धातु हैं इस कारण ये बहुत लंघनोंको सह सक्ते हैं, परन्तु वायु तौ आमके क्षय होनेपर क्षण भर भी लंघनको नहीं सह सक्ती ॥ ३६२--३६६ ॥

अथ दशमूलादिक्काथः ।

श्रीफलः सर्वतोभद्रा कामदूती च शोणकः । तर्कारी गोक्षुरः क्षुद्रा बृहती कलशी स्थिरा ॥ ३६७ ॥ राम्ना कणा कणामूलं कुष्ठं शुण्ठी किरातकः । मुस्तो वलाऽमृता वालं द्राक्षा यासः शताह्विका ॥ ३६८ ॥ एषां क्काथो निहन्त्येव प्रभञ्जनकृतं ज्वरम् । सोपद्रवं च योगोऽयं सर्वयोगवरः स्मृतः ॥ ३६९ ॥ श्रीफलो बिल्वः, सर्वतोभद्रा गम्भारी, कामदूती पाटला, शोणापाठा इति लोके, तर्कारी गणिकारी, कलशी पृष्टिपर्णी, स्थिरा शालिपर्णी, वालं सुगंधवाला, यासो यवासः ।

वेल, कुम्भेर, पाढल, शोनापाठा, अरणी, गोखरू, कटेरी, कटाई, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी, रायसन, पीपल, पीपलामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, खिरैटी, गिलोय, सुगंधवाला, दाख, जवासा और सतावर इन सबको समान भाग लेकर क्काथ बनाकर पीनेसे उपद्रवसहित वातज्वर नष्ट होता है । यह योग सर्व योगोंमें उत्तम है ॥ ३६७--३६९ ॥

अथ बृहत्पंचमूलीक्काथः ।

श्रीपर्णीतर्कारीश्रीफलटुण्टुकपाटलामूलैः । पाचनमुचितं मारुतजनितज्वरहारि वारिणा क्वथितैः ॥ ३७० ॥ सुश्रुतः--" **पञ्चमूलीकषायंतु पाचनं वातिके ज्वरे ।** " इति । अत्र **पञ्चमूली बृहत्पञ्चमूली अत एव बृहती ।**

कुम्भेर, अरणी, वेल, स्योनाक और पाढल इन पांच औषधियोंको जलमें औटाकर क्वाथ बनाकर वातज्वरमें पाचन देना चाहिये । इसी प्रकार सुश्रुत भी कहता है कि--" वातज्वरमें पंचमूलीका कषाय पाचन है । " ॥ ३७० ॥

अथ किरातादिक्काथः ।

किरातान्नाऽमृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः । त्रिपर्णीकलशीबिल्वैः क्काथो वातज्वरापहः ॥ ३७१ ॥ उदीच्यं वालकम्, त्रिपर्णी शालिपर्णी, कलशी पृष्टिपर्णी ।

चिरायता, गिलोय, सुगन्धवाला, कटाई, कटेरी, गोखरू, शालिपर्णी (सरवन) और पृष्टिपर्णी (पिठवन) इनका क्वाथ वातज्वरको नष्ट करता है॥ ३७१॥

अथ कालिंगक्काथः ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं श्रृतम् । वातज्वरे तथा पेयं कालिङ्गं सप्तमेऽहनि ॥ ३७२ ॥ कालिङ्गं श्रृतमिन्द्रयवं तस्य श्रृतम् ।

गिलोय, पीपलामूल और सोंठ इनके साथ इन्द्रजौका काढा बनाकर वातज्वरमें सातवें दिन पिये ॥ ३७२ ॥

अथ शुंठ्यादिक्काथः ।

विश्वामृताग्रन्थिकासिद्धतोयं मरुज्ज्वरः स्यात्पिबतः कुतोऽयम् । क्काथोऽथ कुस्तुम्बुरुदेवदारुक्षुद्रौषधैः पाचनमत्र चारु ॥ ३७३ ॥ क्काथः पाचनमिति वेदाः प्रमाणमितिवत् ।

सोंठ, गिलोय और पीपलामूल इनका क्वाथ वातज्वरमें पिये तौ वातज्वर कहाँ रहा ? अथवा धनियाँ, देवदारु और कटेरी तथा सोंठ इनका क्वाथ वातज्वरमें उत्तम पाचन है ॥ ३७३ ॥

अथ बृहत्पंचमूलादिक्काथः ।

पञ्चमूलीबलाराम्नाकुलत्थैः सह पौष्करैः । क्काथो हन्याच्छिरःकम्पं पर्वभेदं मरुज्ज्वरम् ॥ ३७४ ॥ पञ्चमूली बिल्वादिः ।

पंचमूल (बेलगिरी, श्योनाक, कुम्भेर, पाढल और अरणी), खिरैटी, रायसन, कुलथी और पोहकरमूल इनका क्वाथ--शिरःकम्प, सांधियोंकी पीडा और वातज्वरको नष्ट करे है ॥ ३७४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कणादिक्काथः।

कणारसोनामृतवल्लिविश्वानिदिग्धिकासिंधुकभूमिनिम्बैः। समुस्तकैराचरितः कषायो हिताशिनां हन्ति गदानिमांस्तु ॥ ३७५ ॥ ज्वरं मरुद्दुष्टिसमुद्भवं तथा बलासजं चानलमन्दतां च। कण्ठावरोधं हृदयावरोधं स्वेदं च रोमाञ्चहिमत्वमोहान् ॥ ३७६ ॥

पीपल, लहसुन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, सेंधानिमक, चिरायता और नागरमोथा इनका क्वाथ पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्योंके वातज्वर, कफज्वर, मंदाग्नि, कंठरोध, हृदयका अवरोध, पसीना, रोमाचोंका खडे होना, शीतता और मोहको नष्ट करे है ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥

अथ कल्पतरुरसः।

शुद्धं शंकरशुक्रमक्षतुलितं मारारिनारीरजस्तद्वत्तावदुमापतिस्फुटगलालंकारवस्तु स्मृतम्। तावत्येव मनःशिला च विमला तावत्तथा टंकणं शुण्ठी द्वयक्षमिता कणा च मरिचं दिक्पालसंख्याक्षकम् ॥ ३७७ ॥ विषादिवस्तूनि शिलोपरिष्टाद्विचूर्णयेद्वाससि शोधयेच्च। ततस्तु खल्वे रसगन्धकौ च चूर्णं च तद्यामयुगं विमर्द्य ॥ ३७८ ॥ कल्पतरुनाम्नेयो यथार्थनामा रसः श्रेष्ठः। समीरणश्लेष्मगदान्हरते मात्रास्य स्मृता गुञ्जैका ॥ ३७९ ॥ आर्द्रकेण सममेष भक्षितो हन्ति वातकफसम्भवं ज्वरम्। श्वासकासमुखसेकशीततावह्निमान्द्यविषुचीश्च नाशयेत् ॥ ३८० ॥ नस्येन स्वेन हरति शिरोऽर्तिं कफवातजाम्। मोहं महान्तमपि च प्रलापं क्षवथुग्रहम्। सामान्यज्वरचिकित्सोक्तो महाज्वरांकुशः प्रदेयोऽत्र ॥ ३८१ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, मैनसिल १ तोला, सोनामाखी १ तोला, सुहागा १ तोला, सोंठ २ तोले, पीपल २ तोले और काली मिरच १० तोले लेवे, प्रथम वत्सनाभादि औषधियोंको शिलपर खूब बारीक पीसकर कपडेमें छान लेवे, पश्चात् इस चूर्णको तथा पारेको और गंधकको खरलमें डालकर दो प्रहरतक खरल करे तौ कल्पतरुनामक रस सिद्ध होता है। यह कल्पकी समान गुणोंवाला है। यह कल्पतरुरस वात और कफके रोगोंको नष्ट करता है। इसकी मात्रा एक रत्तीकी जाननी। अदरखके रसके साथ इसको भक्षण करनेसे वातज्वर, कफज्वर, श्वास, कास, मुखसे पानीका गिरना, शीतका लगना, मन्दाग्नि और विषूचिका रोग नष्ट होता है। इस रसका नास देनेसे कफसम्बन्धी और वातसम्बन्धी शिरकी पीडा, प्रलाप, मोह और छींकका रुकना ये सब दूर होते हैं। सामान्यज्वरकी चिकित्सामें जो महाज्वरांकुश कह आये हैं उसको भी यहां देना चाहिये ॥ ३७७--३८१ ॥

अथ त्रिपुरभैरवरसः।

विषमहौषधमागधिकोषणद्युमणिरक्तकमार्द्रकमार्दितम्। क्रमविवर्द्धितमुद्दलते ज्वरं त्रिपुरभैरव एष रसो वरः ॥ ३८२ ॥ द्युमणिः मारितं ताम्रम् तस्य भागाः पञ्च। रक्तकं हिंगुलं तस्य भागाः षट्। मात्रास्य रक्तिकार्द्धम्। त्रिपुरभैरवो रसो ज्वरे प्रयोज्यः।

वत्सनाभ विष १ भाग, सोंठ २ भाग, पीपल ३ भाग, मिरच ४ भाग, तांबेकी भस्म ५ भाग और सिंगरफ (हिंगुल) ६ भाग इन सबको एकत्र करके अदरखके रसमें खरल करे तो त्रिपुरभैरव रस सिद्ध होता है, यह ज्वरको नष्ट करता है। इसकी मात्रा आधी रत्तीभरकी है ॥ ३८२ ॥

अथ स्वेदविधिगुणौ।

वातश्लेष्मज्वरे स्वेदं जंघापार्श्वास्थिशूलिनि। पीनसश्वासबाधिर्ये कारयेत्तद्विधानवित् ॥ ३८३ ॥ स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम्। हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥ ३८४ ॥

जंघामें पीडा होय, पसली और हड्डियोंमें शूल होय तौ तथा पीनस (जुकाम) श्वास और बधिरता होय तौ ऐसे वातज्वर अथवा कफज्वरमें विधिपूर्वक स्वेदकर्मको जाननेवाला वैद्य स्वेद देवे। स्वेद--शरीरकी रस बहनेवाली नाडियोंको नरम करके अग्निको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्न्याशयमें पहुँचाकर कफ और वायुके बन्धनको तोडकर ज्वरको दूर करे है ॥ ३८३ ॥ ३८४ ॥

अथ वालुकास्वेदः ।

खर्परभृष्टपटस्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः । शमयति वातकफामयशूलांगभंगकम्पादीन् ॥ ३८५ ॥ कम्पे शिरोहृदयगात्रव्यथायां जृम्भायां पादसुप्तितायाम् । पिण्डिकोद्वेष्टनेऽङ्गसादे हनुस्तम्भे च लोमहर्षे ॥ ३८६ ॥

वालूको खीपडेमें गरम करके कपडेमें बांधकर उसकी पोटली बनाकर कांजीमें उसको बुझाकर बारंबार स्वेद देवे । यह वालुकास्वेद—वातकफके रोग, शिरःशूल और अंगभंगादिकोंको शमन करता है । कम्प, शिरकी पीडा, हृदयकी पीडा, शरीरकी पीडा, जम्भाई, पावोंका सो जाना, पिंडरियोंकी हडफूटन, अंगकी जडता, ठोडीका जकड जाना और रुओंका खडा होना इनको शमन करता है ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥

अथ कवलविधिगुणौ ।

मातुलुंगफलकेशरो धृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे । हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ ३८७ ॥ इति कवलः कण्ठौष्ठमुखशोषे प्रदेयः ।

बिजौरे नींबूकी केशर, सेंधानिमक और काली मिर्च इनको एकत्र पीसकर इसका मुखमें कवल धारण करे तौ वातसम्बन्धी और कफसम्बन्धी मुखगत रोग, मुखशोष, जडता और अरुचि तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ ३८७ ॥

अन्यत्र ।

शर्कराडाडिमाभ्यां च द्राक्षाडाडिमयोस्तथा । कल्कं विधारयेदास्ये शोषवैरस्यनाशनम् ॥ ३८८ ॥ द्राक्षामलकयोः कल्कं सघृतं वदने क्षिपेत् ॥ तेन घृष्ट्वा मुखस्यान्तः कुर्वीत प्रतिसारणम् ॥ ३८९ ॥ तेन तालुगतान्तःस्थः संशोषश्चैव शाम्यति । सुरसं जायते वक्त्रं रुचिर्भवति भोजने ॥ ३९० ॥

मिश्री और अनारका, अथवा दाख और दाडिम (अनार) का कल्क मुखमें धारण करनेसे मुखशोष और मुखकी विरसता दूर होती है । दाख और आमलोंका कल्क बनाकर उसमें घी मिलाकर मुखमें रक्खे और उससे मुखके भीतरका भाग घिसे तौ लार गिरकर तालु और गलेका शोष शांत होता है, मुखकी विरसता दूर होकर रसान्वित हो जाता है और भोजनमें रुचि उत्पन्न होती है ॥ ३८८–३९० ॥

अथ निद्रानाशनिदानम् ।

नावनं लंघनं चिन्ता व्यायामः शोकभीरुषः । एभिरेव भवेन्निद्रानाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ॥ ३९१ ॥

नस्य, लंघन, चिंता, परिश्रम, शोक, भय और क्रोध इन कारणोंसे कफका अत्यन्त क्षय होकर निद्रा नष्ट हो जाती है ॥ ३९१ ॥

अथ निद्रानाशचिकित्सा ।

भृष्टं तु विजयाचूर्णं मधुना निशि भक्षयेत् । निद्रानाशेऽतिसारे च ग्रहण्यां पावकक्षये ॥ ३९२ ॥ गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनालोडितं लिहेत् । चिरादपि च संनष्टां निद्रामाप्नोति मानवः ॥ ३९३ ॥ वायसजंघामूलं बद्धं वा शिरसि काकमाच्याश्च । विधृतं निद्राजनकं त्वङ्मूलं वा धृतं सगुडम् ॥ ३९४ ॥ मूलं तु काकमाच्या बद्धं सूत्रेण मस्तके नियतम् । विदधाति नष्टनिद्री निद्रामाश्वेव सिद्धमिदम् ॥ शीलयेन्मन्दनिद्रस्तु क्षीरमद्यरसान्दधि । अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमूर्द्धकर्णाक्षितर्पणम् ॥ ३९५ ॥ कान्ताबाहुलताश्लेषो निर्वृतिः कृतकृत्यता । मनोनुकूला विषयाः कामं निद्रासुखप्रदाः ॥ ३९६ ॥ रसे शाके च सूपे च सर्पिर्यूषपयःसु च । निद्रां सञ्जनयत्याशु पलाण्डुरुपयोजितः ॥ ३९७ ॥ ऐक्षवं पोतकी माषः सुरा मांसरसः पयः । गोदुग्धतिलमत्स्याश्च निद्रां कुर्वन्ति देहिनाम् ॥ ३९८ ॥

भुनी हुई भांगका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर रात्रिमें भक्षण करे तौ निद्राका नाश, अतीसार, संग्रहणीरोग और अग्निकी क्षीणता नष्ट होती है । पीप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लामूलका चूर्ण गुडमें मिलाकर खानेसे बहुत दिनोंकी नष्ट हुई निद्रा आ जाती है । काकजंघा (मसी) की जडको अथवा मकोयकी जडको शिरमें धारण करनेसे या बांधनेसे किंवा मकोयकी जड और छालका क्वाथ बनाकर उसमें गुड मिलाकर पिये तौ निद्रा उत्पन्न होती है । मकोयकी जडको सूतमें बांधकर निरन्तर मस्तकपर धारण करनेसे नष्ट हुई निद्रा तत्काल आ जाती है । जिनकी निद्रा मन्द हो गई हो अर्थात् थोडी आती हो, वह दूध, मदिरा, मांसरस, दही, तैलकी मालिस, उवटन, स्नान, शिरमें तेल लगाना, कानोंमें तेल डालना और नेत्रोंमें तेल भरना इनका अभ्यास करे । सुन्दर स्त्रीकी बाहुरूपी लताका आलिंगन, सन्तोष, कृतार्थता और मनको जो प्रिय लगे ऐसे विषय निद्राके सुखको देनेवाले हैं। मांसके रसमें, शाकमें, दालमें, घीमें, यूषमें और दूधमें प्याज मिलाकर खाय तौ तत्काल निद्रा आ जाती है । ईखके रससे बने हुए पदार्थ, पोईका शाक, उडद, मदिरा, मांसरस, दूध, गेहूं, तिल और मछली ये सब पदार्थ मनुष्योंके निद्राको लानेवाले हैं ॥ ३९२–३९८ ॥

अथ दारुषट्कलेपः ।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः । लिम्पेत्कोष्णैरम्लपिष्टैः शूलाध्मानयुतोदरम् ३९९

देवदारु, सफेद वच, कूठ, सतावर, हींग और सेंधानिमक इन सबको नींबूके रसमें पीसकर कुछेक गरम करके लेप करे तो उदरका शूल और अफरा दूर हो जाता है ॥ ३९९ ॥

अथ कर्णनादचिकित्सा ।

कटुतैलं कणाहिंगुवचालशुनसाधितम् । उष्णं विनिहितं हन्ति कर्णयोर्निःस्वनव्यथाम् ॥ ४०० ॥

पीपल, हींग, वच और लहसुन इनको कडवे तेलमें पकाकर उस तेलको कानमें डालनेसे कानमें शब्द होनेकी व्यथा नष्ट हो जाती है ॥ ४०० ॥

अथ शुष्ककासचिकित्सा ।

कणा सुगन्धिवचया यवान्या च समन्विता । ताम्बूलसहिता हन्ति शुष्ककासं मुखे धृता ॥ ४०१ ॥

पीपल, सुगंधित वच, अजवायन और पान इनके साथ पीपलको मुखमें रखनेसे सूखी खाँसी नष्ट होती है ॥ ४०१ ॥

अथ वातज्वरहितवस्तूनि ।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः । मुद्गामलकयूषस्तु बद्धविट्काय दीयते ॥ ४०२ ॥ पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्वशिरोरुजि । श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् । कासी श्वासी च हिक्की च पञ्चमूलीश्रृतां पिबेत् ॥ ४०३ ॥ पेयामिति शेषः ।

श्रम, उपवास और वायुसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मांसरस युक्त भात हितकारी है । जो वातज्वरमें मल बँध गया होय तो मूँग और आमलोंका यूष देवे। वातज्वरमें मूत्राशय, पसली और शिरमें पीडा होय तौ गोखरू और कटेरीके क्वाथसे सिद्ध की हुई लाल शालि चावलोंकी ज्वरनाशक पेया पिये । वातज्वरमें खांसी, श्वास, हिचकी होयँ तो पंचमूलके क्वाथसे सिद्ध की हुई पेया पिये ॥ ४०२ ॥ ४०३ ॥

अथ पित्तज्वराधिकारः ।

पित्तलाहारचेष्टाभ्यां पित्तमामाशयाश्रयम् । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरकृत्स्याद्रसानुगम् ॥ ४०४ ॥

तहां प्रथम पित्तज्वरकी विप्रकृष्ट (दूरके) और सन्निकृष्ट (समीपके) कारण कहकर सम्प्राप्ति कहते हैं । पित्तकारक आहार और विहारके करनेसे दुष्ट हुआ पित्त आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करे है ॥ ४०४ ॥

पित्तस्य पंगुत्वात्तेन कोष्ठाग्नेरुष्मा वहिर्नेतुं न शक्यते । तथाहि–पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥ ४०५ ॥ इति । ततोऽत्र पित्तं वातसहाये बोद्धव्यम् । यत आह–द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः । एकस्तु कुपितो दोष इतरानपि कोपयेत् ॥ ४०६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"पित्त पंगु (लूला) है, कफ पंगु है, मल और धातु भी पंगु हैं, इस कारण वायु जहाँ उनको ले जाती है, वहीं वे बादलोंकी समान चले जाते हैं।" ऐसा कहा है । पित्त पंगु होनेके कारण कोठेकी अग्निको कैसे बाहर ले जा सक्ता है अर्थात् नहीं ले जा सक्ता है, तथापि वायुकी सहायतासे बाहर ले जाता है, ऐसा जानना । कहा भी है कि--" संसारमें कोई द्रव्य एक रसवाला नहीं और कोई भी रोग एक दोषसे नहीं होता है, एक दोषके कुपित होनेसे दूसरे दोष भी कुपित हो जाते हैं ॥ ४०५ ॥ ४०६॥

पित्तज्वरपूर्वरूपम् ।

पित्तज्वरे उत्पत्स्यति नेत्रदाहः स्यात् । स च श्रमादिपूर्वको भवति ।

पित्तज्वरके उत्पन्न होनेसे कुछेक पहिले श्रम आदि होकर नेत्रोंमें दाह होता है ।

अथ पित्तज्वरलक्षणम् ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः । कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ ४०७ ॥ प्रलापो वक्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा । पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ४०८ ॥ अतीसारः पित्तस्य तस्य सरत्वात्सद्रवमलप्रवृत्तिः न तु अतिसारवत्तस्य ज्वरोपद्रवत्वात् । वमिः यदा पित्तं कफस्य स्थानं याति तदा बोद्धव्यम् । प्रलापोऽनर्थकं वचः । मूर्च्छा रूपादेरज्ञानम् । मदः पूगकोद्रवधत्तूरभक्षणादिव मत्तता । भ्रमः चक्रारूढस्येव ज्ञानम् । चकारात् रक्तकण्ठादयो बोद्धव्याः ॥

पित्तज्वरमें ज्वरका वेग तीक्ष्ण होता है, अतिसार होता है, निद्रा अल्प आती है (पित्त कफके स्थानमें जाता है तब वमन होती है), कण्ठ, होठ, मुख और नासिका पक जाते हैं, पसीना आता है, रोगी वृथा बकवाद करता है, मुखमें कडवापन अथवा तीखापन होता है, मूर्च्छा (बेहोशी) होती है, दाह, मद तथा तृषा अधिक होती है, विष्ठा, मूत्र और नेत्र पीले हो जाते हैं तथा भ्रम होता है । पित्तज्वरमें जो अतीसार होता है उसमें अतीसारकी समान पतला मल नहीं आता है किन्तु पित्त द्रवरूप होनेसे द्रवरूप दस्त आता है ऐसा जानना, कारण यह है कि--अतीसार ज्वरका उपद्रव है ॥ ४०७ ॥ ४०८ ॥

अथ पित्तज्वरचिकित्सा ।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्पिधापयन् । विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मालंघनमाचरेत् ॥ ४०९ ॥ इति वचनात्सामान्यतो ज्वरिमात्रस्य यावदारोग्यदर्शनं लंघनविधानम् । पित्तज्वरिणो लंघनविधाने विशेषमाह सुश्रुतः--पैत्तिके दशरात्रेण ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ ४१० ॥ दशरात्रेण लंघनवता व्यतीतेनेत्यर्थः ।

दुष्ट हुए वातादि दोष आमाशयमें जाकर अग्निको आच्छादित करके अन्न आदि अपक्व रसके साथ मिलाकर शरीरके स्रोतोंको ढककर ज्वरको उत्पन्न करते हैं इस कारण ज्वरमें लंघन (उपवास) कराने चाहियें । इस प्रकार सामान्य रीतिसे ज्वरके आरोग्य होने पर्यन्त लंघन करावे । तहां पित्तज्वरमें लंघन करानेके विषयमें सुश्रुत विशेष कहता है कि--" पित्तज्वरमें दश रात्रितक लंघन कराकर पश्चात् औषधि देनी चाहिये ।" ॥ ४०९ ॥ ४१० ॥

अथ तिक्तादिक्काथः ।

तिक्तामुस्तयवैः पाठाकट्फलाभ्यां सहोदकम् । पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिकज्वरे ॥ ४११ ॥

कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाढ और कायफल इनका क्काथ बनाकर उसमें चीनी मिलाकर पीवे । यह पित्तज्वरमें उत्तम पाचन है ॥ ४११ ॥

अथ पर्पटादिक्काथः ।

पर्पटो वासकस्तिक्ता कैरातो धन्वयासकः । प्रियंगुश्च कृतः क्काथ एषां शर्करया युतः । पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं पित्तज्वरं हरेत्४१२

पित्तपापडा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, धनियां और फूलप्रियंगू इनके क्काथमें चीनी मिलाकर पीनेसे प्यास दाह और रक्तपित्तसहित पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४१२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ द्राक्षादिक्काथः ।

द्राक्षा हरीतकी मुस्ता कटुका कृतमालकः । पर्पटश्च कृतः क्काथ एषां पित्तज्वरापहः ॥ ४१३ ॥ मुखशोषप्रलापार्तिदाहमूर्च्छाभ्रमप्रणुत् । पिपासारक्तपित्तानां शमनो भेदनो मतः ॥ ४१४ ॥

दाख, हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास और पित्तपापडा इनका क्काथ बनाकर पिये तो पित्तज्वर, मुखशोष, प्रलाप, पीडा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, प्यास और रक्तपित्तको शमन करता है तथा भेदक (दस्तावर) है ॥ ४१३ ॥ ४१४ ॥

अथ पटोलादिक्काथः ।

पटोलयवधान्याकमधुकं मधुसंयुतम् । हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णां चातिप्रमाथिनीम्४१५

पटोलपात, इन्द्रजौ, धनियां और महुआ इनके क्काथमें सहत डालकर पीनेसे—पित्तज्वर, दाह और अत्यन्त तीव्र तृषा नष्ट होती है ॥ ४१५ ॥

अथ गुडूच्यादिक्काथः ।

गुडूच्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि पर्पटः । पित्तज्वरं हरेच्चूर्णं दाहशोषभ्रमान्वितम् ॥ ४१६ ॥ एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः । किं पुनर्यदि युञ्जीत चन्दनोशीरवालकैः ॥ ४१७ ॥

गिलोय, आमले और पित्तपापडा इनका क्काथ बनाकर पीनेसे अथवा केवल एक पित्तपापडेकाही क्काथ बनाकर पीनेसे दाह, शोष और भ्रमयुक्त पित्तज्वर नष्ट होता है । केवल एक पित्तपापडाही पित्तज्वरको नष्ट करनेके लिये श्रेष्ठ है और जो उसमें चन्दन, खस और सुगन्धवाला मिला दिया जाय तौ कहनाही क्या है ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥

अथ हीबेरादिक्काथः ।

हीबेरचन्दनोशीरधनपर्पटसाधितम् । दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ४१८॥

सुगन्धवाला, चन्दन, खस, नागरमोथा और पित्तपापडा इनसे पकाया हुआ जल अत्यन्त शीतल करके पिये तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह नष्ट होता है ॥ ४१८ ॥

अथ भूनिम्बादिक्काथः ।

भूनिम्बातिविषालोध्रमुस्तकेन्द्रयवामृताः । वालकं धान्यकं विल्वं कषायो माक्षिकान्वितः । विड्भेदश्वासकासांश्च रक्तपित्तज्वरं हरेत् ॥ ४१९ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इन्द्रजौ, गिलोय, सुगन्धवाला, धनियां और बेलगिरी इनका क्काथ सहत मिलाकर पिये तौ मलभेद, श्वास, खांसी, रक्तपित्त और पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ ४१९ ॥

अथ महाद्राक्षादिक्काथः ।

द्राक्षाचन्दनपद्मानिः मुस्ता तिक्ताऽमृतापि च । धात्री वालमुशीरं च लोध्रेन्द्रयवपर्पटाः ॥ ४२० ॥ परूषकं प्रियंगुश्च यवासो वासकस्तथा । मधुकं कुलकं चापि किरातो धान्यकं तथा ॥ ४२१ ॥ एषां क्काथो निहन्त्येव ज्वरं पित्तसमुत्थितम् । तृष्णां दाहं प्रलापं च रक्तपित्तं भ्रमं क्लमम्॥४२२॥मूर्च्छां छर्दिं तथा शूलं मुखशोषमरोचकम् । कासं श्वासं च हल्लासं नाशयेन्नात्र संशयः ॥४२३॥

दाख, लाल चन्दन, कमल, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, सुगन्धवाला, खस, लोध, इन्द्रजौ, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगू, जवासा, अडूसा, मुलेठी, वेर, चिरायता और धनियाँ इनका क्काथ बनाकर पीनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, क्लम (ग्लानि), मूर्च्छा, वमन, शूल, मुखशोष, अरुचि, खांसी, श्वास और उबकाई ये सब नष्ट होते हैं ॥ ४२०--४२३ ॥

अथ धान्याकक्काथः ।

सासितो निशि पर्युषितः प्रातर्धान्याकसम्भवः क्काथः । पीतः शमयत्यचिराद्दन्तर्दाहं ज्वरं पैत्तम् ॥ ४२४ ॥

रात्रिके समय धनियेको भिजो देवे, प्रातःकाल क्काथ बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर पिये तौ थोडेही समयमें अन्तर्दाह युक्त पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४२४ ॥

अथामृताहिमवासाहिमौ ।

अमृताया हिमः प्रातः . सासितः पैत्तिकं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्वरम्। वासायाश्च तथा कासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥ ४२५ ॥

गिलोयका हिम बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पिये तौ पित्तज्वर नष्ट होता है। अडूसेके हिममें मिश्री अथवा चीनी मिलाकर प्रातःकाल पिये तौ खांसी, रक्तपित्त और पित्तज्वर नष्ट होता है॥४२५॥

अथ गुडूच्यादिक्काथः।

गुडूची भूमिनिम्बश्च वालं वीरणमूलकम्। लघुमुस्तं त्रिवृद्धात्री द्राक्षा वासा च पर्पटः ॥ ४२६ ॥ एषां क्काथो हरत्येव ज्वरं पित्तकृतं द्रुतम्। सोपद्रवमपि प्रातर्निपीतो मधुना सह ॥ ४२७ ॥

गिलोय, चिरायता, सुगन्धवाला, खस, मोथा, निसोत, आमले, दाख, अडूसा और पित्तपापडा इनका क्काथ बनाकर सहतके साथ प्रातःकाल पिये तौ उपद्रवसहित घोर पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४२६॥ ४२७ ॥

अथ प्रलेपः।

पलाशस्य बदर्या वा निम्बस्य मृदुपल्लवैः। अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं हन्याद्दाहयुतं ज्वरम् ॥ ४२८ ॥

ढाकके, बेरीके अथवा नीमके कोमल पत्ते लेकर नींबूके रसमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे दाहसहित पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४२८ ॥

अथ शीतजलधारा।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ। शीताम्बुधारा बहुलापतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरं च ॥ ४२९ ॥

पित्तज्वरवाले मनुष्यको चित्त सुलाकर उसकी नाभिके ऊपर ताँवे अथवा काँसीके पात्रको स्थापन कर उसमें अत्यन्त शीतल जलकी धारा छोडे तो तत्काल दाह और ज्वर नष्ट होता है ॥ ४२९ ॥

अथ पथ्याद्यवलेहः।

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिहन्दाहज्वरापहाम्। कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान्हंति वमीमपि। ॥ ४३० ॥ तेलघृतक्षौद्रैरित्यत्र न समुच्चयस्तेन केवलेन क्षौद्रेणापि लिह्यात्।

हरडको तेल, घी और सहतके साथ अथवा केवल सहतके साथही हरडको चाटनेसे दाहसहित पित्तज्वर, खांसी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन दूर होती है ॥ ४३० ॥

अथार्द्रवस्त्रधारणम्।

काञ्जिकार्द्रपटेनावगुण्ठनं दाहनाशनम्। अथ गोतक्रसंस्विन्नशीतलीकृतवाससा ॥ ४३१ ॥

कांजीमें वस्त्रको भिजोकर रोगीके शरीरपर उढावे अथवा गायके तक्र (छांछ) में वस्त्रको उसेकर पश्चात् खूब शीतल करके शरीरपर धारण करे तौ दाह दूर हो जाता है ॥ ४३१ ॥

अथ कवलः।

द्राक्षामलककल्केन कवलोऽत्र हितो मतः। पक्वदाडिमबीजैर्वा धान्यकल्केन च क्वचित् ॥ ४३२ ॥

पित्तज्वरमें दाख और आमलोंके कल्कका कवल हितकारी है। पके अनारके कल्कका वा धनियोंके कल्कका कवल हितकारक है ॥ ४३२ ॥

अथ तर्पणम्।

दाहकम्पार्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम्। शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम्॥ लाजतर्पणम् लाजसक्तुरूपं तर्पणम्। सन्तर्पणस्वरूपमुक्तं सामान्यज्वरचिकित्सायाम्। मुद्गयूषौदनो देयःसितया पैत्तिके ज्वरे ॥४३३॥

दाह और कम्पसे पीडित, दुर्बल, निराहार (विना भोजन किया) और तृषायुक्त ऐसे ज्वररोगीको खीलोंके सत्तुओंमें मिश्री और सहत डालकर पिलावे, यह तर्पण है। सन्तर्पणका स्वरूप सामान्यज्वरकी चिकित्सामें प्रथम कह आये हैं। पित्तज्वरमें मूँगके यूषसे भीजा हुआ भात चीनी मिलाकर खानेको देवे ॥ ४३३ ॥

अथ पित्तज्वरोपचारः।

हर्म्ये शुभ्राभ्रसङ्काशे शशांककरशीतले। मलयोदकसंसिक्ते सुप्यात्पित्तज्वरी नरः॥४३४॥

पित्तज्वरवाला श्वेत बादलके समान निर्मल, चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल हुआ और जिसमें चन्दन खस आदिका जल छिडका हो ऐसे भवनमें शयन करे ॥ ४३४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हारावलीचन्दनशीतलानां सुगन्धपुष्पाम्बरभूषितानाम् । नितम्बिनीनां सुपयोधराणामालिङ्गनान्याशु हरन्ति दाहम् ॥ ४३५॥ आह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः । हितं च भोजयेदन्नं न प्रीतिसुरतं महत् ॥ ४३६॥ वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः । नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ ४३७ ॥

जिनके कण्ठमें मोतियोंकी माला पडी हैं, जिनका शरीर चन्दनादिके प्रलेपसे शीतल हो रहा है, सुगन्धित पुष्प और सुन्दर वस्त्रोंसे जिनका शरीर अलंकृत हो रहा है और पुष्ट स्तनोंवाली ऐसी स्त्रियोंका आलिंगन तत्काल दाहको नष्ट करता है । जब स्त्रीके आलिंगनसे रोगीका मन आह्लादित हो जाय और मैथुन करनेकी इच्छा करे तो तत्काल स्त्रीको रोगीके समीपसे हटा लेवे । पश्चात् रोगीको हितकारक पदार्थ भोजन करावे, किन्तु प्रीतिके साथ स्त्रीसे प्रसंग नहीं करावे । प्रफुल्लित कमलवाली बावडी, जिनमें सुन्दर फुहारे छूट रहे हों ऐसे घर और चन्दनादिसे चर्चित स्त्री यह सब पित्तज्वरसे उत्पन्न हुई दाहकी दीनताको शांत करते हैं ॥ ४३५–४३७ ॥

इति पित्तज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथ कफज्वराधिकारः ।

श्लेष्मलाहारचेष्टाभ्यां कफो ह्यामाशयाश्रयः । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरकृत्स्याद्रसानुगः ॥ ४३८ ॥ कफस्य कोष्ठाग्नितेजसो बहिर्नयनेन पंगुत्वादाशंकायां जातायां पित्तस्येव सिद्धान्तो बोधव्यः ।

अब कफज्वरके विप्रकृष्ट (दूर) और सन्निकृष्ट (समीप) के कारण कहकर सम्प्राप्ति कहते हैं । कफको करनेवाले आहार और विहारोंके करनेसे कफ आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करे है । ' कफ पंगु है ' ऐसा पहिले कह चुके हैं, इस वचनसे कफ पंगु होनेपर कोठेकी अग्निको बाहर कैसे ले जा सक्ता है ? ऐसी शंका होती है । इसका समाधान पित्तज्वराधिकारके आरम्भमें कह आये हैं उसके अनुसार जानना ॥ ४३८ ॥

अथ कफज्वरपूर्वरूपम् ।

" कफान्नान्नाभिनन्दनमिति । " कफज्वरे उत्पत्स्यति अनन्नाभिलाषः स्यात्स च श्रमादिपूर्वको भवति ।

जब कफज्वर उत्पन्न होनेको होता है तब उससे कुछ पहिले श्रमादि उत्पन्न होकर विशेष करके अन्नमें अरुचि उत्पन्न होती है ॥

अथ कफज्वरलक्षणम् ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता । शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तब्धस्तृप्तिरथापि वा ॥ ४३९ ॥ गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता । प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ ४४० ॥ स्तैमित्यमंगानाम् आर्द्रपटावगुण्ठितत्वमिव । स्तिमितो वेगः, ज्वरस्य मन्दो वेगः । आलस्यं समर्थस्यापि कर्मणि अनुत्साहः । स्तब्धः अंगानाम् अनम्रता, तृप्तिः अन्नानभिलाषः सत्यपि भोजनसामर्थ्ये । गौरवं गात्राणाम्, शीतं लगति इति शेषः । उत्क्लेदः वमनोपस्थितिरिव । अतिनिद्रता निद्राधिक्यं, प्रतिश्यायो नासारोगविशेषः, अरुचिः भोजनानिच्छा, चकारात्पिडिका शीता मुखप्रसेकश्छर्दिस्तन्द्रा हृदयोपलेप उष्णाभिलाषो वह्निमान्द्यमिति । यत उक्तम्–प्रसेकः पिडिका शीता छर्दिस्तन्द्रोष्णकामिता । कफेन लिप्तं हृदयं भवेदग्नेश्च मन्दता ॥ ४४१ ॥

कफज्वरमें शरीर भीजे वस्त्रसे ढके हुएकी समान मालूम होता है, ज्वरका मन्दवेग हो, आलस्य हो, मुखमें मीठापन हो, मूत्र और विष्ठा सफेद हो, शरीरके सम्पूर्ण अवयव जकड जायँ, खानेकी इच्छा होनेपर भी अन्नमें इच्छा न हो, शरीरमें भारीपन, शीत लगे, वमन होनेकेसी इच्छा हो, रोमांच खडे हो जायँ, अत्यन्त निद्रा आवे, प्रतिश्याय (जुकाम) हो, भोजनमें अरुचि, खांसी और आँखें सफेद हो जायँ तथा मुखके द्वारा पानीका गिरना, सफेद फुंसियोंका निकलना, वमन हो, तन्द्रा हो, गरमीकी इच्छा हो,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदय कफसे लिप्तसा प्रतीत हो और अग्निकी मन्दता होती है ॥ ४३९-४४१ ॥

अथ कफज्वरचिकित्सा ।

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गात्पिधापयन् । विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मालंघनमाचरेत् ॥ ४४२ ॥ इति वचनात्सामान्यतो ज्वरितमात्रस्य यावदारोग्यदर्शनं लंघनविधानम् । श्लेष्मज्वारिणो लंघनविधाने विशेषमाह सुश्रुतः-श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥ ४४३ ॥ द्वादशाहेन लङ्घनवता व्यतीतेनेत्यर्थः ।

वातादि दोष दुष्ट होकर आमाशयमें जाकर अग्निको आच्छादित करके अन्न आदि अपक्व रसके साथ मिलकर शरीरके स्रोतों (छिद्रों) को ढककर ज्वरको उत्पन्न करे हैं, इस कारण ज्वरमें लंघन कराने चाहिये । इस कथनानुसार सामान्य रीतिसे ज्वरमें आरोग्य होने पर्यन्त लंघन कराने चाहिये ऐसा कहा, तहाँ कफज्वरके विषय सुश्रुत विशेष कहता है कि-" कफज्वरमें लंघन करते हुए बारह दिनके बीत जानेपर पश्चात् औषधि देनी चाहिये । " ॥ ४४२ ॥४४३॥

अथ पिप्पल्यादिक्काथः ।

पिप्पल्यादिकषायं तु कफजे परिपाचनम् ॥ ४४४ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली । नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिकाः ॥ ४४५ ॥ सर्षपो हिंगु भार्ङ्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः । महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ ४४६ ॥ पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः । गुल्मशूलज्वरहरो दीपनस्त्वामपाचनः ४४७॥

कफज्वरमें पाचन करनेवाला पिप्पल्यादि क्काथ देवे । पीपल, पीपलामूल, काली मिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारंगी, पाढ, इन्द्रजौ, जीरा, बकायन, मूर्वा (चुरनहार), अतीस, कुटकी और वायविडंग इन सब औषधियोंके समुदायको पिप्पल्यादि गण कहते हैं । यह पिप्पल्यादि गण-कफ और वातनाशक है, तथा गुल्म (गोला), शूल और ज्वरको हरनेवाला है, अग्निको दीपन करनेवाला और आमको पचानेवाला है ॥ ४४४-४४७ ॥

अथ पिप्पल्यवलेहः ।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः । प्लीहानं हन्ति हिक्कां च बालानामपि शस्यते ॥ ४४८ ॥

सहतमें पीपलका चूर्ण मिलाकर चाटनेसे श्वास, खाँसी, ज्वर, प्लीहा, तिल्ली और हिचकी दूर होती है तथा बालकोंको अत्यंत हितकारी है ॥ ४४८ ॥

अथ चतुर्भद्रिकावलेहः ।

पिप्पली त्रिफला चापि समभागाज्ज्वरी लिहन् । मधुना सर्पिषा चापि कासी श्वासी सुखी भवेत् ॥ ४४९ ॥

पीपल, हरड, बहेडा, आमला इनको समान भाग लेकर चूर्ण करे, फिर सहत अथवा घीके साथ चाटे तौ कफज्वरवाला खाँसी और श्वाससे सुखी होता है अर्थात् खाँसी और श्वास दूर होता है ॥ ४४९ ॥

अथान्यप्रकारः ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी कृष्णा च मधुना सह । श्वासकासज्वरहरो लेहोऽयं कफनाशनः ॥ ४५० ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी और पीपल इनका चूर्ण एकत्र करके सहतमें मिलाकर चाटे तौ श्वास, खाँसी ज्वर और कफका नाश होता है ॥४५०॥

अथाष्टांगावलेहः ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी यवानी कारवी तथा । कटुत्रयं च सर्वाणि समभागानि चूर्णयेत् ॥ ४५१ ॥ आर्द्रकस्वरसैर्लिह्यान्मधुना वा कफज्वरी । कासश्वासारुचिच्छर्दिहिक्काश्लेष्मानिलापहः ॥ ४५२ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी, अजवायन, कलौंजी, सोंठ, मिरच और पीपल ये सब औषधि समानभाग लेकर चूर्ण कर ले, इस चूर्णको अदरखके रसमें अथवा सहतमें मिलाकर कफज्वररोगी चाटे तो खाँसी, श्वास, अरुचि, वमन, हिचकी, कफ और वात नष्ट होते हैं ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ निर्गुण्डीक्काथः।

सिन्दुवारदलक्काथं कणाढ्यं कफजे ज्वरे। जंघयोश्च बले क्षीणे कर्णे च पिहिते पिबेत् ॥ ४५३ ॥

कफज्वरमें जो जंघाओंका बल क्षीण हो गया हो और कानोंमें बधिरता होय तो सम्हालूके पत्तोंके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीवे ॥ ४५३ ॥

अथ यवान्यादिक्काथः।

यवानी पिप्पली वासा तथा खाखसवल्कलम्। एषां क्काथं पिबेत्कासे श्वासे च कफजे ज्वरे ॥ ४५४ ॥

अजवायन, पीपल, अडूसा और पोस्तका डोडा इनका क्काथ बनाकर खांसी, श्वास और कफज्वरमें पीवे ॥ ४५४ ॥

अथ वासादिक्काथः।

वासाक्षुद्राभृताक्काथः क्षौद्रेण ज्वरकासहृत् ॥ ४५५ ॥

अडूसा, कटेरी और गिलोयके क्काथमें सहत डालकर पीनेसे ज्वर और खांसी दूर होती है ॥ ४५५ ॥

अथ मरिचादिक्काथः।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं कारवी कणा। चित्रकं कट्फलं कुष्ठं ससुगन्धि वचा शिवा ॥ ४५६ ॥ कण्टकारी जटाशृंगी यवानी पिचुमन्दकः। एषां क्काथो हरत्येव ज्वरं सोपद्रवं कफात् ॥ ४५७ ॥

काली मिरच, पीपलामूल, सोंठ, कलौंजी, पीपल, चीता, कायफल, कूठ, सुगन्धितवच, हरड, कटेरीकी जड, काकडाशिंगी, अजवायन और नीमकी छाल इनका क्काथ उपद्रवसहित कफज्वरको नष्ट करे है ॥ ४५६ ॥ ४५७ ॥

अथ कल्पतरुरसः।

कफवातव्याधिहरत्वाद्वाताधिकारोक्तकल्पतरुरसो योज्यः। सिन्धुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः ॥ ४५८ ॥ कवल इति शेषः। मुद्गयूषौदनो देयो ज्वरे कफसमुत्थिते ४५९॥

वातज्वराधिकारमें कहा हुआ कल्पतरु रस कफवातनाशक होनेसे इस कफज्वरमें प्रयोग करना चाहिये। कवल, सेंधानिमक, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) और राई इनको अदरखके रसमें पीसकर मुखमें कवल धारण करे। यह कफज्वरमें हितकारी है। कफज्वरमें मूँगके यूषके साथ भात खानेको देवे ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥

इति कफज्वराधिकारः समाप्तः।

अथ वातपित्तज्वराधिकारः।

वातपित्तकरैर्वातपित्ते ह्यामाशयाश्रये। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगे ज्वरकारिणी॥४६०॥ स्यातामिति शेषः।

तहाँ सबसे प्रथम वातपित्तज्वरके विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर संप्राप्ति कहते हैं। वात और पित्तकारक आहार विहारके करनेसे वात और पित्त आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ४६० ॥

अथ वातपित्तज्वरपूर्वरूपम्।

प्राग्रूपे वातपित्तस्य भवतो वातपैत्तिके॥४६१॥ ज्वर इति शेषः।

वातपित्तज्वरमें वातज्वर और पित्तज्वर दोनोंके पूर्वरूप होते हैं ॥ ४६१ ॥

अथ वातपित्तज्वरलक्षणम्।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहो निद्रानाशः शिरोरुजा। कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः। पर्वभेदश्च जम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ ४६२ ॥ पर्वभेदः—पर्वाणि भिद्यन्ते इति, सन्धिषु व्यथा।

तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रान्ति, दाह, निद्राका नाश, शिरमें पीडा, कण्ठ और मुखका सूखना, वमन, रोमोंका खडा होना, अरुचिका होना, अन्धकारदर्शन, सन्धियोंमें पीडा और जम्भाइयोंका आना ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ ४६२ ॥

अथ वातपित्तज्वरचिकित्सा।

वातपित्तज्वरे देयमौषधं पञ्चमेऽहनि।

वातपित्त ज्वरमें पांचवें दिन औषधि देनी चाहिये॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ किरातादिक्काथः ।

किराततिक्तममृता द्राक्षा चामलकं शठी । निष्क्काथ्य सगुडं क्काथं वातपित्तज्वरे पिबेत् ॥ ४६३ ॥

चिरायता, गिलोय, दाख, आमले और कचूर इनके क्काथमें गुड डालकर पीनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४६३ ॥

अथ पंचभद्रक्काथः ।

गुडूची पर्पटो मुस्तं किरातो विश्वभेषजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ४६४॥

गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ इनका क्काथ वातपित्तज्वरमें देना चाहिये । यह पंचभद्र क्काथ उत्तम है ॥ ४६४ ॥

अथ त्रिफलादिक्काथः ।

त्रिफला शाल्मली रास्ना राजवृक्षाटरूषकैः । क्काथमम्बु हरत्याशु वातपित्तभवं ज्वरम् ४६५

हरड, बहेडा, आमला, सेमल, रायसन, अमलतास और अडूसा इनका क्काथ वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ ४६५ ॥

अथ मधुकादिहिमः ।

मधुकं सारिवा द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम् । काश्मरीफलकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेशरम् ॥ ४६६ ॥ परूषकं मृणालं च क्षिपेत्संचूर्ण्य वारिणि । निशोषितं सिताक्षौद्रलाजयुक्तं तु तत्पिबेत् ॥ ४६७ ॥ वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णां मूर्च्छारुचिभ्रमान् । शमयेद्रक्तपित्तं च जीमूतमिव मारुतः ॥ ४६८ ॥ अत्र मधुकादि मृणालान्तं समुदितम् । पलद्वयपरिमितं संचूर्ण्य क्षिपेत् । वारिणि षट्पलपरिमिते । मधुकादिहिमो दाहे ।

मुलैठी, सारिवा (गौरीसर), दाख, महुआ, चन्दन, कमल, कुम्भेरका फल, लोध, त्रिफला, कमल, केशर, फालसे और कमलकी नाल ये सब आठ तोले लेकर चूर्ण करें और छः पल (२४ तोले) जलमें रात्रिके समय डालकर रख देवे, पश्चात् उस बासी जलमें मिश्री, सहत और खीलोंके सत्तू डालकर पिये । जिस प्रकार पवन बादलोंको दूर कर देती है तिसी प्रकार यह हिम वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम और रक्तपित्तको दूर करे है ॥ ४६६--४६८ ॥

अथान्नम् ।

मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्तज्वरे हितः । महादाहे प्रदातव्यो यूषश्चणकसम्भवः ॥४६९॥ अन्यच्च—" दाडिमामलकमुद्गसम्भवो यूष उक्त इति वातपैत्तिके । "इति । कफवातहरा मुद्गा कारवेल्ल्यादयस्तथा । प्रायेण न च ते देया वातपित्तोत्तरे ज्वरे । दत्तास्तु ज्वरविष्टम्भशूलोदावर्तकारिणः ॥ ४७० ॥

मूंग और आमलोंका यूष वातपित्तज्वरमें हितकारी है और जो वातपित्तज्वरमें अत्यंत दाह होय तौ चनेका यूष देना चाहिये । पूर्वोक्त कहा हुआ अनार, आमले और मूँगका यूष वातपित्तज्वरमें देना योग्य है । मूँग और करेला आदि कफवातनाशक पदार्थ वातपित्तज्वरमें नहीं देने चाहिये और जो यह दिये जायँ तौ ज्वर, विष्टम्भ, शूल और उदावर्त्त (अफरा) रोगको उत्पन्न करते हैं ॥ ४६९ ॥ ४७० ॥

इति वातपित्तज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथ वातकफज्वराधिकारः ।

वातश्लेष्मकरैर्वातकफावामाशयाश्रयौ । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगौ ज्वरकारिणौ४७१॥

तहाँ प्रथम विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर वातकफज्वरकी सम्प्राप्ति कहते हैं । वात और कफकारक आहार विहारके करनेसे वात और कफ आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर वातकफज्वरको उत्पन्न करे हैं ॥ ४७१ ॥

अथ वातकफज्वरपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपे वातकफयोः स्यातां वातकफज्वरे ४७२

वातकफज्वरमें वातज्वर और कफज्वर दोनोंके पूर्वरूप होते हैं ॥ ४७२ ॥

अथ वातकफज्वरलक्षणम् ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च । शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥४७३॥ सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्व-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राकृतिः ॥ ४७४ ॥ स्वेदाप्रवर्तनं स्वेदस्य आसमंताद्भावेन प्रवृत्तिः । तथा च हारीतः—शिरोग्रहः स्वेदभावश्च कासो ज्वरस्य लिङ्गं कफवातजस्य ॥ ४७५ ॥ स्वेदभवः स्वेदोत्पत्तिः । ननु स्वेदः पित्तस्य धर्मः, अत एव पित्तज्वरे—" कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते । " इत्युक्तम् । तस्मात्कथं वातश्लेष्मज्वरे स्वेदस्यातिप्रवृत्तिः ? उच्यते । विकृतिविषमसमवायारब्धत्वान्न दोष इति कार्तिकः । प्रकृतिसमवायस्य विकृतिविषमसमवायस्य च अयमर्थः—प्रकृत्या हेतुभूतया समः कारणानुरूपः समवायः कार्यकारणभावः सम्बन्धः प्रकृतिसमवायः । करणानुरूपं कार्यमिति यावत् । यथाप्रकृतैर्यथास्थितः शुक्लैस्तन्तुभिः समवायकारणैरारब्धः पटः शुक्ल एव भवति । यथा च प्रकृतेन केवलेन वातेन पित्तेन कफेन वा तज्जनितो ज्वरो वातानुचितैर्धर्मैर्वेपथुवेगाधिक्यस्तैमित्यादिभिर्युक्तो भवति । विकृतिविषमसमवायस्तु विकृत्या हेतुभूतया विषमः कारणानुरूपः समवायः कार्यस्य कारणे सम्बन्धः । यथा संयोगाद्विकृताभ्यां हरिद्राचूर्णाभ्यां हेतुभूताभ्यां विषमः कारणानुरूपो लोहितो वर्णो जायते तथा योगेन विकृताभ्यां वातश्लेष्मभ्यां हेतुभूताभ्यां विषमा कारणानुरूपा स्वेदस्य अतिप्रवृत्तिरिति सिद्धान्तः ।

शरीर गीले कपडेसे ढकासा मालूम हो, संधियोंमें पीडा हो, निद्रा आवे, देहमें भारीपन हो, शिरमें पीडा, प्रतिश्याय (जुकाम) हो, खाँसी, पसीनेका आना, सन्ताप हो और ज्वरका मन्दवेग हो ये वातकफज्वरके लक्षण जानने । यहां ' स्वेदाप्रवर्तनम् ' इस पदमें पसीनोंका चारों ओरसे अधिक आना ऐसा अर्थ समझना चाहिये । जैसे कि, हारीतसंहितामें कहा है कि—" शिरमें पीडा हो, पसीने आवें और खाँसी हो तौ वातकफज्वरके लक्षण जानने ।" शंका—पसीनोंका आना तौ पित्तका धर्म है, क्यों कि—पित्तज्वरमें कंठ, होठ, मुख और नासिका ये पक जाते हैं और पसीने आते हैं ऐसा कहा है, फिर वातज्वरमें पसीनोंका आना कैसे सिद्ध हो सक्ता है ? समाधान—कार्तिक ग्रंथकार कहता है कि—" विकृति—विषमसमवाय होनेसे वातकफज्वरमें पसीने अधिक आते हैं । इस कारण कुछ विरोध नहीं आता ।" वैद्यक शास्त्रमें 'प्रकृतिसमवाय' और ' विकृतिविषमसमवाय ' ऐसे दो प्रकारके समवाय हैं और इनमें कार्यकारणभाव सन्बन्ध माना है । जिस प्रकार सफेद तंतुरूप समवायी कारणसे बना हुआ वस्त्र उस कारणको मिलता हुआ अर्थात् सफेद ही होता है तैसेही कारणके स्वभावानुसार कारणके मिलनेसे कार्य उत्पन्न होता है यह प्रकृतिसम समवाय माना जाता है । जैसे कि, केवल वातसे उत्पन्न हुआ वातज्वर वातसम्बन्धी कम्पादि धर्मसे युक्त होता है । केवल पित्तसे उत्पन्न हुआ पित्तज्वर पित्तसम्बधी तीव्रतादि धर्मयुक्त होता है और केवल कफसे उत्पन्न हुआ कफज्वर कफसंबन्धी स्तैमित्य आदि लक्षणयुक्त होता है । जैसे संयोगसे विकारको प्राप्त हुए हलदी और चूना इनमें उन कारणोंके न मिलनेसे लाल रंग रूप कार्य उत्पन्न होता है । उसी प्रकार विकृति होनेसे कारण नहीं मिलनेसे ऐसा कार्य उत्पन्न होता है, इस कारण " विकृतिविषमसमवाय " माना जाता है, इस विकृतिविषम समवायके अनुसार संयोगके होनेसे विकारको प्राप्त हुए वात और कफ इन दोनोंमें उनके स्वभाव न मिलनेसे अधिक पसीना आता है ऐसा सिद्धान्त है ॥ ४७३—४७५ ॥

अथ वातकफज्वरचिकित्सा ।

वातश्लेष्मज्वरे देयमौषधं नवमेऽहनि॥४७६॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । दीपनीयः स्मृतो वर्गो वातश्लेष्मज्वरापहः । कोलमात्रोपयोगित्वात्पञ्चकोलमिदं स्मृतम् ॥ ४७७ ॥ तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफदाहनुत् । गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥ ४७८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वातकफज्वरमें नववें दिन औषधि देनी चाहिये । पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ इनको पंचकोल कहते हैं । यह पंचकोल—अग्निको दीपन करनेवाला और वातकफज्वरनाशक है । इसमें पाँचों पदार्थ एक एक कोलपरिमाण लेनेसे यह पंचकोल कहा जाता है । पंचकोल—तीक्ष्ण, उष्ण, उत्तम पाचन, दीपन, कफदाहनाशक, पित्तप्रकोपक है तथा गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अफरा और शूलको नष्ट करे है ॥४७६–४७८॥

अथ किरातादिक्काथः ।

किरातविश्वामृतवल्लिसिंहिकाव्याघ्रीकणामूलरसोनसिन्दुकैः । कृतः कषायो विनिहन्ति सत्वरं ज्वरं समीरात्सकफात्समुत्थितम् ४७९

चिरायता, सोंठ, गिलोय, कटेरी, कटाई, पीपलामूल, लहसुन और सम्हालू इनका क्काथ कफवातज्वरको हरनेवाला है ॥ ४७९ ॥

अथ पिप्पल्यादिक्काथः ।

पिप्पल्यादिगणक्काथं पिबेद्वातकफज्वरी । नातः परं किञ्चिदस्ति ज्वरे भेषजमुत्तमम् ४८०

वातकफज्वरवाला पिप्पल्यादिगणका क्काथ पिये इसके समान वातकफज्वरमें दूसरी औषधि नहीं है ॥ ४८० ॥

अथ बृहत्पिप्पल्याक्काथः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् । वचा सातिविषाजाजी पाठावत्सकरेणुकाः ॥ ४८१ ॥ किराततिक्तको मूर्वा सर्षपा मरिचानि च । कट्फलं पुष्करं भार्ङ्गी विडङ्गं कर्कटाह्वयम् ॥ ४८२ ॥ अर्कमूलं बृहत्सिंही श्रेयसी सदुरालभा । दीप्यकश्चाजमोदा च शुकनासा सहिंगुका ॥४८३॥ एतानि समभागानि गण एकोऽष्टविंशतिः । एषां क्काथो निपीतः स्याद्वातश्लेष्मज्वरापहः ॥ ४८४ ॥ हन्ति वातं तथा शीतं प्रस्वेदमतिवेपथुम् । प्रलापं चातिनिद्रां च रोमहर्षारुची तथा ॥ ४८५ ॥ महावातेऽपतन्त्रे च शून्यत्वे सर्वगात्रजे । पिप्पल्यादिमहाक्काथो ज्वरे सर्वत्र पूजितः ॥ ४८६ ॥ अत्र श्रेयसी राज्ञा वातश्लेष्मज्वरहरत्वात् ।

पीपल, पीपलामूल, चव्य (चाव), चीता, सोंठ, वच, अतीस, जीरा, पाढ, इन्द्रजौ, रेणुका, चिरायता, मूर्वा, सरसों, काली मिरच, कायफल, पोहकरमूल, भारंगी, वायविडंग, काकडासिंगी, आककी जड, बडी कटेरी, रायसन, धमासा, अजवायन, अजमोद, स्योनाक और हींग इन २८ औषधियोंके समूहको पिप्पल्यादिगण कहते हैं । इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर क्काथ बनाकर पिये तो वातकफज्वर, वात, शीत, पसीना, अत्यंत कम्प, प्रलाप, अत्यंत निद्रा, रोमाचोंका खडा होना, अरुचि, अपतंत्र नामक महावायु और सब शरीरकी शून्यता नष्ट हो जाती है । यह पिप्पल्यादि महाक्काथ सर्व प्रकारके ज्वरोंमें पूजा जाता है ॥ ४८१–४८६ ॥

अथ दशमूलीक्काथः ।

दश क्षीरसः पीतः कणाढ्यः कफवातजे । ज्वरे विपाके निद्रायां पार्श्वरुक्छ्वासकासके ॥ ४८७ ॥

दशमूलके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर मुखपाक, निद्रा, पसलियोंकी पीडा, श्वास और खाँसीयुक्त कफवातज्वरमें पीना चाहिये ॥ ४८७ ॥

अथ पिप्पलीक्काथः ।

पिप्पलीभिः श्रृतं तोयमनाभिष्यन्दि दीपनम् । वातश्लेष्मज्वरं हन्ति सेवितं प्लीहनाशनम् ४८८

पीपलका क्काथ सेवन करनेसे वातकफज्वरको नष्ट करता है, अनभिष्यन्दि, अग्निप्रदीपक है और प्लीहाको दूर करता है ॥ ४८८ ॥

अथ सूर्यशेखररसः ।

सूतकं टंकणं भृष्टं गन्धं शुद्धं समं समम् । द्विगुणं सूतकादेयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ ४८९ ॥ सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वक्क्षारः शर्करापि च । प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ ४९० ॥ सूर्यशेखरनामाऽयं रसो गुञ्जाद्वयोन्मितः । भक्षितस्तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः ॥ ४९१ ॥ सूर्यशेखरो रसो वातश्लेष्मज्वरे शीतज्वरे च रसप्रदीपे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुद्ध पारा, भुना हुआ सुहागा और शुद्ध गंधक ये सब समान भाग, शुद्ध तुषरहित जमालगोटेके बीज पारेसे दुगुने, सेंधानिमक, काली मिरच, इमलीका खार और खांड ये सब पारेकी बराबर लेवे, फिर सबको एकत्र जम्भीरी नींबूके रसमें एक दिन खरल करे तौ सूर्यशेखर नामक रस तैय्यार होता है, दो रत्ती परिमाण इसको गरम जलके साथ सेवन करे। इससे वातकफज्वर और शीतज्वर नष्ट होता है। यह रसप्रदीपमें कहा है ॥ ४८९–४९१ ॥

अथोद्धूलनम्।

स्वेदोद्गमे भृष्टकुलत्थचूर्णनिपातनं शस्तमिति ध्रुवन्ति । जीर्णं शकृद्गोर्लवणस्य भाजनं संचूर्णितं स्वेदहरं सुधूलनात् ॥ ४९२ ॥
अथ मरिचाद्युद्धूलनम् । मरिचं पिप्पली शुण्ठी पथ्या लोध्रं च पौष्करम् । भूनिम्बः कटुका कुष्ठं कचूरो लिङ्गिका शठी ॥४९३॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् एतदुद्धूलनं श्रेष्ठं स्रोतोवत्स्वेदनिर्गमे॥४९४॥ लिंगिका पञ्चगुरिआ इति लोके। अत्र शठी गन्धपलाशी। भूनिम्बः कारवी तिक्ता वचा कट्फलजं रजः । एषामुद्धूलनं श्रेष्ठं सततं स्वेदसंश्रये ॥ ४९५ ॥ पूर्वोक्तो वालुकास्वेदोऽपि अत्र समुचितः।

जो वातकफज्वरमें पसीना अधिक आता हो तौ भुनी हुई कुलथीको पीसकर उसको मालिस करे। गायका पुराना गोवर और नमक रखनेका बासन इन दोनोंको एकत्र पीसकर शरीरमें मलनेसे पसीनेका आना बन्द होता है। काली मिरच, पीपल, सोंठ, हरड, लोध, पोहकरमूल, चिरायता, कुटकी, कूठ, कचूर, शिवलिंगी और कपूरकचरी इन सबको समान भाग लेकर बारिक पीसकर शरीरपर मलनेसे प्रवाहकी समानभी पसीनेका निकलना बन्द हो जाता है। चिरायता, काला जीरी, कुटकी, वच और कायफल इनको एकत्र पीसकर शरीरमें मलनेसे निरन्तर पसीनेका निकलना बन्द हो जाता है ॥ ४९२–४९५ ॥

अथ वालुकास्वेदः।

पीनसश्वासबाधिर्यै जंघापार्श्वास्थिशूलिनि। वातश्लेष्मज्वरे देयमौषधं तद्विधानवित् ४९६

पहिले कहा हुआ वालुकास्वेद भी वातकफज्वरमें श्रेष्ठ है, क्योंकि पीनस, श्वास, बधिरता, जंघा, पार्श्व और अस्थिशूल इन उपद्रवोंसहित वातकफज्वरमें वालुकास्वेद करना चाहिये ऐसा पहिले कह चुके हैं॥४९६॥

अथ कवलः।

मातुलुंगफलकेशरो धृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे । हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ ४९७ ॥

सेंधानिमक और काली मिरचके साथ बिजौरे नींबूकी केशरका कवल मुखमें धारण करनेसे वात और कफके रोग, मुखशोष, जडता और अरुचि नष्ट होती है ॥ ४९७ ॥

अथ वातकफज्वरान्नविधानम्।

महत्या पञ्चमूल्यान्नं सम्यक्सिद्धं चिकित्सकः । सप्तमे दिवसे दद्याज्ज्वरे वातबलासजे ॥ ४९८ ॥

वैद्य वातकफज्वरमें सातवें दिन बृहत्पंचमूलके क्वाथमें अच्छे प्रकारसे पकाया हुआ अन्न रोगीको देवे ॥ ४९८ ॥

इति वातकफज्वराधिकारः समाप्तः।

अथ पित्तकफज्वराधिकारः।

पित्तश्लेष्मकरैः पित्तकफावामाशयाश्रयौ। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगौ ज्वरकारिणौ ॥ ४९९ ॥

तहां प्रथम पित्तकफज्वरके विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर सम्प्राप्ति कहते हैं। पित्तकारक और कफकारक आहार विहारोंके करनेसे पित्त और कफ आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ४९९ ॥

अथ पित्तकफज्वरपूर्वरूपकम्।

प्राग्रूपे पित्तकफयोः स्यातां पित्तकफज्वरे५००

पित्तकफज्वरमें पित्तज्वर और कफज्वर दोनोंके पूर्वरूप होते हैं ॥ ५०० ॥

अथ पित्तकफज्वरलक्षणम्।

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा। मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पित्तश्लेष्मज्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राकृतिः ॥ ५०१ ॥ आस्यतिक्तत्वं पित्तेन, लिप्तत्वं कफेन, तन्द्रा अर्द्धोन्मीलितनेत्रत्वम्, मोहो मूर्च्छा ।

पित्तके कारण--मुखमें कडवापन और कफसे मुख लिप्तसा हो, तन्द्रा, मोह, खांसी, अरुचि, तृषा, बारंबार दाह हो और बारंबार शीत लगे ये पित्तकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ५०१॥

अथ पित्तकफज्वरचिकित्सा ।

पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं दशमेऽहनि५०२॥

पित्तकफज्वरमें दशवें दिन औषधि देनी चाहिये ॥ ५०२ ॥

अथ गुडूच्यादिक्काथः ।

गुडूची निम्बधान्याकं चन्दनं कटुरोहिणी । गुडूच्यादिरयं क्काथः पाचनो दीपनः स्मृतः । तृष्णादाहारुचिच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ५०३ ॥

गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, लाल चन्दन और कुटकी इनका क्काथ पाचन, अग्निको दीपन करनेवाला तथा तृषा, दाह, अरुचि, वमन और पित्तकफज्वरको नष्ट करता है ॥ ५०३ ॥

अथामृताष्टकक्काथः ।

अमृताकटुकारिष्टपटोलघनचन्दनम् । नागरेन्द्रयवं चैतदमृताष्टकमीरितम् ॥ ५०४ ॥ क्वथितं सकणाचूर्णं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । हल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहनिवारणम्५०५

गिलोय, कुटकी, नीमकी छाल, पटोलपत्र, नागरमोथा, लाल चन्दन, सोंठ और इन्द्रजौ इन सब औषधियोंके समुदायको अमृताष्टक कहते हैं । इस अमृताष्टकका क्काथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है तथा हल्लास (उबकाई), अरुचि, वमन, तृषा और दाहको निवारण करता है ॥ ५०४ ॥ ५०५ ॥

अथ कंटकार्यादिक्काथः ।

कण्टकार्यमृता भार्ङ्गी विश्वेन्द्रयववासकम् । भूनिम्बश्चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ ५०६ ॥ विपाच्य पाययेत्क्काथं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासशूलनिवारणम् ॥ ५०७ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, अडूसा, चिरायता, लाल चन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, दाह, तृषा, अरुचि, वमन, खाँसी और शूल नष्ट होता है ॥ ५०६ ॥ ५०७ ॥

अथ नागरादिक्काथः ।

नागरोशीरबिल्वाब्दधान्यमोचरसाम्बुभिः । कृतःक्काथो भवेद्ग्राही पित्तश्लेष्मज्वरापहः५०८

सोंठ, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, धनियाँ, मोचरस और सुगन्धवाला इनका क्वाथ पित्तकफज्वरनाशक और मलरोधक है ॥ ५०८॥

अथ कटुकीकल्कः ।

शर्करामक्षमात्रां च कटुकीं चोष्णवारिणा । पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः पित्तश्लेष्मसमुद्भवम् ॥ ५०९ ॥ अत्र कटुक्याः द्वादश माषाः शर्करायाश्चत्वारो माषा एवं कर्षः इति चरकः । वैद्यस्य व्यवहारे कटुकीशर्करयोः समभागयोरेव कर्षः ।

एक तोलेभर कुटकी और खाँड लेकर उनका कल्क बनावे और गरम जलके साथ पिये तो पित्तकफज्वर नष्ट होता है । इसमें चरक भी कहता है कि, बारह मासे कुटकी और ४ चार मासे खांड लेनी चाहिये, परन्तु वैद्यलोग तौ कुटकी और खाँड दोनोंको समान भाग लेकर एक तोला करते हैं॥५०९॥

अथ वासारसः ।

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः । पित्तश्लेष्मज्वरं हन्ति साम्लपित्तं सकामलम् ॥ ५१० ॥ अत्र वासारसोऽर्द्धपलपरिमितो देयः, मधुसितयोः प्रत्येकं टंकः प्रक्षेप्यः ।

पत्ते और फूलसहित अडूसेके रसमें सहत और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त और कामलासहित पित्तकफज्वर नष्ट होता है । यहां अडूसेका रस दो तोले परिमाण लेना चाहिये, मिश्री २४ रत्ती परिमाण लेनी चाहिये और सहत भी चौनीस २४ रत्ती डालना चाहिये ॥ ५१० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ शृंगवेरादिक्काथः।

कषायः परिपक्वस्तु शृङ्गवेरपटोलयोः। पित्तश्लेष्मज्वरवमीदाहकण्डूहरो भवेत् ॥ ५११ ॥

अदरख और पटोलपत्रका क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, वमन, दाह और खुजली नष्ट होती है ॥ ५११ ॥

अथान्नम्।

पटोलधान्ययोर्यूषः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ५१२

पटोलपत्र और धनियेके यूषसे सिद्ध किये हुए अन्न पित्तकफज्वरनाशक हैं ॥ ५१२ ॥

इति पित्तकफज्वराधिकारः समाप्तः।

अथ सन्निपातज्वराधिकारः।

त्रिदोषजनकैर्वातपित्तश्लेष्मामगेहगाः। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगा ज्वरकारिणः॥५१३॥

अब सन्निपातज्वरका विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट कारण कहकर सम्प्राप्ति कहते हैं। त्रिदोषकारक आहार और विहारके करनेसे वात पित्त और कफ आमाशयमें जाकर रसको दूषित करके कोठेकी अग्निकी गरमीको बाहर निकाल ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥५१३॥

अथ सन्निपातज्वरपूर्वरूपम्।

प्रायूपाणि त्रिदोषाणां स्युस्त्रिदोषज्वरे नृणाम् ॥ ५१४ ॥

सन्निपातज्वरमें मनुष्योंके वातज्वर, पित्तज्वर और कफज्वर इन तीनोंके पूर्वरूप होते हैं ॥ ५१४ ॥

अथ सन्निपातज्वरलक्षणम्।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने।
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठशूकैरिवावृतः ॥ ५१५ ॥ तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः। परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परा। ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ ५१६ ॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा। स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः॥५१७॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम्। कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥५१८॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च। चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ ५१९ ॥ लोचने सास्रावे साश्रुणी, कलुषे अस्वच्छे निर्भुग्ने निर्गते कुटिले च। कण्ठः शूकैरिवावृतः धान्याग्रैरिवावृतः। जिह्वा परिदग्धा परिदग्धा इव ज्ञायते। अथवा परिदग्धा इव कृष्णा दृश्यते, स्रस्ताङ्गता शिथिलाङ्गता। ष्ठीवनमित्यादि कफसंयुक्तस्य रक्तस्य ष्ठीवनम्। शिरसो लोठनमितस्ततश्चालनम्। कृशत्वं नातिगात्राणामिति गात्राणामतिशयितं कार्श्यं न व्याधिप्रभावात्। सततं निरन्तरम्, कोठः 'वरटीदंष्ट्रसंस्थानं कोठ इत्याभिधीयते।' श्यावः कपिशो वर्णः। मूकत्वमवचनत्वमल्पवचनत्वं वा, स्रोतसां कर्णनासादीनाम्। ननु वातादयः परस्परविरुद्धगुणास्तेषां सम्भूय एकत्र कार्यारम्भकत्वं नोपपद्यते परस्परोपघाताद्दहनसलिलयोरिव तत्कथं वातपित्तकफाः मिलित्वा विकारोत्पादकाः? अत्र समाधानमुक्तं दृढबलेन—विरुद्धैरपि न त्वेते गुणैर्नान्ति परस्परम्। दोषाः सहजसाम्यत्वाद्विषं घोरमहीनिव ॥ ५२० ॥ गदाधरस्तु हेत्वन्तरमुक्तवान्। दैवाद्दोषस्वभावाद्वा दोषाणां सान्निपातिके। विरुद्धैश्च गुणैस्तैश्च नोपघातः परस्परम् ॥ ५२१ ॥ ननु भिन्नचयप्रकोपकालानां वातपित्तकफानां युगपदुत्पत्त्यभावात्कथं सम्भूय सन्निपातज्वरारम्भकत्वमुपपद्यते? उच्यते—त्रिदोषजनकनिदानबलेन युगपदेषां प्रकोपादिति सिद्धान्तः।

क्षणभरमें दाह हो, क्षणभरमें शीत लगे, हड्डी, संधि (जोड) और शिरमें पीडा हो, नेत्र स्रावयुक्त, गदले, लाल और टेढे होंय, कानोंमें शब्द और पीडा हो, कंठमें धानके तूरकी समान काँटे हो जायँ, तन्द्रा (आधे नेत्र खुले और आधे मिचेसे हो जायँ) तथा मोह (बेहोशी) हो, प्रलाप (वृथा बकवाद) हो,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खाँसी, श्वास, भोजनमें अरुचि हो, भ्रान्ति हो, जिह्वा अग्निसे जले हुएकी समान और स्पर्शमें खरखरी हो, सम्पूर्ण अंग शिथिल हो जायँ, कफ मिले हुए रक्तपित्तको थूके, शिरको इधर उधर घुमावे, तृषा हो, निद्रा नहीं आवे, हृदयमें पीडा हो, पसीना, मूत्र और विष्ठा ये बहुतकालमें थोडे उतरैं, शरीर बहुत कृश नहीं हो, निरंतर कंठमें शब्द हो, पिंगलवर्ण और लालरंगकी ततैयाके काटनेकी समान शरीरमें गोल गोल चकत्ते पड जायँ, कम बोले अथवा बिलकुल नहीं बोले, कान नाक आदि शरीरके स्रोत (छिद्र) पक जायँ, उदरमें भारीपन और दोष बहुत कालमें पचे ये सन्निपातज्वरके लक्षण हैं। सन्निपात ज्वरमें शरीर अत्यंत कृश (दुर्बल) नहीं होता यह व्याधिहीका प्रभाव है। शंका—वात, पित्त और कफ ये परस्पर विरुद्ध गुणवाले हैं, ये सब मिलकर एक कार्यको कैसे कर सक्ते हैं ? कारण यह है कि अग्नि और जलकी समान यह परस्पर एक दूसरेको नष्ट करनेवाले हैं ऐसा होनेपर वात, पित्त और कफ ये सब मिलकर कैसे ज्वर (सन्निपात) को उत्पन्न करते हैं ? समाधान—इस विषयमें दृढबल आचार्य ऐसा समाधान करता है कि—" दोष स्वाभाविक रीतिके अनुसार समान मिलनेसे, परस्पर विरुद्ध गुणवाले होनेपर भी; जिस प्रकार भयंकर विष सर्पको नहीं मारता उसी प्रकार ये परस्पर एक दूसरेका नाश नहीं करते। " गदाधर वैद्य इस विषयमें अन्य कारण कहता है कि—" वातादि दोष विरुद्ध गुणवाले होनेपर भी सन्निपातज्वरमें दैवकी गतिसे अथवा वह अपने स्वभावसे परस्पर एक दूसरेका नाश नहीं करते। " शंका—वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंका चयकाल और प्रकोपकाल अलग अलग है, इस कारण इन सबकी एक समयमें उत्पत्ति नहीं हो सक्ती, फिर ये सब मिलकर कैसे सन्निपातज्वरको उत्पन्न करते हैं ? यह संदेह होता है। समाधान—जिससे तीनों दोष उत्पन्न होयँ ऐसे मिथ्या आहारविहारादिके करनेसे ये तीनों दोष एकही समयमें कुपित होते हैं ऐसा सिद्धान्त है ॥ ५१५–५२१ ॥

अथ सामान्यसन्निपातत्रयोदशभेदाः ।
एकोल्वणास्त्रयस्तेषु द्व्युल्वणाश्च तथेति षट् ।
त्र्युल्वणश्च भवेदेको विज्ञेयः स तु सप्तमः ॥ ५२२ ॥ प्रवृद्धमध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च षट् । सन्निपातज्वरस्यैवं स्युर्विशेषास्त्रयोदश ॥ ५२३ ॥ अत्र प्रवृद्धवातः मध्यपित्तो हीनकफः १ मध्यवातः प्रवृद्धपित्तो हीनकफः २ हीनवातः प्रवृद्धपित्तो मध्यकफः ३ प्रवृद्धवातः हीनपित्तो मध्यकफः ४ मध्यवातः हीनपित्तः प्रवृद्धकफः ५ हीनवातो मध्यपित्तः प्रवृद्धकफः ६ इति षट् ।

वातोल्वण, पित्तोल्वण, कफोल्वण, वातपित्तोल्वण, वातकफोल्वण, पित्तकफोल्वण, वातपित्तकफोल्वण, अधिकवात मध्यपित्त हीनकफ, मध्यवात अधिकपित्त हीनकफ, हीनवात अधिकपित्त मध्यकफ, अधिकवात हीनपित्त मध्यकफ, मध्यवात हीनपित्त अधिककफ और हीनवात मध्यपित्त अधिककफ इस प्रकार सन्निपातज्वरके तेरह भेद हैं ॥ ५२२ ॥ ५२३ ॥

अथानुक्रमेण त्रयोदशसंनिपातनामानि ।
विस्फारकश्चाशुकारी कम्पनो वभ्रसंज्ञकः ।
शीघ्रकारी तथा भल्लुः सप्तमः कूटपाकलः ॥ ५२४ ॥ सम्मोहकः पालकश्च याम्यः ककच इत्यपि । ततः कर्कटकः प्रोक्तस्ततो वैदारिकाभिधः ॥ ५२५ ॥ तन्त्रान्तरे विस्फारक इत्यत्र विस्फोरक इति पाठः । वभ्रस्थाने बभ्रुरिति पाठः । कुत्रापि बद्ध इति पाठः । भल्लुरित्यत्र फल्गुरिति वा पाठः । याम्य इत्यत्र संग्राम इति पाठः । कर्कटक इत्यत्र कर्कोटक इति वा पाठः ।

विस्फारक, आशुकारी, कम्पन, वभ्र, शीघ्रकारी, भल्लु, कूटपाकल, सम्मोहक, पालक, याम्य, ककच, कर्कटक और वैदारिक ये ऊपर कहे हुए तेरह सन्निपातोंके अनुक्रमसे तेरह नाम जानने। अन्य ग्रन्थोंमें विस्फारकको विस्फोरक, वभ्रको बभ्र, अथवा बद्ध, भल्लुको फल्गु, याम्यको संग्राम और कर्कटकको कर्कोटक कहा है ॥ ५२४ ॥ ५२५ ॥

अथ वातोल्वणविस्फारकलक्षणम् ।
श्वासः कासो भ्रमो मूर्च्छा प्रलापो मोहवेपथुः । पार्श्वस्य वेदना जृम्भा कषायत्वं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुखस्य च ॥ ५२६ ॥ वातोल्वणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत्। एष विस्फारको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ५२७ ॥

श्वास, खांसी, भ्रान्ति, मूर्च्छा, वृथा बकवाद, मोह (बेहोशी), कम्प, पसलियोंमें पीडा, जम्भाइयोंका आना और मुखमें कसलापन ये वातोल्वण सन्निपात ज्वरके लक्षण हैं। यह दारुण वातोल्वण सान्निपात विस्फारक नामसे प्रसिद्ध है ॥ ५२६ ॥ ५२७ ॥

अथ पित्तोल्वणाशुकारिलक्षणम्।

अतिसारो भ्रमो मूर्च्छा मुखपाकस्तथैव च। गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाहोऽतीव प्रजायते ॥ ५२८ ॥ पित्तोल्वणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत्। भिषग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥ ५२९ ॥

अतिसार (दस्त आवे), भ्रांति, मूर्च्छा, मुखका पकना, देहमें लाल लाल बिन्दुओंका पड जाना और अत्यंत दाहका होना ये पित्तोल्वण सन्निपातज्वरके लक्षण हैं। यह पित्तोल्वण सान्निपात आशुकारी नामसे प्रसिद्ध है ॥ ५२८ ॥ ५२९ ॥

अथ कफोल्वणकंपनलक्षणम्।

जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि। प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च॥५३०॥ कफोल्वणस्य लिंगानि सन्निपातस्य लक्षयेत्। मुनिभिः सन्निपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ५३१ ॥

जडता, गद्गद बोले, रात्रिमें निद्रा भी आवे, नेत्रोंमें स्तब्धता और मुखमें मधुरता ये कफोल्वण सन्निपातके लक्षण हैं। इस कफोल्वण सन्निपातको ऋषिलोग 'कम्पन' कहते हैं ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

अथ वातपित्तोल्वणबभ्रुलक्षणम्।

वातपित्ताधिको यस्तु सन्निपातः प्रकुप्यति। तस्य ज्वरो मदस्तृष्णा मुखशोषः प्रमीलकः ॥ ५३२ ॥ आध्मानारुचितन्द्राश्च कासश्वासभ्रमश्रमाः। मुनिभिर्बभ्रुनामायं सान्निपात उदाहृतः ॥ ५३३ ॥

जब वात और पित्ताधिकवाला सन्निपात कुपित होता है तब ज्वर, मद, तृषा, मुखशोष, प्रमीलक (नेत्र मिचेसे हो जाँय), अफरा, अरुचि, तन्द्रा, खाँसी, श्वास, भ्रम और श्रम (थकावट) ये सब लक्षण होते हैं, इस वातपित्तोल्वण सन्निपातको मुनिजन 'बभ्रु' वा 'बभ्रु' कहते हैं ॥ ५३२ ॥ ५३३ ॥

अथ वातकफोल्वणशीघ्रकारिसन्निपातलक्षणम्।

वातश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति। तस्य शीतज्वरो मूर्च्छा क्षुत्तृष्णा पार्श्वनिग्रहः ॥ ५३४ शूलमस्विद्यमानस्य तन्द्रा श्वासश्च जायते। असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते। न हि जीवत्यहोरात्रमनेनाविष्टविग्रहः ॥ ५३५ ॥

जब वातकफाधिक सन्निपात कुपित होता है तो शीतज्वर, मूर्च्छा, क्षुधा (भूँख), तृषा, प्यास, पसलियोंमें पीडा, शूल, पसीनेका न आना, तन्द्रा और श्वास ये सब लक्षण होते हैं, यह सन्निपात असाध्य है, इसको मुनिजन 'शीघ्रकारी' कहते हैं, जिसके यह सन्निपात कुपित होता है वह मनुष्य एक दिनरात भी नहीं जीता है ॥ ५३४ ॥ ५३५ ॥

अथ पित्तकफोल्वणभल्लुलक्षणम्।

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति। अन्तर्दाहो बहिःशीतं तस्य तृष्णा प्रवर्द्धते ॥ ५३६ ॥ तुद्यते दक्षिणे पार्श्वे उरःशीर्षगलग्रहः। ष्ठीवति श्लेष्मपित्तं च कृच्छ्रात्कोष्ठश्च जायते ॥ ५३७ ॥ विड्भेदश्वासहिक्काश्च वर्द्धन्ते सप्रमीलकाः। ऋषिभिर्भल्लुनामायं सन्निपात उदाहृतः ॥ ५३८ ॥

जब पित्तकफाधिक सन्निपात कुपित होता है तब शरीरके भीतर दाह, ऊपरसे सरदी लगे, तृषा अधिक बढ जाय, दहनी पसलीमें पीडा हो, हृदय, मस्तक और कंठमें वेदना हो, अत्यंत कठिनतासे कफपित्तको थूके, शरीरमें चकत्तेसे पड जायँ, दस्त आने लगे, श्वास, हिचकी और आँखें मिचीसी हो जावें ये लक्षण होते हैं। इस सन्निपातको ऋषिलोग भल्लु कहते हैं ॥ ५३६–५३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ वातपित्तकफोल्वणकूटपालक-लक्षणम् ।

सर्वदोषोल्वणो यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति । त्रयाणामपि दोषाणां तस्य रूपाणि लक्षयेत् ॥ ५३९ ॥ व्याधिभ्यो दारुणश्चैव वज्रशस्त्राग्निसन्निभः । केवलोच्छ्वासपरमस्तब्धांगः स्तब्धलोचनः ॥ ५४० ॥ त्रिरात्रात्परमेतस्य जन्तोर्हरति जीवितम् । तदवस्थं तु तं दृष्ट्वा मूढो व्याहरते जनः ॥ ५४१ ॥ धर्षितो राक्षसैर्नूनमवेलायां चरन्ति ये । अम्बया ब्रुवते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मराक्षसैः ॥ ५४२ ॥ पिशाचैर्गुह्यकैश्चैव तथान्यैर्भस्तके हतम् । कुलदेवार्चनाहीनं धर्षितं कुलदैवतैः ॥५४३॥ नक्षत्रपीडामपरे गरकर्मेति चापरे । सन्निपातमिमं प्राहुर्भिषजः कूटपालकम् ॥ ५४४ ॥

जब त्रिदोषोल्वण सन्निपात कुपित होता है तब उसमें तीनों दोषोंके लक्षण दिखाई देते हैं, यह सन्निपात सर्व व्याधियोंसे वज्र और शस्त्रकी समान भयंकर है । इसमें रोगी केवल ऊँचा श्वासही लेता रहता है, सम्पूर्ण शरीर जकड जाता है, नेत्र पत्थरकी समान हो जाते हैं, यह सन्निपात तीन दिनके बाद मनुष्योंके प्राणोंको हर लेता है, इस सन्निपातवाले मनुष्यको देखकर कितनेक मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि इसको कुसमय (आधीरात या दो प्रहरके वक्त) में फिरनेवाले राक्षसोंने पकड लिया है । कोई कहते हैं कि—देवीने दबा लिया है, कोई कहते हैं कि—यक्षिणीने पकडा है, कोई कहते हैं कि—ब्रह्मराक्षस चिपट गया है, कोई पिशाच और कोई यक्षबाधा कहते हैं, कोई कहते हैं कि—इसके शिरमें किसीने चोट मार दी है, कोई कहते हैं कि—इसने अपने कुलदेवताका पूजन नहीं किया, उन्होंने इसका यह कर दिया है, कोई कहते हैं कि—इसको ग्रह नक्षत्र आदिने पीडा करी है और कितने मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि इसको किसीने विष दे दिया है । इस सन्निपातको वैद्यलोग कूटपालक कहते हैं ॥ ५३९–५४४ ॥

अथाधिकवात-मध्यपित्त-हीनकफ-संमोहकसन्निपातलक्षणानि ।

प्रवृद्धमध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च यः । तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ५४५ ॥ प्रलापायाससम्मोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः । एकपक्षाभिघातश्च तत्राप्येते विशेषतः । एष सम्मोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥५४६॥ रोगास्त एवोक्ताः, उक्ता एव ते रोगाः व्यथावेपथुनिद्रानाशविष्टम्भादयो वातजाः, दाहतृष्णोष्णतास्वेदादयः पित्तजाः, गौरवाग्निमान्द्योत्कासनासिकामुखप्रसेकादयः कफजाः । तत्रापि प्रलापादयः पक्षाघातान्ता विशेषाद्भवन्ति । ननु वातः प्रवृद्धः स ज्वरं करिष्यति पित्तं तु मध्यसममिति यावत् तत्कथं ज्वरं करिष्यति ? यत आह—धातवस्तन्मला दोषाः स्युर्नाशायासमास्तनौ । समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च ॥ ५४७ ॥ अत्र पित्तं मध्यमपि अप्रकृतमेव यतोऽप्रकृतयोर्वातश्लेष्मणोरपेक्षया मध्यं तेन मध्यकुपितमित्यर्थः । ननु कफः क्षीणः स कथं ज्वरं करिष्यति ? हीनशक्तित्वात् । उच्यते—दोषाः क्षीणा अपि व्याधीन् कुर्वन्त्येव, यत आह—वातक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मन्दवाक्त्वं विसंज्ञता । पित्तक्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निर्मन्दः प्रभाक्षयः । शिथिलाः सन्धयो मूर्च्छा रौक्ष्यं दाहः कफक्षये ॥५४८॥ इति शंका सिद्धान्तश्चात्र परत्रापि ।

अधिकवात मध्यपित्त हीनकफ सन्निपातमें पूर्वोक्त व्यथा, कंप, निद्राका न आना और मलविष्टम्भ आदि वातसंबंधी रोग होते हैं, दाह, तृषा, उष्णता और पसीना आदि पित्तसंबंधी रोग होते हैं और भारीपन, अग्निकी मंदता, खाँसी, तथा नाक और मुखसे पानीका गिरना आदि कफसंबंधी रोग होते हैं, एवं प्रलाप (वृथा बकवाद), परिश्रम, मोह, कंप, मूर्छा, अरुचि, भ्रम और पक्षाघात ये विशेष करके होते हैं । इस भयंकर सन्निपातको मुनिजन संमोहक कहते हैं । शंका—वायु वृद्धिको प्राप्त होकर ज्वरको उत्पन्न करती है किन्तु पित्त मध्य अर्थात् सम होनेसे कैसे ज्वरको उत्पन्न करता है ? क्योंकि धातु, मल और दोष ये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असमान होनेसे शरीरको नष्ट करते हैं, और सम होनेसे सुख, बल और पुष्टिको करते हैं ऐसा कहा है। समाधान—सन्निपातमें पित्त मध्यम है परन्तु प्रकृतिमें स्थित नहीं है अर्थात् विकृत हुए जो वात कफ उनसे मध्य रहता है कुछ प्रकृतिमें मध्यम (सम) नहीं है। शंका—क्षीण हुआ कफ कैसे ज्वरको उत्पन्न करता है ? क्योंकि जिसकी शक्ति हीन हो जाती है वह कार्य करनेको समर्थ नहीं रहता। समाधान—दोष क्षीण होनेपर भी व्याधियोंको उत्पन्न करते हैं क्योंकि वायुके क्षय होनेसे चेष्टा अल्प हो जाती है, वाणी मंद पड जाती है और संज्ञाका नाश हो जाता है। पित्तके क्षय होनेसे कफ अधिक बढ जाता है, अग्नि मंद हो जाती है और कांति नष्ट हो जाती है और कफके क्षय होनेसे संधि (जोड) शिथिल हो जाती हैं, मूर्च्छा, रूक्षता और दाह उत्पन्न होता है यही शंका समाधान अन्य सन्निपातोंमें भी समझ लेना ॥ ५४५–५४८ ॥

अथ मध्यवाताऽधिकपित्त-हीनकफ-पाकलसन्निपातलक्षणानि।

मध्यप्रवृद्धहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ५४९॥ मोहप्रलापमूर्च्छाः स्युर्मन्यास्तम्भः शिरोग्रहः। कासः श्वासो भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदि व्यथा ॥ ५५० ॥ खेभ्यो रक्तं विसृजति संरक्तस्तब्धनेत्रता। तत्राप्यत विशेषाः स्युर्मृत्युरर्वाक् त्रिवासरात् ॥ ५५१ ॥ भिषग्भिः सन्निपातोऽयं कथितः पाकलाभिधः ॥ ५५२ ॥

मध्यवात, अधिकपित्त, हीनकफ सन्निपातमें तत्तद्दोषबलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं, तथा मोह, प्रलाप (बकवाद), मूर्च्छा, नाडका जकड जाना, शिरमें पीडा, खांसी, श्वास, भ्रम, तन्द्रा, संज्ञाका नाश, हृदयमें व्यथा, इन्द्रियोंके छिद्रोंमेंसे रुधिरका गिरना, नेत्रोंमें लाली और नेत्रोंका जड हो जाना ये विशेष करके होते हैं। इस सन्निपातमें रोगी तीन दिनके भीतर मर जाता है, इस सन्निपातको वैद्यजन पाकल कहते हैं ॥ ५४९–५५२ ॥

अथ हीनवाताऽधिकपित्त-मध्यकफ-याम्य-सन्निपातलक्षणम्।

हीनप्रवृद्धमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः। हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रपुप्फुसाः ॥ ५५३ ॥ पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्द्धाधः पूयशोणितनिर्गमः। शीर्णदन्तश्च मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषतः ॥ ५५४ ॥ भिषग्भिः सन्निपातोऽयं याम्यो नाम्ना प्रकीर्तितः ॥५५५॥

हीनवात अधिकपित्त मध्यकफ सन्निपातमें उन्हीं २ दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि सकल लक्षण होते हैं तौ भी हृदयमें दाह होता है, यकृत् (कलेजा), प्लीहा (तिल्ली) आंतें और फेफडा ये पक जाते हैं, मुख और गुदासे रुधिर और रादका निकलना, दांतोंका गिरना और मरण ये विशेष करके होते हैं, इस सन्निपातको वैद्यजन याम्य कहते हैं ॥ ५५३–५५५ ॥

अथाधिकवात-हीनपित्त-मध्यकफ-क्रकच-सन्निपातलक्षणम्।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः। प्रलापायाससम्मोहाः कम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ॥५५६॥ मन्यास्तम्भेन मृत्युः स्यात्तत्राप्येतद्विशेषतः। भिषग्भिः सन्निपातोऽयं क्रकचः सम्प्रकीर्तितः ॥ ५५७ ॥

अधिकवात हीनपित्त मध्यकफ सन्निपातमें तत्तद्दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं तौ भी बकवाद, परिश्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम और मन्यानाडी (गरदन या नाड) के जकड जानेसे मृत्यु ये विशेष लक्षण होते हैं, इसको वैद्यजन क्रकच सन्निपात कहते हैं ॥ ५५६ ॥ ५५७ ॥

अथ मध्यवात-हीनपित्ताऽधिककफ-कर्कटक-सन्निपातलक्षणम्।

मध्यहीनप्रवृद्धैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ५५८ ॥ अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र न च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वक्तुं स शक्यते । रक्तमालक्तकेनैव लस्यते मुखमण्डलम् ॥ ५५९ ॥ पित्तेनाकर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते । इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ५६० ॥ प्रमीलकश्वासहिक्का वर्द्धन्ते तु दिनेदिने । जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः॥५६१॥ विसर्गं नाभिजानाति कूजेच्चापि कपोतवत् । अतीव श्लेष्मणा घूर्णः शुष्कवक्त्रौष्ठतालुकः ॥ ५६२ ॥ तन्द्रानिद्रातियोगार्तो हतवाङ्-निहतद्युतिः । न रतिं लभते नित्यं विपरीतानि चेच्छति ॥ ५६३ ॥ आयम्यते च बहुशो रक्तं ष्ठीवति चाल्पशः । एष कर्कटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥५६४॥

मध्यवात हीनपित्त अधिककफ सन्निपातमें तत्तद्दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं तथा विशेष करके अन्तर्दाह (शरीरके भीतर जलन) बोलनेमें असमर्थता होय, मुखमण्डल जैसे आलसे रंग दिया हो ऐसा लाल दीखे, पित्तसे खींचा हुआ कफ हृदयसे बाहर नहीं निकले, पसलियोंमें तीर छेदन सरीखी पीडा हो, हृदयमें खोदनेकी तरह पीडा हो, आंखें मिंचीसी हो जायँ, श्वास और हिचकी प्रतिदिन बढती जायँ, जीभ जली हुईकी समान काली और खरखरी हो जाय, कण्ठमें धानके तूरकी समान कांटे भर जायँ, मल मूत्रादि बेहोशमें निकल जाय, कबूतरकी समान गलेमें कूंजे, कण्ठ कफसे भरा रहे, मुख होठ और तालू सूख जाय, तन्द्रा और निद्रा अधिक आवे, वाणी और कांति नष्ट हो जाय, किसी प्रकार कहीं चैन नहीं हो, विपरीत पदार्थोंकी इच्छा करे और बारंबार खांसनेसे थोडा थोडा रुधिर थूके ये लक्षण होते हैं। इस अत्यन्त घोर सन्निपातको कर्कटक कहते हैं ॥ ५५८–५६४ ॥

अथ हीनवात-मध्यपित्ता-ऽधिककफ-वैदारिक-सन्निपातलक्षणम् ।

हीनमध्यप्रवृद्धैस्तु वातपित्तकफैश्च यः । तेन रोगास्त एवोक्ता यथा दोषबलाश्रयाः ॥५६५॥ अल्पशूलं कटीतोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः । भृशं क्लमः शिरोवस्तिमन्याहृदयवाग्रुजः ॥५६६॥ प्रमीलकः श्वासकासहिक्काजाड्यावसंज्ञताः । प्रथमोत्पन्नमेनं तु साधयन्ति कदाचन ॥ ५६७ ॥ एतस्मिन्सन्निवृत्ते तु कर्णमूले सुदारुणा । पिडिका जायते जन्तोर्यया कृच्छ्रेण जीवति ॥५६८॥ स वैदारिकसंज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः । त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ५६९ ॥

जब हीनवात मध्यपित्त अधिककफ सन्निपात कुपित हुआ होय तौ उसमें उन्हीं उन्हीं दोषोंके बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं और विशेष करके नीचे लिखे लक्षण होते हैं, अल्प शूल, कमरमें तोडनेसरीखी पीडा, छातीमें दाह और पीडा, भ्रान्ति, अत्यन्त ग्लानि, मस्तक, मूत्राशय, नाड, हृदय और वाणीमें पीडा हो, आंखें मिची जायँ, श्वास, खांसी, हिचकी, जडता और अत्यन्त बेहोशी होती है । इस सन्निपातके उत्पन्न होतेही यदि चिकित्सा करी जावे तौ कदाचित् आराम हो जाय नहीं तौ नहीं । इस सन्निपातके निवृत्त होनेपर रोगीके कानकी जडमें बहुत बडी फुडिया निकलती है, इस फुडियाके निकलनेपर अत्यन्त कठिनतासे जीता है । इस महाभयंकर घोर सन्निपातको वैद्यजन वैदारिक कहते हैं, इसके उत्पन्न होनेसे तीन रात्रि व्यतीत हो जाय तौ औषधिकी कल्पना करना वृथा है ॥ ५६५–५६९ ॥

शीतांगस्त्रिमलोद्भवज्वरगणे तन्द्री प्रलापी ततो रक्तष्ठीवयिता च तत्र गणितः सम्भुग्ननेत्रस्तथा । साभिन्यासकजिह्वकश्च कथितः प्राक्सन्धिगोऽथान्तको रुग्दाहः सहचित्तविभ्रम इव द्वौ कर्णकण्ठग्रहौ ॥ ५७० ॥ तन्द्री तान्द्रिकः, प्रलापी प्रलापकः रक्तष्ठीवयिता रक्तष्ठीवी, सम्भुग्ननेत्रः भुग्ननेत्रः, अभिन्यासकः अभिन्यासः, कर्णकण्ठग्रहौ कर्णग्रहः कर्णिकः, कण्ठग्रहः कण्ठकुब्जकः । अथ तेषां प्रत्येकं लक्षणानि ।

अन्य ग्रंथोंमें इन वातोल्वणादि तेरह सन्निपातोंके शीतांगादि जो नाम कहे हैं उनको कहते हैं । तीनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमें शीतांग, तन्द्रिक, प्रलापक, रक्तष्ठीवी, भुग्ननेत्र, अभिन्यास, जिह्वक, संधिग, अन्तक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, कर्णक और कण्ठकुब्जक ये तेरह सन्निपातज्वर गिने जाते हैं। अब इन तेरहके लक्षण कहते हैं ॥ ५७० ॥

अथ शीतांगसन्निपातलक्षणम्।

हिमशिशिरशरीरः सन्निपातज्वरी यः श्वसनकसनहिक्कामोहकम्पप्रलापैः। क्लमबहुकफवातादाहवस्यंगपीडास्वराविकृतिभिरार्तः शीतगात्रः स उक्तः ॥ ५७१ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें रोगीका शरीर हिम (बर्फ) की समान शीतल हो, श्वास, खांसी, हिचकी, मोह, कम्प, प्रलाप, ग्लानि हो, कफ बहुत निकले, वायुका अधिक कोप हो, अधिक दाह तथा वमन (रद) हो, सब अंगोंमें पीडा और स्वर बैठ जाय, उस सन्निपातको 'शीतगात्र' कहते हैं ॥ ५७१ ॥

अथ तन्द्रिकसन्निपातलक्षणम्।

तन्द्रातीव ततस्तृषाऽतिसरणं श्वासोऽधिकः कासरुक् सन्तप्तातितनुर्गलः क्षयधुना सार्द्धं च कण्डूः कफः। सुश्यामा रसना क्लमः श्रवणयोर्मान्द्यं च दाहस्तथा यत्र स्यात्स हि तन्द्रिको निगदितो दोषत्रयोत्थो ज्वरः ५७२

जिस ज्वरमें अत्यन्त तन्द्रा हो, तृषा लगे, अतीसार हो, श्वास अधिक हो, खांसी हो, शरीर अधिक संतापित हो गलेमें सूजन और खुजली तथा कफ हो, जीभ काली हो जाय, ग्लानि, कानोंमें बधिरता और दाह हो, उस सन्निपातको 'तन्द्रिक' कहते हैं ॥५७२॥

अथ प्रलापकसन्निपातलक्षणम्।

यत्र ज्वरे निखिलदोषनितान्तरोषजाते प्रलापबहुलाः सहसोत्थिताश्च। कम्पव्यथापतनदाहविसंज्ञताः स्युर्नाम्ना प्रलापक इति प्रथितः पृथिव्याम् ॥ ५७३ ॥

जिस ज्वरमें सम्पूर्ण दोषोंके अत्यन्त कुपित होनेसे प्रलाप और कम्प, बारंबार उठकर भागना, व्यथा, गिरना, दाह और अत्यन्त बेहोशी हो, उसको लोकमें 'प्रलापक' कहते हैं ॥ ५७३ ॥

अथ रक्तष्ठीविसन्निपातलक्षणम्।

निष्ठीवो रुधिरस्य रक्तसदृशं कृष्णं तनौ मण्डलं लौहित्यं नयने तृषारुचिवमिश्वासातिसारभ्रमाः। आध्मानं च विसंज्ञता च पतनं हिक्काङ्गपीडा भृशं रक्तष्ठीविनि सन्निपातजनिते लिंगं ज्वरे जायते ॥ ५७४ ॥

जिस ज्वरमें रुधिरको थूके, शरीरमें रुधिरकी समान तथा काले चकत्ते पड जायँ, नेत्र लाल हो जायँ, तृषा, अरुचि, वमन, श्वास, अतीसार, भ्रान्ति और अफरा हो अथवा पेट फूल जायँ, संज्ञा जाती रहे, अर्थात् अचेत हो जायँ, बारंबार गिर २ पडे, हिचकी और शरीरमें अत्यन्त पीडा हो, उस सन्निपातज्वरको 'रक्तष्ठीवी' कहते हैं ॥ ५७४ ॥

अथ भुग्ननेत्रसन्निपातज्वरलक्षणम्।

भृशं नयनवक्रता श्वसनकासतन्द्रा भृशं प्रलापमदवेपथुश्रवणहानिमोहास्तथा। पुरो निखिलदोषजे भवति यत्र लिंगं ज्वरे पुरातनचिकित्सकैः स इह भुग्ननेत्रो मतः ॥५७५॥

जिस सन्निपातज्वरमें नेत्रोंमें अत्यन्त टेढापन हो, श्वास, खाँसी, तन्द्रा, अत्यन्त प्रलाप, मद और कम्प हो, कानोंमें बहरापन हो जाय और मोह होय, उसको प्राचीन वैद्य 'भुग्ननेत्र' कहते हैं ॥ ५७५ ॥

अथाभिन्याससन्निपातलक्षणम्।

दोषास्तीव्रतरा भवन्ति बलिनः सर्वेऽपि यत्र ज्वरे मोहोऽतीव विचेष्टता विकलता श्वासो भृशं मूकता। दाहश्चिक्कणमाननं च दहनो मन्दो बलस्य क्षयः सोऽभिन्यास इति प्रकीर्तित इह प्राज्ञैर्भिषग्भिः पुरा ॥ ५७६ ॥

जिस सन्निपात ज्वरमें सब दोष अत्यन्त बलवान् और तीव्र हों, अत्यन्त बेहोशी हो, निचेष्टता हो, अत्यन्त बेकली तथा श्वास हो, अधिकतर मूकता (गूँगापन) हो, दाह हो, मुख चिकना हो, अग्नि मंद और बलकी हानि हो, उसको वैद्योंने 'अभिन्यास' कहा है ॥ ५७६ ॥

अथ जिह्वकसन्निपातज्वरलक्षणम्।

त्रिदोषजनिते ज्वरे भवति यत्र जिह्वा भृशं वृता कठिनकण्टकैस्तदनु निर्भरं मूकता। श्रुतिक्षति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वलक्षातिश्वसनकाससन्तप्तयः पुरातनभिषग्वरास्तामिह जिह्वकं चक्षते ॥ ५७७ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें जीभ अत्यन्त कठिन काँटोंसे आच्छादित हो, अत्यन्त मूकता हो, कानोंमें बहरापन, बलकी हानि हो, श्वास, खाँसी और अधिकतर सन्ताप हो, उसको प्राचीन वैद्य 'जिह्वक' कहते हैं ॥ ५७७ ॥

अथ सन्धिगसन्निपातलक्षणम् ।

व्यथातिशयिता भवेच्छ्वयथुसंयुता सन्धिषु प्रभूतकफता मुखे विगतनिद्रता कासरुक् । समस्तमिति कीर्तितं भवति लक्ष्म यत्र ज्वरे त्रिदोषजनिते बुधैः स हि निगद्यते सन्धिगः ॥ ५७८ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें संधियोंमें सूजन और अत्यन्त पीडा हो, मुखमें अत्यन्त कफ आवे, निद्राका नाश और खाँसीकी पीडा हो उसको विद्वान् वैद्य 'संधिग' कहते हैं ॥ ५७८ ॥

अथान्तकसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

यस्मिँल्लक्षणमेतदस्ति सकलैर्दोषैरुदीते ज्वरेऽजस्रं मूर्द्धविधूननं सकसनं सर्वांगपीडाधिका । हिक्काश्वासकदाहमोहसहिता देहेऽतिसन्तप्तता वैकल्यं च वृथा वचांसि मुनिभिः संकीर्तितः सोऽन्तकः ॥ ५७९ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें निरन्तर रोगी शिरको हिलाया करे, खाँसी, सर्व शरीरमें अत्यन्त पीडा हो, हिचकी श्वास, दाह, मोह, देहमें अत्यन्त सन्ताप, विकलता और वृथा बकवाद करे, उसको मुनिजन 'अंतक' सन्निपात कहते हैं ॥ ५७९ ॥

अथ रुग्दाहसन्निपातलक्षणम् ।

दाहोऽधिको भवति यत्र तृषा च तीव्रा श्वासप्रलापविरुचिभ्रममोहपीडाः । मन्याहनुव्यथनकण्ठरुजः श्रमश्च रुग्दाहसंज्ञ उदितस्त्रिभवो ज्वरोऽयम् ॥ ५८० ॥

जिस सन्निपातज्वरमें दाह अधिक हो, तृषा (प्यास) अत्यन्त तेज हो, श्वास हो, बकवाद करे, अरुचि हो, भ्रम हो, बेहोशी हो, पीडा हो, नाड और ठोडीमें अत्यन्त वेदना हो, कंठमें पीडा और श्रम हो, उसको 'रुग्दाह' सन्निपात कहते हैं ॥ ५८० ॥

अथ चित्तभ्रमसन्निपातलक्षणम् ।

गायति नृत्यति हसति प्रलपति विकृतं निरीक्षते मुह्यत् । दाहव्यथाभयार्तो नरस्तु चित्तभ्रमे ज्वरे भवति ॥ ५८१ ॥

जिस सन्निपातज्वरमें रोगी गीत गावे, नाचे, हँसे वृथा बके, बुरी तरहसे देखे, मोह, बेहोशीको प्राप्त हो जाय, तथा दाह, व्यथा और भयसे पीडित हो उसको 'चित्तभ्रम' कहते हैं ॥ ५८१ ॥

अथ कर्णिकसन्निपातलक्षणम् ।

दोषत्रयेण जनितः किल कर्णमूले तीव्रा ज्वरे भवति तु श्वयथुर्व्यथा च । कण्ठग्रहो बधिरता श्वसनं प्रलापः प्रस्वेदमोहदहनानि च कर्णिकाख्ये ॥ ५८२ ॥

जिस ज्वरमें तीनों दोषोंके अत्यन्त कुपित होनेसे कानकी जडमें अत्यन्त सूजन और पीडा हो, कंठ रुक जाय, बहरापन, श्वास, वृथा बकवाद, पसीनोंका आना, बेहोशी और दाह हो, उसको 'कर्णिक' सन्निपात कहते हैं ॥ ५८२ ॥

अथ कण्ठकुब्जसन्निपातलक्षणम् ।

कण्ठः शूकशतावरुद्धवदतिश्वासः प्रलापोऽरुचिर्दाहो देहरुजा तृषापि च हनुस्तम्भः शिरोऽतिस्तथा । मोहो वेपथुना सहेति सकलं लिंगं त्रिदोषज्वरे यत्र स्यात्स हि कण्ठकुब्ज उदितः प्राच्यैश्चिकित्साबुधैः ॥ ५८३ ॥

जिस सन्निपात ज्वरमें कंठ सैकडों धानके शूककी समान कांटोंसे घिर जाय, अत्यन्त श्वास हो, प्रलाप हो, अरुचि, दाह, शरीरमें पीडा हो, तृषा हो, ठोडी जकड जाय, शिरमें पीडा हो, मोह और कंप हो उसको प्राचीन वैद्य 'कंठकुब्ज' कहते हैं ॥ ५८३ ॥

अथ सन्निपातज्वरसाध्यासाध्यत्वम् ।

सन्धिगस्तेषु साध्यः स्यात्तन्द्रिकश्चित्तविभ्रमः । कर्णिको जिह्वकः कण्ठकुब्जः पञ्चापि कष्टकाः । रुग्दाहस्त्वतिकष्टेन संसाध्यस्तेषु भाषितः ॥ ५८४ ॥ रक्तष्ठीवी भुग्ननेत्रः शीतगात्रः प्रलापकः । अभिन्यासोऽन्तकश्चैते षडसाध्याः प्रकीर्तिताः ॥ ५८५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इनमें 'संधिग सन्निपात' साध्य है । तान्द्रिक, चित्तविभ्रम, कर्णिक, जिह्वक और कण्ठकुब्ज ये पांच कष्टसाध्य हैं । रुग्दाह अत्यन्त कष्टसाध्य है । रक्तष्ठीवी, भुग्ननेत्र, शीतगात्र, प्रलापक, अभिन्यास और अंतक ये छः असाध्य हैं ॥ ५८५ ॥

अथान्यग्रंथोक्तवातोल्वणादित्रयोदशसन्निपातानां कुम्भीपाकादिनामान्याह ।

कुम्भीपाकः प्रोर्णुनावः प्रलापी ह्यन्तर्दाहो दण्डपातोऽन्तकश्च । एणीदाहश्चाथ हारिद्रसंज्ञो भेदा एते सन्निपातज्वरस्य ॥ ५८६ ॥ अजघोपभूतहासौ यन्त्रापीडश्च संन्यासः । संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदशान्यत्र ॥ ५८७ ॥

कुम्भीपाक, प्रोर्णुनाव, प्रलापी, अन्तर्दाह, दंडपात, अंतक, एणीदाह, हारिद्र, अजघोष, भूतहास, यंत्रापीड, संन्यास और संशोषी ये तेरह सन्निपातोंके अनुक्रमसे नाम कहे हैं ॥ ५८६ ॥ ५८७ ॥

अथ कुम्भीपाकलक्षणम् ।

घोणाविवरझरद्धुशोणासितलोहितं सान्द्रम् । विलुठन्मस्तकमभितः कुम्भीपाकेन पीडितं विद्यात् ॥ ५८८ ॥

जिस मनुष्यकी नाकमेंसे लाल और काला बहुत गाढा रुधिर स्रवे (गिरे) और जो अपने शिरको बारंबार इधर उधरको गेरे उसको कुम्भीपाक सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५८८ ॥

अथ प्रोर्णुनावसन्निपातलक्षणम् ।

उत्क्षिप्य यः स्वमंगं क्षिपत्यधस्तान्नितान्तमुच्छ्वसिति । तं प्रोर्णुनावजुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात् ॥ ५८९ ॥

जो मनुष्य बारंबार उठ उठकर पृथिवीमें गिरगिर पडे अथवा हाथ पाँवोंको उठाकर पटके, बहुत हाँपे, उस विचित्र दुःखवाले रोगीको 'प्रोर्णुनाव' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५८९ ॥

अथ प्रलापिसन्निपातलक्षणम् ।

स्वेदभ्रमांगभेदाः कम्पो दवथुर्वमिर्व्यथा कण्ठे । गात्रं च गुर्वतीव प्रलापिजुष्टस्य जायते लिंगम् ॥ ५९० ॥

जिस मनुष्यके प्रलापी सन्निपात कुपित होता है, उसके पसीना, भ्रम, संधियोंमें तोडने सरीखी पीडा, कम्प, दाह, वमन, कंठमें पीडा और शरीरमें भारीपन ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५९० ॥

अथान्तर्दाहसन्निपातलक्षणम् ।

अन्तर्दाहः शैत्यं बहिःश्वयथुररतिरपि तथा श्वासः । अंगमपि दग्धकल्पं सोऽन्तर्दाहादितः कथितः ॥ ५९१ ॥

जिस मनुष्यके शरीरके भीतर दाह (जलन) हो, ऊपरसे सरदी लगे, सूजन, बेचैनी, श्वास और सम्पूर्ण शरीर जलासा हो जाय, उसको 'अन्तर्दाह' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥ ५९१ ॥

अथ दण्डपातसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

नक्तन्दिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः । उत्थाय दण्डपाती भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति ॥ ५९२ ॥ नभसो गृह्णाति आकाशात्किञ्चिद्गृहीतुं करौ प्रसारयतीत्यर्थः ।

जिस मनुष्यके दण्डपात सन्निपात कुपित होता है वह मनुष्य रात और दिन किसी समय निद्राको प्राप्त नहीं होता, वृद्धिके भ्रमसे आकाशको पकडनेके लिये हाथ बढावे, और बेहोशीसे आतुर होकर चारों ओर दौडकर गिर पडे ॥ ५९२ ॥

अथान्तकसन्निपातलक्षणम् ।

संपूर्यते शरीरं ग्रन्थिभिरभितस्तथोदरं मरुता । श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यान्तकार्तस्य ॥ ५९३ ॥

जिस मनुष्यके अंतक नामवाला सन्निपात कुपित होता है उसके शरीरमें बहुतसी गाँठें पड जाती हैं, उदर (पेट) वायुसे भर जाता है, निरंतर श्वाससे पीडित रहता है और अचेत (बेहोश) रहता है ॥ ५९३ ॥

अथैणीदाहसन्निपातलक्षणम् ।

परिधावतीव गात्रे रुक्पात्रे भुजंगपतंगहरिणगणः । वेपथुमतः सदाहस्यैणीदाहज्वरार्तस्य ॥ ५९४ ॥ रुक्पात्रे पीडाभाजने गात्रस्य विशेषणमेतत् ।

जिस मनुष्यके एणीदाह सन्निपात कुपित होता है, उसके कंप और दाह होता है, तथा उसका शरीर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्यंत कष्टसे पीडित होता है और साँप, पाँखी और हिरनोंके समूह दौडते प्रतीत होते हैं ॥ ५९४ ॥

अथ हारिद्रकसन्निपातलक्षणम् ।

यस्याऽतिपीतमंगं नयने सुतरां मलस्ततोऽप्यधिकम् । दाहोऽतिशीतता बहिरस्य स हारिद्रको ज्ञेयः ॥ ५९५ ॥

जिस मनुष्यका शरीर अत्यन्त पीला हो जाय, नेत्र शरीरसे भी अधिक पीले हो जायँ, मल नेत्रोंसे भी अधिक पीला हो जाय, भीतर दाह हो और बाहर सरदी लगे उसको 'हारिद्रक' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५९५ ॥

अथाजघोषसन्निपातलक्षणम् ।

छगलकसमानगंधः स्कंधरुजावान्निरुद्धगलरन्ध्रः । अजघोषसन्निपातादाताम्राक्षः पुमान्भवति ॥ ५९६ ॥

शरीरमें बकरेकी समान गन्ध आवे, कन्धोंमें पीडा हो, गलेका छिद्र रुक जाय और नेत्र लाल हो जायँ ये सब लक्षण जिस ज्वरवालेके हों उसको 'अजघोष' सन्निपातसे पीडित जानना ॥ ५९६ ॥

अथ भूतहाससन्निपातलक्षणम् ।

शब्दादीनधिगच्छति न स्वान्विषयान्यदिन्द्रियग्रामैः । हसति प्रलपति परुषं स ज्ञेयो भूतहासार्तः ॥ ५९७ ॥

जिस मनुष्यकी सम्पूर्ण इन्द्रियें अपने विषयको ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जायँ, तथा वह हँसे और वृथा बके उसको 'भूतहास' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥ ५९७ ॥

अथ यन्त्रापीडसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यन्त्रेणेवावपीड्यते गात्रम् । रक्तं पित्तं च वमेद्यन्त्रापीडः स विज्ञेयः ॥ ५९८ ॥

जिस मनुष्यका शरीर ज्वरके वेगसे बारंबार कोल्हूमें पेलनेकी तरह पेलासा प्रतीत हो और वह रुधिरसहित पित्तकी वमन करे उसको 'यन्त्रापीड' सन्निपात ज्वरसे पीडित जानना ॥ ५९८ ॥

अथ संन्याससन्निपातज्वरलक्षणम् ।

अतिसरति वमति कूजति गात्राण्यभितश्चिरं नरः क्षिपति । संन्याससन्निपातं प्रलपत्युग्राक्षिमण्डलो भवति ॥ ५९९ ॥

जिस मनुष्यके संन्यास नामक सन्निपात ज्वर कुपित होता है वह अतीसार (दस्त) और वमन (रद्द) से पीडित हो, गूँजे, बारंबार अंगोंको इधर उधर पटके, बकवाद करे और नेत्रमंडल अत्यन्त उग्र हो जाते हैं ॥ ५९९ ॥

अथ संशोषिसन्निपातलक्षणम् ।

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलो मलोत्सर्गात् । संशोषिणि सितपिडिकामण्डलयुक्तो ज्वरे नरो भवति ॥ ६०० ॥

जिस मनुष्यके संशोषी नामक सन्निपात कुपित होता है, उसका शरीर दस्तके आनेसे काला पड जाता है और नेत्र अत्यन्त काले हो जाते हैं, तथा शरीरमें सफेद सफेद फुन्सी और चकत्ते पड जाते हैं ॥ ६०० ॥

अथ सन्निपातज्वरभयंकरता ।

नारायण एव भिषग्भेषजमेतेषु जाह्नवीनीरम् । नैरुज्यहेतुरेको नित्यं मृत्युञ्जयो ध्येयः ६०१

सन्निपात ज्वरमें एक श्रीनारायणही तो वैद्य है, एक गंगाजलही औषधि है और मृत्युञ्जय (सदाशिव) काही ध्यान करना चाहिये ॥ ६०१ ॥

अथासाध्यसन्निपातज्वरलक्षणम् ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ ६०२ ॥ सुदारुणः मारकत्वात् । यतस्तेन शोथेन कश्चिदेव प्रमुच्यते, कोऽपि जीवितं न त्यजतीत्यर्थः ।

सन्निपात ज्वरके अंतमें कानकी जडमें महाभयंकर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनके होनेसे कोई ही मनुष्य बचते हैं, प्रायः मरही जाते हैं ॥ ६०२ ॥

अथ सन्निपातसाध्यासाध्यता ।

सन्निपातज्वरान्कष्टानसाध्यानपरे जगुः । दोषे प्रवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः । सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कष्टसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ ६०३ ॥ सर्वाणि दाहशीतादीनि सम्पू-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

र्णानि आतुरगतानि प्रोक्तानि यावल्लक्षणानि यस्य सः । ततोऽन्यथा दोषे पक्वेऽग्नौ दीप्ते स्वल्पलक्षणकः कष्टसाध्य इत्यर्थः ।

कितनेक वैद्य कष्टसाध्य सन्निपातको भी असाध्य कहते हैं, परन्तु उनमें ऐसा समझना चाहिये कि—जो वातादि दोषोंकी वृद्धि हो, जठराग्नि नष्ट हो गई हो और दाह शीतादि सम्पूर्ण लक्षण हों तो सन्निपात ज्वरको असाध्य जानना । और जो दोष पक्व हों, अग्निदीपन हो और थोडे थोडे लक्षण हों तो उस सन्निपाज्वरको कष्टसाध्य जानना ॥ ६०३ ॥

अथ सामान्यसन्निपातज्वरचिकित्सा ।

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् । कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥ ६०४ ॥ मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता । यश्च तत्र भवेज्जेता स जेताभयसंकुले ॥ ६०५ ॥ श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद्व्याधौ त्रिदोषजे । संसर्गे यो गरीयान्स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत् ॥ ६०६ ॥ संसर्गे दोषद्वयसंसर्गे, गरीयान्बलवत्तरः । अंशांशं यत्र दोषाणां विवेक्तुं नैव शक्नुयात् । क्रियां साधारणीं तत्र विदधीत चिकित्सकः ॥ ६०७ ॥ लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा । अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक्प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ६०८ ॥

जो वैद्य सन्निपात रूपी सागरमें डूबे हुए मनुष्यको बाहर निकालता है उसने कौनसा धर्म नहीं किया और वह कौनसी पूजाके योग्य नहीं ? अर्थात् उसने सम्पूर्ण धर्म किये और वह सर्व पूजाओंके योग्य है । सन्निपातकी चिकित्सा करनेमें मृत्युके साथ लडना होता है, इस कारण जिसने सन्निपातको जीत लिया वह सर्व प्रकारके रोगोंके समूहोंको जीत सक्ता है । सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको जीतना चाहिये । त्रिदोषज्वरमें जो दो दोषोंकी उल्वणता होय तो उसमें जो दोष बलवान् हो प्रथम उसको जीते । जहाँ दोषोंके अंशांशके विचारको वैद्य नहीं जान सके वहाँ साधारण चिकित्सा करनी चाहिये । सन्निपात ज्वरमें प्रथम लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, ष्ठीवन, अवलेह और अंजन ये प्रयोग करने चाहिये ॥ ६०४–६०८ ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासङ्करो हितः ॥ ६०९ ॥ इति वचनेन क्रियासंकरस्य निषिद्धत्वात्कथमत्र नस्यनिष्ठीवनावलेहाञ्जनानि युगपद्विधीयन्ते इत्याशंक्याह—क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते । भिन्नरूपतया तास्तु न हि कुर्वन्ति दूषणम् ॥ ६१० ॥

शंका—" एक क्रियाके करनेसे जो गुण न हो तो उस क्रियाका वेग शांत होनेपर दूसरी क्रिया करनी चाहिये । क्योंकि क्रियाओंका संकर (मेल) हितकारी नहीं है । " इस वचनसे क्रियासंकरका निषेध है, फिर इस सन्निपातज्वरमें नस्य, अंजन, निष्ठीवन और अवलेह इन सबका एकही समय प्रयोग करना कैसे कहा ? समाधान—" जो समान रूपवाली क्रिया एकही समयमें की जावे तो क्रियाओंका संकर होता है ऐसा जानना चाहिये, किन्तु भिन्न भिन्न रूपवाली क्रिया जो एकही समय की जावे तो कोई हानि नहीं " यह सिद्धांत है ॥ ६०९ ॥ ६१० ॥

अथ सन्निपातज्वरलंघनावधिः ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा । लंघनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ६११ ॥ लंघने त्रिरात्रादिविकल्प उल्वणवाद्यपेक्षया । दोषाणां शीघ्रमध्यमन्दशक्तित्वात् । व्याध्यभावाद्वा आरोग्यदर्शनादिति यावदारोग्यदर्शनं स्यात्तावद्वा लघंनं कुर्यात् । एतेन त्रिरात्राद्यवधेर्न नियतत्वं सूचितम् । अत एव सुश्रुतः प्राह—सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा । पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥ ६१२ ॥ घोरतर इति स्वभावादेव तदा घोरतरो भूत्वा इति ।

सन्निपातज्वरमें तीन रात्रिपर्यन्त, पांच रात्रिपर्यन्त, दश रात्रिपर्यन्त, अथवा जबतक आरोग्य न हो तबतक बराबर लंघन उपवास करावे । वायु शीघ्रगतिवाली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, पित्त मध्यगतिवाला है और कफ मन्दगतिवाला है इससे इन दोषोंकी उल्वणता पर ध्यान रखकर तीन, पांच और दश रात्रि पर्यन्त लंघन करानेका विकल्प कहा है । आरोग्य होने पर्यंत लंघन कराने जो कहे उससे यह सूचना दी है कि, कुछ तीन रात्रि आदिकी अवधि नहीं है इस कारण सुश्रुत कहता है कि-- सातवें, दशवें अथवा बारहवें दिन पर्यन्त सन्निपातज्वर स्वाभाविक रीतिसे अत्यन्त घोर होकर शांत हो जाता है अथवा मार डालता है ॥६११॥६१२॥

अथ मारणशांतकारणम् ।

पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात् । हन्ति विमुञ्चत्यथ वा त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥ ६१३ ॥ त्रिदोषजो ज्वर इति शेषः । धातुमलपाकात् धातुपाकाद्धन्ति मलपाकाद्विमुञ्चतीत्यर्थः । धातुमलपाक प्राक्तनकर्मैव हेतुः । तत्र यदि जीवनसंवर्द्धकं कर्म अस्ति तदा मलपाकः, अन्यथा धातुपाकः स च रसादिशुक्रान्तधातूनां पाको बोद्धव्यः ॥

पित्तकी, कफकी और वायुकी वृद्धिसे क्रमपूर्वक दश दिन, बारह दिन और सात दिनमें जो धातु पक जावे तो सन्निपातज्वर मार डालता है और मल पक जाय तो शांत हो जाता है । धातुओंके और मलोंके पकनेमें पूर्वजन्मके कर्मही कारणरूप हैं । तहां शुभकर्मका उदय होनेसे मलोंका पाक होता है और अशुभकर्मके उदयसे धातुओंका पाक होता है । धातुओंका जो पाक होता है वह रससे वीर्य पर्यन्त होता है ऐसा जानना ॥ ६१३ ॥

अथ धातुपाकलक्षणम् ।

निद्रानाशो हृदि स्तम्भो विष्टम्भो गौरवारुची । अरतिर्बलहानिश्च धातूनां पाकलक्षणम् ॥ ६१४ ॥ विष्टम्भ उदरस्य, गौरवं गात्राणाम् । स बाध्यमानो हृदि नाभिदेशे गात्रेषु वा पाकरुजान्वितेषु । पीडाज्वरातोंऽङ्गुलिभिश्च गच्छेत्स धातुपाकी कथितो भिषग्भिः ॥ ६१५ ॥ नाभेरूर्द्ध हृदोऽधस्तात्पीडिते चेद्व्यथा भवेत् । धातोः पाकं विजानीयादन्यथा तु मलस्य च ॥ ६१६ ॥

निद्राका न आना, हृदयका बँध जाना, मलका अवरोध, शरीरमें भारीपन, अरुचि, बेचैनी और बलका नाश ये सब लक्षण होंय तो जानना कि, धातुओंका पाक हुआ है। अन्य वैद्यभी कहते हैं कि, ज्वरसे पीडित मनुष्यके हृदयमें नाभिके ऊपर पाकके कारण दुखते हुए अंगोंमें अंगुलियोंके दबानेसे पीडा होय तो उसको धातुपाकी हुआ जानना । अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि, नाभिके ऊपर और हृदयके नीचे दबानेसे जो पीडा होय तो धातुओंका पाक हुआ जानना और जो पीडा न होय तो मलका पाक हुआ जानना ॥ ६१४-६१६ ॥

अथ मलपाकलक्षणम् ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः । इन्द्रियाणां च वैमल्यं मलानां पाकलक्षणम् ६१७ दोषा वातादयस्तेषां प्रकृतिर्दाहतन्द्रागौरवादिकरणं तस्य वैकृत्यं वैपरीत्यं वैमल्यं मलराहित्यम् । मलानां दोषाणां पाकलक्षणम् । शश्वत्विन्द्रियपञ्चकस्य पटुता वह्नेश्च यत्र क्रमात्तृष्णादिप्रशमो ज्वरस्य मृदुता तं दोषपाकं वदेत् । हृन्नाभ्योरतिवेदनाऽतिसरणं तीव्रो ज्वरस्तृण्मदौ श्वासाधिक्यमरोचकोरतिरिति स्याद्धातुपाकाकृतिः ॥ ६१८ ॥

वातादि दोषोंका जो स्वभाव दाह, तन्द्रा, भारीपन आदिके करनेका है वह न हो अर्थात् विपरीत हो जाय, ज्वर और शरीरका हलका हो जाना, तथा इन्द्रियोंमें निर्मलता ये लक्षण होंय तो मलपाक हुआ जानना । अन्यत्र भी लिखा है कि, निरंतर पांचों इन्द्रियें अपने कार्य करनेमें समर्थ हों, जठराग्नि दीपन हो, अनुक्रमसे तृषादिका शान्त होना और ज्वरका हलका होना ये लक्षण होयँ तो दोषोंका पाक हुआ जानना और हृदय तथा नाभिमें अत्यन्त पीडा हो, अधिकतर पतला दस्त आवे, ज्वरका तीव्र वेग हो, तृषा, मद, श्वासकी अधिकता, अरुचि और बेचैनी ये लक्षण होयँ तो धातुओंका पाक हुआ जानना ॥ ६१७ ॥ ६१८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ज्वरमुक्तिवधपरमावधिः।

सप्तमी द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा। एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ ६१९ नवम्येकादशी च आगमनदिवसं विहाय बोद्धव्या, तेन आगमनदिवसं नीत्वा दशमी द्वादशी तथा अत्र रात्रिरिति अध्याहियते।

सन्निपातज्वर अपने आनेके दिनसे चौदहवीं, बीसवीं, अथवा चौबीसवीं रातमें शांत हो जाता है या मार देता है। यह सन्निपातकी मर्यादा जाननी॥६१९॥

अथ सन्निपातज्वरप्रथमकर्तव्यता।

सन्निपातज्वरी पूर्वं सम्यङ्लंघनमाचरेत्। शृतं शीतं पिबेदम्भः समये भेषजं भजेत्। ॥ ६२० ॥ सन्निपातेन तृष्यन्तं पार्श्वरुक्क्लोशोषिणम्। यः पाययेज्जलं शीतं स मृत्युर्नरविग्रहः ॥ ६२१ ॥ शीतमकथितं शृतं तु शीतं विहितमेव।

सन्निपातज्वररोगीको प्रथम उत्तम विधिसे लंघन कराने चाहिये। औंटाकर शीतल किया हुआ जल पिलावे और समयके प्राप्त होनेपर औषधि देवे। जो मूर्ख वैद्य सन्निपातसे पीडित मनुष्यको तृषायुक्त पसलियोंमें पीडा और तालूमें शोष होनें पर विना औटाया हुआ कच्चा शीतल जल पिलाता है उसको साक्षात् मृत्युही समझना चाहियें ॥ ६२० ॥ ६२१॥

अथ वालुकास्वेदः।

वातश्लेष्मकृते स्वेदान्कारयेद्रूक्षनिर्मितान्। स्निग्धः स्वेदो निषिद्धोऽत्र विना केवलवातजात् ॥ ६२२ ॥ खर्परभृष्टपटस्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः। शमयति कफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ ६२३ ॥ स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम्। हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति॥ ६२४ ॥

वात और कफकी अधिकतावाले ज्वरमें रूखे पदार्थोंसे बनाया हुआ स्वेद देना चाहिये। केवल वातसे उत्पन्न हुए ज्वरको छोडकर बाकी सर्व प्रकारके ज्वरोंमें स्निग्ध पदार्थोंका स्वेद देना निषेध है। रेतको ठिकरेमें गरम करके कपडेमें बाँधकर उसके ऊपर काँजीके छींटे देकर स्वेद देवे तो यह वालुकास्वेद वात और कफके रोगोंको मस्तकके शूलको और शरीरके टूटने आदिको दूर करे है। तथा शरीरके स्रोतों (छिद्रों) को नरम करता है, जठराग्निको आमाशयमें स्थापन करनेवाला और वातकफके स्तम्भको तोडकर ज्वरको नष्ट करे है ॥ ६२२-६२४॥

अथ सैन्धवादिनस्यम्।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च। वस्तमूत्रेण सम्पिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम्॥६२५॥

श्वेतमरिचं शिग्रुबीजम्।

सेंधानिमक, सहिंजनेके बीज, सरसों और कूठ इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रा नष्ट होती है ॥ ६२५ ॥

अथ मधूकसारादिनस्यम्।

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः। श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ६२६ ॥ मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम्। अन्यद्वा सिद्धं विहितं नस्यं तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥५२७॥ तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते। शिरोहृत्कण्ठास्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति ॥ ६२८ ॥ मोहामयेन मुग्धं बोधयितुं यादृशः शक्तः। कल्पतरुनामधेयो रसो न तादृक् परं किञ्चित् ॥ ६२९ ॥

महुएका सार, सेंधानिमक, वच, मिर्च और पीपल इन सबको समान भाग लेकर जलमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रा नष्ट होकर संज्ञा आ जाती है। बिजौरा नींबू तथा अदरखके रसको किंचित् गरम करके उसमें सेंधानिमक, बिरियासोचर निमक और कच्चिया निमक मिलाकर नास देवे अथवा सिद्ध लोगोंका कहा हुआ अन्य कोई तीक्ष्ण नस्य देवे, इससे कफ फटकर पतला होकर मुखनासिकादिके द्वारा बाहर निकल जाता है और मस्तक, हृदय, कंठ, मुख और पसलियोंकी पीडा शांत हो जाती है। मोहरूपी रोगसे मूढ हुए मनुष्यको जाग्रत करनेके लिये जैसा कल्पतरु रस उत्तम है ऐसी अन्य औषधि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तम नहीं है (कल्पतरु रस वातज्वरमें कह आये हैं) ॥ ६२६–६२९ ॥

अथ निष्ठीवनम् ।

जिह्वातालुगलक्लोम मरुत्पित्तेन दूषितम् । तदा सञ्चारयेच्छोषं जिह्वाविरसतां तथा । ॥ ६३० ॥ स्फुटनं च तदा जिह्वां लेपयेन्मधुपिष्टया । द्राक्षया साज्यपातेन जिह्वा स्यात्सरसा मृदुः ॥ ६३१ ॥ आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम् । आकण्ठाद्धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ ६३२ ॥ तेनास्यतालुकोष्ठांसमन्यापार्श्वशिरोगलात् । लीनोऽप्याकृष्यते श्लेष्मा लाघवं चास्य जायते ॥ ६३३ ॥ पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राश्वासगलामयाः । मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥ ६३४ ॥ सकृद्द्विस्त्रिश्चतुष्कुर्याद् दृष्ट्वा दोषबलाबलम् । एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ ६३५ ॥

जीभ, तालु, गला और तृषा लगनेका स्थान वात और पित्तसे दूषित होय तौ शोष, जीभमें विरसता और जीभ फटने लगती है, उस जिभकी विरसता और फटनेको दूर करनेके लिये दाखको सहतमें पीसकर घीमें मिलाकर जीभपर मले, इससे जीभ रसयुक्त और नरम हो जाती है । अदरखके रसमें सेंधानिमक, सोंठ, मिर्च और पीपलको मिलाकर मुखमें कंठतक भर लेवे और बारंबार थूके । इससे मुख, तालु, कोठा, कंधे, नाड, पसली, मस्तक और गला इनमें छिपा हुआ भी कफ खिंचकर आ जाता है, शरीरमें हलकापन प्रगट होता है, तथा संधियोंका टूटना, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, श्वास, गलेकी पीडा, मुख और नेत्रोंका भारीपन, जडता और कफका उत्क्लेश ये सब दूर हो जाते हैं । दोषोंका बलाबल विचारकर इसको एक वार, दो वार, तीन वार और चार वार भी करना चाहिये । सन्निपात रोगियोंके लिये यह अत्यन्त उत्तम औषधि है ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ ६३०–६३५ ॥

अथाष्टांगावलेहः ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी व्योषं यासश्च कारवी । श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ६३६ ॥ एषाऽवलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् । हिक्कां श्वासं कासं च कण्ठरोगं च नाशयेत् । एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजैरसैः ॥ ६३७ ॥ पौष्करं पुष्करमूलं, तदलाभे कुष्ठं देयम् । शृंगी कर्कटशृंगी । व्योषं शुण्ठीपिप्पलीमरीचानि । यासो यवासः केचिद्यासस्थाने यवानीं प्रक्षिपन्ति । कारवी भँनरैला इति लोके । अष्टांगं मधुना लिह्यादार्द्रकस्य रसेन वा । संमोहं दारुणं हन्यात्तन्द्राकाससमन्वितम् ॥ ६३८ ॥ सर्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवचारयेत् । शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥ ६३९ ॥ सन्निपातज्वरेषु श्लेष्मनिग्रहार्थं सर्वदा स्वेदो हितः । तत्राग्निसम्बन्धेन देहस्य उष्णता तिष्ठति । उष्णेन मधुना विरोधः । उष्णैर्विरुध्यते सर्वं विषान्वयतया मधु । तृष्णार्तमुष्णैरुष्णं च तन्निहन्ति यथा विषम् । शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥ ६४० ॥ शीतेनोपचारोऽस्यास्तीति शीतोपचारि शीतं चात्र सन्निपातेन विरुध्यते । अवलेहः प्रायेणोर्द्ध्वजत्रुजरोगहरत्वात्सायमुपयुज्यते । उक्तं च—ऊर्द्ध्वजत्रुगदघ्नी या सा सायमवलेहिका । अधोरोगहरी या सा भोजनात्प्राक्प्रयुज्यते ॥ ६४१ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल), जवासा और कलौंजी इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसे और सहतमें मिलाकर चाटे तो यह अष्टांग अवलेह—महादारुण सन्निपात, हिचकी, श्वास, खाँसी और कंठके रोगोंको नष्ट करे है । जो कफकी उल्वणता होय तो इन औषधियोंके चूर्णको अदरखके साथ चटाना चाहिये । अन्य ग्रंथोंमें कहा है कि—" अष्टांग चूर्णको सहतके साथ अथवा अदरखके रसके साथ चाटनेसे तन्द्रा और खाँसी सहित दारुण मोह नष्ट हो जाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। सर्व प्रकारके सन्निपातोंमें सहतका उपयोग नहीं करना चाहिये, कारण यह है कि, मधुके ऊपर शीतल उपचार किये जाते हैं और सन्निपातज्वरमें शीतल उपचार विरुद्ध हैं।" सन्निपातज्वरमें कफको नष्ट करनेके लिये सदैव स्वेद हितकारी है, किन्तु उसमें अग्निके सम्बन्धसे शरीरमें उष्णता रहती है और उष्णतासे सहतका विरोध है। जैसा कि, सुश्रुत कहता है कि--" विषका सम्बन्ध होनेके कारण सर्व प्रकारके सहत उष्ण (गरम) पदार्थोंसे विरुद्ध हैं। उष्ण होनेके कारण तृषासे पीडित और रूक्ष हुए मनुष्यको वह सहत विषकी समान मार देता है। सहत शीत उपचारवाला है और सन्निपातमें शीत उपचारका निषेध है। अष्टांग अवलेह--विशेष करके गलेके ऊपरके रोगोंको हरनेवाला है इस कारण इसको संध्याके समय सेवन करना चाहिये। चरक कहता है कि--जो अवलेह कंठके ऊपरके रोगोंको हरनेवाला है उसको संध्याके समय सेवन करना चाहिये। और जो अवलेह कंठसे नीचेके रोगोंको हरनेवाला है उसको भोजनसे पहिले सेवन करना चाहिये। कितनेक वैद्य इस अष्टांग अवलेहमें जवासेकी जगह अजवायन डालते हैं ॥ ६३६--६४१ ॥

अथ चतुरंगावलेहः।

स्विन्नमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षया सह मेलयेत्। विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत्। तेनास्य शाम्यति श्वासः कासो मूर्च्छाऽरुचिस्तथा ॥ ६४२ ॥

उसीजे हुए आमलोंको पीसकर उसमें दाख और सोंठका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ चाटनेसे श्वास, खाँसी, मूर्च्छा और अरुचि नष्ट हो जाती है ॥६४२॥

अथाञ्जनम्।

शिरीषबीजं गोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः। अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ६४३ ॥

सिरसके बीज, पीपल, मिरच, सेंधानिमक, लहसन, मैनशिल और वच इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर अंजन बनाकर नेत्रोंमें आँजे तो संज्ञा (चेतनता) उत्पन्न होती है ॥ ६४३ ॥

अथ लोहचूर्णाद्यञ्जनम्।

अयोरजः श्वेतलोध्रं मरिचं चाञ्जनं तथा। गोमूत्रेण समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्तमम्६४४

लोहेका चूर्ण, सफेद लोध और काली मिरच इनको गोमूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे तन्द्रा नष्ट होती है ॥ ६४४ ॥

अथ दंडपाण्युक्ताञ्जनम्।

अञ्जनं सम्यगारब्धं मधुसिन्धुशिलोषणैः। प्रमोहद्रोहि भवति भाषितं दण्डपाणिना ॥ ६४५ ॥

सहत, सेन्धानिमक, मैनशिल और काली मिरच इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे अत्यंत बेहोशी नष्ट हो जाती है, इसको दंडपाणिने कहा है ॥ ६४५ ॥

अथ लेपः।

सूतं विषं च मरिचं तुत्थकं नवसादरम्। चूर्णितं स्वरसैर्मर्द्य धूर्तपत्ररसोनयोः ॥६४६॥ सन्निपातकृते मोहे मूर्ध्नि लिम्पेत्पदोपरि। अस्थिव्यथास्वनेनैव लेपं कुर्यात्पदोपरि॥६४७॥

सन्निपातज्वरमें बेहोशी होय तो पारा, वत्सनाभ, काली मिरच, नीलाथोथा और नवसादर इन सबको एकत्र धतूरेके रसमें और लहसुनके रसमें मर्दन करे। फिर शिरके मध्यभागकी हजामत बनवाकर उसमें इसका लेप करे और जो कहीं हड्डीमें पीडा होती होय तो वहाँपर भी इसी प्रकारसे इसका लेप करना चाहिये ॥ ६४६ ॥ ६४७ ॥

अथ दशमूलक्काथः।

बिल्वश्योनाकगम्भारीपाटलागणिकारिका। पित्तघ्नं वातकफहृत्पञ्चमूलमिदं महत्॥६४८॥ शालिपर्णी पृष्टिपर्णी बृहती कण्टकारिका। गोक्षुरुर्वातपित्तघ्नं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ ६४९ ॥ उभयं दशमूलं तत्पिप्पलीचूर्णसंयुतम्। सन्निपातज्वरं हन्ति हृत्कण्ठग्रहनाशनम्। तन्द्रावातकफार्तंकश्वासपार्श्वार्तिकासनुत् ॥ ६५० ॥ महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च। तेषां तु वल्कलं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ६५१ ॥ अत्र बिल्वादीनां पञ्चानां मूलस्य वल्कलं ग्राह्यम् ।

बेल, श्योनाक, कुम्भेर (खँभारी), पाढल और अरणी (अगेथू) इनको बृहत्पंचमूल कहते हैं । ये पंचमूल पित्तनाशक और वातकफको हरनेवाला है । शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती (बडी कटेरी), कटेरी और गोखरू इनको लघुपंचमूल कहते हैं । ये लघुपंचमूल—वात आर पित्तनाशक हैं । बृहत्पंचमूल और लघुपंचमूल दोनोंको मिलानेसे दशमूल होता है, दशमूलके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होता है, तथा हृदय और कंठका अवरोध, तन्द्रा, वात, कफके रोग, श्वास, पसलियोंकी पीडा और खाँसी दूर होती है । इस दशमूलकी औषधियोंमें जिनकी बडी जड है और जो काष्ठगर्भित अर्थात् छालसे लिपटी हुई हैं उनकी जडकी छाल लेनी चाहिये और जिनकी छोटी जड है वह समस्त लेनी चाहिये ॥ ६४८–६५१ ॥

अथ द्वादशांगक्काथः ।

दशमूलीकषायस्तु पिप्पलीपौष्करान्वितः । सन्निपातज्वरे देयः श्वासकासससमन्विते ६५२

दशमूलके क्काथमें पीपल और पोहकरमूल मिलाकर श्वास खाँसीयुक्त सन्निपातज्वरमें देना चाहिये ॥६५२॥

अथ चतुर्दशांगक्काथः ।

चिरज्वरे वातकफोल्वणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः। किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ॥ ६५३ ॥

पुराने ज्वरमें, वातकफोल्वण ज्वरमें अथवा त्रिदोषज ज्वरमें किराततिक्तादिगणमें दशमूल मिलाकर क्काथ बनाकर देवे और जो विरेचन (दस्त) करानेकी इच्छा होय तो उसमें निसोतका चूर्ण डाल देवे ॥ ६५३ ॥

अथ किराततिक्तादिगणः ।

किराततिक्तको मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् । किरातादिगणो ह्येष चातुर्भद्रकमित्यपि ६५४

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनको किराततिक्तादिगण कहते हैं और इसीको चातुर्भद्रकभी कहते हैं ॥ ६५४ ॥

अथाष्टादशांगक्काथः ।

दशमूली शटी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम् । भार्ङ्गी कुटजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ६५५ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ ६५६ ॥

दशमूलकी समस्त औषधि, कचूर, काकडाशिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, कुडेके बीज, पटोलपत्र और कुटकी इन सब औषधियोंके समुदायको अष्टादशांग अर्थात् उपरोक्त अठारह औषधियोंका क्काथ सन्निपातज्वरनाशक है, खाँसी, हृदयका रुकना, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमन दूर हो जाती है ॥ ६५५ ॥ ६५६ ॥

अथ द्वितीयाष्टादशांगक्काथः ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः । तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासत्रिदोषजनितज्वरनाशनः स्यात् ॥ ६५७ ॥ उक्तं च वङ्गसेनेन—'अष्टादशांग इत्येष मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत् ।" इति ।

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनियाँ और गजपीपल इन अठारह औषधियोंके समुदायकोभी अष्टादशांग कहते हैं । इस अष्टादशांगका क्काथ—तन्द्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मोह, श्वास और त्रिदोषज्वरको नष्ट करे है । वंगसेनने भी कहा है कि—" यह अष्टादशांग क्काथ मृत्युरूप ज्वरको भी हरता है" ॥ ६५७ ॥

अथ सन्निपातज्वरे रसः मृतसंजीवनी वटिका ।

विषं त्रिकटुकं गन्धं टंकणं मृतशुल्बकम् । धत्तूरस्य च बीजानि हिंगुलं नवमं स्मृतम् ॥ ६५८ ॥ एतानि समभागानि दिनैकं विजयाद्रवैः मर्दयेच्चणकाकारा कर्तव्या वटिकाथ वा ॥ ६५९ ॥ भक्षणीयाऽनुपातव्यो रविमूलकषायकः । मृतसञ्जीवनी नाम्ना सन्निपातज्वरान्तकृत् ॥ ६६० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वत्सनाभविष, सोंठ, मिरच, पीपल, गन्धक, सुहागा, ताँबेकी भस्म, धतूरेके बीज और सिंगरफ इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एक दिन-पर्यन्त भांगके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोली बना लेवे। इसको खाकर ऊपरसे आककी जडका क्वाथ बनाकर पीना चाहिये। यह मृतसंजीविनी वटिका सन्निपातज्वरको नष्ट करे है। यह रसप्रदीप-ग्रंथमें कहा है ॥ ६५८–६६० ॥

अथ त्रिनेत्ररसः।

शुद्धसूतं समं गन्धं सूतांशं मृतताम्रकम्। त्रिभिस्तुल्यैर्गवां क्षीरैर्मर्दयेदातपे खरे। मर्द-येद्दिनमेकं तु निर्गुण्डीशिग्रुजद्रवैः ॥६६१॥ विधाय गोलं तं गोलमन्धमूषागतं पचेत्। त्रियामं वालुकायन्त्रे ततः खल्वे विचूर्णयेत् ॥ ६६२ ॥ अष्टमांशं विषं तत्र क्षिपेत्तेनापि मर्दयेत्। त्रिनेत्राख्यो रसो ह्येष देयो गुञ्जाद्वयोन्मितः ॥६६३॥ पञ्चकोलकषायेण छागीदुग्धेन वा सह। रसेनानेन भुक्तेन सन्निपातज्वरो महान्। संक्षयं व्रजति क्षिप्रं कर्तव्यो नात्र संशयः ॥ ६६४ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गंधक एक भाग और शुद्ध ताँबा एक भाग लेवे और तीन भाग आकका दूध लेवे इन तीनों औषधियोंको इस आकके दूधमें डालकर प्रचंड धूपमें खरल करे, फिर एक दिन निर्गुण्डी (सम्हालू) और सहँजनेके रसमें खरल करके गोला बना लेवे। उस गोलेको अंधमूषामें रख-कर मुख बंद कर तीन प्रहरतक वालुकायंत्रमें पचावे, जब स्वांगशीतल हो जाय तब पीसकर बारीक चूर्ण करे, उसमें आठवां भाग विष डालकर खरल करे। इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं। इसकी मात्रा दो रत्तीकी है। अनुपान–पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) का क्वाथ अथवा बकरीका दूध है। इस रसको सेवन करनेसे अत्यंत भयंकर सन्निपात भी शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६१–६६४ ॥

अथ रसेन्द्रचिन्तामण्युक्तभस्मेश्वररसः।

भस्म षोडशनिष्कं स्यादारण्योपलसम्भवम्। मरिचं निष्कमात्रं च विषं निष्कं विचूर्ण-येत् ॥६६५॥ रसो भस्मेश्वरो नाम सन्निपात-ज्वरान्तकृत्। एकगुञ्जामितो भक्ष्य आर्द्र-कस्य द्रवेण हि ॥ ६६६ ॥

अरने उपलोंकी भस्म १६ सोलह निष्क, काली मिर्च १ एक निष्क (चौबीस रत्ती) और विष १ निष्क लेकर तीनोंको एकत्र खरल करे तो भस्मेश्वर नामक रस तय्यार होता है। यह भस्मेश्वर रस सन्नि-पातज्वरनाशक है। एक रत्ती प्रमाण इसको अदरखके रसके साथ भक्षण करना चाहिये ॥ ६६५॥६६६ ॥

अथाग्निकुमाररसः।

द्वौ कर्षौ सूतकाद्ग्राह्यौ गन्धकाद्द्वौ तथैव च। यत्नतस्तूभयं मर्द्यं दिनं हंसपदीद्रवैः ॥ ६६७ ॥ कलकस्य वटिकां कृत्वा निक्षि-पेत्काचभाजने। कर्षैकमस्तं तत्र क्षिप्त्वा वक्त्रं निरोधयेत् ॥ ६६८ ॥ कूपिकायाः परौ भागौ वालुकाभिश्च पूरयेत्। सार्द्धं यावदहोरात्रं तावत्तत्र पचेद्रसम् ॥ ६६९ ॥ यावमात्रोऽनलो देयः स्वांगशीतं समुद्धरेत्। तोलार्द्धमस्तं तत्र क्षिपेत्तावत्तथोषणम् ॥ ६७० ॥ भक्षितो रक्तिकामात्रो रसस्त्व-ग्निकुमारकः। सन्निपातज्वरं हन्याद्धातं मन्दा-ग्नितामपि ॥ ३७१ ॥ शूलं च ग्रहणीं गुल्मं क्षयं जत्रुगदं तथा। श्वासकासादिकान्सर्वा-न्गदानेष विनाशयेत् ॥६७२॥ इति अग्नि-कुमारो रसः सन्निपातज्वरादिषु रसेन्द्र-चिन्तामणौ।

पारा दो तोले और गंधक दो तोले लेवे, दोनोंको एकत्र हंसपदी (लजालू) के रसमें एक दिन खरल करके गोली बनाकर काँचकी आतसीशिशीमें भरके रख देवे, फिर उसमें एक तोला मीठा विष डालकर शीशीका मुख बंद कर एक दूसरे मट्टीके बासनमें शीशीको रख देवे और उसके गलेतक वालू (रेता) भर देवे, फिर उसको डेढ दिनरात पचावे, पश्चात् एक प्रहरतक अंगारोंपै रक्खा रहने देवे, जब अपने आप शीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर लेवे और इस चूर्णमें आधा तोला विष और आधा तोला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काली मिर्च मिलावे तो अग्निकुमार रस सिद्ध हो। इसको एक रत्ती परिमाण खाय तो सान्निपातज्वर, वात, मन्दाग्नि, शूल, संग्रहणी, गुल्म, क्षय, कंठसे ऊपरके रोग और सर्व प्रकारके श्वास कासादि रोग नष्ट होते हैं। यह अग्निकुमार रस रसेन्द्रचिन्तामणिमें कहा है ॥ ६६७–६७२ ॥

अथ पंचवक्त्ररसः ।

गन्धेशटंकमरिचं विषं धत्तूरजैर्द्रवैः । दिनं संमर्दितं शुष्कं पञ्चवक्त्रो रसो भवेत् ॥ ६७३ ॥ आर्द्रकस्य द्रवेणैष दातव्यो रक्तिकामितः । सन्निपातज्वरे देयो घोरे तद्दोषनाशनः ॥ ६७४ ॥ इति पञ्चवक्त्रो रसः सन्निपाते रसेन्द्रचिन्तामणौ ।

गन्धक, पारा, सुहागा, काली मिर्च और विष ये सब समान भाग लेकर धतूरेके रसमें एक दिनतक खरल करके सुखा लेवे तो पंचवक्त्र रस तैयार होता है। इस पंचवक्त्र रसको एक रत्तीभर अदरखके रसमें घोर सन्निपातज्वरमें भी देवे तो इससे सन्निपात नष्ट हो जाता है ॥ ६७३ ॥ ६७४ ॥

अथामृतादिवटी ।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवभागयोजितै रचिता । वटिका मुद्गसमाना कफत्रिदोषाग्निमान्द्यहरी ॥ ६७५ ॥

मीठा विष दो भाग, कौडीकी भस्म पांच भाग और काली मिर्च नौ भाग लेवे इन तीनोंको एकत्र खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बना लेवे। यह अमृतवटी—कफ, त्रिदोष और मंदाग्निको हरे है ॥ ६७५ ॥

अथ शीतज्वरे रसः ।

शीतज्वरारिरसः ।

सूतकं गन्धकं चैव हरितालं मनःशिला । एकनिष्कं द्विनिष्कं च चतुर्निष्कं तथैव च ॥ ६७६ ॥ पञ्चनिष्कं रसैः कारवेल्ल्याः सम्यक्प्रकल्पयेत् । ताम्रपत्राणि तुल्यानि तेन कल्केन लेपयेत् ॥ ६७७ ॥ शरावसंपुटे तानि कृत्वा तेषामुपर्यपि । दद्यात्तां पिष्टिकां पश्चात्पुटपाकेन पाचयेत् ॥ ६७८ ॥ ततः संचूर्ण्यदेवं रसः क्षौद्रेण भक्षितः । यवैकमात्रया हंति घोरं शीतज्वरं ध्रुवम् ॥ ६७९ ॥ पाराटंकः १ गन्धकटंकः २ हरितालटंकः ३ मनःशिलाटंकः ४ ताम्रपत्रटंकः १२ । इति शीतज्वरारिः रसप्रदीपे ।

पारा १ टंक, गंधक २ टंक, हरिताल ४ टंक और मैनसिल ५ टंक लेवे, सबको एकत्र करके करेलेके रसमें खरल कर लेवे, फिर ताँबेके पत्र १२ टंक लेकर इसी कल्कका इनपर लेप कर देवे, फिर इनको शरावसम्पुटमें रखकर ऊपरसे भी इसी कल्कका लेप कर पुटपाकके द्वारा पकावे, जब स्वांग शीतल हो जाय तब पीसकर चूर्ण कर लेवे इसमें एक जौकी बराबर सहतके साथ सेवन करे तो घोर शीतज्वर नष्ट होता है ॥ ६७६–६७९ ॥

अथ शीतकेसरी रसः ।

पारदं गन्धकं चैव तुत्थं च दरदं विषम् । विषादष्टगुणं योज्यं मरिचं विश्वभेषजम् ॥ ६८० ॥ अश्वगन्धाथ विजया कासमर्दः कठिल्लकः । चतुर्णां च रसैरेतैश्चूर्णान्येतानि मर्दयेत् ॥ ६८१ ॥ तुलस्यास्तु दलैः सार्धं भक्षितो रक्तिकामितः । हन्ति शीतज्वरं घोरं नाम्नायं शीतकेसरी ॥ ६८२ ॥

पारा १ भाग, गंधक १ भाग, नीलाथोथा १ भाग, सिंग्रफ १ भाग, विष १ भाग, काली मिर्च और सोंठ आठ भाग लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके असगंध, भाँग, कसौंदी और करेला इन चारोंके रसमें खरल करे तो शीतकेसरी रस सिद्ध होता है। इसमेंसे एक रत्ती प्रमाण तुलसीदलके साथ खाय तो इससे महादारुण शीतज्वर नष्ट होता है ॥ ६८०–६८२ ॥

अथ शीतभञ्जी रसः ।

तालकं शुक्तिकाचूर्णं तुल्यं तत्रोभयोरपि । नवमांशं च तुत्थं स्यान्मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ६८३ ॥ तत्तु संशुष्यमुपलैर्वन्यैर्गजपुटे पचेत् । शीतं तच्चूर्णयेदर्द्धगुञ्जामात्रं सितायुतम् ॥ ६८४ ॥ प्रभाते भक्षयेत्तेन याति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शीतज्वरः क्षयम् । वान्तिभवति कस्यापि कस्यचिन्न भवत्यपि ॥ ६८५ ॥

हरिताल और सीपका चूर्ण समान भाग और नीलाथोथा नववां भाग लेवे; इन तीनों औषधियोंका एकत्र घीकुआरके रसमें खरल करके सुखा लेवे फिर इसको संपुटमें रखकर गजपुटमें अरण्य (अरने) उपलोंकी आगसे पचावे, जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर लेवे। यह शीतभंजीरस आधी रत्ती मिश्रीके साथ प्रातःकाल भक्षण करे तो अवश्य शीतज्वर नष्ट हो जाता है। इससे किसी मनुष्यको वमन होता है और किसी मनुष्यको नहीं भी होता ॥ ६८३–६८५ ॥

अथ रसेन्द्रचिंतामण्युक्तशीतभञ्जी रसः ।

तालकं तुत्थकं ताम्रं सूतगन्धकटंकणम् । सर्वमेतत्समं चूर्णं कारवेल्लीरसद्रवैः ॥६८६॥ दिनैकं मर्दयेत्तेन रसकर्दमकेन तु । ताम्रस्य भाजनस्यान्तर्लिम्पेदर्द्धांगुलोन्मितम् । तत्पचेद्वालुकायन्त्रे यवा यावत्स्फुटन्ति हि ॥६८७॥ शीतलं तद्धि गृह्णीयात्ताम्रपात्रोदराद्भिषक् । शीतभञ्जी रसो माषमात्रो मरिचसंयुतः । भक्षितः पर्णखण्डेन नाशयेद्विषमज्वरान् ६८८

हरिताल, नीलाथोथा, तांबा, पारा, गंधक और सुहागा इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके एक दिनतक करेलेके रसमें खरल करे, फिर इस कल्कका ताँबेके बासनके भीतर आधे अंगुल ऊँचा लेप कर देवे, फिर उस बासनको वालुकायंत्रमें पकावे और उस बालूमें कुछ जौके दाने डाल देवे, जब जौके दाने भुनकर फुटने लगे तब सिद्ध जानकर निकाल लेवे । जब स्वांग शीतल हो जाय तब उस तांबेके बासनमेंसे औषधिको यत्नसे छुटा लेवे । इसको शीतभंजी रस कहते हैं । यह रस एक मासे काली मिर्चके साथ पानमें रखकर खाय तो विषमज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ६८६--६८८ ॥

अथ रसरत्नप्रदीपोक्तशीतभंजी रसः ।

तालको दरदोद्भूतः पारदो गन्धकः शिला । क्रमाद्भागार्द्धरहितं कारवेल्ल्यम्बुमार्दितम् ॥ ६८९ ॥ अनेनास्य प्रमाणेन ताम्रपात्रं प्रलेपयेत् । अधोमुखं दृढे भाण्डे तन्निरुध्याथ पूरयेत् ॥ ६९० ॥ चुल्ल्यां वालुकया यन्त्रमग्निं प्रज्वालयेदधः । शीतं संचूर्ण्य माषोऽस्य नागवल्लीदले स्थितः ॥ ६९१ ॥ भक्षितो मरिचैः सार्द्धं समस्तविषमज्वरान् । शीतदाहादिकान्हन्ति पथ्यं शाल्योदनं पयः ॥ ६९२ ॥ इति शीतभञ्जी रसः शीतज्वरादिविषमज्वरेषु रसरत्नप्रदीपे ।

हरिताल, सिंग्रफ (हिंगुल) से निकाला हुआ पारा हरितालसे आधा भाग, पारेसे आधा गन्धक और गन्धकसे आधी मैनशिल लेवे, सबको एकत्र पीसकर करेलेके रसमें विधिपूर्वक घोटे । फिर इस कल्कका एक तांबेके बासनके भीतर लेप कर देवे। पश्चात् उस बासनको एक मजबूत बासनमें उलटा रखकर ऊपरसे रेता बालू भरकर चूल्हेपै रक्खे और एक दिनरात अग्नि देवे । शीतल होनेपर इसका चूर्ण कर लेवे तो शीतभंजी रस सिद्ध होता है । इसको एक मासे लेकर काली मिर्चके साथ पानमें रखकर खाय तो विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ६८९--६९२ ॥

अथ कट्फलादिपानम् ।

कट्फलं त्रिफला दारु चन्दनं सपरूषकम् । कट्का पद्मकोशीरं विपचेत्कर्षकं जले ॥६९३॥ त्रिदोषदाहतृष्णाघ्नं पानमात्रे प्रपूजितम् । दीर्घकालज्वरार्तानामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥६९४॥ कर्षं कट्फलाद्युशीरान्तानां समुदितानां जले प्रस्थमिते विपचेद्द्वशेषं पिबेत् । कट्फलादिपानं तृष्णायां दाहे च ।

कायफल, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, चन्दन, फालसे, कुटकी, पद्माख और खस इन सबको एक तोला प्रमाण लेकर ६४ तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते आधा जल रह जाय तब उतार लेवे । यह जल त्रिदोष, दाह और तृषाको हरनेवाला है, सर्व प्रकारके पानोंमें उत्तम है और बहुत कालसे जो ज्वरसे पीडित हैं उनके लिये अमृतकी समान है ॥ ६९३॥६९४ ॥

अथ शीतलजलनिषेधः ।

सन्निपाते तु दाहार्तं यः सिञ्चेच्छीतवारिणा । आतुरः स कथं जीवेद्भिषग्वा स कथं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवेत् । ॥ ६९५ ॥ एष सन्निपातिनो दाहे शीताम्बुसेकनिषेधो रुग्दाहादन्यत्र तत्र वाप्यवगाह नस्योक्तत्वात् ।

सन्निपातज्वरमें दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरको जो वैद्य शीतलजलसे सींचता है वह कैसे वैद्य हो सक्ता है और वह रोगी कैसे बच सक्ता है ? सन्निपातज्वरमें दाहसे पीडित मनुष्यको जो शीतल जलका सेवन निषेध किया हो, वह रुग्दाहको छोडकर अन्य सन्निपातोंमें जानना, क्योंकि रुग्दाह सन्निपातोंमें तो जलके भीतर घुसकर स्नान कराना चाहिये ॥ ६९५ ॥

अथान्नम् ।

दुःस्पर्शगोक्षुरक्षुद्रासिद्धमाहारमर्पयेत् । दोषशान्तिबलाग्न्यर्थं त्रिदोषज्वरिणो भिषक् ॥ ६९६ ॥ दुःस्पर्शो यवासः । आहारम् उचितमन्नम् । लाजसक्तून्समक्षीयात्सैन्धवेन समन्वितान् । ते च जीर्यन्त्यविघ्नेन ज्वरी जीवेत्तदा ध्रुवम् । रक्तपित्तहितत्वेन तृषादाहज्वरेषु च । लाजानां सक्तवः शीता नैव तेऽत्र हिता मताः ॥ ६९७ ॥ पाचनो दीपनः स्नेह्यो लाजमण्डो यतः स्मृतः । दशमूलादिसंसिद्धः सन्निपातज्वरे हितः ॥ ६९८ ॥ सन्निपातज्वरी यस्तु कम्पते प्रलपत्यपि । किञ्चिदेव न जानाति चिकित्सा तस्य कथ्यते ॥ ६९९ ॥ अभ्यञ्जयेत्पुराणेन सर्पिषा पूर्वमेव तम् । बलाराज्ञागुडूच्याद्यैस्तैलैश्च परिषेचयेत् ॥ ७०० ॥ वर्तको वर्तिका लावो वार्तीकस्तित्तिरिः शशः । कुलिङ्गश्च रसेनैषां तर्पयेत यथानलम् ॥ ७०१ ॥ सन्निपाते क्षुधार्तं यो भोजयेत्पिशितौदनम् । स कथं भिषगाख्यां तु लभते मनुजाधमः ॥ ७०२ ॥

वैद्यको चाहिये कि सन्निपात रोगके दोषोंको शांत करनेके लिये बल और जठराग्निको बढानेवाला जवासा, गोखरू और कटेरी इनके क्वाथसे सिद्ध किया हुआ योग्य आहार देवे । कितने एक वैद्य कहते हैं कि, ज्वरवाले मनुष्यको सेंधानिमक डालकर खीलोंके सत्तू खानेको देवे, जो वह निर्विघ्न पच जावे तो ज्वररोगी अवश्य जीता है । परन्तु खीलोंके सत्तू रक्तपित्त, तृषा और दाहज्वरमें हितकारी होनेके कारण शीतल हैं और शीतल वस्तु सन्निपातमें अत्यन्त अहितकारी (कुपथ्य) हैं, इस कारण खीलोंके सत्तू सन्निपातज्वरमें सेवन नहीं करने चाहिये । सन्निपातज्वरमें तो दशमूलादि औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ खीलोंका मांड—पाचन, दीपन, पसीनेको लानेवाला और हितकारी है । सन्निपातज्वरमें यदि रोगी कांपे, बकवाद करे और अज्ञान हो जाय, उसकी चिकित्सा अब कही जाती है । ऐसे रोगीके शरीरमें प्रथम पुराने घीका मालिश करे, तथा बलादि, रास्नादि और गुडूच्यादि औषधियोंका तेल बनाकर सेवन करावे । इस रोगीकी अग्निके अनुसार बटेर, बत्तक, लवा, बगेरा, तीतर, खरगोश और कुलिंग (घरका चिडा) इनके मांसके रससे तृप्त करे । सन्निपातज्वरमें भूखसे व्याकुल रोगीको जो वैद्य मांसयुक्त भात भोजन करनेके लिये देता है वह मनुष्योंमें अधम कैसे वैद्य हो सक्ता है ? ॥ ६९६–७०२ ॥

अथ वातोल्वणसन्निपातज्वरचिकित्सा ।

पंचमूलीकषायं तु दद्याद्वातोल्वणे ज्वरे । भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ ७०३ ॥ पंचमूली महती प्रथमप्राप्तायास्त्यागे पचनाभावात् ।

वातोल्वण सन्निपातज्वरमें दोषोंका बलाबल विचारकर बहुत गरम अथवा किंचित् गरम पंचमूलका क्वाथ देवे । यहां बृहत्पंचमूल लेना चाहिये ॥ ७०३ ॥

अथ पित्तोल्वणसन्निपातज्वरचिकित्सा ।

पटूपकादिक्वाथः ।

पटूषकं च त्रिफला देवदारु च कट्फलम् । चन्दनं पद्मकं चैव तथा कटुकरोहिणी ॥७०४॥ पृष्टिपर्णी घृतं क्षौद्रयुक्तं शीतलं जलम् । पित्तोत्तरे नृणामेतत्सन्निपातचिकित्सितम् ॥ ७०५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पित्तोल्वणसन्निपातमें फालसे, हरड, बहेडा, आमले, देवदारु, कायफल, लाल चन्दन, पद्माख, कुटकी और पृष्टिपर्णी (पिठवन) इनका क्काथ बनाकर बासी करके शीतल होनेपर पिये तौ पित्तोल्वण सन्निपात नष्ट होता है ॥ ७०४ ॥ ७०५ ॥

अथ किरातादिसप्तकः।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम्। पाठोदीच्यं मृणालं च शृतं पित्ताधिके पिबेत् ॥ ७०६ ॥

पित्तोल्वण सन्निपातमें चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, सुगन्धवाला और कमलकी नाल इनका क्काथ बनाकर पिये ॥ ७०६ ॥

कफोल्वणसन्निपातज्वरचिकित्सा।

बृहत्यादिक्काथः।

बृहती पौष्करं भार्ङ्गी शटी शृंगी दुरालभा। वत्सकस्य तु बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ ७०७ ॥ बृहत्यादिगणः शस्तः सन्निपाते कफोत्तरे। श्वासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेष्वपि ॥ ७०८ ॥

कफोल्वण सन्निपातमें बृहती (बडी कटेरी), पोहकर मूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्काथ बनाकर पिये। यह कफोल्वण सन्निपातमें हितकारी है, तथा श्वासादि उपद्रवसहित सन्निपातको दूर करे है। इसको बृहत्यादिक्काथ कहते हैं ॥ ७०७ ॥ ७०८ ॥

वातपित्तोल्वणसन्निपातज्वरचिकित्सा।

चातुर्भद्रकक्काथः।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम्। चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातपित्तोल्वणे ज्वरे ७०९

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनको चातुर्भद्रक कहते हैं। इनका क्काथ वातपित्तोल्वण सन्निपातज्वरमें हितकारी है ॥ ७०९ ॥

पित्तकफोल्वणसन्निपातज्वरचिकित्सा।

पर्पटादिक्काथः।

पर्पटः कट्फलं कुष्ठमुशीरं चंदनं जलम्। नागरं मुस्तकं शृंगी पिप्पल्येषां शृतं हितम्। तृष्णादाहाग्निमान्द्येषु पित्तश्लेष्मोल्वणे ज्वरे ॥ ७१० ॥

पित्तकफोल्वण सन्निपातज्वरमें पित्तपापडा, कायफल, कूठ, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला, सोंठ, नागरमोथा, काकडासिंगी और पिपल इनका क्वाथ हितकारी है। तथा तृषा, दाह और मन्दाग्निको नष्ट करे है। इसको पर्पटादिक्काथ कहते हैं। (यहां वातकफोल्वण सन्निपात ज्वरकी चिकित्सा लिखनी चाहिये थी सो नहीं लिखी, उसके न लिखनेका कारण यह है कि—वातकफोल्वण सन्निपात शीघ्र असाध्य हो जाता है) ॥ ७१० ॥

वातपित्तकफोल्वणसन्निपातज्वरचिकित्सा।

योगराजक्काथः।

नागरं धान्यकं भार्ङ्गी पद्मकं रक्तचन्दनम्। पटोलः पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं बला ॥ ७११ ॥ शर्करा कटुका मुस्तं गजाह्वा व्याधिघातकः। किराततिक्तममृता दशमूली निदिग्धिका ॥ ७१२ ॥ योगराजो निहन्त्येष सन्निपातं त्रिकोल्वणम्। सन्निपातसमुत्थानं मृत्युमप्यागतं जयेत् ॥ ७१३ ॥ गजाह्वा गजपिप्पली। व्याधिघातकः कृतमालः किराततिक्तं द्वैगुण्यार्थं पृथक् पठितम्।

सोंठ, धनिया, भारंगी, पद्माख, लालचन्दन, पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलेठी, खिरेटी, मिश्री, कुटकी, नागरमोथा, गजपीपल, अमलतास, चिरायता, गिलोय, दशमूल और कटेरी इनका क्काथ त्रिदोषोल्वण सन्निपातको नष्ट करे है और सन्निपातसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न हुई मृत्युकोभी जीते है । इसको योगराज क्वाथ कहते हैं ॥ ७११–७१३ ॥

प्रवृद्धं कर्शयेद्दोषं क्षीणं संवर्द्धयेद्भिषक् । चिकित्सेयं विधातव्या दोषयोर्वृद्धहीनयोः ॥ ७१४ ॥ अस्यायमर्थः । प्रवृद्धं दोषं कर्शयत् तत्क्षैण्यहेतुभिः औषधान्नविहारैः कृशीकृत्य समीकुर्यात् । क्षीणं दोषं संवर्द्धयेत्, तद्वृद्धिहेतुभिरौषधान्नविहारैः वर्द्धयित्वा समीकुर्यादित्यर्थः । प्रवृद्धे शमिते दोषे मध्यमः स्वयमेव हि । शान्तिं याति शमं नीतेऽनुबन्ध्ये त्वनुबन्धवत् ॥७१५॥ अस्यायमर्थः । वर्षासु वायुरनुबन्ध्यः सेव्यः प्रधानमिति यावत् । पित्तश्लेष्माणौ अनुबन्धौ वायोरनुचरौ । शरदि पित्तमनुबन्ध्यं कफोऽनुबन्धः । वसन्ते कफोऽनुबन्ध्यो वातपित्ते अनुबन्धे । तत्र यथा अनुबन्ध्ये प्रशमं नीतेऽनुबन्धः स्वयमेव शान्तिं याति, तथा प्रवृद्धे दोषे शमिते हासयित्वा समीकृते मध्यमो दोषः हि निश्चयेन स्वयमेव शान्तिं याति प्रकृतो भवतीत्यर्थः ।

अब प्रवृद्ध मध्य और हीन वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुए सन्निपातज्वरोंकी चिकित्सा कहते हैं । बढे हुए दोषको जिससे दोष क्षीण होय ऐसे आहार विहार और औषधियोंसे समान करे और क्षीण हुए दोषकी जिससे दोषकी वृद्धि हो ऐसे आहार विहार और औषधियोंसे समान करे । जब वृद्धिको प्राप्त हुआ दोष शमन हो गया तब मध्यम दोष अपने आपही शमन हो जाता है । जैसे कि, वर्षाऋतुमें वायु प्रधान है और पित्त तथा कफ उसके अनुचर (अप्रधान) हैं, शरदृतुमें पित्त प्रधान है और कफवात उसके अनुचर हैं, और वसन्तऋतुमें कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त उसके अनुचर हैं, इनमें प्रधानको शांत करनेसे जैसे उसके अनुचर अपने आपही शांत हो जाते हैं, इसी प्रकार सन्निपातमें भी वृद्धिको प्राप्त हुए दोषको क्षीण करनेसे मध्यम दोष आपही अवश्य शांत हो जाते हैं ॥ ७१४ ॥ ७१५ ॥

अथ शीतांगादित्रयोदशसान्निपातक्रमचिकित्सामाह ।

तत्र शीतांगचिकित्सा ।

भास्वन्मूलं जीरकव्योषभार्ङ्गीं व्याघ्री शुण्ठी पुष्करं गोजलेन । सिद्धं सद्यः शीतगात्रार्तिमोहश्वासश्लेष्मोद्रेककासान्निहन्ति ॥७१६॥ भास्वन्मूलमर्कमूलम् ।

आककी जड, जीरा, मिर्च, पीपल, भारंगी, कटेरी, दुगुनी सोंठ (यहाँ दुगुनी सोंठ इसलिये कही कि, त्रिकुटेकी सोंठ एक भाग और एक भाग पृथक् जाननी) और पोहकरमूल इनको गोमूत्रमें पकाकर सेवन करनेसे तत्कालही शीतांग सन्निपातकी पीडा मोह, श्वास, कफकी अधिकता और खाँसी नष्ट हो जाती है ॥ ७१६ ॥

कर्कोटिकाकन्दरजः कुलत्थः कृष्णो वचाकट्फलकृष्णजीरैः । किराततिक्तानलकट्फलाम्बुपथ्याभिरुद्वर्तनमत्र शस्तम् ॥७१७॥ कर्कोटिकाकन्दरजः खेरवसामूलरजः ।

शीतांग सन्निपातमें ककोडे (खेखसा) की जडका चूर्ण, कुलथी, पीपल, वच, कायफल, काला जीरा, चिरायता, चीता, कायफलका पानी और हरड इनको एकत्र पीसकर शरीरमें मले तो शीतांग सन्निपात दूर हो जाय ॥ ७१७ ॥

रसविषमरिचमहेशप्रियफलभस्मैकभूचतुर्वसुभिः । भागैर्मितमुद्दूलनमिदमतिस्वेदशैत्यहरम् ॥ ७१८ ॥

पारा १ भाग, वत्सनाभविष १ भाग, काली मिर्च ४ भाग और धतूरेके फलकी भस्म ८ भाग लेवे, सबको एकत्र करके देहमें मले तो इससे अत्यंत पसीनेका निकलना और शीतका वेग दूर हो जाता है ॥ ७१८ ॥

अथ तन्द्रिकचिकित्सा ।

क्षुद्राऽमृतापौष्करनागराणि शृतानि पीतानि शिवायुतानि । शुण्ठीकणागस्तिरसोषणानि नस्येन तन्द्राविजयोल्वणानि ॥ ७१९ ॥ मरिचकचपचम्पचावचारुक्रिमिदरनागरशर्व-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रीगवाक्ष्यः। छगलकजलकल्किता नितान्तं नसि निहिता ननु तन्द्रिकं जयन्ति ॥७२०॥ कचः बालकः। पचम्पचा दारुहरिद्रा। रुक्कुष्ठम्। कृमिहरः विडंगः। शर्वरी हरिद्रा। गवाक्षी इन्द्रवारुणी। नसि नासिकायाम्। तुरंगलालालवणोत्तमेन्दुमनःशिलामागधिकामधूनि। नियोजितान्यक्षिणि निश्चितं च तन्द्रां च निद्रां च निवारयन्ति ॥ ७२१ ॥ लवणोत्तमं सैन्धवम्। इन्दुः कर्पूरः। निद्राम् अतिनिद्राम्।

कटेरी, गिलोय, पोहकरमूल, सोंठ और हरड इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे तन्द्रिक सन्निपात दूर हो जाता है। सोंठ, पीपल, अगस्तियाका रस और मिर्च इनका नास देनेसे तन्द्राका नाश हो जाता है। मिर्च, सुगंधवाला, दारुहलदी, वच, कूठ, वायविडंग, सोंठ, हलदी और इन्द्रायन इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रिकसन्निपात दूर हो जाता है। घोडेकी लार, सेंधानिमक, कपूर, मैनशिल, पीपल और सहत इनको एकत्र पीसकर आँखोंमें आँजनेसे तन्द्रा और अत्यंत निद्रा अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ ७१९–७२१ ॥

अथ प्रलापकचिकित्सा।

सतगरवरातिक्तारेवताम्भोदतिक्ता नलदतुरगगन्धाभारतीहारहूराः। मलयजदशमूलीशंखपुष्पीसुपक्काः प्रलपनमपहन्युः पानतो नातिदूरात् ॥ ७२२ ॥ वरातिक्तोऽत्र पर्पटो न तु महानिम्बः, तन्त्रान्तरानुरोधात्। नलदं लामज्जकं तदलाभादुशीरं ग्राह्यम्। भारती ब्राह्मी वरम्भी इति लोके। हारहूरा द्राक्षा। सान्त्वनैरञ्जनैस्तीक्ष्णैर्नस्यैस्तिमिरसेवनैः। सर्वतो विकृतं चित्तमस्य प्रकृतिमानयेत् ॥ ७२३ ॥

तगर, पित्तपापडा, अमलतास, नागरमोथा, कुटकी, लामजक (इसके न मिलनेपर खस लेवे), असगंध, ब्राह्मी, दाख, लालचन्दन, दशमूल और शंखाहुली (कौडिल्ला) इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे बहुत शीघ्रही प्रलापक सन्निपात नष्ट हो जाता है। प्रलापक सन्निपातवाले रोगीको धीरजसे अंजन तथा तीक्ष्ण नाससे और अन्धकारका सेवन कराकर निरोग करे ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥

रक्तष्ठीविसन्निपातचिकित्सा।

रोहिषधन्वयवासकवासापर्पटगन्धलताकटुकाभिः। शर्करया सममेष कषायः क्षतजष्ठीविन उद्यदुपायः ॥ ७२४ ॥ रोहिषं सुगन्धतृणविशेषः। रोहिस इति लोके। गन्धलता प्रियंगुः। पद्मकचन्दनपर्पटमुस्तं जातीजीवकचन्दनवारि। क्वीतकनिम्बयुतं परिपक्वं वारि भवेदिह शोणितहारि ॥ ७२५ ॥ क्वीतकं यष्टीमधुकम्। इह रक्तष्ठीविनि मधुकमधूकपरूषकपाथश्चन्दनपल्लवदारुसनाथः। श्रीपर्णीफलशीतकषायः ससितः इह स्यादसृजयाय ॥ ७२६ ॥ पाथः बालः पल्लवं पत्रकम्। सनाथः सप्रधानः। श्रीपर्णी गम्भारी।

रोहिषतृण, धमासा, अडूसा पित्तपापडा, फूलप्रियंगू और कुटकी इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पिये तो रक्तष्ठीवी सन्निपात नष्ट हो जाता है। पद्माख, लालचंदन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेली, जीवक, लालचंदन, सुगंधवाला, मुलेठी और नीम इनका क्वाथ पीनेसे रक्तष्ठीवी सन्निपातका रुधिर गिरना बंद हो जाता है। मुलेठी, महुआ, फालसा, सुगंधवाला, लालचंदन, तेजपात और देवदारु तथा कुम्भेरके फल इनका क्वाथ बनाकर अत्यंत शीतल करके मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तष्ठीवीका रुधिर गिरना बन्द हो जाता है ॥ ७२४–७२६ ॥

अथ भुग्ननेत्रचिकित्सा।

तुरंगगन्धालवणोग्रगन्धामधूकसारोषणमागधीभिः। बस्ताम्बुशुण्ठीलशुनान्विताभिर्नस्यं कृशं भुग्नदृशं करोति ॥ ७२७ ॥

असगंध, सेंधानिमक, वच, महुएका सार, मिर्च, पीपल, सोंठ और लहसुन इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे भुग्ननेत्र सन्निपात शांत हो जाता है ॥ ७२७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथाभिन्यासचिकित्सा ।

शृङ्ग्यादिक्काथः ।

शृंगीभाङ्गर्चभयाजाजीकणाभूनिम्बपर्पटः। देवदारुवचाकुष्ठयासकट्फलनागरैः॥७२८॥मुस्तधान्याकतिक्तेन्द्रयवपाठाहरेणुभिः । हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥७२९॥ विशालारग्वधोरिष्टशटीवाकुचिकाफलैः विडंगरजनीदार्वीयवानीद्वयसंयुतैः ॥ ७३० ॥ समांशैर्विहितः क्काथो हिङ्ग्वार्द्रकरसान्वितः। अभिन्यासज्वरं घोरं हन्ति तन्द्रां च तत्क्षणात् ॥ ७३१ ॥ प्रमेहं कर्णशूलं च सन्निपातांस्त्रयोदश । हिक्कां श्वासं च कासं च तथा सर्वानुपद्रवान् ॥ ७३२ ॥

काकडासिंगी, भारंगी, हरड, जीरा, पीपल, चिरायता, पित्तपापडा, देवदारु, वच, कूठ, जवासा, कायफल, सोंठ, नागरमोथा, धनिया, कुटकी, इन्द्रजौ, पाढ, रेणुका, गजपीपल, चिरचिटा, पीपलामूल, चीता, इन्द्रायन, अमलतास, नीम, कचूर, बावचीके बीज, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, अजवायन और अजमोद इनका क्काथ बनाकर उसमें हींग और अदरखका रस मिलाकर पीनेसे तत्काल भयंकर अभिन्यास ज्वर, तन्द्रा, प्रमेह, कानकी पीडा, तेरह प्रकारका सन्निपात, हिचकी, श्वास, खाँसी और सर्व प्रकारके उपद्रव दूर हो जाते हैं ॥ ७२८–७३२ ॥

अथ जिह्वकचिकित्सा ।

किराततिक्ताकुलकृत्कुलिञ्जकर्चूरकृष्णाकटुतैलयुक्तः । अम्लद्रवः संशमयेद्रसज्ञादोषान्स्तुतो दाशरथिर्यथात्र ॥ ७३३ ॥ आकुलकृत् अकरकरहा इति लोके । अम्लद्रवः बीजपूरादिरसः ।

चिरायता, अकरकरा, कुलिंजन, कचूर, पीपल और सरसोंका तेल इनको एकत्र पीसकर कवल बनावे और बिजौरे आदिका रस मिलाकर मुखमें धारण करनेसे जिस प्रकार स्तुति करनेसे जन्मजन्मान्तरके दोष दशरथनंदन श्रीरामचन्द्रजी दूर कर देते हैं उसी प्रकार जिह्वक सन्निपातके दोषोंको यह किरातादि कवल दूर कर देता है ॥ ७३३ ॥

अथ शालूरपर्ण्यादिलेहः ।

शालूरपर्णी मालूरमूलामयमधुप्लुता । शखकपुष्पीसहिता सेव्या वाचां विशुद्धये ॥ ७३४ ॥ शालूरपर्णी ब्राह्मी, मालूरमूलं बिल्वमूलम्, आमयः कुष्ठम् ।

वाणीको शुद्ध करनेके लिये बेलकी जड, कूठ, सहत और शंखाहूली (कौडिला) इनके साथ ब्राह्मीका सेवन करे ॥ ७३४ ॥

अथ क्षुद्रादिविश्वादिक्काथौ ।

क्षुद्रानागरपुष्कराऽमृतलताब्राह्मीवचासुव्रताभार्ङ्गीवासकयासतोयसुरसाक्काथो जयेज्जिह्वकम् । विश्वावर्षाभूविभावरीयुगवरावत्सादनीवारिदव्याघ्रीनिम्बपटोलपुष्करजटारुग्दारुभिर्वा कृतः ॥ ७३५ ॥ पुष्करं पुष्करमूलम्, तथा च अमरसिंहः—" मूले पुष्करकाश्मीरपद्मपत्राणि पौष्करे।" सुव्रता गन्धपलाशी काश्मीरे प्रसिद्धा । सुरसा तुलसी। विश्वादिः योगान्तरम् । वर्षा पर्पटः विभावरीयुगं हरिद्रा दारुहरिद्रा च। वरा त्रिफला वत्सादनी गुडूची । व्याघ्री कण्टकारिका ।

कटेरी, सोंठ, पोहकरमूल, गिलोय, ब्राह्मी, वच, गंधपलाशी, भारंगी, अडूसा, जवासा, सुगंधवाला और तुलसी इनका क्काथ जिह्वक सन्निपातको नष्ट करे है। अथवा सोंठ, पित्तपापडा, हलदी, दारुहलदी, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, नागरमोथा, कटेरी, नीम, पटोलपात, पोहकरमूल, बालछड, कूट और देवदारु इनका क्काथ जिह्वक सन्निपातको नष्ट करे है ॥ ७३५ ॥

अथ सन्धिकसन्निपातचिकित्सा ।

शटीसुरतरूत्तमास्थविरदारुराम्नाः समाः सनागरसुधान्विताः पिब शतावरीसंयुताः । मृदुज्वलनपाचिताः सह पुरेण सन्धिग्रहव्यथापहतये वृथा शिशिरसेवनं मा कृथाः ॥ ७३६ ॥ उत्तमा त्रिफला । स्थविरदारु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधारा इति लोके। सुधा गुडूची । पुरो गुग्गुलुः। वचाकवचकच्छुरासहचराऽमृता-भंगुरासुराह्वघननागराऽतरुणदारुरास्नापुराः। वृषातरुणभीरुभिः सह भवन्ति सन्धिग्रहव्य-थोरुजडिमक्लमभ्रमणपक्षघातद्रुहः ॥ ७३७॥ कवचः पर्पटकः, कच्छुरा यवासः, भंगुरा अतिविषा, सुराह्वो देवदारुः, अतरुणदारुः, वृद्धदारुः, पुरो गुग्गुलुः। वृषा बृहदन्ती एरण्डवत्पत्रविटपा, तदलाभे दन्ती च ग्राह्या समानगुणत्वात्। तरुणः एरण्डः। भीरुः शतावरी। सुरदारुशटीसुधालतासुवहाशु-ण्ठ्यमृताः शृता जले। सपुराः शमयन्ति सेविताः सततं सन्धिगतं सदागतिम्॥७३८॥ मुस्तैरण्डप्राणदाबाणदारुच्छिन्नारास्नाभीरु-कर्चूरातिक्ताः। वासाविश्वापञ्चमूलाऽश्वगन्धा हन्युर्मन्यास्तम्भसन्धिग्रहार्तीः ॥ ७३९ ॥ प्राणदा हरीतकी बाणः नीलपुष्पसहचरः। तिक्ता कटुकी।

सन्धिक सन्निपातकी व्यथा (पीडा) दूर करनेके लिये कचूर, देवदारु, हरड, बहेडा, आमला, विधारा, रास्ना, सोंठ, गिलोय और सतावर इनको समान भाग लेकर मंद मंद अग्निसे क्वाथ बनाकर गूगल डालकर पिये और शीतल पदार्थोंका सेवन त्याग देवे। वच, पित्तपापडा, जवासा, कटसरैया, गिलोय, अतीस, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, विधारा, रास्ना, गूगल, बृहद्दन्ती, (जो बृहद्दन्ती न मिले तो दन्ती ही लेवे, क्योंकि गुणोंमें दोनों समान हैं) और सतावर इनका क्वाथ संधिक सन्निपातकी पीडा और जांघोंकी जडता, ग्लानि, भ्रमण और पक्षाघातको नष्ट करे है। देवदारु, कचूर, दुगुनी गिलोय, रासना और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर गूगल डाल-कर सेवन करे तो संधिगत वायु नष्ट होती है। नागरमोथा, अण्डकी जड, हरड, काले फूलका पिया-बांसा, देवदारु, गिलोय, रासना, सतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ, पंचमूल और असगन्ध इनका क्वाथ—नाड (गले) की नसोंका जकडना और संधियोंकी पीडाको दूर करे है ॥७३६-७३९॥

अथान्तकज्वरचिकित्सा।

इहापहाय व्रतमुष्णवारि ज्वरारि यूषादि गदापहारि। ज्वरच्छिदं जीवितदं च नित्यं मृत्युञ्जयं चेतसि चिन्तयस्व ॥ ७४० ॥ इह अन्तके व्रतं लंघनादिनियमम्। कर्पूर-प्रकरावदातवपुषं संयोगमुद्राजुषं शश्वद्भक्त-जनेषु भावुकजुषं भालस्फुरच्चक्षुषम्। सम्पूर्णा-मृतकुम्भसम्भृतकरं शुभ्राक्षमालाधरं पिं-गोत्तुंगजटाकलापरुचिरं चन्द्रार्द्धमौलिं स्तुहि ॥ ७४१ ॥ भिषग्भिरिति निर्णीतं सन्नि-पातेऽन्तकाभिधे। भेषजं जाह्नवीनीरं वैद्यो गोविन्द एव हि ॥ ७४२ ॥

अन्तक नामक सन्निपात ज्वरमें लंघन आदि नियमोंको, ज्वरनाशक क्वाथोंको और रोगनाशक यूष आदिको छोडकर ज्वरको हरनेवाले और प्राणोंके रक्षक, मृत्युंजय जो सदाशिव हैं उनका निरंतर चित्तमें चिंतवन करना चाहिये। अब सदाशिवका ध्यान कहते हैं। मुकुटमें जो अर्द्धचन्द्रको धारण करनेवाले और कर्पूरकी समान उज्ज्वल शरीरवाले हैं, सुन्दर संयोगमुद्राको धारण किये और भक्तजनों-पर निरन्तर प्रेम रखनेवाले, कपालमें त्रिनेत्र प्रका-शित, अमृतसे भरे हुए कुम्भको हाथमें लिये, दूसरे हाथमें सुन्दर रुद्राक्षकी मालाको धारण किये और पिंगल तथा ऊँची जटामण्डलसे सुशोभित, ऐसे सदाशिवकी रोगीको स्तुति करनी चाहिये। अंतक सन्निपातमें गंगाजल तो औषधि है और श्रीविष्णु-भगवान् ही वैद्य हैं ऐसा वैद्योंने निश्चय किया है ॥ ७४०-७४२ ॥

अथ रुग्दाहचिकित्सा।

तत्र षडंगपानीयम्।

उशीरचन्दनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः। शृतं शीतं जलं दद्याद्दाहतृड्ज्वरशान्तये ॥७४३॥ सासितो निशि पर्युषितः प्रातर्धान्याकतण्डु-लक्वाथः। पीतः शमयत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं पैत्तम् ॥ ७४४ ॥ धान्याकतण्डुलाः कण्डितधान्याकबीजानि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खस, लाल चंदन, सुगंधवाला, दाख, आमले और पित्तपापडा इनके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके दाह, तृषा और ज्वरकी शान्तिके लिये षडंग पानीय देवे । कूटे हुए धनियेके चावलोंको रातको भिगो देवे, फिर प्रातःकाल मिश्री मिलाकर पिये तो थोडे ही समयमें अन्तर्दाह (भीतरकी जलन) और पित्तज्वर शान्त हो जाता है । यह धान्यकक्काथ है ॥ ७४३ ॥ ७४४ ॥

अथ पथ्यावलेहः ।

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिह्याद्दाहविनाशिनीम् ॥ ७४५ ॥ पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैः इत्यत्र न समुच्चयः । तेन केवलेन मधुनापि लिह्यात् ।

दाहको नष्ट करनेके लिये तेलके साथ वा घीके साथ अथवा सहतके साथ हरडको चाटे । यह पथ्यावलेह है ॥ ७४५ ॥

अथ लेपः ।

प्रशमयति दाहमचिराद्दधियुक्कर्कन्धुपल्लवैर्लेपः । लेपो हिमकरमलयजनिम्बदलैस्तक्रपिष्टैर्वा ॥ ७४६ ॥ हिमकरः कर्पूरः । तथा च " घनसारश्चन्द्रसंज्ञः " इत्यमरः ।

बेरीके पत्तोंको दहीमें पीसकर देहमें लेप करे अथवा कपूर, चन्दन और नीमके पत्ते इनको मट्ठेमें पीसकर शरीरपै लेप करे तो तत्काल दाह शान्त हो जाता है ॥ ७४६ ॥

अथ जलधारा ।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ । शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरं च ॥ ७४७ ॥

रुग्दाह सन्निपातवाले रोगीको सीधा चित्त सुलाकर उसकी नाभिपै ताँबे अथवा काँसी आदिका गहरा बासन स्थापन करे, फिर उसमें बहुत शीतल जलकी धारा छोडे तो तत्काल दाह शांत हो जाता है ॥ ७४७ ॥

अथावगाहनम् ।

शीताम्भसा तु शतशश्च विलोडितेन गव्येन चन्दनयुतेन घृतेन दिग्ध्वा । दाहज्वरी सकमलोत्पलमाल्यधारी क्षिप्रं विशेत्सलिलकोष्ठमनल्पकालम् ॥ ७४८ ॥

दाह ज्वरवाले मनुष्यके देहमें सौ बार शीतल जलसे धुले हुए गायके घीमें घिसा हुआ चन्दन मिलाकर शरीरपर लेप करे, फिर कमल और कमोदिनीकी माला पहनाकर बहुत शीघ्र शीतल जलके कुंड (जलाशय) में प्रवेश करावे ॥ ७४८ ॥

अथावगुंठनम् ।

काञ्जिकार्द्रपटेनावगुण्ठनं दाहनाशनम् । अथ गोतक्रसंस्विन्नशीतलीकृतवाससा ॥ ७४९ ॥

कपडेको काँजीमें भिजोकर अथवा गायके तक्रमें औटाकर फिर शीतल करके शरीरपर धारण करनेसे दाह नष्ट हो जाता है ॥ ७४९ ॥

अथान्नम् ।

दाहवम्यर्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥ ७५० ॥ लाजसक्तुरूपं तर्पणम् ।

दाह और वमनसे पीडित, दुबला, निराहार रहनेवाला और तृषायुक्त ऐसे मनुष्यको मिश्री और सहत मिलाकर खीलोंके सत्तू भक्षण करावे । यह तर्पण है ॥ ७५० ॥

अथ दाहनाशकान्योपायाः ।

वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः । नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ ७५१ ॥ मुक्तावलीचन्दनशीतलानां सुगन्धपुष्पाम्बरभूषितानाम् । नितम्बिनीनां सुपयोधराणामालिंगनान्याशु हरन्ति दाहम् ॥ ७५२ ॥ प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः । हितं च भोजयेदन्नं येनाप्नोति सुखं महत् ॥ ७५३ ॥ प्रह्लादं कामकृतहर्षम् ।

खिले हुए कमलोंसे सुशोभित वावडी, जिसमें शीतलजलके फुहारे छूट रहे हों ऐसा मनोहर घर और जिनके देहमें चंदनादिका लेप हो रहा हो ऐसी तरुण स्त्री दाह और दीनताको हरती हैं । मोतियोंकी मालासे अलंकृत और चन्दनादिकसे शीतल की हुई, सुगंधित पुष्पोंसे और वस्त्रोंसे विभूषित और पुष्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पयोधर (कुच) वाली तरुण स्त्रीके आलिंगनसे तत्काल दाह नष्ट हो जाता है। स्त्रीको आलिंगन करनेसे रोगीके कामदेव उत्पन्न होनेपर तत्काल उस स्त्रीको उससे अलग कर लेवे और उस रोगीको हितकारक भोजन करावे जिससे कि—महासुख उत्पन्न हो ॥ ७५१--७५३ ॥

अथ चित्तभ्रमचिकित्सा।

कणोषणोग्रालवणोत्तमानि करञ्जबीजं प्रमदामलानि। पथ्याक्षसिद्धार्थकहिंगुशुण्ठी-युतानि वस्ताम्बुविमिश्रितानि। पिष्ट्वा गुटीयं नयने निधेया प्रचेतनेऽतिप्रथिता-न्वितार्था। चित्तभ्रमाय स्मृतिभूतदोषे शिरो-क्षिरोगभ्रमनाशहेतुः ॥ ७५४ ॥ वस्ताम्बु छागमूत्रम्। कुम्भोद्भवतरोरम्भो गुडविश्व-कणान्वितम्। निहितं नासि नूनं स्याच्चित-भ्रमविनाशनम् ॥ ७५५ ॥ कुम्भोद्भवतरो-रम्भः अगस्तिवृक्षत्वक्कल्करसः। मुरामूर्द्ध-जमेघाह्वमधूकमलयोद्भवैः। मरुत्तरुमधून्मिश्रैः पुरपाणिजपांशुभिः ॥ ७५६ ॥ लोहला-मज्जकैलाभिर्धूपश्चित्तभ्रमापहः। ग्रहदो-षहरः श्रीदसौभाग्यकर उत्तमः ॥ ७५७ ॥ मुरा एकांगी। मूर्द्धजा बालाः। मरुत्तरुः देवदारु। पुरः गुग्गुलुः। पाणिजः नखः। पांशु पर्पटकम्। लोहम् अगुरु। लामज्जकम् उशीरवत्पीततृणविशेषम्, तदलाभ उशीरं ग्राह्यम्। मृद्वीकाऽमरदारुमत्स्यशकलामु-स्तामलक्योऽभृतापथ्यारेवतरामसेनकरजो-राजीफलैः संयुताः। हन्युश्चित्तरुजोऽथ दर्दु-रदलापाठापटोलीपयःपथ्यापर्पटराजवृक्षकटु-काशम्बूकपुष्प्यः श्रृताः ॥ ७५८ ॥ मृद्वीका द्राक्षा। मत्स्यशकला कटुकी। आरेवतः आरग्वधः। रामसेनकः किराततिक्तकः। रजः पर्पटकः। राजीफलं पटोलः। अथ योगा-न्तरमाह दर्दुरदला मण्डूकपर्णी सा च ब्राह्मी, माञ्जिष्ठा शोणकं च। तथापि अत्र ब्राह्मी ग्राह्या यत उक्तं द्रव्यगुणग्रन्थे—"ब्राह्मी मति-प्रदा मेध्या ज्वरहन्त्री रसायनी।" ब्राह्मी वरम्भीति लोके। पयः वालकम्। राजवृक्ष आरग्वधः। शम्बूकपुष्पी शङ्खपुष्पी।

पीपल, मिर्च, वच, सेंधानिमक, करंजके बीज, हलदी, आमले, हरड, बहेडा, सरसों, हींग और सोंठ इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर गोली बनाकर नेत्रोंमें आँजनेसे यह गोली चेतनाको उत्पन्न करती है, इस कारण यह प्रचेतना कही जाती है। इस गोलीसे चित्तका भ्रम, स्मरणका अभाव, भूतबाधा, शिरकी पीडा, नेत्रकी पीडा और भ्रमका नाश होता है। गुड, सोंठ और पीपल इनके चूर्णको अगस्तियाके कल्कके रसमें मिलाकर नास देनेसे चित्तभ्रम सन्निपात नष्ट होता है। कपूरकचरी, मुगंधवाला, नागरमोथा, महुआ, चन्दन, देवदारु, सहत, गूगल और नखद्रव्य इनका चूर्ण तथा अगर, लामज्जक (न मिलनेपर खस) और इलायची इन सब द्रव्योंकी धूप बनाकर देवे तो चित्तभ्रम नष्ट होता है, ग्रहदोष दूर होता है, लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और सौभाग्यकी वृद्धि होती है, यह उत्तम धूप हैं। दाख, देवदारु, कुटकी, नागरमोथा, आमले, हरड, अमलतास, चिरायता, पित्तपापडा और पटोलपात इनका क्वाथ अथवा ब्राह्मी, पाठ, पटोलपत्र, सुगंधवाला, हरड, पित्तपापडा, अमलतास, कुटकी और शंखाहूली इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे चित्तभ्रम सन्निपात नष्ट होता है ॥ ७५४—७५८ ॥

अथ कर्णकसान्निपातचिकित्सा।

प्रलेपस्तमस्तं नयत्यन्तमेकः समुद्रिक्तशोथं च रक्तावशेषः। पक्वे च शस्त्रक्रिया पूयजित्सा व्रणत्वं गते चोचिता तच्चिकित्सा ॥७५९॥ अयमर्थः। अन्तं कर्णिकम्, एकः प्रलेपः अस्तं नाशं नयति। तच्चिकित्सा व्रणचिकि-त्सा। निशाविशालाभयमाणिमन्थदार्वी-गुदीमूलकृतः प्रलेपः। प्रभाकरक्षीरयुतः प्रभावाद्व्यस्तः समस्तोऽप्यथ कर्णिकाघ्नः ॥७६०॥ कुलत्थः कट्फलं शुंठी कारवी च समांशकैः। सुखोष्णैर्लेपनं कार्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ ७६१ ॥ गैरिकं कठिनी शुंठी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कट्फलारग्वधैः समैः। उष्णैः काञ्जिकसम्पिष्टैर्लेपः कर्णकमूलनुत् ॥ ७६२ ॥ शिग्रुराजिकयोः कल्कं कर्णमूले प्रलेपयेत्। कर्णमूलभवः शोथस्तेन लेपेन शाम्यति ॥ ७६३ ॥ अशिशिरजलपरिमृदितं मरिचकणाजीरासिन्धुजं त्वरितम्। नस्यविधिसेवितं ननु कर्णकरुग्नाशकृद्वदितम्। भार्ङ्गीजयापौष्करकण्टकारीकटुत्रिकोग्रावनकुण्डलीभिः। कुलीरशृंगीकटुकारसाभिः कृतः कषायः किल कर्णकघ्नः ॥ ७६४ ॥ भार्ङ्गी भारंगी तदलाभे कण्टकारीमूलं ग्राह्यम्। जया गनिआरी इति लोके। पौष्करं पुष्करमूलम्। उग्रा वचा। कुण्डली गुडूची। कुलीरशृंगी कर्कटशृंगी रसा रास्ना। दशमूलमत्स्यशकलाचपलात्रिफलामहौषधकिरातयुतम्। मरिचं परिक्वथितमाशु बलादपहन्ति कर्णरुजः सकलाः ॥७६५॥ चपला पिप्पली।

जो कर्णक अल्प हो वा अत्यंत सूजनयुक्त हो गया हो, अथवा नहीं पका होय तो उसको नीचे लिखे प्रलेपोंसे नष्ट करे और कर्णक पक गया हो तो शस्त्रक्रियासे चिरवाकर उसकी रादको दूर करे और जो व्रण हो जाय तो व्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये। हलदी, इन्द्रायण, कूठ, सेंधानिमक, देवदारु और हिंगोटकी जड इनको आकके दूधमें पीसकर लेप करनेसे कर्णक (कनवर) नष्ट हो जाता है। इन सब औषधियोंका अथवा थोडी औषधियोंका प्रलेप करनेसे भी कर्णक सन्निपात नष्ट हो जाता है। कुलथी, कायफल, सोंठ और काली जीरी इन सबको समान भाग लेकर जलमें पीसकर मंदोष्ण करके वारंवार कानकी जडमें लेप करे तो कर्णक नष्ट हो जाता है। गेरू, खडिया, सोंठ, कायफल और अमलतास इनको काँजीमें पीसकर गरम करके लेप करे तो कर्णकी मूलकी सूजन दूर हो जाती है। सहिंजना और राई इनको जलमें पीसकर कानकी जडमें लेप करे तो कानकी जडकी सूजन (कनवर) शान्त हो जाती है। मिर्च, पीपल, जीरा और सेंधानिमक इनको गरम जलमें पीसकर तत्काल नस्य देवे तो कर्णककी पीडा शांत होती है। भारंगी, अरणी, पोहकरमूल, कटेरी, सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, नागरमोथा, गिलोय, काकडासिंगी, कुटकी और रास्ना इनका क्वाथ बनाकर पिये तो कर्णककी पीडा शमन हो जाती है। दशमूल, कुटकी, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, चिरायता और मिर्च इनका क्वाथ बनाकर सेवन करे तो बलात्कारसे कर्णककी समस्त पीडा शमन होती है ॥ ७५९--७६५ ॥

अथ कण्ठकुब्जचिकित्सा।

फलत्रिकन्यूषणमुस्तकट्वीकलिंगसिंहाननशर्वरीभिः। क्वाथः कृतः कृन्तति कण्ठकुब्जं कण्ठीरवः कुञ्जरमाशु तद्वत् ॥ ७६६ ॥ सिंहाननो वासकः। शर्वरी हरिद्रा। किरातकटुकाकणाकुटजकण्टकारीशटीकलिङ्गकिलिमाभयाकटुककट्फलाम्भोधरैः। विषामलकपुष्करानलकुलीरशृंगीवृषैर्महौषधसखैरयं जयति कण्ठकुब्जं गणः ॥ ७६७ ॥ शटी कचूरः। कलिङ्गः विभीतकः। किलिमं देवदारुः। कटुकं मरिचम्। विषा अतिविषा। किरातादिभिः किंविशिष्टैर्महौषधसखैः। महौषधस्य सखिभिः। तेन एतैः सहितेन महौषधेनेत्यर्थः। अथ वा उल्वणवातादिप्रवृद्धमध्यक्षीणवातादिहेतुकानां कुम्भीपाकादीनां त्रयोदशानामिव चिकित्सा विधातव्या।

जिस प्रकार सिंह तत्काल हाथीको मार देता है उसी प्रकार हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अडूसा और हलदीका क्वाथ तत्काल कंठकुब्जको नष्ट करता है। चिरायता, कुटकी, पीपल, इन्द्रजौ, कटेरी, कचूर, बहेडा, हरड, देवदारु, मिर्च, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमला, पोहकरमूल, चीता, काकडासिंगी, अडूसा और सोंठ इनका क्वाथ कंठकुब्जको नष्ट करे है। कुम्भीपाक आदि नामवाले जो तेरह सन्निपात हैं और उनके कारण उल्वणवातादि तथा प्रवृद्ध मध्य और हीनवातादिही हैं उनकी चिकित्सा भी इसी प्रकार करनी चाहिये ॥ ७६६ ॥ ७६७ ॥

इति सन्निपातज्वराधिकारः समाप्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथागन्तुकज्वराधिकारः।

तत्रागन्तुकज्वरनिदानम्।

अभिघाताभिषंगाभ्यामभिचाराभिशापतः। आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ ७६८ ॥ अभिघातः शस्त्रमुष्टिलगुडादिभिः हननम्। अभिषंगः कामशोकभयक्रोधभूतादीनामावेशः। अभिचारः मृत्यवाद्युत्पादनम्। अभिशापः ब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धादिकृतः शापः। तम् आगन्तुज्वरम् यथास्वं यथादोषलक्षणं दोषैर्विभावयेद्विजानीयात्।

शस्त्र, मुक्का (घूँसा) और लाठी आदिकी चोटका नाम अभिघात है। काम, शोक, भय, क्रोध और भूतादिकोंके आवेश होनेका नाम आभषंग है। किसी शत्रुकी करी हुई कृत्यादिका उत्पन्न करना, किसी प्रकारकी अपघात जादूसे मूंठ चलानेका नाम अभिचार है। और ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और सिद्ध आदिके शापका नाम अभिशाप है। इनहीं सब कारणोंसे आगन्तुकज्वर उत्पन्न होता है, इस ज्वरको उनहीं उन दोषोंके लक्षणोंके अनुसार कुपित हुए वातादिक दोषोंसे समझ ले ॥ ७६८ ॥

अथागन्तुकज्वरान्यनिदानम्।

ये भूतविषवाय्वग्निक्षतभंगादिसम्भवाः। रागद्वेषभयाद्यैश्च ते स्युरागन्तवो गदाः ॥ ७६९ ॥ भयाद्यैरिति आद्यशब्देन भूतविषवाय्वग्निक्षतभंगादयः संगृह्यन्ते। तेन रागादयो भंगाद्यन्ता हेतवोऽपि आगन्तुसंज्ञाः स्युः कार्यकारणयोरभेदोपचारादेतेनागन्तुजः स्मृत इत्यत्रापि आगन्तुशब्दो हेतुवाची आगन्तुर्जायते दोषैरित्यत्र व्याधिवाची अभिघाताभिषंगाभ्यामित्यादि श्लोके दोषैर्यथास्वं विभावयेदिति वचनेनैवं प्रतीयते अभिघातादीनां विप्रकृष्टकारणत्वं मिथ्याहाराणामिव दोषाणां सन्निकृष्टकारणत्वं तथा सति दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रेत्यादिश्लोके आगन्तुज्वरस्याष्टमत्वविघातो दोषजेष्वेव प्रवेशात्। उच्यते। आगन्तुज्वरस्य दोषा आरम्भका न किन्तु पश्चादनुबन्धिनः। तथा च आगन्तुज्वरस्य संप्राप्तिमाह चरकः—"आगन्तुर्हि व्यथापूर्वो जायते पश्चान्निजैर्दोषैरनुबध्यते।" इति।

जो रोग भूत, विष, वायु, अग्नि, क्षत (घाव) और भंग (हड्डी आदिका टूटना) इत्यादिसे उत्पन्न होते हैं, तथा राग द्वेष और भयसे उत्पन्न होते हैं, उनको आगंतु कहते हैं। कार्य और कारणको अभिन्न मानना तो शास्त्रकारोंकी पद्धति है इस कारण राग आदि जो आगन्तु रोगोंके कारण हैं वे भी आगन्तुक हो जाते हैं, इस प्रकार कहनेसे ज्वर "आगन्तुज" कहा जाता है इस वचनमें 'आगन्तु' शब्द हेतुवाचक है और दोषोंसे आगन्तु होता है, इस वचनमें आगन्तु शब्द व्याधिवाचक है ऐसा जानना। शंका—'अभिघाताभिषंगाभ्याम्' इस श्लोकमें कहा है कि, आगन्तु ज्वरमें उन्हीं उन दोषोंके लक्षण ऊपरसे जानने, तो यह वचन ऊपरसे जाना जाता है कि, अभिघातादि दूरके कारण हैं और दोष मिथ्या आहार विहारकी समान समीपके कारण हैं। ऐसा माननेपर 'दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्र' इस श्लोकमें आगन्तु ज्वर आठवां नहीं हो सक्ता, कारण यह है कि, उस ज्वरका दोषजन्य ज्वरोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है। समाधान—दोष आगन्तु ज्वरको उत्पन्न नहीं करते, किन्तु आगंतु ज्वरके उत्पन्न होनेके पश्चात् उसके सहायक हो जाते हैं, आगन्तु ज्वरकी सम्प्राप्तिके विषे चरक कहता है कि, आगन्तु ज्वर प्रथम व्यथासे उत्पन्न होता है और पीछेसे अपने २ दोषोंसे सम्बन्ध पाता है ॥ ७६९ ॥

अथ कस्मादागन्तोः को दोषो भवतीत्याह।

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः। भूताभिषंगात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ७७० ॥ कामशोकभयात् कामशोकभयजात् आगन्तोः वायुः कुप्यति। क्रोधात्तु क्रोधजात् आगन्तोः पित्तं प्रकुप्यति। भूताभिषंगाद्भूतावेशजात् आगन्तोः त्रयो मला दोषाः कुप्यन्तीत्यर्थः। भूतसामान्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्षणाः भूतस्य भूतलक्षणस्य सामान्यं समानता येषां तानि भूतसामान्यानि लक्षणानि येषां ते भूतसामान्यलक्षणाः मलाः ।

काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुए ज्वरमें वायु कुपित होती है, क्रोधसे उत्पन्न हुए आगंतुज्वरमें पित्त कुपित होता है और भूतके आवेशसे उत्पन्न हुए आगन्तुज्वरमें तीनों दोष भूतकी समान लक्षणोंवाले कुपित होते हैं ॥ ७७० ॥

अथागन्तुज्वरे हेतुविशेषेण लक्षणविशेषः ।

श्यावास्यता विषकृते तथातीसार एव च ।
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ ७७१ ॥

विषकृते स्थावरजंगमविषभक्षणकृते ज्वरे, मुखे श्यावः शुक्लानुविद्धः कृष्णो वर्णः शाकवर्णो वा । अतीसारः स्थावरविषेणैव, तस्य अधोगामित्वात् । तोदः सूचीव्यधनेनेव व्यथा । औषधिगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुस्तथा । कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनात् । हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥७७२॥

कामजे समीहितकान्ताद्यप्राप्तिनिमित्तके ज्वरे । चकाराद्वाग्भटोक्तानि अपि लक्षणानि बोद्धव्यानि । तानि यथा—"कामाद् भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षयः" इति ।

मूर्च्छाङ्गमर्दस्तृण्नेत्रचापल्यं कुचवक्रयोः ।
स्वेदः स्याद्दृदि दाहश्च स्त्रीणां कामज्वरे भवेत् ॥ ७७३ ॥

बालकं शतपत्राणि गन्धसारमुशीरकम् । चोचधान्येयकं मांसीकाथः कामज्वरापहः ॥ ७७४ ॥

सन्ध्यायां संस्तरः कार्यः सुगन्धैः कुसुमैर्भृशम् ।
क्रीडनीयं स्वकान्तेन सह रात्रौ तथा स्त्रिया ।
भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ ७७५ ॥

भयात् भयजे ज्वरे प्रलापः शोकाच्च चकारेण प्रलाप एव अनुकृष्यते । कोपाच्च कोपादपि वेपथुर्भवति । ननु वेपथुः वातस्य धर्मः तत् कथं क्रोधजे ज्वरे वेपथुः । यत उक्तम्—क्रोधोत्थितं पित्तमिति । "एकः प्रकुपितो दोष इतरानपि कोपयेत् ।" इति वचनात्पित्तकोपितवातजन्य एव अत्र वेपथुः । क्रोधाद्वायुरपि भवति । यत उक्तं विदेहेन—"क्रोधशोकौ स्मृतौ वातपित्तरक्तप्रकोपणौ ।"

भूताभिषङ्गाद्वुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् । केचिद्भूताभिषंगोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ॥७७६॥

भूताभिषंगोत्थो विषमज्वरो भवति, कदाचिद्वेगवान् कदाचिच्छान्तवेग इत्यर्थः । अभिचाराभिषापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ ७७७ ॥

तृष्णाचेति चकारेण हारीतानुवादिवाग्भटोक्तं च बोद्धव्यम् । तद्यथा—तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हूयमानस्य तप्यते । पूर्वं मनस्ततो देहस्ततो विस्फोटतृड्भ्रमैः । सदाहमूर्च्छाग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्द्धते ज्वरः ॥७७८॥

स्थावर और जंगम विषको भक्षण करनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुख काला अथवा मुफेदी लिये काला होता है, दस्त आते हैं, भोजनमें अरुचि होती है, तृषा अधिक लगती है, सुई चुभोने सरीखी पीडा होती है और मूर्च्छा (बेहोशी) होती है । इसमें जो दस्त होते हैं वह केवल स्थावर विषसेही होते हैं, क्योंकि वह अधोगामी है ऐसा जानना । औषधिकी गंधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मूर्च्छा, शिरमें पीडा और वमन होती है । कामसे उत्पन्न हुए ज्वरमें चित्तविभ्रंश अर्थात् मनमें व्याकुलता, तन्द्रा, आलस्य, भोजनका न करना, छातीमें वेदना और गात्रमें शोष होता है । अत्यन्त प्रिय इच्छित स्त्री आदि पदार्थोंके न मिलनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको कामज्वर कहते हैं । चकारसे वाग्भटोक्त भी लक्षण जानने जैसे कि; कामसे भ्रम, अरुचि, दाह, लज्जाका नाश, निद्राका नाश, बुद्धिका नाश और धीरजका क्षय होता है । स्त्रियोंके जो कामज्वर उत्पन्न होय तो मूर्च्छा, शरीरका टूटना, तृषा, नेत्रोंमें चपलता, स्तनोंमें चंचलता, मुखमें चंचलता, अधिक पसीनोंका आना और हृदयमें दाह होता है । सुगन्धवाला कमल, चन्दन, खस, दालचीनी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धनियाँ और बालछड इनका क्वाथ कामज्वरको नष्ट करे है । जिस स्त्रीके कामज्वर हो वह स्त्री सन्ध्याके समय अत्यन्त सुगंधित पुष्पोंकी शय्यापर शयन करे और रात्रिको अपने प्राणप्यारेके साथ क्रीडा करे ऐसा किसी ग्रन्थमें कहा है । भय अथवा शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रलाप होता है और कोपसे उत्पन्न हुए ज्वरमें कम्प होता है । शंका—कम्प तो वायुका धर्म है फिर कोपसे उत्पन्न हुए ज्वरमें कम्प कैसे होता है यह बडा सन्देह है ? समाधान—कोपको प्राप्त हुआ एक दोष अन्य दोषोंको भी कुपित करता है इस वचनके अनुसार कोपज्वरमें पित्तसे प्रकोपको प्राप्त हुई वायुसे भी कंप होता है, कोपसे वायु भी होती है क्योंकि विदेह कहता है कि—" क्रोध और शोक यह वात पित्त और रुधिरको कुपित करनेवाले कहे जाते हैं । " भूतके आवेशसे उत्पन्न हुए ज्वरमें उद्वेग, हँसना, रोना और कम्प होता है और कितनेक वैद्य कहते हैं कि—भूतके आवेशसे विषमज्वर होता है, अर्थात् कभी अत्यंत वेगसे और कभी थोडीही वेगसे चढता है । अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मोह और तृषा उत्पन्न होती है । चकारसे हारीतसंहिता और वाग्भटोक्त लक्षणभी जानने । वाग्भट कहते हैं कि-अविचार-संबंधी मंत्रोंसे हवनादिक किया जाय तो उससे-प्रथम सन्तापित होता है, पश्चात् विस्फोटक, तृषा और भ्रमसे देह सन्तापित होता है तथा दाहयुक्त मूर्च्छासे व्याकुल हुए उस रोगीके दिन प्रति दिन ज्वर बढता है ॥ ७७१—७७८ ॥

अथागंतुज्वरचिकित्सा ।

आगन्तुजे ज्वरे नैव नरः कुर्वीत लंघनम् ॥ ७७९ ॥ तथा च वाग्भटः—शुद्धवातक्षयागन्तुजीर्णज्वरिषु लंघनम् । नेष्यत इति शेषः । लंघनं न हितं कामशोकचिन्ताप्रहारजे । भयभूतश्रमक्रोधलंघनैश्च कृते ज्वरे ॥ ७८० ॥ किन्त्वग्नौ दीपिते तत्र दद्यान्मांसरसौदनम् । अभिघातज्वरे युंज्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् ॥ ७८१ ॥ कषायं मधुरं स्निग्धं यथादोषमथापि च । अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यंगेन सर्पिषः । रक्तावसेकैर्मेध्यैश्च तथा मांसरसौदनैः ॥ ७८२ ॥ मेध्यैर्मेधायै हितैः । व्यधबन्धश्रमात्यध्वभंगभ्रंशसमुद्भवान् । ज्वरानुपाचरेत्पूर्वं क्षीरमांसरसौदनैः ॥ ७८३ ॥ व्यधः ताडनं कर्णादिवेधो वा । भंगः छेदभेदादिकः । भ्रंशो वृक्षादितः पतनम् । अध्वश्रान्तेषु वाऽभ्यंगं दिवा निद्रां च कारयेत् । औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रबोधनैः । जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ७८४ ॥ चातुर्जातककर्पूरं कंकोलागुरुकुंकुमम् । लवंगसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ ७८५ ॥ क्रोधजे पित्तजित्कार्यं धार्यं सद्वाक्यमेव च । आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ ७८६ ॥ हर्षणैश्च शमं यान्ति कामक्रोधभयज्वराः ॥ ७८७ ॥ कामैरथ मनोघ्नैश्च पित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः । सद्वाक्यैश्च शमं याति ज्वरः क्रोधसमुत्थितः ॥ ७८८ ॥ कामैः कामविषयैः मनोघ्नैः धिक्कारादिभिर्भयजनकवचनैर्वा । कामात्क्रोधज्वरो नश्येत्क्रोधात्कामज्वरस्तथा । घातिताभ्यामुभाभ्यां च कामक्रोधज्वरक्षयः ॥ ७८९ ॥ घातिताभ्यामुभाभ्यां मनसि निगृहीताभ्यां कामक्रोधाभ्याम् । भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःशान्त्यै च मानसम् ॥ ७९० ॥ ताडनैरित्यस्य स्थाने केचित्पूजनैरिति पठन्ति । सहदेवाया मूलं विधिना कण्ठे निबद्धमपहरति । एकद्वित्रिचतुर्भिर्दिवसैर्भूतज्वरं पुंसाम् ॥ ७९१ ॥ अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहदुष्टिजौ ॥ ७९२ ॥

आगंतु ज्वरमें रोगीको लंघन नहीं कराने चाहिये । वाग्भट भी कहता है कि शुद्ध वातज्वर, क्षयज्वर, आगन्तुज्वर और जीर्णज्वर इनमें लंघन नहीं कराने चाहिये । अन्य वैद्य भी कहते हैं कि—कामसे, शोकसे, चिंतासे, प्रहार (चोट) से, भयसे, भूता-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेशसे, श्रमसे, क्रोधसे और लंघन (उपवास) से उत्पन्न हुए ज्वरमें लंघन कराना उत्तम नहीं है । ऐसे ज्वरोंमें अग्निको दीपन करके मांसरसयुक्त भात भोजन करनेके लिये देवे । अभिघातसे उत्पन्न हुए ज्वरमें उष्णतारहित क्रिया करे और कषाय, मधुर तथा स्निग्ध वस्तुओंका प्रयोग करावे तथा दोषानुसार क्रिया करे । घृतको पीनेसे, घीकी मालिश करनेसे, रुधिरको निकलवानेसे और बुद्धिको हितकारी ऐसे मांसरसयुक्त भातको भक्षण करनेसे अभिघातज्वरका नाश होता है । मारनेसे, बाँधनेसे, अत्यंत परिश्रम करनेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, छेदन भेदनादिसे और वृक्षादिकसे गिरनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रथम मांसरस (सोरुआ) और दूध पीना चाहिये । अत्यंत मार्गके चलनेसे जिसके ज्वर उत्पन्न हुआ हो उसके तेलकी मालिश करे और उसको दिनमें सुलावे । औषधिकी गंधसे और विषसे उत्पन्न हुए ज्वरमें बुद्धिमान् वैद्य विष और पित्तको नष्ट करनेवाले सर्वगंधके क्वाथको पिलावे । तज, तेजपात, बडी इलायची, नागकेशर, कपूर, शीतलचीनी, अगर, केसर और लौंग इन सबके समुदायको सर्वगंध कहते हैं । क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये और महात्माओंके वचनोंको अंगीकार करे । कामसे, क्रोधसे अथवा भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर धीरज बँधानेसे, इष्ट वस्तुके मिलनेसे, वायुको शमन करनेसे और आनन्दको उत्पन्न करनेवाली वार्ताओंके करनेसे शांत होता है । क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर—इष्टविषयोंसे, धिक्कार आदिसे, भयको उत्पन्न करनेवाले वचनोंके कहनेसे और पित्तनाशक उपचारोंसे शांत होता है । क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर उत्तम वचनोंसे भी शांत होता है । कामसे क्रोधज्वरका नाश होता है और क्रोधसे कामज्वरका नाश होता है । काम और क्रोध दोनोंको मनमें रोकनेसे कामज्वर और क्रोधज्वर दोनोंका नाश होता है । भूतबाधासे उत्पन्न हुए ज्वरको भूतविद्यामें कहे अनुसार बंधन, आवेश और ताडनादिसे जीते । 'ताडनैः' इस पदके बदले कोई 'पूजनैः' ऐसा पाठ कहते हैं, अर्थात् पूजनादिसे भूतज्वरको नष्ट करे । मानसिक ज्वरको मनके शान्त करनेसे जीते । विधिपूर्वक सहदेईकी जडको कंठमें बाँधनेसे एक, दो, तीन अथवा चार दिनमें भूतज्वर नष्ट हो जाता है । अभिचारसे और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरको होम आदि क्रियाओंसे जीते और उत्पातसे तथा ग्रहोंके दोषसे उत्पन्न हुए ज्वरको दानसे, स्वस्तिवाचनसे और अतिथिपूजनसे जीते ॥ ७७९–७९२ ॥

इति आगंतुज्वराधिकारः ।

अथ विषमज्वराधिकारः ।

तत्र विषमज्वरस्य निदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह ।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः । धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ७९३ ॥ अयमर्थः ज्वरोत्सृष्टस्य ज्वरेण त्यक्तस्य । सन्निकृष्टहेतुमाह । दोषः अल्पः ज्वरमुक्तः स्वल्पोऽपि । विप्रकृष्टहेतुमाह । अहितम् आहारविहारादि तेन सम्भूतः सम्पूर्णो जातः अन्यतमं धातुं रसरक्तादिकम् प्राप्य दूषयित्वा पुनर्विषमज्वरं करोति । ज्वरोत्सृष्टस्यवेति वाशब्देन इति बोध्यते, प्रथमतो विषमज्वरो भवति । यत उक्तम्—" आरम्भाद्विषमो यस्तु " इति ।

ज्वरमुक्त मनुष्यके अवशेष रहे अल्पदोष भी अहितकारक आहार विहारादिके सेवन करनेसे सम्पूर्ण होकर रस तथा रक्तादि किसी धातुको दूषित करके पश्चात् विषमज्वरको उत्पन्न करे हैं स्वल्प दोष विषमज्वरके समीपके कारण हैं और अहितकारक आहारविहारादि दूरके कारण हैं ऐसा समझना । मूल श्लोकमें 'वा' शब्द जो है उससे ऐसा जानना । कि—आरम्भसे ही विषमज्वर होता है अर्थात् किसी अन्यज्वरके विना ही उत्पन्न हुए प्रथमहीसे विषमज्वर होता है । कहा भी है कि—"आरम्भसे ही जो विषमज्वर उत्पन्न होता है वह मनुष्यको मार देता है । " ॥ ७९३ ॥

अथ दोषः कं धातुं दूषयित्वा विषमज्वरं करोतीत्यपेक्षायामाह ।

सन्ततं रसधातुस्थः सततं रक्तधातुगः । दोषः क्रुद्धो ज्वरं पुंसां सोऽन्येद्युः पिशि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताश्रितः ॥ ७९४ ॥ मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि अस्थिमज्जागतः पुनः । कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमन्तकं रोगसंकरम् ॥ ७९५ ॥ अन्तकमिव मारकत्वात् ।

जब कुपित हुए दोष मनुष्योंके रसधातुमें प्राप्त होते हैं तब संततज्वरको उत्पन्न करे हैं, जब रुधिरमें स्थित होते हैं तब सततज्वरको उत्पन्न करे हैं, जब मांसमें स्थित होते हैं तब अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करे हैं और जब मेदमें स्थित होते हैं तब तृतीयकज्वरको उत्पन्न करे है और जब अस्थि (हड्डी) तथा मज्जामें प्राप्त होते हैं तब घोर, कालकी समान प्राणनाशक, रोगोंके समूहरूप ऐसे चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ७९४ ॥ ७९५ ॥

अथ विषमज्वरसामान्यलक्षणम् ।

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः ॥ ७९६ ॥ यस्त्वनियतात्कालात्स्यादित्यस्य अयमर्थः । यथा वातिको ज्वरः सप्तदिनानि पैत्तिको दशदिनानि श्लैष्मिको द्वादशदिनानि । दोषाणां प्राबल्यैर्वातिकश्चतुर्दशदिनानि पैत्तिको विंशति दिनानि श्लैष्मिकश्चतुर्विंशतिदिनानि स्यात् । तथा विषमज्वरो नियतं कालं व्याप्य न स्यादित्यर्थः शीतोष्णाभ्यां गुणाभ्यां स्यात् । वेगतश्चापि विषमः कदाचिदतिवेगवान् । कदाचिच्छान्तवेगः ।

जो ज्वर अनियमित काल (विना समय) में उत्पन्न होता हो, जो शीत लगकर या उष्णतासे चढे और जिसका वेग भी विषम होय उसको विषमज्वर कहते हैं । जिस प्रकार वातज्वर सात दिनतक, पित्तज्वर दश दिनतक, कफज्वर बारह दिनतक और जो दोषोंकी प्रबलता होय तो वातज्वर चौदह दिनतक, पित्तज्वर बीस दिनतक और कफज्वर चौबीस दिनतक नियमित कालसे रहता है उस प्रकार विषमज्वर नियमित कालसे नहीं रहता है । और इस ज्वरमें सरदी और गरमी भी अनियमित होती है, इस ज्वरका वेगभी विषम होता है अर्थात् किसी समय अत्यंत तेज और कभी शांत होता है ॥ ७९६ ॥

अथ विषमज्वरभेदाः ।

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ७९७

विषमज्वरके सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक ये पाँच भेद हैं ॥ ७९७ ॥

अथ सन्ततज्वरलक्षणम् ।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा । सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते ॥ ७९८ ॥ विकल्पो वातिकादिभेदात् सन्तत्या नैरन्तर्येण अविसर्गी अपरित्यागी । ननु मुक्तानुबन्धित्वं विषमत्वमिति विषमलक्षणम्, तदत्र न घटत इति कथमयं विषमेषु पठ्यते । घटत एवेति न दोषः । यत उक्तं चरकेण—विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसे व्यक्तलक्षणम् । दुर्लभोपशमः कालं दीर्घमेवानुवर्तते ॥ ७९९ ॥ यत्तु खरनादेनोक्तम्—ज्वरः पञ्च तु ये प्रोक्ताः पूर्वं सन्ततकादयः । चत्वारः सन्ततं हित्वा ज्ञेयास्ते विषमज्वराः ॥ ८०० ॥ तच्चिरेण त्यागाभिप्रायेण ।

जो ज्वर सात दिनतक, दश दिनतक अथवा बारह दिनतक निरंतर एकसा चढा रहे छूटे नहीं, उसको संततज्वर कहते हैं। यहाँ सात, दश और बारह दिनका जो विकल्प किया है वह वात पित्त और कफके भेदसे जानना । शंका--उतरकर फिर चढ आवे यह विषमज्वरका लक्षण है सो इस सन्ततज्वरमें नहीं घट सक्ता, अत एव फिर संततज्वरको विषमज्वरोंमें कैसे मानते हो ? समाधान—विषमज्वरके लक्षण संततज्वरमें घटते ही हैं इस कारण कोई दोष नहीं, क्योंकि चरक कहते हैं कि--बारहवें दिन उत्तम रीतिसे मुक्त होकर पश्चात् बहुत समयतक स्थित रहता है और शांत होना बहुत दुर्लभ हो जाता है । " प्रथम संतत आदि जो पाँच ज्वर कहे हैं उनमेंसे संततको छोडकर बाकीके चार विषमज्वर जानने " ऐसा खरनादका मत है । संततज्वर बहुत दिनोंमें मुक्त होता है इस कारण इस अभिप्रायसे यह संततज्वर छोड दिया है ॥७९८--८००॥

अथ सततज्वरलक्षणम् ।

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते ॥८०१॥ द्वौ कालौ अहनि एककालं रात्रौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एककालम् । यतो दोषाणामहोरात्रे प्रत्येकं द्वौ द्वौ अकोपकालौ । यत उक्तं वाग्भटेन—वयोऽहोरात्रिभुक्तानामन्तमध्यादिगाः क्रमात् ।

जो ज्वर एक अहोरात्र (दिनरात) में दो वार आवे उसको सततज्वर कहते हैं, यह ज्वर दो वार आता है, अर्थात् एक बार दिनमें और एक बार रात्रिमें आता है, कारण यह कि एक अहोरात्रमें प्रत्येक दोषके कुपित होनेका समय होता है । वाग्भट इस श्लोकमें कहते हैं कि, दिनके अंतमें वायु मध्यमें पित्त और आदिमें कफ प्रबल होता है, उसी प्रकार रात्रिके अंतमें वायु, मध्यमें पित्त और आदिमें कफ प्रबल होता है ॥ ८०१ ॥

अथान्येद्युष्कज्वरलक्षणम् ।

अन्येद्युर्यस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्तते ॥ ८०२ ॥ एककालं दोषापेक्षया एककालमपि द्वितीयं प्रथमकाले हृद्येव दोषस्थितेः ।

जो ज्वर अहोरात्रमें एक बार आवे उसको अन्येद्युष्क (इकंतारा) कहते हैं । यह ज्वर दोषोंकी अपेक्षासे दिनरातमें एक वार आता है, किन्तु वह अपने बढनेके पहिले समयको त्याग करके अन्यसमयमें आता है ऐसा जानना कारण यह है कि—पहिले समयमें दोषकी स्थिति हृदयमें रहती है ॥ ८०२ ॥

अथ तृतीयज्वरचातुर्थिकज्वरलक्षणम् ।

तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः ॥ ८०३ ॥ तृतीयेऽह्नि इत्यागमनादिनं गृहीत्वा । यत उक्तम्—दिनमेकमतिक्रम्य यो भवेत्स तृतीयकः । दिनद्वयं त्वतिक्रम्य यः स्यात्स हि चतुर्थकः ॥ ८०४ ॥

जो ज्वर तीसरे दिन आता है उसको तृतीयक (तिजारी) और जो चौथे दिन आता है उसको चातुर्थिक (चौथिया) कहते हैं । तीसरे दिन और चौथे दिन आनेवाले ज्वरोंसे जिस दिन ज्वर आता हो उस दिनको भी लगा लेना चाहिये, क्योंकि, बीचमें एक दिनको छोडकर जो ज्वर आता है उसीको तृतीयक कहते हैं और बीचमें दो दिनको छोडकर जो ज्वर आता है उसको चातुर्थिक कहते हैं ॥ ८०३ ॥ ८०४ ॥

अथ सुश्रुतप्रमाणम् ।

कफस्थानविभागेन यथासंख्यं करोति हि । सततान्येद्युस्तृतीयचतुर्थकप्रलेपकान् ॥ ८०५ ॥ अहोरात्रादहोरात्रात्स्थानात्स्थानं प्रपद्यते । दोष आमाशयं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ८०६ ॥ अयमर्थः । आमाशयोरःकण्ठशिरःसन्धयः पञ्च कफस्थानानि एषु तिष्ठन्दोषो यथासंख्यं सततादीन्करोति तत्र आमाशये स्थितो दोषः सततं करोति द्वौ कालौ अहोरात्रे कालद्वये दोषप्रकोपात् । हृदये स्थितो दोष आमाशयमागत्य अन्येद्युष्कं करोति । एककालं नैकदा एकस्मिन्नेव अहोरात्रे दोष आमाशयमागत्य अन्येद्युष्कं करोति । तत्र द्वौ दोषप्रकोपकालौ एकस्मिन्काले हृदये तिष्ठति अपरस्मिन् आमाशय इति । कण्ठे स्थितो दोषोऽहोरात्राद्धृदयमायाति । तृतीये दिने आमाशयमागत्य स्वप्रकोपकाले तृतीयकं ज्वरं करोति एककालं न तु द्वौ कालौ स्वभावात् । एवमेव शिरःस्थितो दोषः अहोरात्रात्कण्ठमायाति । ततः पुनः अहोरात्राद्धृदयमायाति । चतुर्थे दिने आमाशयमागत्य स्वप्रकोपकाले चातुर्थिकं ज्वरं करोति एककालं न तु द्वौ कालौ स्वभावादेव ननु दोषस्यागमनं क्रमेण निजस्थानगमनक्रमात्कथं तृतीयचतुर्थदिवसयोर्ज्वरागमनम् ? उच्यते दोषो हि प्रकोपसमये वेगं परित्यज्य लाघवात्स्वस्थानं तु वेगदिन एव याति । यत आह—दोषः प्रकोपकाले हि वेगवत्त्वेन लाघवात् । वेगवासर एवायं स्वस्थानमधिगच्छति । सन्धिषु स्थितः प्रलेपकं करोति सन्धयश्चामाशयेऽपि सन्ति तेषु स्थितः प्रलेपकं सर्वदा करोति । निवृत्तः पुनरायाति विषमो नियते दिने । स्वभावं कारणं तत्र मन्यन्ते मुनिपुंगवाः ॥ ८०७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस विषयमें सुश्रुत कहते हैं कि—कफके स्थान-विभागके अनुसार दोष अनुक्रमसे सतत, अन्येद्युष्क, तृतीय, चातुर्थिक और प्रलेपक ज्वरको उत्पन्न करे है। जैसे कि, दोष एक एक दिनरातमें एक स्थानसे दूसरे स्थानमें प्राप्त होता है तो अपने अनुक्रमसे आमाशयमें जाकर विषमज्वरको उत्पन्न करे है। यह सुश्रुतका प्रमाण नीचेके अनुसार जानना। आमाशय, हृदय, कंठ, मस्तक और संधि (जोड) ये पाँच कफके स्थान हैं, इनमें स्थित दोष अनुक्रमसे सतत आदि पाँच ज्वरोंको उत्पन्न करे हैं। इनमें आमाशयमें रहनेवाला दोष दो बार आनेवाले सततज्वरको उत्पन्न करे है। क्योंकि एक दिनरातमें दो बार उस दोषका कोप होता है। हृदयमें रहनेवाला दोष आमाशयमें प्राप्त होकर दिनरातमें एक बार आनेवाले अन्येद्युष्क ज्वरको उत्पन्न करे है। यद्यपि एक अहोरात्रमें दोषके प्रकोपका समय दो बार है तथापि एक समयमें दोष हृदयमें रहते हैं उसमें ज्वरको उत्पन्न नहीं कर सक्ते, क्योंकि दूसरे समयमें आमाशयमें ज्वरको उत्पन्न करे है (दोषकी स्थिति आमाशयमें होनेसे ज्वर होता है)। कंठमें स्थित दोष एक दिनरातमें हृदयमें जाते हैं और हृदयमेंसे दूसरे दिनरातमें आमाशयमें जाते हैं और वहाँ जाकर अपने कोपके समयमें एक समयमेंही तृतीय ज्वरको उत्पन्न करते हैं (यद्यपि यह दोष आमाशयमें एक दिनरातक रहते हैं तो भी वे दिनरातके दो समयोंमें ज्वरको उत्पन्न नहीं कर सक्ते एकही समयमें ज्वरको उत्पन्न करते हैं ऐसा उनका स्वभाव है)। इसी प्रकार मस्तकमें रहनेवाले दोष एक दिन रातमें कण्ठमें आते हैं और दूसरे अहोरात्रमें हृदयमें आते हैं, तथा तीसरे अहोरात्रमें आमाशयमें आते हैं और यहां आकर अपने प्रकोपके समय एकही कालमें चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करे हैं (यद्यपि दोष आमाशयमें एक अहोरात्र पर्यन्त रहते हैं तथापि वह अहोरात्रके दो समयमें ज्वरको उत्पन्न नहीं करते एकही समयमें उत्पन्न करे हैं ऐसा उनका स्वभाव है)। शंका—दोषोंको उन उन स्थानोंमेंसे आमाशयमें आते समय जितना विलम्ब होता है, उतना ही विलम्ब उन स्थानोंमें पीछे जानेमें होना चाहिये तो इस रीतिसे तीसरे और चौथे दिन ज्वरकी सम्प्राप्ति होनी कैसे सम्भव हो सक्ती है? समाधान—दोषप्रकोपके समयमें अत्यन्त वेगवान् होनेसे पश्चात् उसी वेगके दिन झटपट अपने स्थानमें चले जाते हैं, कहा है कि—"दोष अपने प्रकोपके समयमें वेगवान् होनेसे वेगके ही दिन वह बहुत शीघ्रतासे पीछे अपने स्थानमें पहुँच जाते हैं।" संधियोंमें रहनेवाले दोष प्रलेपक नामवाले ज्वरको उत्पन्न करे हैं, संधियें आमाशयमें जो हैं इस कारण उनमें स्थित दोष प्रलेपक ज्वरको सर्वदा करते हैं। निवृत्तिको प्राप्त हुआ विषमज्वर पश्चात् नियमित दिनसे आता है, उसमें उन दोषोंका स्वभाव ही कारणरूप है ऐसा महात्मा मुनिजनोंने माना है॥ ८०५–८०७॥

अथ स्वभावस्य कारणत्वे कफस्थानविभागनिरपेक्षत्वाच्चतुर्थकविपर्ययादिज्वरा अपि स्वस्वकाले प्रभवन्तीत्याह।

अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले प्ररोहति। अधिशेते तथा धातून्दोषः काले प्रकुप्यति॥ ८०८॥ स चापि विषमो देहं न कदाचित्प्रमुंचति। ग्लानिगौरवकार्श्येभ्यः स यस्मान्न प्रमुच्यते॥ ८०९॥ वेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते। धात्वन्तरेषु लीनत्वात्सौक्ष्म्यान्नैवोपलभ्यते॥ ८१०॥

दोषोंका स्वभाव ही कारण रूप होनेसे ऊपर कहे हुए कफके स्थानोंके विभागकी अपेक्षा रक्खे विना भी चातुर्थिक विपर्यय आदि अन्य विषमज्वर अपने अपने समयमें प्रकट होते हैं। जिस प्रकार बीज पृथिवीमें पडे रहते हैं और फिर अपने नियत समयके आनेपर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार दोष धातुओंमें रहते हैं और अपने ठीक समयके आनेपर कुपित होते हैं। सुश्रुत भी कहते हैं कि—यह विषम ज्वर कभी भी शरीरसे मुक्त नहीं होता, कारण यह है कि विषमज्वरवाला मनुष्य ग्लानिसे, भारीपनसे और दुर्बलतासे मुक्त नहीं होता, वेग शांत होनेके पश्चात् ज्वर जाता रहा ऐसा जान पडता है, परन्तु जाता नहीं है, अन्य धातुओंमें गुप्त रीतिसे स्थित हो जाता है और अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता है॥ ८०८–८१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ द्विदोषोल्वणतृतीयज्वरलक्षणम्।

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः। वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ८११ ॥ त्रिकग्राही वेदनया त्रिकं गृह्णातीत्यर्थः। वातकफात्मकः पृष्ठाद्व्यथया पृष्ठं व्याप्य भवति इत्यर्थः। "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इति सूत्रेण पंचमी।

कफ और पित्तकी उल्वणतावाला तृतीयक ज्वर प्रथम त्रिक स्थानसे उत्पन्न होकर सर्व शरीरमें व्याप्त हो जाता है। वातकफोल्वणतावाला तृतीयकज्वर प्रथम पीठसे उत्पन्न होकर फिर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है। और वातपित्तोल्वण तृतीयकज्वर प्रथम शिरसे उत्पन्न होकर पश्चात् सम्पूर्ण देहमें विस्तृत हो जाता है, इस प्रकार यह तृतीयकज्वर तीन प्रकारका है ॥ ८११ ॥

अथ कफोल्वणादिचातुर्थिकज्वरलक्षणम्।

चतुर्थको दर्शयति स्वभावं द्विविधं ज्वरः। जंघाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ ८१२ ॥ मध्यकायं तु गृह्णाति पूर्वं यस्तु स पित्तजः। विषमज्वर एवान्यश्चतुर्थकविपर्ययः ॥ ८१३ ॥ श्लैष्मिकः श्लेष्मोल्वणः तथा अनिलसम्भवो वातोल्वणः। सन्ततादीनां त्रिदोषजत्वम्। यत उक्तं चरके-'प्रायशः सन्निपातेन पंच स्युर्विषमज्वराः। प्रायशोग्रहणादेकदोषजा द्विदोषजा अपि भवन्तीति जैयटः। पूर्वं प्रथमं जंघाभ्याम् व्यथया जंघे व्याप्य पश्चात् सकलं शरीरं व्याप्नोति। एवमुल्वणवातजातः शिरसः पूर्वं व्यथया शिरो व्याप्य सकलं शरीरं व्याप्नोतीत्यर्थः।

चातुर्थिकज्वर तीन प्रकारका अपना स्वभाव दिखाता है। कफोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम जंघाओंकी पिण्डलियोंमें पीडा करके पश्चात् सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है। वातोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम मस्तकमें व्याप्त होकर पश्चात् सर्व शरीरमें फैल जाता है और पित्तोल्वण चातुर्थिकज्वर प्रथम शरीरके मध्यभागमें पीडासे व्याप्त होकर सर्व देहमें फैल जाता है। चरकमें कहा है कि-"यह पांचों प्रकारके विषमज्वर विशेष करके सन्निपातसे उत्पन्न होते हैं।" यह उपरोक्त सन्तत आदि ज्वर त्रिदोषसे उत्पन्न होते हैं ऐसा जानना। इस विषयमें जैयट कहता है कि, चरकमें 'विशेष करके' ऐसा जो कहा है उससे यह जाना जाता है कि, संततादि एक दोषसे और दो दोषोंसे भी उत्पन्न होते हैं ॥ ८१२ ॥ ८१३ ॥

अथ चातुर्थिकविपर्ययाद्यन्यविषमज्वरलक्षणम्।

अस्थिमज्जागतो दोषश्चातुर्थिकविपर्ययः। जायते भिषजा ज्ञेयो विषमज्वर एव सः ॥ ८१४ ॥ चातुर्थिकविपर्ययाख्यो ज्वरः सोऽपि विषमज्वर एव वैद्येन ज्ञातव्यः। सः किंधातुस्थ इत्यपेक्षायामाह-अस्थीत्यादि। स मध्ये ज्वरवत्यन्ही आद्यन्ते च विमुंचति ॥ ८१५ ॥ चातुर्थिकविपर्यय इत्युपलक्षणम्। सन्ततादिविपर्ययोऽपि बोद्धव्यः। यथा अहोरात्रे द्वौ कालौ मुंचति शेषं सर्वमहोरात्रं तिष्ठतीति सततविपर्ययः। अहोरात्रे एककालं मुंचति शेषं सर्वमहोरात्रं तिष्ठति। इति अन्येद्युष्कविपर्ययः। मध्ये एकं दिनं ज्वरयति आदावन्ते च मुंचतीति तृतीयकविपर्ययः। एते विषमज्वरोपलक्षकाः अन्ये रात्रिज्वरोपलक्षकाः अन्ये रात्रिज्वरादयोऽपि विषमज्वरा बोद्धव्याः। यथासमौ वातकफौ यस्य क्षीणपित्तस्य देहिनः। रात्रौ प्रायो ज्वरस्तस्य दिवा हीनकफस्य तु ॥ ८१६ ॥ प्रायो बाहुल्येन।

सन्तत आदि पांच विषमज्वरोंसे भिन्न जो चातुर्थिक विपर्यय नामक ज्वर है उसको भी वैद्य विषमज्वरही समझते हैं, यह विषमज्वर अस्थि (हड्डी) तथा मज्जामें रहनेवाले दोषोंसे होता है, जो ज्वर बीचके दो दिनोंमें आवे और आदि तथा अन्तके दिनमें न आवे अर्थात् चौथिये ज्वरसे विपरीत होय तो उसको चातुर्थिकविपर्यय कहते हैं। जिस प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर कहे अनुसार चौथिये ज्वरसे विपरीत चातुर्थिकविपर्यय नामका ज्वर है उसी प्रकार सतत आदि ज्वरोंसे विपरीत भी अन्य ज्वर जानने । जैसे कि, एक दिनरातमें दो समय छोडकर और बाकी सब दिनरातमें रहे उसको सततविपर्यय और एक दिनरातमें एक समय छोडकर बाकी सब दिनरातमें रहे उसको अन्येद्युष्कविपर्यय कहते हैं। यह कहना भी एक उपलक्षणमात्र है इस कारण ऊपरसे रात्रिज्वर-आदि अन्य विषमज्वरोंको भी समझना चाहिये। कहा है कि–"जिस मनुष्यके वात और कफ समान होयँ और पित्त क्षीण होय उसके विशेष करके रात्रिमें ज्वर उत्पन्न होता है और जिस मनुष्यके वात और पित्त समान हों और कफ क्षीण होय उसके विशेष करके दिनमें ज्वर आता है।" ॥ ८१४--८१६ ॥

अथ संततादिज्वरे प्रथमं कस्यचिच्छीतं कस्यचिदाह उत्पद्यत इत्यत्र हेतुमाह।

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम्। तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्तर्दाहं करोति च ॥ ८१७ ॥ शीतं शीतसहितम्। प्रशान्तयोः प्रशान्तवेगयोः।अन्त अभ्यन्तरे। करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च। तस्मिन्प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः ॥ ८१८ ॥ अन्ततः हस्तपादादितः।

त्वचामें रहनेवाले कफ और वायु प्रथम शीतयुक्त ज्वरको उत्पन्न करते हैं और पश्चात् उनका वेग शान्त होनेपर पित्त भीतर दाहको उत्पन्न करता है। तैसेही त्वचामें रहनेवाला पित्त प्रथम अत्यन्त दाहको उत्पन्न करता है और पश्चात् पित्तका वेग शान्त होनेपर कफ और वायु हाथ पाँव आदि भागोंमें शीतको उत्पन्न करते हैं ॥ ८१७ ॥ ८१८ ॥

अथ शीतदाहादिज्वरत्रिदोषता।

द्वावेतौ दाहशीतादी ज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ। दाहपूर्वस्तयोः कष्टः सुखसाध्यतमोऽपरः ॥ ८१९ ॥ संसर्गजौ सान्निपातिकौ। कष्टः कष्टसाध्यः।

शीतपूर्वक और दाहपूर्वक ये दोनों ज्वर त्रिदोषसे अर्थात् सन्निपातसे उत्पन्न होते हैं, इनमें दाहपूर्वक ज्वर कष्टसाध्य है और शीतपूर्वक ज्वर सुखसाध्य है ॥ ८१९ ॥

अथान्यप्रकारको विषमज्वरः।

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते। तेनार्द्धं शीतलं देहमर्द्धमुष्णं प्रजायते॥८२०॥ अन्नरसे विदग्धे आहारजे रसे दुष्टे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते, दुष्टे स्थिते। तेन हेतुना शीतलं कफेन, उष्णं पित्तेन, अर्द्धत्वं चार्द्धनारीश्वराकारेण नरसिंहाकारेण वा। काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः। तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ८२१ ॥ अन्ते हस्तपादादौ। काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम्। शीतत्वं तेन गात्रे स्यादुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ८२२ ॥

आहारसे उत्पन्न हुआ रस दुष्ट होता है तो शरीरमें कफ और पित्त दुष्ट होकर रहते हैं, इस कारण आधा शरीर शीतल और आधा शरीर उष्ण होता है। जिस प्रकार अर्द्धनारीश्वरके शरीरका एक भाग स्त्रीरूप है और दूसरा भाग पुरुषरूप है उसी प्रकार इस ज्वरवाले रोगीका आधा शरीर शीतल रहता है और आधा शरीर गरम रहता है। अथवा जिस प्रकार नृसिंहके स्वरूपके ऊपरके तथा नीचेके दो भागोंमेंसे एक भाग मनुष्याकार है और एक भाग सिंहस्वरूप है तैसे ही इस ज्वररोगीके ऊपरके तथा नीचेके दो भागोंमेंसे एक भाग शीतल होता है और एक भाग गरम होता है। जब दूषित पित्त देहमें स्थित होता है और दूषित कफ जब हाथ पाँव आदिमें रहता है तब शरीर गरम होता है और हाथ पाँव शीतल होते हैं और जब दुष्ट हुआ कफ शरीरमें रहता है और दुष्ट हुआ पित्त हाथ पाँव आदिमें स्थित होता है तब शरीर शीतल होता है आर हाथ पाँव गरम होते हैं ॥ ८२०--८२२ ॥

अथ प्रलेपकविषमज्वरलक्षणम्।

प्रलिप्तनिव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च। मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ८२३ ॥ गौरवेण उपलक्षितः। मन्दज्वर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेपी मन्दवेगस्य सदासम्बन्धोऽस्यास्तीति मन्दज्वरविलेपी । अयं विषमज्वरः । तथा च सुश्रुतः—प्रलेपकाख्यो विषमः प्रायशः क्लेशशोषिणाम् । ज्वराश्च विषमाः सर्वे प्रायः क्लेशाय शोषिणाम् ॥ ७२४ ॥

जो ज्वर सर्वदा मन्द वेगके सम्बन्धवाला हो, जिसमें पसीनोंसे सर्व शरीर लेपित कियासा मालूम हो, तथा भारीपन और शीतयुक्त होय उसको प्रलेपक ज्वर कहते हैं। यद्यपि सम्पूर्ण विषमज्वर विशेष करके शोषयुक्त मनुष्यको अत्यंत दुःख देनेवाले हैं तथापि उनमें प्रलेप नामवाला विषमज्वर तो शोषरोगियोंके प्राणोंका नाश ही करनेवाला है, ऐसा सुश्रुत कहता है, इस कारण प्रलेपकज्वर विषम ज्वरोंमें माना जाता है ॥ ८२३ ॥ ८२४ ॥

अथ विषमज्वरसामान्यचिकित्सा ।

ज्वराश्च विषमाः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः । यथोल्वणस्य दोषस्य तेषु कार्यं चिकित्सितम् ॥ ८२५ ॥ विषमेष्वपि कर्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् । स्निग्धोष्णैरन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ॥ ८२६ ॥ कालिंगकः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी । पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ॥ ८२७ ॥ निम्बः पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ । किराततिक्तममृता चंदनं विश्वभेषजम् ॥ ८२८ ॥ गुडूच्यामलकं मुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः । कषायाः शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधं ज्वरम् ॥ ८२९ ॥ कालिंगकः इन्द्रयवः, वत्सकः कुटजः । चन्दनमत्र रक्तचन्दनम् । कषायाः पञ्च पञ्चविधं सन्ततसतातान्येद्युष्कतृतीयकचतुर्थकरूपम् । महाबलामूलमहौषधाभ्यां क्काथो निहन्याद्विषमज्वरं हि । शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तं विनाशयेद्वित्रिदिनप्रयोगात् ॥ ८३० ॥ मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्काथः । पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमं ज्वरं हन्ति ॥ ८३१ ॥ तिलतैललवणयुक्तः कल्को लशुनस्य सेवितः प्रातः । विषमज्वरमपहरेद्वातव्याधीनशेषांश्च ॥ ८३२ ॥ कालाजाजी तु सगुडा विषमज्वरनाशिनी । मधुना चाऽभया लीढा हन्त्याशु विषमज्वरान् ॥ ८३३ ॥ कालाजाजी तु भँगरैला इति लोके । सा च किंचिद्भृष्टा गुडतुल्या कर्षमिता भक्षणीया । पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः । द्रोणपुष्पीरसो वापि निहन्ति विषमज्वरान् ॥ ८३४ ॥ समगुडमसितं जीरकमीषन्मरिचं च भक्षितं सद्यः । ऐकाहिकं प्रशमयेत्समरेष्विव दानवानिन्द्रः ॥ ८३५ ॥ शुण्ठ्यजाजी गुडं पिष्टं पीतमुष्णेन वारिणा जीर्णमद्येन तक्रेण तीव्रं शीतज्वरं जयेत् ॥ ८३६ ॥

सर्व प्रकारके विषमज्वर सन्निपातसे उत्पन्न होते हैं जो दोष इनमें उल्वण होय प्रथम उसीकी चिकित्सा करनी चाहिये । विषमज्वरमें भी वमन और विरेचनसे शोधन करना चाहिये और स्निग्ध तथा उष्ण अन्न पानोंसे ज्वरको शांत करे । इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी (१) पटोलपात, सारिवा (गौरिया बासाऊ), नागरमोथा, पाढ और कुटकी (२), नीम, पटोलपत्र, त्रिफला, आमला, हरड, बहेडा, दाख, नागरमोथा और इन्द्रजौ (३), चिरायता गिलोय, लालचंदन और सोंठ (४), गिलोय, आमले और नागरमोथा (५), ये आधे आधे श्लोकोंमें कहे हुए पाँचों क्काथ पांचों प्रकारके विषमज्वरों (संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक) को तत्काल शमन करे हैं । कंघीकी जड और सोंठका क्काथ बनाकर सेवन करनेसे शीत, कम्प और दाहयुक्त विषमज्वरको दो तीन दिनमें नष्ट कर देता है । नागरमोथा, आमले, गिलोय, सोंठ और कटेरी इनके क्काथमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे विषमज्वर नष्ट होता है । लहसनके कल्कको तिलके तेल और निमकके साथ मिलाकर प्रातःकाल नित्य सेवन करे तो विषमज्वर और वातसंबंधी सब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोग नष्ट हो जाते हैं। एक तोलाभर मगरायल (कलौंजी) लेकर उसको अग्निमें भूनकर तोलाभर गुड मिलाकर भक्षण करे तो विषमज्वर नष्ट हो जाता है। तुलसीके पत्तोंके रसमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पीनेसे विषमज्वर नष्ट हो जाता हैं। अथवा द्रोणपुष्पी (गूमा) के रसमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पिये तो विषमज्वर दूर होता है। कालाजीरा और गुड समान भाग लेकर उसमें किंचित् काली मिरचोंका चूर्ण मिलाकर भक्षण करे तो तत्काल विषमज्वरको नष्ट करता है, जिस प्रकार इन्द्र संग्राममें दैत्योंका तत्काल नाश करता है। सोंठ, जीरा और गुड इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीनेसे, अथवा जीर्ण मदिराके साथ किंवा तक्र (मट्ठा) के साथ पीनेसे तत्काल शीतज्वर नष्ट होता है ॥ ८२५–८३६ ॥

अथ सन्ततादिज्वरचिकित्सा।

गुडूचीमोदकः।

अमृतायाः शतं चूर्णं वाससा परिशोधितम्। पृथक् षोडश भागाः स्युर्गुडमाक्षिकसर्पिषाम् ॥ ८३७॥ यथाग्नि भक्षयेदेतन्नरो हितमिताशनः। नास्य कश्चिद्भवेद्व्याधिर्न परापलितं न च ॥८३८॥ न ज्वरा विषमा नैव मोहो नानिलरक्तकम्। न च नेत्रगता रोगाः परमेतद्रसायनम् ॥ ८३९ ॥ मेधाकरं त्रिदोषघ्नं प्रयोगादस्य बुद्धिमान्। जीवेद्वर्षशतं साग्रं यथैवादितिजस्तथा ॥ ८४० ॥

सौ (१००) तोले उत्तम गिलोयका कपडेमें छना हुआ चूर्ण लेकर सोलह (१६) तोले गुड, सोलह तोले सहत और सोलह (१६) तोले घी मिलावे, सबको एकत्र करके मोदक बना लेवे। अपनी अग्निका बलाबल विचार कर इसको भक्षण करे, इसपर हितकारी और परिमित भोजन करे, इसको सेवन करनेवाले मनुष्यके कोई रोग भी उत्पन्न नहीं होता, न बुढापा आता है, न बाल सफेद होते हैं। तथा विषमज्वर, मोह, वातरक्त और नेत्ररोग कभी नहीं होते। यह परमोत्तम रसायन है, मेधाजनक और त्रिदोषनाशक है, इसको सदैव प्रयोग करनेसे सौ वर्षसे अधिक देवकी समान जीवित रहता है ॥ ८३७–८४० ॥

अथ विषमज्वरिभोजनम्।

तक्रमांसं पयोमांसं दधिमांसमथापि वा। माषमांसं च भुञ्जानो मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ८४१ ॥ अग्निवेशेनोक्तम्–सुरा समण्डा पानार्थे भोजने चरणायुधाः। तित्तिरा विष्किराः पथ्याः कुक्कुटाः विषमज्वरे ॥ ८४२ ॥ चरणायुधा गृहकुक्कुटाः। कुक्कुटाः वनकुक्कुटाः। विष्किराः वर्तिकालावाविगिरचकोराद्याः।

जो मनुष्य तक्र (छांछ) के साथ मांसको, दूधके साथ मांसको, दहीके साथ मांसको, अथवा उडदोंके साथ मांसको भक्षण करता है, वह विषमज्वरसे मुक्त हो जाता है। अग्निवेश ऋषि कहते हैं कि–विषमज्वरवाले मनुष्यको मांडके साथ मद्य पीनेको देवे और मुरगा, तीतर और समस्त विष्किर जातिके जीवोंका मांस भोजन करनेके लिये देवे, यह पथ्य हित है ॥ ८४१ ॥ ८४२ ॥

अथ सन्ततादिज्वराणां विशेषचिकित्सा।

त्रायन्तीकटुकाऽनन्तासारिवाभिः शृतं जलम्। पटोलाब्दवृषातिक्तासारिवाभिः शृत जलम्। सन्ततारव्ये ज्वरे देयं वातादीनां निवृत्तये ॥ ८४३ ॥ वृषा बृहद्दन्ती एरण्डवत्पत्रविटपा तदलाभे दन्ती च ग्राह्या समानगुणत्वात्। पटोलेन्द्रयवानन्तापथ्यारिष्टाऽमृताजलम्। क्वथितं तज्जलं पीतं ज्वरं सततकं जयेत् ॥ ८४४ ॥ अनन्ता सारिवा। अरिष्टः निम्बः। जलं वालकम्। द्राक्षापटोलनिम्बाब्दशक्राह्वत्रिफलाशृतम्। जलं जन्तुः पिबेच्छीघ्रमन्येद्युर्ज्वरशान्तये॥८४५॥ शक्राह्वः इन्द्रयवः।

संततज्वरमें वायु आदिकी निवृत्तिके लिये त्रायमाण, कुटकी, अनन्तमूल और गौरिया (वासाऊँ) इनका क्वाथ, अथवा पटोलपत्र, नागरमोथा, वृहद्दन्ती (न मिलनेपर इसके बदले दन्ती जमाल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोटेकी जड लेनी), कुटकी और सारिवा इनका क्काथ पीवे । पटोलपत्र, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, हरड, नीम, गिलोय और सुगंधवाला इनका क्काथ पीनेसे सततज्वर नष्ट होता है । दाख, पटोलपत्र, नीमकी छाल, नागरमोथा, इन्द्रजौ और त्रिफला इनका क्काथ बनाकर पीनेसे अन्येद्युष्क (इकंतरा) ज्वर नष्ट होता है, अन्येद्युष्क ज्वरको शांत करनेके लिये यह क्काथ अवश्य पीना चाहिये ॥ ८४३–८४५ ॥

कर्मसाधारणं त्यक्त्वा तृतीयकचतुर्थकौ । भिषजा प्रतिकर्तव्यौ विशेषोक्तचिकित्सितैः ॥ ८४६ ॥ उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूची धान्यनागरम् । अम्भसा क्वथितं पेयं शर्करामधुयोजितम् ॥ ८४७ ॥ ज्वरे तृतीयके पुंसां तृष्णादाहसमन्विते । अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः । बद्धा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ ८४८ ॥ स्थिरातामलकीदारुशिवावृषमहौषधैः । सितामधुयुतः क्वाथश्चतुर्थकहरः परः ॥ ८४९ ॥ स्थिरा शालिपर्णी । तामलकी भूधात्री । शिवा हरीतकी । वृषो वासा । अगस्तिपत्रस्य रसेन नस्यं निहंति चातुथकमुग्रवीर्यम् । शिरीषपुष्पस्य निशाद्वयस्य कल्केन वा तद्धृतसंयुतेन ॥ ॥८५० ॥ तत् नस्यम् ।

तृतीय और चातुर्थिक ज्वरमें प्रथम वैद्यको वमन और विरेचनादि साधारण कर्म करके पश्चात् विशेष चिकित्सा करनी चाहिये । तृषा और दाहयुक्त तृतीयक ज्वरमें खस, लाल चन्दन, नागरमोथा, गिलोय, धनियाँ और सोंठके क्काथमें मिश्री और सहत डालकर पिये । रविवारके दिन चिरचिटेकी जडको सात लाल धागोंमें लपेटकर कमरमें बांधे तो तृतीयक ज्वर नष्ट हो जाता है । शालिपर्णी, भुँई आमला, देवदारु, हरड, अडूसा और सोंठ इनका क्काथ बनाकर उसमें सहत और मिश्री मिलाकर पीनेसे चौथिया ज्वर नष्ट हो जाता है । अगस्तियेके पत्तोंके स्वरसका नास देनेसे, अथवा सिरसके फूल, हलदी और दारुहल्दी इनके कल्कमें घृत मिलाकर नास देनेसे घोर चातुर्थिक ज्वर दूर हो जाता है ॥ ८४६–८५० ॥

ज्वरस्य वेगकालं च चिन्तयञ्ज्वर्यते तु यः । तस्येष्टैरद्भुतैर्वापि विषमैर्नाशयेत्स्मृतिम् ॥ ८५१ ॥ सन्ततं विषमं चापि सततं सुचिरोत्थितम् । ज्वरं सुभोजनैः पथ्यैरिष्टैश्च समुपाचरेत् ॥ ८५२ ॥ सन्ततादिविपर्ययाणां विषमज्वराणां चिकित्सा सन्ततादीनामिव कर्तव्या ।

जो मनुष्य ज्वरके वेगको और ज्वरके आनेसे समयको स्मरण करते ही ज्वरित हो जाता है, उस मनुष्यकी उस स्मृतिको प्रिय पदार्थोंसे, अद्भुत पदार्थोंसे अथवा विषम पदार्थोंसे भुला देवे । बहुत दिनोंके सतत ज्वरमें संतत ज्वरमें और विषमज्वरमें हितकारक भोजन देवे । सतत विपर्यय आदि अन्य ज्वरोंकी चिकित्सा भी संतत आदि विषमज्वरोंकी समान करनी चाहिये ॥ ८५१ ॥ ८५२ ॥

शीताभिभूते पुरुषे कुर्याच्छीतहरीं क्रियाम् । दाहाभिभूते तु विधिं विदध्याद्दाहनाशनम् ॥ ८५३ ॥ आच्छादनैर्बहुतरैर्गुरुभिः कम्बलादिभिः । तूलवत्या महाशीतं शीतादिज्वरिणो हरेत् ॥ ८५४ ॥ तूलवती तु रजाई इति लोके । तं स्तनाभ्यां सुपीनाभ्यां पीवरोरुनितम्बिनी । युवती गाढमालिंगेत्तेन शीतं प्रशाम्यति ॥ ८५५ ॥ कान्तांगसंगसञ्जाते तद्वच्छीते निवारिते । प्रह्लादं चास्य विज्ञाय पृथक्तां कारयेत्स्त्रियम् ॥ ८५६ ॥ ततो दाहे तु सञ्जाते पत्रैरेरण्डसम्भवैः । शीतलैर्धारितैरंगे दाहं तस्यापनोदयेत् ॥८५७॥

यदि रोगीके शीतके कारण पीडा होती होय तो शीतनाशक चिकित्सा करनी चाहिये और जो दाहसे पीडा होती होय तो दाहनाशक चिकित्सा करनी चाहिये, शीतादिसे पीडित ज्वरवाले रोगीको भारी कम्बल आदि आच्छादनोंसे ढके, तथा तोसक लिहाफ, गरम ऊनी वस्त्र और रजाई ओढाकर शीतको दूर करे । पुष्ट जंघाओंवाली और बडे नितम्बवाली, तथा कठोर कुचवाली ऐसी स्त्रीसे आलिंगन करावे तो शीत नष्ट हो जाता है । आलिंगनके पश्चात् शीतके निवारण होनेपर जब रोगीके कामदेव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न हो जाय तब उस स्त्रीको उसके शरीरसे अलग कर देवे। पश्चात् जब दाह उत्पन्न होय तो एरण्डके शीतल पत्ते धारण करनेसे दाह नष्ट हो जाता है ॥ ८५३–८५७ ॥

अथ शीतज्वरे भूतभैरवचूर्णम्।

तालकं शुक्तिकाचूर्णं दत्तं तत्रोभयोरपि। नवमांशं च तुत्थं स्यान्मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ८५८ ॥ तत्तु संशुष्कमुपलैर्वन्यैर्गजपुटे पचेत्। शीतं तच्चूर्णयेच्चूर्णं गुञ्जामात्रं सितायुतम् ॥ ८५९ ॥ प्रभाते भक्षयेत्तेन याति शीतज्वरः क्षयम्। वान्तिर्भवति कस्यापि कस्यचिन्न भवत्यपि ॥ ८६० ॥ एकेन दिवसेनैव शीतज्वरहरं परम्। मध्याह्नसमये पथ्यं शिखरिण्योदनं तथा ॥ ८६१ ॥

हरताल और सीपका चूर्ण नौ ९ भाग और नीलाथोथा १ एक भाग लेवे, सबको एकत्र मिलाकर घीक्वारके रसमें खरल करे, फिर जब यह सूख जाय तब अरने उपलोंके गजपुटमें रखकर पकावे, पकनेके पश्चात् जब स्वयं शीतल हो जाय तब चूर्ण कर लेवे प्रातःकाल सफेद खाँडके साथ एक रत्ती प्रमाण इस चूर्णको भक्षण करे तो शीतज्वर नष्ट हो जाता है। इस रसको भक्षण करनेसे किसी मनुष्यको वमन होती है और किसीको नहीं भी होती है। यह रस एक दिनमें ही शीतज्वरको अवश्य नष्ट करे है। इसके ऊपर मध्याह्नके समय सिखरन भातका पथ्य देवे ॥ ८५८–८६१ ॥

अथ कायस्थादिधूपलेपतैलानि।

कायस्थानाकुलीतिक्तावयस्थापुरचोरकैः। सहदेवावचाकुष्ठैः शीतघ्नैर्धूपलेपनैः ॥८६२॥ एतैरेवौषधैः पिष्टैर्लवणक्षारसंयुतैः। साम्लैर्विपाचितं तैलमभ्यंगाच्छीतनाशनम् ॥८६३

कायस्था हरीतकी। नाकुली रास्नाभेदः नाई इति लोके। वयस्था गुडूची। पुरो गुग्गुलुः। चोरकः भण्डीउर तदलाभे गठिवन। सहदेवा बृहद्बला। क्षारो यवक्षारः। इति कायस्थादिधूपनलेपनतैलानि।

हरड, नाई, कुटकी, गिलोय, गूगल, भटेउर यदि यह न मिलै तो गठिवन लेनी चाहिये, सहदेई वच और कूठ इन सब औषधियोंकी धूप बनाकर देनेसे अथवा इन सबको पीसकर शरीरपै लेप करनेसे शीतका नाश होता है। इन सब औषधियोंको पीसकर लवण, जवाखार और नींबूका रस मिलाकर तेल डालकर पकावे, इस तेलकी मालिश करनेसे शीत नष्ट होता है ॥ ८६२ ॥ ८६३ ॥

अथ दाहचिकित्सा।

एरण्डस्य तु पत्राणि लिप्तभूमौ निधापयेत्। दाहादिज्वारिणो देहे तानि पत्राणि धारयेत् ॥ ८६४ ॥ तेन नश्यति दाहोऽस्य ज्वरश्चैवोपशाम्यति। दाहे शान्ते यदा शैत्यं तच्च युक्त्या निवारयेत् ॥ ८६५ ॥ जघनचक्रचलन्मणिमेखला सरसचन्दनचन्द्रविलेपना। वनलतेव तनुं परिवेष्टयेत्प्रबलदाहनिपीडितमङ्गना ॥८६६॥ चन्द्रः कर्पूरः। तदङ्गसङ्गसञ्जाते शैत्ये दाहे निवारिते। प्रह्लादं चास्य विज्ञाय तां स्त्रीमपनयेत्पुनः ॥ ८६७ ॥

लिपी हुई भूमिपर अंडके पत्तोंको बिछा देवे, पश्चात् दाहज्वरवाले मनुष्यके शरीरपै उन पत्तोंको धारण करे तो दाह शांत हो जाता है और ज्वर नष्ट हो जाता है। दाह शांत होनेके पश्चात् यत्नपूर्वक शीतका निवारण करे। जिसके नितम्बोंपर चलायमान मणियोंकी मेखला अर्थात् रत्नजडित जंजीर पडी हो, तथा जिसका शरीर सरस कपूर केशर चन्दनादिसे चर्चित होय ऐसी स्त्रीको दाहसे पीडित मनुष्यके अंगसे खूब आलिंगन करावे। स्त्रीके आलिंगनसे शीत और दाह नष्ट हो जायगा, जब कामदेव चैतन्य हो जाय तब उस स्त्रीको उसके समीपसे अलग कर लेवे ॥ ८६४–८६७ ॥

अथ षड्गुणतक्रतैलम्।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः। सिद्धं हरेत्षड्गुणतक्रपक्वं तैलं ज्वरं दाहसमन्वितं च ॥ ८६८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सज्जी, सोंठ, कूठ, मूर्वा, लाख, हलदी और मजीठ इनसे छःगुनी छांछमें पकाया हुआ तेल दाह-सहित ज्वरको नष्ट करे है ॥ ८६८ ॥

अथ महाषड्गुणतक्रतैलम् ।

रास्नानागरकुष्ठचन्दननिशायष्ट्याह्वकृष्णाबलालाक्षासैन्धवसारिवामधुरसादेवाह्वरोहीतकैः । सोशीराम्बुधिफेनरोहिषजलैस्तैलं पचेत्षड्गुणे तक्रे तच्च जयेज्ज्वरं दृढतरं दाहादिशीतादिकम् ॥८६९॥ चन्दनमत्र श्वेतम् । मधुरसा मूर्वा । रोहीतकः रोहिणीति लोके रोहिष इति तृणविशेषः । जलं वालम् ।

रायसन, सोंठ, कूठ, चन्दन, हलदी, मुलेठी, पीपल, खिरेंटी, लाख, सेंधानिमक, सारिवा, मूर्वा, देवदारु, बहेडा, खस, समुद्रफेन, सुगंधिततृण और सुगन्धवाला इन सब औषधियोंके साथ छःगुने तक्रमें सिद्ध किया हुआ तेल दाहपूर्वक अथवा शीतपूर्वक घोर ज्वरको नष्ट करे है ॥ ८६९ ॥

अथ पद्मकादितैलम् ।

पद्मकोत्पलकह्लारमृणालबिसपौष्करैः । कुमुदोशीरमञ्जीष्ठापद्मगैरिककट्फलैः ॥ ८७० ॥ सारिवाद्वयलोध्राह्वक्षीरीखर्जूरमस्तकैः । धात्र्याशतावरीयुक्तैः क्वाथे कल्के प्रयोजितः ॥ ८७१ ॥ लाक्षारसपयःशुक्तमस्तुभिः सह काञ्जिकैः । पक्वं तैलमिदं त्वच्यं दाहज्वरहरं परम् ॥ ८७२ ॥

पद्माख, उत्पल नामक कमल, कह्लार जातिका लाल कमल, कमलकी नाल, कमलकंद, पोहकरमूल, कमोदिनी, खस, मजीठ, कमल, गेरू, कायफल, कालीसर, गौरीसर, लोध, दुद्धी, खजूरका मस्तक, आमले और सतावर इनका क्वाथ और कल्क बनावे तथा लाखका रस, दूध, शुक्त (संधानविशेष), दहीका तोंड और काँजी एवं तेल ये सब समान लेवे, सबको मिलाकर यथाविधि तेलको पकावें । यह तेल त्वचा (चमडी) को अत्यंत हितकारी है और दाहसहित ज्वरको हरनेवाला है ॥ ८७०–८७२ ॥

अथ प्रलेपकाचिकित्सा ।

प्रलेपके प्रयुञ्जीत श्लेष्मज्वरहरीं क्रियाम् । माहेश्वरो धूपः । रुद्रजटा गोशृंगं बिडालविष्ठोरगस्य निर्मोकः । मदनफलभूतकेश्यौ वंशत्वग्रुद्रनिर्माल्यम् ॥ ८७३ ॥ घृतयवमयूरपुच्छच्छगलकलोमानि सर्षपाः सवचाः । हिंगुगवास्थिमरीचाः समभागाश्छागमूत्रसंपिष्टाः ॥ ८७४ ॥ धूपनविधिना शमयन्त्येते सर्वाञ्ज्वरान्नियतम् । ग्रहडाकिनीपिशाचप्रेतविकारानयं धूपः ॥ ८७५ ॥ रुद्रजटा जटाधारी । भूतकेशी जटामांसी । रुद्रनिर्माल्यं पुष्पादि । मयूरपुच्छं चन्द्रकम् ।

प्रलेपक ज्वरमें सकल क्रिया कफनाशक करनी चाहिये । माहेश्वरधूप—रुद्रजटा, गायका सींग, बिलावकी विष्ठा, साँपकी कैंचली, मैनफल, भूतकेशी (बालछड), जटामांसी, बाँसकी छाल और रुद्रका निर्माल्य (बेलपत्र), घी, जौ, मोरकी पूँछ, बकरेके रोम, सरसों, वच, हींग, गायकी हड्डी और काली मिर्च इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर धूप देवे तो यह धूप—सर्व प्रकारके ज्वरोंको अवश्य दूर करे है तथा ग्रह, डाकिनी, पिशाच और प्रेतबाधाको भी नष्ट करे है ॥ ८७३–८७५ ॥

अथ देवस्तुतिपूजने ।

सोमं सानुचरं देवं सप्तमातृगणमीश्वरम् । पूजयन्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् । ॥८७६॥ सोमम् उमया सहितम् । सानुचरं नन्द्यादिगणसहितम् । प्रयतः पवित्रः । विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं विभुम् । स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ॥८७७॥ सहस्रमूर्द्धानमिति सहस्रशीर्षेत्यादि वेदाभिहितम्, नामसहस्रेण भारतोक्तेनेत्यर्थः । ज्वरस्यापि देवत्वात्पूजा कार्या । यत आह विदेहः—तीर्थायतनदेवाग्निगुरुवृद्धोपसर्पणैः । श्रद्धया पूजनैश्चापि सहसा शाम्यति ज्वरः ॥ ८७८ ॥ तीर्थमृषिजुष्टं जलम् । आयतनं देवाधिष्ठितं पुरुषोत्तमक्षेत्रं श्रीशैलादि ।

पवित्र होकर पार्वती, नंदी आदि गण और मातृगणसहित श्रीसदाशिवका पूजन करनेसे विषमज्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नष्ट हो जाता है स्थावर और जंगमके स्वामी, सर्वव्यापक और 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि वेदमंत्रोंमें कही हुई विष्णुभगवान्की स्तुति और महाभारतके आनुशासनिक नामक १३ तेरहवें पर्वमें कहे हुए विष्णुसहस्रनामस्तोत्रसे स्तुति करनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं। ज्वर भी देवरूप है, इस कारण ज्वरका पूजन भी करना चाहिये। विदेह कहता है कि-- ऋषियोंसे सेवित किया हुआ तीर्थरूप जल, देवताओंके निवासस्थान, श्रीशैलपर्वतादिक्षेत्र, देवता, अग्नि, गुरु और वृद्धजन इनकी शरण लेनेसे और श्रद्धापूर्वक पूजन करनेसे भी ज्वर शांत होता है ॥ ८७६–८७८ ॥

इति विषमज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथ रसादिधातुगतज्वरलक्षणचिकित्से ।

रसगतज्वरलक्षणम् ।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ । रसस्थे तु ज्वरे लिंगं दैन्यं चास्योपजायते ॥८७९॥ गुरुता गात्राणाम्, हृदयस्थस्य दोषस्य उपचितत्वाद्वमनमिव, दैन्यं क्लीबचित्तता । रसस्थे रसधातुगते ज्वरे । यद्यपि रसैकधातुं प्राप्य सन्ततश्चायं तथाप्यनुक्रमधातुगतकथनार्थ एवात्र निर्देशः ।

शरीरमें भारीपन, हृदयमें रहनेवाले दोषोंके बढनेसे वमन (रद्द) आनेको होवे, ग्लानि, वमन, अरुचि और दीनता ये लक्षण रसगत ज्वरमें होते हैं। यद्यपि रसनामक एक धातुमें रहनेवाला ज्वर प्रथम कहा हुआ संततज्वरही है और इसी प्रकार अन्य धातुओंमें रहनेवाले ज्वर भी विषमज्वरोंमें कहे गये हैं, तथापि उन धातुओंमें रहनेवाले ज्वरोंके लक्षण और चिकित्साको अनुक्रमसे कहनेके लिये इस प्रकरणमें निर्देश करते हैं ॥ ८७९ ॥

अथ रसगतज्वरचिकित्सा ।

रसस्थे तु ज्वरे तस्मिन्कुर्याद्वमनलंघने ८८०॥

जब मनुष्योंके ज्वर रसमें प्राप्त हो जाय तब उनको वमन और लंघन करावे ॥ ८८० ॥

अथ रक्तगतज्वरलक्षणम् ।

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ । प्रलापः पिडिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ८८१ ॥ मोहो व्यग्रचित्तता ।

रुधिरका थूकना, दाहका होना, बेहोशी, वमन, विभ्रम, प्रलाप (वृथा बकवाद), शरीरमें फुंसी आदि निकलें और तृषा (प्यास) अधिक लगे ये लक्षण रुधिरगतज्वरके जानने ॥ ८८१ ॥

अथ रुधिरगतज्वरचिकित्सा ।

सेकः संशमनो लेपो रक्तमोक्षमसृग्गते।८८२।

जब ज्वर रुधिरमें पहुँच जाय तब जलादिसे सेचन, संशमन लेप करे और रक्तमोक्षण (फस्त) करावे ॥ ८८२ ॥

अथ मांसगतज्वरलक्षणम् ।

पिण्डकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपूरीषता । उष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ८८३ ॥ उष्णान्तर्मोहविक्षेपाविति केचित्पठन्ति तत्र उष्मा अन्तः । विक्षेपः हस्तपादादिचालनम् ।

पिंडलियोंमें वेष्टनकी समान पीडाका होना, तृषा, मल और मूत्रका अधिक उतरना, शरीरके भीतर गर्मी, दाह, हाथ पाँवोंको इधर उधर फेंकना और ग्लानि हो, यह मांसगत ज्वरके लक्षण जानने ॥८८३॥

अथ मांसगतज्वरचिकित्सा ।

तीक्ष्णं विरेकं च तथा कुर्यान्मांसगते ज्वरे ॥ ८८४ ॥

मांसगतज्वरमें तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा विरेचन (दस्त) कराने चाहिये ॥ ८८४ ॥

अथ मेदोगतज्वरलक्षणम् ।

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च । दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदस्थे चासहिष्णुता ॥८८५॥ भृशं स्वेदः मेदोमलत्वात् ।

अत्यन्त पसीनेका आना, अधिक तृषाका लगना मूर्च्छा आ जाना, प्रलाप करना, वमनका होना, रोगीके शरीरमें दुर्गन्धका आना, अरुचिका होना, ग्लानिका होना और सहन करनेकी शक्तिका नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहना यह मेदगतज्वरके लक्षण हैं। मेदज्वरमें पसीना इसलिये अधिक आता है कि--पसीना मेदका मल है ॥ ८८५ ॥

अथ मेदोगतज्वरचिकित्सा।

मेदःस्थे मेदसो नाशं विदधीत चिकित्सकः ॥ ८८६ ॥

मेदगतज्वरमें मेदनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८८६ ॥

अथास्थिगतज्वरलक्षणम्।

मेदोस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च। विक्षेपणं च गात्राणां विद्यादस्थिगते ज्वरे ॥ ८८७ ॥

अस्थिगतज्वरमें--हड्डियोंमें भेदनेकीसी पीडा, कंठमें गर्मी, पेटका बोलना, श्वास, दस्त, वमन और अंगोंको इधर उधर पटकना ये लक्षण होते हैं ॥ ८८७ ॥

अथास्थिगतज्वरचिकित्सा।

अस्थिस्थे तु ज्वरे कुर्याद्वातनाशनकं विधिम्। वस्तिकर्मप्रयोक्तव्यमभ्यङ्गोन्मर्दनं तथा८८८

अस्थिगतज्वरमें वातनाशक विधिप्रयोग करने चाहिये तथा वस्तिकर्म, अभ्यंग (मालिश) और मर्दन ये सब करने चाहिये ॥ ८८८ ॥

अथ मज्जागतज्वरलक्षणम्।

तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा। अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे। ॥ ८८९ ॥ असाध्यत्वान्नात्र चिकित्सा।

मज्जागतज्वरमें अंधकारमें प्रवेश करासा प्रतीत हो, हिचकी आवे, खाँसी हो, शीत लगे, वमन हो, भीतर दाह हो, महाश्वास हो और मर्मस्थानोंमें छेदने सरीखी पीडा होती है। यह ज्वर असाध्य है इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ८८९ ॥

अथ शुक्रगतज्वरलक्षणम्।

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे। शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥ ९९० ॥ ननु शुक्रगते मरणमित्युक्तं तच्च शुक्रं सर्वदेहगं, नैवं स्वाश्रयस्थशुक्रगे मरणम्।

शुक्रगतज्वरमें लिंग जड हो जाय और वीर्य अधिकतर बहे, इस ज्वरमें मनुष्य मर जाता है। शंका—ज्वर वीर्यमें पहुँचनेसे मृत्यु होती है और वीर्य सब शरीरमें रहता है इस बातमें हमको बडा भारी सन्देह है, यह क्यों कहा कि ज्वर वीर्यमें जानेपर मृत्यु हो जाती है? ऐसा कैसे हो सक्ता है। समाधान—वीर्य रहनेके जो मुख्य स्थान हैं उन स्थानोंके स्थित वीर्यमें जो ज्वर प्राप्त होय तो मरण होता है ॥८९०॥

इति सप्तधातुज्वराधिकारः समाप्तः।

अथ जीर्णज्वराधिकारः।

यो द्वादशेभ्यो दिवसेभ्य ऊर्द्ध्वं दोष त्रयेभ्यो द्विगुणेभ्य ऊर्द्ध्वम्। नृणां तनौ तिष्ठति मन्दवेगो भिषग्भिरुक्तो ज्वर एष जीर्णः॥८९१॥

जो ज्वर बारह दिनके पश्चात् और तीनों दोषोंकी अवधिके दुगुने दिनोंके उपरान्त मनुष्योंके शरीरमें मंद वेगसे रहता है उसको वैद्य जीर्णज्वर कहते हैं ॥८९१॥

अथ वातबलासकजीर्णज्वरलक्षणम्।

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनः कृच्छ्रेण सिध्यति। स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ ८९२ ॥ वातबलासकी नर ईदृग् भवेत्। शूनः शोथी। श्लेष्मभूयिष्ठो बहुश्लेष्मकः।

जिस मनुष्यके वातबलासक नामवाला जीर्णज्वर होता है वह नित्य मंदज्वरयुक्त, रूखापन, सूजनसहित, जकडे अंगोंवाला और अत्यंत कफयुक्त होता है, यह ज्वर कष्टसाध्य है ॥ ८९२ ॥

अथ जीर्णज्वरसामान्यचिकित्सा।

जीर्णज्वरी नरः कुर्यान्नोपवासं कदाचन। लंघनात्स भवेत्क्षीणो ज्वरस्तु स्याद्बली यतः ॥ ८९३ ॥ पुराणेऽपि ज्वरे दोषा यद्यपथ्यैः पुनस्तथा। लंघयेत्तत्र तत्पश्चात्पूर्वमेवाचरेत्क्रियाम् ॥ ८९४ ॥ तथा पूर्ववत्।

जीर्णज्वरवाले रोगीको कदापि लंघन नहीं कराने चाहिये कारण यह है कि—लंघन (उपवास) करनेसे रोगी क्षीण हो जाता है और ज्वर बलवान् हो जाता है और यदि जीर्णज्वरमें भी कुपथ्य अहित पदार्थ सेवन करनेसे दोष फिर कुपित होगये होयँ तो प्रथम लंघन कराकर पश्चात् पूर्वोक्त ज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८९३ ॥ ८९४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ त्रिकण्टकक्काथः ।

निदिग्धिकानागरकामृतानां क्काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् । जीर्णज्वरारोचककासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ ८९५ ॥ हंत्यूर्द्धजामयं प्रायः सायन्तेनोपयुज्यते ८९६

कटेरी, सोंठ और गिलोय इनके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे जीर्णज्वर, अरुचि, खाँसी, शूल, श्वास, मंदाग्नि, अर्दित (लकवा) और पीनस रोग नष्ट होता है । यह विशेष करके ऊर्द्धज अर्थात् कंठके ज्वरके रोगोंको दूर करे है, इस लिये इसको संध्याके समय सेवन करना चाहिये ॥८९५॥८९६॥

अथ पिप्पल्यादिः ।

पिप्पलीमधुसंयुक्तः क्काथश्छिन्नोद्भवोद्भवः । जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलकृतोऽथ वा ॥ ८९७ ॥ अमृतायाः कषायं तु शीतलीकृतमीरितम् । मधुपादयुतं पीतं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ८९८ ॥ पिप्पलीमधुसंमिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत् । जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् ॥ ८९९ ॥ जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली । कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनुत् । द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद्गुडोऽत्र भिषजां मतः ॥ ९०० ॥ पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी । श्वासकासज्वरहरी पाण्डुप्लीहोदरापहा ॥ ९०१ ॥ आमलं चित्रकं पथ्या पिप्पली सैन्धवं तथा । चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरहरः परः । भेदी रुचिकरः श्लेष्महन्ता दीपनपाचनः ॥ ९०२ ॥

गिलोयके क्काथमें अथवा पंचमूलके क्काथमें पीपलका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे जीर्णज्वर और कफ नष्ट होता है । गिलोयके क्काथको शीतल करके उसमें चौथाई भाग सहत डालकर पीनेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है। गिलोयके स्वरसमें पीपलका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा, खांसी और अरुचि दूर होती है । जीर्णज्वर और मन्दाग्निमें गुडके साथ पीपलका चूर्ण सेवन करे, यह खाँसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदयरोग, पाण्डुरोग और कृमिरोगको नष्ट करे है । यहाँ पीपलके चूर्णसे गुड दुगुना लेना चाहिये । पीपलको सहतमें मिलाकर चाटनेसे मेद, कफ, श्वास, खांसी, ज्वर, पाण्डु, प्लीहा (तिल्ली) और उदरोग नष्ट होता है । आमले, चीता, हरड, पीपल और सेंधानिमक इन सबका चूर्ण करके सेवन करे तो सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं, भेदक (दस्तावर), रुचिकारक, कफनाशक, दीपन और पाचन है ॥ ८९७–९०२ ॥

अथाष्टादशांगक्काथः ।

द्राक्षाऽमृता शटी शृङ्गी मुस्तकं रक्तचन्दनम् । नागरं कटुका पाठा भूनिम्बः सदुरालभः ॥ ९०३ ॥ उशीरं धान्यकं पद्मं वालकं कण्टकारिका । पुष्करं पिचुमन्दश्च दशाष्टाङ्गमिदं स्मृतम् । जीर्णज्वरारुचिश्वासकासश्वयथुनाशनम् ॥ ९०४ ॥

दाख, गिलोय, कचूर, काकडासिंगी, नागरमोथा, लाल चन्दन, सोंठ, कुटकी, पाढ, चिरायता, धमासा, खस, धनियां, कमल, सुगन्धवाला, कटेरी, पोहकरमूल और नीम इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर क्काथ बनाकर सेवन करे तो जीर्णज्वर, अरुचि, श्वास, खांसी और सूजन नष्ट होती है ॥९०३॥९०४॥

अथ वर्द्धमानपिप्पली ।

त्रिवृद्ध्या पञ्चवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याथवापि वा । गव्यक्षीरेण संपिष्टाः पिबेद्दश दिनानि हि ॥ ९०५ ॥ तथैवापनयेदेता एवं विंशतिवासरान् । पिबतां ज्वरशान्तिः स्यात्पाण्डुरोगश्च शाम्यति । कासः श्वासोऽग्निमान्द्यं च कफाधिक्यं च नश्यति ॥ ९०६ ॥ त्र्यादिवृद्धिः यथा कफवृद्धिर्दुग्धवृद्धिर्यथाग्निवृद्धिः ।

नित्य तीन तीन बढाकर अथवा पांच २ बढाकर किंवा सात २ बढाकर पीपलोंको गायके दूधमें पीसकर दश दिनतक पिये, फिर दश दिनतक इसी रीतिसे क्रमक्रमसे कमती करके पिये, इस प्रकार बीस दिनतक पिये तौ इससे ज्वर और पाण्डुरोग शान्त होता है । यह खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि और कफकी अधिकताको नष्ट करे है । कफकी वृद्धि और अग्निकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृद्धिके अनुसार तीन २ नित्य बढावे और जैसे जैसे पीपल बढावे, वैसेही दूधको बढावे । इसको वर्द्धमान पीपल कहते हैं ॥ ९०५ ॥ ९०६ ॥

वातश्लेष्मज्वरोक्ता स्यात्क्रिया वातबलासके । जीर्णज्वरे कफे क्षीणे दाहे तृष्णासमन्विते ॥ ९०७ ॥ पयः पीयूषसदृशं तन्नवे तु विषोपमम् । चन्दनाद्यं हितं तैलं शोषाधिकारकीर्तितम् । तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ९०८ ॥

वातबलासक नामवाले जीर्णज्वरमें, वातकफज्वरमें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये । जीर्णज्वर, कफकी क्षीणता और तृषा दाह आदि ज्वरमें दूधका पीना अमृतकी समान है और जो नवीन ज्वरमें दूध पिया जाय तो विषकी सदृश अपकार करता है । शोषरोगमें जो चन्दनादि तेल आगे कहा है और वातरोगमें जो नारायण तेल कहा है, यह दोनों जीर्णज्वरोंको अवश्य नष्ट करे है ॥ ९०७ ॥ ९०८ ॥

इति जीर्णज्वराधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ दुर्जलजनितज्वरचिकित्सा ।

हरीतक्यादिचूर्णम् ।

हरीतकी निम्बपत्रं नागरं सैन्धवोऽनलः। एषां चूर्णं सदा खादेद्दुर्जलज्वरशान्तये ॥ ९०९ ॥

हरड, नीमके पत्ते, सोंठ, सेंधानिमक और चीता इनका चूर्ण करके नित्य सेवन करे तो दूषित जलके पीनेसे उत्पन्न हुआ ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ९०९ ॥

अथ शुंठीक्वाथः ।

अरुचिमनलमान्द्यं पीनसश्वासकासानुदरमुदकदोषानाशु हन्यादशेषान् । जनयति तनुकान्तिं चित्तनेत्रप्रसादं पलपरिमितशुण्ठीक्षौद्रसिद्धः कषायः ॥ ९१० ॥

सोंठके चार तोले क्वाथमें सहत मिलाकर पीनेसे अरुचि, मन्दाग्नि, पीनस, श्वास, बवासीर, उदरके रोग और जलसंबन्धी सर्व विकार नष्ट होते हैं, शरीरमें कांति उत्पन्न करे है तथा चित्त और नेत्रोंको प्रसन्न करे है ॥ ९१० ॥

अथ दुर्जलजेता रसः ।

विषं भागद्वयं दग्धं कपर्दं पञ्चभागकम् । मरिचं नागरं चैव चूर्णं वस्त्रेण शोधयेत् ॥ ९११ ॥ आर्द्रकस्य रसेनास्य कुर्यान्मुद्गनिभां वटीम् । वारिणा वटिकायुग्मं प्रातः सायं च भक्षयेत् ॥ ९१२ ॥ अयं रसो ज्वरे योज्यः सामे दुर्जलजेऽपि च । अजीर्णाध्मानविष्टम्भशूलेषु श्वासकासयोः ॥ ९१३ ॥

वत्सनाभ विष दो भाग, कौडीकी भस्म पांच (५) भाग, काली मिर्च पांच (५) भाग और सोंठ पांच (५) भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर अदरखके रसमें खरल करके मूँगकी बराबर गोली बना लेवे, इन गोलियोंमेंसे प्रति दिन प्रातःकाल और संध्यासमय जलके साथ सेवन करे । यह रस—आमज्वर, दूषितजलजनित ज्वर, अजीर्ण, अफरा, मलबंध, शूल, श्वास और खाँसीमें अत्यन्त हितकारक है । इस लिये इन रोगोंमें अवश्य सेवन कराना चाहिये ॥ ९११—९१३ ॥

अथ पटोलादिक्वाथः ।

पटोलमुस्ताऽमृतवल्लिवासकं सनागरं धान्यकिराततिक्तकम् । कषायमेषां मधुना पिबेन्नरो निवारयेद्दुर्जलदोषमुल्वणम् ॥ ९१४ ॥

पटोलपत्र, नागरमोथा, गिलोय, अडूसा, सोंठ, धनियाँ और चिरायता इनके क्वाथमें सहत डालकर पिये तो दुष्ट जलके पीनेसे उत्पन्न हुए सब दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ ९१४ ॥

अथ किरातादिचूर्णम् ।

किराततिक्तात्रिवृदम्बुपिप्पलीविडंगविश्वाकटुरोहिणीरजः । निहन्ति लीढं मधुनाऽतिसत्वरं सुदुस्तरं दुर्जलदोषजं ज्वरम् ॥ ९१५ ॥

चिरायता, निसोत, सुगंधवाला, पीपल, वायविडंग, सोंठ और कुटकी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे तो बहुत शीघ्र दुष्ट जलसे उत्पन्न हुए दुस्तर ज्वरको नष्ट करे है ॥ ९१५ ॥

अथ शुण्ठ्यादिकल्कः ।

भोजनाग्रे नरैर्भुक्तं शुण्ठ्यजाज्यभयोत्थितम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्कं तु सेवितं नित्यं नानादेशोद्भवं जलम् ॥ ९१६ ॥

भोजन करनेसे पहिले नित्य सोंठ, जीरा और हरड इनका कल्क सेवन करे तो अनेक देशोंमें जलके पीनेसे उत्पन्न हुए ज्वर शांत हो जाते हैं ॥ ९१६ ॥

अथार्द्रकादिकल्कः ।

सहार्द्रकयवक्षारौ पीत्वा कोष्णेन वारिणा ।
नानादेशसमुद्भूतं वारिदोषमपोहति ॥९१७॥

अदरख और जवाखारका कल्क बनाकर कुछेक गरम जलके साथ पीनेसे अनेक देशोंके जलके पीनेसे उत्पन्न हुए रोग दूर हो जाते हैं ॥ ९१७ ॥

अथ साध्यज्वरलक्षणम् ।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ९१८

जो बलवान् रोगीको अल्प दोषोंसे उत्पन्न हुआ उपद्रव रहित ज्वर हो तो साध्य समझना ॥ ९१८ ॥

अथ ज्वरोपद्रवाः ।

श्वासो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिस्तृष्णातीसारविड्ग्रहाः । हिक्काकासाङ्गदाहाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ९१९ ॥

श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, तृषा, अतीसार, मलबंध, हिचकी, खाँसी और शरीरमें दाह ये दश ज्वरके उपद्रव हैं ॥ ९१९ ॥

अथ ज्वरोपद्रवचिकित्सा ।

सञ्जातोपद्रवो व्याधिस्त्याज्यो न स्याच्चिकित्सकैः । व्याधौ शान्ते प्रणश्यन्ति सद्यः सर्वेऽप्युपद्रवाः ॥ ९२० ॥ अतो व्याधिं जयेद्यत्नात्पूर्वं पश्चादुपद्रवान् । भिषग्यः कुशलः सोऽत्र जयेत्पूर्वमुपद्रवम् ॥ ९२१ ॥ तेष्वपि प्रचुरेषु प्राङ् नाशयेदाशुकारिणम् । मूलव्याधिं जयेत्पूर्वं यत्र यो वा भवेद्बली । अविरोधेन कार्या तदुभयोरपि च क्रिया ॥९२२॥

जिन रोगोंमें उपद्रव हो उन रोगोंकी चिकित्सा करना वैद्य त्याग न देवे, क्योंकि रोगके शांत होनेके पश्चात् सब उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, इस कारण प्रथम यत्नपूर्वक व्याधिको जीते और उसके पश्चात् उपद्रवोंको जीते, किन्तु चतुर वैद्य तो प्रथम उपद्रवोंको ही जीतते हैं और बहुतसे उपद्रवोंमें जो उपद्रव अधिक दुःखदायक हो उसीको प्रथम यत्नोंसे जीतना चाहिये और जो मूलव्याधि बलवान् हो और उपद्रव बलहीन हो तो प्रथम मूल व्याधिहीको जीतना चाहिये । अथवा विरोधरहित अर्थात् जो रोग और उपद्रवोंके परस्पर विरुद्ध नहीं हो, इस प्रकार एक ही समय इन दोनोंकी चिकित्सा करनी उचित है ॥ ९२०–९२२ ॥

अथ ज्वरे श्वासचिकित्सा ।

सिंही व्याघ्री ताम्रमूली पटोली शृङ्गी पद्मा पुष्करं रोहिणी च । शाकं शय्याः शैलमल्ल्याश्च बीजं श्वासं हन्यात्सन्निपातं दशांगः ॥ ९२३ ॥ सिंही [बडी कटैया] व्याघ्री लघुकण्टकारी । ताम्रमूली द्रुरालभा रोहिणी [कुटकी] शैलमल्ली [कोरैआ] ।

कटेरी, कटाई, जवासा, पटोलपत्र, काकडासिंगी, पद्माख, पोहकरमूल, कुटकी, कचूर और इन्द्रजौ इन दश औषधियोंका प्रयोग सन्निपातोद्भव श्वास रोगको नष्ट करे है ॥ ९२३ ॥

अथ द्वात्रिंशत्काथः ।

भार्ङ्गीनिम्बघनाभयाऽमृतलताभूनिम्बवासाविषात्रायन्तीकटुकावचात्रिकटुकश्योनाकशक्रद्रुमैः । रास्नायासपटोलपाटलशटीदार्वीविशालात्रिवृद्बाह्लीपुष्करसिंहिकाद्वयनिशाधान्यक्षदेवद्रुमैः ॥९२४॥ काथोऽयं खलु सन्निपातनिवहान्द्वात्रिंशतां पानतो दुर्द्धर्षान्निजतेजसा विजयते सर्पान्गरुत्मानिव । किञ्च श्वासबलासकासगुदरुग्घृद्रोगहिक्कामरुन्मन्यास्तम्भगलामयार्दितमलाविष्टम्भवर्ध्मानपि ॥ ९२५ ॥ विषा अतिविषा । शक्रद्रुमः बकुल इति लोके । देवद्रुम देवदारुः ।

भारंगी, नीम, नागरमोथा, हरड, गिलोय, चिरायता, अडूसा, अतीस, त्रायमाण, कुटकी, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, सोनापाठा, कुडेकी छाल (किसी मतसे मौलसिरी), रासना, जवासा, पटोलपत्र, पाढल, कचूर, दारुहल्दी, इन्द्रायन, निसोत,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मी, पोहकरमूल, कटेरी, कटाई, हलदी, आमले, बहेडा और देवदारु इन बत्तीस औषधियोंको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पीनेसे जिस प्रकार गरुड अपने पराक्रमसे सर्पोंको परास्त करता है उसी प्रकार यह क्वाथ अपने प्रभावसे घोर सन्निपातोंको जीतता है, तथा श्वास, खाँसी, कफ, गुदाके रोग, बवासीर आदि, छातीकी पीडा, हिचकी, वातविकार, नाडका जकड जाना, गलरोग, अर्दितरोग, मलविष्टम्भ और वर्त्मरोग (बद) को दूर करे है ॥ ९२४॥९२५ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

मधुना कृष्णाकट्फलकर्कटशृंगीभवं चूर्णम् । श्वासामये महोग्रे लीढ्वा लोकः सुखी भवति ॥ ९२६ ॥ वन्योपलाग्नितापितदात्रस्याग्रेण पञ्जरे दाहः । अपहरति श्वासामयमसंशयं भाषितं मुनिभिः ॥ ९२७ ॥

पीपल, कायफल और काकडाशिंगी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे तो अत्यंत उग्र श्वासवाले रोगी सुखी होते हैं । अरने उपलोंकी अग्निमें दरांतको तपाकर उसके अग्र भागका हड्डी पंजरमें दाग देवे तो श्वास रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ९२६ ॥ ९२७ ॥

अथ ज्वरे मूर्च्छाचिकित्सा ।

आर्द्रकस्य रसैर्नस्यं मूर्च्छायामाचरेन्नरः । अञ्जनं च प्रयुञ्जीत मधुसिन्धुशिलोषणैः ॥ ९२८ ॥ शीताम्भसाऽक्षिसेकः सुरभिर्धूपः सुगन्धिपुष्पं च । मृदुतालवृन्तवातः कोमलकदलीदलस्पर्शः ॥ ९२९ ॥

मूर्च्छाको दूर करनेके लिये रोगीको अदरखके रसका नास देवे । अथवा सहत, सेंधानोन, मैनशिल और काली मिरच इनका अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगावे । शीतल जलसे नेत्रोंको सींचे । सुगंधित धूप देवे । सुगंधित पुष्पोंका उपयोग करे । नरम ताडके पंखेकी मन्द पवन करे और कोमल केलेके पत्तोंका स्पर्श करावे ॥ ९२८ ॥ ९२९ ॥

अथ ज्वरेऽरुचिचिकित्सा ।

अरुचौ तु शृंगवेरजरसकैः सोष्णैः ससिन्धुजैः कवलः । सिन्धूत्थमातुलुंगीफलकेशरधारणं वक्त्रे ॥ ९३० ॥

अरुचि होय तो अदरखके रसको गरम करके उसमें सेंधानिमक डालकर उसका कवल बनाकर मुखमें रक्खे, और बिजौरे नींबूकी केसरको सेन्धेनिमकके साथ मुखमें धारण करे ॥ ९३० ॥

अथ ज्वरे वमनचिकित्सा ।

क्काथो गुडूच्याः समधुः सुशीतः पीतः प्रशान्तिं वमनस्य कुर्यात् । विण्मक्षिकाणां मधुनाऽवलीढा सचन्दना शर्करयाऽन्विता वा ॥ ९३१ ॥

गिलोयका क्वाथ बनाकर शीतल करके सहत मिलाकर पिये तो वमन (रद्द) शांत हो जाती है । मक्खियोंकी विष्ठाको और चन्दनको सहतके साथ अथवा मिश्रीके साथ मिलाकर चाटनेसे वमन शांत होती है ॥ ९३१ ॥

अथ ज्वरे तृषाचिकित्सा ।

दन्तशठबीजपूरकदाडिमबदरैः सचुक्रकैर्वदने । लेपो जयति पिपासामथ रजतगुटी मुखान्तःस्था ॥ ९३२ ॥ शीतं पयः क्षौद्रयुतं निपीतमाकण्ठमाश्वेव तदुद्गमेच्च । तर्षं महान्तं शमयेद्धि वक्त्रे धृत्वाऽथ वा क्षौद्रवटाग्रलाजान् ॥ ९३३ ॥

बिजौरा नींबू, जम्भीरी नींबू, अनार, बेर और चूका इनको एकत्र पीसकर मुखमें लगावे तो तृषा शांत हो जाती है । मुखके भीतर रूपेकी गोली रखनेसे तृषा शांत हो जाती है । शीतल दूधमें सहत मिलाकर गले तक पी लेवे, और फिर वमन कर देवे इस प्रकार कई बार करनेसे तृषा शांत होती है । सहत, बडका अग्रभाग और खीलें इनको एकत्र पीसकर मुखमें धारण करनेसे तृषा (प्यास) शांत हो जाती है ॥ ९३२ ॥ ९३३ ॥

अथ ज्वरेऽतीसारचिकित्सा ।

लंघनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः । समुदीर्णदोषनिचयं शमयति तत्पाचयेदपि च ॥ ९३४ ॥ वत्सादनीवत्सकवारिवाहविश्वम्भरानिम्बविषाः सविश्वाः । ज्वरेऽतिसारं त्वरितं जयन्ति विश्वा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृतावत्सकवारिवाहाः ॥ ९३५ ॥ पाठामृतापर्पटमुस्तविश्वाकिराततिक्तेन्द्रयवान्विपाच्य पिबन्हरत्येव हठेन सर्वाञ्ज्वरातिसारानपि दुर्निवारान् ॥ ९३६ ॥

बलवान् ज्वरमें अतीसारवाले मनुष्यको केवल लंघनके सिवाय अन्य कोई औषधि नहीं है, क्योंकि लंघन बढे हुए दोषोंको शमन और पाचन करे है। गिलोय, इन्द्रजौ, नागरमोथा, चिरायता, नीम, अतीस और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे ज्वरातीसार शीघ्रही दूर होता है। सोंठ, गिलोय, इन्द्रजौ और नागरमोथा इनका काथ भी ज्वरमें उत्पन्न हुए अतीसारको नष्ट करे है। पाढ, गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरायता और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पिया जाय तो यह क्वाथ ज्वरमें उत्पन्न हुए दुस्तर अतीसारको भी बलात्कारसे नष्ट कर देता है ॥ ९३४--९३६ ॥

अथ ज्वरे मलबंधचिकित्सा।

विड्ग्रहे वातजित्कर्म कुर्यादत्रानुलोमनम्। मलं प्रवर्त्तयेदाशु तीक्ष्णाभिः फलवर्तिभिः ॥ ९३७ ॥ पथ्यारग्वधतिक्तात्रिवृदामलकैः श्रृतं तोयम्। जीर्णज्वरे विबन्धे दद्याद्वाश्वेव विड्ग्रहः शाम्येत् ॥ ९३८ ॥

ज्वरमें मल रुक गया हो तो वातको अनुलोमन करनेवाली और वातको हरनेवाली क्रिया करनी चाहिये। गुदामें तीक्ष्ण औषधियोंकी बनाई हुई फलवर्ती प्रयोग कराकर तत्काल मलको उतारे। और जो जीर्णज्वरमें मल बंध हुआ होय तो हरड, अमलतास, कुटकी, निसोत और आमला इनका क्वाथ बनाकर सेवन करे इससे तत्काल मलबंध शांत हो जाता है ॥ ९३७ ॥ ९३८ ॥

अथ ज्वरे हिक्काचिकित्सा।

नीरेण सिन्धूत्थरजोऽतिसूक्ष्मं नस्येन नूनं विनिहन्ति हिक्काम्। शुण्ठी हठाद्वा सितया समेता धूपोऽथ वा हिंगुसमुद्भवश्च ॥९३९॥

सेन्धेनिमकका अत्यंत बारीक चूर्ण करके पानीके साथ नास देनेसे हिचकी दूर हो जाती है। वा खाँडके साथ सोंठका नास देनेसे बलात्कारसे हिचकी दूर होती है। अथवा हींगकी धूनी देनेसे हिचकी नष्ट हो जाती है ॥ ९३९ ॥

अथ ज्वरे कासचिकित्सा।

कासे कणा कणामूलं कलिङ्गदुफलं रजः। सविश्वभेषजं लिह्यान्मधुना वा वृषाद्रसम् ॥ ९४० ॥ रजः पर्पटकम्। पुष्करमूलकटुत्रिकशृंगीकट्फलयासककारविकाभिः। मधुलुलिताभिरयं खलु लेहः कासरिपुः कफरोगहरश्च ॥ ९४१ ॥

ज्वरमें खाँसी उत्पन्न हुई होय तो पीपल, पीपलामूल, इन्द्रजौ, पित्तपापडा और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतके साथ चाटे। अथवा अडूसेके रसको सहतके साथ सेवन करे तो खाँसी दूर होती है। पोहकरमूल, त्रिकुटा, सोंठ, पीपल, मिरच, काकडाशिंगी, कायफल, जवासा और कलौंजी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे खाँसी और कफसंबंधी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ९४० ॥ ९४१ ॥

अथ ज्वरे दाहचिकित्सा।

दाहाधिकारे लिखितं दाहे कुर्याच्चिकित्सितम्। परं ज्वरे विरुद्धं यन्नोचितं तच्चिकित्सितम् ॥ ९४२ ॥

ज्वरमें जो दाह उत्पन्न हुई होय तो दाहाधिकारमें कही हुई सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये और उसमें जो चिकित्सा ज्वरके विरुद्ध बढानेवाली होय उसको छोड देवे ॥ ९४२ ॥

अथ सुखसाध्यज्वरलक्षणम्।

सन्तापोऽभ्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम्। बहिर्वेगश्च लिंगानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥९४३॥ तृष्णादीत्यादिशब्देनान्तर्दाहसन्ध्यस्थिव्यथाश्वासा गृह्यन्ते तेषां मार्दवमल्पता बहिर्वगस्य ज्वरस्य इति शेषः। वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात्। प्राकृतः सुखसाध्यस्तु ज्वरः सुरभिसम्भवः ॥ ९४४ ॥ सुरभिर्वसन्तः।

ऊपर अधिक संताप हो और तृषा, अंतर्दाह, संधि (जोड) और अस्थि (हड्डी) योंमें पीडा, एवं श्वास इनकी अल्पता हो, ये बहिर्वेग ज्वरके लक्षण हैं और वे सुखसाध्य हैं। वर्षाऋतुमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वायुसे शरदृतुमें पित्तसे और वसन्तऋतुमें जो कफसे ज्वर आता है उसको प्राकृत (ऋतुके स्वभावके अनुसार उत्पन्न हुआ) जानना, इनमें वसन्तऋतुमें उत्पन्न हुआ प्राकृत ज्वर सुखसाध्य है ॥९४३॥९४४॥

अथ कष्टसाध्यज्वरलक्षणम् ।

वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ९४५ ॥ अन्यः प्राकृतादन्यः वैकृतः ।

प्राकृतसे विपरीत वैकृत ज्वर कष्टसाध्य है और वायुसे उत्पन्न हुआ प्राकृतज्वर भी (अन्तर्दाह तृषाकी अधिकता, प्रलाप, श्वास, भ्रम, संधि और हड्डियोंमें शूल, पसीनेका अभाव, दोष और मलका अवरोध, इन अन्तर्वेगी ज्वरके लक्षणोंसे युक्त) कष्टसाध्य है ॥ ९४५ ॥

अथ वर्षादौ दोषप्रधानता ।

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् । कुर्यात्पित्तं च शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ९४६ ॥ तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् । कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ९४७ ॥ तत्प्रकृत्या तस्य पित्तस्य प्रकृत्या स्वभावेन । यत उक्तम्—" कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहु । " विसर्गाच्च शरदो विसर्गकालत्वाच्च । यत उक्तम्—वर्षाशरद्धेमन्ता विसर्गकालास्तत्र उपचितबलाः प्राणिनो भवन्ति सोमस्य बलवत्त्वादिति । तत्र शरदि पित्तज्वरे अनशनाद्भयं न वसन्ते कफज्वरेऽपि कफप्रकृत्या लंघनाद्भयं न भवति । किन्तु वसन्तस्यादानकालत्वान्निःशंकं न कर्तव्यम् । यत उक्तम्—शिशिरवसन्तग्रीष्मास्त्वादानकालास्तत्रापचितबलाः प्राणिनो भवन्ति सूर्यस्य बलवत्त्वादिति । एतेनेदमुक्तम् । वर्षासु वायुः प्रधानम् । पित्तश्लेष्माणावप्रधानौ । शरदि पित्तं प्रधानम् कफोऽप्रधानः । वसन्ते श्लेष्मा प्रधानो वातपित्ते अप्रधाने । तत्र प्रधानस्य माधान्येन चिकित्सा कर्त्तव्या । तथा च उक्तम्—संसर्गे यो गरीयान्स्यादुपक्रम्य स वै भवेत् । शेषदोषाविरोधेन सन्निपाते तथैव च ॥ ९४८ ॥ इति । संसर्गे दोषद्वयसंसर्गे । गरीयान्प्रधानः । अन्तर्दाहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः । सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चो विनिग्रहः । अन्तर्वेगस्य लिंगानि कष्टसाध्यत्वमेव च ॥ ९४९ ॥ वर्चो विनिग्रहः पुरीषाऽप्रवृत्तिः ।

वर्षाऋतुमें वायु प्रधान है और पित्त तथा कफ अप्रधान हैं, इस कारण वर्षाऋतुमें दुष्ट हुआ पवन पित्त और कफकी सहायतासे ज्वरको उत्पन्न करता है, शरदृतुमें पित्त प्रधान है और कफ अप्रधान है, इस कारण शरदृतुमें पित्त दुष्ट होकर कफकी सहायतासे पित्तज्वरको उत्पन्न करे है । वसन्तऋतुमें कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त अप्रधान हैं इस कारण वसन्तऋतुमें कफ दुष्ट होकर वात और पित्तके साथ मिलकर कफज्वरको उत्पन्न करे है । पित्तके स्वभाव होनेसे और शरदृतु विसर्गकालके होनेसे शरदृतुमें उत्पन्न हुए ज्वरमें लंघनसे कुछ भय नहीं है । कफ और पित्त ये द्रवधातु हैं, इस कारण ये बहुत लंघनोंको सह सक्ते हैं ऐसा कहा है। शरदृतु विसर्गकाल है इसके विषयमें प्राचीन ग्रन्थकार भी कहते हैं कि—वर्षा, शरद् और हेमन्त ये तीन ऋतु विसर्गका काल हैं, इस कारण इनमें चन्द्रमाके बलवान् होनेसे सर्व प्राणी अधिक बलवान् होते हैं । यद्यपि वसन्तऋतुमें उत्पन्न हुए कफज्वरमें भी कफका स्वभाव होनेसे लंघनसे कुछ भय नहीं है, तथापि वसन्तऋतु आदानकाल होनेसे उसमें निःशंकपनेसे लंघन नहीं कराने चाहिये । कहा भी है कि—" शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ये तीन ऋतु आदानके काल हैं इसलिये इनमें सूर्यके बलवान् होनेसे सर्व प्राणी हीनबलवाले होते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि—वर्षाऋतुमें वायु प्रधान है, पित्त और कफ अप्रधान हैं, शरदृतुमें पित्त प्रधान है और कफ अप्रधान है और वसन्तऋतुमें कफ प्रधान है और वायु तथा पित्त अप्रधान हैं । " प्राकृत प्रधान दोषकी चिकित्सा प्रधानतासे करे, क्योंकि ऐसा करना चाहिये कि जो अप्रधानके लिये निषिद्ध न होय । वैकृतज्वरमें भी प्रधान दोषकी चिकित्सा प्रधानतासे करनी चाहिये । कहा भी है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि—" दोषोंके संसर्गमें और तिन दोषोंके संसर्गरूप सन्निपातमें जो दोष प्रधान होय उसकी चिकित्सा करे, और इस बातपर पूर्ण ध्यान रक्खे कि, अप्रधान दोषोंके विरुद्ध नहीं होवे। " ॥ ९४६–९४९ ॥

अथासाध्यज्वरलक्षणम्।

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दीर्घरात्रिकः। असाध्यो बलवान्यश्च केशसीमन्तकृज्वरः ॥ ९५० ॥ दीर्घरात्रिकः बहुरात्रानुबन्धी, केशसीमन्तकृत् प्रभावात्केशेषु सीमन्तं यः करोति।

क्षीण मनुष्य और सूजनवाले मनुष्यके उत्पन्न हुआ ज्वर, गंभीर ज्वर, बहुत कालसे आनेवाला ज्वर, बलवान् ज्वर और जो ज्वर अपने प्रभावसे बालोंमें मांगसी काढ़ देवे ऐसा ज्वर असाध्य है ॥ ९५० ॥

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया। आनद्धत्वेन चात्यर्थं कासश्वासोद्गमेन च ॥ ९५१ ॥ आनद्धत्वेन विबद्धमलत्वेन।

अन्तर्दाह, तृषा, मलकी विबन्धता (न उतरना), खांसी और श्वासकी अधिकता, जिसमें ये लक्षण होयँ उसको गम्भीर ज्वर जानना ॥ ९५१ ॥

अथ सामान्यज्वरे क्रमेण कर्णमूलोत्पन्नशोथसाध्यासाध्यता।

ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः। क्रमादसाध्यः खलु कृच्छ्रसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ९५२ ॥

ज्वर आनेसे पहिले जो कानकी जडमें सूजन उत्पन्न होय तो उसको असाध्य जानना। ज्वरके मध्यमें जो कानकी जडमें सूजन उत्पन्न होय तो उसको कष्टसाध्य जानना और जो ज्वरके अन्तमें कानकी जडमें सूजन उत्पन्न होय तो उसको सुखसाध्य जानना ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ ९५२ ॥

अथारिष्टम्।

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते। तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टमप्यभिधीयते ९५३ ॥ हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः। ज्वरः प्राणान्तकृच्चश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ९५४ ॥ शीघ्रमिन्द्रियनाशन उत्पन्नमात्र एव चिकित्स्यमानोऽपि इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां शक्तिं यो नाशयति। अन्यच्च अरिष्टमाह—विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा। शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ९५५ ॥ विसंज्ञः विगतज्ञानः। ताम्यते नष्टहर्षः। शेते निपतितो वा अत्रापि वाशब्द एवार्थः। निपतित एव तिष्ठति न च उत्थातुं समर्थः। तथा सन् शेते वा। शीतार्दितः बहिः। अन्तरुष्णः अन्तर्दाहवान्। अन्यच्च—यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान्। वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ ९५६ ॥ हृष्टरोमा रोमांचवान्। हृदि संघातशूलवान्सान्निपातिकशूलवान्। वक्त्रेण चैव उच्छ्वसिति न तु नासिकया। अन्यच्च—हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम्। सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ ९५७ ॥ क्षपयति समापयतीत्यर्थः। अन्यच्च—हतप्रभेन्द्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम्। गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ९५८ ॥ हतप्रभेन्द्रियम्, हता प्रभा दीप्तिर्येषाम् अथ वा हता प्रभा प्रतिभा विषयग्रहणशक्तिर्येषां तथाविधानि इन्द्रियाणि यस्य तं हतप्रभेन्द्रियम्। क्षामं क्षीणम्। गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं गम्भीरः उक्तलक्षणकः तीक्ष्णवेगः अतिदुःसहवेगः ताभ्यामार्तं दुःखितम्। अन्यच्च—मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे। शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥ ९५९ ॥ व्याख्यातोऽयं श्लोकः।

जिन लक्षणोंसे रोगीका मरण जाना जाय उन लक्षणोंको अरिष्ट अथवा रिष्ट कहते हैं। जो ज्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुत बलवान् कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो, और बहुतसे लक्षणोंसे युक्त होय, और जिसके उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनेपर भी नेत्रादि इन्द्रियोंकी शक्तिका नाश हो गया हो, उसको शीघ्र प्राणनाशक जानना। जो मनुष्य ज्ञानशून्य बेहोश हो गया हो, हर्षसे बिलकुल रहित हो गया हो, निरंतर पडाही रहा करे, कभी उठा ही नहीं जाय, अथवा असमर्थ होकर नित्य सोया ही करे, ऊपरसे शीतसे पीडित हो और भीतर दाहसे व्याकुल हो, वह मनुष्य ज्वरसे मृत्युको प्राप्त होता है। जिस मनुष्यके रोमांच हो आते हों, नेत्र लाल हो गये हों, हृदयमें सन्निपात सम्बंधी शूलकी पीडा होती हो और नाकसे श्वास नहीं ले सके, मुखसे ही श्वास लेता हो, उस मनुष्यको ज्वर मार देता है। जो हिचकी, श्वास और तृषासे पीडित होय, मूढ हो गया हो, नेत्र फूटकर निकलेसे हों, निरंतर ऊँचा श्वास लिया करे और क्षीण हो गया हो, उस मनुष्यको ज्वर मार देता है। जिसकी कांति नष्ट हो गई हो, जिसकी इन्द्रियोंकी शक्ति अपने अपने विषयको ग्रहण करनेकी नष्ट हो गई हो, जो क्षीण हो गया हो, जो गम्भीर ज्वरसे पीडित हो, जो अत्यंत तीव्र वेगवाले ज्वरसे पीडित होय और जो अशचिसे पीडित होय, उस ज्वरवाले रोगीको वैद्य छोड देवे। जब ज्वर वीर्यके स्थानमें पहुँच जाता है तब लिंगमें शिथिलता उत्पन्न होती है और वीर्य अधिकतर निकलता है, ऐसा शुक्रगत ज्वर मनुष्यको मार देता है ॥ ९५३-९५९ ॥

अथ विषमज्वराऽरिष्टम् ।

आरंभाद्विषमो यस्य यस्य वा दीर्घरात्रिकः ।
क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गम्भीरो यस्य हन्ति तम् ॥ ९६० ॥ यस्य आरम्भाद्विषमः प्रथममेव विषमः न तु ज्वरोत्सृष्टस्य । यस्य दीर्घरात्रिकः यस्य क्षीणस्य अतिरूक्षस्य च गम्भीरो भवति तं विषमो दीर्घरात्रिको गम्भीरश्च हन्तीत्यर्थः । इति ज्वराधिकारः ।

प्रथम अन्य प्रकारके सामान्य ज्वर आये विनाही जिसको विषम ज्वर उत्पन्न हुआ हो, अथवा जिसको बहुत कालसे ज्वर आता हो अथवा क्षीण हुए और अत्यंत रूखे मनुष्योंको गम्भीर ज्वर उत्पन्न हुआ होय तो उनको वही ज्वर मार देता है ॥ ९६० ॥

इति ज्वराधिकारः सम्पूर्णः ।

अथातिसाराधिकारः ।

अतीसारनिदानम् ।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः । शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः ॥ २ ॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः । नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥ गुरुमात्रया स्वभावेन संस्कारेण च । अतिशब्दः स्थूलान्तैः सह सम्बद्ध्यते । स्थूलम् असम्यक् पिष्टं गोधूमादि । विरुद्धं संयुक्तं क्षीरमत्स्यादि । अध्यशनम् । " अजीर्णे भुञ्जते यत्तु तदध्यशनमुच्यते । " अजीर्णम् आमं विदग्धं च ' बहुस्तोकमकाले च भुक्तं यद्विषमं हि तत् । ' भोजनैरिति गुर्वादिभिर्विषान्तैः सर्वैः सह सम्बध्यते । स्नेहाद्यैः स्नेहपानस्वेदनवमनविरेचनानुवासननिरूहान्तैः अतियुक्तैः वारंवारं प्रयुक्तैर्मिथ्यायुक्तैः अविधिप्रयुक्तैश्च तैः । विषैः विषाण्यत्र स्थावराणि तेषामधोगत्वात् । शोकः बन्ध्वादिवियोगजनितमनःपीडा । सात्म्यर्तुपर्ययैः सात्म्यविपरीतैः असात्म्यैः । तथा यस्मिन् ऋतौ यदुचितं तद्विपरीतैः । जलाभिरमणैः जलक्रीडादिभिः । वेगविघातैः मूत्रपुरीषादिहठधारणैः । कृमिदोषतः पक्वाशयस्य दुष्टेः । एतानि यथासम्भवं वातादीनां दुष्टेः कारणानि बोद्धव्यानि । ननु एवं सति स्वहेतुदुष्टेन वातादिना अतिसारो भवत्येव तावन्मात्रं वाच्यं किमर्थं गुर्वाद्यभिधानम् ? उच्यते ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुर्वादिहेतुदूषिता एव वातादयो बाहुल्येन अतिसारं जनयन्ति न तु लंघनभुक्तजीर्णतादिलघ्वन्नक्रोधतृषाक्षुधाभिहननदध्यारनालव्यायामवर्षाशरद्वसन्तादिभिः कुपिताः। अतो गुर्वादीनि उच्यन्ते एवमन्यत्रापि बोद्धव्यम्।

गुरु (भारी) भोजन करनेसे, अत्यंत स्निग्ध, अत्यंत रूखे, अत्यंत गरम, अत्यंत पतले, अत्यंत स्थूल, अत्यंत शीतल और विरुद्ध भोजन करनेसे तथा अजीर्णमें भोजन करनेसे, विषम भोजन करनेसे, स्नेहन आदि क्रियाओंको वारंवार प्रयोग करनेसे अथवा स्नेहन आदि क्रियाओंको विधिरहित सेवन करनेसे, विषसे, भयसे, शोकसे, दुष्ट जलसे, मदिराको अत्यंत पीनेसे, प्रकृतिविरुद्ध आहारादिके करनेसे, ऋतुविहारादि आहारके करनेसे, जलमें क्रीडा करनेसे, मूत्र और मलके वेगको बलात्कारसे रोकनेसे और पक्वाशयकी दुष्ट हुई कृमियोंसे मनुष्योंके अतीसार रोग उत्पन्न होता है। व्याख्या—जो भोजन मात्रसे वा स्वभावसे अथवा संस्कारसे भारीपन युक्त होय उसको गुरु भोजन कहते हैं। अच्छे प्रकारसे नहीं पिसे हुए जो गेहूँ आदि धान्य होंय उनको अति स्थूल कहते हैं। दूधके साथ मछली इत्यादि संयुक्तपदार्थोंको विरुद्ध भोजन कहते हैं। भोजन किया हुआ पेटमें जाकर कच्चा रहे अथवा जो अच्छे प्रकारसे नहीं पचे उसको अजीर्ण कहते हैं। अधिक थोडा अथवा विना समयके जो भोजन किया जाय उसको विषम भोजन कहते हैं। स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन, क्वाथकी पिचकारी और तेल आदिकी पिचकारी इनको स्नेहन आदि क्रिया जाननी। यद्यपि विष स्थावर और जंगम दो प्रकारका है, तथापि यहाँ विष कहनेसे स्थावर विषही समझना चाहिये, क्योंकि नीचेको जानेका स्वभाव स्थावर विषकाही है। बंधु आदिके वियोगसे उत्पन्न हुई मनकी पीडाको शोक समझना। भारी भोजन आदि जो कहे यह सम्पूर्ण कारण यथासम्भव वातादिक दोषोंसे समझने चाहिये। शंका—यह बडे सन्देहकी बात है कि—अपने हेतुओंकरके दूषित वातादिकोंसे तो अतीसार उत्पन्न होताही है, फिर इस प्रकार नहीं कहकर भारी भोजन आदि कारण क्यों कहे? समाधान—भारी भोजन आदि कारणोंसे दूषित वातादिक ही प्रायः अतीसारको उत्पन्न करते हैं, परंतु लंघन, भोजनका परिपाक होना आदिक, लघु अन्न, क्रोध, तृषा, भूँखका रोकना, दही, काँजी, व्यायाम (कसरत), वर्षाऋतु, शरदृतु और वसन्तऋतु इत्यादिकोंसे कुपित वातादिक अतीसारको उत्पन्न नहीं करते हैं, इसी कारण भारी भोजन आदि कहे हैं। ऐसाही और स्थानोंमें भी समझना चाहिये ॥ १—३ ॥

अथातीसारपूर्वरूपम्।

हृन्नाभिपार्श्वोदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः। विट्संग आध्मानमथाऽविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥४॥ विट्सङ्गः पुरीषाप्रवृत्तिः। अविपाको भुक्तस्य। पुरःसराणि एतानि लक्षणानि पूर्वभावीनि।

हृदय, नाभि, पसली, पेट और कोख इनमें तोडने सरीखी पीडा हो, अंगोंमें ग्लानि, वायुका अवरोध, मलका रुकना, अफरा और किये हुए भोजनका नहीं पचना ये सब लक्षण अतीसार होनेसे कुछ पहिले होते हैं ॥ ४ ॥

अथातीसारसम्प्राप्तिः।

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धो वर्चोमिश्रो वायुनाऽधः प्रणुन्नः। सरत्यतीवाऽतिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्तिं ॥ ५ ॥ अपां धातुः अत्र समासाकरणाद्बहुत्वेन च रसजलमूत्रस्वेदमेदःकफपित्तरक्तादयो द्रवधातवो गृह्यन्ते प्रवृद्धः अग्निं संशम्य शमयित्वा वर्चोमिश्रः पुरीषयुक्तः वायुना अधः प्रणुन्नः अधः प्रेरितः। अथ सामान्यं रूपमाह—अतिसरति नदीवत् अतीसारं तमाहुर्व्याधिं घोरमिति। यो रसादिद्रवधातुः अतीव सरतीति प्रकृतिमतिक्रम्य गुदाऽध्वना सरति तं व्याधिमतीसारमाहुः। किंविधम्। घोरम्। " घोरं भीमं भयानकम् " इत्यमरः। अस्य संख्यामाह—षड्विधं तं वदन्तीति। षड्विधत्वं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवृणोति—एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥ ६ ॥

रस, जल, मूत्र, स्वेद (पसीना), मेद, कफ, पित्त और रुधिर इत्यादि द्रवधातु बढी हुई अग्निको शमन करके विष्ठाके साथ मिलकर वायुके बलकरके गुदाके मार्गसे मलरूप होकर पतित होती हैं । इस प्रकार ये प्रेरित हुई धातु अपनी प्रकृतिको त्यागकर नदीकी समान प्रवाह रूपसे अधोमार्ग द्वारा निकलती हैं उसको भयंकर रोग अतीसार कहते हैं । अतीसारकी संख्या—वह अतीसार रोग छः प्रकारका कहा है, जैसे—वातसे उत्पन्न हुआ, पित्तसे उत्पन्न हुआ, कफसे उत्पन्न हुआ, त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ, शोकसे उत्पन्न हुआ और आमसे उत्पन्न हुआ अतीसार इस भाँति छः प्रकारका है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथातीसारसामान्यचिकित्सा ।

आमपक्वं क्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः । अतोऽतिसारे सर्वस्मिन्नामं पक्वं च लक्षयेत् ७॥

आम और पक्वके क्रमको त्यागकर अतीसारमें अन्यक्रिया ही नहीं है, इस कारण सम्पूर्ण अतीसारोंमें प्रथम आम और पक्वका निश्चय करना चाहिये ॥ ७ ॥

अथामातिसारचिकित्सा ।

तत्रामपक्वलक्षणम् ।

संसृष्टमामैर्दोषैस्तु न्यस्तमप्सु निमज्जति । पुरीषं भृशदुर्गंधि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ ८ ॥ एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य वै । लाघवं च विशेषेण तं तु पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥

आमदोषयुक्त मल जलमें डालनेसे डूब जाता है और उसमें अत्यंत दुर्गन्ध आती है और वह पिच्छिल अर्थात् चिकना होता है उसको आम कहते हैं । और जिसके उपरोक्त लक्षणोंसे विपरीत लक्षण होयँ अर्थात् जलमें डालनेसे नहीं डूबे और बहुत दुर्गन्ध भी नहीं आवे, चिकना भी नहीं हो और विशेष करके हलका हो, इन लक्षणों युक्त मलको पक्व कहते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

न च संग्राहकं दद्यात्पूर्वमामातिसारिणे । अकाले संगृहीतस्तु विकारान्कुरुते बहून् ॥ १० ॥ दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोभगन्दरान् । शोथपाण्वामयप्लीहगुल्ममेहोदरज्वरान् ॥ ११ ॥

आमयुक्त अतीसारवाले रोगीको प्रथम ग्राही अर्थात् मलको रोकनेवाली औषधि नहीं देवे, क्योंकि विनाही समय (अपक्व दोष) में मलको रोकनेसे दंडक (जिससे हाथ, पाँव, मस्तक ये बाँस तथा लकडीकी सदृश जकड जाते हैं ऐसा एक प्रकारका आक्षेपक वायुरोग), अलसक (जिसमें पेट अफरकर मल तथा मूत्र बंद हो जाता है), अथवा दंडकालसक (विषूचिकाभेद), अफरा, संग्रहणी, बवासीर, भगन्दर, सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, गुल्म, प्रमेह, उदर रोग और ज्वरादि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं ॥ १०—११ ॥

डिम्भस्थः स्थविरस्थश्च वातपित्तात्मकश्च यः । क्षीणधातुबलश्चापि बहुदोषोऽतिविश्रुतः । आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत् ॥ १२ ॥ लंघनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः । समुदीर्णदोषनिचयं तत्पाचयेत्तथा शमयेत् ॥ १३ ॥

परन्तु जो वह आमातीसार बालक और वृद्धके उत्पन्न हुआ हो तथा वह रोगी वातपित्त स्वभाववाला हो, धातु क्षीण और बलहीन हो, अनेक दोषयुक्त हो और जिसके बहुत मलस्राव हुआ हो, ऐसे अतीसार रोगीको आमयुक्त होनेपर भी मलरोधक औषधि देकर दस्त रोकने चाहिये, क्योंकि ऐसे रोगी—पाचन औषधि देनेसे मर जाते हैं । अतीसारमें बलवान् रोगीको लंघनके सिवाय अन्य औषधि ही नहीं देनी चाहिये, क्यों कि लंघन बढे हुए दोषोंको शमन करते हैं और पाचन भी करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ जलविधानम् ।

लंघन एव दोषः दुःसहपिपासायां दोषपाकार्थं षडंगविधिना अर्द्धं श्रृतं योगचतुष्टयमाह ।

धान्याम्बुभ्यां श्रृतं तोयं तृष्णादाहातिसा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रिणे। हीबेरशृंगबेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा। मुस्तोदीच्यशृतं शीतं प्रदातव्यं पिपासवे॥ १४

जो अतीसारवाले रोगीको दाह (जलन) और अधिक तृषा (प्यास) होय तो उसको धनियाँ और सुगंधवालाको जलमें औटाकर अर्द्धहीन शेष क्वाथ करके तृषादाहयुक्त अतीसारमें पिलावे (१) अथवा सुगन्धवाला और सोंठके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके पीनेको देवे (२) अथवा नागरमोथा और पित्तपापडा इनके द्वारा जलको सिद्ध कर शीतल करके पीनेको देवे (३) अथवा नागरमोथा और सुगंधवाला इनके द्वारा पकाया हुआ जल शीतल करके पीनेको देवे (४)॥ १४॥

अथ लंघनान्ते भोजनम्।

हितं लंघनमेवादौ पूर्वरूपेऽतिसारिणे। कार्यं वाऽनशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु भोजनम्॥ १५॥

अतीसारके जब पूर्वरूपके लक्षण होने लगें तो प्रथम लंघन (उपवास) कराने उत्तम हैं पश्चात् लंघनके अन्तमें द्रव (पतले) और हलके पदार्थ भोजन करावे॥ १५॥

अथ पथ्यादिक्वाथः।

पथ्यादारुवचामुस्तैर्नागरातिविषान्वितैः। आमातीसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः १६

आमातीसारको नष्ट करनेके लिये हरड, दारुहलदी, वच, नागरमोथा, सोंठ और अतीस इनका क्वाथ बनाकर पिये॥ १६॥

अथ पाठादिचूर्णम्।

पाठाहिंग्वजमोदोग्रापञ्चकोलाह्वजं रजः। उष्णाम्बुपीतं सरुजं जयत्यामं ससैन्धवम् १७

पाठ, हींग, अजमोद, वच, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर सेंधानिमक डालकर गरम जलसे पान करे तो पीडायुक्त आमातीसार नष्ट हो जाता है॥ १७॥

अथ हरीतक्यादिकल्कः।

हरीतकी सातिविषा हिंगु सौवर्चलं वचा। सैन्धवश्चापि संपिष्य पाययेदुष्णवारिणा। आमातिसारं योगेन पाचयित्वा चिकित्सयेत्॥ १८॥ आमातिसारो योगेन यद्येतेन न शाम्यति। न तं योगशतेनापि चिकित्सति चिकित्सकः॥ १९॥

हरड, अतीस, हींग, काला निमक, वच और सेंधानिमक इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पिये। यह योग आमातीसारमें आमको पचाकर अतीसारको नष्ट कर देता है। यदि इस प्रयोगको सेवन करनेसे जो आमातिसार शांत नहीं हो तो फिर अन्य सैंकडों प्रयोगोंसे भी शांत नहीं होगा॥ १८॥१९॥

अथ वत्सकादिक्वाथः।

वत्सकातिविषाबिल्वं मुस्तकं वालकं शटी। अतीसारं जयेत्सामं चिरजं रक्तशूलजित् २०

इन्द्रजौ, अतीस, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगंधवाला और कचूर इनका क्वाथ बहुत कालके उत्पन्न हुए आम अतीसारको दूर करे है, तथा रुधिरविकार और शूलको नष्ट करे है॥ २०॥

अथ शुंठीपुटपाककल्कौ।

एरंडरससंपिष्टं पक्वमामं च नागरम्। आमातीसारशूलघ्नं पाचनं दीपनं परम्॥ २१॥

सोंठको अरण्डके रसमें पीसकर फिर पुटपाकविधिसे पकावे, पश्चात् चूर्ण करके सेवन करनेसे अथवा कच्ची ही सोंठको सेवन करनेसे आमातीसार और शूल नष्ट होता है। यह पाचन और अत्यन्त दीपन है॥ २१॥

अथ धान्यादिपंचककाथः।

धान्यवालकबिल्वाह्वनागरैः पाचितं जलम्। आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं दीपनं परम्॥ २२॥

धनियाँ, सुगन्धवाला, बेलगिरी, नागरमोथा और सोंठ इनका क्वाथ आम, शूल और बिबन्धनाशक पाचन और दीपन है॥ २२॥

अथ धान्यादिचतुष्ककाथः।

पित्ते धान्यचतुष्कं तु शुण्ठीत्यागाद्वदन्ति हि। रक्तेऽपि पित्तसाधर्म्यादेयं धान्यचतुष्टयम्॥ २३॥

यदि पित्तकी अधिकता होय तो सोंठको छोडकर बाकीकी धनियाँ आदि चार औषधियोंका क्वाथ बनाकर देवे और रुधिरका अतीसार होय तो भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुधिरका धर्म पित्तके समान होनेसे उसमें भी यही क्वाथ देवे ॥ २३ ॥

अथ पक्वातीसारचिकित्सा ।

लोध्रादिचूर्णम् ।

सलोध्रं धातकीबिल्वमुस्ताम्राास्थिकलिङ्गकम् । पिबेन्माहिषतक्रेण पक्वातीसारनाशनम् ॥ २४ ॥

लोध, धायके फूल, बेलगिरी, नागरमोथा, आमकी गुठली और इन्द्रजौ इनका चूर्ण बनाकर भैंसके तक्र (छांछ) के साथ पीनेसे पक्वातीसार नष्ट होता है ॥ २४ ॥

समंगादियोगचतुष्टयम् ।

समंगा धातकीपुष्पं मञ्जिष्ठा लोध्र एव च । शाल्मलीवेष्टको लोध्रो दाडिमद्रुफलत्वचौ ॥ २५ ॥ आम्रास्थिमध्यं लोध्रश्च बिल्वमध्यं प्रियंगु च । मधुकं शृंगवेरं च दीर्घवृन्तत्वमेव च ॥ २६ ॥ चत्वार एते योगाः स्युः पक्वातीसारनाशकाः । ते योगा उपयोज्याः स्युः सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना ॥२७॥ समंगा लज्जालू । शाल्मलीवेष्टको मोचरसः । दाडिमस्य द्रुमफलयोः त्वचौ । प्रियंगोर्नपुंसकमत्र फले वर्तमानत्वात् । शृंगवेरमत्र शुण्ठी । दीर्घवृन्तः स्योनाकस्तस्य त्वचः । समंगादीनि चत्वारि चूर्णानि ।

लज्जावती (छुईमुई), धायके फूल, मजीठ और लोध इन चार औषधियोंके चूर्णको समंगादि चूर्ण कहते हैं (१) मोचरस, लोध, अनारके फलकी छाल और अनारके वृक्षकी छाल इन चार औषधियोंके चूर्णको शाल्मलीवेष्टकादि चूर्ण कहते हैं । (२) आमकी गुठलीकी मींग, लोध, बेलगिरी और फूलप्रियंगू इन चार औषधियोंके चूर्णको आम्रास्थ्यादिचूर्ण कहते हैं (३) मुलेठी, सोंठ और श्योनाककी छाल, इन तीन औषधियोंके चूर्णको मधुकादि चूर्ण कहते हैं (४) इन चार चूर्णोंमेंसे कोईसा एक चूर्ण लेकर सहतमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे पक्वातीसार नष्ट होता है ॥ २५--२७ ॥

अथ गंगाधरक्वाथः ।

कञ्चटदाडिमजम्बूशृंगाटकपत्रबर्हिष्ठम् । जलधरनागरसहितं गंगामपि वेगवाहिनी रुन्ध्यात् ॥२८॥ कञ्चटः [चौराई] शाकस्य भेदः । कञ्चटादिभिश्चतुर्भिः अत्र पञ्चशब्दः सम्बध्यते । बर्हिष्ठं वालकम् ।

जलचौलाई अथवा जलपीपल (पनसिका, गंगातिरिया), अनारके पत्ते, जामुनके पत्ते, सिंहाडेके पत्ते, सुगन्धवाला, नागरमोथा और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पिये तो गंगाकी समान प्रवाहवाले भी दस्त रुक जाते हैं ॥ २८ ॥

अथ गंगाधरचूर्णम् ।

मोचरसमुस्तानागरपाठारलुधातकीकुसुमैः । चूर्णं मथितसमेतं रुणद्धि गंगाप्रवाहमपि सद्यः ॥ २९ ॥ अरलुः शोनापाठा । मथितं निर्जलं दधिवस्त्रपूतम् ।

मोचरस, नागरमोथा, सोंठ, पाढ, सोनापाठा और धायके फूल इनको कूट पीसकर चूर्ण करले, इस चूर्णको मथित (जिस दहीको कपडेमें छाना हो और जिसमें जल नहीं पडा हो उसको मथित कहते हैं) के साथ सेवन करनेसे अत्यन्त वेगवाले गंगाके प्रवाहकी समान भी दस्त रुक जाते हैं ॥ २९ ॥

अथ द्वितीयगंगाधरचूर्णम् ।

मुस्ता वत्सकबीजं मोचरसो बिल्वधातकीलोध्रम् । गुडमथितसंप्रयुक्तं गंगामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ३० ॥

नागरमोथा, इन्द्रजौ, मोचरस, बेलगिरी, धायके फूल और लोध इनका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर मथित नामक तक्रके साथ सेवन करनेसे अत्यन्त वेगवाले गंगासमान प्रवाहवाले भी दस्त रुक जाते हैं ॥ ३० ॥

अथ वृद्धगंगाधरचूर्णम् ।

मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवालकैः । बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः ॥ ३१ ॥ आम्रबीजसमंगातिविषायुक्तैश्च चूर्णितैः । मधु तण्डुलपानीयं पीतं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ ३२ ॥ हन्ति सर्वानतीसा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रान्ग्रहणीं हन्ति वेगतः। वृद्धं गङ्गाधरं चूर्णं रुन्ध्याद्गीर्वाणवाहिनीम् ॥ ३३ ॥

नागरमोथा, सोनापाठा, सोंठ, धायके फूल, लोध, सुगन्धवाला, बेलगिरी, मोचरस, पाढ, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, आमकी गुठली, लज्जावती और अतीस इनका चूर्ण करके सहत और चावलोंके जलके साथ पीनेसे सर्व प्रकारके अतीसार, प्रवाहिका और संग्रहणीको तत्काल नष्ट करे है। यह वृद्ध गंगाधरचूर्ण गंगाकी समान प्रवाहवाले दस्तोंको भी रोक देता है ॥ ३१–३३ ॥

अथांकोलकल्कः।

अंकोलमूलकल्कस्तण्डुलपयसा समाक्षिकः पीतः। सेतुरिव वारिवेगं झटिति निरुन्ध्यादतीसारम् ॥ ३४ ॥ अंकोलः ढेला इति प्रसिद्धः।

अंकोलकी जडको पीसकर चावलोंके जल और सहतके साथ पिये तो जिस प्रकार पुलसे जलका प्रवाह रुक जाता है उसी प्रकार इससे अतीसारका वेग शीघ्रही रुक जाता है ॥ ३४ ॥

अथ कुटजाष्टकावलेहः।

कुटजत्वक्तुलामार्द्रां द्रोणनीरे पचेद्भिषक्। पादशेषं श्रृतं नीत्वा वस्त्रपूतं पुनः पचेत् ॥ ३५॥ लज्जालूधातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा। मुस्ता चातिविषा चैव चूर्णमेषां पलं पलम् ॥३६ ॥ निक्षिप्य विपचेत्तावद्यावद्वीं प्रलिप्यते। जलेन छागदुग्धेन पीतो मण्डेन वा जयेत् ॥ ३७ ॥ घोरान्सर्वानतीसारान्नानावर्णान्सवेदनान्। असृग्धरं समस्तं च तथार्शांसि प्रवाहिकाम् ॥ ३८ ॥

कुडेकी गीली छाल चारसौ (४००) तोले लेकर एक हजार चौबीस (१०२४) तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहे तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे, फिर इसको चूल्हेपै चढाकर पकावे और उसमें लज्जावती, धायके फूल, बेलगिरी, पाढ, मोचरस, नागरमोथा और अतीस प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डाल देवे, जब पकते पकते करछीसे लगने लग जाय तब उतार लेवे। इस अवलेहको जलके साथ, बकरीके दूधके साथ अथवा मांडके साथ पिये। यह सब प्रकारके वेदनायुक्त, विविधवर्णवाले और भयंकर अतीसारोंको, सर्व प्रकारके रक्तप्रदर, बवासीर और प्रवाहिकाको नष्ट करे है ॥ ३५–३८ ॥

अथामलकालवालः।

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक्। आर्द्रकस्य रसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥ ३९ ॥ नदीवेगोपमं घोरं प्रवृद्धं दुर्द्धरं नृणाम्। सद्योऽतीसारमजयं नाशयत्येष योगराट् ॥ ४० ॥

आमलोंको जलमें पीसकर रोगीकी नाभिके चारों ओर थामला (घेरा) सा बना देवे, फिर उसमें तत्काल अदरखका रस भर देवे तो शीघ्रही अत्यन्त भयंकर वृद्धिको प्राप्त हुआ नदीके वेगकी समान वेगवाला भी दुर्जय अतीसार नष्ट होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ पाठादिचूर्णम्।

पाठां पिष्ट्वा च गोदध्ना तथा मध्यत्वगाम्रजा। अतीसारं व्यथादाहं हन्त्येवाशु न संशयः ॥ ४१ ॥

पाढ और आमके वृक्षके भीतरकी छालको गायके दहीमें पीसकर पिये तो अतीसार, व्यथा (पीडा) और दाह तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥

अथ वातातिसारलक्षणम्।

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः। शकृदामं सरुक्छब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ४२ ॥ अरुणमीषद्रक्तम्। शकृत्पुरीषम्। सरुक्छब्दम्, शब्दो गुदे तत्साहचर्याद्विगपि गुद एव बोद्धव्या।

वातसे उत्पन्न हुए अतीसारमें कुछ कुछ ललाई लिये, फेनयुक्त, रूखा, आम मिला हुआ (कच्चा), बारंबार थोडा २ पीडा और शब्दयुक्त मल उतरता है यह लक्षण वातातीसारमें होते हैं ॥ ४२ ॥

अथ वातातिसारचिकित्सा।

वचा चातिविषा मुस्तं बीजानि कुटजस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च । श्रेष्ठः कषाय एतेषां वातातीसार-शान्तये ॥ ४३ ॥

वच, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ वातातिसारको नष्ट करे है ॥ ४३ ॥

अथ पित्तातिसारलक्षणम् ।

पित्तात्पीतं शकृद्रक्तं दुर्गन्धि हरितं द्रुतम् । गुदपाकतृषामूर्च्छादाहयुक्तं प्रवर्तते ॥ ४४ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुए अतीसारमें पीला, लाल, दुर्गन्धवाला और हरा मल उतरता है और गुदाका पकना, तृषा, मूर्च्छा और दाह अधिक होता है ये लक्षण पित्तातिसारके हैं ॥ ४४ ॥

अथ पित्तातिसारचिकित्सा ।

बिल्वादिक्काथः ।

बिल्वशक्रयवाम्भोदबालकातिविषाकृतः । कषायो हन्त्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम् ४५

बेलगिरी, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और अतीस इनका क्वाथ बनाकर पिये तो पित्तसे उत्पन्न हुआ आमयुक्त अतीसार नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

अथ रसाञ्जनादिचूर्णम् ।

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलत्वचम् । धातकीं शृङ्गवेरं च पाययेत्तण्डुलांबुना ॥ निहन्ति मधुना पीतं पित्तातीसारमुल्वणम् । अग्निं सन्दीपयेदेतच्छूलमाशु निवारयेत् ४६

रसोत, अतीस, कुडेके बीज, कुडेकी छाल, धायके फूल और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ सेवन करे तो भयंकर पित्तातिसार नष्ट होता है । यह चूर्ण अग्निको दीपन करे और शूलको तत्काल हरे है ॥ ४६ ॥

अथ रक्तातीसारलक्षणरूपसंप्राप्तिः ।

पित्ताक्रान्ति यदात्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके । तदास्य जायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्वणः ॥ ४७ ॥

पित्तातीसारमें जब अधिकतर पित्तकारक पदार्थ सेवन किये जाते हैं तब मनुष्योंके घोर भयंकर रक्तातीसार (रुधिरके दस्त) उत्पन्न होते हैं ॥ ४७ ॥

अथ रक्तातिसारचिकित्सा ।

तत्र कुटजदाडिमक्काथः ।

वत्सत्वग्दाडिमतरुशलाटुफलसम्भवा त्वक् च । त्वग्युगलं पलमानं विपचेदष्टांशसम्मिते तोये ॥ ४८ ॥ अष्टमभागशेषं क्वाथं मधुना पिबेत्पुरुषः । रक्तातिसारमुल्वणमतिशयितं नाशयेन्नियतम् ॥ ४९ ॥

कुडेकी छाल और अनारके कच्चे फलका छिलका यह दोनों दो दो तोले लेकर आठगुने जलमें पकावे, जब आठवां भाग जल शेष रहे तब सहत डालकर पिलावे तो अतिशयित और भयंकर रक्तातीसारको नष्ट करे है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ कुटजादिक्काथः ।

कुटजाऽतिविषा मुस्ता बालकं लोध्रचन्द्रनम् । धातकी दाडिमं पाठा क्वाथमेषां समाक्षिकम् ॥ ५० ॥ पिबेद्रक्तातिसारे तु दाहशूलप्रशान्तये । कुटजादिकषायोऽयं सर्वातीसारनाशनः ॥ ५१ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला, लोध, लाल चन्दन, धायके फूल, अनार और पाढ इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर रक्तातीसारमें उत्पन्न हुई दाह और शूलको शान्त करनेके लिये पिलावे तो यह कुटजादि क्वाथ सर्व प्रकारके अतीसारोंको नष्ट करे है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ तिलकल्कः ।

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करापञ्चभागिकः । आजेन पयसा पीतः सद्योऽतीसारनाशनः ॥ ५२ ॥

काले तिलोंका कल्क बनाकर उसमें पाँचवाँ भाग सफेद खाँड मिलाकर बकरीके दूधके साथ पीवे तो यह कल्क-अतीसारको तत्काल बन्द करे है ॥ ५२ ॥

अथ वत्सकादिक्काथः ।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः । सामे सशूले सरुजे सशोणिते च चिरप्रवृत्ते विहितोऽतिसारे ॥ ५३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रजौ, अतीस, बेलगिरी, सुगन्धवाला और नागरमोथा इनका क्वाथ आम, शूल और रुधिरयुक्त बहुत दिनोंके पुराने अतीसारमें परम हितकारी है ॥५३॥

अथ कृष्णमृदादिकल्कः ।

कृष्णमृन्मधुकं लोध्रं कौटजं तण्डुलाम्बुना ।
पीतमेकत्र सक्षौद्रं रक्तसंग्राहणं परम् ॥५४॥

काली मिट्टी, मुलेठी, लोध और इन्द्रजौ इनका कल्क बनाकर उसमें सहत मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे रक्तातिसार शमन हो जाता है ॥ ५४ ॥

अथ गुडविल्वः ।

गुडेन भक्षयेद्विल्वं रक्तातीसारनाशनम् ।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगहरं परम् ॥५५॥

बेलके गूदेमें गुड मिलाकर भक्षण करनेसे रक्तातीसार, आमशूल, मलबन्ध और कुक्षिरोग नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

अथ जम्ब्वादिस्वरसः ।

जम्ब्वाम्रामलकीनां तु कुट्टयेत्पल्लवान्नवान् ।
संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ।
तत्पीतं मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ५६

जामुन, आम और आमले इनके कोमल पत्ते लेकर उनको कूटकर रस निचोड लेवे, फिर उस रसमें सहत मिलाकर बकरीके दूधके साथ पीवे तो रक्तातिसार दूर होता है ॥ ५६ ॥

अथ कुटजक्षीरम् ।

निक्काथ्य मूलममलं गिरिमल्लिकायाः
सम्यक् पलद्वितयमम्बु चतुःशरावे ।
तत्पादशेषसलिले खलु शोषणीयं क्षीरे पल-
द्वयमिते कुशलैरजायाः ॥ ५७ ॥ प्रक्षिप्य
माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले । रक्तातिसारी
तत्पीत्वा नैरुज्यं क्षिप्रमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥

कुडेकी उत्तम छाल आठ तोले लेकर चार शराव (३२ तोलेका एक शराव होता है) जलमें विधिपूर्वक पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहे तब आठ तोले बकरीका दूध डाल देवे, जब केवल दूधमात्रही बाकी रहे तब उतार लेवे, शीतल होनेपर आठ मासे सहत मिलाकर पिलावे, इससे रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ शतावरीकल्कः ।

पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग् जयेत् । रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ५९ ॥

सतावरके कल्कको दूधके साथ पीनेसे अथवा सतावरके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतको पीनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है, परन्तु इसपर दूधका भोजन करना चाहिये ॥ ५९ ॥

अथ नवनीतावलेहः ।

गोदुग्धनवनीतं च मधुना सितया सह ।
लीढं रक्तातिसारे तु ग्राहकं परमं मतम् ॥६०॥

गायके दूधमेंसे निकाले हुए नवनी घीको सहत और मिश्रीके साथ सेवन करनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ६० ॥

अथ चन्दनकल्कः ।

पीतं मधुसितायुक्तं चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
रक्तातीसारजिद्रक्तपित्ततृड्दाहमेहनुत् ॥६१॥
चन्दनमत्र श्वेतचन्दनम् ।

सफेद चंदनको घिसकर सहत और खाँड मिलाकर चावलोंके धोवन जलके साथ पीनेसे रक्तातीसार रक्तपित्त, तृषा, दाह और प्रमेह दूर होता है ॥६१॥

अथ गुददाहपाकोपायः ।

विरेकैर्बहुभिर्यस्य गुदं पित्तेन दह्यते । पच्यते वा तयोः कार्यं सेकप्रक्षालनादिकम् ॥६२॥
आदिशब्देन लेपादिसंग्रहः । पटोलयष्टी-
मधुककाथेन शिशिरेण हि । गुदप्रक्षालनं
कार्यं तेनैव गुदसेचनम् ॥ ६३ ॥ दाहे पाके
हितं छागीदुग्धं सक्षौद्रशर्करम् । गुदस्य
क्षालने सेके युक्तं पाने च भोजने ॥ ६४ ॥

बहुत दस्त होनेके कारण जो पित्तसे गुदामें दाह हो अथवा गुदा पक जाय तो गुदसेचन, प्रक्षालन और लेपादि करे । पटोलपत्र और मुलेठी इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके उससे गुदाको धोवे अथवा उससेही गुदाको सींचे । गुदाके दाह और पाकमें मिश्री तथा सहत मिलाकर बकरीके दूधके द्वारा गुदसेचन, प्रक्षालन, पीना और भोजन करना ये सब हितकारी हैं ॥ ६२–६४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुदबहिर्निःसरणचिकित्सा ।

गुदनिःसरणे प्रोक्तं चाङ्गेरीघृतमुत्तमम् । अतिप्रवृत्त्या महती भवेद्यदि गुदव्यथा ॥ ६५ ॥ स्विन्नमूषकमांसेन तदा संस्वेदयेद्गुदम् । अथ गोधूमचूर्णस्य संभृतस्य तु वारिणा । साज्यस्य गोलकं कृत्वा मृदु संस्वेदयेद्गुदम् ॥ ६६ ॥ गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्यान्तः प्रवेशयेत् । प्रविष्टं स्वेदयेन्मंदं मूषकस्यामिषेण हि ॥ ६७ ॥ मूषकस्यामिषेण काञ्जिकस्विन्नेन एरण्डपत्रादिस्थापितेन स्वेदयेत् । शाम्बूकमांसं सुस्विन्नं सतैललवणान्वितम् । ईषद्गुतेन चाभ्यज्य स्वेदयेत्तेन यत्नतः । ॥ ६८ ॥ गुदभ्रंशमशेषेण नाशयेत्क्षिप्रमेव च । मूषकस्याथ वसया पायुं सम्यक्प्रलेपयेत् । गुदभ्रंशाभिधो व्याधिः प्रणश्यति न संशयः ॥ ६९ ॥ चांगेरीकोलदध्यम्लक्षारनागरसंयुतम् । घृतं विपक्वं पातव्यं गुदभ्रंशगदापहम् ॥ ७० ॥ चांगेरी चतुःपत्री अम्ललोणिका तस्याः स्वरसः । कोलस्य क्वाथः दध्यम्लं दधिरूपमम्लम् । एतत्त्रयं मिलितं घृताच्चतुर्गुणम् क्षारनागरयोः क्वाथः । कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् । एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ ७१ ॥ पद्मिनीपत्रं संशोष्य संचूर्ण्य शर्करायुक्तं खादेत् । अयं तु गुदभ्रंशोऽतिसारं विनापि भवति, ततः क्षुद्ररोगेषु लिखितः । अत्र गुदस्य दाहपाकव्यथाप्रसंगाद् भ्रंशोऽपि लिखितः । चिकित्सा तु उभयत्र तुल्यैव ।

मल त्यागते समय जो गुदा बाहर निकल आवे तो चांगेरीघृतका सेवन उत्तम है । अधिक दस्तोंके आनेसे जो गुदामें अत्यंत पीडा उत्पन्न हुई होय तो चूहेके मांसको पकाकर उससे गुदाको बफारा देवे, अथवा गेहूँके आटेको जलसे पकाकर उसमें घी डालकर गोला बनावे, उस गोलेका सुहाता सुहाता सेंक करे । जो गुदभ्रंश अर्थात् काँच बाहर निकल आवे तो उसके ऊपर स्नेहादि (तेल घी आदि) की मालिश करके उसको भीतरको प्रवेश करे । पश्चात् काँजीमें औटाये हुए और अंडके पत्तों आदिपै रक्खे हुए चूहेके मांसका थोडा थोडा सेंक करे । घोंघेके मांसको पकाकर उसमें तेल और निमक डालकर प्रथम कुछेक घीको गुदापै मलकर पश्चात् इस मांसके द्वारा विधिपूर्वक स्वेद देवे, तो गुदाका बाहर निकलना तत्काल बंद होता है । चूहेकी चरबीका गुदाके ऊपर अच्छे प्रकारसे लेप करनेसे निश्चय गुदभ्रंश रोग नष्ट होता है । चार पत्तेकी खट्टी लोनियाका स्वरस, बेरका क्वाथ और खट्टा दही ये सब घीसे चौगुने लेकर सोंठ और जवाखार इनका चूर्ण डालकर घृतको सिद्ध करे । इस घृतको पीनेसे गुदभ्रंशकी पीडा दूर होती है, इसको चांगेरी घृत कहते हैं । कमलिनीके कोमल पत्तोंको सुखाकर चूर्ण करलेवे, फिर उसमें मिश्री मिलाकर भक्षण करे तो निश्चय गुदाका निकलना बंद हो जाता है । यह गुदभ्रंश रोग अतिसारमें होता है और अतीसारके विना भी उत्पन्न हो जाता है, इस कारण इसको क्षुद्र रोगोंमें कहा है । गुदाका दाह और गुदाके पाककी पीडाके प्रसंगसे यहाँपर भी लिख दिया है । अतीसारमें उत्पन्न हुए और विना अतीसारमें उत्पन्न हुए गुदभ्रंश दोनोंकी चिकित्सा एकसी जाननी ॥ ६५–७१ ॥

अथ कफातीसारलक्षणम् ।

श्वेतं स्निग्धं घनं बद्धं शीतलं मन्दवेदनम् । गौरवारुचिसंयुक्तं श्लेष्मणा सार्यते शकृत् ७२

कफातिसारमें सफेद, चिकना, गाढा, बंद हुआ, शीत, अल्पपीडावाला, भारापन और अरुचिसंयुक्त ऐसा मल उतरता है ॥ ७२ ॥

अथ कफातिसारचिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लंघनपाचनम् । योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गणः ॥ ७३ ॥

कफातीसारमें प्रथम लंघन और पाचन हितकारक है तथा आमातीसारनाशक अग्निदीपक औषधियें भी प्रयोग करनी चाहिये ॥ ७३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ चव्यादिक्काथः।

चव्यं सातिविषामुस्तं बालबिल्वं सनागरम्। वत्सकत्वक्फलं पथ्या छर्दिश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७४ ॥

चव्य, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड इनका क्काथ वमन कफातिसारको नष्ट करे है ॥ ७४ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम्।

हिंगु सौवर्चलं व्योषमभयाऽतिविषा वचा। पीतमुष्णाम्बुना चूर्णमेषां श्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७५ ॥

हींग भूनी, काला नोन, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, अतीस और वच इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीनेसे कफातीसार नष्ट होता है ॥ ७५ ॥

अथ वातकफोत्पन्नातीसारचिकित्सा।

क्रिमिशत्रुवचाबिल्वपाठाधान्याककट्फलम्। एषां क्काथं भिषग्दद्यादतीसारे द्विदोषजे। तेषां चिकित्सा प्रोक्तैव विशिष्टा च निगद्यते ॥ ७६ ॥ कट्फलं मधुकं लोध्रं त्वग्दाडिमफलस्य च। सतण्डुलजलं चूर्णं वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७७ ॥ चित्रकातिविषा मुस्तं बालबिल्वं सनागरम्। वत्सकत्वक्फलं पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७८ ॥

वैद्य वायु और कफसे उत्पन्न हुए अतीसारमें वायविडंग, वच, बेलगिरी, पाढ, धनियाँ और कायफल इनका क्काथ देवे। कायफल, मुलेठी, लोध और अनारके फलकी छाल इन सबका एकत्र चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे वातकफातिसार नष्ट होता है। चीता, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड इनका क्काथ वातकफातीसारको नष्ट करे है ॥ ७६--७८ ॥

अथ पित्तकफातीसारचिकित्सा।

मुस्ता सातिविषा मूर्वा वचा च कुटजः समाः। एषां कषायः सक्षौद्रः पित्तश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ७९ ॥

नागरमोथा, अतीस, चुरनहार और इन्द्रजौ इनके क्काथमें सहत डालकर पीनेसे पित्तकफातीसार नष्ट होता है ॥ ७९ ॥

अथ सन्निपातातीसारलक्षणम्।

तन्द्रायुक्तो मोहसादास्यशोषी वर्चः कुर्यान्नैकरूपं तृषार्तः। सर्वोद्भूते सर्वलिंगोपपत्तिः कृच्छ्रः साध्यो बालवृद्धाऽबलानाम् ॥ ८० ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए अतीसारमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, विशेष करके तृषाकी पीडा, तन्द्रा, मोह (बेहाशी), ग्लानि, मुखशोष और मलका रंग अनेक प्रकारका होता है। बालक, वृद्ध और बलहीन मनुष्यके उत्पन्न हुआ यह त्रिदोषज अतीसार कष्टसाध्य है ॥ ८० ॥

अथ सन्निपातातीसारचिकित्सा।

पंचमूल्यादिक्काथः।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः। पाठाभूनिम्बबर्हिष्ठकुटजत्वक्फलैः श्रृतम् ॥ ८१ ॥ सर्वजं हन्त्यतीसारं ज्वरं चापि तथा वमिम्। सशूलोपद्रवं श्वासं कासं चापि सुदुस्तरम् ॥ ८२ ॥ पञ्चमूली च सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी। वाते पुनर्बलासे च सा योज्या महती मता ॥ ८३ ॥

पंचमूल, खिरैटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ, चिरायता, सुगंधवाला और इन्द्रजौ इनका क्काथ त्रिदोषज अतीसार, ज्वर, वमन शूलके उपद्रव युक्त श्वास और दुस्तर खाँसीको भी नष्ट करे है। सामान्य रीतिसे पित्तके रोगोंमें लघुपंचमूल लेना चाहिये और वात तथा कफके रोगोंमें बृहत्पंचमूल लेना चाहिये ॥ ८१--८३ ॥

अथ चतुःसममोदकः।

अभया नागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम्। चतुःसमेयं गुटिका सर्वातीसारनाशनी ॥ ८४ ॥ आमातीसारमानाहं सविबन्धं विषूचिकाम्। कृमीनरोचकं हन्याद्दीपयत्याशु चानलम् ॥ ८५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरड, सोंठ, नागरमोथा और गुड ये चारों पदार्थ समान भाग लेकर गोली बना लेवे । ये चतुःसमगोली सर्व प्रकारके अतीसारोंको नष्ट करे है । तथा आमातीसार, अफरा, मलबंध, विषूचिका, कृमिरोग और अरुचिको हरे है और तत्काल अग्निको दीपन करे है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ कुटजपुटपाकः ।

तत्कालकृष्टकुटजत्वचं तण्डुलवारिणा । पिष्ट्वा चतुःपलमितां जम्बूपत्रेण वेष्टिताम् ॥ ८६ ॥ सूत्रेण बद्ध्वा गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम् । लिप्तां च घनपंकेन निर्दहेद्गोमयाग्निना॥८७॥ अंगारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत् । ततो रसं समादाय शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ ८८ ॥ उक्तः कृष्णात्रिपुत्रेण पुटपाकस्तु कौटजः । जयेत्सर्वानतीसारान्रक्तजान्सुचिरोत्थितान् ॥ ८९ ॥

नीली कुडेकी छाल सोलह (१६) तोले लेकर चावलोंके जलमें पीसकर गोला बना लेवे उस गोलेको जामुनके पत्तोंमें लपेटकर डोरेसे बांध देवे, फिर उसके ऊपर गेहूँके आटेका लेप कर देवे, पश्चात् मिट्टीके गारेका लेप करके अरने उपलोंकी अग्निमें पकावे, जब पकते पकते मिट्टीका रंग अंगारोंकी समान लाल हो जाय तब उसको निकाल लेवे, फिर उसको निकालकर शीतल होनेपर सहत मिलाकर पिये । यह पुनर्वसुऋषिका कहा हुआ कुटजपुटपाक सर्व प्रकारके अतीसार, रक्तातीसार और बहुत पुराने अतीसारको नष्ट करे है ॥ ८६–८९ ॥

अथ कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्कृतः क्काथो वस्त्रपूतो हिमीकृतः । सलीढोऽतिविषायुक्तः स्यात्त्रिदोषातिसारनुत् ॥ ९० ॥ इच्छन्त्यत्राष्टमांशेन कायादतिविषारजः । प्रक्षेपयेच्चतुर्थांशमिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ९१ ॥

कुडेकी छालका क्काथ बनाकर वस्त्रसे छानकर शीतल कर लेवे, फिर उसमें अतीसका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो त्रिदोषातीसार नष्ट होता है । यहां कितनेक वैद्य कहते हैं कि क्काथसे अतीसका चूर्ण आठवाँ भाग लेना चाहिये और कितनेक वैद्य कहते हैं कि, क्काथसे अतीसका चूर्ण चौथा भाग लेना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अथांकोटवटकः ।

पलमंकोटमूलस्य पाठां दार्वीं च तत्समाम् । पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥ ९२ ॥ छायाशुष्कांश्च तान्कुर्यात्तेष्वेकं तण्डुलाम्बुना । पेषयित्वा प्रदद्यात्तं पानाय गदिने भिषक् ॥ ९३ ॥ वातपित्तकफोद्भूतान्द्वन्द्वजान्सान्निपातिकान् । हन्यात्सर्वानतीसारान्वटकोऽयं प्रयोजितः ॥ ९४ ॥

अंकोलकी जड, पाढ और दारुहलदी ये तीनों औषधि चार चार तोले लेकर चावलोंके जलमें पीसकर छायामें सुखाकर एक एक तोलेके बडे बना लेवे । प्रतिदिन एक बडा चावलोंके जलमें पीसकर रोगीके पीनेके लिये देवे । ये बडे वातके दोषसे उत्पन्न हुए अतीसार, वा पित्तके दोषसे उत्पन्न हुए अतीसार, वा कफके दोषसे उत्पन्न हुए अतीसार अथवा द्वन्द्वज दोषसे उत्पन्न हुए अतीसार, किंवा सन्निपातसे उत्पन्न हुए अतीसार और भी अनेक प्रकारके अतीसारोंको शान्त करे हैं ॥ ९२–९४ ॥

अथागन्तुजशोकातिसारसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः । कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात्काकणन्तीप्रकाशम् । निर्गच्छेद्वै विड्भिमिश्रं ह्यविड्वा निर्गन्धं वा गन्धवद्वाऽतिसारः । शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥ ९५ ॥ अयमर्थः । तैस्तैर्भावैः बन्धुवित्तक्षयादिभिः शोचतः शोकं कुर्वतः जन्तोः प्राणिनः बाष्पोष्मा बाष्प शोकजः देहोष्मणा जनितं नेत्रनासागलादिषु जलं तेन सहितः उष्मा शोकजं देहतेजः । स कोष्ठं गत्वा वह्निमाविश्य जठराग्निं मन्दीकृत्य बाष्पसाहित्यात् उष्मणापि वह्नेर्मन्दीभाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति न दोषः । वह्नेर्मन्दीभावादेव अल्पाशनस्येति, जन्तोर्विशेषणम् । ततः तस्य जन्तो रक्तं क्षोभयेत् । स्वस्थानात् चालयेदिति संप्राप्तिः । अथ लक्षणम् । तच्च रक्तम् अधस्ताद्गदात् । काकणन्तीप्रकाशम् गुञ्जाफलसदृशम् । विड्विमिश्रं गन्धवच्च । अविट् निर्गन्धं वा निर्गच्छेत् शोकोत्पन्नोऽतिसारः अतिमात्रं दुश्चिकित्स्यः शोकापनोदनं विना केवलेन भेषजेन प्रतीकर्तुमशक्यत्वात् । एषोऽतीसारः कष्टसाध्यः कथितः ।

बंधुओंके और धनादिके नष्ट होनेसे जब यह प्राणी शोक करता है तब इसके आँसू (शोकसे उत्पन्न हुए शरीरकी उष्णतासे नेत्र, नासिका और गलेमें रहनेवाला जल) सहित गरमी कोठेमें प्राप्त होकर अग्निको मंद करे है, उस अग्निके मंद होनेके प्रभावसे भोजन थोडा किया जाता है, तब वही बाष्पोष्मा कोष्ठमें जाकर मनुष्यके रक्तको बिगाडकर अपने स्थानमेंसे चलायमान कर देती है । (यह तो सम्प्राप्ति हुई अब लक्षण सुनो ।) पश्चात् वह रुधिर गुदाके मार्गसे विष्ठासहित और दुर्गन्धसहित अथवा विष्ठारहित और दुर्गन्धरहित होकर घुँघुचीकी समान लाल निकलता है, इसको शोकातीसार कहते हैं । यह शोकातीसार चिकित्सा करनेमें अत्यंत कठिन है क्योंकि विना शोकके दूर किये केवल औषधियोंसे ही इसका प्रतीकार और उपचार नहीं होता, इस कारण यह शोकातीसार कष्टसाध्य है ॥ ९५ ॥

अथ भयातीसारलक्षणम् ।

भयेन क्षोभिता दोषा दूषयन्ति मलं यदा ।
तदातिसार्यते जन्तुः क्षिप्रमुष्णं जलप्लवम् ॥ ९६ ॥
वातपित्तातिसारस्य प्रायो लिंगैः समन्वितम् । अभयोपशमाच्छामो यस्मिन्स्यात्स भयात्स्मृतः ॥ ९७ ॥

प्लवति इति प्लवम्, जले प्लवमानमित्यर्थः । ननु भयातिसारस्य कथमागन्तुजत्वमयमपि दोषज एव यत आह—भयेन क्षोभिता दूषिता दोषा मलं दूषयन्ति तत् मलमतिसराति, अत्र पूर्वमेव दोषसम्बन्धः । उच्यते—रागद्वेषभयाच्चैव ते स्युरागन्तवो गदाः ॥ ९८ ॥ इति वचनात् भयातिसार आगन्तुज एव । भयेनैव हेतुभूतेन दोषा वातपित्तकफाः अतिसारं जनयन्ति । क्षोभिताः सञ्चालिताः न तु दूषिताः भयेन त्रयाणामपि दोषाणां दूषणासम्भवात् । अतिसर्तुं चलिता वातपित्तकफामलं दूषयन्ति तत्सर्वं वातपित्तकफमलं भयेनैव अतिसार्यते । पश्चात् वातसम्बन्धेन भयाद्वायुरिति वचनात् । अत एव भयातिसारे वातहरी । एव क्रिया कथितेति साधुः ।

भयरूप कारणोंसे क्षोभको प्राप्त हुए वात, पित्त और कफ ये दोष जब मलको दूषित करते हैं (यह सम्प्राप्ति जाननी) तब तत्काल विशेष करके वात और पित्तके लक्षणोंवाला गरम और पानीमें तैरनेवाला मल गुदाके मार्गसे प्रवाहरूप होकर निकलता है, उसको भयातीसार कहते हैं, इसमें भयके शांत होनेसे रोगी सुखी होता है, (यह लक्षण जानने) । शंका—भयातीसार आगंतुज कैसे हो सक्ता है ? क्योंकि भयसे क्षोभको प्राप्त हुए अर्थात् दूषित हुए वातादि दोष मलको दूषित करते हैं और वह मल प्रवृद्धरूपसे निकलता है, इस कहनेसे यह जाना जाता है कि, इसमें पहिलेसे ही दोषोंका सम्बन्ध होता है इस कारण भयातिसार दोषजन्य है । समाधान—राग, द्वेष और भयसे जो रोग उत्पन्न होता है उसको आगन्तुज कहते हैं इस वचनानुसार भयातिसार आगन्तुज है । 'भयसे क्षोभको प्राप्त हुए' इस शब्दका अर्थ 'भयसे दूषित हुए' ऐसा नहीं समझना किन्तु 'भय करके चलायमान किये हुए' ऐसा समझना चाहिये । कारण यह है कि—भयसे तीनों दोषोंका दूषित होना सम्भव नहीं हो सक्ता ? भयका वेग आनेसे जोरसे निकलनेके लिये चलायमान हुए वात, पित्त, कफ ये मलको दूषित करते हैं और फिर वात, पित्त, कफ और मल ये सब भयके कारण चलित हो जाते हैं । इस अतीसारमें पीछेसे दुष्ट वायुका सम्बन्ध होता है, क्योंकि " भयसे वायु होती है " ऐसा कहा है इस कारण भयातीसारमें वातनाशक चिकित्सा ही करनी कही है, इस प्रकार भयातीसारके आगन्तुज होनेमें कोई संदेह नहीं है ॥ ९६–९८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ शोकातीसारभयातीसारचिकित्सा। भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत्। तयोर्वातहरी कार्या हर्षणाश्वासनैः क्रिया ॥ ९९ ॥ वातातिसारवद्वातातिसारलक्षणयोस्तयोश्चिकित्सा च हर्षणाश्वासनपूर्विका वातहरी कर्तव्या।

भयातीसार और शोकातिसारके लक्षण वातातीसारकी समान होते हैं, इसलिये इन दोनों अतीसारोंमें हर्ष उत्पन्न करनेवाले कर्म करे, धीरज बँधावे और वातविनाशक चिकित्सा करे ॥ ९९ ॥

अथामातीसारसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम्। अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तो दोषाः कोष्ठे धातुसंघान्मलांश्च। नानावर्णान्नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ १०० ॥ अन्नं भुक्तं तदजीर्णं चेति कर्मधारये अन्नाजीर्णम् तस्मात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः चालयन्तः नैकश इत्यत्र नाकादित्वान्नाक्षरविपर्ययः। ननु आमेन दोषा दूष्यन्ते गुर्वादिभक्षणादिभिरिव ते च अतिसारम् उत्पादयन्ति, न तु आमोऽतिसारमुत्पादयति। तेन आमातिसारोऽपि दोषज एव किमर्थं पृथगुक्तम्? उच्यते-आमातिसारस्य चिकित्सार्थम्। अतिसारेषु सर्वेषु एव संग्राहकमौषधमुक्तम् आमातिसारे तु संग्राहकं निषिद्धम् यत उक्तम्-नामे संग्राहकं दद्यादतिसारे कदाचन। संगृहीतो बलादामो विकारान्कुरुते बहून् ॥ १०१ ॥ बलाद्भेषजबलाद्विकारान्ग्रहण्याध्मानशूलगुल्मशोथोदरज्वरादीन्।

भोजन किये हुए पदार्थोंके अजीर्ण होनेसे चलायमान हुए वातादि दोष कोठेकी रसरक्तादि धातुओंको और मलमूत्रादि मलोंको चलायमान करके बारंबार शूल (ऐंठन) युक्त और अनेक वर्णकी विष्ठाको गुदाके द्वारसे बाहर निकाले है यह छठा आमातीसार कहा। शंका-जिस प्रकार भारीपदार्थोंके भोजन आदिसे दोष दूषित होते हैं, उसी प्रकार आमसे दोष दूषित होते हैं, इस प्रकार दूषित हुए दोष ही अतीसारको उत्पन्न करते हैं, परन्तु आम अतीसारको नहीं उत्पन्न करती है। इस लिये आमातीसारको भी दोषजन्य होनेपर फिर इसको अलग क्यों कहा? समाधान--आमातीसारकी चिकित्सा अलग जाननेके लिये आमातीसार अलग कहा है, सर्व प्रकारके अतीसारोंमें मलको रोकनेकी औषधि कही है और आमातीसारमें मलको रोकनेकी औषधि निषेध है। कहा भी है कि--"आमातीसारमें कदापि संग्राहक औषधि नहीं देनी चाहिये, क्योंकि--संग्राहक औषधियोंके बलसे स्तम्भित हुई आम--संग्रहणी, अफरा, शूल, गुल्म, सूजन, उदररोग और ज्वरादि अनेक विकारोंको उत्पन्न करे है।" ॥ १०० ॥ १०१ ॥

अथामातीसारचिकित्सा। वत्सकातिविषाशुण्ठीबिल्वहिंगुयवाम्बुदाः। चित्रकेण युतः क्वाथआमातीसारनाशनः१०२

कुडेकी छाल, अतीस, सोंठ, बेलगिरी, हींग, इन्द्रजौ, नागरमोथा और चीता इनका क्वाथ आमातीसारको नष्ट करे है ॥ १०२ ॥

अथ शोथातीसारचिकित्सा। शोथघ्नीन्द्रयवौ पाठा श्रीफलातिविषाघनाः। क्वथिता सोषणाः पीताः शोथातीसारनाशनाः ॥ १०३ ॥ शोथघ्नी पुनर्नवा ऊषणं मरिचम्।

पुनर्नवा, इन्द्रजौ, पाढ, बेलगिरी, अतीस, नागरमोथा और काली मिरच इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे शोथातीसार नष्ट होता है ॥ १०३ ॥

अथ छर्द्यतिसारचिकित्सा। आम्रास्थिमध्यमालूरफलक्वाथः समाक्षिकः। शर्करासहितो हन्याच्छर्द्यतीसारमुल्वणम् ॥ १०४ ॥ मालूरफलं बिल्वफलम्। कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः। निहन्याच्छर्द्यतीसारं तृष्णां दाहं ज्वरं भ्रमम् ॥ १०५ ॥

आमकी गुठली और बेलगिरी इनके क्वाथमें सहत और मिश्री डालकर पीनेसे भयंकर छर्द्यतीसार नष्ट होता है, भुनी हुई मूँगके क्वाथमें खीलें, सहत और मिश्री डालकर पान करनेसे छर्द्यतिसार (उलटी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दस्त), तृषा, दाह, ज्वर और भ्रम दूर होता है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

अथ निःसारकचिकित्सा ।

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीत निःसारकपीडितस्तु । सुतप्तकुप्यक्कथितेन वापि क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ १०६ ॥ निःसारकः निठाहीति लोके । सुतप्तकुप्यक्कथितेन सुतप्तसुवर्णरजतनिर्वापणक्कथितेन भुञ्जीत पथ्यामिति शेषः ।

निःसारसे पीडित हुए मनुष्यको मलाईवाले दहीमें सहत डालकर पथ्य भोजन करावे । अथवा अत्यन्त तपाया हुआ सोना या रूपा दूधमें बुझाकर फिर उस दूधको शीतल करके उसमें सहत डालकर पथ्य भोजन करावे ॥ १०६ ॥

अथ विष्ठाक्षयचिकित्सा ।

दीप्ताग्निर्निःपुरीषो यः शकृत्त्यजति फेनिलम् । स पिबेत्फाणितं शुण्ठीं दधि तैलं पयो घृतम् ॥ १०७ ॥ बलाविश्वाश्रृतं क्षीरं गुडतैलानुयोजितम् । दीप्ताग्निं पाययेत्प्रातः सुखदं वर्चसः क्षये ॥ १०८ ॥

दीप्त अग्निवाले मनुष्यका जो मल क्षय हो गया हो और उसकी गुदामेंसे झागोंदार थोडा थोडा मल निकलता हो, उसको राब, सोंठ, दही, तेल, दूध और घी पिलावे । पुरीषके क्षय होनेपर दीप्ताग्निवाले मनुष्यको खिरेटी और सोंठके द्वारा सिद्ध किये हुए दूधमें गुड और तेल डालकर प्रातःकाल पिलावे तो इससे रोगी सुखी होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ बिल्वतैलम् ।

तुलां संकुट्य बिल्वस्य पचेत्पादावशेषितम् । सक्षीरं साधयेत्तैलं श्लक्ष्णपिष्टैरिमैः समैः ॥ १०९ ॥ बिल्वं सधातकीकुष्ठं शुण्ठीरास्नापुनर्नवाः । देवदारुवचामुस्तं लोध्रमोचरसान्वितम् ॥ ११० ॥ एभिर्मृद्वग्निना पक्वं ग्रहण्यर्शोऽतिसारनुत् । बिल्वतैलमिति ख्यातमत्रिपुत्रेण भाषितम् ॥ १११ ॥ ग्रहण्यर्शोऽधिकारे ये स्नेहाः समुपदर्शिताः । प्रयोज्यास्तेऽतिसारेऽपि त्रयाणां तुल्यहेतुना ॥ ११२ ॥

बेलगिरी सौ (१००) पल लेकर कूट लेवे, फिर उसका चतुर्थांश शेष क्वाथ बनावे, फिर उस क्वाथमें दूध और तेल तथा बेलगिरी, धायके फूल, कूठ, सोंठ, रासना, पुनर्नवा, देवदारु, वच, नागरमोथा, लोध और मोचरस इनका कल्क डालकर तेलको मंद मंद अग्निसे पकावे । पुनर्वसुमुनिका कहा हुआ यह बिल्वतैल—ग्रहणी, बवासीर और अतिसारको नष्ट करे है । अतिदेश—ग्रहणी और अर्श अधिकारमें जो तेल घृतादि स्नेह कहे हैं उन सबको अतीसारमें प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि इन तीनों रोगोंके हेतु समान हैं ॥ १०९—११२ ॥

प्रवाहिकासम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्ताद्धिताशनस्य । प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ११३ ॥ अस्य अयमर्थः । अहिताशनस्य अतिशयेन वातलभक्ष्यभोजिनः प्रवृद्धो वायुः प्रवाहतः कण्ठे हृद्भलेन सशब्दं वायुमपानमागत्य त्यजतः निचितं साञ्चितं बलासं कफं मलाक्तं पुरीषयुक्तम् । अल्पं बहुशः वारंवारमधस्ताद् गुदान्नुदति । वैद्याः तां प्रवाहिकां प्रवदन्ति ।

अत्यन्त वायुकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे मनुष्योंके अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई वायु जोरसे अपान वायु छोडते समय उस मनुष्यकी गुदामेंसे विष्ठासे मिला हुआ और संचित हुआ कफ वारंवार थोडा थोडा नीचे गिरे, उसको वैद्य प्रवाहिका कहते हैं ॥ ११३ ॥

अथ दोषभेदेन प्रवाहिकालक्षणम् ।

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च । सशोणिता शोणितसम्भवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥ ११४ ॥ तत्र रूक्षप्रभवा वातजा स्नेहप्रभवा कफजा तु शब्दात्तीक्ष्णोष्णप्रभवा पित्तजा रक्तजा च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस प्रवाहिकामें शूल होय उसको वायुसे उत्पन्न हुई जानना और वह रूक्ष पदार्थोंके सेवन करनेसे होती है । जिस प्रवाहिकामें दाह हो उसको पित्तसे उत्पन्न हुई जानना और वह तीक्ष्ण तथा उष्णपदार्थोंके सेवन करनेसे होती है । जिस प्रवाहिकामें कफकी अधिकता हो उसको कफसे उत्पन्न हुई जानना और वह स्नेह पदार्थोंके सेवन करनेसे होती है । जिस प्रवाहिकामें रुधिर निकलता हो उसको रुधिरसे उत्पन्न हुई जानना और वह तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे होती है ॥ ११४ ॥

अथातिदेशः ।

तासामतीसारवदादिशेच्च लिंगं क्रमं चामविपक्वतां च ॥ ११५ ॥

प्रवाहिकाके लक्षण, चिकित्सा और पक्व अपक्वता अतीसारकी समान जाननी ॥ ११५ ॥

अथ प्रवाहिकाचिकित्सा ।

विल्वाद्यवलेहः ।

बिल्वपेशी गुडं लोध्रं तैलं मरिचसंयुतम् । लीढ्वा प्रवाहिकाक्रान्तः सत्वरं सुखमाप्नुयात् ॥ ११६ ॥

बेलगिरी, गुड, लोध, तेल और काली मिर्च इन सबको एकत्र करके अवलेह बनावे । इस अवलेहको सेवन करनेसे प्रवाहिकाका रोगी तत्काल सुखी होता है ॥ ११६ ॥

अथ धातक्यादिः ।

धातकी बदरीपत्रं कपित्थं सहमाक्षिकम् । सलोध्रमेकतो दध्ना पिबेन्निर्वाहिकार्दितः ॥ ११७ ॥ एकतः प्रत्येकं दध्ना पिबेदित्यर्थः ।

धायके फूल, बेरीके पत्ते, कैथका रस, सहत और लोध इनमेंसे किसी एकको अथवा सबको अलग अलग दहीके साथ पान करनेसे प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥ ११७ ॥

अथासाध्यातीसारलक्षणम् ।

पक्वजाम्बवसंकाशं यकृत्खण्डनिभं तनुम् । घृततैलवसामज्जाविसवारपयोदधि ॥ ११८ ॥ मांसधावनतोयाभं कृष्णं नीलारुणप्रभम् । कर्बुरं मेचकं स्निग्धं चन्द्रिकोपगतं घनम् ॥ ११९ ॥ कुणपं मस्तुलुंगाभं सगन्धं कथितं बहु । तृष्णादाहारुचिश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥ १२० ॥ संमूर्च्छाऽरतिसंमोहयुक्तं पक्वगुदम् । प्रलापयुक्तं च भिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १२१ ॥

जिसका मल पकी जामुनकी समान, यकृत्पिण्डकी समान, सूक्ष्म, घीकी समान, तेल सरीखा, चरबी और मज्जाकी समान, दालके पानीकी समान, दूध और दहीकी समान, मांसके धोये हुए जलकी समान, काला, नीला और लाल रंगका, चित्रित रंगका, अनेक रंगका, बहुत काला, चिकना, मोरपुच्छचन्द्रिकाकी समान, चित्र विचित्र सघन, सडे हुए मुरदेकी समान गंधवाला, मस्तकमें रहनेवाली चरबीके सदृश, भारी, दुर्गन्धयुक्त और बहुत गरम होय तथा रोगीको तृषा, दाह, अरुचि, श्वास, हिचकी, पसलियोंमें शूल और हड्डियोंमें शूल, मूर्च्छा, बेचैनी और मोह (बेहोशी) हो, गुदाकी वलि पक्व जायँ और रोगी प्रलाप (बकवाद) करे, ऐसे अतीसार युक्त मनुष्यका वैद्य उपाय न करे ॥ ११८-१२१ ॥

असंवृतगुदं क्षीणं शूलाध्मानैरुपद्रुतम् । गुदे पक्वे गतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ १२२ ॥ असंवृतगुदं गुदसंवरणाक्षमम् । गुदे पक्वे गुदापाकारम्भके पित्ते विद्यमानेऽपि शीतगात्रं नष्टाग्निं वा । श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् । विशेषेण नरं वृद्धमतिसारो विनाशयेत् ॥ १२३ ॥

जिस अतीसारवाले रोगीकी गुदा-मल निकालनेके बाद बंद न हो तथा वह मनुष्य क्षीण हो गया हो, शूल और अफरे युक्त हो, गुदाके पकानेवाले पित्तके रहनेपर भी शरीर शीतल हो और जिसकी जठराग्नि नष्ट हो गई हो, ऐसे अतीसारवाले रोगीको वैद्य त्याग देवे । श्वास, शूल और तृषासे पीडित, क्षीण, ज्वरसे व्याकुल और विशेषकरके वृद्ध मनुष्योंके उत्पन्न हुआ अतीसार मार देता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् । छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतीसा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रिणं त्यजेत् ॥ १२४ ॥ हस्तपादांगुलिसन्धिप्रपाको मूत्रनिग्रहः । पुरीषस्योष्णतातीव मरणायाऽतिसारिणः ॥ १२५ ॥ अतिसारी राजरोगी ग्रहणीरोगवानपि । मांसाग्निबलहीनो यो दुर्लभं तस्य जीवनम् ॥ १२६ ॥

सूजन, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खाँसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा और हिचकी इन लक्षणोंयुक्त अतीसाररोगीको त्याग देवे। जिसकी हाथपाँवोंकी अंगुली पक गई हों, संधियें पक गई हों, मूत्र रुक गया हो और मल अत्यंत गरम हो, ये सब लक्षण अतीसार रोगीके मरनेके लिये उत्पन्न होते हैं। अतीसाररोगी, क्षयरोगी और ग्रहणीरोगी जो मांस और अग्निके बलसे हीन हो गया हो तो उसका जीना दुर्लभ है ॥ १२४–१२६ ॥

बाले वृद्धे त्वसाध्योऽयं लिङ्गैरेतैरुपद्रुतः । अपि यूनामसाध्यं स्यादतिदुष्टेषु धातुषु १२७

उपरोक्त लक्षणोंयुक्त बालकोंके और वृद्धोंके उत्पन्न हुआ अतीसार असाध्य है और धातुओंके दुष्ट होनेसे युवा मनुष्योंके भी उत्पन्न हुआ अतीसार असाध्य है ॥ १२७ ॥

अथातीसारमुक्तलक्षणम् ।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति । दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ १२८ ॥

जिसकी अग्नि दीपन हो, कोठा हलका हो गया हो और जिसके मलके विना मूत्र और अधोवायु अच्छे प्रकारसे निकलती हो, ऐसे मनुष्यको अतीसारसे मुक्त हुआ जानना ॥ १२८ ॥

अथातीसारेऽपथ्यम् ।

स्नानावगाहाभ्यंगं गुरुस्निग्धादिभोजनम् । व्यायाममग्निसन्तापमतिसारी विवर्जयेत् ॥ १२९ ॥ स्नानमुद्धृतजलेन । अवगाहो नद्यादौ ॥

अतीसारवाला रोगी स्नान नहीं करे, नदीमें नहीं घुसे, तथा तेलादिककी मालिस, भारी स्निग्ध भोजन और कसरत नहीं करे, तथा अग्निका सन्ताप भी त्याग देवे ॥ १२९ ॥

अथ शंखपोटलीरसः ।

प्रत्येकं दशगद्याणाः शुद्धसूतकगन्धयोः ॥ १३० ॥ विंशतित्रिदिनं खल्वे पिष्ट्वा कुर्याच्च कज्जलीम् । पश्चादर्कस्य दुग्धेन पिष्ट्वा तां कज्जलीं त्र्यहम् ॥ १३१ ॥ ततो वज्रस्य दुग्धेन पिष्ट्वा तां कज्जलीं त्र्यहम् । आर्द्रकं चित्रकं श्वेतं निःसहायं च मर्दयेत् ॥ १३२ ॥ पेषयेत्तद्रसैरेवं कज्जलीं तां दिनत्रयम् । पीतानां च कपर्दीनां चूर्णं गद्याणविंशतिः ॥ १३३ ॥ विंशतिः शंखचूर्णस्य चत्वारिंशच्च मिश्रितम् । त्रिदिनं मर्दयेत्खल्वे पूर्वोक्तेन क्रमेण च ॥ १३४ ॥ त्र्यहमर्कस्य दुग्धेन वज्रीदुग्धेन च त्र्यहम् । तन्मध्ये कज्जलीं क्षिप्त्वा चित्रकार्द्ररसेन तु ॥ १३५ ॥ खल्वे पिष्ट्वा द्वयोः कार्या गुटयो बदरसम्मिताः । लिप्त्वा दग्ध्वाशु चूर्णेन पक्वकुक्कुटकान्तरम् ॥ १३६ ॥ प्रक्षिप्य गुटिकास्तत्र चूर्णलिप्तपिधानकम् । दत्त्वा वस्त्रं मृदा लिप्त्वा गर्तं हस्तप्रमाणकम् ॥ १३७ ॥ तद्गर्भे कुक्कुटीं मुक्त्वा पुटो देयश्च शाणकैः । पश्चाच्चित्रकनीरेण स्वाङ्गशीतं च पेषयेत् ॥ १३८ ॥ गुटिकां पूर्ववीत्यैव कृत्वा देयः पुनः पुटः । दग्धानां गुटिकानां च चूर्णं कृत्वाथ कूपके ॥ १३९ ॥ क्षेप्यं चैवं हि निष्पन्नो रसोऽयं शंखपोटली । आमज्वरातिसारे च श्वासे कासे तथैव च ॥ १४० ॥ श्लेष्मपित्तामवातेषु मन्दाग्नौ ग्रहणीषु च । अष्टादशप्रमेहेषु जीर्णे जीर्णबलेषु च ॥ १४१ ॥ द्वात्रिंशन्मरिचैः साकं सघृतं वल्लपञ्चकम् । सर्वरोगेषु दातव्यं मरिच्याज्यं विना ज्वरे ॥ १४२ ॥ शालयो दधिदुग्धादि भोजनं मधुरं हितम् । कटम्ल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षारतैलाद्यान्दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १४३ ॥ विधिनाऽनेन कर्तव्यो रसोऽसौ शंखपोटली । क्रमेण विनिवर्तन्ते प्रोक्तरोगा न संशयः १४४

पारा दश गद्याण (एक गद्याण ४८ रत्तीका होता है) और शुद्ध गंधक दश गद्याण लेकर तेईस दिनतक खरलमें पीसकर कज्जली बनावे, फिर इस कज्जलीको तीन दिनतक आकके दूधमें खरल करे, फिर तीन दिनतक थूहरके दूधमें खरल करे, पश्चात् अदरख और सफेद चीतेके रसमें तीन तीन दिनतक खरल करे तदनन्तर पीली कौडीके बीस गद्याण चूर्णको और बीस गद्याण शंखके चूर्णको मिलाकर इस चालीस गद्याण चूर्णको अलग खरलमें खरल करे, फिर इस चूर्णको ऊपर कहे अनुसार आकके दूधमें और तीन दिनतक थूहरके दूधमें खरल करे, फिर इस चूर्णमें उक्त कज्जलीको मिलाकर अदरख और चीतेके रसमें खरल करके बेरकी बराबर गोली बना लेवे, फिर मट्टीकी कुलिया लेकर उसमें चूना चुपडकर उसको अग्निमें तपावे और उसमें यह गोली रखकर उसके ऊपर चूनेसे लिपा हुआ ढक्कन ढक देवे, फिर उस कुलिया और ढकनेपै कपरमट्टी करके एक हाथ गहरा गड्ढा खोदे और उसमें कुलियाको रखकर पुट देवे, जब अच्छे प्रकारसे पक जाय तब उस कुलियोंमेंसे रसको निकालकर चीतेके रसमें खरल करे, इसी प्रकार फिर गोली बनाकर पहिले कहे अनुसार कुलियामें रखकर दूसरी बार पुट देवे, जब पक जाय तब गोलियोंका चूर्ण करके शीशीमें भरके रख देवे तो शंखपोटलीरस होता है । ज्वररोग, आमातीसार, श्वास, खाँसी, कफ, पित्त, आमवातरोग, मंदाग्नि, ग्रहणी, अठारह प्रकारके प्रमेह, अजीर्ण और बलकी क्षीणता इनमें यह रस पाँच वल्ल (१५ रत्ती) प्रमाण सेवन करे, सर्व प्रकारके रोगोंमें ३२ मिरचोंके साथ घीमें मिलाकर इस रसको सेवन करे, परन्तु ज्वरमें मिर्च और घीके साथ नहीं खाय, इस रसपै शालि चावल, घी, दही, दूध आदि मधुर पदार्थ इनका पथ्य करे । इसपर तेल तीक्ष्ण, अमल और क्षार आदि पदार्थोंको दूरसे छोड देवे । इस विधिके अनुसार इस शंखपोटली रसको सेवन करनेसे उपरोक्त सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १३०–१४४ ॥

अथ विजयावलेहः ।

त्रैलोक्यविजयाजातीफले तुल्ये कलिङ्गकम् । गृहीत्वा द्विगुणं श्रेष्ठो लेहः सर्वातिसारनुत् ॥ १४५ ॥

एक भाग भाँग, एक भाग जायफल और दो भाग इन्द्रजौ इन सबको एकत्र पीसकर सहत मिलाकर अवलेह बनावे, यह अवलेह सब प्रकारके अतीसारोंको शमन करे है ॥ १४५ ॥

अथातिविषावलेहः ।

बिल्वमोचरसलोध्रधातकीपुष्पचूतफलबीजसंयुता । नाशयेदतिविषावलेहिका सिन्धुवेगमपि दुर्धरं ध्रुवम् ॥ १४६ ॥

बेलगिरी, मोचरस, लोध, धायके फूल, आमकी गुठलीकी भींग और अतीस इन सबको समान भाग लेकर अवलेह बनाकर सेवन करनेसे समुद्रके वेगकी समान भी वेगवाले दस्त रुक जाते हैं ॥ १४६ ॥

इति अतिसाराधिकारः समाप्तः ।

अथ ज्वरातिसाराधिकारः ।

अथ ज्वरातिसारनिदानम् ।

ज्वरातिसारयोरुक्तं निदानं यत्पृथक्पृथक् । तस्माज्ज्वरातिसारस्य निदानं नोदितं पुनः ॥ १ ॥

ज्वरका निदान और अतीसारका निदान पृथक् पृथक् कह आये हैं, इस कारण यहाँ ज्वरसहित अतीसारके निदानको दुबारा कहनेकी आवश्यकता नहीं है, ज्वरका निदान और अतीसारका निदान मिलाकर ज्वरातिसारका निदान होता है ॥ १ ॥

अथ ज्वरातिसारचिकित्सा ।

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत्पृथक्पृथक् । न तन्मिलितयोः कार्यमन्योन्यं वर्धयेद्यतः ॥ २ ॥ अयमभिप्रायः, ज्वरहरमनुलोमनं भवति अतिसारहरं स्तम्भनं भवति, अतः परस्परविरुद्धत्वात्पृथगुक्तं भेषजं मिलितयोर्न कार्यम् । अनुलोमनं ज्वरघ्नं ग्राहकमतिसार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृद्भवति । पृथगुक्तमौषधं तज्ज्वरातिसारे विरुद्धमन्योन्यम् ॥ ३ ॥ अतस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तचिकित्सितैः ॥ ४ ॥ लंघनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः । समुदीर्णदोषनिचयं तत्पाचयेत्तथा शमयेत् ॥ ५ ॥ लंघनमुभयोरुक्तं मिलिते कार्यं विशेषतस्तदनु । उत्पलषष्ठकसिद्धं लाजमण्डादिकं सकलम् ॥ ६ ॥

ज्वरमें और अतीसारमें जो पृथक् पृथक् औषधि कही हैं, वह औषधि ज्वरातीसारमें नहीं सेवन करनी चाहिये, क्योंकि ज्वरोक्त औषधि अतीसारको बढानेवाली हैं और अतिसारोक्त औषधि ज्वरको बढाने वाली हैं, भावार्थ यह है कि, ज्वरनाशक औषधि मलको अनुलोमन करती है और अतीसारनाशक औषधि मलरोधक हैं, इस कारण परस्पर विरुद्ध होनेसे ज्वरके लिये और अतिसारके लिये अलग अलग कही हुई औषधि मिले हुए ज्वर और अतीसारमें सेवन नहीं करनी चाहिये । कहा भी है कि "ज्वरको हरनेवाली औषधि अनुलोमन है और अतीसारको हरनेवाली औषधि ग्राही है, इस कारण इन दोनों रोगोंके लिये अलग २ कही हुई औषधि ज्वर और अतीसार दोनों मिले हुएमें-अन्योन्य विरुद्ध होती है।" इसलिये ज्वरसहित अतीसारमें विशेष कही हुई चिकित्सासे प्रतिकार करना चाहिये । बलवान् अतीसारवाले रोगीके लिये अतिरिक्त लंघनके अन्य कोई औषधि नहीं है लंघन—वृद्धिको प्राप्त हुए दोषोंको शमन करे है और पाचन भी करे है इसलिये मिले हुए ज्वर और अतीसारमें लंघन ही कराने चाहिये पश्चात् उत्पलकाथ और लाजमण्डादि काथ इत्यादि विशेष चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २–६ ॥

अथोत्पलषष्ठकक्काथः ।

पृष्टिपर्णीबलाबिल्वधनिकानागरोत्पलैः । ज्वरातिसारयोर्वापि पिबेत्साम्लं श्रृतं नरः ॥ ७ ॥ अत्र लाजमण्डाद्यपेक्षया वाशब्दः । अतीसारे पुरीषातिप्रवृत्त्या अम्लत्वं च दाडिमरसादिना कर्तव्यम् ।

पृश्निपर्णी (पिठिवन ,) खिरेटी, बेलगिरी, धनियां, सोंठ और कमल इनका क्काथ बनाकर खट्टा करके पिये तो ज्वर और अतिसार नष्ट होता है, अतीसारमें मलकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है, इस कारण इस क्काथको अनार आदिके रससे खट्टा करना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ कणादिक्काथः ।

कणाकरिकणालाजक्काथो मधुसितायुतः । पीतो ज्वरातिसारस्य तृष्णामाशु विनाशयेत् ॥ ८ ॥

पीपल, गजपीपल और खीलोंका क्काथ बनाकर सहत और शक्कर डालकर पिये तो ज्वरसहित अतीसारकी तृषा शान्त होती है ॥ ८ ॥

अथ नागरादिक्काथः ।

नागराऽतिविषामुस्ताऽमृताभूनिम्बवत्सकैः । क्काथः सर्वज्वरान्हन्ति चातिसारं सुदारुणम् ९

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, चिरायता और इन्द्रजौ इनका क्काथ सर्व प्रकारके ज्वरोंको और महादारुण अतीसारको नष्ट करे हैं ॥ ९ ॥

अथ वृहद्बुडूच्यादिक्काथः ।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वाह्ववालकैः । पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपर्पटैः ॥ १० ॥ पिबेत्कषायं सक्षौद्रं ज्वरातीसारनाशनम् । हृल्लासारुचितृड्दाहवमीनां च निवृत्तये ११ ॥

गिलोय, अतीस, धनियाँ, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, चिरायता, इन्द्रजौ, लाल चन्दन, खस और पित्तपापडा इनका क्काथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे ज्वरसहित अतीसार नष्ट होता है, तथा उबकाई, अरुचि, तृषा, दाह और वमन भी दूर होते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

अथोत्पलादिचूर्णम् ।

उत्पलं दाडिमत्वक्च पद्मकेशरमेव च । पीतं तण्डुलतोयेन ज्वरातीसारनाशनम् ॥ १२ ॥

कमल, अनारकी छाल और कमल केसर इनका चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे ज्वरातीसार नष्ट होता है ॥ १२ ॥

अथ बिल्वादिक्काथः ।

बिल्ववालकभूनिंबगुडूचीमुस्तवत्सकैः । कषायः पाचनः शोथज्वरातीसारनाशनः ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बेलगिरी, सुगन्धवाला, चिरायता, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ पाचन है तथा सूजन और ज्वरातीसारको दूर करे है ॥ १३ ॥

अथ नागरादिक्वाथः ।

नागराऽतिविषाबिल्वगुडूचीमुस्तवत्सकैः ।
कषायः पाचनः शोथज्वरातीसारनाशनः १४

सोंठ, अतीस, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ पाचन है तथा सूजन और ज्वर सहित अतीसारको हरे है ॥ १४ ॥

अथ दशमूलीक्वाथः ।

दशमूलीकषायेण विश्वामक्षसमां पिबेत् । ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ १५ ॥

दशमूलके क्वाथमें एक तोलाभर सोंठका चूर्ण डालकर ज्वर, अतीसार और सूजनयुक्त संग्रहणी रोगमें पीना चाहिये ॥ १५ ॥

इति ज्वरातिसाराधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ ग्रहणीरोगाधिकारः ।

अथ ग्रहणीसम्प्राप्तिः ।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः ।
भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमपि दूषयेत् ॥ १ ॥ अपिशब्दात् अजाताऽतिसारस्यापि ग्रहणीरोगः स्यात् ।

अतीसारके निवृत्त होनेपर मन्दाग्निवाले और अपथ्य (अहित) पदार्थोंके सेवन करनेवाले मनुष्योंके फिर अग्नि दूषित होकर ग्रहणीको भी दूषित करे है । मूलमें 'अपि' कहनेसे जाना जाता है कि, जिसके अतीसार नहीं हुआ हो उसको भी ग्रहणी रोग होता है ॥ १ ॥

अथ ग्रहणीस्वरूपम् ।

ग्रहणी अग्निधरा कला । यत आह चरके—
अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता ।
अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं त्यजति चाप्यधः ॥ २ ॥ षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्त्तिता । आमपक्वाशयान्तःस्था ग्रहणी साऽभिधीयते ॥ ३ ॥ ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीबलः । तस्मादग्नौ प्रदुष्टे तु ग्रहण्यपि विदुष्यति । तस्मात्कार्यः परीहारो ह्यतिसारे विरिक्तवत् ॥ ४ ॥ विरिक्तेनेव विरिक्तवत् ।

ग्रहणी अग्निधरा नामवाली कला है उसको चरकमें इस प्रकार कहा है कि—"अग्निके रहनेका जो स्थान है वह अन्नको ग्रहण करे है, इसी कारण उसको 'ग्रहणी' कहा जाता है । यह ग्रहणी—अपक्व अन्नको धारण करती है और पक्व अन्नको नीचे निकालती है ।" सुश्रुतमें भी कहा है कि—"आमाशय और पक्वाशयके बीचमें रहनेवाली जो छठी पित्तधरा नामवाली कला कही है उसको ग्रहणी कहते हैं, ग्रहणीका बल अग्नि है, इस लिये अग्नि भी ग्रहणी कही जाती है, अत एव अग्निके दूषित होनेसे ग्रहणी भी दूषित होती है ।" ॥ २–४ ॥

अथ ग्रहणीरोगसंख्यापूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यन्तमूर्च्छितैः ।
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ ५ ॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् । ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ६ ॥ अतीसारे द्रवधातुप्रवृत्तिः, ग्रहण्यां तु बद्धस्यापि मलस्य प्रवृत्तिरिति तयोर्भेदः ।

अत्यन्त दूषित हुए वात, पित्त, कफ और तीनों दोषोंसे दूषित हुई ग्रहणी खाये हुए अन्नादिकको वारंवार कच्चाही अथवा पक्का भी निकालती है, वह अन्नादिक पीडायुक्त दुर्गन्धसहित, बारंबार बँधा हुआ और बारंबार पतला मल गिरता है, उस रोगको आयुर्वेदके जाननेवाले विद्वान् ग्रहणी कहते हैं । अतीसारमें द्रव (पतली) धातुकी प्रवृत्ति होती है और ग्रहणीमें बँधा हुआ मल उतरता है, इतना ही अतीसार और संग्रहणीमें भेद है ॥ ५ ॥ ६ ॥

वातोत्पन्नग्रहणीनिदानं सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणं च ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतलभोजनैः । प्रमिताऽनशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ७ ॥ मारुतः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुपितो वह्निं सञ्छाद्य कुरुते गदम्। तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खरांगता ॥ ८ ॥ कण्ठास्यशोषैः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः। पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका ॥ ९॥ हृत्पीडा काश्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका। गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः सदनं तथा ॥ १० ॥ जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च। स वातगुल्महृद्रोग-प्लीहाशंकी च मानवः ॥ ११ ॥ चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत्। पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥ १२ ॥ प्रमितं परिमितम्, गदं ग्रहणीगदम्। शुक्त-पाकमम्लपाकम्।

चरपरे, कडवे और कसैले भोजन करनेसे, अत्यंत रूखे और शीतल भोजन करनेसे, विरुद्ध भोजन करनेसे, भोजन पर भोजन करनेसे, अधिक भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, उपवास करनेसे, अथवा अल्प (थोडा) भोजन करनेसे, अधिक मार्गके चलनेसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और अत्यंत मैथुन करनेसे कुपित हुए वातादि दोष अग्निको आच्छादित करके ग्रहणीरोगको उत्पन्न करे हैं। ऐसे रोगीका अन्न अत्यंत दुःखके साथ पचे और उसका पाक खट्टा हो, शरीरमें खरखरापन हो, कंठ और मुख सूखे, क्षुधा और तृषा लगे, अँधेरा आवे, कानोंमें शब्द हो, पसली, जंघा, वंक्षण और कंठमें पीडा हो, विषूचिका हो, अर्थात् दोनों द्वारसे कच्चे अन्नकी प्रवृत्ति होवे, हृदयमें पीडा हो, देहमें कृशता और दुर्बलता हो, विरसता, पेटमें कतरनीकी समान पीडा हो, सम्पूर्ण रसोंको खानेकी इच्छा हो, मनमें ग्लानि हो, भोजन किये हुए अन्नके जीर्ण होनेपर अफरा हो और भोजन करनेके पश्चात् सुख उत्पन्न हो, तथा इस वातग्रहणीवाले रोगीको वातगुल्म, हृदयरोग और प्लीहाकी आशंका हो, वातके द्वारा खाँसी और श्वासकी पीडा हो और बहुत देरमें अत्यंत दुःखसे पतला, सूखा, थोडा, कच्चा, शब्दयुक्त और झागोंदार मल उतरता है ॥ ७--१२ ॥

अथ पित्तजग्रहणीनिदानं सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणं च।

कटुतिक्तविदाह्यम्लक्षारादैः पित्तमुल्बणम्। आप्लावयेद्धंत्यनलं जलं तप्तमिवानलम् ॥ १३ ॥ सोऽजीर्णे पीतनीलाभं पीताभः सार्यते द्रवम्। अत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृषार्दितः ॥ ॥ १४ ॥ आप्लावयन्मज्जयत् ननु पित्तमग्नि-गुणयुक्तं तत्कथमग्निं हन्ति इत्याह-जलं तप्तमिवानलमिति यथा। अग्निगुणयुक्तमपि तप्तं जलं अनलं हन्ति तथा पित्तमपि हन्ति सार्यते, अत्र पित्तेनेति कर्तृपदमध्याहरणीयम्।

चरपरे, कडवे, दाहकारक, खट्टे और क्षारादि पदार्थोंके सेवन करनेसे बढा हुआ पित्त, जिस प्रकार गरम जल अग्निको बुझा देता है उसी प्रकार जठराग्निको भी नष्ट कर देता है इस प्रकार जिसकी जठराग्नि नष्ट हो गई है वह पीला पड जाता है और उसको अजीर्णसे नीला, पीला और पतला मल उतरता है। वह मनुष्य अत्यंत खट्टी डकारोंसे हृदय और गलेकी दाहसे अरुचिसे और तृषासे पीडित होता है। किसीको शंका होय कि--"पित्त तो आग्नेय गुणवाला है वह अग्निको किस प्रकार नष्ट कर सक्ता है?" तो उसका उत्तर यह है कि--"जिस प्रकार गरम जल अग्निके गुणोंवाला होनेपर भी अग्निको भिजोकर बुझा देता है।" उसी प्रकार पित्त अग्निके गुणोंवाला होनेपर भी जठराग्निको भिजोकर नष्ट कर देता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

कफोत्पन्नग्रहणीनिदानं सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणं च।

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिमैथुनात्। भुक्तमात्रस्य च स्वमाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः ॥ १५ ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्दिरोचकाः। आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपीनसाः ॥ १६ ॥ हृदयं मन्यते स्तब्धमुदरं स्तिमितं गुरु। दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणं ॥ १७ ॥ भिन्नामश्लेष्म-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संश्लिष्टगुरुवर्चःप्रवर्तनम् । अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके ॥ १८ ॥ भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्भुक्तेत्यत्र अध्यवसितादित्वात्कर्त्रर्थे क्तः । तेन भुक्तवतः सद्यः शयानादित्यर्थः । आस्योपदेहः मुखस्य कफेन लिप्तत्वम् । स्तिमितं विबद्धं निश्चलमिति यावत् । स्त्रीषु अहर्षणं रिरंसाया अभावः । भिन्नं स्फुटितम् । आमपक्वं श्लेष्मसंश्लिष्टम् तत एव गुरु वर्चः पुरीषं तस्य प्रवृत्तिः ।

भारी, अत्यंत चिकने और शीतल आदि भोजन करनेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे और भोजनपर भोजन करनेसे, तत्काल सो रहनेसे, कुपित हुआ कफ जठराग्निको नष्ट करता है, ऐसे रोगीका अन्न अत्यंत कठिनतासे और दुःखके साथ पचता है, उबकाई आवे, वमन, अरुचि हो, कफसे मुख चिपकासा रहे, मुखमें मीठापन, खाँसी आवे, वारंवार थूके, जुकाम हो, हृदय जकडा हो, पेट भारी और जड हो, डकार दुष्ट और मीठी आवे, ग्लानि हो, स्त्रीप्रसंगमें अनिच्छा हो, विष्ठा पतला, कच्चा, कफयुक्त और भारी निकले, शरीरके पुष्ट होनेपर भी निर्बलता हो और आलस्य हो ॥ १५–१८ ॥

अथ त्रिदोषोत्पन्नग्रहणीनिदानं सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे। त्रिदोषं निर्दिशेदेवं तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ १९ ॥

वातकी ग्रहणीमें, पित्तकी ग्रहणीमें और कफकी ग्रहणीमें जो निदान और जो लक्षण अलग अलग कहे हैं, यदि वह सब निदान और लक्षण होयँ तो उसको त्रिदोषज ग्रहणीरोग जानना उन सबका निदान और लक्षण पहिले कह चुके हैं ॥ १९ ॥

अथ ग्रहणीरोगभेदः संग्रहणी ।

द्रवं घनं सितं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत् । आमं बहु सुपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दवेदनम् ॥२०॥ पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं चापि विमुञ्चति । अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं भवेत् ॥ २१ ॥ दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं च गच्छति । दुर्विज्ञेया दुर्निवारा चिरकालानुबन्धिनी । सा भवेदामवातेन संग्रहाद्ग्रहणी मता ॥ २२ ॥ स्निग्धं स्नेहसदृशम् । दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं च गच्छतीति व्याधेरेव प्रभावः ।

पन्द्रह दिनमें, एक महीनेमें, दश दिनमें, अथवा नित्य पतला, गाढा, थोडा, चिकना, कमरकी पीडायुक्त, कच्चा, बहुत पिच्छिल, शब्दयुक्त और अल्पवेदना सहित मल उतरे, तथा आँतें बोलें, आलस्य हो, दुर्बलता हो और ग्लानि हो, इसको संग्रहणी रोग कहते हैं । यह रोग दिनमें कुपित होता है और रात्रिमें शांत होता है । यह दुर्विज्ञेय (कठिनतासे जानी जाय) और दुर्निवार तथा बहुत कालतक रहनेवाली आमवात संग्रहसे संग्रहणी होती है । इसका दिनमें कोप और रात्रिमें शांति होना यह व्याधिका प्रभाव जानना ॥ २०–२२ ॥

अथ ग्रहणीरोगभेदो घटीयन्त्रम् ।

प्रसुप्तिः पार्श्वयोः शूलं तथा जलघटीध्वनिः । तं वदन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ॥ २३ ॥ प्रसुप्तिः प्रकर्षेण शयनम् । तथा जलघटीध्वनिः अधोमुखीकृताया जलघट्या जलनिःसरणे यथा ध्वनिः तथा मलनिर्गमसमये भवति । यदा गदोऽयं देहं व्याप्नोति तदा तस्य जीवितं गच्छति ।

निद्रा अधिक आवे, पसलियोंमें शूल हो, जिस प्रकार रहटके घडेमेंसे जल निकलती समय शब्द होता है उसी प्रकार इसमें मल निकलनेके समय (घग् घग्) शब्द होता हो यह 'घटीयंत्र' नामसे प्रसिद्ध असाध्य ग्रहणी रोग जानना, जब यह रोग शरीरमें व्याप्त हो जाता है तब प्राण नष्ट होते हैं॥ २३॥

अथ सामान्यग्रहणीरोगचिकित्सा ।

ग्रहणीमाश्रितं रोगमजीर्णवदुपाचरेत् । लघुनैर्दीपनीयैश्च सदातीसारभेषजैः ॥ २४ ॥ दोषं सामं निरामं च विद्यादत्रातिसारवत् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत् ॥ २५ ॥ पेयादि पटु लघ्वन्नं पञ्चकोलादिभिर्युतम्। दीपनानि च तक्रं च ग्रहण्यां योजयेद्भिषक् ॥ २६ ॥ कपित्थबिल्वचाङ्गेरीतक्रदाडिमसाधिता। यवागूः पाचयत्यामं शकृत्संवर्तयत्यपि ॥ २७ ॥ संवर्तयति घनीकरोति।

ग्रहणीमें रहनेवाले रोगकी लंघनोंसे और अग्निको दीपन करनेवाली अतीसारकी औषधियोंसे अजीर्णकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। इस रोगमें दोषोंका सामपना और निरामता अतीसारकी समान जानना। और अतीसारमें कही हुई विधिसे आमको पचावे। वैद्य ग्रहणीरोगमें पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ) आदिसे संयुक्त हलका अन्न और पेयादि अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ और तक्र (मट्ठा) इनका प्रयोग करे। कैथ, बेलगिरी, चांगेरी (खट्टी नोनिया) तक्र (छांछ--मट्ठा) और अनारका रस इनके द्वारा पकाई हुई यवागू आमको पचावे है और मलको भी गाढा करे है ॥२४--२७॥

अथ गोदधिगुणाः।

गव्यं दध्युत्तमं बल्यं पाके स्वादु रुचिप्रदम्। पवित्रं दीपनं स्निग्धं पुष्टिकृत्पवनापहम्। उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम् ॥ २८ ॥

गायका दही--उत्तम, बलकारक, पाकमें मधुर, रुचिकारक, पवित्र, अग्निको दीपन करनेवाला, स्निग्ध, पुष्टिकारक, वातनाशक और सर्व प्रकारके दहियोंमें गायका दही अधिक गुणकारक है ॥ २८ ॥

अथ माहिषदधिगुणाः।

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत्। स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्वस्रदूषणम् ॥ २९ ॥

भैंसका दही--अत्यन्त चिकना, कफकारक, वातपित्तनाशक, स्वादुपाकी, अभिष्यन्दि, वृष्य, भारी और रुधिरको दूषित करे है ॥ २९ ॥

अथाजादधिगुणः।

आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रयापहम्। शस्यते श्वासकासार्शःक्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥ ३० ॥ उत्तमं ग्राहि ग्रहण्यामतिश्रेष्ठमित्यर्थः।

बकरीका दही--उत्तम, मलरोधक, हलका, त्रिदोषनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला, तथा श्वास, खाँसी, बवासीर, क्षय और कृशतामें हितकारी है। बकरीका दही श्रेष्ठ और ग्राही होनेके कारण ग्रहणीरोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ३० ॥

अथ तक्रभेदाः।

तक्रं तु घोलं मथितोदश्वित्तक्रप्रभेदतः। सुश्रुताद्यैर्मुनिश्रेष्ठैश्चतुर्द्धा परिकीर्तितम् ॥३१॥ ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम्। तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्स्यार्द्धवारिकम् ॥ ३२ ॥ वातपित्तहरं घोलं मथितं कफपित्तनुत्। उदश्वित्कफदं बल्यं श्रमघ्नं परमं मतम् ॥ ३३ ॥

सुश्रुत आदि मुनियोंने तक्रके चार भेद कहे हैं, तक्र, घोल, मथित और उदश्वित्, इन चारोंके बनानेकी रीति इस प्रकार समझना, जो मलाई युक्त विना जलके दही मथा गया होय उसको घोल कहते हैं। जो मलाई निकालकर विना जलके मथा गया होय उसको मथित कहते हैं। जिसमें चौथाई भाग जल डालकर मथा गया होय उसको तक्र कहते हैं। और जिसमें आधा जल डालकर मथा गया हो, उसको उदश्वित् कहते हैं। तहाँ घोल--वातपित्तनाशक है, मथित--कफ और पित्तको दूर करनेवाला है। और उदश्वित्--कफकारक है, तथा बलदायक, श्रमविनाशक और परम हितकारक है ॥ ३१--३३ ॥

अथ तक्रगुणाः।

तक्रं ग्राहि कषायाम्लं मधुरं दीपनं लघु। वीर्योष्णं बलदं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥ ३४ ॥ यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत्। ग्रहण्यादिमतां तक्रं पथ्यं संग्राहि लाघवात् ॥ ३५ ॥ वातघ्नमम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कं त्वविदाहि च। किञ्च स्वादुविपाकं च अन्ते पित्तप्रकोपनम्। कषायोष्णविकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम्॥३६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तक्र अर्थात् चौथाई भाग जल डालकर मथा हुआ मट्ठा—मलरोधक, कसैला, खट्टा, मधुर, अग्निको दीपन करनेवाला, हलका, उष्णवीर्य, बलकारक, वृष्य, तृप्तिकारक और वातविनाशक है । आठ प्रकारके जो दही कहे हैं उनके तक्रमें भी उनहींके अनुसार गुण जानने । तक्र—ग्रहणी आदि रोगवालोंको पथ्य (हित) है, हलका होनेके कारण मलरोधक है, अम्ल और सान्द्र होनेके कारण वातनाशक है । और ताजा अर्थात् तत्कालका मथा हुआ तक्र दाहकारक नहीं है, पाकमें मधुर है और अन्तमें पित्तको कुपित करे है । कसैला, उष्ण, विकाशी (संधियोंको शिथिल करनेवाला) और रूक्ष होनेके कारण कफको भी दूर करे है ॥ ३४–३६ ॥

निःसारितघृततक्रगुणाः ।

स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद्गुरु वृष्यं कफावहम् । अनुद्धृतघृतं सांद्रं गुरु पुष्टिबलप्रदम् ॥३७॥

जिसमेंसे सम्पूर्ण घी निकाल लिया हो ऐसा तक्र (मट्ठा) पथ्य और विशेषकरके हलका है । जिसमें थोडा घी निकाला हो ऐसा तक्र—भारी, वीर्यजनक, और कफकारक है । जिसमेंसे कुछ भी घी नहीं निकाला होय ऐसा तक्र—गाढा, भारी, पुष्टिकारी और बलवर्द्धक है ॥ ३७ ॥

अथ रोगविशेषे तक्रविशेषः ।

वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं पित्ते स्वाद्वम्लशर्करम् । पिबेत्तक्रं कफे चापि क्षारत्रिकटुसंयुतम् ॥ ३८ ॥ हिंगुजीरयुतं घोलं सैंधवेनावधूलितम् । ग्रहण्यर्शोऽतिसारघ्नं भवेद्वातहरं परम् । रोचनं पुष्टिदं वल्यं वस्तिशूलविनाशनम् ३९

वातरोगमें—खट्टे तक्रमें सेंधानिमक डालकर सेवन करना चाहिये । पित्तरोगमें—खट्टा और मीठा तक्र मिश्री मिलाकर पीना चाहिये । कफके रोगमें जवाखारादि और त्रिकुटेका चूर्ण तक्रमें डालकर पीना चाहिये । हींग, जीरा और सेंधानिमकमिश्रित घोल नामवाला तक्र—संग्रहणी, अतीसार और वातनाशक है, रुचिकारक, पुष्टिदायक, बलकारक और वस्तिकी पीडाको शमन करे है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ पक्वापक्वतक्रगुणाः ।

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च । पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव विशिष्यते ४०

अपक्व तक्र—(कच्ची छांछ) कोठेके कफको दूर करे है, और कंठमें कफको उत्पन्न करे है, इस लिये पीनस, श्वास और कासादि रोगोंमें पक्वतक्रही अर्थात् औटाई हुई छाँछही देनी चाहिये ॥ ४० ॥

अथ तक्रनिषेधः ।

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले । न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके ॥ ४१ ॥

तक्र—ग्रीष्मऋतुमें, क्षत (घावके) रोगमें, दुर्बलतामें, मूर्च्छामें, भ्रममें, दाह और रक्तपित्त रोगमें नहीं देना चाहिये ॥ ४१ ॥

अथ तक्रप्रशंसा ।

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः । यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ ४२ ॥

तक्रको सेवन करनेवाला मनुष्य कदापि रोगी नहीं होता और तक्रसे जलाये हुए रोग फिर कभी उत्पन्न नहीं होते, जिस प्रकार स्वर्गमें देवताओंको अमृत सुखकारक है उसी प्रकार पृथिवीमें मनुष्योंके लिये तक्र (छांछ) हितकारी है ॥ ४२ ॥

अथ षडूषणम् ।

मुद्गयूषं रसं तक्रं धान्यजीरकसंयुतम् । सैन्धवेनान्वितं दद्यात्षडूषणमितीरितम् ॥४३॥ रसं लघु ग्राहि मांसरसम् ।

मूंगका यूष हलका तथा दस्तको रोकनेवाला है, मांसका रस और धनिया, जीरा तथा सैंधानमक इन करके संयुक्त तक्रको षडूषण कहते हैं, यह षडूषण—ग्रहणी रोगमें हितकारी है ॥ ४३ ॥

अथ लाईचूर्णम् ।

कर्षं गन्धकमर्द्धपारदमुभे कुर्याच्छुभां कज्जलीं द्व्यक्षं त्र्यूषणतश्च पञ्चलवणं सार्क्षं च कर्षं पृथक् । भृष्टं हिंगु च जीरकद्वययुतं सर्वार्द्धभंगान्वितं खादेट्टंकमितं प्रवृत्तिगदवांस्तक्रेण बिल्वेन वा ॥ ४४ ॥

शुद्ध गंधक १ तोला और शुद्ध पारा आधा तोला लेकर दोनोंकी सुन्दर कज्जली बनावे, फिर उसमें त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) का चूर्ण ३ तोले, पांचों नोन डेढ (१॥) तोला, भुनी हींग और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोनों जीरोंका चूर्ण प्रत्येक एक एक तोला और सबसे आधी भाँग मिलावे, तक्रके साथ अथवा बेलके गूदेके साथ इस चूर्णको चौबीस (२४) रत्तीभर सेवन करे, यह संग्रहणीरोगमें अत्यंत हितकारी है ॥ ४४ ॥

अथ जातीफलादिचूर्णम् ।

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेशरैः। कर्पूरचन्दनतिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः ॥ ४५ ॥ तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः । शुण्ठीविडंगमरिचैः समभागं विचूर्णितैः ॥ ४६ ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि दद्याद्भंगां च तावतीम् । सर्वचूर्णसमां कृत्वा प्रदेया शुभ्रशर्करा ॥ ४७ ॥ कर्षमात्रमिदं खादेन्मधुना प्लावितं जनः । नाशयेद्ग्रहणीं श्वासं क्षयं कासमरोचकम् ॥ ४८ ॥

जायफल, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, कपूर, चन्दन, सफेद तिल, वंशलोचन, तगर, आमले, तालीसपत्र, पीपल, हरड, कलौंजी, चीता, सोंठ, वायविडंग और काली मिरच ये सब औषधि समान भाग लेवे और सबकी बराबर भाँग लेवे, सबका एकत्र बारीक चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलावे, इस चूर्णमेंसे प्रतिदिन एक तोलाभर लेकर सहतमें मिलाकर भक्षण करे तो ग्रहणी, खाँसी, क्षय, श्वास और अरुचि दूर होती है ॥ ४५--४८ ॥

अथ चित्रकादिवटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं क्षारो लवणपञ्चकम् । व्योषं हिंग्वजमोदा च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ४९ ॥ वटिका मातुलुंगस्य रसैर्वा दाडिमस्य वा । कृता विपाचयत्याममं दीपयत्याशु चालनम् ॥ ५० ॥ अजमोदा यवानिका ।

चीता, पीपलामूल, जवाखार, पांचों निमक, त्रिकुटा, भुनी हींग, अजमोद और चव्य इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे, इस चूर्णको बिजौरे नींबूके रसमें अथवा अनारके रसमें खरल करके गोली बना लेवे। यह गोली आमको पचाती है और जठराग्निको दीपन करती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ बिल्वकल्कः ।

श्रीफलशलाटुमज्जानागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः। ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥ ५१ ॥ श्रीफलशलाटु बिल्वस्य आमं फलम् गुडभागद्वयम् ।

कच्चे बेलका गूदा और सोंठका चूर्ण ये दोनों बराबर लेवे और इनमें गुड मिलाकर कल्क करे इसको सेवन करके इसपर तक्रके साथ भोजन करे, इससे अत्यंत उग्र संग्रहणी भी दूर हो जाती है ॥ ५१ ॥

अथ वार्ताकुगुटिका ।

चतुष्पलं सुधाकाण्डं त्रिफलालवणत्रयम् । वार्ताकोः कुडवं चार्कमूलाद्विल्वं तथाऽनलात् ॥ ५२ ॥ दग्ध्वा द्रवेण वार्ताकोर्गुटिका भोजनान्तरे । भुक्ताभुक्तं पचत्याशु नाशयेद्ग्रहणीगदम्। कासं श्वासं तथार्शांसि विषूचीं च हृदामयम् ॥ ५३ ॥

थूहरकी लकडी सोलह (१६) तोले, हरड, बहेडा, आमला, साँभर, सेंधानिमक, कालानिमक यह प्रत्येक भी सोलह सोलह तोले लेवे, बैंगन, आककी जड, बेलगिरी और चीता प्रत्येक एक एक कुडवपरिमाण लेवे, सबको एकत्र आगमें जला लेवे फिर महीन पीसकर बैंगनके रसमें गोली बना लेवे। भोजनके अंतमें इन गोलियोंको सेवन करनेसे भोजन तत्काल जीर्ण हो जाता है, तथा संग्रहणी, खाँसी, श्वास, बवासीर, विषूचिका और हृदयरोग नष्ट होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ मुस्तकादिचूर्णम् ।

मुस्तकातिविषाबिल्वकौटजं सूक्ष्मचूर्णितम् । मधुना च समालीढं ग्रहणीं सर्वजां जयेत् ॥ ५४ ॥ कौटज इन्द्रयवः ।

नागरमोथा, अतीस, बेलगिरी और इन्द्रजौ इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके सहत मिलाकर चाटे तो त्रिदोषजन्य संग्रहणी दूर होती है ॥ ५४ ॥

अथ सर्जरसचूर्णम् ।

श्वेतो वा यदि वा रक्तः सुपक्को ग्रहणीगदः । गुडेनाधिकसर्जेन भक्षितेनाशु नश्यति॥५५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक भाग गुडमें दो भाग रालका चूर्ण डालकर भक्षण करे तो सफेद अथवा लाल और पका हुआ संग्रहणी रोग तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥

अथाजादुग्धम् ।

बिल्वाब्दशक्रयववालकमोचसिद्धमाजं पयः पिबति यो दिवसत्रयं ना । सोऽतिप्रवृद्धचिरजं ग्रहणीविकारं सामं सशोणितमसाध्यमपि क्षिणोति ॥ ५६ ॥

बेलगिरी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सुगंधवाला और मोचरस इनको बकरीके दूधमें डालकर पकावे। फिर उस दूधको तीन दिनतक पिये तो अत्यंत बढी हुई, बहुत पुरानी, आम और रुधिरयुक्त तथा असाध्य संग्रहणी भी नष्ट हो जाती है ॥ ५६ ॥

अथ कल्याणगुडः ।

प्रस्थत्रयं त्वामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वार्द्धतुलां गुडस्य । चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषैः सकृष्णाहपुषाजमोदैः ॥ ५७ ॥ विडंगसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः । दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ५८ ॥ तं भक्षयेदक्षपलप्रमाणं ययेष्टचेष्टस्त्रिसुगन्धियुक्तम् । अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ५९ ॥ शाम्यन्ति चायं चिरमन्तरग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः । स्त्रीणां तु वन्ध्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रसिद्धः ॥ ६० ॥ तैले मनाक् त्रिवृद्भृष्टत्रिफलायाः पलत्रयम् । सिद्धे निधेयमत्रैव गुडे कल्याणपूर्वके ॥ ६१ ॥

आमलोंका रस तीन (३) प्रस्थ, उत्तम शुद्ध गुड दो सौ (२००) तोले, पीपलामूल, जीरा, चव्य, सोंठ, मिरच, पीपल, कालाजीरा, हाऊबेर, अजमोद, वायविडंग, सेंधा निमक, त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला), अजवायन, पाढ, चीता और धनियाँ प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले; निसोत (तिधार) का चूर्ण ८ पल और तिलका तेल ८ पल लेकर इस चूर्णको आँवलेके रसमें मिलाकर ऊपर लिखी हुई औषधियोंका चूर्ण उसमें डालकर विधिपूर्वक पाक बना लेवे । प्रतिदिन इसमेंसे चार तोले लेकर कुछ त्रिसुगंधि (दालचीनी, इलायची, तेजपात) का चूर्ण मिलाकर भक्षण करे । इसको सेवन करनेसे—सर्व प्रकारकी ग्रहणी, श्वास, खाँसी, स्वरभेद और सूजन दूर होती है । तथा बहुत दिनोंकी नष्ट हुई अग्नि फिरसे दीपन होती है और पुरुषत्व बढता है । यह कल्याणगुड—स्त्रियोंके वंध्यापनको नष्ट करे है । इस कल्याण गुडमें निसोतका चूर्ण और त्रिफलेका चूर्ण तेलमें भूनकर डालना चाहिये ॥ ५७–६१ ॥

अथ महाकल्याणगुडः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली । धान्यकं च विडङ्गानि यवानी मरिचानि च ॥ ६२ ॥ त्रिलफा चाऽजमोदा च नीलिनी जीरकस्तथा । सैन्धवं रोमकं चापि सामुद्रं रुचकं बिडम् ॥ ६३ ॥ आरग्वधश्च त्वक्पत्रं सूक्ष्मैला चोपकुञ्चिका । शुण्ठी शक्रयवाश्चैव प्रत्येकं कर्षसम्मिताः ॥ ६४ ॥ मृद्वीकायाः पलान्यत्र चत्वारि क्वथितानि हि । त्रिवृतायाः पलान्यष्टौ गुडस्यार्द्धतुलां तथा ॥ ६५ ॥ तिलतैलपलान्यष्टावामलक्या रसस्य तु । प्रस्थत्रयमिदं सर्वं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६६ ॥ औदुम्बरं चामलकं बदरं च यथाबलम् । तावन्मात्रमिदं खादेद्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥ ६७ ॥ निखिलान्ग्रहणीरोगान्प्रमेहांश्चैव विंशतिम् । उरोघातं प्रतिश्यायं दौर्बल्यं वह्निसङ्क्षयम् ॥ ६८ ॥ ज्वरानपि हरेत्सर्वान्कुर्यात्कान्तिं मतिं बलम् । पाण्डुरोगाञ्श्वाद्धन्ति रक्तपित्तं च विड्ग्रहम् ॥ ६९ ॥ धातुक्षीणो वयक्षीणः स्त्रीषु क्षीणः क्षयी च यः । तेभ्यो हितश्च वन्ध्यायै महाकल्याणको गुडः ॥ ७० ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनियाँ, वायविडंग, अजवायन, काली मिरच, हरड, बहेडा, आमला, अजमोद, नील, जीरा, सेंधा निमक, रेहगवाँ निमक, समुद्रनोन, काला नोन, विरिया संचरनोन, अमलतास, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कलौंजी, सोंठ और इन्द्रजौ प्रत्येक एक एक तोला लेवे, दाख सोलह (१६) तोले, निसोत ८ पल, गुड पचास (५०) पल, तिलका तेल बत्तीस तोले और आमलोंका रस तीन प्रस्थ लेवे, सबको एकत्र मिलाकर मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावे । अग्निका बलाबल विचारकर प्रतिदिन इसमेंसे गूलरके फलकी समान, आमलेकी समान, अथवा बेरकी समान भक्षण करे । यह महाकल्याण गुड—सब प्रकारके ग्रहणीरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, उरोघात, प्रतिश्याय (जुकाम), दुर्बलता, मन्दाग्नि और सर्व प्रकारके ज्वरोंको दूर करे है । तथा कान्ति, बुद्धि और बलको बढावे है । पाण्डुरोग, रक्तपित्त, मलरोध, धातुक्षीण, अवस्थाक्षीण, स्त्रीसें क्षीण, क्षयसे क्षीण और वंध्या स्त्री इन सबको यह गुड अत्यंत हितकारी है ॥ ६२–७० ॥

अथ कूष्माण्डकल्याणगुडः ।

कूष्माण्डानां सुपक्वानां स्विन्नानां निष्कुलत्वचाम् । सर्पिःप्रस्थं पलशतं ताम्रपात्रे शनैः पचेत् ॥ ७१ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली । धान्यकानि विडङ्गानि नागरं मरिचानि च ॥ ७२ ॥ त्रिफला चाजमोदा च कलिङ्गाजाजिसैन्धवम् । एकैकस्य पलं चैकं त्रिवृतोऽष्टौ पलानि च ॥ ७३ ॥ तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडात्पञ्चाशदेव तु । आमलक्या रसस्यात्र प्रस्थत्रयमुदीरितम् ॥ ७४ ॥ तावत्पाकं प्रकुर्वीत मृदुना वह्निना भिषक् । यावदर्घ्याः प्रलेपः स्यात्तदेनमवतारयेत् ॥ ७५ ॥ औदुम्बरं चामलकं बादरं वा यथाबलम् । तावन्मात्रमिदं खादेद्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥ ७६ ॥ अनेनैव विधानेन प्रयुक्तस्य दिनेदिन । निहन्ति ग्रहणीरोगान्कुष्ठानर्शोभगंदरान् ॥ ७७ ॥ ज्वरमानाहहृद्रोगं गुल्मोदरविषूचिकाः । कामलां पाण्डुरोगं च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ ७७ ॥ वातशोणितवीसर्पदद्रुयक्ष्महलीमकान् । वातपित्तकफान्सर्वान्दुष्टाञ्छुद्धान्समाचरेत् ॥ ७९ ॥ व्याधिक्षीणा वयःक्षीणा स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः । तेभ्यो हितो गुडोऽयं स्याद्वन्ध्यानामपि पुत्रदः । वृष्यो बल्यो बृंहणं च वयसः स्थापनं तथा ॥८०॥ बिल्वतैलं । अतिसाराधिकारलिखितं बिल्वतैलं चात्र हितम् ।

अच्छे प्रकारसे पका हुआ पेठा लेकर फिर उसको छीलकर टुकडे करके सौ (१००) पल लेकर तीन (३) प्रस्थ घीमें ताँबेके बासनमें मंद मंद अग्निसे पकावे, पश्चात् पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनियाँ, वायविडंग, सोंठ, काली मिरच, हरड, बहेडा, आमला, अजमोद, इन्द्रजौ, जीरा और सेंधानोन प्रत्येक चार चार तोले, निसोत बत्तीस (३२) तोलें, तिलका तेल ३२ तोले, गुड दो सौ (२००) तोले और आमलोंका स्वरस ३ प्रस्थ लेवे, सबको मिलाकर यथाविधिसे गुडको पकावे, जबतक करछीसे नहीं लगे तबतक मंद मंद अग्निसे पकाता जाय फिर उतार लेवे । प्रतिदिन इसमेंसे अग्निका बलाबल विचार कर गूलरकी समान, आमलेकी समान अथवा बेरकी समान खाय । यह कूष्मांडकल्याणगुड—सर्व प्रकारके ग्रहणीरोग, कोढ, बवासीर, भगन्दर, ज्वर, आनाह, हृदयरोग, गुल्म, उदररोग, विषूचिका, कामला, पाण्डुरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, वातरक्त, विसर्प, दद्रु, राजयक्ष्मा, हलीमक, वातपित्त और समस्त कफके रोगोंको दूर करे है । जो मनुष्य रोगोंसे क्षीण हो गये हैं, जो आयुसे क्षीण हो गये हैं और जो मनुष्य अत्यंत स्त्रीप्रसंग करनेसे क्षीण हो गये हैं उनके लिये यह गुड—अत्यंत हितकारी है, वंध्या स्त्रियोंको पुत्र देनेवाला है, वीर्यजनक, बलकारक, पुष्टिकारक और अवस्थाको स्थापन करनेवाला है । अतीसारके अधिकारमें जो बिल्व तैल कहा है वह भी इस संग्रहणीरोगमें हितकारी है ॥ ७१–८० ॥

इति संग्रहणीरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

इति श्रीभावप्रकाशे मध्यमखण्डे भाषाटीकायां प्रथमो भागः सम्पूर्णः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीवेङ्कटेशाय नमः।

अथ भावप्रकाशः।

मध्यमखण्ड-द्वितीयो भागः २.

भाषाटीकासमेतः।

अथ अर्शोऽधिकारः।

अथार्शःसन्निकृष्टनिदानम्।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये॥ १॥

केचिद्रुधिरस्यापि दोषत्वं मन्यन्ते, तन्मतमाश्रित्य आह—शोणितादिति। सहजानि शरीरे सहजातानि। संख्यां चाह—षट्प्रकाराणीति। गुदवलित्रये सार्द्धचतुरंगुलं गुदस्य मानम्। तस्य अवयवभूतास्तिस्रो वलयः। शङ्खावर्तनिभाः उपर्युपरि सन्ति। तासां नामानि प्रवाहणी विसर्जनी संवरणी चेति। तत्र गुदोष्ठोऽर्द्धांगुलमानस्तदूर्द्ध्वमंगुलमाना प्रथमा वलिः। सार्द्धैकांगुलमाना द्वितीया तृतीया च तावती। अर्द्धांगुलप्रमाणेन गुदोष्ठं परिचक्षते। गुदोष्ठादंगुलं चैकं प्रथमां तु वलिं विदुः। सार्द्धैकांगुलमानेन पृथगन्ये प्रकीर्तिते॥ २॥

गुदाकी तीन वलियों (आटों) में वातसे, पित्तसे, कफसे, त्रिदोषसे, रुधिरसे और स्वाभाविक ऐसे छः प्रकारकी बवासीर उत्पन्न होती है। कितनेक आचार्य रुधिरको भी दोष मानते हैं, इसलिये उनके मतको लेकर रुधिरकी भी जाननी। स्वाभाविक अर्थात् शरीरके संग उत्पन्न हुईको कहते हैं। इस रीतिसे छः प्रकारकी बवासीर होती है, ये संख्या समझनी। गुदाका प्रमाण साढे चार (४॥) अंगुलका है, उसके अवयवरूप शंखावर्तकी आँटीके समान तीन वलि एकके ऊपर एक है। उनमें पहिली वलिका नाम प्रवाहणी (जो मलको नीचे उतारती है), दूसरी वलिका नाम विसर्जनी (जो मलको बाहर निकालती है) और तीसरी वलिका नाम संवरणी (जो गुदाको यथावत् बना देती है) कहते हैं। गुदाका ओंठ जो आधे अंगुलका है उसके ऊपर एक अंगुलके प्रमाण पहिली वलि है, डेढ अंगुलके प्रमाण दूसरी वलि है और तीसरी वलि भी डेढ अंगुलके प्रमाणही है। कहा भी है कि—"गुदाका ओंठ आधे अंगुलका है और उस ओंठके ऊपर एक अंगुलकी पहिली वलि है, उसके ऊपर डेढ अंगुलकी दूसरी वलि है और उसके ऊपर डेढ अंगुलकी तीसरी वालि है।" ॥ २॥

अथ वातार्शोविप्रकृष्टनिदानम्।

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च।
प्रमिताल्पशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनम्॥ ३॥
लंघनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च।
शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसां मतः॥ ४॥

प्रमितं परिमितं, तीक्ष्णमिति मद्यविशेषणम्। पिष्टादिमृदुमद्यस्य वातशमकत्वात्। आतपस्तूष्णवीर्योद्भूतरौक्ष्याद्वातप्रकोपे हेतुः, वातार्शसाम्। ननु अर्शांसि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वाणि त्रिदोषजानि यत आह–पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रये । सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ५ ॥ तथा कथं वातार्शसामिति ? उच्यते । तत्तदाधिक्याद्व्यपदेशभेद इति न दोषः । अत एव अग्रे वक्ष्यते वातोल्वणानामिति । तथा च चरकः–अर्शांसि नाम जायन्ते नासान्निपतितैस्त्रिभिः । दोषैर्दोषविशेषात्तु विशेषः कथ्यतेऽर्शसाम् ॥ ६ ॥ इति ।

कसैले, चरपरे, केडवे, रूखे, शीतल और हलके ऐसे भोजन करनेसे, बहुत थोडा भोजन करनेसे, तीक्ष्ण मदिरा पीनेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, लंघन करनेसे, शीतदेश (हिमालय, मानससरोवर, काश्मीरादि) और शीतकाल (हेमन्त शिशिरादि) के होनेसे, दंड कसरत करनेसे, शोक करनेसे, अत्यंत वायु और धूपको सेवन करनेसे वातकी बवासीर उत्पन्न होती है। (जौ आदिके चूनकी बनाई हुई मृदु मद्य तो वायुको शांत करनेवाली है, इस कारण तीक्ष्ण मद्य शराब पीनेसे वातकी बवासीर प्रगट होती है। धूपादिका उष्ण वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण रूक्षपनसे वातज अर्शका निदान होता है)। शंका–'गुदाकी तीन वलियोंमें पाँचों प्रकारकी वायु, पित्त और कफ इन तीनोंके कुपित होनेसे बवासीर उत्पन्न होती है, ऐसा कहा है, ये प्राचीन ग्रंथोंके वचन हैं, अत एव सब प्रकारकी बवासीर तीनों दोषोंसे उत्पन्न होती है, ऐसा सिद्ध होता है, फिर वातज बवासीर, पित्तकी बवासीर और कफकी बवासीर अलग अलग क्यों कही ? समाधान–यद्यपि अर्श (बवासीर) तीनों दोषोंके प्रकोपसे होती है, तथापि जिस अर्शमें जिस दोषकी अधिकता हो वह अर्श उसी दोषसम्बन्धी जाना जायगा, इसलिये आगे वायुसंबंधी अर्शको 'वातोल्वण' कहेंगे, चरकमें भी कहा है कि–" जो बवासीर तीनों दोषोंके सन्निपातसे होती है तो भी उसमें दोषकी अधिकतासे वात पित्त आदिके साथ अर्शका नाम कहा जाता है। " ॥ ३–६ ॥

अथ पित्तार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

कटम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपप्रभाः । देशकालावाशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ७ ॥ विदाहि तीक्ष्णमुष्णं च सर्वं पानान्नभोजनम् । पित्तोल्वणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ ८ ॥ उष्णद्रवस्य स्पर्शनादि बोद्धव्यम् । उष्णपानभोजनस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात् । अग्न्यातपप्रभा अग्न्यातपयोः प्रभा तेजः अथ वा अग्न्यातपतद्द्रव्यस्य तेजः दीप्तिः प्रभा । अशिशिरो देशो मरुच्छरद्ग्रीष्मश्च कालः । क्रोधः कोपः । असूयनं परसम्पत्तौ द्वेषः । प्रकोपे उत्पत्तौ ।

चरपरे, खट्टे और खारे पदार्थोंको सेवन करनेसे, उष्ण पदार्थोंका स्पर्शादि करनेसे, कसरत करनेसे, अग्नि और सूर्यके आतपसे, उष्णदेश और उष्ण कालके होनेसे, क्रोध करनेसे, मदिराको पीनेसे, पराई सम्पदाको देखकर जलनेसे और सर्वप्रकारके दाहकारक तीक्ष्ण और उष्ण अन्नपानोंके सेवन करनेसे पित्तोल्वण बवासीर उत्पन्न होती है। मरुदेश (निर्जलदेश, मारवाड) को उष्ण देश जानना, शरद् और ग्रीष्म इन दो ऋतुओंको उष्ण काल कहते हैं ॥७॥८ ॥

अथ कफार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च । अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः ॥ ९ ॥ प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकालावचिन्तनम् । श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ १० ॥

मधुर, चिकने, शीतल, खारी, खट्टे और भारी ऐसे पदार्थोंके भोजन करनेसे, कसरत नहीं करनेसे, दिनमें सोनेसे, सुखपूर्वक नित्य सेज, गद्दी, तकिया आदिपै बैठे रहनेसे, या सोते रहनेसे, पुरवाई पवनको सेवन करनेसे, शीतदेशके निवाससे, शीतकालके सहनेसे और चिंता नहीं करनेसे, कफसंबंधी बवासीर उत्पन्न होती है ॥ ९ ॥ १० ॥

त्रिदोषजार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

हेतुर्लक्षणसंसर्गाद्द्व्याद्वन्द्वोल्वणानि च । सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणं समम् ॥ ११ ॥ जनकत्वेन त्रयो दोषाः येषां तानि त्रिदो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षजानि । अर्शसां सर्वो हेतुः पृथग्वातपित्तकफार्शोहेतुः । त्रिदोषार्शोलक्षणं श्वासरुजाविबन्धैः सहजार्शोभिः समम् । ननु त्रिदोषाणामिति विशेषणं व्यर्थम् । यतः सर्व एव व्याधयस्त्रिदोषजाः । द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः । एकस्तु कुपितो दोष इतरानपि कोपयेत् ॥ १२ ॥ इति । युक्तिमप्याह—स्वकारणाद् वृद्धो वायुः शैत्यात्कफं द्रवत्वात्पित्तं वर्धयते इति । उच्यते । यत्र स्वस्वकारणात्त्रयो दोषाः कुप्यन्ति तत्र त्रिदोषजव्यपदेश इति न दोषः ।

जिसमें दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलते हों उसको द्वन्द्वज बवासीर कहते हैं । अलग अलग वातादि दोषसम्बन्धी बवासीरके जो कारण और लक्षण होते हैं वह सब जिसमें हों उसको सन्निपातकी बवासीर कहते हैं और उसमें स्वाभाविक बवासीरके श्वास मलरोध आदि लक्षण भी होते हैं । शंका--बवासीरको 'त्रिदोषज' यह जो विशेषण दिया है सो व्यर्थ है, क्योंकि सम्पूर्ण व्याधि तीनों दोषोंसे प्रगट होती है । कहा है कि--'जैसे कोई द्रव्य एक रसवाला नहीं है' उसी प्रकार कोई रोग भी एक दोषसे उत्पन्न नहीं होता है, कारण यह है कि--कोपको प्राप्त हुआ कोई एक दोष दूसरे दोषको भी कुपित करे है, इस विषयमें युक्ति भी कही है कि--"अपने कारणोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु शीतलतासे कफको और द्रवपनसे पित्तको बढाती है ।" इस युक्तिसे प्रकोप हुए एक दोषसे दूसरे दोषका कुपित होना सम्भव है। समाधान--जिस रोगमें तीनों दोष एक दूसरेसे नहीं किन्तु अपने अपने कारणोंसे अलग अलग कुपित हुए हों तो उसी रोगको तीनों दोषोंसे कुपित हुआ कहा जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथार्शःपूर्वरूपम् ।

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च । कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ १३ ॥ ग्रहणीदोषपार्श्वार्तिराशंका चोदरस्य च । पूर्वरूपं विनिर्दिष्टमर्शसामभिवृद्धये १४ ॥

पेटमें अन्नकी विष्ठा होकर नहीं निकलना, दुर्बलता, कोखमें अफरा, कृशता, डकारोंकी अधिकता, जांघोंमें पीडा, मल थोडा उतरे, ग्रहणी और पार्श्वशूल, तथा उदररोगकी आशंका यह बवासीरके पूर्वरूप हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथार्शःसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् । मांसांकुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः ॥ १५ ॥ त्वङ्मांसपदेन त्वङ्मांसमाश्रितं रक्तमपि गृह्यते किञ्चित्साधारणरक्तस्रावणोपदेशात् । आदिशब्देन नासानेत्रनाभिमेढ्रादिषु अपि कुर्वन्ति ।

दोष त्वचा, मांस और मेदको दूषित करके गुदा, नासिका, नेत्र, नाभि और लिंग इत्यादि स्थानोंमें अनेक प्रकारके पूर्णाकारवाले मांसके अँकुरोंको उत्पन्न करते हैं उन अंकुरोंको अर्श कहते हैं । 'त्वचाको और मांसको' इन वचनोंसे त्वचामें और मांसमें रहनेवाले रुधिरका भी ग्रहण होता है अतएव दोष रुधिरको भी दूषित करके बवासीरको उत्पन्न करते हैं ऐसा जानना, क्योंकि--बवासीरकी पीडामें कुछ साधारण रीतिसे रुधिरस्राव भी कहा है ॥ १५ ॥

अथ वातार्शोलक्षणम् ।

गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः । म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषा खराः । मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥ १६ ॥ बिंबीकर्कन्धुखर्जूरककोंटीफलसन्निभाः । केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ॥ १७ ॥ शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः । क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्रोगारोचकप्रदाः ॥ १८ ॥ कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः । तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ १९ ॥ रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते । कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते । गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च ॥ २० ॥ बह्वनिलाः वातोल्बणाः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुदांकुरा अर्शांसि । चिमिचिमान्विताः चिमिचिमा व्यथाविशेषः चडचडा इति लोके तदन्विताः । श्यावारुणाः श्यावा धूम्रवर्णाः, अरुणवर्णा वा। स्तब्धाः कठिनाः विशदाः पिच्छलाः परुषाः गोजिह्वावत्खरस्पर्शाः। कर्कशाः खराः कर्कोटीफलवत्सूक्ष्मानेककंटकचिताः बिम्ब्यादिफलसन्निभाः । आवृत्त्या अत्र विकल्पबोधकं वक्ष्यमाणं केचित्केचिदिति पदं प्रति सम्बन्धनीयम् । कदम्बपुष्पाभाः स्थिरानेकसूक्ष्माशिखराः । सिद्धार्थकोपमाः पीतसूक्ष्मपिटकाचिताः तैरार्त इत्यर्शोभिः पीडितः । तैरार्त्तो विबद्धमुपवेश्यत इति आर्तस्य प्रयोज्यकर्तुः कर्मता आर्षत्वात् ग्रथितं मलगुटिकाग्रन्थितविड्वर्तिरूपम् । पिच्छा पिच्छिलो द्रवभागः । बद्धं संहतम् विट्शब्दो नपुंसकेऽप्यस्ति । उपवेश्यते त्याज्यते । तत एव वातार्शस एव गुल्मादीनां सम्भवः। अष्ठीला नाभेरधोभागे पाषाणपिण्डिकावद्वातव्याधिविशेषः ।

वातकी उल्वणतावाली बवासीरके अंकुर (मस्से) सूखे, चिमचिमानेवाले, कुम्हलायेसे, धुएँके रंगके या लाल रंगके, कठिन, विशद, कठोर, खरखरे, आपसमें बराबर न हों, टेढे, तीक्ष्ण, फटेमुखवाले, कन्दूरी, बेर, खजूर और ककोडेके फलकी समान हों, एवं मस्तकमें, पसलियोंमें, कंधेमें, कमरमें, जांघ और जांघकी संधियोंमें अत्यंत पीडा होती हो, छींक, डकार, मलबंध, छातीमें पीडा, अरुचि, खाँसी, श्वास, अग्निकी विषमता, कानोंमें शब्द और भ्रम होता है। इस अर्शरोगसे पीडित मनुष्योंका मल गांठदार, थोडा थोडा, शब्दसहित, प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त, पीडा सहित, झागों संयुक्त और पतला तथा बँधा हुआसा उतरता है। त्वचा, नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र और मुख ये सब काले हो जाते हैं, गुल्म (वायगोला), प्लीहा, उदररोग और अष्ठीला (नाभीके नीचे लम्बे पत्थरकी समान एक वातसम्बन्धी रोग होता है उसको अष्ठीला कहते हैं) ये सब लक्षण होते हैं॥ १६--२० ॥

अथ पित्ताशोंलक्षणम् ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतसितप्रभाः । तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥ २१ ॥ शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकोवक्त्रसन्निभाः । दाहपाकज्वरस्वेदतृष्णामूर्च्छारतिप्रदाः ॥ २२ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः । यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्मुखादयः ॥ २३ ॥ तनु अघनम् । श्लथा लम्बिनः सन्निभा आकृत्या । पाको गुदस्य । सोष्माणः उष्णस्पर्शाः हरिच्छाकवर्णम् । पीतं हरितालवर्णम् । हारिद्रं हरिद्रावर्णम् । आदिशब्दान्मलमूत्रपुरीषाणां ग्रहणम् ।

पित्तोल्वण बवासीरमें गुदाके अंकुर नीलमुखवाले, लाल, पीले और काले होते हैं, उनमेंसे पतला रुधिर टपकता रहे, दुर्गन्ध आवे, बारीक, मृदु, लटकते हों, कोई तोतेकी जीभकी समान, कोई कलेजेके टुकडेकी समान, कोई जोंकके मुखकी समान हों, इस बवासीरमें दाह, गुदाका पकना, ज्वर, पसीनेका आना, तृषा, मूर्च्छा और बेकली होवे, इसका स्पर्श गरम हो, मल पतला, नीला, गरम, पीला, लाल और आमसंयुक्त हो, जौके मध्यभागकी समान हो, इसमें त्वचा (चमडी) और नखादि शाककी समान हरितवर्ण, हरतालकी समान और हलदीकी समान रंगवाले होते हैं ॥ २१--२३ ॥

अथ पित्तोत्तररुधिरार्शोलक्षणम् ।

रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः । वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ॥ २४ ॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः । स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ २५ ॥ भेकाभः पीड्यते दुःखै शोणितक्षयसम्भवैः । हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥ २६ ॥ विट् श्यावं कठिनं रूक्षमधोवार्युन वर्तते । तनु चारुणवर्णं च फेनिलं वासृगर्शसाम् ॥२७॥ कट्यूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि वाधिकम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ॥ २८ ॥ शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम् । यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम् ॥ २९ ॥ गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् । श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ ३० ॥ गुदे कीलाः अर्शांसि । पित्ताकृतिसमन्विताः पित्तार्शोलक्षणयुक्ताः । आकारेण च वटप्ररोहसदृशाः । २६ श्लोके दुःखैर्रोगैः त्वक्पारुष्याम्बुशीतप्रार्थनादिभिः कलुषेन्द्रियः व्याकुलसर्वेन्द्रियः । असृग्दर्शसां रक्तार्शसाम् । २७ श्लोके तत्र रक्तार्शसि अनुबन्धः उल्वणम् । रूक्षं रूक्षयतीति रूक्षणम् रूक्षद्रव्यम् । पित्तोल्वणस्य तु लक्षणम्—"रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ।" इत्यादिनैवोक्तं रक्तपित्तयोः समानलिङ्गत्वात् ।

रक्तोल्वण बवासीरके अंकुर पित्तकी बवासीरके आकृतिवाले होते हैं, बडके अंकुरकी समान, गुंजाकी समान, मूँगेकी समान वह कडे मलके आनेसे दबकर दूषित और गरम रुधिरको छोडते हैं। रक्तके अधिकतर निकलनेसे बवासीरवाला रोगी मेंडककी समान पीला पड जाता है, त्वचा कठोर हो जाती है, जलकी प्रार्थना और शीतकी इच्छा आदि दुःखोंसे पीडित हो जाता है। उस मनुष्यका वर्ण, बल और उत्साह हीन हो जाता है। ओजक्षय हो जाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियें व्याकुल हो जाती हैं, विष्ठा काली कठिन और रूक्ष उतरती है, अधोवायुका अवरोध होता है, इसमें रुधिर पतला, लाल और झागोंदार निकलता है। जो रुधिरकी बवासीर रूक्ष कारणोंसे उत्पन्न हुई हो, तथा कमर, जांघ और गुदामें शूल होय और अत्यन्त निर्बलता होय तो रुधिरमें वायुका अनुबन्ध होता है जिस रुधिरकी बवासीरमें विष्ठा (मल) शिथिल, सुफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल हो, रुधिर गाढा, तन्तुयुक्त, पाण्डुवर्ण और चिकना हो, गुदा चिकनी और स्तब्ध हो, भारी और स्निग्ध कारणोंसे उत्पन्न हुई हो तो रुधिरमें कफका अनुबन्ध जानना। रक्तानुबन्धी रुधिरकी बवासीरके लक्षण तो पित्तकी बवासीरकेही समान होते हैं सो पहिले कहही चुके हैं, क्योंकि पित्त और रुधिरके लक्षण समान हैं, इस कारण दुबारा कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २४--३० ॥

अथ कफोल्वणार्शोलक्षणम् ।

श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः । उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ ३१ ॥ पिच्छिलाः स्तिमिता श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः । करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ ३२ ॥ वङ्क्षणानाहिनः पायुवस्तिनाभिविकर्षिणः । सकासश्वासहल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ ३३ ॥ मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः । क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ ३४ ॥ वसाभाः सकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः । न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ ३५ ॥ उत्सन्नाः उन्नताः । उपचिताः स्थूलाः । स्निग्धाः स्नेहाभ्यक्ताः । स्थिरा निश्चलाः । पिच्छिलाः कफोल्वणत्वात् । स्तिमिताः आर्द्रचर्मावगुण्ठिता इव । श्लक्ष्णाः मणिवन्मसृणाः । करीरो वंशांकुरः । पनसास्थिगोस्तनाः तदाकृतयः वंक्षणानाहिनः वङ्क्षणयोरानाहकारिणः पार्श्वादिषु आकर्षणवत्पीडाकारिणः । कृच्छ्रं मूत्रकृच्छ्रम् । शिरोजाड्यं शिरोभागे शीताक्रान्तमिव । क्लैब्यं स्त्रीषु अनिच्छा । अत्र छर्दिशब्दः सान्त आर्षत्वात् । आमप्रायकविकारदाः आमबहुला व्याधयोऽतीसारग्रहण्यादयस्तान् ददति ।

कफकी बवासीरमें गुदाके अंकुर बहुत गहरी जडवाले, घन, अल्प पीडायुक्त, सफेद, ऊंचे, मोटे, चिकने, स्तब्ध, गोल, भारी, कठिन, पिच्छिल, गीले चमडेसे लिपटे हुए ऐसे, मणिकी समान चिकने, खुजलीवाले और स्पर्शमें प्रिय हों, करील, कटहर और गायके थनकी समान हों, तथा वंक्षणस्थानमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीडा, गुदा मूत्राशय और नाभिमें आकर्षणकी समान वेदना हो, खाँसी, श्वास, उबकाई, मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, शिरमें जडता और शीतज्वरको करनेवाले हों, नपुंसकता अर्थात् स्त्रीप्रसंगमें इच्छाका नहीं होना, जठराग्निकी मृदुता, वमन, अधिक आमवाले अतीसार संग्रहणी आदि रोगोंका प्रगट होना, चर्बीकी समान कांतिवाले, कफसे व्याप्त मलका उतरना और प्रवाहिकाका होना ये लक्षण होते हैं। इस बवासीरके मस्सोंमेंसे न रुधिर बहता है, न मस्से टूटते हैं, परन्तु शरीरकी त्वचादि पाण्डुवर्ण कर देते हैं और वह चिकन हो जाते हैं ॥ ३१--३५ ॥

अथ द्वन्द्वजार्शोलक्षणम्।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वोल्वणानि च ३६॥

जिसमें दो दोषोंके कारण और द्वंद्वोंके लक्षण मिलते हों उसको द्वंद्वोल्वण कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ त्रिदोषोल्वणस्वाभाविकार्शोलक्षणम्।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥ ३७ ॥ सर्वलक्षणैर्वातपित्तकफार्शोलक्षणैः प्रागुक्तैः सर्वात्मकानि सन्ति तानि अर्शांसि अतस्तथा तैरेव लक्षणैः सहजानि अर्शांसि आहुः।

जिसमें वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके लक्षण दिखाई देवें उसको त्रिदोषोल्वण कहते हैं और सहज अर्थात् स्वाभाविक अर्शकेभी येही लक्षण होते हैं ॥ ३७ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तस्वाभाविकार्शोऽन्यलक्षणम्।

अर्शांसि सहजातानि दारुणानि भवन्ति हि। दुर्दर्शनानि पाण्डूनि परुषाण्यरुणानि च ॥ ३८ ॥ अन्तर्मुखानि तैरार्तः क्षीणः क्षीणस्वरो भवेत्। क्षीणानलः क्षीणरेताः शिरासन्ततविड्ग्रहः ॥ ३९ ॥ अल्पप्रजः क्रोधशीलो भग्नकांस्यस्वनान्वितः। शिरोहृक्कर्णनासासु रोगी हृल्लेपसेकवान् ॥ ४० ॥

स्वाभाविक अर्थात् शरीरके साथ उत्पन्न हुई बवासीर अत्यन्त दारुण होती है, भयंकर, पाण्डुवर्ण, खरखरे, लाल और भीतरको मुख किये मस्से होते हैं, इससे पीडित मनुष्य क्षीण, क्षीण स्वरवाला, क्षीण अग्निवाला, क्षीण वीर्यवाला और नसोंसे व्याप्त शरीरवाला होता है, उसके सदैव मलका अवरोध रहता है, सन्तान थोडी होती है, क्रोधी, फूटे कांसेके शब्दकी समान उसका शब्द होता है, मस्तक, नेत्र, कान और नासिकामें पीडा होती है, हृदय कफसे लिपासा रहता है और उसके मुखसे बारंबार पानी निकला करता है ॥ ३८--४० ॥

अथ सुखसाध्यार्शोलक्षणम्।

वाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्वणानि च। अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥४१ ॥ वाह्यायां वलौ संवरण्याम्। न चिरोत्पतितानि अतिक्रान्तसंवत्सराणि एतानि लक्षणानि मिलितानि सुखसाध्यत्ववोधकानि।

गुदाकी संवरणी नामक वलिमें उत्पन्न हुई, एक दोषोल्वण और थोडे कालसे उत्पन्न हुई ऐसी बवासीर सुखसाध्य होती है। (जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष नहीं बीता हो उसको थोडे कालसे उत्पन्न आ जानना) ॥ ४१ ॥

अथ कष्टसाध्यार्शोलक्षणम्।

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च। कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ४२ ॥ द्वितीयायां वलौ विसर्जन्याम् परिसंवत्सराणि परिगतः संवत्सरो येषां तानि अतीतसंवत्सराणीति यावत्। एतानि प्रत्येकं कष्टसाध्यलक्षणानि।

जिस बवासीरको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीत गया हो, जो दो दोषोल्वण हो और जो गुदाकी विसर्जनी दूसरी वलिमें उत्पन्न हुई हो उनको कष्टसाध्य जानना ॥ ४२ ॥

अथासाध्यार्शोलक्षणम्।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यंतरां वलिम्। जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्यानि निर्दिशेत् ॥ ४३ ॥ अभ्यंतरां वलिं प्रवाहिणीम् । एतान्यपि प्रत्येकमसाध्यानि लक्षणानि ।

जो बवासीर जन्मसेही शरीरके साथ उत्पन्न हुई हो अथवा त्रिदोषोल्वण हो किंवा गुदाकी प्रवाहनी नामक भीतरकी तीसरी नलिमें उत्पन्न हुई हो उसको असाध्य जानना ॥ ४३ ॥

अथ याप्यार्शोलक्षणम् ।

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्वये । याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ४४ ॥ यदि आयुःशेषो वर्तते चिकित्सायाः चत्वारः पादास्ते यथा—वैद्य वचनकारी धनवानुदारो जितेन्द्रियो रोगी । शस्त्रकर्मणि कुशलो वैद्यः । अनलसः आप्तः प्रियः परिचारकः । नवरसवीर्यादिकमौषधम् । एषां समन्वये समागमे । अतिदीप्तकायाग्नेः पुरुषस्य तानि अर्शांसि याप्यन्ते चिकित्सायाम् । अतोऽन्यथा प्रत्याख्येयानि चिकित्साहीनानीत्यर्थः ।

जिस रोगीकी आयु बाकी हो, चिकित्साके चारों पाद ठीक हों और रोगीकी जठराग्नि अत्यंत दीपन हो तो उसको याप्य जानना और जो यह सब सामग्री नहीं हों तो उसकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे, क्योंकि वह असाध्य है । रोगी—वैद्यके वचनोंको माननेवाला, धनवान्, उदारचित्त और जितेन्द्रिय होना चाहिये । वैद्य—शस्त्रकर्ममें कुशल होना चाहिये । परिचारक (सेवक)—आलस्यरहित, यथार्थ कहनेवाला और प्रिय होना चाहिये । औषधि—नवीन रस और वीर्ययुक्त होनी चाहिये, यह चिकित्साके चार पाद हैं ॥ ४४ ॥

अथार्शोऽरिष्टकथनम् ।

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा । शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः ॥ ४५ ॥ असाध्यः सन्निहितमरणो बोध्यः । अर्शसः अर्शोरोगयुक्तः । हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः । तृष्णा गुदास्यपाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ ४६ ॥ गुदस्य आस्यमोष्ठदेशस्तस्य पाकः हृत्पार्श्वशूलादि समस्तं चारिष्टलक्षणम् । तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रस्रुतशोणितम् । शोथातीसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि ॥ ४७ ॥

जिस बवासीरवाले रोगीके हाथ, पाँव, मुख, नाभि, गुदा और अंडकोशोंमें सूजन हो, छाती और पसलियोंमें शूलकी पीडा हो उसको मृत्युके समीप हुआ जानो । हृदय और पसलियोंमें शूल, मोह, वमन, अंगमें पीडा, ज्वर, तृषा और गुदाका पकना अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोडे होना यह सब लक्षण जिस अर्शरोगमें हों उसको मृत्युके निकट जानना । तृषा, अरुचि और शूल इनसे पीडित अथवा सूजन और अतिसारसे पीडित, किंवा जिसका रुधिर बहुत निकल गया हो, ऐसा अर्शरोगी मर जाता है ॥ ४५—४७ ॥

अथ लिंगाद्यर्शोलक्षणम् ।

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि च । गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥ ४८ ॥ यथास्वं यथात्मीयलक्षणम् । न च अत्रोक्तनिदानपूर्वं सम्प्राप्तिलक्षणं युक्तम् । तत्रार्शसपदं तु मांसांकुरसाम्यात् । गण्डूपदः कंचुलकः ।

लिंग आदि अवयवोंमें और नाभिमें भी अलग अलग प्रकारकी बवासीर होती है, उसके अंकुर केचुएके मुखकी समान चिकने और नरम होते हैं॥४८॥

अथ चर्मकीललक्षणम् ।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः । कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः ॥ ४९ ॥ खरं कर्कशम् ।

चर्मकील मांसके अंकुरकी समान होते हैं इस लिये अर्शरोगमें उसकी सम्प्राप्तिपूर्वक लक्षण कहते हैं । जब व्यान वायु कफको ग्रहण करके त्वचाके बाहर कीलकी समान स्थिर और कठोर अर्शको उत्पन्न करती है उसको चर्मकील कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ चर्मकीलवातादिलक्षणम् ।

वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितरक्तता ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ५० ॥ सवर्णता शरीरसमानवर्णता।

वातके चर्मकीलमें व्यथा (पीडा) और कठोरपन होता है, पित्तके चर्मकीलमें कालापन और लाली होती है और कफके चर्मकीलमें चिकनापन, गांठदार और शरीरके रंगकी समान वर्ण होता है ॥ ५० ॥

अथार्शःसामान्यचिकित्सा।

यद्वा तस्यानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये। अन्नपानौषधं सर्वं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥५१॥ अर्शसैः अर्शोरोगयुक्तैः। शालिषष्टिकगोधूमयवान्नानि घृतैः सह। अजाक्षीरेण वा निम्बपटोलानां रसेन वा ॥ ५२ ॥ कान्दैर्वार्ताकुमूलांशै रसैर्मांसरसेन वा। जीवन्त्युपोदिकाशाकैस्तण्डुलीयकवास्तुकैः ॥ ५३ ॥ अन्यैश्च सृष्टविण्मूत्रमरुद्भिर्वह्निदीपनैः। अर्शांसि भिन्नवर्चांसि हन्याद्वातातिसारवत् ॥ ५४ ॥ सतक्रं लवणं दद्याद्भातवर्चोऽनुलोमनम्। न प्ररोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः ॥ ५५ ॥ तक्राभ्यासोऽर्शसैः कार्यो बलवर्णोऽग्निवृद्धये। स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु सम्यक् चरति तद्रसः ॥ ५६ ॥ तेन पुष्टिस्तथा तुष्टिर्बलं वर्णश्च जायते। वातश्लेष्मविकाराणां शतं च विनिवर्तते ॥ ५७ ॥

जो अन्न पानी और औषधि वायुको अनुलोमन करनेवाले हैं तथा अग्निके बलको बढानेवाले हैं वे सब अर्शरोगमें सदैव सेवन करने चाहिये। शालिधानके चावल, साठीके चावल, गेहूँ और जौ इनका भोजन घीके साथ, या बकरीके दूधके साथ, नीम अथवा कडवे परवलोंके रसके साथ, जमीकन्द, बैंगन मूली या मांसरसके साथ सेवन करे। जिस बवासीरमें विष्ठाका भेदन नहीं होता हो ऐसी बवासीरको जीवंती, पोई, चौलाई और बथुवा इन शाकोंसे तथा अन्यान्य विष्ठा, मूत्र और वायुको प्रवर्तन करनेवाले और अग्निको दीपन करनेवाले, द्रव्योंसे जीते और जिसमें विष्ठाका भेदन (दस्त) होता हो ऐसी बवासीरकी वातातीसारकी समान चिकित्सा करे। सेंधानिमक तक्रमें डालकर पीनेसे वायु और विष्ठाको अनुलोमन करे है। तक्रसे नष्ट किये हुए बवासीरके मस्से फिर उत्पन्न नहीं होते हैं। बवासीरवाले मनुष्योंको बल, वर्ण और जठराग्निको बढानेके लिये तक्र (मट्ठा) पीनेका अभ्यास करना उचित है। तक्रके अभ्याससे शरीरके स्रोत (छिद्र) शुद्ध होकर अन्नादिकका रस अच्छे प्रकारसे संचार करता है और उससे पुष्टि, तुष्टि, बल और वर्ण उत्तम होता है, वायु और कफके सैकडों विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ५१–५७ ॥

अथ करंजादिचूर्णम्।

चिरविल्वाग्निसिन्धूत्थनागरेन्द्रयवारुक्षैः। तक्रेण पिबतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ॥ ५८ ॥ चिरविल्वः करञ्जः तस्य फलस्य अत्र मज्जा ग्राह्या। अरुक्षः शोणकः।

करंजके फलका वक्कल, चीता, सेंधानिमक, सोंठ, इन्द्रजौ और अरलू इनका चूर्ण करके तक्रके साथ पिये तौ रुधिरके साथ बवासीरके अंकुर गिर जाते हैं ॥ ५८ ॥

अथ रजनीलेपः।

लेपं रजनिचूर्णेन सुधादुग्धयुतेन च। अर्शोरोगनिवृत्त्यर्थं कारयेत्तु चिकित्सकः ॥५९॥

वैद्य अर्शरोगकी निवृत्तिके लिये हलदीके चूर्णको थूहरके दूधमें मिलाकर लेप करे ॥ ५९ ॥

अथ पिप्पल्यादिलेपः।

पिप्पली सैन्धवं कुष्ठं शिरीषस्य फलं तथा। सुधादुग्धार्कदुग्धं वा लेपोऽयं गुदजान्हरेत् ॥ ६० ॥

पीपल, सेंधा निमक, कूठ और सिरसके बीज इनको थूहरके दूधमें अथवा आकके दूधमें पीसकर लेप करनेसे बवासीर नष्ट हो जाती है ॥ ६० ॥

अथ हरिद्रादिलेपः।

हरिद्रा जालिनीचूर्णं कटुतैलसमन्वितम्। एष लेपो वरः प्रोक्तो ह्यर्शसामन्तकारकः ॥ ६१ ॥ जालिनी कटुतोरई इति।

हलदी और कडवी तोरईका चूर्ण करके सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करे, यह लेप अर्शको नष्ट करनेके लिये उत्तम है ॥ ६१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तिलभक्षणम् ।

असितानां तिलानां तु पलं शीतजलेन च । खादतोऽर्शांसि शाम्यंति दृढा दन्ता भवन्ति च ॥ ६२ ॥

चार तोले काले तिल लेकर शीतल जलके साथ भक्षण करे तो बवासीर दूर हो जाती है और दांत दृढ हो जाते हैं ॥ ६२ ॥

अथ रुधिरस्रावणम् ।

शस्त्रैर्वाथ जलौकोभिः प्रच्छन्नं कठिनार्शसः । शोणितं साध्वितं दृष्ट्वा हरेत्प्राज्ञः पुनः पुनः ॥ ६३ ॥

जो बवासीरके मस्से भीतरको दबेसे और कठिन होयँ तौ शस्त्र अथवा जोंकसे रुधिर निकलवा देवे और जब जब रुधिर इकट्ठा हो जाय तबही रुधिर निकलवा देवे ॥ ६३ ॥

अथ बृहत्काशीसाद्यतैलम् ।

काशीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठं च लाङ्गली । शिलाभिदश्वमारश्च दन्तीजन्तुघ्नचित्रकम् ॥ ६४ ॥ तालकं कुनटी स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेद्भिषक् । तैलं स्नुह्यर्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ६५ ॥ एतदभ्यंगतोऽर्शांसि क्षारेणैव पतन्ति हि । क्षारकर्मकरं ह्येतन्न च सन्दूषयेद्बलिम् ॥ ६६ ॥ काशीसं कशीस इति लोके । लांगली करिहारीति लोके । शिलाभित्पाषाणभेदः । अश्वमारः कनेर इति लोके । स्वर्णक्षीरी चोक इति लोके ।

हीराकसीस, सेंधा निमक, पीपल, सोंठ, कूंठ, कलिहारी, पाखानभेद, कनेर, दन्ती (जमालगोटेकी जड), वायविडंग, चीता, हरिताल, मैनशिल और सत्यानाशी कटेरी (जिसकी जडको चोक कहते हैं) इनका कल्क बनाकर थूहरके दूध और आकके दूधके द्वारा चौगुने गोमूत्रमें तेलको सिद्ध करे । जैसें क्षारसे बवासीरसे मस्से गिर जाते हैं उसी प्रकार इस तेलके लगानेसे बवासीरके मस्से नष्ट हो जाते हैं, यह तेल क्षारका कर्म करता है और बलिको भी दूषित नहीं करता है ॥ ६४-६६ ॥

अथ समशर्करचूर्णम् ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्द्धमन्त्यात् । खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्यगुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ६७ ॥ तद्यथा एलाबीजमत्र सूक्ष्मं ग्राह्यम् । यत आह मदनपालः- " एला सूक्ष्मा कफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रनुदित्यादि । " तस्या बीजं भागः १ त्वग्भागः २ दलं पत्रकम् ३ नागं नागकेशरं यत आह निघण्टौ धन्वन्तरिः-" नागपुष्पं मतं नागं केशरं नागकेशरम् । " इत्यादि । तस्य भागाः ४ मरिचम् ५, पिप्पली ६, शुंठी ७, शर्करा भागः २८, समशर्करचूर्णम् ।

इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, मिरच ५ भाग, पीपल ६ भाग और सोंठ ७ भाग इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करके सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलावे । इस चूर्णको भक्षण करे तो बवासीर, मंदाग्नि, गुल्म (गोला), अरुचि, श्वास, कंठरोग और हृदयरोग दूर हो जाते हैं । इस चूर्णमें छोटी इलायचीके दाने डालने चाहिये, क्योंकि मदनपालनिघंटुमें कहा है कि " छोटी इलायची कफ, खाँसी, बवासीर और मूत्रकृच्छ्रको दूर करे है । " ॥ ६७ ॥

अथ विजयचूर्णम् ।

त्रिकत्रयं वचा हिंगु पाठाक्षारौ निशाद्वयम् । चव्यतिक्ताकलिंगानि शक्राह्वो लवणानि च ॥ ६८ ॥ ग्रन्थिबिल्वाऽजमोदाश्च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः । एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६९ ॥ चूर्णं बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा । ऐरण्डतैलयुक्तं वा लिह्याच्चूर्णमिदं नरः ॥ ७० ॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि श्वासशोषभगन्दरान् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ७१ ॥ हिक्कां कासं प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् । आमवातमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् ॥ ७२ ॥ अन्ये च ग्रहणीदोषा भिषग्भिर्ये प्रकीर्तिताः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विजयो नाम चूर्णोऽयं तान्सर्वानाशु नाशयेत् ॥ ७३ ॥ महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् । अप्रजानां च नारीणां हितमेतद्भिषेजम् ॥ ७४ ॥ त्रिकत्रयं त्रिफला त्रिकटु त्रिसुगन्धीनि । क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च लवणानि पञ्च । ग्रन्थि पिप्पलीमूलम् । विडालपदकं कर्षम् ।

त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला), त्रिकुट (सोंठ, मिरच, पीपल), त्रिसुगंधि (दालचीनी, इलायची, तेजपात), वच, हींग, पाढ, सजी, जवाखार, हलदी, दारुहलदी, चव्य, कुटकी, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, पाँचों निमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद ये अट्ठाईस (२८) औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले, इस चूर्णको गरम जलके साथ, अथवा अंडीके तेलमें मिलाकर एक तोला भर भक्षण करे इससे सब प्रकारकी बवासीर, श्वास, शोथ, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, वातगुल्म, उदररोग, हिचकी, खाँसी, प्रमेह, पांडु, कामला, आमवात, उदावर्त, आमवृद्धि, गुदाकी कृमि और जो वैद्योंने संग्रहणी आदि रोग कहे हैं वे सब तत्काल नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य महाज्वरसे पीडित हैं और जो भूतबाधासे व्याकुल हैं और जिन स्त्रियोंके सन्तान उत्पन्न नहीं होती है उनके लिये यह विजय चूर्ण अत्यंत हितकारी है ॥ ६८--७४ ॥

अथ लघुसूरणमोदकः ।

मरिचमहौषधचित्रकसूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः । सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ ७५ ॥ ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयतीह शूलगुल्मगदान् । निःशेषयति श्लीपदमर्शांसि विनाशयत्याशु ॥ ७६ ॥ तद्यथा । मरिचभागः १ । शुण्ठीभागौ २ । चित्रकभागाः ४ । सूरणभागाः ८ । गुडभागाः १५ ।

मिरच १ भाग, सोंठ २ भाग, चीता ४ भाग और जिमीकंद ८ भाग लेवे, सबको एकत्र पीस लेवे और सबकी समान गुडमिलाकर लड्डू बना लेवे । इन प्रसिद्ध फलवाले मोदकोंको सेवन करनेसे जठराग्नि दीपन होती है, शूल और गुल्मकी पीडा नष्ट होती है, श्लीपद रोग और बवासीर दूर हो जाती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अथ बृहत्सूरणमोदकः ।

षोडश सूरणभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यास्य । अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्द्धेन ॥ ७७ ॥ त्रिफला कणा समूला तालीसारुष्करार्कमिश्रानाम् । भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ ७८ ॥ भागाः सूरणतुल्या दातव्या वृद्धदारकस्यापि । भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ७९ ॥ द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः । गुरुवृष्यभोजनरतैरितरेषूपद्रवं कुर्यात् ॥ ८० ॥ भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन । भीमस्य मारुतेरपि महाशनौ तेन तौ यातौ ॥ ८१ ॥ अग्निबलवर्णहेतुर्न केवलं सूरणो महावीर्यः । हन्ता शस्त्रक्षारानलैर्विनाप्यर्शसामेषः ॥ ८२ ॥ श्वयथुश्लीपदगदहृद्ग्रहणीं च कफानिलोद्भूताम् । नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते जरां च हरेत् ॥ ८३ ॥ हिक्कां कासं श्वासं च राजरोगं प्रमेहांश्च । प्लीहानं च तथोग्रं हन्त्याशु रसायनं पुंसाम् ॥ ८४ ॥ ७९ श्लोकस्थस्य एषां भागा यथा । सूरणभाग १६ । चीताभाग ८ । शुण्ठीभाग ४ । मरिचभाग २ । हरडै । बहेडा आमला । पीपरि । पीपरामूल । तालीश । भिलाँवाँ तदसत्त्वे रक्तचन्दनम् । विडंग प्रत्येकं भाग ४ । तालमूलीभाग ८ । विधारा भाग १६ । तजभाग १ । इलायची छोटी बीजभाग १ । गुडभाग १७६ ।

जमीकंद १६ भाग, चीता ८ आठ भाग, सोंठ ४ भाग, मिरच २ भाग, त्रिफला ४ भाग, पीपल ४ भाग, पीपलामूल ४ भाग, तालीसपत्र ४ भाग, भिलावे ४ भाग, वायविडंग ४ भाग, कालीमुसली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीन भाग, विधारा १६ भाग, दालचीनी १ भाग, और छोटी इलायची १ भाग, सबको एकत्र पीस लेवे और सबसे दुगुना गुड मिलाकर लड्डू बना लेवे, यह मोदक मैथुनशक्तिको बढानेवाले हैं, ऐसे पदार्थ धनवान् मनुष्योंको भारी और पुष्टिकारक पदार्थ खानेवालोंको सेवन करने चाहिये। उनके ऊपर घृतादिक उत्तम भोजन करना उचित है। इन उत्तम पदार्थोंको नहीं सेवन करनेवाले मनुष्योंके ये मोदक उपद्रव करते हैं। पूर्वकालमें इन मोदकोंको सेवन करनेसे अगत्स्यऋषि और मारुतनन्दन, भीमसेनको भस्मक रोग हो गया था, इस कारण वह अधिक भोजन करने लगे थे। यह महाशक्तियुक्त बृहत्सूरण मोदक—केवल अग्नि, बल और उत्तम वर्णकोही करता है ऐसा न समझना, परन्तु ये शस्त्र क्षार और विना अग्निके ही बवासीरको नष्ट करते हैं। सूजन, श्लीपद, हृदयरोग, कफसे और वायुसे उत्पन्न हुई ग्रहणी और वलीपलितको भी नष्ट करे है तथा बुद्धिको बढानेवाले और बुढापा, हिचकी, श्वास, क्षयरोग, प्रमेह तथा अत्यंत उग्र प्लीहाको नष्ट करे है। और पुरुषोंके लिये उत्तम रसायन है ॥ ७७–८४ ॥

श्रीवाहुशालगुडः।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी। गवाक्षी मुस्तविश्वाब्दविडंगानि हरीतकी ॥ ८५ ॥ पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात्। वृद्धदारापलान्यष्टौ सूरणस्य तु षोडश ॥ ८६ ॥ जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितम्। पूतं पूतं रसं भूयः क्वाथ्येभ्यस्त्रिगुणं गुडम् ॥ ८७ ॥ मेलयित्वा पचेत्तावद्यावद्वर्वीप्रलेपनम्। अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ८८ ॥ त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान्द्विपलांशिकान्। एलात्वङ्मरिचं चापि नागकं चापि षट्पलम् ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशच्च पलान्यत्र चूर्णयित्वा निधापयेत्। ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशिनः ॥ ९० ॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराण्यपि। गुल्मानपि प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ९१ ॥ दीपयेदनलं मन्दं यक्ष्माणं चापकर्षति। आढ्यवाते प्रतिश्याये पीनसे च हितो मतः ॥ ९२ ॥ भवन्त्यनेन पुरुषाः शतं वर्षाण्यनामयाः। दीर्घायुषः प्रजनना वलीपलितवर्जिताः ॥ ९३ ॥ गुडः श्रीवाहुशालोऽयं रसायनवरो मतः। दुर्नामान्तकरो ह्येष दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ९४ ॥ यावद्वर्वीप्रलेपः स्याद्गुडो वा तन्तुमान्भवेत्। तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ॥ ९५ ॥ क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत्पतितस्तु न शीर्यति। एष पाकः समस्तानां गुडानां परिकीर्तितः ॥ ९६ ॥ सार्द्धं पलं पलार्द्धं भक्षयेद्गुडखण्डयोः। श्रेष्ठा तु मध्यमा हीना मात्रोक्ता मुनिभिस्त्रिधा ॥ ९७ ॥

निसोत ४ तोले, तेजबल ४ तोले, जमालगोटा ४ तोले, गोखुरू ४ तोले, चीता ४ तोले, कचूर ४ तोले, इन्द्रायन ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मोथा ४ तोले, वायविडंग ४ तोले, हरड ४ तोले, मिलावे ३२ तोले, विधारा ३२ तोले, और जमीकंद ३२ तोले इन सबको २०४८ तोले जलमें पकावे, जब जलते २ चौथाई भाग बाकी रहे तब उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें तिगुना गुड मिलाकर पकावे, जब वह करछीसे चिपकने लग जाय तब उतार लेवे, फिर उसमें निसोत ८ तोले, तेजबल ८ तोले, जमीकंद ८ तोले, चीता ८ तोले, इलायची २४ तोले, दालचीनी २४ तोले, कालीमिरच २४ तोले और नागकेशर २४ तोले इनका चूर्ण करके मिला देवे, इसको बाहुशालगुड कहते हैं। रोगीका बलाबल विचार कर इसको भक्षण करावे। यह गुड—सर्व प्रकारकी बवासीर, सर्व प्रकारके उदररोग, गुल्म, प्रमेह, पाण्डुरोग और हलीमक रोगको नष्ट करे है, मन्दाग्निको दीपन करे है और क्षयरोगको नष्ट करे है, आढ्यवात प्रतिश्याय और पीनस रोगको दूर करे है। इस गुडको सेवन करनेसे मनुष्य अधिक आयुवाले होते हैं, बहुत सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं, वलीपलित रोगसे निवृत्त होकर सौ वर्षपर्यन्त रोगरहित जीते हैं। यह बाहुशाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुड—सब रसायनोंमें श्रेष्ठ है, यह निश्चय बवासीरको नष्ट कर देता है, ऐसा हजारों वार देखा है। गुड-पाककी परीक्षा—गुडका पाक करछीसे चिपटने लगे, अथवा गुडमें तार निकलने लगे और जलसे भरे हुए पात्रमें डालनेसे गुड तरे नहीं किन्तु स्थिर रहे और ऊपरसे डालनेसे बिखरे नहीं तो गुडका पाक उत्तम बना जानना। सर्व प्रकारके गुडोंका पाक इसी प्रकार जानना, गुड तथा खाँडकी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ ये तीन प्रकारकी मात्रा हैं, इनमें छः रुपये भरकी उत्तम, चार रुपये भरकी मध्यम और दो रुपये भरकी कनिष्ठ मात्रा जाननी ॥ ८५--९७ ॥

अथ तिलादिमोदकः।

तिलभल्लातकः पथ्या गुडश्चेति समांशकैः। दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपाण्डुज्वरापहम् ९८॥

तिल, भिलावें, हरड और गुड इन सबको समान भाग लेकर लड्डू बनावे। ये बवासीर, श्वास, खाँसी, प्लीहा, पाण्डुरोग और ज्वरको नष्ट करे हैं ॥ ९८ ॥

अथ सगुडाभया।

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कण्डूकुक्षिरुजापहा। गुदजान्नाशयत्याशु भक्षिता सगुडाभया ॥९९॥

हरडके चूर्णमें गुड मिलाकर गोली बनावे, यह गोली पित्त, कफ, खुजली और कोखके दर्दको नष्ट करे है। इन गोलियोंको भक्षण करते ही बवासीर नष्ट हो जाती है ॥ ९९ ॥

अथ शंकरलोहः।

प्रणम्य शंकरं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरम्। जीवितारोग्यमन्विच्छन्नारदोऽपृच्छदीश्वरम् ॥ १०० ॥ सुखोपायेन हे नाथ शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना। चिकित्सामर्शसां नृणां कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥ १०१ ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा नराणां हितकाम्यया। अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं भैषज्यं शंकरोऽवदत् ॥१०२॥ पाण्डुवज्रादिलोहानामादायान्यतमं शुभम्। कृत्वा निर्मलमादौ तु कुनट्या माक्षिकेण च ॥ १०३ ॥ पत्तूरमूलकल्केन लिम्पेद्रसयुतेन च। वह्नौ निक्षिप्य विधिवत्साराङ्गारेण निर्दहेत् ॥ १०४ ॥ कुनटी मनःशिला। माक्षिकं सुवर्णमाक्षिकम्। पत्तूर पटकार इति लोके। रसः पारदः। सारः काष्ठसारः। ज्वाला च तस्य रोद्धव्या त्रिफलाया रसेन च। ततो विज्ञाय गलितं शंकुनोद्ध समुच्छ्रयेत् ॥१०५॥ त्रिफलाया रसे पूते तदाकृष्य तु निर्दहेत्। न सम्यग्गालितं यत्तु तेनैव विधिना पुनः ॥ १०६ ॥ ध्मातं निर्वापयेत्तस्मिल्लोहं तत्त्रिफलारसे। यल्लोहं न मृतं तत्र पाच्यं भूयोऽपि पूर्ववत् ॥ १०७ ॥ मारणान्न मृतं यच्च तत्पक्तव्यमलोहवत्। ततः संशोष्य विधिवच्चूर्णयेल्लोहभाजने ॥१०८॥ लोहेन च तथा पिष्याद्दृषदा सूक्ष्मचूर्णितम्। कृत्वा लोहमये पात्रे मृत्तिकालिप्तरन्ध्रके ॥ १०९ ॥ रसैः पंकोपमं कृत्वा तं पचेद्गोमयाग्निना। पुटानि क्रमशो दद्यात्पृथगेभिर्विधानतः ॥ ११० ॥ त्रिफलार्द्रकभृङ्गाणां केशराजस्य बुद्धिमान्। मानकन्दकभल्लातवह्नीनां सूरणस्य च ॥ १११ ॥ भृङ्गः भङ्गरिआ। केशराजः केशराग इति। हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य तथैव च। पुटे पुटे चूर्णयित्वा लोहात्षोडशिकं पलम् ॥ ११२ ॥ तन्मात्रं त्रिफलायाश्च पलेनाधिकमाहरेत्। अष्टभागावशेषे तु रसे तस्याः पचेद्बुधः ॥ ११३ ॥ अष्टौ पलानि दत्त्वा च सर्पिषो लौहभाजने। ताम्रे वा लोहदर्व्या तु चालयेद्विधिपूर्वकम्। ॥ ११४ ॥ ततः पाकविधानज्ञः स्वच्छे चोर्द्धे च सर्पिषि। मृदुमध्यादिभेदेन गृह्णीयात्पाकमन्यतः ॥ ११५ ॥ आरम्भे तद्विधानज्ञः कृतकौतुकमङ्गलः। भ्रामरं घृतसंयुक्तं विलिह्याद्रक्तिकाक्रमात् ॥ ११६ ॥ द्वादशरक्तिकापर्यन्तं यथाग्निबलं खादेत्। वर्द्धमानानुपानं च गव्यक्षीरेण संयुतम्। गव्याभावे त्वजायाश्च स्निग्धवृष्यादिभोजनम् ॥११७॥ सद्यो वह्निकरं चैव भस्मकं च नियच्छति ॥ हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषमज्वरम् ॥ ११८ ॥ गुल्माक्षिपाण्डुरोगांश्च निद्रालस्यमरोचकम् । शूलं च परिणामं च प्रमेहमपबाहुकम् ॥ ११९ ॥ श्वयथुं रुधिरस्रावं दुर्नामानं विशेषतः । बलकृद्बृंहणं चैव कान्तिदं स्वरबोधनम् ॥ १२० ॥ शरीरलाघवकरमारोग्यपुष्टिवर्द्धनम् । आयुष्यं श्रीकरं चैव बलतेजस्करं शुभम् ॥ १२१ ॥ सश्रीकं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् । दुर्नामारिरयं नाम्ना दृष्टो वारसहस्रशः ॥ १२२ ॥ अनेनार्शांसि दह्यन्ते यथा तूलं च वह्निना । साकुमार्याल्पकायत्वान्मद्यसेवी यदा नरः ॥ १२३ ॥ जीर्णमद्यादियुक्ताद्यभोजनैः सह दापयेत् । लावतित्तिरवर्त्तीरमयूरशशकादयः ॥ १२४॥ चटकः कलविंकश्च वर्तका हारितालकः । श्येनकश्च बृहल्लावो वनविष्किरकादयः । पारावतमृगादीनां मांसं जांगलकं शुभम् ॥ १२५ ॥ वर्तीरः वगेरीति लोके । वनचटकः । कलविंको गृहचटकः । वर्तका वटेरी इति लोके । हरितालकः हरिलः हारिल इति लोके । विष्किरा वर्तकादयः । मद्गुरो रोहितः श्रेष्ठः शकुलश्च विशेषतः । मत्स्यराजा इति प्रोक्ता हितमत्स्याय देहिने ॥ १२६ ॥ वृन्ताकस्य फलं शस्तं पटोलं बृहतीफलम् । प्रलम्बा भीरुवेत्राग्रताडकं तण्डुलीयकं ॥१२७॥ प्रलम्बा लम्बालाबूः । भीरुः शतावरी । पत्रम् पत्रशाकम् । ताडकं देवदाली अकरकरेति लोके । तथा च निघण्टौ धन्वन्तरिः—"जीमूतको देवताडः कृतकोशो गरागरी । प्रोक्ताखुविषहृद्वेणी देवदाली च ताडकः । देवदाली रसे तिक्ता कफार्शः शोथपाण्डुताः। नाशयेत्" इत्यादि। वास्तूकं धान्यशाकं च चित्रकं चक्रमर्दकम् । नालिकेरं च खर्जूरं दाडिमं लवलीफलम् ॥ १२८ ॥ चक्रमर्दकं चकवडशाकम् । शृङ्गाटकं च पक्वाम्रं द्राक्षातालफलानि च । हितान्येतानि वस्तूनि लोहमेतत्समश्नताम् । नाश्नीयाल्लकुचं कोलकर्कन्धुबदराणि च ॥१२९॥ जम्बीरं बीजपूरं च तिन्तिडी करमर्दकम् । कोलं क्षुद्रबदरम् । कर्कन्धु बृहद्बदरम् । आनूपानि च मांसानि क्रकरं पुण्ड्रकाणि च ॥१३०॥ क्रकरं करकरम् । हंससारसदात्यूहचाषक्रौञ्चबलाकिकाः । मानकन्दं कसेरूणि कतकं च कलिङ्गकम् ॥ १३१ ॥ दात्यूहः नीलकण्ठः, चाषः [डाकु], कालङ्गकम् [तरबूज] कूष्माण्डकं च कर्कोटं क्रमुकं च विशेषतः । कटुकं कालशाकं च कुण्टरुः कर्कटी तथा । ककारादीनि सर्वाणि द्विदलानि च वर्जयेत् ॥ १३२ ॥ शंकरेण समाख्यातो यक्षराजानुकम्पया । जगतामुपकाराय दुर्नामारिरयं ध्रुवम् ॥ १३३ ॥ स्थानाच्चलति मेरुश्च पृथ्वी पर्येति वायुना । पतन्ति चन्द्रताराश्च मिथ्या चेदेहमब्रुवम् ॥ १३४ ॥ ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च क्रूरा येऽसत्यवादिनः । वर्जनीयाः सधर्मेण भिषजा गुरुनिन्दकाः ॥ १३५ ॥ मुनिरसपिष्ठविडंगं मुनिरसलीढं चिरस्थितं घर्मे । द्रावयति लोहदोषान्वह्निर्नवनीतापिण्डामिव ॥ १३६ ॥ मुनिरत्रागस्त्यः । काले मलप्रवृत्तिर्लाघवमुदरे विशुद्धिरुद्गारे । अंगेषु नावसादो मनःप्रसादोऽस्य परिपाके ॥१३७॥ क्रिमिरिपुचूर्णं लीढं सहितं स्वरसेन वंगसेनस्य । क्षपयत्यचिरान्नियतं लोहोऽजीर्णोद्भवं शूलम् ॥ १३८॥ वंगसेनस्य अगस्तेः । भवेद्यद्यतिसारस्तु दुग्धं पीत्वा तु तं जयेत् । गुञ्जाद्वादशकादूर्द्धं वृद्धिरस्य भयप्रदा ॥ १३९ ॥ शंकरप्रणीतं लोहम् ।

एक समय जीवोंको जीवन और आरोग्यकी इच्छा करनेवाले नारदमुनि सम्पूर्ण विश्वके कल्याणरूप रुद्र, हाथमें दण्डको धारण करनेवाले, जगत्प्रभु श्रीमहादेवजीको प्रणाम करके पूँछने लगे कि—हे विश्व-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाथ ! ऐसा कोई सहज उपाय है जो शस्त्र क्षारकर्म और अग्निके विना अर्श (बवासीर) रोगवाले मनुष्योंकी चिकित्सा हो जाय वह आप करुणा करके कहिये, इस प्रकार नारदजीकी प्रार्थनाको सुनकर महादेवजी मनुष्योंके हित करनेकी इच्छासे अर्शरोगको दूर करनेवाली यह परमोत्तम औषधि बताने लगे, कि--हे नारद ! पाण्डय अथवा वज्रादि लोहोमेंसे कोई उत्तम लोहा देकर पत्र करावे । उनको प्रथम शुद्ध करके पश्चात् मैनशिल, सोनामाखी और पत्तूर (शालिच) की जडका कल्क और पारा इनका लेप करे, फिर विधिपूर्वक बेरीके कोयलोंमें उस लोहेको रखकर धमावे, जब उसमेंसे अग्निकी लपटें निकलने लगें तब उसको त्रिफलेके रसमें बुझा देवे, पश्चात् लोहेको गला जानकर संडासीसे उस लोहेके पत्रोंको उठाकर छने हुए त्रिफलेके रसमें छोड देवे, लोहेका जितना भाग अच्छे प्रकारसे न गला हो उसको फिर उपरोक्त विधिसे अग्निमें तपाकर त्रिफलेके रसमें बुझावे, फिर भी जो उसमेंसे जितना नहीं गले उसको दुबारा उक्त विधिसे अग्निमें तपाकर त्रिफलेके रसमें बुझा देवे, इस प्रकार बारंबार तपानेसे भी जो न गले तो अन्यधातुओंकी तरह पकाकर त्रिफलेके रसमें बुझावे, पश्चात् इस लोहेको त्रिफलेके रसमें बुझाकर धूपमें सुखावे, पश्चात् इसको लोहेके वासनमें डालकर चूर्ण कर लेवे, फिर लोहेकी मूसलीसे सिलपर महीन पीस लेवे, फिर इस चूर्णको लोहेके वासनमें डालकर त्रिफलेके रसकी कींचसी बनाकर वासनपर कपरमट्टी करके मुख बंद कर अरने उपलोंकी अग्निसे गजपुटमें पकावे, पश्चात् अनुक्रमसे त्रिफला, अदरख, भाँगरा, काला भांगरा, मानकंद, भिलावें, चीता, जमीकंद, हस्तिकर्ण, पलाश (ढाक), थूहर इनके रसके द्वारा गजपुटमें पकावे । प्रत्येक पुटमें इस लोहेका चूर्ण ६४ तोले और त्रिफलेका रस ६८ तोले डालना चाहिये । यहां त्रिफलेका रस ऐसा लेना चाहिये कि, जो अठगुने जलमें पकाकर एक भाग जल शेष रहा हो, फिर लोहेके अथवा तांबेके बरतनमें ३२ तोले घी और वह क्वाथ छोडकर उसमें वह लोहा डालकर विधिपूर्वक पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता रहे, पाकको जाननेवाला वैद्य देखता रहे जब कि, स्वच्छ घी तैरकर ऊपर आ जावे तब मृदु, मध्य और तीक्ष्ण जैसा पाक करना हो वैसा पकाकर उतार लेवे । इस शंकरलोहके प्रयोगके आरम्भमें उत्सव और मंगल कार्य करने चाहियें, इस लोहेको सहत तथा घीमें मिलाकर पहिले दिन एक रत्ती, दूसरे दिन दो रत्ती इस प्रकार एक एक रत्ती बढाता हुआ अग्निके बलानुसार १२ रत्ती तक सेवन करे, वर्द्धमान पिप्पलीकी समान इसके ऊपर गायके दूधका और जो गायका दूध न मिले तो बकरीके दूधका अनुपान करे, तथा स्निग्ध और वृष्य पदार्थोंका भोजन करे । यह शंकरलोह जठराग्निको तत्काल उत्पन्न करे है, भस्मकरोगको नष्ट करे है, वात, पित्त, कोढ, विषमज्वर, गुल्म, नेत्ररोग, पाण्डुरोग, निद्रा, आलस्य, अरुचि, शूल, परिणामशूल, प्रमेह, अपवाहुक, सूजन और रुधिरस्रावको दूर करे है, विशेष करके बवासीरको नष्ट करे है, इस उत्तम लोहको सेवन करनेसे बलकी वृद्धि होती है, पुष्टि होती है, कांति बढती है, स्वर सुन्दर होता है, शरीरमें लघुता उत्पन्न होती है, आरोग्यता और पुष्टिकी वृद्धि होती है, वायुकी वृद्धि होती है, लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, प्रताप और शोभा बढती है, सर्व गुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न होते हैं, वली (शरीरमें बलोंका पडना) पलित (विना समय बालोंका सफेद हो जाना) नाशक है । इस शंकर लोहका नाम दुर्नामारि भी है इससे बवासीर शान्त हो जाती है, ऐसा हजारों वार देखा है कि--जिस प्रकार अग्निसे रुई जल जाती है, उसी प्रकार इस लोहसे बवासीर दूर हो जाती है । जो रोगी सुकुमार और कोमल शरीरवाले हैं और मदिराको सेवन करते हैं, उनको पुरानी मदिरा आदि संयुक्त भोजनके साथ देवे । इस लोहको सेवन करनेवाले मनुष्योंको लवा, तीतर, वगेरा, मोर, खरगोश, चिडा, जंगली चिडा, बत्तक, हरियल, सिकरा, बडा लवा और वनमें रहनेवाले विष्किरादि परेवा, कबूतर और जंगली हिरन आदि पशुपक्षियोंका मांस हितकारी है, जिन मनुष्योंको मछली खानेका अभ्यास है, उनके लिये मद्गुर, रोहू और शकुल ये सब बडी मछली हितकारी हैं । बैंगन,

१ एक एक पुट देकर कमसे कम पचीस (२५) पुटें देवे अर्थात् ढाईसौ (२५०) दिनमें यह लोहा सिद्ध करे यह वृद्ध वैद्योंका मत है इस प्रकार करनेसे लोहा पानीमें तरने लगता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परवल, कटेरीके फल, लम्बी तोम्बी, सतावरके पत्ते, बेतके अग्रभागका शाक, देवदाली (बंदाल), चौलाई, बथुआ, धनियेंका शाक, चीता, चकवड (पमाड), नारियल, खजूर (छुहोर), अनार, हरफारेवडी, सिंगाडे, पक्के आम, दाख और ताडके फल ये सब पदार्थ यह लोह सेवन करनेवाले मनुष्योंके हितकारी हैं। इस लोहको सेवन करनेवाला मनुष्य--बडहल, बेर, बडे बेर, जम्भीरी नींबू, बिजौरा नींबू, इमली, करौंदा, अनूपदेशके जीवोंका मांस, ऊकर (केकडा), पुंडूक, हंस, सारस, दात्यूह (पपैया), नीलकंठ, क्रौंच (कुंज) और बगला इन सबका मांस, मानकन्द, कसेरू, निर्मलीफल, तरबूज, पेठा, ककोडा, सुपारी, कडवे परवल, नाडीका शाक, कुण्डुरु, ककडी और समस्त ककारादि पदार्थ और द्विदल अन्न, (चना आदि) इन सबका त्याग करना चाहिये। यह दुर्नामारि लोह श्रीमहादेवजीने जगत्के उपकारके लिये और कुबेरके ऊपर दया करके कहा है, इससे बवासीर अवश्य नष्ट होती है। महादेवजी कहते हैं कि--जो मैं यह असत्य कहता हूँ तो अपने स्थानसे सुमेरु पर्वत हट जाय, पृथ्वी लौट जाय, चन्द्रमा और तारागण आकाशसे पतित हो जायँ, ब्रह्मघाती, कृतघ्नी, क्रूर; असत्यवादी और गुरुनिन्दक ऐसे मनुष्योंको यह लोहा कदापि नहीं देना चाहिये। इस लोहके सेवन करनेसे जो शरीरमें कोई विकार उत्पन्न होय तो अगस्तियाके रसमें वायविडंगको पीसकर बहुत देरतक धूपमें रख देवे, जब सूख जाय तब चूर्ण करके अगस्तियाके रसके साथ चाटे। जिस प्रकार अग्नि माखनके पिंड (लौंदा) को पिघला देती है उसी प्रकार यह लोहेके दोषोंको पिघला देता है। पेटमें इस चूर्णके पकनेके समय मल ठीक समय पर उतरता है, पेटमें हलकापन होता है, डकार शुद्ध आती है, अंगमें ग्लानि नहीं रहती और मनमें प्रसन्नता होती है। वायविडंगका चूर्ण करके अगस्तियाके स्वरसमें मिलाकर चाटे तो लोहके अजीर्णसे उत्पन्न हुआ शूल तत्काल अवश्य नष्ट होता है। यदि इस लोहके सेवन करनेसे अतीसार उत्पन्न होय तो दूध पीना चाहिये, इससे अतीसार नष्ट हो जाता है। इस लोहको बारह रत्तीसे अधिक भक्षण करे तो भय उत्पन्न होता है, इस कारण बारह रत्तीसे अधिक नहीं खाना चाहिये ॥ १३०-१३९ ॥

अथ रक्तार्शश्चिकित्सा ।

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवेद्भिषक् । दुष्टास्रे निःसृतेन स्युः शूलानाहासृगामयाः ॥ १४० ॥ चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाः सनागराः क्वथिताः । रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वग्घुशीरनिम्बाश्च ॥ १४१ ॥ चन्दनमत्र रक्तम् । नागरमत्र मुस्तकम् ।

रुधिरकी बवासीरमें वैद्य निकलते हुए रुधिरको पहिले ही नहीं रोके, क्योंकि दूषित रुधिरको रोकनेसे शूल, अफरा और रक्तके विकार उत्पन्न होते हैं। लालचंदन, चिरायता, धमासा, नागरमोथा, दारुहलदी, दालचीनी, खस और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे रुधिरकी बवासीर नष्ट हो जाती है। इसको चन्दनादिक्वाथ कहते हैं ॥ १४० ॥ १४१ ॥

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीशर्कराभ्यासात् । दधिरसमथिताभ्यासाद्बुदजाः शाम्यन्त रक्तवहाः ॥ १४२ ॥ दध्नस्तूपरि यो भागो घनस्नेहयुतः सरः । मथितं सररहितं निर्जलं वस्त्रपूतं दधि ॥ १४३ ॥

नैनी घी और तिल मिलाकर नित्य खानेसे, नागकेशर, नैनी घी और मिश्री इनको एकत्र मिलाकर भक्षण करनेसे अथवा दहीकी मलाई रहित मथाहुआ दही इनको सेवन करनेसे खूनी बवासीर दूर हो जाती है, दहीके ऊपरका जो चिकना भाग रहता है उसको 'सर' कहते हैं सररहित और कपडेमें छना हुआ निर्जल दहीको 'मथित' कहते है ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

सपद्मकेशरं क्षौद्रं नवनीतं नवं लिहन् । सिताकेशरसंयुक्तं रक्तार्शसि सुखी भवेत् ॥ १४४ ॥

कमलकी केशर, सहत, नवीन नैनी घी, मिश्री और नागकेशर इनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे रुधिरकी बवासीरवाला रोगी सुखी होता है ॥ १४४ ॥

पयसा श्रृतेन यूषैः सतीनमुद्गाढकीमसूराणाम् । ओदनमद्यादम्लैः शालिश्यामाककोद्रवजम् । शशहरिणलावमांसैः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपिञ्जलैरेणमांसैश्च ॥ १४५ ॥ ओदनमद्याद्म्लैरीषत्सुगन्धैश्च ।

मटर, मूंग, अरहर और मसूर इनका किंचित् खट्टे और सुगंधियुक्त किये हुए यूषके साथ, औटाये हुए दूधके साथ और खरगोश, हिरन, लवा, तितिर और काले हिरनके मांसके साथ. शाली चावलोंका, समेका और कोदोंका भात खाय तो रुधिरसंबंधी बवासीर नष्ट हो जाती है ॥ १४५ ॥

अथ समंगादिदुग्धम् ।

समंगोत्पलमोचाकतिरीटोत्पलचन्दनैः । सिद्धं छागीपयो दद्याद्रुदजं शोणितात्मके ॥१४६॥ समंगा लज्जालूः । मोचाको मोचरसः । तिरीटो लोध्रः । चन्दनं रक्तम् । इति समंगादिदुग्धम् ।

लजावंती, कमल, मोचरस, लोध आर लाल चंदन इनको बकरीके दूधमें औटाकर उस दूधको पीनेसे रुधिरकी बवासीर दूर होती है ॥ १४६ ॥

अथ क्षारसूत्रम् ।

भावितं रजनीचूर्णं स्नुहीक्षीरैः पुनः पुनः । बन्धनात्सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शो भगन्दरम् ॥ १४७ ॥

हलदीके चूर्ण और थूहरके दूधमें सूतको बारंबार भावना देकर उस सूतसे गुदाके अंकुरोंको दृढ बांधनेसे बवासीर और भगंदर नष्ट हो जाते हैं ॥ १४७॥

अथ नासिकाद्यर्शश्चिकित्सा ।

नासानाभिसमुत्थेषु तथा मेढ्रादिजेष्वपि । त्रिष्वप्यर्शःसु कुर्वीत तत्र तत्र यथोचितम् ॥ १४८ ॥

नाक, नाभि और लिंग आदिमें उत्पन्न हुई बवासीरकी चिकित्सा यथायोग्य करनी चाहिये ॥१४८॥

अथ चर्मकीलचिकित्सा ।

चर्मकीलं तु संछिद्य दहेत्क्षारेण चाग्निना ।

चर्मकीलको प्रथम काटकर क्षार अथवा अग्निसे जला देना चाहिये ॥

अथार्शोऽपथ्यानि ।

वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठयानान्युत्कटकासनम् । ॥ १४९ ॥ यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ १५० ॥

मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, स्त्रीका स्पर्श, हाथी, घोडे आदिकी सवारी, उकरू बैठना और जिस जिस दोषकी अधिकतावाली बवासीर हो उस दोषको बढानेवाला अन्न इन सबको त्याग देवे ॥१४९॥१५०॥

इति अर्शोऽधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ जठराग्निविकाराऽधिकारः ।

तत्र सन्निकृष्टनिदानपूर्वकजठराग्निविकारसमस्थिती ।

कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः । मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ॥ १ ॥

जठराग्नि कफकी अधिकतासे मंद होती है, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्ण होती है, वातकी अधिकतासे विषम होती है और तीनों दोषोंकी समतासे सम होती है, इस प्रकार जठराग्नि चार प्रकारकी होती है ॥ १ ॥

अथ मन्दाग्निलक्षणम् ।

स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्मात्रा भुक्ता विपच्यते । छर्दिः सादः प्रसेकः स्याच्छिरोजठरगौरवम् ॥ २ ॥

मन्दाग्निवाले मनुष्यको थोंडा भोजन किया हुआ भी नहीं पचता है, वमन होती है, ग्लानि रहती है, लार गिरती है, शिर और पेटमें भारीपन रहता है॥१॥

अथ तीक्ष्णाग्निलक्षणम् ।

मात्रातिमात्राप्यशिता तीक्ष्णाग्नेः पच्यते सुखम् । अत एव हि केनापि मतस्तीक्ष्णाग्निरुत्तमः ॥ ३ ॥

तीक्ष्ण अग्निवाले मनुष्यको बहुत भोजन किया हुआ भी सहजमें पच जाता है, इस कारण कोई वैद्य तीक्ष्ण अग्निको उत्तम मानते हैं ॥ ३ ॥

अथ विषमाग्निलक्षणम् ।

अशिता खलु मात्रापि विषमाग्नेस्तु देहिनः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते । तस्याध्मानमुदावर्तं शूलं जठरगौरवम् । प्रवाहणमतीसारस्तथा स्यादन्त्रकूजनम् ॥ ५ ॥

विषम अग्निवाले मनुष्यको किया हुआ भोजन कभी अच्छे प्रकारसे पच जाता है और कभी नहीं पच जाता है, विषमाग्निमें अफरा, उदावर्त, शूल, पेटमें भारीपन, अधोवायुके त्यागते समय कफयुक्त विष्ठाका गिरना, अतीसार और आँतोंका गडगडाहट ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ समाग्निलक्षणम् ।

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते । सोऽग्निरुत्तम एतेषु न तीक्ष्णस्तूत्तमो मतः ६॥

समाग्निवाले मनुष्यको परिमाणका किया हुआ भोजन अच्छे प्रकारसे पच जाता है, चारों प्रकारकी अग्निमें समाग्नि उत्तम है और तीक्ष्णाग्नि उत्तम नहीं है ॥ ६ ॥

स मधुरस्निग्धादिभोज्यः समाग्निः उत्तमः । तर्हि कथं तीक्ष्णाग्नेर्विकारमध्ये गणना ? उच्यते, समोऽग्निः क्षुधाविघातात् आशु एव तथा विकारं न करोति । तीक्ष्णस्तु स्वल्पकालमपि क्षुधाविघातादाश्वेव पैत्तिकान् विकारान् कुरुते । तीक्ष्णः पित्तसमुत्थानान्विषमो वातहेतुकान् । तथा करोति मन्दाग्निर्विकारान् कफसम्भवान् ॥ ७ ॥

मधुर और स्निग्ध आदि भोजन करनेपर भी जो अग्नि समान रहती है उसको भी उत्तम जानना । शंका—जिसमें किया हुआ भोजन अच्छे प्रकारसे पच जाता है उसको उत्तम कहते हैं, फिर तीक्ष्ण अग्निको विकारोंमें क्यों कहा है ? समाधान—समान अग्निवाला मनुष्य भूँख लगनेपर यदि थोडी देरतक भोजन नहीं करे तो वह कुछ विकार नहीं करती और तीक्ष्ण अग्नि तो भूँखके समय भोजन न मिलनेपर तत्काल पित्तके विकारोंको उत्पन्न करती है, इस कारण तीक्ष्ण अग्निको विकारोंमें कहा है । कहा भी है कि—"तीक्ष्ण अग्नि पित्तसम्बन्धी और विषम अग्नि वातसंबंधी विकारोंको उत्पन्न करे है और मन्दाग्नि कफके विकारोंको उत्पन्न करे है ।" ॥ ७ ॥

अथ भस्मकरोगनिदानम् ।

बह्वतीक्ष्णरूक्षान्नभुजां नराणां क्षीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ । अतिप्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्निर्भुक्तं क्षणाद्भस्म करोति यस्मात् । तस्मादसौ भस्मकसंज्ञकोऽभूद्दुष्पेक्षितोऽयं पचते च धातून् ॥ ८ ॥

अत्यंत तीक्ष्ण और रूक्ष अन्नको भोजन करनेवाले मनुष्योंके कफ क्षीण होकर वात और पित्तकी वृद्धि होकर जठराग्नि अत्यंत बढकर वातके साथ मिलकर जो कुछ भोजन किया जाता है उसको क्षणमात्रमें भस्म कर देती है, इसीलिये इस अग्निरूप रोगको भस्मक कहते हैं, इसमें भूँख लगनेपर जो भोजन न मिले तो रस रक्तादि धातुओंको भस्म करने लगता है ॥ ८ ॥

अथ भस्मकोपद्रवारिष्टे ।

तृट्स्वेददाहमूर्च्छादीन्कृत्वैषोऽत्यग्निसंभवात् । पक्त्वान्नमाशु धात्वादीन्स क्षिप्रं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ९ ॥

यह भस्मक रोग अग्निकी अत्यंत अधिकतासे तृषा, पसीना, दाह और मूर्च्छा आदिको उत्पन्न करके अन्नको तत्काल पचाकर शीघ्रही धातुओंका नाश करे है ॥ ९ ॥

अथाजीर्णविप्रकृष्टनिदानम् ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च । कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ १० ॥ सन्धारणात् क्षुधामूत्रपुरीषादीनाम् । स्वप्नविपर्ययात् दिवाशयनाद्रात्रौ जागरणात् । लघु चापि इति अपिशब्दात् स्निग्धोष्णादिगुणयुक्तमपि । अन्यच्च—तृष्णाभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यानिपीडितेन । प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति ॥ ११ ॥ परिप्लुतेन व्याप्तेन ।

अत्यन्त जल पीनेसे, विषम (कभी कम, कभी ज्यादे) भोजन करनेसे, क्षुधा, मूत्र और मलादिके वेगोंको रोकनेसे, दिनमें सोनेसे और रातमें जागनेसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्योंके समयपर, स्वभावके अनुसार, हलका और स्निग्ध, उष्ण भोजन किया हुआ भी अन्न पचता नहीं है। और भी कारण कहते हैं कि—तृषासे, भयसे और क्रोधसे तथा लोभसे, रोग और दीनतासे पीडित अथवा द्वेषसे संयुक्त मनुष्योंका किया हुआ भोजन अच्छे प्रकार नहीं पचता है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ बहुभोजनमेवाजीर्णहेतुस्तच्चाने-करोगकारणमित्याह ।

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः । रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥ १२ ॥ अनात्मवन्तः अबुद्धिमन्तः । रोगानीकस्य विषूच्यादेर्मूलं कारणम् । प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् । तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ १३ ॥ अजीर्णविनाशाद्विनश्यति । रोगसंघातः रोगसमूहः ।

जो मूर्ख मनुष्य पशुओंकी समान अप्रमाण (अन्धाधुन्ध) भोजन करते हैं उनके विषूचिकादि रोगोंका मूल कारणरूप अजीर्ण उत्पन्न होता है। और भी लिखा है कि—प्रायः आहारकी विषमतासे मनुष्योंके अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है, उस अजीर्णके होनेसे रोगोंका समूह उत्पन्न होता है और उस अजीर्णके नष्ट होनेसे वे सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥१३॥

अथाजीर्णसामान्यलक्षणम् ।

ग्लानिर्गौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढताः । विबन्धो वा प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ १४ ॥ मारुतमूढता वायोरवरोधः । विबंधः मलाप्रवृत्तिः ।

ग्लानि, भारीपन, विष्टम्भ, भ्रम अधोवायुका रुकना और मलका अवरोध अथवा प्रवृत्ति ये अजीर्णके सामन्य लक्षण हैं ॥ १४ ॥

अथ सन्निकृष्टकारणसहिताजीर्णभेदाः ।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः । अजीर्णं केचिदीक्षन्ते चतुर्थं रसशेषतः ॥ १५ ॥ त्रिभिरित्येकशो न तु मिलितैः । केचित्तु सुश्रुतादयः । रसशेषतः भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रवः स रसः सोऽपि पच्यते भुक्तस्य सारभूतो यो द्रवः स चापक्वः सारः रसशेषः तस्माच्चतुर्थमजीर्णम् । ननु आमाजीर्णाद्रसशेषस्य को भेदः ? उच्यते—आमं मधुरतां गतमपक्वमन्नमेव । रसशेषस्तु भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रवः स चापक्व इति भेदः । अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च । वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ १६ ॥ निर्दोषं गौरवभ्रमशूलादिदोषाऽजनकम् दिनपाकि च अहोरात्रेण पाकं यातीति स्वभावः यत्तु मात्राकालसात्म्यादिदोषादिनान्तरे पाकं याति तद्दिनपाकि । अत एव याममध्ये न भोक्तव्यमिति वचनम् । प्राकृतमविकारकम् । प्रतिवासरं प्रतिदिनभावि । भुक्तं यावन्न जीर्णं तावदजीर्णमित्युच्यते । एतदभिधानस्य प्रयोजनं पाकार्थं वामपार्श्वे शयनं प्रियशब्दसेवनादिकम् । न चात्राहारस्य निषेधः । "प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशो न दुष्यति ।" इति वचनेन सायमाशस्यावश्यं कर्तव्यत्वात् ।

कफसे आमाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण और वातकी अधिकतासे विष्टब्धाजीर्ण होता है, कितनेक सुश्रुतादि आचार्य कहते हैं कि—" किये हुए भोजनका पका हुआ अन्नादिकका जो साररूप द्रव भाग है, उस द्रवभागमें भी पकते पकते जो अपक्व (कच्चा) भाग शेष रह जाता है उसको रसशेष कहते हैं और उस रसशेषमें चौथा रसाजर्णि होता है।" शंका--फिर आमाजीर्ण और रसशेषाजीर्णमें भेदही क्या है ? समाधान--मधुरतासे युक्त जो अपक्व अन्न है उससे उत्पन्न हुए अजीर्णको आमाजीर्ण कहते हैं, भोजन किये पश्चात् पके हुए अन्नका साररूप द्रवभाग अपक्व रह गया हो उससे उत्पन्न हुए अजीर्णको रसशेषाजीर्ण कहते हैं, इस कारण आमाजीर्ण और रसशेषाजीर्ण परस्पर भिन्न हैं। कितनेक आचार्य कहते हैं कि " भारीपन, भ्रम और शूल इत्यादि दोषोंको नहीं उत्पन्न करनेवाला जो अन्न मात्रा काल तथा सात्म्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि दोषोंसे उस दिन नहीं पचे, किन्तु दूसरे दिन पचे, यह दिनपाकी पांचवाँ अजीर्ण है । " इसलिये इस अजीर्णमें भोजनके बाद एक प्रहरतक भोजन नहीं करना चाहिये ऐसा कहा है । कितनेक वैद्य कहते हैं कि--" विकारोंको उत्पन्न नहीं करनेवाला जो अजीर्ण है वह प्रतिदिन रहता है अर्थात् किया-हुआ भोजन जबतक पचे तबतक उसकी अजीर्ण संज्ञा है, यह छठा अजीर्ण है । इस छठे अजीर्ण कहनेका प्रयोजन यही है कि--इसके पचानेको बांई करवट लेकर लेटना, लोटपोटकर सोना और मिष्ट गायन कथा आदि प्रिय शब्द सुनना चाहिये । क्योंकि प्रातःकाल भोजन करनेसे उत्पन्न हुए अजीर्णमें संध्याके समय भोजन करना कुछ हानिकारक नहीं है इस वचनानुसार रात्रिमें अवश्य भोजन करना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथामाजीर्णलक्षणम् ।

तत्रामे गुरुतोत्क्लेशः शोथो गण्डाक्षिकूटगः । उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धं प्रवर्तते ॥ १७ ॥

गुरुता उदराङ्गयोः । उत्क्लेशः उपस्थितवमनमिव । अक्षिकूटोऽक्षिपुटकः ।

आमाजीर्णमें पेट और अंगोंमें भारीपन होता है, वमनकीसी इच्छा होती है, गाल और आँखोंके पलकोंपर सूजन और जैसा भोजन किया हो उसीके अनुसार डकार आती है ॥ १७ ॥

अथ विदग्धाजीर्णलक्षणम् ।

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छा पित्ताच्च विविधा रुजः । उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ १८ ॥ विविधा रुजः ऊषचोषदाहादयः ।

विदग्धाजीर्णमें भ्रम होता है, तृषा लगती है, मूर्च्छा होती है, पित्तके कारण संताप, चोष और दाहादिक अनेक प्रकारकी व्यथा होती हैं, धुएँ युक्त खट्टी डकार आती हैं, पसीना और दाह होता है॥ १८॥

अथ विष्टब्धाजीर्णलक्षणम् ।

विष्टब्धशूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः । मलवाताऽप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम् ॥ १९ ॥ वातवेदना तोदभेदादयः । स्तंभोऽङ्गानाम् । मोहो मूर्च्छा ।

विष्टब्धाजीर्णमें शूल, अफरा, तोडने भेदने (छेदने) सरीखी अनेक वायुकी पीडा होती हैं, मल और वायुका अवरोध, शरीरका जकडना, अंगोंमें पीडा और मूर्च्छा होती है ॥ १९ ॥

अथ रसशेषाजीर्णलक्षणम् ।

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिर्गौरवे ॥ २० ॥

रसशेषाजीर्णमें हृदयके अशुद्ध होनेसे और भारीपन होनेसे अन्नमें अरुचि होती है ॥ २० ॥

अथाजीर्णोपद्रवाः ।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः । उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ॥ २१ ॥

अजीर्णसे मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, लारका गिरना, ग्लानि और भ्रम ये सब उपद्रव होते हैं और मरण भी होता है ॥ २१ ॥

अथोक्ताजीर्णे विषूच्यादिरोगाः ।

आमं विदग्धं विष्टब्धमित्यजीर्णं यदीरितम् । विषूच्यलसकौ तस्माद्विद्वांश्चापि विलम्बिका ॥ २२ ॥ नात्र यथासंख्यम् । तदा विष्टब्धाद्विलम्बिका भवितुमर्हति । सा च कफवाताभ्यां भवतीति एकैकतोऽजीर्णाद्विषूच्यादित्रयोत्पत्तिः ।

आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण ये जो तीन प्रकारके अजीर्ण कहे हैं, इनसे विषूचिका, अलसक और विलम्बिका महारोग होते हैं । इनमें आमाजीर्णसे विषूचिका, विदग्धाजीर्णसे अलसक और विष्टब्धाजीर्णसे विलम्बिका होती है यह अनुक्रम नहीं मानना चाहिये परन्तु एक एक अजीर्णसे विषूची आदि तीनों रोग होते हैं, यदि अनुक्रम लिया जाय तो पित्तसम्बन्धी विष्टब्धाजीर्णसे विलम्बिका होनी चाहिये सो ठीक नहीं, क्योंकि विलम्बिका कफ और वायुसे होती है, इस कारण यह अनुक्रम नहीं लेना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ विषूचिकार्थः ।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्सन्तिष्ठतेऽनिलः । यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते २३ ॥

जिस रोगमें अजीर्णके कारण वायु शरीरमें सुई छेदनेकेसी पीडा करती है उस रोगको वैद्य विषूचिका (हैजा) कहते हैं । (सूची नाम सुईका है) ॥ २३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ विषूचिकानिदानम्।

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः। मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः। ॥ २४ ॥ विदितागमाः ज्ञातायुर्वेदाः।

परिमाणका भोजन करनेवाले और आयुर्वेदको जाननेवाले मनुष्योंको विषूचिका रोग नहीं उत्पन्न होता है, किन्तु जिन मूर्ख मनुष्योंके मन और इन्द्रियें वशमें नहीं हैं और भोजनमें अत्यन्त आसक्त हैं उनको यह विषूचिका उत्पन्न होती है ॥ २४ ॥

अथ विषूचिकालक्षणम्।

मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः। वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ २५ ॥ उद्वेष्टनं हस्तपादयोः। शिरसो भेदः शिरःशूलम्।

विषूचिकामें मूर्च्छा, अतीसार (दस्तोंका होना), वमन, तृषा, शूल, हाथ पावोंका जकडना, जम्भाई, दाह, शरीरके वर्णका बदल जाना, कम्प, हृदयमें पीडा और शिरमें पीडा होती है ॥ २५ ॥

अथ विषूचिकोपद्रवाः।

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता। अमी उपद्रवा घोरा विषूच्याः पञ्च दारुणाः ॥ २६ ॥ अमी निद्रानाशादयः उपद्रवाः। सर्वेषामेव रोगाणां घोरा भयंकराः। विषूच्याः पञ्च दारुणाः विषूच्यास्तु पञ्चापि यदि स्युस्तदा दारुणाः प्राणभयंकराः।

निद्राका नाश, बेकली, कम्प, मूत्राघात (मूत्रका अवरोध) और मूर्च्छा ये पांचों उपद्रव सब रोगोंमें भयंकर हैं, परन्तु विषूचिकामें उत्पन्न होंय तो अत्यन्त दारुण हैं, अर्थात् ये पांचों हो जायँ तो प्राण जानेका भय होता है ॥ २६ ॥

अथालसकलक्षणम्।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्यत्यथ कूजति। निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति। ॥ २७ ॥ वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि। तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु ॥ २८ ॥ आनह्यते आध्मायते। प्रताम्यति ताडयति। कूजति आर्तनादं करोति। कुक्षौ अजीर्णे न निरुद्धो मारुत उपरि धावति हृदयकण्ठादिकं गच्छतीत्यर्थः। काश्यपस्त्वाह-नाधो याति न चाप्यूर्द्धमाहारो यन्न पच्यते। कोष्ठे स्थितोऽलसीभूतस्ततोऽसावलसः स्मृतः ॥ २९ ॥

पेट अत्यन्त अफर जाय, अंगोंको पटके, पीडाके मारे चिल्लावे, पेटमें अजीर्णसे रुकी हुई वायु छाती और कंठ आदि ऊपरके भागोंमें जावे, मल और वायुका अत्यन्त अवरोध हो; तृषा हो और डकार आवे, ये सब लक्षण जिसके हों उसके अलसकरोग उत्पन्न हुआ जानना। काश्यपमुनि कहते हैं कि—"किया हुआ भोजन न तो ऊपरको वमनद्वारा निकले, न नीचे दस्तोंके द्वारा निकले और जठराग्निसे पके भी नहीं, किन्तु कोठेमें स्थिर होकर रहता है, इस कारण इस रोगको अलसक कहते हैं।" ॥२७-२९॥

अथ विषूचिकालसकारिष्टे।

यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यार्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः। क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ ३० ॥ सर्वा विमुक्ताः शिथिलीभूताः सन्धयो यस्य सः।

जिसके दांत, होंठ और नख काले पड गये हों, संज्ञा नष्ट हो गई हो, वमनसे पीडित हो, आँखें गड गई हों, स्वर क्षीण हो गया हो और सम्पूर्ण सन्धिबन्धन ढीले पड गये हों, वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

अथ विलम्बिकालक्षणम्।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्द्धमधश्च यत्र। विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥ ३१॥ भृशदुश्चिकित्स्यां प्रत्याख्येयामनुपचरणीयाम्। इदमसाध्यं चेति जैयटः।

जिसमें भोजन किया हुआ दुष्ट आहार कफ और वायुके कारण मुखके द्वारा और गुदाके द्वार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं निकले उसको विद्वान् वैद्य विलम्बिका कहते हैं, यह विलम्बिका रोग चिकित्सा करनेमें अत्यन्त कठिन है इस लिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ जीर्णाहारलक्षणम् ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः । लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ ३२ ॥

डकार शुद्ध आवे, चित्तमें उत्साह हो, मल मूत्रादिक ठीक उतरे, शरीरमें हलकापन हो, भूँख और प्यास ठीक लगे, यह जीर्ण आहारके लक्षण हैं ॥३२॥

अथाजीर्णचिकित्सा ।

हरीतकी तथा शुण्ठी भक्ष्यमाणा गुडेन च । सैन्धवेन युता वा स्यात्सातत्येनाग्निदीपनी । ॥ ३३॥ गुडेन शुण्ठीमथ चोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा । आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् । ॥ ३४ ॥ व्योषं दन्ती त्रिवृच्चित्रं कृष्णामूलं विचूर्णितम् । तच्चूर्णं गुडसम्मिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ३५ ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । शोथोदावर्तशूलघ्नं प्लीहपाण्ड्वामयापहम् ॥ ३६ ॥ सर्वचूर्णसमो गुडो देयः । दहनाजमोदसैन्धवनागरमरिचानि चाम्लतक्रेण । सप्ताहादग्निकरं पाण्डुशोनाशनं परमम् ॥३७॥ तत्रामे वमनं कार्यं विदग्धे लंघनं हितम् । विष्टब्धे स्वेदनं शस्तं रसशेषे शयीत च ॥ ३८॥ वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते । कणासिन्धुवचाकल्कं पीत्वा च शिशिराम्भसा ॥३९॥ जलमत्र शरावमात्रम् । वचा कर्षार्द्धमिता । द्वयोश्चूर्णमुष्णेन जलेन पिबेत् । कणादिकल्कं वा पीत्वा वान्तिरामे प्रशस्यते । इत्यनेनान्वयः । धान्यनागरसिद्धं वा तोदधाद्विचक्षणः । आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वातशोधनम् ॥ ४० ॥ भवेद्यदा प्रातरजीर्णशङ्का तदाभयां नागरसैन्धवाभ्याम् । विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुंज्यादशंकं मितमन्नकाले ॥ ४१ ॥ विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं दन्दह्यते हृत्र गलश्च यस्य । द्राक्षां सितामाक्षिकसम्प्रयुक्तां लीढ्वाऽभयां चापि सुखं लभेत ॥ ४२ ॥

हरड और सोंठ इन दोनोंको पीसकर गुडमें मिलाकर भक्षण करनेसे, अथवा सेंधेनिमकके साथ भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यन्त दीपन होती है। आमाजीर्ण, बवासीर. और मलबन्धमें नित्य गुडके साथ सोंठ, पीपल, हरड, अथवा अनारका सेवन करना चाहिये। सोंठ, मिरच, पीपल, जमालगोटेकी जड, निसोत, चीता और पीपलामूल इन सबको समानभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर गुड मिलावे इस गुडाष्टकको प्रातःकाल उठकर भक्षण करे। यह बल, वर्ण और अग्निको दीपन करे है, तथा सूजन, उदावर्त, शूल, प्लीहा और पांडुरोगको नष्ट करे है। चीता, अजमोद, सेंधानिमक, सोंठ और मिरच इनका चूर्ण करके खट्टे मट्ठेके साथ पिये तो सात दिनमें अग्निकी वृद्धि होती है, पांडुरोग और बवासीरको नष्ट करे है। आमाजीर्णमें वमन करानी चाहिये, विदग्धाजीर्णमें लंघन कराने चाहिये, विष्टब्धाजीर्णमें सेंक आदिसे स्वेदन कराना चाहिये और रसशेषाजीर्णमें शयन कराना चाहिये, आमाजीर्णमें आधा तोला वच और यथायोग्य सेंधानोन दोनोंको पीसकर ३२ तोले गरम जलमें डालकर पिये और वमन करे तो आमाजीर्ण दूर होय। पीपल, सेंधानिमक और वच इनका कल्क बनाकर शीतल जलमें मिलाकर पिये, इससे वमन होगी, यह आमाजीर्णमें अत्यन्त हितकारी है। जो चतुर वैद्य आमाजीर्णमें धनियाँ और सोंठका क्वाथ पिलाता है, उससे आमाजीर्ण शांत हो जाता है, यह प्रयोग शूलको नष्ट करे है और आमाशयको शुद्ध करे है। जो प्रातःकाल अजीर्णकी शंका होय तो हरड, सोंठ और सेंधानिमक इनका चूर्ण करके शीतल जलके साथ पिये और जब भोजनका समय होय तब शंकाको छोडकर परिमाणका भोजन करे जिसके भोजन करनेही अन्नका विदग्धपाक होकर हृदय और कण्ठमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दाह होय तो वह सहत और मिश्रीके साथ दाख और हरडको चाटे, इससे सुखकी प्राप्ति होती है ॥३३-४२॥

अथ हिंग्वष्टकम्।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे समधरणधृतानामष्टमो हिंगुभागः। प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ॥ ४३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, सेंधानिमक, जीरा और काला जीरा यह सब समान भाग और आठवाँ भाग भुनी हींग लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके घीमें मिलाकर भोजनके प्रथम ग्रासमें खानेसे जठराग्नि दीपन होती है और वातसंबंधी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥

अथ बृहदग्निमुखचूर्णम्।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च। सूक्ष्मैलापत्रकं भार्ङ्गी क्रिमिघ्नं हिंगु पौष्करम् ॥ ४४॥ शटी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवास्तथा। वृक्षाम्लं जीरकं धात्री श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ४५ ॥ अम्लवेतसमम्लीका यवानी देवदारु च। अभयातिविषा श्यामा हपुषाग्रवधं समम् ॥ ४६ ॥ तिलमुष्ककाशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः। क्षाराणि लौहकिट्टं च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ ४७ ॥ सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा तु समभागानि कारयेत्। मातुलुङ्गरसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम् ॥ ४८ ॥ दिनत्रयं तु शुक्तेन तथार्द्रकरसेन च। अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ४९ ॥ उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिराद्गदान्। अजीर्णमथ गुल्मं च प्लीहानं गुदजानि च ॥ ५० ॥ उदराण्यन्त्रवृद्धिं च अष्ठीलां वातशोणितम्। प्रणुदत्युल्वणान्दोषान्नष्टाग्निं च प्रदीपयेत् ॥ ५१ ॥ द्वौ क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च। लवणानि पञ्च। वृक्षाम्लं वृषाम्बिल इति लोके। श्रेयसी हरीतकी। उपकुञ्चिका मगरैला इति लोके। अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यम्। श्यामा प्रियंगुः। मुष्ककः घण्टापारुल इति लोके। कोकिलाक्षं कोइलषा इति लोके।

जवाखार, सज्जी, चीता, पाढ, करंज, पांचों निमक, तेजपात, भारंगी, वायविडंग, हींग, पोहकरमूल, कचूर, दारुहलदी, निसोत, नागरमोथा, वच, इन्द्रजौ, विषांविल, जीरा, आमले, हरड, कलौंजी, अमलवेत, इमली, अजवायन, देवदारु, छोटी हरड, अतीस, फूलप्रियंगु, हाऊबेर और अमलतास ये सब समान भाग ले, तिल, मोरवा, सहँजना, तालमखाना और ढाक इन सबका खार और अग्निमें तपाकर गोमूत्रमें बुझाया हुआ लोहेका मैल इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके बिजौरेके रसकी तीन दिनतक भावना देवे पश्चात् तीन दिनतक सिर्केमें और तीन दिनतक अदरखके रसमें खरल करे तो अग्निमुख चूर्ण तैयार हो। यह अग्निमुख चूर्ण अत्यन्त अग्निप्रदीपक दीप्ताग्निके समान है। इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे बहुत दिनोंके अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा, बवासीर, उदररोग, अंत्रवृद्धि, अष्ठीला और वातरक्त रोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण उल्वण हुए दोषोंको शमन करे है और नष्ट हुई अग्निको दीपन करे हैं ॥ ४४-५१ ॥

अथ वैश्वानरक्षारः।

स्नुह्यर्कचित्रकैरण्डवरुणं सपुनर्नवम्। तिलापामार्गकदलीपलाशं तिन्तिडी तथा ॥५२॥ गृहीत्वा ज्वालयेदेतत्प्रस्थं भस्माखिलं यथा। जलाढके विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ५३ ॥ सुप्रसन्नं विनिस्राव्य लवणप्रस्थसंयुतम्। पक्वं निर्धूमकठिनं सूक्ष्मचूर्णीकृतं पुनः ॥५४॥ यवानीजीरकव्योषस्थूलजीरकहिंगुभिः। शीतोदकेन तच्चूर्णं पिबेत्प्रातर्हिमात्रया ॥५५॥ तस्मिञ्जीर्णेऽन्नमश्नीयाद्यूषैर्जाङ्गलजै रसैः। ईषदम्लैः सलवणैः सुखोष्णैर्वह्निदीपनैः ॥ ५६ ॥ एतेनाग्निर्विवर्द्धेत बलमारोग्यमेव च। तत्रानुपानं शस्तं हि तक्रं वा भोजने हितम् ॥ ५७ ॥ मन्दाग्न्यशोवि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारेषु वातश्लेष्मामयेषु च । सर्वांगशोथरोगेषु शूलगुल्मोदरेषु च । अश्मर्यां शर्करायां च विण्मूत्रानिलरोगिषु ॥ ५८ ॥

थूहर, आक, चीता, अंड, वरना, पुनर्नवा, तिल, चिरचिटा, केला, ढाक और इमली इन सबकी लकडियोंको लेकर विधिपूर्वक जलाकर ६४ तोले भस्मको ग्रहण करे, फिर इस भस्मको २५६ तोले जलमें डालकर पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर वस्त्रसे छान लेवे फिर उस निर्मल क्षारजलमें १२८ तोले सेंधानिमक डालकर पकावे, जब पकते पकते निर्धूम और कठिन हो जाय तब उतार लेवे, फिर उसका बारीक चूर्ण करके उसमें अजवायन, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, कलौंजी और हींग इनका चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल शीतल जलके साथ खाय, जब इसकी मात्रा पच जाय तब कुछेक खट्टा, नमकीन, कुछेक गरम और अग्निको दीपन करनेवाले यूषके साथ और जंगली जीवोंके मांसके रसके साथ भोजन करे । इस प्रकार करनेसे अग्निकी वृद्धि होती है, बल और आयु बढती है, भोजन करके पश्चात् तक्र (छांछ) का पीना अथवा भोजनके साथ तक्रका पीना, इस प्रयोगमें हितकारी है । यह वैश्वानर क्षार मन्दाग्नि, बवासीर, वात और कफसंबंधी रोग, सम्पूर्ण शरीरगत सूजन, शूल, गुल्म, उदररोग, पथरी, शर्करा, विष्ठा और मूत्रके रोग तथा वातके रोगोंमें हितकारी है ॥ ५२–५८ ॥

अथ लवणभास्करः ।

सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः । सौवर्चलं पञ्चकर्षं विडसैन्धवधान्यकम् ॥ ५९ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं पत्रकं कृष्णजीरकम् । तालीशं केशरं चव्यमम्लवेतसकं तथा । ॥ ६० ॥ द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद्बुधः । मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ ६१ ॥ दाडिमं स्याच्चतुष्कर्षं त्वगेला चार्द्धकर्षिका । एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् ॥ ६२ ॥ भक्षयेच्छाणमानं तु तक्रमस्तुककाञ्जिकैः । वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम् ॥ ६३ ॥ अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम् । शूलं शोथं श्वासकासाम्रदोषांश्चापि हृद्गुजम् । ॥ ६४ ॥ अश्मरीं शर्करां चापि पाण्डुरोगं क्रिमीनपि । मन्दाग्निं नाशयेदेतद्दीपनं पाचनं परम् ॥ ६५ ॥ हिताय सर्वलोकानां भास्करेण विनिर्मितम् । हन्यात्सर्वान्यजीर्णानि भुक्तमात्रमसंशयम् ॥ ६६ ॥ अत्र दाडिमस्य बीजानां कर्षचतुष्टयं देयम् ।

समुद्रलवण ८ तोले, काला निमक ५ तोले, बिरियासंचरनिमक २ तोले, सेंधानिमक २ तोले, धनियां २ तोले, पीपल २ तोले, पीपलामूल २ तोले, तेजपात २ तोले, काला जीरा २ तोले, तालीसपत्र २ तोले, नागकेशर २ तोले, चव्य २ तोले, अमलवेंत २ तोले, कालीमिरच १ तोला, जीरा १ तोला, सोंठ १ तोला, अनारके बीज ४ तोले, दालचीनी ६ मासे और इलायचीके दाने ६ मासे लेवे, इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर लेवे, इसको 'लवणभास्कर' कहते हैं । इस लवणभास्कर चूर्णको तक्र दहीकी मलाई और काँजीके साथ २४ रत्ती प्रमाण खाना चाहिये । इस लवणको खानेसे बवासीर, संग्रहणी, कोढ, मलबंध, भगन्दर, वात और कफजनित गुल्म, प्लीहा, उदररोग, क्षयरोग, शूल, सूजन, श्वास, खाँसी, आमसंबंधी दोष, हृदयके रोग, पथरी, शर्करा, पाण्डुरोग, कृमि और अग्निकी मन्दता नष्ट होती है । यह निमक—पाचन करनेमें और अग्निको दीपन करनेमें अत्यंत उत्तम है । और सब लोकोंके हितके लिये श्रीसूर्यनारायणने बनाया है । इस लवणको भक्षण करनेसे तत्काल अजीर्ण नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५९–६६ ॥

अथ वडवानलचूर्णम् ।

सैन्धवसमूलमगधाचव्यानलनागरं पथ्या । क्रमवृद्धमग्निवृद्धौ वडवानलनाम चूर्णं स्यात् ॥ ६७ ॥

सेंधानिमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चव्य ४ भाग, चीता ५ भाग, सोंठ ६ भाग, हरड सात ७ भाग लेवें, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण कर लेवे, इस चूर्णको वडवानलचूर्ण कहते हैं, इसको भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यंत दीपन होती है ॥ ६७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ द्वितीयवडवानलचूर्णम्।

पथ्यानामरकृष्णाकरञ्जविल्वाग्निभिः सिता-
तुल्यः। वडवानल इव जरयति बहुगुर्वति-
भोजनं चूर्णम् ॥ ६८ ॥

हरड, सोंठ, पीपल, करंज, बेलगिरी आर चीता इन सबका एकत्र चूर्ण करके और सब चूर्णकी समान खांड मिलाकर भक्षण करे तो यह वडवानल (समुद्रकी अग्निकी) समान बहुत भोजन किये हुएको भी शीघ्र पचा देता है ॥ ६८ ॥

अथ समशर्कराचूर्णम्।

एलात्वङ्नागपुष्पाणां मात्रोत्तरविवर्द्धिता।
मरिचं पिप्पली शुण्ठी चतुष्पंचोत्तरोत्तरा
॥ ६९ ॥ द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावती
सितशर्करा। चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमग्निसन्दी-
पनं परम् ॥ ७० ॥

इलायची एक भाग, दालचीनी २ भाग, नागकेसर ३ भाग, काली मिर्च ४ भाग, पीपल ५ भाग और सोंठ ६ भाग लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके सब चूर्णकी बराबर खांड मिलावे, इसको भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यंत दीपन होती है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथाजीर्णे रसेन्द्रचिंतामणिरसरत्न-
प्रदीपोक्तक्रव्यादरसः।

द्विपलं गन्धकं शुद्धं पलमेकं तु पारदम्।
मृतलोहं तथा ताम्रं कर्षद्वयमितं पृथक् ॥ ७१ ॥
संचूर्ण्य सर्वं सम्मिश्रं द्रावयित्वाऽग्नियोगतः।
सम्यग् द्रुतं समस्तं तत्पश्चांगुलदले क्षिपेत्
॥ ७२ ॥ पुनः सञ्चूर्ण्य तत्सर्वं लोहपात्रे
निधापयेत्। जम्बीरस्य रसं तत्र पूतं पलशतं
क्षिपेत् ॥ ७३ ॥ चुल्ल्यां निवेश्य तद्यत्ना-
न्मृदुना वह्निना पचेत्। रसे तस्मिन्घनी-
भूते तत्संशोष्य विचूर्णयेत् ॥ ७४ ॥ पञ्च-
कोलकषायस्य चुक्रेण सहितस्य च। भावना
तत्र दातव्या पश्चात्संशोषयेच्छनैः ॥ ७५ ॥
भृष्टटंकणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत्। मरि-
चेनापि तुल्येन तदर्द्धेन बिडेन च ॥ ७६ ॥
भावयेत्सप्तकृत्वस्तु चणकाम्लजलेन च।
ततः संशोष्य संपिष्य कूप्यमध्ये निधापयेत्
॥ ७७ ॥ रसः क्रव्यादनामायं भैरवानन्द-
योगिना। उक्तः सिंहलराजाय बहुमांसा-
शिने पुरा ॥ ७८ ॥ भक्षयेद्भोजनस्यान्ते
माषद्वयमितं रसम्। भक्षयित्वा रसं पश्चा-
त्पिबेत्तक्रं ससैन्धवम् ॥ ७९ ॥ अत्यर्थं
गुरु यद्भुक्तमतिमात्रमथापि च। तत्सर्वं
जीर्यति क्षिप्रं रसस्यैतस्य भक्षणात् ॥ ८० ॥
शूलं गुल्मं च विष्टम्भं प्लीहानमुदरं तथा।
रसः क्रव्यादनामाऽयं विनिहन्ति न संशयः
॥ ८१ ॥ इति क्रव्यादरसोऽजीर्णे रसेन्द्र-
चिन्तामणौ रसरत्नप्रदीपे च।

शुद्ध गंधक ८ तोले, शुद्ध पारा ४ तोले, मारा हुआ लोहा २ तोले और मारा हुआ ताँबा २ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके अग्निके योगसे पिघलाकर अंडके पत्तेपै ढाल देव पश्चात् उसका चूर्ण करके लोहेके बासनमें डालकर ४०० तोले नींबूका रस डाल देवे, फिर उसको चूल्हेपै चढाकर यत्नपूर्वक मंद मंद अग्निसे पकावे, जब पकते पकते रस गाढा हो जाय तब उसको सुखाकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) के क्वाथकी और चूकेके रसकी भावना देकर धीरे धीरे सुखा लेवे, फिर इस चूर्णमें बराबर भुना सुहागा, सुहागेकी बराबर मिरचोंका चूर्ण और मिरचोंके चूर्णसे आधा विडलवणका चूर्ण मिलावे पश्चात् इस चूर्णको चनेके खारकी सात भावना देकर सुखा लेवे, फिर पीसकर सीसीमें भरकर रख देवे, इसको क्रव्याद रस कहते हैं। यह क्रव्याद रस पूर्वकालमें भैरवानन्द योगीने बहुत मांसको खानेवाले सिंहलद्वीपके राजाके लिये कहा था, भोजन करनेके पश्चात् बारह (१२) रत्ती प्रमाण इसको खाना चाहिये और ऊपरसे सेंधेनिमकके साथ तक्रको पिये, अत्यंत भारी और अधिक भोजन किया हुआ इस रसको भक्षण करनेसे तत्काल पच जाता है। यह क्रव्यादरस—शूल, गुल्म, मलबन्ध, प्लीहा और उदरके संमस्त रोगोंको निःसन्देह दूर करे है ॥ ७१—८१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ज्वालानलरसः ।

क्षारत्रयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम् । सर्वैस्तुल्या जया भृष्टा तदर्द्धा शिग्रुजा जटा ॥ ८२ ॥ एतत्सर्वं जयाशिग्रुवह्नीनां केवलैर्द्रवैः । भावयेत्त्रिदिनं घर्मे ततो लघुपुटे पचेत् ॥ ८३ ॥ मार्कवस्य द्रवैर्घृष्टो रसो ज्वालानलो भवेत् । निष्कोऽस्य मधुना लीढोऽनुपानं गुडनागरम् ॥ ८४ ॥ हन्त्यजीर्णमतीसारं ग्रहणीमग्निमार्दवम् । श्लेष्महल्लासवमनमालस्यमरुचिं जयेत् ॥८५॥ पञ्चकोलम् । पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ ८६ ॥ जया अत्र विजया । मार्कवः भृङ्गराजः ।

जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, पारा, गंधक और पंचकोल ये सब समान भाग लेवे और सबकी समान भुनी हुई भाँग लेवे और भाँगसे आधा भाग सैंजिनेकी जड लेवे, इन सबको तीन दिनतक भाँग सैंजिना और चीता इनके रसोंकी तीन दिनतक धूपमें भावना देवे, पश्चात् लघुपुटमें पकावे, फिर निकालकर भाँगरेके रसमें पीस लेवे तो ज्वालानलनामक रस सिद्ध होता है, इसको २४ रत्तीप्रमाण सहतके साथ चाटे और ऊपरसे गुड तथा सोंठका अनुपान करे, इससे अजीर्ण अतीसार, संग्रहणी, अग्निकी मंदता, कफ, उबकाई, वमन, आलस्य और अरुचि नष्ट हो जाती है । ऊपर जो पंचकोल कहा है वह पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इन पाँचोंको समझना ॥८२–८६॥

अथाग्निकुमाररसः ।

टंकणं रसगन्धौ च समं भागत्रयं विषात् । कपर्दः स्वर्जिकाक्षारो मागधी विश्वभेषजम् ॥ ८७ ॥ पृथक्पृथक्कर्षमात्रं वसुभागामिहोषणम् । जम्बीराम्लैर्दिनं घृष्टं भवेदग्निकुमारकः । विषूचीशूलवातादिवह्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ८८ ॥ क्षारो यवक्षारः । अग्निकुमारो विषूच्यामजीर्णे रसरत्नप्रदीपे, रसेन्द्रचिन्तामणौ च ।

सुहागा १ तोला, पारा १ तोला, गंधक १ तोला, वत्सनाभ ३ तोले, कौडी एक तोला, सज्जी १ तोला, पीपल १ तोला, सोंठ १ तोला और कालीमिर्च ८ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके एक दिनतक नींबूके रसमें खरल करे तो 'अग्निकुमार' रस सिद्ध होता है । यह रस विषूचिका, शूल, वायु आदि और अग्निकी मंदताको नष्ट करे है । यह रसरत्नप्रदीपमें तथा रसेन्द्रचिन्तामणिमें विषूचिका और अजीर्णपर कहा है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ रामबाणरसः ।

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम् । तत्र जातिफलमर्द्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥ ८९ ॥ वह्निमान्द्यदशवक्त्रनाशनो रामबाण इति विश्रुतो रसः । संग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकामवातखरदूषणं जयेत् ॥९० ॥ दीयते तु मरिचानुपानतः सद्य एव जठराग्निदीपनः । रोचनः कफकुलान्तकारकः श्वासकासवमिजन्तुनाशनः ॥ ९१ ॥ पारदभागः १ । विषभागः १ । लवङ्गभागः १ । गन्धकभागः १ । मरिचभागौ २ । जातीफलार्धभागः ।

पारा १ भाग, वत्सनाभ १ भाग, लौंग १ भाग, गंधक १ भाग, कालीमिर्च २ भाग और जायफल आधा भाग लेवे, इन सबको एकत्र करके इमलीके रसमें खरल करे तो 'रामबाण' रस सिद्ध होता है । यह रामबाण नामवाला रस अग्निकी मंदतारूप रावणको नष्ट करे है, संग्रहणी तथा ग्रहणीरूप कुम्भकर्णको जीते है और आमवातरूपी खरदूषणका नाश करे है, यह मिर्चके अनुपानसे सेवन किया हुआ तत्काल जठराग्निको दीपन करे है, रुचिको उत्पन्न करे है, कफके समूहको नष्ट करे है और श्वास, खाँसी, वमन तथा कृमिको भी दूर करे है ॥ ८९–९१ ॥

अथ शंखवटी ।

पलं चिञ्चासारं पलमितमिदं पञ्चलवणं द्वयं सम्यक्पिष्टं भवति लघुनिम्बूफलरसैः । ततः पिष्टे तस्मिन्पलपरिमितं शङ्खशकलं क्षिपेद्वारान्सप्त द्रवमिह च तेनैव विधिना ॥ ९२ ॥ पलप्रमाणं कटुकत्रयं च पलार्द्धमानं वचाहिं-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुभागः । विषं पलद्वादशभागयुक्तं तावद्रसो गन्धक एष चोक्तः ॥ ९३ ॥ बदरास्थिप्रमाणेन वटीमेतस्य कारयेत् । भक्षयेत्सेवया साम्यात्सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ९४ ॥ सर्वोदरेषु शूलेषु विषूच्यां विविधेषु च । अग्निमान्द्येषु गुल्मेषु सदा शङ्खवटी हिता ॥ ९५ ॥ इति शंखवटीरसः रसरत्नप्रदीपे ।

इमलीका खार ४ तोले और पाँचों नमक ४ तोले लेकर कागजी नींबूके रसमें पीस लेवे, फिर इस रसमें चार तोले शंखका टुकडा सात वार तपा तपाकर नींबूके रसमें बुझाकर मिला देवे, पश्चात् इसमें चार तोले त्रिकुटा, दो तोले वच और हींग, वत्सनाभ १२ पल, वत्सनाभकी बराबर पारा और पारेकी बराबर गंधक लेवे, इन सबको एकत्र मिलाकर बेरकी गुठलीकी समान गोली बनावे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे सब प्रकारके अजीर्ण शांत होते हैं । यह शंखवटी सर्व प्रकारके उदररोगोंपर, शूलपर, विषूचिकापर, अग्निकी विविधप्रकारकी मंदतापर और गुल्मरोगपर सदैव हितकारी है ॥ ९२–९५ ॥

अथ बृहच्छंखवटी ।

स्नुह्यर्कचिञ्चापामार्गरम्भातिलपलाशजान् । लवणानाददीतैषां प्रत्येकं कर्षमात्रया ॥ ९६ ॥ लवणानि पृथक्पञ्च ग्राह्याणि पलमात्रया । स्वर्जिका च यवक्षारष्टंकणं त्रितयं पलम् ॥ ९७ ॥ सर्वं त्रयोदशपलं सूक्ष्मं चूर्णं विधाय च । निम्बूफलरसे प्रस्थसम्मिते तत्परिक्षिपेत् ॥ ९८ ॥ तत्र शङ्खस्य शकलं पलं वह्नौ प्रताप्य तु । वारान्निर्वापयेत्सप्त सर्वं द्रवति तद्यथा ॥ ९९ ॥ नागरं त्रिपलं ग्राह्यं मरिचं तु पलद्वयम् । पिप्पली पलमाना स्यात्पलार्द्धं भृष्टहिंगुतः ॥ १०० ॥ ग्रन्थिकं चित्रकं चापि यवानी जीरकं तथा । जातीफलं लवङ्गं च पृथक्कर्षद्वयोन्मितम् ॥ १०१ ॥ रसो गन्धो विषं चापि टंकणं च मनःशिला । एतानि कर्षमात्राणि सर्वं संचूर्ण्य मिश्रयेत् ॥ १०२ ॥ शरावार्द्धेन चुक्रेण वटिकां तस्य कारयेत् । माषप्रमाणा सद्वैद्यैर्बृहच्छंखवटी स्मृता ॥ १०३ ॥ सर्वाजीर्णप्रशमनी सर्वशूलनिवारिणी । विषूच्यलसकादीनां सद्यो भवति नाशनी ॥ १०४ ॥

थूहरका खार ४ तोले, इमलीका खार ४ तोले, आकका खार ४ तोले, चिरचिटेका खार ४ तोले, केलेका खार ४ तोले, तिलका खार ४ तोले, ढाकका खार ४ तोले, पाँचों निमक २० तोले, जवाखार, सज्जीखार और सुहागा ये तीनों ४ तोले, इस प्रकार ५२ तोले द्रव्य लेकर बारीक चूर्ण करके ६४ तोले नींबूके रसमें डाल देवे, पश्चात् ४ तोले भर शंखके टुकडेको अग्निमें तपा तपाकर सात वार इस रसमें बुझा देवे, कि–जिससे वह द्रवरूप हो जावे, फिर सोंठ १२ तोले, काली मिरच ८ तोले, पीपल ४ तोले, भुनी हींग २ तोले, पीपलामूल २ तोले, चीता २ तोले, अजवायन २ तोले, जीरा २ तोले, जायफल २ तोले, लौंग २ तोले, पारा १ तोला, गंधक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, सुहागा १ तोला और एक तोला मैनशिल सबको एकत्र पीसकर पूर्वोक्तरसमें मिला देवे, फिर १६ तोले चूकेका रस मिलाकर उडदकी समान गोलियाँ बनावे । इन गोलियोंको बृहच्छंखवटी कहते हैं । यह गोली सब प्रकारके अजीर्णको शांत करे है । सब प्रकारके शूलोंको नष्ट करे है और विषूची तथा अलसक आदि रोगोंको तत्काल दूर करे है ॥ ९६–१०४ ॥

अथाजीर्णकंटकरसः ।

टंकणकणामृतानां सहिंगुलानां समं भागम् । मरिचस्य भागयुगलं निम्बूनीरैर्वटी कार्या ॥ १०५ ॥ वटिकां कलायसदृशीमेकां द्वे वा समश्नीयात् । सत्यमजीर्णं शान्त्यै वह्नेर्वृद्ध्यै कफध्वस्त्यै ॥ १०६ ॥

सुहागा, पीपल, वत्सनाभ और सिंग्रफ इन सबको समान भाग ले और कालीमिरच दो भाग डालकर नींबूके रससे मटरकी समान गोलियाँ बना लेवे । इनमेंसे एक अथवा दो गोली खानेसे अजीर्ण शांत हो जाता है, अग्निकी वृद्धि होती है और कफका नाश होता है, यह सत्य है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ विषूचिकाचिकित्सा।

जलपीतमपामार्गं शूलं हन्याद्विषूचिकाम्। सतैलं कारवेल्लयम्बु नाशयोद्धि विषूचिकाम् ॥ १०७ ॥ बालमूलस्य तु क्काथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः। विषूचीनाशनः श्रेष्ठो जठराग्निविवर्द्धनः ॥ १०८ ॥ बिल्वनागरनिक्काथो हन्याच्छार्दीविषूचिकाम्। बिल्वनागरकैटर्यक्काथस्तदधिको गुणः ॥ १०९ ॥ कैटर्यः कट्फलः। व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रे मूलं समावाप्य च मातुलुङ्ग्याः। छायाविशुष्का वटिका कृता सा हन्याद्विषूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ११० ॥ अनुभूतमिदम्। अपामार्गस्य पत्राणि मरिचानि समानि च। अश्वस्य लालया पिष्टाऽञ्जनाद्धन्ति विषूचिकाम् ॥ १११ ॥ विषूच्यामतिवृद्धायां तक्रं दधिसमं जलम्। नारिकेलाम्बु पेयं वा प्राणत्राणाय योजयेत् ॥ ११२ ॥ त्वक्पत्रकैरण्डकाशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः। उद्वर्तनं खल्विविषूचिकाघ्नं तैलं विपक्वं च तदर्थकारि ॥ ११३ ॥ कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रं तैले तु साधितम्। विषूच्यां मर्दनं तेन खल्वीशूलनिवारणम् ॥ ११४ ॥ पिपासायां तथोत्क्लेशे लवंगस्याम्बु शस्यते। जातीफलस्य वा पीतं श्रृतं भद्रघनस्य वा ॥ ११५ ॥

चिरचिटेको जलमें घोटकर पीनेसे विषूचिकाका शूल दूर होता है। करेलेके रसमें तेल मिलाकर पीनेसे विषूचिका नष्ट होती है। छोटी मूलीके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे विषूचिका नष्ट होती है और जठराग्नि दीपन होती है। बेलगिरी और सोंठका क्काथ बनाकर पीनेसे वमन और विषूचिका दूर होती है। बेलगिरी, सोंठ और जायफल इनका क्काथ ऊपरके क्काथसे अधिक गुणोंवाला है। सोंठ, मिर्च, पीपल, करंजके फल, हलदी, दारुहल्दी और बिजौरे नींबूकी जड इन सबको एकत्र पीसकर गोली बनाकर छायामें सुखा देवे, इस गोलीको नेत्रोंमें आँजनेसे विषूचिका नष्ट हो जाती है, यह हमने अपने आप अनुभव किया है। चिरचिटेके पत्ते और काली मिरच समान भाग लेकर घोडेकी लारमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे विषूचिका नष्ट हो जाती है। विषूचिका अत्यंत बढ गई होय तो उसकी प्राणरक्षाके लिये दही छाँछमें बराबरका जल मिलाकर अथवा नारियलका जल मिलाकर पिलावे। दालचीनी, तेजपात, अंड, सैंजिना, कूठ, वच और सोया इनको नींबूके रसमें पीसकर शरीरमें लगानेसे खल्वी और विषूचिका नष्ट हो जाती है और इन्हीं पदार्थोंके द्वारा तेलको पकाकर लेप करनेसे भी खल्वी तथा विषूचिका नष्ट हो जाती है। कूठ और सेंधानिमक इनका कल्क बनाकर चूकेके रसमें तेलको सिद्ध करे, इस तेलका मर्दन (मालिश) करनेसे खल्वी और विषूचिका (हैजा) एवं शूल नष्ट हो जाता है। जो विषूचिकामें तृषा होय तो अथवा उत्क्लेश होय तो लौंगका पानी पिलावे, अथवा जायफलका क्काथ पिलावे, किंवा भद्रमोथेका क्काथ पिलावे ॥ १०७-११५ ॥

अथोत्क्लेशलक्षणम्।

उत्क्लिश्यान्नं च निर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम्। हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ ११६ ॥

जिस मनुष्यको उबकाई आवे और अन्न न निकले और मुखसे पानी बहे वा थूकनेके साथ उत्क्लेशित हो, अन्न न निकले और हृदयमें पीडा होने लगे उसको उत्क्लेशरोग कहते हैं ॥ ११६ ॥

अथ दारुषट्कम्।

सरुग्वानद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत्। दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ ११७ ॥ हैमवती श्वेतवचा। तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्तं जठरे निहन्यात्। स्वेदो घटैर्वाप्यथ बाष्पपूर्णैरुष्णैस्तथान्यैरपि पिण्डतापैः ॥ ११८ ॥

देवदारु, सफेद वच, कूठ, सौंफ, हींग और सेंधानिमक इन सब औषधियोंको कांजीमें पीसकर जिस मनुष्यके उदरमें पीडा होय अथवा पेट फूल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गया हो उसपर लेप करना चाहिये । जौका आटा और जवाखार मिलाकर मट्ठेमें पकावे, उसको गरम गरम लेकर उदरपर लेप करे, अथवा स्वेदन करे तो उदरकी पीडा शान्त होती है । वाफसे भरे हुए घडेके स्वेद लेनेसे अथवा अन्य उष्ण पदार्थोंके सेकनेसे उदरपीडाकी शान्ति होती है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

अथालसकविलम्बिकयोश्चिकित्सा ।

विलम्बिकालसकयोरयमेव क्रियाक्रमः । अत एव तयोरुक्तं पृथङ्नाह चिकित्सितम् ॥ ११९ ॥

जो चिकित्सा विषूचिकाकी कही है, वही चिकित्सा विलम्बिका और अलसक रोगमें करनी चाहिये, इसी लिये हमने उनकी अलग अलग औषधि नहीं लिखी ॥ ११९ ॥

अथ भस्मकरोगचिकित्सा ।

तं भस्मकं गुरुस्निग्धसान्द्रमन्दहिमस्थिरैः । अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ॥ १२० ॥ अत्युद्धताग्निशान्त्यै माहिषदधिदुग्धसर्पींषि । संसेवेत यवागूं समपिष्टे पयसि सर्पिषा सिद्धाम् ॥ १२१ ॥ असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् । श्यामात्रिवृद्धिपक्वं च पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ १२२ ॥ यत्किञ्चिन्मधुरं मेध्यं श्लेष्मलं गुरु भोजनम् । सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ १२३ ॥ सिततण्डुलसितकमलं छागक्षीरेण पायसं सिद्धम् । भुक्त्वा च तेन पुरुषो दशदिवसान्तुच्छभोजनो भवति ॥ १२४ ॥

भारी, स्निग्ध, कठोर, मन्द, शीतल और स्थिर इस प्रकारके गुणयुक्त अन्न तथा पानीसे और पित्तनाशक पदार्थ अथवा विरेचन (जुलाब) करानेसे भस्मक रोग शान्त होता है । अत्यंत बढी हुई जठराग्निको शमन करनेके लिये भैंसका दूध, दही और घृत परमोत्तम है । अथवा घृत और सहत मिलाकर यवागूका सेवन करनेसे भस्मक रोग शान्त होता है । अथवा चावलोंका चूर्ण और दूध सम भाग लेकर घृतमें पाक करी हुई वस्तुका भोजन करे, अथवा सदैव पित्तनाशक द्रव्योंका देना और खीर आदिका खाना अत्यंत हितकारी है । काली निसोतको दूधमें पकाकर विरेचनके लिये पिलावे तो सर्व दुःखहारी है । मधुर पदार्थ, पवित्र, कफकारी और भारी भोजन भस्माग्निवालेको परम हितकारी है और भोजन करनेके उपरान्त दिनमें सोना भी सुखसाधक है । सफेद चावल और सफेद कमलको बकरीके दूधमें खीर बनाकर खानेसे दश दिनमें अल्पभोजन करने लगेगा ॥ १२०–१२४ ॥

अथ द्रव्यविशेषाजीर्णे पाचनद्रव्यम् ।

अलं पनसपाकाय फलं कन्दलसम्भवम् । कन्दलस्य तु पाकाय बुधैरपि घृतं हितम् घृतस्य परिपाकाय जम्बीरस्य रसो हितः ॥ १२५ ॥ नारिकेलफलतालबीजयोः पाचकं सपदि तण्डुलं विदुः । क्षीरमेव सहकारपाचनं क्षारमज्जनि हरीतकी हिता ॥ १२६ ॥ मधूकमालूरनृपादनानां परूषखर्जूरकपित्थकानाम् । पाकाय पेयं पिचुमन्दबीजं घृतेऽपि तक्रेऽपि तदेव पथ्यम् ॥ १२७ ॥ खर्जूरशृंगाटकयोः प्रशस्तं विश्वौषधं कुत्र च भद्रमुस्तम् । यज्ञांगबोधिद्रुफलेषु शस्तं प्लक्षे तथा पर्युषितं प्रपीतम् ॥ १२८ ॥ तण्डुलेषु च पयः स्वस्थो दीपकं तु चिपिटे कणायुतम् । षष्टिका दधिजलेन जीर्यते कर्कटी च सुमनेषु जीर्यति ॥ १२९ ॥ सुमनेषु गोधूमेषु जीर्यति । गोधूममाषहरिमन्थसतीनमुद्गपाको भवेज्झटिति मातुलपुत्रकेण । खर्जूरिकाब्रिसकशेरुसितासु शस्तं शृंगाटके मधुफलेष्वपि भद्रमुस्तम् ॥ १३० ॥ मातुलपुत्रकं धत्तूरफलम् । कंगुश्यामाकनीवाराः कुलत्थाश्चाविलम्बितम् । दध्नो जलेन जीर्यन्ति वैदलः काञ्जिकेन तु ॥ १३१ ॥ पिष्टान्नं शीतलं वारि कृशरां सैन्धवं पचेत् । माषेण्डरीं निम्बुफलं पायसं मुद्गयूषकः ॥ १३२ ॥ वटो वेसवाराँल्लवङ्गेन फेनः समं पर्पटः शिग्रुबीजेन याति । कणामूलतो लड्डु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कापूपसट्टादिपाको भवेच्छष्कुलीमण्डयोश्च ॥ १३३ ॥ वेसवारो वगस इति लोके । तद्यथा-स्नेहो निशा हिंगुलवंगकैलाधान्याकजीरार्द्रकनागराणि । अम्लोषणं सैन्धवचूर्णमन्ने यथोचितं संस्कृतये प्रणीतम् । इति । सट्टा सट्टकपानविशेषः । मण्डं माण्डेति लोके । किमत्र चित्रं बहुमत्स्यमांसभोजी सुखी काञ्जिकपानतः स्यात् । इत्यद्भुतं केवलवह्निपक्को मांसेन मत्स्यः परिपाकमेति ॥ १३४ ॥ आममाम्रफलं मत्स्यं तद्बीजं पिशिते हितम् । कूर्ममांसं यवक्षारः शीघ्रं पाकमुपैति हि ॥ १३५ ॥ कपोतपारावतनीलकण्ठकपिञ्जलानां पिशितानि भुक्त्वा । काशस्य मूलं परिपिष्य पीतं सुखी भवेन्ना बहुशो हि दृष्टम् ॥ १३६ ॥ कपोतो धवलः पाण्डुः । मांसानि सर्वाण्यपि यान्ति पाकं क्षारेण सद्यस्तिलनालजेन । चञ्चूकसिद्धार्थकवास्तुकानां गायत्रिसारक्कथितेन पाकः॥ १३७॥ चञ्चूकः चेचू इति लोके । गायत्री खदिरः । पालङ्किकाकेबुककारवल्लीवार्ताकुवंशांकुरमूलकानाम् । उपैति कालाम्बु पटोलकानां सिद्धार्थको मेघरवश्च पक्ता ॥ १३८ ॥ मेघरवः चौरा इति लोके । विपच्यते शूरणकं गुडेन तथालुकं तण्डुलधावनेन । पिण्डालुकं जीर्यति कोरदूषात्कशेरुपाकः किल नागरेण ॥ १३९ ॥ लवणस्तण्डुलतोयात्सर्पिर्जम्बीरकाद्यम्लात् । मरिचादपि तच्छीघ्रं पाकं यात्येव काञ्जिकात्तैलम् ॥ १४० ॥ क्षीरं जीर्यति तक्रेण तद्दध्यं कोष्णमण्डकात् । माहिषं मणिमन्थेन शंखचूर्णेन तद्दधि ॥ १४१ ॥ मण्डकः मांड इति लोके । रसालं जीर्यति व्योषात्खण्डं नागरभक्षणात् । सिता नागरमुस्तेन तथेक्षुश्चार्द्रिकाद्रसात् ॥ १४२ ॥ जरामिरा गैरिकचन्दनाभ्यामभ्येति शीघ्रं मुनिभिः प्रदिष्टम् । उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्णं जीर्णो भवेत्क्षारगणस्तथाम्लैः ॥ १४३ ॥ इरा मदिरा । तप्तं तप्तं हेमवा तारमग्नौ तोये क्षिप्तं सप्तकृत्वस्तदम्भः । पीत्वाजीर्णी तोयजातं निहन्यात्तत्र क्षौद्रं भद्रमुक्तं विशेषात् ॥ १४४ ॥ तत्र तोयाजीर्णे ।

कटहरके अजीर्णमें केलेकी फली खानी उत्तम है और केलेके अजीर्णमें घृत खाना हितकारी है, घृतके अजीर्णमें जम्भीरी नींबूका रस श्रेष्ठ है, नारियल और तालके बीजोंके परिपाकके लिये चावल अच्छे हैं, आमके पचानेके लिये दूध श्रेष्ठ है, चिरौंजीके पचानेको हरड ठीक है, महुआ, बेल, खिरनी, फालसे, खजूर और कैथ इनके परिपाकके लिये नीमकी निबौलियोंको घोटकर पीना परमोत्तम है, घी और मट्ठेके अजीर्णमें भी नीमकी निबौलियोंका रस फलदायक है, खजूर और सिंघाडोंके अजीर्णके लिये सोंठ और नागरमोथा भी किसी वैद्यने उत्तम लिखा है, गूलर, पीपल और पाखरके अजीर्णको जीर्ण करनेके लिये सोंठका बासी क्वाथ पीना परमोत्तम है, चावलोंके अजीर्णमें दूध पीना श्रेष्ठ है और दूधके अजीर्णमें अजवायन ही रसायन है, चावलोंके अजीर्णमें अजवायन और पीपल घोटकर पीनी गुणदायक है, साँठीके चावल दहीका पानी पीनेसे पच जाते हैं और ककडियोंका अजीर्ण गेहूँसे पचता है। गेहूँ, उडद, चने और मटरका अजीर्ण धतूरेके खानेसे दूर होता है। कंगनी, समा, खजूर, कमलकी डंडी, कसेर, सिता (मिश्री), सिंघाडे और महुएके अजीर्णमें मोथेका क्वाथ हितकारी है। कंगनी, समा तथा कुलथीके अजीर्णमें दहीका पानी पीना श्रेष्ठ है और दालवाली वस्तुके अजीर्णको काँजी दूर करती है। पिट्ठीके पदार्थों (कचौरी, पकौरी, दही बडे और बडी आदि) का अजीर्ण शीतल जलसे दूर होता है और खिचडीका अजीर्ण सेंधानिमक पचाता है। माषेण्डरी (अमृती) को नींबूका रस, खीरको मूंगका यूष फलदायक है। बडेका अजीर्ण बेसवार (तैलादिक स्नेह, हलदी, हींग, लौंग, मिरच, इलायची, जीरा, धनियां, अदरख, सोंठ, खटाई और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सैंधानिमक ये सम्पूर्ण वस्तु यथायोग्य अन्नादिकके सुधारनेके लिये डाली जाय उसको वेसवार कहते हैं।) से पचता है । लौंगसे फेनीका अजीर्ण पचता है पापड़के अजीर्णको सैंजनेके बीज दूर करते हैं, लड्डू मालपुए और सट्टक (पन्नाविशेष) आदिको पीपलामूल पचाता है और पूरी मांडसे पचती है, मछलियोंका खानेवाला काँजी पीनेसे सुख पाता है, इसमें किंचित् मात्र भी आश्चर्य नहीं है, परन्तु यह बात महा आश्चर्यकी है कि—केवल अग्निसे पकाई हुई मछलियें मांस खानेसे तुरन्त पच जाती हैं, कच्चा आमका फल मछलीके अजीर्णको दूर करे है। कछुएके मांसका अजीर्ण जवाखारसे बहुत शीघ्र पचता है । कपोत (पाण्डुक), कबूतर, नीलकण्ठ और तीतर इनके मांसका अजीर्ण काँसकी जड जडसे खो देती है । मैंने बहुत वार विचार कर देखा कि, तिलकी नालका खार सम्पूर्ण मांसोंके अजीर्णको पचाता है । चंचू, सरसों और बथुएके शाकका अजीर्ण खैरसारके क्वाथ पीनेसे दूर होता है, पालक, केवुक, करेला, बैंगन, बाँसका कल्ला, मूली, पोई, लौकी, चौलाई और परवल इन सबका अजीर्ण सफेद सरसोंके शाक खानेसे शान्त होता है, गुडका अजीर्ण जमीकन्दसे दूर होता है। आलू चाँवलोंके धोवनसे ठीक पचते हैं, पिण्डालू कोदों अन्नके खानेसे शमन होता है । कसेरुका अजीर्ण सोंठसे दूर होता है, नमकका अजीर्ण चावलोंके पानीसे, घी जम्भीरी नींबूके रससे अथवा काली मिर्चसे बहुत शीघ्र शान्त होता है । और तेलका परिपाक काँजीसे होता है, दूधका अजीर्ण मट्ठेसे, गौका घी उष्ण मांडसे, भैंसका दूध सेंधे नमकसे और भैंसका दही शंखके चूर्णसे पचता है । पौंडेका अजीर्ण त्रिकुटेसे, खाँड सोंठके चूर्णसे, चीनी सोंठ और मोथेसे और ईखका रस अदरखके रससे पचता है । मदिरा (शराब) गेरू और चन्दनको घोटकर पीनेसे शीतल वस्तुका अजीर्ण गरम वस्तुके खानेसे पचता है, उष्ण पदार्थ, शीतल पदार्थोंसे, और नमकीन पदार्थ खटाई इत्यादिसे क्षीण होते हैं, जिस प्राणीको पानीका अजीर्ण हो जाय तो सोनेको अथवा चांदीको बारंबार अग्निमें तपाकर पानीमें बुझावे, इसी प्रकार सात बारका बुझाया हुआ पानी पिये तो पानीका अजीर्ण शान्त होता है और जो गरम पानीसे अजीर्ण होय तो उसके लिये सहत और नागरमोथा विशेष करके परमोत्तम हैं ॥ १२५–१४४ ॥

इति जठराग्निविकाराधिकारः समाप्तः ।

अथ कृमिरोगाधिकारः ।

तत्र कृमिभेदाः ।

क्रिमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।

बाहर और भीतरके भेदोंसे कृमि (कीडे) दो प्रकारके हैं ॥

कृमिनिदानम् ।

बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः । नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः ॥ १ ॥ तत्र तेषु बाह्याः क्रिमयः मलोद्भवाः त्वग्लग्नबर्हिर्मलस्वेदसंभवाः ।

बाहरके मल (प्रस्वेदादि), कफ, रुधिर और विष्ठा इनसे शरीरमें कृमि (कीडे) उत्पन्न होते है इन कारणोंके भेदसे बाहरके कृमिरोग चार प्रकारके हैं और नामभेदसे बीस प्रकारके होते हैं, उनमेंसे मल अर्थात् पसीनेसे उत्पन्न हुए कृमि बाहरी कहलाते हैं ॥ १ ॥

अथ बाह्यकृमिरूपम् ।

तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः । बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः ॥ २ ॥ तिलानामिव परिणाहावयवसन्निवेशवर्णा येषां ते, द्विधा तत्र यूका बहुपादाः कृष्णाः केशाश्रयाः लिक्षाः सूक्ष्माः श्वेता वस्त्राश्रयाः ।

बाह्यकृमि तिलकी समान प्रमाणवाले, तिलकी आकृति और तिलके वर्णवाले होते हैं। यह कृमि अधिक पाँवोंवाले और सूक्ष्म होते हैं, उनमें कितनी जूँ और कितनी लीखें होती हैं, तथा केश और वस्त्रोंके आश्रयसे रहती हैं (इनमें जो काले और बहुत पाँववाले कृमि होते हैं उनको जूँ कहते हैं और सूक्ष्म सफेद वर्णवाले होते हैं उनको लीख कहते हैं) ॥ २ ॥

अथ बाह्यकृमिविकारः ।

द्विधा ते कोठपिटिकाः कण्डूगण्डान्प्रकुर्वते ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह दोनों प्रकारकी कृमि कोठ (गांठ), पिटिका (फुंसी), खुजली और गलगण्ड रोगोंको उत्पन्न करे है ॥

अथान्तः कृमिविप्रकृष्टनिदानम् ।

अजीर्णभोजी मधुराम्लसेवी द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता । व्यायामवर्जी च दिवाशयी च विरुद्धभोजी लभते क्रिमींश्च ॥ ३ ॥

अजीर्णमें भोजन करना, मधुर तथा खट्टे पदार्थोंका सेवन, द्रव (पतले) पदार्थोंपर रुचि, पिष्ट (पिसे हुए) तथा गुडसे बने पदार्थोंका भोजन, व्यायाम (परिश्रम) नहीं करना, दिनमें सोना और विरुद्ध पदार्थोंका भोजन करना इनसे भीतरके कृमि उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

अथ जातकृमिलक्षणम् ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः । भुक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातक्रिमिलक्षणम् ४॥

ज्वर, वर्णका बिगडना, शूल, हृदयमें पीडा, ग्लानि, भ्रम, भोजनसे द्वेष और अतीसार (दस्तोंका होना) इन लक्षणोंसे शरीरके भीतर कृमि उत्पन्न हुए जानना ॥ ४ ॥

अथ कफोत्पन्नक्रिमिविप्रकृष्टनिदानम् ।

मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥५॥ शुक्तं कालान्तरेण अम्लीभूत इक्षुरसविकारः ।

कफसम्बन्धी कृमि—मांस, माष (उडद), गुड, दूध, दही और शिरका इनके विकारोंसे होते हैं ॥५॥

अथ कफजक्रिमिसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः । पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूपदोपमाः ॥ ६ ॥ रूढधान्यांकुराकारास्तनुदीर्घास्तथाणवः । श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥ ७ ॥ अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः । चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ ८ ॥ हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् । मूर्च्छार्च्छर्दिज्वरानाहकासक्षवथुपीनसान् ॥ ९ ॥

ब्रध्नश्चर्मलता । रूढोऽङ्कुरितः । तनवः परिणाहेन तथा दीर्घास्तनु दीर्घाः । चुरवश्चुरवनामानः । तत्कर्तव्यविकारा हृल्लासादयः ।

कफसे आमाशयमें उत्पन्न हुए कृमि वृद्धिको प्राप्त होकर चारों ओर विचरते हैं, इनमें कितने एक मोटे चर्मलताकी समान, कितने एक गेंडुए (केचुए) की समान, कितने एक धान्यके उत्पन्न हुए अंकुरके सदृश, कितने एक सूक्ष्म लंबे तथा बारीक होते हैं। यह कृमि—सफेद और लाल वर्णवाले होते हैं। अंत्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुह, चुरव, दर्भकुसुम और सुगन्ध इन नामोंसे ये कृमि सात प्रकारके हैं। कफसे कृमि हुए होंय तो हृल्लास, मुखसे लारका गिरना, खाये हुए अन्नका न पचना, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, अफरा, खाँसी, छींक और पीनस ये रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६–९ ॥

अथ रक्तोत्पन्नकृमिलक्षणम् ।

रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः । प्रपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ १० ॥ केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः । षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥ ११॥ सौरसमातृभ्यां सह वर्तन्त इति सहसौरसमातरः ।

रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमि—रुधिरको बहानेवाली शिराओंमें रहते हैं। सूक्ष्म, बहुत पाँवोंवाले, गोल तथा लाल होते हैं और सूक्ष्मताके कारण कितने एक नहीं भी दीखते हैं। केशाद, लोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुंबर, सौरस और मातर इन नामोंसे ये कृमि छह प्रकारके हैं, इन कृमियोंसे कोढ उत्पन्न होता है॥१०॥११॥

अथ पुरीषजक्रिमिलक्षणम् ।

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः । वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदामाशयोन्मुखाः ॥ १२ ॥ तदास्योद्गारनिःश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः ॥ पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥ १३ ॥ ते पञ्च नाम्ना क्रिमयः ककेरुकमकेरुकाः सौसुरादा मलूनारव्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेलिहा जनयन्ति च ॥ १४ ॥ विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः। रोमहर्षाग्निसदनगुदकण्डूर्विमार्गगाः ॥ १५ ॥ वृद्धास्तेऽधोविसर्पिणः स्युः यदा ते आमाशयोन्मुखा भवेयुरित्यन्वयः। ते विमार्गगाः सन्तो विड्भेदादीन् जनयन्तीत्यर्थः।

विष्ठासे उत्पन्न हुए कृमि पक्वाशयमें होते हैं वे कृमि नीचेको चलते हैं, जब वृद्धिको प्राप्त होते हैं तब आमाशयमें विचरते हैं, फिर डकार और श्वास लेनेमें मलकी सदृश दुर्गन्ध आती है। वे बडे, गोल, सूक्ष्म, मोटे, रंगमें काले, पीले, सफेद और अत्यंत काले भी होते हैं। ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, मल्लून और लेलिह इन नामोंसे ये कृमि पांच प्रकारके हैं। जब वे कृमि उलटे मार्गमें गमन करते हैं तब दस्त, शूल, मलबंध, कृशता, कठोरता, पीलापन, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजली ये सब उपद्रव होते हैं ॥ १२–१५ ॥

अथ क्रिमिचिकित्सा।

विडङ्गव्योषसंयुक्तमन्नमण्डं पिबेन्नरः। दीपनं क्रिमिनाशाय जठराग्निविवृद्धये ॥ १६ ॥ प्रत्यहं कटुकं तिक्तं भोजनं कफनाशनम्। क्रिमीणां नाशनं रुच्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ १७ ॥ विडंगश्रृतपानीयं विडंगेनावधूलितम्। पीतं क्रिमिहरं दृष्टं क्रिमिजांश्च गदान्नयेत् ॥ १८ ॥ लिह्याद्विडङ्गचूर्णं वा मधुना क्रिमिनाशनम्। पलाशबीजस्य रसं पिबेन्माक्षिकसंयुतम् ॥ १९ ॥ पिबेत्तद्बीजकल्कं वा मधुना क्रिमिनाशनम् ॥ २०॥ कम्पिल्लचूर्णकर्षार्द्धं गुडेन सह भक्षितम्। पातयेत्तत्क्रिमीन्सर्वानुदरस्थान्न संशयः ॥ २१ ॥ विडंगं कौटजं बीजं तथा बीजं पलाशजम्। सञ्चूर्ण्य खादेत्खण्डेन क्रिमिन्नाशयितुं नरः ॥ २२ ॥ निम्बपत्रसमुद्भूतं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत्। धत्तूरपत्रजं वापि क्रिमिनाशनमुत्तमम् ॥ २३ ॥ रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः। ताम्बूलपत्रजो वापि लेपो यूकाविनाशनः। धत्तूरपत्रकल्केन तद्रसेनैव पाचितम् ॥ २४ ॥ तैलमभ्यंगमात्रेण यूका नाशयति क्षणात्। क्रिमीणां विट्कफोत्थानामेतदुक्तं चिकित्सितम्। रक्तजानां तु संहारं कुर्यात्कुष्ठचिकित्सया ॥ २५ ॥

वायविडंग, सोंठ, मिर्च और पीपल इनका चूर्ण मांडमें मिलाकर पिये तो अग्निदीपन होती है और पेटके कीडे नष्ट होते हैं। सदैव चरपरा और कडवा भोजन करना—कफ तथा कृमियोंका नाशक है, रुचिको उत्पन्न करनेवाला है और जठराग्निको अत्यन्त दीपन करे है। वायविडंगका क्वाथ करके फिर उसमें और वायविडंगका चूर्ण डालकर पिये तो कृमियोंका नाश होता है और क्रिमियोंसे उत्पन्न हुए रोगोंका भी नाश होता है। वायविडंगका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे तो कृमि दूर होते हैं। ढाकके बीजोंके रसमें सहत मिलाकर पिये, अथवा ढाकके बीजोंका कल्क बनाकर सहत डालके पिये तो कृमि नष्ट होते हैं। आधा तोला कबीलेका चूर्ण गुडके साथ खाय तो उससे उदरमें रहनेवाले सम्पूर्ण कृमि निःसन्देह निकल जाते हैं। वायविडंग, इन्द्रजौ और ढाकके बीज इनका महीन चूर्ण करके खांडके साथ खाय तो इससे कृमि नष्ट होते हैं। नींबूके अथवा धतूरेके पत्तोंका रस सहतके साथ पिये तो उससे सब प्रकारके कृमि दूर होते हैं। धत्तूरेके पत्तोंके रसमें अथवा पानोंके रसमें पारा संयुक्त करके लेप करे तो उससे यूक (जूँ लीख) नष्ट होती हैं। धत्तूरेके पत्तोंके कल्कसे अथवा धत्तूरेके पत्तोंके रससे पकाये हुए तेलका अभ्यंग (मालिश) करे तो क्षणमात्रमें जुँओंका नाश होता है। विष्ठासे तथा कफसे उत्पन्न हुए कृमियोंकी तथा यूकनामक कृमियोंकी यह चिकित्सा कही, परन्तु रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमियोंको नष्ट करना होय तो कुष्ठकी सदृश चिकित्सा करे ॥ १६–२५ ॥

अथ क्रिमिरोगिणोऽपथ्यानि।

क्षीराणि मांसानि घृतानि चापि दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति। अम्लं च मिष्टं च रसं विशेषात्क्रिमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेद्धि ॥२६॥

कृमियोंको नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य दूध, मांस, घी, दही, पत्तोंवाला चने आदिका शाक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और विशेष करके खट्टे मीठे रस इनका त्याग करे ॥ २६ ॥

इति कृमिरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ पांडुरोगकामलाहलीमकाधिकारः ।

तत्र पाण्डुरोगसंख्यापूर्वकसन्निकृष्ट-निदानम् ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पंच वातपित्तकफैस्त्रयः । चतुर्थः सन्निपातेन पंचमो भक्षणान्मृदः॥१॥ पंचमो भक्षणान्मृद इति—ननु मृत्तिकापि दूषितदोषद्वारेणैव पाण्डुरोगं जनयतीति मृद्भक्षणजः पाण्डुरोगो दोषजादभिन्न एव कथं पंचम इति ? उच्यते—अपरकारणकुपिता वातादयोऽन्यानपि रोगान्कुर्वन्ति, मृत्तिकाभक्षणात्कुपितास्तु वातादयो विशेषतः पाण्डुरोगमेव जनयन्त्येवेति विशेषः चिकित्साविशेषाच्च पंचमः चरकेणोक्तः । तच्चिकित्सा अपरकारणकुपितदोषजनितपाण्डुरोगाचिकित्सा भवतीति सुश्रुतेन मृत्तिकाजः पृथङ् न पठितः ।

वायुसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे अर्थात् तीनों दोषोंसे और मट्टीके खानेसे उत्पन्न हुआ, इस प्रकार पाण्डुरोग पांच प्रकारका है । शंका—मट्टी भी स्वयं दूषित हुए दोषद्वारा पाण्डुरोगको उत्पन्न करे है, इस कारण मट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग दोषसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगसे पृथक् नहीं होता तो पांच प्रकारके पाण्डुरोग क्यों कहे ? समाधान—अन्य कारणोंसे कुपित हुए वातादि दोष अन्य रोगोंको भी उत्पन्न करे हैं, परन्तु मट्टीके भक्षणसे कुपित हुए होयँ तो विशेष करके पाण्डुरोगको ही उत्पन्न करते हैं, इस कारण मट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगकी चिकित्सा भी भिन्न प्रकारकी है, इसीसे चरक मुनिने मट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको पाँचवाँ कहा है और सुश्रुतने—'मट्टीके भक्षणसे हुए पाण्डुरोगकी चिकित्सा अन्यकारणों द्वारा कुपित हुए दोषोंसे उत्पन्न हुए पांडुरोगकी चिकित्सा करनेसे हो जाती है ।' ऐसा जानकर मट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको पृथक् नहीं कहा ॥ १ ॥

अथ पाण्डुरोगविप्रकृष्टनिदान-पूर्वकसंप्राप्तिः ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम् । निषेव्यमाणस्य विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति ॥ २ ॥ तीक्ष्णं राजिकादि ।

अत्यन्त मैथुनसे, खट्टे तथा नमकीन पदार्थोंसे मद्य (शराब) से, मट्टी खानेसे, दिनमें सोनेसे और अत्यन्त तीक्ष्ण राई आदि पदार्थोंका सेवन करनेसे मनुष्योंका रुधिर दूषित होकर वातादिदोष त्वचाको पाण्डुवर्ण कर देते हैं ॥ २ ॥

अथ पाण्डुरोगपूर्वरूपम् ।

त्वक्स्फोटनिष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः । विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥ प्रेक्षणकूटशोथः अक्षिगोलकशोथः ।

पाण्डुरोगका आरम्भ होनेसे प्रथमही त्वचाका फटना, थूकना, शरीरमें ग्लानि, मट्टीके खानेकी इच्छा, नेत्रोंके गोलोंपर सूजन, विष्ठा तथा मूत्रका पीला होना और अन्नका न पचना ये लक्षण प्रथमसे ही होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता । वातपाण्डामये कम्पतोदानाहभ्रमादयः॥४॥ कृष्णारुणाभता पांडुत्वं न अतिक्रामति अत एव सुश्रुते—" सर्वेषु चैतेष्वपि पाण्डुभावो यतोऽधिकोऽतः खलु पाण्डुरोगः । " इति । भ्रमादय इति आदिशब्दाद्भेदशूलादयः ।

वायुसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगमें त्वचा (चमडी), मूत्र तथा नेत्रादि रूखे, काले और लाली लिये होते हैं, कंप, अंगोंमें पीडा, अफरा और भ्रमादिक (भेदन और शूलादिक) होते हैं । त्वचा आदिमें 'काला और लाल' जो मिश्रित रंग होता है वह विना पीलेपनके नहीं होता, क्योंकि सुश्रुतमें कहा है कि—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"पाण्डुरोगके सब भेदोंमें पाण्डुता (पीलापन) अधिक होता है इसीलिये ही इस रोगको पांडुरोग कहते हैं।"४॥

अथ पित्तोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम्।
पीतत्वङ्नखविण्मूत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः।
भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्डामये नरः
॥ ५ ॥ भिन्नविट्कः सद्रवमलः।

पित्तसे पाण्डुरोग हुआ होय तो मनुष्योंकी त्वचा, नख, विष्ठा तथा मूत्र पीला हो जाता है। दाह, तृषा, ज्वर, विष्ठा (मल) पतला और शरीरकी कान्ति अत्यन्त पीली पड जाती है ॥ ५ ॥

अथ कफोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम्।
कफप्रसेकः श्वयथुस्तन्द्रालस्यातिगौरवैः।
पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयननाननैः
॥ ६ ॥ अत्रोपलक्षणे तृतीया।

कफसे पाण्डुरोग हुआ होय तो थूकनेमें कफका आना, सूजन, तन्द्रा, आलस्य, तथा अत्यंत भारीपन होता है और त्वचा, मूत्र, नेत्र तथा मुख ये सफेद हो जाते हैं ॥ ६ ॥

अथ सन्निपातोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम्।
सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम्।
त्रिदोषलिंगं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहम् ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण अन्नोंके सेवन करनेवाले मनुष्यके दूषित हुए तीनों दोषोंसे उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला अत्यन्त असह्य पाण्डुरोग होता है ॥ ७ ॥

अथ मृद्भक्षणजनितपाण्डुरोगसंप्राप्तिः।
मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः।
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम्॥८॥
कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्रुक्षं च रूक्षयेत्।
पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्धि च॥९॥
इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा।
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १० ॥ स्रोतांसि शिरामुखानि।
तेजो दीप्तिः। ओजः सर्वधातुरसः।

जिस मनुष्यको मट्टी खानेका अभ्यास होय, उसके तीनों दोषोंमेंसे एक कुपित होता है। कसैली मट्टीसे वायु कुपित होता है, खारी मट्टीसे पित्त कुपित होता है और मीठी मट्टीसे कफ कुपित होता है। यह मट्टी—अपनी रूक्षतासे रसादिकको तथा खाये हुए अन्नको रूक्ष करे है तब ये कच्चेही रस सम्पूर्ण शरीरकी नसोंके स्रोतोंको भरके रोक देती है और सम्पूर्ण इन्द्रियोंका बल, तेज, वीर्य तथा ओज (सब धातुओंका रस) का विनाश करके तुरंत ही बल वर्ण और जठराग्निके मन्द करनेवाले पाण्डुरोगको उत्पन्न करे है ॥ ८–१० ॥

अथ मृद्भक्षणोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम्।
मृद्भक्षणाद्भवेत्पाण्डुस्तन्द्रालस्यनिपीडितः।
सकासश्वासशूलार्तः सदाऽरुचिसमन्वितः
॥ ११ ॥ शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः। कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम् ॥ १२ ॥ क्रिमिकोष्ठः उदराभ्यन्तरस्थकृमिर्भवेदित्यनेन सम्बध्यते। अतिसार्येत मलमिति कर्मकर्तृ तत्कर्मवन्मन्तव्यम्। तस्मिन्कर्मण्यर्थेऽत्र लिङ्प्रत्ययः।

मट्टी खानेसे पाण्डुरोगवालेके लक्षण तन्द्रा, आलस्य, खाँसी, श्वास, शूल और अरुचि बनी रहती है, पेटमें कीडे रहते हैं, जिसकी आँखोंके गोलक, कपोल, भ्रुकुटी, पाँव, नाभि और लिंगपर सूजन होती है और कफसंयुक्त अनेक दस्त आते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ पाण्डुरोगिणोऽसाध्यलक्षणानि।
ज्वरारोचकहल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः।
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ १३ ॥ पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति। कालप्रकर्षाच्छूनाङ्गो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १४ ॥ खरीभूतः अतिरूक्षितसर्वधातुः। बद्धाल्पविट् सहरितं सकफं योऽतिसार्यते। दीनः स्वेदातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृषान्वितः ॥ १५ ॥ पाण्डुदन्तनखो यस्तु पांडुनेत्रश्च यो भवेत्। पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति। ॥ १६ ॥ पाण्डुसंघातदर्शी यः पीतवर्णस्य राशिं पश्यति। अन्तेषु शूनं परिहीणमध्यं म्लानं तथान्तेषु च मध्यशूनम्। गुदे मुखे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शेफसि मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यन्तमसंज्ञकल्पम् । विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोऽर्थी तथातिसारज्वरपीडितं च ॥ १७ ॥ अन्तेषु हस्तपादादिषु । म्लानं क्षीणम् । प्रताम्यन्तं ग्लानिं गच्छन्तम् । असंज्ञकल्पं मृतसदृशम् ।

ज्वर, अरुचि, हृल्लास, छर्दि, तृषा, क्लम (ग्लानि) और इन्द्रियोंमें सामर्थ्य न रही हो, तथा त्रिदोषग्रसित हो तो चतुर वैद्यको चाहिये कि—उस पाण्डुरोगवाले रोगीको त्याग दे । अथवा जो पाण्डुरोग बहुत पुराना हो और उसकी सम्पूर्ण धातुओंमें अत्यन्त रूखापन आ गया हो और थोडे ही समयके उपरान्त पाण्डुरोगवाले मनुष्यके शरीरपर सूजन हो तथा उसको सब वस्तु पीली ही दिखाई देती हो तो उस रोगीका अच्छा होना कठिन है । अथवा जिस पाण्डुरोगवाले रोगीका बँधा हुआ मल हरे रंग संयुक्त और अत्यंत थोडा थोडा उतरे, दीनता आ गई हो, पसीना बहुत आता हो और वमन, मूर्च्छा तथा तृषासे चित्त व्याकुल हो वह रोगी असाध्य है, किसी प्रकार बच नहीं सक्ता । अथवा जिस पाण्डुरोगवाले प्राणिके दांत नख और नेत्रोंमें पीलापन आ गया हो और सब वस्तु पीली ही पीली दिखाई देवे, वह रोगी अवश्य यमलोकको सिधारेगा । अथवा जिस पाण्डुरोगवालेके हाथ, पावोंपर सूजन आ जाय और मध्य भागपर सूजन न आवे, अथवा उसके मध्यभागपर सूजन आ गया हो और हाथ पाँव सूजनरहित हों, तथा गुदा, मुख, लिंग और अंडकोषोंपर सूजन हो, चित्तपर ग्लानि हो, संज्ञा न रहकर मृतकके सदृश हो, अतीसार और ज्वरकी पीडा हो ऐसे पाण्डुरोगीको यशस्वी वैद्य त्याग देवे ॥ १३–१७ ॥

अथ पाण्डुरोगभेदकामलानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

पांडुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ १८ ॥ पित्तं कर्तृ, दग्ध्वा सन्दूष्य रोगाय कामलारूपाय । पाण्डुरोगिण एव अतिशयितपित्तलसेवया कामला भवति नायं नियमः, किं तु कामला स्वतन्त्रापि भवति यथा राजयक्ष्मा कासादुपेक्षिताद्भवति नायं नियमः, किन्तु राजयक्ष्मा स्वतन्त्रोऽपि भवति तद्वदेव ।

जो पाण्डुरोगवाले मनुष्य अधिक पित्तकारी पदार्थोंका अधिक सेवन करते हैं उनका पित्त कोपको प्राप्त हो रुधिर और मांसको दूषित करके कामला रोगको उत्पन्न करता है । ऐसा मत समझना कि, पाण्डुरोगवाले ही रोगीको पित्तकारी पदार्थोंके खानेसे कामला रोग होता है, यह कामला रोग आपसे आप भी हो जाता है । जैसे खाँसीका उपाय न करनेसे राजयक्ष्मा रोग हो जाता है ऐसा नियम नहीं है, किन्तु राजयक्ष्मा आपसे आप भी उत्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार कामलाका भेद समझना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ कामलालक्षणम् ।

हारिद्रनेत्रः सुभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः । पीतरक्तशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः । दाहाविपाकद्दौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः १९॥ हारिद्रं हरिद्रावर्णम् । पीतरक्तशकृन्मूत्रः पीते रक्ते वा शकृन्मूत्रे यस्य सः । भेकवर्णः बृहद्भेकवर्णः ।

कामलारोगमें रोगीके नेत्र, त्वक्, नख और मुखका रंग हलदीके सदृश पीला हो, मल, मूत्र पीला वा लाल हो, बडे मेंडकके समान शरीरका वर्ण हो जाय, इन्द्रियें शक्तिहीन हो जायँ, हृदयमें दाह, भोजनका न पचना, शरीरका दुर्बल और शिथिल हो जाना, अन्नमें अरुचि ये लक्षण हो जाते हैं ॥ १९ ॥

अथ कामलाभेदः ।

कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता । एका कोष्ठाश्रया । अपरा शाखाश्रया ।

अधिक पित्तवाला कामलारोग यह एक कोष्ठाश्रय होता है और दूसरा शाखाश्रय होता है ॥

अथ कोष्ठाश्रयकामलावर्णनम् ।

कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला ॥ २० ॥

यह कामला रोग जब बहुत पुराना हो जाता है तब रूक्ष अर्थात् खरीभूत होकर जठराग्निको रोक लेता है जैसे घटका मुख छोटा और पेट बडा होता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्रकार रोगीका उदर समझना, कुम्भकी समान आकार कोष्ठके आश्रय जानना, इसीसे यह कुम्भकामला रोग कहाता है ॥ २० ॥

अथ कुम्भकामलारिष्टलक्षणम् ।

छर्द्यरोचकहल्लासज्वरक्लमनिपीडितः । नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ॥ २१ ॥

वमन, अरुचि, हुल्लास (सूखी रह), ज्वर, क्लम, श्वास, खाँसी और मल फटा हुआ पतला होता है, जब कुम्भकामला रोगमें यह लक्षण होय तो वह रोगी शीघ्र ही यमपुरमें वास करना चाहता है ॥ २१ ॥

अथ कामलाद्व्यारिष्टम् ।

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः । सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ २२ ॥ दाहारुचितृषानाहतन्द्रामोहसमन्वितः । नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ॥ २३ ॥

जिस कामलावाले रोगीका मल मूत्र काला पीला मिला हुआ हरे रंगका हो और लाल नेत्र तथा लाल वर्णही मुखका हो, वमन भी लाल रंगकी हो, सब शरीरपर सूजन हो, कफ रक्तयुक्त हो, चित्तमें ग्लानि रहे, दाह, अरुचि, अफरा, तन्द्रा, मोह, मन्दाग्नि और संज्ञा जाती रहे, ऐसा रोगी किसी प्रकार बच नहीं सक्ता ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ पाण्डुरोगभेदो हलीमकः ।

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितश्यावपीतकः । बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥ २४ ॥ स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासतृष्णारुचिभ्रमाः । हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥ पाण्डोः पाण्डुरोगिणः ।

जब पाण्डुरोगवालेके शरीरमें वात, पित्त बढ जाता है तब उसकी त्वचाका रंग हरा, काला और पीला पड जाता है, बल और उत्साहकी क्षीणता, तन्द्रा, मन्दाग्नि, कुछ थोडासा ज्वर, स्त्रीप्रसंगमें अरुचि, अंग अंगमें पीडा, श्वास, तृषा, अरुचि और भ्रम होय तो हलीमक रोग समझना चाहिये, यह रोग वात पित्तसे प्रगट होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ पाण्डुरोगचिकित्सा ।

सप्तरात्रं गवां मूत्रैर्भावितं चायसो रजः । पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रपिबेन्नरः ॥ २६ ॥ गोमूत्रसिद्धं मण्डूरचूर्णं सगुडमश्नतः । पाण्डुरोगः क्षयं याति पंक्तिशूलं च दारुणम् ॥ २७ ॥ अयोमलं सुसन्तप्तं भूयो गोमूत्रसाधितम् । मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा पाण्डुरोगी सुखी भवेत् ॥ २८ ॥

लोहसारकी भस्मको सात दिनतक गोमूत्रमें भावना देकर फिर पीछे इसको दूधके साथ खाय तो पाण्डुरोग नष्ट होता है। अथवा गोमूत्रसे बना हुआ मण्डूर गुडमें मिलाकर खानेसे पाण्डुरोग और महाकठिन परिणामशूलका विनाश होता है । अथवा मण्डूरको बारंबार आगमें तपा तपाकर गोमूत्रमें बुझावे, जब भले प्रकार भस्म हो जाय तब घी और सहतमें मिलाकर चाटनेसे पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ २६–२८ ॥

अथ पुनर्नवादिमंडूरः ।

पुनर्नवा त्रिवृद्घोषं विडङ्गं दारु चित्रकम् । कुष्ठं हरिद्रा त्रिफला दन्ती चव्यं कलिंगकम् ॥ २९ ॥ कटुका पिप्पलीमूलं मुस्तं शृंगी च कारवी । यवानी कट्फलं चेति पृथक्पलमितं समम् ॥ ३० ॥ मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाद्गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ गुडेन वटकान्कृत्वा तक्रेणालोड्य तान्पिबेत् ॥ ३१ ॥ पुनर्नवादिमण्डूरवटकोऽश्विविनिर्मितः । पाण्डुरोगं निहन्त्याशु कामलां च हलीमकम् । श्वासं कासं च यक्ष्माणं ज्वरं शोथं तथोदरम् । ॥ ३२ ॥ शूलं प्लीहानमाध्मानमर्शांसि ग्रहणीक्रिमीन् । वातरक्तं च कुष्ठं च सेवनान्नाशयेद् ध्रुवम् ॥३३॥ अत्र पुनर्नवादिमण्डूरम् २४ । प्रत्येकपलम् १ । लोहकिट्टचूर्णपलानि ४८ । गोमूत्रपलानि १९२ ।

पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, देवदारु, चीता, कूट, हलदी, हरड, बहेडा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आमला, दन्ती (जमालगोटेकी जड), चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल, मोथा, काकडासिंगी, काला जीरा, अजवायन और कायफल ये सब औषधि एक एक पल लेकर चूर्ण करे और चूर्णसे दूना मण्डूर लेवे, फिर इनसे अठगुना गोमूत्र लेकर उसमें पचावे, फिर उसमें गुड डालकर गोली बनावे, उन गोलियोंको छाँछमें घोलकर पिये । यह पुनर्नवादिमण्डूर अश्विनीकुमारने बनाया है, यह पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, श्वास, खाँसी, राजयक्ष्मा, ज्वर, सूजन, उदरशूल, प्लीहा, अफरा, बवासीर, संग्रहणी, कृमिरोग, वातरक्त और कुष्ठका नाश करता है ॥ २९–३३ ॥

अथ नवायसचूर्णम् ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडंगं चित्रकं तथा । एतानि नवभागानि नवभागा हतायसः । एकदैकीकृतं चूर्णं नरोऽष्टादशरक्तिकम् । ॥ ३४ ॥ प्रलिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां पिबेत्तक्रेण वा सह । गोमूत्रेण पिबेद्वापि पाण्डुरोगं विनाशयेत् ॥ ३५ ॥ शोथं हृद्रोगमुदरक्रिमिकुष्ठं भगन्दरम् । नाशयेदग्निमान्द्यं च दुर्नामकमरोचकम् ॥ ३६ ॥ आर्द्रकस्य रसेनापि लिह्यात्कफसमृद्धिमान् ॥ ३७ ॥ अत्र नवायसलोहं नवरक्तिकापरिमितं भक्षणीयम् । यतः उक्तं रसप्रदीपे–गुञ्जामेकां समारभ्य यावत्स्युर्नवरक्तिकाः । तावल्लोहं समश्नीयाद्यथादोषानलं नरः ॥ ३८ ॥ एवं सति प्रथमदिने त्र्यूषणादिसहितं रक्तिकाद्वयमितं प्रतिदिनं रक्तिकाद्वयंद्वयं वर्द्धयेत् । यावत् त्र्यूषणादिसहिता दश रक्तिकाः स्युः । ततस्ताः प्रतिदिनं खादेत् । इति नवायसं चूर्णम् ।

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, बायविडंग और चीता ये सब औषधि एक एक तोला और लोहभस्म नौ ९ तोले, सबको पीसकर एकत्र करले इसमेंसे अठारह १८ रत्ती, घी और सहतमें मिलाकर चाटे, वा छाँछके साथ अथवा गोमूत्रके साथ पीवे । इसके खानेकी यह रीति है, पहिले दिन दो रत्ती खाय, दूसरे दिन चार ४ रत्ती खाय, तीसरे दिन छः रत्ती, इस प्रकार नित्य प्रति दो दो २ रत्ती अधिक करे, जिसमें चूर्णके साथ मिलाकर अठारह १८ रत्ती पूरी हो जावें । रसप्रदीपमें इसका प्रमाण लिखा है । इस चूर्णके खानेसे पांडुरोग, सूजन, हृद्रोग, उदर, कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, मन्दाग्नि, बवासीर और अरुचि दूर होता है ॥ ३४–३८ ॥

अथ कामलाचिकित्सा ।

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या मरिचकस्य वा । क्वाथो माक्षिकसंयुक्तः शीतलः कामलापहः ॥ ३९ ॥ अञ्जने कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसो हितः । गुडूचीपत्रकल्कं वा पिबेत्तक्रेण कामली ॥ ४० ॥ धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः । लीढा निवारयन्त्याशु कामलामुद्धतामपि ॥ ४१ ॥ कुम्भाख्यकामलायां तु हितः कामलिको विधिः । गोमूत्रेण पिबेत्कुम्भकामलावाञ्छिलाजतुम् ॥ ४२ ॥ दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् । विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति । अपहरति कामलार्तिं नस्येन कुमारिकाजलं सद्यः ॥ ४३ ॥

त्रिफलेके वा गिलोयके, अथवा दारुहल्दीके किंवा नीमके क्वाथको शीतल करके उसमें सहत मिलाकर पिये तो कामलाका विनाश होता है, गूमेके रसका अंजन बनाकर लगावे तो कामलारोगवालेको परम हितकारी है, गिलोयके पत्तोंको पीसकर उसका रस छाँछमें मिलाकर पीमेसे कामला रोग दूर होता है, आमले, लोहभस्म, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल), हलदी, घी और बूरा इन सबको मिलाकर चाटनेसे महाप्रबल कामलारोगका विनाश होता है, कुम्भ कामलारोगमें भी सब विधि कामलाही रोगकी करनी चाहिये, उत्तम शिलाजीतको गोमूत्रके साथ पिये तो कुम्भकामलारोग दूर होता है, लोहमंडूरको बहेडेकी लकडियोंमें फूँककर आठ ८ बार गोमूत्रमें बुझावे, फिर इसका चूर्ण कर सहतके साथ चाटे तो शीघ्रही कुम्भकामलाको दूर करे है, घीकुवारके रसका नास लेवे तो तत्कालही कामला रोग दूर होता है ॥ ३९–४३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ हलीमकचिकित्सा।

मारितं चायसं चूर्णं मुस्ताचूर्णेन संयुतम्। खदिरस्य कषायेण पिबेद्धन्तुं हलीमकम् ॥ ४४ ॥ सितातिलबलायष्टीत्रिफलारजनीयुगैः। लोहं लिह्यात्समध्वाज्यं हलीमकनिवृत्तये ॥ ४५ ॥

लोहसारकी भस्म और मोथेका चूर्ण लेकर खैरसारके क्काथके साथ पिये तो हलीमकरोग दूर होता है। खांड, तिल, खरेटी, मुलेठी, त्रिफला, हलदी और दारुहलदीके चूर्णके साथ लोहेकी भस्ममें सहत और घी मिलाकर चाटे तो हलीमकरोग नष्ट होता है ॥ ४४ ॥४५॥

अथामृतलतादिघृतम्।

अमृतलतारसकल्कं प्रसाधितं तुरगविद्विषः सर्पिः ॥ क्षीरं चतुर्गुणमेतद्वितरेच्च हलीमकार्तेभ्यः ॥ ४६ ॥ मधुरैरन्नपानैस्तं वातपित्तहरैर्हरेत्। कामलापाण्डुरोगाक्तां क्रियां चात्रोपयोजयेत् ॥ ४७ ॥

गिलोयका रस और उसका कल्क भैंसका घृत डालकर बनावे, फिर उसमें चौगुना दूध डालकर पकावे उस अमृतलतादि घृतको हलीमकरोगवाला सेवन करे तो हलीमकरोग समूल नष्ट हो। इस हलीमकरोगको मधुर और वातपित्त हरनेवाले अन्न पानोंसे और पाण्डुरोग तथा कामलारोगमें कही हुई औषधियोंसे शमन करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ पाण्डुकामलाहलीमकयोः सामान्यचिकित्सा।

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिंबजः क्काथः। क्षौद्रयुतोऽयं हन्याद्धलीमकं पाण्डुकामलारोगम् ॥ ४८ ॥

त्रिफला, गिलोय, अडूसा (वसौटा), कुटकी, चिरायता और नीमकी छालका क्काथ बनाकर उसमें सहत मिलाकर पिये तो हलीमकपांडु और कामलारोग विनष्ट होता है ॥ ४८ ॥

अथ त्र्यूषणादिमंडूरवटकः।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम्। दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिको देवदारु च ॥४९॥ एषां द्विपलिकान्भागान्कृत्वा चूर्णं पृथक्पृथक्। मण्डूरचूर्णं द्विगुणं शुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ५७ ॥ मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेन्नरः। उदुम्बरसमाकारान्वटकांस्तान्यथाग्नि च ॥ ५१ ॥ उपयुञ्जीत तक्रेण जीर्णे सात्म्यं च भोजनम्। मण्डूरवटिका ह्येताः प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥५२॥ कुष्ठानि जठरं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान्। अर्शांसि कामलां मेहं प्लीहान्शमयन्ति च ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चीता, दारुहलदी, दारुचीनी, सोनामाखी, पीपलामूल और देवदारु इन सबको चार चार तोले लेकर अलग अलग पीस चूर्ण करे, इन सबसे दूने मंडूरके चूर्णको अठगुने गोमूत्रमें पकाकर ऊपर कहे हुए चूर्णको उसमें डालकर गूलरकी समान गोली बनाकर मठेके साथ अपनी शक्त्यनुसार भक्षण करे और जब वह पच जाय तो भोजन करे, यह मांडूरवटिका पांडुरोगवालेके लिये प्राणदायक है और कुष्ठ, उदररोग, सूजन, जंघाओंका जकडना, कफरोग, बवासीर, कामला, प्रमेह और प्लीहादिक सब रोगोंको शान्त करे है ॥ ४९–५३ ॥

अथाष्टादशांगलौहः।

किराततिक्तः सुरदारु दार्वी मुस्ता गुडूची कटुका पटोलम्। दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं कटुत्रिकं वह्निफलत्रिकं च ॥ ५४ ॥ फलं विडंगस्य समांशकानि सर्वैः समं चूर्णमथायसं च। सर्पिर्मधुभ्यां वटिका विधेया तक्रानुपानाद्भिषजा प्रयोज्या ॥ ५५ ॥ निहन्ति पाण्डुं च हलीमकं च शोथं प्रमेहं ग्रहणीरुजं च। श्वासं च कासं च सरक्तपित्तमर्शांस्यथो वाग्ग्रहमामवातम्। व्रणांश्च गुल्मान्कफविद्रधिं च चित्रं च कुष्ठं च ततः प्रयोगात् ॥५६॥

चिरायता, देवदारु, दारुहलदी, मोथा, गिलोय, कुटकी, परवल, जवासा, पित्तपापडा, नीम, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), चीता, हरड, बहेडा, आमल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और वायविडंग ये सब औषधि समभाग लेकर और सबकी बराबर लोहभस्म मिलाकर घी और सहतके साथ मोदक बनाकर मट्ठेके साथ सेवन करे तो पाण्डु, हलीमक, सूजन, प्रमेह, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, अर्श, जीभका लटरा जाना, आमवात, व्रण, वायगोला, कफरोग, विद्रधि, श्वेतकुष्ठ, और प्रकारके कुष्ठादिक जो हैं वे सम्पूर्ण शान्त होते हैं ॥ ५४-५६ ॥

यवगोधूमशाल्यन्नै रसैर्जांगलजैर्हितैः। मुद्गाढकीमसूराद्यैरेषु भोजनमिष्यते ॥ ५७ ॥ एषु पांडुरोगकामलाहलीमकेषु ।

जौ, गेहूं, शालिधानोंके चावलोंका भात, जंगली जीवोंके मांसका रस, मूँग, अरहर और मसुर आदिक भोजन पाण्डु, कामला और हलीमक रोगमें देना उचित है ॥ ५७ ॥

इति पाण्डुकामलाहलीमकरोगाधिकारः ।

अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

तत्र रक्तपित्तनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः । घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः। तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च । पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् ॥ १ ॥ तीक्ष्णं मरिचादिः । उष्णमग्नितापादि । क्षारो यवक्षारादिः । विदग्धं दूषितम् । स्वगुणैः स्वकारणैः । गुणैः तीक्ष्णादिभिः । गुणैरिति बहुत्वेन तीक्ष्णाम्ललवणकटूष्णधर्मादयो गृह्यन्ते । विदहति दूषयति ।

धूप, व्यायाम (दंड कसरत), शोक, मार्गगमन और मैथुन इनका अधिकतर सेवन करनेसे तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार तथा लवण पदार्थ इनका अत्यन्त प्रयोग करनेसे, खट्टे और चरपरे पदार्थोंको अधिक खानेसे दूषित हुआ पित्त अपने गुणोंसे शीघ्रही रुधिरको दूषित करता है। तीक्ष्ण अर्थात् मरिचादि पदार्थ, उष्ण अर्थात् अग्निका सेवन आदि, क्षार अर्थात् अवाखारादि पदार्थ अपने गुणोंसे अर्थात् अपने कारणरूप तीक्ष्ण, खट्टे, खारी, तीखे और गरम आदि गुणोंसे जानना ॥ १ ॥

अथ रक्तपित्तसामान्यलक्षणम् ।

ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधापि वा ॥ २ ॥ अत्र रक्तमित्युपलक्षणम् । तेन संसृष्टं पित्तं च । अत एव रक्तं च पित्तं च रक्तपित्तमिति द्वन्द्व इति सुश्रुतः । रक्तं च तत्पित्तं चेति रक्तपित्तं रागप्रायं पित्तरक्तमित्युच्यते रक्तपित्तं कर्मधारयश्च । रक्तपित्तं मनीषिभिरिति उभयत्रापि न दोषः कारणत्रयाद्रक्तस्यापि समाख्यानम् । संयोगाद्दूषणात्तत्तु सामान्याद्गन्धवर्णयोः ।

इस प्रकार पित्तसे दूषित होनेके कारण रुधिर और उसके साथ पित्त मिलकर ऊर्द्ध मार्गोंसे अथवा अधोमार्गोंसे वा दोनों मार्गोंसे बहने लगता है उसको रक्तपित्त कहते हैं। यहां सुश्रुत कहता है कि, रुधिर और पित्त ये दोनों बहने लगते हैं इस कारण यह रोग रक्तपित्त कहा जाता है। "अन्य ग्रन्थकार कहते हैं कि, लाल रंगका पित्त होकर बहने लगता है इस कारण यह रोग रक्तपित्त कहा जाता है।" तीनों कारणोंसे पित्त रंजित (लाल) होकर रक्तपित कहा जाता है, अत एव दोनों पक्षोंमें किसी प्रकारका दोष नहीं आता, रुधिरका और पित्तका संयोग होता है, पित्तसे रुधिर दूषित होता है और रुधिर तथा पित्तकी गंध और वर्ण समान होते हैं, इन तीनों कारणोंसे रंजित हुआ जो पित्त उसको विद्वान् लोग रक्तपित्त कहते हैं ॥ २ ॥

अथ रक्तपित्तप्रवृत्तिमार्गः ।

ऊर्द्धं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः । कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ॥ ३ ॥

कोपको प्राप्त हुआ यह पित्त-नाक, आँख, कान और मुख इन ऊँचे मार्गोंसे बहता तथा लिंग-योनि और गुदा इन नीचे मार्गोंसे बहता है और सम्पूर्ण रोमकूपोंसे भी बहता है ॥ ३ ॥

अथ रक्तपित्तपूर्वरूपम् ।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः । लोहगंधश्च निश्वासो भवंत्यस्मिन्भविष्यति ४

जब रक्तपित्त होनेको होता है तब उससे कुछ पहिले ग्लानि, शीतकी इच्छा, गलेमें धुएंकासा घुटना, वमनका होना, रुधिरकी समान गंधका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निकलना और वारंबार श्वासोंका आना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

अथ कफजवातजरक्तपित्तरूपम् ।

सांद्रं सपांडु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम् । श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातिकम् ॥ ५ ॥

कफज रक्तपित्तका रुधिर—गाढा, पांडुवर्ण, स्नेहयुक्त और पिच्छिल होता है । वातसम्बन्धी रक्तपित्त काला, लाल, झागों युक्त, पतला और रूखा बहता है॥५॥

अथ पित्तजरक्तपित्तस्वरूपम् ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम् । मेचकाङ्गारधूमाभमञ्जनाभं च पैत्तिकम् ॥६॥ मेचकम् चिक्कणं कृष्णवर्णम् । अञ्जनं स्रोतोऽञ्जनं तदाभम् ।

पित्तज रक्तपित्तका रुधिर—क्वाथकी सदृश काला, गोमूत्रकी तुल्य चिकने काले रंगका, कोयलेकी धुएँकी समान और अंजनकी समान प्रवर्तन होता है ॥ ६ ॥

अथ संसर्गविशेषेण मार्गभेदाः ।

संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिलिंगं सान्निपातिकम् । ऊर्द्धगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतानुगम् । द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यां तत्प्रवर्तते॥७॥

कफके संसर्गवाला रक्तपित्त—ऊर्ध्व मार्गसे बहता है, वातसम्बन्धी रक्तपित्त—अधोमार्गसे बहता है, कफ और वायुके संसर्गवाला रक्तपित्त—दोनों मार्गोंसे बहता है और जो तीनों दोषोंसे संसर्गज सान्निपातिक रक्तपित्त होता है उसमें तीनों दोषोंके लक्षण देखे जाते हैं ॥ ७ ॥

अथ रक्तपित्तोपद्रवाः।

दौर्बल्यं श्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुतादाहमूर्च्छा भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा । तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूयनिष्ठीवनं च । द्वेषो भुक्तेऽविपाको विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥ ८ ॥ विकृतिः मांसप्रक्षालनाभतादिः॥

दुर्बलता, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, मद, पांडुता, दाह, मूर्च्छा, भोजन करनेके पश्चात् घोर दाह, अधीर्यपन, सदैव हृदयमें असाधारण पीडा, पियास, दस्तोंका होना, मस्तकमें संताप, थूकनेमें दुर्गंधता, अन्नमें अरुचि, भोजनका न पचना और मांसके धोवनकी समान रुधिरका बहना ये सब रक्तपित्तके उपद्रव हैं अर्थात् रक्तपित्तमें यह उन्नीस उपद्रव होते हैं ॥ ८ ॥

अथ रक्तपित्तसाध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते । यत्त्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत् ॥ ९ ॥ ऊर्द्धं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् । व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्याऽनश्नतस्तु यत् ॥ १० ॥

जो रक्तपित्त एक दोषज होय तो साध्य समझना, जा दो दोषोंवाला होय तो याप्य जानना और जो तीनों दोषोंवाला होय, तथा मंदाग्निवाले मनुष्यके उत्पन्न हुआ होय और अत्यंत वेगवाला होय तो असाध्य जानना, जो रक्तपित्त ऊर्ध्व मार्गसे निकलता होय तो साध्य समझना, अधोमार्गसे बहता होय तो याप्य जानना और जो दोनों मार्गोंसे बहता होय तथा व्याधियोंसे क्षीण हुए, वृद्धमनुष्यके और भोजनसे थके हुए मनुष्यके उत्पन्न हुआ रक्तपित्त असाध्य जानना ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ साध्यरक्तपित्तविवेचनम् ।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् । रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ ११ ॥

जो रक्तपित्त एक मार्गसे बहता होय, बलवान्के उत्पन्न हुआ, अत्यंत वेगरहित, तत्कालका, हेमंत और शिशिर ऋतुमें उत्पन्न हुआ और उपद्रवरहित होय तो साध्य जानना ॥ ११ ॥

अथासाध्यरक्तपित्तम् ।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत्कर्दमाम्भोनिभं वा । मेदःपूयासृकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् । यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमपि कुणपं यत्र चोक्ता विकारास्तद्रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभाति ॥ १२ ॥ उक्ता विकारा दौर्बल्यादयः । सुरपतिधनुषा तुल्यं नानावर्णम् ।

जो रक्तपित्तका रुधिर मांसके धोवनकी समान अथवा काढेकी समान, वा कीचके मिले हुए पानीकी समान, वा मेद, राध अथवा रुधिरकी समान, वा कलेजेके टुकडेके रंगका, किंवा पकी जामुनकी समान, या काला अथवा मोरके गलेकी समान नीला, अथवा मुरदेकी समान गंधवाला, अथवा प्रथम कहे हुए विकारोंवाला और इन्द्रधनुषकी समान अनेक प्रकारके रंगवाला होय तो असाध्य जानना ॥ १२ ॥

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः । पश्येद्दृश्यं वियच्चापि तदसाध्यमसंशयम् ॥ १३ ॥ येन रक्तपित्तेन उपहतः मनुष्यः दृश्यं घटपटादिकं रक्तं पश्यति स नश्यति । वियच्चापि अदृश्यमपीत्यर्थः ।

जो रक्तपित्तसे पीडित मनुष्य घटपटादि दृश्य पदार्थोंको और आकाशादि अदृश्य पदार्थोंको अत्यंत रक्तवर्ण देखे वह रक्तपित्त रोगी निश्चय असाध्य है॥१३॥

अथ रक्तपित्तारिष्टम् ।

लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः । लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥१४॥ लोहितोद्गारदर्शी व्याधिमहिम्ना उद्गारमपि लोहितं पश्यतीत्यर्थः ।

जो रक्तपित्तवाला रोगी बारंबार रुधिरकी वमन करे, नेत्र लाल लाल हो जाँय और उसको बारंबार डकारमेंभी रुधिर आवे वह अवश्य मर जाता है ॥१४॥

अथ रक्तपित्तचिकित्सा ।

पित्तास्रं स्तम्भयेन्नादौ प्रवृत्तं बलिनो यतः । हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहगुल्मज्वरादिकृत् ॥१५

बलवान् मनुष्यके उत्पन्न हुए रक्तपित्तको प्रथम कदापि स्तम्भन औषधियोंके द्वारा, नहीं रोकना चाहिये क्योंकि प्रथम रक्तपित्तको बंद करनेसे हृदयरोग, पाण्डुरोग, संग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रसाधिकाः । श्यामाकाश्च प्रियंगुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ १६ ॥

शालीधान, साठी धान्य, नीवार, कोदों, प्रसाधिका, समा और कंगुनी इनका भात रक्तपित्त रोगीको भोजनके लिये देवे ॥ १६ ॥

मसूरमुद्गचणकाः समकुष्टाढकीफलाः । प्रशस्ताः सूपयूषार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ १७ ॥

रक्तपित्त रोगीको दालके लिये और यूषके लिये मसूर, मूँग, चने, मोठ और अडहरकी योजना करनी चाहिये ॥ १७ ॥

दाडिमामलकं विद्वानम्लार्थं चापि दापयेत् । पटोलनिम्बन्यग्रोधप्लक्षवेतसपल्लवान् ॥ १८॥ शाकार्थं शाकसात्म्यानां तण्डुलीयादयो हिताः । पारावतान्कपोतांश्च लावान्रक्ताक्षवर्तकान् ॥ १९ ॥ शशान्कपिञ्जलानेणान्हरिणान्कालपुच्छकान् । रक्तपित्तहरान्विद्याद्रसांस्तेषां प्रयोजयेत् । ईषदम्लानमम्लांश्च घृतभृष्टान्ससैन्धवान् ॥ २० ॥ कफानुगे यूषशाकान्दद्याद्वातानुगे रसम् । पथ्यं सतीनयूषेण ससितैर्लाजसक्तुभिः ॥ २१ ॥

रक्तपित्त रोगीको खटाईके लिये वैद्य अनार और आमले देवे जिनको शाक अनुकूल होय तो ऐसे रक्तपित्त रोगियोंको शाकके लिये परवल, नीम, वडके अंकुर अथवा कोमल पत्ते, पाखर और बेतके कोमल पत्ते और चौलाई आदि हितकारक शाक होने चाहिये, रक्तपित्तरोगीको मांसके लिये कबूतर, परेवा, लवा, चकोर, बत्तक, खरगोश, तीतर, एण, हरिण, हिरन और कालपुच्छ हरिण इनके मांसका रस रक्तपित्तको नष्ट करनेके लिये देवे । कफज रक्तपित्तमें किंचित् अम्ल, अथवा अम्ल नहीं घीमें भुना हुआ और सेंधा निमक मिला हुआ शाक और यूष देवे । वातज रक्तपित्तमें मटरके यूषके साथ और खीलोंके सत्तूमें मिश्री मिलाकर मांसरस पथ्य देवे ॥ १८–२१ ॥

अथ धान्यकादिहिमः ।

धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः । रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषं च नाशयेत् ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पेत् ॥ ५० ॥ सिता अडूसा, दाख और पित्तपापडा तलेहवत्पचेत् । सु[illegible]कर पीनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, त्रिपुले पृथक् ॥ ५१ [illegible]ता है । यह धान्यकादि नामसे प्रसिद्ध है ।

हीबेरमुत्पल[illegible]यं चन्दनं यष्टिकाऽमृता । उशीरं च त्रिवृच्चैषां क्वाथं समधुशर्करम् ॥ २३ ॥ पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तपित्तं प्रणश्यति । रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं ज्वरं तथा ॥ २४ ॥ पद्मोत्पलानां किञ्जल्कः पृष्णिपर्णी प्रियंगुका । जले साध्या रसे तस्मिन्पेया स्याद्रक्तपित्तिनाम् । वासापत्र-समुद्भूतो रसः समधुशर्करः ॥ २५ ॥ क्वाथो वा हरते पीतो रक्तपित्तं सुदारुणम् । पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ॥ २६ ॥ समधुर्हरते रक्तपित्तं कासज्वरक्षयान् । उत्पलं कुमुदं पद्मं कह्लारं लोहितोत्पलम् ॥ २७ ॥ मधुकं चेति पित्तासृक्तृष्णाच्छर्दिहरो गणः । वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च । रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २८ ॥ आटरूषकसूद्रीकापथ्याक्वाथः सशर्करः । क्षौद्राढ्यः सकलश्वासरक्तपित्त-निबर्हणः ॥ २९ ॥

सुगंधवाला, कमल, धनियाँ, चंदन, मुलेठी, गिलोय, खस और निसोत इनका क्वाथ बनाकर सहत और बूरा मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त तत्काल नष्ट हो जाता है । कमल अथवा उत्पल कमलकी केसर--उग्र रक्त-पित्त, तृषा, दाह और ज्वरको दूर करे है । पिठवन और फूलप्रियंगु इनका क्वाथ बनाकर उसमें पकी हुई पेया (दूधपानी) मिलाकर रक्तपित्त रोगीको पीनेको देवे । अडूसेके पत्तोंका स्वरस अथवा क्वाथ बनाकर उसमें सहत अथवा मिश्री मिलाकर पीनेसे दारुण रक्तपित्त भी नष्ट हो जाता है । अडूसेके पत्तोंको पीस-कर पुटपाक करे, फिर उनका रस निकालकर उसमें सहत मिलाकर पिये अथवा अडूसेके पत्तोंका हिम बनाकर उसमें सहत मिलाकर पिये तो रक्तपित्त, खाँसी, ज्वर और क्षयरोग नष्ट होय । उत्पल, कुमुद, कमल, लाल कमोदिनी और लाल कमल ये पांचों तथा मुलहठी इन सब औषधियोंका समूह रक्तपित्त, तृषा और वमनको दूर करे है । अडूसेके विद्यमान होनेपर जीवनकी आशा करनेवाले रक्त पित्त, क्षय और खांसीके रोगी क्यों व्यर्थ दुःख पाते हैं । अडूसा, दाख और हरड इनके क्वाथमें मिश्री और सहत डालकर पीनेसे सर्व प्रकारके श्वास और रक्तपित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ २३–२९ ॥

अथ दूर्वाद्यघृतम् ।

दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्कमञ्जिष्ठासैलवालुका । सिता शीतमुशीरं च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ ३० ॥ विपचेत्कार्षिकैरेतैराजं प्रस्थमितं घृतम् । तण्डुलानां जलं छागीक्षीरं दद्या-च्चतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥ तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते । कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ ३२ ॥ चक्षुः स्रवति रक्तं चेत्पूरयेत्तेन चक्षुषी । मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु वस्ति-कर्मसु योजयेत् ॥ ३३ ॥ रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यंगं प्रयोजयेत् । सर्वेषु रक्तपित्तेषु तस्माच्छ्रेष्ठमिदं घृतम् ॥ ३४ ॥

दूब, कमल, कमलकी केसर, मँजीठ, एलुआ, मिश्री, शीतलचीनी या कपूर, खस, नागरमोथा, चन्दन लाल और पद्माख प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बनावे, इस कल्कको चौगुने चाव-लोंके जलमें और बकरीके दूधमें ६४ चौंसठ तोले बकरीका घी विधिपूर्वक पकाना चाहिये । जो रुधि-रकी वमन होती होय तो इस घृतको पीना उत्तम है । जो नाकमेंसे रुधिर निकलता होय तो इस घृतका नास देना हितकारी है । जो कानमेंसे रुधिर बहता होय तो इस घृतको कानमें डालना शुभ है । जो नेत्रोंमेंसे रुधिर गिरता होय तो इस घृतको नेत्रोंमें लगाना श्रेष्ठ है । जो लिंगमेंसे अथवा गुदामेंसे रुधिर बहता होय तो इस घृतकी पिचकारी लगानी सुखद है । जो रोमकूपोंमेंसे रुधिर निकलता होय तो इस घृतकी मालिश अत्यन्त फलदायक है । यह दूर्वाद्य घृत सर्व प्रकारके रक्तपित्तोंमें उपयोगी होनेके कारण श्रेष्ठ है ॥ ३०–३४ ॥

सूद्रीकां चन्दनं लोध्रं प्रियंगुं च विचूर्णयेत् । चूर्णमेतत्पिबेत्क्षौद्रवासारससमन्वितम् ॥ ३५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नासिकामुखपायुभ्यो योनिमेढ्रादिवेगिनम्। रक्तपित्तं स्रवद्धन्ति सिद्ध एव प्रयोगराट् ॥ ३६ ॥ यत्र शस्त्रक्षतेनैव रक्तं स्रवति वेगतः। तदप्येतेन चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम् ॥ ३७ ॥

दाख, चंदन, लोध और फूलप्रियंगु इन सबका चूर्ण करके सहत और अडूसेके रसके साथ सेवन करे तो यह उत्तम प्रयोग नाकमेंसे, मुखसे, गुदामेंसे, योनिमेंसे और लिंग आदिसे वेगपूर्वक गिरते रुधिरको तत्काल बंद कर देता है, जो शस्त्रके लगनेसे घाव होकर उसमें रुधिर बहता हो और वह रुधिर बंद नहीं हो सके तो उस घावके ऊपर इस चूर्णको बुरकानेसे तत्काल रुधिरका बहना बन्द हो जाता है ॥ ३५--३७ ॥

इक्षूणां मध्यकाण्डानि सकन्दं नीलमुत्पलम्। केशरं पुण्डरीकस्य मोचामधुकपद्मकैः ॥ ३८ ॥ वटप्ररोहशुंगाश्च द्राक्षा खर्जूरमेव च। एतानि समभागानि कषायं सम्प्रकल्पयेत् ॥ ३९ ॥ उषितं मधुसंयुक्तं पाययेच्छर्करान्वितम्। सप्रमेहं रक्तपित्तं क्षिप्रमेतन्नियच्छति ॥ ४० ॥ द्राक्षया फलिनीभिर्वा प्रियालमधुकेन वा। श्वदंष्ट्र्या शतावर्या रक्तजित्साधितं पयः ॥ ४१ ॥

ईखके बीचका कांड (गन्नेकी गांठ), जड समेत नीलकमल, कमलकी केसर, केला, मुलेठी, पद्माख, बडके अंकुर, अथवा कोमल पत्ते, दाख और खजूर इन सबको समानभाग लेकर हिम बनावे, इस हिममें मिश्री और सहत मिलाकर पिये तो रक्तपित्त और प्रमेह तत्काल नष्ट हो जाते हैं। दाखसे तथा फूलप्रियंगुसे अथवा चिरौंजीसे तथा मुलैठीसे, अथवा गोखरूओंसे किंवा सतावरसे पकाया हुआ दूध रक्तपित्तको दूर करता है ॥ ३८--४१ ॥

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यः पथ्याखर्जूरगोस्तनाः। मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक्पृथक् ॥ ४२ ॥ अत्र काश्मर्याः फलमेव ग्राह्यं फलसाहचर्यात्। अतिनिःसृतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक्। सकृद्वा भक्षयेदाज्यं मांसं वा पित्तसंयुतम् ॥ ४३ ॥ पके गूलरके फल, अथवा कुम्भेरके फल अथवा हरड या खजूर किंवा दाख इनको सहतमें मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है। जिस मनुष्यके शरीरमेंसे अत्यन्त रुधिर निकल चुका होय वह मनुष्य बकरेके रुधिरमें सहत मिलाकर पिये अथवा एक बार सहतके साथ घी खाय। अथवा पित्तसहित मांसको खाय। जो नाकमें रुधिर गिरता हो अर्थात् नकसीर छूटती होय तो आमलोंको महीन पीसकर घीमें भूनकर माथेपै लेप कर देवे, जिस प्रकार बांधसे जलका वेग रुक जाता है। उसी प्रकार इस लेपसे रुधिरका गिरना बंद हो जाता है। अथवा शीतल जलमें बूरा मिलाकर सरबत बनाकर नाकके द्वारा पीनेसे या नाकके द्वारा दूध पीनेसे अथवा दूधके साथ दाखका रस पीनेसे किंवा ईखके रसमें खांड मिलाकर पीनेसे नकसीर बंद हो जाता है। अनारके फूल, वा दाखका रस अथवा आमकी गुठलीका रस, किंवा प्याजके रसका नास देनेसे नाकमेंसे रुधिरका गिरना बंद हो जाता है ॥ ४२--४६ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डावलेहः।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं बृहत्। तद्बीजाधारबीजत्वक्छिराशून्यं समाचरेत् ॥ ४७ ॥ ततस्तस्य तुलां नीत्वा पचेज्जलतुलाद्वये। तस्मिन्नीरेऽर्द्धशिष्टे तु यत्नतः शीतलीकृते। तानि कूष्माण्डखण्डानि पीडयेद्दृढवाससा ॥ ४८ ॥ यत्नतस्तज्जलं नीत्वा पुनः पाकाय धारयेत्। कूष्माण्डं शोषयेद्धर्मे ताम्रपात्रे ततः क्षिपेत् ॥ ४९ ॥ क्षिप्त्वा तत्र घृतं प्रस्थं कूष्माण्डं तेन भर्जयेत्। मधुवर्णं तदालोक्य तज्जलं तत्र निक्षे-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पेत् ॥ ५० ॥ सितायाश्च तुलां तत्र क्षिप्त्वा तल्लेहवत्पचेत् । सुपक्के पिप्पलीशुण्ठीजीराणां द्विपले पृथक् ॥ ५१ ॥ पृथक्पलार्द्धं धान्याकं पत्रैलामरिचत्वचम् । चूर्णमेषां क्षिपेत्तत्र घृतार्द्धं क्षौद्रमावपेत् । एतत्पलमितं खादेदथ वाऽग्निबलं यथा ॥ ५२ ॥ खण्डकूष्माण्डलेहोऽयं रक्तपित्तं च नाशयेत् । पित्तज्वरं तृषां दाहं प्रदरं कृशतां वमिम् ॥ ५३ ॥ कासं श्वासं च हृद्रोगं स्वरभेदं क्षतं क्षयम् । नाशयत्येव वृद्धिं च बृंहणो बलवर्द्धनः ॥५४॥

उत्तम पुराना बडा और मोटा पेठा लेकर छील बनाकर उसके बीज और बीजोंके रहनेके स्थान निकालकर बगेल देवे फिर उसमेंसे सौ १०० पल गूदा लेकर ८०० आठ सौ तोले जलमें पकावे, जब पकते २ जल आधा बाकी रह जाय तब उतारकर यत्नपूर्वक शीतल करे, फिर उसमेंसे पेठेके टुकडोंको निकालकर उत्तम मोटे वस्त्रमें खूब खेंचकर बाँधे और दबाकर जल निचोड देवे और निचुडे हुए जलको फिर पकानेके लिये अलग रख देवे, फिर उस पेठेके टुकडोंको धूपमें सुखाकर तांबेके बासनमें डालकर ६४ चौंसठ तोले घी मिलाकर भूने, जब भुनते भुनते सहतकी समान हो जाय तब पूर्वोक्त पेठेके निचोडे हुए जलमें डालकर और उसमें सौ पल उत्तम मिश्री डालकर अवलेहकी तरह पकावे, जब अच्छे प्रकारसे पककर तैयार हो जाय तब उसमें ८ आठ तोले पीपल, ८ आठ तोले सोंठ, ८ आठ तोले जीरा, २ तोले धनियाँ, २ दो तोले तेजपात, २ तोले इलायची, २ दो तोले काली मिरच और दो तोले दालचीनी इन सबका चूर्ण करके मिला देवे और ३२ बत्तीस तोले सहत मिला देवे तो यह 'खण्डकूष्मांड' अवलेह तैयार होता है । इसमेंसे ४ चार तोले प्रमाण खाय अथवा अपनी अग्निके बलानुसार इसमेंसे सेवन करे । यह अवलेह--रक्तपित्त, पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रदर, कृशता, वमन, खाँसी, श्वास, हृदयरोग, स्वरभेद, क्षत, क्षय और अन्यवृद्धिको नष्ट करे है । यह पुष्टिकारक और बलको बढानेवाला है ॥ ४७--५४ ॥

अथ बृहत्कूष्माण्डावलेहः ।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं दृढम् । तद्बीजाधारबीजत्वक्किञ्जराशून्यं समाचरेत् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिसूक्ष्मखण्डानि कृत्वा तस्य तुलां पचेत् । गोदुग्धस्य तुलामध्ये मन्देऽग्नौ वा पचेच्छनैः ॥ ५६ ॥ शर्करायास्तुलां सार्द्धां गोघृतं प्रस्थमात्रकम् । प्रस्थार्द्धं माक्षिकं चापि कुडवं नारिकेलतः ॥५७॥ प्रियालफलमज्जानं द्विपलं तिन्तुरीपलम् । क्षिपेदेकं च विपचेल्लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ५८ ॥ भिषक्सुपक्वमालोक्य ज्वलनादवतारयेत् । कोष्णे तत्र क्षिपेदेषां चूर्णं तानि वदाम्यहम् ॥ ५९ ॥ एकोऽक्षः शतपुष्पाया अथ क्षीरी यवानिका । गोक्षुरः क्षुरकः पथ्या कपिकच्छुफलानि च ॥६०॥ सप्तमी त्वक्च सर्वेषामक्षयुग्मं पृथक्पृथक् । धान्याकं पिप्पली मुस्तमश्वगन्धा शतावरी । ॥ ६१ ॥ तालमूली नागबला बालकं पत्रकं शटी । जातीफलं लवङ्गं च सूक्ष्मैला बृहदेलिका ॥ ६२ ॥ शृंगाटकं पर्पटकं सर्वं पलमितं पृथक् । चन्दनं नागरं धात्रीफलं चापि कशेरुकम् ॥ ६३ ॥ प्रत्येकं पञ्च कर्षाणि चत्वार्येतानि निक्षिपेत् । पलद्वयमुशीरस्य मधाणस्योषणस्य च ॥ ६४ ॥ कूष्माण्डस्यावलेहोऽयं भक्षितः पलमात्रया । किं वा यथाबलिबलं भुक्त्वा रोगान्विनाशयेत् ॥ ६५ ॥ रक्तपित्तं शीतपित्तमम्लपित्तमरोचकम् । वह्निमान्द्यं सदाहं च तृष्णां प्रदरमेव च ॥ ६६ ॥ रक्ताशोंऽपि तथा छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम् । उपदंशं विसर्पं च जीर्णं च विषमं ज्वरम् ॥ ६७ ॥ लेहोऽयं परमो वृष्यो बृंहणो बलवर्द्धनः । स्थापनीयः प्रयत्नेन भाजने मृन्मये नवे ६८॥

पुराना, कठिन, उत्तम, पका हुआ और बडा पेठा लेकर उसको छील बनाकर बीजोंको और बीजोंके रह-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेके स्थानको निकालकर फेंक देवे, फिर उसके छोटे छोटे टुकडे करके उसमेंसे ४०० चार सौ तोले लेकर ४०० चार सौ तोले उत्तम गायके दूधमें धीरे धीरे मंद मंद अग्निसे पकावे, फिर उसमें उत्तम सुफेद बूरा १५० डेढ सौ पल० गायका घी ६४ चौंसठ तोले, सहत ३२ बत्तीस तोले, नारियलकी गिरी १६ सोलह तोले, चिरौंजीकी मींग ८ आठ तोले और तवाखीर ४ चार तोले डालकर विधिपूर्वक अवलेहकी समान पकावे, जब अच्छे प्रकारसे पककर तैयार हो जाय तब उसको अग्निमेंसे उतार लेवे, जब कुछ कुछ गरम रहे तब लिखी औषधियोंको मिला देवे । जैसे सौंफ १ एक तोला, वंशलोचन २ दो तोले, अजवायन २ दो तोले, गोखुरू २ दो तोले, तालमखाना २ तोले, हरड २ दो तोले, कौंछके बीज २ दो तोले, दालचीनी २ तोले, धनियाँ ४ चार तोले, पीपल ४ तोले, नागरमोथा ४ चार तोले, असगंध ४ चार तोले, सतावर ४ चार तोले, काली मुसली ४ चार तोले, गंगेरन ४ तोले, सुगंधवाला ४ तोले, तेजपात ४ चार तोले, कचूर ४ चार तोले, जायफल ४ चार तोले, लौंग ४ चार तोले, छोटी इलायची ४ चार तोले, बडी इलायची ४ चार तोले, सिंगाडे ४ चार तोले, पित्तपापडा ४ तोले, चंदन ५ पांच तोले, सोंठ ५ पांच तोले, आमले ५ पांच तोले, कसेरू ५ पांच तोले, खस ८ आठ तोले, मखाने ८ आठ तोले, और कालीमिरच ८ आठ तोले इन सबका चूर्ण करके मिला देवे तो यह 'बृहत्कूष्माण्डावलेह' सिद्ध होता है । इस अवलेहको ४ चार तोले प्रमाण अथवा अपनी अग्निके बलानुसार सेवन करे तो रक्तपित्त, शीतपित्त, अम्लपित्त, अरुचि, मन्दाग्नि, दाह, तृषा, प्रदर, रुधिरकी बवासीर, वमन, पांडुरोग, कामला, उपदंश, विसर्प, जीर्णज्वर और विषमज्वर नष्ट होता है । यह अवलेह मैथुनशक्तिको अत्यंत बढानेवाला, धातुको पुष्ट करनेवाला और बलको बढानेवाला है । इस अवलेहको मट्टीके उत्तम नवीन बासनमें भरकर रखना चाहिये ॥ ५५--६८ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डकम् ।

कूष्माण्डकस्य स्वरसं पलानां शतमात्रया । रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ६९ ॥ मृदग्निना पचेत्तावद्यावद्गच्छति पिण्डवत् ॥ ७० ॥ धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं लेहयेदनु । खण्डकूष्माण्डकं ह्येतद्युक्तमभ्यासतो हरेत् । रक्तपित्तमम्लपित्तं दाहं तृष्णां च कामलाम् ॥ ७१ ॥

उत्तम पेठेका स्वरस ४०० चार सौ तोले, गायका दूध चार सौ तोले और आमलोंका चूर्ण ३२ बत्तीस तोले सबको एकत्र मिलाकर धीरे २ मंद मंद अग्निसे तबतक पकावे जबतक पिंड न बँधे, जब पिंड बँधजाय तब इसमें ३२ बत्तीस तोले उत्तम बूरा मिला देवे तो 'खण्डकूष्माण्डक' नामवाला अवलेह तैयार होता है । इस अवलेहमेंसे नित्य २ दो तोले प्रमाण खाना चाहिये । इस अवलेहको सेवन करनेसे रक्तपित्त, अम्लपित्त, दाह, तृषा और कामलारोग नष्ट हो जाता है ॥ ६९--७१ ॥

अथ खंडकाद्यलौहः ।

शतावरी छिन्नरुहा वृषो मुंडतिका बला । तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ॥ ७२ ॥ भार्ङ्गी पुष्करमूलं च पृथक्पञ्च पलानि च । जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ७३ ॥ दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा । पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णितम् ॥ ७४ ॥ खण्डतुल्यं घृतं देयं पलं षोडशकं बुधैः । पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाको मतो यथा ॥ ७५ ॥ प्रस्थार्धं मधुना देयं शुभाश्मजतुकस्य च । शृंगी कृष्णा विडंगं च शुण्ठ्यजाजी पलं पलम् ॥ ७६ ॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं कणा मरिचकेशरम् । चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ७७ ॥ यथाकालं प्रयुञ्जीत बिडालपदमात्रकम् । गव्यक्षीरानुपानं च सेव्यो मांसरसः पयः ॥ ७८ ॥ गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धमांसादिबृंहणम् । रक्तपित्तं क्षयं कासं पार्श्वशूलं विशेषतः ॥ ७९ ॥ वातरक्तं प्रमेहं च शीतपित्तं वमिं क्लमम् । श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ ८० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आनाहं मूत्रसंस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च। चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं मंगल्यं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ८१ ॥ आरोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्द्धनम्। श्रीकरं लाघवं चैव खण्डखाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ ८२ ॥ छागं पारावतं मांसं तित्तिरः ककरः शशः। कुरंगः कृष्णसारश्च मांसमेषां प्रयोजयेत् ॥ ८३ ॥ नारिकेलपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम्। शुष्कमूलकजावारूयं पटोलं बृहतीफलम् ॥ ८४ ॥ वार्ताकुं पक्वमाम्रं च खर्जूरं स्वादु दाडिमम्। ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसम्भवम्। वर्जनीयं विशेषेण खंडखाद्यं समश्नता ॥ ८५ ॥ लोहान्तरवदत्रापि पुटनादिक्रियेष्यते। न पुनर्माक्षिकेणैव शिलयैव हि मारणम् ॥ ८६ ॥ भार्ङ्गी [वामन्हाटी] दिव्यौषधी मनःशिला। रुक्मलौहं गजवेली इति लोके। सुनिषण्णं चतुष्पत्री शाकविशेषः। जीवन्ती जीव इति शाकविशेषः। ककारपूर्वकं कटुकः कालशाकं कूष्माण्डं कर्कटी कर्कोटकं कलिंगं कर्कन्धु करमर्दकं करीरं कतकं कशेरु कांजिक इति वर्जनीयम्। इति खण्डखाद्यं लोहम्।

सतावर, गिलोय, अडूसा, गोरखमुंडी, खिरेटी, मुसली, खैर, त्रिफला, भारंगी और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि २० बीस २० बीस तोले लेकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले भर जलमें पकावे जब पकते २ आठवां भाग काढा शेष रह जाय तब मैनशिल अथवा सोनामाखीसे मारा हुआ तीक्ष्ण लोहा ४८ अरतालीस तोले, खांड ६४ तोले, घृत ६४ चौंसठ तोले, फिर सबको मिलाकर तांबेके बासनमें जिस प्रकार गुडका पाक बनता है उसी प्रकार इसको पकावे, शीतल होनेपर ३२ तोले सहत मिला देवे, वंशलोचन, शिलाजित, काकडाशिंगी, पीपिल, वायविडंग, सोंठ, जीरा, त्रिफला, धनिया, तेजपात, कालाजीरा, मिरच और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले लेकर सबको मिलाकर खूब हाथोंसे मथकर चिकने बासनमें भरके रखदेवे, इसको खंडखाद्यलोह कहते हैं। समयानुसार इस औषधिमेंसे एक तोला प्रमाण लेकर गायके दूधके साथ सेवन करना चाहिये। इस लोहेपर मांसका रस (सुरुआ), दूध, भारी और वृष्य अन्नपान, स्निग्ध, मांसादि पुष्टिकारक पदार्थ ये सब सेवन करने चाहिये, इस लोहको भक्षण करनेसे रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, पार्श्वशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, ग्लानि, सूजन, पाण्डुरोग, कोढ, प्लीहा, उदररोग, अफरा, मूत्रका स्रवना और अम्लपित्त ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह खंडखाद्य लोह नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिका करनेवाला, मैथुनशक्तिको बढानेवाला, मङ्गलरूप, प्रीतिवर्द्धक, आरोग्यदायक, पुत्र उत्पादक, परमोत्तम, कामाग्निबलवर्द्धन, लक्ष्मीजनक और शरीरमें लघुता (हलकापन) करनेवाला है। इस लोहेपर बकरेका मांस, कबूतरका मांस, तीतरका मांस, ककर (केकडा) का मांस, खरगोशका मांस, कुरंग और कृष्णसारादि जीवोंका मांस खाना चाहिये। इस लोहको सेवन करनेवाला मनुष्य नारियलका जल, शिरिआरी (चौपतिया) का शाक, बथुआ, सूखी मूली, जीवंतीका शाक, परवल, कटेरीके फल, बैंगन, पके आम, खजूर और मधुर अनार इन सबको त्याग देवे। जिन पदार्थोंके नामोंमें प्रथम 'क' आवे ऐसे ककारादि नामवाले समस्त पदार्थ और अनूपदेशके जीवोंका मांस इनको भी विशेष करके त्याग देवे। इस लोहमें तीक्ष्ण लोहको मैनशिल और सोनामाखीसे ही केवल मारना ऐसा नहीं समझना चाहिये परन्तु अन्य लोहेकी समान इसमें भी पुटपाकादि सम्पूर्ण क्रिया करनी चाहिये ॥७२-८६॥

अथ शतावरीपाकः।

शतावरीमूलकल्कं कल्कात्क्षीरं चतुर्गुणम्। क्षीरतुल्यं घृतं गव्यं सितया कल्कतुल्यया ॥ ८७ ॥ घृतशेषं पचेत्तत्तु पलार्द्धं लेहयेत्सदा। रक्तपित्तं ह्यम्लपित्तं क्षयं श्वासं च नाशयेत् ॥ ८८ ॥

१ कंदुक, कडवे परवल, कालशाक, कूष्माण्ड (पेठा), ककडी, करेला, कलिंग (तरबूज), कर्कन्धु (बेर), कोंदा, कतकफल, केला और कांजी इत्यादि जानने।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शतावरका कल्क ८ आठ तोले, दूध ३२ बत्तीस तोले, गायका घी ३२ तोले और मिश्री ८ आठ तोले लेवे सबको विधिपूर्वक मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । जब पकते पकते घृतमात्र बाकी रह जाय तब उतार लेवे, इसमेंसे नित्य दो तोले प्रमाण सेवन करे तो रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षय और श्वास ये नष्ट होते हैं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

इति रक्तपित्ताधिकारः सम्पूर्णः ।

अथाम्लपित्तश्लेष्मपित्ताधिकारः ।

तत्राम्लपित्तविप्रकृष्टनिदानम् ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् । पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥ दुष्टं व्यापन्नमन्नम् । पित्तप्रकोपि इत्युक्तेऽपि अम्लविदाहि इति विशेषार्थम् । पित्तप्रकोपि पानं तक्रसुरादि अन्नं भाषादि स्वहेतूपचितं पुरा यत् वर्षास्वम्लविपाकैः जलैः औषधिभिश्च तादृशीभिरुपचितम् । सञ्चितम् अम्लपित्तम् । तदम्लपित्तं वदन्ति अम्लपित्ताख्यं रोगं वदन्ति ।

विरुद्ध (संयोगविरुद्ध जैसे दूध मछली), दुष्ट (बिगडा हुआ भोजन), खट्टा, दाहकारक और पित्तको कुपित करनेवाले अन्न पानोंको जो मनुष्य खाता पीता है उसके अम्लपाकको प्राप्त हुआ पित्त प्रथम वर्षादि ऋतुओंमें अम्लपाकी जलोंसे तथा ऐसी औषधियोंसे संचित हुआ पित्त कुपित होता है उसको महात्मा वैद्य अम्लपित्तरोग कहते हैं । यद्यपि पित्तको कुपित करनेवाले, इतना ही कहनेसे खट्टे और दाहकारकका समावेश होता है तथापि खट्टे और दाहकारक यह अलग कहे हैं, इस कहनेका अभिप्राय यह है कि पित्तका विशेष प्रकोप होता है, छाँछ तथा मदिरा आदि पान पदार्थ और उडद आदि अन्न पित्तको कुपित करनेवाले जानने ॥ १ ॥

अथाम्लपित्तरोगलक्षणम् ।

अविपाकः क्लमोत्क्लेशस्तिक्ताम्लोद्गारगौरवैः । हृत्कण्ठदाहाऽरुचिभिरम्लपित्तं वदेद्भिषक् । अम्लपित्तं द्विधाप्रोक्तमधोगं च तथोर्द्ध्वगम् २

अन्नादिकका नहीं पचना, ग्लानि, वमनकीसी इच्छाका होना, कडवी और खट्टी डकारोंका आना, शरीरमें भारीपन, हृदय और गलेमें दाह और अरुचि इन लक्षणोंके होनेसे अम्लपित्तरोग कहना चाहिये । अम्लपित्तके दो भेद ऊर्ध्वग (ऊंची गतिवाला) और अधोग (नीची गतिवाला) ऐसे अम्लपित्त रोग दो प्रकारका है ॥ २ ॥

अथोर्द्ध्वगाम्लपित्तलक्षणम् ।

वान्तं हरितपीतमनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाच्छम् । मत्स्योदकाभं स्वतिपिच्छिलाभं श्लेष्मानुजातं सहितं रसेन ॥ ३ ॥ आरक्तम् ईषल्लोहितम् रक्ताभं वा । अतीव चाच्छं निर्मलम् । रसेन लवणकटुतिक्तरूपेण ।

हरे, पीले, नीले, काले, किंचित् लाल, लाल, अत्यन्त निर्मल, मछलीके धोवनकी समान, अत्यन्त चिकने, पिच्छिल, कफसंयुक्त और खारे तीखे तथा कडवे रसवाले ऐसे पित्त वमनमें गिरते होयँ तो ऊर्ध्वग अम्लपित्त जानना ॥ ३ ॥

अथाधोगाम्लपित्तलक्षणम् ।

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् । हृल्लासकोठानलसादहर्षस्वेदांगपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ४ ॥ मूर्च्छा सर्वदा ज्ञानशून्यता । मोहो विपरीतं ज्ञानम् । अधो वेति वा शब्द ऊर्ध्वगापेक्षया । विविधप्रकारं हरिद्रावर्णयोगात् । कदाचिद्धृल्लासादिकरं च भवति ।

तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम और मोहको करनेवाला, उबकाई, मन्दाग्नि, रोमांचोंका होना, पसीना, अंगोंमें पीलापन इत्यादि विकारोंको करनेवाला जो अम्लपित्त गुदाके मार्गसे बहता है उसको अधोग अम्लपित्त कहते हैं ॥ ४ ॥

अथाम्लपित्तविशेषावस्था ।

भुक्ते विदग्धेऽप्यथ वाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित् । उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्क्षुत्क्षिदाहं शिरसो रुजं च ॥ ५ ॥ करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पित्तम् । जनयति कण्डूमंडलपिडिकाशत निचितरोगचयम् ॥ ६ ॥ भुक्ते विदग्धे तिक्ताम्लवमिं करोति । तथा उद्गारम् एवंविधमेव तिक्ताम्लमेव करोति अथवा कदाचिद्भुक्तेऽपि तिक्ताम्लां वान्तिं करोति । तथा कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरोरुजं च करोति तथा करचरणदाहादिकं जनयति । तथा कच्छूमण्डलपिडकाव्याप्तगात्रे रोगचयं करोति । अन्नविपाकक्लमादिकं जनयति ।

भोजन करनेपर जब अन्नका विदग्ध पाक होता है अथवा कदाचित् विनाही भोजन करनेपर कडवी और खट्टी वमन आवे है, तथा कडवी और खट्टी डकार आवे है, कंठमें हृदयमें और कोखमें दाह होता है, शिरमें पीडा, हाथ और पांवोंमें दाह, संताप होता है, भयंकर अरुचिको उत्पन्न करे है, कफ और पित्तजनित ज्वर होता है, तथा खुजली मण्डलाकर चकत्ते और फुडियोंसे व्याप्त देहमें अन्नका विदग्ध पाक एवं ग्लानि आदि रोगोंके समूहको उत्पन्न करे है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथाम्लपित्ते दोषसर्गः ।

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत् । दोषलिंगेन मतिमद्भिषङ्मोहकरं हि तत् ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वाधःप्रवृत्त्या छर्द्यतीसाराभ्यां तुल्यतया वैद्यभ्रान्तिकृत् ।

बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके चिह्नोंसे जाने कि, यह अम्लपित्त वातसम्बन्धी है अथवा वात और कफ इन दोनोंके संसर्गवाला है, या कफसम्बन्धी है, वह अवश्य जानना चाहिये क्योंकि, यदि यह अम्लपित्त ऊर्ध्वगतिसे होय तो वमनकी शान्ति होती है और अधोगतिसे होय तो अतिसार प्रतीत होता है यहां वैद्यको भ्रम उत्पन्न होता है । इसलिये खूब विचारकर निदान करे जिसमें किसी प्रकारका सन्देह न रहे ॥ ७ ॥

अथ दोषभेदेन लक्षणभेदः ।

कंपप्रलापमूर्च्छाश्रिचिमिगात्रावसादशूलानि । तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षास्तथानिलयुतेन । कफनिष्ठीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः । दहनबलहानिकण्डूनिद्राचिह्नं कफानुगे भवति उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवेऽम्लपित्ते स्यात् ॥ ८ ॥ चिमिचिमि झिनिझिनीति लोके । हर्षो रोमाञ्चः ।

वातज अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप (बकवाद), मूर्च्छा, सब शरीरमें झनझनाहट, ग्लानि, अन्धकारदर्शन, विभ्रम, मोह, रोमांचोंका होना ये सब लक्षण होते हैं । कफज अम्लपित्तमें कफका थूकना, शरीरमें भारीपन, जडता, अरुचि, शीत, ग्लानि, वमन, मुखमें और छातीमें कफ लिसासा रहे, जठराग्निके बलका नाश, खुजली और निद्राका अधिक आना ये सब लक्षण होते हैं । वात और कफ दोनों दोषोंसे जो अम्लपित्त उत्पन्न हुआ होय तो उसमें उपरोक्त दोनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

अथाम्लपित्तसाध्यासाध्यविचारः ।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः । चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥ ९ ॥ कस्यचिद्धीनाहाराचारशीलस्य ।

यह अम्लपित्त रोग जो थोडे ही दिनोंसे उत्पन्न हुआ होय तो औषधि करनेसे साध्य होता है। बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ होय तो याप्य जानना और अयोग्य आहार विहारवाले मनुष्यको तो थोडे ही दिनोंका उत्पन्न हुआ कष्टसाध्य जानना ॥ ९ ॥

अथ कफपित्तलक्षणम् ।

तमो मूर्च्छारुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा । प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् १०

अन्धकारदर्शन, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकमें पीडा, मुखसे लारका गिरना और मुखमें मधुरताका होना ये कफपित्तके लक्षण जानने ॥ १० ॥

अथाम्लपित्तचिकित्सा ।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः । कारयेन्मदनैः क्षौद्रैः सैन्धवैश्च तथा भिषक् ॥ ११ ॥ विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः । ऊर्ध्वगं वमनैर्विद्वानधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ १२ ॥ अम्लपित्तमिति शेषः । यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः । यथास्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निस्तुषयववृषधात्रीक्वथितं सलिलं त्रिगन्धमधुयुक्तम् । द्रुततरमपहरति वमिं सञ्जनितामम्लपित्तेन ॥ १४ ॥ छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपम् । सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तं यथाशनिस्तालतरुं प्रवृद्धम् ॥ १५ ॥ वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः । त्रिफलाकुलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥ १६ ॥ पाठापटोलयवचन्दनधान्यधात्रीवासावरांगदलनागकणाभयाभिः । लेहः सिताज्यमधुभिः शिलपालिंपडी हन्त्यम्लपित्तमरुचिज्वरदाहशोषान् ॥ १७ ॥ हंत्यम्लपित्तवमनारुचिदाहमोहखालित्यमेहशिशिरव्रणशुक्रदोषान् । भुक्त्वा नरः सततमामलकीरसेन वृद्धोऽप्यनेन हि भवेत्तरुणो रिरंसुः ॥ १८ ॥

अम्लपित्तरोगमें प्रथम वैद्य पटोल (कडवे परवल), नीम, अडूसा, मैनफल, सहत और सेंधे निमकके क्वाथसे वमन करावे तथा निसोतका चूर्ण, सहत और आमलोंका रस इनके द्वारा विरेचन करावे । ऊर्ध्वगत अम्लपित्तको वमन कराकर दूर करे और अधोगत अम्लपित्तको विरेचन (दस्त) कराकर दूर करे । जौ अथवा गेहूंके बनाये हुए यूषादि पदार्थ और उनमें मिरचादिक तीक्ष्ण वस्तु न पडी होयँ ऐसे पदार्थ पीने चाहिये अथवा भक्षण करने चाहिये, तथा खीलोंके सत्तुओंमें मिश्री और सहत मिलाकर दोषोंको विचारकर पिये । तुषरहित जौ, अडूसा और आमला इनका क्वाथ बनाकर उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और सहत डालकर पिये तो अम्लपित्तसे उत्पन्न हुई वमन तत्काल नष्ट हो जाती है । गिलोय, नीमके पत्ते और कडवे परवलके पत्ते इनको एकत्र पीसकर सहत मिलाकर पीनेसे जिस प्रकार वज्रसे बडे बडे ताडके वृक्ष नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार इससे अनेक रूपवाले महादारुण रक्तपित्त नष्ट हो जाते हैं । अडूसा, गिलोय, पिचपापडा, नीमकी छाल, चिरायता, भांगरा, हरड, बहेडा, आमले और कडवे परवल इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त नष्ट हो जाता है । पाढ, पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनिया, आमला, अडूसा, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेशर, पीपल, हरड, खांड, कमल और सहत इनका अवलेह बनावे, इस अवलेहको 'शिवपालिंपडी' कहते हैं । यह अवलेह अम्लपित्त, अरुचि, ज्वर, दाह और शोषको नष्ट करे है । जो मनुष्य नित्य आमलोंके रसके साथ भोजन करता है तो उसके अम्लपित्त, वमन, अरुचि, दाह, मोह, खालित्य, प्रमेह, शीत, व्रण और समस्त वीर्यके विकार नष्ट हो जाते हैं, इसके प्रतापसे वृद्ध मनुष्य भी स्त्रियोंके साथ गमन करनेकी इच्छा करता है ॥ ११–१८ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डकावलेहः ।

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम् । रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ १९ ॥ धात्रीतुल्या सिता योज्या गव्यमाज्यं पलद्वयम् । मन्दाग्निना पचेत्सर्वं यावद्भवति पिण्डितम् ॥ २० ॥ पलार्द्धं पलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम् । खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं परम् ॥ २१ ॥

उत्तम पेठेका रस ४०० चार सौ तोले, गायका दूध ४०० चार सौ तोले, आमलोंका चूर्ण ३२ बत्तीस तोले, खांड ३२ बत्तीस तोले और गायका घी ८ आठ तोले लेवे सबको एकत्र करके तबतक पकावे जबतक पिंड बँधे यह 'खंडकूष्माण्डक' इस नामसे प्रसिद्ध है । इस अवलेहमेंसे प्रतिदिन दो तोले अथवा चार तोले खाय तो अम्लपित्त अच्छे प्रकारसे नष्ट हो जाता है ॥ १९–२१ ॥

अथ नारिकेलखंडः ।

कुडवं नारिकेलस्य जले मृद्वग्निना पचेत् । नारिकेलजलालाभे गव्ये पयसि तत्पचेत् । ॥ २२ ॥ धान्यकं पिप्पली मुस्तं चातुर्जातं विचूर्णितम् । प्रत्येकं टंकमात्रं तु शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ २३ ॥ पलमात्रस्तदर्द्धोऽपि भक्षितः प्रत्यहं नरैः । नारिकेलकखण्डोऽयं पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ २४ ॥ अम्लपित्तं रक्तपित्तं शूलं च परिणामजम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शुष्कं दावानलो यथा ॥ २५ ॥ पलमात्रगव्यघृतेन नारिकेलस्य भर्जनं कर्तव्यमिति सम्प्रदायः ।

नारियलकी गिरी १६ सोलह तोले लेकर नारियलके जलमें अथवा नारियलका जल न मिले तो गायके दूधमें पकावे, जब पकते पकते गाढा हो जाय तब उसमें धनियाँ, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण २४ चौबीस २४ चौबीस रत्तीभर मिला देवे तो "नारिकेलखंड" सिद्ध होता है। प्रतिदिन इस औषधिमेंसे ४ चार तोले अथवा २ दो तोलेभर नित्य खाय तो इससे पुरुषत्व, निद्रा और बलकी प्राप्ति होती है । अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षय और परिणाम शूल ये सब नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार दावानलसे सूखे वनका नाश होता है। इस औषधिमें प्रथम चार तोले गायके घीमें नारियलकी गिरीको भूनना चाहिये ॥२२–२५ ॥

अथ बृहन्नारिकेलखंडः ।

प्रस्थं तु नारिकेलस्य सूक्ष्मं दृषदि पेषितम् । निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डानामर्द्धमाढकम् ॥ २६ ॥ तद्वये भर्जयेद्द्रव्ये घृते तु कुडवोन्मिते । ततस्तत्र क्षिपेच्छुद्धं गोदुग्धं चाढकोन्मितम् ॥ २७ ॥ तत्रैव निक्षिपेद्द्रव्यां सितां प्रस्थद्वयोन्मिताम् । पचेत्सर्वाणि चैकत्र मृदुना वह्निना भिषक् । ॥ २८ ॥ सुपक्वे शीतले तत्र चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् । सूक्ष्मैलां धान्यकं धात्रीं पर्पटं जलदं जलम् ॥ २९ ॥ उशीरं चन्दनं द्राक्षां शृङ्गाटं च कशेरुकम् । त्वक्पत्रकं सकर्पूरं कर्षयुग्मं पृथक्पृथक् ॥ ३० ॥ सर्वं संमिश्रयेद्रक्षेद्भाजने मृन्मये नवे । पलमात्रमिदं प्रातर्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥ ३१ ॥ एतन्निषेवितं हन्ति रोगानेतान्न संशयः । अम्लपित्तं ज्वरं पित्तं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ३२ ॥ वातरक्तं तृषां दाहं पाण्डुरोगं च कामलाम् । क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शूलं च परिणामजम् । ॥ ३३ ॥ नारिकेलस्य खण्डोऽयमश्विभ्यां भाषितः पुरा । वर्णदो बृंहणो वृष्यः पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ३४ ॥

पत्थरपर बारीक पिसा हुआ नारियल ६४ चौंसठ तोले, छुकले और बीजोंसे रहित पेठेके टुकडे १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले लेवे, सबको १६ सोलह तोले गायके घीमें भूनकर पश्चात् उसमें २५६ दो सौ छप्पन तोले उत्तम गायका दूध और १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले उत्तम स्वच्छ खांड डाले, फिर सबको मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावे जब उत्तम विधिसे पककर तैयार हो जाय तब उसको शीतल करके उसमें छोटी इलायची, धनियाँ, आमले, पित्तपापडा, नागरमोथा, सुगंधवाला, खस, चंदन, दाख, सिंघाडे, कसेरू, तज, तेजपत्र और भीमसेनी कपूर ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर सबका चूर्ण करके मिला-देवे तो यह 'बृहन्नारिकेल खंड' सिद्ध होता है। इस औषधिको मट्टीके नवीन बासनमें रखना चाहिये। इस औषधिमेंसे चार तोले भर अथवा अपनी अग्निके बलानुसार प्रातःकाल खाय । इसको सेवन करनेसे–अम्लपित्त, ज्वर, पित्त, रक्तपित्त, अरोचक, वातरक्त, तृषा, दाह, पांडुरोग, कामला, क्षय और परिणामशूल इन सबका तत्काल नाश हो जाता है । पूर्वकालमें श्रीमान् अश्विनीकुमारोंका कहा हुआ यह नारिकेल-खंड शरीरके वर्णको सुंदर करता है, धातुको पुष्ट करता है, कामी मनुष्योंके लिये परम हितकारी है और पुरुषत्व, निद्रा तथा बलको बढानेवाला है ॥ २६–३४ ॥

अथ कफपित्तचिकित्सा ।

अभया पिप्पली द्राक्षा सिताधान्यययवासकम् । मधुना कण्ठदाहघ्नं पित्तश्लेष्महरं परम् ॥ ३५ ॥ पटोलयवधान्याकपिप्पल्यामलकानि च । एषां क्षौद्रयुतः काथः पित्तश्लेष्महरः परः ॥ ३६ ॥ पित्तश्लेष्मवमीकण्डूकोठविस्फोटदाहनुत् । दीपनः पाचनः काथः शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ३७ ॥ पिप्पलीखण्डपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तः। पित्तश्लेष्महरो भुक्तो वह्निमान्द्यं च नाशयेत् ॥ ३८ ॥

हरड, पीपल, दाख, खांड, धनियां और जवासा इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफपित्त और कंठका दाह दूर होता है। कडवे परवल, इन्द्रजौ, धनियां, पीपल और आमला इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे श्लेष्मपित्त नष्ट हो जाता है। अदरख और परवल इनका क्वाथ बनाकर पिये तो यह अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन और कफपित्त, वमन, खुजली, चकत्ते, फोडे और दाहको नष्ट करे है। पीपल, खांड और हरड इनको समान भाग लेकर लड्डू बनाकर खानेसे कफपित्त और अग्निकी मंदता दूर होती है ॥ ३५-३८ ॥

इति अम्लपित्तश्लेष्मपित्ताधिकारः सम्पूर्णः।

अथ क्षयरोगाधिकारः।

तत्र क्षयरोगविप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानम्। वेगरोधात्क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्। त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥ वेगोत्र-"वातमूत्रपुरीषाणि निगृह्णाति यदा नरः।" इति चरकवचनात्। क्षयात्क्षीयतेऽनेनेति क्षयः। तेन अतिव्यवायानशनेर्ष्यादयो धातुक्षयहेतवः क्षयशब्देन उच्यन्ते साहसाद्बलवता समं मल्लयुद्धादितः। विषमाशनात् "बहुस्तोकमकालं वा भुक्तं तद्विषमाशनम्।" तस्मात्। त्रिदोषः सान्निपातिकः। हेतुचतुष्टयात् अन्येऽपि हेतवो हेतुचतुष्टय एव अन्तर्भवन्ति। यक्ष्मणः पर्यायाः राजयक्ष्मक्षयशोषाः।

अधोवायु आदिके वेगोंको रोकनेसे क्षयरोग उत्पन्न होता है, चरकमें भी कहा है, कि-"मनुष्य लज्जा अथवा भय आदि किसी कारणसे जब वायु, मूत्र और मलादिकके वेगोंको रोकता है तब उसके रोगोंकी उत्पत्ति होती है।" अत्यन्त मैथुन, अत्यन्त उपवास और अत्यन्त ईर्ष्यादि जो धातुओंके क्षय होनेके कारण हैं उनसे भी क्षयरोग उत्पन्न होता है। बलवान्के साथ मल्लयुद्धादिक अथवा द्वेषादिक साहसके कार्य करनेसे भी क्षयरोग उत्पन्न होता है। बहुत भोजन, बहुत थोडा भोजन अथवा विना समय भोजन करनेसे भी क्षयरोग उत्पन्न होता है। यह क्षयरोग सान्निपातिक है अर्थात् यह तीनों दोषोंसे होता है। क्षयरोगके और भी बहुतसे कारण हैं वे सब इन चार हेतुओंके ही अन्तर्भूत हैं ऐसा जानना। यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, क्षय और शोष ये चारों इस रोगके नाम हैं ॥ १ ॥

अथ यक्ष्मादिशब्दनिरुक्तिः।

वैद्यो व्याधिमता यस्माद्व्याधेर्यत्नेन यक्ष्यते। स यक्ष्मा प्रोच्यते लोके शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ २ ॥ यक्ष्यते पूज्यते, राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः। तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः। क्रियाक्षयकरत्वात्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः। संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

वैद्य रोगीसे अच्छे प्रकारसे यत्नपूर्वक पूजन अर्थात् पालन किया जाता है इस कारण शब्दशास्त्रको जाननेवाले विद्वान् इसको 'यक्ष्मा' कहते हैं। प्रथम राजा चंद्रमाके यह रोग उत्पन्न हुआ था इस कारण इसको विद्वान् 'राजयक्ष्मा' कहते हैं। यह सम्पूर्ण क्रियाओंका क्षय करता है इस कारण इसको पंडितलोग क्षय कहते हैं। यह रोग रसादि धातुओंको शोषण करता है इस कारण इसको 'शोष' ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ क्षयरोगसम्प्राप्तिः।

कफप्रधानैर्दोषैषु रुद्धेषु रसवर्त्मसु। अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः। क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ ४ ॥ कफप्रधानैर्दोषैः रसवर्त्मसु रुद्धेषु अनन्तराः सर्वे धातवः क्षीयन्ते ततो मानवः शुष्यति कारणभूतस्य रसस्य क्षये कार्याणां रक्तादीनामनुक्रमेण क्षीयमाणत्वात्। मार्गावरोधे रसक्षयहेतुमाह चरकः-रसः स्रोतःसु रुद्धेषु स्वस्थानस्थो विदह्यते। स ऊर्ध्वं कासवेगेन बहुरूपः प्रवर्तते ॥ ५ ॥ स्वस्थानस्थः हृद-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्थः। कासं विनापि रसक्षयो भवति। मार्गावरोधकुपितवातेन रसस्य शोषणात्।

कफप्रधान वातादि तीनों दोष जब कुपित होते हैं तब उनसे रसके बहनेवाली नाडियोंके मार्ग रुक जाते हैं, तब सम्पूर्ण धातु क्षीण होने लगती हैं और धातुओंके क्षीण होनेसे मनुष्य भी क्षीण हो जाता है। समस्त धातुओंके कारणभूत रसके क्षय होनेसे कार्यरूप रुधिर आदि धातुओंका भी अनुक्रमसे क्षय हो जाता है, जब धातु क्षय होने लगती हैं तो मनुष्यके शरीरका क्षीण होना भी सम्भव है। मार्गोंके रुकनेसे रसके क्षय होनेमें चरक कहते हैं कि, स्रोतों अर्थात् छिद्रोंके रुक जानेपर हृदयमें रहनेवाले रसका विदाह हो जाता है, इस प्रकार विदाहको प्राप्त हुआ रस ऊपरसे खांसीके वेगसे मुखद्वारा अनेक प्रकारका होकर निकलता है इसको देखकर ऐसा मत समझना कि, खांसीके होनेसे ही रसका क्षय होता है किन्तु खांसीके विना भी मार्गोंके अवरोधसे कुपित वायुसे रसका क्षय होता है कहा भी है कि, मार्गोंके रुकनेपर वायुके कोपसे भी धातुओंका क्षय होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ रसक्षयहेतुः।

वायोर्धातुक्षयात्कोपान्मार्गस्यावरणेन च। अनुलोमक्षयं दृष्ट्वा प्रतिलोमक्षयावहः ॥ ६ ॥ अतिव्यवायिनो वा रेतसि क्षीणे प्रतिलोमक्रमेण अनन्तराः सर्वे धातवो रसपर्यन्ताः क्षीयन्ते। तद्यथा—शुक्रे क्षीणे मज्जा क्षीयते मज्जायां क्षीणायामस्थि क्षीयते एवं पूर्व पूर्व क्षीयन्ते। ननु कार्यस्य शुक्रस्य क्षये कथं कारणभूतानां मज्जादीनां क्षयः उच्यते शुक्रक्षयात् वायुः कुप्यति। स वायुः सान्निध्यात् क्रमेण मज्जादीन् सर्वान् धातून् शोषयति। ततस्तदनन्तरं मानवः शुष्यति।

जिस प्रकार कारणभूत रसके क्षयके कार्यभूत धातुओंका सीधे क्रमसे क्षय होता है उसी प्रकार उलटे क्रमसे कार्यभूत वीर्यके क्षयसे कारणभूत धातुओंका भी क्षय होता है, जैसे अत्यन्त मैथुन करनेवाले पुरुषके वीर्य क्षीण होनेपर वीर्यसे ऊपरकी सम्पूर्ण रसपर्यन्त धातु उलटे क्रमसे क्षीण होती हैं जैसे कि, वीर्यके क्षीण होनेसे मज्जा क्षीण होती है, मज्जाके क्षीण होनेसे अस्थि (हड्डी) क्षीण होती हैं, अस्थिके क्षीण होनेपर मेद क्षीण होती है, मेदके क्षीण होनेसे मांस क्षीण होता है, मांसके क्षीण होनेपर रुधिर क्षीण होता है और रुधिरके क्षीण होनेसे रस क्षीण होता है। शंका—कार्यरूप वीर्यके क्षय होनेसे कारणरूप मज्जा आदिका क्षय किस प्रकार हो सक्ता है? समाधान—वीर्यसे क्षय होनेसे वायु कुपित होती है और वह वायु समीप होनेके कारण अनुक्रमसे मज्जा आदि समस्त धातुओंको शोषण करे है तो मनुष्य क्षीण हो जाता है ॥ ६ ॥

अथ क्षयरोगपूर्वरूपम्।

श्वासाङ्गसादकफसंस्रवतालुशोषवम्म्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः। शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ ७ ॥ स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकंठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च। तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च ॥८॥

जब क्षय रोग होनेको होता है तब उससे पहिले श्वास, अंगोंमें ग्लानि, कफका गिरना, तालूका सूखना, वमन, अग्निकी मंदता, मद (नसा), नाकसे पानीका गिरना (पीनस), खाँसी और निद्रा ये सब लक्षण होते हैं। और वह मनुष्य मांसके खानेकी और स्त्रीप्रसंगकी भी अभिलाषा करता है और उसके नेत्र सुफेद हो जाते हैं और वह सुपनेमें कौआ, तोता, शल्लकि (सेई), नीलकंठ, गिद्ध, बन्दर और करकैटा इनपर अपनेको बैठा देखता है और जलरहित सूखी नदियोंको देखता है, सूखे हुए तथा पवनसे, धुएँसे और दावानलसे पीडित वृक्ष उसको दिखाई देते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ क्षयरोगलक्षणम्।

अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः। ज्वरः सर्वाङ्गिकश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ९ ॥ अंसयोः पार्श्वयोश्चाभितापः पीडा। अत्र सकलधातुक्षयपूर्वकः सकलशरीरशोषो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोद्धव्यः । एतानि त्रीणि लक्षणानि प्रायो भाविखेन चरकेण उक्तानि । सुश्रुतेन यक्ष्मणि षड्लक्षणानि उक्तानि । भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम् । स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राजयक्ष्माणि१०

कंधे और पसलियोंमें पीडा, हाथ और पांवोंमें संताप और सम्पूर्ण अंगोंमें ज्वर ये तीन क्षयरोगके लक्षण हैं । इस रोगमें सम्पूर्ण धातुओंका क्षय होकर सम्पूर्ण शरीरका शोषण होता है ऐसा जानना । कंधे और पसलियोंमें पीडा आदि जो तीन लक्षण चरकमें कहे हैं वह तो होनहारके कहे हैं परंतु सुश्रुतमें और छः लक्षण कहे हैं जैसे अन्नमें अरुचि, ज्वर, श्वास, खाँसी, रुधिरका दर्शन और स्वरभेद ये छः लक्षण क्षयरोगमें होते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ दोषोल्वणताविशेषेण लक्षणम् ।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः । ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ ११ ॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च । कासः कण्ठस्य च ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ १२ ॥ अनिलादुल्वणात् । एवं पित्तात्कफाच्च । यत आह सुश्रुतः—एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको गदः । उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि दोषाणां निपतन्ति हि ॥ १३ ॥

वायुकी उल्वणता होय तो स्वरभेद, शूल, कंधे और पसलियोंमें संकोच होता है । पित्तकी उल्वणता होय तो ज्वर, दाह, अतिसार और रुधिर निकलता है । कफकी उल्वणता होय तो शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, खाँसी और कंठका जकडना ये सब लक्षण होते हैं । सुश्रुत कहता है कि, यह क्षय रोग तीनों दोषोंका सन्निपातरूप होनेसे एकही प्रकारका माना जाता है तो भी उसमें दोषोंकी उल्वणता होनेसे उनहीं उन दोषोंके चिह्न देखे जाते हैं ॥ ११–१३ ॥

अथ क्षयरोगासाध्यता ।

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वापि समन्वितम् । त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः । जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन्सुविमलं यशः ॥ १४ ॥

निर्मल कीर्तिकी इच्छा करनेवाले वैद्य उक्त ग्यारह, अथवा छः, अथवा ज्वर, खाँसी और रुधिरकी वमन तीन लक्षणोंसे पीडित क्षयरोगीको छोड देते हैं ॥ १४ ॥

अथ विशेषता ।

सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वापि लिंगैर्मांसबलक्षये । युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ १५ ॥ सर्वैर्लिंगैरेकादशभिः । अर्द्धैः षड्भिः । त्रिभिर्ज्वरकासरुधिरवमनैः । अतोऽन्यथा मांसबले सति सर्वरूपोऽपि न प्रत्याख्येयः किंतु चिकित्स्यः । महाशनं क्षीयमाणमरोचकनिपीडितम् । शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ १६ ॥ महाशनं क्षीयमाणमित्येकमसाध्यं लक्षणम् । अतीसारनिपीडितमिति द्वितीयम् । मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं च जीवितम् । तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणां मलरेतसी ॥ १७ ॥ शूनमुष्कोदरमिति तृतीयम् ।

परन्तु जिस रोगीके मांस और बलका क्षय हो गया हो उसको इन ग्यारह लक्षणों अथवा छः लक्षणों किंवा तीन लक्षणोंयुक्त जानकर छोड देवे किंतु जिनका मांस और बलक्षय नहीं हुआ होय उसको संपूर्ण लक्षणोंयुक्त होनेपर नहीं छोडना चाहिये, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये । जो क्षयरोगी अधिक भोजन करनेपर भी क्षीण होता जाय तो उसको असाध्य समझकर वैद्य त्याग देवे अर्थात् उसकी चिकित्सा न करे । जो क्षयरोगी अतीसारसे पीडित होय उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, कहा भी है कि, मनुष्योंका बल मलके अधीन है और जीवन वीर्यके अधीन है, इस लिये क्षयरोगीके मल और वीर्यकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । जिस क्षयरोगीके वृषण (अण्डकोश) और उदर सूज गया हो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १५–१७ ॥

अथ क्षयरोगारिष्टम् ।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्द्धश्वासनिपीडितम् । कृ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् । ॥ १८ ॥ मेहन्तं शुक्रं क्षरन्तम् । शुक्राक्षत्वाद्येकैकशोऽरिष्टलक्षणम् ।

जिस क्षयरोगीकी आंखें सफेद हो गई हों, अन्नमें अरुचि हो, ऊर्द्ध्वश्वाससे पीडित हो, अथवा कष्टसे बहुतसा वीर्य गिरता होय, उस रोगीको अवश्य यह क्षयरोग मार देता है ॥ १८ ॥

अथ क्षयरोगिणो जीवनावधिः ।

परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः । सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः । ॥ १९ ॥ शोषपीडितो मानवश्चेत्तरुणो भवति सुभिषग्भिरुपक्रान्तो भवति तदा परं दिनसहस्रं द्वितीयं दिनसहस्रं यदि जीवति तत्र जीवनविकल्प इत्यर्थः । एतेन शोषपीडितो मानवश्चेत्तरुणो भवति सद्वैद्यैश्चिकित्सितो भवति तदा प्रथमदिनसहस्रं जीवेदेवेत्युक्तम् ।

क्षयरोगसे पीडित मनुष्य जो तरुण हो और उत्तम वैद्यके द्वारा चिकित्सा की जाय तो एक हजार दिनतक जीता है, यह परम अवधि कही है ॥ १९ ॥

अथ क्षयरोगिचिकित्सा ।

ज्वरानुबंधरहितं बलवन्तं क्रियासहम् । उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥ २० ॥ आत्मवन्तं यत्नवन्तं धृतिवन्तं वा ।

जो क्षयरोगी ज्वरकी पीडासे रहित, बलवान्, चिकित्सासम्बन्धी क्रियाओंको सह सके, यत्नवाला, धीरजवान्, प्रदीप्त अग्निवाला और जो कृश न हो ऐसे यक्ष्मरोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २० ॥

अथ निदानविशेषण शोषविशेषः ।

व्यवायशोकवार्द्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषितान् । व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणैः शृणु ॥ २१ ॥ व्रणशोषी उरःक्षतशोषी च ।

अत्यन्त मैथुन करनेसे जो शोष होता है उसको 'व्यवायशोष' कहते हैं । शोकसे उत्पन्न हुए शोषको 'शोकशोष' कहते हैं । वृद्ध अवस्थासे उत्पन्न हुए शोषको 'वार्द्धक्यशोष' कहते हैं । दण्डकसरत आदिके करनेसे उत्पन्न हुए शोषको 'व्यायामशोष' कहते हैं । अधिक मार्गके चलनेसे उत्पन्न हुए शोषको 'अध्वशोष' कहते हैं । व्रण होनेके कारण उत्पन्न हुए शोषको 'व्रणशोष' कहते हैं । और छातीमें क्षतके होनेसे उत्पन्न हुए शोषको 'उरःक्षतशोष' कहते हैं । अब इनके अलग अलग लक्षण कहते हैं सो सुनो ॥ २१ ॥

अथ व्यवायशोषलक्षणम् ।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिंगैरुपद्रुतः । पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः॥२२॥ शुक्रस्य क्षयलिंगैः सुश्रुतोक्तैः । तानि यथा—शुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदना, व्यवाये चाशक्तिः। चिराद्वा प्रसेकः, प्रसेके अल्पशुक्रदर्शनमिति । यथापूर्वं क्षीयन्ते च अस्य धातवः प्रथमं शुक्रं क्षीयते पश्चाच्छुक्रक्षयजनितवायुना मज्जादयोऽपि धातवो यथापूर्वं क्षीयन्ते ।

व्यवायशोषमें सुश्रुतमें कहे हुए सम्पूर्ण वीर्यक्षयके चिह्न होते हैं अर्थात् लिंग और अंडकोषोंमें पीडा होती है, मैथुन करनेमें अशक्तता, अथवा मैथुन करते समय अनेक वार वीर्य स्खलित होता है और बहुत थोडा वीर्य निकलता है, और उस रोगीका शरीर पांडुवर्ण हो जाता है, तथा प्रथम वीर्यके क्षीण होनेसे फिर उसकी क्षीणतासे वायुके कुपित होनेके कारण ऊपरकी मज्जादि धातुएँ भी अनुक्रमसे क्षीण हो जाती हैं ॥ २२ ॥

अथ शोकशोषलक्षणम् ।

प्रध्यानशीलः स्रस्तांगः शोकशोष्यपि तादृशः । विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुपलक्षितः ॥ २३ ॥ प्रध्यानशीलः यस्याप्रध्यानशीलः यस्याभावेन शोको जनितस्तद्ध्यानपरः । स्रस्ताङ्गः शिथिलाङ्गः । तादृशः व्यवायशोषिसदृशः । तेन शुक्रादिसर्वधातुक्षययुक्तो भवति । परं शुक्रक्षयकृतैर्विकारैर्मेढ्रवृषणवेदनादिभिर्वर्जितो भवति व्याधिस्वभावात् ।

शोकशोषमें रोगीके जिस वस्तुके अभावसे शोक हुआ होय उसी वस्तुका सदैव ध्यान करता है, उसके अंग शिथिल हो जाते हैं और व्यवायशोषवाले रोगी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की समान शुक्रादि सम्पूर्ण धातुओंके क्षयसे युक्त हो जाता है किंतु व्याधिके स्वभावसे उसके लिंगमें और अंडकोषोंमें पीडा आदि उपद्रव नहीं होते ॥ २३ ॥

अथ वार्द्धक्यशोषलक्षणम् ।

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः । कम्पनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ॥ ॥ २४ ॥ ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचिपीडितः । संप्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः । प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ २५ ॥ मन्दशब्दः स्वल्पार्थः शुष्करूक्षमलच्छविः शुष्के रूक्षे मलच्छवी यस्य सः । प्रसुप्तगात्रावयवः प्रसुप्तः स्पर्शज्ञः । क्लोम पिपासास्थानम् ।

वार्द्धक्यशोषवाले मनुष्यका शरीर कृश (दुबला) हो जाता है, वीर्य, बल, बुद्धि और इन्द्रियें मन्द हो जाती हैं, कम्प होता है, शरीरकी शोभा नष्ट हो जाती है, कांसेके फूटे बासनके शब्दकी समान स्वर हो जाता है, थूकनेमें कफ नहीं आता, भारीपन और अरुचिसे पीडित होता है। मुख, नाक और आंखोंमेंसे पानी बहता रहता है, विष्ठा और शरीरका रंग सूखा और रूखा हो जाता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथाध्वशोषलक्षणम् ।

अध्वश्रशोषी त्रस्तांगः सम्भृष्टपरुषच्छविः । सम्भृष्टपरुषच्छविः सम्भृष्टस्येव परुषा छविः यस्य सः ।

अध्वशोषमें मनुष्यके अंग शिथिल हो जाते हैं, शरीरकी कांति अग्निमें भुने हुए पदार्थकी समान और खरदरी हो जाती है, शरीरके अवयवोंको स्पर्श करनेसे स्पर्शका ज्ञान नष्ट हो जाता है और तृषा लगनेका स्थान, गला और मुख ये सूख जाते हैं ॥

अथ व्यायामशोषिलक्षणम् ।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः । लिंगैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥२६॥ एभिरेव त्रस्तांगत्वादिभिरध्वशोषिलक्षणैरेव । भूयिष्ठम् अत्यर्थम् ।

व्यायामशोषमें विशेष करके अध्वशोषके लक्षण मिलते हैं और क्षतके न होनेपर भी उरःक्षत शोषके लक्षण होते हैं ॥ २६ ॥

अथ व्रणशोषनिदानासाध्यलक्षणे ।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् । व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमः स्मृतः २७

रुधिरके क्षय होनेसे, घावकी पीडासे और आहारके घटनेसे व्रणवाले मनुष्यके शोष होता है वह तीनों प्रकारका व्रणशोष अत्यन्त असाध्य है ॥ २७ ॥

अथोरःक्षतशोषनिदानम् ।

धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् । युद्ध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ २८ ॥ वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यं निगृह्णतः । शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २९ ॥ अधीयानस्य चात्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् । महानदीं वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ ३० ॥ सहसोत्पततो दूरं तूर्णं चापि प्रनृत्यतः । तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा ॥३१॥ स्त्रीषु [illegible]तिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः । विक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते ॥ ३२ ॥ आयस्यतः आयासं कुर्वतः । हयं वृषादिकं अन्यं गजोष्ट्रादिकम् । शिला दीर्घपाषाणः । अश्मा प्रस्तरखण्डः । निर्घाताऽस्त्रविशेषः । व्याधिः उरःक्षताख्यः ।

बहुत धनुषबाण अर्थात् तीरकमान चलानेसे, बडे भारी बोझको उठानेसे, बलवान्के साथ युद्ध करनेसे विषम अथवा ऊंचे स्थानसे गिरनेसे, दौडते हुए बैल, घोडे, हाथी ऊंट आदिको रोकनेसे, शिला, लकडी, पत्थर और शस्त्रादिकको जोरसे फेंकनेसे, दूसरोंको मारनेसे, बहुत ऊंचे स्वरसे बोलने अथवा वेद शास्त्रोंके पढनेसे, वेगपूर्वक दूर जानेसे, बडी गम्भीर नदियोंको तैरनेसे, घोडेके साथ दौडनेसे, एक साथ अकस्मात् उछलने कूदनेसे, अथवा कला खानेसे, जल्दी जल्दी नाचनेसे, तथा इसी प्रकार अन्यान्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साहसके काम करनेसे, जिसके अत्यन्त चोट लगी हो ऐसे, मनुष्यको स्त्रियोंमें अत्यंत आसक्ति रखनेवाले और रूखा बहुत थोडा तथा प्रमाणका भोजन करनेवाले मनुष्यकी छाती फटकर बलवान् उरःक्षत राग उत्पन्न होता है ॥ २८–३२ ॥

अथोरःक्षतशोषलक्षणम् ।

उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विभज्यते । प्रपीड्यते ततः पार्श्वे शुष्यत्यंगं प्रकम्पते ॥ ३३ ॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते । ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधस्तथा ॥ ३४ ॥ दुष्टश्यावः सदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहु । कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सास्रक् प्रवर्तते । स क्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात् ॥ ३५ ॥ विरुज्यते पीड्यते भिद्यते विदार्यते एव विभज्यते द्विधा क्रियते इव । स क्षती स पुरुषः क्षती उरःक्षतवान् । अत्यर्थं क्षीयते क्षीणो भवति ।

उरःक्षत रोगवाले मनुष्यकी छाती अत्यंत दुखती है ऐसा जान पडता है, कोई छातीको चीरे डालता है अथवा दो टुकडे करे डालता है, पँसलियोंमें पीडा होती है, सम्पूर्ण अंग सूखने लगते हैं, देह कांपने लगती है, अनुक्रमसे वीर्य बल, वर्ण, कांति और अग्नि क्षीण होती जाती है, ज्वरकी व्यथा, मनमें दीनता, मलका भेद अर्थात् दस्तोंका होना, अग्निकी मंदता, खाँसीके आते समय दूषित, काले रंगका, दुर्गन्धित, पीला, गांठदार, बहुतसा और रुधिरयुक्त कफ बारंबार निकलता है और उरःक्षतरोगी वीर्यके तथा ओजके क्षयसे अत्यंत क्षीण हो जाता है ॥ ३३–३५ ॥

अथोरःक्षतविशेषलक्षणम् ।

उरोरुक्छोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते । क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ ३६ ॥ क्षते उरःक्षतवति । उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः विशेषतः भवत्येवास्मिन् उरःक्षतवति सास्रकफशुक्रौजसां क्षयात् क्षीणे स रक्तमूत्रत्वं पार्श्वं पृष्ठकटिग्रहश्च भवति ।

उरःक्षत रोगवाले मनुष्यकी छातीमें अत्यंत पीडा होती है, रुधिरकी वमन और खांसी अधिकतर आती है और रुधिरसहित कफका, वीर्यका तथा ओजका क्षय होनेसे लोहित रंगका रुधिरसहित मूत्र उतरता है और पँसली, पीठ तथा कमरमें महावेदना होती है ॥ ३६ ॥

अथ निदानविशेषेणोरःक्षतलक्षणम् ।

व्रणरोधात्क्षयाच्चैव कोष्ठात्प्रतिमलात्तथा । क्षतोरस्कस्यान्नपाके निःश्वासो वाति पूतिकः ॥ ३७ ॥ क्षयाद्धातुक्षयहेतोरतिव्यवायोदितात्कोष्ठात्प्रतिमलात्कोष्ठात्प्रतिलोममलात् । पूतकः पूतिगन्धः ।

व्रणके अवरोधसे, धातुको क्षय करनेवाले अत्यंत मैथुनादिकसे और कोठेमें वायुकी प्रतिलोमतासे प्रतिलोम हुए मलसे जिसकी छाती फट गई होय उस मनुष्यका श्वास अन्नके पचते समयमें दुर्गंधित निकलता है ॥ ३७ ॥

अथोरःक्षतसाध्यासाध्यलक्षणम् ।

अल्पलिंगस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः । परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिंगं तु वर्जयेत् ॥ ३८ ॥

जो उरःक्षतरोगमें अल्प लक्षण हो, अग्नि प्रदीप्त हो, शरीरमें बल हो और यह रोग थोडे ही दिनोंसे हुआ होय तो साध्य होता है । जिसको उत्पन्न हुए एक वर्षसे अधिक बीत गया वह याप्य है और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों उसको असाध्य समझकर छोड देना चाहिये, अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

अथ राजयक्ष्मचिकित्सा ।

बलिनो बहुदोषस्य पञ्च कर्माणि कारयेत् । यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥ ३९ ॥ मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं च जीवितम् ॥ ४० ॥ तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी । शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयो हिताः । मद्यानि जांगलाः पक्षिमृगाः पथ्या विशुष्यताम् ॥ ४१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलवान् और बहुत दोषोंसे युक्त राजयक्ष्मावाले रोगीको वमन, विरेचन (दस्त), नस्य, निरूहवस्ति और अनुवासनवस्ति ये पंचकर्म कराने चाहिये, परन्तु क्षीण देहवाले मनुष्यको यह पंचकर्म विषकी समान अपकारी होते हैं, कारण यह कि, मनुष्योंका बल मलके अधीन है और जीवन वीर्यके अधीन है इस कारण क्षयरोगवाले मनुष्योंके वीर्यकी और मलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । क्षयरोगवाले मनुष्योंके लिये शालिचावल, साठीचावल, गेहूँ, जौ और मूँग आदि अन्न, मदिरा और जंगल प्रदेशके पशु पक्षियोंका मांस पथ्य (हित) है ॥ ३९–४१ ॥

अथ षडंगयूषः ।

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् । ॥ ४२ ॥ दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजं रसं पिबेत् । तेन षड्दिनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥ ४३ ॥ द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतोऽष्टगुणं जलम् । पादस्थं संस्कृतं चाज्ये षडंगो यूष उच्यते ॥ ४४ ॥ तथा यवपलम् १ । कुलत्थपलम् १ । छागमांसपलानि ४ । जलपलानि ४८ । शेषपलानि १२ । ततः पलमिते घृते संस्करणीयम् । तत्र कर्षमितं सैन्धवं देयम् । सौरभार्थं हिंगु देयम् । पिप्पली नागरं च पृथङ् माषमितं कल्कीकृत्य देयम् । इति षडंगयूषः । ककुभत्वङ्नागबला वानरिबीजं विचूर्णितं पयसा । पीतं मधुघृतयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥ ४५ ॥ छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम् । छागोपसेवी शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ ४६ ॥ मधुताप्यविडंगाश्मजतुलोहघृताभयाः । घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिनः ॥ ४७ ॥ ताप्यं सुवर्णमाक्षिकम् । शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन्क्षयी । क्षीराशी लभते पुष्टिं मतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥ ४८ ॥

जौ ४ तोले, कुलथी ४ तोले और बकरेका स्निग्ध मांस १६ तोले इन सबको अठगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथा भाग जल बाकी रहजाय तब उसमें चार ४ तोले घी डालकर बघार देवे, सेंधानिमक १ तोला डाले, सुगंधिके लिये हींग डाले तथा अनार और आमलोंका रस डाले, पीपल और सोंठका कल्क छः छः रत्ती डाले । इस मांसरसको षडंगयूष कहते हैं । यह क्षयरोगवाले मनुष्योंको पिलाना चाहिये । इसके पीनेसे राजयक्ष्मागत पीनस आदि समस्त विकार निवृत्त हो जाते हैं । अर्जुनकी छाल, गँगेरन (गुलशकरी) और कौंछके बीज इनको दूधमें पीसकर सहत, घी और बूरा मिलाकर पिये तो राजयक्ष्मादि रोग और खाँसी दूर हो जाती है । यक्ष्मारोगी बकरेके मांसको खाय, बकरीके दूधको पिये, सोंठ मिलाकर बकरीका घी खाय, बकरेकी सेवा कर और बकरे बकरियोंके रहनेके स्थानमें सोवे, इन उपायोंके करनेसे क्षयरोग नष्ट हो जाता है । सहत, सोनामुखी, बायविडंग, शिलाजीत, लोहा, घी और हरड इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे और इसपर पथ्य भोजन करनेसे अत्यंत उग्र क्षय रोग नष्ट हो जाता है । क्षय रोगवाला मनुष्य खांड और सहत मिलाकर नैनी घी खाय और इसपर दूधयुक्त भोजन करे अथवा सहत और घीको विषम (ज्यादे कम) भाग लेकर चाटे तो पुष्टि होती है ॥ ४२–४८ ॥

अथ सितोपलाद्यवलेहः ।

सितोपला तुगाक्षीरी पिप्पली बहुलात्वचः । अन्त्यादूर्द्धं द्विगुणिताश्चूर्णिता मधुसर्पिषा । ॥ ४९ ॥ लेहयेद्राजरोगार्तं कासश्वासज्वरातुरम् । पार्श्वशूलिनमल्पाग्निं सुप्तजिह्वं रुचिच्युतम् । हस्तपादांगदाहे च ज्वरे रक्ते तथोर्द्ध्वगे ॥ ५० ॥ सितोपला [मिश्री] बहुला सूक्ष्मैला ।

दालचीनी १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग और मिश्री १६ भाग इन सबका चूर्ण करके सहतके तथा घीके साथ क्षयरोगवालेको चटावे । खाँसी, श्वास, क्षय, पार्श्वशूल, मंदाग्नि, जिह्वाकी जडता और अरुचि तथा हाथ, पांव और सम्पूर्ण शरीरका दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तको भी यह सितोपलादि चूर्ण दूर कर देता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ जातीफलाद्यचूर्णम्।

जातीफलं विडंगानि चित्रकं तगरं तिलाः। तालीसं चन्दनं शुण्ठी लवंगमुपकुञ्चिका। ॥ ५१ ॥ कर्पूरश्चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा। एषां त्र्यक्षसमा भागाश्चातुर्जातकसंयुताः ॥ ५२ ॥ पलानि सप्त शृंगायाः सिता सर्वसमा मता। चूर्णमेतत्क्षयं कासं श्वासं च ग्रहणीगदम् ॥५३॥ अरोचकं प्रतिश्यायं तथा चानलमन्दताम्। एतान्रोगान्निहन्त्येव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ५४ ॥

जायफल, बायविडंग, चीता, तगर, तिल, तालीसपत्र, चंदन, सोंठ, लौंग, कालाजीरा, भीमसेनीकपूर, हरड, आमले, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर ये प्रत्येक पदार्थ तीन तीन तोले भर लेवे, भांग २८ तोले लेवे और सबकी बराबर मिश्री लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनावे। जिस प्रकार इन्द्रका वज्र वृक्षोंको नष्ट करता है उसी प्रकार यह चूर्ण क्षय, खाँसी, श्वास, ग्रहणी, अरुचि, प्रतिश्याय (जुकाम) और अग्निकी मंदताको नष्ट करे है। इसको जातीफलाद्य चूर्ण कहते हैं ॥ ५१–५४ ॥

अथ लाक्षादितैलम्।

बालरोगाधिकारोक्तं तैलं लाक्षादि योजयेत्। अभ्यंगे यक्ष्मिणो नित्यं वृद्धवैद्यो विशेषतः ॥ ५५ ॥

बालरोगाधिकारमें जो लाक्षादितैल कहा है उस तेलको वृद्ध वैद्यके उपदेशसे क्षयरोगीके शरीरपै मर्दन (मालिश) करे ॥ ५५ ॥

अथ वासावलेहः।

वासकस्य रसप्रस्थं मानिका सितशर्करा। पिप्पल्या द्विपलं तावत्सर्पिषश्च शनैः पचेत्। ॥ ५६ ॥ तस्मिँल्लेहत्वमायाते शीते क्षौद्रपलाष्टकम्। दत्त्वावतारयेद्वैद्यो लीढो लेहोऽयमुत्तमः ॥ ५७ ॥ हन्त्येव राजयक्ष्माणं कासं श्वासं च दारुणम्। पार्श्वशूलं च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा ॥ ५८ ॥

अडूसेका रस ६४ तोले, उत्तम सफेद खांड ३२ तोले, पीपल ८ तोले और घी ८ तोले लेवे, सबको एकत्र मिलाकर धीरे धीरे मंद अग्निसे पकावे, जब लेहकी समान होकर शीतल हो जाय तब ३२ तोले सहत मिला देवे तो उत्तम वासावलेह तैयार होता है। यह वासावलेह–राजयक्ष्मा, दारुण खाँसी, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करे है ॥ ५६–५८ ॥

अथ व्यवायशोषचिकित्सा।

व्यवायशोषिणं क्षीणं रसमांसाज्यभोजनैः। सुकूलैर्मधुरैर्हृद्यैर्जीवनीयैरुपाचरेत् ॥ ५९ ॥ रसः मांसरसः। सुकूलैर्हितैः।

व्यवायशोषसे क्षीण हुए मनुष्यको मांसका रस, मांस और घृतसंयुक्त भोजन और अनुकूल मधुर तथा जो अपनेको प्रिय लगे ऐसे जीवनीय पदार्थोंके द्वारा उपचार करे ॥ ५९ ॥

अथ शोकशोषचिकित्सा।

हर्षणैः श्वसनैः क्षीरैः स्निग्धैर्मधुरशीतलैः। दीपनैर्लघुभिश्चान्नैः शोषरोगमुपाचरेत् ॥६०

शोकशोषवाले मनुष्यका हर्षको बढानेवाले पदार्थोंसे उपचार करे, धीरज बँधावे, दूधका उपयोग करे और स्निग्ध (चिकन), मधुर, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाले और हलके अन्न भोजनके लिये देवे ॥ ६० ॥

अथ व्यायामशोषचिकित्सा।

व्यायामशोषिणं स्निग्धैः क्षतक्षयहितैर्हिमैः। उपाचरेज्जीवनीयैर्विधिना श्लैष्मिकेण तु ६१

व्यायामशोषवाले मनुष्यको स्निग्ध, उरःक्षतशोषकी चिकित्सामें कहे हुए शीतल और जीवनीय पदार्थ तथा कफको करनेवाले पदार्थोंसे बृंहण चिकित्सा करे ॥ ६१ ॥

अथाध्वशोषचिकित्सा।

आस्थापयेत्सुखैर्दिवास्वप्नैः शीतैर्मधुरबृंहणैः। अन्नमांसरसाहारैरध्वशोषमुपाचरेत् ॥६२॥

अध्वशोषवाले मनुष्यको उत्तम मुलायम आसन, गद्दीशय्यापै बिठलावे, दिनमें सुलावे और शीतल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मधुर और पुष्टिको करनेवाले अन्न और मांसके रस तथा ऐसे भोजनोंसे उपचार करे ॥ ६२ ॥

अथ व्रणशोषचिकित्सा।

व्रणशोषं जयेत्स्निग्धैर्दीपनैः स्वादुशीतलैः। ईषदम्लैरनम्लैर्वा यूषमांसरसादिभिः॥६३॥

स्निग्ध, अग्निको दीपन करनेवाले, मधुर, शीतल और किंचित् अम्ल अथवा अम्लरहित यूषोंसे और मांसके रस आदिसे व्रणशोषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

अथोरःक्षतचिकित्सा।

तत्र बलादिचूर्णम्।

बलाश्वगन्धा श्रीपर्णी बहुपुत्री पुनर्नवा। पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षतक्षयम् ॥ ६४ ॥ श्रीपर्णी गम्भारी। बहुपुत्री शतावरी।

खिरेटी, असगंध, कुम्भेरके फल, सतावर और पुनर्नवा इनको दूधमें पीसकर नित्य पीनेसे उरःक्षतशोष नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

अथैलादिगुटिका।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं पृथक्। सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ ६५ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्ता वटिकाः सम्प्रकल्पयेत्। अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेत्तु दिनेदिने ॥ ६६ ॥ क्षतं क्षयं ज्वरं कासं श्वासं हिक्कां वमिं भ्रमम्। मूर्च्छां मदं तृषां शोषं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ६७ ॥ प्लीहानमाढ्यवातं च रक्तपित्तं स्वरक्षयम्। एलादिगुटिका हन्ति वृष्या सन्तर्पणी परा॥६८॥

इलायची छः मासे, तेजपात छः मासे, दालचीनी छः मासे, पीपल दो तोले, मिश्री ४ तोले, मुलैठी ४ तोले, खजूर छोहारे ४ तोले और दाख ४ तोले इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियां बनावे इनमेंसे एक गोली नित्य खाय तो उरःक्षत, शोष, ज्वर, खाँसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, शोष, पँसलियोंकी पीडा, अरुचि, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त और स्वरभंग ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं। ये गोली कामी पुरुषोंके लिये अत्यंत हितकारी हैं और तृप्तिको करनेवाली हैं ॥ ६५–६८ ॥

अथ द्राक्षादिघृतम्।

द्राक्षायाः प्रस्थमेकं तु मधुकस्य पलाष्टकम्। पचेत्तोयाढके शुद्धे पादशेषेण तेन तु ॥६९॥ पलिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णापलद्वयम्। आदाय सर्पिषः प्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ७० ॥ सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्कराया प्रदापयेत्। एतद्राक्षाघृतं सिद्धं क्षतक्षीणसुखावहम् ॥ ७१ ॥ वातं पित्तं ज्वरं श्वासं विस्फोटकहलीमकान्। प्रदरं रक्तपित्तं च हन्यान्मांसबलप्रदम् ॥ ७२ ॥

उत्तम बडा बडी काली दाख ६४ तोले, मुलहठी ३२ तोले स्वच्छ जलमें पकावे, जब पकते २ चौथा भाग क्वाथ शेष रह जाय, तब उसमें मुलहठीका चूर्ण ४ तोले पीसी हुई दाख ४ तोले, पीपलका चूर्ण ८ तोले और घी ६४ तोले भर डालकर चौगुने दूधमें पकावे, जब पकते पकते केवल घी बाकी रह जाय तब उतार लेय, शीतल होनेपर ३२ तोले खांड मिला देवे तो द्राक्षादिघृत सिद्ध होता है। यह घृत उरःक्षतशोष, वायु, पित्त, ज्वर, श्वास, विस्फोटक, हलीमक, प्रदर और रक्तपित्तको नष्ट करे है। तथा मांस और बलको बढाता है ॥ ६९–७२ ॥

अथामृतप्राशावलेहः।

क्षीरे धात्री च मज्जिष्ठा क्षीरिणां च तथा रसैः। पचेत्सर्पिर्घृतप्रस्थं मधुरैः कर्षसम्मितैः ॥ ७३ ॥ द्राक्षाद्विचन्दनोशीरैः शर्करोत्पलपद्मकैः। मधूककुसुमानन्ताकाश्मरीतृणसंज्ञकैः ॥ ७४ ॥ प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते शर्कराऽर्द्धतुलां तथा। पलार्द्धिकांश्च संचूर्ण्य त्वगेलापद्मकेसरान् ॥ ७५ ॥ विनीय तत्र संलिह्यान्मात्रां नित्यं सुयन्त्रितः। अमृतप्राशमित्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम्। क्षीरमांसाशिनां हन्ति रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥ ७६ ॥ तृष्णारुचिश्वासकासच्छर्दिमूर्च्छा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमर्दनम्। मूत्रकृच्छ्रज्वरघ्नं च बल्यं स्त्रीरतिवर्द्धनम् ॥ ७७ ॥

उत्तम गायके घीमें आमले, मँजीठ और विदारीकन्दका रस इनको समान भाग मिलाकर पश्चात् जीवनीयगणकी समस्त औषधि एक २ तोला, दाख, चन्दन, लाल चन्दन, खस, खांड, कमल, पद्माख, महुवेके फूल, सारिवा, कुम्भेरके फल और सुगन्ध रोहिषतृण इनका कल्क बनाकर घीको दूधमें पकावे जब पककर शीतल हो जाय तब उसमें सहत १२ तोले, खांड २०० तोले, दालचीनीका चूर्ण २ तोले, इलायचीका चूर्ण २ तोले और कमलकी केसरका चूर्ण २ तोले इनको मिला देवे तो अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ यह 'अमृतप्राश' नामवाला अवलेह सिद्ध होता है। जितेन्द्रिय होकर इस अवलेहका नित्य सेवन करे, इसपर दूध और मांसके साथ भोजन करे। इस प्रकार करनेसे उरःक्षतक्षय, रक्तपित्त, तृषा, अरुचि, श्वास, खांसी, वमन, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरका नाश होता है। स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न होती है तथा बलकी वृद्धि होती है ॥ ७३–७७ ॥

अथोरःक्षतरोगपथ्यापथ्यानि।

यद्यच्च तर्पणं शीतमविदाहि हितं लघु।
अन्नपानं निषेव्यं स्यात्क्षतक्षीणैः सुखार्थिभिः ॥ ७८ ॥ शोकं स्त्रियः क्रोधमसूयतां च त्यजेदुदारान्विषयान्भजेच्च। तथा द्विजार्तीस्त्रिदशान्गुरूंश्च वाचश्च पुण्याः शृणुयाद्द्विजेभ्यः ॥ ७९ ॥

उरःक्षत शोषवालेको जो सुखकी इच्छा होय सो जो जो अन्नपान तृप्तिदायक है, शीतल, दाहरहित, हितकारक और हलके उन सबका सेवन करे, तथा शोक, स्त्रीप्रसंग, क्रोध और परनिन्दा, द्वेषबुद्धि आदिको त्याग देवे, उत्तम शांति सन्तोषादि विषयोंको सेवन करे, ब्राह्मण, देवता और गुरुजनोंकी भक्ति करे और ब्राह्मणोंसे पवित्र कथाओंको श्रवण करे॥७८॥७९॥

अथ राजयक्ष्माणि रसः।

तत्रामृतेश्वरो रसः।

रसभस्मामृतासत्त्वं लोहं मधुघृतान्वितम्।
अमृतेश्वरनामायं षड्गुञ्जो राजयक्ष्मणि ॥ ८० ॥ रसभस्म मारितो रसः। अमृतासत्त्वं गुडूचीसत्वम्। लोहं मारितम्। अमृतेश्वररसो राजयक्ष्मणि रसेन्द्रचिन्तामणौ।

पारेकी भस्म, गिलोयका सत्त्व और मारा हुआ लोह इनको एकत्र करके सहत और घीमें मिलाकर प्रतिदिन छः रत्तीभर चाटे। यह अमृतेश्वररस राजयक्ष्मा रोगको शमन करे है। यह रस रसेन्द्रचिन्तामणिमें लिखा है ॥ ८० ॥

अथ राजमृगांकरसः।

त्रयोंऽशा मारितात्सूतादेकोंऽशो हेमभस्मतः।
एकोंऽशो मृततास्रस्य शिला गन्धश्च तालकम् ॥ ८१ ॥ प्रत्येकं भागयुग्मं स्यादेतत्सर्वं विचूर्णयेत् ॥ वराटीः पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टंकणम् ॥ ८२ ॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे ताश्च धारयेत्। कुर्प्यां पचेद्गजपुटे स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ ८३ ॥ रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः। मरिचैरूनविंशत्या कणाभिर्दशभिस्तथा ॥८४॥ मधुना सर्पिषा चापि दद्यादेतं रसं भिषक्। अनेन नश्यति क्षिप्रं वातश्लेष्मभवः क्षयः। ॥ ८५ ॥ इति राजमृगाङ्को रसो राजयक्ष्मणि रसेन्द्रचिन्तामणौ।

मारा हुआ पारा ३ भाग, सोनेकी भस्म १ भाग, तांबेकी भस्म १ भाग, मैनशिल २ भाग, गन्धक २ भाग और हरिताल २ भाग इन सबका एकत्र चूर्ण करके एक बडी पीली कौडीमें भर लेवे, फिर बकरीके दूधमें पिसे हुए सुहागेसे कौडीका मुख बन्द करके उस कौडीको मट्टीके पात्रमें रक्खे, फिर बासनपर कपरौटी कर गजपुटमें फूँक देवे, स्वांगशीतल होनेपर इसको निकालकर मट्टीको अलग करके रस निकाल लेवे इसको 'राजमृगांकरस' कहते हैं। इस रसको प्रतिदिन चार रत्तीभर खानेसे क्षयरोग नष्ट हो जाता है। वैद्य १९ काली मिरच, दश पीपल, सहत और घीके साथ इस रसको देवे। इस रसको सेवन करनेसे वायु और कफसम्बन्धी क्षयरोग तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ८१–८५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथाग्निरसः ।

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुर्यात्खल्वेन कज्जलीम् । तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ८६ ॥ द्वियाममातपे गोलं ताम्रपात्रे निधापयेत् । आच्छाद्यैरंडपत्रेण स्यादुष्णं यामयुग्मतः ॥ ८७ ॥ धान्यराशौ न्यसेत्पश्चादष्टरात्रात्तदुद्धरेत् । संचूर्ण्य गालयेद्वस्त्रैः सत्यं वारितरं भवेत् ॥ ८८ ॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगकैः । नवभागोन्मितैरेभिः समैरेष रसो भवेत् ॥ ८९ ॥ निष्कद्वयमितं नित्यं मधुना सह लेहयेत् । अयमग्निरसो नाम्ना कासक्षयहरः परः । ॥ ९० ॥ इति अग्निरसः शार्ङ्गधरे ।

शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग इन दोनोंकी एकत्र खरलमें कजली बनावें, फिर इस कज्जलीकी बराबर तीक्ष्ण लोहेका चूर्ण लेकर इस कज्जलीमें मिला देवे, फिर इसको घीकारके रसमें दो प्रहरतक खरल करे, फिर इसका गोला बनाकर तांबेके पात्रमें रखकर अंडके पत्तोंसे ढककर उस तांबेके पात्रको धूपमें धर देवे, जब दो प्रहरतक गरम हो जाय तब पीछे धानोंके ढेरमें गाड देवे, पश्चात् आठ दिनमें निकाले, फिर इस गोलेका चूर्ण करके कपडेमें छान लेवे तो यह चूर्ण अवश्य जलमें तैरने लगेगा, तत्पश्चात् त्रिकुटा ३ भाग, त्रिफला ३ भाग, इलायची १ भाग, जायफल १ भाग और लौंग १ भाग सबको एकत्र पीसकर नव भाग रस इसमें मिला देवे तो यह 'अग्निरस' सिद्ध होता है । सहतके साथ इसमेंसे नित्य ४८ रत्तीभर चाटे तो खांसी और क्षयका नाश होता है ॥ ८६-९० ॥

इति क्षयरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ कासरोगाधिकारः ।

तत्र कासनिदानसंप्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च । विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥ प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः सम्भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः । निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ २ ॥ सदोषः तादृक् प्राणानिलरूपः ।

मुख अथवा नाकमें धुँआ और धूल जाकर उसकी घसके लगनेसे, अत्यन्त कसरत करनेसे, अधिकतर रूखे अन्नोंको भक्षण करनेसे, भोजन करते समय नासिकादि छिद्र अथवा अन्यान्यके मार्गोंमें भोजन जानेसे मल दस्त पेशाबके वेगोंको और छींकको रोकनेसे प्राणवायु दूषित होकर उदान वायुके साथ मिलकर फूटे कांसेके बासनकी समान शब्द करती हुई एक साथ मुखसे बाहर निकलती है इस रोगको विद्वान् लोग खांसी (कास) ऐसा कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ काससंख्या ।

पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः । क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥ क्षयाय राजयक्ष्मणे ।

वातज, पित्तज, कफज, छातीमें क्षतके होनेसे उत्पन्न और क्षयसे उत्पन्न हुई ऐसे खांसी पांच प्रकारकी जाननी, इनकी उपेक्षा अर्थात् चिकित्सा न करनेसे यह पांचों प्रकारकी खांसी राजयक्ष्मा रोगको उत्पन्न करती है, इन पांचों प्रकारकी खांसियोंमें उत्तरोत्तर बलवान् हैं अर्थात् वातकी खांसीसे पित्तकी, पित्तकी खांसीसे कफकी, कफकी खांसीसे क्षतकी और क्षतकी खांसीसे क्षयकी खांसी बलवान् है ॥ ३ ॥

अथ कासपूर्वरूपम् ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता । कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥ भोज्यानामवरोधः कवलगिलने कण्ठव्यथा ।

जब खांसी उत्पन्न होनेको होती है तब उससे कुछ काल पहिले गले और मुखमें फांसेंसी लगने लगती हैं, कण्ठमें खुजलीसी होती है और भोजनके ग्रासको निगलते समय गलेमें व्यथा होती है ॥ ४ ॥

अथ वातकासलक्षणम् ।

हृच्छङ्खपार्श्वोदरमूर्द्धशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः । प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ५ ॥ शंखो ललाटैकदेशः । शुष्कं श्लेष्मादिरहितम् ।

वातकी खांसीमें हृदय, कनपटी, पसली, और मस्तक इनमें शूल होता है, मुखकी कान्ति म्लान हो जाती है, बल, स्वर और ओज क्षीण होसा है तथा वारंवार थोडे वेगसे खांसी उठती है स्वर बैठ जाता है और कफ नहीं गिरता अर्थात् सूखी खांसी होती है ॥ ५ ॥

अथ पित्तकासलक्षणम् ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरुपद्रुतस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ॥ पित्तेन तानि वमेत्कटूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥ ६ ॥ सपाण्डुः पाण्डुरुजे युक्तः ।

पित्तकी खाँसीमें, हृदयमें दाह, ज्वरकी व्यथा, मुख शोषकी पीडा होती है, मुखमें कडुवापन, तृषा, पीली और चरपरी वमन, पांडुरोग और दाह होकर खांसी उठती है ॥ ६ ॥

अथ कफकासलक्षणम् ।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुजार्तः कफपूर्णदेहः । अभक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ ७ ॥ प्रलिप्यमानेन मुखेन श्लेष्मलिप्तेन मुखेन उपलक्षितः । अभक्तरुक् न भक्ते रुक् रुचिर्यस्य सः । कण्डूः कण्ठ एव च ।

कफकी खाँसीमें मुख कफसे लिसासा रहता है, मस्तकमें पीडा हो, शरीर कफसे पूर्ण रहे, खानेमें रुचि नहीं हो, देह भारी हो, गलेमें खुजली चले और खाँसीमें बार बार बहुत गाढा कफ निकला करे ॥ ७ ॥

अथ क्षतजकासनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः । रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥८॥ अश्वगजयोर्निग्रहो दमनम् ।

अत्यंत मैथुन करनेसे, अत्यंत भारको उठानेसे, अधिक तर मार्गके चलनेसे, अत्यंत युद्ध करनेसे और भागते हुए घोडे हाथी आदिको बलपूर्वक रोकनेसे रूक्ष मनुष्यका हृदय फटकर कुपित हुई वायु खांसीको उत्पन्न करती है ॥ ८ ॥

अथ क्षतजकासलक्षणम् ।

चूर्णं सं पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम् । कण्ठेन कूजत्यत्यर्थं विभग्नेनेव चोरसा ॥९॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना । दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः । पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥ कण्ठेन इति उपलक्षणे तृतीया । एवमुरसेति ।

क्षतज खाँसीवाला रोगी प्रथम सूखा खाँसता है, फिर खखारमें रुधिर आवे, गला निरंतर गूँजता रहता है और हृदय फटेकी समान मालूम हो, तथा तीक्ष्ण सूइयोंसे छेदा गयासा मालूम हो, छातीमें शूलकी पीडा होती हो, हृदयका स्पर्श पीडाके मारे नहीं सह सके, संताप, भेदने सरीखी पीडा, संपूर्ण शरीरकी संधियोंमें वेदना हो, श्वास, ज्वर और तृषा उत्पन्न होती हो, (पीडा) स्वर बैठ जाय और खाँसीके वेगसे कबूतरकी समान घुट घुट करता है गुटर गुटर शब्द निकले ॥ ९–११ ॥

अथ क्षतजकासनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः । कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १२ ॥ घृणिनां विचिकित्सायुक्तानाम् ।

विषम (कमी थोडा कभी बहुत) भोजन अहित भोजन करनेसे, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करनेसे, मूत्र मलादिके वेगोंको रोकनेसे, घृणा अर्थात् पराये गुणोंमें दोषोंको आरोपण करनेसे और अत्यन्त शोक करनेसे मनुष्योंकी जठराग्नि मंद होकर तीनों दोषोंको कुपित करके शरीरको क्षय करनेवाली ऐसी क्षयकी खाँसीको उत्पन्न करे है ॥ १२ ॥

अथ क्षयजकासलक्षणम् ।

सगात्रशूलज्वरमोहदाहप्राणक्षयं चोपलभेत कासी । शुष्कं विनिष्ठीवति निर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् । तं सर्वलिंगं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति १३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षयकी खाँसीमें रोगीके शरीरमें शूल, ज्वर माह होता है, दाह इन्द्रियोंकी क्षीणता होती है सूखा थूकता है और बलकी तथा मांसकी क्षीणता होनेसे अत्यंत राधयुक्त रुधिर खाँसीमें थूकता है, यह क्षयसे उत्पन्न हुई जो खाँसी सम्पूर्णलक्षण युक्त होय तो चिकित्सा करनेमें अत्यंत कठिन है ॥ १३ ॥

अथ काससाध्यासाध्यता ।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः । साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥ १४ ॥ एवं क्षतोत्थितः क्षीणानामसाध्यः । बलवतां साध्यो याप्यो वा स्यात् । नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ । स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः ॥ १५ ॥ सिध्येतां क्षतजक्षयजौ सद्वैद्यसद्भेषजसत्परिचारकयुक्तस्य सदातुरस्य जातौ । स्थविराणां जराकासः वृद्धानां यः कासो भवति स जराकाससंज्ञः स सर्व एव वातजादिरपि याप्यः । त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् १६

क्षतसे अथवा क्षयसे उत्पन्न हुई खाँसी जो क्षीण मनुष्योंको उत्पन्न होय तो असाध्य होती है और बलवान् मनुष्योंको उत्पन्न हुई होय तो साध्य होती है अथवा याप्य होती है, यदि चिकित्साके चारों पाद (उत्तम वैद्य, उत्तम औषधि, उत्तम परिचारक, उत्तम रोगी) ठीक होंय और क्षतज अथवा क्षयज खाँसी थोडे दिनोंसे उत्पन्न हुई होय तो वह खाँसी क्षीण मनुष्योंके उत्पन्न हुई भी कदाचित् साध्य होती है । वृद्ध मनुष्योंके उत्पन्न हुई जो खाँसी है जिसको जराकास कहते हैं, वह किसी प्रकारकी भी होय सब याप्य जाननी, वातज, पित्तज और कफज इन तीन प्रकारकी खाँसीको साध्य समझकर चिकित्सा करके नष्ट करे और क्षतसे तथा क्षयसे उत्पन्न हुई खाँसीको याप्य समझकर पथ्य देकर कालक्षेप करावे॥ १४–१६॥

अथ कासोपेक्षादोषः ।

ज्वरारोचकहृल्लासस्वरभेदक्षयादयः । भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ १७॥

खाँसीकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् कि, यह है ही या अपने आप आराम हो जायगा ऐसा समझकर लोग खाँसीकी चिकित्सा नहीं करते हैं उनके ज्वर अरुचि, उबकाई, स्वरभेद और क्षयादिक रोग उत्पन्न होते हैं। इस कारण खाँसीकी शीघ्र ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

अथ कासचिकित्सा ।

तत्र प्रथमं वातजकासचिकित्सा ।

वास्तूको वायसशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् । स्नेहास्तैलादयो भक्ष्यास्तथेक्षुरसगौडिकाः ॥ १८ ॥ दध्यारग्वधाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च । शस्यते वातरोगेषु स्वस्वाद्वम्लवणानि च ॥ १९ ॥ वायसीशाकं काकोदुम्बरिका इति लोके । सुनिषण्णकं सुषुणि इति लोके शाकविशेषः । चांगेरीसदृशः पत्रैः सुनिषण्णं चतुर्दलम् । शाका जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥ २० ॥ चौपतिया इति लोके । ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् । रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्भिषक् ॥ २१ ॥ ग्राम्यानूपोदकैः रसैरित्यन्वयः । आत्मगुप्ता आल्कुषी इति लोके । दशमूलीकृता श्वासकासहिक्कारुजापहा । यवागूर्दीपनी वृष्या वातरोगविनाशिनी ॥ २२ ॥ रसः कर्कोटकानां वा घृतभृष्टः सनागरः । वातकासप्रशमनः शृंगीमत्स्यस्य वा पुनः ॥ २३ ॥

वातकी खाँसीमें—बथुयेका शाक, मकोयका शाक, मूली, शिरिआरी अथवा चौपतियाका शाक, तैलादिक स्नेह पदार्थ, ईखका रस, गुडके बने हुए पदार्थ, दही, काँजी, खट्टे फल, मीठे, खट्टे तथा खारी अथवा नमकीन पदार्थ और प्रसन्ना (मदिराका भेद) का पीना यह सब हितकारी है । (शिरिआरीका स्वरूप । इसके पत्ते चाँगेरी अर्थात् लोनियाकी समान होते हैं, एक एक शाखामें चार चार पत्ते होते हैं प्रायः इसका शाक सजल भूमिमें उत्पन्न होता है, इसको शिरिआरी अथवा चौपतिया कहते हैं।)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैद्य वातकी खाँसीमें--ग्राम, जलप्राय देश और जलमें रहनेवाले जीवोंके मांसके रसके साथ अथवा उडद य कौंछके यूषके साथ चावल, जौ, गेहूं और साँठीके चावल खानेको देवे । दशमूलके द्वारा बनाई हुए यवागू श्वास, खाँसी, हिचकी और वातके र गको नष्ट करे है । अग्निको दीपन करे है और पुनश-क्तिको बढावे है । केकडेका अथवा मछलीका रस घीमें भूनकर सोंठ डालकर पीनेसे वातकी खाँसी नष्ट हो जाती है ॥ १८–२३ ॥

अथ पित्तकासचिकित्सा ।

कण्टकारीयुगं द्राक्षा [illegible]साकर्चूरवालकैः । नागरेण च पिप्पल्या [illegible]तं सलिलं पिबेत् । शर्करामधुसंयुक्तं [illegible]कासहरं परम् ॥२४॥

कटेरी, बडी [illegible], दाख, अडूसा, कचूर, सुगंधवाला, सोंठ और पीपल इनका क्वाथ बनाकर मिश्री और सहत मिलाकर पीनेसे पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥ २४ ॥

अथ कफकासचिकित्सा ।

पिप्पली कट्फलं शुण्ठी शृङ्गी भार्ङ्गी तथोषणम् । कारवी कण्टकारी च सिन्दुवारो यवानिका ॥ २५ ॥ चित्रको वासकश्चैषां कषायं विधिवत्कृतम् । कफकासविनाशाय पिबेत्कृष्णारजोयुतम् ॥ २६ ॥

पीपल, कायफल, सोंठ, काकडासिंगी, भारंगी, काली मिर्च, काला जीरा या कलौंजी, कटेरी, सह्मालू, अजवायन, चीता और अडूसा इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे कफकी खाँसी दूर हो जाती है । इसको पिप्पल्यादि क्वाथ कहते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ क्षतजकासचिकित्सा ।

इक्ष्विक्षुवालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनम् । मधुकं पिप्पली द्राक्षा लाक्षा शृंगी शतावरी ॥ २७ ॥ द्विगुणा च तुगाक्षीरी सिता सवचतुर्गुणा । लिह्यात्तन्मधुसर्पिर्भ्यां क्षतकासनिवृत्तये ॥ २८ ॥ इक्षुबालिका इक्षुभेदः । चन्द्र इति लोके । पद्मं पद्मकाष्ठम् । मृणालं बिसम् उत्पलं कमलम् । चन्दनमत्र धवलं चूर्णत्वात् । शृंगी कर्कटशृंगी । तुगाक्षीरी वंशरोचना सा च इक्षोर्द्विगुणा ।

ईख, इक्षुवालिका (एक प्रकारका तृण अथवा ईख), पद्माख, कमलकी नाल, कमल, चंदन, मुलैठी, पीपल, दाख, लाख, काकडासिंगी, सतावर, ईखसे दुगुना वंशलोचन और सबसे चौगुनी मिश्री लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके सहत और घीके साथ चाटनेसे क्षतजन्य खाँसी नष्ट हो जाती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ क्षयजकासचिकित्सा ।

चूर्णं काकुभमिष्टं वासकरसभावितं बहून्वारान् । मधुघृतसितोपलाभिर्लेह्यं क्षयकासरक्तहर ॥ २९ ॥ काकुभं चूर्णं ककुभचूर्णम् ।

कोहके चूर्णको अडूसेके रसमें बारंबार भावना देकर सहत, घी और मिश्रीके साथ चाटे तो क्षयजन्य खाँसा दूर हो जाती है ॥ २९ ॥

अथ कासरोगसामान्यचिकित्सा ।

ताप्यमानस्य कासेन नासास्रावे स्वरे जडे । क्षवथौ गन्धनाशे च धूमपानं प्रयोजयेत् ॥ ३० ॥ मनःशिलालमरिचमांसीमुस्तेंगुदैः पिबेत् । धूमं त्र्यहं च तस्यानुपयश्च सगुडं पिबेत् ॥ ३१ ॥ आलं हरितालम् । एष कासान्पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुद्भवान् । शतैरपि प्रयोगाणामसाध्यान्साधयेद्ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ बदरीदलमालिप्तं शिलयाऽऽतपशोषितम् । तद्धूमपानं सक्षीरं महाकासनिवारणम् ॥ ३३ ॥ कण्टकारीकृतः क्वाथः सकृष्णः सर्वकासहा । कण्टकार्याः कणायाश्च चूर्णं समधु कासहृत् ॥ ३४ ॥ लवंगजातीफलपिप्पलीनां भागान्प्रकल्प्याक्षसमानमेषाम् । पलार्द्धमानं मरिचं प्रदेयं पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ ३५ ॥ सिता समस्तेन समाऽथ चूर्णं रोगानिमानाशु बलान्निहन्ति । कासज्वरारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीविकारान् ॥ ३६ ॥ कुनटी सैन्धवं व्योषं विडंगामयहिंगुभिः । लेहः साज्यमधुः कासश्वासहिक्कानिवारणः ॥ ३७ ॥ हरीतकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कणा शुण्ठी मरिचं गुडसंयुतम् । कासः ष्मापहं प्रोक्तं परं वह्नेः प्रदीपनम् ॥ ३८ कर्षः कर्षांशपलं पलद्वयं स्यात्ततोऽर्द्धकर्षं च । मरिचस्य पिप्पलीनां च दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥ ३९ ॥ कर्षांशोऽत्र कर्षद्वयम् । सर्वौषधिभिरसाध्याः कासा ये वैद्यनिर्मुक्ताः । अपि पूयं छर्दयतां तेषामिदमौषधं परमम् ॥ ४० ॥

खाँसीके संताप होनेसे नाकमेंसे पानी गिरता हो, स्वर बैठ गया हो, छींक आती हो और गंध लेनेकी शक्ति नष्ट हो गई होय तो धूम पान करे । मैनशिल, हरिताल, मिरच, वालछड (जटामांसी), नागरमोथा तथा हिंगोट इन सबका चूर्ण करके बीडी बनाकर चिलममें रखकर धूमपान करे और उसके ऊपर गुड मिलाकर दूध पिये तो एक दोषसे, दो दोषोंसे अथवा सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुई खाँसी और सैकडों औषधियोंके सेवन करनेसे जो खाँसी अच्छी नहीं हुई होय वह भी इस धूमपानसे अवश्य नष्ट हो जाती है । मैनशिलको जलमें पीसकर बेरीके पत्तोंपै लेप करके धूपमें सुखा देवे, फिर इसको चिलममें रखकर पिये तो भयंकर खांसी दूर हो जाती है । कटेरीके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकरके पीनेसे सर्व प्रकारकी खांसी दूर हो जाती है, कटेरी और पीपल इन दोनोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे खांसी दूर हो जाती है । लौंग १ तोला, जायफल १ तोला, पीपल १ तोला, मिरच २ तोले, सोंठ १६ तोले और सबकी बराबर उत्तम सफेद बूरा लेवे, इन सबका चूर्ण अथवा गोली बनाकर खानेसे खांसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, मन्दाग्नि और ग्रहणीविकार तत्काल नष्ट होते हैं । मैनाशिल, सेंधा निमक, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, कूठ और हींग भूनी इन सबका चूर्ण करके चाटनेसे खांसी, श्वास और हिचकी दूर हो जाती है । हरड, पीपल, सोंठ और मिरच इनका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर खानेसे खाँसी और कफ नष्ट हो जाता है और अग्नि अत्यंत दीपन होती है । मिरच १ तोला, पीपल दो तोले, अनार ४ तोले, गुड ८ तोले और जवाखार आधा तोला इन सबको एकत्र मिलाकर चाटनेसे भयंकर खाँसी नष्ट हो जाती है । जो खाँसी अनेक प्रकारकी औषधियोंके करनेसे आरोग्य नहीं होय तथा जिसको वैद्योंने भी त्याग दिया हो वह खांसी इससे शीघ्र नष्ट हो जाती है, तथा खांसीमें रुधिरकी वमन होती होय उसके लिये यह औषधि परमोत्तम है ॥ ३०–४० ॥

अथ मरिचादिगुटिका ।

मरिचं मात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसम्मिता । अर्द्धकर्षः क्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम् ॥ ४१ ॥ चूर्णीकृतं युंज्यादष्टकर्षगुडेन हि । शाणप्रमा गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत् । अस्याः वात्सर्वेऽपि कासा यान्त्येव संक्षयम् ॥ ४२ ॥

काली मिरच १ तोला, पो[illegible] ६ मासे और अनारके फलकी छाल २ तोले इन सबको चूर्ण करके आठ तोले गुडमें मिलाकर २४ चौबीस चौबीस रत्तीकी गोलियाँ बनावे, एक गोलीको मुखमें रखनेसे सर्व प्रकारकी खांसी नष्ट हो जाती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ भृगुहरीतकी ।

समूलवल्कच्छदकण्टकार्यास्तुलां ततो द्रोणमितं जलं च । हरीतकीनां शतमेकपात्रे विपाच्य कुर्याच्चरणाम्बुशेषम् ॥ ४३ ॥ तस्मिन्कषाये तनुवस्त्रपूते हरीतकीभिः सहितं गुडस्य । तुलां विनिक्षिप्य पचेत्सुपक्वमेतत्समुत्तार्य सुशीतलं च ॥ ४४ ॥ पलं पलं चापि कटुत्रयं च तथा चतुर्जातपलं विचूर्ण्य । पलानि षट्पुष्परसस्य चापि विनिःक्षिपेत्तत्र विमिश्रयेच्च ॥ ४५ ॥ प्रयुज्यमानो विधिनैष लेहो यथाबलं चापि यथानलं च । वातात्मकं पित्तकृतं कफोत्थं त्रिदोषजातान्यपि च त्रिदोषम् ॥ ४६ ॥ क्षतोद्भवं च क्षयजं च कासं श्वासं च हन्यात्सहपीनसेन । यक्ष्माणमेकादशरूपमुग्रं हरीतकी या भृगुणोपदिष्टा ॥ ४७ ॥ पुष्परसो मधु ।

जड, छाल और पत्तेसमेत कटेरीका सर्वांग ४०० चार सौ तोले और हरड १०० सौ तोले लेवे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोनोंको एक पात्रमें डालकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, पकते पकते जब चौथाई भाग क्वाथ बाकी रह जाय तब उसको उतारकर बारीक वस्त्रमें छानकर रख देवे, फिर उस छने हुए क्वाथमें पूर्वोक्त पकाई हुई १०० सौ हरड और गुड ४०० चार सौ तोले डालकर पकावे, जब अच्छे प्रकारसे पककर अवलेहकी समान तैयार हो जाय तब उसको उतारकर शीतल कर लेवे, पश्चात् उसमें सोंठ ४ तोले, काली मिरच ४ तोले, पीपल ४ तोले, इलायची ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले, नागकेसर ४ तोले और सहत २४ तोले इन सबको मिला देवे। इस अवलेहको विधिपूर्वक शरीरके बलके अनुसार और अग्निके बलानुसार सेवन करे तो वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, क्षतज, क्षयज श्वास, पीनस और एकादश लक्षणोंवाला महाभयंकर राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो, यह भृगुऋषिकी कही हुई 'भृगुहरीतकी' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४३–४७ ॥

अथ कंटकार्यवलेहः।

कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम्। पादशेषं गृहीत्वा च तत्र चूर्णानि दापयेत् ॥ ४८ ॥ पृथक्पलांशान्येतानि गुडूची चव्यचित्रकौ। मुस्तं कर्कटशृङ्गी च व्यूषणं धन्वयासकः ॥ ४९ ॥ भार्ङ्गी रास्ना शटी चैव शर्करापलविंशतिः। प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः ॥ ५० ॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधु पलाष्टकम्। चतुर्भागं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्याश्च चतुःपलम् ॥ ५१ ॥ क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे। लेहोऽयं हन्ति हिक्कार्तिकास-श्वासानशेषतः ॥ ५२ ॥

कटेरीका पंचाङ्ग ४०० चार सौ तोले लेकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले भर जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उसको उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें गिलोयका चूर्ण ४ तोले, चव्य ४ तोले, चीता ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले, काकडाशिंगी ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मिरच ४ तोले, पीपल ४ तोले, धमासा ४ तोले, भारंगी ४ तोले, रासना ४ तोले, कचूर ४ तोले, खांड ८० तोले, घी ३२ तोले और ३२ तोले तेल इन सबको डालकर उत्तम विधिसे पकावे, जब पकते २ अवलेहकी समान हो जाय तब शीतल करके उसमें ३२ तोले सहत, वंशलोचन ८ तोले और पीपल १६ तोले मिला देवे। इस अवलेहको उत्तम चिकने मट्टीके बासनमें भरके रख देवे। इसको सेवन करनेसे हिचकी, खाँसी और श्वास रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४८–५२ ॥

इति कासरोगाधिकारः संपूर्णः।

अथ हिक्कारोगाधिकारः।

तत्र हिक्कारोगविप्रकृष्टनिदानम्।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः। शीतपानाशनस्नानरजोधूमात्तथानिलैः ॥ १ ॥ व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः। हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

विदाह करनेवाले, भारी, मलरोधक, रूखे और अभिष्यन्दी ऐसे पदार्थ खानेसे, शीतल जल पीनेसे, शीतल अन्न खानेसे, शीतल जलमें नहानेसे, धूल और धुँयेके मुख नासिकामें जानेसे, अत्यंत पवन लगनेसे, अत्यंत परिश्रम काम करनेसे, भारी बोझको उठानेसे, अधिकतर मार्ग चलनेसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, और उपवास आदिसे, तृप्तिको नष्ट करनेसे मनुष्योंको हिचकी, श्वास और खाँसी उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ हिक्कासंख्यारूपसंप्राप्तिः।

वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि। अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ३

वायु कफसे मिलकर अन्नजा १, यमला २, क्षुद्रा ३, गम्भीरा ४ और महती ५ इन पांच प्रकारकी हिचकियोंको उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

अथ हिक्कासामान्यलक्षणम्।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन्। सदोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ ४ ॥ वायुरत्र सोदानप्राणो बोधव्यः। उदेति ऊर्ध्वं याति। सस्वनः हिगिति शब्दवान्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊर्द्ध्वगमनं विशिनष्टि यकृदित्यादि । प्लिह इति शब्दोऽपि अस्ति दीर्घत्वविकल्पात् । मुखादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी तेन यकृत्प्लीहान्त्राणि मुखमानीय आक्षिपन् निःसारयन् इव इत्यर्थः । वायुः दोषवान् दोषोऽत्र कफः तद्वान् वायुः कफेन अनुगत इति सम्प्राप्तिः । हिनस्तीति हिक्का पृषोदरादित्वात् रूपसिद्धिः । हिगिति शब्दं करोति ।

बारम्बार हिक हिक ऐसा शब्द करती हुई और यकृत् (कलेजा), प्लीहा (तिल्ली) तथा आंतोंको खींचकर मुखमें लाती हुई ऐसी जो उदान वायुप्राणवायुके साथ मिलकर ऊंची गतिसे चलती है । और कफके अनुसरण होकर प्राणियोंके जीवनका तत्काल नाश करती है । इसमें हिक् हिक्, ऐसा जो शब्द होता है इसलिये पंडित लोग इसको हिक्का कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ हिक्कापूर्वरूपम् ।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता ।
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ५ ॥
वदनस्य कषायता वातात् ।

कंठमें और छातीमें भारीपन, वातकी अधिकताके कारण मुखमें कसैलापन और पेटका फूलना ये हिचकीके पूर्व लक्षण हैं । अर्थात् जब हिक्का रोग उत्पन्न होनेको होता है तब उससे कुछ काल पहिले यह लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

अथान्नजाहिक्कालक्षणम् ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ।
हिक्कयेदूर्द्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ६ ॥ अनिलः प्राणो वायुः ।

अत्यंत अन्न पानीके सेवन करनेसे एक साथ प्राण वायु दबकर ऊर्ध्वगति होकर (हिक् हिक्) ऐसा शब्द करती है उसको वैद्य अन्नजा हिक्का कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ यमलाहिक्कालक्षणम् ।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का सम्प्रवर्तते । कम्पयन्ती शिरोग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

बहुत देरमें वेगसे, एक साथ दो दो हिचकी आवे तथा शिर और गरदनको कँपावे उसको वैद्य यमला हिक्का कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ क्षुद्राहिक्कालक्षणम् ।

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ।
क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमलात्प्रधावति ॥ ८ ॥ विकृष्टकालैः चिरेण । जत्रुः कक्षोरसोः सन्धिः ।

जो हिचकी बहुत देरमें बारंबार कंठ हृदयकी संधिसे चलती है उसको क्षुद्रा हिचकी कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ गम्भीराहिक्कालक्षणम् ।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गंभीरनादिनी ।
अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥ अनेकोपद्रववती तृष्णाज्वरादियुक्ता ।

जो हिचकी नाभिसे उत्पन्न होकर भयंकर रूप धारण करके गम्भीर शब्द करती है, तथा जिसमें तृषा और ज्वरादि उपद्रव होते हैं उसको गंभीरा हिचकी कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ महतीहिक्कालक्षणम् ।

मर्माणि पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते । महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी ॥ १० ॥
मर्माणि वस्तिहृदयशिरःप्रभृतीनि ।

जो हिचकी सम्पूर्ण गात्रोंको कम्पायमान करती है । तथा वस्ति, हृदय और मस्तक आदि मर्मस्थानोंको पीडित करती हुई निरंतर प्रवर्तन होती है उसको महती अथवा 'महाहिक्का' कहते हैं ॥ १० ॥

अथ हिक्काऽसाध्यता ।

आकम्पते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्द्ध्वं ताम्यते नित्यमेव । क्षीणोऽन्नाद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥ ११ ॥ आकम्पते विस्फार्यत इव । तौ द्वाविति । आकम्पत इत्यादिना नित्यमेव इत्यनेनैको हिक्कमानः । क्षीण इत्यादिना अतिमात्रमित्यन्तेन अपरः । तौ द्वौ अन्त्यौ च गम्भीरया महत्या हिक्कया हिक्कमानौ वर्जयेत् । अपरं च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिचकीके आते समय जिस मनुष्यका शरीर पसर जाय और दृष्टि ऊपरको ग्लानियुक्त होकर फैल जावे, उसको वैद्य त्याग देवे तथा जिस मनुष्यका शरीर क्षीण हो गया हो, अन्नमें अरुचि हो और छींकें अधिक आवें उसको भी वैद्य त्याग देवे। तैसे ही जिसको गम्भीरा हिचकी अथवा महती हिचकी होय उसकी चिकित्सा वैद्यको नहीं करनी चाहिये ॥ ११॥

अथ यमलाहिक्काऽसाध्यता।

अतिसञ्चितदोषस्य भक्तद्वेषकृशस्य च। व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥१२॥ आयासाच्च समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम्। यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यके अत्यंत दोषोंका संचय हो, जिसके अन्नपर अरुचि होनेके कारण दुर्बलता उत्पन्न हुई हो, जिसका शरीर व्याधियोंसे क्षीण हो गया हो, जिसका शरीर वृद्ध हो और जो अत्यंत स्त्रीप्रसंग करता हो उसके उत्पन्न हुई हिचकी तत्काल जीवनको नष्ट कर देती है। तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुई हिचकी भी तत्काल मार देती है, यमला नामवाली हिचकी जो प्रलापसे, पीडासे, मोहसे और तृषासे संयुक्त होय तो वह तत्काल रोगीके प्राणोंको नष्ट करती है ॥ १२॥१३॥

अक्षीणस्याप्यदीनस्य स्थिरधात्विन्द्रियस्य च। तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

बलवान्, प्रसन्नचेष्टा और जिसकी धातु इन्द्रियें स्थिर हैं ऐसे मनुष्यको उत्पन्न हुई यमला हिक्का साध्य है। और जो क्षीण है, दीन हो गया है और जिसकी धातु और इन्द्रियें स्थिर हैं ऐसे मनुष्यको उत्पन्न हुई यमला हिचकी मारती है ॥ १४ ॥

अथ हिक्काचिकित्सा।

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्। भेषजं पानमन्नं वा हिक्काश्वासेषु तद्धितम् १५॥

जो औषधि अथवा अन्नपान कफको और वायुको हरनेवाली है, उष्ण है और वायुको अनुलोमन करनेवाली है वे सब औषधि और अन्नपान हिक्कारोगमें और श्वासमें हितकारी हैं ॥ १५ ॥

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते। ऊर्ध्वाधःशोधनं शस्तं दुर्बले शमनं मतम् १६॥

हिक्का और श्वाससे पीडित मनुष्यको प्रथम तेलकी मालिश करके पश्चात् स्वेदन क्रिया करे और वमन तथा विरेचन देवे, यह हितकारी है। जो हिक्का अथवा श्वासवाला रोगी दुर्बल होय तो उसको शमन औषधि देवे ॥ १६ ॥

प्राणावरोधतर्जनविस्मापनशीतवारिपरिषेकैः। चित्रैः कथाप्रयोगैः शमयेद्धिक्कां मनोऽभिघातैश्च ॥ १७ ॥

श्वासको रोकना, तिरस्कार करना, आश्चर्यजनक बातोंको कहना, शरीरपर शीतल जलको छिडकना, चित्रविचित्र कथा वार्ता कहना और मनको खेदित करनेवाले प्रयोगोंको करना, इन सबसे हिक्काको शांत करना चाहिये ॥ १७ ॥

हिक्कार्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम्। मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुंगरसं पिबेत् ॥१८॥ मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता। नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनं त्रयम् ॥१९॥

सोंठ डालकर औटाया हुआ बकरीका दूध हिचकीवाले मनुष्यको हितकारी है। सहत और काला नमक इनको बिजौरेके रसमें मिलाकर पीनेसे हिचकी नष्ट हो जाती है। मुलैठी और सहत (१) पीपल और मिश्री (२) सोंठ और गुड (३) इन तीनों नस्योंमेंसे किसी एक नासको देनेसे हिचकी दूर होती है ॥१८॥ १९ ॥

प्रवालशङ्खत्रिफलाचूर्णं मधुघृतप्लुतम्। पिप्पली गैरिकं चेति लेहो हिक्कानिवारणः ॥ २० ॥ नैपाल्या गोविषाणाद्वा कुष्ठात्सर्जरसस्य वा। धूपं कुशस्य वा कार्यं पिबेद्धिक्कोपशान्तये ॥ २१ ॥

मूंगा, शंख, हरड, बहेडा, आमला, पीपल और गेरू इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे हिचकी दूर होती है। हिक्काको शांत करनेके लिये मैनाशिल गायके सींगका, अथवा कूठका, वा रालका, अथवा कुशाका धूआँ पीना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

निर्धूमाङ्गारनिक्षिप्तहिंगुमाषरजोभवः। हिक्काः पञ्चापि हन्त्याशु धूमः पीतो न संशयः २२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हींग और उरदोंका चूर्ण करके निर्धूम अंगारोंपर डालकर उसका धुआँ पिये तो उससे निश्चय पांचों प्रकारकी हिचकी शीघ्र शमन हो जाती हैं ॥ २२ ॥

हरेणुककणानां च क्काथो हिंगुसमन्वितः। हिक्काप्रशमनः श्रेष्ठो धन्वन्तरिवचो यथा२३॥

रेणुका और पीपल इनका क्काथ बनाकर हींग डालकर पीनेसे निस्संदेह हिचकी शांत हो जाती है, यह धन्वन्तरिका वाक्य है ॥ २३ ॥

चन्द्रसूरस्य बीजानि क्षिपेदष्टगुणे जले। यदा मृदूनि मृद्नीयात्ततो वाससि गालयेत् ॥ २४ ॥ हिक्कातिवेगविकलस्तज्जलं पलमात्रया। पिबेत्पिबेत्पुनश्चापि हिक्कावश्यं प्रशाम्यति ॥ २५ ॥

हालोंके बीजोंको लेकर अठगुने जलमें पकावे जब वह पकते पकते गाढे और नरम हो जायँ तब उनको खूब अच्छे प्रकारसे वस्त्रमें छान लेवे, इस जलमेंसे हिक्कारोगी बारंबार चार चार तोले पिये, इस जलको पीनेसे अत्यन्त वेगसे उत्पन्न हुई हिचकी अवश्य शांत हो जाती है। इसको 'चन्द्रसूररस' कहते हैं॥२४॥२५॥

इति हिक्काधिकारः संपूर्णः।

अथ श्वासरोगाधिकारः।

तत्र श्वासनिदानम्।

यैरेव कारणैर्हिक्का देहिनां सम्प्रवर्तते। तैरेव बहुभिः श्वासो व्याधिर्घोरः प्रजायते ॥ १॥

मनुष्योंको जिन कारणोंसे हिक्कारोग उत्पन्न होता है उन्हीं बहुतसे कारणोंसे भयंकर श्वास रोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अथ श्वासभेदः।

महोर्द्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा। भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ २ ॥

विशेष करके यह श्वासनामक एक महाव्याधि महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास ये पांच भेदोंसे पांच प्रकारका श्वासरोग गिना जाता है ॥ २ ॥

अथ श्वासपूर्वरूपम्।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च। आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च॥ ३॥

हृदयमें पीडाका होना, शूल, अफरा, पेटका फूलना, मुखमें विरसता और कनपट्टियोंमें तोडने सरीखी पीडाका होना ये सब श्वासके पूर्वलक्षण हैं॥ ३॥

अथ श्वाससम्प्राप्तिः।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः। विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासं करोति सः ॥ ४ ॥ विष्वक् व्रजति सर्वतो विमार्गान् याति संरुद्धः कफेन रुद्धमार्गः।

जब वायु कफयुक्त होकर उस कफसे प्राण, अन्न और जलके बहानेवाले मार्गोंको रोक लेती है और अपने आप उस कफसे विचरण करनेसे चारों ओरको रुककर पश्चात् श्वासको उत्पन्न करती है ॥ ४ ॥

अथ महाश्वासलक्षणम्।

ऊर्ध्वायमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः। उच्चैः श्वसिति सन्नद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ ५ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः। विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ ६॥ दीनस्य श्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम्। महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ७ ॥

ऊर्ध्वायमानवातः ऊर्ध्वं नीयमानो वातो यस्य सः। शब्दवत् सशब्दं यथा स्यात्। कीदृक् सशब्दः तद्बोधयितुमाह। मत्तर्षभ इव उच्चैः श्वसिति इति अन्वयः। सन्नद्धः आनद्धः आनाहयुक्त इति यावत्। ज्ञानं शास्त्रम्। विज्ञानं तदर्थविनिश्चयः। विशीर्णवाक् स्खलितवचनः। दीनः म्लानः। मारकश्चायं महाश्वासः।

जिस मनुष्यको महाश्वास होता है उसके प्राण वायु शब्द करती हुई ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होती है तब वह मनुष्य उससे महादुःखित होता है, जिस प्रकार भागनेसे रोका हुआ मस्त बैल (सांड) श्वास लेता है उसी प्रकार यह मनुष्य निरंतर श्वास लेता है, उसका ज्ञान विज्ञान सब भ्रष्ट हो जाता है, नेत्र भ्रमयुक्त हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाते हैं, आंखें और मुख फैल जाता है, मूत्र और मल रुक जाता है, जीभ तुतला जाती है, दीन हो जाता है और इसके श्वासका शब्द दूरसेही सुनाई देता है, इस महाश्वाससे पीडित रोगी तत्काल मर जाता है, यह श्वास मनुष्योंके मारनेके लियेही उत्पन्न होता है ॥ ५–७ ॥

अथोर्द्ध्वश्वासलक्षणम् ।

ऊर्द्ध्वं श्वसिति योऽत्यर्थं न च प्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुखस्रोता क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥ ८ ॥ ऊर्द्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्तत । प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ ९ ॥ ऊर्द्ध्वं श्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुद्ध्यते । मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्द्ध्वं श्वासस्तस्य निहन्त्यसून् ॥ १० ॥ सर्वेषु श्वासेषु ऊर्द्ध्वं श्वासोऽत्र अत्यर्थमिति विशेषः । न च प्रत्याहरत्यधः न श्वासमधः करोति । श्लेष्मावृतेत्यादि श्लेष्मणा वृतं यन्मुखं स्रोतांसि च तैः क्रुद्धो यो गन्धवहस्तेन अर्दितः । विपश्यन् इतस्ततो विकृतं यथा स्यादेवं पश्यन् । अधःश्वासो निरुद्ध्यते श्वासो नाधः प्रवर्तत इत्यर्थः । मुह्यतो मोहं प्राप्नुवतस्ताम्यतो ग्लानिं प्राप्नुवतश्च ऊर्द्ध्वश्वासः असून् प्राणान्हन्ति ।

जिस मनुष्यके ऊर्ध्वश्वास उत्पन्न होता है उस मनुष्यका बहुत ऊंचा श्वास चलता है, उसका कभी नीचेको श्वास नहीं जाता, मुख और सम्पूर्ण शरीरके स्रोत (छिद्र) कफसे घिर जानेके कारण वायु कुपित होकर तीव्र पीडाको करती ह, उसकी दृष्टि सदैव ऊपरको रहती है, आँखोंको चारों ओरको चकराकर विकृति रूपसे देखता है, मूर्च्छित होता है, वेदनासे पीडित होता है, मुख सूख जाता है और अत्यन्त बेकली होती है, ऊर्ध्वश्वासके कुपित होनेपर नीचेका श्वास प्रवर्त नहीं होता है और वह ऊर्ध्वश्वास मोहको प्राप्त हुए और ग्लानिको प्राप्त हुए उस मनुष्यके जीवनको नष्ट करता है, सर्व प्रकारके श्वासोंमें यह ऊर्ध्वश्वास बहुत ऊँचेसे चलता है, यह विशेष है ॥ ८–१० ॥

अथ छिन्नश्वासलक्षणम् ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः । न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुजार्दितः ॥ ११ ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन वस्तिना । विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्नक्तैकलोचनः ॥ १२ ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १३ ॥ विच्छिन्नं सविच्छेदम्, सर्वप्राणेन सर्वबलेन । मर्मच्छेदरुजार्दितः हृदयशिरच्छेदवेदनयैव पीडितः दह्यमानेन वस्तिना उपलक्षितः । विप्लुताक्षः अश्रुपूर्णनेत्रः । विचेताः उद्विग्नचित्तः । छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः । यस्तु श्वसिति विच्छिन्नमित्यादिलक्षणयुक्तो यः स नरः छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः पीडितो बोद्धव्यः । मारकश्चायं छिन्नश्वासः ।

जिसके छिन्नश्वास उत्पन्न होता है वह दुःखित होकर रह रहकर अपने सम्पूर्ण बलसे श्वासको त्यागता है, मर्मस्थानोंमें छेदने सरीखी पीडा होती है, तथा हृदय और मस्तकके छेदने सरीखी पीडा होती है, समयपर श्वास लेनेको असमर्थ होता है, पेटके अफरनेसे, पसीनेसे, मूर्च्छासे और मूत्राशयकी दाहसे दुःखी होता है, नेत्र जलसे डुबे डुबेसे रहते हैं, शरीर अत्यन्त क्षीण हो जाता है, निरन्तर हाँफता रहता है, चित्तमें उद्वेग होता है, वृथा बकवाद करता है, मुख सूख जाता है, शरीरका रंग बदल जाता है अथवा बिगड जाता है और एक आँख लाल हो जाती है इन लक्षणोंवाला छिन्नश्वाससे पीडित मनुष्य तत्काल प्राणोंको त्याग देता है, यह छिन्नश्वास मारनेके लिये ही उत्पन्न होता है ॥ ११–१३ ॥

अथ तमकश्वासलक्षणम् ।

प्रतिलोमो यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते । ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १४ ॥ करोति पीनसं तेन कण्ठे घुर्घुरकं तथा । अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १५ ॥ प्रताम्यति स वेगेन अस्यते

CC-0: Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्निरुध्यते । प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः । तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ १७ ॥ तथास्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् । न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ १८॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरिणः । आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ १९ ॥ उच्छ्वासाक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् । विधुष्कास्यो मुहुःश्वासी मुहुश्चैवावधम्यते॥२०॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते । स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २१ ॥ संगृह्य व्यथया । समुदीर्य वर्द्धयित्वा । पीनसं नासास्रावम् । तेन श्लेष्मणा घुर्घुरं घुर्घुरशब्दम् । प्राणप्रपीडकं प्राणाधिष्ठानहृदयप्रपीडकम् । प्रताम्यति तमसि प्रविशतीव । वेगेन श्वासवेगेन सन्निरुध्यते निश्चेष्टो भवति इति चरकः । सन्निरुध्यते श्वास इति जैयटः । श्लेष्मणा मुच्यमानेन सुखं सुखामिव । उद्ध्वंसते व्यथितो भवति । शयानः शयननिहितांगः अवगृह्णाति पीडयति । उष्णं चैवाभिनन्दति इत्यनेन तमको वातकफारब्ध इति बोद्धव्यः। उच्छ्वासाक्षोऽशूनाक्षः । ललाटेन स्विद्यता उपलक्षितः । अवधम्यते गजारूढस्येव सर्वं गात्रं चाल्यते । तमकस्यैव पित्तानुबन्धजनितज्वरादियोगेन ।

जब वायु अपने मार्गको छोडकर कुमार्गी होकर नाडियोंमें प्राप्त होती है तब गरदनको और शिरको जकडकर कफको बढाकर उस कफसे नाकमें पीनस, कंठमें घुरघुर शब्दको और हृदयको पीडित करनेवाले तीव्र श्वासको उत्पन्न करता है, यह श्वास जिस मनुष्यको होता है वह मनुष्य अपनेको घोर अन्धकारमें पडा हुआ देखता है, त्रासको प्राप्त होता है, श्वासके वेगसे चेष्टारहित हो जाता है, खाँसीके वारंवार आनेसे मूर्च्छित हो जाता है, कफके निकलते समय अत्यंत दुःख होता है, जब कफ निकल जाता है तो थोडी देरके लिये चैन पड जाता है, कंठमें पीडा होती है, बोलते समय कष्ट होता है, सोते समय लेटने पर वायुके कारण पसलियोंमें अत्यन्त पीडा होती है, उठ बैठनेपर कुछ आराम मालूम होता है, निरंतर उष्ण पदार्थोंकी इच्छा करता है, नेत्र ऊंचे सूजेसे रहते हैं, मस्तकमें पसीना आता है, अत्यंत पीडा होती है, मुख वारंवार सूखा करता है, वारंवार श्वास ले लेकर हाथीपै बैठे हुए मनुष्यकी समान हिलता है, यह श्वास मेघोंके उदय होनेसे, वर्षासे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफको बरनेवाले पदार्थोंको सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त होता है । यह तमकश्वास याप्य है, जो नवीन हो तो कदाचित् साध्य भी होता है । 'श्वासके वेगसे चेष्टारहित हो जाता है' ऐसा जो लक्षणोंमें कहा है सो चरकके मतानुसार कहा है, किंतु जैयट तो ऐसा कहता है, कि 'उस मनुष्यका श्वास रुक जाता है, तमक श्वासवाले मनुष्यके उष्ण वस्तुओंकी अभिलाषा उत्पन्न होती है।' ऐसा जो लक्षणोंमें कहा है, सो ऊपरसे जानना कारण तमकश्वास वात और कफसे उत्पन्न होता है ॥ १४–२१ ॥

अथ प्रतमकश्वासलक्षणम् ।

ज्वरमूर्च्छापरीतं च विद्यात्प्रतमकं भिषक् २२

जो तमक श्वास ज्वर और मूर्छासे अत्यंत युक्त होय तो उसको प्रतमक श्वास कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ मतान्तरम् ।

उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः । तमसा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतलैश्च प्रशाम्यति । मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥२३॥ उदावर्तो रोगविशेषः । रजो धूलिः । अत्र अजीर्णमामादि क्लिन्नं विदग्धम् । कायनिरोधः अंगयोगानां निरोधः तस्मादुत्पन्नः । अथवा क्लिन्नकायः वृद्धनरः निरोधः वेगानां तु सप्तदशविधः ।

उदावर्त, रज, आम आदि अजीर्ण और योगका निरोध करनेसे, वृद्ध अवस्थाके होनेसे और मूत्रादि सत्रह वेगोंके रोकनेसे उत्पन्न हुआ, तथा अंधकारसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बढनेवाला और शीतल पदार्थोंसे शांत होनेवाला ऐसा जो श्वास होता है, उसको प्रतमक कहते हैं। इसमें रोगीको ऐसा प्रतीत होता है कि, मैं घोर अंधकारमें पडा हूं ॥ २३ ॥

अथ क्षुद्रश्वासलक्षणम्।

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रवातमुदीरयन्। क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखो नांगप्रबाधकः ॥ २४ ॥ हिनस्ति न च गात्राणि न च दुःखं यथेतरे। न च भोजनपानानां निरुणद्धयुचितां गतिम् ॥ २५ ॥ नेन्द्रियाणां व्यथां चापि काश्चिदुत्पादयेद्भुजम्। स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ २६ ॥ क्षुद्रः अल्पनिदानलिंगः। उदीरयन्मुहुः गच्छन्। दुःखः दुःखप्रदः। इतरे चत्वारः श्वासाः तथा नाथम्। सर्वे महाश्वासादयोऽपि अव्यक्तलक्षणाः सन्तः साध्याः।

रूक्षतासे और अत्यंत परिश्रम करनेसे उत्पन्न हुआ जो श्वास उसको क्षुद्र श्वास कहते हैं, वह वायुको बढाता है, किंतु अत्यंत दुःख नहीं देता है तथा अन्यान्य दूसरे श्वासोंकी समान शरीरको पीडित करनेवाला और दुःखदायक भी नहीं है, अन्न पानोंकी योग्य गतिको नहीं रोकता है, इंद्रियोंको व्यथित भी नहीं करता है और वेदनाको भी नहीं करता है, यह क्षुद्र श्वास साध्य है और दूसरे महाश्वासादि जो चार प्रकारके श्वास हैं उनके यदि लक्षण प्रकट नहीं होय तो वे भी साध्य हैं ॥ २४–२६ ॥

अथ श्वाससाध्यासाध्यता।

क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते। त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ २७ ॥ कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते यथा। यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु वै ॥ २८ ॥ बहवो ज्वरादयः। तथा यथा श्वासहिक्के हरतो जीवमाशु ते ॥ २९ ॥

इन पांचों श्वासोंमें क्षुद्र श्वास सुखसाध्य है, तमक श्वास कष्ट साध्य है और बाकीके तीनों श्वास असाध्य हैं। तमक श्वास भी जो दुर्बल मनुष्यको उत्पन्न हुआ होय तो असाध्य है। ज्वरादिरोग प्रायः प्राणोंको हरनेवाले है, परन्तु श्वास और हिचकीकी समान तत्काल प्राणोंको हरनेवाला कोई भी रोग नहीं है ॥२७–२९॥

अथ श्वासचिकित्सा।

श्वासहिक्कातुरं प्रायः स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत्। युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः ॥ ३० ॥ श्वासो विलयमायाति मारुतं चोपशाम्यति। स्विन्नं ज्ञात्वा ततश्चैनं भोजयेच्च रसौदनम् ॥ ३१ ॥ स्वरसं शृंगवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम्। पाययेच्छ्वाससकासप्रतिश्यायकफापहम् ॥ ३२ ॥ शृंगवेरमार्द्रकम्।

श्वास और हिक्कासे पीडित मनुष्यको विशेष करके निमक और तेलसंयुक्त स्निग्ध स्वेदन क्रियाओंसे उपचार करे, इस उपचार करनेसे कफ टूट जाता है और श्वास नष्ट हो जाता है और वात भी शांत हो जाती है, स्वेदन क्रियासे जब पसीना निकल चुके तब उस रोगीको मांसके रसके साथ भात देवे, तथा सहतके साथ अदरखका रस पिलावे तो श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, जुकाम और कफ दूर होता है ॥३०–३२

प्रस्थं विभीतकानामस्थि विना साधयेदजमूत्रे। अयमवलेहो लीढो मधुसहितः श्वासकासघ्नः ॥ ३३ ॥

बहेडे ६४ चौंसठ तोले लेकर उनकी गुठली निकाल डाले, फिर उनको बकरेके मूत्रमें पकावे उसको सहत मिलाकर चाटनेसे श्वास और खाँसी दूर होजाती है ॥ ३३ ॥

देवदारुबलामांसीः पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत्। तां घृताक्तां पिबेद्धूमं श्वासं हन्ति सुदारुणम् ॥ ३४ ॥

देवदारु, खिरैंटी और बालछड (जटामांसी) इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनावे, उस बत्तीको घीमें सानकर उसका धुँआ पान करनेसे महादारुण श्वास भी दूर हो जाता है ॥ ३४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीविश्वपौष्करैः ।
शृंगीतामलकीभार्ङ्गीगुडूचीनागराग्निभिः ।
॥ ३५ ॥ यवागूं विधिना सिद्धां कषायं वा पिबेन्नरः । श्वासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिहिक्काकासप्रशान्तये ॥ ३६ ॥

दशमूल, कचूर, रासना, पीपल, अतीस, अंडकी जड, काकडासिंगी, भुई आमला, भारंगी, गिलोय, सोंठ और चीता इनकी विधिपूर्वक बनाई हुई यवागू अथवा क्काथको पीनेसे श्वास, हृदयकी जडता, पसलीकी पीडा, हिचकी और खाँसी दूर होती है ॥३५॥३६॥

दशमूलस्य वा क्काथः पौष्करेणावचूर्णितः ।
श्वासकासप्रशमनः पार्श्वशूलनिवारणः ३७॥

दशमूलका क्काथ बनाकर उसमें अंडकी जडका (अथवा पोहकरमूलका) चूर्ण डालकर पान करनेसे श्वास खाँसी और पसलीकी पीडा दूर होती है॥३७॥

रम्भाकुन्दशिरीषाणां कुसुमं पिप्पलीयुतम् । पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पीत्वा श्वासमपोहति ॥ ३८ ॥

केला, कुन्द और सिरस इन सबके फूलोंको पीपलके साथ पीसकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे श्वास दूर हो जाता है ॥ ३८ ॥

शृंगीमहौषधकणाघनपौष्कराणां चूर्णं शटीहरिचयोश्च सितासमिश्रम् । क्काथेन पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः श्वासं त्र्यहेण विनिहन्ति हि घोररूपम् ॥ ३९ ॥ पञ्चमूली सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी । सा ती मारुते देया सैव देया कफाधिके ४० ॥ कूष्माण्डकशिफाचूर्णं पीतं कोष्णेन वारिणा । शीघ्रं शमयति श्वासं कासं चापि सदारुणम् ॥ ४१ ॥

काकडासिंगी, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर और कालीमिर्च इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे, फिर उस चूर्णको खांडमें मिलाकर सेवन करे, अडूसा तथा पंचमूलके क्काथमें मिलाकर पीवे तो भयंकर श्वास भी तीन दिनमें नष्ट हो जाता है। जहां 'पंचमूली' शब्द साधारण है तहां पित्तपर लघुपंचमूली और वातपर तथा कफाधिक्य वातपर बृहत्पंचमूली लेना चाहिये। पेठेकी जडके चूर्णको कुछ कुछ गरम जलके साथ पीनेसे श्वास और दारुण खाँसी दूर हो जाती है ॥ ३९-४१ ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां कणां रास्नां शटीं गुडम् । कटुतैलं लिहन्हन्याच्छ्वासान्प्राणहरानपि ॥ ४२ ॥

हलदी, मिर्च, दाख, पीपल, रास्ना, कचूर और गुड इन सबको सरसोंके तेलमें मिलाकर चाटनेसे भयंकर प्राणोंको हरनेवाला भी श्वास नष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥

अथ भार्ङ्गीगुडः ।

शतं संगृह्य भार्ङ्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा शतम् । शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ४३ ॥ पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रनिपीडिते । आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयास्ततः ॥ ४४ ॥ पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमेति तत् । शीते च मधुनस्तत्र षट्पलानि विनिक्षिपेत् ॥ ४५ ॥ त्रिकटु त्रिसुगन्धं च पलमात्रं पृथक् पृथक् । यवक्षारं कर्षयुग्मं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ॥४६॥ भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्द्धपलं तथा । श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥४७॥ अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा । स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दीपनः । नाम्ना भार्ङ्गीगुडः ख्यातो भिषग्भिः सकलैर्मतः ॥ ४८ ॥

भारंगी ४०० चार सौ तोले, दशमूलकी औषधि ४०० चार सौ तोले और हरड ४०० चार सौ तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उसको उतारकर वस्त्रमें छान लेवे, फिर उसमें ४०० चार सौ तोले गुड और उसी क्काथमेंकी हरड डालकर मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावे, जब पकते २ सीरेकी समान हो जाय तब उसमें, शीतल होनेपर २४ चौबीस तोले सहत मिला देवे तथा सोंठ ४ तोले, मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात

CC-0: Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४ तोले, इलायची ४ तोले और जवाखार २ तोले, इनका चूर्ण करके मिला देवे फिर इसमेंसे प्रतिदिन १ हरड और दो तोले इस अवलेहको सेवन करे तो इससे महादारुण श्वास, पांच प्रकारकी खाँसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, अतिसार और क्षयरोग नष्ट होता है। यह 'भार्ङ्गीगुड' इस नामसे प्रसिद्ध है। भार्ङ्गीगुड अवलेह—स्वर और वर्णको उत्तम करनेवाला और जठराग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ४३--४८ ॥

अथ महाकट्फलादियोगः।

अष्टांगचूर्णसंयुक्तं छागक्षीरं प्रयोजयेत्। श्वासं कासान्वितं घोरं हन्यादेतन्न संशयः ॥४९॥

कायफल, अंडकी जड, काकडासिंगी, अजवायन, कलौंजी, सोंठ, मिरच और पीपल इन आठ पदार्थोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके बकरीके दूधके साथ पीनेसे घोर खाँसी युक्त भी श्वास अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ४९ ॥

अथ दशमूलरसः।

दशमूलरसो देयः श्वासनिर्मूलशान्तये। अवश्यं मरणीयो यो जीवेद्वर्षशतं नरः॥५०॥

श्वासको जडसे नष्ट करनेके लिये दशमूलका रस सेवन करना चाहिये, जो मनुष्य श्वाससे अवश्य मरनेवाला हो वह मनुष्य भी इसके प्रसादसे सौ वर्षतक जीता है ॥ ५० ॥

अथ श्वासकुठाररसः।

रसो गन्धो विषं चापि टंकणं च मनःशिला। एतानि कर्षमात्राणि मरिचं चाष्टकर्षकम् ॥ ५१ ॥ कटुत्रयं कर्षयुग्मं पृथगत्र विनिक्षिपेत्। रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वश्वासनिवारणः ॥ ५२ ॥

पारा १ तोला, गंधक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, सुहागा १ तोला, मैनशिल १ तोला और काली मिर्च ८ तोले इन सबका बारिक चूर्ण करके उसमें दो तोले सोंठका चूर्ण, दो तोले मिर्चका चूर्ण और दो तोले पीपलका चूर्ण अलग अलग मिला देवे तो यह 'श्वासकुठार' नामवाला रस सिद्ध होता है। इस रसमेंसे दो रत्तीभर पानमें रखकर खाय इससे सब प्रकारके श्वास नष्ट होते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

इति श्वासाधिकारः संपूर्णः।

अथ स्वरभेदाधिकारः।

तत्र स्वरभेदनिदानसम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम्।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसन्दूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु। स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥ अध्ययनमुच्चैर्वेदादिपाठः। अभिघातः कण्ठादिदेशे लगुडादिभिः। एतैरत्युच्चभाषणादिभिश्चतुर्भिः संदूषणैरन्यैरपि निजैर्दुष्टहेतुभिः स्रोतःसु स्वरवहेषु चतुर्षु प्रतिष्ठां स्थितिं गताः स्वरं हन्युरिति लक्षणम्। स स्वरभेदः षड्विधः। वातपित्तकफसन्निपातमेदोभवभेदैः।

अत्यंत ऊंचे स्वरसे बोलनेसे, विषको भक्षण करनेसे, स्वरसे वेद शास्त्रादिकके पाठ करनेसे, कंठ आदि प्रदेशमें लकडी इत्यादिकी चोटके लगनेसे और अन्यान्य अपने अपने दुष्ट कारणोंसे कोपको प्राप्त हुए वातादि दोष स्वरके वहनेवाले स्रोतों (छिद्रों) में स्थित होकर स्वरको नष्ट करते हैं उस रोगको स्वरभेद कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्षयज और मेदज इस रीतिसे स्वरभेद छः प्रकारका है ॥ १ ॥

अथ वातजस्वरभेदलक्षणम्।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत्स्वरं च।

वातसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें टूटे फूटे धीरे धीरे गधेके स्वरकी समान वचन बोलता है, तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये काले पड जाते हैं ॥

अथ पित्तजस्वरभेदलक्षणम्।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्गलेन स च दाहसमन्वितेन ॥ २ ॥ गलदाहः वचनसमय एव बोद्धव्यः।

पित्तज स्वरभेदम वह मनुष्य दाहयुक्त गलेसे बोलता है, तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा वे सब पीले पड जाते हैं ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कफजस्वरभेदलक्षणम् ।

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् । दिवा सूर्यरश्मिभिः कफस्य अल्पीभावात् ।

कफज स्वरभेदमें निरंतर कफसे गला रुकासा रहता है, धीरे धीरे थोडा बोलता है और दिनमें सूर्यकी किरणोंके निकलनेसे कफ कटकर कुछ अधिक बोलता है ॥

अथ सन्निपातजस्वरभेदलक्षणम् ।

सर्वात्मिके भवति सर्वविकारसम्पत्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, यह स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषियोंने कहा है ॥ ३ ॥

अथ क्षयजस्वरभेदलक्षणम् ।

धूम्येत वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च स्यादेव चापि हतवाक्परिवर्जनीयः । वाक् धूम्येत सधूमेव निःसरति । क्षयं वाप्नुयात् वागेव ।

क्षयज स्वरभेदमें बोलते समय मुखमेंसे धुआँसा निकलता है, अथवा बोलते समय शब्द नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नष्ट वाणीवाले मनुष्यको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥

अथ मेदोजन्यस्वरभेलक्षणम् ।

अन्तर्गलं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्तः ॥ ४ ॥ अन्तर्गलं गलस्य मध्य एव स्वरं वदति । दिग्धगलः मेदसा श्लेष्मणा च लिप्तगलः । तृषार्तः मेदस उष्मणा आर्तवरोधात् ।

मेदोजस्वरभेदमें मनुष्य बहुत देरसे गलेके भीतर ही जो दूसरोंके समझमें नहीं आवे ऐसे शब्द बोलता है, मेदसे और कफसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें गला कफसे लिप्तासा रहता है और तृषासे पीडित रहता है ॥ ४॥

अथ स्वरभेदासाध्यलक्षणम् ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः । मेदास्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो नैव स सिद्धिमेति ॥ ५॥ क्षीणस्य क्षयरोगिणः । कृशस्य अपुष्टस्य ।

क्षयरोगीका, वृद्धका, दुर्बल मनुष्यका स्वरभेद, अथवा बहुत दिनोंका पुराना वा जन्मसे उत्पन्न हुआ, मेदवाले मनुष्यको उत्पन्न हुआ और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ ऐसा स्वरभेद असाध्य होता है ॥ ५ ॥

अथ स्वरभेदचिकित्सा ।

वातादिजनितश्वासकासघ्ना ये प्रकीर्तिताः । योगास्तानत्र युञ्जीत यथादोषं चिकित्सकः ॥ ६ ॥ वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम् । कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवल इष्यते ॥ ७ ॥ गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः । तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चाशु प्रसीदति ॥ ८ ॥ आद्ये कोष्णं जलं पेयं भुक्त्वा घृतरसौदनम् । क्षीराम्बुपानं पित्तोत्थे पिबेत्सर्पिरतन्द्रितः ॥ ९ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे स्वरसंक्षये॥१०॥

वातादिसे उत्पन्न हुए श्वासको और खाँसीको हरनेवाले जो प्रयोग कहे हैं, उन्ही प्रयोगोंको वैद्य लोग दोषोंकी पद्धतिके अनुसार इस स्वरभेदमें योजे । जो वातसे स्वरभेद हुआ होय तो लवणके साथ तेलको, पित्तसे स्वरभेद हुआ होय तो सहतके साथ घीको, और जो कफसे स्वरभेद हुआ होय तो क्षार तथा चरपरे पदार्थोंके साथ सहतका कवल करना चाहिये । कवल करनेसे गला, तालू, जीभ और दन्तमूलोंमें रहा हुआ कफ निकल जाता है और स्वर तत्काल साफ हो जाता है । वातजस्वरभेदमें घी और मांसके रसके साथ भात खाय और मंदोष्ण जल पीवे, पित्तज स्वरभेदमें आलस्यको छोडकर दूध और पानी तथा घी पीवे, और कफजस्वरभेदमें पीपल, पीपलामूल, मिर्च और सोंठ इनका चूर्ण करके गोमूत्रके साथ सेवन करे ॥ ६–१० ॥

अथ निदिग्धिकावलेहः ।

निदिग्धिकातुला ग्राह्या तदर्द्धं ग्रन्थिकस्य तु । तदर्द्धं चित्रकस्यापि दशमूलं च तत्समम् ॥ ११ ॥ जलद्रोणद्वये काथ्यं गृह्णीयादाढकं ततः । पूते क्षिपेत्तदर्द्धं तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ १२ ॥ सर्वमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साधयेत्। अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातकपलं तथा ॥ १३ ॥ मरिचस्य पलं चैकं सर्वमेकत्र चूर्णितम्। मधुनः कुडवं दत्त्वा तदश्नीयाद्यथानलम् ॥ १४ ॥ निदिग्धिकावलेहोऽयं भिषग्भिर्मुनिभिर्मतः। स्वरभेदहरो मुख्यः प्रतिश्यायहरस्तथा ॥ १५ ॥ कासश्वासाग्निमान्द्यादीन्गुल्ममेहगलामयान्। आनाहमूत्रकृच्छ्राणि हन्याद्ग्रन्थ्यर्बुदानि च ॥ १६ ॥

कटेरी ४०० चार सौ तोले, पीपलामूल २०० दो सौ तोले, चीता १०० सौ तोले और दशमूलकी औषधि १०० सौ तोले, इन सबको २०४८ दो हजार अडतालीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते २५६ दो सौ छप्पन तोले जल बाकी रह जाय तब उस क्काथको वस्त्रमें छानकर फिर उस क्काथसे आधा पुराना गुड डालकर अवलेहकी तरह पकावे, जब यह सीरेकी समान हो जाय तब इसमें त्रिजातकका चूर्ण ३२ बत्तीस तोले और काली मिर्चोंका चूर्ण ४ तोले, सहत १६ सोलह तोले मिलावे तो यह निदिग्धिकादि अवलेह तैय्यार होता है, इस अवलेहको अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन करे, यह प्रतिश्यायको नष्ट करनेवाला है तथा खाँसी, श्वास, अग्निकी मन्दता, गुल्म, प्रमेह, गलेके रोग, विष्ठाके अवरोधसे पेटका अफरना, मूत्रकृच्छ्र, ग्रंथि और अर्बुदको नष्ट करे है ॥ ११--१६ ॥

अथ मृगनाभ्याद्यवलेहः।

मृगनाभिः ससूक्ष्मैलालवङ्गकुसुमानि च। त्वक्क्षीरी चेति लेहोऽयं मधुसर्पिःसमायुतः। वाक्स्तंभमुग्रं जयति स्वरभ्रंशसमन्वितम् १७

कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग, वंशलोचन इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे स्वरभेद और जिह्वाकी जडता दूर होती है ॥ १७ ॥

ब्राह्म्याद्यवलेहः।

ब्राह्मी वचाऽभयावासा पिप्पली मधुसंयुता। अस्य प्रयोगात्सप्ताहात्किन्नरैः सह गीयते १८

ब्राह्मी, वच, हरड, अडूसा और पीपल इनको पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे सात दिनमें किन्नरकी समान गायन कर सक्ता है ॥ १८ ॥

इति स्वरभेदाधिकारः संपूर्णः।

अथारोचकाधिकारः।

तत्र सनिदानवातारोचकलक्षणम्। वातादिभिः शोकभयार्तिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः। अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ॥ १ ॥

वातादि दोषोंसे, शोकसे, भयसे, पीडासे, लोभसे, क्रोधसे, मनको बिगाडनेवाले भोजन, रूप और गंधसे अन्नादिकपर जो अरुचि उत्पन्न होती है उसको अरोचक कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, शोकादि आगंतुज और त्रिदोष ऐसे अरोचक रोग पांच प्रकारका है। वातज अरोचकके लक्षण। तहां वातज अरुचिमें दाँत खट्टे और मुख कसैला रहता है ॥१॥

अथ पित्तजारुचिलक्षणम्।

कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम्। यतो विदग्धश्लेष्मास्य लवणभावमुपैति लवणं हि वक्त्रम्।

पित्तकी अरुचिमें मुख चरपरा, खट्टा, विरस और दुर्गन्धित रहता है। क्योंकि दाहको प्राप्त हुआ कफ खारी होनेके कारण मुख खारी हो जाता है।

अथ कफजारुचिलक्षणम्।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यस्निग्धत्वदौर्गन्ध्ययुतं कफेन ॥ २ ॥ तथा पैच्छिल्यं मुखस्य अभ्यन्तरे। स्निग्धत्वं बहिः।

कफकी अरुचिमें मुख मधुर, पिच्छिल, भारी, शीतलतायुक्त और दुर्गन्धित हो जाता है ॥ २ ॥

अथागन्तुजारुचिलक्षणम्।

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात्। स्वाभाविकं चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेच्च ॥ ३ ॥ क्रोधादीत्यादिशब्देन अहृद्ययोरशनरूपयोर्ग्रहणम्। स्वाभाविकं च अविकृतरसम्। त्रिदोषजमाह--नैकरसम् अनेकरसमास्यं स्यात्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शोकसे, भयसे, अत्यन्त लोभसे, क्रोधादिकसे, अप्रिय भोजन करनेसे, अप्रिय रूपको देखनेसे और अप्रिय गंधको सूंघनेसे मुख स्वाभाविक रसयुक्त होता है। कुछ विकृति नहीं होती है। त्रिदोषसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मुख अनेक रसोंवाला होता है ॥ ३ ॥

अथ वातजाद्यरोचकविशेषलक्षणम् ।

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तात्तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम् । श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥ ४ ॥ हृच्छूलपीडनयुतं हृदि शूलेन पीडनं तेन युतम् । चोषः । पार्श्वस्थिताग्निनेव सन्तापः । बहुभिः त्रिभिर्दोषैः बहुरुजम् उक्तवातादिरोगयुक्तम् । वैगुण्यं मनसो व्याकुलत्वम् । जडता शून्यता । अपरम् आगन्तुजम् । भक्तद्वेषभक्ताच्छन्दौ चरकसुश्रुताभ्याम् अरोचकत्वेनैव संगृहीतौ । वृद्धभोजस्तेषां लक्षणानि पृथगाह—प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते नरः । अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ ५ ॥ न आस्वादते अन्नस्य मिष्टतां न प्राप्नोति । तदन्नं मिष्टं न लगतीति यावत् । चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु भोजनम् । द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ ६ ॥ कुपितस्य भयार्तस्य तथा भक्तविरोधिनः । यत्र नान्ने भवेच्छ्रद्धा स भक्ताच्छन्द उच्यते ॥ ७ ॥

वातकी अरुचिमें हृदयमें शूलकी समान पीडा होती है, पित्तकी अरुचिमें तृषा, अत्यन्त दाह और अग्नि सेवनके समान संताप होता है, कफकी अरुचिमें मुखमेंसे कफयुक्त थूक निकलता है, त्रिदोषकी अरुचिमें उपरोक्त सब लक्षण होते हैं और आगन्तुज कारणोंसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मनमें व्याकुलता, मोह (बेहोशी) और शून्यता होती है। भक्तद्वेष और भक्ताच्छन्दको यद्यपि चरक और सुश्रुतमें अरुचिहीमें माना है तथापि वृद्ध भोजने इसके लक्षण अरुचिसे अलग लिखे हैं। वृद्ध भोज कहता है. कि मुखमें दिया हुआ अन्नका ग्रास अच्छा न लगे तो उसको 'अरोचक' कहते हैं। मनसे भोजनका चिन्तवन करके, भोजनको देखकरके और भोजनका स्पर्श करके जो भोजनपर द्वेष उत्पन्न होता है उसको 'भक्तद्वेष' कहते हैं। क्रोधसे, भयसे, पीडासे और प्रेमके अनुरोधसे जो अन्नपर श्रद्धा नहीं रहती उसको 'भक्ताच्छन्द' कहते हैं ॥ ४–७ ॥

अथारोचकचिकित्सा ।

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम् । रोचनं दीपनं वह्नेर्जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ ८ ॥ शृंगवेररसं वापि मधुना सह योजयेत् । अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ ९ ॥

भोजनसे आगे सदैव लवण और अदरखका भक्षण पथ्य है, रुचिको करनेवाला, अग्निको दीपन करनेवाला और जिह्वा तथा कण्ठको शुद्ध करनेवाला है। सहतके साथ अदरखके रसको पीनेसे अरुचि, श्वास, खांसी, प्रतिश्याय और कफ नष्ट होता है ॥ ८ ॥९ ॥

अथाम्लीकापानकम् ।

पक्वाम्लीका सिता शीतवारिणा वस्त्रगालिता । एलालवंगकर्पूरमरिचैरवधूलिता ॥ १० ॥ पानकस्यास्य गण्डूषं धारयित्वा मुखे मुहुः । अरुचिं नाशयत्येव पित्तं प्रशमयेत्तथा ॥ ११ ॥

पकी हुई इमली और खांड इनको शीतल जलमें घोलकर उसको वस्त्रमें छान लेवे, फिर उसमें इलायची, लौंग, कपूर और मिरचका चूर्ण डाल देवे, इसको अम्लीकापानक कहते हैं। इस पानक (पन्ना) के मुखमें वारंवार गण्डूष (कुल्ले) धारण करनेसे अरुचि नष्ट होती है और पित्तशमन होता है ॥ १० ॥११ ॥

अथ तक्रम् ।

राजिकाजीरकौ भृष्टौ भृष्टं हिंगु सनागरम् । सैन्धवं दधि गोः सर्वं वस्त्रपूतं प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ तावन्मात्रं क्षिपेत्तत्र यथा स्याद्रुचिरुत्तमा । तक्रमेतद्भवेत्सद्यो रोचनं वह्निवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भुनी हुई राई, भुना हुआ जीरा, भुनी हुई हींग, भुनी हुई सोंठ, सेंधानिमक और गायका दही इन सबको मिलाकर वस्त्रमें छान लेवे, फिर जितनीमें वह ठीक हो जाय उतनी ही उसमें छाँछ मिलावे । यह तक्र—तत्काल रुचिको उत्पन्न करे है और जठराग्निको बढावे है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ शिखरिणी ।

सम्यगावर्तितं दुग्धं निबद्धं दधि माहिषम् । एकीकृत्य पटे घृष्टं शुभ्रशर्करया समम् । ॥ १४ ॥ एलालवंगकर्पूरमरिचैश्च समन्वितम् । नाम्ना शिखरिणी कुर्याद्रुचिं सकलवल्लभाम् ॥ १५ ॥

अच्छे प्रकारसे औंटाया हुआ दूध और वस्त्रमें बाँधा हुआ पानी रहित भैंसका दही इनको एकत्र करके उसमें उत्तम सफेद चीनी मिलाकर मोटे वस्त्रमें घिसकर छानलेवे फिर उसमें इलायची, लौंग, भीमसेनीकपूर और कालीमिरच डाले तो सिखरन सिद्ध हो जाती है । सब लोगोंको प्रिय यह सिखरन रुचिको उत्पन्न करे है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ दाडिमादिचूर्णम् ।

द्वे पले दाडिमाम्लस्य खण्डं दद्यात्पलत्रयम् । त्रिसुगंधि पलं चैकं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १६ ॥ तच्चूर्णं मात्रया भुक्तमरोचकहरं परम् । दीपनं पाचनं च स्यात्पीनसज्वरकासजित् ॥ १७ ॥

खट्टे अनारके दाने ८ तोले, खांड १२ तोले, त्रिसुगन्धि (दालचीनी, इलायची, तेजपात) १ तोला इन सबका एकत्र चूर्ण करके मात्रानुसार खाय तौ अरुचि नष्ट हो जाती है । यह चूर्ण—अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन है, पीनस, ज्वर और खाँसीको दूर करे है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ लवंगादिचूर्णम् ।

लवंगकंकोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् । जलं सकृष्णागुरुभृंगकेसरं कणा च विश्वा नलदं सहेलया । ॥ १८॥ तुषारजातीफलवंशरोचनाः सितार्द्धभागाः सकलं विचूर्णितम् । सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वश्यतमं त्रिदोषजित् ॥ १९ ॥ उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम् । ग्रहण्यतीसारमुरःक्षतं नृणां तथा प्रमेहान्निखिलान्निहन्ति ॥ २० ॥ कंकोलं सुगन्धविशेषः । नतं तगरम् । जलं वालकं भृंगं त्वक् । नलदमुशीरम् । तुषारः कर्पूरः । इति लवंगादिचूर्णम् ।

लौंग, कंकोल, मिरच, खस, चन्दन, तगर, नीले कमलके बीज, काला जीरा, सुगन्धवाला, अगर, तज, नागकेशर, पीपल, सोंठ, इलायची, भीमसेनी कपूर, जायफल, वंशलोचन और सबसे आधी खांड लेवे, सबको एकत्र मिला लेवे, इसको सेवन करनेसे रुचि उत्पन्न होती है, तृप्ति होती है, अग्नि दीपन होती है, बलकी वृद्धि होती है, मैथुनशक्ति बढती है, तीनों दोष शमन होते हैं, तथा छातीका जकडना, तमक-श्वास, गलग्रह, खाँसी, हिचकी, अरुचि, क्षयरोग, पीनस, संग्रहणी, अतिसार, उरःक्षत और सर्व प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १८—२० ॥

यवानीखाण्डवचूर्णम् ।

यवानी दाडिमं शुण्ठी तिन्तिडीकाम्लवेतसैः । बदराम्लं च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च । सार्द्धद्विशाणं मरिचं पिप्पली दशशाणिका ॥ २१ ॥ त्वक् सौवर्चलधान्याकजीरकं द्विद्विशाणिकम् । चतुःषष्टिमितैः शाणैः शर्करामत्र योजयेत् ॥ २२ ॥ चूर्णितं सर्वमेकत्र यवानीखाण्डवाभिधम् । चूर्णं जयेत्पाण्डुरोगं हृद्रोगं ग्रहणीज्वरम् ॥ २३ ॥ छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबन्धताम् । अरुचिं शूलमन्दाग्निमशोंजिह्वागलामयान् ॥ २४ ॥

अजवायन, अनार, सोंठ, इमली, अमलवेत और सुखाया हुआ बेरका गूदा ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला, कालीमिरच ६० रत्ती, पीपल २४० रत्ती, दालचीनी, कालानिमक, धनियाँ और जीरा प्रत्येक पदार्थ ४८ रत्ती भर लेवे, खांड २४ शाण लेवे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सबका एकत्र चूर्ण करले तो यवानीखांडव चूर्ण तैयार हो जाता है । इस चूर्णको सेवन करनेसे पांडुरोग, छातीका दर्द, ग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतीसार, प्लीहा, अंफरा, मलबंध, अरुचि, शूल, अग्निकी मंदता, बवासीर, जिह्वाके रोग और गलेके रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २१–२४ ॥

इति अरोचकाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ छर्द्यधिकारः ।

तत्र विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि । अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ १ ॥ आमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः । नार्याश्चापन्नसत्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः । बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्भुक्तमुत्क्लिश्यते बलात् ॥ २ ॥ आमात् असम्यक् पक्वात् रसात् । अजीर्णात् यथास्थितात् भुक्तात् । आपन्नसत्वायाः प्राप्तगर्भायाः । अन्यैर्बीभत्सैर्विकृतैः हेतुभिः घृणाकारिभिः अनिष्टश्रवणस्पर्शनदर्शनभक्षणपानैः उत्क्लिश्यते । दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः । छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ ३ ॥

अत्यंत पतले और चिकने भोजन करनेसे और अप्रिय और खारी भोजन करनेसे, विना समय भोजन करनेसे, अत्यन्त भोजन करनेसे, अहित भोजन करनेसे, आमसे, भयसे, उद्वेगसे, अजीर्णसे, कृमिदोषसे, गर्भके रहनेसे, बहुत शीघ्र भोजन करनेसे, दूषित हुई वायु दुष्ट हुआ पित्त और दुष्ट हुए कफसे तथा दुष्ट हुए तीनों दोषोंसे, ग्लानिजनक पदार्थोंके देखनेसे, सुननेसे, स्पर्श करनेसे, अथवा भक्षण करनेसे अथवा बलात्कार भोजन करनेसे और अत्यंत भयंकर कारणोंसे, कुपित दोषोंसे भोजन करी हुई वस्तु पीछे उछलकर पाँच प्रकारकी छर्दिको उत्पन्न करे है, अब उनके लक्षण कहे जाते हैं (१) आम– अर्थात् अच्छे प्रकारसे नहीं पका हुआ अन्नरस । (२) अजीर्ण–अर्थात् जैसा भोजन किया होय वैसाही पेटमें रक्खा रहे पका न होय ॥ १–३ ॥

अथ वमनपूर्वलक्षणम् ।

हृल्लासोद्गारसंरोधौ प्रसेको लवणास्यता । द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमिनां पूर्वलक्षणम् ४

उबकाईका आना, डकारका रुकना, मुखसे पानीका गिरना, मुखमें खारीपन और अन्नपानमें अत्यन्त अरुचि होती है । यह पूर्वलक्षण जानने ॥ ४ ॥

अथ वमनसामान्यलक्षणम् ।

छादयन्माननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः । निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ५ ॥ छादयन् पूरयन् अंगभञ्जनैः अङ्गभेदैः अर्दयन् अंगानि पीडयन् । वक्त्रं प्रधावितः दोषः छर्दिः इत्युच्यते ।

जो रोग वेगोंसे मुखको भरता हुआ, अंगोंको तोडता हुआ और पीडाको करता हुआ जो दोषोंका मुखमें आना है उसको वमन कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ वातजच्छर्दिलक्षणम् ।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः । उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् । कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीव दुःखम् ॥ ६ ॥ कषायं कषायरसम् । दुःखमिव छर्दयति ।

वातकी छर्दिमें छाती और पसलियोंमें पीडा, मुखशोष, मस्तक और नाभिमें दर्द, खाँसी, स्वरभंग, अंगोंमें सुई चुभोने सरीखी पीडा, डकारका प्रबल शब्द, झागोंयुक्त, टुटीसी, काली, पतली, कसैली और थोडी छर्दि (उलटी) अत्यन्त कष्टसे तथा बडे वेगसे होती है ॥ ६ ॥

अथ पित्तजच्छर्दिलक्षणम् ।

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्द्धतालक्षिसन्तापतमोभ्रमार्तः । पीतं भृशोष्णं हरितं च तिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥ ७ ॥

पित्तकी छर्दिमें मूर्च्छा, तृषा, मुखमें शोष, मस्तक, तालू और नेत्रोंमें सन्ताप, अन्धेरी आवे, भ्रम हो,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा पीली बहुत गरम, हरी, कडवी, धुएँयुक्त और दाहयुक्त वमन होती है ॥ ७ ॥

अथ कफवमनलक्षणम्।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्राऽरुचि-गौरवार्तः। स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्धि शुक्लं सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ८ ॥

कफकी वमनमें तन्द्रा, मुखमें मधुरता, कफका गिरना, तृप्तिका होना, निद्राका आना, अरुचि और भारीपन इनसे पीडित होता है, रोमांचोंका खडा होना तथा स्निग्ध (चिकनी), गाढी, मीठी, सुफेद और अल्प पीडावाली वमन होती है ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजवमनलक्षणम्।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलो प्रसक्ता। छर्दिस्त्रिदोषालवणाम्लनील-सान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥ ९ ॥

त्रिदोषजन्य वमनमें शूल, अन्नका अच्छे प्रकारसे परिपाक न होना, अरुचि, दाह, तृषा, श्वास और अत्यन्त मोह होता है। तथा खारी, खट्टी, नीले रंगकी गाढी, गरम और रुधिरवाली वमन होती है ॥ ९ ॥

अथागन्तुजवमनलक्षणम्।

असात्म्यजा च क्रिमजामजा च बीभत्सजा दौर्हृदजा च या हि। सा पञ्चमी तां च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १० ॥ एताः पञ्च अपि आगन्तुजत्वेन साम्यात् एकैव। अत एव सा आगन्तुजा पञ्चमी। विभावयेत् अनुबन्धयेत्।

अहित भोजन करनेसे कृमि तथा आमसे ग्लानिकारक पदार्थोंके देखनेसे और गर्भवती स्त्रियोंके गर्भके रहनेसे उत्पन्न हुई, इस प्रकार आगन्तुज वमन पांच प्रकारकी है। और वह आगन्तुज वमन पूर्वोक्त लक्षणोंसे यथादोषानुसार जाननी चाहिये ॥ १० ॥

अथ वमनोपद्रवाः।

कासः श्वासो ज्वरस्तृष्णा हिक्का वैचित्त्यमेव च। हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ ११ ॥ वैचित्त्यं विकृतचित्तत्वम्। तमकोऽत्र तमःश्वासपदेनैव तमकाख्यस्यापि श्वासस्य उक्तिः।

खाँसी, श्वास, ज्वर, तृषा, हिचकी, चित्तकी विकृति (घबराहट), छातीकी पीडा और अन्धकारसा दिखाई देना ये सब वमनके उपद्रव हैं ॥ ११ ॥

अथ वमनसाध्यासाध्यता।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता। सचन्द्रिकां तां प्रवदन्त्यसाध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥ १२ ॥ सचन्द्रिकां मयूरपिच्छचन्द्रिकाप्रभायुक्ताम्।

जो वमन क्षीण मनुष्यको अधिकतर उपद्रवयुक्त, रुधिर और राध (मवाद) सहित, तथा मोरपूँछकी समान कांतिवाली वमन होय तो असाध्य जाननी और जो वमन उपद्रवरहित होय तो साध्य है ॥ १२ ॥

अथ वमनचिकित्सा।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाच्छर्द्यो मता लंघनमेव तस्मात्। विधीयते मारुतजां विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १३ ॥

सर्व प्रकारकी वमन आमाशयमें उत्क्लेद (दोष) के होनेसे होती हैं इस कारण इनमें लंघन कराने चाहिये अथवा कफ और पित्तनाशक संशोधन देवे किंतु वातकी छर्दिमें यह चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १३ ॥

हन्यात्क्षीरोदकं पीतं छर्दिं पवनसम्भवाम्। मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः ससैंधवः ॥ १४ ॥ क्षीरोदकं नाशितस्य क्षीरस्य उदकम्।

दही डालकर दूधको फाडकर उस दूधका पानी पीनेसे अथवा घृतसहित और सेंधेनिमकके साथ मूँगका तथा आमलोंका यूष पीनेसे वातकी वमन दूर होती है ॥ १४ ॥

गुडूचीत्रिफलानिम्बपटोलैः क्वथितं जलम्। पिबेन्मधुयुतं तेन छर्दिर्नश्यति पित्तजा ॥ १५ ॥

गिलोय, हरड, बहेडा, आमला, नीम और पटोलपत्र इनका क्वाथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे पित्तजन्य वमन दूर होती है ॥ १५ ॥

हरीतकीनां चूर्णं तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम्। अधोमार्गीकृते दोषे छर्दिः शीघ्रं निवर्तते ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरडका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे दोषोंको गुदाके मार्गसे जानेपर वमन शीघ्र दूर होती है ॥ १६ ॥

विडंगत्रिफलाविश्वाचूर्णं मधुयुतं जयेत् । विडंगपल्लवशुण्ठीनां चूर्णं वा कफजां वमिम् । ॥१७॥ध्रुवं कैवर्तमुस्तकं गुडतजी इति लोके ।

वायविडंग, हरड, बहेडा, आमला और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे अथवा वायविडंग, केवटी मोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफकी वमन दूर हो जाती है ॥ १७ ॥

पिष्ट्वा धात्रीफलं लाजाञ्छर्करां च पलोन्मिताम् । दत्त्वा मधुपलं चापि कुडवं सलिलस्य च । वाससा गालितं पीतं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ १८ ॥

आमले धानकी खील और चार तोले खांड इनको पीसकर चार तोले सहत और सोलह १६ तोले जल डालकर वस्त्रमें छान लेवे, इसको पीनेसे त्रिदोषजन्य वमन दूर हो जाती है ॥ १८ ॥

गुडूच्या रचितं हन्ति हिमं मधुसमन्वितम् । दुर्निवारामपि च्छर्दिं त्रिदोषजनितां बलात् ॥ १९ ॥

गिलोयका हिम बनाकर सहत डालकर पीनेसे त्रिदोषसम्बन्धी अत्यंत दुर्निवार वमन बलात्कारसे नष्ट हो जाती है ॥ १९ ॥

एलालवंगगजकेसरकोलमज्जालाजाप्रियंगुधनचन्दनापिप्पलीनाम् । चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाताम् ॥ २० ॥

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरका गूदा, धानकी खीलें, फूलप्रियंगु, मोथा, चन्दन और पीपल इनका चूर्ण बनाकर सहत तथा खांडमें मिलाकर चाटनेसे कफ वायु तथा पित्तसे उत्पन्न हुई वमन दूर हो जाती है, इसको एलादि चूर्ण कहते हैं ॥ २० ॥

अश्वत्थबकुलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं जले । तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति दुर्जयाम् २१

सूखी हुई पीपलकी तथा मौलसिरीकी छालको जलाकर पानीमें बुझा लेवे उस पानीको पीनेसे तत्काल दुर्जय वमन दूर हो जाती है ॥ २१ ॥

पथ्यात्रिकटुधान्याकजीरकाणां रजो लिहन् । मधुना नाशयेच्छर्दिमरुचिं च त्रिदोषजाम् ॥ २२ ॥

हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियां और जीरा इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन और अरुचि नष्ट हो जाती है ॥ २२ ॥

बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः । छर्दिं त्रिदोषजां हन्ति पर्पटः पित्तजां तथा ॥ २३ ॥

बेलकी छाल अथवा गिलोयका क्वाथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे त्रिदोषजन्य वमन दूर हो जाती है तथा पित्तपापडेको पीसकर पीनेसे पित्तकी वमन दूर हो जाती है ॥ २३ ॥

आम्रास्थिबिल्वनिर्यूहः पीतः समधुशर्करः । निहन्याच्छर्दतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ २४ ॥

आमकी गुठली और बेलगिरी इनका क्वाथ बनाकर सहत तथा खांड मिलाकर पीनेसे जिस प्रकार अग्नि आहुतिका नाश करता है उसी प्रकार इससे वमनसहित अतिसारका नाश होता है ॥ २४ ॥

जम्ब्वाम्रपल्लवक्वथितं लाजरजःसंयुतं शीतम् । शमयति मधुना युक्तं वमिमतिसारं तृषामुग्राम् ॥ २५ ॥

जामुनके पत्ते और आमके पत्ते इनका क्वाथ बनाकर उसमें धानकी खीलोंका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे वमन, अतीसार और घोर तृषा शांत होती है ॥ २५ ॥

बीभत्सजां हृद्यतमैरिष्टैर्हृद्यां फलैः । लंघनैरामजां छर्दिं जयेत्सात्म्यैरसात्म्यजाम् ॥ २६ ॥

बीभत्स पदार्थोंके दर्शन आदिसे उत्पन्न हुई वमनको अत्यन्त प्रिय पदार्थोंके उपयोगसे जीते । गर्भसे उत्पन्न हुई वमनको प्रियफलोंके उपयोगसे जीते । आमसे उत्पन्न वमनको लंघनोंसे जीते और अहित पदा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थोंसे उत्पन्न हुई वमनको हितपदार्थोंसे जीते ॥ २६ ॥

कृमिहृद्रोगवद्वन्याच्छर्दिं कृमिसमुद्भवाम् । तत्रतत्र यथादोषं क्रियां कुर्याच्चिकित्सकः ॥ २७ ॥

वैद्य कृमिदोषसे उत्पन्न हुई वमनको कृमिरोगोक्त और हृदयरोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये और उसी दोषानुसार विचार कर किया करे ॥ २७ ॥

सोद्गारायां भृशं छर्द्यां मूर्वायाः धान्यमुस्तयोः । समधूकाञ्जनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम् ॥ २८ ॥

बहुत डकारवाली वमन होय तो मूर्वा, धनियाँ, नागरमोथा, मुलैठी और रसौत इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे ॥ २८ ॥

सौवर्चलमजाजी च शर्करा मरिचानि च । क्षौद्रेण सहितं लीढं सद्यच्छर्दिंनिवारणम् ॥ २९ ॥

कालानिमक, जीरा, खांड और काला मिरच इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे वमन तत्काल शमन हो जाती है ॥ २९ ॥

इति वमनाधिकारः संपूर्णः ।

अथ तृष्णाधिकारः ।

तत्र तृषानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वाप्यूर्द्धं चितं पित्तविवर्द्धनैश्च । पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥ स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् सम्भवतीह जन्तोः । तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथान्यामसमुद्भवा च । भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिंगान्यनुपूर्वशस्तु ॥ २ ॥ नराणां पित्तं स्वस्थान एव संचितं पित्तं सवातम् पित्तविवर्द्धनैः कट्वम्लोष्णादिभिः कुपितं पित्तं भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयादुपवासादेश्च वातः कुपितः तद्वयमूर्द्धं प्राप्तम् ऊद्धवशात्पिपासां जनयेत् । न केवलं तालुनि एव दूषिते तृषा भवति किन्तु जलवाहिस्रोतःसु अपि । अत आह स्रोतःसु इत्यादि ननु अत्र बहुवचनं न युक्तं यतो जलवहे द्वे स्रोतसी सुश्रुतेन उक्ते । उच्यते । तयोरेव अनेकप्रतानयोगान्न दोषः अपां वाहिषु स्रोतःसु इति जिह्वादेरपि उपलक्षणम् । यत आह चरकः—रसवाहिनीश्च धमनीर्जिह्वाहृदयगलतालुक्लोमसंशोषान् । नृणां देहेषु कुरुतस्तृष्णामतिबलां पित्तानिलौ ॥ ३ ॥

मनुष्योंके अपने स्थानमें संचित हुआ पित्त अपने बढानेवाले तीखे, खट्टे तथा उष्ण आदि पदार्थोंसे कोपको प्राप्त होता है और अपने स्थानमें संचित हुई वायु भयसे, श्रमसे तथा बलका क्षय करनेवाले उपवासादिकसे कोपको प्राप्त होती है, इस प्रकार कोपको प्राप्त हुआ पित्त और वायु ये दोनों ऊपरको आकर तालुयेको दूषित करके तृषाको उत्पन्न करते हैं । केवल तालुयेके ही दूषित होनेसे मनुष्योंके तृषा (प्यास) उत्पन्न होती है किन्तु जलवाहिस्रोतोंके दूषित होनेपर भी उत्पन्न होती है । जलको बहानेवाले दो स्रोत (छिद्र) हैं ऐसा सुश्रुत कहता है, फिर यहां 'जलको बहानेवाले स्रोत' ऐसा बहुवचन क्यों कहा ? समाधान—दो स्रोतोंका बहुतसे तंतुओंकरिके योग है इस कारण यहां बहुवचन आनेमें कुछ भी दोष नहीं आता । स्रोत यह शब्द उपलक्षण रूप है इस कारण इस शब्दसे जीभ आदिका भी ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि चरक कहता है कि, पित्त और पवन रसको बहानेवाली नाडी, जीभ, गला, तालू और तृषा लगनेके स्थानके संशोषणसे मनुष्योंके शरीरमें प्रबल तृषा उत्पन्न होती है । वातज, पित्तज, कफज, क्षतज, क्षयज, आमदोषज और भोजन किये हुए अन्नसे उत्पन्न होनेवाली इस प्रकार तृषा सात प्रकारकी है । अब इनके अनुक्रमसे लक्षण कहता हूं ॥ १–३ ॥

अथ तृषासामान्यलक्षणम् ।

तालोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहः सन्तापमोहभ्रमविप्रलापाः । सर्वाणि रूपाणि भवन्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्यामुत्पत्तिकाले तु विशेषतो हि ॥ ४ ॥

तालु, होंठ, कंठ और मुख इनमें शोष तथा दाह, सन्ताप, मोह, भ्रम और बकवाद ये सब तृषाके लक्षण हैं। तृषाकी उत्पत्तिके समयमें ये लक्षण विशेष करके उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

अथ वातजतृषालक्षणम् ।

क्षामास्यता मारुतसम्भवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि । स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ५ ॥ शङ्खशिरःसु शङ्खयोः शिरसि च तोदः स्रोतोनिरोधः रसाम्बुवाहिनीधमनीनिरोधः ।

वायुकी तृषामें मुख उतर जाता है, कनपटी और मस्तकमें पीडा होती है, रसको तथा जलको बहनेवाली धमनी रुक जाती है, मुखका स्वाद निरस हो जाता है और यह तृषा शीतल जलसे वृद्धिको प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

अथ पित्तजतृषालक्षणम् ।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः । शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूपनं च ॥ ६ ॥ विलापः प्रलापः । प्रततश्च शोषः अविरतः शोषः । शीताभिनन्दा शीतेच्छा । परिधूपनं कण्ठाद्धूमनिर्गम इव ।

पित्तकी तृषामें मूर्छा, अन्नपर अरुचि, बकवाद, नेत्रोंमें लाली, निरंतर शोष, शीतकी इच्छा, मुख कडवा हो जाता है और कंठमेंसे धुआँसा निकलता है ॥ ६ ॥

अथ कफजतृषालक्षणम् ।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेन्नरस्य । निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तयार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥ ७ ॥ अग्नौ जठराग्नौ कफसंवृते स्वकारणकुपितेन कफेन उपरिष्टाच्छादिते । बाष्पावरोधादग्नेरूष्मावरोधादवरुद्धानलोष्मणा अम्बुवहस्रोतःशोषणाद्बलासेन कफेन नरस्य तृट् भवेत् । तया तृष्णया अर्दितः पीडितः शुष्यति कृशो भवति ।

जठराग्निके ऊपर भागमें अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुए कफसे आच्छादित होनेके कारण जठराग्निकी उष्णता रुककर उस उष्णतासे जलको बहानेवाले स्रोतोंका शोषण होनेके कारण कफसे जो तृषा होती है, उस तृषासे पीडित हुए मनुष्यके शरीरमें अत्यंत कृशता हो जाती है, निद्रा बढ जाती है, भारीपन होता है और मुख मधुर हो जाता है ॥ ७ ॥

अथ क्षतजतृषालक्षणम् ।

क्षतस्य रुक्छोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥ ८ ॥ क्षतस्य शस्त्रादिक्षतयुक्तस्य रुक् पीडा ।

शस्त्रादिकसे जखमी हुए मनुष्यको पीडाके होनेसे और रुधिरके निकलनेसे जो तृषा लगती है उसको क्षतज कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ क्षतजतृषालक्षणम् ।

रसक्षयाद्या क्षयसम्भवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु । पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः । रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ॥ ९ ॥ रसक्षये लक्षणानि सुश्रुतेन उक्तानि-" रसक्षये हृत्पीडा कम्पः शोषः शून्यता तृष्णा चेति । " व्यवस्येज्ज्ञानीयात् ।

रसके क्षय होनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है उसको क्षयज कहते हैं। इस तृषासे पीडित मनुष्य रात दिन पानी पिया करता है परन्तु कभी संतोष नहीं होता। कोई कोई वैद्य इसको सन्निपातकी तृषा भी कहते हैं। सुश्रुतमें जो रसक्षय होनेके लक्षण कहे हैं वे सब लक्षण इस तृषामें होते हैं ऐसा वैद्य जाने । सुश्रुतमें कहा है कि--" जब रसका क्षय होता है तो हृदयमें पीडा, कंप, शोष, जडता और तृषा उत्पन्न होती है " ॥ ९ ॥

अथामोत्पन्नतृषालक्षणम् ।

त्रिदोषलिंगामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥ १० ॥

जो तृषा त्रिदोषसे उत्पन्न होती है उसमें तीनों दोषोंके चिह्न होते हैं, उसमें हृदयमें पीडा, थूक आना और ग्लानि ये विकार उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ भुक्तोद्भवतृषालक्षणम् ।

स्निग्धं तथाम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥ ११ ॥ लवणं चेति चकारात्कटु च ।

स्निग्ध, खट्टे, खारी, तीखे और भारी अन्नोंको भक्षण करनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है उसमें वारंवार शीघ्र शीघ्र जल पीनेकी इच्छा होती है ॥ ११ ॥

अथ तृषोपद्रवाः ।

दीनस्वरः प्रताम्यन्दीननेत्रहृदयशुष्कगलताळुः । भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥ १२ ॥ शोषिणी धातुशोषिणी ।

स्वरका दुबला हो जाना, ग्लानि, मुख और हृदयकी दीनता, गले और तालुयेका सूखना इन सब उपद्रववाली तृषा होय तो कष्टसाध्य है और धातुओंको भी शोषण करे है ॥ १२ ॥

अथोपद्रवयुक्ततृषाऽरिष्टम् ।

ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् । सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् । घोरोपद्रवयुक्ता तृष्णा मरणाय विज्ञेया ॥ १३ ॥ आदिशब्दादतीसारादीनां ग्रहणम् । अतिप्रसक्ताः नितरां घोरोपद्रवयुक्ताः अतीव मुखशोषादियुक्ताः ।

ज्वर, प्रमेह, क्षय, खाँसी, श्वास और अतीसार इत्यादि रोगोंसे पीडित मनुष्योंको रोगसे कृश हुए मनुष्योंको और वमन करनेवाले मनुष्योंको जो अत्यन्त घोर तृषा लगती है, तथा मुखशोष आदि उपद्रवोंसे युक्त जो सर्व प्रकारकी तृषा उत्पन्न होती है वह मारनेके लिये ही उत्पन्न होती है ॥ १३ ॥

अथ तृषाचिकित्सा ।

वातघ्नमन्नपानं मृदु लघु शीतं च वाततृष्णायाम् । तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते । स्वादु तिक्तं द्रवं शीतं पित्ततृष्णापहं परम् ॥ १४ ॥

वातकी तृषामें वातनाशक, कोमल, हलके और शीतल ऐसे अन्नपान उपयोग करे । वातकी तृषामें गुडके साथ दहीका सेवन श्रेष्ठ है । मधुर, कडवे, पतले और शीतल पदार्थोंके उपयोग करनेसे पित्तकी तृषा शांत हो जाती है ॥ १४ ॥

मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः । शृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ १५ ॥ छत्राख्यो धान्यकं काश्मिद्धात्रीं च दद्यात् । चन्दनमत्र धवलं तस्य अतितृष्णाहरत्वात् । शृतमर्द्धपक्वमत्र कर्तव्यम् । इति षडङ्गपानम् ।

नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, धनियां, खस और चन्दन इन सबको जलमें औटाकर उस जलको शीतल करके पीनेसे तृषा, दाह और ज्वर शांत हो जाता है इसमें कुछेक आमले भी डालने चाहिये । यहां चन्दन शब्दसे लाल चन्दन नहीं सफेद चन्दन समझना चाहिये । कारण यह है कि, सफेद चन्दनसे तृषा विशेष करके दूर होती है । इसे औटाते समय जब इसमेंसे आधा जल जल जाय तब इसको अग्निपैसे उतार लेना चाहिये । इस जलको 'षडंगपान' ऐसा कहते हैं ॥ १५ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम् । काश्मरीशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः १६

धानकी खीलोंको शीतल जलमें भिजो देवे, फिर उसको मलकर उसमें गुड घोलकर कुम्भेरके फल और मिश्री डालकर पिये तो उससे तृषाकी पीडा शांत हो जाती है ॥ १६ ॥

आस्तरणमार्द्रवासः प्रावरणं चार्द्रवासः स्यात् । तेन पिपासा शाम्यति दाहश्चोग्रोऽपि देहिनां नियतम् ॥ १७ ॥

भीजे हुए वस्त्रपर सोनेसे अथवा भीजे वस्त्रको ओढकर सोनेसे तृषा और उग्र दाह नष्ट हो जाता है॥ १७॥

गोस्तनीक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः । नियतं नासिकापीते तृष्णा शाम्यति दारुणा॥ १८॥

ईखका रस और दूध मिलाकर उसमें दाख, मुलहटी, सहत और कमल डालकर उसको नासिकाके द्वारा पान करनेसे दारुण तृषा शांत हो जाती है॥ १८॥

वैशद्यं जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखे जलम् । तृष्णादाहप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम्॥ १९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुखमें विशदता उत्पन्न होती है और गीलापन होता है । तथा सहतका गण्डूष (कुल्ला) मुखमें धारण करनेसे घोर तृषा और दाह दूर होती है ॥ १९ ॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि निधापयेत् । केशरं मातुलुंगस्य घृतसैन्धवसंयुतम् ॥ २० ॥

जीभ, तालु, कण्ठ और तृषा लगनेका स्थान सूखता होय तो बिजौरे नींबूके रसको घीमें तथा सेंधेनिमकमें पीसकर मस्तकपर लगावे तो तुरन्त शान्ति होय ॥ २० ॥

दाडिमं बदरं लोध्रं कपित्थं बीजपूरकम् । पिष्ट्वा मूर्द्धनि लेपस्तु पिपासादाहनाशनः २१

अनार, बेर, लोध, कैथ और बिजौरानींबू इनको एकत्र पीसकर मस्तकपर प्रलेप करनेसे तृषा और दाह शांत होती है ॥ २१ ॥

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् । पाययेद्वामयेच्चाथ तेन तृष्णा प्रशाम्यति २२

तृषातुर मनुष्यको सहत डालकर शीतल जल गले तक पिलाकर कय करा देवे तो तृषा शांत हो जायगी ॥ २२ ॥

प्रातः शर्करयोपेतः क्काथो धान्याकसम्भवः । जयेत्तृष्णां तथा दाहं भवेत्स्रोतोविशोधनम् ॥ २३ ॥

प्रातःकाल धनियाँका क्काथ बनाकर उसमें खांड डालकर पीनेसे तृषा और दाह दूर हो जाती है और स्रोत शुद्ध हो जाते हैं ॥ २३ ॥

आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम् । एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे । तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषं च दारुणम् ॥ २४ ॥

आमले, कमल, कूठ, धानकी खीलें और वडके अंकुर इन सबका एकत्र चूर्ण करके सहतमें गोली बनाकर मुखमें रखनेसे महा उग्र तृषा और मुखका दारुण शोष नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

क्षतोद्भवां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ।

घावके होनेसे उत्पन्न हुई तृषाको उसकी पीडाको दूर करनेसे, रसोंको पिलानेसे और रुधिरके पिलानेसे दूर करे ॥

क्षयोत्थितं क्षीरजलं निहन्यान्मांसोदकं वा मधुरोदकं वा ॥ २५ ॥

रसके क्षय होनेसे उत्पन्न हुई तृषाको दूधसहित जल पिलाकर, मांसका रस पिलाकर और मधुर पानी (शरबत वगैरह) पिलाकर शमन करे ॥ २५ ॥

आमोद्भवां बिल्ववचायुतानां जयेत्कषायैरथ दीपनानाम् ।

आमसे उत्पन्न हुई तृषाको बेलगिरी और वच तथा दीपन पदार्थोंका क्काथ पिलाकर शमन करे ।

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेच्च क्षयं विना सर्वकृतां च तृष्णाम् ॥ २६ ॥ उल्लिखनैः लेखनद्रव्यैः ।

भारी भोजन करनेसे तृषा उत्पन्न होय तो कफको उखाडनेवाले पदार्थोंसे दूर करे । क्षयकी तृषाको छोडकर सर्व प्रकारकी तृषाको इनहीं पदार्थोंसे दूर करना चाहिये ॥ २६ ॥

स्निग्धेऽन्ने भुक्ते या तृष्णा स्यात्तां गुडाम्बुना शमयेत् । अतिरोगदुर्बलानां तृष्णां शमयेन्नृणामिहाशु पयः ॥ २७ ॥ पयोऽत्र दुग्धम् ।

स्निग्ध अन्नको भक्षण करनेसे जो तृषा उत्पन्न होय तो उसको गुडके सरबतसे शांत करे । अत्यंत रोगसे दुर्बल हुए मनुष्यकी तृषा दूधसे तत्काल शांत हो जाती है ॥ २७ ॥

मूर्च्छाछर्दितृषानाहस्त्रीमद्यभृशकर्षिताः । पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ॥ २८ ॥ सात्म्यान्नपानभैषज्यैस्तृष्णां तस्य जयेत्पुरः । तस्यां जितायामन्योऽपि व्याधिः शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ २९ ॥

मूर्च्छा, वमन, तृषा, अफरा, स्त्रीप्रसंग और मद्यपानसे पीडित मनुष्योंको शीतल जल पिलावे । रक्तपित्तमें तथा मदात्ययमें हितकारक अन्न पानोंसे एवं हितकारक औषधियोंसे तृषाको शांत करे । जब तृषा शांत हो जाय तो फिर पश्चात् दूसरे रोग भी चिकित्सा करने योग्य हो जाते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

तृषापूर्वमपक्षीणो न लभेत जलं यदि । मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वरितं नरः ॥ ३० ॥

तृषासे व्याकुल हुए मनुष्यको प्रथम जो जल न मिले तो वह मनुष्य मर जाता है अथवा कोई बडा रोग उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृषितो मोहमाप्नोति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति । तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न कंचिद्वारि वारयेत् ॥ ३१ ॥ अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान्धारयते चिरम् । तोयाभावात्पिपासार्तः क्षणात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ ३२ ॥

तृषातुर मनुष्यको मोह उत्पन्न होता है और मोहसे प्राण नष्ट हो जाते हैं। इस कारण कभी किसी अवस्थामें भी जल देना वर्जित नहीं है । अन्नके न मिलनेपर तो प्राणी बहुत दिनोंतक जी सक्ता है किंतु जलके न मिलनेपर तृषासे पीडित मनुष्य क्षणमात्रमें मर जाता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति तृष्णाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मूर्च्छाधिकारः ।

तत्र मूर्च्छानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः । वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥ करणायतनेष्वग्र्या बाह्येष्वभ्यन्तरेषु च । निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥

क्षीण हुए, बहुत दोषवाले, विरुद्ध भोजनको सेवन करनेवाले, मलमूत्रादिकके वेगोंको रोकनेवाले, लकडी आदिकी जिनके चोट लगी हो और अल्प सत्त्व गुणवाले जिनके मनके स्थानोंमें ज्ञानेन्द्रियोंमें और कर्मेन्द्रियोंमें दोष प्रवेश करते हैं उनको मूर्च्छा उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ २ ॥

बहुदोषस्य अधिकदोषस्य न तु अनेकदोषस्य । तदा मूर्च्छा त्रिदोषजैव स्यात् तथैव अस्तु को दोषः तत्र पृथक् दोषजानां मूर्च्छानां वक्ष्यमाणत्वात् । वेगाघातात् मलादेः, अभिघातात् लगुडादिना हीनसत्त्वस्य स्वल्पसत्त्वगुणस्य, अर्थात् अधिकतमोगुणस्य यत उक्तम्- " मूर्च्छा पित्ततमःप्राया " इति । करणायतनेषु करणं मनस्तस्य आयतनेषु स्वस्थानेषु बाह्येषु कर्मेन्द्रियेषु आभ्यन्तरेषु बुद्धीन्द्रियेषु ।

' बहुत दोषवाले ' इस शब्दका अर्थ ' अधिक दोषवाले ' ऐसा समझना । ' अनेक दोषवाले ' ऐसा नहीं समझना । कारण यह है कि, ऐसा समझा जाय तो मूर्छा तीनों दोषोंके समुदायसे होती है ऐसा अर्थ होता है । शंका—मूर्च्छा तीनों दोषोंके समुदायसे होती है ऐसा अर्थ होनेमें क्या अनुचित है ? समाधान—एक एक दोषसे मूर्च्छा होती है ऐसा कहा है, इस कारण यहां निदानपूर्वक सम्प्राप्तिके विषयमें तीनों दोषोंके समुदायसे मूर्च्छा होती है, ऐसा कहना उचित नहीं है । ' अल्प सतोगुणवाले मनुष्यको मूर्च्छा आती है ' इस वाक्यका अर्थ ' अधिक तमोगुण वालेको मूर्च्छा आती है ' ऐसा समझना । कारण यह है कि, मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक होता है ।

अथ मूर्च्छासामान्यलक्षणम् ।

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः । तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् । मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥ तमोगुणः अज्ञानहेतुः अभ्युपैति आगच्छति । सुखदुःखव्यपोहकृत्सुखदुःखज्ञाननाशकरम् । नष्टे सुखदुःखज्ञाने नरः काष्ठवत्पतति तां मोहो मूर्च्छेति प्राहुः इत्यन्वयः । मूर्च्छाया मूर्च्छायोऽपि पर्यायः । यत उक्तम्—संज्ञोपघातो मूर्च्छायो मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छनं तथा । कश्मलं प्रलयो मोहः संन्यासस्तु मृतोपमः ॥ ५ ॥

संज्ञाको बहानेवाली नाडियोंके वायु आदिसे अवरुद्ध होनेपर सहसा सुखका तथा दुःखका ज्ञान नष्ट करनेवाला तमोगुण प्राप्त होता है और इस तमोगुणसे सुख दुःखका ज्ञान नष्ट होकर मनुष्य काष्ठकी समान गिर जाता है यह रोग मूर्च्छा अथवा मोह कहा जाता है और यह मूर्च्छा छः प्रकारकी है । मूर्च्छाका पर्यायशब्द ' मूर्च्छाय ' भी है, कहा भी है कि "संज्ञोपघात, मूर्च्छाय, मूर्च्छा, मूर्च्छन, कश्मल, प्रलय और मोह ये सब मूर्च्छाके नाम हैं । जिससे मनुष्य मृतककी समान हो जाय ऐसा जो मोह वह ' संन्यास ' कहा जाता है ॥ ३–५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ मूर्च्छाषड्विधत्वम्।

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च। षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥६॥ यत् उक्तम्-मूर्च्छा पित्ततमःप्रायेति।

वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मद्यसे उत्पन्न होनेवाली और विषसे उत्पन्न होनेवाली ऐसी मूर्च्छा छः प्रकारकी हैं। इन सब प्रकारकी मूर्च्छाओंमें भी पित्त अध्यक्षपनेसे रहता है। कहा भी है कि, मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिकतासे होता है ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छापूर्वरूपम्।

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलक्षयः। सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं तां विभावयेत् ॥ ७ ॥

हृदयकी पीडा, जम्भाइयोंका आना, ग्लानि, संज्ञाका नाश और बलका नाश ये सब मूर्च्छाओंके पूर्व लक्षण हैं। आगे उसके वातादि भेदोंसे अलग अलग लक्षण कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ वातमूर्च्छालक्षणम्।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथ वारुणम्। पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥८॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च। कार्श्यं श्यावारुणा छाया मूर्च्छायें वातसम्भवे ॥ ९ ॥ नीलं नीलवर्णम्, कृष्णं कज्जलाभम्, अरुणम् अलक्तरागम्, तमः प्रविशति मूर्च्छतिश्यावारुणा छाया गात्रस्य।

वातकी मूर्च्छामें आकाशको नीला, काला अथवा लाल देखता देखता मूर्च्छित हो जाता है, फिर तत्काल चैतन्य अर्थात् होशमें हो जाता है। शरीरमें कंप, अंगोंमें तोडने सरीखी पीडा, हृदयमें पीडा, शरीर कृश हो जाता है और शरीरका रंग कालेपनको लिये लाल हो जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ पित्तजमूर्छालक्षणम्।

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा। पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदः प्रतिबुध्यते ॥ १० ॥ सपिपासः ससन्तापो रक्तपित्ताकुलेक्षणः। सम्भिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छायें पित्तसम्भवे ॥ ११ ॥

आकाशको लाल, हरा, अथवा पीले रंगका देखता २ मूर्च्छित हो जाय, पसीने युक्त होकर फिर होश हो, तृषा लगे, संताप उत्पन्न हो, नेत्र लाल तथा पित्तसे व्याकुल हो जाय, दस्त पतला होने लगे और शरीरका रंग पीला हो जाय तो जानना कि उसको पित्तसे मूर्च्छा उत्पन्न हुई है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ कफमूर्च्छालक्षणम्।

मेघसङ्काशमाकाशं तमोभिर्वा घनैर्वृत्तम्। पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ १२ ॥ गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा। सप्रसेकः सहल्लासो मूर्च्छायें कफसम्भवे ॥ १३ ॥ मेघसंकाशं शुभ्रमेघसंकाशमित्यर्थः। यत आह सुश्रुतः-"कफेन पश्येदूपाणि श्वेताभ्रप्रतिमानि तु।" घनैर्निबिडैस्तमोभिः। गुरुभिरंगैरुपलक्षितः मूर्च्छायः षड्विध उक्तः सुश्रुतेन।

आकाशको बादलोंसे आच्छादित देखकर अथवा घोर अंधकारसे घिरा हुआ देखकर मूर्च्छित हो जाय। फिर बहुत कालमें चैतन्य हो, जिस प्रकार गीले चमडेसे ढक देते हैं उसी प्रकार उसका शरीर भारी अंगोंसे युक्त जान पडता है। मुखमें पानी भर भर आवे और उबकाई आवे तो जानना कि, यह कफकी मूर्छा है। 'बादल' यहां जो बादल शब्द कहा सो बादल सुफेद समझने। क्योंकि सुश्रुतने कहा है कि, कफसे सुफेद बादलोंके समान रूपोंको देखता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ चरकमतेन त्रिदोषज-मूर्च्छालक्षणम्।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः। स जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥१४॥ अपस्मार इवागतस्तेन महता अभिघातेन पतति चिरेण प्रतिबुध्यते तर्हि तयोः को भेद इत्यत आह-सान्निपातिकमूर्च्छायो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विना बीभत्सचेष्टितैः ॥१५॥ कफेन वमनदन्तवट्टनाक्षीविकृत्यादीभिर्विना पातयति।

जो मूर्च्छा सन्निपातसे होती है उसमें तीनों दोषोंके चिह्न देखनेमें आते हैं और उसमें मृगीकी समान मनुष्य बडे जोरसे गिर जाता है उससे गिरा हुआ मनुष्य बहुत कालमें चैतन्य होता है। जब मृगी और सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण तो एकसे ही मिलते हैं, फिर इनमें अंतरही क्या रहा? यदि कोई ऐसी शंका करे तो उसके समाधानके लिये चरक कहता है कि "मृगीमें झागोंसहित वमन" दांतोंका चबाना और नेत्रोंमें विकृति इत्यादिक भयानक चेष्टा होती हैं और सान्निपातिक मूर्च्छामें यह चेष्टा नहीं होती ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ रुधिरोत्पन्नमूर्च्छानिदानम्।

पृथिव्यम्भस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः। तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥ १६ ॥ तमोरूपं तमोबहुलम्। मानवाश्च ये तामसाः। न तु सात्त्विका राजसाश्च। अत्रैके वदन्ति नैव युक्तिः समीचीना तर्हि चम्पकादिगन्धेन अपि मूर्च्छा प्रसज्येत तत्रापि गन्धस्य पार्थिवत्वात्। अत आह—द्रव्यस्वभावमित्येके दृष्ट्वा यदपि मुह्यति। दर्शनादसृजस्तज्जाद्गन्धाच्चैव प्रमुह्यति ॥१७॥

पृथिवी और जल यह दोनों तमोगुणके अधिक अंशों युक्त हैं। और गंध तथा रुधिर पृथिवीके तथा जलके पदार्थ रूप हैं इस कारण सतोगुणी और रजोगुणी नहीं किन्तु जो तमोगुणी मनुष्य हैं वह रुधिरकी गंधसे मूर्च्छित हो जाते हैं। इस विषयमें बहुतस मत ह कोइ कहते हैं कि, गंध तमोगुणके कार्यरूप पृथ्वीका भाग है इस कारण इससे मनुष्य मूर्च्छित होते हैं यह युक्ति ठीक नहीं। क्योंकि यदि ऐसा होय तो चंपक आदिकी गंध भी पृथ्वीसम्बन्धी है इस लिये उसकी गंधसे भी मूर्च्छा होनी चाहिये। इस युक्तिको छोडकर कितनेक वैद्य कहते हैं कि, "रुधिरकी गंधसे नहीं किन्तु रुधिरके देखनेसे अत्यंत मूर्च्छा होती है। यह रुधिरके ऐसे स्वभाव होनेसे ही होती है।" भोज तो ऐसा कहता है कि, रुधिरके दर्शनसे और गंधसे भी मूर्च्छा होती है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ रुधिरमूर्च्छालक्षणम्।

स्तब्धांगयष्टिस्त्वसृजाद्गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ १८ ॥

रुधिरकी मूर्च्छा होय तो शरीर स्तब्ध (जकडासा) हो जाता है और गूढ श्वास हो जाता है ॥ १८ ॥

अथ मद्यमूर्च्छालक्षणम्।

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः। त एव तस्मात्ताभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १९ ॥ ये गुणाः लघुरूक्षाशुविशदव्यवायितीक्ष्णविकाशिसूक्ष्मोष्णानिर्देश्यरसत्वादयः तैलादौ द्रव्ये व्यस्तास्तीव्राश्च सन्ति त एव गुणाः विषमद्ययोस्तु तीव्रतरत्वन स्थिताः तत्रापि भेदः—"त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः" इति।

लघुता, रूक्षता, शीघ्रता, विशदता, व्यवायिपन, तीक्ष्णता, विकाशीपन, सूक्ष्मपन, उष्णपन और निरूपण करनेके लिये अशक्य रसयुक्तपन इत्यादि जो गुण तैलादिक पदार्थोंमें अलग अलग रहते हैं और तीव्र हैं वेही गुण विषमें और मद्यमें अत्यंत तीव्रतासे रहते हैं। उनमें भी इतना भेद है कि, मद्यकी अपेक्षा ये गुण विषमें अधिक बलवान् हैं, मद्यमें तथा विषमें ये गुण दोनों होनेसे मद्य और विषसे मूर्च्छा होती है ॥ १९ ॥

अथ मद्यमूर्च्छालक्षणम्।

मद्येन प्रलपञ्छेते नष्टविभ्रान्तमानसः। गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ २० ॥ नष्टविभ्रान्तमानसः नष्टं सर्वथा स्मृतिहीनं विभ्रान्तं रज्जौ सर्पज्ञानयुक्तं मानसं यस्य सः। जरां जीर्णताम्। तन्मद्यम्।

मद्य (सराब) की मूर्च्छामें मन सर्वथा स्मृतिहीन हो जाता है और ऐसी भ्रान्ति हो जाती है कि, जेवरी (रस्सी) आदिको साँप समझने लगता है जबतक पी हुई मदिरा जीर्ण नहीं होती तबतक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूर्च्छित मनुष्य अपने अंगोंको धरतीपर पटका करता है ॥ २० ॥

अथ विषमूर्च्छालक्षणम् ।

वेपथुस्वमतृष्णाः स्युः स्तम्भश्च विषमूर्च्छिते । वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः॥२१॥ विषस्य मूलकन्दफलपत्रक्षीरादिभेदभिन्नस्य यथास्वं लक्षणमुक्तं सुश्रुते कल्पस्थाने तल्लक्षणं मद्यापेक्षया तीव्रतरं वेदितव्यं न तु संज्ञानाशेन साम्यधर्मात् ।

विषकी मूर्च्छामें कंप, निद्रा, तृषा और अंधकार उत्पन्न होता है, विषके जो मूल, कंद, फल, पत्र और क्षीरादिक अलग अलग भेद हैं उनके जो जो लक्षण सुश्रुतके कल्पस्थानमें कहे हैं वेही वेही लक्षण मद्यके लक्षणोंकी अपेक्षा अधिक तीव्र हैं ऐसा जानना। कि संज्ञानाश करनेका धर्म मद्यमें और विषमें समान है, कुछ लक्षण समान नहीं हैं ॥ २१ ॥

अथ मूर्च्छाभ्रमतंद्रादिपरस्परभेदः ।

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः । तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ २२ ॥ रजःपित्तानिलाद् भ्रम इति न अत्र समुच्चयः । केवलपित्तज्वरे भ्रमस्य उक्तत्वाद् भ्रमश्च चक्रारूढस्येव भ्रमवस्तुज्ञानं स्वदेहस्य भ्रमत इव ज्ञानं च ।

मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक होता है, भ्रम रजोगुण, पित्त और वायुसे होता है, तंद्रा तमोगुण, वायु और कफसे होती है और निद्रा, कफ तथा तमोगुणसे होती है। रजोगुण पित्त और वायु इन तीनोंके समुदायसे भ्रम होता है ऐसा नहीं समझना क्योंकि केवल पित्तज्वरमें भी भ्रम होता है ऐसा कहा है । जिस प्रकार घूमते हुए चाकके ऊपर सम्पूर्ण पदार्थ घूमते हुए दिखाई देते हैं उसी प्रकार सब वस्तुओंको घूमता हुआ देखे और अपने शरीरको भी घूमता हुआ देखे, यह लक्षण जिसमें होते हैं उसको भ्रम कहते हैं२२॥

अथ तंद्रालक्षणम् ।

इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥ इन्द्रियाणामर्थः प्रयोजनं येषु अर्थाद्विषयेषु, असंवित्तिः असम्यक् ज्ञानम् इति इन्द्रियार्थाऽसम्यग्ज्ञानादि । निद्रायां प्रबुद्धस्य क्लमाभावस्तन्द्रायां तु प्रबोधितस्याऽपि क्लम इत्यनयोर्भेदः ।

निद्रासे घिरे हुएकी समान जिसमें विषयोंका ज्ञान नष्ट हो जाय, शरीरमें भारीपन, जम्भाई, तथा क्लम (ग्लानि) प्राप्त हो उसको तन्द्रा कहते हैं । जब मनुष्यका निद्रा आती है फिर जागनेपर उसको क्लम नहीं रहता और तन्द्रामें तो जागनेके पश्चात् भी क्लम रहता है। इतना ही निद्रामें और तन्द्रामें भेद है॥२३॥

अथ क्लमलक्षणम् ।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वाससङ्गतः । क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ २४ ॥ इन्द्रियाणां बुद्धीन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणां च । अर्थः प्रयोजनं विषयग्रहणं तस्य प्रबाधकः प्राबल्येन बाधकः ।

विना ही परिश्रम किये उत्पन्न हो, श्वाससंयुक्त और ज्ञानेन्द्रियाके तथा कर्मेन्द्रियोंके विषयोंके ग्रहणको जो अत्यंत रोकनेवाला देहमें श्रम होता है उसको क्लम कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ निद्रालक्षणम् ।

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः । विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ॥ २५ ॥ क्लान्ते ग्लाने श्रान्ते इति यावत् कर्मात्मानः क्लमान्विताः कर्मेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि च क्लमान्विताः इन्द्रियाणि श्रान्तानि ।

जब मन क्लमको प्राप्त होकर थकी हुई ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके विषयके ग्रहणसे रुकता है तब मनुष्य सो जाता है ॥ २५ ॥

अथ संन्याससम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः । संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः । ॥ २६ ॥ स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः । प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥ २७ ॥ आक्षिप्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विनाश्य संन्यस्यन्ति मूर्च्छयन्ति प्राणायतनं हृदयम् । संन्यस्तः मूर्च्छितः काष्ठीभूतः क्रियारहितः । अत एव मृतोपम इति । सद्यःफलां क्रियां सूचीव्यधनाञ्जनावपीडकपिकच्छुघर्षणवृश्चिकादिदंशनादिरूपाम् ।

जब हृदयमें रहनेवाले अत्यंत बलवान् कुपित दोष प्राणोंके स्थानरूप हृदयमें वाणीकी, देहकी तथा मनकी चेष्टाको नष्ट करके बलहीन मनुष्यको मूर्च्छित कर देते हैं उसको संन्यास कहते हैं । जब वह मनुष्य काष्ठकी समान क्रियारहित मृतककी समान हो जाता है । इस मनुष्यके शरीरमें सुई चुभोना, तीक्ष्ण अंजन लगाना, तीक्ष्ण नस्य देना, कौंछकी फली घिसकर लगानी और बिच्छू आदिसे कटवाना इत्यादि तत्काल फल करनेवाली क्रिया यदि न की जावे तो यह मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ संन्यासमूर्च्छाभेदः ।

दोषेषु मदमूर्च्छाया गतवेगेषु देहिनः । स्वयमप्युपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥२८॥ मदमूर्छाया मदः अप्रवृद्धः उन्मादः मूर्च्छायो मूर्च्छा ।

दोषोंके वेग बीतनेपर मूर्च्छा और नहीं बढा हुआ उन्माद अपने आपही शांत हो जाते हैं किन्तु संन्यास तो विना औषधियोंके शांत होता ही नहीं ॥ २८ ॥

अथ मूर्च्छाचिकित्सा ।

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च । शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ २९ ॥ मणयश्चन्द्रकान्तादयः । हारा मुक्तादिहाराः शीताः प्रदेहाः सकर्पूरचन्दनानुलेपनानि । शीतादि पानानि सिताम्लकादिपानकानि । गन्धवन्ति कर्पूरादिसुगन्धवन्ति । सर्वासु मूर्च्छासु अनिवारितानि । अस्यायमभिप्रायः सेकादीनि अन्यासु मूर्च्छासु हितानि एव किन्तु वातश्लेष्मजासु अपि न निवारितानि तत्र अपि पित्तस्य प्राधान्यात् । सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि सदाडिमा जांगलजा रसाश्च । तथा यवा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु पथ्याः ससतीनमुद्गाः ॥ ३० ॥ सतीनः कलायः ।

शीतल जलका सींचना, शीतल जलमें अवगाहन, चन्द्रकांत आदि मणि और मोती आदिके हारोंका धारण, कपूरमिश्रित चंदनादिकका लेपन, मिश्रीसंयुक्त और कपूरसे सुवासित किया हुआ आमले आदिके रसका पानक और पंखेकी पवन ये सब उपचार सर्व प्रकारकी मूर्च्छामें हितकारी हैं । मधुर औषधियोंके द्वारा पका हुआ दूध, दाडिमका रस मिला हुआ जांगल देशके जीवोंका मांसरस, जौ, लाल चावल, मटर और मूंग ये सब मूर्च्छामें पथ्य हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

कोलमज्जोषणाशीरकेसर शीतवारिणा । पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढ्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम् ॥ ३१ ॥

बेरकी गिरी, काली मिरच, खस और नागकेसर इनको शीतल जलके साथ पीसकर पीनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है ३१ ॥

शीतेन तोयेन विषं भृणालं कृष्णां च पथ्यां मधुनाऽवलिह्यात् । कुर्याच्च नासावदनावरोधं क्षीरं पिबेद्वाप्यथ मानुषीणाम् ॥३२॥ द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति कट्वारनीलोत्पलपञ्चवन्ति । पिबेत्कषायाणि च शीतलानि पित्तज्वरं यानि च यापयन्ति ॥ ३३ ॥ शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः । अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ३४ ॥ अञ्जनं सम्यगारब्धं मधुसिन्धुशिलोषणैः प्रमोहद्रोहि भवति भाषितं भिषजां वरैः ॥ ३५ ॥ शिला मनःशिला । ऊषणं मरिचम् । मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः । श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ३६ ॥

पीपलका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है । कमलका कंद, कमलकी नाल, पीपल और हरड इनको पीसकर सहतके साथ चाट-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेसे मूर्च्छा नष्ट होती है। नाकके तथा मुखके श्वासको रोकनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है। स्त्रीका दूध पीनेसे मूर्च्छा नष्ट होती है। दाख, खांड, अनार, धानकी खीलें, दहीका तोड, नीले कमल और सुफेद कमल इनका शीतल कषाय (हिम) पिये और जो क्वाथ पित्तज्वरको नष्ट करनेवाले हैं वे भी पिये। सिरसके बीज, पीपल, कालीमिरच, सेंधानिमक, लससुन, मैनशिल और वच इनको गोमूत्रमें पीसकर अंजन बनाकर नेत्रोंमें आँजनेसे चेतना प्राप्त होती है। सहत, सेंधानिमक, मैनशिल और काली मिर्च इनका अंजन अच्छे प्रकारसे बनाकर नेत्रोंमें आँजनेसे मूर्च्छाकी बेहोशी दूर हो जाती है। महुवेका सार, सेंधानिमक, वच, मिर्च और पीपल इनको समान भाग लेकर जलमें बारीक पीसकर नास लेनेसे संज्ञा उत्पन्न होती है ॥ ३२--३६ ॥

अथ रुधिरोत्पन्नमूर्च्छादिचिकित्सा।

रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः। मद्यजानां पिबेन्मद्यं निद्रां सेवेत वा सुखम्। विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

रुधिरकी मूर्च्छामें शीत चिकित्सा हितकारी है। मद्यकी मूर्च्छामें फिर दुबारा मद्य पिये अथवा सुख पूर्वक सोना हितकारी है। और विषकी मूर्च्छामें विषनाशक औषधियोंका प्रयोग हितकारी है ॥ ३७ ॥

अथ संन्यासचिकित्सा।

प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात्सम्मूर्च्छितो नैव विबुध्यते यः। संन्यस्तसंज्ञः स हि दुश्चिकित्स्यो नरो भिषग्भिः परिकीर्तितोऽसौ ॥ ३८ ॥ अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च। सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहपीडा नखान्तरे ॥ ३९ ॥ लुञ्चनं केशलोम्नां च दन्तैर्दशनमेवच। आत्मगुप्तावधर्षश्च हितस्तस्य प्रबोधने ॥ ४० ॥ अवपीडाः कल्कीकृतौषधरसस्य नासापुटे दानम्। प्रधमनम् औषधचूर्णस्य द्विमुख्या नाडिकया मुखवातेन नासापुटे दानम्। तस्य संन्यस्तस्य।

अधिक दोषवाला मनुष्य तमोगुणकी अधिकतासे मूर्च्छित होकर पीछे जाग्रत नहीं हो उसको वैद्य संन्यासरोगयुक्त कहते हैं और उसकी चिकित्सा अत्यंत कठिन है। संन्यासरोगवाले मनुष्यके अंजन लगावे औषधियोंका कल्क बनाकर उनका रस नाकमें निचोडे, धुँवाँ देवे, औषधिके चूर्णको दो मुखवाली नलीम भरकर उसमें मुखसे फूँक मारकर नाकमें चढावे, अंगोंमें सुई चुभोये, नखूनोंमें अग्निका दाह देवे, केश और रोमोंको उखाडे, दाँतोंसे कटवावे और शरीरपर कौंछकी फलीको घिसे ॥ ३८--४० ॥

अथ मूर्च्छोपयोगी रसः।

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायां प्राशयेद्भिषक्। शीतसेकावगाहादीन्सर्वांगे पीडनं हठात् ॥ ४१ ॥ ताम्रचूर्णसमोशीरं केशरं शीतवारिणा। पीतं मूर्च्छां द्रुतं हन्याद्वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४२ ॥ ताम्रचूर्णं मारिततास्रचूर्णम्।

वैद्य मूर्च्छाको दूर करनेके लिये पारेकी भस्मको पीपलके चूर्ण और सहतके साथ चटावे। शीतल सेचन और शीतलजलका अवगाहन आदि कर्म करे। तथा बलात्कारसे सम्पूर्ण अंगोंको दबावे। तांबेकी भस्म, खस और नागकेसर इनको समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर शीतल जलके साथ पीनेसे जिस प्रकार बिजलीसे वृक्ष नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार इससे मूर्च्छा तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ भ्रमचिकित्सा।

पिबेद्दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये। पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ॥ ४३ ॥ शुण्ठीकृष्णाशताह्वानां साभयानां पलं पलम्। गुडस्य षट्पलान्येषा गुटिका भ्रमनाशिनी ॥ ४४ ॥ ताम्रं दुरालभाक्वाथैः पीतं तु घृतसंयुतम्। निवारयेद्भ्रमं शीघ्रं तं यथा शंभुभाषितम् ॥ ४५ ॥

धमासेका क्वाथ बनाकर घी डालकर पीनेसे भ्रम (भौंर) दूर हो जाता है। हरडके क्वाथसे अथवा आमलेके रससे सिद्ध किये हुए घीको पीनेसे भ्रम दूर हो जाता है। सोंठ, पीपल, सतावर और हरड

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये सब औषधि चार चार तोले और गुड चौबीस तोले इन सबको मिलाकर बेर बराबर गोली बनाकर खाय तो भ्रमरोगका विनाश होता है । तांबेकी भस्मको जवासेके क्काथके साथ मिलाकर पिये तो तुरन्तही भ्रमरोग शान्त होता है, इस प्रकार शिवजीने शिवसंहितामें कहा है ॥ ४३–४५ ॥

अथ तन्द्रानिद्राचिकित्सा ।

तुरंगलालालवणोत्तमेन्दुमनःशिलामागधिकामधूनि । नियोज्य तान्यक्षि विमिश्रितानि तन्द्रां सनिद्रां विनिवारयन्ति ॥४६॥ इन्दुः कर्पूरः । सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च । बस्तमूत्रेण सम्पिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ ४७ ॥ श्वेतमरिचं शिग्रुबीजम् । शुण्ठीकणोग्रालवणोत्तमानि नस्येन तंद्राविजयोल्वणानि । क्षुद्रास्मृतापौष्करनागराणि भार्ङ्गीशिवाभ्यां क्वथितानि पानात् ॥ ४८ ॥ शिवा हरीतकी ।

घोडेकी लारमें सेंधानिमक, कपूर, मैनशिल, पीपल और सहत इनको महीन पीसकर नेत्रोंमें लगावे तो निद्रासहित तन्द्रारोग निवारण होता है । सेंधानिमक, सहँजनेके बीज, सरसों और कूट इन सबको कूट पीसकर बकरेके मूत्रमें खरल करके नास लेय तो उसी समय तन्द्राका नाश होता है । सोंठ, पीपल, वच और सेंधानिमक इनको महीन पीसकर नास लेय तो महाघोर तन्द्राका भी विनाश होता है । कटेहरी, गिलोय, पुहकरमूल, सोंठ, भारंगी और हरडके काढेको पीनेसे तन्द्रा और निद्रा दोनोंका निवारण होता है ॥ ४६–४८ ॥

इति मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्रासंन्यासाधिकारः ।

अथ मदात्ययाधिकारः ।

तत्र मद्यस्वभावः ।

मद्यं स्वभावतः प्राज्ञैर्यथैवान्नं तथा स्मृतम् । अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं रसायनम् १॥

मद्य स्वभावहीसे अन्नके समान है, ऐसा विद्वान् लोगोंने कहा है, अर्थात् जो मद्य विना युक्तिके साथ पिया जाता है तो अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है और जो युक्ति (विधिपूर्वक) के साथ पिया जाय तो महारसायन है ॥ १ ॥

प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून् । विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ २ ॥ विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् । प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३ ॥

अन्नही प्राणियोंका प्राण है परन्तु युक्तिविना अन्न सेवन करनेसे प्राणोंका नाशकारक है, यह सब जानते हैं कि, विष प्राण हरता है परन्तु युक्तिके साथ सेवन करनेसे महारसायन है । जो मनुष्य आनन्दसहित विधिपूर्वक यथायोग्य समयपर मात्रानुसार प्रसन्नचित्त होकर हितकारक अन्नोंके साथ बलाबल विचार मद्य पान करते हैं उनको मद्य अमृतकी समान गुणकारी है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ मद्यपानविधिः ।

कृतशारीरसंस्कारः शुचिरुत्तमगन्धवान् । उद्दामगन्धिभिः स्फीतैर्मृदुभिर्वसनैर्वृतः । ॥ ४ ॥ विचित्रविविधस्रग्वी रक्ताभरणभूषितः । सानन्दः सावधानश्च पिबेन्मद्यं शनैः शनैः ॥ ५ ॥

शरीरको अच्छे प्रकारसे स्वच्छ करके अर्थात् मलमूत्र दंतधावनादि करके पवित्र होकर, उत्तम फुलेल आदि सुगंधोंको लगाकर, उत्तम सुवासित महीन अथवा कोमल वस्त्र धारण कर, अनेक प्रकारके चित्र विचित्र मदनबाणादि सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंसे उरःस्थलको सुशोभित करके, लाल रंगके आभूषणोंसे भूषित कर, आनन्दयुक्त होकर सावधानीके साथ धीरे धीरे ठहर ठहरकर थोडी थोडी मदिरा पीवे ॥४॥५॥

अथ मद्यपानस्थानम् ।

उपवनेषु सुरभिसुरंगसुमनःसमूहमनोहरेषु । मंजुगुंजन्मधुकरनिकरेषु कूजत्कलकण्ठेषु । ॥ ६ ॥ सुरभिशिशिरमधुरसमीरेषु मान्दरेषु । सुधाशुभ्रेषु सुधूपधूपितेषु सूपधानेषु । संस्तीर्णविहितशयनासनेषु ॥ ७ ॥ उपविष्टोऽथ वा तिर्यक् भृशं हृष्टः सुरां पिबेत् । सौवर्णै राजतैः पात्रैः पिबेन्मणिमयैरपि । रूप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यौवनमत्ताभिर्वल्लभाभिर्विशेषतः ॥८॥ वस्त्राभरणमाल्यैश्च भूषिताभिर्यथर्तुकैः । दीयमानं मृगाक्षीभिः पिबेन्मद्यं मुदान्वितः ॥ ९ ॥

जहां उत्तम वर्णवाले सुगंधित पुष्प मनको हरन करनेवाले खिल रहे हों, उनपै मधुर ध्वनिसे भ्रमरोंके समूह गुंजार करते हों, जहां मधुर स्वरसे कोयल कूह कूह करती हों और जहां शीतल मन्द सुगन्ध पवन मधुर मधुर चलती हो, ऐसे उपवन अथवा कुसुमकाननके भीतर चूने कलईसे स्वच्छ पुताया हुआ, हवादार और उत्तम धूपोंसे सुवासित किये हुए बंगलेमें उत्तम आसन अथवा पलँग बिछा होय और उसपै गद्दे तकिये नरम नरम लगे हुए हों तथा उसके ऊपर स्वच्छ चादर बिछी हुई हो उस शयन करनेके आसनपै बैठकर अथवा तिरछा लेटकर अत्यन्त आनन्दके साथ मद्यको पीवे, रूप और यौवनसे उन्मत्त हुई अत्यन्त प्रिय, यथा यथा ऋतुके अनुसार वस्त्रोंसे, आभूषणोंसे और सुवासित पुष्पोंसे सुसज्जित तथा हिरनकी समान नेत्रवाली ऐसी स्त्रियें सोनेके, चांदीके, अथवा रत्नोंके या कांचके प्याले गिलासोंमें भर भरकर बारंबार देवें तो पुरुष प्रीतिपूर्वक उस मदिराको पीवे ॥ ६-९ ॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तमद्यपानमात्रा ।

शुद्धकायः पिबेन्मद्यं सोपदंशं पलद्वयम् । मध्याह्ने द्विगुणं तच्च सस्निग्धं भक्षयेदनु । ॥ १० ॥ प्रदोषेऽष्टपलं तद्वन्मात्रा मद्यरसायने । अनेन विधिना सेव्यं मद्यं नित्यमतन्द्रितैः ॥ ११ ॥ शुद्धकायः उत्सृष्टमलमूत्रः । पलद्वयं पारिशेष्यात्पूर्वाह्णे बोधव्यम् । अतन्द्रितैः मात्रया सावधानैः । अन्ये त्वाहुः-बुद्ध्यादयो गुणा यावदुल्लसन्ति निरत्यया: । मात्रेयं विहिता मद्यपानेऽन्यारोगजन्मने ॥ १२ ॥ काल इति यस्मिन्काले यादृशं मद्यमुचितं तस्मिंस्तादृशं पेयम् ।

मल मूत्रादिको त्याग शुद्ध होकर पूर्वाह्न (प्रातःकाल) में चाट (दाल, सेव, नमकीन पदार्थ) के साथ आठ रुपये भर मदिरा पीवै, मध्याह्नके समय सोलह रुपये भर मदिरा पीवे और उसके उपरान्त अत्यन्त स्निग्ध भोजन करे और सायंकालमें ३२ रुपयेभर मद्य पीवे, मद्यकी यह मात्रा रसायनरूप है, इस कारण मनुष्योंको मात्रामें भूल नहीं करनी चाहिये, नित्य इसी विधिसे मद्यका सेवन करना चाहिये । अन्य ग्रन्थोंमें तो यह कहा है कि, जबतक शुद्ध बुद्धि आदि गुण अबाधित रीतिसे प्रकाशित रहें तबतक उतनीही मद्य पीवे, इसके सिवाय अन्यमात्रा रोगियोंके लिये जाननी, अधिक मात्रा सदैव रोगको उत्पन्न करती हैं ॥ १०-१२ ॥

अथ कस्मिन्नृतौ कीदृङ् मद्यं पेयमित्याह ।

ग्रीष्मे मद्यं हिमं स्वादु माध्वीकादि सुखप्रदम् । शीते प्रशस्यते चोष्णं तीक्ष्णं गौडिकपैष्टिकम् ॥ १३ ॥

जिस ऋतुमें जैसी मद्य पीने योग्य है वही पीना चाहिये । जैसे कि, ग्रीष्मऋतुमें शीतल और मधुर माधवी नामक मदिरा सुखदायी है । और शीतकालमें उष्ण तथा तीक्ष्ण गौडिक और पैष्टिक मद्य हितकारी है ॥ १३ ॥

अथ हितकार्यन्नम् ।

मद्यानुकूलैर्विविधैः फलैर्वर्णमनोहरैः । सुगन्धैर्लवणैर्हृद्यैर्भृष्टैर्मांसैः पृथग्विधैः ॥ १४ ॥ स्निग्धैरन्नैश्च भक्ष्यैश्च सह मद्यं पिबेन्नरः ॥ १५ ॥ अन्नैः सिद्धैः ओदनपर्पटकादिभिः भक्ष्यैः लड्डुकफेणिकादिभिः । अभ्यंगोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः । स्निग्धोष्णैस्तादृशैरन्नैर्वातप्रकृतिकः पिबेत् । शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरास्निग्धशीतलैः ॥ १६ ॥ फलैरन्नैः सह नरः पित्तप्रकृतिकः पिबेत् । श्लैष्मिको जांगलैर्मांसैर्मरिचैर्मदिरां पिबेत् ॥ १७ ॥ प्राक् पिबेच्छ्लैष्मिको मद्यं भक्तस्योपरि पैत्तिकः । वातिकस्तु पिबेन्मद्यं समदोषो यथेक्षते ॥ १८ ॥ वातिकस्तु पिबेन्मद्यं प्रायो गौडिकपैष्टिकम् । कफपित्तात्मको यस्तु माध्वीकं माधवं पिबेत् ॥ १९ ॥ विधिर्वसुमतामेष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथितश्चरकादिभिः । यथोपपत्तिकं वापि पिबेन्मद्यं हि मात्रया ॥ २० ॥

मद्यको पीनेवाला मनुष्य मद्यके अनुकूल मनोहर फल, सुगंधित और नमकीन पदार्थ, अलग अलग प्रकारके मांस, भात, पापड और लड्डू तथा फेनी आदि स्निग्ध भक्ष्योंके साथ मद्य पिये। वातप्रकृतिवाला मनुष्य स्निग्ध और उष्ण अभ्यङ्ग (मालिश) अगर आदि सगंधित वस्तुका लेप कर, स्नान, वस्त्र, धूप और अनुलेपन इत्यादि उपचार करके उसी प्रकार अन्नके साथ मद्यको पिये। पित्तप्रकृतिवाला मनुष्य अनेक प्रकारके शीतल उपचार करके मधुर, स्निग्ध तथा शीतल फलोंके साथ और उसी प्रकार अन्नोंके साथ मद्य पिये। कफप्रकृतिवाला मनुष्य जांगल देशके जीवोंके मांसके साथ और मिरचके साथ मद्य पिये। कफप्रकृतिवाला मनुष्य भोजनसे पहिले मद्य पिये, पित्त प्रकृतिवाले पुरुषको भोजन करनेके बाद मद्य पीनी चाहिये, वातप्रकृतिवाला भोजनके मध्यमें मद्य पिये और समदोषवाला मनुष्य जैसी रुचि हो उसी प्रकार पिये। वातप्रकृतिवाले मनुष्यको विशेष करके गुडकी और जौके आटेकी मदिरा पीनी चाहिये, कफप्रकृतिवाले और पित्तप्रकृतिवालेको खांड आदि मधुर पदार्थोंकी मदिरा पीनी चाहिये। चरकादि ऋषि कहते हैं कि, यह विधि केवल धनवानोंके लिये कही है इसलिये निर्धन मनुष्योंको जैसी मिल जाय वैसीही पी लेवे ॥१४–२०॥

अथ मद्यगुणाः ।

रसवातादिमार्गाणां सत्त्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम् । प्रधानस्यौजसश्चैव हृदयं स्थानमुच्यते ॥ २१ ॥ मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान् । दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥२२॥ लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्लव्यवायाशुकरं तथा । रूक्षं विकाशि विशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ २३ ॥ गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा । प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥२४॥ गौरवं लाघवाच्चैत्यमौष्ण्यादम्लस्वभावतः । माधुर्यं मार्दवं तैक्ष्ण्यात्प्रसादं चाशुभावनात् ॥ २५ ॥ रौक्ष्यात्स्नेहं व्यवायित्वात्स्थिरत्वं सूक्ष्मतामपि । विकाशिभावात्पैच्छिल्यं वैशद्यात्सान्द्रतां तथा ॥ २६ ॥ सौक्ष्म्यान्मद्यं निहन्त्येवमोजसः स्वगुणैर्गुणान् । सत्त्वं तदाश्रयं चाशु संक्षोभ्य कुरुते मदम् । हृदि मद्यगुणाविष्टे हर्षस्तर्षो रतिः सुखम् ॥ २७ ॥ विकाराश्च यथासत्त्वं चित्रा राजसतामसाः । जायन्ते मोहनिद्रांता इत्येतन्मदलक्षणम् ॥ २८ ॥ हर्षमोजो बलं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं तथा । युक्त्या पीतं करोत्याशु मद्यं मदसुखप्रदम् ॥ २९ ॥ रोचनं दीपनं हृद्यं स्वरवर्णप्रसादनम् । प्रीणनं बृंहणं बल्यं भयशोकश्रमापहम् ॥ ३० ॥ स्वापनं नष्टनिद्राणां मूकानां वाग्विशोधनम् । नाशनं चातिनिद्राणां विबन्धानां विबन्धनुत् ॥ ३१ ॥ वधबन्धपरिक्लेशदुःखानां चाप्यबोधकम् । अपि प्रवयसां मद्यमुत्सर्गामोदकारकम् ॥ ३२ ॥ बहुदुःखक्षतस्यास्य शोकैरुपहतस्य च । विश्रामो जीवलोकस्य मद्यं युक्त्या निषेवितम् ॥ ३३ ॥ मदस्त्रिलक्षणो भवति । एको मदोऽधिकसत्त्वगुणस्य पुंसो भवति । द्वितीयोऽधिकरजोगुणस्य । तृतीयोऽधिकतमोगुणस्य । प्रधानाधममध्यानां रुक्माणां व्यक्तिदायकः । यथाग्निरेवं सत्त्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥ ३४ ॥

रस और वातादि मार्गोंका, चित्त, बुद्धि, अहंकार और शरीरमें प्रधान ओजका स्थान हृदय है, यह मद्य उस हृदयमें प्रवेश होकर अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको क्षोभित करके चित्तमें विकार उत्पन्न करती है। मद्य–लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी (प्रथम सब शरीरमें व्याप्त होकर पश्चात् पचनेवाली), आशुकर (शीघ्र शरीरमें फैलनेवाली), रूक्ष, विकाशि और विशद (शरीरकी आर्द्रताको दूर करनेवाली) इन दश गुणोंवाली है। ओज–गुरु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, सान्द्र, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और सूक्ष्म इन दश गुणों करके युक्त है। तहां मद्य लघु होनेसे ओजके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरु गुणको, उष्ण होनेसे ओजकी शीतलताको, अम्ल होनेसे ओजके मधुर गुणको, तीक्ष्ण होनेसे ओजके मृदुगुणको, आशुकारी होनेसे ओजकी प्रसन्नताको, रूक्ष होनेसे ओजकी स्निग्धताको, व्यवायि होनेसे ओजकी स्थिरताको, विकाशी होनेसे ओजके सूक्ष्म गुणको, विशद होनेसे ओजकी पिच्छिलताको और सूक्ष्म होनेसे ओजके सान्द्र गुणको नष्ट करे है। इस प्रकार मद्य अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको क्षोभित करती है, इसी प्रकार मद्य अपने गुणोंसे ओजके गुणोंको, चित्तको और चित्तके रहनेके स्थानको तत्काल क्षोभित करके मद (मस्तपने) को उत्पन्न करे है मद्यके गुण हृदयमें प्राप्त होकर हर्ष, तृषा, रतिसुख और प्रकृतिके अनुसार मोहसे निद्रापर्यंत रजोगुणके तथा तमोगुणके विचित्र विकार उत्पन्न होते हैं, यह मद्यका स्वरूप अर्थात् लक्षण है। जो लोक मद्यसे मदके सुखको चाहते हैं वेही मद्यको युक्तिपूर्वक पियें, क्योंकि मद्य युक्तिपूर्वक पीनेसे तत्काल हर्ष, ओज, बल, पुष्टि, आरोग्यता और पुरुषत्वको उत्पन्न करे है। युक्तिसे सेवन की हुई मदिरा रुचि उत्पन्न करे है, अग्निको दीपन करे है, हृदयको प्रिय, स्वर और वर्णको शुद्ध करनेवाली, तृप्तिकारक, धातुओंको पुष्ट करनेवाली, बलको बढानेवाली, भय, शोक और श्रमको हरनेवाली जिन मनुष्योंको निद्रा, न आती हो उनके निद्रा लानेवाली, गूंगे मनुष्योंकी वाणीको शुद्ध करनेवाली, अत्यंत निद्राको नष्ट करनेवाली, मलबंधवाले रोगियोंके मलबंधको तोडनेवाली, वध, बंधन क्लेशादि दुःखोंके बोधनको हरनेवाली युक्तिपूर्वक पी हुई मदिरा वृद्ध मनुष्योंको भी स्वाभाविक रीतिसे परमानन्द उत्पन्न करनेवाली है, अनेक प्रकारके दुःखोंसे पीडित, घावयुक्त और विविध प्रकारके क्लेशोंसे फँसे हुए शोकसे व्याकुल प्राणियोंको मद्य जगत्में विश्रामरूप है। मद तीन प्रकारका होता है, तहां एक तो अधिक सतोगुणवाले पुरुषोंको होता है, दूसरे प्रकारका मद अधिक रजोगुणवाले मनुष्योंको होता है और तीसरे प्रकारका मद अधिक तमोगुणवाले प्राणियोंको होता है, जैसे कि, चरकमें लिखा है जिस प्रकार सुवर्णकी उत्तमता, मध्यमता और अधमता अग्नि तपानेसे प्रकट कर देती है उसी कार मद्य मनुष्योंकी उत्तम अधम और मध्यम प्रकृतिको प्रगट करनेवाली है ॥ २१-३४ ॥

अथ सात्त्विकमदलक्षणम् ।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च । सम्पाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ ३५ ॥

प्रीतिः परेण मैत्री । सुखः सुखयतीति सुखः सुखकर इत्यर्थः । पानादित्यादि पानादिषु अनुषङ्गवर्द्धनः अतिरम्यः मनोविकारित्वेऽपि न दुःखकरः । प्रथमगुणविकारित्वात् प्रथमः । एवं द्वितीयं तृतीयं च ।

पहिले प्रकारका मद जो कि, सत्त्वगुणनामक पहिले गुणका विकार रूप है यह मद-बुद्धि, स्मरणशक्ति और प्रीतिको उत्पन्न करे है, सुखको करे है, अन्नमें, पानमें तथा निद्रामें रुचिको बढानेवाला है, गीत, वादित्र और पढनेमें स्वरको शुद्ध करनेवाला, है और मनको विकृत करनेपर भी दुःखदायक नहीं होता, यह मद पहिले गुणका विकाररूप होनेसे पाहिले गिना जाता है। इसी प्रकार जो दूसरा (रजोगुणका) विकार रूप है वह दूसरा और जो तीसरे गुणका (तमोगुण) विकार रूप है वह तीसरा मद जानना ॥ ३५ ॥

अथ राजसमदलक्षणम् ।

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः । आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ३६ ॥

अव्यक्तेत्यत्र ईषदर्थे नञ् । विचेष्टः विरुद्धचेष्टः । उन्मत्तस्य लीलाकृतिभ्यां सहितः ।

राजस मदसे मत्त हुआ पुरुष विरुद्ध चेष्टा करता है, उन्मत्तकी समान लीला करता है, उन्मत्तकी आकृति समान आकृति कर लेता है, वारंवार आलस्यसे और वारंवार निद्रासे मूर्च्छित हो जाता है और उस मनुष्यकी बुद्धि, स्मृति और वचन यथार्थ स्पष्ट नहीं रहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ तामसमदलक्षणम् ।

गच्छेदगम्यां न गुरूंश्च मन्येत्खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः । ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः॥ ३७॥ मन्येदिति परस्मैपदमार्षत्वात् । अस्वतन्त्रः मदपरवशः ।

तीसरे (तमोगुण) प्रकारके मदसे मत्त हुआ मनुष्य मदके परवश हो जाता है, अगम्या स्त्रियोंमें गमग करने लगता है, माता पिता आदि गुरुजनोंको कुछ नहीं समझता, अभक्ष्य पदार्थोंको भक्षण करने लगता है, संज्ञा जाती रहती है अर्थात् ज्ञानरहित हो जाता है और हृदयमें स्थित छिपी हुई गुप्त बातोंको कहने लगता है ॥ ३७ ॥

यद्यपि मदास्त्रिविधोऽस्ति तथापि सुश्रुतेनाऽतितामसनामा चतुर्थोऽन्यो मतस्तल्लक्षणमाह ।

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विवनिष्क्रियः । कार्याकार्यविभागज्ञो मृतादपि परो मृतः ॥ ३८ ॥ मूढो मोहयुक्तः । को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम् । बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती॥ ३९॥ अमूढः विचारबहुलः ।

चौथे प्रकारके मदमें मनुष्य मोह (बेहोश) युक्त हो जाता है, टूटी लकडीकी समान क्रियारहित मृतकसे भी अधिक मृतक हो जाता है और उस मनुष्यको कार्य अकार्यकी कुछ भी सुधि बुधि नहीं रहती इस चौथे प्रकारके उन्मादकी समान मदको कौन विचारशील, स्वतंत्र और विचक्षण पुरुष प्राप्त होता है अर्थात् कोई भी प्राप्त नहीं होता । जिस प्रकार विचारशील, स्वतंत्र और विचक्षण पुरुष निर्जन वनमें नहीं गमन करते उसी प्रकार इस चौथे मदको कोई पुरुष सेवन नहीं करते ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ केषां मदाधिक्यं केषां च मदाल्पत्वं भवतीत्याह ।

नातिमाद्यन्ति बलिनः कृताहारा महाशनाः । स्निग्धाः सत्त्ववयोयुक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः ॥ ४० ॥ मेदःकफाधिका मंदवातपित्ता दृढाग्नयः । विपर्ययेऽतिमाद्यंति विष्टब्धाः कुपिताश्च ये । मद्येन चाम्लरूक्षेण साजीर्णे बहुनापि च ॥ ४१ ॥

बलवान्, जो आहार कर चुका हो, बहुत भोजन करनेवाला हो, स्निग्ध, धैर्ययुक्त, युवाअवस्थावाला, नित्य मद्य पीनेवाला, जिसके कुलमें परम्परासे मद्य पीते हैं, जिसके शरीरमें मेद और कफ अधिक है, वात और पित्तकी मन्दता है और दृढ अग्निवाले पुरुषोंको मद अत्यन्त नहीं चढता है और जो इससे विपरीत गुणोंवाले हैं, तथा मलबंधवाले और क्रोधी मनुष्योंका मद अधिक चढता है, खट्टा और रूक्ष मद पीनेसे, अजीर्णमें मद पीनेसे, और अधिक मद पिया जाय तो भी अत्यंत मद चढता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ मदात्ययनिदानम् ।

विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपनाः । त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः ॥ ४२ ॥ तस्मादविधिपीतेन तथा मात्राधिकेन च । युक्तेन चाहितैरन्नैरकाले सेवितेन च । मद्येन खलु जायन्ते मदात्ययमुखा गदाः ॥ ४३ ॥

तीनों दोषोंको कुपित करनेवाले जो गुण विषमें देखनेमें आते हैं वेही गुण मद्यमें भी देखनेमें आते हैं, परन्तु विषके गुण मद्यके गुणोंसे बलवान् हैं, मद्यमें विषके गुणोंसे हीन शक्तिवाले गुण हैं, इसलिये विधिरहित पिया हुआ, अधिक पिया हुआ, अहितकारक अन्नोंके साथ पिया हुआ और अयोग्य समय सेवन किया हुआ मद्य मदात्यय आदि रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ विधिमन्तरासेवितमद्यमन्यविकारोत्पादकमित्याह ।

निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् । उत्पादयेत्कष्टतमान्विकारानुत्पादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ ४४ ॥ एकान्ततो नैरन्तर्येण । विकारान् मदात्ययादीन् । शरीरस्य भेदं नाशम् ।

विना अन्नके पिया हुआ मद्य अथवा जो मनुष्य निरंतर वारंवार मद्य पिये तो मद्य महादुःखदायक मदात्यय आदि विकारोंको उत्पन्न करे है और शरीरका भी नाश करे है ॥ ४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ मदात्ययादिविकारान्यहेतुः ।

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन । व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ ४५ ॥ अत्यम्लरूक्षाव्ततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन । उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥ ४६ ॥

क्रोधको प्राप्त हुआ, भयभीत, तृषासे व्याकुल, शोकसे संतापित, क्षुधासे पीडित, दंड कसरतके करनेसे और बोझके ढोनेसे तथा अधिक मार्गके चलनेसे थका हुआ, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे पीडित, अत्यन्त खट्टे और रूखे पदार्थोंके खानेसे जिसका उदर भर रहा हो, अजीर्णमें भोजन करनेवाला, निर्बल और उष्णतासे संतापित ऐसे मनुष्योंका सेवन किया हुआ मद्य अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करे है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ मद्योत्पन्नविकाराः ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि च । पानविभ्रममत्युग्रं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ४७

मद्यसे मदात्यय, परमद, पानाजीर्ण और अत्यन्त उग्र पानाविभ्रम ये विकार उत्पन्न होते हैं, अब इनके लक्षण कहते हैं ॥ ४७ ॥

अथ मदात्ययसामान्यलक्षणम् ।

शरीरदुःखं बलवत्प्रमेहो हृदयव्यथा । अरुचिः सततं तृष्णा ज्वरः शीतोष्णलक्षणः ॥ ४८ ॥ शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनां वेदना विक्षते यथा । जायतेऽतिबला जृम्भा स्फुरणं वेपनं श्रमः ॥ ४९ ॥ उरोविबन्धः कासश्च हिक्का श्वासः प्रजागरः । शरीरकम्पः कर्णाक्षिमुखरोगाश्चिकग्रहः ॥ ५० ॥ छर्दिर्विड्भेद उत्क्लेशो वातपित्तकफात्मकः । भ्रमः प्रलापो रूपाणामसतां चैव दर्शनम् ॥ ५१ ॥ तृणभस्मलतापर्णपांशुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्षणं विहङ्गैश्च भ्रान्तचेताः स मन्यते ॥ ५२ ॥ व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानां दर्शनानि च । मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्षयेत् ॥ ५३ ॥

जिनके मदात्यय हुआ हो उस मनुष्यके शरीरमें अत्यंत दुःख होता है, बलवान् मोह, हृदयमें व्यथा (पीडा), अरुचि, निरंतर तृषाका लगना, शीतल और उष्ण ज्वरका होना, शिर, पसली और हड्डीकी संधियोंमें पके फोडेकी समान वेदना, जम्भाइयोंका अधिक आना, अंगोंका स्फुरण होना, अर्थात् फडकना, कम्प, श्रम, छातीका जकडना, खाँसी, हिचकी, श्वास और जागरण हो, कान, नेत्र और मुखमें रोग हो, त्रिकस्थानमें पीडा, वमन, विरेचन, वात, पित्त और कफका उत्क्लेद होना, भ्रम और प्रलाप होना तथा बुरे रूपोंका देखना, भ्रमयुक्त चित्तवाला यह मनुष्य अपने शरीरपर तृण, भस्म, बल और पत्ते उड उडकर गिरते देखे, चहूँ ओरसे पक्षी उडे चले आते हैं ऐसा प्रतीत हो, व्याकुल और अमंगल (अशुभ) रूप स्वप्न देखे, ये सब लक्षण जिसके होयँ उसको मदात्ययुक्त जानना ॥ ४८–५३ ॥

अथ वातजमदात्ययनिदानम् ।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्मभिर्योऽतिकर्शितः । ॥ ५४ ॥ रूक्षाल्पप्रमिताशी च यः पिबत्यतिमात्रया । रूक्षं परिणतं मद्यं निशि निद्रां निहत्य च । करोति तस्य तच्छीघ्रं वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ५५ ॥ तन्मद्यम् ।

मैथुन, शोक, भय, भार, पंथा और श्रम आदि कर्मोंके करनेसे जो मनुष्य कृश हो गये हैं, तथा रूक्ष अल्प और बहुत थोडे भोजन करनेवाले ऐसे मनुष्य जो रूक्ष मद्यको अत्यन्त पीते हैं तो उनके वह मद्य पेटमें परिणामको प्राप्त होकर रात्रिकी निद्राको नष्ट करके तत्काल वायुसम्बन्धी मदात्ययको उत्पन्न करे है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ वातजमदात्ययलक्षणम् ।

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः । विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ५६ ॥

हिचकी, श्वास, शिरका कांपना, पसलियोंमें पीडा, जागरण और प्रलाप (बकवाद) सब लक्षण वातके मदात्ययमें होते हैं ॥ ५६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पित्तजमदात्ययनिदानम्।

तीक्ष्णोष्णमद्यमम्लं च योऽतिमात्रं निषेवते। अम्लोष्णतीक्ष्णभोजी च क्रोधनो ज्ञानवान्नरः। तस्योपजायते तीव्रः पित्तप्रायो मदात्ययः॥ ५७॥

खट्टे, गरम और तीक्ष्ण पदार्थोंको भोजन करनेवाला क्रोधी और अज्ञानी मनुष्य. तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्यको अत्यन्त सेवन करता है उसके तीव्र पित्तका मदात्यय उत्पन्न होता है॥ ५७॥

अथ पित्तजमदात्ययलक्षणम्।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः। विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम्॥५८॥

तृषा, दाह, ज्वर, पसीना, मोह; अतीसार, विभ्रम और शरीरके रंगका हरा होना ये सब लक्षण पित्तके मदात्ययमें होते हैं॥ ५८॥

अथ कफजमदात्ययनिदानम्।

मधुरस्निग्धगुर्वाशी यः पिबत्यतिमात्रया। अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतः। मदात्ययं कफप्रायं स नरो लभते ध्रुवम् ५९

कसरत अर्थात् परिश्रम नहीं करनेवाला, दिनमें सोनेवाला, नित्य शय्यापर बैठा रहनेवाला अथवा गद्दे तकिये लगाकर लेटे रहनेवाला तथा मधुर, स्निग्ध और भारी भोजन करनेवाला मनुष्य जो अत्यन्त मद्य पीता है उस मनुष्यके अत्यन्त कफका मदात्यय उत्पन्न होता है॥ ५९॥

अथ कफजमदात्ययलक्षणम्।

छर्द्यरोचकहल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः। विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम्॥६०

वमन, अरुचि, उबकाई, तन्द्रा, शरीर भीजे वस्त्रसे ढकासा मालूम होवे और भारीपन रहे और शीत लगे ये सब लक्षण कफके मदात्ययमें होते हैं॥ ६०॥

अथ सान्निपातिकमदात्ययनिदानलक्षणे।

त्रिदोषो हेतुभिः सर्वैः सर्वैर्लिङ्गैर्मदात्ययः।

उपरोक्त संपूर्ण कारणोंसे उत्पन्न हुआ और सम्पूर्ण लक्षणोंवाला जो मदात्यय होता है उसको त्रिदोषज कहते हैं॥

अथ परमदलक्षणम्।

श्लेष्मक्षयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकस्य। लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः॥ ६१॥

कफका क्षय, अंगोंमें भारीपन, मुखमें विरसता, मल और मूत्रका अवरोध, तन्द्रा, अरुचि, तृषा, मस्तकमें दर्द और सन्धियोंमें अर्थात् जोडोंमें तोडने सरीखी पीडा, ये सब पर मदके लक्षण जानने, ऐसा विद्वान् वैद्य कहते हैं॥ ६१॥

अथ पानाजीर्णलक्षणम्।

आध्मानमुग्रमथ वोद्गिरणं विदाहः पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि। ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि पित्तप्रकोपजानि-तानि च कारणानि॥ ६२॥ उद्गिरणं वान्तिरुद्गारो वा। पीयत इति पानं मद्यम्।

मद्यके अजीर्णमें उग्र अफरा होता है अथवा वमन होती है, अथवा डकार अधिक आती हैं, दाह होता है और पित्तके प्रकोपसे जो लक्षण होते हैं वे सब लक्षण देखनेमें आते हैं, इसको वैद्य पानाजीर्ण कहते हैं॥ ६२॥

अथ पानविभ्रमलक्षणम्।

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूममूर्च्छाविमीमदशिरोरुजनप्रदेहाः। द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेषु धीराः॥ ६३॥ कण्ठधूमः कण्ठाद्धूमनिर्गम इव। प्रदेहः कफेन लिप्तास्यता। द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु सुराविकारेषु अन्नविकारेषु च द्वेषः। अखिलेषु मद्यविकारेषु।

हृदयमें तथा गात्रों (देह) में सुई चुभानेकीसी व्यथा होय, कफका स्राव, कण्ठमेंसे धुआँसा निकलता प्रतीत हो, मूर्च्छा आवे, वमन, मद और शिरमें पीडा होती हो, मुख कफसे लिसासा हो, सर्व प्रकारकी मदिरापर और सब प्रकारके अन्नके ऊपर द्वेष उत्पन्न होय तो जानना कि, मद्यके विकारोंमें 'पानविभ्रम' विकार उत्पन्न हुआ है ऐसा प्राचीन धन्वन्तरि वैद्य कहते हैं॥ ६३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ मदात्ययाद्यसाध्यलक्षणम् ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेच्च । जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथ वापि नीलं पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे च ॥ ६४ ॥ हिक्का ज्वरो वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः कासभ्रमावपि च पानहतं त्यजेत्तम् ॥ ६५ ॥

अत्यन्त मद्यपान करनेसे जिस मनुष्यका ऊपरका होंठ ऊपरको सुकड गया हो, शीत अत्यन्त हो, मुख तेलकी समान वर्णवाला हो जाय, ऐसे मनुष्यकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे। मद्यपानसे मूर्च्छित हुए मनुष्यके जो जीभ, होंठ, तथा दांत काले अथवा नीले, नेत्र, पीले अथवा लाल रंगके हो गये हों और हिचकी, ज्वर, वमन, कंप पसलियोंमें शूल, खाँसी तथा भ्रम होय तो उस मनुष्यकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ मदात्ययादिविकारचिकित्सा ।

मद्योत्थानां च रोगाणां मद्यमेव हि भेषजम् । यथा दहनदग्धानां दहनं स्वेदनं हितम् ॥ ६६ ॥ मिथ्यातिहीनमद्येन यो व्याधिरुपजायते । समेनैव निपीतेन मद्येन स हि शाम्यति ॥ ६७ ॥ बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् । यवानीहपुषाजाजीशृङ्गवेरावचूर्णितम् ॥ ६८ ॥ सस्नेहः सक्तुभिर्युक्तमुपदंशैश्चिरोत्थितम् । दद्यात्सलवणं मद्यं वातपैत्तिकशान्तये ॥ ६९ ॥ मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् । जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ ७० ॥ चव्यं सौवर्चलं हिंगु पूरकं विश्वदीप्यकम् । चूर्णं मद्येन पातव्यं पानात्ययरुजापहम् ॥ ७१ ॥ लावतित्तिरदक्षाणां रसैश्च शिखिनामपि । पक्षिणां मृगमत्स्यानामानूपानां तथोदनैः ॥ ७२ ॥ स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्च वेशवारैर्मुखप्रियैः । स्निग्धैर्गौधूमकैरन्नैर्वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ७३ ॥ नारीणां यौवनोष्माणां निर्दयैरुपगूहनैः । श्रोण्यूरुकुचभारैश्च संरोधोष्णसुखप्रदैः ॥ ७४ ॥ शयनाच्छादनैरुष्णैश्चान्तर्गेहैः सुखप्रदैः । मारुतैः प्रबलैः शीघ्रं प्रशाम्यति मदात्ययः ॥ ७५ ॥ पित्तपानात्यये योज्याः सर्वतश्च क्रिया हिमाः । सितामाक्षिकसंयुक्तं मद्यमर्द्धोदकं पिबेत् ॥ ७६ ॥ मद्यं खर्जूरमृद्वीकापरूषकरसैर्युतम् । सदाडिमरसं शीतं सक्तुभिश्चावचूर्णितम् ॥ ७७ ॥ सशर्करं वा माध्वीकं संयुक्तमथ वा परम् । दद्याद्बहूदकं काले पातुं पित्तमदात्यये ॥ ७८ ॥ शशान्कपिञ्जलानेणाँल्लावानसितपुच्छकान् । मधुराम्लान्प्रयुञ्जीत भोजने शालिषष्टिकान् ॥ ७९ ॥ पटोलयवमिश्रं वा छागलं कल्पयेद्रसम् । सतीनमुद्गमिश्रं वा दाडिमामलकान्वितम् ॥ ८० ॥ द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन च । कल्पयेत्तर्पणान्यूषान्नसांश्च विविधात्मिकान् ॥ ८१ ॥ शीतानि चान्नपानानि शीतशय्यासनानि च । शीतवातजलस्पर्शाः शीतान्युपवनानि च ॥ ८२ ॥ क्षौमपद्मोत्पलानां च मणीनां मौक्तिकस्य च । चन्दनोदकशीतानां स्पर्शाश्चन्द्रांशुशीतलाः ॥ ८३ ॥ रूक्षतर्पणसंयुक्तं यवानीव्योषसंयुतम् । यवगोधूमकं चान्नं रूक्षयूषेण भोजयेत् ॥ ८४ ॥ कुलत्थकानां शुष्काणां मूलकानां रसेन वा । प्रभूतकटुसंयुक्तं यवान्नं वा प्रदापयेत् ॥ ८५ ॥ छागमांसरसं रूक्षमम्लं वा जांगलं रसम् । व्योषयूषमनागम्लं पिबेत्कफमदात्यये ॥ ८६ ॥ स्थाल्यामथ कपाले वा भृष्टं कृत्वा तु नीरसम् । कट्वम्ललवणं मांसं खादेत्कफमदात्यये ॥ ८७ ॥ वामकद्रव्ययुक्तेन मद्येनोल्लेखनं मतम् । मदात्यये कफोद्भूते लंघनं च यथाबलम् ॥ ८८ ॥ यदिदं कर्म निर्दिष्टं वातपित्तकफान्प्रति । सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सकैः ॥ ८९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस प्रकार अग्निसे जले हुएको दहन और वेदन हितकारी है उसी प्रकार मद्यसे उत्पन्न हुए रोगोंको मद्य ही औषधि है। मद्यके मिथ्या योगसे वा अत्यन्त योगसे और हीन योगसे जो रोग उत्पन्न होयँ वे रोग समयोगवाले मद्य पीनेसे ही शांत होते हैं। वातसे तथा पित्तसे उत्पन्न हुए मदात्यय रोगको शमन करनेके लिये पुरानी मद्यमें नमक डालकर तथा बिजौरा नींबू, अमलवेत, बेर, अनार, अजवायन, हाऊबेर, जीरा और सोंठ इनका चूर्ण डालकर स्नेहयुक्त सत्तुओंके साथ और मसालेके साथ रोगीको पीनेको देवे। प्रथम पिया हुआ मद्य जीर्ण होनेपर काला नमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनके साथ तथा जलके साथ मद्य देवे तो वातज मदात्यय नष्ट हो जाता है। चव्य, काला नमक, भूनी हींग, बिजौरा, सोंठ और अजवायन इनका चूर्ण करके मद्यके साथ पीनेसे मदात्यय रोग दूर हो जाता है लवा, । तीतर, मुरगा, मोर, जलप्रायदेशमें रहनेवाले मृग और मछली इनके मांसके रससे संयुक्त भात, स्निग्ध, उष्ण, खारी, खट्ट और मुखको प्रिय लगे ऐसे अचार मसालेके साथ और स्निग्धतायुक्त गेहूंके भोजनोंसे वातका मदात्यय शांत होता है। जिन युवतियोंके शरीरमें यौवनकी छटा छिटक रही हो उनके निर्दय आलिंगनसे, नितंब, जंघा और कुच इनके भारसे तथा प्यारसे और दबानेसे जो गरमीका सुख होता है उससे गरम शयन शय्या, गद्दी आदिके सुखसे, गरम आच्छादनोंसे और सुखदायक मन्दिरोंके भीतरके भवनोंमें रहनेसे वातकी प्रबलतावाला मदात्यय शांत होता है। पित्तके मदात्ययमें सम्पूर्ण शीतल क्रिया प्रयोग करनी चाहिये। मद्यमें आधा पानी डालकर मिश्री और सहत मिलाकर पीनेसे पित्तज मदात्यय नष्ट हो जाता है। खजूर, दाख, फालसे, अनार इनके रसके साथ, मिश्री तथा सत्तू डालकर शीतल गुणवाली माध्वीक मद्य अथवा इनसे संयुक्त की हुई दूसरे प्रकारकी मद्य उसमें बहुतसा पानी मिलाकर समयपर पिये तो पित्तका मदात्यय नष्ट हो जाता है। पित्तके मदात्ययमें खरगोश, तीतर, एणमृग, लवा, तथा कालपुच्छ मृग इनका मांस देना चाहिये, मीठे तथा खट्टे पदार्थ, शालिचावल और सांठीके चावल देने चाहिये। परवलके यूषसे अथवा मटरसहित मूंगके यूषके साथ अथवा अनारके और आमलीके रसके साथ बकरेके मांसका रस उपयोगी है। पित्तके मदात्ययमें तृप्तिकारक यूषोंकी, अलग अलग प्रकारके रसोंकी, शीतल अन्न पानोंकी, शीतल शय्याकी, शीतल आसनोंकी, शीतल पवनकी, शीतल जलके स्पर्शकी, शीतल उपवनोंकी और चन्द्रमाकी किरणोंकी योजना करनी चाहिये। कफसम्बन्धी मदात्ययमें रूक्ष, तर्पण (तृप्ति करनेवाले पदार्थ) तथा अजवायन, सोंठ, मिरच और पीपल इनके साथ जौ तथा गेहूंका भोजन रूक्ष यूषोंके साथ भक्षण करना चाहिये, अथवा कुलथीके और सूखी मूलीके रसके साथ अथवा ताखे पदार्थोंके साथ जौका भोजन करना चाहिये। कफके मदात्ययमें रूक्ष द्रव्योंके साथ बकरेके मांसका रस, अथवा अम्ल किये हुए जांगलदेशके जीवोंका मांस रस, अथवा कुछ खटाई डालकर सोंठ, मिरच, तथा पीपलका यूष पिलावे। मांसको हाँडीमें अथवा खीवटेमें सूखा भूनकर उसमें तीखे खट्टे और खारी पदार्थ मिलाकर खाय तो कफका मदात्यय दूर हो जाता है। कफके मदात्ययमें वमनकारक औषधियोंसे संयुक्त मद्य पिलाकर कफको निकालना चाहिये तथा शक्त्यनुसार लंघन कराने चाहिये। सान्निपातिक मदात्ययमें वातज, पित्तज और कफज मदात्ययकी जो अलग चिकित्सा कही है वे सब चिकित्सा वैद्य इसमें करे॥६६-८९॥

अथ प्रसंगप्राप्तकोद्रवादिमदचिकित्सा।

सगुडः कूष्माण्डरसः शमयति मदमाशु कोद्रवजम्। धत्तूरजं च दुग्धं सशर्करं चाशु पानेन॥ ९०॥ सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मदं पूगफलोद्भवम्। सद्यः प्रशमयेत्पीतमातृसेवारि शीतलम्॥ ९१॥ वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणादपि च। शाम्यति पूगफलोद्भवमदः सशूलः शर्कराकवलात्॥ ९२॥ तक्षणान्मृदितं चूर्णं समाघ्रातं प्रणाशयेत्। ताम्बूलोत्थं मदं पुंसामेकमेव स्वभावतः॥ ९३॥ जातीफलमदं शीघ्रं हन्ति पथ्या निषेविता। शीततोयावगाहश्च शर्करा दधियोजिता। विभीतमदशान्त्यर्थमेतदेव मतं पुनः॥ ९४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मद्यं पीत्वा यदि ना तत्क्षणमवलेढि शर्करां सघृताम् । जातु न मदयति मद्यं मनागपि प्रथितवीर्यमपि ॥ ९५ ॥

कोदोंको खानेसे जो मद होय तो पेठेके रसमें गुड मिलाकर सेवन करे, इससे कोदोंका मद तत्काल शमन हो जाता है । धतूरेका मद (आमला) मिश्री मिलाकर दूधको पीनेसे नष्ट हो जाता है । सुपारीके खानेसे उत्पन्न हुए वमन, मूर्छा और अतिसारसहित मदको तृप्तिपूर्वक कण्ठपर्यंत पिया हुआ शीतल जल तत्काल दूर कर देता है । सुपारीका मद अरने उपलोंको सूंघनेसे, जलको पीनेसे और नमक खानेसे भी दूर हो जाता है । सुपारीका मद शूलसहित होय तो खांडयुक्त कवल धारण करे इससे तत्काल शांत हो जाता है । पानका मद तत्काल चूनेको हाथोंसे मलकर सूंघनेसे शांत हो जाता है । जायफलका मद हरडके खानेसे, शीतल जलमें प्रवेश करनेसे, अथवा खांडके साथ दही खानेसे शांत हो जाता है । बहेडेका मद भी दहीमें बूरा मिलाकर खानेसे शांत हो जाता है । मनुष्य यदि मद्य पीकर तत्काल घीमें मिलाकर बूरा खाय तो प्रबल पराक्रमवाला भी मद किंचित् भी नाश नहीं करता ॥ ९०-९५ ॥

इति मदात्यय-परमद-पानाजीर्ण-पान-विभ्रमाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ दाहाधिकारः ।

तत्र प्रथमं पित्तदाहः ।

पित्तज्वरसमः पित्तदाहः स्यात्तस्य संक्रमः ॥ १ ॥ दाह उष्मात्मको व्याधिः पित्तज्वरसमानः पित्तज्वरलक्षणयुक्तः पित्तज्वरे तु आमाशयदुष्टात् दाहो ज्वराधिक इति भेदः । तस्य दाहस्य पित्तज्वरोक्तः क्रमः चिकित्सा ।

दाहरोग सात प्रकारका हैं, तहां सबसे पहिले पित्तके दाहको कहते हैं । दाह गरमीरूप व्याधि है, इसमें पित्तज्वरके लक्षण होते हैं इस कारण जो पित्तज्वरकी चिकित्सा कही है वही चिकित्सा दाहकी करनी चाहिये, पित्तज्वरमें आमाशयके दुष्ट होनेसे दाह और ज्वर यह दोनों होते हैं और यह व्याधि तो केवल दाह रूप है, इस कारण पित्तज्वर और दाहमें भेद है॥१॥

अथ रुधिरदाहः ।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् । सन्धूप्यते चोष्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः । लोहगन्धांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥ २ ॥ उद्रिक्तम् अतिरिक्तं सत् दहति दाहाख्यं व्याधिं करोति । सन्धूप्यते अग्निना दह्यत इव । उष्यते समीपस्थेनैव वह्निना ताप्यते चूष्यत इति पाठान्तरे आचूषणेनेव पीडामनुभवति इत्यर्थः । वह्निनेव अवकीर्यते शरीरोपरि वह्निः प्रक्षिप्यत इव ।

सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाला रुधिर सो अत्यंत वृद्धिको प्राप्त और कुपित होकर दाह नामवाली व्याधिको उत्पन्न करता है, इसमें रोगीको सब संसार अग्निसे जलते हुएकी समान प्रतीत होता है, अथवा समीपमें रक्खी हुई अग्निसे सब शरीर तपता हुआ मालूम होता है, शरीरमें चूसने सरीखी पीडा होती है, शरीरपर अग्नि डालनेकी समान वेदना होती है, इस मनुष्यका शरीर, नेत्र लालवर्ण हो जाता है । शरीरमेंसे तथा मुखमेंसे तत्ते लोहेपर जल डालनेके समान गंध आने लगता है ॥ २ ॥

अथ रक्तपूर्णकोष्ठजदाहः ।

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुस्तरः ॥ ३ ॥ असृजा शस्त्रादिक्षतात् निस्सृतरक्तेन ।

शस्त्र आदिके लगनेसे घाव जो हो जाता है, उस घावसे निकले हुए रुधिरसे जिस मनुष्यका कोठा भर जाता है उसके जो महादुस्तर दाह उत्पन्न होता है वह तीसरे प्रकारका दाह गिना जाता है ॥ ३ ॥

अथ मद्यदाहः ।

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः । दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ ४ ॥ स पानोष्मा मद्यपानजनित ऊष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः पित्तरक्ताभ्यां वर्द्धितः ।

मद्यपानके करनेसे त्वचा (चमडी) में प्राप्त हुई और पित्त तथा रुधिरसे बढी हुई भयंकर दाहको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न करती है, इसमें पित्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ तृष्णानिरोधजदाहः।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ॥ ५ ॥ स बाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः। संशुष्कगलतालोष्ठो जिह्वां निष्कास्य वेपते ॥ ६ ॥ अब्धातौ रसे क्षीणे क्षयं प्राप्ते। तेजः समुद्धतं वृद्धम्, मन्दचेतसः अल्पबुद्धेः यतस्तेन तृषानिरोधः कृतः।

जो मनुष्य मूर्खतासे तृषा (प्यास) को रोकता है उसके तृषाके अवरोधसे शरीरकी जलमय धातु क्षीण होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ तेज शरीरके बाहर तथा भीतर दाहको उत्पन्न करता है और उसमें गला तालू और होंठ सूख जाते हैं और वह जीभ निकालकर हाँपता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ धातुक्षयजदाहः।

धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः। क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्वृशपीडितः ॥ ७ ॥ सीदेत् म्रियेत।

धातुके क्षयसे जो दाह होती है उससे पीडित मनुष्य मूर्च्छासे तथा तृषासे युक्त होता है, क्रियारहित हो जाता है स्वर बैठ जाता है और वह मनुष्य अंतमें मर जाता है ॥ ७ ॥

अथ मर्माभिघातजदाहः।

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः। मर्माणि शिरोहृदयवस्त्यादीनि।

मस्तक, हृदय और मूत्राशय आदि मर्मोंके अभिघात (चोट) से जो दाह होता है वह असाध्य है यह सातवीं दाह है।

अथ दाहासाध्यता।

सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः ॥ ८ ॥

जिसके शरीरमें भीतर तो दाह हो और ऊपरसे शरीर शीतल हो ऐसा सब प्रकारका दाह वर्जित है॥ ८॥

अथ दाहचिकित्सा।

शतधौतघृताभ्यक्तं लेपं वा यवसक्तुभिः। कोलामलकयुक्तैर्वा धान्याम्लैरपि बुद्धिमान् ॥ ९ ॥ छादयेत्तस्य सर्वांगमारनालार्द्रवाससा। लामज्जकेन युक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत्। चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजनैः ॥ १० ॥ सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे। परिषेकावगाहेषु व्यजनानां च सेवने ॥ ११ ॥ शस्यते शिशिरं तोयं दाहतृष्णोपशान्तये। फलिनी लोध्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम्। कालेयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ १२ ॥ फलिनी प्रियंगुः। सेव्यम् उशीरम्। अम्बु वालकं हेमपत्रं नागकेशरपत्रं, कुटन्नटं वितुन्नकं गुडतजी इति लोके क्वचिच्चम्पावती इति नाम। कालीयकं कलम्बक इति लोके। हीबेरपद्मकोशीरचन्दनाम्बुजवारिणा। सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ १३ ॥ वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः। नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ १४ ॥ पाययेत्कमलस्याम्भः शर्करां मधु पयोऽपि च। क्षीरमिक्षुरसं चापि कारयेत्पित्तजिद्विधिम् ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य दाहवाले मनुष्यके शरीरमें घीको सौ वार धोकर मालिश करे, अथवा जौके सत्तू और बेर तथा आमले सहित धान्याम्ल नामक काँजीका लेप करे। दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरको काँजीमें भीजे हुए वस्त्रसे ढके। शरीरपर लामज्जक संयुक्त चंदनका प्रलेप करे। दाहसे व्याकुल मनुष्यको कमलके पत्र और केलेके पत्तोंकी शय्यापर सुलावे। चंदन मिले हुए जलके कण जिनमेंसे गिरते हों ऐसे पंखोंसे पवन करे। दाह और तृषाको शांत करनेके लिये जलका सींचना वा छिडकना, जलमें घुसकर स्नान करना और शीतल जलका ही उपयोग करना चाहिये। फूलप्रियंगू, लोध, सुगंधवाला, खस, नागकेसरके पत्ते, केवटी मोथा और पीला चंदन इनका रस निकालकर प्रलेप करना दाहमें हितकारी है। सुगंधवाला, पद्माख, खस, चंदन और कमल इनसे सुवासित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया हुआ जल चौबच्चेमें भर देवे उसमें दाहसे पीडित मनुष्यको बैठावे । जिनमें सुन्दर सुन्दर रंग रंगके मनोहर कमल खिल रहे हैं ऐसी बावडी, जिनमें फुहारे छूट रहे हैं ऐसे भवन और सर्व अंगोंमें जिनके चंदन लग रहा है ऐसी स्त्री दाहसम्बन्धी दुःखको दूर करे हैं । दाहवाले मनुष्यको कमलका जल पिलावे, खांडका सरबत पिलावे, मिश्री मिलाकर दूध पिलावे, केवल दूध ही पिलावे और ईखका रस पिलावे इत्यादि पित्तको शमन करनेवाले उपचार करने चाहिये ॥ ९-१५ ॥

अथ चंदनादिक्काथः ।

पटीरपर्पटोशीरनीरनीरदनीरजैः । मृणाल-मिसिधान्याकपद्मकामलकैः कृतः ॥ १६ ॥ अर्द्धशिष्टः सिताशीतः पीतः क्षौद्रसमन्वितः । काथो व्यपोहयेदाहं नृणां च परमोल्वणम् । ॥ १७ ॥ पटीरं चन्दनम् ।

सफेद चंदन, पित्तपापडा, सुगंधवाला, खस, नागरमोथा, कमलगट्टा, कमलकी नाल, सौंफ, धनियाँ, पद्माख और आमले इनका अर्द्धावशेष काथ बनावे, उसमें मिश्री और शीतल होनेपर सहत डालकर पीनेसे मनुष्योंका अत्यंत उग्र दाह शांत हो जाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ कांजिकतैलम् ।

तिलतैलं भवेत्प्रस्थं तत्षोडशगुणे शनैः । काञ्जिके विपचेत्तत्स्याद्दाहज्वरहरं परम् ॥१८॥

सोलह १६ भाग काँजीमें धीरे धीरे पकाया हुआ तिलका चौंसठ ६४ तोले तेल दाह और ज्वरके संतापको दूर करता है ॥ १८ ॥

इति दाहाधिकारः संपूर्णः ।

अथोन्मादाधिकारः ।

तत्रोन्मादनिरुक्तिः ।

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः । मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥ अयमर्थः । यस्माद्धेतोरुद्धताः प्रवृद्धाः दोषा उन्मार्गमाश्रिताः मदयन्ति चित्तं विक्षिपन्ति अस्मिन्सोऽयमुन्माद इति कीर्तितः स उन्मादः मानसो व्याधिः मनोवैकृत्यकरणात् ।

इस रोगमें वृद्धिको प्राप्त हुए दोष (वात पित्त कफ) अपने मार्गोंको छोडकर अन्यमार्गोंमें आश्रित होकर चित्तको विक्षिप्त करते हैं इसलिये इसको उन्माद कहते हैं । यह मनको विकृत कर देता है अत एव यह मानसिक रोग है ॥ १ ॥

अथावस्थाभेदेनोन्मादनामान्तरम् ।

स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च ॥२॥ स उन्मादः तरुणो नवीनः ।

यह उन्माद बढा न हो नवीन होय तो मद कहा जाता है ॥ २ ॥

अथोन्मादविप्रकृष्टनिदानम् ।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् । उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमा च चेष्टा ॥ ३ ॥ दुष्टधत्तूरबीजादिसहितम् अशुचि रजस्वलास्पर्शादि । प्रधर्षणमभिभवः । विषमा चेष्टा बलवद्विग्रहादिः ।

विरुद्ध भोजन (धतूरे आदि मिश्रित भोजन), रजस्वला आदिसे स्पर्श किया हुआ भोजन, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंके अपमानसे भयसे अथवा हर्षसे मनमें डरके लगनेसे एवं बलवान्के साथ द्वेषादिक विरुद्ध चेष्टा करनेसे इत्यादि कारणोंसे उन्माद रोग उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथोन्मादसन्निकृष्टनिदानम् ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते । विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ॥४॥

अत्यंत कुपित हुई वायुसे, अत्यन्त कुपित हुए पित्तसे, अत्यंत कुपित हुए कफसे, अत्यंत कुपित हुए तीनों दोषोंसे, मनके दुःखसे और विषादिकोंके भक्षण करनेसे, छः प्रकारका उन्माद होता है । इस उन्मादरोगमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथोन्मादसम्प्राप्तिः ।

तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य । स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥ अल्पसत्त्वस्य अल्पसत्त्वगुणस्य । मला वातादयः । बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्योति एतेन आश्रयस्य दुष्ट्या तदाश्रितायाः बुद्धेरपि दुष्टिरुक्ता । मनोवहानि स्रोतांसि हृदयाश्रितानि दश एतानि विशेषतो बोद्धव्यानि । चरकेण सकलशरीरस्रोतांसि एव मनोऽधिष्ठानत्वेन उक्तानि । प्रमोहयन्ति विकृतिं कुर्वन्ति ।

अल्पसत्त्वगुणवाले मनुष्यके विरुद्ध भोजन आदि कारणोंसे दुष्ट हुए वातादिदोष बुद्धिके निवासरूप हृदयको और बुद्धिको भी दूषित करके मनको बहानेवाले हृदयमें रहकर दश स्रोतोंमें स्थित होकर तत्काल मनुष्योंके चित्तको विकृत करते हैं । ऊपरके वचनमें मनको बहन करनेवाले स्रोतोंकी जो दश संख्या कही है उनपर विशेष ध्यान देना चाहिये, कारण कि, चरक तो ' शरीरमें जितने स्रोत हैं वे सब मनके अधिष्ठान हैं ' ऐसा कहता है ॥ ५ ॥

अथोन्मादसामान्यलक्षणम् ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च । अबद्धवाक्यं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ ६ ॥ धीविभ्रमः शुक्तिकायां रजतज्ञानम् । सत्त्वपरिप्लवः सत्वं मनस्तस्य चाञ्चल्यम् । अबद्धवाक्यम् असंबद्धभाषित्वम् । शून्यं स्मृतिशून्यम् ।

सीपको चांदी समझना ऐसा बुद्धिमान्का भ्रम, मनकी चंचलता, दृष्टिको चारों ओर व्याकुलतासे फिराना, अधीरजता, असंबद्ध भाषण और हृदयकी शून्यता (विचारणशक्ति जाती रहे) ये उन्मादके सामान्य लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ वातजोन्मादनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

रूक्षोष्णशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः । चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥ ७ ॥

रूक्ष, गरम और शीतल अन्नको भोजन करनेसे विरेचनसे, धातुओंके क्षयसे और उपवासादिकोंसे अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुई वायु चिंतादिकसे दुष्ट होकर हृदयको अतिशय दूषित करके बुद्धिको तथा स्मरणशक्तिको भी तत्काल नष्ट कर देती है ॥ ७ ॥

अथ वातजोन्मादलक्षणम् ।

अस्थानहास्यस्मितनृत्यगीतवाग्गंगविक्षेपणरोदनानि । पारुष्यकार्ष्यारुणवर्णताश्च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम् ॥ ८ ॥ अस्थाने अनवसरे । हास्यादीनि रोदनान्तानि जीर्णे आहारे बलं व्याधेः ।

विना ही कारण हँसना या मुसकराना, प्रसंग विना नाचना, प्रसंग विना गाना, विना प्रसंग बोलना, विना कारण इधर उधर हाथ पैरोंको चलाना, विना प्रसंग रोना, गाल बजाना, दुर्बलता, रूखापन, शरीरका लाल रंग हो जाना और आहारके जीर्ण होनेपर रोगका बढना यह सब वातसम्बन्धी उन्मादके लक्षण जानने ॥ ८ ॥

अथ पित्तजोन्मादसम्प्राप्तिः ।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् । उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥ ९ ॥ हृदि स्थितं पित्तं चितं साञ्चितं पुनः अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैरुदीर्णवेगं सदुन्मादं कुर्यात्पूर्ववत् हृदयं प्रदूष्य इत्यर्थः ।

अस्थिर बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें संचित हुआ पित्त अजीर्णसे और तीखे, खट्टे, दाहकारक तथा उष्ण भोजनोंसे प्रकुपित होकर हृदयको अत्यंत दूषित करके अत्यंत उग्र भयानक उन्मादको उत्पन्न करता है॥९॥

अथ पित्तजोन्मादलक्षणम् ।

अमर्षसंरम्भविनम्रभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः । प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीतास्यता पित्तकृतस्य लिंगम् ॥ १० ॥ अमर्षोऽसहिष्णुता संरम्भ आडम्बर इति यावत् । सन्तर्जनं परित्रासनम् । अभिद्रवणं पलायनम् । औष्ण्यं गात्रे च उष्णो दाह-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विशेषः । प्रच्छाय इत्यादि छायायां शीतयोश्चान्नजलयोरभिलाषा ।

असहनता, शीलता न रहे, इधर उधर हाथ पांवोंको पटके तथा अन्यान्य और उपद्रव मचावे, नंगा हो जाय, दूसरोंको त्रास देवे, भाग जाय, शरीरमें एक प्रकारकी दाह हो, छायाकी इच्छा, शीतल अन्नकी इच्छा, शीतल जलकी इच्छा और मुखमें पीलापन ये सब पित्तजन्य उन्मादके लक्षण जानने ॥ १० ॥

अथ कफजोन्मादनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि सम्प्रवृद्धः । बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्सञ्ज्ञनयेद्विकारम् ॥ ११॥ सम्पूरणैः भोजनादिभिः । मन्दविचेष्टितस्य व्यायामरहितस्य । सोष्मा कफेति कफोऽपि उन्मादं करिष्यन्पित्तसहायम् । अपेक्षते व्याधिस्वभावात् । मर्मणि अत्र मर्मशब्देन हृदयमुच्यते ।

परिश्रम नहीं करनेवाले मनुष्योंके भोजन आदिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ पित्तसहित कफ हृदयमें बुद्धिको तथा स्मृतिको नष्ट कर देता है और चित्तको मोहयुक्त करके उन्मादको उत्पन्न करता है । इस वचनमें 'पित्तसहित कफ' कहा इससे यह जान पडता है कि जब कफ उन्माद करनेको तैयार होता है तब उसको व्याधिके स्वभावसे पित्तकी सहायताकी आवश्यकता होती है ॥ ११ ॥

अथ कफजोन्मादलक्षणम् ।

वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियता च निद्रा । छर्दिश्च लाला च बलं च भुक्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात् ॥ १२ ॥ वाक्चेष्टितं मन्दं वचनमल्पम् । नारीविविक्तप्रियता नारीप्रियता विजनप्रियता च । भुक्ते सति बलं व्याधेः ।

कफके उन्मादमें थोडा बोलता है, स्त्रीकी इच्छा होती है, एकांतवास अच्छा मालूम होता है, निद्रा आती है, वमन होती है, लार गिरती है, भोजन करनेके पश्चात् व्याधिका बल बढता है और नखादिक बहुत सफेद हो जाते हैं ॥ १२ ॥

अथ सान्निपातिकोन्मादनिदानपूर्वकलक्षणम् ।

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः स तु हेतुभिः स्यात् । सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥ स सान्निपातिक उन्मादः । सन्निपातग्रहणेनैव सर्वात्मकत्वं लब्धं पुनः सर्वैरिति यत्कृतं तद्रजस्तमःप्रापणार्थं तेन रजस्तमोमिलित इत्यर्थः । तेन वातादयो रजस्तमोभिर्मनोदोषैः मिलिताः समस्तैश्च निदानैः कुपिता उन्मादं जनयन्ति सर्वैर्हेतुभिः समस्तैर्मिलितैः स्यात् । यतोऽन्यो व्याधिः सर्वैर्हेतुभिः मिलितैरेव भवतीति नियमो नास्ति । अयं तु व्याधिप्रभावात्सर्वैर्हेतुभिर्मिलितः स्यात् । तादृक् उन्मादः विरुद्धभैषज्यविधिरिति कोऽर्थः ? त्रिदोषजे प्रत्येकं वातादेः प्रत्यनीका चिकित्सा कार्या सा च परस्परविरोधिनी त्रिदोषं हन्ति किञ्चिदेव द्रव्यम् आमलकादि न च अत्र यौगिकं व्याधिप्रभावादत एव विवर्ज्यः न चिकित्स्य इत्यर्थः ।

सम्पूर्ण कारणोंसे कुपित हुए और रजोगुण तथा तमोगुण मनके दोषोंके साथ मिलकर वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोंसे जो अत्यंत घोर उन्माद होता है उसको सान्निपातिक उन्माद कहते हैं। उसमें सब लक्षण देखे जाते हैं । अन्य त्रिदोषजन्य रोग सम्पूर्ण कारणोंके मिलनेसे ही होते हैं ऐसा नियम नहीं है किन्तु यह सान्निपातिक उन्माद तो सम्पूर्ण कारणोंके मिलनेसे ही होता है ऐसा इसका स्वभाव है । इस उन्मादमें जो कुछ औषधि आदि की जावे वह सब विरुद्ध पडती है इस कारण इस उन्मादकी चिकित्सा ही नहीं करनी चाहिये । अन्य रोगोंमें त्रिदोषजन्य वायु आदि प्रत्येक दोषोंकी परस्पर विप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रीत चिकित्सा की जाती है और वह चिकित्सा एक दूसरे दोषोंसे विरुद्ध होती है। इस उन्मादकी चिकित्सा तो तीनों दोषोंकी समान प्रबलता होती है इस कारण इसमें एक दूसरे दोषसे विरुद्ध चिकित्सा काम नहीं देती। आमला आदि कोई एकही द्रव्य तीनों दोषोंको एक साथमें शमन करता है किन्तु वह द्रव्य इस उन्मादमें व्याधिके स्वभावसे उपयोगी नहीं हो सक्ता। इस उन्मादकी चिकित्सा व्यर्थ जाती है॥ १३॥

अथ मनोदुःखजोन्मादविप्रकृष्ट-निदानम्।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबांधवसंक्षयाद्वा। गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः॥ १४॥ अन्यैः हिंस्रादिभिः गाढमतिशयेन क्षतेऽभिहते। प्रियया प्राप्तुमशक्यया रिरंसोः पुरुषस्य। विकारः उन्मादरूपः।

चोर, राजपुरुष, शत्रु अथवा अन्यान्य मनुष्योंके त्रास देनेसे, या धनका और बांधवोंका नाश होनेसे मन अत्यंत दुःखित (घायल) होकर अथवा जो अपनेको न मिलसके ऐसी स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छासे मनमें अत्यंत चोट लगकर अधिकतर प्रबल उन्माद उत्पन्न होता है॥ १४॥

अथ मनोदुःखजोन्मादलक्षणम्।

चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चातिमूढः॥ १५॥ चित्रमाश्चर्यं मनोऽनुगतं गोप्यमपि विसंज्ञो विरुद्धज्ञानः। अतिमूढः अतीव ज्ञानशून्य अत्र विकल्पो बोद्धव्यः।

मनके दुःखसे जो उन्माद होता है उसमें विपरीत ज्ञानवाला अथवा ज्ञानसे रहित होकर वह विचित्र प्रकारसे बोलता है, मनमें स्थित गुप्त बातको भी कह देता है, कभी गाता है, कभी हँसता है और कभी रोता है॥ १५॥

अथ विषजन्योन्मादलक्षणम्।

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः श्यावाननो विषकृते तु भवेत्परासुः॥ १६॥

विषजन्य उन्मादमें आँखें लाल हो जाती हैं, बल इन्द्रियोंकी सामर्थ्य और शरीरकी कांति नष्ट हो जाती है, मुख काला हो जाता है और मन अत्यंत दीन हो जाता है यह मनुष्य जीता नहीं॥ १६॥

अथोन्मादारिष्टम्।

अवाङ्मुखस्तन्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः। जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति १७

जो उन्मादसे पीडित मनुष्य मुखको नीचेही करे रहे, अथवा सदैव ऊपरको उठाये रहे, जागा करे, तथा जिसका मांस और बल क्षीण हो गया हो ऐसा मनुष्य उन्मादसे अवश्य मर जाता है॥ १७॥

अथ देवाद्युन्मादसामान्यलक्षणम्।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तः। प्रकोपकालो नियतश्च यस्य देवादिजन्मा मनसो विकारः॥१८॥ अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टः न मर्त्यस्येव वागादयो यत्र सः। विक्रमः पराक्रमः। वीर्यं शौर्यम्, ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तज्ञानं बुद्धिः आदिपदेन तद्भेदाः मेधाविचारणास्मृत्यादयो गृह्यन्ते। विज्ञानं शिल्पादिविषयकं ज्ञानम्। बलम् चेष्टापाटवम्। आदिपदेन अभिमानादि गृह्यते। नियतः वक्ष्यमाणतिथ्यादिभिः। मनोविकार उन्मादः।

देवादिकजुष्ट उन्मादमें उस मनुष्यका बोलना, पराक्रम, शूरता और चेष्टा मनुष्योंकेसी नहीं होती और वह मनुष्य बुद्धि, विचारशक्ति, धारणाशक्ति, स्मरणशक्ति, शिल्प आदिके ज्ञान, बल तथा अभिमान इत्यादिसे संयुक्त होता है। इस उन्मादके प्रकोपका समय अमुक तिथिमें नियमित होता है जो कि, आगे कहा जायगा॥ १८॥

अथ देवग्रहजुष्टलक्षणम्।

सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रोऽप्यवितथसंस्कृतप्रभाषी। तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः॥ १९॥ अतिदिव्यमाल्यगन्धः। अतिशयेन दिव्यस्य माल्यस्येव गन्धो यस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सः । निस्तन्द्रो निद्रारहितः । अवितथं सत्यम् । ब्रह्मण्यः ब्राह्मणभक्तः ।

देवग्रहग्रसित उन्मादमें मनुष्य संतोषी होता है, पवित्र रहता है, उसके शरीरमें दिव्य पुष्पोंकी सुगन्ध आती, है निद्रारहित होता है, सत्य सत्य शुद्ध संस्कृतभाषा बोलता है, तेजस्वी होता है, उसके नेत्र स्थिर होते हैं, दूसरोंको वरदान देता है और ब्राह्मणोंकी भक्ति करता है ॥ १९ ॥

अथ दैत्याविष्टलक्षणम् ।

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः । सन्तुष्टो भवति न चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स दैवशत्रुजुष्टः ॥ २० ॥ विमार्गदृष्टिः । कुमार्गरतः । दुष्टात्मा दुष्टस्वभावः ।

दैत्यग्रहग्रसित उन्मादवाला मनुष्य पसीनेसे तराबोर हो जाता है, ब्राह्मण गुरु और देवताओंकी निन्दा करता है, उसके नेत्र टेढे हो जाते हैं, किसीसे भयभीत नहीं होता, कुमार्गमें रुचि रखता है, किसी अन्नपानसे सन्तुष्ट नहीं होता और उसका स्वभाव दुष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

अथ गन्धर्वाविष्टलक्षणम् ।

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः । नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥ हृष्टात्मा हृष्टजीवात्मा पुलिनं तोयोत्थितं तटं वनान्तरं वनमध्यं तयोः सेवी । चारु च अल्पशब्दामिति हसनक्रियाविशेषणम् ।

गन्धर्वग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्न अन्तःकरणयुक्त रहता है, जलाशय, तट और वन उपवनोंमें निवास करता है, उत्तम आचरण रखता है, गायन, सुगन्ध तथा पुष्पोंके ऊपर प्रेम रखता है और नाचते २ मन्द मुसकान करता है ॥ २१ ॥

अथ यक्षाविष्टलक्षणम् ।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः । तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २२ ॥

यक्षग्रहग्रसित मनुष्य गम्भीर होता है, उसके नेत्र लाल होते हैं, प्रिय सुन्दर बारीक और रंगीनवस्त्र पहनता है, शीघ्र २ चलता है, थोडा बोलता है, सहनशील और तेजस्वी होता है तथा किसको क्या दूं ऐसा बोलता है ॥ २२ ॥

अथ पित्राविष्टलक्षणम् ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान् शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः । मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिलाषी तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २३ ॥ प्रेतानां मृतानां पितृणाम् दिशति ददाति । अपसव्यवस्त्रः दक्षिणस्कन्धकृतोत्तरीयः ।

पितृग्रहसे पीडित मनुष्य कुशा आदिपै अपने पित्रोंको पिण्ड देता है, शांतचित्त रहता है, अपसव्य अर्थात् दहिने कन्धेपर वस्त्र रखकर अपने पित्रोंको जल भी देता है, मांस, तिल, गुड और खीर खानेकी इच्छा करता है और पित्रोंकी भक्ति करता है ॥२३॥

अथ नागाविष्टलक्षणम् ।

यस्तूर्ध्वं प्रसरति सर्पवत्कदाचित् सृक्किण्यौ मुहुरपि जिह्वयाऽवलेढि । क्रोधालुर्घृतमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयः स खलु भुजंगमेन जुष्टः ॥ २४ ॥ प्रसरति स सर्पवदुरसा चलति । सृक्किण्यौ ओष्ठप्रान्तौ ।

सर्पग्रहसे ग्रसित मनुष्य कभी सांपकी समान पृथिवीमें छातीके बलसे चलता है, बारंबार जीभसे गलाफुओंको चाटता है, क्रोधित होता है और सहत, घी, दूध तथा खीर खानेकी इच्छा करता है ॥ २४ ॥

अथ राक्षसाविष्टलक्षणम् ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः । क्रोधालुर्विविधबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥ २५ ॥

राक्षसग्रहसे जुष्ट मनुष्य मांस, रुधिर और मदिराके विकारोंकी इच्छा करता है, अत्यन्त निर्लज्ज हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाता है, अत्यन्त निर्दय हो जाता है, अत्यन्त शूर हो जाता है, क्रोधी हो जाता है, उसके शरीरमें अनेक प्रकारके बल आ जाते हैं, रात्रिमें भ्रमण किया करता है और पवित्रतासे द्वेष करता है ॥ २५ ॥

अथ ब्रह्मराक्षसाविष्टलक्षणम् ।

देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदांगनिन्दकः । आत्मपीडाकरोऽहिंस्रो ब्रह्मराक्षससेवितः ॥ २६ ॥ अहिंस्रः अहिंसाशीलः ।

ब्रह्मराक्षसोंसे पीडित मनुष्य देवता, ब्राह्मण और गुरु इनसे द्वेष करता है, वेद और वेदके अंगोंकी निन्दा करता है, अन्य किसी मनुष्यको नहीं मारता किन्तु अपने शरीरको पीडित करता है ॥ २६ ॥

अथ पिशाचाविष्टलक्षणम् ।

उद्वस्त्रः कृशपरुषो विरुद्धभाषी दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथातिलोलः । बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टंस्त्रसति रुदन्पिशाचजुष्टः ॥ २७ ॥ उद्वस्त्रः नग्नः दिगम्बर इति विदेहवचनात् कृशो निर्मांसः । परुषो रूक्षः । अतिलोलः सर्वस्मिन्नन्नपानादौ लोलुपः । व्याचेष्टन्विरुद्धमाचेष्टन् ।

पिशाचग्रहसे पीडित मनुष्य नग्न हो जाता है, दुर्बल और बलहीन हो जाता है, विरुद्ध वाक्य बोलता है, दुर्गन्धित हो जाता है, अत्यन्त अपवित्र रहता है, रूखा हो जाता है, सर्व प्रकारके अन्न पानोंमें लंपट हो जाता है, बहुत भोजन करता है, निर्जन स्थान और वनोंके मध्यमें रहता है और विरुद्ध चेष्टा करता २ तथा रोता २ त्रासको प्राप्त हो जाता है ॥ २७ ॥

अथ हिंस्रकराक्षसादिग्रहग्रसितनिदानम् ।

अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाक्षतम् । हिंस्रहिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा२८

जो मनुष्य अपवित्र रहनेवाला और मर्यादाको तोडनेवाला होता है वह मनुष्य घावयुक्त हो अथवा घावरहित हो तो भी राक्षसादिक हिंसक जाति उस मनुष्यको मारनेके लिये अथवा उसने अपनी पूजा करनेके लिये उसको पकडते हैं ॥ २८ ॥

अथ हिंसार्थगृहीतलक्षणम् ।

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनवामी निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति । यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात्सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥२९॥ यश्चाद्रि इत्यादि यः पर्वतादिपतितः स ग्रहैर्गृह्यत इत्यर्थः । आदिशब्देन भित्तिप्रासादादयो गृह्यन्ते तथा त्रयोदशेऽब्दे सर्व एव देवादिगृहीता असाध्याः ।

पर्वतके ऊपरसे, हाथीके ऊपरसे, वृक्षादिकके ऊपरसे, भीतके ऊपरसे और ऊंचे भवन आदिके ऊपरसे गिरे हुए मनुष्यको राक्षसादिक हिंसक जाति ग्रस लेती हैं, तब उस मनुष्यके नेत्र जड हो जाते हैं, वेगसे शीघ्र चले, झागोंयुक्त वमन करे, निद्रा अधिक आवे, गिर पडे और अत्यन्त काँपे यह मनुष्यका उन्माद असाध्य है । देवादिकग्रहग्रसित सर्व प्रकारके उन्माद तेरहवें वर्ष असाध्य हो जाते हैं ॥ २९ ॥

अथ देवाद्यावेशसमयः ।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि । गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपत्तिथौ ॥ ३० ॥ पितरः कृष्णपक्षे च पञ्चम्यामपि चोरगाः । रक्षःपिशाचा रात्रौ च चतुर्दश्यां विशन्ति हि ॥ ३१ ॥ कृष्णपक्षे अमावास्यायां प्रायशः यदन्यत्रापि तिथ्यभिधानप्रयोजनं लक्षणार्थं तत्र तिथौ च बलिदानार्थम् ।

विशेष करके देवग्रह पूर्णमासीके दिन, दैत्य दोनों संध्याकालमें, गन्धर्व अष्टमीके दिन, यक्षग्रह पडवाके दिन, पितृग्रह कृष्णपक्षमें, सर्पग्रह पंचमीके दिन, राक्षस रात्रिमें और पिशाच चतुर्दशीके दिन मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते हैं । पितृग्रह विशेष करके कृष्णपक्षकी अमावास्याके दिन प्रवेश करते हैं और किसी समय अन्य तिथियोंमें भी प्रवेश करते हैं । लक्षण समझनेके लिये और उन उन तिथियोंमें बलिदान करनेके लिये तिथि कही हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ देवादिग्रहो मनुष्यशरीरे प्रविशन्न दृश्यत इत्याह ।

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथा। स्वमणिं भास्करार्चिश्च तथा देहे च देहधृक्। विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम् ॥ ३२ ॥ दर्पणादीनिति आदिशब्देन अन्यदपि निर्मलद्रव्यं जलतैलादिद्रवद्रव्यं च गृह्यते। छाया प्रतिविम्बम्। स्वमणिः सूर्यमणिः। देहधृक् जीवात्मा।

देवादिक ग्रह जो मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करते हैं वे मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करते समय क्यों नहीं दीखते? ऐसी कोई शंका करे तो उसके समाधानके लिये कहते हैं। "जिस प्रकार दर्पण अथवा जल व तेल आदिक द्रव पदार्थोंमें छाया प्रवेश करती है और प्रवेश करती दीखती नहीं, जिस प्रकार शीत और गरमी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करती है किंतु प्रवेश करती दीखती नहीं, जिस प्रकार सूर्यकी किरणें सूर्यकांत (आतसीसीसा) मणिमें प्रवेश करती हैं और प्रवेश करती नहीं दीखती जिस प्रकार जीव शरीरमें प्रवेश करता है और प्रवेश करता दीखता नहीं, उसी प्रकार देवादिक ग्रह शरीरमें प्रवेश करते हैं किंतु प्रवेश करते दीखते नहीं ॥ ३२ ॥

अथोन्मादचिकित्सा।

वातिके स्नेहपानं प्राग्विरेकः पित्तसम्भवे। कफजे वमनं कार्यं परो वस्त्यादिकः क्रमः ॥ ३३ ॥ यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारे चिकित्सितम्। उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्यं दोषदूष्ययोः ॥ ३४ ॥ जलाग्निद्रुमशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा। रक्षेदुन्मादिनं यत्नात्सद्यः प्राणहरं हि तत् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मीकूष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशंखपुष्पिकास्वरसाः। दृष्टा उन्मादहृतः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः ॥ ३६ ॥ अयमर्थः। ब्राह्मीरसः (तोला) ४, कुष्ठचूर्णं माषौ २, मधु अष्टौ माषाः ८ पेयाः। इति एको योगः। कूष्माण्डबीजचूर्णमाषाः ८ कुष्ठचूर्णमाषौ २ अयं द्वितीयो योगः। शंखपुष्पीस्वरसं पलैकं १, कुष्ठचूर्णं माषद्वयं २, मधुनः अष्टौ माषाः पेयाः। तृतीयो योगः।

वातके उन्मादमें प्रथम स्नेहपान करना चाहिये, पित्तके उन्मादमें प्रथम विरेचन (दस्त) करना चाहिये और कफके उन्मादमें प्रथम वमन (उलटी) करानी चाहिये, पश्चात् पिचकारी आदि लगानी चाहिये। अपस्माररोगमें दोषोंके लिये तथा दोषोंसे दूषित हुई धातुओंके लिये जो कुछ चिकित्सा की जाती है वह सब चिकित्सा उन्मादमें भी करनी चाहिये। उन्मादरोगीकी जलसे, अग्निसे, वृक्षोंसे, पर्वतोंसे, तथा अन्यान्य विषमस्थानोंसे यत्नपूर्वक सर्वदा रक्षा करनी चाहिये। कारण यह है कि, जल और अग्नि आदि तत्काल मृत्युको करते हैं। ब्राह्मीका रस ४ तोले, कूठका चूर्ण १२ रत्ती और सहत ४८ रत्ती इन सबको एकत्र मिलाकर पीनेसे उन्माद नष्ट होता है। पेठेके बीजोंका चूर्ण ४८ रत्ती, और कूठका चूर्ण १२ रत्ती इनको सहतमें मिलाकर खानेसे उन्माद नष्ट हो जाता है। शंखाहूलीका रस ४ तोले, कूठका चूर्ण १२ रत्ती और सहत ४८ रत्ती इनको एकत्र मिलाकर पीनेसे उन्मादका नाश होता है ॥ ३३–३६ ॥

अथ सिद्धार्थकादि।

सिद्धार्थको हिंगु वचा करञ्जो देवदारु च। मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक् कटुत्रयम् ॥ ३७ ॥ समांशानि प्रियंगुश्च शिरीषो रजनीद्वयम्। बस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ ३८ ॥ नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्तनं तथा। अपस्मारविषोन्मादकृत्याऽलक्ष्मीज्वरापहम् ॥ ३९ ॥ भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते। सर्पिरेतेन संसिद्धं सगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ ४० ॥

सरसों, हींग, वच, करंज, देवदारु, मजीठ, हरड, बहेडा, आमला, फटकरी, मालकांगुनी, दालचीनी, सोंठ, मिर्च, पीपल, फूलप्रियंगू, सिरस, हलदी और दारुहलदी इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर औषधि बनावे। इस औषधिको पीनेसे, नेत्रोंमें आँजनेसे, नास देनेसे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीरपर प्रलेप करनेसे, स्नान करनेसे और उवटन करनेसे अपस्मार, विष, उन्माद, अभिचार, अलक्ष्मी, ज्वर और भूतबाधा दूर होती है। इस औषधिका उपयोग करके राजद्वारमें जाना बहुत श्रेष्ठ है। इनही औषधियोंके द्वारा पकाया हुआ घी गोमूत्रके साथ सेवन किया जाय तो वह भी येही गुण करता है ॥ ३७–४० ॥

अथोन्मादिनस्त्रासभयकरणम् ।

ब्रूयादिष्टविनाशं च दर्शयेदद्भुतानि च । बद्धं सार्षपतैलाक्तं रक्षेदुत्तानमातपे ॥ ४१ ॥ कपिकच्छ्वाथ वा तप्तैर्लौहतैलजलैः स्पृशेत् । कशाभिस्ताडयेत्तं वा सुबद्धं विजने गृहे ॥ ४२ ॥ सर्पेणोद्धृतदन्तेन दंशेत्सिंहैर्गजैश्च तम् । त्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्करैस्तथा ॥ ४३ ॥ अथ वा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा सुसंयतम् । त्रासयेयुर्वधैरेनं तर्जयन्तो नृपाज्ञया ॥ ४४ ॥ देहदुःखभयेभ्यो हि यतः प्राणभयं भवेत् । ततस्तस्य शमं याति सर्वतो विप्लुतं मनः ॥ ४५ ॥ इष्टद्रव्यविनाशेन मनो यस्याभिहन्यते । तस्य तत्सदृशप्राप्त्या ज्ञात्वाऽऽश्वासैः शमं नयेत् ॥ ४६ ॥

उन्माद रोगीसे उसकी प्रिय इष्ट वस्तुका नाश होना कहे, इसको आश्चर्यजनक खेल दिखावे और उसके शरीरमें सरसोंके तेलका लेप कर धूपमें चित्त सुलावे, शरीरमें कौंछकी फली घिसकर लगावे, तपे हुए लोहेसे, तेलसे अथवा जलसे स्पर्श करावे, एकांत घरमें अच्छे प्रकारसे उसको बाँधकर खूब कोडे लगावे, जिसके दाँत निकाल लिये गये हों ऐसे साँपसे कटवावे सिंह तथा हाथियोंसे डरपावे, शत्रु तथा चोरोंसे भयभीत करावे, अथवा राजासे आज्ञा लेकर उनके राजनौकरोंसे नगरके बाहर लिवा जाकर खूब बाँधकर तिरस्कार करते २ मार डालनेकी धमकी देवे, कारण यह है कि, भयके लगनेसे और शरीरपर दुःखोंके पडनेसे प्राण जानेका भय उत्पन्न होता है और उस भयके होनेसे विकृत हुआ चित्त कदाचित् अपने ठिकाने आ जाता है। उन्मादरोगीको गई हुई वस्तुकी समान दूसरी वस्तु देवे, जिसका मन किसी प्रिय वस्तुके विनाशसे अभिघातको प्राप्त हुआ हो उस मनुष्यके लिये विचार करके उसी वस्तुकी समान दूसरी वस्तु देनेका धीरज देकर चित्तको शांत करे, इस प्रकार करनेसे बिगडा हुआ मन शांत होता है ॥ ४१–४६ ॥

अथ त्र्यूषणांजनम् ।

त्र्यूषणं हिंगु लवणं वचा कटुकरोहिणी । शिरीषस्य करञ्जस्य बीजं गौराश्च सर्षपाः ॥ ४७ ॥ गोमूत्रपिष्टैरेभिस्तु वर्तिर्नेत्राञ्जने हिता । हन्त्युन्मादमपस्मारं तथा चातुर्थकं ज्वरम् ॥ ४८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, सेंधानिमक, वच, कुटकी, सिरसके बीज, करंजके बीज और सुफेद सरसों इनको गोमूत्रमें पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें आंजनेसे उन्माद, मृगी और चौथिया ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ सारस्वतचूर्णम् ।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा । माङ्गल्यपुष्पी च समान्यमूनि सर्वैः समानां च वचां विचूर्ण्य ॥ ४९ ॥ ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्यं वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम् । अक्षप्रमाणं मधुना घृतेन लिह्यान्नरः सप्त दिनानि चूर्णम् ॥ ५० ॥ माङ्गल्यपुष्पी शङ्खपुष्पी शङ्खाहुलीति लोके । सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधानां विचेतसाम् । ॥ ५१ ॥ एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः । सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्द्धेचोत्तरोत्तरम् ॥ ५२ ॥

कूठ, असगंध, सेंधानिमक, अजमोद, जीरा, कालाजीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, पाढ और शंखाहूली इनको समान भाग लेवे और सब औषधियोंकी बराबर वच लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके ब्राह्मीके रसकी तीन भावना देवे, जब यह चूर्ण सूख जाय तब इसमेंसे एक एक तोला लेकर सहत तथा घीमें मिलाकर सात दिन तक चाटे। ब्रह्माजीने पूर्व कालमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्व लोकोंके हितके लिये विशेष करके दुष्ट बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये यह सारस्वतचूर्ण निर्माण किया है, इस चूर्णको नित्य सेवन करनेसे मनुष्योंकी बुद्धि, धारणाशक्ति, धीरज, स्मरणशक्ति, संपत्ति और कविता शक्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥ ४९–५२ ॥

अथ विश्वाद्यचूर्णम् ।

विश्वाजमोदरजनीद्वयसैन्धवोग्रायष्ट्याह्वकुष्ठमगधोद्भवजीरकाणाम् । चूर्णं प्रभातसमये लिहतः ससर्पिर्वाग्देवता निवसति स्वयमेव वक्त्रे ॥ ५३ ॥

सोंठ, अजमोद, हलदी, दारुहलदी, सेंधानिमक, वच, मुलैठी, कूट, पीपल और जीरा इनका चूर्ण करके घीमें मिलाकर प्रातःकाल चाटे तो साक्षात् सरस्वती देवी मुखमें निवास करती है ॥ ५३ ॥

अथ महाचैतसघृतम् ।

क्वाथे विचूर्णिते क्षिप्त्वा तत्क्वोडशगुणं जलम् । पादशेषं प्रकर्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः ॥ ५४ ॥ दशमूली तथा रास्ना वातारिस्त्रिवृता बला । मूर्वा शतावरी चेति क्वाथैस्तु कुडवैः पृथक् ॥ ५५ ॥ कृतैः क्वाथैर्घृतप्रस्थद्वयं मृद्वग्निना पचेत् । कल्कीकृतैर्वक्ष्यमाणद्रव्यैः सम्यक्पुनः पचेत् ॥ ५६ ॥ विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् । स्थिराऽनन्ता रजन्यौ द्वे प्रियंगुः सारिवाद्वयम् ॥ ५७ ॥ नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेसरम् । विडंगं ह्यग्निपत्री च कुष्ठं चन्दनपद्मके ॥ ५८ ॥ अग्निपत्री अग्निनौनीति लोके अगिया इति च । तालीशपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम् । अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैः कर्षमितैः पृथक् ॥ ५९ ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा पिष्टैस्तद्विपचेद् घृतम् । महाचैतसनामेदं सर्वचेतोविकारनुत् ॥ ६० ॥ अपस्मारे महोन्मादे मन्देऽग्नौ ज्वरकासयोः । वातरक्ते प्रतिश्याये शोषे काश्र्ये तृतीयके ॥ ६१ ॥ मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले विसर्पाभिहतेषु च । पाण्डामये तथा कंडूां विषे मेहे गरेऽपि च ॥ ६२ ॥ देवादिहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् । शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ॥ ६३ ॥ अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् । हंति भ्रमं मदं मूर्च्छां मेधास्मृतिमतिप्रदम् ॥ ६४ ॥

दशमूल, रायसन, एरंड, निसोत, खिरैटी, मूर्वा और सतावर ये प्रत्येक औषधि सोलह सोलह तोले लेकर कूट लेवे, सबको एकत्र करके सोलहगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें २८८ तोले घीको मंद मंद अग्निसे पकावे, फिर इन्द्रायन, हरड, बहेडा, आमले, रेणुका, देवदारु, एलवालुक (एलुआ), सालपर्णी, धमासा, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगू, दोनों प्रकारकी सारिवा, नीले कमल, इलायची, मजीठ, जमालगोटेके बीज, अनारकी केसर, वायविडंग, अग्निपत्री, कूठ, लालचंदन, पद्माख, तालीसपत्र, कटाई और मालतीके नवीन फूल, ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर चौगुने जलमें तथा पीसकर अलग अलग कल्क बनाकर उस कल्कसे अच्छे प्रकार घृतको सिद्ध करे तो यह महाचैतस नामक घृत सिद्ध होता है। यह घी चित्तके समस्त विकारोंको शांत करता है तथा अपस्मार, महोन्माद, अग्निकी मंदता, ज्वर, खाँसी, वातरक्त, सरेकमा, शोष, कृशता, एकान्तरज्वर, मूत्रकृच्छ्र, कटीशूल, विसर्प, पांडुरोग, खुजली, विष, प्रमेह और स्थावर विषादिकोंको नष्ट करता है, उसी प्रकार देवादिक ग्रहसे पीडित हुआ चित्तका विकार, मनकी शून्यता, वन्ध्या स्त्रियोंको पुत्रको देनेवाला, धन, आयु, पुरुषार्थ, मेधा, बुद्धि, स्मृतिको वृद्धि देनेवाला है, भ्रम, मद, मूर्च्छा, गद्गद कण्ठका होना, अलक्ष्मीके निवासको, पापके सन्तापादि सम्पूर्ण दोषोंको निवारण करनेवाला है ॥ ५४–६४ ॥

अथ देवाद्युन्मादचिकित्सा ।

पूजाबल्युपहारेष्टिहोममंत्राञ्जनादिभिः । जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥ ६५

श्रेष्ठ वैद्य पूजा, बलिदान, उपहार, हवन, इष्ट मंत्रका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आराधन और अञ्जनादिकोंसे आगन्तुक, देवतादिकोंका यथायोग्य पूजन करे ॥ ६५ ॥

अथ कृष्णाञ्जनम् ।

कृष्णामरिचसिंधूत्थमधुगोरोचनाकृतम् ।
अंजनं सर्वदेवादिकृतोन्मादहरं परम् ॥६६॥

पीपल; मिरच, सेंधानिमक, सहत और गोरोचन इन सब औषधियोंको कूटपीस छानकर अञ्जन बनावे, इस कृष्णांजनके लगानेसे, देवादिकोंके कोपसे सब प्रकारके उत्पन्न हुए उन्माद तत्काल नष्ट होते हैं॥६६॥

अथर्क्षलोमकधूपः ।

ऋक्षजम्बूकलोमानि शल्लकी लशुनं तथा ।
हिंगु मूत्रं च वस्तस्य धूमस्य प्रयोजयेत् ।
एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ६७

ऋक्ष और गीदड (स्यार) के रोम, सेईके कांटे, लहशुन, हींग और बकरेका मूत्र, इन सबको मिलाकर धूप देनेसे बलवान् ग्रहदोषोंकी भी तुरन्त शान्ति होती है ॥ ६७ ॥

अथ कल्याणघृतम् ।

कल्याणकं च युञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम् ।
तैलं नारायणं वाथ महानारायणं तथा ।
॥ ६८ ॥ ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न चाचरेत् । रोगिणं भिषजं यत्ते क्रुद्धा हन्युर्महौजसः ॥ ६९ ॥

कल्याण घृत, वा महाचैतस घृत, अथवा नारायण तैल वा महानारायण तैलका उन्माद रोगमें चतुर वैद्य सेवन करावे पिशाचोंके अतिरिक्त और देवताओंके विरुद्ध और कोई किसी प्रकारका आचरण न करे, क्योंकि यह महा बलवान् प्रतिकूल आचरण करनेसे क्रोधित होकर रोगीको वा वैद्यको तत्कालही मार डालते हैं फिर कोई उपाय नहीं बन सक्ता ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

इति उन्मादाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथाऽपस्माराधिकारः ।

तत्रापस्मारनिदानसहितसम्प्राप्तिः ।

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः । कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥

चिन्ता और शोकादिकोंसे कुपित हुए दोष हृदयके स्रोतोंमें अर्थात् मनके बहनेवाली नाडियोंमें स्थित होकर स्मृतिका नाश करके अपस्मार नामक रोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

अथापस्मारसंख्या ।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्दोषैः स स्याच्चतुर्विधः ॥ २ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और त्रिदोषसे इस रीतिसे अपस्मार चार प्रकारका है ॥ २ ॥

अथापस्मारसामान्यलक्षणम् ।

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः । अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरतरो हि सः ॥ ३ ॥ संरम्भः नेत्रविकृतिहस्तपादादिविक्षेपणादिकम् ।

जिस रोगमें ऐसा जान पडे कि, मैं अन्धकारमें प्रवेश करता हूँ और दोषोंके प्रकोपसे स्मृति नष्ट हो जाय, नेत्रोंमें विकार हो और हाथ पाओंको इधर उधर फेंके, ये अपस्मार रोगके लक्षण हैं इसी महाभयंकर रोगको वैद्य लोग मृगी भी कहते हैं ॥ ३ ॥

अथापस्मारपूर्वरूपम् ।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता । निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवन्त्यथ ॥ ४ ॥ शून्यता हृदयस्यैव ध्मानम् । विस्मापनं मूर्च्छा मनोमोहः । प्रमूढता इन्द्रियमोहः । भविष्यति भाविनि तस्मिन् अपस्मारे ।

अपस्मार रोग होनेसे हृदय कम्पायमान और शून्यता, पसीना, विस्मय, मूर्च्छा, मनमें मोह, इन्द्रियोंमें मूढता, निद्राका नाश हो जाता है ॥ ४ ॥

अथ वातजापस्मारलक्षणम् ।

कम्पते प्रदशेद्दन्तान्फेनोद्गामी श्वसित्यपि । अभितोऽरुणवर्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ५ ॥

जिसको वातकी मृगी होय उसके शरीरमें कम्प, दाँतोंका चाबना, मुखसे झागोंका उगलना, ऊँची श्वास लेना, नेत्रोंमें अग्निकी समान चारों ओर लाल रूपोंका देखना, ये वातकी मृगीके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पित्तजापस्मारलक्षणम् ।

पीतफेनांगवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः । सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिके॥६॥ पीतस्य असृग्रूपस्य वा वस्तुनो दर्शनं यस्य स पीतासृग्रूपदर्शनः ।

जिसको पित्तकी मृगी होय उस मनुष्यके शरीरमें और नेत्रोंमें पीलापन, तृषा और संसारके सब पदार्थोंमें अग्निकी प्रचण्ड ज्वालासी व्याप्त दिखाई देवे, यह पित्तकी मृगीके लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ कफजापस्मारलक्षणम् ।

शुक्लफेनांगवक्त्राक्षः शीतो हृष्टांगजो गुरुः । पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिके मुच्यते चिरात् ॥ ७ ॥ शीतः शीतांगः । हृष्टांगजो हृष्टरोमा । गुरुः गुरुगात्रता ।

जिसको कफकी मृगी होय उस पुरुषके शरीरका, फेनका, नेत्रोंका रंग सफेद, अंगोंमें भारीपन, शीत और रोमोंका खडा होना, सब लोककी वस्तुको सफेद ही सफेद देखना और बहुत कालोपरान्त चित्तका शान्त होना ये लक्षण कफकी मृगीके हैं ॥ ७ ॥

अथ सन्निपातापस्मारलक्षणम् ।

समस्तैर्लक्षणैरेतैर्विज्ञातव्यस्त्रिदोषजः । अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः । ॥ ८ ॥ स च त्रिदोषजः असाध्यः तथा क्षीणस्य अनवश्च एकदोषजोऽपि असाध्य इत्यर्थः ।

अपस्मारमें ऊपर कहे हुए त्रिदोषके सम्पूर्ण लक्षणोंसे जो पूर्ण हो उस प्राणीको तीनों दोषोंसे अपस्मार रोग जानना, यह रोग असाध्य है और क्षीण मनुष्यको बहुत दिनोंकी (पुरानी) मृगी एक दोषसे उत्पन्न हुई भी असाध्य है ये लक्षण सन्निपातकी मृगीके हैं ॥ ८ ॥

अथापस्मारारिष्टम् ।

प्रस्फुरन्तं च बहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् । नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ९ ॥ प्रस्फुरन्तं गात्रस्फुरणयुक्तम् । नेत्राभ्यां विकुर्वाणं नेत्रे विकृते कुर्वन्तम् ।

जिस मृगीवाले मनुष्यके अंग अधिक फडकते होयँ, शरीर क्षीण हो गया होय, नेत्र विकृत होंय, भ्रुकुटी भौंह चलायमान होय तो वह रोगी किसी प्रकार मृत्युके पञ्जेसे बच नहीं सकता ॥ ९ ॥

अथापस्मारप्रकोपसमयः ।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः । अपस्मारं प्रकुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथान्तरम् ॥ १० ॥ पक्षात्पित्तं द्वादशाहाद्वायुर्मासात्कफः अपस्मारं करोतीत्यर्थः । वेगं किञ्चिदथान्तरं किञ्चित्स्वल्पं वेगम् आन्तरम् उक्तकालानामन्तरालेऽपि कुर्वन्ति ।

प्रकोप होनेपर पित्तका अपस्मार एक पक्षमें अर्थात् पन्द्रह दिनमें उत्पन्न करे है और पक्षके मध्यमें भी थोडासा वेग करे है, वातका अपस्मार बारह दिनमें उत्पन्न होता है और इसके मध्यमें भी किञ्चित् वेग करे है, और कफका अपस्मार एक महीनेमें उत्पन्न होता है और एक मासके मध्यमें भी अणुमात्र अपना वेग करे है ॥ १० ॥

ननु हेतुभूतेषु दोषेषु विद्यमानेषु सदैव तद्व्याधिप्रकोपः कथं न स्यादत आह । देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् । शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ११ ॥ अयमर्थः । यथा उत्पत्तिकारणसामग्र्यां सत्यामपि वास्तुकादिबीजानि । स्वभावात् शरदि एव प्ररोहन्ति, तथा हेतुभूतेषु दोषेषु विद्यमानेषु अपि स्वभावात् अपस्मारो द्वादशाहादिषु एव वेगं करोति इत्यर्थः ।

शंका—अपस्मारके कारणरूप दोषोंके सदैव विद्यमान रहनेपर अपस्मार सर्वदा क्यों नहीं रहता । समाधान—जिस प्रकार उत्पत्तिके कारणरूप पूर्ण वर्षा होनेपर भी बथुए इत्यादिके बीज स्वभावके कारण शरदृतुमें ही उपजते हैं, उसी प्रकार कारणरूप दोषोंके विद्यमान होनेपरभी अपने स्वभावसे ही द्वादशादिक दिवसमें अपस्मार भी अपने कोपको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथापस्मारचिकित्सा ।

तैलेन लशुनः सेव्यः पयसा च शतावरी । ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् । ॥ १२ ॥ चूर्णैः सिद्धार्थकादीनां भक्षितैरथवाऽपि तैः । गोमूत्रपिष्टैः सर्वांगलेपैः शाम्यत्यपस्मृतिः ॥ १३ ॥ सिद्धार्थशिग्रुकट्वंगकिणिहीभिः प्रलेपनम् । चतुर्गुणगवां मूत्रे तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ १४ ॥ कट्वंगः [सोनापाठा] किणिही [चिरचिटा] निर्गुण्डीभववन्दारनावनस्य प्रयोगतः । उपैति सहसा नाशमपस्मारो महागदः । ॥ १५ ॥ मनोह्वा तार्क्ष्यविष्ठा च शकृत्पारावतस्य च । अञ्जनाद्धन्त्यपस्मारमुन्मादं च विशेषतः ॥ १६ ॥ मनोह्वा मनःशिला । शकृद्विष्ठा । यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः । अपस्मारं महाघोरं चिरोत्थं स जयेद्ध्रुवम् ॥ १७ ॥ कूष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितम् । अपस्मारविनाशाय यष्ट्याह्वं स पिबेत्र्यहम् ॥ १८ ॥ त्र्यहमिति एकस्य पानात् दिवसत्रयेणैव अपस्मारोपशमो भवति इति अभिप्रायः ।

तेलमें मिलाकर लहसुन, दूधमें औटाकर सतावर और सहतमें मिलाकर ब्राह्मीका रस सेवन करे तो सब प्रकारका अपस्मार निवारण होता है । सरसों, सहँजना, सोनापाठा (अरलू), लटजीरा (चिरचिटा) इन सबका चूर्ण खानेसे अथवा इनको मूत्रमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे अथवा इनही औषधियोंमें चौगुना गोमूत्र मिलाकर और उतनाही तेल मिलाकर विधिपूर्वक पकाकर सब शरीरपर मालिश करनेसे अपस्मार रोग शान्त होता है । निर्गुण्डीके बन्दके रसका नास लेनेसे महाबलवान् अपस्मार रोगका तुरन्त ही नाश होता है । मैनशिल, रसौत, गोबर और कबूतरकी बीट इन सब औषधियोंको महीन पीस अञ्जन बनावे, इस अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे अपस्मार और उन्माद अवश्य ही दूर होता है । हसतके साथ घुडवचके चूर्णको चाटे और दूध भात खाय तो महाघोर बहुत दिनोंका पुराना अपस्मार अवश्य ही नष्ट होता है । मुलैठीको महीन पीसकर पेठेके रसके साथ तीन दिन पीनेसे अपस्मारका नाश होता है ॥ १२–१८ ॥

अथ ब्राह्मीघृतम् ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीश्रृतं घृतम् । पुराणं स्यादपस्मारोन्मादग्रहहरं परम् ॥ १९ ॥ एतस्य प्रक्रिया पुराणं गोघृतं प्रस्थमितम् । वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीणां समुदितानां कुडवमितानां कल्केन प्रस्थमितब्राह्मीरसपिष्टेन पचेत् ।

वच सोलह १६ तोले, कूट सोलह १६ तोले, शंखपुष्पी (कौडिला) सोलह १६ तोले इन सबको चौंसठ ६४ तोले ब्राह्मीके रसमें पीसकर चौंसठ ६४ तोले पुराना गौका घृत मिलाकर कल्क बनावे, उसका सेवन करनेसे अपस्मार, उन्माद और सम्पूर्ण ग्रहदोषोंका विनाश होता है ॥ १९ ॥

अथ कूष्माण्डघृतम् ।

कूष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् । यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ २०

अठारह गुने पेठेके रसमें स्वच्छ गायके घीमें मुलेठीका कल्क मिलाकर पकावे, जब पककरके स्वांगशीतल हो जाय तब उस कूष्माण्डघृतका सेवन करे तो अपस्मारका शीघ्रही विनाश होता है ॥ २० ॥

अथ कल्याणचूर्णम् ।

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता ॥ २१ ॥ दशमूलीजलं तस्य कल्याणाख्यं प्रयोजयेत् । पञ्चकोलं समरिचं त्रिफला बिडसैन्धवम् ॥ २२ ॥ कृष्णाविडङ्गपूतीकयवानीधान्यजीरकम् । पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं वातश्लेष्मामयापहम् ॥ २३ ॥ अपस्मारे तथोन्मादेऽप्यर्शसां ग्रहणीगदे । एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् २४ ॥

हृदयमें कंप, नेत्रोंमें पीडा, शरीरमें पसीना और हाथ पाओंमें शीतलता जिस मूर्गी रोगवाले मनुष्यके होय उसको दशमूलका क्वाथ और कल्याण चूर्ण देवे उस कल्याण चूर्णमें क्या क्या औषधि है सो सब लिखते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मिर्च, हरड, बहेडा, आमला, विडलौन, सेंधानोन, वायविडंग, करंजुआ, अजवायन, धनियाँ और जीरा इन सब औषधियोंका चूर्ण महीन पीसकर गरम पानीके साथ फाँकनेसे वात, कफके रोग, अपस्मार, उन्माद, बवासीर, संग्रहणी और मन्दाग्नि इन सबको शान्त करे है ॥ २१–२४ ॥

द्वौ कीटमेढ्रौ विधिवदानीय रविवासरे ।
कण्ठे भुजे वा सन्धार्य जयेदुग्रामपस्मृतिम् ॥ २५ ॥ अयं तु कीटो नदीतीरे सिकतामध्ये तिष्ठति । शिग्रुकुष्ठजलाजाजीलशुनव्योषहिंगुभिः बस्तमूत्रे भृतं तैलं नावनं स्यादपस्मृतौ ॥ २६ ॥ जलं वालकम् । अजाजी जीरकः । बस्तः छागः । नावनं नस्यम् । उन्मादेषु यदुदिष्टं पथ्यं नस्याञ्जनौषधम् । अपस्मारेऽपि तत्सर्वं प्रयोक्तव्यं भिषग्वरैः ॥ २७ ॥

नदीके किनारे बालू (रेत) के भीतर रहनेवाले कीडों (मिरगचना) के दो मेढ् रविवारके दिन विधिपूर्वक लाकर अपस्मारवाले रोगीके कंठ और भुजामें बाँधनेसे महाभयंकर अपस्मारका भी विनाश होता है। सहँजना, कूठ, सुगन्धवाला, जीरा, लहसुन, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) और हींग, इन औषधियोंको पीसकर बकरेके मूत्र और तेलमें पकाले, उसका नास लेनेसे अपस्मार नाश होता है। उन्मादमें जो जो पथ्य, नास, अञ्जन और औषधि लिखी हैं वे सब औषधि अपस्मारमें भी व्यवहारमें लानी चाहिये ॥२५–२७॥

अथ भूतभैरवरसः ।

मृतसूताभ्रलोहं च शिलागन्धं च तालकम् । रसाञ्जनं च तुल्यांशं नरमूत्रेण मर्दयेत् ॥ २८ ॥ तद्गोलद्विगुणं गन्धं लौहपात्रे क्षणं पचेत् । पञ्चगुंजोन्मितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ २९ ॥ व्योषं सौवर्चलं हिंगु नरमूत्रेण सार्पिषा । पिबेत्कर्षमितं पश्चाद्रसोऽयं भूतभैरवः ॥ ३० ॥

पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, मनशिल, गन्धक, हरिताल और रसौंत इन सबको समान भाग लेकर मनुष्यके मूत्रमें खरल करे, फिर इसका गोला बनाकर, गोलेसे दूनी गन्धकके साथ लोहके बर्तनमें क्षणमात्र पकावे, इस प्रकार ' भूतभैरव ' नाम रस सिद्ध होता है । इसको पाँच रत्ती खानेसे अपस्मारका नाश होता है, इस रसको खाकर त्रिकटु, कालानिमक और भूनी हींग इनको महीन पीसकर मनुष्यके मूत्र और घृतके साथ पिये॥२८–३०॥

इति अपस्माररोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ वातव्याध्यधिकारः ।

तत्र वातव्याधिसासान्यकारणानि ।

कषायकटुतिक्तकं प्रमितरूक्षलघ्वन्नतः पुरः पवनजागरप्रतरणाभिघातश्रमैः । हिमादनशनात्तथा निधुवनाच्च धातुक्षयान्मलादिरयधारणान्मदनशोकचिन्ताभयैः ॥ १ ॥ अतिक्षतजमोक्षणाद्ददकृतातिमांसक्षयादतीववमनान्नृणामतिविरेचनादामतः । पयोदसमये दिनक्षणदयोस्तृतीयांशयोर्जरामतिगतेऽशिते शिशरसंज्ञकालेऽपि च ॥ २ ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली । करोति विविधान्रोगान्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ३ ॥ प्रमितम् अत्र वैपरीत्येन उपसर्गस्तेन अपरिमितमित्यर्थः । प्रकर्षेण मितमल्पं वा लघ्वन्नम् । अतिपुराणं शाल्यादि । कतिचिदन्नानि नवानि अपि वातलानि । यत आह–गुणरत्नमालायाम् । नीवारस्त्रिपुटः सतीनचणकश्यामाकमुद्गाढकी निष्पावश्च मकुष्ठकश्च वरटा मंगल्यकः कोद्रवः ॥ ४ ॥ एते वातकरा इति शेषः । नीवारः प्रसाधिका तीनीति लोके । त्रिपुटः खेसारीति लोके । सतीनः कलायः । निष्पावो राजमाषः वोडा इति लोके । मकुष्ठकः मोठ इति लोके । वरटा वरटिका वरै इति लोके । मंगल्यः मसूरी । पुरः पवनः प्राग्वातः । आमतः आमेन मार्गावरणात् । यत उक्तम्–' वायो–

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातुक्षयात्कोपो मार्गस्यावरणेन च" इति। पयोदसमये वर्षासु जरामतिगते अशिते भुक्तेऽतीव जीर्णतां गते। देहे स्रोतांसि इत्यादिना संप्राप्तिरुक्ता कषायादिभिर्हेतुभिः।

कसैला, चरपरा, कडवा, अत्यन्त थोडा, अत्यन्त अधिक, रूखा तथा हलका ऐसा अन्न भोजन करनेसे, पूर्वदिशाकी पवनको सेवन करनेसे, जागनेसे, पानीमें तैरनेसे, चोट आदिके लगनेसे, श्रमसे, अत्यन्त शीतके लगनेसे, उपवास (व्रत) आदि करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, धातुओंके क्षयसे, मल मूत्रादिके वेगाको रोकनेसे, कामदेवकी पीडासे, शोकसे, चिंतासे, भयसे, बहुत रुधिरके निकलवानेसे, रोगसे मांसके क्षीण होनेसे, अत्यन्त वमन और विरेचन करनेसे और आमसे वातसम्बन्धी व्याधि उत्पन्न होती है। वर्षाऋतुमें, दिनके तथा रात्रिके तीसरे भागमें, भोजन किये अन्नके जीर्ण होनेपर और शिशिरऋतुमें भी बलवान् वायु शरीरके खाली स्रोतोंमें भरकर सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाले अथवा एक किसी अंगमें रहनेवाले अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करे है। अत्यन्त पुराने शालिचावल आदि अन्न हलके अन्न गिने जाते हैं, कितनेक नवीन अन्न भी वायुको उत्पन्न करनेवाले हैं। गुणरत्नमाला निघण्टुमें लिखा है कि, तिनी (नीवार, पुनेरा), कस्सा (खेसारी), मटर, चने, समा, मूंग, अडहर, लोबिया, मोठ, कर्र और मसूर तथा कोदों ये धान्य वायुको उत्पन्न करनेवाले हैं। आमसे मार्गका आवरण होता है इस कारण आमसे भी वायुसम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि, धातुओंके क्षयमें और मार्गोंके आवरणसे वायुका कोप होता है॥ १–४॥

अथ वर्षत्वादिकारणप्रबलवातोत्पन्नव्याधिनामान्याह।

शिरोग्रहोऽल्पकृशता जृम्भात्यर्थं हनुग्रहः। जिह्वास्तम्भो गद्गदत्वं मिन्मिनत्वं च मूकता॥ ५॥ वाचालता प्रलापश्च रसानामनभिज्ञता। बाधिर्यं कर्णनादश्च स्पर्शाज्ञत्वं तथार्दितम्॥ ६॥ मन्यास्तम्भोऽत्र गणितो बाहुशोषोऽपबाहुकः। वातिता चैव विश्वाची ऊर्ध्ववात उदीरितः॥ ७॥ आध्मानं च प्रत्याध्मानं वाताष्ठीला प्रत्यष्ठीला। तूनी च प्रतितूनी च वह्निवैषम्यमेव च॥ ८॥ आटोपः पार्श्वशूलं च त्रिकशूलं तथैव च। मुहुश्च मूत्रणं मूत्रनिग्रहो मलगाढता॥ ९॥ पुरीषस्याप्रवृत्तिश्च गृध्रसी च ततः परा। कलायखञ्जता वापि खञ्जता पंगुता तथा॥ १०॥ क्रोष्टुशीर्षकखल्ल्यौ च वातकण्टक एव च। पादहर्षः पाददाह आक्षेपो दण्डकाभिधः॥ ११॥ वातपित्तकृताक्षेपस्तथा दण्डापतानकः। अभिघातकृताक्षेप आयामो द्विविधः स्मृतः॥ १२॥ आन्तरश्च तथा बाह्यो धनुर्वातश्च कुब्जकः। अपतन्त्रोऽपतानश्च पक्षाघातोऽखिलांगकः॥ १३॥ कम्पस्तम्भो व्यथा तोदो भेदश्च स्फुरणं तथा। रौक्ष्यं कार्श्यं च कार्ष्ण्यं च शैत्यं लोम्नां च हर्षणम्॥ १४॥ अंगमर्दोऽगविभ्रंशः शिरासंकोच एव च। अंगशोषश्च भीरुत्वं मोहश्च चलचित्तता॥ १५॥ निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिस्तथैव च। शुक्रक्षयो रजोनाशो गर्भनाशः परिभ्रमः॥ १६॥ एत एवाशीतिसंख्या रोगा योगेन रूढितः। वातव्याधीति नामानो मुनिभिः परिकीर्तिताः॥ १७॥ एत एव शिरोग्रहादय एव। योगेन वा तेन वाताद्यार्धिर्वातव्याधिरिति निरुक्त्या तदा वातज्वरादिष्वपि प्रसंगः स्यादत आह रूढितः प्रसिद्धितः शिरोग्रहादयोऽशीतिरेव वातव्याधिसंख्याः प्रसिद्धा न तु वातज्वरादयः।

शिरोग्रह १, अल्पकृशता २, जृम्भा ३, हनुग्रह ४, जिह्वास्तम्भ ५, गद्गदता ६, मिन्मिनत्व ७, मूकता ८, वाचालत्व ९, प्रलाप १०, रसाज्ञान ११, बाधिर्य १२, कर्णनाद १३, त्वक्छून्यता १४, अर्दित १५, मन्यास्तम्भ १६, बाहुशोष १७, अपबाहुक १८, विश्वाची १९, ऊर्ध्ववात २०, आध्मान २१, प्रत्या-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भ्मान २२, वाताष्ठीला २३, प्रत्यष्ठीला २४, तूनी २५, प्रतितूनी २६, बाहिर्वैषम्य २७, आटोप २८, पार्श्वशूल २९, त्रिकशूल ३०, मुहुर्मूत्रण ३१, मूत्रनिग्रह ३२, मलगाढता ३३, मलप्रवृत्ति ३४, ग्रध्रसी ३५, कलायखञ्जता ३६, खञ्जता ३७, पंगुता ३८, क्रोष्टुशीर्ष ३९, खल्ली ४०, वातकंटक, ४१, पादहर्ष ४२, पाददाह ४३, दण्डकाक्षेप ४४, वातपित्तकृताक्षेप ४५, दंडापतानक ४६, अभिघाताक्षेप ४७, अन्तरायाम ४८, बाह्यायाम ४९, धनुर्वात ५०, कुब्जक ५१, अपतन्त्र ५२, अपतानवात ५३, पक्षाघात ५४, सर्वांगवात ५५, कम्प ५६, स्तम्भ ५७, व्यथा ५८, तोद ५९, भेद ६०, स्फुरण ६१, रौक्ष्य ६२, कार्श्य ६३, कार्ष्ण्य ६४, शैत्य ६५, लोमहर्ष ६६, अंगमर्द ६७, अंगविभ्रंश ६८, शिरासंकोच ६९, अंगशोष ७०, भीरुता ७१, मोह ७२, चलचित्तता ७३, निद्रानाश ७४, स्वेदनाश ७५, बलहानि ७६, शुक्रनाश ७७, रजनाश ७८, गर्भनाश ७९, परिभ्रम ८० ये अस्सी ८० रोग वातव्याधि नामसे कहलाते हैं ऐसा मुनियोंका वाक्य है। 'वातव्याधि' यह यौगिक नाम है और रूढि नामभी है। शिरोग्रह आदि वातसे उत्पन्न होते हैं इस कारण ये वातव्याधि कहलाते हैं अत एव वातव्याधि शब्दका जो समास सिद्ध अर्थ है उस उसमें प्रवर्तन होनेसे 'वातव्याधि' शब्द यौगिक गिना जाता है, किन्तु ये अस्सी व्याधिही 'वातव्याधि' कही जाती हैं पर वातज्वर आदि व्याधि 'वातव्याधि' नहीं कही जातीं ऐसी प्रसिद्धि है इस कारण 'वातव्याधि' शब्द रूढिभी गिना जाता है, जो इकला योगिकही गिना जाता तो वातज्वर आदि व्याधियोंमें भी इस शब्दकी प्रवृत्ति हो जाती ॥ ५-१७ ॥

अथ वातव्याधिसामान्यचिकित्सा।

मधुरलवणसाम्लस्निग्धनस्योष्णनिद्रागुरुरविकरबस्तिस्वेदसन्तर्पणानि। दहनजलदशोषाभ्यंगसंमर्दनानि प्रकुपितपवनानां शान्तिमेतानि कुर्युः ॥ १८ ॥

मधुर, खारी, खट्टे और निग्ध पदार्थ, नस्य (नास लेना), गरम पदार्थ, निद्रा, भारी पदार्थ, सूर्यकी धूप, बस्तिकर्म (पिचकारी आदि लगाना), सेक आदि स्वेदनकर्म, तर्पण करना, दाग देना, जलका छिडकना, क्रोध, स्नेहका अभ्यंग (मालिश) और शरीरको मर्दन करना ये सब कर्म कुपित हुई वायुको शांत करे हैं ॥ १८ ॥

अथ शिरोग्रहलक्षणम्।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्द्धधराः शिराः। रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः ॥ १९ ॥ मूर्द्धधराः ग्रीवागताः। पवनः शिरोग्रहः स्यात् इत्यन्वयः। स च असाध्यः।

कुपित वायु रुधिरमें प्राप्त होकर नाडमें रहनेवाली शिराओंको रूक्ष वेदनायुक्त और काली कर देती है उसको शिरोग्रह कहते हैं यह शिरोग्रह असाध्य है १९॥

अथ शिरोग्रहचिकित्सा।

शिरोग्रहे तु कर्तव्या शिरागतमरुत्क्रिया। दशमूलीकषायेण मातुलुंगरसेन च। श्रृतेन तैलेनाभ्यंगः शिरोवस्तिश्च युज्यते ॥ २० ॥

शिरोग्रह हुआ होय तो शिराओंमें रहनेवाली वायुकी चिकित्सा करनी चाहिये, दशमूलके काथसे और बिजौरे नींबूके रसके द्वारा पकाये हुए तेलका अभ्यंग और इसी तेलकी शिरोवस्ति देनी चाहिये (शिरो वस्तिकी विधि प्रथम खंडमें कह आये हैं) सो देख लेना ॥ २० ॥

अथ जृम्भालक्षणम्।

पीत्वैकं श्वासमनिलः पुनस्त्यजति वेगवान्। आलस्यनिद्रायुक्तश्च स जृम्भ इति कथ्यते ॥ २१ ॥ जृम्भशब्दस्त्रिलिंगः। तथा च "जृम्भस्तु त्रिषु जृम्भणम्" इत्यमरः।

वेगवाला पवन एक श्वासको पीकर फिर उस श्वासको बाहर निकालता है और उसके साथ आलस्य तथा निद्रासी प्रतीत होती है उसको जृम्भा (जंभाई) कहते हैं। मूल श्लोकमें जृंभा शब्दके बदले जृम्भ लिखा है उसका कारण यह है कि, संस्कृत भाषामें जृम्भ शब्द त्रिलिंग है, जृम्भ शब्द तीनों लिंगोंमें होता है और जृम्भण शब्द नपुंसक लिंगमें है ऐसा अमरकोषमें कहा है ॥ २१ ॥

अथ जृम्भाचिकित्सा।

शुण्ठी पिप्पल्यूषणं दीप्यकं च सिन्धूद्भवं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चेति सर्वं पृथग्वा। तद्रूपं वा सूक्ष्मचूर्णीकृतं वा जृम्भारम्भस्तंभकृत्स्यात्तदेव ॥ २२ ॥ जृम्भावेगे समुत्पन्ने शोभने शयने नरम्। स्वापयेत्तेन नियमाज्जृम्भावेगः प्रशाम्यति ॥ २३ ॥ जृम्भावेगः क्षयं याति कटुतैलेन मर्दनात्। भोजनात्स्वादुभोज्यानां तथा ताम्बूलभक्षणात् ॥ २४ ॥

सोंठ, पीपल, कालीमिरच, अजवायन और सेंधानिमक इन पदार्थोंको अलग अलग अथवा एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करके खाय तो तत्कालही जम्भाई रुक जाती है। जब जम्भाई आना आरम्भ होय तब उस मनुष्यको सुंदर शय्यापर शयनभवनमें सुला देवे इससे जम्भाई रुक जाती है। सरसोंके तेलकी मालिश करनेसे, मधुर भोजनसे और नागवेल (ताम्बूल) के खानेसे जम्भाई शांत हो जाती है ॥ २२–२४ ॥

अथ हनुग्रहनिदानलक्षणम्।

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः। कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥ २५ ॥ करोति विवृतास्यत्वमथ वा संवृतास्यताम्। हनुग्रहः सः तेन स्यात्कृच्छ्रान्नवर्णभाषणम् ॥२६॥ निर्लेखनं कर्षणम्। शुष्कं चणकादि। स्रंसयित्वा अधः कृत्वा विवृतास्यत्वं व्यात्तमुखत्वम्। संवृतास्यत्वं दन्तलग्नताम्।

जीभको घिसनेसे, चने आदि सूखे पदार्थोंके चाबनेसे, तथा अभिघात (चोट) से कोपको प्राप्त हुई ठोडीकी जडमें रहनेवाला वायु ठोडीको नीचे करके मुखको बंद कर देता है अथवा खोल देता है इसमें कठिनतासे चाबना और बोलना होता है इसको हनुग्रह कहते हैं। इस रोगमें जो मुख बंद रह जाता है तो दांतके जाबडे परस्पर मिल जाते हैं और जो मुख खुला रह जाता है तो दांतके जाबडे परस्पर नहीं मिल सक्ते ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ हनुग्रहचिकित्सा।

संवृतं चिबुकं स्निग्धं स्विन्नमुन्नमयेद्भिषक्। विवृतं नमयित्वा तु कुर्यात्प्राप्तामिह क्रियाम् ॥ २७ ॥ पिप्पलीमार्द्रकं चापि संचर्व्य च मुहुर्मुहुः। निष्ठीवेत्तप्ततोयेन शोधयेद्वदनान्तरम् ॥ २८ ॥ निष्कुल्य लशुनं सम्यक्संक्षुद्य तिलतैलवत्। सैन्धवेनान्वितं खादेद्धनुस्तम्भार्दितो नरः ॥ २९ ॥ रसोनगुटिकामाषविदलं परिपेष्य च। योजयेत्पिष्टिकां तां च सैन्धवार्द्रकहिंगुभिः ॥३०॥ ततस्तु वटकान्कृत्वा तिलतैले पचेच्छनैः। भक्षयेत्तान्यथावह्नि हनुस्तंभात्सुखी भवेत् ॥ ३१ ॥ अभ्यज्य पक्वतैलेन स्वेदयेन्मृदुनाग्निना। वस्तिं विधारयेन्मूर्ध्नि तैलेन परिपूरितम् ॥ ३२ ॥

मुख बंद हो गया होय तो जाबडेको स्नेहन और स्वेदन संस्कार कराकर मुखको खोल देवे और जो मुख खुल गया होय तो ठोडीको नमाकर योग्य क्रिया करे। पीपल और अदरख इनको चाब चाबकर वारंवार थूके और गरम जलसे मुखके भीतरके भागको स्वच्छ करे। लसुनको कूटकर तिलके तेलके साथ और सेंधानिमकके साथ खाय तो हनुग्रह दूर हो जाता है। लसुन और उडदकी भीजी हुई धुली दाल दोनोंकी एकत्र पीठी पीसकर उसमें सेंधानिमक, अदरख और हींग डालकर बडे बनावे, इन बडोंको तिलके तेलमें धीरे धीरे मंदाग्निसे पकावे, अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन करे तो हनुग्रह नष्ट हो जाता है। पकाये हुए प्रसारणी तेलकी मालिश करके मंद अग्निसे सेककर मस्तकके ऊपर तेलसे भरी हुई बस्तिको धारण करे तो हनुग्रह नष्ट हो जाता है ॥ २७–३२ ॥

अथ प्रसारणीतैलम्।

समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याः शतं पलैः। सम्यक्संक्षुद्य सलिले द्रोणमात्रे पचेद्भिषक् ॥ ३३ ॥ सलिलस्य चतुर्थांशं क्वाथं समवशेषयेत्। ततः पलशते तैले तं कषायं पुनः पचेत् ॥ ३४ ॥ पचेत्पलशतं मस्तु काञ्जिकं मस्तुनः समम्। ततः शुद्धं पचेद्गव्यं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैलाच्चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥ चित्रकं पिप्पली-मूलं मधुकं सैन्धवं वचा। शतपुष्पा देवदारु रास्ना च गजपिप्पली ॥ ३६ ॥ प्रसारणी-भवं मूलं मांसी रक्तं च चन्दनम्। तथा वातारिमूलं च बलामूलं च नागरम्॥ ३७॥ तैलस्य चाष्टमांशेन सर्वकल्कानि साधयेत्। नाम्ना प्रसारणीतैलं विख्यातं तत्प्रयुज्यते ॥ ३८ ॥ पाने नस्ये शिरोवस्तौ मर्दने स्वेदने तथा। प्रयुक्तं वातजान्रोगान्सर्वानपि विनाशयेत् ॥ ३९ ॥ विशेषतो हनुस्तम्भं जिह्वास्तम्भं तथार्दितम्। गद्गदत्वं च विश्वाचीं मन्यास्तम्भापबाहुकौ ॥ ४० ॥ त्रिकशूलं गृध्रसी च खञ्जतां पंगुतां तथा। कलाय खञ्जतां खञ्जं स्तंभं संकोचमेव च ॥ ४१ ॥ आन्तरं बाह्यमायामं तथा दंडापतानकम्। धनुर्वातं च कुब्जत्वं व्यपोहति न संशयः ॥४२॥ क्षाणानां स्थविराणां च वातसंको-चितात्मनाम्। प्रसारयेद्यतोऽङ्गानि तदुक्तैषा प्रसारणी ॥ ४३ ॥

चार सौ तोले मूल, पत्र और शाखाओं समेत प्रसारणी (पसरन, गंधप्रसारी खीम, नारी इत्यादि क्वचित् प्रचलित भाषा) का पंचांग लेकर अच्छे प्रकारसे कूटकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार लेवे, फिर उस क्वाथको वस्त्रमें छानकर चूल्हेपै चढा देवे और उसमें तिलका तेल ४०० चार सौ तोले, दहीका तोड ४०० चार सौ तोले, काँजी ४०० चार सौ तोले और तेलसे चौगुना उत्तम गायका दूध डालकर यथाविधि पकावे, फिर इसमें चीता, पीपलामूल मुलैठी, सेंधानिमक, वच, सोया, देवदारु, रासना, गजपीपल, प्रसारिणीकी जड, बालछड (जटामासी), लाल चंदन, अंडकी जड, खिरैटीकी जड और सोंठ ये सब ५० तोले लेकर कल्क बनाकर तेलमें मिलाकर पकावे, तो प्रसारणी तेल सिद्ध होता है। इस प्रसारिणी तेलको पीनेसे, नस्यसे, शिरोवस्तिसे, मर्दनसे और स्वेदनकर्मसे सम्पूर्ण वातजन्य व्याधि नष्ट हो जाती हैं और विशेष करके हनुग्रह, जिह्वास्तम्भ, अर्दित, गद्गदता, विश्वाची, मन्यास्तम्भ, अपबाहुक, त्रिकशूल, गृध्रसी, खंजता, पंगुता, कलायखंजता, खंज, स्तम्भ, संकोच, अंत-तरायाम, बाह्यायाम, दंडापतानक, धनुर्वात और कुब्ज-त्वका नाश होता है। यह प्रसारिणी औषधि वातके कारण अंगमें संकोच हुआ क्षीण हुआ और वातसे सुकडे हुए वृद्ध मनुष्योंके अंगोंको फैला देती है, इस कारण संकोचको नष्ट करनेवाली यह प्रसारिणी नामसे कही जाती है ॥ ३३–४३ ॥

अथ जिह्वास्तम्भलक्षणम्।

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः। जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ४४ ॥ अनीशता असामर्थ्यम्।

कुपित वायु वाणीकी बहानेवाली शिराओंमें प्राप्त होकर जीभको स्तब्ध कर देता है इसको जिह्वास्तम्भ कहते हैं। इसमें मनुष्य खान, पान और बोलनेमें असमर्थ हो जाता है ॥ ४४ ॥

अथ जिह्वास्तम्भचिकित्सा।

जिह्वास्तम्भे यथावस्थं वातव्याधिचिकित्सितम्। सामान्योक्ता क्रिया चात्रार्दितस्यापि हिता मता ॥ ४५ ॥

जिह्वास्तम्भ रोगमें अवस्था आदिकी योग्यताके अनुसार वातव्याधिहीकी चिकित्सा करे और अर्दित रोगमें जो सामान्य चिकित्सा कही है वह भी हितकारी है ॥ ४५ ॥

अथ गद्गदमिन्मिनमूकतालक्षणानि।

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः। नरान्करोत्यवचनान्मूकमिन्मिनगद्गदान् ॥ ४६ ॥ अवचनान् अत्र ईषदर्थे नञ्। तेन ईषद्वचनान्। स एव वायुः प्रबलश्चेत्तदा मूकान् अवचनान् मिन्मिनान्सानुनासिकवचनान्। गद्गदाँल्लुप्तपदव्यञ्जनाभिधायिनः करोति इति अन्वयः। एषां समानाधिकरणत्वेऽपि दुष्टेरनुत्कर्षादिना अदृष्टवशाद्वा भेदो बोधव्यः।

कफसहित वायु शब्दको चलानेवाली धमनियोंको आवरण करके मनुष्योंके वचनको क्रियारहित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर देता है। यही वायु जो प्रबल होय तो मनुष्योंको मूक कर देता है, अर्थात् गूँगा कर देता है और जिसमें पदोंका तथा व्यंजनोंका लोप हो जाय ऐसा गद्गदपन युक्त कर देता है। पदोंका तथा व्यंजनोंका जिसमें बोलते समय लोप हो जाय उसको गद्गदत्व कहते हैं। गूंगेकी समान जो अक्षरोंको नाकमें बोले उसको मिन्मिनत्व कहते हैं। और गूंगापनको मूकता कहते हैं। यद्यपि इन सब रोगोंका एक ही स्थान है तथापि दोषोंकी न्यूनाधिकतासे अथवा प्रारब्धके योगसे इन रोगोंके भेद हो जाते हैं ऐसा जानना ॥ ४६ ॥

अथ गद्गदमिन्मिनमूकता-चिकित्सा।

अथ सारस्वतघृतम्।

प्रस्थं घृतस्य पलिकैः शिग्रुवचालवणधातकीलोध्रैः। आजे पयसि सपाठैः सिद्धं सारस्वतं नाम्ना ॥ ४७ ॥ विधिवदुपयुज्यमानं जडगद्गदमूकतां क्षणाज्जित्वा। स्मृतिमतिमेधाप्रतिभाः कुर्यात्सुस्पष्टवाग्भवति ४८

सैंजिना, वच, सेंधानमक, धायके फूल, लोध और पाढ इनको चार चार तोले लेकर कल्क बनाकर उस कल्कसे बकरीके दूधमें चौंसठ तोले घृतको पकावे, इसको 'सारस्वत घृत' कहते हैं, इस घृतको विधिपूर्वक सेवन करनेसे जडता, गद्गदपना और मूकता क्षणभरमें नष्ट हो जाती है, वाणी स्पष्ट होती है और स्मृति, मेधा तथा तर्कशक्ति प्राप्त होती है ४७॥४८॥

अथ कल्याणावलेहः।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्। अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैंधवम् ॥ ४९ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। तच्चूर्णं सर्पिषा लेह्यं प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ५० ॥ एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः। मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिस्वनः ॥ ५१ ॥

हलदी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोद, मुलैठी, सेंधानिमक इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके घीमें मिलाकर नित्य चाटे तो मनुष्य २१ दिनमें श्रवणमात्रसे धारण करनेकी शक्तिवाले, मेघके तथा दुन्दुभि शब्दकी समान स्वरवाले और मदोन्मत्त कोयलकी समान स्वरवाले हो जाते हैं ॥ ४९–५१

अथ प्रलापलक्षणम्।

स्वहेतुकुपिताद्वातादसंबद्धं निरर्थकम्। वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीर्तितः ॥ ५२ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायुसे जो मनुष्य असंबद्ध और व्यर्थ बोलने लगता है उसको प्रलाप कहते हैं ॥ ५२ ॥

अथ प्रलापचिकित्सा।

सतगरवरातिक्तारेवताम्भोदातिक्ता नलदतुरगगन्धाभारतीहारहूराः। मलयजदशमूलीशंखपुष्प्यः सुपक्काः प्रलपनमपहन्युः पानतो नातिदूरात् ॥ ५३ ॥ वरातिक्तोऽत्र पर्पटः। नलदमुशीरम्। भारती ब्राह्मी। हारहूरा द्राक्षा।

तगर, पित्तपापडा, अमलतास, नागरमोथा, कुटकी, सुगंधवाला, असगंध, ब्राह्मी, दाख, चंदन, दशमूल और शंखाहूली इनका विधिपूर्वक काथ बनाकर सेवन करनेसे प्रलाप तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ५३ ॥

अथ रसाज्ञानलक्षणम्।

भुञ्जानस्य नरस्यान्नं मधुरप्रभृतीन्रसान्। रसज्ञा यन्न जानाति रसाज्ञानं तदुच्यते५४॥

भोजन करते समय जिस मनुष्यकी जिह्वा मधुर आदि रसोंको न जाने उसको 'रसाज्ञान' कहते हैं ॥ ५४ ॥

अथ रसाज्ञानचिकित्सा।

घर्षेज्जिह्वां जडां सिन्धुत्र्यूषणैः साम्लवेतसैः। अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमीरितम् ५५

सेंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और अमलवेत इनको एकत्र पीसकर जिह्वाको घिसे। जो अमलवेत नहीं मिले तो उसके बदले चूका ले लेवे ॥ ५५ ॥

अथ किराततिक्तादिकल्कः।

किराततिक्तका कट्वी कुटजस्य फलं वचा। ब्राह्मी फलं च पालाशं सर्जिका कृष्णजीरकम् ॥ ५६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नागरभूषणम् । एषां कल्कैर्मुहुर्घर्षेज्जिह्विका-मार्द्विकारसैः ॥ ५७ ॥ तेन सम्यग्विजानाति रसना सकलान्रसान् । कल्कः किरातत्तिक्तादिर्जिह्वायाः शून्यतां हरेत् ॥ ५८ ॥

चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ, वच, ब्राह्मी, ढाकके बीज, सज्जीखार, कालाजीरा, पीपल, पीपलामूल, चीता, सोंठ और मिरच इन सबको अदरखके रसमें पीसकर जीभपर वारंवार घिसे तो जीभको रसका ज्ञान अच्छे प्रकार हो जाता है, यह 'किराततिक्तादि' कल्क जीभकी जडताको दूर करे है ॥ ५६-५८ ॥

अथ बाधिर्यकर्णनादौ ।

बाधिर्यकर्णनादयोर्लक्षणं चिकित्सा च तदधिकारे वक्ष्यामः ।

बधिरता और कर्णनाद इनके लक्षण तथा चिकित्सा कर्णरोगाधिकारमें कहेंगे ॥

अथ त्वक्शून्यतालक्षणम् ।

स्पृश्यमाना त्वचा या तु शीतोष्णं मृदु कर्कशम् । न जानाति बुधैस्त्वक्कु च शून्येति परिकीर्त्तिता ॥ ५९ ॥

जो स्पर्श करते समय त्वचामें शीतल, गरम, कोमल, कठिन इनकी खबर न पडे उसको पंडित त्वक्शून्य कहते है ॥ ५९ ॥

अथ त्वक्शून्यचिकित्सा ।

सुप्तवाते त्वसृङ्मोक्षं कारयेद्बहुशो भिषक् । दद्याच्च लवणांगारधूमैस्तैलसमन्वितैः ॥ ६० ॥

त्वक्शून्यता हुई होय तो वैद्य वारंवार रोगीके शरीरमेंसे शोणित निकलवावे, फस्त खुलवावे तथा अंगारोंके ऊपर तेल और सेंधानिमक डालकर धुआँ देवे ॥ ६० ॥

अथार्दितसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम् ।

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च । हसतो जृम्भतो भाराद्विषमाच्छयनासनात् ॥ ६१ ॥ शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः । अर्दयत्यनिलो वक्त्रमार्दितं जनयेत्ततः ॥ ६२ ॥ वक्रीभवति वक्त्रार्द्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते । शिरश्चलति वाक्संगो नेत्रादीनां च वक्रताम् ॥ ६३ ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन्पार्श्वे च वेदना । तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ६४ ॥ व्याहरतः वदतः । कठिनानि पूगफलादीनि । विषमाच्छयनासनात् । ग्रीवादिवैपरीत्येन शयनादासनाच्च । अर्दयति पीडयति ततस्तदनन्तरम् आर्दितं जनयेत् । आर्दिते जाते किं स्यात्तदाह वक्री भवति इत्यादि । अपवर्तते वक्रा भवति चलति कम्पते । वाक्संगः वाङ्निरोधः । नेत्रादीनामिति आदिशब्देन भ्रूगण्डनासिकादीनां ग्रहणम् । वैकृत्यं वेदनास्फुरणवक्रत्वादि । ग्रीवेत्यादि यस्मिन् पार्श्वे अर्दितं तस्मिन् पार्श्वे ग्रीवादीनां वेदना ।

ऊंचे स्वरसे बोलनेसे, सुपारी आदि कठिन पदार्थोंके खानेसे, अत्यन्त हँसनेसे, अत्यन्त जम्भाई लेनेसे, अधिकतर भारको उठानेसे, नाडको टेढी तिरछी रखकर विषम रीतिसे सोनेसे और विषम रीतिसे बैठनेसे मस्तक, नाक, होंठ, ठोडी, ललाट और नेत्रोंकी संधि इनमें रहनेवाला वायु मुखको पीडित करता है इससे अर्दित रोग उत्पन्न होता है जब यह अर्दित रोग उत्पन्न होता है तब इसमें आधा मुख टेढा हो जाता है । नाड टेढी हो जाती है, मस्तक कांपने लगता है, बोलनेमें असमर्थ हो जाता है, नेत्र, भौंह, गाल और नाक इनमें वेदना स्फुरण तथा टेढापन होता है और जिस ओर यह अर्दित रोग होता है उसी ओरकी गरदन, ठोडी और दांतोंमें वेदना होती है, रोगके ज्ञाता वैद्य इस रोगको 'अर्दित लकवा' कहते हैं ॥ ६१-६४ ॥

वातात्पित्तात्कफाच्च स्यात्त्रिविधं तत्समासतः । लालास्रावो व्यथा कम्पः स्फुरणं हनुवाग्ग्रहः ॥ ६५ ॥ ओष्ठयोः श्वयथुः शूलं चार्दिते वातजे भवेत् । वीतमास्यं ज्वरस्तृष्णा पित्तजे मोहधूपने । गण्डे शिरसि मन्यायां शोथस्तम्भः कफात्मके ॥ ६६ ॥

वातज, पित्तज और कफज इस प्रकार संक्षिप्त रीतिसे आर्दित रोग तीन प्रकारका है । वातके आर्दित रोगमें रोगीके मुखसे लार गिरा करती है, पीडा होती है, शिराओंमें स्फुरण होता है, कंप होता है, ठोडी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जकड जाती है, कम बोला जाता है, होठमें सूजन और शूल होता है। पित्तके अर्दित रोगमें मुख पीला हो जाता है, ज्वर आ जाता है, तृषा अधिक लगती है, मोह और उष्णता होती है। कफके अर्दित रोगमें गले, माथे और मन्यानाडीमें सूजन और स्तम्भ होता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथार्दितासाध्यलक्षणम्।

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः। न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ६७ ॥ अनिमिषाक्षस्य निमेषासमर्थचक्षुषः। प्रसक्तं प्रकर्षेण लग्नम् अव्यक्तं च भाषितुं शीलं यस्य तस्य अर्दितं न सिध्यति। त्रिवर्षम् अतीतवर्षत्रयम्, अथवा त्रयाणां चक्षुर्नासासुखानां वर्षः स्रावो यत्र तत्। वेपनस्य कम्पनशीलस्य तस्य गाढमतिशयेन न सिध्यति इति अन्वयः।

जो मनुष्य अस्फुट तथा परस्पर मिले हुए अक्षरोंको बोलता होय और जिसके नेत्र पलक मारनेमें असमर्थ होयँ उस मनुष्यका अर्दित रोग आरोग्य नहीं होता। जिस मनुष्यके अर्दित रोगको उत्पन्न हुए तीन वर्ष बीत गये हों अथवा नेत्र, नाक तथा मुख स्रवता होय और शरीर कांपता होय उस मनुष्यका अर्दित रोग आराम नहीं होता ॥ ६७ ॥

अथार्दितरोगचिकित्सा।

स्नेहपानानि नस्यं च भोज्यान्यनिलहारि च। उपनाहाश्च शस्यन्ते नावनं वस्तयोऽर्दिते ॥ ६८ ॥ वस्तिरत्र शिरोवस्तिरेव। दशमूलकषायेण मातुलुंगरसेन वा। बलया पञ्चमूल्या वा क्षीरं वातात्मके हितम् ॥ ६९ ॥ पिष्टं मांसघृतं जग्ध्वा नवनीतेन सोऽर्दिती। क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत्। ॥ ७० ॥ अर्दिते पित्तजे शीतान्स्नेहांश्चैव विनिर्दिशेत्। घृतवस्तिप्रसेकं च क्षीरमेकं तथैव च ॥ ७१ ॥ जिह्वीभूताननो मूको दाहवान्योऽर्दिती भवेत्। कुर्यात्प्रतिक्रियां तस्य वातपित्तविनाशिनीम् ॥ ७२ ॥ श्लेष्मभागे क्षयं नीते बृंहणैः समुपाचरेत्। अर्दिते शोथसंयुक्ते वमनं च प्रशस्यते ॥ ७३ ॥ रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्तः। तस्यार्दितं नाशमुपैति शीघ्रं वृन्दं घनानामिव वायुवेगात् ॥ ७४ ॥

अर्दित रोगीको घृतादि स्नेहपान करावे, वातनाशक नास्य देवे, वातनाशक भोजन खिलावे, उपनाह स्वेद और शिरोवस्ति करावे। वातज अर्दित रोगमें दशमूलके क्वाथसे, अथवा बिजौरेके रससे अथवा खिरैटीके क्वाथसे, अथवा पंचमूलके क्वाथसे पकाये हुए दूधको पिये। अर्दितरोगी मांसको घीमें पसिकर नैनी घीके साथ खाय और ऊपरसे दूध और मांसरसके साथ भोजन करे तथा दशमूलका रस पिये। पित्तज अर्दित रोगमें शीतल स्नेहोंका उपयोग करे, शिरमें घीकी पिचकारी लगावे, घृत अथवा दूधका सेवन करे और विशेष करके दूधका उपयोग करे। जिस अर्दित रोगीका मुख टेढा हो गया होय दाह होता होय और अपने आप गूंगा हो गया होय उसको वातपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। कफके अर्दित रोगवाले मनुष्यका कफ क्षय करके पुष्टिकारक पदार्थोंसे उपचार करे। जो अर्दित रोग सूजनयुक्त होय तो उसमें वमन कराना उत्तम है। जो अर्दित रोगवाला मनुष्य तिलके तेलमें मिलाकर लसुनके कल्कको सेवन करता है उसका अर्दित रोग तत्काल नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार वायुके वेगसे बादलोंका समूह तत्काल विनाश हो जाता है ॥ ६८–७४ ॥

अथ मन्यास्तम्भनिदानलक्षणे।

दिवास्वप्नासनस्थानविकृतोर्द्धनिरीक्षणैः। मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणावृतः ॥ ७५ ॥ आसनस्थानविकृतोर्द्धनिरीक्षणैः। आसनेन स्थानेन वा अतिशयेन विकृतं ग्रीवादि विकृतं यथा स्यादेवम् उपरिभागे यन्निरीक्षणं तेन स एव कुपितो वातः श्लेष्मणा आवृतः मन्यास्तम्भं करोति। ग्रीवायाः पश्चाद्भागे चतुर्दशशिरा मन्यासंज्ञाः। तथा च अमरसिंहः "पश्चाद्ग्रीवाशिराः मन्याः" इति। तासां स्तम्भं करोति च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिनमें सोनेसे, अथवा विपरीत आसनपर बैठनेसे अथवा विपरीत रीतिसे ऊपर गरदनको करके देखनेसे कोपको प्राप्त हुई वायु कफके साथ मिलकर नाडके पिछले भागमें रहनेवाली मन्या नामक शिराओंको स्तब्ध कर देती है, इसको मन्यास्तम्भ रोग कहते हैं ॥ ७५ ॥

अथ मन्यास्तम्भचिकित्सा ।

दशमूलीकृतं क्वाथं पञ्चमूल्यापि कल्पितम् । रूक्षं स्वेदं तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रयोजयेत् ॥ ७६ ॥ तैलेनाज्येन वा ग्रीवामभ्यज्यार्कदलैरथ । एरण्डपत्रैर्वाच्छाद्य स्वेदयेद्बहुशो भिषक् ॥ ७७ ॥ कुक्कुटाण्डद्रवैरुष्णैः सैन्धवाज्यसमन्वितैः । ग्रीवां संमर्दयेत्तेन मन्यास्तम्भः प्रशाम्यति ॥ ७८ ॥

दशमूलके क्वाथका अथवा पंचमूलके क्वाथका, रूक्ष स्वेदन और नस्य इनका उपयोग मन्यास्तम्भको नष्ट कर देता है । तेल अथवा घीका गर्दनपर मालिश करके आकके पत्तोंसे अथवा अण्डके पत्तोंसे गरदनको बांधे और वारंवार सेक करे तो मन्यास्तम्भ नष्ट हो जाता है । मुरगेके अण्डेके रसको गरम करके उसमें सेंधानमक और घी डालकर गर्दनको मलनेसे मन्यास्तम्भ दूर हो जाता है ॥ ७६–७८ ॥

अथ बाहुशोषलक्षणम् ।

अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयेदंसबन्धनम् । अंसबन्धनशोषात्स्याद्बाहुशोषः सवेदनः ७९

कन्धे अथवा खवोंमें रहनेवाली वायु खवोंके बंधनको सुखा देती है, उस खवोंके बंधनके सूखनेसे अत्यन्त वेदनावाला बाहुशोष रोग उत्पन्न होता है ॥ ७९ ॥

अथ बाहुशोषचिकित्सा ।

बाहुशोषे पिबेद्भुक्त्वा सर्पिः कल्याणकं महत् । बलामूलश्रृतं तोयं सैन्धवेन समन्वितम् । बाहुशोषकरे वाते मन्यास्तम्भे च शस्यते ॥ ८० ॥

बाहुशोष उत्पन्न हुआ होय तो भोजन करनेके पश्चात् महाकल्याण नामक घी पिये । खिरैटीकी जडका क्वाथ बनाकर उसमें सेंधानिमक मिलाकर पिये तो बाहुशोष और मन्यास्तम्भको नष्ट करे है ॥ ८० ॥

अथापबाहुकलक्षणम् ।

शिराः संकोच्य बाहुस्थः स कुर्यादपबाहुकम् ॥ ८१ ॥ स वायुः बाहुस्थः । शिराः बाहुस्थाशिराः ।

बाहुमें रहनेवाली वायु बाहुमें रहनेवाली शिराओंको संकुचित करके अपबाहुक रोगको उत्पन्न करे है॥ ८१॥

अथापबाहुकचिकित्सा ।

परमौषधमपबाहुकमन्यास्तम्भोद्भूजत्रुगतरोगे । शीतलजलेन नस्यं तदुपशमे जिङ्गिनी च पुरः ॥ ८२ ॥ मूलं बलायास्त्वथ पारिभद्रजं तथात्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा । युञ्जीत यो माषरसेन नस्यं भवेदसौ वज्रसमानबाहुः ॥ ८३ ॥ बलाया मूलं कल्कीकृतं पिबेत् तथा पारिभद्रमूलं च । पारिभद्रोऽत्र फरहद इति लोके वातहरत्वात् ।

अपबाहुक रोगमें, मन्यास्तम्भ रोगमें और कंठसे ऊपरके रोगोंमें शीतल जलकी नस्य देवे, नस्यके शान्त होनेके पश्चात् जिंगिनी और गूगलका उपयोग करे, यह उत्तम औषधि है । खिरैटीकी जड और फरहदकी जडको पीसकर पीनेसे अथवा कौंछके स्वरसको पीनेसे और उडदोंके रसका नास लेनेसे बाहु वज्रकी समान हो जाती है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ माषतैलम् ।

माषातसीयवकुरण्टककण्टकारीगोकण्टटुंटुकजटाकापिकच्छुतोयैः । कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोलक्वाथेन वस्तपिशितस्य रसेन वापि ॥ ८४ ॥ शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च सैरण्डमूलकपुनर्नवया सरण्या । रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं माषाख्यमेतदपबाहुहरं हि तैलम् ॥ ८५ ॥

उडद, अलसी, जौ, कटसरैया, कटेरी, गोखरू, अरुलकी जड, जटमाँसी, कौंछ, सुगंधवाला, कपास, सनके बीज, कुलथी और बेर इनके क्वाथसे, बकरेके मांसके रससे, सोंठ, पीपल, सोया (सौंफ), अंडकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जड, पुनर्नवा, प्रसारणी, रास्ना, खिरैटी, गिलोय और कुटकी इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अपबाहुकको नष्ट करे है । इसको ' माषतैल ' कहते हैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ विश्वाचीलक्षणम् ।

तलं प्रत्यंगुलीनां या कण्डरा बाहुपृष्ठतः । बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची सा निगद्यते ॥ ८६ ॥ कण्डरा महास्नायुः । तलं हस्तस्य उपरिभागः तलशब्दोऽत्र उपरिवाचकः यथा भूमितलमिति । तेन अयमर्थः, बाहुपृष्ठतः बाह्वोः पृष्ठं बाहुपृष्ठमारभ्य तलं प्रतिहस्ततलं यावल्लक्षीकृत्य अंगुलीनां या कण्डरा तां सन्दूष्य बाह्वोः प्रसारणाकुञ्चनादिकर्मक्षयकरी भवति सा इह वातव्याधिषु विश्वाची इत्युच्यते । बाह्वोरिति द्वित्वं सम्भवपरम् एकस्मिन्नपि बाहौ विश्वाची भवति ।

बाहुकी पृष्ठसे लेकर हाथके ऊपरभाग तक अंगुलियों तक रहनेवाली कंडराका नाम मोटी नसें हैं उनको दूषित करके दोनों बाहुको फैलाने सकोडने आदि कामोंको नष्ट करनेवाला जो रोग उत्पन्न होता है उसको ' विश्वाची ' कहते हैं। यह रोग एक बाहुमें भी हो जाता है ॥ ८६ ॥

अथ विश्वाचीचिकित्सा ।

दशमूलीबलामाषक्वाथं तैलाज्यमिश्रितम् । सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विश्वाच्यामपबाहुके ॥ ८७ ॥

जो विश्वाची अथवा अपबाहुकरोग उत्पन्न हुआ होय तो सन्ध्याके समय दशमूल, खिरैटी और उडद इनके क्वाथमें तैल और घी मिलाकर सायंकालको भोजन करने बाद पीवे और फिर नास लेवे ॥ ८७ ॥

अथ माषादितैलम् ।

माषसिन्धुबलाराास्नादशमूलकहिंगुभिः । वचाशिवजटाख्याभिः सिद्धं तैलं सनागरम् ॥ ८८ ॥ ऊर्द्धं भक्ताशनाद्धन्याद्बाहुशोषापबाहुकौ । विश्वाचीमुद्धतां चापि पक्षाघातं तथार्दितम् ॥ ८९ ॥

भोजन करनेके पश्चात् उडद, सेंधानिमक, खिरैटी, रायसन, दशमूल, हींग, वच और वेलगिरी इनके द्वारा पकाया हुआ तेल सोंठके साथ. उपयोग किया जाय तो बाहुशोष, अपबाहुक, अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई विश्वाची, पक्षाघात और अर्दित (लकवा) इन सबका नाश होता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अथोर्द्ध्ववातलक्षणम् ।

अधः प्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन च । करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्द्ध्ववातः स उच्यते ॥ ९० ॥ वायुः समानवायुः । मारुतेन अपानवायुना स्वहेतुदुष्टेन । अधःप्रतिहतः अधोनिरुद्धः ।

अपने कारणोंसे दुष्ट हुई समान वायु और कफ वायु नीचेसे रुककर वारंवार डकार आनेके रोगको करती है उसको ऊर्ध्ववात कहते हैं ॥ ९० ॥

अथोर्द्ध्ववातचिकित्सा ।

भागा दश विश्वायास्तत्तुल्या वृद्धदारकस्यापि । त्रय एव च पथ्यायाश्चतुरंशं हिंगु संभृष्टम् ॥ ९१ ॥ एकः सैन्धवभागस्तत्तुल्यं चित्रकं चात्र । संवृद्धमूर्द्ध्ववातं हन्त्येतच्चूर्णितं भुक्तम् ॥ ९२ ॥ अत्र वृद्धदारकालाभे त्रिवृन्मूलं ग्राह्यम् ।

सोंठ दश भाग, विधारा दश भाग, जो विधारा कहीं नहीं मिले तो निसोत दश भाग, हरड तीन भाग, भुनी हींग चार भाग, सेंधानिमक एक भाग और चीता एक भाग लेवे, इन सबका एकत्र चूर्ण करके सेवन करे तो इससे उग्र ऊर्ध्ववात नष्ट हो जाती है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथाध्मानलक्षणम् ।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् । आध्मानमिति जानीयाद्घोरं वातनिरोधजम् ॥ ९३ ॥ आटोपा गुडगुडाशब्दः भृशमाध्मातं वातपूर्णभस्त्रावत् । वातनिरोधजम् अधोवातनिरोधजम् ।

जिस रोगमें नीचेकी वायुके रुकनेसे उदरमें अधिक पीडायुक्त गुडगुडाहट और पेट मसकेकी समान फूल जाय इस भयंकर रोगको आध्मान कहते हैं ॥ ९३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथाध्मानचिकित्सा ।

आध्माने लंघनं पूर्वं दीपनं पाचनं ततः । फलवर्त्तिक्रियां कुर्याद्बस्तिकर्म च शोधनम् ९४

आध्मान रोगमें प्रथम लंघन करावे और फिर अग्निदीपन करनेवाली और पाचन औषधि देवे, फलवर्ती क्रिया, पिचकारी लगावे और संशोधन भी करावे ॥ ९४ ॥

अथ नारायणचूर्णम् ।

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता । खण्डादपि पलं ग्राह्यं चूर्णमेकत्र कारयेत् । मधुनाऽक्षमितं लिह्याच्चूर्णमाध्माननाशनम् ॥ ९५ ॥

पीपल १ तोला, निसोत ४ तोले, खांड ४ तोले इनका एकत्र चूर्ण करके उस चूर्णको सहतके साथ एक तोलाभर चाटे तो आध्मान तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ९५ ॥

अथ दारुषट्कलेपः ।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः । लिंपेदुष्णैरम्लपिष्टैः शूलाध्मानयुतोदरम् ॥९६॥

हैमवती वचा ।

देवदारु, वच, कूठ, सोया, हींग और सेंधानिमक इनको तक्रमें अथवा नींबूके रसमें पीसकर गरम करके लेप करनेसे पेटका शूल और आध्मान नष्ट हो जाता है ॥ ९६ ॥

अथ महानाराचरसः ।

अभयारग्वधो धात्री दन्ती तिक्ता स्नुही त्रिवृत् । मुस्ता प्रत्येकमेतानि ग्राह्याणि पलमात्रया ॥ ९७ ॥ तानि संकुट्य सर्वाणि जलाढकयुगे पचेत् । तत्र तोयेऽष्टमं भागं कषायमवशेषयेत् ॥ ९८ ॥ निस्त्वग्जैपालबीजानि नवानि पलमात्रया । तनुवस्त्रधृतान्येव तस्मिन्क्काथे शनैः पचेत् ॥ ९९ ॥ ज्वालयेदनलं मंदं यावत्क्काथो घनो भवेत् । ततः खल्वे क्षिपेद्भागानष्टौ जैपालबीजतः ॥ १०० ॥ भागांस्त्रीन्नागराद्यौ च मरिचाद्यौ च पारदात् । गन्धकाद्यौ च तानीह यावद्याममं विमर्दयेत् ॥ १०१ ॥ रसो नाराचनामाऽयं भक्षितो रक्तिकामितः । जलेन शीतलेनैव रोगानेतान्विनाशयेत् ॥ १०२ ॥ आध्मानं शूलमानाहं प्रत्याध्मानं तथैव च । उदावर्तं तथा गुल्ममुदराणि हरत्यसौ ॥१०३॥ वेगे शांते तु भुञ्जीत शर्करासहितं दधि । ततस्तत्सैन्धवेनापि ततो दध्योदनं मनाक् ॥ १०४ ॥

अमलतास, आमला, जमालगोटा, कुटकी, थूहर और निसोत तथा नागरमोथा प्रत्येक चार २ तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर पांच सौ तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते आठवां भाग जल शेष रह जाय तब उसमें छुलके रहित नये जमालगोटेके बीज बारीक कपडेकी पोटलीमें बांधकर धीरे २ पकावें, अग्निकी मन्द २ आंच देनेसे जब यह क्वाथ गाढा हो जाय तब इसको खरलमें डालकर उसमें आठ भाग जमालगोटेके बीज, तीन भाग सोंठ, दो भाग कालीमिर्च, दो भाग पारा और दो भाग गन्धक डालकर एक प्रहरतक खरल करे तो 'महानाराच नामक' रस तैयार हो जाता है, इस रसको शीतल जलके साथ खाय तो इससे आध्मान, शूल, आनाह, प्रत्याध्मान, उदावर्त, गुल्म और उदरके संम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं । रोगके वेग शान्त होनेपर रोगीको मिश्रीके साथ दही खिलावे और सेंधेनिमकके साथ कुछेक दही भात खिलावे ॥ ९७–१०४ ॥

अथ प्रत्याध्मानलक्षणम् ।

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् । प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम् ॥ १०५ ॥ विमुक्तपार्श्वहृदयं पार्श्वहृदये विहाय जातम् तदेव आध्मानं कफव्याकुलितानिलं कफेन अवरुद्धवातम् ।

पसली और हृदयको छोडकर आमाशयमें उत्पन्न हुआ और जिसमें कफके कोपसे वायु रुक गई होय ऐसा जो आध्मान है उसको प्रत्याध्मान कहते हैं ॥ १०५ ॥

अथ प्रत्याध्मानचिकित्सा ।

प्रत्याध्माने समुत्पन्ने कुर्याद्वमनलंघने । दीपनादीनि युञ्जीत पूर्ववद्बस्तिकर्म च ॥ १०६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्याध्मान उत्पन्न हुआ होय तो प्रथम वमन तथा लंघन करावे, दीपन तथा पाचन औषधियोंका उपयोग करे और आध्मानकी समान वस्तिकर्म करावे॥१०६॥

अथ वाताष्ठीलालक्षणम्।

नाभेरधस्तात्सञ्जातः सञ्चारी यदि वाऽचलः। अष्ठीलावद्घनो ग्रन्थिरुर्द्ध्वमायत उन्नतः। वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गनिरोधिनीम् ॥ १०७ ॥ अष्ठीला वर्तुलः पाषाणखण्डः। आयतः दीर्घः। वाताष्ठीलेति स्वरूपपरं न तु विशेषपरं व्यावर्तकाभावात्। बहिर्मार्गनिरोधिनी शिश्नभगगुदनिरोधिनी। तेन मूत्रमरुन्मलावरोधः सूचितः।

नाभीके नीचे गोल पथरीकी समान कठोर, भारी, ऊँची, ऊपरके भागमें लम्बी और स्थिर अथवा चंचल जो गांठ उत्पन्न होती है उसको वाताष्ठीला कहते हैं। यह गाँठ लिंग, योनि तथा गुदाको रोक देती है कि, जिससे विष्ठा, मूत्र और वायुका अवरोध हो जाता है। पित्तकी और कफकी अष्ठीला नहीं होती है इस कारण यहां 'वाताष्ठीला' यही नाम समझना, परन्तु वातज अष्ठीला ऐसा भेद नहीं समझना ॥ १०७ ॥

अथ प्रत्यष्ठीलालक्षणम्।

एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम्। प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम्। ॥ १०८ ॥ एतामेव अष्ठीलामेव जठरे तिर्यगुत्थितामिति भेदः।

वेदनायुक्त और वायु, विष्ठा तथा मूत्रको रोकनेवाली जो अष्ठीला (गांठ) पेटमें होती है उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथ वाताष्ठीलाप्रत्यष्ठीलाचिकित्सा।

अष्ठीलायाः क्रिया कार्या गुल्मस्यान्तरविद्रधेः। चूर्णं हिंग्वादिकं चात्र पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १०९ ॥

गुल्मकी और अन्तरविद्रधिकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा अष्ठीलाकी भी करनी चाहिये और इस रोगमें नीचे कहे हुए हिंग्वादि चूर्णको भी गरम जलके साथ पीना चाहिये ॥ १०९ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम्।

हिंगुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठाः शटी वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम्। पथ्यापौष्करवेतसाम्लहपुषायोज्यं तदेभिः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ११० ॥

भूनी हींग, पीपलामूल, धनियाँ, जीरा, वच, चव्य, चीता, पाठ, कचूर, विषाविल, तीनों प्रकारके निमक, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जी, अनार, हरड, पोहकरमूल, अमलवेंत और हाऊबेर इन सबका एकत्र चूर्ण करके अदरखके रसकी तथा बिजौरे नींबूके रसकी भावना देवे तो हिंग्वादि चूर्ण सिद्ध होता है ॥ ११० ॥

अथ तूनीलक्षणम्।

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिताः। भिन्दंतीव गुदोपस्थं सा तूनी नामतो मता ॥ १११ ॥ उपस्थं शिश्नं भगं च।

विष्ठाके स्थानसे तथा मूत्राशयसे उत्पन्न हुई गुदा लिंग तथा योनिमें भेदने सरीखी पीडा करती हुई जो वेदना नीचेको जाती है उसको 'तूनी' कहते हैं॥१११

अथ प्रतितूनीलक्षणम्।

गुदोपस्थोत्थिता सैव प्रतिलोमं विधाविता। वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ॥ ११२ ॥ अधस्तादुत्थिता ऊर्द्ध्वगामिनी वेगैर्वेदनावेगैर्मुहुर्मुहुः स्वभावोपशमोपलक्षितैः सा तु नामतः प्रतितूनी। सैव वेदना वेगैः उत्पत्तिप्रशमलक्षितैः।

जो वेदना गुदामेंसे तथा उपस्थमेंसे उठकर उलटी दौडकर बारंबार शान्त होकर वेगपूर्वक पक्वाशयमें जाती होय उसको 'प्रतितूनी' कहते हैं ॥ ११२ ॥

अथ तूनीप्रतितूनीचिकित्सा।

तून्यां च प्रतितून्यां च प्रशस्ताः स्नेहवस्तयः। पिबेद्वा स्नेहलवणं पिप्पल्यादिमथाम्बुना। उष्णेन रामठं क्षारं प्रगाढमथवा घृतम् ११३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तूनी अथवा प्रतितूनी हुई होय तो खेदकी पिचकारी लगावे, अथवा तेलमें सेंधानिमक डालकर पिये अथवा पिप्पल्यादि गणका क्वाथ पिये, अथवा हींग तथा जवाखारको गरम जलसे पिये अथवा अच्छे प्रकारके घी पिये ॥ ११३ ॥

अथ त्रिकशूललक्षणम् ।

स्फिगस्थ्नोः पृष्ठवंशास्थ्नोर्यः सन्धिस्तत्त्रिकं मतम् । तत्र वातेन या पीडा त्रिकशूलं तदुच्यते ॥ ११४ ॥

कूलेकी दो अस्थियोंकी और पीठके बांसकी दो अस्थियोंकी जो संधि हैं उनको त्रिक कहते हैं । इस त्रिकस्थानमें वायुसे जो पीडा उत्पन्न होती है उसको त्रिकशूल कहते हैं ॥ ११४ ॥

अथ त्रिकशूलचिकित्सा ।

कारयेद्वालुकास्वेदं त्रिकशूले प्रयत्नतः । यद्वाऽधस्तात्करीषाग्निं धारयेत्सततं नरः ११५

त्रिकशूलमें उस मनुष्यको यत्नपूर्वक बालुकास्वेद देवे, अथवा उसकी खाटके नीचे वनके उपलोंकी अग्नि रखकर सेंक देवे ॥ ११५ ॥

अथ त्रयोदशांगगुग्गुलुः ।

आभाऽश्वगन्धा हपुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरकश्च राम्ना । श्यामा शताह्वा च शटी यवानी सनागरा चेति समं विचूर्ण्य ॥ ११६ ॥ सर्वैः समं गुग्गुलुमत्र दद्यात्क्षिपेदिहाज्यं च तदर्द्धभागम् । तद्भक्षयेदर्द्धपिचुप्रमाणं प्रभातकाले पयसाऽथ यूषैः ॥ ११७ ॥ मद्येन वा कोष्णजलेन चाथ क्षीरेण वा मांसरसेन वापि । त्रिकग्रहे जानुहनुग्रहे च वाते भुजस्थे चरणस्थिते च ॥ ११८ ॥ सन्धिस्थिते चास्थिगते च तस्मिन्मज्जास्थिते स्नायुगते च कोष्ठे । रोगान्हरेद्वातकफानुविद्धान्वातेरितान्हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥ ११९ ॥ भग्नास्थिविद्धेषु च खञ्जतायां सगृध्रसीके खलु पक्षघाते । महौषधं गुग्गुलुमेतमाहुस्त्रयोदशाङ्गं भिषजः पुराणाः ॥ १२० ॥ आभा वब्बूलः । तथा च "आभा बब्बूलपर्यायः कथितः कोविदैरिह" इति ।

बबूर, असगंध, हाऊबेर, गिलोय, सतावर, गोखरू, रासना, निसोत, सोया, कचूर, अजवायन और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर गूगल लेवे और गूगलसे आधा घी लेवे सबको एकत्र मिलाकर खूब कूटे तो त्रयोदशांग गूगल बन जाता है । इस गूगलको प्रातःकाल दूधके साथ, वा यूषके साथ, अथवा मद्यके साथ, वा कुछेक गरम जलके साथ, वा केवल ताजे पानीके साथ अथवा मांसरसके साथ आधे तोले प्रमाण खावे तो इससे त्रिकशूल, जानुस्तम्भ, हनुग्रह, भुजागतवायु, पादगतवायु, संधिगतवायु, अस्थिगतवायु, मज्जागतवायु, स्नायुगतवायु, कोष्ठगतवायु, वातकफके समस्त रोग, वायुके रोग, छातीका स्तम्भ, योनिदोष, भग्नास्थिसे उत्पन्न हुए रोग, विद्ध होनेसे उत्पन्न हुए रोग, खंजता, गृध्रसी और पक्षाघात ये सम्पूर्ण रोग दूर हो जाते हैं । प्राचीन वैद्य इस त्रयोदशांग गूगलको वायुसम्बन्धी रोगोंपर उत्तम औषधि कहते हैं ॥ ११६–१२० ॥

अथ मुहुर्मूत्रमूत्रनिग्रहनिदानपूर्वकलक्षणम् ।

मारुतेऽविगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यक्प्रवर्तते । विकारा विविधाश्चापि तस्मिन्दुष्टे भवन्ति हि ॥ १२१ ॥ अविगुणे अनुलोमे । विकाराः विविधाः मुहुर्मूत्रमूत्रनिग्रहादयः ।

वायु जब दुष्ट नहीं होती है तब मूत्राशयमें अच्छे प्रकारसे मूत्रको प्रवर्तन कराती है और जब वायु दुष्ट हो जाती है तब मुहुर्मूत्रण तथा मूत्रनिग्रह आदि अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करती है । वारंवार मूते उसको 'मुहुर्मूत्रण' कहते हैं और जिसमें मूत्रका अवरोध (रुकावट) होता है उसको मूत्रनिग्रह कहते हैं, मुहुर्मूत्रण आदि विकार 'वस्तिवात' इस नामसे भी कहे जाते हैं ॥ १२१ ॥

अथ मुहुर्मूत्रणमूत्रनिग्रहचिकित्सा ।

बलामूर्वात्वचश्चूर्णं ससितं कर्षसम्मितम् । पिबेत्कुडवदुग्धेन मुहुर्मूत्रणशांतये ॥ १२२ ॥ पथ्याबिभीतधात्रीणां चूर्णं चूर्णं मृतायसः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मधुना सह संलीढं मुहुर्मूत्रणशान्तिकृत् ॥ १२३ ॥ यवक्षारस्य चूर्णं तु संयोज्य सितया सह। भक्षयेन्नियतं तस्य प्रशमेन्मूत्रनिग्रहः ॥१२४॥ कूष्माण्डस्य तु बीजानि बीजानि त्रपुसस्य च। वस्तौ सन्धारयेत्तेन प्रशाम्येन्मूत्रनिग्रहः ॥ १२५ ॥ आमलक्याश्च कल्केन वस्तिभागं प्रलेपयेत्। तेन प्रशाम्यति क्षिप्रं नियमान्मूत्रनिग्रहः॥ १२६॥ मेहनस्याथ योनेर्वा मुखस्याभ्यन्तरे शनैः। घनसारयुतां वर्तिं धारयेन्मूत्रनिग्रहे ॥१२७॥

खिरेटी, चुरनहार (चिन्हार) और दालचीनी इनका चूर्ण करके मिश्री मिलाकर सोलह तोलेभर दूधके साथ इस चूर्णको एक तोले प्रमाण खाय तो मुहुर्मूत्रणकी शांति होती है। हरड, बहेडा और आमला इनका चूर्ण तथा मारे हुए लोहेका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे तो मुहुर्मूत्रकी शांति होती है। जवाखारके चूर्णको खांडके साथ मिलाकर सेवन करे तो मूत्रनिग्रह अवश्य नष्ट हो जाता है। पेठेके बीज और खीरेके बीजोंको पेडूके ऊपर पीसके रखनेसे मूत्रनिग्रह दूर हो जाता है। आमलोंका कल्क बनाकर पेडूके ऊपर रखनेसे मूत्रनिग्रह तत्काल नष्ट हो जाता है। लिंगके अथवा योनिके मुखमें धीरे धीरे कपूरकी बत्ती चढावे तो मूत्रका अवरोध दूर हो जाता है ॥ १२२–१२७ ॥

अथ गृध्रसीलक्षणम्।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजंघापदं क्रमात्। गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ १२८ ॥ वाताद्वातकफाभ्यां सा विज्ञेया द्विविधा पुनः। वातजायां भवेत्तोदो देहस्यातीव वक्रता ॥ १२९ ॥ जानुजंघोरुसन्धीनां स्फुरणं स्तम्भता भृशम्। वातश्लेष्मोद्भवायां तु गौरवं वह्निमार्दवम्। तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ १३० ॥ गृध्रसी वातजा केवला स्फिगादिपदपर्यंतम् स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति। क्रमाद् वृद्धिक्रमात्। तेन यथा यथा वर्द्धते तथा तथा स्फिगादीनि आक्रामति नात्र ग्रहणे निर्देशक्रमानियमः। तथा मुहुः स्पन्दन्ते स्फिगादिषु शिराकम्पं करोतीत्यर्थः।

कूलेकी संधि, कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पांव इनमें स्तब्धता, वेदना तथा सुई चुभोने सरीखी पीडा और कूलेकी संधि आदि शिरा वारंवार कांपे, यह गृध्रसी रोग कहा जाता है। अब यह रोग जितना जितना अधिक बढता जाता है उतना उतना ही कूले आदिकी संधियोंको विशेष दबाता है। वातज और कफज इस प्रकार गृध्रसी दो प्रकारकी है तहां वातकी गृध्रसी रोगमें सुई चुभोने सरीखी पीडा होती है, देह अत्यंत बाँका हो जाता है, घुटने, जंघा और सांथलकी संधियोंकी शिरा काँपती हैं और बहुत स्तम्भ होता है और जो वात तथा कफ दोनोंसे उत्पन्न हुई गृध्रसी होय तो शरीरमें भारीपन, अग्निकी मंदता, तन्द्रा, मुखसे पानीका गिरना और अन्नपर अरुचि होती है ॥ १२८–१३० ॥

अथ गृध्रसीचिकित्सा।

गृध्रस्यार्तं नरं सम्यग्रेकेण वमनेन वा। ज्ञात्वा निरामं दीप्ताग्निं वस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ १३१ ॥ नादौ वस्तिविधिं कुर्याद्यावदूर्ध्वं न शुध्यति। स्नेहो निरर्थकः स स्याद्रस्मन्येव हुतं यथा ॥ १३२ ॥ तैलमेरण्डजं प्रातर्गोमूत्रेण पिबेन्नरः। मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ १३३ ॥ तैलं घृतं चार्द्रकमातुलुंगरसं सचक्रं सगुडं पिबेद्वा। कट्यूरुपृष्ठत्रिकशूलगुल्मगृध्रस्युदावर्तहरः प्रयोगः ॥ १३४ ॥ निष्कुष्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत्। तत्पानं तु कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् ॥ १३५ ॥ एरण्डमूलं बिल्वं च बृहती कण्टकारिका। कषायो रुचकोपेतः पीतो वंक्षणवस्तिजम् ॥ १३६ ॥ गृध्रसीजं हरेच्छूलं चिरकालानुबन्धि च। गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां कृष्णाचूर्णं पिबेन्नरः। दीर्घकालोत्थितां हन्ति गृध्रसीं कफवातजाम् ॥ १३७ ॥ सिंहास्यदन्तीकृतमालकानां पिबेत्कषायं रुबुतैलमिश्रम्। यो गृध्रसीनष्टगतिः प्रसुप्तः स

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शीघ्रगः स्याद्धि किमत्र चित्रम् ॥ १३८ ॥ बृहन्निम्बतरोः सारो वारिणा परिपेषितः। स पीतो नाशयेत्क्षिप्रमसाध्यामपि गृध्रसीम् ॥ १३९ ॥ शेफालिकादलैः क्काथो मृद्वग्निपरिपाचितः। दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रः प्रणाशयेत् ॥ १४० ॥ शेफालिका निर्गुण्डी।

गृध्रसीवातसे पीडित मनुष्यको अच्छे प्रकार विरेचन और वमन देकर आमरहित और दीप्ताग्निको जानकर स्नेहकी पिचकारी लगावे, जबतक वमनरूप ऊर्ध्व शोधन नहीं होता तबतक राखमें हवनकी समान स्नेहकी पिचकारी व्यर्थ होती है। प्रातःकाल गोमूत्रके साथ अण्डीका तेल एक महीनेतक पिये तो गृध्रसीवात और ऊरुग्रह नष्ट हो जाता है। तेल, घी, अदरखका रस और बिजौरेका रस इन सबको एकत्र मिलाकर उसमें चूकेका रस अथवा गुड डालकर पिये तो कटिशूल, ऊरुशूल, पृष्ठशूल, त्रिकशूल, गुल्म, गृध्रसी और उदावर्त ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं। अण्डके बीजोंको छीलकर उनके छिलके अलग करके गिरीको दूधमें पीसकर पीनेसे कटिशूल और गृध्रसी वात नष्ट होती है, यह परमौषधि है। अण्डकी जड, बेलगिरी, बडी कटेरी और छोटी कटेरी इनके क्काथमें काला निसक डालकर पीनेसे वंक्षणशूल, वस्तिशूल और गृध्रसीसम्बन्धी शूल बहुत दिनोंका पुराना भी नष्ट हो जाता है। गोमूत्रके और अण्डके तेलके साथ पीपलका चूर्ण पिये तो बहुत दिनोंकी पुरानी और कफ तथा वात दोनोंसे उत्पन्न हुई गृध्रसी नष्ट होती है। गृध्रसीसे मनुष्यकी चलनशक्ति नष्ट हो गई होय और जो जड हो गया होय वह मनुष्य अडूसा, जमालगोटा और चिरायता इनका क्काथ बनाकर उसमें अण्डीका तेल मिलाकर पिये तो अत्यन्त शीघ्र गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। बकायनके भीतरकी छालको पानीमें पीसकर पीनेसे असाध्य गृध्रसी भी नष्ट हो जाती है। निर्गुण्डीके पत्तोंका क्काथ मन्द मन्द अग्निसे पचाकर पीनेसे असाध्य गृध्रसी भी नष्ट हो जाती है ॥ १३१-१४० ॥

अथ राज्ञागुग्गुलुः।

राज्ञायास्तु पलं चैकं पञ्च कर्षाणि गुग्गुलोः। सर्पिषा वटिकां कृत्वा भक्षयेद्गृध्रसीहरीम् ॥ १४१ ॥

चार तोलेभर राखा और पांच तोलेभर गूगल इनको एकत्र मिलाकर घीके योगसे गोली बनाकर सेवन करनेसे गृध्रसी नष्ट हो जाती है ॥ १४१ ॥

अथ राज्नासप्तकक्काथः।

राज्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम्। क्काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ १४२ ॥

रासना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अण्ड और पुनर्नवा (सांट) इनका क्काथ बनाकर उसमें सोंठका चूर्ण डालकर पीनेसे जंघागत वायु, ऊरुगत वात, पृष्ठगत वात, त्रिकशूल और पार्श्वशूल नष्ट हो जाता है ॥ १४२ ॥

अथ पथ्यादिगुग्गुलुः।

पथ्याविभीतामलकीफलानां शतं क्रमेण द्विगुणाभिवृद्धम्। प्रस्थेन उक्तं च पलं कषाणां द्रोणे जले संस्थितमेकरात्रम् ॥ १४३ ॥ अर्द्धावशिष्टं क्वथितं कषायं भाण्डे पचेत्तत्पुनरेव लौहे। अमूनि वह्नेरवतार्य दद्याद्द्रव्याणि सञ्चूर्ण्य पलार्द्धकानि ॥ १४४ ॥ विडङ्गदन्तीत्रिफलागुडूचीकृष्णात्रिवृन्नागरकोषणानि। यथेष्टचेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमाम्बुपानानि च भोजनानि ॥ १४५ ॥ निषेव्यमाणो विनिहन्ति रोगान्सगृध्रसीं नूतनखञ्जतां च। प्लीहानमुग्रं जठराग्निगुल्मं पाण्डुत्वकण्डूवमिवातरक्तम् ॥ १४६ ॥ पथ्यादिको गुग्गुलुरेष नाम्ना ख्यातः क्षितावप्रमितप्रभावः। बलेन नागेन समं मनुष्यं जवेन कुर्यात्तुरगेण तुल्यम् ॥ १४७ ॥ आयुःप्रकर्षं विदधाति चक्षुर्बलं तथा पुष्टिकरो विषघ्नः। क्षतस्य सन्धानकरो विशेषाद्रोगेषु शस्तः सकलेषु तज्ज्ञैः ॥ १४८ ॥

हरड १००, बहेडे २००, आमले ४०० और गूगल ६४ तोले, इन सबको १।२४. एक हजार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चौबीस तोले जलमें एक रात्रिभर भिगो रक्खे फिर इसका अर्द्धावशेष क्वाथ बनाकर और छानकर लोहेके बासनमें पकावे, जब अच्छा गाढा हो जाय तब अग्निपरसे उतारकर इसमें वायविडंग, जमालगोटा, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, निसोत, पीपल, सोंठ और कालीमिर्च इनका दो दो तोले चूर्ण डाले यह पथ्यादि गुग्गुलु सिद्ध होता है। इस गूगलको सेवन करनेवाला मनुष्य यथेष्ट विहार करे। और इसपर शीतल जल पिये तथा शीतलही पदार्थोंका भोजन करे। गूगलको सेवन करनेसे गृध्रसी, नवीन खञ्जता, अत्यन्त उग्र प्लीहा, गुल्म, पांडुरोग, मन्दाग्नि, कण्डू, वमन, वातरक्त और विशेष करके गृध्रसी वात नष्ट होती है। यह पथ्यादि नामवाला गूगल पृथिवीमें अत्यन्त प्रभाववाला है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य बलमें हाथी समान, वेगमें घोडेकी समान हो जाता है। तथा आयुकी वृद्धि करता है, नेत्रोंकी ज्योति बढाता है, शरीरकी पुष्टि करता है, विषको दूर करता है, घावको भरता है और विशेष करके सम्पूर्ण रोगोंमें हितकारी है ऐसा वैद्योंका मत है ॥ १४३–१४८ ॥

अथ खंजपंगुलक्षणम् ।

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा । खंजस्तदाभवेज्जन्तुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ १४९ ॥ सक्थ्नः कट्यादिगुल्फस्य कण्डरां महास्नायुम् आक्षिपेद्गमनादौ कम्पयेत् । वधाद्गमनादिक्रियाघातात् ।

कटिमें रहनेवाली वायु कुपित होकर कमरसे लेकर पाँवके गुल्फोंतककी जो मोटी नसें हैं उनको जब खींचती है अर्थात् चलते समय कँपाती है तब वह मनुष्य खञ्जा अर्थात् लंगडा हो जाता है। कमरसे पांवकी गांठोंतक दोनों साँथलोंकी चलनेकी क्रिया नष्ट हो जाती है उसको पंगु (लूला) कहते हैं ॥ १४९ ॥

अथ खञ्जपंगुचिकित्सा ।

उपाचरेदभिनवं खंजं पंगुमथापि च । विरेकास्थापनस्वेदगुग्गुलुस्नेहवस्तिभिः ॥ १५० ॥

खञ्जता अथवा पंगुता रोग जो थोडे दिनोंका उत्पन्न हुआ होय तो विरेचनसे, निरूह बस्तिसे, स्वेदनसे, गूगलको सेवन कराकर तथा स्नेह बस्तियोंसे चिकित्सा करे ॥ १५० ॥

अथ कलायखंजलक्षणम् ।

कम्पते गमनारम्भे खंजन्निव च लक्ष्यते । कलायखंजं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ॥ १५१ ॥ गमनारम्भे कम्पते एतस्य खंजादयमेव भेदः । कलायखञ्ज इति शास्त्रे रूढा संज्ञा न तु यौगिकी ।

चलते समय लँगडेकी समान चले या काँपे और जिसके सब सन्धिबन्धन शिथिल हो जायँ उस मनुष्यको कलायखञ्ज हुआ जानना। इसमें चलते समय कम्प होय और लङ्गडाता चले इस लिये खञ्जता और कलायखञ्जतामें अन्तर है। (कलायखञ्ज) यह नाम वैद्यकशास्त्रमें अर्थके अनुसार नहीं होनेसे यौगिक नहीं किन्तु रूढ है ऐसा जानना ॥ १५१ ॥

अथ कलायखञ्जचिकित्सा ।

क्रमः कलायखञ्जस्य खञ्जपङ्गोरिव स्मृतः । विशेषात्स्नेहनं कर्म कार्यमत्र विचक्षणैः १५२

कलायखञ्जताकी चिकित्सा खञ्जता और पंगुताकी समान करनी चाहिये और इसमें विशेष करके स्नेहक्रिया करे ॥ १५२ ॥

अथ क्रोष्टुकशीर्षलक्षणम् ।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः । ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ १५३ ॥ क्रोष्टुः शृगालः ।

वायुसे तथा रुधिरसे घुटनोंके मध्यमें गीदडके मस्तककी समान बहुत बडी और मोटी अत्यन्त पीडावाली सूजन होती है उसको क्रोष्टुकशीर्ष कहते हैं ॥ १५३ ॥

अथ क्रोष्टुकशीर्षचिकित्सा ।

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीत्रिफलाम्भसा । क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारकम् ॥ १५४ ॥ गुग्गुलुं शुद्धं कर्षमितं गुडूचीत्रिफलाम्भसा गुडूचीपथ्याविभीतामलकैः समुदितै चतुष्कर्षमितैः प्रस्थमितेन जलेन पक्त्वा क्वाथेन उष्णेन पलद्वयमितेन गुग्गुलुं पिबेत् । एरण्डतैलं कर्षमितं क्षीरेण गव्येन पलपरिमितेन पिबेत् । वृद्धदारकचूर्णं वा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुग्धेन गव्येन पलचतुष्टयमितेन पिबेत् । रसौस्तित्तिरमांसस्य पीतैर्गुग्गुलुसंयुतैः । वातरक्तक्रियाभिश्च जयेज्जम्बूकमस्तकम् ॥ १५५ ॥

गिलोय, हरड, बहेडा और आमला यह प्रत्येक आषधि चार चार तोले लेकर ६४ चौंसठ तोले जलमें पकाकर क्काथ बनावे । जब आठ तोले जल शेष रहे तब इस गरमागरम क्काथके साथ शुद्ध किये गूगलको एक तोलाभर खाय तो कोष्टुकशीर्ष रोग नष्ट हो जाता है । दूधके साथ अंडीका तेल अथवा विधारेको पीनेसे क्रोष्टुकशीर्षरोग नष्ट हो जाता है । जो अंडीका तेल पीना होय तो तेल एक तोला और गायका दूध चार तोले लेना चाहिये । विधारेका चूर्ण पीना होय तो गायके सोलह तोले दूधके साथ पिये । गूगलके साथ तीतरके मांसका रस पिये, तथा वातरक्तकी चिकित्साके समान क्रोष्टुशीर्षकी चिकित्सा करे ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

अथ खल्लीलक्षणम् ।

खल्ली तु पादजंघोरुकरमूलावमोटिनी ॥ १५६ ॥ अवमोटिनी परिवर्तनशीला ।

जिससे पांव, जंघा, सांथल और हाथकी जड ये सब ठिठरा जायँ उसको खल्लीवात कहते हैं ॥ १५६ ॥

अथ खल्लीचिकित्सा ।

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कश्चुकतैलसमन्वितः । सुखोष्णो मर्दने योज्यः खलीशूलनिवारणः ॥ १५७ ॥

कूठ और सेंधेनिमकका कल्क बनाकर तेल और चूका मिलाकर कुछेक गरम करके मर्दन करनेसे खल्लीवात नष्ट हो जाती है ॥ १५७ ॥

अथ वातकण्टकलक्षणम् ।

रुक्पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा । वातेनगुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् १५८

पांव विषमरीतिसे पडे अथवा परिश्रमसे वातके कारण जो घुट्टनोंमें पीडा होती है उसको वातकण्टक कहते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वातकण्टकचिकित्सा ।

रक्तावसेचनं कुर्यादभीक्ष्णं वातकण्टके । पिबेदैरण्डतैलं वा दहेत्सूचीभिरेव च ॥ १५९ ॥ अभीक्ष्णं पुनः पुनः ।

वातकंटक हुआ होय तो बारंबार रुधिर निकलवावे, अथवा अंडीका तेल पिये अथवा सुइयोंसे दाग देवे ॥ १५९ ॥

अथ पाददाहलक्षणम् ।

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः । विशेषशतश्चंक्रमणे पाददाहं तमादिशेत् ॥ १६० ॥

पित्त तथा रुधिरसंयुक्त वायु पांवोंमें दाह करती है और चलते समय विशेष करके दाह (जलन) होता है इसको पाददाह कहते हैं ॥ १६० ॥

अथ पाददाहचिकित्सा ।

वातरक्तक्रमं कुर्यात्पाददाहे विशेषतः । मसूरविदलैः पिष्टैः शृतशीतेन वारिणा । चरणौ लेपयेत्सम्यक्पाददाहप्रशान्तये ॥ १६१ ॥

विशेष करके पाददाहरोगमें वातरक्तकी चिकित्सा करे । औटाये हुए जलको शीतल करके उसमें मसूरको पीसकर पांवपर लेप करे, इससे पाददाह नष्ट हो जाता है ॥ १६१ ॥

नवनीतेन संलिप्तौ वह्निना परितापितौ मुच्येते चरणौ क्षिप्रं परितापात्सुदारुणात् ॥ १६२ ॥

पांवपर नैनी घीका लेप करके अग्निमें सेंके तो दारुण पाददाह भी नष्ट हो जाता है ॥ १६२ ॥

अथ पादहर्षलक्षणम् ।

हृष्येते चरणौ यस्य भवतश्च प्रसुप्तकौ । पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः ॥ १६३ ॥ हृष्येते रोमाञ्चितौ भवतः । प्रसुप्तकौ सिनिसिनीयुक्तौ ।

कफके तथा वायुके कुपित होनेसे दोनों पांव रोमांचयुक्त होकर झनझन करने लगते हैं उसको पादहर्ष करते हैं ॥ १६३ ॥

अथ पादहर्षचिकित्सा ।

पादहर्षे तु कर्तव्यः कफवातहरो विधिः १६४

पादहर्ष रोगमें कफ तथा वायुको हरण करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १६४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ दण्डकाक्षेपादिचतुर्विधाक्षेपकाणां संप्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः। तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चलः । मुहुराक्षेपणाद्वायुराक्षेपक इति स्मृतः ॥ १६५॥ मुहुर्मुहुर्देहमाक्षिपति गजारूढस्य इव पुरुषस्य गात्रं दोलयति । किंविशिष्टो मारुतः मुहुश्चलः वारंवारं सञ्चरणशीलः अयं वायुराक्षेपक इति स्मृतः । देहस्य यत् मुहुराक्षेपणं चालनं ततः ।

जब कोपको प्राप्त हुई वायु सर्व धमनियोंमें प्राप्त होती है तब वारंबार संचरण करनेवाली उस वायुसे मनुष्य हलता है जिस प्रकार हाथीपर बैठे हुए मनुष्यका शरीर हलता है, इस कारण शरीरको वारंवार हलानेवाली होनेसे इसको आक्षेपक कहते हैं॥ १६५॥

पित्तश्लेष्मान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः । कुर्यादाक्षेपकं चान्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ १६६ ॥ पित्तान्वितः श्लेष्मान्वितश्च केवलश्च वायुः आक्षेपकत्रितयं कुर्यात् । अन्यं चतुर्थमभिघातजम् । अन्यो दण्डात् अभिघातजो वायुः चतुर्थमाक्षेपकं कुर्यादित्यर्थः ।

पित्तसंयुक्त वायुसे उत्पन्न हुआ, कफसंयुक्त वायुसे उत्पन्न हुआ, केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और अभिघातसे उत्पन्न हुआ इस प्रकार आपेक्षक रोग चार प्रकारका है ॥ १६६ ॥

अथ केवलवातोत्पन्नाक्षेपकलक्षणम् ।

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीः स्तभ्नाति मारुतः। दण्डवत्स्तब्धगात्रस्य दण्डकः सोऽनुपक्रमः ॥ १६७ ॥ अयं वातजाक्षेपको दण्डाख्यः । सोऽनुपक्रमः । स्वस्वभावादेव असाध्यः । अत्र च मुहुर्मुहुराक्षेपणं बोद्धव्यम् ।

वायुसे हाथ, पांव, मस्तक, पीठ और श्रोणी ये जकड जायँ, जिसमें सम्पूर्ण शरीर लकडीकी समान जकड जाय उसको दंडापतानक कहते हैं । केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और जिसमें शरीर हाथीपर बैठेकी समान हाला करे ऐसा यह दंडकाक्षेप स्वभावसेही असाध्य है ॥ १६७ ॥

अथ कफयुक्तवातोत्पन्नदंडापतानकलक्षणम् ।

कफावृतो यदा वायुर्धमनीष्वेव तिष्ठति । स दंडवत्स्तम्भयति कृच्छ्रो दंडापतानकः ॥ १६८ ॥ दण्डापतानकः, स आक्षेपको दण्डापतानकाख्यः । कृच्छ्रः कष्टसाध्यः । अत्र च मुहुर्मुहुराक्षेपणं बोद्धव्यम् । आगन्तुजाक्षेपकस्य लक्षणं सामान्यमेव बोद्धव्यम् ।

जब कफसे व्याप्त वायु धमनियोंमें रहती है तब धमनी लकडीकी समान स्तब्ध हो जाती है और शरीर हाथीपै बैठे हुएकी समान वारंवार हिला करता है इसको दंडापतानकाक्षेप रोग कहते हैं, यह दंडापतानकाक्षेप कष्टसाध्य है । अभिघातकृताक्षेप जो आगन्तुजाक्षेपक कहा जाता है उसके लक्षण अलग नहीं कहे हैं अत एव आक्षेपकके जो सामान्य लक्षण कहे हैं वे उसके भी जानने चाहिये । पित्तसंयुक्त वायुसे उत्पन्न हुए आक्षेपकके लक्षण भी अलग नहीं देखनेमें आते इस कारण उसके लक्षण भी सामान्य लक्षणोंसे न्यूनाधिकरहित जानने ॥ १६८ ॥

अथ चतुष्प्रकाराक्षेपकचिकित्सा ।

तत्र महाबलातैलम् ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च । यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा॥ १६९॥ अष्टावष्टौ स्मृता भागास्तैलादेकस्तदेकतः । पचेदवाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम्॥ १७०॥ तथाऽगुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च । मञ्जिष्ठां पद्मकं कुष्ठमेलां कालां च सारिवाम्॥ १७१॥ मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम् । शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १७२ ॥ तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृन्मयेऽपि वा । प्रक्षिप्य कलशे सम्यक्स्वनुगुप्तं निधापयेत् ॥ १७३ ॥ एतन्महाबलातैलं प्रयुक्तमविलम्बितम् । सर्वानाक्षेपकादींस्तु वातव्याधीन्व्यपोहति ॥ १७४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिक्कां श्वासमधीमन्थं गुल्मं कासं सुदुस्तरम् । षण्मासादुपयुक्तं तदन्त्रवृद्धिं च नाशयेत् ॥ १७५ ॥ यथाबलमलं मात्रां सूतिकायै च दापयेत् । या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥ १७६ ॥ क्षीणवाते मर्महते ह्यभिघातहते तथा । भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैतत्प्रयुज्यते ॥ १७७ ॥ एतद्धि राज्ञा कर्तव्यं कर्तव्यं राजपूजितैः । सुखिभिः सुकुमारैश्च धनिभिर्मानवैः सदा ॥ १७८ ॥ एकतः एकत्र । अवाप्य प्रक्षिप्य ।

खिरैटीका क्वाथ आठ भाग, दशमूलका क्वाथ आठ भाग, जौ, कालीमिर्च और कुलथीका क्वाथ आठ भाग, दूध आठ भाग और तेल एक भाग इन सबको एक बासनमें डालकर और उसमें जीवनीय गणकी औषधि, सेंधानिमक, अगर राल, धूपसरल देवदारु, मजीठ, पद्माख, कूठ, इलायची, कालीसारिवा, बालछड (जटामांसी), छारछबीला, तेजपत्र, तगर, गौरीसारिवा, वच, सतावर, असगन्ध, सोया और पुनर्नवा इन सब पदार्थोंको डालकर यथाविधिसे तेलको पकावे तौ महाबला नामक तैल तैयार होता है । इस तेलके सिद्ध होनेके पश्चात् सोने चांदी, अथवा मट्टीके कलशेमें भरकर उत्तम रीतिसे रख देवे । इस तेलका प्रयोग करनेसे सर्व प्रकारकी वातव्याधि नष्ट होती है, विशेष करके आक्षेपकादिरोग नष्ट होते हैं तथा हिचकी, श्वास, अधिमन्थ, गुल्म और भयंकर खांसी भी दूर हो जाती है और छः महीनेके प्रयोग करनेसे अन्त्रवृद्धिका भी नाश हो जाता है। बल और मलके अनुसार प्रसूता स्त्रीको इस तेलकी मात्रा देवे । जिन स्त्रियोंको गर्भ रहनेकी इच्छा है तथा जो पुरुष वीर्यक्षीण हो गये हैं उनके लिये भी यह तेल महाहितकारी है । क्षीणवातपर, मर्महत अभिघातपर, अन्यान्य अभिघातोंपर, टूटे हुएपर और परिश्रमके दुःखपर अच्छे प्रकारसे इस तेलका प्रयोग करना चाहिये । राजा, राजमान्य, सुखी लोग, सुकुमार लोग और धनवान् मनुष्योंको यह तेल सदैव रखना चाहिये ॥ १६९–१७८ ॥

अथान्तरायामलक्षणम् ।

अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः । स्नायुप्रतानमनिलस्तदाक्षिपति वेगवान् ॥ १७९ ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् । अभ्यन्तरे धनुरिव यदायमति मानवः । तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ १८० ॥ यदा स बली मारुतोऽभ्यन्तरायामं कुरुते । तदंगुल्यादिसंश्रितोऽनिलः । स्नायुरत्र उपलक्षणम् । तेन शिराकण्ठयोरपि ग्रहणम् । आक्षिपति कम्पयति । तदा स मानवः विष्टब्धाक्षः स्तब्धनेत्रः भग्नपार्श्वः भग्ने इव पार्श्वे यस्य सः ।

जब बलवान् वायु अंतरायामको करती है तब अंगुली, गुल्फ, पेट, हृदय, वक्षःस्थल और गला इनमें रहनेवाली पवन वेगवान् होकर स्नायुके समूहको, शिराओंको और कंठको भी कँपाती है और उस समय उस मनुष्यकी आँखें पथरा जाती हैं, ठोडी जकड जाती है, पसली टूटीकी समान होती है, कफकी वमन करता है और वह छातीसे कमानकी समान नव जाता है ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ बाह्यायामलक्षणम् ।

महाहेतुर्बली वायुः सशिराः स्नायुकण्डराः । मन्यापृष्ठाश्रिता बाह्याः संशोष्यानामयेद्धहिः ॥ १८१ ॥ यत्र तं बहिरायामं प्रवदन्ति भिषग्वराः । तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकटचूरुभञ्जनम् ॥ १८२ ॥ वक्षःकटचूरुभञ्जनम् तत्रापि यो वक्षः कटचूरून्भञ्जति संमर्दयति तमसाध्यं प्राहुः ।

बडे बडे कारणोंसे प्रबल हुई वायु नाडीमें तथा पीठमें रहनेवाली पीछेकी शिराओंको, स्नायुओंको तथा कंडराओंको सुखा देती है उससे मनुष्य पीठकी ओर कमानकी समान नव जाता है इस रोगको उत्तम वैद्य बाह्यायाम कहते हैं, यह रोग असाध्य है और इसमें भी जो छाती, कमर तथा साँथलोंमें मर्दनकी समान पीडा होती होय तो अत्यंत असाध्य है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथ चिकित्सा ।

बाह्यायामेऽन्तरायामे विधेयाऽर्दितवत्क्रिया ॥ १८३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो अंतरायाम और बाह्यायाम उत्पन्न हुआ होय तो अर्दितकी समान चिकित्सा करे ॥ १८३ ॥

अथ धनुस्तम्भलक्षणम् ।

धनुस्तुल्यो नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भसंज्ञितः । विवर्णबद्धवदनः स्रस्तांगो नष्टचेतनः । प्रस्विद्येच्च धनुस्तम्भो दशरात्रं न जीवति॥ १८४॥ अन्तरायामेऽङ्गुल्यादिषु आक्षेपः स्तब्धाक्षत्वादिकं च भवति । धनुस्तम्भे तु धनुर्वन्नमनमात्रमिति एतयोर्भेदः । विवर्णबद्धवदनः बन्धोऽत्र चिबुकस्य ज्ञेयः ।

वायुके कोप होनेसे मनुष्य कमानकी समान नव जाता है उसको धनुर्वात कहते हैं, शिथिल अंगोंवाला, भयानकतायुक्त, पसीने सहित और जिसका मुख फैल गया हो तथा विपरीत रंगवाला हो गया होय तो ऐसा धनुर्वातका रोगी दश रात्रिके भीतर मर जाता है । अंतरायाममें तो अंगुली आदियोंमें आक्षेप होता है तथा आंखें पथरा जाती हैं और धनुर्वातमें तो केवल कमानकी समान नव जाता है इस कारण अंतरायाम और धनुर्वातमें भेद है ॥ १८४ ॥

अथ कुब्जकलक्षणम् ।

हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशः सरुक् । कुद्धो वायुर्यदा कुर्यात्तदा तं कुब्जमादिशेत् ॥ १८५ ॥ यदेत्युक्त्वा यदि वेति विकल्पार्थस्तेन न पुनरुक्तिदोषः । ननु अन्तरायामः क्रोडनतो भवति । बहिरायामः पृष्ठतो भवति ताभ्यामस्य को भेदः, उच्यते—अन्तरायामबहिरायामयोः प्रकृतस्यैव अन्तःशरीरस्य बहिः शरीरस्य च नमनम् अत्र तु हृदयं पृष्ठं वा शरीराद्बहिर्भवतीति भेदः ।

कोपको प्राप्त हुई वायु छातीको अथवा पीठको अनुक्रमसे ऊँचे और वेदनायुक्त कर देवे इस रोगको कुब्जक कहते हैं । शंका—अंतरायाममें छातीसे नवता है और बाह्यायाममें पीठसे नवता है फिर इस कुब्जकमें कौनसा भेद रहा । समाधान—अंतरायाममें और बाह्यायाममें शरीर जैसा तैसा ही रहकर छातीसे अथवा पीठसे नवता है परंतु कुब्जकमें तो छाती तथा पीठ शरीरके भागसे बाहर निकल जाती है यह भेद है ॥ १८५ ॥

अथ धनुर्वातकुब्जकचिकित्सा ।

बाह्यायामेऽन्तरायामे धनुःस्तम्भे च कुब्जके । योज्यं प्रसारणीतैलं तेन तेषां शमो भवेत् ॥१८६॥ वातव्याधिषु सामान्या याः क्रियाः कथिताः पुरा । कर्तव्या एव ताः सर्वास्तैलमेतद्विशेषतः ॥ १८७ ॥

धनुर्वात, कुब्जक, अंतरायाम और बाह्यायाम उत्पन्न हुआ होय तो प्रसारिणीतैल (जो कि हनुग्रहकी चिकित्सामें कह चुके हैं) का उपयोग करनेसे ये रोग शांत हो जाते हैं । प्रथम वातव्याधियोंमें जो सामान्य चिकित्सा कही हैं वह सब चिकित्सा इसमें अवश्य करनी चाहिये और विशेष करके प्रसारिणीतैलका उपयोग करना चाहिये ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

अथापतंत्रकलक्षणम् ।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते । पीडयन्हृदयं गत्वा शिरःशंखौ च पीडयन् ॥ १८८ ॥ धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा । स कृच्छ्रादुच्छ्वसेदुच्चैः स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः । कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः ॥ १८९ ॥ स्थानात्पक्वाशयात् ऊर्ध्वं शिर उद्दिश्य । आक्षिपेच्चालयेत् । अथ निमीलकः अथवा निमीलिताक्षः । यत्रैतानि भवन्ति सोऽपतन्त्रकः ।

अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुई वायु पक्वाशयमेंसे ऊपर जाकर हृदयको पीडित करे है, मस्तक तथा कनपटियोंको भी पिडित करे है, गात्रको कमानकी समान नवा देती है और कँपाती है और चित्तको मोहयुक्त करती है जिससे कि यह मनुष्य अत्यंत कठिनतासे ऊंचा श्वास लेता है, आंखोंको खोल देता है अथवा मीच लेता है, कबूतरकी समान कूँजता है, बेसुधि हो जाता है ये सब लक्षण जिसमें होयँ उसको अपतंत्रक रोग कहते हैं १८८॥ १८९ ॥

अथापतंत्रकचिकित्सा ।

अथापतन्त्रकेणार्तमातुरं नापतर्पयेत् । निरूहवस्तिं वमनं सेवयेन्न कदाचन ॥ १९० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वसनाः कफवाताभ्यां रुद्धास्तस्य विमोक्षयेत् । तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥ १९१ ॥ श्वसनाः प्रश्वासोच्छ्वासवहा धमनीः ।

अपतंत्रसे पीडित मनुष्यके तृप्तिविरुद्ध क्रिया नहीं करे और कभी भी निरूहवस्ति तथा वमनका सेवन नहीं करावे, परंतु कफसे तथा वायुसे रुकी हुई उन श्वासको चलानेवाली नाडियोंको तीक्ष्ण प्रधमन (तीक्ष्ण चूर्णका नस्य) देकर खोल देवे, क्योंकि नाडियोंके खुल जानेसे रोगीको संज्ञा प्राप्त होती है ॥ १९० ॥ १९१ ॥

अथ मरिचादिनस्यम् ।

मरिचं शिग्रुबीजानि विडङ्गं च फणिज्जकम् । एतानि सूक्ष्मचूर्णानि दद्याच्छीर्षविरेचने ॥ १९२ ॥ फणिज्जको मरुवकः ।

शिरोविरेचन अर्थात् शिरको खाली करनेके लिये कालीमिर्च, सैंजिनेके बीज, वायविडंग और मरुआ इनका बारीक चूर्ण करके नास देवे ॥ १९२ ॥

अथ हरीतक्यादियोगः ।

हरीतकी वचा रास्ना सैन्धवं साम्लवेतसम् । घृतमार्द्रकसंयुक्तमपतन्त्रकनाशनम् । अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमीरितम् ॥ १९३ ॥

हरड, वच, रास्ना, सेंधा नमक, अमलवेत, (अमलवेत न मिल सके तो चूका) घी और अदरखका रस. इनका प्रयोग करनेसे अपतंत्र रोग नष्ट हो जाता है ॥ १९३ ॥

अथापतानकलक्षणम् ।

दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति । हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः । वायुना दारुणं प्राहुरेके तमपतानकम् ॥ १९४ ॥ गर्भजातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः । अभिघातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ १९५ ॥ दृष्टिरूपग्रहणशक्तिं संस्तभ्य नाशयित्वा ।

वायु कुपित होकर मनुष्यके देखनेकी शक्ति तथा संज्ञा (होश) को नष्ट कर देवे, गलेमें कूँजे और मोहसे घिरे हुए हृदयको जब वायु त्याग देवे तब फिर होश होवे, इस महादारुण रोगको कितनेक वैद्य अपतानक कहते हैं । गर्भकी उत्पत्तिसे उत्पन्न हुआ, रुधिरके बहुत निकलनेसे उत्पन्न हुआ और अभिघातसे उत्पन्न हुआ अपतानक आरोग्य नहीं होता है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

अथापतानकचिकित्सा ।

अथापतानकेनार्तमश्रुताक्षमवेपनम् । अखट्वापातिनं चैव त्वरया समुपाचरेत् ॥ १९६ ॥ अपतानकिने शस्तं दशमूलीश्रृतं जलम् । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं जीर्णं मांसरसौदनम् ॥ १९७ ॥ तैलेन मर्दनं चैव तथा तीक्ष्णं विरेचनम् । स्रोतोविशोधनं पश्चात् सर्पिःपानं हितं स्मृतम् ॥ १९८ ॥ हन्त्यभुक्तवता पीतमम्लं दध्यपतानकम् । मरिचेन समायुक्तं स्नेहवस्तिरथापि वा ॥ १९९ ॥

अपतानकरोगसे पीडित मनुष्यके नेत्रोंमेंसे पानी बहता हो, कम्प नहीं होता हो और खाटपै न पड गया होय तो इससे पहिले ही तत्काल चिकित्सा करनी चाहिये । अपतानक रोगीको दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पिलावे, क्वाथ पच जाय तब मांसरसयुक्त भात खिलावे, तेलसे मर्दन करे, तीक्ष्ण विरेचन (जुलाब) देवे और पश्चात् घी पिलावे कि जिससे स्रोत साफ हो जायँ । भोजनसे पहिले मरिचके चूर्णके साथ खट्टे दहीको पिये तो अपतानकरोग नष्ट हो जाता है । स्नेहकी पिचकारी लगानेसे भी अपतानकरोग नष्ट हो जाता है ॥ १९६–१९९ ॥

अथ पक्षाघातलक्षणम् ।

गृहीत्वार्द्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायूर्विशोष्य च । पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन् ॥ २०० ॥ कृत्स्नोर्द्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः । एकांगवातं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥ २०१ ॥ अर्द्धम् अर्द्धनारीश्वरवत्पक्षं बाहुपार्श्वोरुजङ्घादिभागम् । अन्यतमं वामं दक्षिणं वा विमोक्षयन् शिथिलीकुर्वन् । अकर्मण्यः कर्मासमर्थः । विचेतनः ईषत्स्पर्शादिज्ञानयुक्तः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वायु शरीरके आधे भागको पकडकर शिराओंको तथा स्नायुओंको सुखा डालती है, सन्धियोंके बन्धनोंको शिथिल करके दहिने अथवा बायें किसी ओरके अंगको मार देती है कि जिससे मनुष्यका आधा शरीर कुछ काम नहीं कर सक्ता और स्पर्शज्ञान आदि भी अल्प रह जाता है। इस रोगको कितनेक वैद्य पक्षाघात कहते हैं, कितनेक वैद्य एकांगवात कहते हैं, और कितनेक वैद्य पक्षवध कहते हैं। जिस प्रकार अर्द्धनारीश्वरका आधा शरीर स्त्रीमय है और आधा शरीर पुरुषमय है उसी प्रकार इस रोगवाले मनुष्यका आधा शरीर मारा जाता है और वह आधा शरीर किसी कार्य करनेके योग्य नहीं रहता है ॥२००॥२०१॥

अथान्यदोषयुक्तवायुलक्षणम्।

दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते। शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफावृते ॥२०२॥ दाहो बाह्यः, सन्तापः आभ्यन्तरः। एतल्लक्षणमन्यत्रापि वातव्याधौ बोद्धव्यं निर्दिष्टत्वात्।

वायु जो पित्तसंयुक्त होय तो अन्तर्दाह, बाहर संताप तथा मूर्च्छा होती है और कफसंयुक्त होय तो शीतलता, सूजन तथा भारीपन होता है, यही लक्षण अन्यान्य वातव्याधियोंमें भी जानने, क्योंकि ये लक्षण सामान्य रीतिसे वायु शब्दका ग्रहण करते हैं ॥ २०२ ॥

अथ पक्षाघातसाध्यासाध्यता।

शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः। साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ २०३ ॥ शुद्धः केवलः। अन्येन पित्तेन कफेन वा। क्षयहेतुकं क्षयो धातुक्षयस्तत्कुपितवातनिमित्तकम्।

पक्षाघात जो केवल वायुसे उत्पन्न हुआ होय तो अत्यन्त कष्टसाध्य है, पित्तसे और कफसे संयुक्त वायुसे उत्पन्न हुआ होय तो साध्य है और धातुओंके क्षयसे कुपित हुई वायुसे उत्पन्न हुआ होय तो असाध्य है ॥ २०३ ॥

उपरमसाध्यलक्षणम्।

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये। पक्षाघातं परिहरेद्वेदनारहितो यदि ॥ २०४ ॥ वेदनारहितो यदि इति भिन्नमसाध्यलक्षणम्।

गर्भवती स्त्री, प्रसूता स्त्री, बालक, वृद्ध, क्षीण और जिसके रुधिरका क्षय हो गया होय ऐसे मनुष्योंके उत्पन्न हुआ पक्षाघात आराम नहीं होता, अत एव इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। पक्षाघात जो वेदनासे रहित होय तो असाध्य है इसलिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २०४ ॥

अथ पक्षाघातचिकित्सा।

तत्र माषादिक्वाथः।

माषात्मगुप्तावातारिवाट्यालकजटाभृतम्। हिंगुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातं विनाशयेत्। माषिके हिंगुसिन्धूत्थे जरणाद्यास्तु शाणिकाः ॥ २०५ ॥

उडद, कौंछ, एरण्ड और खिरैटीकी जड इनका क्वाथ बनाकर उसमें हींग और सेंधा निमक डालकर पीनेसे पक्षाघात नष्ट होता है (हींग और सेंधा निमक पांच पांच रत्ती लेना चाहिये और जीरा आदि पदार्थ चौबीस रत्ती लेना ऐसी मर्यादा है) ॥ २०५ ॥

अथ ग्रंथिकादितैलम्।

ग्रन्थिकाग्निकणाशुण्ठीरास्नासैन्धवकल्कितम्। माषक्वाथभृतं तैलं पक्षाघातं व्यपोहति ॥ २०६ ॥

पीपलामूल, चीता, पीपल, सोंठ, रास्ना और सेंधानिमक इनका कल्क डालकर उडदके क्वाथमें पकाया हुआ तेल पक्षाघातको दूर करे है ॥ २०६ ॥

अथ माषादितैलम्।

माषात्मगुप्तातिविषारुबूकरास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः। चतुर्गुणे माषबलाकषाये तैले भृतं हन्ति हि पक्षघातम् ॥ २०७ ॥

उडद, कौंछ, अतीस, अरण्ड, रास्ना, सोया और सेंधा निमक इनका उत्तम विधिसे कल्क बनाकर तेलसे चौगुने उडदके तथा खिरैटीके क्वाथमें पकाया हुआ तेल पक्षाघातको नष्ट कर देता है ॥ २०७ ॥

अथ सर्वाङ्गवातलक्षणम्।

सर्वाङ्गपवने कुद्धे गात्रस्फुरणभञ्जने। वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्य सन्धयः ॥ २०८ ॥ सन्धयो वेदनाभिः परीता युता स्फुटन्तीव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संपूर्ण अंगोंमें वायुका कोप होनेसे गात्रकी शिरा कांपने लगती हैं, अंग टूटने लगते हैं और वेदनाके मारे सन्धि फटीसी जाती हैं इसको सर्वांगवात कहते हैं ॥ २०८ ॥

अथ सर्वाङ्गवातचिकित्सा।

सर्वाङ्गगतमेकांगगतं चापि समीरणम्।
तैलावगाहनं हन्ति तोयवेगमिवाचलः २०९॥

जिस प्रकार जलके वेगसे पर्वत नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार तेलका अवगाहन सर्वांगवात तथा पक्षाघातको नष्ट करे है ॥ २०९ ॥

अथ स्थाननामलक्ष्यलक्षण-वातव्याधिवर्णनम्।

स्थाननामानुरूपैश्च लिंगैः शेषान्विनिर्दिशेत्। सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ २१० ॥ प्रथमं ह्रस्वकेशत्वं ततो वाचालतापि च। आटोपः पार्श्वशूलं च पुरीषस्याति गाढता ॥ २११ ॥ तथा मलाप्रवृत्तिश्च कम्पः स्तम्भश्च रूक्षता। कार्श्यं काण्यं च शैत्यं च लोमहर्षो व्यथा तथा ॥ २१२ ॥ तोदो भेदः शिरास्फूर्तिरंगमर्दोऽङ्गशुष्कता। संकोचश्चांगविभ्रंशो मोहश्चञ्चलचित्तता ॥ २१३ ॥ निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिश्च भीरुता। शुक्रक्षयो रजोनाशो गर्भनाशः परिश्रमः ॥ २१४ ॥ आटोपो गुडगुडाशब्दः। तोदः सूचीव्यधनेनेव पीडा। भेदो विदारणेनेव व्यथा अंगविभ्रंशः अंगस्य स्थानत्यागेन स्खलनम्। निद्रानाशो निद्राल्पत्वमपि। गर्भनाशः आमगर्भपातः। गर्भशय्यायां वाताधिष्ठानाद्गर्भग्रहणामिति जैजटः। परिश्रमः आयासं विना श्रमः।

शेष (बाकी) वातरोग (जो कि यहां नहीं कहे हैं) उनको उनके स्थान और नामके अनुसार लक्षणोंसे जान लेने चाहिये और इन सबमें पित्तादिकका संसर्ग कल्पना करके जान लेना। जैसे कि केशोंकी अल्पताको ' ह्रस्वकेशत्व ' कहते हैं। बहुत बोलना वाचालता कही जाती है। पेटमें जो गुडगुडशब्द होता है वह आटोप कहा जाता है। पसलियोंमें जो शूल होता है वह 'पार्श्वशूल' कहा जाता है। विष्ठाकी जो अत्यन्त कठिनता है वह 'मलगाढता' कही जाती है। दस्तका जो नहीं उतरना है वह 'मलाप्रवृत्ति' कही जाती है। अंगका जो कांपना है वह 'कम्प' कहा जाता है। अंगका जो जकड जाना है वह 'स्तम्भ' कहा जाता है। शरीरका जो रूखापन है वह 'रूक्षता' कही जाती है। शरीरकी जो दुर्बलता है वह 'कार्श्य' कही जाती है। शरीरका जो कालापन है वह ' काण्र्य ' कहा जाता है। शरीरकी जो शीतलता है वह 'शैत्य' कहा जाता है। रोमांचोंका जो खडा होना है वह ' रोमहर्षण ' कहा जाता है। अंगमें जो पीडा होती है वह ' व्यथा ' कही जाती है। अंगमें जो सुई छेदने सरीखी पीडा होती है वह ' तोद ' कहा जाता है। मानों शरीरको कोई चीरे डालता है ऐसी जो पीडा होती है वह ' भेद ' कहा जाता है। शिराओंका जो फडकना वह 'शिरास्फूर्ति' कही जाती है। अंगोंका जो टूटना है वह 'अंगमर्द' कहा जाता है। अंगोंका जो सूखना है वह ' अंगशुष्कता ' कही जाती है। अंगोंका जो सकुचना है वह 'अंगसंकोच' कहा जाता है। अंगोंका जो अपने स्थानसे स्खलन होना है वह 'अंगविभ्रंश' कहा जाता है। चित्तका जो मूढ हो जाना है वह 'मोह' कहा जाता है। चित्तका जो चञ्चलपन है वह 'चलचित्तता' कही जाती है। निद्राका बिलकुल नहीं आना अथवा कम आना वह 'निद्रानाश' कहा जाता है। पसीनेका जो न आना है वह 'स्वेदनाश' कहा जाता है। बलका जो नाश होना है वह ' बलहानि ' कही जाती है। डरपोकपन जो है वह 'भीरुता' कही जाती है। वीर्यका नष्ट होना जो है वह 'शुक्रक्षय' कहा जाता है। स्त्रीके रजका नाश होता है तो 'रजोनाश' कहा जाता है। अपक्व गर्भका गिर जाना अथवा जैजटके मतानुसार गर्भाशयमें वायुके स्थित होनेसे गर्भका नहीं रहना जो है वह 'गर्भनाश' कहा जाता है। विना परिश्रम किये हुए थक जाना जो है वह ' परिश्रम ' कहा जाता है। वह्निवैषम्य अर्थात् अग्निकी विषमताके लक्षण जठराग्निके विकारोंमें अग्निमांद्यमें कह आये हैं सो देख लेना ॥ २१०–२१४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथोक्तवातव्याधिचिकित्सा।

सामान्यवातरोगाणां या चिकित्सा प्रचक्ष्यते। एषां सैव विधातव्या तयैते यान्ति संक्षयम् ॥ २१५ ॥

वातव्याधियोंमें जो सामान्य औषधि कही है वही औषधि ह्रस्वकेशत्व आदि रोगोंमें प्रयोग करनी चाहिये, इस प्रकार करनेसे उन रोगोंका नाश होता है॥२१५॥

अथान्यप्रकारेण वातव्याधिनिरूपणम्।

एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः। हेतुस्थानविशेषेण भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ २१६ ॥ एवंविधानि रूपाणि शिरोग्रहादीनि अशीतिः। हेत्वित्यादिहेतुविशेषः पित्तश्लेष्माद्यावृतत्वादिः। यथा श्लेष्मावृतो वायुः मन्यास्तम्भं करोति वै। स्थानविशेषः कोष्ठादिः। यथा "तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः" इत्यादि।

कोपको प्राप्त हुई इस प्रकार यह वायु शिरोग्रह आदि अस्सी रूपोंको उत्पन्न करती है। हेतुओंके भेदसे तथा स्थानोंके भेदसे भी वातव्याधियोंका विशेष विवेचन समझना योग्य है ॥ २१६ ॥

अथोदानादिवायोः पित्तकफसंबन्धेन लक्षणम्।

उदाने पित्तसंयुक्ते दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः। अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफावृते ॥ २१७ ॥ प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते। दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यं च कफावृते ॥ २१८ ॥ प्राणो हृदयाश्रयो वायुः। स्वेदो दाहस्तृषा मूर्च्छा समाने पित्तसंयुते। कफेन सक्ते विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २१९ ॥ कफेन संयुक्ते समाने विण्मूत्रे सक्ते अवरुद्धे भवतः। गात्रहर्षो रोमाञ्चः। अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता। अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते ॥ २२० ॥ अत्र गुदाश्रयः अपानः। व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः। स्तम्भोऽथ दण्डकश्चापि शूलशोथौ कफावृते ॥ २२१ ॥

कंठमें रहनेवाली उदान वायु जो पित्तसे संयुक्त होय तो दाह, मूर्च्छा, भ्रम तथा ग्लानि होती है। जो कफसे संयुक्त होती है तो पसीनेका अभाव, रोमांचोंका हो आना, अग्निकी मन्दता और शरीरकी शीतलता होती है। हृदयमें रहनेवाली जो प्राणवायु पित्तसे संयुक्त होय तो वमन तथा दाह होता है। और कफसे संयुक्त होय तो दुर्बलता, ग्लानि, तंद्रा तथा विरसता होती है। जठराग्निके नीचे रहनेवाली जो समान वायु पित्तसे संयुक्त होय तो पसीना दाह तृषा तथा मूर्छा होती है और कफसे संयुक्त होय तो विष्ठा तथा मूत्रका अवरोध और रोमांचोंका खडा होना ये लक्षण होते हैं। गुदामें रहनेवाली अपान वायु पित्तसे संयुक्त होय तो दाह, उष्णता और लाल मूत्र हो जाता है। और जो कफसे संयुक्त होय तो शरीरके नीचेके भागमें भारीपन तथा शीतपन होता है। सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाली व्यानवायु जो पित्तसे संयुक्त होय तो दाह, अंगोंका फेंकना तथा ग्लानि होती है और जो कफसे संयुक्त होय तो जडता, दंडकाक्षेप, शूल तथा सूजन ये लक्षण होते हैं ॥ २१७–२२१ ॥

अथ पित्तकफावृतवायुचिकित्सा।

वाते सपित्ते कुर्वीत वातपित्तहरीं क्रियाम्। सकफे तत्र कुर्वीत वातश्लेष्महरीं क्रियाम्२२२

वायु पित्तसे संयुक्त होय तो वात तथा पित्त दोनोंको हरनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये और जो कफसे संयुक्त होय तो वायु तथा कफ इन दोनोंको हरनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२२ ॥

अथ त्वगादिस्थानस्थितरसादिधातुगतवायुलक्षणम्।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते। आतन्यते सरागा च सर्वरुक्त्वग्गतेऽनिले ॥ २२३ ॥ सर्वरुक्सप्तत्वग्व्यथा त्वग्गते त्वक्छब्देन अत्र रस उच्यते। त्वगाधार्यत्वात्तेन रसगत इत्यर्थः। रुजस्तीव्राः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ससन्तापो वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः । गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥ २२४ ॥ अरूंषि व्रणानि । भुक्तस्य भुक्तेत्यत्र अध्यवसितादित्वात् कर्तरि क्तः । तेन भुक्तवतः स्तम्भः सन्तर्पणेन रक्तवृद्धेः । गुर्वङ्गं तुद्यते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा । सरुक्स्तिमितमत्यर्थं वाते मांससमाश्रिते ॥ २२५ ॥ दण्डमुष्टिताडितमिव तुद्यते स्तिमितं निश्चलमित्यर्थः । मांसमेदसोर्गतवातयोरेकलिङ्गत्वम् अदूरान्तरेण प्रत्यासत्तेः आश्रयप्रभावात् । तथा मेदःश्रितः कुर्याद्ग्रन्थीन्मन्दरुजो व्रणान् ॥ २२६ ॥ तथा मेदःश्रितः मांसगतवत् । दूरेण प्रत्यासत्तेरस्थिरूपाया भेदाच्च कुर्यात् ग्रन्थीनित्यादिविशेषः । भेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः । अस्वप्नं सतता रुक् च वाते दुष्टेऽस्थिसंस्थिते । वाते मज्जगते पीडा न कदाचित्प्रशाम्यति ॥ २२७ ॥ मज्जगते अस्थिगतवत् । यथा मेदोगतो मांसगतवत्स्यात् । पीडात्र कदापि न शाम्यत्यत्र विशेषः । क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा । विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ २२८ ॥ शुक्रं बध्नाति स्खलयत्येव । न गर्भं क्षिप्रं मुञ्चति । आममेव पातयति । बध्नाति मूढं करोति । वातदुष्टशुक्रारब्धत्वात् । विकृतिं शुक्रस्य वर्णान्तरत्वादिरूपां गर्भस्य विकृतांगत्वादिरूपां जनयति ।

जब वायु रसमें स्थित हो जाती है तब शरीरकी चमडी रूखी, फटी हुई, जड, पतली, काली, सुई चुभोने सरीखी पीडायुक्त, खिंचीसी और ललाई लिये होती है और सातों त्वचाओंमें व्यथा होती है। रुधिरगत वायु होय तो तीव्र पीडा होती है, संताप होता है, शरीरका रंग बिगड जाता है, दुर्बलता हो जाती है, अरुचि हो जाती है, गात्रमें व्रण होते हैं और भोजन करनेके पश्चात् तृप्तिसे रुधिरकी वृद्धि होकर स्तब्धता होती है। वायु मांसगत होय तो अंग भारी हो जाता है, लकडी अथवा मुष्टिके मारनेकी समान पीडा होती है, स्तब्धता होती है, व्यथायुक्त होता है और अत्यन्त निश्चल हो जाता है। वायु मेदगत होय तो मांसगत वायुकी समान सम्पूर्ण लक्षण होते हैं, तथा अल्पपीडावाली ग्रंथि और फोडे होते हैं, इतनी मेदगत वायुमें विशेषता है कि, दुष्ट वायु अस्थियोंमें स्थित होय तो अस्थियोंकी संधियोंमें तोडने सरीखी पीडा होती है। संधियोंमें शूल चलता है, मांस तथा बलका क्षय होता है, निद्रा नहीं आती और प्रबल पीडा होती है। मज्जागत वायुमें अस्थिगत वायुके समान लक्षण होते हैं, परन्तु इतना विशेष होता है कि मज्जागत वायुसे उत्पन्न हुई पीडा कभीभी शांत नहीं होती है। कोपको प्राप्त हुई वायु वीर्यमें प्राप्त होय तो वीर्य स्खलित नहीं होने देती, अपक्व गर्भकोही गिरा देती है। मूढ कर देती है, वीर्यके रंगको बदल देती है, अथवा वीर्यको बिगाड देती है और गर्भमें अंगविकृति आदि करती है, वातदूषितवीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण गर्भ कच्चाही गिर जाता है अथवा मूढ हो जाय है यह सम्भव है॥२२३-२२८॥

अथ रसादिधातुगतवायुचिकित्सा ।

वायौ त्वगाश्रिते स्नेहाभ्यंगं स्वेदं च कारयेत् । रक्तस्थे शीतलाँल्लेपान्विरेकं रक्तमोक्षणम् ॥ २२९ ॥ मांसमेदोगते वाते सविरेकं निरूहणम् । अस्थिमज्जगते स्नेहं बहिरन्तश्च योजयेत् ॥ २३० ॥

वायु रसमें स्थित होय तो स्नेहका अभ्यंग तथा स्वेदन किया करे । वायु रुधिरमें प्राप्त होय तो शीतल लेप करे, विरेचन देवे तथा फस्त आदि खुलवाकर रुधिर निकलवावे । वायु मांस अथवा मेदमें स्थित होय तो विरेचन देवे और निरूहवस्ति (क्वाथकी पिचकारी) करे । वायु अस्थियोंमें अथवा मज्जामें स्थित होय तो बाहर तथा भीतर स्नेहकी योजना करे ॥२२९॥२३०॥

केतकिनागबलातिबलानां यद्बहुलेन रसेन विपक्वम् । तैलमनल्पतुषोदकसिद्धं मारुतम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थिगतं विनिहन्ति ॥ २३१ ॥ हर्षोऽन्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ॥ २३२ ॥

केवडा और गंगेरन (गुलसकरी) तथा कंघी इनके बहुतसे स्वरससे और बहुतसे तुषोदकसे पकाये हुए तेलको केतक्यादितैल कहते हैं । इस तेलका उपयोग करनेसे अस्थिगत वायु नष्ट हो जाती है वायु वीर्यमें प्राप्त होय तो स्त्री आदिसे हर्ष उपजावे और वीर्यको बढानेवाले अन्नपान देवे क्योंकि इस प्रकार करनेसे बल तथा वीर्यकी वृद्धि होती है॥२३१॥२३२॥

अथ स्थानविशेषेण वातव्याधिविशेषस्तत्र कोष्ठगतवायुलक्षणम् ।

वाते कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः । अध्महृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च जायते २३३

जब दुष्ट वायु कोठेमें स्थित होती है तो मूत्र तथा विष्ठाका अवरोध होता है और गुल्म (वायगोला), हृदयरोग, अध्मा, बवासीर और पसलियोंमें शूल ये सब लक्षण होते हैं ॥ २३३ ॥

अथ कोष्ठलक्षणम् ।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुन्दुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ २३४ ॥ उन्दुकः पीठ इति लोके । एतेन कोष्ठशब्देन सर्व एवाशयाः कथ्यन्ते । तथापि विशेषार्थमामाशयादिगतवातलक्षणान्यपि पृथग्वक्ष्यंते ।

कच्चे भोजन रहनेका स्थान, अग्निके रहनेका स्थान, पक्व भोजनके रहनेका स्थान, मूत्रका स्थान, रुधिरका स्थान, हृदय, पीठ और फेफडा इन सबको मिलकर कोठा कहा जाता है यद्यपि 'कोठा' यह शब्द सब आशयोंको कहा जाता है तोभी विशेष जाननेके लिये आमाशयादिमें रहनेवाली वायुके लक्षण पृथक् ही कहे हैं ॥ २३४ ॥

अथ कोष्ठवातचिकित्सा ।

पाचनीयै रसैर्युक्तैरन्यैर्वा पाचयेन्मलान् । विशेषतः पिबेत्क्षीरं नरः कोष्ठगतेऽनिले २३५

दुष्ट वायु कोठेमें स्थित होय तो मनुष्य पाचन करनेवाले रसोंकी योजना करे, अथवा अन्यान्य उपायोंसे मलको पकावे और विशेष करके दूध पिये ॥ २३५ ॥

अथामाशयगतवायुलक्षणम् ।

हृत्पार्श्वोदरनाभिरुक्तृष्णोद्गारविषूचिकाः । कासः कण्ठस्य शोषश्च श्वासाश्चामाश्रयेऽनिले ॥ २३६ ॥

चरक कहता है कि "जब वायु आमाशयमें रहती है तब हृदय, पसली, पेट और नाभि इनमें पीडा होती है, तृषा लगती है, डकार आती है, विषूचिका (हैजा), खाँसी, कंठमें शोष और श्वास होता है ॥ २३६ ॥

अथामाशयलक्षणम् ।

नाभिस्तनांतरं जंतोराहुरामाशयं बुधाः २३७

चरक कहता है " कि प्राणियोंके शरीरमें नाभि और स्तनके बीचका जो भाग है उसको आमाशय कहते हैं " ॥ २३७ ॥

अथामाशयगतवायुचिकित्सा ।

आमाशयस्थे त्वनिले प्रशस्तं प्राग्लंघनं दीपनपाचनं च । प्रच्छर्दनं तीक्ष्णविरेचनं वा मुद्गा यवाः शालियुताः पुराणाः ॥ २३८ ॥ भूतीकपथ्याशटिपुष्कराणि बिल्वामृतादारुकनागराणि । उग्राविषामागधिकाविडानि क्काथास्त्रयः सामसमीरणघ्नाः ॥ २३९ ॥ भूतीकः रोहिषः सुगन्धस्तृणविशेषः तल्लाभे उशीरं ग्राह्यम् । पुष्करं पुष्करमूलम् । दारुकं देवदारु । उग्रा वचा । विषा अतिविषा ।

वायु आमाशयमें स्थित होय तो प्रथम लंघन कराने चाहिये और दीपन तथा पाचन औषधि देनी उत्तम है अथवा वमन और तीक्ष्ण विरेचन देना उत्तम है । इस रोगवाले मनुष्यको पूरानी मूंग, जौ और चावल पथ्य (हित) है । रोहिष सुगंधितृण, हरड, कचूर और पोहकरमूल इनका क्काथ बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट हो जाती है, जो रोहिष तृण न मिल सके तो उसके अभावमें खस डालनी चाहिये । बेलगिरी, गिलोय, देवदारु और सोंठ इनका क्काथ बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट हो जाती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है । बच, अतीस, पीपल और बिरियासंचरनिमक इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट हो जाती है ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

अथ षड्धरणयोगः ।

चित्रकेन्द्रयवौ पाठा कटुकातिविषाऽऽभया । आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना । योगेऽस्मिन्भिषजा ग्राह्याः षण्णां षड्धरणा पृथक् । दिनेषु षट्सु दातव्यास्तेन षड्धरणः स्मृतः ॥ २४० ॥ अत्र षण्णां समुदितानां षड्धरणमितानां चूर्णीकृतानाम् । एकस्मिन्नहनि एकटंको ज्ञेयः ।

चीता, इन्द्रजौ, पाठ, कुटकी, अतीस और हरड ये प्रत्येक औषधि चौबीस चौबीस रत्तीभर लेकर उनका चूर्ण करके कपडेमें छान लेवे । फिर इसमेंसे नित्य २४ रत्ती चूर्ण लेकर कुछेक गरम जलके साथ पिये तो आमाशयगत वायु नष्ट हो जाती है । इस चूर्णको इसी प्रकार छः दिनतक पिये तो छः दिनमें आराम हो जाता है इस लिये यह षड्धरण योग कहा जाता है ॥ २४० ॥

अथान्यषड्धरणयोगः ।

आमाशयगते वाते छर्दिश्चापि यथाक्रमम् । देयः षड्धरणो योगः सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥ २४१ ॥ अयमर्थः । प्रथमदिवसे वमनं कारयितव्यं ततो द्वितीयं दिनमारभ्य षड्दिनपर्यंतं पाठक्रमेणैकैकस्य चूर्णं टंकमितं देयमित्यर्थः ।

पहिले दिन वमन कराकर दूसरे दिन चीतेका चौबीस रत्ती चूर्ण गरम जलसे पिये, तीसरे दिन इन्द्रजौका चौबीस रत्ती चूर्ण गरम जलसे पिये, चौथे दिन पाढेका चौबीस रत्ती चूर्ण गरम जलसे पिये, पांचवें दिन कुटकीका चूर्ण चौबीस रत्ती गरम जलके साथ पिये छठे दिन अतीसका चूर्ण चौबीस रत्ती गरम जलके साथ पिये और सातवें दिन हरडका चूर्ण चौबीस रत्ती गरम जलके साथ पिये । इस प्रकार करनेसे भी आमाशयगत वायु नष्ट हो जाती है ॥ २४१ ॥

अथ पक्वाशयगतवायुलक्षणम् ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च । कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ २४२ ॥ आटोपो वातस्य क्षुब्धत्वम् । न तु गुडगुडाशब्दस्तस्य अन्त्रकूजनोक्तत्वात् ।

जब वायु पक्वाशयमें स्थित होती है तो पेटमें आंतें गुडगुड करा करती हैं, शूलकी पीडा होती है, वायु कुपित होती है, मूत्र और विष्ठा थोडी थोडी उतरती है, अफरा आ जाता है और त्रिकस्थानमें पीडा होती है ॥ २४२ ॥

अथ पक्वाशयगतवायुचिकित्सा ।

वह्नेः संवर्द्धनं कार्यं कर्मौदावर्त्तकं तथा । देयः स्नेहविरेकश्च पक्वाशगतेऽनिले ॥ २४३ ॥

वायु पक्वाशयमें स्थित होय तो जठराग्निको बढानेका उपाय करना चाहिये, उदावर्तकी जो चिकित्सा कहीहै वह सब करनी चाहिये और स्नेहसंयुक्त विरेचन कराना अत्यन्त सुखकारी है ॥ २४३ ॥

अथोदरगतवायुचिकित्सा ।

वाते जठरगे दद्यात्क्षारचूर्णादिदीपनम् ।

वायु पेटमें स्थित होय तो क्षार तथा चूर्ण आदि दीपन औषधि देनी चाहिये ॥

अथ कुक्षिगतवायुचिकित्सा ।

शुण्ठीकुटजबीजाग्निचूर्णं कोष्णाम्बु कुक्षिगे ॥ २४४ ॥

वायु कोखमें स्थित होय तो सोंठ, इन्द्रजौ और चीता इनका चूर्ण करके कुछेक गरम जलके साथ पिये ॥ २४४ ॥

अथ गुदगतवायुलक्षणम् ।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्करा । जंघोरुत्रिकपार्श्वांसपृष्ठरोगो गुदेऽनिले ॥ २४५ ॥ रोगोऽत्र रुजा पीडेति यावत् ।

जब वायु गुदामें स्थित होती है तो विष्ठा, मूत्र और अधोवायुका अवरोध होता है, शूल चलता है, पेट अफरता है, पथरी और शर्करा रोग होता है, तथा पिंडली, साँथल, कमर, पसली, कंधे और पीठ इनमें पीडा होती है ॥ २४५ ॥

अथ गुदगतवायुचिकित्सा ।

वाते गुदगते दुष्टे कर्मौदावर्तकं हितम् ॥ २४६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुष्ट वायु जो गुदामें स्थित होय तो उदावर्तमें जो चिकित्सा कहीं है वह सब करनी चाहिये ॥ २४६ ॥

अथ हृदयगतवायुचिकित्सा ।

हृदयानिलनाशाय गुडूचीं मरिचान्विताम् । पिबेत्प्रातः प्रयत्नेन सुखं तस्माम्भसा सह ॥ २४७ ॥ पिबेदुष्णाम्भसा पिष्टमाश्वगन्धं बिभीतकम् । गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृदयानिलनाशनम् ॥२४८॥ देवदारुसमायुक्तं नागरं परिपेषितम् । हृद्व्यातवेदनायुक्तः पीत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ २४९ ॥

प्रातःकाल यत्नपूर्वक कुछेक गरम जलके साथ मिरच तथा गिलोयको पिये तौ हृदयमें रहनेवाली दुष्ट वायु नष्ट होती है । असगंध और बहेडा इनको एकत्र पीसकर गुडमें मिलाकर गरम जलके साथ पिये तो हृदयमें रहनेवाली दुष्ट वायु नष्ट होती है । देवदारु और सोंठ इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीनेसे हृदयगत वायुसे पीडित मनुष्य सुखी होता है ॥ २४७–२४९ ॥

अथ कर्णेन्द्रियादिगतवायुलक्षणम् ।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्क्रुद्धः समीरणः ॥ २५० ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु जब इन्द्रियोंमें रहती है तब इन्द्रियोंकी शक्तिका नाश करती है ॥ २५० ॥

अथ कर्णेन्द्रियादिस्थितवायुचिकित्सा ।

श्रोत्रादिष्वनिले दुष्टे कार्यो वातहरः क्रमः । स्नेहाभ्यंगावगाहाश्च मर्दनालेपनानि च२५१

दुष्ट हुई वायु जब कान आदि इन्द्रियोंमें स्थित होय तो वायुकी चिकित्सा करे, स्नेहपदार्थोंकी मालिश करे, स्नेहकी कोठीमें अवगाहन करावे, स्नेहको शरीरपर लगावे और स्नेहका लेप करे ॥ २५१ ॥

अथ शिरागतवायुलक्षणम् ।

कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम् । स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्ली कुब्जत्वमेव च ॥ २५२ ॥ कुञ्चः संकोचः बाह्यायामं पृष्ठेन नतम् । अभ्यन्तरायामं क्रोडेन नतम् । शूलं शिरायामेव पूरणं स्थूलत्वम् ।

शिराओंमें रहनेवाली वायु शिराओंमें शूलकी पीडा, शिराओंका संकोच, शिराओंकी स्थूलता, अंतरायामको, बाह्यायामको, खल्लीको और कुब्जताको करती है ॥ २५२ ॥

अथ शिरागतवायुचिकित्सा ।

स्नेहाभ्यंगोपनाहश्च मर्दनालेपनानि च । वाते शिरागते कुर्यात्तथा चासृग्विमोक्षणम् ॥ २५३ ॥

वायु शिराओंमें स्थित होय तो स्नेहका अभ्यंग करे, स्नेहसहित बफारा, स्नेहकी मालिश करे, स्नेहका लेपन और रुधिर निकलवावे ॥ २५३ ॥

अथ स्नायुगतवायुलक्षणम् ।

शूलमाक्षेपकः कम्पः स्तम्भः स्नाय्वनिलाद्भवेत् ॥ २५४ ॥ स्वेदोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च । क्रुद्धे स्नायुगते वाते कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ २५५ ॥

स्नायुगतवायुसे शूल आक्षेपक और स्तम्भ होता है । कोपको प्राप्त हुई वायु जब स्नायुमें प्राप्त होय तो पसीने निकलवावे, दाग देवे, दृढ (सख्त) बंधन बाँधे और स्नेह चुपडे, यह उपाय बुद्धिमानोंको करना चाहिये ॥ २५४ ॥ २५५ ॥

अथ सन्धिगतवायुलक्षणम् ।

हन्ति सन्धिगतः सन्धीञ्छूलशोथौ करोति च ॥ २५६ ॥ हन्ति विश्लेषयति ।

संधि (जोड) में रहनेवाली वायु संधियोंको छोड देती है और शूल तथा सूजनको उत्पन्न करती है ॥ २५६ ॥

अथ संधिगतवायुचिकित्सा ।

कुर्यात्सन्धिगते वाते दाहस्नेहोपनाहनम् । इन्द्रवारुणिकामूलं मागधीगुडसंयुतम् । भक्षयेत्कर्षमात्रं तत्सन्धिवातं व्यपोहति॥२५७॥

जब वायु संधियोंमें प्राप्त होय तो दाग देना और पसीना निकलवाना चाहिये, इन्द्रायनकी जड और पीपल इनको गुडमें मिलाकर एक तोले प्रमाण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्षण करे तो संधियोंके रहनेवाली वायु नष्ट होती है ॥ २५७ ॥

अथ वातरोगकष्टसाध्यत्वम् ।

हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः । कालेन महता यत्नात्सिध्यन्ति ह्यथ वा न वा ॥ २५८ ॥ शतेषु एकः कश्चिन्मुच्यते इत्यर्थः । परं कः सिध्यति ? यस्तरुणो भवति तथा बलवानुपद्रवरहितश्च ।

हनुग्रह, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात और अपतानक ये व्याधि यत्न करनेसे बहुत दिनोंमें आराम हो जाती हैं अथवा नहीं भी आराम होती हैं, इन रोगी मनुष्योंमें सैकडोंमें कोई एक दो मनुष्य जो युवा, बलवान् और उपद्रवरहित होय तो उसको आराम हो जाता है नहीं तो नहीं आराम होता सब यमलोकको चले जाते हैं ॥ २५८ ॥

अथ वातव्याध्युपद्रवाः ।

विसर्पदाहरुग्भंगमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः । क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः ॥ २५९ ॥ वाता वातविकाराः । कार्यकारणयोर्भेदोपचारात् । वातादिति पाठे वातात्पक्षवधादयः इति योज्यम् ।

वातके प्रकोपसे होनेवाली व्याधियोंसे जिनका मांस तथा बल क्षीण हो जाता है वह मनुष्य विसर्प, दाह, व्यथा, भंग, मूर्च्छा, अरुचि और मंदाग्निकी पीडासे मर जाते हैं ॥ २५९ ॥

अथ वातव्याध्यसाध्यलक्षणम् ।

शूनं सुप्तत्वचं म्लानं कम्पाध्माननिपीडितम् । रुजार्तिमन्तं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ २६० ॥

जिसका शरीर सुन्न हो गया है, त्वचा जड होगई हो, ग्लानियुक्त, कंप और अफरेसे पीडित और पीडासे व्याकुल ऐसे मनुष्योंको वातव्याधि अंतमें मार देती है ॥ २६० ॥

अथ प्रकृतिस्थितवातपञ्चककार्यम् ।

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः । वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥ २६१ ॥

जिस मनुष्यके वायु अप्रतिहतगतिवाली, अपने स्थानमें रहनेवाली और सम प्रकृतिवाली होय वह मनुष्य रोगरहित होकर सौ वर्षसे भी अधिक जीता है ॥ २६१ ॥

अथ चक्रदत्तप्रोक्तमहामाषादितैलम् ।

माषस्यार्द्धाढकं देयं तुलार्द्धं दशमूलतः । पलानि च्छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २६२ ॥ चतुर्भागावशेषं तं कषायमवतारयेत् । प्रस्थे द्वे तिलतैलस्य पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २६३ ॥ जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यं चित्रककट्फलम् । सव्योषं पिप्पलीमूलं राम्नामलकगोक्षुरम् ॥ २६४ ॥ आत्मगुप्ता तथैरण्डः शताह्वा लवणत्रयम् । देवदार्वमृताकुष्ठमश्वगन्धा वचा शटी । ॥ २६५ ॥ एतैरक्षमितैः कल्कैः पाचयेन्मृदुनाग्निना । पक्षाघातार्दिते पुंसि हनुस्तम्भार्दिते तथा ॥ २६६ ॥ कर्णशूले शिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे । पाणिपादशिरोग्रीवाश्रवणे मन्द एव च ॥ २६७ ॥ कलायखञ्जे पङ्गौ च गृध्रस्यामपबाहुके । पानेवस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णादिपूरणे ॥ २६८ ॥ तैलमेतत्प्रशंसन्ति सर्ववातविकारनुत् । महामाषादिनामेदं भाषितं मुनिभिः पुरा ॥ २६९ ॥

उडद १२८ तोले, दशमूल २०० तोले और बकरेका मांस १२० तोले, इन सबको एक हजार चौबीस १०२४ तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उसको उतारकर उसमें १२८ तोले तिलका तेल और तेलसे चौगुना ५०४ तोले दूध डाले और जीवनीय गण, मजीठ, चव्य, चीता, कायफल, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, रायसन, आमले, गोखुरू, कौंछके बीज, अंड, सोया, तीनों प्रकारके निमक, देवदारु, गिलोय, कूठ, असगंध, वच और कचूर इन प्रत्येक औषधियोंका एक एक तोला कल्क डालकर उसको मंद मंद अग्निसे पकावे तो यह महामाषादि तेल सिद्ध होता है । यह तेल पक्षाघात, हनुग्रह, कानकी पीडा, मस्तककी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीडा, त्रिदोषजन्य तिमिर, हाथकी जडता, पाँवकी जडता, शिर, गरदन और कानोंकी मंदता, कलायखंज, पंगुता, गृध्रसी और अपबाहुक रोग इन सब रोगोंमें यह तेल हितकारी है। पान, नस्य, पिचकारी और कान आदिके भरनेमें इस तेलका उपयोग करना वायुसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करे है। यह महामाषादि तेल पूर्वकालमें मुनियोंने कहा है॥ २६२–२६९॥

अथ द्वितीयमहामाषादितैलम् ।

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरण्टकः । गोकण्टष्टुण्टुकश्चैषां प्रत्येकं पलसप्तकम् । चतुर्गुणाम्बुना पक्त्वा पादशेषं श्रृतं नयेत् ॥ २७० ॥ कार्पासकास्थि वदरं शणबीजं कुलत्थकम् । पृथक्चतुर्दशपलं चतुर्गुणजले पचेत् ॥ २७१ ॥ कषायं तत्र गृह्णीयाच्चतुर्थांशावशेषितम् । प्रस्थं च छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले ॥ २७२ ॥ प्रक्षिप्य पाचयेद्धीमान्पादशेषं रसं नयेत् । तैलप्रस्थे ततः क्वाथान्सर्वांस्तान्क्रमशः पचेत् ॥ २७३ ॥ कल्कद्रव्यैः पचेदेभिरमृताकुष्ठसैन्धवैः । रास्नापुनर्नवैरण्डैः पिप्पल्या शतपुष्पया । ॥ २७४ ॥ बलाप्रसारिणीभ्यां च मांस्या कटुकया तथा । पृथक्पलमितैरेतैः साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ २७५ ॥ हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं वातव्याधीनशेषतः । आक्षेपकं पक्षघातमूरुस्तम्भापबाहुकौ । हस्तकम्पं शिरःकम्पं विश्वाचीमर्दितं तथा ॥ २७६ ॥

उडद, जौ, अलसी, कटेरी, कौंछ, कटसरैया, गोखरू और अरलू यह प्रत्येक औषधि सात सात पल लेकर चौगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उस क्वाथको उतार लेवे, फिर उसमें कपासके बीज (विनोले), बेर, सनके बीज और कुलथी ये प्रत्येक औषधि चौदह १४ चौदह १४ पल लेकर चौगुने जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उसको उतार लेवे, फिर चौंसठ तोले भर बकरेका मांस लेकर चौंसठ पल जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल रह जाय तब उतार लेवे, फिर ६४ तोले तेलमें इन क्वाथोंको अनुक्रमसे पकावे, फिर गिलोय, कूठ, सेंधानिमक, रायसन, पुनर्नवा, एरंड, पीपल, सोया (सौंफ), खिरैटी, प्रसारणी, वालछड और कुटकी प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर अलग अलग कल्क बनाकर तेलमें डालकर मंद मंद अग्निसे पकावे तो माषादि तेल सिद्ध हो जाता है। यह तेल आक्षेपक, पक्षाघात, ऊरुस्तम्भ, अपबाहुक, हस्तकंप, शिरःकंप, विश्वाची, अर्दित (लकवा) और सम्पूर्ण वातव्याधियोंको तत्काल नष्ट कर देता है॥ २७०–२७६॥

अथ मध्यमनारायणतैलम् ।

अश्वगन्धा बला बिल्वं पाटलाः बृहतीद्वयम् । श्वदंष्ट्रातिबला निम्बः श्योनाकश्च पुनर्नवा ॥ २७७ ॥ प्रसारिणी चाग्निमन्थः कुर्यादंशपलं पृथक् । चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं श्रृतं नयेत् ॥ २७८ ॥ तैलाढकेन संयोज्य शतावर्या रसाढकम् । प्रक्षिपेत्तत्र गोक्षीरं ततस्तैलाच्चतुर्गुणम् ॥ २७९ ॥ पृथक्पलमितैः कल्कैर्द्रव्यैरेभिः पचेद्भिषक् । वचाचन्दनकुष्ठैलामांसीशैलेयसैन्धवैः॥ २८० ॥ अश्वगन्धाबलारास्नाशतपुष्पेन्द्रदारुभिः । पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेण प्रसाधयेत् ॥ २८१ ॥ तत्तैलं भोजनेऽभ्यंगे पाने वस्तौ च योजयेत् पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् । ॥ २८२ ॥ कुब्जत्वं बधिरत्वं च गतिभंगं कटीग्रहम् । गात्रशोषेन्द्रियध्वंसं शुक्रनाशं ज्वरक्षयान् ॥ २८३ ॥ अन्त्रवृद्धिं कुरण्डं च दन्तरोगं शिरोग्रहम् । पार्श्वशूलं च पंगुत्वं बुद्धिनाशं च गृध्रसीम् ॥ २८४ ॥ अन्यांश्च विविधान्वातान्हरेत्सर्वांगसंश्रयान् । अस्याः प्रभावाद्वन्ध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते ॥ २८५ ॥ यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः । तथेदं वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् २८६

असगंध, खिरैटी, बेलगिरी, पाढल, कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरू, कंघी, नीम, अरलू, पुनर्नवा, प्रसारणी और अरनी ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाग जल बाकी रह जाय तब उस क्वाथको छान लेवे, फिर इस क्वाथमें तेल १ आढक, सतावरका रस १ आढक और गायका दूध ४ आढक डाले तथा वच, लाल चंदन, कूठ, इलायची, बालछड, पत्थरका फूल (छरछबीला), सेंधानिमक, असगंध, खिरैटी, रायसन, सोया, देवदारु, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, मांषपर्णी और तगर इन प्रत्येक औषधिका कल्क चार चार तोले डालकर वैद्य इस तेलको उत्तम रीतिसे तैयार करे इस प्रकार करनेसे मध्यम नारायण तेल सिद्ध होता है। इस तेलको भोजनमें, अभ्यंगमें, पिचकारीमें और पीनेमें उपयोग करे तो इससे पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, कुब्जता, बधिरता, गतिभंग, कमरकी पीडा, गात्रशोष, इन्द्रियध्वंस, वीर्यका क्षय, ज्वर, क्षय, अंत्रवृद्धि, कुरंड, दंतरोग, मस्तककी वेदना, पार्श्वशूल, पंगुता, बुद्धिका नाश, ग्रध्रसी और अन्यान्य भी समस्त शरीरमें रहनेवाले वातरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रतापसे वंध्या स्त्रियें भी पुत्रको उत्पन्न करती हैं। जिस प्रकार नारायणदेव दुष्ट दैत्योंका नाश करते हैं उसी प्रकार यह उत्तम नारायण तेल वायुसम्बन्धी समस्त रोगोंको दूर करे है ॥ २७७–२८६ ॥

अथ महानारायणतैलम्।

तिलतैलं समादाय चतुराढकसम्मितम् । पञ्चपल्लवकल्केन शोधयेद्दोषशान्तये ॥ २८७ ॥ तत्राजं दुग्धमथ वा गव्यं तैलसमं पचेत् । शतावरीरसं चापि तैलतुल्यं पचेद्भिषक् ॥ २८८ ॥ दशमूली बला रास्ना शिग्रुत्पलपुनर्नवाः । शेफालिका नागबला बला चैव प्रसारिणी ॥ २८९ ॥ अश्वगन्धा सहचरो दर्भमूलं करञ्जकः । खदिरं चन्दनं लोध्रं वचाशनपलाशकम् । बकुलैरण्डवरुणशालयुग्मकटम्भराः ॥ २९० ॥ शिरीषः शिखरी वासा हिंस्रा जम्बूर्बिभीतकम् । काञ्चनारः कपित्थश्च पारिभद्रः प्रियालकम् । पाषाणभेदः शम्पाको दुग्धिका दाडिमीफलम् ॥ २९१ ॥ उदुम्बरः सप्तला च कन्यका मालती त्वचम् । मागधीफलमूलं च यवकोलकुलत्थकम् ॥ २९२ ॥ आत्मगुप्तार्ककार्पासबीजं वृक्षादनी स्नुही केतकीमूलधत्तूरलाङ्गलीगर्दभाण्डकम् ॥ २९३ ॥ चित्रकं च महानिम्बं पञ्चवल्कलमेव च । मुण्डी ठेकारि मुसली हंसपादीविशल्यकम् ॥२९४॥ एषां दशपलान्भागान्वारिण्यष्टगुणे पचेत् । पाददेशं परिस्राव्य तत्र तैलं पुनः पचेत् ॥ २९५ ॥ छागो मेषश्च हरिण एणश्च बहुशृंगकः । शशः शल्यः शिवा गोधा सिंहो व्याघ्रश्च भल्लुकः ॥ २९६ ॥ वन्यो वराहः खड्गी चमरो हिषो घोटकस्तथा । कपिर्बभ्रुर्बिडालश्च मूषकश्चोरुदर्दुरः॥२९७॥ वर्तीकस्तित्तिरिर्लावः खञ्जरीटश्चकोरकः । उलूको नीलकण्ठश्च वनकुक्कुट एव च ॥ २९८ ॥ गृध्रश्च गरुडो हंसश्चक्रः कारण्डवोऽपि च । कपोतः सारसः क्रौञ्चो वन्यः पारावतस्तथा रोहितो मद्गुरश्चापि शिलीन्ध्रः शृंगकस्तथा ॥ २९९ ॥ इल्लीसो गर्गरो वर्मिः कथकाकः पिकोऽपि च । महामत्स्यः कच्छपश्च शिशुमारश्च सांकुचिः ॥ ३०० ॥ मकरो घंटिकाकारस्तदलाभे तु गोधिका । यथालाभममीषां च क्वाथं तैलसमं पचेत् ॥ ३०१ ॥ रास्नाश्वगन्धामिसिदारुकुष्ठपर्णीचतुष्काऽगुरुकेसराणि सिन्धूत्थमांसी रजनीद्वयं च शैलेयकं चन्दनपुष्करं च ॥ ३०२ ॥ एला सयष्टी तगराब्दपत्रं भृङ्गोऽष्टवर्गस्तु वचा पलांसी । स्थौणेयवृश्चीवकचोरकाख्यं मूर्वात्वचं कट्फलपद्मकं च ॥ ३०३ ॥ मृणालजातीफलकेतकाख्यं सनागपुष्पं सरलं सुरा च । जीवन्तिकोशीरवरास्तथैव दुरालभा वानरिका नखश्च ॥ ३०४॥ कैवर्तमुस्तर्जुनतिक्तकं च वातामखर्जूरकतुम्बराश्च । सधातकीग्रन्थिकपर्पटाश्च पटोलहेमाजजयन्तिकाश्च ॥ ३०५ ॥ त्राय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्तिकालम्बुषशङ्खबीजं रसाञ्जनाभा त्रिवृता-रुणा च । द्राक्षाकणाद्रोणपुनर्नवाश्च कौन्ती क्रिमिघ्नो हयमारकश्च ॥ ३०६ ॥ नीलोत्पलं पद्मककारवीभ्यां रम्भानलो गोक्षुरकः क्षुरश्च । कंकोलकालेयकुसुम्भपुष्पं तुरुष्ककाश्मीरकसिक्थकं च लवंगकर्पूररसालकाण्डकस्तूरिकावालकमम्बरं च ॥ ३०७ ॥ दारु देवदारु । पर्णीचतुष्कं शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी मुद्गपर्णी माषपर्णी । केशरः पुन्नागस्तस्य पुष्पं ग्राह्यम् । तदलाभे नागकेशरं ग्राह्यम् । शैलेयकम् छरीला इति लोके । चन्दनमत्र श्वेतम् । पुष्करं पुष्करमूलम् । तगरस्याप्यलाभे तु कुष्ठं दद्याद्भिषग्वरः । शृंगस्त्वक् । अष्टवर्गलाभे शतावरी विदार्यश्वगन्धा वाराही द्विगुणा दद्यात् । वाराही गेटि इति लोके । पलांसी कर्चूरभेदः गन्धपलाशीति काश्मीरे प्रसिद्धा तदलाभे कर्चूर एव देयः । स्थौणेयं गठिवनभेदः ईषत्सुगन्धि थुनेर इति लोके । वृश्चीवः श्वेतमूला पुनर्नवा । चोरकः ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः । भटिउर इति नैपालदेशे प्रसिद्धः । केतकस्य मूलं पुष्पं च दद्यात् । कैवर्तमुस्ता केवटीमोथा गुडतजी इति च लोके । तिक्तकः किराततिक्तकः वातामं बादाम इति लोके । हेमाह्वं धत्तूरस्य फलं मूलं पत्रं च । जयन्तिका जेत्रित्वक् । त्रायन्तिका अत्र लभ्यत एव न । अलम्बुषा लज्जालूभेदः । आभा बब्बूलः तस्य त्वक् । अरुणा मञ्जिष्ठा । द्रोणः गुमारुक् पञ्चांगः । पुनर्नवा रक्तपुष्पा । हयमारकः करवीरस्तस्य मूलम् । पद्मकं नीलोत्पलादन्योत्पलम् । पद्मकाष्ठम् । उक्तमेव । कारवी मगरैला इति । रम्भायाः कन्दम् । क्षुरस्य फलानि रसालकाण्डम् । आण्डी सुगन्धद्रव्यम् । कल्कानमीषां विपचेत्सुवैद्यः पृथक्पृथक् कर्षयुगोन्मितानाम् । शुभे च नक्षत्रमुहूर्तलग्ने सन्तोष्य विप्रांश्च भिषग्वरांश्च ॥ ३०८ ॥ सम्पूज्य नारायणनामधेयं देवं त्रिनेत्रं जगतामधीशम् । पात्रेषु हेम्नः खलु राजते वा ताम्रेऽथवा लोहमयेऽपि रक्षेत् ॥ ३०९ ॥ अभ्यञ्जनेऽञ्जने नस्ये निरूहे चावगाहने । पाने चैतद्यथाव्याधि प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥ ३१० ॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन तैलमेतत्प्रयोजितम् । अवश्यं वातजान्व्याधीनशीतिमपि नाशयेत् ॥ ३११ ॥ एतस्याभ्यासतो जन्तोर्जरा जातु न जायते । पतन्ति वलयो नैव पलितं च न जायते ॥ ३१२ ॥ नेत्रं तेजस्वि नितरां गरुडस्येव जायते । नोच्चैः श्रुतिर्न वाधिर्यं कर्णनादो न जायते । पाणिकम्पः शिरःकम्पः प्रलापश्च न जायते ॥ ३१३ ॥ बुद्धिभ्रंशो न जायेत तस्मात्कर्मसु पाटवम् । यथा जलेन सिक्तस्य शाखिनः पल्लवादयः ॥ ३१४ ॥ वर्द्धन्ते धातवस्तद्वद्देहिनोऽनेन नित्यशः । आमं गर्भं त्यजेज्जातु सूतिका रुग्युता च या ॥ ३१५ ॥ या च दुःप्रसवक्षीणा ताभ्य एतद्धितं परम् । वन्ध्या च लभते पुत्रं गर्भपातो न जायते ॥ ३१६ ॥ योनिरोगाः प्रणश्यन्ति प्रदरश्च प्रशाम्यति । अस्मात्तैलवरादन्यत्कुत्रचिन्नास्ति भेषजम् ॥ ३१७ ॥ बल्यं वृष्यं बृंहणं च रसायनमिदं महत् । पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैरभिहतान्सुरान् ॥ ३१८ ॥ भिन्नान्भग्नास्थिकान्विद्धान्पिच्छितान्व्यथयाऽर्दितान् । दृष्ट्वा हिताय देवानां नराणां चाऽब्रवीदिदम् । तैलं नारायणो देवो महानारायणाभिधम् ॥ ३१९ ॥

चार आढक तिलका तेल लेकर दोषकी शांतिके लिये उसको पंचपल्लवके क्वाथसे शुद्ध करे फिर उस तेलमें चार आढक बकरीका अथवा गायका दूध और चार आढक सतावरका रस पकावे, फिर दशमूल, खिरैटी, रायसन, सैंजिना, नीलकमल, पुनर्नवा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्गुण्डी, कंघी, गंगेरन, प्रसारण, असगन्ध, कटसरैया, डाभकी जड, करंजुआ, खैर, लाल चन्दन, लोध, वच, विजयसार, ढांक, मौलसिरी, अंड, वरना, दो प्रकारका साल, कुटकी, सिरस, चिरचिटा, अडूसा, बालछड, जामुनकी छाल, बहेडा, कचनार, कैथ, नीम, चीरौंजी, पाषाणभेद, अमलतास, दुद्धी, अनार, गूलर, सातला, घीकार, मालती (चमेली), तज, पीपल, नरसलकी जड, जौ, बेर, कुलथी, कौंछ, आककी जड, कपास, गिलोय, थूहर, चीता, केवडेकी जड, धतूरा, कलिहारी, बेलिया, पीपलकी छाल, बकायन, पंचवल्क, गोरखमुंडी, टेकारी, मुसली, लाल लजालू और इन्द्रायन ये प्रत्येक पदार्थ दश दश पल लेकर अठगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें इस तेलको पकावे, फिर बकरा, मेंढा, हिरन, एणहिरण, सांबर, खरगोश, सेई, छपकली, गोय, सिंह, बाघ, रीछ, जंगली सुअर, गैंडा, भैंसा, घोडा, बन्दर, नौला, बिलाव, चूहा, मेंडक, बत्तक, तीतर, लवा, खंजन (ममोला), चकोर, उल्लू, नीलकंठ, वनमुरगा, गीध, गरुड, हंस, चकवा, कारंडव, कबूतर, सारस, कुंडा, जंगली कबूतर, रोहू मछली, मद्गुर मछली, शिलीन्ध्र, सुंगक, इल्लीस, गर्गरीमछली, वर्मि, कथ मछली, कौआ, कोयल, महामत्स्य, कछुवा, शिशुमार, संकुच, मगर, घडियाल, अगर घडियाल न मिलसके तो उसके अभावमें गोय लेनी चाहिये। इनमें जितने जीवोंके मांस मिल सकें उतनेही लेने चाहिये। इनके चार आढक रसमें तेलको पकावे फिर रास्ना, असगन्ध, सोया, देवदारु, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, कूठ, अगर, पुन्नाग, अगर पुन्नाग न मिल सके तो उसके अभावमें नागकेसर लेनी चाहिये, सेंधानिमक, बालछड, हलदी, दारुहलदी, भूरिछरीला, चन्दन, पोहकरमूल, इलायची, मुलैठी, तगर, जो तगर न मिल सके तो कूठ लेना चाहिये, नागरमोथा, तेजपात, तज, मेदा आदि अष्टवर्ग, जो अष्टवर्ग न मिल सके तो उसके बदलेमें दोनों सतावर, विदारीकन्द, असगन्ध, तथा वाराहीकन्द, वच, गन्धपलाशी (काश्मीर देशमें प्रसिद्ध है), अगर गन्धपलाशी न मिले तो कचूर लेना चाहिये। थुनेर, सफेद फूलका पुनर्नवा, नेपाल देशमें होनेवाला भटेउर, मूर्वाकी छाल, तज, कायफल, पद्माख, कमलकी नाल, जायफल, केवडेकी जड और फूल, नागकेसर, धूपसरल, कपूरकचरी, गिलोय, सुगन्धवाला, हरड, बहेडा, आमला, धमासा, कौंछ, नख, सुगंधद्रव्य, केवटीमोथा, अर्जुन, चिरायता, बादाम, खजूर (छोहारे), धनियाँ, तुम्बुरु, धायके फूल, पीपलामूल, पित्तपापडा, परवल, धतूरेकी छाल, अरणी, त्रायमाण, अलम्बुषा (एक प्रकारकी लज्जावन्ती), इन्द्रजौ, रसोत, बबूरकी छाल, निसोत, मजीठ, दाख, पीपल, गूँमा, लालफूलकी पुनर्नवा, निर्गुण्डीके बीज अथवा मेहदीके बीज, वायविडंग, कनेरकी जड, नीले कमल, कमल, काली जीरी (कलौंजी), केलेका कंद, चीता, गोखरू, तालमखाना, कंकोल, पीलाचंदन, कसूमके फूल, शिलारस, केसर, मोम, लौंग, कपूर, सालके कांड, जवादि कस्तूरी, सुगंधवाला और अम्बर इन प्रत्येक औषधिका अलग अलग दो दो तोले कल्क बनाकर उस कल्कसे इस तेलको पकावे तो यह महानारायण नामक तैल सिद्ध होता है। शुभ नक्षत्रमें, शुभ मुहूर्तमें तथा शुभलग्नमें वैद्य ब्राह्मणोंका और उत्तम प्राचीन वैद्योंका पूजन करके जगत्के स्वामी और तीनों गुणोंको चलानेवाले नारायण देव और त्रिनेत्र शूलपाणि शिवजीका पूजन करके सोनेके, रूपेके, तांबेके अथवा लोहेके बासनमें इस तेलको भरकर रख देवे। वैद्य व्याधिके अनुसार अभ्यंगमें, अंजनमें, नस्यमें, निरूहवस्तिमें, अवगाहनमें और पानमें इसको प्रयोग करे। विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन परंतु इतना अवश्य कहेंगे कि इस तेलका विधिपूर्वक व्यवहार किया जाय तो यह अस्सी प्रकारके वातरोगोंको अवश्य नष्ट कर देता है। इस तेलका अभ्यास करनेसे शरीरमें वली नहीं पडती, विना समयही बाल सफेद नहीं हो जाते, नेत्र गरुडकी समान अत्यंत तेजयुक्त होते हैं, ऊंचेसे सुनना, बहरापन और कानमें अनेक प्रकारके शब्द होना यह कभी नहीं होता, हाथ नहीं कांपते, मस्तक नहीं काँपता, प्रलाप नहीं होता, बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती और सब काम करनेमें समर्थ होता है। जिस प्रकार जलसे सींचे हुए वृक्षके पल्लव आदि वृद्धिको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार इस तेलके सींचनेसे प्राणियोंकी धातु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वद्धिको प्राप्त होती हैं । जिस स्त्रीके कच्चा गर्भ गिर जाता है, सूतिका रोगवाली और जो स्त्रियें प्रसवकी पीडासे क्षीण हो गई हैं । उनके लिये यह तेल अत्यंत हितकारी है, इस तेलका उपयोग करनेसे वन्ध्यास्त्रियोंके भी पुत्रकी प्राप्ति होती है । गर्भपात नहीं होता, योनिके समस्त रोग नष्ट होते हैं और प्रदर-रोग शांत होता है । इस परमोत्तम तैलसे अधिक बल-वर्द्धक, मैथुनशक्तिको बढानेवाली और धातुओंको पुष्ट करनेवाली अन्य औषधि नहीं है । यह तैल श्रेष्ठ रसायन है । पूर्वकालमें दैत्योंके तथा देवताओंके युद्धमें दैत्योंके प्रहारसे जो देवताओंके शरीरमें चोट लगी थी, हड्डी टूट गई थीं, शरीर वेधा गया था, हाड पिंजर चूर्ण हो गये थे और पीडासे व्याकुल थे तब श्रीनारायण देवने मनुष्योंके हितके लिये यह नारायण तैल निर्माण किया था ॥ २८७–३१९ ॥

इति महानारायणतैलम् ।

अथ महायोगराजगुग्गुलुः ।

नागरं पिप्पलीमूलं चव्यमूषणचित्रकम् । भृष्टं हिंग्वजमोदा च सर्षपो जीरकद्वयम् । ॥ ३२० ॥ रेणुकेन्द्रयवौ पाठा विडंगं गजपिप्पली । कटुकाऽतिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वा च पत्रकम् ॥ ३२१ ॥ देवदारु कणा कुष्ठं राम्ना मुस्ता च सैन्धवम् । एला त्रिकण्टकं पथ्या धान्यकं च विभीतकम् । धात्री च त्वगुशीरं च यवक्षारोऽखिलान्यपि ॥ ३२२॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥ ३२३ ॥ संमर्द्य सर्पिषा पश्चात्सर्वं संमिश्रयेच्च तत् । एकं पिण्डं च तत्कृत्वा धारयेद्घृतभाजने । गुटिकाष्टकमात्रास्तु खादेत्तास्तु यथोचिताः ॥ ३२४ ॥ अत्र दोषकालाद्यपेक्षया ।

सोंठ, पीपलामूल, चव्य, काली मिरच, चीता, भुनी हुई हींग, अजमोद, सरसों, जीरा, कालाजीरा, रेणुका, इन्द्रजौ, पाढ, वायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच, मूर्वा, तेजपात, देवदारु, पीपल, कूठ, रायसन, नागरमोथा, सेंधानिमक, इलायची, गोखरू, हरड, धनियाँ, बहेडा, आमला, तज, खस और जवाखार इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे, फिर इस सब चूर्णकी बराबर गूगल लेवे, सबको एकत्र मिलाकर खूब घीमें मर्दन करके एक पिंड बनावे उस पिंडको घीके बासनमें रख देवे, फिर उसकी चौबीस २ रत्तीकी गोलियाँ बनावे । दोष और कालानुसार विचारकर इन गोलियोंको सेवन करे ॥ ३२०–३२४ ॥

आदौ शाणोन्मितं खादेत्सार्द्धशाणं ततः परम् । तदग्रे कर्षमर्द्धं तु पूर्णं कर्षं ततः परम् ॥ ३२५ ॥ गुग्गुलुर्योगराजोऽयं महामुख्यो रसायनम् । मैथुनाहारपानानां नियमो नात्र विद्यते ॥ ३२६ ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं प्लीहगुल्मोदरानपि । आनाहं मन्दमाग्निं च श्वासं कासमरोचकम् ॥ ३२७॥ प्रमेहं नाभिशूलं च क्रिमिक्षयमुरोग्रहम् । सर्वान्वातामयान्हन्यादामवातमपस्मृतिम् । ॥ ३२८ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं तथा दुष्टव्रणानपि । शुक्रदोषं रजोदोषमुदावर्तं भगन्दरम् ॥ ३२९ ॥

इन गोलियोंको सेवन करनेकी यह विधि है कि प्रथम कुछेक दिनोंतक तो एक एक गोली खाय, फिर डेढ डेढ गोली खाय, फिर छः छः मासे खाय, फिर एक एक तोला भर खाय । यह योगराज गूगल अत्यंत मुख्य है और रसायन है । इसके सेवन करनेमें मैथुन और अन्नपानका कुछ नियम नहीं है । इस गूगलको सेवन करनेसे बवासीर, संग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, उदरके समस्तरोग, पेटका अफरा, अग्निकी मंदता, श्वास, खाँसी, अरुचि, प्रमेह, नाभिशूल, कृमि, क्षय, छातीका जकडना, सर्व प्रकारके वातरोग, आमवात, अपस्मार, कोढ, दुष्टव्रण, वीर्यविकार, रजोदोष, उदावर्त और भगन्दर इन सब रोगोंका नाश होता है ॥ ३२५–३२९ ॥

राम्नादिक्काथसंयुक्तः सर्ववातामयान्हरेत् । काकोल्यादिश्रृतात्पित्तं कफमारग्वधादिना ॥ ३३० ॥ दार्वीश्रृतेन मेहांश्च गोमूत्रेण च पाण्डुताम् । मधुना मेदसो वृद्धिं कुष्ठं निम्ब-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रृतेन च ॥ ३३१ ॥ छिन्नाक्काथेन वातास्रं शोथं मूलकजाच्छृतात् । पाटलाक्काथसहितो विषं मूषकसम्भवम् ॥ ३३२ ॥ त्रिफलाक्काथसंयुक्तो दारुणां नेत्रवेदनाम् । पुनर्नवादिक्काथेन हन्ति सर्वोदराण्यपि ॥३३३ ॥

इस गूगलको रास्नादि क्काथके साथ पीनेसे सर्व प्रकारकी वातव्याधि शमन होती है। इसको काकोल्यादि क्काथके साथ पीनेसे पित्त शमन होता है। आरग्वधादि क्काथके साथ पीनेसे कफ दूर होता है। दारुहल्दीके क्काथके साथ पीनेसे प्रमेह नष्ट होता है। गोमूत्रके साथ पान करनेसे पांडुरोग नष्ट होता है। सहतके साथ खानेसे मेहकी वृद्धि नष्ट होती है। नीमके क्काथके साथ पीनेसे कोढ नष्ट होता है। गिलोयके क्काथके साथ पीनेसे वातरक्त नष्ट होता है। मूलीके क्काथके साथ पीनेसे सूजन दूर होती है। पाढलके क्काथके साथ पीनेसे चूहेका विष दूर होता है। त्रिफलेके क्काथके साथ पीनेसे नेत्रकी दारुण पीडा शमन होती है। और पुनर्नवादिक्काथके साथ पीनेसे सर्व प्रकारके उदर रोग नष्ट होते हैं॥३३०-३३३॥

रास्ना पुनर्नवा शुण्ठी गुडूच्येरण्डजं श्रृतम् सप्तधातुगते वाते सामे सर्वांगगेऽपि चेत्३३४

रास्ना, पुनर्नवा, सोंठ, गिलोय और एरंड इनका क्काथ रास्नादिक्काथ कहा जाता है। सप्तधातुगत वायु आमसंयुक्तवायु और सर्वशरीरस्थवातके विकारोंमें यह क्काथ उपयोगी है ॥ ३३४ ॥

अथ रसोनकल्कः ।

युक्तः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन सिन्धुना । वातरोगान्हरेत्सर्वाञ्ज्वरांश्च विषमानपि३३५

लहसुनका कल्क बनाकर उसमें तिलका तेल और सेंधानिमक मिलाकर भक्षण करे तो समस्त वायुसबन्धी रोग और विषमज्वर नष्ट हो जाते हैं ३३५॥

अथ द्वितीयरसोनकल्कः ।

क्षीरेण तैलेन घृतेन वाऽपि मांसेन सार्द्धं लशुनानि खादेत् । शाल्योदनेनापि च षष्टिकेन पलार्द्धवृद्ध्या दिवसानि सप्त ॥ ३३६ ॥ वातोत्थरोगान्विषमज्वरांश्च शूलान्सगुल्मान्दहनस्य मान्द्यम् । प्लीहानमुग्रं भुजपार्श्वशूलं शिरोव्यथां कृन्तति शुक्रदोषान् ॥ ३३७ ॥

दूध, तेल, घी, मांस, भात अथवा सांठके चावलोंका भात इनके साथ सात दिन तक क्रमसे प्रत्येक दिन दो दो तोले बढाकर लहसुनका कल्क भक्षण करे तो वातसम्बन्धी रोग, विषमज्वर, शूल, गुल्म, अग्निकी मंदता, प्लीहाकी पीडा, हाथ और पसलियोंकी पीडा, मस्तककी व्यथा और वीर्यके समस्त दोष दूर होते हैं ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥

अथ लशुनसेवनस्य तृतीयविधिः ।

अन्नप्रकारैः पललप्रकारैर्गोधूमकैर्वा यवसक्तुभिर्वा । दुग्धेन तैलेन घृतेन वापि युक्तानि शीते लशुनानि खादेत् ॥ ३३८ ॥ संवर्तकैर्लावकपिञ्जलैर्वा मृग्याः पलैर्वाप्यथ कौक्कुटैर्वा । वाराहवार्तीरकहारिणैर्वा सुसंस्कृतैरग्निबलं समीक्ष्य ॥ ३३९ ॥

अन्नके, पदार्थोंके साथ, मांसके बने हुए पदार्थोंके साथ, गेहूंके बने हुए पदार्थोंके साथ, जौके सत्तूके साथ, दूधके साथ, तेलके साथ, घीके साथ, संवर्तकके मांसके साथ, लवाके मांसके साथ, तीतरके मांसके साथ हिरनीके मांसके साथ, मुरगेके मांसके साथ, सुअरके मांसके साथ, बटेरके मांसके साथ अथवा हिरनके मांसके साथ शीतकालमें अग्निका बलाबल विचारकर लहसुनको सेवन करना चाहिये। जो अन्न मांस आदि पदार्थोंके साथ लहसुन खाना होय तो उन पदार्थ आदिसे अच्छे प्रकारसे संस्कृत (संशोधन) करना चाहिये ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

अथ रसोनाष्टकम् ।

रसोनपक्वकन्दस्य गुलिका निस्तुषीकृताः । पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदंकुरम् ॥ ३४०॥ निश्युग्रगन्धनाशाय दध्ना संनीय रक्षयेत् । ततः प्रक्षाल्य संशोष्य शिलायां परिपेषयेत् ॥ ३४१ ॥ कल्कस्य पञ्चमे भागे चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत् । सौवर्चलं यवानीं च भार्जितं हिंगु सैन्धवम् ॥ ३४२ ॥ कटुत्रिकं जीरकं च समभागानि चूर्णयेत् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैलतैलं च कल्कस्य तुर्यांशं तत्र मिश्रयेत् ॥ ३४३ ॥ खादेत्कर्षमितं प्रातः किं वा त्रिफलाद्यपेक्षया । अनुपानं प्रकुर्वीत वातारिरसमन्वहम् ॥ ३४४ ॥ सर्वांगैकांगजं वातमर्दितं चापतन्त्रकम् । अपस्मारं तथोन्मादमूरुस्तम्भं च गृध्रसीम् ॥ ३४५ ॥ उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां कृमीन्हरेत् । मद्यं मांसं तथाऽम्लं च रसं सेवेत नित्यशः ॥ ३४६ ॥ आयासमातपं रोषमतिनीरं गुडं स्त्रियम् । रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरन्तरम्॥३४७॥ वर्जयेत्तदतीसारी प्रमेही पाण्डुरोगवान् । अरोचकी गर्भिणी च मूर्च्छाशौरोगसंयुतः ॥ ३४८ ॥ रक्तपित्ती च शोषी च यक्ष्मी छर्द्यर्दितो नरः । पित्ते तु पथ्यभुक्कुर्यात्प्रयोगान्ते विरेचनम् ॥ ३४९ ॥ अन्यथा तस्य जायन्ते कुष्ठपांड्वामयादयः । स्त्रीस्तन्ये त्वरितं दद्याद्बालानामप्यनिच्छताम् । तथा च लभते सिद्धिं महावीर्याद्रसोनतः ॥३५०॥

लहसुनकी पकी हुई गांठको छीलकर साफ कर ले फिर उसको चीरकर उसके बीचके अंकुरोंको निकाल डाले, पश्चात् उसकी उग्रगंधको दूर करनेके लिये उन कलियोंको रात्रिमें दहीके बीचमें गाड देवे, फिर प्रातःकाल धोकर सुखावे और सिलपर पीसकर कल्क बनावे उसमें कालानिमक, अजवायन, भुनी हींग, सेंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और जीरा इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे। लहसुनके कल्कसे पांचवां भाग इस चूर्णको मिलावे और कल्कसे चौथाई भाग तिलका तेल मिलावे, फिर इसमेंसे प्रातःकाल एक तोलाभर खाय अथवा दोषोंका विचार करके योग्य मात्रानुसार खाय और नित्य एरंडका क्वाथ पिये। यह रसोनाष्टक सर्वांगवात, एकाङ्गवात, अर्दित, अपतंत्रक, अपस्मार, उन्माद, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, छातीकी पीडा, पीठकी पीडा, कमरकी पीडा, पसलियोंका शूल, तथा कोखकी पीडा और कृमियोंको नष्ट करे है। रसोनाष्टकको सेवन करनेवाला नित्य मद्यको, मांसको तथा खट्टे रसको सेवन करे और परिश्रम, धूप, क्रोध, अत्यंत जल तथा मैथुन इनका त्याग कर देवे। अतिसार, प्रमेह, पांडुरोग, अरुचि, मूर्च्छा, बवासीर, रक्तपित्त, शोष, भयंकर क्षयरोग और वमन इनसे पीडित तथा गर्भवती स्त्रियें लहसुनका भक्षण त्याग देवें। पित्तकी पीडा होय तो पथ्यसे भोजन करे इस रसोनाष्टकको सेवन करनेके पश्चात् विरेचन लेवे, जो विरेचन न लेवे तो कोढ तथा पाण्डुरोगादि उत्पन्न होते हैं। रसोनाष्टककी नहीं इच्छा करनेवाले बालकोंको भी उनकी माताके दूधमें तत्काल इस रसोनाष्टकको मिलाकर देवे। इस प्रकार करनेसे लहसुनके गुणोंकी बाहुल्यतासे बालकोंके समस्त वातविकार शमन होते हैं ॥ ३४०–३५० ॥

अथ वातारिरसः ।

रसो गन्धो वरा वह्निर्गुग्गुलुः क्रमवर्द्धितः । तत्रैकभागः सूतः स्याद्गन्धको द्विगुणः स्मृतः ॥ ३५१ ॥ त्रिभागा त्रिफला योज्या चतुर्भागस्तु चित्रकः । गुग्गुलुः पञ्चभागः स्याद्बुबुतैलेन मर्दितः ॥ ३५२ ॥ क्षिप्त्वा तत्रोदितं चूर्णं तेन तैलेन मर्दयेत् । गुटिकां कर्षमात्रां तु भक्षयेत्प्रातरेव हि ॥ ३५३ ॥ नागरैरण्डमूलानां कषायं प्रपिबेदनु । अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम् ॥ ३५४ ॥ विरेकपरिणामे तु स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् । वातारिसंज्ञको ह्येष रसो नियतसेवितः । मासेन मरुतो रोगान्हरेत्सुरतवर्जिनः॥३५५

पारा १ भाग, गंधक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता ४ भाग और अंडके तेलमें मर्दन किया हुआ गूगल ५ भाग, इन सबको एकत्र मिलाकर अंडीके तेलमें मर्दन करे, इसमेंसे प्रतिदिन एक एक तोलेकी गोली बनाकर भक्षण करे और गोली खानेके पश्चात् सोंठ और अंडकी जडके क्वाथका अनुपान करे, फिर अंडीके तेलको पीठपर मलकर सेंक देवे। कदाचित् रेचन लगे तो स्निग्ध और गरम अन्न भोजन करे। यह वातारिनामक रस नियमपूर्वक सेवन किया जाय और मैथुनका त्याग कर देवे तो एक महीनेमें वातसम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५१–३५५ ॥

इति वातव्याध्यधिकारः सम्पूर्णः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ऊरुस्तम्भाधिकारः।

तत्रोरुस्तम्भस्य विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदान-सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणानि।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः। जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजागरैः॥ १॥ सश्लेष्ममेदःपवनः साममत्यर्थसञ्चितम्। अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत् प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन सः। तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥ परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ। ध्यानांगमर्दस्तैमित्यं तन्द्राच्छर्यरुचिज्वरैः। ॥ ४ ॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः। तमूरुस्तम्भमित्याहुरामवातमथापरे ॥ ५ ॥ जीर्णाजीर्णे किञ्चित् जीर्णे किंचित् अजीर्णे। शीतादिभिः निषेवितैः भुक्तैः। संक्षोभेण संचलनेन। दिवास्वप्नेन रात्रौ जागरणेन। अभिभूय दूषयित्वा। इतरं दोषं कफं पित्तं च। स्तिमितेन आर्द्रेण वृतेनेति यावन्न तु घनेन। स पवनः तदा ऊरू स्तभ्नाति। तेन स्तम्भेन अचेतनौ शून्यौ। परकीयाविव अक्रियावित्यर्थः। ध्यानम् मूढता। पादसम्बन्धिनीभिः सदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिश्च संयुक्तौ। अयं सुश्रुतेन महावातव्याधिषु पठितः।

कुछेक जीर्ण और कुछेक अजीर्ण होय ऐसी अवस्थामें शीतल, गरम, पतले, सूखे, भारी और चिकने ऐसे भोजन करनेसे, परिश्रम करनेसे, शरीरको संचलन करनेसे, दिनमें सोनेसे और रात्रिमें जागनेसे कफ तथा मदसहित वायु आमसंयुक्त तथा अत्यन्त संचित हुए कफको तथा पित्तको दूषित करके सांथलोंमें प्राप्त होती है। और सांथलोंमें प्राप्त होकर लिपटे हुए कफसे सांथलकी हड्डियोंमें मिलकर स्तब्ध कर देती है कि जिससे सांथल अकड जाती हैं, सुन्न हो जाती हैं, अत्यन्त भारी और जैसे कि दूसरोंकी होयँ ऐसी जान पडती हैं। इस रोगमें मूढता, अंगोंका टूटना, तन्द्रा, वमन, अरुचि, ज्वर, पांवकी ग्लानि, पांवोंकी मन्दता और जडता ये सब लक्षण होते हैं। यह रोग ऊरुस्तम्भ कहा जाता है। कितने एक वैद्य इसको आढ्यवात कहते हैं। सुश्रुतने इसको महाव्याधियोंमें कहा है ॥१-५॥

अथोरुस्तम्भपूर्वरूपम्।

प्राग्रूपं तस्य निद्रातिध्यानं स्तिमितता ज्वरः। रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जंघोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥

जब ऊरुस्तम्भ होनेको होता है तो निद्रा, अत्यन्त ध्यान, क्रियारहितपना, ज्वर, रोमांचोंका हो आना, अरुचि, वमन और पिण्डलियोंमें तथा सांथलोंमें पीडा उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥

अथोरुस्तम्भरूपम्।

वातशंकिभिरज्ञानात्तत्र स्यात्स्नेहनात्पुनः। पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा। जंघोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्वा दाहवेदने ॥ ७॥ पादं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च। संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः। अन्यनेयौ हि सम्भग्नावूरूपादौ च मन्यते ॥८॥ अज्ञानादनिश्चयात्। स्तम्भसुप्तिकर्मरहितपाददर्शनेन वातशंकिभिः वातव्याधिशंकिभिः। तत्र ऊरुस्तम्भे स्नेहनात् स्नेहदानात्। स्नेहादिना स्नेहन्या चिकित्सया पादसदनादयः ऊरुभग्नोपमत्वात् ते विकाराः स्युः। जंघोर्वोर्गमनादौ अशक्तिः। अदाहवेदना ईषद्दाहेन सह वेदना। अन्यनेयौ अन्यचाल्यौ भवतः।

पांवोंका सोना, पांवोंकी जडता और क्रियाओंसे रहित होना इत्यादि लक्षणोंके मिलनेसे प्रायः मनुष्योंको वातरोगका भ्रम होता है। उस भ्रमसे वह वातरोगोंकी समान तेलादिकका मलना आदि स्नेहनचिकित्सा करता है तो उसके दूनी पीडा हो जाती है। पांवोंमें पीडा, जडता और सुन्नता होय, पैरोंका उठाते धरते समय अत्यन्त वेदना होय, पैरोंकी पिण्डली और सांथलोंमें अत्यन्त ग्लानि, चलनेमें असमर्थ, कुछ २ दाहयुक्त पीडा, यह सब अधिक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तासे होती है। जब यह रोग होता है तो पैरोंको उठाते चलाते समय विशेष पीडा होती है, शीतल पदार्थोंका स्पर्श मालूम नहीं होता और बैठनेमें, दबानेमें, चलानेमें एवं हलानेमें असमर्थ होता है और वह मनुष्य अपनी सांथलोंको तथा पांवोंको टूटासा जानता है और उसके पांव दूसरोंके उठानेसे उठते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथोरुस्तम्भारिष्टम्।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत्। ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्सादयेदन्यथा नवम्। ॥ ९ ॥ अन्यथा दाहाद्युपद्रवरहितं तमपि नवम् उत्पन्नमात्रं साधयेत्।

जो ऊरुस्तम्भमें दाह, व्यथा, सुई चुभानेसरीखी पीडा हो और रोगी कांपने लगे तो उस मनुष्यको वह ऊरुस्तम्भ मार देता है और जो दाहादिक उपद्रव नहीं होयँ तथा ऊरुस्तम्भ तत्कालका उत्पन्न हुआ होय तो साध्य है ॥ ९ ॥

अथोरुस्तम्भचिकित्सा।

स्नेहासृक्स्रावववमनं वस्तिकर्म विरेचनम्। वर्जयेदामवाते तु यतस्तैस्तस्य कोपनम्। ॥ १० ॥ तस्मादत्र सदा कार्यं स्वेदलंघनरूक्षणम्। आममेदःकफाधिक्यान्मारुतं परिरक्षता ॥ ११ ॥ यत्स्यात्कफप्रशमनं न तु मारुतकोपनम् ॥ तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम्। सर्वो रूक्षः क्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥ १२ ॥ पश्चाद्वातविनाशाय विधातव्याः स्निग्धाः क्रियाः। भोज्याः पुराणाः श्यामाकक्रव्योद्दालशालयः ॥ १३ ॥ जांगलैरघृतैर्मांसैः शाकैश्चालवणैर्हितैः। शाकैरलवणैर्दध्नाजलतैलाज्यसाधितैः ॥ १४ ॥ सुनिषण्णकनिंबार्कवृन्तारग्वधपल्लवैः। वायसीवास्तुकाद्यैश्च साधितैः शाकमूलकैः ॥ १५ ॥ शाकैरलवणैर्युक्तं जीर्णे शाल्योदनं भिषक्। रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिपूर्वकः ॥ १६ ॥ स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः। प्रतारयेत्प्रतिस्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् ॥ १७ ॥ सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनःपुनः। यथा विशुष्केऽस्य कफे शान्तिमूरुग्रहो व्रजेत् ॥ १८ ॥

ऊरुस्तम्भमें स्नेहन, रुधिरका निकलवाना (फस्त वगैरह), वमनक्रिया, वस्तिकर्म (पिचकारी) और विरेचन (जुलाब) इनको त्याग देवे क्योंकि इन स्नेहनादिक कर्मोंसे ऊरुस्तम्भका उलटा प्रकोप होता है, इस कारण ऊरुस्तम्भमें सदैव स्वेदन, लंघन तथा रूक्षक्रिया करनी चाहिये। इस रोगमें वायुका बचाव करके आम, मेद और कफ अधिक होनेसे जो जो औषधि कफको शमन करनेवाली और वायुको कुपित नहीं करनेवाली हैं उनको सदैव इसमें सेवन करे। इस ऊरुस्तम्भरोगमें सकल रूक्ष क्रिया करनी चाहिये। उसमें भी प्रथम कफको नष्ट करनेवाली क्रिया प्रयोग करनी चाहिये और फिर वातनाशक क्रिया प्रयोग करे। घृतरहित जंगल प्रदेशके प्राणियोंके मांसके साथ और लवणरहित हितकारक शाकोंके साथ, पुराना सामा, पुराने कोदों, पुराने वनकोदों और पुराने चावल इनका भोजन करे, शिरआरी, नीमके पत्ते, आककी शाखा, अमलतासके पत्ते, मकोय, बथुआ और मूली इत्यादि बनाये हुए जलमें, तेलमें और घीसे पकाये हुए निमकरहित शाक खाने चाहिये। खाया हुआ भोजन जीर्ण होनेके पश्चात् वैद्य उसको निमकरहित शाकोंके साथ लाल शालिचावलोंका भात भक्षण करावे। जो रूक्ष क्रिया करनेसे निद्राका नाश तथा पीडासहित वायुका प्रकोप होय तो वायुकी वेदनाको हरनेवाली स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करे। रोगीको शीतल जलवाली सुन्दर नदीमें उसके प्रवाहके साथ चलावे अर्थात् तैरावे और निर्मल तथा शीतल और स्थिर जलवाले तालावमें वारंवार तैरावे ॥ १०–१८ ॥

शरीरबलमग्निं च कार्यैषा रक्षता क्रिया। सक्षारमूत्रस्वेदांश्च रूक्षाण्युत्सादनानि च ॥ १९ ॥ कुर्याद्दाहे च मूत्राद्यैः करञ्जफलसर्षपैः। मूलैर्वाप्यश्वगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक् ॥ २० ॥ पिचुमर्दस्य वा मूलैरथ वा देवदारुणः। क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासं-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युतैर्भिषक् ॥ २१ ॥ गाढमुत्सादनं कुर्या-दूरुस्तम्भे सवेदने । दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्षपै-श्चापि बुद्धिमान् ॥ २२ ॥ तर्कारी सुरसा-शिग्रुवचावत्सकनिम्बकैः । पत्रमूलफलै-स्तोयं श्रृतमुष्णं च सेवनम् ॥ २३ ॥

शरीरके बलका और अग्निका बचाव करके जिस प्रकार कफ सूखकर ऊरुस्तम्भ शांत होय उसी प्रकार चिकित्सा करनी चाहिये । क्षार तथा मूत्रसंयुक्त पदार्थोंसे स्वेदन करे । और रूक्ष पदार्थोंसे सांथलोंको मले । दाह होय तो मूत्रादिकसे अथवा करंजवेके फलोंसे, संयुक्त सरसोंसे अथवा असगन्धके चूर्णसे, अथवा आककी जडके चूर्णसे, अथवा नीमकी जडके चूर्णसे, अथवा दवदारुके चूर्णसे सांथलोंको खूब मले । वेदनायुक्त ऊरुस्तम्भमें उपरोक्त पदार्थोंको सहत, सरसों और बाँवीकी मट्टी इनसे सांथलोंको खूब दृढ रीतिसे मर्दन करे । ऊरुस्तम्भकी पीडामें बुद्धिमान् वैद्य दन्ती (जमालगोटेकी जड), छोटी दन्ती, काली तुलसी और सरसों इनसे भी सांथलोंको खूब मर्दन करे । अरणी, काली तुलसी, सैंजिना, वच, कुडा और नीम इनके पत्तोंका, जडका तथा फलोंका क्वाथ बनाकर उस क्वाथको गरम २ सेवन करे ॥ १९-२३ ॥

भल्लातकाऽमृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः । पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिबर्हणाः२४

भिलावे, गिलोय, सोंठ, देवदारु, हरड, पुनर्नवा और दशमूल इनको सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च । कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भाद्विमुच्यते२५

पीपल, पीपलामूल और भिलावे इनका कल्क बनाकर सहत मिलाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है ॥ २५ ॥

रास्नाश्यामाकपथ्यामरिचमिसिशिवावेल्लश-ठ्यश्वगन्धा यासच्छिन्नाजमोदासुमुषमति-विषावृद्धदारौ वृहत्यौ शुण्ठी तिक्ता यवानी सहचरचविकैरण्डदार्व्याजकर्ण्य ऊरु स्तम्भामवातं कफपवनरुजं दण्डकांश्चाशु हन्यात् ॥ २६ ॥

रायसन, समा, हरड, काली मिरच, सोया, हलदी, वायविडंग, कचूर, असगंध, जवासा, गिलोय, अजमोद, वनतुलसी, अतीस, विधारा, कटेरी, कटाई सोंठ, कुटकी, अजवायन, कटसरैया, चव्य, अरंड, दारुहलदी और राल इनका क्वाथ ऊरुस्तम्भ, आम-वात, कफके रोग, वातके रोग और दंडकाक्षेपको तत्काल नष्ट कर देता है । इसको रास्नादि क्वाथ कहते हैं ॥ २६ ॥

ग्रन्थिकारुष्ककृष्णानां क्वाथं क्षौद्रान्वितं पिबेत् । लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ॥ २७ ॥

पीपलामूल, भिलावे और पीपल इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है । त्रिफलेका तथा कुटकीका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ २७ ॥

सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः । पिप्पलीवर्द्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा २८

षड्धरण चूर्ण जो कि वातव्याधिमें कहा है उसको सुखोष्ण जलके साथ पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है । सहतके साथ अथवा गुडके साथ वर्द्धमान-पीपलका सेवन करे तो ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव च । शिलाजतु गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् ॥ २९ ॥ ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥ ३० ॥

ऊरुस्तम्भ रोगमें कडवे सूरणका आसव भी सेवन करना लिखा है । मूत्रके साथ अथवा दशमूलके रसके साथ शिलाजीत, गूगल, पीपल और सोंठको पीनेसे ऊरुस्तम्भकी पीडा दूर हो जाती है॥२९॥३०॥

त्रिफला पिप्पली मुस्तं चव्यं कटुकरोहिणी ॥ ३१ ॥ लिह्याद्वा मधुना चूर्णमूरुस्तम्भा-र्दितो नरः । घृतं सौरेश्वरं दद्यादूरुस्तम्भे कफोत्तरे ॥ ३२ ॥ दद्याच्छुण्ठीघृतं वापि वैश्वानरमथापि वा । सैन्धवाद्यं हितं तैलम-मृताख्योऽपि गुग्गुलुः ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, चव्य और कुटकी इन सबका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे ऊरुस्तम्भकी पीडा शांत होती है। ऊरुस्तम्भमें कफकी अधिकता होय तो सौरेश्वरवृत, अथवा वैश्वानर चूर्ण, अथवा शुंठीघृत व सैंधवाद्यतैल, अथवा अमृतागुग्गुल देना हितकारी है ॥ ३१–३३ ॥

अथ कुष्ठाद्यतैलम्।

कुष्ठश्रीवेष्टकोदीच्यसरलं दारु केशरम्। अजगन्धाश्वगन्धे च तैलं तैः सार्षपं पचेत्। सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ॥ ३४ ॥

कूठ, सरलनिर्यास (लोबान), सुगंधवाला, सरल धूप, देवदारु, नागकेसर, वनतुलसी और असगंध इनके कल्कसे पकाया हुआ सरसोंका तेल सहतके साथ यथामात्रानुसार पिया जाय तो ऊरुस्तम्भ नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

अथाष्टकट्वरतैलम्।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलान्नागरादष्ट कट्वरम्। तैलप्रस्थं समं दध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहम्॥३५॥ सस्नेहदाधि सघृतं तक्रं कट्वरमुच्यते। अष्टकट्वरतैले च तैलं सार्षपमिष्यते। पिप्पलीमूलशुण्ठ्याश्च प्रत्येकं द्विपलं कृतम् ॥३६॥

पीपलामूल ८ तोले, सोंठ ८ तोले, मलाई युक्त दहीसे बनाई हुई खट्टी छांछ ६४ तोले और दही ६४ तोले, सरसोंका तेल ६४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे। इसको अष्टकट्वर तैल कहते हैं। इस तेलका उपयोग करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग दूर हो जाता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ द्विपञ्चमूलाद्यतैलम्।

द्विपञ्चमूली त्रिफला चित्रकं देवदारु च। एकाष्ठीला त्वपामार्गं श्रेयसी वायसी शुभा ॥ ३७ ॥ बला भार्ङ्गी पृथक्पर्णी सुवहा मदयन्तिका। विशालोशीरकाश्मर्यास्तिस्रो देयास्तथाग्निकः ॥ ३८ ॥ चिरबिल्वो ह्यशोकश्च कलश्यंशुमती तथा। पयस्यापीलुपर्ण्यश्च गुडूची च शतावरी ॥ ३९ ॥ एषां पञ्च पलान्भागाञ्जलद्रोणेषु सप्तसु। अष्टभागावशेषेण पचेत्तैलाढकं शतम् ॥ ४० ॥ कुष्ठं च शतपुष्पा च त्र्यूषणं चित्रकं वरा। देवदार्वगुरुश्रेष्ठं विडङ्गं मुस्तमेव च ॥ ४१ ॥ अश्वगन्धा स्थिरा पाठा मूर्वी श्यामाकमेव च। पिप्पल्यः शृङ्गवेरं च दंती हिङ्गवम्लवेतसम् ॥ ४२ ॥ अनेन गर्भेण भिषक्कषायेण च साधयेत्। सिद्धशीतं च पूतं च क्षौद्रेण सह संसृजेत् ॥ ४३ ॥ तदस्य नस्यपानार्थं तदेवाभ्यञ्जने भवेत्। ऊरुस्तम्भश्चिरोद्भूतस्तैलेनानेन शाम्यति। आमवातं शीतवातं क्षुद्रवातं च नाशयेत् ॥ ४४ ॥

दशमूल, त्रिफला, चीता, देवदारु, बडी मौलसरी, चिरचिटा, गजपीपल, कौआठोडी, मकोय, खिरैटी, भारंगी, पृश्निपर्णी, निर्गुण्डी, मल्लिका (मोतिया), इन्द्रायन, खस, कुम्भेर, लालचीता, करंज, अशोकके पत्र, शालपर्णी, क्षीरकाकोलीकी प्रतिनिधि, मूर्वा, गिलोय और सतावर यह प्रत्येक औषधि बीस २० बीस २० तोले सात द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते आठवाँ भाग जल शेष रह जाय तब उस क्वाथमें एक आढक परिमाण तेल पकावे, फिर इस तेलको कूट, सोया, सोंठ, दुगुनी मिरच, पीपल, चीता, त्रिफला, देवदारु, उत्तम अगर, वायविडंग, नागरमोथा, असगंध, पृष्ठिपर्णी, पाढ, मूली, समा, अदरख, दन्ती, हींग और अमलवेत इनके क्वाथसे तथा कल्कसे पकावे जब पककर स्वयं शीतल हो जाय तब कपडेमें छान लेवे फिर उसमें सहत मिलाकर व्यवहार करे। इस तेलसे नस्य, पान और अभ्यंग (मालिश) करे तो बहुत दिनोंका ऊरुस्तम्भ नष्ट हो जाता है। यह तेल आमवात, क्षुद्रवात और शीतवातको भी दूर करे है ॥ ३७–४४ ॥

अथ महासैन्धवाद्यतैलम्।

सिन्धुरुग्विश्वजासोग्राभार्ङ्गीयष्टीस्थिराफलैः। दारुविश्वशटीधान्यकृष्णाकट्फलपौष्करैः ॥ ४५ ॥ दीप्यकातिविषैरण्डनीलीनीलाम्बुजैः पचेत्। तैलं सका-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ञ्जिकं हन्ति पानाभ्यञ्जननावनैः ॥ ४६ ॥ आमवातं कृमीन्गुल्मान्प्लीहोदरशिरोरुजः । मन्दाग्निं पक्षसन्ध्यण्डवातस्तम्भगदानपि ४७

सेंधानिमक, कूठ, छोटी सतावर, वच, भारंगी, मुलैठी, पृश्निपर्णी, जायफल, देवदारु, सोंठ, कचूर, धनियाँ, पीपल, कायफल, पोहकरमूल, अजवायन, अतीस, एरंड, नलि और नीलकमल इनके द्वारा पकाया हुआ तेल, काँजी मिलाकर पान, अभ्यंग तथा नस्यमें प्रयोग करे तो आमवात, कृमि, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, मस्तककी पीडा, मंदाग्नि, पक्षाघात, संधिवात, अंडकोषकी पीडा और वातस्तम्भ रोग दूर होता है ॥ ४५-४७ ॥

अथ सैन्धवाद्यतैलम् ।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात् । द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि विंशतिर्द्वे तथाऽऽढके ॥ ४८ ॥ आरनालात्पञ्चप्रस्थं तैलस्यैरण्डजस्य च । गृध्रस्यूरुग्रहास्यार्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ ४९ ॥

सेंधानिमक २ दो पल, सोंठ ५ पाँच पल, चीता २ पल, पपिलामूल २ दो पल, भिलावेकी गुठली २० बीस पल और आरनाल काँजी २ दो आढक, इनसे पांच ५ प्रस्थ अंडीके तेलको पकावे तो सैन्धवाद्य तेल सिद्ध होता है । यह तेल-गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ, मुखकी पीडा और सर्व प्रकारके वायुसम्बन्धी विकारोंको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इति ऊरुस्तम्भाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ आमवाताधिकारः ।

तत्रामवातनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्लोलुपस्य च । ॥ १ ॥ स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा । वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ॥ २ ॥ तेनात्यर्थमपक्वोऽसौ धमनीभिः प्रपद्यते । वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ॥ ३ ॥ स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः । जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम् । ॥ ४ ॥ व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ ५ ॥ विरुद्धाहारचेष्टस्य विरुद्धाहारः क्षीरमत्स्यादिः विरुद्धचेष्टा भुक्तव्यायामादि ताभ्यां युक्तस्य । निश्चलस्य निर्व्यायामपरस्य । स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वत इति मिलितो हेतुः । श्लेष्मस्थानम् आमाशयसन्ध्यादि । तेन श्लेष्मस्थानगमनेन अत्यन्तम् अपक्वः । पित्तस्थानगमनेन पक्वो भविष्यति इति अभिप्रायः । असौ आमः धमनीभिः प्रपद्यते, धमनीमार्गश्चलति । भूयो दूषितः अतिशयेन दूषितः । सोऽन्नजो रसः आमः स्रोतांसि अभिष्यन्दयति संश्रित्य रसवहशिरावरोधं कृत्वा स्रोतांसि गुरूणि कुर्यात् । नानावर्णः वातादिजनितवर्णभेदात् नानावर्णः ।

दूध मछली आदि विरुद्ध आहार और विरुद्ध चेष्टा करनेवाले वा कसरत नहीं करनेवाले, मंद अग्निवाले, भोजनमें लंपट और स्निग्ध अन्न खाकर कसरत करनेवाले, मनुष्यके वायुसे प्रेरित हुआ आम रस कफके आमाशय और संधियें आदि स्थानोंमें दौडकर पहुँच जाता है, आम जो पित्तके स्थानोंमें जाय तो पक्व जाता है किन्तु ऊपर कहे अनुसार कफके स्थानमें प्राप्त होनेके कारण अत्यंत अपक्व रहा यह आम धमनिओंके मार्गसे चलता है, इस प्रकार संचलन करता हुआ यह आम फिर वातसे, पित्तसे तथा कफसे अत्यंत दूषित होकर स्रोतों (छिद्रों) में रहनेवाले रसको वहन करनेवाली शिराओंको रोककर स्रोतोंको भारी कर देता है । वातादि दोषोंसे अनेक प्रकारके वर्णवाली और अत्यन्त चिकना पिच्छिल यह आम अग्निको निर्बल कर देता है और हृदयमें भारीपनको करता है । यह महा दारुण आम व्याधियोंका आश्रयरूप है ॥ १-५ ॥

अथामस्वरूपम् ।

अजीर्णाद्यो रसो जातः सञ्चितो हि क्रमेण वै । आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः ॥ ६ ॥ अजीर्णाद्भुक्तादजीर्णात् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोजन किये हुए अन्नके नहीं पकनेसे जो अन्नका अपक्व रस उत्पन्न होता है वह क्रम क्रमसे जब एकत्रित हो जाता है तब वह आम कहा जाता है और वह आम मस्तकमें तथा गात्रमें वेदना करती है॥६॥

अथामवातसामान्यलक्षणम् ।

युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ । स्तब्धं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ७ ॥ एतौ वातकफौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ वेदनयेति बोद्धव्यम् ।

एकही समय कुपित हुए वात और आम ये दोनों त्रिकस्थानकी संधियोंमें पीडा करते हुए प्रवेश करके गात्रको जकड देते हैं तब यह रोग आमवात कहा जाता है ॥ ७ ॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तामवातलक्षणम् ।

अंगमर्दोऽरुचिस्तृष्णा चालस्यं गौरवं ज्वरः । अपाकः शून्यतांगानामामवातस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥ विशेषार्थम् अस्य संग्रहः ।

अंगोंका टूटना, अरुचि, तृषा, आलस्य, भारीपन, ज्वर, अन्नका नहीं पकना और अंगोंकी शून्यता ये आमवातके लक्षण हैं । आमवातमें विशेष जाननेके लिये अन्य ग्रंथोंमें कहे हुए, ये लक्षण हमने इस स्थलमें लिखे हैं ॥ ८ ॥

अथ वाताधिक्यामवातलक्षणम् ।

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् । हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ॥९॥ करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते । स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ १० ॥ जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् । उत्साहहानिं वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥ ११ ॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् । तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धताम् । जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १२ ॥ यदा प्रकुपितो भवेत्प्रकर्षेण कुपितः स्यात्तदा वक्ष्यमाणानुपद्रवान्करोति । हस्तेत्यादि यत्र दोषः दुष्टः आमः प्रपद्यते गच्छति तानाह जाड्यम् अकर्मण्यत्वम् । अन्यानुपद्रवान् कलायखञ्जत्वादीन् ।

सम्पूर्ण रोगोंमें अत्यंत कष्टजनक जब यह आमवात अधिक कुपित होता है तब हाथ, पाँव, मस्तक गुल्फ, त्रिक, घुटने, साँथल और घुटनोंके जोड इनमें पीडायुक्त सूजन उत्पन्न करता है । दुष्ट हुआ यह आम जिस प्रदेशमें जाता है उसी शरीरके प्रदेशमें वीछूके काटे हुएकी समान घोर पीडा करता है, आमवातसे जठराग्नि निर्बल हो जाती है, मुखमें थूक आने लगता है, अरुचि होती है, शरीरमें भारीपन, उत्साहका नाश, विरसता, दाह, मूत्रकी बाहुल्यता, पेटमें कठिनता, शूल, निद्राका नाश, तृषा, मन, मूर्च्छा, हृदयमें जडता, मलका अवरोध, जडता, दांतोंका कूँजना, अफरा और दूसरे कलायखंजादिक भी दुःखदायक उपद्रव होते हैं ॥ ९–१२ ॥

अथामवातविशेषलक्षणम् ।

पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनात्मकम् । स्तिमितं गुरुकण्डूकं कफजुष्टं तमादिशेत् ॥ १३ ॥ गुरुकण्डूकम् बहुकण्डूकम् ।

दाह तथा लाली होय तो पित्तका आमवात जानना, जो शूल चले तो वायुका आमवात जानना और खुजली बहुत चलती होय तथा जडता होय तो कफका आमवात जानना ॥ १३ ॥

अथामवातसाध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ॥ सर्वदेहचरैः शोथैः स कष्टः सान्निपातिकः ॥ १४ ॥

जो आमवात एक दोषका होय तो साध्य जानना दो दोषोंका होय तो याप्य जानना और जो तीन दोषोंका होय तथा सम्पूर्ण शरीरमें सूजन होय तो असाध्य जानना ॥ १४ ॥

अथामवातचिकित्सा ।

लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च । विरेचनं स्नेहनं च वस्तयश्चाममारुते ॥१५॥

आमवातमें प्रथम लंघन करना, सेक करना, तिक्त पदार्थ, अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ और तीक्ष्ण पदार्थ सेवन करे, विरेचन देवे, स्नेहन कर्म करे और पिचकारी लगानी यह सब उपचार करे ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥ उपनाहाश्च कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः १६

रेतीकी पोटली बनाकर उसका रूक्ष सेक करे और स्नेहरहित उपनाह स्वेद देवे ॥ १६ ॥

आमवाताभिभूताय पीडिताय पिपासया । पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमुच्यते ॥ १७

आमवातसे दुःखित मनुष्य तृषासे पीडित होय तो उसको पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनसे पकाया हुआ जल देना उत्तम है ॥ १७ ॥

शुष्कमूलकयूषं वा यूषं वा पञ्चमौलिकम् । रसकं काञ्जिकं वापि शुंठीचूर्णावचूर्णितम् १८

आमवातवाले मनुष्यको सूखी मूलीका यूष अथवा पंचमूलका यूष अथवा जिसमें सोंठका चूर्ण मिला होय ऐसी काँजीको देवे ॥ १८ ॥

सौवीरं स्विन्नवार्त्ताकं तथा तिक्तफलानि च । वास्तूकशाकं सारिष्टशाकं पौनर्नवं हितम् ॥ १९ ॥ पटोलं गोक्षुरं चैव वरुणं कारवेल्लकम् । यवान्नं कोरदूषान्नं पुराणं शालिषष्टिकम् ॥ २० ॥ लावकानां तथा मांसं हितं तक्रेण संस्कृतम् । हितश्च यूषः कौलत्थः कालायश्चणकस्य च ॥ २१ ॥

सौवीर नामक काँजीमें बैंगनको उबालकर अथवा कडवे फलोंको उबालकर सेवन करे । बथुयेका शाक, नीमके पत्तोंका शाक, पुनर्नवेका शाक, परवलों और गोखरूओंका शाक, बरना, करेला, जौ, कोदों, पुराने शालिधान और साँठी धान, तक्रमें संशोधन किया हुआ लवाका मांस, कुलथीका यूष, मटर और चने ये सब आमवातमें हितकारी हैं ॥ १९–२१ ॥

रुच्यं दद्याद्यथासात्म्यमामवातहितं च यत् । शतपुष्पा वचा विश्वश्वदंष्ट्रावरुणत्वचः ॥ २२ ॥ पुनर्नवा सदेवाह्वाशटीमुण्डितकासमाः । प्रसारणी च तर्कारीफलं च मदनस्य च ॥ २३ ॥ शुक्तकाञ्जिकपिष्टा च कोष्णा च लेपने हिता । अहिंस्रा केबुकामूलं शिग्रुर्वल्मीकमृत्तिका । मूत्रपिष्टैश्च कर्तव्यमुपनाहः प्रलेपनम् ॥ २४ ॥

आमवात रोगीकी प्रकृतिके अनुसार जो उसको रुचे और आमवातमें हितकारी होय वही उसको देवे । सोया, वच, सोंठ, गोखरू, वरनाकी छाल, पुनर्नवा, देवदारु, कचूर और गोरखमुंडी, प्रसारणी, अरणी, मैनफल इनको सिरकेकी काँजीमें पीसकर सुखोष्ण लेप करे तो आमवातमें अत्यंत हितकारी है । अहिंसा (हींस), अंडकी जड, सैंजिना और बाँबीकी मट्टी इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर पीडाके स्थानमें बाँधनेसे अथवा लेप करनेसे आमवात रोग शमन होता है ॥ २२–२४ ॥

चित्रकं कटुका पाठा कलिंगातिविषाऽमृताः ॥ २५ ॥ देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः । पिबेदुष्णाम्बुना नित्यमामवातस्य भेषजम् ॥ २६ ॥

चीता, कुटकी, पाढ, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय, देवदारु, वच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस और हरड इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ नित्य पिये तो आमवात शमन होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

शटीशुण्ठ्यभयाश्चोग्रा देवाह्वातिविषामृताः । कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् २७

कचूर, सोंठ, हरड, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय इनका क्वाथ पिये और रुक्ष भोजन करे तो आमवात नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥

पुनर्नवा च बृहतीवर्द्धमानफणिज्जकैः । कल्पयेत्क्वाथमाने तु मूर्वाशिग्रुद्रुमैर्भिषक् ॥ २८ ॥

पुनर्नवा, कटाई, एरंड, मरुआ, मूर्वा और सैंजिनेका पंचांग इनका क्वाथ बनाकर वैद्य आमवातरोगीको पिलावे ॥ २८ ॥

सेचनं चामवातस्य रुबूकपयसापि वा । लिह्यात्पथ्यां सविश्वां वा मूत्रैर्वा गुग्गुलुं पिबेत् ॥ २९ ॥ विश्वालम्बुषयोः कल्कमद्याद्वा तिलविश्वयोः । विश्वपथ्यामृताक्वाथं कवोष्णं कौशिकान्वितम् । कटीजंघोरुपृष्ठानां रुजं पीतं निवर्तयेत् ॥ ३० ॥

आमवात रोगपर एरंडके पानीका सेचन करे, अथवा सोंठके साथ हरडको खाय, अथवा मूत्रके साथ गूगलको खाय, अथवा सोंठ तथा गोरखमु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ण्डीका कल्क खाय अथवा तिलका तथा सोंठका कल्क खाय अथवा सोंठ, हरड तथा गिलोय इनका क्वाथ बनाकर उसमें गुगल डालकर कुछेक गरम करके पीवे तो कमर, सांथल तथा पीठकी पीडा शांत हो जाती है ॥ २९ ॥ ३० ॥

हिंग्वाद्यचूर्णम् ।

हिंगु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाजाजी सपुष्करम् । भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद्भवेत् ॥ ३१ ॥

हींग, चव्य, विरियासंचरनिमक, सोंठ, काला जीरी (कलौंजी) और अंडकी जड यह सब पदार्थ एकसे एक दुगुना लेकर चूर्ण बनाकर सेवन करे तो आमवातकी पीडा शांत हो जाती है ॥ ३१ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं सैन्धवं कृष्णजीरकम् । चव्यचित्रकतालीसपत्रकनागकेशरम् ॥ ३२ ॥ एषां द्विपलिकान्भागान्पञ्च सौवर्चलस्य च । मरिचाऽजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् । ॥ ३३ ॥ दाडिमात्कुडवं चैव द्वे पले चाम्लवेतसात् । सर्वमेकत्र संक्षुद्य योजयेत्कुशलो भिषक् ॥ ३४ ॥ पिप्पल्याद्यमिति ख्यातं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् । अर्शांसि ग्रहणीं गुल्ममुदरं सभगन्दरम् ॥ ३५ ॥ कृमिकण्डूरुचीर्हन्यात्सुरयोष्णोदकेन वा । नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥ ३६ ॥

पीपल, पीपलामूल, सेंधानिमक, काला जीरा, चव्य, चीता, तालीसपत्र और नागकेसर यह प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले लेवे, काला निमक पांच तोले लेवै, काली मिर्च, जीरा और सोंठ चार ४ चार ४ तोले लेवे, दाडिमीसार सोलह तोले लेवे और अमलवेत आठ तोलेभर ले, इन सब औषधियोंको एकत्रित करके चतुर वैद्य कूट पीस चूर्ण बनाकर रोगाको देवे । इसको पिप्पल्यादि चूर्ण कहते हैं । इसको सहतके साथ अथवा गरमजलके साथ पिये तो नष्ट हुइ जठराग्नि फिरसे दीपन होती है । और बवासीर, ग्रहणी, गुल्म, उदरक रोग, भगन्दर, कृमि, खुजली आर अरुचि दूर हो जाती है । आमवातकी इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है ॥ ३२–३६ ॥

अथ पथ्याद्यचूर्णम् ।

पथ्याविश्वयवानीभिस्तुल्याभिश्चूर्णितं पिबेत् । तक्रेणोष्णोदकेनापि काञ्जिकेनाथ वा पुनः ॥ ३७ ॥ आमवातं निहन्त्याशु शोथं मन्दाग्नितामपि । पीनसं कासहृद्रोगं स्वरभेदमरोचकम् ॥ ३८ ॥

हरड, सोंठ और अजवायन इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर तक्र (मठा) के साथ, गरमजलके साथ अथवा काँजीके साथ पिये तो आमवात, सूजन, जठराग्निकी मंदता, पीनस, खाँसी, हृदयकी पीडा, स्वरभेद और अरुचि दूर होती है ॥ ३७॥३८ ॥

अथ रसोनादिकषायः ।

रसोनविश्वनिर्गुण्डीक्वाथमामार्दितं पिबेत् । नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ३९॥

आमसे पीडित मनुष्यको लहसुन, सोंठ और निर्गुण्डी इनका क्वाथ पीना चाहिये, इस क्वाथसे अधिक आमवातकी अन्य औषधि नहीं है ॥ ३९ ॥

अथ रास्नापंचककाथः ।

रास्नां गुडूचीमेरण्डं देवदारु महौषधम् । पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यास्थिमज्जगे ॥ ४० ॥

रासना, गिलोय, अंडकी जड, देवदारु और सोंठ इनका क्वाथ सर्वांगवात, आमवात, संधिगतवात, अस्थिगतवात और मज्जागतवातमें पीना चाहिये॥४०॥

अथ पिप्पल्यादिक्वाथः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । क्वथितं वारि तत्पेयमामवातविनाशनम्४१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पिये तो आमवात नष्ट हो जाता है ॥ ४१॥

अथ शटयादिकल्कः ।

शटी विश्वौषधीकल्कं वर्षाभूक्वाथसंयुतम् । सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविनाशनम् ॥४२॥

कचूर तथा सोंठ इनका कल्क बनाकर पुनर्नवेके क्वाथके साथ सात दिनतक पिये तो आमवात नष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ रास्नासप्तककाथः ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् । काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली ॥ ४३ ॥

रासना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अंडकी जड और पुनर्नवा इनका काथ बनाकर उसमें सोंठका चूर्ण डालकर पीनेसे पिंडलियोंका, सांथलोंका, पसलियोंका, त्रिकस्थानका और पीठका शूल नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् । खादेद्वाप्यभयाविश्वं गुडूचीं नागरेण वा ४४

पीपलका चूर्ण डालकर दशमूलका काथ पीनेसे अथवा सोंठ तथा हरडको भक्षण करनेसे अथवा गिलोय तथा सोंठको भक्षण करनेसे आमवात नष्ट हो जाता है ॥ ४४ ॥

अथ चित्रकादिचूर्णम् ।

चित्रकेन्द्रयवापाठाकटुकातिविषाभयाः । आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना ४५

चीता, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड इनका चूर्ण करके कुछेक गरम जलके साथ पीनेसे आमाशयकी वायु दूर हो जाती है ॥ ४५ ॥

अथ पुनर्नवादिचूर्णम् ।

पुनर्नवाऽमृता शुण्ठी शताह्वा वृद्धदारकम् । शटी मुण्डितिका चूर्णमारनालेन पाययेत् । ॥ ४६ ॥ आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना । आमवातं निहन्त्याशु गृध्रसीमुद्धतामपि ॥ ४७ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, सोया, विधारा, कचूर और गोरखमुंडी इनका चूर्ण बनाकर आरनालनामक कांजी अथवा गरम जलके साथ पीनेसे आमवातरोग तत्काल नष्ट हो जाता है और भयंकर गृध्रसीवात नष्ट होती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ नागरचूर्णम् ।

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा । आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ ४८ ॥

सोंठका चूर्ण एक तोलाभर लेकर कांजीके साथ नित्य पिये तो आमवातरोग शांत हो जाता है । यह औषधि कफ तथा वायुको हरनेवाली उत्तम है ॥ ४८ ॥

अथ पंचकोलचूर्णम् ।

पञ्चकोलकचूर्णं तु पिबेदुष्णेन वारिणा । मन्दाग्निशूलगुल्मामकफारोचकनाशनम् ४९

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ पिये तो अग्निकी मन्दता, शूल, गुल्म, आम, कफ और अरुचि इनका नाश होता है ॥ ४९ ॥

अथैरण्डतैलम् ।

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः । एक एव निहन्त्याशु ऐरण्डतैलकेशरी ॥ ५० ॥

शरीररूपी वनमें विचरण करनेवाले आमवातरूपी उन्मत्त हाथीको इकला अंडीका तेलरूप सिंह मार देता है ॥ ५० ॥

अथैरंडतैलहरीतकी ।

ऐरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत् । आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसीवृद्ध्यार्दितो नियतम् ॥ ५१ ॥

आमवातसे, गृध्रसीसे और अर्दितवातसे पीडित मनुष्यको अंडीके तेलके साथ हरडका चूर्ण अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथारग्वधपत्रप्रयोगः ।

आरग्वधस्य पत्राणि भृष्टानि कटुतैलतः । आमघ्नानि नरः कुर्यात्सायं भक्ताद्धृतानि च ॥ ५२ ॥

सन्ध्याके समय सरसोंके तेलमें अमलतासके पत्तोंको सेंककर भक्षण करे और उसके पश्चात् भोजन करे तो आमकी पीडा नष्ट हो जाती है ॥ ५२ ॥

अथ कटिग्रहपंगुरोगलक्षणचिकित्सा ।

वायुः कट्याश्रितः शुद्धः सामो वा जनयेद्रुजम् । कटीग्रहः स एवोक्तः पंगुसक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ५३ ॥ शुण्ठीगोक्षुरककाथः प्रातःप्रातर्निषेवितः । सामे वातकटीशूले पाचनं रुक्प्रणाशनम् ॥ ५४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कटिमें रहनेवाली शुद्ध अथवा आमसहित वायु व्यथाको उत्पन्न करती है इसको कटिग्रह कहते हैं । जो इसमें दोनों सांथल विकारको प्राप्त हो जावें तो इसको पंगुरोग कहते हैं । सोंठ और गोखरू इनका क्काथ नित्य प्रातःकाल सेवन करे तो आमसहित वायुरोगीका कटिशूल नष्ट होता है और आमका पाचन होता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

यवक्षारसमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् । दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा । ॥ ५५ ॥ कटीशूलेषु पातव्यं तैलमैरण्डसम्भवम् । महौषधगुडूच्योश्च क्काथं पिप्पलिसंयुतम् । पिबेदामे सरुक्कोष्ठे कटीशूले विशेषतः ॥ ५६ ॥

अंडीके तेलमें जवाखार डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है और दशमूलके साथ अथवा सोंठके क्काथके साथ अंडीका तेल पीनेसे कटीशूल नष्ट होता है । आममें, कोठेकी पीडामें और विशेष करके कटिग्रहपर सोंठ और गिलोयके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पिये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ॥ ५७ ॥ तत्पायसं कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् । सर्पिस्तैलं गुडं शुक्तं पञ्चमं विश्वभेषजम् ॥ ५८ ॥ पीतमेतद्भवेत्सद्यस्तर्पणं कटिशूलनुत् । न हि चैतत्समं किञ्चिन्निरामे कटिमारुते ॥ ५९ ॥ शुक्ततरुवल्कलसहितं गोमूत्रं स्थापितं तु सप्ताहम् । हिंगुवचाशतपुष्पासैन्धवयुक्तेन तेनाथ ॥ ६० ॥ तत्पुटपक्वं हन्यात्कटीरुजं दारुणं पुंसाम् । आममेदोवृद्धिभवान्विकारांश्चानिलोद्भवान् ॥ ६१ ॥

अंडीके बजिोंको साफ कर पीसकरके दूधमें पकाकर उस दूधपाकको सेवन करनेसे कटिग्रह तथा गृध्रसीवात दूर हो जाता है । कटिग्रह तथा गृध्रसीका यह उत्तम उपाय है । घी, तेल, गुड, शुक्तनामक कांजी और सोंठ इन सबको एकत्र मिलाकर पिये तो तत्काल तृप्ति होती है और कटिग्रह नष्ट होता है, आमरहित कटिग्रहपर इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है । देवदारुकी छालको गोमूत्रमें पीसकर सात दिनतक रख देवे, फिर इसको हींग, वच, सोया और सेंधेनिमकके साथ पीसकर पुटपाककी विधिसे पकावे । इसको सेवन करनेसे दारुण कटिग्रह तथा आम, मेद और वायुकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए दूसरे विकारभी शांत हो जाते हैं ॥ ५७–६१ ॥

अथामृताद्यचूर्णम् ।

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डितिकावरुणकैः कृतं चूर्णम् । मस्त्वारनालपीतं सामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ ६२ ॥

गिलोय, सोंठ, गोखरू, गोरखमुंडी और वरना इनका चूर्ण करके दहीके तोडके साथ अथवा आरनालके साथ पिये तो आमवातका नाश होता है ६२

अथालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं त्रिफलानागरामृताः । यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामाचूर्णं च तत्समम् ॥ ६३ ॥ पिबेन्मस्तु सुरां तत्र काञ्जिकोष्णोदकेन वा । आमवातं जयत्याशु सशोथं वातशोणितम् ॥ ६४ ॥ त्रिकजानूरुसन्धिस्थज्वरारोचकनाशनम् । अलम्बुषादिकं चूर्णं रोगानीकविनाशनम् ॥ ६५ ॥

गोरखमुंडी १ भाग, त्रिफला २ भाग, सोंठ ४ भाग, गिलोय ५ भाग और निसोतका चूर्ण १५ भाग लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर दहीके पानीके साथ, मदिराके साथ, काँजीके साथ अथवा गरम जलके साथ पिये तो सूजनरहित आमवात, वातरक्त, त्रिकस्थानमें प्राप्त हुआ ज्वर, घुटने, जंघा और साँथलोंकी पीडा और अरुचि इन सबका नाश होता है यह अलम्बुषादि चूर्ण रोगोंकी सेनाको नष्ट करनेवाला है ॥ ६३–६५ ॥

हरीतक्यक्षधात्रीभिः प्रसिद्धा त्रिफला क्रमात् । प्रत्येकं तेन वा युंज्याद्भागवृद्धिं यथोत्तरम् ॥ ६६ ॥

हरड, बहेडा, आमला इन तीनोंको त्रिफला कहते हैं । एक एक भागसे बढायके उपयोग करना, अथवा प्रत्येक एक एकसे उपयोग करना ॥ ६६ ॥

अथ द्वितीयालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं मूलं वरुणकस्य च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुडूची नागरं चेति समभागानि कारयेत् ॥ ६७ ॥ काञ्जिकेन तु तत्पेयं बिडालपदमात्रकम् । आमवाते प्रवृद्धे च योगोऽयममृतोपमः ॥ ६८ ॥

गोरखमुंडी, गोखरू, वरनाकी जड, गिलोय और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करे इसमेंसे एक तोला चूर्ण लेकर काँजीके साथ पीवे, बढे हुए आमवातरोगपर यह उपाय अमृतकी समान है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अथ तृतीयालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं गुडूची वृद्धदारुकम् । पिप्पली त्रिवृता मुस्ता वरुणं सपुनर्नवम् । त्रिफला नागरं चेति सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६९ ॥ मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा । आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥ ७० ॥

गोरखमुंडी, गोखुरू, गिलोय, विधारा, पीपल, निसोत, नागरमोथा, वरना, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ इनका बारीक चूर्ण बनाकर दहीके पानीके साथ, तक्रके साथ, दूधके साथ अथवा मांसरसके साथ पीवे तो तत्काल आमवात नष्ट हो जाता है तथा संधियोंमें प्राप्त हुई सूजन भी दूर हो जाती है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ वैश्वानरचूर्णम् ।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वदेव तु । भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥ ७१ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः सूक्ष्मचूर्णीकृतं शुभम् । मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ ७२ ॥ पीतं जयत्यामवातं गुल्महृद्बस्तिजान्गदान् । प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनानाहं गुदजानि च ॥ ७३ ॥ विबन्धं जाठरान्रोगान्कटीवस्तिसमुत्थितान् । वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ७४

सेंधानिमक २ भाग, अजवायन २ भाग, अजमोद ३ भाग, सोंठ ४ भाग और हरड १२ भाग इन सबका बारीक चूर्ण बनाकर दहीके पानीके साथ और आरनालनामक काँजीके साथ, तक्रके साथ, घीके साथ अथवा गरम जलके साथ पीवे तो आमवात, गुल्म, हृदयकी पीडा, मूत्राशयकी पीडा, प्लीहा, ग्रन्थि, शूलादि, अफरा, बवासीर, मलबंध, उदरके रोग और कमरके तथा मूत्राशयके रोग सब नाश होते हैं । यह वैश्वानर चूर्ण वायुको योग्य मार्गमें संचार करानेवाला है ॥ ७१–७४ ॥

अथासीतकचूर्णम् ।

असीतकं भार्गधिका गुडूची श्यामा वराही गजकर्णशुण्ठी । समा धृताः कृत्स्नमिदं तु चूर्णं पिबेत्तदुष्णोदकमण्डयूषैः ॥ ७५ ॥ तक्रैः रसैर्मद्यसमस्तुभिर्वा यथेष्टचेष्टस्य च भोजनस्य । अबाहुकं गृध्रसिखञ्जवातं विश्वाचितूनीप्रतितूनिरोगान् । जंघामवातार्दितवातरक्तं कटीग्रहं गुल्मगुदामयं च । प्रकोष्ठकं पाण्डुगरोग्रशोफं हन्यादुरुस्तम्भमुदीर्णवेगम् ॥ ७६ ॥

विष्णुक्रान्ता, पीपल, गिलोय, निसोत, वाराहीकंद, एरंड और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उस चूर्णको गरम जलके साथ, मांडके साथ, यूषके साथ, तक्रके साथ, मांसके रसके साथ, मद्यके साथ अथवा दहीके पानीके साथ पिये । इसपर आहार विहार इच्छानुसार करे । इस चूर्णसे–अपबाहुक, गृध्रसी, खंज, विश्वाची, तूनी, प्रतितूनी, पिंडलीके रोग, आमवात, अर्दित, वातरक्त, कटिग्रह, गुल्म, बवासीर, क्रोष्टुशीर्ष, पांडुरोग, विष, उग्र सूजन और प्रबल वेगवाला ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अथ शुंठीधान्यकघृतम् ।

शुंठीनां षट्पलं पिष्टं धान्याकं द्विपलं तथा । चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७७ ॥ वातश्लेष्मामयान्हन्यादग्निवृद्धिकरं परम् । दुर्नामश्वासकासघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥

सोंठ २४ तोले और आठ तोले धनियां इनका कल्क बनाकर वह कल्क डालकर चौंसठ ६४ तोलेभर घी चौगुने जलमें डालकर पकावे तो शुंठीधान्यक घृत सिद्ध होता है । यह घी अग्निको अच्छे प्रकारसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दीपन करता है, बलको बढाता है, वर्णको उत्तम करता है और वायुसम्बन्धी रोग, कफसम्बन्धी रोग, बवासीर, श्वास और खांसी इन सब रोगोंको दूर करे है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ घृतसिद्धिः ।

पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे । दीपनार्थं मतिमता मस्तुना च प्रकीर्तितम् ॥ ७९ ॥ सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरं तच्चतुर्गुणम् । सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम् ॥ ८० ॥

जो पुष्टिके लिये बनावे तो इसको दूधमें पकाना चाहिये । मल तथा मूत्रके अवरोधके लिये बनावे तो इसको दहीसे पकावे । और अग्निको दीपन करनेके लिये बनावे तो बुद्धिमान् वैद्य इसको दहीके तोडके साथ पकावे । सोंठका कल्क डालकर चौगुनी सौवीरनामक काँजीमें घृतको पकावे तो शुंठीघृत सिद्ध होता है । यह घी अग्निको दीपन करनेमें उत्तम है और आमवातको नष्ट करनेका सहज उपाय है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथ शुंठीघृतम् ।

नागरक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् । चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेन जलेन वा ॥८१॥ वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम् । नागरं घृतमित्युक्तं कटीशूलामनाशनम् ॥ ८२ ॥

चौंसठ तोलेभर घीमें सोंठका कल्क डालकर उस घीको चौगुने सोंठके क्काथमें अथवा केवल पानीमें पकावे तो शुंठीघृत सिद्ध होता है । यह घी वात तथा कफको शमन करता है । अग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करता है और कटिग्रह तथा आमको दूर करे है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अथ कांजिकाद्यघृतम् ।

हिंगुं त्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च । कल्कान्कृत्वा तु पलिकान्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८३ ॥ आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् । शूलं विबन्धमानाहमामवातकटीग्रहम् । नाशयेद्ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ८४ ॥

हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, चव्य और सेंधानिमक इन प्रत्येकको एक एक तोला लेकर कल्क बनाकर चौंसठ तोलेभर घीको दो सौ छप्पन २५६ तोले काँजीमें पकावे तो कांजिकाद्यघृत सिद्ध होता है । यह घी मंदाग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करता है तथा शूल, मलबंध, उदरके रोग, अफरा, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणीदोष इनको नाश करे है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ शृंगवेराद्यघृतम् ।

शृङ्गवेरयवक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः । पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिरारनालं चतुर्गुणम् ॥ ८५ ॥ शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् । नाशयेद्ग्रहणीदोषमग्निसन्दीपनं परम् ॥८६॥

अदरख, जवाखार, पीपलामूल और पीपल इनका कल्क बनाकर चौगुनी आरनालनामक काँजीमें घृतको सिद्ध करे । इसको शृंगवेराद्यघृत कहते हैं । यह घी अग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करता है और शूल, मलबंध, अफरा, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणीदोष इन सबका नाश करे है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

पिबेद्बिन्दुघृतं वापि धान्वन्तरमथापि वा । महाशुण्ठीघृतं वापि आमवाते पुनःपुनः ॥ ८७ ॥ यत्किञ्चिल्लेखनं सर्पिर्दीपनं पाचनं च यत् । तत्सर्वमामवातेषु योज्यं वा मस्तु षट्पलम् ॥ ८८ ॥

आमवातमें बिंदुघृत अथवा धान्वन्तरघृत अथवा महाशुंठीघृत बारंबार पीना चाहिये । जो जो घी कफके उखाडनेवाले, अग्निको दीपन करनेवाले और आमको पाचन करनेवाले हैं उन सबका आमवातपर उपयोग करना चाहिये । अथवा २४ तोले मस्तुका उपयोग करे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथाजमोदादिचूर्णवटकौ ।

अजमोदमरिचपिप्पलीविडंगसुरदारुचित्रकशताह्वाः । सैन्धवं पिप्पलीमूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ ८९ ॥ शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य । पथ्यापलानि पंच च सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ९० ॥ समगुडवटकानदतश्चूर्णं वात्युष्णवारिणा पिबतः । नश्यन्त्यामानि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लजाः सर्वे रोगाः सुकष्टाश्च ॥ ९१ ॥ प्रतितूनी विश्वाची रोगाश्चान्येऽपि गृध्रसी चोग्रा । कटिपृष्ठगुदस्फुटनं चैवार्तिं जंघयोस्तीव्राम् ॥ ९२ ॥ श्वयथुश्च सर्वसन्धिषु ये चान्येऽत्यामवातसम्भूताः । सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ९३ ॥ क्षुब्दोधमरोगित्वं स्थिरयौवनमथ वलीपलितनाशम् । कुरुते च तथाभ्यासाद्गुणानथान्यांस्तथा सुबहून् ॥ ९४ ॥

अजमोद, मिर्च, पीपल, वायविडंग, देवदारु, चीता, सोया, सेंधानिमक और पीपलामूल ये प्रत्येक पदार्थ चार २ तोले लेवे, सोंठ ४० तोले लेवे, विधारा ४० तोले लेवे और हरड २० तोले लेवे, इन सब पदार्थोंको एकत्रित करके सबका चूर्ण कर उसमें बराबरका गुड मिलाकर बडे बनावे उन बडोंको सेवन करनेसे अथवा कुछेक गरम जलसे उस चूर्णको खानेसे जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे अन्धकारका नाश होता है उसी प्रकार इस औषधिसे आमवातसम्बन्धी समस्त दुःखदायक रोग नष्ट होते है । इसको सेवन करनेसे तूनी, प्रतितूनी, विश्वाची, अन्यान्य वातरोग, उग्र गृध्रसी, कमर, पीठ, गुदा और पिंडलियोंमें फोडने सरीखी पीडाका होना, सर्व सन्धियोंमें प्राप्त हुई सूजन और अन्यान्यभी आमसे तथा वातसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होते हैं । इस अजमोदादि औषधिका अभ्यास करनेसे सुख जाग्रत होता है । आरोग्यता प्राप्त होती है । यौवन स्थिर होता है । वली तथा पलित रोगोंका नाश होता है । यह अत्यंत गुणों करके युक्त है ॥ ८९–९४ ॥

अथ योगराजगुग्गुलुः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानीं कारवीं तथा । विडंगमजमोदां च जीरके सुरदारु च ॥ ९५ ॥ चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम् । त्रिफला मुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ ९६ ॥ तालीसपत्रं पत्रं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम् ॥ ९७ ॥ संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धं भाण्डे निधापयेत् । अतो मात्रां प्रयुंजीत यथेष्टाहारवानपि ॥ ९८ ॥ अग्निमान्द्यामवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानपि । प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥ ९९ ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा । वातरोगं जयत्येष सन्धिमज्जागतानपि ॥ १०० ॥

चीता, पीपलामूल, अजवायन, कलौंजी, वायविडंग, अजमोद, जीरा, काला जीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सेंधानिमक, कूठ, रासना, गोखरू, धनियाँ, त्रिफला, नागरमोथा, सोंठ, मिरच, पीपल, तज, खस, जवाखार, तालीसपत्र और तेजपत्र इनका बारीक चूर्ण बनावे और इस सब चूर्णकी बराबर गूगल लेकर घीमें खूब मर्दन करके चूर्णमें मिलावे । इस गूगलको घीके चिकने बासनमें भरके रख देवे । अग्निका बलाबल विचारकर इसकी मात्राको सेवन करे । और इसपे यथेच्छ भोजन करे । इससे मंदाग्नि, उदरके रोग, अफरा, बवासीर, आमवातादिरोग, कृमि, दुष्टव्रण, प्लीहा इन सब रोगोंका नाश होता है और अग्नि दीपन होती है, तेजकी वृद्धि होती है, बल बढता है, यह गूगल संधियोंमें तथा मज्जामें रहनेवाले वातरोगोंको दूर करता है ॥ ९५–१०० ॥

अथ प्रसारणीलेहः ।

प्रसारण्याढके क्वाथे प्रस्थो गुडरसो मतः । पक्वः पञ्चोषणरजोयुक्तः स्यादामवातहा १०१

दो सौ छप्पन २५६ तोलेभर प्रसारणीके क्वाथमें चौंसठ तोलेभर गुडका रस डालकर पकावे, फिर उसमें पीपल, पीपलामूल, सोंठ, चीता और चव्य इनका चूर्ण डालकर मिलाकर सेवन करे तो आमवातका नाश होता है ॥ १०१ ॥

अथ खंडशुंठी ।

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम् । क्षीरं द्विप्रस्थसंयुक्तं खंडस्यार्द्धं शतं पचेत् । ॥ १०२ ॥ व्योषत्रिजातकद्रव्यात्प्रत्येकं च पलं पलम् । निदध्याच्चूर्णितं तत्र खादेदग्निबलं प्रति ॥ १०३ ॥ आमवातप्रशमनं बलपुष्टिविवर्द्धनम् । बल्यमायुष्यमोजस्यं वली-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पालितनाशनम् । आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥ १०४ ॥

सोंठ ३२ तोले, घी ८० तोले, दूध १२८ तोले और खाँड २० तोले इनका पाक करके उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, तज, तेजपात और इलायची प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर चूर्ण बनाकर मिला देवे तो खंडशुंठी सिद्ध होती है । इस खंडशुंठीको अग्निके बलानुसार सेवन करे तो आमवात शांत होती है, बल तथा पुष्टि बढती है, आयुष्यकी वृद्धि होती है, ओज बढता है और उत्तम सौभाग्य प्राप्त होता है ॥ १०२–१०४ ॥

रसोनपिंडः ।

पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा । हिंगु त्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ॥ १०५ ॥ शतपुष्पा निशा कुष्ठं पिप्पली मूलचित्रकौ । अजमोदा यवानी च धान्याकं चापि बुद्धिमान् ॥१०६॥ प्रत्येकं च पलं चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । घृतभाण्डे दृढे चैव स्थापयेद्दिनषोडशम् ॥ १०७ ॥ प्रक्षिप्य तैलमानीं च प्रस्थार्द्धं कांजिकस्य च । खादेत्कर्षप्रमाणं तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ १०८ ॥ आमवाते रक्तवाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंस्थिते । अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गरेषु च । सोन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥१०९

लहसुन ४०० तोले, तिल १६ तोले, हींग ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, जवाखार ४ तोले, सजी ४ तोले, पंचलवण ४ तोले, सोया सौंफ ४ तोले, हलदी ४ तोले, कूठ ४ तोले, पीपलामूल ४ तोले, चीता ४ तोले, अजमोद ४ तोले, अजवायन ४ तोले और धनियाँ ४ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके उसमें ३२ तोले तेल और ३२ तोले काँजी डालकर घीके चिकने उत्तम मजबूत बासनमें भरके सोलह दिनतक रख देवे । इसमेंसे नित्य एक तोलाभर खाय और जल तथा सहतका अनुपान करे । इससे आमवात, वातरक्त, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, अग्निकी मंदता, खाँसी, श्वास, विष, उन्माद, वातभग्न, शूल और कृमि इन सबका नाश होता है ॥ १०५–१०९ ॥

अथ प्रसारणीतैलम् ।

प्रसारण्या रसे सिद्धं तैलमैरण्डजं पिबेत् । सर्वदोषहरं चैव कफरोगहरं परम् ॥ ११० ॥

प्रसारणीके रससे पकाया हुआ अंडीका तेल पिया जाय तो सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं और विशेष करके कफके रोग नष्ट होते हैं ॥ ११० ॥

द्विपञ्चमूलाद्यतैलम् ।

द्विपञ्चमूलीनिर्यासफलदध्यम्लकांजिकैः । तैलं कट्यूरुपार्श्वार्तिकफवातामयान्ग्रहान् । हन्ति वस्तिप्रदानेन करोत्यग्निबलं महत्१११

दशमूल, गोंद, जायफल, दही और खट्टी काँजी इनसे पकाये हुए तेलकी पिचकारी लगावे तो कमरका दर्द, पसलियोंका शूल, कफके रोग, वातरोग इन सबका नाश होता है तथा अग्निका बल बढता है ॥ १११ ॥

अथ बृहत्सैन्धवाद्यतैलम् ।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यवानिका । स्वर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ ११२ ॥ वचाऽजमोदा सरणी पौष्करं मधुकं कणा । एतान्यर्द्धपलांशानि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ११३ ॥ प्रस्थमेरंडतैलस्य प्रस्थं तु शतपुष्पजम् । कांजिकं द्विगुणं दत्त्वा मस्तुं च द्विगुणं तथा ॥ ११४ ॥ एतत्सम्भृत्य सम्भारं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम् ॥ ११५ ॥ पानाभ्यञ्जनवस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम् । वातार्तिवंक्षणे शस्तं कटीजानूरुसन्धिजे ॥ ११६ ॥ शूले हृत्पार्श्वजे तद्वद्वृद्धे श्लेष्मणि पीडिते । बाह्यायामार्दितानाहैरंत्रवृद्धिनिपीडिते अन्यांश्चानिलजान्रोगान्नाशयत्याशु देहिनाम् ॥ ११७ ॥

सेंधानिमक, हरड, रास्ना, सोया, अजवायन, सजी, मिरच, कूठ, सोंठ, कालानिमक, विरियाञ्जरनिमक, वच, अजमोद या पसरन अंडकी जड, पोखरमूल, मुलैठी और पीपल ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर खूब पीसकर कल्क बनावे, फिर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६४ चौंसठ तोले तेल, ६४ चौंसठ तोले सोया, १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले कांजी और १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले दहीका तोड इन सबको एकत्र करके उसमें पहिला कल्क डालकर उस तेलको कोमल अग्निसे धीरे २ पकावे तो बृहत्सैन्धवाद्यतैल सिद्ध होता है। पीनेमें, अभ्यंग (मालिश) करनेमें और वस्तिकर्ममें इस तेलका उपयोग करे तो आमवात अच्छे प्रकारसे नष्ट हो जाता है। यह तेल अग्निके बलको अत्यन्त बढाता है। वातसे उत्पन्न हुई वंक्षणकी पीडा, कटिग्रह, घुटनोंकी पीडा, जंघाकी वायु, संधियोंकी पीडा, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, कफकी वृद्धि, बाह्यायाम, अर्दित, अफरा, अंत्रवृद्धि तथा इसके सिवाय और भी मनुष्योंके वातसम्बन्धी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ११२–११७ ॥

अथ निरूहवस्तिः।

स्वल्पप्रसारणीतैलं तैलं वा सैन्धवादिकम्।
दशमूलाद्यतैलेन वस्तिदानं प्रशस्यते॥११८॥
तैलस्य द्विपलं दद्यात्कांजिकस्य चतुःपलम्।
दशमूलरसं मूत्रं पृथक्पञ्च पलानि तु ॥११९॥
वचा मदनवाट्या वा शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः।
पिप्पल्यतिविषामुस्तारास्नाकट्फलपौष्करैः
॥ १२० ॥ अक्षांसिकैश्च तत्सर्वं मन्थयीत विचक्षणः। प्रस्थार्हं प्रथमं देयो वस्तिर्निरभिशंकितः ॥ १२१ ॥ द्वितीये च तृतीये च वर्जयेत्प्रसृतद्वयम्। सर्ववातविकारेषु मेहेषु वृषणामये ॥ १२२ ॥ कुक्षौ हृत्पृष्ठपार्श्वेषु जानुजंघाकटीग्रहे। विवन्धानाहरोगेषु शर्कराश्मरिपीडिते ॥ १२३ ॥ मन्नविश्लिष्टगात्रेषु पिच्चितेषु क्षतेषु च। एतन्निरूहवत्प्राज्ञो निरायासो महागुणः ॥ १२४ ॥

लघुप्रसारणीतैलकी, अथवा सैंधवाद्यतैलकी, अथवा दशमूलाद्यतैलकी पिचकारी लगानी आमवातमें हितकारी है। इस पिचकारीमें तेल आठ तोले, काँजी सोलह तोले, दशमूलका रस बीस तोले और गोमूत्र बीस तोले भरे फिर इन सब पदार्थोंको एकत्र मिलाकर वच, मैनफल, खिरैंटी, सोया, कूठ, सेंधानिमक, पीपल, अतीस, नागरमोथा, रासना, कायफल और अंडकी जड यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर पहिला मिश्रित किया हुआ तैल आदि औषधियोंका मथन करे। फिर निःशंक होकर बत्तीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे। दूसरी वार तथा तीसरी वार चौबीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे, सर्व प्रकारके वातविकार, प्रमेह, वृषणकी पीडा, कुक्षिरोग हृदयरोग, पीठकी पीडा, पसलियोंकी पीडा, जानुगतवायुकी पीडा, जंघागत वायुकी पीडा, कमरका दर्द, विबन्ध, अफरा, शर्करारोग, अश्मरीरोग, भग्नशरीर और पिच्चित हुए व्रणमें यह निरूहवस्ति अत्यंत गुणकारक है और थोडा परिश्रम करनेवाली है ॥ ११८–१२४ ॥

अथामवातेऽपथ्यम्।

दधिमत्स्यगुडक्षीरं पोतकी माषपिष्टकम्।
वर्जयेदामवातार्तो मांसमानूपसम्भवम्
॥ १२५ ॥ अभिष्यन्दकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छिलाः। वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥ १२६ ॥

आमवातसे पीडित मनुष्य दही, मछली, गुड, दूध, पोईका शाक, उडदोंके बडे और अनूपदेशके जीवोंका मांस इन सबका त्यागकर देवे, जो पदार्थ अभिष्यन्दी है, जो पदार्थ पिच्छिल और भारी हैं, उन सबको आमवातसे पीडित मनुष्य अवश्य त्याग देवे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ मध्यमरास्नादिकाथः।

रास्नैरण्डशतावरीसहचरीदुःस्पर्शवासामृतादेवाह्वातिविषाभयाधनशटीशुण्ठीकषायः कृतः। पीतः सोरुबुतैल एष विहितः सामे सशूलेऽनिले। कट्यूरुत्रिकपृष्ठकोष्ठजठरक्रोडेषु चामार्तिजित् ॥ १२७ ॥

रासना, अंडकी जड, सतावर, कटसरैया, जवासा, अडूसा, गिलोय, देवदारु, अतीस, हरड, नागरमोथा कचूर और सोंठ इनका काथ बनाकर अंडीका तेल डालकर पीनेसे आमसहित तथा शूलसहित वायु, कटिग्रह, ऊरुस्तम्भ, पीठकी पीडा, पीठका रह जाना, कोठेकी पीडा और उदरकी पीडा जो कि आमसे उत्पन्न होती है सब नष्ट हो जाती हैं ॥ १२७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ महारास्नादिक्वाथः ।

रास्ना वातारिमूलं च वासकं च दुरालभम् । शटीदारुबलामुस्तनागरातिविषाभयाः ।१२८। श्वदंष्ट्रा व्याधिघातश्च मिसिधान्यपुनर्नवाः । अश्वगन्धाऽमृता कृष्णा वृद्धदारः शतावरी ॥ १२९ ॥ वचा सहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम् । समभागान्वितैरेतै रास्नाद्विगुणभागिकैः ॥ १३० ॥ कषायं पाययेत्सिद्धमष्टभागावशेषितम् । शुण्ठीचूर्णसमायुक्तमाभाद्येन युतं तथा ॥ १३१ ॥ अलम्बुषादिसंयुक्तमजमोदादिसंयुतम् । यथादोषं यथाव्याधि प्रक्षेपं कारयेद्भिषक् ॥ १३२ ॥ सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जागतेषु च । आनाहेषु च सर्वेषु सर्वगात्रानुकम्पने ॥ १३३ ॥ कुब्जके वामने चैव पक्षाघाते तथार्दिते । जानुजंघास्थिपीडासु गृध्रस्यां च हनुग्रहे ॥ १३४ ॥ प्रशस्तं वातरक्ते स्यादूरुस्तम्भे तथार्शसि । विश्वाचीगुल्महृद्रोगविषूचीक्रोष्टुशीर्षके ॥ १३५ ॥ अंत्रवृद्धौ श्लीपदे च योनिशुक्रामये तथा । पुंसां मेढ्रगते रोगे स्त्रीणां वन्ध्यामये तथा ॥ १३६ ॥ योषितां गर्भदं मुख्यं नास्ति किंचिदतः परम् । सर्वेषां पाचनानां तु श्रेष्ठमेतद्धि पाचनम् । महारास्नादिकं नाम प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ १३७ ॥

रासना, अण्डकी जड, अडूसा, जवासा, कचूर, खिरैंटी, नागरमोथा, अतीस, हरड, गोखुरू, अमलतास, सौंफ, धनियाँ, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधारा, सतावर, वच, कटसरैया, चव्य, कटेरी और कटाई इन सब औषधियोंमें रास्ना दो भाग लेवे और सब औषधि एक एक भाग लेकर इनका अष्टावशेष क्वाथ बनावे इसमें वैद्य दोष तथा व्याधिके अनुसार शुण्ठीचूर्ण, अथवा आभाद्यचूर्ण अथवा अलम्बुषादिचूर्ण अथवा अजमोदादिचूर्ण डाले, इस क्वाथको पीनेसे समस्त वातरोग, सन्धिवात, मज्जागतवात, सर्व प्रकारका आनाह, सर्व अंगोंका कांपना, कुब्जकवात, वामनवात, पक्षाघात, अर्दितवात, जानुगत वायु, जंघागत वायु, अस्थियोंमें प्राप्त हुई वायुकी पीडा, गृध्रसी वात, हनुग्रह, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, बवासीर, विश्वाची, गुल्म, हृदयरोग, विषूचिका, क्रोष्टुशीर्ष, अन्त्रवृद्धि, श्लीपदरोग, योनिरोग, शुक्ररोग, लिंगगतरोग और स्त्रियोंके वंध्यारोग नष्ट होते हैं । स्त्रियोंको गर्भ देनेवाला इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है । सर्वप्रकारके क्वाथोंमें यह उत्तम पाचन है । यह महारास्नादि प्रजापतिने स्वयं कहा है ॥ १२८–१३७ ॥

अथ रास्नादिदशमूलक्वाथः ।

रास्नाविश्वविडंगानि रुबूकं त्रिफला तथा । दशमूलं पृथक् श्यामा क्वाथो वातामयापहः ॥ १३८ ॥ अर्द्धावभेदके त्वाढ्ये चार्दिते वातखंजके । नेत्ररोगे शिरःशूले ज्वरापस्मारयोस्तथा । मनोभ्रंशे च विविधे कथितं च शुभप्रदम् ॥ १३९ ॥

रासना, सोंठ, वायविडंग, एरण्ड, त्रिफला, दशमूल और निसोत इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातसम्बन्धी रोग, आधाशीशी, ऊरुस्तम्भ, अर्दित, खञ्ज, नेत्रके समस्तरोग, मस्तकका शूल, ज्वर, अपस्मार और अनेक प्रकारके मनसम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

इति आमवाताधिकारः संपूर्णः ।

अथ पित्तव्याध्यधिकारः ।

तत्र पित्तव्याधिविप्रकृष्टसंनिकृष्टनिदानम् ।

कट्वम्लोष्णविदाहितीष्णलवणक्रोधोपवासातपस्त्रीसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः । मध्ये चापि हि भोजनस्य जरता भुक्तेन मध्यक्षणे मध्याह्ने रजनी निदाघशरदोः पित्तं करोत्यामयान् ॥ १ ॥ मद्यादिभिः इत्यादिशब्देन दधिमत्स्यमाषतिलातसीकांजिकादीनि संगृह्यन्ते तीक्ष्णं राजिकादि । मध्ये चापिहि भोजनस्य यावत् कालेन भुंक्ते तस्य कालस्य मध्यमभागे । जरता भुक्तेन भुक्तस्य जरणकालमध्ये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्यन्दिने त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य मध्यांशे तथा रात्रेः मध्यमेंऽशे ।

चरपरे वा तीखे, खट्टे, गरम, दाहकारक, तीक्ष्ण, नमकीन वा खारी पदार्थोंके खानेसे, क्रोध करनेसे, उपवास लंघनादि करनेसे, संताप अथवा धूपको सेवन करनेसे, स्त्रीप्रसंग करनेसे, तृषाको रोकनेसे, भूँखको मारनेसे, कसरत दंड अथवा परिश्रमके काम करनेसे, मदिरा पीनेसे, दही, मछली, उडद, तिल, अलसी तथा कांजी आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे, भोजन करते समयके मध्य कालमें, भोजन पचनेके मध्यकालमें, दिनके मध्यभागमें, रात्रिके मध्यभागमें, ग्रीष्मऋतु और शरदृतुमें पित्त कुपित होकर रोगको उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

अथ पित्तरोगाः ।

अकालपलितं नेत्ररक्तत्वं तस्य पीतिमा । तद्वन्मूत्रस्य पीतत्वं मलस्यापि च पीतता । ॥ २ ॥ नखानामामरक्तत्वं तेषामपि च पीतता । दंतानां चापि पीतत्वं पीतत्वं वपुषस्तथा ॥ ३ ॥ तमसो दर्शनं चापि तथा च वदनाम्लता । उच्छ्वासस्योष्णता चापि धूमोद्गारस्तथैव च ॥ ४ ॥ भ्रमः क्लमस्तथा क्रोधो दाहो भेदसमन्वितः । तेजो द्वेषश्च शीतेच्छा ह्यतृप्तिररतिस्तथा ॥ ५ ॥ भक्षितस्य विदाहश्च जठरानलतीक्ष्णता । रक्तप्रवृत्तिर्विड्भेदः पुरीषस्योष्णता तथा ॥ ६ ॥ मूत्रोष्णता मूत्रकृच्छ्रं शुक्राल्पत्वं तनूष्णता । स्वेदस्य चापि दौर्गन्ध्यं देहप्रावरणं तथा । ॥ ७ ॥ शरीरस्यावसादश्च पाकश्च वपुषस्तथा । चत्वारिंशदमी पित्तव्याधयो मुनिभिर्मताः ॥ ८ ॥ एषां चिकित्सा तु स्वप्रकरणे बोद्धव्या ।

विनाही समय बालोंका पकना अर्थात् सफेद हो जाना, नेत्र लाल हों, नेत्र पीले हों, मूत्र पीला हो, विष्ठा पीला हो, नखोंमें गुलाबीपन, नखोंमें पीलापन, दांतोंमें पीलापन, शरीर पीला हो, अन्धकारदर्शन, मुखमें खट्टापन, श्वासका गरम होना, मुखमेंसे धुएँकी तरह डकारका आना, भ्रम, ग्लानि, क्रोध, दाह, मेद, प्रकाशसे द्वेष, शीतकी इच्छा, अतृप्ति, अरति, भोजनका विदाहपाक होना, जठराग्निकी तीक्ष्णता, रुधिरका निकलना, दस्तोंका आना, विष्ठाका गरम होना, मूत्रका गरम होना, मूत्रकृच्छ्र, वीर्यकी अल्पता, शरीरका गरम रहना, पसीनेमें दुर्गन्धका होना, देहका फटना, शरीरमें पीडा और शरीरका पकना यह चालीस रोग मुनियोंने पित्तव्याधि कही है । इन पित्तव्याधियोंकी चिकित्सा इन इन व्याधियोंके प्रकरणमें कही सो उस उस प्रकरणमें समझलेनी चाहिये ॥ २-८ ॥

इति पित्तव्याध्यधिकारः संपूर्णः ।

अथ श्लेष्मव्याध्यधिकारः ।

तत्र श्लेष्मव्याधिसंनिकृष्टविप्रकृष्टनिदानम् ।

गुरुमधुररसादिस्निग्धमंदोदराग्निद्रवदधिदिननिद्राशीतनिश्चेष्टितानि । प्रथमदिवसभागे भुक्तमात्रे वसन्ते भवति हि कफरोगो रात्रिभागेऽपि चाद्ये ॥ १ ॥ मधुररसादि इत्यादिशब्देन अम्ललवणौ गृह्येते । निश्चेष्टितं कायिकव्यापाराकरणम् । प्रथमदिवसभागे त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य आद्यभागे । भुक्तमात्रे भुक्तस्य पाककालस्य त्रिधा विभक्तस्य प्रममकाले कफरोगो भवति ।

भारी पदार्थोंके खानेसे, मधुररसको सेवन करनेसे, खट्टे रसको भक्षण करनेसे, स्निग्ध पदार्थोंको सेवन करनेसे, जठराग्निकी मन्दतासे, द्रव (जलदुग्धादि) पदार्थोंसे, दहीको सेवन करनेसे, दिनमें सोनेसे, शीतसे और कामकाज आदि शरीरके व्यापार नहीं करनेसे अर्थात् खाली बेकाम बैठे रहनेसे, दिनके प्रथम भागमें, भोजन पचनेके पहिले समयमें, तथा रात्रिके पहिले भागमें कफके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

अथ कफरोगाः ।

प्रथमं मुखमाधुर्यं तथैव मुखलिप्तता ॥ २ ॥ मुखप्रसेकश्च तथा निद्राधिक्यं तथैव च । कंठे घुर्घुरता चापि कटुकांक्षोष्णकामिता ॥ ३ ॥ बुद्धिमांद्यमचैतन्यमालस्यं तृप्तिरेव च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निमान्द्यं मलाधिक्यं मलशैत्यं तथैव च ॥ ४ ॥ मूत्राधिक्यं मूत्रशौक्ल्यं शुक्राधिक्यं तथैव च । स्तैमित्यं गौरवं शैत्यमेत एव हि विंशतिः । योगतो रूढितः प्रोक्ता मुनिभिः श्लैष्मिका गदाः ॥ ५ ॥ एषां चिकित्सा तु स्वप्रकरणे बोद्धव्या ।

मुखमें मधुरता, मुखमें कफका लिप्तसा रहना, मुखसे थूकका निकलना, निद्राकी अधिकता, कंठमें घरघराहट, तीखे पदार्थोंकी इच्छा, उष्णपदार्थोंकी इच्छा, बुद्धिकी मंदता, अचैतन्यता, चपलताका घट जाना, आलस्य, तृप्ति, अग्निकी मंदता, विष्ठाकी अधिकता, विष्ठाकी शीतलता, मूत्रकी अधिकता, मूत्रका श्वेत होना, वीर्यकी अधिकता, शरीरको भीजे वस्त्रसे ढके हुएकी माफिक मालूम होना, शरीरका भारीपन और शरीरका शीतल रहना यह बीस व्याधि मुनियोंने श्लेष्मव्याधि कहीं है । यद्यपि इनके सिवाय और भी कफके रोग होते हैं तथापि योगरूढि रीतिके अनुसार इनही व्याधियोंमें ' श्लेष्मव्याधि ' यह शब्द प्रवर्त्त होता है । इन व्याधियोंकी चिकित्सा अपने अपने प्रकरणोंमें कही है इस कारण उनही उन प्रकरणोंमें समझनी चाहिये ॥ २–५ ॥

इति श्लेष्मव्याध्यधिकारः संपूर्णः ।

अथ वातरक्ताधिकारः ।

तत्र प्रथमवातरक्तनिदानम् ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ ॥ १ ॥ कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ २ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नातिजागरैः । प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् । स्थूलानां सुखिनां चापि प्रकुप्येद्वातशोणितम् । हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं सविदाहाशनस्य ॥ ३ ॥ कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च दुष्टं शीघ्रं पादयोश्रीयते तु । तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्रोच्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ ४ ॥ क्षारो यवक्षारादि । अजीर्णभोजनैः अजीर्णे भोजनैः अतिमात्रभोजनैरित्यर्थः । क्लिन्नादीनि मांसविशेषणानि । शुष्कमातपे शोषितम् । अम्बुजं मत्स्यादि । मांसमानूपं गौडादि पूर्वदेशजम् । पिण्याकं तिलखलिः । मूलकं प्रसिद्धमेव । निष्पावः [वोडा] शाकं पत्रशाकम् । आदिशब्देन वृन्ताकादीनां फलशाकादीनां फलं गृह्यते । दोषरहितमपि मांसं वातशोणितं प्रकोपयेत् । शीतादिषु मांसं विशेषतो वातशोणितं प्रकोपयेत् । आरनालसौवीरशुक्तानि सन्धानभेदाः तक्रं चतुर्थांशजलयुक्तं वस्त्रपूतं दधि । सुरा सन्धानभेदः । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । अध्यशनम् ' अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते ' । अतिजागरो निशि । प्रायशः बाहुल्येन सुकुमाराणां अल्पतरकायव्यापाराणाम् । अथ च मिथ्याहारविहारिणाम् । अल्पाहारविहारिणां स्थूलानां सुखिनां रक्तवृद्ध्या । हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतः यतः वायुर्वर्द्धते रुधिरं च अधो गच्छति । हस्त्यादय उपलक्षणानि । पद्भ्यामपि चलतः । अश्नतश्च विदाह्यन्नम् । विदाहि निष्पावकुलत्थसर्षपशाकादिः । सविदाहाशनस्य सविदाहि अशनं यस्य । भुक्ते विदग्धे तदुपरि भुञ्जानस्य इत्यर्थः । अध्यशनमुक्तमप्येतद्वचनं विदग्धं जीर्णम् । भोजनस्य विशेषतो हेतुत्वम् । पश्चात् वातशोणितं प्रकुप्यति इति अन्वयः । एतेषां कारणानां मध्ये केनचिद्वायुः केनचिद्रक्तं केनचिदुभयमपि प्रकुप्येत् । अथ सम्प्राप्तिमाह कृत्स्नेत्यादि–पूर्वोक्तैर्हेतुभिः कृत्स्नं समस्तम् । अधोगतम् पादयोः चीयते संचितं भवति, तत् रुधिरम् दूषितेन स्वहेतुभिर्वायुना सम्पृक्तं मिलितम् वातरक्तम् उच्यते । ननु च एतस्य सम्प्राप्तिरुक्ता सुश्रुतेन शीघ्रं रक्तं दुष्टिमापाति तच्च वायो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मार्गं संरुणद्ध्याशु वातम् । क्रुद्धोऽत्यर्थं मार्गरोधात्स वायुरत्युद्रिक्तं दूषयेद्रक्तमाशु ॥ ५ ॥ अत्र प्रथमं रक्तस्य दुष्टितो रक्तवातमिति व्यपदेष्टुमुचितं भवति । तत्राह—तत् प्राबल्यादिति । तस्य वातस्य दोषत्वेन प्राधान्यात् वातरक्तमिति व्यपदिश्यते ।

नमकीन, खट्टे, चरपरे, तीखे, जवाखारादि खारी, चिकने और गरम ऐसे पदार्थोंका भोजन करनेसे, अत्यंत भोजन करनेसे, सडा हुआ तथा धूपमें सूखा हुआ ऐसा मछलियोंका तथा गौड आदि पूर्व देशके जीवोंका मांस खानेसे, तिलोंकी खलको खानेसे, मूली, कुलथी, उडद, लोविया, पत्रशाक, वैंगन आदि फल शाक और मांसको खानेसे, ईख, दही, आरनाल, सौवीर, शुक्त, तक्र, सुरा और आसवको सेवन करनेसे, दूधके साथ मछली आदि विरुद्ध आहार करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, क्रोध करनेसे, दिनमें सोनेसे और अत्यन्त रात्रिमें जागनेसे प्रायः मिथ्याहार विहार करनेवाले सुकुमार (कोमल, कृश, दुर्बल), स्थूल शरीरवाले और बैठे रहकर सुख भोगनेवाले, हाथी घोडेपर चढकर जानेवाले, तथा बहुत मार्ग चलनेवाले, लोबिया, कुलथी, सरसों आदि शाकको भक्षण करनेवाले और भोजनके विदग्ध पाक होनेपर भोजन करनेवाले मनुष्योंके वायु तथा रुधिर प्रकुपित होते हैं । इन सब कारणोंमें किसी कारणसे वायु कुपित होती है, किसी कारणसे रुधिर प्रकुपित होता है और किसी कारणसे दोनों कुपित होते हैं । ऊपर कहे हुए कारणोंसे सम्पूर्ण रुधिर तत्काल बिगड जाता है और वह बिगडा हुआ रुधिर नीचे जाकर दोनों पांवोंमें एकत्रित हो जाता है । यह रुधिर कारणोंसे दूषित होकर वायुके साथ मिल जाता है और इसमें वायुकी प्रबलता होती है इस कारण इसको वातरक्त कहते हैं । शंका—" रुधिर तत्काल बिगड जाता है और वह शीघ्रगतिवाला रुधिर वायुके मार्गको तुरंत रोक देता, मार्गके रोकनेसे अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुए रुधिरको तत्काल दूषित करता है ।" यह सुश्रुतके वचनमें प्रथम रुधिरका बिगडना कहा है, इस कारण इस रोगको ' रक्तवात ' ऐसा कहना ठीक था किन्तु ' वातरक्त ' ऐसा नाम क्यों कहा ? समाधान—दोषोंके कारणोंसे इस रोगमें वायुको प्राधान्यता है इस कारण यह रोग वातरक्त कहा जाता है ॥ १–५ ॥

१ निर्विकार मांस भी वायु तथा रुधिरको कुपित करता है और सडा हुआ तथा धूपमें सुखाया हुआ तो विशेष करके वात और रक्तको कुपित करता ही है ।

अथ वातरक्तपूर्वरूपम् ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्श्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् । सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिडिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजंघोरुकट्यंसहस्तपादांगसन्धिषु । निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ ७ ॥ कण्डूः सन्धिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति चासकृत् । वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥८॥ घर्मागमनमत्यर्थं भवति न वा सर्वथा भवति एतच्च व्याधिमहिम्ना कुष्ठवद्बोद्धव्यम् । क्षतेऽतिरुक् यदि क्षतं स्यात्तदा तत्र अतिरुक् । सदनं सुप्तिः । अंगानां पिडिकाप्रादुर्भावः । जान्वादिषु निस्तोदः पीडाविशेषः वैवर्ण्यं त्वक्कान्तिक्षयः ।

जब वातरक्त होनेको होता है तब पसीना अत्यंत आता है अथवा किञ्चिन्मात्र भी नहीं आता, शरीरमें कृशता, स्पर्शका ज्ञान नष्ट हो जाता है, व्रण होय तो उसमें अत्यंत पीडा होती है, संधियोंमें शिथिलता, आलस्य, अंगोंमें जडता, फुडिये, फुंसियोंका निकलना, जानु, जंघा, ऊरु, कटि, हाथ, पाँव और सम्पूर्ण अंगोंकी संधियोंमें शस्त्र छेदने सरीखी पीडा होती है तथा अंग फडकते हैं, मेद बढ जाता है, भारीपन, ग्लानि, खुजली, संधियोंमें व्यथा, बारंबार दाह होकर शांत होना, त्वचा (चमडी) की कांतिका नष्ट हो जाना और अंगोंमें चकत्ते पड जाते हैं । पसीनेका अत्यंत होना अथवा किञ्चिन्मात्र भी नहीं होना यह व्याधिके प्रभावसे होता है ॥ ६–८ ॥

अथ वाताधिक्यवातरक्तलक्षणम् ।

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलं स्फुरणतोदनम् । शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावता वृद्धिहानयः ॥ ९ ॥ धमन्यंगुलिसन्धीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थुसुप्तयः ॥ १० ॥ तत्र पादयोः शूलादिकम् । यत आह सुश्रुतः–" स्पर्शोद्विग्नौ तोदभेदप्रशोफौ स्वापोपेतौ वातरक्तेन पादौ । " इति । तथा शोथस्य रौक्ष्यादिकं वृद्धिहानयश्च विज्ञेयाः । सुप्तिः स्पर्शाज्ञता ।

वातरक्तमें वायुकी अधिकता होय तो शूल होता है, अंगोंका फडकना, व्यथा, सूजनमें रूक्षता, तथा कालापन और कुछेक कालापन होता है, सूजन बढती है, घटती है, नाडियोंमें तथा अंगुलियोंकी संधियोंमें संकोच होता है, अंग रह जाते हैं, अत्यंत व्यथा होती है, शीतपर द्वेष होता है, शरीर अकड जाय, कंप और स्पर्शका ज्ञान नष्ट हो जाता है । शूल तथा फडकना आदि पाँवमेंही होता है ऐसा जानना, कारण यह है कि " वातरक्तमें दोनों पाँव स्पर्शसे उद्वेगको प्राप्त होते हैं और दोनों पाँवोंमें व्यथा, भेदन, सूजन तथा जडता होती है । " ऐसा सुश्रुतने कहा है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ रक्ताधिक्यवातरक्तलक्षणम् ।

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते । स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः । ॥ ११ ॥ रक्तेऽधिक इत्यनुवर्तनीयम् । एवं वक्ष्यमाणपित्तादिषु इति एतच्च आरम्भकरक्ताद्रक्तान्तरं बोद्धव्यम् । रक्तमपि रक्तान्तरदूषकं भवति । यदुक्तं दुष्टरक्तलक्षणम्–पित्तवद्रक्तेन अतिकृष्णं चेति । अतिरुक् तोदः अतिरक्तादौ यत्र सः शोथः चिमचिमायते । चिमचिमेति कण्डूभेदः स्पर्शप्रियेति यावत् । चुहचुहा इति लोके तद्युक्तः । क्लेदसमन्वितः क्लेद आर्द्रता तद्युक्तः ।

वातरक्तमें रुधिरकी अधिकता होय तो अत्यंत व्यथायुक्त, तोडने सरीखी पीडा सहित, लालरंगकी खुजली और क्लेदसंयुक्त सूजन होती है । इसमें चिमचिम ऐसा होता है और स्निग्ध पदार्थ तथा रूक्ष पदार्थोंसे यह सूजन शांत नहीं होती है । इसमें जो रुधिरकी अधिकता होती है वह रुधिर वातरक्तको उत्पन्न करनेवाले रुधिरसे अलग समझना चाहिये क्योंकि रुधिर भी अन्य रुधिरको दूषित करता है ॥ ११ ॥

अथ पित्ताधिक्यवातरक्तलक्षणम् ।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा । स्पर्शासहत्वं रुग्दाहः शोथः पाको मृशोष्णता ॥ १२ ॥ पित्ते अधिके विदाहः विशेषेण दाहः विदाहादयश्च पादयोरेव बोद्धव्याः । यत आह सुश्रुतः–" पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशोथौ मृदू च । " पादाविति शेषः । संमोहः आतुरस्य । स्वेदः पादयोः । मूर्च्छा पादयोः । समुच्छ्रायः शोथ इति यावत् । न तु मूर्च्छा मोहः संमोहस्य उक्तत्वात् ।

वातरक्तमें जो पित्तकी अधिकता होय तो अत्यंत दाह होता है, रोगी बहुत बेहोश हो जाता है, पसीने आते हैं, मूर्च्छा होती है, मद होता है, तृषा लगती है, स्पर्शको नहीं सहार सक्ता, व्यथा, शरीरमें दाह, सूजन पकती है और बहुत गरमी होती है। अत्यन्त दाहका होना और किसीके स्पर्शको नहीं सहारना इत्यादि धर्म पांवमें होते हैं क्योंकि " पित्तसे और रुधिरसे दोनों पांव अत्यन्त दाहयुक्त, अत्यन्त गरम, लाल, सूजनयुक्त और मृदुतायुक्त होते हैं । " ऐसा सुश्रुतने कहा है ॥ १२ ॥

अथ कफाधिकद्विदोषत्रिदोषाधिकवातरक्तलक्षणम् ।

कफे स्तैमित्यगुरुता सुप्तिः स्निग्धत्वशीतता । कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वसर्वलिंगं च संकरे ॥ १३ ॥ कफे अधिके स्तैमित्यं शरीरस्यार्द्रचर्मावगुण्ठितत्वमिव । गुरुतादयः पादयोरेव । यत आह सुश्रुतः–" कण्डूमन्तौ श्वेतशीतौ सशोथौ पीनौ स्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे तु रक्ते । " पादाविति शेषः । अधिकद्विदोषम् अधिकत्रिदोषं च तदाह–द्वन्द्वसर्वलिंगं च संकरे द्वित्रिदोषसंसर्गे ।

वातरक्तमें जो कफकी अधिकता होय तो शरीर गीले चमडेसे ढके हुएकी माफिक मालूम होता है, भारीपन होता है, जडता होती है, स्निग्धता होती है, शीतता होती है, कुछ कुछ खुजली चलती है और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यथा होती है। दो दोषोंकी अधिकता होय तो दोनों दोषोंके लक्षण होते हैं। भारीपन तथा जडता आदि पांवमें होती है ऐसा जानना, कारण यह है कि, रुधिर जब कफसे दूषित होती है तो पांवोंमें खुजली, सुफेद और शीतल सूजन युक्त कठिन और स्तब्ध हो जाते हैं, ऐसा सुश्रुतमें कहा है ॥ १३ ॥

अथ वातरक्तप्रसर्पणप्रकारः।

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि। आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ १४॥ आखोर्मूषकस्य आखोर्विषमिवेत्यनेन मन्दविसर्पत्वं बोधितम्। देहमनुसर्पति अप्रतिक्रियाणाम्।

पाँवोंकी जडमें और किसी समय हाथोंकी जडमेंसे उत्पन्न होकर जिस प्रकार चूहेका विष धीरे धीरे शरीरमें फैलता है उसी प्रकार कुपित हुआ वातरक्त चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके शरीरमें धीरे धीरे फैलता है ॥ १४ ॥

अथ वातरक्तोपद्रवाः।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः। मूर्च्छाचाऽमन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः। ॥ १५ ॥ हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः। अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ १६ ॥ मांसकोथो मांसगलनम्। मूर्च्छा तदङ्गसमुच्छ्रायः। अमन्दरुक् पीडाबाहुल्यम्। प्रवेपकः कम्पः। प्रवेपनं प्रवेपः ततः स्वार्थे कः।

निद्राका नहीं आना, अरुचि, श्वास, मांस गल गलकर गिरना, शिरमें व्यथा, मूर्च्छा, कम दीखना, तृषा, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी, पंगुता, विसर्प (चकत्तोंका होना), पकना, सुई चुभोने सरीखी पीडा, भ्रम, क्लम (ग्लानि), अंगुलियोंका टेढा हो जाना, फूटना, दाह, मर्मस्थानोंमें पीडा और अर्बुद (गांठ) यह सब वातरक्तके उपद्रव जानने॥ १५–१६

अथ वातरक्तासाध्ययाप्यसाध्यता।

एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन चापि यत्। अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम्। ॥ १७ ॥ मोहेनैकेनेति वचनम् अस्वप्नादिभिः समस्तैरसाध्यत्वं बोधयति। एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम्। त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ १८॥ नवं संवत्सरात् अर्वाचीनं तत्साध्यम्। आजानु स्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्तुतं च यत्। उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः। वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ १९ ॥ आजानु पद्भ्यां जानुपर्यन्तं यद्भवति तदसाध्यं स्यात्। स्फुटितं यच्च त्वङ्मात्रे शीतेन वै किंचिद्विदीर्णम् प्रभिन्नम्, अधिकविदीर्णम्। प्रस्तुतं वहत्।

उपरोक्त सब उपद्रव वातरक्तमें होयँ तो उसको असाध्य जानना अथवा केवल एक मोहही होय तो भी उसको असाध्य जानना और जो इन उपद्रवोंमें थोडे बहुत उपद्रव होयँ तो उस वातरक्तको याप्य समझना और जो कोई उपद्रव न होयँ तो उसको साध्य समझना। जो वातरक्त एक दोषवाला और एक वर्षका होय तो उसको साध्य जानना। दो दोषवालेको याप्य जानना। और तीनों दोषयुक्त अथवा जिसमें सब उपद्रव होयँ तो उसको असाध्य जानना। जो वातरक्त पावोंसे लेकर घुटनोंतक फैले उसको असाध्य जानना। जिस प्रकार त्वचा फट-जाती है उसी प्रकार जिस वातरक्तमें त्वचा फट जाय उसको असाध्य जानना। जो वातरक्त अत्यन्त फट गया हो अथवा बलक्षय या मांसक्षय आदि उपद्रवोंसे संयुक्त होय तो उसको असाध्य जानना। जो वातरक्तको उत्पन्न हुए एक वर्ष हुआ हो उसको याप्य जानना ॥ १७–१९ ॥

अथ वातरक्तचिकित्सा।

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत्। अल्पाल्पं रक्षयेद्वायुं यथादोषं यथाबलम् ॥ २० ॥ रक्षयेत् वायुं यथावायुर्न वर्द्धते तथा रक्तं हरेदित्यर्थः उग्रांगदाहतोदेषु जलौकोभिर्विनिर्हरेत् ॥ २१ ॥ शृंग तु वै चिमिचिमा कण्डूरुग्वेपनान्वितम्। प्रच्छन्नेन शिराभिर्वा देशादेशान्तरं व्रजेत् ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्हरेन्निष्काशयेच्चिमिचिमा चुहचुहा इति लोके । प्रच्छन्नं पच्छना इति लोके । व्रजेदिति रक्तविशेषणम् । अंगे म्लाने तु न स्रावयं रक्षेद्वातोत्तरं च यत् ॥ २३॥ गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कंपवायुशिरामयान् । ग्लानिमन्यांश्च वातोत्थान्कुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ २४ ॥ खञ्जादीन्वातरोगांश्च मृत्युं चानवशेषितम् । कुर्यात्तस्मात्प्रमाणेन स्निग्धाद्रक्तं विनिर्हरेत् ॥ २५ ॥

प्रथम वातरक्तवाले रोगीको स्नेहपान आदिसे स्निग्ध करके उसके दोष और बलानुसार थोडा २ रुधिर वा खार निकलवावे । किन्तु रुधिरको निकलवानेमें वायुकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये अर्थात् जिससे वायु न बढे उस रीतिसे रुधिर निकलवाना चाहिये । घोर दाह होता होय अथवा सुई चुभोने सरीखी पीडा होती होय तो जोंक लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये । चमचमाटी, खुजली, व्यथा तथा कम्प होय तो सिंगी लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये । और जो वातरक्त शरीरके एक प्रदेशमेंसे दूसरे प्रदेशमें जाता होय तो पच्छन्ना लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये । शरीरमें ग्लानि होय तो रुधिर नहीं निकलना चाहिये और जो काढे तो जिसमें वायुकी वृद्धि न होय ऐसी रीतिसे निकालना चाहिये । रुधिरके क्षय होनेसे वायुकी वृद्धि होय तो गम्भीर सूजन, अकडपन, कम्प, शिराओंमें पीडा, ग्लानि और अन्यान्य भी वातसम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं, रुधिर जो योग्यरीत्यनुसार अवशेष न रहे तो खंजतादिवातरोगोंको उत्पन्न करता है, तथा मरणको भी करता है, इस कारण वातरक्तरोगीको स्निग्ध करके उसके शरीरमेंसे प्रमाणके समान रुधिर निकलवावे ॥ २०--२५ ॥

विरेच्यः स्नेहयित्वादौ स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः । रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमसकृद्धरितकर्म च । नहि वस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ २६ ॥ बाह्यमालेपनाभ्यंगपरिषेकोपनाहनैः । विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ २७ ॥ दिवास्वप्नं ससन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा । कटूष्णगुर्वभिष्यन्दि लवणाम्लौ च वर्जयेत् ॥ २८ ॥ पुराणा यवगोधूमा नीवाराः शालिषष्टिकाः । भोजनार्थे रसार्थे तु विष्किराः प्रतुदा हिताः ॥ २९ ॥

वातरक्त रोगीको प्रथम स्निग्ध करके स्नेहयुक्त विरेचन (दस्तावर) औषधि अथवा रूक्षता को मल विरेचन औषधि देकर मलरहित करे । वातरक्त रोगीके वारंवार पिचकारी लगाना भी उत्तम है । पिचकारीके समान वातरक्तका अन्य उपाय नहीं है । जो वातरक्त बाहर होय तो आलेपन, अभ्यंग, सेचन तथा औषधियोंको बांधकर चिकित्सा करनी चाहिये और जो वातरक्त गम्भीर होय तो रेचन, निरूहवस्ति, तथा स्नेहपानसे चिकित्सा करे । वातरक्तरोगी दिनमें सोना, धूपका सेवन, दंड कसरत आदि, मैथुन, कडवे रसवाले पदार्थ, भारी पदार्थ, अभिष्यन्दी पदार्थ, नमकीन पदार्थ और अम्लरसके पदार्थोंको त्याग देवे। वातरक्तरोगीके भोजनके लिये पुराने जौ, पुराने गेहूँ, नीवार (तीनी, पुनेरा), लाल शालिधान तथा सांठीधान हितकारी है । और विष्किर (मुरगा आदि) तथा प्रतुद (तोता चिडे आदि) जातिके पक्षियोंका मांसरस हितकारी है ॥ २६--२९ ॥

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः सकुलत्थकाः । यूषार्थं बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते ॥ ३० ॥ सुनिषण्णकवेत्राग्रकाकमाची शतावरी । वास्तुकोपोदिकाशाकं शाकं सौवर्चलं तथा । घृतमांसरसैर्भृष्टं शाकं सात्म्याय दापयेत् ॥ ३१ ॥ सुनिषण्णः चांगेरीसदृशः चतुष्पत्रशाकः स जले स्थले भवति, सुसुनि इति लोके धवली चिल्मी इति क्वचित् ।

वातरक्तरोगीको यूषके लिये अरहर, चने, मूंग, मसूर और कुलथी इनके बहुत घीवाले यूष हितकारी हैं । जिनको शाक सात्म्य है ऐसे वातरोगियोंको शिरिआरी, वेतका अग्रभाग, पुनर्नवा, शतावर, बथुआ, पोई और ब्राह्मी इनका शाक घीमें तथा मांसरसमें भूनकर सेवन करना चाहिये ॥३०॥३१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्तिभिः । ॥ ३२ ॥ सुखोष्णैरुपनाहैश्च वातोत्तरमुपाचरेत् । हितो गोधूमचूर्णश्च च्छागक्षीरघृताप्लुतः ॥ ३३ ॥

घी, तेल, चरबी और मज्जा इनका पान, अभ्यंग, बस्तिकर्म और सुखोष्ण उपनाह इनसे वातोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा करनी चाहिये । बकरीके घीमें अथवा दूधमें गेहूँके आटेको उबालकर उसका लेप करनेसे वातरक्तशमन होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

लेपस्तद्वत्तिला भृष्टाः पिष्टाः पयसिनिर्वृताः । क्षीरपिष्टातसीलेपो वर्द्धमानफलेन वा ॥ ३४ ॥ उभे शताह्वे मधुकं बलां च प्रियालकं चापि कसेरुकं च । घृतं विदारीं च सितोपलां च कुर्यात्प्रदेहं पवने सरक्ते ॥ ३५ ॥

तिलोंको भूनकर पीस लेवे फिर दूधमें पकाकर उसका लेप करे अथवा अलसीको दूधमें पीसकर उसका लेप करे अथवा अंडीको पीसकर लेप करना हितकारी है । सौंफ, काशनी, मुलैठी, खिरैटी, चिरौंजी, कसेरू, विदारीकंद और खांड इनको घीमें पीसकर लेप करनेसे वातरक्त शमन होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

रास्ना गुडूची मधुकं बले द्वे सजीवकं सर्षभकं पयश्च । घृतं सिद्धं मधुशेषयुक्तं रक्तानिलार्तिं प्रणुदेत्प्रदेहः ॥ ३६ ॥ वासा गुडूची चतुरंगुलानामेरण्डतैलेन पिबेत्कषायम् । क्रमेण सर्वागजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ३७ ॥

रासना, गिलोय, दो प्रकारकी खिरैटी, जीवक, ऋषभक, दूध और घी इनको एकत्र पकावे और उसमें मोम मिलाकर उसका गाढा लेप करनेसे वातरक्तकी पीडा शमन होती है । अडूसा, गिलोय और अमलतास इनका क्वाथ बनाकर उसमें अंडीका तेल डालकर पीनेसे सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न हुआ वातरक्तका विकार अनुक्रमसे सर्व प्रकारसे नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

दशमूलीशृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम् । परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ३८

वाताधिक्य वातरक्तमें दशमूलसे पकाये हुए दूधको पान करे और सुहाते सुहाते गरम घीका सेचन करे, इससे तत्काल शूल शमन होता है ॥ ३८ ॥

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलाऽमृतसाधितम् । क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ ३९ ॥

कडवे परवल, कुटकी, सतावर, त्रिफला और गिलोय इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे दाहयुक्त वातरक्त शमन हो जाता है ॥ ३९ ॥

त्रिवृद्विदारीक्षुरकक्वाथो वातास्रनाशनः । अमृता कफवातघ्नी कफमेदोविशोषिणी ॥ ४० ॥ वातरक्तप्रशमनी कण्डूवीसर्पनाशिनी । गुडूच्याः स्वरसः कल्कश्चूर्णं वा क्वाथ एव च । प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥ ४१ ॥

निसोत, विदारीकंद और गोखुरू इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातरक्तका नाश होता है । गिलोय—कफ और वायुको हरनेवाली है । कफ तथा मेदको सुखानेवाली है । वातरक्तको शमन करनेवाली है । और खुजली तथा विसर्पको हरनेवाली है इस लिये गिलोयके स्वरसको, कल्कको, चूर्णको अथवा क्वाथको बहुत दिनोंतक सेवन करे तो वातरक्तसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अमृतानागरधान्यककर्षत्रितयेन पाचनं सिद्धम् । जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ ४२ ॥

गिलोय १ तोला, सौंठ १ तोला और धनियाँ १ तोला इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातरक्त, आमवात और सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ४२ ॥

वत्सादन्युद्भवः क्वाथः पीतो गुग्गुलुमिश्रितः । समीरणसमायुक्तं शोणितं सम्प्रणाशयेत् ॥ ४३ ॥ तिस्रोऽथ वा पञ्च गुडेन पथ्या जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायम् । तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णमाजानुभिन्नं च्युतमप्यवश्यम् ॥ ४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गिलोयका क्वाथ बनाकर उसमें गूगल डालकर पीनेसे वातरक्तका नाश होता है। तीन अथवा पांच हरडोंका चूर्ण बनाकर गुडमें मिलाकर खाय और उसके ऊपर गिलोयका क्वाथ पिये तो घुटनोंतक भेदा हुआ और स्रवता हुआ भयंकर वातरक्त अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्द्राक्षालुङ्गरसेन वा । त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिकाः कोलसम्मिताः ॥ ४५ ॥ भक्षयेन्मधुनालोड्य शृणु कुर्वन्ति यत्फलम् । पादस्फोटं महाघोरं स्फुटत्सर्वाङ्गसञ्चयम् । तत्सर्वं नाशयत्याशु साध्यं चैव सशोणितम् ॥ ४६ ॥ माहिषं नवनीतं तु बलिना परिमिश्रितम् । गोमूत्रमिश्रितं कृत्वा क्षीरेण लवणेन च ॥ ४७ ॥ तदेकत्र समालोड्य वह्निना भावयेच्छनैः । गात्रमुद्वर्तयेत्तेन देहस्फुटनशान्तये ॥ ४८ ॥

गूगल और गिलोय इनको दाख और बिजौरे नींबूके रसमें अथवा त्रिफलेके रसमें बेरकी बराबर गोली बनाकर उनको सहतमें मिलाकर चाटनेसे महाघोर और सम्पूर्ण अंगोंको तोडनेवाला पादस्फोटरोग और वातरक्त तत्काल नष्ट हो जाता है। यह औषधि गुग्गुलुवटिका कही जाती है । आमलेसारगंधकको भैंसके माखन, गोमूत्र, दूध और सेंधेनिमकके साथ मिलाकर धीरे धीरे अग्निसे गरम करके शरीरमें लगानेसे अंगोंका फटना शांत होता है ॥ ४५–४८ ॥

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं पित्तं सिताढ्या मधुना कफं च । वातासृगुग्रं रुबुतैलमिश्रा शुण्ठ्यामवातं शमयेद्गुडूची ॥ ४९ ॥

गिलोय घीके साथ सेवन की जाय तो वायुको नष्ट करती है । गुडके साथ सेवन की जाय तो मलबंधको दूर करे है । खांडके साथ सेवन की जावे तो पित्तको शमन करती है । सहतके साथ सेवन की जाय तो कफ नष्ट होता है । अंडीके तेलके साथ सेवन की जाय तो उग्रवातरक्त नष्ट होता है । और सोंठके क्वाथके साथ सेवन की जाय तो आमवातको शमन करती है ॥ ४९ ॥

सिंहास्यपञ्चमूलीछिन्नरुहैरण्डगोक्षुरक्वाथः । एरण्डतैलरामठसैन्धवचूर्णान्वितः पीतः ॥ ५० ॥ प्रशमयति वातरक्तं तथामवातं कटीशूलम् । मूत्रपुरीषविबन्धं ब्रध्नविकारं सुदुर्वारम् ॥ ५१ ॥

अडूसा, पंचमूल, गिलोय, एरंड और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें अंडीका तेल, हींगका चूर्ण और सेंधेनिमकका चूर्ण डालकर पीनेसे वातरक्त, आमवात, कटिशूल, मूत्र तथा मलका अवरोध और दुःसाध्य ब्रध्न रोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

गन्धर्वहस्तवृषगोक्षुरकामृतानां मूलं बलेक्षुरकयोश्च पचेत्तु धीमान् । वातासृगाशु विनिहन्ति चिरप्ररूढमाजानुगं स्फुटितमूर्द्वगतं तु धीमान् ॥ ५२ ॥

एरंड, अडूसा, गोखरू, गिलोय, खिरैटी और गोखुरू इनके जडका क्वाथ बनाकर पीनेसे बहुत दिनोंका घुटनोंतक पहुँचा हुआ, फटा हुआ और ऊपरको चलता हुआ उग्र वातरक्त तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ५२ ॥

कफपित्तशमनं कण्डूविसर्पनाशनम् । वातरक्तप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ॥ ५३ ॥

गुडके साथ घीको मिलाकर सेवन करनेसे कफ और पित्तको शमन करता है, कण्डू और विसर्पका नाश करता है, वातरक्तको शमन करता है और हृदयको भी हितकारी ॥ ५३ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन वा ५४

वर्द्धमानपिप्पलीको सेवन करनेसे अथवा हरडके चूर्णको गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्त शांत होता है ॥ ५४ ॥

कोकिलाक्षामृताक्वाथे पिबेत्कृष्णां यथाबलम् । पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् ॥ ५५ ॥

तालमखाना तथा गिलोय इनका क्वाथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे इक्कीस २१ दिनमें वातरक्त नष्ट हो जाता है । परन्तु अग्निके बलानुसार इसपर पथ्य भोजन करना चाहिये ॥ ५५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मधुकाद्विगुणं तैलं तैलादाजं पयो भवेत्। तद्यथाग्निबलं पेयं वातरक्तरुजापहम्॥ ५६॥

मुलैठी, मुलैठीसे दुगुना तेल और तेलसे दुगुना बकरीका दूध इन सबको मिलाकर अग्निके बलानुसार पिये तो वातरक्त नष्ट हो जाता है॥ ५६॥

अगस्तिपुष्पचूर्णेन माहिषं जनयेद्दधि। तदुत्थनवनीतेन देहजं स्फुटनं जयेत्। त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठा वचा कटुकरोहिणी॥ ५७॥ वत्सादनी दारुनिशा कषायो नवकार्षिकः। वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमण्डलम्॥ ५८॥ कण्डूकपालिका कुष्ठं पानादेवापकर्षति॥ पञ्चरात्रिकमाषेण कषायो नवकार्षिकः॥ ५९॥ किञ्चैवं साधिते क्वाथे योग्या मात्रा प्रदीयते। कर्षादौ तु पलं यावद्द्यात्षोडशिकं जलम्॥ ६०॥ ततस्तु कुडवं यावदष्टादशगुणं जलम्। चतुर्गुणमतश्चोर्ध्वं यावत्प्रस्थादिकं भवेत्॥ ६१॥

अगस्त्यके फूलोंका चूर्ण बनाकर भैंसके दूधमें डालकर दही जमावे फिर उसमेंसे माखन निकालकर उपयोग करे तो शरीरका फटना दूर हो जाता है। हरड, बहेडा, आमला, नीम, मजीठ, वच, कुटकी, गिलोय और दारुहलदी यह प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर उसका क्वाथ बनाकर पिये तो वातरक्त, कोढ, पामा, रक्तमंडल, कण्डू और कपालकुष्ठ तत्काल नष्ट होता है। सोलह सोलह मासेका एक तोला होता है। यहां पांच पांच रत्तीका एक एक मासा जानना। इसको नवकार्षिक क्वाथ कहते हैं, इसमेंसे योग्य मात्रानुसार पिये। क्वाथ करनेके लिये एक तोलेसे लेकर चार तोलेतक औषधिमें सोलह गुना जल डालना चाहिये इसके ऊपर सोलह तोले औषधियोंमें अठगुना जल डालना चाहिये और इसके उपरान्त चौंसठ तोलेतक औषधिमें चौगुना पानी डालना चाहिये॥ ५७-६१॥

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैः सेकैः सवस्तिभिः। लेपनं शाल्मलीकल्कमविक्षीरेण संयुतम्॥ ६२॥ रक्तोत्तरं क्षीरघृतं मधुकोशीरवारिभिः। सेचनं चात्र कर्तव्यमविक्षीरैः क्षणंक्षणम्॥ ६३॥ सहस्रशतधौतेन घृतेन रुधिरोत्तरे। लेपनं सुष्ठु शीतेन घृतसर्जरसेन वा॥ ६४॥ शीतैर्निर्वापणैश्चापि रक्तपित्तोत्तरं जयेत्॥ ६५॥

विरेचन, घी, तथा दुग्धपान, सेचन और पिचकारी लगाना तथा सेमलके चूर्णको भेडके दूधमें लेप करना इनसे वातरक्त नष्ट होता है। वातरक्तमें रुधिरकी अधिकता होय तो दूध, घी, मुलैठीका पानी और खसका पानी इनसे अथवा भेडके दूधसे क्षण क्षणभरमें सेचन करे। सौ वार अथवा हजार वार घृतको धोकर उस घीसे अथवा घी और राल इनको मिलाकर लेप करनेसे रुधिरकी अधिकतावाला वातरक्त नष्ट हो जाता है, रुधिरकी तथा पित्तकी अधिकता वातरक्तमें होय तो उसको भी शीतल पदार्थोंसे सेचन करना चाहिये॥ ६२-६५॥

सरागे सरुजे दाहे रक्तं विस्राव्य लेपयेत्। तिलाः प्रियालं मधुकं बिसमूलं च वेतसम्। सघृतं पयसा पिष्टं प्रलेपाद्दाहरोगनुत्॥६६॥

लाल, दाह और व्यथायुक्त वातरक्त होय तो रुधिरको निकलवाकर पश्चात् तिल, चिरौंजी, मुलैठी, कमलकी जड और बेंत इनको दूधमें पीसकर घी डालकर गाढा लेप करे तो दाहकी पीडा शांत हो जाती है॥ ६६॥

पित्तोत्तरे तु काश्मर्यद्राक्षारग्वधचन्दनैः॥ ६७॥ मधुकक्षीरकाकोलीयुक्तैः क्वाथं सुशीतलम्। शर्करां मधुसंयुक्तां वातरक्ते पिबेन्नरः॥ ६८॥

वातरक्तमें पित्तकी अधिकता होय तो कुम्भेरके फल, दाख, अमलतास, लाल चन्दन, मुलैठी और क्षीरकाकोली इनका क्वाथ बनाकर उसको अच्छे प्रकारसे शीतल करके उसमें खांड तथा सहत डालकर पिये॥ ६७॥ ६८॥

धारोष्णं मूत्रसंयुक्तं क्षीरं दोषानुलोमनम्। पिबेद्वा सत्रिवृच्चूर्णं पित्तरक्तावृतानिले६९॥

मूत्रके साथ धारोष्ण दूधमें निसोतका चूर्ण डालकर पीनेसे पित्ताधिक्य वातरक्त नष्ट होता है, यह दोषोंको अनुलोमन करनेवाला है॥ ६९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षीरेणैरण्डतैलं वा प्रयोगेण पिबेन्नरः । बहुदोषे विरेकार्थं जीर्णे क्षीरौदनाशनः ॥७०॥

अधिक दोषवाले मनुष्य रेचन (जुलाब) के लिये दूधके साथ अंडीका तेल पिये और जीर्ण होनेपर दूध भातका भोजन करे ॥ ७० ॥

पटोलं त्रिफला भीरुर्गुडूची कटुरोहिणी । क्वाथः पित्ताधिके शस्तः शर्करामधुसंयुतः ॥ ७१ ॥

कडवे परवल, सतावर, गिलोय और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर उसमें खांड तथा सहत डालकर पीनेसे पित्ताधिक्य वातरक्त शमन हो जाता है ॥ ७१ ॥

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् । वमनं मृदुनात्यर्थं स्नेहसेको विलंघनम्॥७२॥

वातरक्तमें कफकी अधिकता होय तो कडवी औषधियोंके द्वारा पकाये हुए घृतको पिये, वारंवार विरेचन लेवे, मृदुरीतिसे कुछेक वमन करे, स्नेहपान करे, लंघन करे और सुहाते सुहाते गरम पदार्थोंसे सेचन करे ॥ ७२ ॥

कोष्णाः सेकाश्च शस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे । तैलमूत्रसुराशुक्तैः परिषेकाः सदा हिताः ॥ ७३ ॥

तेल, मूत्र, मद्य और शुक्तका पानी इनका सेचन करना हितकारी है । सफेद सरसोंका कल्क बनाकर उसका उत्तम रीतिसे गाढा लेप करनेसे भी पीडा शांत हो जाती है ॥ ७३ ॥

गौरसर्षपकल्केन प्रदेहो वा रुजापहः ।

अथवा पीली सरसोंका कल्क करके किया हुआ लेप पीडाको नष्ट करता है ॥

शिग्रुः सवरुणकल्को धान्याम्लेनानिलार्तिजिल्लेपात् । भवति न वेति विकल्पो न विधेयः सिद्धयोगेऽस्मिन् ॥ ७४ ॥

सैंजना और वरना इनको धान्याम्ल नामक काँजीमें पीसकर लेप करनेसे वातरक्तकी पीडा शमन हो जाती है । यह सिद्ध योग है, इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ७४ ॥

कल्कः श्लेष्मोत्तरे लेपो वाजिगन्धानिलोद्भवः । लेपः सर्षपनिंबार्कहिंस्राक्षारातिलैर्हितः ॥ ७५ ॥ श्रेष्ठः सक्तुघृतक्षारकार्पित्थत्वग्भिरेव च ।

असगन्ध और तिल इनका कल्क बनाकर लेप करनेसे कफाधिक्य वातरक्त नष्ट हो जाता है । सरसों, नीम, आक, वालछड, जवाखार और तिल इनका लेप करनेसे कफाधिक्य वातरक्त शमन हो जाता है । सत्तू, घी, जवाखार और कैथकी छाल इनको पीसकर लेप करनेसे कफाधिक्य वातरक्त शमन होता है॥७५॥

मसूरशिग्रोस्तद्बीजं हितं धान्याम्लसंयुतम् । मुहूर्तालिप्तमम्लैश्च सिंचेद्वातकफोत्तरे ॥७६॥ मुस्तामलकनिशाभिः क्वथितं तोयं समाक्षिकं पेयम् । जयति सदागतिरक्तं सकफं वा सततयोगेन ॥ ७७ ॥

मसूरकी दाल और सैंजिनेके बीज इनको धान्याम्ल नामक कांजीके साथ पीसकर इसका दो घडीतक लेप करे फिर खट्टे पदार्थोंसे सेचन करे तो वायुकी तथा कफकी अधिकतावाला वातरक्त शमन होता है । नागरमोथा, आमले और हलदी इनका क्वाथ बनाकर सहत डालकर नित्य पीनेका अभ्यास करे तो केवल वातरक्त अथवा कफाधिक्य वातरक्त शमन होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

हरिद्रामृतकक्वाथं मधुना मधुरीकृतम् । पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं वातरक्ते कफाधिके ॥ ७८ ॥

हलदीका तथा गिलोयका क्वाथ अथवा त्रिफलेका क्वाथ सहत डालकर पीनेसे कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होता है ॥ ७८ ॥

हरीतकीं वा तक्रेण पाययेदुदकेन वा । गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् । प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते वातकफोत्तरे ॥ ७९ ॥ अमृता कटुका यष्टी शुंठीकल्कं समाक्षिकम् ॥८०॥ गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातशोणितम् । धात्रीहरिद्रामुस्तानां कषायं वा समाक्षिकम् ॥ ८१ ॥

तक्रके साथ अथवा जलके साथ हरडका चूर्ण सेवन किया जाय तो कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होता है । घरका धुआँ, वच, कूठ, सोया, हलदी और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दारुहलदी इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे वाताधिक्य और कफाधिक्य वातरक्तका शूल नष्ट हो जाता है । गिलोय, कुटकी, मुलैठी और सोंठ इनका कल्क बनाकर सहत मिलाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होता है । अथवा आमले, हलदी और नागरमोथेका क्वाथ पिये तो परमहितकारी है ॥ ७९–८१ ॥

अथ लांगलीगुटिका ।

लांगल्यास्त्वमृतातुल्यं कन्दमुद्धृत्य यत्नतः । योजयेत्त्रिफलालौहरजस्त्रिकटुकैः समैः॥८२॥ गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्द्राक्षाल्लंगरसेन वा । त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिकाः कोलसंमिताः । ॥ ८३ ॥ भक्षयेन्मधुनालोड्य शृणु कुर्वंति यत्फलम् । पादस्फुटितं दुर्भग्नं जानुप्राप्तं च यद्भवेत् ॥ ८४ ॥ यच्च देहोद्गतं रक्तं यच्चासाध्यं प्रकीर्तितम् । ध्रुवंत्येता भक्ष्यमाणस्य प्रबलं वातशोणितम् ॥ ८५ ॥

लाङ्गली गुटिका—कलिहारीका कंद यत्नपूर्वक लाकर और उस कंदकी बराबर गिलोय लेवे तथा हरड, बहेडा, आमला, लोहचूर्ण, सोंठ, मिरच और पीपल यह समान भाग मिला देवे, फिर गूगल अथवा दाखके या बिजौरेके रससे अथवा त्रिफलेके रससे बेरकी समान गोली बनावे, इन गोलियोंको सहतमें मिलाकर खाय तो प्रबल वातरोग, पादस्फोट, दुर्भग्न घुटनोंतक प्राप्त हुआ, असाध्य और शरीरमेंसे रुधिर निकलता हुआ ये सब दूर होते हैं ॥ ८२–८५ ॥

अथ बलाघृतम् ।

बलामतिबलां मेदामात्मगुप्तां शतावरीम् । काकोलीं क्षीरकाकोलीं रास्नां मृद्वीं च पेषयेत् ॥ ८६ ॥ घृतं चतुर्गुणं क्षीरं तैः सिद्धं वातरक्तनुत् । हृत्पांडुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥ ८७ ॥

खिरैटी, कंघी, मेदा, कौंछ, सतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रासना और दाख इनका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे । यह घृत वातरक्त, हृदयकी पीडा, पांडुरोग, विसर्प, कामला और दाहको दूर करे है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

अथापरपिंडतैलम् ।

बलास्थिरानागबलागुडूचीशतावरीकल्ककषायसिद्धम् । तैलं विदध्यादनुवासनेषु तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णम् ॥ ८८ ॥

खिरैटी, पृश्निपर्णी, गंगेरन, गिलोय और सतावर इनके कल्क और क्वाथसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलकी पिचकारी लगावे तो प्रबल वातरक्त नष्ट होता है ॥ ८८ ॥

अथ पारूषकघृतम् ।

त्रायन्तिका चामलकी द्विकाकोली शतावरी । कसेरुका कषायेण कल्कैरेभिः पचेद्घृतम् ॥ ८९ ॥ उभे पारूषके द्राक्षाकाश्मर्यससुरद्रुमान् । पृथग्विदार्याः स्वरसं तथा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ९० ॥ एतदायोजितं सर्पिः पारूषकमिति स्मृतम् । वातरक्ते क्षते क्षीणे विसर्पे पैत्तिके ज्वरे ॥ ९१ ॥

त्रायमाणा, आमले, काकोली, क्षीरकाकोली, सतावर और कसेरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें दोनों प्रकारके फालसे, दाख, कुम्भेरके फल तथा देवदारु इनका कल्क डालकर विदारीकंदके स्वरससे घृतको चौगुने दूधमें पकावे तो पारूषक घृत सिद्ध होता है । इस घृतका उपयोग करनेसे वातरक्त, क्षत, क्षीणता, विसर्प तथा पित्तज्वर नष्ट होता है ॥८९–९१ ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे । क्षीरतुल्यं घृतं सिद्धं वातशोणितनाशनम्॥९२॥

सतावरका कल्क डालकर सतावरके चौगुने स्वरसमें दूधकी बराबर घी डालकर पकावे तो शतावरीघृत सिद्ध होता है । इस घृतका उपयोग करनेसे वातरक्त नष्ट होता है ॥ ९२ ॥

अथर्षभकघृतम् ।

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिकाजीवकैः समैः । सिद्धं त्वर्षभकं सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् । ॥ ९३ ॥ अत्र क्षीरं चतुर्गुणम् ।

गोरखमुंडी, क्षीरकाकोली, वंशलोचन और जीवक यह सब औषधि समान भाग लेकर कल्क बनाकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस कल्कको डालकर चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे। इसको 'ऋषभक' घृत कहते हैं। यह घी वात-रक्तको नष्ट करे है ॥ ९३ ॥

अथ गुडूचीघृतम्।

गुडूचीक्काथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं श्रृतम्। हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ ९४ ॥

गिलोयका क्काथ और कल्क डालकर चौगुने दूधमें घीको पकाकर सेवन करे तो वह घी वातरक्त तथा दुस्तर कोढको भी दूर करे है ॥ ९४ ॥

अथ द्वितीयं गुडूचीघृतम्।

क्षीरं स्नेहसमं दद्याच्चतुर्भिश्च चतुर्गुणम्। एक-द्वित्रिद्रवैर्द्रव्यैः कुर्यात्स्नेहाच्चतुर्गुणम् ॥९५॥ अमृतायाः कषायेण कल्केन च महौषधात्। मृद्वग्निना घृतं सिद्धं वातरक्तहरं परम्। ॥ ९६ ॥ आमवाताढ्यवातादीन्कृमिकुष्ठ-व्रणानपि। अर्शांसि गुल्मांश्च तथा नाश-येदाशु योजितम् ॥ ९७ ॥

गिलोयका क्काथ और सौंठका कल्क डालकर मृदु अग्निसे पकाया हुआ घी वातरक्तको विशेष करके दूर करता है और आमवात तथा ऊरुस्तम्भादि वातरोग, कृमि, कोढ, व्रण, बवासीर तथा गुल्मको भी दूर करे है ॥ ९५–९७ ॥

अथ तृतीयं गुडूचीघृतम्।

अमृतास्वरसविपक्वं सर्पिस्तत्कल्कसाधितं पीतम्। अपहरति वातरक्तमुत्तानं चाव-गाढं च ॥ ९८ ॥

गिलोयके स्वरसमें गिलोयके कल्कसे घृतको पकाकर सेवन करे तो अत्यंत बढा हुआ वातरक्त नष्ट होता है ॥ ९८ ॥

अथ चतुर्थं गुडूचीघृतम्।

अमृतायाः पलशतं जलद्रोणावशेषितम्। घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कल्कादष्टौ पलानि च ॥ ९९ ॥ चतुर्गुणेन पयसा वातासृ-क्कुष्ठनाशनम्। कामलापांडुरोगघ्नं प्लीहकास-ज्वरापहम् ॥ १०० ॥

गिलोय चार सौ ४०० तोले भर लेकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें क्काथ बनावे, फिर इस क्काथमें ३२ तोले गिलोयका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घी पकावे। यह चतुर्थ गुडूची घी वात-रक्त, कोढ, कामला, पांडुरोग, प्लीहा, खाँसी और ज्वरको दूर करे है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ पंचमं गुडूचीघृतम्।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं बला। वासारग्वधवृश्चीवदेवदारुत्रिकंटकम् ॥१०१॥ कटुका रोहिणी कृष्णा काश्मर्यस्य फलानि च। रास्नाक्षुरकगन्धर्ववृद्धदारधनोत्पलैः। ॥ १०२ ॥ कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पि-प्रस्थं विपाचयेत्। धात्रीरसः समो देयो वारित्रिगुणसंयुतः ॥ १०३ ॥ सम्यक्सिद्धं च विज्ञाय भोज्ये पानं च शस्यते। बहु-दोषोत्थितं वातरक्तेन सह मूर्च्छितम्। ॥ १०४ ॥ उत्तानं चापि गंभीरं त्रिकं जंघोरुजानुकम्। क्रोष्टुशीर्षमहाशूले आम-वाते सुदारुणे ॥ १०५ ॥ दाहरोगोपसृष्टस्य वेदनां चातिदुस्तराम्। मूत्रकृच्छ्रमुदावर्तं प्रमेहं विषमज्वरान् ॥ १०६ ॥ एतान्सर्वा-न्निहंत्याशु वातपित्तकफोत्थितान्। सर्व-कालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्द्धनम्। अग्निभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ १०७ ॥

गिलोय, मुलैठी, दाख, त्रिफला, सोंठ, खिरैटी, अडूसा, अमलतास, सफेद पुनर्नवा, देवदारु, गोखुरू, कुटकी, मजीठ, पीपल, कुम्भेरके फल, रासना, तालमखाना, एरंड, विधारा, नागरमोथा और नीले कमल इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको डालकर चौंसठ तोले आमलोंके रसमें और उससे तिगुने जलमें चौंसठ तोले घीको पकावे, उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेके पश्चात् भोजनमें तथा पीनेमें इस घृतका उपयोग करे तो अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुआ वातरक्त, ऊपरको उभरा हुआ और गम्भीर वातरक्त, त्रिक; जंघा, ऊरु, जानु और क्रोष्टुशीर्ष इनका शूल, महाभयंकर शूल, दारुण आमवात, दाहरोग, अत्यंत दुस्तर पीडा, मूत्रकृच्छ्र,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमेह, विषमज्वर और वातपित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके रोग इन सबको दूर करे है । इसका सदैव उपयोग करनेसे वर्ण, आयु और बल अधिक बढता है । यह अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ घृत परमोत्तम है ॥ १०१–१०७ ॥

अथ षष्ठं गुडूचीघृतम् ।

गुडूचीस्वरसे सर्पिर्जीवनीयैश्च साधितम् । कल्कैश्चतुर्गुणैः क्षीरैः सिद्धं वाऽजस्रवातनुत् ॥ १०८ ॥

गिलोयके स्वरससे और जीवनीय गणके कल्कसे चौगुने दूधमें पकाया हुआ घी वातरक्तको शमन करता है ॥ १०८ ॥

अथ महागुडूचीघृतम् ।

अमृतायाः शतं प्राप्य जलद्रोणे विपाचयेत् । चतुर्भागावशिष्टं तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०९ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं तत्र दापयेन्मतिमान् भिषक् । कल्कं चात्र प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ११० ॥ काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ च यत् । शतावरी पयस्या च मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ १११ ॥ अश्वकन्दस्य मूलानि स्थिरं वा कटुरोहिणीम् । ऋद्धिं वृद्धिं तथा मेदे श्वदंष्ट्रां बृहतीद्वयम् ॥ ११२ ॥ गुडूचीं पिप्पलीं रास्नां वासकं चापि संहरेत् । तदेकस्थं समैर्भागैः पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ११३ ॥ पानाभ्यञ्जननस्येषु परिषेके च दापयेत् । वातरक्तं सशोषाढ्यं सदाहं क्रोष्टुशीर्षकम् ॥ ११४ ॥ खञ्जोरुस्तम्भवातं च वातरक्तं सुदारुणम् । बहूदितं वातकृच्छ्रं गृध्रसीं वातकंटकम् । नाशयेद्योजितं सर्पिर्धन्वन्तरिवचो यथा ॥ ११५ ॥

४०० चार सौ तोले गिलोयको १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे जब पकते २ चौथा भाग जल शेष रह जाय तब उस क्वाथमें ६४ चौंसठ तोले घी तथा चौगुना दूध डालकर काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, सतावर, विदारीकंद, मुलैठी, नीले कमल, असगंधकी जड, पृश्निपर्णी, कुटकी, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गोखुरू, कटेरी, बडी कटेरी, गिलोय, पीपल, रासना और अडूसा इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर कल्क बनाकर उसमें डालकर मंद मंद अग्निसे पकावे तो महागुडूची घृत सिद्ध होता है । धन्वन्तरि भगवान् कहते हैं कि इस घृतको पान करनेमें, अभ्यंगमें, नस्यमें तथा सेचनमें प्रयोग करे तो शोष और दाहयुक्त वातरक्त, क्रोष्टुशीर्ष, खंजवात, ऊरुस्तम्भ, दारुणवातरक्त, बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ वातकृच्छ्र, गृध्रसी और वातकंटक इन सब रोगोंका नाश होता है ॥ १०९–११५ ॥

अथ शताह्वादितैलम् ।

क्वाथेन शतपुष्पायाः कुष्ठस्य मधुकस्य च । एकैकं साधयेत्तैलं वातरक्तरुजापहम् ॥ ११६ ॥

सोये (सौंफ) के क्वाथसे एकबार, दूसरी बार कूठके क्वाथसे और तीसरी बार मुलैठीके क्वाथसे पकाया हुआ तैल वातरक्तकी पीडाको शमन करता है ॥ ११६ ॥

अथ महापिंडतैलम् ।

सारिवारिष्टकूष्माण्डपोतकीभस्मजाम्बुना । गुडूचीगव्यदुग्धाभ्यां कर्मरंगरसेन च ॥ ११७ ॥ विपचेत्तिलजं तैलं दत्त्वैतानि भिषग्वरः । काकोल्यौ जीवकं मेदे शताह्वाक्षीरिणीयुतैः ॥ ११८ ॥ जिंगीसिक्थाऽमृतानन्तासार्जसैन्धवचन्दनैः । हन्याद्वातासृजं घोरं स्फुटितं गलितं तथा ॥ ११९ ॥ चर्मदलाख्यं पामादीस्त्वग्दोषं च विपादिकाम् । कुष्ठान्यर्शांसि वीसर्पं व्रणशोथं भगन्दरम् ॥ १२० ॥ न सोऽस्ति वातरक्तस्य विकारो योऽभिवर्द्धितः । यन्न हन्यात्प्रसह्यैतत्पिण्डतैलं महत्स्मृतम् ॥ १२१ ॥

सारिवा, नीम, पेठा और पोई इनके भस्मके जलसे, गिलोयके क्वाथसे, गायके दूधसे, कमरखके रससे और काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, मेदा, महामेदा, सोया, खिरनी, मजीठ, मोम, गिलोय, सारिवा, राल, सेंधानिमक और लाल चंदन इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल ' महापिंड तैल ' कहा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाता है इस तेलका उपयोग करनेसे घोर वातरक्त, फटता और गलता हुआ चर्मदल कोढ, पामादिरोग, त्वचाके समस्त विकार, विपादिका, कोढ, बवासीर, वीसर्प, व्रण, शोथ और भगन्दर इन सब रोगोंको दूर करे है। ऐसा कोई भी वातरक्तका बढा हुआ विकार नहीं है कि जिसको यह महापिंडतैल दूर न कर देवे ॥ ११७--१२१ ॥

अथ पिंडतैलम्।

सारिवासर्जमञ्जिष्ठायष्टीसिक्थैः पयोन्वितैः। तैलं पक्वं प्रयोक्तव्यं पिण्डाख्यं वातशोणिते ॥ १२२ ॥

सारिवा, राल, मजीठ, मुलैठी और मोम इनका कल्क डालकर चौगुने दूधमें पकाया हुआ तेल 'पिंडतेल' कहा जाता है। इस तेलका वातरक्तपर उपयोग करना चाहिये ॥ १२२ ॥

अथ द्वितीयं पिंडतैलम्।

सारिवासर्जयष्ट्याह्वमधुसिक्थैः पयोन्वितैः। सिद्धमैरण्डजं तैलं वातरक्तरुजापहम्। अपूतमथितस्यास्य पिण्डतैलस्य योगतः १२३॥

सारिवा, राल, मुलैठी और मोम इनका कल्क डालकर चौगुने दूधमें पकाया हुआ अंडीका तेल वातरक्तकी पीडाको शमन करता है ॥ १२३ ॥

अथ महापद्मकतैलम्।

पद्मकेशरयष्ट्याह्वफेनिलापद्मकोत्पलैः। पृथक्पञ्चपलैर्दत्तं बलाकिंशुकचन्दनैः ॥ १२४ ॥ जले श्रृतं पचेत्तैलं प्रस्थं सौवीरसम्मितम्। लोध्रकाकोलिकोशीरजीवकर्षभकेशरैः॥१२५॥ मदयन्तीलतापत्रपद्मकेशरपद्मकैः। प्रपौण्डरीककालीयमेदोमांसीप्रियंगुभिः ॥ १२६ ॥ कुंकुमैर्द्विगुणैः कर्षैर्मञ्जिष्ठायाः पलेन च। महापद्मकमिदं तैलं वातासृग्ज्वरनाशनम् ॥ १२७ ॥

कमलकी केसर, मुलैठी, रीठा, पद्माख, नीले कमल, खिरैटी, टेसू और लालचंदन यह प्रत्येक पदार्थ बीस बीस तोले लेकर इनका क्वाथ बनाकर उसमें लोध, काकोली, खस, जीवक, ऋषभक, नागकेसर, मदनबान, तेजपात, कमलकी केसर, पद्माख, प्रपौंडरीक, दारुहलदी, मेदा, बालछड और फूलप्रियंगू इन प्रत्येक पदार्थका एक एक तोला कल्क डाले, केसरका दो तोलें कल्क डाले और मजीठका चार तोले कल्क डाले तथा सौवीर नामक काँजी ६४ तोले और तेल ६४ तोले मिलाकर यत्नपूर्वक पकावे तो 'महापद्मक तेल' सिद्ध होता है। यह तेल-वातरक्त और ज्वरका नाश करता है ॥ १२४--१२७ ॥

अथ खुड्डाकपद्मकतैलम्।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम्। स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः। खुड्डाकपद्मकमिदं तैलं वातास्रपित्तनुत् १२८

पद्माख, खस, मुलैठी और हलदी इनके क्वाथमें राल, मजीठ, बडी सतावर, काकोली और लालचंदन इनका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल 'खुड्डाकपद्मक' कहा जाता है। यह तेल वातरक्तको नष्ट करता है ॥ १२८ ॥

अथ गुडूचीतैलम्।

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम्। क्षीरद्रोणं तु ताभ्यां च पचेत्तैलाढकं शनैः। कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयगणोत्थितैः। ॥ १२९ ॥ कुष्ठैलागुरुमृद्वीकामांसी व्याघ्रनखं नखी। हरेणुश्रावणी व्योषं शताह्वा शृंगिसारिवे ॥ १३० ॥ त्वक्पत्रागुरुविक्रान्ता स्थिरा तामलकी तथा। नतकेशरहीबेरं पद्मकोत्पलचन्दनम्। सिद्धं कर्षसमैर्भागैः पानाभ्यंगानुवासनैः ॥ १३१ ॥ सेव्यं वातास्रजान्हन्ति स्रोतोधात्वन्तराश्रितान्। धन्यं पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् ॥ १३२ ॥ स्वेदकण्डूरुजायामशिरःकम्पामयार्दितान्। हन्याद्व्रणकृतान्दोषान्गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ १३३ ॥

४०० चार सौ तोले गिलोयको एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उस क्वाथमें १०२४ एक हजार चौबीस तोले दूध डाले और मुलैठी, मजीठ, जीवनीयगणकी औषधि, कूठ, इलायची, अगर, दाख, बाल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छड, थूहर, नख, निर्गुण्डीके बीज, गोरखमुण्डी, सोंठ, मिरच, पीपल, सोया, काकडाशिंगी, सारिवा, तज, तेजपत्र, अगर, अरणी, पृश्निपर्णी, भुईआमला, तगर, नागकेशर, सुगन्धवाला, पद्माख, नीले कमल और लाल चन्दन यह प्रत्येक औषधि एक एक तोलाभर ले कल्क डालकर २५६ दो सौ छप्पन तोले तेल धीरे धीरे पकावे तो यह 'गुडूची तेल' सिद्ध होता है। पीनेमें, अभ्यंगमें तथा पिचकारी लगानेमें इस तेलका उपयोग करनेसे स्रोतोंमें तथा धातुओंमें प्राप्त हुए वातरक्तके विकार शमन होते हैं। यह उत्तम गुडूची तेल धन्य है, पुत्रको देनेवाला है, स्त्रियोंके गर्भको उत्पन्न करे है और वातपित्तको शमन करनेवाला है। यह तेल पसीना, खुजली, व्यथा, आयाम, शिरःकंप, अर्दित और व्रणके विकारोंको शमन करता है ॥ १२९–१३३ ॥

अथामृताद्यतैलम् ।

गुडूची मधुकं ह्रस्वपंचमूलं पुनर्नवा ।
रास्नामेरण्डमूलं च जीवनीयानि लाभतः ॥ १३४ ॥ पलानां शतिकैर्भागैर्बलापंचशतं भवेत् । कोलं बिल्वं यवान्माषान्कुलत्थांश्चाढकोन्मितान् ॥ १३५ ॥ काश्मर्याणां च शुष्काणां द्रोणं द्रोणशतेऽम्भसः । साधयेज्जर्जरं पूतं चतुर्द्रोणं च शेषयेत् ॥ १३६ ॥ तैलद्रोणं पचेत्तेन दत्त्वा पंचगुणं पयः । पिष्ट्वा त्रिपलिकं चैव चन्दनोशीरकेशरम् ॥ १३७ ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठानि तगरं मधुयष्टिका । मञ्जिष्ठार्द्धपलं चैव तत्सिद्धं सर्वयौगिकम् ॥ १३८ ॥ वातरक्ते क्षते क्षीणे भारार्त्ते क्षीणरेतसि । वेपनोत्क्षिप्तभग्नानां सर्वैकांगजरोगिणाम् ॥ १३९ ॥ योनिदोषमपस्मारमुन्मादं विषमज्वरम् । हन्यात्पुंसवनं चैव तैलाग्र्यममृताह्वयम् ॥ १४० ॥

गिलोय, मुलैठी, लघुपंचमूल, पुनर्नवा, रासना, अण्डकी जड और जितनी मिल सके उतनी जीवनीय गणकी औषधी यह प्रत्येक द्रव्य ४०० सौ तोले लेवे, खिरैटी दो हजार २०० तोले लेवे, बेर, बेलगिरी, जौ, उडद और कुलथी यह प्रत्येक पदार्थ २५६ दो सौ छप्पन तोले लेवे, सुखाये हुए कुम्भेरके फल एक द्रोण लेवे इन सब पदार्थोंको कूटकर सौ द्रोण जलमें क्वाथ बनावे जब यह पककर नरम हो जाय तब वस्त्रमें क्वाथको छान लेवे, फिर अग्निसे पकावे जब चार द्रोण जल शेष रहजाय तब उतार लेवे, फिर इस क्वाथमें दूध पांच भाग, लाल चन्दन, खस और नागकेसर यह प्रत्येक पदार्थ बारह बारह तोले लेवे, सबको पीसकर कल्क बनाकर डाल देवे, तेजपत्र, इलायची, अगर, कूठ, तगर, मुलैठी, तथा मँजीठ यह प्रत्येक औषधी दो दो तोले लेकर कल्क बनाकर डाल देवे, फिर इस कल्क तथा उस दूध मिले क्वाथसे एक द्रोण तेलको पकावे तो यह 'अमृताह्वय' नामक तेल सिद्ध होता है, यह तेल वातरक्तपर, क्षतमें, क्षीणतामें, भारसे पीडित हुएपर, वीर्यकी क्षीणतामें, कम्पमें क्षिप्त भग्न सर्वांग वातरोगपर और एकांगवातरोगपर हितकारी है। इस तेलसे योनिके विकार, अपस्मार, उन्माद, तथा विषमज्वर भी दूर होता है और स्त्रियोंके गर्भको देनेवाला है ॥ १३४–१४० ॥

अथ मृणालाद्यमिश्रकतैलम् ।

मृणालोत्पलशालूकसारिवोदीच्यकेशरैः ।
चन्दनद्वयभूनिम्बपद्मबीजकसेरुकैः ॥ १४१ ॥ पटोलकटुकानन्तागुन्द्रापर्पटवासकैः । पिष्ट्वा तैलं घृतं पक्वं तृणमूलरसेन वा । क्षीरद्विगुणसंयुक्तं वस्तिकर्मसु योजितम् । नस्याभ्यञ्जनपानैर्वा हन्यात्पित्तगदानिदम् ॥ १४२ ॥

कमलकी नाल, नीलकमल, कमलकन्द, सारिवा, सुगन्धवाला, नागकेसर, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, चिरायता, कमलगट्टे, कसेरू, परवल, कुटकी, सारिवा (जहां एक पाठमें एक औषधि दो बार आवे तो दो भाग और तीन बार आवे तो तीन भाग लेनी चाहिये ऐसा सम्प्रदाय है), गोंद, पटेर, पित्तपापडा और अडूसा इनका कल्क डालकर तृणपञ्चमूलके क्वाथमें दुगुने दुधके साथ दूध और घृतको पकावे तो 'मृणालाद्यमिश्रक' सिद्ध होता है। वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यंग और पीनेसे यह मिश्रक पित्तसम्बन्धी रोगोंको दूर करे है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथ धत्तूराद्यतैलम् ।

कनकशिखरिमानक्षारसंसिद्धतोये कुसुमलवणयुक्तैः सर्जनिर्यासपूर्णैः । विधिभृततिल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैलं कल्कयुक्तं निहन्ति प्रचुरतरमिदानीमिन्द्रलुप्तान्नवातम् ॥ १४३ ॥

धतूरा, चिरचिटा और मानकन्द इनकी भस्मका क्वाथ बनाकर उसमें लौंग, सेंधानिमक और रालका कल्क डालकर विधिपूर्वक तिलके तेलको इसी कल्कके साथ व्यवहार करे तो विशेष करके वातरक्त और इन्द्रलुप्त रोगको दूर करे है ॥ १४३ ॥

अथ नागबलातैलम् ।

शुद्धा पचेन्नागबलातुलां तु जलार्मणे पादकषायसिद्धम् । विस्राव्य तैलाढकमत्र देयमजापयस्तैलविमिश्रितं तु ॥ १४४ ॥ नतं सयष्टिं मधुकं च कल्कं दत्त्वा पृथक्पंचपलं विपक्वम् । तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णं वस्तिप्रदानेन हि सप्तरात्रात् । दशाहयोगेन करोत्यरोगं पीतं च तैलोत्तममश्विनोक्तम् १४५॥

४०० चार सौ तोले उत्तम गंगेरन (गुलशकरी) लेकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें क्वाथ बनावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उस क्वाथको वस्त्रमें छान लेवे फिर उस क्वाथमें तगर और मुलैठी इनका बीस २० तोले कल्क डालकर तथा चौगुना बकरीका दूध डालकर उससे २५६ दो सौ छप्पन तोले तेल पकावे तो ' नागबलातेल ' सिद्ध होता है । अश्विनीकुमारोंका कहा हुआ यह तैल है । इस तेलकी पिचकारी लगानेसे वृद्धिको प्राप्त हुआ भी वातरक्त सात दिनमें नष्ट हो जाता है और जो यह तेल पिया जाय तो दश दिनमें वातरक्त नष्ट हो जाता है ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

अथ जीवकाद्यमिश्रकतैलघृते ।

जीवकर्षभकौ मेदे ऋष्यप्रोक्ता शतावरी । मधुकं मधुपर्णी च काकोलीद्वयमेव च ॥ १४६ ॥ मुद्गमाषारूप्यपर्णी च दशमूलं पुनर्नवा । बलामृता विदारी च साश्वगन्धाश्मभेदकौ ॥१४७॥ कुर्यात्कल्कं कषायं च ताभ्यां तैलं घृतं पचेत् । लाभतश्च वसा मज्जा मांसं प्रतुदविष्किरात् ॥ १४८ ॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्सिद्धं वातशोणितम् । सर्वदेहाश्रितान्हन्ति व्याधीन्घोरांश्च वातजान् ॥ १४९ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, सतावर, मुलैठी, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, दशमूलकी दशों औषधि, पुनर्नवा, खिरैंटी, गिलोय, विदारीकन्द, असगन्ध और पाषानभेद इनका कल्क और इनहींके क्वाथमें चौगुने दूधके साथ जितना मिल सके उतना प्रतुद और विष्किर पक्षियोंके मांस, चर्बी तथा मज्जा डालकर घी और तेलको पकावे तो यह जीवकाद्यमिश्रक सिद्ध होता है । यह मिश्रक वातरक्त और सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त भयंकर वातव्याधियोंको भी दूर करे है ॥ १४६–१४९ ॥

अथ शतपाकबलातैलम् ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गुणम् । शतपाकं भवेदेतद्वातासृग्वातपित्तनुत् ॥१५०॥ धन्यं पुंसवनं चैव नराणां शुक्रवर्द्धनम् । रेतोयोनिविकारघ्नमेतद्वातविकारनुत् ॥ १५१ ॥

खिरैंटीके क्वाथमें खिरैंटीका कल्क डालकर तथा चौगुना दूध डालकर तेलको पकावे, जब पक जाय तब फिर इनहीं द्रव्योंके साथ इस तेलको पकावे, इस प्रकार सौ वार इस तेलको पकावे तो यह 'शतपाकबलातैल' सिद्ध होता है । यह तेल भाग्यको बढानेवाला, पुत्रको देनेवाला, मनुष्योंके वीर्यको बढानेवाला, शुक्र और योनिके रोगोंको हरनेवाला, वात तथा पित्तके विकारोंको नष्ट करनेवाला है और वातसंबंधी संपूर्ण रोगोंको दूर करे है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

अथ मधुकाद्यतैलम् ।

मधुयष्ट्याः पलशतं कषाये पादशेषिते । तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः । ॥ १५२ ॥ शतपुष्पावरीमूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः । स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ॥ १५३ ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यृद्धिपद्मकैः । जीवकर्षभजीवन्तीत्वक्पत्रनखवालकैः ॥ १५४ ॥ प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवेन्दुवितुन्नकैः । वातासृक्पित्तदाहार्तिज्वरघ्नं बलवर्णकृत् ॥ १५५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४०० चार सौ तोले मुलैठीका क्वाथ बनावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उसमें सोया, सतावर, मूर्वा, विदारीकंद, अगर, लालचंदन, पृश्निपर्णी, हंसपदी (एक प्रकारकी लज्जावन्ती), बालछड, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, भुँईआमले, ऋद्धि, पद्माख, जीवक, ऋषभक, जीवन्ती, दालचीनी, तेजपात, सुगंधनख, सुगंधवाला, कमल, मजीठ, सारिवा, कपूर और केवटीमोथा इनका चार चार तोले कल्क २५६ तोले दूध और २५६ तोले तेल डालकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे तो यह 'मधुकाद्यतैल' सिद्ध होता है। इस तेलको सेवन करनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होती है तथा वातरक्त, पित्त, दाहकी पीडा और ज्वर नष्ट होता है ॥ १५२-१५५ ॥

अथ शतपाकमधुकतैलम्।

मधुयष्ट्याः पलं पिष्ट्वा तैलप्रस्थं चतुर्गुणे।
क्षीरे साध्यं शतं वारांस्तदेव मधुकान्वितम् ॥ १५६ ॥ सिद्धं देयं त्रिदोषे स्याद्वातास्रश्वासकासनुत्। धन्यं पुंसवनं चैव कामलादाहनाशनम् ॥ १५७ ॥

४०० चार सौ तोले मुलैठीका कल्क डालकर चौगुने दूधमें चौसठ तोले तेलको पकावे, जब पक जाय तब फिर इसी तेलको दूसरी वार इनही द्रव्योंसे पकावे, इस प्रकार सौ वार इसी तेलको इस कल्क और दूधसे पकावे तो यह 'शतपाक मधुकतैल' तैय्यार होता है। यह तेल भाग्यको बढानेवाला, पुत्रको देनेवाला, तथा वातरक्त, श्वास, खाँसी, कामला और दाहको दूर करे है, तीनों दोषोंके प्रकोपमें भी इस तेलको देना चाहिये ॥ १५६॥१५७ ॥

अथ सहस्रपाकबलातैलम्।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरसमं पचेत्।
सहस्रशतपाकं वा वातास्रग्वातरक्तनुत्।
॥ १५८ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठमिन्द्रियाणां प्रसादनम्। जीवनं बृंहणं स्वर्यं शुक्रास्रग्दोषनाशनम् ॥ १५९ ॥

खिरैटीके क्वाथसे और कल्कसे दूध और तेल डालकर विधिपूर्वक पकावे, इस प्रकार हजार वार इस तेलको पकावे तो यह 'सहस्रपाकबलातैल' सिद्ध होता है यह तेल वात रुधिरके विकार, वातरक्त और वीर्यके दोषोंको दूर करे है, उत्तम रसायन, इन्द्रियोंको स्वच्छ करनेवाला, जीवनको बढानेवाला, धातुओंको पुष्ट करनेवाला और स्वरको उत्तम करनेवाला है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

अथ पुनर्नवागुग्गुलुः।

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुबूकमूलं च तथा प्रयोज्य। दत्त्वा पलं षोडशकं च शुण्ठ्याः संकुट्य सम्यग्विपचेद्घटेऽपाम् ॥ १६० ॥ पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत्तु। एरण्डतैलं कुडवं च दद्याद्दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि पंच ॥ १६१॥ निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयं चार्द्धपलं पलं प्रति। फलत्रयत्रयूषणचित्रकाणि सिन्धूत्थभल्लातविडङ्गकानि ॥ १६२ ॥ कर्षं तथा माक्षिकधातुचूर्णं पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम्। चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्य शीते खादेन्नरः कर्षसमप्रमाणम् ॥ १६३ ॥ वातासृजं वृद्धिगदं च सप्त जयत्यवश्यं त्वथ गृध्रसीं च। जंघोरुपृष्ठत्रिकबस्तिजं च तथामवातं प्रबलं च हन्ति ॥ १६४ ॥

पुनर्नवेकी जड ४०० तोले अंडकी जड ४०० तोले और सोंठ ६४ तोले इनको उत्तम रीतिसे कूटकर १०२४ तोले जलमें पकावे जब पकते पकते आठवां भाग जल शेष रहजाय तब उस क्वाथको छान लेवे, फिर इस क्वाथमें ३२ तोले गूगल डालकर पकावे, पकते समय इसमें १६ तोले अंडीका तेल, निसोतका चूर्ण २० तोले, जमालगोटेका चूर्ण ४ तोले, गिलोयका चूर्ण १० तोले, हरडका चूर्ण ४ तोले, बहेडेका चूर्ण ४ तोले, आमलोंका चूर्ण ४ तोले, सोंठका चूर्ण ४ तोले, मिरचका चूर्ण ४ तोले, पीपलका चूर्ण ४ तोले, चीतेका चूर्ण ४ तोले, सेंधेनिमकका चूर्ण ४ तोले, भिलावेंका चूर्ण ४ तोले, वायविडंगका चूर्ण ४ तोले, सोनामाखीका चूर्ण १ तोला और पुनर्नवेका चूर्ण १ तोला डालकर पकावे, जब अच्छे प्रकारसे पक जाय तब अग्निपरसे उतार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेवे। शीतल होनेपर इसमेंसे एक तोलाभर नित्य खाय। यह गूगल—यातरक्त, सात प्रकारकी वृद्धि, गृध्रसी, जंघा, ऊरु, पृष्ठ, त्रिक और वस्ति इनमें प्राप्त हुए वातके विकारोंको शमन करे है तथा प्रबल आमवातको नष्ट करे है ॥ १६०–१६४ ॥

अथ समशर्करागुग्गुलुः।

यावशूकसुरदारुसैन्धवं मुस्तकत्रुटिवचायवानिकाः। व्योषदीप्यकनिशाफलत्रिकं जीरकद्वयविडंगचित्रकम् ॥ १६५ ॥ कार्षिकं सुमसृणं सुयोजितं संयुतं पुरपलैश्च पंचभिः। शर्करां पुरसमां सुपेषयेत्तप्तसर्पिषि विनिक्षिपेत्ततः ॥ १६६ ॥ वातरक्तमुदरं भगन्दरं प्लीहयक्ष्मविषमज्वरं गरम्। श्वित्रकुष्ठमखिलव्रणानयं चित्तविभ्रममदांश्च दारुणान् ॥ १६७ ॥ गृध्रसीं च गुदजाग्निमन्दतां हन्ति कोष्ठजनितं महागदम्। वज्रमिन्द्रसुकरादिव च्युतं गुप्तशैलकुलमुत्तमं हुतम् ॥ १६८ ॥ अन्नपानपरिहारवर्जितं सर्वकालसुखदं निरत्ययम्। सेव्यमानमिदमाश्विनिर्मितं गुग्गुलोर्हि वटिकारसायनम् ॥ १६९ ॥ चत्वारो माषका हीने मध्यमेऽष्टौ च माषकाः। श्रेष्ठा द्वादशकाः प्रोक्ताः कोष्ठं विज्ञाय पाययेत् ॥ १७० ॥ स्रंसनत्वाद्गुरुत्वाद्वा गुग्गुलोः करणक्रमः ॥ १७१ ॥

जवाखार, देवदारु, सैंधानिमक, नागरमोथा, इलायची, वच, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, जीरा, कालाजीरा, वायविडंग और चीता इनको एकत्र बारीक पीसकर इसमें २० तोले गूगल मिलाकर और २० तोले खांड मिलावे, फिर उस गूगलको गरम घीमें मिलाकर खूब कूटे तो यह 'शर्करासमगूगल' सिद्ध होता है। जिस प्रकार इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र बडे बडे पर्वतोंको भेदन कर देता है उसी प्रकार यह गूगल वातरक्त, उदरके रोग, भगन्दर, प्लीहा, क्षयरोग, विषमज्वर, विष, श्वित्रकोढ, सर्व प्रकारके व्रण, चित्तविभ्रमसम्बन्धी दारुणरोग, गृध्रसी, ववासीर, अग्निकी मंदता और कोष्ठगत बडे बडे रोगोंको दूर करे है। अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ यह समशर्करागूगल—रसायन, सर्वकालमें सुख देनेवाला और इसपर अन्नपान किसीका परहेज नहीं है। हीन कोठेवाले मनुष्यको यह गूगल चार मासे देवे, मध्यम कोठेवाले मनुष्यको आठ मासे देवे और श्रेष्ठ कोठेवाले मनुष्यको बारह मासे देवे। कोठेका देखकर गूगलको देवे। गूगल स्रंसन पदार्थ है और भारी है इस कारण गूगल देनेमें यह क्रम कहा है ॥ १६५–१७१ ॥

अथामृतागुग्गुलुः।

प्रस्थमेकं गुडूच्याश्च अर्द्धप्रस्थं च गुग्गुलोः। प्रत्येकं त्रिफलायास्तु तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत् ॥ १७२ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य क्वाथयेदुल्वणेऽम्भसि। पादशेषं परिस्राव्य कषायं ग्राहयेद्भिषक्। पुनः पचेत्कषायं तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ १७३ ॥ दन्तीव्योषविडंगानि गुडूचीत्रिफलात्वचः। ततश्चार्द्धपलं चूर्णं गृह्णीयाच्च पृथक्पृथक् ॥ १७४ ॥ कर्षं तु त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत्। तस्मिन्सुसिद्धं विज्ञाय कवोष्णे प्रक्षिपेद्बुधः। ॥ १७५ ॥ ततश्चाग्निबलं मत्वा खादेत्कर्षप्रमाणतः। वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ १७६ ॥ दुष्टव्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम्। नाडयाढ्यवातं श्वयथुं सर्वानेतान्व्यपोहति ॥ १७७ ॥

गिलोय ६४ तोले, गूगल ३२ तोले, हरड ६४ तोले, बहेडे ६४ तोले और आमले ६४ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके अत्यंत गरम पानीमें इनका क्वाथ बनावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय, तब उसको उतारकर छान लेवे, फिर उसको अग्निपर चढाकर पकावे, जब गाढा होने लगे तब जमालगोटे, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, गिलोय, हरड, बहेडा, आमला और दालचीनी यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर और निसोतका एक तोला चूर्ण इसमें मिला देवे, जब यह गूगल अच्छे प्रकारसे पककर तैय्यार हो जाय तब उतार लेवे, मंदोष्ण होय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब इसको डाल देवे, फिर अग्निके बलाबलका विचार करके इस गूगलमेंसे नित्य एक तोलाभर खाय। यह गूगल--वातरक्त, कोढ, बवासीर, मंदाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, ऊरुस्तम्भ और सूजनको दूर करे है ॥ १७२--१७७ ॥

अथ द्वितीयोऽमृतागुग्गुलुः।

त्रिप्रस्थममृतायाश्च प्रस्थमेकंतु गुग्गुलोः। प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ १७८ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य साधयेदुल्वणेऽम्भसि। पुनः पचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ १७९ ॥ दन्तीचित्रकमूलानां कणाविश्वफलत्रिकम्। गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलं मतम् ॥ १८० ॥ त्रिवृताकर्षमेकं तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत्। सिद्धे चोष्णे क्षिपेत्तत्र अमृतागुग्गुलुं परम् ॥ १८१ ॥ अतो यथाबलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः। वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्याग्निसादनम् ॥ १८२ ॥ दुष्टव्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम्। नाडयाढ्यवातं श्वयथुं हन्यात्सर्वामयांस्तथा। अश्विभ्यां निर्मितश्चायममृताख्यो हि गुग्गुलुः ॥ १८३ ॥ गुडरामठशुण्ठीनां मांसकूष्माण्डयोरपि। गुडूच्या गुग्गुलोश्चैव प्रस्थः षोडशभिः पलैः ॥१८४॥

गिलोय ३ प्रस्थ, गूगल १ प्रस्थ, हरड १ प्रस्थ, बहेडे १ प्रस्थ, आमले १ प्रस्थ और पुनर्नवा १ प्रस्थ इन सब पदार्थोंको एक कूटकर अत्यंत गरम पानीमें पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उस क्वाथको छानकर अग्निपर चढा देवे, जब यह पकते पकते गाढा हो जाय तब इसमें जमालगोटेकी जड, चीतेकी जड, पीपल, सोंठ, हरड, बहेडा, आमले, गिलोय, तज और वायविडंग यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले और निसोत एक तोला लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके मिला देवे। जब गूगल अच्छे प्रकारसे पक जाय तब उसको उतारकर डाल देवे तो यह 'अमृतागुग्गुलु' सिद्ध होता है। विशेष करके अम्लपित्तके रोगियोंको अग्निके बलानुसार यह गूगल सेवन करना चाहिये। अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ यह गूगल--वातरक्त, कोढ, बवासीर, अग्निकी मंदता, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, ऊरुस्तम्भ, सूजन और सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करे है ॥ १७८-१८४ ॥

अथ नवपुराणगुग्गुलोर्लक्षणम्।

स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः। नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः ॥ १८५ ॥ शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव वर्णान्यत्वमुपागतः। पुराणः स तु विज्ञेयो न स देयस्तु रोगिणे ॥ १८६ ॥

जो गूगल चिकना, सोनेकी समान चमकदार, पकीहुई जामुनकी समान कांतिवाला, सुगंधी और पिच्छिल ऐसा होय तो उसको नवीन जानना। जो गूगल सूखा, दुर्गंधित तथा जिसका रंग बदल गया होय उसको पुराना जानना। ऐसा गूगल रोगीको नहीं देना चाहिये ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

अथ चंद्रप्रभावटिका।

क्रिमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यभूनिम्बाः। मागधिमूलं मुस्तं शटीवचाधातुमाक्षिकं चैव। लवणक्षारनिशायुक्कुस्तुम्बुरुगजकणाः सहातिविषाः ॥ १८७ ॥ कर्षांशिकान्येव समानि कुर्यात्पलाष्टकं चाश्मजतु प्रदद्यात्। निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमान्पलद्वयं लौहरजस्तथैव ॥ १८८ ॥ सिताचतुष्कं पलमत्र वा स्यान्निकुम्भकुम्भत्रिसुगन्धियुक्तम्। पृथक्पलं चूर्णमथावपेच्च चन्द्रप्रभेयं गुटिका विधेया ॥ १८९ ॥ ज्वरातिसारग्रहणीविकारांश्चार्शांसि निर्णाशयते षडेव। भगन्दरान्कामलपाण्डुरोगान्निर्णष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् ॥ १९० ॥ हन्त्यामयान्पित्तकफानिलोत्थान्नाडीगते मर्मगते व्रणे च। शतक्षयै गृध्रसियक्ष्मरोगे मेहे गजाख्ये प्रबले प्रयोज्या ॥ १९१ ॥ शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च। शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रसादं प्राप्ता गुटी चन्द्रमसा प्रशस्ता ॥ १९२ ॥ न पानभोज्ये परिहारवादो न शीतवातातपमैथुनेषु। भक्तस्य पूर्वं सततं प्रयोज्या तक्रानुपानाप्यथ मस्तुपाना। अजारसो जाङ्गलजो रसो वा पयोऽथ वा शीतजलानुपानम् ॥ १९३ ॥ शुक्रदोषान्निहन्त्यष्टौ प्रमेहांश्चापि विंशतिम्। वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥१९४॥ गिरिजतुगुग्गुलुलौहान्येकीकृत्याथ भावयेद्बहुशः। क्वाथैस्तद्व्याधिहरैस्तदनु च चूर्णीकृतं मिलितम्। कृमिरिप्वादिकचूर्णैर्गिरिजतु समधान्यपटोलयूषेण ॥ १९५ ॥

वायविडंग, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, चिरायता, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, वच, सोनामाखी, सेंधानिमक, जवाखार, हलदी, दारुहलदी, धनियां, गजपीपल और अतीस यह प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर चूर्ण बना लेवे, शिलाजीत बत्तीस तोले लेवे, शुद्ध किया हुआ गूगल आठ तोले लेवे, लोहचूर्ण आठ तोले (शिलाजीत, गूगल और लोहचूर्णको एकत्र करके जिन जिन रोगोंमें देना है उनहीं उन रोगोंको हरनेवाली औषधियोंके काथमें अवश्य भावना देनी चाहिये), खांड १६ तोले लेवे, निसोत, जमालगोटा, तज, तमालपत्र तथा इलायची इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण चार चार तोले लेना चाहिये, इन सब पदार्थको एकत्रित करके गोली बनावे, इनको चन्द्रप्रभा गोली कहते हैं। यह चन्द्रप्रभा वटी—ज्वर, अतीसार, ग्रहणीके विकार, छः प्रकारकी बवासीर, भगन्दर, कामला और पांडुरोगको नष्ट करे है और अत्यन्त मंद हुई अग्निको दीपन करे है। वात पित्त कफसे उत्पन्न हुए रोगोंपर, नाडीव्रणपर, मर्म्मगतव्रणोंपर, क्षयसे उत्पन्न हुए क्षयपर, गृध्रसीपर, क्षयरोगमें तथा अत्यंत प्रबल गजमेह, वीर्यकी क्षीणता, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, वीर्यप्रवाह और उदरके रोगोंपर भी इन चन्द्रप्रभा गोलियोंका प्रयोग करना चाहिये। प्रसन्न हुए श्रीसदाशिवका पूजन करनेपर यह उत्तम गोली चन्द्रमाको प्राप्त हुई है। इन गोलियोंको सेवन करनेवाले मनुष्यको भोजन, पान, शीत, पवन, धूप, और मैथुन इनका परहेज करनेकी आवश्यकता नहीं है। भोजन करनेसे पहिले तक्रके साथ, दहीके तोडके साथ, बकरीके मांसके रसके साथ, जांगल प्रदेशके प्राणियोंके मांसरसके साथ, दूध और शीतल जलके साथ सदैव इन गोलियोंका उपयोग करना चाहिये। यह गोली वीर्यके आठ प्रकारके दोष और बीस प्रकारके प्रमेहको नष्ट करे है। इन गोलियोंका उपयोग करनेसे वृद्ध मनुष्य भी वली और पलितरोगसे मुक्त होकर युवाकी समान हो जाता है ॥१८७--१९५॥

अथ कैशोरगुग्गुलुः।

बरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम्। प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ १९६ ॥ द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन। विपचेत्तदप्रमत्तो दर्व्या संघट्टयेन्मुहुर्यावत् ॥ १९७ ॥ अर्द्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात्। अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयःपात्रे ॥ १९८ ॥ सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलस्पर्शे। त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥ १९९ ॥ क्रिमिरिपुचूर्णार्द्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः। पलमेकं तु गुडूच्या दत्त्वा संचूर्ण्य यत्नेन ॥ २०० ॥ उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धि सलिलं च। इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥ २०१ ॥ तनुरोधि वातशोणितमेकाङ्गिन्युल्वणं चिरोत्थमपि। भग्नश्रुतपरिशुष्कं स्फुटितं दीर्णमाजानु यच्चापि॥२०२॥ व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथुं गरपाण्डुमेहांश्च। मन्दाग्निं च विबन्धं प्रमेहपिडकांश्च नाशयत्याशु ॥ २०३ ॥ सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान्। अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम् ॥ २०४ ॥ प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ जलं चाढकमाढकम्। गुडवद्गुग्गुलोः पाकः सन्धेयस्तु विशेषतः ॥ २०५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तम भैंसेके नेत्र तथा उदरकी समान ६४ चौसठ तोले गूगल लेकर पानीमें डाल देवे फिर उसमें चौंसठ तोले हरड, बहेडा और आमले तथा बत्तीस पल गिलोय यत्नपूर्वक डालकर आगपर चढा देवे। सावधान होकर जबतक आधा न जल जाय तबतक बारंबार करछीसे चलाता रहे फिर उसको अग्निपरसे उतारकर वस्त्रमें छानकर पश्चात् लोहेके बासनमें करके अग्निपर चढावे, गाढे होनेपर उतार लेय। जब शीतल हो जाय तब हरड, बहेडा और आमलेका चूर्ण दो दो तोले, सोंठ, मिरच और पीपलका चूर्ण दो दो तोले, वायविडंगका चूर्ण दो तोले, निसोतका चूर्ण दो तोले, दंती (जमालयोटेकी जड) का चूर्ण दो तोले और गिलोयका चूर्ण चार तोले मिला देवे। इसको यथायोग्य अनुपान, यूष, दूध, सुगंधित गुलाब केवडा आदिके अर्कके साथ देवे। इसपर यथेच्छ आहार विहार करे। यह शरीरको बिगाडनेवाला वातरक्त, एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ, मज्जरोग, लवता हुआ, सूखा हुआ, फटा हुआ, घुटनोंतक प्राप्त हुआ वातरक्त, व्रण, खाँसी, कोढ, गुल्म, सूजन, विषविकार, पांडुरोग, प्रमेह, मंदाग्नि, विबन्ध और प्रमेहपिडका इन सबको शीघ्रही दूर कर देता है। यह सदैव सेवन किया हुआ कालवशसे सर्व रोगोंको नष्ट कर देता है। वृद्ध अवस्थाको दूर करके किशोर अवस्थाको प्राप्त करता है॥ १९६--२०५॥

अथ त्रिफलागुग्गुलुः।

त्रिफलातिविषादारुदार्वीमुस्तापरूषकैः। खदिरासननक्तान्हगुडूचीनृपपादपैः॥२०६॥ भूनिम्बनिम्बकटुकाकलिंगकुलकैः समैः। क्वाथं कृत्वा ततः पूतं श्रृतमष्टगुणेऽम्भसि॥ २०७॥ गुडूच्यास्तत्र सुकृतं चूर्णमर्द्धं तु वारिणि। क्षिप्त्वा सुनूतने भाण्डे वासयेद्रजनीगतम्॥ २०८॥ सोमोपेतेन पूतेन कौशिकं परिभावयेत्। षड्गुणेन तु सप्ताहं शिलाजतुसमन्वितम्॥ २०९॥ शुक्तस्य तु पलान्यष्टौ समावाप्य विचक्षणः। ताप्यचूर्णं पलं चैकं द्वे पले मधुसर्पिषोः॥ २१०॥ एकीकृत्य समं सर्वं लिह्यात्सुत्रिफलाम्बुना। तनुना मुद्गयूषेण जांगलानां रसेन वा। जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत पुराणं शालिषष्टिकम्॥ २११॥ यथारोगं यथासात्म्यं रसैर्यूषैश्च संस्कृतैः। त्रिसप्ताहप्रयोगेण वातरक्तं सुदारुणम्॥ २१२॥ निहन्ति वीर्यतः क्षिप्रं कुष्ठरोगान्व्रणानपि। छिन्नं भिन्नं च सन्धत्ते त्रिफलाख्यो हि गुग्गुलुः॥ २१३॥

त्रिफला, अतीस, देवदारु, दारुहलदी, नागरमोथा, फालसे, खैर, विजयसार, हलदी; गिलोय, अमलतास, चिरायता, नीम, कुटकी, इन्द्रजौ और पटोलपत्र यह सब समान भाग लेकर अठगुने जलमें पकावे, गिलोय क्वाथके जलसे आधी लेवे, पश्चात् उस जलको उत्तम मट्टीके बासनमें करके एक रात्रितक सुवासित करे। फिर इसमें छः गुनी बावची मिलाकर वस्त्रमें छानकर इसमें गूगलकी सात दिनतक शिलाजीत मिलाकर भावना देवे। फिर शुक्तनामक कांजी ३२ तोले, सोनामाखीका चूर्ण चार तोले, सहत और घी आठ तोले सबको मिलाकर एकमें एक कर लेवे। इसको त्रिफलेके जलके साथ, अथवा मूंगके यूषके साथ या जांगल जीवोंके मांसके रसके साथ मिलाकर खाय। जब जीर्ण होने लगे तब पुराने शालि या साठी धान और यथारोगानुसार और प्रकृतिके अनुसार रस और यूषोंको सेवन करे। इसको तीन सप्ताह पर्यंत सेवन करनेसे दारुण वातरक्त नष्ट होता है। और यह अपने प्रभावसे कुष्ठ और व्रणोंको भी दूर कर देता है। यह त्रिफलागूगल छिन्न भिन्न अंगोंको जोडनेवाला है॥ २०६--२१३॥

अथ सिंहनादगुग्गुलुः।

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम्। सौगन्धिकं पलं चैकं कौशिकस्य पलत्रयम्॥ २१४॥ कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः। पाचयेत्पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दृढे॥ २१५॥ हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्जपंगुताम्। श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा॥ २१६॥ कुष्ठानि वातरक्तं च गुल्मं शूलोदराणि च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आमवातं जयत्येतदपि वैद्यविवर्जितम् । ॥ २१७ ॥ सर्वदास्योपयोगेन जरापलितनाशनम् । सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालिषष्टिकम् ॥ २१८ ॥ सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा । वह्नेर्दीप्तिकरं पुंसां भाषितो दण्डपाणिना ॥२१९॥ अत्राहुस्त्रिफलाक्काथं पृथक्त्रिपलसम्मितम् । किञ्चिन्निर्याति चैरण्डस्नेहे पाकोऽधिके खरः ॥ २२० ॥

सिंहनाद गूगल--त्रिफलेका क्वाथ १२ तोले, कूटा हुआ गन्धक चार तोले, गूगल बारह तोले और अंडीका तेल पावभर लेवे सबको एकत्र करके पाकको जाननेवाला वैद्य लोहेके दृढ और उत्तम पात्रमें पकावे । यह वात, पित्त तथा कफके विकार, खंज, पंगुता, दुर्जर श्वास, पांचों प्रकारकी खांसी, कोढ, वातरक्त, गुल्म, शूल, उदररोग और दुर्जर आमवात रोगको भी नष्ट करे है । इसका सदैव उपयोग करनेसे जरा और पलितरोगोंको नष्ट करे है । घी तेल और मांसरसके साथ शालि और सांठी धानोंके चावलोंको खाय । सिंहनाद नामक यह गूगल रोगरूपी हाथियोंके मदको हरनेवाला है, अग्निको दीपन करनेवाला है ऐसा श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ २१४–२२० ॥

अथ द्वितीयः सिंहनादगुग्गुलुः ।

अष्टौ पलान्यत्र पलङ्कषायाः प्रस्थः पृथक् शुद्धफलत्रयस्य । दत्त्वा पचेद्द्रोणयुगे जलस्य पादावशेषं पुनरेव वैद्यः ॥ २२१ ॥ दन्तीत्रिवृद्व्यूषणवारुणीनां विडंगमुस्तत्रिफलामृतानाम् । कन्दोग्रगन्धालुकमाणकानां सगन्धकानां च सपारदानाम् ॥ २२३ ॥ पलार्द्धमानं प्रमितं सुचूर्णं दद्याद्विपक्वं पुनरेव तत्र । फलानि संचूर्ण्य च कानकानि सहस्रसंख्याकलितानि पश्चात् ॥ २२३ ॥ खादेद्धि माषद्वितयं प्रतप्तं तोयादिकं देयमतोऽनुपाने । आमानिलं सन्धिगतं सशूलं शिरोगतं जानुकटिस्थितं च ॥ २२४ ॥ अर्शोऽतिवृत्तिं विषमज्वरार्तिं प्रमेहकुष्ठानि भगन्दरं च । हन्यान्नराणामिति सिंहनादो मेदोमरुच्छ्लेष्मगदान्पुरोऽयम् ॥ २२५ ॥ दाहोऽत्यन्तप्रवृत्तिर्वा विकारोऽन्यो भवेद्बहुः । तत्कृतस्तु तदा तत्र तक्रभुक्तं हितं भवेत् । उद्वर्तनं शीतजलस्नानं च शयनं तथा । ॥ २२६ ॥ विरेकातिशयं कुर्यात्सिंहनादो यतः सुधीः । ज्ञात्वा बलं शरीरे तु दद्यादेवं न वा भिषक् ॥ २२७ ॥ तोयारनालगोक्षीरैः क्रमात्पक्वं विशुध्यति । फलं कतकसंज्ञं तु कृत्वा चूर्णं ततः क्षिपेत् ॥२२८ ॥

शुद्ध गूगल ३२ तोले, शुद्ध हरड ३२ तोले, शुद्ध बहेडा ३२ तोले और शुद्ध आमले ३२ तोले इन सबको दो हजार अडतालीस तोले भर जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग रह जाय तब उतार लेवे, फिर इसमें जमालगोटे, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल, भुईआमले, वायविडंग, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, सूरण, वच, आलुक, मानकन्द, गन्धक और पारा ये प्रत्येक पदार्थ दो २ तोले लेकर चूर्ण बनाकर उसमें डालकर दूसरी बार पकावे । पक्व जानेके बाद एक हजार धत्तूरेके फलोंका चूर्ण करके मिला देवे तो यह 'सिंहनाद गूगल' तय्यार होता है । यह गूगल बारह रत्ती प्रमाण खाय और गरम जल आदिका अनुपान करे । यह गूगल मनुष्योंकी बवासीर, विषमज्वरकी पीडा, प्रमेह, कोढ, भगन्दर और मेद, वायु, तथा कफसे उत्पन्न हुए रोगोंको दूर करे है । इस गूगलको सेवन करनेसे दाह, अतीसार, अथवा अन्यान्य कोई विकार होय तो तक्रके साथ भात खाय । उबटन, शीतल जलसे स्नान और शयन करना हितकारी है । यह सिंहनादगूगल बहुत दस्त लाता है इस कारण बुद्धिमान् वैद्य रोगीके शरीरका बल विचारकर बारह रत्ती प्रमाण देवे अथवा इससे भी कम देवे । इस गूगलमें धत्तूरेके फलोंका चूर्ण डालना कहा है सो उनको ऐसे ही नहीं डालना चाहिये किंतु प्रथम उसके फलोंको अनुक्रमसे पानीसे आरनालसे तथा गायके दूधसे पकावे, प्रथम शुद्ध करके फिर इनका चूर्ण करके डाले । पानी आदिमें पकानेसे धत्तूरेके फल शुद्ध हो जाते हैं ॥२२१–२२८॥

अथ तृतीयसिंहनादगुग्गुलुः ।

पिचितां गुग्गुलोर्मानीं कटुतैले पलाष्टके ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ २२९ ॥ पादशेषं सपूतं च पुनरग्नावधिश्रयेत् । त्रिकुडुत्रिफलामुस्ताविडंगामलकानि च ॥२३०॥ गुडूच्यग्नित्रिवृद्दन्तीवचासूरणमानकम् । कस्तूरीरससूतांशं प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥२३१॥ सहस्रं कानकफलं सिद्धे संचूर्ण्य निक्षिपेत् । ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम्॥२३२॥ अग्निं च कुरुते शीघ्रं वडवानलसन्निभम् । धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥२३३॥ आमवातं शिरोवातं ग्रन्थिवातं भगन्दरम् । जानुजंघाश्रितं वातं सकटीग्रहवेदनम् ॥ २३४ ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रे च भग्ने च तिमिरोदरे । अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ २३५ ॥ कासं पञ्चविधं श्वासं क्षयं च विषमज्वरम् । प्लीहानं श्लीपदं गुल्मान्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ २३६ ॥ शोथान्त्रवृद्धिशूलानि गुदजानि विनाशयेत् । मेदःकफामसञ्जातरोगवारणदर्पहा ॥ २३७ ॥ सिंहनाद इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः । भिषग्भिर्वर्जिते रोगे भाषितो दण्डपाणिना ॥ २३८ ॥

बत्तीस ३२ तोले सरसोंके तेलमें खूब कूटा हुआ बत्तीस ३२ तोले गूगल लेवे, हरड ६४ तोले, बहेडे ६४ तोले और आमले ६४ तोले इन सबको डेढ द्रोण जलमें पकावे जब पकते २ जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर कपडेमें छान लेवे, फिर दूसरी बार आगपर पकावे उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, आंवले, गिलोय, चीता, निसोत, जमालगोटेके बीज, वच, जमकिंद, मानकंद, कस्तूरी, रसौत और पारा ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर पीसकर डाल देवे विधिपूर्वक पकावे, जब पक जाय तब जल, आरनाल काँजी और गायके दूधसे शुद्ध किये हुए धतूरेके एक हजार पल उनका चूर्ण बनाकर डाल देवे तो यह 'सिंहनाद गूगल' सिद्ध होता है । इस गूगलको बारह रत्ती प्रमाण खाय और गरम जल आदिका अनुपान करे । यह गूगल तत्काल जठराग्निको वडवानलकी समान दीपन करता है, धातुओंको बढाता है, जीवनकी वृद्धि करता है, विपुल बलको उत्पन्न करता है । तथा आमवात, शिरोवात, ग्रन्थिवात, भगन्दर, जानु और जंघागतवात, कमरकी पीडा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भग्न, तिमिर, उदररोग, अम्लपित्त, कोढ, प्रमेह, गुदाका निकलना (कांच), खाँसी, पांच प्रकारका श्वास, विषमज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पांडुरोग, कामला, सूजन, अंत्रवृद्धि, शूल और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करता है । मेद, कफ और आम इन रोगरूपी हाथियोंके गर्वको हरनेवाला यह 'सिंहनाद गूगल' इस नामसे प्रसिद्ध योग अमृतकी समान है । वैद्य करके वर्जित रोगोंको दूर करनेके लिये यह श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ २२९–२३८ ॥

अथ योगसारामृतः ।

शतावरी नागबला वृद्धदारकमुच्चटा । पुनर्नवाऽमृता कृष्णा वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् ॥ २३९ ॥ पृथग्दशपलान्येषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । तदर्द्धशर्करायुक्तं चूर्णं संमर्दयेद्बुधः ॥ २४० ॥ स्थापयेत्सुदृढे भाण्डे मध्वर्द्धाढकसंयुतम् । घृतप्रस्थेन वाऽऽलोड्य त्रिसुगन्धपलेन च ॥ २४१ ॥ तं खादेदिष्टभक्ष्यान्नो यथावद्बिबलं नरः । वातरक्तं क्षयं कुष्ठं कार्श्यं पित्तास्रसम्भवम् ॥ २४२ ॥ वातपित्तकफोत्थांश्च रोगान्न्यांश्च तत्कृतान् । हत्वा करोति पुरुषं हत्वा सर्वामयान्द्रुतम् ॥ २४३ ॥ वलीपालितानिर्मुक्तं मेधास्मृतिविभूषितम् । करोति पुरुषं धन्यं पञ्चवर्षशतायुषम् । योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकीर्तिविवर्द्धनः ॥ २४४ ॥

सतावर, गोरखमुंडी (गुलशकरी), विधारा, उटंगके बीज, पुनर्नवा, गिलोय, पीपल, असगंध और गोखरू ये प्रत्येक पदार्थ ४० चालीस ४० चालीस तोले लेकर उनका बारीक चूर्ण बनाकर उसमें आधा भाग खांड मिलावे, सबको खूब मर्दन करे फिर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसमें १२८ तोले सहत और ६४ तोले घी तथा तज, तेजपत्र और इलायचीका चूर्ण प्रत्येक चार चार तोले मिलाकर अत्यन्त दृढ बासनमें भरकर रख देवे तो यह 'योगसारामृत' सिद्ध होता है। मनुष्योंका यह 'योगसारामृत' अपनी जठराग्निके बलानुसार खाना चाहिये और यथेष्ट अन्नपान भोजन करे। लक्ष्मी तथा कीर्तिको बढानेवाला यह योगसारामृत वातरक्त, कोढ, कृशता, पित्त तथा रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले रोग और वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए अन्यान्य रोगोंको भी दूर करके वली और पलित रोग नष्ट करे है, मेधा और स्मरणशक्तिसे शोभायमान करता है। भाग्यको बढाता है और उसकी पांच सौ वर्षकी आयु करता है ॥ २३९–२४४ ॥

अथ वातरक्ते त्याज्यानि ।

व्यायामं मैथुनं क्रोधमुष्णाम्ललवणं रसम् । दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरु चान्यद्विवर्जयेत् ॥ २४५ ॥

व्यायाम (दंड, कसरत), मैथुन, क्रोध, उष्ण, खट्टा और खारी रसवाले पदार्थ, दिनमें सोना और जो जो पदार्थ अभिष्यन्दि तथा भारी हैं उन सबको यह वातरक्तरोगी त्याग देवे ॥ २४५ ॥

इति वातरक्तनिदानचिकित्साधिकारः समाप्तः ।

इति श्रीभावप्रकाशे भाषाटीकायां मध्यखंडे द्वितीयो भागः सम्पूर्णः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥

अथ भावप्रकाशः ।

मध्यमखण्ड—तृतीयो भागः ३.

भाषाटीकासमेतः ।

अथ शूलाधिकारः ।

अथ शूलनिदानम् ।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् । सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

वायुसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे, आमसे, वातपित्तसे, वात तथा कफसे और पित्तकफसे इसप्रकार शूल आठ प्रकारका है, इन सम्पूर्ण शूलोंमें वातका शूल अधिक प्रबल है ॥ १ ॥

अथ वातोत्पन्नशूलस्य निदान-संप्राप्ति-लक्षणानि ।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् । कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥ कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकैः । विड्छुक्रमूत्रानिलसन्निरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् । वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिकवस्तिदेशे । जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ३ ॥ मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विण्मूत्रसंस्तम्भनतोदभेदैः । संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ४ ॥ व्यायामो मल्लयुद्धादिः । यानं तुरगरथादि । मैथुनं स्त्रीसेवा । प्रजागरं रात्रौ । एषामतियोगाच्छीतलजलप्रभूतपानात् । कलायः त्रिपुटः । आढकी तुवरी । कोरदूषः कोद्रवः । अत्यर्थरूक्षम् अतिरूक्षद्रव्यसेवा । अध्यशनं भुक्तस्य उपरि भोजनम् । अभिघातो लोष्टादिभिः । कषायतिक्तरससेवा कषायः विरूढजान्नम् विरूढमंकुरितमन्नम् । कलायचणकादि तज्जमन्नं भक्ष्यम् । वल्लूरकं शुष्कमांसम् । तस्य शूलस्य देशमाह हृदादिषु । तत्र हृच्छूलस्य पृथगपि लक्षणं पठन्ति ।

व्यायाम (कसरत), यान (रथ, घोडे आदिकी सवारी), मैथुन, रात्रिमें जागरण इनको अत्यंत करनेसे, शीतल जलके अधिक पीनेसे, मटर, मूँग, अरहर तथा कोदोंके अत्यन्त भक्षणसे, रूक्ष पदार्थोंके अत्यंत सेवन करनेसे, अध्यशन (भोजनपर भोजन करने) से, अभिघात (लाठी ईंट आदिकी चोट लगने) से, कसैले कडवे रसके सेवनसे, जिसमें अंकुर निकल आये हों ऐसा अन्न तथा विरुद्ध पदार्थ दूध मछली आदि खानेसे, सूखा हुआ मांस तथा सूखे हुए शाक भिंडिवालके भक्षणसे, विष्ठा, वीर्य, मूत्र, अधोवायु, इनके वेगको रोकनेसे, अत्यंत शोक तथा अत्यंताधिक उपवास करनेसे, बहुत हँसनेसे और अत्यंत बोलनेसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु हृदय, पीठ, पसली, त्रिकस्थान और मूत्राशयमें शूलको उत्पन्न करे है पश्चात् खाया हुआ अन्न पच जानेपर प्रदोष (संध्याकाल)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में, वर्षासमयमें, शीतकाल समयमें, वायुका कोप होनेपर शूल अधिक कुपित होता है । यह शूल वारंवार कुपित होता है और वारंवार शांत होता है । इस शूलसे विष्ठा तथा मूत्र रुक जाता है और पीडा अधिक होती है । और अंगोंमें भेद होता है ये वातशूलके लक्षण हैं । सेंक आदि स्वेदन करनेसे, अभ्यंग (तेलकी मालिश) से, मर्दन (मलने आदि) से और स्निग्ध तथा गरम भोजन करनेसे यह शूल शांत होता है । अन्य ग्रन्थोंमें हृदयके शूलके, पसलीके और वस्तिशूलके अलग लक्षण भी कहे हैं सो कहते हैं ॥ २--४ ॥

अथ हृदयशूललक्षणम् ।

कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसवर्द्धितः ॥५॥
हृत्स्थः प्रकुरुते शूलमुच्छ्वासस्यावरोधकम् ।
स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतकोपजः ६

कफ तथा पित्तसे रुकी हुई और रससे बढी हुई हृदयमें रहनेवाली वायुसे श्वास रुकती है तब शूलको उत्पन्न करे है । रस और वायुके कोपसे उत्पन्न हुआ वह शूल हृदयशूल कहलाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ पार्श्वशूललक्षणम् ।

कफं निगृह्य पवनः सूचीभिरिव निस्तुदन् ।
पार्श्वस्थः पार्श्वयोः शूलं कुर्यादाध्मानसंयुतम् ॥ ७ ॥ तेनोच्छ्वसिति वक्त्रेण नरोऽन्नं च न कांक्षति । निद्रां च नाप्नुयादेव पार्श्वशूलः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

कफ वायुको लेकर सुईके चुभोनेकी सदृश पसलियोंमें पीडा उत्पन्न करती है और साथमें पेटपर अफरा भी करे है । यह शूल हुआ होय तो मनुष्य मुखसे ही ऊँचे श्वास लेता है, अन्नकी इच्छा नहीं होती और निद्रा भी नहीं आती यह इन लक्षणोंवाला शूल पार्श्वशूल कहा जाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ वस्तिशूललक्षणम् ।

संरोधात्कुपितो वायुर्वस्तिं संश्रित्य तिष्ठति ।
वस्तेरध्वनि नाडीषु ततः शूलोऽस्य जायते ।
विण्मूत्रवातसंरोधी वस्तिशूलः स उच्यते ।
॥ ९ ॥ प्रकृतमनुसरति । जीर्णे भुक्ते । प्रदोषे रात्र्यागमे रात्रिभवशीतेन वातप्रकोपात् । घनागमे वर्षासु मेघोदये च ।

वेगोंके रोकनेसे कुपित हुई वायु मूत्राशयमें भरी रहती है, इससे मूत्राशयके मार्गकी नाडियोंमें शूल होता है और इससे मल, विष्ठा, मूत्र तथा वायु भी रुक जाती है, यह वस्तिशूल कहलाता है ॥ ९ ॥

अथ पित्तजशूलनिदानसंप्राप्तिलक्षणानि ।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः । कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः । ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याथ करोति शूलम् । तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ॥ १० ॥ मध्यन्दिने कुप्यति चार्द्धरात्रे निदाघकाले जलदात्यये च । शीते च शीतैः समुपैति शांतिं सुस्वादुशीतैरतिभोजनैश्च ॥ ११ ॥ निष्पावो राजमाषः । सौवीरं सन्धानभेदः । सुराविकारैः 'परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्ना सुरा मता तस्याः प्रकारैः । रविप्रतापः आतपः । ग्राम्यातियोगो मैथुनाधिक्यम् । विदाहीत्युक्त्वापि अशनैर्विदग्धैरिति बाधयति । अविदाहिवस्तुनोऽपि पित्तवशाद्विदाहित्वं भवति जलदात्यये शरदि शीतैर्वातादिभिः ।

खारोंसे अत्यन्त तीक्ष्ण, गरम मरिच आदि और विदाहकारक पदार्थोंसे, तेल, चौरा, खल और कुलथीके यूषसे, तीक्ष्ण तथा खट्टे पदार्थोंसे सौवीर कचे यवोंको अथवा पके भयोंको अर्थात् उनकी भूसी दूर करके जलमें सन्धान करनेको सौवीर कहते हैं । वरन् अंग्रेजीमें उसको भी राब कहते हैं । सुराका विकार क्रोध, अग्निके तापसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीक्ष्ण धूपसे, फिरनेसे, अधिक मैथुन करनेसे और विदाही भोजनोंसे कुपित हुआ पित्त नाभिमें शूलको उत्पन्न करे है, इससे--तृषा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम और शोष होता है । यह शूल मध्याह्नके समयमें, अर्धरात्रिमें, ग्रीष्मऋतुमें और शरदृतुमें अधिक कुपित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता है। शीतकालमें शीतल वायु आदिके लगनेसे अत्यन्त शीतल अति मधुर भोजनोंसे शान्त होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ कफजशूलनिदानसंप्राप्ति-लक्षणानि ।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैः मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः । अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ १२ ॥ हल्लासकाससदनारुचिसंप्रसेकैरामाशयैस्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः । भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च ॥ १३ ॥ आनूपं बहुलजलदेशजं भक्ष्यम् । वारिजं शालूकादि । पक्वं दध्ना समं क्षीरं विज्ञेया दधिकूर्चिका । तक्रेण तत्कूर्चकं स्यात्तयोः पिण्डः किलाटकः ॥ १४ ॥ पयोविकारः पायसादिः । पिष्टं माषादिः । अन्यैर्गुर्वादिभिः । स्तिमितमाद्रपटावगुण्ठितमिव यत्कोष्ठं शिरश्च तयोर्गुरुत्वैः सहसूर्योदय इति त्रिधा विभक्तदिवसप्रथमभागस्य उपलक्षणम् । शिशिरे तत्र कफस्य अतिसञ्चयात् । कुसुमागमे वसन्ते ।

अधिक जलवाले देशोंमें उत्पन्न हुए भक्षोंसे, पक्षियोंका मांस और मछली आदिका मांस और फटे दूधके मावेको किलाट कहते हैं, जलमें उत्पन्न हुए कमलकन्द आदि पदार्थोंसे किलाट फटे दूधके मावेसे, दूधपाक आदिके पदार्थोंसे, मांससे, ईखके रससे, उडदादि पिसे अन्नसे, खिचडी, तिल, पूरी, कचौरी, दहीबडे और अन्य कफको उत्पन्न करनेवाले कारणोंसे, कुपित हुआ कफ आमाशयमें शूलको उत्पन्न करे है । इस शूलसे हल्लास (सूखी रद), खाँसी, ग्लानि, अरुचि और मुखसे लार गिरती है, उदर और मस्तक भारी रहता है। भोजन करनेके पश्चात् यह शूल सर्वदा अत्यन्त पीडा करता है और दिनके पहिले भागमें शिशिरऋतुमें, वसन्तऋतुमें कफका सञ्चय तथा वृद्धि होनेसे यह शूल अधिक पीडा करता है ॥ १२-१४ ॥

अथ द्विदोषोत्पन्नशूललक्षणम् ।

द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम् ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण दोषोंके लक्षण ऊपर कहे हैं, उनमेंसे जिस शूलमें दो दोषोंके लक्षण एकत्र देखनेमें आवें उस शूलको दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ जानना ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषोत्पन्नशूललक्षणम् ।

सर्वेषु देशेषु च सर्वलिंगं विद्याद्भिषक्सर्वभवं हि शूलम् । सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १६ ॥ सर्वेषु देशेषु हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिकवस्तिनाभ्यामाशयेषु । सर्वभवं त्रिदोषजम् ।

जो शूल (दर्द) ऊपर कहे हुए हृदय, पीठ, पसली, त्रिक, वस्ति, नाभि और आमाशय इन सब स्थानोंमें होता हो और तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त होय, उसको त्रिदोषज शूल जानना । यह शूल बहुत कष्टदायक है, विष तथा वज्रकी सदृश है और चिकित्सा करनेके योग्य भी नहीं है ऐसा वैद्योंने कहा है ॥ १६ ॥

अथामोत्पन्नशूललक्षणम् ।

आटोपहल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः । कफस्य लिंगेन समानलिंगमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥ १७ ॥ कफस्य कफशूलस्य । आमोद्भवम् आमादुद्भवो यस्य तम् । अत्र आमशूले जाते पश्चाद्दोषसम्बन्धः अत एव अस्य शूलस्य अष्टमत्वमुक्तम् । स च प्रथमम् आमाशये भवति पश्चात् सम्बन्धिभिः दोषैः वस्तिनाभिहृत्पार्श्वकुक्षिषु भवति यथादोषसम्बन्धः ।

जिस शूलमें अफरा, हल्लास (उबकाई), वमन, शरीरमें भारीपन, मन्दता, मुखसे कफका गिरना, ये उपद्रव होंय तथा कफज शूलके सदृश लक्षण होंय उस शूलको आमशूल कहते हैं । यह आमशूल उत्पन्न होनेपर उसमें दोषोंका संबन्ध होता है इस कारण आमशूलको आठवां कहा है, यह शूल प्रथम आमाशयमें होता है और पीछेसे दोषोंका सम्बन्ध होनेपर जिस दोषका संबंध हुआ होय उस दोषकी रीतिके अनुसार वस्तिमें, नाभिमें, कोखमें, हृदयमें, पसलियोंमें और पेटमें होता है ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोषभेदेन आमशूलस्थानभेदः ।

वातात्मकं वस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् । हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात्॥१८॥ हृत्पार्श्वकुक्षौ हृत्पार्श्वाभ्यां सहिते कुक्षौ । कफसन्निविष्टं कफेन आविष्टम् । वस्तौ हृत्कटिपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः । कुक्षौ हृन्नाभिमध्ये तु स शूलः कफपैत्तिकः । दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥१९॥

आमशूल वायुके संबंधसे हुआ होय तो मूत्राशयमें, पित्तके संबंधसे हुआ होय तो नाभिमें, कफके संबंधसे हुआ होय तो हृदयमें, पसलियोंमें तथा उदरमें और तीनों दोषोंके संबंधसे हुआ होय तो संपूर्ण प्रदेशोंमें होता है । कफके तथा वायुके संबंधसे हुआ होय तो मूत्राशय, हृदय, कमर और पसलियोंमें होता है, कफ तथा पित्तके संबंधसे हुआ होय तो पेटमें, हृदय और नाभिके मध्यमें होता है और वायु तथा पित्तके संबंधसे हुआ होय तो दाह तथा ज्वरको उत्पन्न करे है परन्तु यह अत्यन्त भयदायक है, यह लक्षू वातपित्तका समझना और यह भयंकर है॥१८॥१९॥

अथ तंत्रान्तरोक्तामशूललक्षणम् ।

अतिमात्रं यदा भुक्तं पावके मृदुतां गते । स्थिरीकृतं तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ २० ॥ यदान्नं न गतं पाकं तच्छूलं कुरुते भृशम् । मूर्च्छाध्मानविदाहांश्च हृत्क्लेशं सविलम्बिकम् ॥ २१ ॥ कर्म्म शान्तिमतीसारं प्रमेहं जनयेदपि । अविपाकोद्भवं शूलमेतमाहुर्मनीषिणः ॥ २२ ॥ अविपाकोद्भवम् आमोद्भवमित्यर्थः ।

अत्यन्त भोजन किये अन्नसे जठराग्नि मन्द हो जानेके कारण वायु कोठेमें अन्नको स्थिर करती है, वह अन्न वातमें मिलकर उदरमें स्थिर होकर जम जाता है और वात अन्नके चारों ओर रहता है फिर वह अन्न पक्व नहीं होता तो वही दुष्ट अन्न नहीं पचकर भारी शूलको उत्पन्न करे है, तथा मूर्च्छा, अफरा, दाह, हृदयमें क्लेश, विलंबिका, कफ, वमन, अतीसार और प्रमेहको उत्पन्न करे है, इस शूलको विद्वान् आमशूल कहते हैं ॥ २०--२२ ॥

अथ शूलोपद्रवाः ।

वेदनातितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची । कासः श्वासो वमिर्हिक्का शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ २३ ॥

वेदना (पीडा), अत्यन्त तृषा, मूर्च्छा, मलबन्ध, भारीपन, अरुचि, खाँसी, श्वास, वमन और हिचकी ये शूलके दश उपद्रव जानने ॥ २३ ॥

अथ शूलसाध्यासाध्यत्वम् ।

एकदोषानुगः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः । सर्वदोषान्वितो घोरस्त्वसाध्यो मूर्युपद्रवः ॥ २४ ॥

जो शूल एक दोषवाला होय वह साध्य, दो दोषवाला होय वह कष्टसाध्य और तीन दोषोंवाला होय तथा अधिक उपद्रवसहित होय वह असाध्य तथा भयंकर जानना ॥ २४ ॥

अथ शूलारिष्टम् ।

वेदनाऽतितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवं ज्वरः । भ्रमोऽरुचिः कृशत्वं च बलहानिस्तथैव च । उपद्रवा दशैवैते यस्य शूलेषु नास्ति सः॥२५॥

वेदना, अत्यन्त तृषा, मूर्च्छा, अफरा, भारीपन, ज्वर, भ्रम, अरुचि, दुर्बलता और बलकी हानि, इन दश उपद्रवों सहित शूलरोगी होय तो वह रोगी कदापि नहीं बच सक्ता ॥ २५ ॥

अथ शूलभेदः परिणामः ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वातः सन्निहितो यदा । कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बला । भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥ २६ ॥ स्वैर्निदानैरित्यादिना निदानपूर्विका संप्राप्तिरुक्ता । भुक्ते जीर्यतीत्यादिना लक्षणमुक्तम् । समावृत्य व्याप्य । तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते । आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवेपनैः । स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्विदेद्भिषक् ॥ २७ ॥ तृष्णादाहारतिस्वेदकटूम्ललवणोत्तरम् । शूलं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद्बुधः ॥ २८ ॥ छर्दिहल्लाससंमोहस्वल्परुग्दीर्घसन्ततिः । कटुतिक्तोपशान्तौ च विज्ञेयं च कफात्मकम् ॥ २९ ॥ संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् । त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलानलम् ॥ ३० ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुआ बलवान् वायु कफ और पित्तमें व्याप्त होता है तब शूल उत्पन्न होता है और वह शूल भोजन किये अन्नके पचनेके समयमें होता है इसको परिणाम शूल कहते हैं । पेटका फूल जाना, गुडगुड शब्द होना, मलमूत्रका अवरोध, अरति (मनका न लगाना) तथा कंप ये लक्षण होयँ और स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थोंसे शांत होता होय उसको वैद्य वातसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल कहते हैं । जिसमें तृषा, दाह, अरति, स्वेद (पसीना), तीक्ष्ण खट्टे तथा खारी पदार्थोंसे हुआ होय और शीतल पदार्थोंसे जो शान्त होता होय उसको विद्वान् पित्तसे उत्पन्न हुआ परिणाम शूल कहते हैं । जिसमें वमन, हृल्लास, मोह तथा अल्प पीडा होय बहुत दिनोंतक रहे और तीक्ष्ण तथा कडवे पदार्थोंसे जो शांत होता होय तो उस शूलको कफसे उत्पन्न हुआ परिणाम शूल जानना । उपरोक्त लक्षणोंमेंसे दो दोषके लक्षण मिलते होयँ तो वह द्वन्द्वज और जिसमें उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण मिलते होयँ उसको त्रिदोषज जानना । जो शूल त्रिदोषज होय और जिसने मांस बल तथा अग्निको क्षीण कर दिया होय वह परिणाम शूल असाध्य जानना ॥ २६–३० ॥

अथान्नद्रवनामकशूललक्षणम् ।

जीर्णे जीर्यति चाप्यन्ने यच्छूलमुपजायते । पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन वा । न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ ३१ ॥ नेदं शूलमसाध्यं चिकित्साभिधानात् ।

भोजन किया हुआ अन्न पचनेके समयमें अथवा पचनेके पश्चात् जो शूल उत्पन्न हो जाता है, तथा पथ्यसे, अपथ्यसे, भोजनसे, अथवा अभोजनसे जिसके शांत होनेका नियम नहीं है वह अन्नद्रवशूल कहाता है, इस शूलको असाध्य नहीं जानना, क्योंकि ग्रंथोंमें वैद्य लोगोंने चिकित्सा कही है ॥ ३१ ॥

अथ शूलचिकित्सा ।

वमनं लंघनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः । क्षारश्चूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ ३२ ॥ विज्ञाय वातशूलं तु स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् । स्वल्पशूलाकुलस्थे स्यात्स्वेद एव सुखावहः ॥ ३३ ॥

वमन, लंघन, स्वेदन, पाचन, फलवर्त्ति (गुदामें वत्ती चढाना,) क्षार, चूर्ण और गोली ये सब उपाय शूलके शांति करनेके लिये उत्तम कहे हैं । शूल वायुसे हुआ जाने तो स्नेहन तथा स्वेदन उपचार करे, किंचित् शूल होय तो स्वेद करनेसे सुख होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ मृत्तिकास्वेदः ।

मृत्तिकां सजलां पाकाद्घनीभूतां पटे क्षिपेत् । कृत्वा तत्पोटलीं शूली यथास्वेदं विधारयेत् ॥ ३४ ॥

मट्टीमें पानी डालकर पकावे, जब गाढी हो जाय तब कपडेमें रख पोटली कर लेवे, इससे योग्य सेक करे तो वायुका शूल दूर होता है, इसको मृत्तिकास्वेद कहते हैं ॥ ३४ ॥

अथ कार्पासास्थ्यादिस्वेदः ।

कार्पासास्थिकुलत्थकैस्तिलयवैरैरण्डमूलातसीवर्षाभूशणबीजकाम्लिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् । स्वेदः स्यादथ कूर्परोदरशिरःस्फिग्जानुपादांगुलीगुल्फस्कन्धकटीरुजो विजयते निःशेषवातार्तिहा ॥ ३५ ॥

कपासकी अस्थि (विनोले), कुलथी, तिल और जौ इन सबको अथवा एक एकको अंडीकी जड, अलसी, सोंठ, सनके बीज और काँजी इन सबके साथ मिलाकर गरम कर लेवे, इससे स्वेद देवे तो पहुँचा, पेट, शिर, कूला, घुटुआ, पैर, पांव, अंगुली, एडी, कंधा और कमर इनका शूल नष्ट होता है और अन्यवायुसंबंधी सम्पूर्ण पीडा दूर होती है, इसको कार्पासास्थ्यादिस्वेद कहते हैं ॥ ३५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तिलादिगुटिका।

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि। शूलं सुदुस्तरं तेन शान्तिं गच्छति सत्वरम्॥ नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनं काञ्जिकान्वितम् ॥ ३६ ॥ मदनं मयनफलम्। विश्वमेरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत्। हिंगुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ३७ ॥

तिलोंको पीसकर गोली बनावे और पेटके ऊपर फेरे तो इससे भयंकर शूल भी तुरंत शांत हो जाता है। अथवा मैनफलको काँजीमें पीसकर नाभिके ऊपर लेप करे तो शूल मूलसे जाता रहता है। सोंठ और अंडीकी जड इनका क्वाथ करके उसमें भूनी हींग तथा कालानोन डालकर पिये तो तुरंतही शूल नष्ट होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ वातजशूलचिकित्सा।

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः। पायसैः कृशरैः पिंडैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः ॥ ३८ ॥ वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहने युक्तस्तु कुलत्थयूषः। ससैंधवव्योषयुतः सलावः सहिंगुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ ३९ ॥

शूल रोगीको तिल चावलकी यवागू तथा स्निग्ध मेंडक आदिके मांससे स्वेदन करना अत्यन्त उपकारी है। लघुपक्षीका मांस और कुलथी इन दोनोंका क्वाथ करके उसके साथ थोडासा सैंधव निमक, त्रिकुटा (सोंठ, मिरिच, पीपल), अनारदानेका रस और संचरनिमक मिलायके सेवन करे तो शीघ्र वातशूल दूर होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

बलापुनर्नवैरंडबृहतीद्वयगोक्षुरैः। सहिंगुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ४० ॥ तुंबुरुण्यभया हिंगु पौष्करं लवणत्रयम्। पिबेदुष्णांबुना वापि शूलगुल्मापतंत्रकी ॥ ४१ ॥ यवानीं हिंगुसिंधूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः। सुरामंडेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥ ४२ ॥ सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः। मातुलुंगरसैः पिष्ट्वा गुटिका वातशूलनुत् ॥ ४३ ॥ बीजपूरकमूलं च घृतेन सह पाययेत्। जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ ४४ ॥

खिरैंटी, पुनर्नवा, अंड, छोटी कटेरी, बडी कटेरी इनके क्वाथमें हींग और सेंधानिमक डालके पीवे तो वातशूल नष्ट होय अथवा तुंबुरू, हरड, हींग, पोहकरमूल, संचर, सेंधा और विड निमक इनका समानभाग चूर्ण कर गरम जलके साथ पीवे तो शूल, गोला और अपतंत्रवात दूर होय। अथवा अजवायन, हींग, सेंधानिमक, सजीखार, जवाखार, संचरनिमक और हरडके चूर्णको मद्य अथवा मांडसे पीवे तो वातशूल दूर होय। अथवा संचरनिमक २ भाग, इमली ४ भाग, जीरा ८ भाग और कालीमिरच १६ भाग, इन सबको बिजौरेके रसमें खरल कर गोली बनावे, यह वातशूलको नष्ट करे है अथवा बिजौरेकी जडका २ तोले चूर्ण कर घीके साथ पीवे तो वातशूल नष्ट होय ॥ ४०--४४ ॥

अथ पित्तजशूलचिकित्सा।

गुडं शालिर्यवक्षारः सर्पिःपानं विरेचनम्। जांगलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ ४५ ॥ मणीरजतताम्राणां भाजनानि गुरूणि च। तोयेन परिपूर्णानि शूलस्योपरि धारयेत् ॥ ४६ ॥ विरेचनं पित्तहरं प्रशस्तं रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम्। सगुडां घृतसंयुक्तां भक्षयेद्वा हरीतकीम्। प्रलिह्याच्छूलशान्त्यर्थं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ ४७ ॥

जिसको पित्तका शूल हुआ हो उसके लिये गुड, शालि चावलोंका भात, जवाखार, घी पीना, विरेचन और जांगलदेशके पशु पक्षियोंका मांस यह औषधिरूप है। मणि (रत्नादिक), चांदी, अथवा तांबेके भारी भारी पात्रोंमें भरकर पित्तज शूलके ऊपर धरे इससे पित्तजशूल नष्ट होता है। पित्तको हरनेवाला विरेचन, खरगोश और लवेके मांसका रस यह पित्तजशूलको शान्त करे है। हरडोंका चूर्ण करके उसको गुड घीमें मिलाकर चाटनेसे अथवा सहतके साथ आमलेका चूर्ण चाटे तो पित्तजशूलकी शांति होती है ॥ ४५--४७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कफजशूलचिकित्सा।

शाल्यन्नं जांगलं मांसमरिष्टं कटुकं रसम्। मधुना जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत् ॥ ४८ ॥ अरिष्टं भेषजवारिक्वाथसिद्धं मद्यम्। लवणत्रयसंयुक्तं पंचकोलं सरामठम्। सुखोष्णेनांबुना पीतं कफशूलं प्रणाशयेत् ॥ ४९ ॥

कफसम्बन्धी शूल हुआ होय तो शालिचावल, जांगलदेशके पशु पक्षियोंका मांस, अरिष्ट (योग्य औषधियोंके जलके क्वाथसे बनाई हुई मदिरा), तीक्ष्ण रस और मदिराके साथ पुराने गेहूँके पदार्थ यह सेवन करे। सेंधानोन, विडनोन, कालानोन, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, मिरच और हींग इनका चूर्ण करके सुहाते २ गरम जलके साथ पिये तो इससे कफजशूल नष्ट होता है ॥ ४८॥४९ ॥

अथामशूलचिकित्सा।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलप्रणाशिनी। सेव्यमामहरं सर्वमग्नेर्मन्दस्य वर्द्धनम् ॥५०॥ तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णसुत्तमम्। प्रयोज्यं मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलनिवारणम् ॥ ५१ ॥ दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः। अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च लिम्पेच्छूलयुतोदरम् ॥ ५२ ॥ मूलं बैल्वं तथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम्। हिंगुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ५३ ॥ वातरोगान्तर्गताध्मानचिकित्सायां लिखितो नाराचनामा रसोऽन्यच्च विरेचनं शूले हितम्।

आमशूल हुआ होय तो कफशूलको नष्ट करनेवाली क्रिया करे, आमको नष्ट करनेवाले सब पदार्थोंका सेवन करे और मन्द हुई अग्निको प्रदीप्त करे। राईका चूर्ण और हरड, बहेडा तथा आमले इनका चूर्ण मधमें तथा घीमें मिलाकर खावे तो उससे सर्व प्रकारके शूल नष्ट होते हैं अथवा देवदारु, सफेदवच, कूठ, सोया, हींग और सेंधानिमक इनको नींबूके रसमें पीसकर सुहाता २ गरम लेप करे, इससे उदरका शूल निर्मूल होता है। अथवा बेलकी जड, अण्डकी जड, चीता और सोंठ इनका क्वाथ चूर्ण करके हींग और सेंधेनोनके साथ खाय तो इससे तत्काल शूल निवृत्त होता है। वायुसम्बन्धी रोगोंके प्रकरणमें आध्मानकी चिकित्सापर जो नाराचनामक रस कहा है वह और अन्य भी विरेचन शूलपर हितकारी हैं ५०--५३ ॥

अथ कूष्माण्डक्षारः।

कूष्माण्डं तनु कृत्वा तु क्षिप्त्वा घर्मे विशोषयेत्। स्थाल्यां निक्षिप्य तत्सर्वं पिधानेन पिधाय च ॥ ५४ ॥ चुल्ल्यां निवेश्य वह्निं च ज्वालयेत्कुशलो जनः। यथा तन्न भवेद्भस्म किन्त्वंगारो दृढो भवेत्। तथा निर्वापयेच्छीतं सर्वथा चूर्णितं तु तत् ॥ ५५ ॥ माषद्वयमितं तावच्छुण्ठीचूर्णेन मिश्रितम्। जलेन भक्षयेन्नित्यं महाशूलाकुलो नरः। असाध्यमपि यच्छूलं तदप्येतेन शाम्यति५६

पेठेके छोटे २ टुकडे करके धूपमें सुखावे, पश्चात् इन सब टुकडोंको हांडीमें भरकर ऊपरसे ढक देवे, फिर चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जला देवे, परन्तु अग्नि इस प्रकार जलावे कि जिससे पेठेके टुकडे जल न जायँ किंतु दृढ अंगारोंकी सदृश हो जायँ फिर इनको शीतल होनेपर चूर्ण कर लेवे और बारह रत्ती इसके चूर्णमें, बारह रत्ती सोंठका चूर्ण मिलाकर पानीसे नित्य भक्षण करे तो इससे असाध्य शूल भी शान्त हो जाता है। अत्यन्त शूलसे व्याकुल हुए मनुष्योंको यह उपाय करना चाहिये, इसको कूष्माण्डक्षार कहते हैं ॥ ५४--५६ ॥

अथ परिणामशूलचिकित्सा।

लंघनं प्रथमं कुर्याद्वमनं सविरेचनम्। पक्तिशूलोपशान्त्यर्थं तत्र वान्तेर्विधिर्यथा ॥५७॥ पीत्वा तु क्षीरमाकण्ठं मदनक्वाथसंयुतम्। कान्तारकस्य पौण्ड्रस्य कोशकारस्य वा रसम् ॥ ५८ ॥ कषायो वाथ निम्बस्य कटुतुम्बीरसोऽथ वा। यथाविधि वमेद्धीमान्पक्तिशूलार्दितो जनः ॥ ५९ ॥ त्रिवृता च तथा दंत्या तलेनैरंडजेन वा। दत्तं विरेचनं सद्यः पक्तिशूलनिवारणम् ॥ ६० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिणामशूलकी शांतिके लिये प्रथम लंघन और पश्चात् वमन तथा विरेचन करावे। वमनकी विधि इस प्रकार है कि, परिणाम शूलसे पीडित मनुष्यको मैनफलके क्वाथके साथ दूधको, अथवा कांतार (काले गन्ने) के रसको अथवा पौण्ड्रक ईखके रसको वा कोशकार ईखके रसको वा नीमके क्वाथको अथवा कडवी तोंबीके क्वाथको गलेतक पीकर विधिपूर्वक वमन करे। निसोत, दन्ती (जमालगोटेकी जड) अथवा अण्डीके तेलका विरेचन (जुलाब) देवे तो तुरन्त परिणामशूल नष्ट होता है॥ ५७--६०॥

अथ विडंगादिमोदकः।

विडंगतण्डुलव्योषत्रिवृद्दन्तीसचित्रकम्। सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ ६१॥ गुडेन मोदकान्कृत्वा खादेदुष्णेन वारिणा। जयेत्त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम्॥ ६२॥

वायविडंग, चावल, सोंठ, मिरच, पीपल, निसोत, दन्ती और चीता इन सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके गुडमें मिलाकर लड्डू बना लेवे, फिर गरम जलके साथ खाय तो तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल नष्ट होता है, इसको विडंगादिमोदक कहते हैं॥६१॥६२॥

अथ शुण्ठ्यादिकल्कः।

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संपिष्य यः पुमाँल्लिह्यात्। उग्रं परिणतिशूलं नश्येत्तस्य त्रिरात्रेण॥ ६३॥ पीतशम्बूकजं भस्म जलेनोष्णेन तत्क्षणात्। पक्तिजं नाशयत्येव शूलं विष्णुरिवासुरान्॥ ६४॥

जो मनुष्य सोंठ, तिल और गुड इनका कल्क करके दूधमें पीसकर चाटे तो उग्र परिणामशूल भी तीन दिनमें नष्ट हो जाता है। अथवा छोटे २ घोंघोंकी भस्मको गरम जलके साथ पिये तो जिस प्रकार विष्णु दैत्योंका नाश करते हैं उसी प्रकार यह भस्म परिणामशूलको तुरन्त शान्त करे है॥६३॥६४॥

अथ पथ्यादिलोहः।

लौहपथ्याकणाशुण्ठीचूर्णं समधुसर्पिषा। विलिहन्विनिहन्त्येव शूलं हि परिणामजम्॥ ६५॥

लोहेकी भस्म, हरड, पीपल और सोंठ इनका चूर्ण करके सहत और घीके साथ चाटे तो इससे परिणामशूल अवश्य नष्ट हो जाता है॥ ६५॥

अथ नारिकेलक्षारः।

नारिकेलं सतोयं च लवणेन सुपूरितम्। मृदा च वेष्टितं शुष्कं पक्वगोमयवह्निना॥ ६६॥ पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलं हि परिणामजम्। वातिकं पैत्तिकं चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्॥ ६७॥

पानी भरे हुए गीले नारियलके पेटमें भली भांति नोन भर देवे, पश्चात् कपडमट्टी करके सुखाकर अर्ने उपलोंकी अग्निसे पकावे और भस्म कर लेवे, यह भस्म पीपलके चूर्णके साथ खाय तो इससे वायुसम्बन्धी, पित्तसम्बन्धी, कफसम्बन्धी और त्रिदोषसम्बन्धी परिणामशूल भी नष्ट होता है॥ ६६॥ ६७॥

अथान्नद्रवशूलचिकित्सा।

अन्नद्रवाख्ये शूले तु न तावत्स्वास्थ्यमश्नुते। यावत्कटुकपित्ताम्लमन्नं न च्छर्दयेद्भृशम्॥६८॥ जातमात्रे जरत्पित्ते शूलमाशु विनाशयेत्। पित्तार्ते वमनं कृत्वा कफार्ते च विरेचनम्॥ ६९॥ अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम्। जरत्पित्तेऽपि यत्पथ्यं प्रोक्तमन्नद्रवे तु यत्॥ ७०॥ आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम्। माषेण्डरीं सलवणां सुस्विन्नां तैलपाचिताम्। तादृशीं सर्पिषा खादेदन्नद्रवनिपीडितः॥७१॥ धात्रीफलभवं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम्। यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्गदे॥७२॥

जबतक तीक्ष्ण, गरम और पित्त मिले खट्टे अन्नको रोगी वमन न करेगा तबतक अन्नद्रवके शूलमें स्वस्थता प्राप्त नहीं हो सक्ती। परिणामशूल पित्तसे उत्पन्न हुआ होवे तो तुरन्तही वमन करके नष्ट कर देवे और कफसे हुआ होय तो विरेचनसे नष्ट कर देवे। जो चिकित्सा परिणामशूलमें कही है वही अन्नद्रव शूलमें भी करे। जो चिकित्सा अन्नद्रव शूलमें कही है वह परिणामशूलमें भी करे। रोगीका आमाशय और पक्वाशय शुद्ध होनेसे अन्नद्रवशूल शान्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता है । अन्नद्रवशूलसे पीडित मनुष्य हींग, मिरच, जीरा तथा अदरख पडी हुई उडदकी पिट्ठीकी छोटी छोटी बडियें करके उनको भली भांति तेलमें पकाकर घीके साथ खाय । आमलेका चूर्ण करके उसमें लोहेका चूर्ण अथवा मुलैठीका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ खाय तो इससे अन्नद्रवशूल नष्ट हो जाता है ॥ ६८-७२ ॥

श्यामाकतण्डुलैः सिद्धं सिद्धं कोद्रवतण्डुलैः । प्रियंगुतण्डुलैः सिद्धं पायसं सहितं हितम् ॥ ७३ ॥ अत्र प्रियंगुः कंगुविशेषः । गौडिकं शौरणं कन्दं कूष्माण्डमपि भक्षयेत् । कलायवसक्तून्वा सक्तून्वा लाजसम्भवान् ॥ ७४ ॥ गौडिकं गुडेन संस्कृतं पक्वान्नम् । कुलत्थसक्तूनथ वा दध्ना दद्याच्च दाधिकम् । चणकानामथो सक्तून्कोद्रवस्यौदनं तथा ॥ ७५ ॥ दाधिकं दध्ना संस्कृतं भक्तं महेरि इति लोके । गोधूममण्डकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् । ससितं शीतदुग्धेन मृदितं कथितं हितम् ॥ ७६ ॥ अन्नद्रवो दुश्चिकित्स्यो दुर्विज्ञेयो महागदः । तस्मात्तस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत् ॥ ७७ ॥ अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः । तस्मादन्नान्नपानानि मात्राहीनानि कारयेत् ॥ ७८ ॥ कलायवगोधूमाः श्यामाकाः कोरदूषकाः । राजमाषाश्च माषाश्च कुलत्थाः कंगुशालयः ॥ ७९ ॥ दधिलुप्तरसं क्षीरं सर्पिर्गव्यं समाहिषम् । वास्तूकं कारवेल्ली च कर्कोटकफलानि च ॥ ८० ॥ बर्हिणो हरिणो मत्स्या रोहिताद्याः कपिञ्जलाः । एतस्मिन्नामये शस्ता मता मुनिचिकित्सकैः ॥ ८१ ॥ दधिलुप्तरसं दध्ना लुप्तः प्रकृतो रसो यस्य तत्क्षीरं दधियुक्तं क्षीरमित्यर्थः ।

समा, कोदों, अथवा कंगनीकी दूधमें खीर बनाकर उसमें पथ्य (बूरा वगैरह) इत्यादि पदार्थ डालकर खाय, यह अन्नद्रवशूलवालेको हितकारी है । अथवा गुडके बने पदार्थ, सूरनकंद, पेठा, मटर, जौके सत्तू, खीलोंके सत्तू, कुलथीके सत्तू, दहीके साथ खाय, अथवा दहीके बने पदार्थ खाय, चनेके सत्तू अथवा कोदोंका भात खाय यह भी हितकारी है । गेहूँके मांडके (गेहूँकी खीर) को घी और गुड तथा बूरा मिलाकर शीतल दूधमें मलकर खाय यह भी हितकारी है । और भिषग्जनोंको उचित है कि, अन्नद्रव शूल भयंकर महारोग और दुश्चिकित्स्य है इस कारण इसकी शांति करनेमें भली भाँति प्रयत्न करे, अन्नद्रवशूलमें और परिणामशूलमें जठराग्नि मंद हो जाती है इसलिये इस रोगमें अन्न और जलकी अल्प मात्रा देनी चाहिये । मटर, जौ, गेहूँ, समा, कोदों, चौरा, उडद, कुलथी, कंगनी, शालिचावल, दही मिला दूध, गाय तथा भैंसका घी, बथुआ, करेले, ककोडे, मोर तथा हिरनका मांस, रोहू आदि मछलियें और तीतरका मांस यह अन्नद्रवशूलमें परम हितकारी है ऐसा वैद्योंने माना है ॥ ७३-८१ ॥

अथ गुडमंडूरम् ।

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम् । त्रिपलं लौहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिषा ॥ ८२ ॥ समालोड्य समश्नीयादक्षमात्रप्रमाणतः । आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत् ॥ ८३ ॥ अन्नद्रवं जरत्पित्तमम्लपित्तं सुदारुणम् । परिणामसमुत्थं च शूलं संवत्सरोत्थितम् ॥ ८४ ॥

गुड, आमलोंका चूर्ण, हरडोंका चूर्ण यह प्रत्येक चार चार तोले, लोहेकी कीटकी भस्म १२ तोले इनको सहत तथा घीमें मिलाकर भोजनके आदिमें मध्यमें तथा अंतमें एक एक तोलाभर खाय तो यह महादारुण अन्नद्रवशूल, परिणामशूल और जरत्पित्त इनको नष्ट करे है । इसको गुडमंडूर कहते हैं ॥ ८२-८४ ॥

अथ शूलरोगेऽपथ्यम् ।

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकं रसम् । वेगरोधं शुचं क्रोधं द्विदलं शूलवांस्त्यजेत् ८५

व्यायाम, मैथुन, मद्यपान, नमक, तीक्ष्ण रस, विष्ठा आदिके वेगका अवरोध, शोक, क्रोध और चना, मूंग आदिकी दाल इनको शूलरोगी त्याग देवे ॥ ८५ ॥

इति शूलाधिकारः समाप्तः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथोदावर्ताधिकारः ।

तत्रोदावर्तनिदानम् ।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसम्भवः ॥ १ ॥ इन्द्रियमत्र शुक्रम् । अत्र तृतीया सहार्था धृत्या वेगविघातेन ।

अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जम्भाई, आसू, छींक, डकार, वमन, वीर्य, भूँख, प्यास, श्वास और नींद, इन तेरहके वेगोंके रोकनेसे उदावर्त रोगकी उत्पत्ति होती है ॥ १ ॥

अथोदावर्तसामान्यलक्षणम् ।

यत्रोर्द्ध जायते वायोरावर्तः स चिकित्सकैः । उदावर्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः ॥ २ ॥ आवर्तो भ्रमः ।

जिस रोगमें वायुका आवर्त (चक्कर) ऊपरको जाता है उसको वद्य उदावर्त्त कहते हैं, इस रोगमें वायु मुख्य ह ॥ २ ॥

अथाधोवातावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

वातमूत्रपुरीषाणां संगो ध्मानं क्लमो रुजा । जाठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ ३ ॥ संगः अप्रवृत्तिः ध्मानमाध्मानम् । क्लमः अनायासश्रमः रुजा जठरे । अन्ये तोदशूलगुल्मादयः ।

अधोवायुके रोकनेसे वायु, मूत्र तथा विष्ठाका अवरोध होता है, तथा पेटका फूलना, अनायास ही परिश्रम और पीडाका होना और शूल, गुल्म आदि अन्य वायुसंबंधी रोग भी होते हैं ॥ ३ ॥

अथ पुरीषावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

आटोपशूलौ परिकर्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्द्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते रस्य ॥ ४ ॥ पुरीषवेगे धारिते सति आटोपः सरुक् गुडगुडाशब्दः शूलमिति पक्वाशये परिकर्तिका गुदे कर्तनवत्पीडा । ऊर्द्ध्ववातः उद्गारः ।

विष्ठाके वेगको रोकनेसे पेटमें गुडगुडाहट, पक्वाशयमें पीडा, गुदामें कतरनेकी सदृश पीडा होती है, मलका रुक जाना, खट्टी डकारोंका आना अथवा डकारके साथ मल भी निकलता है ॥ ४ ॥

अथ मूत्रावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिंगं मूत्रनिग्रहे ॥ ५ ॥ विनामः व्यथया वपुषो नमनम् । वंक्षणानाहः वंक्षणयोराकर्षणवद्व्यथा ।

मूत्रका वेग रोकनेसे मूत्राशयमें तथा लिंगमें शूल, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकमें पीडा, पीडासे शरीरका न उठना और पेडूमें अफरा होता है ॥ ५ ॥

अथ जृम्भावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः । तथाक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥६ ॥

जम्भाईको रोकनेसे मन्या (गले नाडके पीछेकी नस) और गलेका स्तम्भ, मस्तकमें वातसंबंधी पीडा, नेत्र, नाक, मुख और कानोंमें तीव्र पीडा होती है ॥६॥

अथ नेत्रोदकावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तमुशन्ति हि । शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ७ ॥

आनन्द अथवा शोकके कारण प्राप्त हुए आँसुओंके वेगोंको कभी न रोके, क्योंकि रोकनेसे मस्तकमें भारीपन, नेत्रपीडा और पीनसरोग होता है ॥ ७ ॥

अथ छिक्कावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्द्धावभेदकौ । इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ ८ ॥

छींकके रोकनेसे मन्या (नाडीके पीछेकी नस) का स्तम्भ, शिरमें शूल, अर्दितवात, आधे मुखका टेढा हो जाना और सब इन्द्रियोंकी दुर्बलता ये रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ८ ॥

अथोद्गारावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाऽप्रवृत्तिः। उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति जन्तोर्विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ९ ॥ कण्ठास्यपूर्णत्वं कवलेनेव। तोदो हृदि आमाशये च। कूजोऽव्यक्तशब्दः उदरे वायोरप्रवृत्तिः। उच्छ्वासादिनिरोधात् पवनप्रसूताः पवनाज्जाताविकाराः हिक्कादयः।

डकारके रोकनेसे कंठ कौरसे रुका हुआसा प्रतीत हो, हृदय तथा आमाशयमें चैंठोंके काटनेकेसी अत्यंत पीडा, पेटमें वायुका कूजना, श्वास आदिके रुकनेसे पवनकी अप्रवृत्ति और अन्य हिचकी आदि वायुसंबंधी विकार होते हैं ॥ ९ ॥

अथ वमनावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्। कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः। कुष्ठहल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः॥ १०

वमनका वेग रोकनेसे शरीरमें खुजली, चकत्ते, दाह, अरुचि, झाँई, सूजन, पाण्डुरोग, ज्वर, कोढ, हल्लास और विसर्प ये सब उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

अथ वीर्यावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्। मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च। शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकारा विहते तु शुक्रे॥ ११॥ तत्स्रवणं शुक्रस्रावः। ते ते विकाराः वातकुण्डलिकादयः।

स्त्रीप्रसंग करनेके समय वीर्यका वेग रोकनेसे मूत्राशय, गुदा तथा अंडकोषोंमें सूजन और पीडा, मूत्रका अवरोध, शुक्राश्मरी (वीर्यकी पथरी), वीर्यका स्राव और अन्य वातकुण्डलिका आदि विकार होते हैं॥ ११॥

अथ क्षुधावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्। तन्द्रांगमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधाविघातात्कृशता च दृष्टेः ॥ १२ ॥

भूखके रोकनेसे तन्द्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, परिश्रम और दृष्टिकी मंदता ये उपद्रव होते हैं ॥ १२॥

अथ तृषावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्। कण्ठस्य शोथः श्रवणावरोधस्तृष्णाविघातात्हृदये व्यथा च ॥ १३ ॥

प्यासके रोकनेसे कण्ठ और मुखका सूजन, श्रवणशक्तिका मन्द होना और हृदयमें पीडा ये लक्षण होते हैं ॥ १३ ॥

अथ श्वासावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्। श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथ वापि गुल्मः ॥ १४ ॥

थका हुआ मनुष्य श्वासको रोके तो हृदयमें पीडा, मोह और गुल्म रोग उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथ निद्रावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्। जृम्भांगमर्दार्तिशिरोऽतिजाड्यं निद्राविघातादथ वापि तन्द्रा ॥ १५ ॥ अतिजाड्यं गौरवम्। शिरोगात्राक्षिगौरवमिति तन्त्रान्तरे पाठात्।

निद्राको रोकनेसे जम्भाई, अंगोंका टूटना, मस्तक, शरीर तथा नेत्रोंमें भारीपन होता है और तन्द्रा भी होती है ॥ १५ ॥

अथ रूक्षादिवस्तुकुपितवातोत्पन्नोदावर्तनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि। वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः। भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति च ॥ १६ ॥ वातमूत्रपुरीषाश्रुकफमेदोवहानि वै। स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं च प्रवर्तयेत् ॥ १७ ॥ ततो हृद्बस्तिशूलार्तो हल्लासारतिपीडितः। वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १८ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान्। वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान्। बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥ १९ ॥ उदावर्तयति वायुः ऊर्ध्वभ्रमेणेव वातादिवहानि स्रोतांसि निरुणद्धि न तु विडादीनधो गमयति। मनोविभ्रमः रज्जौ सर्पज्ञानम्। श्रवणविभ्रमः अन्यथा श्रवणम्।

रूखे, कसैले, तीक्ष्ण और कडवे भोजनोंसे कुपित हुआ कोठेमें रहनेवाला वायु तुरन्त उदावर्तको उत्पन्न करे है। कुपित हुई वात—अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, आँसू, कफ और मेदाको बहानेवाली नाडियोंके मार्गको रोककर मलको स्तंभित करे है तब हृदय तथा वस्तिशूल, हल्लास, अरति इनकी पीडा होनेसे मनुष्यके अधोवायु, मूत्र और विष्ठा थोडे थोडे अत्यन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिश्रमसे उतरते हैं, तथा श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिचकी, मस्तकमें दर्द, मनका भ्रम, श्रवणमें भ्रम (कुछका कुछ सुनाई मालूम होना) तथा और भी बहुतसे वायुके कोपसे हुए विकार होते हैं ॥ १६–१९ ॥

अथोदावर्तासाध्यलक्षणम् ।

तृष्णाछर्दिपरिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् । शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ २० ॥

परिक्लिष्टं क्लेशसंयुक्तम् ।

उदावर्त रोगी जो तृषा तथा वमनसे व्याकुल हो, क्षीण हो गया हो, शूलोंसे दुःखित हो और विष्ठाकी वमन करता होय तो विद्वान् वैद्य उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ २० ॥

अथानाहसामान्यलक्षणम् ।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन । प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ २१ ॥ आमम् अपक्वमाहारसारम् । शकृत्पुरीषं वा । क्रमेण निचितं सञ्चितम् । भूयो विगुणानिलेन दुष्टवायुना विबद्धं व्यायामशोषितं वा । यथास्वं पूर्ववदप्रवर्तनम् । एनं विकारमानाहम् आहुः ।

आम (आहारका नहीं पचा रस) अथवा मल क्रमसे संचित हो: दुष्ट वायुसे बँधकर अथवा सूखकर अपने मार्गसे नहीं निकले, इस विकारको वैद्य आनाह कहते हैं ॥ २१ ॥

अथामजातानाहलक्षणम् ।

तस्मिन्भवन्त्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः । आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भ उद्गारविघातनं च ॥ २२ ॥ विघातनम् अप्रवृत्तिः ।

आहारके कच्चे रससे जो आनाह हुआ होय तो तृषा, प्रतिश्याय, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, शरीरमें भारीपन, हृदयका जकड जाना और डकारका न आना ये लक्षण होते हैं ॥ २२ ॥

अथ मलसंचयेनोत्पन्नानाहलक्षणम् ।

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतो वमिश्च । श्वासश्च पक्वाशयजे भवन्ति तथालसोक्तानि च लक्षणानि ॥ २३ ॥ पक्वाशयजे शकृत्सञ्चयजे आनाहे । स्तम्भशब्दः कटीपृष्ठयोः स्तब्धतावाची पुरीषमूत्रयोरप्रवृत्तिवाची च । अलसोक्तानि लक्षणानि, आध्मानवातविघातादीनि ।

जो मलके संचयसे आनाह हुआ होय तो कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका अवरोध, शूल, मूर्च्छा, विष्ठा मिली हुई वमन और अलसक, अफरा तथा वायुका विघात आदि लक्षण होता है ॥ २३ ॥

अथोदावर्तचिकित्सा ।

अधोवातनिरोधोत्थे उदावर्ते हितं मतम् । स्नेहपानं तथा स्वेदो वर्तिर्वस्तिर्हितो मतः ॥ २४ ॥ विड्विघातसमुत्थे तु विड्भंगान्नं तथौषधम् । वर्त्यभ्यंगावगाहाश्च स्वेदो वस्तिर्हितो मतः ॥ २५ ॥ वर्तिः फलवर्तिः । मूत्रावरोधजनिते क्षीरवारिवचां पिबेत् । दुःस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य च ॥ २६ ॥ दुःस्पर्शा कण्टकारी दुरालभा च तुल्यगुणत्वात् । एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् । सिताभिक्षुरसं क्षीरं द्राक्षां यष्टीमथापि वा । सर्वथैव प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिः ॥ २७ ॥ जृम्भाभिघातजे स्नेहं स्वेदं वापि प्रयोजयेत् । अन्यानपि प्रयुञ्जीत समीरणहरान्विधीन् ॥ २८ ॥ नेत्रनीरावरोधोत्थे मुञ्चेद्वापि दृशोर्जलम् । स्वप्यात्सुखेन तस्याग्रे कथयेच्च कथाः प्रियाः ॥ २९ ॥ छिक्काविघातजे तीक्ष्णघ्राणस्यार्कप्रदर्शनैः । प्रवर्तयेत्क्षुतं सक्तां स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ॥ ३० ॥ उद्गारस्यावरोधे तु स्नैहिकं धूममाचरेत् । छर्दिनिग्रहसञ्जाते वमनं लंघनं हितम् ॥ ३१ ॥ विरेचनं चात्र मतं तैलेनाभ्यञ्जनं तथा । वस्तिशुद्धिकरैः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ ३२ ॥ आवारिनाशं क्थितं पीतवन्तं प्रकामतः । रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ ३३ ॥ तस्याभ्यङ्गोऽवगाहश्च मदिरा चरणायुधाः । शालिः पयोनिरूहश्च हितं मैथुनमेव च ॥ ३४ ॥ क्षुद्विघातसमुद्भूते स्निग्धमुष्णं तथा लघु । रुच्यमल्पहितं भक्ष्यं पुष्पं सेव्यं सुगन्धि यत् ॥ ३५ ॥ तृषाविघातसम्भूते शीतः सर्वो विधिर्हितः । कर्पूराशिशिरं स्वल्पं पिबेत्तोयं शनैः शनैः॥ ३६ ॥ श्रमश्वासधृतौ शस्तौ विश्रामः सरसौदनौ । निद्रावेगविघातोत्थे पिबेत्क्षीरं सितायुतम् । संवाहनं सुशय्याऽत्र हितः स्वप्नः प्रियाः कथाः ॥ ३७ ॥

अधोवायुका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो उसमें स्नेहपान, स्वेद, फलवर्ति (गुदामें वत्तीका प्रवेश करना) और वस्तिकर्म (पिचकारी) यह हितकारी है, विष्ठाका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो दस्तावर अन्न, दस्तावर औषधि, फलवर्ति, अभ्यंग, मालिश, अवगाहन (जल या तेलमें बैठना), स्वेदन तथा वस्तिकर्म करना हितकारी है । मूत्रका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो दूधमें जल मिलाकर और आगे वचका चूर्ण डालकर पिये अथवा कटेरिका स्वरस अथवा कोह (अर्जुन) की छालका स्वरस पिये । अथवा ककडीके बीजोंको पानीमें पीसकर इसमें निमक डालकर पानीमें पिये अथवा मिश्री, ईखका रस, दूध, दाख तथा मुलहटीका रस पिये । इस उदावर्तमें मूत्रकृच्छ्रके उपाय तथा पथरीके उपाय भी सर्वथा करे । जम्भाईके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो स्नेहन अथवा स्वेदन क्रिया करे और वातनाशक अन्य उपाय भी करे । आँसुओंका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो भली भाँति रोककर नेत्रोंसे अश्रुधारा वहावे, निकाल डाले, फिर सुखसे शयन करे और आनन्दसहित प्रिय कथायें कहे । छींकका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो मिरच तथा राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंको सूंघकर उनका नस्य लेवे और यदि सूर्यके सामने देखनेसे भी छींकें आवें तो सूर्यको देखे और छींक लेवे, नाकमें वस्त्रादिककी वत्ती डालकर छींक लेवे, स्नेहन तथा स्वेदनका भी सेवन करे । डकारका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो स्नेहयुक्त पदार्थोंका धूमपान करे । वमनके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो वमन तथा लंघन करना हितकारी है । दस्त करावे, तैलका मर्दन करे यह सब उपाय इस रोगमें अत्यन्त उपयोगी हैं । वीर्यके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो पुरुष दूधमें चौगुना पानी डालकर तथा मूत्राशयको शुद्ध करनेवाले पदार्थ डालकर जब सब जल जल जाय केवल दूधही शेष रहे तब मिश्री डालकर पिये और प्यारी नारीके साथ रमण करे । और अभ्यंग, अवगाहन, मद्यका पीना, मुरगेका मांस, शालिचावल, दूध, निरूहवस्ति, तथा मैथुन यह भी हितकारी है । भूँखका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो स्निग्ध, हलका, रुचिकारी और मनोवाञ्छित अल्प भोजन करना चाहिये, यह उदावर्त रोगी सुगंधित पुष्पोंका भी सेवन करे । तृषाका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो सम्पूर्ण शीतल उपचार हितकारी हैं, तथा कपूरसे वा उत्पलसे सुवासित किया हुआ जल थोडा थोडा वारंवार पिये । परिश्रमके श्वास रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो विश्राम करे और मांसरसयुक्त भातका भोजन करे । निद्राका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो मिश्री डाला हुआ गरम दूध पिये अथवा हाथ पाँवोंको दबवाकर सुंदर शय्यापर शयन करे और जो मनको अधिक प्रिय लगे ऐसी कथा सुने ॥ २४--३७ ॥

अथ रूक्षादिहेतुकुपितवातोत्पन्नोदावर्तचिकित्सा ।

हिंगुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पिष्ट्वार्तिं विनिर्मिताम् । घृताभ्यक्तां गुदे न्यस्येदुदावर्तविनाशिनीम् ॥ ३८ ॥

हींग, सहत और सेंधानोन इनको पीसकर बत्ती बनावे, फिर घीमें भिजोकर गुदामें रखवावे तो यह उदावर्त नष्ट होता है, इसको फलवर्ति कहते हैं ॥३८॥

अथ मदनफलादिफलवर्तिः ।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः । गुडक्षीरसमायुक्ता फलवर्तिरिहोदिता ॥३९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैनफल, पीपल, कूठ, वच और सफेद सरसों इनको गुड तथा दूधमें पीसकर गुदामें रक्खे तो उदावर्त रोग नष्ट होता है ॥ ३९ ॥

अथ नाराचचूर्णम्।

खण्डपलं त्रिवृताक्षः कृष्णाकर्षौ द्वयोश्चूर्णम्। प्राग्भोजनस्य मधुना विडालपदकं नरो लिह्यात् ॥ ४० ॥ एतद्गाढपुरीषे देयं विज्ञैरुदावर्ते। मधुरं नरपतियोग्यं चूर्णं नाराचकं नाम्ना ॥ ४१ ॥

खाँड चार तोले, निसोत १ तोला और पीपलका चूर्ण १ तोला, इनको एकत्र करके भोजनसे पहिले इसमें १ तोला सहत मिलाकर चाटे तो उदावर्त दूर होता है। जिसमें विष्ठा अत्यंत दृढ हो गई हो ऐसे उदावर्तमें वैद्य यह यत्न करे। यह चूर्ण अत्यन्त धनी और राजाओंके खाने योग्य है। इसका नाम नाराचचूर्ण है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ गुडाष्टकम्।

सव्योषपिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम्। तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ४२ ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम्ना बलवर्णाग्निवर्द्धनम्। उदावर्तप्लीहगुल्मशोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ४३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, निसोत, दन्ती, जमालगोटेकी जड और चीता इनका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर प्रातःकाल उठते ही खाय। गुडाष्टकके सेवनसे बल, कांति तथा अग्निकी वृद्धि होती है और उदावर्त, प्लीहा, गुल्म, सूजन तथा पाण्डुरोग इनका नाश होता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ शुष्कमूलाद्यघृतम्।

मूलकं शुष्कमार्द्रं वा वर्षाभूः पञ्चमूलकम्। कृतमालफलं चाप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत्। तत्पीतं शमयेत्क्षिप्रमुदावर्तमशेषतः ॥ ४४ ॥ पञ्चमूलकमत्र बृहत्।

सूखी अथवा गीली मूली, सोंठ, बृहत्पंचमूल और अमलतासका गूदा इनका क्वाथ करके इसमें घृतको पचावे, यह घी पिये तो तत्काल उदावर्त रोग भली भांति शान्त हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

अथानाहचिकित्सा।

तुल्यकारणकार्यत्वादुदावर्तहरीं क्रियाम्। आनाहेषु च कुर्वीत विशेषश्चाभिधीयते ॥ ४५ ॥ त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुष्पञ्चभागिकाः। गुडेन तुल्या गुटिका हरत्यानाहमुल्बणम् ॥ ४६ ॥

उदावर्त और आनाहके कारण तथा कार्य समान ही हैं, इसलिये आनाहमें उदावर्तकी ही चिकित्सा करे। जो विशेष चिकित्सा है सो कहते हैं। दो भाग निसोत, चार भाग पीपल और पाँच भाग हरड, इनको सबकी समान गुडमें मिलाकर गोली बनावे और फिर सेवन करे तो उग्र आनाह भी दूर हो जाता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ त्रिकटुकादिवर्तिः।

वर्तिस्त्रिकटुकसैंधवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः। मधुनि गुडे वा पक्वैर्विहिता सांगुष्ठसम्मिता विज्ञैः ॥ ४७ ॥ वर्तिरियं दृष्टफला शनैः प्रणिहिता गुदे घृताभ्यक्ता। आनाहमुदरजार्तिं शमयति जठरे तथा गुल्मम् ॥ ४८ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, सैंधव, सरसों, घरका धुआँ, कूठ और मैनफल इनका चूर्ण करके सहत अथवा घीमें पकावे, फिर अंगूठेकी बराबर बत्ती बनावे, इसको घीसे चुपडकर धीरे धीरे गुदामें रक्खे, इससे आनाह (अफरा) उदररोग और गुल्मरोग नष्ट होता है। विद्वान् लोगोंने इस बत्तीका फल प्रत्यक्ष देखा है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति उदावर्तानाहाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ गुल्माधिकारः।

तत्र गुल्मसन्निकृष्टविप्रकृष्टकारणपूर्वकलक्षणम्।

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः। कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥ १ ॥ दुष्टाः स्वकारणैः मिथ्याहाराध्यशनादिभिः। मिथ्याविहारो बलवद्विग्रहादिः। पञ्चधेति वातपित्तकफसन्निपातरक्तज।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं पञ्च । द्वन्द्वजास्तु प्रकृतिसमवेतत्वात् पृथक् न गण्यन्ते अर्शोवत् । कोष्ठान्तः हृद-याद्वस्तिपर्यन्तं कोष्ठस्तस्य मध्ये कुत्रापि ग्रन्थिरूपिणम् गुटिकाकारम् ।

भोजनके ऊपर भोजन करना आदि मिथ्या आहारसे और बलवान् मनुष्यके साथ लडना आदि मिथ्या विहारोंसे अत्यंत दूषित हुए वात, पित्त, कफ और रुधिर ये कोठेमें अर्थात् हृदयसे लेकर मूत्राश-यतकके भागमें गोलीकी सदृश गुल्मको उत्पन्न करे हैं। वायुसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे और रुधिरसे उत्पन्न हुआ, इस भाँति गुल्म पाँच प्रकारका होता है। यद्यपि जो गुल्म दोषोंसे होते हैं उनको गिनो तो पांचसे अधिक संख्या होती है तथापि सन्निकृष्ट निदानरूप वातपित्तादिकसे ही संयुक्त होते हैं इसलिये अर्शोंकी सदृश उनको भी पृथक् नहीं गिना है ॥ १ ॥

अथ गुल्मभेदाः ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितः ।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां रक्तजं चोपजायते ॥ २ ॥

यह गुल्म पुरुषोंके तथा स्त्रियोंके कुपित हुए वात पित्त, कफ, त्रिदोष और रुधिरसे भी होता है ॥ २ ॥

अथार्तवोत्पन्नगुल्मः ।

आर्तवादपि गुल्मः स्यात्स तु स्त्रीणां प्रजा-यते । अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥ ३ ॥

आर्तव (रज) से भी गुल्म होता है परन्तु यह गुल्म स्त्रियोंके ही होता है, रुधिरसे होनेवाले जो अन्य गुल्म हैं वे पुरुषोंके भी होते हैं और स्त्रियोंके भी होते हैं ॥ ३ ॥

अथ गुल्मस्थानानि ।

तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः ४ ॥

गुल्म—दोनों पसलियों, हृदय, नाभि और मूत्रा-शयमें होता है, इस भाँति गुल्मके पाँच स्थान हैं ॥ ४ ॥

अथ गुल्मसामान्यलक्षणम् ।

हृद्यस्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वा चलः ।
वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्तितः ॥ ५ ॥ नाभिशब्देन वस्तिबोध्यः सामी-प्यादेव यथा गङ्गायां घोष इति वस्तेरपि गुल्माश्रयत्वेन उक्तत्वादन्ये हृद्वस्त्योरेव पाठान्तरं पठन्ति अन्ये तु वस्तौ विद्रधिः स्यात् न गुल्म इति तत्र वस्तेरपि गुल्म-स्थानत्वात् । तथा च चरके—" पञ्चस्थानानि गुल्मस्य पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः । " इति । सञ्चारी चलनशीलः अचलः स्थिरः वृत्तो वर्तुलः । चयोपचयवानिति कदाचिच्चीयते वृद्धिं गच्छति, कदाचिदपचीयते हीनो भवति । एतल्लक्षणं सामान्योक्तमपि वातिके व्यवतिष्ठते इति जैज्जटः । गणदासस्तु सामा-न्यमब्रवीत्, सर्वगुल्मानां वातमूलत्वात् ।

हृदय तथा नाभिके मध्यमें रहनेवाला अथवा विचरनेवाला, किसी समय बढनेवाला और किसी समय अल्प होनेवाला जो गोला होता है उसको गुल्म कहते हैं। यहां नाभि कहनेसे मूत्राशय जानना जैसे ' गंगामें घोष है ' इस वाक्यमें " गंगा " शब्दमें समीप होनेके कारण गंगाका किनारा समझना तैसे ही इस वाक्यमें भी मूत्राशय नाभिके समीप होनेके कारण ' नाभिसे ' मूत्राशय ही जानना । कित-नेक वैद्य तो उपरोक्त वाक्यको ' हृदय ' तथा मूत्रा-शयके मध्यमें फेरकर ' ऐसा पढते हैं और कितने कहते हैं कि ' मूत्राशयमें विद्रधि होता है गुल्म नहीं होता ' परन्तु यह बात भूलकी है, क्योंकि गुल्मके हृदय, नाभि, पसलियें, तथा मूत्राशय ये पांच स्थान हैं, ऐसा चरकमें कहा है । उपरोक्त लक्षण यद्यपि सामान्य रीतिसे कहे हैं तथापि ये लक्षण वातज गुल्मसे ही मिलते हैं, ऐसा जैज्जट नामक वैद्यने कहा है । गणदास नामक वैद्य कहता है कि ' यह लक्षण सब गुल्मोंके लिये साधारण है क्योंकि सब गुल्मोंकी जड वायु है' ॥ ५ ॥

अथ गुल्मपूर्वरूपम् ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धस्तृषाक्षमत्वान्त्रविकू-जनानि । आटोपमाध्मानमपक्तिशूलमास-न्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ६ ॥ अरुचिं कृच्छ्रविण्मूत्रवातत्वं चान्त्रकूजनम् । आनाहं चोर्ध्ववातं च सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डकारोंका बहुत आना, मलबन्ध, तृप्तिका होना, सामर्थ्यका नाश, आंतोंका बोलना, पेटमें गुड़गुड़ शब्द होय, अफरा हो और अन्न न पचनेके कारण पीडा हो, ये लक्षण होंय तो जानना कि गुल्मरोग हुआ है। विष्ठा, मूत्र तथा अधोवायुका कष्टसे उतरना, अरुचि, आंतोंमें शब्द होना, अफरा और वायु ऊर्ध्वगत हो ये लक्षण सब गुल्मोंमें होते हैं ॥६॥७॥

अथ वातगुल्मनिदानम् ।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च । शोकाभिवातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ८ ॥ विचेष्टनं विरुद्धा चेष्टा बलवद्विग्रहादिः । शोकाभिघातः शोकेन मनोऽधिष्ठानस्य हृदयस्य अभिघातः । अतिमलक्षयः विरेकादिना । निरन्नता उपवासः ।

रूक्ष विषम और अत्यंत ऐसे अन्नपानको सेवन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, बलवान् पुरुषके साथ लडना आदि विरुद्ध चेष्टा, हृदय (कि जो मनके रहनेका स्थान है) में शोक और अभिघात (चोट) लगनेसे, विरेचन आदिसे मलका अत्यंत क्षय और उपवास इन कारणोंसे वायुसंबंधी गुल्म होता है ॥ ८ ॥

अथ वातगुल्मलक्षणम् ।

यः स्थानसंस्थानरुजा विकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् । श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वाङ्गशिरोरुजं च ॥ ९ ॥ करोति जीर्णेऽत्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च । वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटुचोपशेते ॥ १० ॥ श्यावारुणत्वं शरीरस्य । शिशिरज्वरं शीतज्वरम् । जीर्णे आहारे प्रकुप्यति भुक्ते च शान्तिं गच्छति, स वातिको गुल्मः । रूक्षः । आहारः । कषायतिक्तकटुरसाः । तत्र तस्मिन्वातगुल्मे नोपशेते न सुखयति ।

स्थान स्थानमें पीडा होती है, मल तथा अधोवायु रुकती हो, गला तथा मुख सूख जाता हो, शरीर नीला और लाल हो जाय, शीतज्वर हो, हृदय, कोख, पसली, कंधा और शिर इनमें पीडा हो, अन्नके पचनेके समय गोला अधिक हो जाय और भोजन करनेपर गोला मृदु (नरम) हो जाय ये लक्षण होंय तो वायुसे उत्पन्न हुआ गुल्म जानना, इसमें रूक्ष, कसैले, कडवे और चरपरे पदार्थ अहितकारी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ पित्तगुल्मनिदानम् ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधाऽतिमद्यार्कहुताशसेवा । आमोऽभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ ११ ॥ विदाहि वंशकरीरादि । अतिशब्दो मद्यादिषु योज्यः । आमोऽत्र विदग्धाजीर्णबोधकः । अभिघातो लगुडादिना ।

चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही तथा रूक्ष पदार्थोंके सेवन करनेसे, क्रोध, मद्यपान तथा धूपके अत्यंत सेवनसे, अग्निके समीप रहनेसे, विदग्ध अजीर्ण, लकडी आदिके अभिघात (चोट) और बिगडे हुए रुधिरसे पित्त संबंधी गुल्म उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

अथ पित्तगुल्मलक्षणम् ।

ज्वरः पिपासा सदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च । स्वेदो विदाहोऽव्रणवज्र गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥१२॥ अङ्गरागः देहस्य लौहित्यम् ।

ज्वर, प्यास, ग्लानि, अंगोंका लाल होना, भोजन पचनेके समयमें भारी शूल होना, पसीना आवे, दाह हो और गुल्म व्रणकी सदृश स्पर्श न सह सके, यह लक्षण होयँ तो पित्तसे उत्पन्न हुआ गुल्म जानना॥१२॥

अथ कफजत्रिदोषजगुल्मकारणम् ।

शीतं गुरुस्निग्धमचेष्टनं च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च । गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वस्तु दिष्टो निचयात्मकस्य ॥ १३ ॥ सम्पूरणम् उदरपूरणम् । निचयात्मकस्य सान्निपातिकस्य । सर्वो हेतुः वातपित्तकफानां हेतुः ।

शीतल, भारी तथा स्निग्ध अन्नपान, व्यायामका त्याग और दिनमें सोना, इनसे कफसंबंधी गुल्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न होता है, वात, पित्त तथा कफके जो निदान हैं वे सब मिलनेसे तीनों दोषसंबंधी गुल्म होता है ॥ १३ ॥

अथ कफजगुल्मलक्षणम् ।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि । कफस्य लिङ्गानि च यानि तानि भवन्ति गुल्मे कफकोपजाते ॥ १४ ॥ कफस्य लिङ्गानि वेदनाल्पता वह्निमान्द्यादीनि ।

शरीरमें गीलापन, शीतज्वर, ग्लानि, हृल्लास (उबकाई), खाँसी, अरुचि, शरीरमें भारीपन और थोडी २ पीडाका होना, तथा अग्निकी मंदता ये लक्षण होयँ तो कफसे हुआ गुल्म जानना ॥ १४ ॥

अथ द्विदोषजगुल्मकल्पना ।

व्यामिश्रलिंगानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १५ ॥ सान्निपातिके सर्वो हेतुः उपलक्षणम् ।

जो दो दोषोंके मिश्रित लक्षण दीखते होयँ तो औषधिकी कल्पनाके लिये वातसे तथा पित्तसे हुए, वायु तथा कफसे हुए और पित्त तथा कफसे हुए इस प्रकार और भी तीन गुल्मोंकी कल्पना कर लेवे ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषजगुल्मलक्षणम् ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् । मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १६ ॥

जो तीनों दोषोंसे गुल्म हुआ हो तो अत्यंत पीडा तथा दाह होता है, गोला पत्थरकी सदृश घन तथा ऊपरको उठा हुआ, तत्काल विदग्धाजीर्णको उत्पन्न करनेवाला, मनको भ्रमित करता, शरीरको दुर्बल तथा जठराग्निके बलको हरनेवाला और मृत्युको करनेवाला गुल्म होता है, इसको असाध्य समझना ॥ १६ ॥

अथार्तवरुधिरोत्पन्नगुल्मलक्षणम् ।

नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा । वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ १७ ॥ पैत्तस्य लिंगेन समानलिंगं विशेषणं चाप्यपरं निबोध । यः स्पन्दते पिण्डित एव नांगैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः । स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ १८ ॥ नवप्रसूता प्रकृताग्निबलवर्णमांसहीना अहितभोजना या च आमगर्भं विसृजेत् नवममासादर्वाक् प्रसूयते सापि अहितभोजना ऋतौ वा आर्तवप्रवृत्तिकाले अहितभोजना अपथ्याचरणाद्वा वायुः रक्तं परिगृह्य गुटिकाकारं गर्भाशये गुल्मं करोति भोजनपदं विहारस्यापि उपलक्षणम् । यतश्चाह चरकः-"ऋतावनाहारतया भयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च । संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रिया रक्तभवोऽभ्युपैति ।" धातुरूपरक्तजस्यापि विप्रकृष्टनिदानानि लक्षणानि च पैत्तिकस्येव बोद्धव्यानि । परमत्र अभिघातादिहेतुर्विशेषः । चिरात् स्पन्दते चलति नाङ्गैः न हस्तपादाद्यैः । समगर्भलिङ्गः अत्र समशब्दः सर्वशब्दार्थः । तेन समानि सर्वाणि गर्भलिंगानि आर्तवप्रवृत्तिकाले आर्तवादर्शनमुखपीततास्तनमुखकृष्णतादोहदादीनि यत्र सः । एते च व्याधिप्रभावात् । यथा यक्ष्मणे रिरंसा । स रौधिर आर्तवरूपरक्तजः स्त्रीणां प्रजायते इति गर्भसमानलिंगत्वे विशेषज्ञानार्थमाह-'मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ।' नवमदशममासयोः प्रसवकालत्वादित्येके, तन्न, यः स्पन्दते पिण्डित एव नांगैरित्यादिनैव संशयस्य निराकृतत्वात् । गर्भः प्रत्यंगैः निरन्तरं निःशूलं स्पन्दते गुल्मश्चैतद्विपरीत इति । किञ्च नवमे दशमे प्रसूयत इति उत्सर्गो न तु नियमः । तदधिककालेऽपि प्रसवदर्शनादागमाच्च । यत आह चरकः-"तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं पुष्टं यदा वर्षगणैरपि स्यात् ।" तस्मान्मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्य इति न संशयव्यवच्छेदार्थं किन्तु तदा सुखेन चिकित्सार्थं यत उक्तम्-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"रक्तगुल्मपुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्।" पुराणता चास्य दशमासातिक्रमेणैव भवति। जैज्जटेनापि उक्तम्। दशमासोपरि पिण्डिते गुल्मे स्नेहादिना उपस्कृतदेहाय न गर्भाशयक्षतिमादधाति रक्तभेदनमिति।

जो नवप्रसूता स्त्री अहित आहार विहार करे, अथवा जो स्त्री अपने गर्भको गिराकर अहित आहार विहार करे अथवा जो स्त्री रजस्वला होनेपर अहित आहार विहार करे, उस स्त्रीके रुधिरको वायु ग्रहण करके गर्भाशयमें गोलेकी सदृश गुल्मको उत्पन्न करे है, इस गुल्ममें पीडा, दाह और पित्तजगुल्मके लक्षण होते हैं। चरकमें भी कहा है कि "रजोधर्मके समय उपवास करनेसे, भयसे, रूक्ष पदार्थोंका उपयोग करनेसे, मूत्र आदिके वेगोंको रोकनेसे, स्तम्भन करनेसे, उल्लेखन आदि योनिसंबंधी दोषोंसे स्त्रीके रुधिरजन्य गुल्म उत्पन्न होता है।" धातुरूप रुधिरसे उत्पन्न हुए गुल्मके विप्रकृष्ट निदान तथा लक्षण पित्तसे उत्पन्न हुए गुल्मकी सदृश ही जानने, परन्तु अभिघात (चोट) आदि निदान विशेष करके होते हैं, रजोरूप गुल्ममें और भी विशेष कहते हैं कि—रज गिरते समयमें रजका नहीं दीखना, मुखका पीलापन, स्तनोंके अग्रभाग काले होना, तथा खानेपीने आदिके भाव अभाव इत्यादि जो जो गर्भके चिह्न हैं वे सब चिह्न व्याधिके प्रभावसे जिस गुल्मके देखनेमें आवे (जिस प्रकार क्षय रोगवालेको स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा व्याधिके प्रभावसे होती है. तिसी प्रकार रजसम्बन्धी रुधिरके गुल्मवाली स्त्रीके चिह्न व्याधिके प्रभावसे होते हैं) तथा जिसमें हाथ पाँव आदि अंगोंका नहीं चलना, अधिक तर केवल पिंडाकारका ही चलना ज्ञात हो और जिसमें शूल हो उस गुल्मको रजरूप रुधिरसे उत्पन्न हुआ जानना। यह गुल्म स्त्रियोंके ही होता है। गर्भ तो हाथ पाँव आदि शाखाओंसे निरन्तर और शूल विनाही चलता (फडकता) है और यह गुल्म तो अधिक बार पिंडाकार ही चलता है और शूलयुक्त होता है। इस गुल्मकी चिकित्सा दशम महीनेके व्यतीत होनेपर करे। कोई कहते हैं कि—"गर्भ होनेका सन्देह न रहे इस कारण दशम मासके व्यतीत हो जानेपर चिकित्सा करना कहा है क्योंकि नवम और दशम महीना प्रसव होनेका काल है" परन्तु ऐसा कहना अयोग्य है, क्योंकि—'गर्भ तो हाथ पाँव आदि अंगोंसे निरंतर और शूल विना ही चलता है' इत्यादि कथनके द्वारा गर्भके संशयको दूर किया है, तब 'नवम अथवा दशम महीने प्रसव होय' यह भी एक सामान्य बात है, कुछ नियमरूप नहीं है, क्योंकि दशम महीनेसे अधिक काल बीतनेपर भी प्रसव होते दीखते हैं, और ग्रन्थोंमें भी दशम मासके बीतनेपर प्रसव होना लिखा है। चरकमें कहा है कि—"स्त्री गर्भ रहनेके पश्चात् अत्यन्त अधिक काल अर्थात् बहुत वर्ष व्यतीत होनेपर भी गर्भको जनती है और इस प्रकार उत्पन्न हुआ बालक अति पुष्ट होता है" इसलिये दशम महीने चिकित्सा करना जो कहा है वह गर्भका संशय दूर करनेके लिये नहीं कहा है वरन् दशम महीने सुगमतासे चिकित्सा हो सक्ती है इससे कहा है, ऐसा जानना चाहिये। कहा है कि—"रुधिरसंबंधी गुल्म यदि जीर्ण (पुराना) होय तो उसको सुखसाध्य समझना" फिर दशम महीना व्यतीत होनेपर रुधिरसंबंधी गुल्म जीर्ण हुआ मानने योग्य होता है। जैज्जट आचार्य भी कहता है कि—"दशम महीना व्यतीत होनेके पश्चात् गुल्मकी स्थिति होती है तब तेल आदिसे स्त्रीके शरीरको संस्कार देकर रुधिरका भेदन करे तो इससे गर्भाशयको हानि नहीं होती है।" ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथाऽसाध्यगुल्मलक्षणम्।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम्। मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १९ ॥

दाहपरीतं दाहेन व्याप्तसकलदेहम् शीघ्रविदाहि शीघ्रं विदग्धाजीर्णकरम्। दारुणम् मारकम्। मनोऽपहारिणम् मनोविकृत्यकारकम्। शरीराग्निबलापहारिणम् शरीरस्य कार्श्यकरम्। अपरम् असाध्यलक्षणमाह—सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृतशूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ २० ॥ दौर्बल्यारुचिहल्लासकासच्छर्धरतिज्वरैः । तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ २१ ॥ महावास्तुपरिग्रहः व्यापकतया बृहत्स्थलं गृह्णाति । युज्यते युक्तो भवति अपरं च—गृहीत्वा सज्वरं श्वासं छर्दतीसारपीडितम् हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥ २२ ॥ कर्षति मारणाय कर्षति । अपरं च—श्वासः शूलं पिपासान्नविद्वेषौ ग्रन्थिमूढता । जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै ॥२३॥ ग्रन्थिमूढता ग्रन्थिरूपस्य गुल्मस्य अकस्माद्विलयनम् ।

जो म अत्यन्त पीडा तथा दाहयुक्त हो, पत्थरकी सदृश घन तथा ऊपरको उठा हुआ हो, तत्काल विदग्धाजीर्णको उत्पन्न करनेवाला हो, मनको भ्रमित करता, शरीरको दुर्बल तथा जठराग्निके बलको हरनेवाला हो और त्रिदोषज गुल्म यह असाध्य जानना। जो गुल्म—क्रम क्रम करके अत्यन्त बढगया हो और बहुत स्थान घेर लिया हो, शूलको करनेवाला हो, शिराओंसे बन्धकर कछुएकी भाँति ऊँचा हो गया हो और दुर्बलता, अरुचि, हृल्लास, खाँसी, वमन, अत्यंत ज्वर, तृषा, तन्द्रा तथा प्रतिश्याय इनसे युक्त हो, इस गुल्म रोगीको असाध्य जानना। जो गुल्मरोगी ज्वर श्वास, वमन और अतीसार इनसे पीडित हो तथा हृदय, नाभि, हाथ तथा पाँवमें सूजन हो उस गुल्मरोगीकी मृत्यु होती है । श्वास, शूल, तृषा, अन्नमें अरुचि, गुल्मका अकस्मात् गुप्त हो जाना और दुर्बलता इन लक्षणोंसे युक्त गुल्मरोगी मृत्युगत हुआ जानना ॥ १९–२३ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ।

वातारितैलेन पयोयुतेन पथ्याससमेतेन विरेचनं हि । संस्वेदनं स्निग्धमतिप्रशस्तं प्रभञ्जनक्रोधकृते च गुल्मे ॥ २४ ॥ स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकसम्भवः । पीतस्तैलेन शमयेद्वुल्मं पवनसम्भवम् ॥ २५ ॥ तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटान्कौञ्चवर्तकान् । सर्पिः शालीन्प्रसन्नां च वातगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥ पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना । विरेकाय सितायुक्तं कम्पिल्लं वा समाक्षिकम् ॥ २७ ॥ त्रिफलाम्बुना त्रिफलाक्वाथेन । कम्पिल्लकं कबीला इति लोके । अभयां द्राक्षया खादेत्पित्तगुल्मी गुडेन वा । योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥ २८ ॥ अपरैश्च बलासघ्नैर्युक्तियुक्तैः शमं नयेत् ॥ २९ ॥

वायुके कोपसे गुल्म हुआ होय तो दूध और हरडों सहित अंडीका तेलका विरेचन (जुलाब) देवे, तथा स्निग्ध पदार्थोंसे स्वेदन करे, यह हितकारक है । अथवा सज्जी, कूठ और केतकीका खार इनको मिलाकर तेलमें डालकर पिये तो इससे वायुसम्बन्धी गुल्म शांत हो जाता है । अथवा वायुसे उत्पन्न हुए गुल्ममें तीतर, मोर, मुरगा, क्रौंच तथा बटेरका मांस, घी, शालि चावल और प्रसन्ना नामक मदिरा इनका सेवन करावे । पित्तके कोपसे गुल्म हुआ होय तो विरेचनके लिये हरड, बहेडा तथा आमलोंके क्वाथके साथ विसोतका चूर्ण खाय अथवा सहतके साथ कबीलेका उपयोग करे । अथवा पित्तगुल्मवाला मनुष्य दाखके साथ अथवा गुडके साथ हरड खाय तो पित्तज गुल्म नष्ट होता है । कफसे गुल्म हुआ होय तो—वायुसे हुए गुल्ममें जो प्रयोग कहे हैं वे प्रयोग करे और कफको नष्ट करनेवाले जो प्रयोग हैं उन प्रयोगोंसे भी कफगुल्मको शांत करे ॥ २४–२९ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिंगुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठाशटीवृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् । पथ्यापौष्करवेतसाम्लहपुषाजाज्यस्तदेभिः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ३० ॥ गुल्माध्मानगुदांकुरान्ग्रहणिकोदावर्तसंज्ञं गदं प्रत्याध्मानगरोदराश्मरियुतांस्तूनीद्वयारोचकान् । ऊरुस्तम्भमतिभ्रमं च मनसो बाधिर्यमष्ठीलिकां प्रत्यष्ठीलिकया सहापहरते प्राक्पीत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुष्णाम्बुना ॥ ३१ ॥ हृत्कुक्षिवंक्षणकटी-जठरान्तरेषु वस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्व-योश्च । शूलानि नाशयति वातबलासजानि हिंग्वाद्यमाद्यमिदमाश्विनसंहितोक्तम् ॥३२॥

हींग, पीपलामूल, धनियाँ, जीरा, वच, चव्य, चीता, पाढ, कचूर, तिंतडीक, तीनों जातिके नमक, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, दाडिम, हरड, पोहकरमूल, अमलवेत, हाऊबेर और जीरा इनका चूर्ण करके अदरखके रसकी तथा बीजौरे नींबूकी भावना देकर उष्णजलके साथ खाय तो इससे गुल्म, अफरा, बवासीर, ग्रहणी, उदावर्त्त, प्रत्याध्मान, विष, उदरके रोग, पथरी, दोनों प्रकारकी तूनी, अरुचि, ऊरुस्तंभ, मनका अत्यंत भ्रम, बहरापन, अष्ठीलिका और प्रत्यष्ठीलिका ये रोग तुरंत नष्ट होते हैं । अश्विनीकुमारकी संहितामें कहा हुआ यह हिंग्वाद्यनामक चूर्ण हृदयमें कोख, वंक्षण, कमर, पेट, वस्ती, स्तन, खंभा और पसलियें इनमें वायुसे हुए तथा कफसे हुए शूलको नष्ट करे है ॥ ३०–३२ ॥

अथ क्षाराष्टकादियोगः ।

धीमानुपचरेद्गुल्मं प्रत्येकं च त्रिदोषजम् । सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ ३३ ॥ शरपुंखस्य लवणं पथ्याचूर्णं समं द्वयम् । शाणप्रमाणमश्नीयाच्चूर्णं गुल्म-गदापहम् ॥ ३४ ॥ स्वर्जिका शाणमाना स्यात्तावदेव गुडं भवेत् । उभयोर्वटिकां खादेद्गुल्मामयविनाशिनीम् ॥ ३५ ॥ पलाशवज्रिशिखरीचिश्चार्कतिलनालजाः । यवजः स्वर्जिका चेति क्षारा ह्यष्टौ प्रकीर्तिताः । एते गुल्महराः क्षारा अजीर्णस्य च पाचकाः ॥ ३६ ॥

बुद्धिमान् वैद्य वायुसे हुए गुल्ममें वातनाशक उपचार करे, पित्तसे हुए गुल्ममें पित्तनाशक उपचार करे और कफसे हुए गुल्ममें कफनाशक उपचार करे । यदि तीनों दोषोंसे गुल्म हुआ हो तो उसमें त्रिदोषनाशक उपचार करे । सरफोंकेका खार और हरडोंका चूर्ण इनको समान भाग लेकर चार मासे खाय, तो इससे गुल्म नष्ट होता है । अथवा चार मासे सज्जी और चार मासे गुड इनकी गोली बनाकर खाय तो गुल्मका नाश होता है । अथवा पलाश (ढाक), थूहर, ओंगा, इमली, आक, तिल, जौ और सज्जी ये आठ क्षार कहाते हैं । ये गुल्मको नष्ट करते हैं और अजीर्णका पाचन करते हैं ॥ ३३–३६ ॥

अथ वज्रक्षारः ।

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारः सुवर्चलम् । टंकणं स्वर्जिका क्षारतुल्यं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥ वज्रीक्षीरै रविक्षीरैरातपे भावये-त्त्रयहम् । वेष्टयेदर्कपत्रेण रुद्धा भाण्डे पुनः पचेत् ॥ ३८ ॥ तत्क्षारं चूर्णयेत्पश्चात्त्रयूषणं त्रिफला तथा । यवानी जीरको वह्निचूर्णमे-षां च कारयेत् ॥ ३९ ॥ सर्वचूर्णसमं क्षारं सर्वमेकत्र कारयेत् । तच्चूर्णं टंकयुगलं सलिलेन प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥ गुल्मशूले तथाजीर्णे शोथे सर्वोदरेषु च । मन्दे वह्नौ बुदावर्ते प्लीह्नि चापि परं हितम् ॥ ४१ ॥ वातेऽधिके जलैः कोष्णैर्हितं पित्तेऽधिके घृतैः । गोमूत्रेण कफाधिक्ये कांजिकेन त्रिदोषजे ॥ ४२ ॥ वज्रक्षार इति ख्यातः प्रोक्तः पूर्वं स्वयम्भुवा । सेवितो हरतेऽजीर्णं तथाऽजीर्णभवान्गदान् ॥ ४३ ॥ सुवर्चिका टंकमिता तत्समानार्दिकापि च । उभे भुञ्जीत युगपद्गुल्मामयनिवृत्तये ॥ ४४ ॥ सुवर्चिका सोरा इति लोके । गुल्मी कुमारिकामांसं कर्षार्द्धं गोघृतान्वितम् । शुक्ति-चूर्णस्य गुटिकां टंकमात्रां सुवेष्टयेत् ॥४५॥ कुमारिका घिवकुमारी इति लोके । गुडेन शाणमानेन तां लिहेद्गुल्मरोगवान् । गिले-द्यावाभयासिंधुसूक्ष्मचूर्णावधूलिताम् ॥४६॥

सामुद्र नोन, सेंधानोन, कचिया नोन, जवाखार, सोरा, सुहागा और सज्जी इनको समान भाग लेकर उस चूर्णको थूहरके दूधकी अथवा आकके दूधकी तीन दिनतक धूपमें भावना देवे पश्चात् उसका गोला बनाकर आकके पत्तोंमें लपेट हांडीमें रक्खे और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हांडीका मुख बन्द करके उस गोलेको अग्निमें पकावे और पश्चात् उस क्षारका चूर्ण करे । तदनन्तर सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, अजवायन, जीरा और चीता इनका चूर्ण करे, इस क्षारके चूर्णको और सोंठ आदि चूर्णको समानभाग लेकर एकत्र करे, पश्चात् उसमेंसे आठ मासे चर्ण पानीमें घोलकर पिये तो इससे गुल्मशूल, अजीर्ण, सूजन, सब प्रकारके उदररोग, अग्निकी मन्दता, उदावर्त, और प्लीहा ये सभी भाँति नष्ट होते हैं । जो वायु अधिक होय तो किंचित् उष्णजलसे, पित्त अधिक होय तो घीसे, कफ अधिक होय तो गोमूत्रसे और तीनों दोषोंके कोपसे हुआ होय तो काँजीसे इस चूर्णका उपयोग करे । पूर्व कालमें ब्रह्माके कहे हुए इस वज्रक्षार नामक प्रयोग सेवन करनेसे अजीर्ण तथा अजीर्णसंबंधी रोग नष्ट हो जाते हैं । चार मासे सोरा और चार मासे अदरख इनको एकत्र करके खाय तो गुल्मका नाश होता है । अथवा गुल्मवाला मनुष्य आधा तोला घीक्वारका गूदा लेकर उसमें घी मिलावे, पश्चात् उसके ऊपर सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड और सेंधा निमक इनका बारीक चूर्ण बुरबुराकर खाय तो इससे गुल्म नष्ट होता है ॥ ३७–४६ ॥

अथ गुल्मरोगित्याज्यपदार्थाः ।

वल्लूरं मूलकं मत्स्यं शुष्कशाकानि वैदलम् । न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ४७ ॥ वैदलानां निषेधेऽपि माषकुलत्थयोः नात्र निषेध इति सुश्रुतटीका ।

सूखा हुआ मांस, मूली, मछली, सूखे हुए शाक, विदल (दो दालवाले) अन्न, आलु और मधुर फल इनको गुल्मरोगी मनुष्य त्याग देवे । सुश्रुतकी टीकामें लिखा है कि—"जिनकी दो दाल होती हैं, ऐसे विदल अन्न गुल्म रोगीको निषेध हैं, परन्तु उडद और कुलथीका निषेध नहीं है ।" ॥ ४७ ॥

अथ रौधिरगुल्मचिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य योज्यं स्नेहविरेचनम् । शताह्वा चिरविल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः ॥ ४८ ॥ कल्कः पीतो जयेद्गुल्मं तिलकाथेन रक्तजम् । तिलकाथो गुडव्योषघृतभार्ङ्गीयुतो भवेत् ॥ ४९ ॥ योनिरक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पेषु योषिताम् । पीतो धात्रीरसो युक्तो मरिचैश्चास्रगुल्मनुत् ॥ ५० ॥ सुररोचनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम् । विदधीतासु गुल्मिन्या मलसंचक्रमेण च ॥ ५१ ॥ विशेषमपरं चामुं शृणु रक्तप्रभेदनम् । पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेच्च सा ॥ ५२ ॥ यस्मिन्न च रसक्षीरतोयसाध्यरसादिषु । सक्षारं त्र्यूषणं सर्पिः प्रपिबेदस्रगुल्मिनी ॥ ५३ ॥ फेनोद्गारस्य निष्पत्तिर्मिष्टदुग्धसमाकृतेः । स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ ५४ ॥

रक्तगुल्मवाले रोगीके शरीरको स्वेदनका तथा स्नेहनका संस्कार देकर स्नेहयुक्त पदार्थोंका विरेचन देवे और तदनन्तर अन्य चिकित्सा करे । सतावर, करंजकी छाल, दारुहलदी, भारंगी और पीपल इनका कल्क करके तिलके क्वाथके साथ पिये तो इससे रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होता है । स्त्रियोंका रज नष्ट हुआ हो अथवा योनिके रुधिरसे गुल्म हुआ होय तो तिलका क्वाथ करके उसमें गुड, सोंठ, मिरच, पीपल, घी और भारंगी ये पदार्थ डालकर पिये । आमलोंके रसमें कालीमिरच डालकर पिये तो इससे रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होता है । रुधिरसम्बन्धी गुल्मवाली स्त्रीको दोषोंसे स्वच्छ करनेके लिये गोरखमुण्डी और वंशलोचन इनका चूर्ण मिश्री तथा सहतमें मिलाकर खिलावे । स्त्रियोंका रुधिरसम्बन्धी गुल्म जिससे तत्काल नष्ट हो जाय ऐसा और प्रयोग कहते हैं कि—ढाकके खारके पानीमें पकाया हुआ घी पिये, अथवा जवाखार, सोंठ, मिरच और पीपल इनका चूर्ण घीमें डालकर पिये तो स्त्रीका रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट हो जाता है ॥ ४८–५४ ॥

इति गुल्माधिकारः संपूर्णः ।

अथ प्लीहयकृदधिकारः ।

तत्र शरीरावयवविशेषणप्लीहास्वरूपम् । शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः । रक्तवाहिशिराणां स मूलं ख्यातो महर्षिभिः ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बांई ओर हृदयसे नीचे रुधिरसे प्लीहा (तिल्ली) उत्पन्न होती है और रुधिरको बहानेवाली शिराओंकी मूल है, ऐसा महर्षियोंने कहा है ॥ १ ॥

अथ प्लीहरोगनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ तं प्लीहसंज्ञं गदमामनन्ति ॥ २ ॥ वामे स पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र । मंदज्वराग्निः कफपित्तलिंगैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपांडुः ॥ ३ ॥ विदाहि कुलत्थमाषसर्षपशाकादि । अभिष्यन्दि माहिषं दध्यादि कफपित्तलिंगैरुपद्रुत इत्यर्थः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्चेति सम्प्राप्तेः असृजः पित्तस्य च समानधर्मत्वात् ।

कुलथी, उडद तथा सरसोंका शाक आदि विदाही पदार्थोंको और भैंसका दही आदि अभिष्यन्दि पदार्थोंको सेवन करनेवाले मनुष्यका अत्यन्त दूषित हुआ रुधिर और कफ वृद्धिको प्राप्त होकर प्लीहाको बढाते हैं, इसको प्लीहारोग कहते हैं । अत्यन्त दूषित हुए रुधिर और कफसे प्लीहाकी वृद्धि होती है ऐसा जो कहा सो इस रोगकी संप्राप्ति जानना, क्योंकि रुधिर और पित्तका धर्म समान है । प्लीहा--बांई पसलीमें बढती है, इससे रोगी अत्यन्त दुःखी होता है, तथा मन्द मन्द ज्वर, अग्निकी मन्दता, कफ तथा पित्तके चिह्न, बलक्षीण और शरीर अत्यन्त पीला हो जाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ रौधिरप्लीहलक्षणम् ।

क्लमो भ्रमो विदाहश्च वैवर्ण्यं गात्रगौरवम् ।
मोहो रक्तोदरत्वं च ज्ञेयं रक्तजलक्षणम् ॥ ४ ॥

ग्लानि, भ्रम, दाह, वर्णकी विपरीतता, शरीरमें भारीपन, मोह और रक्तोदरका होना ये लक्षण रुधिरसे हुई प्लीहाके जानने ॥ ४ ॥

अथ पित्तजप्लीहलक्षणम् ।

सज्वरः सपिपासश्च सदाहो मोहसंयुतः ।
पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पैत्तिक उच्यते ५ ॥

यदि प्लीहारोग पित्तसे हुआ होय तो ज्वर, तृषा, दाह, मोह और विशेष करके शरीरका पीला पड जाना ये लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

अथ कफजप्लीहलक्षणम् ।

प्लीहा मन्दव्यथः स्थूलः कठिनो गौरवान्वितः । अरोचकेन संयुक्तः प्लीहा कफज उच्यते ॥ ६ ॥

जो प्लीहा हीनपीडावाली हो, तथा मोटी, कठोर, भारी और अरुचियुक्त होय तो जानना कि, कफसे हुआ प्लीहा रोग है ॥ ६ ॥

अथ वातजप्लीहलक्षणम् ।

नित्यमानद्धकोष्ठः स्यान्नित्योदावर्तपीडितः ।
वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते ॥ ७ ॥

जो वायुसे हुआ प्लीहारोग होय तो कोठा जकडा हुआ रहता है, नित्य उदावर्तकी पीडा और पीडा चारों ओर व्याप्त रहती है ॥ ७ ॥

अथ प्लीहासाध्यलक्षणम् ।

दोषत्रितयरूपाणि प्लीहासाध्ये भवन्त्यपि ।

जिस प्लीहामें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते होयँ, उस प्लीहारोगको असाध्य जानना ॥

अथ शरीरावयवविशेषे यकृत्स्वरूपम् ।

अधो दक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतः स्थितिः ।
तत्तु रंजकपित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ८

दाहिनी पसलीमें हृदयके नीचे यकृत्की स्थिति होती है, यह यकृत् रुधिरसे होता है और मनोरञ्जक पित्तका स्थान माना जाता है ॥ ८ ॥

अथ यकृद्रोगः ।

प्लीहामयस्य हेत्वादि समस्तं यकृदामये ।
किन्तु स्थितिस्तयोर्ज्ञेयावामदक्षिणपार्श्वयोः ॥ ९ ॥

प्लीहारोगके जो जो निदान, संप्राप्ति और लक्षण हैं वे सब यकृत् रोगके भी निदान, संप्राप्ति और लक्षण जानने, केवल इतनाही अन्तर है कि--प्लीहाकी स्थिति बांई पसलीमें है और यकृत्की स्थिति दाहिनी पसलीमें है ॥ ९ ॥

अथ प्लीहरोगचिकित्सा ।

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः । तथा दुग्धेन पातव्याः पिप्पल्यः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्लीहशान्तये ॥ १० ॥ अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्धं सुचूर्णितम् । निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम् ॥ ११ ॥ हिंगु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारं च सैन्धवम् । मातुलुंगरसोपेतं प्लीहशूलहरं भवेत् ॥ १२ ॥ पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभाविता । प्लीहगुल्मार्तिशमनी वह्निमान्द्यहरी मता ॥ १३ ॥ रसेन जम्बीरफलस्य शंखनाभीरजः पीतमवश्यमेव । शाणप्रमाणं शमयेदशेषं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ १४ ॥ शरपुंखमूलकल्कस्तक्रेणालोडितः पीतः । प्लीहानं यदि न हरति शैलोऽपि तदा जले प्लवते ॥ १५ ॥ सुपक्वसहकारस्य रसः क्षौद्रसमन्वितः । पीतः प्रशमयत्येव प्लीहानं नेह संशयः ॥ १६ ॥ सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशापर्युषितं नरः । राजिकाचूर्णसंयुक्तं खादेत्प्लीहोपशान्तये ॥ १७ ॥ यवानिकाचित्रकयावशूकपडग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् । चूर्णं हरेत्प्लीहगदं निपीतमुष्णाम्बुना मस्तुरसासवैर्वा ॥ १८॥

प्लीहाकी शांतिके लिये समुद्रकी सीपकी भस्म करके दूधके साथ पिये, अथवा पीपलका चूर्ण दूधके साथ पिये । अथवा आकके पत्तेमें नोन रखकर उसको पुटपाकसे जलाकर चूर्ण कर लेवे पश्चात् यह चूर्ण दहीके पानीके साथ पिये तो इससे अत्यन्त दारुण प्लीहा भी शांत होती है । अथवा हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, कूठ, जवाखार और सेंधानिमक इनका चूर्ण कर बिजौरे नींबूके रसमें पिये तो इससे प्लीहा और शूलका नाश होता है । अथवा पीपलका चूर्ण पलाशक्षार (ढाकका खार) के जलकी भावना देकर खाय तो इससे प्लीहाकी तथा गुल्मकी पीडा शान्त हो जाती है और अग्निकी मन्दता भी नष्ट हो जाती है । अथवा शंखकी नाभिकी भस्म करके नींबूके रसके साथ चार माशे पिये तो इससे कछुएकी सदृश ऊंची प्लीहा भी अवश्य भले प्रकार नष्ट हो जाती है । वा सरफोंकेकी जडका कल्क करके तक्र (मट्ठे) में मिलाकर पिये तो इससे भी यदि प्लीहा रोग नष्ट न होय तो पत्थर भी जलमें तैरने लगे अर्थात् जिस प्रकार जलमें पत्थरका तैरना असंभव है उसी प्रकार इस यत्नसे प्लीहा रोगका न नष्ट होना असंभव है । भली भाँति पके हुए आमके रसको सहतके साथ पिये तो इससे प्लीहा रोग अवश्य नष्ट हो जाता है । इसमें किंचित् संशय नहीं है । सेमलके फूलको भली भांति उसेकर रात्रिमें धरा रहने दे, फिर राईके चूर्णके साथ खाय तो प्लीहा रोगकी शांति होती है । अथवा अजवायन, चीता, जवाखार, पीपलामूल, दन्ती और पीपल इनका चूर्ण करके उष्ण पानीसे अथवा मद्यसे पिये तो इससे प्लीहा रोग नष्ट हो जाता है ॥ १०--१८ ॥

अथ यकृद्रोगचिकित्सा ।

प्लीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृद्रोगे समाचरेत् । कार्यं च दक्षिणे बाहौ तत्र शोणितमोक्षणम् ॥ १९ ॥ क्षारं विडङ्गकृष्णाभ्यां पूतीकस्याम्बुनि प्लुतम् । पिबेत्प्रातर्यथावह्नि यकृत्प्लीहप्रशान्तये ॥ २० ॥ अत्र पूतीकः करञ्जः ।

यकृत् रोगमें प्लीहाके लिये जो क्रिया कही हैं वह सब करे और दाहिनी बाँहकी नस खुलवाकर रुधिर निकलवा देवे । अथवा वायविडंग तथा पीपलकी भस्म करके जठराग्निके बलानुसार प्रातःकाल करंजके रसके साथ पिये तो इससे प्लीहा तथा यकृत् रोग शांत होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

इति प्लीहयकृदधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ हृद्रोगाधिकारः ।

अथ हृदयरोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः । संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥ प्रसङ्गः सततं सेवा । संचिन्तनम् अतिचिन्ता राजभयादिकमिति यावत् । हृदामयः स पंचविधः । वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिकः सान्निपातिकः क्रिमिजश्चेति ।

अत्यंत उष्ण, भारी, खट्टे, कसैले और कडवे पदार्थ निरंतर सेवन करनेसे, परिश्रमसे, अभिघात

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(चोट) से, भोजनके ऊपर भोजन करनेके अभ्यासे, राजभय आदिके अत्यंत चिंतवनसे और मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे वात पित्त कफ तथा त्रिदोषसंबंधी और कृमिज इस भाँति पाँच प्रकारका हृदयरोग होता है ॥ १ ॥

अथ हृदयरोगसंप्राप्तिलक्षणे ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयङ्गताः । हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥२॥ विगुणाः दुष्टाः । बाधां दोषभेदेन नानाविधां व्यथाम् । भङ्गवत्पीडामिति गणदासः ।

दूषित हुए वातादि दोष हृदयमें रहकर रसको दूषित कर अनेक प्रकारकी पीडा उत्पन्न करे हैं, उसको हृदय रोग कहते हैं ॥ २ ॥

अथ वातजहृदयरोगलक्षणम् ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा । निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि वा ॥ ३ ॥ मारुतजे हृद्रोग इति शेषः । आयम्यते व्यथया विस्तार्यत इव । तुद्यते सूचीभिरिव विद्ध्यते । निर्मथ्यते मन्थनेनेव दीर्यते करपत्रेण द्विधा क्रियत इव । स्फोट्यते अस्त्रेणेव । पाट्यते कुठारेण बहुधा क्रियत इव ।

वायुसंबंधी हृदयरोगमें सम्पूर्ण हृदयमें पीडा व्याप्त हो जाती है । सुई चुभोनेकीसी, मथनेकी सदृश चीरनेकी समान, शस्त्रसे फाडने सरीखी और कुल्हाडीसे काटनेकी सदृश अनेक प्रकारकी पीडा होती है ॥३॥

अथ पित्तजहृदयरोगलक्षणम् ।

तृष्णोष्मदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदये क्लमः । धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥ उष्मा शीतगात्रस्येव शीतवाताभिलाषहेतुः किंचिदन्तरौष्ण्यम् । दाहः पार्श्वस्थेन वह्निनेव दुःखहेतुर्गात्रस्य सन्तापः । चोषं चूषणेनेव पीडा । हृदये क्लमः हृदयाकुलत्वं ग्लानिवादित्यर्थः । धूमायनम् कण्ठाद्धूमनिर्गमः । क्लेदः किंचिद्दुर्गन्धः शठित इव ।

पित्तसंबंधी हृदयरोगमें तृषा जिससे शीतल पवनकी इच्छा होय ऐसी भीतर किंचित् गरमी रहती है, जैसे अग्नि शरीरके समीपमें रहती हो ऐसा शरीरको दुःखदायी संताप होता है, चूसनेकी सदृश पीडा होती है, हृदयको व्याकुल करनेवाली ग्लानि होती है, कंठसे धुआँ निकलता है, मूर्च्छा होती है, सडा हुआ पसीना आता है और मुख सूख जाता है ॥४॥

अथ कफयुक्तहृदयरोगलक्षणम् ।

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम् । माधुर्यमपि चास्यस्य वलासावर्तते हृदि ॥ ५ ॥ वलासावर्तते हृदि कुपितकफव्याप्ते । गौरवं हृदयस्य । स्तम्भो जडता । मार्दवं जलप्लुतमिव । माधुर्यं मुखे ।

कफसंबंधी हृदयरोग हुआ होय तो कुपित कफसे व्याप्त हुए हृदयमें भारीपन रहता है, तथा कफका स्राव, अरुचि, जडता, जठराग्निकी मृदुता और मुखमें मीठापन रहता है ॥ ५ ॥

अथ त्रिदोषजहृदयरोगलक्षणम् ।

विद्यात्त्रिदोषमप्येवं सर्वलिंगं हृदामयम् ॥६॥

तीनों दोषोंके कोपसे जो हृदयरोग हुआ होय तो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

अथ कृमिजहृदयरोगनिदानसंप्राप्ती ।

त्रिदोषहेतुर्हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते । तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रन्थिस्तस्योपजायते॥७॥ मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति । संक्लेदात्कृमयश्चास्य पतन्त्युपहतात्मनः ॥ ८ ॥ अत्र क्रिमयो जायन्ते अस्मिन्निति क्रिमिजानिरुक्तिः । मर्मैकदेशे हृदयैकदेशे संक्लेदं शठितत्वं रस उपगच्छति । संक्लेदाद्रसस्य शठितत्वादुपहतात्मनः तिलाद्यहिताहारेण ।

तीनों दोषोंसे हुए हृदय रोगमें जो मूर्ख मनुष्य तिल दूध तथा गुडादिक पदार्थोंका सेवन करता है उसका रस हृदयके एक भागमें सड जाता है, उसके सडनेसे इस दूषित हृदयमें कृमि (कीडे) उत्पन्न हो जाते हैं । जिस हृदयरोगमें कृमियें उत्पन्न होते हैं इस लिये इसको कृमिज कहते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कृमिजहृद्रोगलक्षणम्।

उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः। अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ९ ॥ उत्क्लेदः वमनामिव उपस्थितत्वम्। शोषो यक्ष्मा।

जो कृमियोंसे हृदयरोग हुआ होय तो उत्क्लेद (मानो वमन) होनेवाली है, मुखसे पानी गिरना, सुईसे छेदने सरीखी पीडा, शूल, हृल्लास, अंधेरेका आना, अरुचि, नेत्रोंका काला होना और क्षयरोग ये लक्षण होते हैं ॥ ९ ॥

अथ हृदयरोगोपद्रवाः।

क्लोम्नः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः। क्रिमिजे तु क्रिमीणां ये श्लैष्मिकाणां हि ते मताः ॥ १० ॥ क्लोम्नः पिपासास्थानस्य सादः शोषः। शोषो मुखस्य। तेषां हृद्रोगाणाम्। क्रिमिजे तु हृद्रोगे श्लैष्मिकाणां क्रिमीणां ये उपद्रवा हृल्लासास्यस्रवणविपाकादयः ते मताः।

तृषा लगनेके स्थानमें शोष, मुखका सूखना और भ्रम होता है, और हृदयरोगोंके जो उपद्रव हैं, परन्तु यदि कृमिज हृदयरोग होय तो कफसे हुए कृमियोंके हृल्लास और मुखस्राव आदि उपद्रव भी होते हैं॥ १०॥

अथ हृदयरोगचिकित्सा।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये। हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ११ ॥ हरीतकीवचाराम्लापिप्पलीनागरोद्भवम्। शटीपुष्करमूलोत्थं चूर्णं हृद्रोगनाशनम् ॥ १२ ॥ पुटदग्धं हरिणशृंगं पिष्टं गव्येन सर्पिषा पिबतः। हृत्पृष्ठशूलमचिरादुपैति शान्तिं सुकष्टमपि ॥ १३ ॥ तैलाज्यगुडविपक्वं चूर्णं गोधूमप्रार्थोत्थम्। पिबति पयोभुक्त्स भवति गतसकलहृदामयः पुरुषः ॥ १४ ॥ पार्थः कोह इति लोके। गोधूमककुभचूर्णं पक्वमजाक्षीरगव्यसर्पिर्भ्याम्। मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥ १५ ॥

घीके साथ, दूधके साथ, अथवा गुडके पानीके साथ कोहकी छालका चूर्ण पिये तो इससे हृदयरोग, जीर्णज्वर, तथा रक्तपित्तका नाश होता है और आयुकी वृद्धि होती है। अथवा हरड, वच, रायसन, पीपल, सोंठ, कचूर और पोहकरमूल इनका चूर्ण करके खाय तो हृदयरोगका नाश होता है। अथवा हिरनके सींगको संपुटमें रख भस्म करके चूर्ण कर लेवे, पश्चात् गायके घीके साथ पिये तो इससे हृदयका, पीठका शूल महादुःखदायी होय तो भी तत्काल शांत हो जाता है। अथवा गेहूँ तथा कोहके चूर्णको बराबरके दूधमें अथवा गायके घीमें पकावे, पश्चात् सहत तथा मिश्रीके साथ भक्षण करे तो इससे अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुआ हृदयरोग भी शांत हो जाता है ॥ ११–१५ ॥

अथार्जुनघृतम्।

पार्थस्य कल्केन रसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ १६ ॥

कोहकी छालके कल्कसे तथा स्वरससे पकाया हुआ घी सम्पूर्ण हृदयरोगोंमें हितकारी होता है॥ १६॥

अथ बलाद्यघृतम्।

घृतं बलानागबलार्जुनानां क्वाथेन कल्केन च यष्टिकायाः। सिद्धं तु हन्याद्धृदयामयं हि सवातरक्तक्षतरक्तपित्तम् ॥ १७ ॥

खिरैंटी, गुलसकरी तथा कोह इनके क्वाथसे और मुलेठीके कल्कसे पकाया हुआ घी हृदयरोग, वातरक्त, क्षत और रक्तपित्तको नष्ट करे है ॥ १७ ॥

इति हृदयरोगाधिकार सम्पूर्णः।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः।

तत्र मूत्रकृच्छ्रनिदानम्।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनृत्यद्रुतपृष्ठयानात्। आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ ॥ १ ॥ तीक्ष्णौषधं राजिकासूरणादिकयुक्तम्। रूक्षेति मद्यविशेषणम्। प्रसंगः सन्ततं सेवा। नृत्यं नर्तनम्। नित्येति द्वितीयः पाठः। द्रुतपृष्ठयानात् अश्वादिना गमनात्। आनूपं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रचुरजलदेशसम्भवम् । अष्टौ वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकशल्यजपुरीषजशुक्रजाश्मरीजानि ।

अत्यंत व्यायाम (कसरत) करनेसे, राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंकी औषधिका तथा रूक्ष मद्यका अत्यंत सेवन करनेसे, बहुत नाचनेसे, घोडा आदिकी सवारीपै चढकर बहुत दौडानेसे, अधिक जलवाले देशकी मछलियोंको खानेसे, भोजनपर भोजन और अजीर्णसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्र होता है । वातसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे, शल्यसे, विष्ठासे, वीर्यसे और पथरीसे हुआ इस प्रकार मूत्रकृच्छ्रके आठ भेद जानने ॥ १ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रसम्प्राप्तिसामान्यलक्षणे ।

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथ वा कोपमुपेत्य वस्तौ । मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥२॥

अपने अपने कारणोंसे कुपित हुआ एक एक दोष अथवा इसी प्रकार कुपित हुए सम्पूर्ण दोष मूत्राशयमें कुपित होकर जब मूत्रके मार्गको पीडित करते हैं तब मनुष्य बहुत कष्टसे मूत्र कर सक्ता है ॥ २ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

तीव्रा च रुग्वंक्षणवस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥ ३ ॥ तीव्रा मारणात्मिका । वंक्षणः ऊरुमेढ्राणामभ्यन्तरालसन्धिः ।

जो वायुसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वंक्षण तथा मूत्राशयमें और लिंगमें अत्यन्त तीव्र पीडा होती है और बारंबार अल्प २ मूत्र आता है ॥ ३ ॥

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रमिति क्रियाविशेषणम् ।

जो पित्तसे मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो बारंबार, पीला रुधिरयुक्त, वेदनासहित और दाहयुक्त थोडा २ मूत्र उतरता है ॥ ४ ॥

अथ कफजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

वस्तेः सलिंगस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥५॥ सपिच्छं पिच्छिलम् ।

जो कफसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो मूत्राशय और लिंगमें भारीपन तथा सूजन होती है और चिकनासा मूत्र उतरता है ॥ ५ ॥

अथ सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम् ॥ ६ ॥

जो तीनों दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, यह मूत्रकृच्छ्र बहुत दुःखदायी है ॥ ६ ॥

अथ शल्यजनितमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च । मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम् । वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिंगानि निर्दिशेत् ॥ ७ ॥ मूत्रवाहिषु स्रोतःसु शल्येन कण्टकेन क्षतेषु सक्षतीकृतेषु । अथ वा । अभिहतेषु मुष्ट्यादिभिः अभिहतेषु तदाघातान्मूत्रमार्गाघातात्तत्कृच्छ्रं जायते । भृशदारुणं मारकम् । तस्य शल्यजस्य ।

मूत्रका वहन करनेवाले स्रोत (मार्ग) कांटे आदि शल्यसे क्षतयुक्त हो जायँ, अथवा मुष्टी आदिकी चोट लगे तो मूत्रके मार्गका आघात होनेसे मृत्युकी सदृश महादारुण मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है और वह शल्यज मूत्रकृच्छ्र कहलाता है, इस मूत्रकृच्छ्रके लक्षण वायुसे हुए मूत्रकृच्छ्रकी सदृशही होते हैं ॥ ७ ॥

अथ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः । आध्मानं वातशूलं च मूत्रसंगं करोति च॥८ ॥

विष्ठाका प्रतिघात (अवरोध) होनेसे दूषित हुआ वायु पेटमें अफरेको उत्पन्न करे है और मूत्रका अवरोध होता है ॥ ८ ॥

अथ वीर्यजन्यमत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते । स शुक्रं मत्रयेत्कृच्छ्राद्वस्तिमेहनशूलवान् ॥ ९ ॥ उपहते दूषिते ।

वीर्यके दोषोंसे दूषित होकर मूत्रका मार्ग संकुचित होता है तब अल्प २ मूत्र उतरता है, मूत्रके साथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वीर्य निकलता है और मूत्राशय तथा लिंगमें शूल होता है ॥ ९ ॥

अथाश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

अश्मरीहेतुकं चापि मूत्रकृच्छ्रमुदाहृतम् ॥ १० सुश्रुते शर्कराजमपि मूत्रकृच्छ्रमुक्तमत्र तु तस्य नवमसंख्यानियमार्थमश्मरीशर्करयोः साम्यमाह-अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे । विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्तयतो मम ॥ ११ ॥ सम्भवः कारणम् । पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना । विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ॥ १२ ॥ पित्तेन पच्यमाना मूत्रशुक्रश्लेष्मसंहतिः प्रथमं पित्तेन इन्धनकर्मणा पच्यमाना पश्चाद्वातेन शोषिता कफेनाश्लिष्टा अश्मरी सैव विमुक्तकफसन्धाना त्यक्तकफाश्लेषा सती शर्करारूपा मूत्रमार्गात्क्षरन्ती शर्करा नता एतावता किञ्चिदेव भेदः ।

पथरी होनेसे मूत्र जो कष्टसे होता है वह अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र कहाता है । जो कि सुश्रुतमें 'शर्कराज' (कंकरीसे हुआ) नामक नववां मूत्रकृच्छ्रभी कहा है तो भी इस प्रकरणमें मूत्रकृच्छ्रकी आठ संख्याका नियम रखनेके कारण और पथरी तथा कंकरी यह समानही होनेके कारण शर्कराज मूत्रकृच्छ्रको पृथक् नहीं गिना । कहा है कि-" पथरी और कंकरी इनके निदान तथा लक्षण तुल्यही हैं तो भी पथरीसे कंकरीमें जो भेद हैं उनको कहते हैं सुनो, पित्त-कि जो पकानेका काम करता है उससे पककर पश्चात् वायुसे सूखकर और कफके संयोगको प्राप्त हुई पथरी नामक वस्तु-कि जो मूत्र वीर्य और कफका समुदायरूप है वह पथरी जब कफके संयोगसे छूटकर मूत्रके मार्गमेंसे कंकरीरूप झरने लगती हैं तब वह कंकरी कहाती है" इस प्रकार पथरी और कंकरीमें केवल इतनाही भेद है ॥ १०-१२ ॥

अथ शर्करोपद्रवाः ।

हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः । तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ १३ ॥

हृदयमें पीडा, कम्प, शूल, पेटमें अग्निकी मन्दता, मूर्च्छा और दारुण मूत्रकृच्छ्र ये शर्करासे हुए मूत्रकृच्छ्रमें उपद्रव होते हैं ॥ १३ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् । स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्द्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १४ ॥ अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धात्रिकण्टकैः । प्रपिबेद्वातरोगार्तः शूलवान्मूत्रकृच्छ्रवान् १५

वायुसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वैद्य रोगीको अभ्यंग (तैलादिकी मालिश), स्नेहन, निरूहवस्ति तथा उत्तरवस्ति देवे, अंगोंमें योग्य औषधियें बँधवावे, घी आदिसे सिकवावे, तथा वातनाशक, शालिपर्णी आदि पदार्थोंसे पकाये हुए रस पिलावे । अथवा गिलोय, सोंठ, आवला, असगन्ध और गोखुरू इनका क्वाथ करके पिलावे तो इसमें वायुसम्बन्धी रोग, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ पुनर्नवाद्यमिश्रकम् ।

पुनर्नवैरण्डशतावरीभिः पत्तूरवृश्चीवबलाश्मभिद्भिः । द्विपञ्चमूलेन कुलत्थकेन यवैश्च तोयोत्क्वथिते कषाये ॥ १६ ॥ तैलं वराहर्क्षवसाघृतं च तैरेव कल्कैर्लवणैश्च सिद्धम् । तन्मात्रयाऽत्र प्रतिहन्ति पीतं शूलान्वितं मारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ १७ ॥

पुनर्नवा, एरण्ड, शतावर, पत्तूर, सफेद फूलवाली सांठ, खिरेटी, पाखानभेद, वृहत्पञ्चमूल, लघुपंचमूल, कुलथी और जौ इनका क्वाथ करके उस क्वाथमें इनहीं पदार्थोंका कल्क डालकर तथा सेंधानोन डालकर पकाया हुआ तेल, सुअरकी चरबी, रीछकी चरबी और घी इनको योग्यमात्रानुसार पिये तो इससे शूलसहित वायुसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविकाराः । द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ १८ ॥

मूत्रकृच्छ्र पित्तसे हुआ होय तो वैद्य रोगीके अंगोंपर जल आदि शीतल पदार्थोंका सेचन करावे, रोगके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसेही शीतल पदार्थोंसे युक्त कोठीमें अवगाहन करावे, शीतल लेप करे, ग्रीष्मऋतुके योग्य उपचार करे और दाखका रस, विदारीकंदका रस, ईखका रस तथा घी इनकी पिचकारी लगावे, तथा इनही पदार्थोंको डालकर दूधके विकार खिलावे ॥ १८ ॥

अथ तृणपञ्चमूलम् ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् । पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् १९॥

कुश, काँस, रामशर, डाभ और ईख इन पाँचोंकी जडको तृणपंचमूल कहते हैं, इस पंचमूलका उपयोग करनेसे पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है और वस्त्याशय शुद्ध होता है ॥ १९ ॥

अथ शतावर्यादिक्काथः ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकसेरुकाणाम् । क्काथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिवेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ २० ॥

सतावर, काँस, कुशा, गोखुरू, विदारीकन्द, शालि चावल, ईख और कसेरू इनका क्काथ करके सहत और मिश्री डाले जब शीतल हो जाय तब पिये तो पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २० ॥

अथैर्वारुबीजादिपानम् ।

एर्वारुबीजं मधुकं च दार्वी पैत्ते पिवेत्तण्डुलधावनेन । दार्वीं तथैवामलकारसेन समाधिकं पित्तकृते तु कृच्छ्रे ॥ २१ ॥

खीरेके बीज, मुलेठी और दारुहलदी इन सबको चावलोंके जलमें पीसकर चावलोंके जलसेही पिये तो इससे पित्तसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । अथवा दारुहलदीको आमलोंके रसमें पीसकर सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ २१॥

अत्र हरीतक्यादिक्काथः ।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् । क्काथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ २२ ॥

हरड, गोखुरू, अमलतासका गूदा, पाखानभेद, धनिया और धमासा इनका क्काथ करके सहत डालकर पिये तो इससे दाहयुक्त तथा वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र और मलबंध नष्ट होता है ॥ २२ ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम् । सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥२३॥

शतावर, काँस, कुशा, गोखुरू, विदारीकन्द, ईखका रस और आमले इनको दूध अथवा घीमें पकाकर मिश्री डाले, पश्चात् इसको पिये तो इससे पित्तसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥

अथ त्रिकंटकाद्यघृतम् ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेषु स्वरसेषु सिद्धम् । सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रयोज्यं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातदोषे ॥ २४ ॥ अयं विशेषेण पुनर्विधेयः सर्वाश्मरीणां प्रवरः प्रयोगः ॥ २५ ॥

गोखरू, एरण्ड, कुशा आदिकी जड, शतावर ककडीके बीज और ईखका स्वरस इनको घीमें पकावे, फिर इसमें आधा भाग गुड डालकर खाय तो इससे मूत्रकृच्छ्र पथरी और मूत्राघात ये नष्ट होते हैं । यह उत्तम प्रयोग, सब प्रकारकी पथरियोंमें विशेष करके देवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ कफजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

क्षारोष्णतीव्रौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहः । तक्रं च तिक्तोषणसिद्धतैलान्यभ्यंगपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २६ ॥ मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा । कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ २७ ॥ तक्रेण युक्तं शितिवारकस्य बीजं पिबेन्मूत्रविघातहेतोः । पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २८ ॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं गुग्गुलुं च समाक्षिकम् । गोक्षुरक्काथसंयुक्तं गुटिकां भक्षयेद्बुधः ॥ २९ ॥ प्रमेहं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं तथैव च । अश्मरीं प्रदरं चैव नाशयेदविकल्पितः ॥ ३० ॥

खार, उष्ण तथा तीव्र औषधि और अन्नपान, स्वेदन, जौका भोजन, वमन, निरूहणवस्ति, न-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और कडवे पदार्थोंसे तथा काली मिरचोंसे पकाये हुए तेलका अभ्यंग अथवा पीनेसे कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है अथवा गोमूत्रसे, मदिरासे तथा केलेके स्वरससे छोटी इलायचीको बारीक पीसकर पिये तो कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। अथवा शितिवार (शिरिआरी) के बीजोंको तक्रमें पीसकर पिये तो कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। अथवा मूँगेकी भस्मको चावलोंके धोवनसे पिये तो कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। अथवा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मोथा, गूगल और सहत इनकी गोली बनाकर गोखुरूके क्वाथके साथ खाय तो इससे प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और पथरी इनको नष्ट करे है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २६-३० ॥

अथ त्रिदोषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

सर्वत्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु वस्तिः ॥ ३१ ॥ बृहती धावनी पाठा यष्टीमधुकलिंगका । पाचनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ ३२ ॥ गुडेन मिश्रितं क्षीरं कटूष्णं कामतः पिबेत् । मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगनुत् ॥ ३३ ॥

तीनों दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो रोगीके बलको विचारकर तीनों दोषोंकी चिकित्सा करे। कफ अधिक होय तो प्रथम वमन करावे, पित्त अधिक होय तो प्रथम विरेचन देवे और वायु अधिक होय तो प्रथम पिचकारी लगावे। अथवा बडी कटेरी, पिठवन, पाढ, मुलहठी और इन्द्रजौ इनका क्वाथ तीनों दोषसंबंधी मूत्रकृच्छ्रको दूर करता है अथवा दूधमें गुडको मिलाकर उसको किंचित् उष्णकर इच्छानुसार पिलावे तो इससे सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्र शर्करा और वायुसंबंधी रोग नष्ट होते हैं ॥३१-३३॥

अथाभिघातजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रिया मता ॥ ३४ ॥ मद्यं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः श्रृतं पयो वाऽर्द्धसिताप्रयुक्तम् । धात्रीरसं चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ ३५ ॥

चोटके लगनेसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वायुसे हुए मूत्रकृच्छ्रके लिये जो क्रिया कही है वह करे, रुधिरसहित मूत्र उतरता होय तो घी, मिश्री तथा सहत इनसे मिलाकर मद्य पिये अथवा औटाया हुआ दूध सहतके साथ तथा आधा भाग बूरा डालकर पिये। वा आमलोंका रस तथा ईखका रस, इनको मिलाकर उसमें सहत डालकर पिये ॥३४॥३५॥

अथ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यंगवस्तयः स्युः पुरीषजे । क्वाथो गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतः सदा । मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जन्म पीतं शीघ्रं नियच्छति ॥ ३६ ॥

मूत्रकृच्छ्र विष्ठाके रोकनेसे हुआ होय तो स्वेदन, दस्तावर चूर्णोंका सेवन, तैलादिक अभ्यंग और वस्तिकर्म करे। अथवा गोखुरूके बीजोंका क्वाथ करके उसमें जवाखार डालकर नित्य पिये तो विष्ठासे हुआ मूत्रकृच्छ्र तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥

अथ वीर्यजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

लेहः शुक्रविबन्धोत्थे सशिलाजतु माक्षिकम् । एलाहिंगुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ॥ ३७ ॥ मूत्रदोषमशुद्धयर्थं शुक्रदोषहरं च तत् । वृष्यबृंहितधातोश्च विज्ञेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ ३८ ॥

शिलाजित तथा सहत इनको मिलाकर चाटे तो इससे वीर्यजनित मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है अथवा दूधमें इलायची, हींग तथा घी इनको मिलाकर पिये तो मूत्रके दोष स्वच्छ हो जाते हैं और वीर्यके दोष नष्ट हो जाते हैं। अथवा जिसको वीर्यके मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो उसको वृष्य पदार्थ खिलाकर वीर्यको बढावे, पश्चात् उस पुरुषको उत्तम स्त्रियोंसे रमण करावे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथाश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

सप्तच्छदारग्वधकेबुकैला निम्बः करञ्जः कुटजो गुडूची । साध्या जले तेन पचेद्यवागूं सिद्धं कषायं मधुसंयुतं वा ॥ ३९ ॥ एर्वारुबीजकल्कश्च श्लक्ष्णपिष्टोऽक्षसंमितः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धान्याम्ललवणैः पेयो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ ४० ॥ त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्याः । निघ्नंति पीता मधुनाऽश्मरीं तु संप्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४१ ॥

सतोना, अमलतास सुपारी, इलायची, नीम, करंज, कुडेकी छाल और गिलोय इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये, अथवा इस क्वाथसे यवागू बनाकर खाय तो पथरीसे हुआ मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है । अथवा ककडीके बीजोंका कल्क करके खूब पीस लेवे, इसको एक तोला लेकर कांजी तथा सेंधेके साथ खाय तो मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । वा गोखरू, अमलतासें, डाभ, काँस, धमासा, पाखानभेद और हरड इनको पीस सहतके साथ पिये तो इससे मृत्युकी सदृश मूत्रकृच्छ्रभी नष्ट हो जाता है ॥ ३९--४१ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रसामान्यचिकित्सा ।

निदिग्धिकायाः स्वरसं कुडवं मधुसम्मितम् । मूत्रदोषहरं पीत्वा नरः सम्पद्यते सुखी ॥ ४२ ॥ कषायोऽतिबलामूलसाधितोऽशेषकृच्छ्रजित् । पीतं च त्रपुसीबीजं सतिलाज्यपयोन्वितम् ॥ ४३ ॥ त्रिफलायाः सुपिष्टायाः कल्कं कोलसमन्वितम् । वारिणा लवणीकृत्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥ ४४ ॥ यवोरुबूकतृणपञ्चमूलीपाषाणभेदैः सशतावरीभिः । कृच्छ्रेषु गुग्गुल्वभयाविमिश्रैः कृतः कषायो गुडसंप्रयुक्तः ॥ ४५ ॥ मूलानि कुशकाषेक्षुशराणां चेक्षुबालिका । मूत्रघाताश्मरीकृच्छ्रे पञ्चमूली तृणात्मिका ॥ ४६ ॥ गुडमामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं प्रियम् । पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४७ ॥ सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रप्रसाधनः । द्राक्षासितोपलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुना युतम् ॥ ४८ ॥ विदारी सारिवा छागशृंगी वत्सादनी निशा । कृच्छ्रं पित्तानिलाद्घ्नन्ति वल्लिजं पञ्चमूलकम् ॥ ४९ ॥ एलाश्मभेदकाशिलाजतुपिप्पलीनामेवारुवी-जलवणोत्तमकुंकुमानाम् । चूर्णानि तण्डुलजले क्षुलितानि पीत्वा प्रत्यग्रमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ ५० ॥ अयोरजः सूक्ष्मपिष्टं मधुना सह योजितम् । मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ ५१ ॥

कटेरीका सोलह तोले स्वरस सहत डालकर पिये तो मूत्रदोष दूर होकर मनुष्यको सुखकी प्राप्ति होती है । अतिबला (कंघी) की जडका क्वाथ करके पिये तो इससे सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाते हैं । अथवा खीराके बीज और तिल इनको घीमें तथा दूधमें पीसकर पिये तो मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । हरड, बहेडा और आमला इनका कल्क करके इसमें बेरकी मींग और सेंधानोन डालकर पानीसे पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है । जौ, एरंड, तृणपंचमूल, पाषाणभेद, शतावर, गूगल और हरड इनका क्वाथ करके गुड डालकर पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । अथवा कुशा, काँस, ईख, रामसर और नरसल इनकी जडको पीसकर पिये तो मूत्राघात और पथरीसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । गुड और आमलोंका सेवन--वृष्य, श्रमनाशक, तृप्तिदायक, प्रिय और पित्त, रुधिरविकार, दाह तथा शूलनाशक है । मिश्री मिलाकर जवाखार खाय तो सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं । अथवा दाख और मिश्री इनका कल्क करके दहीके पानीके साथ पिये तो मूत्रकृच्छ्र दूर होता है । विदारीकंद, सारिवा, मेंढाशिंगी, गिलोय, हलदी, वायविडंग और तृणपंचमूल इनको पीसकर पिये तो तत्काल मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । अथवा इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, पीपल, ककडीके बीज, सेंधानिमक और केसर इनका चूर्ण करके चावलोंके पानीमें मिलाकर पिये तो मृत्युको प्राप्त होनेवालाभी मूत्रकृच्छ्ररोगी रोगरहित होकर जीवित रहता है । वा लोहेकी भस्मको बारीक पीस सहतमें मिलाकर तीन दिनतक चाटे तो इससे शीघ्र मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है ॥ ४२--५१ ॥

अथ सुकुमारकुमारकपुनर्नवावलेहः ।

पुनर्नवामूलतुलां दर्भमूलं शतावरीम् । बलां तुरङ्गगन्धां च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥ ५२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदारिकन्दनागाह्वगुडूच्यतिबलास्तथा । पृथग्दशपलान्भागानपां द्रोणे विपाचयेत् ॥ ५३ ॥ तेन पादावशेषेण घृतस्यार्द्धाढकं पचेत् । मधुकं शृङ्गवेरं च द्राक्षां सैन्धवपिप्पलीम् ॥ ५४ ॥ द्विपलांशान्पृथग्दत्त्वा यवान्याः कुडवं तथा । त्रिंशद्गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ५५ ॥ एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् । राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये ॥ ५६ ॥ मूत्रकृच्छ्रे कटिस्तस्ते तथा गाढपुरीषिणाम् । मेढ्रवंक्षणशूले च योनिशूले च शस्यते ॥ ५७ ॥ यथोक्तानां च गुल्मानां वातशोणितनिश्चये । बल्यं रसायनं श्रीदं सुकुमारकुमारकम् । पुनर्नवाशते द्रोणे प्रदेयः सोऽपि चापरः ॥ ५८ ॥ मूत्राघातादिविधानमपि कार्यम् ।

चार सौ तोले पुनर्नवाकी जड और डाभकी जड, सतावर, खिरेटीकी जड, असगंध, तृणपंचमूल, गोखरू, विदारीकंद, नागकेसर, गिलोय तथा ये प्रत्येक चालीस चालीस तोले लेकर एक हजार चौबीस (१०२४) तोले जलमें क्वाथ करे, जब चौथा भाग शेष रहे तब उस क्वाथमें एकसौ अट्ठाईस (१२८) तोले घी पकावे, इस घीमें मुलैठी, अदरख, मुनक्का, सेंधानिमक और पीपल इन प्रत्येक पदार्थके चूर्णको आठ आठ तोले डाले और एक सौ बीस (१२०) तोले अंडीका तेल डाले तब 'सुकुमारकुमारकपुनर्नवा अवलेह' सिद्ध होता है, इस अवलेहको सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, कमरकी शिथिलता, विष्टाकी अत्यंत दृढता, लिंगका शूल, वंक्षणशूल, योनिका शूल, सर्व प्रकारके गुल्म और वातरक्त इनका नाश होता है। यह अवलेह—राजाओंको, राजाके सदृश पुरुषोंको और अधिक स्त्रीवाले पुरुषको सेवन करावे । यह लेह—बलवर्द्धक, लक्ष्मीदायक और बालकोंको सुकुमार (शोभायमान) करनेवाला है । और भी मूत्राघातमें जो चिकित्सा कही है सो करे ॥ ५२-५८ ॥

इति मूत्रकृच्छ्राधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मूत्राघाताद्यधिकारः ।

तत्र मूत्राघातकारणम् ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश । प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

विशेष करके मूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे कुपित हुए दोष वातकुंडलिका आदि तेरह प्रकारके मूत्राघातोंको उत्पन्न करे है ॥ १ ॥

अथ वातकुंडलिकालक्षणम् ।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्वस्तौ सवेदनः । मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं सम्प्रवर्तते । वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३ ॥ रौक्ष्यात्कायस्य । वेगविघातान्मूत्रादिवेगनिरोधात्, आविश्य आवृत्य मूत्रमिति, रौक्ष्यादिभिर्वेगविघातादिभिश्च विगुणः दुष्टः कुण्डलीकृतः वातावर्तो वस्तावेव भ्रमन् तिष्ठति । कुण्डलीभूतो वायुः वस्तौ मूत्राशये चरति प्रधावति । आवद्धत्वाद् भ्रमन् तिष्ठति ।

शरीरके रूक्ष होनेसे अथवा मूत्र आदिके वेगोंको रोकनेसे दूषित हुई वायु कुंडलाकार (गोलाकार) हो मूत्रमें मिलकर पीडाको उत्पन्न करती है तब मूत्रमें मिली हुई होनेसे मूत्राशयमेंही विचरती रहती है, इससे अल्प अल्प और पीडायुक्त मूत्र उतरता है । यह तीव्र और महादारुण रोग वातकुंडलिका कहाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथाष्ठीलालक्षणम् ।

आध्मापयन्वस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् । कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥ वातः वस्तिगुदं रुद्ध्वा अर्थात्तदन्तर्गतं मूत्रं मलं च निरुध्य वस्तिं गुदं च आध्मापयन् आध्मानं कुर्वन् अष्ठीलाम् अष्ठीलातुल्यां ग्रंथिं कुर्यात् । चलोन्नतां चलामुन्नतां च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वायु मूत्र तथा मलको रोककर मूत्राशय तथा गुदामें अफरा करके चंचल, ऊँची, तीव्र पीडावाली और मूत्रके तथा विष्ठाके मार्गको रोकनेवाली पिंडीकी सदृश गांठको उत्पन्न करे है, इसको अष्ठीला कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ वातलक्षणम् ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः । निरुणद्धि मुखं तस्य वस्तेऽर्वस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥ मूत्रसङ्गो भवेत्तेन वस्तिकुक्षिनिपीडितः । वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥ अकुशलो मूर्खः । पुरुषस्य वस्तेर्मुखं निरुणद्धि वस्तिगतो वायुः । तेन वायुना मूत्रसंगः विघातो भवति, वस्तिकुक्षिनिपीडित इति, वस्तौ कुक्षौ निपीडितः संपीडितो वायुरिति सम्बन्धः । मूत्रसङ्गः मूत्रावरोधः ।

जो मूर्ख मनुष्य मूत्रके वेगको रोकता है उसके मूत्राशयमें रहनेवाली वायु वस्ति (मूत्राशय) के मुखको बंद कर देती है, तब मूत्र रुक जाता है और वस्त्याशय तथा कोखमें पीडा होती है इसको वातवस्ति कहते हैं । यह वातवस्तिरोग कष्टसाध्य जानना ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ मूत्रातीतलक्षणम् ।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते । मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते॥७॥

मेहमानस्य मूत्रमुत्सृजतः मन्दं वा अल्पं वा ।

मूत्रको अधिक समय रोकनेसे फिर मूत्र तत्काल नहीं उतरे अथवा थोडा थोडा उतरे उसको मूत्रातीत रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ मूत्रजठरलक्षणम् ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः । अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥८॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनाम् । तन्मूत्रजठरं विद्यादधोवस्तिनिरोधनम् ॥९॥

तदुदावर्तहेतुक इति मूत्रवेगधारणगणितोदावर्तनिदानम् । आध्मानं कुर्यात् । अधोवस्तिनिरोधनम् । वस्तेरधोदेशे विबन्धकारकम् ।

मूत्रका वेग रुकनेसे कुपित हुआ अपानवायु पेटको अत्यंत भर देता है तब इस प्रकारका उदावर्त हुआ नाभिके नीचे तीव्रवेदनायुक्त अफरा करता है कि जिससे अधोवस्ति (मूत्राशयके नीचेका भाग) रुक जाता है, इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ मूत्रोत्संगलक्षणम् ।

वस्तौ वाप्ययवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः । मूत्रं प्रवृत्तं सज्येत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥ स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वापि नीरुजम् । विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्संगसंज्ञितः ॥ ११ ॥ नाले मेढ्रे । मणौ मेहनग्रन्थौ । सज्येत निरुद्धं स्यात् । सरक्तं प्रवाहतः कण्ठहृद्बलेन सशब्दं मूत्रपुरीषवातानामधः प्रेरणम् प्रवाहणं तेन कुपितेन वायुना वस्त्यादिभेदान् सरक्तं मूत्रं स्रवेदित्यर्थः ।

जिस पुरुषका प्रवर्ता हुआ मूत्र मूत्राशयमें लिंगमें अथवा लिंगके अग्रभागमें रुका रहे और हृदयके श्वासादि बलसे करे तब वायु वस्तिको भेदन करके पीडायुक्त अथवा विना पीडाके रुधिरयुक्त थोडा थोडा मूत्र धीरे धीरे स्रवे ऐसे दूषित वायुसे उत्पन्न हुआ मूत्रोत्संर्ग नामक रोग कहाता है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ मूत्रक्षयलक्षणम् ।

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ । मूत्रक्षयं सरुद्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥ क्लान्तदेहस्य म्लानदेहस्य । तदाह्वयं मूत्रक्षयसंज्ञम् ।

जिसका शरीर रूक्ष और ग्लानियुक्त हो ऐसे मनुष्यके मूत्राशयमें रहनेवाले पित्त और वायु मूत्रका क्षय करके पीडा तथा दाहको उत्पन्न करते हैं यह रोग मूत्रक्षय कहाता है ॥ १२ ॥

अथ मूत्रग्रन्थिलक्षणम् ।

अन्तर्वस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् । अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥ अन्तर्वस्तिमुखे वस्त्यभ्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्तरे । अल्पः क्षुद्रामलकप्रमाणः । ननु अस्य अश्मर्या सह को भेदः उच्यते—अश्मरी क्रमशः सञ्चयेन स्यात् अयं तु सहसा भवेत् इति भेदः । अपरो भेदः अश्मर्यां पित्ताधिक्यम् मन्यते अत्र तु रक्तमेव । यत उक्तं तन्त्रान्तरे—रक्तं वातकफाविष्टं वस्तिद्वारे सुदारुणम् । ग्रन्थिं कुर्यात्स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृतम् ।"

मूत्राशयके भीतर सहसा गोल आकारवाली स्थिर छोटे आमलेकी सदृश बडी और पथरीकी समान पीडायुक्त गांठ उत्पन्न होती है उसको मूत्रग्रंथि कहते हैं । शंका—इस मूत्रग्रन्थिमें और पथरीमें क्या अन्तर है ? समाधान—पथरी क्रमसे मल आदिका संचय होकर होती है और यह गांठ तो सहसा हो जाती है इतना ही अन्तर है । दूसरा भेद यह भी है कि पथरीमें पित्त अधिक होता है । और इस मूत्रग्रन्थिमें तो रुधिर ही अधिक होता है । अन्य ग्रंथोंमें कहा है कि " वायुसे तथा कफसे दूषित हुआ रुधिर मूत्राशयमें अत्यंत दारुण गांठको उत्पन्न करे है कि--जिससे बहुत पीडायुक्त मूत्र उतरता है वह मूत्र रुधिरसहित होता है " ॥ १३ ॥

अथ मूत्रशुक्रलक्षणम् ।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् । स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते । भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १४ ॥ मूत्रितस्य मूत्रवेगयुक्तस्य शुक्रं स्थानाच्च्युतं पश्चाद्वायुना उद्धृतम् ऊर्द्धं नीतं भस्मोदकप्रतीकाशं भस्मसहितजलसदृशम्, मूत्रशुक्रं तदुच्यते ।

जो पुरुष मूत्रका वेग होनेपर विना मूते स्त्रीका संग करे उसका स्थानसे भ्रष्ट हुआ और पश्चात् वायुसे ऊपरको चढा वीर्य मूतनेसे प्रथम अथवा पीछे राख मिले हुए पानीकी सदृश निकलता है, इस रोगको मूत्रशुक्र कहते हैं ॥ १४ ॥

अथोष्णपातलक्षणम् ।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्यानिलावृतम् । वस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहन्स्रावयेदधः ॥ १५ ॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा । कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं वदंति तम् ॥ १६ ॥ सरक्तम् ईषल्लोहितम् ।

व्यायाम (परिश्रम) करनेसे, अत्यंत मार्ग चलनेसे, तथा धूपमें फिरनेसे पित्त मूत्राशयमें प्राप्त हो वायुसे लिपटकर मूत्राशय, लिंग, योनि और गुदा इनमें दाह करके मनुष्यको अधिक कष्टसे वारंवार हलदीकी समान वर्णवाला किंचित् लाल अथवा रुधिरयुक्त मत्र उतरता है इसको उष्णवात कहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ मूत्रसादलक्षणम् ।

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तथा पीतं रक्तं श्वेतं घनं स्रवेत् ॥ १७ ॥ सदाहं रोचनाशंखचूर्णवर्णं भवेच्च तत् । शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८ ॥ संहन्येते घनीक्रियेते शुष्कम् अल्पम् । समस्तवर्णम् उक्तसकलवर्णयुक्तम् ।

पित्त कफ अथवा दोनों पवनसे गाढे हुए होयँ तो वारंवार पीला, लाल, अथवा सफेद वा शंखकी भस्मकी सदृश, वा इन सब रंगोंवाला, गाढा, दाहयुक्त और थोडा थोडा मूत्र स्रवता है उसको मूत्रसाद कहते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ विड्विघातलक्षणम् ।

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्तं शकृद्यदा । मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः । विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥ उदावर्तम् ऊर्ध्वनीतं विड्गन्धं वा शब्दोऽत्र योजनीयः ।

रूक्ष हुए मनुष्यकी अथवा दुर्बल हुए मनुष्यकी वायुसे ऊपरको चढी हुई विष्ठा जब मूत्रके स्रोत (मार्ग) को प्राप्त होती है तब वह मनुष्य विष्ठायुक्त वा विष्ठाकी गंधयुक्त वारंवार मूत्र करता है इसको विड्विघात कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ वस्तिकुंडललक्षम् ।

हताध्वलंघनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् । स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वत् ॥ २० ॥ मूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिंदुं स्रवत्यपि । पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥ २१ ॥ वस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् । पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २२ ॥ तस्मिन् पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता । श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २३ ॥ द्रुताध्वलंघनं शीघ्रं मार्गचलनम् । उद्वृत्तः उत्थितः । स्पन्दनं किञ्चित् चलनम् । घोरं मारकम् । शस्त्रविषोपमं शस्त्रं खड्गादि तद्वच्छीघ्रमारकम्, विषमत्र गरलस्तद्वद्विलम्ब्य मारकम् । एतावता मारकमवश्यं शीघ्रं विलम्बेन वा ।

वेगपूर्वक अत्यंत चलनेसे, अत्यंत परिश्रम करनेसे, अभिघात (चोट) से अथवा दबानेसे वस्ति अपने स्थानसे उठकर गर्भकी सदृश मोटी तथा शूलयुक्त हो जाती है, किंचित् काँपती रहती है दाहसे पीडा करती है, मूत्र बूँद २ स्रवता है, और दबानेसे मूत्रकी धार भी निकलती है, परन्तु धार निकलनेसे जडतायुक्त हो जाती है और पीडा होती है इसको वस्तिकुंडल कहते हैं । यह रोग भयंकर है, खड्ग आदि शस्त्रकी सदृश तत्काल मृत्यु करनेवाला है, विषकी सदृश विलम्बसे भी मार डालता है, वायुकी प्रबलतायुक्त है और अधिक करके मूर्ख लोगोंसे निवारण भी नहीं हो सक्ता । यही रोग पित्तसे युक्त हो तो दाह, शूल तथा मूत्रकी विवर्णता होती है । और यदि कफसे युक्त होय तो भारीपन तथा शोथ (सूजन) होता है और मत्र स्निग्ध, गाढा तथा सफेद होता है, यह रोग थोडे समयमें वा अधिक समयमें मार डालता है ॥ २०–२३ ॥

अथ वस्तिकुण्डलासाध्यलक्षणम् ।

श्लेष्मरुद्धबिलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्ध्यति । अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः । स्याद्वस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥ २४ ॥ बिलं वस्तिमुखरन्ध्रम् । पित्तोदीर्णः पित्तेन उद्धृतः । अविभ्रान्तबिलः कफेन अनावृतबिलः पश्चात्कुण्डलीकृतः स साध्यः । एतेन कुण्डलीभूतोऽसाध्यः । कुण्डलीभूतस्य लक्षणमाह–तृडित्यादि । कुण्डलीभूतस्य अयमर्थः, कफेन बिलावरोधात्तत्र वातः कुंडलाकारेण तिष्ठति इत्यर्थः ।

जो मूत्राशय पित्तसे ऊँचा हो गया हो और मूत्राशयका मुख कफसे रुक गया हो वह वस्तिकुण्डल असाध्य होता है । जिस मूत्राशयका मुख कफसे न ढका हो और कुण्डलाकार न हुआ हो वह वस्तिकुण्डल साध्य जानना । जिस मूत्राशयमें वायु कुंडलाकार हो गया होय तो तृषा, मोह, तथा श्वास होता है अर्थात् यह लक्षण कुंडलीभूत हुएके जानने ॥ २४ ॥

अथ मूत्राघातचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् । दद्यादुत्तरवस्तीश्च मूत्राघाते सवेदने ॥ २५ ॥ नलकुशकाशेक्षुबलाक्वाथं प्रातः सुशीतलं ससितम् । पिवतो नश्यति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कविः ॥ २६ ॥ गोजानाम्नो मूलं पलमेकं क्वथितशोषितं पीतम् । क्षिप्त्वा मधु च सितां च प्रणुदति मूत्रस्य संरोधम् ॥ २७ ॥ गोधापद्मा मूलं क्वथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् । पीतं निरुद्धमचिराद्विनत्ति मूत्रस्य संघातम् ॥ २८ ॥ पिबेच्छिलाजतुक्वाथे युक्तं वीरतरादिजे । क्वाथं सपत्नमूलस्य गोक्षुरस्य फलस्य च ॥ २९ ॥ पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्रकृच्छ्ररुजापहम् । घनसारस्य चूर्णेन बस्तस्याथाविकाम्बुना । गुण्डयित्वा ध्वजे क्षिप्त्वा मूत्ररोधं जहाति तम् ॥ ३० ॥ सदाभद्राश्मभिन्मूलं शतावर्याः सचित्रकम् । रोहिणीकोकिलाक्षौ च वचाशैलत्रिकण्टकम् ॥ ३१ ॥ श्लक्ष्णपिष्टः सुरापीतो मूत्राघातप्रबाधनः । पिबेद्वाहिंशिखामूलं दुग्धभुक्तण्डुलाम्भसा ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्तिमुत्तरवस्तिं वा सर्वेषामेव दापयेत् । निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वा तत्परिस्रुतम् ॥ ३३ ॥ जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि । सतैलं पाटलाभस्मक्षारं बद्ध्वा परिस्रुतम् ॥ ३४ ॥ त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृणपंचमूले । गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ३५ ॥ सितक्षारान्वितं मूलं वायसीतैलकूर्चयोः । कोशकाररसैः पीतं वस्तिकुण्डलजिद्भवेत् ॥ ३६ ॥ शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तंडुलांबुना । पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥ ३७ ॥

पीडायुक्त मूत्राघात होय तो स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके पश्चात् स्नेहयुक्त पदार्थोंसे विरेचन देवे तथा उत्तरवस्ति भी देवे, यह हितकारी है । अथवा नरसल, कुशा, कास, ईख और खिरैटी इनका क्काथ बनावे शीतल होनेपर मिश्री डालकर पिये तो इससे मूत्राघात अवश्य नष्ट होता है ऐसा शुक्राचार्यने कहा है । वा चार तोले गोजियाकी जड लेकर इसका क्काथ करे इसमें सहत तथा मिश्री डालकर पिये तो मूत्रका अवरोध नष्ट हो जाता है । अथवा गोधापदी (काली मुसली) की जडका क्काथ करके इसमें घी, तेल तथा दहीका पानी डालकर पिये तो इससे अधिक समयका रुका हुआ मूत्र भी उतरता है । अथवा वीरतरादिगण (पथरीकी चिकित्साके प्रकरणमें कहेंगे) का क्काथ करके उसमें शिलाजीत डालकर अथवा धमासेका क्काथ डालकर वा अडूसेका क्काथ डालकर पिये तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है । पत्ते जड तथा फलसहित गोखरू लेकर उसका क्काथ करके उसमें सहत तथा मिश्री डालकर पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्रकी पीडा नष्ट होती है । कपूरका चूर्ण कर बकरी और भेडके मूत्रमें पीस कपडेकी बत्तीपर लपेटकर लिंगमें डाले तो इससे मूत्रका रोग नष्ट होता है । अथवा कंभारी, पाखानभेद तथा शतावरकी जड, चीता, कुटकी, तालमखाने, वच, छारछबीला और गोखरू इनको बारीक पीस मदिराके साथ पिये तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है । मोरशिखाकी जड पीसकर चावलोंके धोवनसे पिये और दूधका भोजन करे तो मूत्राघात दूर होता है । अथवा सब मूत्राघातोंमें वस्ति और उत्तरवस्ति देवे । वा कटेरीकी जडका स्वरस निकालकर पिये तो मूत्राघात दूर हो । केशरका कल्क करके उसमें सहत डालकर रात्रिमें-रखा रहने देवे, फिर प्रातःकाल पिये तो मूत्राघात दूर होता है । अथवा पाढलकी भस्म और जवाखार जलमें घोलकर तेल डालके पिये तो मूत्राघात नष्ट होता है । गोखरू, अण्डकी जड और सतावर इनका क्काथ करके पिये तो मूत्राघात नष्ट होता है । तृणपंचमूलका क्काथ करके पिये तो इससे मूत्राघात नष्ट होता है । गुडसे मिश्रित किया हुआ घी दूधमें डालकर पीवे तो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगोंपर हितकारी होता है । मालकांगनी और चौयेकी जड इनको पीस इसमें मिश्री तथा जवाखार डालकर गाढे ईखके रसके साथ पीवे तो मूत्राघात नष्ट होता है । चन्दनको घिस उसमें मिश्री मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीवे और औटाया हुआ शीतल दूधके साथ अन्न खाय तो इससे रुधिरसहित उष्णवातका नाश होता है ॥ २५--३७ ॥

अथ शिलोद्भिदादितैलम् ।

शिलोद्भिदैरण्डसमास्थिरादिपुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम् । तैलं शृतं क्षीरमथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु सम्प्रयोज्यम् ॥ ३८ ॥

पाखानभेद, एरण्डकी जड, शालपर्णी, पुनर्नवा और सतावर इनके रससे तेल पकावे और दूधके अनुपानसे सेवन करे इससे मूत्रकृच्छ्रादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

अथ धान्यगोक्षुरकघृतम् ।

धान्यगोक्षुरकक्काथकल्कयुक्तं घृतं हितम् । मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे शुक्रदोषे च दारुणे ३९ ॥

धनियाँ तथा गोखरू इनके क्काथसे तथा कल्कसे पकाया हुआ घी खाय तो मूत्राघात, मूत्रदोष और वीर्यके दारुण दोषोंमें हितकारी होता है ॥ ३९ ॥

अथ भद्रावहघृतम् ।

अम्बष्ठा पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च । विदारीकन्दः काशश्च कुशमोरटगोक्षुराः । ॥ ४० ॥ पाषाणभेदो वाराही शालिमूलं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरस्तथा । भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषा-
मथाहरेत् ॥ ४१ ॥ समभागानि सर्वाणि
क्वाथयित्वा विचक्षणः । पादशेषकषायेण
घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४२ ॥ कल्कं
दत्त्वाऽथ मतिमान्निगरिजं मधुकं तथा ।
नीलोत्पलं च काकोलीं बीजं त्रापुसमेव च
॥ ४३ ॥ कूष्माण्डं च तथैवारुसम्भवं च
समं भवेत् । उष्णवातं निहन्त्येतद्घृतं
भद्रावहं स्मृतम् ॥ ४४ ॥

पाठा, पाढल, सांठ, विसखपरा, विदारीकन्द, कास, कुशा, ईखकी जड, गोखरू, पाखानभेद, वाराहीकन्द, शालिधान्यकी जड, रामसर, भिलावा और सिरसकी जड. इनको समान भाग लेकर क्वाथ करे जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें शिलाजीत, मुलैठी, नील कमल, काकोली, खीरेके बीज, पेठेके बीज और ककडीके बीज समान भाग कल्क डालकर चौंसठ तोले घी पकावे, यह भद्रावह नामक घी उष्णवात (मूत्रकृच्छ्र) को नष्ट करता है ॥ ४०--४४ ॥

अथ विदारीघृतम् ।

विदारी वृषको यूथी मातुलुंगी च भूस्तृणम् । पाषाणभेदः कस्तूरी वसुको वाशिरोऽनलः ॥ ४५ ॥ पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबलाः तथा । कशेरुविषशृंगाटतामलक्यः स्थिरादयः ॥ ४६ ॥ शरेक्षुदर्भमूलं च कुशः काशस्तथैव च । पलद्वयं तु संहत्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४७ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । शतावर्यास्तथा धात्र्याः स्वरसो घृतसम्मितः ॥ ४८ ॥ षट्पलं शर्करायाश्च कार्षिकाण्यपराणि च । यष्ट्याह्वं पिप्पली द्राक्षा काश्मर्यं सपरूषकम् ॥ ४९ ॥ एला दुरालभा कौन्ती कुंकुमं नागकेसरम् । जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः ॥ ५० ॥ एतत्सर्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृद्वग्निना बुधैः । मूत्राघातेषु सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च ॥ ५१ ॥ शर्कराऽश्मरिशूलेषु शोणितप्रभवेषु च । हृद्रोगे पित्तगुल्मे च वातासृक्पित्तजेषु च ॥ ५२ ॥ कासश्वासक्षतोरस्कधनुःस्त्रीभारकर्षिते । तृष्णाच्छर्दिमनःकम्पशोणितच्छर्दने तथा ॥ ५३ ॥ रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादे शिरोग्रहे । योनिदोषे रजोदोषे शुक्रदोषे स्वरामये ॥ ५४ ॥ एतत्स्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम् । पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम् ॥५५॥ पानभोजननस्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते । विदारीघृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥

विदारीकंद, अडूसा, जुही, बिजौरा, भूतृण, पाखानभेद, कस्तूरी, साँभरनोन, दरियाई नोन, चीता, पुनर्नवा, वच, रासना, खिरेटी, गंगेरन, कसेरू, भसींडा, सिंघाडे, भुँई आमला, स्थिरादि गण, रामरस, ईख, डाभ, कुशा और काँस ये प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले लेकर १६ सोलह सेर जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें एक सेर घी, शतावर तथा आमलोंका ६४ तोले स्वरस, चौबीस तोले बूरा और मुलहठी, पीपल, दाख, कंभारी, फालसे, इलायची, धमासा, रेणुक, केसर, नागकेसर और जीवनीयगणकी आठों औषधि ये प्रत्येक एक एक तोला और दो सेर दूध ये सब डालकर मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावे तो यह विदारीघृत सिद्ध होता है । यह घृत सब प्रकारके मूत्राघात, विशेषकरके पित्तसे हुए मूत्राघात, शर्करा, पथरी, शूल, रुधिरविकारसे हुए शूल, हृदयरोग, पित्तसे हुआ गुल्म, पित्तज वातरक्त, खाँसी, श्वास, क्षत, धनुष चढानेसे कार्षित हुए तथा स्त्रीप्रसंग करनेसे कार्षित हुए, तृषा, वमन, मनकी पीडा, कंप, रुधिरकी वमन, क्षयरोग, अपस्मार, उन्माद, शिरोग्रह, योनिदोष, रजके दोष, वीर्यके दोष और स्वरभंग आदि स्वरके रोग इन सब रोगोंमें हितकारी है । यह घी स्मृतिको बढानेवाला, वृष्य, उत्तम वाजीकरण, पुत्रदायक, बलवर्णकर्ता, और विशेषकरके वातविनाशक है और पनिमें खानेमें तथा नस्यमें सर्वत्र उपयोगी है और उत्तम रसायन है ॥४५--५६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पिष्ट्वाखुमूलमुष्णेन चारनालेन पेष्यते । बद्धमूत्रं निहन्त्याशु तथैव करभीभवम् ॥ ५७ ॥ स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य रिच्यते । मैथुनोपरमश्चास्य बृंहणीयो विधिर्हितः ॥ ५८ ॥ ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरवस्तिषु । स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुरसितारजः ॥ ५९ ॥ समांशमर्द्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च । सर्वं सम्यग्विमथ्याक्षमात्रं लीढ्वा पयः पिबेत् ॥ ६० ॥ हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्रदम् ।

मूसाकानीकी जडको अथवा सफेद अरनीकी जडको पीसकर उष्ण आरनाल (काँजी) से पिये तो मूत्रका अवरोध तत्काल दूर होता है । अथवा जिसके अत्यंत मैथुन करनेसे मूत्रमें रुधिर आवे उसको मैथुनसे रोककर धातुको बढानेवाले उपाय करे पश्चात् मुरगेका चरबी और तेलसे उत्तरवस्ति देवे यह अत्यंत हितकरी है । अथवा कौंछके बीज, दाख, काली ईखका रस और काली मिट्टी, इनको समान भाग लेवे और दूध, सहत तथा घी इनका आधा भाग लेवे, सबको मिलाकर एक तोलाभर खाय और ऊपरसे दूधको पिये तो इससे वीर्यके क्षयसे उत्पन्न हुई पीडा नष्ट होती है और वंध्या स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ५७--६० ॥

अथ क्षौद्रार्द्धभागघृतम् ।

क्षौद्रार्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात्क्षीरसर्पिषोः ॥ ६१ ॥ शर्करायाश्च चूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् । स्वयंगुप्ताफलं चैव तथैवेक्षुरकस्य च ॥६२॥ पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् । तदैकध्यं समानीय खल्लेनातिविमथ्य च ॥ ६३ ॥ तस्य पाणितलं चूर्णं लिहेत्क्षीरं ततः पिबेत् । एतत्सर्पिः प्रयुञ्जाना योनिदोषात्प्रमुच्यते ॥६४॥

एक भाग दूध, एक भाग घी, आधा भाग सहत, एक भाग मिश्री, दाख, कौंछके बीज, तालमखाना और पीपल ये एक एक भाग लेवे । इनको एकत्र करके रईसे भली भाँति मथकर इसमेंसे एक तोला घी चाटे और उसके ऊपर दूध पिये । इस घीको सेवन करनेवाली स्त्री योनिके दोषसे मुक्त होती है ॥ ६१--६४ ॥

अथ वर्तिः ।

कर्पूररसजा युक्ता वस्त्रवर्तिः शनैः शनैः । मेढ्रमार्गान्तरे न्यस्ता मूत्राघातं व्यपोहति ॥ ६५ ॥

वस्त्रको कपूरके चूर्णसे भली भाँति लपेटकर लिंगके मार्गमें रक्खे तो इससे मत्राघात नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

अथातिदेशः ।

मूत्रकृच्छ्रेऽश्मरीरोगे भेषजं यत्प्रकीर्तितम् । मूत्राघातेषु कृच्छ्रेषु तत्कुर्याद्देशकालवित् ६६

मूत्रकृच्छ्रमें जो औषधि कही हैं तथा पथरीरोगमें जो औषधि कही हैं वे सब औषधि देशके तथा कालके अनुसार मूत्राघात और मत्रकृच्छ्ररोगमें देवे ॥ ६६ ॥

इति मूत्राघाताधिकारः समाप्तः ।

अथाश्मर्यधिकारः ।

तत्राश्मरीनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजा मता । प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥ श्लेष्माश्रयाः श्लेष्मसमवायिकारणाः शुक्रजां विना शुक्रजायास्तु शुक्रस्यैव समवायिकारणत्वात् अन्ये तु शुक्राश्मर्यामपि कफकारणत्वमिच्छन्ति । प्रायः शब्दश्च मात्रविशेषार्थः । यमोपमाः चिकित्सां विना ।

वात, पित्त और कफसे ऐसे तीन प्रकारकी और चौथी पथरी वीर्यसे होती है । वीर्यसे हुई पथरीको छोडकर शेष तीनों प्रकारकी पथरी अधिक करके कफाश्रयसे होती हैं और वीर्यसे हुई पथरीमें वीर्यही कारण है । कोई कोई वैद्य तो वीर्यसे हुई पथरीमें भी कफको कारण मानते हैं । सर्व प्रकारकी पथरी विना चिकित्साके अवश्य यमरूप (मृत्युकर्ता) हो जाती हैं ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथाश्मरीसम्प्राप्तिः ।

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा । यदा तदाश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥ यदा पवनो वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं कफं वा शोषमुपनयेत्तदाऽश्मरी भवति क्रमेण क्रमशो वर्द्धमाना । यथा गोपित्तेषु रोचना इव इति अन्वयः । तस्याः अनेकदोषाश्रयत्वमाह । नैकदोषाश्रयाः सर्वाः ।

जब वायु मूत्राशयमें रहनेवाले वीर्यसहित मूत्रको अथवा पित्तसहित कफको सुखाती है तब पथरी उत्पन्न होती है, यह पथरी जिस प्रकार गायके पित्तमें गोरोचन बढता है उसी प्रकार अनुक्रमसे बढती है । सब प्रकारकी पथरी अनेक दोषोंके समागमसे होती है ॥२॥

अथाश्मरीपूर्वरूपम् ।

वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् । मूत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ ३ ॥ बस्तः छगलकः ।

जब पथरी होनेको होती है तब मूत्राशयमें अफरा मूत्राशयके चारों ओर अत्यंत पीडा, मूत्रमें बकरेके मूत्रकी दुर्गन्ध, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

अथाश्मरीसामान्यलक्षणम् ।

सामान्यलिंगं रुङ्नाभिसेवनीवस्तिमूर्द्धसु । विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने ॥ ४ ॥ तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् । तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ ५ ॥ वस्तिमूर्द्धा नाभेरधोदेशः, विशीर्णधारं सविच्छेदधारम्, तया अश्मर्या । मार्गः मूत्रवाहिस्रोतः । तद्व्यपायात्कदाचिद्वायुना अश्मर्या मूत्रमार्गादन्यत्र गमनात्सुखं मेहेन्मूत्रयेद्गोमेदकोपमं गोमेदको मणिः किञ्चिल्लोहितः तद्वर्णम् । तत्संक्षोभात्तस्याः अश्मर्याः सञ्चाराद्घर्षणेन मूत्रवहस्रोतासि क्षते जाते सास्रं सरक्तं मेहेत् । आयासात्प्रवाहनादिजनितात् ।

पथरी हुई होय तो नाभिमें, सीमनमें तथा नाभिसे नीचेके प्रदेशमें पीडा होती है, पथरीसे मूत्रके वहन करनेवाले स्रोतोंका रोध होनेपर मूत्रकी धार बीचमें ही कट जाती है, किसी समय वायुसे पथरी मूत्रके मार्गसे अन्य स्थानको चली जाती है तब गोमेद मणिके सदृश वर्णवाला स्वच्छ मूत्र सुखसे उतरता है, पथरीके संचारसे मूत्रका मार्ग घिसकर मूत्र रुधिरयुक्त उतरता है और अत्यंत पीडा होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वातोल्वणाश्मरीलक्षणम् ।

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान्खादति वेपते । मृद्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ॥ ६ ॥ सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः । श्यावा रूक्षाश्मरी सा स्यात्साञ्चिता कण्टकैरिव ॥ ७ ॥

पथरीमें यदि वायुकी उल्वणता होय तो मनुष्य अत्यंत पीडायुक्त होता है, तथा दाँतोंको चबावे, काँपता है, लिंग तथा नाभिको दबावे और निरंतर पीडासे चिल्लाता है और अधोवायुके साथ विष्ठा आती है, बारंबार बूँद बूँद मूतता है । यह पथरी नीली, रूखी और मानो ऊपर कांटे लगे हैं ऐसी होती है ॥ ७ ॥ ६ ॥

अथ वातोल्वणाश्मरीचिकित्सा ।

तस्या पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥८॥

पथरीके पूर्वरूप होनेपर स्नेहन आदि प्रयोग करने चाहिये ॥ ८ ॥

अथ शुंठ्यादिकषायः ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः । काश्मर्यारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः । रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ॥ ९ ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम् । हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कट्यूरुगुदमेढ्रजम् ॥ १० ॥

सोंठ, अरनी, पाखानभेद, सहँजना, वरना, गोखुरू, कँभारी और अमलतास इनका क्वाथ करके उसमें हींग, जवाखार और सेंधानिमक इनका चूर्ण डालकर पिये तो इससे पथरी, मूत्रकृच्छ्र, कोठेकी वायु तथा कमर, घुँटने, गुदा और लिंगकी वायु नष्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती है, अग्नि दीपन होती है, और अन्न आदि भली भाँति पचते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथैलादिक्काथः ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः । शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करं चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ ११ ॥

इलायची, पीपल, मुलेठी, पाखानभेद, रेणुक, गोखरू, अडूसा और अण्डकी जड इनके क्काथमें शिलाजीतको भली भाँति पकाकर क्काथ पिये तो पथरी और मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ११ ॥

अथ वरुणादिक्काथः ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीं गोक्षुरसंयुताम् । यवक्षारगुडं दत्त्वा क्काथयित्वा पिबेद्भिषक् । अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १२ ॥

बरनाकी छाल, सोंठ, गोखरू, जवाखार और गुड, इनका क्काथ करके पिये तो वायुकी उल्वणतासे हुई पथरी अधिक कालकी होय तो भी नष्ट हो जाती है ॥ १२ ॥

अथ पाषाणभेदाद्यघृतम् ।

पाषाणभेदो वसुको वशीरोऽश्मन्तकस्तथा । शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ १३ ॥ कपोतवङ्क्षार्तगलकाश्वनोशीरगुन्द्रकाः । वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ १४ ॥ यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च । ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्काथे शृतं घृतम् । भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ १५ ॥

पाषाणभेद, आककी जड, लाल चिरचिटा, कोविदार, सतावर, गोखरू, भटकटैया, कटेरी, ब्राह्मी, नीले फूलकी कटसरैया, कचनार, खस, गुन्द्रतृण, घंटा, वरना, सागोनके फल, जौ, कुलथी, बेर और निर्मलीफल इनका क्काथ करके उसमें ऊषकादिगणकी औषधि डालकर उस क्काथमें पकाया हुआ घी खाय, तो वायुकी उल्वणतासे हुई पथरी तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ १३–१५ ॥

अथ वीरतर्वादिगणः ।

क्षारान्यवागूं पेयां च कषायांश्च पयांसि च । भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वातनाशने ॥ १६ ॥ वीरवृक्षोऽग्निमन्थश्च काशवृक्षादनीकुशाः । मोरटेन्दीवरः सूर्यभक्ता गोक्षुरुटुण्टुकाः ॥ १७ ॥ वसुको वशीरो दर्भशैरीयावश्मभेदकः । गुन्द्रो नलः कुरुण्टश्च गणो वीरतरादिकः ॥ १८ ॥ अश्मरीशर्कराकृच्छ्रमारुतार्तिहरो मतः । बृहद्वाते वीरतरस्तदभावे मतः शरः ॥ १९ ॥

कोह, अरनी, कांस, बांदा, कुशा, मोरट (ईखकी जड), नील कमल, हुलहुल, गोखरू, टेंटू, आककी जड, लाल चिरचिटा, डाभ, कटसरैया, पाखानभेद, गुन्द्रतृण, नरसल और कुरण्ट यह वीरतर्वादिगण कहाता है । ये सब औषधि–पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और वायुके रोगोंको नष्ट करे हैं, इस लिये इन औषधियोंमें क्षार, यवागू, पेया, क्काथ, दूध और भोजन सिद्ध करके देवे तो इससे पथरी आदि वायुसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १६–१९ ॥

इति वाताश्मरीचिकित्सा ।

अथ पित्तोल्वणाश्मरीलक्षणम् ।

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मणा । भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताश्मरी ॥ २० ॥

पित्तकी उल्वणतासे पथरी हुई होय तो वस्तिमें दाह और अग्निसे पकानेकी सदृश पीडा होती है, और पथरी भिलावेकी गुठलीकी सदृश, लाल, पीली तथा सफेद होती है ॥ २० ॥

अथ पिताश्मरीचिकित्सा ।

तत्र कुशादिघृतम् ।

कुशः काशः शरो गुन्द्र उत्कटो मोरटाश्मभित् । दर्भो विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः ॥ २१ ॥ भल्लुकः पाटला पाठा पत्तूरोऽथ कुरुण्टकः । पुनर्नवा शिरीषश्च कथितास्तेषु साधितम् ॥ २२ ॥ घृतं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिलाह्वमधुकैर्बीजैरिन्दीवरस्य च । त्रपुसैर्वारुकादीनां बीजैश्चावापितं शुभम् । भिनत्ति पित्तसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव च ॥ २३ ॥ बीजं बीजसारः सरोबीजं वा ।

कुश, कास, रामसर, गुन्द्रतृण, उत्कट (एक प्रकारके तृण), मोरट (ईखकी जड), पाखानभेद, डाभ, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शालिपर्णीकी जड, गोखरू, भिलावे, पाडुर, पाढ, पत्तूर, कटसरैया, पुनर्नवा और सिरस इनके क्काथमें घी पकावे, उसमें शिलाजीत, मुलेठी, महुएके बीज खीरे और ककडीके बीज इनका चूर्ण डालकर खाय तो इससे तत्काल पित्ताश्मरी नष्ट होती है ॥ २१--२३ ॥

क्षारान्यवागूं पेयां च कषायांश्च पयांसि च ॥ २४ ॥ भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्पित्तनाशने । शिलाजतु शिलाह्वं स्यात्पटीरो गुत्थगुन्द्रकौ ॥ २५ ॥ मधुकः कृतह्रस्वत्वाद्बीजैर्बीजकमुच्यते । कुर्यात्क्षीरादिकं क्काथे तस्मिन्क्षेपमवापकैः । वर्गत्वेन यथालाभं परिभाषा प्रवर्तते ॥ २६ ॥

पित्तको नष्ट करनेवाला वीरतर्वादि वर्ग जो ऊपर कहा है उसमें क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध और भोजन सिद्ध करके पित्तकी उल्वणतासे हुई पथरीवालेको देवे । वर्गके लिये वैद्यक ग्रंथोंकी यह परिभाषा है कि—वर्गमें की सब औषधि नहीं मिले तो उनमेंसे जितनी मिले उनकाही उपयोग करे ॥ २४—२६ ॥

अथ कफाश्मरीलक्षणम् ।

वास्तिर्नस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः । अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता ॥ २७ ॥ एता भवन्ति बालानां तेषामेव तु भूयसाम् । आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः ॥ २८ ॥

कफकी उल्वणतासे पथरी हुई होय तो नोचने सरीखी पीडा होती है और पथरी शीतलतायुक्त, भारी, मोटी, सहतके समान वर्णवाली, अथवा सफेद होती है । यह पथरी अधिक करके बालकोंकेही होती है, और बालकोंके वृद्धिका आश्रय अल्प होता है इससे बालकोंकी पथरी निकालनेमें सुगम होती है॥ २७॥ २८॥

अथ कफाश्मरीचिकित्सा ।

तत्र वरुणादिघृतम् ।

गणे वरुणकादौ तु गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः । कुष्ठभद्राह्वमरिचचित्रकैः समुराह्वयैः ॥ २९॥ एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन वा । भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव च । शठ्यादिस्तेन चात्रेष्टो गणः श्यामादिको बुधैः ॥ ३० ॥

वरुणादि गण (जो नीचे कहा है) गूगल, इलायची, रेणुका, कूठ, नीम, काली मिर्च, चीता और देवदार इनको डालकर अथवा ऊषकादि गणकी औषधि डालकर इनमें पकाया हुआ बकरीका घी खाय तो कफकी उल्वणतासे हुई पथरी तुरंत नष्ट हो जाती है । शठ्यादि गणके क्काथमें अथवा श्यामादि गणके क्काथमें घी पकाकर उसका उपयोग करनेसे भी कफकी उल्वणतासे हुई पथरी नष्ट होती है ऐसा पंडितोंने माना है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ वरुणादिगणः ।

वरुणार्तगलौ शिग्रुस्तर्कारी नक्तमालकौ । मोरटारणिबिल्वाश्च विम्बीवसुकचित्रकाः । ॥ ३१ ॥ शैरीयो वशिरः क्षौद्रमजशृङ्गी शतावरी । दर्भो बृहतिका व्याघ्री मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ ३२ ॥ वरुणादिगणो ह्येष कफमेदोनिवारणः । विनिहन्ति शिरःशूलं गुल्माभ्यन्तरविद्रधीन् ॥ ३३ ॥

वरना, झिंटी, सहँजना, तर्कारी (जैती), करंज, ईखकी जड, अरनी, बेल, कुंदरु, आककी जड, चीता, शैरेय (कटसरैया), लाल चिरचिटा, सहत, मेंढासिंगी, शतावर, डाभ, भटकटैया और बडी भटकटैया इन औषधियोंको वरुणादिगण कहते हैं, यह वरुणादि गण—कफ तथा मेदाको निवारण करे है और मस्तकशूल, गुल्म तथा भीतरके विद्रधिको नष्ट करे है ॥ ३१—३३ ॥

क्षारान्यवागूं पेयां च कषायांश्च पयांसि च । भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्कफनाशने ॥ ३४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कफको नष्ट करनेवाले इस वर्गमें क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध तथा भोजनको सिद्ध करके कफके रोगोंमें देवे ॥ ३४ ॥

अथ शुक्राश्मरीनिदानम् ।

शुक्राश्मरी तु महती जायते शुक्रधारणात् । अव्ययानामनेकार्थत्वात्तुशब्दोऽत्र अवधारणार्थः तेन महतामेव न तु बालानां वक्ष्यमाणसम्प्राप्तेरसम्भवान्न तु शुक्राभावो वाच्यः शुक्रधारणाच्छुक्रवेगागमस्य धारणात् ।

वीर्यकी पथरी अधिक अवस्थावालोंके ही होती है बालकोंके नहीं होती, यद्यपि बालकोंके भी वीर्य होता है तो भी शुक्राश्मरीकी जो संप्राप्ति कहेंगे वह बालकोंके होनी असंभव है इसलिये बालकोंके वीर्यकी पथरी होतीही नहीं । स्थानसे भ्रष्ट होकर प्रवर्ते हुए वीर्यके रुकनेसे वीर्यकी पथरी हो जाती है ॥

अथ शुक्राश्मरीसंप्राप्तिः ।

स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः । शोषयित्वोपसंहृत्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी ॥ ३५ ॥ अनिलः मैथुनवेगेन स्थानाच्च्युतं शुक्रं मैथुनवेगनिवारणेन धृतं शुक्रं मुष्कयोः मेढ्रसहितयोः मेढ्रवृषणयोरंतर इति सुश्रुतवचनात्तेन मेढ्रवृषणमध्यगतवस्तिमुखे उपसंहृत्य एकीकृत्य शोषयति तच्छुक्राश्मरी । तथाभूतं शुक्रमेवाश्मरी ।

मैथुनका वेग होनेपर स्थानसे पतित हुए और पीछे मैथुनका वेग शांत होनेपर नहीं निकले हुए वीर्यको वायु लिंगके तथा अंडकोषोंके मध्यमें मूत्राशयके मुखपर एकत्र करके सुखा देती है तब वह वीर्य पथरीरूप हो जाता है ॥ ३५ ॥

अथ शुक्राश्मरीलक्षणम् ।

वस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वमुष्कभ्रंशथुकारिणी । तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते । पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शकरा ॥ ३६ ॥ तस्यां शुक्राश्मर्याम् उत्पन्नमात्रायां यदा सा कथमपि विलीयते विलयं याति तदा शुक्रम् एति मूत्रमार्गात् प्रवर्तते पीडिते तु अवकाशेऽस्मिन् । तुशब्दोऽवधारणे तेन अस्मिन्नेव अवकाशे स्थाने मेढ्रवृषणयोरन्तरे पीडिते सति सा विलीयते अन्तर्लीना भवति । अवस्थाभेदात् अश्मरी शर्करा सिकता भवतीति आह-'अश्मर्यैव च शर्करा ।' चकारात् सिकता च भवति शर्कराासिकतयोश्च भेदो महत्त्वाल्पत्वाभ्यां बोद्धव्यः ।

वीर्यकी पथरी होते ही मूत्राशयमें पीडा, बूँद बूँद मूत्रका उतरना और अंडकोषोंमें सूजन होती है । लिंग और अंडकोषोंका मध्यभाग दबानेसे यह पथरी भीतर लीन हो जाती है, इस प्रकार जब लीन हो जाती है तब ही मूत्रके मार्गसे वीर्य प्रवर्तता है, जिस वीर्यकी पथरी होती है वह अपनी स्थितिके भेदसे शर्करारूप तथा रेतीरूप हो जाता है । वीर्यके कण मोटे होयँ तो शर्करारूप और सूक्ष्म होयँ तो रेतेकी समान होता है ॥ ३६ ॥

अथ शुक्राश्मर्याः शर्करारूपत्वमाह ।

सा भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते ॥ ३७ ॥ सा अश्मरी ।

इस वीर्यकी पथरी जब वायुसे बिखर जाती है तब शर्करा कहाती है ॥ ३७ ॥

अथ शर्करानिःसरणावरोधकारणम् ।

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे । निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते । मूत्रस्रोतः प्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ ३८ ॥ अश्मरी तस्मिन् आश्रये सा शर्करा सक्ता लग्ना सती ।

वायुसे बिखर २ कर टुकडे टुकडे रूप यह पथरी वायुके सीधे चलनेसे मूत्रके साथ निकलती है और वायु उलटा चले तब रुकती है । मूत्रके मार्गमें प्रवर्तकर अनेक उपद्रवोंको करती है ॥ ३८ ॥

अथाश्मर्युपद्रवाः ।

दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिरोगमथारुचिम् । पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ ३९ ॥ उष्णवातं मूत्राघातविशेषणम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शर्करासे दुर्बलता, ग्लानि, शरीर कृश, कूखमें पीडा, अरुचि, पाण्डुता, उष्णवात (मूत्राघात), तृषा, हृदयमें पीडा और वमन होती है ॥ ३९ ॥

अथाश्मरीशर्करारिष्टम् ।

प्रसूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजातुरम् । अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता ॥ ४० ॥ शर्करा सिकतेति नामद्वयमन्वर्थम् ।

जिसकी नाभि और अंडकोष सूख जायँ, मूत्र रुक रहा हो और पीडासे व्याकुलता हो तो वह मनुष्य तत्काल मर जाता है । वीर्यकी पथरी ही शर्करारूप हो जाय तो शर्करा और रेतरूप हो जाय तो सिकता कहाती है ॥ ४० ॥

अथाश्मरीचिकित्सा ।

शुक्राश्मर्यां तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः । यवक्षारगुडोन्मिश्रं रसं पुष्पफलोद्भवम् ॥ ४१ ॥ पिबेन्मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् । तिलापामार्गकदलीपलाशयवबिल्वजः ॥ ४२ ॥ क्वाथः पेयोऽविमूत्रेण शर्कराश्मरिनाशनः । केबुकांकोलकतकशाकेन्दीवरजैः फलैः । पीतमुष्णाम्बु सगुडं शर्करां पातयत्यधः ॥ ४३ ॥ पाषाणभिद्गोक्षुरकोरुबूकौ द्वौ कण्टकार्यौ क्षुरकाह्वमूलम् । दग्ध्वा पिबेत्क्षीरसुपिष्टमेतत्स्याद्भेदनार्थं सिकताश्मरीणाम् ॥ ४४ ॥ यः पिबेद्रजनीं सम्यक् सगुडां तुषवारिणा । तस्याशु चिरगूढापि यात्यस्तं भेदूशर्करा ॥ ४५ ॥ पिबतः कटजं दग्ध्वा पथ्यमन्नं च खादतः । निपतत्यचिरात्तस्य नियतं भेदूशर्करा॥४६॥ त्रापुसबीजं पयसा पीतं वा नालिकेलजं कुसुमम् । विण्मूत्रशर्करायां भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ ४७ ॥ श्वदंष्ट्रा वरुणः शुण्ठी क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् । शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रहरं परम् ॥ ४८ ॥ कूष्माण्डकरसो हिंगुयवक्षारसमायुतः । वस्तौ मेढ्रे च शूलघ्नो मूत्रकृच्छ्रहरस्तथा ॥ ४९ ॥ पुनर्नवाऽयोरजनीश्वदंष्ट्राफलप्रवालश्च सदर्भपुष्पः । क्षीराम्रमद्येक्षुरसप्रविष्टो हितो भवेदश्मरिशर्करासु ॥ ५० ॥ वरुणत्वक्छिल्लाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः कृतः । कषायः क्षारसंयुक्तः शर्कराश्च भिनत्त्यपि ॥ ५१ ॥

जो अन्य पथरियोंकी चिकित्सा कही है वह भी शुक्राश्मरीमें करे । अथवा नारियलके रसमें जवाखार तथा गुड मिलाकर पिये तो इससे मूत्रकी रुकावट, पथरी तथा शर्करा नष्ट हो जाती है । वातिल, चिरचिटा, केला, ढाक, जौ और बेल इनका क्वाथ करके बकरीके मूत्रके साथ पिये तो शर्करा तथा शुक्राश्मरीका नाश होता है । सुपारी, अंकोल, निर्मलीके फल, सागोनके फल और कमलगट्टे इनका क्वाथ करके गुड डालकर पिये तो शर्करा नष्ट होती है । पाखानभेद, गोखुरू, एरंडकी जड, छोटी और बडी कटेरी तथा तालमखाने इनको दूधमें पीसकर दहीमें डालकर खाय इससे पथरी तथा शर्करा नष्ट हो जाती है । अथवा हलदीको गुडके साथ भली भाँति मिलाकर तुषोदकके साथ पिये तो इससे अधिक कालकी पथरी भी नष्ट हो जाती है । कुडेकी छालके कल्कको दहीमें डालकर पिये और पथ्य अन्न खाय तो शर्करा अवश्य नष्ट हो जाती है । खीरेके बीजोंको अथवा नारियलके फूलोंको पीसकर दूधमें डालकर पिये तो मूत्रसे पीडित तथा शर्करासहित मनुष्य किंचित् दिनोंमें सुखी होता है । गोखरू, वरना और सोंठ इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो इससे पथरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र भली भाँति नष्ट होता है । अथवा पेठेके रसमें हींग, तथा जवाखार डालकर पिये तो इससे मूत्राशयकी पीडा, लिंगका शूल, पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र अवश्य नष्ट होता है । पुनर्नवा, लोहेकी भस्म, हलदी, गोखुरू, मूँगेकी भस्म और डाभके फूल इन सबको दूध, आमका रस, मदिरा, और ईखका रस इनमें पीसकर पिये तो इससे वीर्यकी पथरी तथा शर्करा नष्ट होती है । अथवा वरनाकी छाल, पाखानभेद, सोंठ और गोखुरू इनका क्वाथ करके उसमें जवाखार डालकर पिये तो शर्करा नष्ट हो जाती है ॥ ४१--५१ ॥

अथ तृणपञ्चमूलाद्यघृतम् ।

पञ्चमूल्यास्तृणाख्यायास्तथा गोक्षुरकस्य तु ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृथग्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ५२ ॥ चतुर्भागावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् । गुडगोक्षुरबीजं च कल्कं तत्र प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥ तत्सिद्धं मूत्रदोषेषु शर्करास्वश्मरीषु च । स्नेहने भोजने चैव प्रयोज्यं सर्पिरुत्तमम् ॥ ५४ ॥

तृणपञ्चमूल और गोखुरू इन प्रत्येकको चालीस चालीस तोले लेकर १६ सेर जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें गुड तथा गोखरूका कल्क डालकर एक सेर घी पकावे। इस उत्तम घीको स्नेहनमें तथा भोजनमें सेवन करे तो इससे मूत्रसंबंधी विकार, पथरी और शर्करा नष्ट हो जाती है ॥ ५२--५४ ॥

अथ वरुणतैलम् ।

त्वक्पत्रफलमूलस्य वरुणस्य त्रिकण्टकात् । कषायेण पचेत्तैलं वस्तिनास्थापनेन च । शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ५५॥

छाल, पत्ते, फल तथा मूलसहित बरना तथा गोखुरू लेकर इनके क्वाथमें पकाये हुए तेलसे निरूह वस्ति देवे तो इससे पथरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

अथ कुशाद्यतैलम् ।

कुशाग्निमन्थशैरेयनलदर्भेक्षुगोक्षुराः । कपोतवंकावसुकवशीरेन्दीवरीशराः ॥ ५६ ॥ धातक्यरलुवन्दाकाः कणपूराश्मभेदकाः । एषां कल्ककषायाभ्यां सिद्धं तैलं प्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥ पानाभ्यञ्जनयोगेन वस्तिनोत्तरवस्तिना । शर्कराश्मरिरोगेषु मूत्रकृच्छ्रे च दारुणे ॥ ५८ ॥ प्रदरे योनिशूले च शुक्रदोषे तथैव च । वन्ध्यागर्भप्रदं प्रोक्तं तैलमेतत्कुशादिकम् ॥ ५९ ॥

कुशा, अरणी, पियावासा, नरसल, डाभ, ईख, गोखरू, ब्राह्मी, आककी जड, लाल चिरचिटा, सतावर, रामसर, आमला, अरलू, बाँदा, सिरस और पाखानभेद इनके क्वाथसे पकाया हुआ तेल कुशाद्यतैल कहाता है। इस तेलको पीनेमें, अभ्यंगमें, वस्तिमें और उत्तरवस्तिमें उपयोग करे तो इससे शर्करा, पथरी, दारुण मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, योनिशूल और वीर्यके दोष नष्ट हो जाते हैं। यह तेल वन्ध्याओंको गर्भदायक है ॥ ५६--५९ ॥

अथाश्मरीणां सामान्यचिकित्सा ।

नागरवरुणगोक्षुरपाषाणभित्कपोतवंकजः क्काथः । गुडयवशूकविमिश्रः पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥ ६० ॥ त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् । अविक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिनाशनम् ॥ ६१ ॥ पिबेरुद्वणजं मूलं क्काथं तत्कल्कसंयुतम् । क्काथः शिग्रुमलोत्थश्च कटूष्णोऽश्मरिनाशनः ॥ ६२ ॥ शृङ्गवेरयवक्षापरथ्याकालीयकान्वितः । दधिमण्डो भिनत्त्युग्रामश्मरीमाशु पानतः ॥ ६३ ॥ पाषाणभेदवरुणगोक्षुरककपोतवंकजः क्काथः । गिरिजतुगुडप्रगाढः कर्कटिकामपुसबीजयुतः ॥ ६४ ॥ पेयोऽश्मरीमवश्यं दुर्भेदामपि भिनत्ति योगवरः । शिखरिणमिव शतकोटिः शतमन्योर्हस्तनिर्मुक्तः ॥ ६५ ॥ श्रीकरिणीफलबीजं पिष्टं मथितेन यः पुमानद्यात् । शाकमाशितमथवास्या हन्यादश्मरी भवां पीडाम् ॥ ६६ ॥ श्वदंष्ट्रैरण्डबीजानि नागरं वरुणत्वचः । एतत्क्काथवरं प्रातः पिबेदश्मरिनाशनम् ॥६७ ॥ रक्तोद्भवे रूक्षमृणालतालकाशेक्षुबालेक्षुकुशोदकानि । पिबेत्सिताक्षौद्रयुतानि खादेद्विदारिमिक्षुत्रपुसानि चैव ॥ ६८ ॥ पलान्यष्टौ तु कुर्वीत क्षाराणां वरुणत्वचम् । तदर्द्धं यावशूकं तु ततोऽप्यर्द्धं गुडात्स्मृतम् ॥ ६९ ॥ एकीकृत्य विमृद्यैतत्खादेत्कर्षप्रमाणतः । घर्माम्बुपानतोऽवश्यं कृच्छ्राश्मरिविनाशनम् ॥ ७० ॥

सोंठ, बरना, गोखरू, पाखानभेद और ब्राह्मी इनका क्वाथ करके उसमें गुड तथा जवाखार डालकर पिये तो इससे उग्र पथरी भी नष्ट हो जाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथवा गोखरूके बीजोंका चूर्ण कर सहतमें मिलावे और सात दिनतक बकरीके दूधके साथ पिये तो इससे पथरीका नाश होता है। वरनाकी जडका क्वाथ करके उसमें वरनेकी जडकाही कल्क डालकर पिये तो इससे पथरीका नाश होता है। सहँजनेकी जडका क्वाथ करके किंचित् उष्ण पिये तो इससे पथरी दूर होती है। अदरख, जवाखार, हरड और दारुहलदी इनका चूर्ण कर दहीके मंडके साथ पिये तो उससे भयंकर पथरी भी तत्काल नष्ट हो जाती है। अथवा पाखानभेद, वरना, गोखरू और ब्राह्मी इनका क्वाथ करके उसमें शिलाजीत तथा गुडको भली भाँति मिलावे और ककडी तथा खीरेके बीजोंका कल्क डालकर पिये तो इस उत्तम उपायसे जो पथरी किसीसे न भिदे वह भी अवश्य भिद जाती है। जिस प्रकार इन्द्रके हाथमेंसे निकला हुआ वज्र पर्वतोंको भेद डालता है तिसी प्रकार यह योग पथरीको भेद डालता है। अथवा श्रीकरिणी (अरणी) के फलोंके बीजोंको विना पानी पडे तक्र (मट्ठे) में पीसकर खाय, अथवा इसके शाकको खाय तो इससे पथरीकी पीडा दूर हो जाती है। गोखरू, एरंडके बीज, सोंठ और बरनाकी छाल इनका उत्तम क्वाथ करके प्रातःकाल पिये तो इससे पथरीका नाश होता है। अथवा पथरीसे मूत्रमें रुधिर देखनेमें आवे तो सूखे हुए कमलकी नाल, ताडका फल काँस, ईख, वाली ईख और डाभ इनको पानीमें पीसकर उसमें सहत तथा मिश्री डालकर पिये और विदारीकंद, ईख तथा खीरेका भक्षण करे। वरनाकी छालका बत्तीस (३२) तोले खार, सोलह तोले जवाखार और आठ तोले गुड इनको एकत्र कर इसमेंसे एक एक तोला खाय और ऊपरसे गरम जल पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्र तथा पथरीका नाश होता है॥ ६०–७०॥

अथ वरुणाद्यचूर्णम्।

वरुणकभस्मपरिस्रुतसलिलं तच्चूर्णयावशूकयुतम्। क्वथनीयं तत्तावद्यावच्चूर्णत्वमायाति॥ ७१॥ तद्गुडयुक्तं हन्यादुदारामश्मरीं घोराम्। प्लीहानं गुल्मवरं श्रोण्यां कुक्षौ रुजां तीव्राम्॥ ७२॥ आमचयं वस्तिगदान्कृच्छ्रं वा वातजं घोरम्। वह्निसदनं सुकष्टमश्ममयीमश्मरीं चाशु॥ ७३॥

वरनेकी भस्म करके उस भस्मको पानीमें डाले और वस्त्रमें डालकर निचोरे, पश्चात् उस निचोरे हुए पानीको जवाखारके चूर्णसे मिश्रित करके तबतक पकावे जबतक वह सब जलकर चूर्णरूप होय; फिर इस चूर्णको गुडमें मिलाकर खाय तो इससे भयंकर पथरी, प्लीहा, गुल्म, कमर तथा पेटकी पीडा, आमका संचय, वस्तिरोग, वायुसे हुआ भयंकर मूत्रकृच्छ्र, अग्निकी मंदता और पत्थरकी समान कठोरपथरी तत्काल नष्ट हो जाती है॥ ७१–७३॥

अथ वरुणकगुडः।

नो दग्धं कृमिभिर्घनं सुतरुणं स्निग्धं शुचिस्थानजं धन्ये पुण्यनिरीक्षिते वरुणकं छित्त्वा तुलां ग्राहयेत्। संगृह्याशु चतुर्गुणासु विपचेत्पादावशेषं जलं तत्तुल्येन गुडेन वै दृढपरे भाण्डे पचेत्तत्पुनः॥ ७४॥ ज्ञात्वैवं घनतां गुडे परिणते प्रत्येकमेषां पलं शुण्ठ्यैर्वारुकवीजगोक्षुरकणापाषाणभिच्छीतलाः। कूष्माण्डत्रपुसाक्षवीजकुनटीवास्तूकशोभाञ्जनैर्द्राक्षैलागिरिजाभयाकृमिहृतां चूर्णीकृतानां क्षिपेत्॥ ७५॥ पथ्याशी प्रतिवासरं गुडमसुं युंज्यात्प्रमाणं नरः। खादेत्तस्य समस्तदोषजनिताऽश्मर्यः पतन्ति द्रुतम्॥ ७६॥

वरनेका वृक्ष कि जो कीडोंसे खाया न हो, तरुण, स्निग्ध और पवित्र प्रदेशमें उत्पन्न हुआ हो, उसको शुभदिनमें शुभलग्नमें, काटकर उसमेंसे चार सौ तोले लेवे और चौगुने पानीमें क्वाथ करे जब जल चौथा भाग शेष रहे तब उसके बराबरही गुड मिलावे और दृढ पात्रमें पाक करे, जब गुड पककर गाढा हो जाय तब उसमें सोंठ, ककडीके बीज, गोखरू, पीपल, पाखानभेद, पद्माख, पेठा, खीरा तथा बहेडेके बीज, धनियाँ, वथुआ, सहँजना, दाख, इलायची, शिलाजीत, हरड और वायविडंग इन प्रत्येक पदार्थोंका चार चार तोले चूर्ण डाले तो वरुणकगुड सिद्ध होता है, पथ्य भोजनका नियम रखकर नित्य योग्य प्रमाणसे यह गुड खाय तो इससे सब दोषोंसे उत्पन्न हुई पथरी तुरंत गिर पडती है॥ ७४–७६॥

अथ कुलत्थाद्यघृतम्।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं सशर्करं शीत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लियावशूकम् । बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां घृतं पचेत्तद्वरुणस्य तोये ॥ ७७ ॥ दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्राभिघातं च समूत्रबन्धनम् । आमूलमेतानि निहन्ति शीघ्रं प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ॥ ७८ ॥

वरनेका क्वाथ करके उसमें कुलथी, सेंधा, वायविडंगके चावल, शर्करा (बूरा) पद्माख, जवाखार, पेठेके बीज और गोखुरूके बीज इनका कल्क डालकर पकाया हुआ घी 'कुलत्थाद्यघृत' कहाता है जिस प्रकार वज्रपात दृढ जडवाले वृक्षको भी तत्काल उखाड डालता है तिसी प्रकार यह घी सब प्रकारकी कष्टसाध्य पथरियोंको, मूत्रकृच्छ्रको, मूत्राघातको और सब प्रकारके मूत्रावरोधको जडसे नष्ट करे है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ शरादिपंचमूलाद्यघृतम् ।

शरादिपञ्चमूल्यां वा कषायेण पचेद्घृतम् ॥ ७९ ॥ प्रस्थं गोक्षुरकल्केन सिद्धमद्यात्ससर्शकरम् । अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ ८० ॥

रामसर आदि तृणपंचमूलका क्वाथ करके उसमें गोखरूका कल्क डालकर १ सेर घी पकावे, इस घीमें शर्करा (बूरा) को मिलाकर खाय तो इससे पथरी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है और वीर्यके मार्गकी पीडा भी दूर होती है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथ वरुणाद्यघृतम् ।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत् । पादशेषे परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८१ ॥ वरुणं कदली बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम् । अमृतां चाश्मभेदं च बीजं च त्रपुसस्य च ॥ ८२ ॥ शतपर्वातिलक्षारं पालाशक्षारमेव च । यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत् ॥८३॥ अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालव्यपेक्षया । जीर्णे चास्मिन्पिबेत्पूर्वं गुडं जीर्णं च मस्तु च । अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥८४॥

एक तुला (४०० तोले) वरनाको कूटकर एक द्रोण (१०२४ तोले) जलमें पकावे, चौथा भाग जल जब शेष रहे तब उसको वसस्रे छान लेवे, फिर उसमें १ सेर घी पकावे और उस घीमें वरना, केला, बेर, तृणपंचमूल, गिलोय, पाखानभेद, खीरेके बीज, सुफेद बच, तिलोंका खार, ढाकका खार और जुहीकी जड ये प्रत्येक एक एक तोला डाले । देश तथा कालके अनुसार इस घीकी मात्राको पिये और उसके जीर्ण होनेपर पुरानागुड तथा दहीका पानी पिये तो इससे पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्रका नाश होता है ॥ ८१–८४ ॥

अथ वीरतराद्यतैलम् ।

सैन्धवाद्यं तु यत्तैलमृषिभिः परिकीर्तितम् । तत्तैलं द्विगुणं क्षीरं पचेद्वीरतरादिना ॥८५॥ क्वाथेन पूर्वकल्केन साधितं तु भिषग्वरैः । एतत्तैलवरं श्रेष्ठमश्मरीणां निवारणम् ॥८६॥ मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे पिच्चिते मथिते तथा । भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रशस्यते ॥८७॥

मुनियोंने जो सैंधवाद्य नामक तैल कहा है उस तैलको दूने दूधसे मिलाकर पूर्वोक्त वीरतरादि गणके क्वाथसे तथा तेजगणके कल्कसे उत्तम वैद्य पकावे तो वीरतरादि तैल सिद्ध होता है । यह तैल पथरियोंको भली भाँति नष्ट करता है और मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, पिच्चित (पचे हुए), मथित (मसले हुए), भग्न (हड्डी आदि टूटनेमें) और अत्यन्त परिश्रम करनेमें भी यह तैल परम हितकारी है ॥ ८५–८७ ॥

अथापरवीरतरादितैलम् ।

वीरवृक्षाश्मभेदाग्निमन्थश्योनाकपाटलाः । वृक्षादनीसहैरण्डभल्लूकोशीरपद्मकम् ॥८८॥ कुशकाशशरेक्षूणामास्फोताकोकिलाक्षयोः । शतावरी श्वदंष्ट्रा च सोत्कटाद्वयवञ्जुलाः ॥ ८९ ॥ कपोतवंका श्रीपर्णी काश्मरी मूलसंयुता । एतैः कषायैः कल्कैश्च तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ ९० ॥ वातपित्तविकारेषु वस्तिं दद्याद्विचक्षणः । शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ९१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुनकी छाल, पाखानभेद, अरनी, सोनापाठा, पाटला, बाँदा, एरंडकी जड, भल्लूक (भिलावा), खस, पद्माख, कुशा, काँस, रामशर, ईखकी जड, मोगरा, तालमखाना, सतावर, गोखरू, दोनों जातिका कटीला, कपोतवंका (तेजवल), ब्राह्मी और खंभारीकी जड इन सबके क्वाथमें इनकाही कल्क डालकर तैल पकावे, विचक्षण (चतुर) वैद्य वायुसंबंधी तथा पित्तसंबंधी विकारोंमें इस तेलसे पिचकारी लगावे । यह तेल--पथरी, शर्करा, शूल और मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करे है ॥ ८८--९१ ॥

अथ पुनर्नवाद्यतैलम् ।

पुनर्नवाऽमृताभीरुसक्षारलवणत्रयैः । शटीकुष्ठवचामुस्तरास्नाकट्फलपौष्करैः ॥ ९२ ॥ यवानीहपुषाहिंगुशताह्वासाजमोदकैः । विडंगाऽतिविषायष्टीपञ्चकोलकसंयुतम् ॥ ९३ ॥ एतैरक्षसमैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । गोमूत्रं द्विगुणं देयं काञ्जिकं तद्वदेव तु ॥ ९४ ॥ पुनर्नवाद्यमित्येतत्तैलं पानेन वस्तिना । शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रप्रमोचनम् ॥ ९५ ॥ कटचूरुवंस्तिमेढ्रस्थ कुक्षिवंक्षणसंयुतम् । कफवातामशूलघ्नमन्त्रवृद्धेश्च नाशनम् ॥ ९६ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, सतावर, जवाखार, तीनों प्रकारके लवण, कचूर, कूठ, वच, मोथा, रासना, कायफल, पोहकरमूल, अजवायन, हाउबेर, हींग, सौंफ, अजमोद, वायविडंग, अतीस, मुलेठी और पंचकोल इन प्रत्येक औषधिके एक एक तोले कल्कसे १ सेर तेल पकावे और पकाते समय उसमें दूना गोमूत्र तथा दूनी काँजी डाले, इस भाँति पकाया हुआ तैल 'पुनर्नवाद्य तैल' कहाता है । यह तैल पीनेसे और इस तैलकी पिचकारीसे शर्करा, पथरी, शूल, मूत्रकृच्छ्र, कफ, वात, आमशूल और अंत्रवृद्धि इनका नाश होता है ॥ ९२--९६ ॥

अथ सैन्धवाद्यतैलवीरतरादिगणोपयोगः ।

ब्रह्माधिकारनिर्दिष्टं सैन्धवाद्यमिहेष्यते । सर्वथैवोपयोज्यस्तु गणो वीरतरादिकः ॥ ९७ ॥ घृतैः शीतैः कषायैश्च क्षीरैश्चोत्तरवस्तिभिः । बलवत्यो न शाम्यन्ति प्रत्याख्याय समुद्धरेत् ॥ ९८ ॥ यदृच्छया मूत्रमार्गमायान्त्यस्त्वन्तराश्रिताः । स्रोतसापहरेच्छित्त्वा वडिशेनाथ चोद्धरेत् ॥ ९९ ॥

पथरी, शर्करा तथा सिकतामें ब्रह्मरोगके अधिकारमें कहे सैन्धवाद्य तेलकाभी उपयोग करे, इस पीडामें घी, क्वाथ, तथा दूध बनाकर और उत्तरवस्ति (पिचकारी) देवे तो वीरतरादि गणकी औषधियोंका उपयोग करे । यदि पथरी बलवान् होय और किसी औषधिसे शान्त न होय तौ यन्त्र आदिके द्वारा लिंगसे पथरीको निकाल लेवे । भीतर रहनेवाली पथरी यदृच्छासे मूत्रके मार्गमें आती होय तो उसको काटकर मूत्रमार्गद्वारा निकाल लेवे ॥ ९७--९९ ॥

इति अश्मर्यधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ प्रमेहाधिकारः ।

तत्र प्रमेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि । नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

बैठे रहनेका सुख, निद्राका सुख, दही, ग्राम्य जीवोंका मांस, जलचरजीवोंका मांस, जलवाले देशके प्राणियोंका मांस, दूध, नवीन अन्न, नवीन पान, गुड, गुडके विकार (राब आदि) और सम्पूर्ण कफकारी पदार्थ ये सब प्रमेह होनेके कारण हैं ॥ १ ॥

अथ प्रमेहसंप्राप्तिः ।

मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो वस्तिगतं प्रदूष्य । करोति मेहान्सपुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि । क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च ॥ २ ॥

कफ मूत्राशयमें रहनेवाली मेदा (चरबी) को, मांसको और शरीरके क्लेदको दूषित करके प्रमेहको उत्पन्न करे है । उष्ण पदार्थोंसे बढा हुआ पित्त भी सौम्यधातु कफ आदिका क्षय होनेपर इन ही मेद आदि पदार्थोंको दूषित करके प्रमेहोंके उत्पन्न करे है । कफ आदि सब धातु क्षीण होनेपर वायु भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमेहकी संपादन करनेवाली धातुओंको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करे है ॥ २ ॥

अथ प्रमेहसंख्यासाध्यत्वादिके ।

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः । समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते॥३॥

कफसे दश प्रकारके प्रमेह होते हैं वे साध्य हैं, पित्तसे छः प्रकारके प्रमेह होते हैं वे याप्य हैं, वायुसे चार प्रकारके प्रमेह होते हैं वे असाध्य हैं । कफसे हुए प्रमेह साध्य इस कारण होते हैं कि-वे केवल मेदा आदिके दूषित होनेसे होते हैं. और कर्षणरूप एक क्रियासे ही नष्ट होते हैं, पित्तसे हुए याप्य इस कारण हैं कि-वे कफ आदि सौम्य धातुके क्षय होनेपर मेदा आदिके दूषितपनेसे होते हैं और मधुर तथा रूक्ष आदि विषम क्रियासे नष्ट होते हैं, वायुसे हुए प्रमेह असाध्य इस कारण हैं कि सम्पूर्ण धातुओंके क्षयसे होते हैं और शरीरका क्षय करनेवाले हैं ॥३॥

अथ प्रमेहदोषदूष्यज्ञानम् ।

कफश्च पित्तं पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः । मज्जारसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ४ ॥

कफ, पित्त और वायु यह दोष हैं और उनसे मेदा, रुधिर, वीर्य, रस, वसा, लसीका, मज्जा तथा ओज और मांस ये दूषित होते हैं, जो दूषित होते हैं वे दूष्य कहाते हैं । उपरोक्त प्रमेह बीस प्रकारके हैं ॥ ४ ॥

अथ प्रमेहपूर्वरूपम् ।

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः । दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यं च जायते ॥ ५ ॥

प्रमेह होनेवाला होय तो दांत आदिमें मैल, हाथ पांवोंमें दाह, शरीरमें चिकनापन, तृषा और मुखमें मीठापन होता है ॥ ५ ॥

अथ प्रमेहसामान्यलक्षणम् ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता । दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः । मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ ६॥

मूत्रकी अधिकता और मैलापन, यह प्रमेहोंका सामान्य लक्षण है । दोष और दूष्य इनकी विशेषतासे और संयोगकी विशेषतासे मूत्रके वर्ण आदिमें जो अंतर होता है उससे प्रमेहोंके भेदोंकी कल्पना करी है ॥ ६ ॥

अथ कफजप्रमेहलक्षणम् ।

अच्छं बहुतरं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् । मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम् ॥ ७ ॥ इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः । सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥ ८ ॥ सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् । संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥ ९ ॥ शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति । मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ १० ॥ शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् । शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति । लालातंतुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ ११ ॥

जो उदकमेह हुआ होय तो स्वच्छ, अधिक सफेद, शीतल, गन्धरहित, पानीकी सदृश, किंचित् गदला और चिकना मूत्र आता है (१) इक्षुमेह हुआ होय तो ईखके रसके सदृश अत्यंत मीठा मूत्र होता है (२) सान्द्रमेह हुआ होय तो मूत्र रात्रिमें धरा हुआ जैसा गाढा होता है ऐसा आता है (३) सुरामेह हुआ होय तो मदिराकी सदृश मूत्र उतरता है और वह मूत्र रात्रिमें रखे हुएकी सदृश ऊपर स्वच्छ और नीचे गाढा होता है (४) पिष्टमेह हुआ होय तो चावलोंके धोवनके समान सफेद और अधिक मूतता है तथा मूत्र करते समय रोमांच हो जाते हैं (५) शुक्रप्रमेह हुआ होय तो वीर्यकी सदृश तथा वीर्य मिला मूत्र आता है (६) सिकतामेह हुआ होय तो मूत्रमें रेतीकी सदृश सूक्ष्म और परस्परमें नहीं मिले कफके कण होते हैं (७) शीतमेह हुआ तो बारंबार मीठा और शीतल मूत्र आता है (८) शनैर्मेह हुआ होय तो धीरे धीरे मन्द मन्द मूत्र उतरता है (९) और लालामेह हुआ होय तो लारके तन्तुकी समान तारवाला और चिकना मूत्र आता है (१०) ॥ ७-११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पित्तजप्रमेहलक्षणम् ।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ १२ ॥ नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम् । हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ॥ १३ ॥ विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् । विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहिनः ॥ १४ ॥

क्षारमेह हुआ होय तो जिसमें खारी जलकी सदृश गन्ध वर्ण रस और स्पर्श होय ऐसा मूत्र आता है (११) नीलप्रमेह हुआ होय तो नीलकी सदृश मूत्र होता है (१२) कालप्रमेह हुआ होय तो स्याहीकी सदृश श्यामवर्णका मूत्र आता है (१३) हारिद्रमेह हुआ होय तो हलदीकी सदृश वर्णवाला, दाहयुक्त और तीक्ष्ण मूत्र आता है (१४) मांजिष्ठमेह हुआ होय तो कच्चे पदार्थकी सदृश गंधवाला और मजीठके पानी सदृश रंगका मूत्र होता है (१५) रक्तमेह हुआ होय तो गन्धयुक्त, गरम, खारी और रक्तकी सदृश लाल मूत्र आता है (१६) ॥१२-१४॥

अथ वातजप्रमेहलक्षणम् ।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः । मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद्बुधः । हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रवेगविवर्जितम् । सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १६ ॥

वसामेह हुआ होय तो बारंबार चरबीसे मिला चरबीकी सदृश वर्णवाला होता है (१७) मज्जामेह हुआ होय तो मज्जासे मिश्रित और मज्जाकी सदृश वर्णवाला मूत्र बारंबार आता है (१८) मधुमेह (क्षौद्रमेह) हुआ होय तो कसेला, मीठा और रूक्ष मूत्र होता है (१९) और हस्तिमेह हुआ होय तो उन्मत्त हस्तीकी सदृश निरन्तर वेगरहित लसीकासहित और रुकरुककर मूत्र आता है ॥१५॥१६॥

अथ कफजप्रमेहोपद्रवाः ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः। उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् १७

यदि कफसे प्रमेह हुआ होय तो खाये हुए अन्नका नहीं पचना, अरुचि, वमन, निद्रा, खांसी और पीनस ये उपद्रव होते हैं ॥ १७ ॥

अथ पित्तजप्रमेहोपद्रवाः ।

वस्तिमेहनस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः । दाहस्तृष्णाम्लको मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १८ ॥

पित्तसे प्रमेह हुआ होय तो मूत्राशय तथा लिंगमें शूल, अण्डकोषोंका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, खट्टी डकारोंका आना, मूर्च्छा और पतले दस्तका होना ये लक्षण होते हैं ॥ १८ ॥

अथ वातजप्रमेहोपद्रवाः ।

वातजानामुदावर्तकम्पहृद्ग्रहलोलताः । शूलमुन्निद्रता शोषः श्वासः कासश्च जायते॥ १९॥

यदि वायुसे प्रमेह हुआ होय तो उदावर्त, कंप, हृदयका रुकना, चपलता, शूल, निद्रासे रहितपना, शोष, श्वास और खांसी ये उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥

अथ प्रमेहारिष्टम् ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च । पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २० ॥ मूर्च्छाच्छर्दिज्वरश्वासकासवीसर्पगौरवैः । उपद्रवैरुपेतो यः प्रमेही दुष्प्रतिक्रियः ॥ २१ ॥

प्रमेहयुक्त मनुष्य जो उपरोक्त उपद्रवोंसे घिरा हो, मूत्र अधिक आता हो और पिडका (फुन्सियों) ओंसो अत्यंत पीडित हुआ होय वह मनुष्य मर जाता है । अथवा जो प्रमेही मनुष्य मूर्च्छा, वमन, ज्वर, श्वास, खांसी, विसर्प और गुरुता इन उपद्रवोंसे युक्त होय तो असाध्य जानना ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ स्त्रीणाममप्रमेहे कारणम् ।

रजः प्रवर्तते यस्मान्मासिमासि विशोधयत्। सर्वाञ्छरीरदोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः२२

स्त्रियोंके महीनेके महीने रज प्रवर्तता है उससे ही शरीरके सब दोष स्वच्छ हो जाते हैं, इस लिये स्त्रियोंके प्रमेह नहीं होता ॥ २२ ॥

अथासाध्यप्रमेहलक्षणम् ।

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्यरोगः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स हि बीजदोषात् । ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्चापि वदन्त्यसाध्यान् ॥ २३ ॥ सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः । मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ २४ ॥ मधुमेहो मधुनिभो जायते स किल द्विधा । क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथ वा ॥ २५ ॥ आवृतो दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् । क्षीणः क्षणात्क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २६ ॥

जिसको जन्मसेही प्रमेह हुआ होय, अथवा माता पिताकी परंपरासे जिसको प्रमेह हुआ हो वह असाध्य है, क्यों कि--यह प्रमेह वीर्यके दोषसे ही उत्पन्न होता है । अन्य भी जो कोई रोग, कुलकी परंपरासे प्राप्त हुआ होय वह भी असाध्य है ऐसा विद्वानोंने कहा है । अथवा सब प्रकारके प्रमेह जो अधिक कालतक चिकित्सा विना रहे तो मधुमेह रूप हो जाते हैं ये भी असाध्य हैं । मधुमेह दो प्रकारका होता है वह इस भांति है कि--धातुओंके क्षयसे वायुका कोप होनेपर होता है, अथवा दोषसे वायुका मार्ग रुकजानेसे होता है, दोषसे वायुका मार्ग रुकजानेपर वह वायु अकस्मात् दोषोंके चिह्नोंको दिखाती है और तैसेही क्षणमात्रमें मूत्राशयको खालीकर डाले है तथा क्षणमात्रमें पूर्ण कर दे है, इसीसे प्रमेह कष्टसाध्य होता है ॥ २३-२६ ॥

अथ मधुमेहशब्दप्रवृत्तौ कारणम् ।

मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति । सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्य्याच्च तनोरतः ॥ २७ ॥

अधिक करके सब प्रमेहोंमें मनुष्य मीठा और मधुकी सदृश मूत्र मूतता है और शरीरमें मधुरता होती है, इस लिये सब प्रमेहोंको मधुमेह इस नामसे कहते हैं ॥ २७ ॥

अथ प्रमेहोपेक्षाजनितदशपिडिकानां नामस्थानानि ।

शरावि का कच्छपिका जालिनी विनतालजी । मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ २८ ॥ विद्रधिश्चेति पिडिकाः प्रमेहोपेक्षया दश । सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २९ ॥

प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे संधियोंमें, मर्मस्थानोंमें और अधिक मांसवाले प्रदेशोंमें दश प्रकारकी पिडिका (फुंसी) होती हैं और वे अनुक्रमसे शरावि का, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारिका तथा विद्रधि इन नामोंसे कही हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ दशप्रकारकपिडिकालक्षणम् ।

अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शरावि का । गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा तु सर्षपी ॥ ३० ॥ सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः । जालिनी तीव्रदाहा तु शिराजालसमावृता ॥ ३१ ॥ अविगाढरुजा क्लेदा पृष्ठे वाप्युदरेऽपि वा । महती पिडिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता ॥ ३२ ॥ महत्यल्पचिता ज्ञेया पिडिकापि च पुत्रिणी । मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥ ३३ ॥ रक्ता सितास्फोटचिता विज्ञेया त्वलजी बुधैः । विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका । विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ॥ ३४ ॥

जो पिडिका-अंतमें ऊंची, मध्यमें नीची हो और मट्टीके सकोरे (सरइया) की सदृश हो, उसको शरावि का जाननी । जो पिडिका दाहयुक्त, तथा कछुएकी पीठकी सदृश होय उसको कच्छपिका जाननी । जो पिडिका तीव्र दाहवाली और सूक्ष्म सूक्ष्म नसोंके जालसे लिपटी हुई होय उसको जालिनी जाननी । जो पिडिका बडी, मोटी, नीलवर्णवाली और पीठ तथा पेटमें हुई होय वह विनता जाननी । जो पिडिका लाल तथा काली होय और अन्य फुंसियोंसे व्याप्त होय वह अलजी जाननी । जो पिडिका मसूरिका दालकी बराबर बडी हो वह मसूरिका जाननी । जो पिडिका सफेद सरसोंकी समान आकारवाली और इतनी ही बडी होय यह सर्षपिका जाननी । जो पिडिका बडी और सूक्ष्म सूक्ष्म फुंसियोंसे व्याप्त हो वह पुत्रिणी जाननी । जो पिडिका विदारीकंदकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सदृश गोल होय और कठोर होय वह विदारिका जाननी । जो पिडिका विद्रधिके लक्षणों (जो आगे कहेंगे) से युक्त होय वह विद्रधिका जाननी ॥ ३०--३४ ॥

अथ प्रमेहपिडकादोषनिर्णयः ।

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ ३५ ॥

जो प्रमेह जिस दोषयुक्त हो उस प्रमेहकी पिडिकाभी उसी दोषवाली होती है ॥ ३५ ॥

अथ प्रमेहमन्तरा पिडिकोत्पत्तिः ।

विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः । तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ३६

जिस मनुष्यकी मेदा दूषित होय उसके विना प्रमेह भी पिडिका होती हैं, जबतक इन पिडिकाओंने अपने अपने स्थानको भली भाँति पकडा न होय तबतक ये पिडिका नहीं दीखती हैं ॥ ३६ ॥

अथ पिडिकासाध्यत्वम् ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिता । सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ३७

गुदा, हृदय, शिर, कंधा, पीठ इनके मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुई उपद्रवयुक्त और मंदाग्निवालेके हुई पिडिकाओंकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ३७ ॥

अथ पिडिकोपद्रवाः ।

तृट्च्छ्वासमांससंकोचमेहहिक्कामदज्वराः । विसर्पमर्मसंरोधाः पिडिकानामुपद्रवाः ॥३८

तृषा, श्वास, मांसका संकोच, मोह (बेहोशी), हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प और मर्मस्थानोंका अवरोध ये पिडिकाओंके उपद्रव हैं ॥ ३८ ॥

अथ प्रमेहपथ्यानि ।

श्यामाककोद्रवोदालगोधूमाश्वणकास्तथा । आढक्यश्च कुलत्थाश्च पुराणा मेहिनां हिताः ॥ ३९ ॥ मेहिनां तिक्तशाकानि जाङ्गला हरिणाण्डजाः । यवान्नविकृतिर्मुद्गाः शस्यन्ते शालिषष्टिकाः ॥ ४० ॥

समा, कोदों, वनकोदों, गेहूं, चना, अरहर और कुलथी यह धान्य आदि पुराने होयँ तो प्रमेह रोगीको हितकारी हैं । कडवे शाक, जांगल देशके हिरन तथा पक्षी, जौके आटेके बने पदार्थ, मूँग, लाल चावल और सांठीके चावल ये प्रमेह रोगीको हितकारी है ॥ ३९ ॥ ३० ॥

अथ प्रमेहेऽहितवस्तूनि ।

सौवीरकं सुरा तक्रं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् । अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥४१

सौवीर, मदिरा, तक्र, तेल, दूध, घी, गुड, अम्ल पदार्थ, ईखका रस, आटेके बने पदार्थ और अनूप देशके जीवोंका मांस, इनको प्रमेहरोगी त्याग देवे ॥ ४१ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

तत्र आदित एव प्रमेहिणमुपस्निग्धमन्यतमेन प्रियंग्वादिसिद्धेन तैलेन वामयेत् प्रगाढं विरेचयेच्च । विरेचनादनन्तरं सुरसादिकषायेण आस्थापयेत् । महौषधभद्रदारुमुस्तावापेन मधुसैन्धवयुक्तेन दह्यमानं वा न्यग्रोधादिकषायेण निस्तैलेन । वातोत्कटेषु मेहेषु स्नेनपानं विशेषतः । पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रिणां पृथक् ॥ ४२ ॥ पाठायाः साधुरोः पीता द्वयस्य शारदस्य च । जलेक्षुमद्यसिकताशनैर्लवणपिष्टकान् । सान्द्रमेहान्क्रमाद्धन्ति क्काथाश्चाष्टौ समाक्षिकाः ॥ ४३ ॥ हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्राः पाठाविडङ्गार्जुनधन्वनाश्च । उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदंबशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ ४४ ॥ दार्वी विडङ्गः खदिरो धवश्च सुराह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि । दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफला वचा च पाठा च मूर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा ॥ ४५ ॥ वचा बुशीराण्यभया गुडूची वृषं शिवाचित्रकसप्तपर्णाः । पादैः कषायाः कफमेहविशेषैर्दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ४६ ॥ उशीरलोध्रार्जुनचन्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम् । पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयामुष्ककवृक्षकाणाम् ॥ ४७॥ लो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आम्रकालीयकधातकीनां विश्वार्जुनैलानिविषोत्पलानाम्। शिरीषधान्यार्जुनकेशराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम् ॥४८॥ अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटंकटेर्युत्पलमुस्तकानाम्। पैत्तेषु मेहेषु दशोपदिष्टाः कषाययोगा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ४९ ॥ कफमेहहरक्वाथसिद्धं सर्पिः कफे हितम्। पित्तमेहघ्ननिर्यूहसिद्धं पित्तहरं घृतम् ॥ ५० ॥ कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरोधीतककौटजानि। पटोलकालीयगदागुरूणि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ ५१ ॥ दूर्वाकसेरुपूतीककुम्भीकपल्लवशैवलम्। जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ ५२ ॥ त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः। पीतो निहन्ति फेनाभं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ ५३ ॥ अश्वत्थाच्चतुरंगुल्या न्यग्रोधादेः फलत्रयात्। सरक्तसारमज्जिष्ठाः क्वाथाः पञ्च समाक्षिकाः ॥ ५४ ॥ मधुना त्रिफलाचूर्णमथवाश्मजतूद्भवम्। लोहजं वाभयोत्थं वा लिहेन्मेहनिवृत्तये ॥ ५५ ॥ कटंकटेरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः। सिद्धः कषायः पातव्यः प्रमेहाणां विनाशनः ॥ ५६ ॥ फलत्रिकं दारुनिशां विशालां मुस्तां च निष्काथ्य निशांशकल्कम्। पिबेत्कषायं मधुसम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुच्छ्रितेषु ॥ ५७ ॥ गोभक्षितान्यवान्मूत्रभावितान्केवलानपि। चित्रितोदश्विता खादन्निम्बमुद्गरसेन वा ॥ ५८ ॥ भक्षयीताम्बुना मांसं प्रमेही यवपिष्टकम्। मेदोघ्ना बद्धमूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु। यवास्तस्माद्विशिष्यन्ते प्रमेहेषु विशेषतः ५९

जिसको प्रमेह हुआ होय उसको प्रथमसेही प्रियंगु आदिसे सिद्ध किये तेलसे स्निग्ध करके वमन तथा विरेचन करावे, विरेचन करानेके पीछे सुरसादिक्वाथमें सोंठ, देवदारु तथा मोथेका चूर्ण डालकर सहत तथा सेंधा मिलावे और पश्चात् उस क्वाथसे निरूहवस्ति देवे, जो दाह होती होय तो तेलरहित न्यग्रोधादि क्वाथसे निरूहवस्ति देवे। वायुकी अधिकतावाले प्रमेहोंमें विशेष करके स्नेहपान करावे। पारिजात (फरहद) का क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे उदकप्रमेह नष्ट होता है। नीली दूब अथवा अरनेका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे इक्षुमेह नष्ट होता है। नीमका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे सुरामेह नष्ट होता है। चीतेका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे सिकतामेह दूर होता है। खैरका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे शनैर्मेह नष्ट होता है। कालीपाढका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे क्षारमेह नष्ट होता है। अगरका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे पिष्टप्रमेह नष्ट होता है। दोनों जातिकी हलदीका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे सान्द्रप्रमेह नष्ट होता है। हरड, कायफल, मोथा और लोध. इनका क्वाथ करके उसमें सहत मिलाकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। पाढ, वायविडंग, कोह और धमासा इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। हलदी, दारुहलदी, तगर और वायविडंग इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। कदंब, शाल, कोह और चीता इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। दारुहलदी, वायविडंग, खैर और धाय इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह दूर होता है। देवदार, कूठ, अगर और चन्दन इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। दारुहलदी, अरनी, हरड, बहेडा, आमला और वच इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो कफसंबंधी प्रमेह दूर होता है। अथवा पाढ, मूर्वा और गोखरू इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट हो जाता है। वच, खस, हरड और गिलोय इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो उससे कफसंबंधी प्रमेह दूर होता है। अडूसा, हरड, चीता और सतौना इनका क्वाथ कर उसमें सहत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डालकर पिये तो कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। खस, लोध, कोह और चन्दन इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीनेसे पित्तसंबंधी प्रमेह दूर होता है। अथवा खस, मोथा, आमले और हरड इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह दूर होता है। परवल, नीम, आमले और गिलोय इनका क्वाथ कर उसमें सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। मोथा, हरड और मोखा इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसंबंधी प्रमेह दूर होता है। लोध, आमकी छाल, दारुहलदी तथा धाय इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। सोंठ, अर्जुन (कोह), इलायची, अतीस और कमल इनका क्वाथ करके सहत डालकर पीनेसे पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। सिरस, धनियां, कोह और नागकेसर इनका क्वाथ करके इसमें सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसंबंधी प्रमेह दूर होता है। प्रियंगु, कमल, उत्पल तथा कसूम इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होता है। पीपलकी छाल, पाढ, पीतशाल, तथा बेंत इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह दूर होता है। दारुहलदी, उत्पल और मोथा इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह दूर होता है। कफसंबंधी प्रमेहको नष्ट करनेवाले क्वाथोंसे पकाया हुआ घी कफसंबंधी प्रमेहको नष्ट करे है। पित्तसंबंधी प्रमेहको नष्ट करनेवाले क्वाथोंसे पकाया हुआ घी पित्तसंबंधी प्रमेहोंको नष्ट करे है। अथवा कबीला, सतौना, शाल, बहेडा, रोहेडा, कुडेके बीज, परवल, दारुहलदी, कूठ और अगर इनका चूर्ण कर सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफसंबंधी प्रमेह दूर होता है। दूब, कसेरु, करंज, कायफल, मोथा तथा सिवार इनका क्वाथ पिये तो इससे शुक्रमेह अवश्य दूर होता है। हरड, बहेडा, आमला, अमलतास और दाख इनका क्वाथ कर उसमें सहत मिलाकर पिये तो फेनोंकी सदृश प्रमेह दूर होता है। त्रिफला अथवा शिलाजीत वा हरडोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाकर खाय तो प्रमेह नष्ट हो जाता है। दारुहलदी, मुलहठी, त्रिफला और चीता इन सबका काढा पीनेसे सब प्रकारके प्रमेह दूर होते हैं। अथवा त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायन, मोथा और हलदी इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होते हैं, इस क्वाथको फलत्रिकादि क्वाथ कहते हैं। गायके खाये हुए जौंको गोबरमेंसे निकालकर गोमूत्रकी भावना देवे, अथवा विना भावनाकेही चितकबरी गायके उदश्वित् (आधा पानी पडा हुआ मट्ठा) के साथ अथवा नीमके तथा मूंगके रसके साथ खाय तो प्रमेह नष्ट होता है। अथवा एक मासतक पानीके साथ जौके आटेका भक्षण करनेसे प्रमेह नष्ट हो जाते हैं, जौ प्रमेहको नष्ट करनेवाले, मूत्रको रोकनेवाले और सब धातुओंमें समस्थितिवाले हैं, इस लिये विशेष करके प्रमेहमें जौ बहुत हितकारी हैं ॥ ४२–५९ ॥

अथ त्रिकटुकाद्यमोदकः।

त्रिकटु त्रिफला पाठा मूलं शोभाञ्जनस्य च ॥ ६० ॥ विडंगतण्डुला हिंगु तथा कटुकरोहिणी। बृहती कण्टकारी च हरिद्रे द्वे यवानिका ॥ ६१ ॥ केबुकं शालपर्णी च तथातिविषचित्रकौ। सौवर्चलं जीरकं च हपुषा धान्यमेव च ॥ ६२ ॥ एषां कर्षप्रमाणं च श्लक्ष्णचूर्णं च कारयेत्। यवसक्तुपलानां च नवतिं द्वितयाधिकाम् ॥ ६३ ॥ घृततैलमधूनां च प्रत्येकं च पलानि षट्। एभिः कर्षप्रमाणं च प्रत्यहं मोदकं सुधीः। भक्षयेन्नाशयेदुग्रान्प्रमेहानतिदारुणान् ६४॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, पाढ, सहँजनेकी जड, वायविडंगके दाने, हींग, कुटकी, दोनों प्रकारकी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, अजवायन, सुपारी, शालपर्णी, अतीस, चीता, कालानोन, जीरा, हाउबेर और धनियाँ इन प्रत्येक पदार्थोंको एक एक तोले लेकर बारीक चूर्ण करके पश्चात् तीन सौ अडसठ (३६८) तोले जौके सत्तुओंमें यह चूर्ण डालकर चौबीस (२४) तोले घी और चौबीस तोले सहत डाले और एक एक तोलेके लड्डू बना लेवे, इन लड्डुओंमेंसे नित्य एक एक लड्डू खाय तो अत्यंत दारुण प्रमेह भी नष्ट हो जाता है ॥ ६०–६४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ न्यग्रोधाद्यचूर्णम्।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशोनाकारग्वधासनम्। आम्रं कपित्थं जम्बुं च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ६५ ॥ मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम्। पटोलं मेषशृंगी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥ ६६ ॥ करञ्जत्रिफलासक्तुर्भल्लातकफलानि च। एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥६७॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह योजयेत्। फलत्रयरसं चानु पीत्वा मूत्रं विशुध्यति। ॥ ६८ ॥ एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च। प्रशमं यान्ति योगेन पिडिका न च जायते ॥ ६९ ॥

बड, गूलर, पीपल, अरल्, अमलतास, बिजैसार, आम, कैथ, जामुन, चिरौंजी, कोह, धाय, महुआ, मुलेठी, लोध, वरुणा, फरहद, परवल, मेढासिंगी, दन्ती, चीता, अरहर, हरड, बहेडा, आमला, इन्द्रजौ और भिलावे इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करे, इस चूर्णको सहतमें मिलाकर खाय और ऊपरसे त्रिफलेका क्वाथ पिये इससे मूत्र शुद्ध हो जाता है, बीसों प्रकारके प्रमेह और सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र शांत हो जाते हैं तथा प्रमेहपिडिकाभी नहीं होती ॥ ६५–६९ ॥

अथ लोहादिचूर्णगुडूचीस्वरसौ।

चूर्णानि लोहत्रिफलासितानां क्षौद्रेण लिह्याच्च पृथक् समं वा। मेहान्समस्तानपि नाशयन्ति पीताः कदाचित्स्वरसा गुडूच्याः ॥ ७० ॥

लोहेकी भस्म, त्रिफला और मिश्री इनका चूर्ण मिश्रित कर सहतमें मिलाकर चाटे अथवा केवल लोहेकी भस्म, अथवा त्रिफलेके चूर्णको तथा केवल मिश्रीके चूर्णको सहतमें मिलाकर पृथक् पृथक् चाटे तो सब प्रकारके प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। अथवा केवल गिलोयका स्वरस निकालकर पीनेसे भी प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ ७० ॥

अथ त्रिकटुगुटिका।

त्रिकटु त्रिफलातुल्यं गुग्गुलुं च समांशिकम्। गोक्षुरक्वाथसंयुक्तां गुटिकां कारयेद्बुधः। ॥ ७१ ॥ दोषकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम्। न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥ ७२ ॥ प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च। मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरं चाशु नाशयेत् ॥ ७३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा और आमला इनका समानभाग चूर्णकर उसमें समानभाग गूगल डाले, पश्चात् गोखरूके क्वाथसे इसकी गोली बना लेवे। वायुका अनुलोमन करनेवाली यह गोली दोष काल तथा शरीरके बलको विचारकर खाय तो प्रमेह, वायुसंबंधी रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष तथा प्रदरका नाश होता है। यह गोली खानेवाले अपनी इच्छाके अनुसार प्रवर्ते और किसी प्रकारका परहेज नहीं करे ॥ ७१–७३ ॥

अथ दाडिमाद्यघृतम्।

दाडिमस्य च बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः। रजनी चविकाऽजाजी नागरं त्रिफला कणा ॥ ७४ ॥ त्रिकण्टकस्य च फलं यवानी धान्यकं तथा। वृक्षाम्लचविकालोध्रसिन्धूद्भवसमाहितैः ॥ ७५ ॥ कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। भोज्ये पाने प्रदातव्यं सर्वर्तुषु च मात्रया। ॥ ७६ ॥ प्रमेहान्विंशतिं चैव मूत्राघातं तथाश्मरीम्। कृच्छ्रं सुदारुणं चैव हन्यादेव न संशयः ॥ ७७ ॥ विबन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम्। दाडिमाद्यं घृतं चैतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ ७८ ॥

दाडिमी अनारके दाने, वायविडंग, हलदी, चव्य, जीरा, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, पीपल, गोखरू, अजवायन, धनियाँ, वृक्षाम्ल (तंतडीक), लोध और सेंधानोन, इन प्रत्येक पदार्थोंका एक एक तोले कल्कसे एक सेर घी पकावे तो 'दाडिमाद्य नामक घृत' सिद्ध होता है। अश्विनीकुमारोंका कहा यह घी सर्व ऋतुओंमें मात्राके अनुसार भोजन पानके उपयोगमें सेवन करे, इससे बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, पथरी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महादारुण मूत्रकृच्छ्र, मलबन्ध, आनाह, शूल, कामला तथा ज्वर ये अवश्यही नष्ट होते हैं ॥ ७४–७८ ॥

अथ गोक्षुरादिचूर्णं गुटिका च ।

श्वदंष्ट्रा सकणा मुस्ता गुडूची फल्गुपल्लवाः । दर्भाङ्कुरास्तु गण्डीरी रोहिषस्य च पल्लवाः ॥ ७९ ॥ काला पुनर्नवा श्यामा शारिवा देवदारु च । पिप्पली शृंगवेरं च विडंगं मरिचानि च ॥ ८० ॥ पाठा कम्पिल्लकं भार्ङ्गी द्वे हरिद्रे निदिग्धिका । एरण्डमूलं दन्ती च चित्रकं कटुरोहिणी ॥ ८१ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि स्युस्तावत्स्यादयोरजः ॥ ८२ ॥ ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा । अलाभे चापि मद्यानां प्रमेहान्हन्ति विंशतिम् ॥ ८३ ॥ श्वयथुं च तथार्शांसि पाण्डुरोगं हलीमकम् । औदराण्यथ शूलानि प्लीहानं चापकर्षति ॥ ८४ ॥ ~~गोभिर्गोमूत्रपिष्टैस्तु गुटिकाः कारयेद्भिषक् ।~~ रोगेष्वेतेषु मुख्याः स्युर्बलमांसविवर्द्धनाः ८५

गोखरू, पीपल, मोथा, गिलोयके सूक्ष्मसूक्ष्म पत्ते, डाभके अंकुर, मजीठ, रोहिषके पत्ते, निसोत, पुनर्नवा, शारिवा, देवदार, पीपल, अदरख, वायविडंग, मिरच, पाढ, कबीला, भारंगी, दोनों हलदी, कटेरी, एरंडकी जड, दन्ती (जमालगोटेकी जड), चीता और कुटकी इनको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करे, पश्चात् सब चूर्णसे दूना लोहेका चूर्ण लेवे, इन सबको मिलानेसे गोक्षुरादि चूर्ण सिद्ध होता है, यह चूर्ण मद्यसे और मद्य न मिले तो उष्ण पानीसे पिये तो बीसों प्रकारके प्रमेह, सूजन, बवासीर, पाण्डुरोग, हलीमक, सब प्रकारके उदररोग, शूल तथा प्लीहा नष्ट होती है । इस चूर्णको गोमूत्रमें पीसकर गोलियें बना लेवे, इनको 'गोक्षुरादि गुटिका' कहते हैं । ये गोलीभी उपरोक्त रोगोंको नष्ट करनेमें मुख्य हैं, तथा बल और मांसको बढानेवाली हैं ॥ ७९–८५ ॥

अथ सिंहामृतघृतम् ।

कण्टकार्या गुडूच्याश्च संहरेच्च शतं शतम् । संकुट्योदूखले विद्वांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् । ॥ ८६ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । त्रिकटुत्रिफलारास्नाविडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ ८७ ॥ काश्मर्याणां च मूलानि पूतीकस्य त्वगेन च । कलिङ्ग इति सर्वाणि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ८८ ॥ अक्षमात्रां पिबेत्प्राज्ञः शालिभिः पयसा हितैः । प्रमेहं मधुमेहं च मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ ८९ ॥ आलस्यं चान्त्रवृद्धिं च कुष्ठरोगं विशेषतः । क्षयं चैव निहन्त्येतन्नाम्ना सिंहामृतं घृतम् ९०

सौ सौ तोले कटेरी और गिलोय लेकर चार द्रोण (एक हजार चौबीस १०२४ तोलेका एक द्रोण) जलमें काथ करे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें १ सेर घी पकावे और पकाते समय उस घीमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, रासना, वायविडंग, चीता, खंभारीकी जड, करंजकी छाल और इन्द्रजौ इनका बारीक चूर्ण करके डाले, यह घी एक तोलाभर सेवन करे और उसके ऊपर दूध चावल खाय तो प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, भगंदर, आलस्य, अंत्रवृद्धि, कुष्ठरोग और [illegible] नाश होता है । इसको 'सिंहामृत घृत' कहते हैं ॥ ८६–९० ॥

अथ धान्वन्तरघृतम् ।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी । वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् । ॥ ९१ ॥ सुधानीपकदम्बाश्च बिल्वं भल्लातकानि च । शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ९२ ॥ पृथग्दशपलान्भागानेतांस्तोयार्मणे पचेत् । यवकोलकुलत्थानां प्रस्थंप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९३ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं पचेद्भिषक् । निचुलं त्रिफला भार्ङ्गी रोहिषं गजपिप्पली ॥ ९४ ॥ शृङ्गवेरविडंगानि चव्यं काम्पिल्लकं तथा । गर्भैणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथाबलम् ॥ ९५ ॥ एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् । कुष्ठप्रमेहगुल्मांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ ९६ ॥ प्लीहोदराणि चार्शांसि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद्रधिं पिडिकाश्च याः । अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ ९७ ॥ पृथक्कोर्यामणे ह्यत्र पचेद्द्रव्याच्छतंशतम् । शतत्रयाधिके तोये व्युत्सर्गः क्रमतो भवेत्॥९८॥

दशमूल, दोनों प्रकारकी करञ्ज, देवदार, हरड, सफेद गदहपूर्णा, बरना, दन्ती, चीता, पुनर्नवा, लाल गदहपूर्णा, दोनों प्रकारके करंज, बेल, भिलावे, कचूर, पोहकरमूल और पीपलामूल इन प्रत्येक पदार्थोंका चालीस ४० तोले चूर्ण, चौंसठ तोले जौ, चौंसठ तोले मिरच और चौंसठ तोले कुलथी इनका एक द्रोण (१०२४ तोले) जलमें क्वाथ करे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब इसमें १ सेर (६४ तोले) घी पकावे और उस घीमें पकाते समय नीम, त्रिफला, भारंगी, रोहिषतृण, गजपीपल, सोंठ, वायविडंग, वच और कचीला इनका चूर्ण डाले, इस भाँति सिद्ध किया घी 'धान्वन्तरघृत' कहाता है । शरीर आदिके बलके अनुसार यह उत्तम घी सेवन करे तो कोढ, प्रमेह, गुल्म, सूजन, वातरक्त, प्लीहा, उदररोग, विद्रधि, प्रमेहसंबंधी पिडिका, अपस्मार और उन्माद इन सबका [illegible] ॥ ९१–९८॥

अथार्जुनाद्यघृततैले ।

अर्जुनपटोलनिम्बैः सवचादीप्यकरसासमञ्जिष्ठैः । भल्लातकागुरुधनैः सगदानलचन्दनोशीरैः ॥ ९९ ॥ गोक्षुरकसोमवल्कैर्नवपटोलैर्हरिद्रया त्रिफलाः । अश्मन्तकार्जुनाभ्यां दीप्यकयुक्तेन चैव लोध्रेण ॥१००॥ मञ्जिष्ठातिविषाभ्यां कल्ककषायैः पचेत्तैलम् । कफवातोत्थे मेहे पित्तकृते साधयेत्सर्पिः१०१

कोह, परवल, नीम, वच, अजमायन, राखा, मजीठ, भिलावे, अगर, मोथा, कूठ, चीता, चन्दन, खस, गोखरू और सफेद कत्था इनका क्वाथ कर उसमें नवीन परवल, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, पाखानभेद, कोह, अजमोद, लोध, मजीठ और अतीस इनका कल्क डालकर पकाया हुआ घी 'अर्जुनाद्यघृत' कहाता है, इस घीका उपयोग करनेसे पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होते हैं, इसही क्वाथमें इसही कल्कसे पकाया हुआ तैल 'अर्जुनाद्यतैल' कहाता है, इस तेलका उपयोग करनेसे कफसंबंधी तथा वायुसंबंधी प्रमेह दूर होते हैं ॥ ९९--१०१ ॥

अथ सारलेहः ।

सारवर्गकषायं चतुर्थांशावशिष्टमवतार्य । परिस्राव्य पुनरपनीय साधयेत् । सिध्यति चामलकलोध्रप्रियंगुदन्तीकृष्णायसताम्रचूर्णान्यावपेत् तदेतददग्धं लेहीभूतमवतार्यानुगुप्तं निदध्यात् । ततो यथायोगमुपयुञ्जीत एषः लेहः सर्वमेहानपहन्ति ॥ १०२ ॥

सारवर्गकी औषधियोंका क्वाथ करे, चौथाई पानी शेष रहनेपर उतार लेवे, वस्त्रसे छानकर फिर चूल्हेपे चढा देवे, पकनेपर उसमें आमले, लोध, प्रियंगू, दन्ती, लोहेकी भस्म और ताँबेकी भस्म इनका चूर्ण डाले जब वह अवलेहके सदृश गाढा हो जाय तो उसको उतार लेवे जिससे जल न जाय, फिर स्वच्छ पात्रमें कर देवे और योग्य रीतिसे सेवन करे तो इससे सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं॥१०२॥

अथ गोक्षुरकाद्यवलेहः ।

गोकण्टकं सदलमूलफलं गृहीत्वा संकुटितं [illegible] पलशतं क्वथितं तु तोये । पादस्थितेन सलिलेन पलानि दत्त्वा पञ्चाशतं तु विपचेदथ शर्करायाः ॥ १०३ ॥ तस्मिन्घनत्वमुपगच्छति चूर्णितानि दद्यात्पलद्वयमितानि सुभाजनानि । शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेला जातीयकोषककुभत्रपुसीफलानि ॥ १०४ ॥ वांसीपलाष्टकमिह प्रणिधाय नित्यं लेह्यं तु शुद्धममृतं पलसंमितं तु । हन्त्याशु मूत्रपरिदाहविबन्धशुक्रकृच्छ्राश्मरीरुधिरमेहमधुप्रमेहान् ॥ १०५ ॥

पत्र, जड तथा फलसहित चार सौ (४००) तोले गोखरू लेवे, भली भाँति कूटकर पानीमें क्वाथ करे, चौथा भाग जल शेष रहनेपर उसमें दो सौ (२००) तोले बूरा (चीनी) डालकर पकावे, जब यह पानी गाढा होने लगे तब उसमें सोंठ, पीपल, मिरच, नागकेसर, तेजपात, इलायची, जायफल, कंकोल, कोहके फल और खीरेके बीज इन प्रत्येक पदार्थको आठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आठ तोले चूर्ण और बत्तीस तोले वंशलोचनका चूर्ण डालकर उतार लेवे तो 'गोक्षुरकाद्यवलेह' सिद्ध होता है। यह शुद्ध अमृतकी सदृश अवलेह नित्य चार तोले चाटे तो मूत्रका दाह, मलबंध, वीर्यके दोष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, रक्तप्रमेह और मधुमेह इनको तत्काल नष्ट करे है ॥ १०३--१०५ ॥

अथासनादियोगः ।

असनं च प्रियालं च शालं खदिरकं तथा । शालवर्गं तथा ग्राह्यं भवेच्चैतद्विचक्षणैः ॥ १०६ ॥ मधुमेहत्वमापन्नं भिषग्भिः परिवर्जितम् । योगेनानेन मतिमान्प्रमेहिणमुपाचरेत् ॥ १०७ ॥

पीतशाल, चीरौंजी, शाल, खैर और शालवर्गकी औषधि इनका योगकर बुद्धिमान् वैद्य प्रमेह रोगीका उपचार करे तो जो प्रमेह मधुमेहताको प्राप्त हो गया हो तथा जिसकी चिकित्सा अन्य वैद्योंने छोड दी हो, वह प्रमेहभी नष्ट हो जाता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ शिलाजतुस्वर्णमाक्षिकरौप्यमाक्षिकप्रयोगाः ।

मासि शुक्रे शुचौ वापि शैलाः सूर्यांशुतापिताः। जतुप्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः प्रस्रवन्ति हि ॥ १०८ ॥ शिलाजत्विति विख्यातं महाव्याधिनिवारणम् । त्रप्वादीनां तु लोहानां षण्णामन्यतमं च यत् ॥ १०९ ॥ ज्ञेयं स्वगन्धतश्चापि षडयोनिप्रथितं क्षितौ । लोहाद्भवति तद्यस्माच्छिलाजतु जतुप्रभम् ॥ ११० ॥ तस्य लोहस्य तद्वीर्यरसं वापि बिभर्ति तत् । त्रपुसीसायसादीनि प्रधानान्युत्तरोत्तरम् ॥ १११ ॥ यथा तथा प्रयोगेऽपि श्रेष्ठे श्रेष्ठगुणा स्मृताः । तत्सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम् ॥ ११२ ॥ कटुपाक्युष्णवीर्यं च शोषणं छेदनं तथा । तत्र यल्लघु कृष्णाभं स्निग्धं निःशर्करं च यत् ॥ ११३ ॥ गोमूत्रगन्धि नीलं वा तत्प्रधानं च वक्ष्यते । तद्भावितं सारगणैर्हृतदोषं दिनादितः ॥ ११४ ॥ पिबेत्सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथाबलम् । जांगलेन रसेनाद्यात्तस्मिञ्जीर्णे तु भोजनम् ॥ ११५ ॥ उपयुज्य तुलामेकाममृतस्यास्य जन्मतः । विजित्य मधुमेहाख्यमातंकं रोगकारकम् ॥ ११६ ॥ वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः । शतं शतं तुलायां तु सहस्रं दशतौलिकम् ॥ ११७ ॥ भल्लातकविधानेन परिहारविधिः स्मृतः । मेहं कुष्ठमपस्मारमुन्मादं श्लीपदं परम् ॥ ११८ ॥ शोथं शोफार्शसी गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम् । व्यपोहत्य चिरात्कालाच्छिलाजतु निषेवितम् ॥ ११९ ॥ न सोऽस्ति रोगोऽयं वापि न निहन्याच्छिलाजतु । शर्करां शिरसम्भूतां भिनत्ति च तथाश्मरीम् ॥ १२० ॥ भावनालोडने चास्य कर्तव्ये भेषजैर्हितैः । एवं च माक्षिकं धातुं तार्पीजममृतोपमम् ॥ १२१ ॥ मधुरं काञ्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम् । व्यपोहति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान् । तद्भावितान्कुलत्थांश्च कपोतांश्च विवर्जयेत् ॥ १२२ ॥

जेठ अथवा आषाढके महीनेमें सूर्यकी किरणोंसे तपकर पर्वत अपनी शिलाओंमेंसे लाखकी सदृश रसको छोडता है वह रस शिलाजीत कहाता है और महारोगोंको नष्ट करता है । सीसेको आदि लेकर लोहे पर्यंत छहों धातुओंका शिलाजीत होता है इस भाँति शिलाजीत छः प्रकारका है । अपनी अपनी गंधसे परीक्षा करनी चाहिये । जो शिलाजीत लोहेसे लाखकी सदृश उत्पन्न होता है उसमें लोहेका रसवीर्य होता है । रांग, सीसा और लोहेसे जो लाखकी सदृश शिलाजीत उत्पन्न होते हैं ये उत्तरोत्तर अधिक गुणवाले हैं । सब प्रकारके शिलाजीतोंमें लोहेका शिलाजीत श्रेष्ठ गुणवाला है। सब प्रकारके शीलाजीत कडवे चरपरे, कसैले, रसके संबंधी, दस्तावर, पाकमें चरपरे, वीर्यमें गरम, शोषण और मलच्छेदक हैं । जो शिलाजीत हलका, काली तथा नीली कांतियुक्त, स्निग्ध, शर्करारहित और गोमूत्रकी सदृश गंधवाला होय वह श्रेष्ठ कहाता है । सारवर्गकी औषधियोंसे भावना देकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बारीक पीस शरीर आदिके बलानुसार सारगणके क्काथके साथ पिये और इसके पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करे । जन्मसे अमृतकी सदृश यह शिलाजीत चार सौ तोले खाय तो इससे मनुष्य महापीडायुक्त मधुमेहनामक हाथीको जीतकर सौ वर्षतक आरोग्यतासे जीता है और उसका शरीर वर्ण तथा बल अति उत्तम होता है। जब एक तुला (४०० तोले) खानेसे सौ वर्षतककी आयु होती है तो दशतुला खानेसे हजार वर्षकी आयु होती है। जितना परहेज मिलावे खानेमें होता है, उतनाही परहेज इसमें करे। शिलाजीतका सेवन करनेसे प्रमेह, कोढ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, क्षय, सूजन, ववासीर, गुल्म, पाण्डुरोग और विषमज्वर ये तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जिसको शिलाजीत नष्ट नहीं कर सके ऐसा कोई रोग भी नहीं है। शिलाजीत अधिक कालसे हुई पथरी शर्कराको भी नष्ट कर देता है। हितकारी औषधियोंमें शिलाजीतकी भावना देवे तथा ऐसीही औषधियोंमें मिलावे। इसी प्रकार सोनामाखी अथवा रूपामाखी कि जो अमृतकी तुल्य है उनको सारगणकी औषधियोंसे भावना देकर सारगणके क्काथके साथ पिये तो इससे ज्वर, कोढ, प्रमेह, पांडुरोग तथा क्षय इनका नाश होता है। जो सोनामाखी मधुर होय तथा सुवर्णकी सदृश सुवर्णवाली होय तथा जो रूपामाखी खारी और चाँदीके सदृश वर्णवाली होय वह उत्तम जाननी। सोनामाखी तथा रूपामाखी सेवन करनेवाले कुलथी और कबूतरका मांस त्याग देवे ॥ १०८--१२२ ॥

अथ प्रमेहपिडिकाचिकित्सा।

प्रमेहपिडिकानां प्राक्कार्यं रक्तावसेचनम्। पाटनं च विपक्कानां तासां पाने प्रशस्यते ॥ १२३ ॥ क्काथो वनस्पतेर्वस्तमूत्रं तीक्ष्णं च शोधनम्। एलादिकेन कल्केन तैलं च व्रणरोपणम् ॥ १२४ ॥ आरग्वधादिना क्काथं कुर्याद्दुद्वर्तनानि च। शालसारादिना सेकान्भोज्यादींश्चणकादिना ॥ १२५ ॥

प्रमेहसंबंधी पिडिका हो गई होयँ तो प्रथम उनमेंसे रुधिर निकलवावे और पक गई होयँ तो शस्त्रसे चिरवाना उत्तम है। वनस्पतियोंके क्काथसे, बकरीके मूत्रसे और तीक्ष्ण पदार्थोंसे पिडिकाओंकी जगह शुद्ध करे। शुद्ध करनेके पश्चात् इलायची आदि पदार्थोंके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगावे कि जिससे व्रण भर आता है। पिडिकावालेको अमलतास आदिका क्काथ पिलावे और योग्य पदार्थोंसे उबटन और शालसारादिके योग्य क्काथसे सेचन करे, पिडिकावालेको चने आदि पदार्थोंका भोजन करावे ॥ १२३--१२५ ॥

अथ प्रमेहिण आरोग्यपरीक्षा।

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विशदं तिक्तकटुकं तदारोग्यं प्रचक्षते ॥ १२६

जब प्रमेहरोगीका मूत्र स्वच्छ, पिच्छिलतारहित, विशद और तिक्त तथा कटुरसयुक्त होय तब आरोग्य हुआ जानना ॥ १२६ ॥

इति प्रमेहाधिकारः समाप्तः।

अथ मेदोऽधिकारः।

तत्र मेदोवृद्धिनिदानम्।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः। मधुराऽन्नरसप्रायः स्नेहान्मेदो विवर्द्धते ॥ १॥

व्यायाम (कसरत) नहीं करनेसे, दिनमें सोनेके अभ्याससे, कफकारी आहारोंके सेवन करनेसे, मधुर अन्नोंसे, मधुर रसोंसे और घी आदि स्नेहोंके सेवनसे मेदकी वृद्धि होती है ॥ १ ॥

अथ मेदोवृद्धिसम्प्राप्तिः।

मेदसावृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः। मेदस्तु चीयते तस्मादसक्तः सर्वकर्मसु ॥ २॥

मेदसे मार्ग रुकनेके कारण अन्य धातुओंका पोषण नहीं होता इससे मेदा बढती जाती है कि जिससे मनुष्य सर्व कामोंमें अशक्त हो जाता है ॥ २ ॥

अथ मेदोवृद्धिलक्षणम्।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नकथनसादनैः। युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरे हि व्यवस्थितम्। अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥ मेदसा वृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः। चरन्सन्धुक्षयत्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं चापि कांक्षति । विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चित्कालविपर्ययात् ॥ ६ ॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ । एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलौ यथा ॥ ७ ॥ मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः । विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ८ ॥ मेदोमांसातिवृद्धत्वाद्वृद्धस्फिगुदरस्तनः । मेदसोऽयथोपचयान्नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥ स्थूले स्युर्दुस्तराः कुष्ठा विसर्पाः सभगन्दराः । ज्वरातीसारमेहार्शःश्लीपदापचिकामलाः ॥ १० ॥ मेदसः स्वेददौर्गन्ध्याज्जायन्ते जन्तवोऽणवः ॥ ११ ॥

जिसके मेदकी वृद्धि हुई होय वह मनुष्य क्षुद्रश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, पीडा, ग्लानि, क्षुधा, पसीना तथा दुर्गन्धतासे युक्त होता है और अल्पशक्तिवाला तथा अल्पमैथुनवाला हो जाता है । मेद सब प्राणियोंके पेटमें रहती है इस लिये मेदकी वृद्धिवाले मनुष्यका अधिक करके पेट बढ जाता है । वायुका मार्ग मेदसे रुकनेके कारण वह वायु विशेष करके कोठेमेंही फिरती रहनेसे अग्निको प्रदीप्त करे है और खाये हुए अन्नको सुखाभी डाले है कि जिससे मेदवृद्धिवाले मनुष्यको आहार तत्काल पच जाता है और फिर भोजन करनेकी इच्छा होती है। कुछ कालके अनन्तर इस मनुष्यके भयंकर विकार भी उत्पन्न होते हैं, अग्नि और वायु ये विशेष करके उपद्रवोंको उत्पन्न करे हैं और जिस प्रकार दावानल (अग्नि) वनको जला देती है । उसी प्रकार मेद उस मोटे मनुष्यको जला देती है । मेद अत्यंत बढनेपर वायु आदि धातु सहसा दारुण विकारोंको उत्पन्न करके तत्काल जीवनका नाश कर देती है, मेद और मांसकी अत्यंत वृद्धि होनेपर मनुष्यके कूले पेट और स्तन हला करते हैं । जिसका मेद अयोग्य प्रकारसे बढता होय, वह मनुष्य बहुत मोटा कहाता है । मोटे मनुष्यको कोढ, विसर्प, भगंदर, ज्वर, अतीसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद, अपची और कामला ये रोग दुस्तर हो जाते हैं । मेदसे पसीनेमें दुर्गन्धता होनेपर सूक्ष्म सूक्ष्म जीवभी हो जाते हैं ॥ ३--११ ॥

अथ मेदोवृद्धिचिकित्सा ।

पुराणाः शालयो मुद्गाःकुलत्थोदालकोद्रवाः । लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा । धूमपानं तथा क्रोधो रक्तमोक्षणमेव च ॥ १२ ॥ जीर्णे च भोजनं कार्यं यवगोधूमयोः सदा । उपवासोऽसुखा शय्या सत्त्वौदार्यं तमोजयः ॥ १३ ॥ सन्तर्पणकृतैर्दोषैः स्थौल्याद्युक्त्या विमुच्यते । श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ॥ १४ ॥ हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः । सचव्यजीरकव्योषहिंगुसौवर्चला नलाः ॥ १५ ॥ मस्तुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः । फलत्रयंत्रिकटुकं सतैलं लवणान्वितम् ॥ १६ ॥ षण्मासादुपयोगेन कफमेदोऽनिलापहम् । विडङ्गं नागरं क्षारः काललोहरजो मधु ॥ १७ ॥ यवामलकचूर्णैस्तु योगोऽयं स्थौल्यनाशनः । मूलं वा त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं मधूदकम् ॥ १८ ॥ बिल्वादिपञ्चमूलस्य प्रयोगः क्षौद्रसंयुतः । अतिस्थौल्यहरः प्रोक्तो मण्डलं सेवितो ध्रुवम् ॥ १९ ॥ कर्कशदलवह्निसलिलं शतपुष्पाहिंगुसंयुक्तम् । पुटके निहन्ति नियतं सर्वभवां मेदसां वृद्धिम् ॥ २० ॥ क्षारं वातारिपत्रस्य हिंगुयुक्तं पिबेन्नरः । मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तं मण्डसमन्वितम् ॥ २१ ॥ गवेधुकानां पिष्टानां यवानां चाथ सक्तवः । सक्षौद्रत्रिफलाक्काथाः पीता मेदोहरा मताः ॥ २२ ॥ गुडूची त्रिफलाक्काथस्तथा लोहरजोऽन्वितः । अश्मजं महिषाक्षं वा तेनैव विधिना पचेत् ॥ २३ ॥ अतिमुक्ताद्बीजमध्यं मधुलीढं हन्त्युदरवृद्धिम् । मधुना चित्रकमूलं तथैव हितभोजनो भुंक्ते । यद्वोरुबूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते निशां सकलाम् । तस्य सलिलस्य पानाज्जठरे वृद्धिं शमं याति ॥ २४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् । उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत् ॥ २५ ॥ बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता । स्थौल्यनुत्स्यादग्निमन्थरसकाथः शिलाजतु ॥ २६ ॥ शैलेयकुष्ठागुरुदेवदारुकौन्तीसमुस्तान्यथ पञ्चपत्रैः । श्रीवासपृक्काखरपुष्पदेवपुष्पं तथा सर्वमिदं प्रपिष्य ॥ २७ ॥ धत्तूरपत्रस्य रसेन गाढमुद्वर्तनं स्थौल्यहरं प्रदिष्टम् ॥ २८ ॥

भेदकी वृद्धिवाला मनुष्य सदा पुराने चावल, मूंग, कुलथी, वनकुलथी और कोदों तथा लेखनवस्ति, इनका सेवन करे । यह मनुष्य धूमपान, क्रोध तथा रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) इनका सेवन करे । उपवास, सुख न हो ऐसी शय्यामें शयन, मनकी उदारता और निद्रा आदि तमोगुणके जीतनेसे स्थूलता नष्ट हो जाती है । स्थूलता कि जो अत्यन्त तृप्त करनेवाले दोषोंसे हुई है उससे मुक्त होनेके लिये यह युक्ति है कि परिश्रम, मैथुन, मार्ग, मदिरा और रात्रिजागरण इनसे प्रेम रक्खे, चिंतामें तत्पर रहे और जौ तथा समेके भोजन करे, ऐसा मनुष्य अपनी अत्यन्त स्थूलताको अवश्य नष्ट कर देता है । चव्य, जीरा, त्रिकुटा, हींग, कालानोन और चीता इनका चूर्ण डालकर दहीके पानीके साथ सत्तू पिये तो इससे मेद नष्ट हो जाती है और अग्निदीपन होती है । अथवा हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, तेल और लवण इनको छः महीनेतक भली भाँति उपयोग करे तो इससे कफ, मेद तथा वायु नष्ट होती है । वायविडंग, सोंठ, जवाखार, कान्तिसार, जौ तथा आमला इनके चूर्णमें सहत मिलाकर खाय तो इससे अत्यन्त स्थूलता नष्ट होती है । मूली अथवा त्रिफलेका चूर्ण सहतमें मिलाकर सहत मिले पानीके साथ सेवन करे, अथवा वृहत्पञ्चमूलका चूर्ण सहतमें मिलाकर खाय, इस प्रकार जो चालीस दिनतक करे तो इससे अवश्य अत्यन्त स्थूलता नष्ट होती है । परवल और चीता इनका काथ कर इसमें सोंफ तथा हींगका चूर्ण डालकर पिये तो इससे पेटमें सर्व प्रकारसे हुई मेदकी वृद्धि अवश्य नष्ट होती है । अथवा एरंडका क्षार हींग डालकर पिये और ऊपरसे मांडसहित भात खाय तो इससे मेदकी वृद्धि नष्ट हो जाती है । गवेधुक (मुनियोंके खानेका अन्नविशेष) अथवा जौके सत्तू और त्रिफलेके काथमें सहत डालकर पिये तो इससे मेदकी वृद्धि दूर होती है । गिलोय, हरड, बहेडा और आमला इनके काथमें लोहभस्म डालकर पिये तो मेदकी वृद्धि नष्ट होती है । शिलाजीत अथवा गूगलको उपरोक्त गिलोय आदिके काथमें पकाकर खाय तो मेदकी वृद्धि दूर होती है । अतिमुक्त (कुन्दपुष्पभेद या माधवीलता) के बीजके मध्यभागको सहतमें मिलाय चाटनेसे मेदोवृद्धि दूर होती है । चीतेकी जडका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे, अथवा एरंडकी जडको रात्रिभर सहतमें भीजा रहने देवे उसके रसको प्रातःकाल पिये और हितकारी भोजनका नियम रक्खे तो उदरकी वृद्धि नष्ट होती है । प्रातःकाल नित्य सहत मिलाकर जल पिये तो मोटापन दूर होता है । पकाये हुए भातका गरम मांड पिये तो शरीर कृश होता है । बेरके पत्तोंका कल्क डालकर कांजीसे पकाई पेया सेवन करे तो इससे भेदकी वृद्धि दूर होती है । अथवा अरनीके काथमें शिलाजित डालकर पिये तो इससे स्थूलता नष्ट होती है । शिलाजीत, कूठ, अगर, देवदार, रेणुकानामक सुगंधित द्रव्य, मोथा, श्रीवास, स्पृक्का, पिण्डशाक, ब्राह्मी और लौंग इन सबको धत्तूरेके पत्तोंके रससे पीसकर शरीरको भली भाँति मले तो स्थूलता नष्ट होती है ॥ १२–२८ ॥

अथामृतादिगुग्गुलुः ।

अमृतात्रुटिवेलवत्सकं कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः । क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिडिकास्थौल्यभगन्दराञ्जयेत् ॥ २९ ॥

गिलोय एक भाग, इलायची दो भाग, वायविडंग तीन भाग, इन्द्रजौ चार भाग, बहेडा पांच भाग, हरड छः भाग, आमला सात भाग और गूगल आठ भाग, इनको सहतमें मिलाकर खाय तो इससे पिडिका स्थूलता और भगंदर इनका नाश होता है ॥ २९ ॥

अथ दशांगगुग्गुलुः ।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्ताविडंगैर्गुग्गुलुं समम् । खादन् सर्वाञ्जयेद्व्याधीन् मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मोथा और वायविडंग इनका चूर्ण कर सबकी बराबर गूगल मिलाकर खाय तो मेद, कफ, आम और वायु इनसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

अथ त्र्यूषणादिगुग्गुलुः ।

त्र्यूषणाग्निवनवेल्लवचाभिर्भक्षयन्सप्तघृतं माहिषाक्षम् । आशु हन्ति कफमारुतमेदो दोषजान्बलवतोऽपि विकारान् ॥ ३१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, मोथा और वच इनका चूर्ण गूगलमें डालकर गूगलकी बराबर ही मिलावे तो त्र्यूषणादि गूगल सिद्ध होता है, यह गूगल कफसे, वायुसे, तथा मेदके दोषोंसे हुए बलवान् विकारोंको तत्काल नष्ट करे है ॥ ३१ ॥

अथ लोहरसायनम् ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं वृषम् । त्रिवृताऽलम्बुषी शुण्ठी निर्गुण्डी चित्रकस्तथा ॥ ३२ ॥ एषां दशपलान्भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत् । पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ ३३ ॥ पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहं सुचूर्णितम् ॥ ३४ ॥ पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलान्वितम् । पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ॥ ३५ ॥ प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् । एलात्वचः पलार्द्धं च विडंगानि पलत्रयम् । ॥ ३६ ॥ मरिचाञ्जनकृष्णे द्वे द्विपलं च फलान्वितम् । पलद्वयं तु कासीसं सूक्ष्मचूर्णीकृतं बुधैः ॥ ३७ ॥ चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भांडे निधापयेत् । ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् ॥ ३८ ॥ अनुपानं पिबेत्क्षीरं जांगलानां रसं तथा । वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहोदरापहम् ॥ ३९ ॥ कामला पाण्डुरोगं च श्वयथुं सभगन्दरम् । मूर्च्छामोहविषोन्मादगराणि विषमाणि च ॥ ४० ॥ स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् । कर्षयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् । ॥ ४१ ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् । श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ॥ ४२ ॥ नाश्नीयात्कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् । करीरं कारवेल्लं च ककारादि विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

गूगल, मुसली, हरड, बहेडा, आमला, खैर, अड्डूसेकी छाल, निसोत, गोरखमुण्डी, सोंठ, निर्गुंडी और चीता ये प्रत्येक पदार्थ चालीस चालीस तोले लेकर पाँच आढक (२० सेर) जलमें क्वाथ करे, चौथा भाग जल शेष रहे तब क्वाथको उतार उसमें भली भाँति चूर्णित किया हुआ अडतालीस (४८) तोले कांतलोह, चौंसठ तोले पुराना घी और बत्तीस तोले शर्करा (बूरा, चीनी) डालकर ताँबेके पात्रमें फिर उसका पाक करे, शीतल हो जानेपर उतार लेवे, फिर उसमें बत्तीस तोले सहत, आठ तोले शिलाजीत, दो तोले इलायची, दो तोले दालचीनी, बारह तोले वायविडंग, आठ तोले मिर्च, आठ तोले रसोत, चार तोले पीपल और आठ तोले कसीस इनका चूर्ण डाल मथकर स्निग्ध पात्रमें उसको रक्खे तो लोहरसायन सिद्ध होती है । वमन विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करके उसमेंसे एक तोलेभर खाय और उसके ऊपर दूध तथा जांगल देशके जीवोंके मांसका रस पिये । यह रसायन श्रेष्ठ है और वायु, कफ, कोढ, प्रमेह, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, भगंदर, मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद और विषम विषको भी नष्ट करे है । यह रसायन स्थूलताको कर्षण करनेका उत्तम उपाय है, मेदरोगीकी परम औषधि है, पातालकी सदृश पेटको अत्यंत पतला करनेवाला है, तथा बलदायक, बुद्धिको स्वच्छ करनेवाला, उत्तम वाजीकरण, लक्ष्मीदायक, पुत्रदाता और वलीपलितनाशक है । इस रसायनको सेवन करनेवालेने केला, कन्द, काँजी, करौंदे, करील, करेला यह छः ककार त्याग करने चाहिये ॥ ३२–४३ ॥

अथ लौहारिष्टः ।

शालसारादिनिर्यूहं चतुर्थांशावशेषितम् । परिस्रुतं ततः शीतं मधुना मधुरीकृतम् । ॥ ४४ ॥ फाणितीभावमापन्नं गुडे शोधितमेव च । सूक्ष्मपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादेर्गणस्य च ॥ ४५ ॥ ऐकध्यमावपेत्कुम्भे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संस्कृते घृतभाविते । पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्ते चान्तरे शुचौ ॥ ४६ ॥ श्लक्ष्णानि तीक्ष्णलोहस्य तनुपत्राणि बुद्धिमान् । खदिराङ्गारतप्तानि बहुशः प्रक्षिपेद्बुधः ॥ ४७ ॥ सुपिधानं ततः कृत्वा यवखल्वे निधापयेत् । मासांस्त्रींश्चतुरो वापि यावद्वा लोहसंक्षयात् ॥ ४८ ॥ ततो जातरसं जन्तुः प्रातःप्रातर्यथाबलम् । उपयुञ्ज्याद्यथायोग्यमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ४९ ॥ एष स्थूलं समाकर्षेन्नष्टस्याग्नेः प्रशोधनः । शोथघ्नः कुष्ठमेहघ्नो गुल्मपाण्ड्वामयापहः ॥ ५० ॥ प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनः । अभिष्यन्दापहरणे लोहारिष्टो महागुणः ॥ ५१ ॥

शालसार आदि औषधियोंका क्वाथ कर चौथा भाग जल शेष रहनेपर वस्त्रसे छान लेवे फिर शीतल होनेपर सहत डालके मधुर करे, पश्चात् गुडकी चासनी कर पिप्पल्यादि गणका चूर्ण और वह क्वाथ मिलावे फिर घी चुपडे पवित्र पात्रमें पीपलका चूर्ण और सहत लगाकर उसको रक्खे, पश्चात् बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण लोहके पतले पत्रोंको खैरके अग्निमें बारंबार तपा तपाकर उसमें डाले फिर पात्रका मुख भली भाँति बंद कर उस घडेको तीन चार महीनेतक अथवा जबतक लोहा गले तब तक जौके ढेरमें रक्खे, यह सब लोहा उसमें रसरूप हो जाय तो लोहारिष्ट सिद्ध होता है । शरीरादिकके बलानुसार प्रातःकाल यह लोहारिष्ट पिये और उसके ऊपर योग्य आहार करे तो लोहारिष्ट स्थूल शरीरको पतला कर देता है, नष्ट हुई जठराग्निको प्रदीप्त करता है और सूजन, कोढ, प्रमेह, गुल्म, पाण्डुरोग, प्लीहा, उदररोग और अभिष्यन्द इनको नष्ट करे है, विषमज्वरको तत्काल नष्ट करे है और भी अधिक गुण करे है ॥ ४४--५१ ॥

अथ व्योषाद्यसक्तुप्रयोगः ।

व्योषचित्रकशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् । बृहत्यौ द्वे हरिद्रे च पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ ५२ ॥ हिंगुकेमुकमूलानि यवानीं धान्यचित्रकम् । सौवर्चलमजाजीं च हपुषां चेति चूर्णयेत् ॥ ५३ ॥ चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः । सक्तूनां षोडशगुणे भागे सन्तर्पणं पिबेत् ॥ ५४ ॥ प्रयोगात्त्वस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः । प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ ५५ ॥ प्लीहा पाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः । हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासश्वासो गलग्रहः ॥ ५६ ॥ कृमयो ग्रहणीदोषः श्वैत्यं स्थौल्यमतीव च । नराणां दीप्यते वह्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ ५७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, दूनी चीता, सहँजना, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, दोनों प्रकारकी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पाढ, अतीस, शालपर्णी, हींग, सुपारीकी जड, अजवायन, धनियाँ, कालानोन, जीरा और हाउबेर इनका चूर्ण करे, पश्चात् इस चूर्णको घीके और सहतके समान ले सोलह गुने सत्तू डालकर सत्तू पिये । इस प्रयोगकी तृप्तिसे हुए रोग, प्रमेह, मूढवात, कोढ, बवासीर, कामला, प्लीहा, पाण्डुरोग, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृदयरोग, क्षयरोग, खाँसी, श्वास, गलग्रह, कृमि, ग्रहणी, श्वेतकोढ और अत्यंत स्थूलता इनको नष्ट करे है, अग्नि दीपन होती है और बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बढती है ॥ ५२--५७ ॥

अथ त्रिफलाद्यतैलम् ।

त्रिफलातिविषा मूर्वा त्रिवृच्चित्रकवासकैः । निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ ५८ ॥ गुडूचीन्द्रासुरीकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः । तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसप्लुतम् ॥ ५९ ॥ पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजितम् । स्थूलतालस्थपाण्ड्वादीञ्जयेत्कफकृतान्गदान् ॥ ६० ॥

हरड, बहेडा, आमला, मूर्वा, निसोत, चीता, अडूसा, नीम, अमलतास, वच, सतवन, हलदी, गिलोय, इन्द्रवारुणी, पीपल, कूठ, सरसों और सोंठ इनको समान भाग लेकर उनके कल्कसे पकाया हुआ तेल सुरसादिगणके क्वाथके साथ पीनेमें, अभ्यङ्गमें, गण्डूष धारण (कुल्ले करने) में, नस्यमें और पिचकारी देनेमें उपयोग करे तो इससे स्थूलता, आलस्य तथा पाण्डुता आदि कफसंबंधी सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ५८--६० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ महासुगंधितैलम्।

चन्दनं कुंकुमोशीरप्रियंगुत्रुटिरोचनाः। तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥६१॥ जातीकंकोलपूगानां लवंगस्य फलानि च। नलिका नलदं कुष्ठं हरेणुतगरं ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ नवव्याघ्रनखं स्पृक्का वोलो दमनकं तथा। स्थौणेयकं चोरकं च शैलेयं शैलवालुकम् ॥ ६३ ॥ सरलं सप्तपर्णं च लाक्षा तामलकी तथा। लामज्जकं पद्मकं च धातक्याः कुसुमानि च ॥६४॥ प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शाणमात्रकैः। महासुगन्धमित्येतत्तैलप्रस्थेन साधयेत् ॥ ६५ ॥ प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम्। अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्तातिकोऽपि वा ॥ ६६ ॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः। सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम् ॥ ६७ ॥ वन्ध्यापि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते। अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ६८

चंदन, केसर, खस, प्रियगु, इलायची, गोरोचन, लोबान, अगर, कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफल, कंकोल, सुपारी, लौंग, नली, जटामाँसी, कूठ, रेणुका, तगर, नागरमोथा, नवीन व्याघ्रका नख, स्पृक्का, वाल, दौना, स्थौणेयक, चोरक, शैलेय, एलुआ, सरल, सतवन, लाख, आमला, लामज्जतृण, पद्माख, धायके फूल, पुण्डरीक और कचूर ये प्रत्येक पदार्थ तीन तीन मासे लेकर इससे चौंसठ तोले तैल पकावे, तो महासुगंधि तैल सिद्ध होता है। इस तेलसे पसीना, मलसे हुई दुर्गन्धता, खुजली तथा कोढ भली भाँति नष्ट होता है। इस तेलका अभ्यंग (मालिश) करे तो सत्तर वर्षका वृद्ध भी युवा, अधिक वीर्यवान्, स्त्रियोंको अत्यंत प्रिय, भाग्यवान्, सुन्दर और सौ स्त्रियोंसे संग करनेको समर्थ होता है। वंध्या स्त्रियोंके गर्भ रहता है, नपुसंक पुरुषताको प्राप्त होता है, विना पुत्रवाली स्त्रीके पुत्रकी प्राप्ति होती है और आयु सौ वर्षकी होती है ॥ ६१--६८ ॥

वासादलरसो लेपाच्छंखचूर्णेन संयुतः। बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ ६९ ॥ अलम्बुषाभवं चूर्णं पीतं काञ्जिकसंयुतम्। दौर्गन्ध्यं नाशयत्याशु दृष्टं मेदोभवं नृणाम्। ॥ ७० ॥ बिल्वशिवासमभागा लेपाद्भुजमूलगन्धमपहरति। परिणतपिडकामपि पूतिकरञ्जोत्थबीजं वा ॥ ७१ ॥ चिञ्चापत्रस्वरसं भ्रक्षितकक्षादियोजितं। जयति हस्वहरिद्रोद्वर्तनमचिराच्चिरदेहदौर्गन्ध्यम् ॥ ७२ ॥ शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः। पत्राम्बुलौहाभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥ ७३ ॥ हिलमोचिरसोचिरसो युक्तश्चूर्णैरुदधिफेनजैः। प्रलेपेन हरत्याशु देहदौर्गन्ध्यमुत्कटम् ॥ ७४ ॥ हरीतकीं तु सम्पिष्य गात्रमुद्वर्तयेन्नरः। पश्चात्स्नानं प्रकुर्वीत देहस्वेदप्रशान्तये ॥ ७५ ॥ हरीतकी लोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कलं च। एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जम्ब्वाः कषायस्तु नराधिपानाम् ॥ ७६ ॥ गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम्। कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः शस्तं वशीकृद्वजनीद्वयेन ॥ ७७ ॥ बब्बुलस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिपेषितैः। गात्रमुद्वर्तयेत्पश्चाद्धरीतक्या सुपिष्टया ॥ ७८ ॥ भूय उद्वर्त्तनं कृत्वा पश्चात्स्नानं समाचरेत्। प्रस्वेदान्मुच्यते शीघ्रं ततस्त्वेवं समाचरेत् ॥ ७९ ॥ बिल्वाम्रजम्बूफलपूरकाणां पत्रैः कपित्थस्य दलानुमिश्रैः। अनूपवत्कर्मविधानयोगैर्वचा विशोध्या वरगन्धहेतोः ॥ ८० ॥ पथ्यानखीचन्दनकुष्ठसर्जैः पुनःपुनश्चागुरुशर्कराभ्याम्। धूपो जनानां हृदयापहारी विख्यातनामा मलयानिलोऽयम् ॥ ८१ ॥ चण्डांशुगतिलैर्लोध्रशिरीषोशीरकेसरैः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद्वर्तनं भवेद्ग्रीष्मे स्वेदकर्मनिवारणम् । ॥ ८२ ॥ सुरया सममभयाफलचूर्णं मधुना विलिह्य प्रत्यूषे । स्वेदान्हत्वा लभते पुरुषोऽप्यत्यन्तसौरभ्यम् ॥ ८३ ॥ मल्लीकुसुमाभयकरिलेपो घर्मे विचर्चिकादाहे । विचकिलपत्रहरिद्रे पर्कटिपत्रं च दूर्वया सहितम् ॥ ८४ ॥ सम्पिष्य गात्रलेपाद्घर्मविचर्चीं शमं याति ॥ ८५ ॥ हस्तपादसुतौ योज्यं गुग्गुलुः पञ्चतिक्तकम् । अशक्तौ पञ्चतिक्तं वा पक्वं खादेदतन्द्रितः ॥ ८६ ॥

अडूसेके पत्तोंके रसमें शंखका चूर्ण मिलाकर लेप करनेसे अथवा बेलके पत्तोंके स्वरसका लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है । गोरखमुंडीको पीसकर काँजीके साथ पीनेसे मेदसे उत्पन्न हुई मनुष्यके शरीरकी दुर्गंध दूर होती है । बेलके पत्ते और हरड इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बगलकी दुर्गंध दूर होती है । इमलीके पत्तोंका रस निकालकर किसी उत्तम औषधिके कल्कके साथ मिलाकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है । हलदीको दूधमें पीसकर उसका शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध बहुत दिनोंकी होय तो भी दूर हो जाती है । सिरस, लामज्जक, नागकेसर और लोध इनका चूर्ण करके शरीरपर मलनेसे त्वचाके दोष और पसीना दूर हो जाता है । बेलके पत्ते, सुगंधवाला, काली अगर, खस और चंदन इनको पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है । समुद्रफेनको ब्राह्मीके रसमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी विशेष दुर्गंध तत्काल नष्ट हो जाती है । हरडोंको पीसकर शरीरपर मलकर पश्चात् स्नान करनेसे शरीरका पसीना बंद होता है । हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनको पीसकर स्त्री और पुरुषोंके शरीरपर मलनेसे शरीरकी दुर्गंधता दूर होती है । जामुनके पत्तोंका कल्क बनाकर उसका लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंधता दूर होती है । हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कोढ दूर हो जाता है । गायके दूधमें पीसकर लेप करनेसे वर्ण उज्ज्वल होता है । जलमें पीसकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है । और हलदी तथा दारुहलदीके साथ पीसकर लेप करनेसे उत्तम वशीकरण होता है । बबूरके पत्तोंको उत्तम प्रकारसे जलमें पीसकर शरीरपर मले, फिर हरडको जलमें पीसकर उससे शरीरको मले और इन दोनों पदार्थोंको मलने बाद स्नान करे तो पसीनेकी अधिकता तत्काल दूर हो जाती है । स्नान करनेके पश्चात् हरड छोटी, नखी, चंदन, कूठ, राल, अगर और खांड इनकी धूप बारंबार देवे, इससे शरीरमें सुगंधता उत्पन्न होती है । मनुष्योंके चित्तको हरनेवाली यह धूप 'मलयानिल' इस नामसे प्रसिद्ध है । दारुहलदी, तिल, लोध, सिरसकी छाल, खस और केसर इनको पीसकर शरीरपर मलनेसे ग्रीष्म ऋतुमें पसीनेका अधिक आना बंद होता है । हरडके चूर्णको मद्य अथवा सहतके साथ चाटे तो पसीना दूर होकर अत्यंत सुगंध आती है । पसीना अधिक आता होय और विचर्चिका तथा दाह होय तो मोतियाके पत्ते सुगंधवाला और नागकेसर इनका लेप करे । मोतियाके पत्ते, हलदी, जलपीपलके पत्ते और दाख इनको पीसकर शरीरपर लेप करनेसे पसीना और विचर्चिका दूर होती है । जो हाथ पाँव पसीजते होयँ तो गूगल और पंचतिक्त नामक सिद्ध किये घीका उपयोग करे । शरीरमें शक्ति न होय तो पथ्यसे रहकर पंचतिक्त घृतको भक्षण करे ॥ ६९–८६ ॥

इति मेदोरोगाधिकारः ।

अथ काश्र्याधिकारः ।

तत्र कृशतानिदानम् ।

वातो रूक्षान्नपानानि लंघनं प्रमिताशनम् । क्रियातियोगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ॥ १ ॥ नित्यं रोगो रतिर्नित्यं व्यायामो भोजनाल्पता । भीतिर्धनादिचिन्ता च काश्र्ये कारणमीरितम् ॥ २ ॥ लंघनमुपवासः । प्रमितमल्पम् । क्रियातियोगः वमनविरेकाद्यतिविधानम् । वेगनिद्राविनिग्रहः । निद्रानिग्रहः विशोषाय ।

वायु, रूक्ष अन्नपान, लंघन, अल्प भोजन, वमन तथा विरेचन आदि क्रियाओंका अतियोग, शोक,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूत्र आदिके वेगोंका रोकना, निद्राका रोकना, सर्वदा रोग, नित्य मैथुन, नित्य कसरत, भोजनका थोडा मिलना, भय और धन आदिकी चिंता इनसे कृशता (दुबलापन) होता है, निद्राको रोकनेसे तुरंत कृशता होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ कृशलक्षणम् ।

शुष्कस्फिगुदरग्रीवाधमनीजालसन्ततिः । त्वगस्थिशेषोऽतिकृशः स्थूलपर्वाननो मतः॥ ३॥

जिसका कूला, पेट तथा गरदन सूखी हुई होय, शरीरमें नसोंका जाल दीखता हो, त्वचा तथा हड्डियें ही शेष होंय, तथा संधियें और मुख मोटा होय वह मनुष्य अत्यंत कृश कहाता है ॥ ३ ॥

अथात्यंतकृशतारोगाः ।

प्लीहकासक्षयश्वासगुल्मार्शांस्युदराणि च । भृशं कृशं प्रधावन्ति रोगाश्च ग्रहणीमुखाः । काश्चिदन्यः कृशोऽतीव बलवान्दृश्यते तदा ४

अत्यंत कृश मनुष्यको प्लीहा, खाँसी, श्वास, गुल्म, बवासीर, उदररोग और ग्रहणी आदि रोग दौडकर प्राप्त होते हैं, कोई २ कृश मनुष्य भी अत्यंत बलवान् दीखते हैं ॥ ४ ॥

अथ सत्यपिकृशे बलवत्त्वकारणम् ।

आधानसमये यस्य शुक्रभागोऽधिको भवेत् । मेदोभागस्तु हीनः स्यात्स कृशोऽपि महाबलः ॥ ५ ॥ यस्य आधानसमये जनयितुः शुक्रस्य आधिक्यं भवति, मेदसोऽल्पता तस्य कृशस्यापि बहुबलमित्यर्थः ।

गर्भाधानके समय जिसमें पिताके वीर्यका भाग अधिक आया हो और मेदका भाग अल्प होय वह मनुष्य कृश होनेपर भी बहुत बलवाला होता है ॥ ५ ॥

अथ सत्यामपि स्थूलतायां बलहीनत्वकारणम् ।

मेदसस्त्वधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको भवेत् । स स्निग्धोऽपि सुपुष्टोऽपि बलहीनो विलोक्यते ॥ ६ ॥ व्याख्यानं पूर्ववत् ।

गर्भाधानके समय जिसमें पिताके वीर्यका भाग अल्प आया हो और मेदका भाग अधिक हो, वह मनुष्य भली भाँति स्निग्ध होनेपर और भली भाँति पुष्ट होनेपर भी बलहीन देखनेमें आते हैं ॥ ६ ॥

अथ कार्श्यचिकित्सा ।

रूक्षान्नादिनिमित्ते तु कृशे युञ्जीत भेषजम् । बृंहणं बलकृद्दृष्यं तथा वाजीकरं च यत् । ॥ ७ ॥ पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा । कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य रूक्ष अन्नपानादिसे कृश हुआ हो उसको बलदायक, धातुओंको पुष्ट करनेवाले, मैथुनमें रुचिकर्ता और वाजीकर औषधि देवे । ८ अथवा एक पक्षतक दूधके साथ, घीके साथ, तैलके साथ, अथवा उष्ण जलके साथही असगंधका चूर्ण पिये तो जिस प्रकार जलकी वृष्टिसे धान्योंकी पुष्टता होती है उसी प्रकार उसके शरीरकी पुष्टता होती है ॥७॥८॥

अथाश्वगंधातैलम् ।

अश्वगन्धस्य कल्केन क्वाथे तस्मिन्पयस्यपि । सिद्धं तैलं कृशाङ्गानामभ्यंगादंगपुष्टिदम्॥९

असगंधके क्वाथमें दूध तथा असगंधकाही कल्क डालकर पकाये हुए तेलसे अभ्यंग करे तो मनुष्यके अंग पुष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अथाश्वगंधाघृतादि ।

पुष्टिकृद्बालरोगोक्तमश्वगन्धाघृतं भजेत् । वाजीकरोदितं तद्वदश्वगन्धाघृतादिकम्१०॥

बालकोंके रोगोंमें जो अश्वगंधाघृत कहेंगे वह तथा वाजीकरणके प्रकरणमें जो अश्वगंधा घृतादि कहेंगे वह सब पुष्टिकारक है ॥ १० ॥

अथासाध्यकृशता ।

स्वभावादतिकार्श्यो यः स्वभावादल्पपावकः । स्वभावाद्बलो यश्च तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ ११ ॥

जो मनुष्य स्वाभाविक रीतिसेही अत्यंत कृश होय, अल्प अग्निवाला होय और निर्बल होय वह असाध्य है उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ११ ॥

इति कार्श्यचिकित्साधिकारः समाप्तः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथोदराधिकारः ।

तत्रोदरनिदानम् ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च । अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात् ॥ १ ॥ अग्नौ मन्दे सर्वे रोगाः जायन्ते । किन्तु सुतराम् अतिशयेन उदराणि जायन्ते । अपरानपि हेतुनाह, अजीर्णात् मलिनैश्चान्नैः अत्यन्तदोषजनकैः । मलसञ्चयात् मलादीनां पुरीषस्य च अतिवृद्धेः । अत्र उदरशब्देन उदरस्थो रोग उच्यते । यत आह—अर्थतो धर्मतः साम्यात्तत्समीपतयापि च । तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा २

यदि जठराग्नि मंद हो गई होय तो सम्पूर्ण रोग होते हैं और उनमें उदरके रोग तो अत्यंत होते हैं । अजीर्णसे, अत्यंत दोष उत्पन्न करनेवाले अन्नोंसे और दोष तथा विष्ठाकी अत्यन्त वृद्धिसेभी उदररोग होते हैं मूलमें केवल उदर शब्द है, परन्तु उस शब्दसे यहाँ उदरमें रहनेवाले रोग जानने, क्योंकि कहा है कि—कहीं अर्थसे, कहीं धर्मसे, तथा उस पदार्थमें रहनेसे, कहीं समीपमें रहनेसे और कहीं साथ रहनेसे, इस भाँति शब्दोंकी वृत्ति चार प्रकारकी मानी जाती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथोदररोगसम्प्राप्तिः ।

रुद्धा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्चितः । प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ ३ ॥

संचय हुए दोष पसीना तथा जलको वहन करनेवाले स्रोतोंको रोककर जठराग्नि, प्राणवायु और अपान वायुको दूषित करके उदरके रोगोंको उत्पन्न करे हैं॥ ३॥

अथोदररोगसामान्यरूपम् ।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाऽग्निता । शोथः सदनमंगानां संगो वातपुरीषयोः । दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥ ४ ॥

अफरा, चलनेमें अशक्तता, दुर्बलता, अग्निकी मंदता, सूजन, अंगोंमें ग्लानि, वायु तथा विष्ठाका अवरोध, दाह और तन्द्रा ये लक्षण सर्व प्रकारके उदररोगोंमें होते हैं ॥ ४ ॥

अथोदररोगनिदानपूर्वकसंख्या ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः । सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक्शृणु ५

वात, पित्त, कफ, तीनों दोष, प्लीहा, गुदाका अवरोध, क्षत और पेटमें पानीकी एकत्रता इनसे आठ प्रकारके उदररोग होते हैं । इन आठ प्रकारके उदररोगोंके अनुक्रमसे वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और जलोदर इस भाँति आठ नाम हैं । इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहते हैं सुनो ॥ ५ ॥

अथ वातोदरलक्षणम् ।

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपन्नाभिकुक्षिषु । कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥ ६ ॥ शुष्ककासोऽगमर्दश्च गुरुता मलसंग्रहः । श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्ध्रासवृद्धिमत् ॥ ७ ॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् । आध्मातद्रतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च । वायुश्चात्र सरुक्छब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः ॥ ८ ॥ कुक्षिपार्श्वोदरेत्यत्र कुक्षिशब्द उदरस्य वामदक्षिणभागद्वयवाची । सर्वतोगतिः सकलकोष्ठे संचरन् ।

वातोदर हुआ होय तो हाथ, पाँव, नाभि तथा पेटमें सूजन होती है, पेटकी दोनों पसलियोंमें, कोखमें, पेट तथा कमर और पीठमें पीडा होती है, संधियें टूटती हैं, सूखी खाँसी होती है तथा अंगोंका टूटना, भारीपन, मलोंका संग्रह, त्वचा आदिमें कालापन तथा लाली, पीडाका अकस्मात् बढना घटना, पेटमें छेदना तथा भेदनकी भाँति पीडा, पेटका काली सूक्ष्म सूक्ष्म नसोंसे व्याप्त होना, पेटको हाथसे बजानेपर फुली मशककासा शब्द हो और सब कोठोंमें वायु विचरता हुआ पीडा तथा शब्द करता है ये लक्षण होते हैं ॥ ६–८ ॥

अथ पित्तोदरलक्षणम् ।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता । भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरित् ॥ ९ ॥ पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते। धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १० ॥ हरित् शाकवर्णात्मकम्। सोष्म अन्तस्तापयुक्तम्। दह्यते बहिर्दाहयुक्तं भवति। धूमायते धूमामिव उद्वमति। क्षिप्रपाकं क्षिप्रपाकाज्जलोदरं जायते। प्रदूयते व्यथते।

पित्तोदर हुआ होय तो ज्वर, मूर्च्छा, दाह, तृषा, मुखमें तीखापन, भ्रम, अतीसार और त्वचा आदिमें पीलापन होता है। पेट शाककी भांति हरे वर्णवाला, पीली तथा लाल नसोंसे बंधे हुएकी समान, पसीने सहित हो, भीतर उष्णतायुक्त हो, बाहर दाह हो और आतोंसे धुआँसा निकलता हो, स्पर्शमें मृदु, पाक शीघ्र होय और पीडायुक्त होता है तथा तुरन्त पक जावे उससे जलोदर हो जाता है ॥९॥१०॥

अथ कफोदरलक्षणम्।

श्लेष्मोदरेऽगसदनं श्वयथुर्गौरवं तथा। तन्द्रोत्क्लेशोऽरुचिः स्वापः कासः शौक्ल्यं त्वगादिषु ॥ ११ ॥ उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत्। शिराभिवृद्धिं कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १२ ॥ गौरवमंगानाम्। तन्द्रा निद्राबाहुल्यम्। उत्क्लेशो हल्लासः। स्वापः स्पर्शाज्ञता। शुक्लराजीततं शुक्लशिराव्याप्तम्।

कफोदर हुआ होय तो अंगोंमें ग्लानि, सूजन, गुरुता, तन्द्रा, उत्क्लेश (वमन होनेवालीसी ज्ञात हो), अरुचि, अंगोंमें स्पर्श करनेसे मालूम न हो, खाँसी, त्वचादिक श्वेत हो, और पेट बँधासा चिकना सफेद नसोंसे व्याप्त, मोटा, अधिक कालमें बढनेवाला, कठोर, स्पर्शमें शीतल, भारी तथा गडगडाहट रहित हो ये लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ सन्निपातोदरलक्षणम्।

स्त्रियोऽन्नपानं नखलोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः। यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाच्च ॥ १३ ॥ तस्याशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सघोरं जठरं त्रिलिंगम्। तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च। ॥ १४ ॥ स चातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च। दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥ स्त्रिय इत्यविवेकिसन्निहितजनोपलक्षणम्। ताश्च स्वसौभाग्यमिच्छन्त्यः। विट् मार्जारादीनाम्। आर्तवं रजः। अरयः शत्रवः। गरान्संयोगजानि विषाणि। दुष्टमम्बु सविषमत्स्यतृणपर्णादियुक्तम्। दूषीविषं विषमेव अग्न्याद्युपघातेन स्वल्पप्रभावम्। यत उक्तम् "जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा। स्वभावतो वा गुणविप्रयुक्तं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥" गुणविप्रयुक्तं गुणवियुक्तं तदुदरं शीतादिषु कुप्यति। तत्र दूषीविषस्य प्रकोपात्। मूर्च्छति विषयोगात्। प्रसक्तं निरन्तरम्। एतदेव सन्निपातोदरं तन्त्रान्तरे दूष्योदरं कीर्तितम्। अथ वा परस्परं दूषयन्ति दोषा एव दूष्याः तैः कृतम् उदरं दूष्योदरम्।

खोटे आचरणयुक्त स्त्री—वशीकरण आदिकी इच्छासे जिस पुरुषको नख, रोम, मूत्र, विष्ठा, आर्तव (रजोदर्शका रक्त) इनसे युक्त किया हुआ अन्न खिलावे उस पुरुषको अन्य भी पाका अविवेकी मनुष्य जिसको ऐसा अन्न खिलावे उसको, शत्रु जिसके संयोगसे विष खिलावे, अथवा विषैली मछली, विषैले पत्ते आदिका पानी जो पिये उसको और दूषित विष (अग्नि आदिसे उपघात होनेके कारण शल्य प्रभावयुक्त विष) जिसके खानेपीनेमें आवे उसके कुपित हुआ रुधिर और कुपित हुए दोष तत्काल त्रिदोषोंके चिह्नयुक्त अति भयंकर उदररोगको उत्पन्न करे हैं। यह उदररोग शीतल पवनके समयमें और जिस समय अधिक बादल घिरे होयँ उस समय विशेष करके कुपित होता है तथा दाह और मूर्च्छित भी कर देता है। क्योंकि इन समयोंमें दूषित विषका प्रकोप होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, तथा विषके योगसे मूर्च्छा होना भी संभव है। यह रोगी मनुष्य नित्य पाण्डु, कृश और तृषासे व्याकुल रहता है। यह उदररोग 'सन्निपातोदर' कहाता है और अन्य ग्रन्थोंमें इसको 'दूष्योदर' इस नामसे भी कहा है। परस्परसे दूषित हुए दोष भी दूष्य कहाते हैं इस कारण दूष्यके किये उदररोगको 'दूष्योदर' भी कहा है। अब प्लीहोदरके लक्षण कहते हैं सुनो ॥ १३--१५ ॥

अथ प्लीहोदरलक्षणम् ।

वर्द्धते प्लीहवृद्ध्या यद्विद्यात्प्लीहोदरं हि तत् । तद्वामे वर्द्धते पार्श्वे निमित्तं तत्र तस्य यत् । ॥ १६ ॥ प्रवृद्धे प्लीह्नि लिंगानि यान्युक्तानि भिषग्वरैः । प्लीहोदरेऽपि दृश्यन्ते तानि सर्वाणि देहिनाम् । प्लीहोदरस्यैव भेदो यकृद्दाल्युदरं तथा ॥ १७ ॥ तस्य पुनरपि विशेषकमिस्याह । सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १८ ॥ यकृद्दालयति दोषैर्भिनत्तीति यकृद्दाल्युदरम् । तदेव उदरमेव ।

प्लीहाके बढनेसें पेट जो बढ जाता है उसको प्लीहोदर कहते हैं, प्लीहा बाँई पसलीमें होती हैं इससे पेटभी वाम ओरका बढता है। उत्तम वैद्योंने प्लीहा बढनेके जो लक्षण कहे हैं वे लक्षण सब प्राणियोंके प्लीहोदर नामक रोगमें भी दीखते हैं। 'यकृद्दाल्युदर' नामक जो उदररोगका एक भेद है वह भी प्लीहोदरकी एक जाती है। प्लीहोदरसे यकृद्दाल्युदरमें पृथक्ता इतनीही है कि जो दाहिनी ओरकी गांठ है वह 'यकृत्' कहाती है, उसके बढनेसे दाहिनी ओरका पेट बढ जाता है, उसको 'यकृद्दाल्युदर' कहते हैं। इस रोगमें दोषोंके कारण यकृत् भिद जाता है इस लिये इस रोगका नाम यकृद्दाल्युदर है ॥ १६--१८ ॥

अथ बद्धगुदोदरलक्षणम् ।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् । सञ्चीयते तस्य मलः सदोषः शनैःशनैः संकरवच्च नाड्याम् । ॥ १९ ॥ निरुध्यते यस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् । हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति । ॥ २० ॥ उपलेपिभिः शाकशालुकादिभिः । बालाश्मभिः वालुकाभिः शर्करैर्वा यथावत्तस्य सम्भवति । मलः पुरीषं संकरवत्संमार्जनीक्षिप्ततृणधूल्यादिवत् । नाड्याम् अन्त्रनाड्याम् । हृन्नाभिमध्ये हृन्नाभ्योर्मध्ये ।

अन्न, शाक तथा कमलकन्द आदि चिपटनेवाले पदार्थोंसे रेत अथवा पथरीसे आँतें अत्यंत ढक जायँ जिस प्रकार बुहरी आदिसे बुहारा हुआ कूडा (तृण धूल आदि) बढता है उसी प्रकार दोषयुक्त मल आँतोंकी नाडीमें एकत्र हो जाय, गुदामें विष्ठा रुक जाय, धीरे धीरे थोडी थोडी विष्ठा निकले और हृदय तथा नाभिके मध्यमें पेटकी वृद्धि होय यह बद्धगुदोदर कहाता है ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ क्षतोदरलक्षणम् ।

शल्यं तथान्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा । तस्मात्स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥ २१ ॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् । एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं क्षतोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ २२ ॥ शल्यं कण्टकशर्करादि । अन्नोपहितं भुक्तं यदन्त्रं भिनत्ति । तथा अन्यथा आगतं भोजनं विना आगतम् । शरादितरथापि यदन्त्रं भिनत्ति तत उपलक्षणम् । जृम्भणमत्यशनं वा यदन्त्रं भिनत्ति । यत उक्तं चरके—शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः । भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तं जृम्भणात्यशनेन चेत् । ॥ २३ ॥ तस्माद्भिन्नादन्त्रात् । गुदतस्तु भूयः अन्त्रात् संसृत्य पुनर्गुदतः स्रवेदित्यर्थः । दाल्यति विदार्यत एव । पदसिद्धिरार्षत्वात् । एतत् क्षतोदरं तन्त्रान्तरे परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं कथितम् ।

अन्नके साथ खाया हुआ अथवा किसी अन्य प्रकारसे पेटमें गया काँटा आदि आँतोंमें छिलकर उन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आँतोंमेंसे पानीकी सदृश पीछे गुदासे स्रवे और नाभिसे नीचेके भागमें पेट बढ जाय, सुई छेदनेकेसी पीडा हो और चीरनेकी सदृश ज्ञात हो इसको क्षतोदर कहते हैं । इस क्षतोदरकोही अन्यग्रंथोंमें 'परिस्राव्युदर' इस नामसे कहा है । जँभाई आनेसे अथवा अल्प भोजन करनेसे आँतें छिदें और आँतोंमेंसे पानीकी सदृश स्राव हो तथा वह स्राव पीछे गुदामेंसे निकले, यह भी क्षतोदर ही कहाता है, क्योंकि चरकमें कहा है कि, "रेता, तृण, काष्ठ, हड्डी अथवा काँटा अन्नके साथ पेटमें जानेसे अथवा जम्भाई आनेसे, वा अल्प भोजन करनेसे आँतें छिदकर आँतोंमेंसे निकला स्राव पीछे गुदामेंसे स्रवे उसको क्षतोदर कहते हैं" ॥ २१–२३ ॥

अथोदकोदरलक्षणम् ।

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथ वा निरूढः । पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यंति हि तद्वहानि । ॥ २४ ॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथ वापि तेषूदकोदरं पूर्ववदभ्युपैति । स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि समन्ततः पूर्णमिवाम्बुना च । यथा द्रतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते वाप्युदकोदरं तत् ॥ २५ ॥ स्नेहपीतः पीत इत्यत्राध्यवसितादित्वात् कर्तरि क्तः । स्नेहपीत इति पुनरार्षप्रयोगः । तेन स्नेहं पीतवानित्यर्थः । अनुवासितो वा गृहीतानुवासनवस्तिः । वान्तः अत्रापि पूर्ववत् कर्तरि क्तः । तेन वान्तवानित्यर्थः । एवं विरिक्तः विरिक्तवान् । तथा निरूढः गृहीतनिरूढवस्तिः । स चेदाशु शीतलं जलं पिबेत् । तस्य तद्वहानि जलवहानि स्रोतांसि दूष्यन्ति जलवहेषु स्रोतःसु दुष्टेषु सत्सु । अन्नरसे उपस्नेहन्यायेन बहिर्निःसृतोदकोदरमायाति । तथापि जले बहिर्निःसृते उदकोदरमायाति तदुदरम् परिवृत्तनाभि गम्भीरनाभि समन्ततः जलमपयाति सर्वतः यथा द्रतिः चर्ममयं जलाहरणपात्रं क्षुभ्यति । अन्तर्जलदोलनेन संचलति । कम्पते बहिः शब्दायते कम्पमानं सत् शब्दं करोति ।

स्नेहपान, अनुवासनवस्ति, वमन, विरेचन, अथवा निरूहवस्ति लेकर जो मनुष्य तुरन्त शीतल जल पिये, उसके जलको वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं और वह स्रोत (मार्ग) दूषित होनेपर जलयुक्त पकाये हुए अन्नमें सूक्ष्म घीकी सदृश बाहर निकलकर पेटमें आते हैं, तथा पेटमें आकर गुदामेंसे बाहर निकलने लगते हैं, इसको उदकोदर कहते हैं । इससे पेट नाभिसे ऊँचा, चारों ओर जलसे पूर्ण हुआ होता है, भीतरका जल चलनेसे पानीकी भरी मशककी भांति क्षोभ करता है, बाहर हिलता है और हिलनेसे शब्दभी होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथोदररोगसाध्यासाध्यता ।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् । बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ २६ ॥ बलिनः अजाताम्बु नवोत्थितं च यत्नसाध्यमित्यन्वयः । पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा । प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥ २७ ॥ शरादिना छिद्रमन्त्रं यस्य तदुदरम् अभाक्काय भवति । पयःपूर्णा द्रतिरिव क्षोभे शब्दकरं मृदु । अप्रव्यक्तशिराशून्यं नीरार्तमुदरं महत् ॥ २८ ॥ आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहुशकृद्धुतम् । जातोदकस्य लिंगं स्यान्मन्दाग्निः पांडुतापि च ॥ २९ ॥ शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् । बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ ३० ॥ कुटिलोपस्थं वक्रमेहनम् । उपक्लिन्नतनुत्वचम् उपरि आर्द्रा तन्वी त्वक् यस्य तं उदरिणं विवर्जयेत् । पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् । विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ ३१ ॥ विरिक्तमपि पूर्यमाणं पूर्यमाणोदरम् उदरिणं विवर्जयेत् ।

अधिक करके ऊपर कहे सब प्रकारके उदररोग कष्टसाध्यही होते हैं । रोगी बलवान् हो, उदरमें जल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, तथा विषके योगसे मूर्च्छा होना भी संभव है। यह रोगी मनुष्य नित्य पाण्डु, कृश और तृषासे व्याकुल रहता है। यह उदररोग 'सन्निपातोदर' कहाता है और अन्य ग्रन्थोंमें इसको 'दूष्योदर' इस नामसे भी कहा है। परस्परसे दूषित हुए दोष भी दूष्य कहाते हैं इस कारण दूष्यके किये उदररोगको 'दूष्योदर' भी कहा है। अब प्लीहोदरके लक्षण कहते हैं सुनो ॥ १३--१५ ॥

अथ प्लीहोदरलक्षणम् ।

वर्द्धते प्लीहवृद्ध्या यद्विद्यात्प्लीहोदरं हि तद् । तद्वामे वर्द्धते पार्श्वे निमित्तं तत्र तस्य यत् । ॥ १६ ॥ प्रवृद्धे प्लीहि लिंगानि यान्युक्तानि भिषग्वरैः । प्लीहोदरेऽपि दृश्यन्ते तानि सर्वाणि देहिनाम् । प्लीहोदरस्यैव भेदो यकृद्दाल्युदरं तथा ॥ १७ ॥ तस्य पुनरपि विशेषकमिष्याह । सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १८ ॥ यकृद्दालयति दोषैर्भिनत्तीति यकृद्दाल्युदरम् । तदेव उदरमेव ।

प्लीहाके बढनेसे पेट जो बढ जाता है उसको प्लीहोदर कहते हैं, प्लीहा बाँई पसलीमें होती हैं इससे पेटभी वाम ओरका बढता है। उत्तम वैद्योंने प्लीहा बढनेके जो लक्षण कहे हैं वे लक्षण सब प्राणियोंके प्लीहोदर नामक रोगमें भी दीखते हैं। 'यकृद्दाल्युदर' नामक जो उदररोगका एक भेद है वह भी प्लीहोदरकी एक जाती है। प्लीहोदरसे यकृद्दाल्युदरमें पृथक्ता इतनीही है कि जो दाहिनी ओरकी गांठ है वह 'यकृत्' कहाती है, उसके बढनेसे दाहिनी ओरका पेट बढ जाता है, उसको 'यकृद्दाल्युदर' कहते हैं। इस रोगमें दोषोंके कारण यकृत् भिद जाता है इस लिये इस रोगका नाम यकृद्दाल्युदर है ॥ १६--१८ ॥

अथ बद्धगुदोदरलक्षणम् ।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् । सञ्चीयते तस्य मलः सदोषः शनैःशनैः संकरवच्च नाड्याम् । ॥ १९ ॥ निरुध्यते यस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् । हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति । ॥ २० ॥ उपलेपिभिः शाकशाल्लुकादिभिः । बालाश्मभिः वालुकाभिः शर्करैर्वा यथावत्तस्य सम्भवति । मलः पुरीषं संकरवत्संमार्जनीक्षिप्ततृणधूल्यादिवत् । नाड्याम् अन्त्रनाड्याम् । हृन्नाभिमध्ये हृन्नाभ्योर्मध्ये ।

अन्न, शाक तथा कमलकन्द आदि चिपटनेवाले पदार्थोंसे रेत अथवा पथरीसे आँतें अत्यंत ढक जायँ जिस प्रकार बुहरी आदिसे बुहारा हुआ कूडा (तृण धूल आदि) बढता है उसी प्रकार दोषयुक्त मल आँतोंकी नाडीमें एकत्र हो जाय, गुदामें विष्ठा रुक जाय, धीरे धीरे थोडी थोडी विष्ठा निकले और हृदय तथा नाभिके मध्यमें पेटकी वृद्धि होय यह बद्धगुदोदर कहाता है ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ क्षतोदरलक्षणम् ।

शल्यं तथान्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा । तस्मात्स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥ २१ ॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् । एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं क्षतोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ २२ ॥ शल्यं कण्टकशर्करादि । अन्नोपहितं भुक्तं यदन्त्रं भिनत्ति । तथा अन्यथा आगतं भोजनं विना आगतम् । शरादितरथापि यदन्त्रं भिनत्ति तत उपलक्षणम् । जृम्भणमत्यशनं वा यदन्त्रं भिनत्ति । यत उक्तं चरके—शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्त्रसंयुतैः । भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तं जृम्भणात्यशनेन चेत् । ॥ २३ ॥ तस्माद्भिन्नादन्त्रात् । गुदतस्तु भूयः अन्त्रात् संसृत्य पुनर्गुदतः स्रवेदित्यर्थः । दाल्यति विदार्यत एव । पदसिद्धिरार्षत्वात् । एतत् क्षतोदरं तन्त्रान्तरे परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं कथितम् ।

अन्नके साथ खाया हुआ अथवा किसी अन्य प्रकारसे पेटमें गया काँटा आदि आँतोंमें छिलकर उन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आँतोंमेंसे पानीकी सदृश पीछे गुदासे स्रवे और नाभिसे नीचेके भागमें पेट बढ जाय, सुई छेदनेकेसी पीडा हो और चीरनेकी सदृश ज्ञात हो इसको क्षतोदर कहते हैं । इस क्षतोदरकोही अन्यग्रंथोंमें 'परिस्राव्युदर' इस नामसे कहा है । जँभाई आनेसे अथवा अल्प भोजन करनेसे आँतें छिदें और आँतोंमेंसे पानीकी सदृश स्राव हो तथा वह स्राव पीछे गुदामेंसे निकले, यह भी क्षतोदर ही कहाता है, क्योंकि चरकमें कहा है कि, "रेता, तृण, काष्ठ, हड्डी अथवा काँटा अन्नके साथ पेटमें जानेसे अथवा जम्भाई आनेसे, वा अल्प भोजन करनेसे आँतें छिदकर आँतोंमेंसे निकला स्राव पीछे गुदामेंसे स्रवे उसको क्षतोदर कहते हैं" ॥ २१–२३ ॥

अथोदकोदरलक्षणम् ।

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथ वा निरूढः । पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यंति हि तद्वहानि । ॥ २४ ॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथ वापि तेषूदकोदरं पूर्ववदभ्युपैति । स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि समन्ततः पूर्णमिवाम्बुना च । यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते वाप्युदकोदरं तत् ॥ २५ ॥ स्नेहपीतः पीत इत्यत्राध्यवसितादित्वात् कर्तरि क्तः । स्नेहपीत इति पुनरार्षप्रयोगः । तेन स्नेहं पीतवानित्यर्थः । अनुवासितो वा गृहीतानुवासनवस्तिः । वान्तः अत्रापि पूर्ववत् कर्तरि क्तः । तेन वान्तवानित्यर्थः । एवं विरिक्तः विरिक्तवान् । तथा निरूढः गृहीतनिरूढवस्तिः । स चेदाशु शीतलं जलं पिबेत् । तस्य तद्वहानि जलवहानि स्रोतांसि दूष्यन्ति जलवहेषु स्रोतःसु दुष्टेषु सत्सु । अन्नरसे उपस्नेहन्यायेन बहिर्निःसृतोदकोदरमायाति । तथापि जले बहिर्निःसृते उदकोदरमायाति तदुदरम् परिवृत्तनाभि गम्भीरनाभि समन्ततः जलमपयाति सर्वतः यथा दृतिः चर्ममयं जलाहरणपात्रं क्षुभ्यति । अन्तर्जलदोलनेन संचलति । कम्पते बहिः शब्दायते कम्पमानं सत् शब्दं करोति ।

स्नेहपान, अनुवासनवस्ति, वमन, विरेचन, अथवा निरूहवस्ति लेकर जो मनुष्य तुरन्त शीतल जल पिये, उसके जलको वहन करनेवाले स्रोत दूषित होते हैं और वह स्रोत (मार्ग) दूषित होनेपर जलयुक्त पकाये हुए अन्नमें सूक्ष्म घीकी सदृश बाहर निकलकर पेटमें आते हैं, तथा पेटमें आकर गुदामेंसे बाहर निकलने लगते हैं, इसको उदकोदर कहते हैं । इससे पेट नाभिसे ऊँचा, चारों ओर जलसे पूर्ण हुआ होता है, भीतरका जल चलनेसे पानीकी भरी मशककी भांति क्षोभ करता है, बाहर हिलता है और हिलनेसे शब्दभी होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथोदररोगसाध्यासाध्यता ।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् । बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ २६ ॥ बलिनः अजाताम्बु नवोत्थितं च यत्नसाध्यमित्यन्वयः । पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा । प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥ २७ ॥ शरादिना छिद्रमन्त्रं यस्य तदुदरम् अभावाय भवति । पयःपूर्णा दृतिरिव क्षोभे शब्दकरं मृदु । अप्रव्यक्तशिराशून्यं नीरार्तमुदरं महत् ॥ २८ ॥ आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहुशकृद्धृतम् । जातोदकस्य लिंगं स्यान्मन्दाग्निः पांडुतापि च ॥ २९ ॥ शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् । बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ ३० ॥ कुटिलोपस्थं वक्रमेहनम् । उपक्लिन्नतनुत्वचम् उपरि आर्द्रा तन्वी त्वक् यस्य तं उदरिणं विवर्जयेत् । पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् । विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ ३१ ॥ विरिक्तमपि पूर्यमाणं पूर्यमाणोदरम् उदरिणं विवर्जयेत् ।

अधिक करके ऊपर कहे सब प्रकारके उदररोग कष्टसाध्यही होते हैं । रोगी बलवान् हो, उदरमें जल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न नहीं हुआ हो और तत्कालका उत्पन्न हुआ रोग होय वह यत्न करनेसे सिद्ध होता है । बद्धगुद-नामक उदररोग एक पक्षसे अधिकका होनेपर विशेष करके मृत्यु कर देता है । कांटे आदिसे आंतमें छिद्र हो गया होय तो वह उदररोगभी अधिक करके मारही डालता है । पेटमें पानी उत्पन्न हुआ जिन लक्षणोंसे जाना जाय वे लक्षण चरक कहता है- " जो पेट बडा हो गया हो, क्षोभ पानेपर पानीसे परिपूर्ण मशककी सदृश शब्द करता होय, मृदु होय, बहुत मोटा होनेके कारण अस्फुट शिराओंवाला होय तो जानना कि इसमें पानी उत्पन्न हो गया है । आलस्य, मुखकी विरसता, मूत्रकी अधिकता, विष्ठाका द्रवीभूत (पतला) होना, अग्निकी मन्दता और शरीरकी पाण्डुता ये होयँ तोभी जानना कि पेटमें पानी उत्पन्न हो गया है । " जिस उदररोगीके नेत्र सूज गये हों, लिंग टेढा हो गया हो, त्वचा पतली तथा गीली हो गई हो और बल, रुधिर, मांस, तथा अग्नि क्षीण हो गई हो, उसकी चिकित्सा नहीं करे । जिस उदररोगीकी पसली भंग हो गई (टूट गई) हों तथा जिसकी अन्नमें अरुचि हो, सूजन तथा दस्त होते हों और विरेचन देनेपर भी पेट पूर्ण हो गया हो उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ २६-३१ ॥

अथोदररोगचिकित्सा ।

ऐरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तं त्रिफलारसो वा । निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ ३२ ॥

अण्डीका तेल, दशमूलका क्वाथ मिलाकर अथवा गोमूत्र, त्रिफलेका रस मिलाकर वा दशमूलके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर पिये तो इससे वायुसम्बन्धी उदररोग सूजन तथा शूल नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

अथ कुष्ठादिचूर्णम् ।

कुष्ठं दन्ती यवक्षारो व्योषं त्रिलवणं वचा । अजाजी दीप्यकं हिंगु स्वर्जिका चव्यचित्रकम् । शुण्ठी चोष्णाम्भसा पीता वातोदररुजापहा ॥ ३३ ॥

कूठ, दन्ती (जमालगोटेकी जड), जवाखार, सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधा, सांभर, सोंचलनोन, वच, जीरा, अजवायन, हींग, सज्जी, चव, चीता और सोंठ इनका चूर्ण कर उष्ण जलसे पिये तो वायुसंबंधी उदररोग नष्ट होता है, इसको 'कुष्ठादि चूर्ण' कहते हैं ॥ ३३ ॥

अथ लशुनतैलम् ।

लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपाचयेत् । त्रिकटु त्रिफला दन्ती हिंगु सैन्धवचित्रकम् ॥ ३४ ॥ देवदारु वचा कुष्ठं मधु शिग्रुः पुनर्नवा । सौवर्चलं विडंगानि दीप्यको गजपिप्पली ॥ ३५ ॥ एतेषां पलिकान्भागांस्त्रिवृतः षट्पलानि च । पिष्ट्वा कषायेणानेन तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३६ ॥ तत्पिबेत्प्रातरुत्थाय यथाग्निबलमात्रया । निहन्ति सकलान्रोगानुदराणि विशेषतः ॥ ३७ ॥ मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् । पार्श्वकुक्षिभवं शूलमामशूलमरोचकम् ॥ ३८ ॥ यकृदष्ठीलिकानाहान्प्लीहानं चांगवेदनाम् । मासमात्रेण नश्यन्ति अशीतिर्वातजा गदाः ॥ ३९ ॥

एक तुला (चार सौ तोले) लहसनका एक द्राण (१०२४ तोले) जलमें क्वाथ करे, पश्चात् सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दन्ती, हींग, सेंधा, चीता, देवदार, वच, कूठ, मुलेठी, सहँजना, पुनर्नवा, सोंचलनोन, वायविडंग, अजवायन तथा गजपीपल ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोलेभर और निसोत २४ तोले लेकर पीस लेवे, यह कल्क उस क्वाथमें डालकर कोमल अग्निसे तेल पकावे । प्रातःकाल उठकर अग्नि तथा बलानुसार योग्य मात्रासे यह तेल पिये तो इससे सब रोग नष्ट होते हैं और उदररोग विशेष करके दूर होते हैं । मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाकी कृमि, पसली तथा कोखका शूल, आमशूल, अरुचि, यकृत्, अष्ठीलिका, आनाह, प्लीहा और अंगमें हुई पीडा इस तेलके प्रयोगसे नष्ट होती है । तथा वायुसम्बन्धी अस्सी प्रकारके वायुरोग एक महीनेतक इस तेलका सेवन करनेसे नष्ट होते हैं, इसको 'लशुनतैल' कहते हैं ॥ ३४-३९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पित्तोदरकफोदरचिकित्सा।

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत्। पयसा च त्रिवृत्कल्कै रुबूकस्य श्रृतेन च ॥ ४० ॥ पिप्पल्यादिगणेनाज्यं पाचितं पाययेद्भिषक्। नरं पथ्यभुजं नित्यं कफोदरनिवृत्तये ॥ ४१ ॥ नागरत्रिफलाकल्कैर्दध्यम्बुपरिपेषितैः। पाचितं तैलमाज्यं वा पिबेत्सर्वोदरेषु च ॥ ४२ ॥ शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम्। निरूहो रेचनं श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥ ४३ ॥ आनूपमौदकं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलाः। व्यायामाध्वदिवास्वप्नस्नेहपानानि वर्जयेत् ॥ ४४ ॥ तथोग्रलवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च। नाद्यादन्नानि जठरे तोयपानं च वर्जयेत् ॥ ४५ ॥ मूलाढ्यत्वा- [illegible] हितम्। क्षीर- [illegible] पेरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वा शकृत् ॥ ४ [illegible] वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम्। शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ ४७ ॥ यवानीहपुषाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी। सन्निपातोदरी युक्तं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥ ४८ ॥

पित्तसंबंधी उदररोग हुआ होय और रोगी बलवान् हो तो उसको प्रथमही दूध, निसोतका कल्क और अंडीका क्वाथ इनसे विरेचन देवे। और यदि उदररोग कफसे हुआ होय तो रोग नष्ट करनेके लिये नित्य पथ्य खानेका रोगी नियम रक्खे। वैद्य पिप्पली आदि गणकी औषधियोंसे पकाया हुआ तेल पिलावे। सोंठ, हरड, बहेडा तथा आमला इनको दहीके पानीमें पीस कल्क करे, फिर उस कल्कसे पकाया हुआ तेल अथवा घी पिलावे तो सर्वप्रकारके उदररोग नष्ट हो जाते हैं। ये नागरादि तेल वा घृत इन सबोंसे कहे हैं। शालिचावल, सांठीके चावल, गेहूँ, जौ तथा नीवार इनका भोजन, निरूहवस्ति और विरेचन ये सब विधि उदररोगोंमें हितकारी हैं। अथवा उदररोगी अनूप देशके जीवोंका तथा जलजंतुओंका मांस, शाक, पिट्ठीसे बने पदार्थ, तिल, व्यायाम (कसरत), मार्गका चलना, दिनमें सोना और स्नेहपान इनका त्याग करे। उदररोग हुआ होय तो उग्र (तीक्ष्ण), खारी, गरम, दाहकारक और भारी पदार्थ नहीं खाय तथा पानीभी नहीं पिये। इस रोगमें पेट अधिक मलके समूहसे युक्त रहता है इस कारण अधिक बार विरेचनसे शुद्ध करे यह हितकारी होता है। दूधमें अण्डीका तेल मिलाकर पिये अथवा गायका गोबर मूत्रमें डालकर पिये। वायुसे हुआ उदररोगी पीपल तथा सेंधा इनका चूर्ण डालकर गाढा तक्र (मट्ठा) पिये, पित्तसे हुआ उदररोगी बूरा तथा मिरचोंको डालकर मीठा मट्ठा पिये और कफसे हुआ उदररोगी अजवायन, हाऊबेर, जीरा, सोंठ, मिरच तथा पीपल इनका चूर्ण डालकर गाढा मट्ठा पिये और त्रिदोष (सन्निपात) से हुआ उदररोगी सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और सेंधानिमक इनका चूर्ण डालकर गाढा मट्ठा पिये ॥ ४०–४८ ॥

अथ नारायणचूर्णम्।

[illegible] धान्यं त्रिफला चोपकुञ्चिका। कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा [illegible] ॥ ४९ ॥ उपकुञ्चिका कारवी च बृहज्जीरकः मगरैला इति लोके। शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी च चित्रकम्। द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ५० ॥ विडंगं च समांशानि दन्त्या भागत्रयं भवेत्। त्रिवृद्विशाला द्विगुणा शातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ ५१ ॥ विशाला इन्द्रवारुणी। शातला सेहुण्ड इति प्रसिद्धः। एष नारायणो नाम्ना चूर्णो रोगगणापहः। एनं प्राप्य निवर्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ ५२ ॥ तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना। आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ५३ ॥ दधिमण्डेन विड्भेदे दाडिमाम्बुभिरर्शसि। परिकर्तिषु वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ ५४ ॥ परिकर्तिः गुदे परिकर्तनवत्पीडा। भगन्दरे पाण्डुराग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कासे श्वासे गलग्रहे। हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुब्जे मन्देऽनले ज्वरे ॥ ५५ ॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे । यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ५६ ॥

अजवायन, हाऊबेर, धनियाँ, हरड, बहेडा, आमला, कालाजीरा, कलौंजी, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, वच, सतावर, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, चोक, चीता, जवाखार, सज्जी, पोहकरमूल, कूठ, पाँचों नोन और वायविडंग इनको समान भाग लेवे तथा दन्ती (जमालगोटेकी जड) तीन भाग, निसोत दो भाग, इन्द्रायन दो भाग और थूहर चार भाग लेवे, फिर इन सबका चूर्ण करे तो 'नारायण चूर्ण' बनता है। यह चूर्ण रोगोंके समूहको नष्ट करता है, जिस प्रकार विष्णुके प्रभावसे दैत्य भाग जाते हैं, उसी प्रकार इस चूर्णके प्रभावसे रोग भाग जाते हैं। यह चूर्ण उदररोगवाले गाढे मट्ठेके साथ पियें, गुल्मरोगी बेरकी छालके क्वाथसे पिये, आनाहरोगमें मदिराके साथ पिये, वायु रोगवाले मदिराकी कांजीके साथ पिये, दस्तोंमें दहीके मंडसे पिये, ववासीररोगवाला दाडिमके रससे पिये [illegible] कतरन [illegible] हाय तो तितडीकसे पिये। और अजीर्णरोगी गरम पानीके साथ पिये। भगंदर, पाण्डुरोग, खांसी, श्वास, गलगण्ड, हृदयरोग ग्रहणीरोग, कुब्जवात रोग, मंदाग्नि, ज्वर, दांतका विष, मूलका विष और अकृत्रिम विषसे बनाये हुए विष, इनमें भी प्रथम कोठेको स्निग्ध करके पश्चात् योग्य पदार्थके साथ यह विरेचन करनेवाला नारायण चूर्ण पिये ॥४९-५६॥

अथ नाराचघृतम्।

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडंगसिंहीत्रिवृच्चित्रककर्षकर्षम्। घृतं विपक्वं कुडवप्रमाणं तोयेन तस्याक्षमथार्द्धकर्षम् ॥ ५७ ॥ पीत्वोष्णमम्भोऽनुपिबेद्विरेके पेयां रसं वा प्रपिबेद्विधिज्ञः । नाराचमेतज्जठरामयानां युक्त्योपयुक्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ५८ ॥

थूहरका दूध, दन्ती, हरड, बहेडा, आमला, वायविडंग, कटेरीकी जड, निसोत और चीता ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोलाभर ले, उनके कल्कसे सोलह तोले घी पकावे, तो 'नाराचघृत' सिद्ध होता है। विरेचनके लिये पानीके साथ एक तोला अथवा आधा तोला घी पीकर ऊपरसे गरम पानी पिये। विधि जाननेवाला पुरुष इस घीसे विरेचन होनेपर योग्य पेया अथवा योग्य रस पिये। जिस प्रकार बाण निशानको तोडता है तिसी प्रकार युक्तिसे उपयोगमें लाया हुआ यह घी उदरके रोगोंको नष्ट कर देता है ऐसा वैद्य कहते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ वज्रकल्कः।

वज्रायाः कर्षमात्रायाः कल्कं दध्यादिवेष्टितम् । निगिलेद्वारिणा नित्यमुदरव्याधिशान्तये ॥ ५९ ॥ वज्राण्डीति वनसूरणेति लोके।

वनसूरणका एक तोला कल्क करके उस कल्कको दही वगैरहसे मिलाकर नित्य पानीसे खावे तो उदररोग शांत होते हैं ॥ ५९ ॥

अथ पुनर्नवादिक्वाथः।

पुनर्नवा [illegible] दारुनिशा सो[illegible] [illegible]यापि- चुम [illegible]वांमुस्ताः। सनागरच्छिन्नरुहेति स[illegible] कृतः कषायो विधिना विधिज्ञैः ॥ ६० ॥ गोमूत्रयुग्गुग्गुलुना च युक्तः पीतः प्रभाते नियतं नराणाम् । सर्वांगशोथोदरपाण्डुशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ६१ ॥ पुनर्नवादिः क्वाथः।

पुनर्नवा, दारुहलदी, कुटकी, परवल, हरड, नीम, मोथा, सोंठ और गिलोय इन सब पदार्थोंको एकत्र करके विधिके अनुसार क्वाथ करे, उस क्वाथमें गोमूत्र तथा गूगल डालकर प्रातःकाल पिये तो इससे सब प्रकारके अंगकी सूजन, उदररोग, पाण्डुरोग, शूलरोग और श्वास आदि रोगोंका समूह अवश्य नष्ट होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति उदररोगाधिकारः संपूर्णः।

अथ शोथाधिकारः।

तत्र शोथनिदानम्।

शुद्ध्यामयाभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा । दध्याममृच्छाकविरो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ १ ॥ अशौंस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मर्माभिघातो विषमा प्रसूतिः । मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥ २ ॥ शुद्धिः वमनविरेकादिः आमयाः पांडुरोगादयः । अभक्तम् अभोजनम् । आमः सपक्को भुक्तस्य रसः । पिष्टगरोपसृष्टान्नम् पिष्टो यो गरः संयोगजं विष तेन संसृष्टमन्नम् । वपुषो ह्यशुद्धिः शोधनार्हस्य वपुषोऽशोधनम् । मर्मोपघातः दोषकृत् एव ज्ञेयः । बाह्यहेतुकृतस्तु मर्मोपघात आगन्तुजशोथहेतुरेव । विषमा प्रसूतिः आमगर्भपतनादिका । प्रतिकर्मणां वमनादिपञ्चकर्मणाम् । मिथ्योपचारः असम्यक्करणम् । श्वयथोः शोथस्य । निजस्य आत्मीयस्य सन्निकृष्टस्य हेतुर्वाताद्यात्मकस्य उक्तः ।

वमन, विरेचन आदि शोधनसे, पाण्डुरोगादि रोगोंसे अथवा उपवासोंसे कृश हुए अथवा निर्बल हुए लोगोंके सूजन होती है । खारी, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण अथवा भारी पदार्थोंको सेवन करनेसे भी सूजन होती है । दहीके सेवनसे, खाये हुए अन्नके अपक्करससे, मट्ठी, शाक परस्परमें विरुद्ध अथवा संयोगसे विरुद्ध हुए ऐसे अन्नोंके सेवनसे, बवासीरसे, शरीरको परिश्रम नहीं होनेसे, शोधनके योग्य हुए शरीरको वमन विरेचनादि देकर शुद्ध नहीं करनेसे, दोषोंसे हुए मर्मस्थलोंके उपघातसे, कच्चा गर्भ गिरना आदि विषम प्रसवसे और वमन आदि पाँचों कर्म अयोग्य रीतिके होनेसे, वायु आदि दोषसंबंधी सूजन उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शोथस्य सम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिः शिराः । नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् । उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥ ३ ॥ सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम् । सलोमहर्षं च विवर्णता च सामान्यलिंगं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ४ ॥ उत्सेधम् उन्नतत्वम् । किंविशिष्टम् उत्सेधम् । अतः पूर्वोक्तान्निचयाद्रक्तपित्तकफवातानां समुदायात् संहतं घनम् । तमुत्सेधं शोथमाहुरित्यन्वयः । तस्य शोथस्य किं स्यात् । इत्याकांक्षायामाह अनवस्थितत्वं स्यात्, अनियता स्थितिः स्यादित्यर्थः । चिकित्साव्यतिरेकेणापि निर्वृत्तेः । तच्च अनवस्थितत्वं सगौरवं स्यात् । गौरवमपि अनवस्थितं स्यात् । अथ च सोत्सेधं स्यात् । उन्नतत्वमपि अनवस्थितं स्यादित्यर्थः ।

दूषित वायु रुधिर, पित्त तथा कफ यह बाहरकी शिराओंमें प्राप्त होय और गति रुक जाय तो त्वचा तथा मांसमें रुधिर, पित्त तथा कफके समुदायसे अधिक ऊँचाईको उत्पन्न करे है उसको सूजन कहते हैं, इस सूजनकी स्थिति अनियमित होती है, क्योंकि वह सूजन समयपर चिकित्सा न होनेसें भी उतर जाती है, यह अनियमितपन गुरुतायुक्त होता है, गुरुता (भारीपन) भी विना नियमके होती है और सूजनकी ऊँचाई भी विना व्यवस्थाके होती है । सूजनसे उष्णता, शिराओंकी दुर्बलता, रोमोंका खडा होना और वर्णका बदलना ये सामान्य लक्षण सूजनमें होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वातजशोथलक्षणम् ।

चरस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः प्रसुप्तिहर्षार्त्तियुतोऽनिमित्ततः । प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवाबली स्याच्छ्वयथुः समीरणात् ॥ ५ ॥ चरः सञ्चारी । प्रसुप्तिः स्पर्शज्ञता । हर्षोऽत्र फिनिफिनी रोमाञ्चो वा । आर्त्तिः पीडा । एतद्युतः दिवाबली विकृतिविषमसमवायारब्धत्वात् । अत एव उक्तं चरकेण—स्नेहोष्णवमनाद्यैर्यः प्रशाम्येत स वातिकः । यश्चाप्यरुणवर्णः स्याच्छोथो नक्तं प्रशाम्यति ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वायुसंबंधी सूजन-चंचल, पतली त्वचावाली, कठोर, लाल, काली, स्पर्शमें अज्ञान, रोमांच तथा पीडासहित, विना कारणही शांत होनेवाली, दबानेसे ऊँची और दिनमें बलवान् होती है। इस सूजनमें दिनको बलवान् होनेका कारण यह है कि, वह विकृतिविषमसमवायसे होती है, इस कारणही चरकमें कहा है कि "जो सूजन स्नेहसे, उष्णसे तथा वमन आदिसे शांत होय और लाल वर्णकी हो वह सूजन वायुसंबंधी जाननी" ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ पित्तजशोथलक्षणम् ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः । यस्तूष्यते स्पर्शसहोऽक्षिरागवान्स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् । ॥ ७ ॥ उष्यते सन्तप्यते । भृशदाहपाकवान् भृशं दाहो यः पाकस्तद्युक्तः ।

जो सूजन-मृदु, गन्धसहित, काले तथा पीले वर्णवाली हो, भ्रम, ज्वर, स्वेद (पसीना), तृष्णा, तथा मदसे संयुक्त हो, दाह हो, स्पर्शको सहे, नेत्रोंमें लाली हो जाय और पकते समय अत्यंत दाह हो उसको पित्त संबंधी जानना ॥ ७ ॥

अथ कफजशोथलक्षणम् ।

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् । सकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ८ ॥

जो सूजन भारी, स्थिर, पाण्डु वर्णवाली होय, अरुचि, लारका झरना, निद्रा तथा वमनसे युक्त हो, अग्निको मंद करनेवाली हो, दबानेसे ऊँची न होती हो, रातमें बलवान् हो और जिसकी उत्पत्ति तथा शांति बहुत दुःखदायक हो उसको कफसंबंधी जानना ॥ ८ ॥

अथ द्विदोषजशोथलक्षणम् ।

निदानाकृतिसंसर्गाज्ज्ञेयः शोथो द्विदोषजः ॥ ९ ॥

जिसमें दो प्रकारके कारण दीखे और उपरोक्त प्रकारोंमें दोके लक्षण मिलते होयँ तो वह सूजन दो दोषोंसे उत्पन्न हुई जाननी ॥ ९ ॥

अथ सन्निपातजशोथलक्षणम् ।

सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥ व्यामिश्रलक्षण इत्युक्ते सर्वाकृतिरिति उक्तवातजादिशोथसकललक्षणनियमार्थम् ।

जो सूजन मिश्रित लक्षणोंवाली, अथवा उपरोक्त सब सूजनोंके लक्षणोंवाली होय उसको सन्निपातिज जानना ॥ १० ॥

अथाभिघातजशोथलक्षणम् ।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः । हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः । ॥ ११ ॥ रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् । भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥ छेदः खड्गादिना । भेदः पाषाणादिना । क्षतं शरादिना । आदिना व्रणादि । आदिशब्देन लगुडप्रहारादि गृह्यते । भल्लातजैः रसैः । कपिकच्छुजैः शूकैः । विसर्पवान्प्रसरणशीलः । पित्तलक्षणः पैत्तिकशोथलक्षणः ।

जो सूजन खड्ग आदिके छेदनसे, पत्थर आदिके भेदनसे, बाण आदिके घाव हो जानेसे, अथवा लकडी आदिके प्रहार होने आदि कारणोंसे हुई हो, अथवा भिलावेके रससे वा कौंछकी फलीके स्पर्शसे हुई होय, फैलती हो, दाहयुक्त, लाल वर्णवाली और अधिक करके पित्तसे हुई सूजनके लक्षणोंयुक्त हो वह सूजन अभिघातसे हुई जाननी ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ विषजशोथलक्षणम् ।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् । दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि । ॥ १३ ॥ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्तुसङ्गरात् । विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगाच्चूर्णनात् । मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥ १४ ॥ परिसर्पणाच्छरीरोपरि सञ्चरणात् । दंष्ट्रा द्विगुणीकृता दन्तावलिः चोह इति लोके । दन्ताः अग्रेभवाः । अवि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षप्राणिनां दंष्ट्रादिविषं शोथव्यथादिकरं भवतीति विशेषः । विण्मूत्रेत्यादि । विड्-घ्युपहतं मलिनं च यद्वस्तु, तथा संकरः सम्मार्जनीभिः क्षिप्तो धूल्यादिः तेषां सम्पर्कात् । गरयोगावचूर्णनात्, गरः संयोगजं विषं तस्य योगो यस्य तेन वस्तुना अवधूलनात् । अवलम्बी लम्बमानः । अयमपि आगन्तुजस्तथापि सामान्यागन्तुजशोथचिकित्सातोऽस्य विशिष्टचिकित्साभिधानात्पृथक्पठितः ।

शरीरके ऊपर विषैले जीवोंके फिरनेसे, अथवा मूतनेसे, जो जीव विषैले नहीं हैं उनके भी दाढ दाँतोंसे, नखोंसे, आघात होनेसे (विना विषवाले जीवोंके भी दाढ आदिका विष सूजन तथा पीडा आदिको उत्पन्न करता है), विष्ठासे, मूत्रसे, वीर्यसे, उपहत हुई वस्तुके संबंधसे, बुहारकर फेंकी हुई धूल आदि कूडेके संबंधसे, विषैले वृक्ष अथवा विषैली पवनके स्पर्शसे और जिसमें संयोगज विषका योग हुआ होय वह वस्तु शरीरके मिलनेसे जो सूजन उत्पन्न हुई हो उसको विषसे उत्पन्न हुई जाननी । यह सूजन—मृदु, चंचल, लटकती हुई, तत्काल होनेवाली और पीडा अधिक करनेवाली होती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ दोषस्थानस्थितिविशेषेण शोषस्थानविशेषः ।

दोषाः श्वयथुमूर्द्धं हि कुर्वंत्यामाशय स्थिताः । पित्ताशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः कृत्स्नं देहमनुप्राप्य कुर्युः सर्वसरास्तथा ॥ १५ ॥ ऊर्द्धम् उरःप्रभृत्यूर्द्धम् । मध्ये उरःपक्काशयमध्ये । अधः पक्काशयादधः ।

दोष आमाशयमें रहनेवाले होयँ तो हृदयसे ऊपरके भागमें सूजनको उत्पन्न करे हैं, पित्ताशयमें रहनेवाले होयँ तो हृदय और पक्काशयके बीचमें सूजनको उत्पन्न करे हैं, मलाशयमें रहनेवाले दोष होयँ तो पक्काशयसे नीचेके भागमें सूजनको उत्पन्न करे हैं, और सम्पूर्ण स्थानमें फैले हुए होयँ तो सम्पूर्ण शरीरमें सूजन उत्पन्न करे हैं ॥ १५ ॥

अथ शोथोपद्रवाः ।

छर्दिः श्वासोऽरुचिस्तृष्णा ज्वरोऽतीसार एव च । सम्पाक आमदौर्बल्यं शोथस्यैते उपद्रवाः ॥ १६ ॥

वमन, श्वास, अरुचि, तृषा, ज्वर, अतीसार, अत्यंत पाक और अत्यंत निर्बलता ये सूजनके उपद्रव हैं ॥ १६ ॥

अथ शोथासाध्यता ।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च । यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं तं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

जिस सूजनवालेको श्वास, तृषा, वमन, निर्बलता, ज्वर और, अन्नमें अरुचि हो उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ १७ ॥

अथ शोथकष्टसाध्यत्वादिः ।

यो मध्यदेशे श्वयथुः कष्टः सर्वांगगश्च यः । अर्द्धांगोऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्द्धं परिसर्पति ॥ १८ ॥ मध्यदेशे उरःपक्काशयमध्ये । सर्वांगः सकलशरीरव्यापी । सर्वांगज इति वा पाठः । सान्निपातिकः । अर्द्धांगः अर्द्धनारीश्वराकारः । यश्चोर्द्धं परिसर्पतीति पुरुषविषयः । तथा च ऊर्ध्वगामी नरं पद्भ्यामधोगामी तथा स्त्रियम् । उभयं वस्तिसञ्जातः शोथो हन्ति न संशयः ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वगामी मुखगामी । उभयं नरं नारीं च । तथा च तन्त्रांतरे—पादात्प्रवृत्तः श्वयथुर्नृणां यः प्राप्नुयान्मुखमिति ॥ २० ॥ स न सिध्यतीति शेषः । अधोगामी पदगामी । तथा च तत्रान्तरे—नृणां वक्त्रात्पदं याति वस्तिजश्च न सिध्यतीति ॥ २१ ॥ अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो वस्तिजो द्वयम् ॥ २२ ॥ अयमर्थः । पादसमुत्थितः पादाभ्यामुत्थितो मुखगामीति यावत् । शोथः पुरुषं हन्ति । स किंविशिष्टः ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्योपद्रवकृतः शोथादन्ये व्याधयोऽतिसारग्रहण्यर्शःप्रभृतयः तेषामुपद्रवैः कृतः तदुपद्रवत्वेन जात इत्यर्थः। न अन्योपद्रवकृतः अनन्योपद्रवकृतः अर्थात् स्वहेतुभिरेव जातः द्वयम् पुरुषं च नारीं च हन्ति सोऽपि अनन्योपद्रवकृत एव।

जो सूजन हृदय तथा पक्वाशयके मध्यमें हुई हो अथवा जो सूजन सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होय (सन्निपातिक होय) वह सूजन कष्टसाध्य है। जो सूजन अर्द्धनारीश्वरके आकारकी आधे शरीरमें हुई होय वह सूजन मृत्युदायक है। पुरुषके हुई सूजन ज्यों ज्यों ऊपरको चढती है त्यों त्यों मृत्युको ढूँढकर लाती है। पुरुषोंके हुई सूजन पाँवसे ऊपरको चढे वह सूजन अवश्य मृत्यु करती है। स्त्रीके हुई जो सूजन मुखसे नीचे नीचेको जाय वह सूजन स्त्रीको अवश्य मार डालती है। जो सूजन मूत्राशयमें हुई हो वह सूजन पुरुष और स्त्री दोनोंको मार डालती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अन्य ग्रंथोंमें भी कहा है कि—"पुरुषोंके पावोंसे चढा जो शोथ मुखको प्राप्त होय और स्त्रीके मुखसे हुआ जो शोथ पाँवोंको प्राप्त होय वह सूजन असाध्य है, पुरुष अथवा स्त्रीके मूत्राशयमें हुआ शोथभी असाध्यही है।" और भी कहा है कि—"पुरुषके पाँवोंमें हुई सूजन जो मुखमें जाय और अतीसार, ग्रहणी तथा बवासीर आदि अन्य रोगोंके उपद्रवरूप नहीं हुई हो अर्थात् अपने कारणोंसे ही हुई हो तो पुरुषको मार डालती है। स्त्रीके मुखमें हुई सूजन जो पावोंपर जाय और वह सूजन अतीसार, ग्रहणी तथा बवासीर आदि अन्य रोगोंके उपद्रवरूप न हुई हो, अर्थात् अपने कारणोंसे हुई वह स्त्रीको मार डालती है। मूत्राशयमें हुई जो सूजन अन्य रोगोंके उपद्रवरूप नहीं हुई हो, अर्थात् अपने कारणोंसेही हुई हो वह सूजन पुरुष और स्त्री दोनोंको मार डालती है॥ १८-२२॥

अथ शोथचिकित्सा।

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलीशृतं जलम्। वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे॥ २३॥ पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीक्वाथः सगुग्गुलुः। तद्वत्पित्तकृतं शोथं हन्ति श्लेष्मोद्भवं तथा॥ २४॥ मिश्रे मिश्रक्रमं कुर्यात्सर्वजे सर्वमेव हि। बिल्वपत्ररसं पूतं शोषणं त्रिभवे पिबेत्॥ २५॥ शोथे त्वागन्तुजे कुर्यात्सेकलेपादि शीतलम्। भल्लातक्या हरेच्छोथं सतिला कृष्णमृत्तिका॥ २६॥ महिषीक्षीरसंपिष्टैर्नवनीतसमन्वितैः। तिलैर्लिप्तः शमं याति शोथो भल्लातकोत्थितः॥ २७॥ यष्टीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः। शोथमारुष्करं हन्ति चूर्णैः शालदलस्य च॥ २८॥ विषजशोथचिकित्सा तु विषचिकित्सायां द्रष्टव्या।

सोंठ, पुनर्नवा, एरंड और बृहत्पंचमूल इनका क्वाथ करके पिये और भोजनमें ही उस क्वाथको ही सेवन करे तो इससे वायुसंबंधी सूजन नष्ट होती है। परवल, हरड, बहेडा, आमला, नीम और दारुहलदी इनका क्वाथ कर उसमें गूगल डालकर पिये तो इससे पित्तसंबंधी और कफसंबंधी सूजन दूर होती है। जो सूजन दो दोषोंसे हुई हो उसमें दो दोषकी मिश्रित चिकित्सा करे और जो सूजन तीनों दोषोंसे हुई। हो उसमें बेलके पत्तोंका रस निकालकरके वस्त्रसे छानके फिर उसमें सोंठ, मिरच तथा पीपलका चूर्ण डालकर पियें तो इससे सान्निपातिक सूजन नष्ट होती है अथवा उपरोक्त तीनों दोषोंकी मिश्रित चिकित्सा करे। जो आगंतुज (अभिघात) आदिसे सूजन हुई हो तो उसके ऊपर शीतल सेचन तथा शीतल लेप आदिक करे। तिल और काली मिट्टी इनको पीसकर लेप करे तो इससे भिलावेकी सूजन दूर होती है। भैंसके दूधमें तिल पीसकर उसमें भैंसका मक्खन मिलाकर लेप करे तो भिलावेकी सूजन दूर होती है। मुलैठी, दूध, तिल और मक्खन इनका लेप करे तो भिलावेकी सूजन दूर होती है। अथवा शालके पत्तोंका चूर्ण पानीसे पीवे तो भिलावेकी सूजन दूर होती है। विषसे हुए शोथकी चिकित्सा तो विषकी चिकित्साके प्रकरणमें कहेंगे इसलिये उस प्रकरणमेंसे देख लेना॥ २३-२८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शोथसामान्यचिकित्सा ।

महिष्या नवनीतं वा लेपाद्दुग्धतिलान्वितम् ॥ २९ ॥ अत्र दुग्धं च महिष्या एव । पथ्यानिशाभार्ङ्गयमृताग्निदार्वीपुनर्नवादारुमहौषधानाम् । क्काथः प्रसह्योदरपाणिपादमुखाश्रितं हन्त्यचिरेण शोथम् ॥ ३० ॥

भैंसका मक्खन और भैंसका दूध इनमें तिल पीसकर लेप करे तो सूजन दूर होती है। हरड, हलदी, भारंगी, गिलोय, चीता, दारुहलदी, पुनर्नवा, देवदार और सोंठ इनका क्काथ पेटमें, हाथमें, पाँवोंमें तथा मुखमें हुई सूजन तत्काल बलात्कारसे नष्ट कर देता है। यह क्काथ 'पथ्यादिक्काथ' इस नामसे कहा जाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

फलत्रिकोद्भवं क्काथं गोमूत्रेणैव साधितम् । वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्याद्वृषणसम्भवम् ॥ ३१ ॥ वृश्चीवदेवदुमनागरैर्वा दन्तीत्रिवृद्व्यूषणचित्रकैर्वा । दुग्धं सुसिद्धं विधिना निपीतं गीतं परं शोथहरं भिषग्भिः ॥ ३२ ॥ अत्र वृश्चीवः श्वेतवर्षाभूः । सेकस्तथार्कवर्षाभूनिम्बक्काथेन शोथहृत् । गोमूत्रेणापि कुर्वीत सुखोष्णेनावसेचनम् ॥ ३३ ॥ पुनर्नवा दारु शुण्ठी शिग्रुः सिद्धार्थकस्तथा । अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्वशोथहृत् ॥ ३४ ॥ गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा । कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ ३५ ॥ शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्सश्वासकासारुचिपीनसादीन् । जीर्णज्वराशोंग्रहणीविकारान्हन्यात्तथान्यान्कफवातरोगान् ॥ ३६ ॥ विश्वं गुडेन तुल्यं वृश्चीवरसानुपानमभ्यस्तम् । विनिहन्ति सर्वं शोथं घनवृन्दं चण्डवायुरिव ॥ ३७ ॥ कणानागरकं चूर्णं सगुडं शोथनाशनम् । आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ ३८ ॥

हरड, बहेडा तथा आमला इनका क्काथ कर गोमूत्रमें मिलाकर पिये तो इससे वृषणों (पोतों) में हुई वायुसंबंधी तथा कफसंबंधी सूजन नष्ट होती है। अथवा सफेद पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ इनसे अथवा दन्ती, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल और चीता इनसे भली भांति पकाया हुआ दूध योग्यविधिसे पिये तो सूजन अवश्य दूर हो जाती है ऐसा वैद्योंने कहा है । आक, पुनर्नवा और नीम इनका क्काथ करके उस सूजनके ऊपर सेचन करे तो सूजन दूर होती है । गोमूत्रको किंचित् गरम करके उस सूजनके ऊपर सेचन करे तो सूजन दूर होती है । पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहँजना और सरसों इनका क्काथ करके अम्लरसमें पीस किंचित् गरम करके लेप करे तो सर्व प्रकारकी सूजन नष्ट होती है। गुड और अदरख, अथवा गुड और सोंठ, अथवा गुड और हरड वा गुड और पीपल इनका नित्य एक एक तोला अधिक करके बारह तोलेतक सेवन करे इस भाँति एक मास अथवा एक पक्षतक खाय तो इससे सूजन, प्रतिश्याय, गलेके रोग, मुखके रोग, श्वास, खाँसी, अरुचि, पीनस, जीर्णज्वर, बवासीर, संग्रहणी और अन्य भी कफसंबंधी तथा वायुसंबंधी रोग दूर हो जाते हैं । अथवा सोंठ और गुड इनको समान भाग लेकर खाय और इसके ऊपर सफेद पुनर्नवाका रस पीनेका अभ्यास करे तो जिस प्रकार प्रचंड पवनसे बादलोंका समूह नष्ट हो जाता है उसी प्रकार सर्व प्रकारकी सूजन भी दूर हो जाती है । वा सोंठ और पीपल इनके चूर्णको गुडमें मिलाकर खावे इससे सूजन, आमाजीर्ण तथा शूल दूर होता है और मूत्राशय शुद्ध होता है ॥ ३१–३८ ॥

अथ गुडादिवटिका ।

गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गवेरपलत्रयम् । शृङ्गवेरसमा कृष्णा लोहविट्तिलयोः पलम् । चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुनाशनम् ॥ ३९ ॥

बारह तोले गुड, बारह तोले सोंठ, बारह तोले पीपल, चार तोले कीटीकी भस्म और चार तोले तिल इनको चूर्ण करके खाय तो सर्व प्रकारकी सूजन दूर होती है ॥ ३९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ मानकघृतम्।

मानककाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषं च व्यपोहति ॥ ४० ॥

मानकंदके क्वाथमें मानकंदका ही कल्क डालकर ६४ तोले घी पकावे तो 'मानकघृत' सिद्ध होता है। इस घीके सेवन करनेसे एक दोषसंबंधी, दो दोषसंबंधी और तीनों दोषसंबंधी सूजन दूर होती है ॥ ४० ॥

अथ शुष्कमूलकतैलम्।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः। पक्वमभ्यञ्जनं तैलं सशूलं श्वयथुं हरेत् ॥ ४१ ॥

सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन और सोंठ इन औषधियोंके कल्कके द्वारा तेलको सिद्ध करे यह तेल शूलसहित सूजनको दूर करे है ॥ ४१ ॥

इति शोथाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ वृद्धिब्रध्नाधिकारः।

तत्र वृद्धिनिदानसंख्ये।

दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः। मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलः ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ, रुधिर, मेद, मूत्र और आँतें इन भेदोंसे वृद्धिरोग सात प्रकारका है। इनमें मूत्र और अन्त्रजन्य वृद्धि वातरूप निदानके होनेसे एक ही प्रकारकी है तथापि निदान और चिकित्सामें भेद होनेसे अलग गिनी है ॥ १ ॥

अथ वृद्धिसम्प्राप्तिः।

वृद्धिं करोति कोपस्थः फलकोषाभिवाहिनीः। रुद्धा रुद्धगतिर्वायुर्धमनीर्मुष्कगामिनीः ॥ २ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायु अंडकोषोंमें प्राप्त होकर अंडकोषोंकी शिराओं (नसों) को रोककर अंडोंकी तथा त्वचाकी वृद्धि करती है ॥ २ ॥

अथ वातवृद्धिलक्षणम्।

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥ ३ ॥ अहेतुरुक् अत्रेषदर्थे नञ्। तेन स्वल्पादपि विप्रकृष्टात् कारणाद्रुक् पीडा यत्र सः।

जो वृद्धि वायुसे भरी हुई मसकी समान स्पर्शवाली हो, रूक्ष हो और जिसमें अंडकोषोंमें स्वल्प कारणोंसे पीडा हो, उसको वातकी वृद्धि जानना ॥ ३ ॥

अथ पित्तजन्यवृद्धिलक्षणम्।

पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ॥ ४ ॥ दाहः आभ्यन्तरः ऊष्मा बहिस्तप्तता।

जो वृद्धि पके हुए गूलरके फलकी समान हो, दाह, गरमी और पकनेवाली हो उसको पित्तकी वृद्धि जानना ॥ ४ ॥

अथ कफवृद्धिलक्षणम्।

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डुमान्कठिनोल्परुक्।

जो वृद्धि शीतल होय, भारी होय, स्निग्ध (चिकनी) होय, खुजलीयुक्त होय, कठिन होय और जिसमें अल्प पीडा होय, उसको कफकी वृद्धि जानना।

अथ रुधिरवृद्धिलक्षणम्।

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्तजः ॥ ५ ॥ कृष्णस्फोटावृत इति पैत्तिकोद्भवः।

जो वृद्धि काले फोंडोंसे व्याप्त हो और जिसमें पित्तकी वृद्धिके सब लक्षण होयँ उस वृद्धिको रक्तकी जानना ॥ ५ ॥

अथ मेदोवृद्धिलक्षणम्।

कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ६ ॥

जो वृद्धि नरम होय, तालके फलकी समान नीली और गोल होय तथा जिसमें कफकी वृद्धिके सम्पूर्ण लक्षण मिलते होयँ उस वृद्धिको मेदकी जानना ॥ ६ ॥

अथ मूत्रवृद्धिलक्षणम्।

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः अम्भोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ् मृदुः। मूत्रकृच्छ्रमधः कुर्यात्सञ्चलन्फलकोषयोः ॥ ७ ॥ सञ्चलन्फलकोषयोः अधः मूत्रकृच्छ्रं मूत्रेण व्यथां कुर्यात् इत्यर्थः।

जिस मनुष्यको मूत्र रोकनेका अभ्यास होय अथवा स्वभाव होय उस मनुष्यको मूत्रकी वृद्धि होती है, मूत्रकी वृद्धि चलते समय जलसे भरी हुई पखाल या मसककी समान हिलती है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, पीडा होती है, नरम होती है, उसमें मूत्रकृच्छ्रकी समान वेदना हो और अंडकोषोंको चलायमान करती है ॥ ७ ॥

अथांत्रवृद्धिलक्षणम् ।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ।
धारणैर्रणभाराध्वविषमांगप्रवर्तनैः ॥ ८ ॥
क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यैश्च क्षुदान्त्रावयवं यदा ।
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधोनयेत् ।
कुर्याद्वंक्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा
॥ ९ ॥ धारणम् उपस्थितस्य वेगस्य ईरणमनुपस्थितस्य वेगस्य प्रेरणम् । विषमांगप्रवर्तनं वक्रत्वेनांगमोटनम् । अन्यानि क्षोभणानि बलवद्विग्रहकठोरधनुराकर्षणादीनि तैः क्षोभितः सन्दूष्य सञ्चालितः पवनः यदा क्षुधान्त्रावयवं विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् तदा वंक्षणसन्धिस्थः सन्वंक्षणसंधौ ग्रन्थिरूपं श्वयथुं कुर्यात् इत्यर्थः । उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः प्रपीडितोऽन्तःस्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ १० ॥ तत्र आध्मानमुदरे रुग् वृद्धयोर्मुष्कयोः स्तम्भो गात्रे तद्युक्तां कुर्यात् इत्यर्थः । अन्त्रं विगुणमादाय वातो नयति वंक्षणम् । वंक्षणात्तद्भुजा युक्तं फलकोषं प्रपद्यते ॥ ११ ॥ स मुष्कवृद्धिम् अन्तः उदरे प्रध्मापयन् आगमनमार्गं निरुद्धं कुर्वन् एति आयाति ।

वायुको कुपित करनेवाले आहारोंके सेवन करनेसे, शीतल जलमें घुसकर स्नान करनेसे, मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, मूत्रादिको बलात्कारसे प्रवर्तन करनेसे, बहुत बोझको उठानेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा करनेसे और बलवान्के साथ युद्ध तथा कठिन धनुष आदिको चढानेसे इत्यादि कारणोंसे अत्यंत क्षोभको प्राप्त हुई वायु छोटी छोटी आँतोंके प्रदेशको दूषित करके उनके स्थानसे नीचे ले जाती है तब वह वायु वृषण और कोषकी संधियोंमें प्राप्त होकर उन संधियोंमें गांठकी समान सूजनको उत्पन्न करती है । यह अन्त्रवृद्धि कही जाती है । जो इस अंत्रवृद्धिकी उपेक्षा की जावे तो पेट अफर आता है, बढे हुए वृषणोंमें पीडा होती है और शरीर स्तम्भितसा हो जाता है । इस वृद्धिको जो हाथसे दबाया जाय तो शब्द होकर भीतरको बैठ जाती है और दबानेसे छोटी होकर फिर फूल जाती है ॥ ८–११ ॥

अथांत्रवृद्धिसाध्यलक्षणम् ।

यस्यान्त्रावयवाश्लेषो मुष्कयोर्वातसञ्चयात् ।
अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः १२

अंत्रवृद्धि कि जिसमें वायुके संचय होनेसे दोनों वृषणोंमें आँतोंके अवयव मिल जाते हैं वह यदि वायुकी वृद्धिकी समान आकारवाली होय तो उसको असाध्य जानना ॥ १२ ॥

अथ ब्रध्नस्यापि वृद्धिसमीपोत्पन्नत्वादत्र तन्निदानलक्षणमाह ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नशुष्कपूत्यामिषाशनात् ।
करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वंक्षणसन्धिषु ।
ज्वरशूलांगसादार्चं तं ब्रध्नेति विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अत्यंत अभिष्यन्दि पदार्थ, भारी अन्न, सूखा तथा दूर्गंधित सडा हुआ मांस इनको भक्षण करनेसे कोपको प्राप्त हुए दोष साँथलकी संधियोंमें गांठकी समान सूजनको उत्पन्न करते हैं उस सूजनकी समान गिलटीके होनेसे ज्वर, शूल तथा शरीरमें अत्यंत ग्लानि होती है, यह सूजन ब्रध्न (बद) इस नामसे कही जाती है ॥ १३ ॥

अथ वृद्धिरोगचिकित्सा ।

वृद्धावत्यशनं मार्गमुपवासं गुरूणि च ।
वेगाघातं पृथ्यानं व्यायामं मैथुनं त्यजेत्
॥ १४ ॥ वातवृद्धौ पिबेत्तैल्वं यथाप्राप्तं विरेचनम् । सक्षीरं च पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ॥ १५ ॥

वृद्धिरोगवाले मनुष्यको अधिकतर भोजन, मार्ग, मूत्रादि वेगोंका रोकना, चलना, उपवास, भारी पदार्थोंका खाना, घोडे आदिकी सवारी, दंड कसरत आदि परिश्रम और मैथुन ये सब त्याग देने चाहिये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो मिल सके ऐसे स्निग्ध विरेचन पीनेसे वातसम्बन्धी वृद्धि दूर हो जाती है, दूध और अंडीके तेलको एक महीनेतक पीनेसे वातकी वृद्धि दूर हो जाती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

गुग्गुल्वेरण्डजं तैलं गोमूत्रेण पिबेन्नरः । वातवृद्धिं जयत्याशु चिरकालानुबंधिनीम् ॥ १६ ॥ पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत् । जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धौ पित्तसमुद्भवे ॥ १७ ॥ चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् । क्षीरपिष्टं प्रलेपेन दाहशोथरुजापहम् ॥ १८ ॥

अंडीका तेल और गूगल इनको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी वातकी वृद्धि तत्काल नष्ट हो जाती है । जो चिकित्सा पित्तग्रन्थिकी कही है वही चिकित्सा योग्यायोग्य विचारकर पित्तकी वृद्धिकी भी करनी चाहिये, इससे पित्तकी वृद्धि नष्ट हो जाती है । जोंक लगाकर रुधिर निकलवानेसे पित्तसम्बन्धि वृद्धि नष्ट हो जाती है । लालचन्दन, मुलैठी, कमल, खस और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर लेप करनेसे पित्तकी वृद्धिकी सूजन तथा दाहकी पीडा शांत हो जाती है ॥ १६--१८ ॥

त्रिकटुत्रिफलाक्काथं सक्षारलवणं पिबेत् । विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाशनम् ॥ १९ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा और आमला इनका क्काथ बनाकर उसमें जवाखार तथा सेंधानिमक डालकर पीनेसे कफकी वृद्धि दूर होती है । यह विरेचन कफकी वृद्धिको दूर करनेके लिये उत्तम है ॥ १९ ॥

लेपनाः कटुतीक्ष्णोष्णाः स्वेदनं सूक्ष्ममेव च । परिषेकोपनाहौ च सर्वमुष्णमिहेष्यते ॥ २० ॥

तीखे, तीक्ष्ण तथा उष्णप्रलेप, सूक्ष्मस्वेदन और संपूर्ण गरम सेचन और उष्ण बंधन कफकी वृद्धिपर करने चाहिये ॥ २० ॥

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत् । पिबेद्विरेचनं वापि शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ॥ २१ ॥

जो रुधिरकी अंडवृद्धि होय तो वारंवार जोंक लगवाकर रुधिर निकलवावे और खांड तथा सहत मिलाकर विरेचन पिये ॥ २१ ॥

शीतमालेपनं शस्तं सर्वं पित्तहरं तथा । पित्तवृद्धिक्रमं कुर्यादामे पक्के च रक्तजे ॥ २२ ॥

रुधिरकी अंडवृद्धि कच्ची होय अथवा पक्की होय तो भी उसके ऊपर शीतल प्रलेप करे और पित्तनाशक संपूर्ण क्रिया करे । रुधिरकी वृद्धिमें पित्तकी वृद्धिकी जो चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिये ॥ २२ ॥

स्विन्नमेदःसमुत्थं तु लेपयेत्सुरसादिना । शिरोविरेचनद्रव्यैः सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ २३ ॥ संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् । सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद्व्रीहिमुखेन वै ॥ २४ ॥ मुष्ककोशमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विचक्षणः । वातवृद्धिक्रमं कुर्यात्स्वेदं तत्राग्निना हितम् ॥ २५ ॥ व्रीहिमुखेन शस्त्रविशेषेण । अगच्छन्त्याम् अस्रवन्त्याम् । तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धं यथोचितम् । आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ २६ ॥ रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलारग्वधगोक्षुरैः । पटोलेन वृषेणापि विधिना विहितं श्रृतम् । रुबुतैलेन संयुक्तमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥ २७ ॥

मेदकी वृद्धिमें सेकादिक करके उसके ऊपर सुरसादि गणकी सम्पूर्ण औषधियोंका प्रलेप करे । मूत्रसम्बन्धी वृद्धि होय तो शिरको खाली करनेवाली जो औषधि कही हैं उनमें गोमूत्र डालकर जरा गरम करके उनसे सेक करे फिर वस्त्रकी पट्टीसे खूब बाँध देवे । अंत्रवृद्धि जो स्रवती न होय तो विचक्षण वैद्य सीवनीके पडखेके नीचेके भागमें व्रीहिमुख नामक शस्त्रसे वेध देवे और फिर वातसंबन्धी वृद्धिकी समान चिकित्सा करे । अंत्रवृद्धिपर अग्निसे सेककर स्वेदन करना हितकारी है । खिरैटीका चूर्ण डालकर पकाया हुआ अंडीका तेल यथारीतिसे पिये तो अफरे सहित तथा शूलसहित अंत्रवृद्धि नष्ट हो जाती है । रासना, मुलैठी, गिलोय, अंडकी जड, खिरेटी, अमलतास, गोखरू, कडवे परवल और अडूसा इनका विधिपूर्वक क्काथ बनाकर उसमें अंडीका तेल डालकर पान करनेसे अंत्रवृद्धि नष्ट हो जाती है । इसको रास्नादि क्काथ कहते हैं ॥ २३--२७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गन्धर्वहस्ततैलेन क्षीरेण विहितं श्रृतम् । विशालामूलजं चूर्णं वृद्धिं हन्ति न संशयः ॥ २८ ॥ विशाला इन्द्रवारुणी । वचासर्षपकल्केन प्रलेपः शोथनाशनः । शिग्रुत्वक्सर्षपैर्लेपाच्छोथश्लेष्मानिलापहः ॥ २९ ॥

अंडीका तेल, दूध और इन्द्रायनकी जडका चूर्ण इनका क्काथ बनाकर पीनेसे निःसन्देह अंडवृद्धि रोग नष्ट होता है । वच और सरसोंका कल्क बनाकर लेप करनेसे वृद्धिकी सूजन दूर हो जाती है । सैंजिनेकी छाल और सरसों इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वृद्धिकी सूजन कफ और वायु नष्ट हो जाती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

वृद्धिबाधिका वटिका ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योजयेत् । लौहं रंगं तथा ताम्रं कांस्यं चाथ विशोधितम् ॥ ३० ॥ तालकं तुत्थकं चापि तथा शङ्खवराटकम् । त्रिकटु त्रिफला चव्यं विडङ्गं वृद्धदारकम् ॥ ३१ ॥ कचूरं मागधीमूलं पाठां सहपुषां वचाम् । एलाबीजं देवकाष्ठं तथा लवणपञ्चकम् ॥ ३२ ॥ एतानि समभागानि चूर्णयेदथ कारयेत् । कषायेण हरीतक्या वटिकां टंकसंमिताम् ॥ ३३ ॥ एकां तां वटिकां यस्तु निर्गिलेद्वारिणा सह । अण्डवृद्धिरसाध्यापि तथ्यं नश्यति सत्वरम् ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्ध गंधक, लोहेकी भस्म, रांगेकी भस्म, तांबेकी भस्म, काँसीकी भस्म, शुद्ध हरितालकी भस्म, शुद्ध तूतिया, शंखकी भस्म, कौडीकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, वायविडंग, विधारा, कचूर, पीपलामूल, पाढ, गंधपलाशी, वच, इलायचीके दाने, देवदारु और पांचों निमक इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर हरडके क्काथमें खरल करके चौबीस २ रत्तीकी गोलियां बना लेवे । इन गोलियोंमेंसे एक गोली नित्य जलके साथ निगल जाय तो अंत्रसम्बन्धी असाध्य वृद्धिभी तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ ३०-३४ ॥

अथ ब्रध्न (बद) चिकित्सा ।

भ्रष्टश्चैरण्डतैलेन सम्यक्कल्कोऽभयाभवः । कृष्णासैन्धवसंयुक्तो ब्रध्नरोगहरः परः ॥ ३५ ॥ अजाजी हपुषा कुष्ठं गोमेदवदरान्वितम् । काञ्जिकेन तु संपिष्टं तल्लेपो ब्रध्नजित्परः ॥ ३६ ॥ गोमेदं पत्रकम् । तथा निघण्टौ धन्वन्तरिः-पत्रं दलाह्वयं रासं गोमेदं वसनाह्वयमिति ॥ ३७ ॥

हरडका अच्छे प्रकारसे कल्क बनाकर उसको अंडीके तेलमें भूनकर पीपल तथा सेंधे निमकका चूर्ण मिलाकर खाय तो ब्रध्न रोग अवश्य नष्ट हो जात है । जीरा, पलाशी, कूठ, तेजपात और बेर इनको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे ब्रध्न रोग अवश्य नष्ट हो जाता है (मूल श्लोकमें जो गोमेद शब्द है उसका हमने यहां तेजपत्र ऐसा अर्थ किया है यह धन्वन्तरिनिघण्टुके अनुसार किया है, धन्वन्तरिनिघण्टुमें कहा है कि, पत्र, रास और गोमेद ये सब तेजपत्रके नाम हैं । जो जो नाम पत्रके अथवा वस्त्रके हैं वे सब तेजपत्रके जानने) ॥ ३५-३७ ॥

इति वृद्धिब्रध्नाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ गलगंडगंडमालाग्रंथ्यर्बुदाधिकारः ।

तत्र गलगंडलक्षणम् ।

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले । महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥ निबद्धः दृढः अचलो वा । मुष्कवदण्डवत् । गले इति हनुमन्ययोरुपलक्षणम् । तथाच भोजः-महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्रयम् । मुष्कवल्लम्बमानं तु गलगण्डं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

गलेमें बडी अथवा छोटी, दृढ और अचल सूजन अंडकोषकी समान लटकती होय उसको गलगंड कहते हैं । 'गलेमें जो सूजन लटकती हो' ऐसा कहना तो उपलक्षणमात्र है इस कारण ऐसा जानना कि ठोडी डाढी और नाडमें जो ऐसी सूजन लटकती होय तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसको भी गलगंड कहते हैं । भोज कहता है कि "बडी अथवा छोटी सूजन डाढीमें अथवा ठोडीमें, नाडमें और गलेमें अंडकोषकी समान लटकती होय उसको भी गलगंड कहते हैं" ॥ १ ॥ २ ॥

अथ गलगंडसम्प्राप्तिः ।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्ये तु संश्रित्य तथैव मेदः । कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिंगैः समाचितं तं गलगण्डमाहुः ॥ ३॥ स्वलिंगैः वातकफमेदोलक्षणैः ।

गलेमें दुष्ट हुए वायु, कफ और मेद ये सब गलेके मध्यमें प्राप्त होकर अनुक्रमसे अपने अपने लक्षणोंवाली सूजन करते हैं वह रोग गलगंड कहा जाता है॥३॥

अथ वातजगलगंडलक्षणम् ।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु । पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् । वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ ४ ॥ चिरवृद्ध्यपाकः चिरेण वृद्धिः अपाकश्च यस्य सः ।

जो गलगंड तोदने सरीखी पीडायुक्त हो, काली शिराओंसे व्याप्त हो, कालापन तथा लाली लिये हो, उसको वातका जानना । यह गलगंड कठिन होता है, बहुत दिनोंमें बढता है, पकता नहीं है और किसी समय अपनी इच्छासे पकभी जाता है, तथा उस रोगीका मुख नीरस रहता है और तालु तथा गला सूखा रहता है ॥ ४ ॥

अथ कफगलगंडलक्षणम् ।

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु । चिराच्च वृद्धिं भजतेऽचिराद्धा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् । माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलश्लेषः ॥ ५ ॥ कदाचित्पच्यते वा प [illegible] । प्रश्लेषः श्लेष्मणा ।

[illegible] स्थिर होय, जिस स्थानमें उत्पन्न हो उसी स्थानकी त्वचाके तुल्य हो, भारी हो, तीव्र खुजली हो, शीतल हो और बडा हो उसको कफजन्य गलगण्ड जानना । यह गलगंड बहुत दिनोंमें बढता है, बहुत दिनोंमें किसी समय पक जाता है और मन्द पीडा होती है और उस रोगीके मुखका स्वाद स्निग्ध और मधुर रहता है, सदैव गलेसे शब्द होता है और तालु तथा गला कफसे लिप्त रहता है ॥ ५ ॥

अथ मेदोजन्यगलगण्डलक्षणम् ।

स्निग्धो मृदुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोऽन्वितः कण्डुयुतोऽरुजश्च । प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥ स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ ७ ॥

जो गलगण्ड नरम, पांडुवर्ण, दुर्गन्धित, खुजलीयुक्त, पीडारहित, तोम्बीकी समान लटकता हो, अल्प जडवाला हो और शरीरके बढनेसे बढता हो तथा शरीरके क्षीण होनेसेक्षीण होता हो उस गलगंडको मेदसम्बन्धी जानना । यह गलगंड जिस मनुष्यके उत्पन्न होता है उस मनुष्यका मुख स्निग्ध रहता है और सदैव गलेमेंसे शब्द होता रहता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथासाध्यगलगण्डलक्षणम् ।

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदु सर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् । क्षीणं च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं नैव नरं चिकित्सेत् ॥ ८ ॥

जिस गलगंडमें बडे कष्टसे धीरे धीरे श्वास लेसके, संपूर्ण शरीर नरम पड गया हो अरुचि तथा क्षीणता हो गई हो, स्वर बैठ गया हो, तथा जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीत गया हो ऐसे गलगंडकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥ ८ ॥

अथ गण्डमालालक्षणम् ।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु । मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गंडैः ॥ ९ ॥ कर्कन्धुः क्षुद्रबदरम् । कोलं बृहद्बदरम् । चिरमन्दपाकैः चिरेण मन्दोऽल्पः पाको येषां तैः ।

कोलमें, कन्धामें, अथवा खवोंमें, नाडके पीछे मन्या नाडीमें, गलेमें, तथा वंक्षण स्थानमें मेद और कफसे छोटे बेरकी समान अथवा बडे बेरकी समान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आमलेकी समान बहुतसी गंड (गांठें) उत्पन्न होय उसको गंडमाला कहते हैं। ये गंड बहुत दिनोंमें थोडे थोडे पकते हैं ॥ ९ ॥

अथापचीलक्षणम् ।

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये । कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ १० ॥ ते ग्रन्थयः गण्डमालाया एव गण्डाः केचिदवाप्तपाकाः सन्तः स्रवन्ति । केचिन्नश्यन्ति संरोहन्ति । अन्ये भवन्ति च कालानुबन्धं चिरमादधाति सा गलगण्डमाला चिरं तिष्ठति सैवापचीति केचिद्वदन्ति ।

उस गंडमालाकी कोई कोई गंड पककर स्रवने लगती है, कोई कोई नष्ट हो जाती है, और कोई कोई नवीन उत्पन्न हो जाती है उन गंडोंकी ऐसी स्थिति बहुत दिनोंतक रहती है, बहुत वैद्य इस गंडमालाको ही 'अपची' कहते हैं ॥ १० ॥

अथापचीसाध्यासाध्यता ।

साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता त्वसाध्या ॥ ११ ॥

विना उपद्रवकी अपची साध्य है किन्तु जो पीनस, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर तथा वमनयुक्त होय तो असाध्य है ॥ ११ ॥

अथ ग्रन्थिलक्षणम्

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः सन्दूष्य मेदश्च तथा शिराश्च । वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १२ ॥ विग्रथितं ग्रन्थिरूपम् अत एव ग्रन्थिः स पञ्चधा वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिको मेदोजः शिराजश्च इति ।

वात, पित्त, कफ, मेद और शिरा ये मांस तथा रुधिरको दूषित करके ऊँची तथा गोलाकार गांठ रूप सूजनको उत्पन्न करे हैं उन गांठोंको ग्रंथि कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, मेदोज और शिरासम्बन्धी इस प्रकार ग्रन्थिके पांच भेद हैं ॥ १२ ॥

अथ वातजग्रन्थिलक्षणम् ।

आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रभ्रंशते मथ्यति भिद्यते च । कृष्णो मृदुर्वस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ १३ ॥ आयम्यते आकृष्य दीर्घं क्रियत इव । वृश्चति आश्रयं छिनत्ति इव । प्रभ्रंशते स्खलतीव । भिद्यते विदार्यत इव । आततः विस्तारित इव । मृदुः न तु अत्यन्तकठिनः । अस्रम् रुधिरम् । अच्छम् प्रकृतं स्रवेदित्यर्थः ।

जो ग्रंथि मानो खींचकर बढाई गई हो ऐसी मालूम हो, अपने स्थलको छेदती हो, गिरीसी पडे, सुई चुभोने सरीखी पीडा हो, मथनेकी समान, चीरने सरीखी पीडा हो और रबरकी समान फैल जाय, तथा काले रंगकी, अत्यन्त कठिन न होय, भेदने सरीखी पीडा हो और स्वाभाविक स्वच्छ रुधिर उसमेंसे स्रवता हो उसको वायुसंबंधी ग्रंथि जानना ॥ १३ ॥

अथ पित्तजग्रन्थिलक्षणम् ।

दन्दह्यते धूप्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि । रक्तः सपीतोऽप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेद्दुष्टमतीव चास्रम् ॥ १४ ॥ दन्दह्यते भृशं दाहं करोति सकलशरीरे । धूप्यति अन्तस्तापं करोति । चूष्यते शृंगेण इव । पापच्यते भृशं पाकं करोति । प्रज्वलति इव अग्निरिव ज्वालायुक्त इव भवति ग्रन्थिः । अस्रम् रुधिरम् । अतीव दुष्टं कृष्णतादियुक्तम् ।

जो ग्रंथि शरीरमें अग्निकी समान अत्यन्त दाह करती हो, अत्यन्त संताप देती हो, अत्यन्त पकती हो, लाल अथवा पीली हो, जब वह फूटे तब उसमेंसे मज्जासहित दुष्ट और काला रुधिर निकले, उसमें चूसने सरीखी पीडा होय अर्थात् सींगी लगाकर चूसते हैं ऐसी पीडा हो, तथा अग्निकी समान ज्वालासे युक्त हो उसको पित्तकी ग्रन्थि जानना ॥ १४ ॥

अथ कफजग्रन्थिलक्षणम् ।

शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्संहननोपपन्नः । चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नं स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ १५ ॥ अविवर्णः प्रकृतिवर्णः । पाषाणवत् संहननोपपन्नः संहततायुक्तः ।

जो ग्रंथि शीतल हो, स्वाभाविक वर्णवाली हो, थोडी पीडावाली हो, अत्यन्त खुजलीयुक्त हो, पत्थरकी समान अत्यन्त कठिन हो, बहुत दिनोंमें वृद्धिको प्राप्त हो, जब वह फूटे तब उसमेंसे सुफेद तथा गाढी राध निकले उसको कफकी ग्रन्थि कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ मेदोजग्रन्थिलक्षणम् ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान् कंडुयुतोऽरुजश्च । मेदः कृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः ॥ १६ ॥ तिलसदृशं घृतसदृशं वा मेदः गच्छति स्रवतीत्यर्थः ।

जो ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे, शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होती हो, स्निग्ध हो, बडी हो, खुजलीयुक्त हो, पीडारहित और फूटते समय खलकी समान अथवा घीकी समान उसमेंसे मेद स्रवे उस ग्रंथिको मेदसंबंधी जानना ॥ १६ ॥

अथ शिराजन्यग्रन्थिलक्षणम् ।

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुश्च शिराप्रतानम् । संकोच्य संपीडय विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ १७ ॥

निर्बल मनुष्य बलवान्के साथ युद्ध आदि परिश्रम करे तो उससे कुपित हुई वायु शिराओंके समूहको चलायमान करके दबाकर, संचय करके और सुखाकर तत्काल ऊँची तथा गोल आकारवाली ग्रंथिको उत्पन्न करती है, इस ग्रंथिको शिरासम्बंधी जानना ॥ १७ ॥

अथ ग्रन्थिकष्टसाध्यासाध्यता ।

ग्रन्थिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च । अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ १८ ॥ तस्तैर्बलवद्विग्रहादिभिः । आक्षिप्य चालयित्वा । सम्पीडय संहतीकृत्य । अरुजत्वादियुक्ता अन्येऽपि ग्रन्थयोऽसाध्याः । पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन्मर्मजानचलांस्त्यजेत् । कपोलगलमन्यासु दुश्चिकित्स्या हि सन्धिषु १९

जो शिराजन्य ग्रंथि पीडासहित हो और चंचल होय तो कष्टसाध्य है, जो शिरासम्बन्धी ग्रंथि पीडारहित हो, अचल हो, बडी हो और मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई होय तो असाध्य है इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । दूसरी ग्रंथि भी जो पीडारहित, अचल, बडी और मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई होय तो उसको भी असाध्य जानना क्योंकि भोजने भी कहा है कि " पांच प्रकारकी ग्रंथियोंमें जो ग्रंथी पीडारहित होय, मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई हो और अचल हो उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । " गाल (कपोल), नाड और संधियोंमें उत्पन्न हुई ग्रंथियोंकी चिकित्सा करनी बहुत कठिन है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथार्बुदस्य सम्प्राप्तिपूर्वकं सामान्यलक्षणम् ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषा संमूर्च्छिता मांसमसृक्प्रदूष्य ॥ २० ॥ वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् । कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ २१ ॥ महान्तं ग्रन्थ्यपेक्षया । चिरेण वृद्धिः यस्य तत् चिरवृद्धि । अपाकम् इति ग्रन्थेः सकाशादस्य भेदज्ञापकम् । अत्यगाधं दूरानुप्रविष्टम् ।

कोपको प्राप्त हुए दोष शरीरके किसी प्रदेशमें भी मांसको तथा रुधिरको दूषित करके गोल आकारवाली स्थिर, अल्प पीडावाली, ग्रंथिकी अपेक्षा बडी, बहुत उठी हुई बडी जडवाली, बहुत समयमें बढनेवाली और बहुत दिनोंमें भी नहीं पकनेवाली मांसकी ऊंचाईको उत्पन्न करे है । शास्त्रवेत्ता इस मांसकी ऊंचाईको अर्बुद कहते हैं, देशभाषामें इसको रसोली कहते हैं। ग्रंथी पकती हैं और अर्बुद नहीं पकता है ॥ २०॥२१ ॥

अथार्बुदनिदानपूर्वकविशिष्टलक्षणम् ।

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च । तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्रन्थैः समानानि वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकमेदोजानाम् अर्बुदानां लक्षणानि तुल्यानि भवन्ति ।

यह अर्बुद—वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस और मेदसे उत्पन्न होता है, और इसमें वात, पित्त, कफ तथा मेदके अर्बुदके लक्षण सर्वदा ग्रंथियोंके लक्षणोंकी समान होते हैं ॥ २२ ॥

अथ रुधिरजन्यार्बुदनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च संकोच्य संपीड्य ततस्त्वपाकम् । सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसांकुरैरावृतमाशु वृद्धिम् ॥ २३ ॥ स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्टमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु । रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥ २४ ॥ दोषोऽत्र पित्तम् । रुधिरं शिराश्च संकोच्य सम्पीड्य संहतीकृत्य मांसास्रजोः सर्वेषु अर्बुदेषु दूष्यत्वम् । रक्तजे तु विशेषतो रक्तदुष्टिः । एवं मांसार्बुदे विशेषतो मांसदुष्टिर्बोद्धव्या । ततः मांसपिण्डम् उन्नह्यति उद्गतं करोति । अपाकम् ईषत्पाकं यथा स्यादेवमिति क्रियाविशेषणम् । ईषत्पाकश्चैकदेशपाकेन । रक्तक्षयोपद्रवाः सुश्रुतोक्ताः तैः पीडितत्वात् । अर्बुदपीडितः रक्तार्बुदपीडितः ।

दुष्ट हुआ पित्त रुधिरको तथा शिराओंको संकुचित करके तथा जिससे एकत्रित हो जाय ऐसी रीतिसे दबाकर, स्रावयुक्त, मांसके अंकुरोंसे व्याप्त और तत्काल बढनेवाले तथा यत्किंचित् पकनेवाले मांसके पिंडको उत्पन्न करते हैं और उसमेंसे दूषित रुधिर नित्य स्रवता है इसको रुधिरजन्य अर्बुद कहते हैं । यह अर्बुद असाध्य है । इस अर्बुदसे पीडित मनुष्य सुश्रुतमें कहे हुए रुधिरके क्षयके उपद्रवोंसे पीडित होकर पांडुवर्ण हो जाता है । सर्व प्रकारके अर्बुदोंमें मांस तथा रुधिर दूषित होता है और रुधिरसे उत्पन्न हुए अर्बुदमें तो विशेष करके रुधिर दूषित होता है तथा मांसके अर्बुदमें विशेष करके मांस दूषित होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ मांसार्बुदसम्प्राप्तिः ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं समुपैति शोथम् । अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ २५ ॥ मांसं प्रदुष्टं वातेन । अवेदनम् वेदनारहितमीषद्वेदनं वा अपाकं पाकरहितमीषत्पाकं वा ।

मुष्टि आदिके प्रहारसे अंग पीडित होकर उस अंगके पीडित होनेसे वात कुपित होकर मांसमें वेदनारहित, अथवा अल्पवेदनासहित स्निग्ध, अभिन्न वर्णवाली, वा नहीं पकनेवाली, अथवा कुछेक पकनेवाली, पत्थरकी समान और अचल ऐसी सूजनको उत्पन्न करे है ॥ २५ ॥

अथ मांसजन्यार्बुदनिदानम् ।

प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ २६ ॥ मांसाशनाभ्यासेन यः प्रदुष्टमांसस्तस्य एतद्भवतीत्यर्थः ।

मांसको भक्षण करनेके अभ्याससे जिसका मांस दुष्ट हो जाता है उसके यह दृढ अर्बुद उत्पन्न होता है॥२६॥

अथासाध्यार्बुदलक्षणम् ।

मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमाहुः साध्येष्वपीमानि विवर्जयेच्च । संप्रस्रुतं मर्मसु यच्च जातं स्रोतःसु वा यत्तु भवेदचाल्यम् ॥ २७ ॥ साध्येष्वपि वातजादिष्वपि इमानि वक्ष्यमाणानि विवर्जयेच्च सम्प्रस्रुतादीनि ।

मांससे उत्पन्न हुआ अर्बुद असाध्य है ऐसा वैद्योंने कहा है, वातादिसे जो उत्पन्न हुए अर्बुद वे साध्य हैं, उनमें भी जो अर्बुद स्रावयुक्त, मर्मस्थलमें उत्पन्न हुआ, स्रोतोंमें उत्पन्न हुआ और अचल होय उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २७ ॥

अथार्बुदापाके कारणम् ।

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः । यद्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ २८ ॥

प्रथम उत्पन्न हुए अर्बुदमें जो दूसरा अर्बुद उत्पन्न हो जाय तो उसका नाम अध्यर्बुद कहा जाता है । यह अध्यर्बुद एकही समय अथवा अनुक्रमसे उत्पन्न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ होय और दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य है ॥ २८ ॥

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु । दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ २९ ॥ ग्रथनाद्ग्रन्थिरूपत्वात् । ननु अपच्यां कफमेदसोराधिक्येऽपि पाको दृश्यते, तथा अत्र कथं न पाक इत्याह । निसर्गतः स्वभावात् ।

सर्व प्रकारके अर्बुद कफकी तथा मेदकी अधिकतावाले और विशेष करके दोषोंकी स्थिरतावाले तथा गांठरूप होयँ वेभी नहीं पकते हैं । शंका--अपचीमें कफ तथा मेद अधिक होता है, तो भी अपचीका पाक होता है फिर अर्बुदका पाक क्यों नहीं होता । समाधान—अर्बुदका स्वभाव ही ऐसा है कि जिससे पाक बहुत कालतक नहीं होता और होय तो बहुत थोडा पकता है ॥ २९ ॥

अथ गलगंडचिकित्सा ।

सर्षपाञ्छिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् । मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ३० ॥ गलगण्डो गण्डमाला ग्रन्थयश्चैव दारुणाः । प्रलेपादेव नश्यन्ति विलयं यान्ति सत्वरम् ॥ ३१ ॥ रक्षोघ्नतैलयुक्तेन जलकुम्भीकभस्मना । लेपनं गलगण्डस्य चिरोत्थस्यापि शस्यते ॥ ३२ ॥ रक्षोघ्नः सर्षपः । श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः । सार्षपा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥ ३३ ॥ तिक्तालाबूफले पक्के सप्ताहमुषितं जलम् । सद्यः स्याद्गलगण्डघ्नं पानात्पथ्यान्नसेविनाम् ॥ ३४ ॥ तैलं पिबेद्वाऽमृतवल्लिनिम्बहिंस्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः । सिद्धं बलाभ्यां सह देवदारुणा हिताय नित्यं गलगण्डरोगिणः ॥ ३५ ॥ वृक्षकोऽत्र तुणिः उक्तं च निघण्टौ धन्वन्तरिणा—तुणिस्तूणीकशीतश्च नन्दिवृक्षश्च वृक्षकः ॥ ३६ ॥ बलाभ्यां बलातिबलाभ्याम् ।

सरसों सैंजिनेके बीज, सनके, बीज अलसी, जौ और मूलीके बीज इनको खट्टे मट्ठेमें पीसकर गाढा लेप करे, इससे गलगण्ड, गण्डमाला और दारुण ग्रंथि तत्काल नष्ट हो जाती और गल जाती है । सिवारकी भस्म बनाकर उसको सरसोंके तेलमें पकाकर लेप करे तो बहुत दिनोंका गलगण्ड भी शांत हो जाता है। श्वेत अपराजिता (कोइली) की जडको पीसकर प्रातःकाल घीके साथ पिये और इसपर पथ्य आहार करे तो गलगण्ड शांत हो जाता है । कडवी तोम्बीके पके हुए फलमें पानीको भरकर सात दिनतक रख देवे, फिर उसको पीवे और पथ्य आहार सेवन करे तो उससे गलगंड तत्काल नष्ट हो जाता है । गिलोय, नीम, हिंसकवृक्ष, हरड, बेलियापीपल, पीपल, दोनों प्रकारकी खिरेटी और देवदारु इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल नित्य पिये तो गलगंड रोग अवश्य नष्ट हो जाता है । इसको अमृतादि तेल कहते हैं ॥ ३०–३६ ॥

यवमुद्गपटोलादिकटुरूक्षान्नभोजनम् । वमनं रक्तमोक्षश्च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥ दापयेत्पच्छनान्यत्र गण्डगोपालिकोद्भवः । प्रलेपस्त्वनुभूतोऽयं बहुधा बहुभिर्जनैः ॥ ३८ ॥ प्रच्छानि पच्छना इति लोके । गण्डगोपालिका गण्डगुयालीति च प्रसिद्धा आम्रवाटिकायां सुलभः कीटविशेषो भवति । लवणं जलकुम्भं च कणाचूर्णेन संयुतम् । प्रभाते नित्यमश्नीयाद्गलगण्डप्रशान्तये ॥ ३९

गलगंड रोगमें जौ, मूँग, कडवे परवल, तीक्ष्ण तथा रूक्ष पदार्थ भोजन करने चाहिये, वमन करनी, और रुधिर निकलवाना चाहिये । गलगंडपर पछने लगावे और उसपर गंडगोपाल नामक कीडेका लेप करे इससे गलगण्ड नष्ट हो जाता है । यह प्रयोग बहुतसे मनुष्योंने बहुत ही बार अनुभव किया है । सियारकी भस्म बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर नित्य प्रातःकाल पिये तो गलगण्ड नष्ट हो जाता है ॥ ३७–३९ ॥

अथ गण्डमालाचिकित्सा ।

काञ्चनारत्वचः क्काथः शुण्ठीचूर्णेन संयुतः । माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्काथो वरुणमू-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लजः॥४०॥गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ४१ ॥ पलमर्धपलं चापि पिष्टां तण्डुलवारिणा । काञ्चनारत्वचं पीत्वा गण्डमालां व्यपोहति ॥ ४२ ॥

कचनारकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें सोंठका चूर्ण डालकर पिये तो एक ही बारमें गण्डमाला नष्ट हो जाती है । वरनाकी जडका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पिये तो एक ही बारमें तत्काल बहुत दिनोंकी पुरानी गण्डमाला नष्ट हो जाती है। दो तोले अथवा चार तोले कचनारकी छाल लेकर उसको चावलोंके पानीमें पीसकर पिये तो गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ४०--४२ ॥

अथ कांचनारगुग्गुलुः ।

कांचनारस्य गृह्णीयात्त्वचं पंचपलोन्मिताम् । नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य पलं पलम् ॥ ४३ ॥ पथ्याविभीतधात्रीणां पलमर्द्धं पृथक्पृथक् । वरुणस्याक्षमेकं च पत्रकैलात्वचं पुनः ॥ ४४ ॥ टंकं टंकं समादाय सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् । यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥ ४५ ॥ संकुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा विधारयेत् । गुटिका शाणिका कृत्वा प्रभाते भक्षयेन्नरः ॥ ४६ ॥ गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च । ग्रन्थीन्व्रणानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ ४७ ॥ प्रदेयश्चानुपानार्थं क्काथो मुण्डितिकाभवः । क्काथः खदिरसारस्य क्काथः कोष्णोऽभयाभवः ॥ ४८ ॥

कचनारकी छाल २० तोले, सोंठ ४ तोले, पीपल ४ तोले, मिर्च ४ तोले, हरड २ तोले, बहेडे २ तोले, आंवले २ तोले, वरना १ तोला, तेजपात २४ रत्ती, इलायची २४ रत्ती और दालचीनी २४ रत्ती लेवे, इन सबको एकत्र करके बारीक चूर्ण बनावे, फिर इस सब चूर्णकी बराबर गूगल मिलाकर उत्तम विधिसे कूटकर गोली बना लेवे । इसको कांचनार गूगल कहते हैं । इस गूगलकी चौबीस चौबीस रत्तीकी गोलियां बनावे । प्रातःकाल एक गोली नित्य खाय महाउग्र गलगंड अपची, अर्बुद, ग्रंथि, व्रण, गुल्म, कोढ तथा भगन्दर यह सब नष्ट हो जाते हैं । इन गोलियोंपर अनुपानके लिये कुछ कुछ गरम गोरखमुण्डीका अथवा खैरसारका वा हरडका क्वाथ पिये ॥ ४३--४८ ॥

अथ चक्रमर्दतैलम् ।

चक्रमर्दकमूलस्य पले कल्के विपाचयेत् केशरागरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥ ४९ ॥ पादांशिकं विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् । एतत्तैलं निहन्त्याशु गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ५० ॥ केशरागो भृंगराजः

पमारकी जडका कल्क चार तोले डालकर भांगरेके रसमें सरसोंके तेलको मंद मंद अग्निसे पकावे जब पक जाय तब उसमें चौथाई भाग सिन्दूर डालकर उतार लेवे तो चक्रमर्दतेल सिद्ध होता है । इस तेलकी मालिश करनेसे तत्काल महादारुण गंडमाला नष्ट हो जाती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ गुञ्जातैलम् ।

गुञ्जामूलफलैस्तैलं विपक्वं द्विगुणाम्भसा । हरेदभ्यंगनस्याभ्यां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ ५१ ॥

चौटलीकी जड तथा चौटलीके बीज इनका कल्क डालकर दुगुने जलसे तेलको पकावे तो यह 'गुंजातेल' सिद्ध होता है । इस तेलका अभ्यंग और नस्य लेनेसे महादारुण गंडमाला नष्ट हो जाती है ॥५१॥

अथापचीचिकित्सा ।

तत्र चन्दनादितैलम् ।

चन्दनं सामया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी । एतत्तैलं घृतं पीत्वा समूलामपचीं हरेत्॥५२॥

लाल चंदन, हरड, लाख, वच और कुटकी इनके क्वाथमें पकाया हुआ तेल 'चंदनादितैल' कहा जाता है । इस तेलको पीनेसे जडसहित अपची नष्ट हो जाती है ॥ ५२ ॥

अथ त्र्योषादितैलम् ।

त्र्योषं विडंगमधुकं सैन्धवं देवदारु च । तैलमेभिः घृतं नस्यात्सकृच्छ्रामपचीं हरेत ॥ ५३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, मुलैठी, सैंधानिमक और देवदारु इनके क्वाथमें पकाया हुआ तेल 'व्योषादितेल' कहा जाता है । इस तेलका नास देनेसे दारुण अपची नष्ट हो जाती है ॥ ५३ ॥

अथ ग्रंथ्यर्बुदचिकित्सा ।

स्वार्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः । एतेन विहितो लेपो हन्ति ग्रन्थिं तथार्बुदम् ॥ ५४ ॥ ग्रन्थिर्न यो नश्यति भेषजेन निष्कास्य तं शस्त्रचिकित्सितेन । जात्यादिपक्केन घृतेन वैद्यो व्रणेन चान्येन च संचिकित्सेत् ॥ ५५ ॥ ग्रन्थिमुद्धृत्य तत्रापि व्रणोक्तं क्रममाचरेत् । शिराग्रन्थिविहायान्ये शेषे शस्त्रं प्रयुञ्जते ॥ ५६ ॥

सज्जी, मूलीका खार और शंखका चूर्ण इनको पीसकर लेप करनेसे ग्रंथि तथा अर्बुद नष्ट हो जाता है । जिस ग्रंथिमें औषधिसे आराम न होय तो उसको वैद्य शस्त्रचिकित्सासे निकाल देवे फिर व्रणकी समान जात्यादिघृत अथवा अन्यान्य व्रणमें हितकारक औषधियोंको उपयोग करे । गांठको निकालकर फिर व्रणकी समान चिकित्सा करनी चाहिये । केवल शिराजन्य ग्रंथिको छोडकर बाकी सर्वप्रकारकी ग्रंथियोंकी शस्त्रसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५४--५६ ॥

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः । अतश्चिकित्सेद्विषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ५७ ॥

अन्य आचार्य ऐसा कहते हैं कि, ग्रंथि और अर्बुदोंके प्रदेशोंमें, निदानोंमें, आकारोंमें, दोषोंमें और दूष्योंमें कुछ भी अन्तर नहीं है । इस कारण शस्त्रचिकित्साको जाननेवाले वैद्य अर्बुदपर भी ग्रंथिकी समान चिकित्सा करें ॥ ५७ ॥

हरिद्रालोध्रपत्राङ्गधूहधूम्रमनःशिलाः । मधुप्रगाढलेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥५८ ॥ मूलकस्य कृतः क्षारो हरिद्रायास्तथैव च । शंखचूर्णेन संयुक्तो लेपः सिद्धोऽर्बुदापहः ॥ ५९ ॥

हलदी, लोध, पतंग, घरका धुआँसा और मैनशिल इनको सहतमें मिलाकर लेप करनेसे मेदसम्बन्धी अर्बुद नष्ट हो जाता है । मूलीकी भस्म, हलदीकी भस्म और शंखका चूर्ण इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अर्बुद नष्ट हो जाता है । अर्बुद दूर करनेका यह सिद्ध उपाय है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

वटदुग्धकुष्ठरोमकलिप्तं बद्धं वटस्य पत्रेण । अध्यस्थि सप्तरात्रान्महदप्युपशान्तिमर्बुदं गच्छेत् ॥ ६० ॥

वडका दूध, कूठ और सांभरनिमक इनका अर्बुदके ऊपर लेप करे और ऊपरसे वडके पत्ते बाँध देवे तो हड्डीके ऊपर उत्पन्न हुआ भी अर्बुद नष्ट हो जाता है ॥ ६० ॥

शिग्रुमूलकयोर्बीजं रक्षोघ्नं सुरसा यवम् । तक्रेणाश्वरिपोः पिष्ट्वा लिम्पेदर्बुदशान्तये ॥ ६१ ॥ रक्षोघ्नं सर्षपम् । सुरसा तुलसी । यवम् इन्द्रयवम् । अश्वरिपुर्महिषी ।

सैंजिनेके बीज, मूलीके बीज, सरसों, तुलसी और इन्द्रजौ इनको भैंसके तक्रमें पीसकर लेप करनेसे अर्बुद नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥

इति गलगंडगंडमालाग्रंथ्यर्बुदाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ श्लीपदाधिकारः ।

तत्र श्लीपदसामान्यकारणम् ।

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः । ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ १ ॥ विशेषत इति वचनेन अन्यत्रापि श्लीपदं भवतीति बोध्यते ॥

जिस देशमें मेहका जल बहुत दिनोंतक भरा रहता है और सब ऋतुओंमें जिसमें शीतलता रहती है उस देशमें श्लीपद रोग विशेष करके उत्पन्न होता है । "विशेष करके" ऐसा कहनेसे यह समझना चाहिये कि अन्य देशोंमें भी श्लीपद रोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अथ श्लीपदसामान्यलक्षणम् ।

यः सज्वरो वंक्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण । तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः॥२॥ तत्त्रिविधम् । वातिकं पैत्तिकं श्लैष्मिकं चेति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्योंकी साथलोंकी जडमें जो सूजन ज्वरसहित और अत्यंत पीडायुक्त अनुक्रमसे धीरे धीरे पांवमें पहुँचे उस सूजनको श्लीपद कहते हैं । कितनेक आचार्य कहते हैं कि हाथ, कान, नेत्र, लिंग, होठ और नाक इनमेंभी श्लीपद होता है । वातिक, पैत्तिक और कफज ऐसे श्लीपद रोग तीन प्रकारका है ॥ २ ॥

अथ त्रिविधश्लीपदसामान्यलक्षणम् ।

वातजं कृष्णरूक्षं हि स्फुटितं तीव्रवेदनम् । अनिमित्तरुजं चास्य बहुशो ज्वर एव च । ॥ ३ ॥ पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं भृशम् । श्लैष्मिकं तु भवेत्स्निग्धं तथा पाण्डुरमस्थिरम् ॥ ४ ॥

वातिक श्लीपद काला, रूखा, फटा हुआ, तीव्र पीडायुक्त होता है उसमें अकस्मात् वेदना होती है तथा बारंबार ज्वर आता है । पैत्तिक श्लीपद पीले रंगका, अत्यंत दाह और ज्वरयुक्त होता है । कफका श्लीपद स्निग्ध, पांडुवर्ण और अल्प पीडायुक्त होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् । गुरुत्वं च महत्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥

यह तीनों प्रकारके श्लीपद कफके उत्कर्षसे होते हैं क्योंकि कफके विना भारीपन और महत्पन नहीं हो सक्ता ॥ ५ ॥

अथ श्लीपदासाध्यता ।

वल्मीकमिव सञ्जातं कण्टकैरुपचीयते । अब्दात्मकं महत्तत्तु वर्जनीयं विशेषतः ॥ ६ ॥ यच्चश्लैष्मिकाहारविहारजातैर्जातं तथा भूरिकफस्य पुंसः । सास्रावमत्युन्नतसर्वलिंगं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्य ॥ ७ ॥

जो श्लीपद साँपकी वाँबीकी समान, अनेक कांटों युक्त बडा हो और जिसको उत्पन्न हुए एक साल बीत गया हो उस श्लीपदकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । जो श्लीपद कफजन्य आहार विहारोंसे उत्पन्न हुआ हो, अधिक कफवाले मनुष्यके उत्पन्न हुआ हो, स्रवता हो, अत्यंत ऊंचा हो, तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त हो, और खुजलीयुक्त हो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ श्लीपदचिकित्सा ।

लंघनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः । प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ ८ ॥ सिद्धार्थशोभाञ्जनदेवदारुविश्वौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलिम्पेत् । पुनर्नवानागरसर्षपाणां कल्केन वा काञ्जिकमिश्रितेन ॥ ९ ॥ श्लीपदमिति शेषः ।

लंघन, लेपन, स्वेदन, विरेचन, रक्तमोक्षण और विशेष करके कफको हरनेवाली गरम औषधियोंसे श्लीपदकी चिकित्सा करनी चाहिये । सरसों, सैंजिना, देवदारु और सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर श्लीपदके ऊपर लेप करनेसे श्लीपद नष्ट हो जाता है । पुनर्नवा, सोंठ, और सरसों इनका कल्क बनाकर उसमें कांजी डालकर लेप करनेसे श्लीपद नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः । प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥१०॥ असाध्यमपि यात्यस्तं श्लीपदं चिरकालजम् । मूलेन सहदेवायास्तालमिश्रेण लेपनात् ॥ ११ ॥ सप्ततांबूलपत्राणां कल्कं तप्तेन वारिणा । संसृष्टं लवणोपेतं सेवितं श्लीपदं हरेत् ॥ १२ ॥

धत्तूरा, एरंड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सैंजिना और सरसों इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका दारुण श्लीपद नष्ट हो जाता है । खिरैटी अथवा सहदेवीकी जडको ताडके फलोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे बहुत कालसे उत्पन्न हुआ असाध्य श्लीपद भी नष्ट हो जाता है । नागरवेलके सात पानोंका कल्क बनाकर उसमें सेंधानिमक डालकर गरम जलके साथ नित्य पिये तो श्लीपद नष्ट हो जाता है ॥ १०–१२ ॥

शाखोटवल्कलक्काथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् । श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये ॥ १३ ॥ रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः । वर्षाभूत्रिफलाचूर्णं पिप्पल्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सह योजितम्। सक्षौद्रं श्लीपदे लिह्याच्चिरोत्थं श्लीपदं जयेत् ॥ १४ ॥ गन्धर्वतैलसिद्धां हरीतकीं गोऽम्बुना पिबेन्नित्यम्। श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ १५ ॥ गन्धर्वतैलम् एरण्डतैलम्। गोऽम्बु गोमूत्रम् ॥

सिहोरेकी छालका क्वाथ बनाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे श्लीपदका नाश होता है और मेददोषभी नष्ट होता है। हलदी और गुडको एकत्र मिलाकर गोमूत्रमें घोलकर पीनेसे श्लीपद नष्ट हो जाता है। पुनर्नवा, हरड, बहेडा, आमला और पीपल इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बहुत दिनोंका श्लीपद नष्ट हो जाता है। अण्डीके तेलमें हरडोंको पकाकर नित्य गोमूत्रके साथ पीनेसे सात दिनमें श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है ॥ १३-१५ ॥

इति श्लीपदाधिकारः संपूर्णः।

अथ विद्रध्यधिकारः।

तत्र विद्रध्याः सम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम्।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः। दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥ महामूलं रुजावन्तमल्पं वाप्यथ वायतम्। स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥ अस्थिसमाश्रिता दोषा इति वक्ष्यमाणशोथाद्विद्रधेर्भेदार्थम्। यतो व्रणशोथे दोषाणामस्थिसमाश्रयनियमो नास्ति। घोरं दारुणम्। आयतं दीर्घम्।

अस्थियोंमें रहनेवाले और अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुए दोष त्वचाको, रुधिरको, मांसको तथा मेदको दूषित करके धीरे धीरे छोटी अथवा बडी, बहुत बडी जडवाली और वेदनायुक्त भयंकर सूजनको उत्पन्न करते हैं यह सूजन 'विद्रधि' कही जाती है और यह छः प्रकारकी है। इस विद्रधि अधिकारके पश्चात् जो व्रणसम्बन्धी सूजन कही जायगी उससे पृथक्ता दिखलानेके लिये 'अस्थियोंमें रहनेवाले' ऐसा कहा है क्यों कि व्रणसम्बन्धी सूजनमें दोषोंका अस्थियोंमें रहनेका नियम नहीं है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ विद्रधिषट्प्रकाराः।

यथा दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा। षण्णां तेषां तुल्यमेव लक्षणं संप्रचक्षते ॥ ३ ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्षतज और रुधिरजन्य ऐसे विद्रधि छः प्रकारकी है। समस्त विद्रधियोंके सामान्य लक्षण एकसेही होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातजविद्रधिलक्षणम्।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः। चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः॥ ४॥ विषमो भृशं क्षणमल्पः क्षणं महान् चिरोत्थानप्रपाकः चिराद्विलंबादुत्थानप्रपाकौ यस्य सः।

जो विद्रधि काली अथवा लाल हो, क्षणमें छोटी और क्षणमें बडी हो जाय, अत्यन्त वेदनायुक्त और जिसका उठना तथा पकना बहुत कालमें होय उसको वातज विद्रधि जानना इस विद्रधिमें पतला स्राव होता है ॥ ४ ॥

अथ पित्तजविद्रधिलक्षणम्।

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्। क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥५

जो विद्रधि पके गूलरकी समान अथवा कालौंस लिये हो, ज्वरसे तथा दाहसे युक्त हो, जिसका उठना और पकना शीघ्र हो, उसको पित्तकी विद्रधि जानना। इस विद्रधिका स्राव पीला होता है ॥ ५ ॥

अथ कफजविद्रधिलक्षणम्।

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः। चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः। तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशो मताः ॥ ६ ॥

जो विद्रधि मिट्टीके सिकोरेकी समान बडी हो पांडुवर्ण हो, शीतल हो, स्निग्ध हो, थोडी पीडायुक्त हो और जिसका उठना तथा पकना बहुत देरमें होय उसको कफकी विद्रधि कहते हैं। इस विद्रधिका स्राव सफेद होता है ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ सान्निपातिकविद्रधिलक्षणम् ।
नानावर्णरुजास्रावो घाटलो विषमो महान् ।
विषमं पच्यते वापि विद्रधिः सान्निपातिकः
॥७॥ नाना अनेकविधाः वर्णाः कृष्णरक्त-
पांडुरूपाः रुजः तोददाहकण्ड्वादिरूपाः स्रा-
वाः तनुपीतसिताः यस्य सः। घाटलः घाटा
कोटिः सा अस्य अस्तीति घाटलः अत्यु-
च्छ्रिताग्र इत्यर्थः । विषमः निम्नोन्नतः ।
विषमं पच्यते वापि चिराच्चिरगम्भीरोत्ता-
नोर्द्ध्वानूर्द्ध्वभेदेन विषमं यथा स्यात्तथा पच्यते ।

जो विद्रधि काली, लाल तथा पांडुवर्ण हो, भेदने छेदने सरीखी पीडा, दाह तथा खुजली आदि अनेक उपद्रव युक्त हो, पतले, पीले तथा सफेद स्रववाली हो, अत्यंत ऊँची अनीदार हो, नीची ऊँची हो, बडी हो और जो बहुत दिनोंमें थोडे दिनोंमें विषम रूपसे अनियमित कालमें पके उसको त्रिदोषविद्रधि जानना ॥ ७ ॥

अथाभिघातजविद्रधिसम्प्राप्तिलक्षणम् ।
तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणाम् ।
क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत्
॥ ८ ॥ ज्वरस्तृषा च दाहश्च जायते तस्य
देहिनः । आगन्तुर्विद्रधिह्येष पित्तविद्रधि-
लक्षणः ॥ ९ ॥ तैस्तैर्भावैः काष्ठलोष्टपाषा-
णादिभिः अभिहते यथा रक्तस्रावो भवि-
ष्यति तथा क्षते कृते क्षतोष्मा । अत्र क्षत-
शब्देन हतमात्रमुच्यते । तेनाभिहतक्षतयो-
रुभयोरप्यूष्मा वायुना विसृतः । अभिहते
अभिघातात्क्षते रक्तक्षयात्कुपितेन वायुना
प्रसृतः ईरयेत्कोपयेत् ।

लकडी, ईंट, पत्थर, तलवार, बरछी आदिके अभिघातसे घाव हो जानेसे अथवा जिसमें रुधिरका स्राव होता हो ऐसे घावके होनेसे अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्योंके अंगोंमें अभिघातसे अथवा घावके होनेसे रुधिरका क्षय होनेसे कोपको प्राप्त हुई वायु विस्तृत होकर अभिघातकी अथवा घावकी गरमी रुधिर और पित्तको प्रकुपित करती है जिससे मनुष्योंके ज्वर, तृषा और दाह उत्पन्न होती है । इस आगन्तुज विद्रधिके लक्षण पित्तजन्य विद्रधिके लक्षणोंकी समान होते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ रुधिरजन्यविद्रधिलक्षणम् ।
कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः ।
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते॥ १०॥

जो विद्रधि काले फोडोंसे व्याप्त हो, कालौंस लिये हो, तीव्रपीडायुक्त, तीव्रदाहयुक्त, तीव्रज्वरयुक्त और बाकी सब लक्षण इसके पित्तविद्रधिके समान होते हैं इसको रुधिरकी विद्रधि जानना ॥ १० ॥

अथाभ्यन्तरविद्रधिनिदानाश्रयलक्षणानि ।
आभ्यन्तरानतस्तूर्द्ध्वं विद्रधीन्परिचक्षते ।
गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कशाकाम्लभोजनाः
॥ ११ ॥ अतिव्यवायव्यायामवेगाघातवि-
दाहिभिः । पृथक् सम्भूय वा दोषाः कुपिता
गुल्मरूपिणम् ॥ १२ ॥ वल्मीकवत्समुन्नद्ध-
मन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् । गुदे वस्तिमुखे
नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा ॥ १३ ॥
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदि वा क्लोम्नि
चाप्यथ । एषां लिङ्गानि जानीयाद्बाह्यवि-
द्रधिलक्षणैः ॥ १४ ॥ सम्भूय वा मिलित्वा
वा समुन्नद्धं समन्तादुन्नतम् ।

अब भीतरकी विद्रधियोंको कहते हैं। भारी अन्नके भोजन करनेसे, असात्म्य (जो अपनेको प्रतिकूल हो), विरुद्ध भोजन, सूखा हुआ शाक और खट्टे पदार्थोंके खानेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, आमसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, अत्यंत उष्ण पदार्थोंसे और दाहजनक पदार्थोंसे अलग अलग अथवा सब एकत्र मिलकर कोपको प्राप्त हुए दोष गुदाके भीतर, मूत्राशयके मुखमें, नाभिके भीतर, पेटके भीतर, साथलोंकी संधियोंके भीतर, कोखमें, बूंकमें, प्लीहा और यकृत्में, हृदयमें अथवा तृषा लगनेके स्थानके भीतर, साँपकी बाँबीकी और ऊँची गुल्मकी समान विद्रधि उत्पन्न होती है। इन विद्रधियोंके लक्षण बाहरकी विद्रधियोंकी समान ऊपरसे जानने ॥११–१४॥

अथ स्थानविशेषेण रूपविशेषः ।
गुदे वातनिरोधस्तु वस्तौ कृच्छ्रात्स्वमूत्रता ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाभ्यां हिक्काजृम्भणे च कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥ १५ ॥ कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे तु विद्रधौ । वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्नयुच्छ्वासावरोधनम् ॥ १६ ॥ सर्वांगग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते । श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः ॥ १७ ॥

गुदाके भीतर विद्रधि होती है तो अपानवायु रुक जाती है। मूत्राशयके मुखमें जो विद्रधि होती है तो उसमें धीरे धीरे थोडा थोडा मूत्र उतरता है। नाभिके भीतर जो विद्रधि होती है तो हिचकी और जम्भाई आती है। पेटके भीतर जो विद्रधि होती है तो वायुका प्रकोप होता है, सांथलकी जडके भीतर जो विद्रधि होती है तो तीव्रतर कमर और पीठ जकड जाती है, कोखमें विद्रधि होती है तो पसलियोंमें संकोच होता है, प्लीहाके भीतर जो विद्रधि होती है तो श्वास रुक जाता है, हृदयके भीतर जो विद्रधि होती है तो तीव्र रीतिसे सम्पूर्ण अंग रह जाते हैं और खाँसी हो जाती है, जो यकृत्के भीतर विद्रधि होती है तो श्वास तथा हिचकी होती है और जो तृषा लगनेके स्थानमें विद्रधि होती है तो अत्यंत तृषा लगती है ॥ १५-१७ ॥

अथ विद्रधिस्रावमार्गः ।

नाभेरुपरिजाः पक्का यान्त्यूर्द्ध्वमितरेत्वधः ॥ १८ ॥ उपरिजाः कक्षादिजाताः यान्ति स्रवन्ति । ऊर्द्ध्वं मुखात् । इतरे वस्त्यादिजाः । अधः गुदात् । नाभिजस्तु उभाभ्यां मार्गाभ्याम् । तथा च हारितः-ऊर्द्ध्वं प्रभिन्नेषु मुखान्नराणां प्रवर्ततेऽसृक्सहितो हि पूयः । अधः प्रभिन्नेषु तु पायुमार्गाद् द्वाभ्यां प्रवृत्तिस्त्विह नाभिजेषु ॥ १९ ॥

नाभिसे ऊपरके भागोंमें (कोख आदिमें) उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब पकती है तब उनका स्राव मुखमेंसे होता है । और नाभीसे नीचेके भागोंमें (मूत्राशय आदिमें) उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब पकती है तब उनका स्राव गुदामेंसे होता है। नाभिके भीतर विद्रधि जब पकती है तब उनका स्राव मुख तथा गुदा दोनोंमेंसे होता है। क्योंकि हारीत संहितामें कहा है कि " नाभिके ऊपर उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटती है तब मनुष्योंके मुखमेंसे रुधिरसहित राध गिरती है और नाभिसे नीचे उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटती है तब मनुष्योंकी गुदामेंसे रुधिरसहित राध गिरती है। नाभिमें उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटती है तो गुदा और मुख दोनोंमेंसे रुधिरसहित राध निकलती है " ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ विद्रधिसाध्यासाध्यत्वम् ।

अधः स्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्द्ध्वं न जीवति । हृन्नाभिवस्तिवर्जेषु तेषु भिन्नेषु बाह्यतः । जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ २० ॥ हृन्नाभिवस्तिवर्जेषु प्लीहक्लोमादिजाः तेषु तथा भिन्नेषु न जीवेत् । हृदादीनां मर्मत्वात् ।

विद्रधि गुदामेंसे स्रवती हो तो मनुष्य जीता रहता है किन्तु जो मुखमेंसे स्रवती होय तो मनुष्य नहीं जीता । हृदय, नाभि और मूत्राशय इन स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो बाहर फूट जाय तो मनुष्य कदाचित् जी जाता है किन्तु हृदय, नाभि और मूत्राशय इनमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो बाहर फूट जाय तो मनुष्य कभी भी नहीं जीता क्योंकि हृदय आदि स्थान मर्मस्थल हैं ॥ २० ॥

असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्वोऽपक्वश्च विद्रधिः । सन्निपातोत्थितोऽप्येवं पक्व एव हि वस्तिजः ॥ २१ ॥ त्वग्जो नाभेरधोजश्च साध्यो यश्च समीपजः । अपक्वश्चैव पक्वश्च साध्यो नोपरि नाभितः ॥ २२ ॥ आध्मानं बद्धनिःशब्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम् । रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २३ ॥

इसपर भोज कहता है कि " मर्म स्थलोंमें उत्पन्न हुई विद्रधि पकी होय अथवा नहीं पकी होय तोभी असाध्यही समझना चाहिये । " तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई विद्रधि भी असाध्य है। मूत्राशयमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो पक जाय तो असाध्य है । जो विद्रधि त्वचामें उत्पन्न हुई होय, नाभिके नीचे उत्पन्न हुई होय अथवा नाभिके समीपमें उत्पन्न हुई होय तो साध्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। नाभिसे ऊपर उत्पन्न हुई विद्रधि पकी हो अथवा नहीं पकी हो तोभी असाध्य है। जिस विद्रधिवाले मनुष्यके अफरा, अशक्तता, वमन, हिचकी, तृषा, वेदना तथा श्वास होय तो वह मनुष्य विद्रधिसे अवश्य मर जाता है ॥ २१–२३ ॥

अथ बहिर्विद्रधिसाध्यासाध्यता।

साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यैःसान्निपातिकः आमपक्वविदग्धत्वं तेषां ज्ञेयं च शोथवत् ॥ ॥ २४ शोथवत् वक्ष्यमाणव्रणशोथवत्।

बाहरकी विद्रधियोंमें वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, क्षतज और रुधिरजन्य ये पांचों विद्रधि साध्य हैं किन्तु तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई विद्रधि असाध्य है, विद्रधिकी अपक्वता, पक्वता और विदग्धता व्रणशोथकी समान। जानना व्रणशोथकी पक्वता, अपक्वता और विदग्धता आगेके अधिकारमें कहेंगे ॥ २४ ॥

अथ विद्रधिचिकित्सा।

जलौकापातनं शस्तं सर्वास्मिन्नेव विद्रधौ। रेको मृदुर्लघनं च स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २५॥ अपक्वे विद्रधौ युञ्ज्याद्व्रणशोथवदौषधम्। वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः ॥२६॥ सुखोष्णैर्बहुलैर्लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ। यवगोधूममुद्गैश्च पिष्टैराज्येन लेपयेत् ॥ २७ ॥ विलीयते क्षणेनैव ह्यविपक्वस्तु विद्रधिः। पैत्तिकं विद्रधिं वैद्यः प्रदिह्यात्सर्पिषा युतैः। पयस्यौशीरमधुकचन्दनैर्दुग्धपेषितैः ॥ २८ ॥ पयस्याऽनेकार्थत्वादत्र क्षीरकाकोली गुणाधिक्यात्तस्या अलाभे अश्वगंधा ग्राह्या।

सर्व प्रकारकी विद्रधियोंमें जोंक लगवानी चाहिये। मृदु विरेचन देना और लंघन कराना ये उत्तम हैं। पित्तकी विद्रधिको छोडकर बाकी सब विद्रधियोंमें स्वेदन करना उत्तम है। जो विद्रधि पकी न होय तो उसपर व्रणशोथकी औषधि जो कि आगेके अधिकारमें कही जायँगी उनकी योजना करे। आल अंडकी जडका कल्क बनाकर उसमें चरबी, तेल तथा घी डालकर कुछेक गरम करके उसका गाढा लेप करनेसे वातकी विद्रधि दूर हो जाती है। जौ, गेहूं और मूँग इनको घीमें पीसकर लेप करनेसे नहीं पकी हुई विद्रधि क्षणमात्रमें लुप्त हो जाती है। क्षीरकाकोली, खस, मुलैठी और लालचंदन इनको दूधमें पीसकर गाढा लेप करे तो पित्तजन्य विद्रधि नष्ट होती है। मूल श्लोकमें जो 'पयस्या' शब्द है उसके अनेक अर्थ हैं परन्तु हमने उनमेंसे यहां क्षीरकाकोली ली है क्योंकि क्षीरकाकोली बहुत गुणवाली है जो क्षीरकाकोली न मिले तो उसके अभावमें असगंध लेना चाहिये ॥ २५–२८ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपयेत्। पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ॥ २९॥ इष्टिकासिकतालोहकिट्टा गोशकृता सह। मूत्रैः सुखोष्णैर्लेपेन स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥३०॥ दशमूलीकषायेण सस्नेहेन रसेन वा। शोथव्रणं वा कोष्णेन स नूनं परिषेचयेत् ॥३१॥ पित्तविद्रधिवत्सर्वाः क्रिया निरवशेषतः। विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ ३२ ॥ रक्तचन्दनमञ्जिष्ठानिशामधुकगैरिकैः। क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागन्तुनिमित्तके ॥ ३३ ॥

पंचवल्कलका कल्क बनाकर उसमें घी डालकर उसका लेप करनेसे पित्तकी विद्रधि दूर होती है। हरड, बहेडा तथा आमला इनका क्वाथ बनाकर उसमें एक तोलाभर निसोतका कल्क डालकर पीनेसे पित्तजन्य विद्रधि दूर हो जाती है। ईंटका चूर्ण, रेता, लोहेकी कीट और गायका गोबर इनको गायके मूत्रमें पीसकर कुछेक गरम करके उसका लेप करे तो उसकी वेदनासे कफजन्य विद्रधि नष्ट हो जाती है। दशमूलके क्वाथ, अथवा दशमूलके स्वरसमें घी डालकर कुछेक गरम करके उसका सेचन करनेसे विद्रधि तथा व्रणशोथ नष्ट हो जाता है। रुधिरसम्बन्धी विद्रधि अथवा अभिघातजन्य वा घावके होनेसे विद्रधि उत्पन्न हुई होय तो वैद्य उसपर पित्तसम्बन्धी, रुधिरसम्बन्धी और क्षतसम्बन्धी विद्रधिकी समान लालचंदन, मजीठ, हलदी, मुलेठी और पीला गेरु इनको दूधमें पीसकर उसका लेप करे। विद्रधिको नष्ट करनेवाली जो क्रिया हैं वे सब करनी चाहिये ॥ २९–३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीता ह्येते निहन्त्याशु विद्रधिं कोष्ठसम्भवम् । कृष्णाऽजाजी विशाला च धामार्गवफलं तथा ॥ ३४ ॥ धामार्गवफलं कोशातकीफलम् ।

कालाजीरा, इन्द्रायन और कडवी तोरई इनको एकत्र पीसकर पीनेसे कोठेमें उत्पन्न हुई विद्रधि नष्ट हो जाती है ॥ ३४ ॥

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वा वरुणस्य च । जलेन क्वथितं पीतमन्तर्विद्रधिहृत्परम् ॥३५॥ गायत्री त्रिफला निम्बः कटुका मधुकं समम् । त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंऽशाः पृथक्पृथक् ॥ ३६ ॥ मसूरान्निस्तुषान्द्व्याढ्येष क्वाथो व्रणाञ्जयेत् । गुल्मविद्रधिवीसर्पदाहमोहज्वरापहः ॥ ३७ ॥ तृण्मूर्च्छाच्छर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामलाः । शिग्रुमूलं जले धौतं पिष्टं वस्त्रेण गालयेत् । तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥३८॥ शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिंगुसैन्धवसंयुतः । हन्त्यन्तर्विद्रधिं शीघ्रं प्रातःप्रातर्विशेषतः ॥ ३९ ॥

सफेद पुनर्नवेकी जड अथवा वरनाकी जड इनको पानीमें औटाकर काढेको पीनेसे भीतरकी विद्रधि अवश्य नष्ट हो जाती है । खैर, हरड, बहेडा, आमला, नीम, कुटकी और मुलेठी इन सबको समान भाग लेवे, चार भाग निसोतकी जड और कडवे परवलकी जड चार भाग लेवे, फिर इन सब पदार्थोंको तथा छुकले रहित मसूरकी दालको डालकर क्वाथ बनावे । यह क्वाथ व्रण, विद्रधि, गुल्म, वीसर्प, दाह, मोह, ज्वर, तृषा, मूर्च्छा, वमन, हृदयकी पीडा, रक्तपित्त, कोढ और कामलाको दूर कर देता है । सैंजिनेकी जडको जलमें धोकर जलमें पीसकर वस्त्रमें छान लेवे फिर उसमें सहत मिलाकर पीनेसे भीतरकी विद्रधि शमन होती है । सैंजिनेका क्वाथ बनाकर उसमें हींग तथा सैंधानिमक डालकर विशेष करके प्रातःकाल पिये तो भीतरकी विद्रधि नष्ट हो जाती है ॥ ३५–३९ ॥

इति विद्रध्यधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ व्रणशोथाधिकारः ।

तत्र व्रणशोथस्य संख्यापूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

पृथक्समस्तदोषोत्था रक्तजागन्तुजौ तथा । व्रणशोथाः षडेते स्युः संयुक्ताः शोथलक्षणैः ॥ १ ॥ शोथलक्षणैः पूर्वोक्तैः ।

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रुधिरजन्य और आगन्तुज ऐसे व्रणशोथ छः प्रकारका है । इन छओंमें पूर्वोक्त सूजनके लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

अथ व्रणशोथविशिष्टरूपम् ।

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थं चाचिराच्चिरम् । कफजः पित्तवच्छोथौ रक्तागन्तुसमुद्भवौ ॥ २ ॥

वातज व्रणकी सूजन विषम रीतिसे पकती है, पित्तज व्रणकी सूजन तत्काल पक जाती है, कफज व्रणकी सूजन वह तत्कालमें पकती है और रुधिरजन्यव्रणकी सूजन तथा आगन्तुजव्रणकी सूजन पित्तज व्रणशोथकी सूजनकी समान तत्काल पक जाती है ॥ २॥

अथापक्वव्रणशोथलक्षणम् ।

मन्दोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता । मन्दवेदनता चाऽपि शोथस्यामस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

जिसमें गरमी मंद हो, सूजन कम हो, घावका स्थान कठोर हो, सूजनका रंग शरीरकी त्वचाकी समान हो और वेदना थोडी हो, तो उसको अपक्व सूजन जानना ॥ ३ ॥

अथ पच्यमानव्रणशोथलक्षणम् ।

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव प्रपच्यते । पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥ ४ ॥ भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते । पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ५ ॥ ऊष्मचोषौ विवर्णः स्यादंगुल्येवापीड्यते । आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥ ६ ॥ न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातवास्तिवत् । ज्वरस्तृष्णाऽ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुचिश्चैतत्पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥ छिद्यते द्विधा क्रियत इव । भिद्यते विदीर्यत इव । ऊषो दाहः । चोषः पार्श्वस्थाग्निनेव सन्तापः ताभ्यां युक्तः । आततः त्वक्सङ्कोचरहितः । वस्तिर्मूत्राशयश्चर्मपुटो वा ।

जो सूजन अग्निसे जलते हुएकी समान हो, क्षारके लगानेकी समान रँधता हो, चींटियोंसे काटनेकी समान मालूम हो, शस्त्रसे छेदने तथा चीरने सरीखा मालूम हो, अथवा दो टुकडे हो जाँय ऐसा जान पडे, डंडे आदिसे मारनेकी समान पीडा हो, हाथसे दबानेकी समान मालूम हो, भीतर सूई छेदने सरीखा मालूम हो और अंगुलियोंसे उखाडने सरीखी पीडा हो, दाहसे व्याप्त हो, अग्निसे संतप्तकी समान हो, त्वचाके रंगसे दूसरा रंग हो जाय, मूत्राशयकी समान अथवा चमडेकी पुटकी समान फूला हुआ हो, बीछू काटनेकी समान बैठते, सोते और उठते समय घोर पीडा हो अर्थात् कभी चैन नहीं पडे और ज्वर, तृषा तथा अरुचिसे संयुक्त हो, उसको पकता हुआ व्रणशोथ जानना ॥–४७ ॥

अथ पक्वव्रणशोथलक्षणम् ।

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः । प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥ उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम् । वस्ताविवाम्बुसञ्चारः स्याच्छोथेऽगुलिपीडिते ॥ ९ ॥ पूयश्च पीडयेदेकमन्तमन्ते च पीडिते । बुभुक्षा व्रणशोथस्य भवेत्पक्वस्य लक्षणम् ॥ १० ॥ वेदनोपशमः दाहादिदुःखोपशमः । अल्पो लोहित इति अन्वयः । न च उन्नतः पच्यमानापेक्षया । उपद्रवाणां ज्वरादीनाम् । निम्नता स्वरूपतोऽगुलिपीडनाद्वा अवनतत्वम् । स्फुटनं किंचिद्विदारणम् । वस्ताविवेत्यादि शोथेऽगुलिपीडिते सति अंगुलिपीडितादेशादन्यदेशे अम्बुसञ्चारः । वस्तौ चर्मपुटके । एवमन्ते एकदेशे पीडिते एकमन्तमपरमन्तमापूर्य पीडयति ।

दाहादिक पीडा शमन हो जाय, सूजनमें थोडी लाली हो, ऊँचाई जाती रहे, वली पडने लगें, सुई चुभोने सरीखी वेदना हो, वारंबार खुजली चलती हो, ज्वरादि उपद्रव शांत हो जाय, अंगुलीसे दबानेकी समान नम जाय, चमडा कुछेक फट जाय, सूजनको अंगुलीसे दबानेसे जिस प्रकार चमडेकी पखालमेंसे पानी एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चला जाता है उसी प्रकार इसमें एक स्थानमेंसे राध दूसरे स्थानमें चली जाती है, एक प्रदेशको दबानेसे दूसरे प्रदेशमें राध जाकर भर जाय तथा मुख लग जाय तो जानना कि सूजन पक जाती है ॥ ८–१० ॥

अथैकदोषजोऽपि शोथः पाककाले सकलैर्दोषैः संबध्यत इत्याह ।

ऋतेऽनिलाद्रुङ् न विना न पित्तं पाकः कफं चापि विना न पूयः । तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोफास्त्रिभिरेव दोषैः ॥ ११ ॥ पचन्ति पाकं प्राप्नुवन्ति । एवशब्दोऽत्र अप्यर्थः । अव्ययानामनेकार्थत्वात् ।

वातके विना पीडा नहीं होती, पित्तके विना पाक नहीं होता और कफके विना राध नहीं होती, इस कारण सर्व प्रकारकी सूजनमें तीनों दोषोंका संबन्ध होता है ॥ ११ ॥

अथ शोथपाकमतांतरम् ।

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य ॥ पचत्यतः शोणितमेष पाको मतः परेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १२ ॥ वशे कृत्वा हीनीकृत्य शोणितं कर्म । पूर्वत्र कफात्पूयोऽत्र शोणितात्पूय इति भेदः ।

कालान्तरसे उदय हुआ पित्त वायु और कफको कम करके बलात्कारसे रुधिरको पकाता है, ऐसा अन्य विद्वानोंने माना है । पहिले मतमें कफसे राध होती है ऐसा माना है और इस दूसरे मतमें रुधिरसे राध होती है ऐसा माना है इनमें इतना भेद है॥ १२॥

अथ गम्भीरपाकलक्षणम् ।

कफजेषु च शोथेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक् । पक्वलिङ्गं ततः स्पष्टं यतः स्याच्छोथशीतता ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वक्सावर्ण्यं रुजाऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥ १३ ॥ कफजेषु च शोथेषु गंभीरमसृक्पाकमेति । तत्र कथं पाकज्ञानमित्याह तत्र ततः कारणात् । पक्वलिंगं स्पष्टम् । यतः पच्यमानावस्थान्तर्गतरागदाहव्यथाघनांतरशोथशीतादयो भवन्ति । घनस्पर्शत्वं स्पर्शेऽव्यथत्वम् ।

कफसे उत्पन्न हुई सूजनमें रुधिर गम्भीर रीतिसे पकता है तो भी पक जानेकी परीक्षा स्पष्ट होती है और जिस समयसे सूजन पकने लग जाती है उस समय लाली तथा दाहादि पीडा होकर पश्चात् सूजनमें पक जानेकी अवस्था हो जाती है, तब शीतलपन हो जाता है, सूजनका रंग चमडेकी रंगकी समान हो जाता है, अल्पवेदना होती है, यह प्रमाण है इस कारण पक जानेकी खबर कैसे मालूम हो सक्ती यह वैद्य नहीं समझ सक्ते ॥ १३ ॥

अथ पक्वव्रणशोथात्पूयानिःसृतौ दोषः । कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वातेरितः संदहति प्रसह्य । तथैव पूयो ह्यविनिःसृतस्तु मांसशिराः स्नायुमपीह खादेत् ॥ १४ ॥

जिस प्रकार वायुसे प्रेरणा की हुई अग्नि तृणोंके वनमें प्राप्त होकर बलात्कारसे जला देती है उसी प्रकार पके हुए व्रणमेंसे राधको नहीं निकालनेसे मांस शिरा और स्नायुओंको खा जाती है ॥ १४ ॥

अथ व्रणशोथपक्वापक्वज्ञानाज्ञाने वैद्यगुणदोषौ ।

आमं विदह्यमानं च सम्यक्पक्वं तु यो भिषक् । जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १५ ॥ विदह्यमानं विपच्यमानम् । तस्करवृत्तयः तेषां तस्कराणामिव द्रव्यलाभमात्रप्रयोजनं भवति न तु धर्मयशोमैत्रीलाभः । यश्छिनत्त्यामभज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते । श्वपचाविव विज्ञेयौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १६ ॥

जो वैद्य सूजनको नहीं पका हुआ और पका हुआ जान सक्ता है वही उत्तम वैद्य कहा जाता है, बाकी जो व्रणशोथकी पक्वापक्व अवस्थाको नहीं जानते उनको चोर समझना । क्योंकि उनको चोरोंकी समान केवल धन लेनेकाही प्रयोजन होता है किन्तु धर्म, यश और मित्रताका कुछ प्रयोजन नहीं होता । जो वैद्य अपनी मूर्खतासे कच्चे फोडेको पका जानकर चीरे देता है, और जो वैद्य पके हुए फोडेको कच्चा समझकर नहीं चीरता उन दोनोंको चाण्डालकी समान समझना, क्योंकि वे विना समझे क्रिया करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ व्रणशोथचिकित्सा ।

आदौ शोथहरो लेपस्ततस्तु परिषेचनम् । विस्लापनमसृङ्मोक्षस्ततः स्यादुपनाहनम् ॥ १७ ॥ पाचनं भेदनं पश्चात्पीडनं शोधनं तथा । रोपणं वर्णकरणं व्रणस्यैते क्रमाः स्मृताः ॥ १८ ॥ अत्र क्रमाः चिकित्साः । सुश्रुते व्रणस्य षष्टिरूपका लिखिताः सन्ति ते सर्वेऽत्र विस्तरभयान्न लिखिताः ।

प्रथम सूजनके हरनेवाली औषधियोंका लेप करे फिर सूजनके ऊपर क्वाथ आदिका सेचन करे, फिर विस्लापन कर्म करे, पश्चात् सूजनमेंसे रुधिरादि निकलवावे, फिर सूजनके ऊपर थोडी थोडी गरम औषधियोंको बांधकर बाफ देवे, फिर सूजनको पकानेके लिये उपचार करके पकावे, फिर सूजनको शस्त्रसे अथवा औषधियोंसे भेदन करे, फिर सूजनको दबाकर राध निकालनेके लिये उसके ऊपर औषधियोंका गाढा लेप करे, फिर सूजनको क्वाथ आदिसे धोकर साफ करे, फिर सूजनके भरनेकी चिकित्सा करे पश्चात् व्रणको शरीरके वर्णकी समान करे । इस भांति व्रणकी ग्यारह प्रकारसे चिकित्सा करे । सुश्रुतमें व्रणपर साठ उपक्रम कहे हैं वे सब यहां ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखे ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ शोथनाशकलेपः ।

यथा प्रज्वलिते वेश्मन्यम्भसा परिषेचनम् । क्षिप्रं प्रशमयत्यग्निमेवमालेपनं रुजः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार जलते हुए मकानको पानीका सेचन अग्निको तत्काल शांत कर देता है उसी प्रकार औषधियोंका लेप तत्काल पीडाको शमन कर देता है ॥ १९ ॥

बीजपूरजटा हिंस्रा देवदारु महौषधम् । रास्नाग्निमन्थालेपोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ २० ॥ कल्कः काञ्जिकसम्पिष्टः स्निग्धो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मधुकचन्दनैः। दूर्वा च नलमूलं च पद्मकाष्ठं च केसरम् ॥ २१ ॥ उशीरं वालकं पद्मं लेपोऽयं पित्तशोथहा । न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ॥ २२ ॥ ससर्पिष्कैः प्रदेहः स्याच्छोथे पित्तसमुद्भवे । आगन्तुजे रक्तजे च लेप एषोऽभिपूजितः ॥ २३ ॥ अजगन्धाजशृङ्गी च मञ्जिष्ठासरलस्तथा । एकेशिकाश्वगन्धा च लेपोऽयं श्लेष्मशोथहा ॥ २४ ॥ अजशृंगी [मेंढासिंगी] । कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक् सिकता शिवा । मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ २५ ॥ न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा । न च पर्य्युषितं शुष्यमाणं तत्रैव धारयेत् ॥ २६ ॥ दत्तमेव पुनर्न दद्यात् । पतितं दीयमानं सत् यदङ्गात् पतितं पर्युषितं लेपनद्रव्यं कल्कीकृतं यत् पर्युषितम् । तमसा पिहितोऽत्यूष्मा रोमकूपमुखोत्थितः । विना लेपेन निर्य्याति रात्रौ नालेपयेदतः ॥ २७ ॥ रात्रावपि प्रलेपस्तु विधातव्यो विचक्षणैः । अपाकिशोथे गम्भीरे रक्तपित्तसमुद्भवे ॥२८॥

भिजौरेकी जड, बालछड, देवदारु, सोंठ, रासना और अरणी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वातकी सूजन दूर हो जाती है । दूब, नरसलकी जड, पद्माख, केसर, खस, सुगन्धवाला और कमल इनको पीसकर लेप करनेसे पित्तकी सूजन दूर हो जाती है । बड, गूलर, पीपल, पाकर और वेत इनकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तजन्य सूजन दूर हो जाती है । आगन्तुज सूजन पर और रुधिरजन्य सूजनपरभी ऊपर कहा हुआ बड आदिकी छालका लेप हितकारी है । मेढाशिंगी, वनतुलसी, मजीठ, देवदारु, पाढ और असगन्ध इनका लेप कफकी सूजनको दूर करे है । पीपल, पुरानी खल, सैंजिनेकी छाल, रेती और हरड इनको गोमूत्रमें पीसकर कुछेक गरम करके लेप करनेसे कफकी सूजन दूर हो जाती है । रात्रिमें लेप नहीं करना चाहिये । लेप किये पदार्थको छुडाकर फिर दुबारा लेप नहीं करना चाहिये । लेप किया हुआ पदार्थ जो शरीरसे गिरकर छूट पडे तो फिर उसका लेप न करे । लेप करनेका कल्क जो बासी रह जाय तो उसका लेप नहीं करे । और जो लेप सूख जाय तो उसको शरीरसे तत्काल छुडा देवे । यह लेप करनेकी पद्धति है । रात्रिमें अंधकारके होनेसे गरमीके कारण रोमकूप आच्छादित रहते हैं इसलिये रात्रिमें लेप करनेसे रोमकूप बन्द हो जाते हैं और नहीं लेप करनेसे रोमकूप खुले रहते हैं, इस लिये रात्रिमें लेप नहीं करना चाहिये । परन्तु जो सूजन नहीं पकती हो, गम्भीर हो और रुधिर तथा पित्तसे उत्पन्न हुई हो उनपर वैद्यको रात्रिमेंही लेप करना चाहिये ॥ २०-२८ ॥

अथ शोथोपरिक्काथादिसेचनम् ।

यथाम्बुभिः सिच्यमानः शान्तिमग्निर्हि गच्छति । दोषाग्निरेव सहसा परिषेकेण शाम्यति ॥ २९ ॥

जिस प्रकार जलसे सेचन करनेसे अग्नि तत्काल शान्त हो जाती है उसी प्रकार व्रणशोथको क्काथ आदिसे सेंचन करनेसे दोषरूपी अग्नि तत्काल शान्त हो जाती है ॥ २९ ॥

वातघ्नौषधनिष्क्काथैस्तैलैर्मांसरसैर्घृतैः । उष्णैः संसेचयेच्छोथं वातिकं काञ्जिकेन च ॥ ३० ॥ पित्तरक्ताभिघातोत्थं शोथं सिंचेत्सुशीतलैः । क्षीराज्यमधुखण्डेक्षुरसैः पित्तहरैः शृतैः ॥ ३१ ॥

वातनाशक क्काथ, तेल, मांसरस, घी और कांजीको गरम करके वातकी सूजनपर सेचन करना चाहिये । पित्तसे रुधिरसे और क्षतसे जो सूजन उत्पन्न हुई होय तो उसके ऊपर शीतल औषधियोंके रसोंसे, दूधसे, घीसे, मद्यसे, खांडसे, ईखके रससे और पित्तको नष्ट करनेवाले क्काथोंसे सेचन करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कफघ्नौषधनिष्क्काथैः शीतैस्तु परिषेचयेत् । तैलक्षाराम्बुमूत्रैश्च शोथं श्लेष्मसमुद्भवम् ३२

कफकी सूजन होय तो उसको कफको हरनेवाली शीतल औषधियोंके शीतल क्काथोंसे, तैलसे, क्षारसे, जलसे और मूत्रसे सेचन करना चाहिये ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ विस्लापनम्।

जातस्य कठिनस्यास्य कार्यं विस्लापनं शनैः ॥ ३३ ॥ अस्य शोथस्य विस्लापनस्य विधिमाह सुश्रुतः—अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाडया शनैः शनैः। विमर्दयेद्विषड्मन्दं तलेनांगुष्ठकेन वा ॥ ३४ ॥ वेणुनाडया वंशनलिकया स्वेदयित्वा उष्णस्वेदं कृत्वा।

उत्पन्न हुई कठिन सूजनको विस्लापन कर्म करे। विस्लापन कर्म करनेकी विधि सुश्रुतमें कही है सो कहते हैं कि "वैद्य सूजनके ऊपर अभ्यङ्ग करके स्वेद देकर धीरे धीरे वांसकी नलीसे अथवा हाथके तलुवेसे वा अंगूठेसे धीरे धीरे मन्द मन्द घिसे" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ रक्तमोक्षणम्।

वेदनोपशमार्थाय तथा पाकशमाय च। अचिरोत्पतिते शोथे शोणितस्रावणं चरेत् ॥ ३५ ॥ चरेत् कुर्यात्। एकतस्तु क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः। रक्तं हि वेदनामूलं तच्चेन्नास्ति न चास्ति रुक् ॥ ३६ ॥ विवर्णः कठिनः श्यावो व्रणवच्चाल्पवेदनः। विषाणैश्च विशेषेण जलौकाभिः पदैरपि ॥ ३७ ॥ शोणितस्रावणं चरेदित्यनेन अन्वयः।

तत्कालकी उत्पन्न हुई सूजनको वेदनाकी शांतिके लिये और पाककी शांतिके लिये सूजनमेंसे रुधिर निकलवाना चाहिये। सम्पूर्ण क्रिया एक ओर और रुधिर निकलवाना एक ओर है इस कारण सर्व क्रिया मिलकर जितना काम करती हैं उतना काम एक रुधिर निकलवानेसेही हो जाता है, वेदनाकी जड रुधिरही है और जो रुधिर न होय तो वेदना नहीं होती। विशेष करके सींगी लगाकर, जोंक लगाकर अथवा पछन लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ ३५—३७ ॥

उपनाहः स्वेदस्तस्य विधिर्भैषजसाधनप्रकरणे कथित एवास्ति।

रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च। शोथानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा व्रणाः ॥ ३८ ॥ शोथानां सामान्यानाम् व्रणाः व्रणशोथाः तेषामपि स्वेदनं कार्यम्। शोथयोरुपनाहं च दद्यादामविदग्धयोः ॥ प्रशाम्यत्यविदग्धस्तु विदग्धः पक्वतां व्रजेत् ॥ ३९ ॥ आमविदग्धौ अपक्वपाकोन्मुखौ।

स्वेद देनेकी विधि प्रथम खण्डके औषधियोंके सिद्ध करनेके प्रकरणमें उपनाहस्वेद कह आये हैं। जो सूजन वेदनायुक्त, दारुण और कठिन होय उसके ऊपर स्वेदन करना चाहिये। और व्रणकी सूजन भी इसी प्रकारकी होय तो उसके ऊपर भी स्वेदन करना चाहिये। जो सूजन कच्ची अथवा पक गई होय तो उसके ऊपरभी उपनाह स्वेद देना चाहिये। सूजन कच्ची होय तो उपनाह स्वेदसे शांत हो जाती है और पकने लगे तो तत्काल पक जाती है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

दशमूली बला रास्ना वाजिगन्धा प्रसारिणी। मूलं वातरिपोः सिन्धुर्वारिपूर्णे घटे क्षिपेत् ॥ ४० ॥ शोभाञ्जनः कणा चापि सैन्धवं विश्वभेषजम्। शणकार्पासयोर्बीजमतसी च कुलत्थिका ॥ ४१ ॥ तिला यवाश्च सिद्धार्थः कुठेरो मूलकं मिसिः। यथाप्राप्तैरमीभिस्तु द्रव्यैरम्लेन संयुतैः ॥ ४२ ॥ कल्कीकृतैः सुखोष्णैश्च स्वेदयेद्विधिवच्छनैः। अनेन प्रशमं याति वातशोथो न संशयः ॥ ४३ ॥ कुठेरः कृष्णवर्वरी इति दशमूल्यादिरुपनाहः। पुनर्नवा दारु शुण्ठी शिग्रुः सिद्धार्थ एव च। अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ४४ ॥

सैंजिना, पीपल, सेंधानिमक, सोंठ, सनके बीज, कपासके बिनोले, अलसी, कुलथी, तिल, जौ, सरसों, काली तुलसी, मूली और सोया इनमेंसे जितनी मिल सके उतनीही औषधियोंको लेकर खट्टे रसमें पीसकर कल्क रूप बनाकर कुछ कुछ गरम करके लुगदी बनाकर बांधे। धीरे धीरे सूजनपर विधिपूर्वक स्वेद देवे। इस प्रकार करनेसे वातसम्बन्धी सूजन दूर हो जाती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, इसमें कुछ संदेह नहीं। यह उपनाह स्वेद 'शोभाञ्जनादि' इस नामसे कहा जाता है। पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सैंजिना और सरसों इनको खट्टे रसमें पीसकर सुहाता सुहाता गरम लेप करे तो सर्व प्रकारकी सूजन दूर हो जाती है। यह लेप 'पुनर्नवादि' इस नामसे कहा जाता है ॥ ४०–४४ ॥

अथ शोथपाचनम्।

न प्रशाम्यति यः शोथः प्रलेपादिविधानतः। द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहने ॥ ४५ ॥ शणमूलकाश्मिमूणां फलानि तिलसर्षपाः। अतसी सक्तवः किण्वमुष्णद्रव्यं च पाचनम् ॥ ४६ ॥ शणफलादीनामतस्यन्तानां सक्तवः कर्तव्याः। किण्वं सुराबीजम्। यवगोधूमधान्यादिप्रकारः अन्यच्च उष्णं द्रव्यं व्रणस्य पाचनं भवति।

जो सूजन प्रलेपादि करनेसे शांत नहीं हो उसपर पाचनीय पदार्थ बाँधने चाहिये। सनके बीज, मूलीके बीज, सैंजिनेके फल, तिल, सरसों, अलसी, सत्तू, सुराका बीज और अन्य सकल उष्ण पदार्थ पकानेके लिये प्रयोग करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ शोथभेदनम्।

अन्तःपूयेश्ववक्रेषु तथा चोत्सङ्गवत्स्वपि। गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं सम्प्रयुज्यते॥ ४७॥ उत्संगवत्सु कोटरवत्सु। गतिमत्सु नाडीव्रणेषु। भेदनम् शस्त्रमौषधकर्म च। रोगे व्याधेन साध्ये तु यथादेशं प्रमाणतः। शस्त्रं निधाय दोषांस्तु स्रावयेत्कथितं यथा॥ ४८॥

जिसमें भीतर राध भर रही हो, जिसका मुख नहीं हुआ हो, जो भीतरसे खाली हो उसको तथा नाडीव्रणको शस्त्रसे अथवा औषधियोंसे भेदन करना चाहिये। जो रोग शस्त्रके चीरनेसे ही शमन हो उसको स्थानानुसार शस्त्रसे छेदकर उसमेंसे दोषोंको निकलवा दे, यह प्रकार सुश्रुत आदि ग्रंथोंमें कहा है ॥ ४७॥४८

अथ व्रणविशेषे शस्त्रभेदननिषेधः।

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि। व्रणेषु मर्मजातेषु भेदनं द्रव्यलेपनम् ॥ ४९ ॥

बालक, वृद्ध, शस्त्र भेदनको न सह सके ऐसा मनुष्य, क्षीण मनुष्य, डरपोक तथा स्त्रियें जिनके मर्म स्थानोंमें व्रण उत्पन्न हुए होंय तो उनको औषधियोंके लेपसे भेदन करे, शस्त्रसे नहीं चीरे ॥ ४९ ॥

चिरबिल्वोऽग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः। कपोतकाकगृध्राणां मललेपेन भेदनम् ॥ ५० ॥

करंज, भिलावे, जमालगोटे, कनेर, कबूतरकी विष्ठा, कौवेकी विष्ठा और गिद्धकी विष्ठा इनका लेप करनेसे व्रण फूट जाता है ॥ ५० ॥

क्षारद्रव्यं तथा क्षारो दारुणः परिकीर्तितः। क्षारद्रव्यमपामार्गादिक्षारः स्वर्जिकायवक्षारादिः। हस्तिदन्तो जले पिष्टो बिन्दुमात्रप्रलेपितः। अत्यर्थकठिने शोथे कथितो भेदनः परः ॥ ५१ ॥

चिरचिटा आदि खारवाले पदार्थ और सज्जीखार तथा जवाखार आदि खार इनका लेप करनेसे व्रण फूट जाता है। हाथीके दांतको जलमें पारीक पीसकर बूँद भर लगानेसे अत्यंत कठिन सूजन अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ ५१ ॥

अथ शोथपीडनम्।

द्रव्याणां पिच्छिलानां तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम्। यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥ ५२ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रलेपं पीडनं प्रति। न चापि मुखमालिम्पेत्तथा दोषः प्रसिच्यते ॥ ५३ ॥ पीडनं प्रति पीडनद्रव्यलेपं शुष्यन्तमपि। धारयेदित्यर्थः। तथा व्रणस्य मुखलेपं विना प्रसवति।

चिकनी औषधियोंकी छाल तथा जडको पीसकर लेप करनेसे सूजन दब जाती है। जौ, गेहूँ और उडद इनको पीसकर लुबरी बनाकर लगानेसे सूजन दब जाती है। सूजनको सुखानेके लिये जो लेप कहा है उसको सुखा देना चाहिये। और सूजनके मुखपर लेप नहीं करना चाहिये क्योंकि इस प्रकार करनेसे सूजनमेंसे दोष स्रव जाते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ व्रणशोधनम्।

व्रणस्य तु विशुद्धस्य क्वाथः शुद्धिकरः परः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पटोलनिम्बपत्रोत्थः सर्वत्रैव प्रयुज्यते॥५४॥ वातिके दशमूलानां क्षीरिणां पैत्तिके व्रणे। आरग्वधादेः कफजे कषायः शोधने हितः५५

व्रणमेंसे राध निकल जानेपर परवल तथा नीमके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे व्रणको धोवे तो व्रण साफ हो जाता है। यह क्वाथ सर्व प्रकारके व्रणोंपर उपयोगी है। वातके व्रणको दशमूलके क्वाथसे धोवे, पित्तके व्रणको वट आदि क्षीरवाले वृक्षोंके क्वाथसे धोवे और कफके व्रणको आरग्वधादि गणके क्वाथसे धोवे इस प्रकार करनेसे व्रण साफ हो जाता है॥५४॥५५॥

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं शृतम्। व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम् ५६

पीपल, गूगल, पिलखन, बड और वेत इनके क्वाथसे धोनेसे व्रणकी सूजन और उपदंश (आतशक) का घाव दूर हो जाता है॥ ५६॥

तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायुगैः। त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ५७॥

तिल, सेंधानिमक, मुलैठी, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी और निसोत इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध हो जाता है॥ ५७॥

एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्। निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम्। दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी। ॥ ५८॥ केशरी श्रेष्ठ इत्यर्थः।

इकली सारिवाकी जडको पीसकर लेप करनेसे सर्व प्रकारके व्रण शुद्ध हो जाते हैं। नीमके पत्ते, तिल, दंती, निसोत, सेंधानिमक और सहत इनका लेप व्रणको शांत करनेवाला है और साफ करनेवाला भी है॥५८॥

लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः। भक्षणाच्छर्दिमन्दाग्निपित्तश्लेष्मकृमीन्हरेत्। व्रणान्विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मान्हि सन्धिमर्मजान्॥ ५९॥

नीमके पत्तोंका कल्क बनाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध हो जाता है तथा भरने लगता है। और इसको भक्षण करनेसे वमन, मंदाग्नि, पित्त, कफ तथा कृमियोंको नष्ट करे है। नीमके पत्तोंका कल्क बनाकर व्रणके मुखमें रखनेसे संधियोंमें तथा मर्मस्थलमें उत्पन्न हुए सूक्ष्म व्रण साफ हो जाते हैं॥ ५९॥

अभयात्रिवृतादंतीलांगलीमधुसैंधवैः॥६०॥ निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतैः। वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्व्रणम्॥ ६१॥

हरड, निसोत, दंती, कलिहारी, दुगुना सहत, सेंधानिमक, नीमके पत्ते, घी, दारुहलदी और मुलैठी इनको पीसकर लगानेसे अथवा तिलोंका कल्क बनाकर लगानेसे व्रण शुद्ध होता है और भरता है॥ ६०॥६१॥

अथ व्रणरोपणम्।

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम्। कल्कस्तु रोपणो देयस्तिलजो मधुसंयुतः ६२

जो व्रण मांसमें होनेके कारण उसमेंसे सडा हुआ मांस निकल गया हो और भरता न होय उसके ऊपर तिलोंका कल्क शहदमें मिलाकर लगानेसे व्रण भरने लगता है॥ ६२॥

अश्वगन्धा रुहा लोध्रं कट्फलं मधुयष्टिका। समंगा धातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम्॥ ६३॥ मधुयुक्ता सुरा पुंसां सर्वव्रणरोपणी कथिता।

असगंध, कुटकी, लोध, कायफल, मुलैठी, मजीठ और धायके फूल इनका कल्क बनाकर लगानेसे व्रण अच्छे प्रकारसे भर जाता है। सहत मिलाकर सराका लेप करनेसे व्रण भरने लगते हैं॥ ६३॥

सुषवीपत्रधत्तूरबलामोटाकुठेरकाः। पृथगेतैः प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणम्॥ ६४॥ सुषवीपत्रं मगरैलापत्रम्। कुठेरकः कृष्णबर्बरी।

छोटी इलायचीके पत्ते, अथवा धत्तूरे वा खिरैटी, मोटा (दूसरे प्रकारकी खिरैटी) अथवा काली तुलसीके पत्तोंको पीसकर लेप करनेसे गम्भीर व्रण भी भर जाता है॥ ६४॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थजम्बूकफललोध्रजैः। त्वक्चूर्णैर्धूपिताः क्षिप्रं संरोहन्ति व्रणा ध्रुवम्॥ ६५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन, गूलर, पीपलवृक्ष, जामुन, कायफल और लोध इनकी छालोंका चूर्ण बनाकर व्रणोंपर बुरकानेसे निश्चय व्रण भर जाते हैं ॥ ६५ ॥

प्रियंगुधातकीपुष्पं यष्टीमधुजतूनि च । सूक्ष्मचूर्णीकृतानि स्यू रोपणान्यवधूलनात् ॥ ६६ ॥

फूलप्रियंगू, धायके फूल, मुलैठी और लाख इनका बारीक चूर्ण बनाकर व्रणपर बुरकानेसे भयंकर व्रणभी भर जाता है ॥ ६६ ॥

यवचूर्णं समधुकं सतैलं सह सर्पिषा । दद्यादालेपनं कोष्णं दाहशूलोपशान्तये ॥६७॥

जौका चून और मुलेठीका चून, तेल तथा घीमें मिलाकर सुहाता सुहाता गरम लेप करनेसे व्रणका दाह और पीडा, शूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीलेपो हन्याद्व्रणक्रिमीन् । लशुनस्याथवा लेपो हिंगुनिम्बकृतोऽथवा६८

करंज, नीम और निर्गुण्डी इनका लेप करनेसे व्रणमें पडे हुए कीडे नष्ट हो जाते हैं । लसुनका लेप करनेसे व्रणमें पडे हुए कीडे शमन हो जाते हैं। नीम और हींग इनका लेप करनेसे व्रणके कीडे दूर हो जाते हैं ॥ ६८ ॥

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पिर्लवणसर्षपैः । धूपनं स्याद्व्रणे रूक्षकृमिकण्डूरुजापहम् ॥ ६९ ॥ ये क्लेदपाकश्रुतिगन्धवन्तो व्रणाश्चिरोत्थाः सतताश्च शोथाः । प्रयान्ति ते मुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्ति त्रिफलाश्रृतेन ॥ ७० ॥

नीमके पत्ते, वच, हींग, घी, सेंधानिमक और सरसों इनकी धूनी देनेसे व्रणकी रूक्षता, व्रणके कृमि व्रणकी खुजली तथा व्रणकी पीडा सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है। जो व्रण पका हो, स्रवता हो, गंधवाला हो और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ हो, तथा जो सूजन सदैव हो उसमें गूगल डालकर त्रिफलेका रस पिये ॥६९॥७०॥

पटोलनिम्बासनसारधात्रीपथ्याक्षनिर्यूहमहर्मुखेषु । पिबेद्युतं गुग्गुलुना विसर्पविस्फोटदुष्टव्रणशान्तिमिच्छन् ॥ ७१ ॥

कडवे परवल, अथवा कडवी तोरई, नीमके अंतरकी छाल, विजयसार, आमले, हरड और बहेडा इनका क्वाथ बनाकर उसमें गूगल डालकर नित्य प्रातःकाल पीनेसे विसर्प, विस्फोटक तथा दुष्ट व्रण शांत हो जाता है ॥ ७१ ॥

अथ सवर्णताकारकलेपः ।

मनःशिला समञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् । प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वचः सावर्ण्यकृत्स्मृतः७२

मैनशिल, मजीठ, लाख, हलदी और दारुहलदी इनका चूर्ण बनाकर उसमें घी तथा सहत मिलाकर लगानेसे व्रणके स्थानका वर्ण शरीरकी त्वचाके वर्णकी समान हो जाता है ॥ ७२ ॥

अथ व्रणरोगिभोजनम् ।

जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवान्तरम् । भुञ्जानो जांगलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ॥ ७३ ॥ तण्डुलीयकजीवन्तीवास्तूकसुनिषण्णकैः । वालमूलकवार्ताकुपटोलैः कारवेल्लकैः ॥ ७४ ॥ सदाडिमैः सामलकैर्घृतभृष्टैः ससैन्धवैः । अन्यैरेवं गुणैर्वापि मुद्गादीनां रसेन वा ॥ ७५ ॥ एभिः सह जीर्णशाल्योदनं भुञ्जानः शीघ्रं व्रणमपोहतीत्यन्वयः ।

जांगल प्रदेशके पशुओंका मांसरस, चौलाई, जीवन्ती, बथुआ, शिरिआरी, कच्ची मूली, बैंगन, परवल, करेले, अनार और आमले इनको घीमें भूनकर सेंधानिमक डालकर इनके साथ अथवा इनकी समान अन्य गुणोंवाली वस्तुओंके साथ वा मूँग आदिके रसके साथ, किंचित् गरम, स्निग्ध और पतले पुराने लाल शालिचावलोंका भात खानेसे व्रण नष्ट हो जाता है ॥ ७३–७५ ॥

अम्लं दधि च शाकं च मांसमानूपमौदकम् । क्षीरं गुरूणि चान्नानि व्रणे च परिवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

खट्टा दही, खट्टा शाक, अनूपदेशके और जलचर जीवोंका मांस, दूध और भारी अन्न ये सब व्रणरोगी त्याग देवे ॥ ७६ ॥

अथ व्रणे श्रमादिजोपद्रवाः ।

व्रणे श्रमश्रुतायासात्स च रागश्च जाग-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रात् । तौ च रुक्च दिवास्वापात्ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ७७ ॥

व्रणरोगमें परिश्रम करनेसे सूजन आती है, रात्रिमें जागनेसे लाली बढती है और सूजन आती है, दिनमें सोनेसे सूजन, लाली तथा पीडा ये तीनों होती हैं, और मैथुन करनेसे सूजन, लाली, पीडा और मृत्यु ये चारों होते हैं ॥ ७७ ॥

अथागन्तुजव्रणचिकित्सा ।

कुद्धे सद्योव्रणे कुर्याद्दुद्धे चाधश्च शोधनम् । क्रिया शीता प्रयोक्तव्या रक्तपित्तोष्मनाशिनी ॥ ७८ ॥ लंघनं च बलं ज्ञात्वा भोजनं चान्नमोक्षणम् । घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ॥ ७९ ॥ छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते वासृगतिस्रवेत् । रक्तक्षयात्तत्र रुजः करोति पवनो भृशम् ॥ ८० ॥ परिषेकं स्नेहपानं लेपं तत्रोपनाहनम् । कुर्वन्ति स्नेहवस्ति च रुजाघ्नं चौषधं पृथक् ॥ ८१ ॥ खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्काले पूरितो व्रणः । गाङ्गेरुकीमूलरसैः सद्यः स्याद्गतवेदनः ॥ ८२ ॥ गांगेरुकी नागबला । गुलसकरीति लोके ।

आगन्तुज व्रणका प्रकोप होय तो वमनसे तथा विरेचनसे शरीरको शुद्ध करे और रुधिरकी तथा पित्तकी गरमीको नष्ट करनेवाली शीतल क्रिया प्रयोग करे, बलाबल विचारकर लंघन करावे, योग्य भाजन देवे और विचारकर रुधिर निकलवावे । जो आगन्तुज व्रण घस जाय अथवा फट जाय तो योग्यानुसार यह विधि करनी चाहिये । अंग छिन्न, भिन्न, विद्ध हो जाय और घावोंमेंसे रुधिर निकलने लगता है, इस प्रकार रुधिरके क्षय होनेसे वायु अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करती है, जो इस प्रकार होय तो स्नेहपान करे, सेचन करे, लेप करे, उपनाह (स्वेद) देवे, स्नेहकी पिचकारी लगावे और वेदनाको हरनेवाली औषधिप्रयोग करे । तलवार आदिके घावमें तत्काल गांगेरनके जडके रसको भर देवे तो उसकी वेदना दूर हो जाती है ॥ ७८–८२ ॥

कषाया मधुराः शीताः क्रियाः सर्वाः प्रयोजयेत् । सद्योव्रणानां सप्ताहात्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ८३ ॥ आमाशयस्थे रुधिरे विदध्याद्वमनं नरः । तस्मिन्पक्वाशयस्थे तु प्रकुर्वीत विरेचनम् ॥ ८४ ॥

आगन्तुज व्रणके ऊपर प्रथम सात दिनतक सम्पूर्ण कसैली, मधुर और शीतल क्रिया करे और फिर आठवें दिन अन्य व्रणोंके लिये जो क्रिया कही है वह करनी चाहिये, रुधिर आमाशयमें प्राप्त होय तो वमन करावे और पक्वाशयमें प्राप्त होय तो विरेचन करावे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

क्वाथो वंशत्वगैरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदा कृतः । हिंगुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ८५

बाँसकी छाल, अण्ड, गोखुरू और पाखानभेद इनका क्वाथ बनाकर उसमें हींग तथा सेंधानिमक डालकर पिये तो कोठेमें प्राप्त हुआ रुधिर वह जाता है ॥ ८५ ॥

यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च । भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ८६

आगन्तुज व्रणवाले मनुष्य जो, बडे बेर और और कुलथी इनको चिकनाईके विना रसके साथ भात भोजन करें अथवा सैंधानिमक डालकर यवागू पिये ॥ ८६ ॥

अथ जात्यादिघृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवामञ्जिष्ठाऽभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः । सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति रोहन्ति च ॥ ८७ ॥ वृद्धवैद्योपदेशन पारम्पर्योपदेशतः । जात्यादिघृते तु संसिद्धे क्षेप्तव्यं सिक्थकं बुधैः ॥ ८८ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवल, कुटकी, दारुहलदी, सारिवा, मजीठ, खस, मोम, नीलाथोथा, मूलैठी और करंजके बीज इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाकर इस कल्कसे पकाये हुए घीको जात्यादि घृत कहते हैं । इस घृतको लगानेसे छोटे मुखवाले, मर्मोंमें उत्पन्न हुए, स्रावबाले, गम्भीर, वेदनायुक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और अंगोंमें गति करनेवाले व्रण शुद्ध हो जाते हैं और भर जाते हैं । यद्यपि ऊपरके पाठमें मोमको प्रथमही घीमें डालना कहा है तथापि वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे और गुरुओंकी परंपरासे यह सिद्ध होता है कि जात्यादि घृत पकनेके पश्चात् उसमें मोम डालना चाहिये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ जात्यादितैलम् ।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः । सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ ८९ ॥ मञ्जिष्ठां पद्मकं पथ्यां लोध्रत्वङ्नीलमुत्पलम् । सारिवा तुत्थकं चापि नक्तमालफलं तथा ॥ ९० ॥ एतानि समभागानि कल्कीकृत्य प्रयत्नतः । तिलतैलं पचेत्सम्यग्वैद्यः पाकविचक्षणः ॥९१॥ विषव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कुक्षिरोगिणि । दद्रुवीसर्परोगेषु कीटदष्टेषु सर्वथा ॥ ९२ ॥ सद्यः शस्त्रप्रहारेण दग्धविद्धेषु चैवहि । नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणे ॥ ९३ ॥ भक्षणेन हितं तैलमिदं शोधनरोपणम् । तैलं जात्यादिनाम्नैतत्प्रसिद्धं भिषगादृतम् ॥ ९४ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, कडवे परवल, करंजके पत्ते, मोम, मुलैठी, कूट, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, हरड, लोधकी छाल, नीले कमल, सारिवा, नीलाथोथा और करंजके फल इनको समान भाग लेकर कल्क बनाकर इस कल्कसे बुद्धिमान् वैद्य तिलके तेलको उत्तम विधिसे पकावे तो यह जात्यादि तैल सिद्ध होता है । यह तेल-विषजन्य व्रण, विस्फोटक, कहारी, विसर्प, विषैले कीडेका काटा हुआ व्रण, तत्काल शस्त्रके प्रहारसे उत्पन्न हुआ व्रण, दग्धव्रण, विद्धव्रण, नखका घाव, दांतका घाव इनके ऊपर यह तेल लगानेसे व्रण भरने लगता है, व्रणमेंसे खराब मांस निकालनेके लिये यह तेल उत्तम है । वैद्योंका आदर किया हुआ यह जात्यादितैल व्रणको साफ करनेवाला और भरनेवाला है ॥ ८९–९४ ॥

अथ विपरीतमल्लतैलम् ।

चित्रकरसोनरामठशरपुङ्खालांगलीकासिन्दूरैः । सविषैस्तथा सकुष्ठैः कटुतैलं साधु सम्पक्वम् ॥ ९५ ॥ विपरीतमल्लसंज्ञं तैलं दुष्टव्रणं तथा नाडीम् । बहुभेषजैरसाध्यामपथ्यं भोक्तुश्च निस्तुदति ॥ ९६ ॥

चीता, लसुन, हींग, सरफोका, कलिहारी, सिन्दूर, वत्सनाभ और कूठ इनके कल्कसे विधिपूर्वक बनाया हुआ सरसोंका तेल 'विपरीतमल्ल' तेल कहा जाता है । इस तेलके लगानेसे दुष्टव्रण नष्ट हो जाता है, जो अनेक औषधियोंसे भी नष्ट न होय ऐसा असाध्य नाडीव्रण भी दूर हो जाता है । इसपर यदि अपथ्य भी सेवन किया जाय तो भी इस तेलसे दुष्टव्रण और नाडीव्रण अवश्य दूर हो जाते हैं ॥९५॥९६॥

अथामृतादिगुग्गुलुः ।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुक्रिमिघ्नानाम् समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भागः ॥ ९७ ॥ प्रतिवासरमेकैकां गुटिकां खादेदिह परिमाणाम् । जेतुं व्रणवातासृग्गुल्मोदरशोथवातरोगांश्च ॥ ९८ ॥

गिलोय, परवलकी जड, हरड, बहेडा, आमले, सोंठ, मिरच, पीपल और वायविडंग इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनाकर और सब चूर्णकी बराबर गूगल डालकर योग्य मात्राकी गोली बना लेवे, इसको 'अमृतादि गूगल' कहते हैं । जो इनमेंसे नित्य एक गोली खाय तो इससे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदरके रोग, सूजन और वातके विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

अथाग्निदग्धचिकित्सा ।

प्लुष्टस्याग्निषु तपनं कार्यमुष्णं तथौषधम् । सम्यक् स्विन्ने शरीरं तु स्विन्नं भवति शोभनम् ॥ ९९ ॥ प्रकृत्या सलिलं शीतं स्कन्दयत्यतिशोणितम् । तस्मात्सुखयति ह्युष्णं न तु शीतं कदाचन ॥ १०० ॥ स्कन्दयति शोषयति । शीतामुष्णां च दुर्दग्धे क्रियां कुर्यात्ततः पुनः । घृतलेपप्रदेहांश्च शीतानेवास्य कारयेत् ॥ १०१ ॥ सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः । साम्भृतैः सर्पिषा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक् । ग्राम्यानूपोदकैर्मांसैः पिष्टैरेनं प्रलेपयेत् ॥१०२॥ अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् । क्रियां कुर्यात्ततः पश्चाच्छालितण्डुलकण्डनैः ॥ १०३ ॥ तिन्दुक्याश्च कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् । सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम् ॥ १०४ ॥

अग्निसे जला हुआ प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध और अतिदग्ध ऐसे चार प्रकारका है। स्वाभाविक वर्ण बदलकर अत्यन्त दाह हो और फोडा ऊपरको न उठे उसको प्लुष्ट जानना। जो तीव्र फोडे उठें, आकर्षण अर्थात् खिंचते हों ऐसी पीडा हो, दाह हो, लाल हो जाय, पक जाय तथा पानी निकल जानेसे अन्यान्य वेदना हो और वह फोडे छाले बहुत देरमें पके, ऐसे लक्षण होयँ तो दुर्दग्ध समझना। जो जलकी जगह ऊपरको न उठा हो, पके ताडके फलकी समान रंगवाला हो, जले स्थानमें अत्यन्त ऊँचाई और अत्यन्त नीचाई आदि दोष न होय और त्वचामें जलेके लक्षण दीखते होंय उसको सम्यग्दग्ध समझना, जो मांस लटक गया हो, गात्र विंध गया हो, शिराओंमें, स्नायुओंमें, संधियोंमें तथा अस्थियोंमें हडफूटन और ज्वर, दाह, तृषा तथा मूर्च्छा आदि उपद्रव होयँ उसको अतिदग्ध समझना। जो अंग दग्ध हुआ होय तो उसको अग्निसे तपावे तथा उष्ण औषधि प्रयोग करे, क्योंकि अच्छे प्रकार सेक करनेसे रुधिर सिककर पतला हो जाता है अर्थात् उसकी गरमी अच्छे प्रकारसे बाहर निकलकर वायुका गमन भी सबल मार्गसे खुला रहता है। यदि प्लुष्ट दग्धके ऊपर पानी डाला जाय तो पानी स्वाभाविक रीतिसे शीतल होनेके कारण रुधिरको जमा देता है, इससे उसकी गरमी बाहर नहीं निकलती और वायुकी गति भी रुक जाती है, भारी पीडा होती है, इस कारण प्लुष्टको गरम उपचारोंसे सुख होता है, किंतु शीतल उपचारसे कभी सुख नहीं होता । जो दुर्दग्ध होय तो उसपर वैद्य शीतल क्रियाभी करे और गरम क्रियाभी करे परन्तु दुर्दग्धके ऊपर घी चुपडे तो शीतलही चुपडे और प्रलेपादि करे तो शीतलही करे। सम्यग्दग्ध हुआ होय तो वैद्य वंशलोचन, पीपल, लालचंदन, पीला गेरु और गिलोय इनको पीसकर घीसे चिकना करके लेप करे तथा घोडा आदि ग्राम्य पशुओंका मांस, कछुवा इत्यादि जलचर जीवोंका मांस और सूअर आदि जलप्राय देशमें रहनेवाले जीवोंका मांस, इनको पीसकर लेप करे। अतिदग्ध हुआ होय तो लटके हुए और फैले हुए मांसको निकालकर वैद्य शीतल क्रिया प्रयोग करे और फिर लाल चावलोंका चूर्ण छिडक देवे । अथवा तेंदूकी छालके चूर्णको घीमें पीसकर लगावे ॥ ९९–१०४ ॥

अथ सिक्थकादिघृतम् ।

सिक्थककर्दमजीरकमधुपथ्यासर्वमिश्रितं लेपात् । गव्यं घृतमपहरति विपाकजनितं व्रणं सद्यः ॥ १०५ ॥

मोम, कीच, जीरा, सहत और हरड इनको एकत्र पीसकर उसमें गायका घी मिलाकर लगानेसे जला हुआ व्रण तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ १०५ ॥

अथ पटोलादितैलम् ।

सिद्धं कषायकल्काभ्यां पटोल्याः कटुतैलकम् । दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ १०६ ॥

परवलके क्वाथसें और कल्कसे पकाये हुए सरसोंके तेलको लगानेसे जले हुए घावको, पीडाको, स्रावको, दाहको और फोडोंको नष्ट करे है ॥ १०६ ॥

अथ व्रणग्रंथिचिकित्सा ।

वातासृग्भ्यां दुष्टं सशोथं ग्रथितं व्रणम् । कुर्यात्सदाहं कण्डूढ्यं व्रणग्रन्थिस्तु स स्मृतः ॥ १०७ ॥ काम्पिल्लकं विडंगानि त्वचं दार्व्यास्तथैव च । पिष्ट्वा तैलं पचेत्तत्तु व्रणग्रन्थिहरं परम् ॥ १०८ ॥

वात तथा रुधिर यह दोनों व्रणको स्रावरहित, दुष्टसूजन युक्त, ग्रंथिसहित, दाह और खुजली संयुक्त करते हैं, ऐसे व्रणको व्रणग्रंथि कहते हैं । कबीला, वायविडंग और दारुहलदीकी छाल इनको पीसकर कल्क बनाकर उस कल्कसे तेलको पकावे इस तेलको लगानेसे व्रणग्रंथि नष्ट हो जाती हैं ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

इति व्रणशोथाग्निदग्धाधिकारः सम्पूर्णः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ भग्नाधिकारः ।

तत्र भग्नभेदाः ।

भग्नं समासाद्विविधं हुताश काण्डे च सन्धावपि तत्र सन्धौ । उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितानि तिर्यग्गतं क्षिप्तमधश्च भग्नम् । ॥ १ ॥ अत्र भावेऽर्थे क्तप्रत्ययस्तेन भग्नं भंगः स चात्र विश्लेषोऽभिप्रेतः तेन भग्नमत्रास्थिविश्लेषलक्षणम् । समासात्संक्षेपात् । हुताश हे अग्निवेश ! यतश्चरकेण अग्निवेशस्य हुताशेति नामान्तरमुक्तम् । काण्डे सन्धिपर्यन्ते एकखण्डे अस्थिसन्धौ द्वयोरस्थ्नोः सन्धाने तत्र सन्धौ उत्पिष्टादिभेदैः षट्प्रकारकं भग्नं भवति । स्वल्पवक्तव्यत्वेन सन्धिभग्नस्यादविवरणम् । उत्पिष्टेत्यादि । अधः अधोभग्नम् ।

चरकमें पुनर्वसु मुनिने अपने शिष्य अग्निवेशसे कहा है कि "हे अग्निवेश ! भग्नरोग संक्षेपसे दो प्रकारका है । एक कांडभग्न और दूसरा संधिभग्न । संधियोंकी अस्थिके एक भागमें जो भग्न हुआ होय तो वह कांडभग्न कहा जाता है और दो अस्थियोंकी संधियोंमें जो भग्न होय वह संधिभग्न कहा जाता है ।" संधिभग्नके विषयमें थोडा कहना है, इस कारण संधिभग्नका विवेचन प्रथम करते हैं । उत्पिष्ट, विश्लिष्ट विवर्तित, तिर्यग्गत, क्षिप्त और अधोगत इस प्रकार संधिभग्नके छः भेद हैं ॥ १ ॥

अथ संधिभग्नसामान्यलक्षणम् ।

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्रा रुक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् । सामान्यतः सन्धिगतस्य लिंगमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथोः समन्तात् । विशेषतो रात्रिभवा रुजा च विश्लिष्टके तौ च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥ वर्तनम् परिवर्तनम् । उत्पिष्टसन्धेः उत्पिष्टः द्वाभ्याम् अस्थिभ्यां पिष्टः सन्धिर्यस्य तस्य समन्तादुभयभागयोः शोथो भवति । विश्लिष्टमाह । विश्लिष्ट इत्यादि ता उभयतः शोथो रात्रिरुजा च नित्यम् । सदा रुजाधिका भवतीति उत्पिष्टभेदः ।

फैलानेमें, सकोडनेमें तथा फेरनेमें उग्र पीडा हो और स्पर्श करते समय पीडा होय ये संधिभग्नके सामान्य लक्षण जानने । दो हड्डियोंके परस्पर साथ घिसनेसे संधि दब जाती है, दोनों भागोंमें सूजन आ जाती है और रात्रिमें विशेष पीडा होती है यह उत्पिष्टके लक्षण जानने । दोनों भागोंमें सूजन होय और निरंतर अधिक वेदना रहती होय, उसको विश्लिष्ट जानना । उत्पिष्टमें रात्रिमें अधिक पीडा होती है और विश्लिष्टमें निरंतर अधिक पीडा रहती है, इतना भेद है । विश्लिष्ट अर्थात् संधियोंकी अस्थियोंसे अलग होना । संधि अलग नहीं होय, संधिकी दोनों अस्थि बाँकी (टेढी) हो जायँ और इससे दोनों अस्थियोंमें तीव्र पीडा होय, ये विवर्तके लक्षण जानने ॥ २ ॥

अथ विवर्तितादिलक्षणम् ।

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवंति । क्षिप्तेऽतिशूलं विषमं रुजश्च क्षिप्ते त्वधोरुग्विघटश्च सन्धेः ॥ ३ ॥ विवर्तिते सन्धौ अमुक्ते अस्थिद्वये परिवर्तिते पार्श्वरुजः सन्धिस्थितास्थिखण्डद्वयपार्श्वयोरुजः तिर्यग्गते एकस्मिन्नस्थ्नि सन्धिस्थानं त्यक्त्वा तिर्यग्गते । क्षिप्ते सक्थ्यूरुसन्ध्योः एकस्मिन्नस्थ्नि परस्मादस्थ्नि उपरिगते अस्थ्नोः अतिशूलम् । तत्र विषमं कदाचिदधिकं कदाचिन्न्यूनम् । अधः क्षिप्ते सन्धिगते एकस्मिन्नस्थ्नि अधोगते रुक्सन्धिविघट्टनं च ।

संधियोंकी दो अस्थियोंमें एक अस्थि संधिके स्थानको छोडकर आडी हो जाय और उससे तीव्र पीडा होय यह तिर्यग्गतके लक्षण जानने । संधियोंकी दो अस्थियोंमेंसे एक अस्थि दूसरी अस्थिके ऊपर चढ जाय और उससे अस्थियोंमें विषम रीतिका शूल हो तथा वेदना होय यह क्षिप्तके लक्षण जानने । किसी समय शूलकी न्यूनता और विषमताभी होती है । संधियोंकी दो अस्थियोंमेंसे एक अस्थि दूसरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्थिसे नीचे चली जाय और उससे वेदना होय तथा संधि अलग अलग हो जायँ, यह अधोगतके लक्षण जानने ॥ ३ ॥

अथ कांडभग्नद्वादशभेदनिरूपणम्।

भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति विशेषतो नामभिरेव तुल्यम् ॥ ४ ॥ भग्नं काण्डे कांडविषये बहुधा बहुभिः प्रकारैः प्रयाति। अत्र बहुविधत्वं द्वादशविधत्वं बोद्धव्यम्। बहुविधस्य काण्डभग्नस्य पृथग् लक्षणं नोक्तम्। किन्तु नामभिरेव तुल्यम्। कर्कटकादिनामानुरूपमेव लक्षणं बोद्धव्यम्। तान्प्रकारानाह-काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थिछलितम्। काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितं च मज्जागतं विस्फुटितं च वक्रम् ॥ ५ ॥ छिन्नं द्विधा द्वादशधापि काण्डे सामान्यमग्रे किल तस्य लिंगम् ॥ ६ ॥ अतः सन्धिभग्नानन्तरं काण्डे काण्डभग्नं तदाह-कर्कटकः अस्थिविश्लेषपूर्वको मध्ये प्रोन्नतः। पार्श्वयोः अवनतः कर्कटतुल्यरूपत्वात्कर्कटकः। अश्वकर्णः अश्वकर्णवद्विपुलास्थिनिर्गमादश्वकर्णः। विचूर्णितम् चूर्णितमस्थि तच्च शब्दस्पर्शाभ्यां बोद्धव्यम्। पिच्चितं नियन्त्रितं बहुशोथम्। छलितं विश्लिष्टमस्थि निःस्रवम्। काण्डेषु भग्नम् काण्डभग्नम्। यद्यपि कर्कटकादि सर्वमेव काण्डभग्नं तथापि इयं काण्डभग्नसंज्ञा विशिष्टा अत्र भग्नं भङ्गस्त्रुटिस्तेन सर्वथा त्रुटितम्। पृथग्भूतं त्वचि स्थितं यत्काण्डभग्नमतिपातितमशेषेण छित्त्वा पातितमस्थि। मज्जागतम् अस्थ्यवयवोऽस्थिमध्ये प्रविश्य मज्जानां गतम्। विस्फुटितम् स्तोकं विदीर्णम्। वक्रम् स्थानं त्यक्त्वा कुब्जीभूतम्। छिन्नं द्विधा एकं विदिर्णं संलग्नम् अपरं विदीर्णं द्विधाभूतं द्वादशधा च काण्डेति कर्कटकादिः काण्डे काण्डे च भग्नं द्वादशधा इत्यन्वयः। तच्च उक्तमेव।

कांडभग्न बारह प्रकारका होता है और वह उसके बारह प्रकारके लक्षण कर्कट आदि नामोंसे जानने, इस कारण अलग कहनेकी जरूरत नहीं। कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, छलित, कांडभग्न, अतिपातित, मज्जागत, विस्फुटित, वक्र, अल्पछिन्न और बहुछिन्न इस प्रकार कांडभग्न बारह प्रकारका है। बारह प्रकारके कांडभग्नके जो सामान्य लक्षण हैं वे पीछेसे कहेंगे। अस्थियोंके भाग छूटकर बीचमें ऊंचे और दोनों ओर दबकर केकडेकी समान हो जाय उसको कर्कटक कहते हैं। घोडेके कानकी समान बडी हड्डी बाहर निकल आवे उसको अश्वकर्ण कहते हैं। अस्थियोंका चूर्ण हो जाय और वह शब्दसे अथवा स्पर्शसे जाना जाय उसको विचूर्णित कहते हैं। अस्थियोंके अवयव परस्पर अलग होकर बहुत सूजनयुक्त होयँ और पिच जाय उसको पिच्चित कहते हैं। अस्थिका कोई भाग शिथिल होकर उखड जाय और बाहर निकल आवे उसको छलित कहते हैं। अस्थि सर्वथा टूटकर अलग हो जाय और चमडेमें रहे उसको कांडभग्न कहते हैं यद्यपि कर्कटादि संपूर्ण भेद कांडभग्नकेही कहे हैं। तथापि उनमें यह मुख्य है। जो अस्थि सम्पूर्ण रीतिसे छिदकर गिर जाय उसको अतिपातित कहते हैं। अस्थियोंके अवयव अस्थियोंके भीतर घुसकर मज्जामें पहुंच जाय उसको मज्जागत कहते हैं। जो अस्थि कुछेक फट गई होय वह विस्फुटित कही जाती है। जो अस्थि अपने स्थानको छोडकर कुबडी हो जाय वह वक्र कही जाती है। जो अस्थि अच्छे प्रकारसे फटकर वहां ही लगी रहे वह अल्पछिन्न कही जाती है। जो अस्थि अच्छे प्रकारसे फट अलग अलग टूक टूक हो जाय वह बहुच्छिन्न कही जाती है ॥ ४-६ ॥

अथ कर्कटकांडभग्नसामान्यलक्षणम्।

स्रस्तांगता शोथरुजातिवृद्धिस्तथा व्यथावृद्धिरतीव नित्यम्। सम्पीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहं स्पन्दनतोदशूलाः ॥ ७ ॥ सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ॥ ८ ॥ स्पर्शासहमिति

CC-0, Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काण्डभग्नस्य विशेषणम्। स्पन्दनं नाडीनां स्फुरणम्। तोदः शूलेनेव च व्यथा। रुजा सामान्यपीडा। सर्वासु अवस्थासु शयनादिषु।

अंगोंमें शिथिलता, सूजनकी वृद्धि, वेदना अत्यंत बढ जाय, शूलकी समान निरंतर विशेष पीडा हो, दबानेसे शब्द हो, स्पर्शको नहीं सह सके, नाडियोंका फरकना, सुई चुभोने सरीखी पीडा, शूलकी पीडा और सोने बैठने आदि समस्त अवस्थाओंमें चैन नहीं पडे ये सब कांडभग्नके सामान्य लक्षण जानने ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ भग्नस्य कष्टसाध्यता।

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च। उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ९ ॥ अनात्मवतः रोगप्रतीकारे यत्नरहितस्य वातात्मकस्य वातप्रकृतेः। उपद्रवैः ज्वराध्मानमोहमूत्रपुरीषसंगादिभिः।

थोडा भोजन करनेवाले, इन्द्रियें जिनकी वशमें नहीं हैं, वातप्रकृतिवाले और ज्वर, अफरा, बेहोशी, मूत्र और मलका अवरोध आदि उपद्रव होयँ तो भग्नसंधि भग्न कष्टवाला कठिनतासे आरोग्य होता है ॥९॥

अथ भग्नासाध्यता।

भिन्नं कपालं कट्यां तु सन्धिमुक्तं तथा च्युतम्। जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेत्तु चिकित्सकः ॥ १० ॥ कपालम् जानुनितम्बांसगण्डवालुशंखवंक्षणशिरोऽस्थीनि कपालानि तथा च्युतम् अधः क्षिप्तम्। प्रतिपिष्टम् उत्पिष्टम्।

घुटनोंकी, नितम्बकी, कन्धेकी, गालकी, तालुकी, कनपटीकी, सांथलोंकी, संधियोंकी और मस्तककी हड्डी टूट गई होय तो वैद्य उसकी चिकित्सा न करे। जो कमरमें अधोगत नामक संधिभग्न हुआ होय तो और पेडुमें उत्पिष्ट नामक संधिभग्न होय तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १० ॥

असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च तत्। भग्नं स्तने गुदे पृष्ठे शंखे मूर्द्धनि वर्जयेत्॥ ११॥ असंश्लिष्टकपालमिति भग्नविशेषणम्। स्तने स्तनयोः अन्तरे। मूर्द्धनि चूडास्थाने।

गाँठें, नितम्ब, खंबे, गाल, तालू, कनपटी और मस्तक इनकी हड्डी जो दूसरी अस्थियोंसे छूट गई होंय तो उनकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। ललाटमें जो विचूर्णित नामक काण्डभग्न होय तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। स्तनोंका मध्यभाग, गुदा, पीठ, कनपटी और ब्रह्मरन्ध्र इनकी संधियोंमें जो काण्डभग्न हुआ होय तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

सम्यक्संहितमप्यस्थि दुर्न्यासाद्दुष्टबन्धनात्। संक्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ १२ ॥ सम्यक्संहितमपि सम्यक् योजितमपि। आस्थि दुर्न्यासाद्दुःस्थापनात् सुन्यस्तमपि दुष्टबन्धनात्। सुबद्धमपि संक्षोभात्। अभिघातादिना सञ्चलनात्। विक्रियां गच्छेत् विकृतं भवति तत् वर्जयेत्।

जो अस्थि अच्छे प्रकारसे जुड भी गई होंय परंतु उनको योग्यरीत्यनुसार न रक्खे तथा योग्यरीतिसे नहीं बाँधे, अथवा योग्य रीतिसे जुडनेपर और बाँधनेपर भी उसमें चोट आदिके लग जानेसे विकृति हो जाय तो वह भी असाध्य जाननी ॥ १२ ॥

अथास्थिविशेषे भग्नविशेषः।

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु। कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ १३ ॥ तरुणास्थीनि घ्राणकर्णाक्षिगुदेषु कोमलास्थीनि नम्यन्ते वक्रीभवन्ति तेन अत्र वक्रतालक्षणं भग्नम्। नलकानि नलादीनि नार्डीवत्सरन्ध्राणि अस्थिपर्वाणि भिद्यन्तेऽस्थ्यन्तरानुप्रवेशाद्विदार्यन्ते। कपालानि जानुनितम्बांसगण्डतालुशंखवंक्षणशिरोऽस्थीनि विभज्यन्ते। स्फुटन्ति। त्रुट्यन्ति रुचका दन्ताः अस्थीनि च तरुणनलककपालरुचकवलयभेदात्पञ्चविधानि। तत्र रुचकानि चेति चकाराद्वलयान्यपि त्रुट्यन्तीति बोद्धव्यम्। पाण्योः पार्श्वयुगे पृष्ठे वक्षोजठरपायुषु। पादयोरपि चास्थीनि वलयानि बभाषिरे ॥ १४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरुणास्थि (नाक), कान, आंख और गुदा इनकी हड्डी नरम होनेके कारण नम जाती हैं, इस कारण उनमें वक्रनामक कांडभग्न होता है, नलक नामक हड्डी (नलीकी समान छेदवाली हड्डी) उसमें दूसरी हड्डीके घुस जानेसे चिर जाती है, कपालनामक अस्थिमें घुटने, नितंब, कन्धे, कपोल, तालू, कनपटी, सांथलकी संधि और मस्तककी हड्डी टूटकर अलग हो जाती हैं और रुचकनामक अस्थि (दांतकी हड्डी) टूटकर चूर चूर हो जाती है। तरुण, नलक, कपाल, रुचक और वलय इस प्रकार हड्डी पांच प्रकारकी हैं। इनमें पहिली चार प्रकारकी अस्थि कही हैं। यद्यपि पांचवें प्रकारकी वलयनामक हड्डीके विषय नहीं कहा है तथापि मूल श्लोकमें (च) शब्द है उससे जान-लेना चाहिये कि 'वलयनामक हड्डी भी टूट जाती है।' दोनों हाथोंमें, दोनों पसलियोंकी, पीठकी, पेटकी, गुदाकी और दोनों पांवोंकी हड्डी वलय कही जाती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ भग्नचिकित्सा।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना। पंकेनालेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम् ॥ १५ ॥ अवनामितमुन्नह्येदुन्नतं चावपीडयेत्। अश्वेदधःक्षिप्तमधो गतं चोपरि वर्तयेत् ॥ १६ ॥ मधूकोदुम्बराश्वत्थकदम्बनिचुलत्वचः। वंशसर्जार्जुनानां च बंधार्धमुपसंहरेत् ॥ १७ ॥ पट्टस्योपरि बध्नीयान्न गाढं शिथिलं न च। सप्तसप्तदिनाच्छीते घर्मे मुञ्चेत्त्र्यहात्त्र्यहात् ॥ १८ ॥ मासान्ते पञ्चपञ्चाहाद्भग्ने दोषेऽवसेचनम्। आलेपनार्थं मञ्जिष्ठामधूकं चाम्बुपेषितम्। शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् ॥ १९ ॥ सद्योऽभिघातजनिता आगन्तुश्वयथवः प्रशाम्यन्ति। पिष्टकलवणालेपादम्लीकाफलरसाभ्यां वा ॥ २० ॥ आम्रातकजटाम्लीकाफलं पत्राणि शिग्रुजम् ॥ २१ ॥ मूलं पौनर्नवं वल्लं मानस्यापि च केम्बुकात्। सर्वं संक्षुद्य तक्रेण कांजिकेन तथैव च ॥ २२ ॥ पाचयित्वा चरेच्छ्रेष्ठं तेन पीडा प्रणश्यति। शोथश्चास्ति च शीघ्रेण सन्धानं याति वै ध्रुवम् ॥ २३ ॥ न्यग्रोधादिकषायं तु सुशीतं परिषेचने। पञ्चमूलीकषायं सक्षीरं दद्यात्सवेदने ॥ २४ ॥ सुखोष्णमवचार्यं वा चुक्रतैलं विजानता। अविदाहिभिरन्नैश्च पिष्टकैः समुपाचरेत् ॥ २५ ॥ ग्लानिर्हि निहिता तस्य सन्धिविश्लेषकारिका। मांसं मांसरसः क्षीरं सर्पिर्यूषः सतीनजः ॥ २६ ॥ बृंहणं चान्नपानं च देयं भग्नाय जानता। गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ॥ २७ ॥ शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः। सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्जुनम्। ॥ २८ ॥ सन्धिमुक्तेऽस्थिसम्भग्ने पिबेत्क्षीरेण वा पुनः। रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कान्समश्नताम् ॥ २९ ॥ छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत्। चूर्णं पूरेण संयोज्य घृतेनार्जुनलाक्षयोः ॥ ३० ॥ भग्नः सन्धानमायाति लीढं क्षीरघृताशिना। मूलं शृगालविन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु। ॥ ३१ ॥ चूर्णीकृत्य त्रिसप्ताहादस्थिभग्नमपोहति। आभाचूर्णं मधुयुतमस्थिभग्नरुग्यहं पिबेत्। पीते चास्थि भवेत्सम्यग्वज्रसारमिमं दृढम् ॥ ३२ ॥ अम्लीकाफलकल्कसौवीरस्तैलमिश्रितः स्वेदात्। भग्नाभिहितरुजाघ्नैरथ वौषधसाधितं श्वयथौ ॥ ३३ ॥

भग्नरोगमें प्रथम शीतल जलसे सेचन करे, कीचका लेप करे, कुशा बाँधे वा पट्टी बाँधे। जो हड्डी दब जाय उसको ऊपरको उठाकर ऊँचा करे, जो ऊँची हो जाय तो उसे दबाकर नीचेको बैठावे, दूर हट जाय उसको नजदीक लावे और जो नीचेको हो जाय तो ऊपरको चढावे। महुवा, गूगल, पीपल, कदम्ब, बेंत, बाँस, राल और अर्जुन वृक्षकी छाल इनकी पट्टी बाँधे, बँधनके ऊपर जो बंधन बाँधे उसको सख्त नहीं बाँधे और शिथिल भी नहीं बाँधे। शीतकालमें सात सात दिनमें पट्टी खोले, ऊष्णकालमें तीन तीन दिनमें पट्टी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खोले और साधारण कालमें पांच पांच दिनमें पट्टी खोले, अथवा जो भग्न होय उसको यथादोषानुसार पट्टी खोलनेका समय नियत करे । मजीठ और मुलैठीको जलमें पीसकर उसका भग्नके ऊपर लेप करे । लाल शालि चावलोंको पीसकर उसमें सौवारका घुला घी मिलाकर लेप करे । इमलीके फल तथा छालके स्वरससे, शालिचावल सेंधेनोनकी पिट्ठी बनाकर लेप करनेसे अभिघात आदिसे तत्काल उत्पन्न हुए शोथ शान्त होते हैं । अम्बाडेकी जड, इमलीके फल, इमलीके पत्ते, सैंजनेकी जड, पुनर्नवेकी जड, मानकंद और सुपारीकी जड इन सबको खूब कूट पीसकर मट्ठे और काँजीमें पकाकर लेप करनेसे पीडा और सूजन दूर हो जाती है और हड्डियाँभी तत्काल जुड जाती हैं । न्यग्रोधादिगणका क्वाथ बनाकर अच्छे प्रकारसे शीतल करके भग्नपर सेचन करे । जो भग्नमें व्यथा होती होय तो पंचमूलका क्वाथ बनाकर उसमें दूध डालकर उससे सेचन करे । अथवा चूकेका तेल बनाकर सुहाता सुहाता लेप करे । जो अन्न दाहकारक नहीं हैं, उनकी पुलटिस भी भग्नपर बांधनी चाहिये । संधियोंके भिन्न भिन्न होनेसे रोगीके ग्लानि भी अवश्य होती है इस कारण उस रोगीके अच्छे प्रकारसे विचारकर मांस, मांसका रस (सोरुआ), दूध, मटरका यूष और धातुओंको पुष्ट करनेवाले ऐसे अन्न पान देवे । संधिभग्न और कांडभग्नमें पहलौन गायके दूधमें घी डालकर जीवनीयगणकी औषधियोंके साथ पकाकर शीतल करके फिर लाखका रस डालकर प्रातःकाल पिये । हडसंघारी, लाख, गेहूं और अर्जुनकी छाल इनको पीसकर घी और दूधके साथ मिलाकर पीनेसे संधिभग्न तथा कांडभग्न नष्ट हो जाता है। लसुन, सहत, लाख, घी और मिश्री इनका कल्क सेवन करनेसे छेदी हुई, भेदी हुई और टूटी हुई हड्डी तत्काल जुड जाती है । पृष्टिपर्णीकी जडका चूर्ण बनाकर मांसके रसके साथ सेवन करे तो इक्कीस दिनमें अस्थिभंग आराम हो जाता है। अर्जुन और लाखका चूर्ण बनाकर घी और गूगलके साथ मिलाकर चाटे, दूध और घी भोजन करे तो टूटा हुआ हाड तत्काल जुड जाता है । बबूरकी फलीका चूर्ण करके सहतके साथ मिलाकर तीन दिनतक पिये तो हाड वज्रकी समान दृढ हो जाता है । इमलीके फलोंका कल्क, सौवीर और तेल इनको एकत्र मिलाकर गरम करके स्वेद देनेसे भग्नकी तथा अभिघातकी पीडा नष्ट हो जाती है ॥ १५–३३ ॥

अथाभागुग्गुलुः ।

आभाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरेतैः समांशिकैः । तुल्यं गुग्गुलुना योज्यं भग्नसन्धिप्रसाधनम् ॥ ३४ ॥

बबूर, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर और सबकी बराबर गूगल लेवे, सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे टूटी हुई हड्डी फिरसे जुड जाती है ॥ ३४॥

अथ लाक्षाद्यगुग्गुलुः ।

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभोऽश्वगन्धा चूर्णीकृता नागबला पुरश्च । संभग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्यादंगानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ ३५ ॥

लाख, हडसंघारी, अर्जुनवृक्षकी छाल, असगन्ध और खिरेटी इन सबका चूर्ण बनाकर गूगलमें मिलाकर सेवन करनेसे टूटा हुआ तथा हटा हुआ हाड फिरसे जुडकर वज्रकी समान हो जाता है और पीडा शमन हो जाती है ॥ ३५ ॥

अथ गन्धतैलम् ।

रात्रौरात्रौ तिलान्कृष्णान्वासयेदस्थिरे जले । दिवादिवा शोधयित्वा गवां क्षीरेण भावयेत् ॥ ३६ ॥ तृतीयं सप्तरात्रं तु भावयेन्मधुकांबुना । ततः क्षीरं पुनः पीताञ्छुष्कान्सूक्ष्मान्विचूर्णयेत् । काकोल्यादि श्वदंष्ट्रां च मंजिष्ठां सारिवां तथा ॥ ३७ ॥ कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ शतपुष्पां च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ॥ ३८ ॥ पीडनार्थे तु कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः श्रृतं पयः । चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत्पुनः ॥ ३९ ॥ एलामंशुमतीपत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा । रौध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुसारिवाम् ॥ ४० ॥ शैलेयं क्षीरशुक्लाभ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनन्तां समधूलिकाम् । पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च ॥ ४१ ॥ एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना । एतत्तैलं सदापथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ॥ ४२ ॥ आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथार्दिते । मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले शिरोग्रहे ॥ ४३ ॥ बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयङ्गताः । पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ॥ ४४ ॥ ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरेतैनैव प्रजायते । मुखं च पद्मप्रतिमं ससुगन्धि समीरणम् ॥ ४५ ॥ राजार्हमेतत्कर्तव्यं राज्ञामेव चिकित्सकैः । तिलचूर्णसमं तत्र मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ ४६ ॥

सात दिनतक रात्रिके समय वहते हुए जलमें काले तिलोंको भिजो रक्खे, फिर सुखा देवे पश्चात् सात दिनतक नित्य गायके दूधकी भावना देवे फिर सात दिनतक नित्य मुलैठीके रसकी भावना देवे, फिर उन तिलोंको पीछे दूधमें भिजोकर सुखाकर चूर्ण बनावे, पश्चात् काकोल्यादिगण, गोखुरू, मजीठ, सारिवा, कूठ, राल, बालछड, देवदारु, चंदन और सोया इनका तिलके चूर्णकी समान चूर्ण बनाकर तिलोंके चूर्णमें मिला देवे। फिर इस तिलके चूर्णको सम्पूर्ण सुगंधित पदार्थोंसे मिश्रित किये हुए दूधके साथ मिलाकर कोल्हूमें पिलवाकर तेल निकलवावे। फिर सकल सुगन्धित पदार्थोंसे दूधको पकाकर उस चौगुने दूधसे तेलको पकावे, पश्चात् इलायची, शालिपर्णी, तेजपात, जीवक, तगर, लोध, पुंडेरिया, पीला चन्दन, सफेद कटसरैया, सफेद दूब, मूर्वा, सिंघाडे और ऊपर कही हुई काकोल्यादि औषधि इनका कल्क बनाकर मन्द मन्द अग्निसे तेलको दुर्वारा पकावे तो यह गन्धतैल सिद्ध होता है। यह तेल भग्नके ऊपर सम्पूर्ण क्रियाओंमें सर्वदा पथ्य है। आपेक्षक, पक्षाघात, तालुशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, शिरोग्रह, बधिरता, तिमिर और अत्यंत स्त्रीप्रसंग करनेसे उत्पन्न हुआ क्षयरोग इनमें पीनेसे, मालिश करनेसे, नास लेनेसे, पिचकारी लगानेसे और भोजनमें पथ्य है। इस तेलसे ग्रीवा, कंधे और छातीकी वृद्धि होती है। मुख अत्यंत सुगंधिवाला तथा कमलकी समान हो जाता है। यह तेल राजाओंके योग्य है, इस लिये वैद्योंको राजाके लिये बनाना चाहिये ॥ ३६–४६ ॥

अथावस्थानुसारेण भग्नोपशान्तिः ।

पूर्वे वयसि जातं हि भग्नं सुकरमादिशेत् । अल्पदोषस्य जन्तोश्च काले तु समशीतले ॥ ४७ ॥ प्रथमे वयसि त्वेवं मासात्संधिः स्थिरो भवेत् । मध्यमे द्विगुणात्कालादंतिमे त्रिगुणात्तथा ॥ ४८ ॥

पहिली अवस्थामें हुआ भग्न साध्य है, अल्प दोषवाले मनुष्यको हुआ भग्न साध्य है और शिशिर ऋतुमें हुआ भग्नभी साध्य है। पहिली अवस्थामें टूटे हुए हाड एक महीनेमें दृढ हो जाते हैं, मध्य अवस्थामें टूटा हुआ हाड दो महीनेमें दृढ हो जाता है और पिछली अवस्थामें टूटा हुआ हाड तीन महीनेमें दृढ हो जाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ भग्नस्य विशेषरक्षा ।

नैति पाकं यथा भग्नं तथा यत्नेन रक्षयेत् । पक्वा हि या शिरा स्नायुः सा तु कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ४९ ॥

जिससे कि भग्न पक न जाय इस प्रकार यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि भग्न पक जाय तो शिरोओंको तथा स्नायुओंको खराब कर देता है और कष्टसाध्य हो जाता है ॥ ४९ ॥

अथ भग्नविशेषोपदेशः ।

पतनादभिघाताद्वा तनुभग्नं यदक्षतम् । शीतान्सेकान्प्रदेहांश्च भिषक्तस्यावचारयेत् ॥ ५० ॥ सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः ॥ प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ ५१ ॥ वातव्याधिविनिर्दिष्टान्स्नेहांस्तत्रापि योजयेत् ।

गिर जानेसे अथवा चोट आदिके लगनेसे जो अंग सूज जाय और घाव न होय तो वैद्य उसपर शीतल सेचन और गाढा गाढा शीतल लेप करे। जो भग्न व्रणसहित होय तो उस व्रणको घी तथा सहतसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भिश्रित किये हुए क्वाथोंसे धोवे, पश्चात् सम्पूर्ण वही क्रिया भग्नकी समान करे। इसपर वातरोगोक्त हि हुए स्नेहोंकी योजना करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

वे

अथ भग्नापथ्यम् ।

श्रमं कटुकक्षारमम्लमायासमैथुनम् । व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥५२॥

जिसके संधिभग्न या कांडभग्न हुआ होय तो उसको नमक, चरपरे पदार्थ, खारी पदार्थ, खट्टे पदार्थ, परिश्रम, मैथुन, कसरत और रूखा अन्न इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ भग्नारोग्यलक्षणम् ।

भग्नसन्धिमनाविद्धमहीनांगमनुल्बणम् । सुखचेष्टाप्रचारं च सम्यक्सन्धितमादिशेत् ॥ ५३ ॥

जब अंगोंको फैलाते पसारते समय कुछ भी दुःख न हो, कोई अवयव छोटा न रह जाय, सूजन किंचित् भी न रहे और उठते बैठते समय तथा फिरते चलते समय दुःख न होय अर्थात् ये सब चेष्टा सुखपूर्वक करने लगे तो भग्नको अच्छे प्रकारसे आरोग्य हुआ जानना ॥ ५३ ॥

इति भग्ननिदानचिकित्साधिकारः सम्पूर्णः ।

इति श्रीभावप्रकाशे भाषाटीकायां मध्यखंडे तृतीयो भागः सम्पूर्णः ।

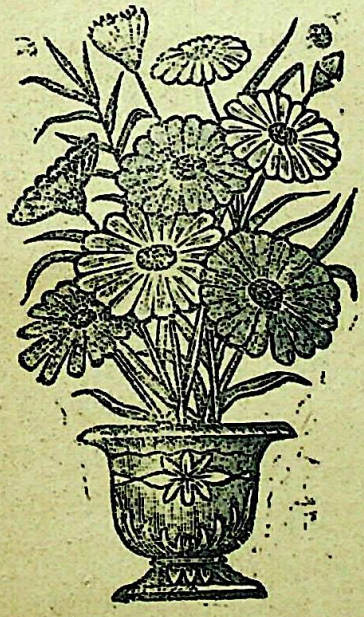

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥

अथ भावप्रकाशः ।

मध्यमखण्ड—चतुर्थो भागः ४.

भाषाटीकासमेतः ।

अथ नाडीव्रणाधिकारः ।

तत्र नाडीव्रणस्य सम्प्राप्तिपूर्वकशब्दार्थः । यः शोथमाममिति पक्वमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः । आभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥ १ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता च नाडी ॥ २ ॥ उपेक्षते तस्य शोथस्य मुखं न कारयति यो वा अयमाम इति मत्वा पक्वं व्रणं च उपेक्षते । शोधनैर्न शोधयति । प्रचुरपूयमिति शोथस्य व्रणस्यापि विशेषणम् । असाधुवृत्तः अहिताहारविहारः । सपूयः ततस्तदनन्तरम् । तस्य पूर्वविहितानि स्थानानि सुश्रुतोक्तानि त्वङ्मांसशिरास्नायुसन्ध्यस्थिकोष्ठमर्माणि प्रविदार्य सच्छिद्राणि कृत्वा अभ्यन्तरं प्रविशति तस्य पूयस्य अतिमात्रगमनादभ्यन्तरे दूरप्रवेशाद्गतिरिष्यते । सर्वदा स्राव इष्यते । इति सम्प्राप्तिः । अथ निरुक्तिः । अयं व्रणो नाडीवत्सरन्ध्रनलादिनाडीव यद्वेतोर्वहति तेन नाडी मता ॥

जो मूर्ख मनुष्य बहुत राधवाले पके हुए फोडेको कच्चा समझकर उसका मुख नहीं करता अथवा बहुत राधवाले पके हुए व्रणको कच्चा जानकर उसको शोधन पदार्थोंसे शुद्ध नहीं करता और अहित आहार विहार करता है उसके वह राध फिर त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, संधि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्मस्थानोंके छिद्रोंमें होकर उनके भीतर घुस जाती है, भीतर बहुत दूरतक घुस जानेके कारण वह राध सदैव बहा करती है । यह नाडीव्रणकी संप्राप्ति जाननी । यह व्रण बाँस आदिकी नलीकी समान राधको बहाता है इस कारण इसको नाडीव्रण कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ नाडीव्रणसंख्या ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ ३ ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और शल्यज इस प्रकार नाडीव्रण पांच प्रकारका है ॥ ३ ॥

अथ वातजनाडीव्रणलक्षणम् ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥ ४ ॥

जो नाडीव्रण सूक्ष्म मुखवाला और कठिन मुखवाला हो, शूलयुक्त और उसमेंसे झाग मिला स्राव अधिक हो उसको वातज नाडीव्रण जानना ॥ ४ ॥

अथ पित्तजनाडीव्रणलक्षणम् ।

पित्तात्तृड्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ५ ॥

जो नाडीव्रण तृषा तथा ज्वरसंयुक्त हो, दाहयुक्त और उसमेंसे दिनमें पीले रंगका तथा गरम अधिक स्राव होता हो, उसको पित्तज नाडीव्रण जानना ॥५॥

अथ कफजनाडीव्रणलक्षणम् ।

ज्ञेया कफाद्बहुघना सितपिच्छिलास्रा स्तब्धा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri.

सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥ ६ ॥ सित-पिच्छिलास्रा अस्रं रक्तं तच्चोपलक्षणं पूयादिश्च बोद्धव्यः। सकण्डुररुजा कण्डूप्रधानवेदनायुक्ता।

जो नाडीव्रण बहुत घन हो, उसमें सफेद और चिकना स्राव होता हो, अकड जाय, अत्यन्त खुजलीसहित वेदनासे संयुक्त हो और रात्रिमें अधिक क्लेदको प्राप्त हो जाय उसको कफजनित जानना ॥६॥

अथ त्रिदोषजनाडीव्रणलक्षणम्।

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि। तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्घोरां गतिं त्वसुहरामिव कालरात्रिम् ॥ ७ ॥ कालरात्रिं यमरात्रिमिव। असुहरां मारिकाम्।

जो नाडीव्रण दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा और मुखशोषसे संयुक्त हो और इसके सिवाय उपरोक्त तीनों दोषोंके सम्पूर्ण लक्षणभी हों उस नाडीव्रणको वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ त्रिदोषज जानना। और कालरात्रिकी समान भयंकर तथा प्राणोंका नाश करनेवाला जानना ॥ ७ ॥

अथ सशल्यनाडीव्रणलक्षणम्।

नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति। सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजं च नित्यम् ॥ ८ ॥ उदीरितेषु स्थानेषु त्वङ्मांसादिषु कथञ्चिन्नष्टम् अदृश्यमानं शल्यम्। किंविशिष्टम् अनुमार्गम् अत एव अदृश्यमानम्। सा गतिं चिरेण शीघ्रं स्रावं करोति। सा शल्यनिमित्ता नाडी। मथितं मथितमिव स्रावं करोति स्रावश्च प्रसारणाकुञ्चनादौ शल्यसञ्चलनेन भवति।

जो नहीं निकाला जाय और त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्मस्थानोंमें किसी रीतिसे गुप्त हो जाय, या टूटकर रह जाय इस कारण दीखें नहीं ऐसे बारीक कांटा थोडे समयमें व्रण कर देता है और उस व्रणमेंसे गाढे तक्रके समान गरम तथा रुधिरसंयुक्त स्राव होता है और निरन्तर पीडा रहती है इसको शल्यसम्बन्धी नाडीव्रण कहते हैं। अंगोंको फैलाते सिकोडते आदिके समयमें शल्यके चलायमान होनेसे स्राव होता है ॥ ८ ॥

अथ नाडीव्रणस्य कष्टसाध्यत्वासाध्यत्वे।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येदन्त्याश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ९ ॥

त्रिदोषज नाडीव्रण असाध्य हैं और अन्य चार प्रकारके नाडीव्रण कष्टसाध्य है ॥ ९ ॥

अथ नाडीव्रणचिकित्सा।

तत्रानिलोत्थामुपनाह्य पूर्वमशेषतः पूयगतिं विदार्य। फलैरपामार्गभवैः सपिष्टैः ससैन्धवैः सम्परिपूर्य बन्धेत् ॥ १० ॥ प्रक्षालने वापि सदा व्रणस्य योज्यं महद्यत्खलु पञ्चमूलम्। हिंस्रां हरिद्रां कटुकां वचां च गोजिह्विकां चापि सबिल्वमूलाम्। संहृत्य तैलं विपचेद्व्रणस्य संशोधनं पूरणरोपणं च ॥ ११ ॥

जो नाडीव्रण वातसंबंधी होय तो उसको प्रथम औषधियोंसे संयुक्त पुलटिस आदिसे बांधे फिर शस्त्रसे विधिपूर्वक राधके स्थानको चीर देवे फिर उस व्रणमें सेंधानिमकके साथ चिरचिटेके चावलोंको पीसकर भर देवे और ऊपरसे बांध देवे। बृहत्पंचमूलका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे नित्य व्रणको धोना चाहिये। हींस, हलदी, कुटकी, वच, गोभी, बेलगिरी इनका कल्क बनाकर उस कल्कसे तेलको पकावे, यह तेल व्रणको शुद्ध कर देता है, व्रणको भरकर सुखा देता है। यह तेल 'हिंस्राद्य तैल' नामसे कहा जाता है और वातज नाडीव्रणपर अत्यन्त उपकारी है ॥ १०॥११॥

पित्तात्मिकां प्रागुपनाह्य धीमानुत्कारिकाभिः सपयोघृताभिः। निपात्य शस्त्रं तिलनागदन्तीमञ्जिष्ठकल्कैः परिपूरयेच्च ॥ १२ ॥ प्रक्षालने चापि हरिद्रसोमनिम्बाः प्रयोज्याः कुशलेन नित्यम्। श्यामात्रिभङ्गीत्रिफलासुसिद्धं हरिद्रया तिल्वकवृक्षकेण। घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्गतिं कोष्ठगतापि वा स्यात् ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो नाडीव्रण पित्तसम्बन्धी होय तो उसको प्रथम दूध तथा घी सहित गेहूँके आटेकी लुपडी बाँध देवे, पश्चात् शस्त्रसे चीरकर उसमें तेल, जमालगोटे और मजीठ इनका कल्क भर देवे । बुद्धिमान् वैद्य इस व्रणको नित्य हलदी, लाल चंदन और नीमकी छाल इनके क्वाथसे धोता रहे । काला निसोत, सफेद निसोत, हरड, बहेडा, आमला, हलदी और लोध इनके कल्कसे पकाये हुए घीमें दूध डालकर उस घीसे पित्तजनित नाडीव्रणको तृप्त करे तो व्रणका स्राव दूर हो जाता है, यह निश्चय है । यह घी 'श्यामाघृत' नामसे प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ १३ ॥

नाडीं कफोत्थामुपनाह्य पूर्वं कुलत्थसिद्धार्थकसक्तुबिल्वैः । मृदूकृतामेकगतिं विदित्वा निपातयेच्छस्त्रमशेषकारि ॥ १४ ॥ दद्याद्व्रणे निम्बतिलाग्निदन्तीसुराष्ट्रजान् सैन्धवसम्प्रयुक्तान् । प्रक्षालने चापि करञ्जनिम्बजात्यर्कपीलुस्वरसाः प्रयोज्याः ॥ १५ ॥

जो नाडीव्रण कफजनित होय तो प्रथम उसके ऊपर कुलथी, सरसों, सत्तू और बेलगिरी इनसे संयुक्त पुलटिस बाँधे, नरम करके राधकी गतिको शुद्ध जानकर अच्छे प्रकारसे चिरा देवे, पश्चात् नीम, तिल, चीता, जमालगोटे, फटकरी और सेंधानिमक इनका चूर्ण करके भर देवे । इस व्रणको नित्य करंज, नीम, चमेली, आक और पीलू इनके स्वरसोंसे धोवे ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यतैलम् ।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्नियूथिकाजलनीलिका । खरमञ्जरीबीजेषु तैलं गोमूत्रसाधितम् । दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १६ ॥

सज्जी, सेंधानिमक, जमालगोटा, चीता, जुही, सिवार और चिरचिटेके बीज इनके कल्कसे गोमूत्रमें पकाये हुए तेलको 'स्वर्जिकाद्य तैल' कहते हैं । इस तेलसे तृप्त करनेसे दुष्टव्रण तथा कफसम्बन्धी नाडीव्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥

अथ सैंधवाद्यतैलम् ।

सैन्धवार्कमरिचज्वलनारव्यैर्मार्कवेण रजनीद्वयसिद्धम् । तैलमेतदचिरेण निहन्याद्दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥ १७ ॥

सेंधानिमक, आक, मिरच, चीता, भांगरा, हलदी और दारुहलदी इनसे पकाया हुआ तेल 'सैंधवाद्य-तैल' कहाता है । इस तेलके लगानेसे कफसम्बन्धी तथा वायुसम्बन्धी नाडीव्रण बहुत दूरतक पहुँचा होय तो भी नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

नाडीं तु शल्यप्रभवां विदार्य निष्कास्य शल्यं प्रविशोध्य मार्गम् । बन्धेद्व्रणं क्षौद्रघृतप्रगाढं निम्बास्तिलांश्चाप्यवरोपयेच्च ॥ १८ ॥

जो नाडीव्रण शल्यसम्बन्धी होय तो शस्त्रसे चीरकर काँटेको निकालकर व्रणके मार्गको शुद्ध करके पश्चात् सहतमें तथा घीमें पीसे हुए नीमके पत्तोंके कल्कका तथा तिलके कल्कका उसके ऊपर लेप कर देवे । इससे व्रण भरकर सूख जाता है ॥ १८ ॥

अथ कुम्भीकाद्यतैलम् ।

कुम्भीकखर्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां च शलाटुवर्गे । कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमावाप्य मुस्तं सरलं प्रियंगुम् ॥ १९ ॥ सौगन्धिकं मोचरसाहिपुष्पं लोध्राणि दत्त्वा खलु धातकीं च । एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद्व्रणे वा सुखमाशु चैव ॥ २० ॥

जमालगोटा, खजूर, कूठ, बेलगिरी और बड इनके कच्चे फलोंका क्वाथ बनाकर उसमें नागरमोथा, फूलप्रियंगू, देवदार, रोहिसनामक सुगन्धितृण, मोचरस, नागकेसर, लोध और धायके फूल इनका चूर्ण डालकर तेल पकावे । इस 'कुम्भीकाद्य' नामक तेलसे तृप्त करे तो शल्यसम्बन्धी नाडीव्रण और अन्यान्य सब व्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीणां वर्तिं कृत्वा प्रपूरयेत् । एष सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यात्प्रयोगराट् ॥ २१ ॥ आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता । सूत्रवर्तिव्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ २२ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध और दारुहलदी इनकी बत्ती बनाकर व्रणके भीतर रक्खे तो इस उत्तम प्रयोगसे सम्पूर्ण शरीरके नाडीव्रण नष्ट हो जाते हैं । अमलतास, हलदी और निसोत इनका चूर्ण बनाकर घी तथा सहतमें मिलाकर और एक सूतकी बत्ती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनाकर उसपर वह घी लगाकर वह बत्ती व्रणमें रक्खे तो व्रण शीघ्र शुद्ध हो जाता है और राधकी गति भी नष्ट हो जाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

वर्तीकृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा । दुष्टव्रणे यद्विहितं तु तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ २३ ॥

सेंधेनिमकको सहतमें पीसकर उससे सूतकी बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे नाडीव्रण नष्ट हो जाता है। दुष्टव्रणके ऊपर जो तेल कहे हैं उनको सेवन करनेसे राधकी गति तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ २३ ॥

जात्यर्कशम्पाककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः । वर्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं स्नुक्क्षीरपिष्टा तु सचित्रकेण ॥ २४ ॥

चमेली, आक, अमलतास, करंज, जमालगोटे, सेंधानिमक, कालानिमक, जवाखार और चीता इनको थूहरके साथ पीसकर इनसे सूतकी बत्ती बनाकर रखनेसे नाडीव्रण तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

विभीतकाम्रास्थिवटप्रवालहरेणुकाशंखिनिबीजमिश्रा । वाराहविट्सूक्ष्ममसी प्रदेया नाडीषु तैलेन हि मिश्रयित्वा ॥ २५ ॥

बहेडे, आमकी गुठली, बडके अंकुर, रेणुका, संखिनीके बीज और वाराही कन्द इनको तेलमें पीसकर कल्क बनाकर नाडीव्रणके ऊपर लगावे तो नाडीव्रण तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥

मेषरोममसीतुम्ब्या कटुतैलं विपाचितम् । नाडीव्रणं चिरोद्भूतं जयत्तु तूलसंगमात् ॥ २६

भेडके बालोंकी भस्म और कडवी तोंबी इनको सरसोंके तेलमें पकाकर उसकी बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे बहुत दिनोंका भी नासूर जाता है ॥ २६ ॥

अथ कर्चूरतैलम् ।

कर्चूरकस्य स्वरसे कटुतैलं विपाचयेत् । सिन्दूरकल्कितं नाडीदुष्टव्रणविसर्पनुत् ॥ २७ ॥ कर्चूरकरसे तैलं पुरासिन्दूरकल्कितम् । पामां दुष्टव्रणं नाडीं हन्यात्सर्वव्रणान्तकृत् ॥ २८ ॥

कचूरके स्वरसमें सिंदूरका कल्क डालकर पकाया हुआ सरसोंका तेल डालनेसे नाडीव्रण, दुष्टव्रण और विसर्प दूर हो जाता है। कचूरके स्वरसमें गूगल तथा सिंदूरका कल्क डालकर पकाया हुआ सरसोंका तेल व्रणमें भरे तो खुजली, दुष्टव्रण, नाडीव्रण और अन्यान्य व्रण भी नष्ट हो जाते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ भल्लातकाद्यतैलम् ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडंगरजनीद्वयचित्रकैश्च । स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ २९ ॥

भिलावे, आक, कालीमिरच, सेंधानिमक, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी और चीता इनका कल्क बनाकर भांगरेके रसमें डालकर पकाया हुआ तैल 'भल्लातकाद्यतैल' नामसे कहा जाता है। इस तेलके लगानेसे कफज नाडीव्रण, वातजनित अपची और व्रण नष्ट हो जाता है ॥ २९ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यतैलम् ।

स्वर्जिका सैन्धवं दन्ती नीलीमूलं फलं तथा। मूत्रे चतुर्गुणे सिद्धं तैलं नाडीव्रणापहम् । सर्वो व्रणक्रमः कार्यः शोधनारोपणादिकः॥ ३०॥

सजीखार, सेंधानिमक, जमालगोटा, नीलकी जड और नीलके फल इनका कल्क डालकर चौगुने गोमूत्रमें पकाया हुआ तेल 'स्वर्जिकाद्य तेल' कहाता है। इस तेलसे नाडीव्रण नष्ट हो जाता है। व्रणके प्रकरणमें शोधन और रोपणादि जो चिकित्सा कही है वह सब नाडीव्रणके ऊपरभी करनी चाहिये ॥ ३० ॥

अथ सप्तांगगुग्गुलुः ।

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितैः। अक्षप्रमाणां गुटिकां खादेदेकामतन्द्रितः ॥ ३१ ॥ नाडीं दुष्टव्रणं शूलमुदावर्तं भगन्दरम् । गुल्मं च गुदजान्हन्यात्पक्षिराट् पन्नगानिव ॥ ३२ ॥

गूगल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर घीमें मिश्रित करके एक एक तोलेकी गोलियाँ बना लेवे। पथ्यसे रहकर इन गोलियोंमेंसे एक गोली नित्य खाय तो नाडीव्रण, दुष्टव्रण, शूल, उदावर्त, भगन्दर, गुल्म और सब प्रकारकी बवासीर नष्ट हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाती है । जिस प्रकार गरुड साँपोंको नष्ट कर देता है उसी प्रकार ये गोलियां उपरोक्त संपूर्ण रोगोंको नष्ट कर देती हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

या द्विव्रणीये विहितास्तु वर्त्यस्ताः सर्वनाडीषु भिषग्विदध्यात् ॥ ३३ ॥

और द्विव्रणमें जो बत्ती कही हैं उन बत्तियोंको वैद्य सर्व नाडीव्रणोंमें उपयोग करे ॥ ३३ ॥

कृशदुर्बलभीरूणां नाडीं मर्माश्रितामपि । क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ३४ ॥ एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम् । सूचीं निदध्यादत्यन्ते प्रोन्नम्याशु विनिर्हरेत् ॥ ३५ ॥ सूत्रस्यांतं समानीय गाढं बन्धनमाचरेत् । ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत् ॥ ३६ ॥ क्षाराक्तं मतिमान्वैद्यो यावन्न च्छिद्यते गतिः । भगन्दरेष्वेष विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ ३७ ॥ अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत् । सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं वा समन्ततः । मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्नेचोपचरेद्व्रणम् ॥ ३८ ॥

कृश, दुर्बल और डरपोक इनके उत्पन्न हुए नाडीव्रणको तथा मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए नाडीव्रणको क्षारमें भीजे हुए डोरेसे फोडे, किंतु शस्त्रसे कदापि नहीं चीरे । नाडीव्रणकी गतिको एषणीसे साधन करे और कहांसे सूखा है और कहांसे हरा है यह जानके विधिपूर्वक क्षार सूत्रसे सुई छेद देवे, राधको निकाल डाले, फिर सूत्रके अंतमें गांठ देकर बाँध देवे, क्षारके बलानुसार फिर दूसरा सूत उसमें प्रविष्ट करे, जबतक नाडीव्रणका मार्ग नहीं होय तबतक इसी प्रकार बराबर क्षार सूत्र प्रवेश करे । और यही विधि भगन्दर रोगमें भी करे । अर्बुदादि रोगोंमें ऊँचा करके उनके मूलमें क्षारसे भीजा हुआ डोरा बाँधे अथवा व्रणको जौकी समान मुखवाली सुईसे चारों ओर छेदकर उसकी जडमें डोरा बाँधे और व्रणके छेदे जानेपर अन्य उपचार करे ॥ ३४–३८ ॥

इति नाडीव्रणाधिकारः संपूर्णः ।

अथ भगन्दराधिकारः ।

तत्र भगन्दरपूर्वरूपरूपे ।

कटीकपालनिस्तोददाहकंडूरुजादयः । भवंति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥ १ ॥ गुदस्य द्व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पीडिकाऽऽर्तिकृत । भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो भवेत् ॥ २ ॥ आर्तिकृत् पीडाकृत् । पञ्चविधः वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकशल्यजभेदैः ।

जब भगन्दर होनेको होता है तब कमरमें हड्डियोंमें सुई चुभोने सरीखी पीडा, दाह, खुजली और व्यथादि पूर्वरूप होते हैं । गुदाकी बाजूमें दो अंगुलके बीचमें पीडा करनेवाली और फटी हुई जो पिडिका (फुंसी) उत्पन्न होय उसको भगन्दर कहते है । वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और शल्यज इस प्रकार भगन्दर पांच प्रकारका है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ भगन्दरशब्दार्थः ।

भगं परिसमन्ताच्च गुदं वर्स्ति तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्मादेष भगन्दरः ॥ ३ ॥ भजन्त्यनेनेति भगो मेहनम् । भजन्त्यस्मिन्निति भगः योनिः । अत्र भगशब्देन द्वयमपि कथ्यते । भगवद्योनिवत् ।

भोज कहता है कि " गुदाको और मूत्राशयको चारों ओरसे योनिकी समान फोड देता है इस कारण यह भगन्दर कहा जाता है " ॥ ३ ॥

अथ वातजशतपोनकभगन्दरलक्षणम् ।

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडिकां करोति याम् । उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी । तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ४ ॥ दारुणमतिकठिनम् । व्रणैरनेकैः सूक्ष्ममुखैः । शतपोनकं शतपोनकश्चालनी तत्तुल्यम् ।

कसैले पदार्थोंसे तथा सूखे पदार्थोंसे अत्यंत कुपित हुई वायु गुदाप्रदेशमें फुंसीको उत्पन्न करती है इन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फुंसियोंकी उपेक्षा करनेसे वह दारुण रीतिसे पकती है, व्यथा करती हैं फूट जानेपर लाल झाग बहते हैं और उसमें मूत्र, विष्ठा, तथा वीर्य निकलता है इसमें बहुत छोटे छोटे मुखवाले अनेक व्रण हो जाते हैं, उनके होनेसे चलनीकी समान दीखे है इस कारण इसको शतपोनक कहते हैं। संस्कृतभाषामें 'शतपोनक' चालनीका नाम है ॥ ४ ॥

अथ पैत्तिकोष्ट्रग्रीवभगन्दरलक्षणम्।

प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिडकां गुदं गताम्। तदाशुपाकाऽहिमपूतिवाहिनीं भगन्दरं चोष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ५ ॥ आशुपाकां शीघ्रपाकाम् अहिमपूतिवाहिनीमुष्णदुर्गन्धवाहिनीं च। तदा भगन्दरमुष्ट्रशिरोधरं वदेत्। उष्ट्रग्रीवसंज्ञा च पिडिकावस्थागतगलवक्रतया उष्ट्रग्रीवाकारत्वेन।

पित्तको कुपित करनेवाले पदार्थोंसे कोपको प्राप्त हुआ पित्त गुदाकी बाजूमें लाल फुंसियोंको उत्पन्न करे हैं, वे फुंसी तत्काल पक जाती हैं और उसमें गरम और दुर्गन्धवाली राध बहती है, ये फुंसी उष्ट्रग्रीव कहलाती हैं। इन फुंसियोंका गला ऊंटकी नाडकी समान होता है, इसीसे ये उष्ट्रग्रीव कही जाती हैं॥५॥

अथ श्लैष्मिकपरिस्राविभगंदरलक्षणम्।

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः। श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगंदरः। कठिनः पिडिकावस्थायाम्। परिस्रावी निरंतरस्रावशीलः।

कफके भगन्दरकी पिडिका कठिन होय, खुजली चले, उसमेंसे गाढा स्राव हो, अल्प पीडा हो, श्वेतवर्ण हो और निरन्तर राध बहती रहे, उसको कफसे उत्पन्न हुआ परिस्रावी भगन्दर जानना ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजन्यशम्बूकावर्तभगंदरलक्षणम्।

बहुवर्णरुजास्रावा पिडिका गोस्तनोपमा। शम्बूकावर्त्तगतिकः शम्बूकावर्तको मतः। बहुवर्णरुजास्रावा बहुशब्दो वर्णादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते। गतिः स्रावमार्गः।

अनेक प्रकारके वर्णोंवाली, अनेक प्रकारकी पीडावाली, अनेकप्रकारकी स्राववाली, गायके स्तनकी समान फुंसी उत्पन्न होती है और उसका स्रावमार्ग शंखके आवर्तकी समान होता है। इस भगन्दरको त्रिदोषज जानना। शंखका नाम शम्बूक है इस लिये यह भगन्दर शम्बूकावर्त कहा जाता हैं ॥ ७ ॥

अथ शल्यादिक्षतजन्योन्मार्गिभगन्दरलक्षणम्।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्द्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्यते। प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तमुन्मार्गिभगन्दरं वदेत् ॥ ८ ॥ क्षतात्कण्टकादिना नखेन कण्डूयनादिना वा अभिघातात्। गतिः स्रावः। उन्मार्गिभगन्दरम् एतस्य तिर्यक्कृतमार्गैः पुरीषादिनिर्गमादुन्मार्गिसंज्ञा।

कांटे आदिके लग जानेसे और नख आदिसे खुजानेसे गुदाकी बाजूमें फोडा हो जाता है वह बढता है और फूटता है, उसकी उपेक्षा करनेसे उसमें कीडे पड जाते हैं, अनेक व्रण हो जाते हैं और व्रण अनेक मुखोंसे स्रवता है। यह भगन्दर उन्मार्गी कहा जाता है। इन व्रणोंके तिरछे मार्गोंसे विष्ठा आदि निकलती है, इस कारण इस भगन्दरको 'उन्मार्गी' कहते हैं ॥ ८॥

अथ भगन्दरकष्टसाध्यासाध्यता।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगन्दराः। तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ९ ॥ वातमूत्रपुरीषाणि शुक्रं च कृमयस्तथा। भगन्दरात्स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥ १० ॥

सर्वप्रकारके भगन्दर भयंकर हैं और कष्टसाध्य हैं, इनमें त्रिदोषज भगन्दर और शल्यज भगन्दर असाध्य हैं। जो भगंदरमेंसे वायु, मूत्र, विष्ठा, वीर्य और कीडे निकलते हों वह रोगी मनुष्य मर जाता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ भगन्दरचिकित्सा।

अथास्य पिडिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत्। शुद्धचत्यम्बुतिसेकाद्यैर्यथा पाकं न गच्छति ॥ ११ ॥ वटपत्रेष्टकाशुण्ठीसगुडूचीपुनर्न-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाः। सुपिष्टः पिडिकावस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ १२ ॥ पिडिकानामपक्वानामतर्पणपूर्वकम् । कर्म कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ १३ ॥ एषणीपाटनक्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् । विधाय व्रणवत्कार्यं यथा दोषं यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ पयःपिष्टैस्तिलारिष्टमधुकैश्च सुशीतलैः । भगन्दरे प्रशस्तोऽयं सरक्ते वेदनावति ॥ १५ ॥ सुमना वटपत्राणि गुडूची विश्वभेषजम् । ससैन्धवस्तक्रपिष्टो लेपो हन्ति भगन्दरम् ॥ १६ ॥ त्रिवृत्तिला नागदन्ती मञ्जिष्ठा सह सर्पिषा । उत्सादनं भवेदेतत्सैन्धवक्षौद्रसंयुतम् ॥ १७ ॥ खदिराम्बुरतो भूत्वा कषायं त्रैफलं पिबेत् । महिषाक्षविडंगानां भगन्दरविनाशनम् ॥ १८ ॥ शंबूकमांसं भुञ्जीत प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः । अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते तु भगन्दरात् । ॥ १९ ॥ न्यग्रोधादिर्गणो यस्तु हितः शोधनरोपणः । तैलं घृतं वातपक्वं भगन्दरविनाशनम् ॥ २० ॥ तिला ज्योतिष्मती कुष्ठं लांगली गिरिकर्णिका । शताह्वात्रिवृतादन्त्यः शोधनाश्च भगन्दरे ॥ २१ ॥ तिलाभयालोध्रमारिष्टपत्रनिशे बलालोध्रमगारधूमम् । भगन्दरे चाप्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे रोपणशोधनाय ॥ २२ ॥ स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः । भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्ताः प्रयत्नतः ॥२३॥ एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः । त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थिप्रलेपनम् । ॥ २४ ॥ भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् । त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ॥ २५ ॥ ज्योतिष्मती लांगलकी श्यामा दंती त्रिवृत्तिलाः । कुष्ठं शताह्वा गोलोमीवर्गः शोधन इष्यते ॥ २६ ॥ मधुतैलयुता विडंगसारत्रिफलामागधिकाकणाश्च लीढाः । कृमिकुष्ठभगन्दरप्रमेहक्षयनाडीव्रणरोपणा भवन्ति ॥ २७ ॥

भगन्दरकी फुंसी उत्पन्न होतेही इस प्रकार यत्न करे कि जिससे फुंसी पके नहीं । शोधन, रुधिर निकलवाना और सेचन इत्यादि उपचार करे तो फुंसी पकती नहीं है । बडके पत्ते, ईंट, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा इनको अच्छे प्रकारसे पीसकर जहांतक भगन्दरकी फुंसी हो वहांतक लेप करे यह उत्तम है । जो भगन्दरकी फुंसी न पकी होय तो लंघनसे लेकर विरेचन तक क्रिया करे। फुंसीके फूटनेकी जो क्रिया है वे सब कहीं जाती है । एषणी नामक शस्त्रसे चीरे, क्षार लगावे, तथा दाग देना आदि क्रिया करे । पश्चात् यथादोषानुसार तथा क्रमानुसार व्रणकी समान क्रिया करे । रुधिरवाले और वेदनावाले भगन्दरपर तिल, नीमके पत्ते और मुलैठी इनको दूधमें पीसकर अत्यंत शीतल करके लेप करे । चमेलीके पत्ते, बडके पत्ते, गिलोय और सोंठ तथा सेंधानिमक इनको गाढी छाछमें पीसकर भगन्दरके ऊपर लेप करे इससे भगन्दर नष्ट हो जाता है । निसोत, तिल, जमालगोटे, मजीठ और सेंधानिमक इनको पीसकर घीमें तथा सहतमें मिलाकर भगन्दरके ऊपर लेप करे तो भगन्दर अवश्य नष्ट हो जाता है । हरड, बहेडा, आमला, मैंधिया गूगल और वायविडंग इनका क्वाथ नित्य पिये और जब तृषा लगे तब खैरका रस मिला जल पिये तो इससे भगन्दर अवश्य नष्ट हो जाता है । शाक तथा भोजनके पदार्थोंमें शंखके जीवोंका मांस खाय और अजीर्ण न होने देवे तो भगन्दर एक महीनेके भीतर अवश्य नष्ट हो जाता है । न्यग्रोधादि गण जो कि शोधन (व्रणको साफ करनेवाला) और रोपण (व्रणको भरनेवाला) है उसके कल्कसे पकाया हुआ तेल या घी भगंदरका नाश करता है । तिल, मालकांगुनी, कूठ, कलिहारी, कोइली, सोया, निसोत और जमालगोटा इनके क्वाथसे भगंदर शुद्ध हो जाता है । तिल, हरड, दुगुना लोध, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी, खिरैटी और घरका धुँआँसा यह भगन्दर, उपदंशके व्रण तथा दुष्टव्रणको भी शुद्ध करें और भर देवे है । भगन्दरको शुद्ध करके विचक्षण वैद्य थूहका दूध, आकका दूध और दारुहलदी इनको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीसकर यत्नपूर्वक भर देवे। यह प्रयोग सम्पूर्ण शरीरमें स्थित नाडीव्रणको भी नष्ट कर देता है यह निश्चय है। बिलावकी हड्डीको, हरड, बहेडे और आमलोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे भगन्दर और दुष्टव्रण तत्काल नष्ट हो जाता है। निसोत, तेजबल और जमालगोटा इनके कल्कसे भगन्दर तथा नाडीव्रण नष्ट हो जाता है। मालकांगुनी, कलिहारी, निसोत, जमालगोटे, सुफेद निसोत, तिल, कूठ, सोया और वच यह वर्ग भगन्दर आदिके व्रणोंको शुद्ध करनेवाला है। वायविडंग, खैरसार, हरड, बहेडा, आमला और दो भाग पीपल इनका चूर्ण करके सहतमे तथा तेलमें मिलाकर चाटे तो कृमि, कोढ, प्रमेह तथा क्षय नष्ट हो जाता है और भगन्दर तथा नाडीव्रण भर जाता है ॥ २१–२७ ॥

अथ निष्यंदनतैलम्।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे भलयूहयमारकौ। सुधां वचां लाङ्गलकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ॥२८॥ ज्योतिष्मतीं च संहृत्य तैलं धीमान्विपाचयेत्। एतन्निष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे। शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ २९ ॥

चीता, आक, निसोत, पाढ, कदूमर, सुफेद कनेर, थूहर, वच, कलिहारी, हरिताल, सज्जी और मालकांगुनी इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल 'निष्यन्दनतैल' कहलाता है। यह तेल—भगन्दरको साफ करता है, व्रणको भरता है और उस स्थानको शरीरके वर्णकी समान कर देता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ निशाद्यतैलम्।

निशार्कक्षीरसिन्धूत्थपुराश्वहरवत्सकैः। सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं भगन्दरहरं परम् ॥ ३० ॥

हलदी, आकका दूध, सेंधानमक, गूगल, कनेर और इन्द्रजौ इनके कल्कसे पकाये हुए तेलकी मालिश की जाय तो भगन्दर अवश्य नष्ट हो जाता है॥३०॥

अथ करवीरादितैलम्।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः। मातुलुंगकवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥३१॥

कनेर, हलदी, जमालगोटा, कलिहारी, सेंधानिमक, चीता, बिजौरानींबू और इन्द्रजौ इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगानेसे भगन्दर नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

अथ नवकार्षिकगुग्गुलुः।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता। गुटिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ३२

त्रिफला ३ तोले, गूगल ५ तोले और पीपल १ तोला इनकी बनाई हुई गोलियोंको भक्षण करे तो भगन्दर नष्ट हो जाता है और यह सूजन, गुल्म और बवासीरको दूर करे है ॥ ३२ ॥

अथ भगन्दरशस्त्रक्रियाकर्तव्यता।

नाड्यन्तरे व्रणान्कुर्याद्भिषग्वै शतपोनके। ततस्तेष्ववरूढेषु शेषा नाडीरुपाचरेत् ॥ ३३ ॥ व्याधौ तत्र बहुच्छिद्रे भिषजा तु विजानता। अर्द्धलांगलकच्छेदः कार्यो लांगलकोऽपि वा ॥ ३४ ॥ सर्वतोभद्रको वापि कार्यो गोतीर्थकोऽपि वा। द्वाभ्यां समाभ्यां पार्श्वाभ्यां छेदो लांगलको मतः ॥ ३५ ॥ ह्रस्वमेकतरं यत्तु सोऽर्द्धलांगलकः स्मृतः। सेवनीं वर्जयित्वा तु चतुर्द्धा दारिते गुदे ॥ ३६॥ सर्वतोभद्रकं छेदमाहुश्छेदविदो जनाः। पार्श्वादागतशस्त्रेण च्छेदो गोतीर्थको मतः ॥ ३७ ॥ सर्वानास्रावमार्गांस्तु दहेद्वैद्यस्तथाग्निना। अथोष्ट्रग्रीवमेषिण्या छित्त्वा क्षारं निपातयेत् ॥ ३८ ॥ पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निरत्र प्रपूजितः। उत्कृत्यास्रावमार्गं तु परिस्राविणि बुद्धिमान् ॥ ३९ ॥ क्षारेणास्रावितगतिं दहेद्वा तवहेन वा। गतिमन्विष्य शस्त्रेण छिन्द्यात्खर्जूरपत्रकम् ॥ ४०॥ चन्द्रार्द्धं चन्द्रवर्गं च सूचीमुखमवाङ्मुखम्। छित्त्वाग्निना दहेत्सम्यगेवं क्षारेण वा पुनः ॥ ४१ ॥ येषां तु शस्त्रपतनाद्वेदनाप्यतिजायते। तत्राशु तैलेनोष्णेन परिषेकः प्रशस्यते ॥ ४२ ॥ आगन्तुजे भिषङ् नाडीं शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जम्ब्वोष्ठेनाग्निवर्णेन तप्तया वा शलाकया। दहेद्यथोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुसमाहितः ॥ ४३ ॥

शतपोनक नामक भगन्दरमें उसकी नालीके भीतर शस्त्रसे चीरकर घाव कर देवे और जब वह व्रण सूखकर भर जाय तब दूसरी नालियोंका उपचार करे। बहुत छिद्रोंवाले इस शतपोनक नामक भगन्दरमें वैद्य विचारकर अर्द्धलांगलक, लांगलक, सर्वतोभद्रक अथवा गोतीर्थक नामक छेद करे। जिस छेदके दोनों पार्श्व (बाजू) समान रक्खे जायँ उसको लांगलक कहते हैं। जिस छेदमें एक पार्श्व छोटा रक्खा जाय उसको अर्द्धलांगलक कहते हैं। सीवनको छोड़कर चारों ओरसे गुदाको चीरा जाय उस छिद्रको सर्वतोभद्र कहते हैं। पार्श्वमें शस्त्र डालकर जो छिद्र किया जाय तो उसको गोतीर्थक कहते हैं। इस प्रकार वैद्य छेद करके शतपोनकके सम्पूर्ण स्रावके मार्गोंको अग्निसे दाग देवे, उष्ट्रग्रीवक नामक भगन्दर हुआ होय तो राधकी गतिको शोधकर शस्त्रसे चीरकर क्षार डाले, सडे हुए दुर्गन्धित मांसको निकालनेके लिये अग्निसे दाग देवे यह उत्तम विधि है। परिस्रावी नामक भगंदर हुआ होय तो बुद्धिमान् वैद्य स्रावके मार्गको चीरकर क्षारसे अथवा अग्निसे स्रावकी गतिको दहन करे। शम्बूकावर्त नामक भगन्दरमें स्रावके मार्गको शोधन करके शस्त्रसे खर्जूरपत्रक, चन्द्रार्द्ध, चन्द्रचक्र, सूचीमुख और अवाङ्मुख नामक छेद करके पश्चात् अग्निसे अथवा क्षारसे अच्छे प्रकारसे दहन करे। (खर्जूरपत्रक आदि छिद्रोंके लक्षण सुश्रुतादि ग्रंथोंमें देख लेने चाहिये)। शस्त्रसे चीरनेसे व्यथा होय तो तत्काल वैद्य गरम तेलसे सेचन करे, ये हितकारी हैं। शल्यसम्बन्धी भगन्दर होय तो बुद्धिमान् वैद्य यत्नपूर्वक उसकी नलीको शस्त्रसे चीरे, तपाये हुए अग्निके वर्णकी समान जम्ब्वोष्ठ नामक पत्थरसे अथवा तपाई हुई सलाईसे शास्त्रानुसार दाग देवे॥ ३३-४३॥

अथ व्रणिपथ्यापथ्यम्।

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च। संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ ४४ ॥

जो भगन्दरका व्रण भरकर सूखभी गया हो तौभी वह मनुष्य एक वर्षतक दंड कसरत, मैथुन, युद्ध, घोडे हाथी आदिपर बैठना और भारी अन्नपानका भोजन सब त्याग देवे ॥ ४४ ॥

इति भगन्दराधिकारः संपूर्णः।

अथ उपदंशाधिकारः।

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनादत्युपसेवनाद्वा। योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः ॥ १ ॥

हाथकी चोट लगनेसे, नख अथवा दांतसे घाव हो जानेसे, मैथुन करके लिंगको नहीं धोनेसे, पशु आदिके साथ प्रसंग करनेसे, रोगसे और तीक्ष्ण केशयुक्त दुष्ट योनिवाली स्त्रियोंके साथ प्रसंग करनेसे, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज इस प्रकार लिंगमें पांच प्रकारके उपदंश होते हैं ॥ १ ॥

अथ पंचोपदंशानां पृथक्त्वेन लक्षणानि। सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम्। पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तैः पिशितावभासैः ॥ २ ॥ सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन। नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

जो उपदंशका व्रण सुई चुभोनेसरीखी वेदनावाला हो, शस्त्रभेदन सरीखी पीडावाला हो, स्फुरणयुक्त और कालौंस लिये हो उसको वातजन्य उपदंश जानना। जो फुंसी वा चट पीली, बहुत क्लेदयुक्त, दाहयुक्त लाली लिये और देखनेमें मांसकी समान हो उसको पित्तसम्बन्धी जानना। जो व्रण वा चट खुजलीयुक्त, सूजनयुक्त, बडा, सफेद, घन और स्रावयुक्त होय उसको कफजन्य उपदंश जानना। जो फोडा अनेक प्रकारके स्रावयुक्त और अनेक प्रकारकी पीडायुक्त होय उसको त्रिदोषजन्य जानना, ये उपदंश असाध्य हैं। जो फोडा काला होय, रुधिर बहुत निकलता हो, पित्तके लक्षणोंयुक्त हो और ज्वर, दाह तथा शोषयुक्त होय तो उसको रुधिरसम्बन्धी उपदंश जानना। यह उपदंश किसी समय याप्य हो जाता है ॥२॥३॥

अथोपदंशासाध्यता।

प्रशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जनीयम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस उपदंशका मांस गल गया हो, कीडे पड गये हों अथवा उसके मांसको कीडोंने खा लिया हो और केवल अंडकोषही अवशेष रह गये होंय उस उपदंशकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥

अथोपदंशोपेक्षाफलम् ।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः। कालेन शोथक्रिमिदाहपाकैः प्रशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥ ४ ॥

विषयमें आसक्त जो मूर्ख पुरुष उपदंशके उत्पन्न होतेही उसकी चिकित्सा नहीं करता है उस मनुष्यका कुछ कालमें सूजन, कृमि, दाह और पकनेसे लिंग गल सडकर गिर पडता है ॥ ४ ॥

अथोपदंशचिकित्सा ।

उपदंशेषु साध्येषु स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः। मेढ्रमध्ये शिरां विध्येत्पातयेद्वा जलौकसः ॥ ५ ॥ हरेदुभयतश्चापि दोषानत्यर्थमूर्च्छितान् । सद्यो निर्हृतदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः ॥ ६ ॥ यदि वा दुर्बलो जन्तुर्न वा प्राप्तविरेचनः । निरूहेण हरेत्तस्य दोषानत्यर्थमूर्च्छितान् । पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ ७ ॥ प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वसरलागुरुदारुभिः। सरास्नाकुष्ठपृथ्वीकैर्वातिके लेपसेचने ॥ ८ ॥ निचुलैरण्डबीजानि यवगोधूमसक्तवः । एतैश्च वातजं स्निग्धैः सुखोष्णैः संप्रलेपयेत् ॥ ९ ॥ गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः । सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ १० ॥ पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुनवेतसैः । सर्पिःस्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ ११ ॥ सेचयेच्च घृतक्षीरशर्करेक्षुमधूदकैः । अथवापि सुशीतेन कषायेण वटादिना ॥ १२ ॥ शालाजकर्णाश्वकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थितम् । सुरापिष्टाभिरुष्णाभिः सतैलाभिः प्रलेपयेत् ॥ १३ ॥ अजकर्णः शालभेदः । अश्वकर्णो गजाहडः । आरग्वधादिकाथेन परिषेकं च दापयेत् ॥ १४ ॥ निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्वशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसैश्च । प्रक्षालनालेपकृतानि कुर्याच्चूर्णं सपित्तास्रभवोपदंशे ॥ १५ ॥ त्वचो दारुहरिद्रायाः शंखनाभिरसाञ्जनम् । लाक्षागोमयनिर्यासैस्तैलं क्षौद्रं घृतं पयः ॥ १६ ॥ एभिस्तु पिष्टैस्तुल्यांशैरुपदंशं प्रलेपयेत् । व्रणाश्च तेन शाम्यन्ति श्वयथुर्दाह एव च ॥ १७ ॥ उपदंशद्वये शेषे प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् । एतेषामेव या योग्या वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ १८ ॥ शस्त्रेणोल्लेखयेत्कापि पाकमागतमाशु वै । तमपोह्य तिलैः सर्पिःक्षौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥ वटप्ररोहार्जुनजम्बुपथ्या लोध्रं हरिद्रा च हिताः प्रलेपे । तथोपदंशेष्ववरोहणार्थं चूर्णं च कार्यं विमलाञ्जनेन ॥ २० ॥ त्रिफलायाः कषायेण भृंगराजरसेन वा । व्रणप्रक्षालनं कार्यमुपदंशप्रशान्तये ॥ २१ ॥ जयाजपाश्वमारार्कशम्पाकानां दलैः क्रमात्। कृतं प्रक्षालनं क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् । ॥ २२ ॥ शम्पाकनिम्बत्रिफलाकिरातक्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् । सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः । ॥ २३ ॥ नीलोत्पलानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च । उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽयं प्रशस्यते ॥ २४ ॥ बन्धूकदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथवा । गुण्डनं वृषणे शस्तं लेपः पूगफलेन वा ॥ २५ ॥ सौराष्ट्रीगैरिकं तुत्थं पुष्पकासीससैन्धवम् । लोध्रं रसाञ्जनं चापि हरितालं मनःशिला ॥ २६ ॥ हरेणुकैलेऽपि तथा समं संहृत्य चूर्णयेत् । तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु पूजितम् । ॥ २७ ॥ पुटदग्धं कृतं भस्म हरितालं मनःशिला । उपदंशविसर्पाणामेतद्धानिकरं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परम् ॥ २८ ॥ दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मर्सीं मधुसैन्धवम् । उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ २९ ॥ तिरीटाञ्जनवज्राक्षकोविरारेभकेसरैः । लेपनं पुरुषव्याधौ जलपिष्टैः प्रशस्यते ॥ ३० ॥ रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् । सक्षौद्रं लेपनं योज्यं सर्वागजगदापहम् ॥ ३१ ॥ भाङ्गींसम्भवशिखारिजमूलं भद्रश्रियः सुसम्पिष्टम् । मनःशिला च मधुना शमयत्युपदंशमचिरेण ॥ ३२ ॥ शतधौतं प्रयत्नेन लिंगोत्थमवचूर्णयेत् । रोगं कासीसचूर्णेन पुरुषः सुखमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥ करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा । असाध्यापि व्रजत्यस्तं लिंगोत्था रुक्प्रलेपनात् ॥ ३४ ॥

उपदंश जो साध्य होय तो उस पुरुषको स्नेहन तथा स्वेदन करके उसके लिंगके मध्यमें जो महीन नस है उसको बींधे अथवा उपदंशके ऊपर जोंक लगावे। वमन तथा विरेचन देकर उस पुरुषके अत्यंत बढे हुए दोषोंको हरण करे, तत्काल ही दोषोंका हरण किया जाय तौ व्यथा तथा सूजन शांत हो जाती है । जो उपदंशरोगी अत्यंत निर्बल हो अथवा विरेचनयोग्य न होय तो उसके अत्यंत व्याप्त हुए दोषोंको निरूह वस्ति लगाकर हरण करे। जिस प्रकार हो सके उस प्रकार उपदंशको पकने नहीं देवे, क्यों कि पक जानेसे लिंगका क्षय हो जाता है। जो वायुसम्बन्धी उपदंश होय तो प्रपौण्डरीक (पुंडेरिया गंधद्रव्य), मुलैठी, देवदारु, अगर, दारुहलदी, रायसन, कूठ और इलायची इनके कल्कका लेप करे और इनहीके रससे सेचन करे। नीम, अंडके बीज और जौ तथा गेहूँके सत्तू इनको पीसकर घीसे स्निग्ध करके कुछेक गरम करके लेप किया जाय तो वातजन्य उपदंश नष्ट हो जाता है । गेरू, रसौत, मजीठ, मुलैठी, खस, पद्माख, चंदन और उत्पल इनके कल्कका लेप किया जाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट हो जाता है। सफेद कमल, लाल कमल, कमलकी नाल, सालकी छाल, अर्जुनकी छाल, बेत और मुलैठी इनको घीसे स्निग्ध करके लेप किया जाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट हो जाता है। घी, दूध, मिश्री, ईख, सहत और जल इनसे सेचन किया जाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट हो जाता है । न्यग्रोधादि गणका क्वाथ बनाकर अच्छे प्रकारसे शीतल करके उससे सेचन करनेसे पित्तजन्य उपदंश नष्ट होता है । सालकी छाल, अजकर्ण नामक सालकी छाल, अश्वकर्ण नामक सालकी छाल और बचकी छाल इनको मदिरामें पीसकर गरम करके तेल डालकर लेप किया जाय तो कफसंबन्धी उपदंश नष्ट हो जाता है। आरग्वधादि गणकी औषधियोंका क्वाथ बनाकर उससे सेचन किया जाय तो कफसम्बन्धी उपदंश नष्ट होता है। नीम, अर्जुन, पीपल वृक्ष, कदम्ब, साल, जामुन, वड, गूलर और बेत इनकी छालके क्वाथसे धोनेसे और इनहीके कल्कसे लेप किया जाय तो पित्तजन्य और रुधिरजन्य उपदंश नष्ट हो जाता है । दारुहलदीकी छाल, शंखकी नाभि, रसौत, लाख, गोंद, तेल, घी और दूध इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर उपदंशके ऊपर लेप करनेसे व्रण, सूजन और दाह शांत हो जाता है। त्रिदोषज और रुधिरजन्य उपदंश होय तो उसको असाध्य होनेके कारण प्रथमहीसे उसकी चिकित्सा न करने लगे अगर रोगीकी आग्रह होय तो दोषोंका बलाबल विचार जो उसमें घटे सो चिकित्सा करे। जो उपदंश पक गया होय तो समयपर तत्काल शस्त्रसे उसका उल्लेखन (भेदन) करे और इस प्रकार उसको चीरकर घीमें तथा सहतमें पिसे हुए तिलोंका लेप करे। वडके अंकुर, अर्जुनकी छाल, जामुनकी छाल, हरड, लोध और हलदी इनका प्रलेप करनेसे और भरनेके लिये विमला (सोनामाखी) अथवा रसोतका चूर्ण भरनेसे उपदंश नष्ट हो जाता है । हरड, बहेडा और आमले इनके क्वाथसे अथवा भांगरेके रससे व्रणोंको धोनेसे उपदंश शांत हो जाता है । अरणीके पत्ते, ओडहुलके पत्ते, कनेरके पत्ते, आकके पत्ते और अमसलतासके पत्ते इनके क्वाथसे अनुक्रमसे धोवे तो लिंगपाक दूर हो जाता है । अमलतास, नीम, हरड, बहेडा, आमला और चिरायता इनका क्वाथ बनाकर उसमें खैरसार तथा विजयसार अथवा गूगल डालकर अथवा हरड, बहेडा, तथा आमले डालकर पान करनेसे सर्व प्रकारके उपदंश नष्ट हो जाते हैं । नीले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमल, रात्रिमें खिलनेवाले कमल, सफेद कमल, और लाल कमल इनका चूर्ण करके पीसकर गाढा लेप करनेसे उपदंश नष्ट होता है। दुपहरियाके पत्तोंका चूर्ण अथवा अनारकी छालका चूर्ण वृषणके ऊपर अच्छे प्रकारसे लगावे तो अथवा सुपारीका कल्क बनाकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट हो जाता है। फटकिरी, पीला गेरू, नीलाथोथा, हीराकसीस, सेंधानिमक, लोध, रसोत, हरिताल, मैनशिल, रेणुका और इलायची इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके सहतमें मिलाकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट हो जाता है। पुटपाकविधिसे हरिताल और मैनशिल इनकी भस्म करके इनका लेप करनेसे उपदंश और विसर्प नष्ट हो जाता है। हरड, बहेडा और आमले इनकी कढाईमें भस्म करके उस भस्मको सहत और सेंधेनिमकमें मिलाकर उपदंशके ऊपर लेप करनेसे व्रण तत्काल भरकर सूख जाता है। लोध, रसोत, तगर, कचनार और नागकेसर इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट हो जाता है। रसोत और सिरसकी छाल अथवा रसोत और हरड इनका चूर्ण सहतमें मिलाकर लेप करनेसे संपूर्ण अंगोंमें प्राप्त हुआ उपदंश नष्ट हो जाता है। भारंगीकी जड, चिरचिटेकी जड और चन्दन इनको अच्छे प्रकारसे पीसकर लेप करनेसे उपदंश तत्काल नष्ट हो जाता है। मैनशिलको सहतमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश तत्काल नष्ट हो जाता है। उपदंशके घावको सौ बार यत्नपूर्वक धोकर उसके ऊपर हीराकसीसका चूर्ण बुरकानेसे उपदंशकी पीडा दूर होकर उपदंश नष्ट हो जाता है। कनेरकी जडको जलमें पीसकर उसका लेप करनेसें लिंगकी पीडा और असाध्य उपदंशभी नष्ट हो जाता है॥ ५–३४॥

अथ वरादिगुग्गुलुः।

वरानिम्बार्जुनाश्वत्थखदिरासनवासकैः। चूर्णितैर्गुग्गुलुसमैर्वटका अक्षसंमिताः॥ ३५॥
कर्त्तव्या नाशयन्त्याशु सर्वालिंगसमुत्थितान्। उपदंशानसृग्दोषांस्तथा दुष्टव्रणानपि॥ ३६॥

हरड, बहेडा, आमला, नीम, अर्जुन, पीपलवृक्ष, खैर, विजयसार और अडूसा इन सबका बारीक चूर्ण करके और सब चूर्णकी बराबर गूगल मिलाकर एक एक तोलेभरकी गोलियाँ बना लेवे। ये गोली लिंगमें उत्पन्न हुए सर्वप्रकारके उपदंशको, रुधिरके विकारोंको और दुष्ट व्रणोंको भी नष्ट करे हैं॥ ३५॥ ३६॥

अथ करंजाद्यघृतम्।

करञ्जनिम्बासनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम्। सर्पिर्निहन्याद्रुपदंशदोषं सदाहपाकस्रुतिरागयुक्तम्॥ ३७॥

करंज, नीम, विजयसार, साल, जामुन और वटादिवर्गकी समस्त औषधि इन सब औषधियोंके क्वाथमें इनहीके कल्कसे पकाया हुआ घी दाह, पाक, स्राव और लालीयुक्त उपदंशकोभी नष्ट करे है॥ ३७॥

अथ भूनिम्बाद्यघृतम्।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जधात्रीखदिरासनानाम्। सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम्॥ ३८॥

चिरायता, नीम, हरड, बहेडा, आमला, परवल, करंज, आमले, खैर और विजयसार इनके क्वाथ और कल्कसे घृतको पकावे। यह घृत तत्काल, सर्व प्रकारके उपदंशको नष्ट करे है॥ ३८॥

अथातिदेशः।

घृतानि यानि वक्ष्यामि कुष्ठे नाडीव्रणे व्रणे। उपदंशे प्रयोज्यानि सेकाभ्यञ्जनभोजनैः॥ ३९॥

कोढपर, नाडीव्रणपर और व्रणके ऊपर जो जो घी कहेंगे वे सब घृत उपदंश रोगमें भी सेचन, अभ्यंग तथा भोजनमें व्यवहार करने चाहिये, इससे अवश्य उपदंश नष्ट हो जाता है॥ ३९॥

अथागारधूमाद्यतैलम्।

अगारधूमो रजनी सुराकिट्टं च तैस्त्रिभिः। यथोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम्। शोधनं रोपणं चैव ह्युपदंशहरं परम्॥४०॥

घरका धुआँसा १ भाग, हलदी दो भाग और सुराकिट्ट (एक प्रकारकी काँजी) तीन भाग लेवे, इन सबसे तेलको पकावे। यह तेल–खुजली, सूजनकी पीडा और अच्छे प्रकार उपदंशको नष्ट करे है। इस तेलसे व्रण शुद्ध हो जाता है और भरकर सूख जाता है॥ ४०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ गोजिह्वातैलम् ।

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयुतम् ।
एतत्सर्वोपदंशेषु तैलं रोपणमिष्यते ॥ ४१ ॥

गोजिह्वा (गोभी), वायविडंग, मुलैठी और चंदनादिक समस्त सुगंधित पदार्थ इनसे पकाया हुआ तेल सर्व प्रकारके उपदंशोंको भर देता है ॥ ४१ ॥

अथ जम्ब्वाद्यतैलम् ।

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च । नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पद्मोत्पलानि च ॥४२॥ एला चातिविषाम्रास्थि मधुकं च प्रियङ्गवः । लाक्षा कालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताद्वया ॥ ४३ ॥ एतान्येकीकृतान्येव बस्तमूत्रेण पेषयेत् । अक्षमात्रैरिमैर्द्रव्यैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४४ ॥ सर्वव्रणहरं तैलमेतत्सिद्धं विपाचयेत् । उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ४५ ॥

जामुनके पत्ते, वेतके पत्ते, आमलोंके पत्ते, करंजके पत्ते, सफेद कमल, लाल कमल, इलायची, अतीस, आमकी गुठली, मुलैठी, फूलप्रियंगू, लाख, कलम्बक, लोध, सफेद चंदन और निसोत इन प्रत्येक औषधियोंको एक एक तोलाभर लेकर सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर चौंसठ तोलेभर तेलमें पकावे । यह तेल सर्व प्रकारके व्रणोंको तथा उपदंशको नष्ट करे है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ ४२-४५ ॥

अथ कोशातकीतैलम् ।

यस्य लिङ्गस्य मांसं तु शीर्यते शुष्कशेषतः ।
तिक्तकोशातकीलम्बाबीजं नागरसाधितम् ।
तैलं हन्त्यविशेषेण व्रणं दुष्टमनेकधा ॥४६॥

कडवी तोरईके बीज, कडवी तोम्बीके बीज और सोंठ इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल अनेक प्रकारके दुष्ट व्रणोंको अच्छे प्रकारसे नष्ट कर देता है । जो लिंगका मांस गल गया हो केवल अण्डकोषही बाकी रह गया हो तो भी वह उपदंश इस तेलसे शांत हो जाता है ॥ ४६ ॥

अथोपदंशे पथ्यम् ।

सेवेन्नित्यं यवान्नं च पानीयं कौपमेव च ।
अर्शसां च्छिन्नदग्धानां क्रियां चात्र प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥

उपदंशरोगी नित्य जौका भोजन और कुएँका जल सेवन करे । तथा बवासीर और छिन्न तथा दग्धव्रणमें जो चिकित्सा कही है वह सब प्रयोग करनी चाहिये ४७॥

इत्युपदंशनिदानचिकित्साधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ लिंगार्शोऽधिकारः ।

तत्र लिंगार्शोलक्षणम् ।

अंकुरैरिव संजातैरुपर्युपरि संस्थितैः । क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥१॥ कोशस्याभ्यन्तरे सन्धौ पर्वसन्धिगतापि वा । लिंगवर्तीरिति ख्याता लिंगार्श इति चापरे । सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥ २ ॥

धान्यके अंकुरकी समान एक दूसरेके ऊपर बारीक बारीक अनुक्रमसे बढ बढकर लिंगमें, सन्धियोंमें अथवा लिंगकी सुपारीके नीचे, मुरगेकी कलगीकी समान जो उत्पन्न होती है उसको लिंगवर्ति कहते हैं। कितने एक वैद्य इस लिंगवर्तिको लिंगार्शभी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ लिंगार्शश्चिकित्सा ।

क्षारेण प्रदहेच्छित्त्वा लिंगवर्तिमशेषतः । व्रणवच्चाचरेत्सम्यग्लेपचूर्णैरुपद्रवान् ॥ ३ ॥ सर्जिका तुत्थशैलेयमंजनं सरसांजनम् । मनःशिलाले च समं चूर्णं मांसांकुराप्रहम् ॥ ४॥ हरति घृतकुमारीपत्रमावेष्टनेन ग्रथनविधिविशेषांश्चर्मकीलांस्तृतीये । अहनि गुरुतरानप्यंगलब्धप्रतिष्ठान्विधिरिव विपरीतः पौरुषस्य प्रकारान् ॥५॥ शुभे तु चारटीमूलं वृषमूत्रेण पेषयेत् । चर्मकीलान्निहन्त्याशु लेपो लिंगसमुद्भवान् ॥ ६ ॥

इस लिंगके अर्शको अच्छे प्रकारसे शस्त्रसे काटकर क्षारसे दग्ध करे और व्रणकी समान ही लेप चूर्ण आदि उपचार अच्छे प्रकारसे करे । सज्जी, नीलाथोथा, शिलाजीत, रसौत, अंजन (सुरमा), मैन-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिल और हरिताल इन सबको समान भाग लेकर बनाया हुआ चूर्ण लिंगार्शको नष्ट कर देता है। जिस प्रकार विपरीत हुआ देव पुरुषार्थको प्रबलरीतिसे नष्ट कर देता है उसी प्रकार बाँधा हुआ धीकारका पत्ता अत्यंत प्रबल, अंगमें जमा हुआ और एक जातिका गांठकी समान चर्मकील (लिंगार्श) को भी तीन दिनमें नष्ट करे है। शुभ दिनमें कटेरीकी जडको लेकर बैलके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे लिंगार्श तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ ३–६ ॥

इति लिंगार्शोधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ शूकदोषाधिकारः ।

तत्र शूकदोषनिदानम् ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः । व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥ अक्रमादनुचितवृद्धिक्रमात् । अनुचिता च वृद्धिः भूरिविकारजनकस्य योगेन । शूकजाः शूको जलशूकः सविषो जलजन्तुविशेषः स तु जलमलोद्भवः अल्पडुण्डुभ इत्यादिकः । तथा शूकप्रधानो लिंगवृद्धिकरो वात्स्यायनाद्युक्तो योगः शूक उच्यते यथा–भल्लातकास्थिजलशूकमथाब्जपत्रमन्तर्विदाह्य मतिमान्सह सैन्धवेन । एतद्विरूढबृहतीफलतोयपिष्टमालेपितं महिषविड्विमलीकृतेंऽगे ॥२॥ स्थूलं महद्धरतुरंगमलिंगतुल्यं शेफः करोत्यभिमतं न हि संशयोऽत्र ॥ ३ ॥ यत्तु जलशूकरहितमश्वगन्धादितैलं तदुचितमेव लिंगवर्द्धनम् ।

जो मूर्ख मनुष्य अयोग्य उपायसे लिंगको बढानेका यत्न करते हैं उनके शूकदोषसे उत्पन्न हुई अठारह प्रकारकी व्याधि उत्पन्न होती है । जिसमें इस शूकनामक कीडेकी भस्मका मुख्य उपयोग है ऐसा वात्स्यायन आदि आचार्योंके कहे हुए लिंगको बढानेवाले जो उपाय हैं, उनमें शूकके मुख्य होनेसे शूक कहे जाते हैं। वात्स्यायन ऋषिने कहा है कि " भिलावेकी गुठली, शूकनामक जलका कीडा और कमलके पत्ते इनको बर्तनके भीतर जलाकर भस्म कर लेवे उस भस्मको सेंधे निमकमें मिलाकर बडी कटेरीके फलके रसमें मिलाकर पीस लेवे, फिर लिंगको मैंसके गोबरसे धोकर उसके ऊपर इस भस्मका लेप करे तो लिंग मन माना और उत्तम घोडेके लिंगके समान हो जाता है इसमें संशय नहीं" इत्यादि । इससे अत्यंत हानि होती है, परंतु जिसमें कीडेभस्मका उपयोग नहीं होता ऐसा लिंग बढानेवाले ' अश्वगन्धादि तैल ' के जो उपाय कहे हैं वे ठीक हैं ॥ १–३ ॥

अथाश्वगधादितैलम् ।

अश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वितम् । चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् । तत्तैलं मेढ्रवक्षोजकर्णपालिविवर्द्धनम् ॥ ४ ॥

असगंध, सतावर, कूठ, बालछड और कटेरीके डोडे इनका कल्क डालकर तेलसे चौगुने दूधमें पकाया हुआ तिलका तेल अश्वगंधादि तेल कहा जाता है । यह तेल–लिंग, स्तन और कानकी पालीको बढाता है ॥ ४ ॥

अथ शूकदोषस्याष्टादशभेदाः ।

तत्र सर्षपिकालक्षणम् ।

गौरसर्षपसंस्थानां शूकदुर्भगहेतुका । पिडका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥५॥ शूकदुर्भगहेतुका शूकदुष्टयोनिनिमित्ता च ।

शूकसे अथवा दुष्टयोनिमें मैथुन करनेसे उत्पन्न हुई सफेद सरसोंकी समान जो फुंसी उत्पन्न होती है वह सर्षपिका कही जाती है, यह कफ तथा वायु इनसे उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥

अथाऽष्ठीलिकालक्षणम् ।

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाऽष्ठीलिका भवेत् । ॥ ६ ॥ अष्ठीला लौहकारस्य भाण्डविशेषः निहार इति लोके । ततः कठिनेत्यष्ठीलिका विषमैर्भुग्नैरिति वक्ष्यमाणशूकविशेषणम् विषमैर्ह्रस्वदीर्घैः भुग्नैः वक्रैः ।

बडे, छोटे और टेढे कांटोंवाली और कठिन ऐसी जो फुंसी होय उसको अष्ठीलिका कहते हैं। 'अष्ठीलिका' इस नामका एक लुहारका औजार होता है जिसको देशमें निहार अथवा निहाई कहते हैं उसीके समान यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फुंसी कठिन होती है, इस कारण इसको अष्ठीलिका कहते हैं, इस फुंसीका मुख्य निदान वायु है ॥ ६ ॥

अथ ग्रथितलक्षणम् ।

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत्कफात् । ॥ ७ ॥ यालिङ्गं सदा शूकैः पूरितं तद्ग्रथितत्वात् ग्रथितम् ।

लिंग जौकी अनीकी समान कांटोंसे निरंतर व्याप्त रहे उसको ग्रथित कहते हैं । इस ग्रथितका मुख्य निदान कफ है ॥ ७ ॥

अथ कुम्भिकालक्षणम् ।

कुम्भिका रक्तपित्तात्स्याज्जाम्बवास्थिनिभा सिता ॥८॥कुम्भिका कुम्भीफलतुल्यत्वात् ।

जामुनकी गुठलीकी समान जो सफेद फुन्सी उत्पन्न होय उसको कुम्भिका कहते हैं, इस फुन्सीका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है । यह फुन्सी कुम्भीफल (कायफल) की समान होती है इसलिये इसको कुंभिका कहते हैं ॥ ८ ॥

अथाऽलजीलक्षणम् ।

अलजी स्यात्तथा याद्दक्प्रमेहपिडका तथा । सा च रक्तासिता स्फोटैश्चिता च कथिता बुधैः ॥ ९ ॥ एषा रक्तपित्तनिमित्ता ज्ञेया ।

अलजी नामक प्रमेहसम्बन्धी पिडका जो लाल और काली फुन्सी होय तथा अन्य फुंसियोंसे व्याप्त होय ऐसी इस प्रमेहपिडकाकी समान लिंगपर उत्पन्न होय उसको अलजी कहते हैं । इस फुन्सीका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है ॥ ९ ॥

अथ मृदितलक्षणम् ।

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥ १० ॥ शूकदोषे जाते पीडितं सत् यत् संरब्धं सशोथं भवति तल्लिंगं मृदितमुच्यते ।

शूकदोषके उत्पन्न होनेपर लिंगके दबानेसे जो सूजन उत्पन्न होय उसको मृदित कहते हैं ॥ १० ॥

अथ संमूढपिडकालक्षणम् ।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडका भवेत् ॥ ११ ॥ शूकदोषे जाते पाणिभ्यां भृशसंमूढे पिशते लिंगे । अत्रापि वातकोपत इत्यनुवर्तते ॥

शूक होनेपर दोनों हाथोंसे बहुत मर्दन करनेसे लिंगके ऊपर जो पिडका होती हैं उनको संमूढपिडका कहते हैं ॥ ११ ॥

अथावमन्थलक्षणम् ।

दीर्घा बह्व्यश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः । सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ १२ ॥ दीर्घा दीर्घाङ्कुराः ।

लंबी और लंबे अंकुरवाली जो फुन्सियें बीचमें फूटी हुई, वेदनायुक्त और रोमांचसहित होयँ उनको अवमन्थ कहते हैं । ये फुन्सी कफ तथा रुधिरके कोपसे होती हैं ॥ १२ ॥

अथ पुष्करिकालक्षणम् ।

पिडका पिडिकाव्याप्ता पित्तशोणितसंभवा । पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिकेति सा ॥१३॥ पिडकाव्याप्ता पार्श्वतः क्षुद्रपिडकाव्याप्ता अत एव पद्मकर्णिकसंस्थाना ।

जो फुन्सी अन्य फुन्सियोंसे व्याप्त और कमलकर्णिकाकी समान आकारवाली उत्पन्न होय उसको पुष्करिका कहते हैं । यह फुंसी पित्तके तथा रुधिरके कोपसे होती है ॥ १३ ॥

अथ स्पर्शहानिलक्षणम् ।

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ॥ १४ ॥ अत्र स्पर्शासहत्वमेव लक्षणम् ।

जो फुंसी स्पर्शको सह न सके उसको स्पर्शहानि कहते हैं, यह फुंसी शूकदोषसे कुपित हुए रुधिरसे उत्पन्न होती है ॥ १४ ॥

अथोत्तमालक्षणम् ।

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च या । एषोत्तमाख्या पिडिकाशूकाजीर्णसमुद्भवा१५

शूकदोषसे उत्पन्न हुई, अजीर्णसे उत्पन्न हुई, मूंग तथा उडदके समान जो लाल फुन्सी उत्पन्न होती है वह उत्तमा कही जाती है । इस फुन्सीका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है ॥ १५ ॥

अथ शतपोनकलक्षणम् ।

छिद्रैरणुमुखैर्लिंगं चिरं यस्य समन्ततः । वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः ॥ १६ ॥ शतपोनकश्चालनी तत्तुल्यत्वाच्छतपोनकः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिंग वारीक छिद्रोंकरके चारों ओरसे व्याप्त होकर शतपोनक (चलनी) की समान हो जाय उस रोगको शतपोनक कहते हैं । इसका मुख्य निदान वात तथा कफ है ॥ १६ ॥

अथ त्वक्पाकलक्षणम् ।

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत् ॥ १७ ॥

ज्वर तथा दाहको उत्पन्न करनेवाला लिंगके चर्मका जो पाक होता है वह त्वक्पाक कहा जाता है। इसका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है ॥ १७ ॥

अथ शोणितार्बुदलक्षणम् ।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडकाभिर्निपीडितम् । लिंगं वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ १८ ॥ वास्तुरुजः स्फोटपिडकाधिष्ठानवेदनाः ।

काली फुंसियोंसे और लाल फुंसियोंसे लिंग पीडित होय और उन फुंसियोंमें तथा फुंसियोंके स्थानमें उग्र पीडा होय उसको शोणितार्बुद कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ मांसार्बुदलक्षणम् ।

मांसदुष्टं विजानीयादर्बुदं मांससम्भवम् १९

मांसकी दुष्टतासे लिंगपर मांसका अर्बुद (रसौली) उत्पन्न होय उसको मांसार्बुद कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ मांसपाकलक्षणम् ।

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः। विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ २० ॥ शीर्यन्ते गलन्ति । सर्वाश्च वेदनाः वातपित्तकफजाः ।

लिंगका मांस गलकर गिर जाता हो और सर्व प्रकारकी (वातपित्तकफजनित) वेदना होती हो उसको वैद्य मांसपाक हुआ जाने। यह मांसपाक त्रिदोषके कोपसे होता है ॥ २० ॥

अथ विद्रधिलक्षणम् ।

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥ उक्तं सान्निपातिकविद्रधितुल्यं कथयेत् ।

प्रमेहसम्बन्धी विद्रधियोंमें जो त्रिदोषजन्य विद्रधि कही है उसीके लक्षणोंवाली फुंसी जो लिंगमें उत्पन्न होय उसको वैद्य विद्रधि जाने । यह विद्रधिभी त्रिदोषके प्रकोपसे होती है ॥ २१ ॥

अथ तिलकालकलक्षणम् ।

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि तु । पातितानि पचत्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ २२ ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः । सन्निपातसमुत्थांश्च तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ २३ ॥ चित्राणि शुक्लपीतनीलादिनानावर्णानि । सविषाणीति शूकानां सविषत्वेऽपि विशेषार्थमुक्तम् । शीर्यन्ते गलन्ति । कालानीति कृष्णानि, कृष्णतिलतुल्यत्वात्तिलकालकसंज्ञा ।

काले रंगके अथवा अनेक प्रकारके चित्र विचित्रित सफेद पीले नीले आदि रंगके शूकनामक विषैले कीडेकी भस्मसे उत्पन्न होनेके कारण विषैला मांस लिंगमेंसे गिर जाय, सर्व प्रकारसे लिंगको पका देवे और काला काला होकर गल जाय. उसको तिलकालक कहते हैं । इस रोगमें मांस काले तिलकी समान हो जाता है, इस कारण इसको 'तिलकालक' कहते हैं । यह रोग त्रिदोषके प्रकोपसे होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ शूकदोषासाध्यलक्षणम् ।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः । विद्रधिश्च न सिध्यंति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ २४ ॥

अठारह प्रकारके उपरोक्त शूकदोषोंमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ॥ २४ ॥

अथ शूकदोषचिकित्सा ।

शूकदोषेषु सर्वेषु विषघ्नीं कारयेत्क्रियाम् । जलौकाभिर्हरेद्रक्तं रेचनं लघु भोजयेत् ॥ २५ ॥ गुग्गुलुं पाययेच्चापि त्रिफलाक्वाथसंयुतम् । क्षीरेण लेपसेकांश्च शीतेनैव हि कारयेत् ॥ २६ ॥

वैद्य सर्व प्रकारके शूकदोषोंमें विषनाशक क्रिया करे, जोंक लगाकर विष निकलवावे, विरेचन देवे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हलका भोजन करे, त्रिफलेके क्काथके साथ गूगल पिये, शीतल दूधका लेप और शीतल दूधसे सेचन करावे ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ दार्वीतैलम् ।

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वैर्गृहधूमनिशायुतैः । सम्पक्वं तैलमभ्यङ्गान्मेढ्ररोगं हि नाशयेत् ॥ २७ ॥

दारुहलदी, तुलसी, मुलैठी, घरका धुंआँसा और हलदी इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल 'दार्वीतैल' कहा जाता है। इस तेलका लेप करनेसे लिंगके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २७ ॥

अथ रसांजनलेपः ।

रसाञ्जनं साह्वयमेकमेव प्रलेपमात्रेण नयेत्प्रशान्तिम् । सपूतिपूयव्रणशोथकण्डूशूलान्वितं सर्वमनंगरोगम् ॥ २८ ॥ साह्वयमिति अनंगरोगस्य विशेषणम् । अनंगरोगस्य नाम अपि दूरीकरोति इत्यर्थः ।

इकले रसौतकाही लेप करनेसे सर्व प्रकारके लिंगसंबंधी रोग नष्ट हो जाते हैं कि फिर उनका कदापि नामतक भी नहीं रहता तथा दुर्गंधित राधका निकलना, व्रण, सूजन, खुजली और शूल ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥

इति शूकदोषाधिकारः संपूर्णः ।

अथ कुष्ठरोगाधिकारः ।

तत्र कुष्ठस्य निदानं संख्या च ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च । भजतामागतांश्छर्दिवेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममग्नितापं चाप्यतिभुक्त्वा निषेविणाम् । शीतोष्णलंघनाहारान्क्रमं भुक्त्वा निषेविणाम् ॥ २ ॥ घर्माश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम् । अजीर्णाध्यशिनां चापि पञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नदधिमत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने दिवानिद्रां निषेविणाम् । विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम् ॥ ५ ॥ वातादयस्त्रयो दोषास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च । दूषयन्ति सकुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः । अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव च ॥ ६ ॥ विरोधीनि अन्नपानानि क्षीरमत्स्यादीनि दधिदुग्धादीनि । व्यायाममिति अतिभुक्त्वा व्यायामम्, अग्निसन्तापम् अग्निरुपलक्षणं सूर्यादिसन्तापं च । निषेविणामिति कृदन्तस्य योगे षष्ठी प्राप्ता । द्वितीया तु मुनिवचनात् । एवमग्रेऽपि । शीतोष्णलंघनाहारानित्यादिषु अपि द्वितीया । अत्र क्रमं विधिम् । घर्मेत्यादि घर्मार्तत्वे सति द्रुतमविश्रम्य पाने स्नाने शीताम्बुसेविनाम् । अजीर्णाध्यशिनां भुक्तेऽजीर्णे भुक्तानाम् । पञ्चकर्मापचारिणां पञ्चकर्माणि वमनविरेचनस्यनिरूहानुवासनानि तेषु कृतेषु अपचारिणाम् । नवान्नदधिमत्स्याद्याहारादि सेविनाम् । व्यवायमित्यादि । अन्ने अजीर्णे विदग्धादिरूपे सति व्यवायं मैथुनं निषेविणाम् । दिवानिद्रां निषेविणामिति भिन्नो हेतुः । धर्षयताम् अभिभवताम् । दोषदूष्यसंग्रहार्थमाह—वातादय इत्यादिशब्देन । त्रिष्वपि प्रतीतेषु त्रय इति पदं सर्वेषु कुष्ठेषु त्रयाणामपि वातादीनां दुष्टत्वबोधनार्थम् । त्वग्रसः अम्बूलसीका । अथ संख्यामाह—अतः कुष्ठानीत्यादि । अतः पूर्वोक्तदोषदूष्यसमुदायात् । सप्तधैकादशधेति संख्याविच्छेदपाठेन सप्तानां महाकुष्ठत्वमेकादशानां क्षुद्रकुष्ठत्वं बोधयति ।

दूध तथा मछली आदि परस्परविरुद्ध पदार्थोंको भक्षण करनेसे, दही तथा दूध आदि परस्पर विरुद्ध खानपानोंके सेवन करनेसे, पतले, चिकने तथा भारी पदार्थोंके सेवन करनेसे, आती हुई वमनके वेगको रोकनेसे, अन्यान्य मलमूत्रादिके वेगोंके रोकनेसे, बहुत भोजन करके कसरत करनेसे, बहुत भोजन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके सूर्यका तथा अग्निका सन्ताप सेवन करनेसे, शीत, उष्ण, लंघन और आहार इनको कुविधिसे सेवन करनेसे, पसीना, श्रम तथा भयसे पीडित होनेपर तत्काल शीतल जलमें स्नान करनेसे अथवा शीतलजल पीनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजनपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, नस्य, निरूह और अनुवासनवस्ति इनके बिगड जानेसे, नवीन अन्नके भक्षण करनेसे, दहीके सेवनसे, मछली आदिके खानेसे, खारी पदार्थोंके सेवन करनेसे, खट्टे पदार्थोंके सेवन करनेसे, उडदको सेवन करनेसे, मूलीको सेवन करनेसे, पक्वान्न अथवा मिष्टान्नके सेवन करनेसे, तिलके सेवन करनेसे, दूध तथा गुडको विशेष खानेसे, विदग्ध आदिके अजीर्ण होनेपर मैथुन करनेसे, दिनमें सोनेसे, ब्राह्मणोंका और गुरुजनोंका अपमान करनेसे और पापकर्म करनेसे कोढ उत्पन्न होते हैं। वात पित्त और कफ यह तीनों दोष रस, रुधिर, मांस, तथा जलको दूषित करके कोढको उत्पन्न करते हैं। वात, पित्त, कफ, रस, रुधिर, मांस तथा लसीका इन सातोंके बिगडनेसे कोढ उत्पन्न होता है। वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष और रस, रुधिर, मांस तथा लसीका यह चार दूष्य कोढके कारण हैं। सर्व प्रकारके कोढोंमें वातादि तीनो दोष दुष्ट होते हैं ऐसा जानना। ऊपर कहे हुए सातों पदार्थोंके समुदायसे सात प्रकारका और ग्यारह प्रकारका कोढ उत्पन्न होता है। 'अठारह' ऐसा नहीं कहा क्योंकि सात और ग्यारह अलग अलग संख्या कही वह ऊपरसे जाननी। सात बडे कोढ और ग्यारह क्षुद्र कोढ हैं॥ १-६॥

अथ सप्तमहाकुष्ठनामानि।

पूर्वत्रिकं तथा सिध्मं ततः काकणकं तथा। पुण्डरीकर्क्षजिह्वाके महाकुष्ठानि सप्त च॥ ७॥ पूर्वत्रिकं कपालौदुम्बरमण्डलाख्यम्। सिध्मशब्दोऽकारान्तो नपुंसकः। ननु कथं सिध्मस्य महाकुष्ठेषु गणना? सुश्रुतेन क्षुद्रकुष्ठेषु उक्तत्वात्। "धातुप्रविष्टं सिध्मं तु स्यान्महाकुष्ठमेव च।" एवंविधस्य सिध्मस्य चरकेण महाकुष्ठेषु दर्शितत्वात्। एषां महाकुष्ठत्वं च शीघ्रमुत्तरोत्तरधात्ववगाहनात् उल्वणदोषजन्यत्वाच्चिकित्सावाहुल्याच्च।

१ कपोल, २ औदुम्बर, ३ मंडल, ४ सिध्म, ५ काकणक, ६ पुंडरीक और ७ ऋक्षजिह्वक ये सात बडे कोढ हैं। शंका-सुश्रुतमें सिध्मको क्षुद्र कोढोंमें गिना है फिर आपने यहां सिध्मको बडे कोढोंमें कैसे लिखा है? समाधान-जो सिध्म धातुओंमें प्राप्त हो गया हो वह महाकुष्ठ कहा जाता है। क्योंकि चरकऋषि ऐसे सिध्मको बडे कोढोंमें गिनता है। ऊपर जो सात कोढ बडे कहे हैं उनका कारण यह है कि, उत्तरोत्तर धातुओंमें शीघ्र प्रवेश करते हैं, उल्वण दोषसे उत्पन्न होते हैं और उनकी चिकित्सामी अनेक है॥ ७॥

अथैकादशक्षुद्रकुष्ठनामानि।

एककुष्ठं स्मृतं पूर्वं गजचर्म ततः स्मृतम्। ततश्चर्मदलं प्रोक्तं ततश्चापि विचर्चिका॥ ८॥ विपादिकाभिधा सैव पामा कच्छूस्ततः परम्। दद्रूविस्फोटकिटिभालसकानि च वेष्टितम्। क्षुद्रकुष्ठानि चैतानि कथितानि भिषग्वरैः॥ ९॥ ननु दद्रूरोगस्य कथं क्षुद्रकुष्ठेषु गणना? सुश्रुतेन महाकुष्ठेषु उक्तत्वात्। उच्यते-असिता अवगाढमूला दद्रूः सुश्रुतेन महाकुष्ठेषु उक्ता। असितेतरा अनवगाढमूला दद्रूः क्षुद्रकुष्ठमेव। एवंविधा दद्रूश्चरकेण क्षुद्रकुष्ठेषु दर्शितत्वात्।

एककुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिका, विपादिका, पामा, कच्छू, दद्रू, विस्फोट, किटिभ, अलसक और शतारु इनको उत्तम वैद्य क्षुद्रकुष्ठ कहते हैं। विचर्चिका नामक कुष्ठ जो पांवमें होय तो वह विपादिका कहा जाता है, इस कारण क्षुद्र कोढोंकी संख्या यह ग्यारहही रहती है। शंका-सुश्रुत दद्रूको बडे कोढोंमें मानता है फिर आपने इसको क्षुद्रकोढोंमें कैसे गिना है? समाधान-काले दृढ जडवाले दद्रूको सुश्रुतने बडे कोढोंमें गिना है, जो दद्रू कालेके सिवाय दूसरा होय और दृढ जडवाला न होय तो वह क्षुद्र कोढही जानना। चरकभी इस प्रकारके दद्रूको क्षुद्रकुष्ठोंमें मानता है॥ ८॥ ९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कुष्ठानां त्रिदोषजत्वेनैकस्याऽपि दोषस्य उल्वणतया सप्तधात्वमाह ।

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः । सर्वैष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ॥ १० ॥ सर्वेषु अपि त्रिदोषेषु व्यपदेशः कापालादिसंज्ञास्तेषामष्टादशरूपं यदाधिकत्वं ततः कुष्ठानि सप्तधा । कैः दोषैः कथम्भूतैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः संगतैः सन्निमिलितैरिति यावत् । अस्य अयमर्थः । किमपि कुष्ठं वातोल्वणं किमपि पित्तोल्वणं किमपि कफोल्वणं किमपि वातश्लेष्मोल्वणं किमपि पित्तश्लेष्मोल्वणम् किमपि वातपित्तोल्वणं किमपि त्रिदोषोल्वणमिति ।

यद्यपि तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए कपाल आदि नाम तथापि वे नाम अठारह होनेके कारण उन उन दोषोंकी उल्वणताके अनुसार कोढ सात प्रकारके माने है, जैसे कि कोई कोढ वायुकी उल्वणतावाला होता हैं, कोई कोढ पित्तकी उल्वणतावाला होता है, कोई कोढ कफकी उल्वणतावाला होता है, कोई कोढ वात तथा कफकी उल्वणतावाला होता है, कोई कोढ पित्त तथा कफकी उल्वणतावाला होता है, कोई कोढ वायुकी तथा पित्तकी उल्वणतावाला होता है और कोई कोढ तीनों दोषोंकी उल्वणतावाला होता है॥ १०॥

अथ कुष्ठपूर्वरूपम् ।

अतिश्लक्ष्णः स्वरस्पर्शः स्वेदास्वेदविवर्णता । दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः क्लमः ॥ ११ ॥ व्रणानामधिकं शूलं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः । रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् । रोमहर्षोऽसृजः काष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १२ ॥ अतिश्लक्ष्णः अतिमृदुः । अथवा घर्मादिप्रसंगेऽपि स्वेदाभावः । त्वचि स्वापस्पर्शाज्ञता । शीघ्रोत्पत्तिः व्रणानाम् । दूषयन्ति श्लथीकृत्य निश्चलत्वादितस्ततः । त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दोषाः कुष्ठमुशन्ति तत्॥ १३॥

जिस स्थानमें कोढ होनेका हो- उस जगह छूनेसे कोमल या चिकना, अत्यंत खरखरा मालूम होय, पसीना आवे, अथवा धूप आदि पसीनेके कारण होनेपरभी पसीना नहीं आवे, दाह, खुजली, चमडेका स्पर्श नहीं मालूम हो, भौंकनेसरीखी पीडा, विषैले मक्खीके काटने सरीखे चकत्ते हों, ग्लानि, शूलकी अधिकता, व्रणोंका तत्काल उत्पन्न होना, व्रणोंका बहुत दिनोंतक रहना, व्रणोंके भरनेपर अत्यंत रूखापन हो, अल्प कारणोंसे व्रणोंका कोप हो, रोमांचोंका हो आना और रुधिर काला हो जाय, ये कोढके पूर्व लक्षण जानने । दोषोंके स्थिर होनेसे चमडेको शिथिल करके चारों ओरसे त्वचाके रंगको बदल देता है उसको कोढ कहते हैं ॥ ११–१३ ॥

अथ दोषोल्वणतया कुष्ठोत्पत्तिनामानि ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात् । मण्डलाख्यं विचर्चीं च ऋक्षाख्यं वातपित्ततः ॥ १४ ॥ चर्मैककुष्ठकिटिभसिध्मालसविपादिकाः । वातश्लेष्मोद्भवाः पित्तकफाद्दद्रूशतारुषी ॥ १५ ॥ पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा । सर्वैरेवोल्वणैर्दोषैराहुः काकणकं बुधाः ॥१६॥ विचर्ची च कफादित्यन्वयः । पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा पित्तकफादित्यन्वयः ।

वातकी उल्वणतासे कपाल कोढ उत्पन्न होता है, पित्तकी उल्वणतासे औदुम्बर मंडल और विचर्चिका कोढ उत्पन्न होता है, वायु तथा कफकी उल्वणतासे ऋक्षजिह्व कोढ उत्पन्न होता है, वात तथा कफकी उल्वणतासे गजचर्म, एककुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलसक और विपादिका कोढ उत्पन्न होता है, पित्तकी तथा कफकी उल्वणतासे दद्रू, शतारु, पुंडरीक, विस्फोट, पामा तथा चर्मदल कोढ उत्पन्न होता है और तीनों दोषोंकी उल्वणतासे काकणक कोढ उत्पन्न होता है ॥ १४–१६ ॥

अथ महाकुष्ठेषु प्रथमं कापालकुष्ठलक्षणम् ।

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु । कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥१७॥ किञ्चित् कृष्णाः किञ्चित् अरुणाः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये कपालाः स्फुटितमृत्पात्रखण्डा खपरा इति यावत् तद्वर्णं परुषं खरस्पर्शम्। तनु तनुत्वक्कापालं कपालसंज्ञं, विषमं दुश्चिकित्स्यम्।

कुछेक काला तथा कुछेक लाल, मट्टीके खीपडेकी समान, रूखा, स्पर्शमें खरदरा, पतली त्वचावाला और अत्यंत व्यथायुक्त जो कोढ उत्पन्न होता है उसको कपालकुष्ठ कहते हैं। यह कोढ विषम है। इसकी चिकित्सा कठिन है ॥ १७ ॥

अथौदुम्बरकुष्ठलक्षणम्।

उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत्। रुद्राहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् ॥ १८ ॥ औदुम्बरफलाकारम् ॥

जो कोढ गूलरके फलकी समान, पीले रोमयुक्त और व्यथासे, दाहसे, लालीसे और खुजलीसे व्याप्त होय उसको औदुम्बर कोढ कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ मंडलकुष्ठलक्षणम्।

श्वेतरक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम्। कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥ १९ ॥ श्वेतरक्तं किञ्चिच्छ्वेतं किञ्चिद्रक्तम्। स्थिरं चिकित्सां विना अविनाशि। स्त्यानमार्द्रम्। स्निग्धं सस्वेदम्। उत्सन्नमण्डलम् उद्गतमण्डलम्। कृच्छ्रं कष्टसाध्यम्। अन्योन्यसंसक्तं परस्परमिलितम्।

जो कोढ कुछेक सफेद तथा कुछेक लाल हो, चिकित्साके विना नष्ट न हो, गीला हो, पसीने युक्त हो, मंडलकी समान आकारवाला हो और परस्पर मिला हो, उसको मंडल कोढ कहते हैं। यह कोढ कष्टसाध्य है ॥ १९ ॥

अथ सिध्मकुष्ठलक्षणम्।

श्वेतताम्रं च तनु यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति। प्रायेणोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥२०॥ श्वेतताम्रं श्वेतं ताम्रम्। तनु त्वक् प्रायेणोरसि प्रायःशब्दादन्यत्रापि बोद्धव्यम्।

जो कोढ सफेदी लिये लाल रंगका हो, पतली त्वचावाला हो, घिसनेसे या रगडनेसे उसमेंसे धूलकी समान छोटे छोटे परमाणु गिरें और तोम्बीके फूलकी समान होय उसको सिध्म कहते हैं। यह कोढ विशेष करके छातीमें होता है और किसी समय अन्य अंगोंमें भी होता है ॥ २० ॥

अथ काकणकुष्ठलक्षणम्।

यत्काकणन्तिकावर्णमपाकं तीव्रवेदनम्। त्रिदोषलिंगं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति ॥ २१ ॥ काकणन्ती गुञ्जा गुञ्जावर्णत्वेन मध्ये कृष्णमन्ते रक्तम्। अथवा मध्ये रक्तं अन्ते कृष्णम् अपाकः स्वभावात्। त्रिदोषलिंगम् सर्वेषां कुष्ठानां त्रिदोषजत्वेऽपि उल्वणदोषत्रयलिंगम्।

जो कोढ चौंटलीकी समान वर्णवाला अर्थात् बीचमें काला और अंतमें लाल हो, स्वाभाविक रीतिसे नहीं पकनेवाला, तीव्र वेदनायुक्त और त्रिदोषोंकी उल्वणताके लक्षणोंवाला हो उसको काकण कहते हैं ॥ २१ ॥

अथ पुण्डरीककुष्ठलक्षणम्।

तच्छ्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम्। सरागं चैव सोत्सेधं पुण्डरीकं कफोल्वणम् ॥ २२ ॥ पुण्डरीकदलोपमं पुण्डरीकं श्वेतकमलं तत्पत्रोपमम्। सरागं चैव। अत एव श्वेतं रक्तपर्यन्तम् अन्ते रक्तम्। सरागमिति अन्तर्लौहित्याधिक्यबोधनार्थम्। सोत्सेधम् उद्गतम्।

जो कोढ सफेद कमलके पत्रकी समान सफेद, अंतमें अत्यन्त लाल, ऊंचा और कफकी उल्वणतावाला हो उसको पुंडरीक कहते हैं ॥ २२ ॥

अथर्क्षजिह्वककुष्ठलक्षणम्।

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम्। यदृक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥२३॥ रक्तपर्यन्तम् अन्ते रक्तम्। अन्तः श्यावं मध्ये धूम्रवर्णम्। ऋक्षजिह्वासंस्थानम्। ऋक्षो भल्लूकस्तस्य जिह्वाकृतिः।

जो कोढ कठिन, अंतमें लाल, मध्यमें धुएँकी रंगकी समान, वेदनायुक्त और रीछकी जीभकी समान वर्णवाला हो उसको ऋक्षजिह्वक कहते हैं॥ २३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथैककुष्ठगजचर्मनामकयोः क्षुद्रकुष्ठयोर्लक्षणम् ।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् । तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं गजचर्मवत् ॥२४॥

महावास्तु महास्थानम् । मत्स्यशकलोपमम् । अत्र शकलशब्देन लक्षणया त्वगुच्यते । तेन चक्राकारमभ्रकपत्रसदृशं भवति । एककुष्ठमिति क्षुद्रकुष्ठेषु गणितत्वात् चर्माख्यं गजचर्माख्यम् बहलं स्थूलम् । गजचर्मवद्रूक्षं कृष्णं च ।

जो कोढ पसीनारहित, बडे घेरदार और मछलीकी त्वचाकी समान हो, चक्राकार हो और अभ्रकके पत्तोंकी समान हो उसको एककुष्ठ कहते हैं । यह कोढ क्षुद्र कोढोंमें मुख्य होनेसे एक कुष्ठ कहा जाता है । जो कोढ गाढा और हाथीकी त्वचाकी समान रूखा तथा काला हो उसको गजचर्म कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ चर्मदलनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

रक्तं सशूलं कण्डूमत्सस्फोटं दलयत्यपि । तच्चर्मदलमाख्यातं स्पर्शस्यासहनं च यत् ॥२५॥

दलयत्यपि विदारयत्यपि चर्मेति शेषः ।

जो कोढ लाल, शूलयुक्त तथा फोडोंसे व्याप्त, स्पर्शको नहीं सह सके और चमडीको फाडनेवाला होय उसको चर्मदल कहते हैं ॥ २५ ॥

अथ विचर्चिकानामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

सकण्डूः पिडका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥ २६ ॥ पिडका क्षुद्रपिडका । ननु क्षुद्रकुष्ठानां कथमेकादशत्वं विपादिकाया द्वादशत्वसम्भवात् । उच्यते-विचर्चिकैव पादयोर्भवति विपादिका तेन न संख्यातिरेकः । अत एवाह भोजः-दोषाः प्रदूष्य त्वङ्मासं पाणिपादसमाश्रिताः । पिडकां जनयन्त्याशु दाहकण्डूसमन्विताम् । दाल्यते त्वक् खरा रूक्षा पाण्योर्ज्ञेया विचर्चिका । पादे विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वाद्विचर्चिका ॥ २७ ॥ दाल्यते विदार्यते । केचिद्विचर्चिकातो विपादिकां भिन्नामाहुः ।

खुजलीयुक्त, कलौंस लिये और बहुत स्राववाली जो छोटी छोटी फुंसी होंय उसको विचर्चिका कहते हैं । गिनती करनेसे क्षुद्रकोढ बारहवां होता है फिर आपने यहां क्षुद्रकोढ ग्यारहवां क्यों गिना है । पांवमें उत्पन्न हुई विचर्चिका ही विपादिका कही जाती है इस कारण संख्या नहीं बढती । यहांपर भोज कहता है "रूखे होनेपर हाथोंकी खाल फट जाती है, उसको विचर्चिका कहते हैं और पाँवकी जो त्वचा फट जाती है वह विपादिका कही जाती है ।" विचर्चिका और विपादिका इनके स्थानोंमें भेद हैं किंतु स्वरूपमें कुछ भेद नहीं है । कितनेक आचार्य तो विपादिकाको विचर्चिकासे भिन्न कहते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ विपादिकानामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् । ॥ २८ ॥ पाणिपादस्फुटनं पाण्योः पादयोश्च स्फुटनं विदारणं येन तत् ।

हाथ तथा पांव फट जायँ तथा तीव्र वेदना होय उसको विपादिका कहते हैं ॥ २८ ॥

अथ पामालक्षणम् ।

सूक्ष्मा बह्व्यः पिडकाः स्रावयन्त्यः पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः ॥ २९ ॥ पिडकाः पीडयन्तीति पिडका इति क्षिपकादित्वान्निपात्यते ।

स्रावयुक्त, भयंकर दाहयुक्त, छोटी छोटी और खुजलीयुक्त बाहरकी फुंसी होय उसको पामा कहते हैं । फुंसी पीडा जो करती है इस कारण इनको पिडका कहते हैं ॥ २९ ॥

अथ कच्छुनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च ॥ ३० ॥ सैव पामा । स्फोटैः महद्भिः स्फिजोः प्रोथयोः ।

जो पामा ही तीव्रदाहयुक्त फोडोंसे व्याप्त होय, हाथोंमें तथा कूलोंमें उत्पन्न होय और उग्र होय उसको कच्छू कहते हैं ॥ ३० ॥

अथ दद्रुनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

सकण्डूरागपिडकं दद्रूमण्डलमुद्गतम् ॥३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दद्रूर्मण्डलरूपेण उत्पतितः [illegible] च्छू-नम्।

खुजलीसहित, लाल फुंसियोंयुक्त और उत्पन्न होतेही ऊंचा हो जाय, मंडलकी समान गोल होय उसको दद्रु कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ विस्फोटनामकक्षुद्रलक्षणम्।

स्फोटा श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥ ३२ ॥

कलौंस लिये लाल और पतली त्वचावाले जो फोडे उत्पन्न होते हैं उनको विस्फोटक कहते हैं ॥ ३२ ॥

अथ किटिभकुष्ठलक्षणम्।

श्यामं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम्। ॥ ३३ ॥ किणखरस्पर्शं किणः शुष्कव्रणस्थानं तद्वत्कर्कशस्पर्शम्। परुषं रूक्षम्।

किटिभकोढ काला, सूखा हुआ, व्रणकी स्थानकी समान, छूनेमें खरदरा और रूखा होता है ॥ ३३ ॥

अथालसकनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम्।

कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं चितम्। ॥ ३४ ॥ गण्डैः महापिडकाभिः चितं वेष्टितम्।

खुजलीयुक्त तथा लाल गंडोंसे (बडी फुंसियोंसे) व्याप्त जो होय वह अलसक कहा जाता है ॥ ३४ ॥

अथ शतारुकुष्ठलक्षणम्।

रक्तश्यावं सदाहार्तिं शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ ३५ ॥

लाली लिये कालापन हो, दाहकी पीडायुक्त और बहुत व्रणोंयुक्त जो होय उसको शतारु कहते हैं ॥ ३५ ॥

अथ सप्तधातुगतकुष्ठलक्षणम्।

तत्र रसगतकुष्ठलक्षणम्।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते। त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ॥ ३६ ॥ त्वक्छब्देन अत्र रस उच्यते। धातुप्रस्तावात् त्वक्स्थत्वाच्च त्वक्स्वापः स्पर्शाज्ञत्वम्। त्वक्स्वाप इत्यादिकं केचिद्रक्तगतस्य लिंगं मन्यन्ते।

जो कोढ रसमें प्राप्त होय तो अंगोंमें विवर्णता और रूक्षता होती है, त्वचाका स्पर्शज्ञान नहीं रहता, रोमांच हो आते हैं और पसीना बहुत आने लगता है। कितने एक वैद्य तो ऐसा मानते हैं कि त्वचाके स्पर्शका ज्ञान नहीं रहना, रोमांचोंका खडा होना और पसीनेका बहुत आना ये रुधिरमें प्राप्त हुए कुष्ठके लक्षण हैं ॥ ३६ ॥

अथ रुधिरगतकुष्ठलक्षणम्।

कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसम्भवे॥ ३७॥ विपूयकः विशेषेण पूयः।

जो कोढ रुधिरमें प्राप्त होय तो खुजली और राध अधिक होती है ॥ ३७ ॥

अथ मांसगतकुष्ठलक्षणम्।

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः। तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ ३८ ॥ बाहुल्यं कुष्ठस्य पुष्टिः। पिडकोद्गमः क्षुद्रपिडकोद्गमः। स्फोटः बृहत्पिडका। स्थिरत्वमसञ्चारित्वम्।

जो कोढ मांसमें प्राप्त होय तो मांस पुष्ट दीखता है, मुखमें शोष, शरीरमें कर्कशता, फुडियोंका निकलना, सुई चुभोनेसरीखी पीडा, बडे २ फोडोंका होना और स्थिरता ये लक्षण होते हैं ॥ ३८ ॥

अथ मेदोगतकुष्ठलक्षणम्।

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां सम्भेदः क्षतसर्पणम्। मेदःस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ३९ ॥ कौण्यं हस्तनाशः। अंगानां सम्भेदः अंगभंगः। क्षतसर्पणं क्षतप्रसरणम्। पूर्वोक्तानि रक्तमांसगतलिंगानि।

जो कोढ भेदमें प्राप्त होता है तो वह मनुष्य लूला हो जाता है, चलनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है, अंग भंग हो जाते हैं, घाव फैल जाते हैं और रुधिरमें तथा मांसमें प्राप्त हुए कोढोंके जो लक्षण ऊपर कहे हैं वे सब होते हैं ॥ ३९ ॥

अथास्थिमज्जगतकुष्ठलक्षणम्।

नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु क्रिमिसम्भवः। स्वरोपघातः पीडा च भवेत्कुष्ठेऽस्थिमज्जगे४०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो कोढ, अस्थियोंमें और मज्जामें प्राप्त होता है तो नाक बैठ जाती है, आंखें लाल हो जाती हैं, घावमें कीडे पड जाते हैं, गला बैठ जाता है और पीडा होती है ॥ ४० ॥

अथ शुक्रगतकुष्ठलक्षणम् ।

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः । यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ४१ ॥ ननु शुद्धशोणितशुक्रयोरेव दम्पत्योर्गर्भसम्भवः । दुष्टशोणितशुक्रयोः कथम् अपत्योत्पत्तिः यत आह सुश्रुतः—कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः । गर्भः सञ्जायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥ ४२ ॥ अथ अन्यच्च । वातादिदुष्टरेतसोऽपत्योत्पादनेऽसमर्था इति । उच्यते गर्भोऽत्र शुद्धो बोद्धव्यः । अशुद्धगर्भोऽपि दुष्टशोणितशुक्रयोरपि भवति । अन्धबधिरादीनां सम्भवात् । शोणितम् आर्तवम् । कुष्ठितं कुष्ठं सञ्जातमस्येति तारकादित्वादितच् । शुक्रार्तवगतं कुष्ठमपत्येन व्यज्यते इति तात्पर्यम् ।

कुष्ठकी बाहुल्यतासे जिनका रज और वीर्य दूषित हुआ होय ऐसे स्त्रीपुरुषोंके समागमसे जो सन्तान होता है वह कोढी होती है । शंका—जिनका रज और वीर्य शुद्ध होता है ऐसी स्त्रीपुरुषोंसे गर्भका रहना सम्भव है, जिनका रज और वीर्य दूषित होता है उनके सन्तान नहीं होती । सुश्रुतनेभी कहा है कि "कामदेवके वेगसे स्त्री पुरुषोंके संयोग होनेपर स्त्रीके शुद्धरजसे और पुरुषके शुद्ध वीर्यसे गर्भ उत्पन्न होता है और वह गर्भ जन्मके पश्चात् बालक कहा जाता है।" समाधान—सुश्रुतके वचनमें तथा अन्यान्य वचनोंमें जो गर्भ कहा है वह शुद्ध गर्भ जानना । अशुद्ध रज और अशुद्ध वीर्यसे अशुद्ध गर्भ रहता है किन्तु गर्भ सम्भव न होना ऐसा नहीं होता । क्योंकि बहरे, अन्धे, नकटे आदि गर्भकी उत्पत्ति देखी जाती है । तात्पर्य यह है कि "वीर्यमें तथा रजमें प्राप्त हुआ कुष्ठ सन्तानको कुष्ठी करता है" ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ कुष्ठे वातादिदोषोल्वणताचिह्नम् ।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम् । पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं मतम् ॥ ४३ ॥ कफात्क्लेदं घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् । द्विलिंगं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ ४४ ॥ खरं कर्कशम् । श्यावारुणं श्यावं वा अरुणं वा । प्रकुपितं पूतिक्लेदबहुलम् । क्लेदम् आर्द्रतायुक्तम् । घनं पुष्टम् ।

वातकी उल्वणतावाला कोढ, खरखरा, श्याम अथवा लाल, रूखा और वेदनायुक्त होता है । पित्तकी उल्वणतावाला कोढ दुर्गन्धित, अत्यन्त गीला और दाह, लाली तथा स्रावसे संयुक्त होता है । कफकी उल्वणतावाला कोढ गीलापनयुक्त, पुष्ट, स्निग्ध, खुजलीसहित, शीतलता लिये और भारीपन लिये होता है । जो उपरोक्त लक्षणोंमेंसे दो प्रकारके लक्षणोंसे युक्त हो उसको दो दोषोंकी उल्वणतावाला जानना । जो तीन प्रकारके लक्षणोंसे युक्त होय उस कुष्ठको तीनों दोषोंकी उल्वणतावाला जानना ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ कुष्ठसाध्यासाध्यता ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् । मेदोगं द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् । कृमितृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्रिदोषजम् ॥ ४५ ॥ वातश्लेष्माधिकं च यदेतेन सिध्मैककुष्ठगजचर्मविपादिकाकिटिभालसकानि साध्यानि । मज्जागतं शुक्रगतमपि असाध्यम् । कृमिर्बाह्योऽपि वर्ज्य इत्यन्वयः ।

रसमें, रुधिरमें और मांसमें प्राप्त हुआ और वायु तथा कफकी उल्वणतावाला कोढ साध्य है । मेदमें प्राप्त हुआ अथवा दो दोषोंकी उल्वणतावाला कोढ याप्य है । मज्जामें और अस्थियोंमें प्राप्त हुआ, दाह युक्त, मंद अग्निवाला और त्रिदोषकी उल्वणतावाला कोढ असाध्य है, इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा न करे । कृमियोंको उत्पन्न करनेवाला बाहरका कोढ भी असाध्य है । वायु तथा कफकी उल्वणतावाला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोढ भी साध्य है यह जो कहा सो ऊपरसेभी सिद्ध होता है कि सिध्म, एककुष्ठ, गजचर्म, विपादिका, किटिभ और अलसक यह वायु तथा कफकी उल्वणतावाले होनेसे साध्य हैं। मज्जामें प्राप्त हुआ और वीर्यमें प्राप्त हुआ भी कोढ असाध्य है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठारिष्टम् ।

प्रभिन्नं प्रस्रुतांगं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् । पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ४६ ॥ प्रभिन्नं विदीर्णम् । हतस्वरं घर्घरस्वरम् । पञ्चकर्मगुणातीतमसञ्जातवमनादिपञ्चकर्मगुणम् ।

फटे हुए अंगवाला, टपकता हुआ, लाल नेत्रोंवाला, जिसका स्वरभंग हो (आवाज मर गई हो) और जिसके वमन विरेचनादि पंचकर्म कुछ भी गुण न करें उसको कुष्ठ नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥

अथ कुष्ठनिदानसंभूतस्य श्वित्रस्य भेदं किलासमाह ।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत् । निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ४७ ॥ कुष्ठैकसम्भवं कुष्ठेन सम्भवो निदानं यस्य तत् । अथ श्वित्रस्य भेदमाह—किलासं चारुणं भवेच्छ्वित्रमेव रक्तमांसाश्रयात्किलासमरुणं च भवेदित्यर्थः । ननु कुष्ठस्य श्वित्रस्य च को भेद इत्यत आह निर्दिष्टमपरिस्रावीति । श्वित्रमपरिस्रावि भवति कुष्ठं तु स्रावि । अथ च त्रिधातूद्भवसंश्रयमिति श्वित्रम् । त्रयो धातवो वातपित्तकफास्तेभ्यः पृथग्भूतेभ्य उद्भवो यस्य तत् । अथ त्रयो धातवो रक्तमांसमेदांसि संश्रयोऽधिष्ठानं यस्य तत् । कुष्ठं तु सान्निपातिकं सर्वधातुगतं भवतीति भेदः ।

जो निदान कोढका कहा है वही निदान श्वित्र कोढका भी जानना। श्वित्रज रुधिरके आश्रयसे किलास कहा जाता है और मांसके आश्रयसे अरुण कहा जाता है इस कारण किलास और अरुण भी श्वित्रका भेद है। कोढ टपकता है और श्वित्र नहीं टपकता है, कोढ वात पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है और श्वित्र एक दोषसे होता है। कोढ रसादि संपूर्ण धातुओंमें रहता है और श्वित्र रुधिर मांस तथा मेदामें रहता है। इतनाही श्वित्रमें और कोढमें अन्तर है ॥ ४७ ॥

अथ दोषभेदेन लक्षणभेदः ।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् । सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ ४८ ॥ सकण्डूकं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत् । वर्णेनैवेदृगुभयं कुष्ठं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४९ ॥ अरुणमीषल्लोहितम् । कमलपत्रवदित्यनेन मध्ये श्वेतमन्ते लोहितं बोधयति । घनं पुष्टम् । क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु च आदिशेत् । तथा च चरकः—अरुणं रक्तगे वाते ताम्रं पित्ते पलं गते । श्वेतं श्लेष्मणि मेदःस्थे श्वित्रं कुष्ठं परापरमिति ॥ ५० ॥ उभयं द्विविधमपि श्वित्रं वर्णेन ईदृगेव । अरुणं ताम्रं श्वेतं च दोषभेदात् । द्विविधं दोषजं व्रणजं च । तथा च भोजः—" श्वित्रं तु द्विविधं विद्याद्दोषजं व्रणजं तथा ।" इति ।

जो वातसे श्वित्र होय तो उसमें रूक्षता तथा कुछेक लाली होती है तथा रुधिरमें रहता है। जो पित्तसे उत्पन्न हुआ होय तो कमलके पत्रकी समान बीचमें सफेद तथा अन्तमें लाल होता है। दाहयुक्त, रोमोंको नष्ट करता है और मांसमें रहता है। जो कफसे उत्पन्न हुआ होय तो सफेद होता है, पुष्ट, भारी, खुजली सहित और मेदमें रहता है। श्वित्र दोषसे उत्पन्न होय अथवा व्रणसे उत्पन्न हुआ होय तो भी दोषोंके भेदानुसार उसका वर्ण ऊपरहीकी माफिक होता है। वातजनित श्वित्रसे पित्तजश्वित्र विशेष भारी होता है और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनित श्वित्र विशेष भारी होता है। चरकभी कहता है कि "वायुसे उत्पन्न हुआ श्वित्र कुछेक लाल होता है और रुधिरमें रहता है। पित्तसे उत्पन्न हुआ श्वित्र अन्तमें लाल और मांसमें रहता है। कफसे उत्पन्न श्वित्र सफेद होता है और मेदमें रहता है। वातजनित श्वित्रसे पित्तजनित श्वित्र और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनित श्वित्र विशेष भारी है।" भोज भी कहता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि "दोषसे उत्पन्न हुआ और व्रणसे उत्पन्न हुआ ऐसे श्वित्र दो प्रकारका है" ॥ ४८--५० ॥

अथ श्वित्रस्य साध्यासाध्यता ।

अशुक्लरोमावहलमसृग्युक्तमथो नवम् । अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ५१ ॥ अबहलं तनु । अन्यत्र—गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् । वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ५२ ॥ गुह्यं मेहनं भगं च । तलमत्र पदतलम् । जातं सुश्रुतेनान्ते जातमिति सामान्यतो निर्दिष्टत्वात् । अपि अचिरन्तनम् नवमपि ।

जो श्वित्र काले रोमोंका हो, पतला हो, रुधिरयुक्त हो, तत्कालका नवीन हो और अग्निदग्ध न होय वह साध्य है । इसके सिवाय अन्य श्वित्र असाध्य जानना । अन्यत्र भी कहा है कि, जो श्वित्र लिंगमें योनिमें हाथके पाँवके तलुओंमें और होठमें उत्पन्न हुआ यदि नवीन भी होय तो भी सिद्धिकी इच्छा करनेवाला वैद्य विशेष करके उसकी चिकित्सा न करे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ कुष्ठादिरोगाणां संसर्गजत्वम् ।

प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात् । एकशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ५३ ॥ कण्डूकुष्ठोपदंशाश्च भूतोन्मादव्रणज्वराः । औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ५४ ॥ प्रसंगो मैथुनम् । म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् । अतो निन्दितरोगोऽयं कुष्ठं कष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ५५ ॥ एतावता कुष्ठिना कुष्ठं सर्वथा प्रतिकरणीयं न तु उपेक्षणीयम् ।

मैथुनादिसंसर्गसे, शरीरके स्पर्शसे, श्वासके मिलनेसे, एक शय्यापर सोनेसे, एक साथ भोजन करनेसे, रोगीके वस्त्र, रोगीकी धारण की हुई पुष्पमाला इत्यादि और रोगीके लगाये चन्दनादिके अनुलेपन करनेसे, खुजली, कोढ, उपदंश, भूतोन्माद, व्रण, ज्वर और इसके समान अन्यान्य रोगभी एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यके शरीरमें प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य कुष्ठ रोगमें मर जाता है फिर उसके दूसरे जन्ममेंभी कोढ उत्पन्न होता है, अत एव यह कुष्ठ अत्यन्त निन्दित रोग है, इस कारण यह कष्टरूप कहा जाता है । इसके कहनेका प्रयोजन यह है कि "कुष्ठरोगियोंके कोढकी सर्वथा बहुत कालतक चिकित्सा करनी चाहिये, उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ।" ॥५३--५५॥

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ॥ पित्तोत्तरेषु लेपः सेको रक्तस्य मोचनं श्रेष्ठम् ॥ ५६ ॥

वातके उल्वणतावाले कुष्ठमें घृतका उपयोग करे, कफकी उल्वणतावाले कुष्ठमें वमन करावे और पित्तकी उल्वणतावाले कुष्ठमें लेप करावे, सेंचन कराना तथा रुधिर निकलवाना ये उत्तम हैं ॥ ५६ ॥

अथ पथ्यादिलेपः ।

पथ्याकरंजसिद्धार्थनिशावल्गुजसैन्धवैः । विडंगसहितैः पिष्टैर्लेपो मूत्रेण कुष्ठनुत् ॥५७ ॥

अवल्गुजः वाकुचीति लोके ।

हरड, करंज, सरसों, हलदी, बावची, सेंधानिमक और वायविडंग इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ ५७ ॥

अथ सोमराज्युद्वर्त्तनम् ।

सोमराजीभवं चूर्णं शृंगवेरसमन्वितम् । उद्वर्तनमिदं हन्ति कुष्ठमुग्रं कृतास्पदम् ॥ ५८ ॥

सोमराजी वाकुचीति लोके ।

वाकुचीके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर शरीरपर लेप करनेसे उग्र और जमा हुआ कोढ भी नष्ट हो जाता है ॥ ५८ ॥

अथ पंचनिम्बकावलेहः ।

रसायनं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम् । मार्कण्डेयप्रभृतिभिर्यत्प्राग्उक्तं महर्षिभिः॥५९॥ पुष्पकाले तु पुष्पाणि फलकाले फलानि च । संगृह्य पिचुमर्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ६० ॥ द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् । त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्करान्नयः ॥ ६१ ॥ विडंगसार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाराहीलोहचूर्णं स्मृताः समाः । निशाद्वयावल्गुजकं व्याधिघातः सशर्करः ॥६२॥ कुष्ठमिन्द्रयवा पाठा चूर्णमेषां तु संयुतम् । खदिरासननिम्बानां घनक्वाथेन भावयेत् ॥ ६३ ॥ सप्तधा पञ्चनिम्बं तु मार्कवस्य रसेन च । स्निग्धः शुद्धतनुर्धीमान्योजयेत्तच्छुभे दिने ॥ ६४ ॥ मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा । लेह्यमुष्णाम्भसा वापि कोलवृद्ध्या पलं भवेत् । जीर्णे तस्मिन्समश्नीयात्स्निग्धं लघु हितं च यत् ॥६५॥ विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीककपालदद्रूकिटिभालसादिकम् । शतारुविस्फोटविसर्पमालाः कफप्रकोपं त्रिविधं किलासम् ॥ ६६ ॥ भगन्दरश्लीपदवातरक्तजडान्धनाडीव्रणशीर्षरोगान् । सर्वान्प्रमेहान्प्रदरांश्च सर्वान्दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥ ६७ ॥ स्थूलोदरः सिंहकृशोदरः स्यात्सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् । सदोपयोगादपि ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु । जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः शुभ्रेतरश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥ ६८ ॥ अस्य अयमर्थः । निम्बस्य पुष्पफलत्वक्पत्रमूलानि सर्वाणि समुदितानि द्विगुणानि चूर्णितानि भृंगराजस्य रसेन सप्तवारान्भावयेत् । त्रिफलादीनि पाठान्तानि समुदितानि एकभागानि चूर्णितानि खदिरासननिम्बक्वाथेन भावयेत् । ततः सर्वमेकीकृत्य मध्वादिनाऽवलिह्यात् ।

ब्रह्माकी कही हुई रसायनको कहता हूं कि जिससे अनेक रोगोंका नाश होता है, मार्कण्डेय आदि बडे बडे ऋषियोंने इसी रसायनको सेवन किया था। नीमके फल, फूल, छाल और पत्ते प्रत्येक दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण बनाकर उस चूर्णको भांगरेके रसमें सात बार भावना देवे। (फूलके समय फूल ले रखने चाहियें और फलके समय फल ले रखने चाहिये) हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, ब्राह्मी, गोखरू, भिलावे, चीता, वायविडंगका सार, वाराही कन्द, लोहेका चूर्ण, हलदी, दारुहलदी, वापची, अमलतास, मिश्री, कूठ, इन्द्रजौ और पाढ ये सब समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उस चूर्णको खैर, विजयसार और नीम इनके गाढे क्वाथकी भावना देवे। पश्चात् भांगरेके रसकी क्रमानुसार सात भावना देवे। फिर इस हरड आदिके चूर्णका एक भाग और पूर्वोक्त पंचनिम्बका चूर्ण दो भाग लेकर इनको एकत्र करके सहतमें अथवा पंचतिक्त नामक घृतमें, वा खैरमें तथा विजयसारके क्वाथमें अथवा गरम जलके साथ शुभदिनमें चाटे, नित्य नित्य अडतालीस अडतालीस रत्ती बढाकर चार तोलेतक इस अवलेहको बढाना चाहिये। प्रथम विरेचन आदिसे शरीरको शुद्ध करके पश्चात् स्नेहनक्रियासे स्निग्ध करके फिर बुद्धिमान् पुरुष इस अवलेहका उपयोग करे। इस अवलेहके पचनेपर स्निग्ध, हलका और हितकारक अन्न भोजन करना चाहिये। इस अवलेहसे विचर्चिका, औदुम्बर, पुंडरीक, कपाल, दद्रु, किटिभ, अलसक आदि, शतारु, विस्फोटक, विसर्प, गंडमाला, कफका प्रकोप, तीन प्रकारका श्वित्र, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जडता, अंधता, नाडीव्रण, मस्तककी पीडा, सर्व प्रकारके प्रमेह, सर्व प्रकारके प्रदर सर्व प्रकारके जंगम और स्थावर विष ये सब नष्ट हो जाते हैं। इस अवलेहको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बडे २ मोटे पेटवाले मनुष्य भी सिंहकी समान पतले पेटवाले हो जाते हैं। और दृढ संधियोंवाले हो जाते हैं। इस अवलेहको सेवन करनेवालेको जो सर्पादि जंतु कांटे तो वह सर्पादि तत्काल मर जाते हैं। इस अवलेहके उपयोग करनेसे बहुत कालतक जीता रहता है। रोग तथा जरा उत्पन्न नहीं होती और चंद्रमाकी समान शरीरकी शोभा बढती है ॥ ५९–६८ ॥

अथ स्वायंभुवगुग्गुलुः ।

शशिलेखा पञ्चपलं तावद्गिरिजस्य गुग्गुलोस्तु दश । ताप्यस्य पलं त्रितयं द्वे लोहस्रावणीकयोश्च पले ॥ ६९ ॥ त्रिफलाकरञ्जपल्लवखदिरगुडूचीत्रिवृद्दन्त्यः । मुस्ताविडङ्गरजनीकुटजत्वङ्निम्बवह्निसम्पाकाः । ॥ ७० ॥ एतै रचिता वटिकां मधुसंमिश्रां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गिलेत्प्रातः। गोमूत्रेण च कुष्ठं नुदत्यसृग्वातमचिरेण ॥ ७१ ॥ श्वित्राणि पाण्डुरोगं विषमानुदरप्रमेहगुल्मांश्च। नाशयति वलीपलितं योगः स्वायम्भुवो नाम्ना ॥७२॥ शशिलेखा सोमराजी। गिरिजस्य शिलाजतुनः। ताप्यस्य सुवर्णमाक्षिकस्य स्रावणीका मुण्डी इति लोके।

वायची २० तोले, शिलाजीत ३० तोले, गूगल ४० तोले, सोनामाखी १२ तोले, लोहेका चूर्ण २ तोले, गोरखमुंडी २ तोले, नागरमोथा २ तोले, वायविडंग २ तोले, हरड २ तोले, बहेडा २ तोले, आमले २ तोले, करंजके पत्ते २ तोले, खैर २ तोले, गिलोय २ तोले, निसोत २ तोले, जमालगोटे २ तोले, मोथा २ तोले, हलदी २ तोले, कुडेकी छाल २ तोले, नीमकी छाल दो तोले, चीता २ तोले, और अमलतास २ तोले इन सबको एकत्र पीसकर सहतमें गोलियां बना लेवे। प्रातःकाल गोमूत्रके साथ यह गोला खाय तो कोढ और वातरक्त तत्काल नष्ट होता है। इस स्वायंभुवनामक गूगलसे वली, पलित श्वित्र, पांडु, उदरके विषम रोग, प्रमेह और गुल्म भी नष्ट हो जाता है ॥ ६९-७२ ॥

अथैकविंशतिको गुग्गुलुः।

चित्रकं त्रिफला व्योषमजाजी कारवी वचा। सैन्धवातिविषा कुष्ठं चव्यैला च यवासकम् ॥ ७३ ॥ विडंगान्यजमोदा च मुस्ता चामरदारु च। यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मानं तु गुग्गुलोः ॥ ७४ ॥ संकुट्य सर्पिषा सार्द्धं गुटिकां कारयेद्भिषक्। प्रातर्भोजनकाले च खादेदग्निबलं यथा ॥ ७५ ॥ हन्त्यष्टादश कुष्ठानि क्रिमिदुष्टव्रणानि च। ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥ ७६ ॥ गृध्रसीमथ भग्नं च गुल्मं चापि नियच्छति। व्याधीन्कोष्ठगतांश्चापि जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥ ७७ ॥

चीता, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, कलौंजी, वच, सेंधानिमक, अतीस, कूट, चव्य, इलायची, जवासा, वायविडंग, अजमोद, नागरमोथा और देवदारु ये सब समान भाग और सबकी बराबर गूगल लेवे, सबको एकत्र घीमें खूब कूटकर गोलियां बना लेवे। यह गोली प्रातःकाल भोजनके वक्त अग्निके बलानुसार खाय तो अठारह प्रकारके कोढ, कृमि, दुष्टव्रण, संग्रहणी, अर्शके विकार, मुखकी पीडा, गलग्रह, गृध्रसी, भग्न और गुल्म ये सब नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार विष्णु असुरको जीतते हैं उसी प्रकार यह गूगल ऊपर कहे रोगोंको और कोठेमें प्राप्त हुए रोगोंको तत्काल जीतता है ॥ ७३-७७ ॥

अथ कैशोरगुग्गुलुः।

वातरक्ताधिकारोक्तः पुरः कैशोरकाभिधः। कुष्ठानां वातरक्तानां नाशनं परमौषधम् ७८

वातरक्तके अधिकारमें जो कैशोरक गूगल कहा है उसको भक्षण करनेसे भी कोढ और वातरक्त नष्ट हो जाता है ॥ ७८ ॥

अथामृतभल्लातकावलेहः।

भल्लातकप्रस्थयुगं छित्त्वा द्रोणजले क्षिपेत्। प्रस्थद्वयं गुडूच्याश्च क्षुण्णं तत्राम्भसि क्षिपेत् ॥ ७९ ॥ चतुर्थांशावशेषं तु कषायमवतारयेत्। वस्त्रपूते कषाये तु वक्ष्यमाणं विनिक्षिपेत् ॥ ८० ॥ शरावमात्रकं सर्पिर्दुग्धं स्यादाढकं तथा। सितां प्रस्थमितां दद्यात्प्रस्थार्द्धं माक्षिकं क्षिपेत् ॥ ८१ ॥ सर्वाण्येकत्र भाण्डे तु पचेन्मृद्वग्निना शनैः। सर्वद्रवे घनीभूते पावकादवतारयेत् ॥ ८२ ॥ तत्र क्षेप्याणि चूर्णानि ब्रूमो बिल्वविषामृताः। बाकुची चाथ दद्रूघ्नः पिचुमर्दो हरीतकी ॥ ८३ ॥ अक्षो धात्री च मंजिष्ठा मरिचं नागरं कणा ॥ यवानी सैन्धवं मुस्तं त्वगेला नागकेशरम् ॥ ८४ ॥ पर्पटं पत्रकं बालमुशीरं चन्दनं तथा। गोक्षुरस्य च बीजानि कर्चूरो रक्तचन्दनम् ॥ ८५ ॥ पृथक्पलार्द्धमानानां चूर्णमेषामिह क्षिपेत्। पलमात्रमिदं प्रातः समश्नीयाज्जलेन हि ॥ ८६ ॥ नाशयेदव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेहोऽयं पथ्यान्यन्नानि खादतः । कुष्ठानि वातरक्तानि सर्वाण्यर्शांसि सेवितः ॥ ८७ ॥ व्यायाममातपं वह्निमम्लं मांसं दधि स्त्रियम् । तैलाभ्यंगं तथाऽध्वानं नरो भल्लातकी त्यजेत् ॥ ८८ ॥

भिलावे १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले लेकर एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, फिर उसमें १२८ तोले गिलोयको कूटकर उसी जलमें डालकर पकावे, जब पकते पकते यह जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब इसको उतार लेवे, इस क्वाथको वस्त्रमें छानकर उसमें ३२ तोले घी, २५६ तोले दूध, मिश्री ६४ तोले और सहत ३२ तोले डालकर एक उत्तम पात्रमें मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावे, जब यह पकते पकते गाढा हो जाय तब अग्निपरसे उतारकर उसमें बेलगिरी, अतीस, गिलोय, वापची, पमार, नीम, हरड, बहेडा, आमला, मजीठ, सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, सेंधानिमक, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, पित्तपापडा, तेजपत्र, सुगंधवाला, खस, चंदन, गोखुरूके बीज, कचूर और लाल चंदन ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर चूर्ण पीसकर मिलादेवे तो अमृतभल्लातकावलेह सिद्ध होता है। इस अवलेहको नित्य प्रातःकाल चार तोले जलके साथ सेवन करे और पथ्य भोजन करे तो कोढ, वातरक्त और सब प्रकारकी बवासीर नष्ट हो जाती है, इस भिलावेको सेवन करनेवाला मनुष्य कसरत, धूप, अग्नि, खट्टे पदार्थ, मांस, दही, मैथुन, तेलकी मालिश और मार्गका चलना त्याग कर देवे ॥ ७९--८८ ॥

अथ महाभल्लातकावलेहः ।

निम्बगोपारुणाः कट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम् । पर्पटावल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥ ८९ ॥ पाठाशुण्ठीशटीभार्ङ्गी वासाभूनिम्बवत्सकम् । श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा विडंगेन्द्रयवानलम् ॥ ९० ॥ हस्तिकर्णामृता द्रेकापटोलरजनीद्वयम् । कणारग्वधसप्ताह्वत्रिवृद्वेत्रोच्चटाफलम् ॥ ९१ ॥ मञ्जिष्ठालांगलीरास्नानक्तमालपुनर्नवाः । दन्तीबीजकसारं च भृंगराजं कुरण्टकम् ॥ ९२ ॥ अङ्कोटकं च शारखोटं द्विपलांशं पृथक्पृथक् । गृह्णीयात्तानि सर्वाणि जलद्रोणे पचेच्छनैः ॥ ९३ ॥ अष्टमांशावशेषं तु कषायमवतारयेत् । विधाय वाससा पूतं स्थापयेद्राजते दृढे ॥ ९४ ॥ भल्लातकसहस्राणि च्छित्त्वा तु च्यर्मणाम्भसि । पचेदष्टावशेषं तत्कषायमवतारयेत् ॥ ९५ ॥ तच्च वस्त्रेण संशोध्य द्वौ कषायौ विमिश्रयेत् । गुडं शतपलं दत्त्वा लेहवत्तत्पचेच्छनैः ॥ ९६ ॥ भल्लातकसहस्रस्य मज्जानं तत्र निक्षिपेत् । त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विगङ्गं चित्रकं तथा ॥ ९७ ॥ सैन्धवं चन्दनं कुष्ठं दीप्यकं च पलं पृथक् । सौगंध्यार्थं क्षिपेत्तत्र चातुर्जातं पलंपलम् ॥ ९८ ॥ महाभल्लातको ह्येष महादेवेन भाषितः । प्राणिनां हितकामेन जयेच्छीघ्रं प्रयोजितः ॥ ९९ ॥ श्वित्रमौदुम्बरं दद्रूमृक्षजिह्वं तु काकणम् । पुण्डरीकं सचर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥ १०० ॥ कण्डूं कापालकं कुष्ठं पामानं च विपादिकाम् । वातरक्तं षडर्शांसि पाण्डुरोगव्रणान्क्रिमीन् ॥ १०१ ॥ रक्तपित्तमुदावर्तं कासं श्वासं भगन्दरम् । सदाभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम् ॥ १०२ ॥ निर्यन्त्रणस्तु कथितो विहाराहारमैथुने । कुरुते परमः कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम् ॥ १०३ ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं छिन्नातोयं पयोऽथवा । भोजने तु सदा त्याज्यमुष्णमम्लं विशेषतः ॥ १०४ ॥ गोपा श्वेतसारिवा इति लोके । अरुणा अतिविषा । अवल्गुजः सोमराजी बाकुची । अनन्ता दुरालभा । चन्दनं श्वेतम् । भार्ङ्गी अलाभे कण्टकारीमूलं गृह्णीयात् । श्यामा कृष्णसारिवा हस्तिकर्णः हस्तिकन्दसप्ताह्वा छतिम् । द्रेका बकाइन इति लोके ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेत्रं कृष्णवेत्रं जलवेतसश्च । उच्चटाफलं श्वेतगुञ्जाफलम् । कुरण्टकः पीतझिण्टी । अंकोटकः ओल इति लोके । शाखोटं साओडा इति लोके दीप्यकं यवानी ।

नीम, सफेद सारिवा, अतीस, बावची, कुटकी, त्रायमान, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पित्तपापडा, धमासा, वच, खैर, सफेद चंदन, पाढ, सोंठ, कचूर, भारंगी (अगर भारंगी न मिले तो कटेरीकी जड लेवे), अडूसा, चिरायता, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, इन्द्रायन, चुरनहार, वायविडंग, कुडेकी छाल, चीता, हस्तिकंद, गिलोय, बकायन, कडवे परवल, हलदी, दारुहलदी, पीपल, अमलतास, सतौना, निसोत, वेत, सफेद चौंटलीके फल, मजीठ, गजपीपल, रायसन, करंज, पुनर्नवा, जमालगोटा, विजयसार, भांगरा, पियावाँसा, अंकोल और सिहोडा ये प्रत्येक पदार्थ अलग अलग आठ आठ तोले लेकर सबको १००० एक हजार २४ चौबीस तोले जलमें धीरे धीरे मंद मंद अग्निसे पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उसको उतारकर उत्तम वस्त्रमें छान मजबूत बासनमें भरकर रख देवे। फिर १००० एक हजार भिलावाँको छीलकर ३०७२ तोले जलमें पकावे जब पकते २ आठवां भाग जल बाकी रह जाय तब उस क्काथको वस्त्रमें छानकर पहिले क्काथमें मिला देवे, फिर इस क्काथमें ४०० चार सौ तोले गुड डालकर धीरे धीरे मंद मंद अग्निसे सीरेकी समान पकावे फिर इसमें १००० एक हजार भिलावोंकी मींग डाले तथा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, चीता, सेंधानिमक, चंदन, कूठ और अजवायन प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले पीसकर मिला देवे। सुगंधित करनेके लिये दालचीनी, तेजपत्र, इलायची और नागकेसर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डाल देवे तो यह महाभल्लातकावलेह सिद्ध होता है। यह महादेवजीने पूर्वकालमें प्राणियोंके हितकी इच्छासे कहा था। इस अवलेहको सेवन करनेसे श्वित्र, औदुम्बर, दाद, ऋक्षजिह्व, काकणक, पुंडरीक, चर्मदल, गजचर्म, विस्फोट, रक्तमंडल, खुजली, कपालकुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, छः प्रकारकी ववासीर, पांडुरोग, व्रण, कृमि, रक्तपित्त, उदावर्त, खाँसी, श्वास और भगन्दर ये सब रोग तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इस अवलेहका नित्य अभ्यास करनेसे सफेद बाल नष्ट होकर काले निकलते हैं और दुस्तर आमवात भी नष्ट हो जाता है। इस अवलेहको सेवन करनेवाले मनुष्यको आहार विहार और मैथुन विशेष परहेज रखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। यह अवलेह कांतिको उत्तम करे है और जठराग्निको दीपन करता है। इस अवलेहको सेवन करनेके पश्चात् गिलोयके जलका अथवा दूधका अनुपान करे और भोजनमें विशेष करके गरम खटाईका त्याग कर देवे ॥ ८९-१०४॥

अथ लघुमंजिष्ठादिक्काथः ।

मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशाद्वयाः । निम्बश्चैषां कृतः क्काथः सर्वकुष्ठं विनाशयेत् ॥ १०५ ॥ वातरक्तं तथा कण्डूं पामानं रक्तमण्डलम् । दद्रुं विसर्पं विस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥ १०६ ॥

मजीठ, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, वच, देवदारु, हलदी, कूट और नीम इनका क्काथ बनाकर नित्य पीनेसे सर्वप्रकारके कोढ नष्ट हो जाते हैं। इस क्काथका अभ्यास करनेसे वातरक्त, खुजली, पामा, रक्तमंडल, दाद, विसर्प और विस्फोटक इन सबका नाश होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

अथ मध्यमंजिष्ठादिक्काथः ।

मञ्जिष्ठा वाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमर्दकः । हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥ १०७ ॥ बला नागबला यष्टी मधुकं क्षुरकोऽपि च । पटोलस्य लतोशीरं गुडूची रक्तचन्दनम् ॥ १०८॥ मञ्जिष्ठादिरयं क्काथः कुष्ठानां नाशनः परः । वातरक्तस्य संहर्ता कण्डूमण्डलनाशनः ॥ १०९ ॥

मजीठ, बावची, चक्रवड, नीम, हरड, हलदी, आमले, अडूसा, सतावर, खिरैटी, गंगेरन, मुलैठी, गोखरू, परवलकी बेल, खस, गिलोय और लालचंदन इनका क्काथ बनाकर पीनेसे कोढ, वातरक्त, खुजली और मंडलका नाश हो जाता है ॥ १०७-१०९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ बृहन्मञ्जिष्ठादिक्वाथः।

मञ्जिष्ठाकुटजामृताघनवचाशुण्ठीहरिद्राद्वयं क्षुद्रारिष्टपटोलतिक्तकटुकाभार्ङ्गीविडंगाग्निकम् ॥ मूर्वादारुकलिंगभृंगमगधात्रायन्तिपाठावरीगायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिम्बासंनारग्वधाः ॥११०॥ श्यामावल्गुजचन्दनं वरुणकं दन्तीकशाखोटकं वासा पर्पटसारिवा प्रतिविषाऽनन्ता विशालां जलम् ॥ मञ्जिष्ठा प्रथमं कषायमिति यः संसेवते तस्य तु। स्वघ्नोषाः शुचिरेण यान्ति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश ॥ १११ ॥ नाशं गच्छति वातरक्तमखिला नश्यन्ति रक्तामया वीसर्पस्त्वचि शून्यता नयनजा रोगाः प्रशाम्यन्ति च ॥ ११२ ॥ अरिष्टः निम्बः। कलिंगः इन्द्रयवः। भृंगः भंगरीया इति। वरी शतावरी। गायत्री खदिरः। असनं विजयसारः। श्यामा प्रियंगुः। चन्दनमत्र रक्तं ग्राह्यम्। सारिवा [साइ]। अनन्ता दुरालभा। विशाला इन्द्रवारुणी। जलम् [नेत्रवाला]।

मजीठ, कुडेकी छाल, गिलोय, नागरमोथा, वच, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, कटेरीका पंचांग, नीम, परवल, कुटकी, भारंगी, वायविडंग, चित्रक, चुरनहार, देवदारु, भाँगरा, पीपल, त्रायमान, पाढ, सतावर, खैर, हरड, बहेडा, आमला, चिरायता, वकायन, विजयसार, अमलतास, फूलप्रियंगू, वापची, लाल चन्दन, वरुना, जमालगोटा, सिहोडा, पित्तपापडा, सारिवा, अतीस, धमासा, इन्द्रायन और सुगन्धवाला इनका काथ बनाकर नित्य पीनेसे बहुत पुराने चर्मविकार, अठारह प्रकारके कोढ, वातरक्त, सम्पूर्ण रुधिरके रोग, विसर्प, त्वचाकी जडता और नेत्रके रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ११०–११२ ॥

अथ लघुमरिचादितैलम्।

मरिचं त्रिवृता मुस्तं हरितालं मनःशिला। देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम्। ॥ ११३ ॥ विशाला करवीरं च क्षीरमर्कंसमुद्भवम्। गोमयस्य रसं कुर्यात्प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ११४ ॥ विषस्यार्द्धपलं देयं तैलं प्रस्थमितं कटु। पचेच्चतुर्गुणे नीरे गोमूत्रे द्विगुणे तथा ॥ ११५ ॥ मारिचाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्कुष्ठनाशनम्। एतस्याभ्यंगतः श्वित्रं विवर्णं तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ११६ ॥ तैलमेतज्जयेत्कंडूं पामां सिध्म विचर्चिकाम्। पुण्डरीकं तथा दद्रूं शून्यतां नित्यसेविनाम् ॥ ११७ ॥

कालीमिरच, निसोत, नागरमोथा, हरिताल, मैनशिल, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, आकका दूध और गायके गोबरका रस ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेवे, वत्सनाभ विष दो तोले लेवे और सरसोंका तेल ६४ तोलेभर लेवे, इन सबको चौगुने जलमें तथा दुगुने गोमूत्रमें पकावे तो यह 'लघुमरिचाद्य' तैल सिद्ध होता है। इस तेलकी मालिश करनेसे कोढ नष्ट हो जाता है। इस तेलके अभ्यंगसे तत्काल श्वित्रकुष्ठका रंग बदल जाता है। इसको नित्य सेवन करनेसे खुजली, पामा, सिध्म, विचर्चिका, पुंडरीक, दाद, और शून्यता नष्ट होती है ॥ ११३–११७ ॥

अथ महामरिचाद्यतैलम्।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः। देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ११८ ॥ विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला। चित्रकं लांगली मुस्तं विडंगं चक्रमर्दकः ॥ ११९ ॥ शिरीषः कुटजो निम्बः सप्तपर्णोऽमृता स्नुही श्यामाको नक्तमालश्च खदिरो बाकुची वचा ॥ १२० ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषं द्विपलिकं भवेत्। आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥ १२१ ॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे च शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। मरिचाद्यमिदं तैलं महन्मुनिभिरीरितम् ॥ १२२ ॥ भिषगेतेन तैलेन म्रक्षयेत्कौष्ठिकान्व्रणान्। पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च ॥ १२३ ॥ वलयः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पलितं छाया नीलं व्यंगं तथैव च । अभ्यंगेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ १२४ ॥ प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यं प्रदीयते । तासामपि जरां प्राप्य न स्यातां स्खलितौ स्तनौ ॥ १२५ ॥ बलीवर्दस्तुरंगो वा गजो वायुप्रपीडितः त्रिभिरभ्यञ्जनैरस्य भवेन्मारुतविक्रमः ॥ १२६ ॥ ज्योतिष्मती मालकांगुनीति लोके ।

कालीमिरच, निसोत, जमालगोटा, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, कूठ, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, हरिताल, मैनशिल, चीता, कलिहारी, नागरमोथा, वायविडंग, चकवड, सिरस, इन्द्रजौ, नीम, सतौना, गिलोय, थूहर, श्यामाक, करंज, खैर, बाकुची, वच और मालकांगुनी प्रत्येक चार चार तोले लेवे, वत्सनाभ आठ तोले लेवे, सरसोंका तेल दो सौ छप्पन २५६ तोले लेवे और गोमूत्र इससे चौगुना लेवे इन सब पदार्थोंको लोहेके पात्रमें अथवा मट्टीके पात्रमें मन्द मन्द अग्निसे धीरे धीरे पकावे तो यह महामरिचाद्यतैल सिद्ध होता है । इस मुनियोंके कहे हुए तेलसे वैद्य कोढके व्रणोंपर मालिश करावे । इस तेलके अभ्यंगसे पामा, विचर्चिका, दाद, कण्डू और विस्फोटक ये सब नष्ट होते हैं । तथा शरीरमें वलियोंका पडना, विना समयही बालोंका सफेद हो जाना, छाया, नीलिका, व्यंग (झाईं) ये सब नष्ट होकर सुकुमारता उत्पन्न होती है । इस तेलका स्त्रियोंको जो पहिली अवस्थामें नास दिया जाय तो उनके वृद्ध अवस्थामें भी स्तन नहीं गिरते हैं । बैल, घोडा और हाथी जो वायुसे पीडित होय तो उनको इस तेलका अभ्यंजन किया जाय तो वे पवनके वेगकी समान वेगवाले हो जाते हैं ॥ ११८–१२६ ॥

अथ तालकेश्वररसः ।

तालताप्यशिलासूतटंकणाः सिन्धुसंयुताः । गन्धको द्विगुणः सूताच्छङ्खचूर्णं च तत्समम् ॥ १२७ ॥ जम्बीराद्भिर्दिनं घृष्ट्वा त्रिंशदंशं विषं क्षिपेत् । अस्य माषद्वयं खादेन्माहिषीघृतसंयुतम् ॥ १२८ ॥ मध्वाज्यैर्बाकुचीबीजकर्षं लिह्यात्ततः परम् । तालकेश्वरनामार्यं सर्वकुष्ठहरो रसः ॥ १२९ ॥

हरिताल, सोनामाखी, मैनशिल, पारा, सुहागा, सेंधानिमक, पारेसे दूना गन्धक और गन्धककी बराबर शंखका चूर्ण इनको एक दिनतक नींबूके रसमें खरल करके और उसमें तीस भाग वत्सनाभ मिलावे तो यह तालकेश्वर रस सिद्ध होता है । इस रसको भैंसके घीके साथ बारह रत्ती प्रमाण खाय और इसके ऊपर सहत तथा घीके साथ एक तोला बाकुचीके बीजोंका चूर्ण खाय तो सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ १२७–१२९ ॥

अथ गलितकुष्ठारिरसः ।

रसो वलिस्ताम्रमयः पुरोऽग्निः शिलाजतु स्याद्विषतिन्दुकश्च । वरा च तुल्यं गगनं च सर्वैः करञ्जबीजं सचतुष्टयं च ॥ १३० ॥ संमर्द्य सर्वं मधुना घृतेन घृतस्य पात्रे निहितं प्रयत्नात् । कर्षं भजेत्प्रत्यहमस्य पथ्यं शाल्योदनं दुग्धमधुत्रयं च ॥ १३१ ॥ विशीर्णकर्णांगुलिनासिकोऽपि भवेदनेन स्मरतुल्यमूर्तिः । दारापरित्याग इह प्रदिष्टो जलौदनं तत्र निबद्धमूले ॥ १३२ ॥ पुरो गुग्गुलुः । अग्निश्चित्रकमूलं । विषतिन्दुकः [कुचिला] । वरा त्रिफला । रसादित्रिफलान्तं सर्वं तुल्यम् । गगनमभ्रकम् । करञ्जबीजं च पृथक् चतुर्गुणं रसात् । तत्र कुष्ठे बद्धमूले सति जलौदनमेव पथ्यम् ।

पारा, गंधक, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म, गूगल, चीता, शिलाजीत, कुचिला, हरड, बहेडा और आमले यह सब समान भाग लेवे, अभ्रक और करंजके बीज पारेसे चौगुने लेवे इन सब पदार्थोंको एकत्र करके सहत और घीमें खरल करके घीके चिकने बासनमें भरकर रख देवे तो यह 'गलितकुष्ठारि' रस सिद्ध होता है । इस रसको नित्य एक तोलाभर खाय और इसके ऊपर लाल शालि चावलोंका भात, दूध और सहत इन तीनों पदार्थोंका पथ्य देवे । जिसके कान, अंगुलि और नाक गल गई होयँ वह मनुष्य भी इसके प्रभावसे कामदेवकी समान शरीरवाला हो जाता है । इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसको सेवन करनेवाले मनुष्यको मैथुनका त्याग करना चाहिये। जो कोढ दृढ जडवाला हो गया होय तो इस रसके ऊपर जलका तथा भातका पथ्य देवे ॥ १३०-१३२ ॥

अथ सिध्मचिकित्सा।

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियंगवः सर्षपास्तथा रजनी। एतत्केशरषट्कं निहन्ति चिरकालजं सिध्म ॥१३३ ॥

कूठ, मूलीके बीज, फूलप्रियंगू, सरसों, हलदी और नागकेसर इन छः पदार्थोंका लेप करनेसे बहुत दिनोंका भी सिध्म नष्ट हो जाता है। इस लेपका 'केशरषट्क' ऐसा कहते हैं ॥ १३३ ॥

शिखरीरसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्म। क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ १३४ ॥

चिरचिटेके रससे अथवा हलदीको मिलाकर मूलीके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट हो जाता है ॥ १३४ ॥

दार्वीमूलकबीजानि तालकं सुरदारु च। ताम्बूलपत्रं सर्वाणि कार्षिकाणि पृथक्पृथक् ॥ १३५ ॥ शङ्खचूर्णं तु शाणं स्यात्सर्वाण्येकत्र वारिणा। प्रलेपयेत्प्रलेपोऽयं सिध्मनाशन उत्तमः ॥ १३६ ॥

दारुहलदी, मूलीके बीज, हरिताल, देवदारु और नागरवेलके पान ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेवे और शंखका चूर्ण चौबीस रत्ती प्रमाण लेवे। इन सबको एकत्रित करके जलमें पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट हो जाता है। यह प्रलेप सिध्मनाश करनेके लिये उत्तम है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

अथ चर्मदलचिकित्सा।

सलिले चाम्रपेशी तु किञ्चित्सैन्धवसंयुता। ताम्रपात्रे विनिर्घृष्टा लेपाच्चर्मदलापहा ॥ १३७ ॥ आम्रपेशी आमचूर इति लोके। सलिलेन तु शुष्काणि घृष्ट्वा धात्रीफलानि च। कराभ्यां सुखमाप्नोति नरश्चर्मदलान्वितः ॥ १३८ ॥

आमचूरको तांबेके बासनमें घिसकर उसमें कुछेक सैंधानिमक डालकर लेप करनेसे चर्मदल नष्ट हो जाता है। सूखे हुए आमलोंको जलमें घिसकर लेप करनेसे चर्मदलवाले रोगियोंको सुख प्राप्त होता है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

अथ पामाचिकित्सा।

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्द्धपलं तथा। कटुतैलं पचेदाभ्यां सर्वपामाहरं परम् ॥१३९॥

चार तोले जीराद्यतैल और उसमें दो तोले सिंदूर सरसोंके तेलमें पकावे। उस तेलको मलनेसे सर्व प्रकारकी पामा अच्छे प्रकारसे नष्ट हो जाती है ॥ १३९ ॥

अथादित्यपाकतैलम्।

मञ्जिष्ठात्रिफलालाक्षालाङ्गलीरात्रिगन्धकैः। चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं परम् १४०

मजीठ, हरड, बहेडा, आमले, लाख, कलिहारी, हलदी और गंधक इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल 'आदित्यपाक' कहा जाता है, इससे पामा अच्छे प्रकारसे नष्ट हो जाती है ॥ १४० ॥

अथ सैंधवादिलेपः।

सैन्धवं चक्रमर्दश्च सर्षपाः पिप्पली तथा। आरनालेन संपिष्टाः पामाकंडूहराः पराः १४१

सैंधानमक, चकवड, सरसों और पीपल इनको आरनालनामक कांजीमें पीसकर लेप करनेसे छाजन और खुजली सब प्रकारकी नष्ट हो जाती है ॥ १४१ ॥

अथ कच्छूचिकित्सा।

तत्रार्कतैलम्।

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम्। नाशयेत्सार्षपं तैलं पामाकच्छूविचर्चिकाः ॥१४२॥

हलदीका कल्क डालकर आकके पत्तोंके रसमें पकाया हुआ सरसोंका तेल पामा, कच्छू और विचर्चिकाको नष्ट करे है ॥ १४२ ॥

अथ कच्छूराक्षसतैलम्।

मनःशिलालं कासीसं गन्धाश्म सिन्धुजन्म च। स्वर्णक्षीरी शिलाभेदी शुण्ठी कुष्ठं च मागधी ॥ १४३ ॥ लांगली करवीरं च दद्रुघ्नः क्रिमिहानलः। दन्ती निम्बदलं चैभिः पृथक्पर्णमितैर्भिषक् ॥ १४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्कीकृत्य पचेत्तैलं कटु प्रस्थद्वयोन्मितम् । अर्कसेहुण्डदुग्धेन पृथक्पलमितेन च । ॥ १४५ ॥ गोमूत्रस्याढकेनापि शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । अभ्यङ्गेन हरेदेतत्कृच्छ्रदुःसाध्यतामपि ॥ १४६ ॥ पामानं च तथा कण्डूं त्वग्व्याधिरुधिरामयान् । कच्छूराक्षसनामेदं तैलं हारीतभाषितम् ॥ १४७ ॥

मैनशिल, हरिताल, हीराकसीस, गंधक, सेंधानिमक, चोक, पाखानभेद, सोंठ, कूठ, पीपल, कलिहारी, कनेर, चकवड, वायविडंग, चीता, जमालगोटा और नीमके पत्ते ये प्रत्येक पदार्थ एक २ तोला लेकर इनके कल्कसे १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले भर सरसोंका तेल पकावे फिर चार तोले आकका दूध, चार तोले थूहरका दूध और दो सौ छप्पन तोले गोमूत्रसे इसको कोमल अग्निसे धीरे धीरे पकावे तो यह कच्छूराक्षस नामक तैल सिद्ध होता है, इस तेलकी मालिश करनेसे असाध्य कच्छूभी नष्ट हो जाती है । हारीतमुनिका कहा हुआ यह तेल पामा, खुजली, चर्मके रोग और रुधिरके विकारोंको दूर करे है ॥ १४३-१४७ ॥

अथ कृतमालादिकल्कः ।

कृतमालस्य पत्राणि नक्तमालदलानि च । द्रोणपुष्पीपलाशानि सर्षपा राजिका निशा ॥ १४८ ॥ कुटजो मधुकं मुस्तं नागरं रक्तचन्दनम् । धात्री यवानिका दारु कल्क एष प्रकल्पितः ॥ १४९ ॥ उद्वर्तनादयं कल्कः कटुतैलसमन्वितः । कण्डूं पामां हरत्येव शीतपित्तादिकान् गदान् ॥ १५० ॥

अमलतासके पत्ते, करंजके पत्ते, पमारके पत्ते, सरसों, राई, हलदी, इन्द्रजौ, मुलेठी, नागरमोथा, सोंठ, लाल चंदन, आमले, अजवायन और देवदारु इनका कल्क बनाकर सरसोंके तेलमें पकाकर अच्छे प्रकार लगावे तो खुजली, पामा और शीतपित्त आदि रोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ १४८-१५० ॥

अथ दद्रुचिकित्सा ।

कुष्ठं क्रिमिघ्नो दद्रुघ्नो निशासैन्धवसर्षपाः । अम्लपिष्टः प्रलेपोऽयं दद्रुकुष्ठनिषूदनः ॥ १५१ ॥ दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः । त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां दद्रुं च कुष्ठं च विनाशयन्ति ॥ १५२ ॥ कठेरकः बावुइ तुलसी इति लोके । गण्डलकाख्यं तृणमपि सिद्धार्थकश्च स्नुहीपत्रम् । त्रयमपि समभागं स्यादेषां द्विगुणस्तु दद्रुघ्नः ॥ १५३ ॥ अष्टगुणे गोतक्रे तानि प्रकृतानि सन्दध्यात् । दिवसत्रितयादूर्ध्वं सम्यङ्निष्पेषयेत्तानि ॥ १५४ ॥ वन्योपलेन घृष्ट्वा च दद्रूमालेपयेत्तेन । सप्ताहालेपोऽयं दद्रूमाचिराद्विनाशयति ॥ १५५ ॥

कूठ, वायविडंग, पमार, हलदी, सेंधानिमक और सरसों इनको नीबूके रसमें पीसकर लगानेसे दाद तथा कोढ नष्ट हो जाता है । दूब, हरड, सेंधानिमक, पमारके बीज और वापची इनको कांजीमें तथा तक्रमें पीसकर तीन बार लेप करनेसे दृढ मूलवाले दाद तथा कोढ भी नष्ट हो जाता है । गंडलिक घास, सरसों और थूहरके पत्ते इन सबको समान भाग लेवे और इनसे दुगुना चकवड लेवे, इन सबको अठगुनी छाछमें मिला देवे । फिर तीन दिनके बाद इनको अच्छे प्रकार पीसकर प्रथम दादको अरने उपलोंसे रगडकर उक्त औषधिका लेप करे तो तत्काल सात दिनके भीतर दादका नाश होता है ॥ १५१-१५५ ॥

अथ श्वित्रकुष्ठचिकित्सा ।

विभीतकत्वङ्मलपूजतानां क्वाथेन पीतं गुडसंयुतेन । अवल्गुजं बीजमपाकरोति श्वित्राणि कृच्छ्राण्यपि पुण्डरीकम् ॥ १५६ ॥ मलपूः काकोदुम्बरिका । अवल्गुजं सोमराजी । कुडवमवल्गुजबीजं हरितालचतुर्थभागसम्मिश्रम् ॥ १५७ ॥ मनःशिला तोलकार्द्धं गुञ्जाफलमष्ठिमूलं च । मूत्रेण गवां पिष्टं सवर्णताकारकं श्वित्रे ॥ १५८ ॥ श्वेतं कुष्ठं व्रजत्यस्तं पक्षार्द्धेनाधिकेन वा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गिरिकर्ण्यास्तु कृष्णाया मूलेन परिलेपितम् ॥ १५९ ॥ गिरिकर्णी नीला अपराजिता । क्वाथः सवाकुचीचूर्णो धात्रीखदिरसारयोः । शंखेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं संसेवितो हरेत् ॥ १६० ॥ मथितेन पिबेच्चूर्णं काकोदुम्बर्यवल्गुजम् । तैलाक्तो घर्मसेवी स्यात्क्काशी श्वित्रहृद्भवेत् ॥ १६१ ॥ मथितं निर्जलं विलोडितं दधि । तक्रं चतुर्थांशजलयुतं वस्त्रपूतं दधि ।

बहेडेकी छाल, कठूमरकी जड इनके क्वाथमें गुड डालकर वापचीके कल्कके साथ पिये तो अत्यंत कष्टदायक श्वित्र और पुंडरीक भी नष्ट हो जाता है । वापचीके बीज १६ तोले, हरिताल ४ तोले, ६ मासे मैनशिल, चौंटली और चीतेकी जड इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्र नष्ट होकर त्वचाका रंग शरीरके वर्णकी समान हो जाता है । काली अपराजिताकी जडका कल्क बनाकर उसका लेप करनेसे आठ दिनमें वा कुछ अधिक दिनोंमें श्वेतकुष्ठ नष्ट हो जाता है । आमलोंका तथा खैरसारका क्वाथ बनाकर उसमें वापचीका चूर्ण डालकर नित्य पीनेसे शंख, कुंद और चंद्रमाकी समान श्वेत कुष्ठ नष्ट हो जाता है। कठूमर तथा वापचीका चूर्ण बनाकर विना पानी मिले दहीमें मिलाकर पीवे, तेलकी मालिश करके धूपमें बैठा रहे और छाछको पीवे तो सफेद कोढ नष्ट हो जाता है ॥ १५६–१६१ ॥

अथ सोमराजीघृतम् ।

चतुःपलं सोमाराज्याः खदिरस्य पलं तथा । पटोलमूलं त्रिफला त्रायमाणा दुरालभा ॥ १६२ ॥ कल्कार्थं कटुकं चापि कार्षिकात्सूक्ष्मपेषितात् । पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत् ॥ १६३ ॥ सिद्धं सर्पिरिदं श्वित्रं हन्यादम्भ इवानलम् । अष्टादशानां कुष्ठानां परमं चैतदौषधम् ॥ १६४ ॥ सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा । लोकानामुपकाराय श्वित्रकुष्ठादिरोगिणाम् ॥ १६५ ॥

वापची १६ तोले, खैरसार ४ तोले, परवलकी जड, हरड, बहेडा, आमला, त्रायमान, धमासा और कुटकी प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर बारीक पीसकर उसमें आठ तोले शुद्ध गूगल मिला देवे, फिर इस कल्कसे घृतको पकावे तो यह 'सोमराजीघृत' सिद्ध होता है। जिस प्रकार जल अग्निको नष्ट कर देता है उसी प्रकार यह घी श्वित्रको नष्ट कर देता है। यह अठारह प्रकारके कोढोंकी उत्तम औषधि है। श्वित्र तथा कुष्ठ आदि रोगोंसे पीडित मनुष्योंके हितके लिये ब्रह्माने पूर्वकालमें इस सोमराजी घृतको बनाया था ॥ १६२–१६५ ॥

इति कुष्ठाधिकारः संपूर्णः ।

अथ शीतपित्तोदर्दकोठोत्कोठाधिकारः ।

तत्र शीतपित्तादीनां सन्निकृष्टविप्रकृष्टनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

शीतमारुतसम्पर्कात्प्रवृद्धौ कफमारुतौ । पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥ पिपासाऽरुचिहृल्लासदेहसादाङ्गगौरवम् । रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥ शीतमारुतसम्पर्कात् पित्तेन स्वहेतुदुष्टेन सम्भूय संगम्य बहिः त्वचि अन्तःरुधिरादौ । विसर्पतः प्रसरतः ।

शीतल पवनके लगनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए कफ और वायु अपने कारणोंसे दूषित हुए पित्तके साथ मिलकर त्वचा तथा रुधिर आदिमें फैलते हैं उससे शीतपित्तादि रोग होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शीतपित्तपूर्वरूपम् ।

पिपासारुचिहृल्लासदेहसादांगगौरवम् । रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

तृषा, अरुचि, उबकाई, शरीरमें ग्लानि, अंगोंमें भारीपन और नेत्रोंमें लाली यह शीतपित्तादिके पूर्व लक्षण हैं ॥ ३ ॥

अथ शीतपित्तलक्षणम् ।

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः सञ्जायते बहिः । सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् । उद-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

र्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे । वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥

ततैयाके काटनेके समान, खुजलीयुक्त, बहुत पीडायुक्त, वमनसहित, ज्वरसंयुक्त और दाहसहित जो त्वचामें चकतेसे पड जाते हैं वह शीतपित्त कहा जाता है और उसमें वायुकी अत्यंत अधिकता होती है ॥४॥

अथोदर्दलक्षणम् ।

सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डले । शैशिरः लेष्मबहुल उदर्द इति कीर्तितः ॥५॥

सोत्सङ्गैः मध्यनिम्नैः । शैशिरः शिशिरर्तुभवः ।

बीचमें नीचा, लालीयुक्त, खुजलीवाले जो चकते शिशिर ऋतुमें होते हैं वे उदर्द कहे जाते हैं और उनमें कफकी अधिकता होती है ॥ ५ ॥

कोठोत्कोठलक्षणम् ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः । मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च । उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

वमन बराबर ठीक खुलकर नहीं होनेसे, पित्त तथा कफ चढकर और ऊपरको उछलकर आया हुआ अन्न रुककर खुजली और लालीयुक्त जो बहुतसे चकते उत्पन्न होते हैं वह कोठ कहे जाते हैं । एक चकता नष्ट होकर दूसरा चकता उत्पन्न होता है इस कारण यह उत्कोठ और कोठ कहा जाता है ॥ ६ ॥

अथ शीतपित्तादिचिकित्सा ।

शीतपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः । त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्च प्रशस्यते ॥७॥ अभ्यंगः कटुतैलेन सेकश्चोष्णेन वारिणा । त्रिफलां क्षौद्रसंयुक्तां खादेच्च नवकार्षिकाम् ॥ ८ ॥ त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता । गुटिका शीतपिताशोंभगन्दरवतां हिता ॥ ९ ॥ सितां त्रिकटुसंयुक्तां गुडमामलकैः सह । यवानीं खादयेच्चापि सव्योषक्षारसंयुताम् ॥ १० ॥ आर्द्रकस्य रसः पेयः पुराणगुडसंयुतः । शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वह्निमान्द्यविनाशनः ॥ ११ ॥ सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाटतिलैः सह । कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ॥ १२ ॥ सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः । तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ॥ १३ ॥ घृतं पीत्वा महातिक्तं शोणितं मोक्षयेत्तथा । स्निग्धस्विन्नस्य संशुद्धिमादौ कोठे समाचरेत् । उत्कोठे शुद्धदेहस्य कुष्ठघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ १४ ॥ निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविभिश्राणि नरः प्रयुञ्ज्यात् । विस्फोटकण्डूक्रिमिशीतपित्तमुदर्दकोठौ च कफं च हन्यात् १५॥

कडवे परवल, नीम और अडूसा इनसे वमन करावे और हरड, बहेडा, आँवला, गूगल तथा पीपल इनसे विरेचन देवे, यह शीतपित्तपर हितकारी है । सरसोंके तेलकी मालिश करनेसे, गरम जलका सेचन करनेसे, सहतके साथ त्रिफलेको भक्षण करनेसे और नवकार्षिकनामक गूगल खानेसे शीतपित्त नष्ट होता है । त्रिफला ३ भाग, गूगल ५ भाग और पीपल १ भाग इनकी बनाई हुई गोली शीतपित्तवालेको, बवासीरवालेको तथा भगन्दर रोगियोंको हितकारी है । यह गोली 'नवकार्षिक गूगल' इस नामसे कही जाती है । त्रिकुटेके साथ चीनी खानेसे, गुडके साथ आमलोंको खानेसे और सोंठ, मिरच, पीपल तथा जवाखारके साथ अजवायनको खानेसे भी शीतपित्त नष्ट हो जाता है । अदरखके रसमें पुराना गुड मिलाकर पीनेसे शीतपित्त अच्छे प्रकारसे नष्ट हो जाता है । और मंदाग्नि दीपन होती है । सरसों, हलदी, चकवड और तिल इनका कल्क बनाकर उसमें सरसोंका तेल मिला मालिश करनेसे शीतपित्त नष्ट हो जाता है । जो मनुष्य गुडके साथ अजवायन खाय और पथ्यभोजन करे तो सम्पूर्ण शरीरमें प्राप्त हुआ उदर्द सात दिनमें नष्ट हो जाता है । महातिक्तक नामक घृतको पीकर रुधिर निकलवानेसे भी उदर्द नष्ट हो जाता है । कोठ उत्पन्न हुआ होय तो प्रथम स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके विरेचन आदिसे शोधन करे और उत्कोठ हुआ होय तो विरेचनादिसे शुद्ध करके पश्चात् कुष्ठ रोगोंकी चिकित्सा करे । नीमके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत्ते और आमलोंको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर नित्य खाय तो विस्फोटक, खुजली, कृमि, शीतपित्त, उदर्द, कोढ और कफ नष्ट होता है ॥ ७--१५ ॥

अथार्द्रकखंडम् ।

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्याद्गोघृतं कुडवद्वयम् । गोदुग्धं प्रस्थयुगलं तदर्द्धा शर्करा मता । ॥ १६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । चित्रकं च विडङ्गं च मुस्तकं नागकेसरम् ॥ १७ ॥ त्वगेलापत्रकर्चूरं प्रत्येकं पलमात्रकम् । विधाय पाकं विधिवत्खादेत्तत्पलसंमितम् ॥ १८ ॥ इदमार्द्रकखंडं हि प्रातर्भुक्तं व्यपोहति । शीतपित्तमुदर्दं च कोठमुत्कोठमेव च ॥ १९ ॥ यक्ष्माणं रक्तपित्तं च कासं श्वासमरोचकम् । वातगुल्ममुदावर्तं शोथं कण्डूं क्रिमीनपि । ॥ २० ॥ दीपयेदुदरे वह्निं बलं वीर्यं च वर्द्धयेत् । वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्मात्सेव्यमिदं सदा ॥ २१ ॥

अदरख ६४ तोले, गायका घी ३२ तोले, गायका दूध १२८ तोले और इससे आधी चीनी लेवे, पीपल, पीपलामूल, कालीमिरच, सोंठ, चीता, वायविडंग, नागरमोथा, नागकेसर, दालचीनी, इलायची, तेजपात और कचूर ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर विधिपूर्वक पाक बनावे, यह आर्द्रकखंड सिद्ध होता है, नित्य प्रातःकाल इसमेंसे चार तोले खाय तो इससे शीतपित्त, उदर्द, कोठ, उत्कोठ, क्षयरोग, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, अरुचि, वातगुल्म, उदावर्त, सूजन, खुजली और कृमि नष्ट होते हैं। जठराग्नि दीपन होती है, बल तथा वीर्यकी वृद्धि होती है और शरीर पुष्ट होता है इस कारण इस प्रयोगको सदैव सेवन करना चाहिये ॥ १६--२१ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठोत्कोठाधिकारः संपूर्णः ।

अथ विसर्पाधिकारः ।

तत्र विसर्पनिदानम् ।

लवणाम्लकटूष्णादिसेवनाद्दोषकोपतः । विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

खारी, खट्टे, तीखे और गरम आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे दोषोंका कोप होकर विसर्प होता है। यह विसर्प सात प्रकारका है और चारों ओर फैल जाता है इस कारण यह विसर्प कहा जाता है। हरे शाक और शिंडाकी आदि पदार्थोंसे भी विसर्प होता है ऐसा चरकाचार्य कहते हैं ॥ १ ॥

अथ विसर्पस्य सप्तधात्वम् ।

वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः । चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ २ ॥

वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक ये चार और दो दो दोषोंसे उत्पन्न हुए तीन इस प्रकार विसर्प सात प्रकारका जानना ॥ २ ॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः । यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥ ३ ॥

वायुसे तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प आग्नेय कहा जाता है, कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प ग्रंथि कहाता है और पित्तसे तथा कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प कर्दमक कहा जाता ॥ ३ ॥

अथ विसर्पस्य दोषदूष्ये ।

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः । विसर्पाणां समुत्पत्तौ हेतवः सप्तधातवः ॥ ४ ॥ त्रयोः मलाः वातवित्तकफाः दोषा दूषका इत्यर्थः । अन्यथा दोषा मला इत्यत्र पुनरुक्तिदोषो लगिष्यते ।

रुधिर, लसीका, त्वचा और मांस यह दूषित होते हैं और वे वात, पित्त तथा कफ इन तीनों दोषोंको दूषित करते हैं इस लिये विसर्पकी उत्पत्तिमें ये सात धातु कारण रूप हैं ॥ ४ ॥

अथ वातजविसर्पलक्षणम् ।

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः । शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्षवान् ॥ ५ ॥ परीसर्पो विसर्पः । वातज्वरसमव्यथः शिरोहृन्नाभ्युदरशूलादियुक्तः । भेदः विदारणेनेव व्यथा । आयामः आकर्षणेनेव व्यथा ।

वातके विसर्पमें वातज्वरकी समान मस्तकमें पीडा, हृदयमें गात्रोंमें तथा उदरमें शूल आदि होते हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूजन होती है, अंग फडकते हैं, सुई चुभोने सरीखी पीडा, चीरने सरीखी पीडा, आकर्षण (खैंचने या चूसने) की समान पीडा और रोमांच हो आते हैं ॥ ५ ॥

अथ पित्तजविसर्पलक्षणम् ।

पित्ताद्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः ॥ ६ ॥ द्रुतगतिः शीघ्रप्रसरणशीलः ।

पित्तका विसर्प तत्काल फैल जाता है, पित्तज्वरके सम्पूर्ण लक्षण होते हैं और अत्यंत लाल होता है ॥ ६ ॥

अथ कफजविसर्पलक्षणम् ।

कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ७ ॥

कफका विसर्प खुजलीयुक्त, स्निग्ध और कफज्वरकी समान पीडा होती है ॥ ७ ॥

अथ सान्निपातिकविसर्पलक्षणम् ।

सान्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः ॥ ८ ॥

त्रिदोषज विसर्पमें ऊपर कहे तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

अथ वातपित्तजाग्नेयाख्यविसर्पलक्षणम् ।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिर्मूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः । अस्थिभेदाऽग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ ९ ॥ करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् । यंयं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्ससः ॥ १० ॥ शीताङ्गाराऽसितो नीलो रक्तो वाशूपचीयते । अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्रुतं च सः ॥ ११ ॥ मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः । व्यथेतांगं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥ १२ ॥ हिध्मां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना । क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ १३ ॥ चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहभ्रमोहवान् । दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १४ ॥ स्फोटैः उपचीयत इति अन्वयः । मर्मानुसारी उदरहृदयानुसारी । हरेद्विसर्प इति अन्वयः । हिध्मां हिक्काम् । ईरयेदुपर्युपरि प्रेरयेत् । निद्रां मरणरूपाम् । अश्नुते प्राप्नोति ।

वात तथा पित्त इन दोषोंसे विसर्प उत्पन्न हुआ होय तो ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतीसार, तृषा, भ्रम, हडफूटन, अग्निकी मंदता, अंधकारदर्शन, अरुचि और संपूर्ण शरीर दहकते हुए अंगारोंकी समान व्याप्त हो, यह विसर्प शरीरके जिस जिस प्रदेशमें फैलता है वहीं वहीं प्रदेश नीला वा लाल अथवा बुझे हुए अंगारेकी समान काला हो जाता है और आगसे फूँकनेकी समान फफोले पड जाते हैं, यह विसर्प शीघ्रगतिवाला है, यह तत्काल उदर और हृदयमें गति करता है इस कारण वायुकी प्रबलतावाला कहा जाता है । यह विसर्प अंगको व्यथित करता है, संज्ञाको नष्ट कर देता है । निद्राको प्रेरणा करता है, श्वासके वेगको और हिचकीको अधिक बढाता है, इस अवस्थाको प्राप्त हुआ मनुष्य कहीं भी सुख नहीं पाता, पृथिवीमें, शयनमें तथा आसन आदिपर बैठनेमें कहींभी चैन नहीं मिलता, दिन रात तडफता है, क्लेशको प्राप्त होता है, मन तथा शरीरको क्लेश होनेसे उसके दुर्बोध निद्रा होती है, उस दुर्बोध निद्राके होनेसे मृत्यु होती है । इसको आग्नेय विसर्प कहते हैं ॥ ९-१४ ॥

अथ वातकफजग्रन्थिविसर्पलक्षणम् ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् । रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥ १५ ॥ दूषयित्वा तु दीर्घाणां वृत्तस्थूलखरात्मनाम् । ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥ १६ ॥ श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्काभिभ्रमैः । मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् । इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पो वातश्लेष्मप्रकोपजः ॥ १७ ॥ कफेन स्वहेतुदुष्टेन । पवनोऽपि स्वहेतुदुष्टः । तेनायं वातश्लैष्मिकः । तं कफं बहुधा भित्त्वा रक्तं वा दूषयित्वा इति अन्वयः । त्वगादिकमिति रक्तस्य विशेषणम् ।

अपने कारणोंसे कुपित हुए कफसे रुकी हुई और अपने कारणोंसे दूषित हुई वायु कफको अनेक प्रका-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसे भेदकर बढे हुए रुधिरवाले मनुष्यके शरीरकी त्वचामें, शिराओंमें, स्नायुओंमें और मांसमें प्राप्त हुए रुधिरको दूषित करके लम्बी, गोल, मोटी, लाल और खरखरी गांठोंकी पंक्तिको उत्पन्न करे है, इन गांठोंके होनेसे तीव्रवेदना, ज्वर, श्वास, खाँसी, अतिसार, शोष, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना और जठराग्निकी मन्दता होती है। इन लक्षण और कारणोंसे यह ग्रन्थिवीसर्प वायु तथा कफके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है ॥ १५–१७ ॥

अथ कफपित्तजकर्दमविसर्पलक्षणम् ।

कफपित्ताज्ज्वरस्तम्भौ निद्रातन्द्राशिरोरुजः। अंगावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ १८ ॥ मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम्। आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ॥ १९ ॥ प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् । पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ॥ २० ॥ स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोफवान्गुरुः । गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥ २१ ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः । शवगन्धी च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥ २२ ॥ स च सर्पति एकदेशमिति अन्वयः पिडकैः पीडाकारिभिः अवकीर्णः व्याप्तः । असितः कृष्णः । मेचकः रूक्षकृष्णः । प्राज्योष्मा प्रचुरोष्मा । स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते, स्पृष्टः सन्नार्द्रो भवति विदीर्यते च । पङ्कत्वक् कर्दमवर्णा त्वक् यत्र सः । शीर्णमांसः गलितमांसः अत एव स्पष्टस्नायुशिरागणः ।

कफसे तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाला जब कर्दमक वीसर्प उत्पन्न होता है तो उसमें ज्वर, जडता, निद्रा, तन्द्रा, मस्तकमें पीडा, अंगोंमें ग्लानि, विक्षेप (हाथ पावोंको इधर उधर पटकना), बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निकी मन्दता, हडफूटन, तृषा, इन्द्रियोंमें भारीपन, आमसहित दस्तका आना और मुखादि स्रोतोंमें कफ लिपटासा रहता है । यह विसर्प एक प्रदेशको ग्रहण करता है । विशेष करके आमाशयमें फैल जाता है, इसमें विशेष पीडा नहीं होती । अत्यन्त पीली, लाल तथा सफेद फुंसियोंसे व्याप्त हो, स्निग्ध, काला, रूखे काले रंगका, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गम्भीर पाकवाला, छूनेसे काला हो जाय, फट जाय, कीचकी समान त्वचाका रंग हो, मांसको गलाकर गिरा देवे, तथा स्नायु और शिराओंको स्पर्श करे और उसमें मुरदेकी समान वास आवे उसको कर्दमक विसर्प कहते हैं ॥ १८–२२ ॥

अथ सान्निपातिकविसर्पलक्षणम् ।

सन्निपातसमुत्थस्तु सर्वरूपसमन्वितः ॥ २३ ॥

सन्निपातसे उत्पन्न हुए विसर्पमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ २३ ॥

अथ क्षतागंतुनिमित्तकाष्ठमवीसर्पलक्षणम् ।

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् । विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम् । स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥ २४ ॥ बाह्यहेतोः शस्त्रप्रहारव्यालदन्तनखाद्यागन्तुहेतोः । श्यावशोणितं कृष्णवर्णरक्तम् ।

शस्त्र आदिके आघातसे, व्याघ्र सिंह आदि जानवरोंके दांत या नख आदिका लग जाना इत्यादि आगन्तुक कारणोंसे क्षत होकर प्रकोपको प्राप्त हुई वायु रुधिर और पित्तको प्रेरित करके विसर्पको उत्पन्न करे है । यह विसर्प कुलथीके दानोंकी समान फुंसियोंसे व्याप्त होता है, काले रुधिरयुक्त होता है और सूजन, ज्वर, वेदना तथा दाहसे अत्यन्त पीडित होता है ॥ २४ ॥

अथ विसर्पोपद्रवाः ।

ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः । अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः २५

ज्वर, अतीसार, वमन, त्वचाका फटना, मांसका फटना, ग्लानि, अरुचि और पकना ये सब विसर्पोंके उपद्रव हैं ॥ २५ ॥

अथ विसर्पस्य साध्यासाध्यता ।

सिद्ध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति । पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २६ ॥ पित्तात्मकोऽञ्जनवपुः पित्तजः स च कज्जलवर्णः । सर्व एव साध्या अपि ।

सान्निपातिक विसर्प और क्षतज विसर्प असाध्य हैं, पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प जो काले रंगका होय तो असाध्य है, वातसे उत्पन्न हुआ विसर्प, कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प और विना काले रंगका पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प साध्य है, साध्य विसर्पभी जो मर्मस्थानोंमें उत्पन्न होंय तो असाध्य जानने ॥ २६ ॥

अथ विसर्पचिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेचनास्रविमोक्षणैः । उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ २७ ॥ रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला । घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥२८॥ चन्दनमत्र रक्तं प्रयोज्यम् । कशेरुभृङ्गाटकपद्मगुन्द्रैः सशैवलैः सोत्पलकर्दमैश्च । वस्त्रान्तरैः पित्तकृते विसर्पे लेपो विधेयः सघृतः सुशीतः ॥ २९ ॥ त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् । नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पके ॥ ३० ॥ समंगा लज्जालुः । वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्पणे हितम् । वातश्लेष्महरं कर्म ग्रन्थिवीसर्पणे हितम् ॥३१॥ पित्तश्लेष्मप्रशमनं हितं कर्दमसंज्ञके । त्रिदोषजे क्रियां कुर्याद्विसर्पे त्रितयापहाम् ॥ ३२ ॥ शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठबालैः । लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारी ॥ ३३ ॥ नतं तगरम् । चन्दनं रक्तं ग्राह्यम् इति दशांगो लेपः । परिषेकाः प्रलेपाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्कलैः । पद्मकोशीरमधुकैश्चन्दनैर्वा विसर्पणे ॥३४॥ भूनिम्बवासाकटुकापटोलीफलत्रयीचन्दनानिम्बसिद्धः । विसर्पदाहज्वरशोथकण्डूविस्फोटतृष्णावमिहत्कषायः ॥ ३५ ॥ कुष्ठेषु यानि सर्पींषि व्रणेषु विविधेषु च । विसर्पे तानि योज्यानि सेकालेपनभोजनैः ॥ ३६ ॥

जिनसे दाह उत्पन्न न होय ऐसे विरेचन, वमन तथा लेपन, सेचन और रक्तमोक्षणसे विसर्पका उपचार करना चाहिये, और उपचार करते समय 'यह विसर्प किस दोषसे उत्पन्न हुआ है' ऐसा अवश्य ध्यान देना चाहिये । रासना, नील कमल, देवदारु, लाल चन्दन, मुलैठी और खिरैंटी इनको घी और दूधमें पीसकर लेप करनेसे वातका विसर्प नष्ट हो जाता है । कसेरु, सिंघाडे, पद्माख, गुन्द्रबटेर, सिवार, कमल और कींच इनको पीसकर घीमें मिलाकर वस्त्रमें रखकर शीतल लेप करनेसे पित्तका विसर्प नष्ट हो जाता है । हरड, बहेडा, आमला, पद्माख, खस, लज्जावन्ती, कनेर, नरसलकी जड और लाल जवासा इनका लेप करनेसे कफका विसर्प नष्ट हो जाता है । आग्नेय नामक विसर्प उत्पन्न होय तो वात तथा पित्तको शमन करना हितकारक है । ग्रन्थिनामक विसर्प उत्पन्न हुआ होय तो वायुको तथा कफको शमन करना हितकारी है । कर्दमक नामक विसर्प उत्पन्न हुआ होय तो पित्तको तथा कफको शमन करना हितकारी है । सान्निपातिक जो विसर्प उत्पन्न होय तो त्रिदोषको शमन करनेवाली क्रिया करनी चाहिये । सिरसकी छाल, मुलैठी, तगर, लालचन्दन, इलायची, बालछड, हलदी, कूट और सुगन्धवाला इन दश पदार्थोंको पीसकर लेप करनेसे विसर्प, कोढ, ज्वर और सूजन नष्ट हो जाती है । इसको 'दशांग लेप' कहते हैं । पंचवल्कलोंका अथवा चंदनका अथवा पद्माख, खस मुलैठी इनके जलका सेचन करनेसे और गाढ़ा प्रलेप करनेसे विसर्प नष्ट हो जाता है । चिरायता, अडूसा, कुटकी, कडवे परवल, हरड, बहेडा, आमले, लाल चन्दन और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे विसर्प, दाह, ज्वर, सूजन, खुजली, विस्फोटक, तृषा और वमन ये सब दूर हो जाते हैं । कुष्ठरोगमें तथा अनेक प्रकारके व्रणोंपर जो जो घी कहे हैं उनका सेचन, लेपन और भोजनमें विसर्प रोगीको उपयोग करावे ॥ २७-३६ ॥

अथ करंजतैलम् ।

करञ्जसप्तच्छदलांगलीकस्नुह्यर्कदुग्धानलभृ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गराजैः। तैलं निशामूत्रविमिश्रैर्विपक्वं विसर्प-विस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ ३७ ॥

करञ्ज, सतौना, कलिहारी, थूहरका दूध, आकका दूध, चीता, भांगरा, हलदी, गोमूत्र और वत्सनाभ इनसे पकाये हुए तैलकी मालिश करनेसे विसर्प, विस्फोट और विचर्चिका नष्ट हो जाती है ॥ ३७ ॥

कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्तचिकित्सयाप्याशु हरेद्विसर्पान्। सर्वान्विपक्वान्परिशोध्यधीमान्व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ३८ ॥

कुष्ठरोग, स्फोटकरोग और मसूरिकारोगमें जो चिकित्सा कही है, उसी चिकित्सासे तत्काल विसर्पका हरण करे और बुद्धिमान् वैद्य पके हुए सब विसर्पोंका व्रणकी चिकित्सासे उपचार करे ॥ ३८ ॥

इति विसर्पाधिकारः संपूर्णः।

अथ स्नायुरोगाधिकारः।

तत्र स्नायुनिदानं लक्षणं च।

शाखासु कुपितो दोषाः शोथं कृत्वा विसर्पवत्। भिन्त्वैव तं क्षते तत्र सोष्ममांसं विशोष्य च ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तुनिभं सूत्रं तत्पिण्डैस्तक्रशक्तुजैः। शनैःशनैः क्षतात्याति छेदात्तत्कोपमावहेत् ॥ २ ॥ तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत्। स स्नायुरिति विख्यातः क्रियोक्ताऽत्र विसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्वोर्यदि प्रमादेन त्रुट्यते जंघयोरपि। संकोचं खंजतां चापि छिन्नो नूनं करोत्यसौ ॥ ४ ॥

हाथ, पाँव आदि शाखाओंमें कोपको प्राप्त हुआ दोष विसर्पकी समान सूजनको उत्पन्न करे है उस सूजनको भेदकर उस क्षतके गरमही मांसको सुखाकर तन्तुकी समान डोरेको उत्पन्न करे है, उसको स्नायु रोग कहते हैं और देशभाषामें उसका नाम नहरुवा है इस डोरेपर तक्रमें पिसे हुए सत्तुओंकी लुपडी बांधनेसे धीरे धीरे क्षत (घाव) मेंसे बाहर निकलता है। यह डोरा जो टूट जाय तो भारी सूजनको उत्पन्न करे है। और संपूर्ण निकल जाय तो सूजन शांत हो जाती है। यह रोग एक स्थानमें शांत होकर फिर दूसरे स्थानमें प्रकट होता है इस रोगकी चिकित्सा विसर्पकी समान करनी चाहिये। जो यह डोरा मोहसे बाहूमें अथवा पांवकी पिण्डलियोंमें टूट जाय तो हाथको टूँटा और पांवको लूला कर देता है ॥ १--४ ॥

अथ स्नायुरोगचिकित्सा।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथोचितम्। रामठं शीततोयेन पीतं स्नायुकरोगनुत् ॥ ५ ॥ स्वेदात्स्नायुकमत्युग्रं भेकः कांजिकसाधितः। तद्वद्बब्बूलजं बीजं पिष्टं हन्ति प्रलेपनात् ॥ ६ ॥ गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम्। पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ७ ॥ मूलं सुषव्या हिमवारिपिष्टं पानादिदं तन्तुकरोग्रमुग्रम्। शान्तिं नयेत्सव्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगन्धेन घृतेन पीत्वा ॥ ८ ॥ गन्धर्वगन्धेन गन्धर्वगन्धोऽस्यास्तीति स गंन्धर्वगंधः अश्वगन्धः तेन। अतिविषमुस्तक भार्ङ्गीविश्वौषधपिप्पलीविभीतक्यः। चूर्णमिदं तन्तुघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ ९ ॥ शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः कांजिकेन सुसैन्धवैः। लेपनं स्नायुकव्याधेः शमनं परमं मतम् ॥ १० ॥ अर्हिस्नमूलकल्केन तोयपिष्टेन यत्नतः। लेपसम्बन्धनात्तन्तुर्निःसरेन्नैवसंशयः ॥ ११ ॥

इस रोगपर स्नेहन, स्वेदन और प्रलेपादि योग्य चिकित्सा करनी चाहिये। हींगको पीसकर शीतल जलके साथ पीनेसे स्नायुरोग नष्ट होता है। भेंडकको कांजीमें पकाकर उसका स्वेद देनेसे स्नायुकी सब पीडा शांत होती है। बबूरके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे स्नायुकी पीडा शांत होती है। तीन दिनतक गायका घी पीकर पश्चात् तीन दिनतक निर्गुण्डीका स्वरस पीनेसे अत्यंत उग्र स्नायुकी पीडाभी अवश्य नष्ट हो जाती हैं। कलींजीकी जडको शीतल जलमें पीसकर पीनेसे स्नायुरोग (नहरुआ) अवश्य नष्ट हो जाता है। अथवा असगन्धसे पकाये हुए घृतको पीनेसे व्रणसहित उग्र स्नायुरोग नष्ट होता है। अतीस,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नागरमोथा, भारंगी, सोंठ, पीपल और बहेडा इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीनेसे मनुष्योंका स्नायुरोग दूर होता है। सैंजिनेकी जड और पत्तोंको सेंधेनिमकके साथ कांजीमें पीसकर लगानेसे स्नायुरोग अवश्य नष्ट हो जाता है। अहिंसा (हींस) की जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे स्नायु निकल जाता है इसमें संशय नहीं ॥ ५-११ ॥

इति स्नायुरोगाधिकारः संपूर्णः।

अथ विस्फोटकाधिकारः।

तत्र विस्फोटकविप्रकृष्टसन्निकृष्ट-निदानम्।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च। तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यंति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥ त्वचमाश्रित्य ते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च। घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥२॥ ऋतुदोषेण ऋतुहेतुकशीतोष्णादीनामतियोगेन। विपर्ययेण ऋतूचिताहारविहारवैपरीत्येन त्वचमाश्रित्य त्वचि विस्फोटान्कुर्वन्ति इत्यर्थः। ज्वरपुरःसराञ्ज्वरपूर्वान्।

तीखे (चरपरे), खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, दाहकारक, रूक्ष और खारी पदार्थोंसे, अजीर्णसे, भोजनपर भोजन करनेसे, धूपका सेवन करनेसे और ऋतुओंके फेरफारसे और उन ऋतुओंमें आहार-विहारकी विपरीततासे कोपको प्राप्त हुए वातादिदोष रुधिर, मांस तथा अस्थियोंको दूषित करके ज्वरको उत्पन्न कर त्वचामें सब प्रकारके विस्फोटोंको उत्पन्न करे हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ विस्फोटसामान्यलक्षणम्।

अग्निदग्धा इव स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः। क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥ ३ ॥ रक्तपित्तजाः एतेन सर्वेषु विस्फोटकेषु रक्तपित्तयोः प्रधानकारणत्वम्। यथा शूलेषु वातस्य तथा वातानुगतिरपि बोद्धव्या तथा च भोजः—यदा रक्तं च पित्तं च वातेनानुगतं त्वचि। अग्निदग्धनिभान्स्फोटान्कुरुतः सर्वदेहगान् ॥ ४ ॥

ज्वरयुक्त रुधिर तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ अग्निसे जलाये हुएकी समान ऐसा फोडा शरीरके किसी एक प्रदेशमें अथवा सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न हो उसको विस्फोटक कहते हैं। जिस प्रकार सर्वप्रकारकी पीडाओंमें वायुका प्राधान्य है उसी प्रकार सर्व प्रकारके विस्फोटकोंमें रुधिर और पित्तको प्रधानता है, विस्फोटकोंको उत्पन्न करनेमें रुधिर तथा पित्तको वायुका सम्बन्ध भी होता है ऐसा जानना। क्योंकि भोज कहता है कि—"जब रुधिर तथा पित्त वायुके सम्बन्धी होते हैं तब शरीरके एक प्रदेशमें अथवा सर्वदेहकी त्वचामें अग्निसे जले हुएकी समान फोडोंको उत्पन्न करे हैं" ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वातजविस्फोटलक्षणम्।

शिरोरुक् शूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम्। सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥ शूलं तोदरूपम्।

मस्तकमें सुई चुभोने सरीखी विशेष पीडा, ज्वर, तृषा, संधियोंका टूटना और कालापन यह वातज विस्फोटके लक्षण जानने ॥ ५ ॥

अथ पित्तजविस्फोटकलक्षणम्।

ज्वरदाहरुजापाकस्रावतृष्णासमन्वितम्। पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ६ ॥

ज्वर, दाह, वेदना, पकना, स्राव, तृषा और पीला तथा लालीपन यह पित्तज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ६ ॥

अथ कफजविस्फोटकलक्षणम्।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः। यस्मिन्नरुक् चिरात्पाकः स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ७ ॥ जाड्यम् जडत्वमंगानाम्।

वमन, अरुचि, अंगोंमें जडता, खुजली, कठिनता, पांडुवर्ण, पीडारहित और बहुत समयमें पकना ये कफज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ७ ॥

अथ कफपित्तजविस्फोटकलक्षणम्।

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरैतैश्च कफपैत्तिकः ॥८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खुजली, दाह, ज्वर और वमन यह कफतथा पित्त-सम्बन्धी विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ८ ॥

अथ वातपित्तजविस्फोटकलक्षणम् ।
वातपित्तकृतो यस्तु तत्र स्यात्तीव्रवेदना ॥९॥

वायु तथा पित्त इनसे उत्पन्न हुए विस्फोटकमें तीव्र वेदना होती है ॥ ९ ॥

अथ वातकफजविस्फोटकलक्षणम् ।
कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात् कफवातिकम् ॥ १० ॥

खुजली, अंगोंमें जडता और भारीपन इन लक्षणोंसे वायु तथा कफ दोनोंका विस्फोटक जानना ॥ १० ॥

अथ त्रिदोषजविस्फोटकलक्षणम् ।
मध्यनिम्नोन्नतान्तश्च काठिनः स्वल्पपाकवान् । दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजाज्वराः । प्रलापो वेपथुर्मूर्च्छा सोऽसाध्यश्च त्रिदोषजः ॥ ११ ॥ मोहो विपरीतं ज्ञानम् । मूर्च्छा सर्वथा ज्ञानशून्यता ।

बीचमें नीचा, चारों ओर ऊंचा, कठिन, थोडे पकनेवाला, दाह, लाली, तृषा, मोह, वमन, मूर्च्छा, वेदना, ज्वर, बकवाद, कंप और अत्यन्त बेहोशी इनसे जानना कि तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ है, यह विस्फोटक असाध्य है ॥ ११ ॥

अथ रुधिरजन्यविस्फोटकलक्षणम् ।
वेदितव्याश्च रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना । गुञ्जाफलसमा रक्ता रक्तस्रावा विदाहिनः । न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि । ॥ १२ ॥ पैत्तिकेन हेतुना पित्तस्य हेतुना कट्वादिना रक्तपित्तस्य तुल्यत्वात् । सिद्धैर्योगशतैरपि ते सिद्धिं न समायान्ति ।

पित्तको कुपित करनेवाले जो कारण हैं उनहीं कारणोंसे रुधिर भी कुपित होता है, इस प्रकार कुपित रुधिरसे उत्पन्न हुए विस्फोटक चौंटलीकी समान लाल लाल स्रववाले और दाह करनेवाले होते हैं । यह विस्फोटक सैकडों सिद्ध योगोंसे भी आराम नहीं होते । तीखे आदि जो पदार्थ पित्तको कुपित करनेके कारण हैं उनसेही रुधिर भी कुपित होना कहा है, उसका कारण यह है कि रुधिर और पित्त समान हैं ॥ १२ ॥

अथ विस्फोटकभेदाः ।
एते चाष्टविधा बाह्या आन्तरोऽपि भवेदयम् । तस्मिन्नन्तर्यथा तीव्रा ज्वरयुक्ताऽभिजायते ॥ १३ ॥ यस्मिन्बहिर्गते स्वास्थ्यं न वा तस्य बहिर्गतिः । तत्र वातिकविस्फोटक्रिया कार्या विजानता ॥ १४ ॥

बाहरके विस्फोटक आठ प्रकारके हैं, कि जिनका निरूपण ऊपर किया है । जिस प्रकार विस्फोटक बाहर होते हैं उसी प्रकार एक भीतर भी होता है । और वह नववां है । भीतरका विफोटक होय तो भीतर तीव्र पीडा होती है, और ज्वरभी होता है। यह विस्फोटक जो बाहर निकले तो स्वस्थता होती है परन्तु समयपर यह विस्फोटक बाहर नहीं निकलता । इस विस्फोटकमें समझकर वैद्य वातसम्बन्धी विस्फोटककी समान चिकित्सा करे ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ विस्फोटकोपद्रवाः ।
तृट्श्वासमांससङ्कोचदाहहिक्कामदज्वराः । विसर्पमर्मसंरोधास्तेषामुक्ता उपद्रवाः ॥ १५ ॥ मांससंकोचः मांसस्य शठितत्वम् । मर्मसंरोधो मर्मव्यथा । तेषां विस्फोटानाम् उपद्रवाणां लक्षणान्तरं केचित्पठन्ति । हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा सांगमर्दो हृदि व्यथा । विसर्पज्वरहल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः १६ ॥

तृषा, श्वास, मांसका सडना, दाह, हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प और मर्मोंमें व्यथा ये विस्फोटकके उपद्रव जानने । कितनेक वैद्य विस्फोटकोंके उपद्रवोंको प्रकारान्तरसे कहते हैं । हिचकी, श्वास, अरुचि, तृषा, अंगोंका टूटना, हृदयमें व्यथा, विसर्प, ज्वर और उबकाई यह विस्फोटकके उपद्रव हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ विस्फोटकस्य साध्यत्वं कष्टसाध्यासाध्यता च ।
एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः । सर्वरूपान्वितो घोरो ह्यसाध्यो मृत्युपद्रवः ॥ १७ ॥

.CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक दोषसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक साध्य है, दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक कष्टसाध्य है, सर्व दोषोंके लक्षणोंसे युक्त और अनेक उपद्रवयुक्त विस्फोटक भयंकर है और असाध्य है ॥ १७ ॥

अथ विस्फोटकचिकित्सा।

विस्फोटे लंघनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम्। यथादोषबलं वीक्ष्य युक्तमुक्तं विरेचनम् ॥ १८ ॥ जीर्णशालियवा मुद्गा मसूराश्चाढकी तथा। एतान्यन्नानि विस्फोटे हितानि मुनयोऽब्रुवन् ॥ १९ ॥ द्वे पञ्चमूलौ राना च दार्व्युशीरं दुरालभा। गुडूची धान्यकं मुस्तमेषां क्वाथं पिबेन्नरः। विस्फोटान्नाशयत्याशु समीरणनिमित्तकान् ॥ २० ॥ द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः। कटुकालाजदुःस्पर्शैः सितायुक्तं तु पैत्तिकम् ॥ २१ ॥ भूनिम्बसवचावासात्रिफलेन्द्रजवत्सकैः। पिचुमर्दपटोलाभ्यां कफजे मधयुक्पृतम् ॥ २२ ॥ किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदवासकैः। पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितैः। क्वथितैर्द्वादशांगं तु सर्वविस्फोटनाशनम् ॥ २३ ॥ विस्फोटव्याधिनाशाय तण्डुलाम्बुप्रयोजितैः। बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कार्यो विजानता ॥ २४ ॥ छिन्नापटोलभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः। खदिराब्दयुतैः क्वाथो हन्ति विस्फोटकज्वरम् ॥ २५ ॥ चन्दनं नागपुष्पं च सारिवा तण्डुलीयकम्। शिरीषवल्कलं जातीलेपः स्याद्दाहनाशनम् ॥ २६ ॥ उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं सारिवाद्वयम्। जलपिष्टेन लेपेन स्फोटदाहार्तिनाशनम् ॥ २७ ॥ पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत्। कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्ति सवेदनम् ॥ २८ ॥ वक्षग्रन्थिं गलग्रंथिं कर्णग्रन्थिं च नाशयेत्। हन्याच्च स्फोटकं ताम्रं पुत्रजीवो विनाशयेत् ॥ २९ ॥

दोषका बलाबल विचार कर लंघन, वमन और पथ्यभोजन करावे तथा विरेचन देवे, यह विस्फोटकपर हितकारी है। पुराने लाल चावल, जौ, मूग, मसूर और अडहर यह सब अन्न विस्फोटकरोगीको हितकारी हैं, ऐसा मुनियोंने कहा है। बृहत्पंचमूल, लघुपंचमूल, रासना, दारुहल्दी, खस, धमासा, गिलोय, धनियाँ और नागरमोथा इनका काथ पीनेसे वातज विस्फोटक नष्ट होता है। दाख, कुम्भेर, खजूर, परवल, नीम, अडूसा, कुटकी, धानकी खीलें और धमासा इनका काथ बनाकर मिश्री डालकर पीनेसे पित्तजन्य विस्फोटक नष्ट होता है। चिरायता, वच, अडूसा, हरड, बहेडा, आमला, इन्द्रजौ, कुडा, नीम और कडवे परवल इनका काथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे कफजन्य विस्फोटक नष्ट हो जाता है। चिरायता, नीम, मुलैठी, नागरमोथा, अडूसा, कडवे परवल, पित्तपापडा, खस, हरड, बहेडा, आमले और इन्द्रजौ इन बारह औषधियोंका काथ बनाकर पीनेसे सर्व प्रकारके विस्फोटक नाश होते हैं। इसको द्वादशांग काथ कहते हैं। इन्द्रजौको चावलोंको जलमें पीसकर पीनेसे विस्फोटक नष्ट होते हैं। गिलोय, कडवे परवल, चिरायता अडूसा, नीम, पित्तपापडा, खैर और नागरमोथा इनका काथ बनाकर पीनेसे विस्फोटक ज्वर नष्ट होता है। लाल चंदन, नागकेसर, सारिवा, चौलाई, सिरसकी छाल और चमेली इनका लेप करनेसे विस्फोटकका दाह दूर हो जाता है। कमल, लाल चंदन, लोध, खस और दोनों प्रकारकी सारिवा इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे विस्फोटककी दाहकी पीडा शान्त हो जाती है। पतिजियाकी मींगको जलमें पीसकर लेप करनेसे काले फोडे, विषैले फोडे और उनकी वेदना तत्काल शान्त हो जाती है। जियापोतेका लेप करनेसे कोखकी गांठ, गलेकी गांठ, कानकी गांठ और लाल फोडे तत्काल नष्ट हो जाते हैं॥१८-२९॥

इति विस्फोटकाधिकारः संपूर्णः।

अथ फिरंगरोगाधिकारः।

तत्र फिरंगशब्दनिरुक्तिः।

फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥ १ ॥

यह रोग फिरंग नामक देशमें विशेष करके होता है, इस कारण व्याधियोंको जाननेवाले प्रवीण वैद्य इसको फिरंग रोग कहते हैं ॥ १ ॥

अथ फिरंगनिदानम्।

गन्धरोगः फिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम्। फिरंगिणोऽङ्गसंसर्गात्फिरंगिण्याः प्रसंगतः ॥ २ ॥ व्याधिरागन्तुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः। भवेत्तल्लक्षयेद्वैद्यो लक्षणैर्भिषजांवरः ॥३॥ फिरंगिण्याःप्रसंगत इति विशेषार्थम्।

यह गंधरोग अर्थात् गंधसे होनेवाला रोग है, यह फिरंगी मनुष्योंके संसर्गसे और फिरंगदेशकी स्त्रियोंके प्रसंगसे उत्पन्न होता है। ऐसा होनेसे यह रोग आगन्तुक है और इसमें दोषोंका सम्बन्ध पीछे होता है। उत्तम वैद्य "कौनसे दोषकी बाहुल्यतासे यह रोग हुआ है" उन दोषोंके लक्षण अपनी बुद्धिके अनुसार जाने। फिरंगी देशकी स्त्रियोंके साथ प्रसंग करनेसे यह रोग विशेष करके होता है इस सूचनानुसार प्रथम वचनसे समझानेपर भी ठीक रीतिसे कहा है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ फिरंगरोगपूर्वरूपम्।

फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तरस्तथा बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥ ४ ॥ तत्र बाह्यः फिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशोऽल्परुक्। स्फुटितो व्रणवद्वैद्यः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ॥ ५ ॥ सन्धिष्वाभ्यंतरः स स्यादामवात इव व्यथाम्। शोथं च जनयेदेष कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥ ६ ॥

बाहरका, भीतरका और बाहर तथा भीतर इस प्रकार यह रोग तीन प्रकारका है अब इनके लक्षण कहता हूँ। बाहरका फिरंग विस्फोटककी समान होता है, थोडी पीडा होती है और व्रणकी समान फूटता है इस बाहरके फिरंगरोगको वैद्य सुखसाध्य कहते हैं। भीतरका फिरंग संधियोंमें होता है, आमवातकी समान पीडा करता है और सूजनको उत्पन्न करता है। इस भीतरके फिरंगको वैद्य कष्टसाध्य कहते हैं (तीसरे प्रकारके फिरंगमें दोनों प्रकारके लक्षण होते हैं) ॥४-६॥

अथ फिरंगस्योपद्रवाः।

कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मन्दता। अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ७

कृशता, बलका नाश, नाकका बैठ जाना, अग्निकी मंदता, अस्थियोंमें शोष और हड्डियोंका टेढा तिरछा हो जाना ये फिरंगके उपद्रव जानने ॥ ७ ॥

अथ फिरंगस्य साध्यत्वं कष्टसाध्यासाध्यता च।

बहिर्भवो भवेत्साध्यो नवीनो निरुपद्रवः। आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ॥८॥ बहिरन्तर्भवो जीर्णो क्षीणस्योपद्रवैर्युतः। व्याप्तो व्याधिरसाध्योऽयमित्याहुर्मुनयः पुरा ॥ ९ ॥

बाहरका उत्पन्न हुआ नवीन और उपद्रवरहित फिरंग साध्य है। भीतरका फिरंग कष्टसाध्य है, बाहर तथा भीतर इन दोनों प्रकारसे उत्पन्न हुआ, क्षीण शरीरवाले मनुष्योंके उत्पन्न हुआ, पुराना, उपद्रवयुक्त और व्याप्त हुआ फिरंग रोग असाध्य है, ऐसा प्राचीन ऋषियोंने कहा है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ फिरंगचिकित्सा।

तत्र कर्पूररसः।

फिरंगसंज्ञकं रोगं रसः कर्पूरसंज्ञकः। अवश्यं नाशयेदेतदूचुः पूर्वचिकित्सकः ॥ १० ॥ लिह्यते रसकर्पूरप्राशने विधिरुत्तमः। अनेन विधिना खादेन्मुखे शोथं न विन्दति ॥ ११ ॥ गोधूमचूर्णं सन्नीय विदध्यात्सूक्ष्मकूपिकाम्। तन्मध्ये निक्षिपेत्सूतं चतुर्गुंजामितं भिषक् ॥ १२ ॥ ततस्तु गुटिकां कुर्याद्यथा न दृश्यते बहिः। सूक्ष्मचूर्णं लवंगस्य तां वटीमवधूलयेत् ॥ १३ ॥ दन्तस्पर्शो यथा न स्यात्तथा तामम्भसा गिलेत्। ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चाच्छाकाम्ललवणांस्त्यजेत्। श्रममातपमध्वानं विशेषास्त्रीनिषेवणम् ॥ १४ ॥

रसकपूरको खानेसे फिरंगरोग अवश्य नष्ट हो जाता है, ऐसा प्राचीन वैद्योंने कहा है। अब रसक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर खानेकी विधि कहते हैं कि जिस प्रकार खानेसे मुखमें छाले नहीं पडते। गेहूँके आटेको पानीमें सानकर उसकी छोटी २ कुलियें बना लेवे उनमे वैद्य चार २ रत्तीभर रसकपूर रखकर गोलियां बना लेवे जिससे कि पारा बाहर न दीखे फिर उन गोलियोंको लौंगके बारीक चूर्णमें लुटाकर ऐसी रीतिसे पानीके साथ निगल जावे कि जिससे दांत न लगे और इसके पश्चात् नागरबेलका पान खाय। रसकपूरको खानेवाला मनुष्य शाक, खारी पदार्थ, खट्टे पदार्थ, परिश्रम, धूप, मार्ग और मैथुनको त्याग देवे ॥ १०–१४ ॥

अथ सप्तशालिवटी।

पारदष्टङ्कमानः स्यात्खदिरष्टंकसंमितः। आकारकरभश्चापि ग्राह्यष्टंकद्वयोन्मितः। टंकत्रयोन्मितं क्षौद्रं खल्वे सर्वं विनिक्षिपेत् ॥ १५ ॥ संमर्द्य तस्य सर्वस्य कुर्यात्सप्तवटीर्भिषक्। स रोगी भक्षयेत्प्रातरेकैकाम्बुना वटीम्। वर्जयेदम्ललवणं फिरङ्गस्तस्य नश्यति ॥ १६ ॥

पारा २४ रत्ती, कत्था २४ रत्ती, अकरकरा ४८ रत्ती और सहत ७२ रत्ती इन सबको खरलमें डालकर खूब पीसकर सात गोलियां बना लेवे, प्रातःकाल एक एक गोली जलके साथ खाय और खट्टे तथा खारी पदार्थोंका त्याग कर देवे तो फिरंगरोग नष्ट हो जाता है। यह गोली सप्तशालिवटी इस नामसे कही जाती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ धूमप्रयोगः।

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावानेव हि गन्धकः। तण्डुलाश्चाक्षमात्राः स्युरेषां कुर्वीत कज्जलीम् ॥ १७ ॥ तस्याः सप्तवटीः कुर्यात्तामिर्धूमं प्रयोजयेत्। दिनानि सप्त तेन स्यात्फिरंगान्तो न संशयः ॥ १८ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला और चावल १ तोला इनकी कज्जली बनाकर सात गोलियें बना लेवे सात दिनतक इन गोलियोंका धुआँ पीनेसे फिरंगरोग नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

पीतपुष्पबलापत्ररसैष्टंकमितं रसम्। हस्ताभ्यां मर्दयेत्तावद्यावत्सूतो न दृश्यते। ततः संस्वेदयेद्धस्तावेवं वासरसप्तकम् ॥ १९ ॥ त्यजेल्लवणमम्लं च फिरङ्गस्तस्य नश्यति। चूर्णयेन्निम्बपत्राणि पथ्यानिम्बाष्टमांशिकाः। धात्री च तावती रात्री निम्बषोडशभागिका ॥ २० ॥ क्षाणमानमिदं चूर्णमश्नीयादम्भसा सह। फिरंगं नाशयत्येव बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥ २१ ॥

चौबीस रत्ती पारेको पीले फूलकी खिरैंटीके पत्तोंके रसमें मिलाकर हाथोंसे ऐसा मले कि पारा न दीखे। फिर दोनों हाथोंको अग्निसे सेके यह विधि सात दिनतक करे और खारी तथा खट्टे पदार्थोंको त्याग देवे तो फिरंगरोग अवश्य नष्ट हो जाता है। नीमके पत्तोंका चूर्ण कर उसमें आठवां भाग हरडका चूर्ण मिलावे, आठवां भाग आमलोंका चूर्ण मिलावे और सोलहवां भाग हलदीका चूर्ण डाले। इसमेंसे नित्य चौबीस रत्ती चूर्ण जलके साथ खाय तो बाहरका तथा भीतरका फिरंगरोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १९–२१

चोपचीनीभवं चूर्णं क्षाणमानं समाक्षिकम्। फिरंगव्याधिनाशाय भक्षयेल्लवणं त्यजेत्। ॥ २२ ॥ लवणं यदि वा त्यक्तुं न शक्नोति यदा जनः। सैन्धवं स हि भुञ्जीत मधुरं परमं हितम् ॥ २३ ॥

चौबीस रत्ती चोबचीनीके चूर्णको सहतमें मिलाकर खावे और इसपर निमकका त्याग कर देवे तो फिरंगरोग नष्ट हो जाता है। जो निमकका त्याग न कर सके तो उसके अभावमें सेंधानिमक खाय कारण यह है कि सेंधानिमक स्वादिष्ठ और अत्यन्त हितकारी है ॥ २२ ॥ २३ ॥

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावन्मात्रं तु गन्धकम्। तावन्मात्रस्तु खदिरस्तेषां कुर्यात्तु कज्जलीम्। रजनीकेसरत्रुट्यो जीरयुग्मं यवानिका ॥ २४ ॥ चन्दनद्वितयं कृष्णा वांसी मांसी च पत्रकम्। अर्द्धकर्षमितं सर्वं चूर्णयित्वा च निक्षिपेत्। तत्सर्वं मधुसर्पिर्भ्यां द्विपलाभ्यां पृथक्पृथक्। ॥ २५ ॥ मर्दयेदथ तत्खादेदर्द्धकर्षमितं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नरः । व्रणः फिरंगरोगोत्थस्तस्यावश्यं विनश्यति ॥ २६ ॥ अन्योऽपि चिरजातोऽपि प्रशाम्यति महाव्रणः । एतद्भक्षयतः शोथो मुखस्यान्तर्न जायते ॥ २७ ॥ वर्जयेदत्र लवणमेकविंशतिवासरान् ।

पारा १ तोला, गन्धक एक तोला और पपरिया कत्था एक तोला लेकर कजली बनावे, फिर हलदी, नागकेसर, छोटी इलायची, बडी इलायची, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, चन्दन, लाल चन्दन, पीपल वंचलोचन, बालछड और तेजपात इन सबको एकत्र पीसकर आधा तोला चूर्ण उक्त कजलीमें मिला लेवे फिर इन सबको आठ तोले सहतमें और आठ तोले घीमें मिलाकर इसमेंसे छः मासे नित्य खाय तो फिरंगरोग अवश्य नष्ट हो जाता है, अन्यान्य व्रण और बहुत दिनोंके पुराने व्रण भी इससे अवश्य नष्ट हो जाते हैं । इस औषधिके खानेवालेके मुखमें सूजन नहीं होती । इस औषधिको इक्कीस दिनतक खाना चाहिये, जबतक औषधि करे तबतक निमक नहीं खाना चाहिये ॥ २४--२७ ॥

इति फिरंगरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मसूरिकाधिकारः ।

तत्र मसूरिकाया विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः । दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥ क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषसमुद्भवाः । जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः । मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकास्ता मसूरिकाः ॥ २ ॥ क्षारो यवक्षारादिः । विरुद्धाध्यशनाशनैः कट्वम्लादिविरुद्धान्नाशनैः । अथ च अध्यशनाशनम् अधिकमशनध्यशनम् । दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः दुष्टं निष्पावशाकम् आद्यशब्दान्मध्वालुकादिकैः । प्रदुष्टपवनोदकैः सविषकुसुमादिसंसर्गात् । क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे क्रूरग्रहा राहुशनैश्चरादयस्तेषामीक्षणादृष्टेः यस्मिन्देशे क्रूरग्रहदृष्टिस्तत्रापि मसूरिकोत्पत्तिरित्यर्थः । मसूराकृतिसंस्थानाः मसूरस्य या आकृतिस्तद्वत्संस्थानमाकृतिर्यासां ताः ॥

तीखे (चरपरे), खट्टे, नमकके तथा जवाखारादि खारी और परस्पर विरुद्ध पदार्थ इनको खानेसे, अधिक भोजन करनेसे, निष्पाव, लोविया, उडद तथा मीठे, खट्टे आदि शाकोंको भक्षण करनेसे, विषैले पुष्पादिकके संसर्गसे, दूषित हुई पवन और जलके योगसे और देशमें राहु तथा शनैश्चर आदि क्रूर ग्रहोंकी दृष्टि पडनेसे वातादि दोष कुपित होकर दूषित हुए रुधिरके साथ मिलकर मसूरकी समान आकारवाली फुंसियें उत्पन्न होती हैं उनको मसूरिका कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ मसूरिकापूर्वरूपम् ।

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभंगोऽरतिर्भ्रमः । त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररोगस्तथैव च॥ ३॥

जब मसूरिका होनेको होती है तो प्रथम ज्वर आता है, खुजली होती है, अंग टूटने लगते हैं, किसी पदार्थ पर रुचि उत्पन्न नहीं होती, भ्रम होता है, त्वचामें सूजन, वर्ण बदल जाता है और नेत्रोंमें लाला होती है ॥ ३ ॥

अथ वातजमसूरिकालक्षणम् ।

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयान्विताः । कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसम्भवाः ॥ ४ ॥

काली, लाल, रूखी, तीव्र वेदनावाली, कठिन और बहुत समयमें पकनेवाली ऐसी फुंसी उत्पन्न होयँ तो जानना कि वातसे मसूरिका उत्पन्न हुई है ॥ ४ ॥

अथ पित्तजमसूरिकालक्षणम् ।

सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिर्भ्रमः । शोषस्तालोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥ ५ ॥ रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः । भवन्त्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥ ६ ॥

पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हुई मसूरिकामें संधि, अस्थि और पर्वोंमें भेदन सरीखी पीडा होती है, खाँसी, कंप,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसी पदार्थमें इच्छा नहीं होती, भ्रम, तालु, होठ तथा जीभ सूख जाती है, अरुचिके साथ तृषा बढती है और फुंसी लाल, पीली, सफेद, दाहयुक्त, तीव्र पीडायुक्त और तत्काल पक जाती है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ रुधिरजन्यमसूरिकालक्षणम् ।

विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिस्तथा ।
मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ।
रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणः ७

रुधिरके कुपित होनेसे जो मसूरिका होती है उसमें अतीसार (दस्तोंका आना), अंगोंका टूटना, दाह, तृषाका लगना तथा अरुचि, मुखमें पाक, आंखोंका पकना और अत्यंत दारुण तीव्र ज्वर होता है, यह सब पित्तके प्रकोपसम्बन्धी लक्षण जानने ॥ ७ ॥

अथ कफजमसूरिकालक्षणम् ।

श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा मन्दवेदनाः । मसूरिकाः कफोद्भूताश्चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥

कफके प्रकोपसे जो मसूरिका होती है वह सफेद, चिकनी, अत्यंत मोटी, खुजली, मंदवेदनावाली और बहुत समयमें पकनेवाली ऐसी फुंसी होती हैं ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजमसूरिकालक्षणम् ।

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः । पूतिस्रावाश्चिरात्पाकाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ ९ ॥

त्रिदोषसे उत्पन्न हुई मसूरिका नीली, चिपटी, विस्तारवाली, बीचमें नीची, अत्यंत वेदनायुक्त, दुर्गंध, स्रावबाली और बहुत देरमें पकनेवाली ऐसी फुंसी होती हैं ॥ ९ ॥

अथ सप्तधातुगतमसूरिकाणां पृथक् पृथक् लक्षणानि ।

तत्र रसगतमसूरिकालक्षणम् ।

मसूरिकास्त्वचं प्राप्तास्तोयबुद्बुदसन्निभाः ।
स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥ १० ॥

त्वचं प्राप्ताः त्वक्छब्देनात्र रस उच्यते रसाश्रयत्वात् ।

रसमें होनेवाली मसूरिका अल्प दोषवाली होती हैं, पानीके बबूलेकी समान और फोडनेसे जलका स्राव होता है ॥ १० ॥

अथ रक्तजमसूरिकालक्षणम् ।

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।
साध्या नात्यर्थदुष्टास्तु भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥ ११ ॥

साध्या रक्तस्था इत्यर्थः । नात्यर्थदुष्टास्तु अत्यर्थं दुष्टशोणिताः पुनर्न साध्याः किन्तु कष्टसाध्याः ।

रुधिरमें रहनेवाली मसूरिका लाल आकारवाली, तत्काल पकनेवाली, पतली त्वचावाली और फोडने पर उसमेंसे रुधिर निकलता है, रुधिरमें रहनेवाली मसूरिका जो अत्यंत दुष्ट रुधिवाली न होय तो साध्य है और अत्यंत दुष्ट रुधिरवाली होय तो कष्टसाध्य है ॥ ११॥

अथ मांसगतमसूरिकालक्षणम् ।

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः । गात्रशूलाऽनिशं कण्डूमूर्च्छादाहतृषान्विताः ॥ १२ ॥

मांसमें रहनेवाली मसूरिका कठिन, स्निग्ध, बहुत समयमें पकनेवाली, पतली त्वचावाली और गात्रोंमें शूल, निरंतर खुजली, मूर्च्छा, दाह तथा तृषा यह लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥

अथ मेदोगतमसूरिकालक्षणम् ।

मेदोजा मण्डलकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः ।
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ।
संमोहाऽरति सन्तापा कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १३ ॥

मेदमें होनेवाली मसूरिका मंडलाकारवाली होती हैं, कोमल, कुछेक ऊंची, मोटी, चिकनी, वेदनायुक्त, भयंकर, ज्वरसे व्याप्त और बेहोशी, व्याकुलता और संतापसे युक्त होती हैं, इन मसूरिकाओंसे प्रायः कोई ही बचता है ॥ १३ ॥

अथास्थिमज्जागतमसूरिकालक्षणम् ।

क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः । मज्जोत्था भृशसम्मोहा वेदनारतिसंयुताः ॥ १४ ॥ भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्व-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्त्यस्थीनि सर्वतः । छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च ॥ १५ ॥ गात्रसमाः गात्रतुल्यवर्णाः । चिपिटाः चिपिटाकाराः । मज्जाग्रहणेन अस्थ्नोऽपि ग्रहणं तदाधारत्वात् । अत एवाग्रे भ्रमेरणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वत इति । मर्मधामानि मर्मस्थानानि ।

अस्थि तथा मज्जामें रहनेवाली मसूरिका क्षुद्र होती हैं, शरीरके रंगकी समान वर्णवाली हैं, रूखी, चिपटी, कुछेक ऊंची, अत्यंत मोह, वेदना और व्याकुलतासे पीडित होती है, मज्जाही हड्डियोंका सार हड्डियोंकी रोकनेवाली हैं, जबतक मज्जा हड्डियोंमें रहती है तबहीं-तक हड्डियोंकी दृढता है । भौंरोंसे विद्धकी समान हड्डी चारों ओरसे होती हैं, मर्मस्थानोंको छेदन कर देती हैं और प्राणोंको तत्काल नष्ट कर देती हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ शुक्रगतमसूरिकालक्षणम् ।

पक्वाभाः पिडकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः । स्तैमित्याऽरतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ॥ १६ ॥ शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि । निर्दिष्टं केवलं चिह्नं जीवनं न तु दृश्यते । दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥ १७ ॥ पक्वाभाः पक्वाकारा न तु पक्वाः । श्लक्ष्णाः कोमलाः निर्दिष्टं केवलं चिह्नं न तु अस्याश्चिकित्सा युक्ता यतो जीवनं न दृश्यते । सप्ताप्येता दोषहेतुं विना न भवन्ति दोषमन्तरेण रसादिदुष्टेरसम्भवादत एवोक्तं दोषमिश्रा इत्यादिना ।

वीर्यमें रहनेवाली मसूरिका पकती नहीं, किन्तु पकनेकी समान होती है, स्निग्ध, कोमल, अत्यंत वेदनावाली, तथा स्तब्धता (जडता) हो, बेचैनी, मोह, दाह तथा उन्माद होता है । यह वीर्यगत मसूरिका केवल लक्षण जाननेके लिये कही है किंतु इसकी चिकित्सा करनी योग्य नहीं है क्योंकि इस मसूरिकाके होनेसे कभी मनुष्य बचही नहीं सक्ता । दोषके विना रसादिकका दुष्ट होना सम्भव नहीं इस कारण ये सातों प्रकारकी मसूरिका दोषोंके विना नहीं होती हैं । इन सातों प्रकारकी मसूरिकाओं-में उन उन दोषोंके लक्षण ऊपरके दोषोंके सम्बन्धसे जानने ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ चर्मगतमसूरिकालक्षणम् ।

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्रा प्रलापाऽरतिसंयुताः । दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडकाश्चर्मसंस्थिताः ॥ १८ ॥

कंठ रुक जाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और बेचैनी होय तो मसूरिकाओंको चर्मजा जाननी । ये चर्मगत मसूरिका कष्टसाध्य हैं ॥ १८ ॥

अथ रोमगतमसूरिकालक्षणम् ।

रोमकूपोन्नतिसमा राग्यिण्यः कफपित्तजाः । कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्या ज्वरपूर्विकाः ॥ १९ ॥

जिसमें प्रथम ज्वर आवे, रोमांच हो आवें, रोम-छिद्रोंकी बराबर ऊंची, लालवर्ण हो, खांसी और अरुचिसंयुक्त मसूरिका रोमतक पहुँच जाती है, ये मसूरिका कफ तथा पित्तसे होती हैं ॥ १९ ॥

अथ मसूरिकायाः सुखसाध्यता ।

त्वग्गता रक्तगाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा । श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः । एता विनापि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ २० ॥ त्वग्गता रसगताः ।

रसमें प्राप्त हुई, रुधिरमें प्राप्त हुई, पित्तसे उत्पन्न हुई, कफसे उत्पन्न हुई और कफ तथा पित्त दोनोंसे उत्पन्न हुई मसूरिका सुखसाध्य हैं । प्राणियोंके उत्पन्न हुई ये मसूरिका चिकित्साके विनाभी शांत हो जाती हैं ॥ २० ॥

अथ मसूरिकायाः कष्टसाध्यता ।

वातजा वातपित्तोत्था वातश्लेष्मकृताश्च याः । कष्टसाध्या असाध्यास्तु यत्नादेता उपाचरेत् ॥ २१ ॥

वातज, वात और पित्त दोषोंसे उत्पन्न हुई और वायु तथा कफ इन दोषोंसे उत्पन्न हुई मसूरिका कष्टसाध्य हैं इस कारण इनकी चिकित्सा यत्नपूर्वक करनी चाहिये ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ मसूरिकाणामसाध्यता।

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्। प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः॥ २२॥ लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः। आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः॥ २३॥ प्रवालसदृशा इत्यादि-आसां प्रवालजम्बूफललोहगुटिकातसीफलसादृश्यं वर्णेन। अनुक्तवर्णग्रहार्थमाह-आसां बहुविधा वर्णा इति।

सन्निपातसे (त्रिदोषसे) उत्पन्न हुई मसूरिका असाध्य हैं, इन मसूरिकाके लक्षण कहता हूं। इस मसूरिकाकी फुंसी कोई मूँगेकी समान लाल, कोई जामुनकी समान रंगवाली, कोई लोहेकी गोलीकी समान और कोई अलसीके फलकी समान रंगवाली होती हैं। इसके सिवाय और भी अनेक प्रकारके वर्णवाली होती हैं॥ २२॥ २३॥

कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः। प्रलापारतिमूर्च्छाश्च तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता॥ २४॥ दाहस्थाने दौर्गन्ध्य इति च पाठः। मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा। कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम्॥ २५॥ मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरैः। लक्षणानीह दृश्यन्ते न देयं तस्य भेषजम्॥ २६॥ अतिघूर्णता अतिनिद्रा।

प्रलाप, बेचैनी, मूर्च्छा, तृषा, हिचकी, प्रमेह, खाँसी, तीव्र और दारुण ज्वर, दाह, अत्यंत निद्रा, दुर्गंधता, मुख नाकमेंसे तथा नेत्रोंमेंसे रुधिरका स्राव, कंठमें घुरघुर शब्दका होना और दारुण श्वास ये सब लक्षण होयँ तो वैद्य उस मसूरिकारोगीको असाध्य समझकर औषधि नहीं देवे॥ २४-२६॥

अथ मसूरिकारिष्टम्।

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निश्वसेत्। स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णावान्वायुदूषितः॥ २७॥ वायुदूषितः अपतानकादिवातव्याधिदूषितः।

मसूरिका रोगसे पीडित जो मनुष्य नाकमेंसे अत्यंत श्वास ले, अत्यंत तृषासे पीडित हो और अपतानक आदि वातव्याधिवाला होय तो वह रोगी तत्काल मर जाता है॥ २७॥

अथ मसूरिकायां शोथविशेषः।

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूपरे मणिबन्धके। तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः॥ २८॥ दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः दुश्चिकित्स्यः कष्टसाध्यः। दुःशब्दोऽत्र निषेधार्थः तेन असाध्य इत्येके। काश्चिद्विनापि यत्नेन सिध्यन्त्याशु मसूरिकाः। दृष्टाः कृच्छ्रतराः काश्चित्काश्चित्सिद्ध्यन्ति वा न वा। काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति साध्यमानाः प्रयत्नतः॥ २९॥

मसूरिकाके अंतमें हाथकी कोहनीके ऊपर, अथवा पहुँचेपर वा कन्धोंके ऊपर अत्यंत दारुण सूजन होय तो उसको कष्टसाध्य जानना। कितनेक वैद्य इसको असाध्य कहते हैं। कितनी एक मसूरिका विनाही चिकित्साके तत्काल आरम्भ हो जाती हैं, कितनी एक मसूरिका अत्यन्त कष्टसाध्य भी दीखती हैं, कितनी एक मसूरिका नष्टभी हो जाती हैं अथवा नहींभी नष्ट होतीं और कितनी एक मसूरिका यत्नपूर्वक चिकित्सा करनेसे भी आरोग्य नहीं होतीं॥ २८॥ २९॥

अथ मसूरिकाचिकित्सा।

मसूरिकायां कुष्ठेषु लेपनादिक्रिया हिता। पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया चात्र प्रशस्यते॥ ३०॥ श्वेतचन्दनकल्कोत्थं हिलमोचीभवं द्रवम्। पिबेन्मसूरिकारम्भे नैव वा केवलं रसम्॥ ३१॥ हिलमोचिका शाकविशेषः हुरहुरेति लोके। द्वौ पञ्चमूल्यौ राम्ना च धान्युशीरं दुरालभा। सामृता धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम्॥ ३२॥ मञ्जिष्ठाबहुपात्प्लक्षशिरीषोदुम्बरत्वचः। वातजायां मसूर्यां स्यात्प्रलेपः सर्वतो हितः॥ ३३॥ बहुपात्पटः। गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह। पाककाले प्रदातव्यं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भेषजं गुडसंयुतम् । तेन कुप्यति नो वायुः पाकं यान्ति मसूरिकाः ॥ ३४ ॥ मोरटम् ऐक्षवं मूलम् । मसूरिकासु भुञ्जीत शालीन्मुद्गमसूरिकान् । रसं मधुरमेवाद्यात्सैन्धवं चाल्पमात्रकम् । पटोलमूलं क्वथितं मोरटस्वरसं तथा ॥ ३५ ॥ पटोलमूलं क्वथितमित्यत्र पटोलं क्वथितं चैव वा पाठः । आदावेव मसूर्यां तु पित्तजायां प्रयोजयेत् । निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलश्चन्दनद्वयम् ॥ ३६ ॥ उशीरं कटुका धात्री तथा वासा दुरालभा । एषां पानं घृतं शीतमुत्तमं शर्करान्वितम् ॥ ३७ ॥ मसूर्यां पित्तजायां तु प्रयोक्तव्यं विजानता । दाहे ज्वरे विसर्पे च व्रणे पित्ताधिकेऽपि च ॥ ३८ ॥ मसूर्यो रक्तजा नाशं यान्ति शोणितमोक्षणैः । वासामुस्तकभूनिम्बत्रिफलेन्द्रयवासकम् ॥ ३९ ॥ पटोलारिष्टकं चापि क्वाथयित्वा सभाक्षिकम् । पिबेत्तेन प्रशाम्यन्ति मसूर्यः कफसम्भवाः ॥ ४० ॥ इन्द्रः इन्द्रयवः । शिरीषोदुम्बरत्वग्भ्यां खदिरारिष्टजैर्दलैः । कफोत्थासु मसूरीषु लेपः पित्तोत्थितासु च ॥ ४१ ॥ निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलः कटुरोहिणी । चन्दने द्वे उशीरं च धात्री वासा दुरालभा ॥ ४२ ॥ एष निम्बादिकः क्वाथः पीतः शर्करयाऽन्वितः मसूरीं सर्वजां हन्ति विसर्पज्वरसंयुताम् ॥ ४३ ॥ उत्थिता प्रविशेद्या च तां पुनर्बाह्यतो नयेत् । काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः ॥ ४४ ॥ ताप्यं सुवर्णमाक्षिकम् । धात्रीफलं समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम् । मुखे कण्ठे व्रणे जाते गण्डूषार्थं प्रशस्यते । अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ॥ ४५ ॥ गवेधुर्गवेधुका गडगडिया इति लोके । मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वी त्वङ्नीलमुत्पलम् । उशीरलोध्रमञ्जिष्ठाः प्रलेपाश्च्योतने हिताः ॥ ४६ ॥ नश्यन्त्यनेन दृग्जाता मसूर्यो न भवन्ति च । प्रलेपं चक्षुषोर्दद्याद्बहुवारस्य वल्कलैः ॥ ४७ ॥ पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवधूलयेत् । भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना ॥ ४८ ॥ सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् । रोमान्तीज्वरवीसर्पव्रणानां शांतये पिबेत् ॥ ४९ ॥

कुष्ठ रोगपर जो लेपन आदि चिकित्सा कही है वही चिकित्सा मसूरिकापर भी हितकारी है । कफ और पित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पपर जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा मसूरिकापरभी करनी चाहिये । मसूरिकाके उत्पन्न होतेही हिलमोचिका (एक प्रकारकी नोनिया और हुरहुरनामसे भी प्रसिद्ध है) के स्वरसमें सफेद चंदनका कल्क डालकर पिये अथवा इकले हिलमोचिकाहीके स्वरसको पीवे । लघुपंचमूल, वृहत्पंचमूल, रासना, आमले, खस, धमासा, गिलोय, धनियां और नागरमोथा इनको पीसकर पीनेसे वातज मसूरिका नष्ट हो जाती है । मजीठकी छाल, बडकी छाल, पिलखनकी छाल, सिरसकी छाल और गूलरकी छाल इनको एकत्र पीसकर चारों ओर लेप करनेसे वातकी मसूरिका नष्ट हो जाती है । मसूरिकाके पकनेके समय गिलोय, मुलैठी, दाख, ईखकी जड और अनार इनको एकत्र पीसकर गुड डालकर पीनेसे वायुका प्रकोप नहीं होता और मसूरिका पक जाती हैं । मसूरिका उत्पन्न हुई होय तो लाल चावल, मूँग, मसूर, मधुर रस और कुछेक सेंधानमक इनका भोजन करे । पित्तकी मसूरिकामें प्रथम पटोलकी जडका काथ अथवा पटोलपत्रका काथ ईखकी जडके स्वरसके साथ पिये । नीम, पित्तपापडा, पाढ, परवल, सफेद चंदन, लाल चंदन, खस, कुटकी, आमले, अडूसा और धमासा इनको एकत्र पीसकर खांड मिलाकर इस शीतल पानकको पीनेसे पित्तकी मसूरिका नष्ट हो जाती है तथा दाह, पित्तज्वर, पित्तव्रण और पित्तविसर्प इनपरभी यह हितकारी है । रुधिरसे उत्पन्न हुई मसूरिका रुधिर निकलवानेसे नष्ट हो जाती है । अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, इरव,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहेडा, आमले, इन्द्रजौ, जवासा, कडवे परवल और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे कफकी मसूरिका शमन हो जाती हैं । सिरसकी छाल, गूलरकी छाल, खैरके पत्ते और नीमके पत्ते इनका लेप करनेसे कफसंबंधी और पित्तसंबंधी मसूरिका नष्ट हो जाती है। नीम, पित्तपापडा, पाढ, कडवे परवल, कुटकी, सफेद चंदन, लाल चंदन, खस, आमले, अडूसा और लाल धमासा इनका क्वाथ बनाकर खांड मिलाकर पीवे तो सर्व दोषोंसे उत्पन्न हुई और ज्वर तथा विसर्पवाली मसूरिका भी नष्ट हो जाती है । जो मसूरिका पहिले बाहर निकलकर फिर भीतर समा जाय तो कचनारकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें सोनामाखीका चूर्ण डालकर पिये तो मसूरिका फिर बाहर निकल आती है। मुखमें अथवा गलेमें व्रण हुआ होय तो आमले और मुलैठी इनका क्वाथ बनाकर कुल्ले करावे यह हितकारी है । गवेधु धान्य और मुलैठी इनके जलसे नेत्रोंमें सेचन करनेसे मसूरिकासे दूषित हुई आँखें आराम हो जाती हैं । मुलैठी, बहेडा, आमला, मूर्वा, दारुहलदीकी छाल, नीलकमल, खस, लोध और मजीठ इनका आँखोंपर लेप करनेसे अथवा इनको आँखोंमें लगानेसे मसूरिका नष्ट हो जाती है और फिर कभी नहीं होती । आँखोंमें मसूरिकाकी पीडा होय तो लिसोडेकी छालको पीसकर आँखोंपर उसका गाढा लेप करे । मसूरिकामें जो क्लेद होय तो पंचवल्कलका चूर्ण उसके ऊपर छिडके, कितने एक वैद्य कहते हैं कि उसके ऊपर राख छिडके, और कितने एक वैद्य कहते हैं कि उसके ऊपर सूखे गोबरका चूर्ण डालना चाहिये । कलौंजीके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उसमें हलदीका चूर्ण डालकर पिये तो रोमतक पहुँची मसूरिका, ज्वर, विसर्प और व्रण शांत हो जाते हैं ॥ ३०-४९ ॥

इति मसूरिकाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मसूरिकाभेदशीतलाधिकारः ।

तत्र शीतलायाः स्वरूपं भेदः स्तोत्रं च । देव्या शीतलया क्रान्ता मसूर्यः शीतला बहिः । ज्वरयेयुर्यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥ १ ॥ सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्ष्महे । ज्वरपूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥ २ ॥ सप्ताहान्निःसरत्येव सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत् । ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति स्वयम् ॥ ३ ॥ तासां मध्ये यदा काचित्पाकं गत्वा स्फुटेत्स्रवेत् । तत्रावधूलनं कुर्याद्धनगोमयभस्मना ॥ ४ ॥ निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत् । जलं च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तत्पचेत् ॥ ५ ॥ स्थापयेत्तं स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले । नाशुचिः संस्पृशेत्तं तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥ ६ ॥ बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि । केचिद्भयोजयन्त्येव मतं तेषामथ ब्रुवे ॥ ७ ॥

जो मसूरिकामें ही शीतलानामक देवीका आवेश हुआ होय तो वह शीतला कही जाती है । जिस प्रकार भौतिक विषमज्वर होता है उसी प्रकार इस शीतलामें ज्वर होता है, इस शीतलाके सात भेद हैं कि जिनको आगे कहेंगे । प्रथम ज्वर आकर पश्चात् बडी बडी फुंसी शरीरमें उत्पन्न होयँ वह बडी शीतला कही जाती है । यह शीतला प्रथम सात दिनमें निकलती है, फिर सात दिनमें भर जाती है और तीसरे सप्ताहमें सूख जाती है और अपने आप झड जाती है । इनमें कोई शीतला पककर फूटे और स्रवे तो उसके ऊपर अरने उपलोंकी भस्मको बुरकावे और नीमके पत्तों समेत नीमकी टहनियोंसे मक्खियोंको उडावे । ज्वर होय तो भी शीतल जल पीनेको देवे किंतु गरम जल नहीं देवे, शीतलावाले रोगियोंको पवित्र, रमणीक, एकांत और शीतल स्थानमें रक्खे । इस रोगीको कोई अपवित्र मनुष्य नहीं छुवावे और अपवित्र मनुष्यको उसके पास न जाना चाहिये । बहुतसे वैद्य तो शीतलामें औषधि देतेही नहीं और कितनेक अवश्य देते हैं । औषधिको देनेवाले वैद्यके सिद्धांत अनुसार इस शीतलाकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १-७ ॥

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यङ् निम्बाक्षबीजसहितां रजनीं पिबन्ति । तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे पीडाकरा जगति शीतलिका विकाराः ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगत्में जो मनुष्य नीमके बीज, बहेडेके बीज और हलदी इनको शीतल जलमें अच्छे प्रकारसे पीसकर पीता है उसके शरीरमें पीडाकारक शीतलाका विकार कभी भी नहीं होता ॥ ८ ॥

मोचारसेन सहितं सितचन्दनेन वासारसेन मधुकं मधुकेन चाथ । आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं ते नाप्नुवन्ति भुवि शीतलिकान्विकारान् ॥ ९ ॥ मोचारसेन कदलीस्तम्भजलेन मधुकेन चाथ अथवा मधुना । आदौ पूर्वरूपे ज्वरागमनमात्रे सुमनास्वरसेन जातीपत्रस्वरसेन ।

अब शीतलाके पूर्वरूपमें ज्वर आवे तो तत्कालही केलेके अर्कके साथ अथवा सफेद चंदनके रसके साथ अथवा अडूसेके रसके साथ या मुलैठीके रसके साथ अथवा चमेलीके पत्तोंके रसके साथ सहत पिवे तो शीतलाके विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ९ ॥

शीतलासु क्रिया कार्या शीतला रक्षया सह । बध्नीयान्निम्बपत्राणि परितो भवनान्तरे ॥ १० ॥ कदाचिदपि नो कार्यमुच्छिष्टस्य प्रवेशनम् । स्फोटेष्वपि सदाहेषु रक्षारेणूत्करो हितः । तेन ते शोषमायान्ति प्रपाकं न भजन्ति च ॥ ११ ॥ रक्षारेणूत्करः शुष्कगोमयभस्मचूर्णप्रक्षेपः । चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह । एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनः ॥ १२ ॥

शीतलाके रोगमें सम्पूर्ण शीतल क्रिया करे, मंत्रादिकसे भूतादिकको दूर करनेके लिये रक्षा करे, घरके चारों ओर नीमके पत्ते बाँधें और उस घरमें कभी भी उच्छिष्ट (जूठन) को नहीं ले जावें । शीतलाकी फुंसियोंमें दाह होय तो उसमें सूखे गोबरकी राख हितकारी है । भस्म डालनेसे सब फुंसी सूख जाती हैं और पकती भी नहीं हैं । लालचंदन, अडूसा, नागरमोथा, गिलोय और दाख इनका हिम बनाकर पीनेसे शीतलाका ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ १०–१२ ॥

जपहोमोपहारैश्च दानस्वस्त्ययनार्चनैः । विप्रगोशम्भुगौरीणां पूजनैस्तां शमं नयेत् ॥ १३ ॥ स्तोत्रं च शीतलादेव्याः पठेच्छीतलिकान्तिके । ब्राह्मणः श्रद्धया युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतलाः ॥ १४ ॥

जप, होम, बलिदान, स्वस्तिवाचन, पूजन और ब्राह्मण, गाय, सदाशिव तथा जगदंबा इनका अर्चन करनेसे शीतला शांत हो जाती है । जिस मनुष्यके शीतला निकली होय उसके पास ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक नीचे लिखे शीतलाके स्तोत्रको पढे, इसके पढनेसे शीतला शांत हो जाती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ शीतलास्तोत्रम् ।

अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः । शीतला देवता शीतलोपद्रवशान्त्यर्थं जपे विनियोगः ॥ १५ ॥ स्कन्द उवाच । भगवन्देवदेवेश शीतलायाः स्तवं शुभम् । वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटकभयापहम् ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच । वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् । यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् । ॥ १७ ॥ शीतले शीतले चेति यो ब्रूयादाहपीडितः । विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ १८ ॥ यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा संपूजयेन्नरः । विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ १९ ॥ शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च । प्रनष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवितौषधम् ॥ २० ॥ नमामि शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् । मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम् । ॥ २१ ॥ शीतले तनुजान्रोगान्नृणां हरसि दुस्तरान् । विस्फोटकविशीर्णानां त्वमेकाऽमृतवर्षिणी ॥ २२ ॥ गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् । त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति ते क्षयम् ॥ २३ ॥ न मन्त्रो नौषधं किञ्चित्पापरोगस्य विद्यते । त्वमेका शीतले धात्री नान्यां पश्यामि देवताम् ॥ २४ ॥ मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम् । यस्त्वां सञ्चिन्तयेद्देवि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्य मृत्युर्न जायते ॥ २५ ॥ अष्टकं शीतलादेव्या यः पठेन्मानवः सदा । विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते । ॥ २६॥ श्रोतव्यं पठितव्यं च नरैर्भक्तिसमन्वितैः उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ २७ ॥ शीतलाष्टकमेतद्धि न देयं यस्य कस्यचित् । किन्तु तस्मै प्रदातव्यं भक्तिश्रद्धान्वितो हि यः ॥ २८ ॥

स्वामिकार्तिकेय सदाशिवसे पूछते हैं कि हे महाराज सम्पूर्ण देवोंके देव ! विस्फोटकके भयको हरनेवाली शीतलाका स्तोत्र मुझको अच्छे प्रकार कहिये । सदाशिव कहते हैं कि--' गधेके ऊपर बैठी नग्न शीतला देवीको प्रणाम करता हूं, कि जिस शीतलाकी कृपासे विस्फोटकका बडा त्रास दूर हो जाता है' इस प्रकार प्रथम शीतलाका ध्यान करे, ' इस श्रीशीतलाके स्तोत्रका सदाशिव कर्ता, अनुष्टप् छंद और शीतला देवता है । शीतलाके उपद्रवोंको दूर करनेके लिये इस स्तोत्रका जप करता हूं ' इस प्रकार कहकर पश्चात् स्तुति करे । दाहसे पीडित जो मनुष्य हे शीतले ! इस प्रकार कहता है उसके उत्पन्न फोडेका तीव्र भय तत्काल नष्ट हो जाता है । हे शीतले ! जो मनुष्य तुमको जलमें स्थापन कर तुम्हारा पूजन करता है उसके कुलमें कभी विस्फोटकका भय नहीं होता । हे शीतले ! ज्वरसे व्याकुल दुर्गन्धयुक्त और जिसकी आंखें नष्ट हो गई हैं ऐसे मनुष्यके जीवनरूप तूही एक उत्तम औषधि है ऐसा विद्वानोंने कहा है । गधेके ऊपर बैठी, नग्न, एक हाथमें मार्जनी (बुहारी) और दूसरे हाथमें कलशको धारण करनेवाली तथा शिरपर सूप (छाज) को धारण किये हुई शीतला देवीको प्रणाम करता हूं । हे शीतले ! मनुष्योंके शरीरमें उत्पन्न हुए दुस्तर रोगोंको तुमने हरण किया है । विस्फोटकसे अत्यंत दुःखी मनुष्योंपर अमृतकी वर्षा करनेवाली तू एकही है । हे शीतले ! मनुष्योंके शरीरमें गलगण्ड (गण्डमाला) तथा अन्यान्य जो दारुण रोग उत्पन्न होते हैं वे सब तेरे ध्यान करनेमात्रसे क्षय हो जाते हैं, इस दुष्ट रोगका अन्य कोई औषधि और मंत्रादिक नहीं है । हे शीतले ! इस रोगसे बचानेवाली तू एकही है । तेरे विना इस रोगसे बचानेवाला अन्य कोई देवता भी देखनेमें नहीं आता । हे देवि ! कमलकी नालके भीतर तंतुकी समान नाभि तथा हृदयमें स्थित तुझे जो मनुष्य हृदयमें चिंतवन करता है उसका मरण नहीं होता । जो मनुष्य शीतला देवीके इन आठ श्लोकोंका सर्वदा पाठ करता है उसके वंशमें कभी विस्फोटकका तीव्र भय उत्पन्न नहीं होता । यह शीतलाका स्तोत्र उत्तम और कल्याणकारक है । इसको मनुष्य दुःखको दूर करनेके लिये भक्तिभावसे पाठ करे और पठन श्रवणभी करे । यह शीतलाष्टकनामक स्तोत्र जिस तिसको नहीं देना चाहिये किंतु जो भक्तिसे और श्रद्धासे युक्त होय उसीको देना चाहिये, यह काशीखंडमें कहा हुआ शीतलास्तोत्र पूर्ण हुआ ॥ १५–२८ ॥

इति काशीखण्डे शीतलाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम् ।

अथ शीतलाया द्वितीयो भेदः ।

वातश्लेष्मसमुद्भूता कोद्रवा कोद्रवाकृतिः । तां कश्चिदाह पक्वेति सा तु पाकं न गच्छति ॥ २९ ॥ जलशूकवदंगानि सा विध्यति विशेषतः । सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा शान्तिं याति विनौषधम् ॥ ३० ॥ यदि वा भेषजं दद्यात्खदिराष्टकनिर्मितम् । कषायं हि तदा दद्यात्कोद्रवायाः प्रशान्तये ॥ ३१ ॥ कोद्रवा कोदवा इति लोके ।

वात और कफसे उत्पन्न हुई और कोदोंकी समान आकारवाली जो शीतला होती है उसको कोद्रवा कहते हैं । अनजान मनुष्य इस शीतलाको पकनेवाली कहते हैं किंतु वास्तवमें यह शीतला पकती नहीं है । यह शीतला विशेषकरके जलके शूकनामक कीडेकी समान अंगोंको वेधन करती है और सात दिनमें द्वादशदिनमें औषधिके विनाही शांत हो जाती है । जो इस कोद्रवानामक शीतला शांत करनेके लिये औषधि देनी होय तो खदिराष्टकसे बनाया हुआ काथ देना चाहिये ॥ २९–३१ ॥

अथ शीतलायास्तृतीयो भेदः ।

ऊष्मणा तूष्मजारूपा सकण्डूः स्पर्शनप्रिया । नाम्ना पाणिसहाख्याता सप्ताहाच्छुष्यति स्वयम् ॥ ३२ ॥ ऊष्मजारूपा षड्ऊष्मजा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजिकाकृतिः। अभौरी इति लोके वदन्ति तद्रूपा। पाणिसहा पनिसहा इति लोके।

जो शीतला गरमीके कारण राईके समान आकारवाली, खुजलीयुक्त और जिसके ऊपर हाथ आदिका स्पर्श प्रिय लगे वह पाणिसहा कही जाती है और वह शीतला सात दिनमें अपने आप सूख जाती है ॥ ३२॥

अथ शीतलायाश्चतुर्थो भेदः।

चतुर्थी सर्षपाकारा पीतसर्षपवर्णिनी। नाम्ना सर्षपिका ज्ञेयाऽभ्यङ्गमत्र विवर्जयेत् ॥३३॥

जो शीतला सरसोंकी समान आकारवाली और पीली सरसोंकी समान वर्णवाली होय वह सर्षपिका कही जाती है इस शीतलामें अभ्यंगका त्याग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ शीतलायाः पञ्चमो भेदः।

चिञ्चिद्दूष्मनिमित्तेन जायते राजिकाकृतिः। एषा भवति बालानां मुखं शुष्यति च स्वयम् ॥ ३४ ॥ एषा दुःखकोद्रवा इति लोके ख्याता।

जो शीतला कुछेक गरमरूपी कारणोंसे बालकोंके मुखपर राईकी समान आकारवाली होय, वह दुःखकोद्रवा कही जाती है, वह शीतला अपने आप सूख जाती है ॥ ३४ ॥

अथ शीतलायाः षष्ठो भेदः

कोष्ठवज्जायते षष्ठी लोहितोन्नतमण्डला। ज्वरपूर्वा व्यथायुक्ता ज्वरस्तिष्ठेद्दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥ एषा मगधदेशे हाम इति प्रसिद्धा।

प्रथम ज्वर आकर जो शीतला कोढकी समान लाल तथा ऊँचे मंडलवाली होती है और व्यथायुक्त होती है वह मगधदेशमें 'हाम' इस नामसे कही जाती है। इस शीतलाका ज्वर तीन दिनतक रहता है, इस शीतलाकी फुंसी मिल जानेसे अनेक फुंसी दीखती हैं ॥ ३५ ॥

अथ शीतलायाः सप्तमो भेदः।

स्फोटानां मेलनादेषा बहुस्फोटाऽपि दृश्यते। एकस्फोटे च कृष्णा च बोद्धव्या चर्मजाभिधा ॥ ३६ ॥ चमरगोटी इति लोके।

जो शीतला एक स्फोटकमें काली होय तो चर्मनी कही जाती है ॥ ३६ ॥

अथ शीतलायाः साध्यासाध्यता।

काश्चिद्विनापि यत्नेन सुखं सिद्ध्यन्ति शीतलाः। दृष्टाः कष्टतराः काश्चित्काश्चिन्सिद्ध्यन्ति वा न वा। काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति यत्नतोऽपि चिकित्सिताः ॥३७॥

कितनी एक शीतला चिकित्साके विनाही सहजमें मिट जाती हैं। कितनी एक शीतला अत्यन्त कष्टसाध्य देखी जाती हैं। कितनी एक शीतला समयपर आराम होती हैं तथा समयपर भी आराम नहीं होतीं। और कितनेक शीतला तो अनेक बडे २ यत्नोंसे चिकित्सा करनेपर भी आराम नहीं होतीं ॥ ३७ ॥

अथ शीतलासप्तकस्य सामान्यचिकित्सा।

एताः सप्तापि बोद्धव्याः शीतलादेव्यधिष्ठिताः। शीतलोचितमाचारमासु सर्वासु वा चरेत् ॥ ३८ ॥

इन सातों प्रकारकी शीतलाओंमें शीतलादेवीका संबंध होता है इन सर्व प्रकारकी शीतलाओंमें तत्कालही पूर्वोक्त शीतलाकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

इति शीतलाधिकारः संपूर्णः।

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः।

तत्र पलितरोगनिदानलक्षणम्।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः। पित्तं च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ १ ॥ शरीरोष्मा देहाग्निः। पित्तं च भ्राजकाख्यं तच्च शिरोगतं क्रोधाक्कुपितं पित्तं पचति। शोकेन श्रमेण च कुपितो वायुः शरीरोष्माणं शिरो नयति। 'एकः प्रकुपितो दोष इतरावपि कोपयेत्' इति वचनाद्वातपित्ताभ्यां श्लेष्मा च कोपितः, स एव केशानां शौक्ल्यं करोति। एवं त्रयोऽपि दोषाः पलितस्य हेतवः, पलितं केशस्य शुक्लता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रोध, शोक तथा परिश्रम आदिसे कोपको प्राप्त हुई वायु शरीरकी गरमीको शिरमें ले जाती है और मस्तकमें रहनेवाला भ्राजकनामक पित्त भी क्रोधसे प्रकुपित होता है। प्रकुपित हुआ एक दोष दूसरे दोषोंको भी प्रकुपित करता है इस वचनके अनुसार ऊपर कही रीतिसे कुपित हुई वायु और पित्त यह कफको भी कुपित करते हैं और कोपको प्राप्त हुआ कफ बालोंको सफेद करता है इस प्रकार ये तीनों दोष केशोंके सफेदपनेमें निदानभूत होते हैं ॥ १ ॥

अथ पलितचिकित्सा ।

लोहचूर्णस्य कर्षं तु दशार्द्धं चूतमज्जतः । धात्रीपलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् ॥ २ ॥ पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेन्निशि वासयेत् । लेपोऽयमचिराद्धन्ति पलितं नात्र संशयः ॥ ३ ॥ दशार्द्धं पञ्चकर्षाणि । काश्मर्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकस्यापि मूलं लौहं चूर्णं सभृंगं त्रिफलपलयुतं वैलमेभिः पचेद्यः । कृत्वा लौहस्य भाण्डे क्षितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं केशाः काशप्रकाशा अपि मधुपनिभा अस्य योगाद्भवन्ति ॥ ४ ॥ त्रिफला नीलिकापत्रं भृंगराजोऽथसो रजः । अविमूत्रेण सम्पिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम् ॥ ५ ॥

लोहेका चूर्ण १ तोला, आमकी गुठली ५ तोले, आमले २ तोले, हरड २ तोले और बहेडा एक १ तोला इनको एकत्र पीसकर लोहेके बरतनमें रातभर रहने देवे, फिर इसका लेप करनेसे थोडेही समयमें बालोंकी श्वेतताका नाश होता है । कुम्भेरकी जड, पियांबासेके फूल वा जड, केतकीकी जड, लोहेका चूरा, भांगरा और त्रिफला चार तोले इनके कल्कसे तेलको पकावे, उस तेलको लोहेके बासनमें करके पृथिवीमें एक महीनेतक गाड देवे । इस तेलके लगानेसे कांसके फूलकी सदृश सफेद बालभी भौंरेकी समान श्याम हो हो जाते हैं । हरड, बहेडा, आमले, नीलके पत्ते, भांगरा और लोहेका चूरा इनको भेडके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं ॥ २–५ ॥

अथेन्द्रलुप्तसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

रोमकूपानुगं रक्तं पित्तेन सह मूर्च्छितम् । प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ ६ ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः । तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभावयेत् ॥ ७ ॥

रोमोंकी जडमें स्थित रुधिर पित्तके साथ कुपित होकर रोमोंको गिरा देता है पश्चात् रुधिरसहित कफ रोमकूपोंको रोक देता है कि जिससे फिर रोम उत्पन्न नहीं होते । इस रोगको इन्द्रलुप्त, खालित्य और रुज्या कहते हैं, देशमें गंज वा ढाक कहते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथेन्द्रलुप्तचिकित्सा ।

तिक्तपटोलीपत्रस्वरसैर्घृष्ट्वा शमं याति । चिरकालजापि रुज्या नियतं दिवसत्रयेणापि ॥ ८ ॥ गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी । शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ ९ ॥ हस्तिदन्तमषीं कृत्वा छागीदुग्धं रसाञ्जनम् । लोमान्ये तेन जायंते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ १० ॥ यष्टीन्दीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः । इन्द्रलुप्तं शमं याति केशाः स्युश्च घना दृढाः ॥ ११ ॥ जातीकरञ्जवरुणकरवीराग्निपाचितम् । तैलमभ्यञ्जनाद्धन्यादिन्द्रलुप्तं न संशयः ॥ १२ ॥

कडवे परवलोंके पत्तोंका स्वरस निकालकर उसके मसलनेसे बहुत दिनोंका इन्द्रलुप्त रोग भी तीन दिनमें आराम हो जाता है । गोखुरू तिलके फूल और उनके बराबर घी तथा सहत इनको एकत्र करके शिरपर लेप करनेसे शिर बालोंसे परिपूर्ण हो जाता है । हाथीदाँतकी भस्म, बकरीका दूध और रसौत इनका लेप करनेसे हाथकी हथेलीमें भी बाल उपज आते हैं । मुलैठी, नीले कमल, दाख, तेल, घी और दूध इनका लेप करनेसे इन्द्रलुप्त रोग अवश्य नष्ट हो जाता है और बाल सघन तथा दृढ हो जाते हैं । चमेली, करंज, वरना, कनेर और चीता इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगानेसे निश्चय इन्द्रलुप्त नष्ट हो जाता है ॥ ८–१२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ स्नुहीदुग्धादितैलम् ।

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य लाङ्गली मार्कवो विषम् । अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ १३ ॥ सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धा सम्यगेभिर्विपाचितम् । तैलं भवति नियमात्खालित्यव्याधिनाशनम् ॥ १४ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध, कलिहारी, भांगरा, वत्सनाभ, बकरीका मूत्र, गायका मूत्र, चौंटली, इन्द्रायन, सरसों और सफेद वच इनके कल्कसे पकाये हुए तेलकी मालिश करनेसे इन्द्रलुप्त रोग (गंज पाटाक) अवश्य दूर होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ दारुणकलक्षणम् ।

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते । मारुतश्लेष्मकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तत् ॥ १५ ॥ दारुणा कर्कशा दारुणकं लोके रुसीति ख्यातम् ।

वात और कफके प्रकोपसे बालोंकी जमीन खरखरी खुजलीयुक्त और रूखी हो जाती है उसको दारुणक कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ दारुणकचिकित्सा ।

कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः । प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः॥ १६॥ आम्रबीजं तथा पथ्याद्वयं स्यान्मात्रया समम् । दुग्धेन पिष्टं तल्लेपो दारुणं हन्ति दारुणम् । दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं हरेत् ॥ १७ ॥

चिरौंजीके बीज, मुलैठी, कूठ, उडद और सेंधानिमक इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर शिरमें गाढा लेप करनेसे दारुणक रोग नष्ट हो जाता है । आमकी गुठली और हरड इनको समान भाग लेकर दूधमें पिसकर लेप करनेसे दारुणकरोग दारुण (उग्र) भी अवश्य नष्ट हो जाता है । खसखसके बीजको दूधमें पीसकर लेप करनेसे दारुणक रोग अवश्य नष्ट होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ गुंजादितैलम् ।

गुञ्जाफलैः श्रृतं तैलं भृङ्गराजरसेन च । कंडूदारुणहरकुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ १८ ॥

चौंटलीके कल्कसे और भांगरेके रसमें पका हुआ तेल गुंजादि तैल कहा जाता है । इस तेलसे खुजली, दारुणक, कोढ और कपालके सम्पूर्णरोग नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

अथारूषिकालक्षणम् ।

अरूषि बहुवक्त्राणि बहुच्छेदीनि मूर्द्धनि । कफासृक्क्रिमिकोपेन तानि विद्यादरूषिकाम् ॥ १९ ॥

कफके, रुधिरके और कृमियोंके प्रकोपसे मस्तकमें बहुत मुखवाले और अत्यंत क्लेदयुक्त व्रण होयँ उनको अरूषिका कहते हैं ॥ १९ ॥

अथारूषिकाचिकित्सा ।

नीलोत्पलस्य किंजल्को धात्रीफलसमन्वितः । यष्टीमधुकयुक्तश्च लेपाद्धन्यादरूषिकाम् ॥ २० ॥

नील कमलकी केसर, आमले और मुलैठी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अरूषिका नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥

अथ त्रिफलाद्यतैलम् ।

त्रिफलायोरजोयष्टीमार्कवोत्पलसारिवाः । सैन्धवं पक्वमेतैस्तु तैलं हन्यादरूषिकाम् ॥ २१ ॥

हरड, बहेडा, आमला, लोहेका, चूरा, मुलैटी, कमल, सारिवा और सेंधानिमक इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल त्रिफलाद्यतैल कहा जाता है । यह तेल अरूषिकाको नष्ट कर देता है ॥ २१ ॥

अथेरिवेल्लिकालक्षणम् ।

पिडकामुत्तमांगस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् । सर्वात्मिकां सर्वलिंगां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ २२ ॥

मस्तकमें गोल, उग्र पीडावाली, तीव्र ज्वरवाली, तीनों दोषोंसे उत्पन्न और त्रिदोषोंके लक्षणोंसे युक्त जो पिडका उत्पन्न होती हैं वह इरिवेल्लिका कही जाती है ॥ २२ ॥

अथेरिवेल्लिकाचिकित्सा ।

पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

र्तिता। तयैव भिषगेतां च चिकित्सेदिरिवेल्लिकाम् ॥ २३ ॥

पित्तज विसर्पकी जो चिकित्सा वैद्योंने कही है उसी चिकित्सासे इरिवेल्लिकाको दूर करना चाहिये ॥२३॥

अथ पनसिकालक्षणम्।

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडकामुग्रवेदनाम्। स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ २४ ॥

कानके भीतर वायु तथा कफके प्रकोपसे उठी हुई, कठिन और उग्र वेदनावाली जो पिडका होती है उसको पनसिका कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ पनसिकाचिकित्सा।

भिषक् पनसिकां पूर्वं स्वेदयेदथ लेपयेत्। कल्कैर्मनःशिलाकुष्ठनिशातालकदारुभिः। पक्वां विज्ञाय तां भित्त्वा व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २५ ॥

वैद्य प्रथम पनसिकाके ऊपर स्वेद देवे पश्चात् मैनशिल, कूठ, हलदी, हरिताल और देवदारु इनका लेप करे, जब पक जाय तो उसकी व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ २५ ॥

अथ पाषाणगर्दभलक्षणम्।

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः। स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ २६ ॥ स्थिरः काठिनः।

वात तथा कफके प्रकोपसे ठोडीकी सन्धिमें कठिन मन्द वेदनावाली और स्निग्ध सूजन होय तो उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं ॥ २६ ॥

अथ पाषाणगर्दभचिकित्सा।

पाषाणगर्दभं पूर्वं स्वेदयेत्कुशलो भिषक्। ततः पनसिकाप्रोक्तैः कल्कैरुष्णैः प्रलेपयेत् ॥ २७ ॥ वातश्लैष्मिकशोथघ्नैः कल्कैरन्यैश्च लेपयेत्। परिपाकगतं भित्त्वा व्रणवत्तमुपाचरेत् ॥ २८ ॥ जलौकोभिर्हते रक्ते स शाम्यति विनौषधम्। एतत्स्थलेषु बहुषु प्रेक्षितं लिखितं ततः ॥ २९ ॥

प्रवीणवैद्य प्रथम पाषाणगर्दभके ऊपर स्वेद करावे पश्चात् पनसिकाकी चिकित्सामें कहे हुए उष्ण कल्कोंसे प्रलेप करे। वात और कफकी सूजनको दूर नेवाले अन्यान्य कल्कोंका भी लेप करे। पाषाणगर्दभको पका जानकर उसको शस्त्रसे चीरकर व्रणकी समान उपचार करे। जोंक लगाकर रुधिर निकलवावे तो औषधिके विनाही पाषाणगर्दभ शांत हो जाता है। यह बहुत वार अजमाया हुआ है इस लिये यहां लिखा है ॥ २७–२९ ॥

अथ युवानपिडकालक्षणम्।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः। युवानपिडका यूनां ज्ञेयास्ता मुखदूषिकाः ॥ ३० ॥ प्रख्याः सदृशाः। एता यूनामेव मुखे भवन्ति स्वभावात्।

युवा मनुष्योंके मुखपर सेमलके काँटोंकी समान कफ, वायु तथा रुधिरसे उत्पन्न होनेवाली जो फुंसी होती हैं वे युवानपिडका तथा मुखदूषिका (मोहासे) कही जाती हैं। ये फुंसी स्वाभाविक रीत्यनुसार युवाओंके मुखपर होती है ॥ ३० ॥

अथ युवानपिडकाचिकित्सा।

अंगुलस्य चतुर्थांशो मुखलेपो विधीयते। मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोऽर्द्धांगुलो भवेत् ॥ ३१ ॥ स्थितिकालोऽपि तस्योक्तो यावत्कल्को न शुष्यति। शुष्कस्तु गुणहीनः स्यात्तथा दूषयति त्वचम् ॥ ३२ ॥

चौथाई अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना कनिष्ठ मात्रा है। तिहाई अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना मध्यम मात्रा है और आधा अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना उत्तम मात्रा है। लेप की हुई औषधि जबतक सूखे नहीं तबतक मुखपर रखना चाहिये, सूखनेके पश्चात् मुखपर नहीं रखना चाहिये। सूखा हुआ लेप रखनेसे गुणहीन हो जाता है और त्वचाको दूषित कर देता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यां पिडिकापहः। तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपितम् ॥ ३३ ॥ सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम्। वमनं च निहन्त्याशु पिडकां यौवनोद्भवाम् ॥ ३४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोध, धनिया और वच इनका लेप करनेसे युवा अवस्थाकी मुखकी झुंसी (मोहासे) नष्ट हो जाती हैं। गोरोचनके साथ कालीमिरचोंका लेप करनेसे तरुण अवस्थाके कारण उत्पन्न हुए मुहासे सब दूर हो जाते हैं। सरसों, वच, लोध और सेंधानिमक इनका लेप करनेसे मुखके मुहासे दूर हो जाते हैं। वमन करनेसे तरुण अवस्थाके मुखके मुहासे दूर हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ मुखकान्तिकरो लेपः।

केवलाः पयसा पिष्टास्तीक्ष्णाः शाल्मलिकण्टकाः। आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ ३५ ॥

° सेमलके तीक्ष्ण कांटोंको दूधके साथ पीसकर तीन दिनतक लेप करनेसे मुहासे दूर होकर मुख कमलके समान सुन्दर हो जाता है ॥ ३५ ॥

अथ व्यंगलक्षणम्।

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः। मुखमागत्य सहसा मण्डलं प्रसृजत्यतः। नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तदादिशेत् ॥ ३६ ॥ व्यंगम् झांई इति लोके।

क्रोधसे तथा परिश्रमसे प्रकोपको प्राप्त हुई पित्तके साथ वायु मुखमें आकर तत्काल मुखके ऊपर वेदनारहित, बहुत पतली और काली झाईंयुक्त मंडल करे है उसको व्यंग कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ नीलिकालक्षणम्।

कृष्णमेवंगुणं वक्त्रे गात्रे वा नीलिकां विदुः ॥ ३७ ॥ एवंगुणम्, नीरुजं तनुकं मण्डलम्।

मुखके ऊपर अथवा देहके ऊपर वेदनारहित, पतला तथा काला मंडल होता है, उसको नीलिका कहते हैं ॥ ३७ ॥

अथ व्यंगनीलिकयोश्चिकित्सा।

शिरावेधैः प्रलेपैश्च तथाभ्यंगैरुपाचरेत्। व्यंगं च नीलिकां वापि न्यच्छं च तिलकालकम् ॥ ३८ ॥ वटांकुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशनम्। व्यंगे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ॥ ३९ ॥ अथवा लेपनं शस्तं शशस्य रुधिरेण च। व्यंगह्रद्रुणत्वक्स्थादजामूत्रेण पेषिता ॥ ४० ॥ जातीफलस्य लेपस्तु हरेद्व्यंगं च नीलिकाम्। अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपनात् ॥ ४१ ॥ मुखकार्श्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम्। मसूरैः क्षीरसम्पिष्टैर्लिप्तमास्यं घृतान्वितैः ॥ ४२ ॥ सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलोपमम्। वटस्य पाण्डुपत्राणि मालतीरक्तचन्दनम् ॥ ४३ ॥ कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत्। युवास्यपिडिकानां तु व्यंगानां तु विनाशनम्। स्यादेतेन सुखं चापि वर्जितं नीलिकादिभिः ॥ ४४ ॥ कालीयकं कदम्बक इति लोके। युवास्यपिडिका यूनामानने यत्पिडका पृषोदरादित्वान्नकारलोपः।

नसको खोलनेसे, प्रलेप करनेसे, तथा अभ्यंगसे व्यंगकी, नीलिकाकी, न्यच्छकी तथा तिलकालकी चिकित्सा करे। बडके अंकुर और मसूर इनका प्रलेप करनेसे व्यंगका नाश होता है। मजीठको सहतमें पीसकर लेप करनेसे व्यंग नष्ट होता है। खरगोशके रुधिरका लेप करनेसे, व्यंग (झांई) नष्ट हो जाती है। बरनाकी छालको बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे व्यंग (झांई) नष्ट होती है। जायफलका लेप करनेसे झांई दूर हो जाती है और नीलिका भी दूर हो जाती है। आकका दूध और हलदी इनको पीसकर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंकी मुखकी कृष्णता दूर हो जाती है। मसूरको दूधमें पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे सात दिनमें मुखमण्डल कमलके समान हो जाता है। बडके पीले पत्ते, मालती, लालचंदन, कूठ, कदम्बक और लोध इनका लेप करनेसे युवा मनुष्योंके मुखके मुहासे तथा व्यंगका नाश होता है। इस उपायसे मुखके दाद वगैरहभी दूर हो जाती हैं ॥ ३८–४४ ॥

अथ कुंकुमाद्यतैलम्।

कुंकुमं चन्दनं लोध्रं पतंगं रक्तचन्दनम्। कालीयकमुशीरं च मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ॥ ४५ ॥ पत्रकं पद्मकं पद्मं कुष्ठं गोरोचना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निशा । लाक्षा दारुहरिद्रा च गैरिकं नागकेसरम् ॥ ४६ ॥ पलाशकुसुमं चापि प्रियंगुश्च वटांकुराः । मालती च मधूच्छिष्टं सर्षपाः सुरभिर्वचा ॥ ४७ ॥ चतुर्गुणपयः पिष्टैरेतैरक्षमितैः पृथक् । पचेन्मन्दाग्निना वैद्यस्तैलं प्रस्थद्वयोन्मितम् । ॥ ४८ ॥ वदनाभ्यञ्जनादेतद्व्यंगं नीलिकया सह । तिलकं मषकं न्यच्छं नाशयेन्मुखदूषिकाम् ॥ ४९ ॥ पद्मिनीकण्टकं चापि हरेज्जतुमणिं तथा । विद्ध्याद्वदनं पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम् ॥ ५० ॥ पतंगं बकम इति लोके । कालीयकं कदम्बकम् । सुरभिर्वचा महाभरी इति लोके ।

केसर, सफेद चंदन, लोध, पतंग, लाल चंदन, कलम्बक, खस, मजीठ, मुलेठी, तेजपात, पद्माख, कमल, कूठ, गोरोचन, हलदी, लाख, दारुहलदी, पीला गेरू, नागकेसर, ढाकके फूल, फूलप्रियंगू, वडके अंकुर, मालती, मोम, सरसों और महाभरी वच यह प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर चौगुने दूधमें पिसे वैद्य इस कल्कसे १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले तेलको मंद मंद अग्निसे पकावे । इस कुंकुमाद्य तेलको मुखपर अभ्यंग करनेसे व्यंग, नीलिका, तिल, मशक, न्यच्छ, मुखदूषिका, पद्मिनीकंटक और जतुमणि ये सब रोग नष्ट होते हैं और मुख पूर्ण चन्द्रमंडलकी समान सुंदर हो जाता है ॥ ४५-५० ॥

अथ वल्मीकलक्षणम् ।

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः । ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ ५१ ॥ मुखैरनेकैः स्रवितोदवाद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नतास्रैः । वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ५२ ॥ ग्रीवा कृकाटिका । अंसः स्कन्धः । कक्षा बाहुमूलम् । वल्मीकवदित्यनेन प्रचुरशिखरत्वमुच्चत्वमव्रणाढ्यमूलत्वं च सूच्यते । निष्प्रत्यनीकमुपचारायोग्यम् ।

ग्रीवा, खवोंमें वा कंधे, कोख, हाथ और पांव इन प्रदेशोंमें, संधियोंमें अथवा गलेमें बाँबीकी समान अनेक शिखरोंवाली, ऊंची और दृढ जडवाली ग्रंथि होती है । चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके यह ग्रंथि अनुक्रमसे बढकर स्रावयुक्त व्यथायुक्त और आगेसे ऊंची अनेक मुखोंसे विसर्पकी समान फैल जाती है, इस रोगको वैद्य वल्मीक कहते हैं । यह रोग जो बहुत कालसे उत्पन्न हुआ होय तो विशेष करके इसकी चिकित्सा निष्फल होती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथासाध्यवल्मीकलक्षणम् ।

वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम् । पाणिपादोपरिष्टात्तु च्छिद्रैर्बहुभिरावृतम् । वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्वर्ज्यं तद्धि विजानता ॥ ५३ ॥

हाथ अथवा पांवके ऊपर जो वल्मीक छिद्रोंसे व्याप्त होय और सूजनसे युक्त होय उसको वैद्य समझकर चिकित्सा करे ॥ ५३ ॥

अथ वल्मीकचिकित्सा ।

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् । विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥५४॥ वल्मीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममर्मजम् । तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ ५५ ॥ कुलत्थकानां मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च । आरेवतस्य मूलैश्च दन्तीमूलैस्तथैव च ॥ ५६ ॥ श्यामामूलैः सपललैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत् । सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च भिषक्तमुपनाहयेत् ॥ ५७ ॥ पक्वं तद्वा विजानीयाद्गतिः सर्वा यथाक्रमम् । अभिज्ञाय गतिं छित्त्वा प्रदिह्यान्मतिमान्भिषक् ॥ ५८ ॥ संशोध्य दुष्टमांसानि क्षारेण प्रतिसारयेत् । व्रणं विशुद्धं विज्ञाय रोपयेन्मतिमान्भिषक् ॥ ५९ ॥

वल्मीकको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे दूर करे । अर्बुदकी चिकित्साकी समान प्रथम शोधन कर पश्चात् भरे । वल्मीक जो अत्यंत वृद्धिको प्राप्त न हुई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होय और मर्मस्थलमें न उत्पन्न होय तो वैद्य संशोधन करके पश्चात् उसमेंसे रुधिर निकलवावे । कुलथीकी जड, गिलोय, सेंधानिमक, अमलतासकी जड, दंतीकी जड, निसोतकी जड, मांस और सत्तू इनको मिलाकर वल्मीकपर प्रलेप करे और अत्यंत स्निग्ध पदार्थोंको कुछ कुछ गरम करके उसके ऊपर पट्टी बाँधे । जब वल्मीक पक्व जाय तब उसको अनुक्रमसे राधकी गतिको विचारकर शस्त्रसे चीरकर बुद्धिमान् वैद्य लेप कर दूषित मांसको साफ करके पश्चात् क्षार डालकर प्रतिसारण करे, व्रणको साफ समझकर फिर बुद्धिमान् रोपण औषधियोंसे भरे ॥५४–५९॥

अथ मनःशिलाद्यतैलम् ।

मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ।
जातीपल्लवकैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ ६०

मैनशिल, हरिताल, भिलावे, छोटी इलायची, अगर, सफेद चंदन, चमेलीके पत्ते और छाल इनको नीमके तैलसे पकावे तो यह मनःशिलाद्यतैल सिद्ध होता है । यह तैल अनेक छिद्रोंवाले तथा अनेक व्रणोंवाले वल्मीकको नष्ट करे है ॥ ६० ॥

अथ कक्षागंधमालयोर्लक्षणम् ।

बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ।
पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षां तामिति निर्दिशेत् ॥ ६१ ॥ एकां तु तादृशीं दृष्ट्वा पिडकां स्फोटसन्निभाम् । त्वग्जातां पित्तकोपेन गन्धमालां प्रचक्षते ॥ ६२ ॥ तादृशीं बाह्वादिषु कृष्णां सवेदनां च ।

बाहुओंमें, खवोंमें, कोखमें और पसलियोंमें पित्तके प्रकोपसे वेदनायुक्त जो फोडे होते हैं उसको कक्षा (कखहारी, कखलाई) कहते हैं । ऊपर कही हुई बाहु आदिके स्थानोंकी त्वचामें पित्तके प्रकोपसे काली और वेदनावाली फुंसीकी समान जो एक फुंसी होती है उसको गंधमाला कहते हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अथ कक्षागंधमालयोश्चिकित्सा ।

कक्षां च गन्धमालां च चिकित्सेच्च चिकित्सकः । पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्तया ॥ ६३ ॥

पित्तज विसर्पकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा कक्षा और गंधमालाकी करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

अथाग्निरोहिणीलक्षणम् ।

कक्षाभागेषु विस्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः । अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ ६४ ॥ सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम् । तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम् ॥ ६५ ॥ सप्ताहादिति वातपित्तकफापेक्षा बोद्धव्यम् । घ्नन्तीत्यनुपक्रान्ता उपक्रान्तास्तु साध्या एव । चरकेण अग्निरोहिण्याः चिकित्साया उक्तत्वात् ।

कांखमें अत्यंत दारुण, भीतर दाह करनेवाली और प्रदीप्त अग्निकी समान जो फोडे होते हैं उनको अग्निरोहिणी कहते हैं । जो इनमें वायुकी उल्वणता होय तो यह मनुष्यको सात दिनमें मार देती है । पित्तकी उल्वणता होय तो दश दिनमें मार देती है और कफकी उल्वणता होय तो पन्द्रह दिनमें मार देती है । तीनों दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुई यह अग्निरोहिणी असाध्य है । यहां ऐसा जानना कि जो इसकी चिकित्सा न की जाय तो अग्निरोहिणी असाध्य हो जाती है किंतु जो चिकित्सा की जाय तो साध्य है क्योंकि चरकने अग्निरोहिणीकी चिकित्सा कही है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथाग्निरोहिणीचिकित्सा ।

पित्तविसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम् । रोहिण्यां लंघनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरूक्षणम् । शरीरस्य च संशुद्धिं तां तु वृद्धां परित्यजेत् ॥ ६६ ॥

पित्तजन्निसर्पोक्त चिकित्साके अनुसार वैद्य अग्निरोहिणीको भी दूर करे । अग्निरोहिणीको दूर करनेके लिये वैद्य लंघन करावे, रुधिर निकलवावे और विरेचन आदिसे शरीरको संशोधन करे, परंतु जो अग्निरोहिणी अत्यंत वृद्धिको प्राप्त होय तो उसकी चिकित्सा न करे ॥ ६६ ॥

अथ विदारिकालक्षणं निदानं च ।

विदारीकन्दवद्वृत्तां कक्षावंक्षणसन्धिषु ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रक्तां विदारिकां विद्यात्सर्वजां सर्वलक्षणाम् ॥ ६७ ॥ अत्र पिडकामिति विशेष्यपदमध्याहारणीयम् ।

काँख अथवा वंक्षण संधिमें विदारीकंदकी समान गोल हुई, लाल, सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न होनेवाली और सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंसे युक्त जो फुंसी होय तो वह विदारिका कही जाती है ॥ ६७ ॥

अथ विदारिकाचिकित्सा ।

विदारिकायां प्रथमं जलौकायोजनं हितम् । पाटनं च विपक्कायां ततो व्रणविधिः स्मृतः ॥ ६८ ॥

विदारिकापर प्रथम जोंक लगानी उत्तम है, और जो विदारिका पक गई होय तो उसको शस्त्रसे चीरना चाहिये और पश्चात् व्रणकी समान चिकित्सा करे॥६८॥

अथ चिप्यलक्षणम् ।

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम् । करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥६९॥ चिप्यं वेडवा इति लोके ।

वात और पित्त यह मनुष्योंके नखोंके मांसमें रहकर नखका क्षय कर देते हैं तथा पका देते हैं उसको चिप्यरोग कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथ कुनखनिदानलक्षणम् ।

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षः सितः खरः । भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीरं वाऽभिधानतः ॥ ७० ॥ अभिधानतः नामतः ।

काष्ठ आदिकें आघातसे दुष्ट हुआ नख रूखा, सफेद और खरखरा हो जाता है इसको कुनख अथवा कुलीर कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ चिप्यकुनखचिकित्सा ।

चिप्यं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत् । गतोष्माणमथैनं तु सेचयेदुष्णवारिणा ॥ ७१ ॥ शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य स्रावयेत्ततः । व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तं विचक्षणः ॥ ७२ ॥ स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वायसेऽभयाम् । घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनः पुनः ॥७३॥ काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः । अंगुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशाम्यति । ॥ ७४ ॥ श्लेष्मविद्रधिकल्केन कुनखं समुपाचरेत् । नखकोटिप्रविष्टेन टंकणेन न शाम्यति । कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च ॥ ७५ ॥

चिप्य हुआ होय तो रुधिर निकलवावे और शोधनभी करना चाहिये । इसमेंसे जो गरमी नहीं रही होय तो गरम जलसे सेचन करे । विचक्षण वैद्य योग्य रीत्यनुसार उसको शस्त्रसे चीरकर स्राव करावे पश्चात् व्रणकी चिकित्साके अनुसार शोधन रोपण करे । लोहेके बासनमें हलदीका रस डालकरके उसमें हरड़को घिसकर चिप्यपर बारंबार लेप करे । कुम्भेरके कोमल सात पत्तोंको अंगुलीपर बांधनेसे चिप्य तत्काल शांत हो जाता है । कफज विद्रधिकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा कुनखकी की जावे तो कुनख अवश्य नष्ट हो जाता हैं । कुनखके भीतर सुहागा भरनेसे कुनख अवश्य आराम हो जाता है ॥७१–७५॥

अथ परिवर्तिकानिदानलक्षणम् ।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः । मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् । ॥ ७६ ॥ तदा वातोपसृष्टं तु तच्चर्म परिवर्तते । सवेदनं सदाहं च पाकं च व्रजति क्वचित् ॥ ७७ ॥ मणेरधस्तात्कोषस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते । मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम् । सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमन्विता ॥७८॥ अस्यां वातजायामपि पित्तानुबन्धो बोद्धव्यो दाहपाकभावात् । कोषां चर्मकोषः ।

सम्पूर्ण शरीरमें विचरती हुई वायु लिंगको खुजानेसे, दबानेसे तथा चोटके लगनेसे लिंगकी त्वचामें आती है तब वह वायुसे दूषित त्वचा परिवर्तन कही जाती है । वेदनायुक्त, दाहसहित और किसी समय पक जाती है । इस प्रकार लिंगकी मणिके नीचे वह चमडी गांठकी समान लटकती है । वायु तथा अभिघात आदि आगन्तुक कारणोंसे उत्पन्न हुआ यह रोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिवर्तिका कहा जाता है। इस रोगमें कफकाभी संबंध होय तो त्वचा खुजलीवाली तथा कठिन होती है। यद्यपि यह रोग वातसे उत्पन्न होय तो इसे दाह और पाक होनेसे पित्तका सम्बन्ध जानना ॥ ७६–७८ ॥

अथ परिवर्तिकाचिकित्सा।

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत्। त्रिरात्रं पञ्चरात्रं च वातघ्नैः शाल्वलादिभिः ॥ ७९ ॥ ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म पाटयेत्पीडयेन्मणिम्। प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहनैः। दद्याद्वातहरान्वस्तीन्स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ॥ ८० ॥

परिवर्तिकाको घी चुपडकर अच्छे प्रकारसे सेंक देवे और तीन रात्रितक अथवा पांच रात्रितक वायुको हरनेवाले शाल्वणादि कल्कोंकी पट्टी बांधे, फिर त्वचाको घीसे चुपडकर धीरे धीरे बढाकर लिंगकी मणिको दबावे कि जिससे मणि त्वचाके भीतर चली जाय। मणिको त्वचामें प्रवेश कराकर पश्चात् उपनाह स्वेद कर वातनाशक पिचकारी लगावे तथा रोगीको स्निग्ध अन्न भोजनके लिये देवे ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथावपाटिकानिदानलक्षणम्।

अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बलाच्छेत्स्त्रियं नरः। हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥ ८१ ॥ मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगाभिघाततः। यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ८२ ॥ वातेन कर्कशा रूक्षा सूक्ष्मा कृष्णा रुगान्विता। पित्तेन पीता रक्ता वा दाहतृष्णासमन्विता। श्लेष्मणा कठिना स्निग्धा कण्डूमत्स्वल्पवेदना ॥ ८३ ॥ अल्पीयः अल्पतरं खं योनिच्छिद्रं यस्याः ताम्। अवपाट्यते विदीर्यते।

जिस स्त्रीकी योनिका छिद्र बहुत छोटा होय ऐसी योनिवाली स्त्रिके साथ कामातुर पुरुष बलसहित मैथुन करनेसे, अथवा हस्तमैथुनादि करनेसे, हाथकी चोटके लगनेसे, जोरसे त्वचाको उलटनेसे अथवा खुजानेसे वा दबानेसे, अथवा वीर्यके वेगके अभिघातसे लिंगकी त्वचा फट जाती है, इसको अवपाटिका कहते हैं। यह अवपाटिका जो वायुसम्बन्धवाली होय तो खरखरी, रूखी, सूक्ष्म, काली तथा वेदनावाली होती है। पित्तके सम्बन्धवाली होय तो पीली अथवा लाल और दाहसे तथा तृषासे संयुक्त होती है और जो कफके सम्बन्धवाली होय तो कठिन, स्निग्ध, खुजलीवाली और अल्प पीडायुक्त होती है ॥ ८१–८३ ॥

अथावपाटिकाचिकित्सा।

स्नेहस्वेदैरिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम् ८४

वैद्य स्नेहों तथा स्वेदोंसे अवपाटिकाकी चिकित्सा करे ॥ ८४ ॥

अथ निरुद्धप्रकाशलक्षणम्।

वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म संश्रयते मणिम्। मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥ ८५ ॥ निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम्। मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विभ्रियते न च ॥ ८६ ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसम्भवम् ॥ ८७ ॥ निरुद्धप्रकाशमित्यस्य स्थाने निरुद्धप्रकशपदमार्षत्वात्।

लिंगमें वातका प्रकोप होकर चमडी मणिके आगे आकर चिपट जाती है इस प्रकार चमडीसे बढी हुई मणि मूत्रके प्रवाहको रोक देती है इसको निरुद्धप्रकश रोग कहते हैं। इस रोगमें मूत्र मन्द मन्द धारसे तथा वेदनारहित निकलता है और लिंगकी सुपारी खुलती नहीं, यह रोग वायुसे होता है और इसमें वदनाभी होती है। व्याकरणके अनुसार 'निरुद्धप्रकाश' ऐसा होना चाहिये परन्तु 'निरुद्धप्रकश' यह आर्ष है। अत एव 'निरुद्धप्रकश' ही लिखा है ॥ ८५–८७ ॥

अथ निरुद्धप्रकशचिकित्सा।

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम्। दारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां सम्प्रवेशयेत्। ॥ ८८ ॥ परिषिञ्चेद्घृतामज्जां शिशुमारवराहयोः। चक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ ८९ ॥ त्र्यहात्स्थूलतरां सम्यक्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाडीं मार्गे प्रवेशयेत् । स्रोतो विवर्द्धयेदेवं स्निग्धमन्नं च भोजयेत् । भित्त्वा वा सेवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ ९० ॥

निरुद्धप्रकशमें दोनों ओर मुखवाली घीसे चुपडी हुई लोहेकी, वा लकडीकी अथवा लाखकी बनी नली लिंगके छिद्रमें प्रवेश करे, पश्चात् उसके ऊपर शिशुमार (सूस) नामक जंतुकी तथा सूअरकी चरबीकी मज्जाका सेचन करे और वातनाशक पदार्थोंके साथ चक्रके तेलकाभी सेचन करे । तीन तीन दिनके पश्चात् क्रम क्रमसे बढाकर बडी नली उसमें अच्छे प्रकारसे प्रवेश करे कि जिससे मूत्रका मार्ग बढे । इस क्रियाके करते समय रोगीको स्निग्ध अम्ल भोजनके लिये देवे । सीवनको छोडकर शस्त्रसे चीरे, तत्काल क्षतकी समान चिकित्सा करे तो इससे निरुद्धप्रकश नष्ट हो जाता है ॥ ८८–९० ॥

अथ सन्निरुद्धगुदनिदानलक्षणम् ।

वेगसन्धारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः । निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ९१ ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति । सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेतं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥ ९२ ॥

मलादिके वेगोंको रोकनेसे अभिघातको प्राप्त हुई गुदामें रहनेवाली वायु गुदाके बडे द्वारको रोककर छोटा कर देती है कि जिससे मार्ग सुकडकर विष्ठा थोडी थोडी निकलती है । यह सन्निरुद्धगुदनामक व्याधि कही जाती है और यह अत्यंत दुस्तर है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथ सन्निरुद्धगुदचिकित्सा ।

सन्निरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैर्हितः । तथा निरुद्धप्रकशक्रियापि कथिताऽथवा ॥ ९३ ॥

वातनाशक तैलोंसे सेचन करे अथवा निरुद्धप्रकशकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा करनेसे सन्निरुद्धगुद नष्ट हो जाता है ॥ ९३ ॥

अथ वृषणकच्छूनिदानलक्षणम् ।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः । क्लिद्यते यदा स्वेदात्कण्डूं जनयते तदा ॥ ९४ ॥ ततः कण्डूयनात्क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते । प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ९५ ॥ उत्सादनम् उद्वर्तनं मलः मैलि इति लोके । क्लिद्यते आर्द्रो भवति ।

स्नान नहीं करनेसे तथा अंगोंको साफ नहीं करनेसे अथवा स्नान करते समय जो मनुष्य मैलको उबटन आदिसे नहीं साफ करता उसके वृषणोंके ऊपर स्थित मैल जब पसीनेके साथ मिलता है तब खुजलीको उत्पन्न करे है उसको बारबार खुजानेसे तत्काल फोडा हो जाता है और वह स्रावबाला होता है । यह रोग कफ तथा रुधिरके प्रकोपसे होता है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथ वृषणकच्छूचिकित्सा ।

सर्जाह्वकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः । उद्वर्तनेन नियतं शमयति वृषणस्य कण्डूतिम् ॥ ९६ ॥ भिषग्वृषणकच्छूं तु चिकित्सेत्सामरोगवत् । अहिपूतननिर्दिष्टक्रिययापि च तां हरेत् ॥ ९७ ॥

राल, कूठ, सेंधानिमक और सफेद सरसों इनको एकत्र करके वृषणोंके ऊपर मलनेसे वृषणकी खुजली अवश्य नष्ट हो जाती है । वैद्य वृषणकच्छूकी पामाकी समान चिकित्सा करे अथवा नीचे अहिपूतननामक रोगकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथाहिपूतननिदानलक्षणम् ।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽथौतेऽपाने शिशोर्भवेत् । स्विन्ने वाऽस्नाप्यमानस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥ ९८ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते । एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ९९ ॥

मलमूत्रके त्यागके बाद बालककी गुदामें विष्ठा लगा रहनेसे, उसको बराबर नहीं धोनेसे गुदामें खाज हो जाती है और पसीनेके निकलनेपर उसको साफ न करनेसे अर्थात् पसीनेको वहीं मरने देनेसे रुधिर तथा कफके प्रकोपसे खुजली होती है और खुजलानेसे तत्काल फुंसी तथा स्राव होता है जिससे कि उत्पन्न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए व्रण एकत्रित होकर भयंकर हो जाते हैं उसको अहिपूतन कहते हैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथाहिपूतनचिकित्सा।

तत्र संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत्। त्रिफलाखादिरक्काथैर्व्रणानां क्षालनं हितम्। शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपः कार्योऽहिपूतने १००

अहिपूतनके उत्पन्न होतेही प्रथम संशोधनसे माताके दूधको शुद्ध करे। हरड, बहेडा, आमले तथा खैरके काथसे व्रणोंको धोवे और शंखका चूर्ण सौवीरसंज्ञक कांजी और मुलैठी इनका लेप करे ॥ १०० ॥

अथ गुदभ्रंशनिदानलक्षणम्।

प्रवाहिकातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः। रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥१०१

जिसका शरीर रूखा और दुर्बल होय उसकी गुदा दस्त आनेके समय जोर करनेसे तथा अतिसारसे बाहर निकल आती है, उसको गुदभ्रंश कहते हैं। उसको काँच निकलना भी कहते हैं ॥ १०१ ॥

अथ गुदभ्रंशचिकित्सा।

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहेनाक्तं प्रवेशयेत्। प्रविष्टं रोधयेद्यत्नाद्व्येनाच्छिद्रचर्मणा ॥ १०२ ॥ पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्। एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ १०३ ॥ मूषकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपनम्। सुस्विन्नं मूषिकामांसेनाथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ १०४ ॥ वृक्षाम्लानलचांगेरीबिल्वपाठायवाग्रजम्। तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ॥ १०५ ॥

गुदभ्रंश रोगमें गुदाको सेककर घीसे अथवा तेलसे काँचको भीतर प्रवेश कर देवे और प्रवेश करनेके पश्चात् विना छिद्रवाले बैलके चमडेसे उसको यत्नपूर्वक रोक देवे। जो मनुष्य कमलिनीके कोमल पत्तोंको खांडके साथ खाता है उसकी काँच निकलनी बंद हो जाती है। काँचके ऊपर चूहेकी चरबी चुपडनेसे अथवा मूषेके मांसका बफारा देनेसे काँच निकलनी बंद हो जाती है। तिंतिडीक, चित्रक, चूक, बेलगिरी, पाढ, इन्द्रजौ इनका चूर्ण बनाकर मठेके साथ खानेसे गुदभ्रंश नष्ट होता है और अग्नि दीप्त होती है ॥ १०२–१०५ ॥

अथ मूषकतैलम्।

मूषका दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम्। तयोः क्काथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम् ॥ १०६ ॥ अभ्यंगात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति। विनश्यति तथानेन गुदशूलं भगन्दरम् ॥ १०७ ॥

मूषा और दशमूल इनको समान भाग लेकर इनका काथ और कल्कसे तेलको पकावे, इस तेलके लगानेसे गुदभ्रंश नष्ट हो जाता है और गुदशूल तथा भगन्दरभी नष्ट हो जाता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ शूकरदंष्ट्रकलक्षणम्।

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः। कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥ १०८ ॥ सः गुदभ्रंशः।

जो गुदभ्रंश दाहयुक्त, लाल किनारोंवाला, पकी चमडीवाला, तीव्र वेदनायुक्त, खुजलीसहित और ज्वरयुक्त होय तो उसको शूकरदंष्ट्र कहते हैं ॥१०८॥

अथ शूकरदंष्ट्रकचिकित्सा।

भृंगराजकमूलस्य रजन्या सहितस्य च। चूर्णं तु सहसा लेपाद्धाराहद्विजनाशनम् ॥ १०९ ॥

भांगरेकी जडके चूर्णको हलदीके साथ लेप करनेसे शूकरदंष्ट्र तत्काल नष्ट हो जाता है ॥ १०९ ॥

राजीवमूलकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः। शमयति शूकरदंष्ट्रं दंष्ट्रोद्भूतं ज्वरं घोरम् ॥ ११० ॥ रजनी मार्कवं मूलं पिष्टं शीतेन वारिणा। तल्लेपाद्धन्ति वीसर्पवाराहदशनाह्वयम् ॥ १११ ॥

प्रातःकाल कमलकी जडके कल्कको गायके घीके साथ पीनेसे शूकरदंष्ट्र और उससे उत्पन्न हुआ घोर ज्वर तत्काल शांत हो जाता है। हलदी और भांगरेकी जडको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे विसर्प और शूकरदंष्ट्र अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ११० ॥ १११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथानुशयीलक्षणम् ।

गंभीरामल्पशोथां च सवर्णामुपरि स्थिताम् । पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥११२॥ अत्र पिडकामिति विशेष्यपदमध्याहरणीयम् । गम्भीरा अन्तःपाकेन ।

भीतर पकनेवाली, गंभीर, थोडी सूजनयुक्त और पावके समान रंगवाली जो फुंसी पांवपर होती है उसको अनुशयी कहते हैं ॥ ११२ ॥

अथानुशयीचिकित्सा ।

हरेदनुशयीं वैद्यः क्रियया श्लेष्मविद्रधेः ११३

वैद्य कफविद्रधिकी समान अनुशयीकी चिकित्सा करे ॥ ११३ ॥

अथालसलक्षणम् ।

क्लिन्नांगुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहसमन्वितौ । दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥११४॥ अलसं कन्दई इति लोके ।

सडी हुई कींच आदिमें फिरनेसे पावोंकी अंगुलियोंके बीचमें क्लेदयुक्त खुजली और दाह तथा गीलापन रहता है उसको अलस कहते हैं, देशमें खाजुआ कहते हैं ॥ ११४ ॥

अथालसचिकित्सा ।

पादौ सिक्त्वारनालेन लेपनं त्वलसे हितम् । पटोलकुनटीनिम्बरोचनामारिचैस्तिलैः ११५ क्षुद्रास्वरससिद्धेन कटुतैलेन लेपयेत् । ततः कासीसकुनटीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥११६॥ विचूर्णयेदवधूलयेत् । करञ्जबीजं रजनी कासीसं पद्मकं मधु । रोचना हरितालं च लेपोऽयमलसे हितः ॥ ११७ ॥

आरनालसे पांवोंको सेचन करके लेप करनेसे खाजुवे दूर हो जाते हैं । कडवे परवल, मैनशिल, नीम, गोरोचन, काली मिरच, तिल और कटेरीका स्वरस इनसे पकाये हुए तेलका अलसके ऊपर लेपन करे, पश्चात् हीराकसीस, मैनशिल और तिल इनका चूर्ण बुरका देवे । करंजके बीज, हलदी, हीराकसीस, पद्माख, सहत, गोरोचन और हरिताल इनका प्रलेप करनेसे अलस अवश्य नष्ट हो जाता है ॥११५-११७

अथ पाददारीलक्षणम् ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः । पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ ११८ ॥ दारी बिवाई ।

जिसको पृथिवीपर फिरनेका बहुत अभ्यास होय तो उस मनुष्यके अत्यंत रूखे हुए पांवोंके तलुओंमें वायु वेदनासहित दारीको उत्पन्न कर देता है इसको देश भाषामें बिवाई कहते हैं ॥ ११८ ॥

अथ पाददारीचिकित्सा ।

पाददार्यां शिरां प्राज्ञो मोचयेत्तलशोधिनीम् । स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः । मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमिश्रितैः ॥ ११९ ॥ क्षारो यवक्षारः । वसा मज्जा च सामान्यतः छागादीनाम् । विशेषानभिधानतः । उक्तं च-मेदो मज्जावसा ज्ञेया ग्राम्यानूपौदकोद्भवा । स्नेहोऽस्थनः शुचिरेव स्यात्स मज्जा कथितो बुधैः । ॥ १२०॥ वसा शुद्धमांसभवः स्नेहः । सर्जाद्वसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं घृतमधुप्लुतम् । निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जने ॥ १२१ ॥ मधुसिक्थकगैरिकधुतगुडमाहिषाक्षशालनिर्यासैः । गैरिकसहितैर्लेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥ १२२ ॥ मधुसिक्थकं मोम इति लोके । प्रथमं गैरिकं शिलाजतु, द्वितीयं गैरिकं गेरू इति लोके । शालनिर्यासः राल इति लोके ।

पाँवमें बिवाई हुई होय तो वैद्य तलुवेको शुद्ध करनेके लिये फस्तको खोलकर रुधिरको निकलवावे, पांवोंको स्नेहन तथा स्वेदन करके पश्चात् मोम, वसा, चरबी, मज्जा, घी और जवाखार इनको एकत्र मिलाकर वारंवार लेप करे तो दारी (बिवाई) दूर हो जाती है। यहां चरबी और मज्जा किसकी लेनी चाहिये यह कुछ नहीं लिखा इस कारण बकरा आदि जीवोंकी लेनी चाहिये । क्योंकि मदनपाल कहता है कि "मेद, मज्जा तथा चरबी ग्राम्य पशुओंकी जलप्राय प्रदेशके जीवोंकी और जलचर प्राणियोंकी लेनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिये । और हड्डीके भीतरका जो उत्तम स्नेह है वह मजा कहा जाता है । राल तथा सेंधानिमक इनके चूर्णको घीमें तथा सहतमें मिलाकर मथे फिर उसमें सरसोंका तेल मिलाकर पांवोंमें लगानेसे बिवाई दूर हो जाती है। मोम, शिलाजीत, घी, गुड, भैंसिया गूगल, राल और गेरू इनको मिलाकर लेप करनेसे पांवोंका फटना बंद हो जाता है ॥ ११९–१२२ ॥

अथोन्मत्ततैलम् ।

उन्मत्तकस्य बीजेन मानकक्षारवारिणा । विपक्वं कटुतैलं तु हन्याद्दारीं न संशयः१२३॥

धतूरेके बीज और मानकंदकी भस्मके जलसे पकाया हुआ सरसोंका तेल पांवोंमें फटनेके लिये उत्तम है यह निश्चय है ॥ १२३ ॥

अथ कदरलक्षणम् ।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः । ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरस्तु सः । ॥ १२४ ॥ शर्करा अत्र वालुका । कोलवत्क्षुद्रबदरवत् । उत्सन्नः उद्गतः ।

पावमें कंकर पत्थर रेता आदिके लगनेसे अथवा कांटे आदिके छिद जानेसे पांवमें छोटे बेरकी समान ऊंची गांठ उत्पन्न होती है उसको कदर कहते हैं। देशमें ठेक वा ठेठ कहते हैं ॥ १२४ ॥

अथ कदरचिकित्सा ।

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥१२५॥

कदरको शस्त्रसे चीरकर गरम तेलका अथवा अग्निसे दाग देनेसे कदर नष्ट हो जाता है ॥ १२५ ॥

अथ तिलकालकलक्षणम् ।

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च । वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १२६ ॥ समानि अनुद्गतानि । अयं तिल इति लोके ।

वात, पित्त तथा कफके प्रकोपसे काले, तिलकी समान, पीडारहित, त्वचासे मिले जो दाग होते हैं उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं ॥ १२६ ॥

अथ मशकलक्षणम् ।

अवेदनं स्थिरं चैव यत्तु गात्रे प्रदृश्यते। माषवत्कृष्णमुत्सन्नं मलिनं मशकं दिशेत् । ॥ १२७ ॥ स्थिरमचलम् अवेदनं वेदनारहितं मशक इति लोके ।

शरीरमें उडदकी समान काले तथा ऊंचे, मलिन, वेदनारहित और स्थिर जो दाग होते हैं उनको मशक कहते हैं देशमें मस्सा कहते हैं ॥ १२७ ॥

अथ श्यावपिंडिकलक्षणम् ।

वित्वचस्तनवः स्फोटाः सूक्ष्माग्राः श्यावपिण्डिकाः । भवन्ति कफपित्ताभ्यां क्षिप्तं नाशं प्रयान्ति च ॥ १२८ ॥

पतली त्वचावाले, सूक्ष्म अग्रभागवाले, शीघ्र नाश होनेवाले जो कफवातसे उत्पन्न हुए स्फोट उनको श्यावपिंडिक कहते हैं ॥ १२८ ॥

अथ जतुमणिलक्षणम् ।

सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम् । सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिश्च सः ॥ १२९ ॥ कृष्णः स्निग्धो जतुमणिर्ज्ञेयो वातोत्तरैस्त्रिभिः । अरुजं त्वपरे रक्तं लक्ष्मेत्याहुर्भिषग्वराः ॥ १३० ॥ समं समवर्णम् । उत्सन्नं किञ्चिदुत्सन्नम् । सहजं शरीरेण सह जातम् । एवंविधं यन्मण्डलं स जतुमणिर्लक्ष्यः लक्ष्म चैकेषामिति । एकेषामाचार्याणां मते तन्मण्डलं लक्ष्मसंज्ञं च । लक्ष्म लशुन इति लोके। अपरैस्तु जतुमणिलक्ष्मणोर्भेदकं लक्षणमुक्तम् । कृष्ण इत्यादिना ।

शरीरकी समान वर्णवाला, कुछेक ऊंचा शरीरके साथ उत्पन्न हुआ और कफ तथा रुधिरके प्रकोपवाला जो गोल मण्डल होता है उसको जतुमणि कहते हैं, कितने एक आचार्य जतुमणिको लक्ष्म वा लक्ष्य कहते हैं, देशमें लहसन या लहसा कहते हैं। कितने एक उत्तम वैद्योंका ऐसा मत भी है कि, वात पित्त और उल्वणतावाले कफसे भी काला और चिकन जो मण्डल होता है वह जतुमणि कहा जाता है और इसी प्रकार वेदनारहित जो लाल मण्डल होता है वह लक्ष्म कहा जाता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तिलकालकमशकजतुमणिचिकित्सा ।

चर्मकीलं जतुमणिमशकांस्तिलकालकान् ।
उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः॥१३१

चर्मकील नामक अर्शको, जतुमणिको, मस्सेको और तिलको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे सम्पूर्ण रीतिसे दाग देवे ॥ १३१ ॥

अथ न्यच्छलक्षणम् ।

मण्डलं महदल्पं वा श्यावं वा यदि वा सितम् । सहजं नीरुजं गात्रे न्यच्छं तदभिधीयते ॥ १३२ ॥

शरीरमें बडा अथवा छोटा, काला अथवा सफेद शरीरके साथ उत्पन्न हुआ और वेदनारहित जो मंडल होता है उसको नच्छ कहते हैं ॥ १३२ ॥

अथ न्यच्छचिकित्सा ।

शिरावेधैः प्रलेपैश्च तथाभ्यङ्गैरुपाचरेत् । न्यच्छं लिम्पेत्पयःपिष्टैः कल्कैः क्षीरतरुद्रुवैः ॥ १३३ ॥ त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिंशिपा चैभिः । उद्वर्तनं विरचितं न्यच्छव्यंगापहं सिद्धम् ॥ १३४ ॥ स्थविरस्य वृद्धदारस्य ।

शिराको वेधन करनेसे, प्रलेप करनेसे और अभ्यंगसे न्यच्छकी चिकित्सा करे । क्षीरवृक्षोंकी छालको दूधमें पीसकर उस कल्कसे न्यच्छके ऊपर लेप करे तो न्यच्छ दूर हो जाता है । भांगके पत्ते, विधारेकी जड और सीसम इनको पीसकर रगडकर मलनेसे न्यच्छ तथा व्यंग अवश्य दूर हो जाता है ॥१३३॥१३४॥

अथ पद्मिनीकण्टकलक्षणम् ।

कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डुमत्पाण्डुमण्डलम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ १३५ ॥ आचितं व्याप्तम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैः पद्मिनीनालकण्टकसदृशैस्तदाख्यं पद्मिनीकण्टकनामैव ।

कफ तथा वायुसे उत्पन्न हुई कमलनालके कांटोंकी समान कांटोंसे व्याप्त, खुजलीसहित, गोल और पीला जो मण्डल होता है वह 'पद्मिनीकण्टक' कहा जाता है ॥ १३५ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकचिकित्सा ।

पद्मिनीकण्टके रोगे छर्दयेन्निम्बवारिणा । तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदापयेत् ॥ १३६ ॥

पद्मिनीकण्टक नामक क्षुद्ररोग हुआ होय तो नीमके जलसे वमन करावे, नीमके पानीसे पका हुआ घी सहत डालकर पिये । नीम तथा अमलतासके कल्कसे वारंवार चुपडे तो पद्मिनीकण्टक अवश्य दूर हो जाता है ॥ १३६ ॥

अथ निम्बादिघृतम् ।

निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम् । चतुर्गुणेन निम्बोत्थपत्रक्काथेन गोघृतम् ॥ १३७ ॥ पचेत्ततस्तु निम्बस्य कृतमालस्य पत्रजैः ॥ कल्कैर्भूयः पचेत्सिद्धं तत्पिबेत्पलसम्मितम् ॥ पद्मिनीकण्टकाद्रोगान्मुक्तो भवति नान्यथा ॥ १३८ ॥

चौगुने नीमके पत्तोंके क्काथसे नीमके घीको पकाकर फिर उसी घीको नीमके पत्ते तथा अमलतासके पत्तोंके कल्कसे पकावे तो यह निम्बादिघृत सिद्ध होता है । इस घीको चार चार तोले प्रमाण सेवन करनेसे पद्मिनीकण्टक नष्ट हो जाता है यह निश्चय है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

अथाजगल्लिकालक्षणम् ।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा । कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १३९ ॥ ग्रथिता गुम्फितेव । मुद्गसन्निभा मुद्गाकृतिः ।

बालकोंके मूँगकी आकृतिवाली, स्निग्ध शरीरके वर्णकी माफिक, गुंफित, वेदनारहित और कफसे तथा वायुसे जो फुंसियें होती हैं उनको अजगल्लिका कहते हैं ॥ १३९ ॥

अथाजगल्लिकाचिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकां सामां जलौकोभिरुपाचरेत् । शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः । कठिनां क्षारयोगेन द्रावयेदजगल्लिकाम्१४०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो अजगल्लिका अपक्व अर्थात् कच्ची होय तो जोंक लगाकर उसकी चिकित्सा करे । सीपकी भस्म तथा फटकरीकी खीलें इनको पीसकर बारंबार उसके ऊपर लेप करे । जो अजगल्लिका कठिन होय तो क्षार लगाकर उसको द्रवीभूत करे ॥ १४० ॥

अथ यवप्रख्यालक्षणम् ।

यवाकारा प्रकठिना ग्रथिता मांससंश्रया । पीडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ १४१ ॥ यवाकारा मध्ये स्थूला प्रान्ते कृशा ।

कफसे तथा वायुसे जौकी समान आकारवाली, अत्यन्त कठिन, गुँथी हुई और मांसके आश्रयवाली जो फुडिया होती है वह यवप्रख्या कही जाती है । जौकी समान आकारवाली अर्थात् बीजमें मोटी और दोनों ओर पतली ॥ १४१ ॥

अथांत्रालजीलक्षणम् ।

घनामबक्रां पिडिकामुन्नतां परिमण्डलाम् । अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ १४२ ॥ घनां कठिनाम् । परिमण्डलां वर्तुलाम् ।

कठिन, समान अर्थात् टेढी नहीं, ऊंची, गोल और थोडी राधवाली जो फुंसी होती है वह अंत्रालजी कही जाती है, यह फुंसी कफसे तथा वायुसे होती है ॥ १४२ ॥

अथ यवप्रख्यांत्रालजीचिकित्सा ।

अन्त्रालजीयवप्रख्ये पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् । मनःशिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः प्रलेपयेत् । पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् १४३

यवप्रख्या और अंत्रालजीको प्रथम स्वेदन देकर पश्चात् मैनशिल देवदारु और कूठ इनका कल्क लगावे । पकनेपर व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ १४३ ॥

अथ विवृतालक्षणम् ।

विवृताख्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम् । विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥ १४४ ॥ परिमण्डलाम् परितः शोथवतीम् ।

फटे हुए मुखवाली, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरकी समान और चारों ओर सूजनवाली जो फुंसी होती है वह ' विवृता ' कही जाती है । यह फुंसी पित्तसे निकलती है ॥ १४४ ॥

अथेन्द्रवृद्धालक्षणम् ।

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पीडिकां पीडकाचिताम् । इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ १४५ ॥ पद्मकर्णिकवत् पद्मफलाधारोपमां पीडिकाचितां किञ्चल्कवल्लघुपीडकाचिताम् ।

बीचमें कमलकर्णिकाकी समान एक फुडिया और उसके चारों ओर बहुतसी छोटी छोटी फुंसी होयँ उसको वैद्य इन्द्रवृद्धा कहते हैं । यह वात तथा पित्तसे होती है ॥ १४५ ॥

अथ गर्दभिकालक्षणम् ।

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सुरक्तं पीडकाचितम् । रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ १४६ ॥

गोल, ऊंचा, अत्यन्त लाल, फुंसियोंसे व्याप्त और वेदना करनेवाला जो मंडल होता है उसको गर्दभिका कहते हैं । यह गर्दभिका वायुसे तथा पित्तसे होती है ॥ १४६ ॥

अथ जालगर्दभलक्षणम् ।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् । दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १४७ ॥ अपाकवानीषत्पाकवान् पित्तकृतत्वेन सर्वथा पाकाभावस्य अयुक्तत्वात् । अयमग्निवात इति ख्यातः ।

विसर्पकी समान फैलनेवाली, पतली, कम: पकनेवाली और दाह तथा ज्वर उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होती है वह जालगर्दभ कही जाती है । यह रोग पित्तसे उत्पन्न होता है । यद्यपि मूलमें ' अपाक ' शब्द है तथापि ' कम पकनेवाली । ऐसा अर्थ किया है इसका कारण यह है कि, पित्तसे उत्पन्न होनेके कारण सर्वथा नहीं पकना असम्भव है ॥ १४७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ विवृतेन्द्रवृद्धागर्दभिकाजालगर्दभानां चिकित्सा।

विवृतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम्।
पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक्।
पाके तु रोपयेदाज्यैः पक्वैर्मधुरभेषजैः॥१४८॥

विवृताको, इन्द्रवृद्धाको, गर्दभिकाको और जालगर्दभको वैद्य पित्तज विसर्पोक्त चिकित्सासे दूर करे। यह जो पके तो इनको जीवनीय गणकी मधुर औषधियोंसे पकाये हुए घृतसे रोपण करे॥ १४८॥

अथ कच्छपिकालक्षणम्।

ग्रथिताः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः।
कफानिलाभ्यां पिडकाः सा स्मृता कच्छपी बुधैः॥ १४९॥
कच्छपोन्नता मध्ये प्रोन्नता प्रान्ते नता।

कछुवेकी समान बीचमें ऊंची और चारों ओर नीची पांच वा छः जो दारुण फुंडियें होती हैं उनको कच्छपिका जानना। यह रोग कफ तथा वायुसे होता है॥ १४९॥

अथ कच्छपिकाचिकित्सा।

कच्छपीं स्वेदयेत्पूर्वं तत एव प्रलेपयेत्।
कल्कीकृतैर्निशाकुष्ठसितातालकदारुभिः।
तां पक्वां साधयेच्छीघ्रं भिषग्व्रणचिकित्सया॥ १५०॥

कच्छपिकाको प्रथम स्वेदन कर पश्चात् उसके ऊपर हलदी, कूठ, मिश्री, हरिताल और देवदारु इनके कल्कका लेप करे, पकनेपर व्रणकी समान चिकित्सा करके दूर करे॥ १५०॥

अथ शर्कराबुर्दलक्षणम्।

प्राप्य मांसशिरास्नायुमेदः श्लेष्मा तथानिलः।
ग्रन्थिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम्॥ १५१॥
स्रवति स्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः।
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयत्यतः॥ १५२॥
दुर्गन्धं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः।
स्रवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्कराबुर्दम्॥ १५३॥ शर्करा वालुकातुल्या।

कफ तथा वायु मांस, शिरा, स्नायु और मेदमें प्राप्त होकर गांठको उत्पन्न करे हैं, यह गांठ फूटकर सहतकी समान, घीकी समान, तथा चरबीकी समान बहती है। इसमें वृद्धिको प्राप्त हुई वायु मांसको सुखाकर गुंथीसी गांठको उत्पन्न करती है। यह गांठ उत्पन्न होनेसे छोटी नसें दुर्गन्धि अत्यन्त क्लेदयुक्त और अनेक वर्णवाले रुधिरको सहसा बहाती हैं इसको शर्कराबुंद कहते हैं। यह गांठ रेतेकी समान होती है॥ १५१–१५३॥

अथ शर्कराबुर्दचिकित्सा।

मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्कराबुर्दम्।

मेदसम्बन्धी अर्बुदकी जो चिकित्सा कही है उसी चिकित्सासे शर्कराबुर्दको दूर करे॥

अथ कियदालस्यादिक्षुद्रविकाराणां लक्षणम्।

शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते। अस्वास्थ्यं चिन्तयात्यर्थमरतिः कथ्यते बुधैः॥ १५४॥

शरीरमें सामर्थ्य होनेपर भी काम काज करनेमें उत्साह न होय उसको आलस्य कहते हैं। चिंतासे जो अस्वस्थता होती है उसको अरति कहते हैं॥ १५४॥

उत्क्लिश्यान्नं च निर्गच्छेत्प्रसेकः ष्ठीवनेरितम्। हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत्॥ १५५॥

मुखमेंसे लार गिरे, थूकके साथ जो भोजन किया अन्न चित्तमें ग्लानि होनेके कारण निकले और हृदयमें पीडा होय उसको उत्क्लेश कहते हैं॥ १५५॥

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः। न चान्नं रोचते यस्मै ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत्॥ १५६॥

मुखमें मधुरता, तन्द्रा, हृदयका बंधना, भ्रम और अन्नपर अरुचि यह लक्षण होंय तो उसको ग्लानि जानना॥ १५६॥

ग्लानिरोजःक्षयाद्दुःखादजीर्णाच्च श्रमोद्भवात्। उदानकोपादाहारसुस्थितत्वाच्च यद्भवेत्। पवनस्यो गमनं तमुद्गारं प्रचक्षते॥ १५७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओजके क्षयसे, दुःखसे, अजीर्णसे तथा परिश्रमसे ग्लानि होती है। उदानवायुके प्रकोपसे और आहारके यथावस्थित होनेसे पवनकी जो ऊंची गति होती है उसको उद्गार कहते हैं ॥ १५७ ॥

आटोपो गुडगुडाशब्दः प्रोक्तो जठरसंभवः। तमःस्थस्येव यज्ज्ञानं तत्तमः कथ्यते बुधैः ॥ १५८ ॥

पेटमें जो गुडगुड शब्द होता है उसको आटोप कहते हैं। अन्धकारमें स्थित होनेकेसा जो ज्ञात होता है उसको पंडित वैद्य तम कहते हैं ॥ १५८ ॥

इति क्षुद्ररोगाधिकारः संपूर्णः।

अथ शिरोरोगाधिकारः।

तत्र शिरोरोगनिदानं संख्या च।

शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः। सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण क्रिमिभिस्तथा ॥ १ ॥ सूर्यावर्तानन्तवातशङ्खकार्द्धावभेदकाः। एकादशविधस्यास्य लक्षणानि प्रचक्षते ॥ २ ॥ शिरोरोगाः अत्र शिरोरोगजा शूलरूपा रुगभिधीयते। वातपित्तकफैस्त्रिभिः। ननु वातपित्तकफैरित्युक्तेस्त्रित्वबोधः। किमर्थं त्रिभिरिति पदम्। उच्यते सर्वेषां शिरोरोगाणां सन्निपातजत्वख्यापनार्थम्। वातपित्तकफानां पृथक्कारणत्वं चोत्कर्षात्। क्षयेण रसादिक्षयेण।

वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक, रुधिरसम्बन्धी, रस आदि धातुओंके क्षय होनेसे उत्पन्न हुआ, कृमियोंसे उत्पन्न हुआ, सूर्यावर्त, अनन्तवात, शंखक और अर्द्धावभेदक इस प्रकार यह शिरोरोग ग्यारह ११ प्रकारका होता है, इन सबके लक्षण नीचे लिखते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ वातजशिरोरोगलक्षणम्।

यस्याऽनिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम्। बन्धोपतापैः प्रशमो भवेच्च शिरोऽभितापः स समीरणेन ॥ ३ ॥ भवेदिति शेषः अनिमित्तमतर्कितविप्रकृष्टनिमित्तम्। निशि चातिमात्रं रात्रौ शैत्येन वायोराधिक्यात्। उपतापः स्वेदनम्। शिरोऽभितापः शिरःपीडा।

अकस्मात् दूरके कारणोंसे जो मस्तकमें तीव्र पीडा होय, रात्रिमें शीतके कारण वायुकी अधिकतासे अधिक बढ जाय और मस्तकको बांधनेसे तथा सेंकनेसे वह शांत हो जाती होय उसको वातसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग जानना ॥ ३ ॥

अथ पित्तजशिरोरोगलक्षणम्।

यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो दह्यति चाक्षिनासम्। शीतेन रात्रौ च भवेत्क्षयश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ४ ॥ दह्यति इत्यार्षत्वात्।

जिसका शिर तप्त अंगारोंकी समान गरम हो, नेत्र और नासिकामें दाह हो और रात्रिमें शीतके कारण वदना शांत हो जाय तो उसको पैत्तिक शिरोरोग जानना ॥ ४ ॥

अथ कफजशिरोरोगलक्षणम्।

शिरो भवेत्तस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमं च। शूनाक्षिनासावदनं च यस्य शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ५ ॥ कफोपदिग्धमन्तः कफलिप्तम् प्रतिष्टब्धं तच्च शिरः।

भीतरसे मस्तक कफसे लिप्तसासा हो, भारी हो, स्तब्ध हो, शीतल हो और आंखोंके कोये और मुख सूजा होय तो उसको कफज शिरोरोग जानना ॥ ५ ॥

अथ सन्निपातजशिरोरोगलक्षणम्।

शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवंति।

शिरोरोगमें जो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण दीखते होयँ तो उसको सन्निपातज शिरोरोग जानना।

अथ रुधिरजन्यशिरोरोगलक्षणम्।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ६ ॥ पैत्तिकाद्भेदमाह। शिरसः स्पर्शासहत्वमिति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पित्तज शिरोरोगके सब लक्षण दीखते हों और मस्तक किसी पदार्थका स्पर्श नहीं सहन कर सके तो उसको रुधिरजन्य शिरोरोग जानना। मस्तक किसीका स्पर्श नहीं कर सके इतनाही पित्तज और रुधिरजनित शिरोरोगमें भेद है ॥ ६ ॥

अथ रसादिधातुक्षयजन्यशिरोरोग-लक्षणम्।

वसाबलासक्षतसम्भवानां शिरोगतानामतिसङ्क्षयेण। क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम्। संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥७॥ क्षतसम्भवं रुधिरम्। कष्टः कष्टसाध्यः। अङ्गं भ्रमति तुद्येत शिरोविभ्रान्तनेत्रता। मूर्च्छा गात्रावसादश्च शिरोरोगे क्षयात्मके ॥ ८ ॥

मस्तकमें अत्यन्त तीव्र पीडा हो, वह पीडा सेकनेसे, वमन करनेसे, धूमपानसे, नस्य देनेसे और रुधिरको निकलवानेसे वृद्धिको प्राप्त होय तो उसको जानना कि, शिरमें रहनेवाली चरबी, कफ और अत्यन्त रुधिरके क्षय होनेसे यह शिरोरोग हुआ है। यह शिरोरोग कष्टसाध्य है। क्षयज शिरोरोगमें शरीर घूमता है, मस्तकमें सुई चुभोने सरीखी पीडा होती है, नेत्रोंकी पुतली बारंबार फिरती हैं, मूर्च्छा और अंगोंमें ग्लानि होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ कृमिजशिरोरोगलक्षणम्।

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः। घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोऽभितापः कृमिभिः स घोरः ॥ ९ ॥ सम्भक्ष्यमाणम्। कृमिभिरिति शेषः। घ्राणाच्चेति चकारेण कृमिनिर्गमोऽपि बोध्यते।

मस्तकमें अत्यन्त तोडने सरीखी पीडा हो, कृमिके भक्षण करनेके कारण भीतरसे फडकता हो ऐसा मालूम हो और नाकमेंसे राधसहित रुधिर निकले, तथा कीडे भी निकलें तो उसको जानना कि, यह भयंकर शिरोरोग कृमियोंसे उत्पन्न हुआ है ॥ ९ ॥

अथ सूर्यावर्तलक्षणम्।

सूर्योदयं या प्रतिमन्दमन्दमक्षिभ्रुवौ रुक् समुपैति गाढम्। विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ १० ॥ शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाद्वा। सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवर्तं तमुदाहरन्ति ॥ ११ ॥ सूर्योदय इति लक्षीकृत्य आरभ्येति यावत्सूर्यस्य अपवृत्तौ सूर्यस्य अधोगतौ।

सूर्यके उदय होनेपर धीरे धीरे आंखें और भौंओंमें मन्द मन्द पीडा होती आवे, ज्यों ज्यों सूर्य आकाशमें अधिक चढता जाय त्यों त्यों वह पीडा अधिक होती जाय, जब दो प्रहरके बाद सूर्य पश्चिममें ज्यों ज्यों छिपता जाय त्यों त्यों यह पीडा शांत होती जाय, किसी समय यह पीडा शीतसे शांत होती है और किसी समय उष्णतासे भी शान्त होती है इसको सूर्यावर्त कहते हैं। यह रोग तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है और अत्यन्त कष्टसाध्य है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथानंतवातलक्षणम्।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां सम्पीड्य गाढं स्वरुजां सुतीव्राम्। कुर्वन्ति यो ऽक्षिण भ्रुवि शंखदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ १२ ॥ गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजान्विकारान्। अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १३ ॥ एवशब्दोऽत्र अप्यर्थः। अव्ययानामनेकार्थत्वात्। स्वरुजां स्वस्वरूपां रुजां व्यथादाहगौरवादिरूपां दोषाः कुर्वन्ति। अयमनन्ते वातसमः अनन्तवातः। अक्ष्यादिषु स्थितिं करोति। विशेषतः गण्डपार्श्वे स्थितिं करोति। पीडायाः स्थितिं कृत्वा कम्पादींश्च करोति।

दूषित हुए वात पित्तादि तीनों दोष मन्या नाडीको अत्यंत पकडकर अपने अपने स्वभावके अनुसार व्यथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दाह तथा भारीपन आदि तीव्र वेदनाको उत्पन्न करते हैं यह वेदना तत्काल आंखोंमें, भौंओंमें और कनपटियोंमें स्थित होती है, विशेष करके गण्डस्थलमें स्थित होती है तथा यह स्थित होकर कंप, हनुग्रह तथा नेत्रकी पीडाको तथा करे है, इसको अनन्तवात कहते हैं। यह तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है ॥१२॥१३॥

अथ शंखकलक्षणम् ।

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शंखदेशे विमूर्च्छिताः। तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १४ ॥ स शिरो विषवद्वेगान्निरुध्याशु गलं तथा । त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नाम नामतः । ऽयहं जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १५ ॥ पित्तरक्तानिलाः अत्र कफोऽपि योज्यः "कृतानुतापः कफपित्तरक्तैः" इति सुश्रुतवचनात् । विमूर्च्छिताः प्रवृद्धाः । स शंखकः त्रिरात्रात् । त्रिरात्रिमध्ये मारयति इति यावत् ।

दुष्ट हुए और शंख (कनपटी) प्रदेशमें वृद्धिको प्राप्त हुए पित्त, रुधिर और वायु यह तीव्र पीडा, तीव्र दाह और अत्यन्त लाल दारुण सूजनको उत्पन्न करे है, वह सूजन विषकी समान अपने वेगसे तत्काल मस्तकको तथा गलेको रोककर तीन रात्रिके भीतर प्राणोंको हरण करे है । इस शिरोरोगको शंखक कहते हैं । यह शिरोरोगवाला तीन दिनतक जीता है इस कारण वैद्य इसको प्रथम विचारकर अर्थात् औषधि करे । यद्यपि इस वचनमें सूजनको करनेवाला पित्त, रुधिर और वायु यह तीन ही कहे हैं तो भी सुश्रुतके वचनमें कफके साथ गिना है। इससे यह समझना कि तीनोंके साथ कफका भी सम्बन्ध होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथार्द्धावभेदकनिदानलक्षणम् ।

रूक्षाशनाद्यध्यशनावश्यप्राग्वातमैथुनैः । वेगसन्धारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १६ ॥ केवलः स कफो वार्द्धं गृहीत्वा शिरसो बली । मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटार्द्धेषु वेदनाम् ॥ १७ ॥ शस्त्राशनिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्द्धावभेदकः । नयनं वाऽथ वा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १८ ॥ अवश्यः अवश्यायः । आयासः अतिचलनभारोद्वहनादिः । व्यायामः मल्लश्रमः । शस्त्राशनिनिभां शस्त्रघातेन इव वज्रपातेन इव वेदनाम् ।

रूक्ष भोजन आदि करनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, हिम (बर्फ पाला) को सेवन करनेसे, पूर्वकी पवनको सेवन करनेसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, अत्यन्त चलने तथा अत्यन्त बोझ ढोने आदि परिश्रम करनेसे और दंड कसरत आदि करनेसे प्रकोपको प्राप्त हुई बलवान् वायु अपने आप अकेली अथवा कफकी सहायता लेकर मस्तकके अर्द्धभागको पकडकर नाड, भौं, कनपटी, कान, आंख और कपालका आधा भाग इनमें शस्त्रघातकी समान और वज्रपातकी समान तीव्र पीडाको उत्पन्न करे है इसको अर्द्धावभेदक कहते हैं । यह रोग जब अधिक बढ जाता है तो आंखको वा कानको नष्ट कर देता है, देशमें इसको आधाशीशी कहते हैं ॥ १६–१८ ॥

अथ शिरोरोगचिकित्सा ।

वातजातशिरोरोगे स्नेहस्वेदं विधर्षणम् । पानाहारोपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १९ ॥ कुष्ठमेरण्डमूलं च नागरं तक्रपेषितम् । कटूष्णं शिरसः पीडां भाले लेपनतो हरेत् ॥ २० ॥ रसः श्वासकुठारो यस्तस्य नस्यविशेषतः । शिरःशूलं हरत्येव विधेयो नात्र संशयः ॥ २१ ॥

जो शिरोरोग वातसे उत्पन्न हुआ होय तो स्नेहन करना, स्वेदन करना तथा मस्तकमें तेल आदि मलना चाहिये और वातनाशक पान, आहार तथा उपनाह स्वेद करे । कूठ, अंडकी जड और सोंठ इनको तक्रमें पीसकर कुछेक गरम करके कपालमें लेप करे तो वातजन्य शिरोरोग नष्ट हो जाता है । श्वासकुठाररसका नास देनेसे मस्तकका शूल अवश्य नष्ट हो जाता है । इस वातजन्य शिरोरोगपर यह नस्य अवश्य देना चाहिये ॥ १९–२१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ शिरोवस्तिः ।

आशिरो व्यायतं चर्म षोडशांगुलमुच्छ्रितम् । तेनावेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥ २२ ॥ निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैः कोष्णैः प्रपूरयेत् । धारयेदारुजः शान्त्यै यामं यामार्द्धमेव वा ॥ २३ ॥ शिरोवस्तिर्हरत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम् । हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं मूर्द्धकम्पनम् ॥ २४ ॥ विना भोजनमेवैष शिरोवस्तिः प्रयुज्यते । दिनानि पञ्च वा सप्त रुचितोऽग्रे ततोऽपि च ॥२५॥ ततोऽपनीतस्नेहस्तु मोचयेद्वस्तिबन्धनम् । शिरोललाटवदनं ग्रीवांसादीन्विमर्दयेत् ॥ २६ ॥ सुखोष्णेनाम्भसा गात्रं प्रक्षाल्याऽश्नाति यद्धितम् । आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपि च ॥ २७ ॥ मुद्गमाषान्कुलत्थांश्च खादेद्वा निशि केवलान् । कटुकोष्णान्ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा ॥ २८ ॥ पित्तात्मके शिरोरोगे शीतानां चन्दनाम्भसा । कुमुदोत्पलपद्मानां स्पर्शाः सेव्याश्च मारुताः ॥२९ ॥ सर्पिषः शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् । रसः श्वासकुठारोऽल्पः कर्पूरः कुंकुमं नवम् ॥ ३० ॥ सिता छागी पयः सर्वं चन्दनेनानुघर्षयेत् । तस्य नस्यं भिषग्दद्यात्पित्तजायां शिरोरुजि ॥ ३१ ॥ किन्तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेवं हितं मतम् । गुडनागरकल्कस्य नस्यं मस्तकशूलनुत् ॥ ३२ ॥ रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् । शीतोष्णयोश्च विन्यस्य विशेषो रक्तमोक्षणम् ॥ ३३ ॥ कफजे लंघनं स्वेदरूक्षोष्णैः पावकात्मकैः । सन्निपातभवे कार्या सन्निपातहरी क्रिया । पुराणसर्पिषः पानं विशेषेण दिशन्ति हि॥३४॥

जो मस्तकपर पूरा आ जाय ऐसा लम्बा और सोलह अंगुल ऊंचा चमडा लेकर उस चमडेसे मस्तकको बाँधे और उसके नीचेके जोडोंमें उडदका चून जलमें सानकर लगा देवे । फिर रोगीको निश्चल बैठालकर कुछेक गरम तेल मस्तकके ऊपर उस चमडेमें भर देवे । पश्चात् जबतक पीडा शांत न होय तबतक अथवा एक प्रहरतक या चार घडीतक उसको ऐसा ही बैठा रहने देवे । यह शिरोवस्ति वातज शिरोरोग, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, नेत्रकी पीडा कानकी पीडा, अर्दित और मस्तककंपको दूर करे है । यह वस्ति भोजन करनेसे पहिले ही रोगीको देनी चाहिये । पांच दिनतक, सात दिनतक और जो अनुकूल होय तो इससे भी अधिक दिनतक यह क्रिया प्रयोग करनी चाहिये । वेदना शांत होनेपर अथवा एक प्रहरके पश्चात् अथवा चार घडीके पश्चात् सब तेलको निकालकर वस्तिके बंधनको अलग कर लेवे और मस्तक, कपाल, मुख, गरदन तथा खवा आदिको खूब मर्दन करे । पश्चात् सुहाते सुहाते गरम जलसे शरीरको धोकर पथ्य अन्न खानेको देवे । जांगल पशुओंका मांस और लाल शालि चावल आदि भी इसपर हितकारी हैं । रात्रिमें मूँग, उडद और कुलथी अथवा इकली कुलथीको रांधकर उसमें घी डालकर तथा तीक्ष्ण पदार्थ (मिरची आदि) डालकर गरम गरम खाय और इसके ऊपर गरम दूध पिये । जो शिरोरोग पित्तसे उत्पन्न हुआ होय तो चंदनके जलसे शीतल किये पंखोंकी पवन, लाल कमल और सफेद कमल इनको धारण करे तथा शीतल हवाका सेवन करे । सौ वार धुले हुए घीको मस्तकपर धारण करनेसे पित्तज शिरोरोग दूर होता है । कुछेक श्वासकुठारनामक रस, कपूर, नवीन केसर, मिश्री और बकरीका दूध इन सबको सफेद चंदनके साथ जलमें घिसकर नास देनेसे पित्तसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग नष्ट होता है । मस्तकके सम्पूर्ण शूलोंमें उपरोक्त प्रयोग हितकारी है ऐसा माना गया है । गुडका और सोंठके कल्कका नास देनेसे भी मस्तकशूल दूर हो जाता है । जो शिरोरोग रुधिरसे हुआ होय तो पित्तज शिरोरोगकी समान सम्पूर्ण भोजन लेपन और सेचनसे चिकित्सा करे और विशेष करके रक्तमोक्षण करे । जो शिरोरोग कफसे उत्पन्न हुआ होय तो लंघन करावे तथा गरमीसे पूर्ण [illegible] और उष्ण पदार्थोंसे स्वेदन करावे । जो [illegible] पातसे उत्पन्न हुआ होय तो सन्निपा[illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाली चिकित्सा करे और विशेष करके पुराना घी पिलावे ऐसा वैद्यविद्याके विद्वानोंने कहा है ॥ २२–३४ ॥

अथ षड्बिन्दुतैलम्।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिका रास्निकसैन्धवं च। भृंगं विडंगं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ३५ ॥ अजापयस्तैलविमिश्रितं च चतुर्गुणं भृंगरसे विपक्वम्। षड्बिन्दवो नासिकया प्रदेयाः सर्वान्निहन्युः शिरसो विकारान् ॥ ३६ ॥ च्युतांश्च केशान्पतितांश्च केशान्निर्बन्धमूलान्सुदृढीकरोति। सुपर्णगृध्रप्रतिमं च चक्षुः कुर्वन्ति बाह्वोरधिकं बलं च ॥ ३७ ॥ जीवन्तिकात्र हरीतकी शाकविशेषश्च।

अंडकी जड, तगर, सतावर, जीवन्ती (जैनी), रासना, सेंधानिमक, भांगरा, वायविडंग, मुलैठी, सोंठ, काले तिलोंका तेल और बकरीका दूध इन सबको चौगुने भांगरेके रसमें पकावे तो यह 'षड्-बिंदु' तैल सिद्ध होता है। इस तेलकी छः बूँद नाकमें डालनेसे सर्व प्रकारके शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं। तथा बालोंका गिरना और दांतोंका हिलना दूर होकर बाल और दांत अत्यन्त दृढ हो जाते हैं। नेत्र गरुडकी समान और बलमें गीधकी समान तथा बाहुबली होता है ॥ ३५–३७ ॥

क्षयजे क्षयनाशाय कर्तव्यो बृंहणो विधिः। पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥ ३८ ॥

जो शिरोरोग क्षयसे उत्पन्न हुआ होय तो क्षयको नाश करनेके लिये पुष्टिकारक प्रयोग करे और वायुको नष्ट करनेवाले मधुर पदार्थोंसे पकाये हुए घृतको पिये तथा नासमें देवे ॥ ३८ ॥

क्रिमिजे व्योषनक्ताह्वशिग्रुबीजैश्च नावनम्। अजामूत्रयुतं नस्यं कर्तव्यं कृमिनुत्परम् ३९॥

जो शिरोरोग कृमिजन्य होय तो सोंठ, मिरच, पीपल, करंज और सैंजिनेके बीज इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर नास देवे, इस नस्य देनेसे कृमि अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादि भेषजम्।

सूर्यावर्त नामक रोग हुआ होय तो नस्य आदि देकर चिकित्सा करे ॥

अथ कुमारीतैलम्।

कुमार्याः स्वरसप्रस्थे धत्तूरस्य रसे तथा ॥ ४० ॥ भृंगराजस्य च रसे प्रस्थद्वय-समायुते। चतुःप्रस्थमिते क्षीरे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४१ ॥ कल्कैर्मधुकह्रीवेर-मंजिष्ठाभद्रमुस्तकैः। नखकर्पूरभृंगैला-जीवन्तीपद्मकुष्ठकैः ॥ ४२ ॥ मार्कवास-कतालीससर्जनिर्यासपत्रकैः। विडंगशतपु-ष्पाश्वगन्धागन्धर्वहस्तकैः ॥४३॥ तैले वटना-लिकेलाभ्यां कर्षमानैर्विपाचिते। उत्तार्य वस्त्रभूतं तु शुभे भांडे सुधूपिते ॥ ४४ ॥ त्रिरात्रमथ गुप्तं च धारयेद्विधिवद्भिषक्। ततस्तु तैलमभ्यंगे मूर्ध्नि क्षेपे नियोजयेत् ॥ ४५ ॥ शमयेदर्दितं गाढमन्यास्तम्भशिरो-रोगदान्। तालुनासाक्षिपातं तु शोषमूर्च्छा-हलीमकम्। हनुग्रहगदार्तिं वा बाधिर्यं कर्णवेदनम् ॥ ४६ ॥

घीकारका स्वरस ६४ तोले, धतूरेका स्वरस ६४ तोले, भांगरेका स्वरस १२८ तोले और भांगरेके रससे दुगुना दूध, इनमें मुलैठी, रुगन्धवाला, मजीठ, नागरमोथा, नखद्रव्य, कपूर, भांगरा, इलायची, हरड, पद्माख, कूठ, काला भांगरा, अडूसा, तालीसपत्र, राल, तेजपात, वायविडंग, सोया, असगन्ध, अण्ड, वड और नारियल इनका एक एक तोला कल्क लेकर चौंसठ तोले तेलको पकावे, तेलको अग्निसे उतारकर अच्छे प्रकारसे वस्त्रसे छानकर उत्तम सुवासित किये हुए पात्रमें भरकर विधिपूर्वक वैद्य तीन दिनतक धरतीमें गाड देवे। इस तेलकी मालिश करे और शिरमें डाले तो अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, तालुवेकी सूजन, नासिकाकी सूजन, आंखोंकी सूजन, मूर्च्छा, हलीमक, हनुग्रह, बधिरता और कानकी पीडा शमन होती है ॥ ४०–४६ ॥

योजयेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूपांश्च भक्षयेत्। नावनं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षीरसर्पिर्भ्यां पानं च क्षीरसर्पिषोः ॥ ४७ ॥ क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते । भृंगराजरसश्छागीक्षीरतुल्याऽर्कतापितः ॥ ४८ ॥ सूर्यावर्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट् । अर्द्धावभेदके पूर्वं स्नेहस्वेदौ हि भेषजम् ॥ ४९ ॥ विरेकः कायशुद्धिश्च धूपः स्निग्धोष्णभोजनम् । विडंगानि तिलान्कृष्णान्समान्पिष्टान्विलेपयेत् ॥ ५० ॥ नस्यं चाप्याचरेत्तस्मादर्द्धभेदं व्यपोहति । पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् । सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः ॥ ५१ ॥ नस्यतः नासिकया पिबेदिति अन्वयः तयोः सूर्यावर्तार्द्धभेदयोः ।

गुडके साथ घीको खाय, घीके मालपुये खाय, दूधका तथा घीका नास देवे, दूध और घी मिलाकर पिये, दूधमें पिसे हुए तिलोंसे तथा जीवनीय गणके पदार्थोंसे सेक करे तो सूर्यावर्त नष्ट हो जाता है भंगके रसको और बकरीके दूधको समान भाग लेकर दोनोंको एकत्र धूपमें गरम करके नास देवे तो सूर्यावर्त नष्ट हो जाता है, सूर्यावर्तके लिये यह प्रयोग उत्तम है । अर्द्धावभेदक नामक जो शिरोरोग हुआ होय तो प्रथम स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, अन्यप्रकारसे शरीरका संशोधन, धूप और स्निग्ध तथा उष्ण भोजन ये उपचार करे । बायविडंग और काले तिल इनको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर लेप करे और इसीका नास देवे तो अर्द्धावभेदक नष्ट हो जाता है । नासिकाके द्वारा मिश्री मिला दूध पिये तो अथवा नारियलका जल पिये, शीतल जल पिये अथवा घीको पिये तो सूर्यावर्त तथा अर्द्धावभेदक नष्ट हो जाता है ॥ ४७–५१ ॥

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो विधिः । शिरोवेधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ ५२ ॥ आहारश्च प्रदातव्यो वातापित्तविनाशनः । मधुमस्तकसंयावघृतपूपो विशेषतः ॥ ५३ ॥ संयावः पक्वान्नविशेषः पेरकिया इति लोके । स च मधुमस्तकः मधुनोपलिप्तः । घृतपूपः पूआ इति लोके ।

अनंतवातनामक रोग उत्पन्न हुआ होय तो सूर्यावर्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिये । अनन्तवातको शांत करनेके लिये नसको वेधकर रुधिर निकलवावे और पित्त तथा वातनाशक आहार देवे घीसे चुचुहाते तथा सहतसे भरे हुए चूरमा और शीरा तथा मालपुये आदि इनका उपयोग करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ पथ्यादिक्काथः ।

पथ्याक्षधात्रीरजनीगुडूचीभूनिम्बनिम्बैः सगुडः कषायः । भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोऽर्द्धशूलं निहन्ति नासानिहितः क्षणेन ॥ ५४ ॥

हरड, बहेडा, आमले, हलदी, गिलोय, चिरायता और नीम इनका क्काथ बनाकर उसमें गुड डालकर उसका नास देवे तो क्षणमात्रमें भौं, कनपटी, कान, आंख और मस्तकका अर्द्धशूल ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

दार्वी हरिद्रा मञ्जिष्ठा सनिम्बोशीरपद्मकम् । एतत्प्रलेपनं कुर्याच्छंखकस्य प्रशान्तये ॥ ५५ ॥ शीततोयाभिषेकश्च शीतलं क्षीरसेवनम् । कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शंखके लेपनं हितम् ॥ ५६ ॥

शंखकनामक शिरोरोग होय तो दारुहलदी, हलदी, मजीठ, नीम, खस और पद्माख इनका लेप करे । शीतल जलका सेचन, शीतल दूधका सेवन और क्षीरवाले बड आदि वृक्षोंका कल्क लेपन करनेसे शंखकरोग नष्ट होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अथ सर्वशिरोरोगाणां सामान्यचिकित्सा ।

यष्टीमधुकमाषः स्यात्तुर्यांशं तु विषं भवेत् । तयोश्चूर्णं सुसूक्ष्मं स्यात्तच्चूर्णं सर्षपोन्मितम् ॥ ५७ ॥ नासिकाभ्यन्तरे न्यस्तं सर्वं शीर्षव्यथां हरेत् । दृष्टप्रयोगो योगोऽयमनुभाविभिराहृतः ॥ ५८ ॥ आर्द्रं यच्छुक्तिकाचूर्णं चूर्णितं नवसादरम् । उभयं योजितं तस्य गन्धान्नश्यति शीर्षरुक् ॥ ५९ ॥

मुलैटी छः रत्ती और मुलैठीसे चौथाई भाग वत्सनाभ इनका अत्यंत बारीक चूर्ण करके, नाकमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरसोंकी बराबर इस चूर्णको डालनेसे सर्वप्रकारकी मस्तककी पीडा शांत हो जाती है, यह प्रयोग बडे बडे वैद्योंने अनुभव किया है और हमने भी परीक्षा करी है। सीपका बारीक चूर्ण और नवसादरका चूर्ण इनको एकत्र मिलाकर नास लेनेसे मस्तककी पीडा शांत होती है ॥ ५७–५९ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः संपूर्णः ।

अथ नेत्ररोगाधिकारः ।

तत्र नेत्रप्रमाणम् ।

विद्याद्व्यंगुलबाहुल्यं सांगुष्ठादेरसम्मितम् । द्व्यंगुलं सर्वतः सार्द्धं भिषङ् नयमण्डनम् ॥१॥ द्व्यंगुलबाहुल्यं द्व्यंगुलप्रमाणस्थौल्यं यस्य तत् । अंगुलीनां स्थौल्यस्य वैषम्यात्पुनराह–सांगुष्ठोदरसम्मितं द्व्यंगुलं सर्वतः सार्द्धं दैर्घ्येण ।

नेत्रका मण्डल दो अंगुल मोटा और ढाई अंगुल लम्बा है यहां अंगुलका प्रमाण अपने अपने हाथकी अंगुलिके प्रमाणसे जानना क्योंकि अपने अपने हाथकी अंगुलीके प्रमाणसे नहीं कहनेसे अंतर पडता है॥ १ ॥

अथ नेत्रांगानि ।

पक्ष्मवर्त्मश्वेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु । अनुपूर्वं तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् ॥ २ ॥ ते पक्ष्मादयो दृष्ट्यन्ता अनुपूर्वं यथापूर्वं मध्याश्चत्वारः कृष्णादयः यथोत्तरमन्त्याः ।

पलक, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण, दृष्टियोंके मंडल ये आनुपूर्वी क्रमसे मध्यमें हैं और चार उत्तरोत्तर क्रमसे अंतभागमें हैं ॥ २ ॥

अथ नेत्रमंडलोत्पन्नाष्टसप्ततिः (७८) रोगाः ।

द्वादश व्याधयो दृष्टौ तत्रैवान्यौ गदावुभौ । कृष्णमार्गे तु चत्वारो दशैकः शुक्लभागजाः ॥ ३ ॥ वर्त्मन्येकोविंशतिश्च पक्ष्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ । नव सन्धिषु सर्वस्मिन्नेत्रे सप्तदशोदिताः । एवं नेत्रे समस्ताः स्युरष्टसप्ततिराम्नयाः॥४॥तत्र दृष्टौ । अन्यौ चरकोक्तौ सुश्रुतोक्तषट्सप्ततिसंख्येभ्योऽधिकौ ।

दृष्टिमें १२ बारह रोग हैं । सुश्रुतमें १२ रोगोंसे अधिक जो अन्य २ रोग चरकमें कहे हैं वह भी दृष्टिमें होते है । एवं ४ कृष्ण भाग अर्थात् कालेघेरेमें चार रोग होते हैं, सफेद भागमें ११ रोग होते हैं, वर्त्ममें २१ रोग होते हैं । नेत्रके पक्ष्ममें दो रोग, संधियोंमें ९ रोग और सम्पूर्ण नेत्रमें १७ रोग होते हैं । इस प्रकार नेत्रमें सब ७८ अठत्तर रोग होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ सुश्रुतोक्तषट्सप्तति- (७६) रोगाः ।

वाताद्दश तथा पित्तात्कफाच्चैव त्रयोदश । रक्तात्षोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविंशतिः । बाह्यौ पुनर्द्वौ नयने रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः ॥ ५ ॥

वातसे दश १० रोग होते हैं, पित्तसे दश १० रोग होते हैं, कफसे तेरह १३ रोग होते हैं, रुधिरसे सोलह १६ रोग होते हैं, तीनों दोषोंसे २५ रोग होते हैं और नेत्रके बाहर भागमें दो रोग होते हैं । इस प्रकार नेत्रोंमें सब ७६ रोग हैं ॥ ५ ॥

अथ सामान्यरीत्या नेत्ररोगाणां सन्निकृष्टविप्रकृष्टनिदानम् ।

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च । स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ ६ ॥ शुक्तारनालांबुकुलत्थमाषाद्विण्मूत्रवातागमनिग्रहाच्च । प्रसक्तसंरोदनशोकतापाच्छिरोऽभिघाताद्तिशीघ्रयानात् ॥ ७ ॥ तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभितापादतिमैथुनाच्च । बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारान्नयन्ति दोषाः ॥ ८ ॥ उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशादातपादिजनितोष्मणा सह बहिर्भूतस्य नयनतेजसो जलावगाहेन अभिभवाद्दूरेक्षणात् दूरस्थद्रव्यदर्शनात् । स्वेदात्स्वि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घतेऽनेनेति स्वेदोऽग्न्यादिस्तस्मात् । रजोधूमनिषेवणान्नेत्रेण । शोकतापात् शोकजनितात्सन्तापात् । शिरोऽभिघातात् शिरसि प्रहारात् । ऋतूनां विपर्ययेण ऋतूक्तचर्याविपरीताचरणेन । क्लेशाभितापात् क्लिश्यतेऽनेनेति क्लेशं कामक्रोधादिदुःखं तेनाभितापः पीडा ततः । बाष्पग्रहादश्रुवेगविघातात् ।

धूप आदिसे अत्यंत संतापित होकर शीतल जलमें प्रवेश करनेसे, दूरके पदार्थोंको देखनेसे, समयपर निद्राको नहीं लेनेसे, अग्नि आदिको सेवन करनेसे, नेत्रोंमें धूल आदिके गिरनेसे, घुँएँके लगनेसे, वमनके वेगको रोकनेसे, अत्यंत वमन करनेसे, शुक्तनामक काँजीको सेवन करनेसे, आरनालके सेवनसे, खट्टे रसोंके सेवन करनेसे, कुलथीको सेवन करनेसे उडदोंको सेवन करनेसे, मूत्र, विष्ठा और अधोवायुके वेगको रोकनेसे, बहुत दिनोंतक रोनेसे, शोकजन्य संतापसे, मस्तकमें चोट आदिके लगनेसे अत्यंत वेगवाले वाहनपर बैठनेसे, ऋतुचर्यामें कही हुई विधिको उल्लंघन कर विपरीत आचरण करनेसे, काम और क्रोधादिजन्य दुःखोंसे उत्पन्न हुई पीडासे, अत्यंत मैथुन करनेसे, आंसुओंके वेगको रोकनेसे और बारीक पदार्थोंको देखनेसे नेत्रोंमें विकार उत्पन्न होते हैं ॥ ६-८ ॥

अथ नेत्ररोगसम्प्राप्तिः ।

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्द्धमाश्रितैः ।
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥ ९ ॥
नेत्रभागेषु नेत्रस्य दृष्ट्याद्यवयवेषु ।

शिराओंमें रहनेवाले वातादि दोष बिगडकर ऊंचे भागोंमें जाकर नेत्रके अवयवोंमें अत्यंत दारुण रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ९ ॥

अथ दृष्टिरोगलक्षणम् ।

मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजाम् ।
खद्योतविस्फुलिङ्गाभां सिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥ १० ॥
आवृतां पटलेनाक्ष्णोर्बाह्येन विवराकृतिम् ।
शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः ॥ ११ ॥
मसूरदलमात्रां नेत्रगतकृष्णमण्डलमध्यस्थमसूरद्विदलप्रमाणां पञ्चभूतप्रसादजामू प्रसन्नपञ्चभूतात्मिकाम् । खद्योतविस्फुलिङ्गाभां निमेषैः कदाचित्खद्योताभां खद्योतवन्निमेषाभावे विद्योतमानत्वाद्विस्फुलिंगवत् । अव्ययैश्चिरस्थायिभिस्तेजोभिः सिद्धामुत्पन्नाम् । विवराकृतिं सच्छिद्राम् । अक्ष्णोर्बाह्येन पटलेन रसरक्ताधारभूते आवृताम् ।

नेत्रके काले डेलेके मंडलके बीचमें रहनेवाली, मसूरकी दालकी समान, स्वच्छ पंचभूतोंसे बनी हुई, क्षणमें अग्निके प्रकाशकी समान, चिरस्थायी तेजोंसे सिद्ध, छिद्रवाली, सदैव शीत आनुकूल्यवाली, बाहरसे रस रक्तसे मढी हुई है, इसको नेत्रवैद्य दृष्टि कहते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ नेत्रपटलचतुष्कम् ।

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम् । भेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थिन चापरम् । पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते ॥ १२ ॥ तत्र तेजो रक्तम्, जलं रसः । तेन रसरक्ताधारामित्यर्थः । पटलं त्वक् । अपरं चतुर्थदृष्टेः स्वांगुष्ठोदरस्थूलस्य नेत्रस्य पञ्चमांशसमं तेषां चतुर्णां पटलानां मिलितानां बाहुल्यं स्थौल्यमिष्यते ।

नेत्रमें चार पटल हैं उनमें सबसे ऊपरका पहिला पटल रुधिर तथा रसके आश्रय रहता है । दूसरा पटल मांसके आश्रय रहता है । तीसरा पटल मेदके आश्रय रहता है और चौथा पटल अस्थियोंके आश्रय रहता है । इन चारों पटलोंकी मोटाई अपने अपने अंगुठेके मध्यमागकी समान नेत्रके पांचवें अंशमें मानी गई है ॥ १२ ॥

अथ प्रथमपटलगतदोषस्वभावः ।

प्रथमे पटले यस्य दोषो दृष्टेर्व्यवस्थितः ।
अव्यक्तानि स्वरूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ १३ ॥
प्रथमे पटले पूर्वाभ्यन्तरे न तु बाह्ये । दृष्टेरभ्यन्तरे दोषाः पटले तमधिष्ठिताः । एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटला-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्तरम् ॥ १४ ॥ इति विदेहवचनात् । व्यवस्थितः स्थितः । अव्यक्तानि ईषद्व्यक्तानि । अथ कदाचित्पश्यति व्यक्तान्येवेति शेषः दोषाल्पतया ।

जो पहिले पटलमें दोष स्थित होय तो वह मनुष्य रूपोंको कुछ कुछ अन्तरसे देखता है और जो दोष अल्प होय तो किसी समय स्पष्टभी देखता है । यहां जो पहिला पटल कहा है वह सबसे भीतरका पटल जानना, बाहरका पटल नहीं समझना क्योंकि नेत्रके पटलके भीतरके रहनेवाले दोष अनुक्रमसे ऊपर ऊपरके पटलमें प्राप्त होते हैं यह विदेहका मत है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ द्वितीयपटलगतदोषस्वभावः ।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते । मक्षिकामशकान्केशाञ्जालकानीव पश्यति॥१५॥ मण्डलानि पताकांश्च मरीचीन्कुण्डलानि च । पारिप्लवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि च ॥ १६ ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः । समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् । यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीछिद्रं न पश्यति ॥ १७ ॥ विह्वलति रूपं सम्यक् कृत्वा ग्रहीतुं न शक्नोति । विह्वलत्वमेव विवृणोति—मक्षिकादीन् जालकानीव लूतारचितजालानीव पश्यति । मण्डलादीनि असन्त्यपि सन्तीव पश्यति । कुण्डलानि कुण्डलानीव विद्योतमानानि किञ्चित्पश्यति । पारिप्लवांश्च विविधान्प्रातिच्छायादीनां सञ्चारादूर्ध्वाधस्तिर्यग्गतान्नानाविधान्पश्यति । वर्षं वृष्टिम् अभ्रं मेघम् । वर्षादीनि असन्त्यपि सन्तीव पश्यति । गोचरभ्रमाद्गोचरोऽत्र रूपम्, तत्र भ्रमः अयथाग्रहणं तस्मात् ।

जो दोष दूसरे पटलमें स्थित होय तो दृष्टि रूपोंको अच्छे प्रकारसे नहीं देख सक्ती, तथा मक्खी, मच्छर और केश आदि मकडीके जालेकी समान दीखते हैं, मंडल, पातका और किरणों न होंय तोभी होनेकी समान देखे, और प्रकाशमान वस्तुओंको कुंडलकी समान गोल देखे, परछाई आदिका संचार ऊंचा, नीचा तथा टेढे आदि अनेक प्रकारसे देखे, वर्षा, बादल तथा अंधकारके न होनेपर भी दीखे, रूपोंका यथार्थ रूप दृष्टिके भ्रमके कारण दूरके पदार्थ धोरे दीखें, और अत्यंत यत्न करनेपर भी सुईके नकुये (छेद) को नहीं देख सके ॥ १५–१७ ॥

अथ तृतीयपटलगतदोषः ।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते । सुमहान्त्यपि रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः ॥ १८ ॥ कर्णनासाक्षिरूपाणि विकृतानि च पश्यति । यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥ १९ ॥ अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरि स्थिते । पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति ॥ २० ॥ समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति । दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्दःखं च पश्यति ॥२१॥ दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वा मन्यते द्विधा । द्विधा स्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा चाऽनवस्थिते॥२२॥ ऊर्ध्वं पश्यतिऊर्ध्वमपि यादृक् पश्यति तादृगाह—सुमहान्ति इत्यादि । अम्बरैः वस्त्रैः । अधःस्थे तु समीपस्थं न पश्यतित्यन्वयः । तथा उपरि स्थिते दोषे दूरस्थं न पश्यति । समन्ततः उपर्यधःपार्श्वेषु संकुलानि भिन्नान्यपि रूपाणि मिश्रितानीव पश्यति । अनवस्थिते अनियतावस्थाने बहुधा बहूनि पश्येत् ।

जो दोष तीसरे पटलमें स्थित होय तो ऊँचेको देख सक्ता है नीचेको नहीं देखता, ऊँचेके जो पदार्थोंको देखता है वह पदार्थ अत्यंत बडे होयँ तो भी वस्त्रसे ढकेकी समान दीखते हैं । कान, नाक और नेत्र आदि अवयवोंको विकृत देखे, इनसे रहित शरीरको देखे जो दोष बलवान् होय तो दृष्टिदोषके स्वभावानुसार वर्ण हो जाता है, जो दोष नीचेके भागमें स्थित होय तो समीपके पदार्थोंको नहीं देख सक्ता, और जो दोष ऊपरके भागमें स्थित होय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो दूरके पदार्थोंको नहीं देख सकता, जो दोष इधर उधर बगलमें स्थित होय तो बगलके पदार्थोंको नहीं देख सक्ता। जो दोष चारों ओर स्थित होय तो ऊपर, नीचे तथा बगलके पदार्थ अलग २ होयँ तो भी मिले हुए दीखें। जो दोष दृष्टिके बीचमें स्थित होय तो बडे पदार्थोंको छोटा देखता है; जो दोष दृष्टिमें टेढे स्थित होयँ तो एक पदार्थके दो पदार्थ देखता है। जो दोष दृष्टिके दो भागोंमें स्थित होय तो एक पदार्थके तीन पदार्थ दीखते हैं और जो दोष अनियमित रीतिसे स्थित होयँ तो एक पदार्थके अनेक पदार्थ दीखते हैं ॥१८–२२॥

अथ चतुर्थपटलगतदोषः।

तिमिराख्यः स यो दोषश्चतुर्थं पटलं गतः। रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिंगनाश इति क्वचित् ॥ २३ ॥ अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे। चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ अन्तरिक्षे च विद्युतः ॥ २४ ॥ निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनीव पश्यति। स एव लिंगनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥२५॥ यो दोषोऽत्र रोगः चतुर्थं पटलं बाह्यं गतः स तिमिराख्यः तिमिरदर्शनेन तिमिरमस्यास्तीति तिमिरः अर्शादित्वादच्। तस्य लक्षणमाह रुणद्धि इत्यादि। सर्वतः सर्वत्र लिंगनाशे इति क्वचित्। तन्त्रान्तरे लिंगनाशसंज्ञः। तस्य निरुक्तिश्च। लिंग्यते ज्ञायतेऽनेनेति लिंगं दृष्टितेजः तस्य नाशोऽस्मिन्निति लिंगनाशः। अस्मिन्नपि तिमिरेऽपि तमोभूते तमस्तुल्ये। अत्र भूतशब्दस्तुल्यार्थः। "भूतं प्राप्यतीते समे त्रिषु" इत्यमरात्। नातिरूढे अप्रौढे नवे। चन्द्रादित्यौ नक्षत्राणि च पश्यति अन्तरिक्षे अन्तरिक्षस्य प्रकाशसमयत्वेन तमोऽभिभवात्। तेजांसि अग्न्यादेः भ्राजिष्णूनि रत्नसुवर्णादीन्यस्मिन्। प्रौढे चिरजे चन्द्रादीन्यपि न पश्यतीत्याशयः। नीलिकाकाचसंज्ञितः नीलिका काचेति नामान्तराभ्यां युक्तः।

जो दोष दृष्टिके चौथे पटलमें स्थित होय तो यह अंधकार दीखनेके कारण तिमिर कहा जाता है और चारों ओर दृष्टिको रोक देता है, इस रोगको अन्य ग्रंथोंमें 'लिंगनाश' ऐसा कहा है। अंधेरेकी समान यह बडा भयंकर रोग नवीन होय तबतक मनुष्य आकाशमें चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और बिजलीको देखता है क्योंकि आकाशके प्रकाशमय होनेसे अंधकारका बल नहीं चलता, अग्नि आदिके निर्मल तेजको देखता है और रत्न तथा सुवर्ण आदि प्रकाशित पदार्थोंको भी देखता है। यह रोग पुराना हो जाय तो चंद्र आदि भी नहीं दीखते हैं। यह तिमिर नामक रोग जैसे लिंगनाश इस नामसे कहा जाता है उसी प्रकार नीलिका और काँच ये नाम भी कहे जाते हैं। लिंग अर्थात् दृष्टिके तेजको जो नाश करना है इस कारण यह लिंगनाश कहा जाता है॥२३–२५॥

अथ दृष्टिरोगनाम संख्या च।

दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव रोगाः षड्लिंगनाशा हि भवन्ति तत्र। वातेन पित्तेन कफेन सर्वै रक्तात्परिम्लाव्यभिघश्च षष्ठः ॥ २६ ॥ दृष्ट्याश्रयाः रोगाः षट् षट् द्वादशेत्यर्थः। तत्र लिंगनाशाः षट् तान्विवृणोति वातेनेत्यादि।

दृष्टिके रोग १२ हैं (चरकके कहे अनुसार १४ होते हैं) उन १२ में ६ रोग लिंगनाश कहे जाते हैं। जैसे कि, वातज १, पित्तज २, कफजन्य ३, सन्निपातजन्य ४, रक्तजन्य ५ और परिम्लायी लिंगनाश ६ ॥२६॥

तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन वान्यस्त्वथ धूमदर्शी। यो ह्रस्वजात्यो नकुलान्धसंज्ञो गम्भीरसंज्ञश्च तथैव दृष्टिः ॥ २७ ॥ पित्तविदग्धदृष्ट्यादयश्च षट्। एवं दृष्ट्याश्रया द्वादश रोगाः।

पित्तविदग्धदृष्टि १, कफविदग्धदृष्टि २, धूमदर्शी ३, ह्रस्वजात्य ४, नकुलांध्य ५ और गम्भीरक ६ ॥२७॥

तत्रैवान्यौ चरकोक्तगदौ सनिमित्तकाऽनिमित्तकौ। तत्र वातजलिंगनाशलक्षणमाह-

वातेन खलु रूपाणि भ्रमन्तीव च पश्यति। आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानवः ॥ २८ ॥ आविलानि कलुषाणि । अरुणाभानि अव्यक्तलौहित्ययुक्तानि ।

वातके लिंगनाशमें सम्पूर्ण रूप भ्रमण करते दीखे हैं, मलिन कुछ लाल गदलेसे और विकृत टेढे तिरछे ऐसे दीखते हैं ॥ २८ ॥

अथ पित्तजलिंगनाशलक्षणम् ।

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्रुणान् । नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥ २९ ॥ आदित्यादीनां गुणान् रूपाणि ।

सूर्य, पटवीजने, इन्द्रधनुष, बिजली इनको मोरके पूछकी समान विचित्र नील और काले रँगके देखे तो जानना कि, पित्तजनित लिंगनाश हुआ है ॥२९॥

अथ कफजलिंगनाशलक्षणम् ।

कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च । सलिलप्लावितानीव जालकानीव भानवः ॥ ३० ॥

कफके लिंगनाशमें पदार्थोंको चिकने, सफेद पानीमें डबोकर निकाले हुएकी समान और जालकी समान देखे तो जानना कि, कफजन्य लिंगनाश हुआ है ॥ ३० ॥

अथ सन्निपातजलिंगनाशलक्षणम् ।

सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति । बहुधापि द्विधा वापि सर्वाण्येव समन्ततः । हीनाधिकांगान्यथ वा ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥ ३१ ॥ चित्राणि नानावर्णानि । विप्लुतानि विपरीतानि वैपरीत्यं विवृणोति बहुधेत्यादि ।

सन्निपातके लिंगनाशमें रूप चारों ओर विपरीत अर्थात् अनेक प्रकारके वा दो प्रकारके अथवा सर्व प्रकारके देखनेमें आवें अनेक वर्णवाले दीखें, अथवा अधिक और न्यून अंगोंवाले दीखें अथवा तेजोमय दीखें तो जानना कि, सन्निपातजन्य लिंगनाश हुआ है ॥ ३१ ॥

अथ रक्तजन्यलिंगनाशलक्षणम् ।

पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च । हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ ३२ ॥

जो अनेक प्रकारका अन्धकार देखनेमें आवे और रूप लाल, हरे, काले तथा पीले दीखें तो जानना कि, रक्तजन्य लिंगनाश हुआ है ॥ ३२ ॥

अथ परिम्लायिलिंगनाशलक्षणम् ।

रक्तेन मूर्च्छितं पित्तं परिम्लायिनमाचरेत् । तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् । विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव हि ॥ ३३ ॥ विकीर्यमाणान् व्याप्यमानान् । तेजोभिः अग्न्यादिभिरिव ।

रुधिरसे मूर्च्छित हुआ पित्त परिम्लायी नामक लिंगनाशको उत्पन्न करे है जिस लिंगनाशसे सम्पूर्ण दिशा पीली ही दीखती हैं, सूर्य उदय होताभा दीखता है और वृक्ष पटवीजने तथा अग्निके तेजसे व्याप्त ऐसे दीखते हैं ॥ ३३ ॥

अथ वातादिजनेत्रवर्णेन लिंगनाशस्य षड्विधत्वम् ।

वातादिजनितैर्नेत्रवर्णैरपि च षड्विधः । लिंगनाशो निगदितो वर्णवातादिजो यथा ॥ ३४ ॥ रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् । कफात्सितः शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ३५ ॥

वातादिसे उत्पन्न हुए नेत्रोंके वर्णानुसार भी लिंगनाश छः प्रकारका होता है । कौनसे दोषसे नेत्रका कौनसा रंग होता है सो कहते हैं । वातसे लिंगनाश होय तो नेत्रोंका रंग लाल हो जाता है । पित्तजन्य परिम्लायी लिंगनाश होय तो नेत्रोंका वर्ण नीला हो जाता है । कफजन्य लिंगनाश होय तो नेत्रोंका रंग सफेद हो जाता है । रुधिरसे लिंगनाश होय तो नेत्रोंका रंग लाली लिये होता है । और सन्निपातसे लिंगनाश हुआ होय तो नेत्रोंका रंग विचित्र होता है॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ वातादिजनेत्रमंडलरूपम् ।

अरुणं मण्डलं वाताच्चलं परुषं तथा । पित्ततो मण्डलं नीलं कांस्याभं वा सपीतकम् ॥३६॥श्वेतपीतं वा कथमेतत् ? व्याधिप्रभावात् । श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शंखकुन्देन्दुपाण्डुरम्॥३७॥ बहुलं स्थूलम्। चलत्पद्मप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः । मृद्यमाने तु नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥३८॥ मंडलं तु भवेच्चित्रं लिंगनाशे त्रिदोषजे । प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ३९ ॥ चित्रं वातादिवर्णम् । रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलकाचारुणप्रभम् । परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लानं नीलमथापि वा । दोषक्षयात्स्वयं तत्र कदाचित्स्यात्तु दर्शनम् ॥ ४० ॥ रक्तजं पित्तानुगामिरक्तजम् । स्थूलकाचारुणप्रभं स्थूलकाचस्येव अरुणा प्रभा यस्य तत् । एतेन स्थौल्यमरुणत्वं च बोध्यते । दोषक्षयादित्यादि तत्र परिम्लायिनि कालान्तरेण दोषक्षयात् । कदाचित्स्वयमेव दर्शनं स्यात् ।

वातसे लिंगनाश हुआ होय तो मण्डल लाल, चञ्चल तथा कठिन होता है, पित्तसे लिंगनाश होय तो मंडल नीला, कांसेकी समान, अथवा सफेद वा पीला होता है (सफेद और पीला होना वह व्याधिके प्रभावसे होता है)। कफसे लिंग नाश होय तो मंडल मोटा, स्निग्ध, शंखकी समान, कुंदकी और चंद्रमाकी समान सफेद होता है। और चंचल कमलके पत्रपर पडी हुई जलकी बिन्दुकी समान होता है। आंखको खूब मलनेसे यह मंडल पसर जाता है। तीनों दोषोंसे लिंगनाश होय तो मंडल विचित्र अर्थात् वातादिजनित सम्पूर्ण वर्णोंवाला होता है। रुधिरसे लिंगनाश हुआ होय तो मंडल प्रवालकी समान और कमलकी पखडीकी समान होता है। पित्तसम्बन्धी रुधिरजन्य लिंगनाश होय तो मंडल स्थूल और लाल कांचकी समान स्थूल और लाल होता है। परिम्लायी लिंगनाश होय तो मंडल ग्लानिको प्राप्त हुआ अथवा नीला होता है और कालांतरमें दोषोंके क्षय होनेसे किसी समय अपनी सदृश उत्तम हो जाता है ॥ ३६–४० ॥

अथ लिंगनाशेऽनुक्तदाहादिदोषलिंगम् । यथास्वं दोषलिंगानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ४१

सर्व प्रकारके लिंगनाशोंमें उन उन दोषोंके अपने अपने लक्षण भी अवश्य होते हैं ॥ ४१ ॥

अथ पित्तविदग्धदृष्टिलक्षणम् ।

पित्तेन दुष्टेन गतेन दृष्टिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः । पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नर पित्तविदग्धदृष्टिः ॥ ४२ ॥ पित्तेन गतेन दृष्टिं दृष्टावपि प्रथम द्वितीयपटलगतेनेति बोद्धव्यम् । तेन व्याधिना । तस्मिन्नेव पित्ते दृष्टौ तृतीयपटलं गते विशेषरूपमाह । प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते सः । रात्रौ सशीतानुगृहीतदृष्टिः पित्तालपभावात्सकलानि पश्येत् ॥ ४३ ॥ दोषेऽत्र पित्ते ।

दुष्ट हुआ पित्त दृष्टिके पहिले, दूसरे पटलमें प्राप्त होनेसे जो मनुष्यकी दृष्टि पीली हुई होय तो वह मनुष्य समस्त रूपोंको पीला देखता है। यह रोग पित्तविदग्धदृष्टि कहा जाता है। उसी प्रकार पित्त तीसरे पटलमें प्राप्त होय तो वह मनुष्य दिनमें नहीं देखता किंतु रात्रिमें शीतके कारण दृष्टिके अनुकूल होनेसे पित्तहीन होकर सम्पूर्ण पदार्थोंको देख सक्ता है, इस प्रकार भी पित्तविदग्धदृष्टिमें अन्तर्भूत है, इस कारण अलग नहीं गिना जाता ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ कफविदग्धदृष्टिलक्षणम् ।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु ॥ ४४ ॥ अत्रापि श्लेष्मणो दृष्टौ प्रथमद्वितीयपटलस्थैतल्लिंगं बोद्धव्यम् । स एव श्लेष्मा दृष्टौ पटलत्रयं गतो नक्तान्ध्यं करोतीत्याह । त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य । दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात् ॥ ४५ ॥ दोषोऽत्र कफस्तस्य उपक्रान्तत्वान्नक्तान्ध्यस्य श्लेष्मविदग्धदृष्टौ अन्तर्भूतत्वान्न पृथग्गणना ।

दुष्ट हुआ कफ दृष्टिके पहिले दूसरे पटलमें प्राप्त होय तो मनुष्य रूपोंको सफेद देखता है, यह रोग कफविदग्ध दृष्टि कहा जाता है। यही कफ दृष्टिके तीनों पटलमें प्राप्त होय तो बलात्कारसे नक्तान्ध्य (रात्रिमें अंधापन) करता है। दिनमें तो दृष्टिके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर सूर्यके अनुग्रह होनेके कारण कफहीन होकर सम्पूर्ण पदार्थ दीखते हैं, रात्रिमें अंधापन भी कफविदग्ध दृष्टिमें अन्तर्भूत होता है इस कारण इसको अलग नहीं गिना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथ धूमदर्शिलक्षणम् ।

शोकज्वरायाससशिरोऽभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः । धूमांस्तु यः पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ ४६ ॥ शिरोऽभितापः शिरसि घर्मादीनां सन्तापः । एतस्य पित्तदोषो वोद्धव्यः ।

शोकसे, ज्वरसे, परिश्रमसे और शिरमें धूप आदिके संतापसे दृष्टिका अभिघात होकर सम्पूर्ण पदार्थ धूमसे व्याप्त दीखते हैं। यह रोग धूमदर्शी कहा जाता है। यह पित्तकी दुष्टतासे होता है ॥ ४६ ॥

अथ ह्रस्वजात्यलक्षणम् ।

यो वासरे पश्यति कृष्टतोऽथ रूपं महच्चापि निरीक्षतेऽल्पम् । रात्रौ पुनर्यः प्रकृतानि पश्येत्स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥४७॥

दिनमें थोडा थोडा दीखे तथा बडे बडे पदार्थ भी छोटे दीखें और रात्रिमें सम्पूर्ण रूप जैसेके तैसे दीखें इस रोगको मुनि ह्रस्वजात्य कहते हैं ॥ ४७ ॥

अथ नकुलांध्यलक्षणम् ।

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् । चित्राणि रूपाणि दिवा च पश्येत्स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ॥४८॥

दृष्टि दोषसे व्याप्त होनेके कारण नौलेकी दृष्टिकी समान चमके और दिनमें रूपोंको विचित्र देखे। इस रोगको नकुलांध्य कहते हैं ॥ ४८ ॥

अथ गंभीरिकालक्षणम् ।

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्तरतः प्रयाति । रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति धीराः ॥ ४९ ॥ विरूपा विकृता । श्वसनोपसृष्टा वातोपहता रुजावगाढा गम्भीरवेदनान्विता ।

वातसे उपहतदृष्टि विकृत हो जाय, संकोचको प्राप्त होय, भीतरको चली जाय और गम्भीरपीडासे युक्त होय इस रोगको विद्वान् वैद्य गम्भीरिका कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ सनिमित्तलिंगनाशस्य निदानलक्षणम् ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह सम्प्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च । निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैः सः ॥ ५० ॥ बाह्यौ सुश्रुतोक्तद्वादशसंख्येभ्योऽधिकौ । तत्र तन्निमित्तमाह—शिरोऽभितापः शिरोऽभितप्यते येन विषकुसुमगन्धवहपवनस्पर्शेन शिरोऽभितापः तस्मादभिष्यन्दनिदर्शनैः रक्ताभिष्यन्दलिंगैरिति गदाधरः । सन्निपाताभिष्यन्दलिंगैरिति कार्तिकः ।

सुश्रुतने दृष्टिके जो बारह रोग कहे हैं उनसे अधिक अन्य दो रोग चरक आदि मुनियोंने कहे हैं । वह एक तो सनिमित्त लिंगनाश और दूसरा अनिमित्त लिंगनाश । विषैले फूलोंकी गंधवाली पवनके स्पर्शरूप निमित्तसे मस्तकमें अभिताप होकर जो लिंगनाश होता है वह सनिमित्तक लिंगनाश कहा जाता है । अभिष्यन्दके लक्षणोंसे इस रोगको जानना चाहिये । गदाधर वैद्य कहता है "रक्ताभिष्यंदके लक्षणोंसे इस रोगको जानना" और कार्तिक वैद्य कहता है कि "त्रिदोषजनित अभिष्यन्दके लक्षणोंसे इस रोगको जानना चाहिये" (रक्ताभिष्यन्द आदिके लक्षण आगे कहेंगे) ॥ ५० ॥

अथानिमित्तलिंगनाशनिदानलक्षणम् ।

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य । हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥ ५१॥ तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभातिवैदूर्यवर्णाविमला च दृष्टिः ॥ ५२ ॥ अनुपलभ्यमानानां सुरादीनां निमित्तमप्यनिमित्तं मन्यते । विस्पष्टं ज्योतिर्युक्तम् । वैदूर्यवर्णा श्यामा । विमला निर्मला ।

देव, ऋषि, गन्धर्व, बृहत्सर्प अथवा अन्यान्य प्रकाशमय पदार्थोंको देखनेसे दृष्टि उपहत हो जाती है यह अनिमित्त लिंगनाश कहा जाता है । देवादिलोक विशेष करके सर्वजनोंको नहीं दीखते इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण उनके दर्शनरूप निमित्तसे उत्पन्न हुए लिंगनाशको अनिमित्त माना है । अनिमित्त लिंगनाशमें नेत्र तेजवाले दीखते हैं, दृष्टि श्याम और निर्मल होती है और उपघातके कारण दृष्टि फट जाती है सकुच जाय अथवा कम हो जाती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ कृष्णमंडलगतरोगः ।

यत्सव्रणं शुक्रमथाव्रणं च पाकात्ययश्चाप्यजका तथैव । चत्वार एते नयनामयास्तु कृष्णप्रदेशे नियता भवन्ति ॥ ५३ ॥

सव्रणशुक्र, अव्रणशुक्र, पाकात्यय और अजका यह चार रोग नेत्रोंके काले मंडलमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

अथ सव्रणशुक्रलक्षणम् ।

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै । स्रावं स्रवेदुष्णमतीव चापि तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ ५४ ॥ निमग्नरूपमिति शुक्रविशेषणम् । सूच्येव विद्धमिति शुक्रस्य वर्तुलत्वं व्यथायुक्तत्वं च बोधयति । स्रवेदित्यनेनैव स्रावो बोधितः स्रावपदान्निरन्तरं स्रावः ।

जो फूला नेत्रके काले भागमें गढासा दीखे, सुईसे विंधासा मालूम होय, गोल तथा व्यथायुक्त होय उसमेंसे निरन्तर गरम जल बहता रहे उसको सव्रणशुक्र कहते हैं ॥ ५४ ॥

अथ सव्रणशुक्रस्य साध्यासाध्यता ।

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेद्यत् । अवेदनं यन्न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ ५५ ॥ न चावगाढमेकत्वग्गतं न च संस्रवेदित्यर्थः । अवेदनमीषद्वेदनम् । न च युग्मशुक्रम् अयुग्मशुक्रमेकमित्यर्थः । एवंविधं कदाचित्सिध्यति एतद्विपरीतं न सिध्यति ।

जो सव्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें न होय, एक त्वचामें होय, स्रवता न होय, वेदनारहित होय और एक होय तो किसी समय साध्य होता है । किन्तु जो सव्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें होय, दूसरी त्वचामें वेदनावाला, स्रावयुक्त और एक स्थानमें युग्मरूप ऐसा कभी भी साध्य नहीं होता ॥ ५५ ॥

अथाव्रणशुक्रलक्षणम् ।

स्यन्दात्मकं कृष्णगतं तु शुक्लं शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् । वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ ५६ ॥ स्यन्दात्मकमभिष्यन्दहेतुकं सर्वेषामक्षिरोगाणामभिष्यन्दहेतुकत्वे अस्य नियमबोधनार्थं स्यन्दात्मकमिति । शंखेंदुकुन्दप्रतिमावभासं शंखेन्दुकुन्दसदृशमवभासते । एतेन शुक्लत्वं बोध्यते । वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशम् आकाशस्थमेघवत्तनु यथा स्यादेवं प्रकाशते यत् ।

जो नेत्रोंके काले भागमें अभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ फूला आकाशमें स्थित मेघकी समान थोडा थोडा प्रकाशमान और शंख, चन्द्रमा तथा कुंदके फूलकी समान श्वेत होय उसको अव्रणशुक्र कहते हैं, यह फूला अत्यन्त साध्य है । यद्यपि नेत्रके सम्पूर्ण रोग अभिष्यन्दसे होते हैं तथापि यह फूला तो अभिष्यदसेही होता है ऐसा नियम जाननेके लिये 'अभिष्यन्दसे हुआ' यह विशेषण दिया है ॥ ५६ ॥

अथाव्रणशुक्रस्य साध्यत्वेऽप्यवस्थान्तरेण कष्टसाध्यता ।

गम्भीरजातं बहलं च शुक्लं चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ॥ ५७ ॥ गम्भीरजातं द्वित्रित्वग्गतम्, बहलं पुष्टम् ।

जो अव्रणशुक्र गम्भीर अर्थात् दो तीन पटलोंमें प्राप्त हुआ होय, पुष्ट होय और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ होय तो कष्टसाध्य होता है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥ ५७ ॥

अथाव्रणशुक्रस्याऽसाध्यलक्षणम् ।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं च चलं शिरासूतमदृष्टिकृच्च । द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥ ५८ ॥ विच्छिन्नमध्यं विशीर्णमांसत्वान्निम्नमध्यं शिरासूतं शिरायां जातम् । अदृष्टिकृदर्शनाभावकृत् । द्वित्वगतं पटलद्वयगतम् । एतद्विच्छिन्नमध्यत्वादिलिंगसहितमसाध्यं न तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केवलं गम्भीरजातस्य कष्टसाध्यत्वाभिधानादेवं चिरोत्थितमपि।

जो अव्रण शुक्रका मांस गिर जानेसे बीचमें नीचा हो, मांससे वेष्टित अर्थात् ऊंचा हो, चञ्चल हो, शिराओंमें उत्पन्न हुआ हो, देखने नहीं देवे, दो त्वचा अर्थात् दो पटलोंमें पहुँचा होय। अन्तमें लाल हो और बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो तो यह असाध्य है इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। केवल दो पटलोंमें प्राप्त और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ होय तो कष्टसाध्य है किंतु दो पटलोंमें प्राप्त हुआ और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ भी ऊपरके विशेषणोंवाला होय तो असाध्य है ॥ ५८ ॥

अथाव्रणशुक्रसाध्यासाध्यलक्षणम्।

उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम्। तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्ये तु तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ ५९ ॥ मुद्गनिभं च शुक्रमाकारेण। तत् नेत्रम्। तित्तिरिपक्षतुल्यं तित्तिरिपक्षवच्छदनम्।

जो नेत्रोंमेंसे गरम आंसू गिरते होयँ फुंसी उत्पन्न हो और अव्रण शुक्र मूँगकी समान आकारवाला होय तो असाध्य है। कितने एक कहते हैं कि "नेत्रके पलक तीतरके पंखकी समान हो गये होयँ तो अव्रणशुक्र असाध्य है" ॥ ५९ ॥

अथ पाकात्ययलक्षणम्।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डले तु। तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ ६० ॥ यः श्वेतः दोषेण कृत इति शेषः। तमक्षिपाकादक्षिपाकात्ययमाहुः। अत्र पाकोऽपि स्यादत एव सुश्रुतः "शोकाश्रुपाकार्तियुते च नेत्रे" इति।

दोषोंकरके नेत्रके काले भागमें चारों ओर सफेदी फैल जाय तो इस आंखकी पीडाको पाकात्यय कहते हैं, यह पाकात्यय तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ होय तो उसको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे। इसमें पाक भी होता है क्योंकि सुश्रुत कहता है कि "शोकाश्रुपाकार्तियुते च नेत्रे" ॥ ६० ॥

अथाजकाजातलक्षणम्।

अजापुरीषप्रमितो रुजावानलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः। विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥ ६१ ॥ यः प्रचय उच्छ्रायः स च मेदसो बोद्धव्यो यत एतस्य उत्पत्तिर्विदेहेन तृतीयपटले कथिता। अलोहितः ईषल्लोहितः। विगृह्य कृष्णमभ्युपैति महत्त्वेन समस्तं कृष्णभागं ग्राहयित्वा आयाति। व्यवस्येज्जानीयात्।

बकरीकी मेंगनकी समान, पीडावाली, कुछेक कलौंस लिये और लाल तथा चिकने आंसुओंवाली, जो ऊंचाई अपने मोटेपनसे सम्पूर्ण काले भागमें प्राप्त होती है उसको अजकाजात कहते हैं। यह ऊंचाई मेदसे होती है ऐसा जानना। क्यों कि विदेहने इस ऊंचाईकी उत्पत्ति तीसरे पटलमें कही है ॥ ६१ ॥

अथ नेत्रश्वेतभागोत्पन्नरोगाणां नामानि।

प्रस्तारिशुक्लक्षतजाधिमांसस्नाय्वर्मसंज्ञाः खलु पञ्च रोगाः ॥ ६२ ॥ स्याच्छुक्तिकार्जुनपिष्टकौ च जालं शिराणां पिडकाश्च याः स्युः। रोगा बलासग्रथितेन सार्द्धमेकादशाक्ष्णोः खलु शुक्लभागे ॥ ६३ ॥

नेत्रोंके श्वेतभागमें प्रस्तार्यर्म १, शुक्लार्म २, रक्तार्म ३, अधिमांसार्म ४, स्नाय्वर्म ५, शुक्ति ६, अर्जुन ७, पिष्टक ८, शिराजाल ९, शिराजपिडका १०, और बलासग्रथित ११, ये ग्यारह ११ रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ प्रस्तार्यर्मलक्षणम्।

प्रस्तार्यर्म तनु स्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सितम् ॥ ६४ ॥ तनु पत्तलम् स्तीर्णं विस्तीर्णम्, श्यावं रक्तनिभमित्यत्र विकल्पो बोद्धव्यः।

नेत्रके श्वेतभागमें पतला, विस्तीर्ण, कलौंस लिये अथवा लाली लिये जो सफेद चिह्न होय तो उसको प्रस्तार्यर्म कहते हैं ॥ ६४ ॥

अथ शुक्लार्मलक्षणम्।

सुश्वेतं मृदु शुक्लाभं शुक्ले तद्वर्द्धतेऽचिरात् ॥ ६५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सफेद भागमें बहुत और कोमल जो चिह्न होय तो उसको शुक्लार्म कहते हैं। यह शुक्लार्मरूप मांस बहुत दिनोंमें बढता है ॥ ६५ ॥

अथ रक्तार्मलक्षणम् ।

पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ॥६६॥ पद्माभं वर्णेन रक्तमित्यर्थः। चीयते उपचीयते ।

सफेद भागमें लाल तथा कोमल जो मांस बढता जाय उसको रक्तार्म कहते हैं ॥ ६६ ॥

अथाधिमांसार्मलक्षणम् ।

पृथु मृद्वधिमांसार्म बहलं च यकृन्निभम् ॥ ६७ ॥ पृथु विस्तीर्णम्, बहलं पुष्टम्, यकृन्निभम् ईषत्कृष्णलोहितम् ।

सफेद भागमें विस्तीर्ण, कोमल, गाढा और कुछेक कलौंस लिये जो मांस बढता होय तो उसको अधिमांसार्म कहते हैं ॥ ६७ ॥

अथ स्नाय्वर्मलक्षणम् ।

स्थिरं प्रसारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पञ्चमम् ॥ ६८ ॥ स्थिरं कठिनम्, शुष्कं स्नावरहितम् ।

सफेद भागमें कठिन, फैलनेवाला और स्नावरहित जो मांस ऊंचा होता है उसको स्नाय्वर्म कहते हैं ॥ ६८ ॥

अथ शुक्तिलक्षणम् ।

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये शुक्लाभाः सितनिचिताः स शुक्तिसंज्ञः॥६९॥ श्यावा इत्यादिवर्णत्रये विकल्पो बोद्धव्यः ।

नेत्रके सफेद भागमें काले रंगका और मांसकी समान बिन्दु होता है अथवा सीपकी समान होता है उसको शुक्ति कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथार्जुनलक्षणम् ।

एको यः शशरुधिरप्रभस्तु बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥ ७० ॥

सफेद भागमें खरगोसके रुधिरकी समान एक बिन्दु होता है उसको अर्जुन कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ पिष्टकलक्षणम् ।

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् । पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ७१

सफेद भागमें कफ तथा वायुके प्रकोपसे चूनकी समान सफेद और मैलसे भरे दर्पणकी समान जो मांस ऊंचा होता है उसको पिष्टक कहते हैं ॥ ७१ ॥

अथ शिराजाललक्षणम् ।

जालाभः कठिनशिरोऽरुणः शिराणां सन्तानो भवति शिरादिजालसंज्ञः ॥ ७२ ॥

सफेद भागमें जालेकी समान कठिन शिराओंसे व्याप्त और लाल शिराओंका जो समूह होता है उसको शिराजाल कहते हैं ॥ ७२ ॥

अथ शिराजपिडकालक्षणम् ।

शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता यास्ता विद्यादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ७३ ॥

सफेद भागमें काले भागके निकट रहनेवाली और शिराओंसे व्याप्त जो सफेद फुंसियें उत्पन्न होती हैं उनको शिराजपिडका कहते हैं ॥ ७३ ॥

अथ बलासग्रथितलक्षणम् ।

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो विज्ञेयो नयनासिते बलाससंज्ञः ॥ ७४ ॥ कांस्याभः श्वेत इत्यर्थः। अमृदुः कठिनः। वारिबिन्दुकल्पः एतेन मनाक् उन्नतत्वं बोध्यते। बलाससंज्ञः बलासग्रथितसंज्ञः। क्वचिदेकदेशेनापि समुदायावगमात् । यथा भीमो भीमसेन इति। अत एव सुश्रुते नामसंग्रहे बलासग्रथितपदं निर्दिष्टम् ।

सफेद भागमें कांसेकी समान सफेद, कठिन और जलकी बूंदकी समान कुछेक ऊंची जो बूंद होती है उसको बलासग्रथित कहते हैं । यद्यपि मूलश्लोकमें 'बलाससंज्ञ' ऐसा पद है तथापि उसका 'बलासग्रथित' ऐसा अर्थ किया है उसका कारण यह है कि भीमशब्दसे भीमसेनका ग्रहण करनेकी समान किसी स्थानमें नामके एकदेशसे सम्पूर्ण नामका ग्रहण होता है। सुश्रुतमें नामोंके संग्रहमें 'बलासग्रथित' यही पद कहा है ॥ ७४ ॥

अथैकविंशतिवर्त्मजरोगाः ।

उत्सङ्गिन्यथ कुम्भीका पोथकी वर्त्मशर्करा तथाशोवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जनदूषिका । ॥ ७५ ॥ बहलं वर्त्म यच्चापि तथान्यो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्त्मबन्धकः। क्लिष्टवर्त्म तथा वर्त्मकर्दमः श्यायवर्त्म च ॥ ७६ ॥ प्रक्लिन्नवर्त्म चाक्लिन्नवर्त्म वातहतं च तत्। वर्त्मार्बुदं निमेषश्च शोणितार्शस्तथैव च ॥ ७७ ॥ लगणो विषवर्त्मापि कुञ्चनं नाम तत्परम्। एकविंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥ ७८ ॥

नेत्रोंके वर्त्म (पलक) दो होते हैं। उनमें उत्संगिनी १, कुम्भिका २, पोथकी ३, वर्त्मशर्करा ४, अर्शोवर्त्म ५, शुष्कार्श ६, अंजननामिका ७, बहलवर्त्म ८, वर्त्मबंधक ९, क्लिष्टवर्त्म १०, वर्त्मकर्दम ११, श्यायवर्त्म १२, प्रक्लिन्नवर्त्म १३, अक्लिन्नवर्त्म १४, वातहतवर्त्म १५, वर्त्मार्बुद १६, निमेष १७, शोणितार्शि १८, लगण १९, विषवर्त्म २० और कुंचन २१, ये इक्कीस रोग होते हैं॥ ७५–७८ ॥

अथोत्संगिनीलक्षणम्।

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मसंश्रया। सोत्सङ्गोत्संगपिडिका रक्तजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७९ ॥ अभ्यन्तरमुखी वर्त्मनोऽभ्यन्तरे मुखं यस्याः सा। वर्त्मनो बाह्यतस्ताम्रा। सोत्संगा अन्तःपूया। उत्संगपिडिका उत्संगे क्रोडे बह्व्यः पिडिका यस्याः सा। स्थूलकण्डूरा स्थूला कण्डुरा चेति कर्मधारयः। एषा अधरवर्त्मजा बोद्धव्या। वर्त्मोत्संगेऽधरे जन्तोरिति विदेहवचनात्।

नेत्रके कोयेके भीतर मुखवाली, बाहरसे लाल, भीतरसे राधयुक्त, अपने आप अनेक फुडियोंयुक्त, स्थूल और खुजलीयुक्त जो फुडियां पलकमें रुधिरके प्रकोपसे होती हैं उसको उत्संगिनी कहते हैं। यह फुडिया नीचेके कोयेमें होती है ऐसा जानना, कारण यह है कि, 'मनुष्यके नीचेके कोयेमें उत्संगिनी होती है' ऐसा विदेह कहता है ॥ ७९ ॥

अथ कुम्भीकालक्षणम्।

वर्त्मान्ते पीडिका ध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च। कुम्भीकाबीजसदृशाः कुम्भीकाः सन्निपातजाः ॥ ८० ॥ कुम्भीकाबीजसदृशाः कुम्भीका कठोरदेशे दाडिमाकारफला लता तद्बीजतुल्या।

पलकके अंतमें ऊंची और कुम्भिका नामक लताके बीजकी समान जो फुंसी सन्निपातसे होती है और फूटती है तथा फूट फूटकर स्रवती है वह फुंसी कुम्भिका कही जाती है। कुम्भिका नामक लता कठोर देशमें होती है और उसके फल अनारकी समान होते हैं ॥ ८० ॥

अथ पोथकीलक्षणम्।

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः। रुजावत्यश्च पिडिकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥ ८१ ॥

बहनेवाली, खुजलीयुक्त, भारी, लाल सरसोंकी समान और पीडायुक्त जो फुंसी नेत्रके कोयेमें होती है उसको पोथकी कहते हैं ॥ ८१ ॥

अथ वर्त्मशर्करालक्षणम्।

पिडिकाभिः सुसूक्ष्माभिर्घनाभिरभिसंवृता। पीडिका या खरा स्थूला वर्त्मस्था वर्त्मशर्करा ॥ ८२ ॥

बहुत छोटी छोटी सघन फुंसियोंसे चारों ओर भरी हुई, तीक्ष्ण और मोटी जो फुंसी पलकमें होती है उसको वर्त्मशर्करा कहते हैं ॥ ८२ ॥

अथार्शोवर्त्मलक्षणम्।

ऐर्वारुबीजप्रतिमाः पीडिका मन्दवेदनाः। श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्मकीर्त्यते ॥ ८३ ॥ ऐर्वारुः कर्कटी। खराः तीक्ष्णाग्राः।

पलकमें ककडीके बीजकी समान, मंद पीडायुक्त, चिकनी और तीक्ष्ण अनीवाली जो फुंसी होती है उसको अर्शोवर्त्म कहते हैं ॥ ८३ ॥

अथ शुष्कार्शोलक्षणम्।

दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः। व्याधिरेषोऽभिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः ॥ ८४ ॥

पलकके भीतर खरखरे, जकडेसे और दारुण जो बडे बडे अंकुर होते हैं उसको शुष्कार्श कहते हैं ॥ ८४ ॥

अथांजननामिकालक्षणम्।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसम्भवा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साञ्जननाभिका ॥ ८५ ॥

पलकमें दाहवाली, भोंकनेसरीखी पीडा युक्त, लाल, कोमल और मंद वेदनावाली जो बारीक फुंसियें होती हैं वे अंजनानाभिका कही जाती हैं ॥ ८५ ॥

अथ बहलवर्त्मलक्षणम् ।

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समन्ततः । सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत् ॥ ८६ ॥

पलककी समान रंगवाली और कठिन जो फुंसी वर्त्मके चारों ओर फैल जायँ उसको बहलवर्त्म कहते हैं ॥ ८६ ॥

अथ वर्त्मबंधकलक्षणम् ।

कण्डूरेणात्मतोदेन वर्त्मशोफेव मानवः । असमं छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्धकः ८७

जलसे परिपूर्ण और खुजलीसहित पलक सूजकर नेत्र बराबर नहीं मिचते होयँ उसको वर्त्मबंधक कहते हैं ॥ ८७ ॥

अथ क्लिष्टवर्त्मलक्षणम् ।

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च । अकस्माच्च स्रवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥८८॥ एतत्कफजुष्टरक्तजम् ।

नेत्रके दोनों कोये नरम रहें । उनमें थोडी पीडा हो । सर्वदा लाल रहें और अकस्मात् लाल हो जायँ उसको क्लिष्टवर्त्म कहते हैं । यह रोग प्रथम कफके सम्बन्धसे होकर रुधिरसे होता है ॥ ८८ ॥

अथ वर्त्मकर्दमलक्षणम् ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा । तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमम् ॥ ८९ ॥ क्लिन्नत्वम् आर्द्रत्वम् ।

ऊपर क्लिष्टवर्त्मके जो लक्षण कहे वे लक्षण होयँ तथा फिर पित्तसे संयुक्त रुधिर दाह करता हो और इस कारण पलक भीज जाते होयँ उस रोगको वर्त्मकर्दम कहते हैं ॥ ८९ ॥

अथ श्यामवर्त्मलक्षणम् ।

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् । सकण्डूकं परिक्लेदि श्यामवर्त्मेति तन्मतम् ॥ ९० ॥

नेत्रके पलक जो बाहर तथा भीतर काले होयँ, सूजन हो, वेदनायुक्त, खुजलीसहित और भीजे रहें तो उसको श्यामवर्त्म कहते हैं ॥ ९० ॥

अथ प्रक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् ।

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि । प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥ ९१ ॥ अरुजमीषद्व्यथम् ।

कोये कुछेक पीडायुक्त, सूजे हुए और अधिकतर कीचडसहित भीजे होंय उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ॥ ९१ ॥

अथाक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् ।

यस्य धौतान्यधौतानि सम्बध्यन्ते पुनः । वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्मतत् ९२

धोनेसे वा नहीं धोनेसे जो नेत्रके पलक वारंवार चिपककर मिल जायँ और पके नहीं अर्थात् कच्चे रहें उसको अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ॥ ९२ ॥

अथ वातहतवर्त्मलक्षणम् ।

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते । एतद्वातहतं विद्यात्सरुजं यदि वारुजम् ॥ ९३ ॥ विमुक्तसन्धि स्वस्थानच्युतसन्धि । निश्चेष्टम् । निमेषोन्मेषादिरहितम् ।

जिसके पलककी संधि अलग अलग हो जायँ पलक मिचें और खुलें नहीं और वेदनासहित अथवा वेदनारहित तथा सकुचनेवाली इसको वातहतवर्त्म कहते हैं ॥ ९३ ॥

अथ वर्त्मार्बुदलक्षणक्षम् ।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् । आचक्षीतार्बुदमिति सरक्तमवलम्बि च । ॥ ९४ ॥ विषममवर्तुलं ग्रन्थिभूतं कठिनम् । अवेदनमीषद्वेदनम्, सरक्तमीषल्लोहितम् । अवलम्बि अवस्रस्तम् ।

पलकोंके भीतर विषम अर्थात् गोल नहीं, थोडी पीडावाली, कुछेक लाल और शीघ्र बढनेवाली, कठिन गांठ होय उसको वर्त्मार्बुद कहते हैं ॥ ९४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ निमेषलक्षणम् ।

निमेषिणीः शिरावायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः । सञ्चालयति वर्त्मानि निमेषः स न सिध्यति ॥ ९५ ॥

पलकोंमें रहनेवाली वायु पलकोंको खोलने बंद करनेवाली नसोंमें प्राप्त होकर पलकोंको चलायमान करे उसको निमेष कहते हैं, यह रोग असाध्य है॥९५॥

अथ शोणिताशींलक्षणम् ।

वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरंकुरः । तद्रक्तजं शोणिताशींश्छिन्नं वाऽपि विवर्द्धते ॥ ९६ ॥

पलकोंमें रहनेवाले कोमल अंकुर बढें उसको शोणितार्श कहते हैं, यह रोग रुधिरसे होता है। इसको जितना जितना काटा जाय उतनाही अधिक बढता है ॥ ९६ ॥

अथ लगणलक्षणम् ।

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः। सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणः स्मृतः ॥ ९७ ॥

नहीं पकनेवाला, कठिन, स्थूल, अल्प पीडायुक्त, खुजलीसहित, चिकनी और बेरकी समान जो गांठ पलकमें उत्पन्न होय उसको लगण कहते हैं ॥ ९७ ॥

अथ बिसवर्त्मलक्षणम् ।

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः । प्रस्रवत्यन्तरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ९८ ॥ छिद्राणि अन्तश्छिद्राणि च कुर्युरित्यन्वयः । बिसवद्बहुच्छिद्रत्वात् ।

तीनों दोष पलकोंमें बाहर सूजनको उत्पन्न करें भीतर छिद्रोंको उत्पन्न करें और उनमेंसे कमलकी नालकी समान जलका स्राव होय उसको बिसवर्त्म कहते हैं ॥ ९८ ॥

अथ कुंचनलक्षणम् ।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा । तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः९९

वातादि दोषोंके कारण पलक संकुच जाय और उससे देखनेको असमर्थ हो जाय उसको कुंचन कहते हैं ॥ ९९ ॥

तत्र पक्ष्माणि अक्षिलोमानि तत्रत्ययो रोगयोर्नामनी आह ।

पक्ष्मकोपः पक्ष्मशातो रोगौ द्वौ पक्ष्मसंश्रयौ ॥ १०० ॥

पक्ष्मकोप और पक्ष्मशात ये दो रोग पलकोंके बालोंमें होते हैं ॥ १०० ॥

अथ पक्ष्मकोपलक्षणम् ।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षिं विशन्ति हि । घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयंति च ॥ १०१ ॥ असिते सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि । पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ १०२ ॥ संरम्भं शोथम् ।

वायुसे चलायमान पलकोंके बाल नेत्रोंमें प्रवेश करते हैं, प्रवेश करके नेत्रोंको वारंवार घिसते हैं, घिस घिसकर काले अथवा सफेद भागमें सूजनको उत्पन्न करे हैं और जडसे उखडकर गिर जायँ इस रोगको पक्ष्मकोप कहते हैं यह रोग अत्यंत दारुण है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तपक्ष्मकोपलक्षणम् ।

यत्पक्ष्मदेहलीमुक्त्वा वर्त्मनोऽन्तः प्रजायते । घर्षेत्पक्ष्मासिते श्वेते पक्ष्मकोपः स उच्यते ॥ १०३ ॥

जहां बाल उत्पन्न होनेका स्थान है उस स्थानको छोडकर बालोंके भीतर उत्पन्न होय और वह काले तथा सफेद भागमें घिसा करे उसको पक्ष्मकोप कहते हैं, इसको देशमें परवाल कहते हैं। सुश्रुतमें कहा है कि पलकोंके बालोंके स्थानमें रहनेवाले दोष तीक्ष्ण अनीवाले खरखरे रोमोंको उत्पन्न करे हैं ये रोम नेत्रोंमें घिसनेसे नेत्र दुखते हैं। यह रोग पक्ष्मकोप कहा जाता है। इस रोगवाला मनुष्य पवन, धूप और अग्निपर द्वेष करता है ॥ १०३॥

अथ पक्ष्मशातलक्षणम् ।

वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं लोमानि शातयेत् । कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तदा दिशेत् ॥ १०४ ॥ शातयेत् । स्खलयेत् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्ष्माशयमें रहनेवाला पित्त पलकके बालोंको गिरा देता है और खुजली तथा दाहको उत्पन्न करे है यह रोग पक्ष्मशात कहाता है ॥ १०४ ॥

अथ संधिजरोगाः।

पक्ष्मवर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः। शुक्लकृष्णगतश्चान्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च। मतः कनीनकगतः षष्ठश्चापाङ्गसंश्रितः १०५

पहिली सन्धि पलकोंके रोमोंमें और पलकोंमें है, दूसरी संधि पलकोंमें और सफेद भागमें है, तीसरी सन्धि सफेद भागमें और काले भागमें है और दृष्टिमें है, चौथी संधि काले भागमें है और दृष्टिमें है, पांचवी सन्धि दृष्टिमें है और छठी सन्धि नेत्रके अन्तमें है ॥ १०५ ॥

अथ सन्धिजरोगाणां नामानि संख्या च। पूयालसः सोपनाहः स्रावाश्चत्वार एव च। पर्वणी कालजी जन्तुग्रन्थिः सन्धौ नवामयाः ॥ १०६ ॥

१ पूयालस, २ उपनाह, ३ पित्तस्राव, ४ कफस्राव, ५ सन्निपातस्राव, ६ रक्तस्राव, ७ पर्वणी ८ अलजी और ९ जंतुग्रन्थी यह नामवाले नौ रोग संधियोंमें होते हैं ॥ १०६ ॥

अथ पूयालसलक्षणम्।

पक्वः शोथः सन्धिजः संस्रवेद्यः सान्द्रं पूयं पूति पूयालसाख्यः ॥ १०७ ॥ सन्धिजः कनीनकसन्धिजो बोद्धव्यः। "पूयालसं तु तं विद्यात्सन्धौ कानीनके नृणाम्" इति वचनात्।

संधियोंमें उत्पन्न और पकी हुई जो सूजन दुर्गंधित तथा गाढी राध जिसमें बहे उसको पूयालस कहते हैं। संधियोंमें उत्पन्न हुआ, अर्थात् दृष्टिकी संधियोंमें उत्पन्न हुआ ऐसा जानना, कारण यह है कि 'मनुष्योंकी दृष्टिकी संधियोंमें पूयालस होता है' ऐसा विदेह कहता है ॥ १०७ ॥

अथोपनाहलक्षणम्।

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजश्चोपनाहः ॥ १०८ ॥ नाल्पः महान्। अपाकी ईषत्पाकी। नीरुजः ईषद्वेदनः। "अरुणं कठिनं ग्रन्थिं जनयत्यल्पवेदनम्"। इति विदेहवचनात्।

दृष्टिकी संधिमें बडी, कम पकनेवाली, बहुत खुजली युक्त, कठिन, लाल और अल्प वेदनावाली जो गांठ होयँ उसको उपनाह कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथ स्रावसम्प्राप्तिः।

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावा-ल्लँक्षणैः स्वैरुपेतान्। तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिंगं कीर्तयिष्ये चतुर्द्धा ॥ १०९ ॥ सन्धीनिति बहुवचनेन सर्व एव सन्धयो गृह्यन्ते। एके वदन्तीति शेषः। वातिकस्रावो न भवति केवलेन वातेन तदसम्भवात्।

दोष सम्पूर्ण संधियोंमें जाकर आंसुओंके मार्गसे अपने २ लक्षणोंवाले स्रावोंको उत्पन्न करे हैं। कितने एक आचार्य इस स्रावको 'नेत्रनाडी' नामसे कहते हैं। स्राव चार प्रकारका होता है उसके लक्षण कहते हैं। वायुसम्बन्धी स्राव नहीं होता क्योंकि केवल वायुसे स्राव होना संभव नहीं ॥ १०९ ॥

अथ पित्तजस्रावलक्षणम्।

हारिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तस्रावः संस्रवेत्सन्धिमध्यात् ॥ ११० ॥ हारिद्राभं पीतरक्तम्। परतः पीतशब्दप्रयोगाज्जलं नेति। वाशब्दो हारिद्राभं पीतं वेत्यत्र सम्बध्यते। पित्तस्रावः पित्तात्स्राव एवं श्लेष्मस्रावादयः।

संधिके बीचमेंसे लाल तथा पीला मिला हुआ अथवा केवल पीला गरम जलका स्राव होता होय तो उसको जानना कि पित्तसम्बन्धी स्राव है ॥ ११० ॥

अथ कफजस्रावलक्षणम्।

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्मस्रावो-ऽसौ विकारः प्रदिष्टः ॥ १११ ॥

सफेद, गाढा तथा चिकना स्राव होता होय तो जानना कि कफसम्बन्धी स्राव है ॥ १११ ॥

अथ सान्निपातस्रावलक्षणम्।

शोथः सन्धौ संस्रवेद्यस्तु पक्वः पूयं स्रावः सर्वजः सम्मतः स्यात्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संधियोंमें पकनेवाली सूजन राधको वहाती होय तो उसको जानना कि सन्निपातस्राव है ॥

अथ रुधिरजन्यस्रावलक्षणम् ।

रक्तास्रावः शोणिताद्यो विकारो गच्छेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥ ११२ ॥

स्राव गरम होय और उसमें विशेष रुधिर गिरता होय तो जानना कि रुधिरजन्य स्राव है ॥ ११२ ॥

अथ पर्वण्यलज्योर्लक्षणम् ।

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना रक्ताज्ञेया पर्वणी वृत्तशोफा । जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव व्याहृता पूर्वलिंगैः ॥ ११३ ॥ रक्ता सिता स्फोटचिता दारुणा त्वलजी भवेत् ॥ ११४ ॥ अलजीमाह—अलजी स्यादित्यादि तस्मिन्नेव कृष्णशुक्लयोरेव सन्धौ । भेदार्थमाह—पूर्वलिंगैः प्रमेहाधिकारलिखितैः ।

काले भागकी तथा सफेद भागकी संधियोंमें गोल सूजनवाली, लाल, बारीक और दाहयुक्त तथा पक्कनेवाली फुंसी उत्पन्न होय तो जानना कि पर्वणी उत्पन्न हुई है । यह पर्वणी रुधिरके प्रकोपसे होती है । पहिले प्रमेहाधिकारमें लिखे अनुसार लाल सफेद फुंसियोंसे व्याप्त और दारुण ऐसी फुंसी संधिमें (काले भाग तथा सफेद भागकी संधिमें) होय तो उसको अलजी जानना ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

अथ जंतुग्रंथिलक्षणम् ।

जन्तुग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युर्जन्तवः सन्धिजाताः । नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसन्धौ गच्छन्त्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः । ॥ ११५ ॥ वर्त्मनः पक्ष्मणश्च सन्धिजाता इत्यन्वयः ।

पलकके तथा पलकके रोमोंकी संधियोंमें उत्पन्न हुए अनेक आकृतिवाले कृमि खुजलीको उत्पन्न करे और नेत्रको बिगाड बिगाडकर पलक तथा सफेद भागकी संधियोंमें जाते हैं उसको जंतुग्रंथि कहते हैं ॥ ११५ ॥

अथ समस्तनेत्रजरोगगणना ।

स्यन्दाश्चतुष्का इह सम्प्रदिष्टाश्चत्वार एवेह तथाधिमन्थाः । पाकः सशोथः स च शोथहीनो हताधिमन्थोऽनिलपर्ययश्च ॥ ११६ ॥ शुष्काक्षिपाकास्त्विह कीर्तितश्च तथान्यतोवात उदीरितश्च । दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता शिराणामुत्पातहर्षौ च समस्तनेत्रे ॥११७॥ एवं समस्तनेत्रे स्युरामया दश सप्त च । तेषामिह पृथग्वक्ष्ये यथावल्लक्षणान्यपि११८॥

चार अभिष्यन्द ४, चार अधिमंथ ८, सशोथपाक ९, अशोथपाक १०, हताधिमंथ ११, वातपर्यय १२, शुष्काक्षिपाक १३, अन्यतोवात १४, अम्लाध्युषित, १५ शिरोत्पात १६ और शिराहर्ष १७ यह सतरह रोग समस्त नेत्रमें होते हैं, अब इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहता हूं ॥ ११६–११८ ॥

अथ चत्वार्यभिष्यन्दनामानि ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्ताद्भिष्यन्दश्चतुर्विधः । प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रभयंकरः ॥११९॥

प्राणियोंके वाताभिष्यन्द, पित्ताभिष्यन्द, कफाभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्द इस प्रकार सर्व नेत्रमें पीडा करनेवाला चार प्रकारका भयंकर अभिष्यन्द रोग होता है ॥ ११९ ॥

अथ वाताभिष्यन्दलक्षणम् ।

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः । विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२० ॥ संघर्षः करकटीका । शिरोऽभितापः शिरसो व्यथा । विशुष्कभावः दूषिकाराहित्यम् । वाताभिपन्ने वातेन उपद्रुते ।

तोडने भोंकने सरीखी पीडा, स्तब्धता (जडता), रोमांचोंका होना, खुजली, नेत्रोंमें रूक्षता, मस्तकमें पीडा, चिपकना नहीं और आंसुओंका शीतल होना, ये सब लक्षण होयँ तो जानना कि नेत्रमें वायुके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२० ॥

अथ पित्ताभिष्यन्दलक्षणम् ।

दाहप्रपाकः शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुद्भवश्च । उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिशिराभिनन्दा शीतलेच्छा । धूमायनं नेत्राद्धूमोद्गम इव । बाष्पसमुद्भवः अश्रुस्रावः ।

दाह, पकना, शीतल पदार्थोंकी इच्छा, नेत्रमेंसे धुँएँसा निकलता प्रतीत हो, आसुओंका स्राव, आंसुओंमें उष्णता और नेत्रका पीलापन ये लक्षण होयँ तो जानना कि पित्तके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२१ ॥

अथ कफाभिष्यन्दलक्षणम् ।

उष्णाभिनन्दा गुरुताक्षिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च । स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२२ ॥

उपदेहः दूषिकया लिप्तता ।

गरम पदार्थोंकी इच्छा, भारीपन, नेत्रोंमें सूजन, खुजली, कीचड अधिक आवे और चिपके, अत्यंत शीतलता और वारंवार चिकना स्राव ये लक्षण होयँ तो जानना कि कफके प्रकोपसे नेत्र दुखने आये हैं ॥ १२२ ॥

अथ रक्ताभिष्यन्दलक्षणम् ।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च । पित्तस्य लिंगानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२३ ॥

पित्तलिंगानि पित्ताभिष्यन्दलिंगानि ।

आंसुओंमें लाली, नेत्रोंमें लाली, चारों ओर नेत्रोंमें अत्यन्त लाल रेखा और अन्यभी पित्ताभिष्यन्दके लक्षण होयँ तो जानना कि रुधिरके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२३ ॥

अथ चतुर्विधाभिष्यन्दोपेक्षया चत्वारोऽधिमन्थाः ।

वृद्धैरतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् । तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदना १२४॥

जो मनुष्य अभिष्यन्द रोगोंपर औषधादिक उपचार नहीं करते उनके ये वृद्धिको प्राप्त होकर नेत्रोंमें तीव्र पीडावाले चार अधिमन्थ होते हैं (वाताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, पित्ताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, कफाभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ और रक्ताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ इस प्रकार अधिमन्थ चार हैं) ॥१२४॥

अथाधिमन्थलक्षणम् ।

उत्पाट्यत इवात्यर्थं तथा निर्मथ्यतेऽपि च । शिरसोऽर्द्धं तु तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ १२५ ॥ स्वलक्षणैः यथोक्तवातादिकृताभिष्यन्दलक्षणैरधिमन्थं विद्यात् । अभिष्यन्देभ्योऽधिमन्थानां भेदार्थमाह—शिरसोऽर्द्धमुत्पाट्यत इव तथा निर्मथ्यतेऽपि चेति । चतुर्ष्वधिमन्थेषु बोद्धव्यम् । शिरसोऽर्द्धवेदना व्याधिप्रभावात् । स च अधिमन्थो यदात्मको यावता कालेन मिथ्याचाराद्दृष्टिं हन्ति तमाह—हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिक सप्तरात्राद्योऽधीमन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात् । षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव ॥ १२६ ॥ अत्र सद्यः शब्देन त्रिरात्रमुच्यते तन्त्रान्तरे त्रिरात्रवचनात् ।

जो अधिमन्थ जिस अभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ होय उस अधिमन्थमें उसी अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण होनेके सिवाय आधा माथा उखाडासा मालूम होय तथा अत्यन्त मथनेकीसी पीडा होती है । मस्तकके आधे भागको उखाडता मालूम होय तथा मथता होय ऐसी पीडा होनेसे अर्थात् यही अभिष्यन्दोंसे अधिमन्थोंमें अन्तर है । यह अलग वेदनारूप लक्षण चारों अधिमन्थोंमें समान है । मस्तकके अर्द्धभागमें वेदना व्याधिके प्रभावसे होती है ऐसा जानना । जो अधिमन्थ कफाभिष्यन्दसे हुआ होय तो सात रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट कर देता है । रक्ताभिष्यन्दसे हुआ होय तो पांच रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट कर देता है, वाताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ होय तो छः रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट कर देता है और पित्ताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ होय तो तत्कालही तीन रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट कर देता है । जो अयोग्य उपचार आदि करनेमें आवे तब अधिमन्थ दृष्टिको नष्ट कर देता है ऐसा जानना ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ सशोथपाकाशोथपाकनेत्रयोर्लक्षणम् ।

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुंबरसन्निभः । संरंभी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोथकः ॥१२७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शोथहीनानि लिंगानि नेत्रपाके त्वशोथके ॥ १२८ ॥ पक्वोदुम्बरसन्निभः लोहितत्वात्। जो नेत्र खुजलीसहित होय, चिपके, आंसुओंसे परिपूर्ण होय, पके हुए गूलरके फलकी समान लाल होय, सूजनयुक्त और पके तो जानना कि सशोथपाक हुआ है। ऊपर कहे सशोथपाकके सम्पूर्ण लक्षण होयँ और केवल सूजन नहीं होय तो जानना कि अशोथपाक हुआ है॥ १२७ ॥ १२८ ॥

अथ हताधिमन्थलक्षणम्

उपेक्षणादक्षि यदाधिमन्थो वाताधिकः शोषयति प्रसह्य। रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥१२९॥ शोषयति शोषयित्वा नाशयति। अत एवाह विदेहः—" तत्पद्ममिव संशुष्कमवसीदति लोचनम् ॥ " इति।

वाताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ अधिमन्थ योग्य उपचारकी उपेक्षा करनेसे जब उग्र वेदनाको उत्पन्न करके आंखको बलात्कारसे सुखाकर नष्ट कर देता है तब यही अधिमन्थ हताधिमन्थ कहा जाता है, यह हताधिमन्थ असाध्य है। यद्यपि मूलमें 'सुखाता है' यही लिखा है तथापि 'सुखाकर नष्ट कर देता है' ऐसा हमने लिखा है इसका यह कारण है कि "अत्यन्त सुखाये हुए नेत्र अत्यन्त सूखे कमलकी समान नष्ट हो जाते हैं" ऐसा विदेहका मत है ॥ १२९ ॥

अथ वातपर्ययलक्षणम्।

वारंवारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः। रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥१३०॥ पर्येति पर्यायेण याति, कदाचिद्भ्रुवौ कदाचिन्नेत्रे।

वायु किसी समय भौंओंमें और किसी समय नेत्रोंमें इस प्रकार वारंवार फिरे और अनेक प्रकारकी तीव्र वेदना होय तो यह वातपर्यय कहा जाता है॥ १३०॥

अथ शुष्काक्षिपाकलक्षणम्।

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म सन्दह्यते चाविलदर्शनं यत्। सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १३१ ॥ कूणितं संकोचितं मुद्रितमिति यावत्। दारुणरूक्षवर्त्म दारुणं विकृतं रूक्षं च वर्त्म यस्य तत्। इदमक्ष्णोर्विशेषणम्। सन्दह्यते सदाहं भवति। आविलदर्शनम् आविलस्य अनच्छस्य दर्शनं येन तत्। तत्प्रतिबोधने उद्घाट्य सुदारुणमतिशयेन विकृतम्।

नेत्रके पलक दारुण तथा कठिन और रूखे हो जायँ, आंख मिची रहे, दाह हो, आंखसे साफ न देख सके और खोलते समय अत्यन्त विकृत दीखे इस रोगको शुष्काक्षि पाक कहते हैं ॥ १३१ ॥

अथान्यतोवातलक्षणम्।

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा कुर्याद्रुजोऽतिभ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥१३२॥ अवटू घाट इति मैथिलादिलोकाः। अन्यतो वा पृष्ठादिदेशं च आगतः अन्यतोवातः अन्यत्र स्थितोऽन्यत्र रुजं करोति इत्यन्यतोवातः। विदेहेनाप्युक्तम्—मन्यानामन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा। करोति भेदं निस्तोदं शंखे वाक्ष्णोर्भ्रुवस्तथा। तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ १३३ ॥

घाटीमें, कानमें, मस्तकमें, ठोडीमें, मन्यानाडी और अन्य पीठके बांस आदिमें स्थित वायु भौंओंमें और नेत्रोंमें घोर वेदनाको उत्पन्न करे उस रोगको अन्यतोवात कहते हैं। एक स्थानमें स्थित वायु दूसरे स्थानमें वेदनाको उत्पन्न करे है इस कारण यह अन्यतोवात कही जाती है। विदेह भी कहता है कि नाडके मध्यमेंसे अथवा पीठके बांसमेंसे स्थित वायु कनपटी नेत्र और भौंवोंमें भेदने तथा तोडने सरीखी पीडाको उत्पन्न करे है, इस रोगको नेत्रविषयके जाननेवाले विद्वान् अन्यतोवात कहते हैं ॥ १३२॥१३३॥

अथाम्लाध्युषितलक्षणम्।

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वमक्षि प्रपच्यते। सदाहशोथं सस्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १३४ ॥ अम्लतः अम्लभोजनात्। तथा च सुश्रुतः अम्लेन भुक्तेनेत्यादि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खट्टे रस आदिके खानेसे नेत्र काले, लाल कोनेवाले, दाहयुक्त, सूजनसहित और स्रावयुक्त होते हैं। यह रोग अम्लाध्युषित कहा जाता है ॥ १३४ ॥

अथ शिरोत्पातलक्षणम् ।

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः । मुहुर्विरज्यन्ति च याः समन्ताद्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ १३५ ॥ अक्षिराज्यः अक्षिशिराः विरज्यन्ति विकृतवर्णा भवन्ति ।

वेदनारहित अथवा वेदनायुक्त नेत्रकी शिरा लाल हो जाय और वह अधिकाधिक वारंवार विकृत वर्णवाली हो जाय इस रोगको शिरोत्पात कहते हैं ॥ १३५ ॥

अथ शिराहर्षलक्षणम् ।

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः । ताम्राक्षिता स्रावयति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ १३६ ॥

मूर्खतासे जो शिरोत्पातकी उपेक्षा की जाय तो वही शिराहर्ष हो जाता है कि जिससे आंखें लाल हो जाती हैं, अत्यंत स्राव होता है और आंखोंसे देख नहीं सक्ता ॥ १३६ ॥

अथ नेत्रसामतालक्षणम् ।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागद्वेकसमन्वितम् । घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः १३७॥ उदीर्णवेदनम् उद्भटवेदनम् । घर्षः करकटिका एतल्लक्षणं लंघनादिविधानार्थमञ्जनादिनिषेधार्थं चोक्तम् । तथा च तन्त्रान्तरे-स्वेदोदितानि चत्वारि लंघनं भोजने रसः । स्वादुतिक्तश्च लेपश्च बाष्पस्वेदनमेव च । एतानि नेत्ररोगाणां सामान्याचरणानि हि ॥ १३८ ॥ अञ्जनं सर्पिषः पानं कषायं गुरुभोजनम् । नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥ १३९ ॥

नेत्रमें अपार वेदना होती हो, लाली अधिक हो, खुजली आती हो, भोकनेसरीखी पीडा होती हो, शूल चलता हो, और आंसू गिरते होयँ तो नेत्रको साम अर्थात् आमसहित जानना। जबतक नेत्र आमसहित होयँ तबतक लंघन आदि करनेके लिये तथा अंजन आंजना आदिक निषेध करनेके लिये यह लक्षण कहे हैं। अन्य ग्रंथमें भी कहा है कि 'लंघन, मधुर भोजन तथा कडवा रस, लेप और बाफका सेक यह नेत्ररोगके लिये सामान्य उपचार हैं, परन्तु जबतक नेत्र आमसहित होय तबतक अंजन, घृतपान, क्काथ, भारी भोजन और स्नान इनका त्याग कर देवे' ॥ १३७–१३९ ॥

अथ नेत्रनिरामतालक्षणम् ।

मन्दवेदनता कण्डूसंरम्भाश्रुप्रशान्तता । प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोर्निरामेक्षणलक्षणम् । ॥ १४० ॥ संरंभः शोथः ।

वेदनाकी मंदता, खुजलीका कम होना, सूजनका कम होना, आंसुओंका कम आना, और वर्णकी निर्मलता ये लक्षण होयँ तो जानना कि नेत्र निराम अर्थात् आमरहित हैं ॥ १४० ॥

अथ नेत्ररोगचिकित्सा ।

द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे शिरोगते ते बहुधा हि नेत्रे । ताः प्रोक्षणोत्सादनलेपनादिन्पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति ॥ १४१ ॥ प्रोक्षणं सेचनमुत्सादनमुद्वर्तनम् । मलोष्मसंघट्टनपीडनाद्यैस्ता दूषयन्ते नयनानि दुष्टाः । भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्मादुपानदभ्यञ्जनधावनानि ॥ १४२ ॥ मलं धूल्यादि । मलादिभिर्दुष्टास्ताः शिरा नयनानि दूषयन्तीत्यन्वयः ।

पाँवकी दो मोटी नसें मस्तकमें गई हैं और बहुतसी नसें नेत्रोंमें पहुँची हैं । इस कारण पावोंमें सेचन, मर्दन और लेपन किया हुआ उन नसोंके द्वारा नेत्रोंमें पहुँचता है । मैलसे, गरमीसे, संघट्टनसे तथा दबाने आदिसे दूषित हुई नसें नेत्रोंको बिगाड देती हैं इस कारण जूतेका पहरना, पाँवकी मालिश, और पाँवोंको धोना यह सर्वदा सेवन करना चाहिये, जिससे नेत्रोंका उपकार हो ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

चक्षुष्याः शालयो मुद्गा यवा मांसं तु जाङ्गलम् । पक्षिमांसं विशेषेण वास्तूकं तण्डुलीयकम् ॥ १४३ ॥ पटोलकर्कोटककारवेल्ल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फलानि सर्पिःपरिषाचितानि । तथैव वार्ताकफल नवीनमक्ष्णोर्हितः स्वादुरथापि तिक्तः ॥ १४४ ॥ कटूम्लगुरुतीक्ष्णोष्णमाषानिष्पावमैथुनम् । मद्यवल्लूरपिण्याकमत्स्यशाकविरूढजम् ॥ १४५ ॥ विदाहीन्यन्नपानानि न हितान्यक्षिरोगिणे । सेक आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा । पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १४६ ॥

शालिचावल, मूंग, जौ, जांगल प्रदेशके पशुओंका मांस, पक्षियोंका मांस, विशेष करके बथुआ, चौलाई, परवल, ककोडे, करेले और नवीन बैंगन इनको घीमें पकाकर खानेसे नेत्रोंमें हितकारक हैं । मधुर तथा कडवा रस भी नेत्रोंमें हितकारक है । तीखे पदार्थ, खट्टे पदार्थ, भारी पदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ, गरम पदार्थ, उडद, लोबिया, मैथुन, मदिरा, सूखा हुआ मांस, खल, मछली, जिनमें अंकुर उत्पन्न हो गये हों ऐसे धान्य, और दाहकारक अन्न पान ये सब नेत्ररोगियोंको हितकारक नहीं हैं । सेक (पानी आदिकी बारीक धारें डालनी), आश्चोतन (पोटली आदिसे दवाको नेत्रोंमें डालना), पिंडी (लुपडी आदि बाँधना), बिडाल (लेपादि करना), तर्पण (तृप्ति करनेके लिये आँखमें दूध आदिको भरना), पुटपाक (पकाया हुआ रस नेत्रोंमें डालना) और अंजन इन सब उपचारोंसे नेत्ररोगकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १४३–१४६ ॥

अथ सेकविधिः ।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः । मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलः ॥ १४७ ॥ स चापि स्नेहनो वाते पित्ते रक्ते च रोपणः । लेखनस्तु कफे कार्यस्तस्य मात्राभिधीयते ॥ १४८ ॥ षड्भिर्वाचां शतैः स्नेहे चतुर्भिस्तैस्तु रोपणे । तैस्त्रिभिर्लोचने कार्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥ १४९ ॥ निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्याच्छोटिकाथवा । गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ १५० ॥ छोटिका चुटकी इति लोके । सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रौ चात्यन्तिके गदे । एरण्डदलमूलत्वक्कृतमाजं पयो हितम् । सुखोष्णं नेत्रयोः सिक्तं वाताभिष्यन्दनाशनम् ॥ १५१ ॥ पथ्याक्षामलखारससवल्कलकल्केन सूक्ष्मवस्त्रेण । कृत्वा पोटलिकां तामहिफेनोत्थद्रवेण संयुक्ताम् ॥ १५२ ॥ निदधीत लोचने स्यात्सर्वाभिष्यन्दसंक्षयः शीघ्रम् । योगोऽयमृषिभिरुक्तो जगदुपकाराय कारुणिकैः ॥ १५३ ॥ भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते । अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १५४ ॥ स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चक्षुष्यमनिलापहम् । आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहम् ॥ १५५ ॥ त्रिफलायाः कषायस्तु धावनान्नेत्ररोगजित् । कवलान्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः ॥ १५६ ॥

रोगीके नेत्रोंको बंद कराकर उनपर चार अंगुल ऊँचेसे महीन महीन धारें डाले, यह नेत्ररोगियोंके लिये हितकारक है । वातसम्बन्धी रोग होय तो घी आदि स्नेह पदार्थोंकी धारें डाले, यह स्नेहन सेक कहा जाता है । पित्त वा रुधिरकी पीडा होय तो हरड आदिके रसकी धारें डाले, यह रोपण सेक कहा जाता है । कफकी पीडा होय तो मलको उखाडनेवाली सोंठ आदिके रसकी धारें डाले, यह लेखनसेक कहा जाता है । अब इन सेकोंकी मात्रा कहते हैं । स्नेहनसेक करना होय तो छःसौ मात्रातक करना चाहिये । रोपण सेक करना होय तो चार सौ मात्रातक करना चाहिये । लेखन सेक करना होय तो तीन सौ मात्रातक करना चाहिये । इस प्रकार करनेसे नेत्र स्वच्छ और निर्मल हो जाते हैं । मनुष्य जितनी देरमें आँखको मींचकर खोलता है उतना समय अथवा जितनी देरमें अंगुलीसे चुटकी बजाई जाती है उतना समय अथवा एक गुरु अक्षर बोलनेमें जितना समय लगता है उतने समयको एक मात्रा कहते हैं । सेक दिनमें ही करना चाहिये किंतु महादुःखदायक रोग होय तो रात्रिमें भी करना चाहिये । अंडके पत्ते, अंडकी जड और अंडकी छाल इनके कल्कके साथ पकाया हुआ बकरीका दूध मंदोष्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उक्त समयमें नेत्रोंके भीतर डाले, यह सेक हितकारी है और वाताभिष्यन्दको दूर करे है। हरड, बहेडा, आमला और पोस्तके डोडे इनका कल्क बनाकर उसमें अफीमका रस डालकर बारीक वस्त्रकी पोटली बनाकर नेत्रके ऊपर रखे तो सर्व प्रकारके अभिष्यन्द तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जगदुपकारार्थं दयालु मुनियोंने यह प्रयोग कहा है। भोजन करनेके पश्चात् दोनों गीले हाथोंकी हथेली घिसकर नेत्रके ऊपर लगानेसे हाथोंका जल तत्काल तिमिररोगको नाश करता है। काले तिलोंको पीस शिरसे मलकर स्नान करनेसे नेत्र उत्तम हो जाते हैं और वायुकी पीडा शमन हो जाती है। नित्य आमलोंको मलकर स्नान करनेसे दृष्टिशक्ति बढती है, त्रिफलोंका क्वाथ बनाकर उससे नेत्रोंको धोनेसे नेत्ररोग दूर हो जाते हैं। त्रिफलेके कल्कका कवल धारण करनेसे मुखरोग नष्ट होते हैं और त्रिफलोंका क्वाथ पीनेसे कामला नष्ट हो जाती है॥ १४७–१५६॥

अथाश्च्योतनविधिः।

क्वाथक्षीरद्रवस्नेहविन्दूनां यत्तु पातनम्। द्व्यंगुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हि तत्॥ १५७॥ बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु रोपणे दश विन्दवः। स्नेहने द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः॥ १५८॥ उष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः। वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम्॥ १५९॥ कफे तिक्तोष्णरूक्षं स्यात्क्रमादाश्च्योतनं हितम्। आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वा कृतोन्मिता॥ १६०॥ ततःपरं लोचनाभ्यां भेषजाय त्रयो मताः। आश्च्योतनं न कर्तव्यं निशायां केनचित्क्वचित्॥ १६१॥ बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः। क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः। त्रिफलाश्च्योतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम्॥ १६२॥

रोगीके नेत्रोंको दो अंगुलियोंसे उघाडकर उनमें क्वाथके वा सहतके अथवा दूध घी आदिके बिन्दु डाले, इसको आश्च्योतन कहते हैं और यह नेत्रोंको हितकारी है। मलके उखाडनेकी क्रिया करनी होय तो आठ बिन्दु डालने चाहिये, रोपण क्रिया करनी होय तो दश बिन्दु डालने चाहिये, और स्नेहन क्रिया करनी होय तो बारह बिन्दु डालने चाहिये। शीत काल होय तो कुछेक गरम करके बूंदें डालनी चाहिये और उष्णकाल होय तो शीतल बिन्दु डालने चाहिये यह सर्वत्र निश्चय है। वायुकी पीडा होय तो कडवे तथा स्नेहवाले बिन्दु हितकारी हैं। पित्तकी पीडा होय तो मधुर और शीतल बिन्दु हितकारी हैं और जो कफकी पीडा होय तो तीक्ष्ण, गरम तथा रूक्ष बिन्दु हितकारक है। सब आश्च्योतनोंकी मात्रा जितनी देरमें सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण होय उतनी देरतक समझना। किसी वैद्यको कभी रात्रिके समय किसी प्रकारके नेत्रके दुखनेपर आश्च्योतन कर्म नहीं करना चाहिये। बेल आदि पंचमूल, कटेरी, अंड और सैंजिना इनका क्वाथ बनाकर सुहाती सुहाती बूंदें नेत्रोंमें डालनेसे वाताभिष्यन्द नाश होता है। त्रिफलेके क्वाथके बिन्दु डालनेसे सब प्रकारके अभिष्यन्द दूर हो जाते हैं॥ १५७–१६२॥

अथ पिंडीविधिः।

उक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी च कोलमात्रया। वस्त्रखण्डेन संबद्धा नेत्रेऽभिष्यन्दनाशिनी॥ १६३॥ स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्ते सा शीतला मता। रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम्॥ १६४॥ एरण्डपत्रमूलत्वङ् निर्मिता वातनाशिनी। धात्रीविरचिता पित्ते शिग्रुपत्रकृता कफे॥ १६५॥ निम्बपत्रकृता पिण्डी पित्तश्लेष्महरी भवेत्। शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा॥ १६६॥ धार्या नेत्रेऽनिलकफे, शोथकण्डूव्यथाहरी। त्रिफलापिण्डिका नेत्रे वातपित्तकफापहा॥ १६७॥ पथ्याक्षामलखाखसवल्कलकल्कोऽहिफेनजलयुक्तः। तेन विरचिता पिण्डी शमयति सकलानभिष्यन्दान्॥ १६८॥

योग्य औषधियोंका कल्क बनाकर उसकी कवलकी समान टिकिया बनाकर नेत्रपर रखकर वस्त्रकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पट्टीसे बाँधे तो अभिष्यन्दका नाश होता है। वायुका अभिष्यन्द होय तो स्निग्ध तथा उष्ण औषधियोंकी टिकिया बाँधनी चाहिये। पित्तकी पीडा होय तो शीतल औषधियोंकी टिकिया बाँधनी चाहिये और कफकी पीडा होय तो रूक्ष तथा उष्ण औषधियोंकी टिकिया बाँधनी चाहिये, ऐसा विद्वान् वैद्योंने कहा है। अंडके पत्ते, अंडकी जड, अंडकी छाल इनकी पिंडी वायुकी पीडाको शमन करे है, आमलोंकी पिंडी पित्तकी पीडाको शमन करे है और सैंजिनेके पत्तोंकी टिकिया कफकी पीडाको शमन करे है। नीमके पत्तोंकी टिकिया बांधनेसे पित्त तथा कफका नाश होता है। सोंठ तथा नीमके पत्ते इनको पीसकर उसमें कुछेक सेंधानिमक डालकर उसकी कुछ कुछ गरम पिंडी बनाकर बांधे तो वायु तथा कफकी पीडा शमन होती है और सूजन, खुजली तथा अन्य व्यथा इनका भी नाश होता है। त्रिफलेकी पिंडी बनाकर नेत्रपर बांधनेसे वात, पित्त, तथा कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई नेत्रकी पीडा शमन होती है। हरड, बहेडा, आमला और पोस्तके डोडे इनका कल्क बनाकर उसमें अफीमका रस डालकर पिंडी बांधनेसे सर्व प्रकारका अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है ॥ १६३–१६८ ॥

अथ बिडालकविधिः।

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविवर्जिते। तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखालेपविधानवत् ॥ १६९ ॥ अंगुलस्य चतुर्थांशो मुखलेपः कनिष्ठकः। मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोऽर्द्धांगुलो भवेत् ॥ १७० ॥ स्थितिकालोऽपि तस्योक्तो यावत्कल्को न शुष्यति। शुष्कस्तु गुणहीनः स्यात्तथा दूषयति त्वचम् ॥ १७१ ॥ यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः। जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥ १७२ ॥ तार्क्ष्यं रसाञ्जनम्। रसाञ्जनेन वा लेपः पथ्याबिल्वदलैरपि। वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः॥ १७३ ॥

पलकके बालोंको बचाकर नेत्रके बाहरके भागपर लेप करना यह बिडालक कहा जाता है। मुखपर लेप करनेकी जो मात्रा कही है वही मात्रा बिडालककी भी करनी चाहिये। मुखपर लेप करनेकी मात्रा इस प्रकार है, अंगुलका चौथाई भाग ऊंचा लेप करना कनिष्ठमात्रा, अंगुलका तिहाई भाग ऊँचा लेप करना मध्यम मात्रा है और आधे अंगुल ऊँचा लेप करना उत्तम मात्रा है। जबतक कल्क सूखे नहीं तबतक यह लेप करना चाहिये, सूखने पर लेप गुणहीन हो जाता है और त्वचाको भी खराब करता है। मुलेठी, पीला गेरू, सेंधानिमक, दारुहलदी और रसौत यह सब समान भाग लेकर जलमें पीसकर इस कल्कको नेत्रके बाहर लेप करनेसे नेत्रके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। रसौत अथवा हरड तथा बेलके पत्ते अथवा वच, हलदी तथा सोंठ इनका अथवा सोंठ और पीला गेरू इनका लेप करनेसे नेत्रके रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १६९–१७३ ॥

अथ तर्पणविधिः।

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः। आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ १७४ ॥ समौ दृढावसन्धानौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः। पूरयेद्घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ १७५ ॥ सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा। निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ १७६ ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः। भिषग्भिरेष कथितः पुराणैस्तर्पणो विधिः ॥ १७७ ॥ यद्रूक्षं परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम्। शीर्णं पक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम्। ॥ १७८ ॥ तिमिरार्जुनशुष्काद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः। शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं पवनपर्ययैः ॥ १७९ ॥ तन्नेत्रं तर्पयेत्सम्यङ् नेत्ररोगविशारदः। तर्पणं धारयेद्वर्त्मरोगे वाचां शतं बुधैः ॥ १८० ॥ स्वस्थे कफे सन्धिरोगे वाचां पञ्चशतानि च। षट्शतानि कफे कृष्णरोगे सप्तशतानि हि ॥ १८१ ॥ दृष्टिगे च शतान्यष्टावधिमन्थे सहस्रकम्। सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ १८२ ॥ तर्पणेनागतस्नेहं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्रावयित्वाक्षि शोषयेत्। स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ॥ १८३ ॥ यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत्। एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं वापि तर्पयेत् ॥ १८४ ॥ तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत्। सुखसुप्तावबोधत्वं वैशद्यं दृष्टिपाटवम्। निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ १८५ ॥ क्रियालाघवं नेत्रस्य क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुताम्। गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत्। घर्षतोदयुतं नेत्रमतितर्पितमादिशेत् ॥ १८६ ॥ आस्रावशोफरोगाढ्यमुपदेहसमाकुलम्। रूक्षमस्रावि परुषं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ १८७ ॥ अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयत्नेन चिकित्सिते। रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामनयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥ १८८ ॥ अनयोरतितर्पितहीनतर्पितयोः। दुर्दिनान्युष्णशीतेषु चिंतायां सम्भ्रमेषु च। अशान्तोपद्रवे वाक्षि तर्पणं न प्रशस्यते ॥ १८९ ॥ सम्भ्रमोऽत्र भयम्।

वायु, धूप और धूलरहित घरमें रोगीको चित्त लिटाकर सने हुए उडदके चूनका दोनों नेत्रोंके चारों ओर दृढ और गोल मंडल बनावे फिर रोगीके दोनों नेत्रोंको बंद करके पतला घी अथवा मंड अथवा गरम जल अथवा जलसे सौ बार धुला हुआ घी अथवा दूधमेंसे निकाला हुआ घी जबतक पलकके बाल न डूबें तबतक भरे, भर जानेके पश्चात् धीरे धीरे नेत्रोंको खोले यह तर्पण विधि प्राचीन वैद्योंने कही है। नेत्र रूखे हो गये हों, सूख गये हों, कुटिल हो गये हों, गदले हो गये हों, पलकके बाल गिर गये हों, शिरोत्पात, आँखें कठिनतासे थोडी खुलती हों, तिमिर, अर्जुन, शुक्र, अभिष्यन्द, अधिमंथ, शुष्काक्षिपाक, सूजन और वातविपर्यय हुआ होय तो नेत्र रोगोंको जाननेवाले वैद्य नेत्रोंको अच्छे प्रकारसे तर्पण करें। पलकका रोग होय तो सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारणके समयतक नेत्रपर तर्पण करे। स्वस्थतामें, कफमें तथा संधियोंके रोगमें पांच सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेके समयतक तर्पणको रहने देवे। पित्तकी पीडा होय तो छः सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेके समय तक तर्पण रहने देवे। काले भागमें रोग होय तो सात सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करने पर्यंत तर्पण करे। दृष्टिका रोग होय तो आठ सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेतक तर्पण रखे, अधिमंथ होय तो हजार गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेतक और वातसंबन्धी रोग होय तो भी हजार गुरु अक्षरोंके उच्चारणतक तर्पण रहने देवे। तर्पण करनेके पश्चात् नेत्रोंमें भरी हुई चिकनाईको बाहर करके नेत्रोंको शुद्ध करे और सेके हुए जौके चूनसे आंखोंको साफ करे पश्चात् घीके योगसे वृद्धिको प्राप्त हुए कफको यथायोग्य धूमपान कराकर दूर करे। एक दिन, पाँच दिन अथवा सात दिनतक तर्पणकी क्रिया करे। तर्पण बराबर हो गया होय तो निद्रा सुखसे आने लगती है, सुखसे जागता है, नेत्रोंमें स्वच्छता, नेत्रोंकी शक्तिका बढना, सुख होता है, रोगकी शांति होती है और नेत्रोंको खोलने बंद करनेमें हलकापन होता है ये लक्षण होयँ तो जानना कि, तर्पण अच्छे प्रकारसे हो गया। जो तर्पणका अतियोग हो तो नेत्र भारी होते हैं, गदले रहते हैं, अत्यंत चिपकनेवाले वा गीले आंसू भर भर आते हैं, खुजली, कीचड आते हैं और जैसे भीतरको घुस जायँ तथा सुई चुभोने सरीखी पीडा होती है, जो नेत्रोंका तर्पण अच्छे प्रकारसे न हो अर्थात् कम होय तो नेत्रोंमेंसे पानी गिरता है, सूजन होती है, पीडा होती है, कीचड अधिक आती है, रूक्षता होती है और कठिनता होती है, जो तर्पणका अतियोग अथवा हीनयोग हुआ होय तो विशेष गडबड होती है इस कारण इनकी चिकित्सा करनेमें अधिक विचार करना चाहिये। जो अतियोग हुआ होय तो रूक्ष उपचार करने चाहिये और जो हीनयोग होय तो स्निग्ध उपचार करने चाहिये। बादलोंसे आच्छादित दिनमें, अत्यन्त गरमीके समयमें, अत्यन्त शीतके समयमें, चिंता, भ्रम और उपद्रवोंके शांत होनेसे पहिले नेत्रोंको तर्पण नहीं करना चाहिये ॥ १७४–१८९ ॥

अथ पुटपाकविधिः।

द्वे बिल्वे स्निग्धमांसस्य परं द्रव्यपलं मतम्। द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ १९० ॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम्। पुटपाकविधानेन तत्पक्त्वा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद्रसं बुधैः ॥ १९१ ॥ तर्पणोक्तेन विधिना यथावद्विनियोजयेत् । दृष्टिमध्ये निषेक्तव्यो नित्यमुत्तानशायिनः ॥ १९२ ॥ तेजास्यनिलमाकाशमातपं भास्करस्य च । नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ १९३ ॥

उत्तम चिकना मांस आठ तोले लेकर उसमें अन्य औषधि चार तोले और द्रवपदार्थ सोलह तोलेभर डालकर सबको एकत्र पीसे, पश्चात् इन सबका एक गोला बनाकर उसको पत्तोंसे अच्छे प्रकार बांधकर पुटपाककी रीतिसे अग्निमें पकावे, फिर उसमेंसे रस निचोडकर उस रसको तर्पणकी रीत्यनुसार सम्पूर्ण रीतिसे नेत्रमें डाले । रोगीको चित्त मुलाकर उसके नेत्रमें यह रस नित्य डाले । नेत्रोंका तर्पण करनेके पश्चात् अथवा पुटपाककी विधि करनेके पश्चात् रोगीको तेजस्वी पदार्थ, पवनका संचार, आकाश और सूर्यकी धूप न दिखावे ॥ १९०–१९३ ॥

अथाञ्जनविधिः ।

अथ संपक्कदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत् । अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ १९४ ॥ वटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि हि । कुर्याच्छलाकयांगुल्या हीनानि स्युर्यथोत्तरम् ॥ १९५ ॥ स्नेहनं रोपणं चापि लेखनं तत्त्रिधा पृथक् । मधुरं स्नेहसम्पन्नमञ्जनं स्नेदनं मतम् ॥ १९६ ॥ तत्त्रिविधं पृथगिति तद्वटिकारसचूर्णरूपं पृथक् प्रत्येकं त्रिधा स्नेहनं रोपणं लेखनं चेति । कषायतिक्तरसंयुक्तस्नेहं रोपणं स्मृतम् । अञ्जनं क्षारतिक्ताम्लरसैर्लेखनमुच्यते ॥ १९७ ॥ हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्टी तीक्ष्णाञ्जने भिषक् । प्रमाणं मध्यमे सार्द्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ १९८ ॥ रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता मता । मध्यमा द्विविडङ्गा सा हीना त्वेकविडंगिका ॥ १९९ ॥ शलाकाः स्नेहने चूर्णे चतस्रः प्राहुरञ्जने । रोपणे तासु तिस्रः स्युस्ते उभे लेखने स्मृते ॥ २०० ॥ मुखयोः कुंचिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टांगुलोन्मिता । अश्मजा धातुजा वा स्यात्कलायपरिमण्डला ॥ २०१ ॥ अग्रे कलायवत्परिवर्तुला । सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने स्मृता । ताम्रलोहाश्मसम्भवा शलाका लेखने मता । अंगुली तु मृदुत्वेन रोपणे कथिता बुधैः ॥ २०२ ॥

दोष पकनेके पश्चात् नेत्रोंमें योग्य अंजन आंजना चाहिये । जो पदार्थ नेत्रोंमें आंजा जाता है वह 'अंजन' कहा जाता है । गोली, रस और चूर्णरूप ऐसे अञ्जनके तीन भेद हैं । अञ्जनको सलाई अथवा अंगुलीसे आंजना चाहिये । गोलीरूप अंजनसे रसरूप अंजन निर्बल है और रसरूप अंजनसे चूर्णरूप अंजन निर्बल है । इस प्रत्येक अंजनके स्नेहन, रोपण और लेखन इन नामोंसे तीन भेद हैं । क्षार, कडवे और खट्टे रसवाला जो अंजन होय उसको लेखन कहते हैं । कसैला तथा कडवे रसवाला और स्नेहयुक्त जो अञ्जन होय उसको रोपण अञ्जन कहते हैं । मधुररसयुक्त और स्नेहयुक्त जो अञ्जन हो वह स्नेहन अञ्जन कहा जाता है । अञ्जन तीक्ष्ण होय तो उसकी मटरकी समान गोली करनी चाहिये । अञ्जन मध्यम अर्थात् तीक्ष्ण न होय और कोमलभी न होय तो उसकी डेढ १॥ मटरकी बराबर गोली बनानी चाहिये और अञ्जन कोमल होय तो उसकी दो मटरकी बराबर गोली बनानी चाहिये । आंखमें यदि रसांजन अर्थात् रसरूप अञ्जन देना होय तो तीन वायविडंगकी बराबर डालना यह उत्तम है । दो वायविडंगकी बराबर डालना यह मध्यम है । और एक वायविडंयकी बराबर डालना यह कनिष्ठ है । चूर्णरूप अञ्जन जो स्नेहन होय तो उसकी चार सलाई आंखमें लगानी चाहिये । रोपण होय तो उसकी तीन सलाई आंखमें डालनी चाहिये । और जो लेखन होय तो उसकी दो सलाई नेत्रोंमें लगानी चाहिये । आंजनेकी सलाई दोनों ओरके मुखोंसे सकुची हुई, चिकनी, आठ अंगुल लम्बी और उसकी दोनों मुख मटरकी समान गोल और वह पत्थर अथवा धातुकी होनी चाहिये । स्नेहन अञ्जन आँजना होय तो सोने अथवा चांदीकी सलाई होनी चाहिये । लेखन अञ्जन आँजना होय तो ताँबेकी, लोहेकी, अथवा पत्थरकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सलाई होनी चाहिये और रोपण अञ्जन आंजना होय तो कोमल होनेके कारण उसके आँजनेके लिये अंगुलीही ठीक है ॥ १९४-२०२ ॥

अथांजनस्य दृष्टिप्रसादनी शलाका ।

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैः शुद्धश्च सर्पिषा ।
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः । तच्छलाका हरत्येव सकलान्नेत्रजान्गदान् ॥ २०३ ॥

शुद्ध सीसेको बारंबार तपा तपाकर हरड, बहेडा और आमलेके रसमें, सोंठके रसमें, घीमें, भांगरेके रसमें, गोमूत्रमें, सहतमें और बकरीके दूधमें बुझा बुझाकर नेत्रोंमें लगावे तो नेत्रसम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं । यह सलाई 'दृष्टिप्रसादनी' इस नामसे कही जाती है ॥ २०३ ॥

अथांजनकरणविधिः ।

कृष्णभागादधः कुर्याद्यावन्नयनमञ्जनम् ।
हेमन्ते शिशिरे चापि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ २०४ ॥ पूर्वाह्णे वापराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते । वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते तु सदैव हि ॥ २०५ ॥ प्रातः सायं तु तत्कुर्यान्न च कुर्यात्सदैव हि । श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे । अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रशस्यते ॥ २०६ ॥

काले भागके नीचे आंखके कोयेतक अञ्जन आँजे । हेमंत ऋतुमें और शिशिर ऋतुमें मध्याह्नके समय अञ्जन आँजना चाहिये । ग्रीष्म और शरदृतुमें पूर्वाह्नके समय अथवा अपराह्नके समय अञ्जन आँजना चाहिये । वर्षाऋतुमें बादलोंके न होनेपर और बहुत गरमी न होय उस समय अञ्जन आँजना चाहिये और वसन्त ऋतुमें सदैव अञ्जन करना चाहिये । अथवा प्रातः और सन्ध्या दोनों समय अञ्जन आंजना उचित है किन्तु निरंतर न आँजे । थका हुआ, बहुत रोया हो, भयभीत, मद्यपान किये हो, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णरोगी और जिसके मल मूत्रादिके वेगका अवरोध हो गया होय उनको अञ्जन लगाना नहीं चाहिये ॥ २०४-२०६ ॥

अथ स्नेहनी वटिका ।

पथ्याक्षधात्रीबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च । पिष्ट्वाम्बुना वटीं कुर्यादञ्जनं द्विहरेणुकम् । नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा ॥ २०७ ॥

हरड, हरडसे दुगुने बहेडे और बहेडेसे तिगुने आमले इन सबको लेकर पानीमें पीसकर गोलियां बना लेवे । इन गोलियोंमेंसे दो मटरकी बराबर नेत्रोंमें आंजे तो नेत्रोंका स्राव और वायु तथा रुधिरकी पीडा शान्त हो जाती है ॥ २०७ ॥

अथ रोपणी वटी ।

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालतीनिम्बपल्लवाः ।
गोशकृद्रससंयुक्ता वटी नक्तान्ध्यनाशिनी ।
एतस्याश्चाञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्द्धहरेणुका ॥ २०८ ॥

रसौत, हलदी, दारुहलदी, मालतीके पत्ते और नीमके पत्ते इनको गायके गोबरके रसमें पीसकर गोली बनावे इनमेंसे डेढ मटरकी समान नेत्रोंमें आँजे । इन गोलियोंको आँजनेसे रात्रिमें नहीं दीखना अर्थात् रतौंधा नष्ट हो जाता है ॥ २०८ ॥

अथ लेखनी चन्द्रोदयावटिका ।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला । पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ २०९ ॥ छागक्षीरेण संपिष्य वटीं कुर्याद्यवोन्मिताम् । हरेणुमात्रां संघृष्य जलेनाञ्जनमाचरेत् ॥ २१० ॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् । रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वटी चन्द्रोदया जयेत् ॥ २११ ॥

शंखकी नाभि, बहेडेकी मींग, हरड, मैनशिल, पीपल, काली मिरच, कूठ और वच इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर जौकी समान लंबी गोली बनावे । इन गोलियोंमेंसे एक मटरकी समान जलमें घिसकर नेत्रोंमें आँजे । यह चंद्रोदया नामक गोली तिमिर, माँसवृद्धि, काँच, पटल, पलकके भीतरकी गांठ, रतौंधा और एक वर्षके फूलेको भी नष्ट करती है ॥ २०९-२११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पुष्पहरावर्तिः।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभावितम्। करञ्जबीजं तद्वर्तिर्दृष्टेः पुष्पं विनाशयेत् ॥ २१२ ॥

करंजके बीजको अनेक वार ढाकके फूलोंके रसमें भावना देकर पीसकरके बत्ती बनावे। इस बत्तीको आँखोंमें आँजनेसे नेत्रोंकी फूली नष्ट हो जाती है २१२॥

अथ स्नेहनी रसक्रिया।

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत्। ईषत्कर्पूरसहितं तत्स्यान्नेत्रप्रसादनम् २१३॥

निर्मलीके फलको सहतमें घिसकर उसमें कुछेक भीमसेनी कपूर डालकर नेत्रोंमें आँजे तो नेत्र स्वच्छ निर्मल हो जाते हैं ॥ २१३ ॥

अथ रोपणी रसक्रिया।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला। समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचं तथा ॥ २१४ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि। अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ॥ २१५ ॥ दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा। पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्धताम् ॥ २१६ ॥ पुनर्नवा हरत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा। बब्बूलदलनिष्क्काथो लेहीभूतस्तदञ्जनात्। नेत्रस्रावो व्रजेच्छोषं मधुयुक्तान्न संशयः २१७

रसौत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, सेंधानिमक, पीला गेरू और काली मिरच इन सबको समान भाग लेकर सहतमें पीसकर नेत्रोंमें आंजे तो प्राक्लिन वर्त्मका क्लेद तथा खुजली यह सब नष्ट हो जाते हैं और पलकके बाल जम आते हैं। पुनर्नवेको तेलमें पीसकर आंजनेसे तिमिर नष्ट हो जाता है। काँजीमें पीसकर आँजनेसे रतौंधा नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार सूर्य अंधकारको नष्ट कर देता है उसी प्रकार पुनर्नवा (साँठ-गदहपुरेना) तिमिर तथा रतौंधको नष्ट करे है। बबूरके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उसको गाढा कर लेवे फिर उसमें सहत डालकर आँजनेसे नेत्रोंका स्राव शुष्क हो जाता है॥२१४--२१७॥

अथ लेखनी रसक्रिया।

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यकर्पूरजो रजः। क्षिप्तमञ्जनतो हन्ति कुसुमं तु द्विमासिकम्। ॥ २१८ ॥ क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जनात्। अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥ २१९ ॥

भीमसेनी कपूरको वडके दूधमें पीसकर आंजनेसे दो महीनेका फूला तत्काल नष्ट हो जाता है। सहत और घोडेकी लार इनमें काली मिरचको पीसकर अंजन आँजनेसे जिस प्रकार सूर्योदयसे अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इससे अत्यंत निद्राका आना दूर हो जाता है ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

अथ स्नेहनं चूर्णम्।

अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेत्त्रिफलारसैः। सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ २२० ॥ अञ्जयेत्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम्। सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ॥ २२१ ॥

सफेद सुर्मेको अग्निसे तपा तपाकर सात वार त्रिफलेके रसमें और सात वार स्त्रीके दूधमें बुझावे। फिर इस सुर्मेका चूर्ण करके नित्य नेत्रमें आंजे तो नेत्रके सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं, यह सुर्मा नेत्रोंको अत्यंत हितकारी है॥ २२० ॥ २२१ ॥

अथ रोपणं चूर्णम्।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा। गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ २२२ ॥ शुष्कं च तज्जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत्। विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ २२३ ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत्। अञ्जयेन्नयने तेन नेत्राखिलगदाच्छिदः ॥ २२४ ॥

पत्थरके खरलमें खपरियाको पीसकर जलमें अच्छे प्रकारसे भिजो रक्खे फिर उसके जलको नितार करके दूसरे पात्रमें कर लेवे और खपरियाके मलको जो बच रहे उसको रोक देवे पश्चात् उस नितरे हुए जलको सुखालेवे तो पपडीकी समान जम जायगी उस पप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डीको पीसकर त्रिफलेके रसकी तीन भावना देवे और उसमें दशांश भीमसेनी कपूर मिलावे इस चूर्णको नेत्रोंमें आंजनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २२२-२२४ ॥

अथ लेखनं चूर्णम् ।

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचशङ्खचन्दनसैन्धवैः ।
चूर्णितैरञ्जनं प्रोक्तं पुष्पादीनां निकृन्तनम् ॥ २२५ ॥

मुरगेके अंडेका वक्कल, मैनशिल, कांच, चन्दन और सेंधानिमक इनका चूर्ण बनाकर नित्य नेत्रोंमें आंजनेसे फूला आदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥२२५ ॥

अथ मुक्तादिमहांजनम् ।

मुक्ताकर्पूरकाचाग्रुरुमरिचकणासैंन्धवं चैलवालं शुण्ठीकंकोलकांस्यत्रपुरजनिशिलाशंखनाभ्यभ्रतुत्थम् । दक्षाण्डत्वक्च साक्षं क्षतजमथ शिवा क्लीतकं राजवर्तं जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजकं स्यात्तथैव ॥ २२६ ॥ पूतीकनिम्बार्जुनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् । प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं यत्नेन पिंष्यान्मधुनातिसूक्ष्मम् ॥ २२७ ॥ भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् । विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनानेन महाञ्जनेन ॥ २२८ ॥ एलवालमेलवालुकनाम्ना प्रसिद्धम् । कंकोलं सुगन्धद्रव्यं सुगन्धकोकिलेति प्रसिद्धा तदलाभे जातीपुष्पं ग्राह्यम् । तस्याप्यलाभे लवंगम् । कांस्यं तच्च मारितं ग्राह्यम् । शिला मनःशिला । अभ्रमभ्रमकं तच्च मारितं ग्राह्यम् । दक्षाण्डत्वक् दक्षः कुक्कुटः तस्याण्डत्वक् ।अक्षं बिभीतकफलम् । क्षतजमत्र कुंकुमम् । शिवा हरीतकी । क्लीतकं यष्टीमधु । राजवर्तं रावटी इति लोके । पूतीकः धोराकरञ्ज इति लोके । अञ्जनं सुरमा इति लोके । भद्रमुस्तं नागरमुस्तम् । ताम्रं सारं च मारितं ग्राह्यम् । रसगर्भं रसाञ्जनम् ।

मोती, भीमसेनी कपूर, कचिया निमक, मिर्च, पीपल, सेंधानमक, एलुआ, कंकोल, मिर्च (अगर कंकोल मिर्च न मिले तो उसके अभावमें चमेलीके फूल लेने चाहिये), काँसेकी भस्म, सीसेकी भस्म, हलदी, मैनशिल, शंखकी नाभि, अभ्रककी भस्म, शुद्ध तूतीया, मुरगेके अंडेका वक्कल, बहेडा, केसर, हरड, मुलेठी, राजवर्त (रावटी पत्थर), चमेलीके फूल, तुलसीके नवीन फूल, सफेद सैंजिनेके बीज, दुर्गंधित करंजके बीज, नीम, कोह, नागरमोथा, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म और रसौत ये प्रत्येक पदार्थ छः छः रत्तीभर लेकर सहतमें बारीक पीसकर अंजन करे तो यह मुक्तादिमहांजन सिद्ध होता है । इस अंजनसे नेत्रके समस्त रोग (अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुए होयँ तौ भी) अवश्य शांत हो जाते हैं ॥ २२६-२२८ ॥

अथ नयनशोणांजनम् ।

कणा सलवणोषणा सहरसाञ्जना साञ्जना सरित्पतिकफः सिता सितपुनर्नवासम्भवा । रजन्यरुणचन्दनं मधु च तुत्थपथ्या शिला ह्यरिष्टदलशाबरस्फाटिकशङ्खनाभीन्दवः ॥ २२९ ॥ इमानि तु विचूर्णयेन्निबिडवाससा शोधयेत्तथायसि विमर्दयेत्समधु ताम्रखण्डेन तत् । इदं मुनिभिरीरितं नयनशोणनामाञ्जनं करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ २३० ॥ लवणं सैन्धवम् । अञ्जनं सुरमा । सरित्पतिकफः । समुद्रफेनम् । शिला मनःशिला । साबरो लोध्रः । स्फटिकः [फट्किरी] । इन्दुः कर्पूरः । तिमिरे नूतनकुसुमे नूतनपटले च ।

पीपल, सेंधानिमक, काली मिरच, रसौत, सुरमा, समुद्रफेन, मिश्री, सुफेद पुनर्नवा, हलदी, लाल चंदन, मुलेठी, हरड, मैनसिल, नीमके पत्ते, लोध, फट्किरी, शंखकी नाभि और भीमसेनी कपूर इन सबका एकत्र चूर्ण करके मोटे कपडेमें छानकर सहतमें मिलाकर तांबेके पैसेसे लोहेके बासनमें खूब खरल करे तो यह 'नयनशोणांजन' सिद्ध होता है । मुनियोंका कहा हुआ यह अंजन बलात्कारसे नवीन तिमिरको नवीन पटलको और फूलेको नष्ट कर देता है ॥२२९॥२३०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ चन्द्रोदया वटी।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च। विभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ २३१ ॥ सर्वमेतत्समं कृत्वा गव्यक्षीरेण पेषयेत्। नाशयेत्तिमिरं कण्डूपटलान्यर्बुदानि च ॥ २३२ ॥ अपि त्रिवार्षिकं शुक्रं मासेनैकेन नाशयेत्। अधिकानि च मांसानि रात्रावन्धत्वमेव च ॥ २३३ ॥

हरड, वच, कूठ, पीपल, काली मिरच, बहेडेकी मींग, शंखकी नाभि और मैनशिल इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर गायके दूधमें बारीक पीस कर इसकी गोली बनावे तो यह 'चंद्रोदया वटी' सिद्ध होती है। यह गोली तीन वर्षके फूलेको भी एक महीनेमें दूर कर देती है सर्व प्रकारकी मांसवृद्धिको और रतौंधेको भी एक महीनेमें नष्ट कर देती है ॥२३१-२३३॥

अथ चन्द्रप्रभा वर्तिः।

रजनी निम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च। विडंगं भद्रमुस्तं च सप्तमी त्वभया स्मृता ॥ २३४ ॥ अजामूत्रेण संपिष्य छायायां शोषयेद्वर्तीम्। वारिणा तिमिरं हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टकम् ॥ २३५ ॥ मधुना पटलं हन्ति नारीक्षीरेण पुष्पकम्। एषा चन्द्रप्रभा वर्तिः स्वयं रुद्रेण निर्मिता॥२३६॥

हलदी, नीमके पत्ते, पीपल, काली मिरच, वायविडंग, नागरमोथा और हरड इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनाकर छायामें सुखावे तो यह 'चन्द्रप्रभा' वर्ति सिद्ध होती है। साक्षात् सदाशिवकी बनाई हुई यह चंद्रप्रभा सहतमें घिसकर लगावे तो पटलको दूर कर देती है और स्त्रीके दूधमें घिसकर लगानेसे फूलेको नष्ट करे है॥२३४-२३६॥

अथ कणामरिचयोः प्रयोगः।

कणा छागशकृन्मध्ये पक्वा तद्रसपेषिता। अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ २३७ ॥

पीपलको बकरीकी मेंगनमें पकाकर बकरीके रसमें पीसकर आंज तो थोडे ही समयमें रतौंधा नष्ट हो जाता है। लाली मिर्चको सहतमें पीसकर आंजनेसे भी थोडेही समयमें रतौंधा दूर हो जाता है ॥२३७॥

अथ त्रिफलाद्यं घृतम्।

त्रिफलाया रसं प्रस्थं प्रस्थं भृंगरसस्य च। वृषस्य च रसं प्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ २३८ ॥ गुडूच्या आमलक्याश्च रसं छागीपयस्तथा। प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ २३९ ॥ कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम्। मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका॥२४०॥ तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत्। ऊर्द्ध पानमधः पानं मध्ये पानं च शस्यते ॥ २४१ ॥ यावन्तो नेत्ररोगाः स्युस्तत्पानादपकर्षति। सुरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते वा विप्लुते तथा ॥ २४२ ॥ नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलीकापटलार्बुदे। अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ २४३ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु दोषत्रयकृतेष्वपि। परं हितमिदं प्रोक्तं त्रिफलाद्यं महाघृतम् ॥ २४४ ॥ भृंगरसः भृंगराजरसः। क्षीरकाकोल्या अलाभे अश्वगन्धामूलं ग्राह्यम्। मधुपर्णी अत्र यष्टीमधु चक्षुष्यत्वात्तदलाभे सामान्यं यष्टीमधु तुल्यगुणत्वात्।

त्रिफलेका रस ६४ तोले, भांगेरका रस ६४ तोले, अडूसेका रस ६४ तोले, सतावरका रस ६४ तोले, गिलोयका रस ६४ तोले, आमलोंका रस ६४ तोले और बकरीका दूध ६४ तोले लेवे। इन सबको एकत्र करके इनमें पीपल, मिश्री, दाख, हरड, बहेडा, आमला, नीले कमल, दुगुनी मुलैठी, असगंधकी जड और कटेरी इनका कल्क डालकर घीको पकावे। अच्छे प्रकारसे पक जानेपर इसको उतारकर उत्तम बासनमें भरकर रख देवे। भोजन करनेसे पहिले, भोजन करनेके पश्चात् और भोजनके मध्यमें इस घृतको पान करे तो सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर हों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाते हैं। यह त्रिफलाद्य घृत रुधिरके बढनेपर, रुधिरके दूषित होने पर, रुधिरके स्राव होनेपर, रतौंधेपर, तिमिरपर, काँच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमंथ, महादारुण पक्ष्मकोप और त्रिदोषसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण नेत्ररोगोंमें भी अत्यन्त हितकारी है॥ २३८-२४४॥

अत्र द्वितीयं त्रिफलाद्यघृतम् ।

शतमेकं हरीतक्या द्विगुणं च विभीतकम् । चतुर्गुणं त्वामलकं वृषमार्कवयोः समम् ॥ २४५ ॥ चतुर्गुणोदकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । भागं चतुर्थं संरक्ष्य क्वाथं तमवतारयेत् ॥ २४६ ॥ शर्करा मधुकं द्राक्षा मधुयष्टी निदिग्धिका । काकोली क्षीरकाकोली त्रिफलानागकेसरम् ॥ २४७ ॥ पिप्पली चन्दनं मुस्तं त्रायमाणा तथोत्पलम् । घृतप्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैः शनैः पचेत् ॥ २४८ ॥ हन्यात्सातिमिरं काचं नक्तान्ध्यं शुक्रमेव च । तथा स्रावं च कण्डूं च श्वयथुं च कषायताम् ॥ २४९ ॥ कलुषत्वं च नेत्रस्य बिन्द्वर्मपटलानि च । बहुनात्र किमुक्तेन सर्वानेत्रामयान्हरेत् ॥ २५० ॥ यस्य चोपहता दृष्टिः सूर्याग्निभ्यां प्रपश्यतः । तस्यैतद्भेषजं प्रोक्तं मुनिभिः परमं हितम् ॥ २५१ ॥ मार्जितं दर्पणं यद्वत्परां निर्मलतां व्रजेत् । तद्वदेतेन पीतेन नेत्रं निर्मलतामियात् । वारिद्रोणद्वयं चात्र वृषमार्कवयोस्तुले ॥ २५२ ॥ काकोलीयुगलालाभेऽश्वगन्धामूलं द्विगुणं ग्राह्यम् ।

हरड १०० तोले, बहेडे २०० तोले, आमले ४०० तोले, अडूसा ४०० तोले और भांगरा ४०० तोले इन सबको चौगुने जलमें डालकर कोमल अग्निसे मंद मंद पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहे तब उस क्वाथको उतार लेवे फिर उसमें सफेद चीनी, दुगुनी मुलैठी, दाख, कटेरी, दुगुनी असगंधकी जड, हरड, बहेडा, आमले, नागकेसर पीपल, लाल चंदन, नागरमोथा, त्रायमाण और लाल कमल इनका कल्क क्वाथमें डालकर उस क्वाथसे चौंसठ तोले उत्तम घीको चौंसठ तोले दूधके साथ पकावे, जब पकते पकते केवल घी ही अवशेष रह जाय तब उसको उतार लेवे तो यह त्रिफलाद्यघृत होता है। नेत्रके तिमिर, काँच, रतौंधा, फूला, स्राव, खुजली, सूजन, कषायता, गदलापन, बिंदु, अर्म्म और पटल ये सब इस घीके उपयोगसे नष्ट हो जाते हैं। बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन; इस घृतसे समस्त नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। सूर्यके सन्मुख और अग्निके सन्मुख देखनेसे जिसकी दृष्टि उपहत हो गई होय तो उसके लिये यह घृत सर्वोत्तम उपाय है ऐसा मुनियोंने कहा है। जिस प्रकार वस्त्रसे दर्पणको पूंछनेसे निर्मल हो जाता है उसी प्रकार इस घृतको पीनेसे नेत्र अत्यंत निर्मल हो जाते हैं॥२४५-२५२॥

अथ वासकादिक्वाथः ।

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचन्दनचित्रकैः । भूनिम्बनिम्बकटुकापटोलत्रिफलाम्बुदैः । ॥ २५३ ॥ निशाकलिंगकुटजैः क्वाथः सर्वाक्षिरोगहा । वैस्वर्यं पीनसं श्वासं कासं नाशयति ध्रुवम् ॥ २५४ ॥

अडूसा, सोंठ, गिलोय, दारुहलदी, लाल चंदन, चीता, चिरायता, नीम, कुटकी, कडवे परवल, हरड, बहेडा, आमले, नागरमोथा, हलदी, पीपल और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे नेत्रके समस्त रोग, सस्वरभंग पीनस, श्वास और खाँसीका अवश्य नाश होता है॥ २५३॥ २५४॥

इति नेत्ररोगाधिकारः संपूर्णः ।

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

कर्णशूलः कर्णनादो बाधिर्यं क्ष्वेड एव च । कर्णस्रावः कर्णकण्डूः कर्णगूथस्तथैव च ॥ १ ॥ प्रतिनाहो जन्तुकर्णो विद्रधिर्द्विविधस्तथा । कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधः ॥२॥ तथार्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः । एते कर्णगता रोगा अष्टात्रिंशत्तिरीरिताः ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य, क्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णगूथ, प्रतिनाह, कृमिकर्ण, क्षतसे अथवा अभिघातसे हुआ विद्रधि दो प्रकारका है, कर्णपाक, पूतिकर्ण, चार प्रकारके कर्णनाद, सात प्रकारके कर्णार्बुद और चार प्रकारके कर्णशोथ इस प्रकार अडाईस २८ कानके रोग हैं ॥ १–३ ॥

अथ कर्णशूलस्य सम्प्राप्तिर्लक्षणं च ।
समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन्समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः । करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥ ४ ॥ अन्यथा चरन् समन्ततः प्रतिलोमं चरन् । दोषैः पित्तकफरक्तैः । रक्तस्यापि रुजादिकर्तृत्वेन दोषसाम्याद्दोषत्वमत्र, यथास्वम् आत्मीयनिदानकुपितैः अथवा यथास्वमिति शूलविशेषणम् । दुराचरः दुरुपचारः ।

कानमें चारों ओर उलटा फिरनेवाला और अपने निदानोंसे कुपित हुए पित्त, कफ और रुधिर इन दोषोंसे लिपटा हुआ वायु कानमें उस उस दोषके संबंधी शूलको अत्यन्त उत्पन्न करता है उसको कर्णशूल कहते हैं, यह कर्णशूल कृच्छ्रसाध्य है । रुधिर भी पीडा आदिको उत्पन्न करनेवाला होनेसे दोषकी सदृश ही है, इस कारण इसको भी यहां दोषोंकी पंक्तिमें गिना है ॥ ४ ॥

अथ कर्णशूलस्योपद्रवास्तदसाध्यता च ।
मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासः श्वासोऽथ वमथुस्तथा । उपद्रवाः कर्णशूले भवन्त्येते मारिष्यतः ॥ ५ ॥

कर्णशूलमें जो मूर्च्छा, दाह, ज्वर, खाँसी, श्वास और वमन ये उपद्रव हुए होयँ तो ये रोगीके मरनेके चिह्नरूप हैं ॥ ५ ॥

अथ कर्णनादलक्षणम् ।
कर्णश्रोत्रास्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वनान् । भेरीमृदङ्गशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ ६ ॥ भेरीमृदङ्गशंखानामिति उपलक्षणं तेन भृङ्गादिकृतशब्दानां ग्रहणम् ।

कुपित हुई वायुको कानकी शब्दवाहिनी नाडीमें रहनेसे भेरी, मृदंग, शंख और भ्रमर इत्यादिककी सदृश विविध प्रकारके शब्द सुननेमें आते हैं उसको 'कर्णनाद' कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ बाधिर्यलक्षणम् ।
यदा शब्दवहो वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति । शुद्धः श्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ७ ॥

कफसहित अथवा केवल वायु कानकी शब्दवाहिनी नाडीको लिपटकर रहे तो इससे बधिरता (बहरापन) होता है, इसको 'बधिरता' कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ बाधिर्यासाध्यता ।
बाधिर्यं बालवृद्धोत्थं चिरोत्थं च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

बालकोंका, वृद्धोंका और अधिक कालका बहरापन असाध्य है, इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ८ ॥

अथ कर्णक्ष्वेडलक्षणम् ।
वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम् । करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ९ ॥ क्ष्वेडशब्दार्थं व्यनक्ति–वेणुघोषसमं स्वनमिति । यत उक्तम् । क्ष्वेडनं वेणुघोषवदिति । ननु कर्णनादकर्णक्ष्वेडयोः को भेदः ? उच्यते कर्णनादः केवलेन वातेन जायते तत्र नानाशब्दांश्च शृणोति । कर्णक्ष्वेडस्तु पित्तादियुक्तेन वातेन जन्यते तत्र नियमेन वेणुघोषमेव शृणोतीति भेदः ।

पित्त आदिसे संयुक्त हुई वायु कानमें बाँसुरीकी समान शब्दको उत्पन्न करे है उसको क्ष्वेड कहते हैं। शंका–कर्णनादमें और क्ष्वेडमें क्या अन्तर है ? उत्तर–कर्णनाद केवल वायुसे होता है और उसमें भेरी आदिके सदृश अनेक शब्द होते हैं और क्ष्वेड तो पित्त आदिसे संयुक्त हुई वायुसे होता है और उसमें केवल बाँसके शब्दकी समान शब्दही होता है, इतनाही अन्तर है ॥ ९ ॥

अथ कर्णस्रावलक्षणम् ।
शिरोऽभिघातादथ वा निमज्जतो जले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रपातादथ वापि विद्रधैः । स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः ॥१०॥ पूयमित्युपलक्षणम् । जलं रसं च स्रवेत श्रवणशब्दः पुलिङ्गोऽप्यस्ति ।

शिरमें चोट लगनेसे, वा पानीमें डूबनेसे अथवा विद्रधिसे वायु कुपित होकर कानसे राधको अथवा जलको, वा रसको निकाले है उसको 'कर्णस्राव' कहते हैं ॥ १० ॥

अथ कर्णकण्डूलक्षणम् ।

मारुतः कफसंयुक्तां कर्णे कण्डूं करोति हि ११

कफसे संयुक्त हुआ वायु कानमें खुजलीको उत्पन्न करता है उसको 'कर्णकण्डू' कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ कर्णगूथलक्षणम् ।

पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥ १२ ॥ कर्णे गूथयते यस्मात्स कर्णगूथो व्याधिः ।

पित्तसे तथा गरमीसे सूखा हुआ कफ कानमें मैलको उत्पन्न करे है उसको कर्णगूथ कहते हैं । (कानमें विष्ठाकी सदृश मलको करता है इस कारण इस रोगका नाम कर्णगूथ' रक्खा है 'गूथ' नाम विष्ठाका है) ॥ १२ ॥

अथ प्रतिनाहलक्षणम् ।

स कर्णगूथो द्रवतां यथा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते । तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोर्द्धभेदकृत् ॥ १३॥ घ्राणं च मुखं च घ्राणमुखं एकत्वं द्वन्द्वे । शिरसोऽर्द्धभेदकृत् । अर्द्धावभेदकाख्यशिरोरोगकृत् ।

कानका मैल पिघलकर पतला होनेसे नाकमें अथवा मुखमें आता है उसको 'प्रतिनाह' कहते हैं । प्रतिनाहसे 'अर्द्धावभेदक' (आधाशीशी) नामक मस्तक रोग होता है ॥ १३ ॥

अथ कृमिकर्णकलक्षणम् ।

यदा तु मूर्च्छन्त्यथवा तु जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथ वापि मक्षिकाः । तद्वच्चलनत्वाच्छ्रवणे निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ १४ ॥ तद्वच्चलनत्वात्कृमिलक्षणत्वात् । श्रवणे क्रिमिकर्णको गदो निरुच्यत इत्यन्वयः ।

जब कानमें जीव पड़ जाते हैं, अथवा मक्खियें कानमें अपने बच्चे रखती हैं तब कानके भीतर कीडोंके चिह्न दीखते हैं यह रोग कृमिकर्णक कहाता है ॥१४॥

अथ पतंगादिप्रविष्टकर्णलक्षणम् ।

पतंगाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि । अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ १५ ॥ कर्णो निस्तुद्यते यस्य तथा च फर्फरायते । कीटे चरति रुक्तीव्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १६ ॥ निस्पन्दः निश्चलः ।

पतंग आदि अथवा कानखजूरे आदि कानमें प्रवेश करके बेचैनीको, व्याकुलताको और अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करे है, इस रोगमें कान पीडित होता है, कानमें नोचनेकीसी पीडा होती है । जब कीडा चलता है तब अधिक पीडा होती है और स्थिर रहे तो पीडा थोडी होती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ द्विविधकर्णविद्रधिलक्षणम् ।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः । स रक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ १७ ॥ क्षतप्रभवोऽभिघातप्रभवश्च तयोर्द्वयोरप्यागन्तुजत्वादैक्यम् । असृक् रुधिरमित्यर्थः ।

कानमें विद्रधि क्षत (घाव) से अथवा अभिघात (चोट) से हुई होय अथवा दोषसे हुई होय तो कानमेंसे लाल पीला स्राव होता है और पीडा, धुएँके निकलनेकी सदृश, दाह तथा अग्निके समीपसे हुए तापकी सदृश होती है उसको कर्णविद्रधि कहते हैं । विद्रधि—क्षतसे हुई होय अथवा अभिघातसे हुई होय तो भी आगंतुकही है इस कारण उसको एक गिना है ॥ १७ ॥

अथ कर्णपाकलक्षणम् ।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् । कोथः पूतिभावः । विक्लेदः आर्द्रता ।

पित्तके प्रकोपसे कानमें दुर्गन्धता तथा गिलगिलापन होता है इसको कर्णपाक कहते हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पूतिकर्णकलक्षणम्।

कर्णविद्रधिपाकेन कर्णे वा वारिपूरणात्। पूयं स्रवति यः पूतिः स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ॥ १८ ॥ अथ कर्णस्रावाद्भेदार्थमाह पूतीति नियमेन पूतिर्यथा स्यादेवं स्रवति।

कानका विद्रधि पकनेसे, अथवा कानमें पानी भरनेसे दुर्गन्ध रूप स्रवता है उसको पूतिकर्ण कहते हैं, इस रोगमें नियमपूर्वक दुर्गन्धवाला स्रावही होता है इतना कर्णस्रावसे अन्तर है ॥ १८ ॥

अथ कर्णशोथकर्णार्बुदकर्णार्शो-लक्षणम्।

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १९ ॥ कर्णशोथाश्च चत्वारो वातपित्तकफरक्तजाः एवमर्शोऽपि चतुर्विधम्। अन्येषां शोथानामर्शसां चासम्भवः आधारप्रभावात्। अर्बुदं सप्तविधं वातपित्तकफरक्तमांसमेदःशिराजम्। एते कर्णरोगा अष्टाविंशतिः सुश्रुतोक्ताः। इदानीं चरकोक्तं कर्णरोगचतुष्टयम् वातपित्तकफसन्निपातकृतमाह।

वात, पित्त, कफ और रुधिर इस रीतिसे चार प्रकारकी सूजन होती है, इसके लक्षण सूजनके अधिकारमें कहे प्रमाण समझना। वात, पित्त, कफ और रुधिरसे हुई अर्श इस भाँति कानका अर्श चार प्रकारका होता है, उनके लक्षण अर्शाधिकारमें कहे अनुसार समझना। कानमें इन चार प्रकारहीका अर्श तथा शोथ होता है और किसी प्रकारका नहीं होता यह स्थानकाही प्रभाव है। वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, मेद और शिरासे उत्पन्न हुआ अर्बुद इस प्रकार कानका सात प्रकारका अर्बुद होता है, इनके लक्षण अर्बुदके अधिकारमें कहे अनुसार जानने। सुश्रुतमें कहे कानके अठाईस रोगोंके लक्षण कह चुके हैं। चरकमें कानके चार रोग वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुए, इस प्रकार कानके चार हैं ॥१९॥

अथ वातजकर्णरोगलक्षणम्।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोथः स्रावस्तनुश्चास्रवणं च वातात् ॥ २० ॥

कानमें नाद और अत्यन्त पीडा होती होय, सूजन होय, पतला स्राव होय और श्रवण करनेकी शक्ति न होय तो वायुसे हुए कानके रोग जानना ॥ २० ॥

अथ पित्तजकर्णरोगलक्षणम्।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपूतिपीतस्रवणं च पित्तात् ॥ २१ ॥

लाल रंगकी सूजन होय, कान फटता होय, दाह होता होय और दुर्गन्धयुक्त पीला स्राव होय तौ पित्तसे हुए कानके रोग जानना ॥ २१ ॥

अथ कफजकर्णरोगलक्षणम्।

वैश्रुत्यकंडूस्थिरशोथशुक्लस्निग्धा स्रुतिः स्वल्परुजः कफाच्च ॥ २२ ॥ वैश्रुत्यमन्यथा श्रवणम्।

विपरीत सुनना, खुजलीका होना, सूजन स्थिर रहना, सफेद तथा स्निग्ध स्राव होना और थोडी पीडाका होना ये कफसे हुए कानके रोगके लक्षण जानने ॥ २२ ॥

अथ सन्निपातजकर्णरोगलक्षणम्।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ २३ ॥

ऊपर कहे सब दोषोंके लक्षण दीखते होंय और उसमें जो अधिक होय उसके वर्णवाला स्राव होता होय तौ सन्निपातसे हुए कानके रोग जानना। कर्णपाली भी कानकाही अवयव होनेसे उसके विकारोंको भी इसी अधिकारमें योग्य जानकर लिखते हैं ॥२३॥

अथ परिपोटकनिदानलक्षणम्।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसैवातिवर्द्धिते। कर्णे शोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान्। कृष्णारुणनिभस्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥ २४ ॥ परिपोटवान्मनाक् विदारुणवान्।

अधिक समयतक कानमें कोई भारी वस्तु डालकर ऐसेही छोड देवे तौ सुकुमारता (कोमलता) के कारण उसमें सहसा अत्यन्त सूजन आ जाय, पीडा होय, किंचित् फटासा हो जाय, कालापन मिला हुआ लाल और जकडा हुआसा जो सूजन होय उसको परिपोटक कहते हैं। यह रोग वायुसे होता है ॥२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथोत्पातलक्षणम् ।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्धर्षणादपि । शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः । रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदः स्मृतः ॥ २५ ॥

भारी गहना पहरनेसे, चोट लगनेसे, अथवा घिसनेसे कानकी लौरमें कलौंससहित लाल, दाहवाली, पाकयुक्त और पीडायुक्त जो सूजन होती है उसको 'उत्पात' कहते हैं, यह रोग रुधिर और पित्त इन दोनोंके प्रकोपसे होता है ॥ २५ ॥

अथोन्मन्थकलक्षणम् ।

कर्णं बलाद्बर्द्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति । कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम् । उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ २६ ॥ अवेदनमीषद्वेदनम् ।

कानको बलात्कारसे बढानेपर पालीमें वायुका कोप होता है और वह वायु कफकी सहायताके कारण स्तब्धतायुक्त, अल्प वेदनावाली और खुजलीसहित सूजनको उत्पन्न करे है, इसको 'उन्मंथक' रोग कहते हैं । यह रोग कफ और वायु इन दोनोंके प्रकोपसे होता है ॥ २६ ॥

अथ दुःखवर्द्धनलक्षणम् ।

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः । शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥ २७ ॥ संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कर्ण इति शेषः ।

अयोग्य प्रकारसे छिदा हुआ कान बढानेसे खुजलीसहित, दाह और पीडावाली सूजन होती है तथा पाक भी होता है, इस रोगको 'दुःखवर्द्धन' कहते हैं । यह रोग तीनों दोषोंसे होता है ॥ २७ ॥

अथ परिलेहिलक्षणम् ।

कफासृक्कृमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसारिणः । कुर्वन्ति पिडिकां पाल्यां कण्डूदाहसमन्विताम् ॥ २८ ॥ कफासृक्कृमिसम्भूतः स विसर्पन्नितस्ततः । लिह्यात्स शष्कुलीं पालीं परिलेही च स स्मृतः ॥ २९ ॥ स पिडिकात्मकः परिलेहिसंज्ञो गदःलिह्यान्निर्मांसी कुर्यात् ।

कफ, रुधिर और कृमि कुपित होकर फैलती हुई खुजलीवाली और दाहयुक्त सरसोंकी समान फुंडियोंको उत्पन्न करें है, यह रोग चारों ओरको फैलता फैलता कानके छेदको तथा पाली (कानकी लौर) को मांसरहित कर डालता है । कफ, रुधिर और कृमि इनके प्रकोपसे हुआ यह रोग 'परिलेही' कहाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ कर्णरोगचिकित्सा ।

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । चतुर्ष्वपि च रोगेषु सामान्यं भेषजं स्मृतम् ॥ ३० ॥ शृंगवेरं सहमधु सैन्धवं तैलमेव च । कदुष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ ३१ ॥ लशुनार्द्रकशिग्रूणां वारुण्या मूलकस्य च । कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ ३२ ॥ वारुणी वरुणः । अर्काकुरानम्लपिष्टान्सतैललवणान्वितान् । संनिदध्यात्सुधाकाण्डे कारिते मृत्स्नयावृते ॥ ३३ ॥ पुटपाकक्रमात्स्विन्नं पीडयेदारसागमात् । सुखोष्णं तद्रसं कर्णे प्रक्षिपेच्छूलशान्तये ॥ ३४ ॥ अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखियोगतप्तम् । आपीडय तस्याम्बु सुखोष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरते हि शूलम् ॥ ३५ ॥ तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि । छागमूत्रं प्रशंसन्ति कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ३६ ॥ तैलं श्वेतार्कमूलेन मन्देऽग्नौ विधिना कृतम् । हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ ३७ ॥ हिंगुसैन्धवशुण्ठीभिस्तैलं सर्षपसम्भवम् । विपक्वं हरतेऽवश्यं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ ३८ ॥ कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । पूरणं कटुतैलेन हितं वातघ्नमौषधम् ॥ ३९ ॥ शिखरिक्षारजं वारि तत्कृतकल्केन साधितं तैलम् । अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ ४० ॥ शिखरी अपामार्गः ।

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और क्ष्वेड इन चारों रोगोंपर एकसी ही औषधि करनी कही है । सोंठ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहत और सेंधा इनका कल्क डालकर तेलको पकावे, यह तेल सहता हुआ गरम कानमें डाले तो इससे कानकी पीडा नष्ट होती है। लहसुन, अदरक, सहँजना, बरना, मूली और केला इनका योग्य रीतिसे स्वरस करके सहता हुआ गरम कानमें डाले तो इससे कानकी पीडा नष्ट हो जाती है। आकके अंकुरोंको अम्लरसमें पीसकर उसमें तेल तथा सेंधानिमक मिलावे, पश्चात् थूहरकी मोटी लकडीमें छेद करके भीतर इसको भरे, फिर कपरौटीकर पुटपाककी विधि अनुसार उसको पकावे, जबतक रस निकले तबतक निचोड लेवे, यह रस जितना गरम कान सह सके उतना गरम कानमें डाले तो इससे शूलकी शांति होती है। पकनेसे पीले हुए आकके पत्तोंको घी चुपडकर आगपर सेंके, फिर उसके रसको निचोड लेवे। यह सब सहता सहता कानमें डाले तो कानका शूल नष्ट होता है। कानमें तीव्रशूल होता हो, शब्द करता हो और स्राव होता हो तो बकरेके मूत्रमें सेंधानिमक डालकर गरम करके किंचित् गरम गरम वह मूत्र कानमें डाले तो उससे कानकी पीडा नष्ट हो जाती है। सफेद आककी जडके कल्कसे मंद मंद अग्निमें पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो कानका शूल त्रिदोषसे हुआ होय तो भी तत्काल नष्ट हो जाता है। हींग, सेंधानिमक और सोंठ इनके कल्कसे पकाया हुआ सरसोंका तेल कानमें डाले तो उससे कानका शूल अवश्य नष्ट हो जाता है। कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और क्ष्वेड इन चारों रोगोंमें सरसोंका तल डाले और वायुनाशक औषधि करे यह परम हितकारी होता है। चिरचिटेकी भस्मके पानीमें चिरचिटेका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो इससे बहरापन और कर्णनाद नष्ट होता है ॥ ३०–४० ॥

अथ बिल्वतैलम् ।

गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । सजलं च सदुग्धं च तद्बाधिर्यहरं परम् ॥ ४१ ॥ क्षीरं गवामेव ग्राह्यम् ।

बेलके फलोंको गायके मूत्रमें पीसकर मिलाया हुआ पानी तथा दूधमें पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो बहरापन अवश्य नष्ट हो जाता है, यह तेल "बिल्वतैल" इस नामसे कहाता है ॥ ४१ ॥

कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके । सामान्यं कर्म कुर्वीत योगान्वैशेषिकानपि । ॥ ४२ ॥ स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् । कर्णस्रावरुजो दाहास्ते नश्यन्ति न संशयः ॥ ४३ ॥ आम्रजम्बूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च । एभिस्तु साधितं तैलं पूतिकर्णगदं हरेत् ॥ ४४ ॥ जातीपत्ररसैस्तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् । पिष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् । प्रशस्यते चिरोत्थे तत्स्रावके पूतिकर्णके ॥ ४५ ॥

कर्णस्राव, पूतिकर्ण और कृमिकर्ण इन रोगोंमें ऊपर कही सामान्य क्रियायें भी करनी और नीचे लिखी विशेष क्रियायें भी करनी चाहिये। सज्जीखारके चूर्णसे संयुक्त बिजौरे नींबूका रस कानमें डाले तो उससे कानका स्राव, पीडा और दाह नष्ट हो जाता है इसमें कुछभी संदेह नहीं है। आमके, जामुनके, महुएके और बडके छोटे छोटे पत्तोंका कल्क करके इससे पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो पूतिकर्ण नामक रोग नष्ट होता है। चमेलीके पत्तोंके स्वरससे पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो उससे पूतिकर्ण नष्ट होता है। स्त्रीके दूधसे रसौतको पीसकर सहतमें मिलावे, फिर उसको कानमें डाले तो अधिक दिनोंसे बहता हुआ कान और पूतिकर्ण नष्ट होता है॥४२–४५॥

अथ कुष्ठतैलम् ।

कुष्ठहिंगुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः । पूतिकर्णापहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ४६ ॥

कूठ, हींग, वच, देवदारु, सोया, सोंठ और सेंधानोन इनका कल्क डालकर बकरेके मूत्रमें पकाया हुआ तेल कानमें डाले तो इससे पूतिकर्ण नष्ट होता है, यह कुष्ठादि तैल कहाता है ॥ ४६ ॥

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् । तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति । ॥ ४७ ॥ चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन मुष्ट्यंशकेन कटुतैलपलाष्टकं तु । धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं नाडीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ ४८ ॥ मुष्टिः पलम् । कर्ण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रिमिविनाशाय कृमिघ्नीं कारयेत्क्रियाम् । वार्ताकधूमश्च हितः सार्षपः स्नेह एव च । ॥ ४९ ॥ पूरणं हरितालेन गव्यमूत्रयुतेन च । धूपेन कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५० ॥ चिकित्सा कर्णशोथानां तथा कर्णार्शसामपि । कर्णार्बुदानां कुर्वीत शोथार्शोऽर्बुदवद्भिषक् ॥ ५१ ॥

सीपके जीवोंके मांसका कल्क डालकर पकाया हुआ सरसोंका तेल कानमें डाले तो तत्काल कानका बहना शांत होता है । गन्धक, मैनशिल और हलदी इनके चार तोले चूर्णका कल्क डालकर बत्तीस तोले धतूरोंके पत्तोंके स्वरसमें बत्तीस तोले सरसोंका तेल पकावे, यह तेल कानमें डाले तो अधिक दिनोंका कानका बहना नष्ट होता है । कृमिकर्ण नामक रोगका नाश करनेके लिये क्रिमियोंको नष्ट करनेवाली क्रिया करे । बैंगनका धुआँ, सरसोंका तेल और गायके मूत्रमें पिसी हुई हरतालका रस ये कृमिकर्ण रोगमें हितकारी होते हैं । कानकी दुर्गन्धमें धूप देनेके लिये गूगल श्रेष्ठ गिना जाता है । वैद्य कानकी सूजनकी चिकित्सा सूजनके अधिकारमें कहे अनुसार करे, कानके अर्शोंकी चिकित्सा अर्शोंके अधिकारमें कहे अनुसार करे और कानके अर्बुदोंकी चिकित्सा अर्बुदोंके अधिकारमें कहे अनुसार करे ॥ ४७–५१ ॥

अथ कर्णपालीरोगचिकित्सा ।

पालीसंशोषणे कुर्याद्वातकर्णरुजः क्रियाः । स्वेदयेद्यत्नतस्तां च स्विन्नां संवर्धयेत्तिलैः ॥ ५२ ॥ शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः । तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीं संवर्द्धयेत्सुखम् ॥ ५३ ॥ पयस्यात्र क्षीरकाकोली । जीवनीयस्य कल्केन तैलं दुग्धेन पाचयेत् । चिकित्सेत्तेन तैलेन हतास्रं परिपोटकम् ॥ ५४ ॥ शीतलैर्पेजलौकोभिरुत्पातं समुपाचरेत् । हलिनीसुरसाभ्यां च गोधाकंकवसान्वितम् ॥ ५५ ॥ तैलं च पक्वमभ्यङ्गादुन्मन्थं नाशयेद्ध्रुवम् । दुःखवर्द्धनकं सिक्त्वा जम्ब्वाम्रबिल्वपत्रजैः ॥ ५६ ॥ क्वाथैस्तैलेन सुस्निग्धं तद्भूर्णैश्चावधूलयेत् । बहुशो गोमयैस्तप्तैः स्वेदितं परिलेहितम् । घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्कितैः ॥ ५७ ॥

कानकी पाली सूखी जाती होय तो वातजरोगोंकी जो चिकित्सा कही है सो करे, यत्नपूर्वक पालीको सेंके और सेंक करनेके पश्चात् तिलका कल्क लगाकर उसको बढावे । सतावर, असगंध, क्षीरकाकोली और अंडी इनके कल्कसे दूधमें पकाया हुआ तेल लगावे तो कानकी पाली सहजमें बढ जाती है, इसको शतावरी तेल कहते हैं । परिपोटक रोग होय तो प्रथम उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पीछे दूधमें जीवनीय गणका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल लगावे । उपद्रव हुए होयँ तो शीतल लेपोंसे और जोंक लगाकर उनकी चिकित्सा करे । कलियारीका कल्क, शतावरका कल्क, गोहकी चरबी और कंकपक्षीकी चरबी इनको डालकर पकाया हुआ तेल चुपडे तो उन्मन्थ अवश्य नष्ट हो जाता है । दुःखवर्द्धनक रोग हुआ होय तो जामुनके आमके और बेलके पत्तोंके क्वाथसे उसको सींचकर तेलसे भली भाँति चिकना करे और उसके ऊपर जामुन आदिके पत्तोंका चूर्णही बुरका देवे । परिलेही रोग हुआ होय तो गरम किये हुए गोबरका बारंबार सेक करे, फिर बकरीके मूत्रमें पीसे हुए कपूरका लेप करे ॥ ५२–५७ ॥

इति कर्णरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ नासारोगाधिकारः ।

तत्र नासारोगाणां नामानि संख्या च । आदौ च पीनसः प्रोक्तः पूतिनस्यस्ततः परम् । नासापाकोऽत्र गणितः पूयशोणितमेव च ॥ १ ॥ क्षवथुर्भ्रंशथुर्दीप्तिः प्रतीनाहः परिस्रवः । नासाशोषः प्रतिश्यायाः पञ्चसप्तार्बुदानि च ॥ २ ॥ चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोथाश्चत्वारि तानि च । रक्तपित्तानि नासायां चतुस्त्रिंशद्गदाः स्मृताः ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीनस, पूतिनस्य, नासापाक, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्त, प्रतीनाह, प्रतिस्राव, नासाशोष, पाँच प्रकारके प्रतिश्याय, सात प्रकारके अर्बुद, चार प्रकारके अर्श, चार प्रकारकी सूजन और चार प्रकारके रक्तपित्त इस प्रकार नाकके रोग चौतीस हैं ॥१--३॥

अथ पीनसलक्षणम् ।

आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमायाति तु धूप्यते च । न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येदिह पीनसेन ॥ ४॥ तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगम् ॥ ५ ॥ आनह्यते श्वासशोषितकफेन बध्यते । अवरुध्यत इति यावत् । प्रक्लेदमार्द्रतां गच्छतीति यावत् । धूप्यते सन्ताप्यते । गन्धरसान्गन्धान्सुरभीनसुरभींश्च न वेत्ति नासाया आनद्धत्वं तत्र हेतुः तथा रसान्मधुरादींश्च न वेत्ति नासारोगारम्भकदोषेण रसनाया अपि दुष्टिः । व्यवस्येज्जानीयात् । अपीनसपीनसौ द्वावपि शब्दौ स्तः अवाप्योस्तं सनद्धादित्वादिवेति सूत्रेण विकल्पेनाकारलोपात् । तं विकारं पीनसं प्रतिश्यायसमानलिंगं वातश्लैष्मिकप्रतिश्यायतुल्यलक्षणम् ।

श्वाससे सूखे हुए कफसे नाक रुक जाय, रुककर फिर गिली हो जाय, गरम हो जाय, तथा नाक बंद हो जानेके कारण सुगंधि अथवा दुर्गन्धिको नहीं जान सके, तैसेही नाकके रोगोंको उत्पन्न करनेवाले दोषोंसे जीभ भी दूषित होकर मधुर आदि रसोंको नहीं जान सके उसको पीनस रोग कहते हैं । व्याकरणकी मर्यादाके अनुसार पीनस और अपीनस यह दोनों एक रोगकेही नाम हैं । वायु तथा कफसे उत्पन्न हुए पीनस रोगके अन्य लक्षण वात तथा कफसे उत्पन्न हुए प्रतिश्याय नामक रोगकी सदृशही होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ पूतिनस्यलक्षणम् ।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले सन्दूषितो यस्य समीरणस्तु । निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ६ ॥ दोषैः पित्तकफरक्तैः । अत्र रक्तस्यापि दोषत्वं दोषसाहचर्यात् । विदग्धैर्दुष्टैः संदूषितः पूतिभावं नीतः । पूतिनस्यं नासायां भवः नस्यः वायुः पूतिर्नस्यो यत्र स पूतिनस्यः तम् ।

गले तथा तालूकी जडमें दूषित पित्त, कफ और रुधिर इन दोषों करके दूषित हुई दुर्गन्धित वायु मुखमेंसे और नाकमेंसे निकलती है, उस रोगको पूतिनस्य कहते हैं । दोषोंके साथ रहनेसे रुधिरको भी दोष शब्द दिया है । पूति अर्थात् दुर्गन्धित और नस्य अर्थात् नाककी वायु इसही अर्थसे इस रोगका नाम " पूतिनस्य " रक्खा है ॥ ६ ॥

अथ नासापाकलक्षणम् ।

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः । तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथवापि यत्र ॥ ७ ॥ विक्लेद आर्द्रता । कोथः पूतिभावः ।

नाकमें रहनेवाला पित्त व्रणोंको उत्पन्न करे, नाक अत्यंत पके, गीली रहे और दुर्गन्धित भी रहे, उस रोगको नासापाक कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ पूयशोणितलक्षणम् ।

दोषैर्विदग्धैरथवापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः । नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ८ ॥

दोषोंके बिगडनेसे अथवा ललाटमें उन उन पदार्थोंकी चोट लगनेसे रुधिर मिली राध नाकसे गिरती है उस रोगको पूयशोणित कहते हैं॥ ८ ॥

अथ क्षवथुलक्षणम् ।

घ्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति । कफानुजातो बहुशोतिशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं गदज्ञाः ॥ ९ ॥ घ्राणाश्रिते मर्मणि शृंगाटके ।

नाककी तरुण हड्डी अथवा शृंगाटक नामक मर्मस्थानमें दूषित हुई कफसहित वायु अधिक छींकोंके शब्दोंको नाकसे निकालती है, इस रोगको वैद्य लोग दोषजन्य क्षवथु कहते हैं ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथागन्तुजक्षवथुलक्षणम् ।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटून-र्कनिरीक्षणाद्वा । सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थि-मर्मण्युद्घर्षितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ॥ १० ॥

तीक्ष्णोपयोगाद्राजिकादिभक्षणात् । अर्क निरीक्षणात्सूर्यदर्शनात् तेन कफविलयनात्। तरुणास्थिमर्मणि नासाव्रणास्थिमर्मणि । तरुणास्थि च मर्मणि शृंगाटके द्वन्द्वैकत्वं वा । अन्यः आगन्तुजः ॥

राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंके उपयोग करनेसे अथवा तीक्ष्ण पदार्थोंकी सुगन्धिसे अथवा सूर्यके सामने देखनेसे कफ पिघलनेपर अथवा डोरे आदिसे नाकके तरुणास्थि नामक मर्म स्थलके घिसनेसे जो छींकें आती हैं उनको वैद्य आगंतुज क्षवथु कहते हैं ॥ १० ॥

अथ भ्रंशथुलक्षणम् ।

प्रभ्रश्यते नासिकया तु यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु । प्राक्सञ्चितो मूर्द्धनि पित्ततप्ते तं भ्रंशथुं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

मस्तकमें पहिलेसेही संचित हुआ, दूषित हुआ, गाढा और खारीपनसहित कफ माथा गरम होनेपर नाकसे निकलता है उस रोगको वैद्य लोग भ्रंशथु कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ दीप्तिलक्षणम् ।

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः । नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तो-र्व्याधिं तु तं दीप्तिमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

प्रदीप्तेव प्रज्वलितेव ।

नाकमें अत्यन्त दाह होय, धुएँकी समान वायु निकले और अग्निसे जलनेकी समान पीडा मालूम होय उस रोगको वैद्य लोग दीप्ति कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ प्रतीनाहलक्षणम् ।

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥ १३ ॥

वायुसहित कफ श्वास लेनेके मार्गको रोक देता है उस रोगको प्रतीनाह कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ स्रावलक्षणम् ।

घ्राणाद्घनः पीतासितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ १४ ॥

नाकमेंसे पीले वर्णवाला, सफेद वर्णवाला, गाढा अथवा पतला दोष स्रवता है उस रोगको स्राव कहते हैं ॥ १४ ॥

अथ नासाशोषलक्षणम् ।

घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च । कृच्छ्राच्छ्वसित्यूर्द्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ १५ ॥

नाकमें रहनेवाला कफ वायुसे और पित्तसे अत्यंत सूख जानेपर थोडा २ ऊंचा नीचा श्वास लेता है वह रोग नासपरिशोष कहाता है ॥ १५ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य सामान्य निरूपणम् ।

न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् । अन्यदापि हि कुप्यन्ति हेतुबाहुल्यप्रेरणात् ॥ १६ ॥ हेतुबाहुल्यप्रेरणाद्धेतूनां बाहुल्येन त्वराकरणात् । द्विविधं प्रतिश्यायनिदानम् एकं सद्योजनकं तच्च बलवत्त्वेन चयं नापेक्षत एव । अपरं च चयादिक्रमेण जनकं चयादिक्रमोत्पन्नश्च दोषो गरीयान् सकलशरीरसंभावनया बद्धमूलत्वात् । चयादिक्रमो यथा—निदानात्सञ्चयः, सञ्चयात्प्रकोपः, प्रकोपात्प्रसरः, प्रसरात्स्थानसंश्रयः, ततो व्यक्तिः, ततो भेद इति ।

प्रतिश्यायके एक सद्योजनक (तत्काल उत्पन्न करनेवाला) और दूसरा चयादि क्रमजनक (संचय आदिके क्रम करके उत्पन्न करनेवाला) ऐसे दो प्रकारके निदान हैं । उनमें सद्योजनक निदान प्रबल होनेसे क्रमकी अपेक्षा नहीं करता, कहा है कि "प्राणियोंके वायु आदि दोष केवल संचय पाकर ही कुपित होते हैं ऐसाही नहीं किंतु जिन दोषोंके हेतुसे एकत्र हो जायँ तो उन हेतुओंके जोरसे समय प्राप्त हुए विनाभी कुपित होते हैं ।" प्रतिश्यायका जो दूसरा चयादि क्रमजनक निदान है उसमें यह क्रम है कि, निदानसे दोषोंका संचय होता है, संचयसे प्रकोप होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, प्रकोपसे प्रसर (फैलाव) होता है, प्रसरसे स्थानसंश्रय (रोगोंके उन २ ठिकानोंमें आना) होता है, स्थानसंश्रयसे व्यक्ति (रोगोंका दीखना) होता है और व्यक्ति होनेके पश्चात् भेद होता है ॥ १६ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य सद्योजनकनिदानपूर्विकासम्प्राप्तिः।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः। संजागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायकैर्मैथुनवाष्पसेकैः ॥ १७ ॥ संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ १८ ॥ संधारणं मूत्रपुरीषधारणम्। रजो धूलिः तच्च नासाप्रविष्टं हेतुः। ऋतुवैषम्यम् ऋतुचर्याविपरीताचरणम्। शिरोऽभितापः शिरसोऽभितापो येन धूपादिना सः। अवश्यायस्तुषारः वाष्पसेको रोदनम्। संस्त्यानदोषे शिरसि संहतकफे।

मूत्र तथा विष्ठाके वेगोंको रोकनेसे, अजीर्णसे, नाकमें रजका प्रवेश होनेसे, अत्यन्त बोलनेसे, अति, क्रोधसे, ऋतुचर्यामें कहे नियमोंका उल्लंघन करके विपरीत आचरण करनेसे, धुएँ आदिसे, मस्तक सन्तापित होनेसे, जागरण करनेसे, अत्यन्त निद्रा लेनेसे, अत्यन्त जलके सेवन करनेसे, शीतोपचारके अत्यन्त सेवनसे, तुषारके सेवन करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और अत्यन्त रोनेसे मस्तकमें एक साथ कफ जम जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु प्रतिश्यायको उत्पन्न करे है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य चयादिक्रमजनकनिदानपूर्विकासम्प्राप्तिः।

चयं गता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक्समस्ताश्च तथैव शोणितम्। प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपणैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति ॥ १९ ॥

वात, पित्त, कफ वा तीनों दोष अथवा रुधिर मस्तकमें संचय होकर वे जब अपने २ कुपित करनेवाले कारणोंसे कुपित होते हैं तब प्रतिश्यायको उत्पन्न करे हैं ॥ १९ ॥

अथ प्रतिश्यायपूर्वरूपम्।

क्षयप्रवृत्तिः शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता। उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः। ॥ २० ॥ शिरसोऽभिपूर्णता शिरसो भारेणेव व्याप्तिः। अपरे पृथग्विधाः घ्राणधूमायनतालुविदरणनासामुखस्रावादयो विदेहोक्ता बोद्धव्याः।

छींकोंका अत्यन्त आना, माथेमें बोझका मालूम होना, अंगोंका जकडना, अंगोंका टूटना, रोमोंका खडा होना और भी अन्य अनेक प्रकारके उपद्रव जब प्रतिश्याय होनेको होय तो पहिलेसे ही होते हैं। नाकमेंसे धुएँकी सदृश वायु निकले, तालू फट जाय और नाकमेंसे तथा मुखमेंसे स्राव होय इत्यादिक अन्य उपद्रव कि जो विदेहने कहे हैं वे यहां जानना ॥ २० ॥

अथ वातजप्रतिश्यायलक्षणम्।

आनद्धापिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी। गलतालोष्ठशोषश्च निस्तोदः शंखयोस्तथा। भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके। ॥ २१ ॥ आनद्धा स्तब्धा। अपिहिता न पिहिता। अत एव तनुस्रावप्रसेकिनी।

नाक रुक जाय तथा सजड हो जाय, नाकसे पतला स्राव होय, गला तालु तथा होंठ सूख जायँ और कनपटीमें पीडा होय तथा स्वर नष्ट हो जाय तो जानना कि वायुसे हुआ प्रतिश्याय है ॥ २१ ॥

अथ पित्तजप्रतिश्यायलक्षणम्।

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके। कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः। नासया तु सधूमाग्निं वमतीव स मानवः ॥ २२ ॥ सपीतकः ईषत्पीतकः।

नाकमेंसे गरम तथा किंचित् पीला स्राव होय, शरीर दुबला, अत्यन्त पांडुवर्णवाला तथा संतप्त हो जाय, तृषा बहुत लगे और नाकमेंसे जैसे धुएँवाली अग्नि निकलती होय ऐसा मालूम होय तो जानना पित्तसे हुआ प्रतिश्याय है ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कफजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

घ्राणात्कफकृते श्वेतः कफः शीतः स्रवेद्बहुः । शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः । गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरतिपीडितः २३

नाकमेंसे सफेद, शीतल तथा अधिक कफ निकले, शरीरका सफेद वर्ण हो जाय, नेत्र सुन्न हो जायँ, मस्तक भारी हो जाय और गलेमें, तालुमें, होठमें तथा माथेमें खुजलीकी अत्यंत पीडा होय तो जानना कि कफसे हुआ प्रतिश्याय है ॥ २३ ॥

अथ त्रिदोषजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याऽकस्मान्निवर्तते । सम्पक्वो वाप्यपक्वो वा स च सर्वभवः स्मृतः ॥ २४ ॥ अत्र यद्यपि दोषत्रयलिङ्गानि न उक्तानि तथापि तानि ज्ञेयानि त्रिदोषजत्वादयमसाध्यः । अत एवाह-नृणां दुष्टः प्रतिश्यायः सर्वजश्च न सिद्ध्यति ॥ २५ ॥

जो प्रतिश्याय उत्पन्न हो होकर पकनेके पश्चात् अथवा विना पकेही अकस्मात् बन्द हो जाय उस प्रतिश्यायको तीनों दोषके कोपसे हुआ जानना । इन लक्षणोंमें " तीनों दोषोंके चिह्न होते हैं " ऐसा कहा नहीं है तोभी वे चिह्न होते हैं ऐसा जानना यह प्रतिश्याय त्रिदोषजनित होनेसे असाध्य कहा है कि " मनुष्योंको दुष्ट प्रतिश्याय हुआ होय और त्रिदोषके कोप होनेसे होय तो वह असाध्य है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ दुष्टप्रतिश्यायलक्षणम् ।

प्रक्लिद्यते मुहुर्नासा पुनश्च परिशुष्यति । पुनरानह्यते वापि पुनर्विव्रियते तथा ॥२६॥ निःश्वासो वापि दुर्गन्धो नरो गन्धान्न वेत्ति च । एवं दुष्टं प्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २७ ॥ आनह्यते विबद्धा भवति । विव्रियते अविबद्धा स्यात् । क्लेदशोषविबन्धाविवृतत्वानि नैककालं भवन्ति किन्तु यदा यदा यद्यद्दोषाधिक्यं भवति तदा तदा तद्यद्दोषकृतः स स बोद्धव्य इति न विरोधः । कृच्छ्रसाधनमसाध्यं च ।

नाक वारंवार भीग जाय, वारंवार बंध जाय वारंवार खुल जाय, श्वास दुर्गन्धित निकले और दुर्गन्ध सुगंधका ज्ञान नहीं रहे तो जानना कि दुष्ट प्रतिश्याय हुआ है, यह प्रतिश्याय कष्टसाध्य होता है और असाध्य भी होता है । नाकका गीला होना, सूखना और रुक जाना, यह एक समयमेंही होय ऐसा नहीं जानना परन्तु जब जब जिस जिस दोषकी अधिकता होय तब तब उस उस दोषके अनुसार ये होते हैं ऐसा जानना अर्थात् किसी प्रकारका विरोध नहीं आता ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ रक्तजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते । पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापि समन्वितः ॥ २८ ॥ ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः । दुर्गन्धोच्छ्वासवक्त्रश्च गन्धानपि न वेत्ति सः ॥ २९ ॥ उरोघातप्रपीडितः उरोघातेनेव प्रपीडितः ।

जो प्रतिश्याय रुधिरसे हुआ होय तो रुधिरका स्राव होता है, पित्तसे हुए प्रतिश्यायके चिह्नभी दीखते हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, जैसे हृदयमें चोट लगी होय ऐसी पीडा होती है, मुखसे दुर्गन्धित श्वास निकलता और दुर्गन्ध सुगन्धका ज्ञानभी नहीं रहता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ चिकित्सामंतरा सर्वप्रतिश्यायाः कालान्तरेणासाध्या भवन्तीत्याह ।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः । दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ ३० ॥

चिकित्सासे रहित रहनेवाले मनुष्योंके सब प्रतिश्याय कालान्तरमें दुष्टताको प्राप्त हो जाते हैं और जब दुष्ट होयँ तब असाध्य होते हैं ॥ ३० ॥

अथ प्रतिश्यायदुष्टौ कृम्युत्पत्तिस्तल्लक्षणं च ।

मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाणवः । कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनात्र लक्षणम् ॥ ३१ ॥ अत्र एषु प्रतिश्यायेषु कफजा एव कृमयो भवन्तीति श्वेता स्निग्धाश्च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिश्यायोंमें कफसे सफेद और स्निग्ध वारीक वारीक कीडे होते हैं इस कारण उन प्रतिश्यायोंके लक्षण कफजनित शिरोरोगकी सदृश होते हैं ॥३१॥

अथ वृद्धप्रतिश्यायान्यरोगोत्पत्तिः ।

बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान् । शोषाग्निमान्द्यकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥३२॥ घोरांश्च नयनामयान् इति वचनेऽपि आन्ध्यग्रहणं पुनर्विशेषार्थं । अघ्रत्वं न जिघ्रतीत्यघ्रस्तस्य भावोऽघ्रत्वम् ।

प्रतिश्याय अधिक वृद्धिको प्राप्त हो जाय तो बधिरता, अंधापन, गंधाग्रहण करनेकी अशक्ति, नेत्रोंके भयंकर रोग, शोष, अग्निकी मंदता और खाँसी ये विकार उत्पन्न होते हैं । 'नेत्रोंके भयंकर रोग' ऐसा कहनेसे अंधताका समावेश होता है तो भी अंधता पृथक् कही उसका कारण यह है कि प्रतिश्यायोंसे अंधता विशेष होती है ऐसा बतलाना है ॥३२॥

अथ नासागतान्यचतुस्त्रिंशद्रोगाः ।

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् । चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ ३३ ॥ अर्बुदानि सप्त वातपित्तश्लेष्मसन्निपातरक्तमांसमेदोजानि । शोथाश्चत्वारो वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजः । अर्शांसि चत्वारि वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजानि । रक्तपित्तानि चत्वारि वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजानि । एतानि यथोक्तलिङ्गानि घ्राणेऽपि भवन्ति ।

वातार्बुद, पित्तार्बुद, कफार्बुद, सन्निपातार्बुद, रक्तार्बुद, मांसार्बुद और मेदार्बुद इस प्रकार नाकमें अर्बुदरोग सात प्रकारके होते हैं। वातशोथ, पित्तशोथ, कफशोथ और सन्निपातशोथ इस रीतिसे नाकमें सूजन चार प्रकारकी होती है । वातार्श, पित्तार्श, कफार्श और सन्निपातार्श इस रीतिसे नाकमें अर्श चार प्रकारकी होती है । वातसंबंधी रक्तपित्त, पित्तसंबंधी रक्तपित्त कफसंबंधी रक्तपित्त और सन्निपात, संबंधी रक्तपित्त इस रीतिसे नाकमें रक्तपित्त चार प्रकारका होता है । अर्बुदोंके लक्षण आगे कहे हुए अर्बुदके अधिकारमेंसे, सूजनके लक्षण आगे कहे सूजनके अधिकारमेंसे, अर्शोंके लक्षण आगे कहे अर्शोंके अधिकारमेंसे और रक्तपित्तके लक्षण आगे कहे रक्तपित्तके अधिकारमेंसे जान लेना ॥ ३३ ॥

अथामपीनसलक्षणम् ।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुस्वरः।क्षमाः ष्ठीवति चाभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥३४॥ नासास्रावः तनुस्वरः क्षाम इत्यन्वयः ।

माथेमें भारीपन होय, अरुचि होय, नाकमेंसे पतला स्राव होता होय, स्वर बिगड गया होय और वारंवार थूक गिरता होय तो जानना कि पीनस कच्चा है ॥ ३४ ॥

अथ पक्वपीनसलक्षणम् ।

आमलिंगान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति । स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्वपीनसलक्षणम् ॥ ३५ ॥ आमलिंगान्वितः श्लेष्मा आमलिंगैः शिरोगुरुत्वादिभिर्युक्तः पश्चाद् घनः निबिडः । अथवा खेषु नासारन्ध्रेषु निमज्जति मुक्तो भवति । वर्णविशुद्धिः श्लेष्मणः प्रकृतवर्णता ।

मस्तकके भारीपन इत्यादिक चिह्न कि जो कच्चे पीनसके हैं उनसे युक्त, कफ गाढा होय, अथवा नाकके छेदोंमें रुक जाय, शब्द मुखसे शुद्ध निकले और कफका वर्ण स्वाभाविक हो जाय तो जानना कि पीनस पक्व गया है ॥ ३५ ॥

अथ नासारोगचिकित्सा ।

सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमात्रेषु । मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ ३६ ॥ कट्फलं पौष्करं शृंगी व्योषं यासश्च कारवी । एषां चूर्णं कषायं वा दद्यादार्द्रकजै रसैः ॥ ३७ ॥ पीनसे स्वरभेदे च तमके च हलीमके । सन्निपाते कफे कासे ज्वरे श्वासे च शस्यते ॥ ३८ ॥ कलिङ्गहिंगुमरिचलाक्षास्वरसकट्फलैः । कुष्ठोग्रशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ ३९ ॥ पीनसादिषु ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्व प्रकारके पीनस (नाकके रोग) उत्पन्न होतेही तत्काल सदा गुडके और दहीके साथ मिरच खावे तो मनुष्योंको सुखकी प्राप्ति होती है। कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा और अजवायन इनका चूर्ण अथवा इनका क्वाथ (काढा) अदरकके रसके साथ देवे तो पीनस स्वरभेद, तमकश्वास, हलीमक, सन्निपात, कफ, खांसी, ज्वर और श्वास ये रोग शान्त होते हैं। इंद्रजौ, हींग, मिरच, लाखका स्वरस, कायफल, कूठ, वच, सहँजना और वायविडंग इनका अवपीड नस्य देवे तो पीनस आदिरोग नष्ट होते हैं ॥ ३६-३९ ॥

अथ व्योषादिवटी ।

व्योषचित्रकतालीसातिन्तिडीकाम्लवेतसम् ।
सचव्याजाजितुल्यांशभेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ ४० ॥ व्योषादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडमिश्रितम् । पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ ४१ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, तालीसपत्र, तिंतिडीक, अमलवेत, चव और जीरा इनको समान भाग लेवे और इलायची, तेजपात, दालचीनी इनको चतुर्थांश लेवे, इन सबका चूर्ण कर इनकी पुराने गुडमें गोली बनाकर खावे तो इससे पीनस, श्वास तथा खाँसी नष्ट हो जाती है, रुचि उत्पन्न होती है और स्वर उत्तम होता है, इन गोलियोंको 'व्योषादिवटी' नामसे कहते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ व्याघ्रीतैलम् ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसिन्धुजैः ।
सिद्धं तैलं नसि क्षिप्तं पूतिनासागदापहम् ४२

कटेरीकी जड, दन्ती, वच, सहँजना, तुलसी, सोंठ, मिरच, पीपल और सेंधा, इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका नस्य देवे तो पूतिनस्य नष्ट हो जाता है। यह 'व्याघ्रीतैल' कहाता है ॥ ४२ ॥

अथ शिग्रुतैलम् ।

शिग्रुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः । बिल्वपत्ररसैः सिद्धं तैलं स्यात्पूतिनस्यनुत् ॥ ४३ ॥ निकुम्भो दन्ती । पूतिनस्यनुत्स्यात् ।

सहँजनेके बीज, कटेरीके बीज, दंतीके बीज (जमालगोटा), सोंठ, मिरच, पीपल, और सेंधानिमक इनके कल्कसे बेलके पत्तोंके पकाये हुए तेलका नास देवे तो इससे पूतिनस्य नष्ट होता है। यह शिग्रुतेल कहाता है ॥ ४३ ॥

घृतगुग्गुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः । धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नं च निर्दिशेत् ॥ ४४ ॥ शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत् । तैलं पक्वमथाज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम् ॥ ४५ ॥ नस्यं हितं निम्बरसाञ्जनाभ्यां दीप्ते शिरःस्वेदनमल्पशस्तु । नस्ये कृते क्षीरजलावसेकाच्छंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूषैः ॥ ४६ ॥ नासास्रावे घ्राणयोश्चूर्णमुक्तं नाडया देयं येऽवपीडाश्च पथ्याः । तीक्ष्णान्धूमान्देवदार्वग्निकाभ्यां मासं त्वाजं पथ्यमत्रादिशन्ति ॥ ४७ ॥ प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम् । वस्त्रेण गुरुणा तेन शिरसो वेष्टनं हितम् ॥ ४८ ॥ विडङ्गं सैन्धवं हिंगु गुग्गुलुः समनःशिलः । वचैतच्चूर्णमाघ्रातं प्रतिश्यायं विनाशयेत् । घृततैलसमायुक्तं शक्तुधूमं पिबेन्नरः ॥ ४९ ॥ सधूमः स्यात्प्रतिश्यायकासहिक्काहरः परः । प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वगन्धसमायुतम् । चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम् । ॥ ५० ॥ कृष्णजीरकमत्र कलौंजी । पुटपक्वं जयापत्रं तैलसैन्धवसंयुतम् । प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ ५१ ॥ जया विजया भङ्गेति यावत् । शीलितं भक्तम् । पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गमरिचानि च । अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणे ॥ ५२ ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनैः स्वेदैर्नस्यैर्मन्दोष्णभोजनैः । वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ ५३ ॥ क्रिमिघ्ना ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्वै क्रिमिषु योजयेत् । नावनानि क्रिमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मान् ॥ ५४ ॥ रक्तपित्तानि शोथाश्च तथार्शस्यर्बुदानि च । नासिकायां स्युरेतेषां स्वंस्वं कुर्यात्चिकित्सितम् ॥ ५५ ॥ गृहधूमकणादारुक्षीरनक्ताह्वसैन्धवैः। सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ ५६ ॥

घी, गूगल तथा मोम मिलाकर इनका प्रयत्नसे धूमपान करे तो क्षवथु तथा भ्रंशथु नष्ट होता है। सोंठ, कूठ, पीपल, बेल और दारु इनके कल्कसे इनकेही क्वाथमें पकाये हुए तेलका अथवा घीका नस्य देवे तो इससे क्षवथुका नाश होता है । नीम और रसौत इनका नास देवे और मस्तकमें थोडा सेक करे तो दीप्तिनामक नाकका रोग नष्ट होता है। नस्य देनेके पश्चात् दूध और जलका सेचन करे और मूँगके यूषके साथ भोजन करे । नासास्राव हुआ होय तो कही औषधियोंका चूर्ण नलीसे नाकमें डाले हितकारी अवपीडननस्य देवे, देवदार तथा चीतेका तीक्ष्ण धुआँ पिलावे और बकरेका मांस खिलावे। सम्पूर्ण प्रकारके प्रतिश्यायोंमें विना पवनके घरमें रहना और मस्तकको गाढे कपडेसे बंधा रखना यह हितकारी होता है। वायविडंग, सेंधानोन, हींग, गूगल मैनशिल और वच इनका चूर्ण सूंघे तो प्रतिश्यायका नाश होता है। घीसे तथा तेलसे संयुक्त किये सत्तुओंका धुआँ पीवे तो प्रतिश्याय, खांसी और हिचकी ये अवश्य नष्ट होते हैं। तेजपात, इलायची तथा दालचीनी आदि सब सुगन्धित पदार्थोंका धुआं पीवे अथवा तेजपात, इलायची, दालचीनी और नागकेसर इनका चूर्ण सूँघे अथवा कलौंजीके जीरेका चूर्ण सूँघे तो प्रतिश्याय नष्ट होते हैं। भांगके पत्तोंको पुटपाकसे पकाकर तेलके और सेंधेनोनके साथ खानेका अभ्यास रक्खे तो सम्पूर्ण प्रकारके प्रतिश्याय अवश्य नष्ट होते हैं। पीपल, सहँजनेके बीज, वायविडंग और मिरच इनका अवपीड नस्य देवे तो प्रतिश्याय नष्ट होता है । स्वेदन करनेसे, मस्तकमें तेल मर्दन करनेसे, नस्य देनेसे, किंचित् गरम भोजन वमन करानेसे और घी पिलानेसे योग्यता देखकर प्रतिश्यायके ऊपर उपचार करे । प्रतिश्यायमें कीडे पडे होयँ तो बुद्धिमान् वैद्य कृमिनाशक जो २ उपाय, नस्य अथवा औषधि कही हैं उनका प्रयोग करे। नाकमें रक्तपित्त, सूजन, अर्श अथवा अर्बुद होय तो उनके लिये उस उस अधिकारमें जो जो चिकित्सा कही हैं वही वह करे। घरके धुएँका धूमासा, पीपल, देवदारु, दूध, करंज, सेंधानोन और चिरचिटेके बीज इनसे पकाया हुआ तेल नाकके अर्शोंपर हितकारी है ॥ ४४–५६ ॥

इति नासारोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मुखरोगाधिकारः ।

तत्र मुखस्वरूपम् ।

ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्तजिह्वे च तालु च । गलो मुखानि सकलं सप्ताङ्गं मुखमुच्यते ॥ १ ॥

ऊपर, नीचेके होठ, दाँतोंके मसूढे, दाँत, जीभ, तालु और गला ये सात अंग मिलनेसे मुख कहाता है ॥ १ ॥

अथ मुखरोगसंख्या ।

स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्तमूले तु दश षट् तथा । दन्तेष्वष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव तालुनि ॥ २ ॥ कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्तास्त्रयः सर्वेषु च स्मृताः । एवं मुखामयाः सर्वे सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥ ३ ॥

ओंठोंमें आठ रोग, दाँतोंकी जडमें सोलह रोग, दाँतोंमें आठ रोग, जीभमें पाँच रोग, तालूमें नौ रोग, गलेमें अठारह रोग और सम्पूर्ण मुखमें तीन रोग इस प्रकार मुखके सम्पूर्ण सडसठ ६७ रोग हैं ॥ २॥३ ॥

अथ मुखरोगनिदानम् ।

आनूपपिशितक्षारदधिमाषादिसेवनात् । मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥ ४ ॥

अनूपदेशके प्राणियोंका मांस सेवन करनेसे, क्षारोंके सेवनसे, दहीके सेवनसे और उडद आदिके सेवनसे प्रकुपित हुए कफादि दोष मुखके रोगोंको उत्पन्न करे हैं ॥ ४ ॥

अथौष्ठरोगनिदानपूर्वकसंख्या ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च रक्तजो मांसजस्तथा । मेदजश्चाभिघातोत्थ एवमष्टौष्ठजा गदाः॥५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वात, पित्त, कफ, तीनों दोष, रुधिर, मांस, मेदा और अभिघातसे उत्पन्न हुए इस भांति होंठके आठ रोग हैं ॥ ५ ॥

अथ वातजौष्ठरोगलक्षणम् ।

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ ।
दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः
॥ ६ ॥ परुषौ रूक्षौ । दाल्येते विदार्येते ।
परिपाट्येते किञ्चिद्विदीर्णत्वचौ क्रियेते ।

दोनों ओष्ठ खरखरे, रूक्ष, स्तब्ध (जकडेसे) तीव्र वेदनायुक्त, चिरे हुए और किंचित् फटे हुए चमडेवाले होयँ तो वायुसे उत्पन्न हुआ ओष्ठरोग जानना ॥ ६ ॥

अथ पित्तजौष्ठरोगलक्षणम् ।

चीयेते पिडिकाभिस्तु सरुजाभिः समन्ततः ।
सदाहपाकपिडकौ पीताभासौ च पित्ततः
॥ ७ ॥ सरुजाभिः पैत्तिकरुग्न्वितताभिः ।

दोनों ओष्ठ चारों ओर पित्तसम्बन्धी पीडा करनेवाली फुंसियोंसे घिर जायँ, वर्ण पीला हो जाय और उन फुंसियोंमें दाह हो तथा वे फुंसियें पके तो पित्तसे हुआ ओष्ठरोग जानना ॥ ७ ॥

अथ कफजौष्ठरोगलक्षणम् ।

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ ।
कण्डूमन्तौ कफाच्छ्वेतौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥ ८ ॥

दोनों ओठ शरीरके चमडेकी सदृश वर्णवाली फुडियोंसे व्याप्त हो जायँ, अल्प वेदना हो, खुजली, सफेदी, चिकनापन हो जायँ, शीतल तथा भारी हो जायँ तो कफसे हुए ओष्ठरोग जानने ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजौष्ठरोगलक्षणम् ।

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च । सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकान्वितौ९.

दोनों ओष्ठ किसी समय काले, किसी समय पीले, सफेद और अधिक फुडियोंसे युक्त हो जायँ ये तीनों दोषोंसे युक्त हुए ओष्ठरोगके लक्षण जानने ॥ ९ ॥

अथ रक्तजौष्ठरोगलक्षणम् ।

खर्जूरफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ ।
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवन्तौ शोणितप्रभौ १०

दोनों ओठोंमें खजूरके फलकी सदृश वर्णवाली फुंसियोंसे पीडित, रुधिरके स्रववाले और लाल प्रभावाले हो जायँ तो रुधिरसे हुए ओष्ठके रोग जानने ॥ १० ॥

अथ मांसजौष्ठरोगलक्षणम् ।

मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ ।
जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात्
॥ ११ ॥ जन्तवः कृमयः मूर्च्छन्ति वर्द्धन्ते ।
मुखादुभयतः सृक्किण्योः ।

दोनों ओष्ठ भारी, मोटे और मांसके पिंडकी सदृश ऊँचे हो जायँ और उन दोनों होठोंके समीपके भागोंमें कीडे पड जायँ तो मांससे हुए होठके रोग जानने ॥ ११ ॥

अथ मेदोजौष्ठरोगलक्षणम् ।

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू ।
स्वच्छस्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥ १२ ॥

दोनों ओष्ठ घीकी पपडीकी समान, खुजलीवाले, कोमल और स्वच्छ स्फटिककी सदृश, स्रावसे युक्त होय तो मेदसे हुए ओष्ठरोग जानने ॥ १२ ॥

अथाभिघातजौष्ठरोगलक्षणम् ।

क्षतजाभौ विदीर्यते पीड्येते चाभिघाततः ।
मथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ
॥ १३ ॥ मथितौ मृदिताविव अत एव क्षतजाभौ रुधिराभाविति संगतम् ।

दोनों ओठ चोट लगनेसे मानों चिरसे गये होयँ इसी कारणसे रुधिरकी समान वर्णवाले हो जायँ, पीडा होय, अथवा चिर जायँ और खुजलीसे होय तो जानना कि ओष्ठोंमें चोट लगी है ॥ १३ ॥

अथौष्ठरोगचिकित्सा ।

गलदन्तमूलदशनच्छदेषु रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः । तस्मादेतेष्वसकृद्रुधिरं विस्रावयेदुष्णम् ॥ १४ ॥ चतुर्विधेन स्नेहेन मधूच्छिष्टयुतेन च । वातजेऽभ्यञ्जनं कुर्यान्नाडीस्वेदं च बुद्धिमान् ॥ १५ ॥ चतुर्विधेन स्नेहेन तैलघृतवसामज्जारूपेण । वेधं शिराणां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनं च। शीताः प्रदेहाः परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ १६ ॥ शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च। हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ १७ ॥ मेदोजे शोधिते स्विन्ने स्वेदिते कवलो हितः। प्रियंगुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥

गलेमें, दांतोंकी जडमें और ओठोंमें जो रोग होते हैं उनमें कफ और रुधिरकी प्रधानता होती है, इस कारण इन रोगोंमें बारंबार गरम गरम दुष्ट रुधिर निकलवाना चाहिये। वायुसे हुए ओष्ठरोग होय तो चार प्रकारका स्नेह (घृत तेल वसा और मज्जा) में मोम डालके मालिश करे अथवा नाडी स्वेद करे। पित्तसे हुए ओष्ठरोग होयँ तो नस छेदकर रुधिर निकाले, वमन करावे, विरेचन देवे, तिक्तक नामवाला घी पिलावे, मांसका रस खिलावे, शीतल लेप करे और शीतल सेचन करे। कफसे हुए ओष्ठोंके रोग होयँ तो रुधिर निकलवानेके पीछे शिरोविरेचन (मस्तकको दोषोंसे खाली करनेका उपाय) देवे, धुआँ पिलावे, स्वेदन करे और कुल्ले भी करावे। मेदसे हुए ओष्ठरोग होय तो विरेचन आदिसे शोधन करे, शस्त्रसे भेदन करावे, सेक करे, कुल्ले करावे और प्रियंगु, हरड, बहेडा, आमले तथा लोध इनको सहतमें मिलाकर ओठोंपर प्रतिसारणविधि करे ॥ १४--१८ ॥

अथ प्रतिसारणविधिः।

दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः। शनैर्घर्षणमंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ १९ ॥ ओष्ठरोगेष्वशेषेषु दृष्ट्वा दोषमुपाचरेत्। तेषु व्रणत्वं जातेषु व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २० ॥

अंगुलीसे चूर्ण, कल्क अथवा अवलेह लेकर दांतोंको जीभको तथा मुखको धीरे धीरे घिसे इसको 'प्रतिसारण' कहते हैं, ओष्ठके सम्पूर्ण प्रकारके रोगोंमें दोषका निश्चय करके उस दोषको नष्ट करे ऐसा प्रतिसारण करावे। जो ओठोंके रोग व्रणरूप हो जायँ तो उनकी व्रणकी समानही चिकित्सा करे ॥१९॥२०॥

अथ दन्तवेष्टजरोगाणां नामानि संख्या च।

शीतादो गदितः पूर्वं दन्तपुप्पुटकस्तथा। दन्तवेष्टः सौषिरश्च महासौषिर एव च ॥ २१ ॥ ततः परिदरः प्रोक्तस्ततस्तूपकुशः स्मृतः। वैदर्भश्च ततः प्रोक्तः खल्लीवर्द्धन एव च ॥ २२ ॥ अधिमांसकनामा च दन्तनाडयश्च पञ्च च। दन्तविद्रधिरप्यत्र दन्तवेष्टेषु षोडश ॥ २३ ॥

शीताद, दन्तपुप्पुट, दन्तवेष्ट, सौषिर, महासौषिर, परिदर, उपकुश, वैदर्भ, खल्लिवर्द्धन अधिमांसक, पांच प्रकारकी दन्तनाडी और दन्तविद्रधि इस प्रकार दांतोंकी जडमें सोलह रोग होते हैं ॥२१--२३॥

अथ शीतादलक्षणम्।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते। दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ २४ ॥ दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचंति च परस्परम् ॥ शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसम्भवः ॥ २५ ॥ दन्तवेष्टेभ्यः दन्तवेष्टनमांसेभ्यः। अकस्मादभिघातं विना। शीर्यन्ते पतंति। पचंति च परस्परं पाकोष्मणा मांसानि शोणितं पचन्ति।

दाँतोंकी जडमेंसे विना अभिघात अकस्मात्ही रुधिर निकले, मसूढोंका मांस दुर्गन्धवाला, काला, गिलगिला, तथा कोमल होकर गिरे और पकनेकी गरमीसे रुधिर पकने लगे, उसको शीताद कहते हैं। यह रोग कफके तथा रुधिरके प्रकोपसे होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ दन्तपुप्पुटकलक्षणम्।

दन्तयोस्त्रिषु वाप्यत्र श्वयथुर्जायते महान्। दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ २६ ॥

दो दाँतोंमें अथवा तीन दाँतोंमें अधिक सूजन उत्पन्न होय उस रोगको दन्तपुप्पुटक कहते हैं। यह रोग कफके और रुधिरके प्रकोपसे होता है ॥ २६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ दन्तवेष्टलक्षणम् ।

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च । दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥२७॥ अत्र दन्तमूलानीति कर्तृपदमध्याहरणीयम् ।

मसूढोंमेंसे रुधिर अथवा राध (पीप) निकले और दाँत हल जायँ, इस रोगको दन्तवेष्ट कहते हैं। यह रोग रुधिरके बिगडनेसे होता है॥ २७ ॥

अथ सौषिरलक्षणम् ।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफवातजः । लालास्रावी च कण्डूरः स यः सौषिरो गदः॥२८॥

मसूढोंमें पीडासहित, लार गिरानेवाला और खुजलीसहित सूजन होय उस रोगको सौषिर कहते हैं। यह रोग कफके तथा वायुके प्रकोपसे होता है ॥ २८॥

अथ महासौषिरलक्षणम् ।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते । दन्तमांसानि पच्यन्ते मुखं च परिवाप्यते । यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ २९ ॥ तालु चाप्यवदीर्यते चकाराद्दन्तवेष्टश्चाप्यवदीर्यते सप्तरात्रान्मारकश्चायम् । यत आह भोजः " महासौषिर इत्येष सप्तरात्रान्निहन्त्यसून् " ॥ ३० ॥

मसूढोंमें दांत हिलने लगे, तालू और मसूढे फटने लगें, मसूढे पक जायँ और मुख अत्यन्त पीडित होय इस रोगको महासौषिर कहते हैं, यह रोग तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है । यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मार देता है क्योंकि, भोज कहता है कि "यह महासौषिर रोग सात रात्रिमें प्राणोंका नाश कर देता है" ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ परिदरलक्षणम् ।

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्ठीवति चाप्यसृक् । पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ ३१ ॥

दांतोंका मांस बिखर जाय, और थूकमें रुधिर निकले इस रोगको परिदर कहते हैं । यह रोग पित्त, रुधिर और कफके प्रकोपसे होता है ॥ ३१ ॥

अथोपकुशलक्षणम् ।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च । आघट्टिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम् ॥ ३२ ॥ आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखं पूतिं च जायते । यस्मिन्नुपकुशः स स्यात्पित्तरक्तसमुद्भवः ॥ ३३ ॥ आघट्टिताः घृष्टाः ।

मसूढोंमें दाह होय और पक जायँ, दांत हिलने लगें, मंद वेदनायुक्त रुधिरका स्राव होय और रुधिरके स्राव होनेपर मुख सूज जाय तथा दुर्गन्ध आने लगे इस रोगको उपकुश कहते हैं। यह रोग पित्त तथा रुधिरके प्रकोपसे होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ वैदर्भलक्षणम् ।

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान् । चलन्ति च रदा यस्मिन्स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ ३४ ॥ संरम्भः शोथः । चलन्ति चेति चकाराद्वेदनादाहपाकाः ।

मसूढोंके घिसनेसे अत्यन्त सूजन होय, दांत हिलने लगें और वेदना होय तथा पाक और दाह होय इस रोगको वैदर्भ कहते हैं। यह रोग काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे होता है ॥ ३४ ॥

अथ खल्लीवर्द्धनलक्षणम् ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः । खल्लीवर्द्धनसंज्ञोऽसौ सञ्जाते रुक्प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥ सञ्जाते दन्ते ।

दांतके ऊपर अधिक दांत जम आवे और उत्पन्न होते समय विशेष पीडा होय, उत्पन्न होनेके पीछे पीडा शांत हो जाय उस रोगको खल्लिवर्द्धन कहते हैं। यह वायुके प्रकोपसे होता है ॥ ३५ ॥

अथाधिमांसलक्षणम् ।

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाशोथो महारुजः । लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ ३६ ॥ हानव्ये हनुभवे पश्चिमे दन्ते अन्त्यजे ।

नीचेकी पीछेकी डाढमें घोर पीडायुक्त स्रावसहित भारी सूजन होय उस रोगको अधिमांस कहते हैं। यह कफके प्रकोपसे होता है ॥ ३६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पंचविधदन्तनाडीलक्षणम्।

दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ ३७ ॥ यथा नाडीव्रणे वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्ताः पञ्च नाड्यः कथितास्तथा अत्रापीत्यर्थः।

जिस प्रकार नाडीव्रणमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और शल्यसे उत्पन्न हुई पांच प्रकारकी नाडी कही हैं, ऐसेही पांच प्रकारकी नाडी दांतोंके मसूढोंमें कही हैं इस कारण इनके लक्षण नाडीव्रणाधिकारमें कहे अनुसार जानने ॥ ३७ ॥

अथ दन्तविद्रधिलक्षणम्।

दन्तमांसमलैः सास्रैर्बाह्यतः श्वयथुर्महान्। सदाहरुक्स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः। ॥ ३८ ॥ दन्तमांसमलैर्दन्तवेष्टगतदोषैः सास्रैः सरक्तैर्हेतुभिः।

मसूढोंमें स्थित वात, पित्त, कफ और रुधिर इन दोषोंके कारण बाहर दाह तथा वेदनायुक्त महासूजन उत्पन्न होती है और उसको छेदनेसे राध तथा रुधिर निकलता है, इस रोगको दन्तविद्रधि कहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ दन्तवेष्टरोगचिकित्सा।

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान्। निष्काथ्य त्रिफलां चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ॥ ३९ ॥ कासीसलोध्रकृष्णामनःशिलाप्रियंगुतेजोह्वाः। एषां चूर्णं मधुयुक्छीतादे पूतिमांसहरम् ॥ ४० ॥ तेजोह्वा तेजवल्कल इति लोके। तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे सम्प्रशस्यते। दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ॥ ४१ ॥ सपञ्चलवणक्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम्। शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्निग्धं च भोजनम् ॥ ४२ ॥ विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रतिसारयेत्। पतङ्गलोध्रमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधुप्लुतः ॥ ४३ ॥ प्रतिसारयेदंगुल्या घर्षयेत्। पतंगश्चोक इति लोके। गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः। चलदन्तस्थिरकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ॥ ४४ ॥

शीतादरोग हुआ होय तो रुधिर निकलवाकर पश्चात् जलमें सोंठ, सरसों, हरड, बहेडा और आमले इनका क्वाथ बनाकर उस क्वाथके कुल्ले धारण करे। हीराकसीस, लोध, पीपल, मैनशिल, फूलप्रियंगू, और तेजबल इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर उपयोग करे तो शीतादसे सडा हुआ मांस दूर हो जाता है। वायुको हरनेवाले तेलका और घीका उपयोग करनेसे शीताद रोग नष्ट होता है। दन्तपुप्पुटरोग उत्पन्न होय तो तत्कालही उसमेंसे रुधिर निकलवावे। पांचों निमकके साथ जवाखारको सहतमें मिलाकर प्रतिसारण करे, मस्तकको खाली करनेवाला नास देवे और स्निग्ध भोजन करावे यह परम हितकारक है। दन्तवेष्ट हुआ होय तो उसमेंसे रुधिर निकालकर उस व्रणके ऊपर अंगुलीसे लोध, पतंग, मुलैठी और लाख इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर खूब घिसे। वटादि पंचक्षीरी वृक्षोंका क्वाथ बनाकर उसमें सहत, घी तथा मिश्री डालकर उससे कुल्ले करे और मौलसरीकी छालको चर्वण करे तो हिलते हुए दांत स्थिर हो जाते हैं ॥ ३९–४४ ॥

अथ मुस्तादिवटिका।

भद्रमुस्ताभयाव्योषविडंगारिष्टपल्लवैः। गोमूत्रपिष्टैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥ तां निधाय मुखे सुप्याच्चलदन्तातुरो नरः। नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ४६

नागरमोथा, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग और नीमके पत्ते इनको गोमूत्रमें पीसकर गोली बनाकर छायामें सुखावे। इन गोलियोंको मुखमें रखकर सो जावे तो हिलते हुए दांत स्थिर हो जाते हैं। हिलते हुए दांतोंवाले मनुष्यके लिये इस औषधिसे अधिक अन्य औषधि फलदायक नहीं है। यह गोली मुस्तादिवटिका कही जाती है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ सहचराद्यतैलम्।

तुलाघृतं नीलसहाचरं तु द्रोणाम्भसा संश्रपयेद्यथावत्। ततश्चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलप्रमाणैः ॥ ४७ ॥ कल्कैरनन्तासदिरैरिमेदजम्बूवाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम्। तत्तैलमाज्यं च घृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदधाति सद्यः ॥ ४८ ॥ नीलसहाचरः (नीलपुष्पकटसरैया)। अनन्ता दुरालभा तदलाभे यवासो ग्राह्यः। इरिमेदो दुर्गन्धखदिरः।

नीले फूलका पियावांसा ४०० चार सौ तोले लेकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उसमें धमासा, खैर, दुर्गंधित खैर, जामुनके पत्ते, आमके पत्ते, मुलैठी और कमल यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर कल्क बना उसमें डालकर उसमें तेल अथवा घीको धीरे धीरे पकावे, जो धमासा न मिले तो जवासा ले लेवे, इस तेलको अथवा घीको मुखमें रखनेसे इससे तत्काल दांत स्थिर हो जाते हैं। यह तेल अथवा घी सहचराद्य कहा जाता है ॥४७॥४८॥

सौषिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः। सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ ४९ ॥ क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः। संशोष्योभयतः कार्याः शिराश्चोपकुशे तथा ॥ ५० ॥

सौषिर उत्पन्न हुआ होय तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् लोध, नागरमोथा और रसौत इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर लेप करे और बड आदि क्षीरी वृक्षोंके क्वाथका कुल्ला करे। परिदर हुआ होय तो विचक्षण वैद्य शीतादकी समान चिकित्सा करे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

काकोदुम्बरिकापत्रैर्व्रणं विस्रावयेद्भिषक्। लवणैः क्षौद्रयुक्तैश्च सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥५१

उपकुश हुआ होय तो प्रथम संशोधन करके पश्चात् दोनों तरफ मुख करे, व्रणोंका कठूमरके पत्तोंसे राध और रुधिर निकलवाकर पांचों निमक, सोंठ, काली मिर्च तथा पीपल इनको सहतमें मिलाकर प्रतिसारण करे ॥ ५१ ॥

शस्त्रेणोद्धृत्य वैदर्भं दन्तमूलानि शोधयेत्। ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाःसर्वाश्च शीतलाः५२

वैदर्भ हुआ होय तो उसको शस्त्रसे चीरकर मसूढोंको शुद्ध करे, फिर क्षार लगावे और सम्पूर्ण शीतल क्रिया करे ॥ ५२ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत्। कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥ ५३ ॥

खल्लिवर्द्धन हुआ होय तो अधिक दांतको उखाडकर फिर अग्निसे दाग देवे और कृमिदंत नामक रोगके लिये जो चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

छित्त्वाधिमांसं सक्षौद्रैस्तैश्चूर्णैरुपाचरेत्। वचातेजोवतीपाठास्वार्जिकायावशूकजैः ॥५४॥ तेजोवती तेजोवल्कलः स्वर्णजीवन्ती च। क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवले चात्र कीर्तिताः ॥ ५५ ॥ पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावने। नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत् ॥ ५६ ॥

अधिमांसक हुआ होय तो उसको चीरकर वच, तेजबल, पाढ, सज्जी और जवाखार इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर इसका उपयोग करे। पीपलके चूर्णको सहतमें मिलाकर इसका उपयोग करे। पीपलके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसका कवल धारण करे और धोनेके लिये कडवे परवल, नीम और त्रिफलेका क्वाथ प्रयोग करे ॥ ५४-५६ ॥

यद्दन्तमध्ये जायेत नाडीदन्तं तदुद्धरेत् ॥ ५७ ॥ क्षिप्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत्। उद्धृत्य च दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा॥५८॥ भिनत्त्युपेक्षिते दन्ते हनुमस्थिगतिर्ध्रुवम्। समूलं दशनं तस्मादुद्धरेद्धनमस्थि च ॥ ५९ ॥ उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं प्रस्रवेदति। रक्ताभिष्वेकात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति हि ॥ ६० ॥ काणः सञ्जायते जन्तुरदितं तस्य जायते। चलमप्युत्तरं दन्तमतो नैवोद्धरेद्भिषक्। धावनं जातिमदनस्वादुकण्टकखादिरैः ॥ ६१ ॥ कषायैरिति शेषः।

सर्व प्रकारकी दंतनाडियोंमें नाडीव्रणकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। जो दांतके भीतर नाडी होय तो दांतके मसूढेको शस्त्रसे चीरकर दांतको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उखाड लेवे किंतु ऊपरके दांतको न उखाडे यह प्रयोग नीचेके दांतके लिये कहा है। दांतको उखाडकर उसके ऊपर क्षार बुरकावे अथवा अग्निसे दाग देवे। इस दांतकी उपेक्षा करनेसे अवश्य ठोडीकी हड्डीमें राध निकलने लगती है जिससे वह हड्डी नष्ट हो जाती है, इस कारण दांतको जडसहित उखाड डाले और टूटी हुई हड्डीको भी निकाल डाले। जो ऊपरकी पंक्तिका दांत उखाडे तो रुधिरका अत्यन्त स्राव होता है। रुधिरके अतियोगसे पूर्वोक्त भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं, काणापन और अर्दितरोग होता है अत एव जो ऊपरका दांत हिलता भी होय तो भी वैद्य उसको उखाडे नहीं ॥ ५७-६१ ॥

अथ जात्यादितैलम्।

कषायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः॥६२॥ मञ्जिष्ठालोध्रखदिरयष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम्। तैलं यत्साधितं तत्तु हन्याद्दन्तगतां गतिम्। ॥ ६३ ॥ जात्यादिचतुष्टयस्य कषायेण मञ्जिष्ठादिचतुष्टयस्य च कषायेण तैलमिदं पचेत्। जाती चम्बेली इति लोके। तस्याः पत्रं ग्राह्यम्। मदनो धत्तूरस्तस्यापि पत्रमत्र ग्राह्यम्। कण्टकी (बडी कटैया) तस्याः मूलं ग्राह्यम्। स्वादुकण्टको गोक्षुरस्तस्य पञ्चाङ्गं ग्राह्यम्। विद्रध्युक्तं विधिं युक्तं विद्रध्यादन्तविद्रधौ। शस्त्रकर्म नरस्तत्र कुशलो नैव कारयेत् ॥ ६४ ॥

चमेलीके पत्ते, धतूरेके पत्ते, कटेरीकी जड और गोखुरूका पंचांग इनके क्वाथमें तथा खैर, मजीठ, लोध और मुलैठी इनके क्वाथमें पकाया हुआ तेल 'जात्यादि तेल' कहा जाता है, यह तेल दांतके नासूरको दूर कर देता है। दंतविद्रधिरोगमें विद्रधिरोगोक्त चिकित्सा करे, किन्तु शस्त्रक्रिया न करे ॥६२-६४॥

अथ दंतरोगाणां नामानि संख्या च।

दालनः कथितः पूर्वं कृमिदन्तक एव च। प्रोक्तो भञ्जनको दन्तहर्षो वै दन्तशर्करा ॥ ६५ ॥ कपालिकात्र कथिता श्यावदन्तक एव च। करालसंज्ञ इत्यष्टौ दन्तरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ ६६ ॥

दालन, कृमिदंतक, भंजनक, दंतहर्ष, दंतशर्करा, कपालिका, श्यावदंतक और कराल इस प्रकार दांतोंमें आठ रोग होते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ दालनलक्षणम्।

दीर्यमाणेष्विव रुजा यत्र दन्तेषु जायते। दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ६७ ॥

दांत विदीर्णसे होते हैं अर्थात् चिरेसे जाते हों ऐसी पीडा हो, इसको दालन कहते हैं। यह रोग वायुके प्रकोपसे होता है ॥ ६७ ॥

अथ कृमिदंतलक्षणम्।

कृष्णच्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः। अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयो कृमिदन्तकः ॥ ६८ ॥ संरम्भः दन्तमूलशोथयुक्तः तत्रैव स्रावो बोद्धव्यः। अनिमित्तरुजः अवघट्टनादिनिमित्तं विनैव महारुजावान्।

दांतोंमें काले छिद्र हो जायँ, खुजली हो, मसूढोंमें सूजन हो, स्राव हो, बहुत पीडा और विनाही कारण वेदना होय इस रोगको कृमिदंत कहते हैं। यह रोग वायुके प्रकोपसे होता है ॥ ६८ ॥

अथ भंजनकलक्षणम्।

वक्रं वक्रं भवेद्यत्र दन्तभङ्गश्च जायते। कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसंज्ञकः ॥६९॥

जिसमें मुख टेढा हो जाय और दांत टूटकर गिरने लगें, उसको भंजनक कहते हैं। यह रोग कफ और वायुके प्रकोपसे होता है ॥ ६९ ॥

अथ दंतहर्षलक्षणम्।

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः। तत्र स्युर्वातपित्ताभ्यां दन्तहर्षः स कीर्तितः ॥ ७० ॥

दांत शीत, रूक्ष, प्रबल वायु और खट्टे पदार्थोंके स्पर्शको नहीं सह सके इस रोगको दंतहर्ष कहते हैं। यह रोग वायु तथा पित्तके प्रकोपसे होता है ॥७०॥

अथ दंतशर्करालक्षणम्।

मलो दन्तगतो यस्तु कफश्चानिलशोषितः। शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ ७१ ॥ शर्करा सिकता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दांतोंमें रहनेवाला मैल वायुसे सूख जाय और कफ सूखा या कफ रेतेकी समान खरखरा हो जाय इस रोगको दंतशर्करा कहते हैं ॥ ७१ ॥

अथ कपालिकालक्षणम् ।

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तेषु समलेषु च ।
कपालिकेति विज्ञेया दन्तच्छिद्दन्तशर्करा ॥ ७२ ॥ कपालानि मृन्मयघटादिखण्डानि तेष्विव समलेषु दन्तेषु मलसहितदन्तावयवेषु दीर्यत्सु सत्सु या दन्तशर्करा सा कपालिकेति विज्ञेया सा कपालिका दन्तच्छिद्दन्तनाशिनी ।

मैलसहित दांतोंके अवयव मट्टीके खपरेकी समान फटने लगें और उपरोक्त दंतशर्करा भी होय तो इस रोगको कपालिका कहते हैं । यह कपालिकारोग दांतोंको तोडकर नाश कर देता है ॥ ७२ ॥

अथ श्यावदंतलक्षणम् ।

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः ।
श्यावतां नीलतां वापि गदः स श्यावदन्तकः ॥ ७३ ॥ दग्धः दग्ध इव ।

रुधिरसहित पित्तसे जले हुएकी समान जो दाँत सर्वथा काले अथवा नीले हो जाँय तो इस रोगको श्यावदंतक कहते हैं ॥ ७३ ॥

अथ करालालक्षणम् ।

शनैः शनैः प्रकुरुते यत्र दन्ताश्रितोऽनिलः ।
करालान्विकटान्दन्तान्स करालो न सिध्यति ॥ ७४ ॥ करालान् भयानकान् अयं सुश्रुतेनोक्तः संग्रहकारेण च ।

दांतोंमें प्राप्त हुई वायु धीरे धीरे दांतोंको भयानक और विकट कर देवे तो इस रोगको कराल कहते हैं ॥ ७४ ॥

अथ दंतरोगचिकित्सा ।

तत्र लाक्षाद्यतैलम् ।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थमितं पचेत् ।
द्रव्यैः पलमितैरेतैः क्वाथैश्चापि चतुर्गुणैः ॥ ७५ ॥ लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः ।
चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तत्तैलं वदने धृतम् ॥ ७६ ॥ दालनं दन्तचालं च दन्तमोक्षं कपालिकाम् । शीतादं पूतिवक्त्रं च विरुचिं विरसास्यताम् ॥ ७७ ॥ हन्यादाशु गदानेतान्कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान् । लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥ ७८ ॥

लाखका रस ६४ तोले, दूध ६४ तोले और लोध, कायफल, मजीठ, कमलकी केसर, पद्माख, चंदन, लाल कमल और मुलैठी इनका चौगुना क्वाथ इनमें येही लोध आदि औषधि प्रत्येकका चार चार तोले कल्क डालकर इसमें ६४ तोले तेलको पकावे यह 'लाक्षाद्यतैल' सिद्ध होता है । इस तेलको मुखमें रखनेसे दालन, दांतोंका हिलना, दांतोंका गिरना, कपालिका, शीतादं, पूतिवक्त्र, अरुचि और मुखकी विरसता ये रोग तत्काल नष्ट हो जाते हैं और दांतभी स्थिर हो जाते हैं । यह लाक्षाद्यतैल दांतोंके रोगोंपर बहुत उत्तम गिना जाता है ॥ ७५–७८ ॥

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमबलं कृमिदन्तकम् ।
तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥ ७९ ॥
भद्रदार्व्यादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ।
कृमिदन्तापहं कोष्णं हिंगु दन्तान्तरे स्थितम् ॥ ८० ॥

स्थिरपनको प्राप्त हुए कृमिदंतनामक रोगको स्वेदन देकर रुधिर निकलवावे । वातनाशक अवपीडोंसे, स्नेहके कुल्लोंको धारण करनेसे, भद्रदारु आदि गणके तथा पुनर्नवेके प्रलेपोंसे और स्निग्ध भोजनोंसे दूर करे । हींगको कुछेक गरम करके दांतोंके बीचमें अर्थात् डाढके तले दबानेसे कृमिदंतक दूर हो जाता है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

बृहतीभूमिकदम्बं पञ्चांगुलकण्टकारिकाक्वाथः । गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तवेदनाशमनः ॥ ८१ ॥

कटाई, भूमिकदम्ब, सफेद एरंड और कटेरी इनका क्वाथ बनाकर उसमें तेल मिलाकर उसके कुल्ले करनेसे कृमिदंतकी पीडा शांत हो जाती है ॥८१॥

नीलीवायसजंधाकटुतुम्बीमूलमेकैकम् ।
सञ्चूर्ण्य दशनविधृतं दशनक्रिमिनाशनं प्राहुः ॥ ८२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीली, काकजंघा अथवा कडवी तोंवी इन दोनोंमेंसे किसी एककी जडका चूर्ण बनाकर दांतोंमें रखनेसे कृमिदन्तक रोग नष्ट होता है ॥ ८२ ॥

स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिषश्चैवृतस्य च। निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ ८३ ॥ त्रैवृतस्य सर्पिषः त्रिवृतापक्वस्य सर्पिषः कवला इत्यर्थः। स्नैहिकोऽत्र हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ॥८४॥ पेया रसा यवाग्वश्च क्षीरसन्तानिकावृतम्। शिरोवस्तिर्हितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः ॥८५॥ अत्र दन्तहर्षे। अच्छिद्यन्दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक्। लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ८६ ॥ दन्तहर्षक्रियां चात्र कुर्यान्निरवशेषतः। कपालिका कृच्छ्रतमा तत्राप्येषा क्रिया मता ॥ ८७ ॥ एषा क्रिया दन्तहर्षक्रिया। फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं तन्दधावनम्। तथातिकठिनं भोज्यं दन्तरोगी न भक्षयेत् ॥ ८८ ॥

घृत तैलादि स्नेहोंका सुहाता सुहाता कवल, निसोतके कल्कसे पकाये हुए घीका कवल और वातनाशक पदार्थोंका क्वाथ दंतहर्ष रोगको दूर करे है। दंतहर्ष रोगपर स्नैहिक धूमपान, स्नैहिक नस्य, पेया, रसयुक्त यवागू, दूधकी मलाई, घी, शिरोवस्ति और वातनाशक क्रिया सब हितकारक हैं। दंतशर्करा हुआ होय तो वैद्य दांतोंकी जडको नहीं छेदे किंतु दंतशर्कराको शस्त्रसे चीरकर निकाल डाले और फिर सहतमें लाखके चूर्णको मिलाकर प्रतिसारण करे। दंतहर्षके लिये जो चिकित्सा कही हैं वे सब दंतशर्करापर भी करनी चाहिये। कपालिका नामक दंतरोग यद्यपि अत्यंत कष्टसाध्य है तथापि उसपर दंतहर्षकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। दंतरोगवाले मनुष्योंको खट्टे पदार्थ, शीतल जल, रूखा अन्न, दतौन और कठिन भक्ष्य नहीं सेवन करना चाहिये ॥ ८३-८८ ॥

अथ जिह्वारोगाणां निदानं नामानि संख्या च।

वातजः पित्तजश्चापि कफजोऽलाससंज्ञकः। उपजिह्विका च गदा जिह्वायां पञ्च कीर्तिताः ॥ ८९ ॥

वातज, पित्तज, कफज, अलास और उपजिह्विका इस प्रकार जीभके रोग पांच हैं ॥ ८९ ॥

अथ वातजजिह्वारोगलक्षणम्।

जिह्वानिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥ ९० ॥ स्फुटिता मनाग्विदीर्णा। प्रसुप्ता रसानामनभिज्ञतया सुप्तेव। शाकच्छदनप्रकाशा शाको मरुभूभिजद्रुमस्तद्वत्कण्टकाचिता। अयं लोके जली इति ख्यातः।

जिह्वा कुछेक फट गई होय, खट्टे मीठे रसोंके ज्ञानको नहीं जान सके और मरुभूमिमें उत्पन्न होनेवाले सागौन वृक्षके पत्तेकी समान कांटोंसे व्याप्त होय तो उसको वातसम्बन्धी जिह्वारोग जानना ॥९०॥

अथ पित्तजजिह्वारोगलक्षणम्।

पित्तात्सदाहैरुपचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥ ९१ ॥

दाहसहित, लम्बे और लाल कांटोंसे जीभ व्याप्त हो गई होय तो उसको पित्तसे उत्पन्न हुआ जिह्वा रोग जानना ॥ ९१ ॥

अथ कफजजिह्वारोगलक्षणम्।

कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः ॥ ९२ ॥ बहुला स्थूला। मांसोच्छ्रयैः मांसजकण्टकैः।

कफसे जीभ भारी हो जाय, मोटी हो और वह सेमलके कांटोंकी समान कांटोंसे व्याप्त होय तो उसको कफसे उत्पन्न जिह्वारोग जानना ॥ ९२ ॥

अथालासलक्षणम्।

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः। जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥९३॥ प्रगाढः प्रकर्षेण गाढो दारुणः कफरक्तमूर्तिः कफरक्ताभ्यां मूर्तिर्यस्य सः कफरक्तज इत्यर्थः। जिह्वास्तम्भेन वायुरप्यत्र बोद्धव्यः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भृशं पाकेन पित्तं च अतस्त्रिदोषजोऽयम् असाध्यत्वं चास्य ।

जीभके नीचे कफ और रुधिरके प्रकोपसे जो अत्यंत दारुण सूजन होय उसको अलास कहते हैं। यह रोग बढकर जीभको जकड देता है और इसमें जीभकी जड अत्यंत पक जाती है। जिह्वाके स्तम्भन होनेके कारण इस रोगमें वायुका प्रकोप भी होता है और जिह्वाकी जडके अत्यंत पकनेसे पित्तका भी प्रकोप होता है ऐसा सिद्ध होता है। इस प्रकार यह रोग तीनों दोष और रुधिरके प्रकोपसे होनेके कारण असाध्य है ऐसा जाना जाता है ॥ ९३ ॥

अथोपजिह्विकालक्षणम् ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः । प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्तः प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति ॥९४॥ जिह्वाग्ररूपः जिह्वाग्राकृतिः ।

कफ और रुधिर इन दोनोंके प्रकोपसे सूजन जीभको ऊंची कर देती है, जीभ अनीकी समान होती है और लारके गिरनेसे, खुजली तथा दाहयुक्त होती है। इस सूजनको उपजिह्विका कहते हैं ॥ ९४ ॥

अथ जिह्वारोगचिकित्सा ।

जिह्वागतविकाराणां शस्तं शोणितमोक्षणम् । गुडूचीपिप्पली निम्बकवलः कटुभिः सुखः ॥ ९५ ॥ ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक्चिकित्सितम् । कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ९६ ॥ पित्तजे परिपृष्टे तु निःसृते दुष्टशोणिते । प्रतिसारणगण्डूषनस्यं च मधुरे हितम् ॥ ९७ ॥ कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये । पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यस्तु प्रतिसारणे ॥ ९८ ॥ उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् । शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥९९॥ व्योषक्षाराभयाविड्विचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् । उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेभिस्तेलं च पाचयेत् ॥ १०० ॥

जिह्वागत रोगोंमें प्रथम रुधिर निकलावे और गिलोय, नीम और पीपल इनका तीखे पदार्थोंके साथ कवल धारण करे यह हितकारक है। वातज ओष्ठरोगमें प्रथम जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा वातसे उत्पन्न जीभके कांटोंपर करनी चाहिये। जो पित्तजन्य जिह्वारोग होय तो उसको घिसकर दूषित रुधिरको निकालकर पश्चात् मधुर प्रतिसारण, मधुर कवल और मधुर नस्य यह सब प्रयोग करे यह हितकारी हैं। जो कफसे जिह्वाके ऊपर कांटे हुए होयँ तो उन कांटोंको कतरकर रुधिर निकलवाकर फिर पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंसे सहतमें उसको प्रतिसारण करे। उपजिह्विका होय तो उसको कतरकर क्षारसे प्रतिसारण करे और शिरोविरेचन गंडूष तथा धूम्रपान इनसे उपचार करे सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, हरड और चीता इस चूर्णको घिसनेसे अथवा इस चूर्णके कल्कसे तेलको पकाकर कुल्ले करनेसे उपजिह्विका शांत हो जाती है ॥ ९५–१०० ॥

अथ तालुरोगाणां नामानि संख्या च ।

गलशुण्डी तुण्डिकेर्यभ्रूषः कच्छप एव च । तालुर्बुदश्च कथितो मांससंघात एव च ॥ १०१ ॥ तालुपुप्पुटनामा च तालुशोषस्तथैव च । तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव ॥ १०२ ॥

गलशुण्डी, तुण्डिकेरी, अभ्रूष, कच्छप, तालुर्बुद, मांससंघात, तालुपुप्पुट, तालुशोष और तालुपाक इस प्रकार तालुवेमें नौ रोग हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथ गलशुण्डीलक्षणम् ।

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोथो ध्मातवस्तिप्रकाशः । तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ॥ १०३ ॥ ध्मातवस्तिप्रकाशः वातपूरितचर्मपुटतुल्यः ।

कफ और रुधिर दोनोंके प्रकोपसे तालुवेकी जडमें बढी हुई, लम्बी, वायुसे भरी हुई मशककी समान और तृषा, खाँसी तथा श्वासको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होती है उसको वैद्य गलशुण्डी कहते हैं ॥ १०३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तुण्डिकेरीलक्षणम्।

शोथः स्थूलस्तोददाहसपाकी श्लेष्मासृग्भ्यां कीर्तिता तुण्डिकेरी ॥ १०४ ॥ तुण्डिकेरी वनकार्पासीफलं तत्तुल्या।

तालुवेमें कफ और रुधिरके प्रकोपसे स्थूल, तोडने सरीखी पीडा और दाहसहित और पकनेवाली जो सूजन होती है उसको वैद्य तुण्डिकेरी कहते हैं ॥१०४॥

अथाभ्रूषलक्षणम्।

शोथः स्तब्धो लोहितः शोणितोत्थो ज्ञेयोऽभ्रूषः सज्वरस्तीव्ररुक्च ॥ १०५ ॥

रुधिरके प्रकोपसे तालुवेमें स्तब्ध (जड), लाल, ज्वरसहित और तीव्र पीडायुक्त जो सूजन होती है उसको वैद्य अभ्रूष कहते हैं ॥ १०५ ॥

अथ कच्छपलक्षणम्।

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणः स्यात् ॥ १०६ ॥ कूर्मोत्सन्नः मध्ये प्रोच्चः प्रान्ते नतः।

कफके प्रकोपसे तालुवेमें कछुवेकी समान बीचमें ऊंची और चारों ओर नीची और थोडी पीडावाली जो सूजन तत्काल उत्पन्न होती है उसको वैद्य कच्छप कहते हैं ॥ १०६ ॥

अथ तालर्बुदलक्षणम्।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं पित्तलिंगम् ॥ १०७ ॥ पद्माकारं पद्मकर्णिकावत्केसरैरिव पार्श्वतो दीर्घैर्मांसांकुरैर्वेष्टितम्।

तालुवेके बीचमें रुधिरके प्रकोपसे कमलकी केसरकी समान लम्बे मांसके अंकुरोंसे वेष्टित और सम्पूर्ण पित्तके लक्षणोंसे युक्त जो सूजन होती है उसको वैद्य तालर्बुद कहते हैं ॥ १०७ ॥

अथ मांससंघातलक्षणम्।

दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजश्च तालवन्तस्थं मांससंघातमाहुः ॥ १०८ ॥

कफके प्रकोपसे तालुवेके भीतर, पीडारहित जो दुष्टमांस एकत्रित हो जाता है उसको 'मांससंघात' कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथ तालुपुप्पुटलक्षणम्।

नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्मा मेदोयुक्तः पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ १०९ ॥

कफके प्रकोपके कारण तालुवेमें पीडारहित स्थिर और मेदवाली बेरीके फलकी समान ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको तालुपुप्पुट कहते हैं ॥ १०९ ॥

अथ तालुशोषलक्षणम्।

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते वापि तालु श्वासो वातात्तालुशोषोऽयमुक्तः ॥ ११० ॥

वायुके प्रकोपसे तालुवेमें अत्यन्त शोष अथवा तालुवा फटने लगे और श्वास भी होय इस रोगको तालुशोष कहते हैं ॥ ११० ॥

अथ तालुपाकलक्षणम्।

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति ॥ १११ ॥

पित्तके प्रकोपसे तालु अत्यन्त भयंकर प्रकारसे पक जाय इस रोगको तालुपाक कहते हैं ॥ १११ ॥

अथ तालुरोगचिकित्सा।

कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाध्रुवैः सह। सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्डीप्रघर्षणम्। ॥ ११२ ॥ ध्रुवः केवटी मोथा गुडतजीति लोके। अंगुष्ठांगुलिसन्दंशेनाकृष्य गलशुण्डिकाम्। छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थितम् ॥ ११३ ॥ मण्डलाग्रेण शस्त्रविशेषेण। अत्यादानात्स्रवेद्रक्तं ततः सम्भ्रम्यते नरः। हीनच्छेदाद्भवेच्छोथो लालास्रावो भ्रमस्तथा ॥११४॥ तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन दृष्टकर्मा विशारदः। गलशुण्डीं तु सञ्छिद्य कुर्यात्प्राप्तामिमं क्रमम् ॥ ११५ ॥ पिप्पल्यतिविषाकुष्ठवचामरिचनागरैः। क्षौद्रयुक्तैः सलवणैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥११६॥ वचामतिविषापाठाराम्लाफटुकरोहिणीः। निष्काथ्य पिचुमर्दं च कवलं तत्र कारयेत्। ॥ ११७ ॥ तुण्डिकेर्यभ्रूषे कूर्मे संघाते तालुपुप्पुटे। एष एव विधिः कार्यो विशेषः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शस्त्रकर्मणि ॥ ११८॥ तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम्। स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ११९ ॥

कूठ, काली मिरच, वच, सेंधानिमक, पीपल और पाढ तथा केवटीमोथा इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर घिसनेसे गलशुण्डी नष्ट हो जाती है। जो गलशुण्डी जीभपर होय तो अंगूठे और अंगुलीरूपी संडासीसे उसको खींचकर मंडलाग्र नामक तलवारकी समान शस्त्रसे काट देवे। जो गलशुण्डीके अति छेदन हो जाय तो रुधिरके अत्यन्त स्राव होनेसे मनुष्य मर जाता है और कम छेदन होय तो सूजन, लारका गिरना तथा भ्रम होता है इस कारण जिसने छेदनेकी बहुतसी क्रिया देखी होयँ ऐसा प्रवीण वैद्य बहुत संभालकर गलशुण्डीको काटकर पीछे पीपल, अतीस, कूठ, काली मिरच, वच और सोंठ इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसमें सेंधानिमक डालकर उससे प्रतिसारण करे। तथा वच, अतीस, पाढ, रासना, कुटकी और नीम इनको औटाकर इसका कवल धारण करे। तुंडिकेरी, अभ्रूप, कच्छप, मांसघात और तालुपुप्पुट इनपर भी यह चिकित्सा करे किंतु इनपर शस्त्रक्रिया कुछ बदल करके करे। तालुपाक होय तो पित्तको नष्ट करनेवाली चिकित्सा करे। तालुशोष होय तो स्नेहन, स्वेदन और वातनाशक अन्यान्य क्रिया भी करे ॥ ११२–११९ ॥

अथ गलरोगाणां नामानि संख्या च।
रोहिणी पञ्चधा प्रोक्ता कण्टशालूक एव च। अधिजिह्वश्च वलयो वलासश्चैकवृन्दकः ॥ १२० ॥ ततो वृन्दः शतघ्नी च गिलायुः कण्ठविद्रधिः। गलौघश्च स्वरघ्नश्च मांसतानस्तथैव च ॥१२१ ॥ विदारी कण्ठदेशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ १२२ ॥

पांच प्रकारकी रोहिणी, कंठशालूक, अधिजिह्व, वलय, वलास, एकवृंदक, शतघ्री, गिलायु, कंठविद्रधि, गलौघ, स्वरघ्न, मांसतान और विदारी इस प्रकार गलेके रोग अठारह १८ हैं ॥ १२०–१२२॥

अथ रोहिण्याः सनिदानप्राप्तिः।
गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम्। गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहन्त्यसून्व्याधिरयं च रोहिणी। ॥ १२३ ॥ गले अनिलः वृद्धः तथा पित्तकफौ मूर्च्छितौ दग्धौ मासं शोणितं च प्रदूष्य तथा गलोपसंरोधकरैरसून्निहन्ति। अयं व्याधिः रोहिणीसंज्ञो ज्ञेयः। सर्वा रोहिण्यस्त्रिदोषजा उत्कर्षात्तु वातादिव्यपदेशः।

गलेमें वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ पित्त, अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ अथवा वृद्धिको प्राप्त हुए तीनों दोष अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ रुधिर मांस तथा रुधिरको दूषित करके गलेको अवरोध करनेवाले अंकुरोंसे प्राणोंका नाश करे है। इस रोगको रोहिणी कहते हैं ॥ १२३ ॥

अथ वातजरोहिणीलक्षणम्।
जिह्वासमन्ताद्गृशवेदनास्तु मांसांकुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः। सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा ॥ १२४ ॥ जिह्वासमन्ताज्जिह्वायाः सर्वतः वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा कंपविनामस्तम्भादिभिरतिशयेन युक्ता।

जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनावाले और गलेको रोकनेवाले मांसके अंकुर होते हैं और उनके साथ वातसम्बन्धी स्तब्धता आदि उपद्रव भी होते हैं। यह वातसे उत्पन्न रोहिणी कही जाती है ॥ १२४ ॥

अथ पित्तजरोहिणीलक्षणम्।
क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥ १२५ ॥

गलेमें मांसके अंकुर तत्काल उत्पन्न हो जायँ, उनमें तत्काल दाह हो, तत्काल पक जायँ और तीव्र ज्वर हो जाय इसको पित्तज रोहिणी कहते हैं ॥ १२५ ॥

अथ कफजरोहिणीलक्षणम्।
स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा तु ॥ १२६ ॥ स्रोतोऽत्र कण्ठस्रोतः।

गलेकी शिराओंको रोककर गलेमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं और वह मंद मंद पकते हैं, भारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होते हैं, स्थिर होते हैं, इसको कफजा रोहिणी कहते हैं ॥ १२६ ॥

अथ त्रिदोषजरोहिणीलक्षणम् ।

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रिभवा भवेत्सा ॥ १२७ ॥

गलेमें उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षणोंवाले, गम्भीर पकनेवाले और कठिनतासे आराम होनेवाले ऐसे मांसके अंकुर उत्पन्न होयँ। यह त्रिदोषसे उत्पन्न रोहिणी कही जाती है ॥ १२७ ॥

अथ रक्तजरोहिणीलक्षणम् ।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥ १२८ ॥

फुडियोंसे व्याप्त और पित्तके लक्षणोंवाली जो रोहिणी होती है उसको वैद्य रुधिरजन्य रोहिणी कहते हैं। यह रोहिणी साध्य है ॥ १२८ ॥

अथ रोहिणीमरणावधिः ।

सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहात्कफसमुद्भवा । पञ्चाहात्पित्तसम्भूता सप्ताहात्पवनोत्थिता ॥ १२९ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न रोहिणी तत्काल मार देती है, कफसे उत्पन्न रोहिणी तीन दिनमें मार देती है, पित्तजन्य रोहिणी पांच दिनमें मार देती है और वातजन्य रोहिणी सात दिनमें मार देती है ॥ १२९ ॥

अथ कंठशालूकलक्षणम् ।

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः । खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवंति ॥ १३० ॥

कण्टकशूकभूतः कण्टकवत् शूकवच्च वेदनाजनकः ।

गलेमें कांटेकी समान तथा धानकी अनीकी समान वेदना उत्पन्न करनेवाले, खरखरे, कठिन, बेरकी गुठलीकी समान और शस्त्रकाट्य ऐसी जो ग्रंथि होय उनको कंठशालूक कहते हैं। यह ग्रंथि कफके प्रकोपसे होती है। यह शस्त्रके चीरनेसे साध्य है ॥ १३० ॥

अथाधिजिह्वकलक्षणम् ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादसृजैव मिश्रात् । ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ १३१ ॥

असृजा मिश्रादेवेत्यन्वयः ।

जीभके ऊपर जीभकी अणीकी समान जो सूजन होती है उसको अधिजिह्वक कहते हैं। यह सूजन जो पक जाय तो इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। यह रोग रुधिरमिश्रित कफके प्रकोपसे होता है ॥ १३१ ॥

अथ वलयलक्षणम् ।

बलास एवायतमुन्नतं च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य । तं सर्वथैवाप्रतिवार्यमेव विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ १३२ ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ कफ अन्नकी गतिको रोककर गलेमें लम्बी तथा ऊंची सूजनको उत्पन्न करे इसको वलय कहते हैं। यह रोग किसी प्रकार भी दूर नहीं होता इस लिये चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १३२ ॥

अथ बलासलक्षणम् ।

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् । मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं भिषजो विकारम् ॥ १३३ ॥ मर्मच्छिदं हृदयमर्मणि छेदेनेव वेदनाजनकम् ।

वृद्धिको प्राप्त हुए कफ तथा वायुसे गलेमें श्वास पीडासहित और हृदयके मर्मस्थलमें छेदन करनेवाली ऐसी व्यथाको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होती है इसको बलास कहते हैं। वैद्यलोग कहते हैं कि यह रोग दुस्तर है ॥ १३३ ॥

अथैकवृन्दलक्षणम् ।

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च । नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ १३४ ॥

अन्तः गलमध्ये अपाकी ईषत्पाकी । अमृदुः ईषन्मृदुः ।

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें गोल, नवी हुई, दाह और खुजलीसहित कुछेक पकनेवाली, कुछ कोमल और भारी सूजन उत्पन्न होती है। इस रोगको वैद्य एकवृन्द कहते हैं ॥ १३४ ॥

अथ वृंदलक्षणम् ।

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरन्ति । तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्ततोदं पवनात्मकं तु ॥ १३५ ॥

पित्त और रुधिरके प्रकोपसे अत्यंत ऊंची, गोल, अत्यंत दाहवाली और तीव्र ज्वरवाली जो सूजन होती है वैद्य इसको वृंद कहते हैं । इसमें यदि शूल होय तो वातसम्बन्धी जानना ॥ १३५ ॥

अथ शतघ्नीलक्षणम् ।

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधनी तु चितातिमात्रं पिंशितप्ररोहैः । अनेकरुक्प्राणहरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीसदृशी शतघ्नी ॥ १३६ ॥

घना कठिना । अनेकरुक् वातपित्तकफजतोददाहकण्ड्वादियुक्ता शतघ्नीसदृशी लौहकण्टकसञ्छन्ना शतघ्नी महती शिला तत्तुल्या यतः प्राणहरी ।

वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न होनेवाली व्यथा, दाह और खुजली आदि विकारोंवाली, कठिन, मांसके अंकुरोंसे अत्यंत व्याप्त और कंठको रोकनेवाली जो वत्ती उत्पन्न होती है उसको शतघ्नी कहते हैं। यह वत्ती त्रिदोषके प्रकोपसे उत्पन्न होनेके कारण शतघ्नी (लोहेके कांटोंसे ढकी हुई बडी भारी शिला) की समान होती है इस कारण इसको ' शतघ्नी ' कहते हैं ॥ १३६ ॥

अथ गलायुलक्षणम् ।

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः । संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गलायुसंज्ञः ॥ १३७ ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें आमलेकी गुठलीकी समान, स्थिर, अल्प वेदनावाली और भोजन किया अन्न गलेमें अटकासा मालूम होय ऐसी ग्रंथि उत्पन्न होय इसको वैद्य गलायु कहते हैं । यह रोग शस्त्रक्रियासे दूर होता है ॥ १३७ ॥

अथ कंठविद्रधिलक्षणम् ।

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः । स सर्वदोषैर्गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजश्च ॥ १३८ ॥

सम्पूर्ण दोषोंके प्रकुपित होनेसे सर्व प्रकारकी वेदनावाली और सम्पूर्ण गलेमें व्याप्त होकर जो सूजन उत्पन्न होती है उसको कंठविद्रधि कहते हैं, यह कंठविद्रधि त्रिदोषजन्य विद्रधिकी समान है ॥ १३८ ॥

अथ गलौघलक्षणम् ।

शोथो महान्यस्तु गलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता । कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्तितोऽसौ ॥ १३९ ॥ वायुगतेर्निहन्ता उदानवायुगतिरोधकः ।

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें अन्न तथा जलको रोकनेवाली, उदान वायुकी गतिको हरनेवाली और तीव्र ज्वरवाली जो बडी सूजन उत्पन्न होती है उसको गलौघ कहते हैं ॥ १३९ ॥

अथ स्वरघ्नलक्षणम् ।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः । कफोपदुष्टेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनास्स्वरघ्नः ॥ १४० ॥ ताम्यमानः तमः पश्यन् शुष्कविमुक्तकण्ठः शुष्को विमुक्तोऽस्वाधीनः कण्ठो यस्य सः । अस्वाधीनता भक्तं गिलितमशक्यत्वादनिलायनेषु वायुवर्त्मसु । श्वसनाद्घातात् ।

वायुके मार्ग कफसे दुष्ट होकर अंधकार दीखे, बारंबार हाँफनी आवे, गला सूख जाय तथा अन्नादि निगलनेको असमर्थ होय और स्वर बिगड जाय इस रोगको वैद्य स्वरघ्न कहते हैं । यह रोग वायुके प्रकोपसे होता है ॥ १४० ॥

अथ मांसतानलक्षणम् ।

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण । स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ १४१ ॥ प्रतानवान् विस्तारवान् । सुकष्टः अतिशयितं कष्टं यत्र सः ।

गलेमें फैलनेवाली, लटकती और महाकष्ट देनेवाली जो सूजन क्रमक्रमसे गलेको रोक देती है, इस रोगको मांसतान कहते हैं । यह रोग त्रिदोषजन्य होनेके कारण प्राणनाशक है ॥ १४१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ विदारीलक्षणम्।

सदाहस्तोदं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम्। पित्तेन विद्याद्ददने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ १४२ ॥ स पुरुषो येन पार्श्वेण विशेषाद्बाहुल्येन शेते तस्मिन्पार्श्वे सा विदारी भवतीत्यर्थः।

पित्तके प्रकोपसे गलेमें दाह, तीव्र पीडा, अत्यन्त लाल और दुर्गन्धित तथा मांसको फाडनेवाली जो सूजन उत्पन्न होती है उसको विदारी कहते हैं। मनुष्य जिस करवटसे अधिक सोता है उसी पार्श्वमें यह रोग उत्पन्न होता है ॥ १४२ ॥

अथ गलरोगचिकित्सा।

रोहिणीनां तु साध्यानां हितं शोणितमोक्षनम्। वमनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥ १४३ ॥ वातजां तु हते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत्। सुखोष्णान्स्नेहगण्डूषान्धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ १४४ ॥ विस्राव्य पित्तसम्भूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः। घर्षयेत्कवलो द्राक्षापरूषैः कथितो हितः ॥ १४५ ॥ आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ॥ १४६ ॥ आगारधूमः कोल इति लोके। कटुकानि शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि। श्वेताविडंगदन्तीषु तैलं सिद्धं ससैन्धवम्। नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोच्छ्रये ॥ १४७ ॥ श्वेता अपराजिता। पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं पित्तसम्भवाम्। विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुंडिकेरिवत् ॥ १४८ ॥ एककालं यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः। उपजिह्वकवच्चापि साधयेदधिजिह्वकम् ॥ १४९ ॥ एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत्। एकवृन्दमिव प्रायो वृन्दं च समुपाचरेत् ॥ १५० ॥ गलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत्। अमर्मस्थं सुसम्पक्वं छेदयेदलविद्रधिम् ॥ १५१ ॥

जो रोहिणी साध्य है उसमें रुधिर निकलवाना उत्तम है। वमन, धूमपान, कुल्ला और नस्यक्रिया यह रोपण रोहिणीके ऊपर करे। वायुसे उत्पन्न रोहिणी होय तो रुधिर निकलवाकर पश्चात् सेंधानिमक आदि लवणोंसे प्रतिसारण करे और सुहाते सुहाते ऐसे उष्ण स्नेहोंके कुल्लोंको वारंवार धारण करे। पित्तसे उत्पन्न रोहिणी होय तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर खांड, सहत तथा फूलप्रियंगू इनसे प्रतिसारण करे और दाख तथा फालसेका कवल धारण करे। कफसे उत्पन्न रोहिणी होय तो घरके धुआँसेकी धूल, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णसे प्रतिसारण करे। सुफेद अपराजिता, वायविडंग और जमालगोटा इनके कल्कसे पकाये हुए तैलमें सेंधानमक डालकर इसका नास देवे और सफेद कोयल, वायविडंग तथा जमालगोटा इनका कवल भी धारण करे। वैद्य पित्तजन्य रोहिणीको पित्तशामक उपायोंसे शांत करे। कंठशालूक होय तो वैद्य उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् तुंडिकेरीकी जो चिकित्सा कही है वह करे और जौका भोजन दिन रातमें एक वार थोडासा स्निग्ध भोजन करे। अधिजिह्वक होय तो जो चिकित्सा उपजिह्वककी कही है वह सब करे। एकवृन्द होय तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् शोधन विधि करे। वृन्द होय तो एकवृन्दकी समान अत्युत्तम चिकित्सा करे। गिलायु होय तो उसको शस्त्रसे काटकर दूर करे। कंठविद्रधि मर्ममें न होय और अच्छे प्रकारसे पक गई होय तो उसका छेदन करे ॥ १४३–१५१ ॥

अथ गलरोगाणां सामान्यचिकित्सा।

कंठरोगेष्वसृङ्मोक्षैस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्मभिः। चिकित्सकाश्चिकित्सां तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥ १५२ ॥ क्वाथं दद्याच्च दार्वीत्वङ्निम्बवार्क्ष्यकलिंगकम्। हरीतकीकषायो वा हितो माक्षिकसंयुतः ॥ १५३ ॥ कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिंगकाः। गोमूत्रक्वथिताः पीताः कंठरोगविनाशनाः ॥ १५४ ॥ मृद्वीका कटुका व्योषं दार्वीत्वक् त्रिफला घनम्। पाठा रसाञ्जनं दूर्वा तेजोह्वेति सुचूर्णितम् ॥ १५५ ॥ क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे महौषधम्। योगाश्चैते त्रयः प्रोक्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वातपित्तकफापहाः ॥ १५६ ॥ यवाग्रजं तेजवतीं च पाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् । क्षौद्रेण कुर्याद्वुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ १५७ ॥

प्रवीण वैद्य गलेके रोगोंका रुधिर निकलवाकर और तीव्र नस्य आदि देनेसे चिकित्सा करे । दारुहलदी, तज, नीम, रसौत और इन्द्रजौ इनका क्वाथ देनेसे अथवा सहत डालकर हरडका क्वाथ पीनेसे गलेके रोग नष्ट हो जाते हैं । यह वातज गलरोगोंकी चिकित्सा कही है । कुटकी, अतीस, देवदारु, पाढ, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनको गोमूत्रमें पकाकर पिये तो गलेके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं । यह पित्तजन्य गलरोगोंकी चिकित्सा कही है । दाख, कुटकी, सोंठ, मिरच, पीपल, दारुहलदी, तज, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पाढ, रसौत, चुरनहार और तेजबल इनका बारीक चूर्ण करके सहतमें मिलाकर उपयोग करे तो कफजन्य समस्त गलरोग नष्ट हो जाते हैं । जवाखार, तेजबल पाढ, रसौत, दारुहलदी, और पीपल इनकी सहतमें गोली बनाकर मुखमें रखनेसे सर्वप्रकारके गलरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १५२-१५७ ॥

अथ समस्तमुखरोगसंख्या ।

पृथग्दोषैस्त्रयो रोगाः समस्तमुखजाः स्मृताः ॥ १५८ ॥

वातज, पित्तज और कफज ऐसे सम्पूर्ण मुखमें तीन प्रकारके रोग होते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वातजमुखरोगलक्षणम् ।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यत्राचितं सर्वसरः स वातात् ॥ १५९ ॥

व्यथायुक्त छालोंसे चारों ओर मुख भरा होय तो उसको वातजन्य सर्वसर रोग जानना ॥ १५९ ॥

अथ पैत्तिकमुखरोगलक्षणम् ।

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यत्राचितं चापि स पित्तकोपात् ॥ १६० ॥

दाहयुक्त और पीले रंगके छोटे छोटे छालोंसे सम्पूर्ण मुख व्याप्त होय तो उसको पित्तजन्य सर्वसर मुखरोग कहते हैं ॥ १६० ॥

अथ कफजमुखरोगलक्षणम् ।

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यत्राचितं चापि स वै कफेन ॥ १६१ ॥ यत उक्तं सुश्रुतेन-अल्पवेदनैरिति ।

मंदवेदनायुक्त, खुजलीयुक्त और मुखके वर्णवाले छालोंसे सम्पूर्ण मुख भर जाय तो उसको कफजनित सर्वसर मुखरोग कहते हैं ॥ १६१ ॥

अथासाध्या मुखरोगाः ।

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्यास्तु मांसरक्तत्रिदोषजाः । दन्तवेष्टेषु वर्ज्या तु त्रिलिंगगतिसौषिरौ ॥ १६२ ॥ त्रिलिंगगतिः त्रिदोषजा नाडी । दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः । जिह्वारोगेष्वलासस्तु तालुजेष्वर्बुदं तथा ॥ १६३ ॥ स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासः स हि दारुणः । गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ १६४ ॥ असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा दश नवोत्तराः । तेषु वापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ १६५ ॥

ओष्ठके रोगोंमें मांससे उत्पन्न हुए, रुधिरसे उत्पन्न हुए और त्रिदोषज रोग असाध्य हैं । मसूढोंके रोगोंमें त्रिदोषसे उत्पन्न नाडी और सौषिर ये दो रोग असाध्य है । दंतरोगोंमें श्यावदंतक, दालन और भंजनक ये तीन रोग असाध्य हैं । जीभके रोगोंमें अलास असाध्य है । तालुवेके रोगोंमें तालवर्बुद असाध्य है । गलेके रोगोंमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारी, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी ये नौ रोग असाध्य हैं । ऊपरके १० मिलायके ये उन्नीस रोग जो असाध्य माने हैं इनपर भी वैद्य चिकित्सा करे क्योंकि कदाचित् आरोग्य हो जाय ॥ १६२-१६५ ॥

अथ सम्पूर्णमुखरोगचिकित्सा ।

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् । तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ १६६ ॥ पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वः पित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ १६७ ॥ प्रतिसारणगण्डूषधूमसंशोधनानि च। कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ १६८ ॥ मुखपाके शिरावेधः शिरसश्च विरेचनम्। मधुमूत्रघृतक्षीरैः शीतैश्च कवलग्रहः ॥ १६९ ॥ जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः। क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ १७० ॥ कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम्। कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्रयहात् ॥ १७१ ॥ मुखपाकव्रणक्लेदौदौर्गन्ध्यमुपशाम्यति। पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः ॥ १७२ ॥ पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने। पञ्चवल्कलजः क्वाथस्त्रिफलासम्भवोऽथ वा ॥ १७३ ॥ मुखपाके प्रयोक्तव्यः सक्षौद्रो मुखधावने। स्वरसः कथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया। सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा। ॥ १७४ ॥ सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः। यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ १७५ ॥ राजद्रुमः धनवहेरा इति लोके। तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च। क्षौद्रा ढ्यो दग्धवल्कस्य गण्डूषो मुखपाकनुत्। ॥ १७६ ॥ आस्वादिता सकृदपि मुखगन्धं सकलमपनयति। त्वग्बीजपूरफलजा पवनमपाच्यं वारयति ॥ १७७ ॥ हरिद्रा निम्बपत्राणि मंधुकं नीलमुत्पलम्। तैलभेभिर्विपक्तव्यं मुखपाकहरं परम् ॥ १७८ ॥ यष्टीमधु पलमेकं त्रिंशन्नीलोत्पलस्य तैलस्य। प्रस्थं तद्द्विगुणपयोविधिना पक्वं तु नस्येन ॥ १७९ ॥ निशि वदनस्य स्रावं क्षपयति गात्रस्य दोषसंघातम्। कचघर्षत्वमवश्यं क्रमशोऽभ्यङ्गेन जन्तूनाम् ॥ १८० ॥

खारी चूर्णोंसे प्रतिसारण करे और वातनाशक पदार्थोंसे पकाये हुए तेलका कवल तथा नस्य देवे तो वातजन्य सर्वसर नष्ट हो जाता है। शरीरको विरेचन आदि संशोधन कर पित्तनाशक सम्पूर्ण मधुर तथा शीतल विधि करे तो पित्तजन्य सर्वसर दूर हो जाता है। पित्तजन्य सर्वसरमें प्रतिसारण, कवल, धूमपान और संशोधन यह सब पित्तनाशक करे। कफको हरनेवाली विधि करे और कफनाशक प्रतिसारण भी करे तो कफजन्य सर्वसर नष्ट हो जाता है। नस छेदकर रुधिर निकाले, शिरोविरेचन करे और सहत, मूत्र, घी, दूध तथा शीतल अन्य पदार्थोंके भी कवल धारण करे तो मुखपाक दूर हो जाता है। जावित्री, गिलोय, दाख, जवासा, हरड, बहेडा, आमले इन सबका क्वाथ बनावे उस क्वाथको शीतल करके उसमें सहत डालकर पिये तो मुखपाक दूर हो जाता है। नित्य अनेक वार जावित्री चावे तो मुखपाक दूर हो जाता है। काला जीरा, कूठ और इन्द्रजौ इनको चर्वण करे तो मुखपाक, मुखव्रण, मुखका क्लेद और मुखकी दुर्गंधि भी शमन हो जाती है। कडवे परवलके, नीमके, जामुनके, आमके और मालतीके नवीन पत्ते इन पंचपल्लवोंका क्वाथ मुख धोनेके लिये बहुत उत्तम है। मुखपाक होय तो पंचवल्कलका अथवा हरड, बहेडा और आमलेके क्वाथमें सहत डालकर उससे मुखको शुद्ध करे। दारुहलदीके गाढे स्वरसमें सहत डालकर उसका उपयोग करनेसे मुखरोग, रुधिरविकार और नाडीव्रण ये सब नष्ट हो जाते हैं। सतवन, खस, कडवे परवल, हरड, कुटकी, मुलैठी, अमलतास और लाल चंदन इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे मुखपाक दूर हो जाता है। तिल, नीले कमल, घी, खांड, दूध और सहत इनके कुल्ले करनेसे मुखपाक दूर हो जाता है, जलनेसे उत्पन्न मुखपाकका यह उत्तम उपाय है। बिजौरेके फलकी छालको एक वार खानेसे भी मुखकी सम्पूर्ण दुर्गंधि दूर हो जाती है और अपानवायु भी शांत होती है। हलदी, नीमके पत्ते, मुलैठी और नीले कमल इनसे पकाये हुए तेलके कुल्ले आदि करनेसे भी मुखपाक अवश्य नष्ट हो जाता है। मुलैठी ४ चार तोले और नीले कमल २१ इक्कीस तोले इनका कल्क डालकर १२८ एक सौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अढाईस तोले दूधमें तेलको पकावे। इस तेलका नास लेनेसे रात्रिमें उत्पन्न हुआ मुखका स्राव और शरीरके रोगोंके समूह नष्ट हो जाते हैं। इस तेलकी मालिश करनेसे बालोंकी कमजोरी, घिसना, टूटना और जूँवें आदि सब दूर होते हैं ॥ १६६–१८० ॥

इति मुखरोगाधिकारः संपूर्णः।

अथ विषाधिकारः।

स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते। दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ १ ॥

स्थावर और जंगम इस रीतिसे विष दो प्रकारका है। स्थावर विषके दश आश्रय हैं और जंगम विषके सोलह आश्रय (स्थान) हैं ॥ १ ॥

अथ स्थावरविषस्य दश स्थानानि।

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक् क्षीरं सारमेव च। निर्यासो धातवः कन्दः स्थावरस्याश्रया दश ॥ २ ॥ तद्यथा–मूलविषं करवीरादि। पत्रविषं विषपत्रिकादि। फलविषं कर्कोटकादि। पुष्पविषं वेत्रादि। त्वक्सारनिर्यासविषाणि करम्भादीनि। क्षीरविषं स्नुह्यादि। धातुविषं हरितालादि। कन्दविषं वत्सनाभशक्रुकादि।

१ मूल, २ पत्ते, ३ फल, ४ फूल, ५ छाल, ६ दूध, ७ सार, ८ गोंद, ९ धातु और १० कंद इस प्रकार स्थावर विषके दश स्थान हैं। मूलविष कनेर आदिकी जडमें रहता है। पत्रविष विषपत्रिकादिमें रहता है। फलविष कर्कोटकादि फलोंमें रहता है। फूलविष वेत आदिके फूलोंमें रहता है। छाल सार और गोंद विष चौंटली आदिकी छालमें रहता है। दूधविष थूहर आदिके दूधमें, धातुविष हरिताल सोमल आदि धातुओंमें और कंदविष वत्सनाभ शक्रु आदिके कंदमें रहता है ॥ २ ॥

अथ जंगमविषस्य षोडश स्थानानि।

दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्राश्च नखमूत्रमलानि च। शुक्रं लालास्पर्शमुखसंदंशं शवमर्दितम्। गुदास्थिपित्तशूकानि दश षड् जंगमाश्रयाः ॥ ३ ॥ तद्यथा। दृष्टिनिःश्वासविषाः दिव्याः सर्पाः। दंष्ट्राविषाः भौमसर्पाः। दंष्ट्रानखविषा व्याघ्रादयः। मूत्रपुरीषविषाः गृहगोधिकादयः। शुक्रविषा मूषिकादयः। लालाविषाः उच्चिङ्गटादयः। लूता लालास्पर्शमूत्रपुरीषार्तवशुक्रमुखसंदंशविषाः। मुखसंदंशदंष्ट्रापर्दितगुदपुरीषविषाः चित्रशीर्षादयः। अस्थिविषाः सर्पादयः। पित्तविषाः शकुलमत्स्यादयः। शूकविषाः भ्रमरादयः। शवविषा गतासवः कीटसर्पदेहाः।

दृष्टि, निश्वास, डाढ, नख, मूत्र, विष्ठा, वीर्य, लार, मुख, स्पर्श, डसना, अधोवायु, गुदा, अस्थि, पित्त और शूक (मुखकी अनी) इस प्रकार जंगम विषके यह सोलह आश्रय हैं। दिव्य सर्पोंकी दृष्टि और निश्वासमें विष रहता है। पृथ्वीके भयंकर सर्पोंकी दाढमें विष रहता है। बाघ, सिंह आदि जीवोंकी दाढ तथा नखूनोंमें विष रहता है। छपकली आदि जीवोंके मूत्र और विष्ठामें विष रहता है। चूहे आदिके शुक्रमें विष रहता है। मकडी आदिकी लारमें विष रहता है। चित्रशीर्ष आदिकी लारमें, स्पर्शमें, मूत्रमें, विष्ठामें, वीर्यमें, मुखमें, दंशमें, अधोवायुमें तथा गुदामें विष रहता है। सर्प आदिकी अस्थियोंमें विष रहता है। शकुल आदि मछलियोंके पित्तमें विष रहता है और भौंरे आदिके मुखके अग्रभागमें विष रहता है ॥ ३ ॥

अथ मूलादिविषाणां प्रत्येकशो लक्षणम्।

तत्र मूलविषकार्यम्।

उद्वेष्टनं मूलविषैर्मोहः प्रलापनं तथा ॥ ४ ॥

मूलविषको भक्षण करनेसे शरीर ऐंठे, बेहोशी और प्रलाप होता है ॥ ४ ॥

अथ पत्रविषकार्यम्।

जृम्भणं वेपनं श्वासो नृणां पत्रविषैर्भवेत् ॥ ५ ॥

पत्रविषको भक्षण करनेसे जम्भाई आती है, कम्प और श्वास होता है ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ फलविषकार्यम्।

मुष्कशोथः फलविषैर्दाहो द्वेषश्च भोजने॥६॥

फलविषको भक्षण करनेसे अंडकोषोंमें सूजन, दाह और भोजनपर अरुचि होती है॥ ६॥

अथ पुष्पविषकार्यम्।

भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं मूर्च्छनं तथा७॥

फूलके विष खानेसे वमन, अफरा और मूर्च्छा होती है॥ ७॥

अथ त्वक्सारनिर्यासविषकार्यम्।

त्वक्सारनिर्यासविषैरुपभुक्तैर्भवन्ति हि। आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंश्रयाः॥८॥

छाल, सार और गोंदके विषको भक्षण करनेसे मुखमें दुर्गंध, मस्तकमें पीडा, शरीरमें रूक्षता और कफका स्राव होता है॥ ८॥

अथ क्षीरविषकार्यम्।

फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता॥९॥

क्षीरविषको खानेसे मुखमें झाग आते हैं, दस्त होते हैं और जीभ जड हो जाती है॥ ९॥

अथ धातुविषकार्यम्।

हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि। प्रायेण कालघातीनि विषान्येतानि निर्दिशेत्॥ १०॥ एतानि मूलविषाणि नव कालघातीनि कालान्तरमारकाणि।

धातु विषको खानेसे हृदयमें पीडा, मूर्च्छा और तालुवेमें दाह होता है। उपरोक्त मूल आदि नौ विषोंको खानेसे विशेष करके कालांतरमें मृत्यु होती है॥ १०॥

अथोपर्युक्तनवविषविशेषलक्षणम्।

तत्र कंदविषविशेषकार्यम्।

कन्दजान्युग्रवीर्याणि यान्युक्तानि त्रयोदश। सर्वाण्येतानि कुशलैर्ज्ञेयानि दशभिर्गुणैः॥ ११॥

कंदसे उत्पन्न तेरह प्रकारका विष जो कि, सुश्रुत आदि ग्रंथोंमें कहा है वह उग्रशक्तिसम्पन्न है अर्थात् तत्काल प्राणोंको नष्ट कर देता है॥ ११॥

अथ विषपरीक्षा।

स्थावरं जंगमं वापि कृत्रिमं चापि यद्विषम्। सद्यो निहन्ति तत्सर्वं गुणैश्च दशभिर्युतम्॥ १२॥

प्रवीण वैद्य सम्पूर्ण विषोंकी परीक्षा नीचे लिखे दश गुणोंसे करे। स्थावरविष, जंगमविष और कृत्रिम विष जो दशगुणोंसे युक्त होय तो तत्काल मनुष्यको मार देते हैं॥ १२॥

अथ विषस्य दश गुणाः।

रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवायि च। विकाशि विशदं चैव लघ्वपाकि च ते दश॥ १३॥

रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायी, विकाशी, विशद, लघु और अपाकी ये दश गुण विषमें रहते हैं॥ १३॥

अथोक्तदशगुणानां कार्यम्।

तद्रौक्ष्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यात्पित्तं सशोणितम्। तैक्ष्ण्यान्मतिं मोहयति मर्मबन्धाञ्छिनत्ति हि॥१४॥ शरीरावयवान्सौक्ष्म्यात्प्रविशेद्विकरोति च। आशुत्वादाशु तत्प्रोक्तं व्यवायात्प्रकृतिं हरेत्॥१५॥ विकाशित्वात्क्षपयति दोषान्धातून्मलानपि। अतिरिच्यते वैशद्याद्दुश्चिकित्स्यं च लाघवात्॥१६॥ दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात्क्लेशयते चिरम्॥१७॥

तहां विष रूक्ष होनेके कारण वायुको कुपित करे है। उष्ण होनेके कारण पित्त तथा रुधिरको प्रकुपित करे है। तीक्ष्ण होनेके कारण बुद्धिको मोहयुक्त और मर्मोंके बंधनोंको तोडे है। सूक्ष्म होनेके कारण शरीरके अवयवोंमें प्रविष्ट हो जाता है। आशु होनेके कारण शरीरमें तत्काल शीघ्रतासे फैलकर विकारोंको करे है। व्यवायी होनेके कारण प्रकृतिको बदल देता है। विकाशी होनेके कारण दोषोंको, धातुओंको तथा मलको क्षय कर देता है। विशद होनेके कारण अत्यंत दस्तोंको लाता है। लघु होनेके कारण दुश्चिकित्स्य हो जाता है और अपाकी होनेके कारण बडी कठिनतासे बडे यत्नोंसे पचता है, इन गुणोंके होनेसे विष बहुत दिनोंतक दुःख देता है॥ १४–१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ विषलिप्तशस्त्रहतलक्षणम्।

सद्यः क्षतं पच्यते यस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम्। कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य वापि ॥ १८ ॥ तृष्णातापौ दाहमूर्च्छे च यस्य दिग्धं विद्धं तं मनुष्यं व्यवस्येत्। लिंगान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्दत्तः क्ष्वेडो वा व्रणे यस्य चापि ॥ १९ ॥ पच्यते चाप्यभीक्ष्णं पुनः पुनः पाकमेति। तापः बहिः स्थितः। दाहोऽभ्यन्तरे कुर्यादित्यत्र क्षतं कर्तृपदं बोद्धव्यम्।

घाव तत्काल पक जाय, घावमेंसे रुधिर बहा करे, बारंबार पके, घावमेंसे काला क्लेदयुक्त तथा अत्यंत दुर्गंधित मांस गिरे, तृषा लगे, बाहर संताप हो, भीतर दाह हो और मूर्च्छामी होय तो जानना कि, इस मनुष्यके विषसे बुझे हुए शस्त्रका प्रहार हुआ है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ विषदातृलक्षणम्।

इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः। जानीयाद्विषदातारमेभिर्लिंगैश्च बुद्धिमान् ॥ २० ॥ न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च। अपार्थं बहु सङ्कीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ २१ ॥ अंगुलीः स्फोटयेदुर्वीं विलिखेत्प्रहसेदपि। वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चैकैकमीक्षते ॥ २२ ॥ विवर्णवक्त्रो ध्मानश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्ति च। आलभेतासकृद्दीनः करेण च चिरारुहान् ॥ २३ ॥ निरीयासुरपद्वारैर्वीक्षते च पुनः पुनः। वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ २४ ॥ इंगितमभिप्रायसूचकमाकारम्। मुखवैकृतं मुखवैवर्ण्यादि। एभिर्लिंगैर्वक्ष्यमाणैः। न ददात्युत्तरं पृष्टः स्वीयसत्कर्मजनितव्यामोहात् संकीर्णमस्फुटम्। भयजनितपर्वव्यथापनोदाय अंगुलीः स्फोटयेत्। प्रहसेदहेतावपि। ध्मानः दग्धसमानवर्णः। आलभेत्स्पृशेत्। विपरीतं यथा स्यादेवं वर्तते।

प्रायः राजा और बडे मनुष्योंको उनके शत्रु सेवक अन्नादिकमें विष मिलाकर देते हैं इसलिये उस विष देनेवालेके लक्षण नीचे लिखते हैं। मनुष्योंके अभिप्रायको जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष वाणी (बोलना), चेष्टा (उठना, बैठना) और मुखके विकाररूप नीचे लिखे लक्षणोंसे विष देनेवालेको जान लेवें। विष देनेवालेसे पूछनेपर वह अपने दुष्ट कर्मकी बेहोशीसे उत्तर न देय और जो मनको रोककर बोले तो बोला न जाय, वा घबडा जाय, मूर्खकी समान बहुत व्यर्थ तथा गिडगिडाकर गडबड वचन बोले, भयसे उत्पन्न हुई संधियोंकी पीडाको दूर करनेके लिये अंगुलियोंको चटकावे, विनाही कारण हँसे, पृथिवीको लिखे वा खोदे, कांपे, भयभीत होकर एक एक मनुष्यको देखे, मुँहका रंग बदल जाय वा मुख उतर जाय, जलेके समान रंगवाला हो जाय, नखोंसे तृण आदिको तोडे, रंककी समान होकर बारंबार बालोंको हाथसे छुवे, दरवाजेको छोडकर दूसरे मार्गसे जानेकी बारंबार चेष्टा करे, विपरीत कामोंकी इच्छा करे। असानी (पागल) सा होकर इधर उधर देखे और सबसे पीठ फेरकर बैठे, विष देनेवालेके ये लक्षण होते हैं ॥ २०-२४ ॥

अथ जंगमविषस्य सामान्यकार्यम्।

निद्रां तंद्रां क्लमं दाहं सम्पाकं लोमहर्षणम्। शोथं चैवातिसारं च कुरुते जंगमं विषम् ॥ २५ ॥

जंगम विष निद्रा, तन्द्रा, ग्लानि, दाह, पाक, रोमांचोंका होना, सूजन और अतिसारको उत्पन्न करे है ॥ २५ ॥

अथ जंगमविषस्यातितीक्ष्णत्वेन तदाश्रयसर्पलक्षणम्।

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलराजिलाः। यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥ २६ ॥ फणिनो भोगिनो ज्ञेयाः संख्यातास्तेऽत्र विंशतिः। मण्डलैर्विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षट् ते मण्डलिनो ज्ञेया ज्वलनार्कविषाः स्मृताः ॥ २७ ॥ स्निग्धा विविधवर्णाभिस्तिर्यगूर्द्धं च राजिभिः । विचित्रा इव ये भान्ति राजिलास्ते हि तेऽपि षट् ॥ २८ ॥ एते यथाक्रमं वातपित्तकफात्मानो बोध्याः । द्व्यन्तरा द्वे अन्तरे भेदो येषां ते द्व्यन्तराः यथा भोगिनो मण्डलिन्यां जाता इत्यादि ।

मुख्यतासे प्रायः भोगी, मंडली और राजिल इस प्रकार तीन जातिके सर्प हैं । इनमें भोगीसर्प वातप्रकृतिवाले हैं । मंडलीसर्प पित्तकी प्रकृतिवाले हैं और राजिल सर्प कफकी प्रकृतिवाले हैं । और जो एक जातिके सर्पसे दूसरी जातिकी सर्पिणीसे उत्पन्न (जैसे कि, भोगीजातिके सर्पसे मंडलीजातिकी सर्पिणीमें उत्पन्न) हुआ होय वह मिश्रित प्रकृतिवाला है । फणवाले सर्पको भोगी कहते हैं और उसके बीस भेद हैं । जो सर्प विविध मंडलोंसे चित्रित, मोटे और मंदगतिवाले हैं वे मण्डली जातिके सर्प हैं । ये सर्प अग्नि तथा सूर्यकी समान अत्यन्त उग्र विषवाले होते हैं, उनके छः भेद हैं । जो सर्प स्निग्ध हैं और आडी सीधी नीची ऊंची रेखाओंसे चित्रित दीखते हैं वह राजिल सर्प कहे जाते हैं और उनके छः भेद हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ भोगिसर्पादिकृतदंशलक्षणम् ।

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् । पीतो मण्डलिनः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ २९ ॥ राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः । पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्लेष्मविकारवान् ॥ ३० ॥

भोगी सर्पका डसा हुआ स्थान काला होता है और सम्पूर्ण वायुसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करे है । मंडली सर्पका काटा हुआ स्थान पीला सूजनयुक्त होता है, कोमल और पित्तसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करे है । राजिल सर्पका काटा हुआ स्थान स्थिर सूजनसहित चिकना पांडु स्निग्ध अत्यन्त गाढे रुधिरवाला और संपूर्ण कफजनित विकारोंवाला होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ विशिष्टदेशादिदष्टस्य असाध्यत्वम् ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकिसंध्यासु चतुष्पथेषु । याम्ये च पित्र्ये परिवर्जनीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दृष्टाः ॥ ३१ ॥ याम्ये भरण्यां पित्र्ये मघायाम् ।

पीपल वृक्षके नीचे, देवमंदिरमें, स्मशानभूमिमें, बाँबीमें, चौराहेमें, संध्याकालमें, भरणी नक्षत्रमें और मघा नक्षत्रमें सर्पका काटा हुआ असाध्य है, शिरा मर्म स्थानोंमें काटा हुआ भी असाध्य है ॥ ३१ ॥

अथ दर्वीकरजातिसर्पाणां विषम् ।

दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति मेघानिलोष्णे द्विगुणा भवन्ति ॥ ३२ ॥ उष्णे उष्णसंयोगे ।

दर्वीकर जातिके सर्पका विष तत्काल मार देता है और वह सर्प वर्षा, पवन और गरमीके संयोगसे दुगुने बढते हैं अथवा इनके संयोगसे उनका विष दुगुना बढता है ॥ ३२ ॥

अथ दर्वीकरलक्षणम् ।

रथाङ्गलांगलच्छत्रस्वस्तिकांकुशधारिणः । ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगामिनः ॥ ३३ ॥

जो सर्प चक्र, हल, साथिया और अंकुशके चिह्नयुक्त हो, फणवाला हो और बहुत शीघ्र चलनेवाला हो उसको दर्वीकर कहते हैं ॥ ३३ ॥

अथापरेषु येषु यथाशुघातित्वं संभवति तानाह ।

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु । क्षीणे क्षते मोहिनि कुष्ठजुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि ॥ ३४ ॥ शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति । शीताद्भिराद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ ३५ ॥ जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकण्ठभंगः । कृष्णश्च रक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः ॥ ३६ ॥ केशशातः आकर्षणात् । नासावसादः नासायाः नतत्वम् । कंठभंगः ग्रीवा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धारणाऽशक्तिः । हन्वोः स्थिरत्वं हनुद्वयस्तम्भः । अपरं च वान्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्द्धमधश्च यस्य । दंष्ट्रानिपातांश्चतुरं च पश्येद्यस्यापि वैद्यैः परिवर्जनीयः ॥ ३७ ॥ यस्य च नासामुखलिंगगुदादिभ्यो रक्तं स्रवेत् । उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाप्यथ वा विवर्णम् । सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ ३८ ॥ अत्यर्थमुपद्रुतं वा ज्वरातिसारादिभिरतिशयेन उपद्रुतम् । हीनस्वरं वक्तुमक्षमम् । विवर्णं कृष्णवर्णम् । सारिष्टं नासाभंगादियुक्तम् । अवेगिनं वेगो विषवेगः । लहरि इति लोके । तद्रहितम् । स्थावरं जंगमं च विषमेव जीर्णत्वादिभिः कारणैर्दूषीविषसंज्ञां लभते ।

अजीर्णसे पीडित, पित्तसे पीडित, धूपसे व्याकुल, बालक, वृद्ध, भूखा, क्षीण, घावयुक्त, प्रमेहरोगी, कुष्ठरोगी, रूखा शरीरवाला, निर्बल मनुष्य और गर्भवती स्त्री ये विषसे तत्काल मर जाते हैं । यदि विषसे पीडित मनुष्यके शरीरमें शस्त्रसे घाव करनेसे रुधिर न निकले, चाबुक मारनेसे शरीरमें उछले नहीं और शीतल जल बराबर शरीरपर डालनेसे रोमांच न होयँ तो ऐसे विषरोगीकी चिकित्सा न करे । जिसका मुख टेढा हो गया होय, छूनेसे बाल टूट टूटकर गिरें, नाक तिरछी हो जाय, बैठ जाय, नाड अर्थात् गरदन झुक जाय, लटक जाय, काटनेकी जगह काली लाल सूजन हो और दोनों जाबडे स्तब्ध हो जायँ उसकीभी चिकिसा न करे । जिसके मुखमेंसे गाढी वमन निकलती हो, नाक, मुख, लिंग तथा गुदा आदिमेंसे रुधिर निकलता हो और जिसके चार दांत लगे होयँ उसकी भी वैद्य चिकित्सा न करे । जो मनुष्य उन्मत्त हो, ज्वर अथवा अतीसार आदिसे अत्यंत पीडित होय, बोलनेको असमर्थ हो, शरीरका वर्ण काला पड गया हो, नाक बैठ जाना आदि अरिष्टोंसे युक्त हो और जिसके विषकी लहर न उठे उसको भी त्याग देना चाहिये, अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ऐसे मनुष्य तत्काल ज्वरसे मरजाते हैं । स्थावर और जंगम विष भी जीर्णतादि कारणोंसे दूषीविष कहे जाते हैं ॥ ३४–३८ ॥

अथ दूषीविषलक्षणम् ।

जीर्णं विषघ्नौषधिदूषितं वा दावाग्निवाततपशोषितं वा । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ ३९ ॥ जीर्णमतिपुराणम् । विषघ्नौषधिदूषितं विषघ्नीभिरौषधीभिर्वीर्यहानिकृतम् । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं स्वभावादेव दशानां गुणानां मध्ये एकद्वित्र्यादिगुणहीनम् ।

जो विष अत्यंत पुराना हो गया हो, अथवा विषनाशक औषधियोंसे हीन वीर्य हो, अथवा दावाग्नि, वायु और धूपसे सूख गया हो, अथवा स्वाभाविक दश गुणोंमेंसे एक दो तीन चार गुणरहित हो गया हो तो उसको दूषीविष कहते हैं ॥ ३९ ॥

अथ दूषीविषकार्यम् ।

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि । तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धिवैरस्ययुतः पिपासी । मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमिं च विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ ४० ॥ न निपातयेन्न मारयेत् । कफान्वितं कफेन मन्दीकृतौष्ण्यादिगुणम् । वर्षगुणानुबन्धि कफेनाग्नेर्मान्द्यादित्वादपाकाच्चिरस्थायि । तथा दूषीविषजदद्रुरोगवतां भिन्नपुरीषवर्णः भिन्नपुरीष उद्गतमलः भिन्नविवर्णः विचेष्टमानः विरुद्धां चेष्टां कुर्वन्मूर्च्छादीन्व्याधीलँभते ।

यह दूषीविष हीनवीर्य होनेके कारण मारता तो नहीं है किंतु कफसे उष्णादिगुणोंको मन्द होनेके कारण और कफसे अग्निकी मंदता होकर यह विष नहीं पकनेके कारण बहुत दिनोंतक शरीरमें रहता है । दूषीविषसे पीडित मनुष्यके दस्त पतला आता है, शरीरका रंग बदल जाता है, विरुद्धचेष्टा करने लगता है, चैन नहीं मिलता और मूर्च्छा, भ्रम, वाणीका गद्गदपना और वमन ये व्याधि उत्पन्न होती हैं ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ स्थानविशेषेण दूषीविष-लक्षणाविशेषः।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी । भवेत्समुद्धस्तशिरोऽङ्गरुट्को विलूनपक्षश्च यथा विहङ्गः ॥ ४१ ॥ समुद्धस्तशिरोऽङ्गरुट्कः समुद्धस्ताः शिरोरुहाः केशा अङ्गरुहाणि लोमानि यस्य सः एतदपि लिङ्गं पक्वाशयस्थे दूषीविषे बोद्धव्यम् । स्थितं रसादिष्वथ तद्यथोक्तान्करोति धातुप्रभवान्विकारान् ॥ ४२ ॥ तत्र दूषीविषे । यथोक्तान्सुश्रुते व्याधिसमुदेशीयोक्तान् ।

दूषीविष आमाशयमें प्राप्त होय तो कफसम्बन्धी और वायुसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करता है। पक्वाशयमें प्राप्त होय तो वात और पित्तसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करे है, बाल और रोमोंमें प्राप्त होय तो पंखरहित पक्षीकी समान कर देता है, दूषीविष रसादि धातुओंमें प्राप्त होय तो सुश्रुतके सूत्रस्थानके व्याधिसमुदेशीय नामके चौबीसवें अध्यायमें कहे अनुसार धातुसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करे है ॥४१॥४२॥

अथ दूषीविषस्य प्रकोपसमयः।

कोपं तु शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥ ४३ ॥

यह दूषीविष अत्यंत शीतके समय, अत्यंत पवन चलनेके समय और बादलोंसे घिरे हुए दिनमें तत्काल प्रकोपको प्राप्त होता है, अब प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूपको कहता हूं सो सुनो ॥ ४३ ॥

अथ प्रकुपितदूषीविषपूर्वरूपम्।

निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथवाङ्गमर्दः ॥ ४४ ॥ विश्लेषः गात्रशैथिल्यम् । हर्षः रोमाञ्चः ।

निद्रा, शरीरमें भारीपन, जम्भाइयोंका आना, अंगोंमें शिथिलता, रोमांचोंका होना, अंगोंका टूटना ये प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूप हैं ॥ ४४ ॥

अथ प्रकुपितदूषीविषरूपम्।

ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मंडलकोठजन्म । मांसक्षयं पाणिपदे प्रशोथं मूर्च्छां तथा च्छर्दिमथातिसारम् ॥ ४५ ॥ दूषीविषं श्वासतृषाज्वरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ४६ ॥ अन्ने भुक्ते पूगफलेनेव मदः। अविपाकः अन्नस्य ।

प्रकोपको प्राप्त हुआ दूषीविष अन्न जीमनेपर सुपारीकी समान मदको करता है, अन्नको पचने नहीं देता और अरुचि, शरीरमें चकत्ते और गांठोंको उत्पन्न करे है, मांसक्षय, हाथ पावोंमें सूजन, मूर्च्छा वमन, अतीसार, श्वास, तृषा, ज्वर और उदरको बढाता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ दूषीविषभेदेन विकारभेदाः।

उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् । गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥४७॥ अन्यदूषीविषम् । तांस्तान्विसर्पविस्फोटादीन् ।

कोई दूषीविष उन्मादको उत्पन्न करे है, कोई दूषीविष आनाहको उत्पन्न करे है, कोई दूषीविष वीर्यको क्षीण करे है, कोई दूषीविष वाणीको गद्गद करे है, कोई दूषीविष कोढको उत्पन्न करे है और कोई दूषीविष अनेक प्रकारके विसर्प तथा विस्फोटकादि उपद्रवोंको उत्पन्न करे है ॥ ४७ ॥

अथ दूषीविषशब्दनिरुक्तिः।

दूषितदेशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः । यस्मात्सन्दूषयेद्धातूंस्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ ४८ ॥ देशः अनूपादिः । कालो दुर्दिनादिः । अन्नं कुलत्थतिलमसूरादि । धातुदूषकत्वाद्दूषीविषम् ।

देश, काल, अन्न और दिनकी निद्रासे वारंवार दूषित हुआ यह विष धातुओंको दूषित करे है इस कारण यह दूषिविष कहा जाता है। जलप्राय आदि देशोंसे, बादलोंके घिरे हुए दिन आदि कालसे और कुलथी तिल तथा मसूर आदि अन्नोंसे यह विष दूषित होता है ॥ ४८ ॥

अथ दूषीविषस्य साध्यत्वादि।

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम् । दूषीविषमसाध्यं स्यात्क्षीणस्याहित-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेविनः ॥ ४९ ॥ कृत्रिमं विषं द्विविधम् । एकं सविषं दूषीविषसंज्ञम् अपरमविषं तदेव गरसंज्ञम् । तथा च काश्यपसंहितायाम्- "संयोगजं च द्विविधं द्वितीयं विषमुच्यते । दूषीविषं तु सविषमविषं गरमुच्यते ।" संयोगजं कृत्रिमं विषं द्वितीयं स्वाभाविकं तत्र द्विविधम् ।

दूषीविष जितेन्द्रिय अर्थात् पथ्य सेवन करनेवालेको तत्काल साध्य होता है । एक वर्षके पश्चात् याप्य हो जाता है और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्यको असाध्य है । दूषीविष और गर इस प्रकार कृत्रिमविष दो प्रकारका है । जिसमें विषका सम्बन्ध होय वह दूषीविष कहा जाता है और जिसका निरूपण नीचे लिखते हैं, जिसमें विषका सम्बन्ध नहीं होता उसको गर कहते हैं । काश्यपसंहितामें कहा है कि " कृत्रिम विष जो कि संयोगसे होता है उसके दूषीविष और गर ये दो भेद हैं । विषके सम्बन्धवाला दूषीविष कहा जाता है और विषके सम्बन्धी नहीं होनेपर जो विषका काम करे वह गर कहा जाता है । " ॥ ४९ ॥

अथ कृत्रिमविषलक्षणम् ।

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदं रजो नानाङ्गजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ ५० ॥

स्त्रियें पतिको वशमें करनेके लिये पसीना, रज और अंगके अनेक मलोंको भोजनमें मिलाकर पतियोंको खिला देती हैं तथा शत्रुभी इसी प्रकारके पदार्थोंको भोजनमें मिलाकर मनुष्योंको खिला देते हैं, यह पसीना आदि अधम पदार्थ गर कहाता है ॥ ५० ॥

अथ गरकार्यम् ।

तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथसम्भवः ॥ ५१ ॥ तैः गरैः स्वेदरजःप्रभृतिभिः । ज्वरश्चास्योपजायत इति अपाकात् । मर्मप्रधमनं मर्मव्यथा । क्षयो धातुक्षयः ।

पसीना तथा रज आदि गरसे पांडुता होती है, शरीर कृश हो जाता है, अग्नि मन्द हो जाती है, ज्वर आता है, मर्मस्थलोंमें पीडा होती है, अफरा होता है, धातुक्षय और सूजन होती है ॥ ५१ ॥

अथ लूतानामकजन्तोरुत्पत्तिरर्थः संख्या च ।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः । तेभ्यो जातास्तथा लूता इति ख्यातास्तु षोडश ॥ ५२ ॥ तथा चात्र सुश्रुतः । विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिद्दृषिसत्तमम् । वसिष्ठं कोपयामास गत्वाश्रमपदं किल ॥ ५३ ॥ कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटात्स्वेदबिन्दवः । अपतन्दर्शनादेव ह्यधस्तात्तीव्रवर्चसः ॥ ५४ ॥ लूने तृणे महर्षेस्तु धेन्वर्थे सम्भृतेऽपि च । ततो जातास्त्विमे घोरा नानारूपा महाविषाः । तासामष्टौ कष्टसाध्या वर्ज्यास्तावत्य एव हि ॥ ५५ ॥ तत्र त्रिमण्डलप्रभृतयोऽष्टौ कष्टसाध्याः सौवर्णिकप्रभृतयोऽष्टौ असाध्याः ।

मुनिके पसीनेके छींटे तृणोंके ऊपर गिरे उसमेंसे जो जीव उत्पन्न हुए वह लूता कहे जाते हैं । लूताकी जाति सोलह हैं । 'लू' इस धातुका अर्थ 'काटनेका' है । इसपर सुश्रुत लिखता है कि "राजाओंमें उत्तम विश्वामित्र किसी समय वसिष्ठके आश्रममें जाकर महामुनि वसिष्ठजीको क्रोधित कराते हुए अत्यन्त तेजस्वी यह महामुनि वसिष्ठजी विश्वामित्रके दर्शनसेही अत्यंत कुपित हुए तब उनके ललाटमेंसे पसीनेकी बूँद गायके लिये काटे हुए तृण रक्खे थे उनपर गिरे, उनमेंसे भयंकर महा विषैले और अनेक आकृतिवाले लूता नामवाले कृमि उत्पन्न हुए हैं इनमें त्रिमंडल आदि आठ कष्टसाध्य हैं और सौवर्णिक आदि आठ असाध्य हैं ॥ ५२-५५ ॥

अथ लूतादंशलक्षणम् ।

ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च । ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ५६ ॥ पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च । शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ ५७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सामान्यं सर्वलूतानामेतदंशस्य लक्षणम् । ॥ ५८ ॥ दंशकोथः दंशमध्ये पूतिभावः । दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम् । दग्धाकृति भृशं पाकक्लेदशोथज्वरान्वितम् ॥ ५९ ॥ दूषीविषाभिर्लूताभिस्तद्दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ६० ॥

लूता अर्थात् मकडी आदि काटे तो वह काटनेका स्थान सड जाता है, रुधिर बहने लगता है, ज्वर आ जाता है, दाह होता है, अतीसार होता है, त्रिदोषजनित रोग होते हैं, अनेक प्रकारकी फुंसियें उत्पन्न होती हैं, बडे बडे चकत्ते पड जाते हैं और बडी गम्भीर, कोमल, लाल, चपल तथा कलौंसयुक्त सूजन होती है, लूताके दंशके ये सामान्य लक्षण हैं। दंशमें जो काला अथवा कुछेक झांईवाला, जालेसहित, जलेकी समान, अत्यंत पकनेवाला और क्लेद सूजन तथा ज्वर ये लक्षण दीखते होयँ तो जानना कि दूषीविषनामक लूताका दंश अर्थात् काटा हुआ है ॥ ५६–६० ॥

अथासाध्यसौवर्णकाद्यष्टलूतानां दंशलक्षणम् ।

शोथः श्वेताः सिता रक्ताः पीताश्च पिडिका ज्वरः । प्राणान्तिकाभिर्जायन्ते दाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ६१ ॥

असाध्य लूता काटे तो शोष, सफेद, लाल, तथा पीली फुंसी होती हैं, ज्वर आ जाता है, प्राणान्त करनेवाली दाह, श्वास, हिचकी और शिरमें पीडा होती है ॥६१॥

अथ मूषकविषलक्षणम् ।

आदंशाच्छोणितं पाण्डुमण्डलानि ज्वरोऽरुचिः । लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ ६२ ॥

चूहेके काटनेके स्थानका रुधिर पीला पड जाता है, चकत्ते उठ आते हैं, ज्वर, अरुचि, रोमांच हो आते हैं और दाह होता है ॥ ६२ ॥

अथ प्राणहरमूषकविषलक्षणम् ।

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यं क्लेदो मन्दश्रुतिर्ज्वरः । शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिं चासाध्यमूषकात् ॥ ६३ ॥ अंगशोथोऽत्र मूषकाकारो बोद्धव्य इति तन्त्रान्तरे ।

असाध्य विषवाले मूषेके काटनेसे मूर्छा, अंगोंमें सूजन वर्णका बदल जाना, क्लेद, बधिरता, ज्वर, मस्तकका भारीपन, लारका गिरना और रुधिरकी वमन ये लक्षण होते हैं । अन्यग्रंथोंमें लिखा है कि " चूहेके काटनेसे शरीरमें चूहेके आकारवाली सूजन होती है " ॥ ६३ ॥

अथ कृकलासदंशलक्षणम् ।

शोथस्य कार्श्यमथवा नानावर्णत्वमेव च । मोहोऽथ वर्चसो भेदो दष्टस्य कृकलासकैः ॥ ६४ ॥

करकैंटेके काटनेसे काटनेका स्थान काला अथवा अनेक प्रकारका हो जाता है, मोह हो जाता है और दस्त अधिक आते हैं ॥ ६४ ॥

अथ वृश्चिकविषलक्षणम् ।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्द्ध्वमाशु च । वृश्चिकस्य विषं याति पश्चादंशेऽवतिष्ठते ६५ ॥

विच्छूका विष प्रथम आग लगनेकी समान दाह करता है, फिर शीघ्रतासे ऊपरको चढकर मानों अंगोंको भेदता हो ऐसी व्यथा करता है पश्चात् कुछ समयमें काटनेके स्थानमें आकर स्थिर हो जाता है ॥६५॥

अथासाध्यवृश्चिकदंशलक्षणम् ।

दष्टोऽसाध्यैस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः । मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ ६६ ॥ असाध्येर्वृश्चिकस्तेषामेवानुवृत्तेः । हृदादिषु उपहतः हृदादिकार्यरहितो भवति अत्यर्थं वेदनार्त इत्यन्वयः ।

असाध्य विषवाला विच्छू काटे तो हृदय, नाक तथा जीभ ये अपने २ कार्य करनेमें असमर्थ हो जाते हैं इस प्रकार वेदना होती है, मांस गलकर गिर जाता है और इस वेदनासे प्राणभी निकल जाते हैं ॥ ६६॥

अथ कणभकृमिदंशलक्षणम् ।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा । लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशीर्यते ॥६७॥

कणभः कीटविशेषः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कणभ नामक कृमि काटे तो विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर अथवा वमन होती है और काटनेकी जगह गल जाती है ॥ ६७ ॥

अथोच्चिटिङ्गदंशलक्षणम् ।

कृष्णलोमोच्चिटिंगेन स्तब्धलिंगो भृशार्तिमान् । दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ ६८ ॥ कृष्णलोमा अधिकतरकृष्णरोमा । उच्चिटिंगश्चीटा कीटविशेषः ।

काले और बडे रोमवाला उच्चिटिंग अर्थात् चीटा वा झींगर काटे तो सम्पूर्ण स्तब्धताके लक्षण होते हैं । बहुत वेदना होती है और जैसे कि समस्त शरीरपर शीतल जल छिडक दिया हो ऐसा मालूम होता है ॥ ६८ ॥

अथ सविषमण्डूकदंशलक्षणम् ।

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् । सनिद्रश्छर्दिमान्दष्टो मण्डूकैः सविषैर्भवेत् ॥ ६९ ॥ एकदंष्ट्रार्दितः स्वभावादेकयैव दंष्ट्रया दष्टो भवति ।

विषैला मेंडक काटे तो काटनेके स्थानमें एकही डाढ उठ आती है, वेदनायुक्त पीली सूजन होती है, तृषा लगती है, निद्रा आती है और वमन होती है ॥६९॥

अथ सविषमत्स्यलक्षणम् ।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ॥ ७० ॥

विषैली मछली काटे तो दाह, सूजन और वेदना होती है ॥ ७० ॥

अथ जलौकाविषकार्यम् ।

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ ७१ ॥ कुर्युरिति शेषः ।

विषैली जोंक काटे तो खुजली, सूजन, ज्वर, मूर्छा, ये सब लक्षण होते हैं ॥ ७१ ॥

अथ गृहगोधिकाविषलक्षणम् ।

विदाहं श्वथुं तोदं प्रस्वेदं गृहगोधिका ॥ ७२ ॥ कुर्युरिति शेषः ।

छिपकली काटे तो दाह होता है, सूजन होती है, भौंकने तथा तोडने सरीखी पीडा होती है और अंगोंमें पसीना आता है ॥ ७२ ॥

अथ शतपदीविषकार्यम् ।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ७३ ॥ शतपदी गिजाई इति लोके ।

कानखजूरा काटे तो काटनेकी जगह पसीना आता है, वेदना होती है और दाह होता है ॥७३॥

अथ मशकविषकार्यम् ।

कंडूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मंदवेदनः७४

मच्छर काटे तो खुजली और थोडी वेदनायुक्त कुछेक सूजन होती है ॥ ७४ ॥

अथासाध्यमशकदंशलक्षणम् ।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्षतम् ॥ ७५ ॥ असाध्यकीटसदृशम् असाध्यैः कीटैर्लूतादिभिः कृतं यत्क्षतं तत्सदृशवेदनम् ।

असाध्य विषैले मच्छर काटे तो असाध्य मकोडे आदि की समान घावमें पीडा होती है ॥ ७५ ॥

अथ मक्षिकादंशलक्षणम् ।

सद्यः संस्रावि‌णी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता । पीडिका मक्षिकादंशे तासां तु स्थगिकाऽसृहृत् ॥ ७६ ॥ तासामित्यादि तासां सुश्रुतोक्तानां षण्णां मक्षिकाणां मध्ये स्थगिकानाम्नी शीघ्रं प्राणान्हरतीत्यर्थः ।

विषैली मक्खी काटे तो तत्काल स्रावाली, काली दाहयुक्त, मूर्च्छासहित और ज्वरवाली फुंसियें उत्पन्न होती हैं । सुश्रुतोक्त छः प्रकारकी मक्खियोंमें स्थगिका नामवाली जो मक्खी है वह तत्काल प्राणनाशक है७६॥

अथ व्याघ्रादिविषकार्यम् ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखैर्दन्तैश्च यत्कृतम् । शूयते पच्यते तच्च स्रवति ज्वरयत्यपि॥७०॥ चतुष्पाद्भिः व्याघ्रादिभिः । द्विपाद्भिः वनमनुष्यादिभिः । शूयते शूनं भवति ।

चार पांववाले व्याघ्रादिक, अथवा दो पांववाले जंगली मनुष्यादिकके नखोंसे और दांतोंसे जो घाव होय वह सूज जाय, पकजाय, स्रवे और ज्वरको उत्पन्न करे है ॥ ७७ ॥

अथ विगतविषमनुष्यलक्षणम् ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकाम्यं सम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समम्त्रविट्कम् । प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेद्विषं मनुष्यम् ॥ ७८ ॥ प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थदोषम् । शेषं सुगमम् ।

वातादिक दोष स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हो जाँय, धातुयें भी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हों, अन्न खानेकी इच्छा होय, मल मूत्र पहिलेकी समान अच्छे प्रकारसे उतरने लगें और वर्ण, इन्द्रियें, चित्त तथा चेष्टा यह प्रसन्न अर्थात् निर्मल हो जाँय तो वैद्य उस मनुष्यको विषरहित हुआ जाने ॥ ७८ ॥

अथ विषचिकित्सा ।

तत्र प्रथमं स्थावरविषघ्नोपायाः ।

स्थावरेण विषेणार्तं नरं यत्नेन वामयेत् । वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥ ७९ ॥ विषमत्यर्थमुष्णं च तीक्ष्णं च कथितं यतः । अतः सर्वविषेष्वुक्तः परिषेकस्तु शीतलः ॥ ८० ॥ औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याद्विशेषेण विषं पित्तं प्रकोपयेत् । वमितं सेचयेत्तस्माच्छीतलेन जलेन च ॥ ८१ ॥ पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विघ्नं भेषजं हुतम् । भोक्तुमम्लं रसं दद्याद्धर्षयेन्मरिचानि च ॥ ८२ ॥ यस्य यस्य च दोषस्य पश्येल्लिंगानि भूरिशः । तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ ८३ ॥ शालयः षष्टिकाश्चैव कोरदूषाः प्रियंगवः । भोजनार्थं विषार्तानामूर्द्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥ ८४ ॥ प्रियंगुः कंगुः । मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजं चेति शिरीषतः । गवां मूत्रेण सम्पिष्टं लेपाद्विषहरं परम् । दूषीविषार्तं सुस्निग्धमूर्द्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥ ८५ ॥ पाययेद्गदं मुख्यमिदं दूषीविषापहम् । पिप्पली श्यामकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चिका ॥ ८६ ॥ मरिचं वालकं चैला तथा कनकगौरिकम् । क्षौद्रयुक्तः कषायोऽयं दूषीविषमपोहति ॥ ८७ ॥ श्यामकं रोहिषं तदलाभे उशीरं देयम् । कनकगौरिकम् अत्यन्तमारक्तं गौरिकं सोनागेरू इति लोके ।

स्थावर विषसे पीडित मनुष्यको यत्नपूर्वक वमन करावे, क्योंकि उसके लिये वमनकी समान अन्य औषधि नहीं है । विष अत्यंत उष्ण है और तीक्ष्ण है इस कारण सर्व प्रकारके विषोंमें शीतल सेचन करना चाहिये । विष उष्णता और तीक्ष्णताके कारण विशेष करके पित्तको कुपित करे है इसलिये वमन करानेके पश्चात् शीतल जलसे सेचन करे । विषको हरनेवाली औषधियोंको घी तथा सहतके साथ तत्काल पिलावे । खट्टा रस खानेको देवे । और शरीरमें मिर्चोंका चूर्ण मर्दन करे । जिन जिन दोषोंके चिह्न अधिक दीखें उन उन दोषोंकी उन उन दोषोंके गुणोंसे विपरीत गुणोंवाली औषधियोंसे चिकित्सा करे । विषसे पीडित मनुष्यको भोजनके लिये लाल शालिचावल, सांठी चावल, कोदों और कंगुनी धान्य देवे और वमन तथा विरेचनसे संशोधन करे । सिरसकी जड, छाल, पत्ते, फूल और बीज इन पांचों पदार्थोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे विष दूर हो जाता है । पीपल, रोहिसनामक सुगंधि तृण यदि न मिले तो इनके बदले खस, बालछड, लोध, इलायची, सज्जी, काली मिर्च, सुगंधवाला, छोटी इलायची और पीला गेरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पिलावे तो दूषीविष नष्ट हो जाता है । दूषीविषसे पीडित मनुष्यको अच्छे प्रकारसे स्निग्ध करके तथा वमन और विरेचनसे शोधित करके पश्चात् इस उत्तम औषधिको पिलावे ॥ ७९–८७ ॥

अथ जङ्गमविषचिकित्सा ।

तत्र मृत्युपाशच्छेदि घृतम् ।

अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपत्रं तथोत्पलम् । नलवेतसमूलानि गरलं सुरसां तथा ॥ ८८ ॥ सकालिंगां समञ्जिष्ठामनन्तां च शतावरीम् । शृंगाटकं समंगां च पद्मकेसरमित्यपि । कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ८९ ॥ सम्यक्पक्वेऽवतीर्णे च शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् । सर्पिस्तुल्यं भिषक्क्षौद्रं कृतरक्षं निधापयेत् ॥ ९० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषाणि हन्ति दुर्गाणि गरदोषकृतानि च। स्पर्शाद्धन्ति विषं सर्वं गरैरुपहतां त्वचम् ॥ ९१ ॥ योगजं तमकं कण्डूं मांससादं विसंज्ञताम्। नाशयत्यञ्जनाभ्यंगापानवस्तिषु योजितम् ॥ ९२ ॥ सर्पकीटाखुलूतादिदष्टानां विषहृत्परम् ॥ ९३ ॥ मृत्युपाशच्छेदिघृतम्।

हरड, गोलोचन, कूठ, आकके पत्ते, कमल, नरसलकी जड, बेंतकी जड, वत्सनाभ विष (मीठा वा सिंगिया), तुलसी, इन्द्रजौ, मजीठ, लाल धमासा, सतावर, सिंगाडे, लज्जावंती और कमलकी केसर इनका कल्क डालकर चौगुने जलमें अथवा दूधमें घीको पकावे जब अच्छे प्रकारसे पक जाय तब उतारकर शीतल कर लेवे फिर उसमें घीकी बराबर सहत मिलाकर अच्छे प्रकारसे किसी उत्तम बासनमें भरके रख देवे। यह 'मृत्युपाशच्छेदी' नामवाला घी विषके विकारोंसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोगोंको और विषको दूर करता है। अंजनमें, अभ्यंगमें, पीनेमें और वस्तिकर्ममें प्रयोग करे तो यह घी अपने स्पर्शसे सर्व प्रकारके विषोंको दूर कर देता है। विषसे दूषित हुई त्वचाको स्वच्छ कर देता है और कृत्रिम विष, तमक श्वास, खुजली, मांससाद और बेहोशी इन सबको दूर कर देता है। सर्प, कृमि, मूषक और लूता आदिके विषको दूर करनेके लिये यह उत्तम औषधि है ॥ ८८–९३ ॥

धत्तूरस्य शिफा पेया क्षीरेण परिपेषिता। अंकोटवंशजा चापि श्वविषघ्नी प्रयत्नतः ॥ ९४ ॥ रजनीयुग्मपत्तंगमञ्जिष्ठानागकेसरैः। शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूतां विनाशयेत् ॥ ९५ ॥ जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः। सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत्। गन्धमाघ्राय मृदितं सूर्यावर्तदलस्य तु ॥ ९६ ॥ वृश्चिकेन नरो विद्धः क्षणाद्भवति निर्विषः ॥ ९७ ॥

धतूरेकी जडको दूधमें यत्नपूर्वक पीसकर पीनेसे कुत्तेका विष दूर होता है। अंकोटकी जडको दूधमें पीसकर पीनेसे कुत्तेका विष दूर होता है। हलदी, दारुहलदी, पतंग, मजीठ और नागकेसर इनको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे तत्काल मकडीका विष नष्ट हो जाता है। जीरेका कल्क बनाकर उसमें सहत और सेंधानमक डालकर कुछेक गरम करके सहत मिलाकर लेप करनेसे विच्छूका विष दूर हो जाता है। सूर्यावर्त अर्थात् हुलहुलके पत्तोंको मलकर नाकमें सूंघनेसे विच्छूका विष दूर हो जाता है ॥ ९४–९७ ॥

इति विषाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः।

तत्र प्रदररोगस्य विप्रकृष्टनिदानं संख्या च।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च। यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥ १ ॥ तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति ॥ २ ॥ अत्र वातपित्तयोरादौ श्लेष्मणोऽभिधानं श्लैष्मिकेऽतिप्रवृत्तिबोधनार्थम्।

विरुद्ध भोजन करनेसे, मद्यको पीनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्णसे गर्भके पतित होनेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, हाथी घोडे आदिपर चढकर उनको दौडानेसे, अधिक मार्गके चलनेसे, अत्यंत शोक करनेसे, अत्यंत कर्षण करनेसे, बहुत बोझको उठानेसे, अभिघातसे और दिनमें सोनेसे स्त्रियोंके प्रदर नामक रोग उत्पन्न होता है। कफ पित्त वात और त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ प्रदर चार प्रकारका होता है। ऊपरके वचनमें वातसे तथा पित्तसे पहिले कफ कहा है इस कारण इसको जाननेके लिये कि कफसे उत्पन्न प्रदरमें रुधिरकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ प्रदरस्य सामान्यलक्षणम्।

असृग्दरं भवेत्सर्वं सांगमर्दं सवेदनम् ॥ ३ ॥ असृग्दरमसृक् दार्यते चाव्यतेऽनेनेत्यसृग्दरम्। अत्यर्थयान्तम्। सवेदनं सशूलम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुष्ट रजका अत्यन्त स्राव होय, अंग टूटे और शूलकी पीडा हो इसको प्रदर कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ कफजप्रदरलक्षणम् ।

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥ ४ ॥ आमम् अपक्करसयुक्तम् । सपिच्छाप्रतिमं पिच्छा शाल्मल्यादिनिर्यासस्तत्तुल्यं पिच्छिलमत्यर्थः । सपाण्डु सहशब्दोऽत्रेषदर्थः तेनेषत्पाण्डु । पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु पुलाकस्तुच्छधान्यं तद्धावनतोयतुल्यमित्यर्थः । रुधिरं स्रवेदित्यर्थः ।

कफके प्रदरमें आम अर्थात् कच्चे रसवाला सेमल आदिके गोंदकी समान चिकना, कुछेक पाण्डुवर्ण और तुच्छ धान्यके धोवनकी समान रुधिर बहता रहता है ॥ ४ ॥

अथ पित्तजप्रदरलक्षणम् ।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तातियुक्तं भृशवेगिं पित्तात् ॥ ५ ॥ सपीतनीलासितरक्तम् । पीतादिवर्णयुक्तम् । पित्तार्तियुक्तं दाहादियुक्तम् । भृशवेगि वारंवारं प्रवृत्तियुक्तम् ।

पित्तजन्य प्रदर पीला, नीला, काला तथा लाल, गरम और पित्तजनित दाह आदि वेदनासहित रुधिर वारंवार बहता है ॥ ५ ॥

अथ वातजप्रदरलक्षणम् ।

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातात्ससोदं पिशितोदकाभम् ॥ ६ ॥ पिशितोदकाभं मांसधावनतोयाभम् ।

वातजनित प्रदर रूखा, लाल, झागोंसहित, व्यथायुक्त और मांसके धोवनकी समान रुधिर थोडा थोडा बहता है ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजप्रदरलक्षणम् ।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् । तज्ज्ञाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक्चिकित्साम् ॥ ७ ॥

सक्षौद्रसर्पिः क्षौद्रादिवर्णसहितम् । कुणपं शवगन्धि ।

त्रिदोषजनित प्रदर होय तो सहत, घी, तथा हरितालकी समान रंगवाला, मज्जाकी समान और शंखकी समान गंधवाला रुधिर बहता है, विद्वान् वैद्य इस प्रदरको असाध्य कहते हैं, इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा न करे ॥ ७ ॥

अथात्यंतरुधिरनिःसरणोपद्रवाः ।

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा । दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ८ ॥ वातजा रोगाः आक्षेपकादयः ।

रुधिर बहुत स्रवे तो दुर्बलता, श्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, दाह, प्रलाप, पांडुपन, तन्द्रा और वातजनित आक्षेपकादि रोग होते हैं ॥ ८ ॥

अथ प्रदररोगासाध्यलक्षणम् ।

शश्वत्स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम् । दुर्बलां क्षीणरक्तां च तामसाध्यां विवर्जयेत् ॥ ९ ॥

जिस स्त्रीके निरंतर रुधिरका स्राव होय, तृषा दाह तथा ज्वरसे युक्त होय, बहुत दुर्बल और जिसका रुधिर क्षीण हो गया होय ऐसी प्रदररोगवाली स्त्रीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसका प्रदररोग असाध्य है ॥ ९ ॥

अथ शुद्धार्तवलक्षणम् ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्तिं पञ्चरात्रानुबन्धि च । नैवातिबहुनात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ १० ॥ निष्पिच्छदाहार्तिं अपिच्छिलमदाहमशूलम् । एतेन विकृतवातादिलक्षणरहितमित्यर्थः । पञ्चरात्रानुबन्धि प्रभूतप्रवृत्त्या त्रिरात्रानुबन्धि । ततो मध्यमप्रवृत्त्या पञ्चरात्रानुबन्धि, ततः परं कस्याश्चिच्चेत्स्रवति तदा स्वल्पप्रवृत्त्या षोडशदिनानि यावत्तदपि शुद्धमेव ।

ठीक महीनेके दिनोंमें चिकना, तंतुरहित, जिसमें दाह और शूल न होय (विकृत कफ, पित्त और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वातके लक्षणोंके विना), पांच रात्रितक रहनेवाला, बहुत अधिक नहीं और बहुत थोडा भी नहीं ऐसा रजोदर्श होय तो जानना कि रज शुद्ध हो गया है। रजके शुद्ध होनेपर प्रदरको नष्ट हुआ जानकर उसकी चिकित्सा न करे। रज जो बहुत स्रवे तो तीन दिनतक स्रवता है। मध्यम रीतिसे स्रवे तो पांच दिनतक स्रवता है और इसके पश्चात् किसी किसी स्त्रीके अल्प स्राव होनेके कारण सोलह दिनतक स्रवता है किंतु ऊपर कहे अनुसार शुद्ध हो गया होय तो उसको शुद्ध समझकर प्रदरको शांत समझना चाहिये ॥१०॥

अथ प्रदरचिकित्सा।

दध्ना सौवर्चलं जाजी मधुकं नीलमुत्पलम्। पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरशान्तये ॥ ११ ॥ चौहारजीरायष्टीमधुनीलकमलपुष्पाण्येषां प्रत्येकं माषद्वयं सर्वमेकीकृत्य दध्नाकर्षचतुष्टयेन पिष्ट्वा तत्रमाषाष्टकं मधु क्षिप्त्वा पिबेत्। मधुकं कर्षमेकं तु कर्षैकां च सितां तथा। तण्डुलोदकसम्पिष्टां लोहिते प्रदरे पिबेत् ॥ १२ ॥ वला कंकतिकाख्या या तस्या मूलं सुचूर्णितम्। लोहितप्रदरे खादेच्छर्करामधुसंयुतम् ॥१३॥ शुचिस्थाने व्याघ्रनख्या मूलमुत्तरदिग्भवम्। नीतमुत्तरफाल्गुन्यां कटिबद्धं हरेदसृक्। ॥ १४ ॥ व्याघ्रनखी वघनही इति लोके। रसाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम्। असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति श्वासं च भार्ङ्गी सह नागरेण ॥ १५ ॥ तंडुलस्य तण्डुलीयकस्य। अशोकवल्कलक्काथशृतं दुग्धं सुशीतलम्। यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ १६ ॥ अशोकवल्कलपलं द्वात्रिंशत्पलसंमितेन जलेन निष्काथ्य शेषं रक्षेत्पलाष्टकं क्काथं तेन क्काथेन सह क्षीरं पलाष्टकमितं पचेत्तत्र-दुग्धावशेषः कर्तव्यः। तन्मध्ये पलचतुष्टय मितं दुग्धं पेयं वह्निबलापेक्षया। कुशमूलं समुधृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना। एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ १७ ॥ क्षौद्रयुक्तं फलरसमौदुम्बरभवं पिबेत्। असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक्। ॥ १८ ॥ अन्नमोदनम्। अलाबूफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च। मधुना मोदकं कृत्वा खादेत्प्रदरशान्तये ॥ १९ ॥ अथ दार्व्यादिक्काथः। दार्वीरसाञ्जनकिरातवृषाब्दबिल्वसक्षौद्रचन्दनदिनेशभवप्रसूनैः। क्काथः कृतो मधुयुतो विधिना निपीतो रक्तं सितं च सरुजं प्रदरं निहन्ति ॥ २० ॥ रक्तपित्ताधिकारोक्तं हितं कूष्माण्डखण्डकम् ॥ २१ ॥

काला निमक, जीरा, मुलैठी और नील कमल (अभावमें नीलोफर) यह प्रत्येक पदार्थ बारह बारह रत्ती लेकर चार तोले दहीमें पीसकर उसमें आठ मासे सहत मिलाकर पिये तो वातजन्य प्रदर शमन हो जाता है। मुलैठी एक तोला और मिश्री एक तोला इन दोनोंको चावलोंके धोवनमें पीसकर पिये तो प्रदर नष्ट हो जाता है। कंघीकी जडका चूर्ण करके मिश्री और सहतमें मिलाकर खाय तो प्रदर नष्ट हो जाता है। पवित्रस्थानमें स्थित व्याघ्रनखीको उत्तर दिशासे लाकर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें कमरमें बांधनेसे प्रदर नष्ट हो जाता है। रसौत और चौलाईकी जडको सहतमें पीसकर चावलोंके जलके साथ पिये तो सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न प्रदर अवश्य नष्ट हो जाता है। सोंठ और भारंगीको पीसकर चावलोंके धोवनके साथ पीनेसे प्रदर और श्वास नष्ट हो जाता है। अशोकवृक्षकी छाल चार तोले लेकर अठगुने जलमें पकावे जब पकते पकते जल ३२ बत्तीस तोले रहे तब उसमें ३३ तेतीस तोले दूध डालकर पकावे पकते पकते जब केवल दूधही बाकी रह जाय तब उस दूधको अच्छे प्रकारसे शीतल करके उसमेंसे सोलह तोले दूध लेकर प्रातःकाल पिये, जो जठराग्नि बलहीन होय तो थोडा दूध पिये इस प्रकार इस दूधको पीनेसे तीव्र प्रदर शांत हो जाता है। पृथिवीमेंसे डाभकी जडको उखाडकर चावलोंके जलमें पीसकर तीन दिनतक पिये तो स्त्री प्रदरसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुक्त हो जाती है। गूलरके फलोंके रसमें सहत मिलाकर पीनेसे और उसपर मिश्री मिला दूध भातका पथ्य करे तो प्रदर नष्ट हो जाता है। तोम्बीके फलका चूर्ण करके उसमें खांड डालकर सहतमें लड्डू बनाकर खाय तो प्रदर शान्त हो जाता है। दारुहलदी, रसौत, क्षिशयता, अडूसा, नागरमोथा, बेलगिरी, सहत, लालचन्दन और आकके फूल इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पिये तो वेदनायुक्त लाल तथा सफेद प्रदर नष्ट हो जाता है। इसको 'दार्व्यादिक्वाथ' कहते हैं। रक्तपित्ताधिकारमें जो खंडकूष्मांड नामक अवलेह कहा है उसको सेवन करनेसेभी प्रदर दूर हो जाता है॥ ११–२१॥

इति प्रदररोगाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ सोमरोगाधिकारः।

तत्र सोमरोगनिदानं सम्प्राप्तिश्च।

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोकाच्चापि श्रमादपि। अतीसारिकयोगाद्वा गरयोगात्तथैव च॥१॥ आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च। तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि॥ २॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, अत्यन्त शोकसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अतीसारके योगसे और विषप्रयोगसे स्त्रियोंके सम्पूर्ण शरीरमें स्थित जल क्षुभित होकर स्रवता है पीछे वह जल स्थानसे भ्रष्ट होकर मूत्रके मार्गसे जाता है॥ १॥ २॥

अथ सोमरोगलक्षणम्।

प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः। स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला॥ ३॥ वेगं धारयितुं तासां न विदन्ति सुखं क्वचित्। शिरःशिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति॥ ४॥ मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः। भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा॥ ५॥ सन्धारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः। ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः॥ ६॥

प्रसन्न, निर्मल, शीतल, गंधरहित, स्वच्छ, सफेद और पीडारहित जल अत्यन्त बहता है, उस जलके वेगको रोकनेसे असमर्थ होकर वह दुर्बल स्त्री निरंतर बेचैन रहती है। मस्तक शिथिल हो जाता है, मुख और तालुआ सूखने लगता है, मूर्च्छा होती है, जम्भाई आती है, प्रलाप होता है, त्वचा अत्यन्त रूखी हो जाती है और भक्ष्य भोज्य और पीनेके पदार्थोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। यह जल शरीरको धारण करनेवाला होनेसे सोम कहा जाता है और यह रोग इस सोम धातुका क्षयरूप है इसलिये सोमरोग कहा जाता है॥ ३–६॥

अथ सोमरोगचिकित्सा।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु। शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम्॥७॥ माषचूर्णं समधुकं विदारीं मधुशर्कराम्। पयसा पाययेत्प्रातः सोमधारणमुत्तमम्॥८॥ स एव सरुजः सोमः स्रवेन्मूत्रेण चेन्मुहुः। तत्रेलापत्रचूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम्॥ ९॥ जलेनामलकीबीजकल्कं समधुशर्करम्। पिबेद्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम्॥ १०॥ तक्रौदनाहाररता सम्पिबेन्नागकेसरम्। त्र्यहं तक्रेण सम्पिष्टं श्वेतप्रदरशान्तये॥ ११॥

केलेकी पकी फली, आमलोंका स्वरस, सहत और मिश्री इन सबको एकत्रित मिलाकर भक्षण करे तो अच्छे प्रकारसे सोमरोग नष्ट हो जाता है। उडदका चून, मुलैठी, विदारीकंद, सहत और मिश्री इन सबको एकत्रित मिलाकर प्रातःकाल दूधके साथ पीनेसे सोमरोग नष्ट हो जाता है। यही सोमरोग जो पीडासहित और मूत्रके साथ बारंबार निकलता होय तो ताजी मदिरामें इलायची और तेजपातका चूर्ण डालकर पिये। आमलोंको जलमें पीसकर उसमें सहत तथा खांड, मिलाकर पीनेसे तीन दिनमें ही यह श्वेत प्रदर नष्ट हो जाता है। नागकेसरको तक्रमें पीसकर तीन दिनतक पिये और तक्रके साथ भात खाय तो यह सफेद प्रदर अवश्य नष्ट हो जाता है॥ ७–११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ सोमरोगे मूत्रातीसारः।

सोमरोगे चिरं जाते यदा मूत्रमतिस्रवेत्।
मूत्रातिसारं तं प्राहुर्बलविध्वंसनं परम्॥ १२॥

बहुत दिनोंके सोमरोगमें जो मूत्र अत्यंत बहने लगे तो उसको मूत्रातिसार कहते हैं। यह मूत्रातिसार बलका अत्यंत नाश करता है॥ १२॥

इति सोमरोगाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ योनिरोगाधिकारः।

तत्र योनिरोगनिदानम्।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितात्।
आर्तवाद्बीजतश्चापि दैवाद्वा स्युर्भगे गदाः॥ १॥

मिथ्या आहार और मिथ्या विहारसे दुष्ट हुए वातादि दोषोंसे, रजके दोषसे तथा पुरुषके वीर्यसे और समयपर दैवगतिसे भी योनिमें रोग उत्पन्न होते हैं॥ १॥

अथ योनिरोगनामानि।

उदावर्त्ता तथा वन्ध्या विप्लुता च परिप्लुता। वातला योनिजो रोगो वातदोषेण पञ्चधा॥ २॥ पञ्चधा पित्तरोगेण तत्रादौ लोहितक्षरा। प्रस्रंसिनी वामनी च पुत्रघ्नी पित्तला तथा॥ ३॥ अत्यानन्दा कर्णिनी च चरणानन्दपूर्विका। अतिपूर्वापि सा ज्ञेया श्लेष्मला च कफादिमाः॥ ४॥ षण्ढ्यण्डिनी च महती सूचिवक्त्रा त्रिदोषिणी। पञ्चैता योनयः प्रोक्ता सर्वदोषप्रकोपतः॥ ५॥

उदावृत्ता योनि, वंध्या योनि, विप्लुता योनि, परिप्लुता और वातला योनि इस प्रकार वायुके दोषसे पांच प्रकारके योनिरोग होते हैं। लोहितक्षरा योनि, प्रस्रंसिनी योनि, वामनी योनी, पुत्रघ्नी योनि और पित्तला योनि इस प्रकार पित्तके दोषसे पांच प्रकारके योनिरोग होते हैं। अत्यानन्दा योनि, कर्णिनी योनि, आनन्दचरणा योनि, अतिचरणा योनि और श्लेष्मला योनि इस प्रकारकी कफकी दुष्टतासे पांच प्रकारका योनिरोग होता है। षंडा योनि, अंडिनी योनि, विवृता योनि, सूचिवक्त्र योनि और त्रिदोषिणी योनि इस प्रकार तीनों दोषोंके प्रकोपसे पांच प्रकारके योनिरोग होते हैं॥ २-५॥

अथोपर्युक्तयोनिरोगलक्षणम्।

सफेनिलमुदावर्त्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति। वन्ध्या निरार्तवा ज्ञेया विप्लुता नित्यवेदना॥ ६॥ परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मे रुजा भृशम्। वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता। चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः॥ ७॥ अनिलवेदनास्तोदादयः वातलायां त्वति वातवेदना वोद्धव्याः। वातलेत्यन्वर्थात्। सदाहं क्षरते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षरा। प्रस्रंसिनी स्रंसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी॥ ८॥ क्षोभिता विमर्दिता। स्रंसते स्वस्थानाच्यवते। दुष्प्रजायिनी दुष्टप्रजननशीला। सवातमुद्गिरेद्वीर्यं वामनी रजसा युतम्। स्थितं हि पातयेद्गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्रवात्॥ ९॥ पुत्रशब्दोऽत्रापत्योपलक्षकः अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता। चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिंगोच्छ्रयो भवेत्॥ १०॥ अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण विन्दति। कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते॥ ११॥ कर्णिका मांसस्य कर्णिकाकारो ग्रन्थिः। मैथुनेऽचरणा पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते। बहुशश्चातिचरणा पयो वीर्यं न तिष्ठति॥ १२॥ अतिरिच्यते रजो मुञ्चतीत्यर्थः। बहुशः वारंवारमतिरिच्यते तयोः चरणातिचरणयोः। श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्तातिशीतला। चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिंगोच्छ्रयो भवेत्॥ १३॥ अनार्तवाऽऽस्तनी षण्डी खरस्पर्शा च मैथुने। महामेढ्रगृहीताया बालायास्त्वण्डिनी भवेत्॥ १४॥ अस्तनी ईषत् स्तनौ यस्याः सा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्र लक्ष्या । षण्डी महामेढ्रः पुरुषस्तेन गृहीतायाः बालायाः सूक्ष्मयोनिच्छिद्रा अण्डिनी अण्डवल्लम्बमाना योनिर्भवति । विवृता च महायोनिः सूचीवक्त्रातिसंवृता । सर्वलिंगसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा । चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिंगोच्छ्रयो भवेत् १५

जिस योनिमें अत्यन्त कष्टसे, झागसहित रुधिर निकले उसको उदावर्त्ता कहते हैं । जो योनि सदैव रजरहित होय अर्थात् कदापि रजस्वला न होय उसको वन्ध्या कहते हैं । जिस योनिमें सर्वदा पीडा रहती होय उसको विप्लुता योनि कहते हैं । मैथुन करनेसे जिसमें अत्यन्त वेदना होती होय उसको परिप्लुता योनि कहते हैं । जो योनि कठिन, स्तब्ध होय और शूल तथा तोडनें सरीखी पीडासहित होय उसको वातला योनि कहते हैं । यद्यपि उपरोक्त वातजनित योनिरोगोंमें तोडनेकी पीडा आदि वायुसम्बन्धी वेदना होती है तथापि इस पांचवीं प्रकारकी वातला योनिमें तो यह वातजन्य वेदना अत्यंत होती है ऐसा जानना क्योंकि 'वातला' इस नामसे प्रतीत होती है । जिस योनिमेंसे दाहवाला रुधिर गिरता होय उसको लोहितक्षरा कहते हैं । जो योनि मर्दन करनेसे अपने स्थानसे हट जाय और विकृत संतानको उत्पन्न करे उसको प्रसंसिनी योनि कहते हैं । जो योनि वायुके साथ रजसहित वीर्यको बाहर निकाल देती होय उसको वामनी योनि कहते हैं । जो योनि स्थित गर्भको रुधिरके स्रावके कारण गिरा देती हो उसको पुत्रघ्नी कहते हैं । जिसमें दाह, पाक तथा ज्वर होय उसको पित्तला कहते है । यद्यपि पित्तजन्य उपरोक्त चारों प्रकारकी योनियोंमें दाह तथा पाक वगैरह पित्तजनित वेदना होती है तथापि इस पांचवीं पित्तला योनिमें यह पित्तसम्बन्धी वेदना अधिक होती है ऐसा जानना, क्योंकि 'पित्तला' इस शब्दसे जाना जाता है । जो योनि मैथुनसे संतोषको प्राप्त न होय उसको अत्यानन्दा कहते हैं । जिस योनिमें कफसे तथा रुधिरसे मांसकी डेलीकी समान गांठें होयँ उसको कर्णिका कहते हैं । जो योनि मैथुनके समय पुरुषसे पहिले ही स्खलित हो जाय उसको आनन्दचरणा योनि कहते हैं, इस योनिमें वीर्य रुकता नहीं है । जो योनि पुरुषसे पहिले कई बार स्खलित हो जाय उसको अतिचरणा योनि कहते हैं । इस योनिमेंभी वीर्य ठहरता नहीं है । जो योनि अत्यन्त चिकनी, खुजलीसहित और अत्यन्त शीतल होय उसको श्लेष्मला योनि कहते हैं । यद्यपि उपरोक्त कफजनित चारों प्रकारकी योनियोंमें चिकनापन आदि कफके चिह्न होते हैं तथापि इस पांचवीं प्रकारकी श्लेष्मला योनिमें यह कफसम्बन्धी चिह्न अत्यन्त होते हैं ऐसा जानना क्यों कि 'श्लेष्मला' इस नामसे ऐसा अर्थ निकलता है । जो योनि रजरहित रहती हो और मैथुन करते समय खरदरी मालूम होय, उसको षंडी कहते हैं । इस योनिवाली स्त्रीके स्तन छोटे होते हैं । जिसकी योनिका छिद्र छोटा होय ऐसी स्त्रीसे मोटे लिंगवाला पुरुष मैथुन करे तो उसकी योनि वृषणकी समान लटक आती है इसको अंडिनी योनि कहते हैं । जिस योनिका बहुत बडा छिद्र होय उसको विवृता कहते हैं । जो योनि बहुत छोटे छिद्रवाली होय उसको सूचीवक्त्रा कहते हैं । जिस योनिमें सम्पूर्ण दोषोंके कोपके कारण संपूर्ण दोषोंके लक्षण होयँ उसको त्रिदोषिणी योनि कहते हैं । यद्यपि उपरोक्त त्रिदोषजन्य चारों प्रकारकी योनियोंमें रजरहितं आदि तीनों दोषोंके चिह्न होते हैं तथापि इस पांचवें प्रकारकी योनिमें यह त्रिदोषसम्बन्धी चिह्न अत्यन्त होते हैं ऐसा जानना । क्यों कि 'त्रिदोषिणी' इस नामसे ऐसा अर्थ निकलता है ॥ ६–१५ ॥

अथासाध्ययोनिरोगाः ।

पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ १६ ॥ पञ्च षण्डीषभृतयः ।

त्रिदोषजनित षंडी आदि पांच योनि असाध्य हैं ॥ १६ ॥

अथ योनिकन्दनिदानम् ।

दिवास्वमादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात् । क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यथा ॥ १७ ॥ यथास्वनिदानं कुपिता वाताद्याः ।

दिनमें सोनेसे, अत्यन्त क्रोध करनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और नख तथा दांत आदिसे घावके होनेसे अपने २ कारणोंसे प्रको-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पको प्राप्त हुए वातादि दोष योनिकन्द नामक रोगको उत्पन्न करे हैं ॥ १७ ॥

अथ योनिकन्दलक्षणम् ।

पूयशोणितसंकाशं लकुचाकृतिसन्निभम् । जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः स योनिजः ॥ १८ ॥ लकुचाकृतिसन्निभं लकुचाकारम् ।

राधकी समान, रुधिरकी समान और बडहलकी समान योनिमें गांठें उत्पन्न होती हैं इसको योनिकन्द कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ वातादिभेदेन योनिकन्दरूपम् ।

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत् । दाहरोगज्वरयुतंविद्या त्पित्तात्मकं तु तम् ॥ १९ ॥ तिलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम् । सर्वलिंगसमायुक्तं सन्निपातात्मकं वदेत् ॥ २० ॥

जो योनिकन्द रूखा, विवर्ण और फटासा होय उसको वातजनित जानना । जो योनिकन्द दाह, लाली और ज्वरसे युक्त होय तो उसको पित्तजनित जानना । जो योनिकन्द तिलके फूलकी समान और खुजलीसहित होय उसको कफजनित जानना । जो योनिकन्द उपरोक्त रूक्षता आदि सम्पूर्ण लक्षणोंवाला होय उसको सन्निपात जनित जानना ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ योनिरोगचिकित्सा ।

तत्रार्तवजनयोगाः

आर्तवादर्शने नारी मत्स्यान्सेवेत नित्यशः काञ्जिकं च तिलान्माषानुदश्वित्च तथा दधि ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयवशूकैः । सासृक्क्षीरवर्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ २२ ॥ इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी । चपला पिप्पली । मदनो मयनफलम् । किण्वं सुराबीजम् । पीतं ज्योतिष्मतीपत्रं स्वींजकोग्रासनं च्यहम् । शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम् ॥ २३ ॥ ज्योतिष्मती कटभी वृक्षविशेषः करही इति लोके । अथवा उमिजिनी मालकंगुनी इति च । असनम् आसनेति लोके विजयसार इति च । पयसा दुग्धेन ।

जो स्त्री रजस्वला न होती होय वह नित्य मछलियोंको भक्षण करे तथा कांजी, तिल, उडद, उदश्वित्नामवाली छाछ और दहीका सेवन करे, कडवी तोम्बीके बीज, जमालगोटा, पीपल, गुड, मैनफल, सुराबीज, और जवाखार इनको थूहरके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर योनिमें रखनेसे स्त्रीके रज उत्पन्न होता है । मालकांगुनीके पत्ते, सज्जीखार वच और विजयसार इनको शीतल दूधमें पीसकर पीनेसे रजोदर्श होता है ॥ २१–२३ ॥

अथ वंध्याचिकित्सा ।

वला सिताढ्या मधुकं बला च शृंगं वटोत्थं गजकेसरं च । एतन्मधु क्षीरघृतैर्निपीतं वन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते ॥ २४ ॥ अश्वगन्धाकषायेण सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम् । ऋतुस्नाताङ्गना प्रातः पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ २५ ॥ पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं दुग्धेन कन्यया । पिष्टं पीत्वा ऋतुस्नाता गर्भं धत्ते न संशयः ॥ २६ ॥ कुरण्टमूलं धातक्याः कुसुमानि वटांकुराः । नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥ २७ ॥ कुरण्टमूलम् (पीतपुष्पकटसरैया) । याऽबला पिबति पार्श्वपिप्पलं जीरकेण सहितं हिताशिनी । श्वेतया विशिखपुंखया युतं सा सुतं जनयतीह नान्यथा ॥ २८ ॥ पार्श्वपिप्पलं गजहड इति लोके । श्वेतपुष्पया शरपुंखया सह । पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी । पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः ॥ २९ ॥ शूकराशिम्बीमूलं मध्यं वा दधिफलस्य सपयस्कम् । पीत्वार्थो भवलिंगीबीजं कन्यां न सूते स्त्री ॥ ३० ॥ शूकराशिम्बी (सुअरासेवी) । दधिफलं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपित्थस्तस्य मज्जा । भवलिंगी (पञ्चगुरिया)। पुत्रकमञ्जरीमूलं विष्णुक्रान्तेशलिंगिनी सहिता। एतं गर्भेऽष्टदिनं पीत्वा कन्यां न सर्वथा सूते ॥ ३१ ॥ पुत्रमञ्जरी (पतजिया) तस्याः मूलम् ईशलिंगीं पञ्चगुलिया इति लोके ।

बिरैटी, खांड, मुलैठी, कंघी, वडके अंकुर और नागकेसर इनको सहतमें दूधमें तथा घीमें पीसकर पीनेसे वंध्या स्त्रीभी अवश्य पुत्रको उत्पन्न कर सक्ती है। ऋतुस्नाता स्त्री असगंधको दूधमें पकाकर घी डालकर प्रातःकाल पीवे तो गर्भ रहजाता है। ऋतुस्नाता स्त्री पुष्य नक्षत्रमें उखाडी हुई सफेद कटेरीकी जडको कुआरी कन्याके हाथसे दूधमें पिसवाकर पीवे तो निश्चय गर्भ रह जाता है। पीले फूलकी कटसरैयाकी जड, धायके फूल, वडके अंकुर और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर पीनेसे अवश्य गर्भ रह जाता है। जो स्त्री जीरेके साथ तथा सफेद फूलके सरफोंकेके साथ पारिसपीपलके डोडेको पीसकर पिये और पथ्यसे भोजन करे तो वह अवश्य पुत्रको जनती है । जो गर्भवती स्त्री ढाकके एक पत्तेको दूधमें पीसकर पिये तो उसके बलवान् पुत्र उत्पन्न होता है। कौंछकी जडको अथवा कैथके गूदेको शिवलिंगीके बीजोंको दूधमें पीसकर पीनेसे गर्भिणी स्त्री कदापि कन्याको उत्पन्न नहीं करती । पतिजियाकी जडको, अथवा विष्णुक्रांताकी जडको अथवा कैथके गूदेको शिवलिंगीके बीजोंको दूधमें पीसकर पीनेसे गर्भिणी स्त्री कदापि कन्याको उत्पन्न नहीं करती। पतिजियाकी जडको अथवा विष्णुक्रांताकी जडकी अथवा शिवलिंगीके बीजोंको जो स्त्री पिये तो वह कदापि कन्याको उत्पन्न नहीं करे अर्थात् पुत्रोंकी ही उत्पन्न करे है ॥ २४–३१ ॥

अथ गर्भानास्थापकयोगाः ।

पिप्पलीविडंगटंकणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा । ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः सञ्जायते क्वापि ॥ ३२ ॥ आरनालपरिपेषितं ह्यहं या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी । सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सन्दधाति न हि गर्भमंगना ॥ ३३ ॥

जो स्त्री ऋतुके समय पीपल, बायविडंग और सुहागा इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके दूधके साथ पिये तो कदापि गर्भ उत्पन्न नहीं होता। जो स्त्री ऋतुके समयमें गुडहलके फूलोंको आरनाल नामक काँजीमें पीसकर तीन दिनतक पिये और चार तोलेभर उत्तम पुराने गुडको सेवन करे तो वह कदापि गर्भको धारण नहीं करती ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ साध्ययोनिरोगाणां सामान्यचिकित्सा ।

तासु योनिषु चाद्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते । वस्त्यभ्यंगपरीषेकप्रलेपपिचुधारणम् ॥३४॥ वस्तिरत्रोत्तरवस्तिः। पिचुः फाहा इति लोके।

साध्य योनियोंपर स्नेहन आदि चिकित्सा करे, उत्तर वस्ति देवे, अभ्यंग करे, सेचन करे, प्रलेप करे और योग्य औषधियोंसे भीजे हुए रुईके फोयेको योनिमें रखे ॥ ३४ ॥

अथ योनिरोगाणां यथाक्रमचिकित्सा ।

नक्तवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः । तिलतैलं पचेन्नारी पिचुमस्य विधारयेत् । विप्लुतायां सदा योनिव्यथा तेन प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥ नक्तं तगरम् । वार्ताकिनी वरहेटा इति लोके । वातलां कर्कशां स्तब्धां मलपस्पर्शां तथैव च । कुम्भीस्वेदैरुपचरेदन्तर्वेश्मनि संवृते ॥ ३६ ॥ धारयेद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा । पित्तलानां च योनीनां सेवाभ्यंगपिचुक्रियाः । शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च । ॥ ३७ ॥ प्रक्लंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रवेशयेत् । पिधाय वेशवारेण ततो बन्धं समाचरेत् । शुण्ठीमरिचकृष्णाभिर्धान्यकाजाजिदाडिमैः ॥ ३८ ॥ पिप्पलीमूलसंयुक्तैर्वेशवारः स्मृतो बुधैः । धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत्सदा । सूर्यकान्ताभवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना ॥३९॥ योन्यां तु पूयस्रावण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितैः । सगोमूत्रैः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सलवणैः पिण्डैः सम्पूरणं हितम् ॥ ४० ॥ शोधनद्रव्याणि निम्बपत्रादीनि । दुर्गन्धां पिच्छिलां वापि चूर्णैः पञ्चकषायजैः । पञ्चकषायाः वचावासापटोलप्रियंगुनिम्बाः। राजवृक्षादिर्यथा धनबहेरा इति लोके । पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः । वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या योनौ श्लेष्मविशोधिनी ॥ ४१ ॥ तुल्या प्रदेशिन्या दैर्घ्येण परिणाहेन च । कर्णिन्यां वर्तयो देयाः शोधनद्रव्यनिर्मिताः ॥ ४२ ॥ गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वथितोदकधारया । योनिं प्रक्षालयेत्तेन तत्र कण्डूः प्रशाम्यति ॥४३॥ मुद्गयूषं सखदिरं पथ्यां जातीफलं तथा । निम्बी पूगं च संचूर्ण्य वस्त्रपूतं क्षिपेद्भगे ॥ ४४ ॥ योनिर्भवति संकीर्णा न स्रवेच्च जलं ततः । कपिकच्छूभवं मूलं क्वाथयेद्विधिना भिषक् ॥ ४५ ॥ योनिः संकीर्णतां याति क्वाथेनानेन धावयेत् । जीरकद्वितयं कृष्णा सुषवी सुरभिवचा ॥ ४६ ॥ वासकः सैन्धवश्चापि यवक्षारो यवानिका । एषां चूर्णं घृते किञ्चिद्भृष्ट्वा खण्डेन मोदकम् ॥ ४७ ॥ कृत्वा खादेद्यथावह्नि योनिरोगाद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ मूषकक्वाथसंसिद्धतिलतैलकृतः पिचुः । नाशयेद्योनिरोगांस्तान्धृतो योनौ न संशयः ॥ ४९ ॥

तगर, कटेरी, कूठ, सेंधानिमक और देवदारु इनके कल्कसे तिलके तेलको पकाकर उसमें भिजोकर फोया योनिमें रखनेसे विप्लुता योनिकी व्यथा दूर हो जाती है । जो योनि वातला होय, कठिन होय, स्तब्ध होय और थोडे स्पर्शवाली होय तो उसको परदेके घरमें बैठाकर कुम्भी स्वेद देवे अथवा उस स्त्रीकी योनिमें सदैव तिलके तेलका फोया रखे । जो पित्तसे योनिरोग उत्पन्न हुआ होय तो सेचन, अभ्यंग, तथा फोयेका रखना, शीतल और पित्तनाशक क्रिया करे और स्नेहनके लिये घृतको बनावे । जो योनि प्रसंसिनी होय तो उसपर घृतकी मालिश करके दूधकी वाफ देकर भीतरको बिठा देवे और फिर नीचे लिखे वेशवारसे उसके मुखको बंद करके पट्टी बाँध देवे । सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, जीरा, अनार और पीपलामूल इनके चूर्णको पंडित वेशवार कहते हैं । योनिमें दाह होता होय तो नित्य आमलोंके रसमें खांड डालकर पिये अथवा कमलिनीकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर पिये । योनिमेंसे राध निकलती होय तो नीमके पत्ते आदि शोधन पदार्थोंको सेंधेनिमकके साथ पीसकर गोली बनाकर उन गोलियोंको योनिमें रखे यह हितकारक है । योनि दुर्गंधवाली होय अथवा पिच्छिल होय तो वच, अडूसा, कडवेपरवल, फूलप्रियंगु और नीम इनके चूर्णको योनिमें रक्खे और अमलतास आदिके क्वाथसे योनिको धोवे । पीपल, कालीमिरच, उडद, सोया, कूठ और सेंधानिमक इनको पीसकर तर्जनी अंगुलीके बराबर लम्बी और मोटी बत्ती बनाकर योनिमें रक्खे तो इससे कफजन्य योनिकी पीडा शमन हो जाती है । कर्णिकानामक कफजन्य योनिरोग होय तो योनिमें शोधन पदार्थोंसे बनाई हुई बत्ती रक्खे । गिलोय, हरड, बहेडा, आमला और जमालगोटा इनके क्वाथकी धारोंसे योनिको धोवे तो योनिकी खुजली दूर हो जाती है । कत्था, हरड, जायफल, नीमके पत्ते और सुपारी इनका चूर्ण करके मूँगके यूषमें पीसकर वस्त्रमें छानकर सुखा लेवे, फिर उसको योनिमें डालनेसे योनि सिकुड जाती है और जलका स्राव बंद हो जाता है । कौंछकी जडका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे योनिको धोवे तो योनि सकुच जाती है । जीरा, काला जीरा, पीपल, कलौंजी, सुगंधित वच, अडूसा, सेंधानमक, जवाखार और अजवायन इनका चूर्ण करके कुछेक गरम कर उनमें खांड मिलाकर लड्डू बना लेवे उन लड्डुओंको जठराग्निके बलानुसार खाय तो योनिके रोग समस्त नष्ट हो जाते हैं । चूहेके मांसका क्वाथ बनाकर उसमें तिलका तेल पकाकर उस तेलका फोया योनिमें रक्खे तो योनिसम्बन्धी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५–४९ ॥

अथ त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलां द्वौ सहचरौ गुडूचीं सपुनर्नवाम् । शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शता-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वरीम् ॥ ५० ॥ कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे । तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिरोगप्रशान्तये ॥ ५१ ॥

हरड, बहेडा, आमले, सफेद फूलकी कटसरैया, पीले फूलकी कटसरैया, गिलोय, पुनर्नवा, श्योनाक, हलदी, दारुहलदी, रास्ना और दुगुनी सतावर इनका कल्क डालकर चौंसठ तोले घीको चौगुने दूधमें पकावे इस घृतको पान करनेसे योनिके सब रोग नष्ट हो जाते हैं इसको 'त्रिफलाघृत' कहते हैं ॥५०॥५१॥

अथ सर्वयोनिरोगोपरि फलघृतम् ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला । मेदे पयस्या काकोल्यौ मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ ५२ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे प्रियंगुः कटुरोहिणी । उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ५३ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । शतावरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ५४ ॥ सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते । पुत्रानजनयते वीरान्मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ ५५ ॥ या चैवास्थिरगर्भा स्यात्सुतं वा जनयेन्मृतम् । अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते । ॥ ५६ ॥ योनिरोगे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते । प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ५७ ॥ नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् । अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपंत्यत्र चिकित्सकाः ॥ ५८ ॥ जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतं तत्र प्रयुज्यते । आरण्यगोमयेनैव वह्निज्वाला च दीयते ॥ ५९ ॥ मेदामहामेदयोरभावे शतावरी द्विगुणा देया । पयस्यात्र क्षीरकाकोली तद्युगलाभावे अश्वगन्धा द्विगुणा देया । प्रियंगुस्थाने केचिद्द्विशु पठन्ति । पयस्या काकोलीत्युक्त्वा पुनः काकोल्यौ इति काकोलीक्षीरकाकोल्यौर्द्वैगुण्यार्थम् । एतस्य फलघृतस्य पाठो नानाविधस्तन्त्रेषु । तत्र हिंगुवचातगरजीवकर्षभका एवाधिकाः । जीवकर्षभकयोरभावे विदारीकन्दो द्विगुणो देयः ।

मजीठ, मुलैठी, कूठ, हरड, बहेडा, आमला, खांड, खिरैटी, दुगुनी सतावर, चौगुनी असगंध, असगंधकी जड, अजमोद, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगु, कुटकी, कमल, बबूला (कुमुदिनी), दाख, काकोली, क्षीरकाकोली सफेद और लाल चन्दन यह प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको चौंसठ तोलेभर घी, दुगुना सतावरका रस, तथा दुगुना दूध इन सबको एकत्र मिलाकर पकावे तो यह फलघृत सिद्ध होता है जो पुरुष इस घृतको पिये तो मैथुन करनेमें प्रबल होता है और वीर, बुद्धिमान् तथा रूपवान् पुत्रोंको उत्पन्न करे है। जिन स्त्रियोंका गर्भ गिर जाता है अथवा जिनके मरी हुई संतान उत्पन्न होती है, अथवा जिनके संतान होकर मर जाती है, अथवा जिसके केवल कन्याही उत्पन्न होती होय उनको इस घृतके सेवन करनेसे सर्वगुणसम्पन्न सुन्दर दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होते हैं। योनिस्राव, रजोदोष और अन्यान्य योनिरोगोंपर भी यह घृत हितकारी है। संतति तथा आयुको बढानेवाला और संपूर्ण भूतप्रेतादिकोंको निवारण करनेवाला अश्विनीकुमारोंका कहा हुआ यह 'फलघृत' नामवाला घी है। इस पाठमें सफेद कटेरीकी जड डालना कहीं नहीं लिखा है तथापि वैद्य लोग डालते हैं। जिसका बछडा जीता हो तथा जिसके शरीरका रंग एकही होय ऐसी गायका घी लेकर उससे फलघृत बनावे और उसके पकानेमें अर्ने उपलोंकी अग्नि देवे, ऐसी परंपरा है। इस फलघृत बनानेका पाठ ग्रंथोंमें अनेक प्रकारका है किंतु उनमें हींग, वच, तगर और दुगुना विदारिकंद यह औषधि अधिक है॥५२-५९॥

अथ योनिकंदचिकित्सा ।

गोरिकाम्रास्थिजन्तुघ्नरजन्यञ्जनकट्फलाः । पूरयेद्योनिमेतेषां चूर्णैः क्षौद्रसमन्वितैः । ॥ ६० ॥ त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण च सेवयेत् । प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ ६१ ॥

आमलेकी गुठली, बायविडंग, हलदी, रसोत और कायफल इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योनिमें भरे और हरड, बहेडा तथा आमला इनके क्वाथमें सहत डालकर उससे सेचन करे तो 'योनिकंद' नामक स्त्रियोंका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६० ॥६१॥

अथ गर्भिणीरोगचिकित्सा ।

ह्रीबेरातिविषामुस्तमोचशक्रैश्भृतं जलम् । दद्याद्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥ १ ॥ कुक्षिरुगुदरव्यथा । मधूकचन्दनोशीरसारिवापद्मपत्रकैः । शर्करामधुसंयुक्तैः कषायो गर्भिणीज्वरे ॥ २ ॥ चन्दनं सारिवालोध्रमृद्वीकाशर्करान्वितम् । क्वाथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीज्वरशान्तये ॥ ३ ॥ पीतं विश्वमजाक्षीरैर्नाशयेद्विषमज्वरम् । गर्भिण्या इति शेषः। आम्रजम्बूत्वचः क्वाथैर्लेहयेल्लाजसक्तुकम् । अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ॥ ४ ॥ ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याकवत्सादनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिबेद्गर्भिणीम् । नानाव्याधिरुजातिसारकगदे रक्तश्रुतौ वा ज्वरे योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेऽप्युत्तमः ॥ ५ ॥

सुगंधवाला, अतीस, नागरमोथा, मोचरस और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे गिरता हुआ गर्भ, प्रदर और पेटकी पीडा शमन होती है। मुलैठी, लाल चंदन, खस, सारिवा और कमलके पत्ते इनका क्वाथ बनाकर उसमें खांड तथा सहत डालकर पिये तो गर्भिणी स्त्रियोंका ज्वर दूर हो जाता है। लाल चन्दन, सारिवा, लोध, दाख और मिश्री इनका क्वाथ पीनेसे गर्भिणी स्त्रीका ज्वर शांत होता है। बकरीके दूधके साथ सोंठको पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंका विषमज्वर शांत हो जाता है। आम तथा जामुनकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें खीलोंके सत्तू मिलाकर खाय तो तत्काल ही गर्भिणीका ग्रहणीरोग शांत हो जाता है। सुगंधवाला, अरलू, लाल चन्दन, खिरेटी, धनियाँ, गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और अतीस इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके अनेक प्रकारके रोग, व्यथा, अतीसार, रुधिरस्राव और गर्भस्रावकी पीडा भी दूर हो जाती है। यह उत्तम प्रयोग प्राचीन मुनियोंने कहा है ॥ १--५ ॥

अथ गर्भस्रावगर्भपातयोर्निदानं पूर्वरूपं च ।

ग्राम्यधर्माध्वगमनपानायासप्रपीडनैः । ज्वरोपवासोत्पतनप्रहाराजीर्णधावनैः ॥६॥ वमनाच्च विरेकाच्च कुन्थनाद्गर्भपातनात् । तीक्ष्णधारोष्णकटुकतिक्तरूक्षनिषेवणात् ॥ ७ ॥ वेगाभिघाताद्विषमादासनाच्छयनाद्भयात् । गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥८॥ गर्भपातनाद्गर्भपातनं नियमेन गर्भपातनशीलं द्रव्यम् । अथ गर्भस्य स्रावपातयोः पूर्वरूपमाह । गर्भे पतति इत्यादि । पतति स्रावेण पातेन वा पतिष्यति ।

मैथुन करनेसे, मार्ग चलनेसे, हाथी घोडेकी सवारीपर चढनेसे, परिश्रम करनेसे, अत्यंत दबनेसे, ज्वरसे, उपवाससे, कूदनेसे या गिर पडनेसे, अजीर्णसे, दौडनेसे, वमनसे, विरेचनसे, क्लेशसे, गर्भको गिरानेवाले तीक्ष्णादि द्रव्योंको सेवन करनेसे, तीक्ष्ण, क्षार, उष्ण, तीखे, कडवे तथा रूखे पदार्थोंका सेवन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, विषम आसन पर बैठनेसे, विषम स्थानमें सोनेसे और भयसे गर्भस्राव अथवा गर्भपात होता है। जब गर्भ स्रवनेको और गिरनेको होता है तो शूलकी पीडा तथा रुधिर निकलता है ॥ ६--८ ॥

अथ स्रावपातयोरवधिः ।

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः । ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ ९ ॥ आचतुर्थात् मासाच्चतुर्थमासपर्यन्तं गर्भस्य विद्रवः शोणितरूपः 'गर्भः स्रवति शोणितम्' इति भोजवचनात् । स्थिरशरीरस्य कठिनशरीरस्य ।

चौथे महीनेतक जो गर्भ रुधिर रूपसे स्रवता है उसको गर्भस्राव कहते हैं। भोजने भी कहा है कि "गर्भ चौथे महीनेतक रुधिररूपसे स्रवता है। चौथे महीनेके पश्चात् गर्भका अंग कठिन हो जाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, पांचवें महीनेमें अथवा छठे महीनेमें जो गर्भ गिरता है उसको गर्भपात कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ गर्भपातनिदानं दृष्टांतश्च ।

गर्भोऽभिघातविषमासपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ १० ॥ यथा वृन्तलग्नं पक्वं फलमभिघातेनाकाले एव पतति तथा गर्भोऽप्यभिघातादिनाऽकाले पतति ।

जिस प्रकार वृक्षकी शाखामें लगा हुआ फल अभिघात आदिसे अकालमें भी गिर पडता है, उसी प्रकार गर्भ अभिघातसे, विषम आसनसे और दबाने आदिसे अकालमें गिर जाता है ॥ १० ॥

अथ गर्भस्रावचिकित्सा ।

गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः । तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिभृतं पिबेत् ॥ ११ ॥

गर्भिणी स्त्रीके गर्भमेंसे जो वारंवार रुधिर स्रवे तो उस रुधिरको रोकनेके लिये उस स्त्रीको निम्न लिखित उत्पलादि-गणकी औषधियोंका क्वाथ पिलावे ॥११॥

अथोत्पलादिगणः ।

उत्पलं नीलमारक्तं कह्लारं कुमुदं तथा । श्वेताम्भोजं च मधुकमुत्पलादिरयं गणः ॥ १२ ॥ संशीलितो हरत्येव दाहं तृष्णां हृदामयम् । रक्तपित्तं च मूर्च्छां च तथा छर्दिमरोचकम् ॥ १३ ॥

नीले कमल, लाल कमल, नीलोफर, सफेद बबूले (कुमुद) और मुलैठी इनको उत्पलादिगण कहते हैं। इस गणका क्वाथ बनाकर पीनेसे दाह, तृषा, हृदयकी पीडा, रक्तपित्त, मूर्च्छा, वमन और अरुचि दूर होती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ गर्भपातोपद्रवाः ।

प्रस्रंसमाने गर्भे स्याद्दाहः शूलं च पार्श्वयोः । पृष्ठरुक्प्रदरानाहौ मूत्रसंगश्च जायते ॥ १४ ॥ प्रस्रंसमाने पतति ।

जब गर्भ पतित होता है तब दाह, पसलियोंमें [illegible], पीठमें पीडा, प्रदर, अफरा और मूत्रका अवरोध [illegible] है ॥ १४ ॥

अथ गर्भस्य स्थानान्तरगमनोपद्रवाः ।

स्थानात्स्थानान्तरं तस्मिन्प्रयात्यपि च जायते । आमपक्वाशयादौ तु क्षोभः पूर्वेऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥ पूर्वेऽपि उपद्रवाः पार्श्वशूलादयः ।

जब गर्भ एक स्थानमेंसे दूसरे स्थानमें जाता है तब आमाशय तथा पक्वाशय आदिमें क्षोभ होता है और उपरोक्त गर्भपातके उपद्रव (पसलियोंमें शूल आदि) होते हैं ॥ १५ ॥

अथ गर्भपातोपद्रवचिकित्सा ।

स्निग्धशीतक्रियास्तेषु दाहादिषु समाचरेत् । कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ॥ १६ ॥ श्रृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहृत्परम् । श्वदंष्ट्रामधुकक्षुद्राम्लानैः सिद्धपयः पिबेत् ॥ १७ ॥ शर्करामधुसंयुक्तं गर्भिणीवेदनापहम् ॥ १८ ॥ अम्लानः पुष्पजातिरयं बाणपुंख इति गौडादौ प्रसिद्धः । मृत्कोष्ठागारिकागेहसम्भवा नवमल्लिका । समंगा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्जनम् ॥ १९ ॥ तथा सर्जरसश्चैतान्यथालाभं विचूर्णयेत् । तच्चूर्णं मधुना लिह्याद्गर्भपातप्रशान्तये ॥ २० ॥ मृत्कोष्ठागारिकागेहसम्भवा कोष्ठागारिका किरटी तन्निर्मितगृहभवा मृत्तिका समंगा लज्जालूः । कसेरूत्पलशृंगाटकल्कं वा पयसा पिबेत् । पक्वं वचारसोनाभ्यां हिंगुसौवर्चलान्वितम् । आनाहे तु पिबेद्दुग्धं गुर्विणी सुखिनी भवेत् ॥ २१ ॥ सौवर्चलं लौहार इति लोके । तृणपञ्चकमूलानां कल्केन विपचेत्पयः । तत्पयो गर्भिणी पीत्वा मूत्रसंगाद्विमुच्यते ॥ २२ ॥ शालीक्षुकुशकाशैः स्याच्छरेण तृणपञ्चकम् । एषां मूलं तृषादाहपित्तासृङ्मूत्रसंगहृत् ॥ २३ ॥

दाह आदि होय तो वैद्य स्निग्ध और शीतल क्रिया करे। कुश (डाभ), काँस, सेंड और गोखुरूकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जड इनके कल्कसे पकाये हुए दूधमें मिश्री डालकर उसको पिये तो गर्भिणीका शूल नष्ट हो जाता है। गोखुरू, मुलैठी, कटेरी और पियाबाँसा इनके कल्कसे दूधको पकाकर पीनेसे गर्भिणीकी वेदना शांत हो जाती है, भौंरीके वरकी मड़ी, मोगरेके फूल, लज्जावती, धायके फूल, पीला गेरू, रसौत और राल इनमेंसे जितने पदार्थ मिल सके उतने पदार्थोंका बारीक चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है। कसेरू, कमल और सिंगाडे इनका कल्क बनाकर दूधके साथ पीनेसे गर्भिणीको सुख उत्पन्न होता है। जो गर्भवतीके अफरा आ जाय तो गर्भिणीको वच तथा लहुनके कल्कसे दूध पकाकर उसमें हींग तथा काला निमक डालकर पिये तो उससे सुख उत्पन्न होता है। शालिधानोंकी जड, ईखकी जड, डाभकी जड, काँसकी जड और सरपतेकी जड इनके कल्कसे पकाये हुए दूधको पीनेसे गर्भिणीके मूत्रका अवरोध दूर हो जाता है। यह पंचमूल-तृषा, दाह, रक्तपित्त और मूत्रके अवरोधको दूर करे है ॥ १६-२३ ॥

अथ गर्भिण्याः प्रतिमासचिकित्सा।
मधुकं शाकबीजं च पयसा सुरदारु च।
अश्मन्तकास्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ २४ ॥ वृक्षादनी पयस्या च प्रियंगूत्पलसारिवा। अनन्ता सारिवा राना पद्मा मधुकमेव च ॥ २५ ॥ बृहत्यौ काश्मरी चापि क्षीरिशुंगास्त्वचो घृतम्। पृष्टिपर्णी वचा शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ २६ ॥ शृंगाटकं विषं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता। वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ २७ ॥ यथासंख्यं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः। एवं गर्भो न पतति गर्भशूलं च शाम्यति ॥ २८ ॥ शाकबीजं शाको महावृक्षः कर्कशपत्रस्तस्य बीजम्। पयस्या अत्र क्षीरकाकोली तदलाभे अश्वगन्धा ग्राह्या। अश्मन्तकः कोविदारसदृशोऽम्लपत्रः अम्लोन इति लोके। ताम्रवल्ली रामकान्ता मञ्जिष्ठा इति लोके। प्रियंगुः कंगुः। अनन्ता उत्पलसारिवा। पद्मा पद्मचारिणी भार्ङ्गीति केचित्। बृहत्यौ स्थूलफला स्वल्पफला च। क्षीरिशुंगाः क्षीरिणां वटादीनां शुंगाः अविकाशिताः प्रवालाः। मधुपर्णिका गम्भारी पयोयुता प्रतिमासम्। अर्द्धश्लोकोक्ताः औषधमिलिताः कर्षमिताः शीततोयेन संपिष्टाः पलमितेन दुग्धेनालोडिता पातव्या इत्यर्थः। कपित्थबृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः। मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्विषगष्टमे ॥ २९ ॥ कपित्थादीनां मूलानि मिलितानि पलमितानि पलाष्टकमिते क्षीरे द्वात्रिंशज्जलपलयुक्ते क्वाथयित्वा क्षीरमात्रमवशिष्टं पातुं दद्यादित्यर्थः। नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत् ॥ ३० ॥ अत्रापि मधुकादीनि मिलित्वा कर्षमितानि शीततोयेन सम्पिष्टानि पलपरिमितेन दुग्धेनालोडितानि पिबेत्। क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम्। सक्षीरं वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदारु च ॥ ३१ ॥ दशमे शुण्ठीपयस्याभ्यां पूर्ववत्क्वाथितं पिबेत्। अथवा शुंठीमधुकसुरदारूणि शीतलजलपिष्टानि दुग्धेनालोडितानि पिबेत्। क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समंगामूलकं शिवाम्। पिबेदेकादशे मासि गर्भिणीशूलशान्तये ॥ ३२ ॥ अत्र क्षीरिकायाः फलं दद्यात्। समंगामूलकं लज्जालूमूलम्। सिता विदारी काकोली क्षीरी चैव मृणालिका। गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥ ३३ ॥ काकोल्यभावेऽश्वगन्धामूलं ग्राह्यम्। एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥ ३४ ॥

पहिले महीनेमें मुलैठी, सागौनके बीज, असगंध और देवदारु इनमेंसे जितने मिले उतने पदार्थोंका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलावे। दूसरे महीनेमें अश्मंतक (जिसको पश्चिममें आपटा कहते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं और कहीं कहीं अम्ललोना अम्लनोनिया और किसी देशमें दीपकवृक्ष भी कहते हैं इसके पत्ते कचनारकी समान होते हैं), काले तिल, मजीठ और सतावर इनमेंसे जितने मिलें उतनेका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलाना चाहिये। तीसरे महीने वंदा, फूलप्रियंगू, कंगुनी और सफेद सारिवा इनमेंसे जितनी मिलें उतनी औषधियोंका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलावे। चौथे महीनेमें सफेद सारिवा, काली सारिवा, रास्ना, भारंगी और मुलैठी इनमेंसे जितनी मिलें उनका एक तोला कल्क दूधमें मिलाकर पिलावे। पांचवें महीनेमें कटेरी, वडी कटेरी, कुम्भेर वड आदि पंचक्षीरवृक्षोंकी बहुत छोटी २ कोंपल और छाल इनमेंसे जितनी मिल सकें उतनीका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलावे। छठे महीनेमें पिठवन, वच, सैंजिना, गोखरू और कुम्भेर इनका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलाना चाहिये। सातवें महीनेमें सिंघाडे कमलकन्द (भसीडा), दाख, कसेरू, मुलैठी और मिश्री इनमेंसे जितनी मिलें उनका एक तोला कल्क दूधमें डालकर पिलावे। इस प्रकार करनेसे गर्भपात और गर्भस्राव नहीं होता और गर्भसम्बन्धी शूलभी नष्ट हो जाता है। उपरोक्त औषधियोंको शीतल जलमें पीसकर कल्क करना चाहिये और उस कल्कको दूधमें मिलाकर पिलाना चाहिये। आठवें महीने वैद्य कैथ, कटाई, बेल, परवल, ईख और कटेरी इनकी जडको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोलेभर कल्क बत्तीस पल (चार तोलेका एक पल होता है) जलमें मिलाकर आठ पल दूधमें डालकर उसको पकावे जब पकते पकते केवल दूध मात्र रह जाय और सब पानी जल जाय तब वह दूध उस गर्भिणी स्त्रीको पिलावे। नववें महीनेमें मुलैठी, सफेद सारिवा, कालीसारिवा, असगंध और लाल पत्तोंका जवासा इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोला कल्क चार तोले दूधमें घोलकर पिला देवे। दशवें महीनेमें सोंठ और असगंध इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोला कल्क बत्तीस तोले जलमें मिलाकर आठ पल दूधमें डालकर उस दूधको पकावे जब पकते पकते केवल दूधही मात्र रह जाय और सब पानी जल जाय तब उस दूधको गर्भिणीको पिलावे अथवा सोंठ मुलैठी और देवदारु इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिये। ग्यारहवें महीनेमें खिरनीके फल, कमल, लजावंतीकी जड और हरड इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोला भर कल्क दूधमें घोलकर गर्भिणीको पीनेको देवे कि जिससे शूलकी शांति हो। बारहवें महीनेमें मिश्री, विदारीकन्द, असगन्धकी जड, पारिसपीपलके फल और कमलकी नाल इनका एक तोला कल्क पीवे कि जिससे शूलकी शांति हो, गर्भ पुष्ट होय और तीव्र पीडा शान्त हो ॥ २४-३४ ॥

अथ वातशुष्कगर्भचिकित्सा।

गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि। सा बृंहणीयैः संसिद्धं दुग्धं मांसरसं पिबेत् ॥ ३५ ॥ शुष्कार्तवमजातांगं संशुष्कं मारुतार्दितम्। त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्कठिनं चावतिष्ठते ॥ ३६ ॥ शुक्रार्तवार्द्रको वायुरुदराध्मानकृद्भवेत्। कदाचिच्चेत्तदाध्मानं स्वयमेव प्रशाम्यति ॥ ३७ ॥ नैगमेयेन गर्भोऽयं हृतो लोकध्वनिस्तदा। स एवाल्पवृत्त्या चेल्लघुर्भूत्वावतिष्ठति ॥ ३८ ॥ तदा स गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः। धान्यकुट्टनमुख्या स्याच्चिकित्सा तूभयोरपि ॥ ३९ ॥ नैगमेयः बालग्रहः।

वातसे सूख जानेके कारण गर्भ जो गर्भिणीके उदरको पुष्ट न करे तो गर्भिणी जीवनीय गणकी औषधियोंके कल्कसे दूधको पकाकर पिये और मांसरसको पिये। जिसमें अंग उत्पन्न न होयँ ऐसा वीर्य और रजका संघात वायुसे पीडित सूख जानेके कारण प्राणरहित और कठिन रहता है इस प्रकार वीर्य तथा रजको सुखानेवाली वायु यह वायु जब कभी पेटको फुला देती है फिर वह फूला हुआ पेट अपने आपही शांत हो जाता है और उस समय लोग कहने लगते हैं कि इस गर्भको नैगमेय नामक बालग्रहने ग्रस लिया है यही गर्भ जब कुछेक चलनेवाला और बहुत छोटा हो जाता है तब उसको लोक "नागोदर" कहने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगते हैं। इन दोनों प्रकारमें किसी प्रकारकी स्थिति हुई होय तो उस गर्भिणी स्त्रीके हाथसे धान कुटवावे इत्यादि काम करावे यही इसकी मुख्य चिकित्सा है, इससे तत्काल प्रसव हो जाता है ॥ ३५-३९ ॥

अथ प्रसवसमयः ।

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते । एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः॥४०॥

गर्भिणी स्त्री नववें, दशवें, ग्यारहवें अथवा बारहवें महीने संतानको उत्पन्न करती है और जो कोई विकार होय तो इसके उपरांत भी प्रसव होता है ॥ ४० ॥

अथ प्रसवमासे प्रसवोपायः ।

वातेन गर्भसङ्कोचात्प्रसूतिसमयेऽपि या । गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥ ४१ ॥ कुट्टयेन्मुशलेनैषा कृत्वा धान्यमुलूखले । विषमं चासनं पानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥ ४२ ॥

वातसे गर्भ संकुचित हो जानेके कारण जो गर्भिणी स्त्री प्रसवके महीनेके बीत जानेपर भी नहीं जनती उसकी चिकित्सा सुनो। गर्भवती स्त्री प्रसव होनेके लिये ओखलीमें धान डालकर उनको मूसलसे कूटे और विषम आसन और विषम सवारीपर बैठे॥४१॥४२॥

अथ प्रसवसमये विलम्बचिकित्सा ।

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम् । कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिंडीतकेन वा ॥ ४३॥ निर्मोकः सर्पकञ्चुकः । पिंडीतकः मयनफल इति लोके । तन्तुना लांगलीमूलं बध्नीयाद्धस्तपादयोः । सुवर्चलं विशल्यां वा धारयेदाशु सूयते ॥ ४४ ॥ सुवर्चला सूर्यक्रान्ता । विशल्या पाटला । करङ्कीभूतगोमूर्द्धा सूतिकाभवनोपरि । स्थापितस्तत्क्षणान्नार्याः सुखं प्रसवकारकः ॥ ४५ ॥ करंकीभूतः अस्थिमात्रेण स्थितः । पोतकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेनच । योनेरभ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४६ ॥ पोतकी पोई इति लोके । कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात् । सुखं प्रसूतिं कुरुतेऽगनानां निष्पीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥ ४७ ॥ मातुलुंगस्य मूलं तु मधुकेन युतं तथा । घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४८ ॥ इक्षोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बद्ध्वा । कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेऽविलम्बेन ॥ ४९ ॥ तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्रमाणेन तन्तुना । बद्ध्वा कट्यां तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते ५०

प्रसवके होनेमें विलम्ब होय तो योनिके चारों और काले साँपकी कैंचलीकी धूनी देवे तथा मैनफलकी धूनी देवे । वा कलिहारीकी जडको डोरेमें बाँधकर हाथ पांवोंमें बाँधे अथवा हुलहुल या पांढलको धारण करे इससे तत्काल प्रसव हो जाता है । जिसमें केवल हड्डी बाकी रह गई होय ऐसी मरी गायका सूखा मस्तक लेकर गर्भवती स्त्रीके सोनेके घरपर रक्खे तो तत्कालही सुखसे प्रसव होता है । पोईकी जडका कल्क बनाकर उसमें तिलका तेल मिलाकर उस कल्ककी योनिके भीतर लेप करनेसे स्त्रीके सुखसे प्रसव होता है । अनेक प्रकारके कारणोंसे प्रसवमें स्त्रीको बहुत कष्ट होय तो पीपल और वच इनको जलमें पीसकर अंडीके तेलमें मिलाकर उसका नाभिके ऊपर लेप करे, इस प्रकार करे तो सुखसे प्रसव होता है । बिजौरेकी जड और मुलैठी इनको पीसकर घीके साथ पीनेसे स्त्रियोंको सुखसे प्रसव होता है । ईखकी उत्तरकी ओरकी जडको लेकर स्त्रीके शरीरकी बराबर लम्बे डोरेसे कमरमें बांधे तो सुखसे तत्काल प्रसव होता है । ताडकी उत्तरकी ओरकी जडको लेकर गर्भिणीके शरीरकी बराबर डोरेमें बांधनेसे तत्काल सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ४३-५० ॥

अथ मूढगर्भस्य निदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् । भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भो संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ ५१ ॥ अस्यायमर्थः । पवनः स्वहेतुभिर्दुष्टः ततो मूढः रुद्धगतिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूढगर्भं रुद्धगतिं गर्भं योन्यादिषु शूलं मूत्रसंगं च करोति । ततः तेन अनिलेन विगुणेन रुद्धगतिना स गर्भः सुप्तः कुटिलीकृतः चतुर्भिः प्रकारैः यातीत्यर्थः । अष्टभिरपरे । तत्संख्यानिरासार्थमाह । संख्यामतीत्य उक्तां संख्यामतिक्रम्य बहुधा बहुभिः प्रकारैः योनिं समुपैति ।

अपने कारणोंसे दुष्ट हुई और कुंठित गतिवाली मूढवायु गर्भको मूढ अर्थात् ठेढी गतिवाला कर देती है और योनिमें तथा पेटमें शूलको उत्पन्न करे है तथा मूत्रको रोक देता है । फिर मूढ वायुसे वह गर्भ रुककर चार प्रकारसे योनिमें आकर अड जाता है ऐसा कितने एक वैद्य कहते हैं और कितने एक वैद्य कहते हैं कि आठ प्रकारसे योनिमें आनकर अड जाता है परंतु सिद्धांत यह है कि इन संख्याओंका कुछ नियम नहीं है अनेक प्रकारसे योनिमें आनकर अड जाता है ॥ ५१ ॥

अथ चतुर्विधमूढगर्भस्य लक्षणनामानि । सकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्द्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनौ । संगी च यो भवति कीलकवत्स कीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसंगी ॥ ५२ ॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः सपरिघः परिघेण तुल्यः ॥ ५३ ॥ संज्ञब्दोऽत्र छन्दोऽनुरोधात्कप्रत्ययोऽपि स्वार्थे तेन कील इति नाम । तस्य लक्षणमाह—ऊर्द्ध्वबाहुचरणैरिति । उत्थितैर्बाहुचरणशिरोभिः योनौ यः संगी भवति स कीलः कीलकाख्यो मूढगर्भः । दृश्यैर्बहिर्गतैः । खुरसाधर्म्यात्खुरशब्देनात्र हस्तौ पादौ च गृह्येते । तेन हस्तद्वयपादद्वयैर्बहिर्गतैः प्रतिखुरः । स हि कायसंगी हस्तपादेतरकायेन सक्तो भवति । यो गर्भः भुजद्वयशिराः भुजद्वयमध्ये शिरो यस्य एतादृग्गच्छेन्निःसरेत् । तच्छेषेण शरीरेण सक्तो भवति स बीजकाख्यः । परिघवद्योनौ स परिघः ।

जिसके हाथ, पांव तथा मस्तक योनिमें अटक जाता है वह मूढगर्भ कीलकी समान होता है इस लिये यह कीलक कहा जाता है । जिसके दोनों हाथ और दोनों पांव बाहर निकल आवें और बाकी शरीर योनिमें अटक जाय उस मूढगर्भको प्रतिखुर कहते हैं । जिसमें दोनों हाथोंके बीचमें होकर शिर बाहर निकल आवे और बाकी शरीर योनिमें अटका रहे उस मूढगर्भको बीजक कहते हैं । योनिमें किवाड बंद करनेके डंडेलकी समान आडा आकर योनिमें अटक जाय उसको परिघ कहते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ मूढगर्भस्याष्टधात्वम् ।

द्वारं निरुद्ध्य शिरसा जठरेण कश्चित्कश्चिच्छरीरपरिवर्तनकुब्जकायः । एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ॥ ५४ ॥ पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव काश्चिदित्यष्टधा भवति गर्भगतिः प्रसूतौ ॥ ५५ ॥ अयमर्थः । कश्चिच्छिरसा योनिद्वारं निरुद्ध्य कश्चित्कुब्जकायेन सकुब्जेन पृष्ठेन सक्तो भवति । काश्चिदेकेन भुजेन योनिसूतेन सक्तो भवति । कश्चिद्द्वाभुजद्वयेन तिर्यग्भूत्वा सक्तो भवति । अन्यः ग्रीवाभंगादधोभूतेन मुखेन सक्तो भवति । कश्चित्पार्श्वेन अपवृत्ता निरुद्धा गतिर्यस्य एवंविधो योनिद्वारमेति याति ।

कोई मूढगर्भ मस्तकसे योनिद्वारको रोक लेता है । कोई मूढगर्भ पेटसे योनिद्वारको रोक लेता है । कोई मूढगर्भ कुबडा होकर पीठसे योनिद्वारको रोक देता है । कोई मूढगर्भ योनिमेंसे एक हाथ निकालकर बाकीके सब शरीरसे योनिद्वारमें अटक जाता है । कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर बाकी सब शरीरसे अटक जाता है । कोई मूढगर्भ आडा होकर अटक जाता है । कोई गरदनके टूटनेसे तिरछा मुख होकर योनिद्वारको रोक लेता है । कोई मूढगर्भ पसलियोंको फिराकर योनिद्वारमें अटक जाता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ सुश्रुतोक्ता अन्येऽष्टप्रकाराः ।

" काश्चिद्बाभ्यां योनिसक्थिभ्यां योनिमुखं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिपद्यते १। काश्चिदाभुग्नैकसक्थिरितरेण सक्थ्ना २। काश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यग्गतः ३। काश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते ४। अन्यः पार्श्वापवृत्तशिराःकाश्चिदेकेन बाहुना ५। काश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन ६। काश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः ७। काश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिद्वारं प्रतिपद्यते अपरेण पायुमिति ८।"

"कोई मूढगर्भ दोनों सांथलोंसे योनिके मुखमें आता है। कोई मूढगर्भ एक सांथलोंसे कुबडा होकर दूसरी सांथलसे योनिके मुखमें आता है। कोई मूढगर्भ सांथल तथा शरीरको कुबडा करके कूलोंसे आडा होकर योनिके मुखमें आता है। कोई मूढगर्भ अपनी छाती, पसली और पीठ इनमेंसे एक अंगसे योनिद्वारको ढककर अटक जाता है। कोई मूढगर्भ पसलियोंकी ओर मस्तकको करके एक हाथसे योनिद्वारको रोक लेता है। कोई मूढगर्भ अपने मस्तकको मोडकर दोनों हाथोंसे योनिद्वारको रोक देता है। कोई मूढगर्भ अपनी कमरको टेढी करके हाथसे, पांवसे और मस्तकसे योनिद्वारमें आता है। कोई मूढगर्भ एक सांथलसे योनिद्वारमें प्राप्त होता है और दूसरी सांथलसे गुदामें प्राप्त होता है।"

अथासाध्यमूढगर्भिणी।

अपविद्धशिरा यातु शीताङ्गी निरपत्रपा।
नीलोद्गताशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा॥ ५६॥ अपविद्धशिराः अवनतशिराः शिरोऽपि धारयितुमशक्तेति यावत्। निरपत्रपा लज्जाशून्या। नीलोद्गताशिरा कुक्षौ नीला उद्गता शिरा यस्याः सा।

जिसका मस्तक गिर गिर जाता होय, शरीर शीतल हो गया होय, लज्जारहित हो गई होय और जिसके शरीरमें नीले रंगकी नसें उभर आई होयँ वह स्त्री गर्भको नष्ट कर देती है और गर्भ उस स्त्रीको नष्ट कर देता है॥ ५६॥

अथान्तर्मृतगर्भलक्षणम्।

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलं चान्तर्मृते शिशौ॥ ५७॥ गर्भास्पन्दनं गर्भस्याचलत्वम्। आवीनां प्रणाश इति प्रसववेदनानामभावः। अथवा आवीशब्देन प्रसवलिङ्गानि मूत्रकफप्रसेकादीनि कथ्यन्ते तेषां नाशः। शूलः अन्तर्मृतस्य शिशोरुच्छूनतया।

जो गर्भके भीतर बालक मर गया होय तो वह हलन चलन नहीं होता। प्रसवकी पीडा नहीं होती। तथा मूत्रकफका आना आदि प्रसवके लक्षण नष्ट हो जाते हैं। शरीरका रंग स्याही लिये पीला हो जाता है, दुर्गन्धित श्वास और मरे बालकके सूज जानेके कारण शूल होता है॥ ५७॥

अथ गर्भमरणकारणम्।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः॥ ५८॥ उपतापो दुःखम्। मानस उपतापो बन्धुधनक्षयादिना। आगन्तुरुपतापः प्रहारादिः।

माताके प्रहार आदि आगन्तुक कारणोंसे अथवा बन्धु इष्ट धनादि क्षय आदि मानसिक कारणोंसे अथवा रोगोंसे पीडित होनेके कारण गर्भ पेटमेंही मर जाता है॥ ५८॥

अथ गर्भिण्या अन्यासाध्यलक्षणानि।

योनिसंवरणं संगः कुक्षौ मक्कल्ल एव च।
हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः।
॥ ५९॥ वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरम्। अत्यर्थं सेवमानायां गर्भिण्यां योनिमार्गगः॥ ६०॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम्। कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरन्तर्गतोऽनिलः॥ ६१॥ निरुणद्ध्याशयद्वारं पीडयन्गर्भसंस्थितम्। निरुद्धवचनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते॥ ६२॥ उच्छ्वासे रुद्धहृदयं नाशयत्याशु गर्भिणीम्। योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तकप्रतिमं घोरं नारभेत चिकित्सितम् । ॥ ६३ ॥ योनिसंवरणं व्याधिविशेषः । संगः कुक्षौ गर्भस्य लग्नता अप्रवृत्तिरिति यावत् । कुक्षौ मक्कल्लः रक्तमारुतजः शूलविशेषः । यद्यपि प्रसूताया मक्कल्लशूलमुक्तम् । तथापि सुश्रुते । प्रजातायाश्चेति चकारेणाप्रसूताया अपि मक्कल्लशूलं भवति इति बोद्धव्यम् । उपद्रवा आक्षेपककासश्वासादयः ।

योनिसंवरण रोग, गर्भका अटकना, मक्कल्लशूल, (रुधिर तथा वातसे उत्पन्न हुआ एक प्रकारका शूल) और मूढगर्भ तथा अन्यान्य आक्षेपक, खांसी, श्वास आदि उपद्रव गर्भिणीको मार देते हैं। योनिसंवरण रोगके लिये अन्य ग्रंथोंमें कहा है कि " गर्भवती स्त्री वातकारक अन्नपान, मैथुन और रात्रिमें जागरण इनको अत्यंत सेवन करे तो उसके प्रकुपित हुई योनिके मार्गमें स्थित वायु ऊर्ध्वगमन करनेवाली होनेसे योनिद्वारको बंद कर देती है और फिर भीतर रहनेवाली वायु गर्भगत बालकको पीडित करके गर्भाशयके द्वारको रोक देती है कि जिससे गर्भ अपने मुखके श्वाससे रुक जानेसे तत्काल मर जाता है और हृदयके ऊपरसे चलता हुआ श्वास गर्भिणीको मार देता है इस रोगको योनिसंवरण कहते हैं। " यद्यपि ' प्रसूता स्त्रियोंके मक्कल्लशूल होता है' ऐसा कहा है । तथापि सुश्रुतमें 'प्रजातायाश्च ' इसमें 'चकार' है इससे जानना चाहिये कि 'जिसके प्रसव न हुआ होय उसके भी 'मक्कल्लशूल होता है ॥ ५९--६३॥

अथ मूढगर्भचिकित्सा ।

याभिः संकटकालेऽपि बह्व्यो नार्यः प्रसाविताः । सम्यग्लब्धं यशस्तास्तु नार्यः कुर्युरमां क्रियाम् ॥ ६४ ॥ गर्भे जीवति मूढे तु गर्भे यत्नेन निर्हरेत् । हस्तेन सर्पिषाक्तेन योनेरन्तर्गतेन सा ॥ ६५ ॥ सा जनयित्री मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत् । शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता ॥ ६६ ॥ सचेतनं तु शस्त्रेण न यत्नेन दारयेत् । स दीर्यमाणो जननीमात्मानं चापि मारयेत् ॥६७॥ नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः । तदाशु जननीं हन्ति प्रभूतान्नं यथा पशुम् ॥ ६८ ॥ प्रभूतान्नमतिमात्रमन्नम् ।

जिसने इस संकटमें भी अनेक स्त्रियोंको प्रसव कराया होय और इस कामसे जिसका यश फैल रहा हो, ऐसी दाई इस क्रियाको करे । मूढ गर्भ जीता होय तो दाई अपने हाथको घीसे मलकर योनिके भीतर डालकर यत्नपूर्वक गर्भको बाहर निकाल लेवे । जो मूढगर्भ मर गया होय तो शस्त्रविधिको जाननेवाली, हलके हाथवाली और भयरहित ऐसी दाई गर्भिणीकी योनिमें शस्त्र डाले । जो गर्भमें जान होय तो उसको किसी प्रकार भी शस्त्रसे नहीं काटना चाहिये, क्योंकि जीवित गर्भको काटनेसे वह अपने आप भी मर जाता है और माताको भी मार देता है । जो गर्भ मर गया होय तो उसको जानकर उसमें कुछ भी विलम्ब नहीं करना चाहिये तत्काल शस्त्रसे काट डालना चाहिये क्योंकि नहीं काटनेसे मरा हुआ गर्भ तत्काल माताको मार देता है जिस प्रकार अधिक अन्न पशुकी समान मनुष्योंको मार देता है॥६४-६८

अथ गर्भच्छेदनप्रकारः ।

यद्यदङ्गं हि गर्भस्य योनौ सक्तं तु तद्भिषक् । सम्यग्विनिर्हरेच्छित्त्वा रक्षेन्नारीं प्रयत्नतः ॥ ६९ ॥ एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा । ततोऽभ्यक्तशरीरायां योनौ स्नेहं विधारयेत् । एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ ७० ॥

गर्भका जो जो अंग योनिमें अटक रहा होय उस उस अंगको वैद्य अच्छे प्रकारसे काटकर निकाल लेवे और यत्नपूर्वक स्त्रीकी रक्षा करे । गर्भके निकालनेके पश्चात् उस स्त्रीके शरीरपर गरम जलका सेचन करे और उसके पश्चात् शरीरपर मालिश करके योनिमें घी लगावे इस प्रकार करनेसे योनि कोमल और शूल शांत हो जाता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ प्रसूतायोनिक्षतादिचिकित्सा ।

तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं सुपेषयेत् । तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता ॥ ७१ ॥ पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्वितम् । योनौ विलिप्तं मधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥ ७२ ॥ प्रसूता वनिता वृद्धकुक्षिहासाय सम्पिबेत् । प्रातर्मथितसंमिश्रं त्रिसप्ताहात्कणाजटाम् ॥ ७३ ॥

तोम्बीके पत्ते और लोध इनको समान भाग लेकर अच्छे प्रकारसे पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनि तत्काल घावरहित हो जाती है । ढाकके फल और गूलरके फल इनको तिलके तेलमें पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनि अच्छे प्रकारसे दृढ हो जाती है। जिसका प्रसव होनेके पीछे पेट बढ गया होय ऐसी स्त्री इक्कीस दिनोंके पश्चात् प्रातःकाल पीपलामूलके चूर्णको दहीमें घोलकर पिये ॥ ७१–७३ ॥

अथ प्रसूतायाः प्रसवानन्तरमनिःसृतापराजोपद्रवाः ।

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि । तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्दताम् ॥ ७४ ॥ अपरा आम्बर इति लोके ।

जिसके प्रसव होनेपर आम्बर अर्थात् जेर न निकले तो वह आम्बरशूल, अफरा और अग्निको मन्द करे है ॥ ७४ ॥

अथोदरास्थितापरायाश्चिकित्सा ।

केशवेष्टितयांगुल्या तस्याः कण्ठं प्रघर्षयेत् । निर्मोककटुकालाबूकृतबन्धनसर्षपैः । चूर्णितैः कटुतैलाक्तैर्धूपयेदभितो भगम् ॥ ७५ ॥ निर्मोकः सर्पकंचुकः । कृतबन्धनं कोशातकः । लांगलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि ॥ ७६ ॥ प्रलिम्पेत्सूतिका योषिदपरापातनाय वै । हस्तं छिन्ननखं स्निग्धं सूतायोनौ शनैः क्षिपेत् ॥ ७७ ॥ अपरां तेन हस्तेन जनयित्री विनिर्हरेत् । एवं निहतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ ७८ ॥ ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् ॥ ७९ ॥

अंगुलीमें बालोंको बाँधकर उससे कंठको घिसनेसे आम्बर गिर जाता है सांपकी कैंचली, कडवी तोम्बी, कडवी तोरई तथा सरसों इनको एकत्र पीसकर सरसोंके तेलमें मिलाकर योनिके चारों ओर धूनी देनेसे आम्बर गिर जाता है । प्रसूता स्त्रीके हाथ और पांवके तलुओंके ऊपर कलिहारीकी जडके कल्कका लेप करनेसे आम्बर गिर जाता है । चतुर दाई अपने हाथकी अंगुलियोंके नखोंको अच्छे प्रकारसे काटकर हाथको घीसे चिकना करके धीरे धीरे प्रसूता स्त्रीकी योनिमें डालकर आम्बरको निकाल लेवे । इस प्रकार आम्बर निकालनेके पश्चात् स्त्रीके ऊपर गरम जलसे सेचन करे और फिर शरीरपर मालिश करके योनिमें घी लगावे ॥ ७५–७९ ॥

अथ मक्कल्लशूलस्य निदानं सम्प्राप्तिलक्षणं च ।

वनिताया प्रसूतायाः वातो रूक्षेण वर्द्धितः । तीक्ष्णोष्णशोषितं रक्तं रुद्ध्वा ग्रन्थिं करोति हि ॥८०॥ नाभ्यधः पार्श्वयोर्वस्तौ बस्तिमूर्द्धनि चापि वा । ततश्च नाभौ वस्तौ च भवेच्छूलं तथोदरे ॥ ८१ ॥ भवेत्पक्वाशयाध्मानं मूत्रसंगश्च जायते । एतद्भिषग्भिरुदितं मक्कल्लामयलक्षणम् ॥ ८२ ॥

प्रसूता स्त्रियोंके रूक्ष कारणोंसे बढी हुई वायु तीक्ष्ण तथा उष्ण कारणोंसे सुखाये हुए रुधिरको रोककर नाभिके नीचे, पसलियोंमें मूत्राशयमें अथवा मूत्राशयके ऊपरके भागमें गांठको उत्पन्न करे है । इस गांठके होनेसे नाभिमें मूत्राशयमें तथा पेटमें शूल चलता है, पक्वाशय फूल जाता है और मूत्र रुक जाता है, वैद्योंने यह मक्कल्ल रोगके लक्षण कहे हैं ॥८०–८२॥

अथ मक्कल्लशूलचिकित्सा ।

संचूर्णितंयवक्षारं पिबेत्कोष्णेन वारिणा । सर्पिषा वा पिबेन्नारी मक्कल्लस्य निवृत्तये ॥ ८३ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली । नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिकाम् ॥ ८४ ॥ सर्षपो हिंगु भार्ङ्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः । महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ ८५ ॥ पिप्पल्यादिर्गणो ह्येष कफमारुतनाशनः । क्वाथमेषां पिबेन्नारी लव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णेन समन्वितम् ॥ ८६ ॥ गुल्मशूलज्वरहरं दीपनं चामपाचनम् । मक्कलशूलगुल्मघ्नं कफानिलहरं परम् ॥ ८७ ॥ त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बूरुचूर्णसंयुक्तम् । खादेद्गुडं पुराणं नित्यं मक्कलुदलनाय ॥ ८८ ॥

प्रसूता स्त्रीको मक्कल शूलको शमन करनेके लिये जवाखारका महीन चूर्ण करके सुहाते हुए गरम जलके साथ अथवा घीके साथ पिलावे। पीपल, पीपलामूल, काली मिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारंगी, पाढ, इन्द्रजौ, जीरा, बकायन, चुरनहार, अतीस, कुटकी और वायविडंग ये सब औषधि 'पिप्पल्यादिगण' इस नामसे कही जाती हैं। इनका क्वाथ बनाकर सेंधानमक डालकर पिये। इस क्वाथको पीनेसे गुल्म, शूल, ज्वर, मक्कलशूल तथा कफ और वायु अच्छे प्रकारसे नष्ट हो जाता है। अग्नि दीपन होती है और आम पच जाती है। सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर और धनिया इनका चूर्ण पुराने गुडमें मिलाकर उस गुडको नित्य खाय तो मक्कल नष्ट हो जाता है ॥ ८३--८८ ॥

अथ प्रसूताहितकारिणः ।

प्रसूता युक्तमाहारं विहारं च समाचरेत् । व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां च वर्जयेत् ॥ ८९ ॥ मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते । स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ९० ॥

प्रसूता स्त्रीको योग्य आहार और योग्य विहार करना चाहिये और परिश्रम, मैथुन तथा शीतल पदार्थोंका सेवन त्याग देवे। प्रसूता स्त्रीके मिथ्या आहार विहारसे जो रोग उत्पन्न होता है वह रोग कष्टसाध्य अथवा असाध्य हो जाता है इस लिये प्रसूता स्त्रीको अवश्य पथ्य करना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात्। सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥ ९१ ॥ मिथ्योपचारादनुचिताचरणात्। प्रवातादिसेवनात् । संक्लेशात् उत्क्लेश्यन्ते दोषा अनेनेति संक्लेशो दोषजनकमात्रं तस्मात् । दारुणाः कष्टसाध्याः ।

अत्यन्त वातकारक स्थानको सेवन करने आदिसे, अयोग्य आचरणसे, जिनसे दोषोंका प्रकोप होय ऐसे आचरण करनेसे, विषम भोजनसे और अजीर्णसे प्रसूताके जो रोग उत्पन्न होते हैं वे कष्टसाध्य हो जाते हैं ॥ ९१ ॥

अथ सूतिकारोगाः ।

अंगमर्दो ज्वरः कासः पिपासा गुरुगात्रता । शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ ९२ ॥ एतेऽङ्गमर्दादयः प्रायेण सूतिकाया भवन्ति सूतिकारोगत्वेन लक्ष्यन्ते ।

अंगोंका टूटना, ज्वर, खाँसी, तृषा, गात्रका भारीपन, सूजन शूल और अतिसार ये रोग प्रसूताके विशेष करके होते हैं। ये प्रसूता स्त्रीके होते हैं इसलिये सूतिकारोग कहे जाते हैं ॥ ९२ ॥

अथ प्रसूताया ज्वरादिरोगाणां विशेषाभिधानम् ।

ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः । तन्द्राऽरुचिप्रसेकाद्या वातश्लेष्मसमुद्भवाः ॥ ९३ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणा मांसबलाश्रिताः । ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ९४ ॥ सूतिकाभवत्वेन सूतिकानाम्ना ते रोगाः आश्रयाश्रुतयोरभेदोपचारात् । ते चाप्युपद्रवा इति । अत एव ज्वरादयः उक्तानां रोगाणामन्यतमं प्रधानीकृत्योपद्रवाश्च ।

स्वर, अतिसार, सूजन, शूल, पेटका अफरना, बलका क्षय, तंद्रा, अरुचि और मुखमें पानी भर भर आना इत्यादि रोग प्रसूता स्त्रीके मांस तथा बलकी क्षीणतासे होते हैं। ये सूतिकारोग कहे जाते हैं और उसी प्रकार कष्टसाध्य हो जाते हैं। उपरोक्त रोगोंमें कोई रोग मुख्यतासे होय तो ज्वरादिक रोग उसके उपद्रवरूप होते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सा ।

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्भातहरीं क्रियाम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दशमूलकृतं क्वाथं कोष्णं दद्याद् घृतान्वितम् ॥ ९५ ॥ अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलकं जलदम् । श्रृतशीतं मधुयुक्तं शमयत्यचिरेण सूतिकातंकम् ॥ ९६ ॥

सूतिकाके रोगको शमन करनेके लिये वातनाशक क्रिया करे । दशमूलका क्वाथ बनाकर कुछ कुछ जब गरम होय तब उसमें घी डालकर पिवे तो सूतिकारोग नष्ट हो जाता है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

अथ देवदार्वादिक्वाथः ।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् । भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यहरीतकी ॥ ९७ ॥ गजकृष्णा सदुःस्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकः । बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥ ९८ ॥ समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् । क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ ९९ ॥ शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्तिभिः । युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ १०० ॥ निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम् । कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥ १०१ ॥

देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, चिरायता, कायफल, कुटकी, धनियाँ, हरड, गजपीपल, कटेरी, गोखुरू, जवासा, कटाई, अतीस, गिलोय, काकडाशिंगी और काला जीरा इन सबको समान भाग लेकर अष्टावशेष क्वाथ बनाकर उसमें सेंधानमक और भूनी हींग डालकर प्रसूता स्त्रीको पिलावे तो शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कंप, मस्तकवी पीडा, तृषा, दाह, तन्द्रा, अतिसार और वमनयुक्त वात तथा कफसे उत्पन्न हुए प्रसूताके रोग नष्ट हो जाते हैं । यह देवदार्वादि क्वाथ प्रसूताके लिये उत्तम औषधि है ॥ ९७–१०१ ॥

अथ पंचजीरकपाकः ।

जीरकं स्थूलजीरश्च शतपुष्पाद्वयं तथा । यवानी चाजमोदा च धान्यकं मेथिकापि च ॥ १०२ ॥ शुण्ठी कृष्णा कणामूलं चित्रकं हपुषापि च । बदरीफलचूर्णं च कुष्ठं कम्पिल्लकं तथा ॥ १०३ ॥ एतानि पलमात्राणि गुडं पलशतं मतम् । क्षीरं प्रस्थद्वयं दद्यात्सर्पिषः कुडवं तथा ॥ १०४ ॥ पञ्चजीरकपाकोऽयं प्रसूतानां प्रशान्तये । युज्यते सूतिकारोगे योनिरोगे ज्वरे क्षये ॥ १०५ ॥ कासे श्वासे पाण्डुरोगे काश्यें वातामयेषु च ॥ १०६ ॥

जीरा, काला जीरा, सोया, सौंफ, अजमोद, अजवायन, धनिया, मेथी, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चीता, हाऊबेर, बेरका चूर्ण, कूठ और कवीला यह प्रत्येक पदार्थ ४ चार चार ४ तोले लेवे, गुड ४०० चार सौ तोले, इन सबको १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले दूध और सोलह तोले भर घीमें पकावे तो यह पंचजीरक पाक सिद्ध होता है । यह पाक सूतिकारोगमें, ज्वरमें, क्षयमें, खाँसीमें, श्वासमें, पांडुरोगमें, कृशतामें और वातजन्य रोगोंमें हितकारी है ॥ १०२–१०६ ॥

अथ सौभाग्यशुंठी ।

आज्यं स्यात्पलयुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः पंचाशत्पलमत्र चूर्णितमथो प्रक्षिप्यते नागरम् । प्रस्थार्द्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकान्मिश्याः पंचपलं पलं क्रिमिरिपोः साजाजिजीरादपि ॥ १०७ ॥ व्योषाम्भोददलोरगेन्द्रसुमनस्त्वग्द्राविडीनां पलं पक्वं नागरखण्डसंज्ञकमिदं तत्सूतिकारोगहृत् । तृट्छर्दिज्वरदाहशोषशमनं सश्वासकासापहं प्लीहव्याधिविनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसन्दीपनम् ॥ १०८ ॥ दलं पत्रकम् । उरगेन्द्रसुमनः नागकेसरम् । द्राविडी सूक्ष्मैला ।

आठ तोलेभर घी, १२८ एक सौ अट्ठाईस तोले दूध और २०० दो सौ तोले खांड इनको एकत्र करके इनमें ३२ बत्ती तोले सोंठका चूर्ण मिलावे फिर इसको गुडकी समान विधिपूर्वक पकावे, इसमें १२ बारह तोले धनिया, २० बीस तोले सौंफ, वायविडंग ४ चार तोले, सफेद जीरा ४ चार तोले,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोंठ ४ चार तोले, मिरच ४ चार तोले, पीपल ४ चार तोले, नागरमोथा ४ चार तोले, तेजपात ४ चार तोले, नागकेसर ४ चार तोले, दालचीनी ४ तोले और छोटी इलायची ४ चार तोले डालकर पाक करे तो यह सौभाग्यशुंठी सिद्ध होती है। इस सौभाग्यशुंठीको सेवन करनेसे प्रसूता स्त्रियोंके सूतिकारोग, तृषा, वमन, ज्वर, दाह, शोष, श्वास, खांसी, प्लीह और कृमिका नाश होता है और मंद हुई अग्नि दीपन होती है॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ प्रसूतापथ्यावधिः।

सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याल्पभोजना। स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ १०९ ॥ सर्वतः परिशुद्धा निःसृताशेषदुष्टरुधिरा अतन्द्रिता पथ्यादौ सावधाना। प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे। सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ११० ॥ उपद्रवविशुद्धां च विज्ञाय वरवर्णिनीम्। ऊर्द्धं चतुर्भ्यो मासेभ्यः परिहारं विवर्जयेत् ॥ १११ ॥

जिसका सम्पूर्ण दुष्ट रुधिर निकल गया हो ऐसी प्रसूता स्त्री एक महीनेतक स्निग्ध पथ्य और अल्प भोजन करे, नित्य स्वेद लेवे और मालिश करावे और पथ्य आदिसे सावधान रहे। डेढ़ महीनेके पश्चात् अथवा फिर जबतक रजोदर्शन न होय तबतक उस स्त्रीका 'प्रसूता' नाम दूर हो जाता है ऐसा धन्वन्तरिका मत है। चार महीने बीत जाँय और कोई भी उपद्रव न रहे तब प्रसूताको परहेज त्यागना चाहिये ॥ १०९–१११ ॥

अथ स्तनरोगसम्प्राप्तिः।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियाः। रक्तं मांसं च संदूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ ११२ ॥ अदुग्धावपि स्तनौ प्रसूताया गर्भिण्याश्च स्त्रिया बोद्धव्यौ। अत आह सुश्रुतः–धमन्यः संवृतद्वाराः कन्यानां स्तनसंश्रिताः। दोषाविसरणात्तासां न भवन्ति स्तनामयाः ॥ ११३ ॥ दोषाविसरणाः संवृतद्वारत्वेन दोषाणामविसरणमसञ्चारो यासु ताः। तासामेव प्रसूतानां गर्भिणीनां च ताः पुनः। स्वभावादेव विवृता जायन्ते संस्रवन्त्यतः॥ ११४॥

दोष दूधयुक्त अथवा दूधरहित स्त्रीके स्तनोंमें प्राप्त होकर रुधिर तथा मांसको दूषित करके स्तनरोगको उत्पन्न करते हैं। यह रोग कन्याओंके नहीं होता क्योंकि सुश्रुत कहता है कि "कन्याओंके स्तनोंकी धमनी रुकी हुई होती हैं. इस कारण उनके दोषोंका संचार न होनेसे स्तनरोग नहीं होता।" जिनके प्रसव हुआ हो और गर्भवती स्त्रियोंकी धमनी स्वाभाविक रीतिसे खुल जाती हैं इससे स्राव करती हैं॥ ११२–११४॥

अथ स्तनरोगलक्षणम्।

पञ्चानामपि तेषां तु हित्वा शोणितविद्रधिम्। लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ ११५ ॥ पञ्चानां वातपित्तकफसन्निपातागन्तुजानाम्। आगन्तुजस्तनरोगोऽभिघातेन शल्येन च बोद्धव्यः रक्तजस्यासम्भवात्स्वभावात्।

पांचों प्रकारके स्तनरोगोंके लक्षण रुधिरजन्य विद्रधिको छोडकर बाहरकी विद्रधिकी समान होते हैं। यह ऊपरसे जाना जाता है कि, वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य और आगन्तुज ऐसे पांच प्रकारके स्तनरोग होते हैं। अभिघात अथवा शल्यसे जो स्तनरोग होता है वह आगन्तुज कहा जाता है। रुधिरके प्रकोपसे स्तनरोग नहीं होता ऐसा स्वभावही है ॥ ११५ ॥

अथ स्तनरोगचिकित्सा।

शोथं स्तनोऽस्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम्। आमे विदाहिनि तथैव च तस्य पाके यस्याः स्तनौ सततमेव च निग्रहार्त्तौ॥ ११६॥ पित्तघ्नानि तु शीतानि द्रव्याण्यत्र प्रयोजयेत्। जलौकोभिर्हरेद्रक्तं न स्तनावुपनाहयेत् ॥११७॥ उपनाहयेत्स्वेदयेत्। लेपो विशालामूलेन हंति पीडां स्तनोत्थिताम्। निशाकनककल्काभ्यां लेपः प्रोक्तः स्तनार्तिहा ॥११८॥ विशाला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रवारुणी । कनकस्य धत्तूरस्य पत्रं ग्राह्यम् । लेपो निहन्ति मूलं वन्ध्याकर्कोटीभवं शीघ्रम् । निर्वाप्य तप्तलोहं सलिले तद्वा पिबेत्तत्र ॥ ११९ ॥

स्त्रीके स्तनोंमें सूजन उत्पन्न होय तो वैद्य विद्रधि अधिकारोक्त अनेक प्रकारकी चिकित्सा करे । किंतु स्तनोंमें शेकादि स्वेदन तो कभी नहीं देवे। स्तनके रोगोंपर पित्तनाशक शीतल पदार्थोंका प्रयोग करे और जोंक लगाकर रुधिर निकाले, स्तनोंमें स्वेदन कभी नहीं देना चाहिये । इन्द्रायनकी जडका लेप करनेसे स्तनरोग नष्ट होता है । हलदी और धतूरेके पत्ते इनका लेप करनेसे स्तनकी पीडा नष्ट हो जाती है । तपाये हुए लोहेको जलमें बुझाकर उस जलको पिलानेसे स्तनरोग नष्ट होता है । वांझककोडेकी जडका लेप करनेसे भी स्तनकी पीडा शमन हो जाती है ॥ ११६-११९ ॥

इति स्त्रीरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ बालरोगाधिकारः ।

तत्र बालानां बालग्रहरक्षोपदेशः ।

बालग्रहा अनाचारात्पीडयन्ति शिशुं यतः ।
तस्मात्तदुपसर्गेभ्यो रक्षेद्बालं प्रयत्नतः ॥१॥

अनाचार (मिथ्या आचारादि) से बालग्रह बालकको पिडित करते हैं । इस कारण बालग्रहोंके उपसर्गसे यत्नपूर्वक बालककी रक्षा करनी चाहिये १॥

अथ बालग्रहाणां नामानि ।

स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च ।
शकुनी रेवती चैव पूतना चान्धपूतना ॥२॥
पूतना शीतपूर्वा च तथैव मुखमण्डिका ।
नवमो नैगमेयश्च प्रोक्ता बालग्रहा अमी ३॥

स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमंडिका और नैगमेय इस प्रकार बालग्रह नौ हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ बालग्रहोत्पत्तिः ।

नव स्कन्दादयः प्रोक्ता बालानां ये ग्रहा अमी ।
श्रीमन्तो दिव्यवपुषो नारीपुरुषविग्रहाः ॥ ४ ॥ एते स्कन्दस्य रक्षार्थं कृत्तिकोमाग्निशूलिभिः सृष्टाः । शरवनस्थस्य रक्षितस्य स्वतेजसा ॥ ५ ॥ स्कन्दः सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारिणा । बिभर्ति चापरां संज्ञां कुमार इति संग्रहः ॥ ६ ॥ अयं हि कार्तिकेयादन्यः । स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः सोऽग्निना तत्समद्युतिः । स च स्कन्दसखो नाम्ना विशाख इति चोच्यते ॥ ७ ॥ ग्रहाः स्त्रीविग्रहा एते नानारूपाः प्रकीर्तिताः । देवानां कृत्तिकानां ते भागा राजसतामसाः ॥ ८ ॥ नैगमेयस्तु पार्वत्या सृष्टो येषां ततो ग्रहः । कुमारः स हि देवस्य गुहस्यात्मसमोऽस्ति वै ॥ ९ ॥ ततो भगवता स्कन्दे सुरसेनापतौ कृते । उपतस्थुर्ग्रहा एते दीप्तशक्तिधरं गुहम् ॥ १० ॥ ऊचुः प्राञ्जलयश्चैनं वृत्तिनों दीयतामिति । तेषामर्थे ततः स्कन्दः शिवं देवमचोदयत् ॥ ११ ॥ ततो ग्रहांस्तानुवाच भगवान्भगनेत्रहृत् । तैर्यग्योनिं मानुषं च दैवं च त्रितयं जगत् ॥ १२ ॥ परस्परोपकारेण वर्तते धार्यते तथा । देवान्नरान्प्रीणयन्ति तैर्यग्योनींस्तथैव च ॥ १३ ॥ यथाकालं प्रवृत्तास्तु उष्मवर्षाहिमानिलैः । इज्याञ्जलिनमस्कारैर्जपहोमैस्तथैव च ॥ १४ ॥ सम्यक्प्रयुक्तैश्च नराः प्रीणयन्त्यपि देवताः । भागधेयविभक्तं च शेषं किञ्चिन्न विद्यते ॥ १५ ॥ तद्युष्माकं शुभा वृत्तिर्बालेष्वेव भविष्यति ॥ १६ ॥

स्कन्द आदि जो नौ बालग्रह कहे हैं वह सम्पत्तिवाले और दिव्य शरीरवाले हैं । इनमें कितने एक स्त्रीरूपवाले हैं और कितने एक पुरुषरूपवाले हैं । ये ग्रह नरसलके वनमें रहते हैं और स्वाभाविक तेजसे रक्षित हैं । ये ग्रह कार्तिकेयकी रक्षाके लिये कृत्तिका, पार्वती, अग्नि और सदाशिवने उत्पन्न करे हैं । इनमें स्कन्द नामक जो पहिला बालग्रह है उसको साक्षात् सदाशिवने अपने आप उत्पन्न किया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। इसका दूसरा नाम कुमार है। यद्यपि स्कन्द और कुमार ये दो नाम कार्तिकेयके भी हैं तोभी यह दो नामवाले बालग्रह कार्तिकेय स्वामीसे भिन्न हैं ऐसा जानना। स्कन्दापस्मार नामक जो बालग्रह है उसको अग्निने उत्पन्न किया है। यह बालग्रह अग्निकी समान कांतिवाला है और स्कन्दसख तथा विशाखसख यह भी इसके नाम हैं। शकुनीसे लेकर मुखमंडिका पर्यंत जो बालग्रह स्त्रीस्वरूपवाले हैं और गंगा पार्वती तथा कृत्तिका इनके रजोगुणी और तमोगुणी भागरूप हैं। नैगमेय जो बालग्रह है उसको पार्वतीने उत्पन्न किया है, मेंढेकी समान मुखवाला है। कार्तिकेयको प्राणोंकी समान प्रिय है। जिस समय महादेवने कार्तिकेयको देवताओंका सेनापति नियत किया उस समय ये सब बालग्रह प्रदीप्त शक्तिको धारण करनेवाले कार्तिकेय स्वामीके सन्मुख आनकर खडे हुए, इन सबोंने कार्तिकेय स्वामीको हाथ जोडकर कहा कि 'हमें आजीविका बताओ' इनके वचन सुनकर कार्तिकेय स्वामीने महादेवसे जाकर प्रार्थना की, महात्मा सदाशिवने इन सब बालग्रहोंके प्रति कहा कि "इस जगत्में पशु पक्षियोंकी जाति, मनुष्य जाति और देवजाति ये तीन जाति हैं, ये परस्पर किये उपकारसे वर्तते हैं और उस उपकारसेही रक्षित हैं। देवता यथासमयमें गरमी, वर्षा, शीत और पवनको उत्पन्न करके मनुष्य तथा पशुपक्षियोंको तृप्त करते हैं। मनुष्य यजन, हाथ जोडना, नमस्कार, जप तथा होम इत्यादि क्रिया अच्छे प्रकारसे करके देवताओंको संतुष्ट करते हैं। पशुपक्षी आदि जाति, अपने दूधादिसे तथा मांसादिसे मनुष्योंको तथा देवताओंको तृप्त करते हैं। और मनुष्य भी पालन आदिसे पशुपक्षियोंको तृप्त करते हैं। इस प्रकार होनेसे सब यथा यथा भागमें विभक्त हो गये हैं, इस कारण कोई अवशेष नहीं रहा इस कारण तुम्हारी आजीविका बालकोंमें होगी" ॥ ४–१६ ॥

अथ बालग्रहाणां ग्रहणकारणम्।

कुलेषु येषु नेज्यन्ते देवाः पितर एव च। ब्राह्मणाः साधवो वापि गुरवोऽतिथयस्तथा ॥ १७ ॥ निवृत्तशौचाचारेषु तथा कुत्सितवृत्तिषु। निवृत्तभिक्षाबलिषु भग्नकांस्यगृहेषु वा ॥ १८ ॥ ते वै बालांश्च तांस्तान्हि ग्रहा हिंसन्त्यशंकिताः। तत्र वो विपुला वृत्तिः पूजा चैव भविष्यति ॥ १९ ॥ एवं ग्रहाः समुत्पन्ना बालान्हिंसन्ति वा यथा। ग्रहोपसृष्टा बालाः स्युर्दुश्चिकित्स्यतमास्ततः ॥ २० ॥

महादेवजी बालग्रहोंको कहने लगे कि जिस कुलमें देवता, पितृ, ब्राह्मण, साधुजन, गुरुजन और अतिथियोंका पूजन नहीं होता तथा जो कुल पवित्रतासे और आचारसे भ्रष्ट हैं, कुत्सित वृत्तिवाले, किसीको भिक्षा और बलिदान नहीं देते होयँ तथा जो फूटे हुए कांसेके बासनमें भोजन करते हैं उनके कुलमें जो बालक होते है उन बालकोंको तुम निःशंक होकर पकडो, ऐसे करनेसे तुम्हारी अच्छे प्रकारसे आजीविका चलेगी और पूजनभी होगा। बालग्रह इस प्रकार उत्पन्न हुए हैं और इसी कारण बालकोंको पीडित करते हैं। इस प्रकार होनेसे जिनको बालग्रहोंने ग्रस लिया होय उन बालकोंकी चिकित्सा करनी बहुत कठिन हो जाती है ॥ १७–२० ॥

अथ सामान्यबालग्रहग्रसितलक्षणम्।

क्षणाद्विजृंभते बालः क्षणात्रस्यति रोदिति। नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥ २१ ॥ ऊर्द्धं निरीक्षते दन्तान्खादेत्कूजति जृम्भति। भ्रुवौ क्षिपति दृष्टौष्ठः फेनं वमति चासकृत् ॥ २२ ॥ क्षामोऽति निशि जागर्ति शूनांगो भिन्नविट्स्वरः। मत्स्यशोणितगन्धश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥ २३ ॥ दुर्बलो मलिनांगश्च नष्टसंज्ञोऽपि जायते। सामान्यग्रहजुष्टस्य लक्षणं समुदाहृतम् ॥ २४ ॥

क्षणभरमें बालक व्याकुल हो जाय, क्षणभरमें रोने लगे, नख तथा दांतोंसे अपने आपको और माताको काटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकारी मारे, जम्भाई लेय, भौओंको टेढी करे, होठोंको काटे, बारंबार झागसहित वमन करे, कृश हो जाय, रात्रिमें जागे, शरीरमें सूजन हो जाय, दस्त पतले आने लगें, गला पक जाय, उसके देहमेंसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मछलीकी समान तथा रुधिरकी समान दुर्गंध आवे, पहिलेकी अपेक्षा भूंख कम हो जाय, दुर्बल हो जाय, अंग मलिन होजाय और बेहोश हो जाय तो ये सम्पूर्ण बालग्रह ग्रसितके सामान्य लक्षण हैं ॥ २१-२४ ॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टबालकानां लक्षणानि । स्रस्तांगः क्षतजसगन्धिकस्तनद्विट् वक्त्रास्थो हतचरणैकपक्षनेत्रः । उद्विग्नः सस-लिलचक्षुरल्परोदी स्कन्दार्तो भवति च गाढमुष्टिबन्धः ॥ २५ ॥ निःसंज्ञो भवति पुनर्लभेत संज्ञां संस्तब्धः करचरणैश्च नृत्य-तीव । विण्मूत्रे सृजति चिरेण जृम्भमाणः फेनं वा सृजति च तत्सखाभिजुष्टः ॥ २६ ॥ तत्सखाभिजुष्टः स्कन्दापस्मारयुक्तः । स्रस्तां-गो भयचकितो विहंगगन्धिः सास्रावव्रण-परिपीडितः समन्तात् । स्फोटैश्च प्रचित-तनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ २७ ॥ रक्तास्यो हरितमलोऽ-तिपाण्डुदेहः श्यावो वा मुखकरपाकवेदनार्तः । गृह्णाति व्यथिततनुश्च कर्णनासं रेवत्या भृशमभिपीडितः कुमारः ॥ २८ ॥ विट्-स्रावी स्वपिति न वासरे न रात्रौ विड्भिन्नं विसृजति काकतुल्यगन्धः । छर्द्यार्तो ह्यधि-ततनूरुहः कुमारस्तृष्णाढ्यो भवति च पूतनागृ-हीतः ॥ २९ ॥ यो द्वेष्टि स्तनमतिसारकास-हिक्काच्छर्दीभिर्ज्वरसहिताभिरर्द्यमानः । दुर्वर्णः सततमथापि योऽस्रगन्धिस्तं ब्रूया-द्विषगथ गन्धपूतनार्तम् ॥ ३० ॥ आक्रन्द-त्यभिचकितं सुवेषमानः संलीनो भवति व्यथान्त्रकूजयुक्तः । स्रस्तांगो भृशमतिशी-र्यते च शीतार्तं ब्रूयाद्विषगथ शीतपूतना-र्तम् ॥ ३१ ॥ म्लानांगः सरुधिरपाणिपाद-वक्त्रो वह्वाशी कलुषशिरावृतोदरो यः । संज्ञेयः शिशुरथ वक्त्रमाण्डकार्तः सोद्वेगो भवति च मूत्रतुल्यगंधिः ॥ ३२ ॥ यं फेनं श्रमति विनम्यते च मध्ये सोद्वेगो विहसति चोर्द्धमीक्षमाणः । कूजेच्च प्रतत-मथो वसासगन्धिर्धिनिःसंज्ञो भवति स नैग-मयजुष्टः ॥ ३३ ॥

जिसको स्कन्दनामक बालग्रहने पीडित किया हो उस बालककी आंखें सूज जाती हैं, उसके शरीरमेंसे रुधिरकी समान गन्ध आती। दूधको नहीं पीता, मुख टेढा हो जाता है, आंख खराब होकर चंचल तथा एक पलकवाली हो जाती हैं, विह्वल हो जाता है, जलसे नेत्र भरे रहते हैं, थोडा रोता है, हाथकी मुठी बहुत जोरसे बांध लेता है और उसका मल कठिन हो जाता है। जिसको स्कन्दापस्मार ग्रहने ग्रसा होय वह बालक बेहोश हो जाता है, फिर चैतन्य हो जाता है, शरीर जकड जाता है, हाथसे तथा पांवसे मानो नाचता हो ऐसा प्रतीत होता है, मलमूत्रको बारंबार त्यागता है, बहुत जोरसे जम्भाई लेता है अथवा मुखमें झाग भरे रहते हैं । जिसको शकुनी ग्रहने ग्रसा हो वह बालक शिथिल अंगोंवाला, भयसे चकित, पक्षीकी समान गन्धवाला, स्रावयाले व्रणोंसे पीडित, दाह और पके हुए फोडोंसे व्याप्त शरीरवाला होता है । जिसको रेवतीग्रहने ग्रसा हो वह बालक लाल मुखवाला, उसकी विष्ठाका रंग अत्यन्त पीला अथवा काला हो, ज्वर तथा मुखपा-ककी पीडासे पीडित और शरीरमें व्यथाके होनेसे कानको तथा नाकको मलता है । जिसको पूतनाग्रहने ग्रसा हो उस बालकके अंग शिथिल हो जाते हैं, रात्रि और दिनमें किसी समयभी सुखसे नहीं सोता, दस्त पतला आता है, कौवेकी समान गंध आती है, वमनकी पीडा होती है, रोमांच हो आते हैं और बारंबार तृषा लगती है। जो बालक दूधको नहीं पिये, ज्वर, अतीसार, खाँसी, हिचकी तथा वमन इनसे पीडित हो, शरीरका रंग बिगड जाय, सर्वदा उलटा सोवे और उसके शरीरमेंसे रुधिरकी समान गंध आवे उसको वैद्य अंधपूतनाग्रहग्रसित जाने । जो बालक चीखें मारे, भयभीत होकर घबडा जाय, काँपे अथवा फूल जाय, पेटमें आंतोंका शब्द होता हो, अंगोंमें दुर्गंध आती हो और दस्त अत्यन्त पतला हो गया होय तो वैद्य इसको शीतपूतनाग्रसित जाने । जिस बालकके अंग मुरझा जायँ, हाथ, पांव तथा मुख-मेंसे रुधिर निकले, उद्वेगको प्राप्त हो जाय, बहुत खाये,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पेट बहुतसी कलुषित रंगकी नसोंसे व्याप्त हो और शरीरमेंसे मूत्रकी समान गंध निकले उसको वैद्य मुखमंडिकाग्रहग्रसित जाने । जो बालक झागोंकी वमन करे, शरीरके मध्य भागमें नव जाय, उद्वेगको प्राप्त हो, ऊपरको देखदेखकर हँसे, बहुत गूंजे शरीरमें चरबी तथा रुधिरकी समान गंध आवे और बेहोश हो जाय उस बालकको वैद्य नैगमेयग्रहग्रसित जाने ॥ २५–३३ ॥

अथ सामान्यग्रहजुष्टचिकित्सा ।

सहामुण्डितिकोदीच्यक्काथस्नानं ग्रहापहम् । सहा माषपर्णी । सप्तच्छदामथनिशाचन्दनैश्चानुलेपनम् । सर्पत्वग्लशुनं मूर्वा सर्षपारिष्टपल्वाः ॥ ३४ ॥ बिडालबिडजालोम मेषशृंगी वचा मधु । धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः । बालशान्तीष्टकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ३५ ॥

मषवन अर्थात् वन उडद, गोरखमुंडी और सुगंधवाला इनके क्काथसे बालकको स्नान करावे और सतवन, कूठ, हलदी तथा चंदन इनका लेप करे तो बालग्रह शमन होते हैं । साँपकी कैंचली, लहसुन, चुरनहार, घी, नीमके पत्ते, बिलावकी विष्ठा, बकरीके रोम, मेढाशिंगी, वच और सहत इनकी धूनी देनेसे बालकोंका ज्वर नष्ट हो जाता है और सम्पूर्ण बालग्रह शमन होते हैं । बालकग्रहोंको निवारण करनेके लिये बालशांति करे और पूजनादि करे ॥३४॥३५॥

अथाष्टमंगलघृतम् ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च ॥ ३६ ॥ सारिवा सैन्धवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम् । सिद्धं घृतमिदं मेध्यं पिबेत्प्रातर्दिनेदिने ॥ ३७ ॥ दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत् । न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः । न भवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमंगलम् ॥ ३८ ॥

वच, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, सारिवा, सेंधानिमक और पीपल इन सात पदार्थोंके कल्कसे पकाया हुआ घी अष्टमंगल घृत कहा जाता है । इस घृतको नित्य प्रभातके समय पीनेसे बालक दृढ, स्मरणशक्तिवाला, अत्यंत तीक्ष्ण बुद्धिको धारण करनेवाला और बहुत विचक्षण होता है । घृतको पीनेवाले बालकोंके पिशाच, राक्षस, भूत और मातृदोष ये कदापि नहीं होते ॥ ३६–३८ ॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टबालकचिकित्सा ।

तत्र स्कंदग्रहजुष्टचिकित्सा ।

स्कन्दग्रहोपसृष्टस्य कुमारस्य प्रशान्तये । वातघ्नद्रुमपत्राणां क्वाथेन परिषेचनम् ॥३९॥ देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु गणेषु च । सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पातुमस्मै प्रदापयेत् ॥ ४० ॥ सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् । उष्ट्रजाविगवां चापि रोमाण्युद्धूपनं भवेत् ॥ ४१ ॥ काकादनी श्वेतगुञ्जा सोमवल्लीभिन्द्रवृक्षं वन्दाकं बिल्वजं शमीम् । मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितानि विधारयेत् ॥ ४२ ॥ सोमवल्ली सोमलता । इन्द्रवृक्षं ककुभवृक्ष । मृगादनी इन्द्रवारुणी । रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्तांश्च गन्धान्विविधांश्च भक्ष्यान् । घण्टा च देवाय बलिं निवेद्य सकुक्कुटं स्कन्दगृहे निधाय ॥ ४३ ॥ स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु कुर्यात्परं शालियवैर्निवेद्यम् । गायत्रिपूताभिरथाद्भिरग्निं प्रज्वालयेदाहुतिभिश्च धीमान् ॥ ४४ ॥ रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम् । अहन्यहनि कर्तव्या याभिरद्भिरतन्द्रितैः ॥ ४५ ॥ तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा । निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥ ४६ ॥ ग्रहः सेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः । देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान्गुहः ॥ ४७ ॥ देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः । गङ्गोमाकृत्तिकानां च स ते शर्म प्रयच्छतु ॥४८॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तचन्दनभूषितः । रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः ॥ ४९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसको स्कन्दग्रहने ग्रसा हो उस बालकके शरीरपर शांतिके लिये अंडके पत्तोंके क्वाथसे सेचन करे, देवदारु, रास्ना तथा जीवनीय गणकी औषधियोंके कल्कसे पकाये हुए घीको दूधके साथ पिये और सरसों, सांपकी केंचली, वच, सफेद चौंटली, घी, ऊंटके रोम, बकरीके रोम तथा भेडके रोम इनकी धूनी देवे। सोमवल्ली, कुडेकी छाल, बेलवृक्षका वंदा, छौंकर और इन्द्रायनकी जड इनको एक डोरेमें बाँधकर उस डोरेको बालकके गलेमें पहना देवे। बालकके हितके लिये लाल फूलोंकी माला, लाल झंडी, लाल चंदन, अनेक प्रकारके भोजनके पदार्थ, घंटा और मुरगा ये सब बालकपर उतारकर चौराहेमें रक्खे और उक्त मुरगेका बलिदान करे। नवीन शालि चावल तथा नवीन जौ इनको पानीमें डालकर उस पानीसे गायत्रीमंत्रको अभिमंत्रित करके रात्रिमें बालकको चौराहेमें तीन रात्रितक स्नान करावे और नवीन शालि चावल तथा नवीन जौ इनकी आहुति अग्निमें देवे। अब बालकोंकी रक्षाके लिये कहता हूं, जिससे पापोंका नाश होता है। वैद्य आलस्यको छोडकर नित्य बालकोंके निकट नित्य निम्न लिखित रक्षा पाठ पढे। जो तपके, तेजके, यशके तथा शरीरकी सामर्थ्योंके भंडाररूप हैं ऐसे देव कार्तिकेय स्वामी तेरे ऊपर प्रसन्न होयँ। ग्रहोंके सेनापति, देवताओंके सेनापति और देवताओंकी सेनाके शत्रुओंको नाश करनेवाले व्यापक और महासमर्थ कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करें। जो महादेवके, अग्निके, गंगाके, पार्वतीके और कृत्तिकाके पुत्र हैं ऐसे कार्तिकेय स्वामी तेरा कल्याण करे। लाल फूल तथा वस्त्रोंको धारण करनेवाले, लाल चंदनसे शोभित और लाल दिव्य शरीरवाले कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करें॥ ३९-४९॥

अथ स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टचिकित्सा।

बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः। परिषेकः प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये॥ ५०॥ गोलोमी श्वेतदूर्वा। सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फञ्जी फणिज्जकः। सौगन्धिकं भूस्तृणको राजिका श्वेतबर्बरी॥ ५१॥ कदफलं खरपुष्पा च काशमर्दश्च शल्लकी। विडङ्गमग्निर्गुण्डी कार्णिकारः उदुम्बरः॥ ५२॥ बला च काकमाची च तथा च विषमुष्टिका। कफक्रिमिहरः ख्यातः सुरसादिरयं गणः॥ ५३॥ सुरसा कृष्णतुलसी, श्वेतसुरसा श्वेततुलसी, फञ्जी भार्ङ्गी, फणिज्जकः मरुवकः। सौगन्धिकं कह्लारम्। भूस्तृणकः सुगन्धतृणम्। अनेनैव नाम्ना गौडादौ प्रसिद्धः खरपुष्पा बर्बरी काशमर्दः कसौटी अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धः। विषमुष्टिः बका इति लोके। अष्टमूत्रविपक्वं च तैलमभ्यञ्जने हितम्॥ ५४॥ गोऽजाविमहिषाश्वानां खरोष्ट्रकरिणां तथा। मूत्राष्टकमिदं ख्यातं सर्वशास्त्रेषु सम्मतम्॥ ५५॥ क्षीरिवृक्षकषायेण काकोल्यादिगणेन च। विपक्तव्यं ततः पक्वादातव्यं पयसा सह॥ ५६॥ काकोल्यादिगणेन कल्कीकृतेन तैलं पक्तव्यम्। काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकस्तथा। ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा मेदा महामेदा गुडूचिका॥ ५७॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी पद्मकं वंशलोचना। शृंगी प्रपौण्डरीकं च जीवन्ती मधुयष्टिका॥ ५८॥ द्राक्षा चेति गणो नाम्ना काकोल्यादिरुदीरितः। स्तन्यकृद्बृंहणो वृष्यः पित्तरक्तानिलापहः॥ ५९॥ उत्सादनं वचा हिंगुयुक्तमत्र प्रकीर्तितम्। गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखोद्धृतम्॥ ६०॥ वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपने सदा। अनन्तां कुकुटीं बिम्बीं मर्कटीं चापि धारयेत्॥ ६१॥ अनन्ता जवासा। कुकुटी शालमली। पक्वान्यन्नानि मांसानि प्रसन्ना रुधिरं पयः। मुद्गौदनं निवेद्याथ स्कन्दापस्मारिणे वटे॥ ६२॥ वटे वटतले बलिं निवेद्येत्यन्वयः। चतुष्पथे कारयेच्च स्नानं तेन ततः पटेत्। तेन स्कन्दापस्मारिणा स्नानं कारयेदित्यन्वयः। स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सखा। विशाखः सः शिशोरस्य शिवायास्तु शुभाननः ॥ ६३ ॥

स्कन्दापस्मार ग्रहकी शांतिके लिये बेलगिरी, सरसों, सुफेद दूब और आगे कहा हुआ सुरसादि गण इनके क्वाथसे सेचन करें। काली तुलसी सफेद तुलसी, पाढ, भारंगी, मरुवा, कह्लार नामक सुगंधि कुमुद, भूस्तृण नामक सुगंधि तृण, राई, सुफेद वनतुलसी, कायफल, वनतुलसी, कसौंदी, सोलई, वायविडंग, निर्गुंडी, कर्णिकार, गूलर, खिरैटी, मकोय और वकायन इन सब औषधियोंके समुदायको सुरसादिगण कहते हैं। यह सुरसादि गण कफ तथा कृमियोंको नष्ट करनेवाला है। नीचे लिखे हुए आठ मूत्रोंसे पकाये हुए तेलकी बालकके शरीर पर मालिश करनेसे स्कन्दापस्मारग्रहकी शांति होती है। गाय, बकरी, भेड, भैंस, घोडा, गधा, ऊंट और हाथी इन आठ पशुओंके मूत्रको अष्ट मूत्र कहते हैं। सम्पूर्ण शास्त्रोंमें इन आठ मूत्रोंको 'मूत्राष्टक' कहते हैं। वटादि क्षीरवृक्षोंके क्वाथसे और नीचे लिखे काकोल्यादि गणके कल्कसे घीको पकाकर बालकको दूधके साथ पिलावे तो इससे स्कन्दापस्मार ग्रह शमन हो जाता है। काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गिलोय, मषवन, मुगवन, पद्माख, वंशलोचन, काकडाशिंगी, पुंडरीक वृक्ष, जीवन्ती, मुलैठी और दाख यह काकोल्यादि गण कहा जाता है। यह गण स्तनोंमें दूधको बढानेवाला है, धातुओंको पुष्ट करनेवाला है, मैथुनशक्तिको बढानेवाला है और पित्त रुधिर तथा वायुको शमन करनेवाला है। वच और हींग इनके कल्कसे बालकके शरीरपर उबटन करे, यह स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टके लिये हितकारी है। गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, बाल, हाथीके नाखून, घी और बैलके रोम इनकी नित्य धूनी देनेसे स्कन्दापस्मारकी शांति होती है। जवासा, सेमल, कन्दूरी और कौंछ अथवा करंज इनको धारण करे यह स्कन्दापस्मारके लिये हितकारक है। स्कन्दापस्मारकी शांतिके लिये पक्वान्न, मांस, मदिरा, रुधिर, दूध और मूँगभात इनका बडके वृक्षोंके नीचे बलिदान करे। स्कन्दापस्मारग्रहजुष्ट बालकको चौराहेमें स्नान कराकर उसके निकट नीचे लिखा मंत्र पढे। कार्त्तिकेय स्वामीका स्कन्दापस्मार जो प्रियमित्र है उसको विशाख भी कहते हैं, यह सुंदर मुखवाला इस बालकका कल्याण करे॥ ५०--६३ ॥

अथ शकुनीग्रहजुष्टचिकित्सा।

शकुनीग्रहजुष्टस्य कार्यं वैद्येन जानता। वेतसाम्रकपित्थानां क्वाथेन परिषेचनम्। ॥ ६४ ॥ ह्रीवेरमधुकोशीरसारिवोत्पलपद्मकैः। लोध्रप्रियंगुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम् ॥ ६५ ॥ प्रदिहेल्लिम्पेत्। दिह्यादिति सिद्धे दिहेदिति रूपसिद्धिः आर्षत्वात्। स्कन्दग्रहोक्ता धूपाश्च हिता अत्र भवन्ति हि। स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि पूजितम् ॥ ६६ ॥ शतावरीमृगैर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिकाम्। लक्ष्मणां सहदेवीं च बृहतीं चापि धारयेत् ॥ ६७ ॥ मृगैर्वारु बृहती इन्द्रवारुणी। नागदन्ती नागहुलीति लोके प्रसिद्धा। तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला। बलिरेषां करञ्जे तु निवेद्यो नियतात्मना ॥ ६८ ॥ निकटे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि। श्वेताशिरीषगन्धाष्टपयोगुग्गुलुसर्षपैः ॥ ६९ ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलं धारणं पूर्वमेव तु। शकुनीग्रहशान्त्यर्थं प्रदेहं कारयेद्धितम् ॥ ७० ॥ कुर्याच्च विविधां पूजां शकुन्याः कुसुमैः शुभैः। निकुम्भोक्तेन विधिना स्नापयेत्तं ततः पठेत् ॥ ७१ ॥ निकुम्भः शिवस्य गणविशेषस्तेनोक्तेन विधिना। शिशुरक्षायां देव्याः स्तुतिः। अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता। अधोमुखी सूक्ष्मतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७२ ॥ दुर्दर्शना महाकाया पिंगांगी भैरवस्वरा। लम्बोदरी शंकुपर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७३ ॥

जो बालक शकुनी ग्रहसे पीडित हो उसके ऊपर विचक्षण वैद्य वेंत, आम और कैथ इनके क्वाथसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिसेचन करे और सुगंधवाला, मुलैठी, सारिवा, कमल, पद्माख, लोध, फूलप्रियँगू, मजीठ और गेरू इनका लेप करे। स्कन्दनामक बालग्रहकी शांतिके लिये जो धूप कही है वह धूप और स्कन्दापस्मारग्रहकी शांतिके लिये जो घी कहा है वह घी शकुनीग्रहसे ग्रसितके लिये भी उपयोगी है। सतावर, इन्द्रायन, नागदौन, कटेरी, लक्ष्मणा (अभावमें सफेद कटेरी), सहदेई और कटाई इनको धारण करे। वैद्य स्थिरचित्त होकर तिल, चावल, फूलमाला, हरिताल और मैनशिल इनका करंजके वृक्षके नीचे बलिदान करे। और उस बलिदानके निकट बालकको यथाविधि स्नान करावे। पहिले ही सफेद दूब, सिरस, अष्टगंध, दूध, गूगल और सरसों इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अभ्यंगके लिये तैयार करके रख देवे। बालकको स्नान करानेके पश्चात् इस तेलकी मालिश करे जिससे शकुनीग्रहकी शांति हो। सुंदर फूलोंसे शकुनीकी अनेक प्रकारसे पूजा करे और उसके पश्चात् निकुम्भनामक सदाशिवके गणके कहे अनुसार बालकको स्नान कराकर उसके निकट नीचे लिखा पाठ पढे। अंतरिक्षमें विचरण करनेवाली, सम्पूर्ण अलंकारोंसे सुशोभित और नींचे तथा सूक्ष्म मुखवाली शकुनी देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो। भयंकर दर्शनवाली, बडे शरीरवाली, पिंगलवर्ण, भयंकर स्वरवाली, लम्बे पेटवाली और कीलके समान कानवाली ऐसी शकुनी देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो॥ ६४–७३॥

अथ रेवतीग्रहजुष्टचिकित्सा।

अश्वगन्धाजशृंगी च सारिवाथ पुनर्नवा। सहा विदारी ह्येतासां क्वाथेन परिषेचनम्। ॥ ७४ ॥ अजशृंगी [मेढाशृंगी] सहा [सेवती] पुष्पजातिः। तैलमभ्यञ्जने कार्यं कुष्ठे सर्जरसे तथा। पलंकषाख्ये नलदे तथा गौरकदम्बके ॥ ७५ ॥ सर्जरसः राल इति लोके। पलंकषा गुग्गुलुः। नलदं लामज्जकम् उशीरवत्पीतच्छविः। गौरकदम्बकः हारिद्रकः हरदुआ कदम्ब इति लोके। धवाश्वकर्णककुभशालकीतिन्दुकेषु च। काकोल्यादौ गणे चापि सिद्धं सर्पिः पिबेच्छिशुः ॥ ७६ ॥ अश्वकर्णः सांकु इति लोके प्रसिद्धः। कुलत्थं शंखचूर्णं च प्रदेहः साश्वगन्धिकः। गृध्रोलूकपुरीषाणि यवा यवफलो घृतम्। सन्ध्ययोरुभयोः कार्यमेतद्धूपनं शिशोः ॥ ७७ ॥ यवफलो वंशांकुरः। शुक्लाः सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं दधि। बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मना ॥ ७८ ॥ गोतीर्थं गोष्ठे। स्नानं धात्रीकुमाराभ्यां सङ्गमे कारयेद्भिषक्। नानाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना ॥ ७९ ॥ चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु। उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः ॥ ८० ॥ लम्बा करालवदना तथैव बहुपुत्रिका। रेवती शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु ॥ ८१ ॥

असगंध, मेढाशिंगी, सारिवा, पुनर्नवा, सेवती और विदारीकंद इनके क्वाथसे सेचन करे। कूठ, राल, गूगल, लामज्जकतृण और हलदिया कदंब इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका अभ्यंग करे। घी, अश्वकर्ण (शाखु), इन्द्रजौ, सालई, तेंदू और काकोल्यादि गण इनके कल्कसे पकाया हुआ घी बालकको पिलावे। कुलथी, शंखका चूर्ण और असगंध इनका लेप करे। गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, जौ, बाँसके अँकुर और घी इनकी धूनी बालकोंको दोनों संध्याओंमें देवे। वैद्य स्थिरचित्त होकर रेवतीको, गायके स्थानमें सफेद फूल, धानकी खीलें, दूध, लाल शालि चावलोंका भात और दही इनका बलिदान देवे। समुद्रके और नदीके अथवा दो नदियोंके संगममें वैद्य बालकको और उसकी माताको स्नान करावे पीछे यह पाठ पढे कि "अनेक शस्त्रोंको धारण करनेवाली, चित्र विचित्र पुष्पोंकी मालाओंसे सुशोभित, विचित्र लेपनयुक्त, चलत्कुंडलवाली और श्यामवर्णवाली रेवती देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो। लम्बी, विकराल, अनेक पुत्रोंवाली, सूखी नाकवाली और जिसको विविध आभूषणोंवाली देवी सर्वदा सेवन करती हैं ऐसी रेवती देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो॥ ७४–८१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा।

कपोतवंका श्येनाको वरुणः पारिभद्रकः। आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ ८२ ॥ कपोतवंका ब्राह्मी। आस्फोता अपराजिता। नवा पयस्या गोलोमी हरितालं मनःशिला। कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे कल्क इष्यते ॥ ८३ ॥ नवा पयस्या नूतना क्षीरविदारी। गोलोमी श्वेतदूर्वा। हितं घृतं तु गोक्षीर्याः संसिद्धं मधुकेन च। कुष्ठतालीसखदिराः स्पन्दनोऽर्जुन एव च ॥ ८४ ॥ पनसः ककुभश्चापि मज्जानो वदरस्य च। कुकुटास्थि घृतं चापि धूपनं सह सर्षपैः ॥ ८५ ॥ स्पन्दनः स्पन्दन इत्येवं नाम्ना प्रसिद्धः। काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जां च धारयेत् ॥ ८६ ॥ काकादनी श्वेतगुञ्जा। चित्रफला बृहदिन्द्रवारुणी। मत्स्यौदनं बलिं दद्याच्छराव पललं तथा। शरावसम्पुटे कृत्वा तस्य शून्ये गृहे भिषक्॥८७॥ उत्सृष्टान्नाभिषिक्तस्य शिशोः स्नपनमिष्यते। कुष्ठतालीसखदिरं चन्दनं स्पन्दनं तथा ॥ ८८ ॥ देवदारु वचा हिंगु कुष्ठं गिरिकदम्बकम्। एला हरेणवश्चापि योज्या उद्वर्तने सदा ॥८९॥ मलिनाम्बरसंवीता मलिना रूक्षमूर्द्धजा। शून्यागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥ ९० ॥

ब्राह्मी, अरलू, बरना, फरहद वा नीम और अपराजिता (कोइल) इनके क्वाथसे बालकोंके शरीरपर सेचन करे। नया अर्थात् ताजा विदारीकंद, सफेद दूब, हरिताल, मैनशिल, कूट और राल इनसे पकाये हुए तेलका उपयोग करे। वंशलोचन और मुलैठी इनसे पकाया हुआ घी भी हितकारक है। कूट, तालीसपत्र, खैर, अरलू, अर्जुन, बडहल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, मुरगेकी हड्डी, घी और सरसों इनकी धूनी देवे। सफेद चौंटली, बडी इन्द्रायन, कन्दूरी और लाल चौंटली इनको शरीरपर धारण करे। मछली और भात, तिलकी खिचडी और मांस इनको मट्टीके प्यालेमें रखकर सूने घरमें पूतनाको बलि देवे। बालकको झुंठनसे मलकर फिर स्नान करावे। कूठ, तालीसपत्र, खैर, चंदन, अरलू, देवदारु, वच, हींग, कूठ, पहाडी कदम्ब, इलायची और रेणुका इनकी धूनी देवे। बालकके निकट बैठकर कहे कि मैले वस्त्रोंको धारण करनेवाली, मलिन अंगवाली, रूखे बालवाली और ऊजड घरमें रहनेवाली पूतना देवी इस बालककी रक्षा करे ॥ ८२–९० ॥

अथ गंधपूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा।

तिक्तद्रुमाणां पत्रेषु क्वाथः कार्योऽभिषेचने ॥ ९१ ॥ निम्बः पटोलः क्षुद्रा च गुडूची वासकस्तथा। विसर्पकुष्ठनुत्स्यातो गणोऽयं पञ्चतिक्तकः ॥ ९२ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको मधुको मधु। शालिपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थे च समाहरेत्। सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रे चाक्ष्णोश्च शीतलैः ॥ ९३ ॥ सर्वगन्धैः कुंकुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनैः सह। अक्ष्णोस्तु शीतलैः चन्दनकर्पूरैः। न तु कस्तूरीकुंकुमागुरुभिस्तेषामुष्णत्वात्। पुरीषं कौक्कुटं केशाश्चर्म सर्पभवं तथा। जीर्णं च चाभीक्ष्णशो वासो धूपनायोपकल्पयेत् ॥ ९४ ॥ कुक्कुटीं मर्कटीं बिम्बीमनन्तां चापि धारयेत्। मांसमामं तथा पक्वं शोणितं च चतुष्पथे ॥ ९५ ॥ निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशोः स्नपनमिष्यते। करालां पिंगलां मुण्डां काषायाम्बरसंवृताम् ॥ ९६ ॥ देवी बालमिमं प्रीता रक्षत्वं गन्धपूतने ९७॥

बालकके देहपर तिक्तवृक्षों (जो कि नीचे लिखे हैं) के क्वाथसे सेचन करे। नीम, परवल, कटेरी, गिलोय और अडूसा यह पंचतिक्त गण कहा जाता है, यह विसर्प और कोढको नष्ट करे है। पीपल, पीपलामूल, चीता, मुलैठी, सहत, शालिपर्णी (सरिवन), कटेरी, बडी कटेरी इनके कल्कसे घृतको पकाकर बालकको पिलावे। केसर, अगर, कपूर,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कस्तूरी और चंदन इनका शरीरपर लेपन करे। और नेत्रोंके ऊपर चंदन तथा कपूरका लेपन करे। केशर कस्तूरी और अगर यह गरम है इस कारण इनका नेत्रोंपर लेपन नहीं करे। मुरगेकी विष्ठा, बाल, सांपकी खाल और पुराने बालकके नीचेका वस्त्र इनकी वारंवार धूनी देवे। सेमल, करंज, कन्दूरी और जवासा इनको धारण करे। चौराहेमें कच्चा तथा पक्का मांस और रुधिर इनका बलिदान करे। बालकको भीतरके घरमें स्नान करावे और फिर यह पढे कि "हे अंधपूतना देवी तू विकाल, पिंगल वर्णवाली मुंडित और भगवे कपडोंको धारण करनेवाली प्रसन्न होकर इस बाललकी रक्षा कर" ॥ ९१--९७ ॥

अथ शीतपूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा।

गोमूत्रं चाश्वमूत्रं च मुस्तां चामरदारु च। कुष्ठं च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवधारयेत्॥९८॥ सर्वगन्धांश्चन्दनादीन्। रोहिणीनिम्बखदिरपलाशककुभत्वचः। निष्काथ्य तस्मिन्निष्काथे सक्षीरे विपचेद्घृतम् ॥ ९९ ॥ गृध्रोलूकपुरीषाणि बस्तिगन्धामहित्वचम्। निम्बपत्राणि च तथा धूपनार्थं समाहरेत् ॥ १०० ॥ धारयेदपि गुञ्जां च बलां काकादनीं तथा। नद्यां मुद्गौदनैश्चापि तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥ १०१ ॥ जलाशयान्ते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥ १०२ ॥ जलाशयान्ते जलाशयतीरे। देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा। मुद्गौदनाशिनी देवी सुराशोणितपायिनी। जलाशयरता नित्यं पातु त्वां शीतपूतना ॥ १०३ ॥

गोमूत्र, घोडेका मूत्र, नागरमोथा, देवदारु, कूठ, केसर, अगर, कस्तूरी, कपूर और चंदन इनसे तपाये हुए तेलका बालकके शरीरपर मालिश करे। कुटकी नमि, खैर, ढाक और कुडेकी छाल इनका काथ बनाकर उस काथको दूधमें मिलाकर उसमें घीको पकाकर उस घीको बालकको पिलावे। गीधकी विष्ठा, तिलवन, साँपकी कैंचली और नमिके पत्ते इनकी धूनी देवे। चौंटली, खिरैटी और सफेद चौंटली इनको धारण करे। नदीमें मूँगभातसे शीतपूतनाको तृप्त करे। जलाशयके तीरपर बालकको स्नान करावे। शीतपूतनाको मदिरा और रुधिर चढावे। पश्चात् बालकके निकट यह पाठ पढे कि "मूंग भातको खानेवाली, मदिरा और रुधिरको पीनेवाली तथा जलाशयमें रहनेवाली शीतपूतना देवी सर्वदा तेरी रक्षा करे" ॥९८--१०३॥

अथ मुखमंडिकाग्रहजुष्टचिकित्सा।

कपित्थं बिल्वतर्कारी वासा गन्धर्वहस्तकः। कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ १०४ ॥ तर्कारी गणियार इति लोके। गन्धर्वहस्तकः श्वेत एरण्डः। कुबेराक्षी पाडीर इति लोके। स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां तथैव हयगन्धया। तैलं वसां च संयोज्य पचेदभ्यञ्जनं शिशोः ॥ १०५ ॥ भृङ्गवृक्षः भगेरा इति लोके। वचा सर्जरसं कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपने हितम्। वर्णकं चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा ॥ १०६ ॥ मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं ततः। पायसं सपुरोडाशं तद्बल्यर्थमुपाहरेत्। मन्त्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम् ॥ १०७ ॥ अलंकृता कामवती सुभगा कामरूपिणी। गोष्ठमध्यालया या तु पातु त्वां मुखमण्डिका ॥ १०८ ॥

कैथ, बेलगिरी, अरणी, अडूसा, सफेद अंड और पाढल इनके काथसे बालकके शरीरपर सेचन करे। भांगरेके स्वरससे असगंधके कल्कके साथ तैल और चरबीको डालकर पकावे, उस तेलका बालकके शरीरपर मालिश करे। वच, राल, कूठ और घी इनकी धूनी देवे। चंदन, सिंग्रफ, फूलोंकी माला, अंजन, पारा और मैनसिल इनको गायके स्थानमें मुखमंडिकाको अर्पण करके दूध तथा पुरोडाश इनका बलिदान देवे। पश्चात् "शोभायमान, कामनावाली, सुंदर और यथेष्ट रूपोंको धारण करनेवाली तथा गायोंके स्थानमें रहनेवाली मुखमंडिका देवी तेरी रक्षा करे" इस मंत्रसे जलको अभिमंत्रित करके उसी स्थानमें बालकको स्नान करावे यह हितकारी है ॥ १०४--१०८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ नैगमेयग्रहजुष्टचिकित्सा।

रि बिल्वाग्निमन्थपूतीकैः कार्यं स्यात्परिषेचनम् ॥ १०९ ॥ पूतीकः धोरकरञ्जः। व प्रियंगुसरलानन्ताशतपुष्पाकुटन्नटैः। पचेत्तैलं सगोमूत्रं दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ११० ॥ कुटन्नटं वितुन्नकनाम्नो वृक्षविशेषस्य त्वक् गुडतजी इति लोके। मुस्ताकृतिः श्योनाकं अथवा। वचां वयस्यां जटिलां गोलोमीं चापि धारयेत् ॥ १११ ॥ वयस्या आमलकी गुडूची वा। जटिला जटामांसी। गोलोमी श्वेतवचा। उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम्। मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि मधूपनम् ॥ ११२ ॥ धूमः सुप्तजने कार्यो बालस्य हितमिच्छता। तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि। कौमारभृत्ये भेषाय वृक्षमूले निवेदयेत् ॥ ११३ ॥ कौमारभृत्ये बालरक्षायाः भेषाय नैगमेयग्रहाय। अधस्तात्क्षीरवृक्षस्य स्नपनं चोपदिश्यते। अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः। बालं पालयिता देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु ॥ ११४ ॥

बेलगिरी, अरणी और पूतीकरंज इनके काथसे बालकके शरीरपर सेचन करे। फूलप्रियंगू, सरल, देवदारु, सारिवा, सोया, केवटीमोथा, दहीका तोड, खट्टी कांजी और गोमूत्र इनसे तेलको पकाकर उस तेलकी मालिश करे। वच, मुँइआमला वा गिलोय, बालछड और सफेद वच इनको धारण करे। स्कन्दापस्मारके प्रकरणमें जो उबटन कहा है वह उबटन भी हितकारी है। बंदरकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा और गीधकी विष्ठा इनकी धूनी देवे। बालकोंके हितकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जब सब सोजांय तब इस धूनीको देवे। बालककी रक्षाके लिये पाखरकी जडमें तिलसहित चावल, फूल और अनेक प्रकार भक्ष्य पदार्थ इनका बलिदान देवे। दूधवाले वृक्षके नीचे बालकको स्नान करावे और यह मंत्र पढे कि बकरेकी समान मुखवाला, यथेष्ट रूपोंको धारण करनेवाला, बालककी रक्षा करनेवाला और जिसके नेत्र तथा भौं चंचल हैं ऐसा नैगमेय देव इस बालककी रक्षा करे" ॥ १०९–११४ ॥

अथ बालरोगनिदानलक्षणम्।

धान्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा। दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ ११५ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयस्त्रयः। दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः। क्षौद्रेरं शर्करा क्षौद्रं लीढं तृष्णाहरं परम् ॥ ११६ ॥ वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः। क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ ११७ ॥ स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान्। तृष्णार्तरूक्ष्मसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन्। श्लेष्मदुष्टं पिबन्क्षीरं लालाढ्यः श्लेष्मरोगवान् ॥ ११८ ॥ निद्रार्दितो जडः शूनो वक्राक्षश्छर्दनः शिशुः। ज्वराद्या व्याधयः सर्वे वक्ष्यन्ते महतां तु ये। बालानामपि ते तद्वद्बोद्धव्या भिषगुत्तमैः ॥ ११९ ॥ बालानामेव ये रोगा भवन्ति महतां न च। तालुकण्टकमुख्यांस्तानवधारय यत्नतः ॥ १२० ॥

भारी, विषम तथा दोषोंको बढानेवाले भोजनोंसे माताके शरीरमें दोष प्रकुपित होते हैं और उससे दूध दूषित हो जाता है। अयोग्य आहार और अयोग्य विहार करनेवाली स्त्रियोंके शरीरमें दूषित हुए वातादि तीनों दोष दूधको दूषित करते हैं और दूधके दूषित होनेसे बालकके शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं। वातसे दूषित दूधको पीनेसे बालक वातसम्बन्धी रोगोंसे पीडित होता है, स्वरक्षीण, शरीरकृश और विष्ठा, मूत्र तथा वायु रुक जाती है। पित्तसे दूषित दूधको पीनेसे बालकको पसीना आवे, पतले दस्त हों, कामला रोग हो, पित्तजनित पीडायुक्त हो, तृषातुर और सम्पूर्ण अंगोंमें गरमी भी होती है। कफसे दूषित दूधको पीनेसे बालक लारको अधिक डाले, कफजनित पीडायुक्त, निद्रासे पीडित, भारी शरीरवाला, सूजनसहित, टेढी आंखोंवाला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और वमनको करता है । ज्वरादि जो समस्त रोग बडोंके होते हैं उसी प्रकार वे सब रोग बालकोंको भी होते हैं ऐसा उत्तम वैद्योंको जानना चाहिये । इस प्रकरणमें जो तालुकंटकादि रोग बालकोंकेही होते हैं किंतु बडोंके नहीं होते उनका निरूपण करता हूँ उसको सावधान होकर सुन ॥ ११५-१२० ॥

अथ तालुकण्टकलक्षणम् ।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् । तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १२१ ॥ तालुपातात्स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् । तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥ १२२ ॥ पानं स्तनस्य । शकृद्द्रवं द्रवरूपम् ।

तालुवेके मांसमें प्रकुपित हुआ कफ तालुकंटक नामक रोगको उत्पन्न करता है । इस रोगसे शिरमें तालुआ नीचेको झुक जाता है अर्थात् लटक आता है इस कारण माताके दूधको नहीं पीता, बडे कष्टसे थोडा २ दूधको पीता है, दस्त पतला हो जाता है, तृषा लगती है, आंखोंमें, गलेमें तथा मुखमें पीडा होती है, गरदनको गिराता है और वमन करता है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अथ महापद्मकलक्षणम् ।

वीसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनः शीर्षवस्तिजः । पद्मवर्णो महापद्मरोगो दोषत्रयोद्भवः । शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् ॥ १२३ ॥ पद्मवर्णः लोहितवर्णः तत्र शीर्षजो वीसर्पः । शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् । एवं वस्तिजो गुदं याति गुदतः हृदयं हृदयाच्छिरो याति इति बोद्धव्यम् ।

बालकके मस्तक तथा मूत्राशयमें तीनों दोषोंके प्रकोपसे प्राणोंका नाश करनेवाला ऐसा लाल रंगका विसर्प रोग उत्पन्न होता है इसको महापद्म कहते हैं । मस्तकमें उत्पन्न हुआ विसर्प कनपटियोंमेंसे हृदयमें जाता है और हृदयमेंसे गुदामें जाता है उसी प्रकार मूत्राशयमें उत्पन्न हुआ विसर्प गुदामें जाता है, गुदामेंसे हृदयमें जाता है और हृदयमेंसे मस्तकमें जाता है ऐसा जानना ॥ १२३ ॥

अथ कुकूणकलक्षणम् ।

कुकूणकं क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि । जायते सरुजं नेत्रं कण्डूरं प्रस्रवेद्बहु ॥ १२४ ॥ शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाग्रघर्षणम् । शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न चाक्ष्युन्मीलनक्षमः ॥ १२५ ॥ कुकूणकं काथुआह इति लोके ।

दूधके दोषसे बालकोंके पलकोंमें कुकूणक रोग होता है कि जिससे नेत्र व्यथायुक्त, खुजलीवाले और अत्यंत स्रववाले होते हैं । इस रोगसे बालक अपने मस्तकको आंखोंके भागको तथा नाकको घिसता है; सूर्यकी प्रभाको देख नहीं सक्ता और आंखोंको खोल नहीं सक्ता ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

अथ तुण्डिगुदपाकयोर्लक्षणम् ।

वातेनाध्मापिता नाभिः सरुजा तुण्डिरुच्यते । बालस्य गुदपाकाख्यो व्याधिः पित्तेन जायते ॥ १२६ ॥

वायुसे नाभि फूल जाती है और उसमें व्यथा होती है इसको तुंडी कहते हैं । पित्तसे बालककी गुदा पक जाती है इसको गुदपाक कहते हैं ॥ १२६ ॥

अथाहिपूतनलक्षणम् ।

शकृन्मूत्रसमायुक्ते धौतेऽपाने शिशोर्भवेत् । स्विन्ने वा स्नाप्यमानस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥ १२७ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते । एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ १२८ ॥ स्विन्ने स्वेदिते ।

विष्ठासे तथा मूत्रसे लिप्त बालककी गुदाको नहीं धोनेसे अथवा बालकके आये हुए पसीनेको नहीं पोंछनेसे अर्थात् वह वहीं जमजाता है तो रुधिर तथा कफके प्रकोपसे खुजली उत्पन्न होती है और खुजानेसे तत्काल फोडे तथा स्राव हो जाता है इस प्रकार होकर जो घोर व्रण होता है उसको अहिपूतन कहते हैं ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथाजगल्लिकालक्षणम्।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा। कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १२९ ॥ ग्रथिता गुम्फितेव। मुद्गसन्निभा मुद्गाकृतिः।

बालकोंके शरीरमें चिकनी, शरीरके समान वर्णवाली, गुंथीसी, पीडारहित और मूँगकी समान आकारवाली फुंसी कफ तथा वायुके प्रकोपसे होती है उसको अजगल्लिका कहते हैं ॥ १२९ ॥

अथ परिगर्भिकलक्षणम्।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि। कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥ १३० ॥ युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः परिगर्भिकम्। रोगं परिभवाख्यं च तत्र युञ्जीत दीपनम् ॥ १३१ ॥ पिबन्नपीत्यपिशब्दादपिबन्नपि। परिगर्भिकः अहीडीति लोके। परिभवाख्यं परिभवेति नामान्तरम्।

बालक गर्भवती माताका दूध पिये अथवा नहीं पिये तो भी उसके विशेष करके खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम और कोठेकी वृद्धि अर्थात् पेटका बढना होता है इस रोगको परिगर्भिक और परिभव कहते हैं। यह रोग उत्पन्न हुआ हो तो अग्निको दीपन करनेवाले उपायोंकी योजना करे ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अथ दन्तोद्भेदकरोगाः।

दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतम्। विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम् ॥ १३२ ॥ अभिष्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते ॥ १३३ ॥ कारणमित्यन्वयः। पोथक्या वर्त्मरोगविशेषस्य।

बालकके दांत निकलनेका समय संपूर्ण रोगोंका कारणरूप कहा जाता है और विशेष करके ज्वर, दस्तोंका होना, खांसी, वमन, मस्तककी पीडा, आंखोंका दुखना, पोथकी नामक पलकोंका रोग और विसर्प इनका कारणभूत होता है ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

अथ बालरोगचिकित्सा।

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु। तदेव कार्यं बालानां किन्तु दाहादिकं विना ॥ १३४ ॥ दाहादिकं विना अग्निदाहादि क्षारवमनविरेचनशिराव्यधादिकं विना। महाकष्टे चोत्पन्ने वमनविरेकाद्यपि दद्यात्। उक्तं च—विरेकवस्तिवमनानृते कुर्याच्च नात्ययादिति ॥ १३५ ॥ अत्ययाद्विनाशकरकष्टादृते विना। त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ते। अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा तत्र कनीयसी ॥ १३६ ॥ विडंगफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम्। अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्द्धयेत् ॥ १३७ ॥ विडंगपरिमितं भेषजं चूर्णीकृत्य किंवा कल्कीकृत्य अथवा अवलेहीकृत्य दद्यादित्यर्थः। तन्त्रान्तरे तु अन्यथाभिहितम्। प्रथमे मासि बालाय देया भैषज्यरक्तिका। अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ १३८ ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत्। तदूर्द्ध्वं मात्रावृद्धिः स्याद्यावत्षोडश वत्सराः ॥ १३९ ॥ एकैकां रक्तिकां तदूर्द्ध्वं वर्षोपरि मात्रावृद्धिः। प्रतिवर्षं पञ्चगुञ्जात्मकस्य मात्रस्य वृद्धिर्भवति। गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषक इति अमरसिंहः। ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः। ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ॥ १४० ॥ ततः षोडशवत्सरोपरि। चूर्णकल्कावलेहानामियं मात्रा प्रकीर्तिता। कषायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा ॥ १४१ ॥ क्षीरपस्य शिशोर्देयमौषधं क्षीरसर्पिषा। धात्र्यास्तु केवलं देयं न क्षीरेणापि सर्पिषा ॥ १४२ ॥ क्षीरान्नादस्य पूर्ववत्क्षीरसर्पिषा। येषां गदानां ये योगाः प्रक्ष्यन्तेऽगदंकराः। तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत्तु शिशुं स्तनौ ॥ १४३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बडे मनुष्योंके लिये जो ज्वरादि रोगोंमें प्रथम औषधि कही है वही औषधि बालकोंके लिये भी देवे। परन्तु दाग, क्षारकर्म, वमन, विरेचन और फस्त खोलना आदि नहीं करे। यदि बालकको विशेष कष्ट उत्पन्न होय तो वमन तथा विरेचन आदिभी देवे क्योंकि सुश्रुत कहता है कि "प्राणनाशक संकटके उत्पन्न हुए विना बालकोंको विरेचन वस्ति और वमन यह क्रिया नहीं करे।" बालकोंके दोष और दूष्य तथा ज्वरादि रोग भी बडे मनुष्योंकी समान होते हैं इस कारण बालकोंकोभी प्रत्येक रोगमें प्रत्येक रोगाधिकारमें कही हुई औषधि देवे, किंतु मात्रा कनिष्ठ अर्थात् थोडी देवे। बालकोंको कनिष्ठ देनेके लिये विश्वामित्र कहते हैं कि "बालकके जन्मसे एक महीनेतक वायविडंगकी बराबर औषधि देवे और फिर महीनेके महीने इसी प्रकार बढाता जाय" अभिप्राय यह है कि पहिले महीनेमें वायविडंगकी बराबर औषधि लेकर चूर्ण बनाकर अथवा कल्क बनाकर वा अवलेह बनाकर देवे और दूसरे महीनेमें दो वायविडंगकी बराबर औषधि देवे। इस प्रकार महीने महीने बढाता जाय। अन्य ग्रंथोंमें अन्य प्रकारसे लिखा है कि "बालकको पहिले महीनेमें एक रत्तीभर औषधि देवे और यह औषधि सहत, माताका दूध तथा घी इनमें मिलाकर चटनीकी समान घटावे। फिर महीनेके महीने एक एक रत्ती बढाता जाय, इस प्रकार एक वर्षतक करे। पहिले वर्षके पूरे होनेपर सोलह वर्षकी अवस्था पर्यंत प्रत्येक वर्षमें पांच पांच रत्ती बढाता जाय। सोलह वर्षके पूरे होनेपर सत्तर वर्षतक मात्रा स्थिर हो जाती है। सत्तर वर्षके पश्चात् बालकोंकी समान मात्राको धीरे धीरे घटाता जाय, एक रत्तीभर आदि जो मात्रा कही है वह चूर्ण, कल्क और अवलेहकी जाननी। क्वाथकी मात्रा इससे चौगुनी देवे। जो बालक माताके दूधको पीता है उसको दूधके साथ अथवा घीमें मिलाकर औषधि देवे। बालककी माताको औषधि देनी होय तो दूध और घीके साथ नहीं देवे जैसी कही हो उसी प्रकार देवे। जो बालक दूध पीता हो और अन्नको भी खाता होय उसको भी दूध तथा घीके साथ औषधि देवे। सुश्रुत बालकको प्रकारान्तरसे औषधि देना कहता है कि "जो जो रोगोंके लिये जो जो औषधि कही है उन उन रोगोंमें उन उन औषधियोंके कल्कसे माताके स्तनोंको लेपन करके बालकको पिलावे" ॥ १३४–१४३ ॥

अथाऽनभिभाषिबालस्यान्तर्गत-रोगज्ञानोपायः ।

अंगप्रत्यंगदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते । मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने न रोदिति ॥ १४४ ॥ निमीलिताक्षो मूर्द्धस्थे रोगे नोद्धारयेच्छिरः । वस्तिस्थे मूत्रसङ्गार्तः क्षुधरोगतृडपि गच्छति ॥ १४५ ॥ विण्मूत्रसंगवैकल्याच्छर्द्यध्मानान्त्रकूजनैः । कोष्ठेऽपि व्याधीन्विजानीयात्सर्वत्रस्थांश्च रोदनैः १४६

बालकके जो अंगके या प्रत्यंगके प्रदेशमें वेदना होती होय तो उस प्रदेशके बालक बारंबार हाथसे छूता है और अन्य कोई मनुष्य भी उस प्रदेशको स्पर्श करे तो बालक रोता नहीं है, बालकके मस्तकमें पीडा होय तो बालक आंखोंको मीची रखता है और मस्तकको स्थिर नहीं रखता अर्थात् गरदनको गिराये रखता है, बालकके मूत्राशयमें पीडा होय तो बालक मूत्रके अवरोधसे पीडित होता है और उसमें भूँख प्यास नष्ट हो जाती है। जो बालकके मूत्र और मलका अवरोध होय, विह्वलता होय, अफरा आजाय और आंतें बोलें तो इनसे जानना कि बालकके कोठेमें रोग है। जो बालक सदैव रोवे तो जानना कि इस सब शरीरमें रोग है ॥ १४४–१४६ ॥

अथ बालकस्य ज्वरादिरोगचिकित्सा ।

सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं नैव निवार्यते । मात्रया लंघयेद्धात्रीं शिशोरेतद्धिलंघनम् ॥ १४७ ॥ मात्रया लंघयेल्लघु भोजयेत् ।

बालकको समस्त पदार्थोंसे वर्जित करे, किंतु माताके दूधसे कदापि वर्जित नहीं करे, बालकको लंघन करानेकी होयँ तो उसकी माताको हलका भोजन करावे येही बालकके लंघन हैं ॥ १४७ ॥

अथ सर्वज्वरेषु भद्रमुस्तादिक्वाथः ।

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः क्वाथः कोष्णः शिशोरेष निःशेषज्वरशनः ॥ १४८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भद्रमोथा, हरड, नीम, कडवे परवल और मुलैठी इनका क्वाथ बनाकर कुछ कुछ गरम करके पिये तो सर्वप्रकारके ज्वर नष्ट हो जाते हैं ॥ १४८ ॥

अथ ज्वरातिसारे चतुर्थद्रावलेहः।
घनकृष्णारुणाशृंगीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम्।
शिशोर्ज्वरातीसारघ्नं कासं श्वासं वमिं हरेत् ॥ १४९ ॥

नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकडासिंगी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका ज्वरातीसार नष्ट होता है और खांसी, श्वास तथा वमन भी दूर हो जाती है ॥ १४९ ॥

अथातिसारे बिल्वादिक्वाथः।
बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं तलोध्रं गजपिप्पली च। क्वाथावलेहौ मधुना सहैवमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारितेषु॥ १५०॥

बेलगिरी, धायके फूल, सुगंधवाला, लोध और गजपीपल इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पिये अथवा इन्हीं औषधियोंके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका अतीसार दूर हो जाता है ॥ १५० ॥

अथ दुर्धरातिसारे समंगादिक्वाथः।
समंगाधातकीलोध्रसारिवाभिः श्रृतं जलम्।
दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ १५१ ॥

समंगा लज्जालुमूलम्।

लजावतीकी जड, धायके फूल, लोध और सारिवा इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पिये तो करनेवालोंका दुर्धर अतीसार भी दूर हो जाता है ॥ १५१॥

अथामातीसारे विडंगादिचूर्णम्।
विडंगान्यजमोदा च पिप्पलीतण्डुलानि च।
एषामालोड्य चूर्णानि सुखं तप्तेन वारिणा-
आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक् १५२

बालकको आमातिसार होय तो वैद्य वायविडंग, अजमोद और पीपलके दाने इनका चूर्ण करके मंदोष्ण जलके साथ पिलावे ॥ १५२ ॥

अथ रक्तातीसारे मोचारसादियवागूः।
मोचारसः समंगा च धातकी पद्मकेसरम्।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥ १५३ ॥

मोचरस, लज्जावतीकी जड और कमलकी केसर यह सब मिलाकर सवा तोले लेवे, चावल सवा तोले लेवे, और ग्यारह तोले पानीमें इन सबको एकत्रित करके यवागू बनाकर बालकको देवे तो रक्तातीसार नष्ट हो जाता है ॥ १५३ ॥

अथातीसारे नागरादिक्वाथः।
नागरातिविषामुस्तवालकेन्द्रयवैः श्रृतम्।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ १५४ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगंधवाला और इन्द्रजा इनका क्वाथ बनाकर प्रातःकाल पिये तो बालकोंके सब प्रकारके अतीसार दूर होते हैं ॥ १५४ ॥

अथ प्रवाहिकायां लाजादिचूर्णम्।
लाजा सयष्टीमधुका शर्करा क्षौद्रमेव च।
तण्डुलोदकयोगेन क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ १५५ ॥

धानकी खीलें, मुलैठी, खांड और सहत इनको एकत्र करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकोंकी प्रवाहिका दूर होती है ॥ १५५ ॥

अथ ग्रहण्यादिरोगे रजन्यादिचूर्णम्।
रजनी सरलो दारु बृहती गजपिप्पली।
पृष्ठिपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥ १५६ ॥
दीपनी ग्रहणीं हन्ति मारुतार्तिं सकामलाम्।
ज्वरातीसारपांडुघ्नी बालानां सर्वरोगनुत् ॥ १५७ ॥

हलदी, देवदारु, दारुहलदी, कटेरी, गजपीपल, गदहपुरेना और सोंफ इनका चूर्ण बनाकर सहत तथा घीके साथ चाटे तो बालकोंकी ग्रहणी, वायुकी पीडा, कामला, ज्वर, अतीसार और पांडुरोग नष्ट हो जाता है और जठराग्नि दीपन होती है ॥ १५६–१५७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कासघ्नो मुस्तकादिस्वरसः।

पौष्करातिविषावासाकणाशृंगीरसं लिहेत्। मधुना मुच्यते बालः कासैः पञ्चभिरुत्थितैः॥ १५८॥

पुष्करमूल, अतीस, अड़ूसा, पीपल और काकड़ासिंगी इनका स्वरस बनाकर उसमें सहत डालके चाटे तो बालकोंकी पांचों प्रकारकी खाँसी दूर हो जाती है॥ १५८॥

अथ बालकानां पुराणकासोपरि केसरावलेहिका।

व्याघ्रीसुमनसंजातकेसरैरवलेहिका। मधुना चिरसंजाताञ्छिशोः कासान्व्यपोहति १५९

कटेरीके फूलोंके स्वरसमें केसरको पीसकर सहत मिलाकर चाटे तो बालकोंकी बहुत पुरानी खाँसी दूर हो जाती है॥ १५९॥

अथ कासश्वासे धान्यादिपानम्।

धान्यं च शर्करायुक्तं तण्डुलोदकसंयुतम्। पानमेतत्प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः १६०

धनियां और खांड इनको पीसकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकोंकी खांसी और श्वास दूर हो जाते हैं॥ १६०॥

अथ द्राक्षादिचूर्णम्।

द्राक्षावासाभयाकृष्णाचूर्णं क्षौद्रेण सर्पिषा। क्षीद्रं श्वासं निहन्त्याशु कासं च तमकं तथा॥ १६१॥ तमकं श्वासभेदम्।

दाख, अड़ूसा, हरड और पीपल इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका श्वास, खांसी तथा तमकश्वास भी दूर हो जाता है॥ १६१॥

अथ हिक्काविमिघ्नः कटुकरोहिण्यावलेहः।

चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत्। हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चापि चिरोत्थिताम्॥ १६२॥

कुटकीका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंकी हिचकी तथा बहुत पुरानी वमन भी दूर हो जाती है॥ १६२॥

अथ दुग्धवमिघ्नोऽवलेहः।

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत्। छर्दां पीतं तु भेद्यं तु स्तन्येन मधुसर्पिषा। द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत्॥ १६३॥ द्विवार्त्ताकी बृहतीद्वयम्। पञ्चकोलम्। पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरमिति।

आमकी गुटली, धानकी खील और सेंधानमक इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकको दूधकी वमन दूर हो जाती है। कटेरीके फलोंका स्वरस, बड़ी कटेरीके फलोंका स्वरस, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनको एकत्र मिलाकर चाटे तो बालकका दूधका डालना बन्द हो जाता है॥ १६३॥

अथाध्माने वातशूले च सैन्धवाद्यवलेहः।

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिंगुभार्ङ्गीरजो लिहन्। आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशुः॥ १६४॥

सेंधानिमक, सोंठ, इलायची, हींग और भारंगी इनका चूर्ण बनाकर घीके साथ अथवा जलके साथ मिलाकर खाय तो पेटका अफरना और वातशूल नष्ट होता है॥ १६४॥

अथ मूत्राघातघ्नः कणाद्यवलेहः।

कणोषणासिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः। मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः॥ १६५॥

पीपल, सोंठ, मिश्री, सहत, छोटी इलायची और सेंधानिमक इनको एकत्र पीसकर अवलेह बनाकर चटावे तो बालकोंका मूत्राघात दूर होता है॥ १६५॥

अथ काश्यहरो योगः।

यदा तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान्। विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम्। खादयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधु शर्करम्॥ १६६॥

जो बालक अच्छा भोजन करनेपर और जठराग्निके दीपन होनेपर भी दुर्बल होता जाय उसको विदारीकन्द गेहूँ और जौ इनका चूर्ण घीमें मिलाकर खवावे और ऊपरसे सहत तथा मिश्रीके साथ दूध पिलावे॥ १६६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ शोथघ्नो लेपः।

मुस्तं कृष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिंगकान्। पिष्ट्वा तोयेन संलिप्तं लेपोऽयं शोथच्छिच्छिशोः ॥ १६७ ॥

नागरमोथा, पेठेके बीज, देवदारु और इन्द्रजौ इनको जलमें पीसकर लेप करे तो बालकोंकी सूजन दूर होती है ॥ १६७ ॥

अथ क्षतविसर्पविस्फोटज्वरहरक्काथः।

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राक्वथितं पिबेत्। क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशुः १६८

कडवे परवल, हरड, बहेडे, आमले, नीम और हलदी इनका क्काथ पीनेसे क्षत, विसर्प, विस्फोट तथा ज्वरकी शांति होती है ॥ १६८ ॥

अथ सिध्मपामाविचर्चिकाघ्नो लेपः।

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः। तक्रलेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ १६९ ॥

घरके धूँयेकी घूँस, हलदी, कूठ, राई और इन्द्रजौ इनको तक्रमें पीसकर लेप करे तो सिध्म, पामा तथा विचर्चिका नामक कोढ दूर होता है ॥ १६९ ॥

अथ मुखस्रावहरः क्काथः।

सारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च। संस्रावि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा १७० ॥

सारिवा, तिल, लोध और मुलैठी इनके क्वाथसे नित्य मुखको साफ करनेसे मुखका स्राव दूर होता है ॥ १७० ॥

अथ मुखपाकहरः प्रलेपः।

अश्वत्वत्यग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्।

पीपलवृक्षकी छाल और पत्तोंको पीसकर सहतमें मिलाकर मुखमें लेप करनेसे मुखपाक दूर होता है।

अथ बालानां रोदने चूर्णम्।

पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रपरिप्लुतम्। बालो रोदिति यस्तस्मै लीढं दद्यात्सुखावहम् ॥ १७१ ॥

पीपल, हरड, बहेडा और आमला इनका चूर्ण घी तथा सहतमें मिलाकर चटावे तो बालकका रोना बंद होता है ॥ १७१ ॥

अथ तालुकंटकघ्नः कल्कः।

हरीतकी वचा कुष्ठं कल्कं माक्षिकसंयुतम्। पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ १७२ ॥

हरड, वच और कूठ इनके कल्कको सहतमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पिलावे तो बालकका तालुकंटकरोग नष्ट होता है ॥ १७२ ॥

अथ कुकूणकहरो लेपः।

फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च सशृंगवेरं बृहतीद्वयं च। आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति ॥ १७३ ॥

हरड, बहेडा, आमला, लोध, सोंठ, अदरख, कटेरी और कटाई इनको जलमें पीसकर कुछ कुछ गरम करके इसका लेप करनेसे कुकूणक रोग नष्ट होता है ॥ १७३ ॥

अथ नाभिशोथघ्नः स्वेदः।

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा। स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ १७४ ॥

मट्टीके पिंडको अग्निमें तपाकर दूधमें बुझाकर सुहाता सुहाता सेके तो नाभिकी सूजन दूर होती है ॥ १७४ ॥

अथ नाभिपाकघ्नतैलमवधूलनं च।

नाभिपाके निशालोध्रप्रियंगुमधुकैः श्रृतम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिश्चाप्यवधूलनम् ॥ १७५ ॥ त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वापि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥ १७६ ॥

नाभि पक जाय तो हलदी, लोध, फूलप्रियंगू और मुलैठी इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका नाभिपर मालिश करे और इनकाही चूर्ण बुरकावे। अथवा वटादि पंचक्षीरी वृक्षोंका चूर्ण करके नाभिपर बुरकावे अथवा चन्दनका चूर्ण नाभिपर बुरकावे और बकरीकी मेंगनको जलाकर उसकी राखको नाभिके ऊपर लगावे तो नाभिपाक दूर हो जाता है ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

अथ गुदपाकघ्नो योगः।

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम्। रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्। शंखयष्ट्यञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ॥ १७७ ॥ अञ्जनं रसाञ्जनम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बालकोंकी गुदा पकती होय तो पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । विशेष करके रसौतको पिलावे और रसौतका लेप करे तो गुदपाक आराम होता है । शंख, रसौत और मुलैठी इनका चूर्णभी बालकोंकी गुदपाकको दूर करे हैं ॥ १७७ ॥

अथाहिपूतने लेपः ।

शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपो देयोऽहिपूतने १७८

शंख, सफेद सुरमा और मुलैठी इनका लेप करनेसे अहिपूतन रोग दूर होता है ॥ १७८ ॥

अथ परिगर्भिकोपायः ।

परिगर्भिकरोगे तु पूज्यते वह्निदीपनम् ।

बालकके परिगर्भिकरोग हुआ होय तो जठराग्निको दीपन करनेवाली औषधि देवे ।

अथ बालानां दन्तनिःसरणोपायः ।

दन्तपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् । धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥ १७९ ॥ दन्तोत्थानभवा रोगाः पीडयन्ति न दालकन् । जाते दन्ते हि शाम्यन्ति यतस्तद्धेतुका गदाः ॥ १८० ॥

धायके फूल और पीपल इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर इससे बालकके मूसढोंको घिसे वा सहतके साथ आमलोंके रससे मसूढोंको घिसे। दांत निकलनेके समयके रोग बाललको विशेष पीडित नहीं करते हैं कारण यह है कि वह दांतोंके निकलनेके पश्चात् सब रोग अपने आप शांत हो जाते हैं ॥१७९॥१८०॥

अथ बालानां शक्तिवर्द्धकप्रयोगाः ।

सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा । मत्स्याक्षकं शंखपुष्पी मधु सर्पिः सकाञ्चनम् ॥ १८१ ॥ अर्कपुष्पी मधु घृतं चूर्णितं कतकं वचा । सहेमचूर्णं कैटर्यं श्वेता दूर्वा घृतं मधु । चत्वारोऽभिहिताः प्राशा अर्द्धश्लोकसमापनाः । कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः ॥ १८२ ॥ सौवर्णं चूर्णं चतुर्ष्वपि योगेषु मारितसुवर्णचूर्णम् । मत्स्याक्षकः ब्राह्मी इति लोके, वकम इत्येके । अर्कसदृशपुष्पी लता । कैटर्यं कट्फलम् । दूर्वा श्वेतदूर्वा । संवत्सरं यावदेते योगाः प्रयोज्याः, द्वादशवर्षाणीति केचित् ।

सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कूठ, सहत, घी और वचका चूर्ण इनको एकत्र करके खिलानेसे बालकोंके शरीरमें सामर्थ्य, बुद्धि, बल तथा पुष्टि बढती है । सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, ब्राह्मी, शंखाहुली, सहत और घी इनको एकत्र करके खाय तो बालकके शरीरकी सामर्थ्य, बल और पुष्टि प्राप्त होती है। सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कूठ, सहत, घी और वच इनको एकत्र करके खाय तो बालकोंके शरीरकी सामर्थ्य बुद्धि बल और पुष्टि उत्पन्न होती है । सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कायफल, सफेद दूध, घी और सहत इनको एकत्र करके खाय तो बालकोंकी शरीरकी सामर्थ्य, बुद्धि, बल तथा पुष्टि प्राप्त होती है । यह प्रयोग एक वर्षपर्यन्त बालकको देना चाहिये और कितने एक वैद्य कहते हैं कि बारह वर्षतक देना चाहिये ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसे समे तैलं मस्तुन्यथ चतुर्गुणे । रास्नाचन्दनकुष्ठाह्वावाजिगन्धानिशायुतैः ॥ १८३ ॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः । संसिद्धं ज्वररक्षोघ्नं बलवर्णकरं शिशोः ॥ १८४ ॥

तिलका तेल और लाखका रस बराबर लेवे, चौगुणा दहीका तोड लेवे इन सबको एकत्र मिलाकर इनमें रासना, चंदन, कूठ, असगंध, हलदी, सोया, देवदारु, मुलैठी, चुरनहार, कुटकी और रेणुका इनका कल्क डालकर तेलको सिद्ध करे । यह तेल बालकोंके ज्वरको तथा भूतादिबाधाको दूर करे है, बलको उत्पन्न करता है और शरीरके वर्णको उत्तम करता है ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

इति बालरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

इति श्रीलटकनतनयभावमिश्रविरचिते भावप्रकाशे भाषाटीकायां मध्यमखण्डं समाप्तम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षेण च शंखपुष्पी ॥ ८१ ॥ मण्डूकपर्णी ब्राह्मी । तदलाभे मञ्जिष्ठा ग्राह्या । तस्या अपि रसायनत्वात् । माक्षिकेण तुगाक्षीरी पिप्पल्या लवणेन च । त्रिफला सितया वापि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥ ८२ ॥ सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादिष्वभया ग्राह्या रसायनगुणैषिणा ॥ ८३ ॥ पुनर्नवस्यार्द्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसार्द्धमासम् । मासद्वयं तान्त्रिगुणं तमं वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ ८४ ॥ ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिनेदिने भृंगरजःसमुत्थम् । क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवनमाप्नुवन्ति ॥ ८५ ॥ शतावरी मुण्डितिका गुडूची हस्तिकर्णा सहताल्मूली । एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन किं वा मधुनावलिह्यात् ॥ ८६ ॥ जराऽऽमृत्युविमुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्यबलादियुक्तः । विभाति देवपतिमः स नित्यं प्रभामयो भूरिविवृद्धबुद्धिः ॥ ८७ ॥ पीत्वाऽश्वगन्धां पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा । वीर्यस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ८८ ॥

एक भाग शीतल जल, एक भाग दूध, एक भाग सहत और दो भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन करनेसे अथवा तीन भाग शीतल जल, तीन भाग दूध, तीन भाग सहत और तीन भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन करनेसे अवस्था स्थापन होती है। प्रातःकाल ब्राह्मीका रस, गिलोयका स्वरस और शंखाहुलीकी जड तथा पत्तोंका कल्क और मुलैठीका चूर्ण सेवन करनेसे यह उत्तम रसायनके गुणोंको करे है। इसमें कहे हुए ब्राह्मी आदि चार पदार्थ तो आयुको बढानेवाले, रोगोंका नाश करनेवाले, बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले और बलको, अग्निको, वर्णको तथा स्वरकी वृद्धि करनेवाले होनेसे रसायन हैं। इनमें भी शंखाहुली विशेष करके बुद्धिको देनेवाली है, जो ब्राह्मी न मिले तो उसके अभावमें मजीठ लेना चाहिये, क्योंकि मजीठभी रसायन है। सहत, पीपल और सेंधानमकके साथ वंशलोचनको सेवन करना रसायन है और खांडके साथ त्रिफलेको सेवन करना सिद्ध रसायन है। रसायनके गुणोंकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको वर्षाऋतुमें सेंधेनिमकके साथ, शरदृतुमें खांडके साथ, हेमन्तऋतुमें सोंठके साथ, शिशिरऋतुमें पीपलके साथ, वसन्तऋतुमें सहतके साथ और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ हरडको सेवन करना चाहिये इस प्रकार हरडको सेवन करनेसे रसायनके गुणोंको करे है। जो मनुष्य एक पक्षतक, अथवा तीन महीनेतक, नौ महीनेतक अथवा एक वर्षतक तात्कालिक उखाडे हुए पुनर्नवेको पीसकर उसके दो तोले कल्कको दूधके साथ पीवे वह वृद्ध मनुष्यभी जवान हो जाता है। जो मनुष्य एक महीनेतक नित्य भांगरेके रसको पिये और दूधके साथ भोजन करे तो अत्यन्त बल और वीर्ययुक्त होता है और १०० सौ वर्षतक जीता है। शतावर, गोरखमुंडी, गिलोय, हस्तिकर्ण पलास, और काली मुसली इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके सहतमें अथवा घीमें मिलाकर चाटे तो मनुष्य जरा रोग और अकालमृत्युरहित अतुलवीर्य बलसम्पन्न देवताकी समान तेजस्वी और अत्यन्त तीव्र बुद्धिसम्पन्न होकर सदैव शोभाको प्राप्त होता है। एक पक्षतक घीके साथ, तेलके साथ अथवा सुहाते २ गरम जलके साथ असगन्धको पिये तो जिस प्रकार जलकी वृष्टि धान्योंको पुष्ट करती है उसी प्रकार असगन्ध वीर्य तथा शरीरके बलको वृद्धि करता है ॥ ७९–८८ ॥

अथ लोहगुग्गुलुः।

अयःपलं गुग्गुलुमत्र योज्यं पलत्रयं त्र्यूषणपलानि पञ्च । पक्वानि चाष्टौ त्रिफलारजश्च कर्षं लिहन्त्यात्यमरत्वमेव ॥ ८९ ॥

लोहेका चूर्ण ४ चार तोले, गूगल १२ बारह तोले, त्रिकुटा २० बीस तोलेभर और त्रिफलेका चूर्ण ३२ बत्तीस तोले इन सबको एकत्र करके इसमेंसे नित्य एक तोला चाटे तो ज्वरादि रोग दूर होकर अमरता प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बालकोंकी गुदा पकती होय तो पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । विशेष करके रसौतको पिलावे और रसौतका लेप करे तो गुदपाक आराम होता है । शंख, रसौत और मुलैठी इनका चूर्णभी बालकोंकी गुदपाकको दूर करे हैं ॥ १७७ ॥

अथाहिपूतने लेपः ।

शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपो देयोऽहिपूतने १७८

शंख, सफेद सुरमा और मुलैठी इनका लेप करनेसे अहिपूतन रोग दूर होता है ॥ १७८ ॥

अथ परिगर्भिकोपायः ।

परिगर्भिकरोगे तु पूज्यते वह्निदीपनम् ।

बालकके परिगर्भिकरोग हुआ होय तो जठराग्निको दीपन करनेवाली औषधि देवे ।

अथ बालानां दन्तनिःसरणोपायः ।

दन्तपाली तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् । धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥ १७९ ॥ दन्तोत्थानभवा रोगाः पीडयन्ति न दारकान् । जाते दन्ते हि शाम्यन्ति यतस्तद्धेतुका गदाः ॥ १८० ॥

धायके फूल और पीपल इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर इससे बालकके मूसढोंको घिसे वा सहतके साथ आमलोंके रससे मसूढोंको घिसे । दांत निकलनेके समयके रोग बालकको विशेष पीडित नहीं करते हैं कारण यह है कि वह दांतोंके निकलनेके पश्चात् सब रोग अपने आप शांत हो जाते हैं ॥१७९॥१८०॥

अथ बालानां शक्तिवर्द्धकप्रयोगाः ।

सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा । मत्स्याक्षकं शंखपुष्पी मधु सर्पिः सकाश्मनम् ॥ १८१ ॥ अर्कपुष्पी मधु घृतं चूर्णितं कतकं वचा । सहेमचूर्णं कैटर्यं श्वेता दूर्वा घृतं मधु । चत्वारोऽभिहिताः प्राज्ञा अर्द्धश्लोकसमापनाः । कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः ॥ १८२ ॥ सौवर्णं चूर्णं चतुर्ष्वपि योगेषु मारितसुवर्णचूर्णम् । मत्स्याक्षकः ब्राह्मी इति लोके, वकम इत्येके । अर्कसदृशपुष्पी लता । कैटर्यं कट्फलम् । दूर्वा श्वेतदूर्वा । संवत्सरं यावदेते योगाः प्रयोज्याः, द्वादशवर्षाणीति केचित् ।

सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कूठ, सहत, घी और वचका चूर्ण इनको एकत्र करके खिलानेसे बालकोंके शरीरमें सामर्थ्य, बुद्धि, बल तथा पुष्टि बढती है । सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, ब्राह्मी, शंखाहुली, सहत और घी इनको एकत्र करके खाय तो बालकके शरीरकी सामर्थ्य, बल और पुष्टि प्राप्त होती है । सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कूठ, सहत, घी और वच इनको एकत्र करके खाय तो बालकोंके शरीरकी सामर्थ्य बुद्धि बल और पुष्टि उत्पन्न होती है । सोनेकी भस्मका बारीक चूर्ण, कायफल, सफेद दूध, घी और सहत इनको एकत्र करके खाय तो बालकोंकी शरीरकी सामर्थ्य, बुद्धि, बल तथा पुष्टि प्राप्त होती है । यह प्रयोग एक वर्षपर्यन्त बालकको देना चाहिये और कितने एक वैद्य कहते हैं कि बारह वर्षतक देना चाहिये ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसे समे तैलं मस्तुन्यथ चतुर्गुणे । राम्नाचन्दनकुष्ठाह्वावाजिगन्धानिशायुतैः । ॥ १८३ ॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वाति क्ताहरेणुभिः । संसिद्धं ज्वररक्षोघ्नं बलवर्णकरं शिशोः ॥ १८४ ॥

तिलका तेल और लाखका रस बराबर लेवे, चौगुणा दहीका तोड लेवे इन सबको एकत्र मिलाकर इनमें रासना, चंदन, कूठ, असगंध, हलदी, सोया, देवदारु, मुलैठी, चुरनहार, कुटकी और रेणुका इनका कल्क डालकर तेलको सिद्ध करे । यह तेल बालकोंके ज्वरको तथा भूतादिबाधाको दूर करे है, बलको उत्पन्न करता है और शरीरके वर्णको उत्तम करता है ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

इति बालरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

इति श्रीलटकनतनयभावमिश्रविरचिते भावप्रकाशे भाषाटीकायां मध्यमखण्डं समाप्तम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भुक्त्वा हृष्यति जीर्णोऽपि दशदारान्व्रजत्यपि ॥ २२ ॥

अनेक प्रकारके विचित्र भोजन, विविध प्रकारके पीनेके पदार्थ, कानको जो प्रिय लगें ऐसे सुंदर वचन, त्वचाको प्रिय ऐसे वस्त्र भूषणादि स्पर्श, चंदमाकी चांदनी सहित रात्रि, नवयौवना स्त्री, कान और मनको प्रिय ऐसा गायन आदि, नागरवेलके पान, मदिरा, माला, सुगंधि, सुंदर स्वरूप, चित्रविचित्र पुष्पोद्यान और जिनसे मनमें चोट न लगे ऐसे कर्म क्लीबताको दूर करके घोडेकी समान रमण करनेकी शक्तिको उत्पन्न करे है। सोनामाखी, सहत, पारा, लोहेका चूर्ण, हरड, शिलाजित, वायविडंग और घी इन सबको मिलाकर चाटे तो पुरुष रोगसे ग्रसित होनेपर और अस्सी वर्षके वृद्ध होनेपर भी जवानकी समान स्त्रीसे रमण करता है। गिलोयका सत्त्व, अभ्रककी भस्म, हरितालकी भस्म, इलायची, खाँड और पीपल इनको सहतमें मिलाकर चाटे तो नपुंसक भी सौ स्त्रियोंसे रमता है। पुष्ट बछडेवाली गायके दूधमें गेहूँका सत्त्व वा चूर्ण लेकर भूने फिर उसमें जल, उत्तम मिश्री वा खाँड सहत और घी मिलाकर सेवन करे तो वृद्ध मनुष्य भी दश स्त्रियोंसे गमन कर सक्ता है ॥ १६--२२ ॥

दध्नोऽर्द्धाढकमीषदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः प्रस्थं क्षौद्रपलं पलं च हविषः शुण्ठ्याश्च माषाष्टकम्। तद्वन्माषचतुष्टयं मरिचतः कर्षं लवङ्गं तथा धृत्वा शुक्लपटे शनैः करतलेनोत्थाप्य विस्रावयेत् ॥ २३ ॥ मृद्भाण्डे मृगनाभिचन्दनरसाभृष्टेऽगुरूद्धूपिते कर्पूरेण सुगन्धितं तदखिलं संलोड्य संस्थापयेत्। स्वस्यार्थे मकरेश्वरेण रचिता ह्येषा रसाला स्वयं भोक्तुर्मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्य प्रिया ॥ २४ ॥

कुछेक खटाई लिये मीठा दही एक सौ अट्ठाईस तोले, चन्द्रमाकी समान श्वेत और उज्ज्वल खांड ६४ चौंसठ तोले, सहत ४ चार तोले, घी ४ चार तोले, सोंठ ४० चालीस रत्ती, काली मिर्च २० बीस रत्ती और लौंग १ एक तोला लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर सफेद कपडेमें डालकर धीरे धीरे हाथसे फेरकर कस्तूरी तथा चंदनके रससे सुवासित किये और अगरसे धूपित किये मट्टीके बासनमें करके फिर उसको कपूरसे सुवासित करे तो यह रसाला (श्रीखण्ड) सिद्ध होता है। यह रसाला स्वयं कामदेवने अपने लिये बनाया था। यह कामदेवको प्रदीप्त करनेवाला, सुख देनेवाला और कामिनीकी समान सदैव प्रिय लगता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ रतिवर्द्धनयोगाः।

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी। मुसली वानरीबीजं यष्टी नागबला वला ॥ २५ ॥ एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाज्येन भर्जितम्। सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥ २६ ॥ चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम्। सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं यथा ॥ २७ ॥ वाजीकरणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः। तस्माद्बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः ॥ २८ ॥

गोखुरू, तालमखाना, असगंध, सतावर, मुसली, कौंछके बीज, मुलैठी, गंगेरन और खिरेटी इनके चूर्णको अठगुने दूधमें पकावे और फिर सब औषधियोंके बराबर गायका घी लेवे, उस घीमें औषधिको अच्छे प्रकार भूनकर औषधि डाले और औषधिसे दुगुनी सफेद बूरा मिलाकर उसके लड्डू बना लेवे इन लड्डुओंको सेवन करनेसे यह अत्यंत वाजीकरण गुणोंको करता है, यह प्रयोग अनेक वाजीकरण योगोंको संग्रह करके मैंने बनाया है इस कारण अनेक योगोंसे उत्तम है ॥ २५--२८ ॥

अथ मदनमंजरी वटी।

चत्वारो व्योमभागास्तदनु निगदितं भागयुग्मं च वंगं भागैकं शम्भुबीजं त्रितयमपि मृतं तत्समा सिद्धमूली। चातुर्जातं सजातीफलमरिचकणानागरं देवपुष्पं जातीपत्रं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च भागद्वितयमपि पृथक्सर्वमेकत्र चूर्ण्यम् ॥ २९ ॥ सर्वार्द्धांशा सिता स्याद्धृतमधुसहितं मोदकीकृत्य चैतत्खादेदग्निं समीक्ष्य प्रसभमभिनवानन्दसंवर्द्धनाय । योगो वाजीकराख्योऽयमिह निगदितो भैरवानन्दनाम्ना निःशेषव्याधिहन्ता दलितबहुवधूदामकन्दर्पदर्पः ॥ ३० ॥

४ चार भाग अभ्रककी भस्म, २ दो भाग वंगकी भस्म, पारेकी भस्म एक भाग और इन तीनोंकी बराबर भांग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, जायफल, काली मिर्च, पीपल, सोंठ, लौंग और जावित्री प्रत्येक दो दो तोले लेकर चूर्ण बनावे और सब चूर्णसे दुगुनी चीनी डाले, फिर इसमें सहत और घी डालकर लड्डू बनाकर जठराग्निके बलानुसार लड्डुओंको सेवन करे । इन लड्डुओंको सेवन करनेसे तत्कालही कामदेवकी समान प्रबल आनंदकी प्राप्ति होती है । जगत्में भैरवानंदयोगीका कहा हुआ यह वाजीकरण योग सम्पूर्ण व्याधियोंका नष्ट करनेवाला है और बडी बडी प्रबल स्त्रियोंके कामदेवके अभिमानको भंजन कर देता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ वस्ताण्डकच्छपांडे ।

पिप्पलीलवणोपेते वस्ताण्डे घृतसाधिते । कच्छपस्याथवा खादेत्तत्तु वाजीकरं भृशम् ३१

बकरेके अंडकोषोंको अथवा कछुवेके अंडोंको घीमें भूनकर उसमें पीपल तथा सेंधानमकका चूर्ण डालकर खाय तो पुरुष घोडेकी समान मैथुन करनेमें समर्थ होता है ॥ ३१ ॥

अथ क्षीरतिवल्लभपूगपाकः ।

पूगं दक्षिणदेशजं दशपलोन्मानं भृशं कर्तयेत्तत्स्विन्नं जलयोगतो मृदुतरं संकुट्य चूर्णीकृतम् । तच्चूर्णं पटशोधितं वसुगुणे गोशुद्धदुग्धे पचेद्द्रव्याज्याञ्जलिसंयुतेऽतिनिविडे दद्याच्छुल्लार्द्धां सिताम् ॥ ३२ ॥ पक्वं तज्ज्वलनात्क्षितिं प्रति नयेत्तस्मिन्पुनः प्राक्षिपेद्यद्यत्तद्बहुदाहरामि बहुला हृद्वादरात्संहिताः । एला नागबला बला सचपला जातीफला लिङ्गिका जातीपत्रसुपत्रपत्रकयुतं । तच्च त्वचासंयुतम् ॥ ३३ ॥ विश्वावीरणवारिवारिदवरावांशी वरी वानरी द्राक्षा सेक्षुरगोक्षुराश्च महता खर्जूरिका क्षीरिका । धान्याकं सकसेरुकं समधुकं शृङ्गाटकं जीरकं पृथ्वीकाथ यवानिका वराटिका मांसी मिसी मेथिका ॥ ३४ ॥ कन्देष्वत्र विदारिकाथ मुशली गन्धर्वगन्धा तथा कर्चूरं करिकेशरं समरिचं चारस्य बीजं नवम् । बीजं शाल्मलिसम्भवं करिकणाबीजं च राजीवजं श्वेतं चन्दनमत्र रक्तमपि च श्रीसंज्ञपुष्पैः समम् ॥ ३५ ॥ सर्वं चेति पृथक्पृथक्पलमितं संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत्सूतं वंगभुजंगलोहगगनं सम्मारितं स्वेच्छया । कस्तूरीघनसारचूर्णमपि च प्राप्तं यथा प्रक्षिपेत्पश्चादस्य तु मोदकान्विरचयेद्बिल्वप्रमाणान्मथ ॥ ३६ ॥ तान्भुक्त्वातिसदा यथानलबलं भुञ्जीत नाम्लं रसं पूर्वस्मिन्नशिते गते परिणतिं प्राग्भोजनाद्भक्षयेत् । नित्यं क्षीरतिवल्लभाख्यकमिमं पूगस्य पाकं भजेत्स्याद्वीर्यविवृद्धिवृद्धमदनो वाजीव शक्तो रतौ ॥ ३७ ॥ दीप्ताग्निर्बलवान्बली विरहितो हृष्टः सपुष्टः सदा वृद्धो योऽपि युवेव सोऽपि रुचिरः पूर्णेन्दुवत्सुन्दरः ॥ ३८ ॥ वसुगुणेऽष्टगुणे अञ्जलिरर्द्धशरावः । तुलार्द्धे पञ्चाशत्पलानि यतः-"द्विःपञ्चाशत्पलानामभिधीयते तुलां संहिताः सुश्रुताद्याः"

नागबला (गुलशकरी) । बला (वरियारा) तस्याः मूलम् । जातीपत्रकञ्जाइपत्री इति लोके । विश्वा शुण्ठीति लोके । वीरणमुशीरं ग्राह्यम् । वारि सुगन्धवाल इति लोके । वारिदः मुस्तकः । वरा त्रिफला । वांशी वंशलोचना । वरी शतावरी । वानरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षेण च शंखपुष्पी ॥ ८१ ॥ मण्डूकपर्णी ब्राह्मी । तदलाभे मञ्जिष्ठा ग्राह्या । तस्या अपि रसायनत्वात् । माक्षिकेण तुगाक्षीरी पिप्पल्या लवणेन च । त्रिफला सितया वापि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥ ८२ ॥ सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादिष्वभया ग्राह्या रसायनगुणैषिणा ॥ ८३ ॥ पुनर्नवस्यार्द्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसार्द्धमासम् । मासद्वयं तान्त्रिगुणं तमं वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ ८४ ॥ ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिनेदिने भृंगरजःसमुत्थम् । क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवनमाप्नुवन्ति ॥ ८५ ॥ शतावरी मुण्डितिका गुडूची हस्तिकर्णा सहतालमूली । एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन किं वा मधुनावलिह्यात् ॥ ८६ ॥ जराऽऽजामृत्युविमुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्यबलादियुक्तः । विभाति देवपतिमः स नित्यं प्रभामयो भूरिविवृद्धबुद्धिः ॥ ८७ ॥ पीत्वाऽश्वगन्धां पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा । वीर्यस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ८८ ॥

एक भाग शीतल जल, एक भाग दूध, एक भाग सहत और दो भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन करनेसे अथवा तीन भाग शीतल जल, तीन भाग दूध, तीन भाग सहत और तीन भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन करनेसे अवस्था स्थापन होती है। प्रातःकाल ब्राह्मीका रस, गिलोयका स्वरस और शंखाहुलीकी जड तथा पत्तोंका कल्क और मुलैठीका चूर्ण सेवन करनेसे यह उत्तम रसायनके गुणोंको करे है। इसमें कहे हुए ब्राह्मी आदि चार पदार्थ तो आयुको बढानेवाले, रोगोंका नाश करनेवाले, बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले और बलको, अग्निको, वर्णको तथा स्वरकी वृद्धि करनेवाले होनेसे रसायन हैं। इनमें भी शंखाहुली विशेष करके बुद्धिको देनेवाली है, जो ब्राह्मी न मिले तो उसके अभावमें मजीठ लेना चाहिये, क्योंकि मजीठभी रसायन है। सहत, पीपल और सेंधानमकके साथ वंशलोचनको सेवन करना रसायन है और खांडके साथ त्रिफलेको सेवन करना सिद्ध रसायन है। रसायनके गुणोंकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको वर्षाऋतुमें सेंधेनिमकके साथ, शरदृतुमें खांडके साथ, हेमन्तऋतुमें सोंठके साथ, शिशिरऋतुमें पीपलके साथ, वसन्तऋतुमें सहतके साथ और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ हरडको सेवन करना चाहिये इस प्रकार हरडको सेवन करनेसे रसायनके गुणोंको करे है। जो मनुष्य एक पक्षतक, अथवा तीन महीनेतक, नौ महीनेतक अथवा एक वर्षतक तात्कालिक उखाडे हुए पुनर्नवेको पीसकर उसके दो तोले कल्कको दूधके साथ पीवे वह वृद्ध मनुष्यभी जवान हो जाता है। जो मनुष्य एक महीनेतक नित्य भांगरेके रसको पिये और दूधके साथ भोजन करे तो अत्यन्त बल और वीर्ययुक्त होता है और १०० सौ वर्षतक जीता है। शतावर, गोरखमुंडी, गिलोय, हस्तिकर्ण पलास, और काली मुसली इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके सहतमें अथवा घीमें मिलाकर चाटे तो मनुष्य जरा रोग और अकालमृत्युरहित अतुलवीर्य बलसम्पन्न देवताकी समान तेजस्वी और अत्यन्त तीव्र बुद्धिसम्पन्न होकर सदैव शोभाको प्राप्त होता है। एक पक्षतक घीके साथ, तेलके साथ अथवा सुहाते २ गरम जलके साथ अश्वगन्धको पिये तो जिस प्रकार जलकी वृष्टि धान्योंको पुष्ट करती है उसी प्रकार अश्वगन्ध वीर्य तथा शरीरके बलको वृद्धि करता है ॥ ७९–८८ ॥

अथ लोहगुग्गुलुः।

अथःपलं गुग्गुलुमत्र योज्यं पलत्रयं त्र्यूषणपलानि पञ्च । पञ्चानि चाष्टौ त्रिफलारजश्च कर्षं लिहन्यात्यमरत्वमेव ॥ ८९ ॥

लोहेका चूर्ण ४ चार तोले, गूगल १२ बारह तोले, त्रिकुटा २० बिस तोलेभर और त्रिफलेका चूर्ण ३२ बत्तिस तोले इन सबको एकत्र करके इसमेंसे नित्य एक तोला चाटे तो ज्वरादि रोग दूर होकर अमरता प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ रसायनविशेषफलम् ।

न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते रसायनं यो विविधं निषेवते । गतिं स देवर्षिनिषेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाक्षयम् ॥ ९० ॥

जो मनुष्य अनेक प्रकारके रसायनको सेवन करता है वह केवल दीर्घायुको नहीं भोगता किन्तु देवर्षियोंकी शुभ गतिको प्राप्त होता है और अविनाशी ब्रह्मरूप पद मोक्षको भी प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

इति रसायनाधिकारः सम्पूर्णः ।

यावद्व्योमनि बिम्बमम्बरमणेरिन्दोश्च विद्योतते यावत्सप्तपयोधयः सगिरयस्तिष्ठन्ति पृष्ठे भुवः । यावच्चावनिमण्डलं फणिपतेरास्ते फणामण्डले तावत्सद्भिषजः पठन्तु परितो भावप्रकाशं शुभम् ॥ ९१ ॥ ग्रन्थस्यास्याध्यापकानाञ्जनानां मध्ये नृणामादरं कुर्वतां च । श्रीसोमेशादित्यविप्रप्रसादादायुर्दीर्घं सौख्यमास्तां सदैव ॥ ९२ ॥

इति भावप्रकाशस्योत्तरखण्डेऽष्टमं प्रकरणं समाप्तम् ।

जबतक सूर्य और चन्द्रमा आकाशमें स्थित हैं, जबतक पृथ्वीपर सातों समुद्र तथा धरणिपर धराधर प्रतिष्ठित हैं और जबतक भूमण्डल फणीन्द्रके फणपर विद्यमान है तबतक देशदेशान्तरोंके बडे बडे विचक्षण वैद्य मेरे इस भावप्रकाश शुभदायक ग्रन्थको पढें । ॥ ९१ ॥ इस भावप्रकाश ग्रन्थके पढने पढानेवाले और आदर सत्कार करनेवाले पुरुष विश्वनाथ महादेव सूर्य देवता और ब्राह्मणोंके प्रसादसे सर्वदा दीर्घायु होकर अचल सुखको प्राप्त हों ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

इति श्रीभावमिश्रकृतभावप्रकाशनामग्रन्थे उत्तरखण्डे मुरादाबादनगरनिवास्यायुर्वेदोद्धारककविकुलकलानिधिमाथुरवैश्यवंशोद्भवशालिग्रामवैश्यविरचितवैद्यसंजीविनी नाम भाषाटीका सम्पूर्णा ।

समाप्तमिदमुत्तरखण्डम् ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस-कल्याण.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस-मुम्बई.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपिकच्छुः। इक्षुरः कोकिलाक्षस्तस्य बीजं ग्राह्यम्। गोक्षुरस्य च बीजम्। महती महाखर्जूरिका। क्षीरिका क्षीरी। पृथ्वीका कलौञ्जीति लोके। वराटिका "शालूकमेषां कन्दः स्याद्बीजकोशो वराटिका" मांसी जटामांसी। मिसिः शतपुष्पा। गन्धर्वगन्धा अश्वगन्धा तस्या मूलम्। श्रीसंज्ञं लवंगः। घनसारः कर्पूरः। बिल्वमानात् पलप्रमाणात्।

चालीस तोलेभर दक्षिण देशकी उत्तम सुपारी लेकर उनको बारीक कतरकर टुकडे कर लेवे उनको जलमें भिजो देवे जब यह अत्यंत नरम हो जायँ तब उनको कूटकर बारीक चूर्ण कर लेवे फिर उस चूर्णको वस्त्रमें छान लेवे, पश्चात् इस चूर्णसे आठ गुने गायके शुद्ध दूधमें सोलह तोलेभर गायका घी डालकर उसमें इस चूर्णको पकावे जब पकते पकते गाढा हो जाय तब उसमें २०० दो सौ तोलेभर उत्तम सफेद बूरा मिला देवे, जब अच्छे प्रकारसे पक जाय तब उसको चूलेसे नीचे उतारकर उसमें इलायची, गंगेरन, खिरेटी, पीपल, जायफल, लौंग, जावित्री, तेजपात, तालीसपत्र, दालचीनी, सोंठ, खस, सुगंधवाला, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला, वंशलोचन, सतावर, कौंछके बीज, दाख, तालमखाना, गोखुरूके बीज, बडी खजूर, तवाखीर, धनियाँ, कसेरू, सिंगाडे, मुलैठी, जीरा, कलौंजी, अजवायन, कमलगट्टेकी गिरी, वालछड, सौंफ, मेथी, विदारीकंद, काली मुसली, असगन्धकी जड, कचूर, नागकेशर, मिरच, नवीन चिरौंजी, सेमलके बीज, गजपीपल, कमलगट्टा, चंदन, लालचन्दन और लौंग इन प्रत्येक पदार्थका चार चार तोले चूर्ण डाले, उसी प्रकार अच्छी विधिसे पारेकी भस्म, वंगकी भस्म, सीसेकी भस्म, लोहेकी भस्म और अच्छे प्रकारसे मारा हुआ अभ्रक इनको भी इच्छानुसार डाल देवे, और जो कस्तूरी और भीमसेनी कपूर मिल जाय तो यह दोनों वस्तु भी डाल देवे। पीछे इसके चार चार तोलेके लड्डू बनावे। इन लड्डूओंको बडे आनन्दके साथ अग्निका बलाबल विचारकर खाय। पहिले किया हुआ भोजन जब पच जाय तब भोजन करनेसे पहिले यह लड्डू खाय। इन लड्डुओंको सेवन करनेवालेको खटाई नहीं खानी चाहिये। यह स्त्रीरतिवल्लभ नामवाला पूगपाक (सुपारीपाक) नित्य सेवन किया जाय तो वीर्यकी वृद्धि होकर कामदेवकी वृद्धि होती है। मैथुनकर्ममें घोडेकी समान समर्थ होता है। जठराग्नि दीपन होती है, बलकी वृद्धि होती है, शरीरमें पडि नहीं पडती, दुष्ट पुष्ट होता है, जो पुरुष वृद्ध होय वह भी इसके प्रयोगसे युवाकी समान बलवान् और पूर्णमासीके चन्द्रमा की समान सुन्दर होता है ॥ ३२–३८ ॥

अथ कामेश्वरमोदकः।

एतस्मिन्सति वल्लभे यदि पुनः सम्यक्छुरा शाणिका धत्तूरस्य च बीजमर्कंकरभः पोथोऽब्धिशोषस्तथा। सन्माजूफलकं तथा खसफलं त्वक्पार्पिका निक्षिपेच्चूर्णार्द्धं विजया तदा स हि भवेत्कामेश्वरो मोदकः ३९

इस पूगपाकमें जो खुरासानी, अजवायन, धतूरेके बीज, अकरकरा, वालछड, समुद्रशोष, माजूफल और पोस्तके डोडे इन पदार्थोंका चूर्ण एक एक तोला और सब चूर्णसे आधी भांग मिला दी जाय तो यह कामेश्वर मोदक तैयार होता है ॥ ३९ ॥

अथ महाखण्डकूष्माण्डावलेहः।

रक्तपित्ताधिकारोक्तः खण्डकूष्माण्डको महान्। रक्तपित्तादिरोगघ्नो महावाजीकरः स्मृतः ॥ ४० ॥

रक्तपित्ताधिकारमें जो महाखण्डकूष्माड नामका अवलेह कहा है वह अवलेह रक्तपित्तादि रोगोंको हरनेवाला और अत्यन्त वाजीकरण है ॥ ४० ॥

अथाम्रपाकः।

पक्वाम्रस्य रसद्रोणे सितामाढकसम्मिताम्। घृतं प्रस्थमितं दद्यान्नागरस्य पलाष्टकम् ॥ ४१ ॥ मरिचं कुडवोन्मानं पिप्पली द्विपलोन्मिता। सलिलस्याढकं दत्त्वा सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ४२ ॥ विपचेन्मृन्मये पात्रे दारुदर्व्या प्रचालयेत्। चूर्णान्येषां क्षिपेत्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घनीभूतेऽवतारिते ॥ ४३ ॥ धान्याकं जीरकं पथ्यां चित्रकं मुस्तकत्वचम् । बृहज्जीरकमप्यत्र ग्रन्थिकं नागकेशरम् ॥ ४४ ॥ एलाबीजं लवंगं च पृथग्जातीं पलम्पलम् । सिद्धे शीते प्रदद्याच्च मधुनः कुडवद्वयम् ॥ ४५ ॥ भक्षयेद्भोजनादर्वाक्पलमात्रमिदं नरः । अथवा नियतं नात्र मात्रां खादेद्यथानलम् ॥ ४६ ॥ मानवः सेवनादस्य वाजीव सुरते भवेत् । समर्थो बलवान्पुष्टो नित्यं स स्यान्निरामयः ॥ ४७ ॥ ग्रहणीं नाशयेदेव क्षयं श्वासमरोचकम् । अम्लपित्तं महाश्वासं रक्तपित्तं च पाण्डुताम् ॥ ४८ ॥

उत्तम पके हुए आमोंके १०२४ एक हजार चौबीस तोले रसमें २५६ दो सौ छप्पन तोले खांड, ६४ चौंसठ तोले घी, ३२ बत्तीस तोले सोंठ, १६ सोलह तोले काली मिरच, ८ तोले पीपल और २५६ दो सौ छप्पन तोले जल डालकर सबको एकत्रित करके मट्टीके बासनमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे और पकाते समय लकडीकी करछीसे चलाता जाय गाढा होनेपर उसको नीचे उतार उसमें धनियां, जीरा, हरड, चीता, नागरमोथा, दालचीनी, कलौंजी, पीपलामूल, नागकेसर, इलायचीके दाने, लौंग और जायफल इन प्रत्येक पदार्थका चार चार तोले चूर्ण डाल देवे । जब यह शीतल हो जाय तब इसमें ३२ बत्तीस तोले सहत डाल देवे तो यह आम्रपाक सिद्ध होता है । इसमेंसे एक तोला लेकर भोजन करनेसे पहिले खाय अथवा मात्राके नियमको छोडकर जठराग्निके बलानुसार खाय । इस पाकको सेवन करनेसे मनुष्य मैथुन करनेमें घोडेकी समान सामर्थ्ययुक्त होते हैं, बलवान्, पुष्ट और सदैव रोगरहित होते हैं । यह पाक ग्रहणी, क्षय, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, महाश्वास, रक्तपित्त और पांडुताको नष्ट करे है ॥ ४१--४८ ॥

अथ चन्दनादि तैलम् ।

शमयति गोक्षुरचूर्णं छागक्षीरेण साधितं समधु । भुक्तं क्षपयति जाड्यं यजनितं कुमयोगेण ॥ ४९ ॥ द्रव्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम् । पतंगमथ कालीयागुरुकृष्णागुरूणि च । देवदारुसरलं पद्मं पञ्चके तृणिकेऽपि च ॥ ५० ॥ कर्पूरो मृगनाभिश्च लता कस्तूरिकापि च । सिल्हकः कुंकुमं नख्यं जातीफलकमेव च ॥ ५१ ॥ जातीपत्रं लवंगं च सूक्ष्मैला महती च सा । कंकोलफलकं स्पृक्का पत्रकं नागकेशरम् ॥ ५२ ॥ वालकं च तथोशीरं मांसी दारुसिताऽपि वा । कृतकर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्तकम् । रेणुका च मिथंगुश्च श्रीवासो गुग्गुलस्तथा ॥ ५३ ॥ लाक्षा नखश्च रालश्च धातकीकुसुमं तथा । ग्रन्थिपर्णी च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ५४ ॥ एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत् । अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोऽपि सः ॥ ५५ ॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः । वन्ध्यापि लभते गर्भं वृद्धोऽपि तरुणायते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ५६ ॥ चन्दनादि महातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम् । दाहं प्रस्वेददौर्गन्ध्यं कुष्ठं कण्डूं विनाशयेत् ॥ ५७ ॥ पतंगं वकम् इति लोके । कालीयकं कलम्बकम् इति लोके । लता कस्तूरीका मुष्कदाना इति लोके । कंकोलफलस्य अलाभे जातीपुष्पं ग्राह्यं तदभावे लवंगं ग्राह्यम् । दारुसिता [दारुचीनी] । शैलेयं छरीला लोके श्रीवासः गुग्गुलुः । ग्रन्थिपर्णी (गठिवन) अशीतिसमः अशीतिवार्षिकः ।

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पतंग, दारुहल्दी, अगर, काली अगर, देवदारु, धूपसरल, कमल, पारिस पीपलका पञ्चांग, कपूर, कस्तूरी, वेदमुस्क, शिलारस, नवीन केसर, जायफल, लौंग, बडी इलायची, छोटी इलायची, जावित्री, कंकोल (कंकोल न मिले तो जावित्री और जावित्री भी न मिले तो लौंग लेनी चाहिये), दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, खस, मुगंधवाला, बालछड, तज, वंशलोचन, भूरिछरीला, नागरमोथा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रेणुकाके बीज, फूलप्रियंगू, लोबान, गूगल लाख, नख, मजीठ, तगर, मोम, राल, धायके फूल और गठिवन यह प्रत्येक पदार्थ चौबीस २४ चौबीस २४ रत्ती लेकर कल्क बनाकर तेलमें डालकर धीरे धीरे पकावे इस तेलकी शरीरमें मालिश किया जाय तो ८० वर्षका बुड्ढा पुरुष भी युवाकी समान वीर्यवान् और स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय होता है। इस तेलका मालिश करनेसे वंध्या स्त्रियोंके भी गर्भ रहता है। अपुत्रिणीके पुत्रकी प्राप्ति होती है और सौ वर्षकी आयु होती है। यह चन्दनादि महातैल रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, पसीना, दुर्गंध, कोढ और खुजलीको दूर कर देता है ॥ ४९--५७ ॥

अथ मधुपक्कहरीतकी।

दशमूलकणावह्निः कपित्थं च विभीतकम्। कट्फलं मरिचं विश्वमूलं पिप्पलिसैन्धवम् ॥ ५८ ॥ रक्तरोहीतकं दन्ती द्राक्षाजाजिनिशाद्वयम्। धात्रीजन्तुघ्नशिखरिशृंगीदारुपुनर्नवाः ॥ ५९ ॥ धान्याकं देवकुसुमं राजवृक्षस्त्रिकण्टकं। वृद्धदारु कुबेराक्षी मूलं वीरणिकाभवम् ॥ ६० ॥ एतेषां पलयुग्मं तु भेषजानां पृथक्पृथक्। आढकश्चापि पथ्यास्तोये पञ्चाढके पचेत् ॥ ६१ ॥ स्विन्ना पथ्या भवेद्यावत्पश्चान्मधु विनिक्षिपेत्। गुरूपदेशादधिवासत्रिदिनं च ततः परम् ॥ ६२ ॥ पुनः क्षिपेत्पञ्चदिनं तथा च दशवासरम्। संसिद्धा चाभया पश्चाद्धृतभाण्डे निधापयेत् ॥ ६३ ॥ विमले सुदृढे क्षौद्रपरिपूर्णे प्रयत्नतः। पश्चात्पूर्वोक्तभाण्डे तु क्षिपेद्बुद्धिपरायणः। एषां हरीतकी चैव धन्वंतरिकृता शुभा ॥ ६४ ॥ भक्षयेद्यो नरो नित्यं रोगा नश्यन्ति सर्वशः। श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं हिक्कां छर्दिमदभ्रमाम् ॥ ६५ ॥ मुखरोगं तथा तृष्णामरुचिं वह्निमन्दताम्। कृत्प्लीहोदराणां च वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ६६ ॥ शिरोऽक्षिकर्णजां पीडां तथा बद्धगुदोदरम्। ग्रहणीं दुर्विकारां च शोषं दोषत्रयोद्भवम्। मधुपक्केति विख्याता हंति रोगाननेकशः ॥ ६७ ॥

दशमूल, पीपल, चीता, कैथ, बहेडा, कायफल, मिरच, सोंठ, पीपलामूल, सेंधानिमक, लालरोहिंडा, जमालगोटा, दाख, जीरा, हलदी, दारुहलदी, आमले, वायविडंग, चिरचिटा, काकडासिंगी, देवदारु, पुनर्नवा, धनियाँ, लौंग, अमलतास, गोखुरू, विधारा, सागरगोटा, और खस यह प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले और उत्तम हरड दो सौ छप्पन तोले लेवे, सबको पांच आढक जलमें पकावे, जब पकते पकते नरम हो जाय तब उसमेंसे हरडोंको निकालकर उनकी गुठली निकालकर अलग रख देवे और काढेको छानकर उसमें वह हरड डालकर पकावे जब पकते २ गाढा हो जाय तब शीतल होनेपर गुरुवचनानुसार सहत मिलावे, फिर तीन दिन पश्चात् पांच दिन पश्चात् और फिर दश दिन पश्चात् सहत डाले। इस प्रकारकी सिद्ध हुई हरडोंको निर्मल, दृढ और सहतसे भरे घीके चिकने बासनमें यत्नपूर्वक रक्खे फिर उस बासनमेंसे निकालकर बुद्धिमान् वैद्य दूसरे बासनमें भरके रख देवे तो यह मधुपक्क हरीतकी सिद्ध होती है। जो मनुष्य इस धन्वन्तरिकी कही हुई हरडका नित्य सेवन करता है उसके सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। श्वास, खाँसी, क्षय, पांडु, हिचकी, वमन, मद, भ्रम, मुखरोग, तृषा, अरुचि, मंदाग्नि, प्लीहा, यकृत्, उदरके रोग, महादारुण वातरक्त, मस्तककी पीडा, नेत्रकी पीडा, कानकी पीडा, बद्धगुद, दुष्ट विकारोंवाली ग्रहणी, त्रिदोषजनित सूजन और अन्यान्यभी बहुतसे रोग इस हरडके सेवन करनेसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ५८--६७ ॥

अथ वानरीवटिका।

बीजानि कपिकच्छ्वोः कुडवमितानि स्वेदयेच्छनकैः। प्रस्थे गोभवदुग्धे तावद्यावद्भवेद्गाढम् ॥ ६८ ॥ त्वग्रहितानि च कृत्वा सूक्ष्मं सम्पेषयेत्तानि। पिष्टिकया लघुवटिकाः कृत्वा गव्ये पचेदाज्ये ॥ ६९ ॥ द्विगुणितशर्करापाता वटिकाः सम्पक्वया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेप्याः । वटिका मार्क्षिकमध्ये मर्दनयोगे विरलाः स्थाप्याः ॥ ७० ॥ पञ्चटंकमिता-स्तास्तु प्रातः सायं च भक्षयेत् । अनेन शीघ्रद्रावी यो यश्च स्यात्पतितध्वजः ॥ ७१ ॥ सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्य-मति वाजिवत् । नानेन सदृशं किञ्चिद्द्रव्यं वाजीकरं परम् ॥ ७२ ॥ वानरीवटिका ।

सोलह तोले कौंछके बीजोंको चौंसठ तोले गायके दूधमें पकावे जब पकते २ दूध गाढा हो जाय तब उतार लेवे, फिर इन बीजोंको छीलकर बारीक मैदेकी छोटी २ बडी बनाकर गायके घीमें पकावे, फिर उनसे दुगुनी खांडकी चासनीमें उन बडियोंको छोड देवे, फिर उनको तलकर उसमें निकालकर जितने सहतमें वे डूब जायँ उतने सहतमें भरकर रख देवे । इनमेंसे पांच टंक प्रातःकाल और सन्ध्याके समय भक्षण करे तो जिसका वीर्य तत्काल स्खलित हो जाता है और जिसका लिंग खडा नहीं होता वह पुरुष भी मैथुनके समय घोडेकी समान सामर्थ्यको प्राप्त होता है, इस वानरीवटिकाकी समान अन्य कोई भी वाजीकरण पदार्थ नहीं है ॥ ६८–७२ ॥

अथाकारकरभादिवटी ।

आकारकरभः शुण्ठी लवंगं कुंकुमं कणा । जातीफलं जातिपुष्पं चन्दनं कार्षिकं पृथक् ॥ ७३ ॥ चूर्णयेदहिफेनं तु तत्र दद्यात्प-लोन्मितम् । सर्वमेकीकृतं माषमात्रं क्षौद्रेण भक्षयेत् ॥ ७४ ॥ शुक्रस्तम्भकरं पुंसामिद-मानन्दकारकम् । नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥ ७५ ॥

अकरकरा, सोंठ, लौंग, केसर, पीपल, जायफल, जावित्री और सफेद चन्दन यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर उसका चूर्ण करके उसमें चार तोले अफीम मिलावे, फिर इसकी पांच २ रत्तीकी गोलियां बनावे, नित्य एक गोली सहतके साथ खाय तो पुरुषका वीर्य स्तम्भ होता है, मैथुनमें अत्यन्त आनन्द होता है और स्त्रियें विशेष प्रसन्न होती हैं । कामी पुरुषोंको ये गोलियें खानी चाहिये ॥ ७३–७५ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः संपूर्णः ।

अथ रसायनाधिकारः ।

तत्र रसायनलक्षणम् ।

यज्ज्वरव्याधिविध्वंसि वयःस्तम्भकरं तथा । चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम् ७६

जो औषधी ज्वर और व्याधिको नष्ट करनेवाली अवस्थाको स्थापन करनेवाली, नेत्रोंको हित, पुष्टिकारक और मैथुनशक्तिको बढानेवाली हो उस औषधिको रसायन कहते हैं ॥ ७६ ॥

अथ रसायनफलं विधिश्च ।

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुण वयः । देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्देद्र-सायनात् ॥ ७७ ॥ नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः । न भाति वाससि म्लिष्टे रंगयोग इवाहितः ॥ ७८ ॥

रसायनको सेवन करनेसे दीर्घायु होते हैं, उनकी स्मरण शक्ति अत्यंत तीव्र हो जाती है । तथा मेधा, आरोग्यता, तरुणता, देह और इन्द्रियोंका बल और सुंदर कांति बढाती है । विरेचनादिसे शरीरको विशुद्ध किये रसायनका उपयोग करना योग्य नहीं है । जैसे कि अच्छे प्रकारसे चढाया हुआ रंग मैले वस्त्रको शोभित नहीं करता ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ रसायनप्रयोगाः ।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो हितम् । त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पी स्थापयेद्वयः ॥ ७९ ॥ मण्डूकपर्ण्याः स्वरस प्रभाते प्रयोज्य यष्टीमधुकस्य चूर्णम् । र गुडूच्यास्तु समूलपुष्पः कल्कः प्रयोज्य खलु शंखपुष्प्याः ॥ ८० ॥ आयुष्प्रदान्य मयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या वि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri